# प्रस्तावना.



आ असार संसार समुद्रनेविषे संतत पर्यटन करनारा प्राणीउने जन्म मरणादिक अत्युग्र दुःखोमांथी मुक्त करे एवो तो मात्र एक धर्मज छे. अने एमज सर्व दर्शनीना शास्त्रमां पण कहेलुं छे, एवो जे धर्म तेनुं मूल तो सर्वांश शुद्ध दयाज छे. कहेलुं छे के " अहिंसा परमो धर्मः " दयावडे धर्मनी प्राप्ति थाय छे; अने परिपूर्ण धर्म प्राप्त थया पछी जीव मोक्षगामी थाय छे; माटें दया सर्वोत्कृष्ट पदार्थ छें. सर्व दर्शनीउ दयानो उपयोग करेछे खरा, परंतु सर्वांशें करतां नथी. एटलाज माटें तेउने धर्म पदार्थनो जेवो जोइयें तेवो लाज थतो नथी. दयानो सर्वांशें उपयोग तो मात्र जैन दर्शनमां स्वीकार्यो छे. तेथीज जैनदर्शन धर्मधुरिसर कहेवाय छे, माटें दयानो सर्वांशें उपयोग करवानी अगत्य छे, जेम कांइ जोजनार्थे पक्वान्न करवुं होय तो तेमां घृत, पिष्ट, शर्करादिक अगत्य वस्तुनुं एकत्रपणुं यथाविधि थाय त्यारेज ते पक्वान्न स्वादिष्ट कहेवाय; पण जो उपर कहेली वस्तुउमांथी एक पण वस्तुनुं उंगा पणुं होय तो ते पक्वान्न स्वाद रहित बने. माटें दया पदार्थ सर्वांशें पलाय तोज तेथी धर्मोपलब्धि थाय, ते विना तो कदी पण थायज नहीं. सर्व दर्शनीउने दया मान्य छे खरी तथापि तेउनी समजमां फेर होवाथी तेउ श्रेष्ठता पूर्वक दयानो उपयोग सर्वांशें करी शकता नथी. ए वात आगलना व्याख्यान उपरथी सिद्ध थशे. जेमके कोइएक दर्शनी तो एम जाणे छे के पशुउनो प्राणघात करवो, एटले तेउ जन्मथी छूटे, एम कही दया मानी लियेछे; कोइएक कहेछे के प्राणीउ, ज्यां सुधी शरीरें सुखी होय त्यां सुधी तेमनी उपर दया करवी, पण ज्यारे तेउ व्याधिग्रस्त स्थितिमां पीडाता होय त्यारें तो ते प्राणीउनो वध करी तेमने थती पीडामांथी मुक्त करवा एज दयाछे; केटलाएक कहे छे के सूक्ष्म अथवा स्थूल प्राणीउ, जेउ मनुष्यने दुःख दीयेछे, तेउने मारी नाखवा एज दया छे; केटलाएक तो यज्ञयागादिक करवामां प्राणीउनो नाश करी तेमांज धर्म धुर्र धरता मानी बेठा छे, अने केटलाएक अति सूक्ष्मादि प्राणीउ जेनुं स्वरूप दृष्टिगोचर नथी तेनी चिंता लेश मात्र न राखतां मात्र स्थूल प्राणीउ उपरज दया करवामां दया माने छे. एम अनेक प्रकारे दयानो उपयोग अन्य दर्शनीउ करे छे तथापि तेउ स्वदया, परदया, द्रव्यदया, जावदया, निश्चयदया, व्यवहारदया, स्वरूपदया, अनुबंधदया, इत्यादि दयाना अनेक प्रकार, जैनग्रंथोमा सविस्तर वर्णन करेला छे ते प्रमाणे वर्णी दयानुं स्वरूप नयशैलीपूर्वक समजता नथी, एज तेउनी मतिमा विभ्रम छे

अने एवी भ्रमित मतिवाला दर्शनीउंनुं मत क्यारें पण शुद्ध कहेवाय नहीं परंतु जे दर्शनमां पोताना आत्मानुं आत्मत्वपणुं जाणीने पूर्णपणे दयाने अंगीकार करी हो य, एवुं तो एक श्री जैनदर्शन छे अने ते सर्व लोक प्रविदित छे. तेथी ए धर्म जग तुमां सर्वोत्कृष्ट कहेवाय छे. ए धर्मना एक रीतें, आचारधर्म, दयाधर्म, क्रियाधर्म अने वस्तुधर्म, एवा चार भेद छे अने दान, शील, तप, तथा भाव, ए चार तेनां कारण छे. हवे धन बलें करी दान देवाय, मन बलवडे शील पलाय, शरीर बलवडे तप थाय अने सम्यक्ज्ञानबलवडे भावधर्मनी वृद्धि थाय. ए भावधर्म, दान, शील अने तप, ए त्रणे करतां अधिक छे, केमके भावधर्मनुं कारण ज्ञान बल छे; जेणे करी वस्तुनुं स्वरूप जाणीयें, तेने ज्ञान कहीयें. ते ज्ञानथकी आत्मधर्मनी वृद्धि तथा संरक्षण जे टलुं थायछे तेटलुं पेलां त्रण जे दान, शील ने तप, ते थकी थतुं नथी. एनुं कारण ए छे के नय, निक्षेप, प्रमाण, चार अनुयोगनो विचार, सप्तभंगी, षट्द्रव्यादिकनो विचार, आदि लइ ज्ञान बलवडे जीवने परिपूर्ण प्राप्त थायछे. वली श्री दशवैकालिक सूत्र मां पण प्रथम ज्ञानने पछी क्रिया कहीछे. ते उपरांत ज्ञान विनानी जे क्रिया क रवी ते पण क्लेशरूप कहीछे. अर्थात् क्रिया तो ज्ञाननी दासी जेवीजछे. ज्ञानी पुरुष नी अल्प क्रिया पण अत्यंत श्रेष्ठ छे. वली श्री उत्तराध्ययनमां पण कह्युं छे के ज्ञान गुण संयुक्त जे होय तेनेज मुनि कहेवो. एथी पण ज्ञाननुं महात्म्य अत्युत्कृष्ट जणा यछे. श्री महानिशीथमां ज्ञानने अप्रतिपाति वर्णव्युं छे. श्री मरुदेवी माताने हस्ती उपर बेठां छतां केवल ज्ञान उत्पन्न थयुं. वली श्री भरतेश्वरने आरीसा भुवनमां रह्यां छतां कर्मोनी विमुक्तता थइ ते पण ज्ञाननुंज प्राबल्य हतुं; अने श्री उपदेश मालामां कह्युंछे के ज्ञान रूपी नेत्रें करी उजमाल एवा मुनिने वंदन करवुं योग्य छे. देवाचार्य मल्लवादि प्रमुखोएं बौध दर्शनीउंने जीतीने जगत्मां यशोवाद लीधो, ते पण ज्ञाननो ज प्रसाद जाणवो. ज्ञाननी जे तीक्ष्णता तेज अबंध चारित्र जाणवुं. जे निकाचित कर्मनो क्रोडो वर्षपर्यंत दान, शील तथा तप करवाथी विनाश थतो नथी ते ज्ञानथी एक श्वासोच्छ्वासमां थायछे. एटलाज माटें क्रिया गुरुने पींपलाना पत्र जेवा गण्या छे. अने ज्ञानी गुरुने समुद्र समान गण्या छे. ज्ञान विना सम्यक्त्वपणुं रही शके नहीं, ज्ञा न विना अहिंसानो मार्ग समजाय नहीं, सिद्धांतोक्त समस्त क्रियानुं मूल जे श्रद्धा छे तेनुं पण कारण ज्ञान छे केमके ज्ञान विना श्रद्धानी प्राप्ति थती नथी, एवुं जे ज्ञान तेना पांच प्रकार छे. मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव अने केवल. ए पांचने विषे पण श्रुतज्ञान सर्वथी अधिकोपयोगी छे श्रुतज्ञान पदार्थमात्रनुं प्रकाशक छे. स्वमत तथा प रमतनुं परिपूर्ण प्रकाश करनारुं पण श्रुतज्ञानज छे. अज्ञानरूप तिमिर टालवाने सूर्यस

दृशछे तथा दुस्सम कालरूप रात्रीने विषे तो दीपक समानछे बीजां चार प्रकारनां जे ज्ञान छे तेनुं पण कारण नूत श्रुतज्ञानज छे. परमेश्वरें कह्युं छेके श्रुतज्ञान संव्यवहारक छे. उद्देश, समुद्देश, आज्ञा इत्यादि व्यवहारनो लान श्रुतज्ञानथी थाय छे. वली स्वस्वरूपने परस्वरूप समजाववाने श्रुत ज्ञानज समर्थ छे. बीजां केवल ज्ञानादिक चारे ज्ञानथकी जाणेला पदार्थनुं स्वरूप पण श्रुत ज्ञानवडेज कहेवाय छे. माटें मत्यादिक चार ज्ञान स्थापवा योग्यछे. पण तेणे करीने परजीवने उपदेश आपी उपकार करी शकाय नहीं ; अने श्रुतज्ञानथी उपदेश थाय माटें उपकारी छे. श्रुतज्ञानना श्रवण करवाथी शुद्धात्मिक परमपदनी प्राप्ति थाय छे. माटें श्रुतज्ञान ते महोटुं निमित्त कारण छे. श्रुतज्ञानने सांजलवे करी जीवने शुद्धस्वरूप विशुद्ध श्रद्धान (प्रतीत) उपजे ने तेथी शुद्धात्मानुं आचरण, आसेवन तथा अनुनव उपजे तेज परमपद प्राप्ति जाणवी. श्रुतज्ञान सांनलवाना प्रनावथकी जीव, धर्मने विशेषें जाणे विवेकवंत थाय, दुर्मतिनो त्याग करे, ज्ञाननी प्राप्ति थाय अने अंतें मोक्ष पामे, माटें श्रुतज्ञाननो आदर अवश्य करवो. श्रुतज्ञाननो संयोग थवो जीवने अत्यंत दुर्लन छे. श्रुतज्ञानने संयोगें करीने पूर्वें श्रीगौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी, जंबुस्वामी प्रमुख घणा जीवो संसार समुद्रने तरी गया ; अने वर्त्तमान कालें महाविदेह क्षेत्रने विषे विहरमान सीमंधरादिक वीश तीर्थंकरनी वाणी सांनलीने घणा जीवो तरेछे, तथा आगमिक कालें पद्मनानादिक तीर्थंकरनी वाणी सांनलीने श्रीधर्मरुचि अणगार प्रमुख अनेक जीवो तरशे. तेमज आ नरतादिक क्षेत्रने विषे हमणा पण जे श्रुत ज्ञानने सांनलशे, नणशे, अंतरंग रुचिएं करीनें जे श्रद्धा (प्रतीत) करशे, ते सुलन बोधी थशे, कर्मथी विमुक्त थशे अने तेथी परपराएं मुक्ति पामशे. एवुं श्रुतज्ञाननुं मूल द्वादशांगी छे. ते श्रुतज्ञाननी वांचना, पृछना, परावर्त्तना, अनुप्रेक्षा अने धर्मकथा थाय छे. ए धर्मकथा श्रीउववाइ सूत्रमां चार प्रकारनी कही छे.– आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, निर्वेदिनी अने संवेदिनी. हवे जे थकी एक तत्वमार्गमां प्रवृत्ति थाय तेने आक्षेपिणी कहीएं ; जे थकी मिथ्यात्वनी निवृत्ति थाय तेने विक्षेपिणी कहीएं ; जे थकी मोक्षनी अनिलाषा उत्पन्न थाय, तेने निर्वेदिनी कहीये अने जे थकी वैराग नावनी उत्पत्ति थाय तेने संवेदिनी कहीयें.

एवी ए श्रुतज्ञानरूप कथा श्री अरिहंत देवाधिदेव तीर्थंकर परमेश्वर समवसरणमां बेशीने त्रिपदी उच्चारण पूर्वक द्वादश पर्षदाना मध्यने विषे करेछे. अने तद्रूप दानथी श्रीगणधरो द्वादशांगीनी रचना करेछे, ते सूत्र कहेवायछे. ते प्रत्येक तीर्थंकरना शासनने विषे थाय छे ; तथा ते तीर्थंकरोना शासनमां थयेला प्रत्येक बुध, चौद पूर्वधर, तथा दश पूर्वधर प्रमुख महत्पुरुषो जे निबंधोनी रचना करे छे तेने पण सूत्र संज्ञा

होवाथी द्वादशांगना बारमा दृष्टिवादमां तेनो समावेश थायछे. वर्त्तमान श्रीमहावीर परमेश्वरना शासनमां हाल प्रवर्त्तमान पीस्तालीश सूत्रो छे ते सर्व श्रुतज्ञाननाज भेद छे एम जाणवुं. बीजा पण अक्षर अनक्षरादिक चौद अने पर्याय पर्यायसमासादिक वीश भेद पण छे. हाल पंचम कालमां मात्र श्रुत ज्ञानज प्रगट पणे छे अने मति ज्ञान तो श्रुतज्ञान रूपज छे; केमके श्रुत ज्ञाननुं समवायिकारण, मतिज्ञान छे अने कार्यथी कारण भिन्न नथी, किंतु? अभिन्नज छे. बीजां अवधि, मनःपर्यव अने केवल, ए त्रण ज्ञान आ समयमां क्षेत्र कालादिक भेदने लीधे आ क्षेत्रमां श्रीवीर तीर्थंकरना शासनमां प्रवर्त्तमान नथी; मात्र मतिश्रुतरूप श्रुतज्ञाननोज प्रसार रह्यो छे. ए श्रुत ज्ञानना उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा अने अनुयोग, ए चार प्रकार थाय छे. सामान्य कथन करवुं, तेनुं नाम उद्देश; विशेपकथन करवुं, ते समुद्देश; आज्ञा अथवा अनुमोदन ते अनुज्ञा; अने प्रश्न, पृछा, प्रार्थना प्रमुख करवुं तेने अनुयोग कहीयें. एटला कारण माटें व्याख्यान करवामां श्रुत ज्ञानज उपयोगी छे, पण बीजां ज्ञान नथी; माटें चालता समयमां श्रुतज्ञाननी वृद्धि तथा संरक्षण करवुं, ते धर्मनी वृद्धि तथा संरक्षण कर्या प्रमाणे छे. आ ठेकाणे ज्ञान कारण छे अने धर्म कार्य छे. हवे जेम राजा तथा प्रधान ए बेउ प्रजानी वृद्धि तथा संरक्षणने माटें तत्पर होय छे, तेम द्वादशांगीरूप श्रुतज्ञाननां मूलसूत्र, राजा समान छे अने तेना अर्थ रूप टीका, भाष्य, चूर्णी प्रमुख, प्रधान तुल्य छे. तेथी सूत्र अने टीका प्रमुख धर्मनी वृद्धि तथा संरक्षणनें माटे छे अने ते श्रुतज्ञानरूप छे तेथी श्रुत ज्ञाननी वृद्धि अने संरक्षण करवाना उपाय तथा तत्संबंधी उद्योगमां अस्मन्मतविजयाभिलाषी, सुज्ञजनोयें वपुपरिकर थइ तन, मन अने धनवडे आग्रह राखीने आदरवा, एना जेवुं बीजुं कोइ पण धर्मवृद्धि करवानुं अत्युत्तम साधन नथी. श्रुतज्ञाननी सतत वृद्धि ने संरक्षण करवानुं साधन वर्त्तमान कालमां मुद्रायंत्र सर्वोत्तम छे. ते द्वाराएं ग्रंथो छपावीने तेना भंमारा करावया, ए सर्वोत्तमोत्तम उपायछे. तेउमां प्रथम श्रुतज्ञानना आधारभूत एवा जे पिस्तालिश आगम छे, तेने शुद्ध करी छपावीने प्रसिद्ध करवा. एवा सर्वोत्कृष्ट उपायनो श्री मकशुदाबादेति नगरनिवासी " रायधनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी बहादुर " तेउएं पोतानां परलोक प्राप्त मातुश्री " महताव बाई " तेमना निरंतर नामस्मरण निमित्तें तथा पूर्ण पुण्योपार्जन निमित्तें तथा अस्मदीय दर्शनगत सुजन पुरुषोने श्रुतज्ञान वृद्धि थवाने निमित्तें, प्रारंभ कर्यो छे. उपर कह्या जे पीस्तालीश आगम तेमांथी हाल आ " श्री सूयगडांगसूत्र " गपवाने मनें आज्ञा करायी; में यथामति शुद्ध करीने गप्युंछे. आ ग्रंथ, अत्युत्तम अने अद्भुत रचना

युक्त छे. एनुं सहज व्याख्यान प्रगट करुं छुं, ते वांचवाथी एनुं अतिशय श्रेष्टपणुं ते मज आवश्यकता ध्यानमां आवशे.

सूयगडांग एटले संस्कृत नाषामां सूत्रकृतांग एवुं नाम छे. सूत्र एटले जेमां सूत्र नी सूचना होय तथा स्वपरमतनी सूचना कराय ते सूत्र कहीयें. ते सूत्र बे प्रकारनुं होय छे. पहेलुं द्रव्यसूत्र अने बीजुं नावसूत्र जे कापोसादिकथी उत्पन्न थयुं होय, ते द्रव्यसूत्र कहीयें, अने श्रुत ज्ञानरूप सूत्र ते नावसूत्र छे, एम जाणवुं. वली जे प दार्थनुं सूचक होय ते श्रुतज्ञान सूत्र जाणवुं. ते श्रुतज्ञान सूत्रना चार नेद छे संज्ञा सूत्र, संग्रहसूत्र, वृत्तबंधसूत्र, तथा जातिबंधसूत्र हवे जे स्वसंकेत पूर्वक बांधे लुं होय ते संज्ञासूत्र केवाय; जेमां घणा अर्थोनो संग्रह तथा धर्माधर्मद्रव्यनुं ग्रह ण होय ते संग्रह सूत्र केवाय; जे अनेक प्रकारना वृत्त छंदनी जातिथी बांधेलुं होय ते वृत्तबंधसूत्र केवाय अने जे जातिथी बांधेलुं होय ते जातिबंध सूत्र कहेवाय. ए जाति सूत्रना चार नेद छे. तेनां नाम कहीयें छैयें. जेम के, कथ्य, गद्य, पद्य, अने गेय. हवे जे उत्तराध्ययन तथा ज्ञाताधर्मकथादिकनी पेरें प्रायें पूर्व रुषिनां चरित्र प्रमुख कथा उनो विस्तार जेमां होय ते कथ्य; जे ब्रम्हचर्य अध्ययनादिकनी पेरें जेमां मुक्त नाषानुं विवेचन होय ते गद्य. जेमां छंदरचनावडे मनोहर वर्णन होय, ते पद्य अने कापिली अध्ययननी पठें स्वप्रीतिथी गायन करी जेनी रचना थइ होय ते गेय.

अथवा तीर्थंकरोना मुख थकी नव्य जीवोना मोक्षार्थें उत्पन्न थयेलो जे अर्थ ते सूत्र; अने तेनी जे गणधरें रचना करी तेने कृत कहीयें. एम सूत्र अने कृत ए बे मलीने सूत्रकृत एवुं पद थयुं. अथवा सूत्रने अनुसारें जेमां तत्वनो प्रबोध होय, ते पण सूत्रकृत कहेवाय; अने तेना कर्त्ता पण गणधरो छे. हवे गणधर कोने कहेवा? जे सामान्याचार्य होय ते गणधर कहेवाय; ते गौतमादिक जाणवा. ते गौतमादिक एकाद श गणधरोमांहेला पांचमा गणधर श्रीसुधर्मा स्वामी तेमणे पोताना श्रीजंबुप्रनृति शिष्योने उपदेश करवाने अर्थें आ ग्रंथनी रचना कीधी छे; अने एकारण माटें आ ग्रं थनुं नाम सूत्रकृत छे एम जाणवुं. वली बीजुं नाम द्वितीय सूत्रकृतांग एवुं पण छे, तेनुं कारणके पूर्वोक्त पिस्तालीश सूत्रांतर्गत एकादशांगमानुं ए द्वितीय अंगछे ते पूर्वो क्त गणधर विरचित एकादशांग मध्यें प्रथमांगनुं नाम आचारांग छे; तेमां जीवनी छ कायनुं स्वरूप जाणवुं, एनो सविस्तर उपदेश करेलो छे अने एमां ज्ञाननुं प्राधान्य छे. ज्ञाननी प्राप्ति थया पछी ज्ञान पूर्वक क्रिया करवी ते संबंधी आरंनमां (बुज्जिज्ज) एवी गाथा लखीने प्रथम आचारांग साथें आ द्वितीय सूत्रकृतांगनो संबंध मेलव्यो छे. एना बे श्रुत स्कंध छे. ते मध्यें प्रथम श्रुतस्कंधना शोल अने द्वितीय श्रुतस्कंधना सा

त, मली त्रेवीश अध्ययनो ठे. अने तेमां तेत्रीश उद्देशाउ ठे. एनी पद संख्या ठत्रीश हजारनी ठे. मूल सूत्रनी श्लोक संख्या ( २१०० ) ठे. एमां मुख्यत्वें इव्यानुयोग नी प्रधानता ठे अने स्वमतानुसारी महान् साधु जनोनें उदासीनरूप क्रिया प्रवृत्ति आश्रयी उपदेश करतां थकां अन्य पाखंमी दर्शनीउना मतोनुं खंमन यथायोग्य कीधुं ठे. ए शीवाय बीजा पण जे जे विषयोठे ते सर्व अनुक्रमणिकामां सविस्तर दर्शावेला ठे, ते जोवाथी स्पष्ट समजाशे.

ए ग्रंथनी टीका करनार पंमितोमां श्रेष्ठ एवा श्रीशीलंगाचार्य नामें पंमित हता, तेउ विक्रम संवत् ठसोना सुमारमां थइ गया एवी दंतकथा ठे. ए विषे कोइ ग्रंथ साक्षी आपे एवुं आज सुधी म्हारा जाणवामां आव्युं नथी. ए महान् टीकाकारनी जन्मभूमि वल्लभीपुर नगरी जे हाल वलानें नामें प्रख्यात ठे त्यां हती, एवुं मने सांजलवामां आव्युं ठे. सांप्रत कालना पंमितो एमनी टीका वांचीने तेनी वाक्यरचना तथा उत्तम सरलता सार्थें गांभिर्य अने शब्द चातुर्यथी मोह पामी स्तुति करवामां महोटो आनंद माने ठे. ए टीकानी श्लोक संख्या बार हजार आवशो ने पचाश ठे. ए महा, पंमितें अन्यसूत्रो आचारांगादि उपर पण टीका करेली ठे. ए स्तुतिपात्र टीकाकारनी टीका करवानी शैली एवी सरल अने सुगम ठे के ते वांचतां वांचतां पंमितोने पदशःपरमानंदप्रादुर्भाव थातो रहेज नहिं तथा एनी मनोहर रचना अने अर्थ चमत्कृतिनी एवी सुंदर ठटाथी वांचनार ते वाणी रसनेज अनुभवे. सूक्ष्म विषयनुं विवेचन एवी अलौकिक ढबथी कर्युं ठे के वक्ता तेमज श्रोता उभयना मनने संपूर्ण संतोष उपजे अने क्यारें पण संशयतो लेश मात्र रहेज नहीं. प्रत्येक विषयनुं निरूपण साद्यंत नियम बंध कीधेलुं ठे के जेथी आपोआप तेनी सर्व मतलब ध्यान मां आवे ; जेम एक वार लखेली वातनो संबंध बीजे ठेकाणे लगाडवो होय, तो त्यां पूर्ववत् ए संकेतथी वांचनारने तुरत आगली वातनुं ज्ञान थाय. वली आ टीका वांचवा थकी जाणे टीकाकारें ग्रंथकर्तानो सर्वहृगत अभिप्राय सान्निध्यताथी निःशेष श्रवण कर्यो होय एम टीका वांचनारने उत्प्रेक्षा थाय ठे. एम सूत्रनो अक्षरशः अर्थ न जाय एवी रीतें सनिर्युक्तिक टीका करी ठे एवा अनेक प्रकार जेणे करीने टीकानी श्रेष्टता अने स्तुति पंमितो करे, ते आ महाविद्वान् पंमितनी टीकामां नजरें आवे ठे. टुंकामां एटलुंज केवुं ठे के जेटली खुबीउ ए टीकामां रही ठे ते सर्व विस्तारनी बार ठे. मात्र वांचवाथीज तेनो आनंद प्राप्त थाय एम ठे.

एनी दीपिका श्री हेमविमलसूरिएं विक्रम संवत् १५०३ ना वर्षमां करेली ठे. तेनी श्लोक संख्या मूल सुधां सात हजार ठेः कारणके "सप्त सहस्राणि किंचिन्न्यूना

नि " एवुं एमणे पोतेंज लख्युं छे. ए दीपिका पण घणी सरल सुरस, अने पदना य थायोग्य अर्थयुक्त अतिशय मनोहर छे. एनी शैली एवी बांधीछे के जेने थोडुं घणुं सं स्कृतनुं ज्ञान होय तेने पण सुगमताथी समज पडे अने एवी सरलरचनाने माटें ते वा जनो, ए पंमितनो अत्यंत आजार माने छे.

आ ग्रंथनो बालावबोध श्री पार्श्वचंद्र सूरियें करेलो छे. आ वात, बीजा श्रुतस्कंध ना अंतमां प्रगट करेली छे. ए बालावबोध टीका उपरथी कीधेलो छे. केमके दीपिका करनार करतां बालावबोध करनारनी उत्पत्ति पूर्वें छे, तो पण ज्यारें ते मारा वांचवामां आव्यो त्यारें ते एटलो तो अस्तव्यस्त देखायो के तेने सुधारवानी मारी हिम्मत चाली नहीं. तथापि ए कार्य अवश्य थवुंज जोइयें, एवुं जाणी में मारी अल्पमत्यनुसार श्रम लइने सुधार्यो छे.

हवे ए सूत्ररूप कल्पवृक्षनो जे जन आश्रय ग्रहण करे छे, ते निज भावानुसार फल पामे छे. पण तेने अर्थें ए वृक्ष उपर आरोहण करवा माटें पूर्वाचार्योएं निश्रे णियो करेली छे; जेम के टीका, भाष्य, निर्युक्ति, दीपिका, चूर्णी तथा बालावबोध प्रमुख. एमांथी वली टीकाकर्त्तायें टीकामांहेज निर्युक्तिनी गाथाउ लखीने तेनी पण टीका करेली छे तेथी निर्युक्तिनो समावेश टीकामां करेलो छे तथा दीपिका अने बा लावबोध रूप एवी चार नीश्रेणीउ जूदा जूदा चार आचार्योनी करेली आ सूयगडां गसूत्ररूप कल्पवृक्षने लगाडी छे तेने उपयोगमां लइ उपर कह्युं एवुं जे आ सूयग डांग सूत्ररूपकल्पवृक्ष, तेनां फल ग्रहण करवा माटें भविक जनोएं अत्यानंद पूर्वक तत्पर थवुं, ए मारी सविनय प्रार्थना छे.

ए सूत्रमां सर्व जगत्ने प्रमोद उपजावनारी श्री वीतरागनी वाणी छे. ते केवी छे तोके भव रूप वेलनी कृपाणी, संसार रूप समुद्रथी तारवा वाली, महामोहरूप अंधकार नो नाश करवाने दिनकरना किरणो जेवी प्रकाश वाली, क्रोधरूप दावानलनो उपशम करनारी. मुक्तिना मार्गने दर्शावनारी, कलिमलनो प्रलय करनारी, मिथ्यात्वने छेदन कर नारी, त्रिभुवननुं पालन करनारी, मन्मथनो रोध करनारी, अमृतरसनुं आस्वादन करावनारी अने हृदयने अत्याल्हाद करनारी एवां अनेक विशेषणोपयुक्त एवी जे श्री जिनवाणी ते सर्व सज्जनोनें मान्य थाउ.

कदापि निविड कर्मनी शृंखलायें प्रतिबद्ध थयेला एवा अभव्य दुर्भव्यने बोध कर वा माटें ए वाणी समर्थ नथी थती तो पण ए वाणीनुं असामर्थ्य समजवुं नहीं. केमके सूर्यना किरणो जेम घुअड पक्षीना नेत्रने प्रकाश करी शकतां नथी तो पण ते जगत्मां निंदानां आधिष्ठान थतां नथी. वली जलनी वृष्टि करनारो मेघ जो प

ण उपर क्षेत्रने विषे तृणादिक उत्पन्न करवा माटें असमर्थ छे ते छतां ते लोकने विषे निंदानें पात्र थतो नथी. तेमज जे पुरुषने ए वाणी गमती नथी ते तेनुं पोतानुंज दौर्भाग्य समजवुं. माटें कुशल बुद्धिवाला सज्जनोने आ जिनवाणी रूप प्राधान्य ग्रंथ महोत्सवरूप आनंद आपनारो थाउ अने तेमना चित्त रूप सरोवरने विषे प्रेमरूप जल भराउ, तथा तेने योगें तेउने मोक्ष रूप महा सुंदर कमलनी प्राप्ति थाउ. अस्तु.

शा० भी० मा०.

---

## विज्ञापना.

परमेश्वरनी वाणी रूप अमृतरस जेमां रेलाइ रह्यो होय तेवा ग्रंथोने मुद्रित करी प्रसिद्ध करवा ए महा परमार्थ छे. एथी सुज्ञजनो आनंद पामेछे. विवेकी जनो पठन पाठन करीने जिनधर्म भावमां दृढता वधारे छे, सामान्य जीवो व्याख्यानादिक श्रवण करीने धर्मलाभने पामे छे. सज्जन पुरुषो वांचीने पोताना चित्तनें निर्मल राखी धर्मने विषे आदर करेछे. एवी उत्कृष्ट जिनवाणी जेमां मुख्य छे एवा श्रुतज्ञाननी वृद्धि, संरक्षण तथा विनय करवा जेवुं कोइ पण उग्र, पुण्यप्रकृति बांधनारुं बीजुं शुभ कर्म नथी. तेनुं साधन वर्त्तमान समयमां उपर कह्या प्रमाणे मुद्रायंत्र घणुं सुलभ अने मनोहर छे. एनी सहायताथी सर्व सूत्रो तथा सर्व ग्रंथो छपावी प्रसिद्ध करवा, ए श्रुतज्ञाननी वृद्धि, संरक्षण तथा विनय, हाल सर्वोत्कृष्ट गणाय एम छे खरुं पण ए कार्य, द्रव्यवान् गृहस्थथी बनी शके. जेम द्रव्यवान् तेमज वली श्रीजिन धर्म प्रसार उपर प्रीतिमान् पण संपूर्ण होवो जोइयें, एवो असाधारण पुरुष चतुर्विध संघमां कोइ विरलोज मली आवे. जेम हाल बाबु साहेब "राय धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी" छे. एवो श्रावक आधुनिक वर्त्तमान कालमां बीजो कोइ पण नथी. एमणे उक्त रीति प्रमाणे प्रीतिसहित सर्व आगमो छपावी प्रसिद्ध करवानो उद्योग चालु कर्योछे. ए स्वधर्माग्रही बाबु साहेबें मने हाल श्री सूयगडांग सूत्र छापवानी आज्ञा करी ते में यथा बुद्ध्यनुसार सुधारीने मूल सूत्र, दीपिका, टीका तथा बालावबोध सहित छाप्युं छे. एमां दृष्टिदोषथी वा बुद्धिदोषथी अज्ञानरूप अंधकारना पराधीन पणाथी कोइ अशुद्धपद, वा शब्दनी योजना थइ होय तो सज्जन पुरुषोएं तेने माटे मने क्षमा करवी. यद्यपि आ मारो विवेक योग्य नथी केम के सज्जनोनो तो एवो स्वभावज होय छे के कोइ पण सत्कर्ममां दोष तेउनी दृष्टिगोचर थतो नथी, ते छतां पूर्वें श्रेष्ठ ग्रंथकारोएं एवी

पद्धति राखी छे तेने अनुगत थईने में पण ए विवक कीधो छे. सज्जनो पासें क्षमा मागी, तेना करतां विशेषपणें डुर्जनो पासें क्षमा मागुं छुं, केम के तेउनो स्वनावज एवो होय छे के कोइना हाथथी शुन कृत्य थाय छे ते जोइ तेमने मनःसंताप उपजे छे अने बीजानी हानी थाय तेमां तेउ लान समजे छे. बीजाना दोष कहाडवामां महा पंमित होय छे. बीजाना कल्याणरूप घृतनी उपर माखी थइ बेसे छे इत्यादिक अगणित दीर्घदोषोयें करी युक्त डुष्टजनो होय छे, एवा डुष्टजनो उलूक समान छे तेथी तेउ आ जिनवाणी रूप सूर्यना प्रकाश थकी अंध थइने विपर्यासने पामशे, अने द्वेष बुद्धिथी ईर्ष्या करशे तेथी तेमना हृदयमां ताप उत्पन्न थशे तेने माटें हुं तेमनी पासें क्षमा मागुं छुं, कारणके, ते ताप उत्पन्न थवानुं कारण तेउ मने गणशे. अस्तु.

शा० नी० मा०.

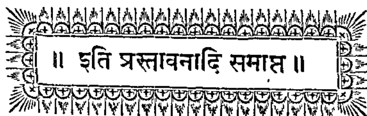
ज्ञान प्रसाररूप पुण्यकर्म उपार्जन करवामां प्रथम पंक्तिमां गणवा लायक महान्पुरुष जेणे लोकोपकारने अर्थे पिस्तालीश आगम मूल तथा तेउमांथी जेनी टीका प्रमुख जे अंग मले ते सहित मुद्रित करी प्रसिद्ध करवानो उद्योग आ समयमां प्रसार कीधो छे ; तेवा सज्जन गृहस्थोनी उत्पत्ति विषे सहज लख्या विना मारी कलम अन्यकार्य करवामां चाली शकती नथी. तेथी यत्किंचित् लखुं छुं.

बंगाला इलाकामां बालोचर, मकशुदाबाद, अने मुरसिदाबाद एवा त्रण नामें उंलखातुं सुंदर शहेर छे. ज्यां कृष्णगढथी आवी निवास करनारा उसवंशरूप नंदन वनमां कल्पवृक्ष समान डुगडगोत्रीय, धर्म, न्याय, विवेक, अने विनयादिक श्रेष्टगुणें युक्त, तेमज सर्व सत्यवादिउमां अग्रेसर, महाबुद्धिनिधि, दीन जीवने तन, मन, धनवडे सहाय करनार, रूडा स्वनाववाला, पुण्य प्रनावरूप चंड्ना प्रकाशवडे दिशाउने प्रकाश करनारा एवा "राय बुद्धसिंहजी" नामें श्रावक श्रीजिनधर्म उपर महोटा श्रद्धावान् हता. तेमनी कुशलादे नामें पत्नीनी कुक्षियकी संवत् १०२७ ना माघवदि एकमने गुरुवारने दिवसें राय प्रतापसिंहनामें कुलदीपक सुपुत्र उत्पन्न थया. तेउ सर्व धनाढ्योमां शिरोमणि अने महाधर्मनिष्ठ तेमज क्षमावान् तथा धर्माऽधर्मना निर्णय करनाराउमां अग्रेसर थया. तेमनी चतुर्थ पत्नीनुं नाम महताबबाई हतुं. तेमणे उसवंशमां मुकुटमणि, न्यायमार्गे लक्ष्मीनुं उपार्जन करनार तथा धर्म, अर्थ, काम. ए त्रिवर्गना साधनारा अने प्राणिमात्रने विषे दयाईपणाएं युक्त, एवा महातेजस्वी बे पुत्रोने जन्म आप्यो. तेमां वडा पुत्रनुं नाम "रायलक्ष्मीपति सिंह बाहाडुर" तथा जेमणे आवा ग्रंथो छपावी प्रसिद्ध करवानो उद्योग आरंन्यो छे, ते कनिष्ट पुत्रनुं नाम "रायधनपति सिंह बाहाडुर" छे. ए बेहु सद् गृहस्थो, सद्गुणनिधान अने मनुष्य मात्रना कल्याणमां उत्सुक छे, माटें आ जिनधर्म

प्रेरक उत्तम ग्रंथ छपावी एमणे पोताना जन्मनुं सार्थक कर्युं छे. एवा परमार्थी कार्यो, ए भाग्यशालीओने हाथे प्रतिदिवस थाओ. एवी मारी वारं वार विज्ञापना छे.

## ॥ काव्य छंद ॥

जिनवच पियूष पान, करन जो अति अभिलाषी;
एहि रातिदिन ध्यान, चित्तमें रहंत विभाषी ;
कथा सुनत युतप्रीति, रीति अद्भुत धरी हीमें;
ज्ञान वृद्धिके हेत, अधिक उत्सुक सबहीमें. १
जिहिं मातुश्री प्रान, त्यागि गय सुरभव मांही;
सुमरन तिनके नाम, कीय निश्चय इक आंहीं ;
सबहीं आगम छापि, प्रसिद्ध करिय या जगमें;
बहुत प्रानि अवलोकि, बांचि सुनि वह ता मगमें. २
चलत सोइ उद्योग, करन मुद्रित सब आगम;
तिनमें इक मुहि दीन्ह, इतहिं जब भयो समागम ;
सूत्र कृतांग पवित्र, द्वितिय जो अंग कहावै;
सब विधि अति उत्कृष्ट, सुनत बांचत मन भावै. ३
सो किय छापि प्रसिद्ध, होइ मनमें उल्लासा;
भयो एहउपकार, मोरि मति परम प्रकाशा ;
बाबु साब परताप, जानि यह अर्पण करहुं ;
सदा रहहुं जगमांहि, मनुष अस भावन धरहुं. ४
धर्म वृद्धि के हेत, बुद्धि अति उदार कीनी;
लीनी कीर्ति अखंड, सहाय तन मन धन दीनी;
सफल कीन नर देह, धन्य धनपतिसिंह जगमें,
अमर आपका नाम, रहो जिनधर्म ग्रंथमें. ५



॥ श्रीसद्गुरुभ्योनमः ॥

॥ अथ ॥

## ॥ श्रीसूयगडांगसूत्र द्वितीयांगानुक्रमणिका प्रारंभः ॥

॥ तत्र ॥

## ॥ प्रथम श्रुतस्कंधस्य षोडशाध्ययनानुक्रमणिका ॥

पहेलुं समयाख्य नामा अध्ययन छे, तेमां स्वसमय अने परसमयनी प्ररूपणा करी छे. ए अध्ययनना चार उद्देशा छे. तेमध्यें पहेला उद्देशामां छ. अर्थाधिकार छे, बीजा उद्देशामां चार अर्थाधिकार छे, त्रीजा उद्देशामां बे अर्थाधि कार छे अने चोथा उद्देशामां एकज अर्थाधिकार छे. ते मध्यें अनुक्रमें प्रथमाध्ययनना चार उद्देशामांहेला प्रत्ये क अर्थाधिकारनी अनुक्रमणिका दर्शावियें छैयें.

॥ तत्र प्रथमोद्देशानुक्रमणिका ॥

१ पहेला उद्देशाना पहेला अर्थाधिकारनी प्रथम गाथामां आचारांग साथे आ सूयगडांगनो संबंध, एवी रीतें मेलव्यो छे के आचारांगमां छकायनुं स्वरूप जाणवुं, एटले ज्ञान कर्यु, ते ज्ञानप्राप्ति थया पछी ज्ञानपूर्वक क्रिया करवी. ते संबंधें आरंभमां (बुझिज्ज) ए गाथाथी संबंध छे. ते संबंध मेलवीने पछी पांचमी गाथा पर्यंत स्वसमयनुं स्थापन कर्युं छे. तें वार पछी आठमी गाथा पर्यंत परसमयी जे पंचमहाभूतवादी तेनुं मत कहेलुं छे. ते आ प्रमाणे के पृथवी, अप्, तेज, वायु अने आकाश, ए पाचनुं सर्वत्र व्यापकपणुं छे माटें ए पांच महाभूतज सर्वत्र छे परतु आत्मा छेज नहीं. ए रीतें एमनुं मत कहीने पछी तेनुं खंडन कर्युं छे.

२ पहेला उद्देशाना बीजा अर्थाधिकारमां चेतनाचेतन सर्वने विषे एक आत्मा वर्त्ते छे माटे सर्व पदार्थ एक आत्मरूपज छे परंतु शरीर शरीरने विषे जुदो जुदो आत्मा नथी. एवो आत्माद्वैतवादीनुं मत नवमी गाथा पर्यंत दर्शावीने पछी दशमी गाथामां तेनुं खंडन कर्युं छे.

---

॥ द्वितीयोद्देशानुक्रमणिका ॥



---

॥ तृतीयोद्देशानुक्रमणिका ॥



---

॥ चतुर्थोद्देशानुक्रमणिका ॥



---

॥ अथ द्वितीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

बीजुं वैतालीयनामा अध्ययन छे. एमां त्रण उद्देशक छे. प्रत्येक उद्देशकमां एकेक अर्थाधिकार छे तेनी अनुक्रमणिका करीयें छैयें.



॥ अथ तृतीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

त्रीजुं उपसर्ग परिज्ञानामें अध्ययन छे. एमां चार उद्देशक छे ते मध्यें त्रीजा उद्देशामां बे अर्थाधिकार छे अने बाकीना त्रणे उद्देशामां प्रत्येके एकेक अर्थाधिकार छे. तेनी अनुक्रमणिका करीयें छैयें.

॥ अथ चतुर्थाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

चोथुं स्त्रीपरिज्ञानामें अध्ययन छे. एनां बे उद्देशक छे. एकेक उद्देशक मां एकेको अर्थाधिकार छे. तेनी अनुक्रमणिका करीयें छैयें.



॥ अथ पंचमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

पांचमुं निरयविभक्ति नामें अध्ययन छे. एनां बे उद्देशा छे. प्रत्येक उद्देशामां एकेक अर्थाधिकार छे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.

॥ अथ षष्ठाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥



॥ अथ सप्तमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथाष्टमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥



॥ अथ नवमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥



॥ अथ दशमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥



॥ अथ एकादशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥



॥ अथ द्वादशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

प्रथम गाथामां ए चारे मतनी गणना करी पछी बीजी गाथामां अज्ञानवादीनुं मत दर्शावीने तेनुं खंमन कखुंछे. त्रीजी गाथामां विनयवादीनुं मत देखाडी पछी चोथी गाथाना पूर्वार्द्धमां तेनुं अज्ञानपणुं देखाड्युं छे. चोथी गाथाना उत्तरार्द्धमां अक्रियावादीनुं मत देखाडी पछी पांचमी गाथामां अक्रियावादीनुं अज्ञानपणुं दर्शावीने छठी गाथामां तेने दूषण आपी खंमन कखुं छे. सातमी गाथाथी सर्व शून्यवादीनुं मत कखुं छे. अगीआरमी गाथाथी क्रियावादीनुं मत दर्शावी पछी तेनुं अज्ञानपणुं बतावीने तथा जैनदर्शनमां संसार परिच्रमणनो अनाव देखाडीने बावीशमी गाथा पर्यंत अध्ययनपरि समाप्त कखुं छे. ... .. ४४५

---

॥ अथ त्रयोदशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

१३ तेरमुं याथातथ्य नामा अध्ययन छे. एमां पण एक उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार छे. आ अध्ययननी त्रेवीशे गाथामां कापिल, काणाद, अक्षपाद, सौधोदन अने जैमनीय प्रमुख मतानुसारीउ जे कुमार्गपणे तत्व साधन करे छे ते दर्शाव्युंछे तथा याथातथ्य सम्यक्ज्ञाननुं स्वरूप, तथा सत्पुरुषनो श्रुत चारित्ररूप धर्म, अने पूर्वोक्त परतीर्थिक साधु तथा गृहस्थना डुराचार तथा स्वतीर्थिक पासज्ञादिकना डुराचार तथा निर्वाण मार्ग अने संसार च्रमणरूपमार्ग तेमज निन्ह्वादिक बोटीकादिक एवा जे मिथ्यात्वना प्रेखा कदाग्रही जिनमार्गना उन्नापक कुमार्गना उपदेशक जनो छे. ते सर्व याथातथ्य पणे कह्या छे. ... ... .. ... ... ४८४

---

॥ अथ चतुर्दशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

१४ चौदमुं ग्रंथपरित्यागनामा अध्ययन छे. एमां पण एक उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार छे. आ अध्ययनमां सत्तावीश गाथा छे. तेमां मुख्यत्वें करी गुरुकुल वास करवो कह्यो छे तथा बाह्याच्यंतर परिग्रहना त्याग थकी चारित्र थाय छे मार्टे एमां ग्रंथपरित्याग करवानो उपदेश करेलो छे. ५०८

---

॥ अथ पंचदशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

१५ पंदरमुं आदाननामा अध्ययन छे. एमां एक उद्देशक अने एकज अर्था

॥ अथ षोडशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥



॥ अथ ॥

## ॥ द्वितीय श्रुतस्कंधस्य सप्ताध्ययनानुक्रमणिका ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

ज्ञानप्राप्ति थती नथी तेथी ते पौंमरिक कहेवाय नहिं. तेनुं सविस्तर वर्णन तथा जे सत्साधु छे ते सम्यक्दर्शनादिक एवा मोक्षमार्गमां प्रवर्त्तता कर्मना मोचक जाणवा, ते प्रतिपादन कर्युं छे. आ अध्ययनमां जूदा जूदा शाठ आलावा छे, तेनी अनुक्रमणिका लखीयें बैयें.

॥ अथ तृतीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

त्रीजुं आहारपरिज्ञानामा अध्ययन छे. तेनो एक उद्देशक तथा अर्थाधिकार पण एकज छे, तेना जूदा जूदा आ डत्रीश आलावा छे तेनी अनुक्रमणिका लखियें छैयें.



॥ अथ चतुर्थाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

चोथुं प्रत्याख्यान क्रियानामा अध्ययन छे एमां एकज उद्देशक अने अर्थाधिकार पण एकज छे. एना जूदा जूदा अगीआर आलावा छे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.

॥ अथ पंचमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ षष्ठाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

ढठुं आर्द्रकीयनामा अध्ययन ढे. एमां एक उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार ढे. ते मध्यें पचावन गाथाउ ढे. तेनी अनुक्रमणिका लखीयें ढैयें.

॥ अथ सप्तमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

सातमुं नालंदीय नामा अध्ययन छे. तेमां एकज उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार छे, एमां जूदा जूदा चालीश आलावा छे पूर्वाध्ययनमां साधुना आचार कह्या तेम आ अध्ययनमां श्रावकना आचार कह्या छे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.

# रायधनपतसिंघ बाहाडुरका जैनागम संग्रह
## जाग डुसरा.
॥ ॐनमो वीतरागाय ॥

अथ

## ॥ द्वितीयंसूत्रकृतांगं ॥

गुर्जरजापासहित श्रीहर्षकुलरुतदीपिकायुक्तं शीलंगाचार्यकृतटीकायुतंच प्रारभ्यते.

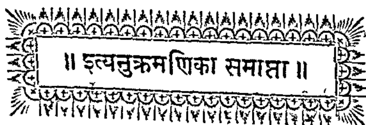
तत्रमूलं ॥ बुझिज्झत्तितिउट्टिज्जा, बंधणं परिजाणिया॥किमाह बंधणं वीरो किंवा जाणंति उट्टई ॥ १ ॥ चित्तमंतमचित्तंवा परिगिज्झ किसामवि ॥ अन्नंवा अणुजाणाइ एवं डुक्काणमुच्चइ ॥ २ ॥

---

प्रथम गुर्जर जापामां अर्थकर्तानुं मंगलाचरण.

अर्थ—प्रणम्य सद्गुरून् नत्त्या वालानां बोधहेतवे ॥ किंचित् सूत्रकृतांगस्य लि रूयते वार्तिकं मया ॥ १ ॥ प्रथम श्रीआचारांग कहीने पछी सुयगडांग कह्यु तेनो संबंध मेलवेछे. जे कारण श्री आचाराग मांहे, (जीवो छक्काय परू, वणा य तेसिंच हेणवणो नि) ॥ इत्यादि कह्यु छे. ते सर्वे परमार्थेने (बुज्झिज्झके०) जाणवुं जोइए. एम आचाराङ्गसा थे आ सुयगडांगनो संबंध जाणवो. ए अधिकारे बीजुं अंग सुयगडांग आरजीए छैए. अ हीया केटलाएक वादी ज्ञानेकरीनेज मुक्ति थायछे एम कहेछे, अने केटलाएक क्रियाए करी मुक्ति कहेछे. अने जैन तो एम कहेछे के ज्ञान अने क्रिया ए बन्ने थकी मुक्तिछे, ए अर्थ ए श्लोकमांहे देखाडेछे ते एमके.

(बुज्झिज्झत्ति) के० छ कायनुं स्वरूप जाणे एटले ज्ञान कह्यु, अने ज्ञानपूर्वक क्रिया करवी ते सफलछे. तेकारण माटे आगल (तिउट्टिज्जा) एवो सूत्रपाठ कह्यो, ते (तिउट्टिज्जाके०) त्रो डे ते शुं जाणीने! शुं त्रोडे! ते कहेछे. (बंधणं) के० बांधीए जे जीवने प्रदेशे करी ते बं धन ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकार कर्मरूप इत्यर्थः. ते कर्मना हेतु मिथ्यात्व, अविरत, कषा य अने योग अथवा परिग्रह आरंज ए बंधनना कारणने (परिजाणिया) के० जाणे. प ण एकला जाणपणाथकी वांछितार्थनिष्पित्तिनथी; ते माटे क्रिया देखाडेछे. ते बंधन ज्ञपरिज्ञाए करी जाणीने पछी प्रत्याख्यानपरिज्ञा जे संयमानुष्ठान तेणे करी बंधनने त्रो डे. एटले आत्माथकी कर्म दूर करे, एवुं वचन श्रीसुधर्मास्वामिनाविति सांजलीने जं


॥ इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ॥

## रायधनपतसिंघ बाहादुरका जैनागम संग्रह

### नाग डुसरा.

॥ ॐनमो वीतरागाय ॥

अथ

## ॥ द्वितीयंसूत्रकृतांगं ॥

गुर्जरनापासहितं श्रीहर्षकुलकृतदीपिकायुक्तं शीलंगाचार्यकृतटीकायुतंच प्रारभ्यते.

तत्रमूलं ॥ बुज्झिज्जत्तितिउट्टिज्जा, बंधणं परिजाणिया॥किमाह बंधणं वीरो किंवा जाणंति तुट्टइ ॥ १ ॥ चित्तमंतमचित्तंवा परिगिज्झ किसामवि ॥ अन्नंवा अणुजाणाइ एवं डुक्काणमुच्चइ ॥ २ ॥

---

### प्रथम गुर्जर नापामां अर्थकर्तानुं मंगलाचरण.

अर्थ–प्रणम्य सद्गुरून् नत्त्वा बालानां बोधहेतवे ॥ किंचित् सूत्रकृतांगस्य लिख्यते वार्तिकं मया ॥ १ ॥ प्रथम श्रीआचारांग कहीने पठी सुयगडांग कहुं तेनो संबंध मेलवेठे. जे कारण श्री आचारांग मांहे, (जीवो ठक्काय परू, वणा य तेसिंव हेणबंधोनि) ॥ इत्यादि कहुं ठे. ते सर्व परमार्थेने (बुज्झिज्जके०) जाणवुं जोइए. एम आचाराङ्गसाथे आ सुयगडांगनो संबंध जाणवो. ए अधिकारे बीजुं अंग सुयगडांग प्रारंनीए ठैए. अहींयां केटलाएक वादी ज्ञानेकरीनेज मुक्ति थायठे एम कहेठे, अने केटलाएक क्रियाए करी मुक्ति कहेठे. अने जैन तो एम कहेठे के ज्ञान अने क्रिया ए बन्ने थकी मुक्तिठे, ए अर्थ ए श्लोकमांहे देखाडेठे ते एमके.

(बुज्झिज्जत्ति) के० ठ कायनुं स्वरूप जाणे एटले ज्ञान कहुं, अने ज्ञानपूर्वक क्रिया करवी ते सफलठे. तेकारण माटे आगल (तिउट्टिज्जा) एवो सूत्रपाठ कह्यो, ते (तिउट्टिज्जाके०) त्रोडे ते शुं जाणीने! शुं त्रोडे! ते कहेठे. (बंधणं) के० बांधीए जे जीवने प्रदेशे करी ते बंधन ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकार कर्मरूप इत्यर्थः ते कर्मना हेतु मिथ्यात्व, अविरत, कषाय अने योग अथवा परिग्रह आरंन ए बंधनना कारणने (परिजाणिया) के० जाणे. पण एकला जाणपणाथकी वांठितार्थसिद्धिडुर्लनठे; ते माटे क्रिया देखाडेठे. ते बंधन ज्ञपरिज्ञाए करी जाणीने पठी प्रत्याख्यानपरिज्ञा जे संयमानुष्ठान तेणे करी बंधनने त्रोडे. एटले आत्माथकी कर्म दूर करे, एवुं वचन श्रीसुधर्मास्वामिनापित सांनलीने जं

बूस्वामिप्रमुख शिष्य पूछेछे के, (किमाहबंधणंवीरो) के० श्रीमहावीर देवे बंधन केवुं कह्युं छे! अथवा (किंवा जाणंतिउट्टई) के०शुं जाणीने ते बंधन त्रोडे? इति प्रथम श्लोकार्थः॥१

हवे बंधननुं कारण कहेछे; ए जगतमांहे ज्ञानावरणीयादिक जे कर्म ते बंधन जाण वुं, ते कर्म बांधवानां कारण आरंभ अने परिग्रहछे. तेमां पहेलुं परिग्रह देखाडेछे, (चित्तमंतमचित्तंवा) के० सचित्तते द्विपद चतुष्पदादिक अने अचित्तते सुवर्णरूप्यादिक ए बे प्रकारे परिग्रहछे, ते (परिगिज्झ किसामवि) के० थोडा तृण तुषादिक पोतानीपासे परिग्रहीने (अन्नंवा) के० अनेरा बीजा पासे परिग्रहावे तथा (अणु जाणाइ)के०परिग्रह करतां ने अनुमोदे. एवो जीव, (एवं) के०एरीते (डुक्खा णमुच्चइ) के० दुःखथकी न मूकाए ॥२॥

---

श्रीः ॥ अथ श्री द्वितीयांगदीपिका प्रारभ्यते ॥

॥प्रणम्य श्रीजिनं वीरं, गौतमादिगुरूंस्तथा ॥ स्वाम्योपकृतये कुर्वे द्वितीयांगस्य दीपिकां ॥१॥ इह हि प्रवचने चत्वारोऽनुयोगाः ॥ तथाहि चरणकरणानुयोगः १ द्रव्यानुयोगः २ धर्मकथानुयोगः ३ गणितानुयोगश्च ४ तत्र प्रथमं श्रीमदाचारांगं चरणकरणानुयोगप्राधान्येन व्याख्यातं ॥ अथेदं श्रीसूत्रकृताख्यं द्वितीयांगं द्रव्यानुयोगप्राधान्येन व्याख्यायते ॥ सूत्रकृतांगमिति कः शब्दार्थः ॥ उच्यते ॥ सूत्रं स्वपरसमयसूचनं कृतं येन तत्सूत्रं तदेवांगमिति ॥ तत्रश्रुतस्कंध द्वयं ॥ प्रथमश्रुतस्कंधे षोडशाध्ययनानि ॥ द्वितीये सप्त ॥ तत्र प्रथमश्रुतस्कंधस्य प्रथमाध्ययने चत्वारउद्देशकाः ॥ तत्रापि पूर्वं प्रथमोद्देशकः ॥ तस्यायमादिःश्लोकः ॥ (बुज्झिज्जत्ति०) ॥१॥ व्याख्या ॥ बुध्येत जानीयात् ॥ किंतत् ॥ बंधनं बध्यते जीवोऽनेन बंधनं ज्ञानावरणाद्यष्टप्रकारं कर्म ॥ तद्धेतवो मिथ्यात्वादयोवा परिग्रहारंभादयो वा बंधनं जानीयादित्युक्तं ॥ नच ज्ञानमात्रेण सिद्धिरित्याह ॥ (तिउट्टिज्जा) (परिजाणिआ) परिज्ञायत्रोटयेत् अपनयेत् आत्मनःपृथक्कुर्यादित्यर्थः ॥ अथजंबुस्वामी शिष्यः श्रीसुधर्मस्वामिनमाह ॥ (किमाहेति) ॥ श्रीवीरः किंबंधनं आह उक्तवान् किंवा जानन् बंधनं त्रोटयति ॥ उत्तरमाह ॥ १ ॥ (चित्तेति) ॥ चित्तवत् सचित्तं द्विपदचतुष्पदादि अचित्तं कनकरजतादि तद्द्वयमपि परिगृह्य परिग्रहं कृत्वा कृशमपि स्तोकमपि स्वयमन्यान्वा ग्राहयित्वा ॥ गृह्णतोवाऽन्याननुज्ञाय एवंदुःखान्नमुच्यते॥ परिग्रहएव परमानर्थमूलमित्युक्तं ॥ परिग्रहतश्चावश्यंभावारंभस्तस्मिंश्च प्राणातिपात इति दर्शयति. ॥ २ ॥

---

॥ ॐनमःसिद्धाय ॥ अथ श्री शीलंगाचार्यकृत टीका ॥ आर्या वृत्तं ॥

स्वपरसमयार्थसूचकमनंतगमपर्ययार्थगुणकलितम् ॥ सूत्रकृतमंगमतुलं, विवृणोमि जिनान्नमस्कृत्य ॥ १ ॥ ॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥ ॥ व्याख्यातमंगमिह यद्यपि सूरिमुख्यै,

नेत्तया तथापि विवरीतुमहं यतिष्ये ॥ किं पक्षिराजगतमप्यवगम्य सम्यक्, तेनैव वांछति
पथा शलभो न गंतुम् ॥ २ ॥ ॥ इंद्रवज्रावृत्तम् ॥ ॥ ये मध्यवज्ञां व्यधुरिहबोधा, जा
नंति ते किंचन तानपास्य ॥ मत्तोपि यो मंदमतिस्तथास्ति, तस्योपकाराय ममैष यत्नः
॥ ३ ॥ इहापारसंसारांतर्गतेनाऽसुमताऽवाप्याऽतिदुर्लभं मनुजत्वं सुकुलोत्पत्तिसमग्रें
द्रियसामग्र्याद्युपेतेनाऽर्हद्दर्शनमशेषकर्मोच्छित्तये यतितव्यम् ॥कर्मोच्छेदश्च सम्यग्विवेकसव्य
पेक्षोऽसावप्याप्तोपदेशमंतरेण न भवति ॥आप्तश्चात्यंतिकाद्दोपक्षयात्सचार्हन्नेवातस्तत्प्रणी
तागमपरिज्ञाने यत्नो विधेयः ॥ आगमश्च द्वादशांगादिरूपः सोप्यार्यरक्षितमिश्रैरैदंयुगीनपु
रुषानुग्रहबुद्ध्या चरणकरणद्रव्यधर्मकथागणितानुयोगभेदाच्चतुर्धा व्यवस्थापित।तत्राचा
रांगं चरणकरणप्रधान्येन व्याख्यातमधुनाऽवसरायातं द्रव्यप्राधान्येन सूत्रकृताख्यं द्वितीय
मंगं व्याख्यातुमारभ्यत इति । ननु चार्थस्य शासनाच्छास्त्रमिदं ।शास्त्रस्य चाशेषप्रत्यूहोपशां
त्यर्थमादिमंगलं तथा स्थिरपरिचयार्थं मध्यमंगलं शिष्यप्रशिष्यविच्छेदार्थं चांत्यमंगलमुपादेयं
तच्चेह नोपलभ्यते । सत्यमेतत् । मंगलं ह्यीष्टदेवतानमस्कारादिरूपं । अस्य च प्रणेतासर्व
ज्ञस्तस्य चापरनमस्कार्याभावान्मंगलकरणे प्रयोजनाभावाच्च न मंगलाभिधानं । गणधरा
णामपि तीर्थकृदुक्तानुवादित्वान्मंगलाकरणं । अस्मदाद्यपेक्षयातु सर्वमेव शास्त्रं मंगलं।अ
थवा निर्युक्तिकारएवात्रभावमंगलमभिधातुकामआह ॥ (तित्थयरे जिणवरे, सुत्तकरे गणह
रे पणमि कणं । सूयगडस्स भगवउ, णिज्जुत्तिं कित्तइस्सामि) ॥ १ ॥ गाथापूर्वार्द्धेनेहभाव
मंगलमभिहितं पश्चार्द्धेन तु प्रेक्षापूर्वकारिप्रवृत्यर्थंप्रयोजनादित्रयमिति । तदुक्तं—"उक्तार्थं
ज्ञातसंबंधं, श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते ॥ शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः संबंधः सप्रयोजनः" । तत्र सू
कृतस्येत्यभिधेयपदं । निर्युक्तिं कीर्त्तयिष्ये इति प्रयोजनपदं । प्रयोजनं तु मोक्षावाप्तिः । सं
बंधस्तु प्रयोजनपदानुमेय इति पृथक् नोक्तः ॥ तदुक्तं—"शास्त्रं प्रयोजनं चेति संबंधस्याश्र
यावुभो ॥ तदुक्त्यंतर्गतस्तस्माद्भिन्नो नोक्तः प्रयोजनादिति समुदायार्थः ॥ अधुनाऽवय
वार्थ. कथ्यते ॥ तत्र तीर्थं द्रव्यभावभेदाद्विधा । तथापि द्रव्यतीर्थं नद्यादेः समः समुत्त
रणमार्गः ॥भावतीर्थं तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि॥संसारार्णवादुत्तारकत्वात् तदाधारोवा
संघः प्रथमगणधरोवा तत्करणशीलास्तीर्थकरास्तान्नत्वेति क्रिया । तत्रान्येपामपितीर्थक
रत्वसंभवेत द्व्यवच्छेदार्थमाह ( जिनवरानिति ) ॥ रागद्वेषमोहजितो जिनाः । एवंभूताश्च
सामान्यकेवलिनोऽपिभवंति त द्व्यवच्छेदार्थमाह—(वराः) प्रधानाश्चतुस्त्रिंशदतिशयसमन्वित
त्वेन तान्नत्वेति ॥ एतेपां च नमस्कारकरणमागमार्थोपदेष्टृत्वेनोपकारित्वात् । विशिष्ट
विशेषणोपादानं च शास्त्रस्य गौरवाधानार्थं शास्तुः प्राधान्येनेह शास्त्रस्यापि प्राधान्यं भ
वतीति भावः । अर्थस्य सूचनात्सूत्रं तत्करणशीलाः सूत्रकारास्ते च स्वयंबुद्धादयो
पि भवंतीत्यतआह (गणधरास्तांश्च नत्वेति) ॥ सामान्याचार्याणां गणधरत्वेपि तीर्थक

रनमस्कारानंतरोपादानाद्गौतमादय एवेह विवक्षिताः ॥ प्रथमश्चकारः सिद्धाद्युप लक्षणार्थो द्वितीयः समुच्चितः । क्त्वाप्रत्ययस्य क्रियांतरसव्यपेक्षतामाह—स्वपर समयसूचनं कृतमनेनेति सूत्रकृतस्तस्य महार्थत्वाद्भगवांस्तस्यानेन च सर्वज्ञप्रणी तत्वमावेदितं भवति ॥ ( निर्युक्तिं कीर्तयिष्ये ) इति ॥ योजनंयुक्तिः । अर्थघटना निश्चये नाधिक्येन वा युक्तिर्निर्युक्तिः । सम्यगर्थप्रकटनमिति यावत् । निर्युक्तानां वा सूत्रेष्वेव प रस्परसंबंधानामर्थानामाविर्भावनं । युक्तशब्दलोपान्निर्युक्तिरिति । तां कीर्त्तयिष्येऽभिधास्य इति । इह सूत्रकृतस्य निर्युक्तिं कीर्त्तयिष्ये इत्यनेनोपक्रमद्वारमुपक्षिप्तं तत्रेहोद्देशेनिर्देशे इत्यादिनेपदनिहितमिति । तदनंतरं निक्षेपः ॥ सचत्रिविधः । तद्यथा—ओघनिष्पन्नो नामनिष्पन्नः सूत्रालापकनिष्पन्नश्चेति । तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽगं नामनिष्पन्ने तु निक्षे पे सूत्रकृतमिति॥ १ ॥तत्र तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्येत्यतः पर्यायप्रदर्शनार्थं निर्युक्तिकृदाह(सूय गडं अंगाणं, बितियं तस्स य इमाणि नामाणि ॥ सूयगडं सुत्तकडं,सूयगडं चेव गोणाइं ॥) ॥ २ ॥ सूत्रकृतमित्येतदंगानां द्वितीयं तस्य चामून्येकार्थिकानि । तद्यथा—सूत्रमुत्पन्नमर्थ रूपतया तीर्थकृद्भ्यः । ततः कृतं ग्रंथरचनया गणधरैरिति । तथा (सूत्रकृतमिति) । सूत्रा नुसारेणतत्वावबोधः क्रियतेऽस्मिन्निति । तथा सूचाकृतमिति । स्वपरसमयार्थसूचनं सूचा साऽस्मिन्कृतेति।एतानि चास्य गुणनिष्पन्नानि नामानीति॥ २॥सांप्रतं सूत्रकृतपदयोर्निक्षेपा र्थमाह (दवं तु पोंडयादी, भावे सुत्तमिह सूयतं नाणं ।।सण्णासंगहवित्ते, जातिणिबद्धेय कद्धादी) ॥ ३ ॥ (दव्वमित्यादि) । नामस्थापनेऽनादृत्य सूत्रं दर्शयति (पोंडया इति)। पों ड्गं च वनीफलाद्युत्पन्नं कार्प्पासिकं । आदिग्रहणादंडजवालजादेर्ग्रहणं । भावसूत्रंत्वि हास्मिन्नधिकारे सूचकं ज्ञानं श्रुतज्ञानमित्यर्थः ॥ तस्यैव स्वपरार्थसूचकत्वादिति । तच्च श्रुतज्ञानसूत्रं चतुर्द्धा भवति । तद्यथा—संज्ञासूत्रं संग्रहसूत्रं वृत्तबद्धं जातिनिबद्धं । तत्र संज्ञासूत्रं यत् स्वसंकेतपूर्वकं निबद्धं ॥ तद्यथा—जे छेए सागरियं नसेवे सवामगंधं परिण्ण यणिरामगंधो परिवए इत्यादि । तथा लोकेपि पुद्गलाः संस्कारक्षेत्रजाइत्यादि ॥ संग्रहसूत्रं तु यत्प्रभूतार्थसंग्राहकं ॥ तद्यथा द्रव्यमित्याकारिते समस्तधर्माऽधर्मादिद्रव्यग्रहइति । यदिवोत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति ॥ वृत्तनिबद्धं सूत्रं पुनर्यदनेकप्रकारया वृत्तजात्या निब द्धं ॥ तद्यथा(बुज्झिज्जत्तितिउट्टिज्जेत्यादि) ॥ जातिनिबद्धं तु चतुर्द्धा ॥ तद्यथा कथनीयंकथ्य मुत्तराध्ययनज्ञाताधर्मकथादि पूर्वर्षिचरितकथानकप्रायत्वात्तस्य । तथा गद्यं—ब्रह्मचर्या ध्ययनादि तथा पद्यं—छंदोनिबद्धं तथा गेयं यत्स्वरसंचारेण गीतिप्रायं निबद्धं । तद्यथा— कापिलीयमध्ययनं अधुवेअसासयंमि संसारंमि दुक्खपउराए इत्यादि ॥३॥ इदानीं कृतप दनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृद्गाथामाह (करणं चकारउय, कइं च तिण्हंपि छक्कनिक्खेवो; दवे खित्ते काले, भावेणउ कारउ जीवो) ॥ ४ ॥ (करणंचेत्यादि) । इहकृतमित्यनेन कर्मोपात्तं

न चाकर्तृकं कर्म नवतीत्यर्थात्कर्तुराक्षेपो धात्वर्थस्य च करणस्यामीषां त्रयाणामपि प्रत्येकं नामादिः । षोढानिक्षेपस्तत्रगाथापश्चार्द्धेनाल्पवक्तव्यत्वात्तावत्करणमतिक्रम्यकारकस्य निक्षेपमाह—तत्र नामस्थापने प्रसिद्धत्वादनादृत्य द्रव्यादिकं दर्शयति (दवेइ ति ॥ द्रव्यविषये कारकश्चिंत्यः । सच द्रव्यस्य द्रव्येण द्रव्यभूतो वा कारको द्रव्यकारकः । तथा क्षेत्रे भरतादौ यः कारको यस्मिन् वा क्षेत्रे कारको व्याख्यायते सक्षेत्रकारकः । एवं कालेपि योज्यं ॥ भावेन तु भावद्वारेण चिंत्यमानोत्र कारकोयस्मात्सूत्रस्य गणधरः कारकः ॥ एतच्चसूत्रकृदेवोत्तरत्र वक्ष्यति (विइ अणुभावेत्यादौ)॥४॥सांप्रतं करणव्याचिख्यासया नामस्थापने मुक्त्वा द्रव्यादिकारणनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह ॥ (दवंपउगवीससं, पउगसामूल उत्तरे चेव ॥ उत्तरकरणं वंजण, अड्डो उउवक्करोसवो ) ॥५॥ (दवइत्यादि) द्रव्ये द्रव्यविषये करणं चिंत्यते । तद्यथा द्रव्यस्य द्रव्येण द्रव्यनिमित्तंवा करणमनुष्ठानं द्रव्यकरणं । तत्पुनर्द्विधा । प्रयोगकरणं विस्रसाकरणं च । तत्र प्रयोगकरणं पुरुषादिव्यापारनिष्पाद्यं । तदपि द्विविधं । मूलकरणमुत्तरकरणं च । तत्रोत्तरकरणं गाथापश्चार्द्धेन दर्शयति—उत्तरत्र करणमुत्तरकरणं कर्णवेधादि । यदिवा तन्मूलकरणं घटादिकं ये नोपस्करेण दंडचक्रादिना अभिव्यज्यते स्वरूपतः प्रकाश्यते तदुत्तरकरणं । कर्तुरुपकारकः सर्वोप्युपस्करार्थ इत्यर्थः॥५॥पुनरपि प्रपंचतो मूलोत्तरकरणे प्रतिपादयितुमाह॥(मूलकरणं सरीरा, णि पंचतिसुकसुखंदमादीयं । दविंदियाणि परिणा, मियाणि विसउंजहा दीहिं) ॥६॥ (मूलकरणमित्यादि) । मूलकरणमौदारिकादीनि शरीराणि पंच । तत्र चौदारिकवैक्रियाहारकेषु त्रिषूत्तरकरणं कर्णस्कंधादिकं विद्यते । तथाहि सीसमुरोयर पिठ्ठी, दो बाहू ऊरुयाय अंगत्ति; त्रयाणामप्येतन्निष्पत्तिर्मूलकरणं । कर्णस्कंधाद्यंगोपांगनिष्पत्तिस्तूत्तरकरणं ॥ कार्मणतैजसयोस्तु स्वरूपनिष्पत्तिरेव मूलकरणमंगोपांगाभावान्नोत्तरकरणं ॥ यदिवौदारिकस्य कर्णवेधादिकमुत्तरकरणं । वैक्रियस्यतूत्तरकरणमुत्तरवैक्रियं दंतकेशादिनिष्पादनरूपं वा आहारकस्यतु गमनाद्युत्तरकरणं ॥ यदिवौदारिकस्य मूलोत्तरकरणे गाथापश्चार्द्धेन प्रकारांतरेण दर्शयति—द्रव्येंद्रियाणि कलंबुकापुष्पाद्याकृतीनि मूलकरणं तेषामेव परिणामिनां विषौषधादिभिः पाटवाद्यापादनमुत्तरकरणमिति ॥६॥ सांप्रतमजीवाश्रितं करणमभिधातुकाम आह (संघायणेयपरिसा, डणाय मीसे तहेव पडिसेहो ॥ पडिसं खसगडघूणा, उट्टतिरिच्छादिकरणंच)॥७॥(संघायणेयइत्यादि) ॥ संघातकरणं आतानविताभीभूततंतुसंघातेन पटस्य ॥ परिसाटकरणं करपत्रादिनाशंखस्य निष्पादनं ॥ संघातपरिसाटकरणंशकटादेस्तदुभयनिषेधकरणं स्थूणादेरूर्ध्वतिरश्चीनाद्यापादनमिति ७प्रयोगकरणमभिधाय विस्रसाकरणाभिधित्सयाह (खंधेसुदुपएसा,दिएसु अब्भेसुविज्जुमाईसु । णिप्पन्नगाणि दवा,णि जाणतंवीससाकरणं) ॥८॥ (खंधेसु इत्यादि) । विस्रसाकरणं साद्यनादिभेदाद्विधा ।

तत्रानादिकं धर्माऽधर्माऽकाशानामन्योन्यानुवेधेनावस्थानं । अन्योन्यसमाधानाश्रयणाच्च सत्यप्यनादित्वे करणत्वाविरोधः । रूपिद्रव्याणां च द्व्यणुकादिप्रक्रमेण भेदसंघाताभ्यां स्कंधत्वापत्तिः । सादिकं करणं पुद्गलद्रव्याणां च दशधा परिणामः । तद्यथा बंधन गति संस्थान भेद वर्ण गंध रस स्पर्श अगुरुलघु शब्दरूप इति । तत्र बंधः स्निग्धरूक्षत्वात् गतिपरिणामो देशांतरप्राप्तिलक्षणः । संस्थानपरिणामः परिमंडलादिकः पंचधा । भेदपरिणामः खंडप्रतरचूर्णकाऽनुतटिकोत्करिकाभेदेन पंचधैव । खंडादिस्वरूपप्रतिपादकं चेदं गाथा द्वयं । तद्यथा (खंडेहि खंडभेयं, पयरब्भेयं जहस्स पडलस्स ॥ चुस्रं चुरियभेयं, अणुतडियं वंसवक्कलियं) ॥१॥ (डुंडंमि समारोहे, भेए उक्केरियाय उक्केरं ॥ वीसस पउगमीसग, संघाय विउगविविहगमो)॥ २ ॥ वर्णपरिणामः पंचानां श्वेतादीनां वर्णानां परिणतिर्द्रव्यादिसंयोग परिणतिश्च । एतत्स्वरूपं च गाथाभ्योऽवसेयं । ताश्चेमाः (जइ कालगमेगगुणं, सुक्किलयंपि य हविज्ज बहुय गुणं । परिणामिज्जइ कालं सुक्केण गुणाहियगुणेणं ॥ १ ॥ जइ सुक्किलमेगगुणं कालगदव्वं तु बहुगुणं जइय । परिणामिज्जइ सुक्कं, कालेण गुणाहियगुणेणं ॥ २ ॥ जइ सुक्कं एक्कगुणं, कालगदव्वंपि एक्कगुणमेव । कावोयं परिणामं, तुल्लगुणत्तेण संभवइ ॥३ एवं पंचविवस्रा, संजोएणं तु वस्रपरिणामो, एकत्तीसं भंगा, सव्वेवि य ते मुणेयव्वा ॥४॥ एमेवय परिणामो, गंधाण रसाण तहय फासाणं, संठाणाणय भणिउ, संजोगेणं बहुविगप्पो) ॥ ५ ॥ एकत्रिंशद्भंगा एवं पूर्यंते । दशद्विकसंयोगा दशत्रिकसंयोगाः पंचचतुष्कसंयोगा एकः पंचकसंयोगः प्रत्येकं वर्णाश्च पंचेति । अगुरुलघुपरिणामस्तु परमाणोरारभ्य यावदनंतानंतप्रदेशिकाः स्कंधाः सूक्ष्माः । शब्दपरिणामस्ततविततघनसुषिरभेदाच्चतुर्धा । तथा ताल्वोष्ठपुटव्यापाराद्यभिनिवर्त्त्यश्च । अन्येपि पुद्गलपरिणामाश्छायादयो भवंति ते चामी (छाया य आयवो वा, उज्जोउ तहय अंधकारो य । एसो उ पुग्गलाणं, परिणामो फंदणा चेव ॥ १ ॥ सीयाणा य पगासा, छायाणाइच्छिया बहुवि गप्पा । उह्लो पुणप्पगासो, णायव्वो आयवो नाम ॥ २ ॥ नविसीउ नविउह्लो, समोपगासोय होइ उज्जोउ । कालं मइलं तंपिय. वियाणतं अंधयारंति ॥ ३ ॥ दव्वस्स चलण पप्फं, दणाउ सापुण गईउ निद्दिठा । वीसस पउग मीसा, अत्तपरेणं तु उभउवी)॥ ४ ॥ तथाऽभ्रेंद्रधनुर्विद्युदादिषु कार्येषु यानि पुद्गलद्रव्याणि परिणतानि तद्विस्रसाकरणमिति॥ ७॥गतंद्रव्यकरणं इदानीं क्षेत्रकरणाभिधित्सयाऽह ॥ (णविणा आगासेणं,कीरइजं किंचि खेत्तमागासं। वंजण परियावस्रं.उच्छुकरणमादियं बहुहा) ॥८॥ (णविणेत्यादि) ॥ क्षिनिवासगत्योरस्मादधिकरणे ष्ट्रना क्षेत्रमिति । तच्चावगाहदानलक्षणमाकाशं । तेनचावगाहदानलक्षणयोग्येन विना न किंचिदपि कर्तुं शक्यत इत्यतः क्षेत्रकरणं । क्षेत्रकरणं नित्यत्वेपि चोपचारतः क्षेत्रस्यैव करणं क्षेत्रकरणं । यथा गृहादावपनीते कृतमाकाशं उत्पादिते विनष्टमि

ति । यदिवा व्यंजनपर्यायापन्नं शब्द द्वाराऽयातमिक्षुकरणादिकमितीक्षुक्षेत्रकरणं ॥ लांग लादिना संस्कारः क्षेत्रकरणं । तच्च बहुधा शालिक्षेत्रादि नेदादिति॥ए॥सांप्रतं कालकरणा निधित्सयाऽह ॥ (कालो जो जावइउं, जं कीरइ जंमि जंमि कालंमि । उंहेण णामउं पुण, करणा एक्कारस हवंति)॥१०॥ (कालोजोइत्यादि) । कालस्यापि मुख्यं करणं न संनवतीत्यौपचारिकं दर्शयति ॥ कालोयोयावानिति । यःकश्चिद्घटिकादिको नलिकादिना व्यवछिद्य व्यवस्थाप्यते तद्यथा । षट्पुदकपलमाना घटिका । द्विघटिकोमुहूर्त्तस्त्रिंशन्मुहूर्त्तमहोरात्रमित्यादि तत्कालकरणमिति । यद्वा यत् यस्मिन् काले क्रियते यत्रवा काले करणं व्याख्यायते तत्कालकरणमेतदोघतः ॥१०॥ नामतस्त्वेकादशकरणानि तानि चामूनि (बवंच बालवं चैव, कोलवं तेत्तिलं तहा। गरादि वणियं चेव,विठी हवइ सत्तमा ॥११॥ सउणि चउप्पय नागं,किंसुग्घं च करणं नवे एयं । एते चत्तारि धुवा,अन्ने करणा चला सत्त ॥१२॥ चाउद्दसि रत्तीए, सउणी पडिवज्जए सदा करणं।तत्तो अहक्कमं खलु,चउप्पयं णागकिंसुग्घं) ॥१३॥ एतज्जायात्रयं सुखोन्नेयमिति ॥११॥१२॥१३॥ इदानीं नावकरणप्रतिपादनायाह (नावे पउंग वीससा, पउंगसा मूल उत्तरे चेव । उत्तर कम सुय जोवण, वसादीनो अणादीसु) ॥१४॥ (नावे पउगेत्यादि) । नावकरणमपि द्विधा। प्रयोग विस्रसानेदात् । तत्र जीवाश्रितं प्रायोगिकं मूलकरणं पंचानां शरीराणां पर्याप्तिस्तानि हि पर्याप्तिनामकर्मोदयादौदयिके नावे वर्तमानो जीवः स्ववीर्यजनितेन प्रयोगेण निष्पादयति । उत्तरकरणं तु गाथापश्चार्द्धेनाह—उत्तरकरणं क्रमश्रुतयौवनवर्णादिचतूरूपं। तत्र क्रमकरणं शरीरनिष्पत्त्युत्तरकालं बालयुवस्थविरादिक्रमेणोत्तरोत्तरोऽवस्थाविशेषः। श्रुतकरणं तु व्याकरणादिपरिज्ञानरूपोऽवस्थाविशेषोऽपरकलानां परिज्ञानरूपश्चेति । यौवनकरणंकालकृतो वयोवस्थाविशेषो रसायनाद्यापादितोवेति ॥ तथा वर्णगंधरसस्पर्शकरणं विशिष्टेषु नोजनादिषु सत्सु यद्विशिष्टवर्णाद्यापादनमित्येतच्च पुजलविपाकित्वा द्वर्णादीनामजीवाश्रितमपिद्रष्टव्य मिति १४ इदानीं विस्रसाकरणाभिधित्सयाऽह॥(वसादियायवसा,दिएसुजेकेइवीससा मेला ॥ ते हुंति थिरा अथिरा, बाया तवइक्कमादीसु)॥१५॥ (वसाइत्यादि) वर्णादिका इति रूपरसगंधस्पर्शास्ते यदा परेषामपरेषां वा स्वरूपादिनां मिलंति ते वर्णादिमेलकाविस्रसाकरणं ॥ तेच मेलकाः स्थिरा असंख्येयकालावस्थायिनोऽस्थिराश्च क्षणावस्थायिनः संध्यारागाभ्रेंद्रधनुरादयोनवंति ॥ तथा बायात्वेनातपत्वेनच पुजलानां विस्रसा परिणामत एव परिणामो नावकरणं ॥ स्तनप्रच्यवनानंतरं क्षुधादेश्च प्रतिक्षणं कश्चिणाम्लादिनावेन गमनमिति१५सांप्रतं श्रुतज्ञानमधिकृत्य मूलकरणाऽभिधित्सयाऽह ॥ (मूलकरणं पुण सुत्ते, तिविहे जोगे सुनासुने झाणे ॥ ससमयसुएण पगयं, अस्सवसाणेण य सुहेणं)॥ १६ ॥ (मूलेत्यादि) श्रुते पुनः श्रुतग्रंथे मूलकरणमिदं त्रिविधे योगे मनोवाका

यत्नक्षणे व्यापारे शुनाशुने च ध्याने वर्तमानैर्ग्रंथरचना क्रियते । तत्र लोकोत्तरैः शुना शुनध्यानावस्थितैर्ग्रंथरचना विधीयते ॥ लोकेत्वशुनध्यानाश्रितैर्ग्रंथग्रंथनं क्रियतइति ॥ लौकिकग्रंथस्य कर्मबंधहेतुत्वात् कर्तुरशुनध्यायित्वमवसेयं ॥ इहतु सूत्रकृतस्य तावत्स्व समयेन शुनाध्यवसायेनच प्रकृतं ॥ यस्माद्गणधरैःशुनध्यानावस्थितै रिदमंगं कृतमिति १६ तेषांच ग्रंथरचनांप्रति शुनध्यायिनां कर्मद्वारेण योऽवस्थाविशेषस्तद्दर्शयितुकामो निर्यु क्तिकृदाह ॥ (ठिइअणुनावे बंधण, निकायणनिहत्त दीहहस्सेसु ॥ संकम उदीरणाए उदये वेदेउवसमेयं)॥१७॥(ठिइइत्यादि) । तत्र कर्मस्थितिं प्रति अजघन्योत्कृष्टकर्मस्थिति निर्गणधरैः सूत्रमिदं कृतमिति ॥ तथाऽनुनावो विपाकस्तदपेक्षया मंदानुनावैस्तथा बं धमंगीकृत्य ज्ञानावरणीयादिप्रकृतीर्मंदानुनावा बध्नद्भिस्तथाऽनिकाचयद्भिरेवं निधत्ता वस्थामकुर्वद्भिस्तथा दीर्घस्थितिकाः प्रकृतीर्ह्रसीयसीर्जनयद्भिस्तथोत्तरप्रकृतीर्बध्यमाना सु संक्रामयद्भिस्तथोदयवतां कर्मणामुदीरणां विदधानैरप्रमत्तगुणस्थैस्तु शाताऽशाताऽ यूंष्यनुदीरद्भिस्तथा मनुष्यगति पंचेंद्रिय जात्यौदारिक शरीर तदंगोपांगादिकर्मणा मुदये वर्तमानैस्तथावेदमंगीकृत्य पुंवेदेसति तथोवसमेति सूचनात्सूत्रमिति क्षायोपश मिकानावे वर्तमानैर्गणधारिनिरिदं सूत्रकृतांगं ग्रंथितमिति १७सांप्रतं स्वमनीषिकापरिहार द्वारेण करणप्रकारमनिधातुकामआह ॥ (सोऊण जिणवरमतं, गणहारी काउं तरक उ वसमं ॥ अज्ञवसाणेण कयं, सूत्तमिणं तेणसूयगडं ) ॥१८॥ (सोऊणेत्यादि) श्रुत्वा निशम्य जिनवराणां तीर्थकराणां मतमनिप्रायं मातृकादिपदं गणधरैर्गौतमादिनिः कृत्वा. तत्रग्रंथरचने क्षयोपशमं तत्प्रतिबंधककर्मक्षयोपशमादत्तावधानैरितिनावः ॥ शुनाध्यवसा येन वसता कृतमिदं सूत्रं तेनसूत्रकृतमिति॥१८॥इदानीं कस्मिन् योगे वर्तमानैस्तीर्थकृद्भि र्नाषितं कुत्रवा गणधरैर्हृब्धमित्येतदाह ॥(वइजोगेणपनासिय, मणेगजोगंधराणसाहूणं॥ तो वय जोगेणकयं, जीवस्स सनावियगुणेण) ॥ १९ ॥ (वइजोगेणेत्यादि) । तत्र तीर्थ कृद्भिः क्षायिकज्ञानवर्तिनिर्वाग्योगेनार्थः प्रकर्षेण नाषितः प्रनाषितो गणधराणां ॥ तेच नप्राकृतपुरुषकल्पाः किंत्वनेकयोगधराः ॥ तत्र योगः क्षीराश्रवादिलब्धिकलापसंबंधस्तं धारयंतीत्यनेकयोगधरास्तेषां प्रनाषितमिति सूत्रकृतांगाऽपेक्षया नपुंसकता ॥ साधवश्चा त्र गणधरा एव गृह्यंते तदुद्देशेनैव नगवतामर्थप्रनाषणादिति ॥ ततोर्थं निशम्य गणधरै रपि वाग्योगेनैव कृतं तच्च जीवस्य स्वानाविकेन गुणेनेति ॥ स्वस्मिन्नावे नवः स्वानावि कः प्राकृतइत्यर्थः ॥ प्राकृतनाषयेत्युक्तं नवति॥ नपुनः संस्कृतया लट्लिट्शप् प्रकृतिप्रत्य यादिविकारविकल्पनानिष्पन्नयेति ॥१९॥ पुनरन्यथा सूत्रकृतनिरुक्तमाह ॥ ( अरकरगुण मतिसंघा, यणाएकम्मपरिसाडनाएय ॥ मडुनयजोगेण कयं, सुत्तमिणं तेण सूत्तगमं) ॥ २० ॥ (अरकरेत्यादि) । अक्षराणि अकारादीनि तेषां गुणोऽनंतगमपर्यायत्वमुच्चारणं

वाऽन्यथाऽर्थस्य प्रतिपादयितुमशक्यत्वात् ॥ मतेर्मतिज्ञानस्य संघटना मतिसंघटना अक्षर गुणेन मतिसंघटना ॥ जावश्रुतस्य ड्व्यश्रुतेन प्रकाशनमित्यर्थः ॥ अक्षरगुणस्य वा मत्या बुध्या संघटना रचनेति यावत् ॥ तया ऽक्षरगुणमतिसंघटनया ॥ तथा कर्मणां ज्ञानावरणा दीनां परिशाटना जीवप्रदेशेन्यः पृथक्करणरूपा तयाच हेतुनूतया सूत्रकृतांगं कृतमिति संबन्धः । तथाहि । यथा यथा गणधराः सूत्रकरणायोद्यमं कुर्वन्ति तथा तथा कर्मपरिशा टना नवति । यथा यथाच कर्मपरिशाटना तथा तथा ग्रंथरचनायोद्यमः संपद्यत इति । ए तदेव गाथापश्चार्धेन दर्शयति । तजुनययोगेनेति ॥ अक्षरगुणमतिसंघटनायोगेन कर्मपरि शाटनायोगेन च ॥ यदि वा वाग्योगेन मनोयोगेन च कृतमिदं सूत्रं तेन सूत्रकृतमिति । इदा ऽनंतरं सूत्रकृतस्य निरुक्तमुक्तमधुना सूत्रपदस्य निरुक्तानिधित्सयाह । " सुत्तेण सुत्तियं चिय, अज्ञा तह सूइयाय जुत्ताय ॥ तोबहुविहप्पउत्ता एया पसिद्धा अणादीया" ॥ २१ ॥ सुत्तेणेत्यादि । अर्थस्य सूचनात्सूत्रं तेन सूत्रेण केचिदर्थाः साक्षात्सूत्रिता मुख्यतयो पात्तास्तथाऽपरे सूचिता अर्थापत्त्याक्षिप्ताः ॥ साक्षादनुपादानेपि दध्यानयनचोदनया तदा धारानयनचोदनावदिति । एवंच कृत्वा चतुर्दशपूर्वविदः परस्परं षट्स्थानपतिता नवंति । तथा चोक्तं । अरकरलंनेण समा, ऊणहिया हुंति मतिविसेसेहिं । तेविय मईविसेसा, सुयणाणप्रंतरेजाण ॥ १ ॥ तत्र ये साक्षाडुपात्तास्तान् प्रति सर्वेपि तुल्याः ॥ ये पुनः सूचिता स्तदपेक्ष्या कश्चिदनंतनागाधिकमर्थं वेत्त्यपरोऽसंख्येयनागाधिकमन्यः संख्येयनागाधि कं तथान्यः संख्येयाऽसंख्येयाऽनंतगुणमिति तेच सर्वेपि युक्ता युक्त्युपपन्नाः सूत्रो पात्ताएव वेदितव्याः । तथा चानिहितं " तेवियमईविसेसे " इत्यादि । ननु किं सूत्रो पात्तेन्योऽन्येपि केचनार्थाः संति येन तदपेक्ष्या चतुर्दशपूर्वविदां षट्स्थानपतितत्वमुद् घुष्यते । बाढं विद्यते । यतोऽनिहितं । पन्नवणिज्जानावा, अणंतनागोउ अणनिल प्पाणं । पन्नवणिज्जाणं पुण, अणंतनागो सुयनिबद्धो ॥ १ ॥ यतश्चैवं ततस्ते अर्था आगमे बहुविधं प्रयुक्ताः सूत्रैरुपात्ताः केचन साक्षात्केचिदर्थापत्त्या समुपलन्यन्ते । य दि वा क्वचिद्देशग्रहणं क्वचित्सर्वार्थोपादानमित्यादि । यैश्च पदैस्ते अर्थाः प्रतिपाद्यन्ते तानि पदानि प्रकर्षेण सिद्धानि प्रसिद्धानि न साधनीयानि । तथाऽनादीनि च तानि नेदानीमुत्पाद्यानि ॥तथा चेयं द्वादशांगी शब्दार्थरचनाद्वारेण विदेहेषु नित्या नरतैरावतेष्वपि शब्दरचनाद्वारेणैव प्रति तीर्थकरं क्रियते ऽन्यथा तु नित्यैव । एतेन चोत्तरित प्रध्वंसिनो वर्णा इत्येतन्निराकृतं वेदितव्यमिति॥ २१ ॥सांप्रतं सूत्रकृतस्य श्रुतस्कंधाध्ययनादि निरूपणार्थमाह । "दोचेवसुयरकंधा, अज्ञयणाइं च हुंति तेवीसं॥ तेत्तिसुदेसणकाला, आ याराउ डुगुणमंगं" ॥ २२ ॥ (दोचेवेत्यादि)। द्वावत्र श्रुतस्कन्धौ त्रयोविंशतिरध्ययनानि त्रय स्त्रिंशदुद्देशनकालास्ते चैवं नवंति । प्रथमाध्ययने चत्वारो द्वितीये त्रयस्तृतीये चत्वारः ॥

एवं चतुर्थपंचमयो र्द्वौ द्वौ तथैकादशस्वेकसरकेष्वेकादशैवेति । प्रथमश्रुतस्कन्धे तथा द्विती यश्रुतस्कन्धे सप्ताध्ययनानि तेषां सप्तैवोद्देशनकाला एवमेते सर्वेपि त्रयस्त्रिंशदिति।एतच्चा चा रांगाद्विगुणमंगं षट्त्रिंशत्पदसहस्रपरिमाणमित्यर्थः ॥२२॥ सांप्रत सूत्रकृतांगनिक्षेपानंतरं प्रथमश्रुतस्कंधस्य नामनिष्पन्ननिक्षेपाभिधित्सयाऽह । "निक्खेवोगाहाए,चउव्विहो छव्विहोय सोलसस्सु॥निक्खेवोयसुयंमिय,खंधेयचउव्विहो होइ"॥२३॥ (निक्खेवो इत्यादि) इहाथश्रुतस्कंधस्य गाथाषोडशक इति नाम। गाथाख्यं षोडशमध्ययनं यस्मिन् श्रुतस्कंधे सतथेति ।तत्र गाथाया नामस्थापनाद्रव्यन्नावश्चतुर्विधो निक्षेपः ॥ नामस्थापनेप्रसिद्धे ॥ द्रव्यगाथा द्विधा ॥ आगमतो नो आगमतश्च ॥ तत्र आगमतो ज्ञाता तत्र चानुपयुक्तोऽनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा । नोआगमतस्तु त्रिधा । ज्ञशरीरद्रव्यगाथा न्नव्यशरीरद्रव्यगाथा ताभ्यां विनिर्मुक्ता च ॥ 'सत्तठतरूविसामणसेह्याताण ठठणह् जलया ॥ गाहाएपञ्चहे नेउं ठछो त्ति इक्ककलो ' इत्यादिलक्षणलक्षिता पत्रपुस्तकादिन्यस्तेति ॥ न्नावगाथापि द्विविधा ॥ आगमत आगमन्नेदात् ॥ तत्रा ऽऽगमतो गाथापदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तः।नोआगमतस्त्विद मेव गाथाख्यमध्ययनं ॥ आगमैकदेशत्वादस्य षोडशकस्यापि नामस्थापनाद् द्रव्यक्षेत्र कालन्नावन्नेदात् षोढा निक्षेपः ॥ तत्र नामस्थापने क्षुण्णे । द्रव्यषोडशकं ज्ञशरीरन्नव्य शरीरविनिर्मुक्तं । सचित्तादीनि षोडश द्रव्याणि । क्षेत्रषोडशकं षोडशाकाशप्रदेशाः ॥ कालषोडशकं षोडश समया एतत्कालावस्थापि वा द्रव्यमिति ॥ न्नावषोडशकमिदमेवाध्ययनषोडशकं क्षायोपशमिकन्नाववृत्तित्वादिति ॥ श्रुतस्कंधयोः प्रत्येकं चतुर्विधो,निक्षेपः ॥ सचान्यत्र निक्षेपेण प्रतिपादित इति नेह प्रतन्यते॥२३॥ सांप्रतमध्ययनानांप्रत्येकमर्थाधिकारदिदर्शयिषयाऽह ॥ "ससमय परसमयपरू, वणायणाऊण वुज्झणा चेव ॥ संबुद्धस्सु वसग्गा थीदोसविवज्जणाचेव ॥ २४ ॥ उवसग्गन्नीरुणोथी वस्साणरएसु होज्ज उववाउ ॥ एवमहप्पावीरो जयमास तहा जएज्जाह ॥ २५ ॥ परिचत्तनिशीलकुशी,लसुशील स विग्गशीलवंचेव ॥ णाऊण वीरियडुगं पंमिय वीरियपहुज्ज पवयइ ॥ २६ ॥ धम्मोसमाहिमग्गो समोसढा चउसुसव्ववादीसु ॥ सीतगुण दोसकहणा गंथमि सदा गुरुनिवासो ॥२७॥ आदाणिय संकलिया आदाणीयंमि आदयचरित्तं ॥ अप्पग्गंथे पंमिय वयणेणंहा गहाइ अहिगारो" ॥२८॥ (ससमय इत्यादि गाथाःपंच) । तत्र प्रथमाध्ययने स्वसमयपरसमयप्ररूपणा । द्वितीये स्वसमयगुणान् परसमयदोषांश्च ज्ञात्वा स्वसमय एव बोधो विधेय इति ॥ तृतीयाध्ययने तु संबुद्धः सन्यथोपसर्गसहिष्णुर्नवति तदन्निधीयते ॥ चतुर्थे स्त्रीदोषविवर्जना ॥ पंचमेत्वयमर्थाधिकारः ॥ तद्यथा ॥ उपसर्गाऽसहिष्णोः स्त्रीवशवर्तिनोऽवश्यं नरकेषु पात इति ॥ षष्ठे पुनरेवमित्यनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहनेन स्त्रीवर्जनेन च न्नगवान् महावीरो जेतव्यस्य कर्मणः संसारस्य वा परान्नवेन जयमाह ॥

ततस्तथैव यत्नं विधत्त यूयमिति शिष्याणामुपदेशो दीयते ॥ सप्तमे त्विदमनिहितं ॥ तथा ॥ निःशीला गृहस्थाः कुशीलास्त्वन्यतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयो वा ते परित्यक्ता येन सा धुना स परित्यक्तनिःशीलकुशील इति ॥ तथा सुशीला उद्युक्तविहारिणः संविग्नाः संवेगमग्रास्तत्सेवाशीलः शीलवान् नवतीति । अष्टमे त्वेतत्प्रतिपाद्यते । तद्यथा । ज्ञात्वा वीर्यद्वयं पंमितवीर्ये प्रयत्नो विधीयत इति ॥ नवमे चार्थाधिकारस्त्वयं ॥ तद्यथा ॥ यथाऽवस्थितोधर्मः कथ्यते ॥ दशमेतु समाधिः प्रतिपाद्यते ॥ एकादशेतु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मको मोक्षमार्गः कथ्यते ॥ द्वादशे त्वयमर्थाधिकारः ॥ तद्यथा । समवसृता अवतीर्णा व्यवस्थिताश्चतुर्षु मतेषु क्रियाऽक्रियाऽज्ञानवैनयिकाख्येष्वनिप्रायेषु त्रिषष्ट्युत्तरशतत्रयसंख्याः पाषंडिनः स्वीयं स्वीयमर्थं प्रसाधयंतः समुत्थितास्तडुपन्यस्तसाधनदोषोद्भावनतो निराक्रियंते ॥ त्रयोदशे त्विदमनिहितं ॥ तद्यथा ॥ सर्ववादिषु कपिलकणादाक्षपादशौद्धोदनिजैमिनिप्रनृतिमतानुसारिषु कुमार्गप्रणेतृत्वं साध्यते ॥ चतुर्दशेतु ग्रंथाख्येऽध्ययनेऽयमर्थाधिकारः ॥ तद्यथा । शिष्याणां गुणदोषकथना तथा शिष्यगुणसंपडपेतेन च विनेयेन नित्यं गुणानुरूपगुरुकुलवासो विधेय इति ॥ पंचदशे त्वादानीयाख्येऽध्ययनेऽर्थाधिकारोऽयं ॥ तद्यथा ॥ आदीयंते गृह्यंते उपादीयंते इत्यादानीयानि पदान्यर्था वा ते च प्रागुपन्यस्तपदैरर्थैश्च प्रायशोऽत्र संकलिताः॥तथा आयतं चरित्रं सम्यक्चरित्रं मोक्षमार्गप्रसाधकं तच्चात्र व्यावर्ण्यत इति ॥ षोमशेतु गाथाख्येऽल्पग्रंथेऽध्ययनार्थोयं व्यावर्ण्यते। तद्यथा ॥ पंचदशनिरध्ययनैर्योऽर्थोनिहितः सोत्र पंमितवचनेन संक्षितानिधानेन प्रतिपाद्यत इति ॥ 'गाहा सोलसगाणं पिंडत्थोवन्नित्रो समासेण ॥ इत्तो इक्किक्कं पुण अक्षयणं कित्तयिस्सामि' ॥१॥ तत्राद्यमध्ययनं समयाख्यं तस्य चोपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि नवंति ॥ तत्रोपक्रमणमुपक्रम्यते वाऽनेन शास्त्रं न्यासदेशं निक्षेपावसरमानीयत इत्युपक्रमः। सच लौकिको नामस्थापनाद् द्रव्य क्षेत्रकालनावनेदेन षड्रूप आवश्यकादिष्वेवप्रपंचितः॥ शास्त्रीयोप्यानुपूर्वीनामप्रमाणवक्तव्यतार्थाधिकारसमवताररूपः षोढैव । तत्रानुपूर्व्यादीन्यनुयोग द्वारानुसारेण ज्ञेयानि तावद्यावत्समवतारस्तत्रैतदध्ययनमानुपूर्व्यादिषु यत्र यत्र समवतरति तत्र तत्र समवतारयितव्यं ॥ तत्र दशविधायामानुपूर्व्यां गणनानुपूर्व्यां समवतरति सापि त्रिधा। पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी चेति॥तत्रेदमध्ययनं पूर्वानुपूर्व्यां प्रथमं पश्चानुपूर्व्यां षोडशम्। अनानुपूर्व्यां तु चिंत्यमानमस्यामेवैकादिकायामेकोत्तरिकायां षोडश गच्छतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासद्विरूपोनसंख्याभेदं नवति ॥ अनानुपूर्व्यांतु षोडशनेदसंख्यापरिज्ञानोपायोयं । तद्यथा । ' एकाद्या गच्छपर्यंताः परस्परसमाहताः॥राशयस्तद्धि विज्ञेयं विकल्पगणिते फलं'॥१॥ प्रस्तारानयनोपायस्त्वयं॥पुव्वाणुपुव्विहेठा

१२३४५ इत्यादि॥तत्र। 'गणितेंऽत्यविभक्ते तु लब्धं शेषैर्विभाजयेत् ॥ आदावंते च तत्
२१३४५ स्थाप्यं विकल्पगणिते क्रमात्'॥१॥ अयं श्लोकः शिष्यहितार्थं विव्रियते । त
१३२४५ त्र सुखावगमार्थं षट् पदानि समाश्रित्य तावत् श्लोकार्थो योज्यते । तत्रैवं
३१२४५ षट् पदानि स्थाप्यानि । १२३४५६ । एतेषां परस्परताडनेन सप्तशतानि
२३१४५ विंशत्युत्तराणि गणितमुच्यते । तस्मिन् गणितेंऽत्योत्र षट्कस्तेन भागे हृते विं
३२१४५ शत्युत्तरं शतं लभ्यते तच्च षण्णां पंक्तीनामंत्यपंक्तौ षट्कानां न्यस्यते । तदधः
१२४३५ पंचकानां विंशत्युत्तरमेव शतम्॥एवमधोधश्चतुष्कत्रिकद्विकैकानां प्रत्येकं विंश
त्युत्तरशतं न्यस्यमेवमंत्यपंक्तौ सप्त शतानि विंशत्युत्तराणि भवंत्येषा च गणितप्रक्रियाया आ
दिरुच्यते । तथा यत्तद्विंशत्युत्तरं शतं लब्धं तस्य च पुनः शेषेण पंचकेन भागेनापहृते ल
ब्धा चतुर्विंशतिस्तावंतस्तावन्तश्च पंचकचतुष्कत्रिकद्विकैकाः प्रत्येकं पंचमपंक्तौ न्यस्या याव
द्विंशत्युत्तरं शतमिति॥ तदधोग्रतो न्यस्तमंकं मुक्त्वा येन्ये तेषां यो यो महत्संख्यः स सोध
स्ताच्चतुर्विंशतिसंख्य एव तावत् न्यस्यो यावत्सप्तशतानि विंशत्युत्तराणि पंचमपङ्क्तावपि
पूर्णानि भवंति ॥ एषा च गणितप्रक्रियेत्यभिधीयते ॥ एवमनया प्रक्रियया चतुर्विंशतेः शे
षचतुष्ककेन भागे हृते षट् लभ्यंते तावंतश्चतुःपंक्तौ चतुष्ककाः स्थाप्यास्तदधः षट्त्रिकाः
पुनर्द्विका भूय एककाः पुनः पूर्वन्यायेन पंक्तिः पूरणीया ॥ पुनः षट्कस्य शेषत्रिकेण
भागे हृते द्वौ लभ्येते तावन्मात्रौ त्रिकौ तृतीयपंक्तौ शेषं पूर्ववत् । शेषपंक्तिद्वये शेषमंकद्व
यं क्रमोत्क्रमाभ्यां व्यवस्थाप्यमिति ॥ तथा नाम्नि षड्विधनाम्न्यवतरति । यतस्तत्र षड्
भावाः प्ररूप्यंते । श्रुतस्यच क्षायोपशमिकभाववर्तित्वात् । प्रमाणमधुना प्रमीयतेनेने
ति प्रमाणं॥तत् द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदाच्चतुर्द्धा । तत्रास्याध्ययनस्य क्षायोपशमिकभावव्य
वस्थितत्वाद्भावप्रमाणेऽवतारः । भावप्रमाणं च गुण, नय, संख्या, भेदात्त्रिधा । तत्रापि गु
णप्रमाणे समवतारः । तदपि जीवाजीवभेदाद् द्विधा । समयाध्ययनस्य च क्षायोपशमिक
भावरूपत्वात्तस्य च जीवानन्यत्वाज्जीवगुणप्रमाणे समवतारः । जीवगुणप्रमाणमपि ज्ञान,
दर्शन, चारित्र, भेदात्त्रिविधं । तत्रास्य बोधरूपत्वात् ज्ञानगुणप्रमाणे समवतारः॥ तदपि
प्रत्यक्षानुमानोपमानागमभेदाच्चतुर्द्धा । तत्रास्यागमप्रमाणे समवतारः ॥ सोपि लौ
किक, लोकोत्तर, भेदाद् द्विधा । तदस्य लोकोत्तरे समवतारस्तस्य च सूत्रार्थतदुभयरूपत्वा
त्त्रैविध्यं । त्रिष्वपि समवतारः । यदि वाऽत्मानंतरपरंपरभेदादागमस्त्रिविधस्तत्र तीर्थ
कृतामर्थापेक्षयाऽत्मागमो गणधराणामनंतरागमस्तच्छिष्याणां परंपरागमः । सूत्रापेक्षया
तु गणधराणामात्मागमस्तच्छिष्याणामनंतरागमस्तदन्येषां परंपरागमः । गुणप्रमाणानंत
रं नयप्रमाणावसरस्तस्य चेदानीं पृथक्त्वानुयोगे नास्ति समवतारो भवेद्वा पुरुषापे
क्षया ॥ तथा चोक्तं ॥ मूढनइयं सुयं कालियंतुणणया समोरयंति इहं ॥ अपु

हचे समुयारो एछि पुहुत्ते समोयारो ॥"१ ॥ तथा ॥ आसज्जउ सोयारं नएनय वि सारउ बूया' ॥ संख्याप्रमाणं त्वष्टधा ॥ नाम, स्थापना, इव्य, क्षेत्र, काल, परिमाण, पर्यव, नाव, नेदात् । तत्रापि परिमाणसंख्यायां समवतारः ॥ सापि कालिकदृष्टिवादनावात् द्विधा ॥ तत्रास्य कालिकपरिमाणसंख्यायां समवतारः ॥ सापि कालिकदृष्टिगप्रविष्टे समवतारः । पर्यवसंख्यायां त्वनंताः पर्यवाः ॥ तथा संख्येयान्यक्षराणि संख्येयाः संघाताः संख्येयानि पदानि संख्येयाः श्लोकाः संख्येया गाथाः संख्येया वेदाः संख्येयान्यनुयोग द्वाराणि । सांप्रतं वक्तव्यतायाः समवतारश्चिंत्यते ॥ साच स्व, पर, समय, तडुनयनेदात्त्रिधा । तत्रेदमध्ययनं त्रिविधायामपि समवतरति । अर्थाधिकारो द्वेधा॥ अध्ययनार्थाधिकार उद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राध्ययनार्थाधिकारोऽनिहितः । उद्देशार्थाधिकारं तु गाथांतरितं निर्युक्तिकृ द्वक्ष्यति । सांप्रतं निक्षेपावसरः सच त्रिधा । उंघनिष्पन्नो नामनिष्पन्नः सूत्रालापकनिष्पन्नश्च । तत्रौघनिष्पन्नेऽध्ययनं तस्यच निक्षेप आवश्यकादौ प्रबंधेनानिहित एव । नामनिष्पन्नेतु समय इति॥ श ए॥नाम तन्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकार आह॥ "नामंठवणा दविए खेत्ते काले कुतित्थसंगारे ॥ कुलगणसंकरगंडी । बोधवा नावसमएय" ॥२ए॥ (नामं ठवणाइत्यादि) । नाम, स्थापना, इव्य, क्षेत्र, काल, कुतीर्थ, संगार, कुल, गण, संकर, गंडी, नाव, नेदात् द्वादशधा समयनिक्षेपः । तत्र नामस्थापने क्षुसे । इव्यसमयो इव्यस्य सम्यगयनं परिणतिविशेषः स्वनाव इत्यर्थः । तद्यथा । जीवइव्यस्योपयोगः पुजलइव्यस्य मूर्तत्वं धर्माधर्माकाशानां गतिस्थित्यवगाहदानलक्षणोऽथवा योयस्य इव्यस्यावसरो इव्यस्योपयोगकाल इति ॥ तद्यथा ॥ 'वर्षासु लवणममृतं शरदि जलं गोपयश्च हेमंते ॥ शिशिरे चामलकरसो घृतं वसंते गुडश्चांते' ॥ १ ॥ क्षेत्रसमयः क्षेत्रमाकाशं तस्य समयः स्वनावः । यथा ॥ ' एगेणविसेपुसे दोहिंविपुणे सयंपि माएज्जा ॥ लक्खएणविपुसे, कोडिसहस्सं पि माएज्जा' ॥२॥ यदि वा देवकुरुप्रनृतीनां क्षेत्राणामीदृशोऽनुनावो यडुत तत्र प्राणिनः सुरूपा नित्यसुखिनो निर्वैराश्च नवंतीति क्षेत्रस्य वा परिकर्मणावसरः क्षेत्रसमय इति ॥ कालसमयस्तु सुषमादेरनुनावविशेषः । उत्पलपत्रशतनेदानिव्यंग्यो वा कालविशेषः कालसमय इति ॥ अत्र च इव्यक्षेत्रकालप्राधान्यविवक्षया इव्यक्षेत्रकालसमयता इष्टव्येति । कुतीर्थसमयः पाखंडिकानामात्मीयात्मीय आगमविशेषस्तडुक्तं वानुष्ठानमिति ॥ संगारः संकेतस्तद्रूपः समयः संगारसमयः ॥ यथा सिद्धार्थसारथिदेवेन पूर्वकृतसंगारानुसारेण गृहीतहरिशिवो बलदेवः प्रतिबोधित इति ॥ कुलसमयः कुलाचारो यथा शकानां पितृशुद्धिः आनीरकाणां मंथनिका शुद्धिः । गणसमयो यथा॥ मल्लानामयमाचारो यथा यो ह्यनाथोमल्लो म्रियते स तैःसंस्क्रियते पतितश्चोधियत इति । संकरसमयस्तु संकरोनिन्नजातीयानां मीलकस्तत्र च समये एकवाक्यता ॥ यथा वाममा

गोदावनाचारप्रवृत्तावपि शुसिकरणमिति । गंडीसमयो यथा शाक्यानां नोजनावसरे गंडीताडनमिति । नावसमयस्तु नो आगमत इदमेवाध्ययनमनेनैवात्राधिकारः शेषाणां तु शिष्यमतिविकासार्थमुपन्यास इति ॥ ३०॥सांप्रतं प्रागुपन्यस्तोद्देशार्थाधिकारान्निधित्सया ऽह ॥ "महपंचनूय एक्क, प्पएय तज्जीवतस्सरीरेय ॥ तहय अगार गवाती, अत्तछठो अफलवादी ॥३०॥ बीए नियवाईउं, असाणियतहय नाणवाईउं ॥ कम्मं च यन्नगन्नइ, चउव्विहं निरकुसमयंमि ॥ ३१॥ तइए आहाकम्मं, कडवाई जहयतेयवाईउं ॥ किच्चुवमाय चउछे, परप्पवाई अविरएसु" ॥ ३२ ॥ महपंचनूय इत्यादिगाथात्रयं । अस्याध्ययनस्य चत्वार उद्देशकास्तत्राद्यस्यषडर्थाधिकारा आद्यगाथयाऽभिहिताः ॥ तद्यथा । पंचभूतानि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यानि महांति च तानि सर्वलोकव्यापित्वात् नूतानि च महानूतानि इत्ययमेकोऽर्थाधिकारः । तथा चेतनाचेतनं सर्व मेकात्मविवर्त इत्यात्माऽद्वैतवादः प्रतिपाद्यत इत्यर्थाधिकारो द्वितीयः । स चासौ जीवश्च तज्जीवः कायाकारो नूतपरिणामस्तदेव शरीरं जीवशरीरयोरैक्यमिति यावदिति तृतीयोर्थाधिकारः । तथाऽकारको जीवः सर्वस्याः पुण्यपापक्रियाया इत्येवंवादीति चतुर्थोधिकारः ॥ तथात्मा षष्ठ इति पंचानां नूतानामात्मा षष्ठः प्रतिपाद्यत इत्ययं पंचमोर्थाधिकारः । तथा फलवादीति । न विद्यते कस्याश्चित् क्रियायाः फलमित्येव वादी च प्रतिपाद्यत इति षष्ठोर्थाधिकार इति । द्वितीयोद्देशकेचत्वारोर्थाधिकाराः॥तद्यथा । नियतिवादस्तथाऽज्ञानिकमतं ज्ञानवादी च प्रतिपाद्यते । कर्म च चयमुपचयं चतुर्विधमपि न गच्छति भिक्षुसमये शाक्यागमे चतुर्थोर्थाधिकारः ॥ चातुर्विध्यंतु कर्मणो ऽविज्ञोपचितं ॥ अविज्ञानमविज्ञा तयोपचितमनानोगकृतमित्यर्थः । यथा मातुः स्तनाद्याक्रमणेन पुत्रव्यापत्तावप्यनानोगान्नकर्मोपचीयते । तथा परिज्ञानं परिज्ञा केवलेन मनसा पर्यालोचनं तेनापि कस्यचित्प्राणिनो व्यापादनानावात् कर्मोपचयानाव इति । तथा ईरणमीर्यागमनं तेन जनितमीर्याप्रत्ययं तदपि कर्मोपचयं न गच्छति प्राणिव्यापादनाभिसंधेरनावादिति । तथा स्वप्नांतिकं स्वप्नप्रत्ययं कर्म नोपचीयते । यथा स्वप्ननोजने तृप्त्यनाव इति तृतीयोद्देशकेत्वयमर्थाधिकारः । तथा आधाकर्मगतविचारस्तद्भोजिनां च दोषोपदर्शनमिति । तथा कृतवादी च नण्यते । तद्यथेश्वरेण कृतोयं लोकः प्रधानादिकृतो वा ॥ यथा च ते प्रतिवादिन आत्मीयं कृतवादं गृहीत्वोपस्थितास्तथा नण्यंत इति द्वितीयोधिकारः । चतुर्थोद्देशकाधिकारस्त्वयं । तद्यथा॥ अविरतेषु गृहस्थेषु यानि कृत्यान्यनुष्ठानानि स्थितानि तैरसंयमप्रधानैः कर्तव्यैः परप्रवादी परतीर्थिक उपमीयत इति । इदानीमनुगमः सच द्वेधा । सूत्रानुगमो निर्युक्त्यनुगमश्च । तत्र निर्युक्त्यनुगमस्त्रिविधः । तद्यथा । निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमः सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमश्च । तत्र निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमोऽनु

गत उपनामनिष्पन्ननिक्षेपयोरंतर्गतत्वात् । तथाच वक्ष्यमाणस्य सूत्रस्य निक्षेपावसरत्वा त् । उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमस्तु षड्विंशति द्वारप्रतिपादकाज्ञाथाद्वयादवसेयस्तद्यथा उद्देश निद्देशेय इत्यादि । सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमस्तु सूत्रे सति संजवति ॥ सूत्रं च सूत्रानुगमे सचावसरप्राप्त एव । तत्राऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं ॥ बुज्झिज्जत्ति तिउट्टि ज्जोत्यादिश्लोकः । अस्य संहितादिक्रमेण व्याख्या । (बुध्यतेत्यादि) । सूत्रमिदं सूत्रकृतां गादौ वर्तते । अस्यच ऽऽचारांगेन सहायं संबंधः । तद्यथा आचारांगेनिहितं । ' जीवो ठ कायपरू, वणायतेसिं वहेणबंधोत्ति ' इत्यादि तत्सर्वं बुध्येतेत्यादि । यदि चेह केषांचि द्वादिनां ज्ञानादेवमुक्त्यवाप्तिरन्येषां क्रियामात्रात् । जैनानां तूजाभ्यां निःश्रेयसाधिगम इत्ये तदनेन श्लोकेन प्रतिपाद्यते । तत्रापि ज्ञानपूर्विका क्रिया फलवती जवतीत्यादि बुध्येते त्यनेन ज्ञानमुक्तं॥त्रोटयेदित्येनेनच क्रियोक्ता॥तत्रायमर्थो बुध्येतावगछेत् बोधंविदध्यादित्यु पदेश. । किंपुनस्तद्बुध्येत तदाह । बंधनं बध्यते जीवप्रदेशैरन्योन्यानुवेधरूपतया व्यवस्था प्यत इति बंधनं ज्ञानावरणाद्यष्टप्रकारं कर्म तद्धेतवो वा मिथ्यात्वाऽविरत्यादयः परि ग्रहारंजादयो वा । नच बोधमात्रादजिलषितार्थावाप्तिर्नवतीत्यतः क्रियां दर्शयति । त च बंधनं परिज्ञाय विशिष्टया क्रियया संयमानुष्ठानरूपया त्रोटयेदपनयेदात्मनः पृथक्कुर्या त्परित्यजेद्वा । एवं चानिहिते जंबूस्वाम्यादिको विनेयो बंधादिस्वरूपं विशिष्टं जिज्ञासुः प प्रच्छ ॥ किमाह् किमुक्तवान् बंधनं वीरस्तीर्थकृत् किंवा जानन्नवगछंस्तद्बंधनं त्रोटयति ततो वा त्रुट्यतीति श्लोकार्थः ॥ १ ॥ बंधनस्वरूपनिर्वचनायाह ॥ (चित्तमंतमचित्तं वे त्यादि) ॥ इह बंधनं कर्म तद्धेतवो वाऽनिधीयंते ॥ तत्र न निदानमंतरेण निदानिनो जन्मेति निदानमेव दर्शयति ॥ तत्रापि सर्वारंजाः कर्मोपादानरूपाः प्रायश आत्मात्मी यग्रहोत्थानामिति कृत्वाऽऽदौ परिग्रहमेव दर्शितवान् ॥ चित्तमुपयोगो ज्ञानं तद्विद्यते य स्य तच्चित्तवत् द्विपदचतुष्पदादि । ततोन्यदचित्तवत् कनकरजतादि तडुजयरूपमपि परि ग्रहं परिगृह्य कृशमपि स्तोकमपि तृणतुषादिकमपीत्यर्थः । यदि वा कसनं कसः परिग्रह ग्रहणबुध्या जीवस्य गमनपरिणाम इति यावत् । तदेवं स्वतः परिग्रहं परिगृह्यान्यान्वा ग्राहयित्वा गृह्णतो वान्याननुज्ञाय डुःखयतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्म तत्फलं वा असा तोदयादिरूपं तस्मान्न मुच्यत इति । परिग्रहाग्रह एव परमार्थतोनर्थमूलं जवति । तथा चोक्तं । 'ममाहमिति चैष यावदभिमानदाहज्वरः कृतांतमुखमेव तावदिति न प्रशांत्युन्न यः ॥ यशःसुखपिपासितैरयमसावनर्थोत्तरैः परैरपसदः कुतोपि कथमप्यपाकृष्यते' ॥ १ ॥ तथाच ॥ द्वेषस्यायतनं धृतेरपचयः क्षांतेः प्रतीपो विधिर्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य जवनं ध्या नस्य कष्टो रिपुः ॥ डुःखस्य प्रजवः सुखस्य निधनं पापस्य वासो निजः प्राज्ञस्यापि परिग्र हो ग्रहइव क्लेशाय नाशायच' ॥ १ ॥ २ ॥

सयं निवायए पाणे, अडुवाऽन्नेहिं घायए ॥ हणंतं वा णुजा णाइ, वेरं वड्ढइ अप्पणो ॥३॥ जेस्सिं कुले समुप्पन्ने जेहिं वा सं वसे नरे ॥ ममाइ लुप्पई वाले, अन्ने अन्नेहिं मुछिए ॥ ४ ॥

अर्थ–हवे ज्यां परिग्रह त्यां आरंभ होय, अने ज्यां आरंभ त्यां प्राणातिपात होय एवुं देखाडेछे. ते परिग्रहवंत पुरुष असंतोषी छतो ते परिग्रह उपार्जवाने अर्थे, अने उपार्जन करेलो परिग्रह राखवाने अर्थे सयंके० पोते, पाणेके० प्राणीउनो, निवायएके० निपात एटले विनाश करे, अडुवाके० अथवा अन्नेहि घायएके० अनेरा पासे प्राणीउनी घात करावे; वाके० अथवा हणंतं के० जे प्राणीउने हणतो होय अर्थात् प्राणीउनो विनाश करतो होय तेने अणुजाणाइके० अनुमोदवे करी. प्राणीउनी घात करतो थको अथवा करावतो थको अप्पणोके० आत्माने वेरंवड्ढइके० वैरनी वृद्धी करेछे. तेथी जे डुःख परंपरारूप बंधन तेथकी छुटे नहीं ॥३॥ वली पण बंधन आश्रयी कहेछे. जेस्सिं कुले समुप्पन्नेके० राठोडादिक जे कुलमां उत्पन्न थयो, अथवा जेहिंवा संवसे के० जेनीसाथे वास वसे, एटले पांसुक्रीडादिक करे. एवा नरेके० मनुष्य जे माता, पिता, नाई, बेहेन, नार्या, अने मित्रादिक तेने विषे ममाइके० ममत्वनो करनार एटले मातापितादिकनी साथे स्नेह करतो एवो वालेके० अज्ञानी जीवते लुप्पइके० कर्मे संसारचक्रमांहे नमतो थको पीडायछे, ते मनुष्य केवोछे तोके अन्नेअन्नेहिके० अन्य अन्य एटले प्रथम माता पिता, तदनंतर नाईने विषे, तदनंतर पुत्रपौत्रादिक, एम अन्य अन्यने विषे मुछिएके० मूर्छित एटले मूर्छा पामतो थको स्नेहे करी पीडायछे. ॥ ४ ॥

दीपिका ॥ अथवा प्रकारांतरेण बंधनमेवाह । सयंतीति ॥ सपरिग्रहवान् स्वयमात्मना प्राणानतिपातयेत् जीवान् हिंस्यात् । अथवा अन्यैः परैरपि घातयति घ्नतश्चान्याननुजानीते तदेवं कृतकारितानुमतिनिः प्राणिघातं कुर्वन्नात्मनो वैरं वर्धयति ततश्च बंधनान्न मुच्यते इति नावः ॥ ३ ॥ पुनर्बंधनमेवाश्रित्याह । जेस्सिंमित्ति । यस्मिन् कुले जातो यैर्वा मित्रैर्नार्यादिनिर्वा सह संवसेन्नरः तेषु मित्रपितृमातृनार्यादिषु ममायमिति ममत्ववान् लुप्यते ममत्वजनितेन कर्मणा बाध्यते । बालो मूर्खः विवेकरहितत्वादन्येषु च मूर्छितो ममत्वबहुल इत्यर्थः ॥ ४ ॥

टीका ॥ तथाच परिग्रहेष्वप्राप्तनष्टेषु कांक्षाशोकौ प्राप्तेषु च रक्षणमुपनोगे वाऽतृप्तिरित्येवं परिग्रहे सति डुःखात्मकाद्बंधनान्न मुच्यत इति परिग्रहवतश्चावश्यंनाव्यारंनस्तस्मिंश्च प्राणातिपात इति दर्शयितुमाह । सयंनिवायएपाणे इत्यादि । यदि वा प्रकारांत

रेण बंधनमेवाह । सयंतीत्यादि । स परिग्रहवानसंतुष्टो भूयस्तदर्जनपरः समार्जितोप द्रवकारिणि च द्वेषमुपगतस्ततः स्वयमात्मना त्रिभ्यो मनोवाक्कायेभ्य आयुर्बलशरीरेभ्यो वा पातयेत् च्यावयेत् प्राणान् प्राणिनः । अकारलोपा द्वा अतिपातयेत् प्राणानिति । प्रा णाश्चामी । पंचेंद्रियाणि त्रिविधं बलंच, उच्छ्वासनिश्वासमथान्यदायुः ॥ प्राणा दशैते भगव द्भिरुक्ता,स्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥ तथा स परिग्रहाग्रही न केवलं स्वतो व्या पादयति अपरैरपि घातयति घ्नतश्चान्यान् समनुजानीते तदेव कृतकारितानुमतिभिः प्राण्युपमर्दनेन जन्मांतरशतानुबंध्यात्मनो वैरं वर्धयति । ततश्च दुःखपरंपरारूपबंधनान्न मुच्यत इति । प्राणातिपातस्य चोपलक्षणार्थत्वात् मृषावादादयोपि बंधहेतवो द्रष्टव्या इति ॥ ३ ॥ पुनर्बंधनमेवाश्रित्याह । ( जेस्सिमित्यादि ) । यस्मिन् राष्ट्रकूटादौ कुले जातो यैर्वा सह पांसुक्रीडितैर्भार्यादिभिर्वा सह संवसेन्नरस्तेषु मातृपितृभ्रातृभगिनीभार्यावय स्यादिषु ममायमिति ममत्ववान् स्निह्यन् लुप्यते विलुप्यते ममत्वजनितेन कर्मणा नारकतिर्यङ्मनुष्यामरलक्षणे संसारे भ्रम्यमाणो बाध्यते पीड्यते। कोसौ बालोऽज्ञः स दसद्विवेकरहितत्वादन्येष्वन्येषु च मूर्छितो गृध्नोऽध्युपपन्नो ममत्वबहुल इत्यर्थः । पूर्वं तावन्मातापित्रोस्तदनुभार्यायां पुनः पुत्रादौ स्नेहवानिति ॥ ४ ॥

वित्तं सोयरिया चेव, सवमेयं नताणइ॥ संखाए जीविअं चेवं,
कम्मुणा उ तिउट्टइ ॥५॥ एए गंथे विउक्कम्म, एगे समणमाह
णा ॥ अयाणंता विउस्सित्ता सत्ता कामेहि माणवा ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे जे प्रथम कह्युं हतुंके, कहेवुं जाणतो थको बंधन त्रोडे ते कहेछे. वित्तं के० धनधान्यादिक सचित्त तथा अचित्त वस्तु अने सोयरियाके० भाइ प्रमुख कौटुंबि क स्वजनादिक चेवके० वली सवमेयंके० ए सर्व जे कुटुंबादिक स्नेहवंतछे, ते शारीरी, मानसी वेदना भोगवता थकां ए जीवने नताणइके० त्राण शरणी न थाय. एवुं जाणी ने जीविअंचके० जे प्राणीउनुं जीवतव्य अल्पछे. एवंके० एवुं संखाएके० जाणीने, जी वितव्य प्राणीउने एटले परिग्रह प्राणिघात अने स्वजन स्नेहादिक बंधननां स्थानने ज्ञ परिज्ञाये जाणीने, प्रत्याख्यान परिज्ञाये छांमिने, कम्मुणाउ तिउट्टइके० कर्म थकी तुटे अ र्थात् कर्म थकी वेगलो थाय. ॥ ५ ॥ हवे स्वसमयनो अधिकार कही परसमयनो अधिकार कहेछे. एएगंथेके० ए अरिहंतना भाषित ग्रंथ जे करुणारसमय छे. ते ने छांमीने स्वेछायें रचित ग्रंथोने विषे विउक्कम्मके० आसक्त थका, एगेसमणके० एक शाक्यादिकना श्रमण, बीजा बृहस्पतिमतानुसारी एवा माहणा के० ब्राह्मण ए अया णंताके० परमार्थना अजाण थका विउस्सित्ता के० विविध प्रकारे बलबलपणे पोताना

ग्रंथनेविषे सत्ता एटले बंधाणा, एतावतां आपणा मतना कदाग्रही एवा छतां माणवाके० पुरुष जे छे, ते पोतपोतांना मतना अनुरागेकरी, कामेहि के० इच्छामदनादिक तेनेविषे सत्ता के० आसक्त थका प्रवर्त्तेछे एटले पोतानो मार्ग लोकोमांहे प्रसिद्धपणे सारो करी देखाडेछे.

॥ दीपिका-किं जानन् बंधनं त्रोटयतीत्यस्योत्तरमाह । ( वित्तमिति ) । वित्तं द्रव्यं तच्च सचित्तमचित्तं वा । सोदर्या भ्रातृभगिन्यादयः सर्वमेतद्वित्तादिकं संसारे पीड्यमानस्य जंतोर्न त्राणाय न रक्षणाय भवतीति । एतत् संख्याय ज्ञात्वा तथा जीवितं स्वल्पमिति संख्याय ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याख्याय कर्मणः सकाशात् त्रुटयति अपगच्छत्यसौ । तुर्निश्चये त्रुटयेदेव । यदि वा कर्मणा क्रियया संयमानुष्ठानरूपया बंधनात् त्रुटयति कर्मणः पृथग्भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ स्वसमयं प्रतिपाद्य परसमयंप्रतिपादयितुकाम आह । (एएइति) । एतान् पूर्वोक्तान् ग्रंथान् सूत्रार्थान् व्युत्क्रम्य परित्यज्य एके केचित् श्रमणब्राह्मणाः श्रमणाः शाक्यादयो ब्राह्मणाश्च ( अयाणंता ) परमार्थमजानानाः ( विउस्सित्ता ) विविधमुत्प्राबल्येन सिता बद्धाः स्वसमयेषु प्रतिबद्धाः संतः कामेषु च सक्ता वर्त्तंतइति ॥ ६ ॥

॥टीका-सांप्रतं यदुक्तं प्राक् किंवा जानन् बंधनं त्रोटयतीत्यस्य निर्वचनमाह।(वित्तमित्यादि) । वित्तं द्रव्यं तच्च सचित्तमचित्तं वा । तथा सोदर्या भ्रातृभगिन्यादयः सर्वमपि चैतद्वित्तादिकं संसारांतर्गतस्यासुमतोऽतिकटुकाः शरीरमानसवेदनास्समनुभवतो न त्राणाय रक्षणाय भवंतीत्येतत्संख्याय ज्ञात्वा । तथा जीवितं च प्राणिनां स्वल्पमपि तत्संख्याय ज्ञपरिज्ञया । प्रत्याख्यानपरिज्ञया तु सचित्ताचित्तपरिग्रहप्राण्युपघातस्वजनस्नेहादीनि बंधनस्थानानि प्रत्याख्याय कर्मणः सकाशात्त्रुट्यति अपगच्छत्यसौ । तुरवधारणे । त्रुटयेदेवेति । यदि वा कर्मणा क्रियया संयमानुष्ठानरूपया बंधनात्त्रुटयति । कर्मणः पृथग्भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ अध्ययनार्थाधिकाराभिहितत्वात्स्वसमयप्रतिपादनानंतरं परसमयप्रतिपादनाभिधित्सयाऽह । (एएगंथेविउक्कम्मेत्यादि) । एतानंतरोक्तान् ग्रंथान् व्युत्क्रम्य परित्यज्य स्वरुचिविरचितार्थेषु ग्रंथेषु सक्ताः सिताः बद्धा एके न सर्वे इति संबंधः । ग्रंथातिक्रमश्चैतेषां तदुक्तार्थानभ्युपगमात् । अनंतरग्रंथेषु चायमर्थोऽभिहितस्तद्यथा जीवास्तित्वे सति ज्ञानावरणीयादि कर्मबंधनं तस्य हेतवो मिथ्यात्वाविरतिप्रमादादयः परिग्रहारंभादयश्च । तत्त्रोटनं च सम्यक्दर्शनाद्युपायेन मोक्षसद्भावश्चेत्येवमादिकः । तदेवमेके श्रमणाः शाक्यादयो बार्हस्पत्यमतानुसारिणश्च ब्राह्मणा एतानर्हदुक्तान् ग्रंथानतिक्रम्य परमार्थमजानाना विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन सिता बद्धाः स्वसमयेष्वभिनिविष्टाः । तथा च शाक्या एवं प्रतिपादयंति । यथा सुखदुःखेच्छाद्वेषज्ञानाधारभूतो नास्त्यात्मा

कश्चित् किंतु विज्ञानमेवैकं विवर्ततइति । क्षणिकाः सर्वसंस्काराइत्यादि । तथा सांख्या एवं व्यवस्थिताः । सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोहंकारस्तस्माजणश्च षोडशकस्तस्मात्षोडशकादपि पंचनूतानि चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमित्यादि । वैशेषिकाः पुनराहुः । ड्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवायाः षट् पदार्थाइति । तथा नैयायिकाः प्रमाणप्रमेयादीनां पदार्थानामन्वयव्यतिरेकपरिज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमइति व्यवस्थिताः । तथा मीमांसकाश्चोदनालक्षणोधर्मो नच सर्वज्ञः कश्चिद्विद्यते मुक्त्यनावश्चेत्येवमाश्रिताः । चार्वाकास्त्वेवमभिहितवंतो यथा नास्तिकश्चित्परलोकयायी नूतपंचकाद्व्यतिरिक्तः पदार्थो नापि पुण्यपापे स्तइत्यादि । एवंचांगीकृत्यैते लोकायतिकाः । मानवाः पुरुषाः सक्ता गृद्धा अध्युपपन्नाः कामेष्विच्छामदनरूपेषु । तथाचोचुः । एतावानेव पुरुषो, यावानिंड्रियगोचरः ॥ नद्रेवृकपदं पश्य, यद्वदंत्यबहुश्रुताः ॥ १ ॥ पिब खाद च साधु शोचने, यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ॥ नहि नीरु गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरं ॥ २ ॥ एवं ते तंत्रांतरीयाः स्वसमयार्थवासितांतःकरणाः संतो नगवदर्हङ्क्तं ग्रंथार्थमज्ञातपरमार्थाः समतिक्रम्य स्वकीयेषु ग्रंथेषु सिताः संबद्धाः कामेषु च सक्ताइति ॥ ६ ॥

संति पंच महब्नूया, इहमेगेसि माहिया ॥ पुढवी आउ तेऊ वा, वाउ आगासपंचमा ॥ ७ ॥ एए पंच महब्नूया, तेप्नो एगोत्ति आहिया ॥ अहतेसिं विणासेणं, विणासो होइ देहिणो ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे ग्रंथकार प्रथम चार्वाकनुं मत देखाडेडे. संतिपंचमहप्रूया के० ते चार्वाक एम कहेडे के जगत्मां सर्वलोकव्यापी पंचमहानूत डे. इहके० आ लोकमांहे, एगेसिं के० कोइ एक नूतवादी तेना मतने विषे आहियाके० कह्याडे. ते कोण? तोके० पुढवी के० पृथ्वी कठिणरूप डे, आवके० अप्प ते ड्रव्य लक्षणडे, तेऊके० तेज उष्णरूप, वाउके० वायु चलन लक्षण अने पंचमाके० पांचमुं आगासके० आकाश अवकाश लक्षण डे, ॥७॥ हवे एनुंज विशेष कहेडे. एएपंचमहप्रूयाके० ए पूर्वे कह्याते जे पंचमहानूत तेप्नो के० ते थकीज एगोत्ति के० कोइ एक चिद्रूप ते नूत थकी अव्यतिरिक्त एवो आहिया के० आत्मा होय डे; परंतु जेम ए पांच नूत थकी पृथक् नूत एवो अन्य कोइ बीजो आत्मा डे, एवी रीते जे बीजा दर्शनी कल्पना करेडे तेम नथी. केमके ए परलोकनो जनार, सुखडुःखनो नोगवनार जीव एवो पदार्थ कोइ बीजो नथी, एम ते चार्वाक कहेडे तेमने कोइ परवादी एम पूडे के, अहो चार्वाको जो ! तमारे मते पंचमहानूत थकी अन्य कोइ आत्मा एवो पदार्थ नथी, तो मरण पाम्यो एम कोण कहेवाय?

हवे एनो उत्तर चार्वाक दर्शनीओ कहेछे. अहएसिंके० अथ एटले हवे एसिं एटले ए पंच महाभूत जे छे तेना विणासेणं के० विनाश थकी, देहिणो के० जीवनो पण विणासो होइ के० विनाश होयछे. परंतु जे एवुं कहेछे के आत्मा चवीने अन्यत्र स्थाने जायछे. कर्मना वशथकी सुखी दुःखी थायछे, ते सर्व मुग्धरंजन जाणवुं ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–सांप्रतं नास्तिकमतमाश्रित्याह । ( संतीति ) संति पंचमहाभूतानि इह अस्मिन् लोके एकेषां भूतवादिनामाख्यातानि तत्वार्थकृतानि । तैर्वा भूतवादिभिर्नास्तिकैराख्यातानि स्वयमंगीकृतानि । परेषां च प्रतिपादितानि तानि चामूनि । ( पुढवीत्यादि ) । पृथ्वी १ आपो जलं २ तेजो वन्हिः ३ वायुः ४ आकाशं पंचमं येषां तानि । ननु सांख्यादिभिरपि भूतानि मन्यंतएव । तत्कथं चार्वाकमतापेक्षयैव भूतोपन्यास इति चेदुच्यते । सांख्यादिभिर्हि प्रधानाहंकारादिकं तथा कालदिगात्मादिकं चान्यदपि वस्तुजातमंगीक्रियते । चार्वाकैस्तु भूतव्यतिरिक्तं नात्मादि किंचिन्मन्यतइति तन्मताश्रयेणैवायं सूत्रोपन्यास इति ॥७॥ चार्वाकमतांगीकारमेवाह । (एतइति) । एतानि पंचमहाभूतानि तेभ्यो भूतेभ्यः कायाकारपरिणतेभ्य एकः कश्चिच्चिद्रूपो भूताव्यतिरिक्त आत्मा भवति नतु कश्चिदपरः परलोकयायी जीवाख्यः पदार्थोस्तीत्येवमाख्यातवंतस्ते । ननु यदि भूतेभ्योन्यः कश्चिदात्मा नास्ति कथं तर्हि मृतइति व्यपदेशइत्याशंकायामाह । (अहतेसिंति) । अथ तेषां भूतानां विनाशेऽपगमे देहिनो देवदत्तादेर्विनाशो भवति ततश्च मृतइत्युच्यते न पुनर्जीवापगमइति । अत्रैतन्मतनिर्लोठनयुक्तयो वृत्तितोऽवसेयाः ॥८॥

॥ टीका–सांप्रतं विशेषेण सूत्रकार एव चार्वाकमतमाश्रित्याऽह । ( संतिपंचमहब्भूयाइत्यादि) । संति विद्यंते महांति च तानि भूतानि च महाभूतानि । सर्वलोकव्यापित्वान्महत्वविशेषणं । अनेन च भूताभाववादिनिराकरणं द्रष्टव्यं । इहास्मिन् लोके एकेषां भूतवादिनामाख्यातानि प्रतिपादितानि तत्तीर्थकृता तैर्वा भूतवादिभिर्बार्हस्पत्यमतानुसारिभिराख्यातानि स्वयमंगीकृतान्यन्येषां च प्रतिपादितानि । तानि चामूनि । तद्यथा । पृथिवी कठिनरूपा । आपो द्रवलक्षणाः । तेज उष्णरूपं । वायुश्चलनलक्षणः । आकाशं सुषिरलक्षणमिति तच्च पंचमं येषां तानि । तथा । एतानि सांगोपांगानि प्रसिद्धत्वात् प्रत्यक्षप्रमाणावसेयत्वाच्च न कैश्चिदपह्नोतुं शक्यानि । ननु च सांख्यादिभिरपि भूतान्यभ्युपगतान्येव । तथाहि । सांख्यास्तावदेवमूचुः । तद्यथा । सत्वरजस्तमोरूपात्प्रधानान्महान् बुद्धिरित्यर्थः । महतोऽहंकारोऽहमितिप्रत्ययस्तस्मादप्यहंकारात्षोडशकोगण उत्पद्यते । सचायं । पंच स्पर्शादीनि बुद्धींद्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थरूपाणि पंच कर्मेंद्रियाणि । एकादशं मनः । पंचतन्मात्राणि । तद्यथा । गंधरसरूपस्पर्शशब्दत

न्मात्राख्यानि । तत्र गंधतन्मात्रात्पृथिवी गंधरसरूपस्पर्शवती । रसतन्मात्रादापो रसरूपस्पर्शवत्यः । रूपतन्मात्रात्तेजो रूपस्पर्शवत् । स्पर्शतन्मात्राद्वायुः स्पर्शवान् । शब्दतन्मात्रादाकाशं गंधरसरूपस्पर्शवर्जितमुत्पद्यतइति । तथा वैशेषिका अपि नूतान्यनिहितवंतः । तद्यथा । पृथिवीत्वयोगात्पृथिवी । साच परमाणुलक्षणा नित्या । द्व्यणुकादिप्रक्रमनिष्पन्नकार्यरूपतया त्वनित्या । चतुर्दशनिर्गुणैरूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विनाग, परत्वा,परत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, वेगाख्यैरुपेता । तथाप्त्वयोगादापस्ताश्च रूपरसस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागपरत्वापरत्वगुरुत्वस्वानाविकद्रवत्वस्नेहवेगवत्यस्तासु च रूपं शुक्लमेव रसो मधुरएव स्पर्शः शीतएवेति । तेजस्त्वानिसंबंधात्तेजः । तच्च रूपस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागपरत्वापरत्वनैमित्तिकद्रवत्ववेगाख्यैरेकादशनिर्गुणैर्गुणवत् । तत्र रूपं शुक्लं नास्वरं च । स्पर्शउष्णएवेति । वायुत्वयोगाद्वायुः । सचानुष्णशीतस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागपरत्वापरत्ववेगाख्यैर्नवनिर्गुणैर्गुणवान् । हृत्कंपशब्दानुष्णशीतस्पर्शलिंगं । आकाशमिति परिनाषिकी संज्ञा एकत्वात्तस्य । तच्च संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागशब्दाख्यैः षड्निर्गुणैर्गुणवत् । शब्दलिंगंचेत्येवमन्यैरपि वादिनिर्नूतसद्भावाश्रयणे किमिति लोकायतिकमतापेक्षया नूतपंचकोपन्यासइत्युच्यते । सांख्यादिनिर्हि प्रधानात्साहंकारिकं तथा कालदिगात्मादिकं चान्यदपि वस्तुजातमन्युपेयते । लोकायतिकैस्तु नूतपंचकव्यतिरिक्तं नात्मादिकं किंचिदन्युपगम्यते इत्यतस्तन्मताश्रयणेनैव सूत्रार्थो व्याख्यायतइति ॥ ७ ॥ यथा चैतन्नया दर्शयितुमाह ।(एएपंचमहब्भूयाइत्यादि)।एतान्यनंतरोक्तानि पृथिव्यादीनि पंच महानूतानि यानि तेन्यः कायाकारपरिणतेन्य एकः कश्चिच्चिद्रूपो नूताव्यतिरिक्त आत्मा नवति न नूतेन्यो व्यतिरिक्तोऽपरः कश्चित्परः परिकल्पितः परलोकानुयायी सुखदुःखनोक्ता जीवाख्यः पदार्थोस्तीत्येवमाख्यातवंतस्ते । तथाहि । एवं प्रमाणयंति । न पृथिव्यादिव्यतिरिक्त आत्माऽस्ति तद्ग्राहकप्रमाणानावात् ॥ प्रमाणं चात्र प्रत्यक्षमेव नानुमानादिकं । तत्रेंद्रियेण साक्षादर्थस्य संबंधानावाद्व्यनिचारसंनवः । सति च व्यनिचारसंनवे सदृशे च बाधासंनवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यादिति सर्वत्रानाश्वासः । तथाचोक्तं । हस्तस्पर्शादिवांधेन, विषमे पथि धावता ॥ अनुमानप्रधानेन, विनिपातो न दुर्लभः ॥ १ ॥ अनुमानं चात्रोपलक्षणमागमादीनामपि । साक्षादर्थसंबंधानावाद्धस्तस्पर्शनेनैव प्रवृत्तिरिति । तस्मात्प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं । तेन च नूतव्यतिरिक्तस्यात्मनो न ग्रहणं । यत्तु चैतन्यं तेषूपलन्यते तन्नूतेष्वेव कायाकारपरिणतेष्वनिव्यज्यते मद्यांगेषु समुदितेषु मदशक्तिवदिति । तथा न नूतव्यतिरिक्तं चैतन्यं तत्कार्यत्वाद्घटादिवदिति । तदेवं नूतव्यतिरिक्तस्यात्मनोऽनावान्नूतानामेव चैतन्यानिव्यक्तिर्जलस्य बुद्बुदादिव्यक्तिवदिति । केषांचिल्लोकाय

तिकानामाकाशस्यापि भूतत्वेनाभ्युपगमाद्भूतपंचकोपन्यासो न दोषायेति । ननुच यदि भूतव्यतिरिक्तोऽपरः कश्चिदात्माख्यः पदार्थो न विद्यते कथं तर्हि मृतइति व्यपदेश इत्याशं क्याह । अथै षां कायाकारपरिणतौ चैतन्याभिव्यक्तौ सत्यां तदूर्ध्वंतेषामन्यतमस्य विनाशे ऽपगमे वायोस्तेजसश्चोभयोर्वा देहिनो देवदत्ताख्यस्य विनाशोऽपगमो भवति ततश्च मृ तइति व्यपदेशः प्रवर्तते न पुनर्जीवापगमइति भूताव्यतिरिक्तचैतन्यवादिपूर्वपक्षइति । अत्र प्रतिसमाधानार्थं निर्युक्तिकृदाह । "पंचएहं संजोए,अएगुणाणंच चेयणाइगुणो। पंचिंदि यगणाणं,णअमुणियं मुणइ असो ॥३१॥(पंचएहंसंजोएइत्यादि)।पंचानां पृथिव्यादीनां भूतानां संयोगे कायाकारपरिणामे चैतन्यादिकः। आदिशब्दात् भाषाचंक्रमणादिकश्च गुणो न भवतीति प्रतिज्ञा।अन्यादयस्त्वत्र हेतुत्वेनोपात्ता.।दृष्टांतस्त्वभ्यूह्यः। सुलभत्वात्तस्यनो पादानं ।तत्रेदं चार्वाकः प्रष्टव्यः। यदेतद्भूतानां संयोगे चैतन्यमभिव्यज्यते तत्किं तेषां संयो गेपि स्वातंत्र्यएवाऽहोस्वित्परस्परापेक्ष्या पारतंत्र्ये इति ।किंचाऽतः॥ न तावत्स्वातंत्र्ये यत आह। (अएगुणाणंचेति) चैतन्यादन्ये गुणा येषां तान्यन्यगुणानि। तथा ह्याधारकाठिन्य गुणा पृथिवी द्रव्यगुणा आपः पक्तृगुणं तेजः । चलनगुणो वायुः अवगाहदानगुणमा काशमिति । यदि वा प्रागभिहिता गंधादयः पृथिव्यादीनामेकैकपरिहान्याऽन्येगुणाश्चेत न्यादिति । तदेवं पृथिव्यादीन्यन्यगुणानि । च शब्दो द्वितीयविकल्पवक्तव्यतासूचनार्थः। चैतन्यगुणे साध्ये पृथिव्यादीनामन्यगुणानां सतां चैतन्यगुणस्य पृथिव्यादीनामेकैकस्या प्यभावान्नतत्समुदायाच्चैतन्याख्यो गुणः सिद्ध्यतीति । प्रयोगस्तत्र भूतसमुदायः स्वातंत्र्ये सति धर्मित्वेनोपादीयते न तस्य चैतन्याख्यो गुणोस्तीति । साध्यो धर्मः पृथिव्यादीनामन्यगुणत्वात् । योयोन्यगुणानांसमुदायस्तत्रतत्राऽपूर्वगुणोत्पत्तिर्न भवती ति । यथा सिकतासमुदाये स्निग्धगुणस्य तैलस्य नोत्पत्तिरिति घटपटसमुदाये वा न स्तंभाद्याविर्भावइति । दृश्यते च कार्ये चैतन्यं तदात्मगुणो भविष्यतीति न भूताना मिति । अस्मिन्नेवसाध्ये हेत्वंतरमाह । ( पंचिंदियगणाणंति ) । पंच च तानि स्पर्शनर सनघ्राणचक्षुःश्रोत्राख्यानींद्रियाणि तेषां स्थानान्यवकाशास्तेषां चैतन्यगुणाभावान्न भूतसमुदाये चैतन्यं । इदमत्र हृदयं। लोकायतिकानां हि अपरस्य द्रष्टुरनभ्युपगमा दिंद्रियाएयेव द्रष्टृणि । एतेषां च यानि स्थानान्युपादानकारणानि तेषामचिद्रूपत्वान्न भूत समुदाये चैतन्यमिति। इंद्रियाणां चामूनि स्थानानि।तद्यथा।श्रोत्रेंद्रियस्याकाशं सुषिरात्म कत्वात् । घ्राणेंद्रियस्य पृथिवी तदात्मकत्वात् । चक्षुरिंद्रियस्य तेजस्तद्रूपत्वात् । एवं र सनेंद्रियस्यापः । स्पर्शनेंद्रियस्य वायुरिति । प्रयोगश्चात्र नेंद्रियाणुपलब्धिमंति तेषामचे तनगुणारब्धत्वात् । यद्यदचेतनगुणारब्धं तत्तदचेतनं। यथा घटपटादीनि। एवमपिच भू तसमुदाये चैतन्याभावएव साधितो भवति । पुनर्हेत्वंतरमाह । ( ण असुमुणियंमुण

ङ्श्रृणोत्ति )। इहेंद्रियाणि प्रत्येकं भूतात्मकानि तान्येवापरस्य ङष्टुरभावाद्गृणि तेषां च
प्रत्येकं स्वविषयग्रहणादन्यविषये चाप्रऽवृत्तेर्नान्यदिंद्रियज्ञातमन्यदिंद्रियं जानातीत्यतो
मया पंचापि विषया ज्ञाता इत्येवमात्मकः संकलनाप्रत्ययो न प्राप्नोत्यनुनूयते चायं
तस्मादेकेनैव ङष्ट्रा नवितव्यम्। तस्यैव च चैतन्यं न भूतसमुदायस्येति। प्रयोगः पुनरे
वं भूतसमुदाये चैतन्यं तदारब्धेंद्रियाणां प्रत्येकविषयग्राहित्वे सति संकलनाप्रत्यया
नावात्। यदि पुनरन्यगृहीतमप्यन्यो गृण्हीयाद्देवदत्तगृहीतं यज्ञदत्तेनापि गृह्येत न चैत
द् दृष्टमिष्टं चेति। ननुच स्वातंत्र्यपक्षेऽयं दोषः। यदा पुनः परस्परसापेक्षाणां संयोगपारतं
त्र्याभ्युपगमेन भूतानामेव समुदितानां चैतन्याख्यो धर्मः संयोगवशादाविर्नवति। यथा
किण्वोदकादिषु मद्यांगेषु समुदितेषु प्रत्येकमविद्यमानापि मदशक्तिरिति तदा कुतो
ऽस्य दोषस्यावकाशइति। अत्रोत्तरं। गाथायां चशब्दाक्षिप्तमनिधीयते। यत्तावडुक्तं। य
था भूतेन्यः परस्परसव्यपेक्षसंयोगनाग्न्यश्चैतन्यमुत्पद्यते। तत्र विकल्पयामः। किमसौ
संयोगः संयोगिन्यो भिन्नोऽभिन्नो वा। भिन्नश्चेत्षष्ठभूतप्रसंगो न चान्यत्पंचभूतव्यतिरिक्तसं
योगाख्यभूतग्राहकं भवतां प्रमाणमस्ति। प्रत्यक्षस्यैवैकस्याभ्युपगमात्तेन च तस्याग्रहणात्
प्रमाणांतराभ्युपगमे च तेनैव जीवस्यापि ग्रहणमस्तु। तथाऽभिन्नो भूतेन्यो भूतानामेव
संयोगस्तत्राप्येतच्चिंतनीयं किंभूतानि प्रत्येकं चेतनावंत्यचेतनावंति वा। यदि चेत
नावंति तदा एकेंद्रियसिद्धिस्तदा समुदायस्य पंचप्रकारचैतन्यापत्तिः। अथाचेतनानि त
त्रोक्तो दोषो नहि। यद्यत्र प्रत्येकमविद्यमानं तत्समुदाये नवडुपलन्यते सिकतासु तैलवदि
त्यादिना। यदप्यत्र पूर्वोक्तं तथा मद्यांगेष्वविद्यमानाऽपि प्रत्येकं मदशक्तिः समुदाये
प्राडुर्नवतीति। तदप्ययुक्तं। यतस्तत्र किण्वादिषु याच यावती शक्तिरुपलन्यते। तथा
हि॥ किण्वे बुनुक्षापनयनसामर्थ्यं भ्रमिजननसामर्थ्यं चोदकस्य तृडपनयनसामर्थ्यमित्या
दिनेति भूतानां प्रत्येकं चैतन्याऽनभ्युपगमे दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यं। किंच भूते चैत
न्याभ्युपगमे मरणाभावो मृतकायेपि पृथ्व्यादीनां भूतानां सद्भावात्। नैतदस्ति। तत्र मृतका
ये वायोस्तेजसो वाऽभावान्मरणसद्भाव इत्यशिक्षितस्योल्लापः। तथाहि। मृतकाये शो
फोपलब्धेर्न वायोरभावः कायस्य च पक्तिस्वनावस्य दर्शनान्नाग्नेरिति। अथसूक्ष्मः कश्चि
द्वायुविशेषोग्निर्वा ततोपगतइति मतिरित्येवं च जीव एव नामांतरेणाभ्युपगतो नवति।
यत्किंचिदेतत्। तथा न भूतसमुदायमात्रेण चैतन्याविर्नावः। पृथिव्यादिष्वेकत्र व्यव
स्थापिते चैतन्यानुपलब्धेः। अथकायाकारपरिणतौ सत्यां तदाभिव्यक्तिरिष्यते। तदपि न।
यतो लेप्यमयप्रतिमायां समस्तभूतसद्भावेऽपि जडत्वमेवोपलन्यते। तदेवमन्वयव्यतिरेका
भ्यामालोच्यमानो नायंचैतन्याख्यो गुणो भूतानां नवितुमर्हति। समुपलन्यते चायं श
रीरेषु। तस्मात् पारिशेषात् जीवस्यैवायमिति स्वदर्शनपक्षपातं विहायांगीक्रियतामिति।

यच्चोक्तं प्राक् न पृथिव्यादिव्यतिरिक्त आत्माऽस्ति तद्ग्राहकप्रमाणाभावात् । प्रमाणं चात्र प्रत्यक्षमेवैकमित्यादि तत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तं प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं नानुमानादिकमित्येतदनुपासितगुरोर्वचः । तथाहि । अर्थाविसंवादकं प्रमाणमित्युच्यते प्रत्यक्षस्य च प्रामाण्यमेव व्यवस्थाप्यते । कश्चित्प्रत्यक्षव्यक्तीर्धर्मित्वेनोपादाय प्रमाणयति । प्रमाणमेता अर्थाऽविसंवादकत्वादनुभूतप्रत्यक्षव्यक्तिवत् । नच ताभिरेव प्रत्यक्षव्यक्तिभिः स्वसंविदिताभिः परंव्यवहारयितुमयमीशस्तासां स्वसन्निविष्टत्वान्मूकत्वाच्च । प्रत्यक्षस्य नानुमानं प्रमाणमित्यनुमानेनैवानुमाननिरासं कुर्वंश्चार्वाकः कथं नोन्मत्तः स्यादेवं ह्यसौ तदप्रामाण्यं प्रतिपादयेत् । यथा नानुमानं प्रमाणं विसंवादकत्वादनुभूतानुमानव्यक्तिवदित्येतच्चानुमानमथपरप्रसिध्यैतदुच्यते । तदप्ययुक्तं । यतस्तत्परप्रसिद्धमनुमानं भवतः प्रमाणमप्रमाणं वा । प्रमाणं चेत्कथमनुमानमप्रमाणमित्युच्यते । अथाप्रमाणं कथमप्रमाणेन सता तेन परः प्रत्याय्यते । परेण तस्य प्रामाण्येनाभ्युपगतत्वादिति चेत्तदप्यसांप्रतं । यदिनाम परो मौढ्यादप्रमाणमेव प्रमाणमित्यवध्यस्यति । किं भवताऽतिनिपुणेनापि तेनैवाऽसौ प्रतिपाद्यते । यो ह्यन्यो गुडमेव विषमपि मन्यते किं तस्य मारयितुकामेनापि बुद्धिमता गुडएव दीयते । तदेवं प्रत्यक्षानुमानयोः प्रामाण्याप्रामाण्ये व्यवस्थापयतो भवतोऽनिच्छतोपि बलादायातमनुमानस्य प्रामाण्यं । तथा स्वर्गापवर्गदेवतादेः प्रतिषेधं कुर्वन् भवान् केन प्रमाणेन करोति न तावत्प्रत्यक्षेण प्रतिषेधं कर्तुं पार्यते । यतस्तत्प्रत्यक्षं प्रवर्तमानं वा तन्निषेधं विदध्यान्निवर्तमानं वा । न तावत्प्रवर्तमानं तस्याऽभावविषयत्वविरोधात् । नापि निवर्तमानं । यतस्तच्च नास्ति तेन च प्रतिपत्तिरित्यसंगतं । तथाहि । व्यापकविनिवृत्तौ व्याप्यस्यापि निवृत्तिरिष्यते ॥ न चार्वाकदर्शितप्रत्यक्षेण समस्तवस्तुव्याप्तिः संभाव्यते । तत्कथं प्रत्यक्षविनिवृत्तौ पदार्थव्यावृत्तिरिति । तदेवं स्वर्गादेः प्रतिषेधं कुर्वता चार्वाकेणाऽवश्यं प्रमाणांतरमभ्युपगतं । तथाऽन्याभिप्रायविज्ञानाभ्युपगमादत्र स्पष्टमेव प्रमाणांतरमभ्युपगतं । अन्यथा कथं परावबोधाय शास्त्रप्रणयनमकारि चार्वाकेणेत्यलमतिप्रसंगेन । तदेवं प्रत्यक्षादन्यमपि प्रमाणमस्ति तेनात्मा सेत्स्यति किंपुनस्तदिति चेदुच्यते । अस्त्यात्मा । असाधारणतद्गुणोपलब्धेश्चक्षुरिंद्रियवत् । चक्षुरिंद्रियं हि न साक्षादुपलभ्यते । स्पर्शनादींद्रियाऽसाधारणरूपविज्ञानोत्पादनशक्त्या त्वनुमीयते । तथात्मापि पृथिव्याद्यसाधारणगुणोपलब्धेरस्तीत्यनुमीयते । चैतन्यं च तस्यासाधारणगुणइत्येतत्पृथिव्यादिभूतसमुदाये चैतन्यस्य निराकृतत्वादवसेयं । तथास्त्यात्मा समस्तेंद्रियोपलब्धार्थसंकलनाप्रत्ययसद्भावात् । पंचगवाक्षान्यनन्योपलब्धार्थसंकलनाविधाय्येकदेवदत्तवत् । तथाऽत्माऽर्थद्रष्टा नेंद्रियाणि । तद्विगमे हि तदुपलब्धार्थस्मरणात् । गवाक्षोपरमेऽपि तद्द्वारोपलब्धार्थस्मर्तृदेवदत्तवत् । तथार्था

पत्याप्यात्मास्तीत्यवसीयते । तथापि सत्यपि पृथिव्यादिभूतसमुदाये लेप्यकर्मादौ न सु
खदुःखेछाद्वेषप्रयत्नादिक्रियाणां सद्भाव इत्यतः सामर्थ्यादवसीयते । अस्ति भूतातिरिक्तः
कश्चित्सुखदुःखेछादीनां क्रियाणां समवायिकारणं पदार्थः सचात्मेति । तदेवं प्रत्यक्षानुमा
.नादिपूर्विकाऽन्याप्यर्थापत्तिरभ्यूह्या । तस्यास्त्विदं लक्षणं । प्रमाणषट्कविज्ञातो, यत्रार्थो
नान्यथा भवेत् ॥ अदृष्टं कल्पयेदन्यं, सार्थापत्तिरुदाहृता ॥ १ ॥ तथाऽगमादप्यस्तित्वमवसे
यं । सचायमागमः । अत्थिमेआयाउववाइएइत्यादि । यदि वा किमत्राऽपरप्रमाणचिंतया
सकलप्रमाणज्येष्ठेन प्रत्यक्षेणैवात्मास्तीत्यवसीयते । तद्गुणस्य ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वात् । ज्ञान
गुणस्य च गुणिनोऽनन्यत्वात् । प्रत्यक्षएवात्मा रूपादिगुणप्रत्यक्षत्वेन पटादिप्रत्यक्षवत् ।
तथा ह्यहं सुख्यहं दुःख्येवमाद्यहंप्रत्ययग्राह्योऽस्त्यात्माप्रत्यक्षः । अहंप्रत्ययस्य स्वसंविद्रूपत्वा
दिति । ममेदं शरीरं पुराणं कर्मेति च शरीराद्भेदेन निर्दिश्यमानत्वादित्यादीन्यन्यान्यपि
प्रमाणानि जीवसिद्धावभ्यूह्यानीति ॥ तथा यदुक्तं । न भूतव्यतिरिक्तं चैतन्यं तत्कार्यत्वा
त् घटादिवदित्येतदप्यसमीचीनं । हेतोरसिद्धत्वात् । तथाहि । न भूतानां कार्यं चैतन्यं
तेषामतद्गुणत्वात् भूतकार्यचैतन्ये संकलनाप्रत्ययासंभवाच्चेत्यादिनोक्तप्रायमतोऽस्त्यात्मा
भूतव्यतिरिक्तो ज्ञानाधारइत्युक्तं । ननुच किं ज्ञानाधारभूतेनात्मना ज्ञानाद्भिन्नेनाश्रितेन
यावता ज्ञानादेव सर्वसंकलनाप्रत्ययादिकं सेत्स्यति किमात्मनांतर्गडुकल्पेनेति । तथाहि ।
ज्ञानस्यैव चिद्रूपत्वाद्भूतैरचेतनैः कायाकारपरिणतैः सह संबंधे सति सुखदुःखेछाद्वेषप्रय
त्नक्रियाः प्रादुष्यंति तथा संकलनाप्रत्ययो भवान्तरगमनंचेति । तदेवं व्यवस्थिते किमात्मना
कल्पितेनेत्यत्रोच्यते । नत्वात्मानमेकमाधारभूतमंतरेण संकलनात्र न्याय्या घटते । तथा
हि । प्रत्येकमिंद्रियैः स्वविषयग्रहणे सति परविषये चाप्रवृत्तेरेकस्य च परिछेत्तुरभावात् ।
मया पंचापि विषयाः परिछिन्ना इत्यात्मकस्य संकलनाप्रत्ययस्याभावादिति । अथालय
विज्ञानमेकमस्तीति चेदेवं सत्यात्मनएव नामांतरं भवता कृतं स्यात् । नच ज्ञानाख्यो
गुणो गुणिनमंतरेण भवतीत्यवश्यमात्मना गुणिना भाव्यमिति । सच न सर्वव्यापी
तद्गुणस्य सर्वत्रानुपलभ्यमानत्वात् घटवत् । नापि श्यामाकतंडुलमात्रोंगुष्ठपर्वमात्रो वा ।
तावन्मात्रस्योपात्तशरीराव्यापित्वात् त्वक्पर्यंतशरीरव्यापित्वात् त्वचोपलभ्यमानगुणत्वा
त् । तस्मात्स्थितमिदमुपात्तशरीरत्वक्पर्यंतव्याप्यात्मेति । तस्य चानादिकर्मसंबद्धस्य क
दाचिदपि सांसारिकस्यात्मनः स्वरूपेऽनवस्थानात् सत्यप्यमूर्तत्वे मूर्तेन कर्मणा संबंधो न
विरुध्यते । कर्मसंबंधाच्च सूक्ष्मबादरैकेंद्रियद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियपर्याप्तापर्याप्तसाद्यवस्था बहु
विधाः प्रादुर्भवंति । तस्य चैकांतेन क्षणिकत्वे ध्यानाध्ययनश्रमप्रत्यभिज्ञानाद्यभावः । ए
कांतनित्यत्वे च नारकतिर्यङ्मनुष्यामरगतिपरिणामाभावः स्यात्तस्मात्स्यादनित्यः स्या
न्नित्यआत्मेत्यलमतिप्रसंगेन ॥ ८ ॥

जहा य पुढवीथूने, एगे नाणाहि दीसइ ॥ एवं नो कसिणे लोए
विन्नू नाणाहि दीसइ ॥ ए ॥ एवमेगेत्ति जप्पंति, मंदा आरंनणि
स्सिआ ॥ एगे किच्चा सयं पावं, तिवं डुक्कं नियछइ ॥ १० ॥

अर्थ–एम पंचनूतियागता एटले पंच नूतिक वादिनो मत कह्युं. हवे आत्माद्वैत वादिनो मत दृष्टांतेकरी कहियें ठैयें. जहाय के० जेम पुढवीथूनेएगे के० पृथ्वीरूप थून एक ठतां नाणाहिदीसइ के०नदी, समुद्र, पर्वत, नगर अने ग्राम इत्यादि रूप नाना प्रकारे देखायठे. परंतु विचाले पृथ्वीनुं अंतर कांइ देखातुं नथी एटले पृथ्वी एकज ठे. एवंके० ए उक्त न्याये, नो ए वचन परने बोलाववाने अर्थेठे. एटले अहो ? दर्शनीउ तेम कसिणे लोएके० ए समस्त लोक चराचर स्वरूप एकज ठे एटले आत्मारूप ठे, परंतु विन्नू के० विद्वान् ते चराचररूप आत्मा. नाणाइ दीसइ के० नानाप्रकारे द्विपद चतुष्पद बहुपदादिरूप देखाय ठे. परंतु जे एम कहे के, शरीर शरीरने विषे आत्मा जुदो जुदो ठे ते मिथ्या ठे. यडुक्तं । एकएवहि नूतात्मा, नूते नूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ १ ॥ इत्यादि ॥ ए ॥ हवे जैन एनें उत्तर आपेठे. एवं के० ए पूर्वोक्त न्याये एगेत्ति के० एक एटले कोइ एक परवादी, पोताना ठंदने बलात्कारे एम जप्पंति के०बोले ठे. ते केवाठे, तोके मंदा के०मंद ठे. एटले सम्यक् ज्ञान विकल ठे; केमके, जो सर्वत्र आत्मा एकज ठे, बीजो नथी तो जगत्मांहे एगेके० एकेक जीव करसणी प्रमुख आरंनणिस्सिआ के० जीवहिंसात्मक आरंननेविषे निस्सिया एटले आसक्त थका सयंके० पोते पावं के० पापने किच्चा के० करीने तिवंडुक्कं के० तीव्र डुःखने नियछइ के० पामेठे. पण अनेरा नथी पामता, तथा जे जीव जगत्मां कांइ असमंजस चौरादिक कर्म करे ठे, ते ठेदनन्नेदनादिक अनेक विटंबनाउ पामेठे. अने जे नलो समाचरेठे ते साता पामेठे. माटे जो सर्वजीवनो आत्मा एकज होय तो सर्व जीवने विटंबना अथवा साता केम न थवी जोइये ? माटे ए तमारुं वचन मिथ्या ठे ; केमके सर्व जीव पोतपोतानी करणीए सुख डुःखने पामेठे ॥ १० ॥ ए सवगतवादिगता एटले सर्वगत वादीनुं मत कह्युं.

॥ दीपिका– अथ एकात्माऽद्वैतवादमुद्दिश्याह । ( जधायेति ) यथा च शब्दोऽपिशब्दार्थे । सच निन्नः । पृथिव्याःस्तूपः पृथिव्येव वा स्तूपः पृथिवीसंघाताख्योऽवयवी । सच एकोपि यथा नानारूपः सरित्समुद्रपर्वतनगरग्रामाद्याधारतया विचित्रो दृश्यते । निम्नोन्नतमृडुकठिनरक्तपीतादिनेदेन वा दृश्यते । नच तावता पृथिवीत्वस्यैकस्य नेदो नवति । एवं नोइति परामंत्रणं । कृत्स्नोपि चेतनाचेतनरूपो लोक एको विद्वानेक एवात्मा विद्वान् ज्ञानपिंडः पृथिव्यादिनूताकारतया नाना दृश्यते । नच तावता तस्यैकस्यात्मतत्त्वस्य नेदो

भवति ॥७॥ अस्योत्तरमाह् । (एवमिति) एवमात्माद्वैतवादमाश्रिता एके जल्पंति । मंदा जडाः। मंदत्वं चैतेषां युक्तिविकलजीवाऽद्वैतपक्षाश्रयणात् । तथाहि। यद्येकएवात्मा स्या त्तदा एके कृषीवलादय आरंभे जीवहिंसात्मके निःश्रिता आसक्ताः स्वयंपापं कृत्वा तीव्रं नारकादिदुःखं (निगछइत्ति) आर्षत्वाद्बहुवचनार्थे एकवचनं। निश्चयेन गछंति । तएवारं नसक्तानान्ये इत्येतन्न स्यात्। यद्येक एवात्मा स्यात्तदा एकेनाप्यशुभे कर्मणि कृते सर्वेषां दुः खं स्यान्नचैवं दृश्यते । तस्मादेकएवात्मेति न युक्तं ॥ १० ॥

॥ टीका ॥ सांप्रतमेकात्माऽद्वैतवादमुद्देशार्थाधिकारप्रदर्शितं पूर्वपक्षयितुमाह् ।(ज हापुढवीत्यादि) दृष्टांतबलेनैवार्थस्वरूपावगतेः पूर्वंदृष्टांतोपन्यासः । यथेत्युपदर्शने । च शब्दोऽपिशब्दार्थे । सचभिन्नक्रमएकेइत्यस्यानंतरं दृष्टव्यः। पृथिव्येव स्तूपा पृथिव्या वा स्तूपः पृथिवीसंघातावयवी। सचैकोपि यथा नानारूपः सरित्समुद्रपर्वतनगरसन्निवेशा द्याधारतया विचित्रो दृश्यते निम्नोन्नतमृडुकठिनरक्तपीतादिभेदेन वा दृश्यते । नच तस्य पृथिवीतत्त्वस्यैतावताभेदेन भेदो भवत्येवमुक्तरीत्या । भोइत्यादिपरामंत्रणं। कृ त्स्नोपि लोकश्चेतनाचेतनरूप एकोविद्वान् वर्तते । इदमत्र हृदयं । एकएव ह्यात्मा वि द्वान् ज्ञानपिंडः पृथिव्याद्याकारतया नाना दृश्यते नच तस्यात्मनएतावताऽऽत्मतत्त्व भेदो भवति । तथा चोक्तं । एकएव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहु धा चैव, दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ १ ॥ तथा पुरुषएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं ॥ उतामृतत्व स्येशानो यदन्नेनातिरोहति, यदेजति यन्नेजति यद्दूरे यदंतरस्य सर्वस्य यत्सर्वस्यास्य वा ह्यत इत्यात्माद्वैतवादः ॥७॥ अस्योत्तरदानायाह् । (एवमेगे इत्यादि) एवमित्यनंतरोक्ता त्माद्वैतवादोपदर्शनं। एके केचन पुरुषकारणवादिनो जल्पंति प्रतिपादयंति ।किंभूतास्ते ऽ त्याह् ।मंदा जडाःसम्यक्परिज्ञानविकलाः॥मंदत्वं चैषां युक्तिविकलात्माऽद्वैतपक्षसमाश्रय णात्। तथाहि।यद्येकएवात्मा स्यान्नात्मबहुत्वं ततो ये सत्त्वाःप्राणिनःकृषीवलादय एके केच न आरंभे प्राण्युपमर्दकारिणि व्यापारे निःश्रिता आसक्ताः संबद्धा अध्युपपन्नास्ते च संरंभ समारंभैः कृत्वोपादाय स्वयमात्मना पापमशुभप्रकृतिरूपमसातोदयफलं तीव्रं दुःखं तदनुभ वस्थानं वा नरकादिकं नियच्छतीति। आर्षत्वाद्बहुवचनार्थे एकवचनमकारि। ततश्चायमर्थो निश्चयेन यच्छंत्यवश्यतया गछंति प्राप्नुवंति तएवारंभासक्ता नान्यइत्येतन्न स्यादपित्वे केनापि अशुभे कर्मणि कृते सर्वेषां शुभानुष्ठायिनामपि तीव्रदुःखाभिसंबंधः स्यादेकत्वा दात्मनइति । नचैतदेवं दृश्यते।तथाहि।यएव कश्चिदसमंजसकारी सएव लोके तदनुरू पाविडंबनाः समनुभवन्नुपलभ्यते नान्यइति । तथा सर्वगतत्वे आत्मनो बंधमोक्षाद्यभाव स्तथा प्रतिपाद्यप्रतिपादकविवेकाभावाच्छास्त्रप्रणयनाभावश्च स्यादिति । एतदर्थसंवादित्वा च्छ्लोकान्येव निर्युक्तिकृतात्र व्याख्यायते । तद्यथा । पंचानां पृथिव्यादीनां भूतानामेकत्र

कायाकारपरिणतानां चैतन्यमुपलभ्यते । यदि पुनरेकएवात्मा व्यापी स्यात्तदा घटादिष्वेव चैतन्योपलब्धिः स्यान्नचैवं । तस्मान्नैकआत्मा भूतानां चान्योन्यगुणत्वं न स्यादेकस्मादात्मनोभिन्नत्वात् । तथा पंचेंद्रियस्थानानां पंचेंद्रियाश्रितानां ज्ञानानां प्रवृत्तौ सत्यामन्येन ज्ञात्वा विदितमन्यो न जानातीत्येतदपि न स्याद्यद्येकएवात्मा स्यादिति ॥ १० ॥

पत्तेअं कसिणे आया, जे बाला जे अ पंमिआ ॥ संति पिच्चा
न ते संति, नत्थि सत्तोववाइया ॥ ११ ॥ नत्थि पुणेच पावेवा,
नत्थि लोए इतो परे ॥ सरीरस्स विणासेणं, विणासो होइ देहिणो ॥ १२

अर्थ–हवे तज्जीवतच्छरीरवादिनो मत कहेछे –ते तज्जीवतच्छरीरवादी एम कहेछे के, जेम पंचभूत मली कायाने आकारें परिणामी चेतना उपजावेछे. तो ते कारणे पत्तेअंकसिणेआया के० शरीर शरीर प्रत्ये आत्मा जुदो जुदो छे. जगत्मां जे बालाके० बाल अज्ञानी तथा जेअपंमिआके० जे पंमित एटले विवेकी छे, ते सर्व जुदा जुदा छे. परंतु एक आत्मा सर्वव्यापी न जाणवो. एटले जैनमत अने तेमनो मत एकज थयो. हवे गाथानां उत्तरार्द्धवडे तेमनो भेद देखाडेछे. ते परवादी एम कहेछे के, आत्मा घणा छे, परंतु ज्यांसुधी शरीर छे त्यांसुधी संति के० छे. पण जेवारे शरीर नही, तेवारे आत्मापण नहीं. एटले गत्यंतर गामी आत्माउ नथी. ए प्रकारे करी भेद देखाड्यो. वली तेहिज कहेछे. पिच्चानते संतिके० ते आत्माउ परलोकने विषे न जाय. एतावता शरीरथकी भिन्न आपणां कर्मनो भोगवनार एवो आत्मा नथी. तथापि नत्थिसत्तोववाइयाके० सत्व जे प्राणीउ ते उपपातिक नथी. एटले भवांतरमां जई उपजे नहीं अर्थात् गतागति पण नथी. अही शिष्य पूछेछे के, पूर्वे जे भूतवादि कह्या अने ए तज्जीव तच्छरीरवादी ए बेहुने मांहोमांहे शुं विशेषछे? तेवारे गुरु कहेछे के, भूतवादीने मतें जे पंचमहाभूत तेहिज कायाने आकारे परिणमीने धावनवल्गनादिक क्रिया करे. अने एमने मतें पंचभूत कायाने आकारे परिणमी चैतन्य स्वरूप आत्मा उपजावे. परंतु भूतथकी आत्मा जुदो नथी. एटलुं विशेष छे. ॥ ११ ॥ हवे तेनी वक्तव्यता कहेछे, नत्थिपुणेचपावेवा के० तज्जीवतच्छरीरवादी एम कहेछे के, पुण्य नथी, पाप पण नथी, अने नत्थिलोएइतोपरे के० अतः उपरांत लोक पण नथी. जेटलुं दृष्टिगोचर आवेछे तेटलोज लोक छे. वली ग्रंथकार एनुं कारण कहेछे के; सरीरस्सविणासेणंके० शरीरने विनाशेकरी विणासोहोइ देहिणो के० आत्मानो पण विनाश थाय. ए कारण माटे आत्माने अभावे पुण्य पाप तथा लोकनी संभावना क्यां थकी थाय? ॥ १२ ॥
" तज्जीवतच्छरीरवादिगता " एटले तज्जीवतच्छरीरवादिनुं ए प्रमाणे मत कह्युं.

॥ दीपिका– सांप्रतं तज्जीवतच्छरीरवादिमतं पूर्वपक्षयन्नाह । (पत्तेअमिति)। प्रत्येकं प्रति शरीरमात्मानः कृत्स्नाः सर्वेपि ये बाला अज्ञा ये च पंडितास्ते सर्वेपि पृथग्व्यवस्थिताः नहि एकएवात्मा सर्वव्यापी स्वीकार्यो बालपंडितविनागाजावप्रसंगात् । नन्वेवमात्मब हुत्वं जैनैरपि स्वीक्रियतएव तत्किमिति परमतमाश्रित्य सूत्रमिदमुच्यतइत्याशंकायामा ह । ( संतित्ति ) । संतिविद्यंते जीवाः शरीरं यावत् । शरीराजावे तु न संति । एतदे वाह । ( पिच्चानतेसंति ) प्रेत्य परलोके ते जीवा न संति । तेषां मते शरीराद्भिन्नः पर लोकयायी न कश्चिदात्माख्यः पदार्थोस्तीति जैनेन्यो जेदः किमित्येवं ते मन्यंत इत्या ह । ( नत्थिसत्तोववाइया ) उपपातिका जवाद्भवांतरगामिनः सत्त्वाः प्राणिनो नहि न संति । ननु नूतवादिनोस्य च तज्जीवतच्छरीरवादिनः को जेद इत्यत्रोच्यते । नूतवादिनो नूतान्येव कायाकारपरिणतानि धावनवल्गनादिक्रियां कुर्वंति । अस्य तु कायाकारपरि णतेन्योनूतेन्यश्चैतनाख्य आत्मोपपद्यते अनिव्यज्यते वा तेन्यश्चाभिन्न इत्यनयो र्विशेषः ॥ ११ ॥ तन्मतमेवाह । ( नत्थीति ) । नास्ति पुण्यं पापं च नास्त्यतोऽस्मा ल्लोकात्परोऽन्यो लोकः परलोको यत्र पुण्यपापानुनवइति । अत्र हेतुमाह । शरीरस्य वि नाशेन देहिनो आत्मनोपि विनाशो ऽनावो नवति । तथाच दर्श्यते तन्मतलेशः । य था स्वनावादेव जगद्वैचित्र्यं । यदुक्तं । कंटकस्य च तीक्ष्णत्वं, मयूरस्य विचित्रता ॥ वर्णाश्च ताम्रचूडानां, स्वनावेन नवंति हीति ॥ १२ ॥

---

॥ टीका–सांप्रतं तज्जीवतच्छरीरवादिमतं पूर्वपक्षयितुमाह । (पत्तेअमित्यादि)। तज्जीव तच्छरीरवादिनामयमन्युपगमः । यथा पंचन्यो नूतेन्यः कायाकारपरिणतेन्यश्चैतन्यमुत्पद्यते अनिव्यज्यते चैकैकं शरीरंप्रति प्रत्येकमात्मनः कृत्स्नाः सर्वेप्यात्मान एवमवस्थिताः ॥ ये बालाअज्ञा ये च पंडिताः सदसद्विवेकज्ञास्ते सर्वे पृथग्व्यवस्थिताः । नह्येकएवात्मा सर्वव्यापित्वेनान्युपगंतव्यो बालपंडिताद्यविनागप्रसंगात् ।ननु प्रत्येकशरीराश्रयत्वेनात्म बहुत्वमर्हतामपीष्टमेवेत्याशंक्याह । संति विद्यंते यावच्छरीरं विद्यंते तदनावे तु न विद्यंते। तथाहि । कायाकारपरिणतेषु नूतेषु चैतन्याविर्नावोनवति नूतसमुदायविघटने च चैत न्यापगमो न पुनरन्यत्र गच्चैतन्यमुपलक्ष्यते । तदेव दर्शयति । (पिच्चानते संतीति) प्रे त्य परलोके न ते आत्मानः संति विद्यंते । परलोकानुयायी त्वात्मा शरीराद्भिन्नः स्वकर्मफ लनोक्ता न कश्चिदात्माख्यः पदार्थोस्तीति नावः । किमित्येवमतआह । (नत्थिसत्तोववाइया)। अत्तिशब्दस्तिङंतप्रतिरूपको निपातो बहुवचने इष्टव्यस्तदयमर्थः । न संति न विद्यंते ॥ तद नावेतु न विद्यंते सत्वाः प्राणिन उपपातेन निर्वृत्ता उपपातिका नवाद्भवांतरगामिनो न नवंतीति तात्पर्यार्थः । तथाहि । तदागमाः विज्ञानघनएवैतेन्यो नूतेन्यः समुत्थाय तान्ये

वानुविनश्यतीति नप्रेत्य संज्ञा श्रस्तीति । ननु प्रागुपन्यस्तभूतवादिनोऽस्य च तज्जीवतछरीर वादिनः को विशेष,इत्यत्रोच्यते । भूतवादिनो भूतान्येव कायाकारपरिणतानि धावनवल्ग नादिकां क्रियां,कुर्वंत्यस्य तु कायाकारपरिणतेभ्यो भूतेभ्यश्चैतन्याख्य श्रात्मोत्पद्यते ऽभिव्य ज्यते वा तेभ्यश्चाभिन्नइत्ययं विशेषः ॥ ११॥ एवंच धर्मिणोऽभावाद्धर्मस्याप्यभावइति दर्शयि तुमाह । (नत्थिपुस्सेच पावेवा इत्यादि) । पुण्यमभ्युदयप्राप्तिलक्षणं तद्विपरीतं पापमेतद्द्वय मपि न विद्यते । श्रात्मनो धर्मिणोऽभावात् । तदभावाच्च नास्त्यतोऽस्माल्लोकात्परोऽन्यो लोको यत्र पुण्यपापानुभवइति । श्रत्रार्थेसूत्रकारः कारणमाह । शरीरस्य कायस्य वि नाशेन भूतविघटनेन विनाशेन देहिनश्रात्मनोप्यभावो भवति यतो न पुन शरीरे विनष्टे तस्मादात्मा परलोकं गत्वा पुण्यं पापं वाऽनुभवतीत्यतोधर्मिणश्रात्मनोभावात्तद्धर्मयोः पुण्यपापयोरप्यभावइति । श्रस्मिंश्चार्थे बहवो दृष्टांताः संति । तद्यथा । यथा जलबुद्बु दो जलातिरेकेण नापरः कश्चिद्विद्यते तथा भूतव्यतिरेकेण नापरः कश्चिदात्मेति । तथाच यथा कदलीस्तंभस्य बहिस्त्वगपनयने क्रियमाणे त्वङ्मात्रमिव सर्वं नांतः कश्चित्सारोस्त्ये वं भूतसमुदाये विघटति सति तावन्मात्रं विहाय नांत सारभूतः कश्चिदात्माख्यः पदा र्थ उपलभ्यते । यथावाऽलातं भ्राम्यमाणमतद्रूपमपि चक्रबुद्धिमुत्पादयत्येव भूतसमुदायो पि विशिष्टक्रियोपेतो जीवभ्रांतिमुत्पादयतीति । यथा च स्वप्ने बहिर्मुखाकारतया विज्ञा नमनुभूयते श्रांतरेणैव बाह्यमर्थमेवमात्मानमंतरेण तद्विज्ञानं भूतसमुदाये प्रादुर्भवती ति । तथा । यथाऽदर्शे स्वछत्वात्प्रतिबिंबितो बहि स्थितोप्यर्थोतर्गतो लक्ष्यते नचासौ त था । यथाच ग्रीष्मे भौमेनोष्मणा परिस्पंदमाना मरीचयो जलाकारं विज्ञानमुत्पादयंत्ये वमन्येपि गंधर्वनगरादयः स्वस्वरूपेणाऽतथाभूता श्रपि तथा प्रतिभासंते तथात्मापि भू तसमुदायाकारपरिणतौ सत्यां पृथगसन्नेव तथा भ्रांतिं समुत्पादयतीत्यमीषां च दृष्टांता नां प्रतिपादकानि केचित्सूत्राणि व्याचक्षते । श्रस्माभिस्तु सूत्राऽदर्शेषु चिरंतनटीकायां चादृष्टत्वान्नाऽलिंगितानीति । ननु च यदि भूतव्यतिरिक्तः कश्चिदात्मा न विद्यते तत्कृते च पुण्यापुण्ये न तत्कथमेतज्जगद्वैचित्र्यं घटते । तद्यथा कश्चिदीश्वरोऽपरो दरिद्रोन्यः सुभगो परोदुर्भगः सुखी दुःखी सुरूपो मंदरूपो व्याधितो नीरोगीत्येवं प्रकारा विचित्रता किंनि बंधनेत्यत्रोच्यते । स्वभावात् । तथाहि । कुत्रचिच्छिलाशकले प्रतिमारूपं विद्यते तच्च कुं कुमागरुचंदनादिविलेपनानुभोगमनुभवति धूपाद्यामोदं च । श्रन्यस्मिंस्तु पाषाणखंडे पाद क्षालनादि क्रियते नच तयोः पाषाणखंडयोः शुभाशुभे स्तः । यडुदयात्स तादृगवस्था विशेष इत्येवं स्वभावाज्जगद्वैचित्र्यं । तथाचोक्तं । कंटकस्य च तीक्ष्णत्वं मयूरस्य विचि त्रता ॥ वर्णाश्च ताम्रचूडानां,स्वभावेन भवति हीति॥ १॥तद्यावत्तछरीरवादिमतं गतं ॥१२॥

कुव्वं च कारयं चेव, सव्वं कुव्वं न विज्जई ॥ एवं अकारउ अप्पा; एवं ते उ पगप्भिआ ॥ १३ ॥ जे ते उवाइणो एवं, लोए तेसिं कउसिया ॥ तमाउ ते तमं जंति, मंदा आरंभनिस्सिया ॥१४॥ आत्मषष्ठवादीगतः ॥

अर्थ—हवे अक्रियावादिनो मत कहेछे. ते अकर्मवादी एम कहेछे के; आत्मा अमूर्त्तछे, नित्यछे, तथा सर्वव्यापी छे. ते कारणे कुव्वंचके० क्रियानो कर्त्ता नथी. तथा कारयंचेवके० अनेरा पासे करावनार पण नथी; एटले आत्मा पोते क्रियाने विषे न प्रवर्त्ते, तथा अनेराने पण प्रवर्त्तावे नही. पूर्वे चकार आव्योछे ते अतीत अनागतना कर्त्तने निषेधवाने अर्थे छे. यद्यपि स्थितिक्रिया अने मुद्राप्रतिबिंबोदयन्याये भोजनक्रिया पण करे. तथापि समस्त क्रिया कारकपणुं नथी. एहिज भाव देखाडेछे. सव्वंकुव्वंन विज्जई के० सर्व क्रियानें एटले देशथकी देशांतर गमनरूप क्रियाने आत्मा करतो नथी. एवंअकारउ अप्पाके० ए रीते आत्मा अकारक छे. एवंतेउपगप्भिआके० एप्रकारे ते सांख्यवादी धृष्टपणुं करता थका, प्रकृति करे, पुरुष भोगवे, इत्यादिक अयोग्य वचन बोले एटले अक्रियावादिनुं मत कह्यु. ॥१३॥ हवे जैन, एना मतनुं निराकरण करेछे. जेते अवाइणो एवंके० जे, आत्मा शरीरथकी जुदो नथी. तथा आत्मा अकर्त्ता छे एम कहेछे. तेसिंके० तेने लो एकउसियाके० चतुर्गतिक संसाररूप लोक क्यां थकी होय? नि.केवल ते लोकमांहे वाचालपणुं देखाडेछे. एवा छतां तमाउते तमंजंतिके० ते अज्ञानरूप तम एटले अंधकार तेमाहेथकी निकलीने अनेरा तम एटले अंधकारमांहे जंति एटले जायछे, एटले ज्ञानवर्णादिक कर्म उपार्जन करेछे. अथवा तमनेविषे द्विअर्थ नरक पृथ्वी एवो अर्थ थायछे. माटे त्यांपण जायछे. ते नरक पृथ्वीयें केम जाय, तेनुं कारण कहेछे. ते लोक मंदाके० मंद एटले मूर्ख छे, वली आरंभनिस्सियाके० आरंभनिश्रित एटले आरंभ जे प्राणघात तेनां व्यापारे निश्रितछे, एकांते तेमां आसक्तछे, जे कारण माटे तेमना मते आत्मानो अभावछे, ते कारणे पुण्य पाप पण नथी. एवुं जाणीने ते नास्तिकवादी आरंभ करता थका शंका पामता नथी तथा जे एवुं कहेछे के आत्मा क्रिया करे नहीं, तेपण एमनी पेरेज आरंभी जाणवा ॥ १४ ॥ अक्रियावाइगता एटले सांख्यनुं मत ए प्रमाणे कह्युं.

॥दीपिका—अथाऽक्रियावादिमतमाह।(कुर्वन्निति) कुर्वन् कारयंश्चा ऽऽत्मा न भवति। आत्मनो व्यापकत्वादमूर्तत्वाच्च कर्तृत्वानुपपत्तिः।ततएव कारयितृत्वमप्यात्मनो न युक्तं।एकश्च ब्दोऽतीतानागतकर्तृत्वनिषेधको द्वितीयः समुच्चयार्थः. ॥ कर्तृत्वकारयितृत्वनिषेधादन्याक्रिया तस्य नास्तीत्याह । ( सर्वमिति ) । सर्वां परिस्पंदादिकां देशाद्देशांतरप्राप्तिरूपां क्रियां

कुर्वन्नात्मा न विद्यते। सर्वव्यापित्वेनामूर्तत्वेन चाकाशस्येवात्मनो निष्क्रियत्वं सांख्यमते। (एवंतेउत्ति) एवमुक्तप्रकारेण ते सांख्याः प्रगल्भिताः प्रागल्भ्यवंतो धार्ष्ट्यवंतो विद्यंते॥१३॥ सांप्रतं तज्जीवतच्छरीराकारकवादिनोमतं निराकुर्वन्नाह। (जेतेइति)। ये तावच्छरीराऽव्यतिरिक्तात्मवादिन एवं पूर्वोक्तयुक्त्या भूताऽव्यतिरिक्तमात्मानमभ्युपगतवंतस्ते निराक्रियंते। तेषां लोकश्चतुर्गतिभवरूपः सुभग, दुर्भग, सुरूप, कुरूपेश्वर, दारिद्र्या,दिगत्या जगद्वैचित्र्यरूपः कुतः स्यात्। आत्माऽनंगीकारे पुण्यपापाभावे कथं विश्ववैचित्र्यमित्यर्थः। तेच नास्तिकास्तमसोऽज्ञानरूपात् तमो यांति। ज्ञानावरणावृताः पुनर्ज्ञानावरणरूपं तमः प्रविशंति। अथवा सद्विवेकप्रध्वंसित्वात्तमोदुःखं तस्मात्तमो महादुःखं यांति। यतस्ते मंदा जडाः परलोकनिरपेक्षत्वाच्चाऽरंभनिश्रिताः। अयमेवश्लोकोऽकारकवादिमतमाश्रित्य किंचिद्विव्रियते। येवादिनोऽकारकाः सांख्याः संति तेषां लोको जरामरणशोकहर्षादिरूपो नारकतिर्यगादिरूपो निष्क्रिये सत्यात्मनि कुतः कस्माद्धेतोः स्या न्न स्यादित्यर्थः। ततश्चदृष्टेष्टबाधारूपात्तमसोऽज्ञानात्ते तमो वेदनास्थानं यांति। यतो मंदाआरंभनिश्रिताश्चेति सांख्यमतं निरस्तं॥ १४॥

॥टीका—इदानीमकर्मकवादिमताभिधित्सयाऽह। (कुवंचेत्यादि) कुर्वन्निति स्वतंत्रः कर्ताभिधीयते॥ आत्मनश्चामूर्तत्वात्सर्वव्यापित्वाच्च कर्तृत्वाऽनुपपत्तिः॥ अतएवहेतोः कारयितृत्वमप्यात्मनोनुपपन्नमिति। पूर्वश्चशब्दोऽतीतानागतकर्तृत्वनिषेधको द्वितीयः समुच्चयार्थः। ततश्चात्मा न स्वयं क्रियायां प्रवर्तते नाप्यन्यं प्रवर्तयति। यद्यपि च स्थितिक्रियां मुद्राप्रतिबिंबोदयन्यायेन च भुजिक्रियां करोति तथापि समस्तक्रियाकर्तृत्वं तस्य नास्तीत्येतद्दर्शयति। (सवंकुवंणविज्जइत्ति) सर्वां परिस्पंदादिकां देशादेशांतरप्राप्तिलक्षणां क्रियां कुर्वन्नात्मा न विद्यते। सर्वव्यापित्वेनामूर्तत्वेन चाकाशस्येवात्मनो निष्क्रियत्वमिति। तथा चोक्तं। अकर्ता निर्गुणो भोक्ता, आत्मा सांख्यनिदर्शन इति। एवमनेन प्रकारेणात्माऽकारक इति ते सांख्याः। तुशब्द. पूर्वेभ्यो व्यतिरेकमाह। ते पुन. सांख्या एवं प्रगल्भिताः प्रगल्भवंतो धार्ष्ट्यवंतः संतो भूयोभूयस्तत्र तत्र प्रतिपादयंति। यथा प्रकृतिः करोति पुरुष उपभुंक्ते यथा बुध्यवसितमर्थं पुरुषश्चितयते इत्याद्यकारकवादिमतमिति॥ १३॥ सांप्रतं तज्जीवतच्छरीराकारकवादिनो मतं निराचिकीर्षुराह। (जेतेउवाइणोइत्यादि) तत्र ये तावच्छरीराव्यतिरिक्तात्मवादिन एवमिति पूर्वोक्तया नीत्या भूतव्यतिरिक्तमात्मानमभ्युपगतवंतस्ते निराक्रियंते। तत्र यत्तैस्तावदुक्तं। यथा न शरीराभिन्नोस्त्यात्मेति तदसंगतं। यतस्तत्प्रसाधकं प्रमाणमस्ति। तच्चेदं। विद्यमानकर्तृकमिदं शरीरमादिमत्प्रतिनियताकारकत्वात्। इह यद्यदादिमत्प्रतिनियताकारं तत्तद्विद्यमानकर्तृकं दृष्टं। यथा घटः। य

त्वाऽविद्यमानकर्तृकं तदादिमत्प्रतिनियताकारमपि न भवति यथाकाशं । आदिमत्प्रतिनियताकारस्य च सकर्तृत्वेन व्याप्तेः। व्यापकनिवृत्तौ व्याप्यस्य विनिवृत्तिरिति सर्वत्र योजनीयं। तथाविद्यमानाधिष्ठातृकानींद्रियाणि । करणत्वात् । यद्यदिह करणं तत्तद्विद्यमानाधिष्ठातृकं दृष्टं । यथा दंडादिकमिति । अधिष्ठातारमंतरेण करणत्वाऽनुपपत्तिः । यथाकाशस्य। हृषीकाणां चाधिष्ठाताऽत्मा सच तेभ्योऽन्य इति । तथा विद्यमानाधिष्ठातृकमिदमिंद्रियविषयकदंबकं । आदानादेयसद्भावात् । इह यत्र यत्राऽदानादेयसद्भावस्तत्र तत्र विद्यमान आदाता ग्राहको दृष्टः । यथा संदंशकायःपिंडयोस्तद्भिन्नोऽयस्कार इति । यश्चात्रेंद्रियैः करणैर्विषयाणामादाता ग्राहकः स तद्भिन्नआत्मेति । तथा विद्यमानभोक्तृकमिदं शरीरं भोग्यत्वादोदनादिवत् । अत्रच कुलालादीनां मूर्तत्वाऽनित्यत्वसंहतत्वदर्शनादात्मापि तथैव स्यादिति धर्मविशेषविपरीतसाधनत्वेन विरुद्धा शंका न विधेया । संसारिण आत्मनः कर्मणा सहान्योन्यानुवंधतः कथंचिन्मूर्तत्वाद्यभ्युपगमादिति । तथा यडुक्तं। नास्ति सत्त्वाऔपपातिका इति तदप्ययुक्तं । यतस्तदहर्जातबालकस्य यःस्तनाभिलाषः सोयाभिलापपूर्वको ऽभिलाषत्वात् कुमाराभिलाषवत् । तथा बालविज्ञानमन्यविज्ञानपूर्वकं विज्ञानत्वात् कुंमारविज्ञानवत् । तथाहि । यदहर्जातबालकोपि यावत्सएवायं स्तन इत्येवं नावधारयति तावन्नोपरत रुदितो मुखमर्पयति स्तने इत्यतोऽस्ति बालके विज्ञानलेशः सचाऽन्यविज्ञानपूर्वकः। तथान्यद्विज्ञानं भवांतरविज्ञानं तस्मादस्ति सत्त्व उपपातिक इति। तथा। यदुभिहितं विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यतीति । तत्राप्ययमर्थो विज्ञानघनो विज्ञानपिंड आत्मा भूतेभ्य उत्थायेति प्राक्तनकर्मवशात्तथाविधकायाकारपरिणते भूतसमुदाये तद्द्वारेण स्वकर्मफलमनुभूय पुनस्तद्विनाशे आत्मापि तदनु तेनाकारेण विनश्यापरपर्यायांतरेणोत्पद्यते, नपुनस्तैरेव सह विनश्यतीति । तथा यडुक्तं । धर्मिणो ऽभावात्तद्धर्मयोः पुण्यपापयोरभावइति तदप्यसमीचीनं । यतो धर्मी तावदनंतरोक्तिकदंवकेन साधितस्तत्सिद्धौ च तद्धर्मयोः पुण्यपापयोरपि सिद्धिरवसेया जगद्वैचित्र्यदर्शनाच्च । यत्तु स्वभावमाश्रित्योपलशकलं दृष्टांतत्वेनोपन्यस्तं तदपि तद्भोक्तृकर्मवशादेव तथासंवृत्तइति दुर्निवारः पुण्यापुण्यसद्भावइति । येपि वहवः कदलीस्तंभादयो दृष्टांता आत्मनो ऽभावसाधनायोपन्यस्तास्तेप्यभिहितनीत्याऽत्मनोभूतव्यतिरिक्तस्य परलोकयायिनः सारभूतस्य साधितत्वात्केवलं भवतो वाचालतां प्रख्यापयंति इत्यलमतिप्रसंगेन । शेषं सूत्रं विव्रियतेऽधुनेति । तदेवं तेषां भूतव्यतिरिक्तात्मनिन्ह्ववादिनां योयं लोकश्चतुर्गतिकसंसारो भवाद्भवांतरगतिलक्षणः प्राक् प्रसाधितः सुभगदुर्भगसुरूपमंदरूपेश्वरदारिद्र्यादिगत्या जगद्वैचित्र्यलक्षणश्च स एवंभूतो लोकस्तेषां कुतो भवेत् । कयोपपत्त्या घटेत । आत्मनोऽनभ्युपगमान्न किंचिदित्यर्थः । तेच नास्तिकाः परलोकयायिजीवा

ऽनच्युपगमेन पुण्यपापयोश्चाजावमाश्रित्य यत्किंचनकारिणोऽज्ञानरूपात्तमसः सकाशाद न्यत्तमो यांति । जूयोपि ज्ञानावरणादिरूपं मद्दत्तरं तमः संचिन्वंतीत्युक्तं जवति । यदि वा तमश्वतमो डुःखसमुद्घातेन सदसद्विवेकप्रध्वंसित्वाद्यातनास्थानं तस्मादेवंजूतात्त मसः परतरं तमो यांति । सप्तमनरकपृथिव्यां रौरव, महारौरव, काल, महाकालाप्र तिष्ठानाख्यं नरकावासं यांतीत्यर्थः । किमिति । यतस्ते मंदा जडा मूर्खाः सत्यपि यु क्त्युपपन्ने आत्मन्यसदननिनिवेशात्तदजावमाश्रित्य प्राण्युपमर्दकारिणि विवेकिजननिंदि ते आरंजे व्यापारे निश्चयेन नितरां चाश्रिताः संबद्धाः पुण्यपापयोरजाव इत्याश्रित्य परलो कनिरपेक्षयाऽरंजनिश्रिताइति । तथा तज्जीवतज्ञरीरवादिमतं निर्युक्तिकारोपि निराचिकी र्षुराह । “ पंचएहमित्यादिगाथा प्राग्वदत्रापि ” ॥ ३३ ॥ सांप्रतमकारकवादिमतमाश्रि त्यायमनंतरश्लोको जूयोपि व्याख्यायते । ये एते अकारकवादिन आत्मनोऽमूर्तत्वनि त्यत्वसर्वव्यापित्वेज्यो हेतुज्यो निष्क्रियत्वमेवाज्युपपन्नास्तेषां यएषलोको जरामरणशोका क्रंदनहर्षादिलक्षणो नरकतिर्यङ्मनुष्यामरगतिरूपः सोयमेवंजूतो निष्क्रिये सत्यात्मन्य प्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वजावे कुतः कस्माद्धेतोः स्यान्न कथंचित्कुतश्चित्स्यादित्यर्थः । तत श्च दृष्टेष्टबाधारूपात्तमसोऽज्ञानरूपात्ते तमोंतरं निकृष्टं यातनास्थानं यांति । किमिति । यतो मंदाजडाः प्राण्यपकारकाऽरंजनिश्रिताश्च ते इति । अधुना निर्युक्तिकारोऽकारकवादि मतनिराकरणार्थमाह । “ कोवेएई य कयं, कयनासो पंचहा गई न हि ॥ देवमणुस्सग यागइ, जाईसरणा इयाणं च ” ॥ ३४ ॥ ( कोवेएइत्यादि ) । आत्मनोऽकर्तृत्वात्कृतं नास्ति ततश्चाकृतं को वेदयते । तथा निष्क्रियत्वे वेदनक्रियाऽपि न घटां प्रांचति । अथा ऽकृतमप्यनुजूयेत तथा सत्यकृतागमकृतनाशापत्तिः स्यात् । ततश्च एककृतपातकेन सर्वे प्राणिगणो डुःखितः स्यात् पुण्येन च सुखी स्यादिति । नचैतद्दृष्टमिष्टं वा । तथाव्यापि त्वान्नित्यत्वाच्चात्मनः पंचधा पंचप्रकारा नारक, तिर्यङ्,मनुष्या,मर, मोक्ष, लक्षणागति र्न जवेत् । ततश्च जवतां सांख्यानां काषायचीवरधारण,शिरस्तुंडमुंडन,दंडधारण, निक्षाजोजित्व,पंचरात्रोपदेशानुसारयमनियमाद्यनुष्ठानं । तथा । पंचविंशतितत्त्वज्ञो, यत्र तत्राश्रमे रतः ॥ जटी मुंडी शिखी वापि, मुच्यते नात्र संशयइत्यादि सर्वमपार्थकमा प्नोति । तथा देवमनुष्यादिषु गत्याऽगती न स्यातां सर्वव्यापित्वादात्मनः । तथानित्यत्वा च्च विस्मरणाजावाज्जातिस्मरणादिका च क्रिया नोपपद्यते । तथा । आदिग्रहणात्प्रकृ तिः करोति पुरुषश्चपज्ञुंक्तइति जुजिक्रिया या समाश्रिता सापि न प्राप्नोति । तस्या अपि क्रियात्वादिति । अथ मुज्ञप्रतिबिंबोदयन्यायेन जोगइति चेदेतत्तु निरंतराः सुहृदः प्रत्ये ष्यंति । वाङ्मात्रत्वात् । प्रतिबिंबोदयस्यापि च क्रियाविशेषत्वादेव । तथा नित्ये चावि कारिण्यात्मनि प्रतिबिंबोदयस्याजावात्किंचिदेतदिति ॥३४॥ ननुच जुजिक्रियामात्रेण प्र

तिविवोदयमात्रेण च यद्यप्यात्मा सक्रियस्तथापि न तावन्मात्रेणास्माभिः सक्रियत्वमिष्यते किं तर्हि समस्तक्रियावत्वे सतीत्येतदाशंक्य निर्युक्तिकृदाह । "एडु अफलत्तो वणि त्ति, कालफलत्तणमिहं अडुमहेउ ॥ णाडुव्वोवडुय,त्ताणगा वित्तणेहेऊ" ॥ ॥ ३५ ॥ ( एडुअफलेत्यादि ) नडु नैवाऽफलत्वं डुमाभावे साध्ये हेतुर्भवति । नहि यदैव फलवांस्तदैव डुमोऽन्यदात्वडुम इति भावः । एवमात्मनोपि सुप्ताद्यवस्थायां यद्यपि कथंचिन्निष्क्रियत्वं तथापि नैतावता त्वसौ निष्क्रियइति व्यपदेशमर्हति । तथा स्तोकफलत्वमपि न वृक्षाभावसाधनायालं । स्वल्पफलोपि हि पनसादिर्वृक्षस्य व्यपदेशभाग्भवति । एवमात्मापि स्वल्पक्रियोपि क्रियावानेव ॥ कदाचिदेषा मतिर्भवतो भवेत् स्तोकक्रियो निष्क्रियएव । यथैककार्षापणधनो न धनित्वमास्कंदत्येवमात्मापि स्वल्पक्रियत्वादक्रियइत्येतदप्युपचारः । यतोयं दृष्टांतः प्रतिनियतपुरुषापेक्षया चोपगम्यते समस्तपुरुषापेक्षया वा । तत्र यद्याद्यः पक्षस्तदा सिद्धसाध्यता । यतः सहस्रादिधनवदपेक्षया निर्धनएवासौ । अथ समस्तपुरुषा पेक्षया तदसाधु । यतोन्यान्जरच्चीवरधारिणोपेक्ष्य कार्षापणधनोपि धनवानेव । तथात्मापि यदिविशिष्टसामर्थ्योपेतपुरुषक्रियापेक्षया निष्क्रियोऽभ्युपगम्यते । न काचित्क्षतिः सामान्यापेक्षया तु क्रियावानेवेत्यलमतिप्रसंगेन । एवमनिश्चिताकालफलत्वाख्यहेतु द्वयमपि न वृक्षाभावसाधकमित्यादि योज्यं।एवमडुग्धत्वस्तोकडुग्धत्वरूपावपि हेतू न गोत्वाभावत्वं साधयतः । उक्तन्यायेनैव दार्ष्टांतिकयोजना कार्येति ॥ ३५ ॥ १४ ॥

संति पंच महब्भूया, इहमेगेसि आहिया ॥ आयछ्हो पुणो आहु,
आया लोगेय सासए ॥ १५ ॥ डुहठ ण विणस्संति, नोय उप्पज्ज
ए असं ॥ सबे वि सवहा भावा, नियतीभावमागया ॥ १६ ॥

अर्थ—हवे आत्मषष्ठवादिनो मत कहेछे. ते वादी एम कहेछे के, इहमेगेसिआहियाके० आसंसारनेविषे एक आत्मषष्ठवादिना मते एम कह्युं के, संतिपंचमहब्भूयाके० पांच महाभूतछे. वली ते वादी एम कहेछे के, आयछ्होपुणोआहुके०जेम पंच महाभूत तेम आत्मा उछोछे. वली अनेराने मते आत्मा अने पंच महाभूत अशाश्वताछे. तेम एने मते नथी, ते कहेछे के, आयालोगेयसासएके० आत्मा अने पृथिव्यादिकरूपजे लोक ते एने मते शाश्वता सर्वव्यापिछे. माटे अविनाशि रूपछे. ॥ १५ ॥ वली तेहनुं नित्यपणुं देखाडेछे. ते आत्मषष्ठ पृथिव्यादिक पदार्थ, निःकारण विनाश अथवा सकारण विनाश, ए डुहठके० बन्ने विनासे करी. णविणस्संतिके० विनास पामे नही. पृथ्वी, अप्प, तेज, वाउ, अने आकाश. ए कदापि पोतानुं स्वरूप छांमे नही. ते कारणे शाश्वताछे. तथा कोइए जेनो आकार कर्यो नथी, ते कारणमाटे आत्मा शाश्वत छे. यडुक्तं।नैनं छिंदंति शस्त्राणि,

नैनं दहति पावकः ॥ नचैनं क्लेदयंत्यापो, नशोपयति मारुतः ॥१॥ अछेद्योयमनेद्योय, म विकारी सउच्यते, ॥ नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलो यं सनातनः ॥२॥ इत्यादिवचनात् ॥ तथा नोयउप्पक्कएअसंके० जे असत् एटले अविद्यमान होय ते उपजे नही. केमके अवि द्यमान पदार्थने विषे करनारनो व्यापार स्फुरे नहीं. जो अछती वस्तु उपजे तो आकाश कुसुमगर्दनशृंगादिक पदार्थ पण उपजवानो संनवछे. ए कारणे सव्वेविसव्वहानावा के० सर्वकाळे पण पृथिव्यादिक सर्वे पदार्थो नियतिनावमागया के० नित्यनावे परिणाम पा म्याछे. ॥ १६ ॥ "आत्मपष्ठवादीगतः" एटले आत्म षष्ठवादीनुं मत ए प्रमाणे कह्युं.

---

॥ दीपिका– अथाऽत्मपष्ठवादिमतमाह । (संतित्ति) संति पंच महानूतानि । इ हाऽस्मिन्संसारे एकेषामात्मपष्ठवादिनां सांख्यानां वैशेषिकाणां चैतदाख्यातं नूतान्या ख्यातानि वा । ते पुनर्वादिन एवमाहुः । यन्नूतानि आत्मपष्ठानि आत्मा पष्ठोयेषांतानि आत्मपष्ठानि । केषांचिद्वादिनामनित्यानि नूतानि आत्मा च न तथा एषामित्याह (आया) आत्मा लोकश्च पृथिव्यादिरूपः शाश्वतोनित्यः ॥ १५ ॥ शाश्वतत्वमेवाह । (डुहउत्ति) ते नूतपदार्था आत्मपष्ठा उनयतो निर्हेतुकसहेतुकविनाशाभ्यां न विनश्यं ति । बौद्धादिमते घटादिवस्तु हेतुं विनापि क्षणे क्षणेविनश्यति । वैशेषिकाणां तु लकु टादिहेतुयोगेन घटादीनां विनाशः । तेन द्विविधेनापि विनाशेन लोकात्मनोर्नविनाशइ ति तात्पर्यार्थः । यदिवा द्विरूपाच्चेतनाचेतनस्वनावान्न विनश्यत्यात्मा पृथिव्याद्या लो काश्च चेतनस्वनावान्नविनश्यंतीति न चोत्पद्यते ऽसदविद्यमानं । सर्वेपिनावाः सर्वथा नियतिनावं नित्यत्वमागताः प्राप्ताः ॥ १६ ॥

---

॥ टीका–सांप्रतमात्मपष्ठवादिमतं पूर्वपक्षयितुमाह (संतीत्यादि) संति विद्यंते पंचमहा नूतानि पृथिव्यादीनि इहास्मिन्संसारे एकेषां वेदवादिनां सांख्यानां शैवाधिकारिणां च ए तदाख्यातमाख्यातानि च नूतानि तेच वादिन एवमाहुरेवमाख्यातवंतः । यथा । आत्म पष्ठानि आत्मा पष्ठो येषां तानि आत्मपष्ठानि नूतानि विद्यंतइति । एतानि चात्मपष्ठा नि नूतानि यथा न्येषां वादिनामनित्यानि तथा नामीषामितिदर्शयति । आत्मा लोक श्च पृथिव्यादिरूपः शाश्वतोऽविनाशी । तत्रात्मनः सर्वव्यापित्वादमूर्तत्वाच्चाकाशस्येव शा श्वतत्वं पृथिव्यादीनां च तद्रूपाप्रच्युतेरविनश्वरत्वमिति ॥ १५ ॥ शाश्वतत्वमेव नूयः प्र तिपादयितुमाह । (डुहर्उणविणस्संतीत्यादि) ते आत्मपष्ठाः पृथिव्यादयः पदार्था उनय तइति निर्हेतुकसहेतुकविनाशद्वयेन न विनश्यंति । यथा बौद्धानां स्वतएव निर्हेतुको विना शः । तथाच ते ऊचुः । जातिरेव हि नावानां, विनाशे हेतुरिष्यते ॥ यो जातश्च न च ध्वस्तो,

नश्येत्पश्चात्स केन च ॥ १ ॥ यथाच वैशेषिकाणां लकुटादिकारणसांनिध्ये विनाशः स हेतुकस्तेनोनयरूपेणापि विनाशेन लोकात्मनोर्न विनाशइति तात्पर्यार्थः। यदि वा (डुहुउ त्ति)। हिरूपादात्मनः स्वनावाच्चेतनाचेतनरूपान्न विनश्यतीति। तथाहि। पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशानि रूपापरित्यागतया नित्यानि। न कदाचिदनीदृशं जगदिति कृत्वा आत्मापि नित्यएव कृतकत्वादिन्यो हेतुन्यः। तथा चोक्तं। नैनं छिंदंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः॥ न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः ॥ १ ॥ अछेद्योयमदाह्योयमविकार्योयमुच्यते॥ नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः॥२॥ एवं च कृत्वा नासडुत्पद्यते सर्वस्य सर्वत्र स ज्ञावादसति च कारकव्यापारानावात् सत्कार्यवादः। यदि वा असडुत्पद्येत खरविषाणा देरप्युत्पत्तिःस्यादिति। तथा चोक्तं। असदकरणाडुपादानग्रहणात्सर्वसंनवानावात् शक्तस्य शक्यकरणात्कारणनावाच्च सत्कार्यं। एवंच कृत्वा मृत्पिंडेपि घटोस्ति। तदर्थिनां मृत्पिं डोपादानात्। यदि वा ऽसडुत्पद्येत ततो यतःकुतश्चिदेव स्यान्नावश्यमेतदर्थिना मृत्पिंडो पादानमेव क्रियते इत्यतः सदेव कारणे कार्यमुत्पद्यतइति। एवं च कृत्वा सर्वेपि नावाः पृथिव्यादय आत्मषष्ठा नियतिनावं नित्यत्वमागता नानावरूपतामनूत्वा च नावरूपतां प्रतिपद्यंते। आविर्नावतिरोनावमात्रत्वाडुत्पत्तिविनाशयोरिति। तथा चानिहितं। नास तो जायते नावो नानावो जायते सतइत्यादि। अस्योत्तरं निर्युक्तिकृदाह। "कोवेएइत्या दिप्राक्तन्येव गाथा,,। सर्वपदार्थनित्यत्वान्युपगमे कर्तृत्वपरिणामो न स्याततश्चात्मनोऽक र्तृत्वे कर्मबंधानावस्तदनावाच्च को वेदयति न कश्चित्सुखडुःखादिकमनुनवतीत्यर्थः। एवं च सति कृतनाशः स्यात्। तथा असतश्चोत्पादानावे येयं मया आत्मनःपूर्वनावपरित्यागेनापर नावोत्पत्तिलक्षणा पंचधा गतिरुच्यते सा न स्यात्। ततश्च मोक्षगतेरनावादीक्षादिक्रियानु ष्ठानमनर्थकमापद्यते। तथाऽप्रच्युताऽनुत्पन्नस्थिरैकस्वनावत्वेनत्वात्मनो देवमनुष्यगत्या गती तथा विस्मृतेरनावात् जातिस्मरणादिकं वा न प्राप्नोति। यच्चोक्तं सदेवोत्पद्यते तदप्यसत्। यतो यदि सर्वथा सदेव कथमुत्पादः। उत्पादश्चेत्तर्हि सर्वदा सदिति। तथा चो क्तं। कर्मगुणव्यपदेशाः प्रागुत्पत्तेर्न संति यत्तस्मात्कार्यमसद्विज्ञेयं क्रियाप्रवृत्तेश्च कर्तृणां। तस्मात्सर्वपदार्थानां कथंचिन्नित्यत्वं सदसत्कार्यवादश्चेत्यवधार्यं। तथाचानिहितं। सर्व व्यक्तिषु नियतं, क्षणे क्षणेऽन्यत्वमथ च न विशेषः। सत्यश्चित्यपचित्योराकृतिजाति व्यवस्थानात् इति। तथा। नान्वयः सहि नेदत्वा,न्न नेदोऽन्वयवृत्तितः॥ मृन्नेदद्वयसं सर्ग, वृत्तिजात्यंतरं घटः॥ १॥ १६॥

पंच खंधे वयंतेगे, बाला उ खणजोइणो॥ अणो अणणो णेवाहु, हेउयं च अहेउयं॥ १७॥ पुढवी आउ तेऊ य, तहा वाऊय एग उ॥ चत्तारि धाउणो रूवं, एवमाहंसु जाणया॥ १८॥

अर्थ—हवे अफलवादिनुं मत कहेछे. एगे के० कोइएक वादी एटले बौद्ध ते पंचखंधेव यंते के० पंचस्कंध बोलेछे, तेना नाम कहेछे. प्रथम विज्ञान ते रसनुं, विज्ञान सुखदुःखवेदे ते वेदना, संज्ञा ते धर्मसमुदायने. पृथिव्यादिकते संस्कार, अने धातुरूपादिकते रूप, ए पांच पदार्थ जगतमांछे, पण एथकी अन्य आत्मादिक पदार्थ जगतमांहे कोइ नथी. एम ते बालाउके० बाल एटले अज्ञानी कहेछे. वलीते स्कंध केवा छे, खणजोइणोके० क्षणयोगीछे. एटले एक क्षण मात्र रहे, उपरांत रहे नहीं. एवीरीतना बोलनारा ते क्षणिकवादी जाणवा. हवे अनेरा दर्शनीउथकी एमनो नेद जे छे, ते गाथाना उत्तरार्द्ध वडे देखाडेछे. अस्सोअणस्सो णेवाहुके० ते जेम आत्मषष्ठवादी सांख्यादिक नूत थकी आत्मा अन्य छे, एम कहेछे. तथा जेम चार्वाकमति नूतथकी आत्मा अनेरो नथी. एटले जे नूत तेहिज आत्मा एम कहेछे, तेम बौद्धमति कहेतां नथी. तथा हेउयंच के० हेतु एटले आत्मा कोणे नीपजाव्यो एम पण कहेता नथी. अने अहेउयं के० अहेतुक एटले अनादि अनंत शाश्वत आत्माछे. एम पण बौद्ध कहेता नथी. ॥ १७ ॥ अफलवादीगतः तथा अनेरा बौद्धदर्शनी चतुर्धातुक जगत् कहेछे, ते देखाडेछे. पुढवीके० पृथिवी ते पाषाण पर्वत अने स्थलादिक ए प्रथमधातु, तथा आउके० अप्प ते पाणी ए बीजी धातु, तथा तेज के० अग्नि ए त्रीजी धातु, तथा वायु ए चोथी धातु, जे कारणे ए चारे पदार्थ जगत्रने धरे एटले पोषे ते कारणे एने धातु कहिये. ए केहवाछे? तोके एगउके० ए चारे एकाकार पणे परिणमे, माटे एकाकारछे. तेथी ए चत्तारिधाउणोरूवं के० चारेधातुरूप जाणवां. एटले ए शरीर चतुर्द्धारूप छे. ते थकी अनेरो आत्मा एवो पदार्थ कोइ नथी, एवं के० एम ते बौद्ध कहेछे. ते केवा जाणवा? तोके आहंसु के०पोताने लोकमांहे जाणयाके० जाण कहेवरावियें एवुं अभिमान धरेछे. परंतु ए सर्व क्षणिकवादिपणा थकी क्रियाना फलने संबंध मले नहीं तें कारणे एने अफलवादि कहियें.

---

॥ दीपिका—अथ बौद्धमतमाह । ( पंचेति ) । एके बौद्धाः पंचस्कंधान् वदंति । रूपस्कंधः १ वेदनास्कंधः २ विज्ञानस्कंधः ३ संज्ञास्कंधः ४ संस्कारस्कंधः ५ । तत्र रूपस्कंधः पृथिवीत्वादयो रूपादयश्च । वेदनास्कंधः सुखा दुःखा अदुःखसुखा च वेदना । विज्ञानस्कंधो रूपविज्ञानं रसविज्ञानमित्यादि । संज्ञास्कंधः संज्ञानिमित्तोद्ग्रहणात्मिकः प्रत्ययः । सविकल्पसंज्ञानमित्यर्थः । संस्कारस्कंधः पुण्यापुण्यादिधर्मसमुदायः ५ नचैतेभ्योन्यः कश्चिदात्माख्यः पदार्थोस्तीति । बाला मूर्खाः । ते स्कंधाः किंनूताः क्षणयोगिनः क्षणेक्षणेविनश्वराइत्यर्थः । पूर्ववादिभ्यो बौद्धव्यतिरेकमाह । ( अणोत्ति ) । यथा सांख्यादयो नूतेभ्योऽन्यमात्मानमंगीकृतवंतः । यथा चार्वाका नूतेभ्योऽनन्यमभिन्नमा

त्मानमिष्टवंतस्तथा बौद्धा नैवाहुर्नोक्तवंतः । तथा हेतुभ्योजातोहेतुकः कायाकारपरिणतभूतनिष्पादितः तथा ऽहेतुकोनित्य इत्येवं तमात्मानं बौद्धा नांगीकृतवंतइति ॥१७॥ तथान्ये चतुर्धातुकं जगद् बौद्धा वदंतीत्याह । (पुढवीति) पृथिवीधातुः । आपोजलं धातुः । तथातेजो वायुश्चेति धातवः । एते चत्वारोपि धातवो यदा (एकउत्ति) एकाकारपरिणतास्तदाकारतयाजीवाख्यां लभंते । एवमाहुर्ज्ञानिकाः पंमितंमन्या बौद्धाः । (एवमाहंसुआवरेइति) क्वचित्पाठः । तत्र आवरेत्ति । अपरे बौद्धा इत्यर्थः ॥ १८ ॥

---

॥ टीका—सांप्रतं बौद्धमतं पूर्वपक्षयन्निर्युक्तिकारोपन्यस्तमफलवादाधिकारमाविर्भावयन्नाह । (पंचखंधेवयंतेगेइत्यादि) । एके केचन वादिनो बौद्धाः पंच स्कंधान् वदंति । रूप,वेदना, विज्ञान, संज्ञा, संस्कारा,ख्याः पंचैव स्कंधाविद्यंते नापरः कश्चिदात्माख्यः स्कंधोस्तीत्येवं प्रतिपादयंति । तत्र रूपस्कंधः पृथिवीधात्वादयो रूपादयश्च ॥१॥ सुखा डुःखा अडुःखसुखाचेति वेदनावेदनास्कंधः ॥ २ ॥ रूपविज्ञानं रसविज्ञानमित्यादि विज्ञानं विज्ञानस्कंधः ॥३॥ संज्ञास्कंधः संज्ञानिमित्तोऽवग्रहणात्मकः प्रत्ययः ॥४॥ संस्कारस्कंधः पुण्यापुण्यादिधर्मसमुदाय इति ॥ ५ ॥ नचैतेभ्यो व्यतिरिक्तः कश्चिदात्माख्यः पदार्थोऽध्यक्षेणाऽध्यवसीयते । तदव्यभिचारिलिंगग्रहणाऽभावान्नाप्यनुमानेन । नच प्रत्यक्षानुमानव्यतिरिक्तमर्थाऽविसंवादिप्रमाणांतरमस्तीत्येवं बालाइव बाला यथाऽवस्थितार्थापरिज्ञानात् बौद्धाः प्रतिपादयंति । तथा ते स्कंधाः क्षणयोगिनः । परमनिरुष्टः कालः क्षणः । क्षणेन योगः संबंधः क्षणयोगः स विद्यते येषां ते क्षणयोगिनः । क्षणमात्राऽवस्थायिनइत्यर्थः । तथाच तेऽभिदधति । स्वकारणेभ्यः पदार्थउत्पद्यमानः किं विनश्वरस्वभावउत्पद्यतेऽविनश्वरस्वभावो वा । यद्यविनश्वरस्ततस्तद्व्यापिन्याः क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाया अभावात् पदार्थस्यापि व्याप्यस्याभावः प्रसक्तति । तथाहि । यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सदिति । सच नित्योर्थः क्रियायां प्रवर्तमानः क्रमेण वा प्रवर्तेते यौगपद्येन वा । न तावत्क्रमेण । यतो ह्येकस्याऽर्थक्रियायाः काले तस्यापरार्थक्रियाकरणस्वभावो विद्यते वा न वा । यदि विद्यते किमिति क्रमकरणं । सहकार्यपेक्षयेति चेत् । तेन सहकारिणा तस्य कश्चिदतिशयः क्रियते न वा । यदि क्रियते किं पूर्वस्वभावपरित्यागेनापरित्यागेन वा । यदि परित्यागेन ततोऽतादवस्थ्यापत्तेरनित्यत्वं । अथ पूर्वस्वभावापरित्यागेन ततोऽतिशयाभावात्किं सहकार्यपेक्षया । अथाऽकिंचित्करोपि विशिष्टकार्यार्थमपेक्ष्यते । तदप्युक्तं । यतः । अपेक्षेत परं कश्चि,द्यदि कुर्वीत किंचन ॥ यदकिंचित्करं वस्तु, किं केनचिदपेक्ष्यते ॥ १ ॥ अथ तस्यैकार्थक्रियाकारणकाले ऽपरार्थक्रियाकरणस्वभावो न विद्यते । तथाच सति स्पष्टैव नित्यताहानिः । अथासौ नित्यो यौगपद्येनाऽर्थक्रि

र्यां कुर्यात्तथा सति प्रथमक्षणएवाऽशेषार्थक्रियाणां करणात् द्वितीयक्षणेऽकर्तृत्वमाया तं । तथाच सैवानित्यता । अथ तस्य तत्स्वनावत्वात्तएवार्थक्रिया नूयो नूयो द्विती यादिक्षणेष्वपि कुर्यात्तदसांप्रतं । कृतस्य करणानावादिति । किंच द्वितीयादिक्षणसा ध्या अप्यर्थाः प्रथमक्षणएव प्राप्नुवंति । तस्य तत्स्वनावत्वात् । अतस्तत्स्वनावत्वे च तस्यानित्यत्वापत्तिरिति । तदेवं नित्यस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरहान्न स्वकारणे भ्यो नित्यस्योत्पादइति । अथाऽनित्यः स्वनावः समुत्पद्यते । तथाच सति विनाशानावा दायातमस्मदुक्तक्रमशेषपदार्थजातस्य क्षणिकत्वं । तथाचोक्तं । जातिरेव हि नावानां, विनाशे हेतुरिष्यते ॥ यो जातश्च नच ध्वस्तो नश्येत्पश्चात्स केन च ॥ १ ॥ ननु च स त्यप्यनित्यत्वे यस्य यदा विनाशहेतुसन्नावस्तस्य तदा विनाशः । तथा च । स्वविनाशका रणापेक्षाणामनित्यानामपि पदार्थानां न क्षणिकत्वमित्येतच्चानुपासितगुरोर्वचः। तथाहि । तेन मुजरादिकेन विनाशहेतुना घटादेः किं क्रियते । किमत्र प्रष्टव्यमनावः क्रियते । अत्र च प्रष्टव्यो देवानांप्रियः । अनाव इति किं पर्युदासप्रतिपेधोयमुत प्रसज्यप्रतिपेधइति । तत्र यदि पर्युदासस्ततोयमर्थो नावादन्यो नावो नावांतरं घटात्पटादिः सोऽनावइति । त त्र नावांतरे यदि मुजरादिव्यापारो न तर्हि तेन किंचिद्घटस्य कृतमिति । अथ प्रसज्यप्र तिपेधस्तदा यथार्थो विनाशहेतुरनावं करोति । किमुक्तं नवति नावं न करोतीति । ततश्च क्रियाप्रतिपेधएव कृतः स्यात् । नच घटादेः पदार्थस्य मुजरादिना करणं । तस्य स्वकारणैरेव कृतत्वात् । अथ नावानावोऽनावस्तं करोतीति तस्य तुच्छस्य नीरूपत्वात् कुतस्तत्र कारणानां व्यापारोऽथ तत्रापि कारणव्यापारो नवेत् खरशृंगादावपि व्याप्रिये रन् कारणानीति । तदेवं विनाशहेतोरकिंचित्करत्वात् स्वहेतुतएवाऽनित्यताक्रोडीकृ तानां पदार्थानामुत्पत्तेर्विनाशहेतोश्चानावात् क्षणिकत्वमवस्थितमिति । तुशब्दः पूर्वाभ्यो ऽस्य व्यतिरेकप्रदर्शकः । तमेव श्लोकपश्चार्धेन दर्शयति । (अस्रोअणस्रोइति)। ते हि बौद्धा यथाऽऽत्मषष्ठवादिनः सांख्यादयो नूतव्यतिरिक्तमात्मानमभ्युपगतवंतो यथा चार्वाका नूताऽव्यतिरिक्तं चैतन्याख्यमात्मानमिष्टवंतस्तथा नैवाहुर्नैवोक्तवंतः । तथा हेतुभ्योजातो हेतुकः । कायाकारपरिणतनूतनिष्पादितइति यावत् । तथाऽहेतुको ऽनाद्यपर्यवसितत्वान्नित्यइत्येवमात्मानं ते बौद्धा नाऽभ्युपगतवंत इति ॥ १७ ॥ तथाऽपरे बौद्धाश्चतुर्धातुकमिदं जगदाहुरित्येतद्दर्शयितुमाह । (पुढवीत्यादि) पृथि वी धातुरापश्च धातुस्तथा तेजो वायुश्चेति धारकत्वात्पोषकत्वाच्च धातुत्वमेषां। (एगन्नत्ति)। यदैते चत्वारोप्येकाकारपरिणतिं बिन्नति कायाकारतया तदा जीवव्यपदेशमश्नुवंतः। तथाचोचुः । चतुर्धातुकमिदं शरीरं न तद्व्यतिरिक्तआत्मास्तीति । (एवमाहंसुअव्वरेत्ति) अपरे बौद्धविशेषा एवमाहुरनिहितवंतइति । क्वचिज्जाणगा इतिपाठस्तत्राप्ययमर्थो जा

नका ज्ञानिनो यदं किलेत्यभिमानाग्निदग्धाः संत एवमाहुरिति संबंधनीयं । अफलवादि त्वं चैतेषां क्रियाक्षणएव कर्तुः सर्वात्मना नष्टत्वात् क्रियाफलेन संबंधाभावादवसेयं । स र्वेएव वा पूर्ववादिनोऽफलवादिनो द्रष्टव्याः केश्चिदात्मनोऽनित्यस्याऽविकारिणोऽभ्युपगत त्वात् कैश्चित्त्वात्मनएवानभ्युपगमादिति । अत्रोत्तरपदार्थानां प्राक्नयेव निर्युक्तिगाथा। कोवेएइत्यादि व्याख्यायते । यदि पंचस्कंधव्यतिरिक्तः कश्चिदात्माख्यः पदार्थो न विद्यते त तस्तदभावात्सुखदुःखादिकं कोऽनुभवतीत्यादिगाथा प्राग्व द्व्याख्येयेति । तदेवमात्मनो भावाद्योयं स्वसंविदितः सुखदुःखानुभवः स कस्य भवत्विति चिंत्यतां। ज्ञानस्कंधस्यायमनु भवइति चेन्न। तस्यापि क्षणिकत्वात् ।ज्ञानक्षणस्य चातिसूक्ष्मत्वात् सुखदुःखानुभवाभावः। क्रियाफलयतोश्च क्षणयोर यंतासंगतेः कृतनाशाकृताभ्यागमापत्तिरिति ज्ञानसंतान ए कोस्तीति । तस्यापि संतानिव्यतिरिक्तस्याऽभावाद्यत्किंचिदेतत् । पूर्वक्षणएव उत्तरक्षणे वासनामाधाय विनंक्ष्यतीति चेत्। तथाचोक्तं। यस्मिन्नेव हि संताने, आहिता कर्मवासना॥ फलं तत्रैव संधत्ते, कार्पासे रक्तता यथा ॥ १ ॥ अत्रापीदं विकल्प्यते। सा वासना किं क्षणेभ्यो व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्ता वा । यदि व्यतिरिक्ता वासकत्वानुपपत्तिरथाव्यतिरिक्ता क्ष णवत् क्षणक्षयित्वं तस्याः । तदेवमात्माभावे सुखदुःखानुभवाभावः स्यादस्ति च सुखदुः खानुभवोऽतोस्त्यात्मेति । अन्यथा पंचविषयानुभवोत्तरकालमिंद्रियज्ञानानां स्वविषया दन्यत्राप्रवृत्तेः संकलनाप्रत्ययो न स्यात् । आलयविज्ञानाद्भविष्यतीति चेदात्मैव तर्हि सं ज्ञांतरेणाभ्युपगतइति । तथा बौद्धागमोप्यात्मप्रतिपादकोस्ति । सचायं। इतः। एकनवति मे कल्पे, शक्त्या मे पुरुषो हतः ॥ तेन कर्मविपाकेन, पादे विद्धोस्मि भिक्षवः ॥ १ ॥ तथा । कृतानि कर्माण्यतिदारुणानि, तनूभवंत्यात्मनिगर्हणेन ॥ प्रकाशनात्संवरणाच्च तेषा,मत्यंतमूलोद्धरणं वदामीत्येवमादि । तथा यदुक्तं । क्षणिकत्वं साधयता यथा पदार्थः कारणेभ्य उत्पद्यमानो नित्यः समुत्पद्यते ऽनित्यो वेत्यादि। तत्र नित्येऽप्र च्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावे कारकाणां व्यापाराभावादतिरिक्ता वाचोयुक्तिरिति नित्यत्वपक्षा नुत्पत्तिरेव । यच्च नित्यपक्षे भवताभिहितं नित्यस्य न क्रमेणार्थक्रियाकारित्वं नापि यौगप द्येनेति तत्क्षणिकत्वेपि समानं । यतः क्षणिकोप्यर्थक्रियायां प्रवर्तमानः क्रमेण यौ गपद्येन वाऽवश्यं सहकारिकारणसव्यपेक्षएव प्रवर्तते । यतः । सामग्री जनिका नैकं किंचिदिति । तेनच सहकारिणा न तस्य कश्चिदतिशयः कर्तुं पार्यते। क्षणस्याविवेकत्वेना ऽनाधेयातिशयत्वात् क्षणानां च परस्परोपकारकोपकार्यत्वानुपपत्तेः सहकारित्वाभावः। सहकार्यनपेक्षायां च प्रतिविशिष्टकार्यानुपपत्तिरिति । तदेवमनित्यएव कारणेभ्यः पदा र्थः समुत्पद्यत इति द्वितीयपक्षसमाश्रयणमेव । तत्रापि चैतदालोचनीयं । किं क्षणक्षयि त्वेनानित्यत्वमाहोस्वित्परिणामाऽनित्यतयेति । तत्र क्षणक्षयित्वे कारणकार्यत्वाभावा

तु कारणानां व्यापारएवानुपपन्नः कुतः क्षणिकानित्यस्य कारणेन्य उत्पादइति । अथ पू र्वक्षणाडुत्तरक्षणोत्पादे सति कार्यकारणनावो नवतीत्युच्यते तदयुक्तं । यतोसौ पूर्वक्षणो विनष्टो वोत्तरक्षणं जनयेदविनष्टो वा । न तावद्विनष्टस्तस्यासत्वाज्जनकत्वानुपपत्तेः । ना प्यविनष्ट उत्तरक्षणकाले पूर्वक्षणव्यापारसमावेशात्क्षणनंगनंगापत्तेः । पूर्वक्षणो विनश्यं स्तूत्तरक्षणमुत्पादयिष्यति तुलांतयोर्नामोन्नामवदितिचेत् । एवं तर्हि क्षणयोः स्पष्टैवैकका लताश्रिता । तथाहि । यासौ विनश्यदवस्था साऽवस्था तु निन्ना । उत्पादावस्थातोप्यु त्पित्सोस्ततश्च तयोर्विनाशोत्पादयोर्यौगपद्यान्युपगमे तद्धर्मिणोरपि पूर्वोत्तरक्षणयोरेक कालावस्थायित्वमिति । तद्धर्मतानन्युपगमे च विनाशोत्पादयोरवस्तुत्वापत्तिरिति । यथो क्तं जातिरेव हि नावानामित्यादि । तत्रेदमनिधीयते । यदि जातिरेवोत्पत्तिरेव नावानां पदार्थानामनावहेतुस्ततोऽनावकारणस्य सन्निहितत्वेन विरोधेनाघ्रातत्वाडुत्पत्त्यनावो ऽथोत्पत्त्युत्तरकालं विनाशो नविष्यतीत्यन्युपगम्यते । तथा सति उत्पत्तिक्रियाकाले तस्याऽनू तत्वात्पश्चाच्च नवन्नंतरायएव नवति न नूयसा कालेनेति । किमत्र नियामकं विनाशे हेत्वना व इतिचेत् । यतउक्तं निर्हेतुकत्वाद्विनाशस्य स्वनावानुबंधितेत्येतदप्ययुक्तं । यतो घटादी नां मुजरादिव्यापारानंतरमेव विनाशो नवन् लक्ष्यते । ननु चोक्तमेवात्र तेन मुजरादिना घटा देः किं क्रियत इत्यादि । सत्यमुक्तं । इदमयुक्तंतूक्तं तथाह्यनावइति । प्रसज्यपर्युदासविक ल्पद्वयेन योयं विकल्पः पक्षद्वयेपि च दोषः प्रदर्शितः सोऽदोष एव । यतः पर्युदासपक्षे कपालाख्यनावांतरकारणे घटस्य च परिणामानित्यतया तडूपतापत्तेः कथं मुजरादेर्घ टादीन् प्रत्यकिंचित्करत्वं । प्रसज्यप्रतिषेधस्तु नावं न करोतीति प्रतिषेधात्मकोत्र नाश्री यते । किंतर्हि प्रागनाव,प्रध्वंसानावे,तरेतरा,त्यंतानावानां चतुर्णां मध्ये प्रध्वंसा नावएवेहाश्रीयते । तत्र च कारकांतरणां व्यापारोनवत्येव । यतोसौ वस्तुतः पर्या योऽवस्थाविशेषो न नावमात्रं । तस्य चाऽवस्थाविशेषस्य नावरूपत्वात्पूर्वोपमर्देन च प्रवृत्तत्वाद्यएव कपालादेरुत्पादः सएव घटादेर्विनाशइति विनाशस्य सहेतुकत्वमवस्थि तं । अपिच कादाचित्कत्वेन विनाशस्य सहेतुकत्वमवसेयमिति । पदार्थव्यवस्थार्थं चाऽव श्यमनावचातुर्विध्यमाश्रयणीयं । तडुक्तं । कार्यद्रव्यमनादिः स्या,त्प्रागनावस्य निन्हवे ॥ प्रध्वंसस्य च नावस्य, प्रच्यवेऽनंततां व्रजेत् ॥ १ ॥ सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यति क्रमे इत्यादि । तदेवं क्षणिकस्य विचाराक्षमत्वात्परिणामानित्यपक्षएव ज्यायानिति । एवं च सत्यात्मा परिणामी ज्ञानाधारो नवांतरयायी नूतेन्यः कथंचिदन्यएव शरीरेण सहा ऽन्योन्यानुवेधादनन्योपि । तथा सहेतुकोपि नारकतिर्यङ्मनुष्यामरनवोपादानकर्मणा तथा तथा विक्रियमाणत्वात् पर्यायरूपतयेति । तथात्मस्वरूपाप्रच्युतेर्नित्यत्वादहेतुकोपीति ।

आत्मनश्च शरीरव्यतिरिक्तस्य साधितत्वाच्चतुर्भूतकमात्रं शरीरमेवेदमित्येतडुन्मत्तप्रल पितमपकर्णयितव्यमित्यलं प्रसंगेनेति ॥ १८ ॥

अगारमावसंतावि, अरणा वा वि पवया ॥ इमं दरिसणमावन्ना सवडुक्का विमुच्चई ॥१९॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते उहंतराहिया ॥२०॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते संसारपारगा ॥२१॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते गप्नस्स पारगा ॥२२॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते जम्मस्स पारगा ॥ २३ ॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते डुःक्खस्स पारगा ॥ २४ ॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविउ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते मारस्स पारगा ॥ २५ ॥

अर्थ—हवे ए पूर्वोक्त दर्शनी पोतपोतानां दर्शननेविषे मुक्तीनुं कारण जे कहेछे ते देखाडे छे. ते उपर कहेछेके ते सर्व दर्शनी अगारं के० घर तेनेविषे आवसंतावि के० निवास करनार एटले गृहस्थ, वा के० अथवा, अरणा के० अरण्यवासी तापसादिक अथवा पवयाके० प्रव्रजितशाक्यादिक ते एम नावना करेछे के, इमंदरिसणमावन्ना के० अमारा दर्शने आवन्ना एटले आव्या. एटले जे कोई अमे कहिये तेने माने तो, ते सवडुक्काविमुच्चईके० सर्व डुःखथकी मुक्त थाय. एवी रीते पोतपोताना दर्शननेविषे सर्व कोई मुक्ति देखाडेछे ॥१९॥ हवे ग्रंथकार कहेछे. तेणाविके० ते पंचनूतवादी प्रमुख दर्शनीउ तेने नैव के० नथी. संधिके० छिड् एटले ज्ञानावरणादिक कर्म तेनो विपर्ययनाव ते संधि जाणवी. ते अहीं ज्ञानावरणादिक कर्मना विवरण तेने णच्चाणंके० अजाणताथका बापडा डुःखथकी मूकाववाने अर्थे सावधान थयाछे. ते कारणे ते जणाके० जन एटले लोक, नतेधम्मविउके० क्षांत्यादिक दशप्रकारनो जे यतिधर्म तेना जाण नथी. जेतेजवाइणो एवंके० ते वादी जे नास्तिकमति प्रमुख पूर्वे कह्या, ते असमंजस वचनना बोलनारछे. माटे नतेउहंतराहिया के० ते संसाररूप उंघ एटले प्रवाह, अर्थात् संसारसमुड्ना तारनार ते नथी. एम श्रीतीर्थंकरे तथा गणधरे कह्युंछे. ॥ २० ॥ ते पंचनूतवादी प्रमुख कर्म आववानां स्थानक जाणता नथी; वली ते जनके० लोक क्षांत्यादिक दशविध यतिधर्मने जाणता नथी. एवा ते पूर्वे कह्या जे नास्तिकप्रमुख वादी ते संसारना पा

रगामी नहोय. ए गाथानां पहेलां त्रण पदनो अर्थ प्रथम कह्यो तेप्रमाणेज छे.॥२१॥ जे एम बोले ते गर्भना पारगामी नहीं, एटले अनंता गर्भनां दुःख सहन करे. ॥२२॥ वली जे एम बोले ते जन्मना पारगामी नथी अर्थात् अनंता जन्मनुं दुःख सहन करे. ॥ २३ ॥ तथा जे एम बोले ते दुःखना पारगामि न होय, अनंतो काल चतुर्गति रूप संसारना दुःख सहन करे. ॥ २४ ॥ तथा जे एम बोले ते मरणना पारगामी न समजवा, अर्थात् अनंतिवार मरण पामे. ॥२५॥

---

॥ दीपिका–अथ पूर्वोक्तसर्वदुर्मतीनामफलत्वं स्वदर्शनांगीकारं च दर्शयन्नाह । (अगारेति) अगारं गृहमावसंतस्तिष्ठंतो गृहस्था आरण्या वा तापसादयः प्रव्रजिताश्च शाक्यादयः । अपि संभावने । इदं ते संभावयंति । यथा इदमस्मदीयं दर्शनं मतमापन्ना आश्रिताः सर्वदुःखेभ्यो जीवाविमुच्यंतइति ते वदंति ॥ १९ ॥ अथ तेषां निष्फलत्वमाह । तेइति षड्भिः । ते पंच पंचभूतवाद्याद्याः संधिज्ञानावरणादिकर्मविवररूपं नापि नैव ज्ञात्वा अज्ञात्वेइत्यर्थः । णंवाक्यालंकारे । यथा जीवकर्मणोः संधिर्भिन्नत्वं भवति तथा ज्ञात्वा मोक्षार्थं प्रवृत्ता इत्यर्थः॥ संधिर्द्विविधः । द्रव्यसंधिः कुड्यादेः । भावसंधिः कर्मविवररूपस्तमुत्तरोत्तरपदार्थपरिज्ञानं वा संधिस्तमज्ञात्वा प्रवृत्ताः। ते किंभूताइत्याह । (नतेत्ति)। ते जना लोका न सम्यक्धर्मविदः । येतु ते।एवंविधवादिनस्ते। उंघो भवौघःसंसारस्तत्तरणशीला न आख्याता जिनैः ॥२०॥ अग्रेतनाः पंचश्लोका एवमेव व्याख्येयाः।परं संसार १ गर्भ २ जन्म ३ दुःख ४ मारपारगा न भवंतीति ज्ञेयं ॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥

---

॥ टीका–सांप्रतं पंचभूतात्माऽद्वैततज्जीवतच्छरीराकारकात्मषष्ठक्षणिकपंचस्कंधवादिनामफलवादित्वं वक्तुकामः सूत्रकारस्तेषां स्वदर्शनफलाभ्युपगमं दर्शयितुमाह । (अगारेत्यादि) अगारं गृहं तदावसंतस्तस्मिंस्तिष्ठंतो गृहस्थाइत्यर्थः । आरण्या वा तापसादयः प्रव्रजिताश्च शाक्यादयः । अपि संभावने । इदं ते संविभावयंति । यथेदमस्मदीयं दर्शनमापन्नाआश्रिताः सर्वदुःखेभ्यो विमुच्यंते । आर्षत्वादेकवचनं सूत्रे कृतं । तथाहि । पंचभूततज्जीवतच्छरीरवादिनामयमाशयोयथेदमस्मदीयं दर्शनं ये समाश्रितास्ते गृहस्थाः संतः सर्वेभ्यः शिरस्तुंडमुंडन,दंडाऽजिनजटाकाषायचीवरधारण, केशोल्लुंचन, नाग्न्यस्तपश्चरण,कायक्लेशरूपेभ्यो दुःखेभ्यो मुच्यंते । तथा चु । तपांसि यातनाश्चित्राः, संयमो भोगवंचनं ॥ अग्निहोत्रादिकं कर्म, बालक्रीडेव लक्ष्यत इति । सांख्यादयस्तु मोक्षवादिनएवं संभावयंति यथा । येऽस्मदीयं दर्शनमकर्तृत्वात्माऽद्वैतपंचस्कंधादिप्रतिपादकमापन्नाः प्रव्रजितास्ते सर्वेभ्यो जन्मजरामरणगर्भपरंपराऽनेकशारीरमानसातितीव्रतराऽसातोदयरूपे

भ्यो दुःखेभ्यो विमुच्यंते । सकलद्वंद्वविनिर्मोक्षं मोक्षमास्कंदंतीत्युक्तं नवति ॥ १ए ॥ इदानीं तेपामेवाऽफलवादित्वाविष्करणायाह । ( तेणावीत्यादि ) ते पंचनूतवाद्याद्या नापि नैव संधिं छिद्रं विवरं । सचद्रव्यनावनेदाद्द्वेधा । तत्र द्रव्यसंधिः कुड्यादिर्नावसंधिर्ज्ञानावरणादिकर्मविवररूपस्तमज्ञात्वा ते प्रवृत्ताः । णमिति वाक्यालंकारे । यथा आत्मकर्मणोः संधिर्द्विधा नावलक्षणोनवति । तथा अबुधाइव ते वराका दुःखमोक्षार्थमन्युद्यताइत्यर्थः । यथा तदेवंनूतास्तथा प्रतिपादितं लेशतः प्रतिपादयिष्यतेच । यदि वा संधानं संधिरुत्तरोत्तरपदार्थपरिज्ञानं तदज्ञात्वा प्रवृत्ताइति । यतश्चैवमतस्ते न सम्यक्धर्मपरिच्छेदे कर्तव्ये विद्वांसो निपुणा जनाः पंचनूतास्तित्वादिवादिनो लोकाइति । तथाहि । क्षांत्यादिकोदशविधो धर्मस्तमज्ञात्वैवान्यथा च धर्मं प्रतिपादयंति । यत्फलानावाच्च तेपामफलवादित्वं तद्भूत्तरग्रंथेनोद्देशकपरिसमाप्त्यवसानेन दर्शयति । ये तेत्विति । तुशब्दश्चशब्दार्थे यइत्यस्यानंतरं प्रयुज्यते । येच ते एवमनंतरोक्तप्रकारवादिनो नास्तिकादयोउघोनवौघः संसारस्तत्तरणशीलास्ते न नवंतीति श्लोकार्थः ॥ २० ॥ तथा न ते वादिनः संसार, गर्न, जन्म, दुःख, मारादि पारगा नवंतीति ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

> णाणाविहाइं दुःखाइं, अणुहवंति पुणो पुणो ॥ संसारचक्कवालंमि, मञ्जुवाहिजराकुले ॥२६॥ उच्चावयाणि गच्छंता, गप्रमेस्संति णंतसो ॥ नायपुत्ते महावीरे, एवमाह जिणोत्तमे ॥२७॥ इति बेमि पढमम्ज्झयणं पढमो उद्देसो समत्तो ॥ ४ ॥ ४ ॥

अर्थ—वली ते जे स्थितिने पामे ते कहेछे. णाणाविहाइंदुरकाइं के० नानाविध बहु प्रकारे छेदन नेदन ताडनादिक दुखोनें अणुहवंतिपुणोपुणो के० वली वली अनुनवेछे. परंतु ते दुःख क्यां पामे? तोके संसार चक्कवालंमिके० संसारचक्रवालने विषे पामे. ते संसार केवो दुस्तरछे तो के, मञ्जुवाहिजराकुले के० मृत्यु, व्याधि अने जरा तेणे करी आकुलव्याकुल छे. एवा संसारमांहे परिज्रमण करतां अनंतो काल दुःखी थाय. ॥२६॥ ते दर्शनीउं वली असमंजस थका सूत्रविरोधना बोलनारा उच्चावयाणिगछंता के० उंचे नीचे स्थानके परिज्रमण करतां आगामिक काले गप्रमेसंतिणंतसोके० अनंता गर्ननां दुःख पामसे. एवमाहके० एवुं वचन, नायपुत्तेमाहावीरेके० ज्ञातपुत्र श्रीमहावीरदेव जिणोत्तमेके० जिनोत्तम तेणे कह्युं. तेम अमे पण कहियें छैए ॥२७॥ इतिप्रथमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥ ए प्रथम उद्देशकमां नूतवादिप्रमुख परवादीना मत कह्या.

---

॥ दीपिका—ते यत्प्राप्नुवंति तदाह । (णाणेति) । नानाविधान्यनेकप्रकाराणि दुःखानि

अनुजवंति। पुनःपुनः संसारचक्रवाले व्याधिमृत्युजरानिराकुले व्याप्ते ॥ २६ ॥ तेषां दुःखफलमुपसंहारं चाह। (उच्चेति)। उच्चावचान्यधमोत्तमानि स्थानानि गछंतोत्र मंतोगर्भाजर्न्ममेष्यंति यास्यंत्यनंतशः। (नायपुत्तेति)। ज्ञातः सिद्धार्थक्षत्रियस्तस्य पुत्रः श्रीमहावीरो जिन एवमुक्तवान्। इति ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रत्याहेति ॥ २७ ॥ इति श्रीसूत्रकृते द्वितीयांगे प्रथमाध्ययनेप्रथमोद्देशकव्याख्या संपूर्णा ॥ ॥

---

॥ टीका–यत्पुनस्ते प्राप्नुवंति तद्दर्शयितुमाह (नाणाविहाइंइत्यादि) नानाविधानि बहुप्रकाराणि दुःखान्यासातोदयलक्षणान्यनुजवंति पुनः पुनः। तथाहि नरकेषु करपत्र दारण,कुंजीपाक,तप्तायःशाल्मलीसमालिंगनादीनि तिर्यक्षु च शीतोष्णादिदमनांकताडनाऽतिसारारोपणक्षुत्तृडादीनि। मनुष्येषु इष्टवियोगाऽनिष्टसंयोगशोकाक्रंदनादीनि देवेषु चाजियोगेर्ष्याकिल्बिषिकत्वच्यवनादीन्यनेकप्रकाराणि दुःखानि ये एवंजूता वादिनस्ते पौनःपुन्येन समनुजवंति। एतच्च श्लोकार्द्धं सर्वेषूत्तरश्लोकार्धेषु योज्यं। शेषं सुगमं यावदुद्देशक समाप्तिरिति ॥ २६ ॥ नवरमुच्चावचानीति अधमोत्तमानि नानाप्रकाराणि वासस्थानानि गछंतीति गछंतोत्रमंतोगर्भाजन्ममेष्यंति यास्यंत्यनंतशो निर्विछेदमिति ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रत्याह। ब्रवीम्यहं तीर्थंकराज्ञया न स्वमनीषिकया सचाहं ब्रवीमि येन मया तीर्थंकरसकाशाच्छ्रुतं। एतेनच क्षणिकवादिनिरासो इष्टव्यः ॥ २७ ॥ इति समयाख्यप्रथमाध्ययने प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ प्रथमाध्ययने द्वितीयउद्देशकः प्रारभ्यते

आघायं पुण एगेसिं, उववन्ना पुढो जिया ॥ वेदयंति सुहं दुःखं, अडु वा लुप्पंति ठाणउ ॥ १ ॥ न तं सयं कडं दुक्खं, कउ अन्नकडं च णं॥सुहं वा जइ वा दुखं, सेहियं वा असेहियं ॥ २ ॥ सयं कडं न अणेहिं, वेदयंति पुढो जिया ॥ संगइअं तं तहा तेसिं, इहमेगेसि आहिअं ॥३॥

अर्थ–पुणके० वली एगेसिंके० एक नियतवादिने मते, आघायंके० एम कहुंछे. एटले तेनो जे अनिप्राय छे ते कहेछे. उववणापुढोजियाके० पृथक् पृथक् नारकादिकने नवे जे जीवछे, ते पोतपोताना देहस्थित थका सुहंदुक्खं के० सुखदुःखने वेदयंतिके० वेदेछे. अडुवाके० अथवा ते प्राणीउ सुख दुःख अनुजवता ठाणउके० ते स्थानकथी पोतानुं आयुष्य पूर्णकरीने लुप्पंतिके० स्थानांतरे संक्रमे. एम नियतवादी कहेछे. ॥ १ ॥ वली पण बेगाथाए नियतवादीनां मतनो अनिप्राय कहेछे. जे ते प्राणी सुख दुःख अनुजवेछे, एक स्थानक थकी बीजे स्थानके उपजेछे, नतंसयंकडंदुक्खंके० ते दुःखादिक ते जीवनुं पोतानुं कीधेलुं नथी. तेम कउअन्नकडंचणं के० अनेरा का

ल ईश्वर स्वनावादिकनुं करेलुं क्यांथी होय. जो स्वयंकृत सुख डुःख ढे, तो सर्व जीव व्यापारादिक सरिखो व्यापार करतां सर्व सरखाज केम नथी थता. माटे पुरुषाकारे कांइज नथाय, अने जो काल ईश्वरादिकना करेलां सुख डुःख होय तो जगतनी विचित्र ता केम थाय? तेमाटे काल ईश्वरादिकनुं करेलुं पण सुख डुःख थतुं नथी एटले जीव ने सुहंवाजइचाडुरकंके० सुख अथवा डुख जे ढे ते केवां ढे, तोके सेद्धियं वा असेद्धियं के० सैद्धिक अथवा असैद्धिक ढे. तेमां स्रग् चंदन विनितादिक तेथकी उपनुं जे सुख तेने सैद्धिक कहिये. अने अंतरंग आनंदरूप जे सुख तेने असैद्धिक कहिये. एवीरीते बे प्रकारे डुःख पण जाणवुं, तेमां एक वध, बंधन, ताडनादिक क्रियाला करवाथीकरी अने बीजुं शूलज्वरादिरूप जाणवुं, एटले एक कारणे निष्पन्न अने बीजुं स्वानाविक नि ष्पन्न ढे. ॥ २ ॥ ए सुखडुःख जो कोइए कर्यां नथी, तो ए जीव सुखी डुःखी केम थायढे, ते कहेढे. सयंकडंनअस्सेहिंवेदयंति पुढोजियाके०सयं एटले पोतानुं करेलुं अथ वा अनेरानुं करेलुं जे सुख डुःख ते जीव वेदतो नथी. किंतु संगइअंतंतहातेसिंके० नवित व्यतानुं करेलुं तेहिज जीवने सुख डुःख उपजेढे. तथाच तन्मतं। प्राप्तव्यो नियतिबला श्रयेण योऽर्थः, सोवश्यं नवति नृणां शुनोशुनो वा ॥ नूतानां महति कृतेपिहि प्रयत्ने, ना नाव्यं नवति न नाविनोस्ति नाशः ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥ ३ ॥ एप्रमाणे नियतवादी ना मतनो अनिप्राय दर्शाव्यो.

---

॥ दीपिका–उक्तः प्रथमोद्देशकः । अथ द्वितीयोद्देशकः कथ्यते । तस्यायमर्थसंबंधः । आद्योद्देशके नूतवादादिमतं प्रदर्श्य निराकृतं । इहाप्यवशिष्टं तदेवोपदर्श्य निराक्रियत इत्यनेन संबंधेनागतस्यास्योद्देशकस्य सूत्रं यथा । (आघायमिति) । पुनः एकेषां नियतिवा दिनामेतदाख्यातं । आख्यातमित्यत्र नावे क्तप्रत्ययःातयोगेन वा क्लीबइति कर्तरिषष्ठी। तत श्च नियतिवादिनिरिदमाख्यातमित्यर्थः। किं तदित्याह। (उववणत्ति) उपपन्ना युक्त्या घट मानाः पृथक् अनेके जीवाः। जीवसत्वे पंचनूततच्छरीरवादिमतं निराकृतं । पृथगित्यनेन आत्माऽद्वैतवादिनिरासश्च । तेऽनेके जीवाः सुखं डुःखं वेचनारकादिनवेषु वेदयंत्यनुनवंति अनेनाऽकर्तृवादो निरस्तः (अडुवेत्ति)। अथवा लुप्यते स्थानात् स्थानांतरं संक्राम्यंते। ए तेनोपपातिकत्वमप्युक्तं ॥ १ ॥ नियतिवादमतमेवाह श्लोकद्वयेन । (नतमिति) यत्तैः प्राणिनिरनुनूयते सुखं डुःखं स्थानविलोपनं वा न तत्स्वयमात्मना पुरुषकारेण कृतं डुःखं। डुःखस्यचोपलक्षणात्सुखमपि ग्राह्यं । सुखडुःखानुनवः पुरुषकारकृतो न स्यादित्यर्थः। अनेन कालेश्वरस्वनावकर्मादिना च कुतः कृतं । एमित्यलंकारे। कालादिनिरपि न कृत मित्यर्थः । किंतु नियतेरेव निष्पद्यते सर्वमिति । ततः सुखं सैद्धिकं सिद्धौ मोक्षे नवं सै

द्धिकं। यदिवा दुःखमसैद्धिकं सांसारिकं। अथवा सैद्धिकमसैद्धिकं च सुखं यथा। स्रक्चंदनांगनाद्युपभोगक्रियासिद्धौ भवं सैद्धिकं। आंतरं सुखमानंदरूपमसैद्धिकं। तथा सैद्धिकमसैद्धिकं च दुःखं यथा। कशाताडनांकनादिक्रियासिद्धौ भवं सैद्धिकं। ज्वरशिरोर्तिशूलादिरूपमंगोत्थमसैद्धिकं दुःखं। एतदुभयमपि सुखं दुःखं च नपुरुषकारकृतं। नचान्यैः कालादिभिः कृतं वेदयंत्यनुभवंति पृथक्जीवाः। कथं तर्हि प्राणिनांसुखं दुःखं च स्यादित्याह्। (संगइअंति)। सम्यक् स्वपरिणामेन गतिर्यस्याः यदा यत्र यत्सुखदुःखानुभवनं सा संगतिर्नियतिस्तस्याभवं सांगतिकं नियतिकृतमित्यर्थः। इहाऽस्मिन्सुखदुःखानुभववादे एकेषां नियतिवादिनामिदमाख्यातं। यदुक्तं तैः। प्राप्तव्योनियतिबलाश्रयेण योर्थः, सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा॥ भूतानां महति कृतेपि हि प्रयत्ने, नाभाव्यं भवति न भाविनोस्ति नाश इति॥ ३॥

---

॥ टीका—उक्तः प्रथमोद्देशकस्तदनु द्वितीयोऽभिधीयते। तस्य चायमभिसंबंधः। इहाऽनंतरोद्देशके स्वसमयपरसमयप्ररूपणाकृता। इहाप्यध्ययनार्थाधिकारत्वात्सैवाभिधीयते। यद्वि चानंतरोद्देशके भूतवादादिमतं प्रदर्श्य तन्निराकरणं कृतं। तदिहापि तदवशिष्टनियतिवाद्यादिमिथ्यादृष्टिमतान्युपदर्श्य निराक्रियंते। अथवा प्रागुद्देशकेऽभ्यधायि यथा' बंधनं बुध्येत तच्च त्रोटयेदिति तदेव च बंधनं नियतिवाद्यभिप्रायेण न विद्यतइति प्रदर्श्यते। तदेवमनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि व्यावर्ण्य सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं। (आघायमित्यादि) अस्य चाऽनंतरपरंपरसूत्रैः संबंधोवक्तव्यस्तत्राऽनंतरसूत्रसंबंधोयं। इहानंतरसूत्रे इदमभिहितं यथा। पंचभूतस्कंधादिवादिनोमिथ्यात्वोपहताऽतरात्मनोऽसद्ग्राहाभिनिविष्टाः परमार्थाऽवबोधविकलाः संतः संसारचक्रवाले व्याधिमृत्युजराकुले उच्चावचानि स्थानानि गृह्णंतो गर्भमेष्यंत्यन्वेषयंति वाऽनंतशइति। तदिहापि नियत्यज्ञानिज्ञानचतुर्विधकर्मोपचययादीनां तदेव संसारचक्रवालभ्रमणगर्भान्वेषणं प्रतिपाद्यते। परंपरसूत्रसंबंधस्तु (बुज्झेज्जेत्यादि)। तेन च सहायं संबंधस्तत्र बुध्येतेत्येतत् प्रतिपादितमिहापि यदाख्यातं नियतिवादिभिस्तद्बुध्येतेत्येवं मध्यसूत्रैरपि यथासंभवं संबंधो लगनीयइति। तदेवं पूर्वोत्तरसंबंधसंबद्धस्यास्य सूत्रस्याऽधुनार्थः प्रतन्यते। पुनःशब्दः पूर्वादिभ्यो विशेषं दर्शयति। नियतिवादिनां पुनरेकेषामेतदाख्यातं। अत्र चाविवक्षितकर्मकाअपि अकर्मका भवंतीति ख्यातेर्धातोर्भावे निष्ठाप्रत्ययस्तद्योगे कर्तरि षष्ठी। ततश्चायमर्थस्तैर्नियतवादिभिः पुनरिदमाख्यातं तेषामयमाशयइत्यर्थः। तद्यथा। उपपन्नो युक्त्या घटमानकाइत्यनेन च पंचभूततज्जीवतच्छरीरवादिमतमपाकृतं भवति। युक्तिस्तु लेशतः प्राग्दर्शितैव। प्रदर्शयिष्यते

च पृथक्पृथक्नारकादिभवेषु शरीरेषु चेत्यनेनाऽप्यात्माऽद्वैतवादिनिरासोऽवसेयः। के पुन
स्ते पृथगुपपन्नास्तदाह।जीवाः प्राणिनः सुखडुःखभोगिनः। अनेन च पंचस्कंधातिरिक्तजीवा
भावप्रतिपादकबौद्धमताऽपक्षेपः कृतोऽद्रष्टव्यः। तथा ते जीवाः पृथक्पृथक् प्रत्येकदेहे व्य
वस्थिताः सुखं डुःखं च वेदयंत्यनुभवंति। न वयं प्रतिप्राणिप्रतीतं सुखडुःखानुभवं निह्नु
महे। अनेन चाऽकर्तृवादिनोनिरस्ताभवंति। अकर्तर्यविकारिण्यात्मनि सुखडुःखानुभवा
नुपपत्तेरिति भावः। तथैतदस्माभिर्नोऽपलप्यते। अडुवेत्यथवा। तेप्राणिनः सुखं डुःखं
चानुभवंति विलुप्यंते छिद्यंते स्वायुषः प्रच्याव्यंते स्थानात्स्थानांतरं संक्राम्यंत इत्यर्थः।
ततश्चौपपातिकत्वमप्यस्माभिस्तेषां न निषिध्यते इतिश्लोकार्थः॥ १॥ तदेवं पंचभूता
स्तित्वादिवादिनिरासं कृत्वा यत्तैर्नियतिवादिभिराश्रीयते तच्छ्लोकद्वयेन दर्शयितुमाह।
(नतंसयमित्यादि) यत् तैः प्राणिभिरनुभूयते सुखं डुःखं स्थानविलोपनं वा न तत्स्वय
मात्मना पुरुषकारेण कृतं निष्पादितं डुःखमिति। कारणेकार्योपचारात्। डुःखकारणमेवो
क्तं। अस्य चोपलक्षणत्वात् सुखाद्यपि ग्राह्यं। ततश्चेदमुक्तं भवति। योयं सुखडुःखानुभवः
सपुरुषकारकृतकारणजन्यो न भवतीति। तथा कुतोऽन्येन कालेश्वरस्वभावकर्मादिना च कृ
तं भवेत्। णमित्यलंकारे। तथाहि। यदि पुरुषकारकृतं सुखाद्यनुभूयेत ततः सेवकवणि
क्कर्षकादीनां समाने पुरुषकारे सति फलप्राप्तिवैसदृश्यं फलप्राप्तिश्च न भवेत्। कस्यचित्तु से
वादिव्यापाराभावेपि विशिष्टफलावाप्तिर्दृश्यत इत्यतो न पुरुषकारात्किंचिदासाद्यते किं त
र्हिनियतेरेवेत्येतच्च द्वितीयश्लोकांतेऽभिधास्यते। नापि कालः कर्ता। तस्यैकरूपत्वाज्जग
ति फलवैचित्र्यानुपपत्तेः। कारणभेदे हि कार्यभेदोभवति नाभेदे। तथा ह्ययमेवहि भेदो
भेदहेतुर्वा घटते। यडुत विरुद्धधर्माध्यासः कारणभेदश्च। तथेश्वरकर्तृकेपि सुखडुःखे नभ
वतः। यथाऽसावीश्वरो मूर्तोऽमूर्तो वा। यदि मूर्तस्ततः प्राकृतपुरुषस्येव सर्वकर्तृत्वाभावः।
अथाऽमूर्तस्तथा सत्याकाशस्येव सुतरां निष्क्रियत्वं। अपिच यद्यसौ रागादिमान्स्ततो
ऽस्मदाद्यव्यतिरेकाद्विश्वस्याकर्तैव। अथासौ विगतरागस्ततस्तत्कृतं सुभगडुर्भगेश्वरद
रिड्रादिजगद्वैचित्र्यं न घटां प्रांचति ततोनेश्वरः कर्तेति। तथा स्वभावस्यापि सुखडुः
खादिकर्तृत्वानुपपत्तिः। यतोऽसौ स्वभावः पुरुषाद्भिन्नोऽभिन्नोवा। यदि भिन्नोन पुरुषा
श्रिते सुखडुःखे कर्तुमलं तस्माद्भिन्नत्वादिति। नाप्यभिन्नोऽभेदे पुरुषएव स्यात्तस्य चाक
र्तृत्वमुक्तमेव। नापि कर्मणः सुखडुःखं प्रति कर्तृत्वं घटते। यतस्तत्कर्म पुरुषाद्भिन्नमभि
न्नं वा भवेत्। अभिन्नं चेत्पुरुषमात्रतापत्तिः कर्मणस्तत्र चोक्तो दोषः। अथ भिन्नं तत्किं स-
चेतनमचेतनं वा। यदि सचेतनं एकस्मिन् काये चैतन्यद्वयापत्तिः। अथाचेतनं तथा
सति कुतस्तस्य पाषाणखंडस्येवास्वतंत्रस्य सुखडुःखोत्पादनंप्रति कर्तृत्वमित्येतच्चोत्तरत्र
व्यासेन प्रतिपादयिष्ये इत्यलं प्रसंगेन। तदेवं सुखं सैद्धिकं सिद्धावपवर्गलक्षणायां

नवं यदि वा दुःखं आसातोदयलक्षणमसैद्धिकं सांसारिकं । यदिवोजयमप्येतत्सुखं दुःखं वा स्रक्चंदनांगनाद्युपनोगक्रियासिद्धौजवं तथा कशाताडनांकनादिसिद्धौ जवं सैद्धिकं । तथाऽसैद्धिकं सुखमांतरमानंदरूपमाकस्मिकमनवधारितबाह्यनिमित्तं । एवं दुःखमपि ज्वरशिरोर्तिशूलादिरूपमंगोद्भवमसैद्धिकं । तदेतदुजयमपि न स्वयं पुरुषकारेण कृतं नाप्यन्येन केनचित् कालादिना कृतं वेदयंत्यनुजवंति पृथक्जीवाः प्राणिनइति । कथं तर्हि तत्तेषामनूदिति नियतिवादी स्वाजिप्रायमाविष्करोति ( संगइयंति ) सम्यक्स्वपरिणामेन गतिर्यस्य यदा यत्र यत्सुखदुःखानुजवनं सा संगतिर्नियतिस्तस्यां जवं सांगतिकं । यतश्चैवं न पुरुषकारादिकृतं सुखदुःखाद्यतस्तत्तेषां प्राणिनां नियतिकृतं सांगतिकमित्युच्यते । इहास्मिन् सुखदुःखानुजववादे एकेषां वादिनामाख्यातं तेषामयमन्युपगमः । तथाचोक्तं । प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योर्थः, सोऽवश्यं जवति नृणां शुनोऽशुनो वा ॥ जूतानां महति कृतेपि हि प्रयत्ने नाजाव्यं जवति न जाविनोस्ति नाशः ॥ १ ॥ ३ ॥

एवमेयाणि जंपंता, बाला पंमिअमाणिणो ॥ निययानिययं संतं, अयाणंता अबुद्धिया ॥ ४ ॥ एवमेगे उ पासत्था, ते जुज्जो विप्पगन्निआ ॥ एवं उवठिआ संता, ण ते दुःखविमोरकया ॥ ५ ॥

अर्थ—हवे ग्रंथकार एने उत्तर आपेछे एवमेयाणिजंपंता के० एवं पूर्वोक्त वचन नियतवादाश्रित बोलतां एवा ते बालाके०बाल अज्ञानी छतां पोताने पंमिअमाणिणोके० पंमित करी मानतां शा माटे मानेछे ते कहेछे के; निययानिययंके० ते अज्ञानी नियतिकृत सुख दुःख अथवा अनियतिकृत पुरुषकारादिकनुं करेलुं एवुं सुख दुःख ते संतं के० एकांते जवितव्यतायेज कखुं एम कहेछे; ते कारणे तेने सुखदुःखादि कारणना अयाणंता अबुद्धियाके० अजाण, बुद्धिरहित कहिए. अने जैनतो नियतिकृतपणे तथा अनियतिकृतपणे ए बंने प्रकारे सुख दुःख मानेछे एटले स्याद्वादी कहिए. ॥ ४ ॥ हवे तेने एवी प्ररूपणानुं विपाक देखाडेछे एवमेगेके० एरीते कोइ एक नियतवादने विषे आश्रित परवादीछे ते केवाछे; तोके पासछाके० पार्श्वस्थ एटले न्यायपक्षथकी बाहेर अथवा पासछा एटले पाशके० कर्मनुं बंधन तेने विषे स्थित जुज्जो के० तेवली पुनः विप्पगन्नियाके० विविध प्रगल्जित एटले अत्यंत धिगथका मुक्तिमार्गनेविषे प्रवर्त्ते; वली एवुं कहेछे के अमे एवी क्रिया करता थका मुक्तिपामीशुं परंतु एवंके० ए प्रकारे ते उवठियासंताके० उठित एटले पोतानी क्रियानेविषे प्रवर्तता छतां णतेदुःखविमोरकयाके० पोताने दुःखथी मूकावनार न होय एटले मुक्ति पामेनहीं.॥५॥ एटले नियतवादी कह्या.

॥ दीपिका—अस्योत्तरमाह । ( एवमिति ) । एवमेतानि पूर्वोक्तानि वचनानि जल्पंतो

नियतिवादिनोबाला मूर्खाः पंडितमानिनः स्वयमपंमिताअप्यात्मानं पंडितं मन्यमानाः। किंभूताः नियताऽनियतमजानंतः किंचिन्नियतिकृतमवश्यंभावि नियतमात्मपुरुषकारेश्वरादिकृतं किंचिदनियतमेवं द्विविधं वस्तु अजानंतोनियतिकृतमेवैकांतेनाश्रयंतोऽतएवाबुद्धिकाबुद्धिरहितानवंति । पुरुषकारादयोपि वस्तूत्पादकाः । यतः । न दैवमिति संचिंत्य, त्यजेडुद्यममात्मनः। अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेन्यः प्राप्तुमर्हति ॥ १ ॥ इत्याद्यजानंतोऽतएव निर्बुद्धिकाः ॥ ४ ॥ एतद्वादिनामपायमाह् । ( एवमिति ) । एवमेके नियतिवादिनं पार्श्वस्थाः युक्तिसमूहाद्बहिस्तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः परलोकक्रियापार्श्वस्थावा । अथवा पाशः कर्मबंधनं तत्र स्थिताः । (तेजुङ्गोत्ति) । ते नूयो विविधं प्रगल्भिता धार्ष्ट्योपेतानियतिवादमंगीकृत्यापि एवं पुनरपि सकार्यपरलोकक्रियासु प्रवर्तमानाअतएव धार्ष्ट्योपेतानते डुःखविमोचकाआत्मानं डुःखान्न मोचयंति॥ ५॥ नियतिवादिनोगताः॥

---

॥टीका–एवं श्लोकद्वयेन नियतिवादिमतमुपन्यस्यास्योत्तरदानायाह् । ( एवमेयाणि इत्यादि ) एवमित्यनंतरोक्तस्योपप्रदर्शने । एतानि पूर्वोक्तानि नियतिवादाश्रितानि वचनानि जल्पंतोऽनिदधतो बालाअज्ञाः सदसद्विवेकविकलाअपि संतः पंडितमानिनआत्मानं पंमितं मंतुं शीलं येषां ते तथा। किमिति तएवमुच्यंतइति तदाह् । यतो ( नियथानियथंसंतमिति ) । सुखादिकं किंचिन्नियतिकृतमवश्यं नाव्युदयप्रापितं तथाऽनियतमात्मपुरुषकारेश्वरादिप्रापितं सत् नियतिकृतमेवैकांतेनाश्रयंत्यतोऽजानानाः सुखडुःखादिकारणमबुद्धिकाबुद्धिरहितानवंतीति । तथाह्यार्हतानां किंचित्सुखडुःखानि नियतितएव नवंति । तत्कारणस्य कर्मणः कस्मिंश्चिदवसरेऽवश्यंनाव्युदयसन्नावान्नियतिकृतमित्युच्यते । तथा किंचिदनियतिकृतं च पुरुषकालेश्वरस्वन्नावकर्मादिकृतं तत्र कथंचित्सुखडुःखादेः पुरुषकारसाध्यत्वमप्याश्रीयते । यतः क्रियातः फलं नवति क्रिया च पुरुषकाराऽयत्ता प्रवर्तते। तथाचोक्तं । न दैवमिति संचिंत्य, त्यजेडुद्यममात्मनः। अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेन्यः प्राप्तुमर्हति ॥१॥ यत्तु समाने पुरुषव्यापारे फलवैचित्र्यं दूषणत्वेनोपन्यस्तं तददूषणमेव । यतस्तत्रापि पुरुषकारवैचित्र्यमपि फलवैचित्र्ये कारणं नवति । समाने वा पुरुषकारे यः फलानावः कस्यचिन्नवति सोऽदृष्टकृतः । तदपि चास्माभिः कारणत्वेनाश्रितमेव । तथा कालोपि कर्ता । यतो बकुलचंपकाशोकपुन्नागसहकारादीनां विशिष्टएव काले पुष्पफलाद्युन्नवोन सर्वदेति । यच्चोक्तं । कालस्यैकरूपत्वाज्जगद्वैचित्र्यं न घटतइति तदस्मान् प्रति न दूषणं । यतोऽस्माभिर्न कालएवैकः कर्तृत्वेनान्युपगम्यतेऽपितु कर्मापि ततो जगद्वैचित्र्यमित्यदोषः । तथेश्वरोपि कर्ता । आत्मैवहि तत्र तत्रोत्पत्तिद्वारेण सकलजगद्व्यापनादीश्वरः। तस्य सुखडुःखोत्पत्तिकर्तृत्वं सर्ववादिनामविगानेन सिद्धमेव। यच्चात्र मूर्तामू

तादिदूषणमुपन्यस्तं तदेवंभूतेश्वरसमाश्रयणे दूरोच्छेदितमेवेति । स्वनावस्यापि कथंचित्कर्तृत्वमेव । तथा ह्यात्मन उपयोगलक्षणत्वमसंख्येयप्रदेशत्वं । पुजलानां च मूर्तत्वं धर्माधर्मास्तिकाययोर्गतिस्थित्युपष्टंनकारित्वममूर्तत्वं चेत्येवमादिस्वनावापादितं । यदपि चात्मव्यतिरेकाऽव्यतिरेकरूपं दूषणमुपन्यस्तं तददूषणमेव । यतः स्वनावआत्मनोऽव्यतिरिक्तः । आत्मनोपि च कर्तृत्वमन्युपगतमेव तदपि स्वनावापादितमेवेति । तथा कर्मापि कर्तृ नवत्येव । तद्धि जीवप्रदेशैः सहान्योन्यानुवेधरूपतया व्यवस्थितं कथंचिच्चात्मनोऽनिन्नं तहशाच्चात्मा नरकतिर्यङ्मनुष्यामरनवेषु पर्यटन् सुखडुःखादिकमनुनवतीति । तदेवं नियत्यनियत्योः कर्तृत्वे युक्त्युपपन्ने सति नियतेरेव कर्तृत्वमन्युपगच्छंतोनिर्युक्तिकानवंतीत्यवसेयम्॥४॥तदेवं युक्त्या नियतिवादं दूषयित्वा तहादिनामपायदर्शनायाह।(एवमेगे इत्यादि')। एवमितिपूर्वान्युपगमसंसूचकं । सर्वस्मिन्नपि वस्तुनि नियतानियते सत्येके नियतमेवाऽवश्यंनाव्येव कालेश्वरादिनिराकरणेन निर्हेतुकतया नियतिवादमाश्रिताः । तुरवधारणे । तएव नान्ये । किंविशिष्टाः पुनस्ते इति दर्शयति ।युक्तिकदंबकाद्दहिस्तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः परलोकक्रियापार्श्वस्थावा । नियतिपक्षसमाश्रयणात्परलोकक्रियावैयर्थ्यं । यदि वा पाशइवपाशः कर्मबंधनं तच्चेह युक्तिविकलनियतिवादप्ररूपणं तत्रस्थिताः पाशस्थाः । अन्येप्येकांतवादिनः कालेश्वरादिकारणिकाः पार्श्वस्थाः पाशस्थावा इष्टव्याइत्यादि । ते पुनर्नियतिवादमाश्रित्यापि नूयोविविधं विशेषेण वा प्रगल्भिताधाष्टर्योपगताः परलोकसाधकासु क्रियासु प्रवर्तंते । धाष्टर्याश्रयणं तु तेषां नियतिवादाश्रयणे सत्येव । पुनरपि तत्प्रतिपंथिनीषु क्रियासु प्रवर्तनादिति ते पुनरेवमप्युपस्थिताः परलोकसाधकासु क्रियासु प्रवृत्ताअपि संतोनात्मडुःखविमोक्षकाः । असम्यक्प्रवृत्तत्वान्नात्मानं डुःखाद्विमोचयंति । गतानियतिवादिनः ॥ ५ ॥

जविणो मिगा जहा संता, परिताणेण वज्जिआ॥ असंकियाइं संकंति,
संकिआइं असंकिणो ॥६॥ परियाणिआणि संकंता,पासिताणि असंकिणो ॥ अप्पाणनयसंविग्गा संपलिंति तहिंतहिं ॥ ७ ॥ अह तं पवेज्ज वस्नं, अहे वस्नस्स वा वए ॥ मुच्चेज पयपासाठ, तं तु मंदे ण देहए ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे अज्ञानवादीना मत उपर दृष्टांत कहेछे. जहाके० जेम, मिगाके० मृग एटले अरण्यना पशु जविणो संता के० वेगवंत छतां ते केवाछे, तोके परिताणेणवज्जियाके० परित्राण एटले शरणेकरी वर्जित अर्थात् तेमनो कोइ राखनार नथी. एवा ते नयविव्हलनृत विवेकरहित थका असंकियाइं के० अशंकित स्थानक जे कूट पाशादिक रहित तेने संकंति के० शंकानुं स्थानक जाणे तथा जे संकिआइं के० शंकित

स्थानक जे बंधनुं कारण ते स्थानक थकी असंकिणो के० शंका पामे नहीं. ॥ ६ ॥ वली एहिज कहेले के, ते मृगादिक जीव परियाणिआणि के० परित्राण जे रक्षानुं स्थानक तेथी संकंता के० शंकाता अने पासिताणि असंकिणो के० पाशना स्थानक थकी अण शंकाता, असुाणजयके० अजाणपणे अथवा जयें करी, संविग्गा के० व्याकुल थका संपलिंति तहिं तहिं के० तेहिज तेहिज स्थानके जाय. ज्यां त्यां पाशादिक मांहेज पडे ॥ ७ ॥ वली एज दृष्टांत दिपावेळे. अह के० अथ एटले हवे तंके० ते मृगादिक जीव ते वागुरादिकनो जे वज्झपवेळ के० बंधपाशादिकनां स्थानक ने अहेवज्झस्सवाव ए के० नीचे अथवा उपर आक्रमीने जाय. जो एम करे तो ते मुच्चेज्जपयपासाउके० पगना पाशथकी मूकाय एटले छुटो थाय परंतु ते अनर्थ परिहरवानो उपाय तंके० ते, मंदे के० मंद अज्ञानी, णदेहएके० नदेखे. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–अथाज्ञानिमतमाह । (जविणोत्ति)। यथा जविनोवेगवंतः संतोमृगाः परित्राणेन शरणेन वर्जितारहिता.। अथवा परित्राणं वागुरादिबंधनं तेन तर्जिताजयं प्रापिताः संतोऽशंकितानि स्थानानि शंकंते जयभ्रांताः संतोनिर्जयान्यपि स्थानानि सजयतया मन्यंते । शंकितानि च वागुरादीन्यशंकमानाः संपर्ययंतइत्युत्तरसूत्रेण संबंधः ॥ ६ ॥ परित्राणं संजातं येषु तानि परित्राणितानि शरणभूतानि स्थानानि मूढत्वात् शंकमानाः सजयानि मन्यमाना पाशितानि पाशयुक्तान्यशंकमानास्तेषु शंकाम कुर्वाणाअज्ञानेन जयेन च (संविग्गत्ति) सम्यक्व्याप्तास्तत्र तत्र वागुरादिके बंधने संपर्ययंते समेकीजावेन परिसमंतादयंते गछंतीति ॥ ७ ॥ इममेव दृष्टांतमाश्रित्याह। (अहेति)। अथानंतरमसौ मृगस्तत् (वज्झमिति) बंधोबंधनकारणं रज्जुवागुरादिबंधं वा यदि प्लवेतोपरिगछेत वा अथवा बंधस्याधोव्रजेत् तदा पदपाशात् वागुरादिबंधनान्मुच्यते । एवं संतमपि तमनर्थपरिहरणोपायं मंदोजडोन देहतीति न पश्यतीति ॥ ८ ॥

॥ टीका–सांप्रतमज्ञानिमतं दूषयितुं दृष्टांतमाह । (जविणोइत्यादि) यथा जविनोवेगवंतः संतोमृगाआरण्याः पशवः परिसमंतात् त्रायते रक्षतीति परित्राणं तेन वर्जिता रहिताः परित्राणविकलाइत्यर्थः । यदिवा परित्राणं वागुरादिबंधनं तेन तर्जितान्जयं ग्राहिताः संतोजयोद्भ्रांतलोचनाः समाकुलीजूतांत करणाः सम्यक्विवेकविकलाअशंकनीयानि कूटपाशादिरहितानि स्थानान्यशंकाहीणि तान्येव शंकंते अनर्थोत्पादकत्वेन गृह्णंति । यानि पुनः शंकार्हाणि शंका संजाता येषु योग्यत्वात्तानि शंकितानि शंकायोग्यानि वागुरादीनि तान्यशंकिनस्तेषु शंकामकुर्वाणास्तत्र तत्र पाशादिके संपर्ययंतइत्युत्तरेण संबंधः ॥६॥ पुनरप्येतदेवाऽतिमोहाविष्करणायाह । (परियाणीत्यादि) परित्रायते इति परित्राणं तज्जातं येषु तानि । यथा परित्राणयुक्तान्येव शंकमानाअतिमूढत्वाद्विपर्यस्तबु

ध्यस्त्रांतर्यपि नयमुत्प्रेक्षमाणानि पाशितानि पाशोपेतान्यनर्थापादकान्यशंकिनस्तेषु शंकामकुर्वाणाः संतोऽज्ञानेन नयेन च ( संविग्गंति )। सम्यक्व्याप्तावशीनूताः शंकनीयमशंकनीयं वा तत्राऽपरित्राणोपेत पाशाद्यनर्थोपेतं वा सम्यक्विवेकेनाऽजानानास्तत्र तत्राऽनर्थबहुले पाशवागुरादिके बंधने संपर्ययंते समेकीनावेन परिसमंतादयंते यांति वा गच्छंतीत्युक्तं नवति । तदेवं दृष्टांतं प्रसाध्य नियतिवादाद्येकांताऽज्ञानवादिनोदार्ष्टांतिकत्वेनाऽयोज्याः । यतस्तेप्येकांतवादिनोऽज्ञानकास्त्राणनूतानेकांतवादवर्जिताः सर्वदोषविनिर्मुक्तं कालेश्वरादिकारणवादान्युपगमेनाऽनाशंकनीयमनेकांतवादमाशंकंते शंकनीयं च नियत्यज्ञानवादमेकांतं न शंकंते । ते एवंनूताः परित्राणार्हेप्यनेकांतवादे शंकां कुर्वाणायुक्त्याऽघटमानकमनर्थबहुलमेकांतवादमशंकनीयत्वेन गृह्णंतोऽज्ञानावृतास्तेषु तेषु कर्मबंधस्थानेषु संपर्ययंत इति ॥ ७ ॥ पूर्वदोषैरनुत्पन्नाचार्योदोषांतरदित्सया पुनरपि प्राक्तनदृष्टांतमधिकृत्याह । (अहतंपवेक्षइत्यादि) अथानंतरमसौ मृगस्तत् ( बऊमिति ) बद्धं बंधनाकारेण व्यवस्थितं । वागुरादिकं वा बंधनं बंधकत्वाद्बंधमित्युच्यते । तदेवंनूतं कूटपाशादिकं बंधनं यद्यसावुपरिप्लवेत् तदधस्तादतिक्रम्योपरिगच्छेत् तस्य वऽधोदेवंधनस्याधोगच्छेत्तत एवं क्रियमाणेऽसौ मृगः पदेपाश· पदपाशोवागुरादिबंधनं तस्मान्मुच्यते । यदि वा पदं कूटं पाश· प्रतीतस्ताभ्यां मुच्यते । क्वचित्पदपाशादीति पठ्यते । आदिग्रहणा द्वधताडनमारणादिका· क्रियागृह्यंते । एव संतमपि तमनर्थोत्पादकं परिहरणोपायं मंदोजडोऽज्ञानावृतोन देहतीति न पश्यतीति ॥ ८ ॥

अहिअप्पाऽहियपण्णाणे, विसमंतेणुवागते ॥ सबद्धे पयपासेणं, तब्ध घायं नियच्छइ ॥९॥ एवं तु समणा एगे, मिछदिठी अणारिआ ॥ असंकिआइं संकंति, संकिआइं असंकिणो ॥ १० ॥ धम्मपरणवणा जा सा, तं तु संकंति मूढगा ॥ आरंनाइं न संकंति, अविअत्ता अकोविआ ॥ ११ ॥ सवप्पगं विउक्कस्सं, सवंणूमं विहूणिआ ॥ अप्पत्तिअं अकम्मंसे, एयमठं मिगे चुए ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे ते उपाय अण देखतो थको जे अवस्थाने पामे ते कहेले. अहिअप्पा के० ते मृग आत्माने अहित तथा अहियप्पण्णाणेके० अहित जेनुं जाणपणु ढे, एवा उता, विसमंते के० विषम कूट पाशादिक प्रदेशे, णुवागते के० आवे. एटले ते पाश मांहे पडे. सबद्धेपयपासेणं के० ते त्यां पडया उता बंधन पामे. तथा तब्धघायं के० त्यां ते विनाशने नियच्छइके० डुःखी थता पामे. ॥ ९ ॥ हवे ए दृष्टांत परवादिसाथे

मेलवेछे. एवंतु के० एरीते जेम ते मृग अजाणतां थकां पाशमांहे पडेछे, तेम समणाएगे के० कोइएक श्रमण शाक्यादिक दर्शनी ते केवाछे, तोके मिछदिठी के० मिथ्यादृष्टी तथा अणारिआ के० अनार्य अज्ञानपणे अनाचारना सेवनारा ते असंकिया इंके० अशंकित एवां जे रुडा धर्मनां अनुष्ठानछे, तेनेविषे संकंति के० अधर्मनी शंका आणे; अने संकियाइं के० जे हिंसादिक शंकित स्थानकछे, तेथकी असंकिणो के० न शंकाय. ॥ १० ॥ वली ते दर्शनीउनी जे विपरीत मति छे ते देखाडेछे, धम्मपन्नवणाजासा के० क्षांत्यादिक दशविध धर्मेसहित प्ररूपणा जेनीछे. तंतुसंकंतिमूढगा के० तेथकी ते अज्ञानी शंकाय अने कहेके ए अधर्मनी प्ररूपणाछे, तथा जे आरंभाइंके० आरंभादिक पापनां कारण छे. तेथकी नसंकंति के० न शंकाय अने तेनेज धर्म करी देखाडे. माटे ते केवा छे, अविअत्ता के० अव्यक्त, मुग्ध, विवेक, विकल तथा अकोवियाके० अकोविद एटले अपंडित छे. ॥ ११ ॥ हवे तेने फल देखाडेछे. सव्वप्पगं के० सर्वात्मक ते लोभ, विउक्कस्सं के० मान, सव्व के० समस्त, णूमं के० माया, तथा अपत्तियं के० क्रोध ए चार कषाय विहूणिया के० खपावीने जीव अकम्मंसेके० अकर्मांश थाय, एटले कर्मांशरहित थाय. एयमठं के० एवो अर्थ ते मिगेके० मृगनी पेरे अज्ञान पृथवादी दर्शनी चूएके० गंमेछे. सारांश जेथकी जीव मुक्ति पामे ते अर्थ जाणता नथी॥१२॥

---

॥ दीपिका–पाशमपश्यतोयाऽवस्था स्यात्तामाह । ( अहिअप्पेति । स मृगोऽहितात्मा तथा अहितं प्रज्ञानं बोधोयस्य सोऽहितप्रज्ञानः विषमांतेन कूटपाशादियुक्तेन प्रदेशेनोपागतः । अथवा विषमांते कूटपाशे आत्मानमनुपातयेत् । तत्र चासौ बद्धः पादपाशादीननर्थबहुलान् अवस्थाविशेषान् प्राप्तस्तत्र बंधने घातं विनाशं निगच्छति प्राप्नोति ॥ ॥ ए ॥ दृष्टांतयोजनामाह । ( एवमिति ) । एवं पूर्वोक्तमृगदृष्टांतेन । तुरवधारणे । एकेश्रमणाः पार्श्वस्थाश्रितमिथ्यादृष्टयोऽनार्याअसदनुष्ठानाअशंकितानि धर्मानुष्ठानानि शंकमानास्तथा शंकितान्येकांतपक्षाश्रयणान्यशंकिनोमृगाइवाऽनर्थभाजः स्युः ॥ ॥ १० ॥ शंकिताशंकितविपर्यासमाह । ( धम्मेति )। धर्मप्रज्ञापना क्षांत्यादिदशविधधर्मप्ररूपणा या सा प्रसिद्धा तां शंकंते सद्धर्मप्ररूपणेयमिति मन्यंते । आरंभांश्च पापोपादानभूतान् शंकंते । यतोऽव्यक्तामुग्धाः सदसद्विवेकविकलाअकोविदाअपंडिताः सम्यगवबोधविधुराः ॥११॥ तेषां सत्फलाभावमाह । ( सव्वप्पगमिति ) सर्वात्मकोलोभस्तं । व्युत्कर्षोमानस्तं (सव्वंणूमंति) मायां तथा (अप्पत्तिअंति) क्रोधस्तं च विधूय अकर्मांशः न विद्यते कर्मांशोयस्य सोऽकर्मांशः स्यात् । अकर्मांशत्वं च ज्ञानाद्भवति नाऽज्ञानादिस्याह । ( एयमठंति) । एतमर्थं कर्माभावरूपं मृगइव मृगोऽज्ञानी (चुएत्ति) त्यजेत् ॥१२॥

॥ टीका—कूटपाशादिकं चापश्यन् यामवस्थामवाप्नोति तां दर्शयितुमाह । (अहीत्यादि) स मृगोऽहितात्मा । तथाऽहितं प्रज्ञानं बोधोयस्य सोऽहितप्रज्ञानः । सचाहितप्रज्ञानः सन् विषमांतेन कूटपाशादियुक्तप्रदेशेनोपागतः । यदिवा विषमांते कूटपाशादिके आत्मानमनुपातयेत् । तत्र चासौ पतितो बद्धश्च तेन कूटादिना पदपाशादीननर्थबहुलानवस्थाविशेषान् प्राप्तस्तत्र बंधने घातं विनाशं नियच्छति प्राप्नोतीति ॥ ९ ॥ एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य सूत्रकारएव दार्ष्टांतिकमज्ञानविपाकं दर्शयितुमाह । (एवंतुइत्यादि) एवमिति यथा मृगाअज्ञानावृताअनर्थमनेकशः प्राप्नुवंति । तुरवधारणे । एवमेव श्रमणाः केचित्पाखंमविशेषाश्रिताः । एके न सर्वे । किंनूतास्ते इति दर्शयति । मिथ्या विपरीता दृष्टिर्येषामज्ञानवादिनां नियतिवादिनां वा ते मिथ्यादृष्टयः । तथा अनार्याः आराज्जाताः सर्व देयधर्मेन्यइति आर्याः न आर्याअनार्याअज्ञानावृतत्वादसदनुष्ठायिनइति यावत् । अज्ञानावृतत्वं च दर्शयति । अशंकितान्यशंकनीयानि सुधर्मानुष्ठानादीनि शंकमानास्तथा शंकनीयान्यपायबहुलान्येकांतपक्षसमाश्रयणान्यशंकिनोमृगाइव मूढचेतसस्तत्तदाऽरनंते यद्यदनर्थाय संपद्यंतइति ॥ १० ॥ शंकनीयाशंकनीयविपर्यासमाह । (धम्मपसवणेत्यादि) । धर्मस्य क्षांत्यादिदशलक्षणोपेतस्य या प्रज्ञापना प्ररूपणा । तंत्विति । तामेव शंकंते असद्धर्मप्ररूपणेयमित्येवमध्यवस्यंति । ये पुनः पापोपादानभूताः समारंभास्तानाशंकंते । किमिति । यतोऽव्यक्तामुग्धाः सहजसद्विवेकविकलाः । तथा । अकोविदाअपंडिताः सच्छास्त्रावबोधरहिताइति ॥ ११ ॥ तेच अज्ञानावृतायन्नाप्नुवंति तद्दर्शनायाह । (सवप्पगमित्यादि) । सर्वत्राप्यात्मा यस्याऽसौ सर्वात्मको लोनस्तं विधूयेति संबंधः । तथा । विविधउत्कर्षोगर्वोव्युत्कर्षोमानइत्यर्थः । तथा (णूमंति) माया तां विधूय । तथा (अप्पत्तियंति) क्रोधं विधूय । कषायविधूनने च मोहनीयविधुननमावेदितं नवति तदपगमाच्च शेषकर्माभावः प्रतिपादितो नवतीत्याह । (अकर्मांशइति) । न विद्यते कर्मांशोऽस्येत्यकर्मांशः । सच कर्मांशोविशिष्टज्ञानाद्भवति नाज्ञानादित्येव दर्शयति । एतमर्थं कर्माभावलक्षणं मृगः अज्ञानी (चुएत्ति) । त्यजेत् । विभक्तिपरिणामेन वा अस्मादेवंभूतादर्थात् च्यवेत् भ्रश्येदिति ॥ १२ ॥

जे एयं नाभिजाणंति, मिछदिठी अणारिया ॥ मिगा वा पासबद्धा ते, घायमेसंति णंतसो ॥ १३ ॥ माहणा समणा एगे, सवे नाणं सयं वए ॥ सबलोगे वि जे पाणा, न ते जाणंति किंचण ॥ १४ ॥ मिलक्खू अमिलक्खुस्स, जहा वुत्ताणुभासए ॥ ण हेउं से विजाणाइ, भासिअंतणु भासए ॥ १५

एवमन्नाणिया नाणं, वयंतावि सयं सयं ॥ निच्छयत्थं न याणंति, मिलक्खुव्व अबोहिया ॥ १६ ॥

अर्थ— वली एनोज दोष देखाडेछे. जेएयंनाभिजाणंति के० जे अज्ञानवादी ए कर्म खपाववानो उपाय नथी जाणता, ते केवा छे, मिच्छदिठीअणारिया के० मिथ्यादृष्टी अनार्य एवा मिगावापासबद्धाते के० मृगलानी परे पाशमां बंधाणाछे. तेघायमेस्संति णं तसो के० आगामिक काले अनंतावार एटले मरणने पामशे; एटले मृगतो एकवार मरण पामीनेज छूटेछे परंतु ते अज्ञानी अनंते मरणे पण छूटसे नहीं. ॥ १३ ॥ हवे जे पोते एकवार ग्रह्युं एवुं जे पोतानुं कदाग्रह तेने कोइवारे मूकेनहीं ते उपर विशेष कहेछे. माहणासमणाएगे के० एक ब्राह्मण तथा एक श्रमण परिव्राजक विशेष ए सवे के० सर्वे, सयंके० पोत पोतानुं, नाणंके० जाणपणुं रुडुंछे एम वएके० वदे एटले कहेछे. वली ते जुदां जुदां ज्ञान परस्पर माहोमांहे विरुद्ध संदेह उपजावेछे; ते माटे अजाणपणुंज नलुं छे जाणपणानुं कांइ काम नथी, ए रीते अज्ञानवादी कहेछे. तेमाटे सव्वलोगेविके० सर्व लोकमांहे. जे पाणा के० जे प्राणीउ छे, नतेजाणंतिकिंचणं के० ते कांइ जाणता नथी, एटले सर्व सम्यक्ज्ञान रहित जाणवा. यद्यपि तेने कांइ गुरुपरंपरागत जाणपणुं होय तथापि ते कांई परमार्थ जाणता नथी, माटे ते अज्ञानीज जाणवा. ॥ १४ ॥ हवे ते उपर दृष्टांत कहेछे. मिलक्खुअमिलक्खुस्स के० जेम म्लेछ आर्यनापानो अजाण थको अम्लेछ जे आर्य नापा तेने जहाचुत्ताणुनासए के० जेम नाषंतानी परे बोले परंतु ते एहेउंसेविआणाइं के० हेतु एटले परमार्थ कांइ जाणे नहीं, निःकेवल परमार्थ करी शून्य नासियंतणुनासए के० नाषाने केडे नाषे. ॥ १५ ॥ हवे ए दृष्टांत अज्ञानवादी साथे मेलवेछे. एवमन्नाणियाणाणं के० एरीते अज्ञानी सम्यक्ज्ञानरहित एवा श्रमण ब्राह्मणादिक पोतपोताना मतनुं ज्ञान प्रमाण करीने वयंताविसयंसयं के० पोतपोतानो मार्ग कहेछे पण ते निच्छयत्थंनयाणंति के० निश्चयार्थ नथी जाणता. मिलक्खुवअबोहिया के० ते म्लेछवत् एटले म्लेछनीपरे अबोधिक एटले ज्ञानरहित छे. ॥ १६ ॥

---

॥ दीपिका—नूयोप्यज्ञानवादिनां दोषमाह। (जेएतमिति)। ये एतं कर्मक्षयोपायं न जानंति मिथ्यादृष्टयोऽनार्यास्ते मृगाइव पाशबद्धाघातं विनाशमेष्यंति यास्यंत्यन्वेष यंतिवा तद्योग्यक्रियाकरणात्। अनंतशोनिरंतरम् ॥ १३ ॥ अज्ञानवादिनामेव दूषणांतर माह। (माहणाइति)। एके ब्राह्मणास्तथा श्रमणाः परिव्राजकाः सर्वे स्वकमात्मीयं ज्ञानं वदंति नच तानि सर्वेषां ज्ञानानि। अन्योन्यविरोधेन प्रवृत्तत्वात्। तस्मादज्ञानमेव श्रेयइत्याह। (सवेलोयेविति)। सर्वस्मिन् लोके ये प्राणाः प्राणिनस्ते किंचन स

म्यक् न जानंति ॥ १४ ॥ अथ दृष्टांतमाह । ( मिलक्कुइति ) । यथा म्लेछोऽनार्यः अ म्लेछस्य आर्यस्य यडक्तं नाषितं तदनुनाषते परमार्थशून्यं तन्नाषितमेवानुनाषते । नच हेतुं विजानाति ॥ १५ ॥ दार्ष्टांतिके योजयति ( एवमिति ) । एवमज्ञानिकाः स म्यक्ज्ञानरहिताः स्वकं स्वकमात्मीयं ज्ञानं प्रमाणत्वेन वदंतोपि निश्चयार्थं न जानंति । इव यथा म्लेछो निश्चयार्थमजानन् परोक्तमनुवदत्येवं तेप्यबोधिकाबोधरहिताः । ततोऽज्ञानमेव श्रेयइति ॥ १६ ॥

---

॥ टीका-नूयोप्यज्ञानवादिनां दोषाभिधित्सयाह । ( जेएयमित्यादि ) । ये अज्ञान पक्षं समाश्रिताएनं कर्मक्षपणोपायं न जानंति । आत्मीयाऽसद्ग्राहाऽग्रहग्रस्तामि थ्यादृष्टयोऽनार्यास्ते मृगाइव पाशबद्धाघातं विनाशमेष्यंति यास्यंत्यन्वेषयंति वा । त द्योग्यक्रियानुष्ठानात् । अनंतशोविछेदेनेत्यज्ञानवादिनोगताः ॥ १३ ॥ इदानीमज्ञानवादिनां दूषणोद्भिनावयिषया स्वन्नाग्यंत्रितावादिनोन चलिष्यंतीति तन्मताविष्करणायाह । ( मा हणाइत्यादि ) । एके केचन ब्राह्मणविशेषास्तथा श्रमणाः परिव्राजकविशेषाः सर्वेप्ये ते ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं हेयोपादेयार्थाऽविर्नावकं परस्परविरोधेन व्यवस्थितं स्वकमात्मीयं वदंति । नच तानि ज्ञानानि परस्परविरोधेन प्रवृत्तत्वात्सत्यानि । तस्मादज्ञानमेव श्रेयः किं ज्ञानपरिकल्पनयेत्येतदर्शयति । सर्वस्मिन्नपि लोके ये प्राणाः प्राणिनोन ते किंचना पि सम्यगुपेतवाचं जानंतीति विदंतीति ॥ १४ ॥ यदपि तेषां गुरुपारंपर्येण ज्ञानमायातं तदपि छिन्नमूलत्वादवितथं न नवतीति दृष्टांतद्वारेण दर्शयितुमाह । (मिलक्कुअमिलक्कु स्सेत्यादि ) । यथा म्लेछआर्यनाषानिज्ञोऽम्लेछस्यार्यस्य म्लेछनाषानिज्ञस्य यन्नापि तं तदनुनाषते अनुवदति केवलं न सम्यक्तदनिप्रायं वेत्ति यथाऽनया विवक्षयाऽने न नाषितमिति । नच हेतुं निमित्तं निश्चयेनासौ म्लेछस्तन्नाषितस्य जानाति । केवलं पर मार्थशून्यं तन्नाषितमेवानुनाषत इति ॥ १५ ॥ एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं योजयितुमा ह । ( एवमित्यादि ) । यथा म्लेछः अम्लेछस्य परमार्थमजानानः केवलं तन्नाषितानु नाषते । तथा अज्ञानकाः सम्यक्ज्ञानरहिताः श्रमणाब्राह्मणावदंतोपि स्वीयं स्वीयं ज्ञानं प्रमाणत्वेन परस्परविरुद्धार्थनाषणात् निश्चयार्थं न जानंति । तथाहि । ते स्वकी यं तीर्थकरं सर्वज्ञत्वेन निर्धार्य तडुपदेशेन क्रियासु प्रवर्तेरन् । नच सर्वज्ञविवक्षा अर्वा ग्दर्शिना ग्रहीतुं शक्यते । नासर्वज्ञः सर्वज्ञं जानातीति न्यायात् । तथाचोक्तं । सर्वज्ञोऽ साविति ह्येतत्तत्कालेपि बुभुत्सुभिः ॥ तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञान,रहितैर्गम्यते कथं ॥ १ ॥ ए वं परचेतोवृत्तीनां डुरन्वयत्वाडुपदेष्टुरपि यथावस्थितविवक्षया ग्रहणाऽसंनवान्निश्चया र्थमजानानाम्लेछवदपरोक्तमनुनाषंतएव । अबोधिकाबोधरहिताः केवलमित्यतोऽज्ञा

नमेव श्रेयइति । एवं यावद्यावज्ज्ञानाच्युपगमस्तावत्तावद्गुरुतरदोषसंनवः । तथाहि । यो वगह्नपादेन कस्यचित् शिरः स्पृशति तस्य महानपराधोनवति । यस्त्वनानोगेन स्पृशति तस्मै न कश्चिदपराध्यतीत्येवं चाज्ञानमेव प्रधाननावमनुनवति नतु ज्ञानमिति । १६ ॥

अन्नाणियाण वीमंसा, नाणे ण विनियछइ ॥ अप्पणो य परं नालं,
कुतो अन्नाणुसासिउं ॥ १७ ॥ वणे मूढे जहा जंतू, मूढे णेयाणुगामि
ए ॥ दोवि एए अकोविया, तिवं सोयं नियछइ ॥ १८ ॥ अंधो अंधं प
हं णिंतो, दूरमद्धाणु गछइ ॥ आवज्जे उप्पहं जंतु; अडुवा पंथाणु गा
मिए ॥ १९ ॥ एवमेगे णियायठी, धम्ममाराहगा वयं ॥ अडुवा अ
हम्ममावज्जे, ण ते सवज्जुयं वए ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥

अर्थ–हवे एने दोष देखाडेछे. जे एम कहेके, अज्ञानज नलुंछे; तेने अन्नाणियाण के० अज्ञानवादी कहिये. तेनी जे वीमंसा के० जाणवानी इछा, ते नाणे ण विनियछइ के० ज्ञानने विषे पहोंचे नहीं. कारण ते एम विचार करेछे के अज्ञानवडे अपराध करनारानो दोष स्वल्प छे, अने जाणनारने दोष घणो लागेछे. जेम कोइक मनुष्य मार्गे जतां जाणतो थकोज कोइकना मस्तकने पगे करीने फरशे. तोते महा अपराधनो पात्र थायछे. परंतु जो अजाणतां फरशे तोते स्वल्प अपराधी छे. ए कारण माटे अज्ञानपणुंज रुडुंछे, एवी जेनामां विचारणा छे. ते अज्ञानवादी जाणवा. ते अज्ञानवादी अप्पणोय कहेतां पोतानो आत्मा समजवानेज असमर्थ छे. तो परंनालं के० बीजाने कुतो अन्नाणुसासिउं के० बीजा अज्ञानी जनोने समजाववाने क्यां थी समर्थ थाय? अर्थात् नज थाय. ॥ १७ ॥ हवे एज अर्थ दृष्टांते करी दिपावेछे. वणे के० वन एटले अटवीने विषे, जहा के० जेम, कोइक मूढेजंतू के० दिशिमूढजीव ते दिशिने जाणवा असमर्थ थको मूढेणेयाणुगामिए के० अनेरा दिशिमूढने आगेवान करीने तेनी पाठल चाले ते समये दोविएए के० ते बन्ने जण, ते मार्गना अकोविया के० अजाण थका, तिवंसोयंनियछई के० तीव्र गहनमांहे पडे अर्थात् महाडुःख पामे. ॥ १८ ॥ वली बीजुं दृष्टांत कहेछे. अंधोअंधंपहंणिंतो के० जेम कोइएक पोते अंध छतां अनेरा अंधने मार्गे लेई जतो थको दूरमद्धाणुगछइ के० घणो दूर जईने आवज्जेउप्पहंजंतु के० ते अंध उन्मार्गे पडे; अडुवा के० अथवा पंथाणुगामिए के० अनेरे पंथे जाय पण वांछित मार्गे न जाय. एटले पोते उन्मार्गे पडतां पाठलाने पण उन्मार्गे पाडे. ॥१९॥ हवे ए दृष्टांत अज्ञानवादी साथे मेळवेछे. एवं के० ए अ

जाणता अंधनी पेठे नावमूढ एवा एगे के० कोइ एक परदर्शनी णियायद्दी के० मोक्ष ना अर्थी धम्ममाराहगावयं के० अमे धर्मना आराधक ठैये एम कही प्रव्रज्याने लईने अनेक ठकायनुं मर्दन करता थका, अहुवा के० अथवा अनेराने ठकायना आरंजनो उपदेश करता थका, अहम्ममावज्जे के० अधर्मज आचरे. परंतु णतेसवज्जुयंवए के० ते सर्व प्रकारे रुजु एटले सरल एवो मार्ग न पामे. एटले ते मोक्षने अर्थे यत्न करे प रंतु मोक्षनो मार्ग न पामे. ॥ २० ॥

॥ दीपिका—इदानीमेतद्दूषणायाह । (अन्नाणित्ति) अज्ञानिकानामज्ञानमेव श्रेयइति वादिनां योविमर्शोविचारस्स अज्ञानेऽज्ञानविषये न नियच्छति न युज्यते । यतोज्ञानं सत्यमसत्यं वेति विमर्शः । अज्ञानेन कृतेऽपराधे स्वल्पोदोषः ज्ञानेन कृते महान् इत्येवं नूतोविचारोपि तेषां न युज्यते । एवंविधविचारस्य ज्ञानरूपत्वादित्यज्ञानवादे विचारोन्न युज्यते । तथा आत्मनोपि परं प्रधानमज्ञानवादं शासितुमुपदेष्टुं नालं न समर्थाः । स्वयमज्ञत्वात् कुतोऽन्येषां शिष्याणामुपदेष्टुं समर्थानवेयुः ॥ १७ ॥ यथा ते आत्मनः परेषां च शिक्षणे ऽसमर्थास्तथा दृष्टांतेनाह (वणेत्ति) वनेऽरण्ये यथा कश्चिन्मूढोमूढं नेतारं प्रापकमनुगच्छत्याश्रयति तदा तौद्वावप्यकोविदौ मार्गाऽनिपुणौ संतौ तीव्रं स्रोतोगहनं शोकं वा नियच्छतः प्राप्नुतः ॥ १८ ॥ दृष्टांतांतरमाह । (अंधेति) यथा अंधः स्वयं अन्यमंधं पंथानं नयन् दूरमध्वानं वांछितमार्गादन्यं दूरं मार्गं गच्छति । तथा उत्प थमुन्मार्गमापद्यते जंतुः प्राणी अंधः । अथवा परं पंथानमनुगच्छेन्न वांछितं ॥ १९ ॥ दार्ष्टांतिकमर्थमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तार्थेन एके नावमूढानियागोमोक्षः सद्ध र्मोवा तदर्थिनस्ते किल वयं धर्माराधका इतिजानंतोऽधर्मं पापमेवापद्येरन् प्राप्नुवंति तथा ते सदनुष्ठानाआजीविकादयोगोशालकमतानुसारिणोऽज्ञानवादप्रवृत्ताः सर्वथा रु जुः सर्वज्जुः संयमः सद्धर्मोवा तं न व्रजेयुः न गच्छंति न प्राप्नुवंतीत्यर्थः । अथवा सर्व ज्जुकं सत्यमज्ञानांधान व्रजेयुः ॥ २० ॥

॥ टीका—एवमज्ञानवादिमतमनूद्येदानीं तद्दूषणायाह । (अन्नाणियाणमित्यादि) न ज्ञा नमज्ञानं तद्विद्यते येषां तेऽज्ञानिनः।अज्ञानशब्दस्योत्तरपदत्वाद्वा मत्वर्थीयः।यथा गौरखरव दरण्यमिति । यथा तेपामज्ञानिनामज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वादिनां योयं विमर्शः पर्यालोच नात्मकोमीमांसा वा मातुं परिच्छेत्तुमिच्छा साऽज्ञानेऽज्ञानविषये ( नणियच्छति ) न नि श्चयेन यच्छति नावतरति न युज्यतइतियावत् । तथाहि । यैवंनूता मीमांसा विमर्शोवा किमेतज्ज्ञानं सत्यमुताऽसत्यमिति । यथा अज्ञानमेव श्रेयोयथा यथाच ज्ञानातिशय स्तथा तथाच दोषातिरेकइति सोयमेवंनूतोविमर्शस्तेपां न बुध्यते । एवंनूतस्य पर्यालो

चनस्य ज्ञानरूपत्वादिति । अपिच तेऽज्ञानवादिनआत्मनोपि परं प्रधानमज्ञानवाद मिति शासितुमुपदेष्टुं नालं न समर्थास्तेपामज्ञानपक्षसमाश्रयणेनाऽज्ञत्वादिति कुतः पुनस्ते स्वयमज्ञाः संतोऽन्येपां शिष्यत्वेनोपगतानामज्ञानवादमुपदेष्टुमलं समर्थाभवेयु रिति । यदप्युक्तं छिन्नमूलत्वात् म्लेछानुजापणवत्सर्वमुपदेशादिकं तदप्ययुक्तं । यतोऽ नुजापणमपि न ज्ञानमृते कर्तुं शक्यते । तथा । यदप्युक्तं परचेतोवृत्तीनां डुरन्वयत्वाद ज्ञानमेव श्रेयइति तदप्यसत् । यतोनवतैवाज्ञानमेव श्रेयइत्येवं परोपदेशदानाभ्यु द्यतेन परचेतोवृत्तिज्ञानस्याभ्युपगमः कृतइति । तथाऽन्यैरप्यनाधि । आकारैरिंगितैर्गत्या चेष्टया नाषितेन च ॥ नेत्रवक्त्रविकारैश्च, गृह्यतेंतर्गतं मनः ॥ १४ ॥ तदेवं ते तपस्विनोऽ ज्ञानिनआत्मनः परेपां च शासने कर्तव्ये यथा न समर्थास्तथा दृष्टांतद्वारेण दर्शयितुमा ह । (वणेइत्यादि) वनेऽटव्यां यथा कश्चिन्मूढो जंतुः प्राणोदिक्परिछेदं कर्तुमसमर्थः स एवंनूतोयदा परं मूढमेव नेतारमनुगछति तदा ह्यावप्यकोविदौ सम्यक्ज्ञानाऽनिपुणौ संतो तीव्रमसह्यं स्रोतोगहनं शोकं वा नियछतोनिश्चयेन गछतः प्राप्नुतोऽज्ञानावृत त्वात् । एवं तेप्यज्ञानवादिनआत्मीयं मार्गं शोननत्वेन निर्धारयंतः परकीयं वा शोनन त्वेन जानानाः स्वयं मूढाः संतः परानपि मोहयंतीति ॥ १८ ॥ अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतांत रमाह । (अंधोअंधमित्यादि ।) यथा अंधः स्वयमपरमंधं पंथानं नयन् दूरमध्वानं वि वक्षितादध्वनः परतरं गछति तथोत्पथमापद्यते जंतुरंधः । अथवा परं पंथानमनुगछे न्न विवक्षितमेवाध्वानमनुयायादिति ॥१९॥ एवं दृष्टांतं प्रसाध्य दार्ष्टांतिकमर्थं दर्शयितुमा ह । (एवमेगेनियायठित्ति ।) एवमिति पूर्वोक्तोर्थोपप्रदर्शने । एवं नावमूढानावांधाश्चैके आजीविकादयः (नियायठित्ति) । नयोमोक्षः सद्धर्मोवा तदर्थिनस्ते किल वयं सद्धर्मारा धकाइत्येवं संधाय प्रव्रज्यायामुद्यताः संतः पृथिव्यंबुवनस्पत्यादिकायोपमर्दैन पचनपा चनादिक्रियासु प्रवृत्ताः संतस्तत्स्वयमनुतिष्ठन्त्यन्येषां चोपदिशंति येनाऽनिप्रेताधर्मो ह्यायासैप्रेप्स्यंति । अथवा तावन्मोक्षानावस्तमेवं प्रवर्तमानाअधर्मं पापमापद्येरन् । सं नावनायामुत्पन्नेन लिङ्प्रत्ययेनैतद्दर्शयति । एतदपरं तेपामनर्थांतरं संनाव्यते । यद्युत विवक्षितार्थानावतया विपरीतार्थावाप्तेः पापोपादानमिति । अपिच तएवमसदनुष्ठायि नआजीविकादयोगोशालकमतानुसारिणोऽज्ञानवादप्रवृत्ताः सर्वैः प्रकारैर्ऋजुः प्रगुणो विवक्षितमोक्षगमनंप्रत्यकुटिलः सर्वर्जुसंयमः सद्धर्मोवा तं सर्वर्जुकं ते न व्रजेयुर्न प्रा प्नुयुरित्युक्तं नवति । यदि वा सर्वर्जुकं सत्यं तत्तेऽज्ञानांधाज्ञानाऽपलापिनोन वदेयुरि ति । एते चाज्ञानिकाः सप्तषष्टिनेदानवति । तेच नेदाअमुनोपायेन प्रदर्शनीयाः । तद्यथा । जीवादयोनव पदार्थाः । सत्, असत्, सदसत्, अवक्तव्यः, सदवक्तव्यः, असदवक्तव्यः, सदसदवक्तव्यइत्येतैः सप्तनिः प्रकारैर्विज्ञातुं न शक्यंते नच विज्ञातैः प्रयोजनमस्ति । ना

वना चेयं। सन् जीवइति कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन । असन् जीवइति को वेत्ति किंवा तेन ज्ञातेनेत्यादि । एवमजीवादिष्वपि प्रत्येकं सप्त विकल्पाः। नव सप्तकास्त्रिपष्टिः । अमी चान्ये चत्वारस्त्रिपष्टिमध्ये स्थाप्यंते । तद्यथा । सती नावोत्पत्तिरिति को जानाति किंवाऽन यां ज्ञातयां। एवमसती सदसदवक्तव्यतानावोत्पत्तिरिति को जानाति किंवाऽनयाज्ञातयेति। शेषविकल्पत्रयं तूत्पत्त्युत्तरकालं पदार्थावयवापेक्षमतोत्र न संनवतीति नोक्तं। एतच्चतुष्टय प्रक्षेपात्सप्तपष्टिर्नवति। तत्र सन् जीवइति को वेत्तीत्यस्यायमर्थोन कस्यचिद्विशिष्टं ज्ञानम स्ति " योऽतींद्रियान् जीवादीनवजोत्स्यते । नच तैर्ज्ञातैः किंचित्फलमस्ति । तथाहि । य दि नित्यः सर्वगतोऽमूर्तोज्ञानादिगुणोपेतएतद्गुणव्यतिरिक्तोवा ततः कतमस्य पुरुषा र्थस्य सिद्धिरिति तस्मादज्ञानमेव श्रेयइति ॥ २० ॥

एवमेगे वियक्काहिं, नोअन्नं पज्जुवासिया ॥ अप्पणोय वियक्काहिं, अय मंजूहिं डुम्मई ॥ २१ ॥ एवं तक्काइ साहिंता, धम्माधम्मे अकोविया ॥ डुक्खं ते नाइतुट्टंति, सउणी पंजरं जहा ॥ २२ ॥ सयं सयं पसंसंता, गरहंता परं वयं ॥ जे उ तत्त विउस्संति, संसारं ते विउस्सिया ॥२३॥ अ हावरं पुरस्कायं, किरियावाइदरिसणं ॥ कम्मचिंतापणठाणं, संसरा स्स पवहूणं ॥ २४ ॥

अर्थ—वली ग्रंथकार कहेछे. एवं के०एरीते एगे के० कोइएक अज्ञानी परवादी विय क्काहिं के० वितर्के करी, पोतानी कल्पित कल्पनाए असत्यने सत्य करी मानता थका नोअन्नंपज्जुवासिया के० अनेरा साचा होय तोपण तेने पर्युपाशे नहीं. एटले सेवे न हीं. किंतु अप्पणोयवियक्काहिं के० पोतानाज वितर्के करी एवुं कहे जे ए अयमंजूहिं के० अमारो मार्गज ऋजु एटले सरल अकुटिल छे, इत्यादिक कहेछे. तेमाटे ते डुम्म ई के० डुर्मति विपरीतबुद्धिवाला छे. केमके ते सन्मार्गथी उपरांग वर्तेछे. अने विप रीत मार्गने सन्मुख छे. तेथी ते विपरीतबुद्धिवाला जाणवा. ॥ २१ ॥ हवे ज्ञानवादी ते अज्ञानवादीनो अनर्थ प्रगट देखाडेछे. एवं के० ए पूर्वोक्त न्यायें तक्काइसाहिंताके० तर्के करी एटले पोतानी कल्पनायें मोक्षमार्गने कहेतां थका अष्ट प्रकारे जे कर्मनो बंध तेने त्रोडी न शके, ते केवाछे, धम्माधम्मे के० धर्म जे क्षांत्यादिक दशविध अने अधर्म जे हिंसादिक पांच आश्रव तेने विषे अकोविया के० अकोविद एटले अजाणछे अर्थात् ते धर्मअधर्मने जाणता नथी. डुक्खंतेनाइतुट्टंति के० ते पोतानां डुःखने शी रीते त्रोडे ते उपर दृष्टांत कहेछे. ते जहा के० जेम सउणी के० शकुनी एटले पक्षी

ते पंजरं के० पंजरमांहे पडयुं थकुं पांजराने त्रोडीने पोताने मूकावी शके नहीं. तेम ए अज्ञानवादी पण पोताने संसारपंजरथकी मूकावी शके नहीं एम जाणवुं. ॥ २२ ॥ हवे सामान्याकारे एकांत मतिने दूषण करेछे सयंसयंपसंसंता के०सर्व दर्शनी पोतपोतानुं दर्शन प्रशंसतां अने परंवयं के० पारकां वचनने गरहंता के० निंदतां जेउ के० जे तछ के०त्यां एरीते विउस्संति के० पोतानुं विद्वांस एटले पंम्ति पणुं देखाडेछे. ते के० ते एवां वचनना बोलनार संसार के० चतुर्गतिक संसारमांहे विउस्सिया के० विशेषे बांध्या छतां अनंतो काल तछ के० त्यांज रहे. ॥ २३ ॥ एटले अन्नाणवाईया के० अज्ञानवादी कह्या. हवे क्रियावादीनो मत कहेछे. अह के० अथ एटले हवे अवरं.के० अपर एटले अज्ञानवादीना मतथकी अनंतर पुरस्कार्य के० पूर्वे कह्युं. एवुं किरियावाइदरिसणं के० क्रियावादीनुं दर्शन, ते क्रियावादी केवाछे, कम्मचिंतापणढाणं के० कर्मचिंताप्रनष्ट एटले कर्म जे ज्ञानावरणीयादिक तेने विषे चिंता एटले आलोचवुं ते थकी प्रनष्ट थयेला एटले ते कर्मबंधनो परमार्थ जाणे नहीं तेथी तेनुं दर्शन निःकेवल संसारस्सपवढ्ढणं के० संसारनुं वधारनार जाणवुं. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—दूषणांतरमाह । ( एवमिति ) । एवं पूर्वोक्तनीत्या एकेऽज्ञानवादिनोवितर्कानिर्मीमांसानिः स्वमतिकल्पनाभिः परमन्यं जैनादिकं न पर्युपासते न सेवंते स्वमतमेव श्रेयइति ज्ञात्वा तदेव सेवंते नान्यं ज्ञानादिवादिनं । तथा (अप्पणोत्ति) । आत्मीयैर्वितर्कैः सुविचारैरयमस्मदीयोमार्गोऽञ्जुर्निर्दोषत्वाद्व्यक्तः स्पष्टऋजुर्वा प्रगुणोऽकुटिलः । हियस्मात्ते दुर्मतयस्ततएव एवमाहुः ॥ २१ ॥ पुनस्तेषामेव दोषमाह । ( एवमिति ) । एवं पूर्वोक्तन्यायेन तर्कया स्वकल्पनया साधयंतोवदंतोधर्माधर्मयोरकोविदाङः खं ते नातित्रोटयंति नातिशयेनापनयंति । यथा शकुनिः पंजरं । पक्षी पंजरस्थो यथा पंजरं त्रोटयितुं बंधनादात्मानं मोचयितुं न समर्थएवमसावपि संसारपंजरादात्मानं मोचयितुं नालं ॥ २२ ॥ अथैकांतवादिमतं दूषयन्नाह । ( सयमिति ) । स्वकं स्वकं आत्मीयमात्मीयं मतं प्रशंसंतः परकीयां वाचं गर्हंतोनिंदंतः । यथा सांख्यानित्यवादिनोबौद्धं क्षणिकवादिनं निंदंति तेपि सांख्यान् । एवमन्येपि ज्ञेयाः । एवमेकांतवादिनो ये । तुरवधारणे । तत्र तेष्विव स्वमतेषु विद्वस्यंते विद्वांसइवाचरंति ते संसारं व्युश्रिताः विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन श्रिताः संसारे संबद्धाउषिताः स्युः ॥ २३ ॥ अथ क्रियावादिमतमाह । ( अथेति ) । अथापरं पूर्वमाख्यातं पूर्वसूचितं क्रियावादिदर्शनं । किंभूताः क्रियावादिनइत्याह । ( कम्मचिंतत्ति ) । कर्मणि ज्ञानावरणादिके चिंता कर्मचिंता ततः प्रनष्टाअपगताः । यतस्ते चतुर्विधं कर्मबंधं नेछंति ततः कर्मचिंताप्रणष्टास्तेषामिदं मतं संसारस्यप्रवर्धनं स्यात् ॥ २४ ॥

॥ टीका–पुनरपि तद्दूषणाभिधित्सयाऽऽह । ( एवमित्यादि )। एवमनंतरोक्तया नीत्या एके केचनाऽज्ञानिका वितर्काभिर्मीमांसाभिः स्वोत्प्रेक्षिताभिरसत्कल्पनाभिः परमन्यमार्हतादिकं ज्ञानवादिनं न पर्युपासंते न सेवंते स्वावलेपग्रहग्रस्तावयमेवतत्त्वज्ञानाभिज्ञानपरः कश्चिदित्येवं नान्यं पर्युपासंतइति । तथात्मीयैर्विकल्पैरेवमभ्युपगतवंतोयथाऽयमेवास्मदीयोऽज्ञानमेव श्रेयइत्येवमात्मकोमार्गः। अंजूरिति।निर्दोषत्वा द्व्यक्तः स्पष्टः परैस्तिरस्कर्तुमशक्यऋजुर्वा प्रगुणोऽकुटिलः । यथावस्थितार्थाभिधायित्वात् । किमिति एवमभिदधति । हिर्यस्मादर्थे । यस्मात्ते इमेतयोविपर्यस्तबुद्धयइत्यर्थः ॥ ११ ॥ सांप्रतमज्ञानवादिनां ज्ञानवादिनां स्पष्टमेवाऽनर्थाभिधित्सयाह । (एवं तक्काइइत्यादि ) एवं पूर्वोक्तन्यायेन तर्कया स्वकीयविकल्पनया साधयंतः प्रतिपादयंतोधर्मे क्षांत्यादिके अधर्मे च जीवोपमर्दादिके पापेऽकोविदाअनिपुणाडुःखमसातोदयलक्षणं तद्धेतुं वा मिथ्यात्वाद्युपचितकर्मबंधनं नातित्रोटयंति अतिशयेनैतद्व्यवस्थितं ।तथा ते न त्रोटयंत्यपनयंतीति।अत्र दृष्टांतमाह ।यथा पंजरस्थः शकुनिः पंजरं त्रोटयितुं पंजरबंधनादात्मानं मोचयितुं नालमेवमसावपि संसारपंजरादात्मानं मोचयितुं नालमिति ॥१२॥ अधुना सामान्येनैकांतवादिमतदूषणार्थमाह । ( सयंसयमित्यादि ) स्वकं स्वकमात्मीयं च दर्शनमभ्युपगतं प्रशंसंतोवर्णयंतः समर्थयंतोवा । तथा गर्हमाणाभिंदंतः परकीयां वाचं । तथाहि । सांख्याः सर्वस्याविर्भावतिरोभाववादिनः सर्वं वस्तु क्षणिकं निरन्वयनिरीश्वरं वेत्यादिवादिनोबौद्धान् दूषयंति तेपि नित्यस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरहात् सांख्यान् । एवमन्येपि इष्टव्या इति । तदेवं यएकांतवादिनः।तुरवधारणे भिन्नक्रमश्च। तत्रैव तेष्वेवाऽत्मीयात्मीयेषु दर्शनेषु प्रशंसां कुर्वाणाः परवाचं च विगर्हमाणाविद्व्यंते विद्वांसइवाऽऽचरंति तेषु वा विशेषेणोशंति स्वशास्त्रविषये विशिष्टं युक्तिव्रातं वदंति । तेचैवं वादिनः संसारं चतुर्गतिभेदेन संसृतिरूपं विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन श्रिताः संबद्धाः । तत्र वा संसारे उषिताः संसारांतर्वर्तिनः सर्वदा भवंतीत्यर्थः ॥ १३ ॥ सांप्रतं यदुक्तं निर्युक्तिकारेणोद्देशकार्थाधिकारे कर्मचयं न गच्छति चतुर्विधं भिक्षुसमयइति तदधिकृत्याह । ( आहावरमित्यादि ) । अथेत्यानंतर्ये । अज्ञानवादिमतानंतरमिदमन्यत् पुरा पूर्वमाख्यातं कथितं । किंपुनस्तदित्याह ।क्रियावादिदर्शनं। क्रियैव चैत्यकर्मादिका प्रधानं मोक्षांगमित्येवं वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनस्तेषां दर्शनमागमं क्रियावादिदर्शनं ॥ किंभूतास्ते क्रियावादिनइत्याह। कर्मणि ज्ञानावरणादिके चिंतापर्यालोचनं कर्मचिंता तस्याः प्रणष्टाअपगताः कर्मचिंताप्रणष्टाः। यतस्ते अविज्ञानाद्युपचितं चतुर्विधं कर्मबंधं नेच्छंत्यतः कर्मचिंताप्रणष्टास्तेषां चेदं दर्शनं डुःखस्कंधस्यासातोदयपरंपराया विवर्धनं भवति । क्वचित्संसारवर्धनमिति पाठः । तेह्येवं प्रतिपद्यमानाः संसारस्य वृद्धिमेव कुर्वंति नोच्छेदमिति ॥ १४ ॥

जाणं काएण णाउट्टी,अबुहो जं च हिंसति ॥ पुट्ठो संवेदइ परं,अविय तं खु सावज्जं ॥ २५॥ संति मे तउ आयाणा, जेहिं कीरइ पावगं ॥ अभिकम्माय पेसाय, मणसा अणुजाणिया ॥ २६॥ एते उ तउ आयाणा, जेहिं कीरइ पावगं ॥ एवं भावविसोहीए, निव्वाणमभिगच्छइ ॥ ॥ २७॥ पुत्तं पिया समारप्न, आहारेज्ज असंजए ॥ भुंजमाणो य मेहावी, कम्मणा नो विलप्पइ ॥ २८ ॥

अर्थ-जे कारणे ते कर्मचिंता थकी प्रनष्ट ठे, ते उपर देखाडेठे. जाणंकाएणणाउट्टी के० जे पुरुष जाणतो थको प्राणीउने हणे एटले जे पुरुष क्रोधे चड्यो थको मनने व्यापारे प्राणीनो घात करे परंतु कायाये करी अनाकुट्टी एटले कायाये करी प्राणीना अवयवना ठेदनभेदनना व्यापारे प्रवर्त्ते नहीं तेने कर्मबंध न लागे. तथा जंचके० जे पुरुष अबुहोके० अजाणतो थको एकली कायाना व्यापारेज, हिंसतिके० प्राणीउनी हिंसा करे तेने पण कर्म लागे नहीं तथा एवा एकला मनना व्यापारे अथवा एकला कायाना व्यापारे जो कर्म लागे तो पुट्ठोके० ईषत्मात्र फरश्यो थको स्पर्शरूपेज कर्म जोगवे, परंके० परंतु एनो अधिक विपाक नथी. केमके खुके० निश्चे सावज्जंके० ते सावद्य एटले पाप ते केवुंठे, तो के अवियत्तंके० अव्यक्तमात्र ठे एटले अस्पष्ट ठे, सिकता मुष्टिवत् ठे एटले जेम वेलुनी मुट्ठी जींतने सन्मुख नांखी ठतां स्पर्श मात्र करी पाठी पडे; पण ते जींतने कांइ लागी रहे नहीं. तेम ए कर्मनो बंध जाणवो, एम क्रियावादी कहेठे. ॥ २५ ॥ हवे कर्मनो बंध पूरण केम थाय एटले कर्मनो उपचय केम थाय ते कहेठे. मेतउ के० ए त्रण आयाणा के० आदान एटले कर्मबंधननां कारण संति के० ठे. जेहिं किरइपावगंके० जेणे करी पाप करीयें ते देखाडेठे. अभिकम्मायके० अभिमुख चित्तमांहे जाणीने जे स्वयमेव एटले पोते जीवने हणे तथा तेने हणवालुं मन करे के हुं एनो विनाश करुं ए पहेलुं कर्म बंधननुं कारण जाणवुं. तथा ते जीवनो विनाश करवाने अर्थे पेसाय के० अन्यने आदेश आपी तेनोविनाश करावे ए बीजुं कर्मबंधनुं कारण जाणवुं. अने मणसाअणुजाणियाके० बीजो कोई जीवनो विनाश करतो होय तेने मने करी अनुमोदे, ए त्रीजुं कर्मबंधनुं कारण जाणवुं. ॥ २६ ॥ हवे ए त्रण कारणे करी उपार्ज्यु कर्म अधिक बंधाय ते कहेठे. एतेउतउआयाणाके० निश्चे पूर्वोक्त ए त्रण कर्म बंधनां कारणठे; ए त्रण एकठां मले तो निबिड कर्म बंधाय एरीते जेहिंके० जे छुष्टअध्यवसायेकरी कीरइपावगंके० पाप उपचयरूप करे. एवंके० एणीते ए त्रण प्रकारे प्राणीघातने विषे प्रवर्त्ते नहीं अने भावविसोहीएके० भावनी विशुद्धि होय. एतावता रागद्वेष

विना यद्यपि कांई मने करी तथा कायाये करी प्राणिघात थाय. तोपण तेने नावनी विशुद्धियें कर्मबंध न लागे ते कर्मबंधने अनावे निवाणमनिगच्छइ के० निर्वाणपदें पहो चे. एटले मुक्ति पामे एम परवादी कहेछे. ॥२७॥ ए उपर दृष्टांत कहेछे. पुत्तंपियासमा रप्नके० बाप दीकरानो विनाश करी तेनुं मांस आहारने अर्थें कोइक आपत्कालने विषे, आहारेज्जअसंजएके० असंयत जे गृहस्थ ते रागद्वेषरहित थको पुत्रना मांसने आहारे तथा मेधावीके० पंमितपण एटले संयती दीक्षित ते पण ते मांसनो चुंजमाणो के० आहार करतो थको जो शुद्ध अध्यवसाय छे. तो कम्मणानोविलिप्पई के० कर्में लेपातो नथी तेम बीजो प्राणी पण रागद्वेषरहित कर्तो थको कर्में करी बंधातो नथी. ॥ २८ ॥

॥ दीपिका–कर्मचिंतानष्टलमेवाह ॥ जानन् यः प्राणिनोहिनस्ति कायेनशरीरेणच नाकु ट्टी अहिंसकः । कोर्थः । कोपादेर्निमित्तात्मनोव्यापारेण जीवान् हंति न कायेन तस्याऽनवद्यं कर्मोपचयोन स्यादित्यर्थः । तथा अबुधोऽजानन् कायेन हिनस्ति तस्यापि मनोव्यापारा नावान्न कर्मबंधः । ( पुठोत्ति ) । तेन कर्मणा असौ केवलमनोव्यापारकृतेन केवलका यक्रियोत्थेन वा स्पृष्टएव संवेदयति स्पर्शमात्रेणैव तत्कर्मानुनवति न तस्याधिको विपाकः स्पर्शानंतरमेव परिशटतीत्यर्थः । एवं तत्सावद्यं कर्माऽव्यक्तमेव न स्पष्टं ॥ २५ ॥ कथं तर्हि कर्मोपचयः स्यादित्याह । ( संतिमे ) । संत्यमूनि त्रीण्यादानानि कर्मोपादा नानि । यैः पापकर्म क्रियते तान्याह । अनिक्रम्य सन्मुखं गत्वा स्वयं हंति १ परं प्रे ष्य यत्कारयति २ कुर्वंतं वाऽनुजानातीति ३ एतत्कर्मोपादानत्रयं । अयं नावः । केवलं म नसा शरीरेण वा न कर्मबंधः किंतु यत्र स्वयंकृतकारितानुमतयः क्लिष्टाध्यवसायश्च तत्रैव कर्मबंधः ॥ २६ ॥ एतदेव दर्शयति । तुरवधारणे । एतान्येव त्रीणि व्यस्तानि समस्तानि कर्मोपादानानि यैः पापं कर्म क्रियते । एवं सति यत्र कृतकारितानुमतयः प्राणिहिंसायां न संति तत्र नावविशुध्या रागद्वेषरहितबुध्या प्रवर्तमानस्य सत्यपि प्राणातिपाते केवलेन म नसा मनोव्यापाररहितेन कायेन उनयेन वा विशुद्धबुद्धेर्न कर्मबंधस्तदनावान्निर्वाणम निगच्छति प्राप्नोति ॥ २७ ॥ नावशुध्या प्रवर्तमानस्य हिंसायामपि कर्मबंधो न स्यादि त्यत्रार्थे दृष्टांतमाह । ( पुत्तंति ) । पिता पुत्रं समारभ्य व्यापाद्य आहारार्थं कस्यां चित्त थाविधायामापदि रागद्वेषरहितोऽसंयतोगृहस्थस्तन्मांसं चुंजानोपि । चशब्दोप्यर्थे । मेधा वी संयतोपि चुंजानः कर्मणा नोपलिप्यते । यथा पितुः पुत्रं व्यापादयतोपि शुद्धमन सः कर्मबंधोन स्यात्तथा तस्यारक्तद्विष्टस्य प्राणिवधे न कर्मबंधः ॥ २८ ॥ ॥

॥ टीका–यथा च ते कर्मचिंतातोनष्टास्तथा दर्शयितुमाह ।(जाणंकायेणणाउट्टीत्यादि)।यो हि जानन्नवगच्छन् प्राणिनोहिनस्ति कायेन चाऽनाकुट्टी । कुट्टछेदने । आकुट्टनमाकुट्टः सवि

यते यस्यासावाकुट्टी नाकुट्टयत्यनाकुट्टी॥ इदमुक्तं भवति। योहि कायादेर्निमित्तात् केवलं मनोव्यापारेण प्राणिनोव्यापादयति नच कायेन प्राण्यवयवानां छेदनभेदनादिके व्यापारे वर्त्तते न तस्याऽवद्यं। यस्य कर्मोपचयोन भवतीत्यर्थः। तथाऽबुधोऽजानानः कायव्यापारमात्रेण यंच हिनस्ति प्राणिनं तत्रापि मनोव्यापाराभावान्न कर्मोपचयइति। अनेन च श्लोकार्धेन यडुक्तं निर्युक्तिकृता। यथा चतुर्विधं कर्म नोपचीयते भिक्षुसमयइति। तत्र परिज्ञोपचितमविज्ञोपचिताख्यं भेदद्वयं साक्षादुपात्तं। शेषं त्वीर्यापथस्वप्नांतिकभेदद्वयं च शब्देनोपात्तं। तत्रेरणमीर्या गमनं तत्संबद्धः पंथाईर्यापथस्तत्प्रत्ययं कर्मेर्यापथं। एतदुक्तं भवति। पथि गच्छतोयथाकथंचिदनभिसंधेर्यत्प्राणिव्यापादनं भवति कर्मणश्चयोन भवति तथा स्वप्नांतिकमिति। स्वप्नएव लोकोक्त्या स्वप्नांतः सविद्यते यस्य तत्स्वप्नांतिकं तदपि न कर्मबंधाय। यथा स्वप्ने भुजिक्रियायां तृप्त्यभावस्तथा कर्मणोपीति। कथं तर्हि तेषां कर्मोपचयोभवतीत्युच्यते। यद्यसौ हन्यमानः प्राणी भवति हंतुश्च यदि प्राणीत्येवं ज्ञानमुत्पद्यते तथैनं हन्मीत्येवं च यदि बुद्धिः प्रादुःष्यादेतेषु च सत्सु यदि कायचेष्टा प्रवर्त्तते तस्यामपि यद्यसौ प्राणी व्यापाद्यते ततोहिंसा ततश्च कर्मोपचयोभवतीत्येषामन्यतराभावेपि न हिंसा नच कर्मचयः। अत्र च पंचानां पदानां द्वात्रिंशद्भंगाभवंति। तत्र प्रथमभंगे हिंसकोऽपरेष्वेकत्रिंशत्स्वहिंसकः। तथाचोक्तं। प्राणी प्राणिज्ञानं, घातकचित्तं च तद्गता चेष्टा॥ प्राणैश्च विप्रयोगः पंचभिरापद्यते हिंसा॥ १॥ किमेकांतेनैव परिज्ञोपचितादिना कर्मोपचयो न भवत्येव काचिदव्यक्तिमात्रेति दर्शयितुं श्लोकपश्चार्धमाह। पुठोत्ति। तेन केवलमनोव्यापाररूपपरिज्ञोपचितेन केवलकायक्रियोद्भेदेन वाऽविज्ञोपचितेनेर्यापथेन स्वप्नांतिकेन च चतुर्विधेनापि कर्मणा स्पृष्टईषत्स्पृष्टःसंस्तत्कर्माऽसौ स्पर्शमात्रेणैव परमनुभवति न तस्याधिकोविपाकोस्ति। कुड्यापतितसिकतामुष्टिवत्स्पर्शानंतरमेव परिशटतीत्यर्थः। अतएव तस्य चयाभावोऽभिधीयते न पुनरत्यंताभावइति। एवंच कृत्वा तदव्यक्तमपरिस्फुटं। खुरवधारणे। अव्यक्तमेव स्पष्टविपाकानुभवाभावात्। तदेवमव्यक्तं सद्वावद्येन गर्ह्येण वर्त्तते तत्परिज्ञोपचितादिकर्मेति॥ २५॥ ननु च यद्यनंतरोक्तं चतुर्विधं कर्म नोपचयं याति कथं तर्हि कर्मोपचयोभवतीत्येतदाशंक्याह। (संतिमेइत्यादि)। संति विद्यंते अमूनि त्रीणि आदीयते स्वीक्रियते अमीभिः कर्मेत्यादानानि। एतदेव दर्शयति। यैरादानैः क्रियते विधीयते निष्पाद्यते पापकं कल्मषं तानि चामूनि। तद्यथा। अभिक्रम्येत्याभिमुख्येन वध्यं प्राणिनं क्रांत्वा तद्घाताभिमुखं चित्तं विधाय यत्र स्वतएव प्राणिनं व्यापादयति तदेकं कर्मादानं। तथाऽपरं च प्राणिघाताय प्रेष्यं समादिश्य यत्प्राणिव्यापादनं तद्द्वितीयं कर्मादानमिति। तथाऽपरं व्यापादयंतं मनसाऽनुजानीतइत्येतत्तृतीयं कर्मादानं। परिज्ञोपचितादस्यायं भेदः। तत्र केवलं मनसा

चिंतनमिह त्वपरेण व्यापाद्यमाने प्राणिन्यनुमोदनमिति ॥ २६ ॥ तदेवं यत्र स्वयं कृतकारितानुमतयः प्राणिघाते क्रियमाणे विद्यंते क्लिष्टाध्यवसायस्य प्राणातिपातश्च तत्रैव कर्मोपचयोनान्यत्रेति दर्शयितुमाह ।(एए उइत्यादि) तुरवधारणे। एतान्येव पूर्वोक्तानि त्रीणि व्यस्तानि समस्तानि वा आदानानि यैर्डुष्टाध्यवसायव्यपेक्षैः पापकं कर्मोपचीयतइति । एवंच स्थिते यत्र कृतकारितानुमतयः प्राणिव्यपरोपणं प्रति न विद्यंते। तथा नावशुध्या अरक्तद्विष्टबुध्या प्रवर्तमानस्य सत्यपि प्राणातिपाते केवलेन मनसा कायेन वा मनोनिसंधिरहितेनोनयेन वा विशुद्धबुद्धेर्नकर्मोपचयस्तदनावाच्च निर्वाणं सर्वद्वंद्वोपरतिनावमनिगछत्यानिमुख्येन प्राप्नोतीति ॥ २७ ॥ नावशुध्या प्रवर्तमानस्य कर्मबंधोन नवतीत्यत्रार्थे दृष्टांतमाह । ( पुत्तंपियाइत्यादि ) पुत्रमपत्यं पिता जनकः समारन्य व्यापाद्याहारार्थं कस्यांचित्तथाविधायामापदि तडद्धरणार्थमरक्तद्विष्टोऽसंयतोगृहस्थस्तत्पिशितं नुंजानोपि चशब्दस्यापिशब्दार्थत्वादिति । तथा मेधाव्यपि संयतोपीत्यर्थः । तदेवं गृहस्थो निक्षुर्वा शुद्धाशयः पिशिताश्यपि कर्मणा पापेन नोपलिप्यते नाश्लिष्यतइति । यथात्रात्र पितुः पुत्रं व्यापादयतस्तत्रारक्तद्विष्टमनसः कर्मबंधो न नवति तथान्यस्याप्यरक्तद्विष्टांतःकरणस्य प्राणिवधे सत्यपि न कर्मबंधोनवतीति ॥ २८ ॥

मणसा जे पउस्संति,चित्तं तेसिं ण विज्जइ ॥ अणवज्जमतहं तेसिं, ण ते संवुमचारिणो ॥२९॥ इच्चेयाहिं य दिठीहिं, सातागारवणिस्सिया ॥ सरणंति मन्नमाणा, सेवंती पावगं जणा ॥ ३० ॥ जहा अस्साविणिं णावं, जाइ अंधो डुरूहिया ॥ इच्छई पारमागंतुं, अंतराय विसीयई ॥ ३१ ॥ एवं तु समणा एगे, मिछदिठी अणारिया ॥ संसारपारकंखी ते, संसारं अणुपरियटंतित्तिबेमि ॥ ३२ ॥ इति प्रथमाध्ययने द्वितीयोद्देशकः ॥

अर्थ–हवे एने उत्तर कहेछे. मणसाजे पउस्संतिके० जे कोई पुरुष कोईक कारण उत्पन्न थया थकी मने करी द्वेष करे, चित्तंतेसिंणविज्जइ के० तेनुं चित्त शुद्ध केवी रीते थशे? अर्थात् नहीं थशे; कारणके ते दर्शनीये एम कह्युं के, अणवज्जमतहंतेसिं के० एकला मनना व्यापार थकी कर्म न लागे. ते एवुं तेनुं बोलवुं मिथ्याछे. जेमाटे ते एकले मनने अशुद्धपणे णतेसंवुमचारिणो के० ते संवृतचारी नहीं एटले संवुडचारी थको संवरमां प्रवर्त्तनार नथी. केमके कर्मबंधनी वेलायें मुख्य कारणतो मनजछे. माटे जो तेने व्यापारेज कर्मबंध न थाय, तो पछी बीजा कया कारणे कर्मबंध थाय? ते माटे पुत्रपिता ए दृष्टांत योग्य नथी. ॥ २९ ॥ हवे ए क्रियावादीने अनर्थपरंपरा देखाडे

छे. इच्चेयाहिं के० इत्यादिक ए पूर्वोक्त एवी दिछीहिं के० ज्ञानदृष्टीना अंगीकारे करीने ते वादी सातागारवणिस्सिया के० सातागारवे निश्रित एटले आसक्त अर्थात् सुखशी लीया एवा थका, ते क्रियाना करनार जेवो सदोष निर्दोष आहार पामे तेना भोगवना र एवा छतां ते पोतानुंज दर्शन सरणंतिमन्नमाणाके० संसारथकी उद्धरवासमर्थछे. एवुं माणा एटले मानता थका, सेवंतीपावगं के० ते विपरीत अनुष्ठाने करी हिंसादिक पा पज सेवेछे, तेमाटे यद्यपि ते व्रतधारी छे, तथापि ते अनेरा पामर एवा जणाके० लो क तेना सरखा जाणवा. ॥ ३० ॥ एहिज अर्थ दृष्टांते कहेछे. जहा के० जेम अस्सा विणिं के० छिद्रसहित एवी णावं के० नाव तेने विषे जाइअंधो के० जातिअंध एट ले जन्मांध पुरुष दुरुहिया के० चडीने इछईपारमागंतुं के० पार पामवा वांछे परंतु पार पामे नहीं, किंतु अंतराय के० अंतराले एटले वचमांहेज ते विसीयई के० बुडी जाय इत्यर्थः ॥ ३१ ॥ हवे ए दृष्टांत दर्शनीउं साथे मेलवेछे. जेम सछिद्रनावे चड्यो थको अंध पुरुष पार पोहोचे नहीं एवंतुसमणाएगे के० तेनीपेरे कोइएक शाक्यादिक श्रमण ते मिछदिछीअणारिया के० मिथ्यादृष्टी एटले जिनप्रणीत धर्मथकी विपरीत दृष्टि तथा अनारिया एटले अनाचारी संसारपारकंखीते के० ते पोताना दर्शनने अनु रागे संसारनो पार पामवाने वांछे छे, परंतु ते संसारंअणुपरियट्टंति के० संसारमांहेज परावर्तन घचन घोलन इत्यादिक अनंत कालसुधी पामे. ॥ ३२ ॥ एम श्रीमहावीर देवे कह्युं इति के० एम हुं पण तुजने कहुंछुं. एरीते श्रीसुधर्मास्वामिये पोताना शिष्य श्रीजंबुस्वामी प्रत्ये कह्युं. इति प्रथम समयाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः। ए उद्देशे करी ससमय परसमयनी प्ररूपणा करीछे.

---

॥ दीपिका—एतद्दूषयन्नाह । ( मणसेति )। ये कुतोपि हेतोर्मनसा प्रडुष्यंति प्रद्वेषयं ति तेषां वधपरिणतानां शुद्धं चित्तं न विद्यते । एवंच यत्तैरुक्तं केवलमनःप्रद्वेषेप्यनवद्यं पापाभावइति तत्तेषामतथ्यं मिथ्या । यतस्ते न संवृत्तचारिणोमनसोऽशुद्धत्वात् । तथा हि । कर्मबंधे मुख्योहेतुर्मनएव । यथा ईर्यापथेऽनुपयुक्तोगछन् कर्मबंधकः । उपयु क्तस्तु सहसा हिंसकोपि न कर्मबंधकइति ततः पुत्रं पितेति दृष्टांतोन समीचीन इति ॥ २९ ॥ अथ तेषामनर्थमाह । (इच्चेहियाहिंति )। इत्येताभिः पूर्वोक्ताभिर्दृष्टीभि र्मतैस्ते वादिनः सातागौरवनिश्रिताइदमस्मन्मतं शरणमिति मन्यमानानराः पापमेव सेवंते कुर्वंति ॥ ३० ॥ अत्रार्थे दृष्टांतमाह । ( जहत्ति )। आश्राविणीं सछिद्रां नावं य था जात्यंधः समारुह्य पारं तटमागंतुमिछति स नरोनावोजलव्याप्तत्वादंतरा मध्यएव विषीदति जले निमज्जति ॥ ३१ ॥ दार्ष्टांतिकमर्थमाह । एवमिति । एवं नौदृष्टांतेन ए

के श्रमणाः शाक्यादयोमिथ्यादृष्टयोऽनार्याः स्वमतानुसारेण संसारपारकांक्षिणोपि संसारमेवानुपर्यटंति संसारएवानंतकालं भ्रमंति इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३१ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगे प्रथमाध्ययने द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

---

॥ टीका—सांप्रतमेतद्दूषणायाह । ( मणसाजेइत्यादि ) । येहि कुतश्चिन्निमित्तान्मनसांऽतःकरणेन प्रदुष्यंति प्रद्वेषमुपयांति तेषां वधपरिणतानां शुद्धं चित्तं न विद्यते । तदेवं यत्तैरभिहितं । यथा केवलमनःप्रद्वेषेप्यनवद्यं कर्मोपचयाभावइति । ततस्तेषामतथ्यमसदर्थाभिधायित्वं । यतो न ते संवृतचारिणोमनसोऽशुद्धत्वात् । तथाहि । कर्मोपचये कर्तव्ये मनएव प्रधानं कारणं । यतस्तैरपि मनोरहितकेवलकायव्यापारे कर्मोपचयाभावोभिहितः । ततश्च यद्यस्मिन् सति भवत्यसति तु न भवति तत्तस्य प्रधानं कारणमिति । ननु तस्यापि कायचेष्टारहितस्याऽकारणत्वमुक्तं सत्यमुक्तं । अयुक्तं तूक्तं । यतोभवतैवैवं भावशुध्यानिर्वाणमभिगच्छतीति भणता मनसएवैकस्य प्राधान्यमभ्यधायि । तथाऽन्यदप्यभिहित । चित्तमेव हि संसारे रागादिक्लेशवासितं ॥ तदेव तैर्विनिर्मुक्तं भवांतइतिकथ्यते । तथान्यैरप्यभिहितं । मतिविभवमनस्ते यत्समत्वेपि पुंसां, परिणमसि शुभांशैः कल्मषांशैस्त्वमेव ॥ निरयनगरवर्त्मप्रस्थिताः कष्टमेके उपचितशुभशक्त्या सूर्यसंभेदिनोन्ये ॥ १ ॥ तदेव भवदभ्युपगमेनैव क्लिष्टमनोव्यापारः कर्मबंधायेत्युक्तं भवति । तथेर्यापथेपि यद्यनुपयुक्तोघातितवान् ततोनुपयुक्ततैव क्लिष्टचित्ततेति कर्मबंधो भवत्येवाथोपयुक्तोयाति ततो ऽप्रमत्तत्वादबंधकएव । तथाचोक्तं । उच्चालियंमि पाए, इरियासमियस्स संकमट्ठाए । वावज्जेज्जकुलिंगी, मरेज्ज तं जोगमासज्ज ॥१॥ णय तस्स तन्निमित्तो बंधो सुहुमो विदेसिउ समये । अणवज्जो उपयोगे, ण सवभावे णसो जम्हा ॥ २ ॥ स्वप्नांतिकेप्यशुद्धचित्तसद्भावादीषद्बंधोभवत्येव सच भवतोप्यभ्युपगतएवाव्यक्तं तत्सावद्यमित्यनेनेति । तदेवं मनसोपि क्लिष्टस्यैकस्यैव व्यापारबंधसद्भावात् । यदुक्तं भवता प्राणी प्राणिज्ञानमित्यादि तत्सर्वं प्लवतइति । यदप्युक्तं । पुत्रं पिता समारभ्येत्यादि तदप्यनालोचिताभिधानं । यत्तोमारयामीत्येवं यावन्न चित्तपरिणामोभूत्तावन्न कश्चिद्व्यापादयति । एवंभूतचित्तपरिणतेश्च कथमसंक्लिष्टता चित्तसंक्लेशे चावश्यंभावी कर्मबंधइत्युभयोरपि संवादोत्रेति । यदपि च तैः क्वचिदुच्यते यथापरव्यापादितपिशितभक्षणे परहस्ताऽकृष्टांगारदाहाभाववन्न दोषइति । पिशितभक्षणेऽनुमतिरप्रतिहताऽस्याच्च कर्मबंधइति । तथा चान्यैरप्यभिहितं । अनुमंता, विशसिता, संहर्ता, क्रयविक्रयी, ॥ संस्कर्ता, चोपभोक्ता च, घातकश्चाष्ट घातकाः । यच्च कृतकारितानुमतिरूपमादानत्रयं तैरभिहितं तज्जैनेंद्रमतलवास्वादनमेव तैरकारीति । तदेवं कर्मचतुष्टयं नोपचयं यातीत्येवं तदभिदधानाः कर्मचिंतातोनष्टा

इति सुप्रतिष्ठमिदमिति ॥ २९ ॥ अधुनैतेषां क्रियावादिनामनर्थपरंपरां दर्शयितुमाह । (इच्चेयाहिं इत्यादि) इत्येताभिः पूर्वोक्ताभिश्चतुर्विधं कर्म नोपचयं यातीति दृष्टिभिरभ्यु पगमैस्ते वादिनः सातागौरवनिश्रिताः सुखशीलतायामासक्तायत्किंचनकारिणोपयाल ब्धमोजिनश्च संसारोद्धरणसमर्थं शरणमिदमस्मदीयं दर्शनमित्येवं मन्यमानाविपरीता नुष्ठानतया सेवंते कुर्वंति पापमवद्यमेवं व्रतिनोपि संतोजनाइव जनाः प्राकृतपुरुषसदृशा इत्यर्थः ॥ ३० ॥ अस्यैवार्थस्योपदर्शकं दृष्टांतमाह । (जहाअस्साविणिमित्यादि) आस मंतात्स्रवति तच्छीला आस्राविणी सच्छिद्रेत्यर्थः । तां तथाभूतां नावं यथा जात्यंधः समारुह्य पारं तटमागंतुं प्राप्तुमिच्छत्यसौ तस्याश्च स्राविणीत्वेनोदकप्लुतत्वादंतराले जलम ध्यएव विषीदति वारिणि निमज्जति तत्रैव च पंचत्वमुपयातीति ॥ ३१ ॥ सांप्रतं तं दार्ष्टां तिकयोजनार्थमाह । (एवमित्यादि) यथांधः सच्छिद्रां नावं समारूढः पारगमनाय नालं तथा श्रमणाएके शाक्यादयोमिथ्या विपरीता दृष्टिर्येषां मिथ्यादृष्टयः । तथापि शिताशनानुमतेरनार्याः स्वदर्शनानुरागेण संसारपारकांक्षिणोमोक्षाभिलाषुकाअपि सं तस्ते चतुर्विधकर्मचयानभ्युपगमेनानिपुणत्वाद्यासनस्य संसारमेव चतुर्गतिसंसरणरूपम नुपर्यटंति । भूयोभूयस्तत्रैव जन्मजरामरणार्वा गत्यादिक्लेशमनुभवंतोऽनंतमपि काल मासते न विवक्षितमोक्षसुखमाप्नुवंतीति । ब्रवीमीति पूर्ववदिति ॥३२॥ इति सूत्रकृतांगे समयाख्याध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ अथ प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशकः प्रारभ्यते. ॥

जं किंचिउ पूइकडं सढ्ढीमागंतुमीहियं ॥ सहस्संतरियं भुंजे, दुपरकं चेव सेवइ ॥ १ ॥ तमेव अवियाणंता, विसमंसि अकोविया ॥ मछा वेसा लिया चेव, उदगस्स भियागमे ॥ २ ॥ उदगस्स पभावेणं, सुक्कं सिग्घं तमिं तिउ ॥ ढंकेहिय कंकेहिय, आमिसत्थेहिं ते दुही ॥ ३ ॥ एवं तु सम णा एगे, वट्टमाणसुहेसिणो ॥ मछा वेसालिया चेव, घातमेस्संति णंतसो ४

अर्थ-पाछलना उद्देशे स्वसमय परसमय प्ररूपणा करी, अने अहींपण तेहिज कहेछे. जं किंचिउके० जे कांइ अल्प अथवा घणो आहार पाणी पूइकडं के० पूतिकर्म एटले आधाक र्मिना एक कणे सहित एवो आहार पाणी सढ्ढिके० श्रद्धावंत गृहस्थें भक्तियें करी आगं तुमीहियं के० अनेरा आवनारना उद्देशे करी नीपजाव्योछे. तेज आहार कदाचित् सह स्संतरियं के० सहस्रांतरित एटले एके बीजाने दीधो, बीजे त्रीजाने दीधो, त्रीजे चो थाने दीधो एवी रीते सहस्रांतरित थयो ते सदोष आहार जे भुंजे के० भक्षण करे ते,

चेवके० निश्चे ऊपरकंके० द्विपक्ष एटले गृहस्थ अने प्रव्रजितनो पक्ष सेवइके० सेवे एटले ते लिंगे तो प्रव्रजित देखायछे, पण सदोष आहारना लेवा थकी ग्रहस्थ सरखो जाणवो.। यडुक्तं । आहाकम्मंभुंजमाणे,समणे कइकम्मपयडीउंबंधइ गोयमा अठकम्मपयडिउंबंधइ सिढिलबंधण बद्धाउं, थणियबंधणबद्धाउंकरेत्ति ॥ इत्यादिवचनात्. ए कारणे परतीर्थी अथवा स्वतीर्थी आधाकर्मादिक आहार लेता थका द्विपक्षना सेवनार जाणवा.॥१॥ हवे एने एवो आहार लेतां थकां जे विपाक उपजे ते देखाडेछे. तमेवअवियाणंता के० ते दर्शनी ते आधाकर्मि आहारनो दोष अजाणता तथा विसमंसिके० विषम जे अष्ट प्रकारना कर्मनो बंध अथवा चतुर्गतिक संसारने विषे अकोविया के० अपंडित छे, एटले ते एम नथी जाणता के जीवने कर्मनो बंध अथवा मोक्ष केम थाय? अथवा केवा उपाय थकी संसारसमुद्र तरे एवो परमार्थ ते जाणता नथी एवा छतां संसारमांहे कर्मपासे बंधाणा थका दुःखी थायछे, अहियां दृष्टांत कहेछे. मछा के० जेम माछलां वेसालिया के० समुद्रना उपना, अथवा विशाल जातीना उपना, अथवा विशाल एटले बृहत्काय एटले मोहोटा शरीरवाला एवा महामछ ते उदगस्सनियागमे के० पाणीना आगमे एटले समुद्रनी वेलि प्रसार पामी छते, ॥ २ ॥ उदकस्सपभावेणं के० उदकने प्रभावे एटले पाणीने पूरे, समुद्र थकी निकलीने नदीना मुखमां आवी पडे त्यारपछी ते पाणी सुकंसिग्घंतमिंतिउ के० सुके छते ते मछ शरीरने स्थूलपणे कादवमांहे खूता थका घातमेस्संति के० मरण पामे. ते केवी रीते, तो के ढंकेहियकंकेहियके० ढंक अने कंक ए जातिना पक्षी विशेष अने आमिसछेहिं के० बीजापण मांसना लोलुप एवा मछीमारोए विलुप्यमान एवां ते दुही के० दुःख पामेछे एटले ते जीवतां मछोने विलुरी नाखे, छेदीनाखे, किं बहुना प्राण थकी मुकावे. ए रीते दुःख पामे. ॥ ३ ॥ ए दृष्टांत दर्शनीउं साथे मेलवेछे, एवंतु के० ए पूर्वोक्त न्याये माछलांनी पेरे समणाएगे के० एक शाक्यादिक श्रमण अथवा स्वतीर्थी द्रव्यलिंगी ते केवाछे, तोके वट्टमाणसुहेसिणोके० वर्त्तमान सुख जे आधाकर्मिकआहार भोजन सुख तेना गवेषणहार परलोकना सुखथी पराङ्मुख मछावेसालियाचेव के० वैशालिक मछनी परे आगमिक काले अरहट्टघटिकाने न्याये घातमेस्संतिणंतसो के० संसारमांहे अनंता उन्मज्जन निमज्जन सरखा जन्म मरण पामे पण संसारना पारंगामी न थाय. ॥ ४ ॥

---

॥ दीपिका—द्वितीयोद्देशके स्वान्यसमयप्ररूपणा कृता तृतीयेपि सैवोच्यतइति तस्येदमादिसूत्रं। (जंकिंचिदिति किंचिदाहारजातं स्वल्पं घनं वा पूतिकृतमाधाकर्मादिसिक्थेनापि युक्तं । (सड्ढित्ति) । श्रद्धावता भक्तिमताऽन्येनापरानागंतुकानुद्दिश्य ईहितं कृतं तत्सहस्रां

तरितमपि यो भुंजीत स द्विपक्षं गृहस्थपक्षं प्रव्रजितपक्षंच सेवते। अयमर्थः। आधाकर्मादिलवेनापि संसृष्टं परकृतमप्याहारं योन्नक्षयेत् सोपि द्विपक्षसेवी स्यात् किं पुनः स्वयमाहारं निष्पाद्य ये शाक्यादयोभुंजते ते सुतरां द्विपक्षसेविनः स्युरित्यर्थः। अथवा द्विपक्षमीर्यापथं सांपरायिकं वा बद्धनिकाचितभेदं वा कर्म तत्सेविनः परतीर्थिकाः स्वयूथ्यावा स्युरिति॥ १॥ अथ तद्भोजिनां विपाकं दृष्टांतेनाह। (तमेवेति)। तमाधाकर्माद्युपभोगदोषमविज्ञानंतोविषमे कर्मबंधे संसारे वा अकोविदाः कथं कर्मबंधः स्यात्कथं च न स्यात् कथं संसारार्णवस्तीर्यतइत्यत्राऽनिपुणाद्दुःखिनः स्युः। दृष्टांतमाह। मत्स्या यथा (वेसालियत्ति) विशालः समुद्रस्तत्र नवाविशालाख्यजातिभवावा विशालाएव वा वैशालिकावृहच्छरीराउदकस्य जलस्याप्यागमे समुद्रवेलायां तस्यामुदकस्य प्रभावेन नदीमुखमागताः पुनर्वेलापगमे जले शुष्के वेगे अपगते सति ढंकैः कंकैश्च पक्षिविशेषैरन्यैश्चामिषार्थिभिर्विलुप्यमानास्ते दुःखिनोमत्स्यघातं विनाशं यांति प्राप्नुवंतीति श्लोकद्वयार्थः॥ ३॥ दार्ष्टांतिकयोजनामाह। (एवमिति)। एवमेके श्रमणाः शाक्यादयः स्वयूथ्यावा वर्तमानमेव सुखमिहलोकसुखमाधाकर्माद्युपभोगजमेषितुं शीलं येषां ते वर्तमानसुखैषिणोवैशालिकामत्स्याइव घातं विनाशमेष्यंत्यनंतशोयास्यंति बहुवारं संसारे भ्रमिष्यंति दुःखमनुभवंतः॥ ४॥

---

॥ टीका—द्वितीयोद्देशकानंतरं तृतीयः समारभ्यते॥ अस्य चायमभिसंबंधः। अध्ययनार्थाधिकारः स्वसमयपरसमयप्ररूपणेति। तत्रोद्देशकद्वयेन स्वपरसमयप्ररूपणा कृता। अत्रापि सैव क्रियते। अथ चाऽध्ययोरुद्देशकयोः कुदृष्टयः प्रतिपादितास्तद्दोषाश्च तदिहापि तेषामाचारदोषः प्रदश्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि व्यावर्ण्यास्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं। (जंकिंचिउपूइकडमित्यादि)। अस्य चानंतरसूत्रेण सहायं संबंधइहानंतरोद्देशकपर्यंतसूत्रेभिहितः। (एवंतुश्रमणाएकेइत्यादि)। तदिहापि संबध्यते। एके श्रमणायत्किंचित्पूतिकृतं भुंजानाः संसारं पर्यटंतीति। परंपरसूत्रेत्वभिहितं (बुज्झिज्जइत्यादि) यत्किंचित्पूतिकृतं तद्बुध्येतेत्येवमन्यैरपि सूत्रैरुत्प्रेक्ष्यः संबंधोयोज्यः। अधुना सूत्रार्थः प्रतीयते। (यत्किंचिदिति)। आहारजातं स्तोकमप्यास्तांतावत्प्रभूतं। तदपि पूतिकृतमाधाकर्मादि सिक्थेनाप्युपसृष्टमास्तांतावदाधाकर्म। तदपि न सर्पकृतमपितु श्रद्धावतान्येन भक्तिमताऽपरानागंतुकानुद्दिश्येहितं चेष्टितं निष्पादितं तच्च सहस्रांतरितमपि योभुंजीतान्यवहरेदसौ द्विपक्षं गृहस्थपक्षं प्रव्रजितपक्षं वा सेवते। एतदुक्तं नयति। एवंभूतमपि परकृतमपरागंतुकयत्यर्थं निष्पादितं यदाधाकर्मादि तस्य सहस्रांतरितस्यापि योवयवस्तेनाप्युपसृष्टमाहारजातं भुंजानस्य द्विपक्षसेवनमापद्यते। किं पुनः यएते शाक्यादयः स्वयमेव सकलमाहारजातं निष्पाद्य स्वय.

मेव चोपभुंजते तेच सुतरां द्विपक्षसेविनोभवंतीत्यर्थः। यदि वा द्विपक्षमिति ईर्यापथः सांपरायिकं वा । अथवा पूर्वबद्धानिकाचितायवस्थाः कर्मप्रकृतीर्नयत्यपूर्वंश्चादत्ते । तथाचागमः। आहाकम्मं भुंजमाणे समणे कइ कम्मपयडीउ बंधइ गोयमा अठकम्म पयडीउ बंधइ सिढिलबंधणबद्धाउ धणियबंधणबद्धाउ करेइ चियाउ करेइ उवचियाउ करेइ हस्सठिइयाउ दीहठिइयाउ करेइ इत्यादि। ततश्चैवं शाक्यादयः परतीर्थिकाः स्वयूथ्यावा आधाकर्मभुंजानाद्विपक्षमेवाऽसेवंतइति सूत्रार्थः ॥ १ ॥ इदानीमेतेषां सुखैषिणामाधाकर्मभोजिनां कटुकविपाकाविर्भावनाय श्लोकद्वयेन दृष्टांतमाह। (तमेव अवियाणंता इत्यादि) तमेव आधाकर्मोपभोगदोषमजानानाविषमोऽष्टप्रकारकर्मबंधोभवकोटिभिरपि दुर्मोक्षश्चतुर्गतिसंसारोवा तस्मिन्नकोविदाः कथमेषकर्मबंधोभवति कथं वा न भवति केन चोपायेनायं संसारार्णवस्तीर्यतइत्यत्राऽकुशलास्तस्मिन्नेव संसारोदरे कर्मपाशावपाशितादुःखिनोभवंतीति। अत्र दृष्टांतमाह। यथा मत्स्याः पृथुरोमाणोविशालः समुद्रस्तत्र भवावैशालिकाः विशालाख्यविशिष्टजात्युद्भवावा वैशालिकाः विशालाएव वैशालिकाबृहच्छरीरास्ते एवंभूतामहामत्स्याउदकस्याभ्यागमे समुद्रवेलायां सत्यां प्रबलमरुद्वेगोद्भूतोत्तुंगकल्लोलमालाऽपनुन्नाः संतउदकस्य प्रभावेन नदीमुखमागतापुनर्वेलापगमे तस्मिन्नुदके शुष्के वेगेनैवापगते बृहत्त्वाच्छरीरस्य तस्मिन्नेव धुनीमुखे विलग्नाअवसीदंतश्चामिषगृध्नुभिर्ढंकैः कंकैश्च पक्षिविशेषैरन्यैश्च मांसवसार्थिभिर्मत्स्यबंधादिभिर्जीवंतएव विलुप्यमानामहांतं दुःखसमुद्घातमनुभवंतोऽशरणाघातं विनाशं यांति प्राप्नुवंति। तुरवधारणे। त्राणाभावाद्विनाशमेव यांतीति श्लोकद्वयार्थः ॥ ३ ॥ एवं दृष्टांतमुपदर्श्य दार्ष्टांतिके योजयितुमाह। (एवंतुसमणा इत्यादि) यथैतेऽनंतरोक्तमत्स्यास्तथा श्रमणाः श्राम्यंतीति श्रमणाएके शाक्यपाशुपतादयः स्वयूथ्यावा। किंभूतास्ते इति दर्शयति। वर्तमानसुखैषिणः समुद्रवायसवत् तत्कालावाप्तसुखलवासक्तचेतसोनालोचिताधाकर्मोपभोगजनिताऽतिकटुकदुःखौघानुभवनावैशालिकमत्स्याइव घातं विशालमेष्यंत्यनंतशोऽरहट्टघटीन्यायेन भूयोभूयः संसारोदन्वति निमज्जनोन्मज्जनं कुर्वाणान ते संसारांभोधेः पारगामिनोभविष्यंतीत्यर्थः॥ ४ ॥

इणमन्नं तु अन्नाणं, इहमेगेसि आहियं॥देवउत्ते अयं लोए, बंभउत्तेति आवरे ॥ ५ ॥ ईसरेण कडे लोए, पहाणाइ तहावरे ॥ जीवाजीवसमाउत्ते, सुहदुक्खसमन्निए ॥ ६ ॥ सयंभुणा कडे लोए, इति वुत्तं महेसिणा॥ मारेण संथुया माया, तेण लोए असासए ॥७॥ माहणा समणा एगे आह अंमकडे जगे ॥ असो तत्तमकासीय, अयाणंता मुसं वदे ॥ ८ ॥

अर्थ-हवे अनेरा अज्ञानीनुं मत देखाडेछे. इणमन्नंतु अन्नाणं के० ए पूर्वे कह्योजे सदोष आहार लइने सुख माने तेनाथी वली अन्य अज्ञानीनुंमत देखाडेछे. इहमेगेसिंआहियंके० अहींयां कोइ एकने मते पण सर्वेने मते नहीं एटले कोइक अज्ञानी एम कहेछे के देवउत्तेअयंलोए के० आ लोक जे चराचर संसार छे, ते देवें नीपजावेलो छे. जेम करसणी बीज वावीने करसण नीपजावेछे ते सरखो जाणवो. तथा वली बीजा एम कहेछे के बंभउत्तेतिआवरे के० ए लोक ब्रह्मदेवें नीपजाव्योछे. ब्रह्मा जगत्पितामह इतिवचनात्. ॥ ५ ॥ वली कोइएक एम कहेछे, के ईसरेणकडेलोए के० ए लोक ईश्वरें करेलोछे. पहाणाइ तहावरे के० तथा अवरे एटले बीजा वली एम कहेछे के, प्रधान एटले सत्व, रज अने तमगुणनी जे सम अवस्था ते प्रकृति कहिए. तेणे ए लोक करेलो छे. बीजा एम कहेछे के मोरनी पांख कोणे चीतरी? सेलडीमिष्ट कोणे कीधी? स्वभावथकी लोक नीपनोछे. वली कांटा तीखा कोणे कीधा! लींब कडवो कोणे कर्यो तथा लसण दुर्गंधमय, कमल सुगंधमय ए सर्व स्वभावेज नीपनांछे, तेम लोक पण स्वभावे निष्पन्न छे. ते लोक केवोछे, तोके जीवाजीवसमाउत्तेके० जीव अजीव सहित तथा सुह दुक्ख समन्निएके० सुखदुःखसहित छे. ॥ ६ ॥ एक कहेछे के, सयंभुणाकडेलोएके० ए लोक स्वयंभु एटले विष्णु तेणे नीपजाव्यो. अथवा ते विष्णु पेहेलो एकज हतो तेणे जगत नीपजाववानी चिंता करी त्यारे बीजी शक्ति नीपनी, त्यार पछी जगतनी सृष्टी निष्पन्न थई. इतिवुत्तंमहेसिणा के० एवुं महर्षिए कह्युंछे. त्यार पछी स्वयंभुए लोक नीपजावीने एवुं चिंतव्युं जे एटली जगत सृष्टीनो समास क्यां थशे! तेवारे मार एटले यम नीपजाव्यो. पछी मारेणसंथुयामायाके० तेणेमारे माया नीपजावी ते थकी ए लोक मरेछे. तेणलोए असासए के० ते कारण माटे ए लोक अशाश्वतो छे. ॥ ७ ॥ वली तेहिज कहेछे माहणा समणा एगेके० एक ब्राह्मण तथा एक श्रमण जे त्रिदंडी प्रमुख ते एम आह के० कहेछे के, अंडकडेजगेके० ए सचराचर जगत ते अंडथकी निपन्युं छे; ते एम कहेछे के जेवारे जगत मां काइ वस्तु न हती सर्व पदार्थ शून्य संसार हतो तेवारे ब्रह्मायें पाणीमांहे इंडुं सरज्युं पछी ते इंडु वध्युं तेवारे ते भांगीने बे खंड थया; तेमांहे थकी अधोलोक अने ऊर्ध्वलोक नीपना तेमां समस्त प्रजा उत्पन्न थई. एवा अनुक्रमे पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, आकाश, समुद्र, नदी, पर्वत, ग्राम, आगर, नगर इत्यादिक सर्वे स्थिति उत्पन्न थई; ए कारणे अ सोके० ए ब्रह्माये ए सर्व तत्तंके० तत्व एटले पदार्थ ते अकासीयके० कीधा. एरीते ते ब्राह्मणादिक अयाणंता मुसंवदेके० परमार्थने अजाणता थका मृषा बोलेछे. ॥ ८ ॥

---

॥ दीपिका-अथाऽपराज्ञानिमतमाह। ( इणमिति )। इदं वक्ष्यमाणमन्यदज्ञान

मिहास्मिन् लोके एकेषामाख्यातं । किं पुनस्तैराख्यातमित्याह । देवउत्तेति । देवेन उप्तः कृतोदेवोप्तोदेवपुत्रोवायं लोकः । ब्रह्मणा उप्तोब्रह्मणा कृतोवायं लोकइत्यपरे वदंतीति ॥ ॥५॥ तथा ईश्वरेण कृतोलोकः । अपरे वदंति प्रधानादिकृतोलोकः । सत्वरजस्तमोगुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः सैव प्रधानशब्दवाच्या । आदिशब्दान्नियतिकृतोलोकइत्यन्ये । लोकोजीवाजीवसमायुक्तः सुखदुःखसमन्वितश्च ॥ ६ ॥ तथा स्वयंभूर्विष्णुरन्योवा सचैकाकी रतिं न लभते ततोन्या शक्तिः समुत्पन्ना तदनंतरं जगत्सृष्टिरभूदिति महर्षिणा उक्तं । ततः स्वयंभुवा लोकं निष्पाद्यातिसंसारभयात् यमाख्योमारयतीतिमारोव्यधायि । तेन मारेण संस्तुता कृता माया तया मायया च लोको म्रियते । नच तत्त्वतोजीवस्य मृतिरस्त्यतोमायैषा तेन लोकोऽशाश्वतइति गम्यते ॥ ७ ॥ तथा ब्राह्मणाद्विजातयः श्रमणास्त्रिदंडिप्रमुखाएके अंडेन कृतमंडकृतं अंडाज्जातं जगदाहुर्वदंति । ब्रह्मणांडं कृतं ततोविश्वं जातं । एवं कृते जगति असौ ब्रह्मा तत्त्वं पदार्थसमूहमकार्षीत् कृतवान् ते च ब्राह्मणाद्याः परमार्थानभिज्ञाएवं मृषा वदंति ॥ ८ ॥

---

॥ टीका–सांप्रतमपराज्ञानिमत्तोपप्रदर्शनायाह । ( इणमन्नंतुअन्नाणमित्यादि ) । इदमिति वक्ष्यमाणं । तुशब्दः पूर्वेभ्योविशेषणार्थः । अज्ञानमिति मोहविजृंभणमिहास्मिन् लोके एकेषां न सर्वेषामाख्यातमभिप्रायः । किंपुनस्तदाख्यातमिति तदाह । देवेनोप्तोदेवोप्तः कर्षकेणेव बीजवपनं कृत्वा निष्पादितोयं लोकइत्यर्थः । देवैर्वा गुप्तोरक्षितोदेवगुप्तोदेवपुत्रोवेत्यादिकमज्ञानमिति । तथा ब्रह्मणाउप्तोब्रह्मोप्तोयंलोकइत्यर्थः । परे एवं व्यवस्थिताः । तथाहि । तेषामयमभ्युपगमः । ब्रह्मा जगत्पितामहः सचैकएव जगदवासीत्तेनच प्रजापतयः सृष्टास्तैश्च क्रमेणैतत्सकलं जगदिति । तथेश्वरेण कृतोयं लोकः । एवमेके ईश्वरकारकाभ्रिदधति प्रमाणयंति वा । सर्वमिदं विमत्यधिकरणभावोपपन्नं तनु भुवनकरणादिकं धर्मित्वेनोपादीयते । बुद्धिमत्कारणपूर्वकमिति साध्योधर्मः । संस्थानविशेषवत्त्वादिति हेतुः । यथा घटादिरिति दृष्टांतोयं । यद्यत्संस्थानविशेषवत्तत्तद्बुद्धिमत्करणपूर्वकं दृष्टं । यथा देवकुलकूपादिसंस्थानविशेषवच्च मकराकरनदीधराधरधराशरीरकरणादिकं विवादगोचरापन्नमिति । तस्माद्बुद्धिमत्कारणपूर्वकं । यश्च समस्तस्यास्य जगतः कर्ताससामान्यपुरुषोन भवतीत्यसावीश्वरइति । तथा सर्वमिदं तनुभुवनकरणादिकं धर्मित्वेनोपादीयते बुद्धिमत्कारणपूर्वकमिति । साध्योधर्मः कार्यत्वाद्घटादिवत् तथा स्थित्वा प्रवृत्तेर्वा वास्यादिवदिति । तथाऽपरेप्रतिपन्नायथा । प्रधानादिकृतोलोकः । सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः साच पुरुषार्थं प्रवर्तते । आदिग्रहणाच्च प्रकृतेर्महान् ततोहंकारस्तस्माच्च गणः षोडशकस्तस्मादपि षोडशकात्पंचभ्यः पंच महाभूतानीत्यादिकया प्रक्रियया सृष्टिर्भवतीति । यदि वा आदिग्रहणात्स्वभावादिकं गृह्य

ते । ततश्चायमर्थः । स्वनावेन कृतोलोकः कंटकादितैक्ष्ण्यवत् । तथान्ये नियतिकृतोलोको मयूरांगरुहवदित्यादिनिः कारणैः कृतोयं लोकोजीवाजीवसमायुक्तो जीवैरुपयोगलक्षणै स्तथा जीवैर्धर्माधर्माकाशपुजलादिकैः समन्वितः समुड्धराधरादिकइति । पुनरपि लोकं विशेषयितुमाह । सुखमानंदरूपं डुःखमसातोदयरूपमिति ताभ्यां समन्वितोयुक्तइति ॥ ६ ॥ किंच । ( सयंभुणाइत्यादि ) । स्वयं नवतीति स्वयंनूर्विष्णुरन्यो वा सचैकएवादाव नूत्तत्रैकाकी रमते द्वितीयमिष्टवांस्तच्चिंतानंतरमेव द्वितीया शक्तिः समुत्पन्ना तदनंतरमेव जगत्सृष्टिरनूदित्येवं महर्षिणोक्तमनिहितं । एवं वादिनोलोकस्य कर्तारमन्युपगतवंतोपि च । तेन स्वयंनुवा लोकं संपाद्यातिनारनयाद्यमाख्योमारयतीति मारोऽन्यधायि । तेन मारेण संस्तुता कृता प्रसाधिता माया तया च मायया लोकाम्रियंते । नच परमार्थतोजीवस्योपयोगलक्षणस्य व्यापत्तिरस्त्यतोमायैषा । यथार्थं मृतस्तथा चायं लोकोऽशाश्वतोऽनित्योऽविनाशीति गम्यते ॥ ७ ॥ अपिच । ( माहणाइत्यादि ) । ब्राह्मणाद्विजातयः श्रमणास्त्रिदंडिप्रनृतयः । एके केचन पौराणिकान सर्वे एवमाहुरुक्तवंतोवदंति च । यथा जगवेतच्चराचरमंडेन कृतमंडकृतं । अंडाज्जातमित्यर्थः । तथाहि । ते वदंति यदा न किंचिदपि वस्त्वासीत् पदार्थशून्योयं संसारस्तदा ब्रह्माऽप्स्वंडमसृजत्तस्माच्च क्रमेण वृद्धात्पश्चाद्विधानावमुपगताद्धूर्ध्वाधोविनागोऽनूत् तन्मध्ये च सर्वाः प्रकृतयोऽनूवन् । एवंपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशसमुड्सरित्पर्वतमकराकरनिवेशादिसंस्थितिरनूदिति । तथाचोक्तं । आसीदिदं तमोनूतमप्रज्ञातमलक्षणं ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयं, प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ १ ॥ एवंनूते चास्मिन् जगत्यसौ ब्रह्मा तस्य नावस्तत्त्वं पदार्थजातं तदंमादिप्रक्रमेणाकार्षीत् कृतवानिति । तेच ब्राह्मणादयः परमार्थमजानानाः संतोमृषावदंति अन्यथा च स्थितं तत्त्वमन्यथाप्रतिपादयंतीत्यर्थः ॥ ८ ॥

सएहिं परियाएहिं, लोयं बूया कडेतिय ॥ तत्तं ते ण विजाणंति, ण विणासी कयाइवि ॥ ए ॥ अमणुन्नसमुप्पायं, डुक्खमेव विजाणिया ॥ समुप्पायमजाणंता, कहं नायंति संवरं ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवे ग्रंथकार एनो उत्तर कहेछे. एरीते पूर्वे जे दर्शनी कह्या ते, सएहिं परियाएहिंके० पोतपोताना पर्यायें करी एटले पोतपोतानी कल्पनाये लोयंबूयाकडेतियके० एम कहे जे ए लोक अमुक अमुक प्रकारे कीधोछे. परंतु तत्तंते णविजाणंतिके० ते तत्व कांइ जाणता नथी. णविणासीकयाइविके० ए लोकतो कदापि काले विनाश पामे नहीं, एनी आदि पणनथीअने अंत पण नथी. तेथी एनो कर्त्ता कोइ नथी. एवो परमार्थ ते आणता नथी; पण अजाणथका नावे तेम बोलेछे.॥ए॥ हवे एवां वचनना बोलनारने फल दे

खाडेछे. ते दर्शनी अमणुन्नके० विरुद्ध अनुष्ठान अनाचार ते थकी जेनी समुप्पायं के० उत्पत्तिछे, ते केवुं तोके, डुरकंके० हिंसादिक विरुद्ध अनुष्ठान तेमां जे प्रवर्त्तशे ते डुःखी थासे एवविजाणियाके० एवुं जाणवुं जोइये. समुप्पायमजाणंताके० ते एवा डुःखनी उत्पत्तिनां कारणोने नजाणे परंतु ते अजाण बापडा कहंनायंतिसंवरं के० संवरपणुं जे डुःखनिवारणनुं कारण छे, तेने केवी रीते जाणी शकशे? एतावता अति यत्न करतां पण डुःखनो उछेद न पामे, किंतु संसारमांहे अनंतो काल रहेशे. ॥ १० ॥ ॥

॥ दीपिका–अथ तेषामुत्तरमाह । (सएहिमिति) । स्वकैर्निजैः पर्यायैरनिप्रायैर्लोकं कृतमब्रुवन् कथितवंतस्ते तत्त्वं परमार्थं नाभिजानंति । नच विनाशी लोकः कदाचित् निर्मूलतः पर्यायरूपेण विनाश्यपि डव्यार्थतया नित्यत्वात् । लोकस्य ईश्वरादिकृतत्वं निषेधयुक्तयष्टीकातोज्ञेयं ॥ ए ॥ अथ तेषां मृषावादिनां फलमाह । अमणुन्नेति । अमनोज्ञं असदनुष्ठानं तस्माडुत्पादः प्राडुर्भावोयस्य तदमनोज्ञसमुत्पादं डुःखं विजानीयात् प्राज्ञः । अयमर्थः स्वकृतादसदनुष्ठानादेव डुःखमुत्पद्यते नेश्वरादेरिति । ते चैवं डुःखस्य संवरं प्रतिघातहेतुं ज्ञास्यंति । कारणोछेदादेव कार्योछेदः स्यात् । कारणं चाऽजानंतः कथं डुःखोछेदाय यतिष्यंते यत्नवंतोपि डुःखोछेदं नाप्नुवंतीति ॥ १० ॥ ॥ ॥

॥ टीका–अधुनैषां देवोप्तादिजगद्वादिनामुत्तरदानायाह । (सएहिमित्यादि) । स्वकीयैः स्वकीयैः पर्यायैरनिप्रायैर्युक्तिविशेषैरयं लोकः कृतइत्येवमब्रुवन्ननिहितवंतः । देवोप्तोब्रह्मोप्तईश्वरकृतः प्रधानादिनिष्पादितः स्वयंजुवा व्यधायि तन्निष्पादितमायया म्रियते तथांडजश्चायं लोकइत्यादिस्वकीयानिरुपपत्तिनिः प्रतिपादयंति । यथाऽस्मडुक्तमेव सत्यं नान्यदिति ते चैवंवादिनो वादिनः सर्वेपि तत्त्वं परमार्थं यथावस्थितलोकस्वनावं नाभिजानंति न सम्यक् विवेचयंति । यथाऽयं लोकोडव्यार्थतया न विनाशीति निर्मूलतः कदाचन । नचायमादितआरज्य केनचित् क्रियते अपित्वयं लोकोऽनूद्भवति नविष्यति च । तथाहि । यत्तावडुक्तं यथा देवोप्तोऽयं लोकइति तदसंगतम् । यतोदेवोप्तत्वे लोकस्य न किंचित्तथाविधं प्रमाणमस्ति । नचाप्रमाणकमुच्यमानं विद्वज्जनमनांसि प्रीणयति । अपिच किमसौ देव उत्पन्नोऽनुत्पन्नोवा लोकं सृजेन्न तावदनुत्पन्नस्तस्य खरविषाणस्येवासत्त्वात्करणाभावः । अथोत्पन्नः सृजेत्तत्किं स्वतोऽन्यतो वा । यदि स्वतएवोत्पन्नस्तथा सति तल्लोकस्यापि स्वतएवोत्पत्तिः किं नेष्यते । अथान्यतउत्पन्नः सन् लोककरणाय सोप्यन्योन्यतः सोप्यन्योन्यतइत्येवमनास्थालतानलोमंडलव्यापिन्यनिवारितप्रसरा प्रसर्पतीति । अथासौ देवोऽनादित्वान्नोत्पन्नइत्युच्यते इत्येवंसति लोकोप्यनादिरेवास्तु को दोषः । किंचासावनादिः सन्नित्योऽनित्योवा स्यात्तद्यदि नित्यस्तदा तस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधान्न कर्तृत्वं । अथाऽनि

स्यस्तथासति स्वतएवोत्पत्त्यनंतरं विनाशित्वादात्मनोन त्राणाय कुतोन्यत्करणं प्रति तस्य व्यापारचिंतेति । तथा किममूर्तोमूर्तिमान् वा । यद्यमूर्तस्तदाऽकाशवदकर्तैवाऽथ मूर्तिमान् तथासति प्राकृतपुरुषस्येवोपकरणसव्यपेक्षस्य स्पष्टमेव सर्वजगदकर्तृत्वमिति । देवगुप्तदेवपुत्रपक्षौ त्वतिफल्गुत्वादपकर्णयितव्याविति । एतदेव दूषणं ब्रह्मोप्तपक्षेपि द्रष्टव्यं तुल्ययोगक्षेमत्वादिति । तथा यदुक्तं । तनुभुवनकरणादिकं विमत्यधिकरणभावापन्नं विशिष्टबुद्धिमत्कारणपूर्वकं कार्यत्वाद्घटादिवदिति तदयुक्तं । तथाविधविशिष्टकारणपूर्वकत्वे न व्याप्त्यसिद्धेः । कार्यपूर्वकत्वमात्रेण तु कार्यं व्याप्तं । कार्यविशेषोपलब्धौ कारणविशेषप्रतिपत्तिर्गृहीतप्रतिबंधस्यैव भवति । नचात्यंतादृष्टे तथा प्रतीतिर्भवति । घटे तत्पूर्वकत्वं प्रतिपन्नमिति चेत् युक्तं । तत्र घटस्य कार्यविशेषत्वप्रतिपत्तेर्नत्वेवं सरित्समुद्रपर्वतादौ बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वेन संबंधोगृहीतइति । पुनरप्युक्तं । नन्वतएव घटादिसंस्थानविशेषदर्शनवत्पर्वतादावपि विशिष्टसंस्थानदर्शनाद्बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वस्य साधनं क्रियते । नैतदेवं युक्तं । यतोनहि संस्थानशब्दप्रवृत्तिमात्रेण सर्वस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वत्वावगतिर्भवति । यदितु स्यान्मृद्विकारत्वाद्वल्मीकस्यापि घटवत्कुंभकारकृतिः स्यात् । तथाचोक्तं । अन्यथाकुंभकारेण मृद्विकारस्य कस्यचित् । घटादेः कारणात्सिद्धे वल्मीकस्यापि तत्कृतिरिति । तदेवं यस्यैव संस्थानविशेषस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वेन संबंधोगृहीतस्तद्दर्शनमेव तथाविधकारणानुमापकं भवति न संस्थानमात्रमिति । अपिच घटादिसंस्थानानां कुंभकारएव विशिष्टः कर्तोपलक्ष्यते नेश्वरः । यदि पुनरीश्वरः स्यात्किं कुंभकारेणेति । नैतदस्ति । तत्रापीश्वरएव सर्वव्यापितया निमित्तकारणत्वेन व्याप्रियते । नन्वेवं दृष्टहानिरदृष्टकल्पना स्यात् । तथाचोक्तं । शस्त्रौषधादिसंबंधाच्चैत्रस्य व्रणरोहणे ॥ असंबद्धस्य किं स्थाणोः कारणत्वं न कल्प्यते ॥ १ ॥ तदेवं दृष्टकारणपरित्यागेनाऽदृष्टपरिकल्पना न न्याय्येति । अपिच । देवकुलावटादीनां यः कर्ता ससावयवोऽव्याप्यनित्योदृष्टस्तदृष्टांतः साधितश्चेश्वरएवंभूतएव प्राप्नोति । अन्यथाभूतस्य च दृष्टांताभावाद्व्याप्त्यसिद्धेर्नानुमानमिति । अनयैव दिशा स्थित्वाप्रवृत्त्यादिकसाधनमसाधनमायोज्यं तुल्ययोगक्षेमत्वादिति । यदपि चोक्तं प्रधानादिकृतोऽयं लोकइति तदप्यसंगतं । यतस्तत्प्रधानं किं मूर्तममूर्तं वा । यद्यमूर्तं न ततोमकराकरादेर्मूर्तस्योद्भवोघटते । नह्याकाशात्किंचिदुत्पद्यमानमालक्ष्यते मूर्ताऽमूर्तयोः कारणविरोधादिति । अथ मूर्तं तत्कुतः समुत्पन्नं । न तावत्स्वतोलोकस्यापि तथोत्पत्तिप्रसंगात् नाप्यन्यतोऽनवस्थापत्तेरिति । अन्यथाऽनुत्पन्नमेव प्रधानादनादिभावेनास्ते तद्वल्लोकोपि किं नेष्यते । अपिच । सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रधानमित्युच्यते नचाऽविकृतात्प्रधानान्महदादेरुत्पत्तिरिष्यते भवद्भिः । नच विकृतं प्रधानव्यपदेशमास्कंदतीत्यतोन प्रधानान्महदादेरुत्पत्तिरिति । अपिचाचेतनायाः प्रकृतेः कथं पुरुषार्थ

प्रति प्रवृत्तिर्येनाऽऽत्मनोन्नोगोपपत्त्या सृष्टिः स्यादिति । प्रकृतेरयं स्वनावइति चेदेवं तर्हि स्वनावएव बलीयान् । यस्तामपि प्रकृतिं नियमयति ततएव च लोकोप्यस्तु किमदृष्टप्र धानादिकल्पनयेति । अथादिग्रहणात्स्वनावस्यापि कारणत्वं कैश्चिदिष्यतइति चेदस्तु । न हि स्वनावोऽन्युपगम्यमानोनः क्षतिमातनोति । तथाहि । स्वनावः स्वकीयोत्पत्तिः । सा च पदार्थानामिष्यतएवेति । तथा यडुक्तं नियतिकृतोयं लोकइति । तत्रापि नियमनं निय तिर्यथान्नवनं नियतिरित्युच्यते । साचाऽऽलोच्यमाना न स्वनावादतिरिच्यते । यच्चान्यथा पि स्वयंन्नुवोत्पादितोलोकइति तदप्यसुंदरमेव । यतः स्वयंन्नूरिति किमुक्तं नवति । किं यदाऽसौ नवति तदा स्वतंत्रोन्यनिरपेक्षएव नवति । अथाऽऽदिनवनात्स्वयंन्नूरिति व्यप दिश्यते । तद्यदि स्वतंत्रनवनान्युपगमस्तल्लोकस्यापि नवनं किं नान्युपेयते किं स्वयं नुवा । अथानादिस्ततस्तस्यानादित्वे नित्यत्वं नित्यस्य चैकरूपत्वात्कर्तृत्वाऽनुपपत्तिस्त था वीतरागत्वात्तस्य संसारवैचित्र्यानुपपत्तिः । अथ सरागोसौ ततोऽस्मदाद्यव्यतिरेका त्सुतरां विश्वस्याकर्ता मूर्ताऽमूर्तादिकल्पाश्च प्राग्वदायोज्याइति । यदपि चात्रानिहितं । तेन मारः समुत्पादितः सच लोकं व्यापादयति तदप्यकर्तृत्वस्यानिहितत्वात्प्रलापमात्र मिति । तथा यडुक्तं अंडादिक्रमाज्जायते लोकइति तदप्यसमीचीनं । यतोयास्वप्सु त दंडं निसृष्टं तायथांडमंतरेणान्नूवन् तथा लोकोपि नूतइत्यन्युपगमे न काचिद्बाधा दृश्यते । तथासौ ब्रह्मा यावदंडं सृजति तावल्लोकमेव कस्मान्नोत्पादयति किमनया क ष्टया युक्त्यसंगतया चांडपरिकल्पनया । एवमस्त्विति चेत् केचिदनिहितवंतोयथा ब्रह्मणोमुखाद्ब्राह्मणाः समजायंत बाहुन्यां क्षत्रियाऊरुन्यां वैश्याः पद्भ्यां शूडाइत्येतद प्ययुक्तिसंगतमेव । यतोन मुखादेः कस्यचिडुत्पत्तिर्नैवंत्युपलक्ष्यते । अथापि स्यात्त था सति वर्णानामन्नेदः स्यादेकस्माडुत्पत्तेः । तथा ब्राह्मणानां कर्तृत्तिरीथककलापा दिकश्च नेदोन स्यादेकस्मान्मुखाडुत्पत्तेः । एवंचोपनयनादिसद्भावोन नवेद्भावे वा स्वस्रादि ग्रहणापत्तिः स्यादेवमाद्यनेकदोषडुष्टत्वादेवं लोकोत्पत्तिर्नान्युपगंतव्या । ततश्च स्थितमेत त् । तएवं वादिनोलोकस्याऽनाद्यपर्यवसितस्योर्ध्वाधश्चतुर्दशरज्जुप्रमाणस्य वैशाखस्था नस्थकटिन्यस्तकरयुग्मपुरुषाकृतेरधोमुखमल्लकाकारसप्तपृथिव्यात्मकाधोलोकस्य स्थाला काराऽसंख्येयद्वीपसमुद्राधारमध्यलोकस्य मल्लकसमुजकाकारोर्ध्वलोकस्य धर्माधर्माकाश पुज्ञलजीवात्मकस्य इव्यार्थतयाऽनित्यस्य पर्यायापेक्षया क्षणक्षयिणउत्पादव्ययध्रौव्या पादितइव्यसतत्त्वस्याऽनादिजीवकर्मसंबंधापादिताऽनेकप्रपंचस्याष्टविधकर्मविप्रमुक्ताऽऽत्म लोकांतोपलक्षितस्य तत्त्वमजानानाः संतोमृषा वदंतीति ॥ ए ॥ इदानीमेतेषामेव देवो सादिवादिनामज्ञानत्वं प्रसाध्य तत्फलदिदर्शयिषयाऽऽह । ( अमणुन्नइत्यादि ) । मनोनु कूलं मनोज्ञं शोन्ननमनुष्ठानं न मनोज्ञमनोज्ञमसदनुष्ठानं तस्माडुत्पादः प्राडुर्नावोयस्य

दुःखस्य तदमनोज्ञसमुत्पादं । एवकारोऽवधारणे । सचैवं संबंधनीयः । अमनोज्ञसमुत्पादमेव दुःखमित्येवं विजानीयादवगच्छेत्प्राज्ञः । एतदुक्तं भवति । स्वकृताऽसदनुष्ठानादेव दुःखस्योद्भवोभवति नान्यस्मादित्येवं व्यवस्थितेपि सत्यनंतरोकवादिनोऽसदनुष्ठानोद्भवस्य दुःखस्य समुत्पादमजानानाः संतोऽन्यतईश्वरादेर्दुःखस्योत्पादमिच्छंति । तेचैवमिच्छंतः कथं केन प्रकारेण दुःखस्य संवरं दुःखप्रतिघातहेतुं ज्ञास्यंति । निदानोच्छेदेन हि निदानिनउच्छेदोभवति । तेत्र निदानमेव न जानंति तत्त्वाऽजानानाः कथं दुःखोच्छेदाय यतिष्यंते य त्नवंतोपि च नैव दुःखोच्छेदनमवाप्स्यंत्यपि तु संसारएव जन्मजरामरणेष्टवियोगाद्यनेक दुःखव्राताघाताद्भूयोभूयोऽरहट्टघटीन्यायेनानंतमपि कालं संस्थास्यंति ॥ १० ॥ ॥

सुद्धे अपावए आया, इहमेगेसिमाहियं ॥ पुणो किड्डापदोसेणं, सो तत्थ अवरज्झई ॥११॥ इह संवुडे मुणी जाए, पच्छा होइ अपावए ॥ वियडंबु जहा भुज्जो, नीरयं सरयं तहा ॥१२॥ एताणुवीति मेधावी, बंभचेरेण ते वसे ॥ पुढो पावाउया सव्वे, अक्खायारो सयं सयं ॥ १३ ॥ सए सए उवठ्ठाणे, सिद्धिमेव न अन्नहा ॥ अहो इहेव वसवत्ती, सव्वकाम समप्पिए ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे प्रकारांतरे दर्शनीनुं मत देखाडेछे. ए प्रस्तावे इहमेगेसिमाहियंके० एक वली कोइक, त्रैराशिक गोशालामतानुसारी ते एम कहेछेके, ए आयाके० आत्माते मनुष्य ने भवेज सुद्धेके० शुद्ध थाय. अपावए के० पापरहित थाय. एटले सर्व कर्म क्षयकरी. मोक्षे जाय. पुणोके० वली सोके० तेहज आत्मा तत्थके० त्यां मोक्षनेविषे छतो किड्डाप दोसेणंके० क्रीडाप्रदोषे करी एटले रागद्वेषने वशें करी अवरज्झइके० अपराध करे एटले कर्म रजे करी अशुद्ध थाय. एटले शुं कह्युं? के ते मुक्ति छतां जीवने पोतानां सासननी पूजा जाणी, अने अन्य सासननो पराभव जाणी, पोताने राग उपजावे. तथा पोताना सासननो व्याघात देखी द्वेष उपजे ए कारण माटे आत्मा निर्मल छतो उज्वल वस्त्रनी परे शनैःशनैः मलीन थाय. ए प्रकारे ते आत्मा वली संसारमांहे अवतरे एवुं जे त्रैराशिक कहेछे. ते जीवनी त्रणराशी स्थापेछे. प्रथम आत्मा सकर्मक, पछी वली अकर्मक थईने मुक्तिमां जाय, ए बीजी राशी. अने त्यां मुक्तिने विषे वली कर्म उपार्जी संसारमांहे आवे ए त्रीजी राशी. ॥११॥ इहसंवुडेमुणीजाएके० अहीं मुक्ति थकी आवी मनुष्यना भवमां उपजीने मुनि एटले यमनियम आदरी, संवुडे एटले संवर आदरी, पच्छाहोइअपावएके० पछी पापरहितनिर्मल थाय. एना उपर दृष्टांत कहेछे, जहाके० जेम वियडंबुके० विकटांबु एटले पा

णी तेह्नीपरे जाणवुं. जेम नीरयंके० निर्मल पाणी होयते रजादिकने संयोगे सरयंके० रजसहित एटले मलिन थाय, फरी ते पाणी निर्मलपण थाय; तहाके० तेम ए आत्मा पण जाणी लेवो. ॥ १२ ॥ हवे ए मतने दूषवेछे. एतके० ए पूर्वोक्त वादीउनां वचन असमं जस अणुचिंतिके० चिंतवी आलोचीने, मेधावी के० पंमित जे होय ते मनमां एवी रीते अवधारे ते कहेछे. बंनचेरे णतेवसेके० ए त्रैराशिक तथा अनेरा दर्शनी ब्रह्मचारीनेविषे न वसे एटले सूधो संयम नपाले. जे कारण माटे ते सम्यक्ज्ञानरहित थका अकर्मक ने सकर्मक कहेछे ते माटे ते अज्ञानी छे. तथा पुढोपावाउयासव्वेके० ए सर्व जुदाजुदा प्रा वाउक एटले परदर्शनी अरकायारो सयंसयंके० पोतपोतानुं दर्शन रुडुं करी वखाणेछे. ॥१३॥ वली तेहिज दर्शनीनुं मत कहेछे. सएसएउवहाणे के०ते पोतपोतानां दर्शनने विषे प्रवर्त्तता पोतपोतानुं अनुष्ठान जे दीक्षा, गुरु चरण, शुश्रूषादिक तेहिज सिद्धिमेव के० सिद्धिनुं कारणछे पण नअन्नहाके० अनेरा दर्शन थकी, अनेरा अनुष्ठान थकी मुक्ति न पामिये. अहोऽहेववसवत्ती के० ते एम कहेछे के—अमारा दर्शन थकी एहिज जन्ममां यावत् आत्मवर्ती थको एटले समस्त इंद्रीनो जीपनार एवो थको सव्वकामसमप्पिएके० सर्वकामएटले जे जे काम नोगनी प्रार्थना तथा वांछनाकरे ते ते पामे. ॥ १४ ॥ ॥

---

॥ दीपिका—कृतवादिमतमेवाह । ( सुद्धेति )। अयमात्मा शुद्धोमनुष्यनवएव शु द्धाचारोनूत्वा मोक्षे अपापकः स्यात् । इदमेकेषां गोशालमतानुसारिणामाख्यातं । पुनर यमात्मा अकर्मकोनूत्वा क्रीडया प्रद्वेषेण वा स तत्र मोक्षस्थएवाऽपराध्यति रजसा श्लि प्यते । तस्यहि स्वशासनपूजामन्यदर्शनपरानवमुपलन्य क्रीडाप्रमोदः स्यात् । स्वशासनपरा नवदर्शनाच्च द्वेषस्ततोऽसौ क्रीडाद्वेषान्यां कर्मणा बाध्यते ततोऽसौ नूयः संसारेऽवत रति ॥११॥ किंच । (इहेति) । इह संसारे प्राप्तः सन् प्रव्रज्यामंगीकृत्य संवृतात्मा जा[illegible] सन् पश्चादपापः स्यात् । यथाविकटांबु जलोदकं नीरजस्कं निर्मलं सत् वातोद्धूतरे[illegible] क्तं सरजस्कं मलिनं नूयः स्यात् तथायमात्मा त्रैराशिकाणां मते राशित्रयावस्थः स[illegible] यथापूर्वं संसारावस्थायां सकर्मकः ततो मोक्षे ऽकर्मकः पुनः शासनपरानवदर्श[illegible] षोदयात् सकर्मा स्यादिति ॥१२॥ एतन्मतं दूषयति । ( एयाणुत्ति )। एतान्[illegible] दिनोऽनुचिंत्य मेधावी प्रज्ञावान् एतदवधारयेत् यथा न ते वादिनो ब्रह्म[illegible] ने वसेयुः । यद्यपि ते संयमे स्थितास्तथापि न सम्यगनुष्ठातारइत्यवध[illegible] सर्वेप्येते प्रावाडुकाः परमत्तिनः स्वकं स्वकमात्मीयं दर्शनमाख्यातारः[illegible] रः स्वदर्शनं शुनं वदंति ते । नच तत्रास्था विधेयेति ॥ १३ ॥ कृत[illegible] णाह । ( सएति ) । ते कृतवादिनः स्वके स्वके उपस्थाने संयमा[illegible]

मेतं ... स्वहरणु ... स्यादाद ... धर्मा ... पादस्ययथौ ... कर्मविप्रमुक्ताः ... इदानीमेतेषामे... ... नइत्यादि ) । ... उत्पादः प्राडुर्न...

मनिहितवंतोनान्यथा । तथासिद्धिप्राप्तेरधः प्रागपि वशवर्ती वशेंद्रियः स्यात् असमन्म ताश्रितः सांसारिकैः स्वज्ञावैर्नाजिजूयते । सर्वे कामाभिलाषाः समर्पिताः संपन्नायस्य ससर्वकामसमर्पितः इहलोके ईदृशः स्यात् परलोके च मोदं यायादित्यर्थः ॥ १४ ॥ ॥

॥ टीका—सांप्रतं प्रकारांतरेण कृतवादिमतमेवोपन्यस्यन्नाह । ( सुद्धेत्यादि ) । इहा स्मिन् कृतवादिप्रस्तावे त्रैराशिकागोशालकमतानुसारिणोयेषामेकविंशतिसूत्राणि पूर्वे गतत्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या व्यवस्थितानि ते एवं वदंति । यथायमात्मा शुद्धोमनुष्यन वएव शुद्धाचारोनूत्वा अपगताशेषमलकलंकोमोदेऽपापकोजवति । अपगताशेषक र्मा जवतीत्यर्थः । इदमेकेषां गोशालकमतानुसारिणामाख्यातं । पुनरसावात्माऽशुद्धत्वाऽक मेकत्वराशि द्व्यावस्थोनूत्वा क्रीडया प्रद्वेषेण वा सतत्र मोदस्थएवाऽपराध्यति रज सा श्लिष्यते । इदमुक्तं जवति । तस्य हि स्वशासनपूजामुपलन्याऽन्यशासनपराजवं चोपल न्य क्रीडोत्पद्यते प्रमोदः संजायते स्वशासनन्यक्कारदर्शनाच्च द्वेषस्ततोऽसौ क्रीडाद्वेषान्या मनुगतांतरात्मा शनैर्निर्मलपटवदुपजुज्यमानोरजसा मलिनीक्रियते मलीमसश्च कर्मगौ रवाद्भूयः संसारेऽवतरति । अस्यां चावस्थायां सकर्मकत्वात्तृतीयराश्यवस्थोजवति ॥ ॥ ११ ॥ किंच । ( इहेत्यादि ) । इहास्मिन् मनुष्यजवे प्राप्तः सन् प्रव्रज्यामन्युपेत्य संवृ तात्मा यमनियमरतोजातः सन् पश्चादपापो जवति । अपगताऽशेषकर्मकलंकोजवतीति जावः । ततः स्वशासनं प्रख्याप्य मुक्त्यवस्थोजवति । पुनरपि स्वशासनपूजादर्शनान्निका रोपलब्धेश्च रागद्वेषोदयात्कलुषितांतरात्मा विकटांबुवदुदकवन्नीरजस्कं सद्वातोद्धूतरेणुनि वहसंपृक्तं सरजस्कं मलिनं जूयोयथा जवति तथाऽयमप्यात्माऽनंतकालेन संसारोद्विग्ना शुद्धाचारावस्थोनूत्वा ततोमोक्षावासौ सत्यामकर्मावस्थोजवति । पुनः शासनपूजानि कारदर्शनाद्रागद्वेषोदयात्सकर्मा जवतीत्येवं त्रैराशिकानां राशित्रयावस्थोजवत्यात्मे त्याख्यातं ॥ उक्तंच । दग्धेंधनः पुनरुपैति जवं प्रमथ्य, निर्वाणमप्यनवधारितजीरु निष्ठः ॥ मुक्तः स्वयं कृतजवश्च परार्थशूरस्त्वच्छासनप्रतिहतेष्विह मोहराज्यमिति ॥ १२ ॥ अधुनैतद्दूषयितुमाह । ( एयाणुचीइत्यादि ) । एतान्पूर्वोक्तान् वादिनोऽनुचिंत्य मेधावी प्र ज्ञावान् मर्यादाव्यवस्थितोवा एतदवधारयेत् । यथा नैते राशित्रयवादिनोदेवोत्सादिलोक वादिनश्च ब्रह्मचर्ये तदुपलक्षिते वा संयमानुष्ठाने वसेयुरवतिष्ठेरन्निति । तथाहि । तेषामय न्युपगमोयथा स्वदर्शनपूजानिकारदर्शनात्कर्मबंधोजवत्येवंचावश्यं तद्दर्शनस्य पूजा तिरस्कारेण चोजयेन वा जाव्यं तत्संजवाच्च कर्मोपचयस्तदुपचयाच्च शुध्यनावः शु द्धावाच्च मोक्षानाव. । नच मुक्तानामशेषकर्मकलंकानां कृतकृत्यानामपगताशेषप्राय श्चित्तस्वानां समस्तुतिनिंदानामपगतात्मात्मीयपरिग्रहाणां रागद्वेषानुषंगसंजवाच्च

कुतः पुनः कर्मबंधस्तस्माच्च संसारावतरणमित्यर्थः ॥ अतस्ते यद्यपि कथंचिद्द्व्यब्रह्म चर्ये व्यवस्थितास्तथापि सम्यक् ज्ञानाभावान्न सम्यगनुष्ठानभाजइतिस्थितं । अपिच स र्वेप्येते प्रावाडुकाः स्वकं स्वकमात्मीयं दर्शनं स्वदर्शनानुरागादाख्यातारः शोभनत्वेन प्र ख्यापयितारइति । नच तत्र विदितवेद्येनास्था विधेयेति ॥१३॥ पुनरन्यथाकृतवादिमत मुपदर्शयितुमाह । ( सएसएइत्यादि ) ते कृतवादिनः शैवैकदंडिप्रभृतयः स्वकीये स्वकीये उपतिष्ठत्यस्मिन्नित्युपस्थानं स्वीयमनुष्ठानं दीक्षा गुरुचरणशुश्रूषादिका तस्मिन्नेव सिद्धिमशेषसांसारिकप्रपंचरहितस्वभावमभिहितवंतोनान्यथा नान्येन प्रकारेण सिद्धि रवाप्यत इति । तथाहि शैवादीक्षातएव मोक्षइत्येवं व्यवस्थिताः । एकदंडिकाः पंच विंशतितत्त्वपरिज्ञानान्मुक्तिरित्यभिहितवंतस्तथान्येपि वेदांतिकाध्यानाध्ययनसमाधिमार्गा नुष्ठानात्सिद्धिमुक्तवंतइत्येवमन्येपि यथास्वदर्शनान्मोक्षमार्ग प्रतिपादयंतीति । अशेषद्व द्वोपरमलक्षणायाः सिद्धिप्राप्तेरधस्तात्प्रागपि यावदद्यापि सिद्धिप्राप्तिर्न भवतीति तावदिहै व जन्मन्यस्मदीयदर्शनोक्तानुष्ठानानुभावादष्टगुणैश्वर्यसद्भावो भवतीति दर्शयति । आत्म वशं वर्तितुं शीलमस्येति वशवर्ती वशेंद्रियइत्युक्तं भवति तद्यसौ सांसारिकैः स्वभावैरभिभू यते । सर्वे कामाअभिलाषाअर्पिताः संपन्नायस्य ससर्वकामसमर्पितोयान्यान् कामान् कामयते ते तेऽस्य सर्वे सिध्यंतीति यावत् । तथाहि । सिद्धेराराादष्टगुणैश्वर्यसिद्धिर्भवति । तद्यथा । अणिमा लघिमा गरिमा प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं प्रतिघातित्वं यत्र कामा वसायित्वमिति ॥ १४ ॥

> सिद्धा य ते अरोगा य, इहमेगेसिमाहियं ॥ सिद्धिमेव पुरो काउं
> सासए गढिआ नरा ॥ १५ ॥ असंवुमा अणादीयं, भमिहिंति
> पुणो पुणो ॥ कप्पकालमुवजंति, ठाणा आसुरकिब्बिसियात्ति
> बेमि ॥ १६ ॥ इति प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशकः ॥

अर्थ—हवे परभवे जे गति थाय ते कहेछे. सिद्धायते के० ते जीव अमारा दर्शने प्र वर्त्तता शरीर त्याग करी, विशिष्ट समाधिने योगे सिद्ध थाय. ते सिद्ध केवा? तो के, अरोगाय के० रोगरहित एटले शरीरनां डुःख थकी रहित छे. एरीते इह के० एहि ज लोकने विषे मेगेसि के० एकेक कोइ शिवने मतें एम आहियं के० भाख्युं एटले क ह्युं. ते दर्शनी पोतपोताने अनुष्ठाने सिद्धिमेवके० सिद्धिनेज, पुरोकाउंके० आगल करी सासए के० आपणा अभिप्रायने विषे गढिआ के० गृध थता अनेक हेतु यु क्ति कहे. ते कोनी परें? तो के, नराके० पामर नरनी पेरे. जेम ते अजाण म नुष्य पोताना मतनुं कदाग्रह न त्यागे, तेम ते दर्शनीउपण जे कांइ पोताना मतनुं

अनुष्ठान ते सर्वे मुक्तिनुं कारण छे, एम कहे. ॥ १५ ॥ हवे एवुं कहेनारने फल देखाडेछे.. असंवुमा के० ते पाखंमि दर्शनी संवररहित, असंयमसहित, एवी रीते मुग्धलोकने विप्र तारणहार अणादीयं के० अनादि संसारमांहे जमिहिति के०, परिब्रमण करतां ; पुणो पुणो के० वली वली नरकादिनी पीडा पामशे, कदाचित् ते बाल तपने प्रजावे स्वर्गादिक गति पामे ; तोपण केवी पामे तो के, कप्पकालं के० घणाकालसुधी गणा के० स्थानक जे आसुर के० असुर कुमारादिकनां स्थानक तेनेविषे अथवा किब्विसिया के० किब्विषीयादिक अधर्म स्थानक त्यां नवब्भंति के० उत्पन्न थया छतां डःखज पामे. तिवेमि के० पूर्ववत्. ॥ १६ ॥ इति प्रथमाध्ययनस्य तृतीयोद्देशकः समाप्तः ।

---

दीपिका–एतदेवाह । (सिद्धेति) । तेऽस्मन्मताश्रिताः सिद्धाश्च अरोगाः स्युः । अरोगग्रहणाच्छारीरमानसानेकडःखरहिताश्चेति ज्ञेयं । इहास्मिन् लोके एकेषां शैवादीनामिदमाख्यातं । ते हि सिद्धि मुक्तिमेव पुरस्कृत्यांऽगीकृत्य स्वाशये स्वमतानुरागे ग्रथिताः संबद्धानराः प्राकृतपुरुषाः पंमितंमन्याइवेत्यर्थः ॥ १५ ॥ एतद्दूषणायाह । ( असंवुडेति ) ते पाखंडिनस्तत्त्वतोऽसंवृताअनादिकं संसारं पुनःपुनर्च्रमिष्यंति । यदि कथंचित्तेषां स्वर्गावाप्तिस्तथापि कल्पकालं बहुकालमुत्पद्यंते संनवंत्यसुराः । असुरस्थानोत्पन्नाअपि न प्रधानाः किंतर्हि किल्बिषिकाअधमाएवेति ॥ १६ ॥ ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ इति सूत्रकृतांग दीपिकायां प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशकः ।

---

॥ टीका–तदेवमिहैवास्मडुक्तानुष्ठायिनोऽष्टगुणैश्वर्यलक्षणा सिद्धिर्नवत्यमुत्रचाऽशेषद्वंद्वोपरमलक्षणा नवतीति दर्शयितुमाह । ( सिद्धायतेइत्यादि ) ये ह्यस्मडुक्तमनुष्ठानं सम्यगनुतिष्ठंति तेऽस्मिन् जन्मन्यष्टगुणैश्वर्यरूपां सिद्धिमासाद्य पुनर्विशिष्टसमाधियोगेन शरीरत्यागं कृत्वा सिद्धाश्चाशेषद्वंद्वरहिताअरोगाजवंति । अरोगग्रहणं चोपलक्षणं । अनेकशरीरमानसद्वंद्वैर्न स्पृशंति शरीरमनसोरजावादित्येवमिहास्मिन्लोके सिद्धिविचारे वा एकेषां शैवादीनामिदमाख्यातं जाषितं । तेच शैवादयः सिद्धिमेव पुरस्कृत्य मुक्तिमेवांगीकृत्य स्वकीये आशये स्वदर्शनान्युपगमे ग्रथिताः संबद्धाअध्युपपन्नास्तदनुकूलायुक्तीः प्रतिपादयंति । नराइव नराः प्राकृतपुरुषाः शास्त्रावबोधविकलाः स्वाभिप्रेतार्थसाधनाय युक्तीः प्रतिपादयंत्येवं तेपि पंडितंमन्याः परमार्थमजानानाः स्वाग्रहप्रसाधिकां युक्तिमुद्घोषयंतीति । तथाचोक्तं । आग्रही बत निनीषति युक्तिं, तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा ॥ पक्षपातरहितस्य तु युक्तिर्यत्र तत्र मतिरेति निवेशं ॥ १ ॥ १० ॥ सांप्रतमेतेषामनर्थप्रदर्शनपुरःसरं दूषणाभिधित्सयाह ( असंवुडाइत्यादि ) तेहि पाखंडिकामोक्षाभिसंधिनः समुत्थिताअपिअसंवृताइंद्रियनोइंद्रियैरसंयताइहाप्यस्माकं लाजइंद्रिया

नुरोधेन सर्वविषयोपनोगादमुत्र मुक्त्यवाप्तेः । तदेवं मुग्धजनं प्रतारयंतोऽनादि संसारकांतारं भ्रमिष्यंति पर्यटिष्यंति । स्वडुश्चरितोपात्तकर्मपाशाः पाशावशापिताः पौनः पुन्येन नारकादियातनास्थानेषूत्पद्यंते । तथाहि । नेंड्रियैरनियमितैरशेषछंद्वप्रच्युतिलक्षणासिद्धिरवाप्यते । याप्यणिमाद्यष्टगुणलक्षणैहिकी सिद्धिरनिधीयते सापि मुग्धजनप्रतारणाय दंनकल्पैवेति । यापि च तेषां बालतपोनुष्ठानाद्विना स्वर्गावाप्तिः साप्येवंप्राया नवतीति दर्शयति । कल्पकालं प्रनूतकालमुत्पद्यंते संनवंति । असुराअसुरस्थानोत्पन्नानागकुमारादयस्तत्रापि न प्रधानाः किं तर्हि किल्बिषिकाअधमाः प्रेष्यनूताअल्पर्धयोऽल्पनोगाः स्वल्पायुःसामर्थ्याद्युपेताश्च नवंतीति । इति उद्देशकपरिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १६ ॥ इति समयाख्याध्ययनस्य तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥

अथ–प्रथमाध्ययने चतुर्थ उद्देशकः प्रारन्यते ॥

एते जिया नो न सरणं, बाला पंमियमाणिणो (पाठांतरे ॥ यत्रबालेवसीयति)॥ हिवा णं पुब्व संजोगं, सिया किच्चोवएसगा ॥ १ ॥ तं च निक्कू परिन्नाय, वियं तेसुं ण मुढए ॥ अणुक्कस्से अप्पलीणे, मज्जेण मुणि जावए ॥ २ ॥

अर्थ–हवे चोथो उद्देशो प्रारंनियें छैये. त्रीजे उद्देशे परतीर्थिनी वक्तव्यता कही हवे अहीं पण तेहिज कहेछे. एते के० ते दर्शनी जे पूर्वे कह्यां ते पंचनूतिक तज्जीव तच्छरीरवादी तथा गोशालकमतानुसारी त्रैराशिक ए सर्वेने कोणे जियाके० जीत्या? ते कहेछे–राग, द्वेष, परिग्रह, उपसर्ग तथा शब्दादिक विषय प्रबल मोहरूप वेरीए जीत्या. ते कारणे नो के० शिष्यने आमंत्रणे अहो शिष्य ए वचन तुं सद्दी करीने सदहे. न सरणं के० ए परतीर्थीक कोइ जीवने शरण न थाय, एटले संसारमांहे पडतां प्राणीने उद्दरी नशके. केमके जे कारणे ते बालाके० बाल अज्ञानी छतां पंमिय माणिणोके० आत्माने पंमित करी मानता अज्ञाने लागा लिदाय. पोते उन्मार्गे पडतां बीजाने उन्मार्गे पाडेछे, केमके तेनी आचरणादिरूप विरुद्ध देखायछे; ते गाथाना उत्तरार्धवडे देखाडेछे. हिवाणंपुव्वसंयोगं के० पूर्व संयोगं एटले पूर्वे धनधान्य अने स्वजनादिक संयोग छांमीने "अमे निःसंग प्रव्रजित छैये" एम कहे; परंतु ते वली सियाके० ते बंधाणा एटले परिग्रह आरंनने विषे आसक्त एवा छता गृहस्थजछे केमके ते किच्चोवएसगाके० ते गृहस्थनां कृत्य जे पचन तथा पाचनादिक छकाय हिंसानो व्यापार तेनो जे उपदेश तेने विषे प्रवर्ते. ते कारणे प्रव्रजित छतां गहस्थोनां करतव्य थकी वेगला नथी. अर्थात् "जेवा गृही तेवा दर्शनी" ए कारणे कोइनो उद्धार न करी शके. ॥ १ ॥ एवा दर्शनीने देखीने चारित्रियायें जे करवुं ते देखाडेछे. तंच निरक् के० ते पाखंमी लोक वि

परीत उपदेश देवाने प्रवर्त्तता तेने परिज्ञायके० सम्यक् प्रकारे जाणीने जेम ए दर्शनी बापडा मिथ्यात्वव्यापारें विवेकशून्य पोते पोतानेज अहितकारी दीशेछे, तो अन्य जीवने हितकर्त्ता क्यांथी थशे ? एवुं आलोचीने भिक्षु जे चारित्रीउं विषंतेसुंके० परमार्थनो जाण ते दर्शनीउनेविषे णमुछए के० मूर्छाय नहीं अर्थात् तेनीप्रत्ये संबंध पण न करे. त्यारे शुं करे, ते अर्थ गाथाना उत्तरार्धवडे देखाडे छे. अणुक्कस्से के० ते उत्कर्ष रहित आठ मदनो टालनार, अप्पलीणे के० अप्रलीन एटले असंबंध गृहस्थ तथा पासत्थादिकने विषे संसर्ग अणकरतो ते नणी मज्जेण के० मध्यमनावे रागद्वेष रहित छतो मुणिके० मुनी एटले जे साधु ते जावए के० पोताने प्रवर्त्तावे, एटले शुं कह्युं ! तो के, कदाचित परतीर्थीक अथवा पासछादिक संघाते संबंध मले तो मद न करवो ने तेनी प्रशंसा तथा निंदा अणकरतो राग द्वेष रहित वर्त्ते. ए प्रकारेकरी संयम जे पाले तेज साधु जाणवो. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–तृतीयोद्देशकेऽन्यतीर्थिकाणां कुत्सितत्वमुक्तमिहापि तदेवोच्यतइत्यर्थसंबद्धस्यास्योद्देशकस्येदमादिसूत्रं ॥ ( एतइति ) एतेऽन्यमतिनोजिताअभिनूतारागद्वेषादिनिः । नोइति शिष्यामंत्रणं । एवं त्वं जानीहि । यथाएते न शरणं कस्यचित्त्राणाय न समर्थाः । ( जत्थत्ति ) यत्राऽज्ञाने बालोऽज्ञोलग्नः सन् अवसीदति तत्र ते व्यवस्थिताः । बालापंमियमाणिणोइति क्वचित्पाठस्तत्र बालानिर्विवेकाअपंमिताअपि पंमितमानिनः कस्यापि न त्राणाय स्युरित्यर्थः । तत्कृत्यमाह । हित्वा त्यक्त्वा पूर्वसंयोगं धनस्वजनादिकं । णमिति वाक्यालंकारे । सिताबद्धाः परिग्रहारंभेषु । पुनः किंनूताः । कृत्यं कार्यं पचनपाचनादि तस्योपदेशं गच्छंतीति कृत्योपदेशगाः । अथवा सियाइत्यार्षत्वात् स्युर्नवेयुः । कृत्यं सावद्यानुष्ठानं तत्प्रधानाः कृत्यागृहस्थास्तेषामुपदेशः संरंभसमारंभरूपः स विद्यते येषां ते कृत्योपदेशिकाः । प्रव्रजिताअपि कर्तव्यगृहस्थैन्योन भिद्यंतइत्यर्थः ॥ १ ॥ एवंनूतेषु तीर्थिकेषु सत्सु साधुना यत्कर्तव्यं तदाह । ( तंचेति ) तं पार्श्वंमिलोकं परिज्ञाय सम्यक् ज्ञात्वा भिक्षुः संयतोविद्वान् तेषु न मूर्छयेत् तैः सह संबंधं न कुर्यात् । किंतर्हि कुर्यादित्याह । अनुत्कर्षवान् उत्कर्षमदमकुर्वन् । तथाऽप्रलीनोऽसंबद्धस्तीर्थिकेषु गृहस्थेषु पार्श्वस्थादिषु वा संश्लेषमकुर्वन् मध्येन रागद्वेषयोरंतरालेन संचरन् मुनिर्जगत्त्रयवेदी यापयेदात्मानं वर्तयेत् तेषु निंदां स्वस्य प्रशंसांच परिहरन् साधुर्मध्यस्थवृत्त्या चरेदित्यर्थः॥

॥ टीका–उक्तस्तृतीयोद्देशकः । अधुना चतुर्थः समारभ्यते । अस्यचायमभिसंबंधः । अनंतरोद्देशकेऽध्ययनार्थत्वात्स्वपरसमयवक्तव्यतोक्तेहापि सैवाऽनिधीयते । अथचाऽनंतरोद्देशके तीर्थिकानां कुत्सिताचारत्वमुक्तमिहापि तदेवाभिधीयते । तदनेन संबंधे

नाऽयातस्याऽस्योद्देशकस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराण्यभिधाय सूत्रानुगमे सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं ( एतेजियानो इत्यादि) अस्य चानंतरसूत्रेण सहायं संबंधस्तद्यथा। अनंतरसूत्रेऽभिहितं। तीर्थिकाअसुरस्थानेषु किल्बिषाजायंतइति। किमिति। यतएते जिताः परीषहोपसर्गैः। परंपरसूत्रसंबंधस्त्वयं । आदाविदमभिहितं बुध्येत त्रोटयेच्च। ततश्चैतदपि बुध्येत। यथैते पंचभूतादिवादिनोगोशालकमतानुसारिणश्च जिताः परीषहोपसर्गैः कामक्रोधलोभमानमोहमदाख्येनाऽरिषड्वर्गेण चेत्येवमन्यैरपि सूत्रैः संबंधउत्प्रेक्ष्यः। तदेवं कृतसंबंधस्याऽस्य सूत्रस्येदानीं व्याख्या प्रतन्यते। ( एतइति ) पंचभूतैकात्मतज्जीवतच्छरीरादिवादिनः कृतवादिनश्च गोशालकमतानुसारिणश्च त्रैराशिकाश्च जिताअभिभूताराग द्वेषादिभिः शब्दादिविषयैश्च तथा प्रबलमहामोहोद्भवाऽज्ञानेन च । नो इति विनेयामंत्रणं। एवं त्वं गृहाण। यथैते तीर्थिकाअसम्यगुपदेशप्रवृत्तत्वान्न कस्यचिच्छरणं भवितुमर्हंति। न कथंचित्त्रातुं समर्थाइत्यर्थः। किमित्येवं यतस्ते बालाइव बालाः । यथा शिशवः सदसद्विवेकवैकल्याद्यत्किंचनकारिणोभाषिणश्च। तथैतेऽपि स्वयमज्ञाः संतः परानपि मोहयंति। एवंभूताअपिच संतः पंडितमानिनइति । क्वचित्पाठोजत्थबालोवसीयइति। यत्राऽज्ञाने बालोऽज्ञोलग्नः सन्नवसीदति तत्र ते व्यवस्थिताः यतस्ते न कस्यचित्त्राणायेति। यच्च तैर्विरूपमाचरितं तदुत्तरार्द्धेन दर्शयति। हित्वा त्यक्त्वा। णमिति वाक्यालंकारे। पूर्वसंयोगोधनधान्यस्वजनादिभिः संयोगस्तं त्यक्त्वा किल वयं निःसंगाः प्रव्रजिताइत्युत्थाय पुनः सिता बद्धाः परिग्रहेच्छारंभेष्वासक्तास्ते गृहस्थास्तेषां कृत्यं करणीयं पचनपाचनकंडनपेषणादिकाभूतोपमर्दकारी व्यापारस्तस्योपदेशस्तं गच्छंतीति कृत्योपदेशगाः कृत्योपदेशकावा। यदिवा सियाइति आर्षत्वाद्बहुवचनेन व्याख्यायते । स्युर्भवेयुः । कृत्यं कर्तव्यं सावद्याऽनुष्ठानं तत्प्रधानाः कृत्यागृहस्थास्तेषामुपदेशः संरंभसमारंभारंभरूपः सविद्यते येषां ते कृत्योपदेशिकाः प्रव्रजिताअपि संतः कर्तव्यैर्गृहस्थेभ्यो न भिद्यंते। गृहस्थाइव तेऽपि सर्वावस्थाः पंचसूनाव्यापारोपेताइत्यर्थः ॥ १ ॥ एवंभूतेषु च तीर्थिकेषु सत्सु भिक्षुणा यत्कर्तव्यं तद्दर्शयितुमाह। तंचभिक्खूइत्यादि । तं पाखंडिकलोकमसदुपदेशदानाऽभिरतं परिज्ञाय सम्यगवगम्य यथैते मिथ्यात्वोपहतांतरात्मानः सद्विवेकशून्यानात्मने हितायालं नान्यस्माइत्येवं पर्यालोच्य नावभिक्षुः संयतोविद्वान् विदितवेद्यस्तेषु न मूर्छयेत् न गार्ध्यंविदध्यान्न तैःसह संपर्कमपि कुर्यादित्यर्थः। किंपुनः कर्तव्यमिति पश्चार्द्धेन दर्शयति । अनुत्कर्षवानित्यष्टमदस्थानानामन्यतमेनाऽप्युत्सेकमकुर्वन्। तथा अप्रलीनोऽसंबद्धस्तीर्थिकेषु गृहस्थेषु पार्श्वस्थादिषु वा संश्लेषमकुर्वन् मध्येन रागद्वेषयोरंतरालेन संचरन् मुनिर्जगत्त्रयवेदी यापयेदात्मानं वर्तयेत्। इदमुक्तं भवति । तीर्थिका

द्गिनिःसह सत्यपि कथंचित्संबंधे स्वकार्दकारेण तथा भावतस्तेष्वप्रलीयमानेनारक्तद्विष्टेन तेषु निंदामात्मनश्च प्रशंसां परिहरता मुनिनाऽऽत्मा यापयितव्यइति ॥ २ ॥

सपरिग्गहा य सारंभा इह मेगेसिमाहियं ॥ अपरिग्गहा अ
णारंभा, भिरकू ताणं परिव्वए ॥ ३ ॥ कडेसु घासमेसेज्जा, विऊ
दत्तेसणं चरे ॥ अगिद्धो विप्पमुक्को अउमाणं परिवऊए ॥ ४ ॥

अर्थ–हवे जे कारणे परतीर्थीकने विरुद्धाचारी कह्या ते कारण देखाडेछे–सपरिग्गहा के० ते धनधान्यादिक द्विपद चतुष्पदादिक सहित, तेने अनावे शरीर उपकरणादिकने विषे मूर्छा राखेछे तेहिज परिग्रह कहिए. अने सारंभ के० जीवघातने विषे प्रवर्त्तमान, तेहने अनावे उद्देशादिकना नोगवनार छे. माटे आरंभी कहिये. एवाछतां मोक्ष मार्ग साधे ते देखाडे छे. इह मेगेसिमाहियं के० ते इह परलोकने चिंतवे. एक दर्शनीने मतें एम कह्युं, के, ए तपस्यादिक तथा मुंमर्मुंमनादिक क्रिया करे ते व्यर्थ छे, किंतु जे गुरु नक्तीने प्रसादे एक परम अक्षर लाने तेथी जीवने मोक्ष थाय. बीजो जे कांइ काय क्लेश करे ते सर्व अप्रमाण छे. एम जे कहे ते साधु पदवी न पामे. ते तारवाने समर्थ नहीं होवाने लीधे जे तारवाने समर्थ एवो साधु होय, ते आगल अर्द्ध गाथायें देखाडेछे. अपरिग्गहाके० जे किंचित् मात्र परिग्रहरहित होय एक धर्मोपकरण टाली अने तेना उपर पण ममताने अनावे परिग्रह उपर स्वल्प मात्रे नराचे. तथा अणारंनाके० सर्वथा प्रकारे छकायना आरंभरहित एवा भिरकूताणं के० भिक्षु पोताने अने बीजाने त्राण शरण होय. एटले संसारसमुद्रमांहेथी पोते पण प्रवहणनीपरे तरे अने बीजा पण संसार समुद्रमां बुडता जीवने प्रवहणनी पेठे तारनार होय एरीते साधु परिव्वएके० उद्देशादिक आहार वर्जतो संयम पाले. ॥३॥ हवे चारित्रिउ आरंभ अने परिग्रह टाली केम प्रवर्त्ते ते कहेछे. कडेसुके० ते गृहस्थे पोताने अर्थे जे नात पाणी कीधांछे. तेनेविषे सोल जातना उद्गम दोषरहित घासके० आहार एसेज्जाके० गवेषे,विऊके० ते पंमित निःकेवल निर्जरा निमित्ते जे आहार दातारे दत्तके० दीधो. तेना धात्रादिक सोले उत्पादन दोष तेनी एसणंचरेके० एषणाने विषे विचरे. अने संकीतादि दश एषणाना दोष जाणवा. अर्थात् बेतालीश दोष विशुद्ध आहार ले एम कह्युं. तथा अगिद्धोके० ते अमूर्छित थको आहारे एटले पांच मांमलिना दोष टाले. विप्पमुक्कोके० आहारने विषे रागद्वेषरहित, एवो उतो अउमाणं परिवऊए के० बीजानुं अपमान वर्जे; एटले अनेराने करेलो परानव अहियासे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–कथं तीर्थिकास्त्राणाय न स्युरित्याह । (सपरिग्गहाइति) । सपरिग्रहाधना

दियुक्ताः धनाद्यनावेपि शरीरोपकरणादौ मूर्बावंतः सपरिग्रहाएव तथा सारंनाः सावद्य व्यापाराइतीह विचारे एकेपामाख्यातं। यथा किमनया शिरस्तुंडमुंडनक्रियया । गुरो रनुग्रहाद्यदा परमाक्षरावाप्तिर्नवति तदा मोक्षः स्यादेवं नापमाणास्ते न त्राणाय स्युः। ये त्रातुं समर्थास्तानाह । अपरिग्रहाधर्मोपकरणंविना शरीरोपनोगाय स्वल्पोपि न विद्य ते परिग्रहोयेपां तेऽपरिग्रहाअनारंनाश्च तान् निक्षुः साधुः शरणं परिव्रजेत् गच्छेत् । तेपां शरणं यायादित्यर्थः ॥३॥ परिग्रहारंनवर्जनं यथा स्यात्तथाह।(कडेसुइति)। कृतेपु गृहस्थैः स्वार्थं निष्पादितेपु ऊदनादिपिंडेपु ग्रासमाहारं एपयेत् याचेत इति पोडशोजमदोपत्यागः सूचितः। तथा विद्वान् संयमनिपुणोदत्तं परैराशंसादोपरहितैर्निश्रेयसबुध्या वितीर्णं तत्र एपणां ग्रहणैपणां चरेत्। दत्तमित्यनेन पोडशोत्पादनादोपाः एपणां चरेदित्यनेन दश एप णादोपाश्च सूचिताः। एतद्दोपत्यागेन पिंडं गृह्णीयादित्यर्थः। अगृद्धोऽमूर्छितोविप्रमुक्तो रागद्वेपरहितश्च । आहारे स्यादिति पंचग्रासैपणादोपत्यागउक्तः । सएवंनूतोनिक्षुः परेपा मपमानं परिवर्जयेत् तपोमदं ज्ञानमदं च न कुर्यादित्यर्थः। आत्मनः सकाशात्परान् ही नान् न पश्येदिति तात्पर्यं ॥ ४ ॥

---

॥ टीका–किमिति ते तीर्थिकास्त्राणाय न नवंतीति दर्शयितुमाह। (सपरिग्रहाइत्या दि)। सपरिग्रहेण धनधान्यद्विपदचतुष्पदादिना वर्तंते तदनावेऽपि शरीरोपकरणादौ मूर्छावंतः सपरिग्रहाः। तथा सहारंनणे जीवोपमर्दादिकारिणा व्यापारेण वर्तंतइति तदना वेऽप्यौद्देशिकादिनोजित्वात्सारंनाः। तीर्थिकादयः सपरिग्रहारंनकत्वेनैव च मोक्षमार्गं प्रसा धयंतीति दर्शयति। इह परलोकचिंतायामेकेपांकेपांचिदाख्यातं नापितं । यथा किमनया शिरस्तुंडमुंडनादिकया क्रियया परं गुरोरनुग्रहात्परमक्षरावाप्तिस्तद्दीक्षावाप्तिर्वा यदि नव ति ततोमोक्षोनवतीत्येवं नापमाणास्ते न त्राणाय नवंतीति। येतु त्रातुं समर्थास्तान्प श्चार्द्धेन दर्शयति । अपरिग्रहाः न विद्यते धर्मोपकरणादृते शरीरोपनोगाय स्वल्पोऽपि परि ग्रहोयेपांते अपरिग्रहाः । तथा न विद्यते सावद्यआरंनो येपां तेऽनारंनास्तेचैवं नूताः क र्मलघवः स्वयंयानपात्रकल्पाः संसारमहोदधेर्जंतूत्तारणसमर्थास्तान् निक्षुर्निर्द्दोपशील उद्देशिकाद्यपरिनोजी त्राणं शरणं परि समंताद्व्रजेद्गच्छेदिति ॥३॥ कथं पुनःपुनस्तेनापरिग्र हेणाऽनारंनेण च वर्तनीयमित्येतद्दर्शयितुमाह (कडेसुइत्यादि) गृहस्थैः परिग्रहारंन द्वारेणाऽत्मार्थं ये निष्पादिताऊदनादयस्ते कृताउच्यंते। तेपु कृतेपु परकृतेपु परनि ष्ठितेष्वित्यर्थः ॥ अनेन च पोडशोजमपरिहारः सूचितः। तदेवमुजमदोपरहितं ग्रस्यतइति ग्रा सआहारस्तमेवंनूतमन्वेपयेन्मृगयेत् याचेदित्यर्थः । तथा विद्वान्संयमकरणैकनिपुणः प रैराशंसादोपरहितैर्यन्निःश्रेयसबुद्ध्या दत्तमित्यनेन पोडशोत्पादनदोपाः परिगृहीताद्रष्टव्याः।

तदेवंभूते चौत्यधात्रीनिमित्तादिदोषरहिते आहारे सनिक्षुः एषणां ग्रहणैषणां चरेदनुतिष्ठे दित्यनेनाऽपि दशैषणादोषाः परिगृहीताइति मंतव्यं । तथा । अगृद्धोऽनध्युपपन्नोऽमूर्छि तस्तस्मिन्नाहारे रागद्वेषविप्रमुक्तः । अनेनाऽपि च ग्रासैषणादोषाः पंच निरस्ताअवसेयाः । सएवंभूतोनिक्षुः परेषामपमानं परावमदर्शित्वं परिवर्जयेत् परित्यजेत् । न तपोमदं ज्ञा नमदं च कुर्यादिति नावः ॥ ४ ॥

लोगवायं णिसामिज्जा, इह मेगेसिमाहियं ॥ विवरीयपन्नसं
नूयं, अन्नउत्तं तयाणुयं ॥ ५ ॥ अणंते निइए लोए, सासए ण
विणस्सती ॥ अंतवं णिइए लोए, इति धीरोति पासइ ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे वली परवादी मिश्रित वचन कहेछे—लोगवायं के० पाखंमी लोक तेनो वाद पोतपोताने मतें कल्पित जे स्वरूप ते णिसामिज्जा के० सांनले, सांनलीने हैयामां धरे जिन मतिथी कह्युं खोटुं जाणी परिहरे ते लोकवाद देखाडेछे. इह के० तेए जगतने विषे, मे गेसिके० एकेक वादीने मतें, आहियंके० कह्युं ढे. ते केवुं लोके, विवरीयंके० विपरीत पन्न के० प्रज्ञातत्व थकी उपरांठी बुद्धि, संनूयंके० तेहथकी उपनो तथा अन्नउत्तंतयाणुगं के० ते अनेरा अविवेकीनुं जे नाष्युं तेने अनुसारे वली तेवुंज प्रवर्त्तवुं एवो लोकवाद सांनली हैये धारेछे. ॥५॥ हवे ते विपरीत बुद्धि रचित लोकवाद देखाडेछे.—ते लोक अणंते के० अनंत तथा निइएलोए के० नित्यछे. एटले शुं कह्युं ? के जे आ नवमां पुरुषछे अथ वा स्त्री ढे, ते आगमिक नवे पण तेवोज पुरुष तथा स्त्रीने रूपेछे. एटले स्त्री ते स्त्री ने पुरुष ते पुरुष ढे, ते माटे लोक नित्यछे. सासए के० वली ए लोक शास्वतोछे. ण विणस्सति के० वणसे नही. अंतवंके० ते अंतसहित ढे. एटले सप्त द्वीप तथा सप्त समुद्रसहित एटलो लोकछे. एथी न्यून अधिक नथी; ए कारणे लोकनो अंत ढे. अने णिइएलोए के० लोक नित्यछे. स्त्री ते स्त्री अने पुरुष ते पुरुष रूपज ढे. ते माटे इति के० एरीते, धीरोके० अमारा जे व्यासादिक धीरपुरुष अनेक गुणवंत ते पासइके० देखेछे.

॥ दीपिका—स्वमतं प्रख्याप्य पुनः परमतं दर्शयति । ( लोगवायमिति ) । लोकानां पाखंडिनां वादमंगीकारं ( णिसामिज्जा ) निशामयेत् जानीयात् । तद्दर्शयति । इह संसा रे केषांचित् इदमाख्यातं । तथा विपरीता मिथ्या या प्रज्ञा तया संनूतमुत्पन्नं तत्त्व विपर्यस्तबुद्धिग्रथितमित्यर्थः । तथाऽन्यैरविवेकिभिर्यदुक्तं तदनुगं तत्सदृगं अविवेकिजन वाक्यसदृशमिति ॥ ५ ॥ लोकवादमेवाह । ( अणंतेति ) । न विद्यते ऽतोयस्येत्यनं तोनित्यः शाश्वतोन विनश्यति । योयादृगिह नवे सपरनवेपि तादृशएव पुरुषः पुरुषएव

अंगना अंगनैवेति । अथवा अनंतोनिरवधिकः तथा नित्योऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपः तथा शाश्वतः कार्यद्रव्यं नवदपि आंते परमाणुत्वं न त्यजति तथा न विनश्यति दिगात्माकाशाद्यनपेक्ष्या । तथा अंतवान् लोकः सप्तद्वीपा वसुंधरेति परिमाणोक्तेस्तादृक्परिमाणोनित्यइति धीरः .साहसिकोव्यासादिरतीव पश्यति ॥ ६ ॥

---

॥ टीका–एवं निर्युक्तिकारेणोद्देशकार्थाधिकाराऽभिहितं किंचुवमाय चउदत्तीत्येतत्प्रदर्श्यैदानीं परवादिमतमेवोद्देशार्थाधिकाराभिहितं दर्शयितुमाह । ( लोगवायमित्यादि )। लोकानां पाखंडिनां पौराणिकानांश्वा वादोलोकवादः । यथा स्वाभिप्रायेणाऽन्यथावाऽभ्युपगमस्तं निशामयेत् शृणुयात् जानीयादित्यर्थः । तदेव दर्शयति । इहाऽस्मिन्संसारे एकेषां केषांचिदिदमाख्यातमभ्युपगमः । तदेव विशिनष्टि । विपरीता परमार्थादन्यथाभूता या प्रज्ञा तया संभूतं समुत्पन्नं तत्त्वविपर्यस्तबुद्धिग्रथितमितियावत् । पुनरपि विशेषयति । अन्यैरविवेकिभिर्यदुक्तं तदनुगं यथावस्थितार्थविपरीतानुसारिभिर्यदुक्तं विपरीतार्थाभिधायितया तदनुगच्छतीत्यर्थः ॥५॥ तमेव विपर्यस्तबुद्धिरहितं लोकवादं दर्शयितुमाह । ( अणंतेनिइएलोएइत्यादि ) नाऽस्यांतोऽस्तीत्यनंतः । न निरन्वयनाशेन नश्यतीत्युक्तं नवतीति । तथाहि । यो यादृगिह नवे स तादृगेव परनवेऽप्युपपद्यते पुरुषः पुरुष एवांऽगनांऽगनैवेत्यादि । यदिवाऽनंतोऽपरिमितोनिरवधिकइति यावत् । तथा नित्यइति। अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वनावोलोकइति । तथा शश्वद्भवतीति शाश्वतो द्व्यणुकादिकार्यद्रव्यापेक्ष्या शश्वद्भवन्नपि न कारणद्रव्यं परमाणुत्वं परित्यजतीति । तथा न विनश्यतीति दिगात्माकाशाद्यपेक्ष्या । तथांऽतोऽस्याऽस्तीत्यंतवान् लोकः । सप्तद्वीपा वसुंधरेति परिमाणोक्तेः सच तादृक् परिमाणोनित्यइत्येवं धीरः कश्चित्साहसिकोऽन्यथाभूतार्थप्रतिपादनात् व्यासादिरतीव पश्यतीत्यतिपश्यति । तदेवंभूतमनेकभेदभिन्नं लोकवादं निशामयेदिति प्रकृतेन संबंधः । तथा अपुत्रस्य न संति लोकाब्राह्मणादेवाः श्वानोयक्षागोभिर्हतस्य गोघ्नस्य वा न संति लोकाइत्येवमादिकं निर्युक्तिकं लोकवादं न निशामयेदिति ॥६॥

अपरिमाणं वियाणाई, इह मेगेसिमाहियं ॥ सवड सपरिमाणं, इति धीरोति पासई ॥७॥ जे केइ तसा पाणा, चिठंति अडुवा थावरा । परियाए अत्थि से अंजू, जेण ते तसथावरा ॥ ८ ॥

[illegible]ज कहेले:–अपरिमाणं वियाणाइ के० जेनुं क्षेत्र थकी तथा काल[illegible], तेटलुंज मात्र जाणे पण सर्वज्ञ नथी. इह के० ए लोकनेविषे मेगे [illegible]कोइएक दर्शनीने मते एम कह्युंछे, जे अमारा तीर्थनो स्वामी अपरिमा

ण जाणे. जगतमां सर्वज्ञ कोइ नथी, किंतु सवज्ञ के० सर्वत्र सपरिमाणं के० प्रमाण सहित छे. सर्वज्ञ अपन्हववादी ते एम कहेछे. इति के० एम धीरोति पालइ के० धीर पुरुष देखेछे, ते एम कहे छे-के, देवता संबंधी सहस्र वर्ष ब्रह्मा सुए ते प्रस्तावे, ते कांइ न देखे, वली एटलोज काल ब्रह्मा जागृत थाय त्यारे देखे. ए कारणे सपरिमाण वस्तु जाणे तथा देखे एप्रमाणे कोइ एक कहेछे. ॥७॥ हवे ग्रंथकार तेने उत्तर कहेछे. जगतमां हे जे केइ के० जे कोइ तसाके० त्रस ते बेइंद्रियादिक पाणाके० प्राणी जीव, चिठंति के० ते तिष्टंति एटले रहेछे. अडुवाके० अथवा बीजा थावराके० स्थावर पृथिव्यादिक एवा बंने स्वजाव जगतमां दिशेछे. अने अन्य दर्शनी एम कहे के " जे जेवो ते तेवोज होय " परंतु अन्वय परावर्त न थाय. जो ए वचन साचुं होय तो दान, अध्ययन, जप, नियम, तप तथा अनुष्ठानादिक क्रिया सर्व निरर्थक थाय. ए कारणे तेनुं बोलवुं प्रमाण जाणवुं नहीं. अने जैन कहेछे के,जगतमां त्रस अने स्थावर छे तेने पोतपोतानां कर्मने परिणामे अंजू के० रुजु परियाएके० पर्याय अछिसे के० छे. एटले शुं कहुं? तो के पोतपोताना कर्मना उपार्ज्यां पर्यायने पामे ते पर्यायेकरी जेणतेके० जे कारणे ते तसके० त्रस जीव ते थावराके० स्थावर थाय. एटले त्रस फीटी स्थावर थाय अने स्थावर फीटी त्रस थाय परंतु " जे जेहवो ते तेहवो " ए निश्चये थकी नथी. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—किंच (अपरिमाणमिति) न विद्यते परिमाणमियत्ता क्षेत्रतः कालतोवायस्य तदपरिमाणं विजानाति कश्चित्तीर्थिकः । अपरिमितज्ञोऽसावर्तींद्रियद्रष्टा न पुनः सर्वज्ञः । यद्वाऽपरिमितज्ञोऽनिप्रेतार्थातींद्रियदर्शी न पुनः सर्वदर्शी । यडुक्तं । सर्वं पश्यतु वा मा वा, इष्टमर्थं तु पश्यतु ॥ कीटसंख्यापरिज्ञानं, तस्य न क्वोपयुज्यतऽति । इह एकेषां सर्वज्ञापन्हववादिनामिदमाख्यातं । तथा सर्वत्र क्षेत्रे काले वा सपरिमाणं परिमाणयुक्तं धीर्बुद्धिस्तया राजत इतिधीरः इत्येवमसावतीव पश्यति । दिव्यं वर्षसहस्रं ब्रह्मा स्वपिति ताव त्कालं न पश्यति किंचित् पुनस्तावंतं कालं जागर्ति तत्र च पश्यति एवं बहुधा प्रवृत्तो लोकवादः ॥ ७ ॥ अस्योत्तरमाह । ( जेकेऽति ) । ये केचिन्नसाः प्राणिनस्तिष्ठंति अथवा स्थावराः तेषां स्वकर्मपरिणत्याऽयं पर्यायोस्ति । (अंजूइति) प्रगुणोऽव्यनिचारी तेन पर्यायेण ते त्रसाः स्थावराः स्युः । त्रसत्वमनुजूय कर्मपरिणत्या स्थावराः स्थावरत्वमनुजूय त्रसाश्च नवंतीति । ततोयोयादृगिहनवे सपरन्नवेपि तादृगिति नियमो न युक्तः॥८॥

॥ टीका—किंच । ( अपरिमाणमित्यादि ) । न विद्यते परिमाणमियत्ता क्षेत्रतः कालतोवा यस्य तदपरिमाणं । तदेवंजूतं विजानाति कश्चित्तीर्थिकस्तीर्थेरुत् । एतडुक्तं नवति । अपरिमितज्ञोऽसावर्तींद्रियद्रष्टा न पुनः सर्वज्ञ इति । यदि वाऽपरिमितज्ञस्य

निप्रेतार्थाऽतींद्रियदर्शीति । तथाचोक्तं । सर्वं पश्यतु वा मा वा, इष्टमर्थं तु पश्यतु ॥ कीटसंख्यापरिज्ञानं, तस्य न क्वोपयुज्यतइति । इहाऽस्मिंल्लोके एकेषां सर्वज्ञापन्हववादिनामिदमाख्यातमयमच्युपगमः । तथा सर्वक्षेत्रमाश्रित्यकालं वा परिछेद्यं कर्मतापन्नमाश्रित्य सत्परिमाणेन सपरिमाणं सपरिछेदं धीर्बुद्धिस्तयारंजतइतिधीरइत्येवमसौ अतीव पश्यतीत्यतिपश्यति । तथाहि । ते ब्रुवते दिव्यं वर्षसहस्रमसौ ब्रह्मा स्वपिति तस्यामवस्थायां न पश्यत्यसौ तावन्मात्रं च कालं जागर्ति तत्र च पश्यत्यसाविति तदेवंभूतोबहुधा लोकवादः प्रवृत्तः ॥ ७ ॥ अस्य चोत्तरदानायाह । ( जेकेइइत्यादि ) ये केचन त्रस्यंतीति त्रसा द्वींद्रियादयः प्राणाः प्राणिनः सत्वास्तिष्ठंति त्रसत्वमनुभवंति । अथवा स्थावराः स्थावरनामकर्मोदयात् पृथिव्यादयस्ते । यद्ययं लोकवादः सत्योभवेत् । यथासौ यादृगस्मिन् जन्मनि मनुष्यादिः सोऽन्यस्मिन्नपि जन्मनि तादृगेव भवतीति । ततः स्थावराणां त्रसाणां च तादृशत्वे सति दानाध्ययनजपनियमतपोनुष्ठानादिकाः क्रियाः सर्वाप्यनर्थिकाआपद्येरन् । लोकेनाऽपि चाऽन्यथात्वमुक्तं । तद्यथा । सवै एषशृगालोजायते यः सपुरीषोदह्यते तस्मात् स्थावरजंगमानां स्वकृतकर्मवशात् परस्परसंक्रमणाद्यनिवारितमिति । तथा अनंतोनित्यश्च लोकइति यदभिहितं तत्रेदमभिधीयते । यदि स्वजात्यनुछेदेनास्य नित्यताऽभिधीयते ततः परिणामानित्यत्वमस्मदभीष्टमेवाऽभ्युपगतं न काचित्क्षतिः । अथाऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावत्वेन नित्यत्व मभ्युपग[illegible] तन्न घटते तस्याऽध्यक्षबाधितत्वात् । नहि क्षणभाविपर्यायानाऽलिंगितं किंचिद्वस्तु प्रत्यक्षेणा[illegible] नीयते । निःपर्यायस्यच खपुष्पस्येवाऽसद्रूपतैव स्यादिति । तथा शश्वद्भवनं कायद्रव्यस्याऽ[illegible] विनाशित्वं यदुच्यते द्रव्यविशेषापेक्षया तदप्यसदेव । यतः सर्वमेव वस्तूत्पादव्ययध्रौव्य[illegible] नित्[illegible] निर्विभागमेव प्रवर्तते अन्यथा वियदरविंदस्येव वस्तुत्वमेव हीयेतेति । यथा यद्भुक्तमंतवांल्लोकः सप्त द्वीपाव[illegible] भत्वादित्येतन्निरंतराः सुहृदः प्रत्येष्यंति न प्रेक्षापूर्वकारिणस्तद्ग्राहकप्रमाणाभावादिति । तथा यदप्युक्तं अपुत्रस्य न संति लोकाइत्यादीत्येतदपि बालभाषितं । तथाहि । किंपुत्रसत्तामात्रेणैव विशिष्टलोकावाप्तिरुत तत्कृतविशिष्टानुष्ठानात् । तद्यदि सत्तामात्रेण तत्कुक्कुटसूकरश्वादिभिर्व्याप्तालोकाभवेयुस्तेषां पुत्रबहुलत्वसंभवात् । अथानुष्ठानमाश्रीयते । तत्र पुत्रद्वयेसत्येकेन शोभनमनुष्ठितमपरेणाऽशोभनमिति तत्र का वार्त्ता स्वकृतानुष्ठानं च निष्फलमापद्येतेत्येवं यत्किंचिदेतदिति । तथा श्वानोयक्षाइत्यादिसुक्ति[illegible]त्वादनाकर्णनीयमिति । यदपि चोक्तम् । अपरिमाणं विजानातीति तदपि न घटा[illegible] । यतः सत्यप्यपरिमितज्ञत्वे[illegible] सू[illegible] भवेत् ततोहेयोपादेयोपदेश[illegible] तस्य कीटसंख्यापरिज्ञान

मप्युपयोग्येव । यतोयथैव तद्विषयेऽस्याऽपरिज्ञानमेवमन्यत्राऽप्याशंकया हेयोपादेये प्रेक्षापूर्वकारिणः प्रवृत्तिर्न स्यात् तस्मात्सर्वज्ञत्वमेष्टव्यं । तथा यदुक्तं । सापवोधविज्ञानेन परिमितं जानातीत्येतदपि सर्वजनसमानत्वे यत्किंचिदिति । यदपिच कैश्चिदुच्यते । यथा ब्रह्मणः स्वप्नावबोधयोर्लोकस्य प्रलयोदयौ भवतइति तदप्ययुक्तिसंगतमेव । प्रतिपादितं चैतत् प्रागेवेति न प्रतन्यते । नचाऽत्यंतं सर्वजगतउत्पादविनाशौ विद्येते । न कदाचिदनीदृशं जगदिति वचनात् । तदेवमनंतादिकं लोकवादं परिहृत्य यथावस्थितवस्तुस्वभावाविर्भावनं पश्चार्द्धेन दर्शयति । ये केचन त्रसाः स्थावरावा तिष्ठंत्यस्मिन् संसारे तेषां स्वकर्मपरिणत्याऽस्त्यसौ पर्यायः । अंजूइति प्रगुणोव्यभिचारी तेन पर्यायेण स्वकर्मपरिणतिजनितेन ते त्रसाः संतः स्थावराः संपद्यंते । स्थावरा अपिच त्रसत्वमश्नुवते । तथा त्रसास्त्रसत्वमेव स्थावराः स्थावरत्वमेवाऽश्नुवंति । न पुनर्योयादृगिह सतादृगेवाऽमुत्राऽपि भवत्ययं नियमइति ॥ ८ ॥

उरालं जगतो जोगं, विवज्जासं पलिंतिय ॥ सव्वे अक्कंतदुक्खाय
अउ सव्वे अहिंसिता ॥ ९ ॥ एवं खु नाणिणो सारं; जन्न हिंसइ
किंचणं ॥ अहिंसासमयं चेव, एतावत्तं वियाणिया ॥ १० ॥

अर्थ–हवे ए उपर दृष्टांत कहेछे–ए जीव उरालंके० ते औदारिक एटले अति स्थूल एहवा जगतो जोगंके० जगनो योग जीवनो, व्यापार चेष्टा विशेष, विवज्जासं के० ते विपरीत जुदो जुदो पलिंतिय के० पामे. अत्रे गर्भनुं दृष्टांत कहेछे. जेम गर्भमांहे रह्यो थको जीव अर्बुद, कलल, पेसी इत्यादिक जुदी जुदी अवस्था पामे. तथा जन्म पाम्या पछी बाल, कुमार, तरुण अने वृद्ध एवी जुदी जुदी अवस्था पामे. ए कारणे तेनुं वचन साचुं नथी जणातुं. तो जैन कहे छे के, सव्वेके० सर्व जीव एकेंद्रियादिकथी मांमीने पंचेंद्रियपर्यंत जे छे, तेने अक्कंतदुःखाय के० शारीरी तथा मानसी दुःख ते वल्लभ नथी. अउ के० ए कारणे सव्वे के० सघला जीव अहिंसया के० हणाय नहीं, तेम करवुं. ॥ ९ ॥ एवं शब्द अवधारणे छे नाणिणो के० ज्ञानी एटले जे जाण पुरुष तेनो एहज सारं के०सार एटले न्यायछे. जन्नहिंसई किंचणं के० जे कोइ त्रस अने स्थावर जीवने किंचित् मात्र हणे नहीं, उपलक्षणथी मृषा बोले नहीं, अदत्त, मैथुन तथा परिग्रह ए आश्रव न सेवे, रात्री भोजन न करे, एज ज्ञानीनो सार जे आश्रव न सेवे, अहिंसा के० जीवनी दया तथा समयंचेव के० समता सर्वत्र सम परिणाम राखे. एतावत्तंके० एटलुंज वियाणियाके० जाणवुं जोइये. बीजुं घणुं पलाल भार सरखुं जाणवा थकी शुं फल छे? जेम मुजने मरण ते दुःख तेम बीजा जीवने पण मरण तेदुःख एम जाणे एटले मूल गुण कह्या. ॥ १० ॥

॥ दीपिका—अत्र दृष्टांतमाह । ( उरालमिति )। उदारं स्थूलं जगतोयोगं । औदारिकाः प्राणिनोगर्नकललार्बुदरूपादवस्थाविशेषाद्विपरीतं बालकुमारयौवनादिकमुदारं योगं परि समंतादयंते गछंति । अयमर्थः । औदारिकशरीरिणोमनुष्यादेर्बालकुमाराद्यवस्थाविशेषाःप्र त्यक्षेण दृश्यंते न पुनर्यादृक्प्राक्तादृगेव सर्वदेति । एवं सर्वेषां स्थावरजंगमानामन्यथान वनं ज्ञेयं । तथा आक्रांताः पीडिताडुःखेन सर्वे जंतवस्ततस्तेऽहिंसितान्नवंति तथा कार्यं । अथवाऽकांतमप्रियंडुःखं येषां तेऽकांतडुःखाश्चशब्दात् प्रियसुखाश्च अतः सर्वान्नहिंस्यादि ति दृष्टांतोदर्शितउपदेशश्च दत्तः । ॥ ए ॥ किमर्थं सत्वान्न हिंस्यादित्याह । ( एयमिति ) खुनिश्चये । एतदेव ज्ञानिनः सारं यत्किंचन प्राणिजातं न हिनस्ति । अहिंसा समता चैव एतावद्विजानीयात् । कोर्थः । यथा मम मरणं डुःखं वाऽप्रियं एवं सर्वस्य प्राणिलोकस्या 'प्रीति'। एवं ज्ञात्वा न हिंस्यात्प्राणिनः । उपलक्षणान्मृषा न ब्रूयान्नादत्तं गृण्हीयान्नाब्रह्म सेवेत न परिग्रहं कुर्यादिति ॥ १० ॥

---

॥ टीका—अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतान्निधित्सयाऽऽह । ( उरालमित्यादि )। उरालमि ति स्थूलमुदारं जगतऔदारिकजंतुग्रामस्य योगं व्यापारं चेष्टामवस्थाविशेषमित्यर्थः । औ दारिकशरीरिणोहि जंतवः प्राक्तनादवस्थाविशेषात्कललार्बुदरूपाद्विपर्यासन्नूतं बा लकौमारयौवनादिकमुदारं योगं परिसमंतादयंते गछंति पर्ययंते । एतडुक्तं नवति । औदारिकशरीरिणोहि मनुष्यादेर्बालकौमारादिकः कालादिकृतोऽवस्थाविशेषोऽन्यथा चाऽन्यथाऽनवन् प्रत्यक्षेणैव लन्यते न पुनर्यादृक् प्राक् तादृगेव सर्वदेति । एवं स र्वेषां स्थावरजंगमानामन्यथाऽन्यथा च नवनं डष्टव्यमिति । अपिच सर्वे जंतवआक्रांता अनिनूताडुःखेन शारीरमानसेनाऽसातोदयेन डुःखाक्रांताः संतोऽन्यथाऽवस्थानाजो लन्यंते । अतः सर्वेपि ते यथाऽहिंसिता नवंति तथा विधेयं । यदि वा सर्वेऽपि जंतवो ऽकांतमननिमतं डुःखं येषां तेऽकांतडुःखाः । चशब्दात् प्रियसुखाश्च ते तान् सर्वान् न हिंस्या दित्यनेन वाऽन्यथात्वदृष्टांतोदर्शितोनवत्युपदेशश्च दत्तइति ॥ ए ॥ किमर्थं सत्वान् न हिं स्यादित्याह । ( एवंखुइत्यादि )। खुरवधारणे । एतदेव ज्ञानिनोविशिष्टविवेकवतः सारं न्याय्यं यत्किंचनप्राणिजातं स्थावरं जंगमं वा न हिनस्ति न परितापयति । उपलक्षणं चैतत् । तेन न मृषा ब्रूयान्नादत्तं गृण्हीयान्नाऽब्रह्म सेवेत न परिग्रहं परिगृण्हीयान्न नक्तं झुंजीतेत्येवं ज्ञानिनः सारं यत्र कर्माश्रवेषु वर्ततइति । अपिच अहिंसया समता अहिं सासमता तां चैतावद्विजानीयात् । यथा मम मरणं डुःखं वाऽप्रियमेवमन्यस्याऽपि प्रा णिलोकस्येति । एवंकारोऽवधारणे । इत्येवं साधुना ज्ञानवता प्राणिनां परितापनाऽपड्राव णादि वा न विधेयमेवेति ॥ १० ॥

वुसिए य विगयगेही, आयाणं सरक्कए ॥ चरिआसणसेज्जासु, भत्तपाणे अ अंतसो ॥ ११ ॥ एतेहिं तिहिं ठाणेहिं, संजए सततं मुणी ॥ उक्कसं जलणं णूमं, मज्जत्थं च विगिंचए ॥ १२ ॥

अर्थ—एटले मूलगुण कह्या हवे उत्तरगुण कहेछे. दशविध सामाचारीनेविषे विविध नाना प्रकारे वुसिएके० वश्या, तथा विगतगृद्धि के० जेमां आहारादिकनी लोलुपता नथी; एवा साधु ते आयाणं के० आदान, ज्ञान, दर्शन अने चारित्र ए रत्नत्रयने सरक्कए के० सम्यक्प्रकारे राखे. एटले जे प्रकारे ए रत्नत्रयनी वृद्धि थाय तेम करे तेज कहेछे. चरिआ के० चालवुं, एटले चारित्रवंत पुरुषने कोइ प्रयोजन कार्य उपना थको चालवुं पडे तो धूसर प्रमाण दृष्टि जोतो थको चाले; तथा प्रतिलेपित, प्रमार्जित एवा आसण के० आसन उपर बेशे, तथा सुप्रतिलेपित, सुप्रमार्जित एवा सेज्जासुके० उपाश्रय अथवा संथाराने विषे रहे अथवा शयन करे. तथा भत्तपाणेअ के० भात पाणीने विषे अंतसो के० सम्यक् प्रकारे उपयोग करे एटले निर्दोष आहारनी गवेषणा करे. ॥ ११ ॥ वली पण उत्तरगुण आश्रयीज कहेछे. एतेहिं के० ए पूर्वे कह्याजे तिहिंठाणेहिं के० त्रण स्थानक एटले एक चर्या, बीजुं आसन सज्जा, अने त्रीजुं भातपाणी ए त्रणे स्थानक रुडी परे जाणवां. एटले चालवामां ईर्यासमिति ए एक स्थानक, अने आसन सज्जा एटले आदान भांड मात्र निक्षेपणासमिति कही ए बीजुं स्थानक, तथा भत्तपाण एटले एषणासमिति कही; अने भातपाणीनी याचना करतां भाषा निरवद्य बोले, एटले भाषासमिति पण आवी तथा आहार लीधाथी उच्चार प्रश्रवणनो सद्भाव थाय, तेने रुडीपेरे परठवतां पारिष्ठापनिका समिति पण कही ए त्रीजुं स्थानक जाणवुं. ए त्रणे स्थानकने विषे संजएके० संयत छतो सततंके० सततं एटले निरंतर मुणी के० चारित्रवान ते उक्कसंके० उत्कर्ष एटले मान, जलणंके० क्रोध, णूमं के० माया अने मज्जत्थं के० मध्यस्थ एटले लोभ ए चारे कषायने विगिंचए के० आत्मा थकी जुदा करे. ॥१२॥

॥ दीपिका—विविधमनेकधोषितः स्थितोदशविधसामाचार्यां व्युषितः । विगता आहारादौ गृद्धिर्यस्य सविगतगृद्धिः साधुः । आदीयते प्राप्यते मोक्षोयेन तदादानीयं ज्ञानादित्रयं तत्सम्यग्रक्षयेत् । तथा चर्यासनशय्यासु । चर्यागमनं, आसनं निषीदनस्थानं, शय्या वसतिः, संस्तारकोवा तेषु तथा भक्तपाने चांतशः सम्यगुपयोगवता भाव्यं । अयमर्थः । ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपप्रतिष्ठापनासमितियुक्तेनांतशोभक्तपानं यावन्निर्दोषमन्वेषणीयं ॥ ११ ॥ पुनरुत्तरगुणानाह । एतानि त्रीणि स्थानानि । यथा ईर्यासमितिरित्येकं स्थानं १ आसनं शय्येत्यादानभांडमात्रनिक्षेपणासमितिरिति द्वितीयं २

नक्तपानमित्येतेन एषणासमितिः । नक्तपानार्थं च प्रविष्टस्य नाषणासंनवाद्भाषणासमितिराक्षिप्ता । सति चाहारे प्रश्रवणादीनां सद्भावात्प्रतिष्ठापनसमितिरप्यायाता इति तृतीयं स्थानं ३ एतेषु त्रिषु स्थानेषु सम्यग्यतः संयतआमोक्षाय परिव्रजेदित्युत्तरश्लोकेन संबंधः । तथा सततं मुनिरुत्कर्षोमानः, ज्वलनः क्रोधः, णूमंति गहनं मायेत्यर्थः । संसारमध्ये सर्वदा नवतीति मध्यस्थोलोनः । चः समुच्चये । एतान् मानादीन् कषायान् । ( विगिंचएति ) । विवेचयेदात्मनः पृथक्कुर्यात् । ननु क्रोधएवादौ सर्वत्र स्थाप्यते ऽत्रतु कथं मानइति चेडुच्यते । माने सत्यवश्यंनावी क्रोधः क्रोधे च सति मानः स्यान्नवेत्यर्थस्य दर्शनाय क्रमोल्लंघनमिति. ॥ १२ ॥

---

॥ टीका—एवं मूलगुणानभिधायेदानीमुत्तरगुणानभिधातुकामआह — वुसिएयइत्यादि । विविधमनेकप्रकारमुषितः स्थितोदशविधचक्रवालसामाचर्यां व्युषितस्तथा विगताऽपगता आहारादौ गृद्धिर्यस्यासौ विगतगृद्धिः साधुरेवंनूतश्चादीयते स्वीक्रियते प्राप्यते वा मोक्षोयेन तदादानीयं ज्ञानदर्शनचारित्रत्रयं तत्सम्यग्रक्षयेदनुपालयेत् यथा यथा तस्य वृद्धिर्नवति तथाकुर्यादित्यर्थः॥ कथंपुनश्चारित्रादि पालितं नवतीति दर्शयति । चर्यासनशय्यासु । चरणं चर्यागमनं साधुनाहि सति प्रयोजने युगमात्रदृष्टिनागंतव्यं तथा सुप्रत्युपेक्षिते सुप्रमार्जिते चासने उपवेष्टव्यं तथा शय्यायां वसतौ संस्तारके वा [illegible] प्रमार्जितस्थानादि विधेयं तथा नक्ते पाने चांतशः सम्यगुपयोगवता नाव्यं । इदमुक्तं नवति । ईर्यानाषेषणादाननिक्षेपप्रतिष्ठापनासमितिरूपयुक्तेनांऽशशोनक्तपानं यावदुद्गमादिदोषरहितमन्वेषणीयमिति ॥ ११ ॥ पुनरपि चारित्रशुध्यर्थं गुणानधिकृत्याह । एतेहिं इत्यादि । एतान्यनंतरोक्तानि त्रीणि स्थानानि । तद्यथा । ईर्यासमितिरित्येकं स्थानं, आसनं शय्येत्यनेनादानजाडमात्रनिक्षेपणासमितिरित्येतच्च द्वितीयं स्थानं, नक्तपानमित्यनेनैषणासमितिरुपात्ता नक्तपानार्थं च प्रविष्टस्य नाषणासंनवाद्भाषासमितिराक्षिप्ता सति चाहारे उच्चारप्रश्रवणादीनां सद्भावात्प्रतिष्ठापनासमितिरप्यायातेऽत्येतच्च तृतीयं स्थानमित्यतएतेषु त्रिषु स्थानेषु सम्यग्यतः संयतआमोक्षाय परिव्रजेदित्युत्तरश्लोकांते क्रियेति । तथा सततमनवरतं मुनिः सम्यक् यथावस्थितजगत्त्रयवेत्ता । उत्कृष्यते आत्मादर्पाध्मातोविधीयतेऽनेनेत्युत्कर्षोमानस्तथात्मानं चारित्रं वा ज्वालयति दहतीति ज्वलनः क्रोधस्तथा णूममिति गहनं मायेत्यर्थः । तस्याश्चजघन्यमध्यत्वादेवमभिधीयते । तथा आसंसारमसुमतां मध्येंऽतर्नवतीति मध्यस्थोलोनः । चशब्दः समुच्चये । एतान् मानादींश्चतुरोपि कषायांस्तद्विपाकाभिज्ञोमुनिः सदा ( विगिंचएति ) वि

[illegible] थक्कुर्यादित्यर्थः [illegible] चात् [illegible] धआदावुपन्यस्यते तथा क्षप

कश्रेण्यामारूढोनगवान् क्रोधादीनेव संज्वलनान् क्षपयति किमर्थमागमप्रतिक्रमुक्तं ध्यादौ मानस्योपन्यासइति ॥ अत्रोच्यते । माने सत्यवश्यंनावी क्रोधः क्रोधेतु मानः स्यान्नवेत्यस्यार्थस्य प्रदर्शनायान्यथाक्रमकरणमिति. ॥ १२ ॥

समिएउ सयासाहु, पंचसंवरसंवुमे ॥ सिएहिं अ
सिए निरकू, अमोरकायपरिवए ज्ञासित्तिबेमि ॥ १३ ॥

अर्थ–हवे अध्ययन उपसंहरतो कहेडे. समिएके० पांच समिते समितो,उके० तु अ वधारणने अर्थ डे. तथा सयासाहुके० सर्वकालनेविषे साधु केवोडे ? ते कहेडे. पंचसंवर संवुमेके० पांच महाव्रतनो पालनार तथा पांच प्रकारना संवरे करी संवस्यो हतो तथा सिएहिंके० जे गृहस्थ पासत्थादिकने विषे बंधाणा तेवा गृहस्थने विषे असिए के० अ णबंधाणो थको एटले तेने विषे मूर्ग नकरे. जेम कर्दम थकी कमल उंचुंरहे तेम के० साधु ते आरंन परिग्रह थकी दूर रहे पण तेनी साथे बंधाय नहीं, एवो अमोरकायपरिवएके० ज्यांसुधी मोक्ष न थाय त्यांसुधी संयम पाले. ईतिबेमिनो पूर्ववत्. ॥ १३ ॥ इति प्रथमाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशकः समाप्तः । प्रथमाध्ययनं स०

॥ दीपिका– एवं समितिनिः समितः साधुः पंचमहाव्रतोपेतत्वात्पंचप्रकारसंवृत्तः । चशब्दाद्गुप्तिगुप्तस्तथा गृहपाशादिषु सितावद्धा गृहस्थास्तेष्वसितोन बद्धोन मूर्छितो निक्षुर्नावनिक्षुरासमंतात् मोक्षाय परिसमंताद्व्रजेः संयमानुष्ठानरतोनवेस्त्वमितिशिष्यस्यो पदेशः । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १३ ॥ इति तपागच्छाधिपश्रीहेमविमलसू रिस्वशिष्यहर्षकुलप्रणीतायां श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां प्रथमं समयाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका– तदेवं मूलगुणानुत्तरगुणांश्चोपदर्श्याऽधुना सर्वोपसंहारार्थमाह । ( समिए उगया इत्यादि ) तुरवधारणे । पंचनिः समितिनिः समितएव साधुस्तथा प्राणातिपा तादिपंचमहाव्रतोपेतत्वात्पंचप्रकारसंवरसंवृतस्तथा मनोवाक्कायगुप्तिगुप्तस्तथा गृहपाशा दिषु सिताश्चबद्धाः सक्तागृहस्थास्तेष्वनितोऽनवबद्धस्तेषुमूर्छामकुर्वाणः पंकाधारपं कजवत्तत्कर्मणाऽदिह्यमानोनिक्षुर्निक्षणशीलोनावनिक्षुरामोक्षायाऽशेषकर्मापगमलक्षण मोक्षार्थं परि समंतात् व्रजेः संयमानुष्ठानरतोनवेस्त्वमिति विनेयस्योपदेशः । इति अध्य यनसमाप्तौ । ब्रवीमीति गणधरएवमाह यथा तीर्थकृतोक्तं तथैवाहं ब्रवीमि न स्वमनी षिकयेति गतोऽनुगमः । सांप्रतं नयास्तेषामयमुपसंहारः । सव्वेसिंपि नयाणं बहुविहय त्तवं निसामित्ता । तं सव्वनयविसुद्धं जं चरणगुणट्ठिओसाहुत्ति ॥ १ ॥ १७ ॥ इति सू त्रकृतांगे प्रथमाध्ययनं समाप्तं ॥ ॥

॥६२॥

सपुत्रानुद्दिश्येदमाह् । यदि वा सुरासुरनरोरगतिरश्चः समुद्दिश्याह् । यथा बुध्यध्वं यूयं धर्मे बोधं कुरुत । किं न बुध्यध्वं एवंविधसामग्र्यां सत्यां कस्माद्धर्मे बोधोन क्रियतइत्यर्थः । यतः अकृतधर्माणां प्रेत्य परलोके संबोधिर्धर्मप्राप्तिरूपा पुनर्दुर्लभा । दुर्निभये । नैवातिक्रांताराव्रयउपनमंति पुनर्ढौकंते । नहि अतिक्रांतोयौवनादिकालः पुनरावर्तनइतिनावः । पुनरपि जीवितं संयमजीवितं नो नैव सुलभं । यदि वा जीवितमायुस्त्रुटितं तत्संधातुं न शक्यतइति ॥ १ ॥ आयुषोऽनियतत्वमाह् । ( महरेति ) । मह्रावालाएव केचिज्जीवितं त्यजंति तथा वृद्धागर्भस्थाअपि मानवाः । उपदेशयोग्यत्वान्मानवग्रहणं । एतत्पश्यत यूयं यत्सर्वास्वप्यवस्थासु प्राणी जीवितं त्यजतीति । तथाहि त्रिपल्योपमायुष्कस्यापि पर्याप्त्यनंतरमंतर्मुहूर्तेनैव कस्यचिन्मृत्युरुपतिष्ठतीति । अत्र दृष्टांतमाह् । यथा श्येनोवर्तकं तित्तिरिजीवं हरते हंति एवमायुःक्षये प्राणान् मृत्युरपहरेत् । आयुःक्षये वा त्रुटयति जीवितं. ॥ २ ॥

---

॥ टीका--उक्तं समयाख्यं प्रथममध्ययनं सांप्रतं वैतालीयाख्यं द्वितीयमारभ्यते । अस्य चाऽयमभिसंबंधः । इहाऽनंतराऽध्ययने स्वसमयगुणाः परसमयदोषाश्च प्रतिपादितास्तांश्च ज्ञात्वा यथाकर्मविदार्यते तथा बोधोविधेयइत्यनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यऽनुयोगद्वाराणि नणनीयानि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाऽधिकारोद्विधा । अध्ययनार्थाऽधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राऽध्ययनार्थाधिकारः प्रागेव निर्युक्तिकारेणाऽनाणि । णाकणबुन्नणाचेवेत्यनेन गाथाद्वितीयपादेनेत्युद्देशार्थाधिकारं तु स्वतएव निर्युक्तिकारवक्ष्यत्र वक्ष्यति । नामनिष्पन्नं तु निक्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह् " वेयालियंमि वेया,लगो य वेयालणं वेयालियं । तिन्निवि चउक्कगाइं, वेयालेउं एत्र पुण जीवो " ॥ ३७ ॥ ( वेयालियमित्यादि ) । तत्र प्राकृतशैल्या वैयालियमिति । दृविदारणेइत्यस्य धातोर्विपूर्वस्य ण्यंतस्य नावे एवुल्प्रयांतस्य विदारकमिति क्रियावाचकमिदमध्ययनाऽभिधानमिति । सर्वत्र च क्रियायामेतत्त्रयं सन्निहितं । तद्यथा कर्ता करणं कर्म चेत्यतस्तद्दर्शयति । विदारकोविदारणं विदारणीयं च तेषां त्रयाणामपि नामस्थापनाद्रव्यनावभेदाच्चतुर्धा निक्षेपेण । त्रीणि चतुष्ककानि द्रष्टव्यानि । अत्र च नामस्थापने क्षुण्णे द्रव्यविदारकोयोहि द्रव्यं काष्ठादि विदारयति । नावविदारकस्तु कर्मणोविदार्यत्वात् नो आगमतोजीवविशेषः साधुरिति ॥ ३८ ॥ करणमधिकृत्याऽह " दव्वं च परसुमादी दंसणणाणतवसंयमानावे । दव्वं च दारुमादी नावे कम्मं वियालियव्वं " ॥ ३९ ॥ ( दव्वंचेत्यादि ) नामस्थापने क्षुण्णे द्रव्यविदारणं परश्वादि नावविदारणं दर्शनज्ञानतपःसंयमास्तेषामेव कर्मविदारणे सामर्थ्यमित्युक्तं नवति । विदारणीयं

तु नामस्थापने अनादृत्य द्रव्यं दार्वादि । नावे पुनरष्टप्रकारं कर्मेति ॥ ३ए ॥ सांप्रतं वेतालियमित्येतस्य निरुक्तं दर्शयितुमाह " वेयालियं इह देसियंति वेयालियंतर्ज होइ ॥ वेयालियं तहा वित्तमह्नि तेणे वयणिवद्धं " ॥ ४० ॥ ( वेयालियमित्यादि ) । इ हाऽध्ययनेऽनेकधाकर्मणां विदारणमनिहितमिति कृत्वैतदध्ययनं निरुक्तिवशाद्विदारकं ततोनवति । यदि वा वैतालियमित्यध्ययननामात्राऽपि प्रवृत्तौ निमित्तं । वैतालियछंदोविशेषरूपं वृत्तमस्ति तेनैव च वृत्तेन निबद्धमित्यध्ययनमपि वैतालीयं । तस्य चेदं लक्षणं । वैतालीयलिंगनैधनाः, षडयुक्पादोष्टौ समे चलः । नसमोऽत्र परेण युज्यते, नेतः षट्च निरंतरायुजोः ॥ ४० ॥ सांप्रतमध्ययनस्योऽपोद्घातं दर्शयितुमाह " कामं तु सासयमिणं कहियं अहावयंति उसनेणा ॥ अहोणउतिसयाणं सोऊण वि तेइ पव्वइया " ॥ ४ ॥ ( काममित्यादि ) कामशब्दोऽयमन्युपगमे । तत्र यद्यपि सर्वोप्यागमः शाश्वतः तदंतर्गतमध्ययनमपि तथाऽपि नगवतादितीर्थाधिपेनोत्पन्नदिव्यज्ञानेनाऽष्टापदोपरिव्यवस्थितेन नरताधिपनरतेन चक्रवर्त्तिनोऽपहृतैरष्टनवतिनिः पुत्रैः पृष्टेन यथा नरतोऽस्मानाऽज्ञां कारयत्यतः किमस्मानिर्विधेयमित्यतस्तेषामंगारदाहकदृष्टांतं प्रदर्श्य न कथंचिज्जंतोर्नोगेन्वा निवर्ततइत्यर्थः । गर्नमिदमध्ययनं कथितं प्रतिपादितं तेऽप्येतच्छ्रुत्वा संसारासारतामवगम्य विषयाणां च कटुविपाकतां निःसारतां च ज्ञात्वा मत्तकरिकर्णवच्चपलमायुर्गिरिनदीवेगसमं यौवनमित्यतोनगवदाज्ञैव श्रेयस्करीति तदंतिके सर्वे प्रव्रज्यां गृहीतवंतइत्यत्र उद्देसेनिद्देसेयइत्यादिसर्वोऽप्युपोद्घातोनणनीयः ॥ ४१ ॥ सांप्रतं उद्देशार्थाधिकारं प्रागुल्लिखितं दर्शयितुमाह " पढमे संबोहो अनिच्चयाय वीयंमि माणवज्जणया, अहिगारो पुण नणिर्ज, तहा तहा बहुविहो तच्च ॥ ४२ ॥ उद्देसंमिय तइये, अन्नाणचियस्स अयवर्ज नणिर्ज । वज्जेयव्वो य सया सुयप्पमार्ज जइ जणेण " ॥ ४३ ॥ ( पढमइत्यादिगाथाद्वयं ) तत्र प्रथमोद्देशिके हिताऽहितप्राप्तिपरिहारलक्षणोबोधोविधेयोऽनित्यता वेत्ययमर्थाधिकारः । द्वितीयोद्देशके मानोवर्जनीयइत्ययमधिकारः । पुनश्च तथाऽनेकप्रकारोबहुविधः शब्दादाऽवर्थेऽनित्यतादिप्रतिपादकोऽर्थोऽधिकारोनणितइति । तृतीयोद्देशके बहुविधज्ञानोपचितस्य कर्मणोऽपचयरूपोर्थाधिकारोनणितइति यतिजनेनच सुखप्रमादोवर्जनीयः सदेति ॥ ४३ ॥ सांप्रतं सूत्रानुगमे अस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । ( संबुज्झहेत्यादि ) तत्र नगवानादितीर्थकरोनरतस्तिरस्कारागतसंवेगान् स्वपुत्रानुद्दिश्येदमाह । यदि वा सुरासुरनरोरगतिरश्चः समुद्दिश्य प्रोवाच यथा संबुध्यध्वं यूयं ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणे धर्मे बोधं कुरुत । यतः पुनरेवंनूतोऽवसरो डरापः । तथाहि । मानुषं जन्म तत्राऽपि कर्मनूमिः पुनरार्यदेशः सुकुलोत्पत्तिः सर्वेंद्रिय

पाटवं। श्रवणश्रद्धादिप्राप्तौ सत्यां स्वसंवित्यवष्टंनेनाह। किं न बुध्यध्वमित्यवश्यमेवंविध सामग्र्यावाप्तौ सत्यां सकर्णेन तुच्छान् भोगान् परित्यज्य सद्धर्मबोधोविधेयइतिभावः। तथाहि। निर्वाणादिसुखप्रदे नरभवे जैनेंद्रधर्मान्विते, लब्धे स्वल्पमचारु कामजसुखं नो सेवितुं युज्यते। वैडूर्यादिमहोपलौघनिचिते प्राप्तेऽपि रत्नाकरे, लातुं स्वल्पमदीप्तिकाचशकलं किं चोऽचितं सांप्रतं ॥१॥ अकृतधर्मचरणानां तु प्राणिनां संबोधिः सम्यक्दर्शनज्ञान चारित्राऽवाप्तिलक्षणा प्रेत्य परलोकगतानां खलुशब्दस्याऽवधारणार्थत्वात् सुडुर्लभैव। तथाहि। विषयप्रमादवशात् सकृत् धर्माचरणाद्भ्रष्टस्याऽनंतमपि कालं संसारे पर्यटनमभिहितमिति। किंच। डुरित्यवधारणे। नैवाऽतिक्रांताराात्रय उपनमंति पुनर्ढौकंते। नह्यतिक्रांतोयौवनादिकालः पुनरावर्त्ततइतिभावः। तथाहि। नवकोटिभिरसुलभं, मानुष्यं प्राप्य कः प्रमादोमे। नच गतमायुर्भूयः प्रत्येत्यपि देवराजस्य ॥१॥ नोनैव संसारे सुलभं सुप्रापं संयमप्रधानं जीवितं यदि वा जीवितमायुस्त्रुटितं सत् तदेव संधातुं न शक्यतइति वृत्तार्थः। संबोधश्च प्रसुप्तस्य सतोभवति स्वापश्च निद्रोदये निद्रासंबोधयोश्च नामादिश्चतुर्धा निक्षेपः। तत्र नामस्थापने अनादृत्य द्रव्यभावनिक्षेपं प्रतिपादयितुं निर्युक्तिकृदाह। "दव्वं निद्दा वेउ दंसणनाणतवसंजमा भावे। अहिगारो पुणभणिउ नाणे तव दंसणचरित्ते" ॥ ४४ ॥ ( दव्वंनिद्दावेउ इति ) इह च गाथायां द्रव्यनिद्राभावसंबोधश्च दर्शितः। तत्राऽर्थतग्रहणेन भावनिद्राद्रव्यबोधयोस्तदंतर्वर्तिनोर्ग्रहणं द्रष्टव्यं। तत्र द्रव्यनिद्रा निद्रा वेदोवेदनमनुभवः। दर्शनावरणीयविशेषोदयइति यावत्। भावनिद्रातु विपर्यज्ञानदर्शनचारित्रशून्यता। तत्र द्रव्यबोधोद्रव्यनिद्रया सुप्तस्य बोधनं। भावे भावविषये पुनर्बोधोदर्शनज्ञानचारित्रतपःसंयमाद्रष्टव्याः। इह च भावप्रबोधेनाऽधिकारः सच गाथापश्चार्द्धेन सुगमेन प्रदर्शितइति। अत्र च निद्राबोधयोर्द्रव्यभावभेदाच्चत्वारो भंगायोजनीयाइति ॥ ४४ ॥ १ ॥ भगवानेव सर्वसंसारिणां सोपक्रमत्वादनियतमायुरुपदर्शयन्नाह। ( डहरावुड्ढायेत्यादि ) डहराबालाएव केचन जीवितं त्यजंति। तथा वृद्धाश्च गर्भस्थाअप्येतत्पश्यत यूयं के ते मानवामनुष्यास्तेषामेवोपदेशदानार्हत्वात् मानवग्रहणं। बहुपायत्वादायुषः सर्वास्वप्यवस्थासु प्राणी प्राणांस्त्यजतीत्युक्तं भवति। तथाहि। त्रिपल्योपमायुष्कस्यापि पर्याप्त्यनंतरमंतर्मुहूर्तेनैव कस्यचिन्मृत्युरुपतिष्ठतीति। अपिच गर्भस्थं जायमानमित्यादि। अत्रैव दृष्टांतमाह। यथा श्येनः पक्षिविशेषोवर्त्तकं तित्तिरजातीयं हरेत् व्यापादयेदेवं प्राणिनः प्राणान् मृत्युरुपहरेत्। उपक्रमकारणमायुष्कमुपक्रमेत्। तदभावे वा आयुष्यक्षये त्रुटयति व्यवछिद्यते जीवानां जीवितमिति शेषः ॥ २ ॥

तु नामस्थापने अनादृत्य द्रव्यं दार्वादि । नावे पुनरष्टप्रकारं कर्मेति ॥ ३९ ॥ सांप्रतं वेतालियमित्येतस्य निरुक्तं दर्शयितुमाह " वेयालियं इह देसियंति वेयालियंतउ होइ ॥ वेयालियं तहा वित्तमत्थि तेणे वयणिवद्धं " ॥ ४० ॥ ( वेयालियमित्यादि ) । इहाऽध्ययनेऽनेकधाकर्मणां विदारणमनिहितमिति कृत्वैतदध्ययनं निरुक्तिवशाद्विदारकं ततोनवति । यदि वा वैतालियमित्यध्ययननामात्राऽपि प्रवृत्तौ निमित्तं। वैतालियछंदोविशेषरूपं वृत्तमस्ति तेनैव च वृत्तेन निबद्धमित्यध्ययनमपि वैतालीयं। तस्य चेदं लक्षणं। वैतालीयलिंगनैधनाः, षडयुक्पादेऽष्टौ समे चलः । नसमोऽत्र परेण युज्यते, नेतः षट्च निरंतरायुजोः ॥ ४० ॥ सांप्रतमध्ययनस्योऽपोद्घातं दर्शयितुमाह " कामं तु सासयमिणं कहियं उष्ठावयंति उसनेणा ॥ अठ्ठाणउतिसयाणं सोऊण वि तेइ पवइया " ॥ ४ ॥ ( काममित्यादि ) कामशब्दोऽयमन्युपगमे । तत्र यद्यपि सर्वोप्यागमः शाश्वतः तदंतर्गतमध्ययनमपि तथाऽपि नगवतादितीर्थाधिपेनोत्पन्नदिव्यज्ञानेनाऽष्टापदोपरिव्यवस्थितेन नरताधिपनरतेन चक्रवर्तिनोऽपहृतैरष्टनवतिनिः पुत्रैः पृष्टेन यथा नरतोऽस्मानाऽज्ञां कारयत्यतः किमस्माभिर्विधेयमित्यतस्तेषामंगारदाहकदृष्टांतं प्रदर्श्य न कथंचिज्जंतोर्नोगेच्छा निवर्तत इत्यर्थः । गर्नेमिदमध्ययनं कथितं प्रतिपादितं तेऽप्येतच्छ्रुत्वा संसारासारतामवगम्य विषयाणां च कटुविपाकतां निःसारतां च ज्ञात्वा मत्तकरिकर्णवच्चपलमायुर्गिरिनदीवेगसमं यौवनमित्यतोनगवदाज्ञैव श्रेयस्करीति तदंतिके सर्वे प्रव्रज्यां गृहीतवंत इत्यत्र उद्देसेनिद्देसेयइत्यादिसर्वोऽप्युपोद्घातोनणनीयः ॥ ४१ ॥ सांप्रतं उद्देशार्थाधिकारं प्राग्धुल्लिखितं दर्शयितुमाह " पढमे संबोहो अनिच्चयाय वीयंमि माणवज्जणया, अहिगारो पुण नणिउ, तहा तहा बहुविहो तत्त ॥ ४२ ॥. उद्देसंमिय तइये, अन्नाणवियस्स अवचउ नणिउ । वज्जेयव्वो य सया सुयप्पमाउ जइ जणेण " ॥ ४३ ॥ ( पढमइत्यादिगाथाद्वयं ) तत्र प्रथमोद्देशिके हिताऽहितप्राप्तिपरिहारलक्षणोबोधोविधेयोऽनित्यता वेत्ययमर्थाधिकारः । द्वितीयोद्देशके मानोवर्जनीयइत्ययमधिकारः । पुनश्च तथाऽनेकप्रकारोबहुविधः शब्दादाऽवर्येऽनित्यतादिप्रतिपादकोऽर्थोऽधिकारोनणितइति । तृतीयोद्देशके बहुविधज्ञानोपचितस्य कर्मणोऽपचयरूपोर्थाधिकारोनणितइति यतिजनेनच सुखप्रमादोवर्जनीयः सदेति ॥ ४३ ॥ सांप्रतं सूत्रानुगमे अस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । ( संबुज्झहेत्यादि ) तत्र नगवानादितीर्थकरोनरतस्तिरस्कारागतसंवेगान स्वपुत्रानुद्दिश्येदमाह । यदि वा सुरासुरनरोरगतिरश्चः समुद्दिश्य प्रोवाच यथा संबुध्यध्वं यूयं ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणे धर्मे बोधं कुरुत । यतः पुनरेवंनूतोऽवसरो डरापः । तथाहि । मानुषं जन्म तत्राऽपि कर्मनूमिः पुनरार्यदेशः सुकुलोत्पत्तिः सर्वेंद्रिय

पाटवं । श्रवणश्रद्धादिप्राप्तौ सत्यां स्वसंवित्त्यवष्टंभेनाह । किं न बुज्झध्वमित्यवश्यमेवंविध सामग्र्यावाप्तौ सत्यां सकर्णेन तुच्छान् भोगान् परित्यज्य सद्धर्मबोधोविधेयइतिभावः । तथाहि । निर्वाणादिसुखप्रदे नरभवे जैनेंद्रधर्मान्विते, लब्धे स्वल्पमचारु कामजसुखं नो सेवितुं युज्यते । वैडूर्यादिमहोपलौघनिचिते प्राप्तेऽपि रत्नाकरे, लातुं स्वल्पमदीप्तिकाचशकलं किं चोऽचितं सांप्रतं ॥१॥ अकृतधर्मचरणानां तु प्राणिनां संबोधिः सम्यक्दर्शनज्ञान चारित्रावाप्तिलक्षणा प्रेत्य परलोकगतानां खलुशब्दस्याऽवधारणार्थत्वात् सुदुर्लभैव । तथाहि । विषयप्रमादवशात् सकृत् धर्माचरणाद्भ्रष्टस्याऽनंतमपि कालं संसारे पर्यटनम भिहितमिति । किंच । हुरित्यवधारणे । नैवाऽतिक्रांतारात्रय उपनमंति पुनर्ढौकंते । नह्यतिक्रांतोयौवनादिकालः पुनरावर्त्ततइतिभावः । तथाहि । भवकोटिभिरसुलभं, मानुष्यं प्राप्य कः प्रमादोमे । नच गतमायुर्भूयः प्रत्येत्यपि देवराजस्य ॥ १ ॥ नोनैव संसारे सुलभं सुप्रापं संयमप्रधानं जीवितं यदि वा जीवितमायुस्त्रुटितं सत् तदेव संधातुं न शक्य तइति सूत्रार्थः । संबोधश्च प्रसुप्तस्य सतोभवति स्वापश्च निद्रोदये निद्रासंबोधयोश्च नामादिश्चतुर्धा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने अनादृत्य द्रव्यभावनिक्षेपं प्रतिपादयितुं निर्युक्तिकृदाह । "दव्वं निद्दा वेउ दंसणनाणतवसंजमा भावे । अहिगारो पुणभणिउ नाणे तव दंसणचरित्ते " ॥ ४४ ॥ ( दव्वंनिद्दावेउ इति ) इह च गाथायां द्रव्यनिद्राभावसंबोधश्च दर्शितः । तत्राऽग्रंथतग्रहणेन भावनिद्राद्रव्यबोधयोस्तदंतर्वर्तिनोर्ग्रहणं द्रष्टव्यं । तत्र द्रव्यनिद्रा निद्रा वेदोवेदनमनुभवः । दर्शनावरणीयविशेषोदयइति यावत् । भावनिद्रातु विपर्यज्ञानदर्शनचारित्रशून्यता । तत्र द्रव्यबोधोद्रव्यनिद्रया सुप्तस्य बोधनं । भावे भाव विषये पुनर्बोधोदर्शनज्ञानचारित्रतपःसंयमाद्रष्टव्याः । इह च भावप्रबोधेनाऽधिकारः सच गाथापश्चार्द्धेन सुगमेन प्रदर्शितइति । अत्र च निद्राबोधयोर्द्रव्यभावभेदाच्चत्वारो भंगायोजनीयाइति ॥ ४४ ॥ १ ॥ भगवानेव सर्वसंसारिणां सोपक्रमत्वादनियतमायुरूपदर्शयन्नाह । ( डहरावुड्ढायेत्यादि ) डहराबालाएव केचन जीवितं त्यजंति । तथा वृद्धाश्च गर्भस्थाअप्येतत्पश्यत यूयं के ते मानवामनुष्यास्तेषामेवोपदेशदानार्हत्वात् मानवग्रहणं । बहुपायत्वादायुषः सर्वास्वऽप्यवस्थासु प्राणी प्राणांस्त्यजतीत्युक्तं भवति । तथाहि । त्रिपल्योपमायुष्कस्यापि पर्याप्त्यनंतरमंतर्मुहूर्तेनैव कस्यचिन्मृत्युरुपतिष्ठतीति । अपिच गर्भस्थं जायमानमित्यादि । अत्रैव दृष्टांतमाह । यथा श्येनः पक्षिविशेषोवर्त्तकं तित्तिरजातीयं- हरेत् व्यापादयेदेवं प्राणिनः प्राणान् मृत्युरुपहरेत् । उपक्रमकारणमायुष्कमुपक्रमेत् । तदभावे वा आयुष्कक्षये त्रुटयति व्यवछिद्यते जीवानां जीवितमिति शेषः ॥ २ ॥

मायाहिं पियाहिं लुप्पइ, नो सुलहा सुगई य पेच्चउ ॥ एयाइं भयाइं पेहिया, आरंभा विरमेज्ज सुव्वए ॥ ३ ॥ जमिणं जगती पुढो जगा, कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो ॥ सयमेव कडेहिं गाहइ, णो तस्स मुच्चेज्ज पुठ्ठयं ॥ ४ ॥

अर्थ—कोइएक जीव बापडो मायाहिं पियाहिं के० मातापितादिक स्वजने लुप्पइ के० संसारमांहे भमाड्यो थको एटले तेने मोहे बांध्यो थको, धर्मने विषे उद्यम करे नहीं ते जीवने पेच्चउ के० परभवने विषे सुगईय के० सद्गति जे मुक्ति ते नोसुलहा के० सुलभ नथी. केमके मोहरूप क्लेश तथा विषयसुख थकी दुर्गति थाय एवुं जाणी एयाइंभयाइं के० ए मोहादिक भयने पेहिया के० देखीने जे आरंभाविरमेज्ज के० आरंभ थकी विरमे, निवृत्ते ते सुव्वएके० सुव्रत थाय. एटले शोभनिकव्रत वंत थाय. ॥३॥ हवे जे कोई आरंभादिक थकी निवृत्ते नहीं तेने दोष कहेछे, जमिणं के० जे कारणे अव्रति जीवने आगल जे कहेशे ते उत्पन्न थाय. ते शुं उत्पन्न थाय? तो के जगती के० जगतमांहे पुढोजगा के० पृथक् पृथक् जुदां जुदां जीवनां स्थानक जे नरकादिक छे, ते स्थानकोमांहे कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो के० प्राणी पोतानां उपार्जेलां कर्मोनां जे दुःख तेणेकरी पीडाय. ते प्राणी सयमेवकडेहिं के० स्वमेव एटले पोते कीधां जे कर्म तेणे करी गाहइ के० अवगाहे एटले नरकादिक स्थानक दुःखना हेतु उपचय करे. णोतस्समुच्चेज्ज के० ते अशुभविपाक थकी न मूकाय; अपुठ्ठयं के० अणफरश्यो एटले ते बांधेलां कर्म भोगव्या विना छूटे नहीं. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—मायेति । योमातापितृमोहेन धर्मोद्यमं न कुरुते सतैरेव मातापित्रादि निर्लुप्यते संसारेभ्राम्यते । तस्य प्रेत्य जन्मांतरे सुगतिश्च नो सुलभा । एतानि दुर्गतिगमनादीनि भयानि (पेहिया) प्रेक्ष्यारंभाद्विरमेत् सुव्रतः शोभनव्रतः । सुस्थितोवा पाठांतरे ॥ ३ ॥ (जमिणमिति) यद्यस्मादनिवृत्तानामिदं स्यात् । जगति पृथिव्यां (पुढो जगत्ति) पृथग्भूताव्यवस्थिताः सावद्याचारोपचितैः कर्मभिः प्राणिनोलुप्यंते नरकादिषु भ्राम्यंते । स्वयमेव कृतैः कर्मभिर्नरकादिस्थानान्यभिगाहते । नच तस्याऽशुभाचरितस्य कर्मणो विपाकेनाऽस्पृष्टोमुच्यते जंतुः ॥ ४ ॥

॥ टीका—तथा (मायाहिंत्यादि) कश्चिन्मातापितृभ्यां मोहेन स्वजनस्नेहेन च न धर्मं प्रत्युद्यमं विधत्ते सचतैरेव मातापित्रादिभिर्लुप्यते संसारे भ्राम्यते । तथाहि । विदितमलोहमहोमह,न्मातापितृपुत्रदारबंधुसंज्ञं । स्नेहमयमद्भुमतामतः किंबंधनं शृंखलं

खलेन धात्रा ॥ १ ॥ तस्य च स्नेहाकुलितमानसस्य सदसद्विवेकविकल्पस्य स्वजनपोषणार्थं यत्किंचनकारिणइहैव सद्भिर्निंदितस्य सुगतिरपि प्रेत्य जन्मांतरे नोसुलनाऽपि तु मातापितृभ्यामोहितमनसस्तदर्थं क्लिश्यतोविषयसुखेप्सातश्च डुर्गतिरेव नवतीत्युक्तं नवति । तदेवमेतानि नयानि नयकारणानि डुर्गतिगमनादीनि ( पेहियत्ति ) प्रेक्ष्याऽरंनात्सावद्याऽनुष्ठानरूपाद्विरमेत् । सुव्रतः शोननव्रतः सन् सुहियतोवेति पाठान्तरं ॥ ३ ॥ अनिवृत्तस्य दोषमाह । ( जमिणमित्यादि) यद्यस्मादनिवृत्तानामिदं नवति । किं तत् जगति पृथिव्यां ( पुढोत्ति ) पृथक्नूताव्यवस्थिताः सावद्यानुष्ठानोपचितैः कर्मनिर्विलुप्यंते नरकादिषु यातनास्थानेषु भ्राम्यंते । स्वयमेव च कृतैः कर्मनिर्नैस्वराद्यापादितैर्गाहते नरकादिस्थानानि यानि तानि वा कर्माणि डुःखहेतूनि गाहते उपचिनोति । अनेन च हेतुसद्भावः कर्मणामुपदर्शितोनवति । नच तस्याऽशुनाऽचरितस्य कर्मणोविपाकेनाऽस्पृष्टोऽशुसो मुच्यते जंतुः । कर्मणामुदयमननुनूय तपोविशेषमंतरेण दीक्षाप्रवेशाद्विना न तदपगमं विधत्तइतिनावः ॥ ४ ॥

देवा गंधवरक्खसा, असुरा नूमिचरा सिरिसिवा ॥ राया नरसेट्ठिमाहणा, ठाणा ते विचयंति डुक्खिया ॥५॥ कामेहिंय संथवेहिय गिद्धा, कम्मसहा कालेण जंतवो॥ताले जह बंधणच्चुए,एवं आउक्खयंमि तुट्टती ॥६॥

अर्थ—हवे सर्व स्थानकनुं अनित्यपणुं देखाडेछे. देवा के० देवता ते ज्योतिषि सौधर्मादिक तथा गंधवरक्खसा के० गांधर्व राक्षस एटले व्यंतरदेवो कह्या, तथा असुरा के०,दश प्रकारना जुवनपति तथा नूमिचरा के० नूमिचरादिक ते मनुष्यादिक जाणवा. अने सिरिसिवा के० सरीसृप एटले सर्पादिक तिर्यंच जाणवा; तथा राया के० राजा चक्रवर्त्यादिक अने नर के० सामान्य मनुष्य, सेट्ठिके० श्रेष्ठि ते नगरमांहे मोहोटा, माहणा के० ब्राह्मण, ठाणा तेविचयंति डुक्खिया के० एटला सर्व पोतपोतानां स्थानकने पोते डुखिया थया थका ठांमेछे एटले सर्व प्राणीमात्रने अंतकाले डुःख उपजेछे इत्यर्थः ॥५॥ वली तेहिज नाव कहेछे. कामेहिंयके० कामते विषयादिक नोग अने संथवेहिय के० संस्तवते मातापितादिक तथा ससुर वर्गादिक तेनो परिचय,तेणेकरी गिद्धाके० आसक्त थतो कम्मसहाकालेण के० काले कर्मविपाके एटले नोगववाने प्रस्तावे जंतवो के० जीव कर्मनो सहन करनार थाय, एटले विषयासक्त मनुष्यने आगमिक काले डुःखज थाय, परंतु ते जीवने काम, नोग तथा स्वजन ए सर्व डुःख थकी राखनार नथी. जह के० जेम ताले के० तालवृक्षनुं फल ते बंधणच्चुए के० वींट थकी

बूटे तेवारे अवश्य पडे, एवं के० एम आउक्खयंमि तुट्टती के० जीव, जे छे ते आयुष्य ना क्षय थकी जेवारे विनाश पामे तेवारे तेने कोइ जीवाडी शके नहीं. ॥ ६ ॥

---

॥ दीपिका–देवेति । देवाज्योतिष्कसौधर्माद्याः गंधर्वराक्षसयोरुपलक्षणार्थत्वादष्टप्रकाराव्यंतराः । असुरा दशधा नवनपतयः। येचान्ये नूमिचराः. सरीसृपास्तिर्यंचः। राजानश्च क्रिद्दरिप्रमुखाः। नराः सामान्यमनुष्याः । श्रेष्ठिनः पुरमहत्तरा ब्राह्मणाश्च । एते सर्वेपि स्वस्थानानि दुःखिताः संतस्त्यजंते । सर्वेषां मरणं दुःखदायीति ॥५॥ (कामेहिंति) कामैरिछामदनरूपैः संस्तवैः पूर्वापरनूतैर्गृद्धाआसक्ताः कर्मविपाकसहिष्णवः कालेन जंतवः स्युः। नोगेछोर्विषयासेवने क्लेशएवेत्यर्थः। कामनोगैर्न त्राणमस्तीत्याह (तालेत्ति) ताल फलं यथा बंधनात् वृंतात् च्युतमत्राणं पतति एवं जंतुरपि स्वायुःक्षये त्रुटयति च्यवते ॥६॥

---

॥ टीका–अधुना सर्वस्थानाऽनित्यतां दर्शयितुमाह (देवाइत्यादि) देवाज्योतिष्कसौधर्माद्याः, गंधर्वराक्षसयोरुपलक्षणत्वादष्टप्रकाराव्यंतरागृह्यंते । तथा असुरादशप्रकाराजवनपतयः, ये चाऽन्ये नूमिचराः सरीसृपाद्यास्तिर्यंचः, तथा राजानश्चक्रवर्तिनोबलदेववासुदेवप्रनृतयः । तथा नराः सामान्यमनुष्याः । श्रेष्ठिनः पुरमहत्तराब्राह्मणाश्चैते सर्वेऽपि स्वकीयानि स्थानानि दुःखिताः संतस्त्यजंति । यतः सर्वेषामपि प्राणिनां प्राणपरित्यागे महद्दुःखं समुत्पद्यतइति ॥ ५ ॥ किंच (कामेहिंत्यादि) कामैरिछामदनरूपैस्तथा संस्तवैः पूर्वापरनूतैर्गृद्धा अध्युपपन्नाः संतः (कम्मसहित्ति) कर्मविपाकसहिष्णवः कालेन कर्मविपाककालेन जंतवः प्राणिनोनवंति । इदमुक्तं नवति । नोगेप्सोर्विषयाऽसेवनेन तदुपशममिछतइहामुत्र क्लेशएव केवलं न पुनरुपशमावाप्तिः । तथाहि । उपनोगोपायपरो, वांछति यः शमयितुं विषयतृष्णां । धावत्याऽक्रमितुमसौ पुरो पराह्णे निजछायां। नच तस्य मुमूर्षोः कामैः संस्तवैश्च त्राणमस्तीति दर्शयति । यथातालफलं बंधनात् वृंतात् च्युतमत्राणमवश्यं पतति एवमसावपि स्वायुषःक्षये त्रुट्यति जीवितात् च्यवतइति ॥६॥

जे यावि बहुस्सुए सिया, धम्मिय माहणनिस्कुएसिया ॥ अनिणूमकडे
हिं मुछिए, तिव्वं से कम्मेहिं किच्चती ॥७॥ अह पास विवेगमुट्ठिए, अवि
तिन्ने इह नासई धुवं ॥ णाहिसि आरं कउ परं वेहासे कम्मेहिं किच्चती॥८॥

अर्थ–जेयाविबहुस्सुए के० जे कोइ बहुश्रुत एटले शास्त्रना पारंगामी सियाके० होय, तथा धम्मियके० धार्मिक एटले धर्मना करनार होय तथा माहणनिस्कुएके० ब्राह्मण अने निक्षुक एटले निक्षा अटनशील एवा सिया के० होय; तेपण अनिणूमके० माया

येकरी कडेहिं के० कीधां एवां जे कर्म तेने विषे मुछिए के० मूर्छित थतां तिबसे के० तीव्र एटले आकरा एवा कम्मेहिं के० कर्म तेणेकरी किच्चती के० पीडाय; एटले सारो अथवा नरसो कोई पण जीव करेलां कर्मने जोगव्याविना छूटे नहीं. ॥ ७ ॥ हवे ज्ञान, दर्शन अने चारित्रविना अन्य कोइ मोक्षमार्ग नथी एवुं देखाडेछे. अहपास के० एवुं देखीने शिष्य प्रत्ये गुरु एम कहेछे के, कोइएक दर्शनी विवेक के० परिग्रहनो परित्याग करी उठिते के० उठ्यो अर्थात् प्रव्रज्याने विषे सावधान थयो; परंतु अवितिन्ने के० सम्यक् परिज्ञानने अजावे तिन्न एटले संसारसमुद्र थकी तर्यो नहीं, एवो थतो वली इहजासइ के० एम जाषे के धुवं के० जे मोक्षनो मार्ग अथवा मोक्षनो उपाय ते अमाराज आचार थकीछे एम कहे. माटे हे शिष्य? तेना मार्गे प्रपन्न थतो तुं णाहिसिके० क्यां थकी जाणीश? आरं के० इहलोक अने वली कर्त्तके० क्यां थकी परं के० परलोकने जाणीश अथवा आरं एटले गृहस्थावास अने परं एटले प्रव्रज्या अथवा आरं एटले संसार अने परं एटले मोक्ष तेने केम जाणीश एटले इहलोक परलोक बन्ने थकी भ्रष्ट एवो थको वेहासे के० अंतराले एटले संसारमांहेज कम्मेहिं किच्चइ के० पोताना करेला जे कर्म तेणेकरी पीडातो जइश. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–(जेयाविति) येचापि बहुश्रुताः स्युर्येधार्मिकास्तथा ब्राह्मणास्तथा निक्षुकाः स्युः आनिमुख्येन ( णूमंति ) कर्म माया वा तत्कृतैरसदनुष्ठानैर्मूर्छितास्तीव्रमत्यर्थं । सेत्ति आर्षत्वाद्बहुवचनं ज्ञेयं । ते कर्मनिः कृत्यंते पीड्यंते ॥ ७ ॥ ज्ञानादिसाध्यएव मोक्षोन तीर्थिकोक्तइत्याह । (अहेति) अथाऽनंतरं त्वं पश्य विवेकं त्यागं परिग्रहस्य ज्ञानं वा संसारस्याश्रित्य उत्थितः स्वक्रियोद्युक्तः सम्यक्ज्ञानाजावादवितीर्णः संसाराब्धिमतीर्णः केवलं ध्रुवं मोक्षं तदुपायं वा जापतएव नतु विधत्ते ज्ञानाजावादित्यर्थः । तन्मार्गप्रपन्नस्त्वमपि कथमारं इहजवं परं वा परजवं ज्ञास्यसि । एवं जूतश्चोजयभ्रष्टो ( वेहासित्ति ) अंतराले कर्मनिः कृत्यते पीड्यते ॥ ८ ॥

॥ टीका–अपिच ( जेयावीत्यादि ) येचाऽपि बहुश्रुताः शास्त्रार्थपारगाः । तथा धार्मिकाधर्माचरणशीलाः । तथा ब्राह्मणाः । तथा निक्षुकानिक्षाटनशीलाः स्युर्नवेयुः । तेऽप्यानिमुख्येन ( णूमंति ) कर्म माया वा तत्कृतैरसदनुष्ठानैर्मूर्छितागृद्धास्तीव्रमत्यर्थं । अत्र च छांदसत्वाद्बहुवचनं द्रष्टव्यं । एवंजूताः कर्मनिरसद्वेद्यादिनिः कृत्यंते छिद्यंते पीड्यंतइतियावत् ॥ ७ ॥ सांप्रतं ज्ञानदर्शनचारित्रमंतरेण नाऽपरोमोक्षमार्गोऽस्तीति त्रिकालविषयत्वात् सूत्रस्याऽगामितीर्थिकधर्मप्रतिषेधार्थमाह ( अहेत्यादि ) अथेत्यधिकारांतरे वक्ष्यादेशे एकादेशइति । अथेत्यनंतरं एतत्पश्य । कश्चीर्थिकोविवेकं

परित्यागं परिग्रहस्य परिज्ञानं वा संसारस्याऽऽश्रित्योऽन्वितः प्रव्रज्योत्थानेन । सच स म्यक् परिज्ञानाभावादवितीर्णः संसारसमुद्रं तितीर्षुः केवलमिह संसारे प्रस्तावे वा शाश्वतत्वात् ध्रुवोमोक्षस्तं तदुपायं वा संयमं नापतएव न पुनर्विधत्ते तत्परिज्ञाना भावादितिभावः । तन्मार्गे प्रपन्नस्त्वमपि कथं ज्ञास्यसि । आरमिहभवं कुतोवा परं पर लोकं । यदि वा आरमिति गृहस्थत्वं परमिति प्रव्रज्यापर्यायं । अथवा आरमिति संसा रं परमिति मोक्षं एवंभूतश्चाऽन्योऽप्युभयभ्रष्टः । ( वेहासित्ति ) अंतराले उभयाभावतः स्वकृतैः कर्मभिः कृत्यते पीड्यतइति ॥ ८ ॥

जइ वि य णिगणे किसे चरे, जइविय भुंजिय मासमंतसो ॥ जे इह मायावि मिज्जई, आगंतागब्भायणंतसो ॥ ए ॥ पुरिसो रम पावकम्मुणा, पलियंतं मणुयाणजीवियं ॥ सन्ना इह काममु च्छिया, मोहं जंति नरा असंवुडा नरा ॥ १० ॥

अर्थ–हवे शिष्य कहेछे के, हे भगवन्? केटलाएक दर्शनी निष्परिग्रही तथा तपस्या ना करनार देखायछे, तो तेने मोक्ष केम नहोय? हवे गुरु कहेछे के, जइविय के० यद्य पि ते परतीर्थिक तापसादिक अथवा आज्ञा थकी भ्रष्टस्वयूथिक णिगणे के० नग्न सर्व बाह्य परिग्रह रहित, किसे के० कृश दुर्बल कीधुंछे शरीर जेमने एवा थतां चरे के० पोतपोतानी प्रव्रज्या आदरीने विचरेछे. वली जइविय के० यद्यपि भुंजिय मासमं तसोके० मासमास खमण करी मासने अंते जमे तथापि जेइह के० जे आ संसारने विषे मायावि के० मायासहित मिज्जइ के० संयोगकरे. उपलक्षणथी कषायादिके करी युक्त होय ते आगंतागब्भयाणंतसो के० आगमिक काले अनंता गर्भादिक दुःख पामे, ए टले अनंतो संसार परिभ्रमण करे. ॥ ए ॥ हवे जे कारणे मिथ्यादृष्टिने उपदेशे घणो कायक्लेशे, पण मुक्ति नथी तेकारणे निरते मार्गे रहेवुं ए भाव कहेछे. पुरिसो के० अ हो पुरुषो? तमे पावकम्मुणा के० पापकर्म थकी उपरम के० निवर्त्तो. केमके पलियंतं मणुयाणजीवियं के० मनुष्यनुं जीवितव्य ते पल्योपमांतछे, एटले संयमरहित जीवनुं जो घणुंज आयुष्य होय तो त्रण पल्योपम होय अने संयमसहित तो एक पल्योपमनी अंदर जाणवुं एटले आठ वर्षे उणी एक पूर्वकोडी एटलुंज मनुष्यनुं आयुष्यछे तेतो गयुंज जाणजे एवुं जाणीने जेटलो काल जीविए तेटलो काल सम्यक् अनुष्ठाने करी सफल करिए वली जे नरा के० मनुष्य सन्नाइह के० भोग, स्नेह पंकनेविषे खुता अथवा काममुछिया के० कामभोगने विषे मूर्छित थता एवाजे मनुष्य असंवुडा नराके० ते

पुरुष असंवरी बतां मोहंजंति के०मोहने विषे पोहोचे एटले हिताहित न जाणे.॥१०॥

॥ दीपिका—जइवीति । यद्यपि कश्चित्तापसादिर्नग्नः कृशश्च चरेत् । यद्यपि पष्ठाष्टमादिकु र्वेन् यावदंतशोमासं स्थित्वा भुंक्ते तथापि योमायावी उपलक्षणात्कषाययुक्तोमीयते सगर्भाय गर्भार्थिमनंतशोऽनंतवारं आगंता यास्यति । अनंतकालं संसारे भ्रमिष्यतीति भावः ॥ ए ॥ पुरीसोति । हे पुरुष त्वं पापकर्मणः सकाशात् उपरम निवर्तस्व । यतोम नुजानां जीवितं सुबह्वपि त्रिपल्योपमांतं संयमजीवितं वा पल्योपमस्यांतर्मध्ये पूर्वकोटि मितमित्यर्थः । अथवा परिसमंतादंतो यस्य तत् पर्यंतं सांतमित्यर्थः । ये पुनः कामेषु इच्छा मदनादिषु मूर्छिताः सन्नामग्नाइह संसारे ते मोहं यांति ते मोहनाय कर्म बध्नंति अ संवृताः संवररहितानराः ॥ १० ॥

॥ टीका—ननु च तीर्थिकाअपि केचन निष्परिग्रहास्तथा तपसा निष्टप्तदेहाश्च त त्कथं तेषां नो मोक्षावाप्तिरित्येतदाशंक्याह । ( जइविइत्यादि ) यद्यपि तीर्थिकः क श्चित्तापसादिस्त्यक्तवाह्यगृहवासादिपरिग्रहत्वात् निष्किंचनतया नग्नस्त्वक्त्राणाभावाच्च कृशश्चरेत् स्वकीयप्रव्रज्यानुष्ठानं कुर्यात् । यद्यपिच पष्ठाष्टमदशमद्वादशादितपोविशे षं विधत्ते यावदंतशो मासं स्थित्वा भुंक्ते तथापि आंतरकषायाऽपरित्यागान्न मुच्य ते इतिदर्शयति । यस्तीर्थिकइह मायादिना मीयते उपलक्षणार्थत्वात् कषायैर्युक्तइत्येवं परिछिद्यते । असौ गर्भाय गर्भार्थिमासमंतात् गंता यास्यत्यनंतशोनिरवधिकं कालमि ति । एतडुक्तं भवति । अकिंचनोऽपि तपोनिष्टप्तदेहोऽपि कषायाऽपरित्यागान्नरकादिस्था नात् तिर्यगादिस्थानं गर्भाज्जन्मनंतमपि कालमविश्रममेवत् संसारे पर्यटतीति ॥ ए ॥ य तोमिथ्यादृष्ट्युपदिष्टतपसाऽपि न दुर्गतिमार्गनिरोधोऽस्तोमडुक्तएव मार्गे स्थेयमेतज्जनं मुपदेशं दातुमाह । ( पुरिसोइत्यादि ) हे पुरुष येन पापेन कर्मणा असदनुष्ठानरूपेण त्वमुपलक्षितस्तत्राऽसकृत् प्रवृत्तत्वात् तस्माडुपरम निवर्तस्व । यतः पुरुषाणां जीवि तं सुबह्वपि त्रिपल्योपमांतं संयमजीवितं वा पल्योपमस्याऽतर्मध्ये वर्त्तते तदऽप्यूनां पूर्वकोटिमिति यावत् । अथवा परिसमंतात्अंतोऽस्येतिपर्यंतं सांतमित्यर्थः । तन्नेवं तत्तमेवाऽवगंतव्यं । तदेवं मनुष्याणां स्तोकं जीवितमवगम्य यावन्नपर्यंति ताव द्धर्मानुष्ठानेन सफलं कर्त्तव्यं । ये पुनर्भोगस्नेहपंके अवसन्नामग्नाइह मनुष्यभवे संसारे वा कामेष्विच्छामदनरूपेषु मूर्छिताअध्युपपन्नास्ते नरा मोहं यांति हिताहितप्राप्तिप रिहारे मुह्यंति मोहनीयं वा कर्मोपचिन्वंतीति संभाव्यते । एतदसंवृतानां हिंसादि स्थानेभ्योनिवृत्तानामसंयतेंद्रियाणां चेति ॥ १० ॥

जययं विहराहि जोगवं,अणुपाणा पंथा डुरुत्तरा ॥ अणुसासणंमेव प क्कमे, वीरेहिं सम्मं पवेइयं ॥ ११ ॥ विरया वीरा समुठिया कोहकायरि याइ पीसणा॥पाणेण हणंति सवसो; पावाउविरिया अनिनिवुमा ॥१२॥

अर्थ–हवे जो एमछे तो शुं करवुं ते कहेछे. जययं के० आयुष्य तुच्छ जाणी अने विषयने क्लेशनुं कारण जाणी, गृहपाशबंध छेदीने चारित्रने विषे यत्न करतो विहराहि के० विचरे ते केहेवो छतो विचरे? तोके, जोगवं के० समिति अने गुप्तिसहित थको विचरे; केमके अणुपाणापंथाके०सूक्ष्मजीव जे पंथ एटले मार्गने विषे छे, ते पंथ ईर्यास मितिविना डुरुत्तराके० डुस्तरछे एटले जतां दोहिलोछे, एरीते बीजी समितिउ पण फला ववी तो एम सदा सावधान पणे हिंमे.अणुसासणं के० जेम श्रीवीतरागदेवे सूत्रम ध्ये शीखामण कहीछे. एवके० तेम सूत्रने अनुसारे पक्कमेके० चाले, एम वीरेहिं के० श्रीवीर तीर्थंकरे सम्मके० साचु पवेदियं के० कह्युंछे. ॥ ११ ॥ ते श्रीवीर केवाछे, ते क हेछे. जे हिंसादिक पापथकी विरियाके० विरत एटले निवर्त्या ते वीरा के० वीरकर्मना छेदनारा तथा समुठियाके० सम्यक् आचारने विषे सावधान थया एवा छता कोह के० क्रोध अने कायरियाइके० कातरी एटले माया तथा आदि शब्द थकी मान अने लोभ पण जाणी लेवां तेना पीसणा के० पीसनार एटले मर्दन करनार ते वीर सवसो के० सर्वथापि पाणेणहणंति के० प्राण हणे नहीं. पावाउ के० पाप जे सावद्य अनुष्ठान ते थकी विरिया के० विरत तथा अनिनिवुमा के० क्रोधादिकना उपशमे करी शीतल थयाछे एवा श्रीवीर जाणवा. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–जययमिति। यतमानोयत्नंकुर्वन् विहर उद्युक्तविहारी नव योगवान् संय मयोगवान् । अणवः सूक्ष्माः प्राणाः प्राणिनोयेषु ते अणुप्राणाः पंथानोऽनुपयोगैर्डुरु त्तराडुर्गमाः । ईर्यादिसमितिषु उपयोगवताजाव्यमित्यर्थः। अनुशासनमेव सूत्रानुसारेणै व संयमे प्रक्रमेत् चरेत् । एवं वीरैरर्हद्भिः सम्यक् प्रवेदितं कथितं ॥११॥ विरयाइति । हिंसादेर्विरताः समुत्थिताः सम्यगारंनत्यागेनोछिताः क्रोधकातरिकादिपीषणाः । क्रोधग्रह णान्मानोपि ग्राह्यः । कातरिका माया। मायाग्रहणाच्च लोनोगृहीतः। तेषां पीषणाविना शकाः एवंविधावीराः स्युः। तथा प्राणान् सर्वशोमनोवाक्कायैर्न घ्नंति । पापात् सावद्यव्या पारात् विरताअनिनिर्वृताः क्रोधाद्युपशमेन शांताः स्युः ॥ १२ ॥

॥ टीका–एवं च स्थिते यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह । ( जययमित्यादि ) स्वल्पं जीवित मवगम्य विषयांश्च क्लेशप्रायाऽनवबुध्य छित्वा गृहपाशबंधनं यतमानोयत्नं कुर्वन् प्राणि

नामनुपरोधेन विहरणुकविहारी नव । एतदेव दर्शयति । योगवानिति ॥ संयमयोगवान् गुतः समितिगुप्तइत्यर्थः । किमित्येवं । यतोऽणवः सूक्ष्माः प्राणाः प्राणिनोयेषु ते । तया चैवंनूताः पंथानोऽनुपयुक्तैर्जीवानुपमर्द्दन डुस्तराडुर्गमाइत्यनेन ईर्यासमितिरुपक्षिता । अस्याश्चोऽपलक्षणार्थत्वात् अन्यास्वऽपि समितिषु सततोऽपयुक्तेन नवितव्यं । अपिच अनुशासनमेव यथागममेव सूत्राऽनुसारेण संयमं प्रक्रमेत् । एतच्च सर्वैरेव वीरैरर्हद्भिः सम्यक् प्रवेदितं प्रकर्षेणाऽख्यातमिति ॥ ११ ॥ अथ कएते वीराइत्याह । ( विरयेत्यादि ) हिंसाऽनृताद्दिपापेन्योये विरताः । विशेषेण कर्म प्रेरयंतीति वीराः । सम्यगारंनपरित्यागेनोत्थिताः समुत्थिताः ते एवंनूताश्च क्रोधकातरिकादिपीषणाः। तत्र क्रोधग्रहणान्मानोगृहीतः । कातरीका माया तद्ग्रहणाल्लोनोगृहीतः । आदिग्रहणात् शेषमोहनीय परिग्रहः तत्पीषणास्तदपनेतारः तथा प्राणिनोजीवान् सूक्ष्मतरनेदनिन्नान् सर्वशोमनो वाक्कायकर्मनिर्नन्नंति नव्यापदयंति। पापाच्च सर्वतः सावद्यानुष्ठानरूपाद्विरताः निवृत्तास्तश्चाऽनिनिवृत्ताःक्रोधाद्युपशमेनशांतीनूताः। यदि वाऽनिनिवृत्ताःमुक्ताइव इष्टव्याऽति॥१२

णवि ता अहमेव लुप्पए, लुप्पंति लोअंसि पाणिणो ॥ एवं स
हिएहिं पासए, अणिहेसे पुट्ठे अहियासए ॥ १३ ॥ धुणिया
कुलियं चलेववं, किसए देहमणासणा इह ॥ अविहिंसा मेव
पव्वए, अणुधम्मो मुणिणापवेदितो ॥ १४ ॥

अर्थ—वली उपदेशांतर कहेछे. ए नावनाये परिसह अने उपसर्ग सहन करवा ते कहेछे. ण के० नथी अपि के० निश्चे ता के० तेप्रत्ये ए शीत, उष्ण, क्षुधातृषादिक परिसह तेणेकरी अहमेवलुप्पए के० नथी पीडातो छुं ? किंतु लुप्पंतिलोअंसिंपाणिणो के० लोकने विषे घणा तीर्यंच तथा मनुष्यादि प्राणीउ जे छे. ते शीततापादिक कष्ट करी पीडायछे, परंतु तेने सम्यक् विवेकने अनावे निर्जरा कांइ पण यती नथी. तेमाटे एवं के० ए प्रकारे सहिएहिं के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्र करीसहित थतो जे शीततापादिक पूर्वे कह्या तेने पासए के० आलोचे तथा अणिहे के० स्नेहरहित अथवा क्रोधादिकेरहित थतो सेपुट्ठेके० ते परिसहे पीडयो थको तेनी वेदना सम्यक् प्रकारे अहियासे. ॥१३॥ वली तेहिज कहेछे. धुणिया के०दूरकरी कुलियं चलेववं के० लेपसहित नींतने एटले शुं कयुं के, जेम गोबरथकी लींपेली नींत ते अनुक्रमें तेनो लेप गये थके डुर्बल थाय. ए दृष्टांते करी मणासणाइहिंके०अनशनादिक तप करीने किसएदेहके०देहने कृश करे तथा वली अविहिंसा मेवपव्वएके०एक अहिंसाज आदरे. अणुधम्मो मुणिणापवेदितो के०ए अहिंसादिलक्षण जे धर्मछे,ते जीवने अनुकूल एटले हितकारी सर्वज्ञेकह्योछे.॥१४॥

॥ दीपिका–एवितेति । परीषहैःस्पृष्टोपि तान् अधिसहेत क्षमेत । पीडितएवं चिंतयेत् नतावदहमेव परीषहोपसर्गैर्लुप्ये पीडये किंतु अन्येपि प्राणिनस्तिर्यङ्मनुष्याः पीड्यंते लोके एवं सहितोज्ञानादिभिः स्वहितआत्महितोवा पश्येत् निर्मलबुध्या विचारयेत् पूर्वोक्तं । अनीहः क्रोधादिभिरपीडितः संयमेपरीषहसहनेवा निगूहीतवीर्योवा सन् परिषहैः स्पृष्टोपि तान् अधिसहेत क्षमेत ॥ १३ ॥ धुणियाइति । धूत्वा विधूय कुडिअं कुड्यं भित्तिमिवेत्यर्थः। लेपवत् सलेपं। यथा कुड्यं गोमयादिलेपेन सलेपं क्रमेण लेपोप गमतः कृशं स्यात् एवमशनादिभिर्देहं कर्शयेत् । देहकृशत्वाच्च कर्मकृशत्वं स्यादितिभा वः । तथा विविधाहिंसाविहिंसा न विहिंसा अविहिंसा तां प्रव्रजेत प्रकर्षेण व्रजेत। अ हिंसा प्रधानः स्यादित्यर्थः । अनुगतोमोक्षं प्रति अनुकूलोधर्मोऽनुधर्मोऽयं मुनिना सर्व ज्ञेन प्रवेदितः कथितः ॥ १४ ॥

---

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमाह । (एविताइत्यादि परीषहोपसर्गाएतद्भावनापरेण सोढव्याः नाहमेवैकस्तावदिह शीतोष्णादिदुःखविशेषैर्लुप्ये पीड्ये । अपित्वऽन्येऽपि प्राणि नस्तथाविधा स्तिर्यङ्मनुष्याअस्मिंल्लोके लुप्यंते अतिदुःसहैर्दुःखैः परिताप्यंते तेषां च सम्यग्विवेकाभावान्ननिर्जराख्यफलमस्ति । यतः । क्षांतं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न संतोषतः सोढा दुःसहतापशीतपवनक्लेशान तप्तं तपः ॥ ध्यातं चित्तमहर्निशं नियमि तं द्वंद्वैर्न तत्वं परं तत्तत्कर्मकृतं सुखार्थिभिरहो तैस्तैः फलैर्वंचिताः ॥१॥ तदेवं क्लेशादिस हनं सद्विवेकिनां संयमाभ्युपगमे सति गुणाय भवति । तथाहि । कार्श्यं क्षुत्प्रभवं कदन्न मशनं शीतोष्णयोः पात्रता पारुष्यं च शिरोरुहेषु शयनं मह्यास्तले केवले । एतान्येव गृ हे वहंत्यवनतिं तान्युन्नतिं संयमे दोषाश्चापि गुणाभवंति हि नृणां योग्ये पदे योजि ताः । १ । एवं सहितो ज्ञानादिभिः स्वहितोवा आत्महितः सन् पश्येत् कुशाग्रीयया बुध्या पर्यालोचयेदनंतरोदितं । तथा निहन्यतइति निहः न निहोऽनिहः क्रोधादिभि रपीडितः सन् समहासत्वः परीषहैः स्पृष्टोऽपि तानाधिसहेत मनःपीडां न विदध्यादिति। यदिवाऽनिहइति तपः संयमपरीषहने वा निगूहितबलवीर्यः । शेषंपूर्ववदिति ॥ १३ ॥ अपिच (धुणियाइत्यादि) । धूत्वा विधूय (कुलियंति) कट्टणकृतं कुड्यं । लेपवत्सलेपं । अयमत्रार्थः । यथाकुड्यं गोमयादिलेपेन सलेपं जाघट्यमानं लेपापगमात् कृशं भवति एवं अनशनादिभिर्देहं कर्शयेत् अपचितमांसशोणितं विदध्यात् । तदपचयाच्च कर्मणोऽ पचयोभवतीति भावः। तथा विविधाहिंसा विहिंसा न विहिंसा अविहिंसा तामेव प्रकर्षे ण व्रजेत् अहिंसाप्रधानोभवेदित्यर्थः । अनुगतोमोक्षं प्रत्यनुकूलो धर्मोऽनुधर्मः असावहिं सालक्षणः परीषहोपसर्गसहनलक्षणश्च धर्मोमुनिना सर्वज्ञेन प्रवेदितःकथितइति॥१४॥

सउणी जह पंसुगुंडिया, विहुणिय धंसयई सियं रयं ॥ एवं दविउवहाणवं, कम्मं खवइ तवस्सिमाहणे ॥ १५ ॥ उठियमणगारमेसणं, समणं ठाण ठिअं तवस्सिणं॥ महर वुड्ढाय पछए, अवि सुस्से ण य तं लनेऊणो ॥१६

अर्थ—हवे कहेछे के जह के०जेम सउणी के० पङ्खिणी ते पंसुगुंडिया के०रजे करी खरडी छती विहुणिय के० अंग धुणावीने धंसयईसियंरयं के० ते बधी रज खंखेरीने दूर करे. एवं के० एरीते दविउ के० मोक्ष जवाने योग्य नव्यजीव ते वहाणवं के० उप धान वंत ठतो उपधान एटले तपविशेष तेनो करनार एवो तवस्सिमाहणे के० तपस्वी माहण महणो एवोजेनो उपदेश ठे,तेने प्राकृत शैली माटे माहण कहिए; एटले तपस्वी ब्रह्मचर्यनो पालनार ते कम्मंखवइ के० कर्म खपावीने पोता थकी वेगलाकरे. ॥१५॥ हवे अनुकूल उपसर्ग कहेछे. अणगारं के० साधु ते संयमने विषे उठियं के० प्रवर्त्यो तथा एसणंके० एषणानो पालनार तथा समणंके० श्रमण अने तवस्सिणं के० तपस्वी ठाणठिअंके०स्थान स्थित उत्तरोत्तर संयमने स्थानके प्रवर्त्यो ते तवस्सिणंके० तपस्वी एवा साधुने कदाचित् महरा के० बालक पुत्र पौत्रादिक तथा वुड्ढाके० पिता माता दिक तेणे पछएके० प्रार्थ्यो एटले प्रार्थना करी कहेके, शुं तमे अमारुं प्रतिपालन कर वानुं टालोठो. अमारुं पालण पोषण करनार तमारा विना बीजो कोइ नथी. इत्यादिक व चन कहेतां ते अवि के० अपि सुस्से के० श्रम पामे; परंतु तंजणा के० ते जन जे स जनादिकते परमार्थना जाण एवा साधुने णयलनेतुके०पोताने वश करी शके नहीं.॥१६॥

---

॥ दीपिका—सउणीति । शकुनिः पक्षिणी यथा पांसुना रेणुना गुंठिता व्याप्ता सती अं गं विधूय कंपयित्वा सितं बद्धं रजोध्वंसयत्यपनयति एवं इव्योनव्योमुक्तिगमनयोग्य उपधानवान् तपोयुक्तः क्षपयति तपस्वी । मावधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य सप्राकृतशैल्यामाहणः ॥१५॥ ( उठियेति ) डहराबालाः पुत्रादयोवृद्धाः पित्रादयः श्रमणं प्रार्थयेयुः । वयं त्वया पाल्यास्त्वंचास्माकं पाल्यइति । किंनूतं श्रमणं अनगारं गृहरहितं एषणां प्रति उद्यितमुद्य मवंतं स्थानस्थितं संयमस्थानस्थं तपस्विनं एवं नणंतस्ते जनाअपि शुष्येयुः श्रमं ग छेयुः न च तं साधुं लनेरन् नैवात्मवशं कुर्युरित्यर्थः ॥ १६ ॥

---

॥ टीका—किंच (सउणीत्यादि) शकुनिका पक्षिणी यथा पांसुना रजसा ऽवगुंठितासती अंगं विधूय कंपयित्वा तद्रजः सितमवबद्धंसत् ध्वंसयत्यपनयति । एवं इव्योनव्यो मुक्तिगमनयोग्योमोक्षंप्रत्युपसामीप्येन दधातीति उपधानमनशनादिकं तपः तदस्यास्ती त्युपधानवान् सन्नेवंनूतः कर्मज्ञानावरणादिकं क्षपयत्यपनयति । तपस्वी साधुः ( माह

णत्ति ) मावधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य सप्राकृतशैल्या माहणेत्युच्यतइति ॥ १५ ॥ अनुकूलोप सर्गमाह । ( जठियेत्यादि ) अगारं गृहं तदस्य नास्तीत्यनागारस्तमेवं नूतं संयमोत्थाने नैपणां प्रत्युत्थितं प्रवृत्तं । श्राम्यतीतिश्रमणस्तं । तथास्थानस्थितमुत्तरोत्तरविशिष्टसंयम स्थानाध्यासिनं तपस्विनं विशिष्टतपोनिष्टप्तदेहं तमेवंनूतमपि कदाचित् मद्दरा पुत्रनप्ता दयोवृध्दाः पितृमातुलादयः उन्निष्क्रामयितुं प्रार्थयेयुर्याचेरंस्तएवमूचुर्नवता वयंप्रतिपाल्या न त्वामंतरेणाऽस्माकं एकः प्रतिपाल्यएवं नणंतस्ते जनाअपि शुष्येयुः श्रमं गच्छेयुर्न च तं साधुं विदितपरमार्थं लनेरन् नैवाऽऽत्मसात्कुर्युर्नैवाऽऽत्मवशगं विदध्युरिति ॥ १६ ॥

जइ कालुणियाणि कासिया, जइ रोयंति य पुत्तकारणे ॥ दवि यं निक्खुसमुठियं णो लप्नंति ण संठवित्तए ॥ १७ ॥ जइ विय कामेहिं लाविया,जइ णं जाहिण वंधिउं घरं ॥ जइ जीवितना वकंखए, णो लप्नंति णं संठवित्तए ॥ १८ ॥

अर्थ–जइके० यद्यपि ते माता पिता पुत्र कलत्रादिक जेठे ते साधुने सन्मुख आवीने कालुणियाणिकासियाके० अनेक करुणा प्रलाप वचन बोले. तथा जइके० यदि रोयं तियपुत्तकारणेके० पुत्रने निमित्ते रुदन करे. तोपण ते दवियंके० मुक्ति गमन योग्य निक्खुके० साधु रागद्वेषरहित एवो समुठियंके० सम्यक् प्रकारे संयमने विषे उठ्यो ठे, सावधान थयोठे, एवा साधुने णोलप्नंतिके०क्षोनावी न शके. णसंठवित्तएके०प्रव्रज्या मूकावी गृहस्थावासने विषे स्थापि नशके. ॥ १७ ॥ जइवियकामेहिंलावियाके०यद्यपि ते पोताना सज्जन ते संयम पालता साधुने कामनोगे करी लोनावे ए अनुकूल उपस र्ग अने जइणंजाहिणवंधिउंघरं के०अथवा जो तेने बांधीने घेर लेई जाय ए प्रतिकूल उपसर्ग ठे. तो एवा अनुकूल अने प्रतिकूल उपसर्ग पीड्यो थको पण साधु जई के० यदि जीवितंनावकंखए के० असंयमे जीवितव्य न वांछे एटले मरण कबुल करे. पण असंयमे जीवितव्य न वांछे तो तेने णोलप्नंति णसंठवित्तए के० तेना सजन ते पोताने वशकरी नशके अर्थात् गृहवासने विषे स्थापी नशके ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–जईति । यद्यपि ते मातापित्रादयः कारुणिकानि विलापवचनानि कुर्युः । तथा यदि रुदंति पुत्रकारणात् सुतनिमित्तं । एवं रुदंतोयदिनणंति निक्खुं । किंनूतं ड्व्यं मुक्ति योग्यत्वात् ड्व्यनूतं संयमे समुत्थितमुद्यतं तथापि तं साधुं न लप्स्यंते न शक्नुवंति संयमा च्चालयितुं . तथा न गृहस्थत्वे संस्थापयितुं ॥ १७ ॥ (जईति) यद्यपि ते पित्रादयस्तं साधुं कामैरिछामदनैर्लावयंति उपनिमंत्रयेयुः । तथा यदि णंवाक्यालंकारे बध्वा गृहं नयंति।

एवमनुकूलप्रतिकूलोपसर्गपीडितोपि साधुर्यदि जीवितं नाभिकांक्षेत् यदि जीवितं न वांछेत् असंयमजीवितं वा नाकांक्षेत् । तदा ते निजास्तं साधुं न लभंते न प्राप्नुवंति स्वव शेकर्तुं ( नसंठविचएत्ति ) नापि गृहस्थत्वे संस्थापयितुमलं ॥ १८ ॥

---

॥ टीका—किंच (जईत्यादि) यद्यपि ते मातापितृपुत्रकलत्रादयस्तदंतिके समेत्य करुणा प्रधानानि विलापप्रायाणि वचांस्यऽनुष्ठानानि वा कुर्युः। तथाहि । णाहपियकंततामिय, अइवल्लहदुल्लहोसि नवणंमि ॥ तुहविरहम्मियनिक्किवसुसुंसवंपिपडिहाइ ॥१॥ सेणीगा मोगोठी,गणोवतंज वहोसिसणिद्दिंतो ॥ दिण्णइतिरिएसुपुरिसकिंपुणनियपवरहारं ॥ २ ॥ तथा यदि (रोयंतियत्ति) रुदंति पुत्रकारणं सुतनिमित्तं कुलवर्धनमेकं सुतमुत्पाद्य पुनरेवं क र्तुमर्हसीति । एवं रुदंतोयदि नणंति तं निक्षुं रागद्वेषरहितत्वान्मुक्तियोग्यत्वा द्रव्यनूतं सम्यक्संयमोत्थानेनोत्थितं तथाऽपि साधुं न लप्स्यंते न शक्नुवंति प्रव्रज्यातोभ्रंशयितुं नावाद्यावयितुं नाऽपि संस्थापयितुं गृहस्थनावेन द्रव्यलिंगाद्यावयितुमिति ॥ १७ ॥ अपिच ( जइविइत्यादि ) यद्यपि ते निजास्तं साधुं संयमोत्थानेनोत्थितं कामैरिछामदन रूपैर्लावयंति उपनिमंत्रयेयुरुपजोजयेयुरित्यर्थः । अनेनाऽनुकूलोऽपसर्गग्रहणं । तथा । यदि नयेयुर्बध्वा गृहं । णमिति वाक्यालंकारे। एवमनुकूलप्रतिकूलोपसर्गैरनिद्रुतोऽपि साधु र्यदि जीवितं नाभिकांक्षेत् यदि जीविताभिलाषी न नवेत् असंयमजीवितं वा नाऽभिनंदेत् ततस्ते निजास्तं साधुं ( णो लप्नंतित्ति ) न लनंते न प्राप्नुवंति आत्मसात्कर्तुं ( णसंठ विचएति । नाऽपि गृहस्थनावेन संस्थापयितुमलमिति ॥ १८ ॥

सेहंतिय णं ममाइणो,माया पियाय सुयाय नारिया ॥ पोसाहि
ण पासउ तुमं, लोगपरं पि जहासि पोसणो ॥ १९ ॥ अन्ने अ
न्नेहिं मुछिया, मोहं जंति णरा असंवुमा ॥ विसमं विसमेहिं
गाहिया, ते पावेहिं पुणो पगप्निया ॥ २० ॥

अर्थ—ते माता पितादिक ते चारित्रियाने अहीं णं इति वाक्यालंकारे, सेहंतिके० शी खवे ते स्वजन केवा छे? तोके, ममाइणोके० अत्यंत स्नेहेकरी ते मायाके० माता, पिया यके० पिता, सुयायके० सुत एटले छोकरा अने नारियाके० नार्या एवा सज्जन सुं शी खवे तेकहेछे. के अहो पुत्र? अमे ताहरे वियोगे अत्यंत दुखिआतिए, एवा अमने पासउके० देखीने तुमंके० तुं अमारु पोसाहिणके० पोषण कर;कारणके तुं अत्यंत सूक्ष्मदृष्टीवालोछो ते माटे तारा हृदयमां सारीपेठे विचारीने अमारुं पोषण कर, अन्यथातो लोगंके०इहलोक तथा परंके० परलोक थकी पण जहाहिके०भ्रष्ट थईश. तेमाटे दुःखी एवा माबित्रहुं पोसणो

के० पोषण करवुं ते महापुण्यनुं कामछे. ॥१९॥ हवे कोइएक कायर पुरुष ते मातापितादिकना वचनथी लोभाय तेने विपाक कहेछे. अन्नेके० अनेरा कोइएक अल्प सत्ववंत एवा चारित्रिया ते अन्नेहिंके० अन्य जे मातापितादिक तेने विषे मुछिया के० मोहे मूर्छायका मोहंजंतिणराअसंवुमा के० असंवरी एटले संवरविना मोह पामे, एटले रूडाअनुष्ठाननुं करवुं मूकी आपे अने मोहनेविषे पोहोचे तथा ते असंयतिनरोने विसमके० गृहस्थे विसमेहिंगाहियाके० असंयम तेने विषे पोहोचाडया छता पुणो के० वली ते पावेहिंके० पापेकरी पगप्रियाके० धृष्ट छतां पापकर्म करतां लज्जा पामे नहीं. ॥२०॥

---

॥ दीपिका–(सेहंतीति) ते मात्रापित्रादयः सुताचार्या च । णमिति व्याक्यालंकारे । तं साधुं (ममाइणोत्ति) ममायं साधुरिति स्नेहालवः शिक्ष्यंति । किमित्याह । पश्य नोऽस्मान् डुःखितान् त्वं तु दर्शकः सूक्ष्मदर्शी अतोऽस्मान् पोषय अन्यथा त्वया प्रव्रज्याग्रहणादिह लोकस्त्यक्तः । अस्मत्परिपालनत्यागात्परलोकमपि त्वं जहासि त्यजसि ॥ १९ ॥ ( अन्नेति ) अन्ये केचनाऽल्पसत्वाअन्यैर्मातापित्रादिनिर्मूर्छिताअसंवृतानरामोहं यांति सदनुष्ठाने मुह्यंति । तथा विषमैरसंयतैर्विषममसंयमं ग्राहिताअसंयमे प्रवर्तितास्ते पापैः कर्मनिः पुनः प्रगल्निताधृष्टतांगताः ॥ २० ॥

---

टीका–च ( सेहंतियणमित्यादि ) ते कदाचिन्मातापित्रादयस्तमनिनवप्रव्रजितं ( सेहंतित्ति ) शिक्ष्यंति । णमिति वाक्यालंकारे । ( ममाऽइणोत्ति ) । ममाऽयमित्येवं स्नेहालवः । कथं शिक्ष्यंतीत्यतआह । पश्य नोऽस्मानत्यंतडुःखितांस्त्वदर्थं पोषकानावा क्षा त्वं च यथावस्थितार्थपश्यक.सूक्ष्मदर्शी सश्रुतिकइत्यर्थः । अतोनोऽस्मान् पोषय प्रतिजागरणां कुरु अन्यथा प्रव्रज्याऽभ्युपगमेनेह लोकस्त्यक्तोनवताऽस्मत्प्रतिपालनपरित्यागेन च परलोकमपि त्वं त्यजसीति डुखितनिजप्रतिपालनेन च पुण्यावाप्तिरेवेति । तथाहि । या गतिः क्लेशदग्धानां गृहेषु गृहमेधिनां । बिभ्रतां पुत्रदारांस्तु तां गतिं व्रज पुत्रकेति ॥१९॥ एवं तैरुपसर्गिताः केचन कातराः कदाचित् यत्कुर्युरित्याह । (अन्नेइत्यादि) अन्ये केचनाऽल्पसत्वाः अन्यैर्मातापित्रादिनिर्मूर्छिताअध्युपपन्नाः सम्यग्दर्शनादिव्यतिरेकेण सकलमपि शरीरादिकमन्यदित्यऽन्यग्रहणं । ते एवंनूताः असंवृतानराः संमोहं यांति सदनुष्ठाने मुह्यंति तथा संसारगमनैकहेतुनूतत्वात् विषमोऽसंयमस्तं विषमैरसंयतैरुन्मार्गप्रवृत्तित्वेनाऽपायानीरुनिः रागद्वेषैर्वा अनादिनवाभ्यस्ततया डुश्छेद्यत्वेन विषमैर्ग्राहिताअसंयमं प्रति वर्तिताः । ते चैवंनूता. पापैः कर्मनिः पुनरपि प्रवृत्ताः प्रगल्निताः धृष्टतां गताः पापकं कर्म कुर्वंतोऽपि नलज्जंतइति ॥ २० ॥

तम्हा दवि इक्क पंमिए,पावाउ विरतेऽनिणिवुमे॥ पणए वीरे म हाविहिं, सिद्धिपहं णेआउयं धुवं ॥२१॥ वेयालियमग्गमागउ मणवयसाकायणसंवुमो ॥ विच्चा वित्तं च णायउ आरंभं च सुसंवु मे चरेज्जासित्तिबेमि ॥२२॥ इति वैतालीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः

अर्थ–जो तेने ए विपाक जाणेतो शुं करवुं ? ते कहेछे. तम्हा के० ते कारणे दवि के० मुक्तिगमन योग्य भव्यजीव रागद्वेषरहित पंमिए के० पंमित विवेकयुक्त उतो सं सारवास सेवतां महाक्लेशछे एवुं जाणी. इक्क के० तेना विपाकने चिंतवे एवो तो के० ते पावा के० पापकर्म थकी विरते के० निवर्ते अनिणिवुमे के० क्रोधादिकने परिहारे करी शीतल थाय तथा पणतके० महाविनयवंत अने वीरेके०कर्म विदारवाने सामर्थ्य वान महाविहिं के० जे महांत एटले जैनमार्गे प्रवर्ते ते मार्ग केवो छे? तो के, सिद्धिप हं के० सिद्धिपंथ जे मोक्षनो मार्ग तथा णेआउयं के० न्यायमार्ग तथा धुवं के० शा श्वतो एवो मार्ग जाणीने आदरवो ॥ २१ ॥ वली तेहज उपदेश उपसंहार करतो क हेछे. वेयालिय के० कर्मनो विदारनार एवो जे मग्गं के० मार्ग तेनेविषे आगउ के० आगत एटले आव्यो तथा वली मणवयसाकाएण संवुमो के० मन, वचन अने का यायेकरी संवरनो पालनार विच्चाके० छांमीने; शुं छामीने? तोके, वित्तंचणायउके० धन, ज्ञाती, स्वजन तथा आरंभं के० आरंभ एटलां वाना छांडीने सु के० सुष्टु एटले भला परे इंडीउने संवुमे के० संवरतो उतो चरे के० संयमने पाले तिबेमि के० एरीते पंच म गणधर श्रीसुधर्मास्वामी जंबुप्रत्ये कहेछे के, जेम श्रीमहावीरदेव पासेथी सांभल्युं तेम तुजने कहुंछुं. ॥ २२ ॥ इति श्रीवैतालियाऽध्ययनस्य प्रथमोदेशः समाप्तः

---

॥ दीपिका–तम्हादिति । तस्मात् द्रव्यभूतोमुक्तियोग्यः पंडितः सन् ईक्षस्व विचारय । पापाद्विरतोऽनिनिर्वृतः क्रोधादित्यागात् शांतीभूतः तथा वीराः कर्मविदारणसमर्थामहा वीथिं महामार्गं प्रणताः प्राप्तानान्ये । महावीथिकिंभूतां सिद्धिपदं ज्ञानादिमार्गं प्रति नेतारं प्रापकं ध्रुवमव्यभिचारं इतिज्ञात्वा संयमप्रागल्भ्यैर्नेत्राव्यमिति ॥ २१ ॥ वैतालि एमि । कर्मणां वैदारिकं विदारणसमर्थं मार्गमागतोमनोवाक्कायसंवृतस्त्यक्त्वा वित्तं धनं ज्ञातीन् स्वजनान् सावद्यारंभं च सुसंवृतइंद्रियैः संयमे चरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इति वैतालीयाख्यद्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

---

॥ टीका–यतएवं ततः किं कर्तव्यमित्याह । ( तम्हाइत्यादि ) यतोमातापित्रादिमू र्छिताः पापेषु कर्मसु प्रगल्भानवंति तस्माद्द्रव्यभूतोभव्योमुक्तिगमनयोग्योरागद्वेष

रहितोवा सन्नीक्ष्य तद्विपाकं पर्यालोचय । पंडितः सद्विवेकयुक्तः पापात् कर्मणोसदनुष्ठानरूपात् विरतोनिवृत्तः क्रोधादिपरित्यागाच्छांतीभूतइत्यर्थः । तथा प्रणताः प्रव्हीभूतावीराः कर्मविदारणसमर्थामहावीथिं महामार्गं । तमेव विशिनष्टि । सिद्धिपथं ज्ञानादिमोक्षमार्गं तथा मोक्षंप्रति नेतारं प्रापकं ध्रुवमव्यभिचारिणमित्येतदवगम्य सएव मार्गोऽनुष्ठेयोवा सदनुष्ठानप्रगल्भैर्नाव्यमिति ॥ २१ ॥ पुनरप्युपदेशदानपूर्वकमुपसंहरन्नाह । ( वेयालियमग्गइत्यादि ) कर्मणां विदारणमार्गमागतोभूत्वा तं तथाभूतं मनोवाक्कायसंवृतः पुनस्त्यक्त्वा परित्यज्य वित्तं द्रव्यं तथा ज्ञातींश्च स्वजनांश्च तथा सावद्यारंभं च सुष्ठु संवृतइंद्रियैः संयमानुष्ठानं चरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इति वैतालीयद्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

अथ वेतालीयऽध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकप्रारंभः ॥ प्रथमउद्देशामांबाह्य द्रव्य, स्वजन तथा आरंभनो परित्याग कह्यो, हवे बीजे उद्देशे माननो परित्याग कहेछे.

तय संच जहाइ सेरयं, इति संखाय मुणीण मज्जई॥गोयन्नतरेण माहणे, अह सेयकरी अनेसि इंखणी ॥१॥ जे परभवई परं जणं, संसारे परिवत्तई महं॥अड्ड इंखणिया उ पाविया,इति संखाय मुणीण मज्जई॥ २ ॥

अर्थ–तयसंच के० ते जहा के० जेम सर्प्प पोतानी त्वचा जे कांचली ते परिहरवा योग्य जाणीने छांमे, सेरयं के० तेम ए साधुजे छे, ते रजनी पेरे अष्ट प्रकारनां कर्मने छांमे एतावता कषाय नकरे. केमके कषायने अभावे कर्म पोतानी मेळे छंमाशे. इति संखायमुणी के० एवीरीते जाणीने चारित्रिउ णमज्जई के० मद एटले अहंकार करे नहीं; ते मदनुं कारण देखाडेछे. गोके० काश्यपादिक गोत्रकरी अथवा यन्नतरेण के० अनेरा कुलरूपादिक मद तेने पामीने उत्कर्ष मान नकरे एवो माहणे के० साधु ते जेम पोता थकी मद नकरे तेम अनेसिं के० अनेरानी पण अहसेयकरी के० अश्रेयकारणी एवी जे इंखणी के० निंदा तेपण नकरे. ॥१॥ हवे परनिंदाना दोष कहे छे. जे के० जे कोइ अविवेकी पुरुष परंजणं के० अनेरा लोकने परभवई के० पराभव करे एटले अवहेलना करे ते पुरुष संसारेपरिवत्तईमहं के० संसारमांहे अत्यंत परिभ्रमण करे. अड्ड के० अथ जे कारणे इंखणिया के० परनिंदाते पावया के० एवी पापणीछेके जे स्वस्थानक थकी अधोस्थानके जीवने पाडे इतिसंखाय के० एवुं जाणीने एटले परनिंदाने दोषरूप जाणीने मुणी के० मुनिश्वर जे छे, ते जाति कुल श्रुत त

पादिकने विषे एमजाई के० मद न करे, एटले हुं उत्तम छुं. ए अमुक महारा थकी घणो हीन छे एवो पोतानो उत्कर्ष नकरे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयआरभ्यते पूर्वोद्देशके श्रीऋषभस्वामिना स्वपुत्राणामुपदेशः कथितः इहापि सएवोच्यतइति तत्रेदं प्रथमसूत्रं (तयेत्ति)यथा सर्पः त्वचं स्वां जहाति एवमसौ साधुः रजःकर्म त्यजति एवं कषायाभावे कर्माभावइति संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न माद्यति मदं न याति । गोत्रेण काश्यपादिना । अन्यतरग्रहणात् शेषमदग्रहणं । माहणेत्ति। साधुः । जेविउत्तिपाठे यो विद्वान् जातिकुलादिभिर्न माद्यतीति तथा । अश्रेयस्करी इंखिणी निंदा साप्यन्येषां न कार्येति ॥१॥ (जोपरिजवइत्ति) यः परिजवति अवजानाति परं जनं ससंसारे परिवर्तते भ्रमति महदत्यर्थं । चिरं वा पाठः । अडुत्ति । अथशब्दोऽतइत्यर्थे। अतः इंखिणिआ परनिंदा । तुर्निश्चये । पापिकैव डुष्टैव । इहलोके निंदायां सुघरोदृष्टांतः । यथा एकोवानरःकश्चिद्वृक्षे वर्षासु भंभावातैः पीड्यमानः सुगृहीकया पक्षिण्या नणितः । यथा वानरगापुरिसोसी.निरत्थयंवहसिवाहुदंडाइं । जोपायवस्ससिहरे,नकरोसिकुडिंपडालिंवा ॥१॥ सचैवं पक्षिण्या नाषितोपि तूष्णीमास्ते तावत्पक्षिणी वानरं वारं वारं तदक्ति रुष्टेन वानरेण तं वृक्षमारुह्य तद्गृहं नग्नं सा दूरं नष्टा । वानरोवक्ति । यथा। नवसिममंमहतरि आनवतिममंसोहिआवनिब्भावा । सुघरेअब्बुसुविघरा,जावछसिलोगतत्तासु॥१॥ सुखमिदानीं तिष्ठेति सुगृहा डुःखिनी जाता परलोकपुरोहितस्यापि श्वादियोनिपूत्पत्तिरिति इति संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न माद्यति मदं न कुर्यात् यतोमदादेव परनिंदा स्यादिति ॥ २ ॥

॥ टीका—प्रथमानंतरं द्वितीयः समारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतरोद्देशके जगवता स्वपुत्राणां धर्मदेशनाभिहिता । तदिहापि सैवाऽध्ययनार्थाधिकारत्वात् अभिधीयते । सूत्रस्य सूत्रेण सह संबंधोऽयं । अनंतरोक्तसूत्रे बाह्यद्रव्यस्वजनारंभपरित्यागोऽभिहितस्तदिहाऽप्यांतरमानपरित्यागउद्देशार्थाधिकारः सूचितोऽभिधीयते । तदनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्योद्देशकस्यादिसूत्रं । ( तयसंचयइत्यादि ) । यथाह्युरगः स्वां त्वचं अवश्यं परित्यागार्हत्वात् जहाति परित्यजति । एवमसावपि साधुः रजइव रजोऽष्टप्रकारं कर्म तद् कषायित्वेन परित्यजतीति । एवं कषायाभावो हि कर्माभावस्य कारणमिति संख्याय ज्ञात्वा मुनिः कालत्रयवेदी न माद्यति मदं न याति । मदकारणं दर्शयति । गोत्रेण काश्यपादिना । अन्यतरग्रहणात् शेषाणि मदस्थानानि गृह्यंतइति ( माहणत्ति ) साधुः । पाठांतरं वा ( जेविउत्ति) विद्वान् विवेकी सजातिकुलत्नाजादिभिर्न माद्यतीति । न केवलं स्वतोमदोन विधेयोजुगुप्साऽप्यन्येषां न विधेयेति दर्शयति । अथाऽनंतरं । असौ अश्रेयस्करी पापकारिणी ( इंखिणित्ति ) निंदा अन्येषाऽमतोन कार्ये

ति । मुणीनमज्जइइत्यादिकस्य सूत्रावयवस्य सूत्रस्पर्शगाथाद्वयेन निर्युक्तिकृदाह । तवसंजमणाणेसु, विजईमाणोवज्जिउं महोसीहिं ॥ अत्तसमुक्करिसडं, किंपुणहीला अन्नेसिं ॥ २ ॥ जइतावनिज्जरमउ, पडिसिद्धोअट्ठमाणमहणेहिं । अविसेसमयट्ठाणा, परिहरयव्वापयत्तेण ॥ ३ ॥ ( तवसंजमइत्यादि ) । तपःसंयमज्ञानेष्वऽप्यात्मसमुत्कर्षणार्थमुत्सेकार्थं यः प्रवृत्तोमानोयद्यसावपि तावद्विवर्जितस्त्यक्तोमहर्षिभिर्महामुनिभिः किं पुनर्निंदाऽन्येषां न त्याज्येति । यदि तावन्निर्जरामदोपि मोक्षैकगमनहेतुः प्रतिषिद्धोऽष्टमानमथनैरर्हद्भिरवशेषाणि तु मदस्थानानि जात्यादीनि प्रयत्नेन सुतरां परिहर्त्तव्यानीति गाथाद्वयार्थः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ १ ॥ सांप्रतं परनिंदादोषमधिकृत्याह । ( जोपरिभवइत्यादि ) । यः कश्चिदविवेकी परिभवत्यवज्ञयति । परं जनं अन्यं लोकमात्मव्यतिरिक्तं । सतत्कृतेन कर्मणा संसारे चतुर्गतिलक्षणे भवोदधावरघट्टघटीन्यायेन परिवर्त्तते भ्रमति महदत्यर्थं महांतं वा कालं । क्वचिच्चिरमितिपाठः (अदुत्ति) अथशब्दोनिपातः । निपातानामनेकार्थत्वात् अतइत्यस्याऽर्थे वर्तते । यतः परपरिभवादात्यंतिकः संसारः अतः (इंखिणिया)परनिंदा । तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् पापिकैव दोषवत्येव । अथवा स्वस्थानादधमस्थाने पातिका । तत्रेह जन्मनि । सुभरोदृष्टांतः । परलोकेऽपि पुरोहितस्याऽपि श्वादिषूत्पत्तिरिति इत्येवं संख्याय परनिंदां दोषवतीं ज्ञात्वा मुनिर्जात्यादिभिर्यथाऽहं विशिष्टकुलोद्भवः श्रुतवान् तपस्वी भवांस्तु मत्तोहीनइति न माद्यति ॥ २ ॥

जे यावि अणायगे सिया,जेविय पेसग पेसए सिया ॥ जे मोणप
यं उवठिए, णो लज्जे समयं सयायरे ॥३॥ समअन्नयरम्मि सं
जमे, संसुद्धे समणे परिव्वए ॥ जे आवकहा समाहिए, दविए
कालमकासि पंमिए ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे मदने अभावे जेकांइ कर्त्तव्यछे ते देखाडेछे. जेयाविके० जेकोइ अणायगेके० अनायक एटले नायक रहित किंतु स्वमेव नायक चक्रवर्त्यादिक सियाके० होय तथा जेवियके० जेकोइ अनेरो पेसगके० कर्म करनो पेसएके० कर्मकर होय परंतु जे के० जे मोणपयंके० मौन पद एवुंजे चारित्र तेने विषे उवठिएके० उपस्थित एटले सावधान थयो तेपण णोलज्जेके० लज्जाने अण करतो थको एतावता अभिमान छांमीने सर्वक्रिया परस्पर वंदन प्रतिवंदनादिक करे. जो चक्रवर्त्ति चारित्र आदरे तो पण पूर्व दिक्षित पोताना कर्मकरना कर्म करने वांदे परंतु गर्व नकरे; लज्जा पामे नहीं. एरीते सयाके० सदाय समयंके० समभावने आयरेके० आदरे. संयमने विषे सावधान थाय ॥ ३ ॥ हवे क्यां रह्यो थको लज्जा तथा मद नकरे ? ते देखाडेछे. समके० सामायकादिक अन्नयरम्मिसंजमे

के० अनेरा संयमने विषे एटले सामायक छेदोपस्थापनीयादिक संयमने विषे प्रवर्त्ततो थको संके० सम्यक्प्रकारे सुद्धेके० शुद्ध समणेके० श्रमण जे तपस्वीते लज्जा तथा मदने परित्यागे समचित्त थको परिव्वए के० प्रव्रज्या पाले. ते केटलो काल सुधी पाले? ते क हेछे. जेआवके० ज्यांलगे तेनी कहाके० कथा रहे त्यांलगे पाले एटले जावजीव लगे म रण सीम समाहिएके० समाधिवंत अथवा आत्मज्ञानसहित अथवा रुडा अध्यवसा ये करी युक्त दविएके० ते मुक्ति गमन योग्य अथवा रागद्वेषरहित एवो थको जे काल मकासिके० काल करे ते पंमिएके० पंमित कहेवाय ॥ ४ ॥.

---

॥ दीपिका–जेयाविति । यश्चापि अनायकोनायकरहितः स्वयं प्रभुश्चक्रवर्त्यादिः स्यात् यश्चापि प्रेष्यस्यापि प्रेष्यः कर्मकरस्यापि कर्मकरः स्यात् एवंभूतः सन् मुनेरिदं मौनं पदं स्था नं मौनपदं संयममुपस्थितस्त्राश्रितोनोलज्जते । कोर्थः । चक्रवर्त्यपि प्रेष्यं साधुं वंदमानोन लज्जते प्रेष्योपि प्रभुः साधुमितरं वा उत्कर्षरहितोनमन्न लज्जते । एवमनेन प्रकारेण सम तां चरेत् साधुः ॥ ३ ॥ (समेति) समोमध्यस्थः संयमस्थानानां षट्स्थानपतितत्वादन्यत रस्मिन् संयमस्थाने सामायिकछेदोपस्थापनीयादौ वा संयमे संशुद्धे निर्मले संशुद्धो वा मदरहितः श्रमणः परिव्रजेत् उद्यमवान् भवेत् । कियंतं कालं यावत्कथा यावन्नाम धत्ते तावत् । किंभूतः साधुः समाहितः शुभध्यानः पंडितोयावत्कालमकार्षीत् मृत्युकालं याव दित्यर्थः । नामवार्त्तातु मृतस्यापि भवेत् ततउक्तं यावत्कालमकार्षीदिति ॥ ४ ॥

---

॥ टीका–मदाभावे च यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह (जेयावीत्यादि) यश्चाऽपि कश्चिदास्तां तावत् । अन्योन विद्यते नायकोऽस्येत्यनायकः स्वयं प्रभुश्चक्रवर्त्यादिः स्यात् भवेत् यश्चा ऽपि प्रेष्यस्याऽपि प्रेष्यः तस्यैव राज्ञः कर्मकरस्यापि कर्मकरोयएवंभूतोमौनींद्रं पद्यते गम्यते मोक्षोयेन तत्पदं संयमस्तं उपसामीप्येन स्थितः उपस्थितः समाश्रितः सोऽप्य लज्जमानउत्कर्षमकुर्वन् वा सर्वाः क्रियाः परस्परतोवंदनप्रतिवंदनादिकाविधत्ते । इद मुक्तं भवति ।चक्रवर्तिनाऽपिमौनींद्रपदमुपस्थितेन पूर्वमात्मप्रेष्यमपि वंदमानेन लज्जा न विधेया इतरेण चोत्कर्षइत्येवं समतां समभावं सदा भिक्षुश्चरेत् संयमाद्युक्तोभवेदिति ॥ ३ ॥ कपुनर्व्यवस्थितेन लज्जामदौ न विधेयाविति दर्शयितुमाह (समेइत्यादि) (समेत्ति) समभावोपेतः सामायिकादौ संयमे संयमस्थाने वा षट्स्थानपतितत्वात् संयमस्थाना नामन्यतरस्मिन् संयमस्थाने छेदोपस्थानीयादौ वा । तदेव विशिनष्टि । सम्यक् शुद्धे स म्यक् शुध्दोवा श्रमणस्तपस्वी लज्जामदपरित्यागेन समानमनावा परिव्रजेत् संयमोद्युक्तोभ वेत् स्यात्। कियंतं कालं यावत् कथा देवदत्तोयज्ञदत्तइति कथा यावत् ।सम्यगाहितआत्मा ज्ञानादौ येन ससमाहितः समाधिना वा शोभनाध्यवसायेन युक्तोद्रव्यभूतोरागद्वेषादिरहि

तोमुक्तिगमनयोग्यतया वा नव्यः । सएवंनूतः कालमकार्षीत् पंडितः सद्विवेकासद्विवेक कलितः । एतदुक्तं नवति । देवदत्तइति कथा मृतस्याऽपि नवत्यतोयावन्मृत्युकालं ता वल्लज्जामदपरित्यागोपेतेन संयमानुष्ठाने प्रवर्तितव्यमिति स्यात् ॥ ४ ॥

दूरं अणुपस्सिया मुणी, तीतं धम्ममणागयं तहा ॥ पुठे परुसेहिं माहणे, अविहस्सू समयंमि रीयइ ॥ पाठांतरे समयाहिया सये ति ॥ ५ ॥ पन्नु समत्ते सया जए, समताधम्ममुदाहरे मुणी ॥ सुहमे उ सया अलूसए, णो कुज्ने णो माणि माहणे ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे शानुं अवलंबन करीने संयम पाले ते कहेले. दूरंके० जे कारणे दूर वर्त्ते माटे ते दूर शब्दे मोक्ष कहिये; तेने अणुपस्सियाके०आलोचीने एटले सम्यक्धर्म विना मोक्ष न थाय एवुं विमाशीने ते मुणीके० चारित्रिउं अतीतंधम्मं के० अतीत धर्म एट ले पाछले काले जीवनुं अनेक प्रकारे उंच नीच गतिने विषे जे ज्रमण कर्युं तेरूप धर्म तहा के० तथा अणागयं के० अनागत एटले आगमिक काले जीवनी गतिरूपधर्मनुं स्वरूप जाणीने लज्जा तथा मद करे नहीं. तथा परुसेहिंके० कठण वचन अथवा दंम कशादिक तेणे पुठे के० फरश्यो थको माहणे के० ब्रह्मचर्यनो पालनार चारित्रिउं ते अपि के० किंबहुना हस्सू के० सर्वथापि मार्यो थको पण स्कंदकमुनिना शिष्यनी पेरे समयंमि के० सिद्धांतना मार्गेज रीयति के० चाले एटले तेना उपर कषाय नकरे अ थवा पागंतरे (समयाहियासएति) के० समताये करी सहित थको विचरे ॥५॥ वली उपदेशांतर कहेले. पन्नुसमत्ते के० ते प्रज्ञाये करी पूर्ण तत्वनो जाण सया के० सर्व काल कषायादिकने जए के० जीपे. अथवा प्रश्न पूछ्या थकां प्रत्युत्तर देवाने स मर्थहोय. समता के० समजावे धम्मं के० अहिंसादि लक्षण जे धर्म ते उदाहरे के० लोकप्रत्ये कहेले एवो मुणी के० चारित्रिउं सुहमेउ के० सूक्ष्म संयमने विषे सयाअ लूसए के० सर्व काल अविराधक तथा ते चारित्रियाने कोइए हण्यो थको पण णोकु ज्ने के० क्रोध नकरे अने कोइए पूज्यो थको णोमाणि के० मान नकरे एवो माह णे के० साधु जाणवो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—(दूरमिति) दूरं मोक्षमनुदृश्य पर्यालोच्य मुनिरतीतमनागतं च धर्मं जी वानां स्वनावं विचार्य लज्जामानौ न कार्यौ । तथा स्पृष्टः परुषैः कठिनैर्दंडादिनिर्वचनैर्वा माहनोमुनिः ( अविहस्सुत्ति ) अपि हन्यमानः स्कंदकशिष्यवत्समये संयमे रीयते गछ ति । पागंतरे वा ( समयाहियासये ) । समतयासहते इत्यर्थः ॥५॥ (पन्नुसमत्तेत्ति) ।

प्रज्ञासमासः पटुप्रज्ञः। अथवा प्रश्नसमर्थः प्रश्ने कृते तडुत्तरदानसमर्थः सदाजयेत्कषाया दिकं तथा समतया धर्ममुदाहरेत् कथयेन्मुनिः। सूक्ष्मं स्तोकमपि यत्संयमकृत्यं तस्याऽछूषकोऽविराधकोनो क्रुध्येत् हन्यमानं पूज्यमानोमानी नोपि माहनोयतिः ॥ ६ ॥

॥ टीका–किमालंब्यैतद्विधेयमित्युच्यते। (दूरमित्यादि) दूरवर्तित्वात् दूरोमोक्षस्त मनु पश्चात् तद्दृष्ट्वा। यदि वा दूरमिति दीर्घकालमनुदृश्य पर्यालोच्य मुनिः कालत्रयवेत्ता दूरमेव दर्शयति अतीतं धर्मं स्वनावं जीवानामुच्चावचगतिस्थानलक्षणं तथा अनागतं च धर्मं स्वनावं पर्यालोच्य लज्ञामदौ न विधेयौ। तथा स्पृष्टः परुषैर्दंडकशादिनिर्वाग्निर्वा (माहणेत्ति) मुनिः (अविहसूत्ति) अपि मार्यमाण. स्कंदकशिष्यगणवत्समये संयमे रीयते त डुक्तमार्गेण गहतीत्यर्थः। पाठांतरं वा (समयाहियासयत्ति)समतयासहतइति ॥ ५॥ पुन रप्युपदेशांतरमाह (पण्णसमत्तइत्यादि) प्रज्ञायां समासःप्रज्ञासमासः पटुप्रज्ञः। पाठांतरं वा (पसुसमत्थे) प्रश्नविषये प्रत्युत्तरदानसमर्थः सदा सर्वकालं जयेज्जेयं कषायादिकमिति शेषः। तथा समया समता तया धर्ममहिंसादिलक्षणमुदाहरेत् कथयेत् मुनिर्यतिः सूक्ष्मे संयमे यत्कर्तव्यं तस्याछूषकोऽविराधकस्तथा न हन्यमानोवा पूज्यमानोवा क्रुध्ये न्नाऽपि मानी गर्वितः स्यात् माहणो यतिरिति ॥ ६ ॥

बहुजणणमणंमि संवुमो, सवठेहिं णरे अणिस्सिए ॥ हरएव सया अणाविले, धम्मं पाडरकासिकासवं ॥७॥ बहवे पाणा पुढो सिया पत्तेयं समयउवेहिया ॥ जे मोणपदं उवहिते, विरतिं तन्न अकासि पंमिए ॥ ८ ॥

अर्थ–बहुजण के० घणालोकने णमणंमि के० नमाडे एटले जेने सर्व लोक पोत पोतानो करीने प्रसंशे तेमाटे जेबहुजणनमन तेने धर्म कहिए ते धर्मने विषे संवुमोके० संवृत्त एटले समाधिवंत एवो हतो णरेके० नर एटले मनुष्य ते सवठेहिं के० सर्व अ र्थ एटले बाह्य अने अन्यंतर धन धान्य पुत्र कलत्रादिके करी,अणिस्सिएके०अनिश्रित ए टले अप्रतिबंध हतो धर्म प्रकाशे. हरएवके०ड्हनी पेरे जेम ड्रहजेहे, ते सयाके० सर्व काल स्वछ निर्मल पाणीयेंज नर्यो थको रहेहे. अणाविले के० अनेक जलचर जीव ना मोलवा थकी पण दोहोलुं नथाय. तेम चारित्रियं रागद्वेषरहित हतो धम्मंपाडु रकासि.के० धर्म प्रगट करे. तेधर्म कासवं के० श्रीतीर्थंकरसंबंधी एटले श्रीवर्द्धमान स्वा मिनिर्देश जाणवो. ॥ ७ ॥ हवे जेवो धर्म प्रकाशे तेवो कहेहेः अथवा उपदेशांतरे कहेहे. बहवेपाणा के० घणाप्राणी एटले अनंताजीव ते पुढोसियाके० पृथक्पृथक् जुदा जुदा

सूक्ष्म बादर पर्याप्त अपर्याप्त नरक तिर्यंच मनुष्यादिक भेदे करी संसारमांहे आश्रित छे, तेने पत्तेयं के० प्रत्येके प्रत्येके समय के० समता एटले सरखापणे समीहिया के० देखवा. केमके सर्व जीव सुखना अभिलाषीछे, पण दुःखना द्वेषीछे; तेमाटे पोताना सरखा जाणी धर्म प्रकाशे तथा जेमोणपदंउवहिते के० जे मौनपद एटले संयमने विषे उपस्थित एटले सावधान एवो साधु छे, तत्थके० ते जीवघातने विषे त्रिविध त्रिविध प्रकारे जेणे विरतिं अकासि के० विरति कीधी छे; पंमिएके० ते पंमित जाणवो. ॥७॥

दीपिका—( बहुजनेति ) बहुजनैर्नम्यते स्तूयते इति बहुजननमनोधर्मः । कथं राजगृहपुरे श्रेणिकराज्ञः सदसि कदाचिदेवं विचारः क्रियते । किंधार्मिकाजनाबहवः किं वा ऽधार्मिकाः । तदा लोकैरुक्तं अधार्मिकाबहवः । अभयमंत्रिणा तु कथितं धार्मिका बहवः । सभालोके तद्वचोऽमन्यमाने अभयेन परीक्षार्थं श्वेतकृष्णप्रासादद्वयं कारितं । नगरे च उद्घोषणा कारिता । यः कश्चिद्धार्मिकः सबलिं गृहीत्वा धवलप्रासादे समेतु अधार्मिकस्तु कृष्णे तदा सर्वोपि लोकोधवलप्रासादमेव प्राप्तः कृष्णप्रासादे तु श्रावकद्वयं । तद्दृष्ट्वा राज्ञा पृष्टं कथमेतावंतोलोकाधार्मिकाएव । तदा स्वस्वधर्मप्रशंसापूर्वकं वयं धार्मिका इति सर्वजनैरुक्तं । कृष्णप्रासादे श्रावकद्वयं दृष्ट्वा राज्ञा पृष्टं कथं युवामधार्मिकौ । तदा ताभ्यामुक्तमस्माभिर्मद्यनिवृत्तिनियमभंगः सकृन्निर्मितः । भग्नव्रतस्य किं जीवितं । यतः । वरमग्गिंमिपावेसो, वरं विसुद्धेण कम्मुणा मरणं ॥ मागहियवयभंगो, माजीयं खलिअसीलस्स ॥१॥ इति । तथा परमार्थतः साधवएव धार्मिकाः । अस्माभिस्तु । अवाप्य मानुषं जन्म, लब्ध्वा जैनं च शासनं ॥ कृता निवृत्तिर्मद्यस्य, सम्यक् सापि न पालिता ॥१॥ अनेन व्रतभंगेन मन्यमानाअधार्मिकं ॥ अधमाधममात्मानं,कृष्णं प्रासादमाश्रिताः ॥२॥ तदेवं सर्वेपि प्रायः स्वं धार्मिकं मन्यंतइति। बहुजननमनोधर्मस्तस्मिन् संवृतः समाहितो नरः सर्वार्थैर्बाह्याभ्यंतरैर्धनधान्यकलत्रममतादिभिरनिश्रितोऽप्रतिबद्धः सन् धर्मं प्रकाशितवान् इत्युत्तरेण संबंधः । यथा ह्रदोजलाशयविशेषोऽनाविलोनिर्मलः स्यात् तथाऽकलुषचित्तोधर्मं काश्यपं जिनप्रणीतं प्राडुरकार्षीत् प्रकटं कृतवान् । छांदसत्वाद्वा वर्तमानातीतप्रत्ययनिर्देशः । एवंविधोधर्मं प्रकाशयेदिति । एवंगुणश्च साधुः स्यात्ततः साधोरेव धर्मदेशनायामधिकारोन गृहिणइति ॥ ७ ॥ ( बहवइति ) बहवः प्राणिनः पृथिव्यादयः पृथक् संसारं श्रितास्तेषां समतां सुखप्रियत्वं तुल्यमवेक्ष्य दृष्ट्वा योमौनपदं संयममुपस्थितआश्रितः साधुस्तत्र प्राणिसमूहोपघाते विरतिमकार्षीत् कुर्याद्वा पंडितः ॥ ८ ॥

॥ टीका—अपिच ( बहुजणनमणमित्यादि ) बहून् जनान् आत्मानंप्रति नामयति प्रह्वीकरोति तैर्वा नम्यते स्तूयते बहुजननमनोधर्मः सएव बहुनिर्जनैरात्मीयात्मीयाश

येन यथाऽभ्युपगमप्रशंसया स्तूयते प्रशस्यते। कथमत्र कथानकं। राजगृहे नगरे श्रेणिको महाराजः कदाचिदसौ चतुर्विधबुध्युपेतेन पुत्रेण अभयकुमारेण सार्धमास्थानस्थित स्तानिस्ताभिः कथाभिरासांचक्रे। तत्र कदाचिदेवंभूता कथाऽभूत्। तद्यथा इहलोके धार्मिकावहवस्ताऽधार्मिकाइति। तत्र समस्तपर्षदाभिहितं। यथाऽत्राऽधार्मिकावहवोलोकाधर्मे तु शतानामपि मध्ये कश्चिदेवैकोविधत्ते तदाकर्ण्याऽभयकुमारेणोक्तं। यथा प्रायशोलोकाः सर्वएव धार्मिकाः। यदि न निश्चयोभवतां परीक्षा क्रियते पर्षदाऽप्यभिहितमेवमस्तु ततोऽभयकुमारेण धवलेतरप्रासादद्वयं कारितं घोषितं च डिंडिमेन नगरे यथा यः कश्चिदिह धार्मिकः ससर्वोऽपि धवलप्रासादं गृहीतबलिः प्रविशतु इतरस्त्वितरमिति। ततोऽसौ लोकः सर्वोऽपि धवलप्रासादमेव प्रविष्टोनिर्गच्छंश्च कथं त्वं धार्मिकइत्येवं पृष्टः कश्चिदाचष्टे। यथाऽहं कर्षकोऽनेकशकुनिगणोमद्धान्यकणैरात्मानं प्रीणयति खलकसमागतधान्यकणभिक्षादानेन च मम धर्मइति। अपरस्त्वाह। यथाऽहं ब्राह्मणः षट्कर्माऽभिरतस्तथा बहुशौचस्नानादिभिर्वेदविहितानुष्ठानेन पितृदेवांस्तर्पयामि। अन्यः कथयति यथा वणिक्कुलोपजीवी भिक्षादानादिप्रवृत्तोऽपरस्त्विदमाह। यथाऽहं कुलपुत्रकोन्यायागतं निर्गैतिकं कुटुंबकं पालयाम्येव तावत् श्वपाकोपीदमाह यथाऽहं कुलक्रमागतं धर्ममनुपालयामीति मन्निश्रयाश्च बहवः पिशितभुजः प्राणान् धारयंतीत्येवं सर्वोऽप्यात्मीयमात्मीयं व्यापारमुद्दिश्य धर्मे नियोजयति। तत्राऽपरमसितप्रासादं श्रावकद्वयं प्रविष्टं तच्च किमधर्माचरणं भवद्भ्यामकारीत्येवं पृष्टं सत् सकृन्मद्यनिवृत्तिभंगव्यलीकमकथयत् तथा साधवएवाऽत्र परमार्थतोधार्मिकायथा गृहीतप्रतिज्ञानिर्वाहणसमर्थाः। अस्माभिस्तु अवाप्य मानुषं जन्म लब्ध्वा जैनं च शासनं॥ कृत्वा निवृत्तिं मद्यस्य सम्यक् साऽपि न पालिता॥ १॥ अनेन व्रतभंगेन मन्यमानाश्चधार्मिकं॥ अधमाधममात्मानं कृष्णप्रासादमाश्रिताः॥ २॥ तथाहि। लज्जां गुणौघजननीं जननीमिवार्यां,मत्यंतशुद्धहृदयामनुवर्त्तमानाः॥ तेजस्विनः सुखमसूनपि संत्यजंति सत्यस्थितिव्यसनिनोन पुनः प्रतिज्ञां॥ ३॥ वरं प्रवेष्टुं ज्वलितं हुताशनं नचाऽपि भग्नं चिरसंचितव्रतं॥ वरं हि मृत्युः सुविशुद्धचेतसोनचाऽपि शीलस्खलितस्य जीवितमिति॥ ४॥ तदेवं सर्वोऽप्यात्मानं धार्मिकं मन्यतइतिकृत्वा बहुजनमनोधर्मइति स्थितं। तस्मिंश्च संवृतः समाहितः सन् नरः पुमान् सर्वार्थैर्बाह्याभ्यंतरैर्धनधान्यकलत्रममत्वादिभिरनिश्रितोऽप्रतिबद्धः सन् धर्मं प्रकाशितवानित्युत्तरेण सह संबंधः। निदर्शनमाह। ह्रदइव स्वच्छांभसा भृतः सदानाविलोऽनेकमत्स्यादिजलचरसंक्रमेणाऽप्यनाकुलोऽकलुषोवा क्षांत्यादिलक्षणं धर्मं प्रादुरकार्षीत् प्रकटं कृतवान्। यदि वा एवं विशिष्टएव काश्यपतीर्थकरसंबंधिनं धर्मं प्रकाशयेत्।

छांदसत्वात् वर्त्तमानेनूतनिर्देशइति ॥ ७ ॥ सबहुजननमने धर्मे व्यवस्थितोयादृक् धर्मं प्रकाशयति तद्दर्शयितुमाह । ( बहवेइत्यादि ) यदिवोपदेशांतरमेवाऽधिकृत्याह । ( बह वेइत्यादि ) बहवोऽनंताः प्राणादशविधप्राणनोकृत्वात्तद्नेदोपचारात् प्राणिनः । पृथगि ति पृथिव्यादिन्नेदेन सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तनरकगत्यादिन्नेदेन वा संसारमाश्रितास्तेषां च पृथगाश्रितानामपि प्रत्येकं समतां दुःखद्वेषित्वं सुखप्रियत्वं च समीक्ष्य दृष्ट्वा। यदि वा समतां माध्यस्थ्यमु पेक्ष्य योमौनींद्रपदमुपस्थितः संयममाश्रितः ससाधुस्तत्राऽनेक न्नेदन्निन्नप्राणिगणे दुःखद्वेषिसुखान्निलाषिणि सति तदुपघाते कर्तव्ये विरतिमकार्षीत् कुर्याद्वेति पापाद्धीनः पापानुष्ठानात् दवीयान् पंमितइति ॥ ८ ॥

धम्मस्स य पारए मुणी, आरंन्नस्स य अंतए ठिए ॥ सोयंति य णं ममा इणो, णो लप्नंति णियं परिग्गहं ॥ ९॥ इह लोगडुहावहं विऊ, पर लोगेय दुहं दुहावहं ॥ विद्धंसण धम्ममेव तं इति विज्जं कोगारमावसे॥१०॥

अर्थ–वली तेहिज कहेछे. धम्मस्सयपारएमुणी के० धर्म शब्दे श्रुत चारित्ररूप ते नो. पारंगामी एटले संवेगी अने गीतार्थ एवो मुनीश्वर तथा आरंन्नस्सय के० आरं न्न जे सावद्यानुष्ठान तेनाथी अंतएठिए के० अत्यंत दूर रह्योछे अर्थात् सावद्यानुष्ठानने अण करतो थको प्रवर्त्ते ते मुनि कहेवाय. अने सोयंतियणं के० ए पूर्वे कह्युं एवो जे धर्म तेना अण करनार जे होय ते मरण आवे थके शोच पामे. परंतु ते केवा जाण वा? तोके, ममाइणो के० ममत्वना करनार णोलप्नंतिनियं परिग्गहं के० ते पोतानुं जे नष्ट थयेलुं सुवर्णादिक परिग्रह अथवा स्वजन नाशीगयेलो अथवा मरण पाम्यो एवो स्वजन तेने न पामे. पण ते शोच करता थकाज मरीने दुर्गतिये जाय. ॥ ९ ॥ धन धान्य अने स्वजनादिक जे परिग्रह छे ते इहलोगदुहावहंविऊ के० आ लोकने विषे दुःखनुं कारण जाणी. यतः । अर्थानामर्जने दुःखमार्जितानां च रक्षणे ॥ आये दुः खं व्यये दुःखं धिगर्थान् दुःखन्नाजनान् ॥ १ ॥ अने परलोगेयदुहं दुहावहंके० परलोके पण दुःख तथा अनेरां दुःखनो करनार जाणीने तथा विद्धंसणधम्ममेवतं के० तेथी परिग्रह जे छे, विद्धंसण धर्मिछे एटले अशाश्वत अनित्यछे. इतिविज्जं के० एवुं जाण तो थको कोगारमावसे के० कोण सकर्ण मनुष्य गृहवासने विषे वसे. यत. । दाराः परिन्नवकारावंधुजना बंधनं विषं विषयाः ॥ कोयं जनस्य मोहोये रिपवस्तेषु सुहृदाशा ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ १० ॥

॥ दीपिका–( धम्मस्सेति ) धर्मस्य श्रुतचारित्ररूपस्य पारगोमुनिः आरंन्नस्य च अं

ते पर्यंते स्थितः स्यात् । ये पुनरेवं नस्युः ते । एंवाक्यालंकारे ( ममाइणोत्ति) । ममेदं अहमस्य स्वामीत्यध्यवसायिनः शोचंति । शोचमानाअपि निजपरिग्रहं धनस्वजनादिकं नष्टं मृतं वा लभंते ॥ ए ॥ ( इहेति ) इह लोकदुःखावहं धनस्वजनादिकं ( विउत्ति) विद्याः जानीहि । यतः । अर्थानामर्जने दुःख,मर्जितानां च रक्षणे ॥ आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थान् दुःखनाजनान् ॥ १ ॥ तथा रेवापयः किसलयानिव सल्लकीनां विंध्योपकंठविपिनं स्वकुलं च हित्वा ॥ किं तान्यसि द्विप गतोसि वशं करिण्याः स्नेहोहि कारणमनर्थपरंपरायाः ॥ २ ॥ परलोके च धनादिकं दुःखं तदप्यपरं दुःखं करोति । तदुपादानकर्मोपादानात् ॥ तथा तद्धनादिविध्वंसनधर्मकमेव विनश्वरमेव इति विद्वान् एवं जानन् कोऽगारवासमावसेत् गृहवासे तिष्ठति । यतः । दाराः परिभवकारा,बंधुजनो बंधनं विषं विषयाः ॥ कोयं जनस्य मोहोये रिपवस्तेषु सुहृदाशा इति॥ ३ ॥ १० ॥

---

॥ टीका–अपिच । (धम्मस्सइत्यादि) । धर्मस्य श्रुतचारित्रभेदभिन्नस्य पारं गच्छतीति पारगः सिद्धांतपारगामी सम्यक् चारित्रानुष्ठायी वेति । चारित्रमधिकृत्याह । आरंभस्य सावद्यानुष्ठानरूपस्यांते पर्यंते तदभावरूपे स्थितोमुनिर्भवति।ये पुनर्नैवं भवंति ते अकृतधर्माः मरणे दुःखेवा समुस्थिते आत्मानं शोचंति । एमिति वाक्यालंकारे । यदि चेष्टमरणादाऽवर्थनाशे वा (ममाइणोत्ति) ममेदमहमस्य स्वामीत्येवमध्यवसायिनः शोचंति । शोचमानाअप्येते निजमात्मीयं परितमंतात् गृह्यते आत्मसात्क्रियतइति । परिग्रहोहिरण्यादिरिष्टस्वजनादिर्वा । नष्टं मृतं वा नलभंते न प्राप्नुवंतीति । यदिवा धर्मस्य पारगं मुनिमारंभस्यांऽते व्यवस्थितमेनमागत्य स्वजनामातापित्रादयः शोचंति ममत्वयुक्ताः स्नेहालवः । नच ते लभंते निजमप्यात्मीयपरिग्रहबुद्ध्या गृहीतमिति । अत्रांतरे नागार्जुनीयास्तु पठंति ॥ सोऊणतयं उवठियं केइगिहीविग्घेणउहिया धम्मंमिअणुत्तरे मुणी,तंपि जिणिज्जइमेणपंडिए॥१॥ एतदेवाह । (इहलोगेइत्यादि) । इहाऽस्मिन्नेव लोके हिरण्यस्वजनादिकं दुःखमावहति । ( विउत्ति ) विद्याः जानीहि । तथाहि । अर्थानामर्जने दुःख,मर्जितानां च रक्षणे । आये दुःखं व्यये दुःखं, धिगर्थं दुःखभाजनं । तथाहि । रेवापयः किसलयानि च सल्लकीनां विंध्योपकंठविपिनं स्वकुलं च हित्वा ॥ किं तान्यसि द्विप गतोसि वशं करिण्याः स्नेहोनिबंधनमनर्थपरंपरायाः ॥१॥परलोके च हिरण्यस्वजनादिममत्वाऽपादितकर्मजं दुःखं भवति तदप्यपरं दुःखमावहति तदुपादानकर्मोपादानादिति भावः ॥ तथैतदुपार्जितमपि विध्वंसनधर्मं विशरारुस्वभावं गत्वरमित्यर्थः । इत्येवं विद्वान् जानन् कः सकर्णोऽगारवासं गृहवासमावसेत गृहवासं वा ऽनुबध्नीयादिति । उक्तंच । दाराः परिभवकाराबंधुजनो बंधनं विषं विषयाः ॥ कोऽयं जनस्य मोहोये रिपवस्तेषु सुहृदाशा॥१०॥

महयं पलिगोव जाणिया जाविय वंदणपूयणाऽहं ॥ सुहुमे सल्ले डुरुद्धरे, विउ मंता पयहिज्ज संथवं ॥११॥ एगेचरे ठाणमासणे सयणे एगे समाहिए सिया ॥ भिक्खू उवहाणवीरिए वइगुत्ते अज्झत्तसंवुडो ॥ १२ ॥

अर्थ–वली उपदेश कहेछे. महयं के० महा महोटा जीवने कतरतां डुर्लन एवो शुं? तो के पलिगोव के० कर्दम ते अंतरंग कर्दम जाणवो जाविय वदणपूयणाइहं के० तेअही साधुने राजादिकनी करेली वंदना तथा पूजना एटले वस्त्रादिकनी प्रतिलान ना तेणे करी उपजी जे पूजा तेने कर्मोपशमनुं कारण जाणिया के० जाणीने उ त्कर्ष न करवो, जे जीवने गर्व उत्पन्न थाय तेहिज कर्दम सरखो जाणवो केमके सुहु मेसल्लेडुरुद्धरेके० ए गर्वरूप जे सल्यछे ते सूक्ष्मछे माटे डुरुद्धर एटले एने उद्धरता घणो डुर्लनछे तेमाटे विउमंता के० विद्वांस विवेकी पुरुषते पयहिज्ज के० छांमे संथव के० संस्तव परिचयादिकनो त्याग करे ॥११॥ वली तेहिज कहेछे एगेचरे के० चारित्रिउ एका की द्रव्य थकी एकल्लविहारी अने नाव थकी रागद्वेषरहित एवो छतो विचरे तथा एक लो छतो ठाण के० काउस्सग करे तथा आसणेके० आसनने विषे पण रागद्वेषरहित थको बेशे एरीते सयणेके० शयनजे पाटप्रमुख त्यां पण एकाकीरहे ते केवो थको रहे? तोके समाहिएके० समाहित एटले जे जे क्रियामां प्रवर्ते त्यांत्यां सियाके० रागद्वेष टाल तो थको प्रवर्त्तमान होय एवो निरकू के० आहारनो लेनार तथा उवहाण के० तपने विषे वीरिएके० बल वीर्यनो फोरवनार तथा वइगुत्तेअके० वचनगुप्ति एटले विमाशीने बोलनार तथा अज्झत्त के० मन तेनेविषे संवुमे के० संवृत एटले मनने स्थिरतानो कर नार एवो साधु होय. ॥ १२ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशमधिकृत्याह ( महयमित्यादि ) महांतं संसारिणं दुस्त्यजत्वा न्महत्ता वा संरंनेण परिगोपणं परिगोपोऽभ्यतः पाकादिर्नवितोऽनिष्वंगस्तं ज्ञात्वा स रूपतस्तद्विपाकतोवा परिज्ञिय याऽपि च प्रव्रजितस्य सतोराजादिनिः कायादिनिर्वंदना - वस्त्रपात्रादिनिश्च पूजना तांच इहाऽस्मिन् लोके मौनींडे वा शासने व्यवस्थितेन कर्मोप शमजं फलमित्येवं परिज्ञायोत्सेकोन विधेयः । किमिति यतोगर्वात्मकमेतत्सूक्ष्मश ल्यं वर्त्तते सूक्ष्मत्वाच्च डुरुक्ष्रं डुःखेनोद्धर्तुं शक्यते अतोविद्वान् सदसद्विवेकज्ञस्तत्तावत् संस्तवं परिचयमनिष्वंगं परिजह्यात् परित्यजेदिति ॥ नागार्जुनीयास्तु पठंति । पलिमंथमहं वियाणिया जावियवंदणपूयणाइहं ॥ सुहुमं सल्लं डुरुद्धरं तंपि जिणे एएण पंडिए ॥१॥ अ स्यचाऽयमर्थः । साधोः स्वाध्यायाऽध्ययनपरस्यैकांतनिस्पृहस्य योऽपि चाऽयं परैर्वंदनापूज नादिकः सत्कारः क्रियते.असावपि सदनुष्ठानस्य सज्जतेर्वा महान् पलिमंथे विघ्नआस्तां तावच्छब्दादिष्वनिष्वंगस्तमित्येवं परिज्ञाय तथा सूक्ष्मशल्यं डुरुद्धरं वाऽतस्तमपि जये दपचयेत् पंडितएतेन वद्यमाणेनेति ॥११॥ (एगेचरेइत्यादि) एकोऽसहायोऽभ्यतएक ल्लविहारी नावतोरागद्वेषरहितश्चरेत् तथा स्थानं कायोत्सर्गादिकमेकएव कुर्यात् तथा आ सनेऽपि व्यवस्थितोऽपि रागद्वेषरहितएव तिष्ठेत् । एवं शयनेऽप्येकाक्येव समाहितोध र्मादिध्यानयुक्तः स्यात् नवेत् । एतडुक्तं नवति । सर्वास्वऽप्यवस्थानासनशयनरूपासु राग द्वेषविरहात् समाहितएव स्यादिति । तथा निक्षुणशीलोनिक्षुः उपधानं तपस्तत्र वीर्यं यस्य सउपधानवीर्यः तपस्यनिगूहितबलवीर्यइत्यर्थः । तथा वाक्गुप्तः सुपर्यालोचितानिधायी अ ध्यात्मं मनस्तेन संवृतोनिक्षुर्नवेदिति ॥ १२ ॥

णोपिहे ण यावपंगुणे दारं सुन्नघरस्स संजए ॥ पुट्ठेण उदाहरेवायं, ण स मुच्छे णो संथरे तणं ॥१३॥ जछ छमिए अणाउले, समविसमाइं मुणी हियासए ॥ चरगाय डुवावि नेरवा, अडुवा तछ सरीसिवा सिया ॥१४॥

अर्थ–वली साधुने उपदेश कहेछे. कोइ एक शयनादिक कारणे सुन्नघरस्सके० शून्य घरे रह्यो थको एवोजे संजएके० साधु, ते ते घरना दारंके० द्वारतेने णोपिहेणयावपंगु णेके० ढांके पणनहीं, तेम उघाडे पण नहीं वली त्यां रह्यो छतो अथवा अन्यत्र स्था नके रह्योछतो पुट्ठेणउदाहरेवायंके० कोइएके धर्म पूछ्यो थको सावद्यवचन बोलेनहीं. तथा णसमुछे णोसंथरेतणं के० त्यां रहेलाजे तृणकचरादिक ते प्रमार्जे नहीं, वली तेनेणो संथरे एटले पाथरे पण नहीं. ए आचार जिनकल्पादिक अनिग्रहधारी प्रमुख साधुनो कह्योछे; ॥ १३ ॥ वली जछछमिए के० चारित्रिउं ज्यां सूर्य अस्त थाय त्यांज रहे अने अणाउले के० परिसह उपसर्गे करी आकुल व्याकुल न थाय; क्षोन पामे न हिं,अक्षोन थको रहे. तथा समविसमाइंमुणीहियासएके० यथावस्थित ...

महयं पलिगोव जाणिया जावि य वंदणपूयणाइहं ॥ सुहुमे सल्ले डुरुद्धरे, विउ मंता पयहिज्ज संथवं ॥११॥ एगेचरे ठाणमासणे सयणे एगे समाहिए सिया ॥ भिक्खू उवहाणवीरिए वइगुत्ते अज्झत्तसंवुमो ॥ १२ ॥

अर्थ–वली उपदेश कहेछे. महयं के० महा महोटा जीवने कतरतां डुर्जेन एवो शुं? तो के पलिगोव के० कर्दम ते अंतरंग कर्दम जाणवो जावि य वंदणपूयणाइहं के०तेअर्हीं साधुने राजादिकनी करेली वंदना तथा पूजना एटले वस्त्रादिकनी प्रतिलाभना तेणे करी उपजी जे पूजा तेने कर्मोपशमनुं कारण जाणिया के० जाणीने उत्कर्ष न करवो, जे जीवने गर्व उत्पन्न थाय तेहिज कर्दम सरखो जाणवो केमके सुहुमेसल्लेडुरुद्धरेके० ए गर्वरूप जे सल्यछे ते सूक्ष्मछे माटे डुरुद्धर एटले एने उद्धरता घणो डुर्जेनछे तेमाटे विउमंता के० विद्वांस विवेकी पुरुपते पयहिज्ज के० छांमे संथवं के० संस्तव परिचयादिकनो त्याग करे ॥११॥ वली तेहिज कहेछे एगेचरे के० चारित्रिउ एकाकी इव्य थकी एकल्लविहारी अने जाव थकी रागद्वेपरहित एवो छतो विचरे तथा एकलो छतो ठाण के० काउस्सग करे तथा आसणेके० आसनने विपे पण रागद्वेपरहित थको बेसे एरीते सयणेके० शयनजे पाटप्रमुख त्यां पण एकाकीरहे ते केवो थको रहे? तोके समाहिएके० समाहित एटले जे जे क्रियामां प्रवर्ते त्यांत्यां सियाके० रागद्वेप टालतो थको प्रवर्त्तमान होय एवो भिक्खू के० आहारनो लेनार तथा उवहाण के० तपने विपे वीरिएके० बल वीर्यनो फोरवनार तथा वइगुत्तेअके० वचनगुप्ति एटले विमाशीने बोलनार तथा अज्झत्त के० मन तेनेविपे संवुमे के० संवृत एटले मनने स्थिरतानो करनार एवो साधु होय. ॥ १२ ॥

---

॥ दीपिका–( महयमिति ) महांतं परिगोपं जावपंकोऽनिष्वंगस्तं विपाकतोज्ञात्वा योपि च प्रव्रजितस्य सतोवंदना पूजना ऽहाऽस्मिंल्लोके तां ज्ञात्वा गर्वोन कार्यइति । यतो गर्वोऽयं सूक्ष्मशल्यं वर्तते ।सूक्ष्मत्वाच्चडुरुद्धरमुद्धर्तुमशक्यअतोविद्वान् तन्नावत्संस्तवं परिचयं संगं प्रजह्यात् त्यजेत् ॥ ११॥ (एगेइति) एकोरागद्वेपरहितएकल्लविहारीवा चरेत् स्थानं कायोत्सर्गादिकमेकएव कुर्यात् ।आसने शयने वा स्थितएकएव रागद्वेपरहितएव समाहितो धर्मादिध्यानयुक्तः स्यात् । तथाभिक्षुरुपधानं तपस्तत्र वीर्यमुपधानवीर्योऽनिगूहितबलवीर्यः वाग्गुप्तः अध्यात्मं मनस्तेन संवृतः स्यात् ॥ १२ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशमधिकृत्याह ( महयमित्यादि ) महांतं संसारिणं डुस्त्यजत्वा महता वा संरंजेण परिगोपणं परिगोपोऽच्यतः पाकादिभिर्वतोऽनिष्वंगस्तं ज्ञात्वा स रुपतस्तविपाकतोवा परिज्ञिय याऽपि च प्रव्रजितस्य सतोराजादिजिः कायादिनिर्वंदना वस्त्रपात्रादिनिश्च पूजना तांच इहाऽस्मिन् लोके मौनींइ वा शासने व्यवस्थितेन कर्मोप शमजं फलमित्येवं परिज्ञायोत्सेकोन विधेयः । किमिति यतोगर्वात्मकमेतत्सूक्ष्मश ल्यं वर्त्तते सूक्ष्मत्वाच्च डुरुद्धरं डुःखेनोद्धर्तुं शक्यते अतोविद्वान् सदसद्विवेकज्ञस्तत्तावत् संस्तवं परिचयमनिष्वंगं परिजह्यात् परित्यजेदिति ॥ नागार्जुनीयास्तु पठंति । पलिमंथमहं वियाणिया जावियवंदणपूयणाइहं ॥ सुहुमं सहं डुरुद्धरं तंपि जिणे एएण पंडिए ॥१॥ अ स्यचाऽयमर्थः । साधोः स्वाध्यायाऽध्ययनपरस्यैकांतनिस्पृहस्य योऽपि चाऽयं पर्रवंदनापूज नादिकः सत्कारः क्रियते.असावपि सदनुष्ठानस्य सज्जतेर्वा महान् पलिमंथे विघ्नस्तां तावच्छब्दादिष्वनिष्वंगस्तमित्येवं परिज्ञाय तथा सूक्ष्मशल्यं डुरुद्धरं वाऽतस्तमपि जये दपचयेत् पंडितएतेन वक्ष्यमाणेनेति ॥११॥ (एगेचरेइत्यादि) एकोऽसहायोऽच्यतएक ल्लविहारी जावतोरागद्वेषरहितश्चरेत् तथा स्थानं कायोत्सर्गादिकमेकएव कुर्यात् तथा आ सनेऽपि व्यवस्थितोऽपि रागद्वेषरहितएव तिष्ठेत् । एवं शयनेऽप्येकाक्येव समाहितोध र्मादिध्यानयुक्तः स्यात् जवेत् । एतडुक्तं जवति । सर्वास्वप्यवस्थानासनशयनरूपासु राग द्वेषविरहात् समाहितएव स्यादिति । तथा निक्षणशीलोनिक्षुः उपधानं तपस्तत्र वीर्यं यस्य सउपधानवीर्यः तपस्यनिगूहितबलवीर्यइत्यर्थः । तथा वाग्गुप्तः सुपर्यालोचितानिधायी अ ध्यात्मं मनस्तेन संवृतोनिक्षुर्जवेदिति ॥ १२ ॥

णोपिहे ण यावपंगुणे दारं सुन्नघरस्स संजए ॥ पुठेण उदाहरेवायं, ण स मुछे णो संथरे तणं ॥१३॥ जठ छमिए अणाउले, समविसमाइं मुणी हियासए ॥ चरगाय डुवावि जेरवा, अडुवा तठ सरीसिवा सिया ॥१४॥

अर्थ–वली साधुने उपदेश कहेछे. कोइ एक शयनादिक कारणे सुन्नघरस्सके० शून्य घरे रह्यो थको एवोजे संजएके० साधु, ते ते घरना दारंके० द्वारतेने णोपिहेणयावपंगु णोके० ढांके पणनहीं, तेम उघाडे पण नहीं वली त्यां रह्यो ठतो अथवा अन्यत्र स्था नके रह्योठतो पुठेणउदाहरेवायंके० कोइएके धर्म पूछ्यो थको सावद्यवचन बोलेनहीं. तथा णसमुछे णोसंथरेतणं के० त्यां रहेवाजे तृणकचरादिक ते प्रमार्जे नहीं, वली तेनेणो संथरे एटले पाथरे पण नहीं. ए आचार जिनकल्पादिक अनिग्रहधारी प्रमुख साधुनो कह्योछे; ॥ १३ ॥ वली जठछमिए के० चारित्रिठ ज्यां सूर्य अस्त थाय त्यांज रहे अने अणाउले के० परिसह उपसर्ग करी आकुल व्याकुल न थाय; क्षोन पामे न हिं,अक्षोन थको रहे. तथा समविसमाइंमुणीहियासएके० यथावस्थित संसारना सरू

स्वात्मनां उपसामीप्येन यंति गच्छंति । तत्सहनाच्च भिक्षोः शून्यागारगतस्य नीराजित वारणस्येव शीतोष्णादिजनिताउपसर्गाः सुसहाएव नवंतीति नावः ॥ १६ ॥

उवणीयतरस्स ताइणो, नयमाणस्सवि विक्कमासणं ॥ सामाइयमाहु तस्स जं, जो अप्पाण नएण दंसए ॥ १७ ॥ उसिणोदग तत्तनोइणो धम्मठियस्स मुणिस्स हीमतो ॥ संसग्गिअ साहुराइहिं, असमाही उ तहागयस्सवि ॥ १८ ॥

अर्थ—वली वीजो उपदेश कहेछे. उवणीयतरस्सके० उपनीततर एटले जेणे पोताना आत्माने ज्ञान, दर्शन अने चारित्रनेविषे पहोचाडयोछे. तथा ताइणोके० त्राइ एटले जेनो आत्मा अन्यने उपकारी होय तेने त्राइ कहिए. तथा विविक्तके० विविक्त आसणंके० आशन एटले स्त्री तथा पशु पंमके करी विवर्जित एवा नयमाणस्सके० उपाश्रयनो सेवनार सामाइयमाहुतस्सजंके० तेने सामायक चारित्र जाणवो. जोके० जेचारित्रिउं अप्पाणके० पोतानाआत्माने परिसह उपसर्ग उपना थका नएणदंसएके० नयने देखाडे नहीं, एटले उपसर्ग उत्पन्नथयाथी बीहे नहीं. ॥१७॥ वली उसिणोदगतत्तके० उष्ण उदक तथा तप्तोदकनो नोइणोके० नोगवनार एटले उष्ण थकां शीतल नकरे, किंतु उष्णोदक ठतांज पानकरे; तथाधम्मठियस्सके० श्रुत अने चारित्र धर्मने विषे स्थित मुनिस्सके० मुनिराज एटले तत्वनो जाण हीमतोके० लज्जावंत एटले असंयमे प्रवर्त्यो थको लज्जा पामे. एवा साहुके० साधुने पण राइहिंके राजादिकने संसग्गिअके० संसर्गे असमाहिउ के० असमाधिज थाय, तह गयस्सविके० तथा गतस्य यथोक्त अनुष्ठाननां करनार एवा साधु पण राजादिकना संसर्गे करी स्वाध्याय ध्यानथकी चूके. ॥१८॥

॥ दीपिका—उवणीयेति । उपनीतोऽतिशयेन ज्ञानादौ प्रापितआत्मायेन सउपनीततरस्तस्य । तायिनः परात्मोपकारिणस्त्रायिणोवा सम्यक्पालकस्य विविक्तं स्त्रीपशुपंडकविवर्जितमासनं वसत्यादि नजमानस्य सेवमानस्य सामायिकादिचारित्रमाहुः । सर्वं ज्ञायते यस्मात्ततः साधुना निश्चलात्मना नाव्यं । तथा यआत्मानं नयेन दर्शयेत् परीषहोपसर्गैर्भीरुर्नस्यात् तस्य सामायिकमाहुरिति ॥ १७ ॥ ( उसिणोत्ति ) मुनेरुष्णोदकतप्तनोजिनः त्रिदंडोद्वृत्तोष्णोदकनोजिनः अथवा उष्णं सत् न शीतीकुर्यादिति तप्तग्रहणं ।तथा धर्मे स्थितस्य न्हीमतः असंयमे लज्जावतोराजादिनिः सह संसर्गः संबंधोऽसाधुरनर्थकरः । तथागतस्य यथोक्तानुष्ठायिनोपि राजादिसंसर्गवशादसमाधिरेव नकश्चाचित्स्वाध्यायादिकं स्यादित्यर्थः ॥ १८ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमाह ( उवणीयेत्यादि ) उपसामीप्येन नीतः प्रापितोज्ञानाद्यात्मा येन सतथा अतिशयेनोपनीतउपनीततरस्तस्य तथा तायिनः परात्मोपकारिणस्त्रायिणोवा सम्यक्पालकस्य तथा भजमानस्य सेवमानस्य विविक्तं स्त्रीपशुपंडकविवर्जितमास्यते स्थीयते यस्मिन्निति तदासनं वसत्यादि तस्यैवं नूतस्य मुनेः सामायिकं समभावरूपं सामायिकादिचारित्रमाहुः सर्वज्ञाः। यद्यस्मात् ततश्चारित्रिणा प्राग्व्यवस्थितस्वभावेन भाव्यं यश्चात्मानं भयेन परिषहोपसर्गजनितेन दर्शयेत् तद्भीरुर्न भवेत् तस्य सामायिकमाहुरिति संबंधनीयं ॥ १७ ॥ किंच ( उसिणोदगेत्यादि ) मुनेरुष्णोदकतप्तभोजिनः त्रिदंडोद्वृत्तोष्णोदकभोजिनः। यदिवा उष्णं सन्नशीतीकुर्यादिति तग्रहणं। तथा श्रुतचारित्राख्ये धर्मे स्थितस्य ( हीमतोत्ति ) ह्रीरसंयमं प्रति लज्जा तद्वतोऽसंयमजुगुप्सावतइत्यर्थः। तस्यैवंभूतस्य मुनेराजादिभिः सार्द्धं यः संसर्गः संबंधोऽसाऽवसाधुरनर्थोदयहेतुत्वात्तथागतस्यापि यथोक्तानुष्ठायिनोऽपि राजादिसंसर्गवशादसमाधिरेवाऽपध्यानमेव स्यात् न कदाचित् स्वाध्यायादिकं भवेदिति ॥ १८ ॥

अहिगरणकडस्स भिक्खुणो, वयमाणस्स पसज्झदारुणं ॥ अट्ठे परिहायती बहु, अहिगरणं नकरेज्ज पंभिए ॥ १९ ॥ सीओदग पडिदुगंछिणो, अपडिसस्स लवावसप्पिणो ॥ सामाइय साहु तस्स जं, जो गिहिमत्तसणं न भुंजती ॥ २० ॥

अर्थ–हवे उपदेश आश्री कहेछे. अहिगरण के० अधिकरण ते कलह तेनो कडस्स के० करनार एवो भिक्खुणो के० चारित्रिउ वली पसझदारुणं के० प्रगटदारुण एटले जीवने भयनुं कारण वयमाणस्स के० एवी भाषानो बोलनार एवा चारित्रियानो घणो एवो जे अट्ठेके० अर्थ जे मोक्ष तेनुं कारण जे संयम ते परिहायती के० हीणो थाय. एटले बहुके० घणाकाले उपार्जित जे दुष्करतप संयम तेनो पण कलह करतां परोपघातीया वचन बोलतां क्षय थाय. एवुं जाणीने शुंकरे ? ते कहेछे. पंभिएके० जे पंभितविवेकी होयते अहिगरणके०अधिकरण जे क्रोध ते स्वल्पपण नकरेज्जके०नकरे,एटले पंभित अल्पक्रोध पण करे नहीं. ॥ १९ ॥ जे चारित्रिउ सीउदगं के० शीतोदक एटले सचेतपाणी तेने पडिदुगंछिणो के० टालनार तथा अपडिसस्स के० अप्रतिज्ञ एटले नियाणु सर्वथापि नकरे. तथा लवावसप्पिणो के० लव एटले कर्म तेथकी शंकातो रहे. एटले कर्मबंधनुं कारण एवुं जे अनुष्ठान होय ते नकरे. सामाइयसाहुतस्सजंके० ते साधुने सामायक एटले समता लक्षणवंत कहिए. वली जोके० जे साधु गिहिमत्तसणं

के० गृहस्थसंबंधी जे नाजन कांस्यपात्रादिक तेने विषे नजुंजती के० नोजन न करे तेने सामायकवंत जाणवो. ॥ २० ॥

---

॥ दीपिका–( अहिगरणेत्ति )। अधिकरणं कलहस्तत्करस्य निक्षोर्दारुणं वाचं प्रसह्य प्रगटमेववदतोऽर्थोमोक्षः संयमोवा बहु परिहीयते नृशं विनश्यतीत्यर्थः। बहुकालार्जित मपि महत्पुण्यं कलहं कुर्वतस्तत्कालं हीयते। यतः। जं अज्जिअं समीखल्लएहिं तवनियम बंनमइएहिं ॥ माहुतयंकलहंता, बड्डेअह सागपत्तेहिं ॥ १ ॥ तस्मादधिकरणं नकुर्यात्पं मितः ॥ १९ ॥ (सीउदगेति )। शीतोदकमप्रासुकजलं तत्प्रति जुगुप्सकस्य परिहारिणो न विद्यते प्रतिज्ञा निदानं यस्य सअप्रतिज्ञस्तस्याऽनिदानस्य लवं कर्म तस्मादवसर्पिणोनि वर्तमानस्य साधोः सामायिकादिसंयममाहुः सर्वज्ञाः। यश्च साधुर्गृहमात्रे गृहस्थनाज नेन नुंक्ते तस्य सामायिकमिति ॥ २० ॥

---

॥ टीका–परिहार्यदोषप्रदर्शनेनाऽधुनोपदेशानिधित्सयाह । ( अहिगरणेत्यादि )। अधिकरणं कलहस्तत्करोति तच्छीलश्चेत्यधिकरणकरस्तस्यैवंनूतस्य निक्षोस्तथाऽधिकरण करीं दारुणां वा नयानकां वा प्रसह्यप्रगटमेव वाचं ब्रुवतः सतोर्थोमोक्षस्तत्कारण नूतोवा संयमः सबहु परिहीयते ध्वंसमुपयाति । इदमुक्तं नवति। बहुना कालेन यद र्जितं विप्रकृष्टेन तपसा महत्पुण्यं तत्कलहं कुर्वतः परोपघातिनीं च वाचं ब्रुवतस्तत्क्ष णमेव ध्वंसमुपयाति। तथाहि। जंअज्जियंसमीखल्लएहिं तवनियमबंनमइएहिं ॥ माहु तयंकलहंताछड्डेअह सागपत्तेहिं ॥ १ ॥ इत्येवं मत्वा मनागप्यधिकरणं न कुर्यात् पं मितः सदसद्विवेकीति ॥ १९ ॥ तथा ( सीउदगेत्यादि )। शीतोदकमप्रासुकोदकं तत्प्र ति जुगुप्सकस्याऽप्रासुकोदकपरिहारिणः साधोर्न विद्यते प्रतिज्ञा निदानरूपा यस्य सोप्र तिज्ञोऽनिदानइत्यर्थः । लवं कर्म तस्मात् ( अवसप्पिणोत्ति )। अवसर्पिणस्तद्यदनुष्ठा नं कर्म बंधोपादाननूतं तत्परिहारिणइत्यर्थः । तस्यैवंनूतस्य साधोर्यस्मात्तत्सामा यिकं समनावलक्षणमाहुः सर्वज्ञाः। यश्च साधुः गृहमात्रे गृहस्थनाजने कांस्यपात्रादौ न नुंक्ते तस्यच सामायिकमाहुरिति संबंधनीयमिति ॥ २० ॥

णय संखयमाहु जीवियं, तहविय बालजणो पगप्नइ ॥ बाले पावेहिं मिज्जती, इति संखाय मुणी ण मज्जती ॥ २१॥ छंदेण पाले इमा पया, ब हुमाया मोहेण पाउडा ॥ वियडेण पलिंति माहणे [illegible] वयसा हियासए ॥ २२ ॥

अर्थ—वली प्रकारांतरे कहेछे. आहुजीवियंके० जीवितव्य आयुष्य काल पर्यायें करी त्रूटोथतां णयसंखयके० वधारी नशकाय, एरीते पंमितो कहेछे. तहवियके० तोपण बालजणोके० बाल अज्ञानी जन पगप्भइके० पाप करतो धृष्टपणुं करे एवो बालेके० बाल ते पावेहिंमिज्झतीके० पापकर्मेकरी नराय, संसारमां दुःख पामे. इतिसंखायके०एवुं जाणीने मुणी के० साधुजेछे, ते णमज्झतीके० मद नकरे एटले पापे करी धीजो न थाय. ॥ २१ ॥ वलीउपदेश कहेछे. छंदेणके० पोतपोताने अनिप्रायेंकरी इमापया के० ए प्रजा एटले लोकजेछेते पालेके० तेवी तेवी नरकादिक गतिने विषे पर्यटन करे,ते केवीरीते? तोके, एक दर्शनी पोताना अनिप्रायें करी गृहनेविषे ग्रस्त छतां अजादिकना वधने पण धर्मनुं कारण कहेछे, अन्य वली धनधान्यादिक परिग्रह पृथ्वीकायनो आरंन एने पण धर्म कहेछे, इत्यादिक प्रकारें ए प्रजालोक जे छे ते मुग्धजनरंजननिमित्ते बहुमाया के० कपट प्रधान अनेक प्रकारनी कपटक्रिया करे, परंतु श्रीवीतरागनो मार्ग सम्यक् प्रकारे नजाणे. तेनुं कारण कहेछे, केमके ए लोक जेछे, ते मोहेणके० अज्ञाने करी पाउडाके० आवख्या. विवेकरहित छे, माटे खोटा साचानी व्यक्तिने जाणता नथी,एवुं जाणीने माहणेके० साधु ते वियडेण के० विकटेण एटले प्रगट मायारहित निर्माय कर्मे करी पलिंतिके० मोक्ष तथा संयमने विषे प्रवर्त्ते, एटले शुन ध्याने करीयुक्त होय, सीउण्हके०शीत उष्ण एटले अनुकूल अने प्रतिकूल उपसर्ग ते वयसा के० वचने,कायाये अने मने ए त्रिकरण शुद्धेकरी अहियासए एटले परीसह आवे थके दीनपणुं आणेनहीं. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—नयेति । जीवितं त्रुटितं सत् (नसंखयत्ति) नसंस्कर्तुं शक्यमित्याहुस्तद्विदः तथापि बालोऽज्ञो जनः प्रगल्भते पापं कुर्यात् । बालः पापैः कर्मभिर्नीयते म्रियते वा इति संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न मायति अहं सदनुष्टानइति मदं नकुर्यात् ॥२१॥ ( छंदेणेति) इमाः प्रजाः अयंलोकः छंदेन स्वाभिप्रायेण प्रलीयते शोभनभावः स्यात् । यथा छागादिवधेपि केचिद्धर्मं वदंति कुटुंबमुद्दिश्य धनादिपरिग्रहं कुर्वति केचिन्मायया मुग्धजनं प्रतारयंति तथा बहुमाया प्रजा मोहेन प्रावृता आछादिताच एवंज्ञात्वा (माहणेत्ति) साधुः विकटेन प्रकटेन निर्मायेन कर्मणा संयमे प्रलीयते शुभभावः स्यात् । तथा शीतं उष्णंच वाचा कायेन मनसा वाऽधिसहते ॥ २२ ॥

॥ टीका—किंच ( नयसंखयमित्यादि ) नच नैव जीवितमायुष्कं कालपर्यायेण त्रुटितं सत् पुनः ( संखयमिति ) संस्कर्तुं तंतुवत्संधातुं शक्यते इत्येवमाहुस्तद्विदस्तथाऽप्येवमपि व्यवस्थिते बालोऽज्ञो जनः प्रगल्भते पापं कुर्वन् धृष्टोभवति असदनुष्ठानरतोऽपि

न लज्जतइति । सचैवंभूतोबालस्तैरसदनुष्ठानापादितैः पापैः कर्मभिर्मीयते तद्युक्तइत्येवं प रिच्छिद्यते म्रियते वा मेयेन धान्यादिना प्रस्थकवदित्येवं संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्यथावस्थि तपदार्थानां वेत्ता न माद्यतीति तेष्वसदनुष्ठानेष्वहं शोभनः कर्त्तेत्येवं प्रगल्भमानोमदं न करोति ॥ २१ ॥ उपदेशांतरमाह ( छंदेणेत्यादि ) छंदोऽभिप्रायस्तेन तेन स्वकीया भिप्रायेण कुगतिगमनैकहेतुना इमाः प्रजाश्रयं लोकस्तासु गतिषु प्रलीयते । तथाहि यागादिवधमपि स्वाभिप्रायग्रहग्रस्ताधर्मसाधनमित्येवं प्रगल्भमानाविदधति । अन्येतु संघा दिकमुद्दिश्य दासीदासधनधान्यादिपरिग्रहं कुर्वंति तथाऽन्ये मायाप्रधानैः कुक्कुटैरसकृ त्प्रेक्षमाणश्रोत्रस्पर्शनादिभिर्मुग्धजनं प्रतारयंति । तथाहि । कुंकटसाध्योलोकोन कुक्कुट तः प्रवर्तते किंचित् । तस्माल्लोकस्याऽर्थे पितरमपि सकुक्कुटं कुर्यात् तथेयं प्रजा बहु माया कपटप्रधाना किमिति यतोमोहोऽज्ञानं तेन प्रावृताऽऽछादिता सदसद्विवेकविकले त्यर्थः । तदेवमवगम्य ( माहणेत्ति ) साधुर्विकटेन प्रकटेनाऽमायेन कर्मणा मोक्षे संयमे वा प्रकर्षेण लीयते प्रलीयते शोभनभावयुक्तोभवतीति भावः । तथा शीतंच उष्णंच शीतो ष्णः शीतोष्णोवा अनुकूलप्रतिकूलपरीषहास्तान् वाचा कायेन मनसा च करणत्रयेणाऽपि सम्यगधिसहेतइति ॥ २२ ॥

कुजए अपराजिएजहा, अक्खेहिं कुसलेहिं दीवयं ॥ कडमेव गहाय णो कलिं, नो तियंनो चेवदावरं ॥ २३ ॥ एवंलोगंमि ताइणा, बुइए जे धम्मे अणुत्तरे ॥ तं गिण्ह हियंति उत्तमं, कडमिव सेसवहाय पंडिए॥२४॥

अर्थ—वली उपदेशांतर कहेले. कुजए के कुत्सित एटले माठो एवो जेनो जय तेने कु जय कहिए. ए जुगार कहेवाय ले; केमके एमां घणो जय थाय तोपण निंदा करवा यो ग्य ले माटे कुंजयले,ते केवो? तोके अपराजिएके० लब्ध लक्ष्यपणे खेलतो अपर एटले अ न्य कोइथी जीत्यो जाय नहीं. एवो जुगारी जहा के० जेम अक्खेहिंके० अक्ष एटले पाशा तेणेकरी कुसलेहिं के० कुशल निपुण एवीरीते दीवयं के० खेलतो थको ते कड मेवगहाय के० चोतरो दाव ग्रहण करीने खेलतां जीते तो ते चोतरो दावज ग्रहण करे, पण णोकलीके०एकनोदाव ग्रहण करे नहीं. तेमज णोतियंके० त्रणनो दावग्रहण नकरे अने नोचेवदावरं के० वेनो दाव पण ग्रहण नकरे, ॥ २३ ॥ हवे एदृष्टांत साधु साथे मेलवे ले. जेम जुगारने विषे जय पामवानो अभिलाषी एक चोकानो दावज ग्र हण करी बीजा दावनो त्याग करे. एवंलोगंमि के० एरीते ए मनुष्यलोकमांहे ताइ णा के० षट्कायनो रक्षपाल चारित्रियें बुइएजेधम्मे के० अहिंसाले प्रधान जेमां एवो धर्म जे श्रीवीतरागे कह्यो. अणुत्तरे के० एवो अन्य धर्म जगतमांहे कोई नथी.

तंके० ते धर्मने अहो शिष्य? तुं निःसंदेह थइने हियंतिके० एकांत हितकारी जाणीने गि ह्णके० आदर. ए उत्तमके० सर्वोत्तम मार्ग डे. ते तुं ग्रहण कर. कोनी पेरे तोके, कड मेव के० ते जुगारिये ग्रहण करेला चोकाना दावनी पेरे. सेसवहाय के० शेष एकादि कनो दाव ठांमी दीधो. तेम पंमिए के० पंमित जे डे, ते शेष अनेरा जे गृहस्थ, कुलिं गी, द्रव्यलिंगी एवा धर्म ठांमीने एक सर्वज्ञोपदिष्ट धर्मने ग्रहण करे. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—( कुजएत्ति ) । कुजयोद्यूतकारोयथा अक्षैः पाशैर्दीव्यन् क्रीमन् कुशलो नापराजितःस्यात् । अन्येन न जीयतइत्यर्थः । कडमेवत्ति । सद्यूतकारः कमचतुष्कमेव गृहीत्वाकैकं नो गृण्हाति । नत्रैतं त्रिकं नद्वापरंद्विकंवा गृण्हाति किंतुचतुष्कमेव लाति ॥ २३ ॥ दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति ) । एवं लोकेस्मिन् तायिना सर्वज्ञेनोक्तोऽनु त्तरउत्कृष्टोयोयं धर्मस्तं हितमुत्तमं त्वं गृहाण। दृष्टांतनिगमनमाह। यथा द्यूतकारः शेषं एककादि अपहाय त्यक्त्वा कृत कृतयुगं चतुष्कमेव लाति तथा पंमितः साधुरपि गृहस्थः कुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिनावं त्यक्त्वा सर्वोत्तमं धर्मं गृण्हीयादित्यर्थः ॥ २४ ॥

॥ टीका—अपिच ( कुजएत्यादि ) । कुत्सितोजयोऽस्येति कुजयोद्यूतकारः महतो ऽपि द्यूतजयस्य सद्भिर्निंदितत्वादनर्थहेतुत्वाच्च कुत्सितत्वमिति । तमेव विशिनष्टि । अप राजितोदीव्यन् कुशलत्वादऽन्येन न जीयते । अक्षैर्वा पाशकैर्दीव्यन् क्रीडंस्तत्पातज्ञः कुशलोनिपुणः यथा असौ द्यूतकारोऽक्षैः पाशकैः कपर्दकैर्वा रममाणः (कडमेवत्ति ) चतुष्कमेव गृहीत्वा तल्लब्धजयत्वात् तेनैव दीव्यति । ततोसौ तल्लब्धजयःसन्न कलिमे ककं नाऽपि त्रैतं त्रिकं च नापि द्वापरं द्विकं गृण्हातीति ॥ २३ ॥ दार्ष्टांतिकमाह । ( एवमित्यादि ) यथा द्यूतकारः प्राप्तजयत्वात् सर्वोत्तमं दीव्यंश्चतुष्कमेव गृण्हात्येवम स्मिंल्लोके मनुष्यलोके तायिना त्रायिणा वा सर्वज्ञेनोक्तोऽयं धर्मः क्षांत्यादिलक्षणः श्रु तचारित्राख्योवा नाऽस्योत्तरोऽधिकोऽस्तीत्यनुत्तरस्तमेकांतहितमपि कृत्वा सर्वोत्तमंच गृ हाण विस्रोतसिकारहितः स्वीकुरु । पुनरपि निगमनार्थतमेव दृष्टांतं दर्शयति । यथा क श्चित् द्यूतकारः कृतं कृतयुगं चतुष्कमित्यर्थः । शेषमेककाद्यपहाय त्यक्त्वा दीव्यन् गृण्हा ति एवं पंडितोऽपि साधुरपि शेषं गृहस्थकुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिनावमपहाय संपूर्णं म हांत सर्वोत्तमं धर्मं गृण्हीयादिति नावः ॥ २४ ॥

उत्तरमणुयाण आहिया, गामधम्मा इइ मे अणुस्सुयं ॥ जंसी
विरता समुठिया कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २५ ॥ जे
एयं चरंति आहियं, नाएणं महया महेसिणा ॥ ते उठिय
ते समुठिया, अन्नोन्नं सारंति धम्मउ ॥ २६ ॥

अर्थ–वली अन्य उपदेश कहेछे. मणुयाणके० मनुष्यने उत्तरके० जीपतां अति दुर्लन आहिया के० कह्या. एवा शुं ? तोके, गामधम्मा के० ग्रामधर्म ते शब्दादिक विषय अथवा मैथुन सेवन इत्यादिकने ग्रामधर्म कहिए. इति के० एरीतें मेके० में अणुस्सुयं के० श्रीवीरनगवंत पाशेथी सांनल्युं छे, एटले श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजंबुस्वामि प्रत्ये कहे छे के; ग्रामधर्म जे शब्दादिक विषय छे ते मनुष्यने घणा दुर्जय श्रीवीतरागे कह्या छे, एवुं में नगवंत पाशेथी सांनल्युं छे. तेरीते हुं तुजने कहुंछुं तो हवे ए ग्रामधर्म आश्री. जंसी के० जे विरता के० विरतिने विषे समुठिया के० सावधान थया ते पुरुष कासवस्स के० काश्यप गोत्री एटले श्रीरुषनदेव स्वामि अथवा श्रीमहावीरस्वामि एमना धम्म के० धर्मना अणुचारिणोके० अनुचारी जाणवा. ॥ १५ ॥ वली कहेछे. जेके० जे पुरुष एयं के० ए पूर्वोक्त ग्रामधर्मने विषे विरतिलक्षण एवो जे धर्म तेने चरंति के० आचरे ते धर्म कोणे आहियंके० कह्यो ? तोके, महया के० महोटा महेसिणा के० महारुषी एवा नाएण के० ज्ञातपुत्रे कह्योछे. तेके० ते एवा धर्मना करनार संयम पालवाने उठिय के० उद्यत, सावधान थया, तथा समुठिया के० सम्यक् प्रकारें कुमार्ग देशनाने परित्यागे करी घणा सावधान छता प्रवर्ते. ते अन्नोन्नंसारंति धम्मउके० परस्पर मांहोमांहे धर्मथकी नगता प्राणीने वली धर्मनेविषे सारंति एटले स्थापे इत्यर्थः ॥१६॥

---

॥ दीपिका–( उत्तरेति ) । मनुजानां नराणां ग्रामधर्माः शब्दादिविषया उत्तरा दुर्जयत्वात्प्रधाना जिनैराख्याताः । मयैतदनुपश्चाच्छ्रुतमाकर्णितं । यतः श्रीरुषनस्वामिना स्वपुत्रानुद्दिश्य प्रोक्तं तत्पाश्चात्यगणधरैः शिष्येन्यः कथितं ततोमया श्रुतमिति । यस्मिन्निति पंचम्यर्थे सप्तमी । येन्योविषयेन्योविरताः समुत्थिताउद्यताः काश्यपस्य श्रीरुषनस्य श्रीवीरस्य वा संबंधी योधर्मस्तदनुचारिणोजिनोक्तधर्मकारिणः स्युः ॥१५॥ ( जेएयमिति ) । ये एवंविधाः पूर्वोक्तास्ते धर्मविषयत्यागरूपं चरंति कुर्वंति इति महता महर्षिणा ज्ञातेन श्रीवीरेणाख्यातं । तएवोत्थिताः सम्यङ्मार्गेन्यः समुत्थिताश्च कुमतिन्यस्तएवाऽन्योन्यं परस्परं धर्मतोधर्ममाश्रित्य धर्मतोच्नश्यंतं वा सारयंति धर्मे प्रवर्तयंतीत्यर्थः ॥ १६ ॥

---

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमाह । ( उत्तरेत्यादि ) । उत्तराः प्रधानाः दुर्जयत्वात् । केषामुपदेशार्हत्वान्मनुष्याणामन्यथा सर्वेषामेवेति । के ते ग्रामधर्माः शब्दादिविषया मैथुनरूपावेति । एवं ग्रामधर्मा उत्तरत्वेन सर्वज्ञैराख्याताः । मयैतदनुपश्चाच्छ्रुतं । एतच्च सर्वमेव प्रागुक्तं । यच्च वक्ष्यमाणं तन्नानेयेनाऽऽदितीर्थकृता पुत्रानुद्दिश्याऽभिहितं सत्पाश्चात्यगणधराः सुधर्मस्वामिप्रभृतयः स्वशिष्येन्यः प्रतिपादयंत्यतोमयैतदनुश्रुतमित्यन

नर्थ । यस्मिन्निति कर्मणि ल्यब्लोपे पंचमी सप्तमीवेति । यान् ग्रामधर्मानाश्रित्य ये वि रताः । पंचम्यर्थे वा सप्तमी । येन्योवा विरताः सम्यक्संयमरूपेणोत्थिताः समुत्थितास्ते काश्यपस्यर्षभस्वामिनोवर्धमानस्वामिनोवा संबंधी योधर्मस्तदनुचारिणस्तीर्थंकरप्रणीतध र्मानुष्ठायिनोऽनवंतीत्यर्थः ॥२५॥ किंच (जेएइत्यादि) । ये मनुष्याएनं प्रागुक्तं धर्मं ग्राम धर्मविरतिलक्षणं कुर्वंति चरंति । आख्यातं ज्ञातेन ज्ञातपुत्रेण ( महयेति ) महाविषयस्य ज्ञानस्याऽनन्यभूतत्वात् महान् तेन तथाऽनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहिष्णुत्वान्महर्षिणा श्री म द्वर्धमानस्वामिना आख्यातं धर्मं ये चरंति तएव संयमोत्थाने कुतीर्थिकपरिहारेणोत्थि तास्तथा निन्हवादिपरिहारेण । तएव सम्यक्त्वमार्गदेशनाऽपरित्यागेनोत्थिताः समुत्थिता इति नाऽन्ये कुप्रावाचनिकाजमालिप्रभृतयश्चेतिनावः । तएव च यथोक्तधर्मानुष्ठायिनो ऽन्योऽन्यं परस्परं धर्मतोधर्ममाश्रित्य धर्मतोवाऽपश्यंतं सारयंति चोदयंति पुनरपि सद्धर्मे प्रवर्तयंतीति ॥ २६ ॥

मापेह पुरा पणामए, अभिकंखे उवहिं धुणित्तए ॥ जे दूमणते हिं णोणया, ते जाणंति समाहिमाहियं ॥ २७ ॥ णोकाहिए हो ज्ज संजए, पासणिए णय संपसारए ॥ नच्चा धम्मं अणुत्तरं कय किरिए ण यावि मामए ॥ २८ ॥

अर्थ—हवे जेरीते धर्मस्थापे ते रीत कहेछे. पणामएके० प्रणाम एटले सर्व जीवने न मावे. एवा प्रणाम ते शब्दादिक विषयरूप पुरा के० पूर्वला जोगव्या जोग तेने मापेह के० न चिंतवे. केमके तेनुं चिंतववुं पण महा अनर्थनुं कारणछे. तो ए शब्दादिक विषय ने सेववानुं शुं कहेवुं ? तथा अभिकंखे के० आगमिक काले उपजनार जे विषय तेने प ण न वांछे, तेनी अभिलाषा न करे, तथा तेने दूर करवा वांछे. तोआत्माने जे उवहिंके० उपधि एटले माया अथवा अष्टप्रकारे कर्म तेने धुणित्तए के० पोताथकी दूर करे. त था जे दूमणतेहिं के० दुष्ट मनना करनार एवाजे शब्दादिक विषय तेने विषे णोणयाके० नम्या नथी. अथवा दुष्ट धर्मना करनार एवा जे कुतीर्थिक तेनां कहेलां जे अनुष्ठान ते ना करनार थया नथी एटले तेने वशीगत थया नथी. ते जाणंति समाहिमाहियं के० ते पुरुष राग,द्वेष, परित्यागरूप जे समाधि तद्रूप धर्मध्यान तेने आहियं एटले आत्माने विषे व्यवस्थित जाणे. ए थकी जे अन्य छे तेने विषे समाधि जाणे नहीं, एवुं जाणीने विषयने छांमे ॥ २७ ॥ वली उपदेशांतर कहेछे. संजए के० चारित्रिउं जे छे, ते णोकाहिए होज्ज के० गोचरीने विषे कथानो करनार न होय एटले विकथा न करे. अथवा विरुद्ध रूप पैशुन्य वार्त्ता एटले स्त्रीयादिकनी कथा तेपण न करे. तथा पासणिएणयके०प्रश्न नकरे

अथवा अनेरायें पूछ्याथकी निमित्तादिक कहे नहीं तथा संपसारए के० अर्थकांमादिक कथानो विस्तार नकरे, केमके धम्मंके० ए श्रीवीतराग देवनो जे धर्म तेने अणुत्तरं के० सर्वो त्तम नच्चा के० जाणीने विकथादि न करें एटले सम्यक् धर्म जाणवानुं एहिज फलछे, जे विकथादिकनो त्याग करवो अने सम्यक् प्रकारे क्रिया करवी ते नाव देखाडेछे. कयके० कीधीछे रुडीपरे अन्यासीने संयमानुष्ठानरूप किरिए के० क्रिया जेणे एवो छतो उत्तम साधु ते णयाविमामए के० देहादिकने विषे पण ममत्व न करे ॥ २८ ॥

---

॥ दीपिका–( मापेहेति ) । प्रणामयंति प्रापयंति डुर्गतिं प्रणामकाः शब्दादिविषया स्तान् माप्रेक्षस्व मास्मर । तथा उपधिं मायां धूनयितुमपनयनायानिकांक्षेत् चिंतयेत् मायात्यागाय यतेतेत्यर्थः । ये नराडुर्मनोर्निर्विषयैर्ननता न तत्पराः स्युस्ते जानंति समा धिं धर्मध्यानं आहितं आसमंतात् हितं ॥२७॥ ( नोकाहिएति ) संयतः साधुः काथिकः कथाकथकोगोचरादौ न नवेत् । प्राश्निकः प्रश्ननिमित्तकथकश्च नत्नवेत् । नच संप्रसारको मेघवृष्ट्यर्थकांडादिसूचककथाविस्तारको नवेत् । किंकृत्वाऽनुत्तममुत्कृष्टं धर्मं ज्ञात्वा कृता अन्यस्ता क्रिया संयमानुष्ठानरूपा येन सकृतक्रियोमामकोन स्यात् ममेदं वस्तु अ हमस्य स्वामीति मामकः परिगृही नस्यादित्यर्थः ॥ २८ ॥

---

॥ टीका–किंच ( मापेहेत्यादि ) डुर्गतिं संसारं वा प्रणामयंति प्रव्हीकुर्वंति प्राणि नां प्रणामकाः शब्दादयोविषयास्तान् पुरा पूर्वं नुक्तान् मा प्रेक्षस्व मास्मर। तेषां स्मरणम पि यस्मान्महतेऽनर्थाय । अनागतांश्च नोदीक्षेत नाऽऽकांक्षेदिति । तथाऽनिकांक्षेत् अ निलषेदनारतं चिंतयेदनुरूपमनुष्ठानं कुर्यात् । किमर्थमिति दर्शयति । उपधीयते ढौक्यते डुर्गतिं प्रत्यात्मा येनाऽसावुपधिर्माया अष्टप्रकारं वा कर्म तद्धननायाऽपनयनायाऽ निकांक्षेदिति संबंधः । डुष्टधर्मं प्रत्युपनताः कुमार्गानुष्ठायिनस्तीर्थिकाः यदिवा (दूमणत्ति) डुष्टमनःकारिणउपतापकारिणोवा शब्दादयोविषयास्तेषु ये महासत्वाः न नतान प्रव्हीनूतास्तदाचारानुष्ठायिनोन नवंति तेच सन्मार्गानुष्ठायिनोजानंति विंदंति स माधिं रागद्वेषपरित्यागरूपं धर्मध्यानंच आहितमात्मनि व्यवस्थितं आसमंताद्धितं वा तएव जानंति नाऽन्यइतिनावः ॥ २७ ॥ तथा ( णोकाहिएइत्यादि ) संयतः प्रव्राजितः कथया चरति काथिकोगोचरादौ न नवेत् । यदिवा विरुद्धां पैशून्यापादनीं स्त्र्यादिकथां वा न कुर्यात् । तथा प्रश्नेन राजादिकिंवृत्तरूपेण दर्पणादिप्रश्ननिमित्तरूपेण वा चरतीति प्राश्निकोन नवेत् नाऽपिच संप्रसारकोदेववृष्ट्यर्थकांडादिसूचककथाविस्तारकोनवेदि ति । किंकृत्वेति दर्शयति । ज्ञात्वाऽवबुध्य नास्योत्तरोविद्यतइत्यनुत्तरस्तंश्रुतचारित्रा ख्यं धर्मं सम्यगवगम्य तस्य हि धर्मस्यैतदेव फलं यडुत विकथानिमित्तपरिहारेण स

म्यक्क्रियावान् स्यादिति । तदर्शयति । कृता सन्यस्ता क्रिया संयमानुष्ठानरूपा येन सरु तक्रियस्तथानूश्च। नचाऽपि मामकोममेद महमस्य स्वामीत्येवं परिग्रहाग्रही नवेदिति॥२०॥

ठन्नं च पसंस णोकरे, नय उक्कोस पगास माहणे ॥ तेसिं सुविवे गमाहिए,पण याजेहिं सुजोसिञ्चं धुयं॥ १ए॥ अणिहे सहिए सुसंवुमे, धम्मघी उवहाण वीरिए ॥ विहरेज्ज समाहि इंदिए, आत्तहिश्रं खु डुहेण लप्नइ ॥ ३० ॥

अर्थ–तथा चारित्रिठ होयते ठन्नं के० माया अने पसंस के० लोन ते णोकरे के० नकरे, तथा उक्कोस के० उत्कर्ष एटले मान तथा पगास के० प्रकाश एटले क्रोध तेपण माहणे के० साधु ते नय के० नकरे, तेसिं के० ते क्रोधादिकनो सुविवेग के० परित्याग आहिए के० महांत पुरुषे कह्यो तेहिज धर्मनेविषे प्रणया के० सावधान थया एवा जेहिं के० जे महासत्ववंत पुरुष तेणे धुयं के० संयमानुष्ठान सुजोसियं के० सेव्युं ते साधु जाणवा ॥ १ए ॥ अणिहे के० स्नेहरहित तथा सहिए के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी संयुक्त अने सुसंवुमे के० सुसंवृत एटले संवरेसहित प्रवर्त्ततो तथा धम्मठी के० धर्मनो अर्थि तथा उवहाण के० उपधान एटले तपविशेष तेनेविषे वीरिए के० बलवीर्यनो फोरवनार संयम पालतो समाहिइंदिए के० समाहित इंडिउ एटले इंडिउवश करीठे जेणे, एवो ठतो विहरेज्जा के० विचरे केमके संसारमांहे नमता खु के० निश्चे आत्तहियं के० आत्महित जे ठे, ते डुहेणलप्नइ के० डुःखेकरी लन्यमान थायठे ॥३०॥

॥ दीपिका–(ठन्नंति) मायां न कुर्यात्। प्रशस्यते सर्वैरिंडियैरिति प्रशस्योलोनस्तंच उत्कर्षमानं प्रकाशंक्रोधंच माहनः साधुर्न कुर्यादिति सर्वत्र संबंधः । तेषां कषायाणां यैर्महात्मनिर्विवेकः परित्यागआहितोजनितस्तएव धर्मप्रति प्रणताः प्रह्वीनूताः। अथवा तेषां सत्पुरुषाणां सुविवेकआहितः प्रथितः । यैः सत्पुरुषैर्जुष्टं सेवितं । धूयते क्षिप्यते कर्म येन तत्धूतं संयमानुष्ठानं।(अथवा यैः सुजोसिअंति)सुष्टु क्षपितं धूतं कर्मेति ॥१ए ॥ (अणिहः अस्निहोममत्वरहितः परीषहोपसर्गैर्न निहन्यतइत्यनिहोवा । अणहेतिपाठेतु अनघो निरवद्यः सहितोहितयुक्तः स्वहितोवा सुसंवृतोधर्मार्थी । उपधानं तपस्तस्य वीर्यवान् समाहितेंडियः संयतेंडियोविरहेत् । कुतएवं यतआत्महितं डुःखेन जीवैर्लन्यते । यतोदशदृष्टांतैर्मानुष्यादिकं,डुर्लनमिति ॥ ३० ॥

॥ टीका–किंच (ठन्नमित्यादि) (ठन्नंति) माया तस्याः स्वाभिप्रायप्रछादनरूपत्वात् तां न कुर्यात् । चशब्दउत्तरापेक्षया समुच्चयार्थः । तथा प्रशस्यते सर्वैरप्यविगानेनाड्रियत

इति प्रशस्योलोन्नत्तं च नकुर्यात् । तथा जात्यादिनिर्मदस्थानैर्लघुप्रकृतिं पुरुपमुत्क र्षयतीत्युत्कर्षकोमानस्तमपि न कुर्यादिति संबंधः । तथाऽतर्व्यवस्थितोऽपि मुखदृष्टि भंगविकारैः प्रकाशी भवतीति प्रकाशः क्रोधस्तं च (माहणेत्ति) साधुर्न कुर्यात् । तेषां क षायाणां यैर्महात्मनिर्विवेकः परित्यागश्चाहितो जनितस्तएव धर्मं प्रति प्रणताइति । य दिवा तेपामेव सत्पुरुषाणां सुष्ठु विवेकः परिज्ञानरूपश्चाहितः प्रथितः प्रसिद्धिं गतस्त एवच धर्मं प्रति प्रणताः । यैर्महासत्वैः सुष्ठु जुष्टं सेवितं । धूयतेऽष्टप्रकारं कर्म येन तद्धूतं सं यमानुष्ठानं । यदिवा यैः सदनुष्ठायिभिः (सुजोसिअंति) सुष्ठु क्षिप्तं धूननार्हत्वात् धूतं कर्मेति ॥ २९ ॥ अपिच (अणिहेइत्यादि) स्निह्यतइतिस्निहः । नस्निहः अस्निहः सर्व त्र ममत्वरहितइत्यर्थः । यदिवा परीषहोपसर्गैर्निहन्यतेइतिनिहः ननिहोऽनिहउप सर्गैरपराजितइत्यर्थः । पाठांतरंवा । (अणहेति) नाऽस्याऽघमस्तीत्यनघोनिरवद्यानु ष्ठायीत्यर्थः । सह हितेन वर्ततइति सहितः सहितोयुक्तोवा ज्ञानादिभिः स्वहितश्चा त्महितोवा सदनुष्ठानप्रवृत्तेः । तामेव दर्शयति । सुष्ठु संवृतइंद्रियनोइंद्रियैर्विस्रोत सिकारहितइत्यर्थः । तथा धर्मः श्रुतचारित्राख्यस्तेनाऽर्थः प्रयोजनं सएवाऽर्थस्तस्यैव सद्भि रर्थ्यमाणत्वात् धर्मार्थः सयस्याऽस्तीति सधर्मार्थी । तथोपधानं तपस्तत्र वीर्यवान् सए वंभूतो विहरेत् संयमानुष्ठानं कुर्यात् । समाहितेंद्रियः संयतेंद्रियः । कुतएवं । यतश्चा त्महितं दुःखेनाऽसुमता संसारे पर्यटता अकृतधर्मानुष्ठानेन लभ्यते अवाप्यतइति । त थाहि । नपुनरिदमतिदुर्लभ,मगाधसंसारजलधिविभ्रष्टं । मानुष्यं खद्योतकतडिल्लताविल सितप्रतिमं ॥ १ ॥ तथाहि । युगसमिलादिदृष्टांतनीत्या मनुष्यभवएव तावत् दुर्लभ स्तत्राऽप्यार्यक्षेत्रादिकं दुरापमित्यतश्चात्महितं दुःखेनाऽवाप्यतइति मंतव्यं । अपिच । भू तेषु जंगमत्वं, तस्मिन् पंचेंद्रियत्वमुत्कृष्टं ॥ तस्मादपि मानुष्यं मानुष्येप्यार्यदेशश्च । १ । देशे कुलं प्रधानं, कुले प्रधाने च जातिरुत्कृष्टा ॥ जातौ रूपसमृद्धी रूपे च बलं विशिष्ट तमं ॥२॥ भवति बले चायुष्कं प्रकृष्टमायुष्कतोऽपि विज्ञानं । विज्ञाने सम्यक्त्वं सम्यक्त्वे शीलसंप्राप्तिरिति ॥ ३ ॥ एतत्पूर्वश्चाऽयं, समासतोमोक्षसाधनोपायः । तत्रच बहु संप्रा प्तं, भवद्भिरल्पं च संप्राप्यं ॥ ४ ॥ तत्कुरुतोद्यममधुना मदुक्तमार्गे समाधिमाधाय ॥ त्यक्त्वा संगमनार्यं, कार्यं सद्भिः सदा श्रेयइति ॥ ५ ॥ ३० ॥

णहि णूण पुरा अणुस्सुतं, अडुवा तं तह णो समुठियं ॥ पा
ठांतरं अडुवा अवितहणो अणुठिअं॥मुणिणा सामाइ आहितं,
नाएणं जगसव्वदंसिणा॥३१॥एवं मत्ता महंतरं,धम्ममिणं सहिया
बहू जणा ॥ गुरुणो छंदाणुवत्तगा,विरया तिन्न महोघमाहितंतिबेमि॥३२

अर्थ–हवे ए जीव क्यांए जे नथी पाम्यो ते देखाडेले. जे श्रीवीतरागे संयमानुष्ठान कह्युं. ते पुराके० पूर्वे ए जीवे णूणअणुस्सुतंणहिके० निश्चेंथकी सांनल्युं पण नथी अहवाके० अथवा तंके० ते धर्म कदापि. तह के० तथा णोसमुष्ठियं के० रुडीरीते पाल्युं पण नथी मुणिणा के० महर्षियें ज्ञातपुत्रे सामाइआ के० सामायिकादिक घणां दुर्लभ छे, एरीते आहिलं के० कह्यां ते नाएणं के० ज्ञातपुत्र जे श्रीमहावीर जगसव्वदंसिणा के० जगत मां सर्वदर्शी तेणे कह्युं ॥ ३१ ॥ एवो जाणी जे करवुं ते कहेछे. एवंमत्तामहंतरं के० एम पूर्वोक्त प्रकारे आत्महित दुर्लभ जाणीने तथा धम्ममिणं के० धर्मनो ए महांत आंतरो एटले धर्मनुं विशेष जाणीने सहिया के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्र सहित ब हु के० घणा एवा हलवा कर्मि जणा के० लोक ते गुरुणो छंदाणुवत्तगा के० गुरुने छंदे प्रवर्त्तता एटले गुरूपदिष्ट यथोक्त संयमने पालता विरया के० पापथकी विरत ते महोघ के० महोटो जेनो प्रवाह छे, एवा संसारसमुद्र थकी तिन्न के० तखा. एरीते आहिलं के० श्रीतीर्थंकर गणधरे कह्युं तिवेमि एटले पूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इति श्रीवेतालियाध्ययनस्य द्वितीयोदेशकः समाप्तः ॥

---

॥ दीपिका–(णहिणूणेति)। यन्मुनिना ज्ञातेन श्रीवीरेण जगतः सर्वभावदर्शिना सर्वज्ञेन सामायिकादि आहितमाख्यातं तन्नूनं निश्चितं पुरापूर्वं जीवैर्नहि अनुश्रुतं श्रवणपथमागतं। अथवा श्रुतमपि नसमुष्ठितं यथावन्नानुष्ठितं ॥ ३१ ॥ ( एवमिति ) एवमात्महितं दुर्लभं मत्वा (महंतरंति) मानुष्यादिकमवसरं ज्ञात्वा एनं जैनं धर्मंच स्वहितावहवोजना लघुकर्माणोगुरोश्छंदानुवर्तकास्तदुक्तमार्गानुष्ठायिनोविरताः पापेभ्यइत्याख्यातं तीर्थकृद्भि। इतिशब्दः समुच्चयार्थः । ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीयाध्ययनस्य द्वितीयोदेशकः समाप्तः ॥

---

॥ टीका–एतच्च प्राणिभिर्न कदाचिदवाप्तपूर्वमित्येतदर्शयितुमाह ॥ ( णहिणूणेत्यादि )। यदेतन्मुनिना जगतः सर्वभावदर्शिना ज्ञातपुत्रीयेण सामायिकाद्याहितमाख्यातं तन्नूनं निश्चितं। नहि नैव पुरापूर्वं जंतुभिरनुश्रुतं श्रवणपथमायातं। अथवाश्रुतमपि तत्सामायिकादि यथावस्थितं तथा नाऽनुष्ठितं । पाठांतरंवा । ( अवितहंति ) । अवितथं यथावन्नाऽनुष्ठितमतः कारणादसुमतामात्महितं सुदुर्लभमिति ॥ ३१ ॥ पुनरप्युपदेशांतरमधिकृत्याह । ( एवंमत्ताइत्यादि )। एवमुक्तरीत्याऽऽत्महितं सुदुर्लभं मत्वा ज्ञात्वा धर्माणां च महदंतरं धर्मविशेषं कर्मणोवा विवरं ज्ञात्वा । यदिवा ( महंतरंति) मनुष्यार्यक्षेत्रादिकमवसरं सदनुष्ठानस्य ज्ञात्वा एनं जैनं धर्मं श्रुतचारित्रात्मकं सह हितेन वर्ततइति सहिताज्ञानादियुक्तावहवोजनालघुकर्माणः समाश्रिताः संतोगु

रोराचार्यादेस्तीर्थंकरस्य वा छंदानुवर्त्तकास्तडुक्तमार्गानुष्ठायिनोविरताः पापेन्यः कर्मन्यः संतस्तीर्णामहौघमपारं संसारसागरमेवमाख्यातं मया नवतामपरैश्च तीर्थंकृद्भिरन्येषां. । इतिशब्दः परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत्॥२२॥वैतालीयस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः॥२॥

॥ अथ वैतालीयाध्ययनस्य तृतीयोद्देशकस्य प्रारंनः ॥

संवुडकम्मस्स निरकुणो, जं डुरकं पुठं अबोहिए ॥ तं संजमठव चिङ्गई, मरणं हेव वयंति पंमिया ॥१॥ जे विन्नवणा अजोसिया, संतिन्नेहिं समं विहाहिया ॥ तम्हा उढंति पासहा, अदरकुकामाइरोगवं ॥ २ ॥

अर्थ—हवे त्रीजो उदेशो प्रारंनियेठैयें. बीजा उदेशामां चारित्र पालवुं कह्युं ते चारित्र पालतां कदाचित् परिसह आवेतो सहन करवा एवो नाव कहेठे, संवुम के० संवराले कम्मस्स के० मिथ्यात्वादिक कर्म जेणे एवा निरकुणो के० साधुने जंडुरकं के० जे डुःख नोगवतां दोहिलां अथवा तेनां कारण जे अष्ट प्रकारना कर्म अबोहिए के० अज्ञानपणे पुठं के० बांध्यांठे, निकाचित कस्याठे तंके० ते संजमठ के० सत्तर प्रकारना संयमे करी चिङ्गई के० क्षणे क्षणे खुटेठे; जेम तलावनुं पाणी- सूर्यना किरणे करी सर्वदा क्षणे क्षणे खूटेठे, तेम चारित्रियानां कर्म ते तप अने संयमे करी खूटेठे, मरणं हेवपंमिया के० तथा संवृति आत्मा ते पंमित मरण एटले जन्म, जरा, मरण अने शोकादिक ठांमीने वयंति के० मोक्षे पोहोचे. अथवा एरीते वयंति पंमिया के० जे पंमित विवेकी सर्वज्ञ ठेते कहेठे. ॥१॥ हवे जे विरति रुडा अनुष्ठानना करनारठे, ते ते हिज नवे मोक्षे जाय. ते आश्री कहेठे. जे के० जे महासत्ववंत पुरुष विन्नवणाके० जे कामार्थि पुरुषे विनंती कराय ते कारणमाटे विन्नवणा शब्दे स्त्री कहिए, तेने अजोसियाके० नसेवे तथा रुडे आचारे करी संतिन्नेहिं के० संतीर्ण शब्दे संसार थकी मूकाणा समवि विहिया के० सरखा कह्या तम्हा के० तेकारणे उढंति के० उंचुं एवुं जे मोक्ष तेने पासहा के० जोयुं वली जेणे अदरकूकामाइरोगवं के० कामनोग जे ठे तेने रोगनीपरे दीठा॥२॥

---

॥ दीपिका—उक्तोद्वितीयोद्देशकः सांप्रतं तृतीयः समारन्यते तस्यायमधिकारः । पूर्वं विरताइत्युक्तं तेषांच कदाचित् परीषहाअपि उदीर्येरन् ते सम्यक् सोढव्याइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्येदमादिसूत्रं ॥ (संवुडेति) संवृतं निरुद्धं कर्म येन. तस्य संवृतकर्मणः साधोर्डुःखं यत् स्पृष्टं बद्धं तदबोधिना अज्ञानेनोपचितं सत्नसंयमतोऽपचीयते क्षीयते । ते संवृतात्मानोमरणं उपलक्षणाज्जातिशोकादिकं च हित्वा त्यक्त्वा-मोक्षं व्रजंति पंडिताः ॥ १ ॥ (जेवीति) । कामार्थिनिर्विज्ञाप्यंते प्रार्थ्यंतइति विज्ञापनास्त्रियस्तानि

यें अजुष्टाअसेवितास्ते संतीर्णैर्मुक्तैः समं व्याख्याताः । अतीर्णाअपि ते संसारं तीर्णाइव स्यु रित्यर्थः ॥ तस्मादूर्ध्वमोक्षं यूयंपश्यत ये च कामान् रोगवत् रोगतुल्यान् अज्ञाकुर्दष्ट वंतस्तेपि तीर्णसमाइत्यपि पश्यत । यतः पुप्फफलाणं च रसं, सुराइमंसस्स महिलि आणं च ॥ जाणंतो जे विरया, ते डुक्करकारएवंदे ॥ २ ॥

---

॥ टीका—उक्तोद्वितीयोद्देशकः सांप्रतं तृतीयः समारन्यते ॥ अस्यचाऽयमभिसंबं धः । इहाऽनंतरोद्देशकांते विरताऽस्युक्तं तेषांच कदाचित्परीषहाः समुदीर्येरन्नतस्तत्स हनं विधेयमित्युद्देशार्थाधिकारोऽपि निर्युक्तिकारेणाऽभिहितः । यथाऽज्ञानोपचितस्य क र्मणोऽपचयोनवतीति सच परीषहसहनादेवेत्यतः परीषहाः सोढव्याइत्यनेन सं बंधेनाऽऽयातस्याऽस्योद्देशकस्याऽदिसूत्रं । ( संवुमकम्मस्सेत्यादि ) । संवृतानि रुद्धा नि कर्माण्यनुष्ठानानि सम्यगुपयोगरूपाणि वा मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगरूपा णि वा यस्य निक्षोः साधोः सतथा तस्य यत् डुःखमसद्वेद्यं तदुपादानजूतं वाऽष्टप्र कारं कर्म । (स्पृष्टमिति) बद्धस्पृष्टनिकाचितमित्यर्थः । तच्चाऽबोधिना अज्ञानेनोपचितं सत् संयमतोमौनींद्रोक्तात् सम्यग्रूपादनुष्ठानादपचीयते प्रतिक्षणं क्षयमुपयाति । एतडुक्तं नवति । यथा तटाकोदरसंस्थितमुदकं निरुद्धापरप्रवेशद्वारं सदादित्यकरसंप र्कात् प्रत्यहमपचीयते । एवं संवृताश्रवद्वारस्य निक्षोरिंद्रिययोगकषायं प्रति संलीनत या संवृतात्मनः सतः संयमानुष्ठानेन चाऽनेकनवाज्ञानोपचितं कर्म क्षीयते । ये च सं वृतात्मानः सदनुष्ठायिनश्च ते हित्वा त्यक्त्वा मरणं मरणस्वनावमुपलक्षणत्वात् जाति जरामरणशोकादिकं त्यक्त्वा मोक्षं व्रजंति पंडिताः सदसद्विवेकिनः । यदि वा पंडिताः सर्व ज्ञाएवं वदंति यत् प्रागुक्तमिति ॥ १ ॥ येऽपिच तेनैव नवेन च मोक्षमाप्नुवंति तान धिकृत्याह । ( येविन्नवणेत्यादि ) ये महासत्वाः कामार्थिनिर्विज्ञाप्यंते यास्तदर्थिन्यो वा कामिनं विज्ञापयंति ताविज्ञापनाः स्त्रियस्ताभिरजुष्टाअसेविताः क्षयं वा अवसाय लक्षणमतीतास्ते संतीर्णैर्मुक्तैः समं व्याख्याताः । अतीर्णाअपि संतोयतस्ते निष्किंचन तया शब्दादिषु विषयेष्वप्रतिबद्धाः संसारोदन्वतस्तटोपांतवर्तिनोनवंति । ( तस्मादूर्ध्वमि ति ) मोक्षं योषित्परित्यागादूर्ध्वं यन्नवति तत्पश्यत यूयं । येच कामान् रोगवद्व्याधि कल्पान् अज्ञाकुर्दृष्टवंतस्ते संतीर्णसमाव्याख्याताः । तथाचोक्तं । पुप्फफलाणंचरसं, सुराइमंसस्समहिलियाणंच ॥ जाणंताजेविरया, तेडुक्करकारएवंदे ॥ १ ॥ तृतीयपादस्य पाठांतरं वा । उड्ढंतिरियंअहेतहा. ऊर्ध्वमिति सौधर्मादिषु तिरियमिति तिर्यग्लोके अ धइति नवनपत्याद्यैः येकामास्तान् रोगवदज्ञाकुर्यें ते तीर्णकल्पाव्याख्याताइति ॥ २ ॥

अग्गं वणिएहिं आहियं धारंति राइणिया इह ॥एवं परमा महव्वया, अ क्खाया उ सराइ जोयणा॥३॥ जे इह सायाणुगा नरा, अज्झोववन्ना कामे हिं मुच्छिया ॥ किवणेणसमं पगब्भिया, न विजाणंति समाहिमाहितं ॥४॥

अर्थ—वली उपदेश आश्री कहेडे. जेम वणिएहिं के० वणिके अग्गंके० अग्र एटले प्रधान एवां रत्नवस्त्राजरणादिक देशांतर थकी, आहियंके० आण्या तेने इह के० आमनुष्यलोकमांहे राइणिया के० राजा अथवा मोहोटा व्यवहारवंतपुरुषजे होय तेज धारंति के० धारण करेडे एटले पहेरेडे एवं के० एप्रकारे परमा के० प्रधान रत्नतुल्य एवाजे महव्वया के० पांच महाव्रत ते सराइजोयणा के० बहारात्रीजोजन विरमण सहित ब व्रत ने अक्का याउ के० आचार्ये आण्या तेने साधुज धारणकरे अने सारीरीते पाले ॥३॥ जे के० जे इह के० आजगतने विषे सायाणुगा के० सुखशिलीया त्रण गारवेंकरी अज्झोववन्ना के० अध्युपपन्न एटले सहित तथा कामेहिंमुच्छिया के० कामजोगने विषे मूर्छित ते किवणे णसमं के० कृपण एटले दीन, कायर सरखा पगब्भिया के० धीठ एटले अल्पदोषे अमारो निर्मल संयम शी रीते मलिन थशे? एवी रीते धृष्टपणुकरनार जे होय ते समाहिमाहितंके० श्रीवीतरागनो कह्यो एवो जे समाधिनो मार्ग तेने नविजाणंति के० नजाणे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—(अग्गमिति) अग्रं प्रधानं रत्नाजरणादिकं वणिग्जिर्देशांतरादाहितं ढौकितं राजानस्तत्तुल्याइह मनुष्यलोके धारयंति बिभ्रति । एवं रत्नतुल्यानि परमाणि प्रधानानि म हाव्रतानि पंचसरात्रिजोजनानि त्रिरात्रिजोजनविरमणषष्ठानि आख्यातान्याचार्यैरि ति तानि महासत्वाः साधवोधारयंति नान्ये इति तात्पर्यार्थः ॥ ३ ॥ ( जेइहेति ) । ये इह मनुष्यलोके सातानुगाः सुखशीलानराऋद्धिरससातागौरवेष्वध्युपपन्नागृद्धा स्तथा का मेषु इछामदनेषु मूर्छिताः सतृष्णाः संतः कृपणेन दीनेन इंद्रियपराजितेन समास्तद्वत्कामा सेवने प्रगल्भिताधृष्टतां गताः किमनेनाऽसम्यक् प्रत्युपेक्षणादिस्तोकदोषेणास्मच्चारित्रविरा धना जाविनीत्येवं प्रमादवंतोधृष्टाः शनैः समस्तमपि संमलिनयंति । एवंजूतास्ते समा धिधर्मध्यानादिकमाख्यातं कथितमपि नजानंति ॥ ४ ॥

॥ टीका—पुनरप्युपदेशांतरमधिकृत्याह । ( अग्गंवेत्यादि ) अग्रं वर्यं प्रधानं रत्नवस्त्रा जरणादिकं । तद्यथा वणिग्जिर्देशांतरादाहितं ढौकितं राजानस्तत्कल्पाईश्वरादयः इहा ऽस्मिन्मनुष्यलोके धारयंति बिभ्रति एवमेतान्यपि महाव्रतानि रत्नकल्पानि आचार्यैराख्या तानि योजितानि सरात्रिजोजनविरमणषष्ठानि साधवोबिभ्रति । तुशब्दः पूर्वरत्नेभ्यो महाव्रतरत्नानां विशेषापादकइति । इदमुक्तं जवति । यथा प्रधानरत्नानां राजानएव

भाजनं एवं महाव्रतरत्नानामपि महासत्वाएव साधवोभाजनं नान्ये इति ॥३॥ किंच (जेइहेत्यादि) ये नरालघुप्रकृतयइहाऽस्मिन् मनुष्यलोके सातं सुखमनुगच्छंतीति सातानुगाः सुखशीलाऐहिकामुष्मिकाऽपायभीरवः समृद्धिरससातागौरवेष्वध्युपपन्नागृद्धाः । तथा कामेषु इछामदनरूपेषु मूर्छिताः कामोत्कटतृष्णाः। कृपणोदीनोवराककइंद्रियैः पराजितस्तेन समास्तद्वत्कामासेवने प्रगल्भिताधृष्टतां गताः । यदिवा· किमनेन स्तोकेन दोषेणाऽसम्यक्प्रत्युपेक्षणादिरूपेणाऽस्मत्संयमस्य विराधनं भविष्यत्येवं प्रमादवंतः कर्तव्येष्ववसीदंतः समस्तमपि संयमं पटवन्मणिकुट्टिमवद्वा मलिनीकुर्वंति । एवंभूताश्च ते समाधिधर्मध्यानादिकमाख्यातं कथितमपि न जानंतीति ॥ ४ ॥

वाहेण जहा व विछए, अबले होइ गवं पचोइए॥ से अंतसो अप्पथामए नाइ वहइ अबले विसीयति ॥ ५ ॥ एवं कामेसणं विऊ अज्ञसुए पयहेज्ज संथवं ॥ कामी कामेण कामए, लद्धेवावि अलद्धकण्हुई ॥ ६ ॥

अर्थ–वली उपदेशांतर कहेछे. जहाव के० जेम वाहेणके० व्याध एटले आहेडी ते मृगादिक पशुने विछएके० त्रासदेतो छतो ते गवंके० मृगादिक अबले होइके० बलरहित थाय. क्यांए जइ शकेनहीं. अथवा वाहेणके० गाडानो वाहक एटले सांधडीओ तेणे जेम विषम मार्गने विषे गवंके० बलदने पचोइतेके० पराणे प्रेरणा करी खेडयो छतो बलरहित थायः पछी से के० ते बलदने अंतसो के० मरणांत सुधी जो कष्ट आपे तो पण अप्पथामए के० अल्प सामर्थ्यपणाने लीधे नाइवहइके० चाली नशके. अबलेविसीयति के० निर्बलपणाथी तेहिज कादवमां विषम मार्गे खूतो रहे ॥५॥ हवे ए दृष्टांत पुरुष साथे मेलवेछे· एवं के० ए पूर्वोक्त न्याये काम के० शब्दादिक विषय तेनी एसणं के० गवेषणा एटले प्रार्थना तेनेविषे विऊ के० निपुण आसक्त छतो ते पुरुष सिदाय परंतु कामभोगने छांडी नशके; कामभोगरूप कर्दमने विषे खुतो एवो छतो अज्ञसुएके० आज अथवा काले संथवं के० ए कामभोगनो संबंध पयहेज्जके० छांडीश. एम चिंतवे; पण निर्बल बलदनी परें छांडी नशके एमजाणी संवेग आणीने कामी के० कामि पुरुषे कामेण के० कामभोग वांछवा नही वली कामएलद्धेवावि के० ते कामभोगने लाधा थका पण अलद्धकण्हुइ के० अणलाधा एटले अणपाम्या सरखा करें. कोइएक निमित्ते छुट्यो छतो जंबुस्वामि तथा वेरस्वामिनी पेरे निस्पृहीथाय. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–( वाहेणेति ) । व्याधेन लुब्धकेन यथा(गवंति) । मृगादिपशुः विक्षतोविविधप्रकारेणक्षतः पीडितः प्रचोदितः श्रमं प्रापितः सन्नवलोगंतुमसमर्थः । अथवा वा

ह्यतीतिवाहः शाकटिकस्तेनाऽवहन् गौः प्रतोदादिना क्षतः प्रेरितोपि अबलोविषमपथे गंतुमसमर्थः स्यात् सचांतशोमरणांतमपि यावत् अल्पस्थामाऽल्पसामर्थ्यानोचारं वोढुं शक्नोति एवंभूतश्चतत्रैव पंकादौविषीदति ॥ ५ ॥ दार्ष्टांतिकमाह । ( एवमिति ) । एव पूर्वोक्तदृष्टांतेन कामानां शब्दादीनां या गवेषणा प्रार्थना तस्यां वि द्वान् निपुणः कामप्रार्थ नासक्तोऽद्य श्वोवा संस्तवं कामसंबंधं प्रजह्यात् । नवा बलीवर्दइव विषममार्गकामान् त्य क्तुमलं । किंच नवैहिकामुष्मिकापायभीरुः कामी भूत्वा प्राप्तानपि कामान् कामयेताऽभि लपेत वैरस्वामी जंबूस्वामिनामादिवत् तथाक्षुल्लककुमारवत् कुतश्चिन्निमित्तात । सुटु गाइयं सुटुवाइयं सुनेच्चिअंसामसुंदरि ॥ अणुपालिअदीहराइओ बसुमिणंते मापमायह । इत्यादि प्रतिबुध्दोलब्धानपि कामान् लब्धसमान् मन्यमानोनिस्पृह स्यात् ॥ ६ ॥

---

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमधिकृत्याह (वाहेणेत्यादि) व्याधेन लुब्धकेन (जहावत्ति) यथा (गवत्ति) मृगादि॰ पशुर्विविधमनेकप्रकारेण कूटपाशादिना क्षतः परवशीकृतः श्रमं वा ग्राहितः प्रणोदितोऽप्यबलोभवति जातश्रमत्वात् गंतुमसमर्थः । यदिवा वाहय तीति वाहः शाकटिकस्तेन यथावदवहन् गौर्विविधं प्रतोदादिना क्षतः प्रचोदितोऽप्य बलोविषमपदादौ गंतुमसमर्थोभवति । सचाऽतशोमरणांतमपि यावदल्पसामर्थ्या न्नाऽतीव वोढुं शक्नोति । एवंभूतश्चाऽबलोभारं वोढुमसमर्थस्तत्रैव पंकादौ विषीदतीति ॥ ५ ॥ दार्ष्टांतिकमाह (एवमित्यादि) एवमनंतरोक्तया नीत्या कामानां शब्दादीनां वि षयाणां या गवेषणा प्रार्थना तस्यां कर्तव्यायां विद्वान् निपुण॰ कामप्रार्थनासक्तः शब्दा दिपंके मग्नः सचैवंभूतोऽद्य श्वोवा संस्तवं परिचयं कामसंबंधं प्रजह्यात् । किलेत्येवम ध्यवसाय्येव सर्वदाऽवतिष्ठते।नच तान् कामान् अबलोबलीवर्दवत् विषमं मार्गं त्यक्तुमलं । किच नचैहिकामुष्मिकापायदर्शितया कामी भूत्वोपपन्नानऽपि कामान् शब्दादिविषयान् वैर स्वामिजंबूनामादिवद्वा कामयेताभिलपेदिति । तथा क्षुल्लककुमारवत् कुतश्चिन्निमि त्तात् । सुटुगाइयमित्यादिना प्रतिबध्दोलब्धानप्यप्राप्तानपि कामान् लब्धसमान् मन्य मानोमहासत्वतया तन्निस्पृहोभवेदिति ॥ ६ ॥

मापच्छ असाधुता भवे, अच्चेही अणुसास अप्पगं ॥ अहियंच असाहु
सोयती, संथणती परिदेवती बहु ॥ ७ ॥ इह जीवियमेव पासहा, तरुणे
एव वाससयस्स तुट्टती॥ इत्तरवासेय बुज्झह, गिध्दनरा कामेसु मुच्छिया ॥८॥

अर्थ–हवे शावास्ते कामभोगनो त्याग करवो ते कहेछे. मापच्छ के॰ रखे, प छी मरणकाले भवांतरने विषे ए कामभोगनी सेवाये करी असाधुताभवे के॰ असाधु

पणाथकी डुर्गति गमनरूप थाय. एवुं जाणी पोतानो आत्मा विषयना संग थकी अ वेही के० दूर करे तथा अणुसासअप्पगं के० पोताना आत्माने शीखवे के, रे जीव अ साधु कर्मने प्रमाणे तुं डुर्गतियें गयो थको डुःखी थईश तथा अहियंचके० अत्यंत अ साहु के० असाधु कर्मने प्रमाणे सोयती के० शोचकरीश संथणती के० हे जीव तुज ने परमाधार्मियें पीडयो थको गाढा आकरा शब्द करीश, तथा परिदेवइबहु के० घणा विलाप करीश. हे माय? हुं मरुंछुं, आ वखत मने राखनार कोइ नथी इत्यादिक अनेक आक्रंद करीश एवुं कहीने आत्माने शीखामण आपे. ॥७॥ वली इहके० आ सं सारमांहे धनधान्यादिक पदार्थ तो दूररह्या, पण जीवियमेव के० एकलुं जीवितव्य पणुज पासह के० देखो तेपणुं तो असाश्वतुं ठे के, क्षणेक्षणे विनाशशीलठे. कोइक तो तरुणएव के० तरुण पणेज विनाशपामे वाससतस्सतुट्टती के० चालता समयमां घणुतो शो व र्षनुं आयुष्यठे, तेपण ठेहेडे त्रूटेठे जेमाटे ते आयुष्य सागरोपमनी अपेक्षायेतो मेषो न्मेष प्रायें इत्तरवासेय के० इत्तर एटले अल्प वर्ष सरखुं थाय. एवुं जाणीने रे जीव बुज्झह के० बुजो के, एवीरीतनो आयुष्यनो भरोशो ठता पण गिद्धनराकामेसुमुच्छियाके० एकेक पुरुष गृद्धठता कामभोगने विषे मूर्छित रहेठे? तेनरकादिक पीडाने पामेठे ॥८॥

॥ दीपिका-( मापच्छेति पश्चान्मरणकाले भवांतरेवा मानुषंगादसाधुता कुगतिरूपा माभवेत् माप्राप्नुयादित्यतोविषयेभ्यआत्मानमत्येहि त्याजय । तथा आत्मानमनुशाधि कुरु । यथा हेजीव असाधुरशुभकर्मकारी अधिकं डुर्गतौ गतः शोचति । सच परमाधार्मिकैः कदर्थ्यमानस्तिर्यक्षु क्षुदादिवेदनायस्तः स्तनत्याक्रंदति परिदेवते विलपति बहुपि इत्या त्मानुशासनंकुरु ॥ ७ ॥ ( इहेति ) इह संसारे आस्तांतावदन्यत् । जीवितमायुरेवाऽनि त्यं पश्यत प्रतिक्षणमावीचीमरणसद्भावात् । तथा सर्वायुःक्षयात्तरुणएव त्रटयति च्यव ते । अथवा सांप्रतं सुबह्वप्यायुर्वर्षशतं तच्च सागरोपमापेक्षया कतिपयमेषोन्मेषप्रायत्वा त् इत्वरवासकल्पं स्तोकवासतुल्यमिति बुध्यध्वं । एवंभूतेप्यायुषि गृद्धानराः कामे मूर्छिताआ सक्तानरकादिपीडां लभंतइति शेषः ॥ ८ ॥

॥ टीका-किमिति कामपरित्यागोविधेयइत्याशंक्याह । (मापच्छेत्यादि ) मापश्चान्मरण काले भवांतरेवा कामानुषंगादसाधुता कुगतिगमनादिकरूपा भवेत् प्राप्नुयादिति । अतो विषयासंगादात्मानमत्येहि त्याजय । तथात्मानं चाऽनुशाध्यात्मनोऽनुशास्तिं कुरु । यथा हेजीव योह्यसाधुरसाधुकर्मकारी हिंसानृतस्तेयादौ प्रवृत्तः सन् डुर्गतौपतितोऽधिक मत्यर्थमेवं शोचति सच परमाधार्मिकैः कदर्थ्यमानस्तिर्यक्षु वा क्षुधादिवेदनाग्रस्तो

ऽत्यर्थं स्तनति सशब्दं निःश्वसितिति । तथा परिदेवते विलपऽत्याक्रंदति । वक्ति । हामातर्म्रियतइति त्राता नैवाऽस्ति सांप्रतं कश्चित् किंशरणं मेस्यादित्याह । डुष्कृतचरितस्य पापस्येन्येवमादीनि डुःखान्यऽसाधुकारिणः प्राप्नुवंतीत्यतोविपयानुषंगोन विधेयइत्येवमात्मनोऽनुशासनं कुर्विति संबंधनीयं ॥७॥ किंच (इहजीवियमेवेत्यादि) । इहाऽस्मिन् संसारे आस्तां तावदन्यज्जीवितमेव सकलसुखास्पदमनित्यताऽघ्रातं आवीचिमरणेन। प्रतिक्षणं विशरारुस्वनावं तथा सर्वायुःक्षयएव वा तरुणएव युवैव वर्षशतायुरप्युपक्रमतोध्यवसाननिमित्तादिरूपादायुपस्त्रुटचति प्रच्यवते । यदिवा सांप्रतं सुबह्वप्यायुर्वर्षशतत्त्च तदंते त्रुटचति । तच्च सागरोपमापेक्षया कतिपयनिमेषप्रायत्वात् इत्वरं वासकल्पं वर्तते स्तोकनिवासकल्पमित्येवं बुध्यध्वं यूयं । तथैवंनूतेऽप्यायुपि नराः पुरुषालघुप्रकृतयः कामेपु शब्दादिपु विपयेपु गृध्दाअध्युपपन्नामूर्छितास्तत्रैवाऽसक्तचेतसोनरकादियातनां स्थानमाप्नुवंतीति शेषः ॥ ८ ॥

जे इह आरंभनिस्सया, आत्तदंमा एगंतलूसगा ॥ गंता ते पावलोगयं, चिररायं आसुरियं दिसं ॥ए॥ णय संखय माहु जीवितं, तहविय बाल जणो पगप्नई ॥ पच्चुप्पन्नेण कारियं, कोदछुं परलोकमागते ॥ १० ॥

अर्थ–जेइह के० जे आ मनुष्य लोकमांहे महामोहाकुलित पुरुष आरंभ के० आरंभ हिंसादिक सावद्यानुष्ठानने विपे निस्सिया के० निश्रित एटले आसक्तछे, ते पुरुष आत्तदंमा के० आत्माने दंमनार तथा एगंतलूसगा के० एकंत जीवना प्राणने लूसनार अथवा सद् अनुष्ठानने लूसनार, गंताते पावलोगयं के० एवा पुरुष पापलोक एटले जे गतिमां पापकर्मना करनार जाय, ते गतिमां जशे किंबहुना चिररायं असुरियंदिसं के० चिरकाल सुधी नरकादिकना डुःख पामसे. यद्यपि ते अज्ञान कष्टने प्रभावे कदाचित् देवगति पामे तोपण असुरिगति एटले किल्बिपीयादिकनी गति पामे ॥ए॥ वली कहेछे णयसंखयमाहुजीवित के० सर्वज्ञे एम कह्युंछे के, त्रुटचुं आयुष्य संधाय नही तहविय के० तोपण बालजणो के० बाल अज्ञानी लोक ते निर्विवेकी पणे पगप्नई के० धृष्टपणुं करेछे, ते कहेछे, कोइ एक पंमिते धर्मने विषे प्रेरयोछतो ते नरविवेकी पुरुष एम कहेके पच्चुप्पन्नेणकारियं के० अमारा प्रत्युत्पन्न जे वर्तमान सुख तेनी साथेज अमारो कार्य छे, कोणजाणे परलोकछे किंवा नथी कोदछुं परलोगमागते के० परलोकने कोण देखी आव्योछे, जे देखीने परलोकथी आव्यो होय ते अमोने कहेतो मान्य करीये इत्यादिक धृष्टपणानी वातो करे. ॥ १० ॥

॥ दीपिका–जेइहेति। ये केचन इह लोके आरंभनिःश्रिताआरंभसंबद्धाआत्मानं दंडयं

तीत्यात्मदंडकाः । तथा एकांतेन नूपकाजंतूनां हिंसकास्ते पापलोकं नरकादिगतिं गंता रोयास्यंति चिररात्रं प्रनूतकालं तन्निवासिनोजवंति । तथा बालतपश्चरणादिना यद्य पि देवत्वप्राप्तिस्तथाप्यासुरींदिशं यांति किल्बिषिकादेवाऽधमाः स्युरित्यर्थः ॥ ए ॥ ( न येति । नचनैव संस्कृतमायुस्त्रुटितमायुर्न संकर्तुं संधातुं शक्यमेवमाहुः सर्वज्ञाः । तथापिच एवं सत्यपि बालजनोमूर्खलोकः सावद्यं कृत्यं कुर्वन् प्रगल्नतेऽसदनुष्ठानेनापि नलज्ज ते । एवं पापकर्माणि कुर्वन् परेण प्रेरितोवक्ति । प्रत्युत्पन्नेन वर्तमानकालेनास्माकं कार्यं अ तीतानागतयोर्विनष्टाऽनुत्पन्नत्वादसत्वं तस्मादिह लोकएव विद्यते नपरलोके । यतः । ए तावानेव लोकोयं यावानिंद्रियगोचरः । नडे वृकपदं पश्य य दवंत्यबहुश्रुताऽति ॥ १० ॥

॥ टीका—अपिच ( जेइहेत्यादि ) ये केचन महामोहाकुलितचेतसइहाऽस्मिन्मनुष्य लोके आरंभे हिंसादिके सावद्यानुष्ठानरूपे निश्चयेन श्रिताः संबद्धाअध्युपपन्नास्ते आत्मानं दंडयंतीत्यात्मदंडकास्तथैकांतेनैव जंतूनां नूपकाहिंसकाः सदनुष्ठानस्य वा ध्वं सकास्ते एवंनूतागंतारोयास्यंति पापं लोकं पापकर्मकारिणां योलोकोनरकादिश्चिर रात्रमिति प्रनूतं कालं तन्निवासिनोजवंति । तथा बालतपश्चरणादिना यद्यपि तथावि धदेवत्वापत्तिस्तथाऽप्यासुराणामियमासुरी तां दिशं यांति । अपरे प्रेष्याः किल्बिषिका देवाऽधमाजवंतीत्यर्थः ॥ ए ॥ किंच ( णयसंखयेत्यादि ) नचनैव त्रुटितं जीवितमायुः संस्कर्तुं संधातुं शक्यते एवमाहुः सर्वज्ञाः । तथाहि दंमकलियं करित्तावच्चंति डुराइउयहि वसाय आउसंचेन्नंता गयाय पुणोनाणनियत्तंति । तथाऽप्येवमपि व्यवस्थिते जीवानामायु पि बालजनोऽन्योलोकोनिर्विवेकतया असदनुष्ठाने प्रवृत्तिं कुर्वन् प्रगल्नते धृष्टतां या त्यसदनुष्ठाने नाऽपि लज्जतइत्यर्थः । सचाऽन्योजनः पापानि कर्माणि कुर्वन् परेण चो दितोधृष्टतया अलीकपांडित्याभिमानेनेदमुत्तरमाह । प्रत्युत्पन्नेन वर्तमानकालनाविना परमार्थतोऽतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेनाऽविद्यमानत्वात् कार्यं प्रयोजनं प्रेक्षापूर्व कारिनिस्तदेव प्रयोजनसाधकत्वादाद्रीयते । एवंच सतीह लोकएव विद्यते नपरलोक इति दर्शयति । कः परलोकं दर्शयति कं परलोकं कोदृष्ट्वेहायातस्तथाचोचुः । पिव खादच साधु शोनने यदतीतं वरगात्रि तन्न ते । नहि नीरुगतं निवर्तते समुदयमात्रमिदं कलेवरं । तथा एतावानेव पुरुषोयावानिंद्रियगोचरः ॥ नडे वृकपदं पश्य य दवंत्यबहुश्रुताऽति ॥ १० ॥

अदखुव दक्खुवाहियं, सद्दहसु अदक्खुदंसणा ॥ हंदि हु सुनिरुद्ध दंसणे, मोहणिज्जेण कडेण कम्मुणा ॥ ११ ॥ डुक्खी मोहे पुणोपुणो, निविंदेज्जसि लोगपूयणं ॥ एवं सहिते हियासए, आयतुलं पा णेहिं संजए ॥ १२ ॥

अर्थ–हवे एवुं धृष्टपणुं करे तेने उपदेश कहेछे, अहो अदक्खुव के० अंध सरखा पुरुषो दक्खुव के० त्रणभुवननो देखनार एवो सर्वज्ञजे श्रीवीतरागदेव तेनो आहियंके० कहेलो जे श्रीसिद्धांत तेने सद्दहसु के० सद्दहे, तुं केवोछे ? तोके, अदक्खुदंसणा के० अंध ज्ञानदृष्टीरहित एवाजे छे, तेमना दर्शनने विषे प्रवर्त्तनहारछे माटे तने बोलाविये छैये के अहो ? अदक्खुदंसणा तुं श्रीवीतराग परमात्मानोनाप्युंजे सिद्धांत तेनाउपर श्रद्धाकरीने हंदि के० तेने गृहणकर अने आलोकना सुखटालीने परलोक उपर कोण नरोशो राखे, परलोकतो नथी इत्यादिकजे तुं बोलेछे, ते ताहारुं बोलवुं अयोग्यछे; केमके वर्त्तमानकाल टालीने अतीत अनागत नही मानीश तो पितामहादिक पुत्रपौत्रादिक एपण नथी, एम पण कहेवुंपडशे परंतु एवीरीतना ताहारा बोलवा थकी एम जाणीये छैये जे सुके० सुष्टु पणे तुं निरुद्धदंसणे के० निरुद्ध दर्शनेछे, एटले सर्वदा ज्ञानदृष्टीरहितछो. मोहणिज्जेणकडेण कम्मुणा के० मोहनीयकर्मेकरी अथवा ज्ञानावरणादिक कर्मेकरी ताहरो दर्शन रुंधाणुछे तेमाटे तुं जैनमार्ग सद्दहतो नथी, माटे ए तारो मत मूकीने सूत्रना सत्यमार्गनी सद्दहणा कर ॥ ११ ॥ वली उपदेश कहेछे एवा वचननो बोलनार दुक्खीके० दुःखीछतो मोहेपुणोपुणो के० वली वली मोह पामे एटले वली तेनेज समाचरे जे थकी संसार मांहे अनंतो काल परिभ्रमण करे. एवुं जाणी मोह मूकीने जे संयमने विषे प्रवर्त्ते ते उत्तम पुरुष जाणवो, निव्विदेज्जसिलोगपूयणं के० ते आत्मश्लाघा स्तुति लोकपूजा तथा वस्त्रादिक लाभना उत्कर्षने न वांछे, एटले ए सर्वनो त्यागकरे. एवं के० ते एम करतो सहितेहिं के० ज्ञानादिक सहित थको संजए के० संयती पाणेहिं के० सर्व प्राणीमात्रने आयतुलंके० पोताना आत्मा तुल्यकरी पासएके० देखे. ए रीते दया पाले ॥ १२ ॥

---

दीपिका–एवं नास्तिकेनोक्तेसत्युत्तरमाह । (अदक्खवेति) पश्यतीतिपश्यः नपश्योऽपश्योंधस्तद्दंधवत् हेअंधतुल्य पश्येन सर्वज्ञेन आख्यातं सर्वज्ञागमं श्रद्धस्व प्रमाणीकुरु। तथाऽपश्यकस्यासर्वज्ञस्याऽभ्युपगतं दर्शनं येन सोपश्यकदर्शनस्तस्यामंत्रणं हेऽपश्यकदर्शन प्रत्यक्षस्यैकस्य प्रमाणस्यांगीकारे व्यवहारलोपः स्यात् तस्मादागमं प्रमाणमिति । कस्मादेवमुपदिश्यतइत्याह । (हंदीत्यादि) हंदिएवंगृहाण । हुशब्दोवाक्यालंकारे । मोहनीयेन स्वकृतेन कर्मणा सुष्ठु निरुद्धमावृतं दर्शनं सम्यगवबोधोयस्य ससुनिरुद्धदर्शनः। एवंविधः प्राणी सर्वज्ञोक्तं मार्गं नश्रद्धत्ते तस्मादेवं बहूपदिश्यतेइति ॥ ११ ॥ (दुःखीति) दुःखी प्राणी पुनः पुनर्मोहंयाति दुःखेन विवेकविकलोभवति । निर्विवेकीच पुनर्दुःखी स्यात् तस्मान्मोहं परित्यज्य श्लोकमात्मश्लाघां पूजनं च निर्विद्येत जुगुप्सेत। परिहरेदित्यर्थः । एवमुक्तनीत्या सहहितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादियुक्तोवा संयतः साधुः परैः प्राणिभिरा

त्मतुलामात्मतुल्यत्वं पश्यन् यथाऽऽत्मनोडुःखमप्रियं सुखंच प्रियं एवं सर्वेपि प्राणिनईट शाएवेति ज्ञात्वा सर्वान् प्राणिनः पालयेदित्यर्थः ॥ १२ ॥

---

टीका-( अदक्कुवेत्यादि ) । पश्यतीति पश्योनपश्योऽपश्योऽधस्तेन तुल्यं कार्याकार्य विवेचित्वादपश्यवत्तस्याऽऽमंत्रणं हेऽपश्यवदंधसदृश प्रत्यक्षस्यैवैकस्याऽभ्युपगमेन कार्याकार्यानभिज्ञ पश्येन सर्वज्ञेन व्याहृतमुक्तं सर्वज्ञागमं श्रद्धस्व प्रमाणीकुरु प्रत्यक्षस्यैवैकस्याऽभ्युपगमेन समस्तव्यवहारविलोपेन हंत हतोसि पितृनिबंधनस्याऽपि व्यवहारस्याऽसिद्धेरिति । तथाऽपश्यकस्याऽपि सर्वज्ञस्याऽभ्युपगमं दर्शनं येनासाऽवपश्यकदर्शनस्तस्याऽमंत्रणं वा हेऽपश्यकदर्शन सतोऽर्वाकृदर्शी नवांस्तथाविधदर्शनप्रमाणश्च सन् कार्याकार्यविवेचितयाऽधवदन्नविष्यत् यदिसर्वज्ञाभ्युपगमं नाऽकरिष्यत् यद्विवाऽदक्षोवा ऽनिपुणो वा यादृशस्तादृशोवाऽचक्षुदर्शनमस्याऽसावचक्षुदर्शनः केवलदर्शनः सर्वज्ञस्तस्माद्यदवाप्यते हितं तत् श्रद्धस्व । इदमुक्तं नवति । अनिपुणेन निपुणेन वा सर्वज्ञदर्शनोक्तं हितं श्रद्धातव्यं । यदि वा हे अदृष्ट हेअर्वाकृदर्शीन दृष्टाऽतीताऽनागतव्यवहितसूक्ष्मपदार्थदर्शिना यद्धाहृतमभिहितमागमं तंश्रद्धस्व । हेअदृष्टदर्शीन अदक्षदर्शीन इतिवा असर्वज्ञोक्तशासनानुयायिन् तमात्मीयमाग्रहं परित्यज्य सर्वज्ञोक्तेमार्गे श्रद्धानं कुर्विति तात्पर्यार्थः । किमिति सर्वज्ञोक्ते मार्गे श्रद्धानमसुमान्नकरोति । येनैवमुपदिश्यते तन्निमित्तमाह । हंदीत्येवं गृहाण । हुशब्दोवाक्यालंकारे । सुष्ठु अतिशयेन निरुद्धमावृतं दर्शनं सम्यक् अवबोधरूपं यस्य सः। केनेत्याह । मोहयतीति मोहनीयं मिथ्यादर्शनादिज्ञानावरणीयादिकं वा तेन कृतेन कर्मणा निरुद्धदर्शनः प्राणी सर्वज्ञोक्तं मार्गं नश्रद्धत्ते ऽतस्तन्मार्गश्रद्धानं प्रति चोद्यते इति ॥ ११ ॥ पुनरप्युपदेशांतरमाह । ( डुःखीत्यादि ) डुःखमसातवेदनीयमुदयेन यत्प्राप्तं तत्कारणं वा डुःखयतीति डुःखं तदस्याऽस्तीति डुःखी सन् प्राणी पौनःपुन्येन मोहं याति सदसद्विवेकविकलोनवति । इदमुक्तंनवति । असातोदयात् डुःखमनुनवन्नार्तोमूढस्तत्करोति येन पुनः पुनः सुखी संसारसागरमनंतमप्येति तदेवंनूतं मोहं परित्यज्य सम्यगुबानेनोऽद्याय निर्विद्येत जुगुप्सेत परिहरेदात्मश्लाघां स्तुतिरूपां तथा पूजनं वस्त्रादिलाभरूपं परिहरेत् । एवमनंतरोक्तरीत्या परिवर्त्तमानः सहहितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादियुक्तोवा संयतः प्रव्राजितोऽपरप्राणिनिः सुखार्थिनिरात्मतुलामात्मतुल्यतां डुःखाप्रियत्वसुखप्रियत्वरूपामधिकं पश्येत् आत्मतुल्यान् सर्वानपि प्राणिनः पालयेदिति ॥ १२ ॥

अर्थ-हवे एवुं धृष्टपणुं करे तेने उपदेश कहेछे, अहो अदरकुव के० अंध सरखा पुरुषो दरकुव के० त्रणभुवनना देखनार एवो सर्वज्ञजे श्रीवीतरागदेव तेनो आहियंके० कहेलो जे श्रीसिद्धांत तेने सद्दहसु के० सद्दहे, तुं केवोछे ? तोके, अदरकुदंसणा के० अंध ज्ञानदृष्टीरहित एवाजे छे, तेमना दर्शनने विषे प्रवर्त्तनहारछे माटे तने बोलावियें छैये के अहो ? अदरकुदंसणा तुं श्रीवीतराग परमात्मानोत्राप्युंजे सिद्धांत तेनाउपर श्रद्धाकरीने हंदि के० तेने गृहणकर अने आलोकना सुखटालीने परलोक उपर कोण नरोशो राखे, परलोकतो नथी इत्यादिकजे तुं बोलेछे, ते ताहारुं बोलवुं अयोग्यछे; केमके वर्त्तमानकाल टालीने अतीत अनागत नही मानीश तो पितामहादिक पुत्रपौत्रादिक एपण नथी, एम पण कहेवुंपडशे परंतु एवीरीतना ताहारा बोलवा थकी एम जाणीये छैये जे सु के० सुष्टु पणे तुं निरुद्धदंसणे के० निरुद्ध दर्शनेछे, एटले सर्वदा ज्ञानदृष्टीरहितछो, मोहणिज्जेणकडेण कम्मुणा के० मोहनीयकर्मेकरी अथवा ज्ञानावरणादिक कर्मेकरी ताहरो दर्शन रुंधाणुछे तेमाटे तुं जैनमार्ग सद्दहतो नथी, माटे ए तारो मत मूकीने सूत्रना सत्यमार्गनी सद्दहणा कर ॥ ११ ॥ वली उपदेश कहेछे एवा वचननो बोलनार दुरकीके० दुःखीछतो मोहेपुणोपुणो के० वली वली मोह पामे एटले वली तेनेज समाचरे जे थकी संसार मांहे अनंतो काल परिभ्रमण करे. एवुं जाणी मोह मूकीने जे संयमने विषे प्रवर्त्ते ते उत्तम पुरुष जाणवो, निव्विदेज्जसिलोगपूयणं के० ते आत्मश्लाघा स्तुति लोकपूजा तथा वस्त्रादिक लाभना उत्कर्षने न वांछे, एटले ए सर्वनो त्यागकरे. एवं के० ते एम करतो सहितेहिं के० ज्ञानादिक सहित थको संजए के० संयती पाणेहिं के० सर्व प्राणीमात्रने आयतुलंके० पोताना आत्मा तुल्यकरी पासएके० देखे. ए रीते दया पाले ॥१२॥

---

दीपिका-एवं नास्तिकेनोक्तेसत्युत्तरमाह । (अदरकवेति) पश्यतीतिपश्यः नपश्योऽपश्योंधस्तत्संबोधनं हेऽपश्यवत् हेअंधतुल्य पश्येन सर्वज्ञेन आख्यातं सर्वज्ञागमं श्रद्धस्व प्रमाणीकुरु। तथाऽपश्यकस्यासर्वज्ञस्याऽभ्युपगतं दर्शनं येन सोपश्यकदर्शनस्तस्यामंत्रणं हेऽपश्यकदर्शन प्रत्यक्षस्यैकस्य प्रमाणस्यांगीकारे व्यवहारलोपः स्यात् तस्मादागमं प्रमाणमिति । कस्मादेवमुपदिश्यतइत्याह । (हंदीत्यादि) हंदिएवंगृहाण । हुशब्दोवाक्यालंकारे । मोहनीयेन स्वकृतेन कर्मणा सुष्ठु निरुद्धमावृतं दर्शनं सम्यगवबोधोयस्य ससुनिरुद्धदर्शनः। एवंविधः प्राणी सर्वज्ञोक्तं मार्गं नश्रद्धत्ते तस्मादेवं बहूपदिश्यतेइति ॥ ११ ॥ (दुःखीति) दुःखी प्राणी पुनः पुनर्मोहंयाति दुःखेन विवेकविकलोभवति । निर्विवेकीच पुनर्दुःखी स्यात् तस्मान्मोहं परित्यज्य श्लोकमात्मश्लाघां पूजनं च निर्विद्येत जुगुप्सेत। परिहरेदित्यर्थः । एवमुक्तनीत्या सहहितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादियुक्तोवा संयतः साधुः परैः प्राणिनिरा

सवं नच्चा अहिठिए, धम्मठी उवहाणवीरिए ॥ गुत्ते जुत्ते सदाजये आय परे परमायतठिते ॥ १५ ॥ वित्तं पसवोय नाईउं, तं बाले सरणं ति मन्नइ ॥ एते मम तेसुवी अहं, नोताणं सरणं नविज्जई ॥ १६ ॥

अर्थ—वली उपदेश कहेछे ते साधु सवंके० सर्व हेय उपादेयवस्तुने नच्चाके०जाणीने सर्व लोक संवररुप मार्गने अहिठिएके० अधितिष्ठेत् एटले आश्रये वली धम्मठीके० धर्मार्थी थको उवहाण के० उपधान एटले तपनेविषे वीरिएके० वीर्य फोरवे एटले तेमां बलवंत थाय पण तेमां वीर्य गोपवे नहीं वली गुत्तेजुत्ते के० मन वचन अने काय गुप्तिए गुप्त अने शुभयोगे युक्त थवानो सदा के० सर्वकाल आयपरे के० पोताने विषे अने परने विषे जयेके० यत्न करे परमायतठिते के०ते साधुपरमायतजे मोक्ष तेनो अर्थी जाणवो ॥ १५ ॥ वित्तं के० धनकनकादिक तथा पसवो के० पशु चतुष्पदादिक अने नाईउं के० ज्ञातिते स्वजन मातापितादिक तंके० तेनु बाले सरणंतिमन्नई के० जे बाल अज्ञानी होय ते सरणकरीमाने केवीरीते तोके एतेममतेसुवीअहं के० ए जेवित्तादिकछे ते माहाराछे हुं एनी रक्षा करनारछुं पण नोताणं सरणंनविज्जई के० एम न जाणे जे ए धनादिक जे छे, ते रोगादिक उपने थके अथवा दुर्गतिमां पडतां थका मने त्राणशरण नविद्यते एटले नथी. थवाना ॥ १६ ॥

---

॥ दीपिका—(सच्चमिति) सत्यमार्गमिमं ज्ञात्वाऽधितिष्ठेदाश्रयेत् । धर्मार्थी उपधानं तपस्त त्र वीर्यवान् मनोवाक्कायगुप्तोज्ञानादिनियुक्तः सदा यतेत आत्मनि परस्मिंश्च । किंभूतः परमउत्कृष्टआयतोदीर्घोमोक्षस्तेनार्थिकस्तदभिलाषी ॥ १५ ॥ ( वित्तमिति ) वित्तं ध नं पशवस्तुरगादयः ज्ञातयः स्वजनामात्रादयः तदेतद्बालोमूर्खः शरणमिति मन्यते । कथमित्याह । एते वित्तादयोमम मदीयाअहं तेषु वित्तादिषु रक्षाकरणेन प्रवर्ते एवं बालोमन्यते नत्वेवं वेत्ति यद्वित्तादिकं त्राणं नस्याद्दुर्गतौपततोनापिरोगादौ शरणं विद्य ते । रिद्धासद्दावतरला, रोगजराभंगुरं हयसरीरं ॥ दोएहंपि गमणसीला, णाकिंचिरहोऊ संबंधाइति ॥ १६ ॥

---

॥ टीका—किंच ( सच्चंणच्चेत्यादि ) सर्वमेतद्धेयमुपादेयं च ज्ञात्वा सर्वज्ञोक्तं सर्वसंव ररूपमधितिष्ठेत् आश्रयेत् । धर्मेणार्थोधर्मएव वाऽर्थः परमार्थतोऽन्यस्याऽनर्थरूपत्वात् धर्मार्थः सविद्यते यस्याऽसौ धर्मार्थी धर्मप्रयोजनवान् । उपधानं तपस्तत्रवीर्यं यस्य स तथा अनिगूहितबलवीर्यइत्यर्थः । तथा मनोवाक्कायगुप्तः सुप्रणिहितयोगइत्यर्थः । तथा युक्तोज्ञानादिभिः सदा सर्वकालं यतेताऽऽत्मनि परस्मिंश्च । किंविशिष्टः सन् अतआह । प

गारं पिञ्च आवसे नरे, अणुपुवं पाणेहिं संजए ॥ समता सवत्र
सुवते, देवाणं गञ्छे सलोगयं ॥ १३ ॥ सोच्चा जगवाणुसासणं
सच्चे तत्रकरेक्कुवक्कमं ॥ सवत्र विणीयमञरे, उंछं जिक्खु विसुद्धमाहरे॥ १४

अर्थ–वली उपदेशांतर कहेछे. गारंपिञ्चआवसेनरे के० गृहवासने विषे वसतो एवो मनुष्य तेपण अणुपुवं के० अनुक्रमे धर्म सांजली, श्रावकना व्रतादिकने अंगीकार करी, पाणेहिं के० जीवोने विषे संजए के० सम्यक्प्रकारे यत्न करतो, समतासवत्रसुवते के० सर्वत्र समता परिणामे वर्त्ततो एवीरीते गृहस्थ धर्मने पालतो थको पण देवाणंगञ्छेसलोगयंके० देवलोकमां जाय. तो पछी यतिधर्म पालनारनो केवोजकहुं ॥ १३ ॥ वली कहेछे सोच्चाजगवाणुसासणं के०ते श्रीवीतरागनी आज्ञापूर्वक धर्म सांजलीने सच्चेतञकरे क्कुवक्कमंके० तेनां आगमने विषे जेम कह्युंछे. तेम सत्य संयमने विषे उपक्रम एटलेउद्यम करे, सवत्रविणीयमञरेके० सर्वत्र मञररहित एवो थको जिक्खु के० साधुते उंछं के० माधुकरी वृत्तियें विसुद्धमाहरे के० शुद्ध एटले बेतालीश दोष रहित एवो आहार लीये. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–किंच । ( गारंपीति ) अगारं गृहमप्यावसन् गृहस्थोपि नरआनुपूर्व्या चारित्रप्रतिपत्त्यादिरूपया प्राणिषु जीवेषु संयतोहिंसानिवृत्तः । यतः सर्वत्र समता श्रूयते । यतौ गृहस्थेच समतैव जिनमतेऽभिधीयते तां कुर्वन् गृहस्थोपि देवानां लोकं गच्छेत् किंपुनर्यतिरिति ॥१३॥ ( सोच्चेति ) जगवदनुशासनं जिनागमं श्रुत्वा तडक्ते सत्ये संयमे उपक्रमं उद्यमं कुर्यात् । किंजूतः सर्वत्र उपनीतमत्सरोऽरक्तद्विष्टः ( उंछंति ) भैक्ष्यं शुद्धं दोषरहितमाहरेद्गृह्णीयात् ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ टीका–किंच (गारंपियइत्यादि)। अगारमपि गृहमप्यावसन् गृहवासमपि कुर्वन् नरो मनुष्यः(आनुपूर्वमिति)आनुपूर्व्या श्रवणधर्मप्रतिपत्त्यादिलक्षणया प्राणिषु यथाशक्त्या सम्यक् यतः संयतस्तडपमर्दान्निवृत्तः। किमिति। यतः समता समजावः। आत्मपरतुल्यता सर्वत्र यतौ गृहस्थे च यदिचैकेंद्रियादौ श्रूयतेऽभिधीयते आर्हते प्रवचने तां च कुर्वन् सगृहस्थोऽपि सुव्रतःसन् देवानां पुरंदरादीनां लोकं स्थानं गच्छेत् किं पुनर्योमहासत्वतया पंचमहाव्रतधारी यतिरिति ॥ १३ ॥ अपिच । ( सोच्चाइत्यादि ) । ज्ञानैश्वर्यादिगुणसमन्वितस्य जगवतः सर्वज्ञस्य शासनमाज्ञामागमं श्रुत्वाऽधिगम्य तत्र तस्मिन्नागमे तडक्तेवा संयमे सज्ञ्चोदिते सत्ये लघुकर्मा तडपक्रमं तत्प्राप्त्युपायं कुर्यात् । किंजूतः सर्वत्राऽपनीतोमत्सरोयेन सतथाऽसौरक्तद्विष्टः क्षेत्रवस्तूपधिशरीरनिष्पिपासः । तथा (उंछंति) भैक्ष्यं शुद्धं द्विचत्वारिंशद्दोषरहितमाहारं गृह्णीयादभ्यवहरेदिति॥ १४ ॥

सवं नच्चा अहिठिए, धम्मठी उवहाणवीरिए॥ गुत्ते जुत्ते सदाजये आय
परे परमायतठिते ॥ १५ ॥ वित्तं पसवोय नाईउ, तं बाले सरणं ति म
न्नइ ॥ एते मम तेसुवी अहं, नोताणं सरणं नविज्जई ॥ १६ ॥

अर्थ—वली उपदेश कहेछे ते साधु सवंके० सर्व हेय उपादेयवस्तुने नच्चाके०जाणीने सर्व लोक संवररूप मार्गने अहिठिएके० अधितिष्ठेत् एटले आश्रये वली धम्मठीके० धर्मार्थी थको उवहाण के० उपधान एटले तपनेविषे वीरिएके० वीर्य फोरवे एटले तेमा बलवंत थाय पण तेमां वीर्य गोपवे नही वली गुत्तेजुत्ते के० मन वचन अने काय गुप्तिए गुप्त अने शुभयोगे युक्त थवानो सदा के० सर्वकाल आयपरे के० पोताने विषे अने परने विषे जयेके० यत्न करे परमायतठिते के०ते साधुपरमायतजे मोक्ष तेनो अर्थी जाणवो ॥ १५ ॥ वित्तं के० धनकनकादिक तथा पसवो के० पशु चतुष्पदादिक अने नाईउ के० ज्ञातिते स्वजन मातापितादिक तंके० तेनु बाले सरणंतिमन्नई के० जे बाल अज्ञानी होय ते सरणकरीमाने केवीरीते तोके एतेममतेसुवीअहं के० ए जेवित्तादिकछे ते माहाराछे हुं एनी रक्षा करनारछुं पण नोताणं सरणंनविज्जई के० एम न जाणे जे ए धनादिक जे छे, ते रोगादिक उपने थके अथवा डुर्गतिमां पडतां थका मने त्राणशरण नविद्यते एटले नथी. थवाना ॥ १६ ॥

---

॥ दीपिका–(सच्चमिति) सत्यमार्गमिमं ज्ञात्वाऽधितिष्ठेदाश्रयेत् । धर्मार्थीउपधानं तपस्त त्र वीर्यवान् मनोवाक्कायगुप्तोज्ञानादिभिर्युक्तः सदा यतेत आत्मनि परस्मिंश्च । किंभूतः परमउत्कृष्टआयतोदीर्घोमोक्षस्तेनार्थिकस्तदभिलाषी ॥ १५ ॥ (वित्तमिति) वित्तं ध नं पशवस्तुरगादयः ज्ञातयः स्वजनामात्रादयः तदेतद्बालोमूर्खः शरणमिति मन्यते । कथमित्याह । एते वित्तादयोमम मदीयाअहं तेषु वित्तादिषु रक्षाकरणेन प्रवर्ते एवं बालोमन्यते नत्वेवं वेत्ति यद्वित्तादिकं त्राणं नस्याद्दुर्गतौपततोनापिरोगादौ शरणं विद्य ते । रिद्धीसहावतरला, रोगजरानंगुरं हयसरीरं ॥ दोएहंपि गमणसीला, णाकिच्चिरहोज्ज संबंधाइति ॥ १६ ॥

---

॥ टीका–किंच (सच्चंणच्चेत्यादि) सर्वमेतद्धेयमुपादेयं च ज्ञात्वा सर्वज्ञोक्तं सर्वसंव ररूपमधितिष्ठेत् आश्रयेत् । धर्मेणार्थोधर्मएव वाऽर्थः परमार्थताऽन्यस्याऽनर्थरूपत्वात् धर्मार्थः सविद्यते यस्याऽसौ धर्मार्थी धर्मप्रयोजनवान् । उपधानं तपस्तत्रवीर्यं यस्य स तथा अनिगूहितबलवीर्यइत्यर्थः । तथा मनोवाक्कायगुप्तः सुप्रणिहितयोगइत्यर्थः । तथा युक्तोज्ञानादिभिः सदा सर्वकालं यतेताऽऽत्मनि परस्मिंश्च । किंविशिष्टः सन्नित्यतआह । प

रमउत्कर्षआयतोदीर्घः सर्वकालभवनात् मोक्षस्तेनाऽर्थिकस्तदभिलाषी पूर्वोक्तविशेषणवि शिष्टोभवेदिति ॥ १५ ॥ पुनरप्युपदेशांतरमाह ( वित्तमित्यादि ) वित्तं धनधान्यहिरण्या दि । पशवः करितुरगगोमहिष्यादयोज्ञातयः स्वजनामातापितृपुत्रकलत्रादयः तदेतद्वित्ता दिकं बालोऽज्ञः शरणं मन्यते । तदेव दर्शयति । ममैते वित्तपशुजातयः परिभोगे उपयो क्ष्यंते । तेषु चाऽर्जनपालनसंरक्षणादिना शेषोपद्रवनिराकरणेन परिहारेणाऽहंभवामीत्ये वं बालोमन्यते । न पुनर्जानीते यदर्थं धनमिच्छंति तच्छरीरमशाश्वतमिति । अपिच । रि द्धी सहावतरला, रोगजराभंगुरं हयशरीरं ॥ तया मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च । प्रतिजन्मनि वर्तते कस्य माता पितापि वा ॥१॥ एतदेवाह । नोनैव वित्तादिकं संसारे क थमपि त्राणं भवति। नरकादौ पततोनापि रागादिनोऽपद्रुतस्य कश्चिच्छरणं विद्यतइति ॥१६॥

अप्पागमितंमि वा डुहे, अहवा उक्कमिते भवंतिए॥ एगस्स गती
य आगती, विडमंता सरणं ण मन्नई ॥ १७ ॥ सवे सयकम्मक
प्पिया, अवियत्तेण डुहेण पाणिणो ॥ हिंमंति भयाउला सढा,
जाई जरा मरणेंहिं भिदुता ॥ १८ ॥

अर्थ–वली उपदेश कही देखाडेछे. अप्पागमितंमिवाडुहे के० पूर्वोपार्जित असाता वेदनीय कर्मना उदय थकी डुःख प्राप्त थयां छतां ते डुःख एकलोज जीव अनुभवेछे. पण ज्ञाति, स्वजन अथवा द्रव्य ते डुखः थकी मूकावी शकता नथी अहवाके० अथवा उक्क मितेभवंतिए के० मरण आवे छते पण एकलोज डुःख भोगवे तथा भवांतरने विषे पण एकलोज डुःख भोगवे तथा एगस्सगतीय आगती के० गति आगति पण एकलानेज होय, परंतु ते वखते धनादिक जे छे ते कोइ सरण न थाय विडमंता के० विवेकी पंमित ज न एवी रीते जाणता थका सरणं णमन्नइ के० कोइनुं सरण करी माने नही॥ १७॥ सवे के० संसारमांहे सर्व जीव सय के० पोताना करेला कम्म के० कर्म करी कप्पिया के० एकेंद्रियादिकनी अवस्थाये कल्प्या छतां अवियत्तेणके० अव्यक्त संज्ञाये डुहेण के० अस्पष्ट शिरशूलादिक डुःखे करी डुःखीया छतां एवा पाणिणो के० प्राणीउं ते हिंमंति के० चतुर्गतिकरूप संसार मांहे अरहट्ट घटीने न्याये परिभ्रमण करेछे, ते ज योनीनेविषे भयाउला के० भयाकुल विह्वीता थका तथा सढा के० शठ एटले अज्ञानी छता जाई जरामरणेहिं के० वली वली जाइ एटले जाति अने जरा तथा मरणे करी भिदुता के० पीड्या थका रहेछे. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–(अप्पागमितंमिवेति) अभ्यागते प्राप्ते डुःखेऽथवा उपक्रमकारणैरुपक्रांते ह्री

णे आयुषि नवांते वा सति एकाक्येव दुःखमनुनवतीतिशेषः ॥ यतः सयणस्सविमज्झगर्ज, रोगाभिद्दर्जकिलिस्सइइहेगो ॥ सयणोवियसेरोगं, नविरंचइनेव नासेइ इति ॥ तथाचाह । (एकस्सत्ति) एकस्यैव प्राणिनान्नवांतरे गतिरागतिश्च स्यात् ततोविद्वान् तावदीषदपि श रणं न मन्यते । यतः एकस्य जन्ममरणे गतयश्च शुनाशुनानवावर्ते ॥ तस्मादाकालिकहि तमेकेनैवात्मनः कार्यमिति॥ १ ७॥(सव्वेत्ति) सर्वे प्राणिनः स्वकेन स्वकृतेन कर्मणा कल्पिताए केंद्रियादिन्नेदेन व्यवस्थिताः । तथा एकेंद्रियादिन्नवेषु अव्यक्तेन दुःखेन उन्नयलक्षणा व्य क्तेनापि दुःखेन समन्विताः प्राणिनोन्नयाकुलाः शठकर्मकारित्वात् शठाहिंडंति पर्यट ति तासुतासु योनिषु । किंनूताः प्राणिनः जातिजरामरणैरनिद्रुताः पीडिताः ॥ १ ८ ॥

॥ टीका—एतदेवाऽऽह । ( अप्रागमितंमीत्यादि ) । पूर्वोपात्ताऽसातवेदनीयोदये नाऽन्यागते दुःखे सत्येकाक्येव दुःखमनुनवति न ज्ञातिवर्गेण वित्तेन वा किंचित्क्रियते । तथाच । सयणस्सविमज्झगर्जरोगाभिद्दर्जकिलिस्सइइहेगो ॥ सयणोवियसेरोगं नविरंच इनेवनासेइ ॥ १ ॥ अथवोपक्रमकारणैरुपक्रांते न्वायुषि स्थितिक्षयेण वा नवांतरे नवां तिके वा मरणे समुपस्थिते सति एकस्यैवाऽसुमतोगतिरागतिश्च नवति । विद्वान् विवे की यथावस्थितसंसारस्वनावस्य वेत्ता ईषदपि तावत् शरणं न मन्यते कुतः सर्वात्मना त्रा णमिति । तथाहि । एकस्य जन्ममरणे गतयश्च शुनाशुनान्नवावर्ते । तस्मादाकालिकहि त,मेकेनैवाऽऽत्मनः कार्यं ॥ १ ॥ एक्को करेइ कम्मं फलमवि तस्सिं क्कर्जसमणुहवइ । एक्को जायइ मरइ य परलोयं एक्कर्जजाइ ॥१॥१ ७॥ अन्यच्च । ( सव्वेसयइत्यादि ) । सर्वेपि संसा रोदरविवरवर्तिनः प्राणिनः संसारे पर्यटंतः स्वकृतेन ज्ञानावरणीयादिना कर्मणा कल्पि ताः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकैकेंद्रियादिन्नेदेन व्यवस्थिताः तथा तेनैव कर्मणैकेंद्रियाद्यवस्थायाम व्यक्तेनाऽपरिस्फुटेन शिरःशूलाद्यलक्षितस्वनावेनोऽपलक्षणत्वात् प्रव्यक्तेन च दुःखेनाऽसाता वेदनीयस्वनावेन समन्विताःप्राणिनःपर्यटंस्यरघट्टघटीन्यायेन तावत्स्वेव योनिषु नयाकुलाः शठकर्मकारित्वात् शठाभ्रमंति जातिजरामरणैरनिद्रुतागर्नाधानादिनिर्दुःखैःपीडिताइति १ ८

इणमेव खणं वियाणिया, णोसुलनं बोहिंच आहितं ॥ एवं स
हिए हिपासए, आहिजिणे इणमेव सेसगा ॥ १९ ॥ अन्नविंसु
पुरा विन्निक्खुवो, आएसावि नवंति सुव्वता ॥ एयाइं गुणाइं आ
हुते, कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २० ॥

अर्थ—इणमेव के० एहिज आर्य क्षेत्र सुकुमाल जन्म जिनधर्म प्रतिपत्तिरूप एवो खणंवियाणिया के० क्षण एटले अवसर जाणी यथोचित धर्म करवो णोसुलनंबोहिंच

के० बोधबीज पामवुं सुलन नथी, ए रीते आहितं के० कह्युंछे. एवुं जाणी धर्म अण करवा थकी फरी फरी बोधि डुर्लनछे. एवं के० एरीते ज्ञान दर्शनेकरी सहिएके० सहित साधु जाणे तथा उदय आव्या परिसहने हियासए के० अहियाशे. ए वचन आहिं जिणे के० श्री आदिनाथ नगवाने प्रकाश्यो तथा इणमेवसेसगा के० एरीतेज शेष बी जा तीर्थंकर पण प्रकाशेछे. ॥ १९ ॥ अनविंसुपुराविनिरकुवो के० हवे सर्वज्ञ पोता ना शिष्यने बोलावी कहेछे के, अहो निक्कु? एटले यतिर्ड पूर्वे जे तीर्थंकर थया, त था आएसाविनवंति के० आगमिक काले जे थशे ते केवा थशे तो के सुव्रता के० सुव्रत एटले प्रधान व्रतधारी तेणे एयाइंगुणाइं आहुतेके० ए सर्व गुण जे पाठल कह्या ते अ थवा आगल कहेशे ते कह्याछे परंतु ते तीर्थंकरने मते नेद नथी कासवस्स के० काश्य प ते श्रीआदीश्वर तथा वर्द्धमान स्वामी तेना अणुधम्मचारिणो के० धर्मना अनुचारि जे छे ते एमज कहेछे के ज्ञान, दर्शन अने चारित्र एहिज मोक्षमार्ग छे. ॥ २० ॥

---

॥दीपिका–(इणमिति) इमं प्रत्यक्षं क्षणमवसरं विज्ञाय ज्ञात्वा तथा बोधिं नोसुलनामि त्याख्यातां ज्ञात्वा तडुचितं विधेयं। ईदृशोमानुष्यार्यदेशधर्मसामग्र्याअवसरः पुनः सुलनोन स्यादिति नावः। तदेवमुत्कर्षतोपार्धपुजलपरावर्तकालेन पुनःसुडर्लना बोधिरित्येवं ज्ञानादि सहितोऽधिपश्येत् बोधेर्डुर्लनत्वं पर्यालोचयेत्। पाठांतरंवा (अहियासएत्ति) परीषहानु दीर्णान् सम्यक् पश्येत्। एवं जिनः श्रीरूषनोऽष्टापदे स्वसुतानुद्दिश्याह कथितवान्। तथा शेषाअपि जिनाएवमेवोक्तवंतइति ॥ १९ ॥ (अनविमिति) हेनिक्षवः साधवः सर्व ज्ञाः स्वशिष्यानामंत्रयति। पुरा ये अनूवन् अतिक्रांताजिनाः (आएसत्ति) आगमिष्याश्च ये नविष्यंति जिनास्ते सर्वेपि सुव्रताः सुव्रतत्वेनैव सर्वे जिनत्वं प्राप्ताइत्यर्थः। ते सर्वे जिनाए तान् गुणानाहुरुक्तवंतः। नकश्चित्सर्वज्ञानां मतनेदइति नावः। येच काश्यपस्य रूषनस्वा मिनः श्रीवीरस्यवा सर्वेप्यनुचीर्णधर्मचारिणः। एतेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकएव मोक्षमार्गइत्यावेदितम् ॥ २० ॥

---

॥ टीका–किंच (इणमेइत्यादि)। इदमः प्रत्यक्षासन्नवाचित्वात् इमं इव्यक्षेत्रकालना वलक्षणं क्षणमवसरं ज्ञात्वा तडुचितं विधेयं। तथाहि। इव्यं जंगमत्वपंचेंडियत्वसुकु लोत्पत्तिमानुष्यलक्षणं। क्षेत्रमप्यार्य देशार्धषड्विंशतिजनपदलक्षणं। कालोऽप्यवसर्पिणी चतुर्थकरादिधर्मप्रतिपत्तियोग्यलक्षणः। नावश्च धर्मश्रवणतच्छ्रद्धानचारित्राचरणकर्मक्षयो पशमाहितविरतिप्रतिपत्त्युत्साहलक्षणः। तदेवंविधं क्षणमवसरं परिज्ञाय तथा बोधिं च सम्यग्दर्शनावाप्तिलक्षणां नोसुलनामित्येवमाख्यातामवगम्य तदवाप्तौ तदनुरूपमेव कुर्या

विनिशेषः। अकृतधर्माणां च पुनर्दुर्लभा बोधिः। तथाहि। लद्धेल्लियंच बोहिं अकरेंतो अ णागयंचपत्थंतो। अन्नं दाइं बोहिं लप्निसिकयरेण मोल्लेणं ॥ १ ॥ तदेवमुत्कृष्टतोपार्द्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणकालेन पुनः सुडुर्लभा बोधिरित्येवं सहितोज्ञानादिभिरधिपश्येत्। बोधिसुडुर्लभत्वं पर्यालोचयेत्। पाठांतरंवा। (अहियासएत्ति) परीषहानुदीर्णान् सम्यगधिसहेत। एतच्चाह् जिनोरागद्वेषजेता नाभेयोऽष्टपदस्थान् सुतानुद्दिश्य। तथाऽन्येपि इदमेव शेष काजिनाअजिह्तिवंतइति ॥१९॥। एतदाह्। (अभविंसुइत्यादि) हेभिक्षवः साधवः सर्वज्ञाः स्वशिष्यानेवमामंत्रयति। येऽजूवन् अतिक्रांताजिनाः सर्वज्ञाः (आएसाविति) आगमिष्याश्च नविष्यंति। तान् विशिनष्टि। सुव्रताः शोजनव्रताः। अनेनेदमुक्तं नवति। तेषामपि जिनत्वं सुव्रतत्वादेवाऽऽयातमिति तेसर्वेऽप्येतानऽनंतरोदितान् गुणानाडुरनिहितवंतः। नाऽत्र सर्वज्ञानां कश्चिन्मतनेदइत्युक्तं नवति। तेच काश्यपस्य ऋषभस्वामिनो वर्द्धमानस्वामिनो वा सर्वेऽप्यनुचीर्णधर्मचारिणइति। अनेन च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकएकएव मोक्षमार्गइत्यावेदितं नवतीति ॥ २० ॥

तिविहेणवि पाण माहणे, आयहिते अणियाण संवुमे॥ एवं सिद्धा अणं तसो, संपइ जे अणागयावरे॥ २१ ॥ एवं से उदाहु अणुत्तर नाणी अणुत्तरदंसी अणुत्तरनाणदंसणधरे ॥ अरहा नायपुत्ते नगवं वेसालिए वि याहिएत्तिबेमि ॥ २२ ॥ इति श्रीवैयालियं द्वितीयमध्ययनं सम्मत्तं ॥

अर्थ—हवे ते गुण कहेले. तिविहेणवि के० मन, वचन अने कायायें करण करावण अने अनुमोदने करी पाणमाहणे के० जीवना प्राण हणे नही. ए प्रथम महाव्रत एम उपलक्षण थकी शेष महाव्रत पण जाणवा. तेणेकरी आयहिते के० आत्माने हेतु तथा अणियाणके० नियाणा रहित संवुमेके० इंद्रियोने संवरवेकरी संवृतिथका एवं के० एवा आचारे प्रवर्त्तता सिद्धाअणंतसोके० आगल अनंताजीव सिद्धि पाम्या वली संपइजेके० सांप्रत एटले वर्त्तमान काले सिद्ध थायले. अने अणागयावरेके० अवर आगमिककाले, अनेक सिद्ध थशे. ॥२१॥ एवंके० एरीते सेके० श्रीआदीश्वर नगवाने उदाहुके० पोताना पुत्र आश्री उद्देशीने मोक्षमार्गनो उद्देशो कह्यो ते नगवंत केवा ले? तोके अणुत्तरनाणीके० निरुपमज्ञान अने अणुत्तरदंसीके० निरुपम दर्शन एटले सम्यक् ज्ञान दर्शनना धरनार ले. तथा अणुत्तरनाणदंसणधरके० कथंचित् ज्ञान दर्शनना आधार ले एरीते अरहानायपुत्तेके० अरिहंत ज्ञातपुत्र श्रीवर्द्धमान स्वामी नगवं के० नगवंत तेणे वेसालिएवि के० विशालानगरीने विषे ए मार्ग अमोने आहिएके० कह्यो त्तिबेमिके० एरीते पंचम गणधर श्रीसुधर्मस्वामी जंबुप्रमुख पोताना शिष्योने कहेले के अहो शिष्यो? जेम श्रीवर्द्ध

मान स्वामी पासेथी अमे सांनळ्युं डे, तेरीते तमोने कहुंछुं ॥ २२ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगे प्रथमश्रुतस्कंधे श्रीद्वितीयवैतालीयाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ दीपिका–( तिविहेणेति) त्रिविधेन मनोवाक्कायैः कृतकारितानुमतिभिर्वा प्राणिनो माहन्यात् । इदमाद्यव्रतं । उपलक्षणादन्यान्यपि व्रतानि ज्ञेयानि । तथा आत्महितोऽनिदानोनिदानरहितः संवृतएवंभूतः सिध्यतीत्याह । एवंभूताअनंतशः सिद्धाः संप्रति वर्तमानकालेपि सिद्धिगमनयोगे सिध्यंति । अपरे अनागते काले सेत्स्यंति । नान्योमुक्तिमार्गइत्यर्थः ॥ २१ ॥ ( एवमिति ) एवमुद्देशकत्रयोक्तनीत्या श्रीऋषभस्वामी स्वसुतानुद्दिश्य उदाहृतवान् कथितवान् । अनुत्तरमुत्कृष्टं ज्ञानं तदस्यास्तीत्यनुत्तरज्ञानी । एवमनुत्तरदर्शी । अनंतज्ञानदर्शनइत्यर्थः । बौद्धमतनिरासाय ज्ञानाधारंजीवं दर्शयति । अनुत्तरज्ञानदर्शनधरइति । कथंचिद्भिन्नज्ञानदर्शनाधारइत्यर्थः । अर्हन् सुरेंद्रादिपूज्योज्ञातपुत्रोवर्धमानस्वामी ऋषभस्वामीवा भगवान् विशालानगर्यामाख्यातवान् श्रीवीरः । ऋषभस्वामीतु विशालकुलोद्भवत्वात् वैशालिकः ॥ यदुक्तं " विशालाजननीयस्य, विशालकुलमेववा ॥ विशालं वचनं वास्यात्तेन वैशालिकोजिनः " इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ॥ २२ ॥ इति द्वितीयाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका–तदभिहितांश्च गुणानुद्देशतआह । ( तिविहेणेत्यादि ) । त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन यदिवा कृतकारितानुमतिभिर्वा प्राणिनोदशविधप्राणभाजोमाहन्यादिति । प्रथममिदं महाव्रतं । अस्य चोपलक्षणार्थत्वात् एवं शेषाण्यपि द्रष्टव्यानि । तथाऽऽत्मनेहित आत्महित. । तथानाऽस्य स्वर्गावाप्त्यादिलक्षणनिदानमस्तीत्यनिदानः । तथेंद्रियनोइंद्रियैर्मनोवाक्कायैर्वा संवृतस्त्रिगुप्तिगुप्तइत्यर्थः । एवंभूतश्चावश्यं सिद्धिमवाप्नोतीत्येतद्दर्शयति । एवमनंतरोक्तमार्गानुष्ठानेनानंताः सिद्धाअशेषकर्मक्षयभाजः संवृत्ताविशिष्टस्थानभाजोवा । तथा संप्रति वर्तमाने काले सिद्धिगमनयोग्ये सिद्ध्यंत्यऽपरेवाऽनागते काले एतन्मार्गानुष्ठायिनएव सेत्स्यंति । नाऽपरः सिद्धिमार्गोऽस्तीति भावार्थः ॥ २१ ॥ एतच्च सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिप्रभृतिभ्यः स्वशिष्येभ्यः प्रतिपादयतीत्याह । ( एवंसेत्यादि ) । एवमुद्देशकत्रयाभिहितनीत्या सऋषभस्वामी स्वपुत्रानुद्दिश्योदाहृतवान् प्रतिपादितवान् । नाऽस्योत्तरं प्रधानमस्तीत्यनुत्तरं । तच्च तज्ज्ञानंच अनुत्तरज्ञानं तदस्याऽस्तीत्यनुत्तरज्ञानी तथाऽनुत्तरदर्शी । सामान्यविशेषपरिछेदकाववोधस्वभावइति बौद्धमतनिरासद्वारेण ज्ञानाधारं जीवं दर्शयितुमाह । ( अनुत्तरज्ञानदर्शनधरइति ) । कथंचिद्भिन्नज्ञानदर्शनाधारइत्यर्थः । अर्हन् सुरेंद्रादिपूजार्होज्ञातपुत्रोवर्द्धमानस्वामी ऋषभस्वामी वा भगवानैश्वर्यादिगुणयुक्तोविशाल्यां नगर्यां वर्द्धमानोऽस्माकमाख्यातवान् ऋषभस्वामी वा । विशालकुलोद्भव

त्वा वैशालिकः । तथाचोक्तं । विशाला जननी यस्य विशालं कुलमेव वा । विशालं वचनं चा ऽस्य तेन वैशालिकोजिनः । एवमसौ जिनआख्यातइति । इतिशब्दः परिसमाप्त्यर्थोत्रवीमी तिउक्तार्थोऽनया पूर्ववदिति ॥२२॥ समाप्तंच द्वितीयं वैतालीयमध्ययनं ॥ ग्रंथाग्रं॥१०६॥

हवे बीजो अध्ययन कह्या अनंतर त्रीजो अध्ययन प्रारंनिये ठैए. एनो ए संबंधछे के, पाछलें अध्ययने स्वसमय परसमयनी प्ररूपणा कही माटे परसमयना दोष अने स्वसमय ना गुण जाणीने स्वसमयने विषे प्रवर्तवो; तेने विषे प्रवर्त्ततां थकां जे अनुकूल अने प्रति कूल उपसर्ग उपजे ते सहन करवा ए अधिकारे आव्यो जे अध्ययन तेप्रारंनियें ठैयें.

सूरं मणइ अप्पाणं, जावजेयं नपस्सती ॥ जुझंतं दढधम्माणं, सिसुपालोव महारहं ॥ १ ॥ पयाता सूरा रणसीसे, संगामंमि उवढिते ॥ माया पुत्तं नयाणाइ, जेएण परि विछए ॥ २ ॥

अर्थ–कोइएक बाल मनुष्य संग्रामने विषे अप्पाणंके० पोताने सूरंमणइके० शूरवीर क ी माने जे आजगतमांहे माहारा समान सुनट कोइ नथी. परंतु जावजेयं के० ज्यां ुधी तेसंग्रामने विषे पोताने जीपनार कोइ नपस्सतीके० न देखे त्यांसुधी जाणवुं. को ीपरे? सिसुपालोवके० जेम शिशुपालराजा पोतानी आत्माने शूरवीर मानतो हतो परंतु संग्रामने विषे दढधम्माणं के० दृढधर्मी तथा महारहं के० महारथी एवा नारायणने जुझंतं के० जुंजतो देखी, क्षोन पामी, मद छांमीने निर्मद थयो. ॥ १ ॥ सांप्रत सामा न्यपदे दृष्टांत कहेछे. कोइएक पोतानेविषे सूरा के० शूरवीरपणुं मानता रण के० सं ग्रामने सीसे के० मस्तके अग्रेसर पणे पयाताके० आव्या; एवा संगामंमिउवढितेके० ते संग्रामनेविषे उपस्थित एटले प्राप्त थये थके त्यां परदलने सुनटे सर्वजनने व्याकुल चित्त कस्या-छे. ते संग्राम एवो वर्त्तेछे के, ज्यां मायापुत्तंनयाणाइ के० माता पुत्रने न जाणे; एटले माताने केडे रह्यो बालक पडतो जाणे नहीं एवा संग्रामने विषे जेए ण के० जे आगले जीपणहार पुरुषो तेणे परिविछए के० शस्त्रादिके करी छेद्यो थको, हत प्रहत कीधो हतो, कायरपणे नंग पामे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–उक्तं द्वितीयमध्ययनं । तत्र स्वसमये बोधोविधेयइत्युक्तं । तत्र प्रतिबुद्ध स्य कदाचिदुपसर्गाः स्युस्तेच उदीर्णाः सम्यक्सोढव्याऽस्यर्थः । अथ तृतीयाध्ययनमार भ्यते । तत्र चत्वारउद्देशकास्तेषु प्रथमोद्देशकस्येदमादिसूत्रं । ( सूरंमणइनि ) कश्चिद्बा लः संग्रामे आत्मानं शूरं सुनटं मन्यते शूरोहमिति गर्जति । यावज्जेतारं पुरःस्थितमुद्यता नं नपश्यति।दृष्टांतमाह । युध्यमानं दृढः समर्थोधर्म स्वनावोयन्यस तथातं । महान् रथो ऽस्येति महारथोऽत्रनारायणस्तं दृष्ट्वा यथा शिशुपालोमाद्रीसुतः समर्थोपि क्षोभंगतस्तं कृष्णं

तोयथा वसुदेवस्वसा माद्री दमघोषाय दत्ता । तयोः पुत्रः शिशुपालः सयौवनमदगर्वितोबलवान् चतुर्भुजश्च तं तादृशं दृष्ट्वा माता नैमित्तिकं पप्रछ । तेनोक्तं अयं तव पुत्रोऽजयः समरे । यं दृष्ट्वास्य स्वाभाविकं भुजायुगलं भावि तस्मादस्य मृतिः । एवमस्य कियान् कालोतिक्रांतः सकदाचित्कृष्णेन दृष्टस्तदा तस्य भुजायुगलमेव जातं । तदा तद्विदित्वा माद्री नाम्न्या तन्मात्रा कृष्णपितृष्वस्रा कृष्णाय निवेदितं । त्वं मत्पुत्रोपरि कृपां कुर्याः ।कृष्णेनोक्तं। अहं त्वत्सुतस्यापराधशतं सहिष्ये तदादेशात्। शिशुपालस्तु कृष्णं तृणमिव मन्यते । असन्यवचांसि वक्ति । बहूनपराधान् करोति । अपराधशते पूर्णे मात्रादिनिर्वार्यमाणोपि नतिष्ठति तदा कृष्णश्चक्रेण तडुत्तमांगं चिछेदेति ॥ १ ॥ सांप्रतं जनप्रतीतं दृष्टांतमाह । ( पयाया इति ) । प्रकर्षेण पातः पादपातोयेषांते प्रपातारणशिरसि प्रयाताः प्रकर्षेण प्राप्तावा शूराः सुभटंमन्यास्ततः संग्रामे उपस्थिते प्राप्ते सति सर्वस्याकुलीभूतत्वान्माता पुत्रं न जानाति । एवंविधे रणे भेता कुंतादिभिः परिविक्षतः परि समंताद्विविधं क्षतोहतछिन्नोवा यथा कश्चिदल्पसत्वोभंगं याति दैन्यं भजतइत्यर्थः ॥ २ ॥

---

॥ टीका—उक्तं द्वितीयमध्ययनमधुना तृतीयमारभ्यते । अस्यचाऽयमभिसंबंधः । इहाऽनंतराध्ययने स्वसमयपरसमयप्ररूपणाऽभिहिता । तथा परसमयदोषान् स्वसमयगुणांश्च परिज्ञाय स्वसमये बोधोविधेयइत्येतच्चाऽभिहितं । तस्यच प्रतिबुद्धस्य सम्यगुत्थानेनोत्थितस्य सतः कदाचिदनुकूलप्रतिकूलोपसर्गाः प्रादुर्भवेयुस्तेचोदीर्णाः सम्यक् सोढव्याइत्येतदनेनाऽध्ययनेन प्रतिपाद्यते । ततोऽनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि भवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोद्वेधा । अध्ययनार्थाधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राऽध्ययनार्थाधिकारः संबुद्धस्सुवसग्गाइत्यादिना प्रथमाध्ययने प्रतिपादितः । उद्देशार्थाऽधिकारं तूत्तरत्र स्वयमेव निर्युक्तिकारः प्रतिपादयिष्यतीति । नामनिष्पन्नंतु निक्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । ( उवसग्गमित्यादि ) उवसग्गंमियछक्कं दव्वे चेयणमचेयणं डुविहं । आगंतुगोयपीला, करोयजोसोउवसग्गो ॥ १ ॥ नामस्थापनात् द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् उपसर्गाः षोढा । तत्र नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य द्रव्योपसर्गं दर्शयति । द्रव्ये द्रव्यविषये उपसर्गोद्वेधा । यतस्तद्द्रव्यमुपसर्गकर्तृ चेतनाचेतनभेदात् द्विविधं । तत्र तिर्यङ्मनुष्यादयः स्वावयवाभिघातेन यडुपसर्गयंति ससचित्तद्रव्योपसर्गः सएवकाष्ठादिभेतरः तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्यातः । तत्रोपसर्गउपतापः शरीरपीडनोत्पादनमित्यादि पर्यायाः । भेदाश्च तिर्यङ्मनुष्योपसर्गादयः नामादयश्च । तत्र व्याख्यांतु निर्युक्तिकृदेव गाथा पश्चार्द्धेन दर्शयति । अपरस्माद्दिव्यादेरागछतीत्यागंतुकोयोऽसावुपसर्गोभवति । सच देहस्य संयमस्य वा पीडाकारीति ॥१॥ क्षेत्रोपसर्गानाह । खेत्तमित्यादिना । खेत्तं बहुउघपयं

कालोएगंतदूसमादीउं।नावेकम्मप्पुदउं,सो डुविहोउवक्कमिउं॥२॥ यस्मिन् क्षेत्रे बहून्यो घतः सामान्येन पदानि क्रूरचौराद्युपसर्गस्थानानि नवंति तत्क्षेत्रं बव्होघपदं। पाठांतरंवा बव्होघनयं बहून्योघतोनयस्थानानि यत्र तत्तथा । तच्च लाढादिविषयादिकं क्षेत्र मिति।कालस्त्वेकांतडुःषमादिः। आदिग्रहणात् योयस्मिन् क्षेत्रे डुःखोत्पादकोग्रीष्मा दिः सगृह्यतइति । कर्मणां ज्ञानावरणादीनामन्युदयोनावोपसर्गइति । सच उपसर्गः सर्वोऽपि सामान्येन औघिकोपक्रमिकनेदात् द्विधा । तत्रौघिकोऽशुनकर्मप्रकृतिजनित नावोपसर्गोनवति । औपक्रमिकस्तु दंडकशशस्त्रादिनाऽसातवेदनीयोदयापादकइति । ॥ २ ॥ तत्रौघिकौपक्रमिकयोरुपसर्गयोरौपक्रमिकमधिकृत्याह । ( उवक्कमिउंइत्यादि )। उवक्कमिउं संयमविग्घकरेतत्नुवक्कमेपगयं । दव्वे चउविहो देवमणुयतिरियायसंवेत्तो ॥ ॥ ३ ॥ उपक्रमणमुपक्रमः। कर्मणामनुदयप्राप्तानामुदयप्रापणमित्यर्थः। एतच्च यद्द व्योपयोगात् येन वा इव्येणाऽसातवेदनीयाद्यशुनं कर्मोदीर्यते । यडुदयाच्चाऽल्पसत्वस्य संयमविघातोनवति । अतऔपक्रमिकउपसर्गः संयमविघातकारीति। इहच यतीनां मोक्षं प्रति प्रवृत्तानां संयमोमोक्षांगं वर्तते तस्य योविघ्नहेतुः सएवाऽत्राऽधिक्रियतइति दर्श यति । तत्रौघिकौपक्रमिकयोरौपक्रमिके प्रकृतं प्रस्तावस्तेनात्राधिकारइतियावत् । सच इव्ये इव्यविषयश्चिंत्यमानश्चतुर्विधोनवति । तद्यथा । दैविकोमानुषस्तैरश्चआत्मसंवेदन श्चेति ॥३॥ सांप्रतमेतेषामेव नेदमाह। एक्केक्कोयेत्यादि। एक्केक्कोयचउविहो, अट्ठविहोवावि सोलसविहोवा।घडणजयणायतेसिं,एत्तोवोच्छंअहियारो॥४॥ एकैकोदिव्यादिश्चतुर्विधश्च तुर्नेदः। तत्र दिव्यस्तावत् हास्यात् प्रद्वेषात् विमर्शात् पृथग्विमात्रातश्चेति। मानुषाश्चपि हास्यतः प्रद्वेषाद्विमर्शात् कुशीलप्रतिसेवनातश्च । तैरश्चाश्चपि चतुर्विधाः । तद्यथा । न यात्प्रद्वेषादाहारादपत्यसंरक्षणाच्च । आत्मासंवेदनाश्चपि चतुर्विधाः । तद्यथा । घट्ट नातोलेशनातोऽंगुल्याद्यवयवसंश्लेषरूपायास्तंननातः प्रपाताश्चेति । यदिवा वातपित्त श्लेष्मसंनिपातजनितश्चतुर्धेति । सएव दिव्यादिश्चतुर्विधोऽनुकूलप्रतिकूलनेदात् अष्टधा नवति । सएव दिव्यादिः प्रत्येकं यश्चतुर्धा प्राग्दर्शितः सचतुर्णां चतुष्कानां मेलापकात् षोडशनेदोनवति । तेषां चोपसर्गाणां यथा घटनासंबंधप्राप्तिः प्राणानांचाऽधिसहनं प्र तिपालना नवति । तथाऽतऊर्द्ध्वमध्ययनेन वक्ष्यते इत्ययमत्रार्थाधिकारइतिनावः ॥४॥ उद्देशार्थाधिकारमधिकृत्याऽह ।(पढमंमीत्यादि ) पढमंमियपडिलोमा हुंतीअणुलोमगाय वितियंमि।तइएअज्ञत्तविसीदणंयपरवादिरयणंच॥५॥ प्रथमे उद्देशके प्रतिलोमाः प्रतिकूला उपसर्गाः प्रतिपाद्यंतइति तथा द्वितीये ज्ञातिकृताः स्वजनापादिताअनुलोमाअनुकू लाइति । तथा तृतीये अध्यात्मविषीदनं परवादिवचनं चेत्ययमर्थाधिकारइति । हेउस रिसेहिंअहेउएहिं समयपडिएहिंणिउणेहिं । शीतलखलितपणायनाकपायउमि उद्देशे

तोयथा वसुदेवस्वसा माद्री दमघोषाय दत्ता । तयोः पुत्रः शिशुपालः सयौवनमदगर्वितोबलवान् चतुर्नुजश्च तं तादृशं दृष्ट्वा माता नैमित्तिकं पप्रछ । तेनोक्तं अयं तव पुत्रोऽजेयः समरे । यं दृष्ट्वास्य स्वाभाविकं नुजायुगलं जावि तस्मादस्य मृतिः । एवमस्य कियान् कालोतिक्रांतः सकदाचित्कृष्णेन दृष्टस्तदा तस्य नुजायुगलमेव जातं । तदा तद्विदित्वा माद्री नाम्न्या तन्मात्रा कृष्णपितृष्वस्रा कृष्णाय निवेदितं । त्वं मत्पुत्रोपरि कृपां कुर्याः । कृष्णेनोक्तं । अहं त्वत्सुतस्यापराधशतं सहिष्ये तवादेशात् । शिशुपालस्तु कृष्णं तृणमिव मन्यते । असन्यवचांसि वक्ति । बहूनपराधान् करोति । अपराधशते पूर्णे मात्रादिभिर्निवार्यमाणोपि नतिष्ठति तदा कृष्णश्चक्रेण तदुत्तमांगं चिछेदेति ॥ १ ॥ सांप्रतं जनप्रतीतं दृष्टांतमाह । ( पयाइति ) । प्रकर्षेण पातः पादपातोयेषांते प्रपातारणशिरसि प्रयाताः प्रकर्षेण प्राप्तावा शूराः सुनटंमन्यास्ततः संग्रामे उपस्थिते प्राप्ते सति सर्वस्याकुलीनूतत्वान्माता पुत्रं न जानाति । एवंविधे रणे जेता कुंतादिनिः परिविक्षतः परि समंताद्विविधं क्षतोहतश्छिन्नोवा यथा कश्चिदल्पसत्वोनंगं याति दैन्यं लनतइत्यर्थः ॥ २ ॥

---

॥ टीका—उक्तं द्वितीयमध्ययनमधुना तृतीयमारन्यते । अस्यचाऽयमनिसंबंधः । इहाऽनंतराध्ययने स्वसमयपरसमयप्ररूपणाऽनिहिता । तथा परसमयदोषान् स्वसमयगुणांश्च परिज्ञाय स्वसमये बोधोविधेयइत्येतच्चाऽनिहितं । तस्यच प्रतिबुद्धस्य सम्यगुञानेनोत्थितस्य सतः कदाचिदनुकूलप्रतिकूलोपसर्गाः प्राउर्नवेयुस्तेचोदीर्णाः सम्यक् सोढव्याइत्येतदनेनाऽध्ययनेन प्रतिपाद्यते । ततोऽनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि नवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोद्वेधा । अध्ययनार्थाधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राऽध्ययनार्थाधिकारः संबुद्धस्सुवसग्गाइत्यादिना प्रथमाध्ययने प्रतिपादितः । उद्देशार्थाऽधिकारं तूत्तरत्र स्वयमेव निर्युक्तिकारः प्रतिपादयिष्यतीति । नामनिष्पन्नंतु निक्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । ( उवसग्गमित्यादि ) उवसग्गंमियछक्कं दवे चेयणमचेयणं डुविहं । आगंतुगोयपीला, करोयजोसोउवसग्गो ॥ १ ॥ नामस्थापनात् द्रव्यक्षेत्रकालनावनेदात् उपसर्गाः षोढा । तत्र नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य द्रव्योपसर्गं दर्शयति । द्रव्ये द्रव्यविषये उपसर्गोद्वेधा । यतस्तद्द्रव्यमुपसर्गकर्तृ चेतनाचेतननेदात् द्विविधं । तत्र तिर्यङ्मनुष्यादयः स्वावयवाभिघातेन यदुपसर्गयंति ससचित्तद्रव्योपसर्गः सएवकाष्ठादिनेतरः तत्त्वनेदपर्यायैर्व्याख्यातः । तत्रोपसर्गउपतापः शरीरपीडनोत्पादनमित्यादिपर्यायाः । नेदाश्च तिर्यङ्मनुष्योपसर्गादयः नामादयश्च । तत्र व्याख्यांतु निर्युक्तिकृदेव गाथापश्चार्द्धेन दर्शयति । अपरस्माद्दिव्यादेरागछतीत्यागंतुकोयोऽसावुपसर्गोनवति । सच देहस्य संयमस्य वा पीडाकारीति ॥ १ ॥ क्षेत्रोपसर्गानाह । खेत्तमित्यादिना । खेत्तं बहुउंघपर्य

एवं सेहेवि अपुट्ठे, भिक्खायरिया अकोविए ॥ सूरं मण्णंति अप्पाणं, जावलूहं नसेवए ॥ ३ ॥ जया हेमंतमासंमि, सीतं फुसइ सव्वगं, पाठांतरं सवायगं ॥ तत्थ मंदा विसीयंति, रज्जहीणाविव खत्तिया ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे ए दृष्टांत साधु साथे मेलवे छे. एवं के० एम पूर्वोक्त सुजटनी पेरे शीशुपालवत् सेहेविके० नवदीक्षित शिष्य पण अपुट्ठेके० परिसहने अण फरश्यो थको एम कहेके, दीक्षापालवामां शुं दुर्लजछे? एटले दीक्षानो मार्ग सुलजछे. एवो ते भिक्खायरिया अकोविएके० भिक्षाचर्याने विषे अकोविद, एटले अजाण, अनेरा आचारने विषे अनिपुण थको नवदीक्षितछे. ते सूरंमण्णंतिअप्पाणं के० वचन मात्रे करी पोताने विषे शूरपणानो माननार ते जावके० ज्यांलगे लूहंके० संयमने नसेवए के० सेवे नही त्यांलगे एवुं कहे के, " ए संयममां शुं दुष्करपणुं छे? " परंतु जेवारे संयम आदरे तेवारे परिसहनो उदय आवे थके सिदाय. ॥ ३ ॥ हवे संयमनुं दुष्करपणुं देखाडेछे. जया के० ज्यां एकदाकाले हेमंतमासंमि के० हेमंत ऋतुना पोष अने माघ मासमां सव्वगं के० सर्वांगे पाठांतरे सवायगं के० वायरासहित सीतंफुसति के० शीत फरसे तत्थ के० तेवारे मंदाविके० मंदबुद्धि जारी कर्मिजीव कायर थको, चारित्रने विषे सीयंतिके० सिदाय एटले दीनपणुं पामे. कोनी पेरे? तोके, रज्जहीणाविव खत्तिया के० जेम राज्यहीन क्षत्री सिदाय तेनी परे ते साधु पण जाणी लेवो. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—दार्ष्टांतिकमाह । ( एवमिति ) । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण यथा शूरंमन्योजेतारं वासुदेवमन्यंवा युध्यमानं दृष्ट्वा भंगं याति । एवं शिष्यकोऽभिनवप्रव्रजितः परीषहैरस्पृष्टः प्रव्रज्यायां किंदुष्करमिति गर्जन् भिक्षाचर्यायां भिक्षाटनेऽकोविदोनिपुणः । उपलक्षणादन्यस्मिन्नपि साध्वाचारेऽनिपुणः सन्नात्मानं तावत् शिशुपालवत् शूरं मन्यते । यावद्रूक्षंतारमिव रूक्षं संयमं नसेवते नभजते । संयमप्राप्तौहि बहवोगुरुकर्माणोऽल्पसत्वाभंगमुपयांतीति ॥३॥ संयमस्य रूक्षत्वमाह ।(जयेति) यदा हेमंतमासे शीतकाले शीतं स्पृशति सर्वांगं तत्र शीते मंदाविषीदंति दीनाः स्युः । राज्यहीना राज्यच्युताय थाक्षत्रियाराजानः॥४॥

॥ टीका—दार्ष्टांतिकमाह । ( एवंसेहेवीत्यादि ) । एवमिति प्रक्रांतपरामर्शार्थः । यथाऽसौ शूरंमन्यउत्कृष्टसिंहनादपूर्वकसंग्रामशिरस्युपस्थितः पश्चाज्जेतारं वासुदेवमन्यं वा युध्यमानं दृष्ट्वा दैन्यमुपयाति । एवं शिष्यकोऽभिनवप्रव्रजितः परीषहैरस्पृष्टोऽनुतः किंप्रव्रज्यायां दुष्करमित्येवं गर्जन् भिक्षाचर्यायां भिक्षाटनेऽकोविदोऽनिपुणः । उपलक्षणार्थत्वादन्यत्राऽपि साध्वाचारेऽभिनवप्रव्रजितत्वादप्रवीणः सएवंभूतआत्मानं

॥ ६ ॥ ( हेउइत्यादि ) चतुर्थोद्देशके अयमर्थाधिकारः । तद्यथा । हेतुसदृशैर्हेत्वा भासैरन्यतीर्थिकैर्व्युद्ग्राहिताः प्रतारितास्तेषां शीलस्खलितानां व्यामोहितानां प्रज्ञापना यथाव स्थितार्थप्ररूपणा स्वसमयप्रतीतैर्निपुणभणितैर्हेतुभिः कृतेति ॥ सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । ( सूरंमणइत्यादि ) । कश्चिल्लघुप्रकृतिः संग्रामे समुपस्थिते शूरमात्मानं मन्यते । नित्तोयांबुदइवात्मश्लाघाप्रवणोवाग्भिर्विस्फूर्जन् गर्जति । तद्यथा । नमत्कल्पः परानीके कश्चित् सुभटोऽस्तीत्येवं तावद्गर्जति यावत् पुरोऽवस्थितं प्रोद्यतासिं जेतारं न पश्यति। तथा चोक्तं। तावद्गजः प्रस्रुतदानगंडः करोत्यकालांबुदगर्जितानि । यावन्न सिंहस्य गुहास्थलीषु लांगूलविस्फोटरवं शृणोति ॥ १ ॥ न दृष्टांतमंतरेण प्रायोलोकस्याऽर्थावगमोभवतीत्यतस्तदवगतये दृष्टांतमाह । यथा माद्रीसुतः शिशुपालोवासुदेवदर्शनात्प्राक् आत्मश्लाघाप्रधानं गर्जितवान् पश्चाच्च युध्यमानं शस्त्राणि व्यापारयंतं दृढः समर्थोधर्मः स्वभावः संग्रामाभंगरूपो यस्य सतथा तं महान् रथोऽस्येति महारथः सच प्रक्रमादत्रनारायणस्तं युध्यमानं दृष्ट्वा प्राग्गर्जनाप्रधानोपि क्षोभं गतः। एवमुत्तरत्र दार्ष्टांतिकेऽपि योजनीयमिति । भावार्थस्तु कथानकादऽवसेयः । तच्चेदं । वसुदेवस्सुसाएसुउदमघोसणराहिवेणसुद्दीए । जाऊचउभुउंभुजवलकलिउंकलहपत्तहो ॥१॥ दठूणतउंजणणी, चउभुयपुत्तमब्भुयमणग्घं॥जयहरिसविम्हयमुही पुब्बइणेमत्तियंसहसा।२॥णेमित्तिकएणभुणिऊणसाहियंतीइहछियियाए॥जहएसतुम्मपुत्तोमहाबलोडज्जउंसमरे॥३॥ एयस्सयजंदठूणहोइसाभावियं भुयाजुयलं ॥ होहीतत्तोवियभयंसुतस्सतेणब्बिसंदेहो ॥४॥ भाविभयवेविरंगी पुत्तंदंसेइजावकएहस्स ।तावच्चियतस्सतियंपयइब्भंवरभुयाजुगलं ॥५॥ तोकएहस्सपिउच्छापुत्तंपाडेइपायपीढंमि ॥ अवराहखामणत्थंसोविसयंसेखमिस्सामि ॥५॥ सिसुवालोविहुजुव्वणमएण नारायणंअसब्भेहिं ॥ वयणेहिंभणइसोविहुखमइखमाएसमत्थोवि ॥ ७ ॥ अवराहसएपुणेवारिज्जंतोणचिट्ठईजाहे। कएहेणतउ छिन्नंचक्केणंउत्तमंगंसे ॥८॥ सांप्रतं सर्वजनप्रतीतं वार्तमानिकं दृष्टांतमाह । ( पययाइत्यादि ) यथा वाग्भिर्विस्फूर्जितः प्रकर्षेण विकटपादपातं रणशिरसि संग्राममूर्धन्यग्रानीके यातागताः। केते शूराः शूरंमन्याः सुभटाः । ततः संग्रामे समुपस्थिते पतत्परानीकसुभटमुक्तहेतिसंघाते सति तत्रच सर्वस्याऽऽकुलीभूतत्वात् माता पुत्रं न जानाति कटीतोभ्रश्यंतं स्तनंधयमपि न सम्यक् प्रतिजागर्तीत्येवं मातापुत्रीये संग्रामे परानीकसुभटेन जेत्रा च शक्त्यादिभिः परिसमंतात् विविधमनेकप्रकारं क्षतोहतश्छिन्नोवा यथा कश्चिदल्पसत्वोभंगमुपयाति दीनोभवतीति यावदिति ॥ २ ॥

एवं सेहेवि अपुट्ठे, भिरका यरिया अकोविए ॥ सूरं मणंति अप्पाणं, जावलूहं नसेवए ॥ ३ ॥ जया हेमंतमासंमि, सीतं फुसइ सवगं, पाठांतरे सवायगं ॥ तठ मंदा विसीयंति, रज्जहीणाविव खत्तिया ॥ ४ ॥

अर्थ–हवे ए दृष्टांत साधु साथे मेलवे छे. एवं के० एम पूर्वोक्त सुभटनी पेरे शीशुपालवत् सेहेविके० नवदीक्षित शिष्य पण अपुट्ठेके० परिसहने अण फरश्यो थको एम कहेके, दीक्षापालवामां शुं दुर्लभछे? एटले दीक्षानो मार्ग सुलभज छे. एवो ते भिरकायरिया अकोविएके० भिक्षाचर्याने विषे अकोविद, एटले अजाण, अनेरा आचारने विषे अनिपुण थको नवदीक्षितछे. ते सूरंमणंतिअप्पाणं के० वचन मात्रे करी पोताने विषे शूरपणानो माननार ते जावके० ज्यांलगे लूहंके० संयमने नसेवए के० सेवे नही त्यांलगे एवुं कहे के, " ए संयममां शुं दुष्करपणुं छे? " परंतु जेवारे संयम आदरे तेवारे परिसहनो उदय आवे थके सिदाय. ॥ ३ ॥ हवे संयमनुं दुष्करपणुं देखाडेछे. जया के० ज्यां एकदाकाले हेमंतमासंमि के० हेमंत ऋतुना पोष अने माघ मासमां सवगं के० सर्वांगे पाठांतरे सवायगं के० वायरासहित सीतंफुसति के० शीत फरसे तठ के० तेवारे मंदाविके० मंदबुद्धि भारी कर्मिजीव कायर थको, चारित्रने विषे सीयंतिके० सिदाय एटले दीनपणुं पामे. कोनी पेरे? तोके, रज्जहीणाविव खत्तिया के० जेम राज्यहीन क्षत्री सिदाय तेनी परे ते साधु पण जाणी लेवो. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–दार्ष्टांतिकमाह । ( एवमिति ) । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण यथा शूरंमन्योजेतारं वासुदेवमन्यंवा युध्यमानं दृष्ट्वा भंगं याति । एवं शिष्यकोऽभिनवप्रव्रजितः परीषहैरस्पृष्टः प्रव्रज्यायां किंदुष्करमिति गर्जन् भिक्षाचर्यायां भिक्षाटनेऽकोविदोनिपुणः । उपलक्षणादन्यस्मिन्नपि साध्वाचारेऽनिपुणः सआत्मानं तावत् शिशुपालवत् शूरं मन्यते । यावज्जेतारमिव रूक्षं संयमं नसेवते नभजते । संयमप्राप्तौहि बहवोगुरुकर्माणोऽल्पसत्वाभंगमुपयांतीति ॥३॥ संयमस्य रूक्षत्वमाह ।(जयेत्ति) यदा हेमंतमासे शीतकाले शीतं स्पृशति सर्वांगं।तत्र शीते मंदाविषीदंति दीनाः स्युः । राज्यहीना राज्यच्युताय थाक्षत्रियाराजानः॥४॥

॥ टीका–दार्ष्टांतिकमाह । ( एवंसेहेवीत्यादि ) । एवमिति प्रक्रांतपरामर्शार्थः । यथाऽसौ शूरंमन्यउत्कृष्टसिंहनादपूर्वकसंग्रामशिरस्युपस्थितः पश्चाज्जेतारं वासुदेवमन्यं वा युध्यमानं दृष्ट्वा दैन्यमुपयाति । एवं शिष्यकोऽभिनवप्रव्रजितः परीषहैरस्पृष्टोऽनुत्तः किंप्रव्रज्यायां दुष्करमित्येवं गर्जन् भिक्षाचर्यायां भिक्षाटनेऽकोविदोऽनिपुणः । उपलक्षणार्थत्वादन्यत्राऽपि साध्वाचारेऽभिनवप्रव्रजितत्वादप्रवीणः सएवंभूतआत्मानं

तावच्छिशुपालवत् शूरं मन्यते यावज्जेतारमिव रूक्षं संयमं कर्म संश्लेषकारणा नावात् नसेवते नजजतइति । तत्प्राप्तौ तु बह्वोगुरुकर्माणोऽल्पसत्वाभंगमुपयांति ॥ ३ ॥ संयमस्य रूक्षत्वप्रतिपादनायाह । (जयाहेमंतेइत्यादि) । यदा कदाचित् हेमंत मासे पौषादौ शीतं सहिमकणवातं स्पृशति लगति तत्र तस्मिन्नसह्ये शीतस्पर्शे ल गतिसति एके मंदाजडागुरुकर्माणोविषीदंति दैन्यभावमुपयांति राज्यहीनाराज्यच्यु ताः यथा क्षत्रियाराजानइवेति ॥ ४ ॥

पुठे गिम्हाहि तावेणं, विमणे सुप्पिवासिए ॥ तछ मंदा विसियं ति, मछा अप्पोदए जहा ॥ ५ ॥ सदादत्तेसणा दुक्खा, जायणा डुप्पणोल्लिया ॥ कम्मत्ता डुब्भगा चेव, इच्चाहं सुपुढो जणा ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे उष्णपरिसह कहेछे. गिम्हाहि के० ग्रीष्मकाले ज्येष्ठादिक मासनो उप न्यो तावेणं के० उष्ण आताप,तेणे करी पुठे के० फरश्यो एटले व्याप्यो छतो, विमणे के० विमन एटले आमण डुमणो थयो थको सप्पिवासिए के० अत्यंत तृषाये करी पराभव पाम्यो तेवारे तछमंदाविसीयंतिके० त्यां पण मंद बापडो कायर सिदाय,भंग पामे. जहा के० जेम मछाअप्पोदए के० माछलुं अल्पोदकमां एटले पाणीना वियोगथी सिदाय तेम सत्वरहित चारित्रियो संयम थकी भ्रष्ट थाय. जेम माछलां जीवितव्य थ की भ्रष्ट थाय तेनी पेरें जाणी लेवुं. ॥ ५ ॥ हवे याचना परिसह कहेछे. सदादत्तेस णाडुक्खा के० सर्वकाल शिलिमात्रपण साधुने दीधो अने एषणिय लेवो ए महादुःखछे जायणा के० याचना एटले मागवुं ते डुप्पणोल्लियाके० अपार डुर्जनछे. तेमां जे काय र होय ते सिदाय. हवे पाछले अर्थे आक्रोश परिसह कहेछे. पुढोजणाके० पामर लो क होय ते साधुने इच्चाहंसु के० एम कहेके, कम्मत्ताके० ए बापडा पूर्वे आचरित कर्मे करी आर्त्त थका पूर्वकृत कर्मनां फल अनुभवेछे अथवा ए बापडा मलमलिन श रीर डुःखादिक वेदनाये ग्रसित दरिद्री करसणादिक कार्य करवा असमर्थ माटे उद्वेग पा म्याथका यति थयाछे ए पुत्र कलत्रादिके करी मूकायला, डुब्भगाचेव के० दौर्भागी थ का परिवार छांमी प्रवर्ज्या आदरी रहेछे. ॥ ६ ॥

---

॥ दीपिका–( पुठेति ) । ग्रीष्मेऽभितापस्तेन स्पृष्टोव्याप्तः सन् विमना विमनस्कः सु ष्ठु अतिशयेन पिपासां तृषां प्राप्तः स्यात् । तत्रोष्णपरीषहे मंदाविषीदंति । यथा मत्स्या अल्पोदके विषीदंति ॥ ५ ॥ ( सदेति ) सदासर्वकालं दंतशोधनाद्यपि दत्तमेषणीयदो परहितं भोक्तव्यमिति दत्तैषणाडुःखं । तथा इयं याच्ञा डुःखेन प्राणोद्यते परीषहोडुर्जे

यइतिजावः । भिस्काइ सुहलावसुं, वायाघोलेइकंठमकंमि । कहंकहकरेइहियंयं, देहि त्ति परं जणंतस्स ॥ १ ॥ गतिभ्रंशोमुखे दैन्यं गात्रस्वेदोविवर्णता । मरणे यानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके ॥ १ ॥ एवं याञ्चापरिषहं परित्यज्य महापुरुषसेवितः पंथाः श्र यणीयः । आक्रोशपरिषहमाह । कम्मत्तत्ति । पृथक्जनाएवमाहुः सामान्यलोकाइत्रमुक्तवं तः । यथा एते यतयः कर्मजिः कृष्यादिजिरार्तास्तत्कर्तुमसमर्थाः संतोयतित्वं प्रतिपन्ना डुर्जगाः पुत्रदारादिनात्यक्तानिर्गतिकाः संतः प्रव्रज्यामाश्रिताइति ॥ ६ ॥

---

॥ टीका–उस्रपरीषहमधिकृत्याह । ( पुठेइत्यादि ) । ग्रीष्मे ज्येष्ठाषाढाख्ये अजि तापस्तेन स्पृष्टश्चुत्रोव्याप्तः सन विमनाविमनस्कः सुष्टुवा अतिशयेन पातुमिछा पिपा सा तां प्राप्तोनितरां तृडजिजूतोवाहुल्येन दैन्यमुपयातीति दर्शयति । तत्र तस्मिन्नु स्रपरीषहोदये मंदाजमाअशक्ताविषीदंति पराजंगमुपयांति । दृष्टांतमाह । यथा म त्स्याअल्पोदके विषीदंति । गमनाजावान्मरणमुपयांत्येवं सत्वाजावात्संयमात् भ्र श्यंतइति । इदमुक्तं जवति । यथा मत्स्याअल्पत्वाडुदकस्य ग्रीष्माजितापेन तप्ताअ वसीदंत्येवमल्पसत्वाश्चारित्रप्रतिपत्तावपि जलमलक्लेदक्लिन्नगात्राबहिरुस्माजितप्ताः शीत लान् जलाश्रयान् जलाधारगृहचंदनादीनुस्नप्रतिकारहेतूननुस्मरंतआकुलितचेतसः सं यमानुष्ठानं प्रति विषीदंति ॥ ५ ॥ सांप्रतं याञ्चापरीषहमधिकृत्याह ( सदादत्तेइ त्यादि ) यतीनां सदा सर्वदा दंतशोधनाद्यपि परेण दत्तमेषणीयमुत्पादाद्येषणादोषरहि तमुपजोक्तव्यमित्यतः क्षुधादिवेदनार्त्तानां यावज्जीवं परदत्तैषणाडुःखं जवति । अपि चेयं याञ्चापरीषहोऽल्पसत्वैर्डुःखेन प्रणोद्यते त्यज्यते । तथाचोक्तं । भिस्काइसुहलावसुं, वा याघोलेइकंठमप्फंमि । कहंकहकहेइहियपं देहित्तिपरंजणंतस्स ॥ १ ॥ गतिभ्रंशोमुखे दैन्यं गात्रस्वेदोविवर्णता । मरणे यानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके इत्यादि । एवं डुस्त्यजं याञ्चापरीषहं परित्यज्य गताजिमानामहासत्वाज्ञानाद्यजिवृद्धये महापुरुषसेवितं पंथान मनुव्रजंतीति श्लोकपश्चार्द्धेनाऽक्रोशपरीषहं दर्शयति । पृथक्जनाः प्राकृतपुरुषाद्यनार्य कल्पाइत्येवमाहुरित्येवमुक्तवंतः । तद्यथा । ये एते यतयः जलाविलदेहालुंचितशिर सः क्षुधादिवेदनाग्रस्तास्ते एतैः पूर्वाचरितैः कर्मजिरार्ताः पूर्वस्वकृतकर्मणः फलमनुजवं ति । यदिवा कर्मजिः कृष्यादिजिरार्त्तास्तत्कर्तुमसमर्थाउद्विग्नाः संतोयतयः संवृत्ताइतित थैते डुर्जगाः सर्वेणैव पुत्रदारादिना परित्यक्ता निर्गतिकाः संतः प्रव्रज्यामज्युपगताइति ॥ ६ ॥

एते सद्दे अचायंता, गामेसु णगरेसु वा ॥ तछ मंदा विसीयंति,
संगामंमिव जीरुया ॥ ७ ॥ अप्पेगे खुधियं जिस्कुं, सुणी मंसंति
लूसए ॥ तछ मंदा विसीयंति, तेउ पुठाव पाणिणो ॥ ८ ॥

अर्थ–एतेसद्दे के० एवा पूर्वोक्त आक्रोश संबंधि जे शब्द तेने सहन करवाने अचापंता के० असमर्थ गामेसु के० ग्रामने विषे, वाके० अथवा णगरेसु के० नगरने विषे तछके० त्यां एवा आक्रोश उपने थके मंदाविसीयंतिके० तेमंद अज्ञानी चारित्रिउ सीदाय छे, कोनी परें सिदायछे ते कहेछे. संगामंमिवभीरुयाके० जेम बीकण मनुष्य संग्रामने विषे शस्त्र देखी सिदाइने नागी जाय, तेनी पेरे ते मंद चारित्रियो चारित्रथी भंग पामेछे. ॥७॥ हवे वध परिसह कहेछे. अप्प के० अपि संभावनाये एगे के० एक कोइ एक लूसक श्वानादिक ते खुधियंनिरकुं के० निक्षाये नमतो भूख्यो एवोजे साधु तेने देखी सुणी के० ते श्वानादिक मंसंतिके० मंख मारे. लूसए के०वछुरे तछ के०त्यां श्वानादिके खाधो छतो मंदाविसीयंति के० अज्ञानी सिदाय एटले दीन थाय. कोनी परें, तोके जेम तेउ के० अग्निने पुठाव के० स्पर्शी करी पाणिणो के० प्राणी एटले जीव पोतानुं शरीर संकोचें तेम मंद चारित्रिउ पण पोतानुं गात्र संकोचे. ॥ ८ ॥

---

॥ दीपिका–(एतेइति ) एतान् पूर्वोक्तानाक्रोशशब्दान् सोढुमशक्नुवंतोग्रामनगरादौ स्थिताः । तत्राक्रोशे मंदा विषीदंति दैन्यंभजंते संयमाद्भ्रश्यंति यथा भीरवः कातराः संग्रामेषु भज्यंते ॥७॥ वधपरीषहमाह (अप्पेगइति) अपिःसंभावने । एकः कश्चित् श्वादिर्लूषकः क्रूरोभक्षकः (खुधियमिति) क्षुधितं भिक्षामटंतं भिक्षुं दशति भक्षयति। तत्र श्वादिभक्षणे मंदाविषीदंति । यथा तेजसाग्निनास्पृष्टादह्यमानाः प्राणिनोवेदनार्ताः सीदंति ॥ ८ ॥

---

॥ टीका–( एएसद्दइत्यादि ) एतान् पूर्वोक्तानाक्रोशरूपान् तथा चौरचारिकादिरूपान् शब्दान् सोढुमशक्नुवंतोग्रामनगरादौ तदंतराले वा व्यवस्थिताः । तत्र तस्मिन आक्रोशे सति मंदाअज्ञानलघुप्रकृतयोविषीदंति विमनस्काभवंति संयमाद्भ्रश्यंति। तथा भीरवः संग्रामे रणशिरसि चक्रकुंताऽसिशक्तिनाराचाकुले रटत्पटहशंखझल्लरीनादगंभीरे समाकुलाः संतः पौरुषं परित्यज्याऽयशःपटहमंगीकृत्य भज्यंते। एवमाक्रोशादिशब्दाकर्णनादऽल्पसत्वाः संयमे विषीदंति ॥ ७ ॥ वधपरीषहमधिकृत्याह । ( अप्पेगेइत्यादि )। अपिः संभावने। एकः कश्चिच्छ्वादिः लुपयतीतिलुपकः प्रकृत्यैवक्रूरोभक्षकः। खुधियंति । क्षुधितं बुभुक्षितं भिक्षामटंतं भिक्षुं दशति भक्षयति दशनैरंगावयवं विलुंपति । तत्र तस्मिन् श्वादिभक्षणे सति मंदाअज्ञाअल्पसत्वतया विषीदंति दैन्यं भजंते । यथा तेजसाऽग्निना स्पृष्टादह्यमानाः प्राणिनोजंतवोवेदनार्त्ताः संतोविषीदंति गात्रं संकोचयंत्यार्तध्यानोपहताभवंति । एवं साधुरपि क्रूरसत्वैरभिद्रुतः संयमाद्भ्रश्यतइति दुःसहत्वाद्ग्रामकंटकानां ॥ ८ ॥

अप्पेगे पडिनासंति, पडिपंथियमागता ॥ पडियारगता एते,
जे एते एव जीविणो ॥ ए॥ अप्पेगे वइ जुंजंति, नगिणा पिंमो
लगाहमा ॥ मुंमाकंमूविणठंगा, उझल्ला असमाहिता ॥ १० ॥

अर्थ–वली ग्रामीण लोकनुं वचन परिसह कहेबे. अप्पेगे के० अपि संनावनार्थे. कोइ एक धर्मना अजाण पडिपंथियमागता के० साधुना द्वेषी, साधुनी साथे शत्रुनावे पोंहोंता थका पडिनासंति के० एवुं कठोर वचन साधुप्रते नासे एटले बोले. शुं बोले? तो के, पडियारगताएते के० ए बापडा पाठला नवना करेलां कर्मनां फल नोगवेबे. जे एते के० जे ए यति ते एवजीविणो के० एम आजीविकायें जीवेबे. एटले परघरनी निक्षा मागेबे, तथा अंतप्रांत आहारना लेनारा ठे. एणे पूर्वले नवे कांइ दीधुं नथी, कांइ लाधु नथी, तेथी मस्तक मुंम थइ बीनत्सरूपे सर्व नोग थकी वंच्या एवा ए बापडा दुःखी थका, जीवे ठे. ॥ ए ॥ तथा वली एहिज परिसह कहेबे. अप्पेगेवइजुंजंति के० अपि संनावनार्थे, एक कोइ अनार्य एवां वचनबोले के, नगिणा के० ए नागा सर्वकाल पिंमोलगाहमा के० परपिंमना उसीआला अधम दुगंबाना स्थानक मुंमा के० मुंमितकेश, कंमूके० खाजीये करी एमना शरीर विणठ्याके० विणठे. अंगजेना एवा पामर तथा उझल्ला के० मेल प्रसेद थकी खरडयाबे असमाहिया के० सर्वकाल असमाधिया एटले अशोननिक देखनाराने असमाधिना उपजावनारबे. ॥ १० ॥

॥ दीपिका–आक्रोशमेव पुनराह । ( अप्पेगइति ) अप्येके प्रातिपंथिकतां साधुविद्वेषितां प्राप्ताः प्रतिनाषंते । यथा प्रतीकारपूर्वकर्मानुनवस्तमेकेगता. प्राप्ताः स्वकृतकर्मनोगिनोयएते एवं जीविनः परगृहाएयटंतः अंतप्रांतनोजिनोलुंचितशिरसः सर्वनोगं विंताइखं जीवंतीति ॥ ए ॥ किंच ( अप्पेगेइति ) अप्येके अनार्यावाचं युंजंति नाषंते । यथा एते जिनकल्पिकादयोनम्रा. पिंमोलगाः परपिंमप्रार्थकाअधमामुंडालुंचितकेशाः कंडूः खर्जूस्तया विनष्टांगाः अप्रतिकर्मतया क्वचित् रोगसंनवे सनत्कुमारवद्विनष्टांगाउझतो जल्लोमलः प्रस्वेदोयेषांते उझल्लाः असमाहिताअशोननाः ॥ १० ॥

॥ टीका–पुनरपि तानधिकृत्याह । (अप्पेगेइत्यादि) । अपि. संनावने । एके केचनाऽपुष्टधर्माणः अपुण्यकर्माणः प्रतिनाषंति ब्रुवते । प्रतिपंथाः प्रतिकूलत्वं तेन चरंति प्रातिपंथिकाः साधुविद्वेषिणस्तन्नावमागताः कथंचित्प्रतिपथेवा दृष्टाअनार्याएतद्ब्रुवते । संनाव्यते एतदेवंविधानां तद्यथाप्रतीकारः पूर्वाचरितस्य कर्मणोऽनुनवस्तमेके गताः प्राप्ताः स्वकृतकर्मफलनोगिनोयएते यनयएवं जीवंति परगृहाएयटंतोऽतप्रांतनोजिनो

अर्थ–एतेसद्दे के० एवा पूर्वोक्त आक्रोश संबंधि जे शब्द तेने सहन करवाने अचा यंता के० असमर्थ गामेसु के० ग्रामने विषे, वाके० अथवा एगरेसु के० नगरने विषे तह्रके० त्यां एवा आक्रोश उपने थके मंदाविसीयंतिके० तेमंद अज्ञानी चारित्रिउं सीदा यछे, कोनी परे सिदायछे ते कहेछे. संगामंमिवनीरुयाके० जेम बीकण मनुष्य संग्रामने विषे शस्त्र देखी सिदाइने नागी जाय, तेनी पेरे ते मंद चारित्रियो चारित्रथी नंग पामेछे. ॥७॥ हवे वध परिसह कहेछे. अप्प के० अपि संनावनाये एगे के० एक कोइ एक लू सक श्वानादिक ते खुधियंनिरकुं के० निक्षाये नमतो नूख्यो एवोजे साधु तेने देखी सुणी के० ते श्वानादिक मंसंतिके० मंख मारे. लूसए के०वखुरे तह्र के०त्यां श्वानादिके खा धो बतो मंदाविसीयंति के० अज्ञानी सिदाय एटले दीन थाय. कोनी परें, तोके जेम तेउ के० अग्निने पुछाव के० स्पर्शे करी पाणिणो के० प्राणी एटले जीव पोतानुं शरीर संकोचें तेम मंद चारित्रिउं पण पोतानुं गात्र संकोचे. ॥ ८ ॥

---

॥ दीपिका–(एतेइति ) एतान् पूर्वोक्तानाक्रोशशब्दान् सोढुमशक्नुवंतोग्रामनगरादौ स्थिताः। तत्राक्रोशे मंदा विषीदंति दैन्यंनजंते संयमाद्वा नश्यंति यथा नीरवः कातराः संग्रामेषु नज्यंते ॥७॥ वधपरीषहमाह (अप्पेगइति) अपिःसंनावने। एकः कश्चित् श्वादिर्लूषकः क्रूरोनक्षकः (खुधियमिति) क्षुधितं निक्षामटंतं निक्षुं दशति नक्षयति। तत्र श्वादिनक्षणे मंदाविषीदंति । यथा तेजसाग्निनास्पृष्टादह्यमानाः प्राणिनोवेदनार्ताः सीदंति ॥ ८ ॥

---

॥ टीका–( एएसद्दइत्यादि ) एतान् पूर्वोक्तानाक्रोशरूपान् तथा चौरचारिकादि रूपान् शब्दान् सोढुमशक्नुवंतोग्रामनगरादौ तदंतराले वा व्यवस्थिताः । तत्र तस्मिन आक्रोशे सति मंदाअज्ञानलघुप्रकृतयोविषीदंति विमनस्कानवंति संयमाद्भ्रश्यंति। तथा नीरवः संग्रामे रणशिरसि चक्रकुंताऽसिशक्तिनाराचाकुले रटत्पटहशंखझल्लरीनादगंनीरे समाकुलाः संतः पौरुषं परित्यज्याऽयशःपटहमंगीकृत्य नज्यंते। एवमाक्रोशादिशब्दाकर्णनादऽल्पसत्वाः संयमे विषीदंति ॥ ७ ॥ वधपरीषहमधिकृत्याह । ( अप्पेगेइत्यादि )। अपिः संनावने। एकः कश्चिच्छ्वादिः लुपयतीतिलुपकः प्रकृत्यैवक्रूरोनक्षकः। खुधियंति । क्षुधितं बुनुक्षितं निक्षामटंतं निक्षुं दशति नक्षयति दशनैरंगावयवं विलुंपति। तत्र तस्मिन् श्वादिनक्षणे सति मंदाअज्ञाअल्पसत्वतया विषीदंति दैन्यं नजंते । यथा तेजसाऽग्निना स्पृष्टादह्यमानाः प्राणिनोजंतवोवेदनार्त्ताः संतोविषीदंति. गात्रं संकोचयंत्यार्तध्यानोपहतानवंति । एवं साधुरपि क्रूरसत्वैरनिद्रुतः संयमाद्भ्रश्यतइति दुःसहत्वाद्ग्रामकंटकानां ॥ ८ ॥

अप्पेगे पडिनासंति, पडिपंथियमागता ॥ पडियारगता एते,
जे एते एव जीविणो ॥ ए॥ अप्पेगे वइ जुंजंति, नगिणा पिंमो
लगाहमा ॥ मुंमाकंमूविणठंगा, उजल्ला असमाहिता ॥ १० ॥

अर्थ–वली ग्रामीण लोकनुं वचन परिसह कहेछे. अप्पेगे के० अपि संनावनार्थे. कोइ एक धर्मना अजाण पडिपंथियमागता के० साधुना द्वेषी, साधुनी साथे शत्रुनावे पोंहोंता थका पडिनासंति के० एवुं कठोर वचन साधुप्रत्ते नाखे एटले बोले. शुं बोले? तो के, पडियारगताएते के० ए बापडा पाठला नवना करेलां कर्मनां फल नोगवेछे. जे एते के० जे ए यति ते एवजीविणो के० एम आजीविकायें जीवेछे. एटले परघरनी निक्षा मागेछे, तथा अंतप्रांत आहारना लेनारा छे. एणे पूर्वले नवे कांइ दीधुं नथी, कांइ साधु नथी, तेथी मस्तक मुंम थइ बीनत्सरूपे सर्व नोग थकी वंच्या एवा ए बापडा डुःखी थका, जीवे छे. ॥ ए ॥ तथा वली एहिज परिसह कहेछे. अप्पेगेवइजुंजंति के० अपि संनावनार्थे, एक कोइ अनार्य एवां वचनबोले के, नगिणा के० ए नागा सर्वकाल पिंमोलगाहमा के० परपिंमना उंसीआला अधम डुर्गंधाना स्थानक मुंमा के० मुंमितकेश, कंमूके० खाजीये करी एमना शरीर विणठंगाके० विणठाछे. अंगजेना एवा पामर तथा उजल्ला के० मेल प्रस्वेद थकी खरडयाछे असमाहिया के० सर्वकाल असमाधिया एटले अशोननिक देखनाराने असमाधिना उपजावनारछे. ॥ १० ॥

॥ दीपिका–आक्रोशमेव पुनराह । ( अप्पेगइति ) अप्येके प्रातिपंथिकतां साधुविद्वेषितां प्राप्ताः प्रतिनापंते । यथा प्रतीकारपूर्वकर्मानुनवस्तमेकेगताः प्राप्ताः स्वकृतकर्मनोगिनोयएते एवं जीविनः परगृहाएयंतः अंतप्रांतनोजिनोलुंचितशिरसः सर्वनोगं चिंताडुखं जीवंतीति ॥ ए ॥ किंच ( अप्पेगेइति ) अप्येके अनार्यावाचं युंजंति नाषंते । यथा एते जिनकल्पिकादयोनग्नाः पिंमोलगाः परपिंमप्रार्थकाअधमामुंडालुंचितकेशाः कंडूः खर्जूस्तया विनष्टांगाः अप्रतिकर्मतया क्वचित् रोगसंनवे सनत्कुमारवद्विनष्टांगाउज्जतो जल्लोमलः प्रस्वेदोयेषांते उजल्लाः असमाहितात्रशोननाः ॥ १० ॥

॥ टीका–पुनरपि तानधिकृत्याह । ( अप्पेगेइत्यादि ) । अपि संनावने । एके केचनाऽपुष्टधर्माणः अपुण्यकर्माणः प्रतिनाषंति ब्रुवते । प्रतिपंथाः प्रतिकूलत्वं तेन चरंति प्रातिपंथिकाः साधुविद्वेषिणस्तन्नावमागताः कथंचित्प्रतिपथेवा दृष्टाअनार्याएतद्ब्रुवते । संनाव्यते एतदेवंविधानां तद्यथाप्रतीकारः पूर्वाचरितस्य कर्मणोऽनुनवस्तमेके गताः प्राप्ताः स्वकृतकर्मफलनोगिनोयएते यतयएवं जीवंति परगृहाएयटंतोऽतप्रांतनोजिनो

दत्तादानालुंचितशिरसः सर्वेनोगवंचितादुःखितं जीवंतीति ॥ ए ॥ किंच ( अप्पेगेइ त्यादि ) अप्येके केचन कुसृतिप्रसृताअनार्यावाचं युंजंति नाषंते। तद्यथैते जिनक ल्पिकादयोनग्नास्तथा ( पिंमोलगत्ति ) परपिंमप्रार्थिकाअधमाः मलाविलत्वात् जुगुप्सितामुं मालुंचितशिरसस्तथा क्वचित्कंमूकृतक्षतैरेखाभिर्वा विनष्टांगाविकृतशरीराअप्रतिकर्मश रीरतया वा क्वचिद्रोगसंनवे सनत्कुमारवद्विनष्टांगस्तथोजतोजल्लः शुष्कप्रस्वेदोयेषांते जल्ला स्तथा असमाहिताअशोननाबीनत्साड्ष्टावा प्राणिनामसमाधिमुत्पादयंतीति ॥ १० ॥

एवं विप्पडिवन्नेगे, अप्पणाउ अजाणया ॥ तमउ ते तमं जंति,
मंदा मोहेण पाउडा ॥ ११ ॥ पुठेय दंस मसएहिं, तण फास
मवाइया ॥ न मे दिठे परे लोए, जइ परं मरणंसिया ॥ १२ ॥

अर्थ–हवे जे साधुने एवां डुर्वचन बोले, तेने विपाक देखाडे ठे. एवं के० एपूर्वेली रीते विप्पडिवन्नेगे के० कोइ एक पुण्य रहित जीव, विप्रतिपन्न एटले साधु मार्गना द्वे षी अप्पणाउअजाणया के० पोते अजाण ठतां तु शब्दथकीअन्य विवेकी पुरुषनां वच न अण मानतां एवा जीव तमउतेतमंजंति के० अंधकार गति थकी फरी आकरी अं धकार गतियें जाय. ते मंदा के० अज्ञानी केवाठे. तोके, मोहेण के० मिथ्यात्व दर्शने करी पाउडा के० ढाक्या आवख्या कुमार्गने सेवेठे ॥ ११ ॥ हवे दंसमसकादिक परिसह कहे ठे. सिंधु ताम्रलिप्त कोंकणादिक देशने विषे प्रायें दंस मशकादिक अधिक होयठे. ते देशोने विषे कोइवार साधु गयो थको, दंसमसएहिं के० दंस मशकादिक पुठेय के० फरशे तेथी दंसमशकादिके पीडायो तथा अकंचन नावठे, माटे तण के० तृणादिकने विषे संथारो करे, तेथी ते तृणादिकना फास के० स्पर्श मवाइया के० सहन कर वाने अशक्तिवंत ठतो, कोइ एक कायर एम चिंवतन करे के एवुं डुष्कर अनुष्ठान परलो कने अर्थे करियें ठैये. अने नमेदिठेपरेलोए के० ते परलोकतो अमे दीठुं नथी. जइ के० जेमाटे अपरंमरणं के० एवा क्लेशथी मरण तो प्रत्यक्ष देखायठे जे अवश्य मरण पामीशुं माटे एवा क्लेशथी सखुं ॥ १२ ॥

---

॥दीपिका–एवं नाषंते ये तेषां विपाकमाह।(एवमिति) एवं पूर्वोक्तनीत्या एके केचित् प्रति पन्नाः साधुमार्गद्वेषिणआत्मना स्वयमज्ञाः। तुशब्दादन्येषां वचनमकुर्वाणास्तेऽज्ञानात्तमो यांति। अधस्तमां गतिं गच्छंति। मंदामोहेन मिथ्यात्वेन प्रावृताआच्छादिताः साधुद्वेषिणः कुमा र्गगाः स्युः। यथा। एकं हि चक्षुरमलं सहजोविवेक,स्तद्वद्भिरेव सह संवसतिर्द्वितीयं॥ एतद्द्व यं जुवि न यस्य सतत्वतोंधस्तस्यापमार्गचलने खलु कोपराधः॥११॥दंशमशकपरीषहानाह।

न्ना के० रागद्वेषे व्याकुल एवा केइ के० कोइएक अनारिया के० अनार्य पुरुषो ते चारित्रवंत साधुने क्रीडायें करी लूसंति के० लूंशे कदर्थना करे ॥ १४ ॥

---

॥ दीपिका–( संताइति )। केशानां लोचने संतप्ताः पीडितास्तथा ब्रह्मचर्येण पराजितानग्नाः संतस्तत्र केशलोचे ब्रह्मचर्ये मंदाविषीदंति संयमाद्भ्रश्यंते। यथा मत्स्याः केतने मत्स्यबंधने प्रविष्टाविषीदंति जीविताद्भ्रश्यंति ॥ १३ ॥ ( आयदंडेत्ति )। आत्मा दंडयते दुर्गतौ पात्यते येन स आत्मदंडः समाचारोनुष्ठानं येषां ते आत्मदंम समाचाराः। मिथ्यासंस्थिताविपरीततया स्वीकृता जावना चित्तवृत्तिर्यैस्ते मिथ्यासंस्थितजावनामिथ्यात्वोपहतदृष्टयइत्यर्थः । हर्षद्वेषमापन्नारागद्वेषाकुलाएवंविधाअनार्याः केचित् साधुं लूषयंति कदर्थयंति दंडादिनिर्वाग्निर्वा ॥ १४ ॥

---

॥ टीका–अपिच ( संतत्ताइत्यादि )। समंतात् तप्ताः संतप्ताः केशानां लोचउत्पाटनं तेन। तथाहि। सरुधिरकेशोत्पाटने हि महती पीडोपपद्यते तया चाऽल्पसत्वाः विस्रोतसिकां नजंते। तथा ब्रह्मचर्यं वस्तिनिरोधस्तेनच पराजिताः परानग्नाः संतस्तत्र तस्मिन् केशोत्पाटनेऽतिदुर्जयकामोद्रेके वा सति मंदाजमालघुप्रकृतयोविषीदंति संयमानुष्ठानं प्रति शीतलीजवंति सर्वथा संयमाद्भ्रश्यंति। तथा मत्स्याः केतने मत्स्यबंधने प्रविष्टानिर्गतिकाः संतोजीविताद्भ्रश्यंति। एवं तेपि वराकाः सर्वं कष्टकामपराजिताः संयमजीवितात् भ्रश्यंति ॥ १३ ॥ किंच ( आयदंडेत्यापि )। आत्मा दंडयते खंडयते हितात् भ्रश्यते येन स आत्मदंमः समाचारोऽनुष्ठानं येषामनार्याणां ते। तथा मिथ्या विपरीता संस्थिता स्वाग्रहारूढा जावनांतःकरणवृत्तिर्येषां ते मिथ्यासंस्थितजावनामिथ्यात्वोपहतदृष्टयइत्यर्थः। हर्षश्च प्रद्वेषश्च हर्षप्रद्वेषं तदापन्नारागद्वेषसमाकुलाइति यावत् । तएवंजूताअनार्याः साधुं सदाचारं क्रीमया प्रद्वेषणं वा क्रूरकर्मकारित्वात् लूषयंति कदर्थयंति दंमादिनिर्वाऽग्निर्वैते ॥ १४ ॥

अप्पेगे पलियंतेसिं,चारो चोरोति सुव्वयं॥ बंधंति भिक्खुयं बाला कसायवयणेहिय ॥१५॥ तह दंमेण संवीते, मुठिणा अडुफलेण वा ॥ नातीणं सरती बाले,इत्थीवा कुद्धगामिणी ॥१६॥ एते जोकसिणा फासा, फरुसा डुस्सहियासया॥हत्वी वा सरसंविता कीवा वसगयागिहंतिबेमि ॥१७॥ इति तृतीय ऽध्ययनस्य प्रथमोद्देशोस०

अर्थ–वली अपि संजावनार्ये एगेपलियं के० कोइएक अनार्य, देशपर्यंत विचरता

जे साधु तेसिंके० ते साधुने एम कहेके, चारोचोरोतिसुव्वयंके० ए देहने चोरछे, निक्कण शील एम कहीने सुव्रतजे अणगार तेने बंधंतिनिरक्कयंके० राशी प्रमुखे करी, साधुने बांधे एवा बालाके० बाल अज्ञानी तथा कसायवयणेहियके० कषायना वचने करी निर्भर्त्सना करे. ॥१५॥ तथके० त्यां अनार्य पुरुषे साधुने दंडेणके० दंडे करी तथा मुठिणाके० मुठियें करी अडुवाके० अथवा फलेणवाके० फले करी संवीतेके० हण्यो हतो कांइक परिणत साधु नातिणंसरतीवाले के० एवा दुःखोने ते बाल अज्ञानी अण सहेतो थको ज्ञाती गोत्रीने संभारे के, माहारो संबंधि गोत्री जो कोइ अंहियां होत तो ए मने एवी कदर्थना नकरत; एवी चिंतवना करे इत्थिवाकुद्धगामिणी के० जेम स्त्री रीशाणी थकी, पोताना घरमांथी निकली; रस्तामां तेने चोर लोकोए ग्रहण करी हती पोताना संबंधिउंनुं स्मरण करे, पश्चात्ताप करे, तेनीपेरे जाणी लेवी. ॥ १६ ॥ हवे उपसंहार करतो कहेछे. एते के० ए जे पूर्वे दंसमशकादिकना परिसह कह्या ते जोके० श्रीसुधर्मस्वामी जंबूप्रमुख शिष्योने बोलावी कहेछे के, जोशिष्यो कसिणफासा के०जे परिसह कह्या ते संपूर्णप्रत्ये फरुसे फरुसा दुरहियासया के० जे कठोर अहियासता दुर्जनछे एवा परिसहने अणसहेता एवा जे किवाके० क्लीव असमर्थ अवसाके० परवशे एटले कर्मना वशे पड्या थका गयागिहं के० वली गृहवासे गया. कोनीपरे ? तोके, हत्थिवासरसंविचा के० जेम हस्ती संग्रामने माथें, मस्तके शरजाले वींध्यो थको त्यांथी नाशी पाछो फरे तेम कायर साधु चारित्र थकी पाछो फरे तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ १७ ॥ इति तृतीयाऽध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्त. ॥

॥ दीपिका-( अप्पेगत्ति ) एके पूर्वोक्तविशेषणाअनार्याः पर्यंतदेशे वर्तमानं साधुं सुव्रतं ( चारोचोरित्ति ) चरोयं चोरोयमिति कृत्वा बध्नंति निक्कुकं निक्कणशीलं बालाश्च ज्ञास्तया कषायवचनैः क्रोधवचनैर्निर्भर्त्सयंति ॥ १५ ॥ ( तत्थेति ) तत्राऽनार्यदेशेऽनार्यैर्दंडेन मुष्टिना फलेन मातुलिंगादिना खड्गादिनावा संवीतः कश्चिदपरिणतः साधुर्ज्ञातीनां स्मरति। यद्यत्र मम कश्चित्संबंधी स्यात्तदा नाहमीदृशीं कदर्थनां प्राप्नुयामीति। यथा स्त्री क्रुद्धा सती स्वगृहाद्गमनशीला निराश्रया मांसपेशीव सर्वस्पृहणीया तस्करादिभिरभिद्रुतासती जातपश्चात्तापा ज्ञातीनां स्मरत्येवं साधुरपि ॥ १६ ॥ ( एतेइति )। जोइति शिष्यामंत्रणं। एते दंशमशकादयः परीसहाः स्पृश्यंते अनुभूयंते स्पर्शाः परुषाः कठिनाःदुःखेनाधिसह्यंते दुरधिसह्याहस्तिनइव शरैर्जालैः संवीताव्याप्तास्तज्यंतइति शेषः । एवं क्लीवाअसमर्थाअवशाःपरवशा.कर्मायत्ताः पश्चात्स्वगृहं गत्वा ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १७ ॥ इतिउपसर्गपरिज्ञाख्ये तृतीयाध्ययने प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ टीका—एतदेव दर्शयितुमाह । ( अप्पेगेइत्यादि ) । अपिःसंभावने । एके अनार्या आत्मदंभसमाचारामिथ्यात्वोपहतबुद्धयोरागद्वेषपरिगताः । साधुं ( पलियंतेसिंति ) अनार्यदेशपर्यंते वर्तमानं (चारोत्ति) चारोयं चौरोयं स्तेन इत्येवं मत्वा सुव्रतं कदर्थयंति । तथाहि । बध्नंति रज्वादिना संयमयंति भिक्षुकं भीक्षणशीलं बालाअज्ञाः सदसद्विवेकविकलास्तथा कषायवचनैश्च क्रोधप्रधानकटुकवचनैर्निर्भर्त्सयंतीति ॥ १५ ॥ अपिच ( तत्थदंडेणेत्यादि ) । तत्र तस्मिन्ननार्यदेशपर्यंते वर्त्तमानः साधुरनार्यैर्दंडेन यष्टिना मुष्टिना वा संवीतः प्रहतोऽथवा फलेन वा मातुलिंगादिना खड्गादिना वा ससाधुरेवं तैः कदर्थ्यमानः कश्चिदपरिणतोबालोऽज्ञोज्ञातीनां स्वजनानां स्मरति । तद्यथा । यद्यत्र मम कश्चित् संबंधी स्यात् नाऽहमेवंभूतां कदर्थनामवाप्नुयामिति । दृष्टांतमाह । यथा स्त्री क्रुद्धा सती स्वगृहात् गमनशीला निराश्रया मांसपेशीव सर्वस्पृहणीया तस्करादिभिरभिद्रुता सती जातपश्चात्तापा ज्ञातीनां स्मरत्येवमसावपीति ॥ १६ ॥ उपसंहारार्थमाह । ( एते भोइत्यादि ) । भोइति शिष्यामंत्रणं । यएतआदितः प्रभृति दंशमशकादयः पीडोत्पादकत्वेन परीषहाएवोपसर्गाअभिहिताः कृत्स्नाः संपूर्णाबाहुल्येन स्पृश्यंते स्पर्शेंद्रियेणाऽनुभूयंतइति स्पर्शाः । कथंभूताः परुषाः परुषैरनार्यैः कृतत्वात् पीडाकारिणः । तेचाऽल्पसत्वैर्दुःखेनाऽधिसह्यंते तांश्चाऽसहमानालघुप्रकृतयः केचन श्लाघामंगीकृत्य हस्तिनइव रणशिरसि शरजालसंवीताः शरशताकुलाभंगमुपयांत्येवं क्लीबाअसमर्थाअवशाः परवशाः कर्मायत्तागुरुकर्माणः पुनरपि गृहमेव गताः । पाठांतरं वा ( तिव्वसढेत्ति ) तीव्रैरुपसर्गैरभिद्रुताः शठाः शठानुष्ठानाः संयमं परित्यज्य गृहं गताइति । ब्रवीमीति पूर्ववत् । उपसर्गपरिज्ञायाः प्रथमोद्देशकइति ॥ १७ ॥

॥ अथ द्वितीयोद्देशकस्य प्रारंभः पहेला उद्देशामां प्रतिकूल उपसर्गना कारण कह्या. हवे बीजा उद्देशामां अनुकूल उपसर्गना कारण कहेले.

अहिमे सुहमा संगा, भिक्खुणं जे दुरुत्तरा ॥ जब एगे विसीयंति, णचयंतिज वित्तए ॥ १ ॥ अप्पेगे नायज दिस्स, रोयंति परिवारिया ॥ पोसणे ताय पुठोसि,कस्स तायजहासि णे ॥२॥

अर्थ—अहके० अथ हवे इमे के० ए सुहमाके० सूक्ष्म,एटले चित्तने विकार उपजावनार एवा अंतरंग प्रतिकूल उपसर्गना कारण पण बादर एटले प्रगट देखाय नही तेवा शरीरने विकार करनार उपसर्ग न जाणवा एवा संगाके० मातापितादिकनो संबंध, ते संबंधी जेके० जे भि

स्कुएंके० चारित्रियाने डुरुत्तराके० डुर्सहनीय उपसर्गछे तेज उपसर्ग कहेछे. जत्थके० जे उपसर्ग आवे थके एगेके० कोइ एक कायर चारित्रिउ, सीयंतिके० सदाय एचियंतिजवित्तएके० ते पोताना आत्माये संयमनो निर्वाह करी शके नही ॥१॥ अपि संजावनाए, एगेके० कोइएक नायउंदिस्स के० ज्ञातिला साधुने देखीने साधुने परिवारिया कें० वीटीने रोयंति के० रुदन करे एटले विलाप करे अने एम कहेके अम्हे तारुं बालपण थकी पालण पोषण कर्युं, ते अम्हे तारा ताय के० तात एटले पिता छैयें माटे एवुं जाणजे अमारी वृद्धावस्थामां; तुपण अमारुं पोषण करीश पुत्तोति के० तेमाटे हेपुत्र तुं अमारुं पोसणके० पोषण कर, तथा ते साधुना पुत्रादिक होय ते एम कहेके कस्सतायजहासिणे के० अहो तात अहोपिता तमे अमने शाकारणे ठांमोठो ? ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयआरभ्यते । पूर्वं प्रतिकूलाउपसर्गाउक्ताः इहाऽनुकूलाउच्यंते । यथा ( अहिमेति ) अथ इमे वक्ष्यमाणाः सूक्ष्माआंतरविकारिणः संगामातापित्रादयोभिक्षूणां ये डुरुत्तराडुर्लंघ्याः । यत्र येषु उपसर्गेषु एकेअल्पसत्वाविषीदंति संयमे मंदाः स्युः । नशक्नुवंति यापयितुं संयमे आत्मानं प्रवर्तयितुमिति ॥ १ ॥ (अप्पेगइति) अपिःसंजावने । एके ज्ञातयः स्वजनाः प्रव्रजंतं प्रव्रजितं वा दृष्ट्वा परिवार्य विष्टभ्य आश्रित्य रुदंति-वदंति चैवं त्वमस्माभिः पोषितोबाल्यादारभ्यावृद्धमस्माकं बालकोभविष्यसीति कृत्वा ततोऽस्मान् त्वं तातपुत्र पोषय पालय कस्य कृते केन कारणेनास्मान् त्यजसि ॥२॥

॥ टीका—उक्तः प्रथमोद्देशकः । सांप्रतं द्वितीयः समारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहोपसर्गपरिज्ञाध्ययने उपसर्गाः प्रतिपादितास्तेचानुकूलाः प्रतिकूलाश्च । तत्र प्रथमोद्देशके प्रतिकूलाः प्रतिपादिताइहत्वनुकूलाः प्रतिपाद्यंतइत्यनेन संबंधेनायातस्याऽस्योद्देशकस्याऽदिसूत्रं । (अहिमेइत्यादि) । अथेत्यानंतर्ये । प्रतिकूलोपसर्गानंतरमनुकूलाः प्रतिपाद्यंतइत्यानंतर्यार्थः । इमे त्वनंतरमेवाभिधीयमानाः प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादिदमभिधीयंते । तेच सूक्ष्माः प्रायश्चेतोविकारकारित्वेनांतरान प्रतिकूलोपसर्गाइव बाहुल्येन शरीरविकारकारित्वेन प्रकटतया बादराइति । संगामातापित्रादिसंबंधाः। यएते भिक्षूणां साधूनामपिडुरुत्तराडुर्लंघ्याडुरतिक्रमणीयाइति । प्रायोजीवितविघ्नकरैरपि प्रतिकूलोपसर्गैरुदीर्णैर्माध्यस्थ्यमवलंबयितुं महापुरुषैः शक्यमेतेत्वनुकूलोपसर्गास्तानप्युपायेन धर्माच्च्यावयंत्यतोऽमीडुरुत्तराइति । यत्र येषूपसर्गेषु सत्स्वेके अल्पसत्वाः सदनुष्ठानं प्रति विषीदंति शीतलविहारित्वं भजंते सर्वथा वा संयमं त्यजंति नैवात्मानं संयमानुष्ठानेन यापयितुं वर्तयितुं तस्मिन वा व्यवस्थापयितुं शक्नुवंति समर्था भवंतीति ॥ १ ॥ तानेव सूक्ष्मसंगान् दर्शयितुमाह । (अप्पेगेइत्यादि) अपिः संजावने। एके

तथाविधाज्ञातयः स्वजनामातापित्रादयः प्रव्रजंतं प्रव्रजितं वा दृष्ट्वोपलभ्य परिवार्य वेष्टयित्वा रुदंति रुदंतोवा वदंति च दीनं । यथा बाल्यात् प्रभृति त्वमस्माभिः पोषितोवृद्धानां पालकोभविष्यतीति कृत्वा ततोधुनानोऽस्मानपित्वं तात पुत्र पोषय पालय कस्य कृते केन कारणेन कस्यवा बलेन तातास्मान् त्यजसि नास्माकं भवंतमंतरेण कश्चिन्नाता विद्यतइति ॥ २ ॥

पिया ते थेरउ तात, ससा ते खुड्डिया इमा ॥ भायरोते सगा तात, सोयरा किं जहासि णे ॥ ३ ॥ मायरं पियरं पोस, एवं लोगो भविस्सति ॥ एवं खु लोइयं ताय, जे पालंति य मायरं ॥ ४ ॥

अर्थ-पियाते थेरउतात के० अहो तात ताहरो जे पिताछे ते थेरउ एटले मोकरो छे अर्थात वृद्धछे, तथा ससा के० बेहेन ते खुड्डिया के० न्हानीछे, इमाके० ए प्रत्यक्ष देखायछे, तथा भायरोतेसगातात के० हेतात ताह्रा सगाभाइ ते एक माताना जण्या एवा सोयरा के० सहोदर एक उदरना उपज्या, स्नेहना पात्र, तेने किंजहासिणे के० केम छांमीश ते कारण माटे तु अमने कां छांमेछे ॥ ३ ॥ तथा मायरं के० माता अने पियरं के० पिता तेने पोस के० पोषण कर एवं लोगोभविस्सति के० एरीते पर लोकनी सिद्धि थशे. एवंखुलोइयं ताय के० तथा हेतात आलोकने विषे पण निश्चय थकी एवो आचारछे के जे पालंति य मायरं के० जे संसारमांहे पोताना मातापिताउं पालणपोषणकरे, तेज श्रेष्ठ मनुष्य कहेवायछे. यतोगुरुवोयत्र पूज्यंतिइति वचनात्॥४॥

---

॥ दीपिका-पियेति। हेतात पुत्र ते तव पिता स्थविरः स्वसाभगिनी तव क्षुल्लिका लघ्वी इमे भ्रातरस्तव निजास्तात सोदराः स्वकाःसहोदराः किमस्मान् त्यजसि ॥३॥ मायरमिति। मातरं पितरं पुषाण पोषय एवंकृते तवेह लोकः परलोकश्च भविष्यति । इदमेव लौकिकं लोकसंमतं यत् वृद्धयोर्मातृपित्रोः परिपालनं । यतः । गुरवोयत्र पूज्यंते यत्र धान्यं सुसंस्कृतं ॥ अदंतकलहोयत्र तत्र शक्र वसाम्यहमिति ॥ ४ ॥

---

॥ टीका-किंच ( पियेत्यादि ) हेतातपुत्र पिता ते तव स्थविरोवृद्धः शतातीतः स्वसाच भगिनी तव क्षुल्लिका लघ्वी अप्राप्तयौवना इमा पुरोवर्तिनी प्रत्यक्षेति तथा भ्रातरस्ते तव स्वकानिजास्तात सोदराएकोदराः किमित्यस्मान् परित्यजसीति ॥ ३ ॥ तथा (मायरमित्यादि) मातरं जननीं तथा पितरं जनयितारं पुषाण बिभृहि। एवं च कृते तवेह लोकः परलोकश्च भविष्यति । तातेदमेवलौकिकं लोकाचीर्णमयमेव लौकिकः पं

था यदुत वृद्धयोर्मातापित्रोः प्रतिपालनमिति । तथाचोक्तं । गुरवोयत्र पूज्यंते यत्र धान्यं सुसंस्कृतं ॥ अदंतकलहोयत्र तत्र शक्रवसाम्यहमिति ॥ ४ ॥

उत्तरा महुरुल्लावा, पुत्ता ते तात खुड्डया ॥ भारिया ते णवा तात,
मा सा अन्नं जणं गमे ॥ ५ ॥ एहि ताय घरं जामो, माय कम्मं
सहावयं ॥ बितियं पिताय पासामो, जासु ताव सयं गिहं ॥ ६ ॥

अर्थ-एरीते उत्तर के० प्रधान तथा उत्तरोत्तर महुरुल्लावा के० मधुर जेनो आलाप छे एटले नरम वचनना बोलनारा एवा पुत्ताततेतातखुड्डया के० अहोतात तमारा पुत्र न्हानाछे, तथा भारियातेणवातात के० तमारी भार्या ते नवीन परणेलीछे ने लघुवयवालीछे, माटे माके० रखे साके० ते अन्नंजणंगमे के० अन्यजन पासे जशे तो आपणा कुलने ते कलंक लगाडशे. ॥ ५ ॥ माटे एहितायघरंजामो के० अहो तात तमे आवी घरमां रहो अने त्यां रह्या थका मायकम्मं के०कांइपण कार्य करशोमां नेवा कार्य उपने थके अम्हे तमोने सहावयं के०सहाइ थइशुं. तेमाटे एकवार गृहका र्यथी तमे भागाछो परंतु बितियंपि के० बीजी वखत तायके० हेतात अथवा हे पुत्र पासामो के० तमे जुउं के अमे शवाइ छता जोइये जे तमारो शुं बिगाड थायछे, जासुताव सयंगिहंके० तेमाटे चालो पोताने घेर जइये, एटलुं अमारुं वचन मान्यकरो. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-( उत्तराइति ) उत्तराः प्रधानाउत्तरोत्तरजातावा । मधुरोल्लापामधुरवचनास्ते तात पुत्रालघवः । तथा भार्या तव नवा नवयौवना नवोढा वा सा त्वया त्यक्ता सती नान्यं गच्छेदुन्मार्गगामिनी मास्यात् ॥ ५ ॥ (एहीति) एहि आगछ तात गृहं यामः । मात्वं किमपि कर्म कृथाः । अपितु कर्मण्युपस्थिते ते वयं सहायकाभविष्यामः । एकवारं तावद्गृहकर्मनिर्विण्णस्त्वं पुनरपि द्वितीयवारं पश्यामोऽद्ययामोयदस्माभिः सहायैर्भवतो भविष्यतीत्यतोयामस्तावत्स्वकं निजंगृहं ॥ ६ ॥

॥ टीका-अपिच । ( उत्तरेत्यादि ) उत्तराः प्रधानाउत्तरोत्तरजातावा मधुरोमनोज्ञउल्लापआलापोयेषांते तथाविधाः पुत्रास्ते तव तातपुत्र क्षुल्लकालघवः । तथा भार्यापत्नी ते नवा प्रत्यग्रयौवना अतिनवोढा वा मासौ त्वया परित्यक्ता सत्यन्यं जनं गच्छेदुन्मार्गयायिनी स्यादयं च महाजनापवादइति ॥ ५ ॥ अपिच । ( एहीत्यादि ) जानीमोवयं यथा त्वं कर्मभीरुस्तथाप्येहि आगच्छ गृहं यामोगच्छामः । मात्वं किमपि सांप्रतं कर्मकृथाः अपितु तव कर्मण्युपस्थिते वयं सहायकाभविष्यामः साहाय्यं करिष्यामः । एकवारं ताव द्गृहकर्मनिर्विण्णस्त्वं तात पुनरपि द्वितीयवारं पश्यामोऽद्ययामोयदस्माभिः सहायैर्भवतोभविष्यतीत्यतोयामोगच्छामस्तावत् स्वकं गृहं कुर्वे तदस्म वचनमिति ॥ ६ ॥

गंतुं ताय पुणो गच्छे, णय तेणासमणोसिया ॥ अकामगं परि
कम्मं, कोउते वारेउमरिहति ॥७॥ जं किंचि अणगं तात, तंपि
सवं समीकतं ॥ हिरण्णं ववहाराइ, तंपि दाहासु ते वयं ॥ ८ ॥

अर्थ-गंतुंताय के० तेमाटे अहो तात एकवार घेर जइने पुणोगच्छे के० वली फरी आवीने यति थाजो णयतेणासमणोसिया के० एटलुं कीधा थकी अश्रमणपणु न थाय; जो तमे अकामगं के० गृह व्यापारनी इच्छारहित परिकम्मं के० पोतानुं मन मान्यु अनुष्ठान करशो, तो तमने कोउतेवारेउमरिहति के० कोण वारवाने समर्थ छे अथवा अकामगं के० वृद्धावस्थायें विषयाभिलाष निवर्त्ते थके परिकम्मं के० संयमानुष्ठानने विषे पराक्रम करजो, केमके तेवखत धर्म करवाने योग्य छे; तेवारे कोतेवारेउ मरिहतिके० तमोने कोइ पण वारवाने समर्थ थशे नही ॥७॥ जंकिंचिअणगंतातके० वली अहो तात जेकांइ तमारा उपर रुण एटले लेणुहतुं तंपिसवंके० तेपण अमे सर्व देवुं समीकितं के० समुंकीधुं, एटले मागनाराउनुं सर्व लेणुं चुकावी दीधुं छे, तथा हिरन्नंववहाराइ के० जे व्यवहारने कार्यें अथवा अन्य कोइ भोगोपभोगने अर्थे सुवर्ण रूपादिक खपमां लागशे तंपि के० तेपण सर्व अमे तेवयं के० तमोने दाहासुके० आपीशुं ॥८॥

॥ दीपिका-( गंतुमिति ) तात गत्वा गृहं स्वजनवर्गं दृष्ट्वा पुनर्गतासि नच तेनैतावता गृहगमनमात्रेण त्वश्रमणोभविष्यसि । अकामकं गृहव्यापारेच्छारहितं पराक्रमंतं स्वाभिप्रेतानुष्ठानं कुर्वाणं कोवारयितुमर्हति । एकवारं गृहमागत्य पुनर्यथोचितं कुर्याइति भावः । अथवा अकामकं वृद्धावस्थायां मदनेच्छारहितं पराक्रमंतं संयमे प्रवर्तमानं त्वां कोवारयितुमर्हति ॥७॥ (जंकिंचिदिति) यत्किंचित्तव ऋणमासीत्तदस्माभिर्विभज्य समीकृतं समभागेण व्यवस्थापितं । यच्च हिरण्यं द्रव्यं व्यवहारादावुपयुज्यते तदपि वयं तव दास्यामः ॥८॥

॥ टीका-किंच । ( गंतुमित्यादि ) । तात पुत्र गत्वा गृहं स्वजनवर्गं दृष्ट्वा पुनरागंतासि नच तेनैतावता गृहगमनमात्रेण त्वश्रमणोभविष्यसि । ( अकामगंति ) अनिच्छंतं गृहव्यापारेच्छारहितं पराक्रमंतं स्वाभिप्रेतानुष्ठानं कुर्वाणं कस्त्वां भवंतं वारयितुं निषेधयितुमर्हति योग्योभवति । यदिवा ( अकामगंति ) वार्द्धकावस्थायां मदनेच्छाकामरहितं पराक्रमंतं संयमानुष्ठानं प्रति कस्त्वामवसरप्राप्ते कर्मणि प्रवृत्तं धारयितुमर्हतीति ॥ ॥७॥ अन्यच्च (जंकिंचिइत्यादि) । तात पुत्र यत्किमपि भवदीयमृणजातमासीत्तत्सर्वमस्माभिः सम्यग्विभज्य समीकृतं समभागेन व्यवस्थापितं । यदिचोत्कटं सत् समीकृतं सुदेयत्वेन व्यवस्थापितं यच्चहिरण्यं द्रव्यजातं व्यवहारादावुपयुज्यते । आदिशब्दात् येनवा प्रकारेण तवोपयोगं यास्यति तदपि वयं दास्यामोनिर्धनोहमिति माकृथाभयमिति ॥ ८ ॥

इच्चेव एं सुसेहंति, कालुणीयसमुठिया ॥ विबद्धो नायसंगेहिं,
ततो गारं पहावइ ॥ ९ ॥ जहा रुक्खं वणे जायं, मालुया पडि
बंधई ॥ एव एं पडिबंधंति, णातओ असमाहिणा ॥ १० ॥

अर्थ–इच्चेवके० एरीते वचनेकरी, एंइति वाक्यालंकारे. ते सर्व पुत्रादिक सुके० रुडीरी ते सेहंति के० शीखवे कालुणीय के० करुणाकारे एवावचने समुठिया के० पोते ते पुत्रादिक दीनपणाने नावे पांहोंच्या ठतां, एम पूर्वोक्त रीते कहे, तेथी ते नायसंगेहिं के० ते ज्ञाति गोत्रीजे पुत्रादिक तेना संगे करी, विबद्धो के० बांध्योठतो ततोके० तेवारे ते अल्प सत्ववंत कायर साधु, तेमना वचने मोहित थयो ठतो आगारंपहावइ के० आगार नणी ध्यावे, एटले घरवास मांमीने संयमने ठांमे ॥ ९ ॥ वळी जहा के० जेम वणेजायं के० वनने विषे उत्पन्न थयु एवुजे रुक्खं के० वृक्ष ते मालुया के० वेलडीओ तेणेकरी पडिबंधई के० बंधाय, एटले वेलडीयें करी वींटाय, एव के० एम, एंइति वाक्यालंकारे. णातओ के० जाति स्वजनादिक जे ठे ते साधुने असमाहिणा के० असमाधियेकरी पडिबंधंति के० बांधीजाये संयमथकी भ्रष्ट करे इत्यर्थः ॥ १० ॥

॥ दीपिका–( इच्चेवेति ) णवाक्यालंकारे । इत्येव पूर्वोक्तनीत्या स्वजनाः करुणामुत्पादयंतीति कारुणिकाः समुपस्थिताः प्राप्तास्तं साधुं ( सुसेहंति ) सुष्ठु शिक्षयंति व्युद्ग्राहयंति । सचाऽपरिणतधर्माऽल्पसत्वोगुरुकर्मा जातिसंगैर्विबद्धोमोहितस्ततोऽगारंगृहं ( पधावइत्ति ) प्रव्रज्यां त्यक्त्वा गृहे यातीत्यर्थः ॥ ९ ॥ ( जहेति ) यथा वने जातं वृक्षं मालुयावल्ली प्रबध्नाति वेष्टयति । एवं ज्ञातयस्तं साधुमसमाधिना प्रतिबध्नंति । तत्कुर्वंति येनास्याऽसमाधिरुत्पद्यते । यदुक्तं । अमित्तो मित्तवेसेण कंठे घेत्तूण रोयइ । मामित्तासोगईजाई. दोविगच्छासुडुग्गई इति ॥ १० ॥

॥टीका–उपसंहारार्थमाह (इच्चेवणमित्यादि)।णमितिवाक्यालंकारे।इत्येव पूर्वोक्तया नीत्या मातापित्रादयः कारुणिकैर्वचोभिः करुणामुत्पादयंतः स्वयंवा दैन्यमुपस्थितास्तं प्रव्रजितं प्रव्रजंतं वा ॥ (सुसेहंतित्ति) सुष्ठु शिक्षयंति व्युद्ग्राहयंति । सचापरिणतधर्माऽल्पसत्वो गुरुकर्मा ज्ञातिसंगैर्विबद्धोमातापितृपुत्रकलत्रादिभिर्मोहितस्ततोगारं गृहं प्रति धावति प्रव्रज्यां परित्यज्य गृहपाशमनुबध्नातीति ॥९॥ किंचान्यत् । ( जहारुरुक्खमित्यादि ) । यथा वृक्षं वने अटव्यां जातमुत्पन्नं मालुयावल्ली प्रतिबध्नाति वेष्टयत्येव । णमितिवाक्यालंकारे । ज्ञातयः स्वजनास्तं यतिं असमाधिना प्रतिबध्नंति ते तत्कुर्वंति येनास्यासमाधिरुत्पद्यतइति । तथा चोक्तं । अमित्तो मित्तवेसेण, कंठे घेत्तूण रोयइ । मामित्तासोगई जाइ, दोविगच्छासु डुग्गई ॥ १० ॥

विबद्धो नातिसंगेहिं, हत्थीवावि नवग्गहे ॥ पिठतो परिसप्पंति,
सुयगोव्व अदूरए ॥ ११ ॥ एतेसं गा मणूसाणं, पातालाव अ
तारिमा ॥ कीवा जत्थ य किस्संति, नायसंगेहिं मुच्छिया ॥ १२ ॥

अर्थ–पछीते नातिसंगेहिं के० ज्ञाति गोत्रीनी संगते करी विबद्धो के० विविध प्रकारे बंधाणो थको परवश थयो, एटले तेमना अनुकूल वचने करी मनने विषे धृति उपजी तेणे करी बंधाणो हत्थीवाविनवग्गहे के० जेम नवा ग्रहण करेला हस्तिने, जो इक्षुखंडादिकनो आहार करावियें तो नवा बंधने करी बंधाय अथवा मधुर वचने करी उपचारियें तेवारे ते बंधननो अंगीकार करे तेम अंही पण ए दृष्टांते ते ज्ञाति गोत्रि जे पुत्रादिकछे ते सुयगोव्व के० नवप्रसूत गायनीपेरे जेम तेगाय पोताना बालक थकी अदूरए के० दूर नजाय, तेम ते पिठतोपरिसप्पंति के० पुत्रादिक तेसाधुने व्य ...हमां पाडवाने अर्थें पछवाडे लाग्याज फरता रहे ॥ ११ ॥ हवे संगनो दोष कहेछे, एतेसंगा के० ए पूर्वोक्त मातापितापुत्रादिकनो जे संगम छे ते मणूसाणं के० मनुष्यने पातालाव के० पाताल समुद्रनी पेरे अतारिमा के० तरतां दुस्तर जाणवो जत्थय के० जे संगमने विषे मनुष्य कीवा के० क्लीब असमर्थ छतां किस्संति के० क्लेश पामेछे, ते केवाछता क्लेशपामेछे, तोके नायसंगेहिंमुच्छिया के० ज्ञाति स्वजनने संगे गृद्ध मूर्छित छतां संसार मांहे क्लेश पामेछे. ॥ १२ ॥

---

॥ दीपिका–( विबद्धइति ) । ज्ञातिसंगैर्विबद्धोविशेषेण बद्धः । तेच ज्ञातयस्तस्मिन्नवसरे तस्य सर्वमनुकूलमनुतिष्ठंति । यथा हस्ती नवग्रहे धृत्युत्पादनार्थं इक्षुखंडादिनिरुपचर्यते तथाऽसावप्युपचर्यते । यथाऽचिरप्रसूता गौर्निजवत्सस्यादूरगा समीपवर्तिनीसती पृष्ठतः परिसर्पति एवं स्वजनाअपि तन्मार्गानुगाः स्युः ॥ ११ ॥ ( एतेति ) एते पूर्वोक्ताः संगाः पित्रादिसंबंधामनुष्याणां पातालाः समुद्राइव अतारिमाडुस्तराः संति क्लीबाअसमर्थाः। यत्र येषु संगेषु क्लिश्यंति क्लेशमनुभवंति ज्ञातिसंगैर्मूर्छिताः ॥ १२ ॥

---

॥ टीका–अपिच । (विबद्धइत्यादि) विविधं बद्धः परवशीकृतः विबद्धोज्ञातिसंगैर्मातापित्रादिसंबंधैस्तेच तस्य तस्मिन्नवसरे सर्वमनुकूलमनुतिष्ठंतोधृतिमुत्पादयंति । हस्तीवापि नवगृहे अचिरग्रहणे धृत्युत्पादनार्थमिक्षुशकलादिभिरुपचर्यते । एवमसावपि सर्वानुकूलैरुपायैरुपचर्यते । दृष्टांतांतरमाह । यथाऽचिरप्रसूता गौर्निजस्तनंधयस्यादूरगा समीपवर्तिनी सती पृष्ठतः परिसर्पत्येवं तेपि निजाश्चप्रव्रजितं पुनर्जातमिव मन्यमानाः पृष्ठतोनुसर्पंति तन्मार्गानुयायिनोभवंतीत्यर्थः॥११॥ संगदोषदर्शनायाह । (एतेसंगाइत्यादि )

एते पूर्वोक्ताः सज्यंतइति संगाः मातृपित्रादिसंबंधाः कर्मोपादानहेतवः मनुष्याणां। पातालाइव समुद्रइवाप्रतिष्ठितभूमितलत्वात् ते (अतारिमत्ति) डुस्तराएवमेतेपि संगाअल्पसत्वैर्डुःखेनातिलंघ्यंते । तत्रच येषु संगेषु क्लीबाअसमर्थाः क्लिश्यंति क्लेशमनुभवंति संसारांतर्वर्तिनोनवंतीत्यर्थः । किंनूताः ज्ञातिसंगैः पुत्रादिसंबंधैर्मूर्छितागृध्राअध्युपपन्नाः संतोन पर्यालोचयंत्यात्मानं संसारांतर्वर्तिनमेव क्लिश्यंति ॥ १२ ॥

तं च भिक्खू परिन्नाय, सबे संगा महासवा॥ जीवियं नाव कंखिक्का, सोच्चा धम्ममणुत्तरं ॥ १३ ॥ अहिमे संति आवट्टा, कासवेणं पवेइया॥ बुद्धा जच वसप्पंति, सीयंति अबुहा जहिं ॥१४॥

अर्थ—तंचके० तेमाटे भिक्कूके० जे साधु होय ते ज्ञाती स्वजनादिकना समागमने परिन्नाय के० ज्ञ परिज्ञायें करी संसारनुं कारण जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे केमके, ए सबसंगा के० समस्त समागमो जे ने ते महासवा के० महाश्रव मस्होटा कर्मोना स्थानको जाणवा. ते कारण माटे जीवियंनावकंखिक्का के० अनुकूल उपसर्गेआवे थके पण, असंयमे जीवितव्य वांढे नही, एटले गृहस्थावासनी वांडा साधु करे नही; शुं करीने तो के अणुत्तरं के० अनुत्तर एटले प्रधान एवो धम्मं के० श्रीजिनधर्म तेने सोच्चा के० सांजलीने असंयम वांढे नही ॥ १३ ॥ अहके० अथ एटले हवे अथवा पाठांतरे अहो इति विस्मयें इमेके० ए प्रत्यक्ष समस्त जन प्रसिद्ध संति के० ढे एवा आवट्टा के० आवर्त एटले जेम नदीने विषे पाणीना आवर्त होय, तेम अहीं उत्कृष्ट मोहनीयना उदय थकी उत्पन्न थया जे विषयाभिलाषरूप आवर्त, ते जीवने संसार मांहे बुडवाना स्थानक जाणवा. ए कासवेणं के० काश्यपगोत्री श्रीवर्द्धमान स्वामी तेणे पवेइया के० प्रवेदिता एटले कह्या ढे जच के० जे थकी बुद्धा के० पंमित तत्वना जाण ते अवसप्पंति के० दूर थाय ढे; अने अबुहा के० अबुद्ध एटले अज्ञानी लोक ते जहिं के० जे आवर्त्तने विषे सीयंति के० सदाय भ्रममां पडीने बुडेढे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–( तंचेति ) तंच भिक्षुर्ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् । यतः सर्वे संगामहाश्रवाः कर्मबंधहेतवस्ततोऽसंयमजीवितं नावकांक्षेत नाभिलषेत् श्रुत्वा धर्ममनुत्तरं प्रधानं ॥ १३ ॥ ( अहिमेइति ) । अथ इमे आवर्तामोहपाशाः संति काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदिताः कथिताः । यत्र येषु संगेषु सत्सु बुधास्तत्वज्ञाअपसर्पंति तद्दूरगामिनः स्युः । अबुधाअज्ञास्तु तत्र सीदंति आसक्ताः स्युः ॥ १४ ॥

॥टीका–अपिच। (तंचेत्यादि)। तंच ज्ञातिसंगं संसारैकहेतुं भिक्षुर्ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यान

परिज्ञया परिहरेत् । किमिति यतः सर्वेपि केचन संगास्ते महाश्रवामहांति कर्मणआ श्रवद्वाराणि वर्त्तंते । ततोनुकूलैरुपसर्गैरुपस्थितैरसंयमजीवितं गृहावासपाशं नाभि कांक्षेत नाभिलपेत् । प्रतिकूलैश्चोपसर्गैः सद्भिर्जीविताभिलाषी नचवेदसमंजसकारित्वेन न वजीवितं नाभिकांक्षेत् । किंकृत्वा श्रुत्वा निशम्यावगम्य । कंधर्मं श्रुतचारित्राख्यं । नास्यो त्तरोस्तीत्यनुत्तरं प्रधानं मौनींद्रमित्यर्थः ॥ १३ ॥ अन्यच्च । (अहिमेत्यादि) । अथेत्यधिका रांतरदर्शनार्थः । पाठांतरं वा अहोइति तच्चविस्मये । इमे इतिप्रत्यक्षासन्नाः सर्वजनविदि तत्वात् संति विद्यंते वक्ष्यमाणाश्चावर्तयंति प्राणिनं भ्रामयंतीत्यावर्तास्तत्र द्रव्यावर्ता नद्यादेर्भावावर्तास्तूत्कटमोहोदयापादितविषयाभिलाषसंपादकसंपत्प्रार्थनाविशेषाएतेचाव र्ताः काश्यपेन श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिनाऽनुत्पन्नदिव्यज्ञानेनावेदिताः कथिताः प्रतिपादिताः । यत्र येषु सत्सु बुद्धाश्चवगततत्त्वाश्चावर्तविपाकवेदिनस्तेभ्योवसर्पंते । अप्र मत्ततया तद्दूरगामिनोभवंत्यबुद्धास्तु निर्विवेकतया येष्ववसीदंत्यासक्तिं कुर्वंतीति ॥ १४॥

रायाणो रायमच्चाय, माहणा अडुव खत्तिया ॥ निमंतियंति भो गेहिं, भिरकूणं साहु जीविणं ॥ १५ ॥ हत्थस्स रहजाणेहिं, वि हारगमणेहिया ॥ भुंजभोगे इमे सग्घे, महरिसी पूजयामु तं ॥१६॥

अर्थ–हवे ते आवर्त्त कहेछे. रायाणोराय के० राजाना राजा जे चक्रवर्ति प्रमुख तथा राजाना मच्चाय के० अमात्य मंत्रीश्वरप्रमुख तथा माहणा के० ब्राह्मण ते पुरोहित प्रमुख अथवा खत्तिया के० क्षत्रीते इक्ष्वाकुकुलप्रमुख वंशने विषे उत्पन्न थयला एवा पुरुषो ते भिरकूणंजीविणं के० साधुने आचारे प्रवर्तता एवा साहु के० साधुउने भोगेहिं के० भोगे करी निमंतियंति के० ब्रह्मदत्ते जेम चित्र साधुने निमंत्रण कर्युं तेनी पेरे निमं त्रण करे ॥ १५॥ हवे जेरीते भोगे करी निमंत्रे ते देखाडेछे. हत्थस्सके० हस्ती घोडा रह के० रथ यानके० पालखी प्रमुख, एटले करी निमंत्रण करे भोलवे विहारगमणेहिय के० उद्यानादिकने विषे क्रीडादिक हेतुये गमन करवाने अर्थे, तथा अन्य इंद्रियोने अनुकूल एवा विषयसुखने अर्थे निमंत्रण करे अने कहेके इमे के० आ प्रत्यक्ष सग्घे के० श्लाघनीय भोगे के० भोग ते तमे भुंजके० भोगवो; महरिसी के० अहो महर्षि एटले प्रकारे करीने पूजयामुतं के० अमें तमोने पूजीये छैये ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–( रायाणोत्ति ) । राजानोराजामात्यामंत्रिणोब्राह्मणाः अथवा क्षत्रियाः शेषभृत्याः । एते सर्वेपि भिक्षुकं साधुजीविनं साध्वाचारेण जीवनशीलं साधुं भोगैर्निमंत्रयं ति भोगाश्चांगीकारयंति । यथा ब्रह्मदत्तचक्रिणा चित्रसाधुर्भोगैर्निमंत्रितइति ॥१५॥ तथा

(हत्थस्सेति)। हस्त्यश्वरथयानैस्तथा विहारगमनैः क्रीडादिगमनैः साधुं निमंत्रयंतीति। यथा। त्वं भुंक्ष्व भोगान् इमान् श्लाघ्यान् हे महर्षे वयं त्वां पूजयामः सत्कारयामः॥१६॥

॥ टीका–तानेवावर्तान् दर्शयितुमाह। (रायाणोइत्यादि)। राजानश्चक्रवर्त्यादयो राजामात्याश्च मंत्रीपुरोहितप्रभृतयस्तथा ब्राह्मणाअथवा क्षत्रियाइक्ष्वाकुवंशप्रभृतयः। एते सर्वेपि भोगैः शब्दादिविषयैर्निमंत्रयंति भोगोपभोगं प्रत्यभ्युपगमं कारयंति के भिक्षुकं (साधुजीविणमिति)। साध्वाचारेण जीवितुं शीलमस्येति साधुजीविनमिति। यथा ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिना नानाविधैर्भोगैश्चित्रसाधुरुपनिमंत्रितइत्येवमन्येपि केनचित्संबंधेन व्यवस्थितायौवनरूपादिगुणोपेतं साधुं विषयोद्देशेनोपनिमंत्रयेयुरिति ॥ १५ ॥ एतदेव दर्शयितुमाह। (हत्थस्सरहेत्यादि)। हस्त्यश्वरथयानैस्तथाविहारगमनैः विहरणं क्रीडनं विहारस्तेन गमनान्युद्यानादौ क्रीडया गमनानीत्यर्थः। चशब्दादन्यैश्चेंद्रियानुकूलैर्विषयैरुपनिमंत्रयेरंस्तद्यथा भुंक्ष्व भोगान् शब्दादिविषयानिमानस्माभिर्ढौकितान् प्रत्यक्षासन्नान् श्लाघ्यान् प्रशस्तान् ननिंद्यान् महर्षेसाधो वयं विषयोपकरणढौकनेन त्वां भवंतं पूजयामः सत्कारयामइति ॥ १६ ॥

वत्थगंधमलंकारं, इत्थीउ सयणाणिय ॥ भुंजाइं माइं भोगाइं,
आउसो पूजयामुतं ॥ १७ ॥ जो तुमे नियमो चिन्नो, भिक्खुभावं
मि सुव्वया ॥ अगारमावसंतस्स, सव्वो संविजए तहा ॥ १८ ॥

अर्थ–वली वत्थ के० वस्त्र भीना विना चीन अंशुकादिक अने गंध के० गंध ते कपूरादिक तथा अलंकारं के० आभूषण ते केयूरादिक तथा इत्थीउ के० स्त्री ते नवयौवना अने सयणाणिय के० शयन ते पर्यंकतूलिकादिक भुंजाइंमाइंभोगाइं के० इत्यादिक ए प्रत्यक्ष भोग भोगवो; आउसो के० अहो आयुष्मन् साधु पूजयामुतं के० एटले प्रकारे करी अमे तमने पूजीये ठैये ॥ १७ ॥ जोतुमे नियमोचिन्नो के० अहो साधु जो तमे पूर्वे महाव्रतादिकरूप नियम आचख्योछे, भिक्खुभावंमि के० ते भिक्षुने भावे संयमने अवसरे आचख्योछे, सुव्वया के० हे सुव्रति अगारमावसंतस्स के० ते आगार गृहस्थावासे वसता पण सव्वो संविज्जएतहा के० सघलो तेमजछे सुकृत अथवा दुष्कृत जे करवां तेनो नाश नथी ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–(वत्थेति), वस्त्राणि गंधाः सुगंधचूर्णानि वस्त्रगंधं अलंकारं केयूराद्याभरणं तथा स्त्रियः शयनानि पर्यंकादीनि इमान्भोगांस्त्वं भुंक्ष्व। हेआयुष्मन् त्वां एभिः पूजयामः ॥१७॥ (जोतुमेति) यस्त्वयापूर्वं भिक्षुभावे नियमोमहाव्रतरूपश्चीर्णोऽनुष्ठितः अगारं गृहं आवसतस्तव सर्वोपि विद्यते नहि सुकृतस्याऽनुचीर्णस्य नाशोस्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥

॥ टीका—किंचान्यत्। वस्त्रगंधेत्यादि। वस्त्रं चीनांशुकादि गंधाः कोष्ठपुटपाटकादयः वस्त्राणि च गंधाश्च वस्त्रगंधमिति समाहारद्वंद्वः। तथा अलंकारं कटककेयूरादिकं तथा स्त्रियः प्रत्यग्रयौवनाः शयनानि च पर्यंकतूलीप्रवरपटोपधानयुक्तानि इमान् भोगानिंद्रियमनोनुकूलानस्माभिर्ढौकितान् भुंक्ष्व तडुपभोगेन सफलीकुरु हेआयुष्मन् नवंतं पूजयाम सत्कारयामइति ॥ १७ ॥ अपिच ( जोतुमेइत्यादि ) यस्त्वया पूर्वं भिक्षुभावे प्रव्रज्यावसरे नियमोमहाव्रतादिरूपश्चीर्णोनुष्ठितः इंद्रियनोइंद्रियोपशमगतेन हेसुव्रत सांप्रतमप्यगारं गृहमावसतोगृहस्थनावं सम्यगनुपालयतोभवतस्तथैव विद्यतइति । नहि कृतस्यानुचीर्णस्य नाशोस्तीति भावः ॥ १८ ॥

चिरं दूइज्जमाणस्स, दोसोदाणिं कुतो तव ॥ इच्चेव णं निमंते
ति, नीवारेणव सूयरं ॥ १९ ॥ चोइया भिक्खचरिया, अचयंता
जवित्तए ॥ तच मंदा विसीयंति, उज्जाणंसिव डुब्बला ॥ २०॥

अर्थ—चिरंदूइज्जमाणस्स के० घणो काल संयमानुष्ठाने करी विचरता तमने दोसोदाणिंकुतोतव के० हमणा दोपनी प्राप्ति क्यांथी थशे एटला दिवस सुधी घणा व्रत पाल्यांछे इच्चेवणं के० इत्यादिक भोग योग्य पदार्थोंये करी निमंतेति के० ते साधुने निमंत्रण करे ते उपर दृष्टांत कहेछे नीवारेणवसूयरं के० जेम नीवार एटले व्रीहिना कण तेणे करी सूयरने कूटबंधमां पाडे तेम चारित्रियाने संयम थकी भ्रष्ट करी संसाररूप पाश बंधनमां नाखे ॥१९॥ चोइयाके० संयमने विषे वारंवार प्रेख्या छतां पण भिरकूके० चारित्रिया चरियाए के० साधुनी समाचारीने विषे अचयंता के० असमर्थ जवित्तए के० संयमरूप भारनो निर्वाह करवाने अशक्त छता तत्र के० ते मुक्ति पंथने विषे मंदा के० कोइएक मंद अज्ञानी कायर चारित्रिउ होयते विसीयंति के० सीदाय एटले सीतल विहारी थाय. ते उपर दृष्टांत कहेछे. उज्जाणंसीव के० जेम मार्गने विषे उंचे स्थानके आवे थके डुब्बला के० दुर्बल बलदिया गाम्लाने भारे पीडया थका सीदाय गाबडनाखी नीचे पडे, तेम साधु मंद चारित्रिउ महाव्रतनो भार नाखी संसारमांहे पडे ॥ २० ॥

---

॥ दीपिका—( चिरमिति ) चिरं बहुकालं ( दूइज्जमाणस्सेति ) संयमक्रियया विहरतस्तवेदानीं कुतोदोषोनैवास्तीत्यर्थः । इत्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण ज्ञातयः साधुं निमंत्रयंति । यथा नीवारेण व्रीहिविशेषेण सूकरं वराहं कूटे पातयंति एवं साधुमपि ॥ १९ ॥ ( चोइयाइति ) भिक्षुसमाचर्यया साधुसमाचर्यया प्रेरिताः संयमानुष्ठानेनात्मानं यापयितुं

वर्तयितुमशक्नुवंतस्तत्र संयमे मंदाविषीदंति शीतलविहारिणः स्युः। यथा उद्याने क र्ध्वस्थलभूमौ उत्क्षिप्तमहाभाराबलीवर्दाश्चतिष्ठवेलाः सीदंति ग्रीवां पातयित्वा तिष्ठं त्येवं साधवोपि ॥ २० ॥

॥ टीका–किंच ( चिरमित्यादि )। चिरं प्रभूतकालं संयमानुष्ठानेन ( डुइज्जमाणस्सत्ति) विहरतः सतइदानीं सांप्रतं दोषः कुतस्तव नेवास्तीति भावः। इत्येवं हस्त्यश्वरथादि भिर्वस्त्रगंधालंकारादिभिश्च नानाविधैरुपभोगोपकरणैः करणभूतैः। णमितिवाक्यालंकारे। तं भिक्षुं साधुजीविनं निमंत्रयंति भोगबुद्धिं कारयंति। दृष्टांतं प्रदर्शयति। यथा नीवारे ण व्रीहिविशेषकणदानेन सूकरं वराहं कूटके प्रवेशयंत्येवं तमपि साधुमपि ॥ १९ ॥ अनंतरोपन्यस्तवार्तोपसंहारार्थमाह। ( चोदिताइत्यादि )। भिक्षूणां साधूनामुद्युक्तवि हारिणां चर्या दशविधचक्रवालसामाचारी इच्छामिच्छेत्यादिका तया भोदिता प्रेरिता। यदि वाभिक्षुचर्यया करणभूतया सीदंतश्चोदितास्तत्करणं प्रत्याचार्यादिकैः पौनःपुन्येन प्रेरितास्त च्चोदनामशक्नुवंतः संयमानुष्ठानेनात्मानं यापयितुं वर्तयितुमसमर्थाः संतस्तत्र तस्मिन् संयमे मोक्षैकगमनहेतौ नवकोटिशतावासैर्मंदाजडाविषीदंति शीतलविहारिणोभवं ति तमेवाचिंत्यचिंतामणिकल्पं महापुरुषानुचीर्णं संयमं परित्यजंति। दृष्टांतमाह। क र्ध्वयानंमुद्यानं।मार्गस्योन्नतोभाग उट्टंकमित्यर्थः। तस्मिन् उद्यानशिरसि उत्क्षिप्तमहाभरा वहाणोतिष्ठवेलायथावत्सीदंति ग्रीवां पातयित्वा तिष्ठंति भोत्क्षिप्तभरनिर्वाहकाभवंतीत्येवं तेपि भावमंदाउत्क्षिप्तपंचमहाव्रतभारं वोढुमसमर्थाः पूर्वोक्तभवावर्तैःपराजग्नाविषीदंति २०

अचयंतावलूहेण, उवहाणेण तज्जिया॥ तत्त मंदा विसीयंति, उ ज्जाणंसि जरग्गवा ॥ २१ ॥ एवं निमंतिए लडु, मुच्छिया गिद्ध इ त्थीसु ॥ अज्झोववन्ना कामेहिं, चोइज्जंता गयागिहं तिबेमि ॥२२॥ इति उवसग्गपरिन्नाए बितिउद्देसो सम्मत्तो ॥ २ ॥

अर्थ–एरीते अचयंतावलूहेण के० संयमने निर्वाह करवा अशक्त, तथा उवहा णेण के० बाह्याभ्यंतर तपे करीने तज्जिया के० पीडया थका तत्त के० ते संयमने विषे, मंदा के० कोइएक मंद अज्ञानी विसीयंतिके० सीदाय; कोनीपेरे तोके उज्जाणंसि के० जेम उद्यान एटले उर्ध्वस्थलभूमिने मस्तके आवे तेवारे जरग्गवा के० गरढो मोकरो वृषभ सीदाय, अने भारनी पीडायें पीड्यो थको तो तरुण बलद पण सीदाय तो जर ग्गव एटले मोकरो बलद सीदाय तेमां केहुंजसुं; ॥२१॥ एवंनिमंतिएलडु के० ए पूर्वो करीते कामभोगादिकें करी निमंत्रण लेइने ते कामभोगने विषे मुच्छियाके० मूर्छित थका

तथा गिद्धइत्थीसु के० स्त्रीने विषे गृद्ध एटले अत्यंत आसक्त थता तथा अज्झोववन्ना कामेहिं के० कामभोगने विषे अध्युपपन्न एटले तेनेविषे रागी होय तेने विवेकी पुरुषे चोइज्जंता के० चोयणा करी थति ते चोयणा सहन करी शके नही, एवा मंद चारित्रिया, ते संयम छांमीने गयागिहं के० नागा थका, फरी घरवास अंगीकार करे. त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इतिश्री उवसग्गपरिन्नाए बितिउद्देशः समाप्तः

॥ दीपिका-( अचेति ) रूक्षेण संयमेनात्मानं यापयितुमशक्नुवंतउपधानेन तर्जिताः पीडिताः संतस्तत्र संयमे मंदाविषीदंति स्थलभूमौ यथा जरज्जवाजीर्णबलीवर्दाः । तरुणस्यापि तत्रसीदनं संभवति किंपुनर्जीर्णस्येति जीर्ण ग्रहणं । तथा समर्थानां विवेकिनामपि संयमे सीदनं संभाव्यते किंपुनर्मंदानामिति ॥ २१ ॥ ( एवमिति ) एवं पूर्वोक्तं निमंत्रणं भोगं प्रति प्रार्थनं लब्ध्वा प्राप्य तेषु मूर्छिताआसक्ताः स्त्रीषु गृद्धादत्तोपयोगा रमणीरागमोहितास्तथा कामेषु इच्छामदनेषु अध्युपपन्नाः कामानुगतचित्ताः संयमं प्रति प्रेरणां सोढुमसमर्थाः प्रव्रज्यां त्यक्त्वा गृहंगता गृहस्थीभूताइति । ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥२२॥ इति उपसर्गपरिज्ञाख्ये तृतीयाध्ययने द्वितीयोद्देशकः समाप्तः

॥ टीका-किंच । ( अचयंताइत्यादि ) रूक्षेण संयमेनात्मानं यापयितुमशक्नुवंतः स्तथोपधानेनानशनादिना सबाह्याभ्यंतरेण तपसा तर्जिताबाधिताः संतस्तत्र संयमे मंदाविषीदंत्युद्यानशिरस्युद्धंकमस्तके जीर्णोदुर्बलोगौरिव यूनोपि हि तत्रावसीदनं संभाव्यते किंपुनर्जरद्गवस्येति जीर्णग्रहणं । एवमावर्तमंतरेणापि धृतिसंहननोपेतस्य विवेकिनोप्यवसीदनं संभाव्यते किंपुनरावर्तैरुपसर्गितानां मंदानामिति ॥ २१ ॥ सर्वोपसंहारमाह । ( एवमित्यादि ) । एवं पूर्वोक्तया नीत्या विषयोपभोगोपकरणं दानपूर्वकं निमंत्रणं विषयोपभोगंप्रति प्रार्थनं लब्ध्वा प्राप्य तेषु विषयोपकरणेषु हस्त्यश्वरथादिषु मूर्छिताअत्यंतासक्तास्तथा स्त्रीषु गृद्धादत्तावधानारमणीरागमोहितास्तथा कामेषु इच्छामदनरूपेष्वध्युपपन्नाः कामगतचित्ताः संयमेऽवसीदंतोऽपरेणोद्युक्तविहारिणोनोद्यमानाः संयमं प्रति प्रोत्सह्यमानानोदनं सोढुमशक्नुवंतः संतोगुरुकर्माणः प्रव्रज्यां परित्यज्याल्पसत्वा गृहं गतागृहस्थीभूताः ॥ इतिपरिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥

हवे त्रीजा अध्ययननो त्रीजो उद्देशो प्रारंभिये छेयें.

जहा संगामकालंमि, पिठतो भीरु वेहइ ॥ वलयं गहणं णूमं, कोजाणइ पराजयं ॥ १ ॥ मुहुत्ताणं मुहुत्तस्स, मुहुत्तो होइ तारिसो ॥ पराजिया वसप्पामो, इति भीरु उवेहई ॥ २ ॥

अर्थ–जहासंगामकालंमि के० जेम संग्रामनो काल आवे बते, नीरु के० कोइएक बीकणो पुरुष पिछतोके० पाछो वेहईके० जूए, एटले बीकण मनुष्य संग्रामने काले प्रथमथीज प्रतिकार कारण दुर्ग प्रछन्न स्थानक नासवाने अर्थे जूए; ते स्थानक देखाडेछे; वलयं के० वलयाकारे उदक रहित एवी गर्त्ताते दुर्गम होय अथवा जेमां पेसतां, तथा नीकलतां गहणंके० गहन होय, एटले वृक्षे करी व्याप्त होय अने णूमं के० प्रछन्न एवा जे गिरि गुफादिक तेनुं अवलोकन नासवाने अर्थे करे तेनुं कारण मनमां आवीरीते चिंतवे जे, कोजाणइपराजयं के० कोण जाणे एवा संग्रामने विषे कोनो जय पराजय थशे, कार्यसिद्धि दैवायत्तछे, थोडा होय ते घणाने पण जीतीशकेछे ॥ १ ॥ मुहुत्ताणं मुहुत्तस्स के० मुहूर्त्त जोवामां कोइएक मुहूर्त्त मुहुत्तोहोइतारिसो के० अपर अन्य मुहूर्त्त काल विशेष लक्षण तेवुं होय त्यां एवो प्रस्ताव आवेके पराजियाके० ज्यां जीवने जय पणुं थाय अथवा पराजय पणुं पण थाय तेवारे नासीजइने ए स्थानको मने छुपीरेवाने काम आवशे इतिके० एवा स्वरूपे अवसप्पामोके० पराजयने अवसरे कदाचित् संग्राम थकी नासीने पाछा आववुं पडे तेवारे शी गति थाय, तेमाटे नीरु के० बीकण सुभट ते नासवानुं स्थानक उवेहती के० प्रथमथीज मनमा चिंतवी राखे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथ तृतीयोद्देशकः प्रारभ्यते । पूर्वोद्देशकयोरनुकूलप्रतिकूलोपसर्गाउक्तास्तैश्चाध्यात्मविषादः स्यादिति । अत्रोच्यते । (जहेति) यथा संग्रामकाले कश्चिन्नीरुः परानीकयुद्धावसरे पृष्ठतः प्रेक्षते नाशस्थानं वाऽऽलोकते । वलयं यत्रोदकं वलयाकारेणस्थितं उदकरहिता वा गर्त्ता गहनं धवादिवृक्षावृतं स्थानं णूमं प्रछन्नगिरिगुहादिकमित्यादिस्थानं नाशहेतोरालोकते । यतः कोजानाति पराजयं कस्य जयः पराजयोवा नावीति कोपेत्ति दैवायत्ताः कार्यसिद्धयः ॥ १ ॥ किंच । ( मुहुत्तेति ) मुहूर्त्तानामेकस्य वा मुहूर्त्तस्याऽपरो मुहूर्त्तः कालविशेषस्तादृशोभवति । यत्र जयः पराजयोवास्यात् । एवं सति पराजितावयमवसर्पामइति नीरुरुपेक्षते शरणमपीति ॥ २ ॥

॥ टीका–उपसर्गपरिज्ञायां उक्तोद्वितीयोद्देशकः सांप्रतं तृतीयः समारभ्यते । अस्यचायमभिसंबंधः । इहानंतरोद्देशकाभ्यामुपसर्गाअनुकूलप्रतिकूलभेदेनाभिहितास्तैश्चाध्यात्मविषीदनं नवतीति तदनेन प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्यादिसूत्रं ( जहेत्यादि ) दृष्टांतेन हि मंदमतीनांसुखेनैवार्थावगतिर्नवतीत्यतआदावेव दृष्टांतमाह । यथा कश्चिन्नीरुरकृतकरणः संग्रामकाले परानीकयुद्धावसरे समुपस्थितः पृष्ठतः प्रेक्षते आदावेवापत्प्रतीकारहेतुभूतं दुर्गादिकं स्थानमवलोकयति । तदेव दर्शयति । वलयमिति । यत्रोदकं वलयाकारेण व्यवस्थितमुदकरहितावा गर्त्ता दुःखनिर्गमप्रवेशा तथा गहनं धवादिवृक्षैः

कटिसंस्थानीयं(णूमंति) प्रछन्नं गिरिगुहादिकं किमित्यसावेवमवलोकयति । यतएवं मन्य ते । तत्रैवंभूते तुमुले संग्रामे सुभटसंकुले कोजानाति कस्यात्र पराजयोभविष्यतीति यतो दैवायत्ताः कार्यसिद्धयस्तोकैरपि बहवोजीयंतइति ॥ १ ॥ किंच ( मुहुत्ताणमित्यादि ) मु हूर्त्तानामेकस्य वा मुहूर्तस्यापरोमुहूर्तः कालविशेषलक्षणोवसरस्तादृग्भवति यत्रजयः प राजयोवा संभाव्यते तत्रैवं व्यवस्थिते पराजितावयमपसर्पामोनश्यामइत्येतदपि संभाव्य ते अस्मद्विधानामिति भीरुः पृष्ठतआपत्प्रतीकारार्थं शरणमुपेक्षते ॥ २ ॥

एवं तु समणा एगे, अबलं नच्चाण अप्पगं ॥ अणागयं भयं दि स्स, अविकप्पंति मंसुयं ॥३॥ कोजाणइ विउवातं, इत्थीउ उदगा उवा ॥ चोइज्जंता पवरकामो, णणो अत्थि पकप्पियं ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे एपूर्वोक्तदृष्टांत, कायर साधु साथे मेलविएछेए एवंतु के० एरीते समणाए गे के० कोइएक श्रमण प्रव्रजित अल्प सत्वना धणी ते अप्पगं के० पोताने विषे अ बलं के० अबलपणु एटले संयमरूप भार वहेवाने जाव जीवसुधी पोताने विषे अस मर्थ पणु नच्चाण के० जाणीने अणागयंभयं के० अनागत एटले आगमिक कालनो भ य दिस्सके० देखीने, एटले आगल वृद्धावस्थायें तथा ग्लानावस्थायें तथा दुर्भिक्षने वि षे मने शुं त्राण शरण थशे अविकप्पंतिमंसुयंके० एवी कल्पना करीने ठेरावकरे के मने व्या कर्ण,ज्योतिष, वैद्यकादिक त्राण शरण थशे माटे तेवा शास्त्रो भणे ॥३॥ कोजाणइके० कोण जाणे विउवातं के० मुजने केवा कारण थकी संयमनो भ्रंस थशे. इत्थीउके० स्त्रीथकी थसे उदगाउवाके० किंवा उदक एटले सचित्तपाणीना परिभोग थकीथशे, केमके कर्मनी वि चित्र गतिछे णणोअत्थिपकप्पियंके० प्रकल्पित पूर्वोपार्जित द्रव्य नथी जे ते समय म ने काम आवे; तो तेवखते चोइज्जंताके० कोइयें अमने पूछया थकां पवरकामो के० व्याकर्णादिक कहिसुं एरीते चिंतवन करी ज्योतिषादिकने विषे यत्न करे ॥ ४ ॥

---

॥ दीपिका—श्लोकद्वयेन दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमाह । ( एवमिति ) एवं पूर्वोक्तदृ ष्टांतेन श्रमणाएके अल्पसत्वाआत्मानमबलं संयमभारवहनाक्षमं ज्ञात्वाऽनागतमेव भयं दृष्ट्वा इदंव्याकरणं गणितं ज्योतिष्कं वैद्यकं मंत्रादिकं वा श्रुतमधीतं मम त्राणाय स्यादि ति अविकल्पंते मन्यंते ॥ ३ ॥ ( कोजाणइति ) कोजानाति व्यापातं संयमाद्भ्रंशं । के न पराजितस्य मम संयमाद्भ्रंशः स्यादिति । किंस्त्रीतः किंवा उदकात् स्नानाद्यर्थमुदकसेवना भिलाषात् इत्येवं ते वराकामन्यंते ननो ऽस्माकं किंचित्प्रकल्पितं पूर्वोपार्जितं द्रव्यम स्ति यत्तस्यां दुःखावस्थायां कार्यं ममेति । अतश्चोद्यमानाः परेण पृछ्यमानावयं हस्तिशि

चित्तना अस्थिरपणाने पोहोता थका, मनमां विचार करे के, शुं जाणीयें, अमे जाव जीव सुधी संयम पाली शकशुं; किंवा नही पाली शकशुं; कोनीपेरे तोके पंथाणंचके० जेम मार्गने विषे अकोवियाके० अनिपुण एवापुरुषो मार्ग देखी संदेहमां पडे, के शुं जाणीयें एमार्ग अमुक स्थानके जशे किंवा नही जाय; ॥५॥ हवे माहापुरुषनी स्थिति कहेछे. जे चके० जे महासत्ववंत मोहोटा पुरुष नाता के० ज्ञात लोकोमांहे प्रसिद्ध अने सूरपुरं गमा के० शूरवीर पुरुषोमां अग्रेसर, एटले आगेवान एरीते प्रसिद्ध थयेलाछे ते संगा मकालंमि के० संग्रामकालने अवसरे, णोतेपिठमुवेहिंति के० पाछुं न जुवे, एटले ना सी जवानुं स्थानक जूए नही; किंपरंमरणंसियाके० ते एम जाणे जे आपणने मरण तो साश्वतछे एटले क्यारेपण मरवुं तो आवश्यछे नासी जइशुं तो, अमारो यश जतो रेशे; ते कारण माटे आ संग्रामनेविषे अमे मरण पामीशुं पण अमारो यश अखंमित राखीशुं ॥६॥

॥ दीपिका–( इच्चेवेति ) इत्येवं पूर्व प्रकारेण यथा नीरवः संग्रामे प्राप्तावलयादि स्थानसमुपेक्षिणः स्युस्तथा प्रव्रजिताअपिआजीविकानया व्याकरणगणितादिकं जी वनोपायत्वेन प्रत्युपेक्षंते परिकल्पयंति । किंनूताः । विचिकित्सा चित्तविप्लुतिः किमे नं संयमं वयं समर्थावत नेत्येवंरूपा । यडुक्त । लुरकमणुएहमत्तियर्य, कालाइक्क तसोयणं विरसं ॥ नूमीसयणं लोच, असिणाणं बंनचेरंच ॥ १ ॥ तां समापन्नाः प्राप्ताः । यथा पं थानं प्रत्यकोविदाअनिपुणाः किमयं पंथा इष्टं देशं यास्यति नवेति कृतचित्तसंदेहाः स्युः । तथा ते संयमनारवहने संदेहं प्राप्ताः । यथानिमित्तादिकं जीविकार्थं परिकल्पयंति ॥ ५ ॥ ( जेउसंगेति ) ये पुनर्महासत्वाः । तुर्विशेषणे । संग्रामकाले ज्ञाताः प्रसिद्धाः शूरा णां पुरंगमाः पुरोगामिनः सुनटाग्रवर्तिनस्ते पृष्ठं नप्रेक्षंते नाशस्थानं नविलोकयंति किं त्वेवं मन्यंते यदत्रास्माकं किमपरं मरणमेव स्यात् नवतु मरणं यशोमायातु । यडुक्तं । वि शरारुनिरविनश्वरमतिचपलैः स्यास्नुवांछतां विशदं ॥ प्राणैर्यदिशूराणां, नवति यशः किं न पर्याप्तमिति ॥ ६ ॥

॥ टीका–उपसंहारार्थमाह । (इच्चेवमित्यादि) । इत्येवमिति पूर्वप्रक्रांतपरामर्शार्थ. । यथा नीरवः संग्रामे प्रविविक्षवोवलयादिकं प्रत्युपेक्षिणोनवंतीत्येवं तेपि प्रव्रजिता मंदनाग्यतया अल्पसत्वाआजीविकानया व्याकरणादिकं जीवनोपायत्वेन प्रत्युपेक्षंते परिकल्पयंति । किंनताः विचिकित्सा चित्तविप्लुतिः किमेनं संयमनारमुत्क्षिप्तमंतं नेतुं वयं समर्थाः उतनेतीत्येवं नूता. । तथाचोक्तं । लुरकमणुएहमणियर्य, कालाइक्कं तनोयणं वि रसं । नूमीसयणंलोउ असिणाणं बंनचेरंच ॥ १ ॥ तां समापन्नाः समागताः । यथा पंथानं प्र त्यकोविदाअनिपुणाः किमयं पंथा विवक्षितं नूनागं यास्यत्युत नेतीत्येवं कृतचित्तविप्लुत

योनवंति तथा तेपि संयमनारवहनंप्रति विचिकित्सां समापन्नानिमित्तगणितादिकं जीविकार्थं प्रत्युपेक्षंतइति ॥ ५ ॥ सांप्रतं महापुरुषचेष्टिते दृष्टांतमाह । ( जेउसंगामेत्या दि ) । ये पुनर्महासत्वाः । तु शब्दोविशेषणार्थः । संग्रामकाले परानीकयुद्धावसरे ज्ञाता रोलोकविदिताः । कथं शूरपुरंगमाः शूराणामग्रगामिनोयुद्धावसरे सैन्याग्रस्कंधवर्तिनइति एवंभूताः संग्रामं प्रविशंतोन पृष्ठमुत्प्रेक्षंते नडुर्गादिकमापत्राणाय पर्यालोचयंति । तेचा भंगकृतयुद्धयोपित्येवं मन्यंते । किमऽपरमत्रास्माकं भविष्यति यदि परं मरणं स्यात्तच्च शाश्व तं यशःप्रवाहमिच्छतामस्माकं स्तोकं वर्ततइति । तथाचोक्तं । विशरारुभिरऽविनश्वर, मपि चपलैः स्थास्नु वांछतां विशदं ॥ प्राणैर्यदिशूराणां, भवति यशः किं न पर्याप्तं ॥१॥६॥

एवं समुठिए भिरकू, वोसिज्जा गारवंधणं ॥ आरंभं तिरियंकट्टु
आत्तत्ताए परिवए ॥ ७ ॥ तमेगे परिभासंति, भिरकयं साहुजी
विणं ॥ जे एवं परिभासंति, अंतए ते समाहिए ॥ ८ ॥

अर्थ–एवं के० एरीते भिक्कू के० साधु संयमने विषे समुठिए के० सावधान थयो छतो, तथा अगारबंधणं के० गृहस्थावासनुं बंधन तेने वोसिज्जा के० छांमीने, तथा आरंभं के० आरंभ जे सावद्यानुष्ठान तेने तिरियं कट्टुके० तिर्छो करीने एटले, आरंभने दूर क रीने आत्तत्ताए परिवएके० एक मोक्षनेविषे सावधान थाय, संयमानुष्ठानने विषे प्रवर्ते॥७॥ अध्यात्मविषीदनार्थाधिकारोगत.के० ए आत्मा थकीजे विवाद ते कह्यो. हवे बीजो अ धिकार परवादिना वचन आश्री कहेछे. एगे के० एक कोइ परने उपकार रहि त एवा दर्शनने ग्रहण करनारा गोसालीक मतना अनुसारी तथा दिगंबरादिक एवा अन्य तीर्थिकना साधुउं त के० ते पूर्वोक्त साहुजीवणं के० साधु एटले रुडी आ जीवणं एटले आजीविकाये प्रवर्त्तनार अर्थात् परने उपकार करनार, रुडा आचारे प्रव र्तमान एवा भिरकूयं के० साधुने परिभासंति के० एवीरीते कहे. इतिकोर्थः तेनी निंदा करे, तो जे के० जे धर्मना अजाण एवं के० एम पूर्वे कह्यु, तेम परिभासंति के० साधु ना आचारनी निंदा करे ते के० तेवा अन्यतीर्थिक साधुउं समाहिए के० समाधि एट ले सम्यक् अनुष्ठान थकी अथवा मोक्षथकी अंतए के० वेगला जाणवा. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–दार्ष्टांतिकमाह । ( एवमिति ) एवं भिक्षुरपि महासत्वः सम्यक्संयमे उत्थि तः कषायादिवैरिवर्गं जेतुं प्रवृत्तः । यतः । कोहंमाणं च मायं च, लोहं पंचिंदियाणिअ । डु ज्जयं चेवमप्पाणं, सव्वमप्पेजिएजिअं ॥१॥ किंकृत्वा समुत्थितः अगारबंधनं गृहपाशं व्युत्सृज्य त्यक्त्वा आरंभं तिर्यक्कृत्वा निराकृत्य आत्मत्वाय शेषकर्मरहितत्वाय परिव्रजेत् संयमे प्रव

तेंत इति ॥ ७ ॥ अध्यात्मविषीदनाधिकारोगतः अथ परवादिवचनाधिकारमाह । ( त मेगइति ) एके परवादिनः साधुं भिक्षुं साधु शोजनं जीवितुं शीलमस्य सतथा तं एवं परि जाषंते । ये ते पुष्टधर्माणोगोशालकमतानुगताः आजीविकादिगंबरावा ये ते एवं वक्ष्यमा णं परिजाषंते साधुं निंदंति ते अंतके पर्यंते समाधेर्मोक्षाद्दाद्वाइति शेषः ॥ ८ ॥

॥ टीका—तदेवं सुजटदृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमाह । ( एवमित्यादि ) यथा सुजटाज्ञा तरोनामतः कुलतः शौर्यतः शिक्षातश्च तथा सन्निवद्धपरिकराः करगृहीतहेतयः प्रतिज टसमितिनेदिनोन पृष्ठतोवलोकयंति । एवं भिक्षुरपि साधुरपि महासत्वः परलोकप्रति स्पर्द्धिनमिंद्रियकषायादिकमरिवर्गं जेतुं सम्यक् संयमोद्यानेनोत्थितः समुत्थितः । तथा चोक्तं । कोहं माणं च मायंच लोहं पंचेंदियाणिय । डुज्जयं चेवमप्पाणं सव्वमप्पेजिएजि यं ॥ किं कृत्वा समुत्थितइति दर्शयति । व्युत्सृज्य त्यक्त्वा अगारबंधनं गृहपाशं तथा आरं जं सावद्यानुष्ठानरूपं तिर्यक्कृत्वाऽपहस्तयित्वात्मनोजावआत्मत्वमशेषकर्मकलंकरहित त्वं तस्मै आत्मत्वाय । यदिवा आत्मा मोक्षः संयमोवा तन्नावस्तस्मै तदर्थं परिसमंताद्ब्रजेत् संयमानुष्ठानक्रियायां दत्तावधानोजवेदित्यर्थः ॥ ७ ॥ निर्युक्तौ यदजिहितमध्यात्मविषी दनं तडुक्तमिदानीं परवादिवचनं द्वितीयमर्थाधिकारमधिकृत्याह । ( तमेगेइत्यादि ) तमिति । साधुमेके ये परस्परोपकाररहितं दर्शनमापन्नाअयःशलाकाकल्पास्ते च गोशालक मतानुसारिणआजीविकादिगंबरावा तएवं वक्ष्यमाणं परिसमंताद्भाषंते । तं भिक्षुकं सा ध्वाचारं साधु शोजनं परोपकारपूर्वकं जीवितुं शीलमस्य ससाधुजीविनमिति । ये ते ऽपुष्ट धर्माणएवं वक्ष्यमाणं परिजाषंते साध्वाचारनिंदां विदधति तएवं नृताअंतके पर्यंते दूरे समाधे र्मोक्षाख्यात्सम्यक् ध्यानात्सदनुष्ठानात् वा वर्तंतइति ॥ ८ ॥

संबद्ध सम कप्पाउ, अन्न मन्नेसु मुठिया ॥ पिंमवायंगिलाण
स्स, जं सारेह दलाहय ॥ ए ॥ एवं तुप्पे सरागज्ञा, अन्न मन्न
मणुवसा ॥ नठसप्पह सप्नावा, संसारस्स अपारगा ॥ १० ॥

अर्थ—हवे ते गोसालकादिक मतानुसारी जे कहे ते देखाडेठे. संबद्धसमकप्पाउ के० निश्चयथकी ग्रहस्थ समान तमारो कल्प एटले आचारछे; अर्थात् तमे मोहे करी बंधाणाठो अन्नमन्नेसु के० जेम ग्रहस्थ अन्योअन्य परस्पर माहोमांहे मातापितादिकनी सार संजाल करे तेम तमे पण माहोमांहे आचार्यादिक उपर मुठिया के० मुर्छित थयेला ठो ते केवीरीते मुर्छितठो ते देखाडे ठे पिंमवायं गिलाणस्स के० पिंम एटले भिक्षा ते गिलाण एटले रोगीने अर्थे जंके० जेमाटे सारेह के० गवेषो ठो दलाहय के० भिक्षा आणी आपोठो. च शब्द थकी गुर्वादिकनो वैयावच्च करोठो तेमाटे तमे गृहस्थ

रारवा ठो ॥ ए ॥ एवं के० ए कारणमाटे तुम्हें० तुमे सरागच्चा के० गृहस्थनी पेरे सराग पणे वर्त्तोठो अन्नमन्न के० माहोमांहे मणुवसा के० वशगामी साधु कोइना आधीन न थाय ते कारणमाटे तमे सप्पह के० सद्पंथ एटले रुडोमार्ग तेना सप्नावा के० सन्नावने नठ के० नष्ट कीधो एटले सन्मार्गने नष्ट कीधो तेथी तमे संसारस्सअपारगा के० संसारना पारंगामी नही एवा दोष अन्य तीर्थिक बोले ॥ १० ॥

॥ दीपिका–यत्परिनापंते तदाह । ( संबद्देति ) संबद्धागृहस्थास्तैस्तुल्यः समः कल्पो व्यवहारोयेषां ते तथा गृहस्थानुष्ठानतुल्याः।यथा गृहस्थाः परस्परमुपकारे प्रवर्तते । माता पुत्रे पुत्रोमातरि एवं यूयमप्यन्योन्यमुपकारे मूर्छिताः । कथमित्याह पिंडपातनैश्चयं ग्लानस्य रोगिणः साधोर्यस्मात् ( सारेहत्ति ) अन्वेषयंते तथा (दलाहत्ति) ग्लानायददध्वं । चशब्दादाचार्यादिवैयावृत्त्यै प्रवर्तध्वं ततोगृहस्थतुल्याइत्यर्थः ॥ए॥ (एवमिति) एवं यूयं सरागः स्वनावस्तत्रस्थिताअन्योन्यं वशमुपागताः परस्परायत्ताः । यतयस्तु निःसंगाः कस्यचिदायत्तानस्युः । ततोगृहस्थानामयं न्यायइति । तथा नष्टसत्पथसन्नावाः गतसन्मार्गपरमार्थाएवंनूतायूयं संसारस्य । अपारगाः न पारगामिनः ॥ १० ॥

॥ टीका–यत्ते प्रजापंते तद्दर्शयितुमाह । ( संबद्धेत्यादि ) समेकीनावेन परस्परोपकार्योपकारितयाच बद्धाः पुत्रकलत्रादिस्नेहपाशैः संबद्धागृहस्थास्तैः समस्तुल्यः कल्पोव्यवहारोनुष्ठानं येषांते संबद्धसमकल्पागृहस्थानुष्ठानतुल्यानुष्ठानाइत्यर्थः । तथाहि । यथा गृहस्थानामयं न्यायोयडुतपरस्मै परस्परोपकारेण माता पुत्रे पुत्रोपि मात्रादाविस्येवंमूर्छिताअभ्युपपन्नाएवं नवंतोप्यन्योन्यं परस्परतः शिष्याचार्याद्युपकारक्रियाकल्पनया मूर्छिताः । तथाहि । गृहस्थानामयं न्यायो यडुतपरस्मै दानादिनोपकारइति नतु यतीनां । कथमन्योन्यं मूर्छिताइति दर्शयति । पिंडपातं नैश्चयं ग्लानस्याऽपरस्य रोगिणः साधोर्यस्मात्(सारेहत्ति) अन्वेषयंते । तथा (दलाहयत्ति) ग्लानयोग्यमाहारमन्विष्य तडुपकारार्थं ददध्वं । चशब्दादाचार्यादेः वैयावृत्त्यकरणाद्युपकारेण वर्तध्वं ततोगृहस्थसमकल्पाइति ॥ ए ॥ सांप्रतमुपसंहारव्याजेन दोषदर्शनायाह । ( एवमित्यादि ) एवं परस्परोपकारादिना यूयं गृहस्थाइव सरागस्थाः सहरागेण वर्ततइति सरागः स्वनावस्तस्मिन् तिष्ठंतीति ते तथा अन्योन्यं परस्परतोवशमुपागताः परस्परायत्ताः । यतयोहि निःसंगतया नकस्यचिदायत्ता नवंति । यतोगृहस्थानामयंन्याय इति।तथा नष्टोऽपगतः सत्पथः सन्नावः सन्मार्गः परमार्थोयेन्यस्ते तथा । एवंनूताश्च यूयं संसारस्य च डुर्गतिन्रमणलक्षणस्याऽपारगा अतीरगामिनइति ॥ १० ॥

अह ते परिन्नासेज्जा, भिरकू मोरकविसारए ॥ एवं तुब्भे पभासं
ता, डुपरकं चेव सेवह ॥११॥ तुब्भे भुंजह पाएसु, गिलाणो अ
भिहडंमिया ॥ तंच बीउदगं भोच्चा, तमुद्दिस्सादिजंकडं ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे ते अन्य तीर्थिकने साधु उत्तर आपेछे अह के० अथ एवुं कह्या नंतर तेके० ते असाधु प्रत्ये परिन्नासेज्जा के० साधु एवीरीते बोले परंतुते बोलनार भिरकू के० साधु केवाछे तो के मोरकविसारए के० मोक्षमार्गना विशारद एटले जाण ते असाधु प्रत्ये कहेछेके एवंके० एम पूर्वोक्त न्यायें तुब्भेके० अहो तुमे पभासंताके०एम बोलता थका डुपरकंचेव के० निश्चे थकी बे पक्षने सेवह के० सेवो छो एटले रागद्वेषरूप बन्ने पक्षने सेवोछो कारण के एकतो पोते अनाचारी छो सदोष पक्षीछो माटे अने बीजा निर्दोषी साधुना निंदकछो माटे बेहु पक्षना सेवनारछो अथवा बीज उदक उद्देशिकादिक भोगवतां गृहस्थ समानछो अने लिंग ग्रहण कर्युं माटे यति समान देखवा मात्रछो एम बन्ने पक्षने सेवोछो ॥ ११ ॥ हवे आजीविकादिक परतीर्थिकोनो आचार कही देखाडेछे. तुब्भे के० तमे एम कहोछो के अमे निःकंचन छैयें अने तमे जे भुंजह के० भोगवोछो तेपण पाएसु के० कांशादिक धातुना जे गृहस्थना पात्र तेने विषे भोजन करोछो तेमाटे तमे सपरिग्रहीछो तथा आहारादिकनी मूर्छा करोछो माटे निःपरिग्रहि शीरीते थशो वली गिलाणो के० गिलानने अर्थे भिक्षा अटनने विषे असमर्थ छतां अभिहडंमियाके०गृहस्थने हाथे आणी देवाडोछो तंचके०तेद्विज दोष देखाडेछे बीउदगंके० जे गृहस्थे बीज अने उदकनुं मर्दन करीने तमुद्दिस्सादिजंकडं के०ते ग्लानने अर्थे उद्देशीने जे आहार नीपजाव्यो तेने भोच्चाके० भोगवया थकी तमने दोष लागेछे॥१२

॥ दीपिका—अथात्रपूर्वपक्षे दोषमाह । (अहतेइति)। अथ तान् परवादिनएवमुपस्थितान् भिक्षुः परिभाषेत ब्रूयात् । किंभूतोभिक्षुः मोक्षविशारदः।एवं यूयं प्रभाषमाणाडुप्पक्षं डुष्टं पक्षं सेवध्वं । यद्वा द्विपक्षं रागद्वेषात्मकं पक्षद्वयं सेवध्वं । तथाहि । सदोषेपि स्वमते रागः । निर्दोषेप्यस्मन्मते द्वेषः । अथवा बीजोदकोद्दिष्टादिभोजित्वाद्गृहस्थायूयं यतिलिंगांगीकाराच्च प्रव्रजिताइतिपक्षद्वयं ॥ ११ ॥ परमतीनामसदाचारं दर्शयति । (तुब्भेति) हेपरमतिनोयूयं पात्रेषु कांस्यपात्र्यादिगृहस्थभाजनेषु भुंग्ध्वं भोजनं कुरुध्वं। ततः कथं निष्परिग्रहाः।तथा ग्लानस्य भिक्षाटनं कर्तुमसमर्थस्य यदपरैर्गृहस्थैरन्याहृतं कार्यते भवद्भिः यतेरानयनाधिकाराभावात् । तदृष्टं भवतां यच्च गृहस्थैर्बीजोदकाद्युपमर्देन निष्पादितमाहारं भुक्त्वा ग्लानमुद्दिश्योद्देशिकादियत्कृतं यन्निष्पादितं तदवश्यं युष्मत्परिभोगाय

समेतश्चवतिष्ठते । तदेवं गृहस्थगृहे तद्भाजनेषु भुंजानाग्लानस्य च गृहस्थैः कारयंतोयूयं श्रवश्यं बीजोदकादिभोजिनउद्देशकादिकृतभोजिनश्चेति ॥ १२ ॥

॥ टीका–अयं तावत्पूर्वपक्षोस्य च दूषणायाह । (अहतेपरिभासेज्जेत्यादि) । अथा नंतरं तानेवं प्रतिकूलत्वेनोपस्थितान् भिक्षुः परिभाषेत ब्रूयात् । किंभूतो मोक्षविशारदो मोक्षमार्गस्य सम्यक्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपस्य प्ररूपकः । एवमनंतरोक्तं यूयं प्रज्ञापयमाणाः संतः दुष्टःपक्षोदुष्पक्षोऽसत्प्रतिज्ञाभ्युपगमस्तमेव सेवध्वं यूयं यदिवा रागद्वेषात्मकं पक्ष द्वयं सेवध्वं यूयं । तथाहि । सदोषस्याप्यात्मीयपक्षस्य समर्थनाद्रागो निष्कलंकस्याप्यस्मद भ्युपगमस्य दूषणाद्द्वेषोऽथवं पक्षद्वयं सेवध्वं यूयं । तद्यथा । वक्ष्यमाणनीत्या बीजोदको द्दिष्टकृतभोजित्वाद्गृहस्थाः यतिलिंगाभ्युपगमात्किल प्रव्रजिताश्चेत्येवं पक्षद्वयासेवनं भवता मिति । यदिवा स्वतोऽसदनुष्ठानमपरंच सदनुष्ठायिनां निंदनमितिभावः ॥ ११ ॥ आजीविका दीनां परतीर्थिकानां दिगंबराणां वा सदाचारनिरूपणायाह ।(तुब्भे भुंजहेत्यादि) किल वय मपरिग्रहतया निष्किंचनाएवमभ्युपगमं कृत्वा यूयं भुंग्ध्वं पात्रेषु कांस्यपात्र्यादिषु गृहस्थ भाजनेषु तत्परिभोगाच्च तत्परिग्रहोऽवश्यं भावी । तथाऽहारादिषु मूर्छां कुरुध्वमित्यतः कथं निष्परिग्रहाभ्युपगमोभवतामकलंकइति । अन्यच्च ग्लानस्य भिक्षाटनं कर्तुमसमर्थ स्य यदपरैर्गृहस्थैरभ्याहृतं कार्यते । भवद्भिर्यतोरानयनाधिकाराभावाद्गृहस्थानयने च योदो पसद्भावः सभवतामवश्यंभावीति । तमेव दर्शयति । यच्च गृहस्थैर्बीजोदकाद्युपमर्देना पादितमाहारं भुक्त्वा तं ग्लानमुद्दिश्योद्देशकादि यत्कृतं यन्निष्पादितं तदवश्यं परिभोगा यावतिष्ठते । तदेवं गृहस्थगृहे तद्भाजनादिषु भुंजानास्तथा ग्लानस्य च गृहस्थैरेव वै यावृत्त्यंकारयंतो यूयमवश्यं बीजोदकादिभोजिनउद्देशिकादिकृतभोजिनश्चेति ॥ १२ ॥

लित्ता तिव्वा भितावेणं, उज्झ्या असमाहिया ॥ नातिकंडूइयं से यं, अरुयस्सावरज्झती ॥ १३ ॥ तत्तेण अणुसिट्ठाते अपडिन्नेण जाणया ॥ णएस णियए मग्गे, असमिक्खा वती किती ॥ १४ ॥

अर्थ–तिव्वाभितावेण के० तुमे ब काय जीवनी विराधना तथा साधुनी निंदारूप तीव्र तापे एटले संतापे करी लित्ता के० लिप्तहो तथा उज्झ्या के० विवेक रहित हो वली असमाहिया एटले शुभध्यान रहितहो माटे जेम नातिकंडूइयं सेयं के० कंडू एटले खुजली तेने अत्यंत खणवी श्रेयकारी नथी किंतु अरुयस्स के० गुंबडाने खणं थकुं अवरज्झती के० अपराधिये पणा दोषनी वृद्धि करे तेम तमने साधु साथे द्वेष पणुं करवुं श्रेय नथी ॥ १३ ॥ अपडिन्नेण के० जे स्वगने खोटुं वेरावदुं अने खोटाने

खरुं ठेराववुं एवी जेनी प्रतिज्ञा नथी ते अप्रतिज्ञ रागद्वेष रहित तथा जाणया के० जाणते एवे संयत तत्वे सहित तेने हेयोपादेय परमार्थे जाण्याविना तत्तेण अणुसि ष्ठाते के० परमार्थे करीने ते असाधु ठे एम तेना मार्गने दोष देखाडवानुं तमने कोणे शिखव्युं णएसणीयएमग्गेके० माटे अहो तुमारो उपमार्ग ते निश्चय मलतो नथी जे कारणे गिलानने अशनादिक आपे ते गृहस्थ समान जाणवा एवो तमे कहोठो परंतु ए असमिरकावती के० अणआलोच्याना बोलनारनुं कती के० जे कर्तव्य अनुष्ठान ते पण अणआलोच्योज देखायठे. ॥ १४ ॥

॥दीपिका-(लित्तेति) तीव्रतापेन साधुनिंदारूपेण लिप्ताव्याप्ताः(उन्नवेति)निर्विवेकाउद्देश कादिन्नोजित्वात् असमाहिताः शुनाध्यवसायरहिताः । दृष्टांतमाह । यथाऽरुपोव्रणस्याति कंमूयितं नश्रेयः किंतु अपराध्यति दोषंकरोति एवं यूयमपि निर्विवेकाःवयं किल निष्किंच नाइति कृत्वा कांस्य पात्रादिकं परिहृत्यैतदन्नावादवश्यमशुद्धाहारपरिन्नोगकारिणः निष्किं चनत्वात्पात्रादिपरिहारोनश्रेयो व्रणस्यातिकंमूयितमिव॥१३॥ ( तत्तेणेति ) ते गोशालम तानुसारिणआजीविकादयोदिगंबरावा तत्वेनाऽनुशासिताः शिक्षांग्राहिताः केन अप्रतिज्ञेन इदंमया समर्थनीयमिति प्रतिज्ञा सा नास्ति यस्याऽसावप्रतिज्ञोरागद्वेषरहितः साधुस्तेन जा नताज्ञानवता । कथमनुशिष्टाइत्याह । (णएसेति) । योनवद्भिरंगीकृतः सनियतोन युक्ति क्षमोमार्गः । याच साधुनिंदा वाक् सा समीक्ष्योक्ता आचार्यकथिता। तथाकृतिः क्रिया प्यविचाररम्यैव ॥ १४ ॥

॥ टीका-किंचान्यत् ( लित्ताइत्यादि ) यूयं पट्जीवनिकायविराधनयोद्दिष्टन्नोजित्वेना निगृहीतमिथ्यादृष्टितया च साधुपरिन्नाषणेन च तीव्रोन्नितापः कर्मबंधरूपस्तेनोपलिप्ताः संवेष्टितास्तथा (उन्नयत्ति) सद्विवेकशून्यान्निक्षापात्रादित्यागात्परगृहन्नोजितयोद्देशकादि न्नोजित्वात् । तथा असमाहिताः शुनाध्यवसायरहिताः सत्साधुप्रद्वेषित्वात् । सांप्रतं दृ ष्टांत द्वारेण पुनरपि तद्दोषान्निधित्सयाह । यथाऽरुपोव्रणस्यातिकंमूयितं नखैर्विलेखनं नश्रे योनशोन्ननं न्नवति । अपित्वपराध्यति तत्कंमूयनं व्रणस्य दोषमावहति । एवं न्नवंतोपि सद्विवेकरहिताः वयं किल निष्किंचनाइत्येवं निष्परिग्रहतया पट्जीवनिकायरक्षणन्नूतं न्निक्षापात्रादिकमपि संयमोपकरणं परिहृतवंतः । तदन्नावाच्चावश्यं न्नावी अशुद्धाहारपरि न्नोगइत्येवं द्रव्यक्षेत्रकालन्नावानपेक्षणेन नातिकंडूयितं श्रेयोनवतीति न्नावः॥१३॥ अपि च । (तत्तेणेत्यादि) तत्वेन परमार्थेन मौनींद्रान्निप्रायेण यथावस्थितार्थप्ररूपणया ते गो शालकमतानुसारिणआजीविकादयः कोटिकाअनुशासितास्तदन्युपगमदोषदर्शन द्वारेण शिक्षांग्राहिताः । केनाप्रतिज्ञेन । नास्य मयेदमसदपि समर्थनीयमित्येवं प्रतिज्ञा विद्यते

इत्यप्रतिज्ञोरागद्वेषरहितः साधुस्तेन जानता हेयोपादेयपदार्थपरिच्छेदकेनेत्यर्थः । कथमनुशासितारइत्याह । योयं नवद्भिरभ्युपगतोमार्गो यथा यतीनां निष्किंचनतयोपकरणाभावात् परस्परतउपकार्योपकारकाभावइत्येषनियतोनिश्चितोन युक्तिसंगतोऽसौ येयं वाग् यथा ये पिंडपातं ग्लानस्यानीय ददति ते गृहस्थकल्पाइत्येषा असमीक्ष्याभिहिता अपर्यालोच्योक्ता तथा कृतं करणमपि भवदीयमसमीक्षितमेव यथा वा पर्यालोचितकरणता भवति भवदनुष्ठानस्य तथा नातिकंडूयितं श्रेयइत्यनेन प्राग्लेशतः प्रतिपादितं पुनरपि सदृष्टांतं तदेव प्रतिपादयंति ॥ १४ ॥

एरिसा जावई एसा, अग्गवेणु ब्वकरिसिता ॥ गिहिणो अभिहडं सेयं, भुंजीउ णउ भिक्खुणो ॥१५॥ धम्मपन्नवणा जासा, सारंभा ण विसोहिआ ॥ णउ एयाहिं दिठीहिं, पुब्वमासि पग्गप्पिअं॥१६॥

अर्थ—एरिसाजावईएसा के० जो एटले आमंत्रणे करीने तमारी एवी वाणीजे ग्लानने आहारलावी नआपवो ते अग्गवेणुब्व करिसिता के० वंशना अग्री तरखी अत्यंत सुक्ष्म एटले कोइ पण युक्तिने खमे नही एवी तमारी वाणी केही ते कहेछे गिहिणो अभिहडंसेयं के० तमे कहयु जे गृहस्थनो आणेलो आहार श्रेयछे भुंजीउं के० ते भोगववो परंतु णउभिक्खुणो के०यतिनो आणेलो आहार यतिने लेवो अयोग्यछे ए तमारुं वचन रुडुं नथी अमे एम कहियेछये के गृहस्थनो आण्यो आहार सदोषछे अने यतिनो आण्यो आहार निर्दोषछे ॥ १५ ॥ वली साधु तेने कहेछे के धम्मपन्नवणाजासा के० जे तमारी धर्म प्रज्ञापना एटले धर्मदेशना के यतिने दाननो देवो नथी सारंभाण विसोहिया के० केमके दान जे छेते तं सारंभ जे गृहस्थ तेनी विशुद्धिनो करनार जाणवो कारण के यतितो पोताना अनुष्ठाने शुद्धि पामेछे यतिने दान देवानो अधिकार नथी एयाहिं दिठीहिं के० एम तमारी दृष्टीमां जे आवेछे परंतु ए प्रकारे पुब्वमासिं के० ते पूर्वे तीर्थंकर यथा तेणे णउपग्गप्पिअं के० नथी प्रकल्प्यो एटले जेरीते तमे कहोछो तेरीतनो धर्म सर्वज्ञे कह्यो नथी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—(एरिसेति) ईदृशी एषा वाक् साधुना ग्लानस्यानीय न देयमिति एषा वाक् अग्रवेणुवत् वंशवत् निकरिसिता दुर्बला यथा वंशाग्रं दुर्बलं स्यात्तथा दुर्बलेत्यर्थः । तामेव वाचं दर्शयति । गृहिणायदभ्याहृतं तदयमा भोक्तुंश्रेयोनतु भिक्षूणां । गृहस्थाभ्याहृतं जीवोपमर्दहेतुभूतं साधूनामकल्पमिति ॥ १५॥ ( धम्मपन्नवणेति ) या धर्मस्य प्रज्ञापना देशना यतीनां दानादिना उपकर्तव्यमित्येवंभूता सारंभाणां गृहस्थानां विशोधिका विशुद्धिकारिणी । यतयः स्वस्वानुष्ठानेनैव शुद्ध्यति नतु तेषां दानाधिकारः । एतद्दूषयति । नतुएताभि

दृष्टीनिर्युष्मन्मतानुगतानिः पूर्वमादौ सर्वज्ञैः प्रकल्पितं प्ररूपितमासीत् न हि सर्वज्ञा एवंवि धमसारं ब्रुवते । यजृहस्थैर्ग्लानवैयावृत्त्यं कार्यं नतूपयुक्तेन संयतेनेति । ग्लानोपका रोनवद्भिरप्यनुमतोगृहस्थप्रेरणादनुमोदनाच्च ॥ १६ ॥

॥ टीका—यथा प्रतिज्ञातमाह । (एरिसेत्यादि) येयमीदृक्षा वाक् यतिना ग्लानस्यानी य नदेयमित्येषा अग्रे वेणुवंशवत्कर्षिता तन्वी युक्त्यक्षमत्वात् डुर्बलेत्यर्थः । तामेव वा चं दर्शयति । गृहिणां गृहस्थानां यदन्याहृतं तद्यतेर्भोक्तुं श्रेयः श्रेयस्करं नतु निक्षूणां संबंधीति । अग्रे तनुत्वं चास्या वाचएवं डष्टव्यं । यथा गृहस्थान्याहृतं जीवोपमर्दन नव ति यतीनांतूद्गमादि दोषरहितमिति ॥ १५ ॥ किंच । ( धम्मपण्णवणेत्यादि ) धर्मस्य प्र. ज्ञापना देशना यथा यतीनां दानादिनोपकर्तव्यमित्येवंनूता या सा सारंनाणां गृहस्था नां विशोधिकायतयस्त्वनुष्ठानेनैव विशुध्यंति । नतु तेषां दानाधिकारोस्तीत्येतत् दूष यितुं प्रक्रमते । नतु नैवंतानिर्यथागृहस्थैनैव पिंमदानादिना यतेर्ग्लानाद्यवस्थायामु पकर्तव्यं । नतु यतिनिरेव परस्परमित्येवंनूतानिर्युष्मदीयानिर्दृष्टिनिर्धर्मप्रज्ञापनादि निः पूर्वमादौ सर्वज्ञैः प्रकल्पितं प्ररूपितं प्रख्यापितमासीदिति । यतो नहि सर्वज्ञाएवं नूतं परिफल्गुप्रायमर्थं प्ररूपयंति यथा असंयतैरेषणाद्यनुपयुक्तैर्ग्लानादे वैयावृत्त्यं विधे यं नतूपयुक्तेन संयतेनेति । अपिच नवद्भिरपि ग्लानोपकारोऽन्युपगतएव । गृहस्थप्रेरणा दनुमोदनाच्च ततोनवंतस्तत्कारिणस्तत्प्रद्वेषिणश्चेत्यापन्नमिति ॥ १६ ॥

सवाहिं अणुजुत्तीहिं, अचयंताजवित्तए ॥ ततो वायं णिराकि
च्चा, ते नुज्जोवि पगप्निए ॥ १७ ॥ रागदोसाभिनूयप्पा, मिच्छत्ते
ण अनिहुता ॥ आउस्स सरणं जंति, टंकणाइव पव्वयं ॥ १८ ॥

अर्थ—सवाहिं के० ते गोसालादिक मतानुसारी अन्य समस्त अणुजुत्तीहिं के० अ नुयुक्ति एटले हेतु दृष्टांते करी अचयंताजवित्तए के० पोताने पक्षे पोतानो पक्ष स्थापन करवाने असमर्थ थता ततो के० ते माटे वायंणिराकिच्चाके० वाद मूकीने तेज्जुञ्जो के० ते फरी फरी विपगप्निए के० विशेषे धृष्टपणु करे एटले एम कहेके अमारे जेम परं परागतछे तेज श्रेष्ठछे अन्यथी अमारे कांइ काम नथी इत्यादिक कहीने धृष्ट पणु अंगी कार करे पण युक्ति पूर्वक जैनमतानुसारीने उत्तर आपी शके नही ॥ १७ ॥ ते रागदो स के० राग अने द्वेषे अनिनूयप्पाके० पराजव्या थका सारी युक्तिये करी प्रत्युत्तर आ पवाने असमर्थ एवा मिछत्तेण के० मिथ्यादृष्टियें करीने अनिहुता के० व्यातथता आ उस्ससरणंजंति के० ते अनार्य अनेक आक्रोस [illegible] वचने [illegible] हण

वानो जे व्यापार तेनुं शरण ग्रहण करे टंकणाइव पवयं के० जेम टंकण एटले म्लेछादिक लोको जेहे ते शस्त्रादिके करी युद्ध करवाने असमर्थ थता पर्वतनो सरण ग्रहण करे तेम पूर्वोक्त कुतीर्थिकोपण युक्तिपूर्वक उत्तर देवाने असमर्थ थता क्रोधनो सरण अंगीकार करे. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका-( सवेहिंति ) तेगोशालमतीयादिगंबरावा सर्वाभिरनुगतयुक्तिभिः स्वपक्षं यापयितुमशक्नुवंतस्थापयितुस्ततोवादं निराकृत्य ते तीर्थिका भूयोपि प्रगल्भितां गताः वादपरित्यागेपि स्वधर्मस्थापनं नामुंचन्निति ॥ १७ ॥ ( रागेति ) रागद्वेषाभिभूतात्मानो मिथ्यात्वेनाऽभिडुताव्याभावादं कर्तुमसमर्थाआक्रोशेन शरणं यांति असत्यवचनानि दंभादिहननव्यापारवा स्वीकुर्वतीत्यर्थः । यथा टंकणाम्लेछविशेषाः परैरभिडुताः पर्वतं शरणंयांति ॥ १८ ॥

॥ टीका-अपिच ( सव्वाहिंत्यादि ) ते गोशालकमतानुसारिणोदिगंबरावा सर्वाभिरर्थानुगताभिर्युक्तिभिः सर्वैरेव हेतु दृष्टांतैः प्रमाणभूतैरशक्नुवंत. स्वपक्षे आत्मानं यापयितुं संस्थापयितुं ततस्तस्मायुक्तिभिः प्रतिपादयितुं सामर्थ्याभावाद्वादं निराकृत्य सम्यग्हेतुदृष्टांतैर्योवादोजल्पस्त परित्यज्य ते तीर्थिकाभूयः पुनरपि वादपरित्यागे सत्यपि प्रगल्भिता धृष्टतां गताइदमूचु । तद्यथा । पुराणं मानवोधर्मः संगोवेदश्चिकित्सितं । आज्ञासिद्धानिचत्वारि न हंतव्यानि हेतुभि ॥ १ ॥ अन्यच्च किमन्यया बहिरंगया युक्त्या ऽनुमानादिकया ऽत्र धर्मपरिक्षणे विधेये कर्तव्यमस्तियातः प्रत्यक्षएव बहुजनसंमतत्वेन राजाद्याश्रयणाच्चायमेवास्मदभिप्रेतोधर्मः श्रेयान्नापरऽस्त्येव विवदंते तेषामिदमुत्तरं । नह्यत्र ज्ञानादिसाररहितेन बहुनापि प्रयोजनमस्तीति । युक्तं च । एरंमकहरासी जहायगोसीस चंदनपलस्स । मोल्लेन होज्ज सरिसो कित्तियमेत्तो गणिज्जंतो ॥१॥ तहविगणणातिरेगो जहारासी सोनचंदनसरिछो ॥ तहनिविणाणमहो जणो विमोक्षे विसंवयति ॥२॥ एक्कोसचक्खुगोग्गविमूढापमाण जेगऽणयाणति ॥ संसारगमणगुविलं णिउणस्सयबंधमोक्खस्स ॥ ३ ॥ ऽत्यादि ॥ १७ ॥ अपिच ( रायदोस्साइत्यादि ) रागश्रप्रीतिलक्षणोद्वेषश्च तद्विपरीतलक्षणस्ताभ्यामभिभूतआत्मायेषां परतीर्थिकानां ते । तथा मिथ्यात्वेन विपर्यस्तावबोधेनातत्वाऽध्यवसायरूपेणाभिद्रुताव्याप्ताः सद्युक्तिभिर्वादं कर्तुमसमर्थाः क्रोधानुगाआक्रोशानसत्यवचनरूपांस्तथा दंमयुष्ट्यादिभिश्च हननव्यापारं यांत्याऽश्रयंते । अस्मिन्नेवार्थे प्रतिपाद्ये दृष्टांतमाह । यथा टंकणाम्लेछविशेषाऽर्जेयायदा परेण बलिना सानीकादिनाभिद्रूयंते तदा ते नानाविधैरप्यायुधैर्योद्धुमसमर्थाः संतः पर्वतं शरणमाश्रयंत्येवं तेपि कुतीर्थिकावादपराजिताः क्रोधाद्युपहत

द्दष्टयआक्रोशादिकं शरणमाश्रयंते । नच ते इदमाकलय्य प्रत्याक्रोष्टव्याः । तद्यथा । अ क्रोसहणणमारण धम्मकंसाणवाल सुलनाणं । लाभंमन्नइधीरो जहुत्तराणंअनावंमि॥१८॥

बहुगुणप्पगप्पाइं, कुज्जाअत्तसमाहिए ॥ जेणन्नेणोविरुज्झेज्जा, तेण तंतं समायरे ॥ १९ ॥ इमं च धम्म मादाय,कासवेण पवेइयं ॥ कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स, अगिलाए समाहिए ॥ २० ॥ संखाय पेसलं धम्मं, दिठि मं परिनिवुडे ॥ उवसग्गे नियामित्ता,आमोख्काए परिवएज्जा सित्तिबेमि ॥ २१ ॥ इति ततीय अज्झयणस्स तईउ उद्देसो सम्मत्तो.

अर्थ—परंतु जे साधुछे ते तेमनी साथे आक्रोशादिक करे नही किंतु ज्यां बहुगुण के० घणागुणने एटले प्रतिज्ञा हेतु दृष्टांत उपनय नैगम नय इत्यादिक प्पगप्पाइं के० प्रकल्पिये एवा मध्यस्थपणाना कारणने कुज्जा के० करे वली जे थकी अत्त के० आत्मा समाहिए के० समाधिवंत रहे एवा अनुष्ठान करे जेणन्नेणो विरुझेज्जा के० जे अनुष्ठानकस्याथी अथवा जे वचन बोल्या थकी अन्यपुरुष विरोध नपामे तेवुं कार्य करे तेण के० तेमाटे तंतं के० ते ते विधि समायरे के० समाचरे ॥१९॥ एरीते परमत निराकरण करी उपसंहारे स्वमत स्थापन करतां कहेछे इमंके० ए पूर्वोक्त वचनरूप धम्म मादाय के० धर्मने ग्रहण करीने ते धर्म कासवेण पवेइयंके० काश्यप एटले श्रीमाहावीर देवे प्रवेद्यो च शब्द थकी अन्य मतिनु निराकरण करीने प्रवेद्यो एटले कह्यो ते केवीरीते तो के भिक्खूके० साधु जे छे ते गिलाणस्स के० गिलाननी कुज्जाके० वैयावच्च करे अगिलाए समाहिए के० परंतु अगिलान पणे करे जेम पोताने तथा गिलानने समाधि उत्पन्न थाय तेवीरीते वैयावच्च करे ॥२०॥ संखायपेसलंधम्मं के० ते पेसल एटले मनोहर एवा सर्वज्ञ प्रणीत श्रुत चारित्ररूप धर्मने सम्यक् प्रकारे जाणीने दिठिमं के० दृष्टीमंतसाचा तत्वनो जाण परिनिवुडेके०परिनिवृत्त एटले क्रोधना उपशम थकीशीतलभूत थएलो एवो साधु तेने उवसग्गेके० उपसर्ग उदय आव्या छता नियामित्ताके० तेने सह न करीने आमोख्काय के० मोक्ष प्राप्तिसुधी परिवएज्जासि के० शुद्ध संयम पालतो थको प्रवर्त्ते. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥२१॥ इति श्रीद्वितीयसूत्रकृतांगे प्रथमश्रुतस्कंधे तृतीयाध्ययने उपसर्ग परिज्ञानाम स्तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ दीपिका—( बहुगुणेति ) । बहवोगुणाः स्वपक्षसिद्ध्यादयः प्रकल्पंते प्राडुर्भवंति येषु तानि बहुगुणप्रकल्पानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनादीनि मध्ये स्ववचनानि वाऽनुष्ठानानि साधुर्वादकाले कुर्यात् । कीदृशः साधुः आत्मसमाधिकश्चित्तस्वास्थ्यवान् । तत्र

यस्य सोढा नोपसर्गैरुपसर्गितोऽसमंजसं विदध्यादित्येवमामोक्षायाशेपकर्मक्षयप्राप्तिं यावत्परिसमंतात् व्रजेत्संयमानुष्ठानोद्युक्तोभवेत् परिव्रजेदिति । परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २१ ॥ उपसर्गपरिज्ञायास्तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥ ३ ॥

---

अथ तृतीयाध्ययने चतुर्थोद्देशकस्य प्रारंभः

आहं सुमहापुरिसा, पुविं तत्ततवोधणा ॥ उदयेण सिद्धिमावन्ना, तत्र मंदोवसीयति ॥ १ ॥ अभुंजिया नमी विदेही, रामगुत्ते य भुंजिआ ॥ बाहुए उदगं भोच्चा, तहा तारागणेरिसी ॥ २ ॥

अर्थ—आहं सुमहा पुरिसाके० हवे ते परमार्थना अजाण एम कहेछेके महा पुरुष प्रधान पुरुष तारागणऋषि प्रमुख तेणे एवीरीते आहं एटले कह्युंछे शुंकह्युंछे तोके पुविंत तत्तके०पूर्वे कालनेविषे तपश्चर्याना करनार तवोधणाके० तपरूप धनना धणी एवा अनेक ऋषीश्वर ते उदयेणके० उदक एटले शीतल पाणीनो परिभोग करता थका सिद्धिमावन्ना के० सिद्धिने पाम्या तेरीतनुं अन्य तीर्थिनुं वचन सांभलीने तत्रमंदोवसीयति के०मंद अज्ञानी बापडा तत्र एटले तेहिज शीतलोदकने विषे राचे; पण प्राशुक उदकनो भोग नकरे, एरीते संयमानुष्ठानने विषे सीदाय. ॥ १ ॥ हवे कोइक कुतीर्थि होयते साधुने विप्रतारवाने अर्थे आवीरीते कहेके अभुंजिया के० अशनादिकने अण भोगवतो एवो नमीविदेही के० नमीराजा विदेह देशमां उत्पन्न थयेलो हतो, ते मुक्ति पोहोतो; तथा अन्य तीर्थिक कहेछे के रामगुत्तेय भुंजिया के० रामगुप्त राजऋषीश्वर आहार भोगवतो थको मुक्ति पोहोतो, तथा बाहुए के० बाहुक ऋषीश्वर तहा के० तेमज तारागणेरिसी के० तारागणनामा ऋषीश्वर ए बंने उदगंभोच्चा के० शीतल पाणीना परिभोग थकी सिद्धिने पाम्या ॥ २ ॥

---

॥ दीपिका—सांप्रतं चतुर्थआरभ्यते । सच साधुना शीलरक्षणाय यत्नोविधीयतइत्यर्थवान् तस्य चेदमादिमं सूत्रं । (आहंसुइत्ति) केचिदविज्ञाततत्त्वाआहुरुक्तवंतः । यथा महापुरुषावल्कलचीरितारागणर्षिप्रमुखाः पूर्वं पूर्वकाले तप्तमनुष्ठितं तपएव धनं येषांते तप्ततपोधनाः पंचाग्न्यादिसाधकास्तएवंभूताउदकेन सचित्तोदकपरिभोगेण उपलक्षणात्कंदमूलादिभोजिनः सिद्धिमापन्नाः सिद्धिं गताः । तत्रैवंभूतार्थाकर्णने मंदोमूर्खोऽवसीदति संयमे सीदति शीतोदकादिपरिभोगे प्रवर्तते । तत्रैवं वेत्ति तेषां तापसानां कृतभिक्षातिस्मरणादिप्रत्ययादाविर्भूतसम्यग्दर्शनानां संयमप्रतिपत्त्याऽगतज्ञानावरणा

दिकर्मणां भरतादीनामिव मुक्तिः संजाता न तु शीतोदकपरिभोगादिति ॥ १ ॥ (अ भुंजिएति) केचित्कुतीर्थिकाअथवा स्ववर्ग्याएवं शीतलविहारिण एवमाहुः। नमी राजा विदेहपुरवासिनोलोकावैदेहास्तेयस्य संति स वैदेही अशनादिकमभुक्त्वा सिद्धिं गतः। रामगुप्तश्च राजर्षिराहारादिकंभुक्त्वैव भुंजानएव सिद्धिं गतः। तथा बाहुकः शीतोद कादिपरिभोगं कृत्वा तथा तारागणनामा मुनिः शीतोदकादिपरिभोगात्सिद्धः ॥ २ ॥

---

॥टीका—उक्तस्तृतीयोद्देशकः सांप्रतं चतुर्थः समारभ्यते। अस्यचायमभिसंबंधः। इहानंतरो देशके अनुकूलप्रतिकूलोपसर्गाः प्रतिपादितास्तैश्च कदाचित्साधुः शीलात् प्रच्याव्येत तस्य च शीलस्खलितस्य प्रज्ञापनानेन प्रतिपाद्यते इति। अनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्यादिमं सू त्रं (आहंसुइत्यादि)। केचन अविदितपरमार्थाआहुरुक्तवंतः। किंतदित्याह। यथा महापुरु षाःप्रधानपुरुषावल्कलचीरितारागणर्षिप्रभृतयः। पूर्वं पूर्वस्मिन् काले तप्तमनुष्ठितं तपएव ध नं येषां ते तप्ततपोधनाः पंचाग्न्यादितपोविशेषेण निष्टप्तदेहास्तएवंभूताः शीतोदकपरिभो गेन उपलक्षणार्थत्वात् कंदमूलफलाद्युपभोगेन च सिद्धिमापन्नाः सिद्धिं गतास्तत्रैवंभूता र्थसमाकर्णने तदर्थसद्भावावेशात् मंदाअस्नानादिखाजितः प्रासुकोदकपरिभोगभग्नाः संय मानुष्ठाने प्रविषीदंति। यदि वा तत्रैव शीतोदकपरिभोगे विषीदंति लगंति निमज्जंतीति यावत्। न त्वसौ वराकएवमवधारयति यथा तेषां तापसादिव्रतानुष्ठायिनां कुतश्चि ज्जातिस्मरणादिप्रत्ययादाविर्भूतसम्यग्दर्शनानां मौनीन्द्रभावसंयमप्रतिपत्त्या अपगतज्ञा नावरणादिकर्मणां भरतादीनामिव मोक्षावाप्तिर्न तु शीतोदकपरिभोगादिति॥१ ॥ किंचा न्यत्। (अभुंजियाणमित्यादि) केच न कुतीर्थिकाः साधुप्रतारणार्थमेवमूचुः। यदिवा स्ववर्ग्याः शीतलविहारिणएतद्वक्ष्यमाणमुक्तवंतस्तद्यथा निमीराजा विदेहोनाम जनप दस्तत्रभवावैदेहास्तन्निवासिनोलोकास्तेऽस्य संतीति वैदेही। सएवंभूतो निमीराजा अश नादिकमभुक्त्वा सिद्धिमुपगतस्तथा रामगुप्तश्च राजर्षिराहारादिकं भुक्त्वैव भुंजानएव सि द्धिं प्राप्तइति। तथा बाहुकः शीतोदकादिपरिभोगं कृत्वा तथा नारायणोनाममहर्षिः परिणतोदकादिपरिभोगात्सिद्धइति ॥ २ ॥

आसिले देवले चेव, दीवायण महारिसी, पारासरे दगं भो
च्चा, बीयाणि हरियाणिया॥ ३॥ एते पुव्वं महापुरिसा, आहिता
इह संमता॥ भोच्चा बीउदगं सिद्धा, इति मेयमणुस्सुअं॥ ४॥

अर्थ—वली आसिले के० आसिल तथा देवले के० देवल चेव के० एमज दीवाय णमहारिसी के० दीपायन महाऋषीश्वर अने पारासरे के० पाराशर ए सर्व ऋषीउं उ

दगंनोच्चा के० शीतलपाणीने नोगवी तथा बीयाणि के० बीजकाय हरियाणिय के० हरिकायना परिन्नोग थकी सिद्ध थया ॥ ३ ॥ एते के० ए नेमीराज रूपी प्रमुख पुवं महापुरिसाके० पूर्वकालनेविषे मोहा पुरुष (आहिताके०)कह्या ले ते इहके० आलोकने विषे संमता के० प्रसिद्धले ते कुतीर्थिक अथवा साताशील स्वयूथिक एम कहे के ए सर्व बीदगं के० बीज सचेतपाणीने नोच्चा के० नोगवीने सिद्धा के० सिद्ध थया इतिके० एम मेयं के० ए अमे महानारतादिक तथा पुराणोमांथी अणुस्सुयं के० सांनलुंले. माटे अमे पण एवीज रीते मुक्ति साधशुं ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–( असिलेति ) । असिलोनाम महर्षिस्तथा देवलोद्वैपायनः पराशराख्यइत्यादयः शीतोदकबीजहरितादिनोजिनःसिद्धाः ॥ ३ ॥ ( एतइति ) एते पूर्वोक्तामहापुरुषानम्यादयः पूर्वकाले त्रेताद्वापारादौ आख्याताः प्रसिद्धाः इहाप्यार्हतमते रूपिनापितादौ केचन संमता इत्येवं कुतीर्थिकाः प्रोचुः । एते सर्वेपि बीजोदकादिनोगात्सिद्धाइति मया नारतादौ पुराणे श्रुतं ॥ ४ ॥

॥टीका–अपिच । (असिलेइत्यादि) । असिलोनाम महर्षिर्देवलोद्वैपायनश्च तथा पराशराख्यइत्येवमादयः शीतोदकबीजहरितादिपरिन्नोगादेव सिद्धाइति श्रूयते ॥३॥ एतदेव दर्शयितुमाह । (एतेइत्यादि) एते पूर्वोक्तानम्यादयोमहर्षयः पूर्वमिति पूर्वस्मिन्काले त्रेताद्वापरादौ महापुरुषाइति प्रधानपुरुषाआसमंतात् ख्याताः प्रख्याताराजर्षित्वेनप्रसिद्धिमुपगताइहाप्याहितप्रवचने रूपिनापितादौ केचन संमताअनिप्रेताइत्येवं कुतीर्थिकाः स्वयूथ्यावा प्रोचुः । तद्यथा । एते सर्वेपि बीजोदकादिकं नुक्त्वा सिद्धाइत्येतन्मया नारतादौ पुराणे श्रुतं ॥ ४ ॥

तच मंदा विसीअंति, वाहछिन्नाव गद्दना ॥ पिठतो परिसप्पंति
पिठसप्पी च संन्नमे ॥ ५ ॥ इह मेगेउ नासंति, सातं सातेण विज्जती ॥ जे तच आरिअं मग्गं, परमं च समाहिए ॥ ६ ॥

अर्थ–तच्चके० त्यां कुशास्त्र जे नारतपुराणादिक तेने सांनलवे करी तथा परिसह उपने थके मंदाविसीअंति के० कोइक मंद अज्ञानी चारित्र थकी सीदाय कोनीपेरे तोके वाहछिन्नावगद्दना के० जेम नार थकी लागा एवा जे गर्दन ते मार्गमांज नार नाखीदेइने नासीजाय अथवा पिठतोपरिसप्पंति के० एए सर्प एटले जग्न गति पुरुष संन्नमे के० संन्नमी पणे अग्न्यादिक उपडव उपने थके पिठसप्पिय के० नागीजनार मनुष्य

नी पछवाडे दोडतो जाय परंतु अग्रगामि नथाय अग्नीमांहेज विनाश पामे तेम जे शीतल विहारी छे तेपण मुक्तिना अग्रगामी नथाय अनंतोकाल संसारमांहेज नमे ॥५॥ इहके० ए मोक्षमार्ग विचारवाने प्रस्तावे एगेउ के० कोइक शाक्यादिक अथवा स्वतीर्थि लोच प्रमुख कष्टे पीड्या थका एम कहेके सातंके० ते जे मुक्तिना सुख छे ते सातेणके० सुखे करीज विद्यती के० थाय परंतु डुःख थकी सुख न थाय. यथा शालिबीजाबाल्यांकुरो, जायतेनयवांकुर ऽतिवचनात् माटे लोचादिक कष्ट थकी मुक्ति शीरीते थशे एवीरीते बोलीने जेके० जे कोइक शाक्यादिक तह के० त्यां मोक्षविचारणाने प्रस्तावे आरिय के० श्रीतीर्थंकर देव तेनो प्ररुप्यो एवो जे मग्गं के० मोक्षमार्ग तेने मूकी आपेछे, ते परमंचसमाहियं के० परम समाधिनो कारण जे ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूपछे तेने त्यागीने घणो संसारमांहे परिभ्रमण करेछे. तेहिज देखाडेछे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–( तछेति ) तत्र कुमतश्रवणोपसर्गे मंदाविषीदंति संयमे सीदंति । यथा वाहेन नारेण विन्नास्त्रुटितारासनाः सीदंति । कोर्थः । यथा रासनानारपीमिता मार्गएव निपतंति एवं ते संयमनारं त्यक्त्वा शीतलविहारिणः स्युः । यथा पीठसर्पिणो नग्नगमनतया अग्न्यादिनये उद्भ्रांतनयनाः पश्चान्न परिसर्पति नाग्रगामिनोनवंति अपितु तत्रैवाग्न्यादिसंभ्रमे विनश्यंति । एवं तेपि शीतलविहारिणोन मोक्षगामिनः स्युः अपितु तत्रैव संसारे अनंतकालं तिष्ठंति ॥ ५ ॥ ( इहेति ) इह मोक्षविचारे एके शाक्यादयः स्वतीर्थ्यावा लोचादिपीमिताः। तुशब्दोविशेषणे । नाषंते । तथाहि। सातं सुखं सातेन सुखेन विद्यते स्यात् । यतउक्तं । सर्वाणि सत्वानि सुखे रतानि, सर्वाणि डुःखाच्च समुद्विजंति ॥ जीवेषु तस्मात्सुखमेव दद्यात् सुखप्रदानाल्लनते सुखानि ॥ १ ॥ इत्यात्मसुखान्मुक्तिसुखं स्यात् नतु लोचादिडुःखात् । यडुक्तं । मणुणं नोअणं चुच्चा, मणुणं सयणासणं ॥ मणुणंसि अगारंसि, मणुणं फायए मुणी ॥१ ॥ तथा । मृद्वी शय्या प्रातरुत्थाय सेव्या, नुक्तं मध्ये पानकं वाऽपराह्णे ॥ डाक्षाखंमं शर्करां चार्धरात्रे मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्टइति । अतोमनोज्ञाहारादेश्चित्तस्वास्थ्यं ततः समाधिः सएव मुक्तिरिति । ततः सुखेन सुखावाप्तिर्न तु लोचादिक्लेशेनेति एवंये नाषंते- तथा आर्य जैनेंद्रमार्गं परमंच समाधिज्ञानदर्शनचारित्रात्मकं येत्यजंति ते सदा नवे भ्राम्यंतीति ॥६ ॥

॥टीका–एतडुपसंहारद्वारेण परिहरन्नाह। (तत्रेत्यादि) तत्र तस्मिन् कुश्रुत्युपसर्गोदये मंदाअज्ञानाविधेयसाध्यं सिद्धिगमनमवधार्य .विषीदंति संयमानुष्ठानेन पुनरेतद्दंत्यज्ञाः ।तद्यथा। येषां सिद्धिगमनमनूत् तेषां कुतश्चिन्निमित्तात् जातजातिस्मरणादिप्रत्ययानामवाप्तसम्यक्ज्ञानचारित्राणामेव वल्कलचीरिप्रनृतीनामिव सिद्धिगमनमनूत् । न पुनः क

दाचिदपि सर्वविरतिपरिणामभावलिंगमंतरेण शीतोदकबीजाद्युपभोगेन जीवोपमर्दप्राये ण कर्मक्षयोऽवाप्यते । विषीदने दृष्टांतमाह । वहनं वाहोभारो वहनं तेन भिन्नाः कर्पि तास्त्रुटितारासभाइव विषीदंति । यथा रासभागमनपथएव प्रोज्झितभारानिपतंति ए वं ते प्रोज्य संयमभारं शीतलविहारिणोभवंति । दृष्टांतांतरमाह । यथा पृष्ठसर्पिणोभग्न गतयोऽग्न्यादिसंभ्रमे सत्युद्भ्रांतनयनाः समाकुलाः प्रनष्टजनस्य पृष्ठतः पश्चात्परिसर्पं ति नाग्रगामिनोभवंत्यपि तु तत्रैवाग्न्यादिसंभ्रमे विनश्यंत्येवं तेपि शीतलविहारिणो मोक्षं प्रतिप्रवृत्ताअपि तु न मोक्षगतयोभवंत्यपि तु तस्मिन्नेव संसारे अनंतमपि कालं यावदासतइति ॥ ५ ॥ मतांतरं निराकर्तुं पूर्वपक्षयितुमाह । ( इहमेगेइत्यादि ) । इहेति मोक्षगमनप्रस्तावे एके शाक्यादयः स्वयूथ्यावा लोचादिनोपतप्ताः । तुशब्दः पूर्वस्मात् शी तोदकापरिभोगाद्विशेषमाह । भाषंते ब्रुवते । मन्यंते च इति क्वचित्पाठः। किंतदित्याह । सातं सुखं सातेन सुखेनैव विद्यते भवतीति । तथाच वक्तारोभवंति । सर्वाणि सत्वानि सुखे रतानि सर्वाणि दुःखाच्च समुद्विजंति । तस्मात्सुखार्थीसुखमेव दद्यात् सुखप्रदाता लभ ते सुखानि॥१॥ युक्तिरप्येवमेव स्थिता । यतः कारणानुरूपं कार्यमुत्पद्यते। तद्यथा । शा लिबीजाच्छाल्यंकुरोजायते न यवांकुरइत्येव प्रीत्यात्मसुखान्मुक्तिसुखमुपजायते न तु लो चादिरूपात् दुःखादिति । तथाह्यागमे ऽप्येवमेव व्यवस्थितं ॥ मणुसं भोयणं भोच्चा मणु सं सयणासणं। मणुसंसि अगारंसि मणुसं झायए मुणी ॥१॥तथा मृद्वी शय्याप्रातरुत्थाय पेया, भुक्तं मध्ये पानकं चापराह्णे ।द्राक्षाखंडं शर्करा चार्धरात्रे मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्टः ॥१॥इत्यतोमनोज्ञाहारविहारादेश्चित्तस्वास्थ्यं ततः समाधिरुत्पद्यते समाधेश्च मुक्त्यवाप्तिर तः स्थितमेतत्सुखेनैव सुखावाप्तिर्न पुनः कदाचनापि लोचादिना कायक्लेशेन सुखावाप्तिरि ति स्थितं ।इत्येवं व्यामूढमतयोये केचन शाक्यादयस्तत्र तस्मिन्मोक्षमार्गप्रस्तावे स मुपस्थिते आराज्ञातः सर्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्योमार्गोजैनेंद्रशासनप्रतिपादितोमोक्षमार्ग स्तं ये परिहरंति। तथा च। परमं च समाधिज्ञानदर्शनचारित्रात्मकं ये त्यजंति तेऽज्ञाः संसा रांतवर्तिनः सदा भवंति । तथाहि । यत्तैरभिहितं कारणानुरूपं कार्यमिति तन्नायमेकां ततः शृंगाच्छरोजायते गोमयाद्वृश्चिकोगोलोमाविलोमादिभ्योदूर्वेति । यदपि मनोज्ञा हारादिकमुपन्यस्तं सुखकारणत्वेन तदपि विषूचिकादिसंभवा द्व्यभिचारीति । अपिचेदं वै षयिकं सुखं दुःखप्रकारहेतुत्वात् सुखाभासतया सुखमेव न भवति । तदुक्तं । दुःखात्म केषु विषयेषु सुखाभिमानः सौख्यात्मकेषु नियमादिषु दुःखबुद्धिः। उत्कीर्णवर्णपदपंक्तिरि वान्यरूपा सारूप्यमेति विपरीतगतिप्रयोगात्॥१॥इति। कुतस्तत्परमानंदरूपमस्यात्यंतिकै कांतिकस्य मोक्षसुखस्य कारणं भवति। यदपि लोचभूशयनभिक्षाटनपरपरिभवक्षुत्पिपासा दंशमशकादिकं दुःखकारणत्वेन भवतोपन्यस्तं तदप्यल्पसत्वानामपरमार्थदृशां महापु

ऽषाणां तु स्वार्थान्युपगमप्रवृत्तानां परमार्थचिंतकानां महासत्वतया सर्वमेवैतत्सुखायैवे ते। तथाचोक्तं। तणसंथारनिविस्रो विमुनिवरो नट्ठरागमयमोहो ॥ जंपावइ मुत्तिसुहं कत्तो तंचक्कवट्टीवि॥१॥ तथा । डुष्कृतसंख्यया च महतां क्षांतं पदं वैरिणः कायस्याशुचिता विरागपदवी संवेगहेतुर्जरा ॥ सर्वत्यागमहोत्सवाय मरणं जातिः सुहृत्प्रीतये संपद्भिः परिपूरितं जगदिदं स्थानं विपत्तेः कुतइति ॥१॥ अपिचैकांतेन सुखेनैव सुखेऽन्युपगम्यमाने विचित्रसंसाराजावः स्यात्तथा स्वर्गस्थानां नित्यसुखिनां पुनरपि सुखानुजूतैस्तत्रैवोत्पत्तिः स्यात्तथा नारकाणां च पुनर्डुःखानुजवात्तत्रैवोत्पत्तेर्न नानागत्या विचित्रता संसारस्य स्यान्नचैतत् दृष्टमिष्टं चेति ॥ ६ ॥

मा एयं अवमन्नंता, अप्पेणं लुंपहा बहुं ॥ एतस्स अमोरकाए,
अयहारिव जूरह ॥ ७ ॥ पाणाइवाते वट्टंता, मुसावादे असं
जता ॥ अदिन्नादाणे वट्टंता, मेहुणेय परिग्गहे ॥ ८ ॥

अर्थ—मा के० अहो दर्शनीर्ज, तमे एयं के० सुख थकी सुख थाय एवां वचने करी अवमन्नंता के० श्रीजिनेंद्रना मार्गने अवहिलता थका अप्पेणं के० अल्प विषयने अर्थे बहुं के० घणा एवांजे मोक्षना सुख तेने लुंपहा के० गमावोडो; एतस्स के० एवा असत्य पक्षने अमोरकाए के० न मूकवे करीने अयहारिव के० लोहवाहकनी पेरे जूरह के० जूरशो; जेम कोइक बे जण हता तेणे लोहनो जार उपाड्यो हतो, पढी मार्गे जता सुवर्ण दीठुं तेवारे एकजणे लोहनां जारने नाखी देइने अमुलक सुवर्ण वस्तु ग्रहण करी अत्यंत धनवत थयो, अने बीजायें लोहनो जार नाखी दीधो नही, ते पढी जूरवा लागो, तेम तमे पण जूरशो. ए कथा सविस्तर श्रीरायप्रश्नि सूत्रमांहे त्यां थकी जोइ लेवी ॥ ७ ॥ पाणाइवातेवट्टंता के० प्राणातिपातने विषे वर्त्तता मुसावादे के० मृषावादने विषे वर्त्तता अदिन्नादाणेके० अदत्तादान तथा मेहुणेके० मैथुन च के० वली परिग्गहेके० परिग्रह एटलाने विषे वट्टंताके० वर्त्तता थका तमे असंजताके० असंयतिडो अल्प विषयसुखमां पड्या थका घणुं एवुं जे मोक्ष सुख तेनो विनाशकरोडो. ॥८॥

---

॥ दीपिका—( माएति ) एनं जैनमार्गं अवमन्यमानाः परिहरंतो ऽल्पेन सुखेन मा बहु मोक्षसुखं लुंपथ विध्वंसथ । तथा एतस्यासत्पक्षस्यामोक्षेपरित्यागे अयोहारीव (जूरहत्ति ) आत्मानं कदर्थयते । यथाऽयसोलोहस्याहर्ता ऽपांतराले रूप्यादिलाजेपि दूरमानीतमिति लोहं नोज्झितवान् पश्चादलाजे जूरितवान् पश्चात्तापं कृतवान् एवं यू

यमपि ॥ ७ ॥ ( पाणाइवेति ) यूयं प्राणातिपाते मृषावादे संयताः संतोवर्तमानास्तथा ऽदत्तादाने मैथुने परिग्रहे वर्तमानाअल्पेन सुखेन बहु हारयथ ॥ ८ ॥

---

॥ टीका—अतोव्यपदिश्यते । ( माएयमित्यादि ) एनमार्यं मार्गं जैनेंद्रप्रवचनं सम्यक् ज्ञानदर्शनचारित्रमोक्षमार्गप्रतिपादकं सुखं सुखेनैव विद्यते इत्यादिमोहेन मोहिताअवमन्यमानाः परिहरंतोऽल्पेन वैषयिकेण सुखेन माबहु परमार्थसुखं मोक्षाख्यं लुंपथ विध्वंसथ तथाहि । मनोज्ञाऽहारादिना कामोद्रेकस्तदुद्रेकाच्च चित्तास्वास्थ्यं न पुनः समाधिरिति । अपि चैतस्यासत्पक्षाभ्युपगमस्यामोक्षे परित्यागे सति । ( आयो हारिवजूरहत्ति ) आत्मानं यूयं कदर्थय । यथैव केवलं यथावाऽयसो लोहस्याहर्त्ता अ पांतराले रूप्यादिलाभे सत्यपि दूरमानितमिति कृत्वा नोज्झितवान् । पश्चात् स्वावस्था नावाप्तावल्पलाभे सति जूरितवान् पश्चात्तापं कृतवान् एवं नवंतोपि जूरयिष्यंतीति ॥७॥ पुनरपि सातेन सातमित्येवं वादिनां शाक्यानां दोषोद्भिावयिषयाह । (पाणाइवायेत्यादि) प्राणातिपाते मृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहेषु वर्तमानाअसंयतायूयं वर्तमान सुखैषिणोल्पेन वैषयिकसुखाभासेन परमार्थिकमेकांतात्यंतिकं बहु मोक्षसुखं विलुंपथेति । किमिति । यतः पचनपाचनादिषु क्रियासु वर्तमानाः सावद्यानुष्ठानारंभतया प्राणातिपातमाचरथ । तथा येषां जीवानां शरीरोपभोगोभवद्भिः क्रियते तानि शरीराणि तत्स्वामिनिरदत्तानीत्यदत्तादानाचरणं । तथा गोमहिष्यजोष्ट्रादिपरिग्रहात्तन्मैथुनानुमोदनादब्रह्मेति । तथा प्रव्रजितावयमित्येवमुत्थाय गृहस्थाचरणानुष्ठानान्मृषावादस्तथा धनधान्यद्विपदचतुष्पदादिपरिग्रहात्परिग्रहइति ॥ ८ ॥

एवमेगे उ पासत्था, पन्नवंति अणारिया ॥ इत्थीवसंगया वाला,
जिणसासणपरम्मुहा ॥ ए ॥ जहा गंमं पिलागं वा, परिपीलेज्ज
मुहुत्तगं ॥ एवं विन्नवणित्थीसु, दोसो तह कउसिआ ॥ १० ॥

अर्थ—वली परमतनो नापा दोष कही देखाडेछे. एव के० एरीते एगेन के० कोइएक परतीर्थिक अथवा स्वतीर्थिक पासहाके० पासत्थादिक ते केवाछे तोके अणारियाके० अनार्य कर्मना करनार अणाचारि वली इत्थीवसंगया के० स्त्रीने वसे पड्या एटले स्त्रीनो परिसह जीतवाने असमर्थ तथा वाला के० अज्ञानी वली जिणसासण परम्मुहा के० जिनमार्ग थकी वपरांग ते पन्नवंति के० एम कहेछेके ॥ ए ॥ जहा के० जेम गंमंके० गूबडुं पिलागंवा के० पाकुं थकुं तेने परि के० त्यांज पीलेज्ज के० पीलीने तेमांथी पर अथवा रुधीर काढी नाखवा थकी मुहुत्तगंके० मुहूर्तमात्रमां सुख थाय परंतु पीडा कांइ

पण न थाय एवं के० एरीते अंहीं पण विन्नवणिइत्थीसु के० प्रार्थना करती एवी स्त्रीनी साथे संबंध करवाथी दोसोतछकउसिया के० त्यांपण क्यां थकीदोष आवशे अपितु कांइज दोषनथी. ॥ १० ॥

---

॥ दीपिका—एवं पूर्वोक्त प्रकारेण एके बौद्धविशेषाः शैवविशेषावा पार्श्वस्थाः स्वयूथ्या वाऽवसन्नकुशीलादयोऽनार्याः स्त्रीवशंगताः प्रज्ञापयंति वदंति। यतस्तेषां वचनं ।प्रियादर्शन मेवास्तु, किमन्यैर्दर्शनांतरैः ॥ प्राप्यते येन निर्वाणं, सरागेणापि चेतसा इति ।ते किंनूताः जिनशासनपराङ्मुखाः ॥ ए ॥ (जहेत्ति) ते एवमाहुः । यथा गंडं पिटकं पीडोपशमार्थं परिपीडय रुधिरादिकं निर्गाल्य मुहूर्तमात्रं सुखिनः स्युर्नच दोषेणानुषज्यंते । एवं विज्ञापनासु प्रार्थनीयासु स्त्रीषु दोषः कुतःस्यात् । तत्रकोर्थः । गंडपरिपीडनतुल्ये स्त्रीसंबंधे क्व दोषः स्यात् । तत्र दोषोयदि काचित्पीडा नवेन्न चेह्व साकाप्यस्तीति ॥ १० ॥

---

॥ टीका—सांप्रतं मतांतरदूषणाय पूर्वपक्षयितुमाह । (एवमेगेइत्यादि) तुशब्दः पूर्वस्माद्विशेषणार्थः ।एवमिति वक्ष्यमाणया नीत्या यदि वा प्राक्तनएव श्लोकोत्रापि संबधनीयः । एवमिति । प्राणातिपातादिषु वर्तमानाएकइत्यादिबौद्धविशेषानीलपटादयोनाथवादिकमंमलप्रविष्टावा शैवविशेषाः मदनुष्ठानात् पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः स्वयूथ्यावा पार्श्वस्थावसन्नकुशीलादयः स्त्रीपरीषहपराजितास्तएवं प्रज्ञापयंति प्ररूपयंति । अनार्याः अनार्यकर्मकारित्वात्। तथाहि। ते वदंति। प्रियादर्शनमेवास्तु किमन्यैर्दर्शनांतरैः । प्राप्यते येन निर्वाणं सरागेणापि चेतसा । किमित्येवं तेनिदधतीत्याह।स्त्रीवशंगताः यतोयुवतीनामाज्ञायां वर्तंते बालाअज्ञारागद्वेषोपहतचेतसइति । रागद्वेषजितोजिनास्तेषां शासनमाज्ञा कषायमोहोपशमहेतुनूता तत्पराङ्मुखाः संसारनिर्वेगिणोजैनमार्गविद्वेषिणएतद्वक्ष्यमाणमूचुरिति ॥ ए॥ यदूचुस्तदाह (जहागंडमित्यादि) यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः । यथा येन प्रकारेण कश्चित् गंमी पुरुषोगंडं समुत्थितं पिटकं वा तज्जातीयकमेव तदा कृतोपशमनार्थं परिपीडय पूयरुधिरादिकं निर्गाल्य मुहूर्तमात्रं सुखितोनवति न च दोषेणानुषज्यते । एवमत्रापि स्त्रीविज्ञापनायां युवतिप्रार्थनायां रमणीसंबंधे गंमपरिपीमनकल्पे दोषस्तत्र कुतः स्यात् । न ह्येतावता क्लेदापगममात्रेण दोषोनवेदिति ।स्यात्तत्र दोषोयदि काचित्पीडा नवेत् ॥ १० ॥

जहा मंधादए नाम,थिमिअं नुंजती दगं ॥ एवं विन्नवणित्थीसु,
दोसो तब कउसिआ ॥११॥ जहा विहंगमा पिंगा,थिमिअं नुं
जती दगं ॥ एवं विन्नवणित्थीसु, दोसो तब कउसिआ ॥१२॥ ए

वमेगे उ पासत्था, मिछदिठी अणारिआ ॥ अझोववन्ना कामे हिं, पूयणा इव तरुणए ॥ १३ ॥

अर्थ–वली दृष्टांत कहेछे. जहाके० जेम मंदादननामके० मेषो एवे नामे जनावर ते थिमितं के० जेरीते पाणी मोलाय नही एरीते भुंजतीदगं के० उदकनुं पान करे, परंतु पाणीने पण बाधा नथाय अने पोताने पण बाधा नकरे एवंके० एरीते विन्नवणिझीसु के० प्रार्थना करती स्त्री साथे संबंध करवा थकी दोसोतञ्चकउसिया के० त्यांपण दोष क्यां थकी थाय अपितु नज थाय. ॥११॥ जहा के० जेम विहंगमापिंगा के० कपिंजल एवेनामे पंखणी आकाशें उडती थकीज थिमिअंभुंजतीदगं के० निर्मलपाणीनुं पानकरे एवं के० एरीते विन्नवणिझीसु के० अहींपण गर्भांतर करण पूर्वक पुत्रादिकने अर्थे राग द्वेष रहित प्रार्थती एवी स्त्रीनी साथे संग करतां थकां दोष क्यांथकी थाय ॥१२॥ हवे सूत्र कर्त्ता ते वादीउना दोष प्रगट करतो कहेछे. एवमेगेउपासत्थाके० ते पूर्वोक्त गुंबडादिकना दृष्टांते करी मैथुनने निर्दोष मानता एवा कोइ एक परतीर्थिक तथा स्वयूथिक पासत्थादिक जेणे स्त्री परिसह जित्यो नथी, ते सिथल विहारी केवा छे, तो के मिछदिठी अणारिया के० मिथ्यादृष्टी अनार्य कर्मना करनार अनाचारी अझोववन्नाकामेहिंके० कामभोगने विषे गृद्ध छता प्रवर्त्ते कोनीपेरे तोके पूयणाइवके० पुतना एटले माकणनीपेरे जेम माकण न्हाना बालकने देखी गृद्ध थाय अथवा पुतना एटले गाडरीनीपेरे जेम गाडरी पोताना तरुणए के० तरुण बालकने विषे गृद्ध थाय; एटले समस्त जीवोमांहे संतानने विषे गाडरीनो स्नेह आकरो दीपेछे ते माटे ए दृष्टांत कह्युं तेम पूर्वोक्त अनाचारी पासत्थादिक पण कामभोगनेविषे गृद्ध थायछे. ॥ १३ ॥

॥ दीपिका–( जहेति ) यथा मंधादनोमेषः स्तिमितं अनालोडयन्नुदकं भुंक्ते पिबत्यात्मानं प्रीणयति नचान्योपघातं कुर्यात् एवं स्त्रीसंबंधे न काचिदन्यस्य पीडा आत्मनश्च प्रीणनमिति कुतस्तत्र दोषः ॥११॥ यथा पिंगाः कपिंजलाविहंगमाः पक्षिणआकाशएव वर्त्तमानाः स्तिमितं निभृतमुदकं पिबंति एवमत्रापि पुत्राद्यर्थं स्त्रीसंबंधं कुर्वतोऽरक्तद्विष्टस्य पक्षिणइव कुतोदोषः । यदुक्तं ॥ धर्मार्थं पुत्रकामस्य स्वदारेष्वधिकारिणः ॥ ऋतुकालविधानेन दोषस्तत्र नविद्यतइति ॥१२॥ अथैवं वदतां परेषां दोषमाह । एवं पूर्वोक्तैः पूर्वदृष्टांतैर्मैथुनं निर्दोषमितिमन्यमानाएके शाक्यादयः स्वयूथ्यावा पार्श्वस्थादयस्तथा मिथ्यादृष्टयोऽनार्याधर्मविरुद्धचारिणोऽध्युपपन्नागृद्धाः कामेषु वा । यथा पूतना शाकिनी तरुणके बाले आसक्ता यदि वा पूतना गडुरिका स्वापत्ये आसक्ता । कथाचात्र केनापि सर्वपशूनामपत्यानि निरुदके कूपेऽपत्यस्नेहपरीक्षार्थं क्षिप्तानि । तत्र चान्यामात

रः स्वापत्यशब्दाकर्णनेऽस्मिन्नपि कूपतटस्थाएव रुदंति चरन्ती लब्धपत्यातिस्नेहांधा अपायमनपेक्ष्य तत्रैवात्मानं क्षिप्तवतीत्यतोन्यपशुन्योगफुरिका स्वापत्ये नृशमासक्ता एवं तेपि कामासक्ताः ॥ १३ ॥

---

॥ टीका–दृष्टांतेन दर्शयति । ( जहेत्यादि ) यथेत्ययमुदाहरणोपन्यासार्थः । मंधाद नइति मेषः । नामशब्दः संजावनायां । यथा मेषस्तिमितमनालोडयन्नुदकं पिबत्यात्मानं प्रीणयति नच तथान्येषां किंचनोपघातं विधत्ते।एवमत्रापि स्त्रीसंबंधे न कांचिदन्यस्य पीडा आत्मनश्च प्रीणनमतः कुतस्तत्र दोषः स्यादिति ॥११॥ अस्मिन्नेवानुपघातार्थे दृष्टांतबहुत्वख्यापनार्थं दृष्टांतांतरमाह। (जहाविहंगमाइत्यादि) यथा येन प्रकारेण विहायसा गच्छतीति विहंगमा पक्षिणी(पिंगेति)कपिंजलासाकाशएव वर्तमाना स्तिमितं निन्नृतमुदकमापिबत्येवमत्रापि दर्जप्रदानपूर्विकया क्रियया अरक्ताद्विष्टस्य पुत्राद्यर्थं स्त्रीसंबंधं कुर्वतोपि कपिंजलायाइव न तस्य दोषइति । सांप्रतमेतेषां गंडपीडनतुल्यं स्त्रीपरिन्नोगं मन्यमानानां तथैमकोदकपानसदृशं परपीडाऽनुत्पादकत्वेन परात्मनोश्च सुखोत्पादकत्वेन किल मैथुनं जायतइत्यध्यवसायिनां तथा कपिंजलोदकपानं यथा तन्मागोदकासंस्पर्शेन किल नवत्येव मरक्तद्विष्टतया दर्जाद्युत्तारणात् स्त्रीगात्रस्पर्शेन पुत्रार्थं न कामार्थं । ऋतुकालाभिगामितया शास्त्रोक्तविधानेन मैथुनेपि न दोषानुषंगः॥ तथाचोचुस्ते। धर्मार्थं पुत्रकामस्य स्वदारेष्वधिकारिणः । ऋतुकाले विधानेन दोषस्तत्र न विद्यते इति । एवमुदासीनत्वेन व्यवस्थितानां दृष्टांतैनैव निर्युक्तिकारो गाथात्रयेणोत्तरदानायाह । (जहणामेइत्यादि) जहणामंमंमलग्गे एसिरं एकस्सइमणुस्सो ॥ अच्छेज्जपराहुत्तो किं नाम ततो णये पेज्ञा॥ ५३ ॥ जहणा विसगंडूसं, कोतीवेत्तूणनामतुसिक्को ॥ अस्तेणअदीसंतो, किंनाम ततो नवमरेज्जा ॥ ५४॥ जह नाम सिरिघराउ, कोइरयणेणामघेतूणं । अच्छेज्जपराहुत्तो किंणामततो न वेपेज्जा॥५५॥यथा नामकश्चिन्मंमलाग्रेणकस्यचिच्छिरश्छित्त्वा पराङ्मुखस्तिष्ठेत् । किमेतावतोदासीनभावावलंबनेन न गृह्येत नापराधी नवेत्।तथा यथा कश्चिद्विषगंडूषं गृहीत्वा पीत्वानामतूष्णींभावं नजेदन्येन वा संदृश्यमानोसौ किं नाम ततोसावन्यादर्शनात् नम्रीयेत।तथा यथा कश्चिच्छ्रीगृहाद्भांडागाराद्रत्नानि महार्घाणि गृहीत्वा पराङ्मुखस्तिष्ठेत् किमेतावतासौ न गृह्येतेति। अत्र च यथा कश्चित् शठतया अज्ञतया वा शिरच्छेदे विषगंडूषरत्नापहारारव्ये सत्यपि दोषत्रये माध्यस्थ्यमवलंबेत। न च तस्य तदवलंबनेपि निर्दोषतेति। एवमत्राप्यवश्यंनाविरागकार्यमैथुने सर्वदोषास्पदे संसारवर्द्धके कुतोनिर्दोषतेति । तथा चोक्तं । प्राणिनां बाधकं चैतच्छास्त्रेगीतं महर्षिनिः ॥ नलिकाततप्तकणकप्रवेशज्ञा ततस्तथा ॥ १ ॥ मूलं चैतदधर्मस्य नवनावप्रवर्धनं॥तस्माद्विपान्नवत्त्याज्यमिदं पापमनिच्छतेति निर्युक्तिगाथा

त्रयतात्पर्यार्थः ॥ १२ ॥ सांप्रतं सूत्रकारउपहारव्याजेन गंमपीमनादिदृष्टांतवादिनां दो षोद्भिावयिषयाह् । (एवमेगेइत्यादि ) । एवमिति गंडपीमनादिदृष्टांतबलेन निर्दोषं मैथुन मिति मन्यमानाएके स्त्रीपरीषहपराजिताः सदनुष्ठानात्पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्थानाथ वादिकमंडलचारिणः। तुशब्दात् स्वयूथ्यावा तथा विपरीता तत्वाग्राहिणी दृष्टिर्दर्शनं येषां ते तथा आराद्दूरे याताः सर्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्याः नआर्या अनार्याः । धर्मविरुद्धानुष्ठाना त्तएवं विधाअध्युपपन्नागृध्नवइच्छामदनरूपेषु कामेषु कामैर्वाकरणनूतैःसावद्यानुष्ठानेष्विति । अत्र लौकिकं दृष्टांतमाह् । यथावा पूतना डाकिनी तरुणके स्तनंधयेऽध्युपपन्ना । एवं तेप्यना र्याः कामेष्विति।यदि वा(पूयणत्ति)गमुरिका आत्मीयेऽपत्येऽध्युपपन्ना एवं तेपीति। कथा न कंचात्र । यथा किल सर्वपशूनामपत्यानि निरुदके कूपेऽपत्यस्नेहपरीक्षार्थं क्षिप्तानि तत्र चापरामातरः स्वकीयस्तनंधयशब्दाकर्णनेपि कूपतटस्थारुदंत्यस्तिष्ठंति । उरच्रीत्वपत्याति स्नेहेनांधा अपायमनपेक्ष्य तत्रैवात्मानं क्षिप्तवतीत्यतोऽपरपशुभ्यः स्वापत्येऽध्युपपन्नेति ॥

अणागयमपस्संता, पच्चुप्पन्नगवेसगा ॥ ते पच्छा परितप्पंति,
खीणे आउंमि जोव्वणे ॥ १४ ॥ जेहिं काले परिक्कंतं, नपच्छा प
रितप्पए ॥ ते धीरा बंधणुम्मुक्का, नाव कंखंति जीविअं ॥ १५ ॥

अर्थ—हवे ते काम गृध्नना दोष कहेछे. ते काम नोग थकी जे निवृत्या नथी तेने अणागय के० आगामिक काले नरकादिक दुःख उत्पन्न थाय एवुं अपस्संता के० अ ण देखता थका अने पच्चुप्पन्नगवेसगाके० प्रत्युत्पन्न जे वर्तमान विषय सुख तेने गवेषता एनेज रुडुंकरी मानता थका रहेछे तेपच्छाके० तेपठी खीणआउंमिजोव्वणेके० जेवारे आ युष्य क्षीण थाय, अने यौवन जतुं रहे तेवारे परितप्पंति के० पश्चात्ताप करे; अने क हेके अमे एवा अनाचार शावास्ते कस्या? ॥ १४ ॥ जेहिं के० जे महापुरुषे कालेके० काल प्रस्तावे धर्मनेविषे परिक्कंतं के० पराक्रम कर्युं. नपच्छापरितप्पए के० ते महापुरुष पठी वृद्धावस्थायें तथा मरणावसरे पश्चात्तापकरे नही; ते धीराबंधणुम्मुक्का के० ते धैर्य वंत पुरुष बंधण थकी मूकाणा नावकंखंतिजीविअंके० असंयमे जीवितव्यनी आकां क्षाकरता नथी अथवा जीवितव्य मरणने विषे निस्पृहि थका वर्तेछे. ॥ १५ ॥

---

॥ दीपिका—तेषां दोषमाह् ( अणागयमित्यादि ) । अनागतं नरकादिदुःखमपश्यंतः प्रत्युत्पन्नं वर्तमानमेव विषयसुखानासमन्वेषयंतः पश्यंतः पश्चात्क्षीणे स्वायुषि यौवने वा गते परितप्यंति पश्चात्तापं कुर्वंति । यदुक्तं । हतं मुष्टिभिराकाशं तुषाणां कंडनं कृतं। यन्मया प्राप्य मानुष्यं सदर्थे नादरः कृतः ॥ १ ॥ तथा । विहवावलेवनमिएहिं । जाइ

कीरंतिजोवणमएण ॥ वयपरिणामेसरिआ । इंताइंद्दि अपखुडुक्कंति इति ॥१४॥ (जेहिं इत्यादि) येरात्महितैः कालेऽवसरे पराक्रांतं संयमोद्यमः कृतस्ते पश्चान्न परितप्यंते । एकवचनंसूत्रे ग़ंदसत्वात् । ते वीरास्तपश्चरणोद्यताबंधनात्कर्मणोन मुक्ताअसंयमजीवितं नावकांक्षंतिने ब्वंति । जिविते मरणे वा निस्पृहाः स्युरित्यर्थः ॥ १५ ॥

---

॥टीका–एवं तेपि कामान्निप्वंगिणांदोपमाविप्कुर्वन्नाह॥(अणागयमित्यादि)अनागतमेप्यत्कामानिवृत्तानां नरकादियातनास्थानेषु महत् डुःखमपश्यंतोऽपर्यालोचयंतस्तथा प्रत्युत्पन्नं वर्तमानमेव वैपयिकं सुखाजालमन्वेपयंतोमृगयमाणानानाविधैरुपायैर्भोगान्प्रार्थयंतस्ते पश्चात् क्षीणे स्वायुपि जातसंवेगायौवने वा अपगते परितप्यंतेशोचयंते पश्चात्तापं विदधति । उक्तं च।हतंमुष्टिनिराकाशं तुपाणां कंमनंकृतं।यन्मया प्राप्य मानुष्यं सदर्थे नादरःकृतः॥१॥ तथा। विहवावलेवनमिएहिं। जाइंकीरंतिजोवणमएण॥वयपरिणामे सरियाइंताइंहिअपखुडुक्कंति ॥१॥१४॥ येतूत्तमसत्वतया अनागतमेव तपश्चरणादावुद्यमं विदधति न ते पश्चाच्छोचंतीति तदर्शयितुमाह । ( जेहिंकाले इत्यादि ) येरात्महितकर्तृभिः काले धर्मार्जनावसरे पराक्रांतमिंद्रियकपायपराजयाद्युद्यमोविहितोन ते पश्चान्मरणकाले वृद्धावस्थायां वा परितप्यंते न शोकाकुलाभवंति। एकवचननिर्देशस्तु सौत्रश्चांदसत्वादिति। धर्मार्जनकालस्तु विवेकिनां प्रायशः सर्वएव तस्मात्सएव प्रधानपुरुपार्थः प्रधानएव च प्रायशः क्रियमाणोघटां प्रांचति । ततश्चायं बाल्यात्प्रभृत्यकृतविषयासंगतयाकृततपःश्चरणास्ते धीराः कर्मविदारणसहिश्नवोबंधनेन स्नेहात्मकेन कर्मणा चोत्प्राबल्येन मुक्तानावकांक्षंति असंयमजीवितं यदि वा जीविते मरणे वानिस्पृहाः संयमोद्यममतयोभवंतीति ॥ १५॥

जहा नई वेयरणी, डुत्तरा इह संमता ॥ एवं लोगंसि नारीर्ज,
डुत्तरा अमईमया ॥ १६ ॥ जेहिं नारीणसंजोगा, पूयणा पिट्ठ
तोकता ॥ सव्वमेयंनिराकिच्चा, तेठिया सुसमाहिए ॥ १७ ॥

अर्थ–जहानईवेयरणी के० जेम नदी वेतरणी जेछेते डुत्तराइहसंमता के० सर्वे नदीओमां तरवी डुर्लनछे एवात लोक प्रसिद्धछे एवंलोगंसिनारीर्ज के० एरीते लोकमांहे स्त्रीर्जजेछे तेपण डुत्तराअमईमया के० अमतिवंत निरविवेकी पुरुपने अपार डुस्तर डुर्लंघनीय जाणवी॥ १६ ॥ एवुं जाणीने जे हितकारी वातछे ते कहेछे जेहिं के० जे पुरुपे नारीणसंजोगा के० स्त्री संबंधी संयोगना जे विपाक तेने कडवा जाणीने स्त्रीना संयोग ग़ंमीदीधा वली पूयणापिट्ठतोकता के० तेस्त्रीना संयोगने अर्थे जे पोताना शरीरनी पूजा विनूषाते पण जेणे उपरांठी कीधी एटले मूकीदीधी, सव्वमेयंनिराकिच्चा

के० ते पुरुषे एसर्व स्त्रीसंगादिक तथा क्षुधा तृषादिक अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गना गण एटले समूह तेने निराकरीने जे महापुरुष संसेवित मार्गे प्रवर्त्ते तेछियासुसमाहिए के० तेपुरुष संवररूप समाधिने विषे स्थित जाणवा. ॥ १७ ॥

॥ दीपिका–यथा वैतरणी नदी सर्वनदीनां मध्ये डुस्तरा डुर्लंघ्या इह लोके सम्मता। एवं लोके नार्योऽमतिमता निर्विवेकेन नरेण डुस्तराः। यडुक्तं! सन्मार्गे तावदास्ते प्रनवति पुरुषस्तावदेवेंड्रियाणां लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालंबते तावदेव। भ्रूचापाक्षेपमुक्ताः श्रवणपथजुषोनीलपक्ष्माणएते यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतंति इति ॥ १६ ॥ यैरुत्तमैर्नारीणां संयोगास्तत्संयोगार्थमेव वस्त्रालंकारादिनिरात्मनः पूजनाः कामविभूषाः पृष्ठतः कृतास्त्यक्तास्ते महापुरुषाः सर्वमेतत्स्त्रीप्रसंगादिकं निराकृत्य सुसमाधिना चित्तस्वास्थ्येन स्थिताः ॥ १७ ॥

॥ टीका–अन्यच्च (जहाइत्यादि) यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः। यथा वैतरणी नदीनां मध्येऽत्यंतवेगवाहित्वात् विषमतटत्वाच्च डुस्तरा डुर्लंघ्या एवमस्मिन्नपि लोके नार्योऽमतिमता निर्विवेकेन हीनसत्वेन डुःखेनोत्तीर्यंते। तथाहि। ताहावनावैः कृतविद्यानपि स्वीकुर्वंति। तथाचोक्तं। सन्मार्गे तावदास्ते प्रनवति पुरुषस्तावदेवेंड्रियाणां, लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालंबते तावदेव ॥ भ्रूचापाक्षेपमुक्ताः श्रवणपथजुषोनीलपक्ष्माणएते यावल्लीलावतीनां न यदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतंति। तदेवं वैतरणीनदीवत् डुस्तरानार्योनवंतीति ॥ १६ ॥ अपिच। (जेहींत्यादि। यैरुत्तमसत्वैः स्त्रीसंगविपाकवेदिनिः पर्यंतकटवोनारीसंयोगाः परित्यक्तास्तथा तत्संगार्थमेव वस्त्रालंकारमाल्यादिनिरात्मनः पूजनाकामविभूषा पृष्ठतः कृता परित्यक्तेत्यर्थः। सर्वमेतत्स्त्रीप्रसंगादिकं क्षुत्पिपासादिप्रतिकूलोपसर्गकदंबकं च निराकृत्य ये महापुरुषसेवितपंथानं प्रति प्रवृत्तास्ते सुसमाधिना स्वस्थचित्तवृत्तिरूपेण व्यवस्थितानोपसर्गैरनुकूलप्रतिकूलरूपैः प्रक्षोन्यंते। अन्येतु विषयाभिष्वंगिणः रूपादिपरीषहपराजिताअंगारोपरिपतितमीनवड्रागाग्निना दह्यमानाअसमाधिना तिष्ठंतीति ॥ १७॥

एते उग्घं तरिस्संति, समुद्दं ववहारिणो ॥ जच्च पाणा विसन्ना
सि, किच्चंती सयकम्मणा ॥ १८ ॥ तंच भिक्कू परिणाय, सुव्वते
समिते चरे ॥ मुसावायं च वज्जिज्जा, दिन्नादाणं च वोसिरे ॥ १९॥

अर्थ–एतेके० ए पूर्वोक्त परिसहना जीपणहार ते उग्घंके० उघसंसारने तरिस्संतिके० तरसे समुद्दंववहारिणोके० समुद्रवत; एटले जेम व्यवहारिया समुद्रने नाव वडे तरेछे तेनीपरे जाणीनेवुं जच्चके० जे संसार समुद्रने विषे पाणाविके० प्राणी एटले जीव ते सन्नासिके०

खुता थका सयकम्मणाके० पोताना करेला पापकर्मे करी असातावेदनीयरूपे किचंती के० पीडायछे ॥ १७ ॥ हवे उपदेश कहेछे तंचनिख्कू के० ते पूर्वोक्त चारित्रिउं प रिन्नायके० हेय उपादेय स्वरूप जाणीने सुवते के० नला व्रतनो पालक समितेचरे के० पांच समिते समितो एवो थको विचरे अने मुसावायंच वज्जिज्जा के० मृषावादने वर्जे तथा दिन्नादाणंचवोसिरे के० अदत्तादान एटले चोरी थकी वोसिरे एटले चोरीनुं त्यागकरे, एम अनुक्रमे मैथुन तथा परिग्रहने पण त्यजे. ॥ १९ ॥

---

॥ दीपिका–एतेस्त्रीपरीषहजेतारञ्घं संसारं तरिष्यंति । यथा व्यवहारिणः सांया त्रिकाः समुद्रं तरंति । यत्र नवौघे प्राणिनोविषयसंगैर्विषण्णाः संतः कृत्यंते पीड्यंते स्व कर्मणा ॥ १७ ॥ तदेतत्प्रागुक्तं निक्षुः परिज्ञायज्ञात्वा सुव्रतः शोजनव्रतयुक्तः समितः पंचसमितिनिश्चरेत् संयमानुष्ठानं कुर्यात् तथामृषावादं वर्जयेददत्तादानंच व्युत्सृजे त् त्यजेत् । आदिशब्दान्मैथुनपरिग्रहादिच त्यजेत ॥ १९ ॥

---

॥ टीका–स्त्र्यादिपरीषहपराजयस्य फलं दर्शयितुमाह ।(एतेइत्यादि) यएते अनंतरोक्ता अनुकूलप्रतिकूलोपसर्गजेतारएते सर्वे उघं संसारं डुस्तरमपि तरिष्यंति। दृष्टांतमाह । समुद्रंलवणसागरमिव व्यवहारिणःसांयात्रिकायानपात्रेण तरंत्येवं नवौघमपि संसारसंयम यानपात्रेण यतयस्तरिष्यंति।तथा तीर्णास्तरंतिचेति।नवौघमेव विशिनष्टि।नवौघे संसारसाग रेप्राणाःप्राणिनः स्त्रीविषयसंगाद्विषण्णाःसंतःकृत्यंते पीड्यंते स्वकृतेनानुष्ठितेन पापेनकर्मणा असद्वेदनीयोदयरूपेणेति ॥१७॥ सांप्रतमुपसंहारव्याजेनोपदेशांतरविवित्सयाह । ( तंच निख्कूइत्यादि ) । तदेतद्यथा प्रागुक्तं । यथा वैतरणीनदीवत् डुस्तरानार्योयैः परित्यक्ता स्ते समाधिस्थाः संसारं तरंति स्त्रीसंगिनश्च संसारांतर्गताः स्वकृतकर्मणा कृत्यंतइति । तदेतत्सर्वं निक्षणशीलोनिक्षुः परिज्ञाय हेयोपादेयतया बुध्वा शोजनानि व्रतान्यस्य सुव्रतः पंचनिः समितिनिः समितइत्यनेनोत्तरगुणावेदनं कृतमित्येवंनूतश्चरेत् संयमानुष्ठानं विद ध्यात् तथा मृषावादमसद्भूतार्थनापणं विशेषेण वर्जयेत्तथा अदत्तादानं च व्युत्सृजेद्दंतशो धनमात्रमप्यदत्तं न गृह्णीयात् । आदिग्रहणान्मैथुनादेः परिग्रहइति । तच्चमैथुनादिकं यावज्जीवमात्महितं मन्यमानः परिहरेत् ॥ १९ ॥

उड्ढमहे तिरियं वा, जे केई तस थावरा ॥ सव्वछ विरतिं कुज्जा, सं ति निव्वाणमाहियं ॥२०॥ इमं च धम्ममादाय, कासवेण पवेदितं॥ कुज्जा निख्कू गिलाणस्स, अगिलाए समाहिए ॥२१॥ संखाय

पेसलं धम्मं दिठिमं परिनिवुमे ॥ उवसग्गे हियासित्ता, आमो
स्काए परिव्वएज्जा सितिबेमि ॥ २२ ॥ इति श्री उवसग्गपरिन्ना
ए तइयं अभ्रयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ–हवे बीजा सर्वव्रत दयानी वाड रूपछे तेकारणे अहिंसाने विशेष दीपावेछे उड्ढं के० उंचो अहे के० अधो एटले नीचो तिरियं के० तीर्छों वा के० अथवा एटले सर्व लोकमांहे क्षेत्रथी प्राणातिपात कह्युं हवे द्रव्यप्राणातिपात कहेछे. जेकेईतसथावरा के० ए सर्व लोकमांहे जेकांइ त्रस अने स्थावर जीवछे सव्वविरतिंकुज्जा के० तेनेविषे सर्व प्रकारे एटले करण करावण अने अनुमतियेंकरी सर्वत्रकालें विरतिपणुंकरे एटले सर्व जीवोनी दयानुं पालवुं तेने संतिनिव्वाण माहियं के० ते शांति एटले कर्म दाहनी उप शम करनार कहिये तथा एनेज निरवाण एटले मोक्षपदमांपण आहितंएटले कह्युंछे.॥२०॥ हवे अध्ययननो अर्थ उपसंहरतो कहेछे. इमंच धम्ममादाय के० एम श्रुत चारित्र रूप धर्मने ग्रहण करीने ते धर्म कासवेणप्पवेदितं के० श्रीमहावीर स्वामिये प्रकाश्यो ते मार्ग आदरीने भिरकू के० साधु ते गिलाणस्स के० गिलानने विषे वैयावच्चने कुज्जा के० करे ते केवो थको वैयावच्च करे तो के अगिलाए समाहिए के० अगिलाणपणे आत्माने समाधिमान थको जे साधु वैयावच्च करेछे तेने धन्यछे एवी समाधि धारण करतो थको वैयावृत करे ॥ २१ ॥ संखायके० सम्यक् प्रकारे जाणीने एटले जातिस्म रणादिके अथवा अन्यपासेथी सांभलीने पेसलं के० रूडो एवो धम्मं के० केवलीनुं भा ष्योजे धर्म तेने दिठिमं के० सम्यक्दृष्टी जीव परिनिवुमे के० कषायने उपशमावी शीत लीभूत थको उवसग्गेहियासित्ता के० अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गने अहिआसीने आमो रकाए के० ज्यांसुधी मोक्षे जाय त्यांसुधी परिव्वएज्जासिके० सुधो संयम पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२२॥ ए उपसर्ग परिज्ञानामे त्रीजाध्ययननुं अर्थ समाप्त थयुं ॥

---

॥ दीपिका–ऊर्ध्वमधः ये केचित् त्रसाः स्थावराः प्राणिनस्तेषु सर्वत्र कालेऽवस्थासु च विरतिं कुर्यात् यस्माच्छांतिनिर्वाणं कर्म दाहोपशमः शांतिस्तद्रूपं निर्वाणं मोक्षपदं आ ख्यातं कथितं यतोविरतेर्मोक्षोभवतीति ॥ २० ॥ इमं चारित्ररूपं धर्ममादाय गृहीत्वा काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितमाख्यातं ग्लानस्य साधोर्वैयावृत्त्यं कुर्यात् भिक्षुः कथं। अग्लान तया यथाशक्ति समाहितः समाधिं प्राप्तः यथाग्लानस्य समाधिरुत्पद्यतेः स्वस्यच योगान विषीदंति यथा वैयावृत्त्यादिकं विधेयमिति ॥२१॥ पेशलं मोक्षप्रदं धर्मं संख्याय ज्ञात्वा दृष्टिमान् सम्यग्दर्शनी परिनिर्वृतः शांतः उपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान् नियम्य नियंत्र्य

आमोक्षाय मोक्षार्थं परिव्रजेत् संयमेचरेदिति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इतितृतीया ध्ययने चतुर्थेनदेशकः समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ टीका—अपरिव्रतानामहिंसायावृत्तिकल्पत्वात् तत्प्राधान्यख्यापनार्थमाह ( उड्ढमहे इत्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् चेत्यनेन क्षेत्रप्राणातिपातोगृहीतः। तत्रच ये केचन त्रसंतीति त्रसाद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाः पर्याप्तापर्याप्तकभेदभिन्नास्तथा तिष्ठंतीति स्थावराः पृथिव्यप्तेजो वायुवनस्पतयः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकभेदभिन्नाइत्यनेन च द्रव्यप्राणातिपातोगृही तः। सर्वत्र काले सर्वास्ववस्थास्वित्यनेनापि कालभावभेदभिन्नः प्राणातिपातउपात्तोद्रष्टव्यः। तदेवं चतुर्दशस्वपि जीवस्थानेषु कृतकारितानुमतिभिर्मनोवाक्कायैः प्राणातिपातविरतिं कुर्यादित्यनेन पादोनेनापि श्लोकद्वयेन प्राणातिपातविरत्यादयोमूलगुणाः ख्यापिताः। सांप्रतमेतेषां सर्वेषामेव मूलोत्तरगुणानां फलोद्देशेनाह। शांतिरिति कर्मदाहोपशमस्त देवच निर्वाणं मोक्षपदं यदाख्यातं प्रतिपादितं सर्वद्वंद्वापगमरूपं तदस्यावश्यं चरणक रणानुष्ठायिनः साधोर्भवतीति ॥ २० ॥ समस्ताध्ययनार्थोपसंहारार्थमाह। ( इमंचधम्म मित्यादि ) इममिति पूर्वोक्तं मूलोत्तरगुणरूपं श्रुतचारित्राख्यं वा दुर्गतिधारणात् धर्ममा दायाचार्योपदेशेन गृहीत्वा (किंभूतमिति)। तदेव विशिनष्टि। काश्यपेन श्रीमन्महावीरव र्धमानस्वामिना समुत्पन्नदिव्यज्ञानेन भव्यसत्वाऽभ्युद्धरणाभिलाषिणा प्रवेदितमाख्या तं समधिगम्य भिक्षुः साधुः परीषहोपसर्गैस्तर्जितोग्लानस्यापरस्यसाधोर्वैयावृत्त्यं कुर्या त्। कथमिति। स्वतोऽग्लानतया यथाशक्ति समाहितइति समाधिं प्राप्तः। इदमुक्तं भवति। कृतकृत्योहमिति मन्यमानोवैयावृत्त्यादिकं कुर्यादिति ॥ २१ ॥ अन्यच्च ( संखायइति ) संख्यायेति सम्यक् ज्ञात्वा स्वसंमत्या अन्यतोवा श्रुत्वा (पेशलंति) मोक्षगमनं प्रत्यनुकूलं किंतद्धर्मं श्रुतचारित्राख्यं दृष्टिमान् सम्यक्दर्शनी परिनिर्वृतइति। कषायोपशमाच्छीतीभूतः परिनिर्वृतकल्पोवा उपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान् सम्यग् नियम्यातिसह्यामोक्षाय मोक्षंयावत् परिसमंतात् व्रजेत् संयमानुष्ठानेन गच्छेदिति। इतिशब्दः समाप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत्। न यचचापि तथैवेति ॥ २२ ॥ उपसर्गपरिज्ञायाः समाप्तश्चतुर्थोद्देशकस्तत्परिसमाप्तौ च तृ तीयाध्ययनमिति । ग्रंथाग्रं ॥७७५॥

हवे प्रथम श्रुतस्कंधने विषे चोथुं अध्ययन प्रारंभियें छैयें. त्रीजा अध्ययननेविषे जे उपसर्ग कह्या तेमांहे अनुकूल उपसर्ग सहन करवा दुर्लभछे एम कह्युं हतुं, तेमा टे स्त्रीना करेला अनुकूल उपसर्ग सहन करवाने अर्थें चोथुं अध्ययन कहियें छैयें.

जे मायरंच पियरंच, विप्पजहाय पुवसंजोगं ॥ एगे सहिते च
रिस्सामि, आरतमेहुणो विवित्तेसु ॥ १ ॥ सुहुमेणं तं परिक्कम्म

छन्नपएण इत्थिउमंदा ॥ उवायंपिताउ जाणंसु जहा लिस्संति भिक्खुणो एगे ॥ २ ॥

अर्थ-(जेके०) जे उत्तमसाधु (मायरंचपियरंचके०) माता पिता अने नाइ प्रमुखनो (पुव संजोगंके०) पूर्वलो संयोग एटले आगलो संबंध तथाश्वशुरादिकनो पश्चात् संबंध एटले पाबलथी थयलो संबंध तेने विप्पजहायके० ढांमीने एगेके० एकलो रागद्वेषरहित अने ज्ञानदर्शन तथा चारित्रे करीने सहितेके०सहित एवो थतो,चरिस्सामिके०हुं संयम पालीश एवी प्रतिज्ञा करे; वली मेहुणो के० मैथुन थकी आरत के० निवर्त्योछे विवित्तेसु के० स्त्री पशु पंमग रहित एवा उपाश्रयनो गवेषणहार एवा साधुने पण कोइएक स्त्री विप्रतारेछे ते कहेछे ॥ १ ॥ सुहुमेणं के० कोइएक कार्यने मीशे तंपरिक्कम्म के० ते साधुने समीपे आवीने छन्नपएण के० ढाने शब्दे, हलवे हलवे, अनेक गूढार्थ पदे करी एटले मर्मना वचने करी, इत्थिउमंदाके० कोइक स्त्री मंद एटले विवेकरहित एवी थति पुरुषने वशकरवाना उवायंपि के० उपायने ताउ के० ते स्त्री जाणंसु के० जाणे जहा के० जे उपाये करीने एगेके० कोइक भिक्खुणो के० चारित्रिउ मोहनीय कर्मना उदय थकी स्त्रीने वश थई जाय अने लिस्संति के० संयम थकी पडी जाय. ॥ २ ॥

---

अथ चतुर्थमध्ययनं.

॥ दीपिका-उक्तं तृतीयमध्ययनं । अथ चतुर्थमारभ्यते । तत्रस्त्रीपरीषहोजेयइत्यर्थोवाच्यं तस्येदमादिमंसूत्रं । जेमायरमिति । योमातरं पितरं चशब्दात्पुत्रादिकं च विप्रहाय त्यक्त्वा पूर्वसंयोगं एकोनिःसंगः सहितोज्ञानादिभिः स्वहितोवा चरिष्यामि संयमं करिष्यामीति कृतप्रतिज्ञः। आरतमुपरतं मैथुनं कामाभिलाषोयस्य सआरतमैथुनोविविक्तेषु स्त्र्याद्यनाकुलेषुस्थानेषु चरतीति शेषः। अथवा विविक्तं स्थानं एषितुं मार्गितुं शीलमस्य विविक्तेषी॥१॥तं साधुं सूक्ष्मेन परकार्यव्यपदेशेन छन्नपदेन कपटेन पराक्रम्य समीपमागत्य मंदागस्यमंदाः कामोद्रेककारित्वान्निर्विवेकाः स्त्रियः शीलाद्भ्रंशयंति । कोर्थः । भ्रातृपुत्रव्यपदेशेन साधुसमीपमागत्य स्त्रियः संयमाद्भ्रंशयंति साधुमिति । प्रच्छन्नपदं गुप्ताभिधानं । यथा । काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य मेघांधकारासु च शर्वरीषु ॥ मिथ्या न भाषामि विशालनेत्रे ते प्रत्ययाये प्रथमाक्षरेषु इत्यादि । स्त्रियस्तथोपायंजानंति यथाश्लिष्यंते साधवोप्येके ॥ २ ॥

---

॥टीका-उक्तं तृतीयमध्ययनं सांप्रतं चतुर्थमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंध ।इहानंतराध्ययने उपसर्गाः प्रतिपादितास्तेषां च प्रायोनुकूलाःदुःसहास्ततोपि स्त्रीकृताअतस्तज्जयार्थमिद

मध्ययनमुपदिश्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि जवंति। तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारो द्वेधा। अध्ययनार्थाधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च। तत्राध्ययनार्थाधिकारः प्राग्वत् निर्युक्तिकृता(थीदोषविवऊाणा)चैवेत्यनेनस्वयमेव प्रतिपादितः। उद्देशार्थाधिकारं तूत्तरनिर्युक्तिकृदेव जणिष्यति।सांप्रतं निक्षेपः सचौघनामसूत्रालापकनेदात्रिधा। तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने स्त्रीपरिज्ञेति नाम। तत्र नामस्थापने क्षुसत्वादनादृत्य स्त्रीशब्दस्य इव्यादिनिक्षेपार्थमाह। (दवानिलावेत्यादि)। दवाजिला वचिंधे, देवेजावेयइत्थिणिक्खेवो। अहिलावे तहसिद्धी, जावे वेयंमिउवउत्तो॥ ५६॥ तत्र इव्यस्त्री द्वेधा। आगमतोनोआगमतश्च। आगमतः स्त्रीपदार्थज्ञस्तत्र चानुपयुक्तोनुपयोगोइव्यमिति कृत्वा नोआगमतोज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तात्रिधा। एकजविकाबद्धाऽयुष्काभिमुखनामगोत्रावेति। चिन्ह्यते ज्ञायतेऽनेनेतिचिह्नं स्तननेपथ्यादिकं चिह्नमात्रेण स्त्री चिह्नस्त्री अपगतस्त्री वेदछद्मस्थः केवलीवा अन्योवा स्त्रीवेषधारी यः कश्चिदिति। वेदस्त्रीतु पुरुषाभिलाषरूपः स्त्रीवेदोदयः। अभिलापजावौ तु निर्युक्तिकृदेव गाथापश्चार्द्धेनाह। अभिलाप्यते इत्यभिलापः स्त्रीलिंगाभिधानः शब्दः। तद्यथा। शाला माला सिद्धिरिति। जावस्त्री तुद्वेधा। आगमतोनोआगमतश्च। आगमतः स्त्रीपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तउपयोगोजावइति कृत्वा नोआगमतस्तु जावविषये निक्षेपे वेदेस्त्रीवेदरूपे वस्तुन्युपयुक्तातडुपयोगानन्यत्वाद्भावस्त्री जवति। यथाऽग्नावुपयुक्तोमाणवकोग्निरेव जवत्येवमत्रापि। यदिवा स्त्रिवेदनिवर्तकान्युदयप्राप्तानि यानि कर्माणि तेपूपयुक्तेति तान्यनुजवंती जावस्त्रीति। एतावानेव स्त्रियोनिक्षेपइति। परिज्ञानिक्षेपस्तु शस्त्रपरिज्ञावद् इष्टव्यः। सांप्रतं स्त्रीविपक्षनूतं पुरुषनिक्षेपार्थमाह। (नामंठवणाइत्यादि)। णामंठवणादविए खेत्ते कालेयपज्जणणकंमे। जोगेगुणेयजावे, दसएएपुरिसणिक्खेवा॥५७॥ नामेति संज्ञा तन्मात्रेण पुरुषोनामपुरुषः। यथाघटः पटइति यस्य वा पुरुषइति नामेति। स्थापनापुरुषः काष्ठादिनिवर्तितोजिनप्रतिमादिकः। इव्यपुरुषोज्ञशरीरजव्यशरीरव्यतिरिक्तोनो आगमतएकजविकोबद्धायुष्कोभिमुखनामगोत्रश्चेति। इव्यप्रधानोवा मम्मणवणिगादिरिति। योयस्मिन् सुराष्ट्रादौ क्षेत्रे जवः सक्षेत्रपुरुषोयथा सौराष्ट्रिकइति। यस्यच यत् क्षेत्रमाश्रित्य पुंस्त्वं जवतीति।योयावंतं कालं पुरुषवेदवेद्यानि कर्माणि वेदयते सकालपुरुषइति। यथा पुरिसेणं जंते पुरिसेत्ति कालउकेच चिरं होइ। गो. जहन्नेणं एगंसमयंउक्कोसेणंजोजम्मिकालेपुरिसोजवइ। जहाकोइएगंमिपक्खेपुरिसोएगंमिनपुंसगोत्ति। प्रजन्यतेऽपत्यं येन तत्प्रजननं शिश्नं लिंगं तत्प्रधानः पुरुषः परपुरुषकार्यरहितत्वात् प्रजननपुरुषः।कर्मानुष्ठानं तत्प्रधानः पुरुषः कर्मपुरुषः कर्मकरादिकस्तथा जोगप्रधानः पुरुषोजोगपुरुषश्चक्रवर्त्यादिस्तथा गुणाव्यायामविक्रमधैर्यसत्वादिकास्तत्प्रधानः पुरुषोगुणपुरुषः। जावपुरुषस्तु पुंवेदोदये वर्तमानस्तद्वेद्या

नि कर्माण्यनुजवन्नित्येते दशपुरुषनिक्षेपाजवंति। सांप्रतं प्रागुल्लिंगितमुद्देशार्थाधिकारमधि कृत्याह (पढमेइत्यादि) पढमेसंथवसंलवमाइहिंखलणाउहोतिसीलस्स। बितिएइहेवखलियस्सअवत्थाकम्मबंधोयं॥५०॥प्रथमे उद्देशके अध्ययनार्थाधिकारः।तद्यथा। स्त्रीजिःसार्धं संस्तवेन परिचयेन यथा संलापेन जिन्नकथाद्यालापेनादिग्रहणादंगप्रत्यंगनिरीक्षणादिना कामोत्काचकारिणोजवेदल्पसत्वस्य शीलस्य चारित्रस्य स्खलनातुशब्दात्तत्परित्यागोवेति। द्वितीये त्वयमर्थाधिकारस्तद्यथा। शीलस्खलितस्य साधोरिहैवास्मिन्नेव जन्मनि स्वपक्षप रपक्षकृता तिरस्कारादिका विमंबना तत्प्रत्ययश्च कर्मबंधस्ततश्च संसारसागरपर्यटनमिति। किं स्त्रीजिः कश्चित् शीलात् प्रच्याव्यात्मवशः कृतोयेनैवमुच्यते कृतइति दर्शयितुमाह। (सूरामोइत्यादि) सूरामोमन्नंता, कतिवविथाहिंउवहिप्पहाणाहिं ॥ गहियाहुंअनयपद्धोवकूलवालादिणोबहवे ॥ ५९ ॥ बहवः पुरुषाअनयप्रद्योतकूलवालादयः शूरा वयमित्येवं मन्यमानाः। मो इतिनिपातोवाक्यालंकारार्थः। कृत्रिमाजिः सद्भावरहिताजिः स्त्रीजिस्तथोपधिर्माया तत्प्रधानाजिः कृतकपटशताजिर्गृहीत्वा आत्मवशतां नीताः केचन राज्यादपरे शीलात् प्रच्याव्येहैव विमंबनां प्रापिताः॥ अनयकुमारादिकथानकानिच मूला दावश्यकादवगंतव्यानि। कथानकत्रयोपन्यासस्तु यथाक्रमं मत्यबुद्धिविक्रमात्यंतबुद्धि विक्रमतपस्वित्वख्यापनार्थइति। यतएवं ततोयत्कर्तव्यं तदाह। तम्हाणउवीसंजोगं तवो णिच्चमेवइत्थीसु ॥ पढमुद्देसेजणिया, जेदोसातेगणंतेणं ॥ ६०॥ (तम्हाइत्यादि)। यस्मा त् स्त्रियः सुगतिमार्गार्गलामायाप्रधानावंचनानिपुणास्तस्मादेतदवगम्य नैव विश्रंजोवि श्वासस्तासां विवेकिना नित्यं सदा गंतव्योयातव्यः कर्तव्यइत्यर्थः। ये दोषाः प्रथमोद्दे शके अस्योपलक्षणार्थत्वात् द्वितीयेच तान् गणयता पर्यालोचयता तासां मूर्तिमत्कप टराशिनूतानामात्महितमिच्छता नविश्वसनीयमिति। अपिच। सुसमज्ञावसमत्था, की रंतीअप्पसत्तियापुरिसा। दीसंतीसूरवादीणारीवसगाणतेसूरा ॥६१॥(सुसमज्ञेत्यादि) परा नीकविजयादौ सुष्ठु समर्था अपि संतः पुरुषाः स्त्रीजिरात्मवशीकृताअसमर्थाभ्रूक्षेपमात्र नीरवः क्रियंतेऽल्पसात्विकाः स्त्रीणामपि पादपतनादिचाटुकरणेन निःसाराः क्रियंते त था दृश्यंते प्रत्यक्षेणोपलभ्यंते। शूरमात्मानं वदितुं शीलं येषां ते शूरवादिनोपि नारीवश गाः संतोदीनतां गताः। एवंनूताश्च नते शूराइति। तस्मात् स्थितमेतदविश्वास्याः स्त्रियइ ति। उक्तंच। कोवीससेऊतासिं,कतिवयजरियाणडच्चियछणे। खणरत्तविरत्तेणं, धिरत्थु इत्थीणहियायाणं ॥ १ ॥ अण्णं जणंतिपुरउ अण्णंपासेइविज्ञमाणीउ। अन्नंच तासिंहियए, जंचखमंतंकरिंतिपुणो ॥२॥ कोएयाणंणाहिइ, वेत्तलयागुम्मगुविलहिययाणं ॥ जावंन ग्गासाणं तत्तुपन्नंजणंतीणं ॥ ३ ॥ महिलायरत्तमेत्ता, उच्छुखंमंचसक्कराचेव। सापुण विरत्तमित्ताणिंबंकूरेविसेसेत्ति ॥४॥ महिलादिज्ञकरेज्ञवमारिज्ञवसंठविज्ञवमणुस्सं। तुट्ठा

जीवाविज्ञाअहवरणरं वंचयावेज्ञा ॥ ५ ॥ णविरक्कंतेसुकयं, णविणेहंणवियदाणस म्माणं ॥ णकुलंणपुव्वयंआयतंच शीलंमहिलियाउं ॥ ६ ॥ मावीसंनहताणं महि लाहियपाणकवड नरियाणं ॥ सिसुहनिद्दयाणं अलियवयणजंपणरयाणं ॥ ७ ॥ मारेइ जियंतंपिहुमयंपि अणुमरइकाइनत्तारं ॥ विसहरगइव्वचरियं वंकविवंकमहेलाणं ॥ ८ ॥ गंगाएवालुयंसागरेजलंहिमवउयपरिमाणं । जाणंति बुद्धिमंतामहिलाहियपंणजाणंति ॥ ए ॥ रोवावंतिरुवंतिय अलियंजपंतिपत्तियावंति ॥ कवडेणयखंतिविसंमरंतिणयजंतिस ग्नावं ॥१०॥ चिंतितिकज्जमसुंअसुंसंठवइनासईअसुं॥आढवइकुणइअसुं माइणगूणिय मिसारो ॥ ११ ॥ असयारंनाणतहासवेसिंलोगगरहणिज्जाणं ॥ परलोगवेरियाणंकारणयं चेवइहीउं ॥ १२ ॥ अहवाकोजुवईणं जाणइचरियंसहावकुमिलाणं ॥ दोसाणआगरोचि य जणेसरीरेवसइकासा ॥ १३ ॥ मूलडुच्चरियाणं हवइनणरयस्सवत्तिणी ॥ विवुला मो क्खस्समहाविग्घंवज्जेयवासयानारी ॥ १४ ॥ धस्सातेवरपुरिसाजेच्चियमोत्तूणणियपजुव ईउं ॥ पव्वइयाकयनियमासिवमयलमणुत्तरंपत्ता ॥ १५ ॥ अधुना यादृक्षः शूरोनवति तादृक्षं दर्शयितुमाह । धम्मंमिजोदढमइसोसूरोसत्तिउयवीरोय ॥ णहुधम्मणिरुत्साहोपुरि सोसूरोसुबलिउवि ॥ ६२ ॥ (धम्ममित्यादि) । धर्मे श्रुतचारित्राख्ये दृढा निश्चला मति र्यस्य सतथा एवंनूतः सइंदियनोइंदियारिजयाच्छूरस्तथा सात्विकोमहासत्वोपेतोऽसा वेव वीरः स्वकर्मदारुणसमर्थोऽसावेवेति । किमिति यतोनैव धर्मनिरुत्साहः सदनुष्ठानिनि रुद्यमः सत्पुरुषाचीर्णमार्गपरिच्रष्टः पुरुषः सुष्ठु बलवानपि शूरोनवतीति । एतानेव दोषान् पुरुषसंबंधेन स्त्रीणामपि दर्शयितुमाह । एतेचेवयदोसा पुरीससमाएविइच्चियाणंपि ॥ त म्हाणअप्पमाउविरागमग्गंमितासिंतु ॥६७॥(एतेचेवेत्यादि)। ये प्राक्शीलप्रध्वंसादयः स्त्री परिचयादिन्यः पुरुषाणामनिहितापतएव न्यूनाधिकाः पुरुषेण सह यः समायः संबंधस्त स्मिन स्त्रीणामपि यस्माहोषानवंति तस्मात्तासामपि विरागमार्गे प्रवृत्तानां पुरुषपरिचया दिपरिहारलक्षणोऽप्रमादएव श्रेयानिति । एवं यदुक्तं स्त्रीपरिज्ञेति तत्पुरुषोत्तमधर्मप्रति पादनार्थमन्यथा पुरुषपरिज्ञेत्यपि वक्तव्येति । सांप्रतं सूत्रानुगमे स्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । ( जेमायरंचेत्यादि ) । अस्य चाऽयमनंतरसूत्रेण सह संबं धः । तद्यथा । अनंतरसूत्रेनिहितमामोक्षाय परिव्रजेदित्येतच्चाऽशेषाभिष्वंगवर्जितस्य नवतीत्यतोऽनेन तदभिष्वंगवर्जनमभिधीयते । यः कश्चिदुत्तमसत्वोमातरं पितरं जननीं जनयितारमेतद्ग्रहणादन्यदपि भ्रातृपुत्रादिकं पूर्वसंयोगं तथा श्वश्रूश्वशुरादिकं पश्चात्सं योगं च विप्रहाय त्यक्त्वा । चकारौ समुच्चयार्थौ । एकोमातापित्राद्यभिष्वंगवर्जितः क षायरहितोवा तथा सहितोज्ञानदर्शनचारित्रैः स्वस्मै वा हितः स्वहितः परमार्थानुष्ठा नविधायी चरिष्यामि संयमं करिष्यामीत्येवं कृतप्रतिज्ञः । ता मेव प्रतिज्ञां सर्वप्रधान

नूतां लेशतोदर्शयति । आरतमुपरतं मैथुनं कामाभिलाषोयस्यासावारतमैथुनस्तदेवंनू तोविविक्तेषु स्त्रीपशुपंमकवर्जितेषु स्थानेषु चरिष्यामीत्येवं सम्यगुत्थानेनोत्थाय विहरती ति । क्वचित्पाठो ( विवित्तेसित्ति ) विविक्तं स्त्रीपंडकादिरहितं स्थानं संयमानुपरोध्ये षितुं शीलमस्य तथेति ॥ १ ॥ तस्यैवं कृतप्रतिज्ञस्य साधोर्यथवत्यविवेकिस्त्रीजनात्त दर्शयितुमाह । ( सुहुमेणेत्यादि ) । तं महापुरुषं साधुं सूक्ष्मेणाऽपरकार्यव्यपदेशनूते न छन्नपदेनेति छद्मना कपटजालेन पराक्रम्य तत्समीपमागत्य यदिवा पराक्रम्येति शील स्खलनयोग्यतापत्त्या अभिनूय काः स्त्रियः कूलवालकादीनामिव मागधगणिकाद्यानाना विधकपटशतकरणदक्षाविविधविब्बोकवत्योनावमंदाः कामोद्रेकविधायितया सदसद्वि वेकविकलाः समीपमागत्य शीलात् ध्वंसयंति । एतडुक्तं नवति भ्रातृपुत्रव्यपदेशेन साधुस मीपमागत्य संयमाद् भ्रंशयंति । तथाचोक्तं । पियपुत्तेनाइ किडगाणभूचकिम्हगायसय णकिडगाय॥एतेजोव्वण किम्हगा पच्छन्नपइमहिलियाणं । यदिवा छन्नपदेनेति गुप्ताभि मानेन । तद्यथा । काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य मेघांधकारासु च शर्वरीषु॥मिथ्या न नाषा मि विशालनेत्रे ते प्रत्ययाये प्रथमाक्षरेषु इत्यादि ॥ ताः स्त्रीयो मायाप्रधानाः प्रतारणो पायमपि जानंत्युत्पन्नप्रतिनतया विदंति । पाठांतरं वा ज्ञातवत्यः यथाश्लिष्यंते विवेकि नोपि साधवएके तथाविधकर्मोदयात् तासु संगं उपयांति ॥ २ ॥

पासे भिसं णिसीयंति, अभिक्खणं पोसवत्थं परिहिंति ॥ कायं अहे
वि दंसंति, बाहूउद्धुकक्खमणुवजे ॥ ३ ॥ सयणासणेहिं जोगेहिं,
इत्थिउ एगता णिमंतंति ॥ एयाणिचेव सेजाणे, पासाणि विरूवरूवाणि॥४॥

*अर्थ–हवे जे उपाये करी ते स्त्री साधुने विप्रतारे ते उपाय कहेछे. ते स्त्री पासेके० साधुनी पासे भिसं के० ढुकडी एटले नजीक आवी णिसीयंति के० बेशीने अभिक्खणं– के० वारंवार पोस के० जेरीते कामविकार पोषाय तेरीते वत्थंपरिहिंति के० वस्त्र पहेरे कायंअहे के० नीचलुं शरीर जे जंघादिक ते विदंसंति के० देखाडे बाहूउद्धु के० बं ने बाहु उंची उपाडीने कक्खं के० कांख देखाडती छती अणुवजे के० साधुने सन्मुख जाय अथवा साधुने सन्मुख नजर राखे ॥ ३ ॥ वली इत्थिउ एगता के० कोइ एक स्त्री एकदा प्रस्तावे जोगेहिं के० साधुने लेवा योग्य एवा सयणासणेहिं के० सय नाशन एटले पाट पाटलादिके करी निर्व्यंजन वेलाये स्नेहना वचने करी णिमंतंतिके० निमंत्रणा करे तेवारे विरूवरूवाणि एयाणि के० विरूपरूप एवा ए पूर्वोक्त नानाप्र कारना जे पाट पाटलादिक तेने पासाणिके० ए सुफने बंधनना करनाराछे एरीते सेके० ते साधु जाणे के० जाणीने त्यां बेसे नही. चेव शब्द पद पूरणार्थेछे. ॥ ४ ॥*

॥ दीपिका—नृशं सस्नेहं निषीदंति तिष्ठंतिस्त्रियः पुष्णात्यतिपोषं मनोहरवस्त्रं परिद धति अनीक्ष्णं निरंतरं तथाधःकायं ऊर्वादिकं दर्शयंति बाहून् उद्धृत्य ऊर्ध्वीकृत्य कक्षा मादर्श्यानुव्रजेत् अनुकूलं गच्छेत् ॥ ३ ॥ शयनासनैर्योग्यैर्भोगयोग्यैः स्त्रियएकदा नि र्व्यंजनकालादौ निमंत्रयंति प्रार्थयंति साधुं । ससाधुस्तानि शयनासनानि पाशरूपाणि जानीयात् बंधनरूपाणि अवगच्छेत विरूपरूपाणि तानि नानाविधानि ॥ ४ ॥

---

॥ टीका—तानेव सूक्ष्मप्रतारणोपायान् दर्शयितुमाह । ( पासेनिसमित्यादि ) पार्श्वे समीपे नृशमत्यर्थमुरःपीडमतिस्नेहमाविष्कुर्वत्योनिषीदंति विश्रंभमापादयितुमुपविशं तीति । तथा कामं पुष्णातीति पोषं कामोत्काचकारि शोभनमित्यर्थः । तच्च तद् स्त्रं तदभीक्ष्णमनवरतं तेन शिथिलादिव्यपदेशेन परिदधति स्वाभिलापमावेदयंत्यः सा धुप्रतारणार्थं परिधानं शिथिलीकृत्य पुनर्निबध्नंतीति । तथाऽधःकायमूर्वादिकमनंगोद्दीप नाय दर्शयंति प्रकटयंति तथा बाहुमुद्धृत्य कक्षामादर्श्याऽनुकूलं साध्वभिमुखं व्रजेत् ग च्छेत् । संभावनायां लिङ् । संभाव्यते एतदनंगप्रत्यंगसंदर्शकत्वं स्त्रीणामिति ॥३॥ अपिच । ( सयणासणेइत्यादि ) शय्यतेऽस्मिन्निति शयनं पर्यंकादि तथाऽऽस्यतेऽस्मिन्नित्यासनमा संदकादीत्येवमादिना योग्येनोपभोगार्हेण कालोचितेन स्त्रियोयोषितएकदेति विविक्त देशकालादौ निमंत्रयंत्यभ्युपगमं ग्राहयंति । इदमुक्तं भवति । शयनासनाद्युपभोगंप्रति साधुं प्रार्थयंति । एतानेव शयनासननिमंत्रणरूपान् ससाधुर्विदितवेद्यः परमार्थदर्शी जा नीयादवबुध्येत स्त्रीसंबंधिकारिणः पाशयंति बध्नंतीति पाशास्तान्विरूपरूपान् नानाप्रका रानिति । इदमुक्तं भवति । स्त्रियोह्यासन्नगामिन्योभवंति । तथाचोक्तं । अंबं वा निंबं वाअस्ना सगुणेन आरुहाइ वल्ली। एवं इत्थीतोविजं आसन्नं तमिच्छंति ।१। तदेवंभूताः स्त्रियोज्ञात्वा न ताभिः सार्धं साधुः संगं कुर्याद्यतस्तदुपचारादिकःसंगोडुप्परिहार्योभवति । तदुक्तं।जंइच्छसि घेत्तुंजे, पुव्विं आमिसेण गिण्हाहि॥आमिसपासनिबद्धोकाहिइकज्जंअकज्जंवा॥ २ ॥ ४ ॥

नोतासु चक्खु संधेज्जा, नोविय साहसं समभिजाणे ॥ णोसद्धियंपि वि हरेज्जा, एवमप्पासु रक्खिओ होइ ॥५॥ आमंतिय उस्सविय भिक्खु आ यसा निमंतंति ॥ एताणि चेव सेजाणे, सद्दाणि विरूवरूवाणि ॥ ६॥

अर्थ—नो तासुचक्खुसंधेज्जा के० तेस्त्रीनी दृष्टी साथें साधु पोतानी दृष्टी मेळवे न ही, तथा नोवियसाहसं के० मैथुनादिक अकार्यनुं करवुं करे नही, अने समभिजाणे के० ते स्त्रीनुं कहेवुं जे विषयनी प्रार्थनारूप वचन तेने अनुमोदे नही. णोसद्धियं पिवि हरेज्जा के० वळी ते स्त्रीनीसाथे ग्रामादिकने विषे विचरे नही, एव के० एरीते रहेता

नूतां लेशतोदर्शयति । आरतमुपरतं मैथुनं कामाभिलापोयस्यासावारतमैथुनस्तदेवंभूतोविविक्तेषु स्त्रीपशुपंमकवर्जितेषु स्थानेषु चरिष्यामीत्येवं सम्यगुज्ञानेनोत्थाय विहरतीति । क्वचित्पाठो ( विवित्तेसित्ति ) विविक्तं स्त्रीपंडकादिरहितं स्थानं संयमानुपरोध्येषितुं शीलमस्य तथेति ॥ १ ॥ तस्यैवं कृतप्रतिज्ञस्य साधोर्यन्नवत्यविवेकिस्त्रीजनात्तद्दर्शयितुमाह । ( सुहुमेणेत्यादि ) । तं महापुरुषं साधुं सूक्ष्मेणाऽपरकार्यव्यपदेशभूतेन छन्नपदेनेति छद्मना कपटजालेन पराक्रम्य तत्समीपमागत्य यदिवा पराक्रम्येति शीलस्खलनयोग्यतापत्त्या अभिभूय काः स्त्रियः कूलवालकादीनामिव मागधगणिकाद्यानानाविधकपटशतकरणदक्षाविविधविब्बोकवत्योभावमंदाः कामोद्रेकविधायितया सदसद्विवेकविकलाः समीपमागत्य शीलात् ध्वंसयंति । एतदुक्तं भवति भ्रातृपुत्रव्यपदेशेन साधुसमीपमागत्य संयमाद् भ्रंशयंति । तथाचोक्तं । पियपुत्तेभाइ किडगाणत्तूचकिमगायसय णकिडगाय॥एतेजोव्वण किमगा पच्छन्नपइमहिलियाणं । यदिवा छन्नपदेनेति गुप्ताभिमानेन । तद्यथा । काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य मेघांधकारासु च शर्वरीषु॥मिथ्या न भाषामि विशालनेत्रे ते प्रत्ययाये प्रथमाक्षरेषु इत्यादि ॥ ताः स्त्रीयो मायाप्रधानाः प्रतारणोपायमपि जानंत्युत्पन्नप्रतिभतया विदंति । पाठांतरं वा ज्ञातवत्यः यथाश्लिष्यंते विवेकिनोपि साधवएके तथाविधकर्मोदयात् तासु संगं उपयांति ॥ २ ॥

पासे भिसं णिसीयंति, अभिरकणं पोसवठं परिहिंति ॥ कायं अहे
वि दंसंति, बाहूउद्दुकक्खमणुवजे ॥ ३ ॥ सयणासणेहिं जोगेहिं,
इच्छिउ एगता णिमंतंति ॥ एयाणिचेव सेजाणे, पासाणि विरूवरूवाणि॥४॥

अर्थ–हवे जे उपाये करी ते स्त्री साधुने विप्रतारे ते उपाय कहेछे. ते स्त्री पासेके० साधुनी पासे भिसं के० ढुकडी एटले नजीक आवी णिसीयंति के० बेशीने अभिरकणं के० वारंवार पोस के० जेरीते कामविकार पोषाय तेरीते वठंपरिहिंति के० वस्त्र पहेरे कायंअहे के० नीचलुं शरीर जे जंघादिक ते विदंसंति के० देखाडे बाहूउद्दु के० बंने बाहु उंची उपाडीने कक्खं के० कांख देखाडती छती अणुवजे के० साधुने सन्मुख जाय अथवा साधुने सन्मुख नजर राखे ॥ ३ ॥ वली इच्छिउ एगता के० कोइ एक स्त्री एकदा प्रस्तावे जोगेहिं के० साधुने लेवा योग्य एवा सयणासणेहिं के० सयनाशन एटले पाट पाटलादिके करी निर्थंजन वेलाये स्नेहना वचने करी णिमंतंतिके० निमंत्रणा करे तेवारे विरूवरूवाणि एयाणि के० विरूपरूप एवा ए पूर्वोक्त नानाप्रकारना जे पाट पाटलादिक तेने पासाणिके० एमुजने बंधनना करनाराछे एरीते सेके० ते साधु जाणे के० जाणीने त्यां बेसे नही. चेव शब्द पद पूरणार्थेछे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—नृशं सस्नेहं निषीदंति लिष्टंतिस्त्रियः पुष्णात्यतिपोपं मनोहरवस्त्रं परिद धति अनीक्ष्णं निरंतरं तथाधःकायं कवादिकं दर्शयंति वाहून् उक्षृत्य ऊर्ध्वीकृत्य कक्षा मादर्श्यानुव्रजेत् अनुकूलं गच्छेत् ॥ ३ ॥ शयनासनैर्योग्यैर्नोगयोग्यैः स्त्रियएकदा नि र्व्यंजनकालादौ निमंत्रयंति प्रार्थयंति साधुं । ससाधुस्तानि शयनासनानि पाशरूपाणि जानीयात् बंधनरूपाणि अवगच्छेत विरूपरूपाणि तानि नानाविधानि ॥ ४ ॥

---

॥ टीका—तानेव सूक्ष्मप्रतारणोपायान् दर्शयितुमाह । ( पासेनिसमित्यादि ) पार्श्वे समीपे नृशमत्यर्थमुरःपीडमतिस्नेहमाविष्कुर्वत्योनिषीदंति विश्रंनमापादयितुमुपविशं तीति । तथा कामं पुष्णातीति पोपं कामोत्काचकारि शोननमित्यर्थः । तच्च तद्व स्त्रं तदनीक्ष्णमनवरतं तेन शिथिलादिव्यपदेशेन परिदधति स्वानिलापमावेदयंत्यः सा धुप्रतारणार्थं परिधानं शिथिलीकृत्य पुनर्निबध्नंतीति । तथाऽधःकायमूर्वादिकमनंगोद्दीप नाय दर्शयंति प्रकटयंति तथा वाहुमुकृत्य कक्षामादर्श्याऽनुकूलं साध्वनिमुखं व्रजेत् ग च्छेत् । संनावनायां लिङ् । संनाव्यते एतदनंगप्रत्यंगसंदर्शकत्वं स्त्रीणामिति ॥३॥ अपिच । ( सयणासणेइत्यादि ) शय्यतेऽस्मिन्निति शयनं पर्यंकादि तथाऽऽस्यतेऽस्मिन्नित्यासनमा संदकादीत्येवमादिना योग्येनोपनोगार्हेण कालोचितेन स्त्रियोयोपितएकदेति विविक्त देशकालादौ निमंत्रयंत्यन्युपगमं ग्राहयंति । इदमुक्तं नवति । शयनासनाद्युपनोगंप्रति साधुं प्रार्थयंति । एतानेव शयनासननिमंत्रणरूपान् ससाधुर्विदितवेद्यः परमार्थदर्शी जा नीयादवबुध्येत स्त्रीसंबंधिकारिणः पाशयंति बध्नंतीति पाशास्तान्विरूपरूपान् नानाप्रका रानिति । इदमुक्तं नवति । स्त्रियोह्यासन्नगामिन्योनवंति । तथाचोक्तं । अंवं वा निंवं वाअस्ना सगुणेन आरुहइ वल्ली । एवं इत्थीतोविजं आसन्नं तमिछंति ॥१॥ तदेवंनूताः स्त्रियोज्ञात्वा न तानिः सार्धं साधुः संगं कुर्यात्यतस्तडपचारादिकःसंगोडुप्परिहार्योनवति । तडुक्तं।जंइछसि घेत्तुंजे, पुव्विंतं आमिसेण गिएहाहि॥आमिसपासनिवछोकाहिइकज्जंअकज्जंवा॥ २ ॥ ४ ॥

नोतासु चरकु संधेज्जा, नोविय साहसं समनिजाणे ॥ णोसहियंपि वि हरेज्जा, एवमप्पासु रक्खिउं होइ ॥५॥ आमंतिय उस्सविय निरकु आ यसा निमंतंति ॥ एताणि चेव सेजाणे, सद्दाणि विरूवरूवाणि ॥ ६॥

अर्थ—नो तासुचरकुसंधेज्जा के० तेस्त्रीनी दृष्टी साथे साधु पोतानी दृष्टी मेलवे न ही, तथा नोवियसाहसं के० मैथुनादिक अकार्यनुं करवुं करे नही, अने समनिजाणे के० ते स्त्रीनुं कहेवुं जे विषयनी प्रार्थनारूप वचन तेने अनुमोदे नही. णोसहियं पिवि हरेज्जा के० वली ते स्त्रीनीसाथे ग्रामादिकने विषे विचरे नही, एव के० एरीते रहेता

थका अप्पा के० पोताना आत्मानु रकिउं के० रक्षण सु के० रूमीरीते होइ के० था य ॥ ५ ॥ स्त्री स्वनावे अकार्य करवाने सावधान होयछे, तेमाटे निरकु के०साधुने आ मंतिय के० आमंत्रीने कहे के हुं अमुक वखते आवीश, एम संकेत कहीने उस्स विय के० विश्वास उपजावे आयसा के० पोते पोताना आत्माने मैथुन सेववाने अर्थे एकदा प्रस्तावे निमंतंति के० साधुने निमंत्रण करे, अथवा साधुने निवारवा नणी ते स्त्री एम कहेके आयसा के० माहारा नर्तारना आदेशथी हुं तमारा पाशे आवी बुं, एवी रीते पोताने वश करवाना वचन कहे एताणिचके० ए पूर्वोक्त वचनने करी अंहींच पद पू रणार्थे ले एव के० एम से के० ते साधु जाणे के० ज्ञ परिज्ञायेकरी स्त्रीनुं स्वरूप जेवुंछे तेवुं जाणे सुंजाणे तोके सद्दाणि विरूवरूवाणि के० विषय संबधिया नानाप्रकारना हावनावादिकरूप जे स्त्रीना शब्द तेने साधु बंध पासना कारण जाणे. ॥ ६ ॥

---

॥ दीपिका—नो तासु स्त्रीषु चक्षुः संदध्यात् संधयेत् ।स्वदृष्टिः स्त्रीदृष्टौ न निवेशयेदित्यर्थः॥ यतिः कार्ये ईषदवज्ञया निरीक्षेत । यडुक्तं । कार्येपीपन्मतिमान्निरीक्षते योषिदंगमस्थिरया॥ अस्निग्धयादृशावज्ञयाह्यकुपितोपि कुपितइवेति॥तथा नोपि च साहसमकार्यकरणं तत्प्रार्थ नया समनुजानीयात्प्रतिपद्येत स्त्रीनिः सार्धं ग्रामादौ न विहरेन्नगच्छेत्।अपिशब्दात्ताभिः सहै कासने नतिष्ठेत्॥ यडुक्तं।मात्रा स्वस्रा डुहित्रा वा न विविक्तासनो नवेत्॥बलवानिंद्रियग्रामः पंमितोप्यत्र मुह्यतीति । एवमात्मा सुरक्षितोनवति ॥ ५ ॥ ताः स्त्रियः साधुमामंत्र्य सं केतं ग्राहयित्वा (उस्सविअत्ति)संस्थाप्य उच्चावचैर्विश्वासजनकैरालापैर्विश्रंने पातयित्वा निकुं आत्मनोनिमंत्रयंति आत्मनोगेन साधुमन्युपगमं कारयंति सच निकुरेतान्विरूपरूपा न्नानाविधान् शब्दादिविषयान् ज्ञपरिज्ञया जानीयात् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥६॥

---

॥ टीका—किंच । ( णोतासु इत्यादि ) नोनैव तासु शयनासनोपमंत्रणपाशावपा शिकासु स्त्रीषु चक्षुर्नेत्रं संदध्यात्संधयेद्वा न तद्दृष्टौ स्वदृष्टिं निवेशयेत् । सतिच प्रयोज ने ईषदवज्ञया निरीक्षेत । तथाचोक्तं । कार्येपीपन्मतिमान्निरीक्षते योषिदंगमस्थिरया । अस्निग्धया दृशाऽवज्ञया ह्यकुपितोपि कुपितइव ॥ १ ॥ तथा नापिच साहसमकार्यकर णं तत्प्रार्थनया समनुजानीयात्प्रतिपद्येत । तथा ह्यसति साहसमेतत्संग्रामावतरणवद्य न्नरकपातादिविपाकवेदिनोपि साधोर्योषिदासंजनमिति । तथा नैव स्त्रीनिः सार्धं ग्रामादौ विहरेत् गच्छेत् । अपिशब्दान्न तानिः सार्धं विविक्तासनोनवेद्यतोमहापापस्थानमेतद्यतीनां यत् स्त्रीनिः सह सांगत्यमिति ॥ तथाचोक्तं । मात्रा स्वस्रा डुहित्रा वा नविविक्तासनो नवेत् ॥ बलवानिंद्रियग्रामः पंमितोप्यत्रमुह्यति ॥ १ ॥ एवमनेन स्त्रीसंगवर्जनेनात्मा स

मस्तापायस्थानेन्योरक्षितोनवति । यतः सर्वापायानां स्त्रीसंबंधः कारणमतः स्वहितार्थी तत्संगं दूरतः परिहरेदिति ॥ ५ ॥ कथं चैताः पाशाइव पाशिकाइत्याह ( आमंतिये त्यादि ) स्त्रियोहि स्वनावेनैवाकर्तव्यप्रवणाः साधुमामंत्र्य यथाहममुकस्यां वेलायां नव दंतिकमागमिष्यामीत्येवं संकेतं ग्राहित्वा तथा ( उस्सवियत्ति ) संस्थाप्योञ्चावचैर्वि श्रंनजनकैरालापैर्विश्रंने पातयित्वा पुनरकार्यकरणायात्मना निमंत्रयंत्यात्मनोपनोगेन साधुमन्युपगमं कारयंति । यदिवा साधोर्नयापहरणार्थं ताएव योषितः प्रोचुस्तद्यथा न तारमामंत्र्याप्ठष्टाहमिहायाता तथा संस्थाप्य नोजनपदधावनशयनादिकया क्रिययो पचर्य ततस्तवांतिकमागतेत्यतोनवता सर्वां मन्नर्तृजनितामाशंकां परित्यज्य निर्नयेन नाव्यमित्येवमादिकैर्वचोनिर्विश्रंनमुत्पाद्य निकुमात्मना निमंत्रयंते । युष्मदीयमिदं शरीरकं याहक्स्य क्षोदीयसोगरायसोवा कार्यस्य क्षमं तत्रैव निमज्ञतामित्येवमुपप्र लोनयंति । सच निकुरवगतपरमार्थएतानेव विरूपरूपान्नानाप्रकारान् शब्दादीन् विप यान् तत्स्वरूपनिरूपणतोज्ञपरिज्ञया जानीयाद्यथैते स्त्रीसंसर्गापादिताः शब्दादयोविप याडुर्गतिगमनैकहेतवः सन्मार्गार्गलारूपाइत्येवमवबुध्येत । यथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया च तद्विपाकागमेन परिहरेदिति ॥ ६ ॥

मणबंधणेहिं णेगेहिं,कलुण विणीयमुवगसित्ताणं॥अडु मंजुलाइं नासं ति, आणवयंति निन्नकहाहिं॥७॥ सीहं जहा च कुणिमेणं, निप्नयमेगच रंति पासेणं ॥ एवं त्थियाउ बंधंति संवुमं एगतियमणगारं॥ ८ ॥

अर्थ–(मणबंधणेहिंके०) मनने बंधन करे एवा अणेगेहिंके०अनेक प्रपंचकरती कलुण के० जे थकी पुरुषने दया उपजे तेवा करुणाना वचने विणीय के० विनय पूर्वक उवगसित्ताणं के० साधुनी पासे आवीने अडु के० अथवा निरंतर मंजुलाइं के० मधुर स्नेह सहित मनोहर वचन नासंति के० बोले तथा निन्नकहाहिं के० नि न्नकथा एटले रहस्यवार्ता जे मैथुन संबंधि ठाना वचन तेणे करी आणवयंति के० से वकनी पेरे साधुने ते स्त्री पोतानी आज्ञा करावे, अथवा निन्नकहाहि के० मैथुन संबं धिया वचनेकरी ते स्त्री आणवयंति के० साधुनुं चित्त मैथुन सेववा नणी प्रवर्त्ते तेम मैथुन सेववानी आज्ञा आपी पोतानी आज्ञायें साधुने प्रवर्त्तावे ॥ ७ ॥ हवे दृष्टांते करी देखाडेले. जहाचके० जेम सीहंकुणिमेणंके० सिंहने मांसे करी लोनवीने निप्नयं के० निर्न य करी ने एगचरंति के० एकलो थको विचरे तेम करी पढी तेने पासेणं के० अनेक बंधने बांधीने कदर्थियें एवं के० एम त्थियाउ के० स्त्रीपण संवुमं के० जेणे मन वचन

अने कायाने संवरयाठे एवा एगतियं अणगारंके० कोइएक सुव्रती अणगारने स्नेहरूप बंधनेकरी बंधंतिके० बांधे धर्म थकी पाडे तो बीजा सामान्य साधुनुं केवुंज शुं. ॥८॥

---

॥ दीपिका–मनो बध्यते यैस्तानि मनोबंधनानि मंजुलालापस्निग्धावलोकनांगप्रकटनादीनि तैरनेकैः करुणालापविनयपूर्वकं ( उवगसित्ताणंति ) उपसंश्लिष्य समीपमागत्याथवा तदनंतरं मंजुलानि पेशलानि नापंते । तथा भिन्नकथाभीरहस्यालापैर्मैथुनसंबद्धैर्वचोभिः साधोश्चित्तमकार्यकरणंप्रति आज्ञापयंति प्रवर्तयंति ॥ ७ ॥ यथा सिंहं (कुणिमेणं) मांसेनोपलोभ्य निर्भयमेकचरं पाशेन यंत्रेण बध्नंति एवं स्त्रियोप्येकं कंचनाऽनगारं साधुं संवृतमपि बध्नंति स्ववशं कुर्वंति ॥ ८ ॥

---

॥ टीका–अन्यच्च । ( मणबंधणेहिंइत्यादि ) मनोबध्यते यैस्तानि मनोबंधनानि मंजुलालापस्निग्धावलोकनांगप्रत्यंगप्रकटनादीनि । तथाचोक्तं । णाहपियकंत सामिय दतियजियाउ तुमं महपिउत्ति । जीएजीयामिअहं पहवसितंमेशरीरस्स ॥ १ ॥ इत्यादिभिरनेकैः प्रपंचैः करुणालापविनयपूर्वकं ( उवगसित्ताणंति ) उपसंश्लिष्य समीपमागत्याऽथ तदनंतरं मंजुलानि पेशलानि विश्रंभजनकानि कामोत्कोचकानि वा भापंते । तदुक्तं । मितमहुररिभिय जंपुल्लएहिंईसीकमक्खहसिएहिं॥ सविगारेहिवरागंहियमं पिहियं मयच्छीए ॥१॥तथा भिन्नकथाभीरहस्यालापैर्मैथुनसंबद्धैर्वचोभिः साधोश्चित्तमादाय तमकार्यकरणं प्रत्याज्ञापयंति प्रवर्तयंति स्ववशं वा ज्ञात्वा कर्मकरवदाज्ञां कारयंतीति ॥ ७ ॥ अपिच । (सीहंजहेत्यादि) यथेति दृष्टांतोपदर्शनार्थे । यथा बंधनविधिज्ञाः सिंहं पिशितादिनामिषेणोपप्रलोभ्य निर्भयं गतभीकं निर्भयत्वादेवैकचरं पाशेन गलयंत्रादिना बध्नंति बध्वाच बहुप्रकारं कदर्थयंत्येवं स्त्रियोनानाविधैरुपायैः पेशलभाषणादिभिः (एगतियंति ) कंचन तथाविधमनगारं साधुं संवृतमपि मनोवाक्कायगुप्तमपि बध्नंति स्ववशं कुर्वंतीति । संवृतग्रहणं च स्त्रीणां सामर्थ्योपदर्शनार्थं । तथाहि । संवृतोपि ताभिर्बध्यते किं पुनरपरोऽसंवृतइति ॥ ८ ॥

अह तत्थ पुणो णमयंती रहकारोव णेमि अणुपुव्वी ॥ बद्धे मिएव पासे णं फंदंते वि णमुच्चए ताहे ॥ए॥ अह से णुतप्पई पच्छा भोच्चा पायसंच विसम्मिसं ॥ एवं विवेगमादाय, संवासो नविकप्पए दविए ॥ १० ॥

अर्थ–अथ के० हवे साधुने पोताने वश करीने पछी तत्थ के० त्यांते स्त्री पोताना कार्यनेविषे ते साधुने पुणोके० वली णमयंती के० नमाडे एटले सेवकनी पेरे कार्य क

रावे रहकारोव के० जेम रथकार सूत्रधार अणुपुव्वीके० अनुक्रमे णेमिके० पइडानो वाहे रलो प्रदेश नमाडे तेम साधुने ते स्त्री पोताना कार्य करवाने विषे नमाडे प्रवर्त्तावे, तेवारे ते साधु, बद्धे मिएवपासेणंके० मृगनी पेरे स्त्रीरूप पासे करी बंधाणो थको जेम मृग पासे करी बंधाणो होय ते फंदंतेविके० फंदाणोथको अरहो परहो हाले चाले पण ताहेके० ते पास थकी णमुच्चएके० मूकाय नही तेम साधु पण स्त्रीरूपीआ पास थकी मूकाय नही॥ए॥ अथ के० हवे स्त्रीरूपीआ पासमां पडथा पछी, सेके० ते साधु णुतप्पइ के० पश्चात्ताप करे पच्छा के० पछी संयम छांमीने गृहवास आदरे, तेवारे जूरे जेम विसम्मिसं के० विषमि श्रित एवो पायसं के० दूध तेने नोच्चा के० जमीने पछी पश्चात्ताप करेके ए अन्नमे सा वास्ते आसेव्यो एम चिंतवे चके० तेनी पेरे ते साधु पण पश्चाताप करे एवंके० एवो वि वेग मादायके० विवेक ग्रहण करीने दविए के० मुक्ति गमन योग्य एवा साधुने संयमनी हे षणी एवीजे स्त्री तेनी साथे संवासो नविकप्पएके० संवास संसर्ग करवो नकल्पे. ॥१०॥

॥ दीपिका—अथ पुनस्तत्र स्वात्मनि अवस्तुनि नमयंति आसक्तं कुर्वंति । यथा रथ कारोवर्धकिर्नेमिचक्रधाराकाष्ठं आनुपूर्व्या नमयति एवं स्त्रियोपि साधुं नमयंति स्ववशं कुर्वंति । सच साधुर्मृगवत् पाशेन बद्धोमोक्षार्थं स्पंदमानोपि चलमानोपि पाशान्नमुच्य ते ॥ ए ॥ अथ ससाधुः पाशबद्धमृगइवाऽनुतप्यते पश्चात्तापं करोति । यतः । मया परि जनस्यार्थे कृतं कर्म सुदारुणं ॥ एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलभागिनइति । यथा कश्चिद्वि षमिश्रं पायसं भुक्त्वाऽनुतप्यते एवं पूर्वोक्तप्रकारेण विपाकं स्वानुष्ठानस्यादाय प्राप्य ताभिः सह संवासोनकल्पते द्रव्यमुक्तियोग्ये साधौ ॥ १० ॥

॥ टीका—किंच । ( अहतहेत्यादि ) अथेति स्ववशीकरणादनंतरं पुनस्तत्र स्वाभिप्रे ते वस्तुनि नमयंति प्रव्हं कुर्वंति । यथा रथकारोवार्धकिर्नेमिकाष्ठं चक्रवाह्यभ्रमिरूपमा नुपूर्व्या नमयत्येवं ताअपि साधुं स्वकार्यानुकूल्ये प्रवर्तयंति । सच साधुर्मृगवत् पाशेन बद्धोमोक्षार्थं स्पंदमानोपि ततः पाशान्नमुच्यतइति ॥ ए ॥ किंच । (अहसेइत्यादि) अ थासौ साधुः स्त्रीपाशावबद्धोमृगवत् कूटके पतितः सन् कुटुंबकृते अहर्निशं क्लिश्यमानः प श्चादनुतप्यते । तथाहि । गृहांतर्गतानामेतदवश्यं संभाव्यते । तद्यथा । कोधायउंकोस भवित्तु कोहोवणाहिं काहोविज्जाववित्त कोभग्गाम उपहिय उपरिणीय भकोवकुमार उपडि यतो जीवखडप्पडेहि परवंधइ पवेदभारउ । तथा यत् । मया परिजनस्यार्थे, कृतं कर्म सु दारुणं ॥ एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलभागिनः ॥ १ ॥ इत्येवं बहुप्रकारं महामोहा त्मके कुटुंबकूटके पतिताअनुतप्यंते । अमुमेवार्थं दृष्टांतेन स्पष्टयति । यथा कश्चिद्विष

मिश्रं जोजनं जुक्का पश्चात्तत्र कृतावेगाकुलितोऽनुतप्यते । तद्यथा । किमेतन्मया पापेन सांप्रतेक्षिणा सुखरसिकतया विपाककटुकमेवंजूतं जोजनमास्वादितमिति । एवमसावपि पुत्रपौत्रडुहितृजामातृस्वसृजातृव्यजागिनेयादीनां जोजनपरिधानपरिणयनालंकारजातमृतकमीत द्धाधिचिकित्साचिंताकुलोपगतस्वशरीरकर्तव्यः प्रनष्टैहिकामुष्मिकानुष्ठानोऽहर्निशं तद्व्यापारव्याकुलितमतिः परितप्यते । तदेवमनंतरोक्तया नीत्या विपाकं स्वानुष्ठानस्यादाय प्राप्य । विवेकमिति वा क्वचित्पाठस्तद्विपाकं विवेकं चादाय गृहीत्वा स्त्रीनिश्चारित्रपरिपंथिनीनिः सार्धं संवासोवसतिरेकत्र नकल्पते न युज्यते कस्मिन्द्रव्यजूते मुक्तिगमनयोग्ये रागद्वेषरहिते वा साधौ । यतस्ताभिः सार्धं संवासोवश्यं विवेकिनामपि सदनुष्ठानविघातकारीति ॥ १० ॥

तम्हाउ वज्जए इत्थी, विसलित्तंच कंटगं नच्चा ॥ उए कुलाणि वसवत्ती आघाते ण सेवि णिग्गंथे ॥ ११ ॥ जे एयं उंडं अणुगिद्धा अन्नयरा हुंति कुसीलाणं ॥ सुतवस्सिएवि से जिक्कु, नोविहरे सह णमित्थीसु ॥१२॥

अर्थ—जे कारण माटे स्त्रीना समागम थकी कडवा विपाक प्राप्त थाय तम्हा के० तेकारणे इत्थीके० स्त्रीने वज्जएके० वर्जे. तु शब्द थकी स्त्रीनी साथे आलाप संलाप पण करे नहिं, जेम विसलित्तंच के० विषेकरी लिप्त एटले विषेकरी खरड्यो एवो कंटगंके० कांटो नच्चाके० जाणीने तेने दूर थकी टालियें, तेम साधु होयते स्त्रीने विषे करी खड्या कांटानी पेरे दुर थकी टाले तथा उए के० एकलो थको कुलाणि के० ते गृहस्थने कुलेजइ, वसवत्ती के० तेनो वशवर्त्ती थको जे साधु आघाते के० धर्मकथा कहे सेवि के० ते द्रव्यलिंगी साधु पण णिग्गंथे के० निर्ग्रंथ नही निषिद्धाचरण सेवनादित्यर्थः ॥ ११ ॥ जे एयं के० जे चारित्रिया ए स्त्री संबंधिया उंडं के० निंदनिक तेने विषे अणुगिद्धा के० गृद्ध एटले मूर्छाये थका होय ते अन्नयराहुंति कुसीलाणं के० अन्य पासत्था उसन्ना कुशीलिया प्रमुख जे स्त्रीनी पाशे कथाना करनार होय तेमांहेला कुशीलिया जाणवा ते कारणे सुतवस्सिएवि के० रूडो तपस्वी जे होय सेनिक्कु के० ते साधु नोविहरेसहणमित्थीसु के० स्त्रीसहित विचरे नही, तथा स्त्रीनो समागम आलाप संलापादिक पण करे नही. अही णं वाक्यालंकारेछे. स्त्रीने अंगारा सरखी जाणी दूर छांडी आपे. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—तस्मात् स्त्रियो वर्जयेत् । तुशब्दादालापादिन कुर्यात् । विषे लिप्तं कंटकमिव ज्ञात्वा । विषदिग्धकंटकः शरीरेमग्नः सन्ननर्थं करोति स्त्रियस्तु स्मरणादपि । यतः । विषस्य विषयाणां च दूरमत्यंतमंतरं ॥ उपभुक्तं विषं हंति विषयाः स्मरणादपीति । तथा (उए)

एकोऽसहायः कुलानि गृहस्थगृहाणि गत्वा स्त्रीणां वशवर्ती योधर्ममाख्याति नासौ निर्ग्रं थोनिषिद्धाचरणात् ॥ ११ ॥ ये यतयएतत् पूर्वोक्तं जंजं गर्ह्यं स्त्रीसंबंधादिकं एकाकि स्त्रीधर्मकथानादिकं वा अनुगृद्धाः प्रत्यासक्तास्ते कुशीलादीनां पार्श्वस्थादीनामन्यत माः स्युः । ततस्तु तपस्व्यपि तपःक्लशदेहोपि स्त्रीभिः सह नविहरेन्नगद्धेन्नापि तिष्ठेत् । तृतीयार्थे सप्तमी । णं वाक्यालंकारे ॥ १२ ॥

---

॥ टीका—स्त्रीसंबंधदोषानुपदर्श्योपसंहरन्नाह् । ( तम्हाऽत्यादि ) । यस्माद्विपाककटुः स्त्रीभिः सह संपर्कस्तस्मात्कारणात् स्त्रियोवर्जयेत् । तुशब्दात्तदालापमपि न कुर्यात् । किं तदित्याह् । विषोपलिप्तं कंटकमिव ज्ञात्वाऽवगम्य स्त्रियं वर्जयेदिति । अपिच । विषदिग्ध कंटकः शरीरावयवे नग्नः सन्ननर्थमापादयेत् स्त्रियस्तु स्मरणादपि । तडुक्तं । विषस्य विषयाणां च, दूरमत्यंतमंतरं ॥ उपयुक्तं विषं हंति,विषयाः स्मरणादपि ॥१॥ तथा वरि विसखइमंविसय सुहुइक्क सुविसिणमरंति॥विसयामि सपुणघाह्यिा णरणरएहिंपडंति॥१॥ तथैजएकोऽसहायः सन् कुलानि गृहस्थानां गृहाणि गत्वा स्त्रीणां वशवर्ती तन्निर्दिष्टवेला गमनेन तदानुकूल्यं जजमानोधर्ममाख्याति योसावपि ननिर्ग्रंथोनसम्यक् प्रव्रजितोनि षिद्धाचरणसेवनादवश्यं तत्रापायसंजवादिति । यदा पुनः काचित्कुतश्चिन्निमित्तादागंतुम समर्था वृद्धा वा जवेत्तदा परिसहायसाध्वजावे एकाक्यप्यपि गत्वाऽपरस्त्रीवृंदमध्यगतायाः पुरुषसमन्वितायावा स्त्रीनिंदाविषयजुगुप्साप्रधानं वैराग्यजननं विधिना धर्मं कथयेदपीति ॥ ११ ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यामुक्तोर्थः सुगमोजवतीत्यभिप्रायवानाह् । ( जेएयंउंठमि त्यादि ) ये मंदमतयः पश्चात्कृतसदनुष्ठानाः सांप्रतेक्षिणएतदनंतरोक्तं जंठंतिजुगुप्सनीयं गर्ह्यं तदत्र स्त्रीसंबंधादिकं एकाकिस्त्रीधर्मकथनादिकं वा इष्टव्यं । तदनु तत्प्रति ये गृद्धा अध्युपपन्नामूर्छितास्तेहि कुशीलानां पार्श्वस्थावसन्नकुशीलसंसक्तयथाछंदरूपाणामन्यतरा जवंति, यदिवा काथिकपश्यकसंप्रसारकमामकरूपाणां वा कुशीलानामन्यतराजवंति तन्म ध्यवर्तिनस्तेपि कुशीलाजवंतीत्यर्थः। यतएवमतःसुतपस्व्यपि विकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोपि भिक्षुः साधुरात्महितमिच्छन् स्त्रीभिः समाधिपरिपंथिनीभिः सह न विहरेन्नक्वचिज्जन्नेनापि संतिष्ठेत् तृतीयार्थेसप्तमी।णमितिवाक्यालंकारे।ज्वलितांगारपुंजवद्दूरतः स्त्रियोवर्जयेदितिजावः॥१२

अवि धूयराहि सुण्हाहिं,धातीहिं अज्जव दासीहिं ॥ महतीहि वा कुमारी हिं, संथवं सेन कुज्जा अणगारे॥१३॥अङ णाऽणंच सुहीणंवा अप्पियं द ठु एगता होंति॥गिद्धासत्ता कामेहिं; रक्कणपोसणे मणुस्सोसि ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे कदाचित् पुत्री प्रमुखनो संसर्ग थइ जाय,तो ते पण साधुयें टालवो ते आश्रयी.

कहेछे अवि के० अपि संनावनाये धूयराहिसुएहाहिं के० धूआ एटले बेटी साथे पण साधु विचरे नहीं, तथा सुएहा एटले वहु साथे अने धातीहिं के० धाव, ते माता स मानछे ते साथे पण, अङुव के० अथवा दासीहिं के० दासी साथे, तथा महतीहि के० म्होटी स्त्री साथे, वा के० अथवा कुमारीहिं के० कुमारिका जे न्हानी स्त्री, तेनी साथे पण संथवं के० संस्तव परिचय से के० ते साधुनकुक्का के० नकरे तेने अणगा रे के० अणगार जाणवो. ॥ १३ ॥ हवे ए पूर्वोक्त स्त्रीउंना समागम थकी जे दोष उप जे ते कहेछे. अथ के० हवे कदापि एगता के० एकदा प्रस्तावे एकांते स्त्रीनी साथे साधु नो संसर्ग तेने णाईणं के० ज्ञाति गोत्रि वा के० अथवा सुहीणं के० सुहृत् एटले मि त्र संबंधि वर्ग होंति के० त्यां होय ते दछु के० देखे तेवारे तेउंने अप्पियं के० अप्री ति एटले द्वेष उपजे अने तेउं जाणेके गिद्धासत्ता कामेहिं के० जूवो ए पुरुष एवा गृ द्धछे ,कामनोगने विषे आसक्त देखायछे एम चिंतवी सक्रोध वचन बोले के मणुस्सोसिके० अरेतुं एनो पुरुषछे के शुं जे तुं अहीं घणो घणो बेशेछे, रक्कण पोसणे के० राखवे पो षवे आदर करेछे, तेनो शुं कारणछे, एवा कठोर वचन ते बोले. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—डुहितृनिरपि पुत्रीनिरपि सार्धं न विरहेत् स्नुषाः सुतनार्यास्तानिर्धात्र्यास्त न्यदायिन्यस्तानिरथवा दासीनिर्महतीनिः प्रौढानिः कुमारीनिर्लघ्वीनिर्वा सार्धं संस्त वं परिचयं न कुर्यादनगारः ॥ १३ ॥ अथ एकदा स्त्रीनिः सह संगतं साधुं दृष्ट्वा योपि तज्ज्ञातीनां सुहृदां वाऽप्रियं चित्ताशंका नवति । एवंच ते माहुर्वेरन् । यथा सत्वाः प्राणि नः कामैर्गृद्धाः । एवंविधोप्ययं श्रमणः स्त्रीसक्तचेताः स्त्रीनिः सार्धं तिष्ठति । तडुक्तं । मुंमं शिरोवदनमेतदनिष्टगंधि, निक्षाशनेन नरणं वहतोदरस्य । गात्रं मलेन मलिनं गतसर्व शोनं, चित्रं तथापि मनसो मदनेस्ति वांछेति ॥ अतिस्त्रीसंगं दृष्ट्वा तव ज्ञातयः क्रुद्धाः साधुं ब्रुवंति रक्षणं वा पोषणं वा समाहारद्वंद्वे रक्षणपोषणं तत्र त्वमादरं कुरु । यतस्त्व मस्यामनुष्योसि । यदिवा वयं रक्षणे पोषणे प्रछन्नास्त्वमेव मनुष्योसि त्वयैव सार्धमिय मेकाकिन्यहर्निशं त्यक्तगेहव्यापारा तिष्ठतीति ॥ १४ ॥

॥ टीका—कतमानिः पुनःस्त्रीनिःसार्धं न विहर्तव्यमित्येतदाशंक्याह । (अविधूयराही त्यादि ) अपिशब्दः प्रत्येकमनिसंबध्यते । ( धूयराहित्ति ) डुहितृनिरपि सार्धं न विहरे त्तथा स्नुषाः सुतनार्यास्तानिरपि सार्धं न विविक्तासनादौ स्थातव्यं । तथा धात्र्यः पंच प्रकाराः स्तन्यदायिन्योजननीकल्पास्तानिश्च सार्कं न स्थेयं । अथवा सतां तावदपरायोपि तोयाअप्येतादास्योघटयोषितः सर्वापसदास्तानिरपि सह संपर्कं परिहरेत् । तथा महती निः कुमारीनिर्वाशब्दाल्लघ्वीनिश्च सार्धं संस्तवं परिचयं प्रत्यासत्तिरूपं सोऽनगारोन कु

यादिति ।यद्यपि तस्यानगारस्य तस्यां डुहितरि स्नुषादौ वा नचित्तान्यथात्वमुत्पद्यते तथा पि च तत्र विविक्तासनादावपरस्य शंकोत्पद्यते अतस्तच्छंकानिरासार्थं स्त्रीसंपर्कः परिहर्त व्यइति ॥१३॥ अपरस्य शंका यथोत्पद्यते तथा दर्शयितुमाह । (अडुणाईणमित्यादि) विविक्तयोषिता सार्धमनगारमथैकदा दृष्ट्वा योषिज्ज्ञातीनां सुहृदां वा अप्रियं चित्तडुःखा सिका नवत्येवं च ते समाशंकेरन् यथा सत्वाः प्राणिनइच्छामदनकामैर्गृध्धाअध्युपप न्नास्तथाह्येवंनूतोप्ययं श्रमणः स्त्रीवदनावलोकनासक्तचेताः परित्यक्तनिजव्यापारोऽनया सार्धं निर्ह्रीकस्तिष्ठति । तडुक्तं । मुंमं शिरोवदनमेतदनिष्टगंधि, निक्षाटनेन नरणं वह तोदरस्य ॥ गात्रं मलेन मलिनं गतसर्वशोनं चित्रं तथापि मनसो मदनेस्ति वांछा ॥१॥ तथातिक्रोधाध्मातमानसाश्चैव मूचुर्यथा रक्षणं पोषणं चेति विगृह्य समाहारद्वंद्व स्तस्मिन् रक्षणपोषणे सदादरं कुरु । यतस्त्वमस्याः मनुष्योसि मनुष्योवर्तसे । यदि वा परं वयमस्यारक्षणपोषणव्यापृतास्त्वमेव मनुष्योवर्तसे । यतस्त्वयैव सार्धमियमेका किन्यहर्निशं परित्यक्तनिजव्यापारा तिष्ठतीति ॥ १४ ॥

समणंपि दछुदासीणं, तब्वि तावएगे कुप्पंति ॥ अडु नोयणेहिं णछेहिं इछीदोसं संकिणो होंति ॥१५॥ कुवंति संथवं ताहिं, पब्नठा समाहि जो गेहिं ॥ तम्हा समणा णसमेंति, आयहियाए सण्णिसेज्जाउ ॥ १६ ॥

अर्थ–समणंपि दछुदासीणं के० तपस्वी. उदासीन मध्यस्थ, राग द्वेष रहित एवो सा धु पण स्त्री साथे आलाप करतो थको देखीने ताव के० तेवारे तब्वि के० त्यां प ण एगे के० कोइएक कुप्पंति के० क्रोध करे अडुवा के० अथवा नोयणेहिं के० अने क प्रकारना नोजन ते णछेहिं के० साधुने अर्थे थाप्या देखीने एम जाणे जे ए यति आ हारनो गृद्ध सदैव अहीं आवेछे, इछीदोसं संकिणोहोंति के० तेवारे तेने स्त्रीना दोष नी शंका मनमांहे उपजे, अने एम जाणे के ए स्त्रीपण नली नथी ॥ १५ ॥ तेमाटे जे पब्नठा समाहि जोगेहिं के० प्रकर्षे करी धर्मरूप समाधि जे मन वचन कायाना शु नयोगरूप व्यापार,तेथकी च्रष्ट थया होय. कुवंति संथवंताहिंके० तेवा ड्व्यलिंगीउ स्त्रीनी साथे संस्तव परिचय करे तम्हा के० तेमाटे एवुं जाणीने समणा के० साधु णसमेंति के० स्त्रीनी साथे नजाय, आयहियाए के० आत्माना हितने अर्थे सण्णिसेज्जाउ के० स्त्रीजे स्थानके रहेती होय ते स्थानके साधु निषिद्धा अशनादिक परिचय करे नही.॥१६॥

॥ दीपिका–श्रमणमुदासीनमपि रागद्वेषरहितमपि दृष्ट्वा नत्रापि मध्यस्थे रहस्यस्त्री जल्पनकृतदोषादेके कुप्यंति श्रमणं मध्यस्थमपि स्त्रिया सहैकांते जल्पं दृष्ट्वा एके कुप्यं

ति किंपुनः कृतविकारं। तथा स्त्रीदोषाशंकिनश्च ते नवंति। ते चामी दोषाः। नोजनैर्बहुविधै न्यस्तैः साध्वर्थमुपकल्पितैरियमेनमुपचरति अथवा नोजनार्थमुपविष्टेष्वपि श्वशुरादिषु साध्वागमने सा वधूः समाकुला सत्यन्यस्मिन् दातव्येऽन्यद्ददाति। यथा। कयाचिद्वध्वा ग्राममध्यप्रारब्धनटप्रेक्षणगतचित्तया पतिश्वशुरयोर्नोजनार्थमुपविष्टयोस्तंडुलाइति कृत्वा राइकाः संस्कृत्य दत्ताः। ततश्चासौ श्वशुरेणोपलक्षिता पत्या क्रुद्धेन ताडिता ऽन्यगतचित्तेत्याशंकया गृहान्निर्घाटितेति ॥१५॥ तानिः स्त्रीनिः सह संस्तवं परिचयं कुर्वंति। किंनूताः। प्रभ्रष्टाः सचलिताः समाधियोगेन्योधर्मध्यानव्यापारेन्यः प्रच्युताः तस्मात् श्रमणा (एसमेंतित्ति) नगछंति। सत्यः शोननाअनुकूलत्वान्निषद्याइव निषद्याः स्त्रीता माया अथवा स्त्रीवसतीः आत्महिताय स्वहितं मन्यमानाः ॥ १६ ॥ अप्री एवा गृ

---

॥ टीका–(किंचान्यत्। समणंपीत्यादि) श्राम्यतीतिश्रमणः साधुः। अपिःसोसिके० मः। तमुदासीनमपि रागद्वेषविरहान्मध्यस्थमपि दृष्ट्वा। श्रमणग्रहणं तपःखिन्न० राखवे पोथै। तत्रैवंनूतेपि विषयद्वेषिण्यपि साधौ तावदेके केचन रहस्यस्त्रीजल्प ॥ प्यंति। यदिवा (पाठांतरं) "समणं दट्ठूणुदासीणं" श्रमणं प्रव्रजितं [illegible] यास्तानिधाऽियास्त निजव्यापारं स्त्रिया सह जल्पंतं दृष्ट्वोपलज्य तत्राप्येके केचन तावत् [illegible] नीनिर्वा सार्धं संस्तकारमितिनावः। अथवा स्त्रीदोषाशंकिनश्चते नवंति। ते चामी स्त्रीदोषा[illegible] दृष्ट्वा योषि राहारैर्न्यस्तैः साध्वर्थमुपकल्पितैरेतदर्थमेव संस्कृतैरियमेनमुपचरति तेनायमहानशाम हागच्छतीति। यदिवा नोजनैःश्वशूरादीनां न्यस्तैरर्धदत्तैः सद्भिः सावधूः साध्वागमनेन समाकुलीनूता सत्यन्यस्मिन् दातव्येऽन्यद्द्यात्ततस्ते स्त्रीदोषाशंकिनोनवेयुर्यथेयं डुःशीलाऽनेनैव सहास्तइति। निदर्शनमत्र यथा कयाचिद्वध्वा ग्राममध्यप्रारब्धनटप्रेक्षणैकगतचित्तया पतिश्वशुरयोर्नोजनार्थमुपविष्टयोस्तंडुलाइति कृत्वा राइकाः संस्कृत्य दत्तास्ततोसौ श्वशुरेणोपलक्षिता निजपतिना क्रुद्धेन ताडिता अन्यपुरुषगतचित्तेत्याशंक्य स्वगृहान्निर्घाटितेति ॥ १५ ॥ किंचान्यत्। (कुर्वंतीत्यादि) तानिः स्त्रीनिः सन्मार्गार्गलानिः सह संस्तवं तद्गृहगमनालापदानसंप्रेक्षणादिरूपं परिचयं तथाविधमोहोदयात्कुर्वंति विदधति। किंनूताः। प्रकर्षेण भ्रष्टाः स्खलिताः समाधियोगेन्यः। समाधिर्धर्मध्यानं तदर्थं तत्प्रधानावा योगामनोवाक्कायव्यापारास्तेन्यः प्रच्युताः शीतलविहारिणइति। यस्मात् स्त्रीसंस्तवात्समाधियोगपरिभ्रंशोनवति तस्मात्कारणाच्छ्रमणाः सत्साधवोन (समेंति) न गछंति। सद्योननाः सुखोत्पादकतयाऽनुकूलत्वान्निषद्याइव निषद्यास्त्रीनिः कृता माया यदिवा स्त्रीवसतीरिति आत्महिताय स्वहितं मन्यमानाः। एतच्च स्त्रीसंबधपरिहरणं तासामर्थ्ये हिकामुष्मिकापायपरिहाराद्धितमिति। कचित्पश्चार्द्धमेवं पठ्यते ॥ तम्हासमणाउ जहा

हि अहितार्थं सन्निसेज्जाउ ॥ अयमस्यार्थः। यस्मात्स्त्री संबंधोनर्थाय नवति तस्मात् हेश्रम ण साधो ।तुशब्दोविशेषणार्थः। विशेषेण सनिषद्या स्त्रीवसतीस्तत्कृतोपचाररूपा वा मा या आत्महिताहेतोर्जहाहि परित्यजेति ॥ १६ ॥

बहवे गिहाइं अवहट्टु, मिस्सीनावं पत्नुया (पाठांतरे पणता) यएगे ॥ धुव मग्गमेव पवयंति वायावीरियं कुसीलाणं ॥१७॥ सुद्धं रवति परिसाए, अह रहस्संमि डुक्कडं करेंति ॥ जाणंतियणं तहाविया,माइल्ले महासढेयंति॥ १८॥

तो॰ अर्थ–बहवे के॰ घणा मनुष्य गिहाइंअवहट्टु के॰ घर ठांमी संयम आदरीने वली तथातीय कर्मना उदय थकी अज्ञानपणे, मिस्सीनावं के॰ मिश्रनावे पत्नुयाचके॰ स्तस्मिन् एवा एगे के॰ कोइएक मनुष्य ते गृहस्थ पण नही अने यतिपण नही एटले ड वा परं ययगय. एवा ठतां पण धुवमग्गमेव के॰ मोक्ष मार्गेज एटले अमारो मो किन्यहर्निशं पोत्यंठे एम पवयंति के॰मध्यम मार्गने श्रेष्ठ कही बोले ए कारणे अहो कु

समणंपि दट्ठु स्सीलीयाना वायाके॰ वचननुं बोलवा मात्र, जे वीरियंके॰ बल वीर्यठे १७ ॥ एरीते परिसाए के॰ परखदा मध्ये ते कुशीलिया पोतानी आ

इत्थीदोसं संकि १८ निर्दोष रवति के॰ बोले अह के॰ अथ हवे परखदा मांहेथी

गोहि ॥ तम्ह रहस्संमि के॰ एकांत ठांनो डुक्कर्म करेंति के॰ डुष्कृत एटले अनाचार करे. एरीते ते मूर्ख पोतानो अनाचार गोपवे, तोपण जाणंतियणंतहाविया के॰ तेना अंग चेष्टाना जाण होय तेजाणे,तथा सर्वज्ञ तो जाणेजठे के ए साधु माइल्लके॰ कुट मायावीठे, तथा महासढेयंति के॰ महाधूर्त मृषावादी ठे. एरीते तो बीजा जाणे किंवा नजाणे परंतु सर्वज्ञतो जाणेजठे. ॥ १८ ॥

---

॥ दीपिका–बहवः केचन गृहाण्यपहृत्य परित्यज्य मिश्रीनावं गृहस्थतुल्यत्वं प्रणताः प्राप्ताएवंनूतास्ते ध्रुवमार्गं मोक्षमार्गमेव प्रवदंति, यथायमेवास्मदीयोमार्गः श्रेयान् अनेनैव प्रव्रज्यानिर्वाहः स्यादिति । तदेतत्कुशीलानां वाचा कृतवीर्यं नानुष्ठानकृतं । वाड्मात्रेणैव ते प्रव्रजितानतु सदनुष्ठानतइत्यर्थः ॥ १७ ॥ सकुशीलोवाड्मात्रेण परि षदि शुद्धमात्मानं रौति नाषते । अथ रहस्येकांते डुष्कृतं पापं करोति तच्च तस्य पाप मन्यः कोपि न वेत्ति तथापि तथारूपमनुष्ठानं विदंतीतितथाविदोनिपुणाइंगिताकार ज्ञाः सर्वज्ञावा जानंत्येव यतोयं मायावी महाशठश्चेति ॥ १८ ॥

---

॥ टीका–किं केचनाभ्युपगम्यापि प्रव्रज्यायां स्त्रीसंबंधं कुर्युर्येनैवमुच्यते उमित्याह । (ब

हवेइत्यादि) बहवः केचन गृहाण्यपहृत्य परित्यज्य पुनस्तथाविधमोहोदयान्मिश्रीनावइति । इव्यलिंगमात्रसद्भावाद्भावतस्तु गृहस्थसमकल्पाइत्येवंनूतामिश्रीनावं प्रस्तुताः समनुप्राप्तान गृहस्थाएकांततोनापि प्रव्रजितास्तदेवंनूताअपि संतोध्रुवोमोक्षः संयमोवा तन्मार्गमेव प्रवदंति । तथाहि । ते वक्तारोनवंति यथाऽयमेवास्मदारब्धोमध्यमः पंथाः श्रेयान् तथाह्यनेन प्रवृत्तानां प्रव्रज्यानिर्वहणं नवतीति तदेतत्कुशीलानां वाचा कृतं वीर्यं नानुष्ठानकृतं । तथाहि । ते इव्यलिंगधारिणोवाङ्मात्रेणैव वयं प्रव्रजिताइति ब्रुवते नतु तेषां सातगौरवविषयसुखप्रतिबद्धानां शीतलविहारिणां सदनुष्ठानकृतं वीर्यमस्तीति ॥ १७ ॥ अपिच (शुद्धंरवतीत्यादि) सकुशीलोवाङ्मात्रेणाविष्कृतवीर्यः पर्षदि व्यवस्थितोधर्मदेशनावसरे सत्यात्मानं शुद्धमपगतदोषमात्मानमात्मीयानुष्ठानं वा रौति नापते । अथाऽनंतरं रहस्येकांते डुष्कृतं पापं तत्कारणं वा सदनुष्ठानं करोति विदधाति तच्च तस्यासदनुष्ठानं गोपायतोपि जानंति विदंति । के । तथारूपमनुष्ठानं विदंतीति तथाविदइंगिताकारकुशलानिपुणास्तद्विदइत्यर्थः । यदिवा सर्वज्ञाः । एतदुक्तंनवति । यद्यप्यपरः कश्चिदकर्तव्यं तेषां न वेत्ति तथापि सर्वज्ञाविदंति तत्परिज्ञानेनैव किंन पर्याप्तं यदिवा मायावी महाशठश्चायमित्येवं तथाविदस्तिद्विदोजानंति । तथाहि । प्रछन्नकार्यकारी न मां कश्चिज्जानात्येवं रागांधोमन्यते अथच तं तद्विदो वदंति । तथाचोक्तं । नयलोणंलोणिज्जइ,णयउप्पिज्जइ घयं चतेल्लंवा ॥ किहसक्कावंचेउअत्ताअणूहूयकल्लाणो॥ १ ॥ १७ ॥

सयं डुक्कडं च न वदति; आइछोवि पकछति बाले ॥ वेयाणुवीइ मा कासी, चोइज्जंतो गिलाइ से नुज्जो ॥ १९ ॥ उसियावि इछिपोसे सुपुरिसा इछिवेयखेदन्ना ॥ पन्नासमन्निताबेगे, नारीणं वसं उवकसंति ॥ २० ॥

अर्थ–सयंडुक्कडंच के० जे इव्यलिंगी होय, ते पोतानो करेलो अनाचार तेने चशब्द थकी आचार्यादिके पुछ्यो थको, नवदति के० नकहे; एटले पोतानो अनाचार प्रकाशे नही, तथा आइछोवि के० आदिष्ट एटले चोयणा कस्यो उत्तो, एटले हे वत्स आज पछी एम न करवुं एरीते प्रेस्यो थको, पण बाले के० ते बाल अज्ञानी पकछति के० पोताना आत्माने श्लाघनीय मानतो थको एम कहेके, आज पछी तमे कहोछो तेम करीश, तथा वेय के० पुरुषवेदनो उदय तेथी थयोजे अणुवीइ के० मैथुन सेववानो अनिलाष ते माकासी के० मकरीश, एरीते चोइज्जंतोके० प्रेस्यो थको गिलाइ के० गिलानपणु पामे. एम सेके० ते इव्यलिंगी साधु नुज्जो के० वली वली सांचव्युं अणसांनल्युं करे ॥ १९ ॥ उसियावि के० अनेक प्रकारना कामनोगने विषे उषित

एटले नुक्तनोगी थइने पुरिसाके० ते मनुष्य इन्डिपोसेसुके० स्त्रीने पोषवाने विषे प्रवर्त्ते तथा इन्डिवेयखेदन्ना के० स्त्रीवेद खरावछे, एटले स्त्री संसार भ्रमणनुं कारणछे, एम जाणता छता पण पन्नासमन्नितावेगे के० प्रज्ञासमन्वित एटले बुद्धिमंत एवा कोइएक पुरुष मो हने उदये करी नारीणंवसं के० तेहिज स्त्रीने वशवर्त्तियें रहे अने उवकसंति के० ते स्त्री जे कांइ कहे ते किंकरनी पेरे करे इत्यर्थः ॥ २० ॥

॥ दीपिका—स्वयंकृतं पापं परेण पृष्टोपि नवदति यदहमेतत्पापकारीति परेणादिष्ट श्चोदितोपि बालोऽज्ञः प्रकच्चते आत्मानंश्लाघमानोऽकार्यमपलपति । तथा वेदः पुंवेदोदय स्तस्यानुवीचिरानुकूल्यं मैथुनाभिलापं माकार्षीरिति यः पुनश्चोद्यमानोग्लायति ग्लानिं याति अनाकर्णितं करोति मर्मविद्धोवा सखेदं जायते । यथा । संभाव्यमानपापश्चेदपापेना पि किं मया । नृजमुद्विजते लोको,निर्विषादपि सर्पतइति ॥ १९ ॥ स्त्रीपोषकाये अनुष्ठान विशेषास्तेषु उषिताव्यवस्थिताः पुरुषा नुक्तनोगिनइत्यर्थः । तथा स्त्रीवेदे खेदज्ञाः स्त्रीवेदो मायाबहुलइति निपुणाअपि प्रज्ञाबुद्धिरौत्पत्त्यादिका तया समन्विताद्युक्ताअपि एके ना रीणां वशमायत्ततां उपकर्षंति व्रजंति स्त्रीवशवर्त्तिनोनवंतीत्यर्थः । नतु एवं जानंति । यतः । एताहसंतिच रुदंतिच कार्यहेतोर्विश्वासयंति च नरं नच विश्वसंति ॥ तस्मान्नरेण कुल शीलसमन्वितेन नार्यः श्मशानघटिकाइव वर्जनीयाः ॥१॥ स्त्रीस्वनावस्तथा । यथा । ए कोयुवा गृहान्निर्गत्य पाटलिपुत्रं प्रस्थितस्तदंतरेऽन्यतरग्रामवर्तिन्या कयाचिन्नार्याऽनि हितस्त्वमेवं शुनाकृतिः क्व यासि तेनापि च यथास्थितमुक्तं । तयोक्तं पठित्वा चलमानोत्रा गछेः । तेनांगीकृत्याग्रे गतं । अधीत्य च तत्रायातः । तया च स्नानभोजनादिभिः सत्यापितो हावनावैश्च हृतचित्तस्तां हस्ते गृह्णाति ततस्तया महता शब्देन फूत्कृत्य जनागमनावसरे त न्मस्तके वारिघटः प्रक्षिप्तः । ततोलोकस्य तयोक्तं अयं गले लग्नेन जलेन व्याकुलोमृतइव । ततोमयोदकेन सिक्तइति । गते लोके सा पृष्टवती त्वया कामशास्त्रं पठता स्त्रीस्वनावानां किं ज्ञातमिति एवं स्त्रीचरितं डुर्विज्ञेयं । यतः । हृदयन्यद्वाच्यन्यत्, कर्मण्यन्यत् पुरो थ पृ ष्ठेऽन्यत् ॥ अन्यत्तव मम चान्यत् स्त्रीणां सर्वं किमप्यन्यदिति ॥ २० ॥

॥ टीका—किंचान्यत् ( सयंडुक्कडंचेत्यादि ) । स्वयमात्मना प्रछन्नं यडुष्कृतं कृतं तदप रेणाचार्यादिना पृष्टोन वदति न कथयति यथाहमस्याऽकार्यस्य कारीति । सच प्रछन्नपा पोमायावी स्वयमवदन् यदापरेणादिष्टश्चोदितोपि सन् बालोज्ञोरागद्वेषकलितोवा प्रकछते आत्मानं श्लाघमानोऽकार्यमपलपति वदतिच यथाहमेवंनूतमकार्यं कथं करिष्ये इत्येवं धाष्ट्यात्मिकछते । तथा वेदः पुंवेदोदयस्तस्यानुवीच्याऽनुकूल्यं मैथुनाभिलाषं

तन्माकार्षी रित्येवं नूयः पुनश्चोद्यमानोसौ ग्लायति ग्लानिमपयात्यकर्णश्रुतं विधत्ते मर्मविद्धोवा सखेदमिव नाषते । तथा चोक्तं । संनाव्यमानपापोहमपापेनापि किं मया ॥ निर्विषस्यापि सर्पस्य नृशमुद्विजते जनइति ॥ १ए ॥ अपिच । ( उसियावीत्यादि ) स्त्रियं पोषयंतीति स्त्रीपोषकाअनुष्ठानविशेषास्तेपूषिताअपि व्यवस्थिताअपि पुरुषामनुष्याचुक्तनोगिनोपीत्यर्थः तथा स्त्रीवेदज्ञाः स्त्रीवेदोमायाप्रधानइत्येवं निपुणाअपि तथा प्रज्ञया औत्पत्तिक्यादिबुध्या समन्विताशुक्ताअप्येके महामोहांधचेतसोनारीणां सम्यक्स्त्रीणां संसारावतरणवीथीनां वशं तदायत्ततामुपसामीप्येन कषंति व्रजंति । यद्यताः स्वप्नायमानाअपि कार्यमकार्यं वा ब्रुवते तत्तत्कुर्वते नपुनरेतज्ञानंति यथैताएवंनूताजवंतीति । तद्यथा । एताहसंति च रुदंति च कार्यहेतो,र्विश्वासयंति च नरं नच विश्वसंति॥ तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिकाइव वर्जनीयाः ॥ १ ॥ तथा । समुद्रवीचीव चलस्वनावाः, संध्याभ्ररेखेव मुहूर्तरागाः ॥ स्त्रियः कृतार्थाः पुरुषं निरर्थकं, निष्पीडितालक्तकवत्त्यजंति ॥ २ ॥ अत्रच स्त्रीस्वनावपरिज्ञाने कथानकमिदं । तद्यथैकोयुवा स्वगृहान्निर्गत्य वैशिकं कामशास्त्रमध्येतुं पाटलिपुत्रं प्रस्थितः। तदंतरालेऽन्यतरग्रामवर्तिन्यैकया योषिताऽनिहितस्तद्यथा सुकुमारपाणिपादशोननाकृतिस्त्वं क्व प्रस्थितोसि तेनापि यथास्थितमेव तस्याः कथितं । तयाचोक्तं । वैशिकं पठित्वा मम मध्ये नागंतव्यं तेनापि तथैवान्युपगतं । अधीत्य चासौ मध्येनायातस्तया च स्नानजोजनादिना सम्यगुपचरितोविविधहावनावैश्चापहृतहृदयः संस्तां हस्तेन गृह्णाति ततस्तया महता शब्देन फूत्कृत्य जनागमनावसरे मस्तके वारिवर्धनिका प्रक्षिप्ता। ततोलोकस्य समाकुले एवमाचष्टे। यथायं गले लग्नेनोदकेन मनाक् मृतः। ततोमयोदकेन सिक्तइति । गतेच लोके किं त्वया वैशिकशास्त्रोपदेशेन स्त्रीस्वनावानां किं परिज्ञातमित्येवं स्त्रीचरित्रं डुर्विज्ञेयमिति नात्रास्था कर्तव्येति । तथा चोक्तं । हृद्यन्यद्वाच्यन्यत्कर्मण्यन्यत्पुरोथपृष्ठेन्यत् ॥ अन्यत्तव मम चान्यत् स्त्रीणां सर्वं किमप्यन्यत् ॥ २० ॥

अवि हबपादछेदाए, अडवा वद्धमंसउक्कंते ॥ अवि तेयसाभितावणाणि नत्थिय खारसिंचणाइं च ॥ २१ ॥ अड कन्नणासछेदं,कंठछेदणं तितिक्खंती ॥ इअ पावसंतत्ता, नयविंति पुणोन काहिंति ॥ २२ ॥

अर्थ—हवे इहलोके पण स्त्रीने संबंधे जे विपाक थाय ते देखाडेछे अपि एवी संनावना छे जे कुशीलिया पुरुष होय ते हबपादछेदाएके० हस्तपादादिकनुं छेद पामे; अडवा के०अथवा वद्धमंसके० चर्म अने मांसनुं उक्कंते के० उपडवुं पामे अपि एवी संनावना

बे तेयसाके० अग्नीनो ताप पामे एटले राजपुरुष रीशाणा थका अनितावणानिके० पर स्त्री गमन करनार पुरुषना अग्नी सहित तेना शरीरना नडथुआ करे नछिय के० वांशला साथे तेना शरीर ठाठीने तेवार पठी खारसिंचणाइंच के० क्षारनुं सींचवुं करे, एटले लुणक्षेप पामे ॥२१॥ अङ्क के० अथवा कन्नणासछेदंके० कान अने नाशि कानुं ठेदन पामे. कंठछेदणं तितिरकंती के० कंठनुं छेदन पोताना कर्मना उदये सहन करे एरीते डह के० अहीं मनुष्य लोकने विषे पण पावसंतत्ता के० पापे करी संतत एवी विटंबना पामे, तथापि नयविंतिके० एमनकहे जे पुणोके० हवे वली हुं ए वो अनाचार नकाहिंतिके० नही करुं एम विचारी विरति पणु अंगीकार करे नही॥२२॥

---

॥ दीपिका—स्त्रीसंबंधे रागिणां हस्तपादछेदाद्यपि अथ वर्ध्रमांसोत्कर्तनमपि तेजसा ग्निनाऽनितापनानि स्त्रीसंबंधिनिर्भिर्नृपुरुषैर्नेटित्रकाण्यपि क्रियंते। पादारिकास्तथा शस्त्रैश्छि त्वा क्षारोदकसेचनानि प्राप्यंते ॥ २१ ॥ कर्णनासिकाछेदमपि कंठछेदनं च तितिक्षंते सहंते। इति एवं प्रकारेणात्रैव मनुष्यजन्मनि पापसंतप्तामहावेदनामनुभवंति नच ब्रुव ते एवं पुनर्न करिष्यामइति ॥ २२ ॥

---

॥ टीका—सांप्रतमिह लोकएव स्त्रीसंबंधविपाकं दर्शयितुमाह। (अविहछेत्यादि) स्त्री संपर्कोहि संसर्गिणां हस्तपादछेदनाय नवति। अपिः संनावने। संनाव्यतएतन्मोहातुरा णां संबंधाद्धस्तपादछेदादिकं अथवा वर्ध्रमांसोत्कर्तनमपि तेजसाग्निनाऽनितापनानि स्त्री संबंधिनिरुत्तेजितैराजपुरुषैर्नेटित्रकाण्यपि क्रियंते पादारिकास्तथा वास्यादिना तक्षयित्वा क्षारोदकसेचनानि च प्रापयंतीति ॥२१॥ अपिच। (अङ्कणेत्यादि) अथ कर्णनासिका छेदं तथा कंठछेदनं च तितिक्षंते स्वकृतदोषात्सहंते इत्येवं बहुविधां विडंबनामस्मिन्नेव मानुषे च जन्मनि पापेन पापकर्मणा संतप्तानरकातिरिक्तां वेदनामनुनवंतीति। नच पुनरे तदेवंभूतमनुष्ठानं नकरिष्यामइति ब्रुवतइत्यवधारयंतीति यावत्। तदेवमैहिकामुष्मिका दुःखविडंबनाअप्यंगीकुर्वंति न पुनस्तदकरणतया निवृत्तिं प्रतिपद्यंतइति नावः ॥ २२ ॥

सुतमेत मेवमेगेसिं, इत्थीवेदेतिहु सुयरकायं॥ एवंपि ता वदित्ताणं
अङ्वा कम्मणा अव करेंति ॥ २३ ॥ अन्नं मणेण चिंतेति, वा
या अन्नंच कम्मणा अन्नं॥ तम्हा णसद्दहिंनिरकू, बहुमायाउ
इत्थिउ णच्चा ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीसुधर्मस्वामी कहेछे के एवंके० ए जे पूर्वे स्त्रीना संबंधनुं फल कह्युं. ते, नगवंत

पाछेथी सुतमेके० मेंसांजल्युंछे. एतमेवके० एवीरीते एगेसिंके० कोइएकने कडवाविपाक होय इविवेदेतिहुके० स्त्रीवेद थकी हुइति निश्चे दुःखज पामे. सुयरकायंके० ए नर्लुं कर्युं एवंपि के० एरीते लोकपरंपराये पण सांजल्युंछे जे, स्त्रीना संबंध थकी कडवा विपाक पामियें; एम सांजलीने ताके० ते अकार्यनो करनार वदित्ताणंके० एम कहे जे हवे हुं ए अकार्य नही करुं. अडुवाके० अथापि एटले तोपण कम्मणाके० माठा कर्मने करवे करी अवकरेंतिके० तेहिज अकार्यनुं आचरण करे ॥२३॥ हवे स्त्री उपर विरक्त थवाने अ र्थें स्त्रीना दोष कहेछे. अन्नंमणेणचिंतेतिके० स्त्री जेछे ते मने करी अन्य चिंतवे अने वायाअन्नंच के० वचने करी अन्य बोले कम्मणाअन्नं के० वली कायाये करी अन्य करे तम्हा के० तेमाटे एणसदहिंनिरकू के० स्त्रीना वचन मायासहित होय तेने परमा र्थनो जाण साधु सद्दहे नही. बहुमायाउ इत्रिउ के० अत्यंत मायासहित एवी स्त्रीने, णच्चा के० जाणीने साधु जे होय ते स्त्रीनो विश्वास करें नही. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—श्रुतमेतद्गुरोः सकाशात् यत्पूर्वमुक्तं एवमेकेषां लाख्यातं जवति । यत स्त्रियो निंद्याइति । तथास्त्रियं वेदयति ज्ञापयतिस्त्रीवेदोवैशिकादिकं स्त्रीस्वजावप्रकाशकं शास्त्र मिति । तडुक्तं । डुर्ग्राह्यं हृदयं यथेव वदनं यदर्पणांतर्गतं, जावः पर्वतडुर्गमार्गविषमः स्त्रीणां न विज्ञायते ॥ चित्तं पुष्करपत्रतोयचपलं नैकत्र संतिष्ठते नार्योनाम विषांकुरैरिव लतादोषैः समं वर्धिताः ॥१॥ तथा उप्रेउअंगुलिसोपुरिसो सयलंमिजीवलोगंमि । कामं तएणनारिंजेण नपत्ताइ डुःखाइं इत्यादि । किंच । अकार्यमहं न करिष्यामीत्येवं वाचा उक्त्वापि ( अडुवत्ति ) अथापि तथा कर्मणा क्रिययाऽपकुर्वंति विरूपमाचरंति स्त्रि यः ॥ २३ ॥ स्त्रियोमनसाऽन्यत् चिंतयंति वाचान्यज्ञापंते कर्मणा क्रिययाऽन्यत् कुर्वंति— तस्मात्तासां जिक्षुः साधुर्नश्रद्दधीत तत्कृतमायया आत्मानं नप्रतारयेत् । यतोबहुमायाः स्त्रियइति ज्ञात्वा । अत्र दत्तावेशिकदृष्टांतः । यथा दत्तकोनामकश्चिद्युवा एकया गणिकया बहु प्रकारैः प्रतार्यमाणोपि तां नेष्टवान् ततस्तयोक्तं किंमया दौर्जाग्यकलंकितया जीवंत्या प्र. योजनं । अहं त्वया त्यक्ताऽग्निं विशामि ततोदत्तकोवदत् मायया इदमप्यस्ति वैशिके त दासौ पूर्वं सुरंगामुखे काष्ठनारं संमील्य तं प्रज्वाल्य तत्रानुप्रविश्य सुरंगया गृहमागता । दत्तकोपि इदमप्यस्ति वैशिके इत्येवं विलपन्नपि वातिकैश्चितायां प्रक्षिप्तस्तथापि नासौ तासु श्रद्धानं कृतवान् एवमन्येनापि स्त्रीषु न श्रद्धातव्यं ॥ २४ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । ( सुतमेतमित्यादि ) श्रुतमुपलब्धं गुर्वादेः सकाशाल्लोकतोवा एतदिति यत्पूर्वमाख्यातं । तद्यथा । डुर्विज्ञेयं स्त्रीणां चित्तं दारुणः स्त्रीसंबंधविपाकस्तथा चलस्वनावाः स्त्रियोडुष्परिचारायदीर्घप्रेक्षिण्यः प्रकृत्या लघ्व्या जवंत्यात्मगर्विताश्चेत्येव

मेकेषां स्वाख्यातं नवति लोकश्रुतिपरंपरया चिरंतनाख्यासु वा परिज्ञातं नवति। तथास्त्रियं यथावस्थितस्वनावतस्तत्संबंधविपाकतश्च वेदयति ज्ञापयतीति स्त्रीवेदोवैशिकादिकं स्त्रीस्वनावाविर्नावकं शास्त्रमिति। तडुक्तं। डुर्ग्राह्यं हृदयं यथैव वदनं यद्दर्पणांतर्गतं, नावः पर्वतमार्गडुर्गविषमः स्त्रीणां न विज्ञायते॥ चित्तं पुष्करपत्रतोयतरलं नैकत्र संतिष्ठते, नार्योनाम विषांकुरैरिव लतावर्धितैः समं वर्धिताः॥ १॥ अपिच। सुठुविजयासुठुठुविपियासुठुलद्धपसरासु॥ अडईसु महिलियासु य,वीसंनोनेवकायव्वो॥ १॥ नन्नेत्थ अंगुलीसोपुरिसोसयलंमि जीवलोयम्मि। कामेतएणनारी, जेणनपत्ताइ डुःखाइं॥ २॥ अहएयाणंपगई, सव्वस्सकरेतिवेमणास्सई। तस्सणकरेतिणवरं, जस्सअलंचेवकामेहिं॥३॥ किंच कार्यमहं न करिष्यामीत्येवमुक्त्वापि वाचा (अडुवत्ति) तथापि कर्मणापि क्रियया ऽपकुर्वतीति विरूपमाचरंति। यदि वा ऽग्रतः प्रतिपाद्यपि शास्तुरेवापकुर्वतीति॥२३॥ सूत्रकारएव तत्स्वनावाविष्करणायाह। (अणुंमणेणेत्यादि) पातालोदरगंनीरेण मनसान्यच्चिंतयति तथाश्रुतमात्रपेशलया विपाकदारुणया वाचा अन्यद्भापंते। तथाकर्मणानुष्ठानेनान्यन्निष्पादयंति यतएव बहुमायाः स्त्रियइति। एवं ज्ञात्वा तस्मात्तासां निक्कुः साधुर्न श्रद्दधीत तत्कृतया माययात्मानं न प्रतारयेत् दत्तावैशिकवत्। अत्र चेतत्कथानकं। दत्तावैशिकएकया गणिकया तैस्तैः प्रकारैः प्रतार्यमाणोपि तां नेष्टवान् ततस्तयोक्तं किं मया दौर्नाग्यकलंकांकितया जीवंत्या प्रयोजनमहंत्वत्परित्यक्ताऽग्निं विशामि ततोसाववोचत् मायया इदमप्यस्ति वैशिके तदाऽसौ पूर्वं सुरंगामुखे काष्ठसमुदयं कृत्वा तं प्रज्वाल्य तत्रानुप्रविश्य सुरंगया गृहमागता। दत्तकोपि इदमपि चास्ति वैशिके इत्येवमसौ विलपन्नपि वातिकैश्चितायां प्रक्षिप्तस्तथापि नासो तासु श्रद्धानं कृतवानेवमन्येनापि नश्रद्धातव्यमिति॥ २४॥

जुवती समणं बूया, विचित्तलंकारवत्थगाणि परिहित्ता॥ विरता चरिस्सहं रुक्कं,धम्ममाइक्क णे नयंतारो॥२५॥ अदु साविया पवाएणं,अहमंसि साहम्मिणीय समणाणं॥जतुकुंने जहा उवज्जोई,संवासे विडवि सीएज्जा॥२६॥

अर्थ—विचित्तलंकार वत्थगाणि परिहित्ताके० विचित्र प्रकारना आनूषण अने वस्त्र पेहेरी विनूषावंत शरीर करी, जुवती के० कोइक नव यौवना स्त्री अनिराम मायाकरी समणं के० साधुप्रत्ये बूया के० बोले के हे साधु हुं विरता के० घरना पाश थकी विरक्त थइछुं, माहारो नर्तार माहारी साथे नलो नथी, अथवा ए नर्तार मने रुचतोनथी अथवा ए नर्तारे मने मूकी दीधीछे, तेकारणे चरिस्सहं रुक्कं के० हुं संयम आचरीश, तेमाटे नयंतारो के० अहो नय थकी राखनार धम्ममाइक्कणे के० तमे अमने धर्म कहो,॥२५॥ अदु पवाएणंके० अथवा अन्य प्रवादे साविया के० हुं तमारी श्राविकाछुं एवुं

वळे पाखंम तेणे करी ते स्त्री साधुने समीप आवे अहमंसिसाहम्मिणीय समणाणं के० हुंश्रमण माहात्मानी सामिणीछुं, एवा प्रपंच करी साधुने धर्मथकी च्रष्ट करे तेना उपर दृष्टांत कहेछे. जहा के० जेम जतुकुंने के० लाखनो घडो ते उवज्जोइ के० अग्नी समीपे गलीने पाणी रूप थाय, तेम विउविके० पंमित होय तेपण संवासेके० स्त्रीने संवासे संसर्गेकरी सीएज्जाके० सीदाय सीतल विहारी थाय तो अन्य जननुं केवुंज शुं? ॥२६॥

॥ दीपिका–युवतिर्मायया श्रमणं ब्रूयाद्विचित्रवस्त्राणि परिधायालंकृतशरीरेत्यर्थः। अहं गृहपाशाद्विरता मह्यं पतिर्नरोचते परित्यक्ताहं च तेन ततश्चरिष्यामि रूक्षं संयमं। मे भ मद्देनयत्रातर्धर्ममाख्याहि ॥ २५ ॥ अनेन प्रवादेन छलेन अथवा स्त्री साधुसमीपमागच्छेत् अहं श्राविका अर्हंश्रमणानां सधर्मिणी एवं मायया समीपमागत्य कूलवालकमिव साधुं धर्माद्भ्रंशयति। यदुक्तं। तज्ज्ञानं तच्च विज्ञानं तत्तपः सच संयमः ॥ सर्वमेकपदे च्रष्टं सर्वथा किमपि स्त्रियः ॥ १ ॥ यथा जतुकुंनोज्योति:समीपे उपज्योतिर्वर्ती विलीयते एवं योषितां संवासे विद्वानपि विषीदेत शीतलविहारी नवेत् ॥ २६ ॥

॥ टीका–किंचान्यत्। ( जुवईत्यादि ) युवतिरभिनवयौवना स्त्री विचित्रवस्त्रालंकारविनूषितशरीरा मायया श्रमणं ब्रूयात्। तद्यथा। विरताहं गृहपाशान्नममानुकूलोनर्ता मह्यं चासौ नरोचते परित्यक्ता चाहं तेनेत्यतश्चरिष्यामि धर्ममाचक्षाणेति। अस्माकं हेनयत्रात यथाहमेवं दुःखानां नाजनं ननवामि तथाधर्ममावेदयेति ॥ २५ ॥ किंचान्यत्। ( अदुसाविएऽत्यादि ) अथवाऽनेन प्रवादेन व्याजेन साध्वंतिकं योषिदुपसर्पेत। यथाहं श्राविकेति कृत्वा युष्माकं श्रमणानां साधर्मिणीत्येवं प्रपंचेन नेदीयसी नूत्वा कूलवालुकमिव साधुं धर्माद्भ्रंशयति। एतदुक्तं नवति योषित्सान्निध्यं ब्रह्मचारिणां महतेऽनर्थाय। तथा चोक्तं। तज्ज्ञानं तच्च विज्ञानं, तत्तपः सच संयमः॥ सर्वमेकपदे च्रष्टं सर्वथाकिमपि स्त्रियः॥ १॥ अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतमाह। यथा जातुषः कुंनोज्योतिषोऽग्नेः समीपे व्यवस्थितउपज्योतिर्वर्ती विलीयते द्रवत्येवं योषितां संवासे सान्निध्ये विद्वानप्यास्तांतावदितरोयोपि विदितवेद्योसावपि धर्मानुष्ठानं प्रति विषीदेत शीतलविहारी नवेदिति ॥ २६ ॥

जतुकुंने जोइ उवगूढे, आसु नितत्ते णासमुवयाइ ॥ एविच्छियाहिं अणगारा, संवासेण णासमुवयंति ॥ २७ ॥ कुव्वंति पावगं कम्मं, पुठावेगे वमाहिंसु ॥ नोहं करेमि पावंति, अंके साइणी ममेसत्ति ॥ २८ ॥

अर्थ–जतुकुंनेके० जेम लाखनो घडो जोइके० अग्नियें उवगूढेके० आलिंग्यो उतो आसुके०

शीघ्र नितत्तेके० तेना तापेकरी णासमुवयातिके० विनाश पामे,एटले लाख वधीगली जाय. एवके० एरीते इत्थियाहिंके० स्त्रीने संवासेणके० संवासे करीने अणगाराके० साधु पण ते लाख नीपेरे णासमुवयंतिके० संयम थकी विनाश पामे ॥२७॥ कुव्वंतिपावगंकम्मंके० कोइएक साधु अनाचारी मोहना उदय थकी भ्रष्ट थको मैथुनसेवादिरूप पापकर्म करे, तेने पुढा वेगे वमाहिंसु के० कोइ एक आचार्यादिके पुठयो थको एम कहे. जे नोहंकरेमिपावं ति के० हुं एवुं पाप कर्म नकरुं अंकेसाइणी ममेसत्ति के० ए स्त्रीतो मारे दीकरी समानछे, ए जेवारे न्हानी हती तेवारे माहरे खोले सयन करती, ते अन्यासे हमणा पण माहारा खोलामां बेशेछे, सयन करेछे, परंतु हुं प्राणांते पण व्रतभंग करुं नही. ॥२८॥

॥ दीपिका–यथा जतुघः कुंनोज्योतिषाऽग्निनोपगूढोव्याप्तआशु अनितप्तोना शमुपयाति एवं स्त्रीनिः सार्धं संवसनेनाऽनगारानाशमुपयांति संयमाद्भ्रश्यंति ॥ २७ ॥ स्त्रीष्वासक्ताः पापं कर्म कुर्वंति भ्रष्टाः संयमादेके आचार्यादिना चोद्यमानाएवमाहुर्वेद्य माणमुक्तवंतः। नाहमेवंभूतकुलप्रसूतः पापमकार्यं करिष्यामि ममैषा डुहितृतुल्या पूर्वमंके शायिनी आसीत् तदेषा पूर्वाभ्यासान्मयि एवमारचयति । नपुनरहं प्राणांतेपि व्रतभंगं विधास्य इति ॥ २८ ॥

॥ टीका–एवं तावत्स्त्रीसान्निध्ये दोषान् प्रदर्श्य तत्संस्पर्शजं दोषं दर्शयितुमाह । (जउकुंभेत्यादि ) यथा जातुषः कुंनोज्योतिषाग्निनोपगूढः समालिंगितोनितप्तोग्निनानिमुख्येन संतापितः क्षिप्रं नाशमुपैति द्रवीनूय विनश्यत्येवं स्त्रीनिः सार्धं संवसनेन परिभोगेनानगारानाशमुपयांति सर्वथा जातुषकुंभवत् व्रतकाठिन्यं परित्यज्य संयमशरीराद्भ्रश्यंति॥२७॥अपिच।(कुर्वंतीत्यादि) तासु संसाराभिष्वंगिणीष्वभिसक्ताअवधीरितैहिकामुष्मिकापायाःपापं कर्म मैथुनासेवनादिकं कुर्वंति विदधति। परिभ्रष्टाः सदनुष्ठानादेके केचनोत्कटमोहाआचार्यादिना चोद्यमानाएवमाहुर्वेद्यमाणमुक्तवंतः। तद्यथा।नाहमेवंनूतकुलप्रसूतः एतदकार्यं पापोपादानभूतं करिष्यामि ममैषा डुहितृकल्पा पूर्वमंकेशयिनी आसीत् तदेषा पूर्वाभ्यासेनैव मय्येवमाचरति नपुनरहं विदितसंसारस्वनावः प्राणात्ययेपि व्रतभंगं विधास्यइति.

बालस्स मंदयं बीयं, जंच कम्मं अवजाणई भुज्जो ॥ डगुणं करेइ से पावं, पूयणकामो विसन्नेसी ॥२९॥ संलोकणिज्जमणगारं, आयगयं निमंतणेणाहंसु ॥ वत्थंच ताय पायंवा, अन्नं पाणगं पडिग्गहे ॥ ३० ॥ णीवारमेवं बुज्झेज्जा, णोइच्छे अगारमागंतुं ॥ बद्धे विसयपासेहिं, मोहमावज्जइपुणो मंदित्तिबेमि ॥३१॥ इति इत्थी परिन्नाए पढमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

पाम्यो बतो(मुच्छितंके०)स्त्रीने विषे मूर्छित एवो(जिरकूके०)यति तथा (काममतिवट्टंके०) कामजोग उपरे मति अभिलाषनुं प्रवर्त्तावबुं छे जेमने एवा साधुने ते स्त्री एम कहेके(प लिभिंदियाणंके०) में माहारा कुलशीलनी मर्यादा अतिक्रमीने माहारो आत्मा तुजने दीधोछे इत्यादिक वचन कहीने ते यतिने पोताने वश करे (पच्छाके०) तेवारपछी को इएक प्रकारे ते स्त्रीने रीशाणी जाणीने ते बापडो ते स्त्रीने पगे पोतानुं मस्तक लगाडे तेवारे ते पुरुषने एवो वश थयो देखीने ते स्त्री (पादमुद्दुक्किके०) पोतानो पग उंचो उ पाडीने माथा पगे करी ते द्रव्यलिंगी यतिना मस्तकने विषे (पहणंतिके०) प्रहार करे तोपण जे काम जोगनेविषे गृद्ध होय ते मूर्ख स्त्रीथकी विरचे नहि. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथ द्वितीयआरभ्यते । तस्येदमादिसूत्रं ॥ ( उएति ) उजएकोरागद्वेषर हितः सदास्त्रीषु न रागं कुर्यात् यद्यपि कर्मोदयाद्भोगाभिलाषी भवेत्तथापि पुनस्ताभ्योविर क्तेत । कोर्थः। कर्मोदयात् प्रवृत्तमपि चित्तं ज्ञानांकुशेन निवर्तयेत् । तथाश्रमणानां भोगाइती यंविर्मबनैवेति शृणुत यूयं । यडुक्तं मुंडंशिरइत्यादि पूर्ववत् । तथातैरप्युक्तं ॥ कृशः काणः खंजः श्रवणरहितः पुछविकलः क्षुधाक्षामोजीर्णः पिठरककपालार्दितगलः ॥ व्रणैः पूयक्लि न्नैः कृमिकुलशतैराविलतनुः शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हंत्येव मदनइत्यादि । यथा अधमाणोभिक्षवोप्येके भोगान् भुंजते तथाग्रे वक्ष्यतीति ॥१॥ अथ तं साधुं भेदं शील भेदं चारित्रस्खलनमापन्नं प्राप्तं स्त्रीमूर्छितं । तुर्विशेषणे । पुनः किंभूतं । कामेषु इछामद नेषु मतिर्बुद्धिर्वर्तते यस्य स काममतिवर्तस्तमेवंविधं भिक्षुं परिभिद्य मया कुलशीलमर्या दामतिक्रम्य तवात्मा अर्पितस्त्वंतु अकिंचित्करइत्यादिवचनान्युच्चार्य याः पादंचरणमु त्कृत्य ऊर्ध्वीकृत्य साधोर्मूर्ध्नि प्रघ्नंति प्रहारं ददति एवं विडंबयंति ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तः प्रथमोद्देशकः सांप्रतं द्वितीयः समारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः। इहा नंतरोद्देशके स्त्रीसंस्तवाच्चारित्रस्खलनमुक्तं स्खलितशीलस्य या अवस्था इहैव प्राडर्भवति तत्कृतकर्मबंधश्च तदिह प्रतिपाद्यते इत्यनेन संबधेनायातस्योद्देशकस्यादिसूत्रं ( उएस याइत्यादि ) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रसंबंधोवक्तव्यः सचायं संबंधोविषयपाशैर्मोहमा गछति यतोऽतउंजएकोरागद्वेषवियुतः स्त्रीषु रागं न कुर्यात् । परंपरसूत्रसंबधस्तु संजो कनीयमनगारं दृष्ट्वा च यदि काचिद्योषित् साधुमशनादिना नीवारकल्पेन प्रतारयेत्तत्रौजः सन्न रज्जेतेति । तत्रौजोद्रव्यतः परमाणुर्भावतस्तु रागद्वेषवियुतः । स्त्रीषु रागादिहैव वक्ष्य माणनीत्या नानाविधाविर्मबनाभवंति तत्कृतश्च कर्मबंधस्तद्विपाकाच्चामुत्र नरकादौ तीव्रावेदनाभवंति । यतोऽतएतन्मत्वा भावोजः सन् सदा सर्वकालं वाऽनर्थखनिषु स्त्रीषु न रज्जे यद्यपि मोहोदयात् भोगाभिलाषी भवेत्तथाप्यैहिकामुष्मिकापायान्



परिगणय्य पुनस्तान्योविरक्तेत । एतडुक्तं नवति । कर्मोदयात्प्रवृत्तमपि चित्तं हेयोपादेयपर्यालोचनया ज्ञानांकुशेन निवर्तयेदिति । तथा श्राम्यंति तपसा खिद्यंतीति श्रमणास्तेषामपि नोग इत्येतच्छृणुत यूयं । एतडुक्तं नवति । गृहस्थानामपि नोगा विडंबनाप्रायायतीनांतु नोगा इत्येतदेव विडंबनाप्रायं किंपुनस्तत्कृतावस्थाः । तथाचोक्तं । मुंडं शिरइत्यादि पूर्ववत् । यथा यथा च नोगानेकेऽपुष्टधर्माणोनिक्षवोयतयोविडंबनाप्रायान् नुंजते तथोद्देशकसूत्रेणैव वक्ष्यमाणेनोत्तरत्र महता प्रबंधेन दर्शयिष्यामि । अन्यैरप्युक्तं । कृशः काणः खंजः श्रवणरहितः पुच्छविकलः, क्षुधाक्षामोजीर्णः पिठरककपालार्दितगलः ॥ व्रणैः पूयक्लिन्नैः कृमिकुलशतैराविलतनुः शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हंत्येव मदनः इत्यादि ॥ १ ॥ नोगिनां विडंबनां दर्शयितुमाह । (अहेत्यादि) अथेत्यानंतर्यार्थः । तुशब्दोविशेषणार्थः स्त्रीसंस्तवादनंतरं निक्षुं साधुं नेदं शीलन्नेदं चारित्रस्खलनमापन्नं प्राप्तं संतं स्त्रीषु मूर्छितं गृद्धमध्युपपन्नं । तमेव विशिनष्टि । कामेष्विछामदनरूपेषु मतेर्बुद्धेर्मनसोवा वर्तनं प्रवृत्तिर्यस्यासौ काममतिवर्तः कामाभिलाषुकइत्यर्थः । तमेवंनूतं परिनिद्य मदभ्युपगतः श्वेतकृत्स्नप्रतिपन्नोमदृशकइत्येवं परिज्ञाय यदिवा परिनिद्य परिसार्यात्मसात्कृतं चोपार्येति । तद्यथा । मया तव लुंचितशिरसोजल्लमलाविलतया दुर्गंधस्य जुगुप्सनीयकक्षावक्षोबस्तिस्थानस्य कुलशीलमर्यादालज्जाधर्मादीन्परित्यज्यात्मादत्तस्त्वं पुनरकिंचित्करइत्यादि नणित्वा प्रकुपितायास्तस्याअसौ विषयमूर्छितस्तत्प्रत्यापनार्थं पादयोर्निपतितः । तथाचोक्तं । व्यानिन्नकेसरबृहच्छिरसश्च सिंहा,नागाश्च दानमदराजिकृशैः कपोलैः ॥ मेधाविनश्च पुरुषाः समरेच शूराः स्त्रीसन्निधौ परमकापुरुषानवंति ॥ १ ॥ ततोविषयेष्वेकांते न मूर्छितइति परिज्ञानात्पश्चात्पादं निजवामचरणमुत्क्षिप्योत्क्षिप्य मूर्ध्नि शिरसि प्रघ्नंति ताडयंत्येवं विडंबनां प्रापयंतीति ॥ २ ॥

जइ केसिआ णं मए निक्खु, णोविहरे सह ण मिञीए॥ केसाणविह लुंचिस्सं नन्नत्थ मए चरिज्जासि ॥ ३ ॥ अहणं सहोई उवलक्षो, तो पेसंति तहान्नूएहिं ॥ अलाउछेदं पेहेहिं, वग्गुफलाइं आहराहित्ति ॥ ४ ॥

अर्थ–वली कोइक स्त्री एवी माया करे के (जइके०)जो तमे(केसिआके०) केसवंती एवी णंवाक्यालंकारे (मएके०)माहारा सहित विहार करताथका शंका पामताहो तो(निक्खुके०) अहो साधु तमे (णोविहरेसहणमिञीएके०)केशवाली स्त्रीनी साथे विहार करशो नहीं (केसाणविहके०) केशनेपण हुं (लुंचिस्सुंके०) लोच करीने दूर करीश. अपि शब्द थकी अन्य जे कांइ तमे कहेशो ते सर्व हुं करीश पण ( नन्नत्थमएचरेज्जासि के० ) माहारा विना तमे अन्य स्थानके विचरशो नही एटली वीनती करुंछुं ते मान्य करो. हुं पण तमा

अर्थ—बालस्स के० अज्ञानीनी एबीजी मंदयं के० मूर्खता जाणवी; केमके एकतो अकार्य करवा थकी चोथा व्रतनो नंग थायछे ने बीयं के० बीजो जंचकडं के० जे अनाचार कीधो तेने अवजाणई के० उलववे करी मृषावाद बोले तेथकी बीजाव्रतनो नंग थाय, तेमाटे छुक्को के० वली वली सेके० ते पुरुष डुगुणंकरेईपावं के० बमणुं पाप करे, ते सावास्ते करे, तेनुं कारण कहेछे. पूयणकामो पूजा सत्कारनो अभिलाषी असंयमनुं विसन्नेसि के० गवेषणहार थको मनमां एम जाणे जे माहारो लोकोमां अवर्णवाद थशे. तेमाटे अनाचारने ढांना राखे ॥ २९ ॥ संलोकणिज्जमणगारं के० संलोकनीय एटले सुंदराकार एवा साधुने देखीने, आयगयं के० आत्मगत जाणी कोइएक स्त्री निमंतणेण के० निमंत्रणा पूर्वक आहंसु के० एम कहे के ताय के० अहो छकायना रक्षपाल वडंच के० वस्त्र वली पायं के० पात्र वा के० अथवा अन्नंपाणगं के० अन्न पाणी जे कांइ आपने खप होय ते पडिग्गहे के० अमारे घेर आवीने लेजो ॥ ३० ॥ जे उत्तम साधु होय ते ए पूर्वोक्त आमंत्रणने णीवारमेवं बुबे के० व्रीहीना कण समान जाणीने णोइछेअगारमागंतुं के० एवा घेरने विषेजवुं आववुं वांछे नही. जो कदापि कोइएक साधु तेवा घरे जाय तो ते बद्धेविस यपासेहिं के० विषयरूप पाशे करी बंधाणो उतो पुणो के० वली वली मोहमावज्जइ के० मोहने आवर्त्ते पडे एटले मोहने वश थको चित्तनुं आकुल व्याकुलपणुं पामे; मंद के० ते मूर्ख स्नेहरूप पास त्रोडवाने असमर्थ होय माटे डुःखी थाय. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत जाणवो. ॥ ३१ ॥ इति चतुर्थाध्ययने प्रथमोद्देशकः समाप्तः

॥दीपिका—बालस्याऽज्ञस्य द्वितीयं मंदत्वं । प्रथममज्ञत्वमेकं तावदकार्यकरणेन तुर्यव्रतविलोपोद्वितीयं तदपलपनेन मृषावादः । तदेवाह । यत्कृतमकार्यमपजानीते अपलपति सएवंभूतोद्विगुणं पापं करोति । किमर्थमपलपतीत्याह । पूजनकामुकः सत्काराभिलाषी मामे लोकेऽवर्णवादः स्यादित्यकार्यं प्रछादयति । विषण्णोऽसंयमस्तमेषितुं शीलमस्य सविषण्णैषी॥ ॥ २९ ॥ संलोकनीयं रूपवंतमनगारमात्मगतमात्मज्ञं काश्चन स्वैरिण्यो निमंत्रणपूर्वमाहुरुक्तवत्यः । तथाहि । हेत्रयिन् साधो वस्त्रं पात्रं चान्नपानादिकं वा यत्त्व विलोक्यते तत्त्वसमद्गृहमागत्य प्रतिगृहाण लाहि ॥३०॥ वस्त्रादिदानं नीवारतुल्यं बुध्येत जानीयात् । यथा नीवारेण च व्रीहिणा मृगादिर्वशमानीयते एवंसाधुरप्यामंत्रणेन वशमानीयते अतस्तं नेछेदगारं गृहं गंतु बद्धश्च विषयदामभिर्विषयपाशैर्मोहं चित्ताकुलत्वमापद्यते मंदोमूढइति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥३१॥ इति चतुर्थाध्ययने प्रथमोद्देशकः ॥

॥ टीका—किंच ( बालस्येत्यादि ) । बालस्याज्ञस्य रागद्वेषाकुलितस्यापरमार्थदृशए

तद्द्वितीयं मांद्यं। अज्ञत्वमेकं तावदकार्यकरणेन चतुर्थव्रतनंगो द्वितीयं तदपलपनेन मृषावादः। तदेव दर्शयति। यत्कृतमसदाचरणं नूयः पुनरपरेण चोद्यमानोऽपजानीतेऽपलपति नैतन्मयाकृतमिति सएवंनूतोऽसदनुष्ठानेन तदपलपनेन च द्विगुणं पापं करोति। किमर्थमपलपतीत्याह। पूजनं सत्कारपुरस्कारस्तत्कामस्तदनिलाषी मामेलोके अवर्णवादः स्यादित्यकार्यं प्रछादयति। विषस्रोऽसंयमस्तमेषितुं शीलमस्येति विषस्रेषी॥ २ए॥ किंचान्यत् (संलोकणिज्ञमित्यादि) संलोकनीयं संदर्शनीयमाकृतिमंतं कंचनानगारं साधुमात्मनि गतमात्मगतमात्मज्ञमित्यर्थः। तदेवंनूतं काश्चन स्वैरिण्योनिमंत्रणेन निमंत्रणपुरःसरमाहुरुक्तवत्यः। तद्यथा। हेत्रायिन् साधो वस्त्रं पात्रमन्यद्वा पानादिकं येन केनचिन्नवतः प्रयोजनं तदहं नवते सर्वं ददामीति मद्गृहमागत्य प्रतिगृहाण त्वमिति॥ ३०॥ उपसंहारार्थमाह (णीवारमित्यादि) एतद्योषितां वस्त्रादिकमामंत्रणं नीवारकल्पं बुध्येत जानीयात्। यथाहि नीवारेण केनचिद्भक्ष्यविशेषेण सूकरादिर्वशमानीयते एवमसावपि तेनामंत्रणेन वशमानीयते अतस्तं नेछेदगारं गृहं गंतुं। यदि वा गृहमेवावर्तोगृहावर्तोगृहं नमस्तं नेछेत् नानिलपेत्। किमिति। यतोबद्धोवशीकृतोविषयाएव शब्दादयः पाशारज्जुबंधनानि तैर्बद्धः परवशीकृतः स्नेहपाशानपत्रोटयितुमसमर्थः सन्मोहं चित्तव्याकुलत्वमागछति किंकर्तव्यमूढोनवति पौनःपुन्येन मंदोऽज्ञोजडइति। इति परिसमाप्तौ। ब्रवीमीति पूर्ववत्॥ ३१॥ इतिस्त्रीपरिज्ञायां प्रथमोद्देशकः समाप्तः॥

हवे चोथा अध्ययननो बीजो उद्देशो प्रारंनिये वैयें पहेला उद्देशामां स्त्रीना परिचय थकी चारित्रनो विनाश थायडे एम कह्युं. हवे बीजा उद्देशामां जे साधु शील थकी पडे तेने जे विटंबना थाय ते कहेडे.

उंएसया णरङोङा, नोगकामी पुणोविरङोङा॥ नोगे समणाण सुणेह, जह नुंजंति निरकुणो एगे॥१॥ अह तं तु नेदमावन्न, मुछितं निरकूका ममतिवहं॥ पलिनिंदियाणं तो पछा, पाङद्द्धुमुद्धि पहाणंति॥ २॥

अर्थ-(उंएसयाके०)चारित्रिउं एकाकी राग द्वेषरहित होय ते साधु स्त्रीने विषे सदाकाल(णरङोङाके०)नराचे, (नोगकामीपुणोके०) कदापि कर्मोदय थकी नोगानिलाषी थाय; तो वली विरङोङाके० विरचे केमके गृहस्थने पण जे नोगडे,ते विटंबनाप्रायडे, तेथी ते पण विरचेले तो, साधुने नोगनी विटंबनानुं केवुंजकुं तेकारण माटे (नोगेसमणाणसुणेहके०)साधुना नोग केवा विटंबना प्रायडे ते सांनलो(जहके०)जेम (नुंजंति निरकुणो एगेके०)धर्मना जाण एवा कोइक साधु नोगवे ते आगल कहेडे. ॥१॥(अहके०)हवे(तंके०)ते साधु(तुके०)विशेषेकरी स्त्रीना परिचय थकी(नेदंके०)शीलनां विनाशने(आवन्नंके०)

रा आदेशो प्रवर्त्तिश इत्यादिक वचने करी विश्वास उपजावीने ते स्त्री जे करे ते कहेछे ॥ ३ ॥ ( अह के० ) अथ एटले हवे णं वाक्यालंकारे एवा वचने करी ( साके० ) ते साधु ( होईउवलद्धो के० ) स्त्रीने वश थाय एम ते स्त्री पोताने वश थयो जाणीने ( तो के० ) तेवारपछी तेने ( पेसंतितहाभूएहिं के० ) तथा नूत एटले तेवाज अनेक कर्मकरना कार्य करवा मोकले एटले दासनी पेरे कार्य करवानी आज्ञा आपे ते कार्य कया ते देखाडेछे ( अलाउछेदं के० ) तुंबडुं छेदवाने अर्थे शस्त्रो ( पेहाहि के० ) जोइए ते लावो के जे शस्त्रे करी तुंबिपात्रादिक समारियें तथा ( वग्गुफलाइंआहराहित्ति के० ) रुडा नालियरादिकना फल लइ आवो ॥ ४ ॥

---

॥ दीपिका–केशाविद्यंते यस्याः सा केशिका । णंवाक्यालंकारे। हेनिक्षो यदि मया स्त्रिया केशिकया सह त्वं नोविहरेः । यदि मया सह नोगान् भुंजानोव्रीडां वहसि तदा केशानप्यहंलुंचिष्याम्यपनेष्यामि । आस्तांतावद्भूषणादिकमित्यपेरर्थः । अस्योपलक्षणादन्यदपि डुष्करं विदेशगमनादि सर्वमहं करिष्यामि त्वं पुनर्मया रहितोनान्यत्र चरेः ॥ ३ ॥ णं वाक्यालंकारे । अथ ससाधुराकारेंगितैस्तया उपालब्धः स्ववशइति ज्ञातस्तदा तं तथा नूतैर्दासव्यापारैः प्रेषयति नियोजयति । तथाहि । अलाबु तुंबं छिद्यते येन तदलाबुछेदं पिप्पलकादिशस्त्रं प्रेक्षस्व निरूपय येन शस्त्रेण पात्रादेर्मुखं क्रियते । तथा वल्गूनि शोजनानि नालिकेरादीनि त्वं आहर आनय । अथवा देशनादिरूपया यानि लन्यंते तानि वाक्फलानि वस्त्राहारादीनि तान्यानय ॥ ४ ॥

---

॥ टीका–अन्यच्च ( जइइत्यादि ) केशाविद्यंतेयस्याः सा केशिका । णमितिवाक्यालंकारे। हेनिक्षो यदिमया स्त्रिया नार्यया केशवत्या सह नोविहरेस्त्वं सकेशया स्त्रिया नोगान् भुंजानोव्रीडां यदि वहसि ततः केशानप्यहंत्वत्संगमाकांक्षिणी लुंचिष्याम्यपनेष्यामि । आस्तां तावदलंकारादिकमित्यपिशब्दार्थः । अस्य चोपलक्षणार्थत्वादन्यदपि डुष्करं विदेशगमनादिकं तत्सर्वमहं करिष्ये त्वं पुनर्न मया रहितोनान्यत्र चरेः। इदमुक्तं नवति मया रहितेन नवता क्षणमपि नस्थातव्यमेतावदेवाहं नवंतं प्रार्थयामि अहमपियद्भवानादिशति तत्सर्वं विधास्यइति ॥ ३ ॥ इत्येवमतिपेशलैर्विश्रंनजननैरापातनद्रकैरालापैर्विश्रंनयित्वा यत्कुर्वंति तद्दर्शयितुमाह । ( अहणमित्यादि ) अथेत्यानंतर्यार्थः । णमिति वाक्यालंकारे । विश्रंनालापानंतरं यदासौ साधुर्मदनुरक्तइत्येवमुपलब्धोनवत्याकारैरिंगितैश्चेष्टया वा मद्वशगइत्येवं परिज्ञातोनवति तानिः कपटनाटकनायिकानिः स्त्रीनिस्ततस्तदनिप्रायपरिज्ञानाडुत्तरकालं तथानूतैः कर्मकरव्यापारैरपशब्दैः

प्रेपयंति नियोजयंति । यदिवा तथानूतैरिति लिंगस्थयोग्यैर्व्यापारैः प्रेपयंति तानेवदर्शयितुमाह् । (अलाउत्ति) अलाबु तुंबं छियते येन तदलाबुछेदं पिप्पलकादि शस्त्रं ( पेहाहित्ति ) प्रेक्षस्व निरूपय लनस्वेति येन पिप्पलकादिना लब्धेन पात्रादेर्मुखादि क्रियतइति । तथा वग्गूनि शोजनानि फलानि नारीकेरादीनि अलाबुकानिवा त्वमाह्रानयेति । यदिवा वाक्फलानिच धर्मकथारूपायाव्याकरणादिव्याख्यानरूपायावा वाचोयानि फलानि वस्त्रादिलानरूपाणि तान्याह्रेति ॥ ४ ॥

दारूणि साग पागाए, पज्जोउ वा नविस्सती राउ ॥ पाताणिय मे रयावेहि, एहि तामे पिछउं मद्दे ॥५॥ वत्थाणिय मे पडिलेहेहिं, अन्नं पाणंच आहराहित्ति ॥ गंधंच रउहरणं च कासवगं मे समणुजाणाहि ॥ ६ ॥

अर्थ-(दारूणिसाग पागाएके०) दारुण एटले काष्ठ शाकपत्र एटले वत्तुलादिक रांधवाने अर्थें लावो (वाके०) अथवा (पज्जोउके०) प्रद्योत एटले अजवालुं (राउके०) रात्रीनेविषे (नविस्सतीके०) थाय ते वास्ते तैलादिक लावो. तथा (पाताणिय मेरयाहिके०) माहारा पात्राने रंगी आपो के जेणे करी हुं सुखे निक्षा मांगी आहारादिक लावुं अथवा माहारा पग रंगवाने अर्थे रंग लइ आवो तथा (एहितामे पिछउमद्देके०) अहीं आवो माहारा अंगडुःखेछे माटे माहारी पीठे मर्दन करो एम कहे ॥ ५ ॥ (वत्थाणियमेपडिलेहेहिंके०) माहारा वस्त्र प्रतिलेखो एटले जूउं जुना थयाछे, माटे बीजा नवा आणीआपो, तथा मलीन थयाछे तेने धोवरावो तथा (अन्नंपाणंच आहराहित्तिके०) अन्न पाणी आणी आपो तथा (गंधंचके०) सुगंध कर्पूरादिक लइ आवो, अथवा ग्रंथ ते हिरण्यादिक लावो तथा (रउहरणंचके०) रजोहरण सारो आणी आपो तथा (कासवगंमेसमणुजाणाहिके०) हुंलोच करावी शकुं तेम नथी तेमाटे मस्तक नइ करावचा एटले हूहरकेश उताखाने अर्थे नावीने तडी लावो एटला उपकरण वेषधारीना कह्या ॥ ६ ॥

---

॥ दीपिका-दारूणि काष्ठानि शाकंच पाकायानय । रात्रौ रजन्यां प्रद्योतोनविष्यतीति रात्रावपि वनादौ गत्वाऽऽनय । तथा पात्राणि नाजनानि मे रंजय लेपय येनाहं सुखं निक्षां मार्गये । अथवा पादौ रंजय अलक्तकादिना । एहि आगछ साधो तावन्मेमम पृष्ठं मर्दय विश्रमणां कुरु बाधते ममांगमिति ॥ ५ ॥ वस्त्राणि मे जीर्णानि वर्ततेअतस्तानि प्रत्युपेक्षस्व अन्यानि निरूपय अन्नपानादिकं चाहारमानय गंधं वासादिकं ग्रंथंवा हिरण्यादिकं शोजनं रजोहरणंच । अहं लोचं कारयितुमसमर्थो ततः काश्यपं नापितं अनुजानीहि येनाहं शिरोमुंडयामि ॥ ६ ॥

॥ टीका–अपिच ( दारूणीत्यादि ) यथा दारूणि काष्ठानि शाकं पक्ववस्तुजादिकं त्रपं शाकं तत्पाकार्थं।क्वचिदन्नपाकायेति पाठस्तत्रान्नमोदकादिकमिति । रात्रौ रजन्यां प्रद्योतो वा नविष्यतीति कृत्वा अतोऽटवीतस्तमाहरेति । तथा पात्राणि पतगृहादीनि रंजय लेपय येन सुखेनैव निक्षाटनमहं करोमि । यदिवा पादावलक्तकादिना रंजयेति । तथा परित्यज्यापरं कर्म तावदेह्यागच्छ मे मम पृष्ठमुत्प्राबल्येन मर्दय बाधते ममांगमुपविष्टायाअतः संहारय पुनरपरं कार्यशेषं करिष्यसीति ॥ ५ ॥ किंच ( वत्थाणियमेइत्यादि ) वस्त्राणिच अंबराणि मे मम जीर्णानि वर्ततेऽतः प्रत्युपेक्षस्वान्यानि निरूपय । यदिवा मलिनानि रजकस्य समर्पय मडपधिंवा मूषिकादिनयात्प्रत्युपेक्षस्वेति । तथा अन्नपानादिकमाहरानयेति तथा गंधं कोष्ठपुटादिकग्रंथिं वा हिरण्यं तथा शोनन्नं रजोहरणं तथा लोचं कारयितुमहमशक्तेत्यतः काश्यपं नापितं मच्छिरोमुंमनाय श्रमणानुजानीहि येनाहं वृहत्केशानपनयामीति ॥ ६ ॥

अड अंजणिं अलंकारं,कुक्कययंमे पयच्छाहि ॥ लोद्धंच लोद्धकुसुमंच, वेणुपलासियंच गुलियंच ॥ ७ ॥ कुट्ठं तगरंच अगरुं, संपिट्ठं सम्मं उसिरेणं॥ तेल्लं मुहभिंजाए, वेणुफलाइं सन्निधानाए ॥८॥

अर्थ–(अडके०)अथवा हवे प्रकारांतरे गृहस्थना उपकरण कहीदेखाडेछे (अंजणिंके०) काजलनुं नाजन लावो तथा (अलंकारंके०) घरेणानुं नाजन लावो तथा (कुक्कयंके०) खुंखणो आणी आपो तथा(पयच्छाहिके०)घुघुरा विणा (मेके०) मुजने लावी आपो जेम हुं सर्व आनरण पेहेरीने तमने विनोद उपजावुं तथा (लोद्धंचलोद्धकुसुमंचके०) लोद्र अने लोद्रना फल तथा (वेणुपलासियंचके०) वंशनी लाकडी आणी आपो जेने वाम हाथे ग्रहणकरी मावाहाथे वीणा वजाडिये तथा (गुलियंचके०) औषधगुटिका एटले औषधनी गोली लावी आपो जेणेकरी हुं सदा यौवनानिराम थकी रहुं ॥७॥ (कुट्ठंअगरं तगरंचके०) कुष्ट ते पुटादिक तथा अगर अने तगर रूडावास सुगंध द्रव्य (संपिट्ठं सम्मउसिरेणंके०) एसर्ववस्तु उसिरजे वालो ते सहित पीसेली एवी सुगंध लइ आवो(तेल्लं मुहभिंजाएके०) तथा औषधादिके संस्कार्युं एवुं तैल मुखना अन्यंगने अर्थे लइ आवो जे थकी माहारो मुख सतेज देखाय तथा (वेणुफलाइं सन्निधानाएके०) वांसना कंमीआ पेटी प्रमुख वस्त्रालंकारादिक राखवाने अर्थे लइ आवो. ॥ ८ ॥

॥दीपिका–अथ अंजनिकां कज्जलाधारन्नूतां नलिकां अलंकारं केयूरादिकं च मे प्रयच्छ देहि (कुक्कययं) खुखंणकं प्रयच्छयेनाहं वीणाविनोदेन त्वां रंजयामि लोध्रं लोध्रकुसुमं सुगंधं तथा ( वेणुपलासिअत्ति ) वंशात्मिका लक्काष्टिका सा दंतैर्वीणाव द्वाद्यते तथौषधगुटिकां

तादृशीं देहि येनाहमविनष्टयौवना नवामीति ॥ ७ ॥ कुष्ठमुत्पलं तगरमगरंच सुगंधिद्
व्यमुशीरेण वीरणमूलेन संपिष्टं सुगंधि स्याद्यतस्तत्तथा कुरु । तैलं मुखमाश्रित्य (नि
लिंजएत्ति) अन्यंगाय ढौकय मुखान्यंगार्थं तैलं तथाविधमानयेत्यर्थः । वेणुफलानि वंश
कार्याणि करंमकादीनि सन्निधानं वस्त्रादेर्व्यवस्थापनं तदर्थमानय ॥ ८ ॥

---

॥ टीका–किंचान्यत् । (अडुअंजणीमित्यादि) अथशब्दो ऽधिकारांतरप्रदर्शनार्थः । पूर्वं लिंगस्थोपकरणान्यधिकृत्यानिहितमधुना गृहस्थोपकरणान्यधिकृत्यानिधीयते । तद्यथा (अंजणीमिति) अंजणिकां कज्जलाधारनूतां नलिकां मम प्रयच्छस्वेदुत्तरत्र क्रिया । तथा कटककेयूरादिकमलंकारं वा तथा (कुक्कुटयंति) खुंखुणकं मे मम प्रयच्छ येनाहं सर्वालं कारविनूषिता वीणाविनोदेन नवंतं विनोदयामि । तथा लोध्रं च लोध्रकुसुमं च । तथा (वेणुफलासियंति) वंशात्मिका श्लक्ष्णत्वक् काष्ठिका सा दंतैर्वामहस्तेन प्रगृह्य दक्षिणहस्ते नवीणाव द्वाद्यते । तथौषधगुटिकां तथानूतामानय येनाहमविनष्टयौवना नवामीति ॥ ७ ॥ तथा (कुठमित्यादि) कुष्ठमुत्पलकुष्टं तथाऽगरुं तगरंच एते द्वेअपि गंधिकद्रव्ये । एतत्कुष्ठा दिकमुशीरेण वीरणीमूलेन संपिष्टं सुगंधि नवति यतस्तत्तथा कुरु, तथा तैलं लोध्रकुंकुमा दिना संस्कृतं मुखमाश्रित्य (निलिजएत्ति) अन्यंगाय ढौकयस्व । एतडुक्तं नवति । मुखान्यं गार्थं तथाविधं संस्कृतं तैलमुपाहरेति येन कांत्युपेतं मे मुखं जायते (वेणुफलाइंति) वेणु कार्याणि करंडकपेटिकादीनि सन्निधिः सन्निधानं वस्त्रादेर्व्यवस्थानं तदर्थमानयेति ॥ ८ ॥

नंदीचुस्रगाइं पाहराहिं, बत्तोवाणहंच जाणाहिं ॥ सत्थंच सूवछेज्जाए आणीलंच वत्थं रयावेहि ॥ ए ॥ सुफणिंच साग पागाए, आ मलगाइंदगाहरणंच ॥ तिलगकरणिमंजणसलागं, घिंसु मेवि हूणयं विजाणेहि ॥ १० ॥

अर्थ–(नंदीचुस्रगाहिं पाहराहिंके०)द्रव्यसंयोगे नीपजाव्युं एवुं नंदीचूर्ण ते उष्ठ रंगवा ने अर्थे कोइक प्रकारे लावो (छत्त के०) आताप तथा वृष्टी राखवा नणी छत्र लावो तथा (उवाणहंचजाणाहिंके०) उपानह् जे मोजडी प्रमुख ते पग राखवाने अर्थे सम्यक् प्रकारे लावो (सत्थंचसुवछेज्जाएके०) दात्रादिक शस्त्र नीलाशाक पत्रादिक छेदवाने अर्थे लावो (आणीलंचवत्थंरयावेहिके०) नीला वस्त्र रंगावी आपो लालवस्त्र रंगावी आपो एरीते वचन कहे ॥ ए ॥ (सुफणिंचसागपागाए के०)रुडी हांमली पत्रशाक अन्नादिक पकाववाने अर्थे लावो तथा (आमलगाइंके०) पित्तोपशमाववाने अर्थे अथवा स्नान करवाने अर्थे आमला लावो (दगाहरणंच के०) पाणी राखवाने अर्थे घडो घडूलो

इत्यादिक लावो ( तिलगकरणं के० ) जेणेकरी गोरोचननुं तिलक करियें तेवी शलि लावो तथा (अंजण के० ) जेणेकरी आंख आंजीयें एवी ( सलागं के० ) शिलाका लावो ( घिंसुमेविहूयणंविजाणेहिं के० ) उन्हालो जे ग्रीष्मकाल विशेष ते दिवशे वायु ढोलवाने अर्थे वींजणो लावो ॥ १० ॥

---

॥दीपिका—नंदीचूर्णं उष्ठम्रक्षणचूर्णं आहार प्रकर्षेणानय आतपस्य वृष्टेर्वारणाय छत्रमुपानहौ च ममानुजानीहि। तथा शस्त्रं दात्रादिकं सूपछेदाय पत्रशाकछेदनार्थं देहि तथा नीलं वस्त्रं रंजय। उपलक्षणाद्रक्तादिकं च कारय॥९॥सुष्ठु फण्यते क्वाथ्यते तक्रादिकं यत्र सा सुफणि स्थाल्यादिभाजनं तत् शाकपाकार्थमानय। आमलकानि पित्तोपशमाय भक्षणार्थं स्नानार्थंवा उदकाहरणं च जलाहरणपात्रं । उपलक्षणाद्घृतादिपात्रमानय । सर्वं गृहोपस्करमानय । तथाहि । तिलकं क्रियते यया सा तिलककरणी अंजनशलाका यया तिलकः क्रियते तामानय तथा ग्रीष्मे उष्णतापे मम विधूनकं व्यजनकं विजानीहि ॥ १० ॥

---

॥टीका—किंच। ( नंदीचुराणगाईइत्यादि) नंदीचुराणगाइंति द्रव्यसंयोगनिष्पादितोष्ठम्रक्षणचूर्णोऽभिधीयते। तमेवंभूतं चूर्णं प्रकर्षेण येन केनचित्प्रकारेणाहरानयेति तथाऽऽतपस्य वृष्टेर्वा संरक्षणाय छत्रं तथोपानहौ च ममानुजानीहि। नमे शरीरमेभिर्विनावर्तते ततोददस्वेति। तथा शस्त्रं दात्रादिकं सूपछेदनाय पत्रशाकछेदनार्थं ढौकयस्व । तथा वस्त्रमंबरं परिधानार्थं गुलिकादिना रंजय यथा नीलमीषन्नीलं सामस्त्येन वा नीलं भवत्युपलक्षणार्थत्वाद्रक्तं यथा भवतीति ॥ ९ ॥ तथा । ( सुफणिंचेत्यादि ) सुष्ठु सुखेन वा फण्यते क्वाथ्यते तक्रादिकं यत्र तत्सुफणि स्थालीपिठरादिकं भाजनमभिधीयते तच्छाकपाकार्थमानय । तथा आमलकानि धात्रीफलानि स्नानार्थं पित्तोपशमनायाभ्यवहारार्थं वा तथोदकमाह्रियते येन तदुदकाहरणं कुटवर्धनिकादि । अस्य चोपलक्षणार्थत्वाद्घृततैलाद्याहरणं सर्वं वा गृहोपस्करं ढौकस्वेति । तिलकः क्रियते यया सा तिलककर्णी दंतमयी सुवर्णात्मिका वा शलाका यया गोरोचनादियुक्तया तिलकः क्रियतइति । यदिवा गोरोचनया तिलकः क्रियते साच तिलककर्णीत्युच्यते । तिलकाः क्रियंते पिष्यंते वा यत्र सा तिलककर्णीत्युच्यते । तथांजनं सौवीरकादि । शलाका अक्ष्णोरंजनार्थं शलाका अंजनशलाका तामाहरेति। तथा ग्रीष्मे उष्णाभितापे सति मे मम विधूनकं व्यजनकं विजानीहि ॥ १० ॥

---

संफासगंच फणिहंच, सीहलि पासगंच आणाहि ॥आदसगंच पयच्छाहि, दंतपक्खालणं पवेसाहि ॥ ११ ॥ पूयफलं तंबोलयं, सूई सुत्तगंच जाणाहि ॥ कोसंयमोचमेहाए, सुप्पुक्खलगंच खारगालणंच ॥ १२ ॥

अर्थ– (संमासकं के० ) चीपीउं जेणेकरी नाशिकाना नीमाला ऊचीए काढीए तेने संमासक कहिए वली (फणिहंचके०) कांसकी जेणेकरी माथाना वाल समारिए ते तथा (सीहलिपासगंचआणाहि के०) वेणी बांधवाने अर्थे ऊननी कांकशी ए वस्तुउं आणी आपो (आदसगंचके०) आदर्शकं आसमंतात् दृश्यते आत्मा यस्मिन स आदर्शः जेणे करी मुख वर्णादिक रूप शरीर देखाय तेने आरीशो कहिए ते (पयछाहिके०) आणी आपो (दंतपरकालणंपवेसाहिके०) दंतप्रक्षालन करवाने अर्थे दांतण माहारा समीपे ला वो ॥११॥ (पूयफलंके०) पुंगफलते सोपारी (तंबोलयंके०) नागरवेलीना पानना बीडा प्रमुख तथा (सूईसुत्तगंचजाणाहिके०) सूत्र शीववाने अर्थे सूई ए वस्तुउं लइ आवो (कोसंयके०) घटादिक नाजन (मोचमेहाएके०)मोचप्रस्रवणंतेनमेहसेचन एटले लघुनीति करवा निमित्त रात्रीने समये मने बाहेर निकलता बीक लागेछे तेमाटे ते नाजन आणी आपो (सुप्पुके०) तंडुलादिक धान सोधवाने अर्थे सुपडुं लावो (खलगंचके०) धान खांड वाने अर्थे ऊखलो लइ आवो वली (खारगालणंचके०) जेमां नाखीने साजी प्रमुख खार गालीयें ते पात्र लावो अथवा लवणादिक खार लावो ॥ १२ ॥

---

॥ दीपिका–संडासिकं नासिकाकेशोत्पाटनं फणिहं केशसमारचनाय कंकतकं सीहलिपासकं वीणासंयमनार्थमूर्णामयं कंकणं चानय आदर्शकं दर्पणं प्रयछ दंतप्रक्षालनं दंतकाष्ठं मदंतिके प्रवेशय ॥११॥ पूगफलं तांबूलं सूचीसूत्रं च जानीहि देहि। कोशं घटादिनाजनं मोचमेहायानय । मोचः प्रस्रवणं तेनमेहः सेचनं तदर्थं नाजनमानय । तथा शूर्पं तंडुलादिशोधनं उदूखलं क्षारस्य सर्जिकादेर्गलनकं चानयेति ॥ १२ ॥

---

॥ टीका–एवं ( संमासगंचेत्यादि ) संडासिकं नासिकाकेशोत्पाटनं फणिहं केशसंयमनार्थं कंकतकं तथा ( सीहलिपासगंति ) वीणासंयमनार्थमूर्णामयं कंकणं चानय ढौकयेति । एवमासमंताद्दृश्यते आत्मा यस्मिन् सआदर्शः सएवआदर्शकस्तं प्रयछ ददस्वेति। तथा दंताः प्रक्षाल्यंते अपगतमलाः क्रियंते येन तद्दंतप्रक्षालनं दंतकाष्ठं तन्मदंतिके प्रवेशयेति ॥ ११ ॥ ( पूयफलंचेत्यादि ) पूगफलं प्रतीतं तांबूलं नागवल्लीदलं तथा सूचीं च सूत्रं च सूच्यर्थं वा सूत्रं जानीहि ददस्वेति तथा कोशमिति वारकादिनाजनं तन्मोचमेहाय समाहर । तत्र मोचः प्रस्रवणं कायिकेत्यर्थः । तेन मेहः सेचनं तदर्थं नाजनं ढौकय। एतडुक्तं नवति । बहिर्गमनं कर्तुमहमसमर्था रात्रौनयादतो मम यथारात्रौ बहिर्गमनं न नवति तथा कुरु । एतच्चान्यस्याप्यधमतमकर्तव्यस्योपलक्षणं द्रष्टव्यं । तथा शूर्पं तंडुलादिशोधनं तथोदूखलं तथा किंचन क्षारस्य सर्जिकादेर्गालनकमित्येवमादिकमुपकरणं सर्वमप्यानयेति ॥ १२ ॥

चंदालगंच करगंच, वच्चघरंच आउसो खणाइ ॥ सरपायं च जायाए, गोरहगंच सामणे राए ॥ १३ ॥ घडिगंच सडिंडिमयंच, चेलगोलं कुमारभूयाए ॥ वासं समभिआवणं, आवसहंच जाण भत्तंच ॥ १४ ॥

अर्थ-(चंदालगंच के०) देवपूजाने अर्थे चंगेरी प्रमुख भाजन तथा (करगंचके०) करुउ मदिरानुं भाजन ते आणी आपो तथा (वच्चघरंचआउसोखणाहिके०) अहो आयुष्मन् संचारुखण एटले पुरिष विष्टा घरमां नपडे माटे घरने भलीया संचारो तथा कूइ खणावो वली (सरपायंचजायाएके०) शरपात एटले धनुष्य बाण पुत्र रमाडवाने अर्थे लइ आवो ( गोरहगंचसामणेराए के०) गोरहगं एटले त्रण वर्षनो बलदीउ श्रमणना पुत्रने अर्थे रमत करवासारुं लइ आवो ॥१३॥(घडिगंचसडिंडिमयंचके०) घडिगं एटले कूल्हाडी सडिंडिम एटले वाजिंत्रविशेष तेसहित तथा (चेलगोलंके०)गोलदडी(कुमारभूयाएके०)कुमरक्रीडाने अर्थे लइ आवो जे दडीयें करी माहारा बालक रमत करे ( वासंसमभिआवन्नंके०) तथा हेश्रमण वर्षाकाल आव्यो ते कारणे (आवसहंचके०) वर्षाकालमां निवास करवा योग्य घर करावी आपो के जे थकी भिजीयें नही तथा (जाणभत्तंचके०) तेवर्षाकाल योग्य एटले वर्षाकालमां वेग खाइये माटे तांडुलादिक लइ आवोः ॥१४॥

॥ दीपिका-चंदालकं देवतार्चनाद्यर्थं ताम्रमयं भाजनं एतच्च मथुरायां चंदालगमित्युच्यते। करकोजलाधारोमद्यभाजनं वा आनय । तथा वर्चोगृहं पुरीषोत्सर्गस्थानं आयुष्मन् खन संस्कुरु ।शरपातं बाणक्षेपस्थानं धनुस्तज्जाताय मत्पुत्राय राय ढौकय । गोरहगं त्रिवर्षं बलीवर्दं वाऽनय श्रमणस्यापत्यं श्रामणिस्तस्मै श्रामणये गव्यादिकृते भविष्यतीति ॥ १३ ॥ घटिकां मृन्मयकुल्लडिकां सडिंडिकां पटहादिवादित्रेण सह गोलं कंडुकं कुमारभूताय क्षुल्लकरूपाय मत्पुत्राय क्रीडार्थं देहि। हे श्रमण वर्षं प्रावृट्कालोयमभ्यापन्नः समापन्नः। प्रासस्ततश्चावसथं गृहं वर्षाकालयोग्यं भक्तं च तंडुलादिकं च जानीहि निष्पादय। येन सुखेन वर्षाकालोतिवाह्यते । यडुक्तं । मासैरष्टभिरह्ना च पूर्वेण वयसाऽयुषा ॥ तत्कर्तव्यं मनुष्येण यस्यांते सुखमेधते ॥ १४ ॥

॥टीका-किंचान्यत्। (चंदालगंचेत्यादि)चंदालकमिति देवतार्चनिकाद्यर्थं ताम्रमयं भाजनं। एतच्च मथुरायां चंदालकत्वेन प्रतीतमिति । तथा करकोजलाधारोमदिराभाजनं वा तदानयेति क्रिया। तथा वर्चोगृहं पुरीषोत्सर्गस्थानं तदा ऽयुष्मन् मदर्थं खन संस्कुरु। तथा शराइषवः पात्यंते क्षिप्यंते येन तच्छरपातं धनुस्तज्जाताय मत्पुत्राय कृते ढौकय । तथा ( गोर

हगंति ) श्यहायणं बलीवर्दं च ढौकयेति (सामणेराएत्ति) श्रमणस्यापत्यं श्रामणिस्तस्मै श्रामणिपुत्राय त्वत्पुत्राय गंत्र्यादिकृते नविष्यतीति॥१३॥तथा (घटिगंचेत्यादि) घटिकां मृन्मयकुल्लुडिकां डिंडिमेन पटहकादिवादित्रविशेषेण सह तथा ( चेलगोलंति ) वस्त्रात्मकं कंडुकं कुमारनूताय कुल्लकनूताय राजकुमाररूपाय वा मत्पुत्राय क्रीडनार्थमुपानयेति। तथा वर्षमिति प्रावृट्कालोयमन्यापन्नोनिमुखं समापन्नोऽतश्चावसथं गृहं प्रावृट्काल निवासयोग्यं तथा नक्तंच तंडुलादिकं तत्कालयोग्यं जानीहि निरूपय निष्पादय।येन सुखेनैवाऽनागतपरिकल्पितावसथादिना प्रावृट्कालोतिवाह्यतेइति । तडुक्तं । मासैरष्टनि रह्ना च, पूर्वेण वयसाऽऽयुषा ॥ तत्कर्तव्यं मनुष्येण, यस्यांते सुखमेधते ॥ १४ ॥

आसंदियंच नवसुत्तं, पाउल्लाइं संकमघाए ॥ अडु पुत्तदोहलघाए, आणप्पा हवंति दासावा ॥ १५ ॥ जाए फले समुप्पन्ने, गेएहसुवाणं अहवा जहाहि ॥ अहं पुत्तपोसिणो एगे, नारवहा हवंति उद्दावा॥१६

॥ अर्थ-(आसंदियंचके०) बेशवानिमित्ते मांची आणी आपो पणते केवी लावो के जे (नवसुत्तंके०) नवासूत्रे वणी होय अथवा चर्म थकी वणी होय तेवी लइ आवो (पाउल्लाइं संकमघाए के०) वरसादमां चालतां पगे कादव नलागे तेना अर्थे काष्ठनी पावडी माहारा सारुं आणी आपो (अडुके०) अथवा (पुत्तदोहलघाएके०) गर्नस्थें पुत्रना मोहोला संपादवाने अर्थे वस्तुउलावो एम(आणप्पाहवंतिदासावाके०)आज्ञापेनवंतिदासाइव एटले स्त्री जेह्ने ते पुरुषने पोतानी आज्ञामां प्रवर्त्तावे स्नेह पाशे बंधाणा एवा विषयार्थी पुरुष स्त्रीना दास थाय ॥१५॥ (जाएफलेसमुप्पन्नेके०) हवे जात एटले गृहवासनेविषे पुत्ररूप फल उत्पन्न थया हता जे विटंबनाउ थाय ते कहेने, ( गेएहसुवाणं अहवाजहाहिके०) कोइक स्त्री गृहना कार्ये व्याकुल थई थकी पुरुष प्रत्ये कहे के ए बालक तमे संनालो अथवा एनो त्याग करो (अहंके०)हुं एनी वेठ करी शकती नथी में नवमाश शुधी उदरे धस्यो अने तमे क्षणमात्र पण पुत्रने खोलामां लेता नथी; एम क्रोधना वचन बोले तेवारे (एगेके०) कोइएक पुरुष आक्रोशतांये (पुत्तपोसिणोके०) स्त्रीनो वशवर्त्ती थको पुत्रनो पोषक थाय ( नारवहा हवंति उद्दावाके०) जेम उंटनो नारवाहक जेटलो नार उंट उपर नाखे तेटलो नार आरडतो थकोउपाडे तेम ते पुरुष पण स्त्रीनीपाशेउंटतुल्य जाणवा॥१६

---

॥दीपिका—आसंदिकां मंचिकां ।किंनूतां। नवं सूत्रं वल्कलादि यस्यां सा नवसूत्रा तां (पाउलाइं) मौंजकानि काष्ठपाडुकावा संक्रमणार्थं पर्यटनार्थं अथवा पुत्रे गर्नस्थिते दोहदोनेदस्तदर्थं स्त्रीणां पुरुषाआज्ञापनीयाः स्युः । यथा दासाआज्ञाप्यंते जनैस्तथा स्त्री

निः पुरुषाः कर्मकराइवादिश्यंते ॥१५॥ जातः पुत्रः सएव फलं गृहस्थानां तस्मिन् पुत्रे समुत्पन्ने तडद्देशेन याविर्मबनास्ताआह । अमुं दारकं गृहाण त्वं रमे अहंतु व्यापारवती अथवा एनं जहाहि परित्यज नाहमस्य वार्तामपि पृछामि । कुपिता पुनः साब्रूते मयायं नवमासानुदरेणोढस्त्वंतु उत्संगेपि नधत्से एवमुक्तोनरस्तडक्तं सर्वं कुरुते। यतः । ददाति प्रार्थितः प्राणान्, मातरं हंति तत्कृते ॥ किं न दद्यात्किं न कुर्यात्स्त्रीनिरभ्यर्थितोनरः ॥१॥ ददाति शौचपानीयं पादौ प्रक्षालयत्यपि ॥ श्लेष्माणमपि गृण्हाति स्त्रीणां वशगतोनरः ॥ २ ॥ अथ पुत्रपोषिणस्ते नराएके नारवहाः स्युः । यथातु उष्ट्रानारं वहंति तत्तुल्याः ॥ १६ ॥

---

॥ टीका—एवंच ( पाउल्लाइति ) मौंजे काष्ठपादुके वा संक्रमणार्थं पर्यटनार्थं निरूपय यतोनाहं निरावरणपादा नूमौपदमपि दातुं समर्थेति । अथवा पुत्रे गर्नस्थे दौहृदः पुत्रदौहृदः अंतर्वत्नीफलादावनिलाषविशेषस्तस्मै तत्संपादनार्थं स्त्रीणां पुरुषाः स्ववशीकृता दासाइव क्रयक्रीताइवाज्ञाप्याआज्ञापनीयानवंति । यथा दासाअलज्जितैर्योग्यत्वादाज्ञाप्यंते एवं तेपि वराकाः स्नेहपाशावपाशिताविषयार्थिनः स्त्रीनिः संसारावतरणवीर्यानिरादिश्यंतइति ॥ १५ ॥ अन्यच्च । ( जाएफलेइत्यादि ) जातः पुत्रः सएव फलं गृहस्थानां। तथाहि । पुरुषाणां कामनोगः फलं । तेषामपि फलं प्रधानकार्यं पुत्रजन्मेति । तडक्तं । इदं तत्स्नेहसर्वस्वं, सममाढ्यदरिद्रयोः ॥ अचंदनमनौशीरं, हृदयस्यानुलेपनं ॥१॥ यत्तडपनिकेत्युक्तं, बालेनाव्यक्तनाषिणा ॥ हित्वा सौख्यं च योगं च तन्मे मनसि वर्तते ॥ २ ॥ यथा लोके पुत्रसुखं नाम द्वितीयं सुखमात्मनइत्यादि । तदेवं पुत्रः पुरुषाणां परमाभ्युदयकारणं तस्मिन् समुत्पन्ने जाते तडद्देशेन या विडंबनाः पुरुषाणां नवंति । अमुं दारकं गृहाण त्वमहंतु कर्मासक्ता न मे ग्रहणावसरोस्ति । अथचैनं जहाहि परित्यज नाहमस्य वार्तामपि पृछाम्येवं कुपितासती ब्रूते मयायं नवमासानुदरेणोढस्त्वं पुनरुत्संगेनाप्युद्वहन् स्तोकमपिकालमुद्विजसइति । दासदृष्टांतस्त्वादेशदानेनैव साम्यं नजते नादेशनिष्पादनेनैव । तथाहि । दासोनयाडुदन्नादेशं विधत्ते सतु स्त्रीवशगोऽनुग्रहं मन्यमानोमुदितश्च तदादेशं विधत्ते। यदेव रोचते मह्यं, तदेव कुरुते प्रिया । इतिवेत्ति न जानाति तत्प्रियं यत्करोत्यसौ ॥ १ ॥ ददाति प्रार्थितः प्राणान् मातरं हंति तत्कृते ॥ किं नदद्यात्किं न कुर्यात्स्त्रीनिरभ्यर्थितो नरः ॥ २ ॥ ददाति शौचपानीयं, पादौ प्रक्षालयत्यपि ॥ श्लेष्माणमपि गृण्हाति स्त्रीणां वशगतो नरः ॥३॥ तदेवं पुत्रनिमित्तमन्यद्वा यत्किंचिन्निमित्तमुद्दिश्य दासमिवादिशंति। अथ तेपि पुत्रान् पोषितुं शीलं येषांते पुत्रपोषिणउपलक्ष

णार्थत्वाद्यस्य सर्वादेशकारिणएके केचन मोहोदये वर्तमानाः स्त्रीणां निदेशवर्तिनोऽपद्स्तितहाकामुष्मिकापायाउष्ट्राइव परवशान्नारवाहानवंतीति ॥ १६ ॥

राउवि उठिया संता, दारगंच संठवंतिधाईवा ॥ सुहिरामणा विते संता वत्थधोवा हवंति हंसावा ॥ १७ ॥ एवं बहुहिं कए पुव्वं, नोगत्थाए जेन्नियावन्ना ॥ दासे मिइव पेसेवा ॥ पसुनूतेव से ण वा केइ ॥ १८ ॥

अर्थ–(राउवि उठियासंता के०) रात्रने विषे पण निद्रामांथी उठीने बालक रडतो होय तेने राखे बालकने रमाडे कोनीपेरे तो के ( दारगंचसंठवंतिधाईवाके० ) रुदंतं दारकं धात्रीवत् संस्थापयंति एटले धात्रीनी पेरे राखे जेम धात्री बालकने रुडीरीते पाले तेम ते पुरुष पण बालकने पाले (सुहिरामणावितेसंताके०) कदापि ते पुरुष सुहिराम एटले घणो लज्जावंत होय तोपण स्त्रीने वचने निर्लज्ज थाय (वत्थधोवा हवंति हंसावा के०) हंस एटले धोबीनी पेरे स्त्रीना तथा बालकना वस्त्र धोवे तथा बीजापण जेकांइ कार्य कहे ते सर्व दासनी पेरे करे ॥१७॥ (एवंके०) ए पूर्वोक्त प्रकारे स्त्रीनुं किंकरपणुं (पुव्वंके०) पूर्वे अतीत कालने विषे (बहुहिंके०) घणा पुरुषोए (कएके०) कर्युं अने वर्तमान काले पण स्त्रीनुं दासत्वपणुं घणा पुरुषो करेले तथा आगमिक काले पण करशे (नोगत्थाएजेनियावन्ना के० ) नोगने अर्थे जे अनिमुख एटले संमुख थया तेना ए हवाल थाय एवा रागांध पुरुषजे स्त्रीने वश वर्त्ते थयाते (दासेके०)दास समान तथा (मिइव के०) पाशमां पडेला मृग समान तथा (पेसेवाके०)वेचातो लीधेलो चाकर ते समान तथा ( पसुनूतेवसेणवाकेइ के०) तिर्यंच समान पण न कहेवाय किंबहुना ते कोइ सरीखान कहेवाय एवो कोइ पदार्थ नथी के जेनी उपमा एवा अधमने आपीने तेनी तुल्यना करी बतावीए. ते पुरुष सत्क्रिया थकीरहित माटे साधुपण नही अने तांबुलादिक परिनोग थकी रहित माटे गृहस्थ पण न कहेवाय माटे उनय न्रष्ट जाणवा. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–रात्रावप्येके नराउत्थाय धात्रीवत्त रुदंतं दारकं बालं संस्थापयंति । सुष्ठुन्ह्री लेज्जा तस्यां मनो येषांते सुन्हीमनसोलज्जावंतोपि संतोलज्जां त्यक्त्वा स्त्रीवशगाहीनकर्माण्यपि कुर्वंति । तान्येवाह् । वस्त्रधावकावस्त्रप्रक्षालकाः स्युः । यथा हंसारजकाऽव । अस्योपलक्षणादन्यदपि जलवहनादि कुर्वंति ॥ १७ ॥ एवं पूर्वोक्तं बहुनिर्नरैः पूर्वकृतं कृतपूर्वं नोगकृतये नराअन्यापन्नाअवस्थिताः सावद्यकार्येषु सक्ताः । तथा योरागांधः सदासइव मृगश्व मूर्खोहीनकर्मण्यपि प्रेष्यते योज्यते पशुनूतः स न कश्चित् । न दीक्षितः सत्क्रिया रहितत्वात् । नापिगृहस्थः तांबूलादिनोगरहितत्वात् अतोऽसौ नकश्चित् ॥ १८॥

॥ टीका–किंचान्यत् ( राउविइत्यादि ) रात्रावप्युत्थिताः संतोरुदंतं दारकं धात्रीवत् सं स्थापयंत्यनेकप्रकारैरुल्लापैः । तद्यथा । सामिउसणीगरस्स यणक्कउरस्सय हृत्थकप्पगिरि पट्टणसीहपुरस्स चउणयस्स निन्नस्सय कुच्छिपुरस्सयकण्णकुज्जआयामुहसोरियपुरस्स य इत्येवमादिनिरसंबद्धैः क्रीडनकजापैः स्त्रीचित्तानुवर्तिनः पुरुषास्तत् कुर्वंति येनोपहा स्यतां सर्वस्य व्रजंति । सुष्ठु न्हीर्लज्जा तस्यां मनोंतः करणं येषांते सुन्हीमनसोलज्जालवो पि ते संतोविहाय लज्जां स्त्रीवचनात्सर्वजघन्यान्यपि कर्माणि कुर्वते । तान्येव सूत्रावयवेन दर्शयति । वस्त्रधावकावस्त्रप्रक्षालकाहंसाइव रजकाइव नवंति । अस्य चोपलक्षणार्थत्वाद न्यदप्युदकवहनादिकं कुर्वंति ॥ १७ ॥ किमेतत्केचन कुर्वंतीति येनैवमनिधीयते बाढं कु र्वंतीत्याह । (एवं बहुइत्यादि) एवमिति पूर्वोक्तं स्त्रीणामादेशकारणं पुत्रपोषणवस्त्रधा वनादिकं तद्बहुनिः संसारानिष्वंगिनिः पूर्वं कृतं कृतपूर्वं । तथापरे कुर्वंति करिष्यंति च ये नोगकृते कामनोगार्थमैहिकामुष्मिकापायमपर्यालोच्यानिमुख्येन नोगानुकूल्येनापन्नाव्य वस्थिताः सावद्यानुष्ठानेषु प्रतिपन्नाइति यावत् । तथा योरागांधः स्त्रीवशीकृतः सदासवदशं कितानिस्तानिः प्रत्ययपरेपि कर्मणिनियोज्यते । तथा वागुरापतितः परवशोमृगइव धार्यते ना त्मवशोनोजनादिक्रियापि कर्तुं लनते । तथा प्रेष्यइव कर्मकरइव क्रीतइव वर्चः शोधनादा वपि नियोज्यते। तथा कर्तव्याकर्तव्यविवेकरहिततया हिताहितप्राप्तिपरिहारशून्यत्वात् पशु नूतइव । यथाहि पशुराहारनयमैथुनपरिग्रहानिज्ञएवं केवलमसावपि सदनुष्ठानरहितत्वा त्पशुकल्पः।यदिवा स स्त्रीवशगोदासमृगप्रेष्यपशुन्योप्यधमत्वान्न कश्चित् । एतडुक्तं नवति सर्वाधमत्वात्तस्य तत्तुल्यं नास्त्येव येनासावुपमीयते । अथवा न सकश्चिदित्युनयभ्रष्टत्वा त् । तथाहि न तावत्प्रव्रजितोसौ सदनुष्ठानरहितत्वान्नापिगृहस्थस्तांबूलादिपरिनोगरहि तत्वाल्लोचिकामात्रधारित्वाच्च।यदिवा ऐहिकामुष्मिकानुष्ठायिनां मध्ये न कश्चिदिति ॥१८॥

एवं खु तासु विन्नप्पं, संथवं संवासंच वज्जेज्जा॥ तज्जातिआ इमे कामा वज्जकराय एवमस्काए॥१९॥ एवं नयं णसेयाय, इइ से अप्पगं निरुं नित्ता ॥ णोइत्थि णोपसू, निकुणो सयं पाणिणा णिलजेज्जा ॥२०॥

अर्थ–हवे उपदेश कहेछे (एवंखुत्तासुविन्नप्पंके०) एम जे पूर्वोक्त स्त्रीनो विनव्यो मायानुं कारण जाणीने (संथवंके०) तथा तेनुं संस्तव (संवासंचके०) तेनुं संवास एटले नेलुं व शवुं तेने उत्तमपुरुष ( वज्जेज्जाके० ) वर्जे त्याग करे ( तज्जातिआइमेकामा के० ) त ज्जाति एटले ते स्त्रीना संग थकी छे उत्पत्ति जेनी एवा ए प्रत्यक्ष कामनोग ते ( वज्ज करायएवमस्काए के० ) अवद्यकराएवमाख्यातं एटले पापकर्म कारी डुर्गतिना दातार

ते एम श्रीतीर्थंकर गणधरे कह्युं छे ॥ १९ ॥ ( एवंभयं के० ) एम स्त्रीना संवास थकी घणा भयना कारण उत्पन्न थायछे माटे (णसेयायसेके०) ते श्रेयकारी कल्याणकारी न थी ( इइ के० ) ए हेतु जाणीने ( अप्पगं के० ) पोताना आत्माने ( निरुंभित्ताके० ) स्त्रीना संग थकी निरुंधीने एटले निवारीने संमार्गने विषे स्थापन करीने ( निरकूके० ) चारित्रिउं जे होय ते ( णोइच्छिणोपसू के० ) स्त्रीअने पशु एटले तिर्यंचनो सहवास करे नही ( णोसयंपाणिणाणिलिजेज्जाके० ) तथा पोताना हाथथी स्पर्श मात्रपणनकरे॥२०॥

॥ दीपिका–खुवाक्यालंकारे । एतत्पूर्वोक्तं तासु स्त्रीषु विषये यद्विज्ञप्तमुक्तं तत्तथा स्त्री भिः सार्धं संस्तवं परिचयं वासंच एकत्र निवासंच त्यजेत् । यतः । ताभ्यः स्त्रीभ्योजातिरु त्पत्तिर्येषांते तज्जातिकाइमे कामाः। पुनः किंभूताः । अवद्यं पापं तस्य कारकास्तएवमाख्या तास्तीर्थकृद्भिः ॥ १९ ॥ एवं पूर्वोक्तप्रकारेण भयहेतुत्वाद्भयं स्त्रीसंबंधरूपं नश्रेयसे इति हे तोः सभिक्षुरात्मानं निरुध्य न स्त्रियं नापि पशुं लीयेत संश्रयेत स्त्रीपशुभ्यां संवासं त्यजे त् । तथा स्वहस्तेनवा अंगस्य (नणिलिज्जेज्जति) जातेन संबंधं न कुर्यात् ।यतो हस्तकर्म णापि चारित्रं शबलीभवति ॥ २० ॥

॥ टीका–सांप्रतमुपसंहारद्वारेण स्त्रीसंगपरिहारमाह । ( एवंखुइत्यादि ) एतत्पूर्वोक्तं । खुशब्दोवाक्यालंकारे । तासु यत् स्थितं तासां वा स्त्रीणां संबंधि यद्विज्ञप्तमुक्तं । तद्यथा । यदि सकेशया मया सह न रमसे ततोहं केशानप्यपनयामीत्येवमादिकं तथा स्त्रीभिः सार्धं सं स्तवं परिचयं तत्संवासं च स्त्रीभिः सहैकत्र निवासं चात्महितमनुवर्तमानः सर्वापायभीरु स्त्यजेज्जह्यात् । यतस्ताभ्योजातिरुत्पत्तिर्येषां ते कामास्तज्जातिकारमणीसंपर्कोत्थास्तथा ऽवद्यं पापं वज्रं वा गुरुत्वादधः पातकत्वेन पापमेव तत्करणशीलाऽवद्यकरावज्रकरावेत्येव माख्यातास्तीर्थंकरगणधरादिभिः प्रतिपादिताइति ॥ १९ ॥ सर्वोपसंहारार्थमाह । ( एवं भयमित्यादि ) एवमनंतरनीत्या भयहेतुत्वात् स्त्रीभिर्विज्ञप्तं तथा संस्तवस्तत्संवासश्च न यमित्यतः स्त्रीभिः सार्धं संपर्कोन श्रेयसे सदनुष्ठानहेतुत्वात्तस्येत्येवं परिज्ञाय सभिक्षुरव गतकामभोगविपाकश्चात्मानं स्त्रीसंपर्कान्निरुंध्य सन्मार्गेप्यवस्थाप्य यत्कुर्यात्तदर्शयति । नस्त्रियं नरकवीथीप्रायां नापि पशुं लीयेताश्रयेत स्त्रीपशुभ्यां सह संवासं परित्यजेत् स्त्रीप शुपंमकवर्जिताशय्येतिवचनात्तथास्वकीयेन पाणिना हस्तेनावाच्यस्य ( नणिलिज्जेज्जति ) नसंबाधनं कुर्यात् । यतस्तदपि हस्तसंबाधनं चारित्रं शबलीकरोति । यदिवा स्त्रीपश्वादिकं स्वेन पाणिना नस्पृशेदिति ॥ २० ॥

सुविसुद्धलेसे मेहावी, परकिरियंच वज्जए नाणी॥ मणसा वयसा काएण सव्वफाससहे अणगारे ॥२१॥ इच्चेव माहु से वीरे, धुअरए धुअमोहे से

॥ टीका–किंचान्यत् ( राउविइत्यादि ) रात्रावप्युत्थिताः संतोरुदंतं दारकं धात्रीवत् सं स्थापयंत्यनेकप्रकारैरुल्लापैः । तद्यथा । सामिउसणीगरस्स यणक्कउरस्सय हबकप्पगिरि पट्टणसीहपुरस्स चउणयस्स निन्नस्सय कुञ्जिपुरस्सयकएकुज्जाआयामुहसोरियपुरस्स य इत्येवमादिनिरसंबद्धैः क्रीडनकलापैः स्त्रीचित्तानुवर्तिनः पुरुषास्तत् कुर्वंति येनोपहा स्यतां सर्वस्य व्रजंति । सुष्ठु न्हीर्लज्जा तस्यां मनोंतः करणं येषांते सुन्हीमनसोलज्जालवो पि ते संतोविहाय लज्जां स्त्रीवचनात्सर्वजघन्यान्यपि कर्माणि कुर्वते । तान्येव सूत्रावयवेन दर्शयति । वस्त्रधावकावस्त्रप्रक्षालकाहंसाइव रजकाइव नवंति । अस्य चोपलक्षणार्थत्वाद न्यदप्युदकवहनादिकं कुर्वंति ॥ १७ ॥ किमेतत्केचन कुर्वंतीति येनैवमनिधीयते बाढं कु र्वंतीत्याह । (एवं बहुइत्यादि) एवमिति पूर्वोक्तं स्त्रीणामादेशकारणं पुत्रपोषणवस्त्रधा वनादिकं तद्बहुनिः संसारानिष्वंगिनिः पूर्वं कृतं कृतपूर्वं । तथापरे कुर्वंति करिष्यंति च ये नोगकृते कामनोगार्थमैहिकामुष्मिकापायमपर्यालोच्यानिमुख्येन नोगानुकूल्येनापन्नाव्य वस्थिताः सावद्यानुष्ठानेषु प्रतिपन्नाइति यावत् । तथा योरागांधः स्त्रीवशीकृतः सदासवदर्शं कितानिस्ताभिः प्रत्यपरेपि कर्मणिनियोज्यते । तथा वागुरापतितः परवशोमृगइव धार्यते ना त्मवशोनोजनादिक्रियापि कर्तुं लनते । तथा प्रेष्यइव कर्मकरइव क्रीतइव वर्चः शोधनादा वपि नियोज्यते। तथा कर्तव्याकर्तव्यविवेकरहिततया हिताहितप्राप्तिपरिहारशून्यत्वात् पशु नूतइव। यथाहि पशुराहारनयमैथुनपरिग्रहानिज्ञएवं केवलमसावपि सदनुष्ठानरहितत्वा त्पशुकल्पः।यदिवा स स्त्रीवशगोदासमृगप्रेष्यपशुन्योप्यधमत्वान्न कश्चित् । एतदुक्तं नवति सर्वाधमत्वात्तस्य तत्तुल्यं नास्त्येव येनासावुपमीयते । अथवा न सकश्चिदिल्युनयभ्रष्टत्वा त् । तथाहि न तावत्प्रव्रजितोसौ सदनुष्ठानरहितत्वान्नापिगृहस्थस्तांबूलादिपरिनोगरहि तत्वाल्लोचिकामात्रधारित्वाच्च।यदिवा ऐहिकामुष्मिकानुष्ठायिनां मध्ये न कश्चिदिति ॥१८॥

एवं खु तासु विन्नप्पं, संथवं संवासंच वज्जेज्जा॥ तज्जातिआ इमे कामा वज्जकराय एवमरकाए॥१९॥ एवं नयं णसेयाय, इइ से अप्पगं निरुं नित्ता ॥ णोइत्थि णोपसू, निरकुणो सयं पाणिणा णिलज्जेज्जा ॥२०॥

अर्थ–हवे उपदेश कहेडे (एवंखुतासुविन्नप्पंके०) एम जे पूर्वोक्त स्त्रीनो विनव्यो मायानुं कारण जाणीने (संथवंके०) तथा तेनुं संस्तव (संवासंचके०) तेनुं संवास एटले नेलुं व शवुं तेने उत्तमपुरुष ( वज्जेज्जाके० ) वर्जे त्याग करे ( तज्जातिआइमेकामा के० ) त ज्जाति एटले ते स्त्रीना संग थकी डे उत्पत्ति जेनी एवा ए प्रत्यक्ष कामनोग ते ( वज्ज करायएवमरकाए के० ) अवद्यकराएवमाख्यातं एटले पापकर्म कारी दुर्गतिना दातार

नंव भेदास्ततश्चाष्टादशभेदभिन्नमपि ब्रह्म बिभृयात् । यथाच स्त्रीस्पर्शपरीषहः सोढव्यएवं स र्वानपि शीतोष्णदंशमशकतृणादिस्पर्शानपि सहेत । एवंच सर्वस्पर्शसहोऽनगारः साधुर्भवती ति ॥ २१ ॥ कएवमाहेति दर्शयति। (इच्चेवमाहुरित्यादि) इत्येवं यत्पूर्वमुक्तं तत्सर्वं सवीरोभग वानुत्पन्नदिव्यज्ञानः परहितैकरतश्चाह उक्तवान् । यतएवमतोधूतमपनीतं रजःस्त्रीसंपर्का दिकृतं कर्म येन सधूतरजाः । तथा धूतोमोहोरागद्वेषरूपोयेन सतथा । पाठांतरं वा धूतोऽप नीतोरागमार्गोरागपंथा यस्मिन् स्त्रीसंस्तवादिपरिहारात्ततथा तत्सर्वं भगवान् वीरएवाह । य तएवं तस्मात्सभिक्षुरध्यात्मविशुद्धः सुविशुद्धांतःकरणः सुष्ठु रागद्वेषात्मकेन स्त्रीसंपर्केण मु क्तः सन्नामोक्षायाशेषकर्मक्षयंयावत्परिसमंतात्संयमेऽनुष्ठाने व्रजेद्गच्छेत्संयमोद्योगवान् भवे दिति। इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इति चतुर्थं स्त्रीपरिज्ञाध्ययनं परिसमाप्तं

हवे नरयविभत्ति नामा पांचमुं अध्ययन श्रीजंबूस्वामी पूछेछे अने श्रीसुधर्म स्वामी जंबू प्रत्ये कहेछे के पूर्वे चोथा अध्ययनमां अनाचारी कह्या तेवा अनाचारी जे होय तेने नरकगति प्राप्त थाय माटे नरयविभत्ति नामा पांचमुं अध्ययन कहेछे.

पुछिस्सहं केवलियं महेसिं, कहं भितावा णरगा पुरत्था ॥ अ
जाणउ मे मुणि बूहि जाणं, कहिं नु बाला नरयं उविंति ॥ १ ॥
एवं मए पुठे महाणुभावे, इणमोब्बवी कासवे आसुपन्ने ॥ पवे
दइस्सं दुहमठदुग्गं, आदीणियं दुक्कडियं पुरत्था ॥ २ ॥

अर्थ-(पुछिस्सहंकेवलियंमहेसिंके०) सुधर्मस्वामी कहेछे जे तमे मने पूछोछो के नरक केवाछे तथा जीव केवे कर्मे करी नरके जाय तथा त्यां केवी वेदनाछे तेम में पण (पुरत्थाके०) पूर्वे केवली महर्षि श्री माहावीर देवने पुछयुं हतुं के हे भगवन् ( अभितावा के० ) तापसहित ( णरगाके० ) नरकना भय जे तीव्र दुःख रूपछे ते ( कहंके० ) केवाछे (अ जाणउमेके०) अजाणता एवा मुजने (मुणिके०) हे मुनि तमे (जाणंबूहिके०) केवल ज्ञाने करी जाणता थका कहो के (कहिंनुबालानरयंउविंतिके०)केवीरीते बाल एटले अज्ञानी जी व नरकमां जइ उपजे ॥१॥ (एवंमएपुठेके०) एम में विनय सहित पुछयुं छतां (महाणुभावे के०) महोटोछे अनुभाव एटले माहात्म्य जेनो (आसुपन्नेके०) आशुप्रज्ञ एटले सर्वत्र सदा उपयोग थकी केवल ज्ञानवंत एवा (कासवेके०) काश्यप श्रीमहावीर देव तेणे (इ णमोब्बवीके०)एमज कयुं ते प्रमाणे हुं तमने कहीश (पवेदइस्संदुहमठदुग्गंके०) प्रवेदि तंदुःखमेवार्थदुर्ग एटले दुःखनु कारणछे माटे दुर्गमस्थानक नरकावासा कह्याछे (आदीणि यंदुक्कडियंपुरत्थाके०)आदीनिकंदुःकृतिनो पुरस्तात् एटले अत्यंत दीनपुरुषे जेनो आश्रयकर्यो

भिरकू ॥ तम्हा अज्झविसुद्धे सुविमुक्के, आमोरकाए परिव्वएज्जा सि(पाठां तरं विहरे आमुरकाए)त्तिबेमि॥२२॥इति श्रीइत्थी परिन्ना चतुर्थाध्ययनं समत्तं

अर्थ-(सुविसुद्धलेसेके०) शुद्ध निर्मल लेश्यावंत चित्तनो व्यापारछे जेनो एवो (मेहावी के०) पंमित ते (परकिरियंचके०) परनी करेली स्त्रियादिकसंबंधीनी क्रिया अथवा नोगने अर्थे परने हाथे पोताने विषे स्पर्शादिक जे क्रिया करावबी तेने (वज्जएनाणीके०)ज्ञानवंत पुरुष मने वचने अने कायाये करवुं करावबुं ने अनुमोदवुं एम त्रिविधे वर्जे अर्थात् काम नोगने टाले तथा(सव्वफाससहे अणगारेके०)अन्य सर्व शीतादिक परिसह जे कह्याछे तेने ते अणगार स्पर्शे थको सहे एटले सहन करे ॥२१॥ (इच्चेवमाहु सेवीरेके०) एम ए पूर्वोक्त समस्त उपदेश श्री माहावीर देवे आहु एटले कह्योछे ते श्रीमाहावीर परमेश्वर केवाछे तो के(धुअरए धुअमोहेके०) पाप रज रहित तथा मोहरहित छे (तम्हाके०)तेमाटे(सेभिरकू के०) ते साधु सम्यक्दर्शन चारित्रे करी युक्त थको मुक्तिने साधे (अज्झत्त विसुद्धेसुके०) अध्यवसाय निर्मल थको (विमुक्के आमोरकाए परिवएज्जासिके०) विमुक्त आमोक्षाय परिव्रजेत् संयमानुष्ठाने इति एवो भिक्षु स्त्रीसंगादिक क्लेश थकी विमुक्त थयो थको ज्यांसुधी मोक्षे जाय त्यांसुधी सूधो संयम पाले. तिबेमिनु अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २२ ॥ ए स्त्री परिज्ञा नामे चोथा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो. ॥

---

॥ दीपिका-सुविशुद्धा लेश्या मनोवृत्तिर्यस्य सुविशुद्धलेश्योमेधावी मर्यादावान् परस्य स्त्र्यादेः संबंधिनीं क्रियां ज्ञानी विवेकवान् वर्जयेत् मनसा वाचा कायेन सर्वस्पर्शसहोऽनगारः शीतोष्णदंशमशकादिसहनकृत्यः स्यात् ॥ २१ ॥ इत्येवं पूर्वोक्तं तत्सर्वं नगवान् वीरोधुतं क्षिप्तं रजः स्त्रीसंबंधकृतं कर्म येन स धुतरजाः धुतमोहआह उक्तवान् तस्मात्सनिक्षुरध्यात्मविशुद्धोनिर्मलचित्तः सुविमुक्तः स्त्रीसंबधेन रहितआमोक्षाय सर्वकर्मक्षयं यावत् विहरेत्संयमोद्यतोनवेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२२॥ इति सूत्रकृतांगदीपिकायां चतुर्थाध्ययनं समाप्तं ॥

---

॥ टीका-अपि च । सुविसुद्धेइत्यादि )सुष्टु विशेषेण शुद्धा स्त्रीसंपर्कपरिसंहाररूपतया निष्कलंका लेश्यांऽतःकरणवृत्तिर्यस्य स तथा सएवंनूतोमेधावी मर्यादावर्ती परस्मै स्त्र्यादिपदार्थो क्रिया परक्रिया तां च ज्ञानी विदितवेद्योवर्जयेत्परिहरेत्। एतडुक्तं नवति। विषयोपनोगोपाधिना नान्यस्य किमपि कुर्यान्नाप्यात्मनः स्त्रिया पादधावनादिकमपि कारयेत्। एतच्च परक्रियावर्जनं मनसा वच सा कायेन वर्जयेत्तथा ह्यौदारिककामनोगार्थं मनसा न गछति नान्यं गमयति गछंतमपरं नानुजानीते एवं वाचा कायेन च सर्वेप्यौदारिके नव नेदाएवं दिव्येपि

नंच भेदास्ततश्चाष्टादशभेदभिन्नमपि ब्रह्म बिभृयात् । यथाच स्त्रीस्पर्शपरीषहः सोढव्य एवं स र्वानपि शीतोष्णदंशमशकतृणादिस्पर्शानपि सहेत । एवंच सर्वस्पर्शसहोऽनगारः साधुर्भवती ति ॥ २१ ॥ कएवमाहेति दर्शयति। (इच्चेवमाहुरित्यादि) इत्येवं यत्पूर्वमुक्तं तत्सर्वं सवीरोभग वानुत्पन्नदिव्यज्ञानः परहितैकरतआह उक्तवान् । यतएवमतोधूतमपनीतं रजःस्त्रीसंपर्का दिकृतं कर्म येन सधूतरजाः । तथा धूतोमोहोरागद्वेषरूपोयेन सतथा । पाठांतरं वा धूतोऽप नीतोरागमार्गोरागपंथा यस्मिन् स्त्रीसंस्तवादिपरिहारात्तत्तया तत्सर्वं भगवान् वीरएवाह । य तएवं तस्मात्सनिकुरध्यात्मविशुद्धः सुविशुद्धांतःकरणः सुष्ठु रागद्वेषात्मकेन स्त्रीसंपर्केण मु क्तः सन्नामोक्षायाशेषकर्मक्षयंयावत्परिसमंतात्संयमेऽनुष्ठाने ब्रजेद्गच्छेत्संयमोद्योगवान् भवे दिति। इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२॥ इति चतुर्थं स्त्रीपरिज्ञाध्ययनं परिसमाप्तं

हवे नरयविभत्ति नामा पांचमुं अध्ययन श्रीजंबूस्वामी पूछेछे अने श्रीसुधर्म स्वामी जंबू प्रत्ये कहेछे के पूर्वे चोथा अध्ययनमां अनाचारी कह्या तेवा अनाचारी जे होय तेने नरकगति प्राप्त थाय माटे नरयविभत्ति नामा पांचमुं अध्ययन कहेछे.

पुछिस्सहं केवलियं महेसिं, कहं भितावा णरगा पुरछा ॥ अ
जाणउ मे मुणि बूहि जाणं, कहिं नु बाला नरयं उवेंति ॥ १ ॥
एवं मए पुठे महाणुभावे, इणमोव्ववी कासवे आसुपन्ने ॥ पवे
दइस्सं डहमछुग्गं, आदीणियं डुक्कडियं पुरछा ॥ २ ॥

अर्थ-(पुछिस्सहंकेवलियंमहेसिंके०) सुधर्मस्वामी कहेछे जे तमे मने पूछोछो के नरक केवाछे तथा जीव केवे कर्मे करी नरके जाय तथा त्यां केवी वेदनाछे तेम में पण (पुरछाके०) पूर्वे केवली महर्षि श्री माहावीर देवने पुछयुं हतुं के हे भगवन् ( अभितावा के० ) तापसहित ( णरगाके० ) नरकना भय जे तीव्र डुःख रूपछे ते ( कहंके० ) केवाछे (अ जाणउमेके०) अजाणता एवा मुजने (मुणिके०) हे मुनि तमे (जाणंबूहिके०) केवल ज्ञाने करी जाणता थका कहो के (कहिंनुबालानरयंउवेंतिके०)केवीरीते बाल एटले अज्ञानी जी व नरकमां जइ उपजे ॥१॥ (एवंमएपुठेके०) एम में विनय सहित पुछयुं छतां (महाणुभावे के०) महोटोछे अनुभाव एटले माहात्म्य जेनो (आसुपन्नेके०) आशुप्रज्ञ एटले सर्वत्र सदा उपयोग थकी केवल ज्ञानवंत एवा (कासवेके०) काश्यप श्रीमहावीर देव तेणे (इ णमोव्ववीके०)एमज कहुं ते प्रमाणे हुं तमने कहीश (पवेदइस्संडहमछुग्गंके०) प्रवेद्रि तंडुःखमेवार्थडुर्ग एटले डुःखनु कारणछे माटे डुर्गमस्थानक नरकावासा कह्याछे (आदीणि यंडुक्कडियंपुरछाके०)आदीनिकंडुष्कृतिनो पुरस्तात् एटले अत्यंत दीन पुरुषे जेनो आश्रयकर्यो

जे एवा डुरुत एटले पापफलसहित ते नरकावासाने पुरस्तात् एटले आगल कहेशे ते तमे एकाग्रचित्ते सांजलो ॥ २ ॥

---

॥ दीपिका–अथ पंचमाध्ययनमारन्यते । तत्र उपसर्गजीरोः स्त्रीवशगस्य नरकपातः स्यात्तत्र च यादृश्योवेदनाः स्युस्ताअत्रोच्यंते इति । प्रथमोद्देशकस्यादिसूत्रमिदं । ( पुछि स्सेति ) जंबूस्वामिना सुधर्मस्वामी पृष्टः किंजूतानरकाइत्यादिपृष्टः सुधर्मस्वाम्याह । य देतद्भवताऽहंपृष्टस्तदेतत्केवलिनः श्रीवीरमहर्षेः पुरस्तात्पूर्वं पृष्टवानहं कथमनितापान्वि तानरकाः । हेमुने एतदजानतो मे त्वं जानन् ब्रूहि । कथं केनप्रकारेण नुवितर्के बालाअ ज्ञानरकमुपयांति ॥१॥ एवं मया पृष्टोमहानुजावइदं प्रश्नोत्तरमब्रवीत् । काश्यपोवीरआशु प्रज्ञोजगवान् इदमाह । यथाहं प्रवेदयिष्यामि कथयिष्यामि त्वं शृणु । डुःखंनरकडुःखं अर्थतः परमार्थतो डुर्गं विषमं । पुनः किंजूतं । आसमंताद्दीनमादीनं तद्विद्यते यस्य सआदीनिकोऽत्यं तदीनत्वाश्रयस्तं डुष्कृतं पापं विद्यते यत्र स डुष्कृतिकस्तं पुरस्तादग्रतः कथयिष्ये ॥२॥

---

॥टीका–उक्तं चतुर्थाध्ययनं सांप्रतं पंचममारन्यते । अस्य चायमजिसंबंधः । इहाद्याध्ययने स्वसमयपरसमयप्ररूपणाजिहिता । तदनंतरं स्वसमये बोधोविधेयइत्येतद्वितीयेऽध्ययने ऽजि हितं । संबुद्धेन चानुकूलप्रतिकूलाउपसर्गाः सम्यक्सोढव्याइत्येतत्तृतीयेऽध्ययने प्रतिपादि तं । तथा संबुद्धेनैव स्त्रीपरीषहश्च सम्यगेव सोढव्यइत्येतच्चतुर्थेऽध्ययने प्रतिपादितं । सांप्रत मुपसर्गजीरोः स्त्रीवशगस्यावश्यं नरकपातोजवति । तत्र च यादृक्षावेदनाः प्राडुर्जवं ति ताअनेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यंते । तदनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराणि उपक्रमादीनि वक्तव्यानि । तत्रोपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारो द्विधा । अध्ययनार्थाधि कारउद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राध्ययनार्थाधिकारोनिर्युक्तिकारेण प्रागेवाजिहितः । तद्यथा । उ पसर्गजीरुणो (थीवसस्सनरएसु होज्ज उववाउ) इत्यनेन उद्देशार्थाधिकारस्तु निर्युक्तिकृताना जिहितोऽध्ययनार्थाधिकारांतर्गतइति । सांप्रतं निक्षेपः सचत्रिविधः । उंघनिष्पन्नोनामनिष्प न्नः सूत्रालापकनिष्पन्नश्चेति । तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने तु नरकविजक्तिरिति द्विपदं नाम । तत्र नरकपदनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । णिरए ठक्कं दवं, णिरयाउ इहमेव जे जवे असुजा ॥ खेत्तं णिरउंगासो कालोणिरएसुचेवठी॥६४॥जावेउणिरयजीवा कम्मुदउ चेव णिरयपाउंगा । सोऊणणिरयडुःखं, तवचरणेहोइजइयवं ॥ ६५ ॥ णिरयेठक्कमित्या दिगाथाद्वयं । तत्र नरकशब्दस्य नामस्थापना द्रव्यक्षेत्रकालजावजेदात् षोढा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने क्षुसे । द्रव्यनरकआगमतोनोआगमतश्च । आगमतोज्ञाता तत्र चा नुपयुक्तः । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरजव्यशरीरव्यतिरिक्तइहैव मनुष्यजवे तिर्यग्जवे ये केचना ऽशुजकारित्वादशुजाः सत्वाः कालकसौकरिकादयइति । यदिवा यानि कानि चिदशुजानि

स्थानानि चारकादीनि याश्च नरकप्रतिरूपावेदनास्ताः सर्वाऽद्रव्यनरकाइत्यभिधीयंते। यदिवा कर्मद्रव्यनोकर्मद्रव्यभेदाद् द्रव्यनरकोद्वेधा। तत्र नरकवेद्यानि यानि बद्धानि कर्माणि तानि चैकभविकस्य बद्धायुष्कस्याभिमुखनामगोत्रस्य चाश्रित्य द्रव्यनरकोभवति। नोकर्मद्रव्यनरकस्त्विहैव येऽशुभारूपरसगंधवर्णशब्दस्पर्शाइति। क्षेत्रनरकस्तु नरकावकाशकालमहाकालरौरवमहारौरवप्रतिष्ठानाऽभिधानादिनरकाणां चतुरशीतिलक्षसंख्यानां विशिष्टोभूभागः। कालनरकस्तु यत्र यावतीस्थितिरिति। भावनरकस्तु ये जीवानरकायुष्कमनुभवंति तथा नरकप्रायोग्यः कर्मोदयइति। एतडुक्तं भवति। नरकांतर्वर्तिनोजीवास्तथा नरकायुष्कोदयापादिताऽसातावेदनीयादिकर्मोदयाश्चैतद्द्वितयमपि भावनरकइत्यभिधीयते। तदेवं श्रुत्वाऽवगम्य तीव्रमसह्यं नरकदुःखं क्रकचपाटनकुंभीपाकादिकं परमाधार्मिकापादितं परस्परोदीरणाकृतं स्वाभाविकं च तपश्चरणे संयमानुष्ठाने नरकपातपरिपंथिनि स्वर्गापवर्गगमनैकहेतोर्वाऽत्मह्वितमिच्छता प्रयतितव्यं परित्यक्तान्यकर्तव्येन यत्नोविधेयइति। सांप्रतं विभक्तिपदनिक्षेपार्थमाह। णामंठवणादविए, खेत्ते काले तहेव भावेय। एसोउ विभत्तीए णिक्खेवोहविहोहोइ ॥१॥ (नामंठवणेत्यादि) विभक्तेर्नामस्थापना द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् पोढा निक्षेपस्तत्र नामविभक्तिर्यस्य कस्य चित्सचित्तादेर्द्रव्यस्य विभक्तिरिति नाम क्रियते। तद्यथा। स्वादयोष्टौ विभक्तयस्तिवादयश्च। स्थापनाविभक्तिस्तु यत्र ताएवं प्रातिपदिकाद्धातोर्वा परेण स्थाप्यंते पुस्तकपत्रकादिन्यस्तावा। द्रव्यविभक्तिर्जीवाजीवभेदाद् द्विधा। तथापि जीवविभक्तिः सांसारिकेतरभेदाद्विधा। तत्राप्यसांसारिकजीवविभक्तिर्द्रव्यकालभेदात् द्वेधा। तत्रद्रव्यतस्तीर्थातीर्थसिद्धादिभेदात्पंचदशधा। कालतस्तु तत्प्रथमसमयसिद्धादिभेदादनेकधा। सांसारिकजीवविभक्तिरिंद्रियजातिभवभेदात्रिधा। तत्रेंद्रियविभक्तिरेकेंद्रियविकलेंद्रियपंचेंद्रियभेदात्पंचधा। जातिविभक्तिः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसभेदात् पोढा। भवविभक्तिर्नारकतिर्यङ्मनुष्यामरभेदाच्चतुर्धा। अजीवद्रव्यविभक्तिस्तु रूप्यरूपिद्रव्यभेदाद्द्विधा। तत्र रूपिद्रव्यविभक्तिश्चतुर्धा। तद्यथा। स्कंधाः स्कंधदेशाः स्कंधप्रदेशाः परमाणुपुद्गलाश्च। अरूपिद्रव्यविभक्तिर्दशधा। तद्यथा। धर्मास्तिकायोधर्मास्तिकायस्य देशोधर्मास्तिकायस्य प्रदेशः। एवमधर्माकाशयोरपि प्रत्येकं त्रिभेदता द्रष्टव्या। अद्धासमयश्च दशमइति। क्षेत्रविभक्तिश्चतुर्धा। तद्यथा। स्थानं दिशं द्रव्यं स्वामित्वं चाश्रित्य। तत्र स्थानाश्रयणादूर्ध्वाधस्तिर्यग्विभागव्यवस्थितोलोकोवैशाखस्थानस्थपुरुषइव कटिस्थकरयुग्मइति द्रष्टव्यः। तत्राप्यधोलोकविभक्तीरत्नप्रभाद्याः सप्त नरकपृथिव्यस्तत्रापि सीमंतकादिनरकेंद्रकावलिकप्रविष्टपुष्पावकीर्णकवृत्तत्र्यस्रचतुरस्रादिनरकस्वरूपनिरूपणं। तिर्यग्लोकविभक्तिस्तु जंबूद्वीप,लवणसमुद्र, धातकीखंड,कालोदसमुद्रेत्यादिद्विगुणद्विगुणवृद्धया द्वीपसागरस्वयंभूरमणपर्यंतस्वरूपनि

रूपणं । ऊर्ध्वलोकविनक्तिः सौधर्माद्यान्नपर्युपरिव्यवस्थिता द्वादशदेवलोकाः नवग्रैवेय कानि पंचमहाविमानानि । तत्रापि विमानेंडकावलिप्रविष्टपुष्पावकीर्णकवृत्तत्र्यस्रचतु रस्रादिविमानस्वरूपनिरूपणमिति । दिगाश्रयणेन तु पूर्वस्यां दिशि व्यवस्थितं क्षेत्रमे वमपरास्वपीति । द्रव्याश्रयणाच्छालिक्षेत्रादिकं गृह्यते । स्वाम्याश्रयणाच्च देवदत्तस्य क्षेत्रं यज्ञदत्तस्य वेति । यदिवा क्षेत्रविनक्तिरार्याऽनार्यक्षेत्रनेदाद्द्विधा । तत्राप्यार्यक्षेत्रमर्धप ञ्चविंशतिजनपदोपलक्षितं राजगृहमगधादिकं गृह्यते । रायगिहमगहचंपा, अंगातहता मलित्तिवंगाय ॥ कंचणपुरंकलिंगा, वाराणसीचेव कासीय ॥ १ ॥ साकेयकोसलागय, पुरंचकुरुसौरियंकुसट्टाय ॥ कंपिल्लं पंचाला, अहिछत्ताजंगलाचेव ॥ २ ॥ वारवईयसुरछा मिहिलविदेहायवच्छकोसंबी ॥ नंदिपुरंसंदिल्ला, नद्दलिपुरमेवमलयाय ॥ ३ ॥ वइराडव छवरणा. अछातहमित्तियावइदसण्णा ॥ सुत्तीमईयचेदी, वीयनयं सिंधुसौवीरा ॥४॥ महुरा यसूरसेणा, पावानंगीयमासपुरिवछा ॥ सावित्थीयकुलाणा, कोमीवरिसंचलाढाय ॥ ५ ॥ सेयवियावियणायरि, केययअद्धंचआरियंनणियं ॥ जत्थुप्पत्तिजिणाणं, चक्कीणंरामकि एहाणं ॥ ॥ ६ ॥ अनार्यक्षेत्रं धर्मसंज्ञारहितमनेकधा । तडुक्तं । सगजवणसबरबब्बर, का यमुरुंमो डुगोणपक्कणया ॥ अरकागहूणरोमस पारसखसखासियाचेव ॥ १ ॥ डुविलय लवोसवाक्कस, निल्लंदपुलिंदकोंचनमररूया ॥ कौंचायचीणचंचुय, मालंदमिलाकुलरकाय॥ ॥ २ ॥ केकयकिरायहयमुह, खरमुहतह तुरगमेढगमुहाय ॥ ॥ हयकन्नागयकन्ना, अ न्नेयअणारियाबहवे ॥ ३ ॥ पावायचंमदंमा, अणारियाणिग्घिणाणिरणुकंपा ॥ धम्मोत्ति अरकराइं, जेसुणणज्जंतिसुविणेवि ॥ ४ ॥ कालविनक्तिस्तु अतीताऽनागतवर्तमानकालने दात्रिधा । यदि चैकांतसुषमादिकक्रमेणाऽवसर्पिण्युत्सर्पिण्युपलक्षितं द्वादशारं कालचक्रं । अ थवा । समयावलियमुहुत्ता,दिवसमहोरत्तपरकमासाय ॥ संवछरयुगपलिया, सागरउस्स प्पिपरियट्टेत्येवमादिकाकालविनक्तिरिति । नावविनक्तिस्तु जीवाजीवनेदाद्विधा। तत्र जीव नावविनक्तिरौदयिकोपशमिक,क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारणामिक, सान्निपातिक, नेदा त् पट्प्रकारा । तत्रौदयिकोगतिकपायलिंगमिथ्यादर्शनाऽज्ञानाऽसंयतासिध्दलेश्याश्चतुश्चतु स्त्र्येकैकैकैकपड्नेदक्रमेणैकविंशतिनेदनिन्नः । तथौपशमिकः सम्यक्त्वचारित्रनेदाद् द्विवि धः । क्षायिकः सम्यक्त्वचारित्रज्ञानदर्शनदानलाननोगोपनोगवीर्यनेदान्नवधा । क्षायोप शमिकस्तु ज्ञानाज्ञानदर्शनदानादिलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचनेदाः । तथा सम्यक्त्वचारित्रसंय मासंयमनेदक्रमेणाष्टादशधेति । पारिणामिकोजीवनव्यानव्यत्वादिरूपः मान्निपातिक स्तु द्विकादिनेदात् पड्विंशतिनेदः । संनवीतु पञ्चिंशतिविधोयमेव गतिनेदात्पंचधेति । अ जीवनावविनक्तिस्तु मूर्तानां वर्णगंधरसस्पर्शसंस्थानपरिणामः । अमूर्तानां गतिस्थित्यव गाहवर्तनादिकइति । सांप्रतं समस्तपदापेक्ष्या नरकविनक्तिरिति । नरकाणां विनागोविन

क्तित्तामाह् ॥ पुढवीफासंअसुा,णुवक्कमणिरयणवालवहणंच-॥ तिसुवेदेतिअताणाअणु नागंचेव सेसासु ॥ ६१ ॥ (पुढवीफासमित्यादि )। पृथिव्याः शीतोष्णरूपायास्तीव्रवेदनो त्पादकः स्पर्शः संपर्कः पृथिवीसंस्पर्शस्तमनुनवंति । तमेव विशिनष्टि। अन्येन देवादिना उ पक्रमितुमुपशमयितुं योनशक्यते सोन्यानुपक्रमस्तमपराचिकित्स्यमित्यर्थः । तमेवंनूतमप राऽसाध्यं पृथिवीस्पर्शं नारकाः समनुनवंति । उपलक्षणार्थत्वाच्चास्य रूपगंधस्पर्शशब्दान प्येकांतेनाशुनान्निरुपमाननुनवंति । तथा नरकपालैः पंचदशप्रकारैः परमाधार्मिकैः कृ तमुजराऽसिकुंतककचकुंनीपाकादिकं वधमनुनवंत्याद्यासु तिसृषु रत्न,शर्करा,वालुकाख्या सु पृथिवीषु स्वकृतकर्मफलनुजोनारकाअत्राणाअशरणाः प्रनूतकालं यावदनुनवंति । शेषासु चतसृषु पृथिवीषु पंकधूमतमोमहातमःप्रनाख्यासु परमाधार्मिकनरकपालानावे पि स्वतएव तत्कृतवेदनायाः सकाशाद्यस्तीव्रतरोऽनुनावोविपाकोवेदनासमुद्घातस्तमनु नवंति । परस्परोदीरितडुःखाश्च नवंतीति । सांप्रतं परमाधार्मिकानामाद्यासु तिसृषु पृथिवी षु वेदनोत्पादकान् स्वनामग्राहं दर्शयितुमाह् । अंबेअंबरिसीचेव, सामेयसवलेविय ॥ रो देवरुद्दकालेय, महाकालेत्तिआवरे ॥ ६८ ॥ असिपत्तेधणुंकुंनेवालुवेयरणीविय ॥ खर स्सरेमहाघासे, एवंपन्नरसाहिया ॥ ६९ ॥ गाथाद्वयंप्रकटार्थं । एवं ते चांबाइत्यादयः पर माधार्मिकायादृक्षां वेदनां परस्परोदीरणडुःखं चोत्पादयंति । तां दर्शयितुमाह् । धाडेंति यहाडेंतिय, हणंतिविंधंतितहणिसुंनंति। मुंचंतिअंबरतले; अंबाखलुतत्थणेरइया ॥ ७० ॥ ( धाडेंतीत्यादि) । तत्रांबानिधानाः परमाधार्मिकाः स्वनवनान्नरकावासं गत्वा क्रीडया ना रकान् अत्राणान् सारमेयानिव शूलादिप्रहारैस्तुदंतो ( धाडेंतेत्ति ) प्रेरयंति । स्थानात् स्थानांतरं प्रापयंतीत्यर्थः । तथा ( पहाडेंतित्ति ) स्वेच्छयेतश्चेतश्चाऽनार्यं नमयंति तथांऽ बरतले प्रक्षिप्य पुनर्निपतंतं मुजरादिना घ्नंति तथा शूलादिना विध्यंति तथा (निसुंनंतित्ति) कृकाटिकायां गृहीत्वा नूमौ पातयंति अधोमुखं अथोत्क्षिप्यांऽबरतले मुंचंतीत्येवमादिक या विडंबनया तत्र नरकपृथिवीषु नारकान् कदर्थयंति । किंचान्यत् । उहयहयेपत्तहिंयं, णिस्सन्नेकप्पणीहिकप्पंति ॥ विडुनगचडुलगछिन्ने अंबरसीतत्थणेरइए ॥ ७१ ॥ ( उहए त्यादि ) । उप सामीप्येन मुजरादिना हताउपहताः पुनरप्युपहताएव खड्गादिना हता उपहतहतास्तान्नारकान् तस्यां नरकपृथिव्यां निःसंज्ञकान् नष्टसंज्ञान् मूर्छितान्ततः क ल्पणीनिः कल्पयंति छिंदंतीतश्चेतश्च पाटयंति । तथा द्विदलचटुलकछिन्नानिति म ध्यपाटितान् खंडशश्छिन्नांश्च नारकांस्तत्र नरकपृथिव्यामंबर्षिनामानोसुराः कुर्वंतीति । तथा । साडणपाडणतोमण, बंधणरज्जुलयप्पहारेहिं ॥ सामाणेरतियाणं, पवत्तयंतीअ पुन्नाणं ॥ ७२ ॥ ( साधनेत्यादि )। तथा अपुण्यानां तीव्राऽसातोदये वर्तमानानां नार काणां श्यामाख्याः परमाधार्मिकाएतच्चेतत्र प्रवर्तयंति । तद्यथा । सातनमंगोपांगानां

छेदनं तथा पातनं निष्कुटादधोवज्रभूमौ प्रक्षेपस्तथाप्रतोदनं व्ययनं तथा सूच्यादिना नासिकादौ वेधस्तथा रज्ज्वादिना क्रूरकर्मकारिणं बध्नंति। तथा तादृग्विधलताप्रहारैस्ता डयंत्येवं दुःखोत्पादनं दारुणं शातनपातनवेधनबंधनादिकं बहुविधं प्रवर्तयंति व्यापा रयंतीति। अपिच। अंतगयफिफिसाणिय, हियमं कालेज्जफुप्फु सेचक्के। सवलाणेरति याणं, कडेतिंतहिंअपुन्नाणं ॥ १३ ॥ (अंतगयेत्यादि)। तथा सवलाख्यानरकपाला स्तथाविधकर्मोदयसमुत्पन्नक्रीडापरिणामाअपुण्यभाजां नारकाणां यत्कुर्वंति तद्दर्शय ति। तद्यथा। अंत्रगतानि यानि फिफिसानि अंत्रांतर्वर्तीनि मांसविशेषरूपाणि हृदयं ति पाटयंति तथा तगतं (कालेज्जंति)। हृदयांतर्वर्ति मांसखंडं। तथा (फुप्फुसेत्ति) उदरांतवर्तीन्यंत्रविशेषरूपाणि तथा वल्कलान् वध्रानाऽकर्षयंति। नानाविधैरुपायैरशर णानां नारकाणां तीव्रां वेदनामुत्पादयंतीति। अपिच। असिसत्तिकोंततोमर, सूलतिसू लेसुसूइवियगासु ॥ पोएतिरुद्दकम्माउ, णरगपालातहिंरोद्दा ॥ १४ ॥ (असिसत्तीत्या दि)। तथा अन्वर्थाभिधानारौद्राख्यानरकपालारौद्रकर्माणोनानाविधेष्वसिशक्त्या दिषु प्रहरणेषु नारकानशुभकर्मोदयवर्तिनः प्रोतयंतीति। तथा। भंजंतिअंगमंगाणि, ऊरूबाहूसिराणिकरचरणा। कप्पेंतिकप्पणीहिं, उवरुद्दापावकम्मरया ॥१५॥ (भंजंतीत्या दि) तथोपरुद्राख्याः परमाधार्मिकाणामंगप्रत्यंगानि शिरोबाहूरुकादीनि तथा करचरणांश्च भंजंति मोटयंति पापकर्माणः कल्पनीभिः कल्पयंति पाटयंति। तत्रास्त्येव दुःखोत्पादनं य न्ते न कुर्वंतीति। अपिच। मीरासुसुंठएसुय, कंडूसुयपयणएसुयपयंति। कुंभीसुयलोहियसुय, एयंतिकालाउणेरतिए॥ १६ ॥ (मीरासुइत्यादि) तथा कालाख्यानरकपालाः सुरामीरासु दीर्घचुल्लीषु तथा शुंठकेषु तथा कंडुकेषु प्रचंडकेषु तीव्रतापेषु नारकान् पचंति तथा कुंभीषूष्ट्रिकाकृतिषु तथा वल्लीष्वायसकवल्लिषु नारकान् व्यवस्थाप्य जीवन्मत्स्यानिव प चंति। अपिच। कप्पंतिकागिणीमंसं, सगाणिछीदंतिसीहपुच्छाणि ॥ खावंतियाणरइए, मह कालापावकम्मरए ॥ १७ ॥ (कप्पंतीत्यादि) महाकालाख्यानरकपालाः पापकर्मनिर तानारकान्नानाविधैरुपायैः कदर्थयंति। तद्यथा। काकिणीमांसकानि श्लक्ष्णमांसखं डानि कल्पयंति नारकान् कुर्वंति तथा (सीहपुच्छाणित्ति)। पृष्टीवध्रास्तांश्छिंदंति। त था ये प्राक् मांसाशिनोनारकाआसन् तान्स्वमांसानि खादयंतीति। अपिच। हत्थेपाएऊ रू, बाहुसिरापायअंगमंगाणि ॥ छिंदंतिपगाणंतू, असिणेरइएनिरयपाला ॥ १८ ॥ (ह त्थेत्यादि) असिनामानोनरकपालाअशुभकर्मोदयवर्तिनोनारकानेवं कदर्थयंति। तद्य था। हस्तपादोरुबाहुशिरःपार्श्वादीन्यंगप्रत्यंगानि छिंदंति प्रकाममत्यर्थं खंडयंति। तुश ब्दोऽपरदुःखोत्पादनविशेषणार्थइति। तथा। कन्नोठणसकरचरण दसणछण फुग्गऊरुबाहू णं ॥ छेयणभेयणसाडण, असिपत्तधणूहिपाडंति ॥ १९ ॥ (कन्नोठइत्यादि)। असि

प्रधानाः पत्रधनुर्नामानोनरकपालाश्रसिपत्रवनं बीनत्सं कृत्वा तत्र ठायार्थिनः समागतान् नारकान् वराकान् असयादिनिः पाटयंति तथा कर्णौष्ठनासिकाकरचरणदशनस्तनस्फिगूरुबाहूनां ठेदनभेदनशातनादीनि विकुर्वितवाताहृतचलिततरुपातितासिपत्रादिना कुर्वंतीति । तडुक्तं । ठिन्नपादभुजस्कंधा, श्ठिन्नकर्णौष्ठनासिकाः ॥ निन्नतालुशिरोमेढ्रानिन्नाक्षिहृदयोदराः ॥ १ ॥ किंचान्यत् कुंनीसुचपवणेसुय, लोहियसुयकुंडलोहि कुंनीसु ॥ कुंनीयणरयपाला हणंतिपाडंतिणरएसु ॥ ८० ॥ ( कुंनीसुइत्यादि ) कुंनिनामानोनरकपालानारकान्नरकेषु व्यवस्थितान् निघ्नंति तथा पाचयंति । केति व र्शयति । कुंनीषूष्ट्रिकाकृतिषु तथा पचनेषु कडिल्लकाकृतिषु तथा लौहीप्वायसभाजनविशेषेषु पाचयंति । तथा । तडवडस्सनक्कंति, नज्जणेकलंबुवालगापंठे । वालूगाणेरइया लोलंतीअंबरतलंमि ॥ ८१ ॥ ( तडवडेत्यादि ) वालुकाख्याः परमाधार्मिकानारकानत्राणास्तप्तवालुकानृतनाजने चणकानिव (तमतडित्ति) स्फुटतः (नक्कंति) नृक्कंति पचंति । केत्याह । कदंबपुष्पाकृतिवालुकाकदंबवालुका तस्याः पृष्ठमुपरितलं तस्मिन पातयित्वाऽम्बरतलेच लोलयंतीति । किंचान्यत् । पूयरुहिरकेसठिवाहिणीकलकलंतजलसोया ॥ वेयरणिणिरयपालाणेरइएकपवाहंति ॥ ८२ ॥ ( पूयरुहिरेत्यादि ) । वैतरणीनामानोनरकपालावैतरणीं नदीं विकुर्वंति । साच पूयरुधिरकेशास्थिवाहिनीमहानयानककलकलायमानजलाश्रिता तस्यांच क्षारोष्णजलायामतीव बीनत्सदर्शनायां नारकान् प्रवाहयंतीति ॥ तथा । कप्पेंतिकरकरएहिं, तहिंतिपरोप्परंसुएहिंति ॥ सिंवलितमारुहंती, खरस्वरातडणेरइए ॥ ८३ ॥ ( कप्पेंतीत्यादि ) । खरस्वराख्यास्तु परमाधार्मिकानरकानेवं कदर्थयंति । तद्यथा । क्रकचपातैर्मध्यं मध्येन स्तंनमिव तान् पातानुसारेण कल्पयंति पाटयंति । तथा परशुनिश्च तानेव नारकान् परस्परमन्योन्यं तक्ष्यंति सर्वशोदेहावयवापनयनेन तनून् कारयंति । तथा शाल्मलीं वज्रमयनीरणकंटकाकुलां खरस्वरैरारटंतोनारकानारोहयंति पुनरारूढानाकर्षयंतीति ॥ अपिच । नीएयपलायंते समंततोतञ्चते णिरुंनंति ॥ एसुणोजहापसुवहे, महघोसातठणेरइए ॥ ८४ ॥ ( नीएइत्यादि ) । महाघोपाजिधानाजवनपत्यसुराधमविशेषाः परमाधार्मिकाव्याधाइव परपीडोत्पादनेनैवाऽतुलं हर्षमुद्वहंतोक्रीमया नानाविधैरुपायैर्नारकान् कदर्थयंति तांश्च नीतान् प्रपलायमानान् मृगानिव समंततः सामस्त्येन तत्रैव पीडोत्पादनस्थाने निरुंनंति प्रतिबध्नंति पशून् बस्तादिकान् । यथा पशुवधे समुपस्थिते नश्यतस्तद्वधकाः प्रतिबध्नंत्येवं तत्र नरकावासे नारकानिति । गतोनामनिष्पन्नोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (पुछिस्सहमित्यादि ) जंबूस्वामिना सुधर्मस्वामी पृष्टः तद्यथा । नगवन् किंनूतानारकाः कैर्वा कर्मनिरसुमतां तेषूत्पादः कीदृश्योवा तत्रस्यावेद

नाऽस्त्येवं पृष्टः सुधर्मस्वाम्याह । यदेतद्भगवताऽहं पृष्टस्तदेतत्केवलिनमतीतानागतवर्त मानसूक्ष्मव्यवहितपदार्थवेदिनं महर्षिमुग्रतपश्चरणकारिणमनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहिष्णुं श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिनं पुरस्तात्पूर्वं पृष्टवानस्मि । यथा कथं किंभूताश्चनिताषा न्वितानरकानरकावासानवंतीत्येतदजानतोमे मम हेमुने जानन् पूर्वमेव केवलं ज्ञा नेनाऽवगच्छन् ब्रूहि कथय । कथंतु केन प्रकारेण किमनुष्ठायिनः। नुरिति वितर्के। बालाश्च ज्ञाहिताहितप्राप्तिविवेकरहितास्तेषु नरकेषूपसामीप्येन तद्योग्यकर्मोपादानतया यांति गच्छंति ॥ १ ॥ किंभूताश्च तत्र गतानां वेदनाः प्रादुष्यंतीत्येतच्चाह । ( पुछिस्सुहमित्यादि ) (त था एवंमइत्यादि ) एवमनंतरोक्तं मया विनेयेनोपगम्य पृष्टोमहांश्चतुस्त्रिंशदतिशयरूपो ऽनुभावोमाहात्म्यं यस्य स तथा प्रश्नोत्तरकालं चेदं वक्ष्यमाणं। मोइति वाक्यालंकारे। केव लालोकेन परिज्ञाय मत्प्रश्ननिर्वचनमब्रवीडुक्तवान् । कोसौ । काश्यपोवीरोवर्धमानस्वामी आशुप्रज्ञः सर्वत्र सदोपयोगात् सचैवं मया पृष्टोभगवानिदमाह । यथा। यदेतद्भवता पृष्टस्त दहं प्रवेदयिष्यामि कथयिष्याम्यग्रतोदत्तावधानः शृणुति । तदेवाह । दुःखमिति नर कं दुःखहेतुत्वात् असदनुष्ठानं। यदिवा नरकावासएव दुःखयतीतिदुःखं। अथवा असाता वेदनीयोदयात् तीव्रपीडात्मकं दुःखमित्येतच्चार्थतः परमार्थतोविचार्यमाणं दुर्गं गह नं विषमं दुर्विज्ञेयं। असर्वज्ञेन तत्प्रतिपादकप्रमाणाभावादित्यभिप्रायः । यदिवा ( दुहमठ दुग्गंति ) दुःखमेवार्थोयस्मिन् स दुःखनिमित्तोवा दुष्प्रयोजनोवा दुःखार्थोनरकः। सच दुर्गो विषमोदुरुत्तरत्वात् तं प्रतिपादयिष्ये । पुनरपि तमेव विशिनष्टि । आसमंतादीनमादीनं तद्विद्यते यस्मिन्सआदीनिकोऽत्यंतदीनसत्त्वाश्रयस्तद्दुःष्कृतमसदनुष्ठानं पापं वा तत्फ लं वा असातावेदनीयोदयरूपं तद्विद्यते यस्मिन्स दुष्कृतिकस्तं पुरस्तादग्रतः प्रतिपा दयिष्ये । पाठांतरं वा (दुक्कडिणंति) दुष्कृतं विद्यते येषां ते दुष्कृतिनोनारकास्तेषां संबंधि चरितं पुरस्तात्पूर्वस्मिन् जन्मनि नरकगतिगमनयोग्यं यत्कृतं प्रतिपादयिष्यतइति॥ २ ॥

जे केइ बाला इह जीवियठी, पावाइं कम्माइं करंति रुद्दा ॥ ते घोर
रूवे तमिसंधयारे, तिव्वाभितावे नरए पडंति ॥ ३॥ तिव्वं तसे पा
णिणो थावरेया, जे हिंसति आयसुहं पडुच्चा ॥ जे लूसए होइ
अदत्तहारी, ण सिरकती सेयवियस्स किंचि ॥ ४ ॥

अर्थ—( जेकेइबालाके० ) जे कोइक महारंभीया बाल एटले अज्ञानी (इहजीवियठी के०) आसंसारने विषे असंयमे जीवितव्यना अर्थी एवा जीव (पावाइंकम्माइंकरंतिरुद्दा के०) रौद्र एटले प्राणीने भयना उपजावनार एवा अनेक पापकर्मकरे (तेघोररूवेतमिसं धयारे के०) तेवा पुरुष तीव्रपापोदयने लीधे घोररूप एटले अत्यंत बीहामणे रूपे त

मिसंधयारे एटले महाअंधकारे सहित ज्यां आंखे करी कांइज देखाय नही मात्र अवधिज्ञाने करी थोडुं थोडुं घुकनी पेरे देखे अने ( तिव्वाभितावेनरएपडंतिके० ) ज्यां खेरना अंगाराथी अनंतगणो तापछे एवा नरकनेविषे पडेछे ॥ ३ ॥ ( तिव्वंतसेके० ) जे पुरुष तीव्रपणे करी बेंद्रीयादिक त्रस ( पाणिणोके० ) जीव अने ( थावरेयाके० ) पृथवीकायादिक स्थावर जीव तेने ( जेहिंसतिआयसुहंपडुच्चके० ) येहिनस्तिआत्मसुखंप्रतीत्य एटले जे पुरुष सदाकाल स्वात्मसुखनो अर्थी जाणी करीने हणे तथा ( जेलूसएहोइके० )जे प्राणीउंनुं उपमर्दन करनार होय तथा ( अदत्तहारीके० ) परद्रव्यापहारक एटले अदत्तदाननो लेनार होय तथा ( णसिक्खतीसेयवियस्सकिंचिके० ) नशिक्ष्यतेसेवनीयस्य किंचित् एटले सेववा योग्य एवा जे व्रत पच्चखाणादिक छे ते नकरे अर्थात् अविरति छतोज रहे परंतु काकमांसादिकनी पण विरति करी शके नही. ॥ ४ ॥

---

॥ दीपिका—ये केचिद्बालाअज्ञाजीवितार्थिनः संयमजीवितार्थेन पापानि कर्माणि रौद्राः कुर्वंति ते नरके पचंति । यडुक्तमागमे । केइसुभंतेजीवानेरइअत्ताएकाम्मंपकरंतीति । किंभूते नरके । घोररूपे अतिभयानके तथा ( तमिसंधयारेत्ति ) बहुलतमोंधकारे यत्रात्मापि नोपलभ्यते केवलमवधिनापि मंदंमंदमुलूकाइवाभिपश्यंति । तथा चागमः । काणलेसेणंभंतेणेरइकाएहलेस्संनेरइअंपणिहाएचहिणा सव्वातासमन्नात्मभिलोएमाणीकेवइयंखेत्तं जाणइपासइ इत्तिरिअमेवखेत्तं जाणइपासइ इत्यादि । पुनः किंभूते नरके । तीव्रोडुःसहः खादिरांगारमहाराशितापादनंतगुणाभितापः संतापोयस्मिन् स तीव्राभितापस्तस्मिन् ॥ ३ ॥ तीव्रं निर्दयोयस्त्रसान् द्वींद्रियादीन् स्थावरांश्च पृथ्वीकायादीन हिनस्ति हंति आत्मसुखं प्रतीत्य स्वशरीरसुखकृते यः प्राणिनां लूपकउपमर्दकारी अदत्तहारी अदत्तग्राही सन शिक्षते नाभ्यसति ( सेयविअस्सत्ति ) सेवनीयस्य संयमस्य किंचित् मांसादेरपि निवर्ततइत्यर्थः ॥ ४ ॥

---

॥ टीका—यथाप्रतिज्ञातमाह । ( जेकेइत्यादि ) ये केचन महारंभपरिग्रहपंचेंद्रियवधपिशितभक्षणादिके सावद्यानुष्ठाने प्रवृत्तावालाअज्ञारागद्वेषोत्कटास्तिर्यग्मनुष्याइहास्मिन्संसारेऽसंयमजीवितार्थिनः पापोपादानभूतानि कर्माण्यनुष्ठानानि रौद्राः प्राणिनां भयोत्पादकत्वेन भयानकहिंसानृतादीनि कर्माणि कुर्वंति तएवंभूतास्तीव्रपापोदयवर्तिनोघोररूपेऽत्यंतभयानके ( तमिसंधयारेत्ति ) बहुलतमोंधकारे यत्रात्मापि नोपलभ्यते चक्षुषा केवलमवधिनापि मंदंमंदमुलूकाइवाभि पश्यंति । तथाचागमः । काणहलेसेणंभंतेणेरइएकण्हलेस्संणेरइअंपाणयाएउहिणासव्वउ समंतासमभिलोएमाणेकेव

इयंखेत्तंजाणई केवइयंखेत्तंपासइ गोयमाणोबहुययरं खेत्तंजाणइणो बहुययत्तरंपासइ इत्तरियमेवखेत्तंजाणइइत्तरियमेवपासइइत्यादि । तथा तीव्रोडःसहः खदिरांगारमहाराशितापादनंतगुणोऽनितापः संतापोयस्मिन् सतीव्रानितापस्तस्मिन् एवंनूते नरके बहुवेदनेऽपरित्यक्तविषयाभिष्वंगाः स्वकृतकर्मगुरवः पतंति तत्र च नानारूपा वेदनाः समनुभवंति । तथाचोक्तं । अच्छंडियविसयसुहो, पडइअविज्झायसिविसिहाणिवहे ॥ संसारोदहिवलयं, सुहंमिडःखागरेनिरए ॥ १ ॥ पायकतोरठलमुह, कुहरुष्ठलियंरुहिरगंडूसे कयचुक्कड्डाविरिकंविवईणदेहहे ॥ २ ॥ जंतंतरनिङ्कंतु, ठलंतसंसदनरियदिशिविवरे ॥ मज्जंतुप्फिडियसमुञ्जलंतसीलहिसंथाए ॥ ३ ॥ सुक्ककंदकडाहु, कढंतडक्कयकपंतकम्मंते ॥ मूलविनिबुखित्तु,ढदेहणिच्चंतपङ्मारे ॥ ४ ॥ वद्धंधयारडुग्गं बंधणायारडुढरकिलेसे ॥ निन्नकरचरणसंकर, रुहिरवसाडुग्गमप्पवहे ॥ ५ ॥ गिद्धमुहणिहत्तरकि,त्तबंधणो मुद्धकंविरकबंधे ॥ दडगहियतत्तसंडा, सयग्गविसुमुक्कुम्भियजीहो ॥ ६ ॥ निरकंकुसग्गकड्ढिय, कंटयरुक्कगजज्जरसरीरे ॥ निमिसंतरंपि डुक्खह,सुक्खेवरकेडःखंमि ॥ ७ ॥ इयनीसणंमिणिरए, पडंतिजेविविहसत्तवहिनिरया ॥ सच्चप्पहायनरा, जयंमिकयपावसंघाया ॥ ८ ॥ इत्यादि ॥ ३ ॥ किंचान्यत् । ( तिवंतसेत्यादि ) । तथा तीव्रमतिनिरनुकंपं रौद्रपरिणामतया हिंसायां प्रवृत्तः । त्रस्यंतीतित्रसाद्वींद्रियादयस्तांस्तथा स्थावरांश्च पृथिवीकायादीन् यः कश्चिन्महामोहोदयवर्ती हिनस्ति व्यापादयति । आत्मसुखंप्रतीत्य स्वशरीरसुखकृते नानाविधैरुपायैर्यः प्राणिनां लूपकउपमर्दकारी नवति तथा अदत्तमपहर्तुं शीलमस्याऽसावदत्तहारी परद्रव्यापहारकस्तथा न शिक्षते नाभ्यसति । नादत्ते (सेयवियस्सत्ति ) सेवनीयस्यात्महितैषिणा सदनुष्ठाने यस्य संयमस्य किंचिदिति । एतडुक्तं नवति । पापोदयाद्विरतिपरिणामं काकमांसादेरपि मनागपि नविधत्ते इति ॥४॥

पागब्भि पाणे बहुणंतिवाती, अनिव्वते घातमुवेति बाले ॥ णिहो
णिसं गडति अंतकाले, अहोसिरं कट्टु उवेइ डुग्गं ॥५॥ हण छिं
दहभिंद णं दहेति, सद्दे सुणिंता परहम्मियाणं ॥ ते नारगाओ
नयभिन्नसन्ना, कंखंति कन्नामदिसं वयामो ॥ ६ ॥

अर्थ-(पागब्भिके०) प्रागल्भिक एटले धृष्टपणे पापनेविषे निशंकथतो ( पाणेबहुणंतिवाती के०) बहुनांप्राणानतिपाती घणाप्राणीउनो अतिपाती विनाशक एटले जीवघातक, धृष्टपणे बोलनार शास्त्रमांहे जे हिंसाते हिंसा नही एवा वचननो बोलनार (अनिव्वते के०) अनिवृत्त एटले क्रोध थकी उपशम्यो नथी, एवो थतो (बालेके०) बाल एटले अज्ञा

नी ( घातं के० ) नरकने ( उपैतिके० ) पामे ( अंतकालेके० ) अंतकाले एटले मरणका ले ( अहोसिरंकट्टु के० ) नीचुं मस्तक करी ( णिहोणिसं के० ) अधोगतियें अंधकारने विषे ( गछतिके० ) जाय (दुग्गंके०) दुर्ग विषम स्थानके छेदनभेदनादिक दुःखने (उवेइ के०) पामे ॥५॥ हवे ते नारकी पर्याप्त भावे पोहोता थका परमाधार्मिकना शब्द सांभले ते कहेछे ( हणके० ) मुजरादिके करी हणो ( छिंदहके० ) खड्गादिकेकरी छेदो (भिंदणंके०) शूलादिके करी भेदो (दहेतिके०) अग्नीये करी बालो इत्यादिक करणने दुःखकारी एवा (परहम्मियाणं के०) परमाधार्मिकना (सद्देके०) शब्दने ( सुणिंताके० ) सांभलीने ( ते नारगाउ के० ) ते नारकीउ ( भयभिन्नसन्नाके० ) भयेकरीने नाश पाम्याछे संज्ञा एटले मनव्यापार जेना तथा गात्र पण भागाछे एवा छतां ( कंखंतिके० ) एवी वांछना करेके ( कन्नामदिसंवयामो के० ) कांदिशंव्रजामः एटले अमे कयी दिशाये नाशी जइये के ज्यां गया थका अमने भय टली जाय. ॥ ६ ॥

---

॥ दीपिका–प्रागल्भ्यं धार्ष्ट्यं विद्यते यस्य स प्रागल्भी बहूनां प्राणिनामतिपाती हिंसकः सर्पहिंसादिवत् अनिर्वृत्तः कदाचिदप्यनुपशांतः सन् घातं नरकमुपैति बालःस अंतकालेन्यक् नीचैः (निसंति) अंधकारं गछति स्वपापेनाधःशिरःकृत्वा दुर्गं विषमं पीडास्थानमुपैति ॥ ५ ॥ हतंमुजरादिना, छिन्नंखड्गादिना भिन्नं शूलादिना दग्धं वन्हिना । णंवाक्यालंकारे । तदेवंभूतान् परमाधार्मिकाणां शब्दान् शृण्वंति श्रुत्वा वा ते नारकाभयेन भिन्ना नष्टा संज्ञा येषां ते तथा कांदिशं व्रजेम इति कांक्षंति ॥ ६ ॥

---

*॥ टीका–तथा ( पागब्भिपाणेइत्यादि ) । प्रागल्भ्यं धार्ष्ट्यं तद्विद्यते यस्य सप्रागल्भी* बहूनां प्राणिनां प्राणानतीव पातयितुं शीलमस्य सभवत्यतिपाती । एतदुक्तं भवति । अतिपात्यपि प्राणिनः प्राणानतिधार्ष्ट्यो वदति । यथा वेदाभिहिता हिंसाऽहिंसैव भवति। तथा राज्ञामयं धर्मोयदुत आखेटकेन विनोदक्रिया । यदिवा। नमांसभक्षणे दोषो,न मद्ये न च मैथुने । प्रवृत्तिरेषा भूतानां, निवृत्तिस्तुमहाफलाइत्यादि । तदेवं क्रूरसिंहकृष्णसर्पवत् प्रकृत्यै प्राणातिपातानुपाती अनिर्वृतः कदाचिदप्यनुपशांतः क्रोधाग्निना दह्यमानोयदिवा लुब्धकमत्स्यादिवधकजीविकाप्रसक्तः सर्वदा परिणामपरिणतोऽनुपशांतोहन्यते प्राणिनः स्वकृतकर्मविपाकेन यस्मिन् सघातोनरकस्तमुपसामीप्येनैति। याति कोवालोऽज्ञो रागद्वेषोदयवर्ती सोंतकाले मरणकाले ( निहोत्ति ) न्यगधस्तात् (णिसंति) अधोंधकारं गच्छतीत्यर्थः । यथा तेन दुश्चरितेनाधः शिरःकृत्वा दुर्गं विषमं यातनास्थानमुपैति अवाकूशिरा नरके पततीत्यर्थः ॥ ५ ॥ सांप्रतं पुनरपि नरकांतर्वर्तिनोनारका यदनुभवंति तद्दर्शयितुमा

इयंखेत्तंजाणई केवइयंखेत्तंपासइ गोयमाणोबहुययरं खेत्तंजाणइणो बहुयययत्तरंपासइ इत्तरियमेवखेत्तंजाणइइत्तरियमेवपासइइत्यादि । तथा तीव्रोऽसह्यः खदिरांगारमहाराशितापादनंतगुणोऽनितापः संतापोयस्मिन् सतीव्रानितापस्तस्मिन् एवंभूते नरके बहुवेदनेऽपरित्यक्तविषयाभिष्वंगाः स्वकृतकर्मगुरवः पतंति तत्र च नानारूपा वेदनाः समनुभवंति । तथाचोक्तं । अच्छंडियविसयसुहो, पडइअविज्झायसिविसिहाणिवहे ॥ संसारोदहिवलयं, सुहंमिङःखागरेनिरए ॥ १ ॥ पायकतोरत्थलमुह, कुहरुत्थलियंरुहिरगंडूसे करचलुकत्तडहाविरिकविवईणदेहध्दे ॥ २ ॥ जंतंतरभिज्जंतु, हलंतसंसद्दभरियदिसिविवरे ॥ मज्जंतुफिडियसमुच्छलंतसीसच्चिसंथाए ॥ ३ ॥ सुक्कंकंदकडाहु, कढंतडक्कयकयंतकम्मंते ॥ मूलविभिन्नुखिन्नु,ध्देहणिच्चंतपञ्भारे ॥ ४ ॥ बद्धंधयारडुग्गं बंधणायारडुध्दरकिलेसे ॥ भिन्नकरचरणसंकर, रुहिरवसाडुग्गमप्पवहे ॥ ५ ॥ गिध्दमुहणिदयकिं,चबंधणो मुध्दकंविरकबंधे ॥ दडगहियतत्तसंडा, सयग्गविसुमुरकुम्भियजीहो ॥ ६ ॥ निरकंकुसग्गकड्डिय, कंटयरुक्खग्गजज्जरसरीरे ॥ निमिसंतरंपि डुल्लह,सुक्खेवरकेडुःखंमि ॥ ७ ॥ इयभीसणंमिणिरए, पडंतिजेविविहसत्तवहिनिरया ॥ सच्चप्पगयनरा, जयंमिकयपावसंघाया ॥ ८ ॥ इत्यादि ॥ ३ ॥ किंचान्यत् । ( तिव्वंतसेत्यादि ) । तथा तीव्रमतिनिरनुकंपं रौद्रपरिणामतया हिंसायां प्रवृत्तः । त्रस्यंतीतित्रसा द्वींद्रियादयस्तांस्तथा स्थावरांश्च पृथिवीकायादीन यः कश्चिन्महामोहोदयवर्ती हिनस्ति व्यापादयति । आत्मसुखंप्रतीत्य स्वशरीरसुखकृते नानाविधैरुपायैर्यः प्राणिनां लूपकउपमर्दकारी भवति तथा अदत्तमपहर्तुं शीलमस्याऽसावदत्तहारी परद्व्यापहारकस्तथा न शिक्ते नाभ्यसति । नादत्तं (सेयवियस्सत्ति ) सेवनीयस्यात्महितैषिणा सदनुष्ठाने यस्य संयमस्य किंचिदिति । एतडक्तं भवति । पापोदयाद्विरतिपरिणामं काकमांसादेरपि मनागपि नविधत्ते इति ॥४॥

पागब्भि पाणे बहुणंतिवाती, अनिवते घातमुवेति बाले ॥ णिहो
णिसं गच्छति अंतकाले, अहोसिरं कट्टु उवेइ डुग्गं ॥५॥ हण छिं
दहभिंद णं दहेति, सद्दे सुणिंता परहम्मियाणं ॥ ते नारगाओ
भयभिन्नसन्ना, कंखंति कन्नामदिसं वयामो ॥ ६ ॥

अर्थ—(पागब्भिके०) प्रागल्भिक एटले धृष्टपणे पापनेविषे निशंकथतो ( पाणेबहुणंतिवाती के०) बहुनांप्राणानतिपाती घणाप्राणीओनो अतिपाती विनाशक एटले जीवघातक, धृष्टपणे बोलनार शास्त्रमांहे जे हिंसाते हिंसा नही एवा वचननो बोलनार (अनिवते के०) अनिवृत्त एटले क्रोध थकी उपशम्यो नथी, एवो थतो (बालेके०) बाल एटले अज्ञा

॥ दीपिका—अंगारराशिं ज्वलितं सह ज्योतिषा वह्निना वर्तत इति संज्योतिर्भूमिस्तेनो पमा यस्यां सा तडुपमा तामंगारतुल्यां भूमिमाक्रमंतस्ते नारकादह्यमानाः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंति । तत्र बादराग्नेरभावात्तडुपमां भूमिमित्युक्तं । एतदपि दिग्दर्शनार्थमुक्तं । अन्य था नारके चिरस्थितिकालस्थितयः । तथाहि । उत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि जघन्य तस्तु दशवर्षसहस्राणि तिष्ठंति ॥ ७ ॥ सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । यदि ते त्वया श्रु ता वैतरणी नाम क्षारोष्णरुधिराकारजलवाहिनी नदी अनिडुर्गा विषमा।यथा निशितस्ती क्ष्णः क्षुरः स्यादेवं तीक्ष्णानि स्रोतांसि प्रवाहायस्याः सा तीक्ष्णस्रोताः। तथा ते नारका तापतप्ताजलं पातुमिच्छवो वैतरणीमतिडुर्गां तरंति । किंभूताः ।इषुणा शरेण प्रतोदेने व प्रेरिताः शक्तिभिः शस्त्रविशेषैर्हन्यमानाः । तृतीयार्थे सप्तमी ॥ ८ ॥

---

॥ टीका—तेच भयोद्भ्रांतादिक्षु नष्टायदनुभवंति तद्दर्शयितुमाह । ( इंगालेत्यादि ) अं गारराशिं खदिरांगारपुंजं ज्वलितं ज्वालाकुलं तथा सह ज्योतिषोद्योतेन वर्ततइति सज्यो तिर्भूमिस्तेनोपमायस्याः सा तडुपमा तामंगारसन्निभां भूमिमाक्रमंतस्ते नारकादंदह्यमा नाः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंति । तत्र बादराग्नेरभावात्तडुपमां भूमिमित्युक्तं । एतदपि दिग्दर्शनार्थमुक्तमन्यथा नारकतापस्येहत्याग्निना नोपमा घटते । तेच नारकामहानगरदा हाधिकेन तापेन दह्यमानाअरहस्वराअप्रकटस्वरामहाशब्दाः संतस्तत्र तस्मिन्नरकावा से चिरं प्रभूतं कालं स्थितिरवस्थानं येषां ते । तथा ह्युत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा णि जघन्यतोदशवर्षसहस्राणि तिष्ठंतीति ॥ ७ ॥ ( जइतेसुयाइत्यादि ) । सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रतीदमाह । यथा भगवतेदमाख्यातं यदिते त्वया श्रुता श्रवणपथमुपाग ता वैतरणी नाम क्षारोष्णरुधिराकारजलवाहिनी नदी आभिमुख्येन डुर्गाभिडुर्गा डुःखोत्पा दिका । तथा निशितोयथा क्षुरस्तीक्ष्णानि शरीरावयवानां कर्तकानि स्रोतांसि यस्याः सा । तथा तेच नारकास्तप्तांगारसन्निभां भूमिं विहायोदकं पिपासवोऽभितप्ताः संतस्तापाप नोदायाऽभिपिपिक्षवोवा तां वैतरणीमभिडुर्गां तरंति ।कथंभूताः।इषुणा शरेण प्रतोदेनेव चो दिताः प्रेरिताः शक्तिभिश्च हन्यमानास्तामेव भीमां वैतरणीं तरंति ।तृतीयार्थे सप्तमी॥८॥

कीलेहिं विज्झंति असाहुकम्मा, नावं उविंते सइ विप्पहूणा ॥
अन्नेतु सूलाहिं तिसूलियाहिं, दीहाहिं विद्धूण अहे करंति ॥९॥
केसिंच बंधित्तु गले सिलाउ, उदगं सि बोलंति महालयंसि ॥ क
लंबुयावालुय मुम्मुरेय, लोलंति पच्चंति अ तछ अन्ने ॥ १० ॥

अर्थ—(असाहुकम्माके०) पत्नीते असाधुकर्मा पापकारक एवा नारकी ते नावमाहेसाजे

द। ( हणछिंदहेत्यादि )। तिर्यङ्मनुष्यनवात्सत्वानरकेपूत्पन्नाश्चंतर्मुहूर्तेन निर्जूनांडज सन्निनानि शरीराण्युत्पादयंति। पर्याप्तिनावमागताश्चातिनयानकान् शब्दान् परमाधार्मिकजनितान् शृण्वंति ।तद्यथा। हतं मुजरादिना छिदितं खड्गादिना जिन्नं मूलादिना दग्धं मुर्मुरादिना।णमितिवाक्यालंकारे। तदेवंनूतान् कर्णासुखान् शब्दान् नैरवान् श्रुत्वा तेतु नारकान्नयोद्भांतलोचनान्नयेन नीत्या निन्ना नष्टा संज्ञांऽतःकरणवृत्तिर्येषांते तथा नष्टसंज्ञाश्च कांदिशं व्रजामः कुत्र गतानामस्माकमेवंनूतस्यास्य महाघोरारवदारुणस्य डुःखस्य त्राणं स्यादित्येतत्कांक्षंतीति ॥ ६ ॥

इंगालरासिं जलियं सजोति, ततोवमं नूमिमणुक्कमंता॥ तेमज्झ
माणा कलुणं थणंति, अरहस्सरा तड चिरहितीया ॥७॥ जइ
ते सुया वेयरणीनिडुग्गा, णिसिर्ठ जहा खुरइव तिस्कसोया॥
तरंति ते वेयरणींनिडुग्गां, उसुचोइयासत्ति सुहम्ममाणा॥ ८॥

अर्थ–एम चिंतवी नयत्रांत ठतां नाशता थकां जे पामे ते कहेठे. ( इंगालरासिंजलियंसजोति के० ) खदिरांगार एटले खयरना अंगाराना पुंज ज्वाला कराल ज्योति सहित एवीजे नूमि (ततोवमं के०) तेनीठे उपमा जेने (नूमिमणुक्कमंता के०) एवी नूमिने अतिक्रमता ( तेमज्झमाणा के० ) तेनारकी अत्यंत दाऊता बलता थका ( कलुणंथणंति के० ) कलुनमहाशब्दास्तनंति करुण एटले घणा दीनस्वरे आक्रंद करे परंतु ते नारकी केवाठे तोके (अहरहस्सरा के०) जेनो स्वर प्रगट जाणवामां आवे नही एटले जेवा गुंगाना शब्द तेवा शब्दे बोले वली केवाठे तोके ( तडचिरहीतीया के० ) त्यां घणोकाल रेवानी स्थितिठे जेनी एटले उत्कृष्ट तेत्रीश सागरोपमनी स्थिति अने जघन्य दश हजार वर्षनी स्थिति जाणवी. ॥ ७ ॥ गुरु शिष्य प्रत्यें कहेठे के (जइतेसुयाके०) जेते सांनलीठे शुं शांनलीठे.(वेयरणीनिडुग्गाके०) वेतरणी नामनी नदी घणी डुर्ग एटले विषम केवी विषमठे तोके ( णिसिर्ठजहाखुरइवतिस्कसोया के० ) क्षुर एटले ठुरीनी पेरे तीक्ष्णठे स्रोत एटले पाणीनुं पूर जेने विषे एवी ( वेयरणींनिडुग्गां के० ) ते वेतरणी नदी माहा विषम तेमां ( तेके० ) ते नारकीर्ठ नरकनी नूमिना तापे तप्या ठता पाणीना अर्थि तरस्या थका ( तरंति के० ) तरे पण केवा ठता तरे तोके त्यां जवाने अण इछता ( उसुचोइयाके०) बाणना चोया एटले प्रेख्या तथा ( सत्तिसुहम्ममाणा के० ) शक्ति नाले करी हणाता थका ते नदीने डुखे पीडया ठता बलात्कारे ते वेतरणीनदी अगाधठे माटे तरवाने असमर्थ ठता पण तरे तेवारे घणाज डुःखी थाय पठी तरवाने नौकानी वांढा करे तेवारे फरी अत्यंत डुःखी थाय ते आगली गाथायें कहेठे. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—अंगारराशिं ज्वलितं सह ज्योतिषा वह्निना वर्तत इति सज्योतिर्नूमिस्तेनो पमा यस्यां सा तडुपमा तामंगारतुल्यां नूमिमाक्रमंतस्ते नारकादह्यमानाः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंति। तत्र बादराग्नेरनावात्तडुपमां नूमिमित्युक्तं। एतदपि दिग्दर्शनार्थमुक्तं। अन्य था नारके चिरस्थितिकालस्थितयः। तथाहि। उत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि जघन्य तस्तु दशवर्षसहस्राणि तिष्ठंति ॥ ७ ॥ सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह। यदि ते त्वया श्रु ता वैतरणी नाम क्षारोष्णरुधिराकारजलवाहिनी नदी अनिडुर्गा विषमा।यथा निशितस्ती क्ष्णः क्षुरः स्यादेवं तीक्ष्णानि स्रोतांसि प्रवाहायस्याः सा तीक्ष्णस्रोताः। तथा ते नारका तापतप्ताजलं पातुमिच्छवो वैतरणीमतिडुर्गां तरंति। किंनूताः।इषुणा शरेण प्रतोदेने व प्रेरिताः शक्तिनिः शस्त्रविशेषैर्हन्यमानाः। तृतीयार्थे सप्तमी ॥ ८ ॥

---

॥ टीका—तेच नयोद्भ्रांतादिक्षु नष्टायदनुनवंति तदर्शयितुमाह। (इंगालेत्यादि) अं गारराशिं खदिरांगारपुंजं ज्वलितं ज्वालाकुलं तथा सह ज्योतिषोद्योतेन वर्ततइति सज्यो तिर्नूमिस्तेनोपमायस्याः सा तडुपमा तामंगारसन्निनां नूमिमाक्रमंतस्ते नारकादंदह्यमा नाः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंति। तत्र बादराग्नेरनावात्तडुपमां नूमिमित्युक्तं। एतदपि दिग्दर्शनार्थमुक्तमन्यथा नारकतापस्येहत्याग्निना नोपमा घटते। तेच नारकामहानगरदा हाधिकेन तापेन दह्यमानाअरहस्वराअप्रकटस्वरामहाशब्दाः संतस्तत्र तस्मिन्नरकावा से चिरं प्रनूतं कालं स्थितिरवस्थानं येषां ते। तथा ह्युत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा णि जघन्यतोदशवर्षसहस्राणि तिष्ठंतीति ॥ ७ ॥ (जइतेसुयाइत्यादि)। सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रतीदमाह। यथा नगवतेदमाख्यातं यदिते त्वया श्रुता श्रवणपथमुपाग ता वैतरणी नाम क्षारोष्णरुधिराकारजलवाहिनी नदी आनिमुख्येन डुर्गानिडुर्गा डुःखोत्पा दिका। तथा निशितोयथा क्षुरस्तीक्ष्णानि शरीरावयवानां कर्तकानि स्रोतांसि यस्याः सा। तथा तेच नारकास्तप्तांगारसन्निनां नूमिं विहायोदकं पिपासवोऽनितप्ताः संतस्तापाप नोदायाऽनिपिपिक्षवोवा तां वैतरणीमनिडुर्गां तरंति।कथंनूताः।इषुणा शरेण प्रतोदेनेव चो दिताः प्रेरिताः शक्तिनिश्च हन्यमानास्तामेव नीमां वैतरणीं तरंति।तृतीयार्थे सप्तमी॥८॥

कीलेहिं विऊंति असाहुकम्मा, नावं उविंते सइ विप्पहूणा ॥
अन्नेतु सूलाहिं तिसूलियाहिं, दीहाहिं विद्धूण अहे करंति ॥ए॥
केसिंच बंधित्तु गले सिलाउ, उदगंसि बोलंति महालयंसि ॥ क
लंबुयावालुय मुम्मुरेय, लोलंति पचंति अ तड अन्ने ॥ १० ॥

अर्थ—(असाहुकम्माके०) पशीते असाधुकर्मा पापकारक एवा नारकी ते नावमाहेजाजे

लोखंमना ( कीलेहिंके० ) खीला तेणेकरी ( विझंतिके० ) वींधाय ( नावंउविंतेके० ) नावायें चढया ( सइविप्पहूणाके० ) स्मृतिविप्रहीणा स्मृतिहीन एटले विवेकरहित थाय तथा ( अन्नेतुके० ) अन्य वली परमाधार्मिक लोक ते नारकीउने नाशी जता देखीने (सूलाहिंतिसूलियाहिंदीहाहिंके०) त्रिशूलसहित एवी दीर्घ एटले लांबी शूलीयें ( विद्रू णअहेकरंतिके० ) वींधी करीने नीचा धरतिने विषे नाखे ॥ए॥ (केसिंच बंधित्तुगलेसिला उ के० ) केटलाक नारकीने परमाधार्मिक लोक तेमना गलामां अत्यंत वजनदार शिला बांधीने ( महालयंसि के० ) माहा अगाध उंमा एवा ( उदगंसिबोलंति के० ) पाणीमां बोले फरी तेमांहेथी काढीने पछी ( कलंबुयावालुयमुम्मुरेयके० ) कलंबू फूल शरखी वे लूने विषे तथा मुम्मुरेय एटले अग्नीने विषे ( लोलंति के० ) आघा पाछा घाले अत्यंत ततरेती मांहे चणानी पेरे शेके ( तत्थअन्ने के० ) त्यां वली अन्य परमाधार्मिको ( पचं तिअके० ) ते नारकीने मांसनी पेशीनी पेरे पचावे तुहंपियाइ मांसाइ इत्यादि.॥ १०॥

॥ दीपिका—तान् नारकान् वैतरणीजलतप्तान् लोहकीलाकुलां नावमागछंतः पूर्वारूढा असाधुकर्माणः परमाधार्मिकाः कीलेषु कंठेषु विध्यंति तेच विध्यमानावैतरणीजलेन न ष्टसंज्ञाः स्मृतिविप्रहीणागतकर्तव्यविवेकाः स्युः। अन्ये पुनर्नरकपालानारकैः क्रीडंतस्ता न् त्रिशूलिकाभिः शूलाभिर्दीर्घाभिर्विध्वा अधोभूमौ जालयंति ॥ए॥ केषांचिन्नारकाणांगले ते परमाधार्मिकाः शिलां बध्वा महति जले बोलंति मज्जयंति ततः समाकृष्य पुनर्वैतर णीनद्याः कलंबुकावालुकायां मुर्मुराग्नौ लोलयंति अन्येच नारकान् तत्र नारकावासे त्रप्टकक्षिप्तमांसवत् पचंति ॥ १० ॥

॥ टीका—किंच (कीलेहीत्यादि ) तांश्च नारकानत्यंतक्षारोलेन दुर्गंधेन वैतरणीजले नाभितप्तानायसकीलाकुलां नावमुपगछतः पूर्वारूढाअसाधुकर्माणः परमाधार्मिकाः कीलेषु कंठेषु विध्यंतीति। तेच विध्यमानाः कलकलायमानेन सर्वस्रोतोनुयायिना वैतर णीजलेन नष्टसंज्ञाअपि सुतरां स्मृत्या विप्रहीणाअपगतकर्तव्यविवेकाभवंति। अन्ये पु नर्नरकपालानारकैः क्रीडंतस्तान्नष्टांस्त्रिशूलिकाभिर्दीर्घिकाभिरायताभिर्विध्वा अधोभूमौ कुर्वंतीति ॥ ए ॥ अपिच ( केसिंचइत्यादि ) केषां चिन्नारकाणां परमाधार्मिकाम हतीं शिलां गले बध्वा महत्युदके ( बोलंतित्ति ) निमज्जयंति। पुनस्ततः समाकृष्य वै तरणीनद्याकलंबुकावालुकायां मुर्म्मुराग्नौ च लोलयंति अतितप्तवालुकायां चणका निव समंततोयोलयंति। तथान्ये तत्र नरकावासे स्वकर्मपाशावपाशितान्नारकान् सुंठके प्रोतकमांसपेशीवत् पचंति भर्जयंतीति ॥ १० ॥

असूरियं नाम महानितावं, अंधतमं डुप्पतरं महंतं ॥ उड्डं अ
हेअं तिरियं दिसासु, समाहित जन्न गणीक्रियाइं ॥ ११ ॥ जं
सी गुहाए जलणेतिउट्टे, अविजाणउ मस्सइ लुत्तपसो ॥ सया
य कलूणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीयं अतिदुक्कधम्मं ॥१२॥

अर्थ-)असूरियंनामके०) नथी ज्यां सूर्य तेने असूर्य स्थानक कहिए एटले कुंनीने, आकारे माहाअंधकाररूप नरकावास, तथा ज्यां (महानितावं के०) माहा अत्यंत तापछे (अंधतमं के० ) अत्यंत अंधकारछे, एवा ( डुप्पतरं महंतंके० ) महोटा विशाल डुस्तर स्थानकने पापना उदयथी ते नारकी पामेछे. (जन्नके०) जे नरकावासमां सर्वकाल (उड्डंअहेअंतिरियं दिसासु के० ) उंचुं नीचुं अने तिर्छु एटले सर्व दिशाउने विषे ( अगणीक्रियाइंके० ) प्रज्वलित अग्नीने (समाहित के०)स्थाप्यो छे अर्थात् ज्यां सदा काल अग्नी बल्यां करेछे एवा कष्ट मांहे नारकीउने पाडे. ॥ ११ ॥ (जंसीगुहाए जल णतिउट्टेके०) जे नरकावासने विषे उंटने आकारें गुफाछे ते गुफा मांहे प्रवेश करतोज अ ग्नीना आवर्त्तमां पडे एवो (अविजाणउ के० ) अजाण बापडो पोताना कर्मने नथी जाणतो तथा(लुत्तपसोके० ) लुप्तप्रज्ञो एटले जेनी प्रज्ञा लोपाइ गइछे, एवो छतो ते नार की त्यां(मस्सइके०) दाजे बले (सयायकलुणंके०) सर्वकाल करुणप्राय दयामणु एवुं (पुण घम्मठाणंके०) पूर्ण तापनुं स्थानक त्यां (गाढोवणीयंके०) आकरा पापकर्म करी ढोयुं (अ तिडुक्कधम्मंके० ) ज्यां अत्यंत डुःखरूपनुंज धर्म एटले स्वनावछेएवुं स्थानक नारकी पामे.

॥ दीपिका-(असूर्येति) नविद्यते सूर्योयस्मिन् सोऽसूर्योनरकोंधकारमयस्तं महानि तापं अंधतमसं डुष्प्रतरं महांतं नरकं पापोदयाद् व्रजंति ।तत्र च नरके उर्ध्वमधस्तिर्यक् च सर्वदिक्षु समाहितोव्यवस्थापितोऽग्निः प्रज्वलतीति ॥ ११ ॥ (जंसीति) यस्मिन् न रके प्राणी गुहायामिव ज्वलनेऽमीऽतिवृत्तः प्राप्तवेदनानुगतः स्वकृतं पापमजानन् लुप्तप्रज्ञो गतप्रज्ञाविवेकोदंदह्यते । तथा सदा करुणं पुनर्दानं घर्मस्थानमाप्तस्थानं गाढमत्यर्थमु पनीतं डुष्कृतेन अतिडुःखरूपोधर्मस्वनावोयस्मिन् तत्तथा एवंविधं स्थानं ते व्रजंति नय त्र डुःखविश्रामः । यतः । अछिनिमीलणमेत्तं, नछिसुहंडुक्कमेवअणुबछं ॥ निरएनेरइआ णं, अहोनिसंपच्चमाणाणं ॥ १२ ॥

॥ टीका-तथा ( असूरियमित्यादि ) । नविद्यते सूर्योयस्मिन् सोऽसूर्योनरकोबह लांधकारः कुंनीपाकाकृतिः सर्वएव वा नरकावासोऽसूर्योव्यपदिश्यते । तमेवंनूतं महा

भितापमंधतमसं डुष्प्रतरं डुरुत्तरं महांतं विशालं नरकं महापापोदयाद्व्रजंति । तत्र च नरके ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् सर्वतः समाहितः सम्यगाहितोव्यवस्थापितोग्निर्जाज्वलतीति । पच्यते च । (समूसिउंजह्णगणीक्रियांइ) यत्र नरके सम्यगूर्ध्वंश्रितः समुच्छ्रितोऽग्निः प्रज्वलति तं तथाभूतं नरकं वराकाव्रजंति. ॥ ११ ॥ किंचान्यत् ( जंसिगुहाएइत्यादि ) यस्मिन्नरकेऽतिगतोऽसुमान् गुहायामित्युष्ट्रिकाकृतौ नरके प्रवेशितोज्वलनेऽग्नावतिवृत्तोवेदनाभिभूतत्वात्स्वकृतं डुश्चरितमजानन् लुप्तप्रज्ञोऽपगतावधिविवेकोदंदह्यते । तथा सदा सर्वकालं पुनः करुणप्रायं कृत्स्नं वा घर्मस्थानमुष्णस्थानं तापस्थानमित्यर्थः । (गाढंति ) अत्यर्थमुपनीतं ढौकितं डुष्कृतकर्मकारिणां यत् स्थानं तत्ते व्रजंति । पुनरपि तदेव विशिनष्टि । अतिडुःखरूपोधर्मः स्वभावोयस्मिन्निति । इदमुक्तं भवति । अक्षिनिमेषमात्रमपि कालं न तस्य डुःखस्य विश्रामइति । तडुक्तं । अद्धि णिमीलणमेत्तं णत्थि सुहं डुक्खमेव पडिबद्धं ॥ णिरए णेरइयाणं, अहोणिसं पच्चमाणाणं ॥ १ ॥ १२ ॥

चत्तारि अगणिउ समारभित्ता, जेहिं कूरकम्मा भितविंति बालं॥
ते तब चिठंति भितप्पमाणा, मछावजीवंतुवजोतिपत्ता ॥१३॥ सं
तछणं नाम महाहितावं, ते नारया जब असाहुकम्मा॥ हछेहि
पाएहिय बंधिऊणं, फलगंवतछंति कुहाडहछा ॥ १४ ॥

अर्थ-( चत्तारिअगणिउ समारभित्ता के० ) चारेदिशे चार अग्नी समारंभीने एटले प्रज्वलित करीने (जेहिं के० ) जे नरकावासने विषे (कूरकम्मा के० ) क्रूरकर्मना करनार एवा परमाधार्मिको ते (अभितविंतिबालंके०) अज्ञानी एवा बापडा नारकीउने तपावे ( तेतबचिठंतिभितप्पमाणाके०) तेनारकी त्यां पूर्वोक्त रीते ताप सहन करता कदर्थता अत्यंत डुःख भोगवता छतां घणा काल सुधी रहे कोनीपेंरे तोके ( मछावजीवंतुवजोतिपत्ता के० ) जेम जीवता मत्स्य अग्नी पासे मूक्या छता अत्यंत तापनु डुःख पामे पण परवश पणाने लीधे त्यांथी नासी शके नही, तेमते नारकीउ पण जाणी लेवा. ॥ १३ ॥ (संतछणंनाम के०) त्यां ते नरकमांहे नारकीउने त्राछवा छेदवानुं जे स्थानकछे ते केवुंछे तोके (महाभितापं के०) सर्वने महा डुःखनुं कारणछे (जब के०) ज्यां (असाहुकम्मा के०) असाधुकर्मि एवा परमाधार्मिको (कुहाडहछा के०) हाथमां कुहाडो लइने (तेनारया के०) ते नारकीउने पकडीने ( हछेहि पाएहियबंधिऊणंके० ) तेना हाथ तथा पग बांधी( फलगंवतछंतिके०)काष्टनी पेरे त्राछे छेदे. ॥ १४ ॥

॥दीपिका-(चत्तारित्ति) चतसृष्वपि दिक्षु चतुरोग्नीन् समारभ्य प्रज्वाल्य यत्र नरके क्रूरक

र्मीणोनरकपालास्तंवालं भूखं अनितापयंति नटित्रवत् पचंति तेनारकास्तत्रानितप्य मानाः कदर्थ्यमानास्तिष्ठंति । यथा मत्स्याजीवंतोज्योतिःप्राप्ता अग्निगताः पीड्यंते तथा पीड्यमानाः ॥ १३ ॥ ( संतछणमिति ) नामेति संनावनायां । संतक्षणं छेदनं महानि तापं महाडुःखोत्पादकं । ततस्ते यत्र नरकावासे असाधुकर्माणः क्रूरकर्माणोनरकपालाः कुगारहस्तान् हस्तैः पादैश्च बध्वा फलकमिव काष्ठखंनमिव तक्ष्णुवंति छिंदंति. ॥ १४ ॥

॥ टीका–अपिच । ( चत्तारिइत्यादि ) चतसृष्वपि दिक्षु चतुरोग्नीन् समारन्य प्रज्वा ल्य यस्मिन्नरकावासे क्रूरकर्माणोनरकपालाश्चानिमुख्येनात्यर्थं तापयंति नटित्रवत्प चंति वालमङ्गं नारकंपूर्वैकृतडश्चरितं । तेतु नारकजीवाएवमनितप्यमानाः कदर्थ्यमानाः स्वकर्मनिगडितास्तत्रैव प्रनूतं कालं महाडुःखाकुले नरके तिष्ठंति । दृष्टांतमाह । यथाजी वंतोमत्स्यामीनाउपज्योतिरग्नेः समीपे प्राप्ताः परवशत्वादन्यत्र गंतुमसमर्थास्तत्रैव तिष्ठंत्येवं नारकाअपि । मत्स्यानां तापासहिष्णुत्वादग्नावस्थंतं डुःखमुत्पद्यतइत्यतस्तद्ग्रह णमिति ॥ १३ ॥ किंचान्यत् ( संतछमित्यादि) समेकीनावेन तक्षणं संतक्षणं । नामश ब्दः संनावनायां । यदेतत्संतक्षणं तत्सर्वेषां प्राणिनां महानितापं महाडुःखोत्पादकमित्ये वं संनाव्यते । यदेवं ततः किंचित्याह । ते नारकानरकपालायत्र नरकावासे स्वनवनादा गताअसाधुकर्माणः क्रूरकर्माणोनिरनुकंपाः कुगारहस्ताः परशुपाणयस्तान्नारकानत्राणान् हस्तैःपादैश्च वध्वा संयम्य फलकमिव काष्ठशकलमिव तक्ष्णुवंति तनूकुर्वंति छिंदंतीत्यर्थः १४

रुहिरे पुणो वच्च समुस्सिअंगे, भिन्नुत्तमंगे परिवत्तयंता॥ पयंति
णं णेरइए फुरंते, सजीवमछेव अयोकवल्ले ॥ १५॥ नोचेव ते तछ
मसीनवंति, णमिज्जती तिव्वनिवेयणाए ॥ तमाणुनागं अणुवेदयं
ता, डुक्खंति डुक्खी इह डुक्कडेणं ॥ १६ ॥

अर्थ–( रुहिरेके० ) ते परमाधार्मिको ते नारकीजीवोनुज रक्त, काढीने कडाहमां नाखी (पुणोके०) फरी तेज लोहीमां ते नारकीउने पचावे ते नारकीउ केवाले तोके (व च्चके० ) डुर्गंध वस्तु तेणेकरी ( समुस्सिके० ) खरडयाले (अंगेके) अंग जेमना एवा ते नारकीने केवीरीते पचावे तोके (भिन्नुत्तमंगेके०) प्रथम तेमनुं उत्तमांग नेदीने पडी (प रिवत्तयंता के० ) परिवर्त्तयंता एटले समु होय तेने उपरांठुं होयकरे अने उपरांठु तेने समु करे अर्थात् उलटावी पलटावीने पचावे. ( पयंतिणंणेरइएफुरंते के० ) त्यां पचता थका ते नारकी तापे करी विव्हल छता आम तेम चलवलता हालता थका भूजे, ट लवले, कोनीपेरे तोके ( सजीवमछेवअयोकवल्ले के० ) जेम जीवता मत्स तप्त लोखं

मनी कडाइमां नाख्या थका अत्यंत टलवले, तेनी पेरे ते नारकीउ पण वेदना सहन करता थका टलवले.॥ १५ ॥ (नोचेवतेतह्मसीनवंति के० ) पण ते नारकी त्यां पचा व्या थका बलीने नस्म नथाय, ( एमिक्ततीतिवनिवेयणाए के० ) मरण पामे नही शरीर बांधे नही. अत्यंत उग्र वेदनाये पण पोताना कृतकर्मे ( तमाणुनागं के० ) ते कर्मनो अनुनाग जे विपाक तेने ( अणुवेदयंता के० ) अनुवेदता एटले नोगवता थका ( दुःखंतिदुखकोइहदुक्कडेणं के० ) सीतोष्णवेदना दहन हनन छेदन नेदन ताडन तर्जनादिक तथा तक्षण त्रिशूलारोपण कुंनीपाक सालमली वृक्षादिके करी उप जावेला जे दुःख, ते दुखेकरी दुखीथका पोताना करेला दुकृतने योगे त्यां जीवता थ काल रहे पण आयुष्य पूरण कस्या विना मरण पामेज नही. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–( रुहिरेत्ति ) ते नरकपालास्तान्नरकान् स्वरुधिरे तप्तकवल्यां प्रक्षिप्ते पुनः पचंति । वर्चःप्रधानानि समुछ्रितानि अंत्राण्यंगानि वा येषांते तथा तान् । नित्रं चूर्णितमु त्तमांगं शिरोयेषांते तथा तान् । के पचंतीत्याह । परिवर्तयंतउत्तानानधोमुखांश्च कुर्वतः। एंवाक्यालंकारे । तान् स्फुरतश्तश्चेतश्च विव्हलान् सजीवमत्स्यानिव लोहकवल्यां पचंति ॥ १५ ॥ ( णोचेवेति ) ते च नारकाएवं वन्हिनापच्यमानाअपि नमपीनवंति नजस्म सात्नवंति नरकानुनावात् । तथा तीव्रवेदनया नापरमग्निप्रक्षिप्तमत्स्यादिकमप्यस्ति य न्मीयते उपमीयते । अथवा तीव्राग्निवेदनयापि अननुनूतस्वकर्मत्वान्नम्रियंते तं छेदनने दनादिकमनुनागं कर्मविपाकमनुवेदयंतोऽनुनवंतस्तिष्ठंति । तथा कृतेन दुष्कृतेन दुःखि नोदुःखयंति पीडयंति. ॥ १६ ॥

॥ टीका–अपिच ( रुहिरेपुणोइत्यादि ) ते परमाधार्मिकास्तान्नारकान्स्वकीये रुधिरे तप्तकवल्यां प्रक्षिप्ते पुनः पचंति । वर्चःप्रधानानि समुछ्रितान्यंत्राण्यंगानि वा येषांते तथा तान् नित्रंचूर्णितमुत्तमांगं शिरोयेषां ते तथा तानिति । कथं पचंतीत्याह । परिवर्त यंतउत्तानानवाङ्मुखान् वा कुर्वतः । एमिति वाक्यालंकारे । तान् । स्फुरतश्तश्चेतश्च वि व्हलमात्मानं निक्षिपंतः सजीवमत्स्यानिवायसकवल्यामिति. ॥ १५ ॥ तथा ( णोचेवे त्यादि ) तेच नारकाएवं बहुशः पच्यमानाअपि नोनैव तत्र नरके पाकेवा नरकानुनावे वा सति नपीनवंति नैव नस्मसान्नवंति । तथा तत्तीव्राग्निवेदनया नापरमग्निप्रक्षिप्तमत्स्या दिकमप्यस्ति यन्मीयते उपमीयते अनन्यसदृशीं तीव्रां वेदनां वाचामगोचरामनुनवंती त्यर्थः । यदिवा तीव्राग्निवेदनयाप्यननुनूतस्वकृतकर्मत्वान्नम्रियंतइति प्रनूतमपि कालं याव त्तादृशं शीतोष्णवेदनाजनितं तथा दहनछेदननेदनतक्षणत्रिशूलारोपणकुंनीपाकशाल्मल्या रोहणादिकं परमाधार्मिकजनितं परस्परोदीरणनिष्पादितं चानुनागं कर्मणां विपाकमनुवेदयं

तः समनुवेदयंतः समनुनवंतस्तिष्ठंति। तथा स्वकृतेन हिंसादिनाऽष्टादशपापस्थानरूपेण सततनोदीर्णडुःखेन डुःखिनोडुःखयंति पीडयंते नाक्तिनिमेषमपिकालं डुःखेन मुच्यंतइति॥१६

तेहिंच ते लोलणसंपगाढे, गाढं सुतत्तं अगणिं वयंति ॥ न तत्र
सायं लहती निडुग्गे, अरहियानितावा तहवी तविंति ॥१७॥
से सुच्चई नगरवहेव सद्दे, डुहोवणीयाणि पयाणि तत्र ॥ उदिण्णक
म्माणउदिण्णकम्मा, पुणोपुणो ते सरहं डुहेति ॥ १८ ॥

अर्थ—( तेहिंच के०) ते नरकावासने विषे (तेके०) ते नारकीने (लोलणसंपगाढे के०)आलोलवे एटले आघा पाठा करवे करी अत्यंत व्याप्त शीतार्त थता एवा नारकी सुखने अर्थे (गाढंसुतत्तंअगणिंवयंतिके०)अत्यंततप्त अग्नीने विषे जाय,परंतु(नतत्रसायंलहतीनिडुग्गे के० ) त्यां विषम अग्नीस्थानने विषे पण शातान पामे ( अरहितानितावा तहवीतविंतिके०) निरंतर ज्यां आकरो तापछे एवा नरकने विषे परमाधार्मिक तेने तपावे, तेल तप्तकरी तेने कष्ट आपे,एम अनेक प्रकारे परमाधार्मिक देवो नारकीजीवोने वेदना करेछे. ॥ १७ ॥ (सेसुच्चईनगरवहेवसद्देके०) तेनरकमांहे नारकीना आक्रंद शब्द नगरना वधजेवा संजलायछे जेम कोइएक नगरनो नाश करे तेवारे माहा कोलाहल शब्द थाय एवो आक्रंद शब्द हामात, हातात, हुं अनाथ ताहारे सरणागतछुं, मुजनेराख, इत्यादि शब्द सांजलीये (डुहोवणीयाणिपयाणितत्रके०) डुखोपनीतानिपदानितत्रनरकेशब्दः एटले त्यां नरकने विषे करुणा प्रलाप सहित एवा पूर्वोक्त पदोना दयामणा शब्द बोले (उदिण्णकम्माणउदिण्णकम्मा के० ) जेने कटुक विपाकरूप कर्म वर्त्तमानकाले उदय थयाछे एवा नारकीने मोहनीय कर्मना उदयवाला एवा परमाधार्मिक देवो (पुणोपुणोतेके०) ते पुनःपुनःपूर्वोक्तरीते (सरहंडुहेतिके०) उत्साह सहित नारकीउने एटला डुःख करे.॥१८॥

॥ दीपिका—( तेहिंचेति ) तत्र नरके नारकाणां लोलनेनेतःपरतोघोलनेन संप्रगाढे व्याप्ते शीतार्तानारकागाढमत्यर्थं सुतप्तमग्निंव्रजंति । तत्राप्यग्निस्थानेऽनिडुर्गे सातं सुखं न लनंते । अरहितोनिरंतरोऽनितापोयेषांतेऽरहितानितापास्तथापि तान्नरकपालास्तापयंति तप्ततैलादिना दहंतीति ॥१७॥ ( सेइति ) से अथ तेषां नारकाणां नयानकः शब्दोनगरवधइव श्रूयते। यथा नगरसंबंधी महानाक्रंदः स्यात्तादृगोडुःखेनोपनीतानामुच्चारितानां पदानां हामातः हातातइत्यादीनां तत्र शब्दः श्रूयते । उदीर्णमुदयप्राप्तं कर्म येषांते तथा तेषामुदीर्णकर्माणोनरकपालामिथ्यात्वहास्यरत्यादीनामुदये वर्तमानाः पुनःपुनस्ते सरहंसोत्साहं नारकान् डुःखयंति ॥ १८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । ( तेहिंचेत्यादि ) तस्मिंश्च महायातनास्थाननरके । तमेव विशिनष्टि । नारकाणां जोर्जने सम्यक् प्रगाढोव्याप्तोन्नृतः सतथा तस्मिन्नरके शीतार्ता. संतो गाढमत्यर्थं सुष्टु तप्तमग्निं व्रजंति । तत्राप्यग्निस्थानेऽ निर्झगे दह्यमानाः सातं सुखं मनागपि नलनंते । अरहितोनिरंतरोऽनितापोदाहोयेषांते अरहितानितापास्तथापि तान्नारकास्तेनरकपालास्तापयंतीत्यर्थः । तप्ततेजाग्निना दहंतीति ॥ १७ ॥ अपिच ( सेसुच्चईत्यादि ) सेशब्दोऽथशब्दार्थे । अथानंतरं तेषां नारकाणां नरकपालैरौद्रैः कदर्थ्यमानानां नयानकोहाहारवप्रचुरआक्रंदनशब्दोनगरवधइव श्रूयते समाकर्ण्यते दुःखेन पीमयोपनीतान्युच्चरितानि करुणाप्रधानानि यानि पदानि हामातस्तात कष्टमनाथोहं शरणागतस्तव त्रायस्व मामित्येवमादीनां पदानां तत्र नरके शब्दः श्रूयते । उदीर्णमुदयप्राप्तं कटुविपाकं कर्म येषां तथोदीर्णकर्माणोनरकपालामिथ्यात्वहास्यरत्यादीनामुदये वर्तमानाः पुनः पुनर्बहुशस्ते ( सरहंतित्ति ) सरनसं सोत्साहं नारकान् दुःखयंत्यतस्तदसह्यं नानाविधरूपायेदुःखमसातवेदनीयमुत्पादयंतीति ॥ १८ ॥

पाणेहि णं पावविठे जयंति, तं से पवरकामि जहा तहेणं॥ दंमेहिं तहा सरयंति बाला, सवेहिं दंमेहि पुरा कएहिं ॥१९॥ ते हम्ममाणा णरगे पडंति, पुन्ने दुरूवस्स महानितावे ॥ ते तत्र चिठंति दुरूवनरकी, तुट्टंति कम्मोवगया किमीहिं ॥ २० ॥

अर्थ–णंवाक्यालंकारेठे (पाणेहिणंपावविठजयंतिके०) ते पापिष्ट परमाधार्मिको नारकी प्राणीना इंद्री विमुक्त करे त्रपांग वेगलाकरे ( तसेपवरकामिजहातहेणं के० ) ते नारकीने एटला दुःख सावास्ते करे तेना कारण तमने यथा तथ्य [illegible] तहा के० ) त्यां ( दंमेहिं के० ) दुःख विशेष एटले पाछला नवना करेला कर्म तेने ( सरयंति ,के० ) संचारीने तेनरकपाल पुरुषो तेने कहेके अरे बापडा तें पूर्वनवने विषे मांसनक्षण, मद्यपान, जीवघात, मृषावाद, चोरी, परस्त्रीगमन, कर्याछे, ते सांप्रत ताहारे उदय आव्याछे, तेने योगे तुं दुःख नोगवेछे, माटे आम सावास्ते आरडेछे. एरीते ( बाला के० ) ते परमाधार्मिक पुरुषो (सवेहिं के०) सर्वथा प्रकारे ( दंमेहि के० ) ते नारकीने दुःखरूप दंमेकरी(पुराकएहिके०)पूर्वकृत कर्मना उदय थकी पीडा करे. ॥१९॥(तेहम्ममाणाणरगेपडंति के० ) ते नारकी हणाया थका पांचशे योजन उंचा उछलीने नरकने एकदेसें पडे ते नरक केवाछे तोके ( पुन्नेदुरूवस्स महानितावे के०) दुष्टरूप माहातापे करी पूर्णछे, नाना प्रकारना दुःख तथा मल सहितछे, ( तेतत्रचिठंतिदुरूवनरकी के०)

त्यांते नारकी अशुची वस्तुना आहारी ठता घणोकाल सुधी रहे ( तुट्टंति कम्मोवगया किमीहिं के० ) कर्मने वस पडया एवा नारकीने परमाधार्मिक विकूर्विने पीडे. ॥ २० ॥

॥दीपिका–(पाणेहिणमिति) णं वाक्यालंकारे। ते पापानरकपालाः प्राणैः शरीरेंद्रियादिनिर्वियोजयंति येनैवं डुःखं ते लनंते तद्दुःखकारणं नो नवतां याथातथ्येन सत्यतया प्रवक्ष्यामि तेषां दंमैर्नरकविशेषैस्तत्र बालानरकपालाः पूर्वकृतं स्मारयंति। पूर्वनवे त्वं मांसानि खादसि पिबसि मद्यं गबसि परदारान्। सांप्रतं विपाकप्राप्तेन कर्मणा किमेवमाक्रंदसीत्येवं पुराकृतैः सर्वैर्दंमैर्डुःखविशेषैस्तादृशमेव डुःखमुत्पादयंति. ॥ १९ ॥ ( तेऽति ) ते नारका हन्यमानानष्टाः संतोऽन्यस्मिन् घोरतरे नरके पतंति। किंनूते पूर्णे नृते। डुरूपं विष्टासृङ्मांसादिमलं तस्यनृते महानितापेऽतिसंतापोपेते तत्र नरके डुरूपस्याशुच्यादेर्नक्षिणस्तिष्ठंति। तथा कृमिनिर्नरकपालकृतैः परस्परकृतैश्च तुद्यंते व्यथ्यंते। तथा चागमः। ठठीसत्तमासुणं पुढवीसुनेरइया पहूमहंताइं लोहिअकुंथुरूवाइं विउव्विता अण्णमण्णस्स कायं समचउरंगेमाणा २ अणुखायमाणा २ चिठ्ठंति ॥ २० ॥

॥ टीका–तथा ( पाणेहिणमित्यादि ) णमिति वाक्यालंकारे। प्राणैः शरीरेंद्रियादिनिस्ते पापाः पापकर्माणोनरकपालावियोजयंति शरीरावयवानां पाटनादिनिः प्रकारैर्विकर्तनादवयवान् विश्लेषयंति। किमर्थमेवं कुर्वंतीत्याह। तद्दुःखकारणं नेयुष्माकं प्रवक्ष्यामि याथातथ्येनावितथं प्रतिपादयामीति। दंडयंति पीडामुत्पादयंतीति दंमाडःखविशेषास्तैर्नारकाणामापादितैर्बालानिर्विवेकानरकपालाः पूर्वकृतं स्मारयंति। तद्यथा। तदा रुष्टस्त्वं खादसि समुत्कृत्य प्राणिनां मांसं तथा पिबसि तं तद्रसं मद्यं च गच्छसि परदारान् सांप्रतं तद्विपाकापादितेन कर्मणा ऽनितप्यमानः किमेवं रारटीषीत्येवं सर्वैः पुराकृतैर्दंडैर्दुःखावशेषैः स्मरयंतस्तादृक् नूतमेव डुःखविशेषमुत्पादयंतोनरकपालाः पीडयंतीति ॥ १९ ॥ किंच ( तेहम्ममाणाइत्यादि ) ते वराकानारकाहन्यमानास्तोयमानानरकपालेन्योनष्टेऽन्यस्मिन् घोरतरे नरकैकदेशे पतंति गच्छंति। किंनूते नरके पूर्णे नृते। डुष्टं रूपं यस्य तद्दुरूपं विष्टासृग्मांसादिकं मलं तस्य नृते तथा महानितापिते संतापोपेते ते नारकाः स्वकर्मावबद्धास्तत्रैवंनूते नरके डुरूपनक्षिणोऽशुच्यादिनक्षकाः प्रनूतं कालं यावत्तिष्ठंति। तथा कृमिनिर्नरकपालापादितैः परस्परकृतैश्च स्वकर्मापगताः स्वकर्मढौकितास्तुद्यंते व्यथ्यंते इति। तथाचागमः।· ठठीसत्तमासुणं पुढवीसु नेरइयापहूमहंताइं लोहिकुंथुरूवाइं विउव्वित्तअन्नमन्नस्सकायंसमचउरंगे माणामाणा अणुखायमाणा अणुखायमाणा चिठ्ठंति ॥ २० ॥

सया कसिणं पुण घम्मठाणं,गाढोवणीयं अतिडुक्खधम्मं॥अंदूसु पक्खिप्प विहत्तुदेहं, वेहेण सीसं से नितावयंति ॥२१॥ छिंदंति बालस्स खुरेण नक्कं, उठेवि छिंदंति डुवेवि कन्ने ॥ जिप्नं विणिक्कस्स विहत्थिमित्तं, तिरकाहिं सूलाइ नितावयंति ॥ २२ ॥

अर्थ-(सयाकसिणंपुणघम्मठाणं के०) सर्वदाकाले ते नरक परिपूर्ण घर्म एटले आतापनुं स्थानक त्यां ( गाढोवणीयं के० ) कर्मने उदयें ढोया एवा नारकी (अतिडुक्खधम्मं के०) अत्यंतडुःखनो धर्म एटले स्वनावछे ज्यां ( अंदूसुपक्खिप्पविहत्तुदेहं के० ) ते स्थानके नारकीनो शरीर निवडबंधमांहे प्रक्षेपीने ( वेहेणसीसंसे के०) मस्तके छिद्रकरी तेने ( निताववंति के०) तपावे सर्व शरीर चर्मनी पेरे विस्तारीने खीलायें करी उखेडे. ॥ २१ ॥ ते परमाधार्मिक (बालस्स के०) ते अज्ञानी नारकीउंना (खुरेण के० ) क्षुर एटले छुरीयें करीने (नक्कंके०) नासिकाने ( छिंदंतिके०) छेदे तथा ( उठेविछिंदंतिडुवेविकन्ने के०) उष्ठ छेदे तथा बंने कान पण छेदे तथा मद्यमांसादि मृषावो लवुं इत्यादि पाप तेमने संनारी आपीने (जिप्नंविणिक्कस्सविहत्थिमित्तं के०) ते नारकीनी एक विहस्त प्रमाण जीन बाहेर काढीने (तिरकाहिंसूलाइनिताववंतिके०) तीक्ष्ण शूलियें करी संतापे, छेदे एरीते ते नारकीने पीडे वेदना आपे. ॥ २२ ॥

---

॥ दीपिका-( सयेति ) सदा कृत्स्नं संपूर्णं घर्मस्यातपस्य स्थानमुष्णस्थानं नवति गाढैर्दृढैः कर्मनिरुपनीतं ढौकितं अतिडुःखमेव धर्मः स्वनावोयस्यतत् एवंविधे स्थाने स्थितोजंतुः अंडुषु निगडेषु देहं विहत्य प्रक्षिप्य तथा शिरश्च(से)तस्य वेधने नारकस्य रंध्रोत्पादनेनानितापयंति कीलकैश्च सर्वाण्यंगानि विक्षा चर्मवत् कीलयंति ॥ २१ ॥ ( छिंदंतीति ) इं नरकपालाः बालस्याज्ञस्य क्षुरप्रेण नासिकां छिंदंतीति। तथा उष्ठौ कर्णौच द्वावपि छिंतेति तथा जिव्हां वितस्तिमात्रां बहिर्निष्काश्य तीक्ष्णशूलाभिरनितापयंति अपनयंति ॥

---

॥ टीका-किंचान्यत् (सयाकसिणमित्यादि) सदा सर्वकालं कृत्स्नं संपूर्णं । पुनस्तत्र नरके घर्मप्रधानं उष्णप्रधानं स्थितिस्थानं नारकाणां नवति । तत्रहि प्रलयातिरिक्ताग्निवातादीनामत्यंतोष्णरूपत्वात्तच्च दृढैर्निधत्तनिकाचितावस्थैः कर्मनिर्नारकाणामुपनीतं ढौकितं। पुनरपि विशिनष्टि।अतीव डुःखमसातावेदनीयं धर्मः स्वनावोयस्य तत्तथा तस्मिंश्चैवंविधे स्थाने स्थितोऽसुमान् अंडुषु निगडेषु देहं विहत्य प्रक्षिप्य च यथा शिरश्च (से)तस्य नारकस्य वेधेन रंध्रोत्पादनेनानितापयंतीति ॥ २१ ॥ अपिच (छिंदंतिबालस्सेत्यादि) ते परमाधार्मिकाः पूर्वडुश्चरितानि स्मरयित्वा बालस्याज्ञस्य निर्विवेकस्य प्रायशः सर्वदा वेदनास

मुद्गातोपगतस्य क्षुरप्रेण नासिकां छिंदंति तथौष्ठावपि द्वावपि कर्णौ छिंदंति तथा मद्य मांसरसाऽभिज्ञिप्सोर्मृषावादिणोजिव्हां वितस्तिमात्रामाक्षिप्य तीक्ष्णाभिः शूलाभिरभितापयंत्यपनयंति ॥ २२ ॥

ते तिप्पमाणा तलसंपुडंव, राइंदियं तळ थणंति बाला ॥ गलंति ते सोणिअपूयमंसं, पज्जोइया खारपइद्धियंगा ॥२३॥ जइ ते सुता लो हितपूअपाई, बालागणी तेअगुणा परेणं ॥ कुंभी महंताहियपोर सीया, समूसिता लोहियपूयपुणा ॥ २४ ॥

अर्थ-( ते के० ) तेनारकी कान होठ प्रमुख अंगोपांगना छेदन थकी (तिप्पमाणा के० ) लोहिझरता थका ( तलसंपुडंव के० ) सुका ताडवृक्षना पान जेम पवने उडता शब्द करे, तेनीपेरे ( राइंदियंतळथणंतिबालाके०) ते बाल अज्ञानी निरविवेकी एवा नारकी बापडा रात्र दिवश त्यां आक्रंद शब्द करे ( गलंतितेसोणियपूयमंसं के० ) त्यांते नारकीना अंगोपांग छेद्या पछी तेना शरीरमांथी लोही परु तथा मांसादिक झरे ( पज्जोइया के० ) तेवारे तेने शेककरी अग्नीयें प्रज्वालीने ( खारपइद्धियंगा के० ) लवणादिक खारे अंगोपांग खरड्या छता रुधिर परु अने मांस एटलावाना रात्र दिवस तेमना शरीरमांथी गलता थका रहेछे॥२३॥वली श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजंबूस्वामी प्रत्ये कहेछे के, ( जइते के० ( यदि तें श्रीमहावीर नाषित ( लोहितपूअपाई के०) रुधिर अने परुनी पात्री एटले रुधिर अने पाकीरुधिर ते परु ए बंने ज्यां पचेछे एवो स्थानक कुंभी नाजन विशेष ते ( सुता के० ) ते सांभलीछे ते केवीछे तोके ( बालागणीके०) नवी अग्नीना ( तेअ के० ) तेज करता पण (गुणापरेणं के०) गुणे करी अधिकछे एटले अत्यंत बलतीछे ( कुंभीमहंताहियपोरसीया के० ) एवी पुरुष प्रमाण थकी अधिक मोटी कुंभी नाजन विशेष ते केवीछे तोके ( समूसिता के० ) ऊंटने आकारे ऊंचीछे अने (लोहियपूयपुणा के० ) रुधिर अने परु एणे करी परिपूर्ण भरेलीछे. ॥ २४ ॥

---

॥ दीपिका-( तेऽति ) ते नारकाः शोणितं तिप्यमानाः स्रवंतोयत्र रात्रिंदिनं गमयंति तत्र प्रदेशे तालसंपुटाइव पवनप्रेरितशुष्कपत्रसंचयाइव सदा विस्वरं स्तनंति क्रंदंति । वन्हिना प्रद्योतिताज्वालिताः क्षारेणप्रदिग्धांगाः शोणितं पूयं मांसं चाऽहर्निशं गलंति. ॥ २३ ॥ ( जईति ) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं वक्ति । यदि ते त्वया श्रुता लोहितं रुधिरं पूयं पक्वरुधिरं ते द्वे अपि पक्तुं शीलमस्याः सा लोहितपूयपाचिनी कुंभी । पुनः किंभूता । बालः प्रत्यग्रोग्निस्तस्यतेजोभितापः सएव गुणोयस्याः सा बालाग्नितेजोभिताप

गुणा परेणापरेण प्रकर्षेण । तथा पुनः किंभूता महती बृहत्तरा ( अहियपोरिसीयेति ) पुरुषप्रमाणाऽधिकसमुच्छ्रिता उष्ट्रिकाकृतिः ऊर्ध्वं व्यवस्थिता लोहितपूर्णा ॥ २४ ॥

---

॥ टीका–तथा । (तेतिप्पमाणेत्यादि) ते छिन्ननासिकोष्ठजिव्हाः संतः शोणितं तिप्यमानाः क्षरंतोयत्र यस्मिन् प्रदेशे रात्रिंदिनं गमयंति । तत्र बालाअज्ञास्तालसंपुटाइव पवनेरितशुष्कतालपत्रसंचयाइव सदा स्तनंति दीर्घविस्वरमाक्रंदंतस्तिष्ठंति तथा प्रद्योतितावन्हिना ज्वलितास्तथा क्षारेण प्रदिग्धांगाः शोणितं पूयं मांसं चाहर्निशं गलंतीति. ॥ २३ ॥ किंच । ( जइतेसुताइत्यादि ) पुनरपि सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमुद्दिश्य भगवद्वचनमाविष्करोति । यदिते त्वया श्रुता आकर्णिता । लोहितं रुधिरं पूयं रुधिरमेव पक्वं ते द्वे अपि पक्तुं शीलं यस्यां सा लोहितपूयपाचिनी कुंभी । तामेव विशिनष्टि । बालोऽभिनवप्रत्यग्रोग्निस्तेन तेजोभितापः सएव गुणोयस्याः सा बालाग्नितेजोगुणा परेण प्रकर्षेण ततेत्यर्थः । पुनरपि तस्याएव विशेषणं महती बृहत्तरा (अहियपोरुसीयंति) पुरुषप्रमाणाधिका समुच्छ्रितोष्ट्रिकाकृतिरूर्ध्वं व्यवस्थिता लोहितेन पूयेन च पूर्णा सैवंभूता कुंभी समंततोऽग्निना प्रज्वलिताऽतीव बीभत्सदर्शनेति. ॥ २४ ॥

पक्खिप्प तासु पययंति बाले, अट्टस्सरे ते कलुणं रसंते ॥ तण्हा इया ते तउ तंबतत्तं, पज्जिज्जमाणाट्टतरं रसंति ॥ २५ ॥ अप्पेण अप्पं इह वंचइत्ता, भवाहमे पुव्वसते सहस्से ॥ चिठंति तत्था बहुकूरकम्मा, जहा कडं कम्म तहासि भारे ॥ २६ ॥ समज्जिणित्ता कलुसं अणज्जा, इठेहिं कंतेहि य विप्पहूणा ॥ ते दुब्भिगंधे कसिणेयफासे, कम्मोवगाकुणिमे आवसंतितिबेमि ॥ २७ ॥ इति निरयविभत्तिएपढमोउद्देसोसमत्तो ॥

अर्थ–हवे त्यां कुंभीमांहे नारकीने शुं करे ते कहेछे. (पक्खिप्पतासुके०) ते परमाधार्मिक कुंभीमांहे घालीने ( अट्टस्सरेतेकलुणंरसंते के० ) आर्त शब्द करता तथा करुण प्रलाप करता एवा ते बापडा ( बालेके० ) अज्ञान नारकीने ( पययंतिके० ) प्रकर्षे करी पचावे (तण्हाइयातेतउतंबतत्तंके०) तृषाये पीडया थका पाणी मागे तेवारे तेने त्रांबु उकालीने तेनो रस ( पज्जिज्जमाणके० ) पीवरावे तेवारे ते (अट्टतरंरसंतिके०) घणामां घणे दीनस्वरे करुणाकारी विलाप करे ॥ २५ ॥ ( अप्पेणअप्पंइहवंचइत्ता के० ) जेणे इह एटले आ मनुष्य भवमां अल्पसुखने अर्थे परोपघाति पणुं आदरीने पोताना आत्मायें करी पोताना आत्मानेज वंच्यो ( भवाहमेपुव्वसतेसहस्से के० ) तथा पूर्वे जन्मे अधम एवा लुब्धकादिकना शतसहस्र भव भोगवी घणा कर्मोपार्जीने (चिठंतितत्थाबहुकूरकम्माके०)

अत्यंत क्रूर पापकर्मना थणी डुःखवेदना नोगववाने घणोकाल सुधी त्यां नरकने विषे रहे (जहाकडंकम्मतहासिनारे के०) यथाकृतानिकर्माणि जेवां अध्यवसायेकरी जेवाना वे कर्म कीधां होय तेवाज नरकमां पण सिनार शब्दे डुःख उपजे जेम मांस न क्षण करनारने तेनाज शरीरमांथी मांसकापी अग्नीवर्ण करी खवरावे, मद्यपानीने तस कथीरनो रस पीवरावे, मत्सघातकीने बेदे, नेदे, असत्य नाषण करनारनी जिव्हा बेदे, परधनापहारीना अंगोपांग बेदे, लंपटना वृषण बेदे, साल्मली वृक्षनुं आलिंगन करावे इत्यादिक जेणे जेवा कर्म उपार्ज्यां होय तेने ते सरखाज डुःख परमाधार्मिको उपजावे. ॥ २६ ॥ (समङ्जिणित्ताकलुसंअणङ्जा के०) ते पापी अनार्य माता पिता अने स्त्रियादि कने अर्थे घणा कलुष एटले पापकर्म उपार्जन करीने पठी ( इष्टेहिंकंतेहियविप्पहूणा के०) इष्टजे मातापिता तथा कांता एटले स्त्रियादिक ते थकी विप्पहूणा एटले रहित अर्थात् एकाकी ठता (तेडुन्निगंधेकसिणेयफासेके०) ते डुर्निगंध डुःखे करी नयो तथा अशुन स्पर्शवान एवा नरकने विषे (कम्मोवगाकुणिमेआवसंतिके०) कर्मोपगता अशुन क र्मने लीधे कुणि एटले मांस पेसी रुधिर परु आंतरमा फेफसुं इत्यादिक कस्मले करी समाकुल एवा नरक स्थानमां घणोकाल अवश्य पणे रहीने पूर्वोक्त डुःख सहन करे. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो.॥२७॥इति नरकविनक्तियनाम प्रथमोद्देशकनुंअर्थसमाप्तः

॥ दीपिका-(पक्खिप्पेति) कुंनीषु तान् आर्तस्वरान् करुणं दीनं रसंतः प्रक्षिप्य प्रप चंति ते तृषार्ताः सलिलं प्रार्थयंतस्तप्तं त्रपु पाय्यंते । पाय्यमानाश्चार्ततरं रसंति रारटंति ॥ २५ ॥ ( अप्पेणेति ) इह नरनवे आत्मनैवात्मानं वंचयित्वा नवानामधमान्नवाधमा अधमनवामत्स्यवधलुब्धकादीनां नवास्तान् पूर्वजन्मनि शतसहस्रशः समनुनूय क्रूरक र्माणस्ते नरके बहुप्रनूतकालं तिष्ठंति यथा येन प्रकारेण यादृशाध्यवसायेन पूर्वनवे कृ तानि कर्माणि तथा से तस्य नारकस्य नारावेदनाः स्युः ॥ २६ ॥ (समङ्जिणित्तेति) अ नार्याः पापकर्मकारिणः कलुषं पापं समर्ज्य अर्जयित्वा ते नारकाडुरनिगंधिनरके वसं ति ।किंनूताः।इष्टैः कांतैः शब्दादिविषयैर्विहीनाः।नरके किंनूते।कृत्स्ने संपूर्णेऽस्पर्शेऽत्यं ताशुनस्पर्शे कर्मोपगताआशु कर्मबद्धाः कुणिमे रुधिराद्याकुले आसमंताडुत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिं शत्सागराणि वसंतीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २७ ॥ इतिपंचमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः

॥ टीका-तासु च यक्रियते तद्दर्शयितुमाह । ( पक्खिप्पेत्यादि ) तासु प्रत्यग्निना दी प्तासु लोहितपूयशरीरावयवकिल्बिषपूर्णासु डुर्गंधासु च बालान्नारकांस्त्राणरहितानार्त स्वरान् करुणं दीनं रसंतः प्रक्षिप्य प्रपचंति तेच नारकास्तथा कदर्थ्यमानाविरसमाक्रं दंतस्तृषार्ताः सलिलं प्रार्थयंतोमद्यं ते अतीव प्रियमासीदित्येवं स्मरयित्वा तप्तं यत्त्रपु

पाय्यमानाश्चातितरं रसंति रारटंतीति. ॥ २५ ॥ उद्देशकार्थोपसंहारार्थमाह । ( श्च प्पेणेत्यादि ) इहास्मिन्मनुष्यनवे आत्मना परवंचनप्रवृत्तेन स्वतएव परमार्थतश्चात्मानं वंचयित्वाऽल्पेन स्तोकेन परोपघातसुखेनात्मानं वंचयित्वा बहुशोनवानां मध्ये अधमानां मध्ये अधमान्नवाधमामत्स्यबंधलुब्धकादीनां नवास्तान्पूर्वजन्मसु शतसहस्रशः समनुनूय तेषु नवेषु विषयोन्मुखतया सुकृतपराङ्मुखत्वेन वा ऽवाप्य महाघोरातिदारुणं नरकवासं तत्र तस्मिन्मनुष्याः क्रूरकर्माणः परस्परतोडःखमुदीरयंतः प्रनूतं कालं यावत्तिष्ठंति । अत्रकारणमाह । यथा पूर्वजन्मसु यादृग्नूतेनाध्यवसायेन जघन्यजघन्यतरादिना कृतानि कर्माणि तथा तेनैव प्रकारेण (से) तस्य नारकजंतोर्नारावेदनाः प्राडर्नवंति स्वतः परतजनयतोवेति । तथाहि । मांसादाः स्वमांसान्येवाग्निना प्रताप्य नदंते तथा मांसरसपायिनोनिजपूयरुधिराणि तप्तत्रपूणीव पायंते तथा मत्स्यघातकलुब्धकादयस्तथैव छिद्यंते निद्यंते यावन्मार्यंतेति । तथाऽनृतन्नाषिणां तत्स्मारयित्वा जिव्हाश्छिद्यंते । तथा पूर्वजन्मनि परकीयद्रव्यापहारिणामंगोपांगान्यपन्हियंते तथा पारदारिकाणां वृषणछेदः शाल्मल्युपगूहनादिच तैः कार्यंते । एवं महापरिग्रहारंनवतां क्रोधमानमायालोनिनां च जन्मांतरस्वकृतक्रोधादिडुष्कृतस्मारणेन तादृग्विधमेव डःखमुत्पाद्यतइति कृत्वा सुष्ठूच्यते तथाविधं कर्म तादृग्विधनूतएव तेषां तत्कर्मविपाकादितोनारइति. ॥ २६ ॥ किंचान्यत् ( समज्जिणिन्नुइत्यादि ) अनार्याअनार्यकर्मकारित्वाद्धिंसानृतस्तेयादिनिराश्रवद्वारैः कलुषं पापं समर्ज्याशुनकर्मोपचयं कृत्वा ते क्रूरकर्माणोडुरनिगंधे नरके आवसंतीति सटंकः । किंनूताः । इष्टैः शब्दादिनिर्विषयैः कमनीयैः कांतैर्विविधं प्रकर्षेण हीनाविप्रमुक्तानरके वसंति । यदिवा यदर्थं कलुषं समार्जयंति तैर्मातापुत्रकलत्रादिनिः कांतैश्च विषयैर्विप्रमुक्ताएकाकिनस्ते डुरनिगंधेन कुथितकलेवरातिशायिनि नरके कृत्स्ने संपूर्णेऽत्यंताशुनस्पर्शे एकांतोद्वेजनीये शुनकर्मापगताः ( कुणिमेत्ति ) मांसपेशीरुधिरपूयांत्रफिफिसकल्मषाकुले सर्वामेध्याधमे बीनत्सदर्शने हाहारवाक्रंदेन कष्टं मातावदित्यादि शब्दावधीरितदिगंतराले परमाधमे नरकावासे आसमंतादुत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि यावद्यस्यांवा नरकपृथिव्यां यावदायुस्तावद्वसंति तिष्ठंति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीतिपूर्ववत्. ॥ २७ ॥ इति नरक विनक्तेः प्रथमोद्देशकः समाप्तः

हवे पांमाध्ययननांबीजो उद्देशो प्रारंनियें छैये एने विषे पण एज नरकना नाव कहेछे.

अहावरं सासयडुक्कधम्मं, तं ने पवक्कामि जहातहेणं ॥ बाला
जहा डुक्कडकम्मकारी, वेदंति कम्माइं पुरेकडाइं ॥ १ ॥ हवेहि

पाएहि य बंधिऊणं, उदरं विकत्तंति खुरासिएहिं ॥ गिण्हंतु
बालस्स विहत्तु देहं, वद्धं थिरं पिठतो उद्धरंति ॥ २ ॥

अर्थ—(अहके०) अथ एटले हवे (अवरंके०) अपर एटले बीजा ( सासयडुरकधम्मं के० ) शाश्वतदुःखनो धर्म एटले स्वनावछे जेने विषे एवा नरकना दुःख ज्यां सुधी जीवे त्यांसुधी ते नारकी जेमनोगवे (तंनेके०) तेम तमने ( जहातहेणं के० ) यथा तथ्य ( पवरकामि के० ) कहीशुं; एटले जेरीते श्रीवीरपरमेश्वरना मुखथी सांनळ्युंछे तेरीते तमोने कहीशुं ( डुक्कडकम्मकारी के० ) डुकृत कर्मना करनार एवा ( बाला के० ) अज्ञानी निर्विवेकीजीव ते ( जहा के० ) जेरीते ( पुरेकडाइंकम्माइं के० ) पोताना पूर्वकृतकर्मने ( वेदंति के० ) वेदेछे नोगवे छे तेरीते कहीशुं ॥१॥ त्यां परमाधार्मिक देव ( हछेहिपाएहियबंधिऊणं के० ) ते नारकीना हाथ पग बांधीने ( खुरासिएहिं के० ) छुरे करी तथा खड्गे करी ( उदरंविकत्तंति के० ) पेटने कापे ते केवीरीते कापे तोके ( गिण्हंतुबालस्सविहत्तुदेहंके०) बाल नारकीने ग्रहणकरी एटले पकडीने तेना शरीरने लाकडादिके हणीने खंमो खंम करे ( वद्धंथिरंपिठतोउद्धरंति के० ) आगला नागनुं सबल चर्म ते पुठ प्रदेशे काढे अने पुठनुं चर्म ते आगल काढे तथा माथा पाशानुं चर्म जमणे पासे काढे अने जमणी बाजुनुं चर्म माबी बाजुए काढे एरीते चामडी उखेडी नाखे॥२॥

---

॥ दीपिका—अथ द्वितीयस्यादिसूत्रमिदं । (अहावरमिति) अथापरमन्यद्वक्ष्यामि । शश्वद्भवतीति शाश्वतं यावदायुस्तच्च तदुःखंच तदेव धर्मः स्वनावोयस्मिन् सतथा एवंनूतं नरकं तथ्येन सत्यतया ( ने ) नवतां कथयामि । बालानिर्विवेकाडुष्कृतकर्मकारिणः पुराकृतानि पापानि कर्माणि वेदयंति तथा वदिष्यामि ॥ १ ॥ ( हछेहिंति ) परमाधार्मिकास्तान्नारकान् हस्तपादेषु बध्वा उदरं क्षुरप्रासिनिरायुधविशेषैर्विकर्तयंति विदारयंति तथा बालस्य लकुटादिनिर्विविधं हतं देहं गृहीत्वा वर्ध्रं चर्मशकलं स्थिरं बलवत् पृष्ठतः पृष्ठदेशे उद्धरंति वेष्टयंति, ॥ २ ॥

---

॥ टीका—उक्तः प्रथमोद्देशकः सांप्रतं द्वितीयः समारभ्यते।अस्य चायमनिसंबंधः। इहानंतरोद्देशके यैः कर्मनिर्जंतवोनरकेषूत्पद्यंते यादृगवस्थाश्च नवंत्येवं तत्प्रतिपादितमिहापि विशिष्टतरं तदेव प्रतिपाद्यते इत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्य सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं।तच्चेदं ( अहावरमित्यादि ) अथेत्यानंतर्ये।अपरमित्युक्तादन्यद्वक्ष्यामीत्युत्तरेण संबंधः।शश्वद्भवतीति शाश्वतं यावदायुस्तच्च तदुःखं च शाश्वतं दुःखं तदधर्मः स्वनावोयस्मिन् यस्य वा नरकस्य सतथा तमेवंनूतं नित्यदुःखस्वनाव

मक्षिनिमेषमपि कालमविद्यमानं सुखलेशं याथातथ्येन यथाव्यवस्थितं तथैव कथया मि । नात्रोपचारोर्थवादोवा विद्यतइत्यर्थः । बालाः परमार्थमजानानाविषयसुखलिप्सवः सांप्रतेक्षिणः कर्मविपाकमनवेक्षमाणायथा येन प्रकारेण दुष्टं कृतं दुष्कृतं तदेव क र्मानुष्ठानं तेनवा दुष्कृतेन कर्मज्ञानावरणादिकं तद्दुष्कृतकर्म तत्कर्तुं शीलं येषांते दुष्कृत कर्मकारिणस्तएवंभूताः पुराकृतानि जन्मांतरार्जितानि कर्माणि यथावेदयंति तथा कथ यिष्यामीति ॥ १ ॥ यथाप्रतिज्ञातमाह । ( हस्तेहींत्यादि ) परमाधार्मिकास्तथाविधक र्मोदयात् क्रीडायमानास्तान्नारकान् हस्तेषु पादेषु बध्वोदरं क्षुरप्रासिनिर्नानाविधैरायुध विशेषैर्विकर्तयंति विदारयंति । तथा परस्य बालस्येवाकिंचित्करत्वाद्बालस्य लकुटादिभि र्विविधं हतं पीडितं देहं गृहीत्वा वर्ध्रं चर्मशकलं स्थिरं बलवत्पृष्ठतः पृष्टिदेशे उद्धरंति विकर्तयंत्येवमग्रतः पार्श्वतश्चेति ॥ २ ॥

बाहू पकप्पंति समूलतो से, थूलं वियासं मुहे आडहंति ॥ रहंसि जु त्तं सरयंति बालं, आरुस्स विज्झंति तुदेण पिठे ॥ ३॥ अयंव तत्तं ज लियं सजोइ, तऊवमं भूमि मणुक्कमंता ॥ ते डज्झमाणा कलुणं थणं ति, उसुचोइया तत्तजुगेसु जुत्ता ॥ ४ ॥

अर्थ–ते परमाधार्मिको (बाहूपकप्पंतिसमूलतोसेके०)त्रण नरकपृथ्वीने विषे नारकीना अ धस्तन अने चारनरकपृथ्वीमां मूलथी आरंभीने बन्ने बाहु कापे,तथा (थूलंके०)मोहोटो लो हनो गोलो तपावी (मुहेके०) ते नारकीनुं मुख (वियासंके०) विकाशीने एटले मुख उघाडीने तेमांहे (आडहंतिके० नाखे तथा ( रहंसिजुत्तंसरयंतिबालंके० ) लोखंडना रथमां जो तरी पूर्वेना करेला कर्म संभलावीने ते नारकीने खेडे हलावे तथा ( आरुस्सविज्झंति तुदेणपिट्ठे के० ) अत्यंत रोश करीने ते नारकीना पुठनाभागने आरे करी वींधे ॥ ३ ॥ ( अयंवतत्तंजलियंसजोइके० ) जेम लोखंडनो गोलो तप्त अग्नीयें सहित जाज्वल्यमा न होय अथवा उप्त कथीर होय ( तऊवमंभूमिमणुक्कमंताके० ) तेनीठे उपमां जे ने एटले तेना सरखी तप्त एवीजे भूमि, तेने अतिक्रमता एटले बलती पृथवीपर चालता ( तेडज्झमाणाके०) ते नारकी बलता थका ( कलुणंथणंतिके० ) करुण एटले दयामणा शब्द करे अर्थात् हेमात हेतात इत्यादिक विलाप करे (उसुचोइयाके०) तथा आरे करी चोया एटले प्रेर्या थका ( तत्तजुगेसुजुत्ताके० ) तप्त एवा धूंसरे जोतर्या थका जेम गलिया बलद चालतां आरडे तेम ते नारकी आरडयां करे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–( बाहूइति ) (से)तस्य नारकस्य तिसृषु नरकपृथिवीषु परमाधार्मिकाअप

रनारकाश्चाधस्तनचतसृषु पृथिवीषु मूलतआरभ्य बाहून् प्रकर्तयंति छिंदंति। तथा मुखे विकाशं कृत्वा स्थूलं बृहल्लोहगोलादिकं प्रक्षिपंतआदहंति। तथा रहसि एकांते युक्तं स्व कृतकर्मानुरूपवेदनां कुर्वतोबालमज्ञं स्मारयंति जन्मांतरकर्म। आरुष्य च रोषं कृत्वा पृष्ठे प्रतोदेन विध्यंति ॥ ३ ॥ (अयमिति) तथा अयोगोलवज्ज्वलितां ज्योतिर्भूतां त दुपमां वा भूमिमनुक्रमंतोगछंतस्ते दह्यमानाः करुणं दीनं स्तनंति आक्रंदंति तप्तेषु युगे षु युक्तागलिवृषाइव इषुणा प्रतोदादिना विध्यमानाः स्तनंति ॥ ४ ॥

॥ टीका–अपिच। (बाहूपकर्पंतीत्यादि) (से)तस्य नारकस्य तिसृषु नारकपृथिवीषु परमाधार्मिकाअपरनारकाश्चाधस्तनचतसृषु चापरनारकाएव मूलतआरभ्य बाहून् प्रक र्तयंति छिंदंति तथा मुखे विकाशं कृत्वा स्थूलं बृहत्तप्तायोगोलादिकं प्रक्षिपंतआसमंताद् हंति। तथा रहस्येकांतिनं युक्तमुपपन्नं युक्तियुक्तं स्वकृतवेदनानुरूपंतत्कृतजन्मांतरानुष्ठानं तं बालमज्ञं नारकं स्मारयंति। तद्यथा। तप्तत्रपुपानावसरे मद्यपस्त्वमासीस्तथा स्वमांसभ क्षणावसरे पिशिताशी त्वमसीत्येवं दुःखानुरूपमनुष्ठानं स्मारयंतः कदर्थयंति तथा नि ष्कारणमेवारूष्य कोपं कृत्वा प्रतोदादिना पृष्ठदेशे तं नारकं परवशं विध्यंतीति ॥ ३ ॥ तथा (अयंवेत्यादि) तप्तायोगोलकसन्निभां ज्वलितज्योतिर्भूतां तदेवंरूपां तदुपमां वा भूमिमनुक्रामंतस्तां ज्वलितां भूमिं गछंतस्ते दह्यमानाः करुणं दीनं विस्वरं स्तनंति र रटंति तथा तप्तेषु युगेषु युक्तागलिबलीवर्दाइवेषुणा प्रतोदादिना विध्यमानाः स्तनंतीति॥

बालाबलाभूमिमणुक्कमंता, पविज्जलं लोहपहं च तत्तं ॥ जंसी
भिदुग्गे सि पवज्जमाणा, पेसेव दंडेहिं पुराकरंति ॥५॥ ते संपगा
ढं सि पवज्जमाणा. सिलाहिं हम्मंति निपातिणीहिं॥ संतावणी
नाम चिरठितीया. संतप्पती जत्र असाहुकम्मा ॥ ६ ॥

अर्थ–(बालके०) अज्ञानी निर्विवेकी (अबलाके०) बल रहित एवा नारकी तेने अग्नि लोहना जेवी (भूमि के०) पृथवीयें बलात्कारें (अणुकमंताके०) अतिक्रमावे एटले च लावे तेवारे ते बापडा विरस शब्द करे ते भूमि केवीछे तोके (पविज्जलं लोहपहंचतत्तं के०) प्रज्वलित एटले ज्यां अग्नि लोह समान रुधिर अने परुनोकर्दमछे एवीछे (जंसीनि दुग्गे सिपवज्जमाणाके०) तथा जे विषम स्थानके कुंभीपाक शाल्मली वृक्ष प्रमुख विषम स्थानकछे (पेसेवके०) त्यां चालता कर्मकरनी पेरे अथवा गलियाबलदनीपेरे(दंडेहिंके०) दंडादिके ताडना करीने (पुराकरंतिके०) आगलकरी चलावे पण ते नारकी पोतानी इछायें आगल जवाने अथवा पोताने गमेते स्थानके रहीजवा पणु पामे नही. ॥ ५ ॥ (तेके०) ते

नारकीने ( संपगाढंसि के० ) अत्यंत वेदनाक्रांत एवुं नरक अथवा तेवो मार्ग तेने विषे ( पवज्जमाणा के० ) चलावता थका ( सिलाहि हम्मंतिनिपातिणीहिं के० ) साहमु सि लायेंकरी हणीने नीचो पाडी नाखे,परंतु ते आगल जइ शके नही (संतावणी नामचिर ठितीयाके०) तथा संतापनी नामे कुंनी त्यां शाश्वतिछे तेमांहे गयो उतो ( संतप्पतीज ह असाहुकम्मा के० ) ज्यां माठा कर्मनो करनार बापडो घणु संताप सहन करे ॥६॥

॥ दीपिका–( बालेति ) बालाअज्ञाः प्रज्वलितलोहपथमिव ते आक्रंदंति । तथा यस्मिन्ननिडुर्गे विषमे कुंनीशाल्मल्यादिप्रपद्यमानानसम्यगुपगछंति ततस्ते कुपितानरकपा लाः प्रेष्यानिव कर्मकरानिव दंडैर्हत्वा पुरतोग्रतः कुर्वंति ॥ ५ ॥ ( तेइति ) ते नारकाः संप्र गाढमसह्यं नरकं प्रपद्यमानाअभिमुखपातिनीभिः शिलाभिरसुरैर्हन्यंते । संतापनी कुंनी साच चिरस्थितिका तत्रतः प्राणी वेदनाग्रस्तआस्ते यत्र संतप्यतेऽत्यर्थमसाधुकर्मा ॥ ६ ॥

॥ टीका–अन्यच्च ( बालाबलाइत्यादि ) बालानिर्विवेकिनः प्रज्वलितलोहपथमिव तप्तां भुवं (पविज्जंति) रुधिरपूयादिना पिछिलां बलादनिछंतोऽनुक्रम्यमाणा विरसमारसं ति। तथा यस्मिन्ननिडुर्गे कुंनीशाल्मल्यादौ प्रपद्यमानानरकपालचोदितानसम्यगछंति। त तस्ते कुपिताः परमाधार्मिकाः प्रेष्यानिव कर्मकरानिव बलीवर्दवछा दंडैर्हत्वा प्रतोदेन न प्रतुद्य पुरतोग्रतः कुर्वंति नते स्वेछया गंतुं स्थातुं वा लनंतइति ॥५॥ किंच ( तेसंपगा ढमित्यादि ) ते नारकाः संप्रगाढमिति बहुवेदनात्वेन सह्यं नरकं मार्गं वा प्रपद्यमाना गंतुं स्थातुं वा तत्राऽशक्नुवंतोऽभिमुखपातिनीभिः शिलाभिरसुरैर्हन्यंते। तथासंतापयतीति संतापनी कुंनी साच चिरस्थितिका । तत्रतोऽसुमान् प्रभूतं कालं यावदतिवेदनाग्रस्तआस्ते यत्रच संतप्यते पीड्यतेऽत्यर्थमसाधुकर्मा जन्मांतरकृताशुजानुष्ठानइति ॥ ६ ॥

कंदूसु पक्खिप्प पयंति बाला,ततोवि दड्ढा पुण उप्पयंति॥ ते उड्ढका एहिं पखज्जमाणा, अवरेहिं खज्जंति सणप्फएहिं ॥ ७ ॥ समू सियं नाम विधूमठाणं, जं सोयतत्ता कलुणं थणंति॥ अहेसिरं कट्टु विगत्तिऊणं, अयंव सत्थेहिं समोसवेंति ॥ ८ ॥

अर्थ–वली नरकना दुःख कहेछे. (बाला के०) ते बाल नारकीने परमाधार्मिक लो को ( कंदूसु के० ) कंदू नामा भाजन विशेष तेने विषे ( पक्खिप्प के० ) प्रक्षेपीने ( प यंतिके० ) पचवे (ततोविदड्ढापुणउप्पयंतिके०) तेवारे ते नारकी दाफता थका बलता चणानी पेरे उंचा उछले (तेउड्ढकाएहिंपखज्जमाणाके०) त्यां आकाशमां वली तेने द्रोण काकादिक पक्षीउ त्रोडता थका खाता थका ( अवरेहिं के० ) त्यां थकी बीजा स्था

नकनी दिशा तरफ नासे ( सणप्फएहिं के० ) त्यां वली अन्य सिंह व्याघ्रादिक तेने ( खज्जंति के० ) खाए ॥ ७ ॥ नाम शब्द संजावनार्येठे ( समूसियं के० ) उंचु चि ताने आकारे एवुं ( विधूमठाणं के० ) अग्नीनुं स्थानकछे ( जं के० ) ते स्थानक पामिने ( सोयतत्ता के० ) शोके तप्त थका ( कलुणंथणंति के० ) दीनस्वरे करीने आक्रंद करे तथा परमाधामीउ ते नारकीनुं ( अहेसिरंकट्टु के० ) मस्तक नीचुं करीने ( विगत्तिऊणंअयंवके० ) शरीर विकूर्वि ढेदीने लोहनी पेरे ( सहेहिं के० ) शस्त्र जे मुजरादिक तेणेकरी ( समोसवेंति के० ) खंम खंम एटले टुकडा टुकडा करे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका-( कंदूसुइति ) तं बालं कंदूसु कुंजीषु प्रक्षिप्यासुराः पचंति । ततः पाक स्थानात्ते दह्यमानाश्चणकाइव नृज्यमानाउत्पतंति ऊर्ध्वमुच्छलंति । तेच ( उड्डकाएहिं ति ) ड्रोणैः काकैर्वैक्रियैः प्रखाद्यमानानद्यमाणानश्यंतोनष्टाः संतोऽपरैः ( सणप्फ एहिंति ) सनखपदैः सिंहव्याघ्रादिनिर्नक्ष्यंते ॥ ७ ॥ ( समूसिअमिति ) सम्यगुछ्रितं चितिकाकृति विधूमस्याग्नेः स्थानं विध्वंसस्थानं यत् प्राप्य शोकतप्ताः करुणं दीनं स्तनं त्याक्रंदंति । नामेति संजावनायां । संजाव्यंते तत्रैतावेदनाइति । तथा अधः शिरोमस्तकं कृत्वा देहं विकर्त्य विस्वा ( समोसवेंतित्ति ) खंडशः खंमयंत्यसुराः ॥ ८ ॥

॥ टीका-( तथा कंदूसुपक्खिप्पइत्यादि ) तं बालं वराकं नारकं कंदूषु प्रक्षिप्य नरक पालाः पचंति । ततः पाकस्थानात् ते दह्यमानाश्चणकाइव नृज्यमानाऊर्ध्वं पतंत्युत्पतंति ते च ऊर्ध्वमुत्पतिताः ( उड्डकाएत्ति ) ड्रोणैः काकैर्वैक्रियैः प्रखाद्यमानानद्यमाणाअन्य तोनष्टाः संतोऽपरैः ( सणफएहिंति ) सिंहव्याघ्रादिनिः खाद्यंते नक्ष्यंतेइति ॥ ७ ॥ किंच (समूसियंनामेत्यादि) सम्यगुछ्रितं चितिकाकृति । नामशब्दः संजावनायां । संजाव्य व्यते एवंविधानि नरकेषु यातनास्थानानि । विधूमस्याग्नेः स्थानं विधूमस्थानं । यत्प्राप्य शोकवितप्ताः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंतीति । तथा अधःशिरः कृत्वा देहंच विकर्त्यायोव च्छस्त्रछेदनादिनिः ( समोसवेंतित्ति ) खंमशः खंमयंतीति ॥ ८ ॥

समूसिया तन्न विसूणियंगा, पक्खीहिं खज्जंति अउमुहेहिं ॥ सं
जीवणी नाम चिरठितीया, जंसीपया हम्मइ पावचेया ॥ ए ॥
तिक्खाहिं सूलाहि निताक्यंति, वसोगयं सोयरयं व लधुं ॥ ति सू
लविद्धा कलुणं थणंति, एगंतडुक्खं डुहउ गिलाणा ॥ १० ॥

अर्थ-( तन्न के० ) त्यां नरकने विषे ( समूसिया के० ) उंचा थांनादिकने विषे (विसूणियंगा के०) नीचे मस्तके बांधीने जेम खाटकी गलीनुं चर्म उखेडे तेम परमा

धार्मिको ते नारकीउनुं चर्म उखेडी नाखे पढी ते नारकीना चर्म रहित एवा अंगने (प रकीहिंखर्जंति अउमुहेहिं के० ) वज्र समानछे चांच जेमनी एवा काक समली गृध्र पक्षीउ तेने खाय, एरीते नरकपाले छेदन नेदन मूर्छित कस्यां थका पण ते नारकी मरण पामे नही तेनुं कारण कहेछे (संजीवणी नामचिरछितीया के०) संजीवनी नामे एवी साश्वति कुंनीछे ( जंसीपया के० ) जेहने विषे पोहोता थकां प्राणी (हम्मइपावचे या के० ) पापसहित एवा परमाधार्मिकलोक तेने हणे छेदे नेदे परंतु तेणे करी ते मरे नही किंतु पारानी पेरे तेनुं शरीर फरी मली जाय ॥ए॥ ( तिरकाहिंसूलाहि के०) तेपर माधार्मिक पुरुपो तीक्ष्ण वज्रवत् सूलिये करीने नारकीना शरीरने ( अनितावयंति के० ) अनितापयंति एटले पीडे जेम ( लर्हु के० ) लुब्धक एवा जे कुतरादिक तेने ( वसोगयं के० ) वसोपगतं एटले वशे पडद्या एवां ( सोयरयंव के० ) स्वापद मृगादिक पशु ते जेम मरणांत कदर्थना पामे तेम ( ते के० ) ते नारकीजीवो पण ( सूलविद्धा के० ) सूलियें विंध्या थका ( कलुणंथणंति के० ) दीनस्वरें अरडाट करे एकतो अन्यंतर शोकादिक अने बीजो बाहिर हननादिके करी ( गिलाणाके०) गिलान छता एम ( डह उके०) बन्ने प्रकारे ( एगंतडरकं के० ) एकांत दुःख नोगवे परंतु मरण पामे नही॥१०॥

॥ दीपिका-(समूसिआइति) तत्र नरके स्तंनादौ ऊर्ध्वबाहवोऽधःशिरसः श्वपाकैरजवल्लं बिताः (विसूणिअंगत्ति ) उत्कृत्तांगाअपनीतत्वचोलोहमुखैः पक्षिनिर्वज्रचंचुनिः काक गृध्रादिनिर्नक्ष्यंते । एवंते परमाधार्मिककृतैः परस्परकृतैः स्वानाविकैर्वा दुःखैश्छिन्ननिन्ना अपि न म्रियंते। अतोज्ञायते संजीवनीनरकनूमिर्यस्यां खंमशश्छिन्नोपि न म्रियते स्वायु पि सतीति। सर्वे प्रजाः प्राणिनोयस्मिन्नरके पापचेतसोहन्यंते मुजरादिनिः । नरकानुनावा च्चमुमूर्षवोपि नम्रियंते ॥ए॥(तिरकाहिंति) तीक्ष्णानिः शूलानिस्तापयंति । कमिव। वशमुपेग तं स्रकरादिकं लब्ध्वा यथा कदर्थयंति । ते नारकाः शूलविद्धाअपि नम्रियंते पारदवन्मिलंति ततः करुणं स्तनंति दीनमाक्रंदंति उनयतोंतर्बहिश्च ग्लानाएकांतदुःखमनुनवंति ॥१०॥

॥ टीका-अपिच ( समूसियाइत्यादि ) तत्र नरके स्तंनादौ ऊर्ध्वं बाहवोऽधःशिरसोवा श्वपाकैर्बस्तवल्लंबिताः संतः ( विसूणियंगत्ति ) उत्कृत्तांगाअपगतत्वचः पक्षिनिरयोमुखै र्वज्रचंचुनिः काकगृध्रादिनिर्नक्ष्यंते। तदेवं ते नारकानरकपालापादितैः परस्परकृतैः स्वाना विकैर्वा छिन्नानिन्नाः क्वथितामूर्छिताः संतोवेदनासमुद्घाते गताअपि संतोन म्रियंते अतोव्यपदिश्यते संजीवनीवत् संजीवनी जीवितदात्री नरकनूमिः । तत्र गतः खंम शश्छिन्नोपि नम्रियते स्वायुषि सतीति । साच चिरस्थितिकोत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत् याव त्सागरोपमाणि । यस्यां च प्राप्ताः प्रजायंतइति प्रजाः प्राणिनः पापचेतसोहन्यंते मुजरा

रादिभिर्नरकानुभावाच्च मुमूर्षवोप्यत्यंतपिष्टाअपि न म्रियंते ऽपितु पारदवन्मिलंतीति॥९॥ अपिच ( तिरकाहीआदि ) पूर्वडुष्कृतकारिणं तीक्ष्णाभिरयोमयीभिः शूलाभिरनेकपालानारकमभितापयंति । किमिव । वशमुपगतं श्वापदमिव । कालपृष्ठसूकरादिकं स्वातंत्र्येण लब्ध्वा कदर्थयंति ते नारकाः शूलादिभिर्विद्धाअपि नम्रियंते केवलं करुणं दीनं स्तनंति । नच तेषां कश्चित्त्राणायालं । तथैकांतेनोभयतोंतर्बहिश्च ग्लानाअपगतप्रमोदाः सदा डुःखमनुभवंतीति ॥ १० ॥

सया जलं नाम निहं महंतं, जंसी जलंतो अगणी अकठो ॥
चिठंति बद्धा बहुकूरकम्मा, अरहस्सरा केइ चिरट्ठितीया ॥
॥११॥ चिया महंतीउ समारभित्ता,छिप्पंति ते तं कलुणं रसंतं ॥
आवट्टती तड असाहुकम्मा, सप्पी जहा पडियं जोइमज्झे ॥१२॥

अर्थ–( सयाजलंनाम के० ) सर्व काल निरंतर जलतुं बलतुं एवे नामे ( निहंके० ) ज्यां प्राणीने हणीयें ते ( महंतं के० ) मोहोटुं स्थानक्के ( जंसीजलंतोअगणी अकठो के० ) जे स्थानकें काष्ट रहित अग्नि प्रज्वले छे त्यां ( बद्धाबहुकूरकम्मा कें० ) घणा कूरकर्में बांध्या थका घणा कालसुधी ( चिठंतिकें० ) रहे केवा थका तिष्टे तोकें ( अरहस्सराकेइ कें० ) मोहोटा बीहामणा आक्रंद स्वर करता थका तथा ( चिरट्ठितीयाके० ) घणाकाल नी स्थितीने जेमनी एवा थका रहे ॥ ११ ॥ ( चियामहंतीउ कें० ) ते पर माधार्मिक त्यां नरकने विषे मोहोटी अग्नीनी चिता ( समारभित्ता के० ) समारंभीने तेमां अनेक काष्ट प्रक्षेपीने ( छिप्पंतितेतंकलुणंरसंतंके०) तेमांहे नारकीनेनाखे ते त्यां दाऊता थका करुण स्वरे आक्रंद करता ( तडके० ) त्यां ते चितामांहे गयाथका (असाहुकम्माके०)असाधुकर्मना करनार एवा नारकी (आवट्टतीके०) आवर्त्ते,विलय थइ जाय कोनी पेरे तोके ( जहाके० ) जेम ( सप्पि के० ) घृत ते (जोइमज्झेके०) ज्योतिजे अग्नी तेमांहे (पडियंके०) पड्यो थको विलय थइ जाय तेनीपेरे विलययाय परंतु घृततो अग्नीमांहे सर्वथा बली जाय पण नारकी जीव ते अग्नीमां मरण पामेनही ॥ १२ ॥

---

॥ दीपिका–( सयेति ) सदा ज्वलदीप्यमानं स्थानं । किंभूतं । निहन्यंते प्राणिनोयस्मिन् निहमाघातस्थानं महद्विस्तीर्णमस्ति । यस्मिन् स्थानेऽकाष्ठोग्निर्ज्वलन्नास्ते । तत्र बहुक्रूरकर्माणः केचिच्चिरस्थितिकाअरहस्सराबृहदाक्रंदशब्दास्तिष्ठंति ॥ ११ ॥ ( चियेति ) महतीश्चिताः समारभ्य नरकपालास्ते तं नारकं करुणं दीनं रसंतमाक्रंदंतं तत्र

क्षिपंति । स असाधुकर्मा तस्यां चितायामावर्त्तते विलीयते । यथा सर्पिर्घृतं ज्योतिर्मध्ये अग्निमध्ये पतितं विलीयते तथापि नम्रियते नवस्वनावत्वात् ॥ १२ ॥

॥ टीका–तथा (सयाजलमित्यादि) सदा सर्वकालं ज्वलद्देदीप्यमानमुष्णरूपत्वात् स्थानमस्ति । निहन्यंते प्राणिनः कर्मवशगायस्मिन् तन्निहमाघातस्थानं तच्च महाविस्तीर्णं यत्राकाष्ठोऽग्निर्ज्वलन्नास्ते तत्रैवं नूते स्थाने नवांतरे बहुक्रूरकर्माणस्तद्विपाकापादितेन पापेन बद्धास्तिष्ठंतीति । किंनूताः । अरहस्वराबृहदाक्रंदशब्दाश्चिरस्थितिकाः प्रनूतकालस्थितयइत्यर्थः ॥ ११ ॥ तथा (चियामहंतीउ इत्यादि) महतीश्चिताः समारभ्य नरकपालास्तं नारकं विरसं करुणं दीनमारसंतं तत्र क्षिपंति । सचासाधुकर्मा तस्यां चितायां गतः सन्नावर्त्तते विलीयते । यथा सर्पिर्घृतं ज्योतिर्मध्ये पतितं इवीनवत्येवमसावपि विलीयते नच तथापि नवानुनावात्प्राणैर्विमुच्यते ॥ १२ ॥

सदा कसिणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीयं अइडुक्खधम्मं ॥ हत्थे
हिं पाएहिय बंधिऊणं, सत्तुव मंमेहिं समारनंति ॥ १३ ॥ नंजं
ति बालस्स वहेण पुठी, सीसंपि निंदंति अठवणेहिं॥ते निन्नदे
हा फलगंव तठा, तत्ताहिं आराहिं णियोजयंति ॥ १४ ॥

अर्थ–हवे वली डुःखनो बीजो प्रकार कहेछे. (सदाकसिणंपुणघम्मठाणं के०) त्यां सर्वकाल संपूर्ण घर्म एटले उष्ण आतापनुं स्थानक जे स्थानके (गाढोपनीतंके०) ते नारकीने निबडकर्मे आणी ढोक्या थका (अइडुक्कधम्मं के०) ज्यां अत्यंत डुःखरूप धर्म नो स्वनावछे एवा स्थानके (हत्थेहिंपाएहियबंधिऊणंके०) नरकपाल ते नारकीना हाथ अने पग बांधीने (सत्तुवके०) शत्रुनी पेरें (डंमेहिंके०) दंमेकरी (समारनंतिके०) संमारंने ताडना करे ॥ १३ ॥ (नंजंतिबालस्सवहेणपुठि के०) ते परमाधार्मिको दंमादिके करी बाल अज्ञ एवा नारकीनी पीठने नांजे तथा (अठवणेहिंके०) लोढाना घणे करीने (सीसंपिनिंदंतिके०) मस्तकने पण नेदी नाखे, चूर्ण करीनाखे वली अपि शब्द थकी बीजा पण अंगोपांग एजरीते मुजरे करी नेदी नाखे (तेनिन्नदेहाके०) ते नारकी चूर्ण थयाथी निन्नदेह छतां (फलंगवतछाके०) पाटीआनी पेरे बन्ने पासे करवते करी छेद्या थका (तत्ताहिआराहिंके) तप्त आरे करी खोसता थका तप्त कथीरादिकना मार्गने विषे (नियोजयंति के०) ते नारकीने प्रवर्त्तावे इतिनाव एटले तप्त कथीरना रसनुं पान कराववाने विषे नियोजे एटले प्रवर्त्तावे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–(सदेति) सदा कृत्स्नं संपूर्णं घर्मस्थानं गाढैर्दृढैः कर्मनिरुपनीतं प्रापितं

अतिःडुखमेव धर्मः स्वजावोयस्मिन् तत्तथा । एवंविधे स्थाने नारकं हस्तैः पादैर्बध्वा त
त्र प्रक्षिपंति क्षिप्त्वाच शत्रुमिव दंमैः समारजंते ताडयंति ॥ १३ ॥ ( जंजंतित्ति ) बा
लस्य नारकस्य व्यथेन लकुटादिप्रहारेण पृष्ठं जंजंति अयोघनैर्लोहघनैः शीर्षं जिंदंति
चूर्णयंति । अपिशब्दादन्यान्यप्यंगानि चूर्णयंति । ते जिन्नदेहानारकाः फलकमिवोजा
न्यां पार्श्वान्यां क्रकचादिनावतष्टाद्विधाकृतास्तप्तानिराराजिः पीडयमानास्तप्तत्रपुपानादि
के कर्मणि नियोज्यंते व्यापार्यंते ॥ १४ ॥

---

॥ टीका—अथायमपरोनरकयातनाप्रकारस्तमाह । ( सयाकसिणमित्यादि ) सदा स
र्वकालं कृत्स्नं संपूर्णं पुनरपरं घर्मस्थानमुष्णस्थानं दृढैर्निधत्तनिकाचिकावस्थैः कर्मभिरु
पनीतं ढौकितमतीव डुःखरूपोधर्मः स्वजावोयस्मिंस्तदतिडुःखधर्मं तदेवंजूते यातनास्था
ने तमत्राणं नारकं हस्तेषु पादेषु च बध्वा तत्र प्रक्षिपंति । तथा तदवस्थमेव शत्रुमिव
दंडैः समारजंते ताडयंति ॥ १३ ॥ किंच । ( जंजंतिबालस्सेत्यादि ) बालस्य वराकस्य
नारकस्य व्यथयतीति व्यथोलकुटादिप्रहारस्तेन पृष्ठं जंजयंति मोटयंति तथा शिरोप्य
योमयेन घनेन जिंदंति चूर्णयंत्यपिशब्दादन्यान्यप्यंगोपांगानि डुघणघातैश्चूर्णयंति । ते नार
कानिन्नदेहाश्चूर्णितांगोपांगाः फलकमिवोजान्यां पार्श्वान्यां क्रकचादिना अवतष्टास्तनूकृताः
संतस्तप्तानिराराजिः प्रतुद्यमानास्तप्तत्रपुपानादिके कर्मणि विनियोज्यंते व्यापार्यंतइति ॥ १४

अनिजुंजिया रुद्द असाहुकम्मा, उसुचोइया हत्थिवहं वहंति ॥ ए
गं डुरूहित्तु डुवे ततोवा, आरुस्स विज्ञंति ककाणउंसो ॥ १५ ॥
बाला बलाजूमिमणुक्कमंता, पविज्जलं कंटइलं महंतं ॥ विव
द्धतप्पेहिं विवण्णचित्ते, समीरिया कोट्टबलिं करिंति ॥ १६ ॥

अर्थ—( अनिजुंजिया रुद्द असाहुकम्माके० ) रौड़ एवा असाधु कर्मि एटले अन्य नार
कीउने हणवादिक कार्ये पापना करनार अथवा पूर्वे जवना करेला एवा रौड़ अ
साधु कर्म तेने प्रेरता थका एटले पूर्वकृत डुष्कृतने स्मरण करावीने ( उसुचोइया ह
त्थिवहंवहंति के० ) तराजिघात एटले बाणादिके करी जेम हस्तिने चलावियें वाहियें
तेम ते परधार्मिको माहावतनी पेरे ते नारकीउने वाहे अथवा उंटनी पेरे वाहे एटले
चलावे ( एगंडुरूहित्तुडुवेततोवा के० ) तेना उपर एक बे अथवा त्रणरूपे आरूढ थइ
ने डुःख आपे (आरुस्सविज्ञंतिककाणउंसोके०) क्रोधेकरीने ककाणउं एटले तेना मर्म
स्थानकने आरादिकेकरी विंधे ॥१५॥ ( बालाके० ) अज्ञ एवा नारकीने ( बलाके० ) बला
त्कारे करी ( पविज्जलं के० ) रक्त अने परु तद्रूप रौड़ कर्दमें करी विषम तथा

( कंटइलं के० ) कांटावाली एवी ( महंतं के० ) महोटी ( जूमि के० ) जूमिकानी वेलुने विषे ( अणुक्कमंता के० ) अतिक्रमावे ते जेम जेम आकरा चलावे तेम तेम डुःख पामे तथा ( विवसुचित्ते के० ) मूर्छित एवा नारकीउने ( विवधतप्पेहिंके० ) अनेक नरकपालो त्रापें करी बांधीने (समीरियाके०) तेना पूर्वकृत पापकर्म प्रकाशीने ( कोट्टबलिंकरंति के० ) कोट एटले नगरनी बलिबाकुल जेम दशोदिशे सैकडाखंम थइ विखरी जाय तेम परधार्मिको ते नारकीना खंमो खंम करी विखेरी नाखे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–( अनिजुंजिआइति ) रौइकर्मणि अपरान्नारकान् हननव्यापारेऽनियुज्य व्यापार्य असाधुकर्मणइषुचोदितान् शरानिघातप्रेरितान् हस्तिवद् वाहयंति नरकपालाः। यथा हस्ती वाह्यते समारुह्य एवं तान् वाहयंति। तस्य नारकस्योपर्येकं द्वौ त्रीन् वा समारोप्य ततस्तं वाहयंति। अतिजारारोपणेनावहंतमारुष्य रोषंकृत्वा प्रतोदादिना विध्यंति। सेतस्य नारकस्य (ककाणउत्ति) मर्मणि विध्यंति छिंदंति ॥१५॥ (बालाइति) बालाः परवशामहतीं रुधिरादिप्रपिच्छिलां कंटकाकुलां जूमिमनुक्रामंतोमंदगतयोबलात्प्रेर्यंते। तथान्यान् तर्पकाकारान् विषसुचित्तान् मूर्छितान् विविधमनेकधाबद्धानरकपालाः पापेन समीरिताः प्रेरितास्तान् कुट्टयित्वा बलिं कुर्वंति खंडशः छित्वा इतश्चेतश्चक्षिपंति ॥ १६ ॥

॥ टीका–(अनिजुंजियाइत्यादि) रौइकर्मण्यपरनारकहननादिकेऽनियुज्य व्यापार्य यदिवा जन्मांतरकृतं रौइं सत्वोपघातकार्यमनियुज्य स्मारयित्वा असाधून्यशोजनानि जन्मांतरकृतानि कर्माण्यनुष्ठानानि येषांते तथा तानिषुचोदितान् शरानिघातप्रेरितान् हस्तिवद् वाहयंति नरकपालाः। यथा हस्ती वाह्यते समारुह्यैवं तमपि वाहयंति। यदिवा हस्ती महांतं जारं वहत्येवंतमपि नारकं वाहयंत्युपलक्षणार्थत्वादस्योष्ट्रवद् वाहयंतीत्याद्यप्यायोज्यं कथं। वाहयंतीति दर्शयति। तस्य नारकस्योपर्येकं द्वौ त्रीन् वा समारुह्य समारोप्य ततस्तं वाहयंति। अतिजारारोपणेनावहंतमारुष्य क्रोधं कृत्वा प्रतोदादिना विध्यंति तुदंति। सेतस्य नारकस्य ( काकणउत्ति ) मर्माणि विध्यंतीत्यर्थः ॥ १५ ॥ अपिच ( बालाबलाइत्यादि ) बालाइव बालाः परतंत्राः पिच्छिलां रुधिरादिना तथा कंटकाकुलां जूमिमनुक्रामंतोमंदगतयोबलात्प्रेर्यंते । तथान्यान् विषणुचित्तान् मूर्छितांस्तर्पकाकारान्विविधमनेकधा बद्धानरकपालाः समीरिताः पापेन कर्मणा चोदितास्तान्नारकान् कुट्टयित्वा खंमशः कृत्वा ( बलिकरिंति ) नगरबलिवदितश्चेतश्च क्षिपंतीत्यर्थः । यदिवा कोट्टबलिं कुर्वंतीति ॥ १६ ॥

वेतालिए नाम महाभितावे, एगायते पवयमंतलिक्खे ॥ हम्मंति
तत्था बहुकूरकम्मा, परं सहस्साण मुहुत्तगाणं ॥१७॥ संबाहिया

डुक्कडिणो थणंति, अहोय राउ परितप्पमाणा॥ एगंतकूमे नरए महंते, कूमेण तहा विसमे हताउ ॥ १८ ॥

अर्थ–अहीं नाम शब्द संभावनाने अर्थे जाणवो (वेयालिए के०) विकुर्व्यो एवो (महाभितापे के०) माहा डुःखनुं कारण (एगायते के०) घणो लांबो एवो (पव्वयके०) पर्वत नरकमांहे (अंतरिक्खे के०) आकाश पर्यंत उंचोविकुर्वे निप्पादे (तहाके०) त्यां ते पर्वत उपरथी (बहूकुरकम्मा के०) अत्यंत पापकर्मना करनार एवा घणा नारकी पडतां थकां अंधकाररूपे दृष्टीयें कांइ पण देखे नही परंतु हस्त स्पर्श मात्रे थाय अने चडता थकां तो परमाधार्मिक तेने (हम्मंति के०) हणे पीडा आपे त्यां (परंसहस्साणमुहुत्तगाणंके०) हजार थकी घणा मूहुर्त्त अधिक एटले उपलक्षणथी घणा काल सुधी एवुं डुःख पामे ॥ १७ ॥ (डुक्कडिणो के०) ते नारकी माहा पाप कर्मना करनार ते (संबाहिया के०) संबाधिता एटले अत्यंत पीडया थका (थणंति के०) आक्रंद करे (अहोयराउपरितप्पमाणा के०) अहोरात्र परितप्तमान थका करुण आक्रंद करे (एगंतकूमे नरएमहंते के०) एकांत एटले निश्चयरूप कूट एटले डुःखोत्पत्तिनुं स्थान ज्यांछे एवुं महंत एटले विस्तीर्ण नरकने विषे (कूमेण तहा विसमेहताउ के०) त्यां विषम कूट पासादिक गलयंत्रादिके करी हणाता थका आक्रंद करे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–(वेयालिएत्ति) नामेति संभावने। संभाव्यते यन्नरकेषु। यथांतरिक्षे महाभितापे महाडुःखे एकशिलाघटितोदीर्घः (वेयालिएत्ति) वैक्रयः परमाधार्मिकनिष्पादितः पर्वतस्तत्र हस्तस्पर्शिकया समारुहंतोनारकाबहुक्रूरकर्माणोहन्यंते पीडयंते सहस्रसंख्यानां मुहूर्तानां परं प्रकृष्टं कालं प्रभूतं कालं हन्यंतइत्यर्थः ॥ १७॥ (संबाहियाइत्ति) डुष्कृतं विद्यते येषांते डुष्कृतिनः संबाधिताःपीमिताअहनि रात्रौ च परितप्यमानाएकांतेन कूटानि डुःखोत्पत्तिस्थानानि यस्मिन् तथा तस्मिन् एवंविधे महति नरके कूटेन गलयंत्रपाशादिना तत्र विषमे हताः सुनिश्चितं स्तनंति ॥ १८ ॥

॥ टीका–(किंच। वेयालिए इत्यादि) नामशब्दः संभावनायां। संभाव्यते एतन्नरकेषु यथांतरिक्षे महाभितापे महाडुःखैककार्यएकशिलाघटितोदीर्घः (वेयालिएति) वैक्रियः परमाधार्मिकनिष्पादितः पर्वतस्तत्र तमोरूपत्वान्नारकाणामतोहस्तस्पर्शिकतया समारुहंतोनारकाहन्यंते पीडयंते बहूनि क्रूराणि जन्मांतरोपात्तानि कर्माणि येषां ते तथा सहस्रसंख्यानां मुहूर्तानां परं प्रकृष्टं कालं सहस्रशब्दस्योपलक्षणार्थत्वा त्प्रभूतं कालं हन्यंतइति यावत् ॥ १७ ॥ तथा। (संबाहियाइत्यादि) समेकीभावेन बाधिताः

पीमिताडुष्कृतं पापं विद्यते येषांते डुष्कृतिनोमहापापाः । अहोअहनि तथा रात्रौ च परितप्यमानाश्चतिडुःखेन पीडयमानाः संतः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रदंति । तथैकांतेन कूटानि डुःखोत्पत्तिस्थानानि यस्मिन् तथा तस्मिन्नेवं जूते नरके महति विस्तीर्णे पतिताः प्राणिनस्तेनच कूटेन गलयंत्रपाशादिना पापाणसमूहलक्षणेन वा तत्र तस्मिन्विपमे ह ताः । तुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् स्तनंत्येव केवलमिति ॥ १८ ॥

भंजंति णं पुव्वमरीसरोसं, समुग्गरे ते मुसले गहेतुं ॥ ते भिन्नदेहा रुहिरं वमंता, उमुद्धगा धरणितले पडंति ॥ १९ ॥ अणासिया नाम महासियाला, पागब्भिणो तह सया सकोवा ॥ खज्जंति तहा बहुकूरकम्मा, अदूरए संकलियाहि बद्धा॥ २० ॥

अर्थ–(पुव्वमरीसरोसंतेके०) पूर्व जन्मना वैरी, सरखा तेपरमाधार्मिक रोस सहित कोपायमान थका (समुग्गरेमुसलेगहेतुं के०) मुग्गर सहित मुसल ग्रहण करीने ते नारकीना मस्तकादिकने (भंजंतिणं के०) भांगी नाखे तेवारे (तेभिन्नदेहारुहिरंवमंता के०) तेनारकी बापडा भिन्नदेही थका लोहिवमता उता प्राबल्ये करी (उमुद्धगा के०) अधो मुख करी (धरणितलेपडंति) धरणीतलने विषे पडे. ॥१९॥ त्यां (अणासियाके०)चुख्या अहीं नाम शब्द संभावनायेछे (महाके०) अने महोटा शरीरना प्रमाण वाला (पागब्भिणो के०) प्रगल्भित एटले डुष्ट (सयासकोवाके०) सदाकाल क्रोध सहित एवा (सियाला के०) सीयालिया जीवने (तहके०) ते नरकने विषे परमाधार्मिको विकूर्वे ते (तहाके०) त्यां नारकीमां (अदूरएसंकलियाहिबद्धा के०) ढुकडा शांकले करी बांध्या थका एवाजे (बहुकूरकम्मा के०) माहा पापी अत्यंत क्रूर कर्मना करनार नारकीउ तेने (खज्जंति के०) खंम खंम करी नक्षण करे. ॥ २० ॥

---

॥ दीपिका–(भंजंतीति) णं वाक्यालंकारे । पूर्वमरयोजन्मांतरवैरिणइव परमाधार्मिकानारकावा अन्येपामंगानि सरोपं समुज्ञराणि मुसलानि गृहीत्वा भंजंति ते नारकाभिन्नदेहारुधिरं वमंतोऽधोमुखाधरणितले पतंति ॥ १९ ॥ महांतः शृगालानरकपालविकुर्विताश्चनाशिनोबुभुक्षिताः । नामेति संभावने । संभाव्यते एतत्तत्र । प्रगल्भिताधृष्टारौद्ररूपायत्र सदा सकोपाः संभवंति । तत्र तैः सृगालादिभिर्बहुक्रूरकर्माणः शृंखलादिभिर्लोहनिगडैर्बद्धाअदूरगाः परस्परसमीपएव वर्त्तिनः खाद्यंते भक्ष्यंते ॥ २० ॥

---

॥ टीका–अपिच (भंजंतिणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । पूर्वमरयइवारयोज

न्मांतरवैरिणइव परमाधार्मिकायदिवा जन्मांतरापकारिणोनारकाअपरेषामंगानि सरो षं सकोपं समुजराणि मुसलानि गृहीत्वा नंजंति गाढप्रहारैरामर्दयंति तेच नारकास्त्राण रहिताः शस्त्रप्रहारैर्निन्नदेहारुधिरमुद्वहंतोऽधोमुखाधरणितले पतंतीति ॥ १९ ॥ किंच ( अणासियाइत्यादि ) महादेहप्रमाणामहांतः शृगालानरकपालविकुर्विताअन शितावुनुक्षिताः । नामशब्दः संनावनायां । संनाव्यतएतन्नरकेषु । अतिप्रगल्जिताअति धृष्टारौद्ररूपानिर्नयास्तत्र तेषु नरकेषु संनवंति । सदावकोपानित्यकुपितास्तैरेवंनूतैः सृ गालादिनिस्तत्र व्यवस्थिताजन्मांतरकृतबहुक्रूरकर्माणः शृंखलादिनिर्बद्धाअयोमयनिगड निगडिताअदूरगाः परस्परसमीपवर्तिनोन्नक्ष्यंते खंडशः खाद्यंतइति ॥ २० ॥

सयाजला नाम नदी निडुग्गा, पविज्जलं लोहविलीणतत्ता ॥
जंसी निडुग्गंसि पवज्जमाणा, एगायताणुक्कमणं करंति ॥२१॥
एयाइं फासाइं फुसंति बालं, निरंतरं तत्थ चिरठितीयं ॥ ण ह
म्ममाणस्स उ होइ ताणं, एगोसयं पच्चणु होइ डुक्खं ॥ २२ ॥

अर्थ-(सयाजला नाम नदीनिडुग्गा के०) ते नरकने विषे सदाकाल पाणीए नरपूर एवी महाविषम नदीरूप स्थानडे. अंहीं नाम शब्द संनावनायेंडे तेमां (पविज्जलंलोह विलीणतत्ता के० ) अग्नीमां गल्यो एवो लोहनो गोलो तेना सरखुं उष्ण पाणीडे जे पाणी पीता थका घणुं खारुं तथा उष्ण लागे माटे विषमडे (जंसीनिडुग्गंसि पवज्जमा णा के० ) जे एवी विषम नदी तेने विषे ते नारकी प्रेरया थका जाता थका हालता थका ( एगाय ताणुक्कमणं करंति के० ) एकाकी अशरण प्लवन करता परवश पड्या थका डुःख नोगवे. ॥ २१ ॥ ( एयाइं के० ) ए पूर्वोक्त बन्ने उद्देशामां जे नारकीना डुःख कह्या तेने ( बालंके०) बाल अज्ञानी एवा नारकीना जीवो ते ( फुसंतिके० ) फरसे ने सहन करेडे (निरंतरं तत्थ चिरठितीयं के० ) जेनी निरंतर घणा काल सुधी रेहेवानी स्थितिडे एवा नारकी त्यां (णहम्ममाणस्स उहोइताणंके०) हणाता थका तेने कोइपण त्राण सरण एटले राखवाने समर्थ नथी ( सयंके० ) पोते ( एगो के० ) एकलो थकोज ( पच्चणुहोइडुक्खं के० ) नाना प्रकारना पोताना उपार्ज्या डुःख नोगवे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका-सदा जलं यस्यां सा सदाजला नाम नदी अनिडुर्गा विषमा पविज्जला रु धिरादिनिर्निला अग्नितप्तं महिलीनं डवीनूतं यल्लोहं तद्वत्तथा डवीनूततप्तलोहजलेत्य र्थः । यस्यां नद्यां प्रपद्यमानानारकाएकाकिनोऽत्राणाअनुक्रमणं गमनं कुर्वंति ॥ २१ ॥ एते पूर्वोक्ताः स्पर्शाडुःखविशेषाः परमाधार्मिककृताः स्वानाविकाश्चबालं नारकं स्पृशंति-

अर्थ–(जंजारिसंपुव्वमकासिकम्मंके०) जे जीवे जेवाजावे पाठला जन्मांतरे कर्म कीधाछे (तमेव के०) ते कर्म तेवीज विधियें (संपराए के०) संसारमां नमता थका. चारगति नेविपेजीवने (आगच्छतिके०) उदय आवे (एगंतडुक्खंजवमज्जणित्ताके०) परंतु नरकमांहे तो एकांत निःकेवल डुःखरूप जव उपार्जीने (वेदंतिडुक्खीतमणंतडुक्खं के०) ते नारकी जीव डुःखी थका अनंत डुःख वेदे ॥ २३ ॥ हवे उपदेश स्वरूप कहेछे. (एताणि के०) ए पूर्वोक्त (णरगाणिसोच्चा के०) नरकना तीव्र डुःख सांनलीने (धीरेके०) जे धैर्यवंत पुरुषछे ते शुं करे ते देखाडेछे. (नहिंसएकिंचण सव्वलोए के०) जेथकी नरकना डुःख न नोगवे एवा सर्व चतुर्दश रज्ज्वात्मक लोकने विषे जेकांइ त्रस अने स्थावर जीवछे तेकोइने हणे नही तथा (एगंतदिठीके०) एकांत दृष्टी एटले निश्चल सम्यक्त्व धारक तथा (अपरिग्गहेउ के०) परिग्रह रहित एवो उतो तु शब्दथी मृषावादादिकनु वर्जन पण जाणी लेवुं तथा (लोयस्स के०) लोक ते इहां प्रस्तावथकी अशुन कर्मकारी लेवो तथा कषाय लोक लेवो तेना स्वरूपने (बुज्जिज्जाके०) जाणीने एवा लोकने (वसं के०) वशमां (नगछे के०) नपोहोचे ॥ २४ ॥ (एवंतिरिक्खेमणुयासुरेसुं के०) ए जेम अशुन कर्मिने नरकगति कही तेम तिर्यंच मनुष्य तथा देवतानी गति एम वधिमली (चतुरत्तणंतं के०) चतुर्गतिक संसारने विषे अनंत (तयणुविवागं के०) तदनुरूप विपाक एटले अनंत एवो कर्मनो जे विपाक (ससव्वमेयंइतिवेदइत्ता के०) सबुद्धिमान् सर्वमेतदितिविदित्वा एटले पंमित पुरुष ए पूर्वोक्त सर्वने इति एम जाणीने जेरीते श्रीनगवंते कह्योछे तेरीते (कंखेज्जके०) कांक्षा करे एटले वांछे सुंवांछेतोके (कालं के०) काल एटले ज्यांसुधी मरण प्राप्त थाय त्यांसुधी (धुयंके०) धैव एटले संयमने (आयरेज्ज के०) आचरे एतावता चारित्रविना जीव चतुर्गतिक संसारमां भ्रमण करे ते कारण माटे जाव जीव सुधी त्रिविधे दयाधर्म रूप निरतिचार चारित्र पालवाने वांछे अने सर्वथा पापनो त्याग करे. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ २५ ॥ इति श्री नरकविनक्तिनामे पांचमा अध्ययननो अर्थ संपूर्ण थयो ॥

---

॥ दीपिका–यत्कर्म यादृशं पूर्वजन्मांतरे अकार्षीत् कृतं तत्तादृशमेव संपराये संसारे अनुगच्छति। एकांतेन डुःखमेव नवोयस्मिन सएकांतडुःखजवस्तमर्जयित्वा डुःखिनस्तमनंत डुःखंवेदयंति॥२३॥ एतान्नरकान् श्रुत्वा धीरोनाहिंस्यात्किंचन प्राणिनं सर्वलोके एकांतदृष्टि निश्चलसम्यक्त्वोऽ परिग्रहः। तुशब्दान्मृषावादादिवर्जनमपि ज्ञेयं । तथा लोकं अशुनकर्मकारिणं तद्विपाकंच नुंजानं बुध्यते जानीयात् नतु तस्य वशं गच्छेत् ॥ २४ ॥ एवमशुनकर्मकारिणामसुमतां तिर्यङ्मनुष्यामरेष्वपि चतुरंतं चतुर्गतिकमनंतमपर्यवसानं तद

दुःखयंति निरंतर मविश्रामं तत्र चिरस्थितिकं तं हन्यमानस्य नारकस्य नकिंचित्राणं स्यात्। यथा शीतेंडेण लक्ष्मणस्य नरकदुःखमनुनवतस्त्राणोद्यतेनापि नत्राणं कृतमिति एकः स्वयं प्रत्यनुनवति दुःखं। यतो मया परिजनस्यार्थे, कृतं कर्म सुदारुणं॥ एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलनोगिनइति॥ २२॥

---

॥ टीका–अपिच (सदाजलेत्यादि) सदा सर्वकालं जलमुदकं यस्यां सा तथा सदा जलाजिधाना वा नदी सरिदतिदुर्गा अतिविषमा प्रकर्षेण विविधमत्युष्णं क्षारपूयरुधिराविलजलं यस्यां सा (पविज्जलेत्ति) रुधिराविलत्वात् पिच्छिला विस्तीर्णगंजीरजला वा। अथवा प्रदीप्तजला वा। एतदेव दर्शयति। अग्निना तप्तं सद्विलीनं द्रवतां गतं यल्लोहमयस्तद्वत्तप्तातितापविलीनलोहसदृशजलेत्यर्थः। यस्यां च सदाजलायां अजिदुर्गायां नद्यां प्रपद्यमानाः (एगायत्ति) एकाकिनोऽत्राणाअनुक्रमणं तस्यां गमनं प्लवनं कुर्वतीति॥ २१॥ सांप्रतमुद्देशकार्थमुपसंहरन् पुनरपि नारकाणां दुःखविशेषं दर्शयितुमाह (एयाइंफासाइंइत्यादि) एते अनंतरोद्देशकद्वयाभिहितत्यतिकटवोबालमशरणं स्पृशयंति दुःखयंति निरंतरमविश्रामं (अच्छिनिमीलयमित्यादिपूर्ववत्) तत्र तेषु नरकेषु चिरं प्रजूतं कालं स्थितिर्यस्य बालस्यासौ चिरस्थितिकस्तं। तथाहि। रत्नप्रजायामुत्कृष्टा स्थितिः सागरोपमं तथा द्वितीयायां शर्करप्रजायां त्रीणि तथा वालुकायां सप्त पंकायां दश धूमप्रजायां सप्तदश तमःप्रजायां द्वाविंशतिर्महातमःप्रजायां सप्तमपृथिव्यां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि यत् उत्कृष्टा स्थितिरिति। तत्र गतस्य कर्मवशाऽपादितोत्कृष्टस्थितिकस्य परैर्हन्यमानस्य स्वकृतकर्मफलजुजो न किंचित्राणं जवति। तथाहि। किल शीतेंडेण लक्ष्मणस्य नरकदुःखमनुनवतस्तत्राणोद्यतेनापि न त्राणं कृतमिति श्रुतिः। तदेवमेकोसहायोयदर्थं यत्पापं समर्जितं तैरहितस्तत्कर्मविपाकजं दुःखमनुनवति नकश्चिद्दुःखसंविजागं गृण्हातीत्यर्थः। तथाचोक्तं। मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म सुदारुणं। एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलनोगिनइत्यादि॥२२

जं जारिसं पुव्वमकासिकम्मं, तमेव आगच्छति संपराए॥ एगंतदुक्खं जवमज्जणित्ता, वदंति दुक्खी तमणंतदुक्खं॥ २३॥ एताणि सोच्चा णरगाणि धीरे, नहिंसए किंचण सव्वलोए॥ एगंतदिठी अपरिग्गहेउ, बुज्जिज्ज लोयस्सवसं नगच्छे॥२४॥ एवं तिरिक्खे मणुया सुरेसुं, चतुरत्तणं तं तयणुविवागं॥ ससव्वमेयं इति वेदइत्ता, कंखेजकालं धुयमायरेजत्तिबेमि॥ २५॥ इति श्रीनरयविनत्तीनाम पंचमाध्ययनंसंमत्तं॥

अर्थ-(जंजारिसंपुव्वमकासिकम्मंके०) जे जीवे जेवाजावे पाछला जन्मांतरे कर्म कीधाछे (तमेव के०) ते कर्म तेवीज विधियें (संपराए के०) संसारमां जमता थका चारगति नेविषेजीवने (आगच्छतिके०) उदय आवे (एगंतदुक्खंनवमज्झणित्ताके०) परंतु नरकमांहे तो एकांत निःकेवल दुःखरूप जव उपार्जीने (वेदंतिदुक्खीतमणंतदुक्खं के०) ते नार की जीव दुःखी थका अनंत दुःख वेदे ॥ २३ ॥ हवे उपदेश स्वरूप कहेछे. (एताणि के०) ए पूर्वोक्त (णरगाणिसोच्चा के०) नरकना तीव्र दुःख सांजलीने (धीरेके०) जे धैर्यवंत पुरुषछे ते शुं करे ते देखाडेछे. (नहिंसएकिंचण सव्वलोए के०) जेथकी नरक ना दुःख न जोगवे एवा सर्व चतुर्दश रज्ज्वात्मक लोकने विषे जेकांइ त्रस अने स्थाव र जीवछे तेकोइने हणे नही तथा (एगंतदिट्ठीके०) एकांत दृष्टी एटले निश्चल सम्यक्त्व धारक तथा (अपरिग्गहेउ के०) परिग्रह रहित एवो ठतो तु शब्दथी मृषावादादि कनु वर्जन पण जाणी लेवुं तथा (लोयस्स के०) लोक ते इहां प्रस्तावथकी अशुज कर्मकारी लेवो तथा कषाय लोक लेवो तेना स्वरूपने (वुज्झिज्जके०) जाणीने एवा लोकने (वसं के०) वशमां (नगछे के०) नपोहोचे ॥ २४ ॥ (एवंतिरिक्खमणुयासु रेसुं के०) ए जेम अशुज कर्मिने नरकगति कही तेम तिर्यंच मनुष्य तथा देवतानी गति एम वधिमली (चतुरत्तणंतं के०) चतुर्गतिक संसारने विषे अनंत (तयणुव्विवागं के०) तदनुरूप विपाक एटले अनंत एवो कर्मनो जे विपाक (सरुव्वमेयंइतिवेदइत्ता के०) सबुद्धिमान् सर्वमेतदितिविदित्वा एटले पंमित पुरुष ए पूर्वोक्त सर्वने इति एम जा णीने जेरीते श्रीजगवंते कह्योछे तेरीते (कंखेज्जके०) कांक्षा करे एटले वांछे सुंवांछेतोके (कालं के०) काल एटले ज्यांसुधी मरण प्राप्त थाय त्यांसुधी (धुयंके०) ध्रौव एटले संयमने (आयरेज्ज के०) आचरे एतावता चारित्रविना जीव चतुर्गतिक संसारमां भ्र मण करे ते कारण माटे जाव जीव सुधी त्रिविधे दयाधर्म रूप निरतिचार चारित्र पा लवाने वांछे अने सर्वथा पापनो त्याग करे. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ २५ ॥ इति श्री नरकविजक्तिनामे पांचमा अध्ययननो अर्थ संपूर्ण थयो ॥

---

॥ दीपिका-यत्कर्म यादृशं पूर्वजन्मांतरे अकार्षीत् कृतं तत्तादृगमेव संपराये संसारे अनुगच्छति। एकांतेन दुःखमेव जवोयस्मिन् सएकांतदुःखजवस्तमर्जयित्वा दुःखिनस्तमनंत दुःखंवेदयंति॥२३॥ एतान्नरकान् श्रुत्वा धीरोनहिंस्यात्किंचन प्राणिनं सर्वलोके एकांतदृष्टि निश्चलसम्यक्त्वोऽपरिग्रहः। तुशब्दान्मृषावादादिवर्जनमपि ज्ञेयं । तथा लोकं अशुजकर्म कारिणं तद्विपाकंच लुंजानं बुध्यते जानीयात् नतु तस्य वशं गच्छेत् ॥ २४ ॥ एवमशुज कर्मकारिणामसुमतां तिर्यङ्मनुष्यामरेष्वपि चतुरंतं चतुर्गतिकमनंतमपर्यवसानं तद

नुरूपं विपाकं सबुद्धिमान् सर्वमेतदिति पूर्वोक्तं विदित्वा ध्रुवं संयममाचरन् कालं कांक्षेत् । कोर्थः । चतुर्गतिकसंसारे दुःखमेव केवलं मत्वा संयमानुष्ठानरतोयावज्जीवं मृत्युकालं प्रतीक्षेत । इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २५ ॥ इति पंचमाध्ययने द्वितीयोद्देशकः ॥ ॥ इतितपोगच्छे श्रीहेमविमलसूरिशिष्यहर्षकुलपंमितप्रणीतायां श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां नरकविजक्तयाख्यं पंचमाध्ययनं समाप्तं. ॥ ॥

---

॥ टीका–किंचान्यत् ( जंजारिसमित्यादि ) यत्कर्म यादृशं यदनुनावं यादृक्स्थितिकं वा कर्म पूर्वं जन्मांतरे थकार्षीत् कृतवांस्तत्तादृगेव जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थित्यनुनावनेदं संपराये तथा तेनैव प्रकारेणानुगच्छति । एतडुक्तं नवति । तीव्रमंदमध्यमैर्बंधाध्यवसायस्थानैर्यादृशैर्यद्बद्धं तत्तादृगेव तीव्रमंदमध्यमेव विपाकमुदयं गच्छतीति । एकांतेनावश्यं सुखलेशरहितं डुःखमेव यस्मिन्नरकादिके नवे सतथा तमेकांतडुःखं नवमर्जयित्वा नरकनवोपादाननूतानि कर्माण्युपादायैकांतडुःखिनस्तत्पूर्वनिर्दिष्टं डुःखमसातवेदनीयप्रतिकारं वेदयंत्यनुनवंतीति ॥२३॥ पुनरप्युपसंहारव्याजेनोपदेशमाह । (एयाणिसोच्चाइत्यादि) एतान्पूर्वोक्तान्नरकान् स्वास्थ्या व्यपदेशइतिकृत्वा नरकडुःखविशेषान् श्रुत्वा निशम्य धीर्बुद्धिस्तया राजतइति धीरोबुद्धिमान् प्राज्ञः।एतत्कुर्यादिति दर्शयति।सर्वस्मिन्नपि त्रसस्थावरनेदनिन्ने लोके प्राणिगणे नकमपि प्राणिनं हिंस्यान्नव्यापादयेत् । तथैकांतेन निश्चयजीवादितत्वेषु दृष्टिः सम्यक् दर्शनं यस्य सएकांतदृष्टिर्निष्प्रकंपसम्यक्त्वइत्यर्थः । तथा नविद्यते परिसमंतान्सुखार्थं गृह्यतइति परिग्रहोयस्य सावध्यपरिग्रहः।तुशब्दादाद्यंतोपादाना द्वा मृषावादादत्तादानमैथुनवर्जनमपि द्रष्टव्यं । तथा लोकमशुनकर्मकारिणं तद्विपाकं फलं नुंजन् वा यदिवा कषायं लोकं तत्स्वरूपतोबुध्येत जानीयान्नतु तस्य वशं गच्छेदिति ॥२४॥ एतदनंतरोक्तं डुःखविशेष मन्यत्राप्यतिदिशन्नाह।(एवमित्यादि) एवमशुनकर्मकारिणामसुमतां तिर्यङ्मनुष्यामरेष्वपि चतुरंतं चतुर्गतिकमनंतमपर्यवसानं तदनुरूपं विपाकं स बुद्धिमान् सर्वमेतदिति पूर्वोक्तया नीत्या विदित्वा ज्ञात्वा ध्रुव संयममाचरन् कालं मृत्युकालमाकांक्षेत् । एतडुक्तं नवति । चतुर्गतिकसंसारांतर्गतानामसुमतां डुःखमेव केवलं यतोध्रुवोमोक्षः संयमोवा तदनुष्ठानरतोयावज्जीवं मृत्युकालं प्रतीक्षेतेति । इति परिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२५॥ इतिपंचमं नरकविजक्त्यध्ययनं परिसमाप्तं. ॥

अथ द्वितीये सूत्रकृतांगे षष्ठमध्ययनं प्रारन्यते । पांचमा अध्ययनने विषे नरकना डुःख कह्या ते श्रीमहावीरदेवे उपदेश्या छे ते माटे आ छठा अध्ययनने विषे श्री महावीर परमात्मानी गुणो त्किर्तनीपूर्वक स्तुति करेछे.

पुछिस्सु णं समणा माहणाय, अगारिणोया परतिछिआय ॥
से केइ णेगंतहियं धम्ममाहु, अणेलिसं साहु समिक्खयाए॥१॥
कहंच णाणं कह दंसणं से, सीलं कहं नायसुतस्स आसी॥ जा
णासि णं भिक्खु जहातहेणं, अहासुतं बूहि जहाणिसं तं ॥ २॥

अर्थ-(पुछिस्सुणं के०) पूर्वोक्त नरकना दुःख सांजलीने संसारना जयथी बीकपाम्या उजग्या एवा पुरुषो श्रीसुधर्म स्वामिने पूछेछे ते कोण पूछेछे तोके ( समणा के०) साधु तथा (माहणायके० ) ब्राह्मण तथा ( अगारिणोया के० ) आगारीते गृहस्थ क्षत्रिया दिक तथा (परतिछिआयके०) अन्य तीर्थिकते शाक्यादिक तापस प्रमुख जाणवा ए सर्व शुं पुछेछे ते कहेछे. ( सेकेइणेगंत के० ) ते कयो एकांत ( हियके० ) हितनो कर नार एवो ( अणेलिसं के० ) अनीदृशमतुलं एटले निरुपम शाश्वत ( साहुसमिक्खयाए के० ) साधु समीक्षाये यथास्थित तत्व ज्ञाने करी ज्ञातपुत्र श्रीमहावीरदेवे निरख्यो ( धम्मं के० ) धर्म ( आहु के० ) कह्योछे के जेणे करी जीव सुख पामे. ॥ १ ॥ ( कहंचणाणं के० ) केवुं ज्ञान वली ( कहंदंसणंसे के० ) दर्शन चारित्ररूप केवुं तथा ( सीलंकहं के० ) यम नियमरूप शील केवुंछे ए बधुं (नायसुतस्सआसीके०) ज्ञातपुत्र एटले क्षत्रिय शिरोमणी सिद्धार्थ राजाना पुत्र श्रीमहावीरने विषे केवुं हतुं ते ( भिक्खू के० ) अहो जगवन् ( जाणासिणं के० ) ए सर्व जेरीते तमे जाणोछो ( जहातहेणं के० ) यथा तथ्य एटले सत्य निरुपण रूप (अहासुतं के०) जेम तमे सांजल्युं छे (जहाणिसंतं के०) यथानिशांतं एटले सांजलीने जेम हृदयने विषे धारण कर्युंछे तेम अमने (बूहिके०) कहो.

---

॥ दीपिका--अथ षष्ठमारभ्यते। पूर्वाध्ययने नरकविभक्तिरुक्ता श्रीवीरेण। ततोऽत्र श्रीवीरस्यैव गुणाश्चर्च्यंते तस्येदमादिसूत्रं (पुछिस्सुणमिति) जंबूस्वामी सुधर्माणमाह। यथा के नैवंभूतोधर्मवक्तइत्येतद्दद्धवोमां पृष्टवंतः श्रमणाः साधवादयस्तथा ब्राह्मणाब्रह्मचर्यानुष्ठानरताअगारिणः क्षत्रियादयोयेच शाक्यादयः परतीर्थिकास्ते सर्वेपि पृष्टवंतः।किंतदित्याह। योसौ इमं धर्मं एकांतहितमाह उक्तवान् अनीदृशमनन्यसदृशमतुल्यमित्यर्थः। साध्वी चासौ समीक्षा तत्वपरिछित्तिश्च साधुसमीक्षा सासमता तया उक्तवान ॥१॥ तस्य श्रीवीरस्य ज्ञानं किंभूतं च दर्शनं शीलंच यमनियमरूपं कीदृगासीत्। हेसुधर्मस्वामिन् यन्मयापृष्टं तद्याथातथ्येन त्वंजानासि। णं वाक्यालंकारे। यथाश्रुतं श्रुत्वा च यथानिशांतमवधारितं तथा त्वं ब्रूहि इति पृष्टः सुधर्मा वीरगुणानाह ॥ २ ॥

॥टीका—उक्तं पंचममध्ययनं ।अधुना षष्ठमारभ्यते। अस्य चाऽयमभिसंबंधः।अत्रानंतराध्ययने नरकविभक्तिः प्रतिपादिता । सा च श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिनाऽभिहितेत्यतस्तस्यैवाऽनेन गुणकीर्तनद्वारेण चरितं प्रतिपाद्यते । शास्तुर्गुरुत्वेन शास्त्रस्य गरीयस्त्वमिति कृत्वेत्यनेन संबंधेनाऽऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोमहावीरगुणगणोत्कीर्तनरूपः।निक्षेपस्तु द्विधा । ओघनिष्पन्नोनामनिष्पन्नश्च । तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपे ऽध्ययनं । नामनिष्पन्नेतु महावीरस्तवः । तत्र महच्छब्दस्य वीरइत्येतस्य स्तवस्यच प्रत्येकं निक्षेपोविधेयः । तत्रापि यथोद्देशस्तथानिर्देशं इतिकृत्वा पूर्वं महच्छब्दोनिरुप्यते । तत्राऽस्त्ययऽयं महच्छब्दोबहुत्वे । यथा महाजनइति अस्तिबृहत्त्वे । यथा महाघोषोऽस्तीत्यर्थं यथा महानयमित्यऽस्ति प्राधान्ये यथा महापुरुषइति । तत्रेह प्राधान्ये वर्तमानोगृहीतइत्येतन्निर्युक्तिकारोदर्शयितुमाह । पाहन्नेमहसद्दो, दव्वे खेत्ते य कालभावेय ॥ वीरस्सछक्कोणिक्खेओ चउक्कओहोइणायव्वो ॥ १ ॥ पाहन्नेमहसद्दोइत्यादि तत्र महावीरस्तवइत्यत्र योमहच्छब्दः सप्राधान्ये वर्तमानोगृहीतः । तच्च नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् षोढा । प्राधान्ये नामस्थापने क्षुण्णे द्रव्यप्राधान्यं । ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं सचित्ताचित्तमिश्रभेदात् त्रिधा । सचित्तमपि द्विपदचतुष्पदे नरहस्त्यश्वादिकमपदेषु प्रधानं कल्पवृक्षादिकं । यदि वेहैव ये प्रत्यक्षारूपरसगंधस्पर्शैरुत्कृष्टाः पौंडरीकादयः पदार्थाः । अचित्तेषु वैडूर्यादयोनानाप्रभावमणयोमिश्रेषु तीर्थकरोविभूषित इति । क्षेत्रतः प्रधानासिद्धिर्धर्माश्रयणान्महाविदेहं चोपभोगांगीकरणेन तु देवकुर्वादिकं क्षेत्रं कालतः प्रधानं त्वेकांतसुषमादि । योवा कालविशेषोधर्मचरणप्रतियोग्यइति । भावप्रधानंतु क्षायिकोभावस्तीर्थकरशरीरापेक्षयौदयिकोवा । तत्रेहद्वयेनाऽप्यधिकारइति । वीरस्य द्रव्यक्षेत्रकालभेदाच्चतुर्धा निक्षेपः । तत्र ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तोद्रव्यवीरोद्रव्यार्थं संग्रामादावद्भुतकर्मकारितया शूरोयदिवा यत्किंचित् वीर्यवद् द्रव्यं तत् द्रव्यवीरेंऽस्तत्र्भवति । तद्यथा। तीर्थकृदनंतबलवीर्योलोकमलोकं कंडुकवत् प्रक्षेप्तुमलं । तथा मंदरं दंडं कृत्वा रत्नप्रभां पृथिवीं छत्रवद्बिभृयात् ।तथा चक्रवर्तिनोपि बलं दोसोलावत्तीसा। तथा विषादीनां मोहनादिसामर्थ्यमिति । क्षेत्रवीरस्तु योयस्मिन् क्षेत्रेऽद्भुतकर्मकारी वीरोवा यत्र वर्ण्यते । एवं कालेऽप्यायोज्यं । भाववीरोयस्य क्रोधमानमायालोभैः परीषहादिभिश्चात्मनोजेता ।, तथाचोक्तं । कोहं माणं च मायं च, लोभं ,पंचेंदियाणिय ॥ दुज्जंपंचेव अप्पाणं सव्वमप्पेजिएजियं ॥ १ ॥ योसहस्संसहस्साणं संगामेदुज्जयेजिणे । एक्कंजिणेज्जअप्पाणं एसेसपरमोजओ ॥ २ ॥ तथा । एक्कोपरिभमउजए, वियडंजिणके सरीसलीलाए ॥ कंदप्पदुट्ठदाढो मयणोविड्डारिओजेण ॥३॥ तदेवं वर्धमानस्वाम्येव परीषहोपसर्गैरनुकूलप्रतिकूलैरपराजितोऽद्भुतकर्मकारित्वेन गुणनिष्पन्नात् भावतोमहावीर

इति नण्यते । यद्दिवा द्रव्यवीरोव्यतिरिक्तएकनविकादिः । क्षेत्रवीरोयत्र तिष्ठत्यऽसौ व्या वर्ण्यते वा कालोऽप्येवमेव । नाववीरोनोआगमतोवीरनामगोत्राणि कर्माण्यनुनवन् स च वीरवर्धमानस्वाम्येवेति ॥ स्तवनिक्षेपार्थमाह ॥ थुइणिरकेवोचजहा, अंगतुअनूसणेहिं दवसुती ॥ नावेसंताणगुणा, णकित्तणाजेजहिंनणिया ॥ २ ॥ ( थुइणिरकेवोइत्यादि ) स्तुतेः स्तवस्य नामादिश्चतुर्धा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने पूर्ववत् । द्रव्यस्तवस्तु ज्ञश रीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तोयः कटककेयूरस्रक्चंदनादिनिः सचित्ताचित्तद्रव्यैः क्रियतइति । नावतस्तु वस्तुतः सन्नूतानां विद्यमानानां गुणानां ये यत्र नवंति तत्कीर्तनमिति ॥ सांप्रतं आद्यसूत्रसंस्पर्शद्वारेण सकलाध्ययनसंबंधप्रतिपादिकां गाथां निर्युक्तिकृदाह । पुछिस्सु जंबुणामो,अज्ज सुहम्मा तर्डकहेसीय । एवमहाप्पवीरो, जयमाहाडु तहा जएज्जा हिं ॥ ३ ॥ जंबूस्वामी आर्यसुधर्मस्वामिनं श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिगुणान् पृष्टवान् अतोऽसावपि नवान् सुधर्मस्वाम्येवंगुणविशिष्टोमहावीरइति कथितवान् । एवं चाऽसौ न गवान् संसारस्य जयमनिनवं चाह । ततोयूयमपि यथा नगवान् संसारं जितवान् तथै य यत्नं विधत्त । सांप्रतं निक्षेपानंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (पुछिस्सुणमित्यादि) । अस्य चाऽनंतरसूत्रेण सहायं संबंधःातद्यथा । तीर्थकरो पदिष्टेन मार्गेण ध्रुवमाचरन् मृत्युमुपेक्षेतेत्युक्तं । तत्र किंनूतोऽसौ तीर्थकृत् येनोप दिष्टोमार्गइत्येतत् पृष्टवंतः श्रमणायतयइत्यादि । परंपरसूत्रसंबंधस्तु बुध्येत ॥ यडुक्तं । प्रागित्येतच्च यडुत्तरत्र प्रश्नवचनं वक्ष्यते तच्च बुध्यतेत्यनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्य सूत्रस्य संहितादिक्रमेण व्याख्या प्रतन्यते । साचाऽयमनंतरोक्तां बहुविधां नरकविनक्तिं श्रुत्वा संसाराडुद्विग्नमनसः केनेयं प्रतिपादितेत्येतत् सुधर्मस्वामिनमप्राक्षुः पृष्टवंतः । णमितिवाक्यालंकारे । यदिवा जंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमेवमाह । यथा केनैवं नूतोधर्मं संसारोत्तरणे समर्थः प्रतिपादितइत्येतद्बहवोमां पृष्टवंतः । तद्यथा । श्रमणानिर्ग्रं थादयोत्राह्मणाब्रह्मचर्याद्यनुष्ठाननिरतास्तथाऽऽगारिणः क्षत्रियादयोयेच शक्यादयः पर तीर्थिकास्ते सर्वेऽपि पृष्टवंतः । किंतदिति दर्शयति । सकोयोऽसावेनं धर्मं डुर्गतिप्रसृतजं तुधारकमेकांतहितमाहोक्तवान् अनीदृशमतुलमित्यर्थः । तथा साध्वीचाऽसौ समीक्षा च साधुसमीक्षा यथावस्थिततत्त्वपरिछित्तिस्तया यदिवा साधुसमीक्षया समतयोक्तवानिति ॥ ॥ १ ॥ तथा तस्यैव ज्ञानादिगुणावगतये प्रश्नमाह । ( कहंचणाणमित्यादि ) कथं केन प्रकारेण नगवान् ज्ञानमवाप्तवान् किंनूतं वा तस्य नगवतोज्ञानं विशेषावबोधकं । किं नूतं च तस्य दर्शनं सामान्यार्थपरिछेदकं शीलं च यमनियमरूपं कीदृक् ज्ञाताः क्षत्रियास्ते षां पुत्रोनगवान् वीरवर्धमानस्वामी तस्याऽऽसीन्नूदिति यदेतन्मया पृष्टं तत् निक्षोसुध र्मस्वामिन् याथातथ्येन त्वं जानीषे सम्यगवगच्छसि । (णमितिवाक्यालंकारे) तदेतत्सर्वं

यथाश्रुतं त्वया श्रुत्वा च यथानिशांतमित्यवधारितं यथा दृष्टं तथा सर्वं ब्रूह्याचक्ष्वेति ॥२॥

खेयन्नेसे कुसले (सुपन्नेपा०) महेसी, अणंतनाणीय अणंतदंसी॥
जसस्सिणो चक्कुपहठियस्स, जाणाहि धम्मंच धिइं पेचहि.
॥ ३ ॥ उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, तसाय जे थावर जेह पाणा॥
सेणिच्चणिच्चेहि समिक्क पन्ने, दीवेव धम्मं समियं उदाहु ॥ ४ ॥

अर्थ—एम श्री सुधर्म स्वामिने पुछ्या थका सुधर्मस्वामि श्री महावीर देवना गुण कहेछे. (सेके०) ते श्री महावीरदेव (खेयन्नेके०) खेदज्ञ एटले संसारी जीवोने कर्म विपाक थकी उत्पन्न थयुं जे खेद एटले दुःख तेने जाणे जाणीने उपदेश आपी तेना दुःख टालवाने सामर्थवान तथा (कुसलें के०) कर्म विदारवाने निपुण अने (महेसी के०) महोटा रूषीश्वर साधु तथा (अणंतनाणीय के०) अनंत अविनाशी जेनुं ज्ञान प्रगटयुंछे (अणंतदंसीके०) अनंत अविनाशी जेमनुं दर्शन प्रगटयुं छे (जसस्सिणोके०) यशस्वी एटले जेनो यश त्रण भुवनमां व्याप्योछे (चक्कुपहठियस्स के०) लोकने चक्षुभूत समानछे केमके लोकना नावना जे नेद ते सर्व परिछेछे माटे लोकने चक्षुने स्थानके वर्तेछे (जाणाहि धम्मंच के०) एवा श्री महावीर प्रणीत जे श्रुत चारित्ररूप धर्म तेने धर्म जाणो. (धिइंच के०) तथा तेज संयमने विषे धृति एटले धैर्यपणु तेपण श्रीमहावीरनोज (पेहि के०) प्रेक्षो एटले देखो एटले श्रुत चारित्ररूप संयमने विषे जेहने रतिछे धैर्यछे. ॥ ३ ॥ (उड्ढंअहेयंतिरियंदिसासु) के० उंचोनीचो अने तिर्छो एटले चौदराज लोक मांहे पूर्वादिक अढार द्रव्य दिशाउ अने अढार नावदिशाउ मध्ये (तसायजेथावरजेहपाणा के०) जे बेंद्रियादिक त्रस प्राणी अने एकेंद्री पृथवियादिक जे स्थावर प्राणीछे (सेणिच्चणिच्चेहिसमिक्कपन्ने के०) तेने नगवंत नित्यानित्य नेदे द्रव्य पर्याय नेदे सम्यक् प्रकारे जाणे एवा श्रीमहावीर वीतराग देव.तेणे संसार समुद्र मांहे पडता बुडतां प्राणीने (दीवेव के०) द्वीप समान एवो (समियं के०) समनावि (धम्मं के०) धर्म (उदाहु के०) कह्यो छे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—सनगवान् वीरः खेदं प्राणिनां कर्मविपाकजं दुःखं जानातीति खेदज्ञः कुशलोनिपुणोमहर्षिस्तपश्चरणानुष्ठायी अनंतज्ञानी अनंतदर्शीच । विशेषग्राहकं ज्ञानं सामान्यग्राहकं दर्शनं तेद्वेअपि यस्यानंते तस्य यशस्विनोनगवतोलोकस्य चक्षुःपथे लोचनमार्गे स्थितस्य नवस्थकेवलिनइत्यर्थः । तस्य धर्मं संसारतारणसमर्थं धृतिंच संयमनिभलतां जानीषे । ततः (पेहित्ति) कथय । अथवा तथैवेति यथा धर्मस्तथा धृतिरपी

ति ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च सर्वदिक्षु चतुर्दशरज्ज्वात्मके ये त्रसाः स्थावराश्च ये प्राणि नस्तान् नित्यानित्याभ्यां समीक्ष्य ज्ञात्वा प्राज्ञोनगवान् दीपइव प्रकाशकत्वात् धर्ममु दाह्रत उक्तवान् समतया । यदागमः । जहापुण्णस्सकत्थई तहातुछस्सकत्थइ इति ॥ ४ ॥

॥ टीका–स एवं पृष्टः सुधर्मस्वामी श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिगुणान् कथयितुमा ह । ( खेयन्नएसेइत्यादि ) स नगवान् चतुस्त्रिंशदतिशयसमेतः खेदं संसारांतर्वर्तिनां प्राणिनां कर्मविपाकजं डुःखं जानातीति खेदज्ञोडुःखापनोदनसमर्थोपदेशदानात् । यदि वा क्षेत्रज्ञोयथावस्थितात्मस्वरूपपरिज्ञानादात्मज्ञइति । अथवा क्षेत्रमाकाशं तज्जाना तीति क्षेत्रज्ञोलोकालोकस्वरूपपरिज्ञातेत्यर्थः । तथा नावकुशानष्टविधकर्मरूपान् लुना ति छिनत्ति कुशलः प्राणिनां कर्मोच्छित्तये निपुणइत्यर्थः । आशु शीघ्रं प्रज्ञा यस्याऽसावा शुप्रज्ञः । सर्वत्र सदोपयोगान्नछद्मस्थइव विचिंत्य जानातीति नावः । महार्षिरिति क्वचित्पा ठः । महांश्चासावृषिश्च महर्षिरत्यंतोग्रतपश्चरणानुष्ठायित्वादतुलपरीषहोपसर्गसह नाच्चेति । तथा अनंतमविनाश्यनंतपदार्थपरिछेदकं वा ज्ञानं विशेषग्राहकं यस्यासा वनंतज्ञानी । एवं सामान्यार्थपरिछेदकत्वेनाऽनंतदर्शी । तदेवं नूतस्य नगवतोयशोनृसु रासुरातिशाय्यतुलं विद्यते यस्य सयशस्वी तस्य लोकस्य चक्षुःपथे लोचनमार्गे नवस्थकेव ल्यवस्थायां स्थितस्य लोकानां सूक्ष्मव्यवहितपदार्थाविर्नावनेन चक्षुर्नूतस्य वा जानीह्यव गछ । धर्मं संसारोद्धरणस्वनावं तत्प्रणीतं वा श्रुतचारित्राख्यं तथा तस्यैव नगवतस्तथोप सर्गितस्याऽपि निष्प्रकंपां चारित्राचलनस्वनावां धृतिं संयमे रतिं तत्प्रणीतां वा प्रेक्षस्व स म्यक्कुशाग्रीयया बुद्ध्या पर्यालोचयेति । यदिवा तैरेव श्रमणादिनिः सुधर्मस्वाम्यनिहितो यथा त्वं तस्य नगवतोयशस्विनश्चक्षुष्पथे व्यवस्थितस्य धर्मं धृतिं च जानीषे । ततोऽस्मा कं ( पेहित्ति ) कथयेति ॥ ३ ॥ सांप्रतं सुधर्मस्वामी तद्गुणान् कथयितुमाह । ( उड्ढेअ हेयमित्यादि ) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्षु सर्वत्रैव चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके ये केचन त्रस्यंतीति त्रसास्तेजोवायुरूपाविकलेंद्रियपंचेंद्रियनेदात् त्रिधा । तथा येच स्थावराः पृथि व्यंबुवनस्पतिनेदात् त्रिविधाः । एते श्वासादयः प्राणाविद्यंते येषां ते प्राणिनइत्यनेन च शाक्यादिमतनिरासेन पृथिव्याद्येकेंद्रियाणामपि जीवत्वमावेदितं नवति । सनगवांस्ता न् प्राणिनः प्रकर्षेण केवलज्ञानित्वात् जानातीति प्रज्ञः सएव प्राज्ञोनित्यानित्याभ्यांद्र व्यार्थपर्यायार्थाश्रयणात् समीक्ष्य केवलज्ञानेनाऽर्थान् परिज्ञाय प्रज्ञापनायोग्यानाहेत्यु त्तरेण संबंधः । तद्यथा । सप्राणिनां पदार्थाविर्नावनेन दीपवत् दीपः । यदिवा संसारार्णव पतितानां सडुपदेशप्रदानतआश्वासहेतुत्वात् दीपइव दीपः । सएवंनूतः संसारोत्तारण समर्थं श्रुतचारित्राख्यं सम्यक् इतं गतं सदनुष्ठानतया रागद्वेषरहितत्वेन समतया वा ।

तथाचोक्तं । जहापुस्सस्सकब्रइतहातुब्रस्सकब्रइइत्यादि समं वा धर्ममुत्प्राबल्येनाऽऽह उक्तवान् । प्राणिनामनुग्रहार्थं न पूजासत्कारार्थमिति ॥ ४ ॥

से सव्वदंसी अभिभूयनाणी, णिरामगंधे धिइमं ठितप्पा ॥ अणु त्तरे सव्व जगंसि विज्जं, गंथा अतीते अभए अणाऊ ॥ ५ ॥ स भूइपन्ने अणिए अचारी, उहंतरे धीरे अणंतचक्कु ॥ अणुत्तरे तप्पति सूरिएवा, वइरोयणिं देवतमं पगासे ॥ ६ ॥

अर्थ—( सेके० ) ते भगवंत ( सव्वदंसीके० ) सर्वदर्शि एटले लोकालोकने देखनार वली ( अभिभूतनाणी के० ) बावीश परिसहने जीतवा थकी केवल ज्ञानी थया ( णि रामगंधेके० ) निरामगंध एटले मूलोत्तर गुण विशुद्ध संयम पालक तथा ( धिइमंके० ) धैर्यवंत ( ठितप्पाके० ) स्थितात्मा एटले समस्त कर्मना क्षय थकी आत्म स्वरूपमांज जे स्थित थयाछे तथा ( अणुत्तरेसव्वजगंसिविज्जं के० ) अनुत्तर एटले प्रधान सर्व ज गतमां निरुपम ज्ञाता माटे विद्वान् एटले भली बुधिवंतछे तथा (गंथाअतीतेके०) ग्रंथ थकी अतीत एटले निर्ग्रंथ बाह्याभ्यंतर परिग्रह रहितछे. ( अभएके० ) सप्त भय रहितछे तेना नाम कहेछे पेलुं इहलोकभय बीजुं परलोकभय त्रीजुं आदान भय चोथुं अकस्मात् भय पांचमुं वेदना भय छहुं अपकीर्त्तिभय सातमुं मरण भय तथा ( अणाऊ के० ) चा रप्रकारना आयुकर्म करी रहितछे ॥ ५ ॥ ( सके० ) ते भगवंत ( भूइपन्ने के० ) भूति प्रज्ञ एटले अनंत ज्ञानी तथा ( अणिएअचारी के० ) अप्रतिबद्ध विहारी जाणवा (उहंतरेके०) उघ एटले संसाररूप समुद्रने तरनार (धीरेके०) धीर एटले निश्चल (अणं तचक्कु के० ) अनंत ज्ञानरूप चक्षुना धरनार ( अणुत्तरेतप्पतिसूरिएवा के० ) जेम सूर्य सर्व थकी अधिक तपे तेम भगवंत ज्ञाने करी सर्व थकी उत्तम प्रधानछे (वइरोय णिंदेवतमंपगासे के० ) तथा वेरोचनेंद्र एटले अग्नी जेम अंधकारने दूर करी अधिक प्रकाशकरेछे तेम श्रीमहावीर यथावस्थित पदार्थना प्रकाशक जाणवा ॥ ६ ॥

---

॥ दीपिका—ससर्वदर्शी अभिभूय द्वाविंशतिपरीषहान् पराजित्य ज्ञानं च केवलाख्यं विद्यते यस्य सज्ञानी निर्गतआमोविशोधिकोटिरूपोगंधोयस्मात्सनिरामगंधः । मूलोत्तर गुणविशिष्टचारित्रइत्यर्थः । धृतिमान् स्थैर्यसंपन्नः स्थितात्मा निर्मलात्मा अनुत्तरउ त्कृष्टः सर्वस्मिन्नजगति विद्वान् सर्वपदार्थवेत्ता ग्रंथाद्बाह्याभ्यंतरपरिग्रहादतीतोनिर्ग्रंथइ त्यर्थः । अभयः सप्तभयरहितः । नविद्यते चतुर्विधमप्यायुर्यस्यासावनायुः ॥५॥ भूतिश ब्दोत्र वृद्धौ । भूतिप्रज्ञोवृद्धप्रज्ञो ऽनंतज्ञानइत्यर्थः। अनियतचारी उघं संसारं तरतीति उ

घतरः धिया राजतेधीरः । अनंततया ऽनंतत्वाच्चक्षुर्ज्ञानं यस्य स तथा । यथा सूर्योऽनुत्तरं सर्वाधिकं तपति यथा वा वैरोचनोऽग्निः सएव प्रज्वलितत्वादिंद्रः सयथा तमोपनीय प्रकाशयति एवमसावपि नगवान् ॥ ६ ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत् । (सेसवदंसीत्यादि ) सनगवान् सर्वं जगत् चराचरं सामान्येन दृष्टुं शीलमस्य ससर्वदर्शी । तथाऽनिनूय पराजित्य मत्यादीनि चत्वार्यऽपि ज्ञानानि यद्वर्तते ज्ञानं केवलाख्यं तेन ज्ञानेन ज्ञानी । अनेन चाऽपरतीर्थाधिपाधिकत्वमावेदितं नवति । ज्ञानक्रियाज्यां मोक्षइति कृत्वा तस्य नगवतो ज्ञानं प्रदर्श्य क्रियां दर्शयितुमाह। निर्गतोऽपगतश्चामोऽविशोधिकोटयाख्यस्तथा गंधोविशोधिकोटिरूपोयस्मात् सनवति निरामगंधः । मूलोत्तरगुणनेदनिन्नां चारित्रक्रियां कृतवानित्यर्थः । तथाऽसह्यपरीषहोपसर्गानिडुतोऽपि निष्प्रकंपतया चारित्रधृतिमान् तथा स्थितोव्यवस्थितोऽशेषकर्मविगमादात्मस्वरूपे आत्मा यस्य स नवति स्थितात्मा । एतच्च ज्ञानक्रिययोः फलद्वारेण विशेषणं । तथा नास्योत्तरं प्रधानं सर्वस्मिन्नऽपि जगति विद्यते सतथा विद्वानिति सकलपदार्थानां करतलामलकन्यायेन वेत्ता । तथा बाह्यग्रंथात् सचित्तादिनेदादांतराच्च कर्मरूपादतीतोऽतिक्रांतोग्रंथातीतोनिर्ग्रंथइत्यर्थः । तथा न विद्यते सप्तप्रकारमपि नयं यस्याऽसावनयः समस्तनयरहितइत्यर्थः । तथा न विद्यते चतुर्विधमप्यायुर्यस्य सनवत्यनायुर्दग्धकर्मबीजत्वेन पुनरुत्पत्तेरनावादिति ॥ ५ ॥ अपिच ( सनूइपण्णेइत्यादि ) । नूतिशब्दोवृद्धौ मंगले रक्षायां च वर्तते । तत्र नूतिप्रज्ञः प्रवृद्धप्रज्ञः । अनंतज्ञानवानित्यर्थः । तथा नूतिप्रज्ञोजगद्रक्षानूतिप्रज्ञः । एवं सर्वमंगलनूतिप्रज्ञइति । तथा अनियतमप्रतिबद्धं परिग्रहोयोगाच्चरितुं शीलमस्याऽसावनियतचारी । तथौघं संसारसमुद्रं तरितुं शीलमस्य स तथा धीर्बुद्धिस्तया राजतइति धीरः परीषहोपसर्गाऽक्षोन्योवा धीरः । तथा अनंतं ज्ञेयानंततया नित्यतया वा चक्षुरिव चक्षुः केवलं ज्ञानं यस्याऽनंतस्यवा लोकस्य पदार्थप्रकाशकतया वा चक्षुर्नूतोयः सनवत्यनंतचक्षुः । तथा यथा सूर्योऽनुत्तरं सर्वाधिकं तपति न तस्मादधिकस्तापेन कश्चिदस्ति । एवमसावपि नगवान् ज्ञानेन सर्वोत्तमइति । तथा वैरोचनोऽग्निः सएव प्रज्वलितत्वात् इंद्रोयथाऽसौतमोऽपनीय प्रकाशयति एवमसावपि नगवानज्ञानतमोऽपनीय यथावस्थितपदार्थप्रकाशनं करोति ॥ ६ ॥

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं, णेया मुणी कासव आसुपन्ने ॥ इं
देव देवाण महाणुनावे सहस्सणेता दिवि णं विसिठे ॥७॥ से प
न्नया अरकय सागरेवा, महोदहीवावि अणंतपारे ॥ अणाइ
लेया अकसाइ मुक्के (पाठांतरे निक्कु) सक्केव देवाहिवई जुईमं ॥८॥

अर्थ-(अणुत्तरंधम्ममिणंजिणाणं के० ) जे श्रीऋषभादिक प्रभाववंत तीर्थंकरो त तु संबंधी जे निरुपम धर्म तेनो नायक एटले तेने ( णेया के० ) जाणे एवा ( मुणी के०) चारित्रवान ( कासव के० ) काश्यपगोत्री श्रीमहावीर ( आसुपन्ने के० ) उता वली प्रज्ञानो जाण ( इंदेवदेवाणमहाणुभावे के० ) जेम इंद्र हजारो देवतानो नायक महाप्रभाववंत देवो मांहे प्रधान तेम श्री महावीर केवलज्ञानी ( सहस्सणेतादिविणं विसिठे के० ) सहस्र पुरुषोमां देवताना नायक जेइंद्रतेनी पेरे विशिष्ट माहानुभाव जाणवा ॥ ७ ॥ ( सेके० ) तेभगवंत ( पन्नयाअरकयसागरेवा के० ) प्रज्ञायें एटलेबुद्धि यें करीने अक्षयछे वा शब्द विशेषणने अर्थेंछे कोनी पेरे तोके जेम समुद्र जे ( महो दहीवावि के० ) महोदधी एवो स्वयंभुरमण समुद्र ( अणंतपारे के० ) निर्मल जेनु ज लछे इत्यादिक गुणे करी अनंतअपारछे तेम श्रीवीरपण ( अणाइलेया के० ) अकलुष अकषाइ थका ( निरकू के० ) भिक्षाये आजीविका करेछे यद्यपि निःशेष कर्मक्षय करी त्रैलोक्यने पूज्यछे तथापि भिक्षाये आजीवेछे परंतु अक्षीणमाहानसी प्रमुख लब्धीने प्रयुंजता नथी एवा अनेक गुणयुक्त श्रीमहावीरदेवछे तथा ( सक्केवदेवाहिवईजुईमं के० ) शक्रेंद्र देवताना स्वामी तेनी पेरे दीप्तिमान्छे ॥ ८ ॥

---

॥ दीपिका-अनुत्तरं धर्मं जिनानामृषभादिनां संबंध्ययं मुनिः श्रीवीरोनेता प्रणेता काश्य पोगोत्रेण। आशुप्रज्ञः केवली। नेताइति ताच्छीलिकस्तृन् । तद्योगे नलोकाव्ययेतिषष्ठीनि षेधाद्धर्मंमिति कर्मणिद्वितीया । यथा इंद्रोदेवसहस्राणां मध्ये महानुभावः। णं वाक्यालं कारे। दिवि स्वर्गे विशिष्टोरूपबलादिभिः। एवं स भगवान् सर्वेभ्योविशिष्टोनेता ॥७॥ सभग वान प्रज्ञयाक्षयोऽक्षीणज्ञानइत्यर्थः । यथा महोदधिः सागरः स्वयंभुरमणइवानंतपा रोविस्तीर्णगंभीरजलोऽक्षोभ्यश्चानाविलोऽकलुषजलस्तथा भगवानपि अकलुषोपि मुक्तः क र्मबंधात् यथा शक्रोदेवधिपतिर्द्युतिमान् दीप्तिमान् ॥ ८ ॥

---

॥ टीका-किंच ( अणुत्तरमित्यादि ) । नाऽस्योत्तरोऽस्तीत्यनुत्तरस्तमिममनुत्तरं धर्मं जिनानामृषभादितीर्थकृतां संबंधिनमयं मुनिः श्रीमान् वर्धमानाख्यः काश्यपोगोत्रेणाशु प्रज्ञः केवलज्ञानी उत्पन्नदिव्यज्ञानोनेता प्रणेतेति । ताच्छीलिकस्तृन् तद्योगे नलोकाव्य यनिष्ठेत्यादिना षष्ठीप्रतिषेधाद्धर्ममित्यत्र कर्मणिद्वितीयेव । यथा चेंद्रोदिवि स्वर्गे देवसह स्राणां महानुभावोमहाप्रभाववान् । णमितिवाक्यालंकारे। तथा नेता प्रणायकोवि शिष्टोरूपबलवर्णादिभिः प्रधानएवं भगवानपि सर्वेभ्योऽपि विशिष्टः प्रणायकोमहानु भावश्चेति ॥ ७ ॥ अपिच ( सेपन्नयेत्यादि ) असौ भगवान् प्रज्ञायतेऽनयेति प्रज्ञा त या अक्षयोन तस्य ज्ञातव्येऽर्थे बुद्धिः प्रतिक्षीयते प्रतिहन्यते वा । तस्य हि बुद्धिः वलके

ज्ञानाख्या साच साद्यपर्यवसाना कालतोऽव्यक्षेत्रनावैरप्यनंता । सर्वसाम्येन दृष्टांताजावादे केदेशेन त्वाह । यथा सागरइति। अस्य वा विशिष्टत्वात् विशेषणमाह। महोदधिरिव स्वयंनू रमणइवाऽनंतपारः । यथाऽसौ विस्तीर्णोगंनीरजलोऽक्षोन्यश्च । एवं तस्याऽपि जगवतो विस्तीर्णा प्रज्ञा स्वयंनूरमणानंतगुणोगंनीरो ऽक्षोन्यश्च । यथा चासौ सागरोऽनाविलोऽ कलुषजल एवं जगवानपि तथाविधकर्मलेशाजावादकलुषज्ञानइति । तथा कषायाविद्यं ते यस्याऽसौकपायी नकपायी अकपायी । तथा ज्ञानावरणीयादिकर्मबंधनाद्वियुक्तोमुक्तः । निक्षुरिति क्वचित्पाठः । तस्याऽयमर्थः । सत्यपि निःशेषांतरायक्षये सर्वलोकपूज्यत्वेच तथापि निक्षामात्रजीवित्वात् निक्षुरेवाऽसौ नाऽक्षीणमहानसादिलब्धिमुपजीवतीति । तथा शक्रइव देवाऽधिपतिर्द्युतिमान् दिप्तिमानिति ॥ ८ ॥

से वीरिएणं पडिपुन्नवीरिए, सुदंसणेवा णगसव्वसेठे॥ सुरालएवा सि मुदागरे से, विरायए णेगगुणोववेए ॥ ए॥ सयं सहस्साण उ जोयणाणं, तिकंमगे पंमगवेजयंते ॥ से जोयणेणवणवतिसहस्से उद्धुस्सितो हेठसहस्समेगं ॥ १० ॥

अर्थ–( सेवीरिएणंपडिपुन्नवीरिए के० ) ते जगवंत श्रीमहावीर वीर्यांतराय कर्मना क्षय थकी बलेकरी प्रतिपूर्ण वीर्यवानछे एटले संघयणादिके बलवान छे ( सुदंसणेवा णगसव्वसेठे के०) सुदर्शन शब्दे मेरुपर्वत ते जेम सर्व पर्वतमां श्रेष्ठछे तेम जगवंत पण ऐश्वर्यगुणे करी सर्वमां श्रेष्ठछे वली ( सुरालएवासि के० ) देवलोकना निवासी देवताने ( सेके० ) तेमेरुपर्वत (मुदाकर के०) हर्षनो करनारछे ( अणेगगुणोववेए के० ) प्रशस्त एवा अनेक वर्णादिक गुणे करी (विरायएके०) विराजमान एटले शोनेछे तेम श्रीजिगवानप ण जाणवा ॥ए॥ तेमेरु पर्वत (सयंसहस्साणउजोयणाणंके०) सतसहस्र योजन प्रमाण सर्वांगे उंच पणे जाणवो तेमज ( सेके० ) ते पर्वतना ( तिकंमे के० ) त्रण कांमछे एक नूमिमय बीजो सुवर्णमय त्रीजो वैडूर्यमयछे अने (पंमगवेजयंते के०) पंमगवनछे ते वेजयंति एटले ध्वजा समान शोनेछे ( सेजोयणेणवणवतिसहस्से के० ) ते मेरु पर्वत णवणवति एटले नवाणु हजार योजन ( उद्धुस्सितो के० ) उंचो जाणवो अने ( हेठसहस्समेगं के० ) नीचे नूमि मध्ये एक हजार योजननो कंदछे एम सर्व मली एक लाख योजन प्रमाणछे ॥ १० ॥

॥ दीपिका–सजगवान् वीर्येण बलेन प्रतिपूर्णवीर्यः सुदर्शनोमेरुर्जंबूद्वीपमध्यगतोय था नगानां पर्वतानां सर्वेषां श्रेष्ठस्तथा जगवान् गुणैः श्रेष्ठः । यथाच सुरालयः स्वर्गः सु

राणां मुदाकरोत्पंजनकोऽनेकैर्गुणैर्वर्णरसगंधादिनिरुपेतोविराजते एवं नगवानपि ॥ ॥ ए ॥ समेरुर्योजनसहस्राणां शतमुच्चैस्त्वेन त्रीणि कंडकानि यस्य सत्रिकंडकः । तथाहि । नौमं जांबूनदं वैडूर्यंचेति । सकिंनूतः। पंडकं वनं वैजयंतीकल्पं पताकानूतं शिरसि स्थितं यस्य सपंडकवैजयंतः सनवनवतियोजनसहस्राणि ऊर्ध्वोछ्रितः अधोपि सहस्रमेकमवगाढः ॥ १० ॥

---

॥ टीका–किंच ( सेवीरिएणमित्यादि ) । स नगवान् वीर्येणोरसेन बलेन धृतिसंहननादिनिश्च वीर्यांतरायस्य निःशेषतः क्षयात् प्रतिपूर्णवीर्यस्तथा सुदर्शनोमेरुर्जंबुद्वीपनानिनूतः । तथा नगानां पर्वतानां सर्वेषां श्रेष्ठः प्रधानस्तथानगवानपि वीर्येणाऽन्यैश्च गुणैः सर्वश्रेष्ठइति । तथा यथा सुरालयः स्वर्गस्तन्निवासिनां मुदाकरोत्पंजनकः प्रशस्तवर्णरसगंधस्पर्शप्रनावादिनिर्गुणैरुपेतोविराजते शोनते । एवं नगवानप्यनेकैर्गुणैरुपेतोविराजतइति । यदिवा यथा त्रिदशालयोमुदाकरो ऽनेकैर्गुणैरुपेतोविराजतइति । एवमसावपि मेरुरिति ॥ ए ॥ पुनरपि दृष्टांतनूतमेरुवर्णनायाह । ( सयंसहस्साण मित्यादि ) समेरुर्योजनसहस्राणां शतमुच्चैस्त्वेन । तथा त्रीणि कंडान्यस्येति त्रिकंडः । तद्यथा नौमं जांबूनदं वैडूर्यमिति । पुनरप्यसावेव विशेष्यते । पंमकवैजयंतइति । पंमकवनं शिरसि व्यवस्थितं वैजयंतीकल्पं पताकानूतं यस्य सतथाऽसावूर्ध्वमुछ्रितोनवनवतियोजनसहस्राण्यधोऽपि सहस्रमेकमवगाढइति. ॥ १० ॥

पुठे एन्ने चिठइ नूमिवठिए, जं सूरिया अणुपरिवट्टयंति ॥ से
हेमवन्ने बहुनंदणेय, जंसी रतिं वेदयंती महिंदा ॥ ११ ॥ से पव
ए सद्दमहप्पगासे, विरायती कंचणमठवन्ने ॥ अणुत्तरे गिरिसु
य पव्वडुग्गे, गिरीवरे से जलिएव नोमे ॥ १२ ॥

अर्थ–ते मेरु पर्वत ( णन्ने के० ) आकाशे ( पुठे के० ) फरशीने ( चिठइ के० ) रह्योठे तथा (नूमिके०) नूमिकाने (वठिएके०) अवगाही रह्योठे तिर्छो ऊंचो अने नीचो एमलोक व्यापने (जंसूरियाअणुपरियट्टयंतिके०) जे मेरु पर्वतने चोमर अगीआरशोने एकवीश योजनने अंतरे सूर्य प्रमुख ज्योतषी देवो परिभ्रमण करता थका प्रदक्षिणा करी रह्याठे तथा ( सेहेमवन्ने के० ) ते मेरुपर्वत सुवर्णमय ठे तथा ( बहुके० ) घणा पर्तु अंहीं नंदनादिक चार जाणवा एवा ( नंदणेयके० ) रलीयामणा वनठे, जेने विषे, एटले पहेली नूमिकाने विषे नइशाल वनठे ते उपर पांचशे योजन ऊंचु बीजुं नंदन वनठे ते उपर साढी बाशठ हजार योजन ऊंचु चढता वली त्रीजुं सोमनस वनठे ते

पछी बत्रीश हजार योजन उंचु चडता शीखर उपर चोथु पंमग वन खंमछे (जंसीरतिं वेदयंतीमहिंदाके० ) जे पर्वतने विषे महेंद्र पण क्रीडा करवाने अर्थे स्वर्ग थकी आवी ने रती सुख नोगवेछे ॥ ११ ॥ (सेपव्वए के० ) ते पर्वत वली केवोछे तोके मंदर मेरु सुदर्शन सुरगिरि इत्यादिक ( सद्द के० ) शब्दे करी ( महप्पगासे के० ) मोहोटो प्रकाशवान एटले प्रसिद्ध एवो छतो ( विरायतीके० ) शोनेछे तथा ( कंचणमछवन्ने के० ) सुवर्णनी पेरे देदीप्यमान सुकुमाल वर्णछे ( अणुत्तरे गिरिसुयपव्वडुग्गे के० ) सर्व पर्वत मां अनुत्तर एटले प्रधान एवी पर्व एटले मेखलायें करी डुर्ग एटले विषमछे अर्थात् सामान्य जीवने चढता विषमछे तथा ( गिरिवरेसेजलिए वनोमे के० ) प्रधान मणी अने औषधियें करी देदीप्यमान नूमि सरखो पृथवी प्रदेशनी पेरे जाणवो. ॥ १२ ॥

---

॥ दीपिका—ननसि स्पृष्टोलग्नोनूमिंवा अवगाह्य स्थितः । यं मेरुं सूर्याआदित्याअनुपरिवर्तयंति पार्श्वतोन्रमंति सहेमवर्णः। बहूनि चत्वारि नंदनानि यस्य सतथा। तथाहि नूमौ नद्रशालवनं १ ततः पंचयोजनशतान्यतिक्रम्य नंदनंवनं २ ततोछिषष्टियोजन सहस्राणि पंचशताधिकान्यतिक्रम्य सौमनसवनं ३ ततः षट्त्रिंशत्सहस्राण्यारुह्य शिखरे पंडकवनं ४ इति मेरोश्चत्वारि वनानि। तथा यस्मिन् मेरौ महेंद्रारतिं वेदयंत्यनुनवंति ॥ ११ ॥ सपर्वतोमेरुर्मंदरः सुदर्शनः सुगिरिरित्यादिनिः शब्दै र्महान् प्रकाशः प्रतिद्धिर्यस्य सशब्दमहाप्रकाशोविराजते । कांचनस्य मृष्टः शुद्धोवर्णोयस्य सतथा अनुत्तरउत्कृष्टः । गिरिषु मध्ये पर्वनिर्मेखलानिर्डुर्गोविषमोगिरवरमणिनिरोषधीनिश्च ज्वलितोदीप्यमानइव नूमिदेशं ॥ १२ ॥

---

॥ टीका—तथा ( पुछेणनेइत्यादि ) । ननसि स्पृष्टोलग्नोननोव्याप्य तिष्ठति । तथा नूमिं चावगाह्य स्थितइति ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्लोकसंस्पर्शी । यथा यं मेरुं सूर्यादयोज्योतिष्काअनुपरिवर्त्तयंति यस्य पार्श्वतोन्रमंतीत्यर्थ. । तथाऽसौ हेमवर्णोनिष्टप्तजांबूनदानस्तथा बहूनि चत्वारि नंदनवनानि यस्य सबहुनंदनवनः । तथाहि । नूमौ नद्रशालवनं ततः पंचयोजनशतान्यारुह्य मेखलायां नंदनं तथाछिषष्टियोजनसहस्राण्यधिकान्यतिक्रम्य सौमनसं ततः षट्त्रिंशत्सहस्राण्यारुह्य शिखरे पंमकवनमिति । तदेवमसौ चतुर्नंदनवनाद्युपेतोविचित्रक्रीमास्थानसमन्वितः । यस्मिन् माहेंद्रा अप्यागत्य त्रिदशालयाद्रमणीयतरगुणेन रतिं रमणक्रीमां वेदयंत्यनुनवंतीति ॥ ११ ॥ अपिच ( सेपव्वएइत्यादि ) समेवाख्योऽयं पर्वतोमंदरोमेरुः सुरगिरिरित्येवमादिनिः शब्दैर्महान् प्रकाशः प्रसिद्धिर्यस्य सशब्दमहाप्रकाशोविराजत्ते शोनते । कांचनस्येव मृष्टः श्लक्ष्णःशुद्धो वा वर्णोयस्य सतथा । एवं नविद्यते उत्तरः प्रधानोयस्याऽसाव

नुत्तरस्तथा गिरिषु मध्ये पर्वनिर्मेखलादिनिर्दंष्ट्रापर्वतैर्वा डुर्गोविषमः सामान्यजंतूनां डुरारोहोगिरिवरः पर्वतप्रधानः । तथाऽसौ मणिनिरौषधीनिश्च देदीप्यमानतया नौमइव नूदेशइव ज्वलितइति ॥ १२ ॥

महीइ मज्ऊंमि ठिते एागिंदे, पन्नाय ते सुरिय सुद्धलेसे ॥ एवं सि रीए उस नूरिवन्ने, मणोरमे जावइ अच्चिमाली॥ १३॥ सुदंस णस्सेव जसो गिरिस्स, पचुच्चई महतो पव्वयस्स ॥ एतोवमे समणे नायपुत्ते, जातीजसो दंसणनाणसीले ॥ १४ ॥

अर्थ-( महीइमज्ऊंमिठिते के० ) मही एटले पृथवीने वचमां आवेलो जे जंबूद्वीप तेना मध्यनागे एटले वचमां वर्तेछे ( णगिंदे के० नगेंद्र एटले सर्व पवर्तोना इंद्र सर खो ए मेरु पर्वत जाणवो (ते के० ) ते पर्वत लोकमां ( सूरिय के० ) सूर्यनी पेरे ( सु द्धलेसे के०) विशुद्धनिर्मल कांतिवानछे एम ( पन्नाय के० ) प्रकर्षे करी जाणीये (एवं के० ) ए प्रकारे करी ( सिरीएउस के० ) लक्ष्मीये सहित ते मेरू रत्न (नूरिवन्ने के०) अनेक वर्णे करी सहितछे तथा ( मणोरमे जावइ अच्चिमाली के० ) मनने रमाडनार तथा जेनी ज्योति अर्चिमाली एटले सूर्य तेनी पेरे दशे दिशिने विषे प्रकाश पामेछे ॥१३॥ हवे ए मेरु पर्वतनी उपमाउं श्रीमहावीर नगवंतनी साथे जोडेछे.' ( सुदंसणस्सेवज सोगिरिस्स के० ) सुदर्शन नामा जे गिरि एटले पर्वत तेनोजे यश ( पचुच्चई के० ) क हियेछेए तेवो (महतोपव्वयस्सके०) महोटो मेरुपर्वत जाणवो (एतोवमेके०) एमेरुनी उ पमाये ( समणेनायपुत्ते के० ) श्रमण तपस्वी ज्ञातपुत्र श्रीमहावीर देव जाणवा (केवी रीते तोके (जातीजसो दंसणनाणसीलेके०) जातियें करी, यशे करी, दर्शने करी, ज्ञाने करी अने शीले करी समस्त जेटला धर्म मार्गना प्रकाशकोछे तेमां श्रीमहावीर देव प्रधानछे.

॥ दीपिका-महारत्नप्रनापृथिव्यामध्यदेशे जंबूद्वीपस्तन्मध्ये स्थितोनगेंद्रः प्रकर्षे ण ज्ञायते सूर्यवत् शुद्धलेश्यः सूर्यसमतेजाः। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण श्रिया समेरुर्नूरिवर्णो ऽनेकवर्णरत्नोपेतत्वात् मनोरमः अर्चिमाली सूर्यइव द्योतयति दिशः ॥ १३ ॥ एतद्यशः कीर्तनं सुदर्शनस्य गिरेर्मेरोः प्रोच्यते महतः पर्वतस्य एतडुपमएततुल्यः श्रमणोजात पुत्रः श्रीवीरः सजात्या यशसा दर्शनज्ञानाभ्यां शीलेन वा श्रेष्ठः । अर्श आदित्वान्मत्व र्थीयाच्प्रत्ययेन योज्यं- ॥ १४ ॥

॥ टीका-किंच (महीऽइत्यादि ) । मत्यां रत्नप्रनापृथिव्यां मध्यदेशे जंबूद्विपस्तस्याऽपि वहुमध्यदेशे सोमनस, विद्युत्प्रन, गंधमादन माल्यवंत, दंष्ट्रापर्वतचतुष्टयोपशोभितः समनू

नागे दशसहस्रविस्तीर्णः शिरसि सहस्रमेकमधस्तादपि दशसहस्राणि नवतियोजनानि योजनैकादशनागैर्दशनिरधिकानि । विस्तीर्णश्चत्वारिंशद्योजनोछ्रितचूडोपशोभितोनगेंद्रः पर्वतप्रधानोमेरुः प्रकर्षेण लोके ज्ञायते सूर्यवत्तु द्युलेश्यआदित्यसमानतेजाः । एवमनंतरोक्तप्रकारया श्रिया । तुशब्दाद्विशिष्टतरया समेरुर्भूरिवर्णोऽनेकवर्णोऽनेकवर्णरत्नोपशोभितत्वात् । मनोऽंतःकरणं रमयतीति मनोरमोर्चिर्मालीवादित्यइव स्वतेजसा द्योतयति दशदिशः प्रकाशयतीति ॥ १३ ॥ सांप्रतं मेरुदृष्टांतोपक्षेपेण दार्ष्टांतिकं दर्शयति । ( सुदंसणे त्यादि ) एतदनंतरोक्तं यशः कीर्तनं सुदर्शनस्य मेरुगिरेर्महापर्वतस्य प्रोच्यते । सांप्रतमेतदेव भगवति दार्ष्टांतिके योज्यते। एषाऽनंतरोक्तोपमा यस्यसएतडुपमः । कोऽसौ । श्रीम्यतीति श्रमणस्तपोनिष्टप्तदेहोज्ञाताः क्षत्रियास्तेषां पुत्रः श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामीत्यर्थः । सच जात्या सर्वजातिभ्योयशसाऽशेषयशस्विभ्योदर्शनज्ञानाभ्यां सकलदर्शनज्ञानिभ्यः शीलेन समस्तशीलवद्भ्यः श्रेष्ठः प्रधानः । अक्षरघटनातु जात्यादीनां कृतद्वंद्वानामतिशायने अर्शआदित्वादच्प्रत्ययविधानेन विधेयेति ॥ १४ ॥

गिरिवरेवा निसहो ययाणं, रुयएव सेठे वलयायताणं ॥ तउव मे से जगभूइपन्ने, मुणीण मझे तमुदाहु पन्ने ॥ १५ ॥ अणुत्तरं धम्ममुईरइत्ता, अणुत्तरं झाणवरं झियाइ ॥ सुसुकसुकं अप गंडसुकं, संखिंडुएगंतवदातसुकं ॥ १६ ॥

अर्थ–( गिरिवरेवानिसहोययाणं के० ) जेम लांब पणे समस्त पर्वतमां निषध पर्वत श्रेष्ठछे तथा ( रुयएवसेठेवलयायताणं के० ) जेम वर्तुलाकार समस्त पर्वतमांहे रुचक नामा पर्वत श्रेष्ठछे (तउवमेसेजगभूइपन्ने के०) तेनी उपमायें श्रीमहावीर देवजगतमां भूतिप्रज्ञ एटले प्रज्ञायें करी श्रेष्ठ जाणवा (मुणीणमझेके०) समस्त मुनिर्डमांहे (तःमुदाहुपन्ने के० ) तत्स्वरूप जाणवाने अत्यंतज्ञानवंत जाणवा प्रकर्षेणजानातीति प्रज्ञ ए भावजाणवो ॥ १५ ॥ ते श्रीमहावीर (अनुत्तरंधर्मं के०) प्रधान एवोजे सर्वोत्तम धर्म तेने ( उदिरयित्वा के० ) प्ररुपीने प्रकाशीने ( अणुत्तरंझाणवरं के० ) प्रधानमां प्रधान एवोजे शुक्लध्यान तेने ( झियाइ के० ) ध्यावे ते भगवंतने योग निरुंध काले सूक्ष्म काययोग रुंधनावसरे शुक्ल ध्याननो त्रीजो भेद जे सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपति एवे नामेछे ते थाय तथा योगनिरोध थया पछी शुक्लध्याननो चोथो भेद उपरतक्रिया अने अनिवृत्ति नामे ध्यावे ते ध्यान वर्णवेछे ( सुसुकसुकंअपगंडसुकं के० ) सुष्टु प्रधान शुक्लवस्तुनी परे शुक्ल उज्वल अपगंड एटले दोष रहित अर्थात मिथ्यात्व रूप काट कलंक तेणे करी

रहित एवुं निर्दोष शुक्ल ध्यान सुवर्णनी पेरे उज्वलछे अथवा गंम शब्दे उदकनुं फेण ते सरखुं उज्वलछे तथा ( संखिंदु के० ) शंख अने चंद्मा तेनीपेरे (एगंतवदातसुक्कं के०) एकांत अवदात एटले अत्यंत शुक्ल एवुं शुक्ल ध्यानछे, तेने ध्यावे ॥ १६ ॥

---

॥ दीपिका—यथा निषधोगिरिवराणां गिरीणामायतानां मध्ये दीर्घत्वेन श्रेष्ठस्तथा वलयायतानां मध्ये रुचकः पर्वतः श्रेष्ठः। सहि रुचकद्वीपांतवर्ती मानसोत्तरगिरिरिव वृत्ता यतोऽसंख्येययोजनानि परिक्षेपेण स जगवान् तडुपमोजगति संसारे जूतिप्रज्ञः प्रजूत ज्ञानोमुनीनां मध्ये प्रज्ञः। एवं तत्स्वरूपविदउदाहुरुक्तवंतः॥१५॥ अणुत्तरं उत्कृष्टधर्ममुदी र्य कथयित्वा ऽनुत्तरं प्रधानं ध्यानं ध्यायति सुपु शुक्लवत् शुक्लं ध्यानं अपगतं गंडं दोषो यस्मात्तदपगंडं निर्दोषं शुक्लं। अथवा अपगंडमुदकफेनं तत्तुल्यं शंखेंडुवत् एकांतावदातं शुक्लध्यानोत्तरजेदद्वयं ध्यायति। तथाहि। योगनिरोधकाले सूक्ष्मं काययोगं निरुंधन् शु क्लध्यानस्य तृतीयं जेदं सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाताख्यं तथा निरुद्धयोगं चतुर्थं शुक्लध्यानजेदं व्युपरतक्रियमनिवृत्याख्यं ध्यानं ध्यायतीति ॥ १६ ॥

---

॥ टीका—पुनरपि दृष्टांतद्वारेणैव जगवतोव्यावर्णनमाह। ( गिरिवरेत्यादि ) यथा नि षधोगिरिवरोगिरीणामायतानां मध्ये जंबुद्वीपेऽन्येषु वा द्वीपेषु दैर्घ्येण श्रेष्ठः प्रधानः तथा वलयाऽऽयतानां मध्ये रुचकः पर्वतोऽन्येन्योवलयाय तत्वेन। यथा प्रधानः सहि रुचक द्वीपांतर्वर्ती मानुषोत्तरपर्वतइव वृत्तायतोऽसंख्येययोजनानि परिक्षेपेणेति । तथा सज गवानपि तडुपमः। यथा वाऽऽयतवृत्तताभ्यां श्रेष्ठश्च। एवं जगवानपि जगति संसारे जूति प्रज्ञः प्रजूतज्ञातप्रज्ञयाश्रेष्ठइत्यर्थः । तथा परमुनीनां मध्ये प्रकर्षेण जानातीति प्रज्ञः। एवं तत्स्वरूपविदउदाहुरुदाहृतवंतउक्तवंतइत्यर्थः ॥ १५ ॥ किंचाऽन्यत् ( अणुत्तरमि त्यादि ) नाऽस्योत्तरः प्रधानोऽन्योधर्मोविद्यते इत्यनुत्तरः । तमेवंजूत धर्मं उत् प्राबल्येन ईरयित्वा कथयित्वा प्रकाश्याऽनुत्तरं प्रधानं ध्यानवरं ध्यानश्रेष्ठं ध्यायति ॥ तथाहि । उ त्पन्नज्ञानोजगवान् योगनिरोधकाले सूक्ष्मं काययोगं निरुंधन् शुक्लध्यानस्य तृतीयं जेदं सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाताख्यं । तथा निरुद्धयोगं चतुर्थशुक्लध्यानजेदं व्युपरतक्रियमनिवृत्ता ख्यं ध्यायति। एतदेव दर्शयति । सुपु शुक्लवच्छुक्लं ध्यानं। तथा अपगतं गंडमपद्रव्यं यस्य तदपगतगंमं निर्दोषार्जुनसुवर्णवत् शुक्लं। यदिवा गंडमुदकफेनं तत्तुल्यमिति जावः। तथा शंखेंडुवदेकांतावदातं शुभ्रं शुक्लं शुक्लध्यानोत्तरं जेदद्वयं ध्यायतीति ॥ १६ ॥

अणुत्तरग्गं परमं महेसी, असेसकम्मं स विसोहइत्ता॥ सिद्धिं ग ते साइमणंतपत्ते, नाणेण सीलेण य दंसणेण॥१७॥ रुक्खेसु णाते

जह सामलीवा, जस्सिं रतिं वेययंती सुवन्ना ॥ वणेसु वाणंदण माहु सेठं, नाणेण सीलेण य भूतिपन्ने ॥ १८ ॥

अर्थ–ते भगवंत शैलेसी अवस्थायें शुक्लध्यानना चोथा भेदने अनंतर (साइके०) सादि अने (अणंतके०) अनंत एवी (सिद्धिंगते के०) सिद्धिगतिने विषे पोहोंता ते सिद्धिकेवीने लोके, (अणुतरग्गं के०) सर्वमां उत्तम तथा लोकने अग्रे वर्त्तमानछे ते कारण माटे (परमंमहेसी के०) परम प्रधान मोहोटा ऋषीश्वर श्रीमहावीर देवछे जे (नाणेणसीलेणयदंसणेणके०) ज्ञाने करी दर्शनेकरी चारित्रशीलेकरी (असेसकम्मंसविसोहइत्ताके०) समस्तज्ञानावर्णादिक आठेकर्मने शोधी कर्म खपावीने मुक्तिनेविषे (पत्तेके०) पोहोता. ॥१७॥ वली उपमायें करी भगवंतने स्तवेछे; (जहके०) जेम (रुरकेसुके०) वृक्षो मांहे (णातेके०) प्रसिद्ध देवकुरु उत्तरकुरुने विषे व्यवस्थित एवुं (सामलीवाके०) साल्मली वृक्ष मोहोटुंछे (जस्सिंके०) जेनेविषे (सुवन्नाके०) सुवर्ण कुमारकादिक भुवनपति देवो आवीने (रतिंवेययंती के०) रतिवेदेछे एटले क्रीडा रूप सुख भोगवेछे तथा जेम (वणेसुवाके०) वनने विषे (णंदण के०) नंदन वन (सेठंके०) श्रेष्ठ (आहुके०) कह्युंछे भत्तम शोभाये करी सहित कह्युंछे तेम (नाणेणसीलेणयभूतिपन्ने के०) ज्ञान अने शील एटले चारित्र तेणे करी, श्री महावीर महाप्राज्ञ एटले मोहोटा जाणवा. ॥१८॥

---

॥ दीपिका–अनुत्तरां प्रधानां अग्र्यां च सर्वोत्तमां परमां सिद्धिं गतिं साद्यनंतां प्राप्तोमहर्षिः सअशेषं कर्म विशोध्यापनीय केन ज्ञानेन दर्शनेन शीलेनच कर्म क्षपयित्वा ॥ ॥ १७ ॥ वृक्षेषु मध्ये यथा ज्ञातः प्रसिद्धोदेवकुरुस्थितः कूटशाल्मलीवृक्षः। यस्मिन्वृक्षे सुपर्णाभवनपतिविशेषारतिं क्रीडां वेदयंतीति । वनेषु मध्ये यथा नंदनं वनं श्रेष्ठमाहुस्तथा भगवान् ज्ञानेन शीलेनच श्रेष्ठोभूतिप्रज्ञः प्रवृद्धज्ञानः ॥ १८ ॥

---

॥ टीका–अपिच (अणुत्तरग्गमित्यादि) तथाऽसौ भगवान् शैलेऽश्यवस्थापादितशुक्लध्यानचतुर्थभेदानंतरं साद्यपर्यवसानां सिद्धिं गतिं पंचमीं प्राप्तः । सिद्धिगतिमेव विशिनष्टि । अनुत्तरा चासौ सर्वोत्तमत्वादग्र्याच लोकाग्रव्यवस्थितत्वादनुत्तराग्र्या तां परमां प्रधानां महर्षिरसावत्यंतोग्रतपोविशेषनिष्टप्तदेहत्वादशेषं कर्म ज्ञानावरणादिकं विशोध्यापनीय च विशिष्टेन ज्ञानेन दर्शनेन शीलेनच क्षायिकेन सिद्धिं गतिं प्राप्त इति मीलनीयं ॥ १७ ॥ पुनरपि दृष्टांतद्वारेण भगवतः स्तुतिमाह । (रुरकेसुणाएइत्यादि) वृक्षेषु मध्ये यथा ज्ञातः प्रसिद्धोदेवकुरुव्यवस्थितः शाल्मलीवृक्षः सच भवनपतिक्रीडास्थानं । यत्र व्यवस्थिताअन्यतश्चागत्य सुपर्णाभवनपतिविशेषारतिं रमण

क्रीडां वेदयंत्यनुजवंति । वनेषु च मध्ये यथा नंदनं देवानां क्रीमास्थानं प्रधानं । एवं जगवानपि ज्ञानेन केवलाख्येन समस्तपदार्थाविर्जावकेन शीलेन च चारित्रेण यथाख्यातेन श्रेष्ठः प्रधानोजूतिप्रज्ञः प्रवृद्धज्ञानोजगवानिति ॥ १७ ॥

थणियंव सद्दाण अणुत्तरे ज, चंदोव ताराण महाणुजावे ॥ गंधेसु वा चंदणमाहु सेठं, एवं मुणीणं अपडिन्नमाहु ॥ १९॥ जहा सयंजू उदहीण सेठे, नागेसु वा धरणिंदमाहुसेठे ॥ खोउदए वा रसवेजयंते, तवोवहाणे मुणिवेजयंते ॥ २० ॥

अर्थ–जेम ( सद्दाण के० ) शब्दमां ( थणियंव के० ) स्तनितं एटले मेघनी गर्जनानो शब्द (अणुत्तरेउके०) प्रधान एटले रुडो कह्योठे तथा ( चंदोवताराणमहाणुजावे के० ) जेम ग्रह नक्षत्र अने ताराने विषे चंद्रमा महानुजाव कह्योठे तथा (गंधेसुवाचंदणमाहुसेठंके०) जेमसमस्त गंधमां गोशीर्ष बावना चंदन श्रेष्ठ कह्युंठे (एवं के०) एम (मुणीणं के०) समस्त साधुमां (अपडिन्नमाहुके०) अप्रतिज्ञ एटले आलोक परलोकनी आशंसा करवानी जेने प्रतिज्ञा नथी अर्थात् इहलोक परलोकनी आशंसा रहित एवा श्रीमहावीरने मोहोटा श्रेष्ठ कह्याठे ॥ १९ ॥ ( जहासयंजूउदहीणसेठे के० ) जेम समस्त समुद्रमां स्वयंजूरमण समुद्र श्रेष्ठ कह्योठे ( नागेसुवाधरणिंदमाहुसेठे के० ) जेम नागकुमार देवोमां धरणेंद्रनामा इंद्र श्रेष्ट कह्योठे (खोउदएवारसवेजयंतेके०) जेम इक्षुरसोदक समस्त रसमां प्रधान वेजयंत एटले वखाण्योठे (तवोवहाणेमुणिवेजयंतेके०) तेम तप उपधाने करी तपो विशेषे करी समस्त मुनिमां श्रीमहावीर ने प्रधानवखाण्याठे॥२०॥

॥ दीपिका–यथा शब्दानां मध्ये स्तनितं मेघगर्जितमनुत्तरं प्रधानं । तुर्विशेषणे । यथा ताराणां मध्ये चंद्रोमहानुजावः श्रेष्ठः । गंधेषु मध्ये यथा चंदनं श्रेष्ठं तज्ज्ञा आहुः । तथा मुनीनां मध्ये जगवंतं श्रेष्ठमाहुः । किंजूतं । नास्य प्रतिज्ञा इहलोकपरलोकाशंसिनी विद्यते इत्यप्रतिज्ञस्तं ॥ १९ ॥ स्वयंजुवस्ते यत्रागत्य रमंतइति स्वयंजूरमणः सयथा उदधीनां समुद्राणां मध्ये श्रेष्ठः । नागेषु जवनपतिविशेषेषु धरणेंद्रं श्रेष्ठमाहुः । (खोउदए त्ति) इक्षुरसइव उदकं यस्य सइक्षुरसोदकः समुद्रोयथा रसमाश्रित्य वैजयंतः प्रधानः । एवं तपउधानेन तपोविशेषेण मुनिर्जगवान् वैजयंतः प्रधानः ॥ २० ॥

॥ टीका–अपिच ( थणियमित्यादि ) यथा शब्दानां मध्ये स्तनितं मेघगर्जितं तदनुत्तरं प्रधानं । तुशब्दोविशेषणार्थः समुच्चयार्थो वा । तारकाणां च नक्षत्राणां मध्ये यथा

चंडोमहानुजावः सकलरजनिवृत्तिकारिण्या कांत्यामनोरमः श्रेष्ठः। गंधेष्विति गुणगुणि नोरजेदान्मतुब्लोपाद्वा । गंधवत्सु मध्ये यथा चंदनं गोशीर्षकाख्यं मलयजं वा तज्ज्ञाः श्रेष्ठमाहुः । एवं मुनीनां महर्षीणां मध्ये जगवंतं नाऽस्य प्रतिज्ञा इहलोकपरलोकानां शंसिनी विद्यते इत्यप्रतिज्ञस्तमेवंजूतं श्रेष्ठमाहुरिति ॥ १७ ॥ अपिच । ( जहा सयंजूइत्यादि ) स्वयं जवंतीति स्वयंजुवोदेवास्ते तत्राऽऽगत्य रमंतीति स्वयंजूरमणस्तदेवमुदधीनां समुड़ाणां मध्ये यथा स्वयंजूरमणः समुड़ः समस्तद्वीपसागरपर्यंतवर्ती श्रेष्ठः प्रधानोनागेषु च जवनपतिविशेषेषु मध्ये धरणेंड़ं नागेंड़ं यथा श्रेष्ठमाहुः । तथा ( खोयदएइति) इक्षुरसइवोदकं यस्य सइक्षुरसोदकः सयथा रसमाश्रित्य वैजयंतः प्रधानः स्वगुणैरपरसमुड़ाणां पताकेवोपरि व्यवस्थितः । एवं तपउपधानेन विशिष्टतपोविशेषेण मनुते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिर्जगवान् वैजयंतः प्रधानः समस्तलोकस्य महातपसा वैजयंतीवोपरि व्यवस्थितइति ॥ २० ॥

हत्थीसु एरावणमाहु णाए, सीहो मिगाणं सलिलाण गंगा, प
क्खीसुवा गेरुले वेणुदेवे, निव्वाणवादीणिह णायपुत्ते ॥ २१ ॥
जोहेसु णाए जह वीससेणे, पुप्फेसुवा जह अरविंदमाहु॥खत्तीण
सेठे जह दंतवक्के, इसीण सेठे तह वद्धमाणे ॥ २२ ॥

अर्थ-( हत्थीसुएरावणमाहुणाएके० ) जेम हस्तिउने विषे इंड़नुवाहन ऐरावणहस्ति प्रधान कह्योंछे. (सीहोमिगाणंके०) जेम मृग प्रमुख स्वापद जनावरोमां सिंह प्रधानकह्योछे (सलिलाणगंगाके०) जरतक्षेत्रनी अपेक्षायें जेमपाणीमां गंगानदिनुंपाणी निर्मल कहुंछे(पक्खीशुवागेरुलेवेणुदेवेके०) जेम समस्त पक्षीउमां गरुड मोहोटो कह्योछे अपरनामे वेणुदेव ए जेम प्रधान कहाछे (निव्वाणवादीणिहके०) तेम निर्वाणजे मोक्ष मार्ग तेना स्थापन करनारा वादीलोक मां (णायपुत्ते के०) श्रीमहावीर मोहोटा कहाछे. ॥२१॥ (जहके०) जेम ( जोहेसु के० ) योद्धानटो मां (णाएके०) ज्ञातविदित (वीससेणेके०) विश्वसेन एटले चक्रवर्त्ति प्रधान कह्योछे ( पुप्फेसुवाजहअरविंदमाहु के० ) जेम फूलमां अरविंद कमल मोहोटुं कहुंछे ( खत्तीणसेठेजहदंतवक्के के० ) जेम क्षत्रीमां दंतवाक्य एटले चक्रवर्त्ति प्रधान कह्योछे ( तह के० ) तेम ( इसीणके० ) समस्त ऋषीउ मां ( वद्धमाणे के० ) श्रीवर्द्धमान स्वामि ( सेठे के० ) श्रेष्ठ कहाछे. ॥ २२ ॥

---

॥ दीपिका-हस्तिषु यथा ऐरावतं इंड़गजं ज्ञातं प्रसिद्धं दृष्टांतजूतमाहुस्तज्ज्ञाः । यथा

मृगाणां श्वापदानां मध्ये सिंहः प्रधानः। भरतक्षेत्रापेक्षया यथोदकानां मध्ये गंगोदकं प्रधानं यथा च पक्षिणां मध्ये गरुडोऽपरनामा वेणुदेवः प्रधानस्तथानिर्वाणपथदेशकानां ज्ञातपुत्रः श्रीवीरः प्रधानोयथास्थितमोक्षार्थवादित्वात् ॥ २१ ॥ योधानां मध्ये यथा विश्वा संपूर्णा सेना यस्य सविश्वसेनश्चक्री ज्ञातः पुष्पेषु यथाऽरविंदं प्रधानमाहुः क्षत्रियाणां मध्ये यथा दांताउपशांतावाक्येनवा शत्रवोयस्मात्सदांतवाक्यश्चक्रवर्ती प्रधानस्तथा ऋषीणां मध्ये श्रीवर्धमानः श्रेष्ठः ॥ २२ ॥

---

॥ टीका-( हत्थीसुइत्यादि ) हस्तिषु करिवरेषु मध्ये यथा ऐरावतं शक्रवाहनं ज्ञातं प्रसिद्धं दृष्टांतभूतं वा प्रधानमाहुस्तज्ज्ञाः। मृगाणां च श्वापदानां मध्ये यथा सिंहः केसरी प्रधानस्तथा भरतक्षेत्रापेक्षया सलिलानां मध्ये यथा गंगासलिलं प्रधानभावमनुभवति। पक्षिषु मध्ये यथा गरुत्मान् वेणुदेवाऽपरनामा प्राधान्येन व्यवस्थितः। एवं निर्वाणं सिद्धिक्षेत्राख्यं कर्मच्युतिलक्षणंवा स्वरूप तस्तदुपायप्राप्तिहेतुतोवा वदितु शीलं येषां ते तथा तेषां मध्ये ज्ञाताः क्षत्रियास्तेषां पुत्रोऽपत्यं ज्ञातपुत्रः श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामी सप्रधानइति यथावस्थितनिर्वाणार्थवादित्वादित्यर्थः ॥ २१ ॥ अपिच ( जोहेसुइत्यादि ) योधेषु मध्ये ज्ञातोविदितोदृष्टांतभूतोवा विश्वा हस्त्यश्वरथपदातिचतुरंगबलसमेता सेना यस्य सविश्वसेनश्चक्रवर्ती यथाऽ सौप्रधानः पुष्पेषु च मध्ये यथाऽरविंदं प्रधानमाहुः। तथा क्षतात् त्रायंतइति क्षत्रियास्तेषां मध्ये दांताउपशांतायस्य वाक्येनैव शत्रवः सदांतवाक्यश्चक्रवर्ती यथासौ श्रेष्ठ.। तदेवं बहून् दृष्टांतान् प्रशस्तान् प्रदर्श्याऽधुना भगवंतं दार्ष्टांतिकं स्वनामग्राहमाह। तथा ऋषीणां मध्ये· श्रीमान् वर्धमानस्वामी श्रेष्ठइति ॥ २२ ॥

दाणाण सेठ्ठं अभयप्पयाणं, सच्चेसुवा अणवज्जं वयंति ॥ तवेसु
वा उत्तमबंभचेरं, लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥ २३ ॥ ठिईण से
ठ्ठा लवसत्तमावा, सभा सुहम्माव सभाण सेठ्ठा ॥ निव्वाणसेठ्ठा
जह सव्वधम्मा, ण णायपुत्ता परमत्थि नाणी ॥ २४ ॥

अर्थ-( दाणाणसेठ्ठंअभयप्पयाणं ) जेम समस्त दानने विषे अभयदान श्रेष्ठ कह्यु ( सच्चेसुवाअणवज्जंवयंति के० ) जेम सत्य वचनमां निरवद्य एटले जे वचनना उच्चारे करी परने पीडा उत्पन्न नथाय ते वचन श्रेष्ट वखाण्युंछे ( तवेसुवाउत्तमबंभचेरं के० ) जेम सर्व तपमां नवविध ब्रह्मगुप्ति सहित ब्रह्मचर्य श्रेष्ठकह्योछे (लोगुत्तमेसमणेनायपुत्ते के० ) तेम लोकमां उत्तम श्रमण तपस्वी श्रीमहावीर देव श्रेष्ठ वखाण्याछे. ॥ २३ ॥

( ठिईणसेठालवसत्तमावा के० ) जेम स्थितिमां प्रधान लव सप्तम देवता एटले पंचा नुत्तर विमानवासी देवो कह्याछे कारणके तेमनुं मनुष्यमां सात लव प्रमाण आयु कर्म जो शेष रह्युं होत तो मुक्ति पामत तेमाटेएने लव सप्तम देवो कहियें ( सनासुहम्मावस नाणसेठा के० ) अन्य सनाउमां जेम सौधर्मा सना श्रेष्ठ कहीछे ( निव्वाणसेठाजहस व्वधम्मा के० ) जेम समस्त धर्मोने विषे निर्वाण जे मोक्ष ते प्रधान कह्योछे केमके अन्य दर्शनीउ पण पोत पोताना धर्मने विषे मोक्ष प्रधान बोलेछे माटे. ( णणायपुत्ता परमत्नीनाणी के०) तेम ज्ञात पुत्र श्रीमहावीर थकी अन्य कोइ ज्ञानी नथी एटले सर्व मां उत्तम ज्ञानवंत श्रीमहावीर देव जाणवा. ॥ २४ ॥

---

॥ दीपिका—यथा दानानां मध्येऽनयप्रदानं श्रेष्ठं । यडुक्तं । दीयते म्रियमाणस्य कोटिं जीवि तमेव वा ॥ धनकोटिं न गृएह्यात्सर्वोजीवितुमिछति ॥ १ ॥ अत्रदृष्टांतः । वसंतपुरे अरिदमनोराजा चतुर्वधूयुक्तोऽन्यदा गवाक्षे क्रीडति तेन सपत्नीकेन चौरोवधस्थानं नीय मानोदृष्टः पत्निनिः पृष्टं किमनेनापराद्धं । एकेन राजनरेण तत्स्वरूपमुक्तं । अनेन चौर्यं कृतं । ततएकया पत्न्या नृपपार्श्वे पूर्वदत्तोवरोमार्गितएकदिनं चौरोमोच्यइति । राज्ञापि प्रतिपन्नं ततस्तया स्नानजोजनसत्कारादिपूर्वकमलंकारैरलंकृतोदीनारसहस्रव्ययेन श ब्दादिविषयान् प्रापितोदिनमेकं पालितश्चौरः । द्वितीयदिने द्वितीयया दीनारलक्षव्ययेन लालितस्तृतीयदिने तृतीयया दीनारकोटिव्ययेन सत्कारितश्चतुर्थ्यातु राज्ञोनुमत्या मर णाद्रक्षितोनान्यत्किंचिडुपकृतं सान्यपत्नीनिर्हसिता नानया किंचिद्दत्तमिति । ततस्तासां बहूपकारविषये विवादे जाते राज्ञा चौरएव कार्यं पृष्टोयथा त्वं कया बहूपकृतमिति तेनोक्तं मया मरणमहानयजीतेन स्नानादिसुखं किंचिन्न ज्ञातं । अद्य पुनरनयदानाकर्ण नात्परमं सुखमनुनवामीति सर्वदानानामनयदानं श्रेष्ठमिति स्थितं । सत्येषु वाक्येषु यदनवद्यं पीडानुत्पादकं वाक्यं तत्श्रेष्ठं । सत्यं तदेव यत्परपीडानुत्पादकं । यतः । लो केपि श्रूयते वादोयथाऽसत्येन कौशिकः ॥ पतितोवधयुक्तेन नरके तीव्रवेदने ॥ १ ॥ तथा तहेव काणंकाणित्ति पंमगंपंमगत्ति वा ॥ वाहिअं वाहिरोगित्ति ताणं चोरित्ति नोवते इति ॥ तपःसु यथा ब्रह्मचर्यमुत्तमं तथा लोकोत्तमः श्रमणोज्ञातपुत्रः श्रीवीरः ॥२३॥ स्थितिमतां मध्ये यथा लवसप्तमाः पंचानुत्तरविमानस्यादेवाः सर्वोत्कृष्टस्थितयः प्रधानाः। तेषां यदि सप्तलवाआयुष्कमनविष्यत्ततः सिद्धिगमनमनविष्यदिति। यथा सनानां मध्ये सौधर्मा सना श्रेष्ठा। यथा सर्वधर्मानिर्वाणश्रेष्ठामोक्षप्रधानाः।कुदर्शिनोपि स्वधर्मे निर्वाण फलदमाहुः। एवं ज्ञातपुत्रात् श्रीवीरात् परोज्ञानी नास्तीति सर्वेन्योधिकज्ञानइत्यर्थः॥२४

॥ टीका–तथा ( दाणाणमित्यादि )। तथा स्वपरानुग्रहार्थमर्थिने दीयतइति दान नमनेकधा। तेषां मध्ये जीवानां जीवितार्थिनां त्राणकारित्वादजयदानं श्रेष्टं । तडुक्तं। दीयते म्रियमाणस्य, कोटिं जीवितमेव वा। धनकोटिं नगृएह्रीयात्, सर्वोजीवितुमिच्छति गोपालांगनादीनां दृष्टांत द्वारेणार्थोंह्य द्यौसुखेनारोहतीति । अतोऽजयप्रदानप्राधान्यख्या पनार्थं कथानकमिदं । वसंतपुरे नगरे अरिदमनोनाम राजा सच कदाचिच्चतुर्वधूसमेतो वातायनस्थः क्रीडायमानस्तिष्ठति । तेन कदाचिच्चौरोरक्तकरवीरकृतमुंममालोरक्तपरिध। नोरक्तचंदनोपलिप्तश्च प्रहतवध्यमिंडिमोराजमार्गेण नीयमानः सपत्नीकेन दृष्टोदृष्ट्वा च ताजिः पृष्टं किमनेनाकारीति । तासामेकेन राजपुरुषेणाऽऽवेदितं यथा परद्व्यापहारेण रा जविरुद्धमिति । ततएकया राजा विज्ञप्तोयथा योजवता मम प्राग्वरः प्रतिपन्नः सोऽधुना दीयतां यथाऽहमस्योपकरोमि। किंचित् राज्ञापि प्रतिपन्नं ततस्तया स्नानादिपुरःसरमलंका रेणाऽलंकृतोदीनारसहस्रव्ययेन पंचविधान् शब्दादीन् विषयानेकमहःप्रापितः पुनर्द्विती ययाऽपितथैव द्वितीयमहोदीनारशतसहस्रव्ययेन लालितः। ततस्तृतीयया तृतीयमहोदी नारकोटिव्ययेनसत्कारितः। चतुर्थ्यातु राजानुमत्या मरणाद्रक्षितो ऽजयप्रदानेन । ततोऽ सावऽन्यानिर्हसितानाऽस्य त्वया किंचिद्दत्तमिति। तदेव तासां परस्परबहूपकारविषये विवादे राज्ञाऽसावेव चौरः समाहूय पृष्टोयथाकेन तव बहूपकृतमिति तेनाऽप्यजाणि । यथा न मया मरणमहाजयजीतेन किंचित् स्नानादिकं सुखं विज्ञायीति । अजयप्रदानाकर्णनेन पु नर्जन्मानमिवात्मानमवैमीति । अतः सर्वदानानामजयप्रदानं श्रेष्ठमिति स्थितं । तथा स त्येषु च वाक्येषु च यदनवद्यमपापं परपीडानुत्पादकं तत्श्रेष्ठं वदंति। नपुनः परपीडोत्पाद कं सत्यं सद्भ्योहितं सत्यमितिकृत्वा। तथाचोक्तं। लोकेऽपि श्रूयते वादो, यथा सत्येन कौशि कः॥ पतितोवधयुक्तेन, नरके तीव्रवेदने । अन्यच्च । तहेवकाणंकाणत्ति पंमगंपंमगत्तिवा। वाहियंवाहिरोगित्ति, तेणंचोरोत्तिनोवदे ॥ तपस्सु मध्ये यथैवोत्तमं नवविधब्रह्मगुह्युपेतं ब्रह्मचर्यं प्रधानं जवति। तथा सर्वलोकोत्तमरूपसंपदा सर्वातिशायिन्या क्षायकज्ञानदर्श नाभ्यां शीलेन ज्ञातपुत्रोजगवान् श्रमणः प्रधानइति ॥ २३ ॥ किंच ( ठिईणमित्यादि ) स्थितिमतां मध्ये यथा लवसत्तमाः पंचानुत्तरविमानवासिनोदेवाः सर्वोत्कृष्टस्थितिवर्ति नः प्रधानायदि किल तेषां सप्तलवाआयुष्कमजविष्यत्ततः सिद्धिगमनमजविष्यदिति। अतोलवसत्तमास्तेऽजिधीयंते । सजानां च पर्षदांच मध्ये यथासौधर्माधिपर्षच्छ्रेष्ठा बहु जिः क्रीडास्थानैरुपेतत्वात्तथा । यथा सर्वेऽपि धर्मानिर्वाणफलमेव स्वदर्शनं ब्रुवते। यतः एवं ज्ञातपुत्रात् वीरवर्धमानस्वामिनः सर्वज्ञात् सकाशात् परं प्रधानं अन्यद्विज्ञानं नास्ति सर्वथैव जगवानपरज्ञानिज्योऽधिकज्ञानोजवतीति जावः ॥ २४ ॥

पुढोवमे धुणइ विगयगेहि, नसण्णिहिं कुवति आसुपन्ने ॥ तरिउं समुद्दंच महाभवोघं, अभयंकरे वीर अणंतचक्खू ॥ २५ ॥ कोहं च माणंच तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्थदोसा ॥ एआणि वंता अरहामहेसी ण कुवइ पाव ण कारवेइ ॥ २६ ॥

अर्थ-( पुढोवमेके० ) जेम पृथवी सकल पदार्थने आधार नूतछे तेम श्रीमहावीर सर्व सत्वने अनय प्रदाने करी रुडा उपदेशना दान थकी आधारनूतछे. ( धुणइके० ) अष्टप्रकारना कर्म खपाव्याछे ( विगयगेहि के० ) विगतगृधि एटले अनिलाप रहित थयाछे वली ( नसण्णिहिंकुवति के० ) संनिध नकरे एटले कांइ पण संचय करे नही तथा ( आसुपन्नेके० ) उतावली प्रज्ञाना धणी एटले केवली एवा नगवंत जाणवा ( तरिउंसमुद्दंचमहानवोघं के० ) तथा समुद्रनी पेरे तरवाने डुस्तर एवो मोहोटो संसार समुद्र तेने तरीने मुक्तियें पोहोताछे, वली श्रीमहावीर केवाछे तोके, (अनयंकरेके०) अनय करनार एटले सर्व जीवना नयना टालनारछे तथा ( वीरके० ) शूरवीरछे ( अणंतचक्खू के० ) अनंत चक्षुना धणी एटले सर्व स्वरूप देखेछे जाणेछे. ॥ २५ ॥ ( कोहंचमाणंचतहेवमायं के० ) क्रोध वली मान तथा माया तेमज वली ( लोनंके० ) लोनते परवंचना रूप जाणवो ( चउत्थंके० ) एचार ( अज्झत्थदोसा के० ) अध्यात्म दोषछे तेने संसार वधारवाना कारण जाणीने ( एआणिवंता के० ) एचारे कषायने वमीने श्रीमहावीर ( अरहामहेसी के० ) अरहंत थया महाऋषी थया ते कारण माटे ( णकुवइपावणकारवेइ के० ) श्रीमहावीर स्वामि पोते पाप करे नही तथा बीजा पासे पाप करावे नही अने पापकर्मना करनारनी अनुमोदना पण करे नही ॥ २६ ॥

॥ दीपिका-यथा पृथ्वी सर्वसहा तथा नगवानपि तदुपमः । विगतगृद्धिर्गतानिलाषोधुनात्यपनयति कर्मेति । आशुप्रज्ञः सदायोगज्ञानः सन्निधिं न करोति । द्रव्यसन्निधिर्धनधान्यादिर्नावसन्निधिर्मायाक्रोधादिस्तं द्विविधमपि सन्निधिं न करोति सतरित्वा समुद्रमिव महानवौघं संसारप्रवाहं निर्वृतोऽनयंकरः प्राणिनां वीरोऽनंतचक्षुरनंतज्ञानः ॥ ॥ २५ ॥ क्रोधं मानं मायां लोनं चतुर्थमध्यात्मदोषानात्मदोषरूपान् कषायान् एतान् वांत्वा त्यक्त्वा ऽर्हन्महर्षिः स्वयं पापं न करोति न कारयत्यन्यैः ॥ २६ ॥

॥ टीका-किंचाऽन्यत् ( पुढोवमेइत्यादि ) सहि नगवान् यथा पृथिवी सकलाधारा वर्तते तथा सर्वसत्वानामनयप्रदानतः सदुपदेशदानाद्वा सत्वाधारऽति । यदिवा यथा पृथ्वी सर्वसहा एवं नगवान् परीषहोपसर्गान् सम्यक् सहतऽति । तथा धुनात्यपनयत्यष्ट

प्रकारं कर्मेतिशेषः । तथा विगता प्रलीना सबाह्याभ्यंतरेषु वस्तुषु गृद्धिर्गार्द्ध्यमभिलाषोय स्य सविगतगृद्धिः। तथा सन्निधानं सन्निधिः सच द्रव्यसन्निधिः। धनधान्यद्विपदचतुष्पदरू पोनावसन्निधिस्तु मायाक्रोधादयोवा सामान्येन कषायास्तमुनयरूपमपि सन्निधिं न करोति नगवांस्तथाऽऽशुप्रज्ञः सर्वत्र सदोपयोगान्नछद्मस्थवन्मनसा पर्यालोच्य पदार्थप रिछित्तिं विधत्ते । सएवंनूतस्तरित्वा समुद्रमिव पारं महान्नवौघं चतुर्गतिकं संसारसागरं बहुव्यसनाकुलं सर्वोत्तमं निर्वाणमासादितवान् । पुनरपि तमेव विशिनष्टि । अनयं प्राणिनां प्राणरक्षारूपं स्वतः परतश्च सछुपदेशदानात् करोतीत्यनयंकरः । तथाऽष्टप्रका रं कर्म विशेषेणेरयति प्रेरयतीति वीरः। तथाऽनंतमपर्यवसानं नित्यं ज्ञेयानंतत्वाद्वानंतं चक्षुरिव चक्षुः केवलज्ञानं यस्य सतथेति ॥२५॥ किंचाऽन्यत् (कोहंचेत्यादि) निदानोछेदेन हि निदानिनछेदोनवतीति न्यायात संसारस्थितेश्च क्रोधादयः कारणमतएतानध्या त्मदोषांश्चतुरोऽपि क्रोधादीन् कषायान्वांत्वा परित्यज्य असौ नगवानर्हत्तीर्थकृत् जातः - तथामहर्षिश्चैवं परमार्थतोमहर्षित्वं नवति यद्यध्यात्मदोषान नवंति नान्यथेति । तथा न स्वतः पापं सावद्यमनुष्ठानं करोति नाप्यन्यैः कारयतीति ॥ २६ ॥

किरियाकिरियं वेणइयाणुवायं, अन्नाणियाणं पडियच्च ठाणं॥ से सववायं इति वेयइत्ता, उवठिए संजमदीहरायं ॥ २७॥ से वारि या इत्थि सराइनत्तं, उवहाणवं डुक्खखयघयाए ॥ लोगं विदित्ता आरं पारंच, सवं पनू वारिय सववारं ॥ २८ ॥ सोच्चाय धम्मं अरहंत नासियं,समाहितं अठपदोपसुद्धं ॥ तं सद्दहाणाय ज णा अणाऊ, इंदावदेवाहिव आगमिस्संतित्तिबेमि ॥ २९॥ इति श्री वीरस्तुतीनाम पष्ठमध्ययनं सम्मत्तं ॥

अर्थ–(किरियाकिरियंके०) क्रियावादीना एकशोने एंशी नेद, अक्रियावादीना चोराशी नेद (वेणइयके०) विनयवादीना बत्रीश नेद, अने (अन्नाणियके०) अज्ञान वादीना सड सठ नेद ए सर्व मली त्रणशेने त्रेशठ थयांते पाखमी दर्शनीडंना (अणुवायंके०) अनुवाद एटले नेद जाणवा ए चारे दर्शनीना (स्थानके०) दर्शन स्वरूप तेने (पडियच्च के०) डुर्गति जवाना कारण जाणीने (सेके०) ते श्रीमहावीर देव (सववायंके०) सर्ववादने (इतिवेयइत्ताके०) जाणीने उन्मार्गनो त्याग करीने (संजमेसदीहरायं के०) चारित्ररूप धर्मने विषे दीर्घरात्रं एटले जावजीव सुधी (उवठिए के०) उपस्थित एटले सावधान थयाते ॥२७॥ (सेके०) ते नगवंते (इत्थिसराइनत्तं के०) स्त्री सहित रात्री नोजन तथा उपलक्षणथी प्रणातिपातादिकने पण (वारिया के०) निवारणते वली (डुःक्खयघ

याए के० ) कर्मरूप डुःख क्षय करवाने अर्थे ( उवहाणवं के० ) उपधानवंत थया एट ले तपश्चर्या करी देह शोषवीने कर्म खपाव्या ( लोगंविदित्ता आरंपारंच के० ) इह लोक अने परलोक ए बंनेने जाणीने ( सव्वंपनूवारियसव्ववारं के० ) सर्व पापना स्था नकने प्रभूत पणे पोते वारंवार निवारयाठे ॥ २८ ॥ हवे श्रीसुधर्म स्वामि पोताना शिष्य प्रत्ये कहेठे ( धम्मं अरहंत नासियंके० ) अरिहंतनो नाषेलोजे धर्म ते केवोठे तो के ( समाहितं अठपदोपसुद्धं के०) सम्यक् प्रकारे अर्थे करी पदे करी शुद्ध एटले उज्वल युक्ति सहित तेने ( सोच्चाय के० ) सांजलीने ( तं के० ) ते धर्मने (सद्दहाणाय के० ) सद्दहता एटले सत्य करी मानता थका ( जणा के० ) अनेक जन ( अणाऊ के० ) कर्म रहित थईने अनायुष्य थया एटले सिद्ध थया ( इंदावदेवाहिव आगमिस्संतिके० ) अथवा आगमिक काले इंडादिक पदवी पाम्या तिन्नेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२९॥ इतिश्री वीरस्तुतिनामे ठघा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका—क्रियावादिनामक्रियावादिनां वैनयिकानामज्ञानिकानां स्थानं पक्षं सम्यक्प्रकारं प्रतीत्य परिच्छिद्य ज्ञात्वा सनगवान् सर्ववादं निवेदयित्वा सर्वकुदर्शनिनां स्वरूपं ज्ञात्वा दीर्घ कालं यावज्जीवं संयमे उपस्थितः ॥२७॥ सनगवान् स्त्रीनोगं मैथुनं सरात्रिनोजनसहितं वारयित्वा उपलक्षणादन्यदपि प्राणातिपातादिकं ग्राह्यं । उपधानवान् तपोविशेषयुक्तो डुःखक्षयार्थं आरं पारंच लोकं इह लोकं परलोकं च विदित्वा ज्ञात्वा प्रजुर्नगवान् सर्वं वारं बहुशोनिवारितवान् । कोर्थः । अहिंसादिकं स्वयं विधाय परांश्च स्थापितवान् न हि स्वयमधर्मे स्थितः परान् धर्मे स्थापयितुमलं । यडुक्तं स्तुतिकृता । ब्रुवाणोपि न्याय्यं स्ववचनविरुद्धं व्यवहरन् परं नालं कश्चिद्दमयितुमदांतः स्वयमिति ॥ नवान्निश्चित्यैवं मनसि जगदाधाय सकलं स्वमात्मानं तावद्दमयितुमदांतं व्यवसितइति ॥ २८ ॥ श्रुत्वा धर्ममर्हद्भाषितं सम्यगाख्यातमर्थपदैर्युक्तिनिरुपशुद्धं निर्मलं तं धर्मं श्रद्दधानाजनास्तथा कुर्वंति यथा नायुःकर्माणः सिद्धाः सायुषश्च इंद्रायादेवाधिपाआगमिष्यंतीति इति ब्रवीमीति ॥ २९ ॥ इति वीरस्तवाख्यं षष्ठमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका—किंचाऽन्यत् (किरिएइत्यादि) तथा सनगवान् क्रियावादिनमक्रियावादिनां वैनयिकानामज्ञानिकानांच स्थानं पक्षमन्युपगतमित्यर्थः । यदिवा स्थीयतेऽस्मिन्निति स्थानं डुर्गतिगमनादिकं प्रतीत्य परिछिद्य सम्यगवबुध्यत्यर्थः । एतेषां च स्वरूपमुत्तरत्र प्रत्यक्षेण व्याख्यास्यामः । लेशतस्त्विदं । क्रियैव परलोकसाधनायाऽलमित्येवं वादितुं शीलं येषांते क्रियावादिनस्तेषां हि दीक्षातएव क्रियारूपायामोक्षइत्येवमन्युपगमः । अक्रियावादिनस्तु ज्ञानवादिनस्तेषां हि यथावस्थितवस्तुपरिज्ञानादेव मोक्षः । तथाचोक्तं । पंचविंशतितत्वज्ञो, प

त्र तत्राश्रमे रतः ॥ शिखी मुंमीजटी वापि सिध्यते नात्र संशयः॥१॥ तथा विनयादेव मोक्षइत्येवं गोशालकमतानुसारिणोविनयेन चरंतीति वैनायिकाव्यवस्थिताः । तथाऽज्ञानमेवैहिकामुष्मिकायाऽलमित्येवमज्ञानिकाव्यवस्थिताइत्येवं रूपं तेषामन्युपगमं परिछिद्य स्वतः सम्यगवगम्य सम्यगवबोधेन तथा सएव वीरवर्धमानस्वामी सर्वमन्यमपि बौद्धादिकं यं कंचन वादमपरान् सत्वान् यथावस्थितत्वोपदेशेन वेदयित्वा परिज्ञाप्योपस्थितः सम्यगुत्थानेन संयमे व्यवस्थितोनतु यथा अन्ये । तदुक्तं । यथा परेषां कथका विदग्धाः, शास्त्राणि कृत्वा लघुतामुपेताः ॥ शिष्यैरनुज्ञामलिनोपचारै,र्वक्तृत्वदोषास्त्वयि ते न संति १ ॥ दीर्घरात्रमिति यावज्जीवं संयमोत्थानेनोत्थितइति ॥ २७ ॥ अपि च ( सेवारिएइत्यादि ) सनगवान् वारयित्वा प्रतिषिध्य । किंतदित्याह । स्त्रियमिति स्त्री परिनोगमैथुनमित्यर्थः । सहरात्रिनक्तेन वर्ततइति सरात्रिनक्तं । उपलक्षणार्थत्वादस्याऽन्यदपि प्राणातिपातनिषेधादिकं इष्टव्यं । तथा उपधानं तपस्तद्विद्यते यस्याऽसौ उपधानवान् तपोनिष्टप्तदेहः । किमर्थमिति दर्शयति । दुःखयतीति दुःखमष्टप्रकारं कर्म तस्य क्षयोऽपगमस्तदर्थं । किंच लोकं विदित्वा आरमिहलोकाख्यं पारं परलोकाख्यं । यदिवा आरं मनुष्यलोकं पारमिति नरकादिकं स्वरूपतस्तत्प्राप्तिहेतुं ततश्च विदित्वा सर्वमेतत् प्रभुर्नगवान् सर्ववारं बहुशोनिवारितवान् । एतदुक्तं नवति। प्राणातिपातनिषेधादिकं स्वतोऽनुष्ठाय परांश्च स्थापितवान् । न हि स्वतोऽस्थितः परांश्च स्थापयितुमलमित्यर्थः । तदुक्तं । ब्रुवाणोऽपि न्याय्यं, स्ववचनविरुद्धं व्यवहरन्, परान्नालं कश्चिद्दमयितुमदांतः स्वयमिति ॥ नवानिश्चित्यैवं मनसि जगदाधाय सकलं स्वमात्मानं तावद्दमयितुमदांतं व्यवसितइति ॥ तथा तिज्ञयरोचउनाणी, सुरमहिउ सिज्झियव्व धूयामि ॥ अणिगूहियबलविरउ सव्वत्थामेसु उज्जमइ इत्यादि ॥ २८ ॥ सांप्रतं सुधर्मस्वामी तीर्थकरगुणानाख्याय स्वशिष्यानाह ( सोच्चा येत्यादि ) श्रुत्वा च दुर्गतिधारणाद्धर्मं श्रुतचारित्राख्यमर्हद्भिर्नाषितं सम्यगाख्यातमर्थपदानि युक्तयोहेतवोवा तैरुपशुद्धमवदातं सद्युक्तिकं सद्धेतुकंवा । यदि वाऽर्थैरभिधेयैः पदैश्च वाचकैः शब्दैः उप सामीप्येन शुद्धं निर्दोषं । तमेवंनूतमर्हद्भिर्नाषितं धर्मं श्रद्दधानास्तथाऽनुतिष्ठंतोजनाःलोकाअनायुषोऽपगतायुः कर्माणः संतः सिद्धाः सायुषश्चेंद्राद्या देवाधिपाश्चागमिष्यंतीति । इतिशब्दः परिसमाप्तौ । ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥ २९ ॥ इति वीरस्तवाख्यं षष्ठमध्ययनं परिसमाप्तमिति ॥ ग्रंथसंख्या ३००

हवे सातमुं अध्ययन प्रारंनियें छैयें छठा अध्ययनने विषे श्रीमहावीरनुं स्तवन करतां श्रीमहावीरने सुशील कह्या, हवे आ सातमां अध्ययनने विषे ते थकी विपरीत कुशीलिया होयछे जे अरहट घटीकाने न्यायें संसारमांहे नमण करे तेनुं स्वरूप कहेछे.

पुढवीय आऊ अगणीय वाऊ,तण रुक्ख बीयाय तसाय पाणा॥
जे अंमया जेय जराउपाणा; संसेयया जे रसयाभिहाणा ॥१॥
एयाइं कायाइं पवेदिताइं, एतेसु जाणे पडिलेह सायं॥ एतेण
काएणय आयदंमे, एते सु याविप्परियासुविंति ॥ २ ॥

अर्थ-( पुढवीयआऊअगणीयवाऊ के० ) पृथ्वीकाय अप्पकाय अने वायुकाय अं हीं चकार थकी ए चारे निकाय सूक्ष्म अने बादरना नेदे करी बे प्रकारे जाणवा तथा ( तणरुक्खबीयाय के० ) तृण वृक्ष बीज शालीप्रमुख वनस्पतिकाय जाणवी अने ( तसायपाणा के० ) त्रसते बेंडियादिक जीव जाणवा तेना अनेक प्रकारने ते कहेने. ( जेअंमया के० ) जेइंमा थकी उपना एवा पंखी तथा सर्प प्रमुख तथा (जेयजराउपाणाके० ) जे जराउते गाय प्रमुख जीव जाणवा अने ( संसेययाके० ) संस्वेदज एटले प्रस्वेद थकी उत्पन्न थयला एवा जुं माकण प्रमुख जीव जाणवा वली ( जेरसयाभिहाणा के० ) रसजाः ते जे सोवीरादिकने विषे उपजे तेनाज वर्ण सरखा जे जीव होय ते जाणवा. एरीते जीवना नेद कह्या ॥ १ ॥ ( एयाइंकायाइं पवेदिताइं के० ) ए पूर्वोक्त पृथिव्यादिक ठ जीवनी निकाय श्रीतीर्थंकर देवे कहीने (एतेसुजाणेपडिलेहसायं के० ) ए ठ जीवनिकायजेठे ते सातासुखने जाणेठे वांछेठे एटले सर्वजीव सुखाभिलाषीने (एतेणकाएणयआयदंमेके० ( ए ठ कायने जे दंमे घात करे दीर्घकाल पीडा आपे तेने जे फल थाय ते कहेने ( एतेसुयाविप्परियासुविंति के० ) ते जीव एज ठ कायने विषे विपर्यासमुपयंति एटले विनाश पामे अर्थात् वारंवार एने विषेज परिन्नमण करे ॥ २ ॥

---

॥ दीपिका–सांप्रतं सतमं । पूर्वस्मिन् वीरस्तवेन सुशीलतोक्ता । अत्र तद्विपरीताः कुशीलाः परिनाष्यंते । यथा । ( पुढवीति) पृथिवीकायिकाअप्कायिकाअग्निकाया वायवश्च । चशब्दात्सूक्ष्मबादरनेदाः । तृणानि कुशादीनि वृक्षाअश्वत्थाद्याः । बीजानि शाल्यादीनि एते त्रयोपि वनस्पतयः। त्रसाः प्राणिनो द्वींडियादयः । अंमजाः पक्षिसर्पादयो जरायुजागोमहिष्याद्याः संस्वेदजायूकामत्कुणकृम्यादयः रसजाभिधानादधिसौवीरादिषु रूतपक्ष्मतुल्याः ॥ १ ॥ ते पूर्वोक्ताः कायाजीवनिकायाः प्रवेदिताः कथिताजिनैः । ठांदसत्वात्क्लीबलिंगता । एतेषु प्राणिषु सातं सुखं जानीहि । सर्वे जीवाः सुखैषिणइति प्रत्युपेक्षस्व पर्यालोचय।यथा एनिः कायैः पीडयमानैरात्मा दंडयते । एतत्पीमयाऽऽत्मदंमः स्यात्। तथा एतान् ये पीमयंति ते एतेष्वेव पृथिव्यादिकायेषु विविधं परिसमंतात् आशु क्षिप्रमुपयांति व्रजंति ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तं षष्ठमध्ययनं सांप्रतं सप्तममारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहाऽनंतराध्ययने महावीरगुणोत्कीर्त्तनतः सुशीलपरिभाषा कृता । तदनंतरं तद्विपर्यस्ताः कुशीलाः परिभाष्यंते । तदनेन संबंधेनाऽऽयातस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि व्यावर्णनीयानि । तत्राप्युपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोऽयं ॥ तद्यथा । कुशीलाः परतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयोवा स्वयूथ्याअशीलाश्च गृहस्थाः परि समंतात् भाष्यंते प्रतिपाद्यंते तदनुष्ठानतस्तद्विपाकदुर्गतिगमनाश्च निरूप्यंतइति । तथा तद्विपर्ययेण क्वचित्सुशीलाश्चेति । निक्षेपस्त्रिधा । उंघनामसूत्रालापकनेदात् । तत्रौघनिष्पन्ननिक्षेपेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने कुशीलपरिभाषेति । एतदधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । शीलेचउक्कं दवे,पाउरणाभरणनोयणादीसु॥ नावेउ उंहशीलं, अभिरकमासेवणा चेव ॥ ८८ ॥ ( शीलेचउक्कमित्यादि ) शीले शीलविषये निक्षेपे क्रियमाणे चतुष्कमिति नामादिश्चतुर्धा निक्षेपः । तत्राऽपि नामस्थापने क्षुसे तदनादृत्य द्रव्यमिति द्रव्यशीलं प्रावरणाभरणनोजनादिषु द्रष्टव्यं । अस्याऽयमर्थः । योहि फलनिरपेक्षस्तत्स्वनावादेव क्रियासु प्रवर्तते सतच्छीलस्तत्रेह प्रावरणशीलइति। प्रावरणप्रयोजनाभावेऽपि ताच्छील्यान्नित्यप्रावरणस्वनावप्रावरणे वा दत्तावधानः । एवमाभरणनोजनादिष्वपि द्रष्टव्यमिति । योवा यस्य द्रव्यस्य चेतनाचेतनादेः स्वनावस्तद्द्रव्यशीलमित्युच्यते । नावशीलं तु द्विधा उंघशीलमाभीक्ष्णसेवनाशीलमिति । तत्रौऽघशीलं व्याचिख्यासुराह । उंहेसीलंविरति, विरयाविरईयअविरतीअसीलं ॥ धम्मेणाणतवादी, अपसवअहम्मकोवादी ॥८९॥ (उंहेत्यादि) । तत्रौघः सामान्यं । सामान्येन सावद्ययोगविरतोऽविरतोवा शीलवान् भण्यते तद्विपर्यस्तोऽशीलवानिति । आभीक्ष्णसेवायांत्वनवरतसेवनायां तु शीलमिति ॥ तद्यथा । धर्मे धर्मविषये प्रशस्तं शीलं यद्धताऽनवरतापूर्वज्ञानार्जनं विशिष्टतपःकरणं वा । आदिग्रहणादनवरतानिग्रहणादिकं परिगृह्यते । अप्रशस्तनावशीलं त्वधर्मप्रवृत्तिर्बाह्या । आंतरा तु क्रोधादिषु प्रवृत्तिः । आदिग्रहणात् शेषकषायाश्चौर्याभ्याख्यानकलहादयः परिगृह्यंतइति ॥ सांप्रतं कुशीलपरिभाषाख्यस्याऽध्ययनस्याऽन्वर्थतां दर्शयितुमाह । परिभासियाकुशीलाय,एछजावंति अविरताकेइ ॥ सुत्तिपसंसासुद्धो, कुंतिदुगुंछअपरिसुद्धो ॥९०॥ (परिभासियाइत्यादि) । परि समंतात् भाविताः प्रतिपादिताः कुशीलाः कुत्सितशीलाः परतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयश्च । चशब्दात् यावंतः केचनाऽविरताअस्मिन्नित्यतइदमध्ययनं कुशीलपरिभाषेत्युच्यते । किमिति कुशीलाअशुद्धागृह्यंते इत्याह । सुरित्ययं निपातः प्रशंसायां शुद्धविषये वर्तते । तद्यथा सौराज्यमित्यादि । तथा कुरित्ययमपि निपातोजुगुप्सायामशुद्धविषये वर्तते । कुतीर्थं कुग्रामइत्यादि । यदि कुत्सितशिलाः कुशीलाः कथंतर्हि परतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयश्च तथाविधाभवंतीत्याह । अफासुयपडिसेविय, णामंभुज्जोयशीलवादीय । फासुं वयंतिसीलं, अफासुयामोअभुंजंता ॥९१॥

(अफासुयइत्यादि) अस्त्यऽयं शीलशब्दस्तत्स्वानाव्ये। तथाहि। यः फलनिरपेक्षः क्रियास्वा चरणादिषु प्रवर्तते सचेह इव्यशीलत्वेन प्रदर्शितः। अस्त्युपशमप्रधाने चारित्रे। तथाहि। तत्प्रधानः शीलवानयं तपस्वीति। तद्विपर्ययेण डुःशीलइति। सचेह नावशीलग्रहणेनो पात्तइति। इह च यतीनां ध्यानाध्ययनादिकं मुक्त्वा धर्माधारशरीरतत्पालनाहारव्यापारं च मुक्त्वा नाऽपरः कश्चिद्व्यापारोऽस्तीत्यतस्तदाश्रयणेनैव सुशीलत्वं च चिंत्यते। तत्र कु तीर्थिकः पार्श्वस्थादिर्वा। अप्राशुकं सचित्तं प्रतिसेवितुं शीलमस्य सनवत्यप्राशुकप्रतिसे वी। नामशब्दः संनावनायां। नूयः पुनर्धाष्टर्याच्छीलवंतमात्मानं वदितुं शीलं यस्य स शीलवादी। किमित्येवं यतः प्राशुकमचेतनं शीलं वदति। इदमुक्तं नवति। यः प्रा शुकमुजमादिदोषरहितमाहारं चुंक्ते तं शीलवंतं वदंति तज्ज्ञाः। तथाहि। यतयोप्राशुक मुजमादिदोषडुष्टमेवाऽऽहारमचुंजानाः शीलवंतोनएयंते नेतरइति स्थितं। नोशब्दस्य निपातत्वेनाऽवधारणार्थत्वादिति। अप्राशुकनोजित्वेन कुशीलत्वं प्रतिपादयितुं दृष्टांत माह। जहणामगोयमाचं, डीदेवगावारिनिदगाचेव ॥ जेअग्निहोत्तवादी, जलसोयंजेयइ छंति ॥ ए१ ॥ (जहणामेइत्यादि) यथेति दृष्टांतोपक्षेपार्थं। नामशब्दोवाक्यालंकारे। गौतमाइति गोव्रतिकागृहीतशिक्षं लघुकायं वृषनमुपादाय धान्याद्यर्थं प्रतिगृहमटंति। तथा (चंमीदेवगाइति)। चक्रधरप्रायाः। एवं वारिनडकाअब्नक्षाः शैवलाशिनोनित्यं स्नानपानादिधावनानिरतावा। तथा ये चाऽन्येऽग्निहोत्रवादिनोऽग्निहोत्रादेव स्वर्गगमन मिच्छंति ये चान्ये जलशौचमिच्छंति नागवतादयस्ते सर्वेऽप्यप्राशुकाहारनोजित्वात् कुशी लाइति। चशब्दात् ये च स्वयूथ्याः पार्श्वस्थादयउजमाद्यशुद्धमाहारं चुंजंते तेऽपि कुशी लाइति। गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः॥ सांप्रतं सूत्रालापकनिष्पन्ने निक्षेपे अस्खलितादि गुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं। (पुढवीएइत्यादि) पृथिवी पृथिवीकायिकाः सत्वाः। चकारः स्वगतनेदसंसूचनार्थः। सचाऽयंनेदः। पृथिवीकायिकाः सूक्ष्मावादराश्च। ते च प्रत्येकं पर्याप्तकाऽपर्याप्तनेदेन द्विधा।एवमप्कायिकाअपि। तथाऽग्निकायिकावायुकायिका श्च इष्टव्याः। वनस्पतिकायिकान् नेदेन दर्शयति। तृणानि कुशादीनि। वृक्षाश्चाम्रादयोबी जानि शाल्यादीनि।एवं वल्लीगुल्मादयोऽपि वनस्पतिनेदाइष्टव्याः।त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रिया दयः प्राणाः प्राणिनोये चांमाज्जाताअंडजाः शकुनिसरीसृपादयः।ये च जरायुजाजंबालवेष्टि ताः समुत्पद्यंते तेच गोमहिष्यजाविकमनुष्यादयः।तथा संस्वेदाज्जाताः संस्वेदजायूकामत्कु णकृम्यादयः ये च रसजानिधानादधिसौवीरकादिषु रूतपक्ष्मसन्निनाइति ॥१॥ नानानेदनि न्नं जीवसंघातं प्रदर्श्याऽधुना तडपघाते दोषं दर्शयितुमाह। (एयाइमित्यादि)। एते पृथिव्या दयः कायाजीवनिकायानगवद्भिः प्रवेदिताः कथिताः। ठांदसत्वान्नपुंसकलिंगिता ॥ एते षु च पूर्वं प्रतिपादितेषु पृथिवीकायादिषु प्राणिषु सातं सुखं जानीहि। एतडक्तं नव

ति । सर्वेपि सत्वाः सातेपिणोडःखद्विषश्चेति ज्ञात्वा प्रत्युपेक्षस्व कुशाग्रीयया बुद्ध्या पर्यालोचयेदिति । यथैभिः कायैः समारभ्यमाणैः पीड्यमानैरात्मा दंड्यते तत्समारंभादा त्मदंमोभवतीत्यर्थः । अथवैऽभिरेव कायैर्ये आयतदंमादीर्घदंमाः । एतडुक्तं भवति । ए तान् कायान् ये दीर्घकालं दंमयंति पीमयंतीति तेषां यद्भवति तद्दर्शयति । ते एतेष्वेव पृथि व्यादिकायेषु विविधमनेकप्रकारं परि समंतादाशु क्षिप्रमुपसामीप्येन यांति व्रजंति । तेष्वे व पृथिव्यादिकायेषु विविधमनेकप्रकारं भूयोभूयः समुत्पद्यंतइत्यर्थः । यदिवा विपर्यासो व्यत्ययः सुखार्थिभिः कायसमारंभः क्रियते तत्समारंभेणच डुःखमेवाऽप्यते नसुखमि ति । यदिवा कुतीर्थिकामोक्षार्थमेतैः कायैर्या क्रियां कुर्वंति तया संसारएव भवतीति ॥२॥

जाईपहं अणुपरिवट्टमाणे, तस थावरेहिं विणिघायमेति ॥
से जाति जाति बहुकूरकम्मे, जं कुवती मिज्जति तेण बाले ॥३॥
अस्सिंच लोए अडुवा परत्था, सयग्गसोवा तह अन्नहावा ॥
संसारमावन्न परंपरं ते, बंधंति वेदंतिय डुन्नियाणि ॥ ४ ॥

अर्थ–(जाइपहंअणुपरिवट्टमाणेके०) एकेंड्रियादिकथी मांमीने पंचेंड्रिय पर्यंत जीव नी जातीठे तेने विषे एकस्थानकथी बीजे स्थानके परिभ्रमण करता थका (तसथावरेहिं विणिघायमेतिके०) त्रस तथा स्थावर जीवने विषे विनिघातमेत्य एटले उत्पत्ति अने वि नाश पामे (सेजातिजातिं बहुकूरकम्मे के०) ते कूर कर्मना करनार जाति जातिने विषे उत्पत्ति पामीने (जंकुवती मिज्जतितेणबालेके०) ते बाल अज्ञानी जे वली त्यां डुष्ट एवा पापकर्म करे तो वली तेहीज डुष्ट कर्म करी एटले चोर अथवा परदारा गमन इत्यादिक दोषे वली विनाश पामे ॥ ३ ॥ (अस्सिंचलोए अडुवापरत्था के० ) जे कर्म करे ते कर्म आजन्मने विषे अथवा परजन्मने विषे विपाक आपे ( सयग्गसोवा के० ) अथवा एकज कर्म सो सहस्र लाख क्रोम संख्याता असंख्याता इत्यादिक घणा भवशु ही पण विपाक आपे जेवा विधियें कर्म कस्यो होय तेवा विधियें भोगवे ( वा के० ) अथवा ( तह के० ) तथा ( अन्नहा के० ) अन्यविधिये पण भोगवे सिरछेदादिक हस्तपाद छेदनादिक डुःख पामे ( संसार मावन्न परंपरंते के० ) एवीरीते ते कुशीलिया अरहट्ट घटीकाने न्याये संसारने विषे फरीफरी भव परंपराये परिभ्रमण करता थका डुःख भोगवे तथा (बंधंति वेदंतिय डुन्नियाणिके०) एकेक छेदनादिक डुःखे पीड्या थका ते डुःखना योगेकरी वली नवा नवा कर्म बांधे तेने फरी भोगवे पण भोगव्या विना छूटेज नही.॥४॥

॥ दीपिका–जातिवधं जन्ममरणे अनुपरिवर्तमाने एकेंड्रियादिषु पर्यटन् त्रसस्था

वरेषु समुत्पन्नोबहुशोविनिघातं विनाशमेति सजातिमुत्पत्तिं प्राप्य बहुक्रूरकर्मा यत्क र्म करोति तेन कर्मणा म्रियते हिंस्यते ॥ ३ ॥ अस्मिन् लोकेऽन्यस्मिन् जन्मनि वा क र्माणि विपाकं ददति शताग्रशोवा बहुषु जन्मसु यद्यथा आचरंति तथैवोदीर्यंते अन्य थावा । एवं ते कुशीलाः संसारमापन्नाः परं परं प्रकृष्टं प्रकृष्टं दुःखमनुभवंति । आर्तध्यानो पहताश्चापरं बध्नंति वेदयंतिच दुर्नीतानि कर्माणि दुष्टं नीतानि दुर्नीतानि दुष्कृतानि । नहि स्वकृतकर्मणोनाशोस्ति । यदुक्तं । मान्होहिरेविसन्नो जीवतुमं विमणदुम्मणो दी णो. ॥ णहुविंतिए ण फिट्टइ तं दुःखं जं पुरा रईअमिति ॥ ४ ॥

---

॥ टीका–यथा चाऽसावायतदंडोमोक्षार्थी तान् कायान् समारभ्य तद्विपर्यासात् संसारमाप्नोति तथा दर्शयति । ( जाईपहमित्यादि ) जातीनामेकेंद्रियादीनां पंथाजाति पथः । यदिवा जातिरुत्पत्तिर्वधोमरणं जातिश्च वधश्च जातिवधं तदनुपरिवर्तमानएकें द्रियादिषु पर्यटन् जन्मजरामरणानि वा बहुशोऽनुभवंस्त्रसेषु तेजोवायुद्वींद्रियादिषु स्था वरेषु च पृथिव्यंबुवनस्पतिषु समुत्पन्नः सन् कायदंडविपाकजेन कर्मणा बहुशोविनि घातंविनाशमेत्यवाप्नोति सआयतदंडोऽसुमान् जातिं जातिमुत्पत्तिमुत्पत्तिमवाप्य ब हूनि क्रूराणि दारुणान्यनुष्ठानानि यस्य सभवति बहुक्रूरकर्मा सएवंभूतोनिर्विवेकः सद सद्विवेकशून्यत्वात् बालइव बालोयस्यामेकेंद्रियादिकायां जातौ यत्प्राण्युपमर्दकारि कर्म कु रुते सतेनैव कर्मणा मीयते म्रियते पूर्यते । यदिवा मीङ्हिंसायां मीयते हिंस्यते । अ थवा बहुक्रूरकर्मेति चौरोऽयं पारदारिकइति वा इत्येवं तेनैव कर्मणा मीयते परिच्छिद्य तइति ॥ ३ ॥ क्व पुनरसौ तैः कर्मनिर्मीयते इति दर्शयति ( अस्सिंचेत्यादि ) यान्याशुका रीणि-कर्माणि तान्यस्मिन्नेव जानाति जन्मनि विपाकं ददति ।अथवा परस्मिन् जन्मनि नरकादौ तस्य कर्मविपाकं ददत्येकस्मिन्नेव जन्मनि विपाकं तीव्रं ददति (शताग्रशोवेति) बहुषु जन्मसु येनैव प्रकारेण तदशुभमाचरति तथैवोदीर्यंते । तथा ( अन्यथावेति ) इ दमुक्तं भवति । किंचित्कर्म तद्भवतएव विपाकं ददाति किंचिच्च जन्मांतरे । यथा मृगा पुत्रस्य दुःखविपाकाख्ये विपाकश्रुतांगश्रुतस्कंधे कथितमिति दीर्घकालस्थितिकं स्वपरज न्मांतरितं वेद्यते येन प्रकारेण सकृत्तथैवाऽनेकशोवा । यदिवाऽन्येन प्रकारेण सकृत्सह स्रशोवा शिरश्छेदादिकं हस्तपादछेदादिकं चाऽनुभूयतइति। तदेवं ते कुशीलाआयतदंडाश्च तुर्गतिकसंसारमापन्नाअरहट्टघटीयंत्रन्यायेन संसारं पर्यटंतः परं परं प्रकृष्टं प्रकृष्टं दुःखम नुभवंति। जन्मांतरकृतं कर्मानुभवंतश्चैकमार्तध्यानोपहतात्यपरं बध्नंति वेदयंति च दुष्टं नीतानि दुर्नीतानि दुष्कृतानि । नहि स्वकृतस्य कर्मणोविनाशोऽस्तीतिभावः । तदुक्तं । मान्होहिरेविसन्नो. जीवतुमं विमणदुम्मणो दीणो । णहुविंतिए णफिट्टइ, तं दुःखं जं पुरा

रइयं ॥ १ ॥ जइ पविससिपायालं, अडइं बदरिं गुहं समुद्दंवा ॥ पुव्वकयाउ नचुक्कसि अप्पाणं घायसेजइवि ॥ २ ॥

जे मायरं वा पियरं च हिच्चा, समणव्वए अगणिं समारभिज्जा ॥
अहाहु से लोए कुसीलधम्मे, भूताइं जे हिंसति आयसाते ॥५॥
उज्जालउ पाण निवातएज्जा, निव्वावउ अगणि निवायवेज्जा ॥
तम्हा उमेहावि समिक्ख धम्मं, ण पंमिए अगणि समारभिज्जा ॥६॥

अर्थ—( जेमायरंवा पियरंचहिच्चा के० ) जे कोइ माता पितादिकने हिला एटले बांमीने अने स्वजन वर्गनो त्याग करीने (समणव्वएके०) श्रमणने व्रते उठ्या अर्थात् अमे साधुछैयें एवुं जाणता थका ( अगणिं समारभिज्जा के० ) उद्देशादिक परिभोगे करी अग्नीनो समारंभ करे अथवा करावे तथा अनुमोदे ( अहाहुसेलोए कुसीलधम्मेके० ) तेवा पाखंमी लोकते कुशील धर्मि जाणवा एम श्रीतीर्थंकर गणधरादिक कहेछे ( भूताइं जेहिंसति आयसाते के० ) जे पोताना आत्मसुखने अर्थे प्राणीनी हिंसाकरेछे ते कुशीलिया जाणवा. ॥ ५ ॥ ( उज्जालउपाण निवातएज्जा के० ) जे अग्नि उज्वाले प्रदीप्त करे ते त्रस अने स्थावर जीवोनो अतिपात एटले विनाशकरे अने (निव्वावउ अगणि निवायवेज्जाके०) तेम वली ते अग्नीने पाणीयें करी बुजावतां थका पण अनेक त्रस अने स्थावर जीव हणायछे एमज अग्नीने अजुआलतां तथा उलवतां थकां पण प्राणीउनो घात थायछे ( तम्हाउ के० ) तेमाटे ( मेधाविके० ) पंमित सदसद्विवेकनो जाण (समिक्खधम्मंके०) हिंसानो त्याग करी तथा दयामां धर्मछे एम विमाशीने ( णपंमिए अगणिसमारभिज्जाके० ) पंमित अग्निकायनो समारंभ करे नही ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—ये ज्ञाततत्वामातरं पितरं स्वजनवर्गं हित्वा श्रमणव्रते स्थितावयमित्यंगीकृत्याऽग्निकायं समारभंते अग्न्यागारं कुर्युः पचनपाचनादौ । अथ तीर्थकृतएव माहुः सोयं पाखंडिलोकः कुशीलः कुत्सितशीलोधर्मोयस्य सतथा योभूतानि प्राणिनोहिनस्ति आत्मसाते आत्मसुखार्थं ॥ ५ ॥ अग्निमुज्वालयन् सोग्निकायमपरांश्च पृथ्व्यादिजीवान् स्थावरत्रसांश्च निपातयेत् तथा अग्निकायं निर्वापयेत् तदाश्रितानन्यांश्च प्राणिनोनिपातयेत् । अग्निज्वालकनिर्वापकयोर्योज्वालयति समहाकर्मबंधकः । तथा चागमः । दोभंतेपुरिसा असेमसुण सद्धि अगणिकायं समारभंति । तछणं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ एगेपुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ तेसिं भंते पुरिसाणं कयरे पुरसे महाकम्मतराए अप्पकम्मतराए ता गोयमा जे णं पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ सेणं म

हाकम्मतराए जेसे पुरिसे अगणिकायं निवावेइ सेणं पुरिसे अप्पकम्मतराए से केणठेणं भंते एवं वुच्चत्ति तहेव गोयमा तडणं जेसे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ सेणं पुरिसे बहुतरागं पुढविकायं समारंभति । एवं आउकायं समारंभति एवं वाउकायं वणस्सतिकायं अप्प तरागं अगणिकायं समारंभति तडणं जेसे पुरिसे अगणिकायं निवावेइ सेणं पुरिसे अप्प तरागं पुढविकायं समारंभति जाव अप्पतरागं तसकायं समारंभति बहुतरागं अगणि कायं समारंभति सेणं अठेणं गोयमा एवं वुच्चत्ति जे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ सेणं पुरिसे महाकम्मतराए जेणं पुरिसे अगणिकायं निवावेइ सेणं पुरिसे अप्पकम्मतराएइति । तस्मान्मेधावी पंम्डितोधर्मं समीक्ष्याऽग्निकायं नसमारंभते ॥ ६ ॥

॥ टीका–एवं तावदोघतः कुशीलाः प्रतिपादिताः । तदधुना पाखंडकानधिकृत्याह । (जेमायरंचेत्यादि) ये केचनाऽविदितपरमार्थाधर्मार्थमुत्थितामातरं पितरंच त्यक्त्वा मातापि त्रोर्डुस्त्यज त्वात् तडुपादानमन्यथा भ्रातृपुत्रादिकमपि त्यक्त्वेति द्दष्टव्यं । श्रमणव्रते किल वयं समुपस्थिताइत्येवमभ्युपगम्याऽग्निकायं समारंभंते पचनपाचनादिप्रकारेण । कृतकारि तानुमत्योद्देशिकादिपरिभोगाच्चाऽग्निकायसमारंभं कुर्युरित्यर्थः । अथेति वाक्योपन्यासार्थः। आहुरिति तीर्थकृद्गणधरादयएवमुक्तवंतोयथा सोऽयं पाखंडिकोलोकोगृहस्थलोकोवा ऽग्निकायसमारंभात् कुशीलः कुत्सितशीलोधर्मोयस्य सकुशीलधर्मा । अयं किंभूतइति दर्श यति ॥ अभूवन् भवंति भविष्यंतीति भूतानि प्राणिनस्तान्यात्मसुखार्थं हिनस्ति व्यापाद यति । तथाहि । पंचाग्नितपसा निष्टप्तदेहास्तथाऽग्निहोत्रादिकया च क्रियया पाखंडिकाः स्व र्गावाप्तिमिछंतीति । तथा लौकिकाः पचनपाचनादिप्रकारेणाऽग्निकायं समारंभमाणाः सुखमभिलषंतीति ॥ ५ ॥ अग्निकायसमारंभे च यथा प्राणातिपातोभवति तथा द र्शयितुमाह ( उज्जालओइत्यादि ) तपनतापनादिप्रकाशहेतुं काष्ठादिसमारंभेण योऽग्निका यं समारभते सोऽग्निकायमपरांश्च पृथिव्याद्याश्रितान् स्थावरांस्त्रसांश्च प्राणिनोनिपात येत् । त्रिभ्योवा मनोवाक्कायेभ्यआयुर्बलेंद्रियेभ्योवा पातयेन्निपातयेत् । तथाऽग्निका यमुदकादिना निर्वापयेत् विध्या पयंस्तदाश्रितानऽन्यांश्च प्राणिनोनिपातयेन्निपातयेदा । तत्रोज्वालकनिर्वापकयोर्योऽग्निकायमुज्ज्वलयति सबहूनामन्यकायानां समारंभकः । त था चाऽऽगमः । दोभंते पुरिसा अन्नमन्नेण सिद्धिं अगणिकायं समारभंति तडणं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ से एगेणं पुरिसे अगणिकायं निव्वव5 तेसिं भंते पुरिसा णं कयरे पुरिसे महाकम्मतराए अप्पकम्मतराए ॥ गोयमा तडणं जेसे, पुरिसे अगणि कायं उज्जालेइ सेणं पुरिसे बहुतरागं पुढविकायं समारंभति ॥ एवं आउकायं वाउकायं वणस्सइकायं अप्पतरागं अगणिकायं समारंभइ तडणं जेसे पुरिसे अगणिकायं नि

थावेइ तेणं पुरिसे अप्पतरागं पुढविकायं समारंभइ जाव अप्पतरागं तसकायं समारंभइ बहुतरागं अगणिकायं समारंभइ । से एतेणंअठेणं गोयमा एवं वुच्चइ ॥ अपि चोक्तं । भूयाणं ए समाघाउ, । हव्ववाहेण संसउइत्यादि । यस्मादेवं तस्मान्मेधावी सदसद्विवेकः सश्रुतिकः समीक्ष्य धर्मं पापाड्डीनः पंडितोनाग्निकायं समारंभते । सए व च परमार्थतः पंडितोयोऽग्निकायसमारंभकृतात् पपान्निवर्ततइति ॥ ६ ॥

पुढवीवि जीवा आऊवि जीवा, पाणाइ संपाइम संपयंति ॥ संसेय
या कठसमस्सियाय, एते दहे अगणि समारभंते ॥ ७ ॥ हरिया
णि भूताणि विलंबगाणि, आहार देहाय पुढो सियाई ॥ जे छिंद
ती आयसुहं पडुच्च, पगब्भिपाणे बहुणंतिवाती ॥ ८ ॥

अर्थ–हवे अग्नीनो समारंभ करवा थकी बीजा जीवो केवीरीते हणाय ते कहेछे. ( पुढवीविजीवाआऊविजीवा के० ) पृथवी तेपण जीव अने आऊ एटले पाणी तेपण जीव ( पाणाइसंपाइम के० ) तथा संपातिमप्राणी ते पतंगीया प्रमुख ( संपयंति के० ) त्यां सम्यक् प्रकारे पडे तथा ( संसेययाकठसमस्सियाय के० ) संस्वेदजा ते काष्ठ तथा छाणादिकने विषे उत्पन्न थएला जीव काष्ठनिश्रितघुणादिककीडीप्रमुख जाणवा ( एतेदहेअगणिसमारभंते के० ) एटला स्थावर जंगमजीवने जे अग्नीनो समारंभ करे ते दहे एटले बाली नाखे ॥ ७ ॥ तथा ( हरियाणि के० )हरीकाय ते अंकुरादिक समस्त वनस्पति जाणवी ए सर्वे ( भूताणि के० ) जीव ते ( विलंबगाणि के० ) विलंबक जाणवा विलंबक शब्दे जीवनो आकार धारण करे जेम कलल अर्बुद मांस पेशी एटली अवस्था गर्भमां थाय अने गर्भ प्रसव्या पछी बाल कुमार तरुण वृद्ध एटली अवस्था मनुष्य धारण करे तेम शाल्यादिक वनस्पति पण अंकूर मूल स्कंध पत्र शाखादिक विशेष जे छे ते पण वर्द्धमान थका बाल तरुण वृद्धावस्थादिक भाव पामे छे तथा ए हरितादिक जेछे तेना मूल पत्र शाखादिकने विषे ( पुढोसियाई के० ) पृथक् पृथक् जुदा जुदा जीव जाणवा एटला वनस्पतिने ( आहारदेहाय के० ) आहार तथा शरीरने अर्थे ( जेछिंदतीआयसुहंपडुच्चके० ) जे आत्माना सुखने अर्थे एटले एने छेदवा थकी माहारा आत्माने सुख थशे एवी आत्मसुखनी प्रतीते जे छेदे ( पगब्भिपाणेबहुणंतिवाती के० ) ते पुरुष धीठाइ पणे घणाजीवोना घातनो करनार जाणवो ॥८॥

॥ दीपिका–पृथ्वीजीवाआपोपिजीवास्तदाश्रिताश्चप्राणाः संपातिमाः शलभादयस्तेच

संपतंति । संस्वेदजाः करीषादिष्विंधनेषु घुणपिपीलिकादयः काष्ठसमाश्रिताश्च ये एतान् प्राणिनः सदहेतु योग्निं समारजते ॥७॥ हरितानि नूतानि जीवरूपाणि तथा जीवाकारं विलंबंते धारयंतीति विलंबकानि । यथा मनुष्या कललाऽर्बुदमांसपेशीगर्नप्रसववालकुमारयुवमध्यमस्थविराद्यवस्थां धरंति तथा हरितान्यपि । किंनूतानि पृथक् मूलस्कंधशाखापत्रपुष्पादिस्थानेषु प्रत्येकं श्रितानि नतु मूलादौ । एकएव जीवः एतानि नूतानि आहारार्थं देहोपचयार्थमात्मसुखं प्रतीत्याश्रित्य यश्छिनत्ति सप्रागल्भ्यात् धाष्टर्यात् बहूनां प्राणिनामतिपाती हिंसकः स्यात् तथाच नधर्मोनात्मसुखं चेति ॥ ८ ॥

---

॥ टीका—कथमग्निकायसमारंनेणाऽपरप्राणिवधोनवतीत्याशंक्याह । ( पुढवीत्यादि) । नकेवलं पृथिव्याश्रिता द्वींद्रियादयोजीवायापि च पृथ्वी मृल्लक्षणा असावपि जीवाः । तथा आपश्च द्रवलक्षणाजीवास्तदाश्रिताश्च प्राणाः संपातिमाः शलनादयस्तत्र संपतंति । तथा संस्वेदजाः करीषादिष्विंधनेषु घुणपिपीलिकाः कृम्यादयः काष्ठाद्याश्रिताश्च ये केचन एतान् स्थावरजंगमान् सदहेद्योऽग्निकायं समारजते ऽतोऽग्निकायसमारंजोमहादोषायेति ॥ ७ ॥ एवं तावदग्निकायसमारंनकास्तापसास्तथा पाकादनिवृत्ताः शाक्यादयश्चोऽपदिष्टाः । सांप्रतं ते चाऽन्ये वनस्पतिसमारंजादनिवृत्ताः परामृश्यंते इत्याह ( हरियाणीत्यादि) हरितानि दूर्वांकुरादीन्येतान्यप्याहारादेर्वृद्धिदर्शनात् नूतानि जीवाः । तथा विलंबकानीनिं जीवाकारं यांति विलंबंति धारयंति । तथाहि । कललार्बुदमांसपेशीगर्नप्रसववालकुमारयुवमध्यमस्थविरावस्थांतोमनुष्योनवति । एवं हरितान्यपि शाल्यादीनि जातान्यनिनवानि संजातरसानि यौवनवंति परिपक्वानि जीर्णानि परिशुष्काणि मृतानि । तथा वृक्षाअप्यंकुरावस्थायां जाताइत्युपदिश्यंते मूलस्कंधशाखाप्रशाखादिभिर्विशेषैः परिवर्धमानायुवानः पोताइत्युपदिश्यंतइत्यादि शेषास्वप्यवस्थास्वायोज्यं । तदेवं हरितादीन्यऽपि जीवाकारं विलंबयंति । ततएतानि मूलस्कंधशाखापत्रपुष्पादिस्थानेषु पृथक् प्रत्येकं व्यवस्थितानि नतु मूलादिषु सर्वेष्वऽपि समुदितेषु । एकएव जीवएतानि च नूतानि संख्येयाऽसंख्येयानंतनेदभिन्नानि वनस्पतिकायाश्रितान्याहारार्थं वा देहक्षतसंरोहणार्थं चात्मसुखं प्रतीत्याश्रित्य यश्छिनत्ति सप्रागल्भ्यात् धाष्टर्याद्वष्टंनाद्बहूनां प्राणिनामतिपाती नवति तदतिपाताच्च निरनुक्रोशतया नधर्मोनाऽप्यात्मसुखमित्युक्तं नवति ॥ ८ ॥

जातिंच वुड्ढिंच विणासयंते, वीयाइ अस्संजय आयदंमे ॥ अहाहु से लोए अणज्जधम्मे, वीयाइ जे हिंसति आयसाते ॥ ए॥ गप्नाइ मिज्जंति

बुया बुयाणा, णरा परे पंचसिहा कुमारा ॥ जुवाणगा मज्झिम थेरगाय, (पाठांतरे पोरुसाय) चयंति ते आउखए पलीणा ॥ १० ॥

अर्थ-( जातिंच के० ) उत्पत्ति एटले मूलादिक कोमल तथा ( वुड्ढिंच के० ) वृद्धि एटले शाखा प्रशाखादि जे वनस्पति तेनो ( विणासयंते के० ) विनाश करतो होय तथा.( बीयाइ के० ) बीजादिक एटले तेना फलनो विनाश करतो होय तेने (असंजय आयदंमेके०) असंयत एटले गृहस्थ अथवा प्रव्रजित अन्यलिंगी अथवा स्वलिंगी आत्मानो दंमनार कहिए तेजीव प्राणीने उपघाते पोताना आत्मानो उपघात करेछे (अहाहुसे लोएअणऊधम्मेके० ) जे आत्म सुखने अर्थे हरीकायने छेदे तेने लोकमांहे अनार्य धर्मि श्रीतीर्थंकर गणधर कहेछे ( बीयाइंजेहिंसतिआयसाते के० ) जे प्राणी धर्मोपदेशे आत्मसुखने अर्थे बीजादिक वनस्पतिकायने छेदे, छेदावे तथा अनुमोदे तथा एवो धर्मोपदेश करे ते पाखंमी अनार्य जाणवो. ॥ ए ॥ ( गप्पाइमिज्झंति के० ) वनस्पतिकायना विनाशक प्राणीउ घणा जन्मसुधि गर्नादिक अवस्थानें विषे वर्त्तताज मरण पामे एटले कलल अर्बुदादिक अवस्थायें वर्त्तता थकाज मरण पामे तथा जन्म्या पढी ( बुयाबुयाणाके० ) बोलता अणबोलता थका तथा ( णरापरेके० ) अन्य मनुष्य ( सिहाकुमाराके० ) न्हानी चोटलीना धणी कुमारावस्थायें स्थित थका मरे तथा ( जुवाणगा के० ) युवानवय तरुणवय तथा ( मज्झिम के० ) मध्यमवय ( थेरगायके० ) थविर वय ए सर्व अवस्थाने विषे ( आउखए पलीणा के० ) आयुष्यना क्षय विषे प्रलीन थका एटले स्वकर्म नोगवता दीन डुखी खुख तृषादिक सहन करता थका ( चयंतितेके० ) ते पापी जीवो शरीर त्याग करे एटले जेवुं पाप समाचरे तेवुं नोगवे ॥ १० ॥

॥ दीपिका-जातिं पत्रांकुरादिनेदां वृद्धिं च विनाशयन् बीजानिच फलानि विनाशयन् असंयतोगृहस्थः प्रव्रजितोवा आत्मदंमः परहिंसया आत्मानमेव हंतीत्यात्मदंडः । अथेति वाक्यालंकारे । आहुरुक्तवंतोजिनाः । तदेवाह् । सलोके निर्दयोऽनार्यधर्मा क्रूरकर्मकारी स्यात् । योबीजानि वनस्पतिकायमात्मसुखार्थं हिनस्ति ॥ ए ॥ वनस्पतिकायोपमर्दकागर्नादिकावस्थासु म्रियंते तथाऽब्रुवंतोऽब्रुवंतश्च व्यक्तवाचोऽव्यक्तवाचश्च तथा परे नराः पंचशिखाः कुमाराः संतोम्रियंते युवानोमध्यमपौरुषामध्यमवयसोवृद्धाश्च । एवं सर्वावस्थासु आयुःक्षयोप्रलीनाः संतोदेहं त्यजंति ॥ १० ॥

॥ टीका-किंच । ( जातिंचेत्यादि ) । जातिमुत्पत्तिं तथांऽकुरपत्रमूलस्कंधशाखाप्रशाखानेदेन वृद्धिं च विनाशयन् बीजानिच तत्फलानि विनाशयन् हरितानि छिनत्तीति । असंय

तोगृहस्थः प्रव्रजितोवा तत्कर्मकारी गृहस्थएव सच हरितछेदं विधायात्मानं दंमय तीत्यात्मदंडः सहि परमार्थतः परोपघातेनाऽऽत्मानमेवोऽपहंति । अथ शब्दोवाक्यालं कारे । आहुरेवमुक्तवंतइति दर्शयति । योहरितादिछेदकोनिरनुक्रोशः सोऽस्मिन् लोकेऽ नार्यधर्मा क्रूरकर्मकारी नवतीत्यर्थः । सच एवंनूतोयोधर्मोपदेशेनात्मसुखार्थं वा बीजान्यऽस्यचोपलक्षणार्थत्वात् वनस्पतिकायं हिनस्ति सपाषंडिकलोकोऽन्योवाऽनार्य धर्मा नवतीति संबंधः ॥ ए ॥ सांप्रतं हरितछेदकर्मविपाकमाह ( गप्लाइमिर्ज्जतिइत्या दि ) । इह वनस्पतिकायोपमर्दकाबहुषु जन्मसु गर्नादिकास्ववस्थासु कललार्बुदमां सपेशीरूपासु म्रियंते । तथा ब्रुवंतोऽब्रुवंतश्च व्यक्तवाचो ऽव्यक्तवाचश्च । तथा परेनराः पं चशिखाः कुमाराः संतोम्रियंते । तथा युवानोमध्यमवयसः स्थविराश्च । क्वचित्पाठो ( मज्झिमपोरुसायत्ति ) । तत्र मध्यमामध्यमवयसः ( पोरुसायत्ति ) । पुरुषाणां चरमाव स्थां प्राप्ताअत्यंतवृद्धाएवेति यावत् । तदेवं सर्वास्वप्यवस्थासु बीजादीनामुपमर्दकाः स्वायुषः क्षये प्रलीनाः संतोदेहं त्यजंतीति । एवमपरस्थावरजंगमोपमर्दकारिणामप्य नियतायुष्कत्वमायोजनीयं ॥ १० ॥

संबुज्झहा जंतवो माणुसत्तं, दट्ठुं नयं बालिसेणं अलंनो ॥ एगं
तडुक्खे जरिएव लोए, सक्कम्मणा विप्परियासुवेइ ॥ ११ ॥ इहे
गमूढा पवयंति मोरकं, आहारसंपज्जणवज्जणेणं ॥ एगेयसी उद
गसेवणेणं, हुएण एगे पवयंति मोरकं ॥ १२ ॥

अर्थ- ( जंतवो के० ) अहो जीवो तमे ( संबुज्झहा के० ) बुजो जे ( माणु सत्तं के० ) मनुष्यपणुं पामवुंडुर्लनडे एम जाणो डुल्लहेखलुमाणुस्सेनवे इत्यादिक वचने बुजो एटले प्रतिबोध पामो ( दट्ठुंनयंबालिसेणंअलंनो के० ) तथा नरक तिर्यंचादिक गतिने विषे अनेक डुःखडे तेनो नय देखीने बालिस एटले अज्ञान पणाने लीधे सद् विवेक पामवो डुर्लनडे एवीरीते जाणो ( एगंतडुक्खेजरिएवलोए के० ) तथा ए लोक एकांत डुखीडे ज्वरित एटले जेम ज्वराक्रांत जीव डुःखी होय तेम ए सर्व लोक ( सक्क म्मणाविप्परियासुवेइ के० ) पोत पोताना कर्मरूप तापे करी व्याकुल थता संसा रमां विपर्यास एटले फरी फरी नाश पामेडे ॥ ११ ॥ ( इहेगमूढापवयंति के० ) अं हीं धर्म स्थापना अधिकारे कोइएक मूर्ख कुशील दर्शनी एम कहेडे के ( आहारसंप ज्जणवज्जणेणं के० ) आहारेणसंपचक एटले लवण तेने वर्जवा थकी ( मोरकं के० ) मोक्षडे एटले सर्व रसनु सार लवणडे यतः लवणाविहूणारसा इतिवचनात् तथा पाठां तरे ( आहारपंचकवज्जणेणं के० ) आहारपंचकंलवणपंचकंचेदं आहार आश्री पां

च नेद वर्जवा थकी मोक्ष थायछे ते आहार पंचकना नाम कहेछे एक लशण बीजो प लाडु त्रीजो करनी एटले डुग्ध चोथो गौमांस पांचमुं मद्य ( एगेयसीउदगसेवणेणंके० ) तथा एकेक वादी शीतलोदकना उपनोग थकी मोक्ष कहेछे एटले जेम पाणी बाह्यमल उतारेछे तेम अंतरंग मल पणते पाणीज उतारेछे एम कहेछे ( हुएणएगेपवयंतिमोरकं के० ) कोइएक वली हुताशन एटले अग्नीना होम थकी मोक्षछे एम प्ररूपेछे जेम सुव र्णादिकना मलने अग्नी बोलेछे तेम आत्मना मलनो पण अग्नीज नाश करेछे. ॥१२॥

---

॥ दीपिका–हेजंतवो यूयं संबुध्यध्वं मनुष्यत्वं डुर्लनं तथा नरतिर्यगादिगतिषु नयं दृष्ट्वा बालिशेन मूर्खेण विवेकस्यालंनोविवेकज्ञेन न लन्यते इतिज्ञात्वा एकांतडुखाज्ज्व रितश्वायं लोकः । यडुक्तं । जन्मडुःखं जराडुःखं, रोगा य मरणाणि अ ॥ अहोडुः रके हु संसारो जह कीसंति जंतुणो इति । तथा लएहाइ अस्सपाणं कूगेह्रायस्स लुत्तपत्ति त्ति । डुःखसयंसंपउत्तंजरिअमिवजगंकालइ । एवंनूतोलोकोडुष्कर्मकारी विपर्यासमुपै ति सुखार्थी पापं कुर्वन् डुःखमेव प्राप्नोति ॥ ११ ॥ उक्तः कुशीलविपाकः । अथ तद्दर्शना न्युच्यंते । इह नवे एके मूढामोक्षं प्रवदंति । केन आहारस्य संपद्रसस्तं जनयतीत्याहारसं पल्लवनं लवणं तस्य वर्जनेन लवणवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । लवणं हि सर्वरसमूलं तद्व र्जनाच्च रसपंचकं तस्य वर्जनेन । लवणपंचकं चेदं। सैंधवं १ सौवर्चलं २ विडं ३ रौमं ४ सामुद्रंचेति । तथा पाठांतरं आहारउपंचकवज्जणेणं । आहारतः आहारमाश्रित्य पंचक वर्जनं । तथाहि । लशुनं १ पलांडुः २ करनीक्षीरं ३ गोमांसं ४ मद्यंचेति । एवमाहा रपंचकवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । तथा एकेन शीतोदकसेवनेन सचित्तजलपरिनोगादेके मोक्षं वदंति । यथा जलेन बाह्यमलस्य विनाशस्तथांतरस्यापी त्यर्थः । एके हुतेन वन्हिहो मेन मोक्षं प्रवदंति । कोर्थः । ते मोक्षायाग्निहोत्रे जुव्हति वदंतिच यथाग्निः स्वर्णादी नां मलं दहति तथात्मनोपीति ॥ १२ ॥

---

॥ टीका–किंचाऽन्यत् ( संबुज्कहेत्यादि ) हेजंतवः प्राणिनः संबुध्यध्वं यूयं नहि कुशी लपाखंडिकलोकस्त्राणाय नवति । धर्मंच सुडर्लनत्वेन संबुध्यध्वं । तथाचोक्तं । माणुस्स खेत्तजाई, कुलरूवारोग्गमाउयंबुद्धी ॥ सवणोग्गहसद्धासंममोयलोगंमि डुल्लहाइं ॥ तदेव मकृतधर्माणां मनुष्यत्वमतिडर्लनमित्यवगम्य तथा जातिजरामरणरोगशोकादीनि नरक तीर्यक्षुच तीव्रडुःखतया नयं दृष्ट्वा तथा बालिशेनाऽज्ञेन सद्विवेकस्याऽलंनइत्येतच्चा ऽवगम्य तथा निश्चयनयमवगम्य एकांतडुःखोयं ज्वरितइव लोकः संसारप्राणिगणः । तथा चोक्तं । जम्मडुःखं जराडुःखं, रोगायमरणाणिय । अहोडुरकोहुसंसारो, जछ कीसंतिपा

णिणो ॥ १ तथा । तएहाइहस्सपाणं, कूरोडायस्सनुजाएतेत्ती ॥ डुःखकसहसंपनुत्तं जरियमिवजगंकलयलेइ ॥१॥ इत्यत्र चैवं नूतलोके आनार्यकर्मकारी स्वकर्मणोविपर्यासमुपैति सुखार्थी प्राण्युपमर्दं कुर्वन् डुःखं प्राप्नोति । यथा मोक्षार्थी संसारं पर्यटतीति ॥ ॥ ११ ॥ उक्तः कुशीलविपाकोऽधुना तद्दर्शनान्यनिधीयंते । ( इहेगेत्यादि ) इहेति मनुष्यलोके मोक्षगमनाधिकारे वा एके केचन मूढाअज्ञानाऽऽछादितमतयः परैश्च मोहिताः प्रकर्षेण वदंति प्रतिपादयंति । किंतत् मोक्षं मोक्षावाप्तिं। केनेति दर्शयंति । आह्रियतइत्याहारउदनादिस्तस्य संपड्सपुष्टिस्तां जनयतीत्याहरसंपज्ञनं लवणं । तेन ह्याहारस्य रसपुष्टिः क्रियते तस्य वर्जनं तेनाऽऽहारसंपज्ञनवर्जनेन लवणवर्जनेन मोक्षं वदंति । पाठांतरंवा । आहारसपंचयवज्जणेण आहारसलवणपंचकमाहारसपंचकं। लवणपंचकं चेदं । तद्यथा । सैंधवं सौवर्चलं बिडं रौमं सामुद्रं चेति । लवणेन हि सर्वरसानामनिव्यक्तिर्नवति । तथाचोक्तं । लवणविहूणायरसा, चरकुविहूणायइंदियग्गामा । धम्मोदयापरहिउं, सोरकंसंतोसरहियंतो ॥ १ ॥ तथा लवणं रसानां तैलं स्नेहानां घृतं मेध्यानामिति । तदेवंनूतलवणपरिवर्जनेन रसपरित्यागएव कृतोनवति तत्त्यागाच्च मोक्षावाप्तिरित्येवं केचन मूढाः प्रतिपादयंति । पाठांतरंवा आहारउपंचकवज्जणेण ।आहारतइति ल्यब्लोपे कर्मणि पंचमी । आहारमाश्रित्य पंचकं वर्जयंति । तथा लसणं पलांडुः करनीक्षीरं गोमांसं मद्यं चेत्येतत्पंचकवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । तथैके वारिनद्रकादयोनागवतविशेषाः शीतोदकसेवनेन सचित्ताप्कायपरिनोगेन मोक्षं प्रवदंति । उपपत्तिं च ते अनिदधति । यथोदकं बाह्यमलमपनयति एवमांतरमपि । वस्त्रादेश्च यथोदकाछुद्धिरुपजायते एवं बाह्यशुद्धिसामर्थ्यदर्शनादांतरापि शुद्धिरुदकादेवेति मन्यंते। तथैके तापसब्राह्मणादयोहुतेन मोक्षं प्रतिपादयंति । ये किल स्वर्गादिफलमनाशंस्य समिधाघृतादिनिर्द्रव्यविशेषैर्हुताशनं तर्पयंति ते मोक्षायाग्निहोत्रं जुह्वति । शेषास्त्वन्युदयायेति । युक्तिं चात्र ते आहुः । यथा ह्यग्निः सुवर्णादीनां मलं दहत्येवं दहनसामर्थ्यदर्शनादात्मनोऽप्यांतरं पापमिति ॥१२॥

पाउसिणाणादिसु णत्थि मोरको, खारस्स लोणस्स अणासएणं ॥
ते मज्जमंसं लसणंच नोच्चा, अन्नछवासं परिकप्पयंति ॥ १३ ॥
उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति, सायंच पायं उदगं फुसंता ॥ उदगस्स फासेण सियाय सिद्धि, सिज्जंसु पाणा बहवे दगंसि ॥ १४॥

अर्थ—हवे ए पूर्वोक्त दर्शनीउने उत्तर कहेछे. ( पाउसिणाणादिसुके० ) प्रातःस्नानादिके करी आदि शब्द थकी हस्त पादने धोवे करी ( णत्थिमोरको के० ) मोक्ष नथी के

मके पाणी नाखवा थकी तदाश्रित जीवोनो घात थायछे तेमाटे एम कह्याथकी मोक्ष प्राप्त नथाय तथा (खारस्सलोणस्सअणासएणंके०) खार एटले लवणने अण जमवे करी पण मोक्ष नथी जो लुंण नखावा थकी मोक्ष प्राप्ति थती होय तो जे देशमां सर्वथा लुंण मलतुंज नथी तो त्यां निवाश करनारा लोकोने दुर्गति पण नथाय परंतु ए वचन असंबंध जाणवो (तेमज्जमंसंलसणंचजोच्चा के०) अने ते मूर्ख मद्य मांस तथा लशण नो परिजोग करी ने (अन्नत्थवासंपरिकप्पयंतिके०) मोक्षार्थि थका अन्यत्र स्थानके वाशकरे एटले तेने पण सुशीलविना मोक्ष नथी एतावता तेने संसारमां निवास कल्पे ॥१३॥ (उदगेण जेसिद्धिमुदाहरंति के०) जे मूर्ख पाणीये करी मोक्ष प्ररूपेछे (सायंचपायंउदगंफुसंता के०) एटले संध्या प्रजात अने चकारना ग्रहण थकी मध्याननें विषे पाणीनो स्पर्श करवा थकी मुक्ति कहेछे तेपण मुधा जाणवो केमके (उदगस्सफासेणसियायसिद्धि के०) उदकना स्पर्श थकी जो सिद्धि थाय तो (सिज्झंसुपाणावहवेदगंसि के०) पाणीमांहे सर्व काल माछला प्रमुख जीवो रहेछे अथवा जाल पण पाणीमां रहेछे तेने पण मुक्ति होवी जोइयें तेम तो थतुं नथी कारणके पाणी जेम अनिष्ट मलने हरण करेछे तेमज इष्ट मल जे सुगंध द्रव्य छे तेने पण हरण करेछे. ॥ १४ ॥

---

॥ दीपिका–प्रातःस्नानादिषु नास्ति मोक्षः । तथा क्षारस्य पंचप्रकारलवणस्यानशने नाऽपरिभोगेण मोक्षोनास्ति ते मूढामद्यं मांसं लशुनादिकंवा भुक्त्वाऽन्यत्र मोक्षात् संसारेवा समवस्थानं परिकल्पयंति नतु मोक्षगामिनः स्युः शीलं विना ॥ १३ ॥ ये उदकेन सिद्धिमुदाहरंति सायमपराह्णे प्रातः प्रजाते उपलक्षणान्मध्यान्हे एवं त्रिकालमुदकं स्पृशंतोजलेन स्नानादिकं कुर्वतः प्राणिनः सिद्धिं यांतीति केचिद्वदंति तन्न युक्तं। यतोजलस्य स्पर्शमात्रेण यदि सिद्धिः स्यात्तदा जलाश्रितामत्स्यबंधादयोबहवः सिध्येयुः। स्नानंच यतीनां दोषायैव । यदुक्तं । स्नानं मददर्पकरं कामांगं प्रथमं स्मृतं । तस्मात्कामं परित्यज्य न ते स्नांति दमे रताः ॥१॥ तथा । नोदकक्लिन्नगात्रोहि स्नातइत्यभिधीयते॥ सस्नातोयोव्रतस्नातः सबाह्याभ्यंतरः शुचिरिति ॥ १४ ॥

---

॥ टीका–तेषामसंबद्धप्रलापिनामुत्तरदानायाह । (पाउसिणाणादिइत्यादि)। प्रातःस्नानादिषु नास्ति मोक्षइति प्रत्यूषजलावगाहनेन निःशीलानां मोक्षोनजवति । आदिग्रहणात् हस्तपादादिप्रक्षालनं गृह्यते। तथा ह्युदकपरिभोगेन तदाश्रितजीवानामुपमर्दः समुपजायते। नच जीवोपमर्दान्मोक्षावाप्तिरिति। नचैकांतेनोदकं बाह्यमलस्याप्यपनयने समर्थमथाऽपिस्यात्तथाप्यांतरमलं नशोधयति। नावशुध्या तच्छुद्धेरथजावरहितस्यापि तच्छुद्धिः

स्यात् ततोमत्स्यबंधादीनामपि जलाभिषेकेण मुक्त्यवाप्तिः स्यात् । तथा क्षारस्य पंच प्रकार स्याऽपि लवणस्याऽ नशनेनाऽपरिभोगेन मोक्षोनास्ति । तथाहि । लवणपरिभोगरहितानां मोक्षोनभवतीत्ययुक्तिकमेतत् ।नचाऽयमेकांततोलवणमेव रसपुष्टिजनकमिति क्षीरशर्करादि निर्व्यभिचारात् । अपिचाऽसौ प्रष्टव्यः ।किं इव्यतोलवणवर्जनेन मोक्षावाप्तिरुत भावतः । यदि इव्यतस्ततोलवणरहितदेशे सर्वेषां मोक्षः स्यान्नचैवं दृष्टमिष्टंवा । अथ भावतस्ततो भावएव प्रधानं किं लवणवर्जनेनेति । तथा ते मूढामद्यमांसलशुनादिकं वा भुक्त्वा अन्यत्र मोक्षादन्यत्र संसारे वा समवस्थानं तथाविधानुष्ठानमसद्भावात् सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र रूपमोक्षमार्गस्याऽनुष्ठानाच्च परिकल्पयंति समंतान्निष्पादयंतीति ॥ १३ ॥ सांप्रतं विशेषे ण परिजिहीर्षुराह । ( उदगेणेत्यादि ) तथा ये केचन मूढाउदकेन शीतवारिणा सिद्धिं परलोकमुदाहरंति प्रतिपादयंति । सायमपराण्हे वकाले वा प्रातश्च प्रत्युपसिच आ द्यंतग्रहणात् मध्यान्हे च । तदेवं संध्यात्रयेऽप्युदकं स्पृशंतः स्नानादिकां क्रियां जले न कुर्वंतः प्राणिनोविशिष्टां गतिमाप्नुवंतीति केचनोदाहरंति .। एतच्चासम्यक् । यतोय द्युदकस्पर्शमात्रेण सिद्धिः स्यात् ततउदकसमाश्रितामत्स्यबंधादयः क्रूरकर्माणोनिरनुक्रोशा बहवः प्राणिनः सिद्ध्येयुरिति । यदपि तैरेवोच्यते । बाह्यमलापनयनसामर्थ्यमुदकस्य दृष्ट मिति तदपि विचार्यमाणं नघटते । यतोयथोदकमनिष्टमलमपनयत्येवमभिमतमप्यंग रागं कुंकुमादिकमपि नयति । ततश्च पुण्यस्याऽपनयनादिष्टविघातकृद्विरुद्धः स्यात् । किंच यतीनां ब्रह्मचारिणामुदकस्नानं दोषायैव । तथाचोक्तं । स्नानं मददर्पकरं, कामांगं प्रथमं स्मृतं । तस्मात्कामं परित्यज्य,नते स्नांति दमे रताः ॥ अपिच। नोदकक्लिन्नगात्रो हि, स्नातइत्यभिधीयते ॥ सस्नातोयोव्रतस्नातः सबाह्याभ्यंतरः शुचिः ॥ १४ ॥

मछाय कुम्माय सिरीसिवाय, मग्गूय उट्टादगरक्खसाय ॥ अ
ठाणमेयं कुसला वयंति, उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति ॥ १५ ॥
उदयं जइ कम्ममलं हरेज्जा, एवं सुहं इच्छामित्तमेवं ॥ अंधंव
णेयारमणुस्सरित्ता; पाणाणि चेवं विणिहंति मंदा ॥ १६ ॥

अर्थ-( मछायकुम्मायसिरीसिवाय के० ) जो उदकना स्पर्श थकी मोक्ष पामतो माछला कूर्मक एटले मेन्डका तथा सर्प ( मग्गूयके०) जलकाग ( उट्टाके० ) जलचरवि शेष ( दगरक्खसाय ) जलमाणस एटले मनुष्याकृति जेवा राक्षस ए सर्व मोक्षगामी थशे ( अट्ठाणमेयंकुसलावयंतिके० ) ते कारण माटे जे कुशल एटले तीर्थंकर देव तेणे ए अस्थान अयुक्त कह्युंछे तो शुं कह्युंछे तोके ( उदगेणजेसिद्धिमुदाहरंतिके०) उदक थ की जेमोक्ष कहेछे ते पुरुष अज्ञानी पापिष्ट पाखंडी अल्पमति वाला जाणवा ॥ १५ ॥

( उदयंजइ कम्ममलंहरेज्जाके० ) उदक जो अशुभ कर्मरूप मलने हरण करे तो (एवं सुहं कें० ) एमज शुभ एटले पुण्य तेने पण हरण करे अने जो पुण्यने हरण नकरे तो कर्म मल पण अपहरी शकेनही माटे ( इछामित्तमेवं के० ) जे उदक थकी सिद्धि कहेछे ते ए वचन इछामात्रज बोलेछे (अंधंवणेयारमणुस्सरित्ताके० ) जेम जात्यंध पुरुष मार्गे देखाडनार होय तो तेनी पछवाडे चालवा थकी वांछित मार्ग पामियें नही ( पाणाणिचेवंविणिहंतिमंदाके० ) तेम मूर्ख प्राणी पण धर्मनी बुद्धियें प्राणीउनो विनाशक एवा शौच मार्गनो सेवन करता थका मोक्षपामे नही एम भगवंत कहेछे. ॥ १६ ॥

---

॥ दीपिका—उदकेन यदि मुक्तिः स्यात्तदा मत्स्याः कूर्माश्च सरीसृपाजलसर्पामद्गवोजलवायसाउष्ट्राजलचरविशेषादकराक्षसाजलमानुषास्ते प्रथमं सिध्येयुः । नचैवं दृष्टमिष्टं वा । ततोऽस्थानमयुक्तमेतदिति कुशलानिपुणावदंति ये उदकेन सिद्धिमुदाहरंति ॥१५॥ उदकं यदि कर्ममलं हरेत् एवं शुभं पुण्यमपि हरेत् । अथ पुण्यं नहरेदेवं कर्ममलमपि न हरेदतइछामात्रमेतज्जलं कर्मापहारीति ॥ यथा जात्यंधाश्चान्यं जात्यंधमेव नेतारमनुसृत्य गछंतः कुपथाश्रिताः स्युः । एवं स्मार्तमार्गानुसारिणोजलशौचपरामंदामूर्खाः प्राणिनएव विनिघ्नंति व्यापादयंति ततश्च नाभिप्रेतस्थानगामिनः स्युः ॥ १६ ॥

---

॥ टीका—किंच ( मछायइत्यादि ) । यदि जलसंपर्कात्सिद्धिः स्यात् ततोये सततमुदकावगाहिनोमत्स्याश्चकूर्माश्च सरीसृपाश्च तथा मद्गवस्तथोष्ट्राजलचरविशेषास्तथोदकराक्षसा जलमानुषाकृतयोजलचरविशेषाएते प्रथमं सिद्धेयुर्नचैतद्दृष्टमिष्टं । ततश्च ये उदकेन सिद्धिमुदाहरंत्येतदस्थानमयुक्तमसांप्रतं कुशलनिपुणामोक्षमार्गाभिज्ञावदंति ॥ १५ ॥ किंचाऽन्यत् । ( उदयमित्यादि ) यद्युदकं कर्ममलमपहरेदेवं शुभमपि पुण्यमपहरेत् अथ पुण्यं नापहरेदेवं कर्ममलमपि नापहरेत् । अतइछामात्रमेवैतयदुच्यते जलकर्मापरिहारीति । एवमपि व्यवस्थिते ये स्नानादिकाः क्रियाः स्मार्तमार्गमनुसरंतः कुर्वंति ते यथा जात्यंधाअपरं जात्यंधमेव नेतारमनुसृत्य गछंतः कुपथभुतयोभवंति नाऽभिप्रेतं स्थानमवाप्नुवंति । एवं स्मार्तमार्गानुसारिणोजलशौचपरायणामंदाअज्ञाः कर्तव्याकर्तव्यविवेकविकलाः प्राणिनएव तन्मयात् तदाश्रितांश्च पूतरकादीन् विनिघ्नंति व्यापादयंति अवश्यं जलक्रियया प्राणव्यपरोपणस्य संभवादिति ॥ १६ ॥

पावाइं कम्माइं पकुव्वतोहिं, सिउदगं तू जइ तं हरिज्जा॥सिज्झंसु एगे दगसत्तघाती. मुसं वयंते जलसिद्धिमाहु ॥ १७ ॥ हुतेण जे

सिद्धिमुदाहरंति, सायंच पायं अगणिं फुसंता ॥ एवं सिया सिद्धि हवेज्ज तम्हा, अगणिं फुसंताण कुकंमिणंपि ॥ १८ ॥

अर्थ-( पावाइं कम्माइं पकुव्वतोहिंके० ) जे जीव प्रकर्षे करी जीव घातादिक अनेक पाप कृत्यो करी कर्म उपार्जीने पछी (सिंउदगंतूजइतंहरिज्जाके०) सीतोदक एटले त्रिसंध्याये पाणीनो स्पर्श करी उपार्जित कर्मनो नाश करीने सिद्धि पामे तो ( सिज्झंसुएगेदगसत्तघाती के० ) पाणीने योगे करी कोइ एक जीवघातक एवा माछीगर प्रमुख पण सीजे (मुसंवयंतेजलसिद्धिमाहु के० ) तेमाटे जे उदक थकी सिद्धि कहेछे ते मृषावाद बोले छे ॥ १७ ॥ ( हुतेणजे सिद्धिमुदाहरंति के० ) हुताशन जे अग्नि ते थकीजे मोक्ष कहेछे ( सायंचपायं अगणिंफुसंता के० ) एटले संध्या प्रभात अने मध्यान्हे एम त्रिसंध्यायें अग्नीने फरसवे करी घृतादिकनुं अग्नीनेविषे होम करवे करी सिद्धिछे एम अग्नी होत्री नामना दर्शनीउं कहेछे तेने पूछीयें जे (एवंसिया सिद्धिहवेज्जतम्हाके०) एम करवा थकी जो सिद्धि थति होय तो ( अगणिं फुसंताण कुकंमिणंपि के० ) अग्नीना फरशनारा कुकर्मि एवा लोहकार अंगार दाहक कुंभकार भाडभूंजा सोनी प्रमुख ने पण मोक्ष प्राप्ति थवी जोइये केमके ए लोहकार प्रमुखतो सदा अग्नि तर्पण करता थकाज रहेछे माटे ते दुर्गतिमां नहीज जाय. यद्यपि ते दर्शनीउं मंत्रनुं कारण देखाडे तो तेने एम कहेवुं केजे अत्यंत तमारा आज्ञाकारी होय ते एवुं तमारुं बोलवुं प्रमाण करशे परंतु अन्य जनो ए वात माने नहीजेम तेम भस्म करणे सरखा तो मंत्रेकरी शुं विशेषछे॥१८॥

॥ दीपिका-पापानि कुर्वतः प्राणिनोयत्कर्म बध्यते तत्कर्म यदि जलमपहरेत्। यद्येवं स्यात्तदा जलसत्वघातिनोजलप्राणिहिंसकाः सर्वे सिध्येयुर्नचैवमस्ति तस्माद्ये जलेन सिद्धिमाहुस्ते मृषावदंति ॥१७॥ अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामइत्यादिवाक्यात् ये मूढाहुतेनाऽग्नौं द्रव्यक्षेपेण सिद्धिं सद्गतिमुदाहरंति वदंति। किंभूताः सायमपराण्हे प्रातः प्रभातेऽग्निं स्पृशंतस्तर्पयंतः सिद्धिमिच्छंति। एवं यदि सिद्धिः स्यात्ततस्तस्मादग्निं स्पृशतां कुकर्मिणामंगारकदाहककुंभकारायस्कारादीनां सिद्धिः कथं न स्यात् ॥ १८ ॥

॥ टीका-आपिच (पावाइंइत्यादि । पापानि पापोपादानभूतानि कर्माणि प्राण्युपमर्दकारीणि कुर्वतोसुमतोयत्कर्मोपचीयते तत्कर्म यद्युदकमपहरेत् । यद्येवं स्यात् तर्हि यस्मादर्थे यस्मात्प्राण्युपमर्दकर्मोपादीयते जलावगाहनाच्चाऽपगच्छति तस्मादुदकसत्वघातिनः पापभूयिष्ठाअप्येवं सिद्ध्येयुः । नचैतदृष्टमिष्टं वा । जलावगाहनात्सिद्धिमाहुस्ते

मृषा वदंति ॥ १७ ॥ किंचाऽन्यत् ( हुतेणेत्यादि ) अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामइत्य स्मा द्वाक्यात् ये केचन मूढाहुतेनाऽग्नौ हव्यप्रक्षेपेण सिद्धिं सुगतिगमनादिकां स्वर्गा वाप्तिलक्षणामुदाहरंति प्रतिपादयंति । कथंभूताः सायमपराण्हे विकालेवा प्रातः प्रत्यु षसि अग्निं स्पृशंतोयथेष्टैर्द्रव्यैरग्निं तर्प्पयंतस्ततएव यथेष्टगतिमभिलपंति । आहुश्चै वं ते यथा अग्निकार्यात्स्यादेव सिद्धिरिति । तत्रच यद्येवमग्निस्पर्शेन सिद्धिर्भवेत् । ततस्त स्मादग्निं स्पृशतां कुकर्मिणामंगारदाहककुंभकारायस्कारदीनां सिद्धिः स्यात् । यदपि च मं त्रपूतादिकं तैरुदाह्रियते तदपिच निरंतराः सुहृदः प्रत्येष्यंति । यतः कुकर्मिणा मप्यग्निकार्ये भस्मापादनमग्निहोत्रिकादीनामपि भस्मसात्करणमिति नातिरिच्यते कुक र्मिभ्योऽग्निहोत्रादिकं कर्मेति । यदप्युच्यते अग्निमुखावैदेवाः । एतदपियुक्तिविकलत्वात् वाङ्मात्रमेव विप्रादिभक्षणेन चाऽग्नेस्तेषां बहुतरदोषोत्पत्तेरिति ॥ १८ ॥

अपरिक्ख दिठ्ठं णहु एव सिद्धी, एहिंति ते घायमबुज्झमाणा॥भूए
हिं जाणं पडिलेह सातं, विज्जंगहायं तसथावरेहिं ॥१९॥ थणं
ति लुप्पंति तसंति कम्मी, पुढो जगा परिसंखाय भिक्कू॥ तम्हा
विऊ विरतोआयगुत्ते, दठ्ठुं तसेया पडिसंहरेज्जा ॥ २० ॥

अर्थ–माटे (अपरिक्खदिठ्ठंणहुएवसिद्धीके०)जे स्नान अने होमादिके करी सिद्धि बोले छे ते अविमाश्यो बोलेछे केमके एवा कारणो थकी सर्वथापि सिद्धि नथाय ( एहिंतिते घायमबुज्झमाणा के० ) ते अबुध एटले तत्वना अजाण धर्मनी बुद्धियें पाप करतां थका घात पामशे ( भूएहिंजाणंपडिलेहसातं के० ) एवुं जाणी करीने भूत एटले प्राणी मात्रने साता एटले सुख प्रतिलेखीने तेने हणे नही एम (विज्जंके०) विद्वान् विवेकने (गहा यके०) गृहीने (तसथावरेहिंके०) त्रस अने स्थावर जीवोने सुख प्रियछे दुःख अप्रियछे एवुं ज्ञानेकरी जाणे यदुक्तं पढमंनाणंतओदया इतिवचनात्॥१९॥परंतु जे कुशीलिया छेतेप्राणीउ नो उपमर्दन करवा थकी सातामानेछे तेने फलकहेछे ते पृथिव्यादिकना आरंभे सुखाभिला षी छता नरकादिक गतिने विषे जाय पछी त्यां (थणंतिके०)आक्रंद करे तथा (लुप्पंतिके०) खड्गादिक शस्त्रे छेदन थयाथी कदर्थमान थका ( तसंतिके० ) नाशीजाय एम ( कम्मी के० ) ते पाप सहित प्राणी दुःखी थाय ( तम्हाके० ) ते कारणे ( भिक्कूके०) चारि त्रिउ ( पुढोजगापरिसंखाय के० ) जुदा जुदा जीवोने जाणीने (विऊके०) विद्वान होयते (आयगुत्तेके०) आत्म गुप्तिवंत छतो (विरतोके०) संयम आचरे (दठ्ठुंतसेयापडिसंहरेज्जा के०) त्रस अने स्थावर जीवनी हिंसाकारणी एवी क्रियादेखीने ते थकी निवर्त्ते ॥२०॥

॥ दीपिका–अग्निहोत्रेण जलेन वा यैः सिद्धिरुक्ता तैरपरीक्ष्य दृष्टं युक्तिविकलमुक्तं ।

यतो नैवमेव सिद्धिः। ते परमार्थमबुध्यमानाअजानंतः प्राणिघातेन संसारे त्रमिष्यंति॥ ततोविद्वान् विवेकी सातं सुखं प्रत्युपेक्ष्य नूतैः प्राणिनिस्त्रसस्थावरैर्जानीयाद्यथाव स्थितत्वं गृहीत्वा । कोर्थः । सर्वे जीवाः सुखैषिणोड्ःखद्विषश्च। नच सुखैषिणां ड्ःखोत्पा दकत्वेन स्वस्य सुखं स्यादिति ॥ १९ ॥ ते आरंनिणोनरकादिगतास्तनंत्याक्रंदंति लु प्यंते ठियंते खड्गादिनिः। एवं पीड्यमानास्त्रसंति पलायंते ।कर्माणि विद्यंते येषांते कर्मि णः सपापाः पृथक् जगाइति जंतवः । एवं परिसंख्याय ज्ञात्वा निक्कुस्तस्माद्विद्वान् पंडितो विरतः पापादात्मगुप्तोदांतात्मा त्रसान् स्थावरांश्च दृष्ट्वा परिज्ञाय तडुपघातक्रियां प्र तिसंहरेन्निवर्तयेत् ॥ २० ॥

---

॥ टीका—उक्तानि पृथक् कुशीलदर्शनानि अयमपरस्तेषां सामान्योपालंनइत्याह । (अ परिरकदिठमित्यादि । येर्मुमुक्षुनिरुदकसंपर्केणाऽग्निहोत्रेण वा प्राणुपमर्दकारिणा सिद्धि रिति । तेच परमार्थमबुध्यमानाः प्राणुपघातेन पापमेव धर्मबुद्ध्या कुर्वंतोघात्यंते वा व्या पाद्यंते नानाविधैः प्रकारैर्यस्मिन् प्राणिनः संघातः संसारस्तमेष्यंति । अप्कायतेजःकाय समारंनेण हि त्रसस्थावराणामवश्यं नावी विनाशस्तन्नाशेच संसारएव न सिद्धिरित्यनि प्रायः । यतएवं ततोविद्वान् सदसद्विवेकी यथावस्थिततत्वं गृहीत्वा त्रसस्थावरैर्नूतैर्ज तुनिः कथं सांप्रतं सुखमवाप्यतइति एतत्प्रत्युपेक्ष्य जानीहि अवबुध्यस्व । एतडुक्तं नव ति । सर्वेऽप्यसुमंतः सुखैषिणोड्ःखद्विषोनच तेषां सुखैषिणां ड्ःखोत्पादकत्वेन सुखा वाप्तिर्नवतीति । यदिवा । ( विड्रांगहायत्ति ) विद्याज्ञानं गृहीत्वा विवेकमादाय त्रस स्थावरैर्नूतैर्जंतुनिः करणनूतैः सातं सुखं प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जानीह्यवगछेति । यत उक्तं ।(पढमं नाणं तवोदया एवं चिठ्इ संजए । अन्नाणीकिंकाही किंवाणाहीन्नेयपावगमि त्यादि ) ॥ १९ ॥ ये पुनः प्राणुपमर्देन सातमनिलषंतीत्यशीलाः कुशीलाश्च ते संसारे एवंविधाअवस्थाअनुनवंतीत्याह ( थणंतिलुप्पंतीत्यादि ) तेजस्कायसमारंनिणोनूतस मारंनेण सुखमनिलषंतोनारकादिगतिगतास्तीव्रड्ःखैः पीड्यमानाअसह्यवेदनाग्रातमा नसाअशरणाः स्तनंति केवलं करुणमाक्रंदंतीति यावत् । ( तथालुप्पंतीति ) । ठि द्यंते खड्गादिनिरेवं च कदर्थ्यमानास्त्रस्यंति प्रपलायंते । कर्माण्येषां संतीति कर्मिणः स पापाइत्यर्थः । तथा पृथक्जगाइति जंतवइति । एवं परिज्ञाय ज्ञात्वा निक्कुणशीलोनिक्कुः साधुरित्यर्थः । यस्मात्प्राण्युपमर्दकारिणः संसारांतर्गताविलुप्यंते तस्माद्विद्वान् पंडित्तोवि रतः पापानुष्ठानादात्मा गुप्तोयस्य सोऽयमात्मगुप्तोमनोवाक्कायगुप्तइर्थः। दृष्ट्वाच त्रसान्।च शब्दात्स्थावरांश्च दृष्ट्वा परिज्ञाय तडुपघातकारिणीं क्रियां प्रतिसंहरेन्निवर्तयेदिति ॥ २० ॥

जे धम्मलद्धं विणिहाय भुंजे,वियडेण साहटु य जे सिणाइं॥जे धो
वती लूसयतीव वत्तं, अहाहु सेणा गणियस्स दूरे ॥२१॥ कम्मं
परिन्नाय दगंसि धीरे, वियडेण जीविज्ज य आदिमोक्खं ॥ संवीय
कंदाइ अभुंजमाणे, विरतेसि णाणाइसु इत्थियासु ॥ २२ ॥

अर्थ-( जे के० ) जे शीतल विहारी ( धम्म के० ) शुद्ध निर्दोष एवा आहारने ल द्धं के० लहीने ( विणिहायभुंजे के० ) संनिधि करी जमे तथा ( वियडेणसाहटुयजे सिणाइं के० ) विकट एटले फासु पाणीयें करी अंगोपांग संकोची प्रासुक प्रदेशे वेशी देश थकी अथवा सर्व थकी स्नान करे तथा ( जेधोवतीलूसयतीववत्तं के० ) जे वस्त्र धोवे तथा लुसे एटले लांबुंहोय तेने फाडीने न्हानो करे तथा न्हानुं होय तेने सांधी ने मोहोटुं करे इत्यादिक वातो शोभाने अर्थे जे करे (अहाहुसेणागणियस्सदूरेके०) ते संयम थकी दूर वर्त्तेछे एम श्रीतीर्थंकर गणधर कहेछे. ॥ २१ ॥ ( कम्मंपरिन्नायदगं सिधीरे के० ) जे धीर बुधिमंत पुरुष होय ते उदकने विषे कर्मबंध जाणीने ( वियडे णजीविज्जयआदिमोक्खं के० ) जावजीव सुधी फासु पाणी पीए ( सवीयकंदाइअभुंज माणे के० ) ते साधु वीज कंदादिक अणभोगवतो (विरतेसिणाणाइसुइत्थियासुके०) स्नान अभ्यंग उटंगणादिकने विषे तथा स्त्रीने विषे विरति होय पणकुशील दोष आचरे नही॥२२

॥ दीपिका-अथ स्वयूथ्यकुशीलानाह । ( जेइति )। ये शीतलविहारिणोधर्मेण सु धिकया लब्धमुद्देशकक्रीतादिदोषरहितमाहारं विनिधाय व्यवस्थाप्य सन्निधिकृतेवा भुंज ते तथा विकटेन प्रासुकोदकेनापि संकोच्यांगानि प्रासुकोदकेनापि देशसर्वस्नानं कुर्वंति तथा ये वस्त्रं धावंति प्रक्षालयंति लूषयंति शोभार्थं दीर्घं सच्छिद्य ह्रस्वं वा संधाय दीर्घं करोति ( सेणागणिअस्स ) निग्रयभावस्य दूरे वर्तते इति तीर्थकृतआहुः ॥ २१ ॥ उ क्ताः कुशीलाअथ सुशीलाउच्यंते। धीरोबुद्धिमान् उदकारंभे सति कर्म बध्यतइति प्रतिज्ञा य विकटेन प्रासुकोदकेन सौवीरादिना जीव्यात् प्राणधारणं कुर्यात्। आदिः संसारस्तस्मा न्मोक्षआदिमोक्षः संसारविमुक्तियावदित्यर्थः । अथवा धर्महेतूनामादिभूतं शरीरं तद्विमु क्तियावद्यावज्जीवमित्यर्थः। सःसाधुर्बीजकंदादीनभुंजानः स्नानादिषु विरतः । आदिश ब्दादभ्यंगोद्वर्तनादिभ्योपिविरतअन्यासुच विचिकित्सादिक्रियासु निवर्तते तथा स्त्रीषु वि रतोऽन्यास्रवेभ्योपि विरतः कुशीलदोषैर्न युज्यते॥ २२ ॥

॥ टीका-सांप्रतं सयूथ्याः कुशीलाभिधीयंतइत्याह।(जेधम्मलद्धमित्यादि) ये केच

न शीतलविहारिणोधर्मेण सुधिकया लब्धं धर्मलब्धं। उद्देशकक्रीतकृतादिदोषरहितमित्य र्थः।तदेवंभूतमप्याहारजातं निधाय व्यवस्थाप्य सन्निधिं कृत्वा भुंजंते। तथा ये विकटेन प्रासुकोदकेनाऽपि संकोच्यांगानि प्रासुकएव प्रदेशे देशसर्वस्नानं कुर्वंति । तथा योवस्त्रं धावंति प्रक्षालयति तथा लूषयति शोनार्थं दीर्घमुत्पाटयित्वा ऱ्हस्वं करोति ऱ्हस्वंवा संधा य दीर्घं करोति। एवं लूषयति। तदेवं स्वार्थं परार्थं वा योवस्त्रं लूषयति।अथाऽसौ (णागणि यस्सत्ति) निर्ग्रंथनावस्य संयमानुष्ठानस्य दूरे वर्तते न तस्य संयमोनवत्येवं तीर्थंकरगण धरादयआहुरिति ॥ २१ ॥ उक्ताः कुशीलास्तत्प्रतिपक्षनूताः शीलववंतः प्रतिपाद्यंतइत्ये तदाह। (कम्मंपरिणायइत्यादि)। धिया राजते इति धीरोबुद्धिमान् (उदगंसित्ति) उद कसमारंभे सति कर्मबंधोनवति। एवं परिज्ञाय किंकुर्यादित्याह। विकटेन प्रासुकोदकेन सौवीरादिना जीव्यात् प्राणसंधारणं कुर्यात्। चशब्दात् अन्येनाऽप्याहारेण प्रासुकेनैव प्राणवृत्तिं कुर्यात्। आदिः संसारस्तस्मान्मोक्षआदिमोक्षः संसारविमुक्तिंयावदिति। धर्मकारणानां तावदादिनूतं शरीरं तद्विमुक्तिं यावज्जीवमित्यर्थः। किंचाऽसौ साधुर्बीजकं दादीन् भुंजानः। आदिग्रहणात् मूलपत्रफलानि गृह्यंते। एतान्यऽप्यपरिणतानि परिहरन् विरतोनवति। कुतइति दर्शयति। स्नानाभ्यंगोद्वर्तनादिषु क्रियासु निष्प्रतिकर्मशरीरतयाऽन्या सु चिकित्सादिक्रियासु न वर्तते। तथा स्त्रीषु च विरतः वस्तिनिरोधग्रहणात् अन्येऽप्याश्रया गृह्यंते। यश्चैवंनूतः सर्वेन्योऽप्याश्रवद्वारेन्योविरतोनाऽसौ कुशीलदोषैर्युज्यते तदयोगाच्च न संसारे बंभ्रमीति। ततश्चन डुःखितः स्तनति नापि नानाविधैरुपायैर्विलुप्यतइति ॥२२॥

जे मायरं च पियरं च हिच्चा, गारं तहा पुत्तपसुं धणंच॥कुलाइं जे
धावइ साउगाइं, अहाहु से सामणियस्स दूरे ॥ २३ ॥ कुलाइं
जे धावइ साउगाइं, आघातिधम्मं उदराणुगिद्धे ॥ अहाहु से
आयरियाण सयंसे, जो लावएज्जा असणस्स हेऊ ॥ २४ ॥

अर्थ-(जेमायरंच पियरंचहिच्चा के०) जे कुशीलिया माता तथा पिता प्रमुख कुटुंब त्यागीने (गारं के०) आगार एटले घर (तहा के०) तथा (पुत्तपसुंधणंच के०) पुत्र अने पशु जे गवादिक तथा धनने त्यागी पंचमहाव्रत अंगीकार करी पढी रसगृद्धियें आसक्त बता जिव्हालोलपी सरस आहारने गवेषता थका (कुलाइं जेधावइ साउगाइंके०) मोटोटा कुलने विषे रूडा रसनो आहार पामवाने अर्थे जे भ्रमण करे (अहाहुसेसामणि यस्सदूरे के०) ते चारित्र थकी दूर जाणवा एम श्रीतीर्थंकर गणधर कहेले. ॥ २३ ॥ (कुलाइं जे धावइ साउगाइं के०) जे स्वाडुक कुलने विषे रसलंपट थका गोचरी कर वाने जाय (आघातिधम्मं उदराणुगिद्धेके०) एवा उदर गृद्ध पेटार्थि थका जेने जेवो धर्म

रूचे तेने तेवो उपदेश आपे (अहाहुसे आयरियाणसयंसेके०) ते पुरुषो आर्य धर्मने सो मे नागे उपलक्षणथकी सहस्र लाख क्रोडमे नागे पण पोहोचे नही एम श्री तीर्थंकरा दिक कहेछे (जोलावएज्जा असणस्सहेककेे०) तथा जे साधु आहार वस्त्रादिकोने अर्थे बीजाने मुखे पोताना गुण केवरावे लाल पाल करे तेपण कुशीलिया जाणवा. ॥२४॥

॥ दीपिका–यः कुशीलोमातरं पितरं वा उपलक्षणाद्भ्रातृदुहित्रादिकमपि हित्वा अगारं गृहं पुत्रमपत्यं पशुं हस्त्यश्वगोमहिष्यादिकं धनं च त्यक्त्वा पुनर्हीनतया स्वादुकानि स्वादुनोजनवंति कुलानि गृहाणि धावति गच्छति असौ श्रामण्यस्य श्रमणत्वस्य दूरे एवमाहुस्तीर्थंकृतः ॥ २३ ॥ यः कुलानि स्वादुनोजनवंति धावति गच्छति गत्वा निक्षार्थं प्रविश्य यद्यस्मै रोचते कथादिकं तत्तस्याख्याति । किंनूतः । उदरेऽनुगृद्ध उदरजरणव्यग्रः सआर्याणां उत्तमगुणानां शतांशे अधिवर्तते शतोपलक्षणात्सहस्रांशादेरप्यधिवर्तते । योऽशनःस्यात्तस्य हेतुं लापयति स्वप्रशंसां करोति ॥ २४ ॥

॥ टीका–पुनरपि कुशलानेवमधिकृत्याह । जेमायरंचेत्यादि । ये केचनाऽपरिणतसम्यक्धर्माणस्त्यक्त्वा मातरंच पितरंच मातापित्रोर्दुस्त्यजत्वादुपादानं।अतोत्रातृदुहित्रादिकमपि त्यक्त्वेति एतदपि द्रष्टव्यं । तथा अगारं गृहं पुत्रमपत्यं पशुं हस्त्यश्वरथगोमहिष्यादिकं वंधनं च त्यक्त्वा सम्यक् प्रव्रज्योत्थानेनोत्थाय पंचमहाव्रतनारस्य स्कंधं दत्वा पुनर्हीनसत्वतया रससातादिगौरवगृद्धोयः कुलानि गृहाणि स्वादुकानि स्वादुनोजनवंति धावति गच्छति । अथाऽसौश्रामण्यस्य श्रमणनावस्य दूरे वर्त्तते एवमाहुस्तीर्थंकरगणधरादयइति ॥२३॥ एतदेव विशेषेण दर्शयितुमाह (कुलाइंजेधावतीत्यादि ) कुलानि स्वादुनोजनवंति धावतिगच्छति)तथा गत्वा धर्ममाख्याति निक्षार्थंवा प्रविष्टोयद्यस्मै रोचते कथासंवंधस्तं तस्याऽऽख्याति । किंनूतइति दर्शयति । उदरेऽनुगृद्ध उदरानुगृद्धः। उदरजरणव्यग्रस्तुंदपरिमृजइत्यर्थः।इदमुक्तं नवति। योह्युदरगृद्धआहारादिनिमित्तं दानश्रद्धकाख्यानि कुलानि गत्वाऽऽख्यायिकाः कथयति सकुशीलइति। अथाऽसावाचार्यगुणानां वा शतांशे वर्त्ततइति। योह्यन्नस्य हेतुं नोजननिमित्तमपरवस्त्रादिनिमित्तं वा आत्मगुणानपरेणालापयेत्नाणयेत्। असावप्यार्यगुणानां सहस्रांशे वर्त्तते।किमंगं पुनर्यः स्वतएवाऽऽत्मप्रशंसां विदधातीति२४

णिक्कम्म दीणे परनोयणंमि, मुहमंगलीए उदराणुगिद्धे ॥ नीवारगिद्धेव महावराहे, अदूरए एहइ घातमेव ॥ २५ ॥ अन्नस्स पाणस्सिहलोइयस्स, अणुप्पियं नासति सेवमाणे ॥ पासत्थयं चेव कुसीलयंच, निस्सारए होइ जहा पुलाए ॥ २६ ॥

अर्थ–( णिक्कम्मदीणेपरभोयणंमि के० ) जे पोतानुं धनादिक छांडीने पछी परनो जनने विषे दीन एटले दयामणो थाय ( उदराणुगिद्धेके० ) एम उदरगृद्धथको रहेते ( मुहमंगलिक के० ) गृहस्थने वंदीजननी पेरे मुखेंमंगलिक वचन कहे गृहस्थनी प्रसं साकरे यतः सोएसोजस्सगुणा, विरयंतनवारियादसदिसासु, इहराकहासुच्चसि पच्चरकं अच्छदिछोसि ॥ १ ॥ इत्यादिक वचन पेटनें अर्थे बोले (नीवारगिद्धेवमहावराहे के०) जे म महोटो सूअर नीवार एटले चावलना कणने विषे गृद्धछतो ( अदूरएएहइघातमेव के०) अदूर एटले तरत घात पामे तेम कुशीलिया पण आहार गृद्धछता संसार मांहे अनंता मरण पामे ॥ २५ ॥ ते कुशीलिया ( अन्नस्स के० ) अन्नने अर्थे ( पाणस्स के० ) पाणीने अर्थे तथा ( हलोइयस्स के० ) अन्य वस्त्रादिकने अर्थे ( अणुप्पियंभा सतिसेवमाणे के० ) जेनें जेवुं गमतुं होय तेना आगल तेवुंज बोले सेवकनी पेरे जेम सेवक पोताना राजाने गमतुं बोले तेम ए कुशीलिया पण बोले ते ( पासत्थयंचेवकुसी लयंच के० ) सदाचार थकी भ्रष्ट एवा पासत्थानो भाव तथा कुशीलियानो भाव पामे ते केवो थाय तोके ( निस्सारएहोइजहापुलाए के० ) निःसार थाय जेम पुलाक एटले धानना छोतरा तूस निःसार होयछे तेम तेपण तेना सरखोज निःसार जाणवो ॥२६॥

---

॥ दीपिका–योनिष्क्रम्य प्रव्रज्य पराहारविषये दीनः सन् वंदिवन्मुखमांगलिकः स्या त् मुखेन परप्रशंसावाक्यानि वक्ति औदर्यं प्रतिगृद्धः । किमिव ।नीवारोमृगादिभक्ष्यविशे षस्तत्र गृद्धआसक्तोयथा महावराहः सूकरः संकटे प्रविष्टः सन्नदूरएव शीघ्रमेव घातं विनाशमेष्यति एवमसावपि कुशीलः ॥ २५ ॥ सकुशीलोऽन्नस्य पानस्य ऐहिकार्थस्य व स्त्रादेः कृतेतु प्रियं भाषते ऽनुकूलंवक्ति सेवकवत्सेवमानएवंभूतश्च पार्श्वस्थतां कुशील तां च गच्छति निःसारोभवति यथा पुलाकस्तुषः ॥ २६ ॥

---

॥ टीका–किंच ( णिक्कमेत्यादि ) । योह्यात्मीयं धनधान्यहिरण्यादिकं त्यक्त्वा निष्क्रां तोनिष्क्रम्य च परभोजने पराहारविषये दीनोदैन्यमुपगतोजिव्हेंद्रियवशादार्त्तोवंदिवन्मु खमांगलिकोभवति । मुखेन मंगलानि प्रशंसावाक्यानि· ईदृगस्तादृगस्त्वमित्येवं दैन्य भावमुपगतोवक्ति । उक्तंच । सोएसोजस्सगुणा, वियरंतनवारियादसदिसासु । इहराक हासु सुच्चसि, पच्चरकंअच्छदिछोसि ।इत्येवमौदर्ये प्रतिगृद्धोऽध्युपपन्नः । किमिव । नीवा रः सूकरादिमृगभक्ष्यविशेषस्तस्मिन् गृद्धआसक्तमनागृहीत्वा च सयूथं महावराहोम हाकायः सूकरः । एवकारोऽवधारणे । अवश्यं तस्य विनाशएव नाऽपरा गतिरस्तीति । ए वमसावपि कुशीलआहारमात्रगृद्धः संसारोदरः पौनःपुन्येन विनाशमेवैति ॥ २५ ॥

(किंचअण्णस्सेत्यादि) सकुशीलोऽन्नस्य पानस्य वा कृतेऽन्यस्य वैदिकार्थस्य वस्त्रादेः कृते अनुप्रियं जापते । ययस्य प्रियं तत्तस्य वदतोऽनुपश्चाद्भापते अनुभापते । प्रतिशब्दकव तु सेवकवदा राजाद्युक्तमनुवदतीत्यर्थः । तमेव दातारमनुसेवमानश्चाहारमात्रगृद्धः सर्वे मेतत्करोतीत्यर्थः । सचैवंभूतः सदाचारभ्रष्टः पार्श्वस्थभावमेव व्रजति कुशीलतां च गच्छति । तथा निर्गतएकांततः सारश्चारित्राख्योयस्य सनिःसारः । यदिवा निर्गतस्य सारोनिः सारः सविद्यते यस्याऽसौ निःसारवान पुलाकइव निष्कणोभवति यथा एवमसौ संय मानुष्ठानं निःसारीकरोति । एवंभूतश्चाऽसौलिंगमात्रावशेपोबहूनां स्वयूथ्यानां तिरस्कार पदवीमवाप्नोति परलोके च निकृष्टानि यातनास्थानान्यऽवाप्नोति ॥ २६ ॥

अणातपिंमेण हियासएज्जा, णो पूयणं तवसा आवहेज्जा ॥ सद्दे
हिं रूवेहिं असज्जमाणं, सवेहि कामेहि विणीय गेहिं ॥२७॥ स
वाइं संगाइं अइच्च धीरे, सवाइं दुरकाइं तितिरकमाणे ॥ अखिले
अगिद्धे अणिएयचारी, अभयं करे भिरकु अणाविलप्पा ॥२८॥

अर्थ–हवे सुशीलियानुं आचरण कहेछे. ( अणातपिंमेणहियासएज्जाके० ) जे अ ज्ञात कुलने विपे पिंम एटले आहार पाणी लीयें अंत प्रांत आहारे करी संयम पाले पण दीनपणु अंगीकार करे नही ( णोपूयणंतवसाआवहेज्जा के० ) तथा तपश्यायें करी पूजा सत्कारने वांछे नही एटले राजादिकनी पूजाने निमित्ते तपश्या करे नही परंतु आत्मार्थे करे यडुक्तं इहलोगठ्याएतवमाथहेज्जा इत्यादिक भाव जाणीने तथा ( सद्दे हिं के० ) शब्दने विपे ( रूवेहिं के० ) रूपने विपे ( असज्जमाणं के० ) असह्यमान ए टले तत्पर नहोय अने ( सवेहिकामेहिविणीयगेहिं के०) सर्व कामने विपे गृद्ध पणु टालीने रागद्वेप नकरे तेने साधु जाणवो ॥ २७ ॥ (सवाइंसंगाइंअइच्च के०) सम स्त संग तेमां स्नेह ते अभ्यंतर संग अने धन धान्यादिक बाह्य संग एवेप्रकारना संग थकी अतीत एटले रहित ( धीरे के० ) विवेकवान् ( सवाइंडुरकाइंतितिरकमाणे के० ) तथा सर्व शारीरिक अने मानसिक दुःख तेने सहन करनार एटले परीसहोपसर्ग ज नित दुःखनो सहन करनार ( अखिले के० ) ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी संपूर्ण ( अगिद्धे के०) कामभोगनी अभिलाप रहित तथा (अणिएयचारी के० अनियतचारी एटले अप्रतिबद्ध विहारी (अभयंकरे के०) सर्व जीवने अभयनो करनार एवो (भिरकु के०) साधु ते (अणाविलप्पा के०) विपय कपाये करी अनाकुल एटले कपायने उपश मावते करी निर्मल थयोछे जेनो आत्मा एवो साधु महानुभाव जाणवो ॥ २८ ॥

॥ दीपिका—अज्ञातपिंडः अंतः प्रांतः अज्ञातेन्यः पूर्वापराऽपरिचितेन्यः कुलेन्यउंठ वृत्या लब्धस्तेनात्मानमधिसहे वर्तयेत् नच तपसा पूजनं सत्कारमावहेत् नसत्कारार्थं तपः कुर्यादित्यर्थः । यडुक्तं । परलोकादिकं धाम, तपः श्रुतमिति ध्यं ॥ तदेवार्थित्वनिर्लुप्त सारं तृणलवायते इति । शब्दैर्मनोज्ञैरूपैश्चासक्तन् आसक्तिमकुर्वन् सर्वैरपि कामैरिछ्राम दनैर्गृद्धिं विनीय त्यक्त्वा संयममनुपालयेत् ॥१७॥ सर्वान् संगानतीत्य त्यक्त्वा धीरोविवेकी सर्वाणि डुःखानि परीषहोपसर्गजनितानि तितिक्षमाणोऽधिसहन् अखिलोज्ञानादिसंपूर्णोऽगृद्धः कामेष्वनियतचारी अप्रतिबद्धविहारी जीवानामनयंकरोनिक्षुः साधुरनाविलात्मा निष्कषायात्मा सुशीलः स्यात् ॥ १ए ॥

॥टीका—उक्ताः कुशीलास्तत्प्रतिपक्षनूतान् सुशीलान् प्रतिपादयितुमाह।(अन्नातपिंडेत्यादि) अज्ञातश्चाऽसौ पिंडश्चाऽज्ञातपिंमः अंतःप्रांतइत्यर्थः।अज्ञातेन्योवा पूर्वापरासंस्तुतेन्यो वा पिंमोऽज्ञातउंठवृत्त्या लब्धस्तेनात्मानमधिसहेत वर्तयेत् पालयेत् । एतडुक्तं नवति अंतप्रांतेन लब्धेनाऽलब्धेन वा न दैन्यं कुर्यात् । नाऽप्युत्कृष्टेन लब्धेन मदं विदध्यात् । नाऽपि तपसा पूजनसत्कारमावहेत् न पूजनसत्कारनिमित्तं तपः कुर्यादित्यर्थः । यदिवा पूजासत्कारनिमित्तत्वेन तथाविधार्थित्वेन वा महतापि केनचित्तपोमुक्तिहेतुकं न निःसारं कुर्यात् । तडुक्तं । परलोकाधिकं धाम तपःश्रुतमिति ध्यं ॥ तदेवाऽर्थित्वनिर्लुप्तसारं तृणलवायते । तथा च रसेषु गृद्धिं न कुर्यात् । एवं शब्दादिष्वपीति दर्शयति । शब्दैर्वेणुवीणादिनिराक्षिप्तः संस्तेष्वसक्तन्नासक्तिमकुर्वन् कर्कशेषुच द्वेषमगछन् तथा रूपैरपि मनोज्ञेतरै रागद्वेषमकुर्वन् । एवं सर्वैरपि कामैरिछामदनरूपैः सर्वेन्योवा कामेन्यो गृद्धिं विनीयाऽपनीय संयममनुपालयेदिति । सर्वथा मनोज्ञेतरेषु विषयेषु रागद्वेषं न कुर्यात् । तथाचोक्तं।सद्दे सुयनद्दयपावएसुसोयविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच, समणेणसयाणहोयव्वं ॥ १ ॥ रूवेसुयनद्दयपावएसुचरकुविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच, समणेणसयाणहोयव्वं ॥२॥ गंधेसुयनद्दयपावएसु, घाणविसयमुवगएसु । तुठेण० ॥ ३ ॥ नरकेसुयनद्दयपावएसु; रसण विसयमुवगएसु, तुठेणचरुठेणच, समणेणसयाणहोयव्वं ॥ ४ ॥ फासेसुयनद्दयपावएसु, फासविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच,समणेणसयानहोयव्वं ॥ ५ ॥ २७ ॥ यथाचेंडियनिरोधोविधेयएवमपरसंगनिरोधोऽपि कार्यइति दर्शयति (सवाईइत्यादि) सर्वान् वाह्यांश्च इव्यपरिग्रहलक्षणानतीत्य त्यक्त्वा धीरोविवेकी सर्वाणि डुःखानि शारीरमानसानि त्यक्त्वा परीषहोपसर्गजनितानि तितिक्षमाणोऽधिसहन्नऽखिलोज्ञानदर्शनचारित्रैः संपूर्णस्तथा कामेष्वगृद्धस्तथा नियतचारी अप्रतिबद्धविहारी तथा जीवानामनयंकरोपि निक्षणशीलोनिक्षुः साधुरेवमनाविलोविषयकषायैरनाकुलआत्मा यस्याऽसावनाविलात्मा संयममनुवर्त्ततइति ॥ २ए ॥

भारस्स जाता मुणि भुंजएज्जा, कंखेज्ज पावस्स विवेग भिक्खू ॥
दुक्खेण पुठे धुयमाइएज्जा, संगामसीसेव परं दमेज्जा ॥ २९ ॥
अविहम्ममाणे फलगावतठी, समागमं कंखति अंतकस्स ॥
णिधूय कम्मं ण पवंचुवेइ, अक्खक्खएवा सगडं तिबेमि ॥ ३० ॥
इतिश्री कुसील परिभासिय सत्तमाज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ-(भारस्सजातामुणि भुंजएज्जाके०) भार एटले संयम तेनी यात्रा निरवाह करवाने अर्थे चारित्रिउ शुद्ध निर्दोष आहार ग्रहण करे ( कंखेज्जपावस्सविवेगभिक्खू के० ) तथा साधु पूर्वे आचरित पापकर्मनो विवेक एटले पृथक् भाव वांछे (दुक्खेणपुठेधुयमाइएज्जा के०) तथा परीसहादिक उपने थके दुःखने फरश्यो छतो धौव शब्दे संयम अथवा धौव शब्दे मोक्ष तेने ग्रहण करे कोनीपेरे तोके (संगामसीसेवके०) जेम कोइक शूरवीर सुनटने संग्रामने मस्तके शत्रुयें पराजव्यो थको (परंदमेज्जाके०) परंते फरी शत्रुने दमन करे तेम चारित्रिउ कर्मरूप शत्रुथी उपना जे उपसर्ग अने परीसह तेथी पराजव्य पाम्यो थको पण कर्मने दमे अने आत्मस्वरूपने साधे ॥ २९ ॥ ( अविहम्ममाणे के० ) परीसहोपसर्गे हणातो थको पणते साधु सम्यक् अहियाशे कोनीपेरे तोके (फलगावतठीके०) फलग एटले पाटीआनीपेरे तिष्ठे एटले रहे जेम पाटीउ बन्ने पाशे छेदातु थकुं पण राग द्वेष नकरे तेम साधुपण उपसर्ग परिसह उपने थके राग द्वेष रहित थको रहे ( समागमंकंखतिअंतकस्स के० ) अंतक एटले मृत्यु आववानो समागम वांछे अर्थात् पंमित मरण वांछे पण तपश्यायें करी शरीर शोषवाने लीधे डुर्बलता पामवा थकी मनमां शंका तथा भय आणे नही (णिधूयकम्मंणपवंचुवेइके०) ज्ञानावर्णादिक अष्ट प्रकारना कर्म खपावीने वली प्रपंच एटले संसारने न पामे एटले मुक्ति पामे (अक्खक्खएवासगडंतिबेमिके०) जेम अक्ष एटले धुरी तेना क्षय थकी गाडलुं सम विषम मार्गे नचाले तेम साधु मोक्ष पहोता पछी संसार मांहे पाछा आवे नही. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो.॥३०॥इति कुशील परिभाषा नामे सातमा अध्ययननो अर्थ समाप्तथयो.

॥ दीपिका-भारस्य संयमभारस्य यात्रानिर्वाहस्तदर्थं मुनिर्भुंजीत आहारं गृण्हीयात्. तथा भिक्षुः पापस्य कर्मणोविवेकं विनाशं कांक्षेत् दुःखेन परीषहादिना स्पृष्टः सन् धूतं संयमं आददीत गृण्हीयात् यथा संग्रामशीर्षे कश्चित् सुभटः परं शत्रुं दमयत्येवं साधुः कर्मशत्रून् दमयेत् ॥ २९ ॥ परीषहैर्हन्यमानः पीड्यमानोपि सम्यक् सहते । यथा फलकं उजाभ्यां पार्श्वाभ्यां तष्टं घटितं सत्तनु भवत्येवं साधुरपि तपसा डुर्बलतनुः स्यात्

अरक्तद्विष्टश्च मृत्योः समागमं प्राप्तिमाकांक्षेत अष्टप्रकारं कर्म निर्धूयापनीय प्रपंचं सं सारं नोपैति नयाति । यथा अक्षस्य क्षये विनाशे सति शकटं समविषमपथरूपं प्रपंचं याति उपष्टंनकारणानावात् एवं साधुः कर्मक्षये संसारं नयातीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३० ॥ समाप्तं कुशीलपरिनाषाख्यं सप्तमाध्ययनं ॥

---

॥ टीका-किंचाऽन्यत् ( नारस्सजाताइत्यादि) । संयमनारस्य यात्रार्थं पंचमहाव्रत नारनिर्वाहणार्थं मुनिः कालत्रयवेत्ता नुंजीत आहारग्रहणं कुर्वीत । तथा पापस्य कर्मणः पूर्वचरितस्य विवेकं पृथग्नावं विनाशमाकांक्षेन्निकुः साधुरिति । तथा डुःखय तीति डुःखं परीषहोपसर्गजनितापीडा तेन स्पृष्टोव्याप्तः सन् धूतं संयमं मोक्षंवा आद दीत गृएहीयात् । यथा सुनटः कश्चित् संग्रामशिरसि शत्रुनिरनिद्रुतः परं शत्रुं दमयति । एवं परं कर्मशत्रुं परीषहोपसर्गानिद्रुतोदमयेदिति ॥ २ए ॥ अपिच ( अविहम्ममाणे त्यादि) परीषहोपसर्गैर्हन्यमानोऽपि सम्यक् सहते । किमिव । फलकवदवकृष्टः । यथा फ लकमुनान्यमपि पार्श्वान्यां तष्टं घट्टितं सत्तनु नवति अरक्तद्विष्टं वा संनवत्येवमसा वपि साधुः सबाह्याभ्यंतरेण तपसा निष्टप्तदेहस्तनुर्डर्बलशरीरोऽरक्तद्विष्टश्चांतकस्य मृ त्योः समागमं प्राप्तिमाकांक्षत्यनिलपति । एवं चाऽष्टप्रकारं कर्म निर्धूयाऽपनीय नपुनः प्रपंचं जातिजरामरणरोगशोकादिकं प्रपंच्यते । बहुधा नटवद्यस्मिन् सप्रपंचः संसारस्तं नोपैति नयाति । दृष्टांतमाह । यथा ऽक्षस्य क्षये विनाशे सति शकटं गंत्र्यादिकं समविष मपथरूपं प्रपंचमुपष्टंनकारणानावान्नोपयाति । एवमसावपि साधुरष्टप्रकारस्य कर्मणः क्षये संसारप्रपंचं नोपयातीति । गतोऽनुगमोऽनयाःपूर्ववदिति शब्दःपरिसमाप्त्यर्थे ब्रवीमी ति पूर्ववत् ॥ ३० ॥ समाप्तंच कुशीलपरिनाषाख्यं सप्तमाध्ययनं ॥

हवे आवमुं वीर्याध्ययन कहेछे सातमाअध्ययनमां कुशीलियानो आचार कह्यो ते आचार संयमनेविषे वीर्यांतराय कर्मना उदय थकी थायछे तेमाटे आ अध्ययनमां सु शीलियानो वीर्य देखाडेछे तेथी ए अध्ययननुं नाम वीर्याध्ययनछे.

डुहावेयं सुयरकायं,वीरियंति पवुच्चई॥ किंतु वीरस्स वीरत्तं, कहं
चेयं पवुच्चई ॥१॥ कम्ममेगे पवेदेंति,अकम्मं वावि सुव्वया॥ एते
हिं दोहि ठाणेहिं, जेहिं दीसंति मच्चिया ॥ २ ॥

अर्थ-( डुहावेयंसुयरकायं के० ) तेनजो वीर्य पराक्रम बे प्रकारे श्रीजिनेश्वरे कह्युंछे (वीरियंतिपवुच्चई के०) तेवीर्य प्रकर्षे करी कहिएछेयें (किंतुवीरस्सवीरत्तं के०) तु एवा वि तर्के करी वीर नामा सुनटनुं केवुं वीर पणुं अने केवीरीते ए वीर केवायछे तथा ( क

र्थं पटुमतिना प्रोच्यमानं नशक्नोति सांप्रतं परिणमयितुं संभाव्यते त्वेषपरिकर्म्यमाणः शक्नोत्यमुमर्थं परिणमयितुमिति । वाग्वीर्यमपि द्विविधं । संभवे संभाव्येच । तत्र संभवे तीर्थकृतां योजननिर्हारिणी वाक् सर्वस्वभावानुगताच । तथाऽन्येषामपि क्षीरमध्वास्रवादिलब्धिमतां वाचः सौभाग्यमिति । तथा । हंसकोकिलादीनां संभवति स्वरमाधुर्यं । संभाव्येतु संभाव्यते श्यामायाः स्त्रियागानमाधुर्यं । तथाचोक्तं । श्यामा गायति मधुरं, काली गायति खरंच रुक्षंचेत्यादि । तथा संभावयामएनं श्रावकदारकमकृतमुखसंस्कारमप्यक्षरेषु यथावदभिलप्तव्येष्विति । तथा संभावयामः शुकसारिकादीनां वाचोमानुषभाषापरिणामः। कायवीर्यमप्यौरस्यं। यद्यस्य बलं तदपि द्विविधं संभवे संभाव्येच। यथा चक्रवर्तिबलदेववासुदेवादीनां यद्वाहुबलादिकायबलं । तद्यथा कोटिशिलात्रिपृष्ठेन वामकरतलेनोद्धृता । यदिवा ( सोलसरायसहस्साइत्यादि ) यावदपरिमितबलाजिनवरेंदाइति । संभाव्येतु संभाव्यते तीर्थकरोलोक,मलोके कंडुकवत् प्रक्षेप्तुं तथा मेरुं दंमवद्गृहीत्वा वसुधां छत्रकवद्धर्त्तुमिति । तथा संभाव्यते अन्यतरसुराधिपोजंबूद्वीपं वामहस्तेन छत्रवद्धर्त्तुमयत्नेनैव मंदिरमिति । तथा संभाव्यते अयं दारकः परिवर्धमानः शिलामेनामुद्धर्तुं हस्तिनं दमयितुमश्वं वाहयितुमित्यादि । इंद्रियबलमपि श्रोत्रेंद्रियादिस्वविषयग्रहणसमर्थं पंचधैकैकं द्विविधं संभवे संभाव्येच। संभवे यथा श्रोत्रस्य द्वादशयोजनानि विषयः । एवं शेषाणामपि योयस्य विषयइति । संभाव्ये तु यस्य कस्यचिदनुपहतेंद्रियस्य श्रांतस्य क्षुधस्य पिपासितस्य परिग्लानस्य वा अर्थग्रहणसमर्थमपि इंद्रियं तद्यथोक्तदोषोऽपशमे तु सति संभाव्यते विषयग्रहणायेति । सांप्रतमध्यात्मिकं वीर्यं दर्शयितुमाह । उज्जमधितीधीरत्तं, सोंडीरत्तंखमायगंभीरं । उवयोगं योगतव, संजमादियहोइअज्जुप्पो (उज्जमधीत्यादि)। आत्मन्यधीत्यध्यात्मं तत्र भवमाध्यात्मिकमांतरशक्तिजनितं सात्विकमित्यर्थः । तच्चाऽनेकधा । तत्रोद्यमोज्ञानतपोऽनुष्ठानादिपूत्साहः । एतदपि यथा योगं संभवे संभाव्ये च योजनीयमिति । धृतिः संयमे धैर्यं चित्तसमाधानमिति । धीरत्वं परीषहोपसर्गाक्षोभ्यता शौंडीर्यं त्यागसंपन्नता षट्खंडमपि भरतं त्यजतश्चक्रवर्तिनोन मनः कंपते । यदिवाऽऽपद्यविषण्णता । यदिवा विषमेऽपिकर्तव्ये समुपस्थिते पराभियोगमकुर्वन् मयैवैतत्कर्तव्यमित्येवं हर्षायमाणोऽविषण्णोविधत्तइति । क्षमावीर्यंतु परैराकुश्यमाणोऽपि मनागपि मनसा नक्षोभमुपयाति भावयति । तच्चेदं । आक्रुष्टेन मतिमता तत्वार्थगवेषणे मतिः कार्या । यदि सत्यं कः कोपः स्यादनृतं किंतु कोपेन ॥ ३ ॥ तथा ( अक्कोसहणणमारण धम्मब्भंसाण बालसुलभाणं ॥ लाभं मन्नइ धीरो, जहुत्तराणं अभावंमि ॥१॥) गांभीर्यवीर्यं नाम परीषहोपसर्गैरधृष्यत्वं । यदिवा यन्मनश्चमत्कारकारिण्यपि स्वानुष्ठाने अभिमानित्वं । उक्तंच । ( चुल्लुच्छलेइ जंहे, इणयं रित्तयं कणकणेइ । भरियाइं ण खुब्भंती, सुपु

रित्तविन्नाए नंडाई ॥ १ ॥ ) उपयोगवीर्यं साकारानाकारनेदात् द्विविधं । तत्र साकारोप योगोऽष्टधा ऽनाकारश्चतुर्धा । तेन चोपयुक्तः स्वविषयस्य द्रव्यक्षेत्रकालनावरूपस्य परिछे दं विधत्तइति । तथा योगवीर्यं त्रिविधं । मनोवाक्कायनेदात् । तत्र मनोवीर्यमकुशलमनो निरोधः कुशलमनसश्च प्रवर्तनं मनसोवा एकत्वीनावःकरणं । मनोवीर्येणह्वि निर्ग्रंथसंय ताः प्रवृद्धपरिणामाश्चवस्थितपरिणामाश्च नवंतीति । वाग्वीर्येण तु नापमाणोऽपुनरु क्तं निरवद्यं च नापते । कायवीर्यंतु यस्तु समाहितपाणिपादः कूर्मवदवतिष्ठतइति । तपो वीर्यं द्वादशप्रकारं तपोयद्बलादग्लायन् विधत्तइति । एवं सप्तदशविधेयं संयमे एकत्वाद्यऽध्य वसितस्य यद्बलात्प्रवृत्तिस्तत्संयमवीर्यं । कथमहमतिचारं संयमेन प्राप्नुयामित्यध्यव सायिनः प्रवृत्तिरित्येवमाद्यऽध्यात्मवीर्यमित्यादिच नाववीर्यमिति । वीर्यप्रवादपूर्वेचाऽनंतं वीर्यं प्रति पादितं । किमिति यतोऽनंतार्थं पूर्वं नवति । तत्रच वीर्यमेव प्रतिपाद्यते । अनंता र्थता चातआगंतव्या । तद्यथा । (सव्वणईणं जाव्होऊवालुया गणणमागयासत्ती । तत्तोबहुय तरागो अठ्ठो एगस्स पुव्वस्स॥ १ ॥ सव्वसमुद्दाणजलं जइ पत्थमियं हविक्क संकलियं। एत्तोबहु यतरागो, अठ्ठोएगस्स पुव्वस्स ॥ २॥) तदेवं पूर्वार्थस्याऽनंत्या द्वीर्यस्य च तदर्थत्वादनंतता वी र्यस्येति । सर्वमप्येत द्वीर्यं त्रिधेति प्रतिपादयितुमाह । (सव्वंपिय तं तिविहं, पंमियबालवि रियंच । अहवावि होंति डुविहं, अगारअणगारियंचेव ॥ १ ॥) ( सव्वंपियमित्यादि ) सर्व मप्येतद्भाववीर्यं पंडितवालमिश्रनेदात् त्रिविधं । तत्रनागाराणां पंडितवीर्यं वालपंडित वीर्यं त्वगाराणां गृहस्थानामिति । तत्र यतीनां पंडितवीर्यं सादिसपर्यवसितं । सर्वविर ति प्रतिपत्तिकाले सादितासिद्धावस्थायां तदन्नावात्सांतं । वालपंमितवीर्यं तु देशवि रतिसद्भावकाले सादि । सर्वविरतिसद्भावे तद्भ्रंशेवा सपर्यवसानं । वालवीर्यं त्वविरतिल क्षणमनव्यानामनाद्यपर्यवसितं नव्यानां त्वनादिसपर्यवसितं । सादि सपर्यवसितं तु विरति न्रशात् सादिता । पुनर्जघन्यतांतर्मुहूर्तादुत्कृष्टतो ऽपार्द्धपुजलपरावर्त्तात् विरतिसन्नवात् सांत तेति । साद्यपर्यवसितस्य तृतीयनंगकस्य त्वसंनवएव । यदिवा पंडितवीर्यं ससर्वविरतिलक्ष णं । विरतिरपि चारित्रमोहनीयक्षयक्षयोपशमलक्षणाविविधैवाऽतोवीर्यमपि त्रिधैव नवति गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः । तदनुसूत्रानुगमे स्वलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । त च्चेदं । ( डुहावेदंसुयरकायमित्यादि ) द्वे विधे प्रकारावऽस्येति द्विविधं द्विप्रकारं । प्रत्य क्षासन्नवाचित्वात् इदमोयदनंतरं प्रकर्षेणोच्यते वीर्यं तद्विनेदं सुप्राख्यातं स्वाख्यातं तीर्थ करादिनिः।चोवाक्यालंकारे । तत्रेऽरगतिप्रेरणयोः । विशेषेण ईरयति प्रेरयति अनिहितं ये न तद्वीर्यं जीवस्य शक्तिविशेषइत्यर्थः। तत्र किंतु वीरस्य सुनटस्य वीरत्वं केनवा कारणे नाऽसौवीरइत्यनिधीयते । तुशब्दोवितर्कवाची । एतद्वितर्कयति । किंत द्वीर्यं वीरस्य वा किं त द्वीरत्वमिति ॥ १ ॥ तत्र नेद द्वारेण वीर्यस्वरूपमाचख्यासुराह ॥ ( कम्ममेगेइत्यादि )

इंचेयंपवुच्चई के० ) केवीरीते ए प्रकर्षे करी वीर्य कहेछे. ॥ १ ॥ (कम्ममेगेपवेदेंतिके०) एकतो अष्ट प्रकारे कर्म क्रिया अनुष्ठानरूप वीर्य कहेछे ( अकम्मंवावि के० ) अथवा अकर्म एटले जीवनुं सहेज स्वरूप तेने पण एक वीर्य कहेछे एम बे प्रकारे वीर्य कहेछे (सुव्वयाके०) अहोसुव्रतो ( एतेहिंदोहिठाणेहिं के० ) एज बे स्थानके करी बल वीर्यना नेद जाणो एटले एक सकर्मक अने बीजो अकर्मकना नेदे करी बे प्रकारनो वीर्य जाणवो ( जेहिंदीसंतिमच्चिया के० ) जेने विषे व्यवस्थित सर्व मनुष्यो देखायछे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथाष्टमं । पूर्वं कुशीलसुशीलावुक्तौ तौच वीर्यतः स्यातामिति वीर्यमत्रोच्यते । ( डुहेति ) द्विधा द्विप्रकारकमेतद्वीर्यं सुष्ठु आख्यातं तीर्थकृदादिनिः । इदं वीर्यं द्विनेदं प्रोच्यतइति । वीर्यं जीवस्य शक्तिविशेषः । तत्र किंनु वीरस्य सुनटस्य वीरत्वं केन वा हेतुनाऽसौवीरइत्युच्यते । तुशब्दोवितर्के ॥ १ ॥ किंतद्वीर्यं किंवा वीरत्वमित्याह । (कम्मेति ) कर्मक्रिया अनुष्ठानमित्येव वीर्यमिति प्रवेदयंति ॥ अथवाऽष्टप्रकारं कर्म कारणे कार्योपचारात् तदेव वीर्यमित्युच्यते । तथाहि । नावनिष्पन्नं कर्म उदयिकनावोपि कर्मोदयनिष्पन्नइति बालवीर्यं १ द्वितीयनेदस्त्वयं । कर्मरहितोऽकर्मा वीर्यांतरायक्षयजनितं जीवस्य सहजं वीर्यं । चशब्दाच्चारित्रमोहनीयोपशमक्षयोपशमजनितं हेसुव्रताएवंनूतं पंडितवीर्यं जानीत२ द्वाभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यां बालपंडितवीर्याभ्यां व्यवस्थितं वीर्यमित्युच्यते।येभ्यो ययोर्वा व्यवस्थितामर्त्यामनुष्याअपदिश्यंते । तथाहि । अनेककार्येपूद्यमवंतं नरं दृष्ट्वा वीर्यवानयमित्युच्यते तथा वीर्यांतरायक्षयादनंतबलयुक्तोयं मर्त्यइत्यपदिश्यते ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तं सप्तममध्ययनं सांप्रतमष्टममारन्यते ॥ अस्य चाऽयमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने कुशीलास्तत्प्रतिपक्षनूताः श्रीसुशीलाः प्रतिपादिताः। तेषांच कुशीलत्वं च संयमवीर्यांतरायोदयात्तत्क्षयोपशमाच्च नवतीत्यतोवीर्यप्रतिपादनायेदमुपदिश्यते तदनेन संबंधेनाऽऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराणि उपक्रमादीनि वक्तव्यानि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोऽयं ॥ ( बालबालपंडितपंडितवीर्यनेदात्रिविधमपि वीर्यं परिज्ञाय पंडितवीर्ये यतितव्यमिति । नामनिष्पन्ने तु निक्षेपे वीर्याध्ययनवीर्यनिक्षेपाय निर्युक्तिकृदाह । ( विरिएठक्कंदव्वे, सच्चित्ताचित्तमीसगंचेव ॥ डुपयचउप्पयअपयं, एयंतिविहंतिसच्चित्तं ॥ १ ॥) ( विरिएठक्कमित्यादि ) वीर्यं नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालनावनेदात् षोढा निक्षेपः । तत्राऽपि नामस्थापने क्षुण्णे द्रव्यवीर्यं द्विधा । आगमतो नोआगमतश्च। आगमतोज्ञाता तत्र चाऽनुपयुक्तः । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तसचित्ताचित्तमिश्रनेदात्रिधा वीर्यं सचित्तमपि द्विपदचतुष्पापदनेदात् त्रिविधमेव । तत्र द्विपदानां अर्ह

चक्रवर्त्तिबलदेववासुदेवादीनां यद्वीर्यं स्त्रीरत्नस्य वा यस्यवा यद्वीर्यं तदिह द्रव्यवीर्यत्वेन ग्राह्यं । तथा चतुष्पदानामश्वहस्तिरत्नादीनां सिंहव्याघ्रशरभादीनां वा परस्य यद्वोढव्ये धावने वा वीर्यं तदिति । तथाऽपदानां गोशीर्षचंदनप्रभृतीनां शीतोष्णकालयोरुष्णशीतवीर्य परिणामइति । अचित्तवीर्यप्रतिपादनायाह ॥ अचित्तं पुणविरयं, आहारावरणपहरणा दीसु ॥ जहउसहीणभणियं, विरियं रसवीरियविवागो ॥ २ ॥ ( अचित्तंपुणेत्यादि ) अचित्तद्रव्यवीर्यं त्वाऽऽहारावरणप्रहरणेषु यद्वीर्यं तडुच्यते। तत्राऽऽहारवीर्यं सद्यः प्राणकरा ह्यघृतपूर्णाः कफापहाइत्यादि । उषधीनां च शल्योध्धरणसंरोहणविषापहारमेधाक रणादिकं रसवीर्यं विपाकवीर्यं च । तडुक्तं । चिकित्साशास्त्रादौ तदिह ग्राह्यमिति । तथा योनिप्राभृतकान्नानाविधं द्रव्यवीर्यं द्रष्टव्यमिति । तथा। आवरणेकववादी, चक्रादीपंचपहर णेहोंति ॥ खित्तंमि जंमि खेत्ते,काले जं जंमि कालंमि । तथा(आवरणेइत्यादि) आवरणे कव चादीनां प्रहरणे चक्रादीनां यद्भवति वीर्यं तडुच्यतइति । अधुना क्षेत्रकालवीर्यं गाथापश्चा र्धेन दर्शयति। क्षेत्रवीर्यंतु देवकुर्वादिकं क्षेत्रमाश्रित्य सर्वाण्यपि द्रव्याणि तदंतर्गतान्युत्कृष्ट वीर्यवंति भवंति । यद्वा डुर्गादिकं क्षेत्रमाश्रित्य कस्यचिद्वीर्योल्लासोभवति । यस्मिन्वा क्षेत्रे वीर्यं व्याख्यायते तत्क्षेत्रवीर्यमिति । एवं कालवीर्यमप्येकांतसुखमादावाऽऽयोज्य मिति । तथाचोक्तं । वर्षासु लवणममृतं, शरदिजलं गोपयश्चहेमंते ॥ शिशिरे चामलक रसो, घृतंवसंते गुडश्चांऽते ॥१॥ तद्यथा । ग्रीष्मे तुल्यगुडां सुसैंधवयुतां मेघावनध्देवरे, तुल्यां शर्करया शरघमलया शुंठ्या तुषारागमे । पिप्पल्या शिशिरे वसंतसमये क्षौद्रेण संयोजि तां, पुंसां प्राप्य हरीतकीमिव गदानश्यंतु ते शत्रवः ॥ १ ॥ भाववीर्यप्रतिपादनायाह । ( भावोजीवस्स सवीरियस्स विलयंमि लद्धिणेगविहा ॥ उरस्सिंदिय अज्झप्पिएसु व हुसोवहुवीहियं ( भावोजीवस्सेत्यादि ) सवीर्यस्य वीर्यशक्त्युपेतस्य जीवस्य वीर्य विषये अनेकविधा लब्धिस्तामेव पश्चार्द्धेन दर्शयति । तद्यथा । उरसि भवमौरस्यं शा रीरबलमित्यर्थः । तथेंद्रियबलमाध्यात्मिकं बलं बहुशोबहुविधं द्रष्टव्यमिति । ए तदेव दर्शयितुमाह । ( मणवइकायाआणा पाणुसंभवतहायसंभवे । सोत्तादीणं सद्दा, दिएविसएसुगहणंच ॥ ४ ॥ ( मणवइइत्यादि ) आंतरेण व्यापारेण गृहीत्वा पुज्ञलान्मनोयोग्यान् मनस्त्वेन परिणमयति भाषायोग्यान् भाषात्वेन परिणमयति काय योग्यान् काययोग्यत्वेन अन्नपानयोग्यान् तद्भावेनेति । तथा मनोवाक्कायादीनां त द्भावपरिणतानां यद्वीर्यं सामर्थ्यं तद्विविधं । संभवे संभाव्येच । संभवे तावत्तीर्थकृताम नुत्तरोपपातिकानांच सुराणामतीव पटूनि मनोद्रव्याणि भवंति । तथाहि । तीर्थकृताम नुत्तरोपपातिकसुरमनःपर्यायज्ञानिप्रश्नव्याकरणस्य द्रव्यमनसैव करणात् । अनुत्तरो पपातिकसुराणांच सर्वव्यापारस्यैव मनसा निष्पादनादिति । संभाव्ये तु योहि यम

कर्म्म क्रियानुष्ठानमित्येतदेके वीर्यमिति प्रवेदयंति । यदिवा कर्माष्टप्रकारं कारणे कार्यो पचारात् तदेव वीर्यमिति ।तथा ह्यौदयिकन्नावनिष्पन्नं कर्मेत्यपदिश्यते । औदयिकोपिच न्नावः कर्मोदयनिष्पन्नएव बालवीर्यं । द्वितीयन्नेदस्त्वयं । न विद्यते कर्माऽस्येत्यकर्मा । वीर्यांतरायक्षयजनितं जीवस्य सहजं वीर्यमित्यर्थः । चशब्दात् चारित्रमोहनीयोपशमज नितंच । हेसुव्रताएवंनूतपंडितवीर्यं जानीत यूयं । आन्यामेव द्वान्यां स्थानान्यां सकर्म काकर्मकापादितं बालपंडितवीर्यान्यां व्यवस्थितं वीर्यमित्युच्यते । यकान्यां ययोर्वा व्य वस्थितामर्त्येषु न्नवामर्त्याः( दिस्संतइति) दृश्यंतेऽपदिश्यंतेवा । तथाहि । नानाविधासु क्रियासु प्रवर्तमानमुत्साहबलसंपन्नं मर्त्यं दृष्ट्वा वीर्यवानयं मर्त्यइत्येवमपदिश्यते । तथा न दावारककर्मणः क्षयादनंतबलयुक्तोऽयं मर्त्यइत्येवमपदिश्यते दृश्यतेचेति ॥ २ ॥

पमायं कम्ममाहंसु अप्पमायं तहावरं ॥ तन्नावादेसउवावि, बा
लं पंमियमेववा ॥ ३ ॥ सङमेगेतु सिरकंता, अतिवायाय पा
णिणं ॥ एगे मंते अहिज्जंति, पाणनूयविहेडिणो ॥ ४ ॥

अर्थ–( पमायंकम्ममाहंसु के० ) श्रीतीर्थंकर देव प्रमादने कर्म कहेले तेप्रमाद क हेले मङ्कविसयकसाया निद्दाविहगाय पंचमेनणियाइत्यादि (अप्पमायंतहावरंके०) तथा अप्रमादने अकर्म कहेले ( तन्नावादेसउवाविबालंपंमियमेववा के० ) जे प्रमादि थको कर्म करे ते बालवीर्य कहिए अने जे अप्रमादि थको कर्म करे ते पंमितवीर्य कहिए ते बाल अने पंमितवीर्य आवीरीतेले अनव्यने अनादि अपर्यवसित अने नव्यने अना दि सपर्यवसित अथवा सादि सपर्यवसित जाणवो ॥ ३ ॥ ( सङमेगेतुसिरकंता के० ) कोइएक शस्त्र एटले खङ्गादि हथीयार धनुष्य विद्यादिक शीखे अथवा शास्त्र एटले ज्योति षादिक शास्त्र तथा निमित्त वैद्यक औषध प्रमुख शीखे शावास्तेशीखेतोके (पाणिणंके०) जीवोने (अतिवायायके०) अतिपात एटले विनाश करवाने अर्थे शीखे (एगेमंतेअहिज्जंति के० ) तथा कोइएक हिंसक मंत्रादिक नणीने जे अथर्वणयाग अश्वमेध मनुष्य मेध अ जामेध प्रमुख करे ए ( पाणके० ) बेंडियादिक त्रस जीव तथा (नूतके०) पृथिव्यादिक स्थावरजीव तेने ( विहेडिणोके० ) विविध प्रकारे हणवा निमित्ते पूर्वोक्त मंत्रादि नणे ॥४॥

॥ दीपिका–प्रमादमेव कर्म आहुस्तीर्थंकृतः ।कर्महेतुत्वात्प्रमादः कर्मैव ।अप्रमादं चा परं कर्म आहुः । कोर्थः । प्रमादात्कर्म बध्यते सकर्मणश्च क्रिया बालवीर्यं । तथा अप्रमत्त स्य कर्मान्नावस्तस्यच पंमितवीर्यं । तन्नावदेशतः बालवीर्यस्य पंमितवीर्यस्य न्नावस्तेनादे शोव्यपदेशस्तत्र बालवीर्यमनव्यानामनाद्यनंतं। नव्यानामनादिसांतं सादिसांतं वा । पंमि

तवीर्यंतु सादिसांतमेव ॥३॥ बालवीर्यमाह्। शस्त्रं प्रहरणं शास्त्रंवा धनुर्वेदायुर्वेदादिकमेके शिक्षंते प्राणिनामतिपाताय विनाशाय गृण्हंति । एके बालवीर्यवंतोमंत्रानभिचारकानधीयते । किंनूतान् प्राणिनोर्द्वीद्रियाद्याः । नूतानि पृथिव्यादीनि तेषां हेठकान् बाधकान्॥४॥

---

॥ टीका–इह् बालवीर्यं कारणे कार्योपचारात्कर्मैव वीर्यत्वेनानिहितं । सांप्रतं कारणे कार्योपचारादेव प्रमादं कर्मत्वेनापदिशन्नाह् । (पमायमित्यादि)। प्रमाद्यंति सदनुष्ठानरहितानवंति प्राणिनोयेन सप्रमादोमद्यादिः । तथाचोक्तं । ( मद्यविसयकसाया, णिद्दाविगहाय पंचमे नणिया । एसपमायपमाउ, णिद्दिठो वीयरागेहिं ॥ १ ॥ ) तमेवंनूतं प्रमादं कर्माहुरुक्तवंतस्तीर्थंकरादयोऽप्रमादंच तथा ऽपरकर्मकमाहुरिति । एतडुक्तं नवति । प्रमादापहृतस्य कर्म बध्यते सकर्मणश्च यक्रियानुष्ठानं तद्बालवीर्यं । तथाऽप्रमत्तस्य कर्माभावोन्नवति । एवंविधस्य च पंडितवीर्यं नवति । एतच्च बालवीर्यं पंमितवीर्यमिति वा प्रमादवतः सकर्मणोबालवीर्यमप्रमत्तस्याऽकर्मणः पंमितवीर्यमित्येवमायोज्यं । (तप्पावादेसउवापीति) तस्य बालवीर्यस्य कर्मणश्च पंमितवीर्यस्य वा नावः सत्ता सतद्भावस्तेनाऽऽदेशोव्यपदेशस्ततस्तद्यथा बालवीर्यमनव्यानामनादि अपर्यवसितं नव्यानामनादि सपर्यवसितं वा सादिसपर्यवसितं चेति । पंमितवीर्यं तु सादिसपर्यवसितमेवेति ॥ ३ ॥ तत्र प्रमादापहृतस्य सकर्मणोयद्बालवीर्यं तद्दर्शयितुमाह् । ( सब्धमेगेइत्यादि ) । शस्त्रं खङ्गादिप्रहरणं शास्त्रंवा धनुर्वेदायुर्वेदादिकं प्राण्युपमर्दकारि तत् सुष्ठु सातगौरवगृद्धाएके केचन शिक्षंते उद्यमेन गृण्हंति । तच्च शिक्षितं सत् प्राणिनां जंतूनां विनाशाय नवति। तथाहि । तत्राऽपदिश्यते एवंविधमालीढप्रत्यालीढादिनिर्जीवव्यापादयितव्ये स्थानं विधेयं । तडुक्तं । मुष्टिना छादयेल्लक्ष्यं, मुष्टौ दृष्टिं निवेशयेत् । हतं लक्ष्यं विजानीयाद्यदि मूर्धा न कंपते । १ । ( तथा ) एवं लावकरसः क्षयिणे देयोऽनयारिष्टाख्योमद्यविशेषश्चेति । तथैवं चौरादेः शूलारोपणादिकोदंडोविधेयः । तथा चाणिक्यानिप्रायेण परोवंचयितव्योऽर्थोपादानार्थं तथा कामशास्त्रादिकं चोद्यमेनाऽशुनाध्यवसायिनोधीयते । तदेवं शस्त्रस्य धनुर्वेदादेः शास्त्रस्य वा यदन्यसनं तत्सर्वं बालवीर्यं । किंचैके केचन पापोदयान् मंत्रानभिचारकानाऽऽथर्वणानश्वमेधपुरुषमेधादिकं विधीयते । किंनूतानिति दर्शयति । प्राणा द्वीन्द्रियादयोनूतानि पृथिव्यादीनि तेषां विविधमनेकप्रकारं हेठकान् बाधान् ऋक्संस्थानीयान् मंत्रान् पठंतीति । तथाचोक्तं । षट्शतानि नियुज्यंते, पशूनां मध्यमेऽहनि । अश्वमेधस्य वचनान्न्यूनानि पशुनिस्त्रिनिरित्यादि ॥ ४ ॥

माइणो कट्टु मायाय,कामभोगे समारभे॥ हंता छेत्ता पगप्भित्ता आयसायाणुगामिणो ॥ ५ ॥ मणसा वयसाचेव, कायसा चेव अंतसो ॥ आरउ परउ वावि, डुहाविय असंजया ॥ ६ ॥

अर्थ-(माइणोकट्टुमायायके०) कोइएक मायावि पुरुष माया केलवीने (कामभोगेसमारभेके०) शब्दादिक विषय रूप कामभोगनो समारंभ करे एटले पोतानाचित्तने विषे आशक्त थता काम सेवना करे एवा ते (आयसायाणुगामिणोके०) पोताना आत्म सुखना अर्थि विषय गृद्ध थता ( हंताछेत्ता पगप्भित्ता के० ) जीवना हणनार तथा अंगोपांगना छेदनार तथा पेटना कापनार थाय ॥ ५ ॥ ( मणसावयसाचेव के० ) मने करी वचने करी चेव पदपूर्णार्थेछे अने ( कायसा के० ) कायायें करी ( अंतसोके०) आशक्त थता तंडुल मछनी पेरे कर्म बांधता तथा(आरउके०) आरत आलोकने विषे (परउवाविके०) अथवा परलोकने विषे पण ( डुहाविय के० ) ए बन्ने लोकने विषे कृत्य कारीत पणे करी ते जीव घातना करनार पुरुष निश्चें थकी (असंजया के० ) असंयति जाणवा. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-मायाविनोमायां परवंचनानि कृत्वा कामभोगान् समारभंते सेवंते । तदेवमात्मना सातानुगामिनः स्वसुखलिप्सवः प्राणिनां हंतारः स्युः । तथा छेत्तारः कर्णनासादेः प्रकर्तयितारः पृष्ठोदरादेः ॥ ५ ॥ मनसा वाचा कायेन अंतशः कायेनाशक्तोपि तंडुलमत्स्यवन्मनसैव कर्म बध्नाति तथा आरतः परतश्चेति इह लोकपरलोकयोर्द्विधापि कृतकारिताभ्यां च संयताजीवोपघातकारिणः ॥ ६ ॥

॥ टीका-( अधुना सत्थमित्येतत्सूत्रपदं सूत्रस्पर्शिकया निर्युक्तिकारः स्पष्टयितुमाह । सत्थमसिमादीयं, विज्जामंतेयदेवकयं । पत्थीवकरुणअग्गेय, वाउतहमीसगंचेव। )( सत्थमित्यादि ) शस्त्रं प्रहरणं तच्चाऽसिः खड्गादिस्तदादिकं तथा विद्याधिष्ठितं मंत्राधिष्ठितं तदेव कर्मकृतं दिव्यक्रियानिष्पादितं। तच्च पंचविधं । तद्यथा । पार्थिवं वारुणमाग्नेयं वायव्यं तथैव द्व्यादिमिश्रं चेति । किंचाऽन्यत् । माइणोइत्यादिसूत्रं । माया परवंचनादिका बुद्धिः सा विद्यते येषांते मायाविनस्तएवंभूतामायाः परवंचनानि कृत्वा एकग्रहणे तज्जातीयग्रहणादेव क्रोधिनोमानिनोलोभिनः संतः कामान् इछारूपान् तथा भोगांश्च शब्दादिविषयरूपान् समारभंते सेवंते। पाठांतरंवा ( आरंभायेतिवट्टइ ) त्रिभिर्मनोवाक्कायैरारंभार्थं वर्त्तते । वहून् जीवान् व्यापादयन् बध्नन् अपध्वंसयन् आज्ञापयन् भोगार्थी वित्तोपार्जनार्थं प्रवर्त्ततइत्यर्थः । तदेवमात्मसातानुगामिन. स्वसुखलिप्सवोडुःखद्विषोविषयेषु गृद्धाः कषायकलुषितांतरात्मानः संतएवंभूतामवंति । तद्यथा । हंता

रः प्राणिव्यापादयितारस्तथाछेत्तारः कर्णनासिकादेस्तथा प्रकर्तयितारः पृष्ठोदरादेरिति ॥ ५ ॥ तदेतत्कथमित्याह ( मणसाइत्यादि ) अधुना सङमित्येतत्सूत्रपदं तदेतत्प्राण्यु पमर्दनं मनसा वाचा कायेन कृतकारितानुमतिभिश्चांतशः कायेनाऽशक्तोऽपि तंडुलम त्स्यवन्मनसैव पापानुष्ठानानुमत्या कर्म बध्नातीति । तथाऽऽरतः परतश्चेति लौकिकी वा यु क्तिरिति । एवं पर्यालोच्यमानाऐहिकामुष्मिकयोर्द्विधापि स्वयंकरणेन परकरणेनवा संयता जीवोपघातकारिणइत्यर्थः ॥ ६ ॥

वेराइं कुवइ वेरी, तउ वेरेहिं रज्जती॥पावोवगाय आरंभा, डुरक

फासाय अंतसो ॥७॥ संपराइय णियछंति,अत्तडुक्कडकारिणो॥

रागदोसस्सिया बाला, पावं कुवंति ते बहु ॥ ८ ॥

अर्थ–(वेराइंकुवइवेरीके०) जीव घातनो करनार पुरुष ते विरोधरूप वैर ने अनेक जीवो नी साथे करे (तउवेरेहिंरज्जतीके०) तथा ते वैरे करी परलोके पण राचे एटले वैर सा थें संबंध करे(पावोवगायआरंभाके०)पापना समीप गामी एवा सावद्यानुष्ठानरूप आरं भना करनार ते ( डुरकफासायअंतसो के० ) अंत काले विपाकावसरे असातावेदनीय ना उदय थकी डुःखनो स्पर्श पामे. ॥ ७ ॥ ( संपराइयणियछंति के० ) साते कर्म बां धवाना बे प्रकार कह्याछे एक इर्यापथिकिक्रिया अने बीजी सांपराइकिक्रिया ए बे थकी जीव कर्मनो बंध बांधेछे ( अत्तडुक्कडकारिणो के० ) आत्म डुष्कृतकारी एटले स्वयं पापकारी ( रागदोसस्सियाबाला के० ) रागद्वेषाश्रित एटले राग द्वेषे व्याकुल बाल एटले अज्ञा नी सदसद विवेक रहित एवा छता ( पावंकुवंतितेबहुके०) ते पुरुषो पोताना आत्माना घात करनार एटले आत्माने डुःखना देनारा एवा घणा पाप करे. ॥ ८ ॥

---

॥ दीपिका–वैरी सजीवोवैराणि करोति ततोऽपैरवैरैरनुरुध्यते वैरपरंपरानुषंगी स्या दित्यर्थः । आरंभाः पापोपगाः पापयुक्ताअंतशोविपाककालडुःखदायिनः स्युः ॥ ७ ॥ आत्मडुष्कृतकारिणः स्वपापविधायिनः सांपरायिकं कर्म नियच्छंति बध्नंति। ते किंभूताः।रा गद्वेषाश्रिताबालाः पापं कुर्वंति बहुनंतं । कर्मद्विधा । ईर्यापथं सांपरायिकंच तत्र संपराया बादरकषायास्तेभ्यआगतं सांपरायिकं जीवघातहेतुत्वेन कषायोत्थं कर्म बध्नंतीत्यर्थः॥ ८॥

---

॥ टीका–सांप्रतं जीवोपघातविपाकदर्शनार्थमाह । ( वेराइंइत्यादि ) । वैरमस्यास्ती ति वैरी सजीवोपमर्दकारी जन्मशतानुबंधीनि वैराणि करोति । ततोऽपि च वैरादपरैर्वैरे रनुरुध्यते । वैरपरंपरानुषंगी भवतीत्यर्थः । किमिति । यतः पापं उपसामीप्येन गछंती ति पापोपगाः । कएते आरंभाः सावद्यानरूपाः। अंतशोविपाककाले डुःखं स्पृशंतीति डुःख

स्पर्शाअसातोदयविपाकिनोनवंतीति ॥ ७ ॥ किंचाऽन्यत्संपराइयणियछंतीत्यादि ) द्विविधं कर्म ईर्यापथं सांपरायिकंच । तत्र संपरायाबादरकषायास्तेन्यआगत सांपरायिकं तज्जीवोपमर्द्दकत्वेन वैरानुषंगितयाऽऽत्मडुष्कृतकारिणः स्वपापविधायिनः संतोनियछं ति बध्नंति । तानेव विशिनष्टि । रागद्वेषाश्रिताः कषायकलुषितांतरात्मानः सदसद्विवेक विकलत्वात् बालाइव बालास्ते चैवंनूताः पापमसद्वेद्यं बव्हनंतं कुर्वंति विदधति ॥८॥

एयं सकम्मवीरियं, बालाणं तु पवेदितं॥इत्तो अकम्मविरियं, पं
मियाणं सुणेहमे ॥ए॥ दविए बंधणुम्मुक्के, सवउ ठिन्नबंधणे ॥ प
णोल्लपावकं कम्मं,सल्लं कंततिअंतसो पाठांतरे सल्लंकंतंति अप्पणो१०

अर्थ—( एयंसकम्मवीरियं के० ) एपूर्वोक्त अनुक्रमे सकर्म वीर्य कह्यो ते कर्म बांधवा नुं कारणछे माटे ए ( बालाणंतुपवेदितं के० ) ए बालनुं वीर्य कह्युं ( इत्तो के० ) ए बालवीर्य कह्यानंतर ( अकम्मविरियं के० ) अकर्म वीर्य ते ( पंमियाणंसुणेहमे के० ) पंमितनु वीर्य जाणवो ते हुं कहुंछुं माटे हे शिष्यो तमे सांजलो ॥ए॥ (दविएके०) मुक्ति गमन योग्य एवो जीव द्रव्य (बंधणुके०) राग द्वेष रूप जे कषाय तेथकी( मुक्केके०) मुक्त ए टले रहित ( सवउछिन्नबंधणे के० ) सर्वथा प्रकारे कर्म बंधननो छेद्य करनार एवोछतो (पणोल्लपावकंकम्मं के० ) पाप कर्मने क्षय करी (सल्लंकंततिअंतसो के० ) जेने पामीने जीव समस्त सल्य कापे अथवा पाठांतरे (सल्लंकंततिअप्पणोके०)पोताना शल्य कापे॥१०॥

॥ दीपिका—तत् पूर्वोक्तं बालानां सकर्मवीर्यं प्रवेदितं । यथा जमदग्निना स्वनार्यायामकार्य प्रवृत्तः कृतवीर्योव्यापादितस्तत्पुत्रेण कार्तवीर्येण जमदग्निर्हतः पुनर्जमदग्निपुत्रेण परशु रामेण सप्तवारान् क्षत्रियाहताः पुनः कृतवीर्यसुतेन सुनूमेन त्रि:सप्तवारान् ब्राह्मणाहृ ताइति बालानां कर्मवीर्यमिति । इतऊर्ध्वमकर्मवीर्यं पंडितानां तन्मे मम कथयतः शृ णुत यूयं ॥ ए ॥ द्रव्योनव्योमुक्तियोग्योऽकषायीत्यर्थः। बंधनोन्मुक्तः कर्मरहितः सर्वत श्छिन्नबंधनः सूक्ष्मबादरकषायमुक्तः प्रणुद्य प्रेर्य पापं कर्म तत्कारणनूतान् आश्रवान् वा त्यक्त्वा शल्यतुल्यमशेषं कर्म कृंतत्यपनयति ॥ १० ॥

॥ टीका—एवं बालवीर्यं प्रदर्श्योपसंजिघृक्षुराह । (एयंसकम्मेत्यादि) । एतत् यत् प्राक् दर्शितं । तद्यथा । प्राणिनामतिपातार्थं शस्त्रं शास्त्रं वा केचन शिक्षंते । तथा परे विद्यामं त्रान् प्राणिबाधकानधीयते । तथाऽन्येमायाविनोनानाप्रकारां मायां कृत्वा कामनोगार्थ मारंनान् कुर्वंते । केचन पुनरपि परे वैरिणस्तत्कुर्वंति येन वैरैरनुबध्यंते । तथाहि । जमदग्निना स्वनार्याकार्यव्यतिकरे कृतवीर्योविनाशि तत्पुत्रेणतु कार्तवीर्येण जमदग्निः

जमदग्निसुतेन परशुरामेण सप्तवारान् निःक्षत्रा पृथिवी कृता । पुनः कार्तवीर्यसुतेन तु सुभूमेन त्रिःसप्तकृत्वोब्राह्मणाव्यापादिताः । तथाचोक्तं । अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तुष्टिमुपैति शक्तिमान् । अधिकां कुरुते हि यातनां, द्विषतां जातमशेषमुद्धरेत् ॥१॥ तदेवं कषायवशगाः प्राणिनस्तत्कुर्वंति । येन पुत्रपौत्रादिष्वपि वैरानुबंधोभवति । तदेतत्सकर्मणां बालानां वीर्यं । तुशब्दात्प्रमादवतां च प्रकर्षेण वेदितं प्रवेदितं प्रतिपादितमिति यावत् । अतऊर्ध्वमकर्मणां पंडितानां य द्वीर्यं तन्मे मम कथयतः शृणुत यूयमिति॥९॥ यथाप्रतिज्ञातमेवाह ( दविएइत्यादि ) द्रव्योभव्योमुक्तिगमनयोग्यः । द्रव्यं च भव्यइति वचनात् । रागद्वेषविरहा द्वा द्रव्यभूतोऽकषायीत्यर्थः । यदिवा वीतरागइति । वीतरागोऽल्पकषायइत्यर्थः । तथाचोक्तं । किंसक्कावोचुंजे, सरागधम्मंमि कोइअकसायी । संतेविजोकषाए, निगिण्हइसोवि तत्तुल्लो ॥१॥ सच किंभूतोभवतीति दर्शयति । बंधनात्कषायात्मकान्मुक्तोबंधनोन्मुक्तः । बंधनं तु कषायाणां कर्मस्थितिहेतुत्वात् । तथाचोक्तं । ( बंधछिइकसायवसा इति ) यदिवा बंधनोन्मुक्तइव बंधनोन्मुक्तः । तथा परः सर्वतः सर्वप्रकारेण सूक्ष्मबादररूपं छिन्नमपनीतं बंधनं कषायात्मकं येन सछिन्नबंधनः । तथा प्रणुद्य प्रेर्य पापं कर्म कारणभूतान्वाऽऽश्रवानपनीय शल्यवच्छल्यं शेषकं कर्म तत् कंतत्यपनयत्यंतशोनिरवशेषतो विघटयति । पाठांतरंवा । ( सल्लंकंतइअप्पणोत्ति ) शल्यभूतं यदष्टप्रकारं कर्म तदात्मनः संबधि कंतति छिनत्तीत्यर्थः ॥ १० ॥

नेयाउयं सुयक्खायं,उवादाय समीहए॥भुज्जोभुज्जो दुहावासं, असुहत्तं तहातहा ॥ ११ ॥ ठाणी विविहठाणाणि, चइस्संति ण संसउ ॥ अणियंते अयं वासे, णायएहि सुहीहिय ॥ १२ ॥

अर्थ–हवे जे वस्तु पामीने शल्यने छेदे ते देखाडेछे. (नेयाउयंसुयक्खायंके०)न्याय एटले ज्ञान दर्शन चारित्ररूप जे मोक्ष मार्ग श्री तीर्थंकर देवनो भाष्यो (उवादायके०) तेने उपादान एटले ग्रहण करीने (समीहएके०) धर्म ध्यानने विषे उद्यम करे अने ( भुज्जोभुज्जो दुहावासंके०) जे बालवीर्यवंतते वली वली अनंतभव ग्रहणने विषे जेम जेम नरकादिक दुःखना आवासोने विषे पर्यटन करे ( तहातहा के० ) तेम तेम ( असुहत्तंके० ) अशुभत्वं एटले दुर्ध्यानपणु प्रवर्द्धमान थाय एवो संसारनुं स्वरूप जाणीने पंडित पुरुष धर्मध्यानने विषे प्रवर्त्ते ॥ ११ ॥ हवे संसारनुं अनित्य पणु देखाडेछे. ( ठाणीविविहठाणाणि के०) जे जीवना विविध प्रकारना प्रधान स्थानकछे तयथा देवलोकमां इंद्र तथा सामानिक त्रयस्त्रिंशकादिकना स्थानछे मनुष्यने विषे चक्रवर्त्ती वासुदेव बलदेव

तथा मांमलिकादिकना स्थानके तिर्यंचने विषे पण क्यांएक इष्टजोग जूम्यादिक स्थानके ते सर्व स्थानने ( चइस्संति के० ) गंमशे ( णसंसउ के० ) एमां संदेहकरवो नही तथा ( णायएहि के० ) ज्ञाति गोत्री ( सुहीहिया के० ) सुहृद एटले बांधवादिक ( अणियंतेअयंवासे के० ) ए सर्वनुं अनित्य अशाश्वत एवो वासके ॥ १२ ॥

---

॥ दीपिका—नैय्यायिकं मोक्षनयनशीलं श्रुताख्यातं धर्ममुपादाय गृहीत्वा समीहते सम्यक् मोक्षाय ईहते चेष्टते जूयोजूयः पुनः पुनः दुःखावासं बालवीर्यवान् स्यात् यथाय था बालवीर्यवान् स्यात तथातथाऽशुभत्वं दुर्ध्यानं प्रवर्धते ततश्च नरकादिदुःखं ॥११॥ स्थानानि विद्यंते येषांते स्थानिनोदेवलोकादिशुभस्थानवर्तिनः स्थानानि त्यक्ष्यं ति नात्र संशयोऽशाश्वतत्वादिंद्रत्वचक्रित्वादीनां । यतः । सुचिरतरमुषित्वा बांधवैर्वि प्रयोगः सुचिरमपि हि रंत्वा नास्ति जोगेषु तृप्तिः ॥ सुचिरमपि हि पुष्टं याति नाशं शरीरं, सुचिरमपि विचिंत्योधर्मएकः सहायः ॥ १ ॥ इतिज्ञातकैः स्वजनैः सुहृद्भिश्च सहवासोय मनियतः कियत्कालस्थायी ननित्यः ॥ १२ ॥

---

॥ टीका—यदुपादाय शल्यमपनयति तद्दर्शयितुमाह । ( नेयाउयमित्यादि ) नयनशी लोनेता । नयतेस्ताच्छीलिकस्तृन् । सचाऽत्र सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकोमोक्षमार्गः श्रु तचारित्ररूपोवा धर्मोमोक्षनयनशीलवान् गृह्यते । मार्गं धर्मं वा मोक्षं प्रति नेतारं सुप्रु तीर्थकरादिभिराख्यातं स्वाख्यातं तमुपादाय गृहीत्वा सम्यक् मोक्षाय चेष्टते ध्यानाध्यय नादावुद्यमं विधत्ते ।धर्मध्यानारोहणालंबनायाह । जूयोजूयः पौनःपुन्येन यद्बालवीर्यं त दतीतानागतानंतजवग्रहणेषु दुःखमावासयतीति दुःखावासं वर्तते ।यथा यथाच बाल वीर्यवान् नरकादिषु दुःखवासेषु पर्यटति तथातथा वास्याऽशुभाध्यवसायित्वाद शुभमेव प्रवर्धते इत्येवं संसारस्वरूपमनुप्रेक्ष्यमाणस्य धर्मध्यानं प्रवर्ततइति ॥ ११ ॥ सां प्रतमनित्यजावनामधिकृत्याह । ( ठाणीविविहेत्यादि ) । स्थानानि विद्यंते येषांते स्थानिनः । तद्यथा देवलोके इंद्रस्तत्समानानि त्रयस्त्रिंशत्पार्षद्यादीनि मनुष्येष्वपि च क्रवर्तिबलदेववासुदेवमहामंमलिकादीनि । तिर्यक्ष्वपि यानि कानिचिदिष्टानि जोगजू म्यादौ स्थानानि तानि सर्वाण्यपि विविधानि नानाप्रकाराण्युत्तमाधममध्यमानि तेषु स्था निनस्त्यक्ष्यंति नात्र संशयोविधेयइति । तथाचोक्तं । अशाश्वतानि स्थानानि सर्वाणि दि वि चेह च देवासुरमनुष्याणामृद्धयश्च सुखानिच तथाऽयं ज्ञातिभिः सहंधुभिः सार्धं सहान्यै श्च मित्रैः सुहृद्भिर्यः संवासः सोऽनित्योऽशाश्वतइति । तथाचोक्तं । सुचिरतरमुषित्वा बांध वैर्विप्रयोगः सुचिरमपिहि रंत्वा नास्ति जोगेषु तृप्तिः । सुचिरमपि हि पुष्टं याति नाशं शरीरं ॥

सुचिरमपि विचिंत्यो धर्मएकः सहायइति ॥११॥ चकारौ धनधान्यद्विपदचतुष्पदशरीरादनि त्यत्वनावनार्थौ । अशरणाद्यशेषनावनार्थंचा ऽनुक्तसमुच्चयार्थमुपात्ताविति ॥ १२ ॥

एवमादाय मेहावी, अप्पणो गिद्धिमुद्धरे ॥ आरियं उवसंपज्जे,
सबधम्ममकोवियं ॥ १३ ॥ सहसंमइए णच्चा, धम्मसारं सुणे
तु वा ॥ समुवट्ठिए उ अणगारे पच्चरकाय पावए ॥ १४ ॥

अर्थ-( एवमादायमेहावीके० ) एरीते पंमित पुरुषे अवधारीने (अप्पणोगिद्धिमुद्धरे के० ) पोतानो ममत्व स्वनाव उद्धरे एटले स्वजनादिकने विषे ममत्व नकरे ( आरियंउवसंपज्जेके० ) आर्यजे वीतराग प्रणीत मोक्षमार्गरूप धर्म तेने आदरे तेधर्म केवो छे तोके (सबधम्ममगोवियंके०) सर्व धर्ममांहे प्रधान अगोपित एटले अदूषितछे प्रगटछे ॥१३॥ हवे शुद्धधर्म परिज्ञान जेरीते थाय तेरीते कहेछे. ( सहसंमइएणच्चाके० )जाति स्मरणादिके करी तथा पोतानी मतिये करी जाणीने (वाके०) अथवा अन्य गुर्वादिक पासेथी (धम्मसारंसुणेतुके०) धर्मनो सार जे चारित्र तेने सांनलीने अंगीकार करे(स मुवट्ठिएउअणगारे के० ) पंमित वीर्यें संपन्न एवो साधु संयमने विषे उद्यमवंत थको ( पच्चरकायपावए के० ) पापकर्म जे सावद्यानुष्ठान तेने पच्चरके एटले निराकरे ॥१४॥

॥ दीपिका-सर्वमनित्यमेवमादाय एवं ज्ञात्वा मेधावी आत्मनोगृद्धि ममत्वमुद्धरेत् त्यजेत् आर्यं मोक्षमार्गमुपसंपाद्येताधितिष्ठेदाश्रयेत् । किंनूतं सर्वैः कुतीर्थधर्मैरकोपितोऽ दूषितश्च ॥१३॥ धर्मसारं धर्मरहस्यं ज्ञात्वा (सहसंमइएइत्यादि ) ज्ञातेनतीर्थकरादिन्योवा श्रुत्वा . चारित्रं प्रतिपद्यते । *उपस्थितउत्तरोत्तरगुणसंपत्तयेऽन्युद्यतोऽनगारः प्रत्याख्यातं* निराकृतं पापं येन सप्रत्याख्यातपापकः स्यात् ॥ १४ ॥

॥ टीका-अपिच । ( एवमादायेत्यादि ) अनित्यानि सर्वाण्यपि स्थानानीत्येवमा दायावधार्य मेधावी मर्यादाव्यवस्थितः सदसद्विवेकी वा आत्मनः संबंधिनीं गृद्धिं गार्ध्यं ममत्वमुद्धरेदपनयेन्ममेदमहमस्य स्वामीत्येवं ममत्वं क्वचिदपि न कुर्यात् । तथा । आराज्ञातः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्योमोक्षमार्गस्तमुपसंपद्येताऽधितिष्ठेत् समाश्रये दिति । किंनूतं मार्गमित्याह । सर्वैः कुतीर्थकधर्मैरकोपितोऽदूषितः स्वमहिम्नैव दूष यितुमशक्यत्वात् प्रतिष्ठां गतः । यदिवा सर्वैर्धर्मैः स्वनावैरनुष्ठानरूपैरगोपितं कुत्सित कर्त्तव्यानावात् प्रकटमित्यर्थः ॥ १३ ॥ सुधर्मपरिज्ञानंच यथा नवति तद्दर्शयितुमाह । ( सहसंमइइत्यादि ) धर्मस्यसारः परमार्थोधर्मतारस्तं ज्ञात्वाऽवबुध्य । कथमिति दर्शी

यति। सहसम्मत्या स्वमत्यावा विशिष्टाभिनिबोधिकज्ञानेन श्रुतज्ञानेनावधिज्ञानेन वा स्वप रावबोधकत्वात् ज्ञानस्य तेन सह धर्मस्य सारं ज्ञात्वेत्यर्थः । अन्येभ्योवा तीर्थकरगण धराचार्यादिभ्यश्लापुत्रवत् श्रुत्वा चिलातपुत्रवद्वा धर्मसारमुपगंछति । धर्मस्य वा सारं चारित्रं तत्प्रतिपद्यते तत्प्रतिपत्तौच पूर्वोपात्तकर्मक्षयार्थं पंडितवीर्यसंपन्नोरागादिबंधन विमुक्तोबालवीर्यरहितउत्तरोत्तरगुणसंपत्तये समुपस्थितोऽनगारः प्रवर्धमानपरिणामः प्र त्याख्यातं निराकृतं पापकं सावद्यानुष्ठानरूपं येनाऽसौ प्रत्याख्यातपापकोभवतीति ॥१४॥

जं किंचुवक्कमं जाणे, आउक्खेमस्स अप्पणो ॥ तस्सेव अंतरा खिप्पं, सिक्खं सिक्खेज्ज पंभिए ॥१५॥ जहा कुम्मे सअंगाइं, स ए देहे समाहरे ॥ एवं पावाइं मेधावी, अज्झप्पेण समाहरे ॥ १६ ॥

अर्थ–( जंकिंच के० ) जे कोइ प्रकारे करी ( अप्पणो के० ) पोतानो ( आउक्खेम स्सके०) खेमे कुशले करी आयुष्यनो ( उवक्कमंजाणेके०) उपक्रम एटले विनाश जाणे अर्थात् पोतानुं मरण जाणे (तस्सेवअंतराखिप्पंके०) तेना अंतराले एटले विचाले क्षिप्र एटले उतावलो (सिक्खंसिक्खेज्जपंभिएके०) ते पंभित संलेषणारूप शिक्षा शीखे अने ते शि क्षाने मरणावधि सुधि अंगीकार करे ॥१५॥ (जहाके०) जेम (कुम्मेसअंगाइंके०) कांचवो पोताना अंग तथा हाथ मस्तकादिक उपांगने ( सएदेहेसमाहरे के० ) पोताना देहने विषे गोपवे ( एवं के० ) एरीते ( मेधावी के० ) पंभितजे ठे ते पण ( पावाइं के० ) पापजे सावद्यानुष्ठान रूप तेने ( अज्झप्पेण के० ) अध्यात्म एटले सम्यक् दर्शन ज्ञा नादिक भावनायें करी ( समाहरे के० ) उपसंहरे एटले मरण काल सुधी संलेष णायें करी पापकर्मने निर्जरे ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–आयुःक्षेमस्य स्वायुष उपक्रमं क्षयं जानीयात् ज्ञात्वा च तस्योपक्रमस्य कालस्य वा अंतराले क्षिप्रमेव अनाकुलः पंभितः संलेखनारूपां शिक्षां भक्तपरिज्ञेंगितमर णादिकां वा शिक्षेत् ॥१५॥ यथा कूर्मः स्वान्यंगानि स्वके देहे समाहरेद्गोपायेत् एवं मेधावी पंडितः पापानि पापानुष्ठानान्यध्यात्मना सम्यक् ज्ञानादिभावनया समाहरेदुपसंहरेत्॥१६

॥ टीका–किंचान्यत् ( जंकिंचुवक्कममित्यादि ) उपक्रम्यते संवर्त्यते क्षयमुपनीयते आयुर्येन सउपक्रमस्तं यं कंचन जानीयात् । कस्यायुःक्षेमस्य स्वायुषइति । इदमुक्तं भव ति । स्वायुष्कस्य येन केनचित्प्रकारेणोपक्रमोभावी यस्मिन्वा काले तत्परिज्ञाय तस्योपक्र मस्य कालस्यवा अंतराले क्षिप्रमेवाऽनाकुलोजीविताशंसी पंभितोविवेकी संलेखना

नुरूपां शिक्षां नक्तपरिज्ञेंगितमरणादिकां वा शिक्षेत् । तत्र ग्रहणशिक्षया यथावन्मरण विधिं विज्ञायाऽऽसेवनाशिक्षया सेवेतेति ॥१५॥ किंचान्यत् । (जहाकुम्मेइत्यादि) । यथेत्यु दाहरणप्रदर्शनार्थः । यथा कूर्मः कच्छपः स्वान्यंगानि शिरोधरादीनि स्वके देहे समाहरेन्गोप येदव्यापाराणि कुर्यादेवमनयैव प्रक्रियया मेधावी मर्यादावान् सदसद्विवेकको वा पापानि पापरूपाण्यनुष्ठानान्यध्यात्मना सम्यक् धर्मज्ञानादिनावनया समाहरेदुपसंहरेन्मरणकाले चोपस्थिते सम्यक्संलेखनया संलिखितकायः पंमितमरणेनाऽऽत्मानं समाहरेदिति ॥१६॥

साहरे हत्थपाएय, मणं पंचेंदियाणिय ॥ पावकं च परीणामं, नासा दोसंच तारिसं ॥ १७ ॥ अणुमाणंच मायंच, तं पडिन्नाय पंमिए ॥ (पाठां तरं अइमाणं च माइंच तं परिणाय पंडिए) द्वितीय पाठांतरं (सुयंमे इहमेगेसिं, एयं वीरस्स वीरियं (तृतीय पाठांतरं । आयतठं समादा य एयं वीरस्स वीरियं) ॥ सातागारवणिहुए, उवसंते णिहेचरे ॥ १८ ॥

अर्थ-( साहरे हत्थपाएयके० ) काचवानी पेरे हाथ पग अंगोपांगादिकने गोपवीराखे (मणंपंचेदियाणियके० ) तथा मनना अकुशल व्यापार तथा श्रोत्रादिक सर्व इंद्रिउंना विषय थकी निवर्त्ते तथा (पावकंचपरीणामंके० ) मननो पाप मय परिणाम एटले मागो अनिप्राय (नासादोसंचतारिसंके० ) ज्यारे कांइ प्रयोजन पडे त्यारे तेवोजजे पापरूप नाषानो दोष तेने पण संवरे ॥१७॥ तथा कोइ पूजा सत्कार करे तेवारे मान टालवुं ते आश्री कहेछे. (अणुमाणंच मायंचके० ) अल्पमान अल्पमाया अने चकारथकी अनुक्रमे क्रोध तथा लोन पण लेवो ( तंपडिन्नाय पंमिए के० तेने जाणीने पंमित विवेकी जन होयते अंहीं पा ठांतरे अइमाणमिति अत्यंतमान अत्यंतमाया तेमज अत्यंत क्रोध अने लोन एनो सर्वथा प्रकारे त्याग करे एम पण कहुंछे बीजुं पाठांतर (सुयंमेइ हमेगेसिं के० ) एरीते में गु रुनी पासेथी सम्यक् प्रकारे सांनलयुंछे के ( एयंवीरस्स वीरियं के० ) ए क्रोधादिकना जय थी वीर पुरुषनुं वीर्य पराक्रम जाणवुं पण जे संग्राममां शत्रुने ह णेते परमार्थे वीर सुनट नकहेवाय त्रीजुंपाठांतर (आयतठंके० ) मोक्षनो अर्थि आत्मस्थित एवो साधु (स मादायके० ) ते चारित्रने रुडीरीते ग्रहण करीने पछी क्रोधादिकने जीतवानो उद्यम करे (एयंवीरस्सवीरियंके० ) ए प्रकारे वीर पुरुषनुं वीर्य जाणवो तथा ( सातागारवणिहुए के० ) सातागारवने विषे निवृत्त एटले अनुद्युक्त अर्थात् साता गारवे करी रहित तथा ( उवसंतेणिहेचरे के० ) उपशांत एटले कषायना जीतवा थकी क्षमावान् तथा माया रहित छतो संयमानुष्टान आचरे ए शुद्ध मार्गनो नाव जाणवो ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–अनशने शेषकाले वा हस्तौ पादौच संहरेद्व्यापारान्निवर्तयेत्। तथा मन श्चित्तं पंचेंद्रियाणि च विषयेभ्योनिवर्तयेत् पापकमशुभं परिणामं भाषादोषं च सावद्यां भाषां संहरेत्॥१७॥ आयतार्थं मोक्षं सुष्ठु आदाय गृहीत्वा कामक्रोधादिकं जयेत् एत द्वीरस्य वीरत्वं तथा सातगौरवं सुखशीलता तत्र निवृतोऽनुद्यमउपशांतः क्षमावान् नविद्यते निहा माया यस्यासावनिहोमायाप्रपंचरहितश्चरेत्संयमे ॥ १८ ॥

---

॥ टीका–संहरणप्रकारमाह (साहरेत्यादि) पादपोपगमने इंगितमरणे भक्तपरिज्ञा यां शेषकाले वा कूर्मवद्धस्तौ पादौ च संहरेद्व्यापारान्निवर्त्तयेत्। तथा मनोऽतःकरणं तच्चाऽकुशलव्यापारेभ्योनिवर्तयेत्। तथा शब्दादिविषयेभ्योऽनुकूलप्रतिकूलेभ्योऽरक्तद्वि ष्टतया श्रोत्रेंद्रियादीनि पंचाऽपींद्रियाणि। चशब्दः समुच्चये। तथा पापकं परिणाममैहि कामुष्मिकाशंसारूपं संहरेदित्येवं भाषादोषंच तादृशपापरूपं संहरेत् मनोवाक्काय गुप्तः सन् डुर्लभं संयममवाप्य पंडितमरणं वाऽशेषकर्मक्षयार्थं सम्यगनुपालयेदिति। तंच संयमे पराक्रममाणं कश्चित् पूजासत्कारादिना निमंत्रयेत्। तत्राऽऽत्मोत्कर्षोन का र्यइति दर्शयितुमाह ॥ १७ ॥ (अणुमाणं चेत्यादि) चक्रवर्त्यादिना सत्कारादिना पूज्य मानेनाऽणुरपि स्तोकोऽपि मानोऽहंकारोन विधेयः किमुत महान्। यदि वोत्तममरणो पस्थितेनोग्रतपोनिष्टप्तदेहेन वा अहोऽहमित्येवंरूपस्तोकोऽपि गर्वोन विधेयः। तथा पंडुरार्ययेव स्तोकाऽपि माया न विधेया किमुत महतीत्येवं क्रोधलोभावपि न विधेयावि ति। एवं द्विविधयापि परिज्ञया कषायांस्तद्विपाकांश्च परिज्ञाय तेभ्योनिवृत्तिं कुर्यादिति। पाठांतरंवा। अइमाणंचमाइंच तंपरिन्नायपंडिए। अतीव मानोतिमानः सुभूमादीनामिव तं दुःखावहमित्येवं ज्ञात्वा परिहरेत्। इदमुक्तं भवति। यद्यपि सरागस्य कदाचिन्मानोदयः स्या त्तथाप्युदयप्राप्तस्य विफलीकरणं कुर्यादित्येवं मायायामप्यायोज्यं। पाठांतरंवा। (सुयं मे इहमेगेसिं, एयं वीरस्स वीरियं।) येन बलेन संग्रामशिरसि महति सुभटे परानीकं वि जयते तत्परमार्थतोवीर्यं नभवत्यपितु येन कामक्रोधादीन् विजयते तद्वीरस्य म हापुरुषस्य वीर्यमिहैवाऽस्मिन्नेव संसारे मनुष्यजन्मनि चैकेषां तीर्थकरादीनां संबंधि वाक्यं मया श्रुतं वा। पाठांतरंवा। (आयतट्ठं समादाय, एवं वीरस्स वीरियं) आ यतोमोक्षोऽपर्यसितावस्थानत्वात्। सचाऽसावर्थश्च तदर्थोवा तत्प्रयोजनोवा सम्यक् दर्शनज्ञानचारित्रमार्गः सआयतार्थस्तं दृष्ट्वाऽऽदाय गृहीत्वा योधृतिबलेनकामक्रोधादि विजयाय च पराक्रमते। एतद्वीरस्य वीर्यमिति यडुक्तमासीत् किंतु वीरस्य वीरत्वमिति तद्यथाभवति तत्तथाख्यातं। किंचाऽन्यत्, सातगौरवं नाम सुखशीलता तत्र निवृत स्तदर्थमनुद्युक्तइत्यर्थः। तथा क्रोधाग्निजयादुपशांतः शीतीभूतः शब्दादिविषयेभ्यो

ऽप्यनुकूलप्रतिकूलेन्योऽरक्तद्विष्टतयोपशांतोजितेंद्रियत्वात्तेन्योनिवृत्तइति । तथा निहन्यं ते प्राणिनः संसारे यया सा निहा माया नविद्यते सा यस्याऽसावनिहोमायाप्रपंच रहितइत्यर्थः । तथा मानरहितोलोनवर्जितइत्यपि इष्टव्यं । सचैवंनूतः संयमानुष्ठानं चरेत् कुर्यादिति । तदेवं मरणकालेऽन्यदा वा पंडितोवीर्यवान् महाव्रतेपूद्यतः स्यात् । तत्राऽपि प्राणातिपातविरतिरेव गरीयसीति कृत्वा तत्प्रतिपादनार्थमाह । ( उड्ढमहे तिरियंवा जेपाणा तसथावरा ॥ सवउ विरतिं कुका, संति निवाणमाहियं॥१॥ ) अयंच श्लोकोन सूत्रादर्शेषु दृष्टष्टीकायांतु दृष्टइति कृत्वा लिखितउत्तानार्थश्चेति ॥ १८ ॥

पाणेय णाइवाएज्जा, अदिन्नं पियणादए॥ सादियं ण मुसं बूया एस धम्मे वुसीमउ ॥ १९ ॥ अतिक्कम्मंति वायाए,मणसा वि न पडए ॥ सवउ संवुम्मे दंते, आयाणंसु समाहरे ॥ २० ॥

अर्थ-( पाणेयणाइवाएज्जा के० ) प्राणीउना प्राणने हणे नही ( अदिन्नं पियणा दए के० ) तथा दंत शोधनमात्र पण अदत्त लीए नही ( सादियंणमुसंबूया के० ) मा या सहित मृषावाद न बोले केम के परवंचना निमित्त जे मृषा बोलाय ले ते मायावि ना बोलातुं नथी किंतु माया सहितज बोलायछे ते माटे मृषानी आदि ते मायाज जाणवी तेवी मायाने परिहरे त्यागे ( एसधम्मेवुसीमउ के० ) संयमवंतनो तथा जी तेंद्रिय साधुनो एहिज धर्म सत्य जाणवो ॥ १९ ॥ ( अतिक्कम्मंतिवायाए के० ) महा व्रतोनुं अतिक्रम एटले उल्लंघन करवानी वचने करी ( मणसाविनपडए के० ) तथा मने करी पण प्रार्थना करे नही ए वचनेना निषेधवा थकी त्रीजो कायानो अतिक्रम दूर थकीज निषेध्यो एम पोतानी मेलेज जाणी लेवो (सवउसंवुमेदंते के०) सर्व थकी करण करावण तथा अनुमतियें करी बाह्याभ्यंतर नेदेकरी संवृत गुप्तेंद्रिय एवो उतो (आयाणं सुसमाहरे के०) आदान एटले सम्यक् दर्शनादिकनुं ग्रहण करे तथा सुषुआ हार ग्रहण करे एम ग्रहण करेली चारित्रने सम्यक् प्रकारे शुद्ध क्रियासहित पाले.॥२०॥

॥ दीपिका-प्राणिनां प्राणान् नातिपातयेत् परेणाऽदत्तं किंचिन्नाददीत नगृह्णीयात् सह आदिना मायया वर्तते इति सादिकं समायं मृषावादं न ब्रूयात्।परवंचनार्थं मृषावा दोऽधिक्रियते च न मायामंतरेण स्यात्ततोमृषावादस्य माया आदिनूता ।कोर्थः। योहि परवंचनार्थं समायोमृषावादः सत्यज्यते । यस्तु संयमगुप्त्यर्थं नमया मृगादृष्टाइत्यादि कः स न दोषाय ( एसधम्मोवुसीमउत्ति ) वस्तुमतः वस्तूनि ज्ञानादीनि विद्यते यस्य स वस्तुमान् साधुस्तस्य अथवा वश्यस्य वशीकृतेंद्रियस्येत्यर्थः ॥ १९ ॥ अतिक्रमं महाव्र

तातिचारइत्येवंनूतं वा मनसापि न प्रार्थयेत् । कायेनापि सर्वतः सबाह्याभ्यंतरतः संवृतोगुप्तोदांतइंद्रियदमेन आदानं सम्यक्दर्शनादिकं सुष्टु आहारं गृण्हीयात् ॥ २० ॥

॥ टीका–किंच ( पाणेइत्यादि ) प्राणप्रियाणां प्राणिनां प्राणान्नातिपातयेत् । तथा परेणाऽदत्तं दंतशोधनमात्रमपि नाददीत नगृण्हीयात् । तथा । सहादिना मायया वर्त्तत इति सादिकं समायं मृषावादं न ब्रूयात् । तथाहि । परवंचनार्थं मृषावादोऽधिक्रियते सच न मायामंतरेण नवतीत्यतोमृषावादस्य माया आदिनूता वर्त्तते । इदमुक्तं नवति । योहि परवंचनार्थं समायोमृषावादः सपरिह्रियते । यस्तु संयमगुप्त्यर्थं नमया मृगाउप लब्धाइत्यादिकः सन दोषायेति । एषयः प्राक् निर्दिष्टो धर्मः श्रुतचारित्राख्यस्वनावोवा ( वुसीमउत्ति ) ग्रांदसत्वान्निर्देशार्थस्त्वयं । वस्तूनि ज्ञानादीनि तद्वतोज्ञानादिमतइत्यर्थः । यदिवा । ( वुसीमउत्ति ) वश्यस्य आत्मवशगस्य वश्येंद्रियस्येत्यर्थः ॥ १९ ॥ अपिच (अइक्कमंतीत्यादि) प्राणिनामतिक्रमं पीडात्मकं महाव्रतातिक्रमंवा मनोऽवष्टब्धतया पर तिरस्कारंवा इत्येवंनूतमतिक्रमं वाचा मनसाऽपि न प्रार्थयेत् । एतद्द्वयनिषेधेच कायातिक्रमोदूरतएव निषिद्धोनवति । तदेवं मनोवाक्कायः कृतकारितानुमतिनिश्च नवकेन नेदेनातिक्रमं न कुर्यात् । तथा इंद्रियदमनेन तपसा वा दांतः सन् मोक्षस्यादानमुपादानं सम्यग्दर्शनादिकं सुष्ठूयुक्तः सम्यग्विस्रोतसिकारहितआहरेत् आददीत गृण्हीयादित्यर्थः॥२०॥

कडंच कज्जमाणंच, आगमिस्संच पावगं ॥ सव्वं तं णाणुजाणंति,
आयगुत्ता जिइंदिया ॥२१॥ जे अवुद्धा महान्नागा, वीरा अस
मत्त दंसिणो ॥ असुद्धं तेसि परक्कंतं,सफलं होइ सव्वसो ॥२२॥

अर्थ–( कडंचकज्जमाणंच के० ) साधुने उद्देशीने जे कोइ अनार्य पुरुषे कर्युं एवुं जे पाप तथा वर्त्तमान काले जे पाप करेने ( आगमिस्संचपावगंके० )तथा आगामिक काले जे पाप कर्म सावद्यानुष्ठान आरंनादिक साधुने अर्थे जे करशे ( सव्वंतंणाणुजाणं ति के० ) ते सर्वने मन वचन अने कायायें करी अनु मोदे नही ते कोण अनुमोदे नही तोके ( आयगुत्ताजिइंदिया के० ) जे महानुनाव आत्मगुप्त जितेंद्रिय होय ते एवा पाप कृत्यने अनुमोदे नही. ॥ २१ ॥ ( जेअबुद्धामहान्नागा के० ) जे अबुद्ध तत्व मार्गना अजाण परंतु व्याकर्णादिक नणेला तेथी लोक मांहे पूज्य मोटा केवाय एवा ( वीरा के० ) वीर पुरुष पण ( असमत्तदंसिणो के० ) सम्यक्त्व परिज्ञान थकी विकल होय ( असुद्धंतेसिपरक्कंतं के० ) एवा पुरुषनुं जे कांइ दान तप नियमादिकने विषे पराक्रम एटले उद्यम ते अशुद्ध जाणवो ( सफलंहोइसव्वसो के० ) ते सर्व कर्मबंधना

कारणने विषे सफल थाय पण मूर्ख वैद्यनी चिकित्सानी पेरे कर्म निर्जराना कारण ने विषे सफल न थाय ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–साधूद्देशेन यदन्यैः कृतं पापकं कर्म तथा वर्तमाने काले क्रियमाणं तथा आगामिकाले यत्करिष्यते तत्सर्वं नानुजानंति नानुमोदंते आत्मगुप्ताजितेंद्रियाः साधवः ॥ २१ ॥ अबुद्धाअज्ञातपरमार्थाव्याकरणशुष्कतर्कादिज्ञानेन जातमदाअपि तत्वानवबोधादज्ञातपरमार्थाएव । यदुक्तं । शास्त्रावगाहपरिघट्टनतत्परोपि नैवाबुधः समभिगच्छति वस्तुतत्वं ॥ नानाप्रकाररसजावगतापि दर्वी स्वादं रसस्य सुचिरादपि नैव वेत्ति॥१॥ अबुधाअपि महानागाः । नागशब्दः पूजावाची । कोर्थः । अपंडिताअपि त्यागादिगुणै र्लोकपूज्यावीराः सुभटवादं वहंतोप्यसम्यक्दर्शनामिथ्यादृष्टयइत्यर्थः । तेषां बालानां पराक्रांतमनुष्ठानमशुद्धं नशुद्धिहेतु प्रत्युत कर्मबंधाय तत्पराक्रांतं सहफलेन कर्मबंधेन वर्ततइति सफलं सर्वतः स्यात् ॥ २२ ॥

॥ टीका–तथा किंचाऽन्यत् । ( कडंवेत्यादि ) । साधूद्देशेन यदपरैरनार्यकल्पैः कृतमनुष्ठितं पापकं कर्म तथा वर्त्तमानेच काले क्रियमाणं तथाऽऽगामिनिच काले यत्करिष्यते तत्सर्वं मनोवाक्कायकर्मभिर्नानुजानंति नाऽनुमोदंति तदुपभोगपरिहारेणेति भावः । यद्यप्यात्मार्थं पापकं कर्म परैः कृतं क्रियते करिष्यते च । तद्यथा । शत्रोः शिरश्छिन्नं छिद्यते छेत्स्यतेवा तथा चौरोहतोहन्यते हनिष्यते वा इत्यादिकं परानुष्ठानं नाऽनुजानंति नच बहुमन्यंते । तथाहि । यदि परः कश्चिदशुद्धेनाहारेणोपनिमंत्रयेत्तमपि नानुमन्यंतइति । कएवंभूताभवंतीति दर्शयति । आत्माऽकुशलमनोवाक्कायनिरोधेन गुप्तोयेषां ते तथा जितानि वशीकृतानि इंद्रियाणि श्रोत्रादीनि यैस्ते तथा एवंभूताः पापकर्म नाऽनुजानंतीति स्थितं ॥ २१ ॥ अन्यच्च ( जेयाबुद्धाइत्यादि ) ये केचनाऽबुद्धाधर्मं प्रत्यविज्ञातपरमार्थाव्याकरणशुष्कतर्कादिपरिज्ञानेन जाताऽवलेपाः पंमितमानिनोऽपि परमार्थवस्तुतत्वाऽनवबोधादबुद्धाइत्युक्तं । नच व्याकरणपरिज्ञानमात्रेण सम्यक्त्वव्यतिरेकेण तत्वाववोधोभवतीति । तथा चोक्तं । शास्त्रावगाहपरिघट्टनतत्परोऽपि नैवाऽबुधः समभिगच्छति वस्तुतत्वं ॥ नानाप्रकाररसभावगताऽपि दर्वी, स्वादं रसस्य सुचिरादपि नैव वेत्ति ॥१॥ यदिवाऽबुद्धाऽइव बालवीर्यवंतस्तथा महांतश्चते नागाश्च महानागाः । नागशब्दः पूजावचनः । ततश्च महापूज्याइत्यर्थः । लोकविश्रुताइति । तथा वीराः परानीकभेदिनः सुभटाऽति । इदमुक्तं भवति पंमिताअपि त्यागादिभिर्गुणैर्लोकपूज्याः । अपिच । तथा सुभटवादं वहंतोऽपि सम्यक्तत्वपरिज्ञानविकलाः केचन भवंतीति दर्शयति । न सम्यगसम्यक् तद्भावोऽसम्यक्त्वं तद्दृष्टं शीलं येषांते तथा मिथ्यादृष्टयइत्य

र्थः। तेषां च बालानां यत्किमपि तपोदानाध्ययनयमनियमादिषु पराक्रांतमुद्यमकृतस्तद शुद्धमविशुद्धकारि प्रत्युत कर्मबंधाय भावोपहतत्वात् सनिदानत्वाद्वेति कुवैद्यचिकित्सा वद्विपरीतानुबंधीति । तत्र तेषां पराक्रांतं सह्फलेन कर्मबंधेन वर्ततऽति सफलं सर्वश इति सर्वाऽपि तत्क्रिया तपोनुष्ठानादिका कर्मबंधायैवेति ॥ २२ ॥

जेय बुद्धा महाभागा, वीरा सम्मत्तदंसिणो॥सुद्धं तेसिं परकंतं, अफलं होइ सव्वसो ॥ २३॥ तेसिंपि तवो असुद्धो, निरकंता जे महाकुला ॥ जन्ने वन्ने वियाणंति, नसिलोगं पवेज्जए ॥ २४ ॥

अर्थ-( जेयबुद्धामहाभागा के० ) जे शुद्ध तत्व मार्गना जाण एवा तीर्थंकरादिक मोटा पूज्य पुरुष ( वीरासम्मत्तदंसिणो के० ) घनघाती कर्म विदारवाने सूरवीर सम्य क्त्व दृष्टि होय ( सुद्धंतेसिंपरकंतं के० ) तेमनो जेटलो नियमादिक क्रिया अनुष्ठा नने विषे उद्यमने ते सर्व शुद्ध निर्मल जाणवो ( अफलंहोइसव्वसो के० ) ते सर्व उ द्यम कर्मबंधना कारणने विषे अफल थाय किंतु सुवैद्यचिकित्सानीपेरे ते कर्म निर्जरा नुं कारण थाय ॥२३॥ तेसिंपितवोअसुद्धोके०) तेनुं तपजे अनशनादिक ते पण अशुद्ध जाणवुं ते कोनुं अशुद्ध जाणवुं तोके(निरकंताजेमहाकुलाके०)जेमोटा इक्ष्वाकादिक कुल तेथकी नीकलीने चारित्रिया थया छता पण ( जन्नेवन्नेवियाणंति के० ) जे मुनीश्वर पू जा सत्कारने अर्थे तप करे तेनो तप पण निःफल माटे अशुद्ध जाणवो अने जे त प करतां अनेरा गृहस्थादिक जाणे नही (नसिलोगंपवेज्जए के०) जे तपमां पोतानी श्लाघा प्रसंसा नबोले ते तप आत्मनेहिते जाणवो ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—ये बुद्धाज्ञाततत्वामहाभागामहापूजाभाजोवीराः सम्यक्दर्शनास्तज्ज्ञा स्तेषां यत्पराक्रांतमनुष्ठितं तत् शुद्धमफलं कर्मबंधरहित भवति सर्वतः ॥२३ ॥ महत्कु लं येषांते महाकुलानिष्क्रांताः प्रव्रजितास्तेषामपि पूजासत्काराद्यर्थं यत्तपस्तदशुद्धं स्यात् यत्तपः क्रियमाणं नान्ये विजानंति तत्कार्यं नैवात्मश्लाघां प्रवेदयेत् प्रकाशयेत्॥ २४ ॥

॥ टीका—सांप्रतं पंमितवीर्येणाधिकृत्याह । (जेयबुद्धाइत्यादि) ये केचन स्वयंबुद्धास्ती र्थकराद्यास्तच्छिष्यावा बुद्धबोधितागणधरादयोमहाभागामहापूजाभाजोवीराः कर्मविदार णसहिष्णवोज्ञानादिभिर्वा गुणैर्विराजंतइतिवीराः । तथा सम्यक्त्वदर्शिनः परमार्थतत्व वेदिनस्तेषां भगवतां यत्पराक्रांत तपोऽध्ययनयमनियमादावनुष्ठित तच्छुद्धमवदातं निरु परोधं सातगौरवशल्यकषायादिदोषाकलंकितं कर्मप्रतिबंधमफलं भवति तन्निरनुबंधनि

र्जरार्थमेव नवतीत्यर्थः । तथाहि । सम्यक्दृष्टीनां सर्वमपि संयमतपःप्रधानमनुष्ठानं नवति संयमस्य चानाश्रयरूपत्वात् तपसश्च निर्जराफलत्वादिति । तथाच पठ्यते । ( संयमेणएह्यफलेतवेवोदाणफलेइति ) ॥ २३ ॥ किंचाऽन्यत् ( तेसिंपीत्यादि ) मह त्कुलमिक्ष्वाकादिकं येषांते महाकुलालोकविश्रुताः शौर्यादिनिर्गुणैर्विस्तीर्णयशस्तेषा मपि पूजासत्काराद्यर्थमुत्कीर्त्तनेन वा यत्तपस्तदशुद्धं नवति । यच्च क्रियमाणमपि तपो नैवाऽन्ये 'दानश्रद्धादयोजानंति तत्तथानूतमात्मार्थिना विधेयं । अतोनैवात्मश्लाघां प्रवेदयेत् प्रकाशयेत् । तद्यथा । देवत्तमकुलीन इन्योवा सांप्रतं पुनस्तपोनिष्टप्तदेहइति । एवं स्वयमाविष्करणेन न स्वकीयमनुष्ठानं फल्गुतामापादयेदिति ॥ २४ ॥

अप्पपिंमासि पाणासि, अप्पं नासेक्क सुवए ॥ खंते निनिवुमे दंते, वीतगिद्धी सदा जए ॥ २५ ॥ जाणजोगं समाहट्टु, कायं विउसेक्क सव्वसो ॥ तितिक्खं परमं णच्चा आमोक्खाए परिवएक्का सित्ति बेमि ॥ २६ ॥ इतिश्रीवीरिइनाममष्ठमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ–( अप्पपिंमासिपाणासिके० ) अल्पाहारनो जमनार तथा अल्प पाणीनो वापरनार ( अप्पंनासेक्कसुवए के० ) तथा सुव्रति साधु अल्प नाषणनुं करनार परने हि तरूप वचननु बोलनार ( खंतेनिनिवुमेदंतेके० ) क्षमावंत क्रोधादिकना उपशम थकी कषायने अनावे सीतल परिणामि तथा इंद्रिर्डनो दमनार ( वीतगिद्धीके० ) लोलुपता र हित ( सदाजएके० ) एरीते साधु जे छे ते सर्व काल संयमने विषे यत्न करे ॥ २५ ॥ ( झाणजोगंसमाहट्टुके० ) शुनध्यान एटले धर्मध्यानादिकना योग तेने सम्यक् आदरीने *( कायंविउसेक्कसव्वसोके० ) कायाना अकुशल योगनी प्रवर्त्तिनो त्याग करे सर्वथा प्रकारे* हस्त पादादिके करी पण परने पीडा नकरे ( तितिक्खंपरमंणच्चा के० ) तितिक्षा एटले परीसह अने उपसर्गनुं जे सहन करवुं तेने परम प्रधान कर्म निर्जरानुं कारण जाणीने ( आ मोक्खाएपरिवएक्कासिके० ) ज्यांसुधी मोक्ष नपामे त्यांसुधी दीक्षा पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्व वत् जाणवो ॥ २६ ॥ इतिश्रीवीर्यनामा आठमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

---

॥ दीपिका–अल्पं पिंडमश्नातीति अल्पपिंडाशी एवं पानेपि योज्यं । यदागमः । अठ्ठ कुक्कुडिअंअप्पमाणे कवले आहारेमाणे अप्पाहारे डुवालसकवलेहिं अवट्टमो अरिआ सोलसहिं १ डुनागयते २ चउवीसेहिं पत्तणोमो अरिअरि आतीसेहिंपमाणवत्तो बीतीसहिं पुणेहारेत्ति । अतएवैकैकवलहान्या ऊनोदरता कार्या । एवं पाने उपकरणे च ऊनोदरतां कुर्यात् । यडुक्तं । थोवीहारोथोवनणि अवजोहोइथोवनिद्दो । अथोवोवहि उ

वगरणो तस्सहुदेवा विपणमंतीति । अल्पं जापते यः सुव्रतः क्रोधाद्युपशमात् क्षांतोऽनिनिर्वृतोलोभालोभजयादनातुरोदांतोजितेंद्रियस्तथा वीतगृद्धिर्निरीहः सदा यतेत संयमे ॥ कषाया यस्य नोच्छिन्ना यस्य नात्मवशं मनः ॥ इंद्रियाणि नगुप्तानि प्रव्रज्या तस्य जीविकेति ॥२५॥ ध्यानं धर्मध्यानादि तत्र योगोमनोवाक्कायव्यापारस्तं समाहृत्य सम्यगाहृत्य कार्यं देहं सर्वतोव्युत्सृजेत् त्यजेत् तथा तितिक्षां क्षांतिपरीषहादिसहनरूपां परमां प्रधानां ज्ञात्वा आमोक्षाय सर्वकर्मक्षयाय परिव्रजेत् संयमक्रियां कुर्यादिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२६॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां वीर्याख्यमष्टमाध्ययनं समाप्तं ॥ ८ ॥

---

॥ टीका–अपिच अप्पपिंमाइत्यादि । अल्पं स्तोकं पिंमशितुं शीलमस्याऽसावल्पपिंमाशी यत्किंचनाशीति जावः । तथाचाऽऽगमः । हेजंतवआसीयजहतहवसुहोवगयनिद्दा॥ जेणवतेणसंतुठ, वीरमुणिउ सितेअप्पा ॥ १ ॥ तथा ( अठ्ठकुक्किअंमगमत्तप्पमाणेकवलेआहरे माणे अप्पाहारे डुवालसकवलेहिं ॥ २ ॥ अवड्ढोमोयरिया । सोलसेहिंडुनागपत्ते ॥ चउवीसंउमोदरियांसंपमाणपत्ते वत्तीसंकवलासंपुमहारे ॥ ३ ॥ अतएकैककवलाद्दान्यादिनोदरता विधेया । एवं पाने उपकरणेवोचोनोदरतां विदध्यादिति । तथाचोक्तं । थोवाहारोथोवजणिउअजोहोइ थोवनिद्दोअ ॥ थोवोवहिउपकरणेतस्सहुदेवाविपणमंति ॥ तथा सुव्रतः साधुरल्पं परिमितं हितं च जापेत सर्वदा विकथारहितोजवेदित्यर्थः। जावातऔदर्यमधिकृत्याह । जावतः क्रोधाद्युपशमात् क्षांतः क्षांतिप्रधानस्तथाऽनिनिर्वृतोलोभादिजयान्निरातुरस्तथा इंद्रियनोइंद्रियदमनाद्दांतोजितेंद्रियः । तथाचोक्तं । कषायायस्य नोछिन्ना, यस्य नात्मवशंमनः । इंद्रियाणि न गुप्तानि, प्रव्रज्या तस्य जीवनं ॥१॥ एवं विगता गृद्धिर्विषयेषु यस्य सविगतगृद्धिराशंसादोषरहितः सदा सर्वकालं संयमानुष्ठाने यतेत यत्नं कुर्यादिति ॥ २५.॥ अपिच ( काणजोगमित्यादि । ध्यानं चित्तरोधलक्षणं धर्मध्यानादिकं तत्र योगोविशिष्टमनोवाक्कायव्यापारस्तं ध्यानयोगं समाहृत्य सम्यगुपादाय कायं देहमकुशलयोगप्रवृत्तं व्युत्सृजेत् परित्यजेत् । सर्वतः सर्वेणाऽपि प्रकारेण हस्तपादादिकमपिपरपीडाकारि न व्यापारयेत् । तथा तितिक्षां क्षांतिपरीषहोपसर्गसहनरूपां परमां प्रधानां ज्ञात्वा आमोक्षायाऽशेपकर्मक्षयं यावत्परिव्रजेदिति संयमानुष्ठानं कुर्यास्त्वमिति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २६ ॥ समाप्तं चाऽष्टमं वीर्याख्यमध्ययनमिति ॥

हवे नवमुं अध्ययन प्रारंजियेबैयें. आठमां अध्ययनमां बालनुं अने पंमितनुं वीर्य कह्युं तेमां पण पंमितना वीर्यनुं जे धर्म ते धर्मने विषे साधु उद्यम करे तेमाटे आ नवमां अध्ययनमां ते धर्मनुं स्वरूप कहेबे.

कयरे धम्मे अरकाए, माहणेण मतीमता ॥ अंजुधम्मं जहात
चं, जिणाणं तं सुणेहमे ॥ (पाठांतरे। जणगातं सुणेहमे ॥
॥ १ ॥ माहणा खत्तिया वेस्सा, चंमाला अड वोकसा॥ एसिया
वेसिया सुद्दा, जेय आरंनणिस्सिया॥ २ ॥

अर्थ–श्रीसुधर्मस्वामि प्रत्यें श्रीजंबूस्वामि बे हाथ जोडीने पुढेछे, के (माहणेणम तीमता के०) माहण मतिमंत एटले केवली नगवंत एवा श्रीमहावीर देव तेणे (क यरेधम्मेअरकाए के०) सम्यक् प्रकारे करीने केवा प्रकारनो धर्म कह्योछे एम श्रीजंबुस्वा मियें पुढ्या थका, श्री सुधर्म स्वामि बोल्या, (अंजुधम्मं के०) श्रीवीतराग प्रणीत धर्म ते रुजु एटले सरल शुद्ध (जहातचं के०) साचो यथावस्थित (जिणाणंतंसुणेहमे के०) एवो धर्म श्रीतीर्थंकरनुं कहेलो तेहुं कहुंबुं ते तमे सांनलो पाठांतरं (जणगातं सुणेहमेके०) एवो धर्म ते अहो जन, एटले लोको हुं कहुंबुं, ते प्रत्ये तमे सांनलो ॥ १ ॥ (माहणाखत्तियावेस्सा के०) ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य अने (चंमाला के०) चांमाल निषाद (अडके०) अथवा (वोकसा के०) वोकसते अवांतरजाति तेमां जे ब्राह्मण अने शुद्रथकी उत्पन्न थयो ते, निषाद एटले चांमाल अने ब्राह्मण तथा वै श्यनी स्त्रीथी थयो ते अंबष्ठ, चंमालणी अने ब्राह्मण थकी थयो ते वोकस अंहीं माता पितानो पक्ष जूदो जाणवो (एसिया के०) मृगलुब्धकः हस्तितापसादिक (वे सिया के०) वणिकादिक व्यापारमां आजीविका करनार (सुद्दा के०) शूद्र करसणी प्रमुख (जेयआरंनणिस्सिआ के०) इत्यादिक जे छे ते आरंनना करनार छे, तेमज बीजा पण पाखंमी प्रमुख आरंनना करनार अनेकछे. ॥ २ ॥

---

॥ दीपिका–अथ नवमाध्ययनं। पूर्वाध्ययने बालपंडितवीर्यमुक्तं पंडितवीर्यंच तदेव य न्धर्मं प्रति उद्यमं कुरुते अतोत्र धर्मः प्रोच्यते। तस्येदमादिसूत्रं। (कतरेत्ति) जंबूनामा सु धर्माणमुद्दिश्याह। कतरोधर्मयाख्यातोमाहनेन श्रीवीरेण मतिमता ज्ञानवता। सुध र्मा आह। रुजुमवक्रं यथातथ्यं सत्यं जिनानां तं धर्मं मम कथयतः शृणुत यूयं ॥ १ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याश्चांडालाअथ वोकसाअवांतरजातीयाः। तद्यथा। ब्राह्मणेन शूद्र्यां जातोनिषादः। ब्राह्मणेनैव वैश्यायां जातोंऽबष्ठः। तथा निषादेनांबष्ठ्यां जातो वोकस। एषिकामृगलुब्धकाहस्तितापसाश्च ये मांसहेतोर्मृगान् हस्तिनश्च एषंति वैश्यावणि जोमायाप्रधानाः कलाजीविन शूद्राः कृषीवलादयः येचान्ये नानाविधारंननिश्रिताः।२॥

---

॥ टीका–अष्टमानंतरं नवमः समारभ्यते ॥ अस्य चायमनिसंबंधः। इहानंतराध्यय

ने बालपंमितनेदेन द्विरुपं वीर्यं प्रतिपादितं । अत्राऽपि तदेव पंडितवीर्यं धर्मं प्रति यदुद्य मं विधत्ते अतोधर्मः प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेन धर्माध्ययनमायातं । अस्य चत्वार्यनुयो गद्वाराणि उपक्रमादीनि प्राग्वत् व्यावर्णनीयानि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽ र्थाधिकारोऽ यं । तद्यथा । धर्मोऽत्र प्रतिपाद्यतइति तमधिकृत्य निर्युक्तिकदाह । ( धम्मोपुव्वुद्दिहो नावधम्मेण एउ अहिगारो । एसेच होइ धम्मं, एसेवसमाहिमग्गोत्ति १ ।(धम्मोपुव्वुद्दिहोइत्यादि ) । डुर्गतिगमनधरणलक्षणोधर्मः प्राक् दशवैकालिकश्रुतस्कंधषष्ठाऽध्ययने ध र्मार्थिकामाख्ये उद्दिष्टः प्रतिपादितः । इहतु नावेन धर्मेणाधिकारः । एषएवच नावधर्मः पर मार्थतोधर्मोनवति । अमुमेवार्थमुत्तरयोरप्यध्ययनयोरतिदिशन्नाह । एषएवच नावसमा धिर्नावमार्गश्च नवतीत्यवगंतव्यमिति । यदि वैषएवच नावधर्मएषएवच नावसमाधि रेषएवच तथा नावमार्गोनवति नतेषां परमार्थतः कश्चिन्नेदः । तथाहि । धर्मः श्रुतचारि त्राख्यः क्षांत्यादिलक्षणोवा दशप्रकारोनवेत् नावसमाधिरप्येवंप्रकारएव । तथाहि । सम्यगा धानमारोपणं गुणानां क्षांत्यादीनामिति समाधिः । तदेव मुक्तिमार्गोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्रा ख्योनावधर्मतया व्याख्यातयितव्य इति॥ सांप्रतमतिदिष्टस्यापिस्थानाशून्यान्यार्थं धर्मस्यना मादिनिक्षेपं दर्शयितुमाह ।(णामंठवणाधम्मो,दव्वधम्मोय नावधम्मोय । सचित्ताचित्तमीस ग,गिहत्थदाणेदवियधम्मे।१।) (नामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यनावनेदाच्चतुर्धा धर्मस्य निक्षेपः।तत्राऽपि नामस्थापनेऽनादृत्य ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तोधर्मः सचित्ताचित्तमिश्र नेदात् त्रिधा । तत्राऽपि सचित्तस्य जीवच्छरीरस्योपयोगलक्षणोधर्मः स्वनावः । एवमचित्ता नामपि धर्मास्तिकायानां योयस्य स्वनावः सतस्य धर्मइति । तथाहि । ( गइलरकणउंध म्मो, ठाणलरकणोअहम्मोय । नायणं सव्वदव्वाणं, नहअवगाहलरकणं । १ । पुद्गला स्तिकायोऽपिग्रहणलक्षणइति । मिश्रद्रव्याणां च क्षीरोदकादीनां योयस्य स्वनावः सत द्धर्मतयाऽवगंतव्यइति । गृहस्थानांच यः कुलनगरग्रामादिधर्मोगृहस्थेन्योगृहस्थानां वा योदानधर्मः सद्र्व्यधर्मोऽवगंतव्यइति । तथाचोक्तं । अन्नं पानं च वस्त्रंच, आलयः श यनासनं । शुश्रूषा वंदनं तुष्टिः पुण्यं नवविधं स्मृतं । १ । नावधर्मस्वरूपनिरूपणायाह । ( लोइयलोउत्तरिउ, डुविहोपुणहोंतिनावधम्मोउ । डुविहोवि डुविहतिविहो, पंचविहो होंतिणायव्वो । ३ । (लोइयइत्यादि) । नावधर्मोनोआगमतो द्विविधः । तद्यथा । लौकि कोलोकोत्तरश्च । तत्र लौकिकोद्विविधः । गृहस्थानां पाखंडिकानां च लोकोत्तरस्त्रिविधः । ज्ञानदर्शनचारित्रनेदात् । तत्राऽप्यानिनिबोधकं ज्ञानं पंचधा । दर्शनमप्यौपशमिक,सा स्वादन,क्षायोपशमिक,वेदक,क्षायिक नेदात् पंचविधं ।चारित्रमपि सामायिकादिनेदात् पं चविधं । गाथाक्षराणि त्वेवं नेयानि । तद्यथा । नावधर्मोलौकिकलोकोत्तरनेदाद्विधा । द्विविधोऽपि चायं यथासंख्येन द्विविधस्त्रिविधः। तत्रैव लौकिकोगृहस्थपाखंडिकनेदात् द्वि

विधः । लोकोत्तरोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्रभेदात् त्रिविधः । ज्ञानादीनि प्रत्येकं त्रीण्यपि पं चधैवेति । तत्र ज्ञानदर्शनचारित्रवतां साधूनां योधर्मस्तं दर्शयितुमाह । ( पासत्थोसन्न कुसीलं, संथवोणकिरचइतीकाउं । सूयगडेअज्झयणे, धम्मंमि निकाइतंएयं ॥४॥ ) पास त्थोसन्नेत्यादि )। साधुगुणानां पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः । तथा संयमानुष्ठानेऽवसीदंती त्यवसन्नाः।तथा कुत्सितं शीलं येषांते कुशीलाएतैः पार्श्वस्थादिभिः सह संस्तवः परिचयः सहसंवासरूपोन किल यतीनां वर्त्तते कर्त्तुमतः सूत्रकृतेऽगेधर्माख्येऽध्ययने एतस्मिन्निका चितं नियमितमिति ॥ गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेत सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । ( कयरेइत्यादि )॥ जंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । कतरः किन्नूतोदुर्गतिगमनलक्षणोधर्मआख्यातः प्रतिपादितो ( माहणेणं ति) मा जंतून् व्यापादयेत्येवं विनेयेषु वाक्प्रवृत्तिर्यस्याऽसौ माहनोभगवान् वीरवर्धमा नस्वामी तेन। तमेव विशिनष्टि । मनुतेऽवगच्छति जगत्रयं कालत्रयोपेतं यया सा केवलज्ञा नाख्या मतिः सा अस्याऽस्तीति मतिमान् तेनोत्पन्नकेवलज्ञानेन भगवतेति पृष्टे सुधर्मस्वा म्याह रागद्वेषजितोजिनास्तेषां संबंधिनं धर्मं ( अंजुमिति ) ऋजुं मायाप्रपंचरहितत्वा दवक्रं। तथा ( जहातच्चमिति ) यथावस्थितं मम कथयतः शृणुत यूयं । ननु य थाऽन्यैस्तीर्थिकैर्दंभप्रधानोधर्मोभिहितस्तथा भगवताऽपीति ( पाठांतरंवा ) जणगा तं सुणेहमे) जायंतइति जनालोकास्तएव जनकास्तेषामामंत्रणं हेजनकाः तधर्मं शृ णुत यूयमिति ॥ १ ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यामुक्तोऽर्थः सूक्तोभवतीत्यतोयथोद्दिष्टप्रतिपक्ष भूतोऽधर्मस्तदाश्रितांस्तावद्दर्शयितुमाह । ( माहणेत्यादि )। ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्या स्तथा चांमालाः अथ वोक्कसाअवांतरजातीयाः। तद्यथा । ब्राह्मणेन शूद्रयांजातोनिषादोब्रा ह्मणेनैव वैश्यायां जातोंऽबष्टस्तथा निषादेनांबष्ठ्यां जातोवोक्कसः । तथा एषितुं शीलमित्ये षिकामृगलुब्धकाहस्तितापसाश्च मांसहेतोर्मृगान् हस्तिनश्च एष्यंति तथा कंदमूलफ लादिकं च । तथा ये चाऽन्ये पाखंडकानानाविधैरुपायैर्भैक्ष्यमेष्यंत्यन्यानिवा विषयसा धनानि ते सर्वेऽप्येषिकाइत्युच्यंते । तथा वैशिकावणिजोमायाप्रधानाकलोपजीविनः । तथा शूद्राः कृषीवलादयः । आभीरजातीयाः कियंतोवा वक्ष्यंतइति दर्शयति। ये चाऽन्येव र्णापसदानानारूपसावद्यारंभनिश्रितायंत्रपीडननिर्लांछनकर्मांगारदाहादिभिः क्रियाविशेषै र्जीवोपमर्दकारिणस्तेषां सर्वेषामेव जीवापकारिणां वैरमेव प्रवर्धतइत्युत्तरश्लोकेक्रियेति॥२

परिग्गहनिविठाणं, वेरं तेसिं पवड्ढई ॥ ( पाठांतरे पावं तेसिं पवड्ढई )
आरंभसंभिया कामा, नते दुक्खविमोयगा ॥ ३ ॥ आघाय किच्चमाहेउं,
नाइउ विसएसिणो ॥ अन्ने हरंति तं वित्तं, कम्मी कम्मेहिं किच्चती ॥४ ॥

ने बालपंमितनेदेन द्विरूपं वीर्यं प्रतिपादितं । अत्राऽपि तदेव पंडितवीर्यं धर्मं प्रति यडुद्य मं विधत्ते अतोधर्मः प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेन धर्माध्ययनमायातं । अस्य चत्वार्यनुयो गद्वाराणि उपक्रमादीनि प्राग्वत् व्यावर्णनीयानि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽ र्थाधिकारोऽ यं । तद्यथा । धर्मोऽत्र प्रतिपाद्यतइति तमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । (धम्मोपुवुद्दिठ्ठो नावधम्मेण एब अहिगारो । एसेच होइ धम्मं, एसेवसमाहिमग्गोत्ति १ ।(धम्मोपुवुद्दि ठ्ठोइत्यादि) । डुर्गतिगमनधरणलक्षणोधर्मः प्राक् दशवैकालिकश्रुतस्कंधषष्ठाऽध्ययने ध र्मार्थकामाख्ये उद्दिष्टः प्रतिपादितः । इहतु नावेन धर्मेणाधिकारः । एषएवच नावधर्मः पर मार्थतोधर्मोनवति । अमुमेवार्थमुत्तरयोरप्यध्ययनयोरतिदिशन्नाह । एषएवच नावसमा धिर्नावमार्गश्च नवतीत्यवगंतव्यमिति । यदि वैषएवच नावधर्मएषएवच नावसमाधि रेषएवच तथा नावमार्गोनवति नतेषां परमार्थतः कश्चिद्भेदः । तथाहि । धर्मः श्रुतचारि त्राख्यः क्षांत्यादिलक्षणोवा दशप्रकारोनवेत् नावसमाधिरप्येवंप्रकारएव । तथाहि । सम्यगा धानमारोपणं गुणानां क्षांत्यादीनामिति समाधिः । तदेव मुक्तिमार्गोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्रा ख्योनावधर्मतया व्याख्यातयितव्यइति॥सांप्रतमतिदिष्टस्यापिस्थानाशून्यार्थं धर्मस्यना मादिनिक्षेपं दर्शयितुमाह ।(णामंठवणाधम्मो,दव्वधम्मोय नावधम्मोय । सचित्ताचित्तमीस ग,गिहडदाणेदवियधम्मे।१।) (नामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यनावनेदाच्चतुर्धा धर्मस्य निक्षेपः।तत्राऽपि नामस्थापनेऽनादृत्य ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तोधर्मः सचित्ताचित्तमिश्र नेदात् त्रिधा । तत्राऽपि सचित्तस्य जीवञरीरस्योपयोगलक्षणोधर्मः स्वनावः । एवमचित्ता नामपि धर्मास्तिकायानां योयस्य स्वनावः सतस्य धर्मइति । तथाहि । ( गइलक्खणउध म्मो, ठाणलक्खणोअहम्मोय । नायणं सव्वदव्वाणं, नहअवगाहलक्खणं ।१। पुग्गला स्तिकायोऽपिग्रहणलक्षणइति । मिश्रद्रव्याणां च क्षीरोदकादीनां योयस्य स्वनावः सत द्धर्मतयाऽवगंतव्यइति । गृहस्थानांच यः कुलनगरग्रामादिधर्मोगृहस्थेन्योगृहस्थानां वा योदानधर्मः सद्रव्यधर्मोऽवगंतव्यइति । तथाचोक्तं । अन्नं पानं च वस्त्रंच, आलयः श यनासनं । शुश्रूषा वंदनं तुष्टिः पुण्यं नवविधं स्मृतं । १ । नावधर्मस्वरूपनिरूपणायाह । ( लोइयलोउत्तरिउ, डुविहोपुणहोतिनावधम्मोउ । डुविहोवि डुविहतिविहो, पंचविहो होंतिणायव्वो । २ । (लोइयइत्यादि) । नावधर्मोनोआगमतो द्विविधः । तद्यथा । लौकि कोलोकोत्तरश्च । तत्र लौकिकोद्विविधः । गृहस्थानां पाखंडिकानां च लोकोत्तरस्त्रिविधः। ज्ञानदर्शनचारित्रनेदात् । तत्राऽप्यानिनिबोधकं ज्ञानं पंचधा । दर्शनमप्यौपशमिक,सा स्वादन,क्षायोपशमिक,वेदक,क्षायिक नेदात् पंचविधं ।चारित्रमपि सामायिकादिनेदात् पं चविधं । गाथाक्षराणि त्वेवं नेयानि । तद्यथा । नावधर्मोलौकिकलोकोत्तरनेदाद्विधा । द्विविधोऽपि चायं यथासंख्येन द्विविधस्त्रिविधः। तत्रैव लौकिकोगृहस्थपाखंडिकनेदात् द्वि

विधः । लोकोत्तरोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्रभेदात् त्रिविधः । ज्ञानादीनि प्रत्येकं त्रीण्यपि पं चधैवेति । तत्र ज्ञानदर्शनचारित्रवतां साधूनां योधर्मस्तं दर्शयितुमाह । ( पासछोसस्स कुसीलं, संथवोणकिरचट्टतीकाउं । सूयगडेअब्भुयणे, धम्मंमि निकाइतंएयं ॥४॥ ) पास छोसस्सेत्यादि )। साधुगुणानां पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः । तथा संयमानुष्ठानेऽवसीदंती त्यवसन्नाः।तथा कुत्सितं शीलं येषांते कुशीलाएतैः पार्श्वस्थादिभिः सह संस्तवः परिचयः सहसंवासरूपोन किल यतीनां वर्त्तते कर्त्तुमतः सूत्रकृतेऽगेधर्माख्येऽध्ययने एतस्मिन्निका चितं नियमितमिति ॥ गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (कयरेइत्यादि )॥ जंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । कतरः किंभूतोदुर्गतिगमनलक्षणोधर्मआख्यातः प्रतिपादितो ( माहणेणं ति) मा जंतून् व्यापादयेत्येवं विनेयेषु वाक्प्रवृत्तिर्यस्याऽसौ माहनोभगवान् वीरवर्धमा नस्वामी तेन। तमेव विशिनष्टि । मनुतेऽवगच्छति जगत्त्रयं कालत्रयोपेतं यया सा केवलज्ञा नाख्या मतिः सा अस्याऽस्तीति मतिमान् तेनोत्पन्नकेवलज्ञानेन भगवतेति पृष्टे सुधर्मस्वा म्याह रागद्वेषजितोजिनास्तेषां संबंधिनं धर्मं ( अंजुमिति ) ऋजुं मायाप्रपंचरहितत्वा दवक्रं। तथा ( जहातच्चमिति ) यथावस्थितं मम कथयतः शृणुत यूयं । ननु य थाऽन्यैस्तीर्थिकैर्दंभप्रधानोधर्मोभिहितस्तथा भगवताऽपीति ( पाठांतरंवा ) जणगा तं सुणेहमे) जायंतइति जनालोकास्तएव जनकास्तेषामामंत्रणं हेजनकाः तंधर्मं शृ णुत यूयमिति ॥ १ ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यामुक्तोऽर्थः सूक्तोभवतीत्यतोयथोद्दिष्टप्रतिपक्ष भूतोऽधर्मस्तदाश्रितांस्तावद्दर्शयितुमाह । ( माहणेत्यादि )। ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्या स्तथा चांडालाः अथ बोक्कसाद्यवांतरजातीयाः। तद्यथा । ब्राह्मणेन शूद्र्यांजातोनिषादोब्रा ह्मणेनैव वैश्यायां जातोऽवष्ठस्तथा निषादेनांबष्ठ्यां जातोबोक्कसः । तथा एषितुं शीलमित्ये षिकामृगलुब्धकाहस्तितापसाश्च मांसहेतोर्मृगान् हस्तिनश्च एष्यंति तथा कंदमूलफ लादिकं च । तथा ये चान्ये पाखंडकानानाविधैरुपायैर्भैक्ष्यमेष्यंत्यन्यानिवा विषयसा धनानि ते सर्वेऽप्येषिकाइत्युच्यंते । तथा वैशिकावणिजोमायाप्रधानाकलोपजीविनः। तथा शूद्राः कृषीवलादयः । आभीरजातीयाः कियंतोवा वक्ष्यंतइति दर्शयति। ये चान्येव र्णापसदानानारूपसावद्यारंभनिश्रितायंत्रपीडननिर्लांछनकर्मांगारदाहादिभिः क्रियाविशेषै र्जीवोपमर्दकारिणस्तेषां सर्वेषामेव जीवापकारिणां वैरमेव प्रवर्धतइत्युत्तरश्लोकेक्रियेति॥२

परिग्गहनिविठाणं, वेरं तेसिं पवड्ढइ ॥ ( पाठांतरे पावं तेसिं पवड्ढइ )
आरंभसंभिया कामा, नते दुक्कविमोयगा ॥ ३ ॥ आघाय किच्चमाहेउं,
नाइउ विसएसिणो॥ अन्ने हरंति तं वित्तं, कम्मी कम्मेहिं किच्चती ॥४ ॥

अर्थ-( परिग्गहे के० ) परिग्रह द्विपद, चतुष्पद, धन, धान्य हिरण्य, सुवर्णादिकने विषे ममत्व तेमां (निविठाणंके०) गृध छता ( वेरंतेसिंपवड्ढईके० ) एवा पुरुष आरंजना करनार तेने नि.केवल वैरनी वृद्धि थायछे. अथवा पाठांतरें ( पावंतेसिंपवड्ढई के० ) तेवा आरंजना करनार पुरुषोने जमदग्नि कृतवीर्यनी पेरे पापनी वृद्धि थायछे ज्यां जेरीते प्राणीउंनी हिंसा करे त्यां तेरीते संसार मांहे दुःखना विजागी थाय. ( आरंजसंनियाकामा के०) तथा कामजोगजे छे, ते आरंज संवृतछे आरंजे करी पुष्टछे अनेक पापना कारणे करी जखाछे, ( नतेदुःखविमोयगा के० ) ते कारण माटे ते दुःख थकी बूटे नही ॥ ३ ॥ जेथकी प्राणीना प्राणने हणियें तेने ( आघाय के० ) मरण कहिए. ते मरणने अर्थे जे (किच्चमाहेउंके०) कृत्य करवुं एटले मरणनुं जे कार्य करवुं अर्थात् अग्निसंस्कार जलांजली, प्रदान, पितृ पिंम, प्रमुख एटलावाना करीने पछी ( नाइउ विसएसिणो के० ) ज्ञाति, गोत्री, स्वजन, पुत्र, कलत्रादिक एसर्व विषयाजिलाषी छता होय तेमनुं उपार्जन करेलुं जे वित्त एटले धन (तंवित्तंके० ) तेधन ( अन्नेहरंतिके० ) अन्य जे पूर्वोक्त अग्नि संस्कार प्रमुखना करनारा पुरुषो ते लिये, एटले अंगीकार करे. अने ते धननो उपार्जनार ( कम्मीकम्मेहिंकिच्चती के० ) अनेक कुकर्म करी दुर्गतीयें पोहोतो छतो ते कर्मे करी संसारमां किच्चती एटले पीडाय छेदाय. ॥ ४ ॥

---

॥ दीपिका-परिग्रहनिविष्टानां ममतासक्तानां तेषां पूर्वोक्तानां वैरं वर्धते । जमदग्निकृतवीर्यादीनामिव रिपवस्ते आरंजसंनृताआरजपुष्टाः कामेषु प्रवृत्तास्ते एवंविधादुःखविमोचकान स्युः ॥ ३ ॥ आघातोमरणं तस्य कृत्यमग्निसंस्कारजलांजलिदानपितृपिंमादिकं तदाधातुमाधाय कृत्वा पश्चाज्ज्ञातयः स्वजनाअन्येऽपि विषयैषिणः संतस्तस्य तद्वित्तं धनं हरंति गृह्णंति । यडुक्तं । ततस्तेनार्जितैर्द्रव्यैर्दारैश्च परिरक्षितैः ॥ क्रीडंत्यन्ये नराराजन् हृष्टतुष्टाअलंकृताइति । सतु द्रव्योपार्जकः कर्मवान् कृतैः कर्मजिः संसारे कृत्यते पीड्यते ॥ ४ ॥

---

॥टीका-किंच (परिग्गहेइत्यादि) परिसमंतात् गृह्यतइति परिग्रहो द्विपदचतुष्पदधनधान्यहिरण्यसुवर्णादिषु ममीकारस्तत्र निविष्टानामध्युपपन्नानां गार्द्ध्यं गतानां पापमसातवेदनीयादिकं तेषां प्रागुक्तानामारंजनिश्रितानां परिग्रहे निविष्टानां प्रकर्षेण वर्द्धते वृद्धिमुपयाति जन्मांतरेष्वपि दुर्मोचं जवति । क्वचित्पाठ. ( वेरंतेसिंपवड्ढइत्ति )। तत्र येन यस्य यथा प्राणिनउपमर्दः क्रियते सतथैव संसारांतर्वर्ती शतशोदुःखजाक् जवति । जमदग्निकृतवीर्यादीनामिव पुत्रपौत्रानुगं वैरं प्रवर्द्धतइति जावः । किमित्येव । यतस्ते

कामेषु प्रवृत्ताः कामाश्चारंभैः सम्यग् भृताआरंभपुष्टाआरंभाश्च जीवोपमर्दकारिणोऽलोन ते कामसंभृताआरंभनिश्रिताः परगृहे निविष्टाः डुःखयतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्म तद्विमो चकाभवति तस्याऽपनेतारोभवंतीत्यर्थः ॥ ३ ॥ किंचाऽन्यत् ( आघायमित्यादि ) आहन्यंते अपनयंति विनाश्यंते प्राणिनां दश प्रकाराअपि प्राणायस्मिन् सआघा तोमरणं तस्मै तत्र वा कृतमग्निसंस्कारजलांजलिप्रदानपितृपिंमादिकमाघातं कृत्यं तदा धातुमादाय कृत्वा पश्चात् ज्ञातयः स्वजनाः पुत्रकलत्रभ्रातृव्यादयः। किंभूताः। विषयान्वेष्टुं शीलं येषां तेऽन्येऽपि विषयैषिणः संतस्तस्य डुःखार्जितं वित्तं ड्व्यजातमपहरंति स्वीकुर्वंति। तथाचोक्तं। ततस्तेनार्जितैर्द्रव्य,दारैश्च परिरक्षितैः॥ क्रीडंत्यन्ये नराराजन्, हृष्टास्तुष्टाह्यलंकृताः ॥ १ ॥ सतु ड्व्यार्जनपरायणः सावद्यानुष्ठानवान् कर्मवान् पापी स्वीकृतैः कर्मभि. संसारे कृत्यते छियते पीड्यतइति यावत् ॥ ४ ॥

माया पिया ण्हुसा भाया,भज्जा पुत्ताय उरसा॥ नालं ते तव ताणा य, लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥ ५ ॥ एयमठं सपेहाए, परमठाणु गामियं ॥ निम्ममो निरहंकारो, चरे भिक्कू जिणाहियं ॥ ६ ॥

अर्थ-( मायापियाण्हुसाभाया के० ) माता पिता स्नुषा एटले ठोकरानी स्त्री तथा, भाइ ( भज्जापुत्तायउरसा के० ) भार्या, पुत्र अंगजातिक एटला सर्व ( लुप्पंतस्ससकम्मुणा के० ) ए जीवने कर्म विपाक भोगवता थका ( नालंतेतवताणाय के० ) तेवखते त्राणभणी नथाय एटले डुःख टालवाने असमर्थ थाय ॥ ५ ॥ धर्मरहित जीवने राखवा कोइ समर्थ नथी ( एयमठंसपेहाए के० ) ए अर्थ आलोची एटले सम्यक् प्रकारे विमासीने ( परमठाणुगामियं के० ) परमार्थजे मोक्ष तेनो अनुगामि एटले मोक्षनो साधक ( निम्ममोनिरहंकारो के० ) निर्ममत्व तथा निरहंकारी एवोठतो ( चरे भिक्कूजिणाहियं के० ) ते साधु जिनभाषित जे संयम मार्गछे तेने आचरे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-माता पिता स्नुषापुत्रवधूः भ्राता भार्या पुत्राश्च औरसाःस्वांगजाएते सर्वे तव त्राणाय रक्षणाय नालं नसमर्थाः। तव किंभूतस्य। स्वकर्मणा लुप्यमानस्य पीड्यमानस्य। दृष्टांतोत्र कालसौकरिकसुतः सुलसोऽभयकुमारस्य मित्रं तेन महात्मना स्वजनाभ्यर्थितेनापि न प्राणिहिंसा कृता ॥ ५ ॥ एतं पूर्वोक्तमर्थं प्रेक्ष्य विचार्य परमार्थोमोक्षस्तमनुगछतीति परमार्थानुगामुकस्तं सम्यक्दर्शनादिकं विचार्य निर्ममोनिरहंकारोभिक्षुर्जिनाहितं जिनोक्तं मार्गं चरेत् ॥ ६ ॥

॥ टीका-स्वजनाश्च तद्र्व्योपजीविनस्तत्त्राणाय नभवंतीति दर्शयितुमाह। ( माया

पिआइत्यादि ) माताजननी पिताजनकः स्नुषापुत्रवधूः भ्रातासहोदरः । तथा भार्या कलत्रं पुत्राश्चौरसाः स्वनिष्पादिताएते सर्वेऽपि मात्रादयोये चान्ये श्वशुरादयस्ते तव संसारचक्रवाले स्वकर्मभिर्विलुप्यमानस्य त्राणाय नाऽलं समर्थाभवंतीति । इहाऽपि ताव न्नैते त्राणाय किमुताऽमुत्रेति । दृष्टांतश्चाऽत्र कालसौकरिकसुतः सुलसनामा अभयकुमा रस्य सखा । तेन महासत्वेन स्वजनाऽभ्यर्थितेनाऽपि नप्राणिष्वपकृतमपि त्वात्मन्येवेति ॥ ५ ॥ किंचान्यत् ( एयमहमित्यादि ) धर्मरहितानां स्वकृतकर्मविलुप्यमानानामैहि कामुष्मिकयोर्नकश्चित्राणायेति एनं पूर्वोक्तमर्थं सप्रेक्षापूर्वकारी प्रत्युपेक्ष्य विचार्याऽवगम्य च परमः प्रधानभूतोमोक्षः संयमोवा तमनुगच्छतीति तच्छीलश्च परमार्थानुगामुकः सम्य क्दर्शनादिस्तंच प्रत्युपेक्ष्य।क्त्वाप्रत्ययांतस्य पूर्वकालवाचितया क्रियांतरसव्यपेक्षत्वात्।त दाह । निर्गतं ममत्वं बाह्याभ्यंतरेषु वस्तुषु यस्मादसौ निर्ममः । तथा निर्गतोऽहंकारोऽ भिमानः पूर्वैश्वर्यजात्यादिमदजनितस्तथा तपःस्वाध्यायलाभादिजनितोवा यस्मा दसौ निरहंकारोरागद्वेषरहितइत्यर्थः । सएवंभूतोभिक्षुर्जिनैराहितः प्रतिपादितोऽनु ष्ठितोवा योमार्गोजिनानां वा संबंधी योऽभिहितोमार्गस्तं चरेदनुतिष्ठेदिति ॥ ६ ॥

चिच्चा वित्तंच पुत्तेय.णाइउ य परिग्गहं ॥ चिच्चाण अंतगं सोयं
(चिच्चाणणंतगंसोयं,) इति पाठांतरं । निरवेक्खो परिव्वए ॥ ७ ॥
पुढवी आउगणि वाऊ, तणरुक्ख सबीयगा ॥ अंमया पोय जरा
ऊरस संसेय उब्भिया ॥ ८ ॥

अर्थ–( वित्तंचपुत्तेय के० ) वित्तते धन अने पुत्रादिक तेने ( चिच्चा के० ) त्यक्त्वा एटले छांमीने वली (णाइउयके०) ज्ञाति, स्वजन, स्त्री, स्वसुर, वेवाही प्रमुख तथा (परि ग्गहं के० ) परिग्रह तेना उपर ममत्व भाव ते सर्वने (चिच्चाके०) त्यक्त्वा एटले छां मीने णवाक्यालंकारेछे तथा (तंसोयं के०) तथा भूतशोक तेने त्यागीने अथवा पाठांत रनुं अर्थ कहेछे. मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कपायरूप बंधना कारण, अने ( णणंतगं के० ) जेनो कोइरीते अंत एटले पार न आवे एवो सोयं के० शोक तेनो त्याग करीने ( निरवेक्खो के० ) निरपेक्ष एटले विषयादिकने अण वांछतो थको ( परिव्वए के० ) सं यम पाले तेने साधु जाणवो ॥ ७ ॥ ( पुढविआउगणिवाऊ के० ) पृथवीकाय, अ प्पकाय, तेऊकाय अने वायुकाय तथा ( तणरुक्खसबीयगा के० ) तृण वृक्ष बीज शा लि प्रमुख ए पांचमी वनस्पतिकायनी जाति ए सर्व स्थावर जीवो जाणवाः अने (अं मया के० ) इंमा थकी उपजे जे वायुलि प्रमुख ( पोतजके० ) हस्तियादिक तथा (ज

रायुज के० ) मनुष्यादिक ( रसज के० ) कीटादिक ( संस्वेदजके० ) जुं प्रमुख ( उद्भि ज्ज के० ) तीडादिक ए सर्व त्रसकाय जीवोजाणवा. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—वित्तं धनं पुत्रांश्च ज्ञातीन् स्वजनान् त्यक्त्वा परिग्रहं चांतरंममत्वं । ए कारोवाक्यालंकारे अंतं गह्नतीत्यंतगोडुष्परित्यजइत्यर्थः । तं तथाभूतं शोकरूपं त्य क्त्वा निरपेक्षः पुत्राद्यपेक्षारहितः परिव्रजेत् संयमे चरेत् । यडुक्तं । ठलियाअवइरकंता, निरावइरकागयाअविग्घेणं ॥ तम्हापवयणसारे, निरावइरकेणहोअवंइति ॥ ७ ॥ पृथि वी आपः अग्नयः वायवः तृणानिकुशादीनि वृक्षाअशोकाम्रादयः सबीजानि शालिगो धूमादीनि तद्युक्ताएते त्रयोपि वनस्पतयः एते पंचाप्येकेंद्रियाः । अंमजाः पक्षिगृहकोकि लाद्याः पोतजाहस्त्यादयः जरायुजागोमनुष्यादयः रसाद्दधिसौवीरादेर्जातारसजाः सं स्वेदजायूकामत्कुणादयः उद्भिज्जाःखंजरीटदर्डुराद्याः एते त्रसाः ॥ ८ ॥

॥ टीका—अपिच ( चिच्चाइत्यादि ) संसारस्वभावपरिज्ञानपरिकर्मितमतिर्विदितवेद्यः सम्यक् त्यक्त्वा परित्यज्य किंतद्वित्तं द्रव्यजातं तथा पुत्रांश्च त्यक्त्वा पुत्रेष्वधिकस्नेहोभ वतीति पुत्रग्रहणं । तथा ज्ञातीन् स्वजनांश्च त्यक्त्वा तथा परिग्रहं चांतरं ममरूपत्वं । एकारोवाक्यालंकारे । अंतं गह्नतीत्यंतगोडुष्परित्यजइत्यर्थः । अंतकोविनाशकारीत्यर्थः । आत्मनि वा गह्नतीत्यात्मगआंतरइत्यर्थः । तं तथाभूतं शोकं त्यक्त्वा परित्यज्य, श्रोतोवामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषायात्मकं कर्माश्रवद्वारभूतं परित्यज्य पाठांतरंवा । ( चिच्चाणणंतगंसोयं ) अंतं गह्नतीत्यंतगं नअंतगमनंतगं । श्रोतःशोकं परित्य ज्य निरपेक्षः पुत्रदारधनधान्यहिरण्यादिकमनपेक्ष्यमाणः सन् मोक्षाय परिसमंता त् संयमानुष्ठाने व्रजेत् परिव्रजेदिति । तथा चोक्तं । ( ठलियाअवयरकंता, निरावय रकागयाअविग्घेणं ॥ तम्हापवयणसारे, निरावयरकेणहोयवं॥ १ ॥ भोगेअवयरकंता, प डंति संसारसागरे घोरे । भोगेहिनिरवयरका, तरंति संसारकंतारमिति ॥२॥ सएवं प्रव्रजि तः सुव्रतावस्थितात्माऽहिंसादिषु व्रतेषु प्रयतेत ॥ ७ ॥ तत्राऽहिंसाप्रसिद्ध्यर्थमा ह । ( पुढवीआउइत्यादिश्लोकद्वयं) तत्र पृथिवीकायिकाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तक भेदभिन्नाः । तथाऽप्कायिकाअग्निकायिकावायुकायिकाश्चैवंभूताएव । वनस्पतिकायि कान् लेशतः सभेदानाह । तृणानि कुशवच्चकादीनि वृक्षाश्चूताशोकादिकाः । सह बीजैर्व र्ततइति सबीजानि तु शालिगोधूमयवादीनि एते एकेंद्रियाः पंचापिकायाः। षष्ठत्रसकायनि रूपणायाह । अंडजाः शकुनिगृहकोकिलकसरीसृपादयः । तथा पोताएव पोतजाहस्तिश रभादयः । तथा जरायुजाये जंबालवेष्टिताः समुत्पद्यंते गोमनुष्यादयः । तथा रसात् दधि

सौवीरकादजातारसजास्तथा संस्वेदाज्जाताः संस्वेदजायूकामत्कुणादयः । उद्भिज्जाः खंजरीटकदर्दुरादयइति । आज्ञातभेदाद्दि दुःखेन रक्ष्यंतइत्यतोभेदेनोपन्यासइति ॥ ८ ॥

एतेहिं उहिं काएहिं, तं विज्ञं परिजाणिया ॥ मणसा कायवक्केणं, णारंभी ण परिग्गही ॥९॥ मुसावायं बहिद्धंच,उग्गहंच अजाइय ॥ सत्था दाणाइं लोगंसि, तं विज्ञं परिजाणिया ॥ १० ॥

अर्थ-(एतेहिंछहिंकाएहिंके०) पूर्वोक्त छ कायजीवो ते त्रस स्थावर तथा सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ता ना भेदे करी(तंविज्ञंपरिजाणियाके०) ते छकायने पंमित ज्ञ परिज्ञायें करी भलीपरे जाणीने अने प्रत्याख्यान परिज्ञाये ( मणसाकायवक्केणं के० ) मन, वचन अने काया एत्रण करणे करी(णारंभीणपरिग्गहीके०) साधु आरंभ परिग्रह नकरे केमके ए आरंभपरिग्रहथकी पूर्वोक्त छकाय जीवोनी विराधना थायछे माटेसाधु आरंभी परिग्रही नथाय. ए प्राणातिपात विरमण नामा प्रथम व्रतनो अधिकार कह्यो ॥९॥ हवे बीजो व्रत आदि कहेछे ( मुसावायं के० ) असत्य बोलवुं (बहिद्धंचके०) तथा मैथुन ते भोग कामादिक ( उग्गहंच के० ) परिग्रह तथा ( अजाइय के० ) अदत्तदान ए मृषावादादिक अव्रतजेछे ते ( लोगंसि के० ) लोक मांहे (सत्थके०) शस्त्ररूपछे, तथा शस्त्रनी पेरे (आदानके०) कर्म ग्रहण करवानुं कारणछे, (तंविज्ञंपरिजाणियाके० ) तेने विद्वान् एटले पंमित ज्ञपरिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये परिहरे ॥ १० ॥

---

॥ दीपिका-एभिः षड्भिः कायैर्नारंभी नापि परिग्रही स्यात् विद्वान् पंडितोज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया मनोवाक्कायैरारंभं परिग्रहंच परिहरेदिति श्लोकद्वयार्थः ॥ ९ ॥ मृषावादं विद्वान् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् अवहिर्द्धं मैथुनं अवग्रहंपरिग्रहमयाचितमदत्तादानं एतानि मृषावादादीनि प्राण्युपघातकारित्वात् शस्त्राणि तथा आदानानि कर्मोपादानकारणान्यस्मिन् लोके तदेतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १० ॥

---

॥ टीका-एभिः पूर्वोक्तैः षड्भिरपि कायैस्त्रसस्थावररूपैः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकभेदभिन्नैर्नारंभी नाऽपि परिग्रही स्यादिति संबंधः । तदेतद्विद्वान् सश्रुतिकोज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया मनोवाक्कायकर्मभिर्जीवोपमर्दकारिणामारंभं परिग्रहं च परिहरेदिति ॥ ९ ॥ शेषव्रतान्यधिकृत्याह । ( मुसावायमित्यादि ) मृषा असद्भूतोवादोमृषावादस्तं विद्वान् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् तथाऽवहिद्धमितिमैथुनं अवग्रहं परिग्रहमयाचितमदत्तादानं । यदिवाऽ वहिद्धमिति मैथुनग्रहोऽवग्रहमयाचित

मित्यनेनाऽदत्तादानं गृहीतं । एतानिच मृषावादादीनि प्राण्युपतापकारित्वात् शस्त्राणीव शस्त्राणि वर्तते । तथा दीयते गृह्यतेऽष्टप्रकारं कर्मभिरिति । कर्मोपादानकारणान्यस्मिन् लोके तदेतत्सर्वं विद्वान् ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥१०॥

पलिउंचणंच नयणंच, थंमिल्लुस्सयणाणिया ॥ धूणादाणाइं लोगंसि, तं विज्ञं पारिजाणिया॥११॥ धोयणं रयणं चेव,वत्थीकम्मं विरेयणं ॥ वमणं जणपलीमंथं, तं विज्ञं परिजाणिया ॥ १२ ॥

अर्थ-( पलिउंचणंचके० ) माया तथा (नयणंचके०) लोभ (थंमिल्लके०) जे निर्विवेक पणा थकी थंमिलनी पेरे होय ते क्रोध (उसयणाणियाके०) जे अपध्याने करी सध्यादिकनी पेरे उंचु होय तेने मान कहिए (धुणाके०) एचारेनो त्यागकरे केम के (दाणाइ लोगंसि के०) एचार कषायने लोकमां कर्म ग्रहण करवाना कारण कह्यां ठे. तेमाटे (तं विज्ञंपरिजाणिया के० ) एने पंमित ज्ञपरिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे. ॥ ११ ॥ ( धोयणंरयणं के० ) हाथ पग वस्त्रादिकने धोवुं तथा रंगवुं (चेवके०) वली ( वत्थिकम्मं के० ) नख रोमादिकनुं समारवुं (विरेयणं के० ) पखाल लेवो (वमनंके०) वमन करवुं ( अंजण के० ) आखनुं आंजवुं ( पलिमंथं के० ) अन्यकोइ शरीर संस्कारादिक जेणे करी संयमनो उपघात थाय तेवा सर्वकारणोने जाणीने पंमित परिहरे॥१२॥

॥ दीपिका-परिकुंच्यते आत्मा वक्रतां प्राप्यते येन तत् परिकुंचनं माया । भज्यते सर्वत्र आत्मा प्रव्हीक्रियते येन सजनजनोलोभः । यदुदयेनात्मा सदसद्विवेकविकलत्वात् स्थंमिलवत्स्यात् सस्थंडिलः क्रोधः। यस्मिन् सति आत्मा उच्छ्रितः स्याडुन्नतः सउच्छ्रायो मानः। गंदसत्वात्क्लीबत्वं । एतानि धूनय त्यज । किंभूतानि आदानानि बंधकारणानि तदेतद्विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ ११ ॥ धावनं हस्तपादवस्त्रादेः। रंजनं तस्यैव। वस्तिकर्मानुवासनरूपं । विरेचनमधोविरेकः । वमनमूर्ध्वविरेकः । अंजनं नयनयोः । एवमन्यदपि यत्संयमपलिमंथकारि संयमोपघातकारि तत्परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १२ ॥

॥ टीका-किंचाऽन्यत् ( पलिउंचणमित्यादि ) पंचमहाव्रतधारणमपि कषायिणोनिष्फलं स्यादतस्तत्साफल्यापादनार्थं कषायनिरोधोविधेयइति दर्शयति ॥ परिसमंतात् कुंच्यंते वक्रतामापद्यंते क्रियायेन मायाऽनुष्ठानेन तत्पलिकुंचनं मायेति भण्यते । तथा भज्यते सर्वत्राऽऽत्मा प्रव्हीक्रियते येन सजनजनोलोभस्तं तथा यदुदयेन ह्यात्मा सदसद्विवेकविकलत्वात् स्थंमिलवद्भवति सस्थंडिलः क्रोधः। यस्मिंश्च सत्यूर्ध्वं श्रयति जात्यादिना दर्पा

ध्मातः पुरुषउत्तानीनवति सउच्छ्रायोमानः।छांदसत्वान्नपुंसकलिंगता।जात्यादीनामेतत्स्था नानां बहुत्वात् तत्कार्यस्याऽपि मानस्य बहुत्वमतोबहुवचनं । चकारः स्वगतनेदसंस् चनार्थः समुच्चयार्थोवा। धूनयेति प्रत्येकं क्रिया योजनीया। तद्यथा । पलिकुंचनंमायां धूनय धूनीहि वा । तथा नजनं लोनं तथा स्थंडिलं क्रोधं तथा उच्छ्रायं मानं । विचित्रत्वात् सूत्रस्य क्रमोल्लंघननिर्देशोन दोपायेति । यदिवा रागस्य डुस्त्यज त्वात् लोनस्य च मायापूर्वकत्वादित्यादावेव मायालोनयोरुपन्यासइति । कषायपरित्यागे विधेये पुनरपरं कारणमाह । एतानि पलिकुंचनादीनि अस्मिन् लोके आदानानि वर्त्तते । तदेतद्विद्वान् ज्ञपरिज्ञया परिज्ञानप्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याचक्षीत ॥ ११ ॥ पुनरप्युत्त रगुणानधिकृत्याह । ( धावणमित्यादि ) धावनं प्रक्षालनं हस्तपादयोर्वस्त्रादेरंजनमपि तथा विरेचनं निरूहात्मकमधोविरेकोवा । वमनमूर्ध्वविरेकस्तथांऽजनं नयनयोरिति । एवमादिकमन्यदपि शरीरसंस्कारादिकं यत् संयमपलिमंथकारि संयमोपघातरूपं तदेत द्विद्वान् स्वरूपतस्तद्विपाकतश्च परिज्ञाय प्रत्याचक्षीत ॥ १२ ॥

गंधमल्लसिणाणंच, दंतपरकालणं तहा ॥ परिग्गहित्थिकम्मंच,
तं विज्जं परिजाणिया ॥१३॥ उद्देसियं कीयगमं, पामिच्चं चेव
आहडं ॥ पूयं अणेसणिज्जंच, तं विज्जं परिजाणिया ॥ १४ ॥

अर्थ—( गंधमल्लसिणाणंच के० ) सुगंधिक द्रव्यते गंध, माल्यते फूल अने शरीर स्नान ते शरीरप्रक्षालन देश थकी तथा सर्व थकी करवुं तथा (दंतपरकालणंके०) दांतप्र क्षालन ते दातणप्रमुखनुं करवुं ( तहाके० ) तथा ( परिग्गहि के० ) सचेत अचेतादि कनो परिग्रह ( इत्थिकम्मंच के० ) स्त्रीकर्म ते तिर्यंच मनुष्य देवी प्रमुख ने हस्तकर्म कुचेष्टादिकनुं करवुं (तंविज्जंपरिजाणिया के०) ए सर्वने पंमित अशुन जाणीने वर्जे ॥ ॥ १३ ॥ ( उद्देशिकं के० ) साधुने निमित्ते करेलो आहार ( क्रीतक्रीतं के० ) साधुने अर्थे मूल आपीने लीधेलो आहार ( पामिच्चंचेव के० ) साधुने अर्थे उधारे लीधेलो आहार वली ( आहडं के० ) साधुने अर्थे ग्रहस्थे सामो आएयो एवो आहार (पुयं अनेषणिज्जंच के० ) आधाकर्मिना कण सहित आहार (तंविज्जंपरिजाणिया के०) किं बहुना एवधो अनेशणिय सदोष आहार जाणीने पंमित पुरुष एने परिहरे ॥ १४ ॥

---

॥ दीपिका—गंधाः कोष्ठपुटाद्यामाल्यंपुष्पादि स्नानं शरीरक्षालनं दंतप्रक्षालनं प रिग्रहः सचित्तादेः स्त्रीकर्म स्त्रियोनरतिरश्च्यस्तासां वशीकरणादिकर्म हस्तकर्म सावद्या नुष्ठानंवा तत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ १३ ॥ उद्देशिकं साधुद्देशेन यत्कृतं । क्रीतं क्रयस्ते

न क्रीतं । पामिच्चं साध्वर्थमन्यतउच्छिन्नकं गृह्यते । चकारः समुच्चये । आहृतं यद्गृहस्थैः साध्वर्थमानीयते पूयं आधाकर्मावयवसंपृक्तं अनेषणीयं यत्केनापि दोषेण अशुद्धं तत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १४ ॥

---

॥ टीका–अपिच । (गंधमल्लइत्यादि) गंधाः कोष्ठपुटादयः माल्यंजात्यादिकं । स्नानंच शरीरप्रक्षालनं देशतः सर्वतश्च । तथा दंतप्रक्षालनं कदंबकाष्ठादिना । परिग्रहः सचित्ता देः स्वीकरणं । तथा स्त्रियोदिव्यमानुषतैरश्चयः। तथा कर्महस्तकर्म सावद्यानुष्ठानंवा । तदेत त्सर्वं कर्मोपादानतया संसारकारणत्वेन परिज्ञाय विद्वान् परित्यजेदिति ॥१३॥ किंचान्य त् । (उद्देसियमित्यादि) साध्वाद्युपदेशेन यद्दानाय व्यवस्थाप्यते तडुद्देशिकं । तथा क्री तं क्रयस्तेन क्रीतं गृहीतं क्रीतक्रीतं । (पामिच्चंति) साध्वर्थं अन्यतउच्यतकं यद्गृह्यते तत्तदुच्यते । चकारः समुच्चयार्थः । एवकारोऽवधारणार्थः । साध्वर्थं यद्गृहस्थेन नीयते तदाहृतं । तथा पूयमिति आधाकर्मावयवसंपृक्तं शुद्धमप्याहारजातं भवति । किंबहुनो क्तेन यतः केनचिद्दोषेणाऽनेषणीयमशुद्धंतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय संसारकारणतया नि स्पृहः सन् प्रत्याचक्षीतेति ॥ १४ ॥

आसूणि मक्खिरागंच, गिधुवघायकम्मगं ॥ उच्छोलणंच कक्कंच, तं विज्जं परिजाणिया ॥ १५ ॥ संपसारी कयकिरिए, पसिणाय तणाणिय ॥ सागारियंच पिंडंच, तंविज्जं परिजाणिया ॥१६ ॥

अर्थ–( आसूणि के० ) घृतपानादिक औषध जेणे करी प्राणी बलवंत मत्त थाय: अथवा आशून एटले सुन्य जेणेकरी आत्मा शून्यथको रहे तथा ( अरकीरागंच के० ) आंखनुं अंजनादिक तथा ( गृद्धिके० ) रसलोल्पता तथा ( उपघातकर्मकं के० ) जे करवा यकी परजीवने उपघात थाय ते कर्म, तथा ( उच्छोलनंच के० ) हाथ पग व स्त्रादिकनुं पखालवुं तथा ( कक्कंच के० ) लोध्रादिक इव्ये करी शरीरनुं उगटणु करवुं ए सर्वने कर्म बंधनुं कारण जाणीने पंडित परिहरे ॥ १५ ॥ (संपसारीकयकिरए के०) असंयतिनी साथे पर्यालोचन एटले आलोचन करवुं तथा असंयमाचरण करवुं करावतुं तथा असंयतिना अनुष्ठाननी प्रसंसा करवी तथा (पसिणायतणाणियके०) प्रश्नजे लोक व्यवहार ज्योतिषादिक तेनो निर्णय करवो तथा (सागारियंचपिंडचके०) सागारिक जे स य्यात्तर तेना घरनो पिंड लेवो ए सर्वने पापना कारण जाणी पंडित परिहरे. ॥ १६ ॥

---

॥ दीपिका–येन घृतपानादिना आशूनी स्यात् बलवान् भवति तदाशूनी । अक्षिरा

गोलोचनांजनं गृद्धिगार्ध्यं रसेषु उपघातकर्म परापघातक्रिया उच्छोलणं अयतनया शीतोदकादिना हस्तपादादिक्षालनं कल्कं लोध्रादिद्रव्येण शरीरोद्वर्तनं तत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ १५ ॥ असंयतैः सार्धं संप्रसारणं पर्यालोचनं तत्संप्रसारणं परिहरेत् । कृता शोभना गृहकरणादिक्रिया येन सकृतक्रियइत्येवमसंयतानुष्ठानप्रशंसां प्रश्नस्यायतनं प्रकटीकरणं प्रश्ननिर्णयकारणं । सागारिकः शय्यातरस्तस्य पिंडं जुगुप्सितं हीनं वर्णपिंडं वा तदेतत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ १६ ॥

---

॥ टीका–किंच । (आसूणिमित्यादि) येन घृतपानादिना आहारविशेषेण रसायनक्रियया वा अशूनः सन् आसमंतात् शूनीभवति बलवानुपजायते तदाशूनीत्युच्यते । यदिवा (आसूणिति) श्लाघा यतःश्लाघया क्रियमाणया आसमंतात् शूनः । शूनोलघुप्रकृतिः कश्चिद्दर्पाध्मातत्वात् स्तब्धोभवति । तथा अक्ष्णां रागोरंजनं सौवीरादिकमंजनमिति यावत् । एवं रसेषु शब्दादिषु विषयेषु वा गृद्धिंगार्ध्यं तात्पर्यमासेवा तथोपघातकर्मेत्युच्यते । तदेव लेशतोदर्शयति । (उच्छोलनंति) अयतनया शीतोदकादिना हस्तपादादिप्रक्षालनं तथा कल्कं लोध्रादिद्रव्यसमुदायेन शरीरोद्वर्तनकं तदेतत्सर्वं बंधनायेत्येवं विद्वान् पंडितोज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥१५॥ अपिच । ( संपसारायइत्यादीति । असंयतैः सार्धं संप्रसारणं पर्यालोचनं परिहरेदिति वाक्यशेषः । एवं संयमानुष्ठानं प्रत्युपदेशदानं तथा (कयकिरिए) नाम कृता शोभना गृहकरणादिक्रिया येन सकृतक्रियइत्येवमसंयतानुष्ठानप्रशंसनं तथा प्रश्नस्यादर्शः प्रश्नादेरायतनमाविष्करणं कथनं यथावस्थितप्रश्ननिर्णयनानि। यदिवा प्रश्नायतनानि लौकिकानां परस्परव्यवहारे मिथ्याशास्त्रगतसंशयेवा प्रश्ने सति यथावस्थितार्थकथनद्वारेणायतनानि निर्णयनानीति । तथा सागारिकः शय्यातरस्तस्य पिंडमाहारं । यदिवा सागारिकपिंडमिति सूतकगृहपिंडं जुगुप्सितं वर्णापसदपिंडं च । चशब्दःसमुच्चये । तदेतत्सर्वं विद्वान् ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥ १६

अठावयं नसिक्खिज्जा, वेहाईयं च णोवए ॥ हत्थकम्मं विवायंच
तं विज्जं परिजाणिया ॥ १७ ॥ पाणहा उयछत्तंच, णालीयं वालवीयणं ॥ परकिरियं अन्नमन्नंच, तं विज्जं परिजाणिया ॥ १८॥

अर्थः–(अठावयं नसिक्खिज्जाके०) अर्थपदं एटले अर्थ पदते धन धान्य उपार्जवानो उपाय, न शीखे अथवा बीजे अर्थे अष्टापदं एटले द्यूतक्रीडा नशीखे, (वेधादिकंचके०) अधर्मना वचन ( णोवदेके० ) नबोले, अथवा हिंसाकारी वचन बोले नही, तथा ( हत्थकम्मं के० ) कुशील प्रसिद्ध छे ( विवायंच के० ) कलह अथवा बीजो कोइपण विवाद

पंमित ज्ञपरिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे ॥ १७ ॥ ( पाणहा उयछत्तंच के० ) पावडी तथा खासडा तथा ताप टालवाने अर्थे छत्र तथा ( णालीयं के० ) न लीमांहे पाश घाली नाख द्युत रमत विशेष ( वालवीयणंच के० ) चामर मोर पीछ प्रमुखना वींजणा तथा ( परकिरियं के० ) अन्य गृहस्थ पाशेथी क्रिया करावे तथा ( अन्नमन्नंच के० ) अन्योन्य एटले माहो मांहे क्रियानुं करवुं एटले बीजो आपणी करे आपणे बीजानी करिए तेक्रिया जाणवी. ए सर्व कर्म बंधना हेतुछे एम तेने ज्ञ प रिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें करी पंमित परिहरे ॥ १८ ॥

---

॥ दीपिका—अर्थोधनधान्यादिः पदं शास्त्रं प्राण्युपघातकं नशिक्षेत् । अथवा अष्टा पदं द्यूतक्रीडां नशिक्षेत नापि पूर्वशिक्षितमनुशीलयेत् वेधोधर्मानुवेधस्तस्मादतीतं वे धातीतमधर्मप्रधानं वचोनवदेत् हस्तकर्म प्रतीतं ।अथवा हस्तक्रिया परस्परं हस्तव्यापारे प्रधानः कलहः । विवादं शुष्कवादं तदेतद्धकारणं परिहरेत् ॥ १७ ॥ उपानहौ काष्ठपा डुके आतपवारणाय छत्रं च नालिका द्यूतक्रीडा वालैर्मयूरपिछैर्व्यजनकं परेषां क्रिया अन्योन्यकार्यमन्यकार्यं सकरोति तस्य चान्यः । तदेतत्सर्वं विद्वान् कर्मबंधहेतुत्वेन ज्ञप रिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ १८ ॥

---

॥ टीका किंचान्यत् । ( अष्टापयमित्यादि ) अर्यते इत्यर्थोधनधान्यहिरण्यादिकः पद्य ते गम्यते येनार्थस्तत्पदं शास्त्रं अर्थार्थं पदमर्थपदं चाणक्यादिकमर्थशास्त्रं तन्न शिक्षे न्नाभ्यसेन्नाप्यपरप्राण्युपमर्दकारि शास्त्रं शिक्षयेत् । यदिवा अष्टापदं द्यूतक्रीडाविशेषस्तं नशिक्षेत नापि पूर्वशिक्षितमनुशीलयेदिति । तथा वेधोधर्मानुवेधस्तस्मादतीतमधर्मप्र धानं वचोनोवदेत् । यदिवा वेधइति वस्त्रवेधोद्यूतविशेषस्तजतं वचनमपि नोवदेदास्तां तावत्क्रीडनमिति हस्तकर्म प्रतीतं । यदिवा हस्तकर्म हस्तक्रिया परस्परं हस्तव्यापार प्रधानः कलहस्तं तथा विरुद्धवादं शुष्कवादमित्यर्थः । चःसमुच्चये । तदेतत्सर्वं संसा रभ्रमणकारणं ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याचक्षीत ॥१७॥ किंच ( प णहावेवेइत्यादि ) उपानहौ काष्ठपाडुके च तथाऽतपादिनिवारणाय छत्रं तथा नालिका द्यूतक्रीडाविशेषस्तथा वालैर्मयूरपिछैर्वा व्यजनकं तथा परेषां संबंधिनी क्रियामन्योन्यपरस्प रतो ऽन्यनिष्पाद्यामन्यः करोत्यपरनिष्पाद्यां चापरइति। चःसमुच्चये। तदेतत्सर्वं विद्वान् पं मितः कर्मोपादानकारणत्वेन ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति॥१८

उच्चारं पासवणं हरिएसु ण करे मुणी ॥ वियडेण वा विसाहट्टु, णायमज्जे कयाइवि ॥ १९॥ परमत्ते अन्नपाणं, ण भुंजेज्ज कया इवि ॥ परवत्थं अचेलोवि, तं विज्जं परिजाणिया ॥ २० ॥

अर्थ- ( उच्चारं के० ) वडीनीत ( पासवणं के० ) लघुनीत तेनो ( हरिएसुणकरेसु निः के० ) मुनि हरित काय वनस्पति उपर स्थंमिल नकरे (वियडेणवाविसाहट्टु के०) फासु पाणियें करी वनस्पतिकाय हरितकाय बीजने कदापि (णावमज्जेकयाइविके०) पर हां नकरे एटले निश्चेयकी दूरन करे ॥ १९ ॥ ( परमत्तेअन्नपाणं के० ) पर एटले अन्य गृहस्थ तेने घेर कांसादिकना जाजनने विषे अन्न पाणी आहारादिकने (णभुंजेज्ज कयाइवि के० ) कदापि जुंजे नही एटले जमे नही ( परवत्थंअचेलोवि के० ) पोते अ चेलक एटले वस्त्र रहित उतां पण परजे गृहस्थादिकतेनुंजे वस्त्र तेने नजोगवे एटले ए सर्वने संयम विराधवाना कारण जाणीने जे पंमित होय ते परिहरे ॥ २० ॥

॥ दीपिका-उच्चारं प्रस्रवणं च हरितेषु नकुर्यान्मुनिः। तथा विकटेन प्रासुकजलेनापि संहृत्यापनीय बीजानि हरितानि वा नाचमेत ननिर्लेपनं कुर्यात्किमुताविकटेन ॥ १९ ॥ परस्य गृहस्थस्यामत्रं जाजनं तत्रान्नपानं नजुंजीत। कदाचिदपि पूर्वकर्मपश्चात्कर्मादिदोषा त् अचैलोपि सन् परवस्त्रं गृहस्थवस्त्रं नबिजर्ति । यद्दिवा ऽचैलोजिनकल्पी तस्य सर्वम पि वस्त्रं परवस्त्रमेव तन्न बिजृयात् तत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २० ॥

॥ टीका-तथा ( उच्चारमिति ) उच्चारप्रस्रवणादिकां क्रियां हरितेषूपरिबीजेषु वा स्थं डिले वा मुनिः साधुर्नकुर्यात्तथा विकटेन विगतजीवेनाप्युदकेन संहृत्यापनीय बीजानि ह रितानि वा नाचमेत ननिर्लेपनं कुर्यात् किमुताविकटेनेतिजावः ॥ १९ ॥ किंच (परमत्ते इत्यादि ) परस्य गृहस्थस्यामत्रं जाजनं परामत्रं तत्र पुरःकर्म पश्चात्कर्म तद्भयात् हृतनष्टा दिदोषसंजवाच्चान्नं पानंच मुनिर्न कदाचिदपि जुंजीत। यद्दिवा पतद्गृहधारिणश्छिद्रपाणेः पाणिपात्रं परपात्रं। यद्दिवा पाणिपात्रस्याछिद्रपाणेर्जिनकल्पिकादेः पतद्गृहः परपात्रं त त्र संयमविराधनाजयान्नजुंजीत तथा परस्य गृहस्थस्य वस्त्रं परवस्त्रं तत्साधुरचैलोपि सन् पश्चात्कर्मादिदोषजयात् हृतनष्टादिदोषसंजवाच्च नबिजृयात् । यद्दिवा जिनकल्पिका दिकोऽचैलोजूत्वा सर्वमपि वस्त्रं परवस्त्रमिति कत्वा नबिजृयादेतत्सर्वं परपात्रजोजनादि कं संयमविराधकत्वेन ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥ २० ॥

आसंदीपलियंकेय, णिसिज्जं च गिहंतरे॥ संपुच्छणं सरणंवा, तं
विज्जं परिजाणिया ॥ २१॥ जसं किंत्ति सलोयंच, जाय वंदण पू
यणा ॥ सवलोयंसि जे कामा, तं विज्जं परिजाणिया ॥ २२ ॥

अर्थ-( आसंदीपलियंकेयके०) गृहस्थनुं आसन जे मांची प्रमुख तथा पर्यंकासन ते

ना उपर वेसवुं तथा ( निसिज्जंचगिहंतरेके० ) गृहस्थना घरने अंतरे अथवा गृहस्थना घरमां बेसवुं ( संप्रछनं के० ) गृहस्थने कुशलादिकनुं पुछवुं ( वाके० ) तथा ( सरणं के० ) पूर्वक्रीडादिकनुं संभारवुं ए सर्वने जाणीने पंमित परिहरे ॥ २१ ॥ जे सर्व व्यापि तेने ( जसंके० ) यश कहिए अने जे एकदेश व्यापि तेने ( कित्तिके० ) किर्त्ति कहिए तेज ( सिलोयंचके० ) श्लाघानी ( जायके० ) जाति जाणवी तथा ( वंदणपूयणाके० ) राजादिकनी वंदना पूजा सत्कार वस्त्रादिके करी करावदानी जे वांछा करवी, तथा ( सब्ब लोयंसिजेकामा के० ) सर्व लोकमां जे विषय इछा कामरूप तेनी वांछना करवी, ए सर्वेने पंमित कर्म बंधना कारण जाणीने परिहरे ॥ २२ ॥

---

॥ दीपिका–आसंदीआसनविशेषः पर्यंकःशयनविशेषः । तथा द्वयोर्गृहयोर्मध्ये निषद्यामवस्थानं परिहरेत् गृहस्थकुले कुशलादिसंप्रछनं पूर्वक्रीडितस्मरणं तदेतत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ २१ ॥ संग्रामादिभवं यशः। दानादिभवा कीर्तिः। तपोज्ञानादिभवा श्लाघा तथा नृपादिभिर्वंदना पुष्पादिभिः पूजनं तथा सर्वलोकइछामदनरूपाये कामास्तदेतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २२ ॥

---

॥ टीका-( आसंदीत्यादि ) आसंदीत्यासनविशेषः । अस्य चोपलक्षणार्थत्वात्सर्वोप्यासनविधिर्गृहीतः । तथा पर्यंकः शयनविशेषस्तथा गृहस्यांतर्मध्ये गृहयोर्वा मध्ये निषद्या वाऽऽसनंवा संयमविराधनाभयात्परिहरेत् । तथाचोक्तं । गंभीरज्ञुसिराएते, पाणाडुप्पडिलेहगा ॥ अगुत्ती बंभचेरस्स, इत्थीउ वावि संकणाइत्यादि । तथा तत्र गृहस्थगृहे कुशलादिप्रछनं आत्मीयशरीरावयवप्रछनंवा तथा पूर्वक्रीडितस्मरणं चेत्येतत्सर्वं विद्वान् विदितवेद्यः सन्ननर्थायेति ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ २१ ॥ अपि च । ( जसंकित्तिमित्यादि ) बहुसमरसंघट्टनिर्वहणशौर्यलक्षणं यशः । दानसाध्या कीर्तिः जाततपोबहुश्रुत्यादिजनिताश्लाघा तथा याच सुरासुराधिपतिचक्रवर्तिबलदेववासुदेवादिभिर्वंदना तथा तैरेव सत्कारपूर्विका वस्त्रादिना पूजना तथा सर्वस्मिन्नपि लोके इछामदनरूपाये केचन कामास्तदेतत्सर्वं यशःकीर्तिमपकारितया परिज्ञाय परिहरेदिति ॥ २२ ॥

जेणेह णिवहे भिक्खू, अन्नपाणं तहाविहं ॥ अणुप्पयाणमन्नेसिं,
तं विज्जं परिजाणिया ॥ २३ ॥ एवं उदाहु निग्गंथे, महावीरे महा
मुणी ॥ अणंतनाणदंसी से, धम्मं देसि तवं सुतं ॥ २४ ॥

अर्थ– ( जेणेह के० ) जे ( अन्नपाणं के० ) अन्नपाणीयें करीने आलोकने वि पे ( णिव्वहेनिरकूके० ) साधुपोतानो निरवाह करे आजीविका करे तेवा अन्न पान ने ( तहाविहं के० ) तथाविध देखीने द्रव्य, क्षेत्र, काल अने जावनी अपेक्षायें शुद्ध नि दोंष ग्रहण करे. (अणुप्पयाणमन्नेसिं के०) वली एज अन्न पाणीनुं बीजा असंयतिने देवुं ते सर्वेने ज्ञ परिज्ञायें अनर्थनुं हेतु जाणीने पंमित परिहरे ॥ २३ ॥ ( एवं के० ) एरीते ( महामुणी के० ) महामुनि ( निग्गंथे के० ) बाह्याभ्यंतर परिग्रह रहित एवा ( महावीरे के० ) श्री वर्द्धमान स्वामी तेणे ( उदाहु के० ) कह्याठे. ( सेके० ) ते श्री वर्द्धमान केवाठे, तोके ( अणंतनाणदंसी के० ) अनंत ज्ञान दर्शनना धरनारठे. तेणे धम्मंदेसितवंसुतं के०) ए श्रुत चारित्र रूप धर्म उपदेश्यो ठे सिद्धांत रहस्य प्रकाश्योठे.

---

॥ दीपिका– येनान्नपानेन इहास्मिन् लोके निक्षुर्निर्वहेत् संयमयात्रां कुर्यात् तत्तथा विधमन्नं पानं वा शुद्धं गृण्हीयात्तेषामन्नादीनामनुप्रदानं गृहस्थानां परतीर्थिकानां स्वयूथ्यानां वा संयमोपघातकं नकुर्यात्तत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २३ ॥ एवं पूर्वोक्तं निर्ग्रंथः श्रीवीरोमुनिः उदाहृतवान् कथितवान् । बाह्याभ्यंतरग्रंथरहितत्वान्नि र्ग्रंथः । अनंतं ज्ञानं दर्शनं च यस्यासावनंतज्ञानदर्शी सजगवान् धर्मचारित्ररूपं श्रुतं च सिद्धांतं देशितवान् प्रकाशितवान् ॥ २४ ॥

---

॥ टीका– किंचान्यत् । ( जेणेहमित्यादि ) येनान्नेन पानेन वा तथाविधेनेति सुप रिशुद्धेन कारणापेक्षयात्वशुद्धेन वा इहास्मिन् लोके इदं संयमपात्रादिकं डुर्निक्षारोगात कादिकं वा निक्षुर्निर्वहेन्निर्वाहयेद्वा यदन्नं पानंवा तथाविधं द्रव्यक्षेत्रकालजावापेक्षयाशुद्धं कल्पं गृण्हीयात्तथैतेषामन्नादीनामनुप्रदानमन्यस्मै साधवे संयममात्रान्निर्वहणसमर्थ मनुतिष्ठेत् । यदिवा येनकेनचिदनुष्ठितेन संयमं निर्वहेन्निर्वाहयेदसारतामापादयेत्तथाविध मशनं पानं वाऽन्यद्वा तथाविधमनुष्ठानं नकुर्यात् । तथैषामशनादीनामनुप्रदानं गृहस्थानां परतीर्थिकानां स्वयूथ्यानां वा संयमोपघातकं नानुशीलयेदिति तदेतत्सर्वं ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा सम्यक्परिहरेदिति ॥ २३ ॥ यडुपदेशेनैतत्कुर्यात्तद्दर्शयितुमाह ( एवंउदाहुइत्या दि ) एवमनंतरोक्तया नीत्या उद्देशकादेरारज्य ( उदाहुत्ति ) उदाहृतवानुक्तवान्निर्गतो बाह्याभ्यंतरोग्रंथोयस्मात्सनिर्ग्रंथोमहावीरइति श्रीमद्वर्धमानस्वामी महांश्चासौ मुनिश्च महामुनिःअनंतं ज्ञानं दर्शनं च यस्यासावनंतज्ञानदर्शी सजगवान् धर्मं चारित्रलक्षणं सं सारोत्तरणसमर्थं वा तथा श्रुतं च जीवादिपदार्थसूचकं देशितवान् प्रकाशितवान् ॥ २४ ॥

भासमाणो नभासेज्जा, णेव वंफेज्जमम्मयं ॥ मातिट्ठाणं विवज्जे
ज्जा, अणुचिंतिय वियागरे ॥ २५ ॥ तत्थिमा तइया भासा, जं
वदित्ता णुतप्पती ॥ जं छन्नं तं न वत्तवं, एसा आणाणियंठिया ॥२६॥

अर्थ–( भासमाणोनभासेज्जा के० ) गुरुवादिक मोहोटा पुरुष बोलता होय तेनी व चमां नडकीने नबोले, तथा (मम्मयंके०) मर्मनुं वचन जेना बोलवा थकी कोइ जीव डुह वाय एवा वचन बोले नही. ( मातिट्ठाणंविवज्जेज्जा के० ) मातृस्थान एटले मायायें करी प्रधान वचन बोलवानुं पण वर्जे तो शुं बोले तोके ( अणुचिंतियवियागरे के० ) कार्य विशेषे विमाशीने बोले जे भाषा बोलवा थकी कांइ पण डुषण नलागे तेवी भा षा प्रकाशे ॥ २५ ॥ ( तत्थिमातइयाभासा के० ) एक सत्या बीजी असत्या त्रीजी स त्यामृषा चोथी असत्यामृषा ए चार भाषा माहेली त्रीजी भाषा जे कांइक सत्य अने कांइक असत्य छे तेपण नबोले ( जंवदित्ताणुतप्पती के० ) जे भाषाना बोलवा थकी पछी घणो पश्चाताप करवो पडे, एटले परभवे एना उदयथी डुःखी थाय तेवारे पश्चा ताप करे ( जंछन्नंतंनवत्तवं के० ) जे सावद्य एवुं हिंसाकारी वचन ते नबोले, एटले आ अमुक चोरछे एने मारो, आ धातुनो प्रयोग करो, अथवा आ खेत्र खेडो एवी भाषा नबोले. ( एसाआणाणियंठियाके० ) एवी आज्ञा निर्ग्रंथ श्रीमाहावीर देवनीछे ॥२६॥

---

॥ दीपिका–योहि भाषासमितः सन्भाषमाणोपि धर्मकथां कथयन्नपि अभाषकएव । उक्तंच । वयणविहत्तीकुसलो, वउगयं बहुविहं वियाणंतो । दिवसंपि भासमाणो, साहू वइगुत्तयंपत्तो ॥ १ ॥ अथवा यत्र रत्नाधिकोभाषमाणः स्यात्तत्रांतरे नभाषेत । मर्मगं व चनं नकांक्षेत् । यद्वचनमुक्तं सत्परपीडामाधत्ते तन्न भाषेतेत्यर्थः। मातृस्थानं मायाप्रधानं वचोविवर्जयेत् अनुविचिंत्य विचार्य व्यागृणीयात् वदेत् ॥ २५ ॥ सत्या १ असत्या२ सत्यामृषा ३ असत्यामृषा ४ एताश्चतस्रोभाषाः । तत्रेयं तृतीया भाषा साच किंचित्सत्या किंचिन्मृषा। यथा दशदारकाअत्रपुरे जातामृतावा तदत्र न्यूनाधिकसंभवेसति संख्या व्यभिचारात्सत्यामृषात्वं । यां भाषामुदित्वा इहलोके वा अनितप्यते क्लेशभाग्भवति । को र्थः। मिश्रापि भाषा दोषाय किंपुनरसत्येति । तथा यद्वचः ( छंन्नत्ति ) क्षणुहिंसयां हिंसाप्र धानं प्रछन्नंवा यत्नोऽकैराभ्रायते तत्सत्यमपि नवाच्यं एषाज्ञा निर्ग्रंथोभगवान तस्य. ॥२६

---

॥ टीका–किंचान्यत् (भासमाणे इत्यादि ) योहि भाषासमितः सन्भाषमाणोपि धर्मक थासंबंधभाषकएव स्यात् । वकंच । वयणविहत्तीकुशलो, वउगयं बहुविहं वियाणंतो ।

दिवसंपि नासमाणो,साहूवरुगुत्तयंपत्तो ॥१॥ यदिवा यत्रान्यः कश्चिद्ब्रह्मादिकोनाषमाणस्त त्रांतरएव सश्रुतिकोऽहमित्येवमनिमानवान्ननापेत।तथा मर्मे गच्छतीति मर्मगं वचोन (वंफे ज्ञत्ति ) नानिलपेत् । यद्वचनमुच्यमानं तथ्यमतथ्यंवा सद्यस्य कस्यचिन्मनःपीडामाधत्ते तद्विवेकी न नाषेतेति नावः। यदिवा मामकं ममीकारः पक्षपातस्तं नाषमाणो (नवंफेज्ज ति) नानिलपेत्तथा मातृस्थानं मायाप्रधानं वचोविवर्जयेत्। इदमुक्तं नवति। परवंचनबुध्या गूढाचारप्रधानोनाषमाणोऽनाषमाणोवाऽन्यदावा मातृस्थानं नकुर्यादिति । यदातु वक्तु कामोनवति तदा नैतद्वचः परमात्मनोरुनयोर्वा बाधकमित्येवं प्राग्वि चिंत्य वचनमु दाहरेत्। तडुक्तं। पुवं बुद्धीएपेहित्तापच्छावकमुदाहरे इत्यादि ॥२५॥ अपिच। (तछिमेत्यादि) सत्या असत्या सत्यामृषा असत्यामृषेत्येवंरूपासु चतसृषु नाषासु मध्ये तत्रेयं सत्यामृषेत्ये तदनिधानातृतीया नाषा। साच किंचिन्मृषा किंचित्सत्या इत्येवंरूपा। तद्यथा दशदारका अ स्मिन्नगरे जातामृताः। तदत्र न्यूनाधिकसंनवेसति संख्यायाव्यनिचारात्सत्यामृषात्वमिति। यां चैवंरूपां नाषामुदित्वा अनुपश्चात्नाषणाज्जन्मांतरेवा तज्जनितेन दोषेण तप्यते पीड्यते क्लेशनाग्नवति।यदिवा अनुतप्यते किंममैवंनूतेन नाषितेनेत्येवं पश्चात्तापं विधत्ते। ततश्चेद मुक्तं नवति मिश्रापि नाषा दोषाय किंपुनरसत्या द्वितीया समस्तार्थविसंवादिनी। तथा प्रथमापि नाषा सत्या या प्राण्युपतापेन दोषानुषंगिणी सा न वाच्या। चतुर्थाप्यसत्या मृषा नाषा बुधैरनाचीर्णा सा न वक्तव्येति। सत्यायाअपि दोषानुषंगित्वमधिकृत्याह । यद्वचः ( बन्नंति ) क्षणुहिंसायां हिंसाप्रधानं । तद्यथा वध्यतांचौरायं लूयंतांकेदाराः दम्यंतां गोरथकाइत्यादि । यदिवा बन्नंति प्रछन्नं यल्लोकैरपि प्रछाद्यते तत्सत्यमपि न वक्तव्य मिति । एषाऽऽज्ञा अयमुपदेशोनिर्ग्रंथोनगवांस्तस्ये ति ॥ २६ ॥

होलावायं सहीवायं, गोयावायं च नोवदे ॥ तुमं तुमंति अमणु न्नं, सवसो तं ण वत्तए ॥ २७ ॥ अकुसीले सया निरकू, णेव सं सग्गियं नए ॥ सुहरूवा तत्थुवस्सग्गा, पडिवुक्षेज्ज तेविऊ ॥२८॥

अर्थ–( होलावायं के० ) होलावादते देश विशेषे डरवचन विशेषछे तेमाटे होल्या एम नबोले; तेथा ( सहीवादं के० ) हे सखी एम पण न बोले; ( गोयावायंचनोवदे तुके०) गोत्रनो प्रकाशकरी बोलाववो जे तुं अमुक नीच गोत्रीगो एवुं वचन पण नबोले; ( तुमंतुमंतिअणुमन्नंके० ) तुंतुं एवो अमनोज्ञ तिरस्कारनुं असुहामणुं वचन ते ( सव सोतंणवत्तए के० ) सर्वथा प्रकारे नबोले; केमके साधुने एवा वचन बोलवा युक्त न थी. ॥ २७ ॥ ( अकुसीलेसया निरकू के० ) सर्व काल साधु अकुशील होय ब्रह्मचारी

थको रहे ( एवसंसग्गियंजए के० ) तथा जिनशासनथी विरुद्ध एवा अनाचारी पास ञादिकनो त्रविधे संसर्ग नकरे ते पासञादिकनो संसर्ग केवोछे तोके जेना थकी ( सु हरूवा तह्रुवस्सग्गा के० ) सुखरूप जे संयम तेना घातना करनार एवा एना थकी उपसर्ग उत्पन्न थायछे केमके ते प्रायें सातागारव पणे वर्त्तनारा होय छे तेमाटे तेनी साथे सुविहित पुरुष संसर्ग करे तो तेपण सातागारव पणाने पामे. तेथी सुखरूप सं यमनो घातक थायछे माटे ( पडिवुज्झेज्जतेविऊ के० ) पंमित जे होय ते प्रतिबोध पा मीने एवा स्वेञाचारीउनो संसर्ग तेने डुःखनुं कारण जाणीने त्याग करे. ॥ २७ ॥

॥ दीपिका–होलाइति वादोहोलावादः सखेइति वादः सखिवादः गोत्रप्रकटनेन वादो गोत्रवादः काश्यपगोत्रावासिष्ठगोत्रावेत्यादि एवंरूपं वादं साधुर्नवदेत् ( तुमंति ) इञं त्वमिति तिरस्कारवाक्यं अमनोज्ञं परस्य मनःप्रतिकूलं सर्वशः सर्वथा साधूनां वक्तुं न वर्तते ॥ २७ ॥ नकुशीलोऽकुशीलः सदाभिक्षुर्नकुशीलैः संसर्गं नजेत सेवेत । सुखरूपा सातागौरवस्वनावास्तत्र कुशीलसंगे उपसर्गाः संयमोपघातकारिणः प्राडुर्ष्यंति तद्विद्वा न् विवेकी प्रतिबुध्येत जानीयात् कुशीलसंगं त्यजेदित्यर्थः ॥ २७ ॥

॥ टीका–किंच (होलावायमित्यादि) होलेत्येवं वादोहोलावादस्तथासखेत्येवं वादः स खिवादस्तथा गोत्रोद्घाटनेन वादोगोत्रवादोयथा काश्यपसगोत्रोवासिष्ठसगोत्रोवेति इत्ये वंरूपं वादं साधुर्नोवदेत्तथा ( तुमंतुमं ) तिरस्कारप्रधानमेकवचनातंबहुवचनोञारणयो ग्येऽमनोज्ञं मनःप्रतिकूलरूपमन्यदप्येवंजूतमपमानापादकं सर्वशः सर्वथा तत्साधूनां वक्तुं न वर्ततइति । यदाश्रित्योक्तं निर्युक्तिकारेण । तद्यथा । पासडोसप्पुकुशीलसंथवोणकिलव ट्टएकाउं तदिदमित्यादि ॥२७॥ ( अकुशीलेत्यादि ) कुत्सितं शीलमस्येति कुशीलः सच पार्श्वस्थादीनामन्यतमः नकुशीलोऽकुशीलः सदा सर्वकालं निक्षणशीलोनिक्षुः कुशीलो नजवेन्नचापि कुशीलैः सार्धं संसर्गं सांगत्यं नजेत सेवेत । तत्संसर्गदोपोद्विनावयिपयाह् । सुखरूपाः सातागौरवस्वनावास्तत्रतस्मिन् कुशीलसंसर्गे संयमोपघातकारिणउपसर्गाः प्राडुर्ष्यंति । तथाहि । कुशीलवक्तारोनवंति । कः किल प्रासुकोदकेन हस्तपाददंतादिके प्रक्षा ल्यमानेदोपः स्यात्तथा नाशरीरोधर्मोनवति इत्यतोयेन केनचित्प्रकारेणाधाकर्मसान्निध्या दिना तथा उपानह्छत्रादिनाच शरीरं धर्माधारं वर्तयेत् । उक्तंच । अप्पेण बहुमेसेज्जा एयं पंडियलरकणंइति । शरीरं धर्मसंयुक्तं रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ शरीरात्स्रवते पापं पर्वतात्स लिलं यथा ॥ १॥ तथा सांप्रतमल्पानि संहननानि अल्पधृतयश्च संयमे जंतवइत्येवमादि कुशीलोक्तं श्रुत्वा अल्पसत्वास्तत्रानुपक्तंत्येवं विद्वान् विवेकी प्रतिबुध्येत जानीयात् बु ध्वा चापायरूपकुशीलसंसर्गं परिहरेदिति ॥ २७ ॥

नन्नच अंतराएणं, परगेहेण णिसीयए ॥ गामकुमारियं किहं, नातिवेलं हसे मुणी ॥ २९ ॥ अणुस्सुउ उरालेसु, जयमाणो परिव्वए ॥ चरियाए अप्पमत्तो, पुठो तछ हियासए ॥ ३० ॥

अर्थ- ( नन्नछ अंतराएणं के० ) जरा रोगादिक कारणविना ( परगेहेणणिसीयए के० ) गृहस्थना घरने विषे नबेशे एटले गृहस्थने घेर नबेशवुं ए साधुनो उत्सर्ग मार्ग कह्योछे. अने अपवादे तो जरारोगादिक कारण विना नबेशे तथा कोइएक लब्धीमंत धर्मोपदेशादिक वचन देवाने कारणे पण बेशे तथा ( गामकुमारियंकिहं के० ) ग्रामने विषे बालक क्रीडा हास्य कंदर्प हस्तस्पर्श आलिंगनादिक गेडा दडि इत्यादिक क्रीडाने (नातिवेलंहसेमुणीके०) साधु नकरे वली पडिलेहणादिक क्रियानी मर्यादा ने नगवंतनी आज्ञा थकी विरुध जाणीने अतिक्रमे नही हसे नही ॥२९॥ (अणुस्सुउ उरालेसु के०) उदार उद्भट प्रधान एवा गृहस्थना कामनोगादिक देखी तथा सांजलीने तेनी वांछा करे नही; तथा ( जयमाणोपरिवए के० ) संयमने विषे यत्नकरतो शुद्ध चारित्र पाले ( चरियाएअप्पमत्तो के० ) विहार करवाने विषे प्रमाद नकरे, अप्रमत्त पणे विचरे ( पुछोतछहियासए के० ) त्यां विहार करवानेविषे उपसर्ग परिसह उपने थके तेने फरशयो थको अदीनपणे सम्यक्रीते अहियासे ॥ ३० ॥

---

॥ दीपिका—साधुर्भिक्षानिमित्तं ग्रामादौ प्रविष्टः सन् परोगृहस्थस्तस्य गृहे ननिषीदेत नोपविशेत्। यदिवा देशनालब्धिमान् कश्चित्ससहायोगुर्वनुज्ञातः कथंचित्तथाविधस्य धर्मदेशनानिमित्तमुपविशेदपि । तथा ग्रामे कुमारकास्तेषामियं ग्रामकुमारिका क्रीडा हास्यकंदर्पहस्तसंस्पर्शालिंगनादिका अथवा क्रीडा वट्टकंडुकादिका तां मुनिर्नोकुर्यात् अतिवेलं वेलामर्यादा तामतिक्रम्य नहसेन्मुनिः । यदागमः । जीवेणंभंतेहसमाणे उस्सूयमाणेवाकाइकम्मवगडीउ बंधइ गोयमा सत्तविहबंधएवा अष्टविहबंधएवाइत्यादि ॥ २९ ॥ उदारेषु शब्दादिविषयेषु अनुत्सुकोऽनासक्तोयतमानः संयमे परिव्रजेन्मूलोत्तरगुणेपूद्यमं कुर्यात् । चर्यायां निक्षादिकायामप्रमत्तः स्यात् स्पृष्टः परीषहादिभिस्तत्राऽदीनोऽध्यासहेत् सम्यक् सहात् ॥ ३० ॥

---

॥ टीका—किंचान्यत् ( ननछेत्यादि ) तत्र साधुर्भिक्षादिनिमित्तं ग्रामादौ प्रविष्टः सन् परोगृहस्थस्तस्य गृहं परगृहं तत्र ननिषीदेन्नोपविशेत्उत्सर्गतोस्यापवादं दर्शयति।नान्यत्रांतरायेणेति। अंतरायः शक्त्यनावः सच जरसा रोगातंकाभ्यां स्यात्तस्मिं चांतराये सत्युपवि

ऽेथदिवोपशमलब्धिमान् कश्चित्सुसहायोगुर्वनुज्ञातः कस्यचित्तथाविधस्य धर्मदेशनानिमित्तमुपविष्टोऽपि। तथा ग्रामे कुमारकाग्रामकुमारकास्तेषामियं ग्रामकुमारिका ऽसौक्रीडा हास्यकंदर्पहस्तसंस्पर्शनालिंगनादिका। यदिवा वट्टकंडुकादिका तां मुनिर्नकुर्यात्तथा वेला मर्यादातामतिक्रांतमतिवेलं नहसेन्मर्यादामतिक्रम्य मुनिः साधुर्ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबंधनयान्नहसेत्। तथा चागमः। जीवेणं नंते हसमाणे वस्सूयमाणे वाकाइकम्मपगडीउ बंधइ गोयमा सत्तविह बंधएवा अठविहबंधएवाइत्यादि ॥ २९ ॥ किंच (अणुस्सुउइत्यादि) उरालावदाराः शोननामनोज्ञाये चक्रवर्त्यादीनां शब्दादिषु विषयेषु कामनोगा वस्त्रानरणगीतगंधर्वयानवाहनादयस्तथा आज्ञैश्वर्यादयश्चैतेषूदारेषु दृष्टेषु श्रुतेषु वा नोत्सुकः स्यात्। पाठांतरंवा। ननिश्रितोऽनिश्रितो ऽप्रतिबद्धः स्यायतमानश्च संयमानुष्ठाने परिसमंतान्मूलोत्तरगुणेषु उद्यमं कुर्वन् व्रजेत्संयमं गच्छेत् तथा चर्चायां निक्षादिकायामप्रमत्तःस्यात् नाहारादिषु रसगार्ध्यं विदध्यादिति । तथा स्पृष्टश्चानिद्रुतश्च परीषहोपसर्गैस्त्रादीनमनस्कः कर्मनिर्जरां मन्यमानोविषहेत सम्यक् सह्यादिति ॥ ३० ॥

हम्ममाणो ए कुप्पेज्जा, वुच्चमाणो नसंजले ॥ सुमणे अहियासिज्जा, एय कोलाहलं करे ॥३१॥ लद्धे कामे ए पत्थेज्जा, विवेगे एव माहिए ॥ आयरियाइं सिक्खेज्जा, बुद्धाणं अंतिए सया ॥ ३२ ॥

अर्थ-(हम्ममाणोणकुप्पेज्जाके०) कोइए लाकडी अने मुष्ट्यादिके करी हएयो उतो क्रोध नकरे (वुच्चमाणोनसंजलेके०) तथा डुर्वचने करी आक्रोश उपजाव्यो थको पण क्रोध नकरे, अने प्रति वचन पण नबोले; (सुमणेअहियासिज्जाके०) किंतु सुमन थको पूर्वोक्त परीसहने सहन करे, परंतु (एयकोलाहलंकरे के०) तेवा परीसहनी पीडायें पीडयो थको कोलाहल नकरे ॥३१॥ (लद्धेकामेणपत्थेज्जाके०) प्राप्त थएला कामनोगने प्रार्थे नही एटले नोगवे नही, (विवेगेएवमाहिए के०) ए साधुनो विवेक श्रीतीर्थंकरे कह्योने, (आयरियाइंसिक्खेज्जा के०) तथा जे आचरवायोग्य एवा ज्ञान, दर्शन अने चारित्रादिक तेने शीखे, परंतु कोनी पासेथी शीखे तोके (बुद्धाणंअंतिएसया के०) गुरु जे आचार्य तेनी पासेथी सदा शीखे एटले गुरु कुल वास कह्यो. ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका-हन्यमानोयष्ट्यादिनिर्न कुप्येत कोपं न कुर्यात् डुर्वचनैरुच्यमानआक्रुश्यमानोन संज्वलेत नप्रलापं वदेत् सुमनाः कोलाहलमकुर्वन्नधिसहेत ॥ ३१ ॥ लब्धानपि कामान् नोगांश्च वैरस्वामिवन्नप्रार्थयेन्नगृह्णीयात् एवंकुर्वतोहि विवेकआविर्भावितः स्या

त् । आर्याणि शुनानि कर्तव्यानि बुद्धानामाचार्याणामंतिके समीपे शिक्षेताभ्यसेदनेन नित्यगुरुकुले वासः सेवनीयइति ज्ञापितं ॥ ३१ ॥

---

॥ टीका–परीषहोपसर्गाधिसहनमेवाधिकृत्याह । (हम्ममाणोऽत्यादि) हन्यमानो यष्टिमुष्टिलकुटादिनिरपि न कुप्येन्नकोपवशगोनवेत्तथा डुर्वचनान्युच्यमानआक्रुश्यमानो निर्नत्र्स्यमानोन संज्वलेन्न प्रतीपं वदेन्नमनागपि मनोऽन्यथात्वं विदध्यात् किंतु सुमनाः सर्वं कोलाहलमकुर्वन्नधिसहेतेति ॥ ३१ ॥ किंचान्यत् । (लद्धेकामेइत्यादि) लब्धान् प्राप्तानप्राप्तानपि कामानिच्छामदनरूपान्गंधालंकारवस्त्रादिरूपान्वा वैरस्वामिवन्नप्रार्थयेन्नानुमन्येत नगृह्णीयादित्यर्थः । यदिवा यत्र कामावसायितया गमनादिलब्धिरूपान् कामांस्तपोविशेष लब्धानपि नोपजीव्यान्नाप्यनागतान् ब्रह्मदत्तवत्प्रार्थयेदेवं च कुर्वतोनावविवेकआख्यातआविर्नावितोनवति । तथा आर्याण्यार्याणां कर्तव्यानि अनार्यकर्तव्यपरिहारेण । यदिवा आचर्याणि मुमुक्षुणां यान्याचरणीयानि ज्ञानदर्शनचारित्राणि तानि बुद्धानामाचार्याणामंतिके समीपे सदा सर्वकालं शिक्षेताभ्यसेदित्यनेन हि शीलवता नित्यं गुरुकुलवास आसेवनीयइत्यावेदितं नवतीति ॥ ३२ ॥

सुस्सूसमाणो उवासेज्जा, सुप्पन्नं सुतवस्सियं ॥ वीराजे अत्तपन्नेसी, धितिमंता जिइंदिया ॥ ३३ ॥ गिहेदीवमपासंता, पुरिसा दाणिया नरा ॥ ते वीरा बंधणुम्मुक्का, नावकंखंति जीवियं ॥३४॥

अर्थ–( सुस्सूसमाणोउवासेज्जाके० ) सांनलवा वांछतो एवो जे साधु ते पोताना गुरुनी रुडी वैयावच्चादिक विश्रामणादिके करी सेवा करे, ते गुरु केवाहोय तोके ( सुप्पन्नं सुतवस्सियंके०) स्वपर सिद्धांत जाणवाने नलीछे प्रज्ञा जेनी एटले रुडा गीतार्थ तथा रुडा तपना करनार एवा गुरुनी सेवा करे; ते केवा पुरुष गुरुनी सेवा करे तोके ( वीरा के० ) कर्मने जीतवा समर्थ तथा ( जेअत्तपन्नेसी के० ) जे सत्य बुद्धिना गवेषण हार तथा ( धितिमंताजिइंदिया कं० ) धैर्यवंत एटले जेमनुं संयममां एकाग्र चित्तछे, अने जीतेंद्रिय एवा जे पुरुष होय ते गुरुनी सेवा करे ॥ ३३ ॥ ( पुरिसादाणियानरा के०) जे पुरुषादानीय एटले सत्यमार्गनी गवेषणा करनार एवा मनुष्य ते एम जाणेछे जे ( गिहेके० ) गृहस्थने नावे रेवा थकी ( दीवंके० ) ज्ञानरूप दीपक अथवा संसारनो उद्धार तेने ( अपासंता के० ) नथी देखता माटे चारित्र आदरेछे, (तेवीराबंधणुम्मुक्का के०) ते वीर पुरुष राग द्वेषादिक बंधनथी रहित थका ( नावकंखंतिजीवियं के०) असंयमे जीवितव्य वांछे नही एटले जीववाने अर्थे असंयम करे नही ॥ ३४ ॥

॥ दीपिका—शुश्रूषमाणोगुर्वादेर्वैय्यावृत्यं कुर्वाणोगुरुमुपासीत सेवेत। गुरुं किंभूतं। सुप्रज्ञं गीतार्थं सुतपस्विनं संयमवंतं। यडुक्तं। नाणस्स होइ भागी, थिरयरर्ज दंसणे चरित्तेय॥ धन्ना आवकहाए गुरुकुलवासं न मुंचंति॥१॥ ये वीराआत्मप्रज्ञान्वेषिणआत्महितान्वेषकाधृतिः संयमे रतिस्त इंतोजितेंड्रियास्ते गुरुकुलवासिनः स्युः। यडुक्तं। जस्स धिई तस्स तवो जस्स तवो तस्स सुग्गई सुलहा॥ जे अधिइमंतपुरिसा तवोवि खलु डुल्लहो तेसिमिति॥३३॥ गृहे गृहस्थत्वे दीपं भावदीपं श्रुतज्ञानमपश्यंतोऽप्राप्नुवंतोनराः सम्यक् प्रव्रज्यापुरुषादानीयाः पुरुषाणामादानीयाआश्रयणीयामहतोपि महीयांसः स्युरित्यर्थः। यएवंभूतास्ते वीराबंधनोन्मुक्ताजीवितमसंयमजीवितं नावकांक्षंति नाभिलषंति॥३४॥

॥ टीका—यडुक्तं बुद्धानामंतिके शिक्षेत्तत्स्वरूपनिरूपणायाह। (सुस्सूसमाणाइत्यादि) गुरोरादेशं प्रति श्रोतुमिच्छा शुश्रूषा गुर्वादेर्वैय्यावृत्त्यमित्यर्थः। तां कुर्वाणोगुरुमुपासीत सेवेत। तस्यैव प्रधानगुणद्वयद्वारेण विशेषणमाह। सुष्ठु शोभना वा प्रज्ञास्येति सुप्रज्ञः स्वसमयपरसमयवेदी गीतार्थइत्यर्थः। तथा सुष्ठु शोभनं वा सबाह्याभ्यंतरं तपोस्यास्तीति सुतपस्वी तमेवंभूतं ज्ञानिनं सम्यक्चारित्रवंतं गुरुं परलोकार्थी सेवेत। तथा चोक्तं। नाणस्स होइ भागी, थिरयरर्ज दंसणे चरित्तेय॥ धन्ना आवकहाए गुरुकुलवासं नमुंचंति। यएवं कुर्वंति तान् दर्शयति। यदिवा के ज्ञानिनस्तपस्विनइत्याह। वीराः कर्मविदारणसहिष्णवोधीरावा परीषहोपसर्गाक्षोभ्याः। धिया बुध्या राजंतीति वा धीराये केचनासन्नसिद्धिगमनाआप्तोरागादिविप्रमुक्तस्तस्य प्रज्ञा केवलज्ञानाख्या तामन्वेष्टुं शीलं येषां ते आप्तप्रज्ञान्वेषिणः सर्वज्ञोक्तान्वेषिणइतियावत्। यदिवा आत्मप्रज्ञान्वेषिणआत्मनः प्रज्ञा ज्ञानमात्मप्रज्ञा तदन्वेषिणआत्मज्ञत्वान्वेषिणआत्महितान्वेषिणइत्यर्थः। तथा धृतिः संयमे रतिः सा विद्यते येषां ते धृतिमंतः। संयमधृत्या हि पंचमहाव्रतभारो इहनं सुसाध्यं भवतीति। तपःसाध्या च सुगतिर्हस्तप्राप्तेति। तडुक्तं। जस्स धिई तस्स तवो, जस्स तवो तस्स सुग्गई सुलहा॥ जे अधिइमंतपुरिसा तवोवि खलु डुल्लहो तेसिं॥१॥ तथा जितानि वशीकृतानि स्वविषयरागद्वेषविजयेनेंड्रियाणि स्पर्शनादीनि यैस्ते जितेंड्रियाः शुश्रूषमाणा यथोक्तविशेषणविशिष्टाभवंतीति॥३३॥ तदभिधित्सुराह। (गिहेदीवमित्यादि) गृहे गृहवासे गृहपाशेवा गृहस्थभावइतियावत्। दीवंति। दीपीदीप्तौ दीपयति प्रकाशयतीति दीपः। सच भावदीपः श्रुतज्ञानलाभः। यदिवा द्वीपःसमुद्रादौ प्राणिनामावासभूतः सच भावद्वीपः संसारसमुद्रे सर्वज्ञोक्तचारित्रलाभस्तदेवंभूतं दीपं द्वीपं वा गृहस्थभावेऽपश्यंतोऽप्राप्नुवंतः संतः सम्यक् प्रव्रज्योत्थानेनोत्थिता उत्तरोत्तरगुणलाभेनैवंभूता भवंतीति दर्शयति। नराः पुरुषाः पुरुषोत्तमत्वाद्धर्मस्य नरोपादानमन्यथा स्त्रीणामप्येतद्गुणभाक्त्वं भवत्यथवा देवादिव्युदासार्थमिति। मुमुक्षूणां पुरुषाणामादानीयाआश्रयणीयाः पुरुषादानीयामहतोपि महीयां

सोन्नवंति । यदिवा आदानीयोहितैषिणां मोक्षस्तन्मार्गोवा सम्यक्दर्शनादिकः पुरुषाणां मनुष्याणामादानीयः सविद्यते येषामिति विगृह्य मत्वर्थीयोऽर्शआदिभ्योजिति । तथा यएवं नूतास्ते विशेषेणेरयंत्यष्टप्रकारं कर्मेति वीरास्तथा बंधनेन सबाह्याभ्यंतरेण पुत्रकलत्रादि स्नेहरूपेणोत्प्राबल्येन मुक्ताबंधनोन्मुक्ताः संतोजीवितमसंयमजीवितं प्राणधारणंवा नाविकांक्षंति नाभिलषंतीति ॥ ३४ ॥

अगिद्धे सद्दफासेसु, आरंभेसु अणिस्सिए ॥ सवं तं समयाती
तं, जमेतं लवियं बहु ॥ ३५ ॥ अइमाणंच मायंच, तं परिणाय
पंमिए ॥ गारवाणिय सवाणि, णिवाणं संधए मुणित्तिबेमि ॥
॥ ३६ ॥ इति श्रीधम्मनामं नवमज्झयणं सम्मत्तं.

अर्थ-( अगिद्धेसद्दफासेसु के० ) शब्द गंध रूप रस स्पर्शादिकने विषे अगृद्ध एटले अमूर्छित तथा ( आरंभेसु के० ) ठ कायना आरंभने विषे ( अनिश्रित के० ) प्रवर्त्ते नहीं, ( सवंतंसमयातीतं के० ) ए सर्व निषेधवाना कारण कह्या, ते सर्वने सिद्धांत थकी विपरीत जाणीने आचरवा नही. ( जमेतंलवियंबहु के० ) तथा जे विधि द्वारे कह्युंछे ते सर्व सिद्धांतने अनुसारे जाणीने आचरवुं ॥ ३५ ॥ ( अतिमाणंचमायंच के० ) अत्यंत मान अत्यंत माया च शब्द थकी क्रोध लोभ पण लेवा ( तंपरिन्नायपंमिए के० ) ए चार कषायने पंमित ज्ञ परिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये करी परिहरे (गारवाणियसवाणि के० ) तथा रसगारव ऋद्धिगारव अने सातागारव ए सर्वेने सर्वथा परिहरे ( णिवाणंसंधएमुणि के० ) साधु चारित्रिउं मोक्षने संधए एटले वांछे. त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ३६ ॥ इतिश्री धर्म नामा नवमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

---

॥ दीपिका-शब्दस्पर्शेषु । आद्यंतग्रहणान्मध्यग्रहणं । रूपगंधरसेष्वप्यगृद्धोऽनासक्त आरंभेष्वनिश्रितोऽप्रवृत्तः । सर्वमेतदध्ययनादेरारभ्य निषेधत्वेन यल्लपितमुक्तं मया बहु तत्समयात्कैनागमादतीतमितिकृत्वा निषिद्धं ॥ ३५ ॥ अतिमानं तत्सहचरं क्रोधं माया तत्कार्यभूतं लोभं च तत्सर्वं पंमितः परिहरेत् सर्वाणि गारवाणि ऋद्धिरससातरूपाणि त्यक्त्वेति शेषः । साधुर्निर्वाणं मोक्षं सर्वकर्मक्षयं वा संदध्यात् । इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ॥ ३६ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां नवमं धर्माध्ययनं समाप्तं ॥

---

॥ टीका-किंचान्यत् । ( अगिद्धेत्यादि ) अगृद्धोऽनध्युपपन्नोमूर्छितः । क । शब्दस्पर्शेषु मनोज्ञेष्वाद्यंतग्रहणान्मध्यग्रहणमतोमनोज्ञेषु रूपेषु गंधेषु रसेषु वा अगृद्धइति द्रष्टव्यं ।

तयेतरेपु वाऽहिष्टइत्यपि वाच्यः। तथा आरंजेषु सावद्यानुष्ठानरूपेष्वनिश्रितोऽसंबद्धोऽप्रवृ त्तइत्यर्थः। उपसंहर्तुकामआह । सर्वमेतदध्ययनादेरारभ्य प्रतिपेध्यत्वेन यन्नपितमुक्तं म या बहु तत्समयादार्हतादागमादतीतमतिक्रांतमिति कृत्वा प्रतिपिद्धंायदपिच विधिद्वारेणो क्तं तदेतत्सर्वं कुत्सितसमयातीतं लोकोत्तरं प्रधानं वर्तते । यदपिच तैः कुतीर्थिकैर्बहु ल पितं तदेतत्सर्वं समयातीतमिति कृत्वा नानुष्ठेयमिति ॥ ३५ ॥ प्रतिपेध्य प्रधाननिपेध द्वारे ण मोक्षानिसंधानेनाह (अतिमाणंचेत्यादि) अतिमानोमहामानस्तं । च शब्दात्सहचरितं क्रोधंच तथा मायां चशब्दात्तत्कार्यनूतं लोजंच तदेतत्सर्वं पंडितोविवेकी ज्ञपरिज्ञया परिज्ञा य प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरे त्तथा सर्वाणि गारवाणि ऋद्धिरससातरूपाणि सम्यक् ज्ञा त्वा संसारकारणत्वेन परिहरेत्परिहृत्यच मुनिःसाधुर्निर्वाणमशेपकर्मक्षयरूपं विशिष्टाका शदेशं वा संधयेदनिसंदध्यात् प्रार्थयेदितियावत् । इतिः परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्व वत् ॥ ३६ ॥ समाप्तं धर्माख्यं नवममध्ययनमिति ॥

हवे दशमुं समाधि नामे अध्ययन कहेले नवमां अध्ययनने विपे धर्म कह्यो, ते ध र्म समाधि विना थाय नही माटे दशमां अध्ययनमां समाधिनुं स्वरूप कहेले.

आघं मईमंमणुवीय धम्मं, अंजू समाहिं तमिणं सुणेह ॥ अप्प
डिन्ने जिरकू समाहिपत्ते, अणियाणनूते सुपरिवएज्जा ॥ १ ॥ उड्ढं
अहेयं तिरियं दिसासु,तसा य जे थावर जेय पाणा॥हत्थेहिं पाए
हिं य संजमित्ता, अदिन्नमन्ने सुयणो गहेज्जा ॥ २ ॥

अर्थ-( आयंमईमंमणुवीयधम्मं के० ) मतिमंत एटले केवली जगवान् तेणे केवल ज्ञाने करी विचारीने धर्म कह्यो, ते धर्म केवोले तोके (अज्जुके०) ऋजु एटले सरलता पणु ( समाहिंतमिणंसुणेहके० ) तेनेज समाधि कहिए. ते समाधि श्री केवली जगवंते मने उपदेशीले तेमज श्री सुधर्म स्वामि जंबुप्रत्ये कहेले के हुं तमने कहुंबुं ते तमे सांज लो जे एवो साधु होय ते समाधिने प्राप्त थयो एरीते जाणो ते साधु केवो होय ते कहेले. ( अप्पडिन्नेके०) जेने तप संयम पालता थका इह लोक तथा परलोकना सुखनी वांडा करवी एवी प्रतिज्ञा नथी तेने अप्रतिज्ञ कहिए; एवो, तथा ( अनिदाननूतेके० ) निदा न रहित एटले आश्रव रहित एवो थतो ( सुपरिवएज्जा के० ) रुडीरीते संयम पाले ते ( निरकूके० ) साधु ( समाहिपत्ते के० ) समाधि प्राप्त जाणवो ॥ १॥ ( उड्ढंअहेयंतिरियं दिसासुके०) उंचा नीचा अने तिर्छा एम दिशो दिशे एटले सर्व लोकमांहे दिशि विदिशि ने विपे ( तसायजेथावरजेयपाणा के० ) जे बेइंद्रियादिक त्रश जीवो तथा पृथविकाया

दिक स्थावर जीवोछे ते समस्त जीवोने ( हच्छेहिंपाएहिंय के० ) हाथें करी, पगे करी अथवा समस्त कायायें करी ( संजमित्ता के० ) संयत थतो एनी हिंसा नकरे उपलक्ष ण थकी एने कोइ पण कदर्थना नकरे तथा ( अदिन्नमन्नेसुयणोगहेज्जा के० ) अन्यनु अदत्तदान ग्रहण करे नही ए अर्थथी परिग्रह मैथुन मृषावादादिकने पण नसेवें ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथदशमाध्ययनमारन्यते । पूर्वं धर्मउक्तः सच समाधौ सति स्यादित्यत्र समाधिरुच्यते । ( आघंमईमित्यादि । आघंमाख्यातवान् इमं वक्ष्यमाणं धर्मं मति मान् अर्हन् अनुविचिंत्य ज्ञानेन ज्ञात्वा । धर्मं किंनूतं । ऋजुमवक्रं समाधिंच सम्यगधी यते मोक्षंप्रति योग्यः क्रियते आत्मायेन ससमाधिस्तमिमं समाधिरूपं धर्मं शृणुत यूयं । नविद्यते प्रतिज्ञा आकांक्षा तपसि क्रियायांवा यस्यासावप्रतिज्ञोनिस्पृहोनिक्षुः समा धिं धर्मं प्राप्तः नविद्यते निदानमारंनरूपं नूतेषु जंतुषु यस्यासावनिदानः सावद्यानुष्ठानर हितः परिव्रजेत् संयमे चरेत् ॥ १॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च त्रिषु लोकेषु प्राच्यादिदिक्षु च ये त्रसाः स्थावरा श्च ये प्राणिनः । एतान् प्राणिनोहस्तपादान्यां संयम्य बध्वा साधुः उप लक्षणादन्यथा वा कदर्थयित्वा दुःखोत्पादं न कुर्यात् । तथा अन्येभ्योदत्तं नगृह्णीयात् तृतीयव्रतोपलक्षणादन्यान्यपि व्रतानि पालयेत्समाधिमाश्रयेदित्यर्थः ॥ २ ॥

॥ टीका—नवमानंतरं दशममारन्यते । अस्य चायमनिसंबंधः। इहानंतराध्ययने धर्मो ऽनिहितः सचाविकलः समाधौसति नवत्यतोधुना समाधिः प्रतिपाद्यते इत्यनेन संबंधे नायातस्याऽध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोगद्वाराणि वाच्यानि । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्था धिकारोयं । तद्यथा । धर्मे समाधिःकर्तव्यःसम्यगाधीयते व्यवस्थाप्यते तन्मार्गेवा प्रति येना त्मा धर्मध्यानादिना ससमाधिर्धर्मध्यानादिकः सच सम्यक्ज्ञात्वा स्पर्शनीयः । नामनिष्पन्नं तु निक्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । आयाणपदेणाघं गोणं णामं पुणो समाहित्ति॥णि क्खिविऊण समाहिं, नावसमाही इपगयंतु ॥ ५ ॥ (आयाणपदेणाघमित्यादि ) आदीय ते गृह्यते प्रथममाद्यं यत्तदादानमादानंच तत्पदंच सुबंतं तिडंतंवा तदादानपदं तेनाघंति नामास्याध्ययनस्य यस्मादध्ययनादाविदं सूत्रं । ( आघंमईमंमणुवीऽ धम्ममित्यादि ) य थोत्तराध्ययनेषु चतुर्थमध्ययनं प्रमादाप्रमादानिधायकमप्यादानपदेनासंखयमित्युच्यते गुणनिष्पन्नं पुनरस्याध्ययनस्य नामसमाधिरिति । यस्मात्सएवात्र प्रतिपाद्यते तं च स माधिं नामादिना निक्षिप्य नावसमाधिनेह प्रकृतमधिकारइति । समाधिनिक्षेपार्थमा ह । णामंठवणादविए, खेत्ते काले तहेव नावेय॥ एसोउ समाहीए, णिक्खेवं छव्विहोहोइ ॥ ॥ ६ ॥ ( णामंठवणाइत्यादि ) नामस्थापना द्रव्यक्षेत्रकालनावनेदात् । एषतु समाधिनि क्षेपः षड्विधोनवति । तुशब्दोगुणनिष्पन्नस्यैव नाम्नोनिक्षेपोनवतीत्यस्यार्थस्याविर्नाव

नार्थेइति । नामस्थापने सुगमत्वादनादृत्य द्रव्यादिकमधिकृत्याह । पंचसु विसएसु सुने, सु दव्वंमि भावसमाहित्ति ॥ खेत्तंतु जम्मि खेत्ते, काले कालो जहिं जोऊ ॥ ७ ॥ ( पंचस्वि त्यादि ) पंचस्वपि शब्दादिषु मनोज्ञेषु विषयेषु श्रोत्रादींद्रियाणां यथा स्वप्राप्तौ सत्यां य स्तुष्टिविशेषः सद्रव्यसमाधिस्तदन्यथा त्वसमाधिरिति। यदिवा द्रव्ययोर्द्रव्याणां वा सन्मिश्रा णामविरोधिनां सतां न रसोपघातोनवत्यपितु रसपुष्टिः सद्रव्यसमाधिः ।तद्यथा क्षीरशर्क रयोर्दधिगुडचातुर्जातकानां चेति । येनवा द्रव्येणोपयुक्तेन समाधिपानकादिना समाधिर्भ वति तद्द्रव्यं । द्रव्यसमाधिस्तुलादावारोपितं वा यत् द्रव्यं समतामुपैतीत्यादिकोद्रव्य समाधिरिति । क्षेत्रसमाधिस्तु यस्य यस्मिन्वा क्षेत्रे व्यवस्थितस्य समाधिरुत्पद्यते सक्षेत्र प्राधान्यात् क्षेत्रसमाधिर्यस्मिन्वा क्षेत्रे समाधिर्व्याविर्ण्यतइति। कालसमाधिरपि यस्य यं का लमवाप्य समाधिरुत्पद्यते। तद्यथा। शरदिगवां नक्तमुलूकानामह्नि वलिभुजां यस्य वा या वंतं कालं समाधिर्भवति यस्मिन्वा समाधिर्व्याख्यायते सकालप्राधान्यात् कालसमाधिरि ति ।भावसमाधिंत्वधिकृत्याह । भावसमाहिंचवुविह, दंसणणाणे तवे चरित्तेय ॥ चउसुवि समाहियप्पा संमंचरणछ्ठिओ साहू ॥ ८॥ (भावसमाहीत्यादि ) भावसमाधिस्तु दर्शनज्ञान तपश्चारित्रभेदाच्चतुर्धा । तत्र चतुर्विधमपि भावसमाधिं समासतोगाथापश्चार्धेनाह । मुमुक्षु णा चर्यतइति चरणं । तत्र सम्यक्चरणे चारित्रे व्यवस्थितः समुद्युक्तः साधुर्मुनिश्चतुर्ष्व पि भावसमाधिभेदेषु दर्शनज्ञानतपश्चारित्ररूपेषु सम्यगाहितोव्यवस्थापितआत्मा येन ससमाहितात्मा भवति । इदमुक्तं भवति । यःसम्यचरणे व्यवस्थितः सचतुर्विधभा वसमाधिसमाहितात्मा भवति योवाभावसमाधिसमाचितात्मा भवति ससम्यक्च रणे व्यवस्थितोद्रष्टव्यइति । तथाहि । दर्शनसमाधौ व्यवस्थितोजिनवचनभावितां तःकरणोनिर्वातशरणप्रदीपवन्नकुमतिवायुभिर्भ्राम्यते । ज्ञानसमाधिना तु यथा यथा पूर्वश्रुतमधीते तथातथातीव भावसमाधावुद्युक्तोभवति । तथा चोक्तं । जहजह सु यमवगाहइ अइसयरसपसरसंजुयमउव्वं । तहतह पल्हाइ मुणी णव णवसंवेगस द्धाए । चारित्रसमाधावपि विषयसुखनिस्पृहतया निष्किंचनोपि परं समाधिमाप्नोति । तथाचोक्तं । तणसंथारणिसन्नो मस्सितरोभट्ठरागमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं क त्तोतं चक्कवट्टीवि ॥ नैवास्ति राजराजस्येत्यादि तपःसमाधिनापि निरुष्टतपसोपि नग्ला निर्भवति । तथा क्षुत्तृष्णादिपरीषहेभ्योनोद्विजते । तथा अभ्यस्ताभ्यंतरतपोध्यानाश्रितम नाः सनिर्वाणस्थइव नसुखदुःखाभ्यां बाध्यतइत्येवं चतुर्विधभावसमाधिस्थः सम्यक्चर णव्यवस्थितोभवति साधुरिति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः । सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलिता दिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं (आघंमईमित्यादि) अस्य चायमनंतरसूत्रेण सह संबंधः । तद्यथा । अशेषगारवपरिहारेण मुनिर्निर्वाणमनुसंधयेदित्येतद्भगवानुत्पन्नदिव्यना

ज्ञानः समाख्यातवानेतच्च वक्ष्यमाणमाख्यातवानिति (आघंति) आख्यातवान् कोसौ । मतिमान् मननं मतिः समस्तपदार्थपरिज्ञानं तद्विद्यते यस्यासौ मतिमान् केवलज्ञानीत्यर्थः । तत्रासाधारणविशेषणोपादानात्तीर्थकृद् गृह्यते । असावपि प्रत्यासत्ते र्वीरोवर्धमानस्वामी गृह्यते । किमाख्यातवान् धर्मं श्रुतचारित्राख्यं । कथं । अनुविचिंत्य केवलज्ञानेन ज्ञात्वा प्रज्ञापनयोग्यान् पदार्थानाश्रित्य धर्मं जापते । यदिवा ग्राहक मनुविचिंत्य कस्यार्थस्यायं ग्रहणसमर्थस्तथाकोयं पुरुषः कंच नतः किंदर्शनमापन्नइत्येवं पर्यालोच्य धर्मशुश्रूषवोवा मन्यंते । यथा प्रत्येकमस्मदभिप्रायमनुविचिंत्य जगवान् धर्मं जापते युगपत्सर्वेषां स्वजापापरिणत्या संशयापगमादिति । किंजूतं धर्मं जापते । कृजुमवक्रं यथावस्थितस्वरूपं वस्तुस्वरूपनिरूपणतोन । यथा शाक्याः सर्वं क्षणिकमन्युपगम्य कृतना शाकृताऽभ्यागमदोषजयात्संतानान्युपगमं कृतवंतस्तथावनस्पतिमचेतनत्वेनान्युपगम्य स यं न बिंदंति तच्छेदनादावुपदेशं तु ददति तथा कार्षापणादिकं हिरण्यं स्वतोनस्पृशंत्य परेणतु तत्परिग्रहतः क्रयविक्रयं कारयंति । तथा सांख्याः सर्वमप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्व जावं नित्यमन्युपगम्य कर्मबंधमोक्षाजावप्रसंगदोषजयादाविर्जावतिरोजावावाश्रितवंतइ त्यादिकौटिल्यजावपरिहारेणावक्रं तथ्यं धर्ममाख्यातवान् । तथा सम्यगधीयते मोक्षं तन्मा र्गंवा प्रत्यात्मा योग्यः क्रियते व्यवस्थाप्यते येन धर्मेण सधर्मः समाधिस्तं समाख्यात वान् । यदिवा धर्ममाख्यातवांस्तत्समाधिं च धर्मध्यानादिकमिति सुधर्मस्वाम्याह तमिमं धर्मं समाधिं वा जगवडुपदिष्टं शृणुत यूयं । तद्यथा । नविद्यते ऐहिकामुष्मिकरूपा प्रति ज्ञा आकांक्षा तपोनुष्ठानं कुर्वतोयस्यासावप्रतिज्ञोनिक्षणशीलोनिक्षुः । तुर्विशेषणे । जाव निक्षुरसावेव परमार्थतः साधुधर्मं धर्मसमाधिंच प्राप्तोसातिति । तथा नविद्यते निदानमारं जरूपं जूतेषु जंतुषु यस्याजावनिदानः सएवंजूतः सावद्यानुष्ठानरहितः परिसमंतात्संयमा नुष्ठाने व्रजेज्जच्छेदिति । यदिवा अनिदानजूतोऽनाश्रवजूतः कर्मोपादानरहितः सुष्टु परिव्रजेत् । सुपरिव्रजेत् यदिवा अनिदानजूतान्यनिदानकल्पानि ज्ञानादीनि तेषु परिव्रजेत् । अथवा निदानं हेतुः कारणं डुःखस्यातोनिदानजूतः कस्यचिद्दुःखमनुपादयन् संयमे पराक्रमेतेति ॥१॥ प्राणिपातादीनितु कर्मणोनिदानानि वर्तंते । प्राणातिपातोपि इव्यक्षेत्रकालजावजेदा चतुर्धा । तत्र प्राणातिपातमधिकृत्याह ॥ (उड्ढंअहेइत्यादि) सर्वोपि प्राणातिपातः क्रियमाणः प्रज्ञापकापेक्षयोर्ध्वमधस्तिर्यक् क्रियते। यदिवा ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्रूपेषु त्रिषुलोकेषु तथा प्राच्या दिषु दिक्षु विदिक्षु चेति । इव्यप्राणातिपातस्त्वयं । त्रस्यंतीति त्रसाद्वींडियादयोयेच स्थावराः पृथिव्यादयः । चकारः स्वगतजेदसंसूचनार्थःकालप्राणातिपातसंसूचनार्थो वा। दिवा रात्रौ वा प्राणाः प्राणिनां जावप्राणातिपातत्वाह् । एतान् प्रागुक्तान् प्राणिनोहस्त पादाभ्यां बध्वा उपलक्षणार्थत्वादस्यान्यथावा कदर्थयित्वा यत्तेषां डुःखोत्पादनं तन्न कुर्या

त् ।यदि चैते प्राणिनोहस्तौ पादौ संयम्य संयतकायः सन्न हिंस्यात् ।चशब्दाडुच्छ्वासनिश्वास कासकासितक्षुतवातनिसर्गादिषु सर्वत्र मनोवाक्कायकर्मसु संयतोभगवान् भावसमाधिमनु पालयेत्तथा परैरदत्तं नगृण्हीयादिति तृतीयव्रतोपन्यासः।अदत्तादाननिषेधाच्चार्थतः परिग्र होनपिध्दोभवति नापरिगृहीतमासेव्यतइति मैथुननिषेधोप्युक्तः । समस्तव्रतपालनोपदे शाच्च मृषावादोप्यर्थतोनिरस्तइति ॥ २ ॥

सुयरकायधम्मे वितिगिछतिणे, लाढे चरे आयतुले पयासु ॥
आयं न कुज्जा इह जीवियट्ठी,चयं नकुज्जा सुतवस्सि भिरकू॥३॥
सव्विंदियाभिनिवुम्ने पयासु, चरे मुणी सवतो विप्पमुक्के ॥ पासा
हि पाणे य पुढोवि सत्ते, डुरकेण अट्टे परितप्पमाणे ॥ ४ ॥

अर्थ–( सुयरकायधम्मे के० ) समाधिवंत जे साधु ले ते एम जाणेके श्रीवीतरागें जे धर्म भाष्योले, ते रुडो कह्योले. ए श्रुताख्यात धर्म एवो होय एम साधु जाणे एटले गी तार्थ पणुं कह्युं; तथा ( वितिगिछतिणे के० ) जे श्रीवीतरागे कह्युं तेने संदेह रहित पणे तहत्ति करी मानतो थको रहे; एटले ज्ञान दर्शन रूप समाधि कही तथा (लाढेच रेके०) निर्दोष आहारनो लेनार एवो बतो विचरे एटले संयम पाले तथा (पयासु के०) प्रजा एटले सर्वजीवने (आयतुले के०) पोताना आत्मतुल्य करी लेखवे, तथा (आयंन कुज्जाइहजीवियट्ठी के० ) जीववाने अर्थे आय एटले आश्रव नकरे अर्थात् असंयमाश्र व नकरे तथा ( सुतवस्सिभिरकू के० ) सुतपस्वी एवो साधु ( चयंनकुज्जा के० ) धन धान्यादिक परिग्रहनो संचय नकरे. ॥३॥ (सव्विंदियाभिनिवुम्नेपयासुके०) समस्त इंड्रिय नो संवर करीने निराभिलाषी थाय, ते कोनेविषे तोके प्रजा एटले स्त्रीने विषे निराभि लाषी थाय अर्थात् स्त्रीने देखी पांचे इंड्रियोनो संवर करे. (चरेमुणीसवतोविप्पमुक्केके०) तथा सर्व थकी विप्रमुक्त एटले स्वजनादिक ड्रव्य संग अने क्रोधादिक भाव संग ए सर्व संग थकी रहित थयो बतो एवो साधु संयम आचरे. ( पाणेयपुढोविसत्ते के० ) तथा प्रत्येक जुदा जुदा पृथविकायादिकजे सत्व एटले जीवले तेमने (डुरकेणअट्टे के०) डुःखे करीआर्त्त ( परितप्पमाणे के० ) परितप्पमान एटले संसाररूप कडाहमां कर्मरूप इंधणेकरी पचता एवा (पासाहिके०) देखीने समाधिवान साधु सर्व जीवनी दया पाले.

॥ दीपिका–सुष्ठु आख्यातोधर्मोयेन सस्वाख्यातधर्मा जुगुप्साचित्तविप्लुतिस्तां तीर्णोऽति क्रांतः। येन केन चिदाहारोपकरणादिनाऽऽत्मानं यापयतीति लाढः सएवंभूतश्चरेत्संयमे। पु नःकिंभूतः । प्रजासु प्राणिषु आत्मतुल्यआत्मवत्सर्वप्राणिनः पश्यतीत्यर्थः। तथा जीवि

तमसंयमजीवितं तस्यार्थी आयमा श्रवरूपं न कुर्यात् । तथा सुतपस्वी निकुः चयं आहारौषध्यादेः संचयं न कुर्यात् ॥ ३ ॥ सर्वेंद्रियनिर्वृतः संवृतेंद्रियइत्यर्थः । कासु प्रजासु स्त्रीषु । स्त्रीषु संवृतेंद्रियः स्यादिति सर्वतोविप्रमुक्तोनिःसंगः सन् चरेत्संयमाध्वनि पृथक् पृथक् पृथिव्यादिकायेषु सत्वान् प्राणिनोऽपिशब्दा द्वनस्पतिकायेऽनंतानपि पश्य । किंनूतान् फुःखार्तान् स्वकर्मणा संसारकटाहे परिपच्यमानान् ॥ ४ ॥

---

॥ टीका—ज्ञानदर्शनसमाधिमधिकृत्याह । ( सुयरकायधम्मेत्यादि ) सुष्ठाख्यातः श्रुतचारित्राख्योधर्मोयेन साधुनाऽसौ स्वाख्यातधर्माऽनेन ज्ञानसमाधिरुक्तोनवति।नहि विशिष्टपरिज्ञानमंतरेण स्वाख्यातधर्मत्वमुपपद्यतइति नावः। तथा विचिकित्साचित्तविप्लुतिर्वि द्वज्जुगुप्सा वा तां वितीर्णोतिक्रांतः। तदेव च निःशंकं यज्जिनैः प्रवेदितमित्येवं निःशंकतया न कचिच्चित्तविप्लुतिं विधत्तइत्यनेन दर्शनसमाधिः प्रतिपादितोनवति । येन केनचित्प्रासुकाहारोपकरणादिगतेन विधिनात्मानं यापयति पालयतीति लाढः सएवंनूतः संयमानुष्ठानं चरेदनुतिष्ठेत्तथा प्रजायंतइतिप्रजाः पृथिव्यादयोजंतवस्तास्वात्मतुल्यआत्मवत्सर्वप्राणिनः पश्यतीत्यर्थः। एवंनूतएव साधुर्नवतीति । तथाचोक्तं । जह ममणपियं फुःखं, जाणिय एमेव सवजीवाणं ॥ णहणइणहणावेइ, सममणइ तेण सोसमणो ॥ १ ॥ यथाच समाक्रुश्यमानस्याभ्याख्यायमानस्य फुःखमुत्पद्यते एवमन्येषामपीत्येवं मत्वा प्रजास्वात्मसमो नवति । तथा इहासंयमजीवितार्थी प्रनूतकालं सुखेन जीविष्यामीत्येतदध्यवसायी आयं कर्माश्रवलक्षणं न कुर्यात्तथा चयमुपचयमाहारोपकरणादेर्धनधान्यद्विपदचतुष्पदादेर्वा परिग्रहलक्षणं संचयमत्यर्थं सुष्टु तपस्वी सुविकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोनिकुर्नकुर्यादिति ॥३॥ किंचान्यत् । (सवेंदियइत्यादि) सर्वाणि च तानि इंद्रियाणिच स्पर्शनादीनि तैरनिनिर्वृतः संवृतेंद्रियोजितेंद्रियइत्यर्थः। क। प्रजासु स्त्रीषु । तासु हि पंचप्रकाराअपि शब्दादयोविषया विद्यंते। तथाचोक्तं , कलानि वाक्यानि विलासिनीनां, गतानि रम्याण्यवलोकितानि ॥ रतानि चित्राणिच सुंदरीणां, रसोपि गंधोपि च चुंबनादेः ॥ १ ॥ तदेवं स्त्रीषु पंचेंद्रियविषयसंनवात्तद्विषये संवृतसर्वेंद्रियेण नाव्यमेतदेव दर्शयति । चरेत्संयमानुष्ठानमनुतिष्ठेत् मुनिः साधुः सर्वतः सबाह्याभ्यंतरात्संगाद्विशेषेण प्रमुक्तोनिःसंगोनिष्किंचनश्चेत्यर्थः। स एवंनूतः सर्वबंधनविमुक्तः सन् पश्यावलोकय पृथक् पृथिव्यादिषु कायेषु सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकनेदनिन्नान्सत्वान्प्राणिनोऽपिशब्दा द्वनस्पतिकाये साधारणशरीरिणोऽनंतानप्येकत्वमागतान् पश्य । किंनूतान् । फुःखेनासातवेदनीयोदयरूपेण फुःखयतीतिवा फुःखमष्टप्रकारं कर्म तेनार्तान् पीडितान्परिसमंतात्संसारकटाहोदरे स्वकृतबंधनेन परिपच्यमा

नान् क्राथ्यमानान् यद्विवा डुःप्रणिहितेंड्रियानार्तध्यानोपगतान्मनोवाक्कायैः परितप्यमानान् पश्येति संबंधोलगनीयइति ॥ ४ ॥

एतेसु बालेय पाठांतरे (एवं बालेय) पकुव्वमाणे, आवट्टती पाठांतरे (आउट्टती) कम्मसु पावएसु ॥ अतिवायतो कीरति पावकम्मं, निउक्कमाणे उ करेइ कम्मं ॥ ५ ॥ आदीणवित्तीव पाठांतरे (आदीणनोइ वि) करेति पावं, मंताउ एगंतसमाहिमाहु ॥ बुद्धे समाहीयरते विवेगे, पाणातिवाता विरते ठियप्पा पाठांतरंवा (ठियच्ची) ॥ ६ ॥

अर्थ-( एतेसु के० ) ए पूर्वोक्त पृथिव्यादिक जीवोने ( बालेय के० ) अज्ञानी जीव अनेक संघटन परिताप उपड्वादिके करी ( पकुव्वमाणे के० ) पाप कर्म करतो थको वली तेजीव तेहिज पृथिव्यादिक जीवोने विषे आवीने ( आवट्टती के० ) घणा डुःख पामे. (कम्मसुपावएसुके०) जे पापकर्म पोते जेवा प्रकारे कर्युं होय ते पाप कर्म तेवा प्रकारे तेजीव नोगवे. हवे ते पाप कहेछे. (अतिवायतोकीरतिपावकम्मंके०) अतिवाय एटले जीवनी घात तेथकी ज्ञानावर्णादिक पाप कर्मने समाचरे ( निउक्कमाणेउ करेइकम्मंके०) तथा बीजा सेवकादिकने पण जीवघातनी प्रेरणा करतो थको पाप कर्म बांधे, एटले हिंसा करतो करावतो तथा अनुमोदतो थको पाप कर्मनुं बंध करे; एमज मृषावादादिकने पण सेवतो सेवरावतो अनुमोदन करतो थको पाप कर्मनुं बंध करे. ॥५॥ ( आदीणवित्तीवकरेतिपावं के० ) दीन एटले दयामणी एवी, आहार लेवानी जेनी वृत्तिछे तेने आदीन वृत्ति कहिए; एवो छतो पण पापकर्म बांधे, केमके आहारनी लोलुपता थकी आर्त्त रौद्र ध्याने वर्त्ते ते थकी कर्म बांधे, ( मंताउएगंतसमाहिमाहुके० ) एवुं जाणीने श्रीतीर्थंकर गणधरे संसार तरवारनुं कारण एकांते आहारादिकने अर्थे पण अरत्यादिक नकरे एवी समाधि कहीछे. (बुद्धसमाहीयरतेविवेगे के० ) ते कारणे बुद्ध एटले तत्वनो जाण एवो साधु समाधिने विषे रत होय ते साधु विवेकी एवो छतो शुं करे ते कहेछे (पाणातिवाताविरतेठियप्पाके०)प्राणातिपात जे जीवनी हिंसा ते थकी विरमीने संयमने विषे जेनो आत्मा सत्यमार्गने विषे व्यवस्थितछे एवो थाय ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-एतेषु प्राणिषु बालोज्ञः संघट्टपरितापोपड्वादि प्रकुर्वाणस्तेषु पापेषु कर्मसु सत्सु आवर्त्यते डुःखनाग्नवति अतिपाततोहिंसातः पापकर्मक्रिया नवध्यते परान् नृत्यादीन् नियोजयन् कर्म करोति प्राणातिपातादिकं कुर्वन् कारयंश्च कर्म बध्नातीति ॥ ५ ॥ आसमंतादीना करुणा वृत्तिस्तया नोजी आहारग्राही शोननाहारमप्राप्नुवन्नार्त

रौद्रध्यानात्कर्म करोति बध्नाति । यथा राजगृहनगरोत्सवनिर्गतजनसमूहे कश्चिद्रमको निक्षार्थी वांछिताहारमप्राप्तोवैभारगिरिशिलापातनोद्यतः सएव दैवात् शिलाधःपतित. शिलाचूर्णितः सप्तमपृथ्वीं जगामेति। एवमादीनभोजी कर्म बध्नाति एवं मत्वा ज्ञात्वा एकांते न समाधिर्ज्ञानादिभावसमाधिस्तमाहुः संसारतारणक्षमं जिनाः।बुद्धोज्ञाततत्वः समाधौ ज्ञा नादिके विवेकेवा रतोव्यवस्थितः प्राणातिपाताद्विरतः स्थितात्मा मर्यादावान् स्यात् ॥६॥

---

॥टीका–अपिच (एतेसुइत्यादि) एतेषु प्राङ्निर्दिष्टेषु प्रत्येकं साधारणप्रकारेषूपतापक्रियया बालवद्बालोज्ञश्वशब्दादितरोपि संघट्टनपरितापनोपद्रवणादिकेनानुष्ठानेन पापानि कर्मा णि प्रकर्षेण कुर्वाणस्तेषुच पापेषु कर्मसु सत्सु एतेषु वा पृथिव्यादिजंतुषु गतः संस्तेनैव संघट्टनादिना प्रकारेणाऽनंतशश्चावर्त्यते पीड्यते दुःखभाग्भवतीति । पाठांतरंवा एवं तु बाले) एवमित्युपप्रदर्शने। यथा चौरः पारदारिकोवासदनुष्ठानेन हस्तपादच्छेदान् बंधवधा दींश्चावाप्नोत्येवं सामान्यदृष्टेनानुमानेनान्योपि पापकर्मकारी इहामुत्रच दुःखभाग्भवति (आउट्टतित्ति) कचित्पाठः। तत्राशुभान् कर्मविपाकान् दृष्ट्वा श्रुत्वा ज्ञात्वा वा तेभ्योऽसदनु ष्ठानेभ्यआउट्टतित्ति निवर्तते । कानि पुनः पापस्थानानि येभ्यः पुनः प्रवर्तते निवर्तते वा इत्याशंक्य तानि दर्शयति । अतिपाततः प्राणातिपाततः प्राणव्यपरोपणाद्धेतोस्तत्राशुभं ज्ञानावरणादिकं कर्म क्रियते समादीयते तथा परांश्च भृत्यादीन् प्राणातिपातादौ नियो जयन् व्यापारयन् पापं कर्म करोति। तुशब्दान्मृषावादादिकंच कुर्वन् कारयंश्च पापकं कर्म समुच्चिनोतीति ॥ ५ ॥ किंचान्यत् ( आदीणवित्तीत्यादि ) आसमंतादीना करुणास्पदा वृतिरनुष्ठानं यस्य कृपणवनीपकादेः सभवत्यादीनवृत्तिरेवंभूतोपि पापं कर्मकरोति। पाठां तरंवा आदीनभोज्यपि पापं करोतीति । उक्तंच । पिंडोलकेव दुःसीले णरगाउणमुच्चइ। सकदाचिद्भोजनमाहारमलभमानोऽल्पत्वादार्तरौद्रध्यानोपगतोप्यधः सप्तम्यामप्युत्पद्येत। तद्यथा। असाविव राजगृहनगरोत्सवनिर्गतजनसमूहोवैभारगिरिशिलापातनोद्यतः सदै वात्स्वयं पतितपिंडोपजीवीति तदेवमादीनभोज्यपि पिंडोलकादिवज्जनः पापं कर्म करो तीत्येवं मत्वा अवधार्य एकांतेनात्यंतेन च योभावरूपोज्ञानादिसमाधिस्तमाहुः संसा रोत्तरणाय तीर्थकरगणधरादयः। द्रव्यसमाधयोहि स्पर्शादिसुखोत्पादकाश्चनैकांतिकाश्च नात्यंतिकाश्च भवंत्यंतेचावश्यमसमाधिमुत्पादयंति । तथाचोक्तं । यद्यपि निषेव्यमाणा, मनसः परितुष्टिकारकाविषयाः ॥ किंपाकफलादनवद्भवंति पश्चादतिदुरंताइत्यादि । त देवं बुद्धोऽवगततत्वः सचतुर्विधे ज्ञानादिके समाधावैकांतिकात्यंतिकसुखोत्पादके रतो व्यवस्थितोविवेकेवा आहारोपकरणकषायपरित्यागरूपे द्रव्यभावात्मके रतः सन्नेवं भूतश्च स्यादित्याह । प्राणानां दशप्रकाराणामप्यतिपातोविनाशस्तस्माद्विरतः स्थितः

सम्यक् मार्गेषु आत्मा यस्य सः । पाठांतरंवा (ठियच्चित्ति) स्थिता शुद्धस्वभावात्मना अर्चिर्लेश्या यस्य सभवति स्थितार्चिः सुविशुद्धस्थिरलेश्यइत्यर्थः ॥ ६ ॥

सव्वं जगं तं समयाणुपेही, पियमप्पियं कस्सइ णो करेज्जा ॥ उठा
य दीणोय पुणो विसन्नो, संपूयणं चेव सिलोयकामी॥७॥ आहा
कडं चेव निकाममीणे नियामचारीय विसण्णमेसी॥ इत्थीसु सत्तेय
पुढोय बाले, परिग्गहं चेव पकुव्वमाणे ॥ ८ ॥

अर्थ-( सव्वंजगंके० ) सर्वजगत् एटले जीव अर्थात् छ निकायना जीव ( तंके० ) ते सर्वेने ( समयाणुपेहीके० ) समता भावे करी पोताना आत्मा समान देखे ( पियमप्पियं के० ) प्रीतिभावते राग अप्रीतिभाव ते द्वेष ए बन्ने (कस्सइके०) कोइ उपरे ( णोकरेज्जा के० ) नकरे, एटले कोइ उपर सारुं माठुं चिंतवे नही, (उठायदीणोयके०) तथा कोइक चारित्र आदरी पछी तेने पालवा असमर्थ एटले दीन थाय ( पुणोविसन्नोके० ) वली विषयाभिलाषी थको गृहस्थपणु आदरे कंमरीकनी पेरे संसारमांहे खुचे, वली कोइएक ( संपूयणंचेव के० ) वस्त्र पात्रादिके करी पूजा वांछे तथा ( सिलोयकामी के० ) लोकमांहे पोतानी श्लाघा करावचा माटे व्याकर्ण ज्योतिषादिक कुशास्त्र पण भणे, एवो पुरुष समाधि थकी भ्रष्ट जाणवो. ॥ ७ ॥ ( अहाकडंचेवनिकाममीणे के० ) आधाकर्मि उद्देशी आहारने अत्यंत वांछतो थको तेवो आहार लेवाने अर्थे ( नियामचारीय के० ) अत्यंत भ्रमण करे एवो छतो ( विसन्नमेसिं के० ) संसार रूप कादवमांहे खूतोज रहे. ( इत्थीसुसत्तेयपुढोयबाले के० ) स्त्रीने विषे आसक्त जुदा जुदा ते रमणीना हाव भाव विलासने विषे गृद्ध छतो द्रव्य विना स्त्रीनी प्राप्ति नथाय एम विचारी ते बाल एटले अज्ञानी पुरुष ( परिग्गहंचेवपकुव्वमाणे के० ) परिग्रहजे धन धान्यादिक तेनो संचय करतो थको वली घणा पाप कर्मने उपार्जे अर्थात् पापनो संचय करे. ॥८॥

---

॥ दीपिका–सर्वं जगत् प्राणिगणं समतयानुप्रेक्षतइति समतानुप्रेक्षी प्रियमप्रियं वा कस्यचिन्न कुर्यात् निःसंगोविहरेदित्यर्थः । कश्चित्तु सम्यगुत्थानेनोत्थाय परीषहान्निर्दीनः पुनर्विषण्णः स्यात् संयममादृत्यापि पश्चात्पार्श्वस्थादिभावं प्रतिपद्यते कश्चिदित्यर्थः। तथा संपूजनं वस्त्रपात्रादिना प्रार्थयेत् श्लोककामी श्लाघाभिलाषी व्याकरणगणितनिमित्तादिशास्त्राण्यधीते कश्चित् ॥ ७ ॥ आधाकर्म आहारोपाध्यादिकं ( निकाममीणेत्ति ) अत्यर्थाभिलाषी तथा आधाकर्मादिनिमंत्रणेषु निकामचारी अत्यंतं प्रवृत्तोविषण्णभावं संयमे शीतलत्वं एषते श्रयति । तथा स्त्रीषु सक्तः पृथक् तद्भाषितहसितवि

लासादिषु आसक्तोबालोज्ञोऽव्यमंतरेण स्त्रीप्राप्तिर्नस्यादिति तडुपायजूतं परिग्रहं प्रकुर्वाणः पापमेव बध्नाति ॥ ७ ॥

॥ टीका–किंच ( सव्वंजगमित्यादि ) सर्वं चराचरं जगत् प्राणिसमूहं समतया प्रेक्षितुं शीलमस्य समतानुप्रेक्षी समतापश्यकोवा नकश्चित्प्रियोनापि द्वेष्यइत्यर्थः । तथा चोक्तं । नत्रियस कोऽविस्सो, पिउसव्वेसु चेवजीवेसु । तथा (जहममणपियं डुःखमित्यादि) समतोपेतश्च न कस्यचित्प्रियमप्रियं वा कुर्यान्निःसंगतया विहरेदेवं हि संपूर्णजावसमाधियुक्तोजवति । कश्चित्तु जावसमाधिना सम्यगुज्ञानेनोज्ञाय परीषहोपसर्गैस्तर्जितोदीनजावमुपगम्य पुनर्विषस्रोजवति विषयार्थीवा कश्चिद्गार्हस्थ्यमप्यवलंबते रससातागौरवगृद्धोवा पूजासत्कारानिलाषी स्यात्तदजावे दीनः सन् पार्श्वस्थादिजावेन वा विषस्रोजवति । कश्चित्तथा संपूजनं वस्त्रपात्रादिना प्रार्थयन् श्लाघानिलाषीच व्याकरणगणितज्योतिषनिमित्तशास्त्राण्यधीते कश्चिदिति ॥ ७ ॥ किंचान्यत् ( आहकडंचेत्यादि ) साधूनाधायोद्दिश्य कृतं निष्पादितमाधाकर्मेत्यर्थः । तदेवंजूतमाहारोपकरणादिकं निकाममत्यर्थं यः प्रार्थयते स निकाममीणः । तथा निकाममत्यर्थं आधाकर्मादीनि तन्निमित्तनिमंत्रणादीनि वा सरति चरति तच्छीलश्च सतथा एवंजूतं पार्श्वस्थावसन्नकुशीलानां संयमोद्योगे विषस्रानां विषस्रुजावमेषते सदनुष्ठानविषस्रुतया संसारपंकावसन्नोजवतीति यावत् । अपिच स्त्रीषु रमणीष्वासक्तोऽध्युपपन्नः पृथक्पृथक् तद्भाषितहसितविब्बोकशरीरावयवेष्विति । बालवद्बालोज्ञः सदसद्विवेकविकलस्तदवसक्तया च नान्यथा ऽव्यमंतरेण तत्संप्राप्तिर्जवतीत्यतो येन केनचिडुपायेन तडुपायजूतं परिग्रहमेव प्रकर्षेण कुर्वाणः पापं कर्म समुच्चिनोतीति॥७

वेराणुगिद्धे ( पाठांतरे आरंजसत्तो ) णिचयं करेति, इउ चुतेसु ऽहमघडुग्गं ॥ तम्हा उ मेधावि समिरकधम्मं, चरे मुणी सवउ विप्पमुक्के ॥ ए ॥ आयं ण कुज्जा पाठांतरे (ठंदं ण कुज्जा) इह जीवियठी, असज्जमाणोय परिवएज्जा ॥ णिसम्म जासीय विणीय गिद्धिं, हिंसन्नियं वा ण कहं करेज्जा ॥१०॥

अर्थ–(वेराणुगिद्धके०) जे कोइ परोपताप रूप कर्मेकरी वैरनुं अनुबंध करे- तेने वेरानुगृद्ध कहिये. अथवा ( आरंजसत्तोणिचयंकरेति के० ) आरंजने विषे आसक्त उतो कर्मनो संचय करे एवो पुरुष ( इउचुतेसुके० ) अहीं थकी चवीने ते ( ऽहमघडुग्गंके०) परमार्थ थकी डुर्ग एटले विषम डुष्कर एवुं नरकादिक स्थानकने पामे, (तम्हाउ के०)ते कारण माटे ( मेधाविके० ) पंमित होय ते ( समिरकधम्मं के० ) सम्यक् प्रकारे आलोचीने श्रुत चारित्ररूप धर्मजे श्रीवीतरागे जाष्योडे, तेने विषे ( चरेके० ) विचरे एवो ( मुणी

के० ) साधु ( सवउविप्पमुक्के के० ) सर्व संग थकी विप्र मुक्त हतो विचरे ॥ ए ॥ ( इहजीवियही ) साधु आ संसार मांहे आजीविकाने अर्थे ( आयंके० ) लाभ एटले इव्यादिक उपार्जन करवानो उपाय ते ( एकुज्जा के० ) नकरे तथा ( असज्जमाणोयपरिवएज्जा के० ) गृह पुत्र कलत्रादिकनो समागम अणकरतो थको संयमने विषे प्रवर्त्ते, शुद्ध चारित्रपाले (णिसम्मनासीयविणीयगिद्धिंके०) तथा कोइ कार्यउपना थका विमासीने बोले पण उंरु बोले नही एटले शब्दादिक पांच प्रकारना विषयने विषे गृद्धपणु टालीने आलोचीने बोले अर्थात् (हिंसन्नियंवाणकहंकरेज्जा के०) प्राणीनी हिंसाकारक एवी कथा नकरे, एटले जे वचन थकी जीव हणाय नही तेवा वचन बोले ॥ १० ॥

---

॥ दीपिका—वैरानुगृद्धः परोपतापसक्तोनिचयं कर्मबंधं करोति । इतोनवाच्युतः सडुःखमुपैति । किंनूतं डुःखं । अर्थडुर्गं परमार्थविषमं तस्मान्मेधावी विवेकी धर्मं समीक्ष्य विचार्य मुनिः सर्वतोविप्रमुक्तोनिःस्पृहः सन् चरेत्संयमे ॥ए॥ आयमिति । आयं इव्यादि संचयं नकुर्यात् । इहनवे असंयमजीवितार्थी तथा असज्जमानः संगमकुर्वन्परिव्रजेत् गृद्धिं आसक्तिविषयेषु विनीय त्यक्त्वा निशम्य पर्यालोच्य नापकोनवेत् हिंसयान्वितां युक्तां कथां नकुर्यान्न ब्रूयात् ॥ १० ॥

---

॥ टीका—तथा (वेराणुगिद्धेइत्यादि) येन केन कर्मणा परोपतापरूपेण वैरमनुबध्यते जन्मांतरशतानुयायि नवति तत्रगृद्धोवैरानुगृद्धः । पाठांतरंवा (आरंनसत्तोत्ति) आरंने सावद्यानुष्ठानरूपे सक्तोलग्नोनिरनुकंपोनिचयं इव्योपचयं तन्निमित्तापादितकर्मनिचयं स्थानाच्युतोजन्मांतरं गतः सन् वा करोत्युपादत्ते सएवंनूतउपात्तवैरः कृतकर्मोपचय इतश्च्युतोऽस्मात्स्थानाच्युतोजन्मांतरंगतः सन्ः डुःखयतीति डुःखं नरकादिकयातनास्थानमर्थतः परमार्थतोडुर्गं विषमं डुरुत्तरमुपैति । यतएवं ततस्मान्मेधावी विवेकी मर्यादावान् वा संपूर्णसमाधिगुणं जानानोधर्मं श्रुतचारित्राख्यं समीक्ष्यालोच्यांगीकृत्य मुनिः साधुः सर्वतः सबाह्यान्यंतरात्संगाद्विप्रमुक्तोऽपगतः संयमानुष्ठानं मुक्तिगमनैकहेतुनूतं चरेदनुतिष्ठेत् रुपारंनादिसंगाद्विप्रमुक्तोनिःश्रितनावेन विहरेदिति यावत् ॥ ए ॥ किंचान्यत् (आयंणकुज्जाइत्यादि) आगच्छतीत्यायोइव्यादेर्लानस्तन्निमित्तापादितोऽष्टप्रकारकर्मलानोतमिहास्मिन् संसारे असंयमजीवितार्थी नोगप्रधानजीवितार्थीत्यर्थः । यदिवा आजीविकानयात् इव्यसंचयं न कुर्यात् । पाठांतरंवा (ढंदंणकुज्जाइत्यादि) ढंदः प्रार्थनानिलापइंडियाणां स्वविषयानिलाषोवादं नकुर्यात्तथा असज्जमानः संगमकुर्वन् गृहपुत्रकलत्रादिषु परिव्रजेडद्युक्तविहारी नवेत्तथा गृद्धिं गार्ध्यं विषयेषु शब्दादिषु विनीयापनीय निशम्यावगम्य पूर्वोत्तरेण पर्यालोच्य नापकोनवेत् । तदेव दर्शयति । हिंसया प्रा

एयुपमर्दरूपया अन्वितां युक्तां कथां न कुर्यात् । नतत्प्रब्रूयात् यत्परात्मनोरुजयोव बाधकं वचइति नावः । तद्यथा । अश्नीतपिबत खादतमोदत हंतछिदत प्रहरतपचते त्यादिकथां पापोपादानचूतां नकुर्यादिति ॥ १० ॥

आहाकडं वा ण णिकामएज्जा, णिकामयं तेयण संथवेज्जा॥ धुणे उरालं अणुवेहमाणे, विच्चाण सोयं अणवेरकमाणो ॥ ११ ॥ एगंतमेयं अनिपत्थएज्जा, एवं पमोरको न मुसंति पासं ॥ एस प्पमोरको अमुसे वरेवि, अकोहणे सच्चरते तवस्सी ॥ १२ ॥

अर्थ—( आहाकडंवाणणिकामएज्जा के० ) आधाकर्मि प्रमुख आहारादिकनो सर्व था प्रकारे साधु अनिलाप करे नही ( णिकामयंतेयणसंथवेज्जा के० ) तथाजे आधा कर्मि आहारनी वांछना करे एवा पासत्थादिक तेने संस्तवे नही एटले तेनी साथे परि चय करे नही तथा ( उरालं के० ) शरीर तेने ( धुणे के० ) कृश करे ( अणुवेहमा णो के० ) निर्जराने आलोचीने एम विचारेजे शरीरने कृश करियें तो निर्जरा थाय, एम चिंतवी शरीर कृश करतां कदाचित् शोक उःखउपजे तो ( विच्चाणसोयंअणवेरकमा णे के० ) शरीरनु ममत्व अण करतो ते शोक छांमी चारित्र पाले, संयम गुणे साव धान थाय ॥ ११ ॥ ( एगंतमेयंअनिपत्थएज्जा के० ) साधु एकत्व पणानीज प्रार्थना करे एटले एकत्व पणु वांछे कारणके जीव एकलो आव्यो तथा परनवे उर्गतिने विषे जाय तेवारे पण एकलोज जाय पण कोइ एने सहायी थाय नही, एकलोज कर्म बांधे एकलोज नोगवे, ते माटे एकत्व नावना नावे ( एवंपमोरको नमुसंतिपासं के० ) एम ए कत्व नावनायें प्रकर्षे करी मोक्ष एटले संगरहित पणो, थाय. एम देखीने मृषा एटले अलीक नाषा बोले नही (एसप्पमोरकोके०) एम एकत्व नावनानो अनिप्राय ते प्रकर्षे करी मोक्षछे (अमुसेवरेविके०) मृषा रहित एवो प्रधान सत्यपणु एनेज नाव समाधि कहिए जे साधु ( अकोहणे के० अक्रोधि क्षमावंत (सच्चरतेके०) सत्यने विषे रत ( तवस्सीके० तथा तपस्वी एवो चारित्रानुष्ठानवान् एवो जे साधु ते साधु नावसमाधिवत जाणवो.॥१२॥

॥ दीपिका—आधायकृतमाधाकर्मादि न कामयेन्नानिलपेत् तथाविधाहारमनिलप माणात् पार्श्वस्थादीन्नसंस्तुयात् तैः समं परिचयं न कुर्यात् उदारं उदारिकशरीरं विकृष्टतप सा निर्जरामनुप्रेक्षमाणोधुनीयात् कृशं कुर्यात् । तथानुकाम्यपि शोकं त्यक्त्वाऽनपेक्षमा णः शरीरनिरापेक्षोधुनीयात् ॥ ११ ॥ एकत्वमसहायत्व प्रार्थयेत् एकत्वनावनां नाव येदित्यर्थः । एवमेकत्वनावनया प्रकर्षेण मोक्षः स्यादिदं न मृषा इति पश्य सत्यमेवैतदि

ति विचारय एषएव एकत्वाभिप्रायः अमृषारूपः सत्योवरः प्रधानश्च। यदि वा अक्रोधनः सत्यरतस्तपस्वी सएव भावसमाधिवान् वरः प्रधानः स्यात् ॥ १२ ॥

॥ टीका–अपिच। (आहाकडंचेत्यादि) साधूनाधाय कृतमाधाकृतमौदेशिकमाधाकर्मेत्यर्थः। तदेवंभूतमाहारजातं निश्चयेनैव नकामयेन्नाभिलषेत्तथा विहारादिकंच निकामं निश्चयेनाभिलषेत् पार्श्वस्थादींस्तत्संपर्कदानप्रतिग्रहसंभाषणादिभिर्न संस्थापयेन्नोपबृंहयेत्तैर्वा सार्धं संस्तवं न कुर्यादिति। किंच (उरालंत्ति) औदारिकं शरीरं विशिष्टतपसा कर्मनिर्जरामनुप्रेक्षमाणोधुनीयात् कृशं कुर्यात्। यदिवोरालंति बहुजन्मांतरसंचितं कर्म तडुदारं मोक्षमनुप्रेक्षमाणोधुनीयादपनयेत्तस्मिंश्च तपसा धूयमाने कृशीभवति। शरीरके कदाचित् शोकः स्यात्तं त्यक्त्वा याचितोपकरणवदनप्रेक्षमाणः शरीरकं धुनीयादिति संबंधः ॥११॥ किंचापेक्षितेत्याह। (एगंतमेवेत्यादि) एकत्वमसहायत्वमभिप्रार्थयेदेकत्वाध्यवसायी स्यात्। तथाहि। जन्मजरामरणरोगशोकाकुंले संसारे स्वकृतकर्मणा विलुप्यमानानाम सुमतां न कश्चित्त्राणसमर्थः सहायः स्यात्। तथाचोक्तं। एकोमेसासर्ओअप्पा, णाणदंसणसंजुर्ड ॥ सेसामेबाहिराभावा, सव्वे संयोगलरकणाइत्यादिकामेकभावनां भावयेदेवमनयैकत्वभावनया प्रकर्षेण मोक्षः प्रमोक्षोविप्रमुक्तसंगता न मृषा अलीकमेतद्भवतीत्येवंपश्य। एषचैकत्वभावनाभिप्रायः प्रमोक्षोवर्तते अमृषारूपः सत्यश्चायमेव। तथा वरोपिप्रधानोप्ययमेव भावसमाधिर्वा। यदिवा तपस्वी तपोनिष्टप्तदेहोऽक्रोधनः। उपलक्षणार्थत्वादस्यामानोनिर्मायोनिर्लोभः सत्यरतश्च एषएव प्रमोक्षोऽमृषा सत्योवरः प्रधानश्च वर्ततइति॥१२

इत्थीसु या आरय मेहुणाउ, परिग्गहं चेव अकुव्वमाणे॥ उच्चावए
सु विसएसु ताई, निस्संसयं भिरकु समाहिपत्ते॥ १३ ॥ अरइं
रइंच अभिभूय भिरकू, तणाइफासं तह सीयफासं ॥ उण्हंच दं
संच हियासएज्जा, सुब्भिंव डुब्भिंव तितिरकएज्जा ॥ १४ ॥

अर्थ–(इत्थीसुया के०) स्त्रीने विषे (मेहुणाउ के०) मैथुन सेववा थकी (आरय के०) निवर्त्ते (परिग्गहं चेवअकुव्वमाणे के०) तथा धन धान्यादिक परिग्रहनो संचयअण करतो थको तथा (उच्चावएसु विसएसुताईके०) नाना प्रकारना मनोज्ञ एवा वचनना जे प्रकार तेने विषे अथवा नाना प्रकारना विषय तेने विषे राग द्वेषे रहित होय, तथा त्राइ एटले उकायनो रक्षपाल थको (निस्संसयं भिरकु समाहिपत्ते के०) एवो भाव समाधिने विषे प्राप्त थयलोजे साधु, ते विषयने निसंश्रय एटले नपामे एटले विषयने वांछे नही॥ १३ ॥ हवे भाव थकी समाधि शीरीते साधु पामे ते देखाडेछे. (अरइं रइंच अभिभूय भिरकू के०) ते भाव साधु परमार्थनो जाण शरीरादिकने विषे निस्पृ

द्वि यको तथा संयमने विषे अरति अने असंयमने विषे रति तेने टालीने ( तणाइ फा संतहसीयफासं के० ) तृणादिकनो कठोर स्पर्श सहन करे. आदिशब्दथकी ऊंचो नीचो प्रदेश तेनो स्पर्शपण जाणवो ते स्पर्शनेपण सहन करे तथा शीत प्रमुखनुं स्पर्श तथा (उएहंचदंसंच हियासएज्जा के०) उष्णनो स्पर्श. दंशमसकादिकनो स्पर्श तेनेपण साधु सम्यक् प्रकारे सहन करे तथा ( सुब्भिव डुब्भिवतितिरकएज्जाके० ) समाधिवंत साधु सुनिरगंध डुरभिगंधना परिसहने पण सम्यक् प्रकारे अहियासे एटले सहन करे ॥१४॥

॥दीपिका—स्त्रीषु यन्मैथुनं न स्यात् आरंतआसमंताद् रतोऽसक्तः परिग्रहमकुर्वन् उच्चावचेषु ननाविधेषु विषयेषु अरक्तद्विष्टस्त्रायी परेषां त्राणनूतोनिःसंशयं निक्षुरेवंनूतः साधुः समाधिप्राप्तः स्यात् ॥१३॥ अरति रतिवा अनिनूय निक्षुस्तृणादिस्पर्शान् शीतोष्णस्पर्शान् दंशमशकादीन् परीषहांश्चाधिसहेत सुरनिमसुरनिं वा गंधं तितिक्षेत्सहेत ॥ १४ ॥

टीका—किंचा न्यत् (इच्छीसुइत्यादि) दिव्यमानुषतिर्यग्रूपासु त्रिविधास्वपि स्त्रीषु विषय नूतासु यन्मैथुनमब्रह्म तस्मादासमंतान्नरतोऽरतोनिवृत्तइत्यर्थः। तु शब्दात्प्राणातिपातादि निवृत्तश्च। तथा परिसमंताद्गृह्यते इति परिग्रहोधनधान्यद्विपदचतुष्पदादिसंग्रहः।तथा आत्माऽत्मीयग्रहस्तं चैवाकुर्वाणः सन्नुच्चावचेषु नानारूपेषु विषयेषु । यदिवोच्चाउत्कृष्टाअवचाजघन्यास्तेष्वरक्तद्विष्टस्त्राय्यपरेषांच त्राणनूतोविशिष्टोपदेशदानतोनि:संशयं निश्चयेन परमार्थतोनिक्षुः साधुरेवंनूतोमूलोत्तरगुणसमन्वितोनावसमाधिं प्राप्तोनवति नापरः कश्चिदिति । उच्चावचेषु वा विषयेषु वा नावसमाधेः प्राप्तोनिक्षुर्न संश्रयं याति नानारूपान् विषयान् नसंश्रयतीत्यर्थः ॥ १३ ॥ विषयाननाश्रयन् कथं नावसमाधिमाप्नुयादित्याह । ( अरइंरइंचेत्यादि ) सनावनिक्षुः परमार्थदर्शी शरीरादौ निस्पृहोमोक्षगमनैकप्रवणश्च या संयमेऽरतिरसंयमेच रतिर्वा तामनिनूय एतदधिसहेत। तद्यथा। निष्किंचनतया तृणादिकान् स्पर्शनादिग्रहणान्निम्नोन्नतनूतप्रदेशस्पर्शांश्च सम्यगधिसहेत तथा शीतोष्णदंशमशकक्षुत्पिपासादिकान् परीषहानक्षोन्यतया निर्जरार्थमध्यासहेदधिसहेत तथा गंधं सुरनिमितरं च सम्यक् तितिक्षयेत्सह्यात् । चशब्दादाक्रोशवधादिकांश्च परिषहान्मुमुक्षुस्तितिक्षयेदिति ॥ १४ ॥

गुत्तो वईएय समाहिपत्तो, लेसं समाहट्टु परिव्वएज्जा ॥ गिहं न
छाए णवि छायएज्जा, समिस्सनावं पयहे पयासु ॥ १५ ॥ जे के
इ लोगंमि उ अकिरियआया, अन्नेण पुठा धुयमादिसंति ॥ आ
रंनसत्ता गढिताय लोय, धम्मं ण जाणंति विमुक्कहेउं ॥ १६ ॥

अर्थ-( गुत्तोवईएयसमाहिपत्तो के० ) वचने करी गुप्त मौनव्रती एटले विचारीने धर्म संबंधनुं भाषण करनार एवो साधु भाव समाधिने विषे पोहोतो कहेवाय; तथा ( लेसंसमाहट्टु परिवएज्जा के० ) कृष्ण, नील अने कापोत ए त्रण अशुभलेश्याने परिहरिने तेज, शुक्ल अने पद्म ए त्रण शुभ लेश्याने ग्रहण करीने संयमानुष्ठान पाले, ( गिहंनछाएणविछायएज्जा के० ) तथा पोते घरने छाहे नही बीजाने हाथे छवरावे नही उपलक्षण थकी छवरावताने अनुमोदे नही;तथा बीजा पण गृहस्थ पणाना कर्तव्यने परिहरे तथा ( पयासु के० ) प्रजालोकने विषे (संमिस्सभावं के०) विषयमिश्रित भाव नो ( पयहे के० ) त्याग करे जे पचन पाचनादिक क्रिया करता गृहस्थ समान थाय ते नकरे अथवा प्रजा एटले स्त्री तेनी साथें मिश्रभावनो त्याग करे एटले स्त्री थकी दूर रहे. ॥ १५ ॥ ( जेकेइ लोगंमिउ अकिरियआया के०) जे कोइ सांख्य दर्शनी लोक मांहे एम कहेछे. के आत्मा अक्रियछे आत्माने क्रिया नथी, पण प्रकृति सर्व क्रिया करेछे एम बंध मोक्षने अण मानता थका बोलेछे ( अन्नेणपुठ्ठा धुयमादिसंति के० ) तेने अन्य दर्शनी कोइ पूछे के तमारा मते जो आत्मा कर्त्ता नथी तो बंध मोक्ष केम घटे तेवारे तेने फरी एमज कहेके अमारा दर्शनमांज ध्रुव एटले मोक्षछे परंतु अन्य कोइ दर्शने मोक्ष नथी एवा ते ( आरंभसत्ता गढितायलोय के० ) पचन पाचन स्नानादिकना आरंभने विषे आसक्त छता अत्यंत गृद्ध एवा थका रहेछे परंतु ते कहेवाछे लोके आ लोकने विषे ( धम्मंणयाणंतिविमुरकहेउं के० ) मोक्षनो हेतु एवो जे श्रुत चारित्र रूप धर्म तेने नथी जाणता एवाछे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका-वाचा गुप्तोमौनव्रती समाधिप्राप्तः स्यात् । शुद्धां लेश्यां समाहृत्यादाय परिव्रजेत् संयमेगृहं स्वतोन्येनवा न छादयेत् अपरमपि गृहसंस्कारं किंचिन्न कुर्यात् । तथा प्रजाः स्त्रियस्तासु मिश्रभावमेकत्वं प्रजह्यात्त्यजेत् ॥ १५ ॥ ये केचिल्लोकेऽक्रियात्मानोऽक्रियावादिनः सांख्याः । तुविशेषेणे । तेऽन्येनाऽक्रियत्वे सति बंधमोक्षौ नघटेते इत्यभिप्रायवता पृष्टाः संतोधूत मोक्षं क्रियासाध्यमादिशंति । तेतु पचनाद्यारंभसक्तास्तु लोके धर्मं श्रुतचारित्राख्यं विमोक्षहेतुं न जानंति ॥ १६ ॥

॥ टीका-किंचान्यत् (गु[illegible] वईए इत्यादि) वाचि वाचा वा गुप्तोवाग्गुप्तोमौनव्रती सुपर्यालोचितधर्मसंबंधभाषीवेर[illegible] भावसमाधिं प्राप्तोभवति । तथा शुद्धां लेश्यां तेजस्यादिकां समाहृत्योपादाय अशुद्धांच कृष्णादिकामपहृत्य परिसमंतात्संयमानुष्ठानेन व्रजेद्गच्छेदिति । किंचान्यत् गृहमावसथं स्वतोन्यैर्वा नविछादयेदुपलक्षणार्थत्वादस्यापरमपि गृहादेरुरगवत्परकृतबिलनिवासित्वात्संस्कारं न कुर्यात् । अन्यदपि गृहस्थकर्तव्यं परिजिहीर्षुराह ।

प्रजायंतइति प्रजास्तासु तद्विषये येन कृतेन सन्मिश्रनावोनवति तत्प्रजह्यात्।तडुक्तं नवति। प्रव्रजितोपि सन् पचनपाचनादिकां क्रियांकुर्वन् कारयंश्च गृहस्थैः सन्मिश्रनावं नजते यदिवा प्रजाः स्त्रियस्तासु तानिर्वा यः सन्मिश्रीनावस्तमविकलसंयमार्थी प्रजह्यात्परित्यजेदिति ॥ १७ ॥ अपिच । ( जेकेइइत्यादि ) ये केचन अस्मिन् लोके अक्रियआत्मा येषामन्युपगमे तेऽक्रियात्मानः सांख्यास्तेषां हि सर्वव्यापित्वादात्मा निष्क्रियः पठ्यते। तथाचोक्तं । अकर्ता निर्गुणोनोक्ता, आत्मा कपिलदर्शनइति । तुशब्दोविशेषणे । सचैतद्विशिनष्टि । अमूर्तत्वव्यापित्वान्यामात्मनोऽक्रियत्वमेव बुध्यते । तेचाक्रियात्मवादिनोन्येनाक्रियत्वे सति बंधमोक्षौ नघटेते इत्यनिप्रायवता मोक्षसन्नावं पृष्टाः संतोऽक्रियावाददर्शनेपि धूतं मोक्षं तदनावमादिशंति प्रतिपादयंति तेतु पचनपाचनादिके स्नानार्थं जलावगाहनरूपे वाऽरंने सावद्ये सक्ताअध्युपपन्नालोके मोक्षैकहेतुनूत धर्मं श्रुतचारित्राख्यं न जानंति कुमार्गग्राहिणोन सम्यगवगछंतीति ॥ १६ ॥

पुढोय छंदा इह माणवाउ, किरियाकिरीणं च पुढोय वायं ॥जायस्स बालस्स पकुव देहं, पाठांतरे (जायाइ बालस्स पगप्नणाए) पवट्टती वेरमसंजतस्स ॥ १७ ॥ आउक्खयं चेव अबुज्ममाणे, ममाति से साहसकारि मंदे ॥ अहोयराउ परितप्पमाणे, अट्टेसु मूढे अजरामरेव ॥ १८ ॥

अर्थ-( इहमाणवाउ के० ) आलोकने विषे जे मनुष्यछे ते प्रत्येकमनुष्य (पुढोयछंदा के०) पृथक् पृथक् जुदा जुदा छंद एटले अनिप्राय वालाछे ते अनिप्राय कोण कोणते देखाडेछे (किरियाकिरीणंचपुढोयवायं के०) क्रियावादी एम कहेछे के सर्वकाल क्रियाज सफलछे. अने अक्रियावादी एम कहेछे के क्रिया कस्याविनाज सर्व इछित पदार्थनी प्राप्ति थायछे. एमज वली बीजा विनय प्रमुख वादीउ पण जाणी लेवा ए सर्व पुढोय एटले पृथक पृथक वायं एटले वदेछे; परंतु ते धर्मना अजाण बापडा ( जायस्सबालस्सपकुव्वदेहं के० ) जात एटले उत्पन्न थयेला बालकनी देहं एटले शरीर तेने खंम खंम करीने पोताने सुख उपजावे छे,तथा पाठांतरे जायाइबालस्सपगप्नणाए एवो पण पाठ छे एवीरीते.करतां ते ( असंजतस्स के० ) असंयति एटले संयम रहित थका ( पवट्टतीवेर के० ) वेरने वधारेछे एटले जे जीवनी उपघात करे तेते जीवनी साथे वैरनी वृद्धि थायछे. ॥ १७ ॥ ते बापडा ( आउक्खयं के० ) आयुष्यना क्षयने ( अबुज्ममाणे के० ) अजाणता एटले आयुष्य खूटेछे तेने नथी जाणता. अहीं चेव पदपूर्णार्थेछे एवा छता ( ममाति के० ) अत्यंत ममत्व करेछे एटले आ माहारुं हुं एनो एवा

ममत्वने नथी मूकता (सेसाहसकारिमंदे के० ) ते महोटा साहासीक एटले पाप थकी बीता नथी एवा मंद एटले अज्ञानी ( अहोयराउपरितप्पमाणे के० ) अहोरात्र परितप्तमान एटले इव्यने अर्थे मम्मण श्रेष्ठिनी पेरे पश्चाताप करे कायक्लेशकरे तथा ( अट्टेसुमूढेअजरामरेव्व के० ) आर्त्तवंत थया थका एवा ते मूर्ख संसारने विषे परिभ्रमण करे परंतु अजरामर वणिकनी पेरे कोइ काले मनमां एम नजाणे जे अमने जरा अने मरण अवश्य आवशे एमविचारेनही. एवाते मूर्ख अज्ञानी जाणवा ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—पृथक्छंदानानाभिप्रायाइह मनुष्यलोके मानवाः । तुर्निश्चये । क्रियाक्रिययोः पृथक्त्वेन क्रियावादमक्रियावादं च समाश्रिताः।जातस्य उत्पन्नस्य बालस्याज्ञस्य सुखैषिणोदेहं (पकुव्वत्ति) खंडशःकृत्वाऽऽत्मसुखमुत्पादयंति। एवंकुर्वतोऽसंयतस्य वैरं प्राणिषु प्रवर्धते ॥ १७ ॥ आयुःक्षयं जीवितांतमबुध्यमानोऽजानन् साहसमविमृश्य प्रवृत्तिस्तत्करणशीलः साहसकारी मंदोममायमिति ममत्ववान् जवति । यथा कश्चिद्वणिक् महता क्लेशेन बहुमूल्यरत्नानि प्राप्य उज्जयिन्याबहिरावासितः सच राजचौरदायादजयाद्रात्रौ रत्नान्येवमेवं नगरे नयामीत्येवं विचाराकुलोनिशाक्षयं नज्ञातवान् दिवैव रत्नानि प्रवेशयन् राजपुरुषैर्धृतोरत्नानि गृहीतानिचेति । एवमन्योपि किंकर्तव्यताकुलः स्वायुःक्षयमजानन् ममतया साहसकारी स्यादिति । अन्हि रात्रौ च परितप्यमानोमंमणवणिग्वदार्तध्यानी अर्थेषु मूढोऽजरामरवत्क्लिश्यते ।यतः । अजरामरवद्बालः क्लिश्यते धनकाम्यया ॥ निरंतरं मन्यमानः शाश्वतं जीवितं धनमिति ॥ १७ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । ( पुढोयछंदाइत्यादि ) पृथक् नाना छंदोऽभिप्रायोयेषां ते पृथक्छंदाइहास्मिन्मनुष्यलोके मानवामनुष्याः । तुरवधारणे । तमेव नानाभिप्रायमाह । क्रियाऽक्रिययोः पृथक्त्वेन क्रियावादमक्रियावादंच समाश्रिताः।तद्यथा । क्रियैव फलदा पुंसां, नज्ञानं फलदं मतं ॥ यतः स्त्रीजक्ष्यजोगज्ञो, न ज्ञानात्सुखितोजवेत् ॥१॥ इत्येवं क्रियैव फलदायित्वेनाभ्युपगताः क्रियावादमाश्रिताएवमेतद्विपर्ययेणाऽक्रियावादमाश्रिताः।एतयोश्चोत्तरस्वरूपं न्यक्षेण वक्ष्यते। तेच नानाभिप्रायामानवाः क्रियाक्रियादिकं पृथग्वादमाश्रितामोक्षहेतुं धर्ममजानानाआरंभेषु सक्ताइंद्रियवशगारससातागारवाभिलाषिणएतत्कुर्वंति । तद्यथा । जातस्योत्पन्नस्य बालस्याज्ञस्य सदसद्विवेकविकलस्य सुखैषिणोदेहं शरीरं पकुव्वति खंडशः कृत्वात्मनः सुखमुत्पादयंति । तदेवं परोपघातक्रियां कुर्वतोऽसंयतस्य कुतोप्यनिवृत्तस्य जन्मांतरशतानुबंधिवैरं परस्परोपमर्दकारि प्रकर्षेण वर्धते। पाठांतरंवा ( जायाइबालस्सपगप्पणाए ) बालस्याज्ञस्य हिंसादिषु कर्मसु प्रवृत्तस्य निरनुकंपस्य या जाता प्रगल्भता धाष्टर्यं तया वैरमेव प्रवर्धतइति संबंधः ॥ १७ ॥ अ

पिच । ( आवक्कयमित्यादि ). आयुषोजीवनलक्षणस्य क्षयआयुष्कक्षयस्तमारंनप्रवृत्त छिन्नहृदमत्स्यवडुदकक्षये सत्यवबुध्यमानोतीव ममइति ममत्ववानिदं मे अहमस्य स्वामीत्येवं समंदोज्ञः साहसं कर्तुं शीलमस्येति साहसकारीति । तद्यथा । कश्चिद्वणि ङ् महाक्लेशेन महार्घाणि रत्नानि समासाद्योज्जयिन्याबहिरावासितः । सच राजचौरदायाद नयाद्रात्रौ रत्नान्येवमेवंच प्रवेशयिष्यामित्येवं पर्यालोचनाकुलोरजनीक्षयं न ज्ञातवान् अन्हेव रत्नानि प्रवेशयन् राजपुरुषैरन्येन्यश्च्यावितइति एवमन्योपि किंकर्तव्यताकुलः स्वायुषः क्षयमबुध्यमानः परिग्रहेष्वारंनेषु च प्रवर्तमानः साहसकारी स्यादिति । तथा कामनोगतृषितोऽन्हि रात्रौ च परिसमंतात् इव्यार्थी परितप्यमानोमंमणवणिग्वदार्तध्या यी कायेनापि क्लिश्यते । तथाचोक्तं । अजरामरवद्बालः, क्लिश्यते धनकाम्यया ॥ शाश्व तं जीवितं चैव, मन्यमानोधनानिच ॥ १ ॥ तदेवमार्तध्यानोपहतः । कइयावच्चइसन्नो, किंनंडंकन्नकितियानूमीत्यादि । तथा उक्कणइखणइणिहणइरत्ति नसुयइदियावियससंको इत्यादि चित्तसंक्लेशात्सुष्टु मूढोजरामरवणिग्वदजरामरवदात्मानंमन्यमानोऽपगत शुनाध्यवसायोहर्निशमारंने प्रवर्ततइति ॥ १७ ॥

जहाहि वित्तं पसवोय सव्वं,जे बंधवा जेय पियाय मित्ता॥लाल
प्पती से विय एइ मोहं, अन्ने जणा तंसि हरंति वित्तं ॥१८॥ सी
हं जहा खुड्डमिगा चरंता,दूरे चरंती परिसंकमाणा ॥ एवं तु मे
हावि समिक्ख धम्मं, डुरेण पावं परिवज्जएज्जा ॥ २० ॥

अर्थ–(जहाहि के० ) यथा दृष्टांते ( वित्तं के०.) सुवर्णादिक इव्य तथा ( पसवोय के० ) गाय नेश प्रमुख पशुउ ( सव्वं के० ) ए सर्व तारो त्याग करशे माटे एमने विषे ममत्व करीश नही. वली ( जेबंधवा जेयपियायमित्ता के० ) यथा दृष्टांते नाइ माता पिता ससुरादय प्रिय मित्र ते पण परमार्थे थकी तने काम नही आवे तोपण तुं बा पडो तेमने अर्थे विलाप करेछे. ( लालप्पतीसेविय एइमोहं के० ) लालप्यते सोपिमो हंउपेति एटले वित्त पुत्रादिकने अर्थे लाल पाल करेछे एम ते बापडो कुंमरीकनी पेरे मोहपाशे पड्यो थको ( अन्नेजणातंसि हरंतिवित्तं के० ) पठी तेनुं उपार्जन करेलुं वित्त तेने बीजा जन अपहरे ए प्रकारे जीवतां तथा मरण पाम्या पठी पण तेने क्लेश ज थाय ॥ १९ ॥ (जहाके०) जेम खुड्डमिगाचरंता के० ( क्षुइ मृग एटले न्हानाएवा मृग प्रमुख अटवीनेविषे विचरनार जीवोते ( सीहंके० ) सिंहनामा जनावर थकी ( दू रेचरंतीपरिसंकमाणा के०) बीहीता थका सिंहने दूर टालीने वेगला थका चरे; (एवं

तुमेहाविसमिरकधम्मंके०) ए दृष्टांते पंमित जेहे तेपण सम्यक् प्रकारे श्रीवीतराग नाषित श्रुत चारित्ररूप धर्मने आलोचीने (डुरेणपावं परिवक्कएक्काके०) हिंसादिक सावद्यानुष्ठा नरूपजे क्रिया तेने पापरूप जाणीने तेनाथी दूर रहे एरीते साधु सुधूसंयम पाले.॥२०

॥दीपिका–वित्तं द्रव्यं पशवोगोमहिष्याद्यास्तान् सर्वान् जहाहि त्यज। बांधवा मातापि त्रादयः सेतस्य येच मित्राणि सुहृदस्तेपि तस्य न किंचित्तत्वतः कुर्वंति सोपिच विप्ता र्थं लालप्यते नृशं विलपति मोहमुपैतिच धनवानपि मम्मणवणिग्वत् धान्यवान पि तिलकश्रेष्ठिवत् एवमयमपि असमाधिमाप्नोति। यच्च तेनार्जितं धनं तदन्यजनास्तस्य जीवतएव मृतस्यच हरंति गृह्णंति। तस्यतु क्लेशएव केवलं॥ १९॥ यथा क्षुद्रास्तुच्छा मृगाश्चरंतोऽटव्यामटंतः सिंहं दूरे त्यक्त्वा चरंति। यतः परिशंकमानाः सर्वतोनयाकुला एवं मेधावी धर्मं समीक्ष्य विचार्य पापं दूरेण परिवर्जयेत्॥ २०॥

॥ टीका–किंचान्यत् (जहाहिवित्तमित्यादि) वित्तं द्रव्यजातं तथा पशवोगोमहि प्यादयस्तान् सर्वान् जहाहि परित्यज। तेषु ममत्वं माकृथाः। ये बांधवामातृपित्रादयः श्व शुरादयश्च पूर्वापरसंस्तुतायेच प्रियामित्राणि सहपांसुक्रीडितादयस्ते एते मातापित्राद योन किंचित्तस्य परमार्थतः कुर्वंति सोपिच वित्तपशुबांधवमित्रार्थी अत्यर्थं पुनः पुनर्वि लपति लालप्यते। तद्यथा हेमातः हेपितइत्येवं तदर्थं शोकाकुलः प्रलपति तदार्जनप रश्च मोहमुपैति। रूपवानपि कंडरीकवत् धनवानपि मम्मणवणिग्वत् धान्यवानपि तिलक श्रेष्ठिवदित्येवमसावप्यसमाधिमान् मुह्यते। यच्च तेन महता क्लेशेनापरप्राण्युपमर्दनो पार्जितं वित्तं तदन्ये जनाः सेतस्यापहरंति जीवतएव च तस्य वा तस्य च क्लेशतः केवलं पापबंधश्चेत्येवं मत्वा पापानि कर्माणि परित्यजेत्तपश्चरेदिति॥ १९॥ तपश्चरणोपायम धिकृत्याह। (सीहंजहेत्यादि) यथा क्षुद्रमृगाः क्षुद्राटव्यपशवोहरिणजात्याद्याश्चरंतो ऽटव्यामटंतः सर्वतोबिन्यतः परिशंकमानाः सिंहं व्याघ्रं वा आत्मोपद्रवकारिणं दूरेण परिहृत्य चरंति विहरंत्येवं मेधावी मर्यादावान्। तुर्विशेषणे। सुतरां धर्मं समीक्ष्य पर्या लोच्य पापं कर्मतदनुष्ठानं दूरेण मनोक्कायकर्मभिः परिहृत्य परिसमंताद्व्रजेत्संयमानुष्ठा यी तपश्चारी च नवेदिति दूरेण वा पापं पापहेतुत्वात्सावद्यानुष्ठानं सिंहमिव मृगः स्वहितमिछन् परिवर्जयेत्त्यजेदिति॥ २०॥

संबुज्नमाणे उ णरे मतीमं, पावाउ अप्पाण निवट्टएक्का॥ हिंसप्पसूया इं डुहाइं मत्ता, वेराणुबंधीणि महप्रयाणि॥ पाठांतरे सनिवाण नूएन

वरिवएज्जा ॥ २१ ॥ मुसं न बूया मुणिअत्तगामी, णिव्वाणमेयं कसिणं समाहिं ॥ सयं न कुज्जाउ न कारवेज्जा, करंतमन्नोपि य णाणुजाणे ॥ २२ ॥

अर्थ–( संबुज्झमाणेउणरेमतीमं के० ) मतिमंत प्रज्ञावंत एवो मनुष्य सम्यक् प्रकारे धर्मने जाणतो थको ( पावाउअप्पाणनिवट्टएज्जा के० ) पोताना आत्माने पाप थकी निवर्त्तावे; ( हिंस के० ) जीवनो घात ते थकी ( प्रसूत के० ) उत्पन्न थयां एवांजे ( डुहाइंके० ) शारीरीक अने मानशीक दुःख तेने ( मत्ताके० ) जणीने गुंजाणीने तोके (वेराणुबंधीणिमहप्भयाणि के०) वैरानुंबंधावैरना कारण जाणीने महाभयना उपजावनार एवा आश्रवोनो निरोध करे; एटले सर्व आश्रवनुं मूल ते हिंसा जाणवी; माटे हिंसाथकीनिवर्त्ते ते साधु भावसमाधिवंत जाणवो. अथवा पाठांतरे सनिव्वाणनूएउंपरिवएज्जा ) ॥ २१ ॥ ( मुणिअत्तगामी के० ) मोक्ष गामी मुनि ( मुसंनबूया के० ) मृषा बोले नही. ( णिव्वाणमेयंकसिणंसमाहिंके० ) ए मृषावादनो जे परिहार एज मोक्षरूप समाधिनु पण संपूर्ण कारण जाणवुं माटे ते मृषावादने (सयंनकुज्जाउके०) साधु पोते करे नही, तथा ( नकारवेज्जाके०)बीजा पाशे करावे नही, तथा (करंतमन्नोपियणाणुजाणे) अन्य कोइ करतो होय तेने अनुमोदे नहीं एवोसाधु भावसमाधिवंत जाणवो ॥ २२ ॥

---

॥ दीपिका–मतिमान्नरः साधुः सम्यक्धर्मं बुध्यमानः पापात्सावद्याचरणादात्मानं निवर्तयेत् हिंसातः प्रसूतानि जातानि दुःखानि वैरानुबंधीनि कर्मबंधहेतूनि महाभयंकराणि इति मत्वा स्वं पापान्निवर्तयेत् ॥ २१ ॥ आप्तोमोक्षस्तद्गामी मुनिर्मृषावादं न ब्रूयात् एतदेव मृषावर्जनं कृत्स्नं संपूर्णं समाधिं भावसमाधिमाहुः। यथा मृषावादस्तथा अन्यव्रतातिचारमपि न कुर्यात्स्वयं नाप्यपरेण कारयेत् अन्यं कुर्वंतमपि नानुजानीयात्. ॥२२॥

---

॥ टीका–अपिच । ( संबुज्झमाणेत्यादि ) मननं मतिः सा शोभना यस्यासौ मतिमान्। प्रशंसायां मतुप्। तदेवं शोभनमतियुक्तोमुमुक्षुर्नरः सम्यक्श्रुतचारित्राख्यं धर्मं वा भावसमाधिं वा बुध्यमानस्तु विहितानुष्ठाने प्रवृत्तिं कुर्वाणस्तु तदेव पूर्वं तान्निषिद्धाचरणान्निवर्तेततस्तत्प्रदर्शयति। पापात् हिंसानृतादिरूपात्कर्मणआत्मानं निवर्तयेत्। निदानोच्छेदेन हि निदानिनउच्छेदोभवतीत्यतोऽशेषकर्मक्षयमिच्छन्नादावेवभव द्वाराणि निरुंध्यादित्यभिप्रायः। किंचान्यत् । हिंसा प्राणिव्यपरोपणं तया ततोवा प्रभूतानि जातानि यान्यशुभानि कर्माणि तान्यत्यंतं नरकादिषु यातनास्थानेषु दुःखानि दुःखोत्पादकानि वर्तंते। तथा वैरमनुबध्नंति तच्छीलानिच वैरानुबंधीनि जन्मशतसहस्रदुर्मोचान्यतएव महद्भयं येभ्यः सकाशात्तानि महाभयानीत्येवं च मत्वा मतिमानात्मानं पापान्निवर्तयेदिति । पा

गंतरंवा । ( निव्वाणनूएयपरिव्वएज्जा ) अस्यायमर्थः । यथाहि निर्वृतौ निर्व्यापारत्वात्कस्य चिडुपघाते न वर्तते एवं साधुरपि सावद्यानुष्ठानरहितः परिसमंताद् व्रजेदिति ॥ २१ ॥ तथा ( मुसंणबूयाइत्यादि ) आसोमोक्खस्तद्गामी तद्गमनशीलआत्महितगामीवा आसोवा प्रक्षीणदोषः सर्वज्ञस्तडपदिष्टमार्गगामी मुनिः साधुर्मृषावादमनृतमयथार्थं न ब्रूयात्सत्य मपि प्राण्युपघातकमिति । एतदेव मृषावादवर्जनं कृत्स्नं संपूर्णं नावसमाधिं निर्वाणं चा दुः । सांसारिकाहि समाधयः स्नानजोजनादिजनिताः शब्दादिविषयसंपादितावा अनैकांति काऽनात्यंतिकत्वेन डुःखप्रतीकाररूपत्वेन वाऽसंपूर्णावर्तते । तदेवं मृषावादमन्येषां वा व्रतानामतिचारं स्वयमात्मना न कुर्यान्नाप्यपरेण कारयेत्तथा कुर्वंतमप्यपरं मनो वाक्कायकर्मभिर्नानुमन्यतइति ॥ २२ ॥

सुद्धे सिया जाए न दूसएज्जा, अमुच्छिए णय अप्नवन्ने ॥ धिति मं विमुक्के ण य पूयणठी, न सिलोयगामीय परिव्वएज्जा ॥ २३ ॥ निरकम्मगेहाउ निरावकंखी, कायं विउसेज्ज नियाणछिन्ने ॥ णो जीवियं णो मरणावकंखी, चरेज्ज भिरकू वलया विमुक्के तिबेमि ॥ २४ ॥ इति समाहिनाम दसमश्यणं सम्मत्तं ॥

अर्थ–(सुद्धेसिया जाएनदूसएज्जाके०) उजम, उत्पादन अने एषणा ए त्रणे दोष रहित एवो सुद्धो निर्दोष आहार प्राप्त थयो अथवा न थयो ठता पण कदापि साधु राग द्वेषे करी पोताने डुषवे नही तथा ( अमुच्छिए के० ) अमूर्छित अगृद्ध एटले लोलुपता रहित ( णयअप्नुवन्ने के० ) फरी फरी ते रूडा आहारनी वांग नकरे तथा ( धि तिमंविमुक्के णयपूयणठी के० ) धृतिमंत तथा बाह्याभ्यंतर ग्रंथी रहित तथा पूजानो अर्थी न थाय ( नसिलोय कामीय परिवएज्जा के० ) तथा श्लाघाने अर्थे क्रिया न करे परंतु कर्म निर्ज्जराने अर्थे मोक्षने अर्थे संयमने विषे प्रवर्त्ते एवो समाधिवंत साधु जाणवो ॥ २३ ॥ ( निरकमगेहाउ के० ) गृहस्थावास थकी निकलीने चारित्र आदरी ने ( निरावकंखी के० ) जीवितव्यने विषे निरापेक्षी ठतो ( कायंविउसेज्ज के० ) शरीर उपर ममत्व मूकीने पोतानी काया वोसिरावे तथा (नियाणछिन्ने के०) परजवे देव अथ वा राजादिक थवानुं नियाणु नकरे ( णोजीवियंणोमरणावकंखी के० ) जीवितव्य अ ने मरणने वांचे नही एटले पूजा सत्कारनी प्राप्तियें करी जीवितव्य नवांचे अने उपसर्ग परिसह उपने थके मरण पण नवांचे एवो (निरकू के०) साधु ते ( वलयाविमुक्के के० ) कर्मबंध थकी मूकाणो अथवा वलय एटले संसार थकी मूकाणो थको ( चरेज्जाके० )

संयमानुष्ठानने पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २४ ॥ इतिश्री समाधि नामक दशमां अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

---

॥ दीपिका—उद्गमादिदोषशुद्धे आहारादौ स्यात्कदाचिद्याते प्राप्ते सति रागद्वेषाभ्यां साधुर्न दूषयेत् । यतः । बायाली सेसणसं, कम्मंमि गहणंमि जीवनहुञ्छलिउ । इण्हिंजइ नलछिज्जसि, झुंजंतोरागदोसेहिं इति' । अमूर्छितोनासक्तः शुचाहारे नचाध्युपपन्नस्तमेवाहारं पुनःपुनर्नाभिलपमाणः संयमयात्रार्थमेवाहारयेत् । तथा धृतिमान् ग्रंथाद्विमुक्तो नच पूजनार्थी श्लोकः कीर्तिस्तत्कामी तदभिलाषुकोन स्यात् एवंभूतः परिव्रजेत् ॥ ॥ २३ ॥ गृहान्निःसृत्य निरावकांक्षी निस्पृहः कायं शरीरं व्युत्सृज्य विचिकित्साम कुर्वन् छिन्ननिदानोभवेत् । तथा जीवितं नापि । मरणमभिकांक्षेत निक्कुर्वलयात्संसाराद्विमुक्तः संयमे संचरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २४ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां समाध्याख्यं दशमाध्ययनं समाप्तं ॥

---

॥ टीका—उत्तरगुणानधिकृत्याह (सुद्धेसियाइत्यादि) उद्गमोत्पादनैषणाभिः शुद्धे निर्दोषे स्यात्कदाचिद्याते प्राप्ते पिंडेसति साधूरागद्वेषाभ्यां न दूषयेत् । उक्तंच । बायाली सेसणसं, कडंमिगहणंमि जीवनहुञ्छलिउ ॥ इण्हिंजहन छलिज्जसि, झुंजंतोरागदोसेहिं ॥१॥ तत्रापि रागस्य प्राधान्यख्यापनायाह । नमूर्छितोऽमूर्छितः सकृदपि शोभनाहारलाभे सतिगृद्धिमकुर्वन्नाहारयति तथा नाध्युपपन्नस्तमेवाहारं पौनःपुन्येनानभिलषमाणः केवलं संयमयात्रापालनार्थमाहारमाहारयेत् । प्रायोविदितवेद्यस्यापि विशिष्टाहारसंनिधावभिलाषातिरेकोजायतइत्यतोऽमूर्छितोऽनध्युपपन्नइति च प्रतिषेधद्वयमुक्तं । उक्तंच । भुत्तभोगो पुरा जोवि, गीयत्थोविय भाविउ ॥ संते साहारमाईसु, सोविखिप्पंतु खुब्भइ ॥ १ ॥ तथा संयमे धृतिर्यस्यासौ धृतिमान् सबाह्याभ्यंतरेण ग्रंथेन विमुक्तस्तथा पूजनं वस्त्रपात्रादिना तेनार्थः पूजनार्थः सविद्यते यस्यासौ पूजनार्थी तदेवंभूतोन भवेत् । तथा श्लोकः श्लाघा कीर्तिस्तत्कामी नतदभिलाषुकः परिव्रजेदिति । कीर्त्यर्थी न कांचन क्रियां कुर्यादित्यर्थः॥२३॥अध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह । (णिरकम्मेत्यादि) गेहान्निःसृत्य निष्क्रम्य प्रव्रजितोपि भूत्वा जीवितेपि निराकांक्षी कायं शरीरं व्युत्सृज्य निष्प्रतिकर्मतया चिकित्सादिकमकुर्वन् छिन्ननिदानोभवेत् । तथा न जीवितं नापि मरणमभिकांक्षेत् भिक्षुः साधुर्वलयात्संसारवलयात्कर्मबंधनाद्वा विप्रमुक्तः संयमानुष्ठानं चरेत् । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २४ ॥ इति समाध्याख्यं दशमाध्ययनं समाप्तं ॥

हवे मोक्ष मार्ग नामे अगीआरमुं अध्ययन कहेछे. पूर्वला दशमा अध्ययनमां समाधि कही, ते समाधि तो ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप जाणवी ते कारणे एनुं सेवन करिए तो मोक्ष प्राप्ति थाय, माटे आ अध्ययनमां मोक्ष मार्ग कहेछे.

कयरे मग्गे अरकाए, माहणेण मईमता ॥ जं मग्गं उक्रु पावित्ता, उहं तरति डुत्तरं ॥ १ ॥ तं मग्गं णुत्तरं सुद्धं, सवडुरकविमोरकणं ॥ जाणासि णं जहा निरकू, तं णो बूहि महामुणी ॥ २ ॥

अर्थ–श्रीजंबुस्वामी श्रीसुधर्मस्वामि प्रत्ये पूछेछे के, ( कयरेमग्गे के० ) मोक्षमार्ग साधन करवानो एवो कयो धर्ममार्ग ( माहणेणमईमताके० ) मतिमंत एटले केवलज्ञानवंत श्रीमहावीर परमेश्वर तेणे ( अरकाएके० ) कह्योछे. ( जंमग्गंउक्रुपावित्ताके० ) जेज्ञान दर्शन चारित्ररूप सरल मार्ग पामिने प्राणी ( उहंतरंतिडुत्तरं के० ) तरतां थकां डुस्तर एवा संसार समुद्रने तरीने पार पामे ॥ १ ॥ सर्वनाहितने अर्थे जे मार्ग श्रीसर्वज्ञे उपदेश्योछे, ( तंमग्गणुत्तरंसुद्धं के० ) तेमार्ग शुद्धो निर्दोष, अनुत्तर एटले निरुपम ( सवडुरकविमोरकणं के० ) समस्त डुःखथकी मुकावनार एवो मार्ग ( जाणासिणंजहानिरकू के० ) अहो नगवंत जेवो तमे जाणोछो ( तंणोबूहिमाहामुणी के० ) ते वो हे महामुनीश्वर अमने कहो. ॥ २ ॥

---

॥ दीपिका–अथैकादशमारभ्यते । पूर्वाध्ययने समाधिरुक्तः सच मार्गे सति स्यादिति मार्गोऽत्र प्रतिपाद्यते । यथा । ( कयरेइत्यादि ) जंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमाह । कतरः कोमार्गआख्यातोमाहनेन मतिमता श्रीवीरेण । यं मार्गं मुक्तिप्राप्तिरूपं ऋजुमवक्रं प्राप्योघं संसारं तरति प्राणी ॥१॥ तं मार्गमनुत्तरं श्रेष्ठं शुद्धं निर्दोषं सर्वदुःखविमोक्षणं हे मुने त्वं यज्जानीषे । णमिति वाक्यालंकारे । तं मार्गं नोऽस्माकं हेमहामुने ब्रूहि ॥ २ ॥

---

॥ टीका–उक्तं दशमाध्ययनं तदनंतरमेकादशमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतराध्ययने समाधिः प्रतिपादितः सच ज्ञानदर्शनतपश्चारित्ररूपोवर्तते । नावमार्गोप्येवमात्मकएवेत्यतोमार्गोऽनेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यतेइत्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोग द्वाराणि वाच्यानि । तत्राप्युपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं । तद्यथा । प्रशस्तोज्ञानादिकोनावमार्गस्तदाचरणं चात्रानिधेयमिति । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे मार्गइत्यस्याध्ययनस्य नाम । तन्निक्षेपार्थं निर्युक्तिरुदाह । " णामं ठवणा दविए, खेत्ते काले तहेव नावेय ॥ एसो खलु मग्गस्सय, णिरकेवो बहिहो होइ " ॥ ए ॥ (णामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालनावनेदान्मार्गस्य षोढा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने सुगमत्वाद

नाह्त्य ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तं ड्व्यमार्गमधिकृत्याह । "फलगलयं दोलणचि,त्तर ज्जुदवणविलप्पास मग्गेय । खलिगअयपरिकप हे ठत्तजलाकासदवंमि" ॥ १० ॥ (फ लकेत्यादि ) फलकैर्मार्गः फलकमार्गः । यत्र कर्दमादिनयात् फलकैर्गम्यते । लतामार्गस्तु यत्र लतावलंबेन गम्यते । अंदोलनमार्गोपि यत्रांदोलनेन ड्डर्गमतिलंघ्यते । वेत्रमार्गोयत्र त्रलतोपष्टंनेन जलादौगम्यते इति । तद्यथा । चारुदत्तोवेत्रलतोपष्टंनेन वेत्रवतीं नदीमु त्तीर्य परकूलं गतः । रज्जुमार्गस्तु यत्र रज्वाकिंचिदतिड्डर्गमतिलंघ्यते । दवनंति यानं तन्मा र्गोदवनमार्ग । बिलमार्गोयत्र तु गुहाद्याकारेण बिलेन गम्यते । पाशप्रधानोमार्गः पा शमार्गः,पाशकूटकवागुरान्वितोमार्गइत्यर्थः । कीलकमार्गोयत्र वालुकोत्कटे मरुकादि विषये कीलकानिज्ञानेन गम्यते । अजमार्गोयत्र बस्त्येनाजेन गम्यते । तद्यथा । सुव र्णनूम्यां चारुदत्तोगतइति । पक्षिमार्गोयत्र नारुडादिपक्षिनिर्देशांतरमवाप्यते । ठत्रमार्गो यत्र ठत्रमंतरेण गंतुं न शक्यते । जलमार्गोयत्र नावादिना गम्यते । आकाशमार्गोविद्या धरादीनामपं सर्वोपि फलकादिकोड्व्ये ड्व्यविषये ऽवगंतव्यइति । क्षेत्रादिमार्गप्रतिपाद नायाह । "खेत्तंमि जंमि खेत्ते, काले कालो जहिं हवइ जोउ । नावंमि होंति ड्डवि हो, पसबतह अप्पसबोय ३ ॥ ११ ॥ ( खेत्तंमीत्यादि ) क्षेत्रमार्गे पर्यालोच्यमाने य स्मिन् क्षेत्रे ग्रामनगरादौ प्रवेशोवा शालिक्षेत्रादिके वाक्षेत्रे योयानि मार्गोयस्मिन्वा क्षेत्रे व्याख्यायते सक्षेत्रमार्गः । एवं कालेप्यायोज्यं । नावे त्वालोच्यमाने द्विविधोपि नवति नावमार्गः । तद्यथा । प्रशस्तोऽप्रशस्तश्चेति । प्रशस्ताप्रशस्तनेदप्रतिपादनायाह । "ड्डवि हंमि वितिगनेदो, णेवो तस्स विणिछिउ ड्डविहो ॥ सुगतिफलड्डग्गतिफलो, पगयं सु गतीफले णिढं ४ ॥ १२ ॥ ( ड्डविहंमीत्यादि ) द्विविधेपि प्रशस्ताप्रशस्तरूपे नावमार्गे प्र त्येकं त्रिविधोनवति । तत्राप्रशस्तोमिथ्यात्वाविरतिरज्ञानं चेति । प्रशस्तस्तु सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्ररूपइति । तस्य प्रशस्ताप्रशस्तरूपस्य नावानावमार्गस्य विनिश्चयोनिर्णयः फलं कार्यं । निष्ठा द्वेधा । तद्यथा । प्रशस्तः सुगतिफलोऽप्रशस्तश्च ड्डर्गतिफलइति । इह तु पुनः प्रशस्ताऽधिकारः सुगतिफलेन प्रशस्तमार्गेणेति । तत्राप्रशस्तं ड्डर्गतिफलं मार्गं प्रतिपिपा दयिषुस्तत्कर्तॄन्निर्दिदिक्षुराह । "ड्डग्गइफलवादीणं, तिन्नि तिसहासतइवादीणं ॥ खेमे य खे मरूवे, चउक्कगं मग्गमादीसु ५ ॥ १३ ॥ ( ड्डग्गईत्यादि ) ड्डर्गतिः फलं यस्य सड्डर्गतिफ लस्तद्वदनशीलाड्डर्गतिफलवादिनस्तेषां प्रवाडकानां त्रीणि त्रिषष्टयधिकानि शतानि न वंति । ड्डर्गतिफलमार्गोपदेष्टृत्वंच तेषां मिथ्यात्वोपहतदृष्टितया विपरीतजीवादितत्वान्युप गमात् । तत्संख्या चैवमवगंतव्या । तद्यथा । असियसयंकिरियाणं,अकिरियवाईण होइ चु लसीई ॥ असाणियसत्तठी, वेणइयाणं च बत्तीसं ॥१॥ तेषांच स्वरूपं समवसरणाध्ययने वक्ष्यतइति । सांप्रतं मार्गनंगद्वारेण निरूपयितुमाह । तद्यथा । एकः क्षेमोमार्गस्तस्करसिंह

व्याघ्राद्युपद्रवरहितत्वात्तथा क्षेमरूपश्च समत्वात्तथा छायापुष्पफलवदृक्षोपेतंजलाश्रया कुलत्वाच्च । तथा परः क्षेमोनिश्चौरः किंत्वक्षेमरूपउपलशकलाकुलगिरिनदीकंटकगर्तशता कुलत्वेन विषमत्वात्तथाऽपरोक्षेमस्तस्करादिनयोपेतत्वात्क्षेमरूपश्चोपलशकलाद्यनावतया समत्वात्तथाऽन्योनक्षेमोनापि क्षेमरूपः सिंहव्याघ्रतस्करादिदोषदुष्टत्वात्तथा गर्तपाषाणनि म्नोन्नतादिदोषदुष्टत्वाच्चेति । एवं नावमार्गोप्यायोज्यः । तद्यथा ।ज्ञानादिसमन्वितोद्रव्य लिंगोपेतश्च साधुः क्षेमः क्षेमरूपश्च। तथाऽक्षेमोऽक्षेमरूपस्तु सएव नावसाधुः कारणिको द्रव्यलिंगरहितः । तृतीयनंगकगतानिन्ह्वाः परतीर्थिकागृहस्थाश्चरमनंगकवर्तिनोद्रष्ट व्याः ।।एवमनंतरोक्तप्रक्रियया चतुष्कं नंगकचतुष्टयं मार्गादिष्वायोज्यं । आदिग्रहणादन्य त्रापि समाध्यादावायोज्यमिति।सम्यक्मिथ्यात्वमार्गयोः स्वरूपनिरूपणायाह। सम्मप्पणि उं मग्गो, णाणे तह दंसणे चरित्तेय ॥ वरगपरिव्वायादी, विसुमित्तमग्गोत्ति ६ ॥१४॥(स मप्पणिउंइत्यादि) सम्यग्ज्ञानं दर्शनं चारित्रं चेत्ययं त्रिविधोपि नावमार्गः सम्यग्दृष्टिनिर्ग णधरादिनिः सम्यग्वा यथावस्थितवस्तुतया च निरूपणया प्रणीतस्तैरेव सम्यगाचीर्णश्चासे वितोमार्गोमिथ्यात्वमार्गो ऽप्रशस्तमार्गोनवतीति।तुशब्दो स्य डुर्गतिफलनिबंधनत्वेनऽ विशे षणार्थइति । स्वयूथ्यानामपि पार्श्वस्थादीनां षड्जीवनिकायोपमर्दकारिणां कुमार्गाश्रित त्वं दर्शयितुमाह । इड्डिरससायगुरुया, छज्जीवनिकाय घायनिरयाए ॥ जेनदिसंति मिग्गं, कुमग्गमग्गस्सिता तेउ "॥१५॥ (इड्डिरसेत्यादि) ये केचन अपुष्टधर्माणः शीतल विहारिणोक्रुद्धिरससातगौरवेण गुरुकागुरुकर्माणश्चाधाकर्माद्युपनोगेन षड्जीवनि कायव्यापादनरताश्चापरे तेन्योमार्गं मोक्षमार्गमात्मानुचीर्णमुपदिशंति । तथाहि । शरी रमिदमाद्यं धर्मसाधनमिति मत्वा कालसंहननादिहानेश्चाधाकर्माद्युपनोगोपि न दोषायेत्येवं प्रतिपादयंति तच्चैवं प्रतिपादयंतः कुत्सितमार्गास्तीर्थकरास्तन्मार्गाश्रिताजवंति । तु शब्दादेतेपि स्वयूथ्याएतडुपदिशंतः कुमार्गाश्रितानवंतीति किंपुनस्तीर्थिकाइति।प्रशस्तशास्त्र प्रणयनेन सन्मार्गाविष्करणायाह । "तवसंजमप्पहाणा. गुणधारी जे वयंति सप्भावं ॥ सवजगजीवहियं, तमाहुसम्मप्पणीयमिणं "॥१६॥ (तवसंयमेत्यादि) तपः सबाह्याभ्यंतरं द्वादशप्रकारं तथा संयमः सप्तदशनेदःपंचाश्रवविरमणादिलक्षणस्ताभ्यां प्रधानास्तपःसंय मप्रधानास्तथाऽष्टादशशीलांगसहस्राणि गुणास्तद्धारिणोगुणधारिणोये सत्साधवस्तएवं नूतापं सद्भावं परमार्थं जीवाजीवादिलक्षणं वदंति प्रतिपादयंति । किंनूतं सर्वस्मिन् जग ति ये जीवास्तेभ्यो हितं पथ्यं तदुक्षणतस्तेषां सडुपदेशदानतोवा । तं सन्मार्गं सम्यङ्मार्गं ज्ञाः सम्यगविपरीतत्वेन प्रणीतमाहुरुक्तवंतइति । सांप्रतं सन्मार्गस्यैकार्थिकान दर्शयितुमा ह।" पंथो मग्गो णेच, वहिणीतिसुगतीहियसुवहं ॥ पछं सेयं णिच्चुड, णिव्वाणं शिवकरंचेव " ॥ १७ ॥ ( पंथोमग्गोणेचइत्यादि ) देशाद्विवक्षितदेशांतरप्राप्तिलक्षणः पंथाः सचेह नाव

मार्गाधिकारे सम्यक्त्वाख्यातिरूपो ऽवगंतव्यः।तथा मार्गइति पूर्वस्मादिशुध्या विशिष्टतरो मार्गः सचेह सम्यक्ज्ञानावाप्तिरूपो ऽवगंतव्यः। तथा न्यायइति निश्चयेनायनं विशिष्टस्थान प्राप्तिलक्षणं यस्मिन् सति सन्यायः। सचेह सम्यक्चारित्रावाप्तिरूपो ऽवगंतव्यः।सत्पुरुषा णामयं न्यायएव। यद्गुताबाप्तयोः सम्यग्दर्शनज्ञानयोस्तत्फलनूतेन सम्यक्चारित्रेण योगो नवतीत्यतोन्यायशब्देनात्र चारित्रयोगो ऽनिधीयतइति। तथा विधिरिति। विधानं विधिः स म्यक्ज्ञानदर्शनयोर्योगपद्येनावाप्तिस्तथा धृतिरिति धरणं धृति. सम्यक्दर्शने सति चारित्रा वस्थानं मानुषादाविव विशिष्टज्ञानानावाद्विवक्षयैवमुच्यते। तथा सुगतिरिति शोजना ग तिरस्मात्ज्ञानचारित्राच्चेति सुगतिः। ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षइति न्यायात्सुगतिशब्देन ज्ञानक्रिये अनिधीयेते। दर्शनस्यतु ज्ञानविशेषत्वादत्रैवांतर्नावो ऽवगंतव्य.। तथाहि। हितमिति परमा र्थतोमुक्त्यवाप्तिस्तत्कारणं वा हितं तच्च सम्यग्दर्शनचारित्राख्यमवगंतव्यमिति। अत्र च संपू र्णानां सम्यग्दर्शनादीनां मोक्षमार्गत्वेसति यध्यस्तसमस्तानां मोक्षमार्गत्येनोपन्यासः स प्रधानोपसर्जनविवक्षया न दोषायेति। तथा सुखमिति सुखहेतुत्वात्सुखमुपशमश्रेण्यामुपशा मकं प्रत्यपूर्वकरणानिवृत्तिबादरसूक्ष्मसंपरायरूपा गुणत्रयावस्था। तथा पथ्यमिति पथि मो क्षमार्गे हितं पथ्यं तच्च क्षपकश्रेण्यां पूर्वोक्तं गुणत्रयं तथा श्रेयइत्युपशमश्रेणिमस्तकावस्था उपशांतसर्वमोहावस्थेत्यर्थः। तथा निर्वृतिहेतुत्वान्निर्वृतिः क्षीणमोहावस्थेत्यर्थः। मोहनी यविनाशेऽवश्यं निर्वृतिसद्भावादितिनावः। तथा श्रेयइति निर्वाणमिति घनघातिकर्मचतुष्टय रूपेण कर्मक्षयेण केवलज्ञानावाप्तिस्तथा शिवं मोक्षपदं तत्करणशीलं शैलेश्यवस्थागमनमि त्येवमेतानि मोक्षमार्गत्वेन किंचिद्भेदाद्भेदेन व्याख्यातान्यनिधानानि। यदिचैते पर्यायशब्दा एकार्थिकामोक्षमार्गस्येति।गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपस्तदनंतरंसूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपे तं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं (कयरेमग्गेइत्यादि) विचित्रत्वात्रिकालविषयत्वाच्च सूत्रस्यागा मुकं पृच्छकमाश्रित्य सूत्रमिदं प्रवृत्तमतोजंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमिदमाह।तद्यथा। कतरः किंनूतोमोक्षोऽपवर्गावाप्तिसमर्थोऽस्यां त्रिलोक्यामाख्यातः प्रतिपादितोनगवता त्रैलोक्यो द्धरणसमर्थेनैकांतहितैषिणा माहनेनेत्येवमुपदेशः प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनस्तीर्थकृत्तेन। तमे व विशिनष्टि।मतिर्लोकालोकांतर्गतसूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टातीतानागतवर्तमानपदार्था विर्भा विकाकेवलज्ञानाख्या यस्यास्त्यसौ मतिमांस्तेन प्रशस्तंनावमार्गं मोक्षगमनंप्रति ऋजुं प्रगु णं यथावस्थितपदार्थस्वरूपनिरूपणद्वारेणावक्रं सामान्यविशेषनित्यानित्यादिस्याद्वाद समाश्रयणात्तदेव नूतं मार्गं ज्ञानदर्शनतपश्चारित्रात्मकं प्राप्य लब्ध्वा संसारोदरविवरव र्ती प्राणी समग्रसामग्रीकर्उपमिति नर्यावं संसारसमुद्रं तरत्यत्यंतदुस्तरं तद्गुनरगुण सामर्थ्यादेव दुष्प्रापकत्वात्। तदुक्तं। माणुस्स खेत्तजाई, कुलरूपा रोगमाउयं बुद्धा॥ समणोग्गहसद्धासं, पमोयलोयंमि दुल्लहाइंइत्यादि॥१॥ सएव पृच्छकः पुनरप्याह। ( तं

मग्गेइत्यादि ) योसौ मार्गः सत्वहिताय सर्वज्ञेनोपदिष्टोऽशेषैकांतकौटिल्यवक्ररहितस्तं मार्गं । नास्योत्तरः प्रधानोस्तीत्यनुत्तरस्तं शुद्धोऽवदातोनिर्दोषः पूर्वापरव्याहतिदोषापगमा त्सावद्यानुष्ठानोपदेशाभावा द्वा तमिति । तथा सर्वाण्यशेषाणि बहुनिर्जन्मैरुपचितानि डुःख कारणत्वाडुःखानि कर्माणि तेन्योविमोक्षणं विमोचकं तमेवं नूतं मार्गमनुत्तरं निर्दोषं सर्वडुःखक्षयकारणं हेनिक्षो यथा त्वं जानीषे । णमितिवाक्यालंकारे । तथा तं मार्गं सर्वज्ञ प्रणीतं नो ऽस्माकं हेमहामुने ब्रूहि कथयेति ॥ २ ॥

जइ णो केइ पुच्छिज्जा, देवा अडुव माणुसा ॥ तेसिं तु कयरं मग्गं
आइक्खेज्ज कहाहिणो ॥ ३ ॥ जइ णो केइ पुच्छिज्जा, देवा अडुव
माणुसा ॥ तेसि मं पडिसाहिज्जा मग्गसारं सुणेहमे ॥ ४ ॥

अर्थ–यद्यपि मुजनेतो तमारी प्रतिते मार्ग सुगमछे, परंतु अन्य कोइने मार्ग हुं के वीरीते कहुं एवा अभिप्रायें पूछुंछुं. ( जइणोकेइपुच्छिज्जा के० ) यद्यपि अमने कोइ पूछे कोण पूछे तोके (देवाअडुवमाणुसा के० ) देवो अथवा मनुष्यजे चक्रवर्त्यादिक ते पूछे ( तेसिंतुकयरंमग्गं के० ) तेवारे तेने कयो मार्ग ( आहिक्खेज्जकहाहिणो के० ) कहीए ते तमे कहो. ॥ ३ ॥ एम श्रीजंबुस्वामियें पूछया थका श्रीसुधर्मस्वामि कहेछे. ( जइणो केइपुच्छिज्जादेवाअडुवमाणुसा के० ) यद्यपि तमने कोइ देव अथवा मनुष्य संसार भ्रां तिनो भंग करनार एवा मार्गनी वात पूछे, तेवारे ( तेसिमंपडिसाहिज्जा के० ) तेने त मारे जे मार्ग कहेवो (मग्गसारंसुणेहमे के०) तेमार्गनो सार हुं तमने कहुंछुं ते तमे सांनलो.

---

॥ दीपिका–यदि नोऽस्माकं केचन पृच्छेयुः।देवाअथवा मनुष्यास्तेषामहं। तुरेवार्थे।कतरं कं मार्गं ( आइक्खेज्जत्ति ) आचक्षामि आचक्षेवा तत्कथय नोऽस्माकमिति ॥ ३ ॥ यदि केचित्सुजनबोधयोवोयुष्माकं मार्गं पृच्छेयुः । के ।, ते देवामनुष्यावा तेषां पृच्छतामिमं धर्मं प्रति कथयेत्साधुस्तंमार्गं सारं मम कथयतः शृणुत यूयं ॥ ४ ॥

---

॥ टीका–यद्यप्यस्माकमसाधारणगुणोपलब्धेर्युष्मत्प्रत्ययेनैव प्रवृत्तिः स्यात्तथाप्यन्ये षां किंभूतोमार्गोमयाख्येयइत्यभिप्रायवानाह । ( जइणेत्यादि ) यदा कदाचिन्नोस्मानु केचन सुलनबोधयः संसारोद्विग्नाः सम्यग्मार्गं पृच्छेयुः । के ते देवाश्चतुर्निकायास्तथा मनु ष्याः प्रतीताः बाहुल्येन तयोरेव प्रश्नसद्भावात्तडुपादानं । तेषां पृच्छतां कतरं मार्गमहमा ख्यास्ये कथयिष्ये तदेतदस्माकं त्वं जानानः कथयेति ॥ ३ ॥ एवंपृष्टः सुधर्मस्वाम्याह । ( जइवोइत्यादि ) यदि कदाचिद्वोयुष्मान् केचन देवामनुष्यावा संसारं भ्रांतिपराभग्नाः सम्यग्मार्गं पृच्छेयुस्तेषां पृच्छतामिममिति वक्ष्यमाणलक्षणं षड्जीवनिकायप्रतिपादनगर्भं

तद्व्याप्रवणं मार्गं ( पडिसाहिक्षेत्ति ) प्रतिकथयेत् । मार्गसारं मार्गपरमार्थं यं जवंतो न्येषां प्रतिपादयिष्यंति तन्मे मम कथयतः शृणुत यूयमिति । पागंतरंवा ( तेसिंतुइमं मग्गं आइक्खेज्ज़सुणेहमेत्ति ) उत्तानार्थं ॥ ४ ॥

अणुपुवेण महाघोरं, कासवेण पवेइयं ॥ जमादाय इउ पुवं, स
मुद्दं ववहारिणो ॥५॥ अतरिं सुतरंतेगे, तरिस्संति अणागया ॥
तं सोच्चा पडिवक्कामि, जंतवो तं सुणेहमे ॥ ६ ॥

अर्थ-( अणुपुवेण के० ) आनुपूर्वि एटले अनुक्रमे ( पंचिंदिअत्तणं माणुसत्तणं ) इत्यादिक अनुक्रमे करीने ( महाघोर के० ) पालतां अत्यंत डुष्कर ले एवो जे मार्गनो सार ते (कासवेणपवेइयं.के०) काश्यपजे श्रीमहावीर देव तेणे नाष्यो एटले कह्यो; (ज मादाय के० ) जेमार्गना ग्रहण करवा थकी (इउपुवंके०) पूर्वे अतीतकालें घणा सत्पु रुष डुस्तर एवो संसार-समुड तखाले ते उपर दृष्टांत कहेले. ( समुद्दंववहारिणो के० ) जेम व्यवहारीआ वस्तुनां जोनी थका डुस्तर समुड तरे तेनी पेरे तखाले ॥५॥ (अतरि सुतरंतेगे के० ) जे मार्ग ग्रहण करीने अतीतकालें अनंताजीव संसार समुड तख्या (तरिस्संति अणागया के०) अने हमणा पण संख्याता जीव संसार समुड तरेले, तथा आगमिक काले पण अनंता जीव तरशे, एम त्रणे काले संसार समुड्ने जेवडे तरेले एवो जे मोक्षनो मार्ग ( तंश्रुत्वा प्रतिवक्ष्यामि के० ) तेने सांजलीने अंगीकार करे ते मार्ग सम्यक् प्रकारे तमने कहीशुं ( जंतवोतं सुणेहमेके० ) माटे अहो जीवो ते सर्व हुं कहुंबुं माटे एकाग्रचित्ते तमे सांजलो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-यथाहमनु पूर्वेण परिपाटद्या मार्गं वच्मि तथा शृणुत यूयं । किंनूत मार्गं का पुरुषैर्डुष्पाल्यत्वान्महाघोरं काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं प्ररूपितं यं मार्गमादाय गृहीत्वा इतः सन्मार्गोपादानात्पूर्वमादावेवाऽनुष्ठितत्वात्संसारं तरंति । यथा व्यवहारिणः सां यात्रिकाः पोतेन समुडं तरंति ॥ ५ ॥ यं मार्गमाश्रिताः पूर्वं बहवोऽतीर्णस्तीर्णाः संसारं सांप्रतमप्येके तरंति महाविदेहादौ तथा ऽनागतकाले तरिष्यंति । एवंनूतं तं मार्गं श्रु त्वा तीर्थकृद्भ्यः अहं प्रतिवक्ष्यामि । हेजंतवोहेप्राणिनः तं मार्गं मम कथयतः शृणुत यूयमिति सुधर्मस्वामिवचनं ॥ ६ ॥

॥ टीका-पुनरपि मार्गाजिष्टवं कुर्वन्सुधर्मस्वाम्याह । ( अणुपुवेणेत्यादि ) यथाहमनु पूर्व्येणानुपरिपाट्या कथयामि तथा शृणुत । यदिवा यथा चानुपूर्व्या सामग्र्या वा मार्गो वाप्यते तच्छृणुत । तद्यथा । पढमिल्लगाणउदएइत्यादितावद्यावत् । बारसविहेकसाए, ख

विएङवसामिएयजोगेहिं ॥ लब्ध्वचरित्तलाभो, इत्यादि तथा चत्तारिपरमंगाणीत्यादि । किंभूतं मार्गं तमेव विशिनष्टि । कापुरुषैः संग्रामप्रवेशवत् दुरध्यवसायत्वान्महायानकं काश्यपोमहावीरवर्धमानस्वामी तेन प्रवेदितं प्रणीतं मार्गं । कथयिष्यामीत्यनेन स्वमनीषिकापरिहारमाह । ये शुद्धमार्गमुपादाय गृहीत्वा ऽतइति सन्मार्गोपादानात् पूर्वमादावेवानुष्ठितत्वाद्दुस्तरं संसारं महापुरुषास्तरंति । अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतमाह । व्यवहारः पण्यंक्रयविक्रयलक्षणोविद्यते येषांते व्यवहारिणः सांयात्रिकाः । यथा ते विशिष्टलाभार्थिनः किंचिन्नगरं यियासवोयानपात्रेण दुस्तरमपि समुद्रं तरंत्येवं साधवोप्यात्यंतिकैकांतिकाबोधसुखैषिणः सम्यग्दर्शनादिना मार्गेण मोक्षं जिगमिषवोदुस्तरं भवौघं तरंतीति ॥ ५ ॥ मार्गविशेषणायाह । ( अतरिंसुइत्यादि ) . यं मार्गं पूर्वं महापुरुषाचीर्णमव्यभिचारिणमाश्रित्य पूर्वस्मिन्ननादिके काले बहवोऽनंताः सत्वाअशेषकर्मकचीवरविप्रमुक्तानवौघं संसारमतीर्षुस्तीर्णवंतः सांप्रतमप्येके समग्रसामग्रीका असंख्येयाः सत्वास्तरंति । महाविदेहादौ सर्वदा सिद्धिसद्भावा द्वर्तमानत्वं न विरुध्यते । तथाऽनागतेच काले पर्यवसानात्मकेऽनंतात्मकेऽनंताएव जीवास्तरिष्यंति । तदेवं कालत्रयेपि संसारसमुद्रोत्तारकं मोक्षगमनैककारणं प्रशस्तं भावमार्गमुत्पन्नदिव्यज्ञानैस्तीर्थकृद्भिरुपदिष्टं तं चाहं सम्यक् श्रुत्वाऽवधार्य च युष्माकं शुश्रूषूणां प्रतिवक्ष्यामि प्रतिवादयिष्यामि । सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं निश्रीकृत्यान्येषामपि जंतूनां कथयतीत्येतद्दर्शयितुमाह । हे जंतवोऽभिमुखीभूय तं चारित्रमार्गं मम कथयतः शृणुत यूयं । परमार्थैकघनेऽत्यंतमादरोपादानार्थमेवमुपन्यासइति ॥ ६ ॥

पुढवीजीवा पुढो सत्ता, आउजीवा तहागणी ॥ वाउजीवा पुढो सत्ता, तणरुक्खा सबीयगा ॥ ७ ॥ अहावरा तसा पाणा, एवं छक्काय आहिया ॥ एतावए जीवकाए, णावरे कोइविज्जइ ॥ ८ ॥

अर्थ– ( पुढवीजीवापुढोसत्ता के० ) पृथिवीकाय जीव तेपण जुदा जुदा जाणवा ( आउजीवा के० ) तेमज अपकायना जीव; उस धूयरी प्रमुख पृथक् पृथक् जाणवा ( तहागणी के० ) तथा अग्नीकायना पण इंगाल ज्वाल मूंमर प्रमुख जीवो जुदा जुदा जाणवा तथा ( वाउजीवापुढोसत्ता के० ) वायुकायना जीव पण जुदा जुदा जाणवा अने ( तणरुक्खासबीयगा के० ) तृण वृक्षनी जाती तथा बीज ते शाली प्रमुख ए सर्व वनस्पति कायना जीव जाणवा. ॥ ७ ॥ ( अहावरातसापाणा के० ) अथानंतर अवरा एटले ए पूर्वे जे स्थावर जीवो कह्या तेथकी अपर बीजा बेंद्रियादिक प्राण ते त्रसजीवो जाणवा ( एवंछक्कायआहिया के० ) ए प्रमाणे छकायना जीवो श्री तीर्थंकर

तथा गणधरे कह्याछे. (एतावएजीवकाए के०) एटलीज ए जीवनी निकायछे ( णावरे कोइविज्जई के० ) परंतु एथकी उपरांत बीजी कोइ जीवनी निकाय नथी. ॥ ८ ॥

---

॥ दीपिका—पृथिवीजीवाः पृथक् प्रत्येकं सत्वाजंतवो ज्ञेयाः । आपश्च जीवाएवमग्नि कायाजीवावायुजीवाश्च पृथक्सत्वाः प्रत्येकजीवास्तृणानि कुशादीनि वृक्षाश्चूताद्याः बीजानि शाल्यादीनि एतेच वनस्पतिनेदाः ॥७॥ अथापरे त्रसाः प्राणिनोद्विन्त्रिचतुःपं चेंड्रियाएवं षट्कायाआख्यातास्तीर्थंकृद्भिः। एतावान् जीवराशिर्नापरो विद्यते कश्चित् ॥८॥

---

॥ टीका—चारित्रमार्गस्य प्राणातिपातविरमणमूलत्वात्तस्य च तत्परिज्ञानपूर्वकत्वात्तो जीवस्वरूपनिरूपणार्थमाह । ( पुढवीजीवाइत्यादि ) पृथिव्येव पृथिव्याश्रितावाजीवास्तेच प्रत्येकशरीरत्वात्पृथक् प्रत्येकं सत्वाजंतवोऽवगंतव्याः । तथा आपश्च जीवाएवमग्निकाया श्च तथापरे वायुजीवास्तदेवं चतुर्महाभूतसमाश्रिताः सत्वाः प्रत्येकशरीरिणोऽवगंतव्याः। एतएव पृथिव्यप्तेजोवायुसमाश्रिताः सत्वाः प्रत्येकशरीरिणोवक्ष्यमाणवनस्पतेस्तु सा धारणा साधारणशरीरत्वेनापृथक्त्वमप्यस्तीत्यस्यार्थस्य दर्शनाय पुनः पृथक् सत्वग्रहणमि ति । वनस्पतिकायस्तु यः सूक्ष्मः ससर्वोपि निगोदरूपः । साधारणबादरस्तु साधारणा ऽसाधारणश्चेति । तत्र प्रत्येकशरीरिणोऽसाधारणस्य कतिचिन्नेदान्निर्दिदिक्षुराह । तत्र तृ णानि दर्नवीरणादीनि वृक्षाश्चूताशोकादयः सहबीजैः शालिगोधूमादिनिर्वर्तितइति सबी जकाएते सर्वेपि वनस्पतिकायाः सत्वाअवगंतव्याः।अनेनच बौद्धादिमतनिरासः कृ तोवगंतव्यइति । एतेषां च पृथिव्यादीनां जीवानां जीवत्वेन प्रसिद्धिस्वरूपनिरूपणमाचा रे प्रथमाध्ययने शास्त्रपरिज्ञाख्ये न्यक्षेण प्रतिपादितमिति नेह प्रतन्यते ॥ ७ ॥ षष्ठजी वनिकायप्रतिपादनायाह । ( आहावरेत्यादि ) तत्र पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयएकेंड्रियाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तकन्नेदेन प्रत्येकं चतुर्विधाः । अथानंतरमपरेऽन्ये त्रसंतीति त्रसा द्वित्रिचतुःपंचेंड्रियाः कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादयः। तत्र द्वित्रिचतुरिंड्रियाः प्रत्येकं पर्या प्तकापर्याप्तकन्नेदात्षड्विधाः । पंचेंड्रियास्तु संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तकापर्याप्तकन्नेदाच्चतुर्विधाः । तदे देवमनंतरोक्तया नीत्या चतुर्दशभूतग्रामात्मकतया व्याख्यातास्तीर्थकरगणधरादिनिः। एतावानेवतन्नेदात्मकएव संक्षेपतोजीवनिकायोजीवराशिर्न्नवत्यंडजोद्भिज्जसंस्वेदजादेरत्रैवां तर्नावान्नापरोजीवराशिर्विद्यते कश्चिदिति ॥ ८ ॥

सबाहिं अणुजुत्तीहिं, मतिमं पडिलेहिया ॥ सबे अक्कंतदुक्काय,
अतो सबे अहिंसया ॥९॥ एयं खु णाणिणो सारं, जं न हिंसति
कंचण ॥ अहिंसा समयं चेव, एतावंतं विजाणिया ॥ १० ॥

अर्थ–ए पूर्वोक्त ठ जीवनी निकाय कही हवे जे कांइ करवुं ते देखाडेछे. ( सवाहिं अ णुजुत्तीहिं के० ) समस्त अनुयुक्ति एटले जीवितव्य साधवाना कारण तेणेकरी जीवने सम्यक् प्रकारे उंलखीने ( मतिमं के० ) बुद्धिवंत पुरुष जीवादिक तत्वने ( पडिलेहिया के० ) प्रतिलेखी एटले आलोचीने, ( सवे अकंत डुकाय के० ) सर्वजीवो डुःख थकी आक्रांत थायछे, एटले एकांते डुःख कोइने वल्लन नथी सर्व सुखना अर्थीछे, ( अतो के० ) ते कारण माटे ( सवेअहिंसया के० ) पृथव्यादिक सर्व जीवोने हणे नही, ठए कायनी दया पाले ॥ ए ॥ ( एयं खुणाणिणोसारं के० ) एहिज निश्चय थकी ज्ञानीने जाणवानो सारछे, ( जंनहिंसतिकंचण के० ) जे कोइ जीवनो विनाश नकरे परमार्थ थकी तेनेज ज्ञानी कहीये, के जे कोइ परजीवने पीडा उपजाववा थकी निवर्त्ते उक्तंच किंताए पढियाए इति वचनात् ( अहिंसा समयंचेव के० ) अहिंसा जे दया तेज निश्चये थकी आगमनुं तत्व जाणवुं ( एतावंतं विजाणिया ) किंबहुना एटलुंज जाणीने दयाने विषे यत्न करवो परंतु घणुं जाणे शुं फलछे. ॥ १० ॥

---

॥दीपिका–सर्वानिरनुकूलयुक्तिभिर्मतिमान् पृथिव्यादिजीवान् प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जीवत्वेन प्रसाध्य तथा सर्वे जीवाअकांतडुःखाअनभिमतडुःखाः सुखैषिणश्चेति मत्वाऽतो मतिमान्सर्वान्प्राणिनोन हिंस्यात् ॥ ए ॥ खुर्वाक्यालंकारे निश्चयेवा । एतदेव ज्ञानिनः सारं यत्कंचन प्राणिनं न हिनस्ति अहिंसाप्रधानं संयममेतावंतमेव विज्ञानं यन्न हिंस्यात्कंचन किंबहुना ज्ञातेन एतावता ज्ञातेन विवक्षितकार्यसिद्धिः ॥ १० ॥

---

॥टीका–तदेवं षड्जीवनिकायं प्रदर्श्य यत्तत्र विधेयं तद्दर्शयितुमाह । ( सवाहींत्यादि ) सर्वायाः कास्नानुरूपाः पृथिव्यादिजीवनिकायसाधनत्वेनानुकूलायुक्तयः साधनानि । यदिवा सिद्धविरुद्धानैकांतिकपरिहारेण पक्षधर्मत्वसपक्षसत्वविपक्षव्यावृत्तिरूपतया युक्तिसंगतायुक्तयस्ताभिर्मतिमान् सद्विवेकी पृथिव्यादिजीवनिकायान्प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जीवत्वेन प्रसाध्य तथा सर्वेपि प्राणिनोऽकांतडुःखाडुःखद्विषः सुखलिप्सवश्च मत्वाऽतोमतिमान् सर्वानपि प्रणिनोन हिंस्यादिति । युक्तयश्च तत्प्रसाधिकाः संक्षेपेणेमाइति । सात्मिका पृथिवी तदात्मनां विडुमलवणोपलादीनां समानजातीयांकुरसद्भावादर्शोविकारांकुरवत् । तथा सचेतनमंनोभूमिखननादाविष्कृतस्वनावसंनवाद्दर्डुरवत् । तथा सात्मकं तेजस्तद्योग्याहारवृध्या वृध्युपलब्धेर्बालकवत् । तथा सात्मकोवायुरपराप्रेरितनियततिरश्चीनगतिमत्वाद्गोवत् । तथा सचेतनावनस्पतयोजन्मजरामरणरोगादीनां समुदितानां सद्भावात्स्त्रीवत्तया क्षतसंरोहणाहारोपादानदौहृदसद्भावस्पर्शसंकोच सायान्हस्वापप्रबो

धाश्रयोपसर्पणादिन्योहेतुन्योवनस्पतेश्चैतन्यसिद्धिः । द्वींद्रियादीनां तु पुनः कृम्यादीनां स्पष्टमेव चैतन्यं तद्वेदनाश्चोपक्रमिकाः स्वाभाविकाश्च समुपलभ्यमानामनोवाक्कायैः कृत कारितानुमतिभिश्च नवकेन भेदेन तत्पीडाकारिणउपमर्दान्निवर्तितव्यमिति ॥ ए ॥ एतदे व समर्थयन्नाह । ( एयंखुइत्यादि ) खुशब्दोवाक्यालंकारेऽवधारणेवा । एतदेवानंतरोक्तं प्राणातिपातनिवर्तनं ज्ञानिनोजीवस्वरूपतद्धकर्मबंधवेदिनः सारं परमार्थप्रधानं । पुन रप्यादरख्यापनार्थमेतदेवाह । यत्कंचनप्राणिनमनिष्टदुःखं सुखैषिणं न हिनस्ति प्रभूतवे दिनोपि ज्ञानिनएतदेव सारतरं ज्ञानं यत्प्राणातिपातनिवर्तनमिति । ज्ञानमपि तदेव पर मार्थतोयत्पीडातोनिवर्तनं । यथोक्तं । किंताए पढियाए, पयकोडीए पयालभूयाए ॥ ज त्थित्तियं ण णायं, परस्स पीडा न कायव्वा ॥१॥ तदेवमहिंसाप्रधानः समयआगमः संकेतो वापदेशरूपस्तदेवंभूतमहिंसासमयमेतावंतमेव विज्ञाय किमन्येन बहुना परिज्ञानेनैताव तैव परिज्ञानेन मुमुक्षोर्विवक्षितकार्यपरिसमाप्तेरतोन हिंस्यात्कंचनेति ॥ १० ॥

उड्ढं अहेय तिरियं,जे केइ तसथावरा॥सव्वठ विरतिं विज्जा, सं
ति निव्वाणमाहियं ॥ ११॥ पभू दोसे निराकिच्चा,ण विरुझेज्ज के
णई ॥ मणसा वयसा चेव, कायसा चेव अंतसो ॥ १२ ॥

अर्थ-( उड्ढंअहेयतिरियं के० ) उंचो नीचो अने तीर्गो एतावता सर्व लोकने विषे ( जेकेइतसथावरा के० ) जे कांइ त्रस अने स्थावर जीवछे, ( सव्वठविरतिंविज्जा के० ) ते सर्वजीवनी निवृत्तिकरे एटले प्राणातिपात थकी निवर्ते, ( संतिनिव्वाणमाहियं के०) एहिज विरति, शांति अने निर्वाण श्रीतीर्थंकरें कह्युंछे. ॥ ११ ॥ ( पभूदोसेनिराकिच्चा के० ) प्रभु एटले समर्थ इंद्रीयनो जीपनार मिथ्यात्व अविरति प्रमादादिक दोषने नि राकरी एटले अवगणीने ( णविरुझेज्जकेणई के० ) कोइ पण जीवनीसाथे विरोध भा व नकरे, ( मणसावयसाचेव के०) मने करी वचने करी वली (कायसाचेवअंतसोके०) कायायें करी निश्चय थकी कोइ पण जीवनी साथे जावजीवसुधी विरोध नकरे. ॥१२॥

---

॥ दीपिका-ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च ये केचन त्रसाः स्थावराश्च प्राणिनस्तत्र सर्वत्र प्राणिनि विरतिं प्राणातिपातनिवृत्तिं विजानीयात्कुर्यात् । एषैव विरतेः शांतिहेतुत्वाच्छांतिर्वर्तते । त था निर्वाणहेतुत्वान्निर्वाणमप्याख्याता एषैव विरतिः ॥११॥ प्रभुः समर्थोदोषान् मिथ्या त्वविरतिप्रमादकषायादीन् निराकृत्याऽपनीय केनापि प्राणिना सार्धं न विरुध्येत्त केनैव सह विरोधं न कुर्यात् मनसा वचसा कायेन चांतशः परमार्थतः केनापि नविरुध्येत॥१२॥

॥ टीका–सांप्रतं क्षेत्रप्राणातिपातमधिकृत्याह । ( उड्ढमहेत्यादि ) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च ये केचन त्रसास्तेजोवायुर्द्वींद्रियादयस्तथा स्थावराः पृथिव्यादयः किंबहुनोक्तेन सर्वत्र प्राणिनि त्रसस्थावरसूक्ष्मबादरभेदभिन्ने विरतिं प्राणातिपातनिवृत्तिं विजानीयात्कुर्यात् । परमार्थतएवमेवासौ ज्ञाता नवति । यदि सम्यक् क्रियतऽति एवंच प्राणातिपातनिवृत्तिः परेषामात्मनश्च शांतिहेतुत्वाच्छांतिर्वर्तते । यतोविरतिमतोनान्ये केचन बिन्यति नाप्यसौ नवांतरेपि कुतश्चिद्बिनेति । अपिच निर्वाणप्रधानैककारणत्वान्निर्वाणमपि प्राणातिपातनिवृत्तिरेव । यदिवा शांतिरुपशमःशांतता निवृत्तिर्निर्वाणं विरतिमांश्चार्तरौद्रध्यानानावाडुपशांतिरूपोनिर्वृतिनूतश्च नवति ॥ ११ ॥ किंचान्यत् । ( पनूदोसेइत्यादि ) इंद्रियाणां प्रनवतीति प्रनुर्वा वश्येंद्रियइत्यर्थः । यदिवा संयमाचारकाणि कर्माण्यनिनूय मोक्षमार्गं पालयितव्ये प्रनुः समर्थः सएवंनूतः प्रनुर्दूषयंतीति दोषामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगास्तान्निराकृत्याऽपनीय केनापि प्राणिना सार्धं नविरुध्येत न केनचित्संह विरोधं कुर्यात्त्रिविधेनापि योगेनेति मनसा वाचा कायेन चैवांतशोयावज्जीवं परोपकारक्रियया न विरोधं कुर्यादिति ॥ १२ ॥

संवुडे से महापन्ने, धीरे दत्तेसणं चरे ॥ एसणासमिए णिच्चं, व
ज्जयंते अणेसणं ॥१३॥ नूयाइंच समारंन त मुद्दिस्साय जं कडं॥
तारिसं तु ण गिण्हेज्जा, अन्नपाणं सुसंजए ॥ १४ ॥

अर्थ–( संवुडेसेमहापन्नेके० ) आश्रवनो रोधकरी संवरने पाम्यो ते महाप्राज्ञ एटले विपुल बुद्धिवंत तथा (धीरेदत्तेसणंचरेके०) परीसह जीतवाने धीर सुनट समान एवो उतो दीधेली एषणाने वरे; अर्थात् दातारेदीधो एषणीक निर्दोष एवोजे आहारतेने लिए (एसणासमिएणिच्चंके०) एषणा एटले आहारनी गवेषणा तेने विषे समिति सहित नित्यसदाकाल (वज्जयंतेअणेसणं के०) अनेषणीयने वर्जतो थको संयम पाले ॥१३॥ (नूयाइंचसमारंन के० ) नूत एटले प्राणीनो समारंन करीने ( तमुद्दिस्सायजंकडंके ) यतिने अर्थे उद्देशीने कीधो एवो जे आधाकर्मिक आहार ( तारिसंके०) तादृस एटले तेवो ( अन्नपाणं के० ) अन्न, पान, वस्त्र, पात्र अने शय्यादिक ( णगिण्हेज्जा के० ) तेने जे ग्रहण करे नही, ते ( सुसंजए के० ) सुसंयत जाणवो. ॥ १४ ॥

---

दीपिका–इंद्रियैः संवृतः समहाप्रज्ञोविपुलमतिर्धीरोऽक्षोन्योभिक्षुर्दत्तेषणां चरेत् आहारोपधिशय्यादिकं स्वामिना दत्तं सदेषणीयं गृण्हीतेत्यर्थः। एषणायां गवेषणग्रहणग्रासरूपायां त्रिविधायामपि समितः सम्यक्तयाऽनेषणां वर्जयन् नित्यं संयममनुपालयेत्॥१३॥

भूतानि प्राणिनः समारभ्य संताप्य तं साधुमुद्दिश्य साध्वर्थं यत्कृतं तादृशमाधाकर्म दोष दुष्टमाहारादिकं न गृह्णीयात् नकं पानंच सुसंयतोगृहीतव्रतस्तादृशं न भुंजीत ॥१४॥

---

॥ टीका—उत्तरगुणानधिकृत्याह । (संवुडे इत्यादि) आश्रवद्वाराणां रोधेनेंद्रियनि रोधेन च संवृतः सन्निकुमेद्दती प्रज्ञा यस्यासौ महाप्रज्ञोविपुलबुद्धिरित्यर्थः । तदनेन जी वाजीवादिपदार्थाभिज्ञता वेदिता भवति । धीरोऽक्षोभ्यः क्षुत्पिपासादिपरीषहैर्न क्षोभ्यते। तदेव दर्शयति । आहारोपधिशय्यादिके स्वस्वामिना तत्संदिष्टेन वा दत्ते सत्येषणां चरत्ये षणीयं गृह्णातीत्यर्थः । एषणायाएषणायांवा गवेषणग्रहणैषणग्रासरूपायां त्रिविधायाम पि सम्यगितः समितः ससाधुर्नित्यमेषणासमितः सन्ननेषणां परिवर्जयन् परित्यजन्सं यममनुपालयेत् । उपलक्षणार्थत्वादस्य शेषाभिरपीर्यासमित्यादिभिः समितोऽष्टव्यइति ॥ १३ ॥ अनेषणीयपरिहारमधिकृत्याह (भूयाइंइत्यादि) अभूवन् भवंति भविष्यंति च प्राणिनस्तानि भूतानि प्राणिनः समारभ्य संरंभसमारंभारंभैरुपतापयित्वा तं साधुमुद्दि श्य साध्वर्थं यत्कृतं तदकल्पितमाहारोपकरणादिकं तादृशमाधाकर्मदोषदुष्टं सुसंयतः सु तपस्वी तदन्नं पानकं वा न भुंजीत । तु शब्दस्यैवकारार्थत्वान्नैवाभ्यवहरेदेवं तेन मार्गोऽ नुपालितोभवति ॥ १४ ॥

पूईकम्मं न सेविज्जा, एस धम्मे वुसीमउ ॥ जं किंचि अभिकंखे ज्जा, सवसो तं नभोत्तए ॥ १५ ॥ हणंतं णाणुजाणेज्जा, आयगु त्ते जिइंदिए ॥ ठाणाइं संति सड्ढीणं, गामेसु नगरेसु वा ॥ १६ ॥

अर्थ—(पूईकम्मंनसेविज्जाके०) शुद्धाहार पण जो आधाकर्मिकना एक कण सहि त होय तो ते अशुद्ध थाय, तेमाटे तेने पूतिकर्म कहिए; एवो आहारादिकने नसेवे ए टले नभोगवे (एसधम्मे के०) एवो धर्माचार ते (वुसीमउ के०) साचा संयमवंतनो जाणवो तथा (जंकिंचि के०) जेकांइ निर्दोष आहार होय परंतु तेने (अभिकंखेज्जा के०) सदोष करी जाणे तेपण सशंकित थयो माटे (सवसोतंनभोत्तए के०) ते सर्वथा प्रकारे भोगववुं नकल्पे ॥१५॥ (ठाणाइंसंतिसड्ढीणंके०) श्रद्धावंतना स्थान श्रद्धावंत धर्मवंतना आश्रय (गामेसुनगरेसुवाके०) एवा ग्रामने विषे अथवा नगरने विषे साधु रह्या छे त्यांनो आश्रीत कोइएक कूप खनन तत्रुकारकादिकनो करावनार एवो पुरुष साधुने पू छे, जे एमां धर्मछे किंवा नथी एम पुछयां थकां (आयगुत्तेजिइंदिए के०) आत्मगुप्त तथा जितेंद्रिय एवो साधु, (हणंतंणाणुजाणेज्जा के०) आरंभेकरी प्राणी हणाता होय तेवा कार्यने अनुमोदे नही, जे एतुं रुडुं काम करेछे एम कहे नही ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—आधाकर्माद्यविशुद्धिकोटयवयवेनापि संपृक्तं पूतिकर्म तन्न सेवेत। एषधर्मः (वुसीमउत्ति) सम्यक्संयमवतोयत्किंचिदनिकांक्षितानुष्ठानं तत्र सर्वशः सर्वप्रकारम प्याहारादिकं पूतिकर्म भोक्तुं न कल्पते ॥ १५ ॥ धर्मश्रद्धावतां ग्रामेषु स्थानान्याश्रया विद्यंते तत्र तत्स्थानाश्रितः कश्चिद्धर्मबुध्या कूपतडागखननप्रपासत्रादिकां क्रियां कुर्यात्ति न च किमत्र धर्मोस्ति नास्तीत्येवं पृष्टः साधुस्तं प्राणिनोघ्नंतं नानुजानीयात् । किंभूतः साधुः आत्मगुप्तोमनोवाक्कायगुप्तोजितेंद्रियः ॥ १६ ॥

---

॥ टीका— किंच (पूतीत्यादि) आधाकर्माद्यविशुद्धकोटयवयवेनापि संपृक्तं पूतिकर्म तदेवंभूतमाहारादिकं न सेवेत नोपभुंजीत। एषोऽनंतो धर्मकल्पस्वभावः (वुसीमउत्ति) सम्यक् संयमवतोऽयमेवानुष्ठानकल्पोयद्भुताशुद्धमाहारादिकं परिहरतीति। किंच। यद्यप्य शुद्धत्वेनाशिंकेत किंचिदप्याहारादिकं तत्सर्वशः सर्वप्रकारमप्याहारोपकरणपूतिकर्म भोक्तुं न कल्पतइति ॥ १५ ॥ किंचान्यत् (हणंतमित्यादि) धर्मश्रद्धावतां ग्रामेषु नग रेषु वा खेटखर्वटादिषु वा स्थानान्याश्रयाः संति विद्यंते तत्र तत्स्थानाश्रितः कश्चिद्धर्मो पदेशेन किल धर्मश्रद्धालुतया प्राण्युपमर्दकारिणां धर्मबुध्या कूपतडागखननप्रपासत्रा दिकां क्रियां कुर्यात्तेन च तथाभूतक्रियायाः कर्ता किमत्र धर्मोस्ति नास्तीत्येवं पृष्टोवा तडुपरोधाद्भयाद्वा तं प्राणिनोघ्नंतं नानुजानीयात्। किंभूतः सन्नात्मना मनोवाक्कायरूपे ण गुप्तआत्मगुप्तस्तथा जितेंद्रियोवश्येंद्रियः सावद्यानुष्ठानं नानुमन्यते ॥ १६ ॥

तहागिरं समारप्न, अत्थि पुन्नंति णोव ए॥ अहवा णत्थि पुन्नंति,
एवमेयं महप्नयं ॥ १७ ॥ दाणठयाय जे पाणा, हम्मंति तस
थावरा ॥ तेसिं सारखणठाए, तम्हा अत्थित्ति णोवए ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे ए स्वरूप विशेषे दीपावेछे अहो मुनीश्वर आ अमारे अनुष्ठाने पुण्यछे किं वा नथी एम पुछयां थकां (तहा के०) ते साधु (गिरंसमारप्न के०) एवी वाणी कहे के आ समारंभ करवामां (अत्थिपुन्नंतिणोवए के०) पुण्यछे एम पण मुख थकी कहे नही; (अहवा के०) अथवा (णत्थिपुन्नंति के०) एमां पुण्य नथी एम पण मुख थकी कहे नही. (एवमेयं महप्नयं के०) एम ए बने प्रकारने दोषना हेतु तथा महाभयना कारण जाणीने एवी भाषा नबोले ॥ १७ ॥ हवे जे कारणे एवी भाषा नबोले ते कारण कहेछे. (दाणठयायजेपाणा के०) दानने अर्थे अनेक लोकने अन्नपाणी आपवा सारुं जे प्राणी एटले जीव (तसथावरा के०) त्रस अने स्थावर (हम्मति के०) हणायछे (तेसिंसारकणठाएके०) तेजीवोने राखवाने अर्थे (तम्हा

अच्छित्तिनोवए के० ) तेकारणे आ तमारा अनुष्ठाने पुण्यछे एम पण साधु नकहे. ॥१८॥

॥ दीपिका—केनचिद्राजादिना कूपखननसत्रदानादिप्रवृत्तेन पृष्टः साधुः किमस्मदनुष्ठा नेऽस्ति पुण्यमाहोस्विन्नास्तीत्येवं भूतां गिरं समारभ्य निशम्यास्तिपुण्यं नास्तिवेत्येवमुभय थापि महाभयमिति मत्वा नानुमन्येत ॥ १७ ॥ अन्नपानादिदानार्थं पाकादिक्रियायां ये प्राणिनोहन्यंते त्रसाःस्थावराश्च तेषां संरक्षणार्थं साधुरत्र पुण्यमस्तीति नोवदेत्॥१८॥

॥ टीका—सावद्यानुष्ठानानुमतिं परिहर्तुकामआह । ( तहागिरमित्यादि ) केनचिद्रा जादिना कूपखननसत्रदानादिप्रवृत्तेन पृष्टः साधुः किमस्मदनुष्ठानं अस्ति पुण्यमाहोस्वि न्नास्तीत्येवं भूतां गिरं समारभ्य निशम्याश्रित्य चास्ति पुण्यं नास्तिवेत्येवमुभयथापि महाभयमिति मत्वा दोषहेतुत्वेन नानुमन्येत ॥१७॥ किमर्थं नानुमन्येतइत्याह ( दाण ठयाइत्यादि ) अन्नपानदानार्थमाहारमुदकंच पचनपाचनादिकया क्रियया कूपखननादिक या चोपकल्पयेत् । तत्र यस्माद्धन्यंते व्यापाद्यंते त्रसाः स्थावराश्च जंतवस्तस्मात्तेषां रक्षानि मित्तं साधुरात्मगुप्तोजितेंद्रियोऽत्र भवदीयानुष्ठाने पुण्यमित्येवं नो वदेदिति ॥ १८ ॥

जेसिं तं उवकप्पंति, अन्नपाणं तहाविहं ॥ तेसिं लाभं तरायंति,
तम्हा णत्थित्ति णो वए॥ १९ ॥ जे य दानं पसंसंति, वहमिछंति
पाणिणं ॥ जेयणं पडिसेहंति वित्तिछेयं करंति ते ॥ २० ॥

अर्थ—अने ( जेसिंतं उवकप्पंति के० ) जे लोकने निमित्ते उपकल्पे एटले वांछे शुं वांछे तोके (अन्नपाणंतहाविहंके० ) अन्न पाणी तथाविध दोषे दुष्ट अनेक प्रकारे करी नी पजावेछे तथापि तेनो निषेध करे तो (तेसिंलाभंतरायंतिके०) तेने लाभांतराय रूप आ हार देवानुं विघ्न थाय ( तम्हा के०) ते कारणे आ तमारे अनुष्ठाने पुण्य (णत्थित्तिके०) नथी (नोवए के०) एम पण नकहे. ॥१९॥ (जेयदानंपसंसंति के०) तेमाटे जे कोइ पर मार्थीनो जाण यति दाननी प्रशंसाकरे ते ( वहमिछंतिपाणिणं के० ) ते प्राणीना व धनी इछा करेछे, ( जेयणंपडिसेहंतिके० ) अने जे यति दान आपवानो निषेध करे ( वि त्तिछेयंकरंतिते के० ) तो ते यति अनेक जीवोनी आजीविकानो छेद करेछे. ॥ २० ॥

॥ दीपिका—येषां जंतूनां कृते तदन्नपानादिकं धर्मबुध्या उपकल्पयंति निष्पादयंति तन्निषेधे तेषामाहारार्थिनां लाभांतरायोविघ्नोभवेत् । तस्मात्कूपखननसत्रादिकर्मणिना स्ति पुण्यमित्यपि नो वदेत् ॥ १९ ॥ प्रपासत्रादिदानं ये प्रशंसंति ते प्राणिनां वधमिछं

ति येच निपेधंति प्रतिपेधयंति तेप्यगीतार्थाः प्राणिनां वृत्तिछेदं आजीविकाविघ्नं कुर्वंति २०

॥ टीका—यद्येवं नास्तिपुण्यमिति ब्रूयात्तदेतदपि न ब्रूयादित्याह । (जेसिमित्यादि) येषां जंतूनां तदन्नपानादिकं किल धर्मबुध्योपकल्पयंति तथाविधं प्राण्युपमर्ददोषडुष्टं निष्पादयंति तन्निषेधेच यस्मात्तेषामाहारपानार्थिनां तल्लाजांतरायोविघ्नोनवेत्तदनावेन तु पीड्येरंस्तस्मात्कूपखननसत्रादिके कर्मणि नास्ति पुण्यमित्येतदपि नोवदेदिति ॥ १ए ॥ एनमेवार्थं पुनरपि समासतः स्पष्टतरं बिजणिपुराह । (जेयदाणमित्यादि) ये केचन प्रपासत्रादिकं दानं बहूनां जंतूनामुपकारीति कृत्वा प्रशंसंति श्लाघंते ते परमार्थानजिज्ञाः प्रनूततरप्राणिनां तत्प्रशंसा द्वारेण वधं प्राणातिपातमिछंति । तद्दानस्य प्राणातिपातमंतरेणानुपपत्तेः । येपिच किल सूक्ष्मधियोवयमित्येवं मन्यमानाआगमसद्भावानजिज्ञाः प्रतिपेधंति. निपेधयंति तेप्यगीतार्थाः प्राणिनां वृत्तिछेदं वर्तनोपायविघ्नं कुर्वंतीति ॥ २० ॥

डुहर्जवि ते ए नासंति, अछिवा नछिवा पुणो ॥ आयं रयस्स हेच्चाणं, निवाणं पाउणंति ते ॥ २१ ॥ निवाणं परमं बुद्धा, णक्खत्ताणव चंदमा ॥ तम्हा सदा जए दंते, निवाणं संधए मुणी॥२२॥

अर्थ—( अछिवानछिवा के० ) अस्ति अथवा नास्ति एम न कहे एटले पुण्यछे किंवा पुण्य नथी एवी ( डुहर्जवि के० ) बन्ने प्रकारनी वाणीने ( पुणोके० ) वली (तेके०) तेसाधु (एनासंति के०) नापेनही; केमके ए थकी (रयस्सके०) कर्मरूप रज तेनो (आयं के० ) लान तेने ( हिल्वाके० ) जाणीने तेवी वाणीने उच्चार करवानो त्याग करे, (निवाणंपाउणंतितेके०) ते साधु निर्वाण प्रत्ये पामे; एटले अनवद्य नाषक एवो साधु संसाररहित थाय ॥ २१ ॥ (निवाणंपरमंबुद्धा के०) निर्वाण एटले मोक्ष तेने परम प्रधान जाणे, (णक्खत्ताणवचंदमाके०) नक्षत्रचंड्मानी पेरे, जेम नक्षत्रमां चंड्मा प्रधानछे. तेम तत्वना जाण पुरुष सर्व गतिर्जमां मुक्तिने प्रधान कहेछे. (तम्हाके०) तेमाटे (सदाजएदंतेके०) संयमवंत पुरुष ते निरंतर प्रयत्नवान इंडियनुं दमन करनार थको (निवाणंसंधए मुणीके० ) एवो साधु मोक्षने साधे अर्थात् सर्व क्रिया मोक्षने अर्थे करे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—द्विधापि ते पुनः साधवोन नापंते अस्ति पुण्यं नास्तिवा इति किंतु पृष्टैः सद्भिर्मौनमेवाश्रयणीयं । निर्वंधेत्वस्माकं निर्दोषाहारः कल्पते । एवंविधविपये साधूनामधिकारएव नास्तीति वक्तव्यं । यडुक्तं । सत्यं वप्रेपु शीतं शशिकरधवलं वारि पीत्वा प्रकामं, व्युछिन्नाशेपतृप्ताः प्रमुदितमनसः प्राणिसार्थानवंति ॥ शोपं नीते जलौघे दिन

करकिरणैर्यात्यनंताविनाशं तेनोदासीनभावं व्रजति मुनिगणः कूपवप्रादिकार्ये ॥ १ ॥ एवं रजसः कर्मणआयं लाभं हित्वा त्यक्त्वाऽनवद्यभाषिणोनिर्वाणं मोक्षं प्राप्नुवंति ॥ ॥ २१ ॥ येषां निर्वाणं मोक्षएव परमं प्रधानं ते बुद्धाज्ञाततत्वाः। यथा नक्षत्राणां मध्ये चंद्रमाप्रधानएवं मोक्षमेवाश्रित्य प्राप्य ये प्रवृत्तास्ते एव बुद्धानां मध्ये प्रधानाः। त स्मात्सदा सर्वकालं यतः प्रयत्नवान् इंद्रियदमने दांतोमुनिर्निर्वाणं संधयेन्निर्वाणार्थं सर्वाः क्रियाः कुर्यादित्यर्थः ॥ २२ ॥

---

॥ टीका—तदेवं राज्ञा अन्येन वेश्वरेण कूपतडागयागसत्रदानाद्युद्यतेन पुण्यसद्भावं पृष्टैर्मुमुक्षुभिर्यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह। (दुहउवीत्यादि) यद्यस्ति पुण्यमित्येवमूचुस्ततोनंता नां सत्वानां सूक्ष्मबादराणां सर्वदा प्राणत्यागएव स्यात्प्रीणनमात्रंतु पुनः स्वल्पानां स्वल्पका लीयमतोस्तीति न वक्तव्यं। नास्ति पुण्यमित्येवं प्रतिषेधेपि तदर्थिनामंतरायः स्यादित्यतो द्विधाप्यस्ति नास्ति वा पुण्यमित्येवं ते मुमुक्षवः साधवः पुनर्न भाषंते किंतु पृष्टैः सद्भिर्मौ नं समाश्रयणीयं। निर्बंधेत्वस्माकं द्विचत्वारिंशद्दोषवर्जितआहारः कल्पते। एवंविधविष ये मुमुक्षूणामधिकारएव नास्तीति। उक्तंच। सत्यं वप्रेषु शीतं शशिकरधवलं वारि पी त्वा प्रकामं, व्युच्छिन्नाशेषतृष्णाः प्रमुदितमनसः प्राणिसार्थाभवंति ॥ शोषं नीते जलौ घे दिनकरकिरणैर्यात्यनंताविनाशं, तेनोदासीनभावं व्रजति मुनिगणः कूपवप्रादिकार्ये ॥१ तदेवमुभयथापि भाषिते रजसः कर्मणआयोलाभोभवतीत्यतस्तं चायं रजसोमौनेना नवद्यभाषणेन वा हित्वा त्यक्त्वा तेऽनवद्यभाषिणोनिर्वाणं मोक्षं प्राप्नुवंतीति॥२१॥ अपिच। निव्वाणमित्यादि) निर्वृतिर्निर्वाणं तत्परमं प्रधानं येषां परलोकार्थिनां बुद्धानां ते तथा तानेव बुद्धान्निर्वाणवादित्वेन प्रधानानित्येवं दृष्टांतेन दर्शयति। यथा नक्षत्राणा मश्विन्यादीनां सौम्यत्वप्रमाणप्रकाशकत्वैरधिकश्चंद्रमाएवं परलोकार्थिनां बुद्धानां मध्ये ये स्वर्गचक्रवर्तिसंपन्निदानपरित्यागेनाशेषकर्मक्षयरूपं निर्वाणमेवाभिसंधाय प्रवृत्तास्त एव प्रधानानापरइति। यदिवा यथा नक्षत्राणां चंद्रमाः प्रधानभावमनुभवन्त्येवं लोक स्य निर्वाणं परमं प्रधानमित्येवं बुद्धाअवगततत्वाः प्रतिपादयंतीति। यस्माच्च निर्वाणं प्रधानं तस्मात्कारणात्सदा सर्वकालं यतः प्रयतः प्रयत्नवान् इंद्रियनोइंद्रियदमनेन दांतो मुनिः साधुर्निर्वाणमभिसंधयेन्निर्वाणार्थं सर्वाः क्रियाः कुर्यादित्यर्थः ॥ २२ ॥

बुज्झमाणाण पाणाणं किच्चंताण सकम्मणा ॥ आघाति साहु तं दीवं, पतिठे सा पवुच्चई ॥ २३ ॥ आयगुत्ते सया दंते, छिन्नसोए अणासवे ॥ जे धम्मं सुद्धमक्खाति, पडिपुन्नमणालिसं ॥ २४ ॥

अर्थ-( वुझमाणाण पाणाणं के० ) संसार समुड्मां विचरता प्राणी ( किच्चंताण सकम्मणा के० ) पोतपोताना कर्मकरी बेदन भेदननी कदर्थना पामता एवा असरण जीवोने पण ( आघातिसाहुतं दीवं के० ) श्रीतीर्थंकर गणधरनो कहेलो आश्वासनूत द्वीप समान एवो सम्यक् दर्शनादिक धर्म जाणवो, ( पतिठ्ठेसापवुच्चई के० ) एने संसार समुड्मां परिभ्रमणनो टालनार कहिए ॥ २३॥ एवा धर्मनो प्ररुपनार कोण ते कहेबे. ( आयगुत्तेसयादंतेके०) आत्माजेनो गुप्तछे ते आत्मगुप्त कहिए तथा सदादांत एटले सर्वकाल पांचेंड्यिनो संवर करनार (छिन्नसोए के०) जेणे संसारना स्त्रोत बेद्याछे (अणासवेके०) अनाश्रव एटले प्राणातिपातादिक आश्रव रहित ( जेधम्मं सुद्धमरकाति के० ) एवो जे होय ते सुद्धो धर्म कहे ते धर्म केवोछे, तो के ( पडिपुन्न के० ) प्रतिपूर्ण सर्व विरतिरूप तथा ( अणालिसं के० ) निरुपमछे. एटले एवो धर्म अन्य दर्शनीउंना कोइपण शास्त्रमां कह्यो नथी माटे ए धर्म उपमारहित छे. ॥ २४ ॥

---

॥ दीपिका-संसारसागरे मिथ्यात्वकषायादिनिर्वाह्यमानानां संमुखं नीयमानानां तथा स्वकर्मनिः कृत्यमानानां पीड्यमानानां प्राणिनां परोपकारनिरतस्तीर्थकारणतस्तोर्थंकरो गणधरादिर्वा साधु शोजनं द्वीपमाश्वासनूतमाख्याति। यथा समुड्पतितस्य जंतोः कश्चित्सुखार्थं द्वीपं वक्ति तथा संसारभ्रमणविश्रामहेतुं सम्यग्दर्शनादिकं जिनादिर्वक्ति एषा संसारभ्रमणविरतिरूपा प्रतिष्ठाप्रोच्यते तज्ज्ञैः ॥ २३ ॥ आत्मा गुप्तोयस्य सआत्मगुप्तः सदांतोवशीकृतेंड्यिः। तथा छिन्नानि त्रोटितानि संसारस्रोतांसि येन सछिन्नस्रोतानिराश्रवः कर्मबंधरहितएवंनूतोयः सशुद्धं निर्दोषं धर्ममाख्याति कथयति। किंनूतं धर्मं प्रतिपूर्णं सर्वविरतिरूपमनीदृशमनन्यसदृशं ॥ २४ ॥

---

॥ टीका-किंचान्यत् । ( वुझमाणाण इत्यादि ) संसारसागरस्रोतोनिर्मिथ्यात्वकषायप्रमादादिकैरुह्यमानानां तदनिमुखं नीयमानानां तथा स्वकर्मोदयेन निकृत्यमानानामशरणानामसुमतां परहितैकरतः कारणवत्सलस्तीर्थकृदन्योवा गणधराचार्यादिकस्तेषामाश्वासनूतं साधुं शोजनं द्वीपमाख्याति।यथा समुड्रांतः पतितस्य जंतोर्जलकल्लोलाकुलितस्य मुमूर्षोरतिश्रांतस्य विश्रामहेतुं द्वीपं कश्चित्साधुर्वत्सलतया समाख्यात्येवं तथानूतं द्वीपं सम्यग्दर्शनादिकं संसारभ्रमणविश्रामहेतुं तीर्थपरतीर्थिकैरनाख्यातपूर्वमाख्यात्येवं च कृत्वा प्रतिष्ठानं प्रतिष्ठा संसारभ्रमणविरतिलक्षणैषा दर्शनाद्यवाप्तिसाध्या मोक्षप्राप्तिः प्रकर्षेण तत्वज्ञैरुच्यते प्रोच्यतइति ॥ २३ ॥ किंनूतोऽसावाश्वासद्वीपोनवति कीदृग्विधेन वाऽसावाख्यायतइत्येदाह । ( आयगुत्ते इत्यादि ) मनोवाक्कायैरात्मा गुप्तोयस्य स

आत्मगुप्तस्तथा सदा सर्वकालमिंद्रियनोइंद्रियदमनेन दांतोवश्येंद्रियोधर्मध्यानध्यायी वे त्यर्थः । तथा छिन्नानि त्रोटितानि संसारस्त्रोतांसि येन सतथा। एतदेव स्पष्टतरमाह निर्गतआश्रवः प्राणातिपातादिकः कर्मप्रदेशद्वाररूपोयस्मात्सनिराश्रवोयएवंभूतः संशु द्धं समस्तदोषाऽपेतं धर्ममाख्याति । किंभूतं धर्मं प्रतिपूर्णं निरवयवतया सर्वविरत्याख्यं मोक्षगमनैकहेतुमनीदृशमनन्यसदृशमद्वितीयमिति यावत् ॥ २४ ॥

तमेव अवि जाणंता, अबुद्धा बुद्धमाणिणो ॥ बुद्धा मोत्तियम न्नंता, अंतएते समाहिए ॥ २५ ॥ तेय बीउदगं चेव, तमुद्दिस्सा य जं कडं ॥ भोच्चा झाणं झियायंति, अखेयन्ना असमाहिया ॥ २६ ॥

अर्थ-(तमेवअविजाणंता के०) ते शुद्ध प्रतिपूर्ण धर्मना आचारनुं जे जाणपणु तेने विषे ( अबुद्धाबुद्धमाणिणो के० ) अबुद्ध एटले अविवेकी छतां, पोतामां पंमित्त पणु मानता थका जे अमेज धर्मना जाणछैयें, ( बुद्धामोत्तियमन्नंता के०) तत्वना जाण एवा बुद्धिमान अमेज छैयें, एवीरीते मानता एवा जनो ( अंतएतेसमाहिए के० ) ते भाव समाधि थकी अत्यंत दूर वर्त्तनार जाणवा ॥ २५ ॥ एवा कोण पुरुष ते कहेछे. ( तेयबीउदगंचेव के० ) ते शाक्यादिक अन्य दर्शनी अथवा एवा जे स्वतीर्थिक पासछा दिक तेबीज एटले शाली गोधूमादिक तथा उदक ते सचित्तपाणी तथा (तमुद्दिस्सायजंकडं के० ) तेने अर्थे उद्देशीने जे आहारादिक कीधो ते सर्वने अविवेकी पणे जीव्हाना लं पटी छता ( भोच्चा के० ) भोगवी ने ( झाणंझियायंति के० ) आर्त्त ध्यान ध्यावे, एट ले संघनो भोजनादिक थशे तेवारे आपणने पण मलशे, एवो आर्त्त ध्यान ध्यावे ते तात्विके ( अखेयन्ना असमाहिया के० ) धर्माधर्मने विषे अखेदज्ञ एटले अनिपुण तथा एवा ध्यानना ध्यावनार सदा असंतोषी होय माटे असमाधिवंत जाणवा ॥२६॥

॥ दीपिका-तमेवं धर्ममजानानाअबुद्धानिर्विवेकाबुद्धमानिनः पंडितंमन्याबुद्धाः स्मोवयमिति मन्यमानाः समाधेः सम्यग्दर्शनादंते पर्यंतेऽतिदूरे वर्तंते इति तेऽन्ये तीर्थिकाज्ञेयाः ॥ २५ ॥ बीजानि शालिगोधूमादीनि उदकमप्रासुकजलं च शाक्यादय स्तानुद्दिश्य तद्भक्तैर्यदाहारादिकं कृतं तत्सर्वं भुक्त्वा सातर्धिरसगौरवासक्ताः संघभक्ता दिक्रियया तदवातिकृते आर्तं ध्यानं ध्यायंति । नहि ऐहिकसुखार्थिनां परिग्रहवतां धर्म ध्यानं स्यात् । यतः । ग्रामक्षेमगृहादीनां, गृहक्षेत्रजनस्य च । यस्मिन् परिग्रहोदृष्टो, ध्यानं तत्र कुतः शुभमिति । मोहस्यायतनं धृतेरपचयः शांतेः प्रतीपोविधि,र्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य भवनं पापस्य वासोनिजः ॥ दुःखस्य प्रभवः सुखस्य निधनं ध्यानस्य क

ष्टोरिपुः प्राज्ञस्यापि परिग्रहोग्रहइव क्लेशाय नाशाय च ॥ १ ॥ तथा ते कुतीर्थिकाध र्माधर्मविवेके ऽखेदज्ञाश्चनिपुणाश्चसमाहिताश्च समाधेर्मोक्षमार्गाद्दूरस्थाइत्यर्थः ॥ २६ ॥

---

॥ टीका–एवंनूतधर्मव्यतिरेकिणां दोषानिधित्सयाऽह । (तमेवेत्यादि) तमेवंनूतं शुद्धं प रिपूर्णमनीदृशं धर्ममजानानाश्चप्रबुद्धाश्चविवेकिनः पंडितमानिनोवयमेव प्रतिबुद्धाधर्मत त्वमित्येवं मन्यमानानावसमाधेः सम्यग्दर्शनाख्यादंते पर्यंते विदूरे वर्ततइति तेच सर्वेपि प रतीर्थिकाइष्टव्याइति ॥ २५ ॥ किमिति ते तीर्थिकानावमार्गरूपात्समाधेर्दूरे वर्ततइत्याशंक्या ह । (तेयवीर्उदगमित्यादि) तेच शाक्यादयोजीवाजीवानजिज्ञतया बीजानि शालिगोधूमादी नि तथा शीतोदकमप्राशुकोदकं तांश्चोद्दिश्य तद्भक्तैर्यदाहारादिकं कृतं निष्पादितं तत्सर्वमवि वेकितया शाक्यादयोज्ञुक्त्वाऽन्यवहृत्य पुनः सातर्द्धिरसगौरवासक्तमनसः संघनक्तादिक्रिय या तदवाप्तिकृते आर्त्तं ध्यानं ध्यायंति । नह्यैहिकसुखैषिणां दासीदासधनधान्यादिपरिग्रहव तां धर्मध्यानं नवतीति । तथाचोक्तं । ग्रामक्षेत्रगृहादीनां गृहक्षेत्रजनस्य च ॥ यस्मिन्परिग्र होदृष्टो, ध्यानं तत्र कुतः शुनमिति । तथा । मोहस्यायतनं धृतेरपचयः शांतेः प्रतीपो विधि,र्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य नवनं पापस्य वासोनिजः ॥ डुःखस्य प्रनवः सुखस्य निध नं ध्यानस्य कष्टोरिपुः, प्राज्ञस्यापि परिग्रहोग्रहइव क्लेशाय नाशाय च ॥ १ ॥ तदेवं पच नपाचनादिक्रियाप्रवृत्तानां तदेव चानुप्रेक्षमाणानां कुतः शुनध्यानस्य संनवइति । अपि च । ते तीर्थिकाधर्माधर्मविवेके कर्तव्ये अखेदज्ञाश्चनिपुणाः । तथाहि । शाक्यामनोज्ञाहा रवसतिशय्यासनादिकं रागकारणमपि शुनध्याननिमित्तत्वेनाध्यवस्यंति । तथाचोक्तं । म णुसुंनोयणं सुंचेत्यादि । तथा मांसं कल्किकमित्यपदिश्य संज्ञांतरसमाश्रयणान्निर्दोषं म न्यंते बुद्धसंघादिनिमित्तं चारंनं निर्दोषमिति । तडुक्तं । मंसनिवत्तिं काउं,सेवइ दंतिक्कगंतिध णिनेया ॥ इयवइकणारंनं, परववएसा कुणइ बालो ॥ १ ॥ नचैतावन्निर्दोषता । नहि लू तादिकं शीतलिकाद्यनिधानांतरमात्रेणान्यथात्वं नजते विषं वा मधुरकानिधानेनेति । ए वमन्येषामपि कापिलादीनामाविर्नावतिरोनावानिधानाभ्यां विनाशोत्पादावनिदधताम नैपुण्यमाविष्करणीयं । तदेवं ते वराकाः शाक्यादयोमनोदिष्टनोजिनः सपरिग्रहतयार्त ध्यायिनोऽसमाहितामोक्षमार्गाख्याद्भावसमाधेरसंवृततया दूरेण वर्ततइत्यर्थः ॥ २६ ॥

जहा ढंकाय कंकाय कुललामगुकासिहा ॥ मछेसणं जियायंति, ज्ञाणं ते कलुसाधमं ॥ २७ ॥ एवंतु समणाएगे, मिछदिठी अ णारिया ॥ विसएसणं जियायंति, कंकावा कलुसाहमा ॥ २८ ॥

अर्थ-( जहाढंकायकंकाय के० ) जेम ढंक पक्षी विशेष, तथा कंक पक्षी विशेष ( कुललामगुकासिहा के० ) कुलला पक्षी विशेष मूंगु पक्षी विशेष काक पक्षी विशेष एसर्व पक्षी मांसना अर्थि मांसनी इहा एटले वांछना करनार छे. ते ( मच्छेसणंझि यायंति के०) माछलानी प्राप्तिनी एषणाने ध्यावतां थकां रहेछे. ( ध्राणंतेकलुसा धमं के०) एवा मांसाहारी जीवो ते सर्वकाल कलुष एटले मलीन एवुं माछलानी गवे षणानुं अधम ध्यान ध्यावेछे. ॥ २७ ॥ ( एवंतुसमणाएगे के० ) ए प्रकारे कोइएक अन्यतीर्थिक अथवा पासछादिक कुशीलिया श्रमण ( मिछदिठि के० ) मिथ्यादृष्टी ( अणारिया के० ) अनार्य ते ( विसएसणंझियायंति के० ) विषयनी एषणा एटले, श ब्द रूप रस गंधनी प्राप्तिने ध्यावेछे ( कंकावाकलुसाहमा के०) ते पूर्वोक्त कंकादिक प क्षीनी पेरे कलुषित चित्त वाला अधम पुरुषो जाणवा. ॥ २८ ॥

---

॥ दीपिका-यथा ढंकादयः पक्षिविशेषाजलाश्रयनिवासाआमिषजीविनोमत्स्यप्रा प्तिं ध्यायंति तद्ध्यायिनश्च ते कलुषाधमाः स्युः । एवं शाक्यादयोविषयप्राप्तिं ध्यायंतः क लुषाधमाश्च स्युः ॥ २७ ॥

---

टीका-यथा चैते रससातागौरवतयार्तध्यायिनोजवंति तथा दृष्टांतद्वारेण दर्शयितु माह । (जहाढंकायइत्यादि) यथेत्युदाहरणन्यासार्थः ।यथा येन प्रकारेण ढंकादयः पक्षि विशेषाजलाश्रयाआमिषजीविनोमत्स्यप्राप्तिं ध्यायंत्येवंजूतं च ध्यानमार्तरौद्रध्यानरूपत याऽत्यंतकलुषमधमं च जवतीति॥२७॥ दार्ष्टांतिकं दर्शयितुमाह । (एवमित्यादि) एवमि ति यथा ढंकादयोमत्स्यान्वेषणपरं ध्यानं ध्यायंति तद्ध्यायिनश्च कलुषाधमाजवंत्येवमेव मिथ्यादृष्टयः श्रमणाएके शाक्यादयोऽनार्यकर्मकारित्वात्संरंजपरिग्रहतया अनार्याः संतो विषयाणां शब्दादीनां प्राप्तिं ध्यायंति तद्ध्यायिनश्च कंकाइव कलुषाधमाजवंतीति ॥२८॥

सुद्धं मग्गं विराहित्ता, इहमेगेउ डुम्मती ॥ उम्मग्गगता डुक्खं,
घायमेसंति तं तहा ॥ २९ ॥ जहा आसाविणिं नावं, जाइअंधो
डुरूहिया ॥ इच्छइ पारमागंतुं, अंतराय विसीयंती ॥ ३० ॥

अर्थ-(सुद्धंमग्गंविराहित्ताके०)शुद्धमार्गजे सम्यक्दर्शनादिक तेने कुमार्गनी प्ररुपणाये विराधता एवा (इहके०) आसंसारमांहे ( मेगेउडुम्मतीके० ) कोइएक डुराचारी पोताना दर्शनना अनुरागे प्रवर्त्तता ( उम्मग्गगताडुक्खं के० ) उन्मार्गे गत एटले अरिहंत नापी त तत्व थकी विपरीत मार्गे प्राप्त थया छता डुःखजे अष्ट प्रकारना कर्म असातोदयरू प तेणे करी ( घायमेसंतितंतहा के० ) तथा प्रकारे ते घात एटले नरकादिकगतिमांहे

अनेक प्रकारेकरी जन्ममरणछेदन नेदनादिक डुःखनी वेदना पामे. ॥ २९ ॥ (जहाके०) जेम ( जाइअंधोके० ) जात्यंध पुरुष (आसाविणिंके०) शतछिद्र सहित एवी (नावंके०) नावने विषे (डुरूहिया के० ) बेसीने ( इछति पारमागंतुंके० ) समुद्र तरी पार पामवानी इछा करे पण तेवी नावा थकी समुद्रनो शीरीते पार पामे ? ( अंतरायविसीयंती के० ) ते पुरुष अंतराले विषीदंति एटले वचमांज बुडे, परंतु पार पामे नही. ॥ ३० ॥

॥ दीपिका– शुद्धं निर्दोषं मोक्षमार्गप्ररूपणया विराध्य दूषयित्वा इह संसारे एके शाक्यादयोडुर्मतयउन्मार्गगताडुःखं घातं च मृतिं ते शाक्यादयस्तथा तेन प्रकारेण एषंति अन्वेषयंति डुःखमरणे शतशः प्रार्थयंतीत्यर्थः ॥ २९ ॥ यथा जात्यंधआस्राविणीं शतछिद्रां नावमारुह्य पारमागंतुमिछति । न चासौ छिद्रनावारूढः पारगतः स्यात् किंतर्हि अंतराले जलमध्यएव विषीदति निमज्जति ॥ ३० ॥

॥ टीका–किंच (शुद्धमित्यादि) शुद्धमवदातं निर्दोषं मार्गं सम्यग्दर्शनादिकं मोक्षमार्गं कुमार्गप्ररूपणया विराध्य दूषयित्वा इहास्मिन्संसारे मोक्षमार्गप्ररूपणप्रस्तावे वा एके शाक्यादयः स्वदर्शनानुसारेण महामोहाकुलितांतरात्मानोडुष्टा पापोपादानतया मतिर्येषां ते डुष्टमतयः संतउन्मार्गेण संसारावतरणरूपेण गताः प्रवृत्ताउन्मार्गगताडुःखयतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्मासातोदयरूपं वा तद्दुःखं घातं चांतशस्तथा सन्मार्गविराधनतया उन्मार्गगमनं चैषंत्यन्वेषयंति । डुःखमरणे शतशः प्रार्थयंतीत्यर्थः ॥ २९ ॥ शाक्यादीनां चापायं दिदर्शयिषुस्तावद्दृष्टांतमाह । ( जहाआसाविणिमित्यादि ) यथा जात्यंधआस्राविणीं शतछिद्रां नावमारुह्य पारमागंतुमिछति । नचासौ सछिद्रतया पारगामी नवति किंतर्ह्यंतरालएव जलमध्यएव विषीदति निमज्जतीत्यर्थः ॥ ३० ॥

एवंतु समणा एगे, मिछदिठी अणारिया ॥ सोयं कसिणमावन्ना, आगंतारो महप्रयं ॥ ३१ ॥ इमंच धम्ममादाय, कासवेण पवेदितं ॥ तरे सोयं महाघोरं, अत्तत्ताए परिव्वए॥ ३२ ॥

अर्थ–हवे ए दृष्टांत अन्यतीर्थिक साथे जोडेछे ( एवंतुसमणाएगे के० ) एरीते कोइ एक अन्य दर्शनी श्रमण, ( मिछदिठी अणारिया के० ) मिथ्यादृष्टी अनाचारी विपरीत मार्गना उपदेशक विपरीत बुद्धिना धणी ते (सोयंकसिणमावन्ना के० ) श्रोत एटले कर्मनो आश्रव तेने विषे संपूर्ण पोहोच्या थका ( आगंतारोमहप्रयं के० ) आवते काले महानय एटले अत्यंत बीहामणा एवा नरकादिकना डुःख पामे. ॥३१॥ (इमंचधम्ममादाय के० ) एम सर्वलोक प्रसिद्ध ठकाय जीवोनो वाछल कारी एवो श्रुत चारित्र

रूप धर्म तेने ग्रहण करीने ( कासवेणपवेदितं के० ) ते धर्म काश्यपगोत्री श्रीमहावीर देवे कह्यो ते धर्मने आदरवा थकी फल जे थाय ते कहेछे (तरेसोयंमहाघोरं के०) ते माहाघोर एवो संसार समुद्रनो श्रोत एटले प्रवाहरूप स्थानक तेने तरे अर्थात् संसार समुद्रने उलंघीने पारपामे, ( अत्तत्ताएपरिव्वए के० ) ते कारण माटे आत्मानो त्राण एटले रक्षपाल एवो साधु ते एहिज सम्यग् धर्मने समाचारे ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका–एवमेके शाक्यादयः श्रमणामिथ्यादृष्टयोऽनार्याभावस्रोतःकर्माश्रवरूपं कृत्स्नं समापन्नाः संतोमहाभयं पौनःपुन्येन दुःखमागंतारआगमनशीलाः स्युः संसार सागरोत्तरणं न स्यादिति ॥३१॥ इमं प्रत्यक्षं धर्मं । चः पुनरर्थे। काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं प्रणीतं आदाय गृहीत्वा भावस्रोतः संसारपर्यटनं महाघोरं तरेल्लंघयेत् । तदेवं जिनप्रणीतधर्माटनेनासता आत्मनस्त्राणाय नरकादिभ्योरक्षणाय परिव्रजेत्संयमानुष्ठायी स्यात् । क्वचित्पश्चार्द्धस्यायं पाठः । ( कुज्जाभिरकूगिलाणस्स, अगिलाएसमाहिए ) । भिक्षुः साधु र्ग्लानस्य वैयावृत्यमग्लानोऽपरिश्रांतः कुर्यात्समाधिर्ना ग्लानस्य समाधिमुत्पादयन् ॥३२॥

॥ टीका–दार्ष्टांतिकमाह । ( एवंतित्यादि ) एवमेव श्रमणाएके शाक्यादयोमिथ्यादृष्टयोऽनार्याभावस्रोतःकर्माश्रवरूपं कृत्स्नं संपूर्णमापन्नाः संतस्ते महाभयं पौनःपुन्येन संसारपर्यटनतया नारकादिस्वभावं दुःखमागंतारआगमनशीलाभवंति । न तेषां संसारोदधेरास्राविणीं नावं व्यवस्थितानामिवोत्तरणं भवतीति भावः ॥ ३१ ॥ यतः शाक्यादयः श्रमणाः मिथ्यादृष्टयोऽनार्याः कृत्स्नं स्रोतः समापन्नाः महाभय मागंतारोभवंति ततइदमपदिश्यते । ( इमंचेत्यादि ) इदमिति प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादिदमोनंतरं वक्ष्यमाणलक्षणं सर्वलोकप्रकटं च दुर्गतिनिषेधेन शोभनगतिधारणाद्धर्मं श्रुतचारित्राख्यं । चशब्दः पुनःशब्दार्थे । सच पूर्वस्मा द्व्यतिरेकं दर्शयति । यस्माच्छौद्धोदनिप्रणीतधर्मस्यादातारोमहाभयं गंतारोभवंति इमं पुनर्धर्ममादाय गृहीत्वा काश्यपेन श्रीवर्धमानस्वामिना प्रवेदितं प्रणीतं तरेल्लंघयेद्भावस्रोतः संसारपर्यटनस्वभावं । तदेव विशिनष्टि । महाघोरं दुरुत्तारत्वान्महाभयानकं । तथाहि । तदंतर्वर्तिनोजंतवोगर्भाद्गर्भं जन्मतोजन्म मरणान्मरणं दुःखाद्दुःखमित्येवमरघट्टघटीन्यायेनानुभवंतोऽनंतमपि कालमासते । तदेवं काश्यपप्रणीतधर्मादानेन सता आत्मनस्त्राणं नरकादिरक्षा तस्मै आत्मत्राणाय परिःसमंतात्परिव्रजेत्संयमानुष्ठायी भवेदित्यर्थः । क्वचित्पश्चार्धस्यान्यथा पाठः। कुज्जाभिरकू गिलाणस्स. अगिलाएसमाहिए ॥ भिक्षुः साधुः ग्लानस्यवैयावृत्यमग्लानोऽपरिश्रांतः कुर्यात्सम्यक्समाधिना ग्लानस्य वा समाधिमुत्पादयन्निति ॥ ३२ ॥

विरए गामधम्मेहिं जे केइ जगई जगा ॥ तेसिं अत्तुवमायाए,
थामं कुवं परिवए ॥ ३३ ॥ अइमाणं च मायं च, तं परिन्नाय
पंभिए ॥ सवमेयं णिराकिच्चा, णिवाणं संधए मुणी ॥ ३४ ॥

अर्थ–विरति साधु संयमानुष्ठानने शीरीतें पाले ते उपर कहेछे. ( विरएगामधम्मेहिंके० ) ग्रामधर्मजे शब्दादिक विषय ते थकी विरति थको अने ( जेकेइजगईजगा के० ) जेकां इ जगत्रमांहे त्रस अने स्थावर जीवछे ( तेसिंअत्तुवमायाए के० ) तेने पोताना आत्म तुल्यनी उपमायें देखीने तेने राखवाने अर्थे ( थामंकुवं के० ) बलवीर्य फोरवतो थको ( परिवए के० ) संयम पाले. ॥ ३३ ॥ अइमाणंचमायंच के० ) जे कारणे मान जे छे ते चारित्रने अतिक्रमे छे तेमाटे तेने अतिमान कहिए. एना सार्थे क्रोध पण लेवो एम ज अतिमाया अने चशब्द थकी लोभ पण लेवो ( तं के० ) ते चार कषायने ( पंभिए के० ) पंभित विवेकी जन होय ते एने संयमना शत्रु ( परिन्नाय के० ) ज्ञपरिज्ञायें करी जाणीने ( सवमेयंणिराकिच्चा के० ) एसर्व कषायने संसारनुं कारण जाणीने तेने प्रत्या ख्यान परिज्ञायें करी निराकरीने ( णिवाणंसंधएमुणीके० ) साधु मोक्षने सधे वांछाकरे.

॥ दीपिका–ग्राम्यधर्माः शब्दादिविषयास्तेन्योविरताः संत्येके केचन जगति जगाः प्राणिनोजीवितार्थिनस्तेषामात्मोपमया तद्रक्षणाय स्थामं सामर्थ्यं कुर्वन् परिव्रजेत्संयमे ॥ ३३ ॥ अतिमानं च मायां चशब्दात्क्रोधलोभौ गृह्येते । एवं कषायव्रत परिज्ञाय पंभितः सर्वमेतं नवहेतु निराकृत्य निर्वाणमनुसंधयेत् मोक्षार्थं प्रशस्तभावानुगतः स्यात् । सतिच कषाये न संयमः सफलतां याति । यतः । सामन्नमणुचरंतस्स, कसाया जस्स उक्कडा होंति । मन्नामि उच्छुपुप्फंच, निप्फलं तस्स सामन्नंइति ॥ ३४ ॥

॥ टीका–कथं संयमानुष्ठाने परिव्रजेदित्याह । ( विरएइत्यादि ) ग्रामधर्माः शब्दादयो विषयास्तेन्योविरतामनोज्ञेतरेष्वरक्तद्विष्टाः संत्येके केचन जगति पृथिव्यां संसारोदरे ( जगाइति ) जंतवोजीवितार्थिनस्तेषां डुःखद्विषामात्मोपमया डुःखमनुत्पादयन्तद्रक्षणे सामर्थ्यं कुर्यात्कुर्वंश्च संयमानुष्ठाने परिव्रजेदिति ॥ ३३ ॥ संयमविघ्नकारिणामपनयनार्थमाह । ( अइमाणंचेत्यादि ) अतीव मानोऽतिमानश्चारित्रमतिक्रम्य योवर्तते चकारादेतद्दयः क्रोधोपि परिगृह्यते । एवमतिमायां चशब्दादतिलोभं च तमेवंभूतं कषायव्रतं संयमपरिपंथिनं पंभितोविवेकी परिज्ञाय सर्वमेनं संसारकारणभूत कषायसमूहं निराकृत्य निर्वाणमनुसंधयेत्सति च काषायकदंबके नसम्यक् संयमः सफलतां प्रतिपाद्यते । तडुक्तं ।

सामसमणुचरंतस्स कसाया जस्स उक्कडा होंति ॥ मन्नामि उच्छुपुप्फंच निप्फलं तस्स सा मसं ॥१॥ तन्निष्फलत्वेच न मोक्षसंनवः । तथाचोक्तं । संसारादपलायनप्रतिनुवोरागादयो मे स्थितास्तृष्णाबंधनबध्यमानमखिलं किंवेत्सि नेदं जगत् ॥ मृत्यो मुंच जराकरेण परुषं के शेषु मामाग्रहीरेहीत्यादरमंतरेण नवतः किंनागमिष्याम्यहं॥१॥इत्यादि । तदेवमेवंनूतक षायपरित्यागादछिन्नप्रशस्तनावानुसंधनया निर्वाणानुसंधानमेव श्रेयइति ॥ ३४ ॥

संधए साहुधम्मंच, पाठांतरं (सद्दए साहुधम्मंच) पावधम्मं णिराकरे ॥ उवहाणवीरिए निक्कू, कोहं माणंच पत्रए॥ ३५ ॥
जे य बुद्धा अतिक्कंता, जे य बुद्धा अणागया ॥ संति तेसिं पइ ठाणं, नूयाणं जगती जहा ॥ ३६ ॥

अर्थ-( संधएसाहुधम्मंच के० ) साधुनो धर्मजे क्षमादिक दश प्रकारनोछे तेने स म्यक् जाणीने वृद्धि करे एटले सम्यक् उपदेशीने वृद्धि पमाडे पाठांतरे ( सद्दए साहुध म्मंच के० ) दश प्रकारनायतिधर्म उपर श्रद्धा राखे. ( पावधम्मंणिराकरे के० ) पाप धर्म जे जीवोनो मर्दन करतो थको धर्मनेनावे प्रवर्त्ते तेने पापधर्म कहिए, तेने निराक रे एटले तेनुं उह्वापन करीने ( उवहाणवीरिएनिक्कू के० ) उपधान जे तप तेने विषे बलवीर्य फोरवतो एवो साधु ( कोहंमाणंचपत्रए के० ) क्रोध अने मानने प्रार्थे नही. चशब्द थकी साधु वर्तमान काले एवीरीते संयम पाले. ॥ ३५ ॥ ए धर्म श्रीमहावीर देवे कह्यो किंवा अन्य जिनोए पण कह्यो ते कहेछे. ( जेयबुद्धाअतिक्कंता के० ) जे तीर्थंकर अतीत काले थया, तथा ( जेयबुद्धाअणागया के० ) जे तीर्थंकर अनागत काले थशे चशब्द थकी जे तीर्थंकर वर्त्तमान काले बिराजमान छे, ते सर्व एज धर्म ना कहेनार जाणवा ( संतितेसिंपइठाणं के० ) तेनो प्रतिष्ठान एटले अवलंबननो स्था नक ते शांति एटले समस्त जीवनी दया जाणवी, कोनीपेरे तोके ( जहाके० ) जेम ( नूयाणंजगती के० ) समस्त जीवोने आधारनूत पृथवीरूप स्थानक छे, तेम सर्व तीर्थंकर देवोने जीवदया रूप शांतिनुं स्थानक ते आधारनूत जाणवो. ॥ ३६ ॥

---

॥ दीपिका-साधुधर्मं संयमं संधयेत् वृद्धिं प्रापयेत् तथा पापधर्मं हिंसात्मकं निरा कुर्यात् । उपधानं तपस्तत्र वीर्योनिक्षुः क्रोधं मानं च न प्रार्थयेन्नवर्धयेत् ॥ ३५ ॥ ये बुद्धास्तीर्थकृतोऽतिक्रांताअतीताये चाऽनागताः । चशब्दाद्वर्तमानाजिनेंद्रास्तेषां सर्वेषां शांतिर्नावमार्गः प्रतिष्ठानमाधारः । अथवा शांतिर्मोक्षः प्रतिष्ठानमाधारः । मोक्षश्च नाव मार्गं विना नस्यादित्यतः सर्वेपि जिनाएनं नावमार्गं प्रतिष्ठानमुक्तवंतोऽनुष्ठितवंतश्चेति ग

ष्यंते । नूतानां प्राणिनां यथा त्रिलोकी प्रतिष्ठानमेवं सर्वेपि बुद्धाः शांतिप्रतिष्ठानाः ॥३६॥

॥ टीका–किंच । (संधएइत्यादि) साधूनां धर्मः क्षांत्यादिकोदशविधः सम्यग्दर्शनचारित्राख्योवा तमनुसंधयेद्वृद्धिमापादयेत् । तद्यथा । प्रतिक्षणमपूर्वज्ञानग्रहणेन ज्ञानं तथा शंकादिदोषपरिहारेण सम्यग्जीवादिपदार्थाधिगमेन च सम्यग्दर्शनमस्खलितमूलोत्तरगुणसंपूर्णपालनेन प्रत्यहमपूर्वज्ञानग्रहणेन चारित्रंवृद्धिमापादयेदिति । पाठांतरंवा ( सद्दहेसाधुधम्मंच ) पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टसाधुधर्मं मोक्षमार्गत्वेन श्रद्दधीत निःशंकतया गृण्हीयाच्चशब्दात्सम्यगनुपालयेच्च । तथा पापं पापोपादानकारणं धर्मं प्राणुपमर्देन प्रवृत्तं निराकुर्यात्तथोपधानं तपस्तत्र यथाशक्त्या वीर्यं यस्य सनवत्युपधानवीर्यस्तदेवंनूतोभिक्षुः क्रोधं मानं च न प्रार्थयेन्नवर्धयेद्वेति ॥ ३५ ॥ अथैवंनूतं नावमार्गं किं वर्धमानस्वाम्येवोपदिष्टवानुतान्येपीत्येतदाशंक्याह । ( जेयबुद्धाइत्यादि ) ये बुद्धास्तीर्थकृतोऽतीते नादिके कालेऽनंताः समतिक्रांतास्ते सर्वेप्येवंनूतं नावमार्गमुपन्यस्तवंतस्तथा ये चानागता नविष्यदनंतकालनाविनोनंताएव तेप्येवमेवोपन्यसिष्यंति । चशब्दाद्वर्तमानकालनाविनश्च संख्येयाइति । न केवलमुपन्यस्तवंतोऽनुष्ठितवंतश्च गम्यंते । तद्दर्शयति । शमनं शांतिर्नावमार्गस्तेषामतीतानागतवर्तमानकालनाविनां बुद्धानां प्रतिष्ठानमाधारोबुद्धत्वस्यान्यथानुपपत्तेः । यदिवा शांतिर्मोक्षः सतेषां प्रतिष्ठानमाधारस्ततस्तदवाप्तिश्च नावमार्गमंतरेण न नवतीत्यतस्ते सर्वेप्येनं नावमार्गमुक्तवंतोऽनुष्ठितवंतश्च गम्यंते । शांतिप्रतिष्ठानत्वे दृष्टांतमाह । नूतानां स्थावरजंगमानां यथा जगती त्रिलोकी प्रतिष्ठानमेवं ते सर्वेपि बुद्धाः शांतिप्रतिष्ठानाइति ॥ ३६ ॥

अहसुं वयमावन्नं, फासा उच्चावया फुसे ॥ ण ते सुविणिहस्से
ज्जा वाएणव महागिरी ॥ ३७ ॥ संवुमे से महापन्ने, धीरे दत्तेस
णं चरे ॥ निवुमे कालमाकंखी, एवं केवलिणो मयंतिबेमि ॥३८॥
इति मोक्षमार्गनामकं एकादसममज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ–(अहसुंवयमावन्नंके०) अथ हवे व्रतप्रतिपन्न संयम ग्राहित साधुने (फासाउच्चावयाफुसे के० ) सम विषमादिक उंचा नीचा अनुकूल प्रतिकूल एवा परिसह फरसे (णतेसुविणिहस्सेज्जा के० ) तोपण तेणे करीने ते धर्मथकी नचुके एटले धर्म थकी भ्रष्ट नथाय, कोनी पेरे तोके ( वाएणवमहागिरी के० ) जेम वायरे करी मेरुपर्वत मोलायमान नथाय, तेम परिसह उपने थके साधुजन व्रत थकी मोलायमान नथाय. ॥३७॥ ( संवुमेसेमहापन्ने के० ) ते साधु संवरवान महाप्रज्ञावंत, ( धीरेदत्तेसणंचरे के० ) धै

र्यवान कर्मविदारवाने सूरवीर, दीधो एषणीक आहार ग्रहण करवाने विषे विचरे (निवुमेकालमाकंखी के० ) तथा निवृत्त उपशांत कषाय वालो एवो उतो मरण कालसुधी संयमने वांछे (एवंकेवलिणोमयं के०) एम केवल ज्ञानीउंनो मतछे अने तेज केवल ज्ञानीउंनो प्रकाश्यो मार्ग श्रीमहावीर देव कहेछे, पण महारी बुद्धिये हुं केतो नथी. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ३७ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगना प्रथमश्रुतस्कंधने विषे मोक्षमार्गनामे एकादशमां अध्ययनो अर्थ समाप्त थयो. ॥

---

॥ दीपिका—अथ तं साधुं प्रतिपन्नव्रतं उच्चावचाः शुनाशुनाः स्पर्शाः परीषहोपसर्गाः स्पृशेयुः पीडयेयुः । सच साधुस्तैः पीडितोन विहन्यात् न संयमाच्चलेत् । यथा वातेन वायुना महागिरिर्मेरुर्न चलेत् । परीषहोपसर्गजयश्चाभ्यासवशाद्विधेयः । यथा कश्चिद्गोपस्तदहर्जातं तर्णकमुत्पाट्य गवांतिकं नयति आनयति च ततोसौ क्रमेण प्रत्यहं वर्धमानमपि वत्समुत्पाटयन्नभ्यासवशाद्विवर्षंत्रिवर्षमपि तमुत्पाटयति । एवं साधुरप्यभ्यासात्परीषहोपसर्गजयं विधत्ते ॥३७॥ ससंवृतः साधुर्महाप्रज्ञः सम्यग्दर्शनज्ञानवान् धीरः परीषहादिनिरक्षोभ्यः परेण दत्ते आहारादिके एषणां चरेत् त्रिविधयैषणया युक्तः संयमे चरेत् तथा निर्वृतः शीतीनूतकालं मृत्युकालं यावदनिकांक्षेत् । एतन्मया यत्पूर्वोक्तं तत्केवलिनः सर्वज्ञस्य मतमिति । ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाहेति ॥३८॥ इत्येकादशं मार्गाध्ययनं समाप्तं ॥

---

॥ टीका—प्रतिपन्नजावमार्गेण च यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह । (अहसुमित्यादि) अथ मार्गप्रतिपत्त्यनतरं साधुं प्रतिपन्नव्रतं संतं स्पर्शाः परीषहोपसर्गरूपाउच्चावचागुरुलघवोनानारूपावा स्पृशेयुः । सच साधुस्तैरनिडुतः संसारस्वनावमपेक्षमाणः कर्मनिर्जरांच न तैरनुकूलप्रतिकूलैर्विहन्यात् नैवं संयमानुष्ठानान्मनागपि विचलेत्किमिव महावातेनेव महागिरिर्मेरुरिति। परीषहोपसर्गजयश्चाभ्यासक्रमेण विधेयोऽभ्यासवतोहि डुष्करमपि सुकरं नवति । अत्र दृष्टांतः। तद्यथा कश्चिद्गोपस्तदहर्जातं तर्णकमुत्क्षिप्य गवांतिके नयत्यानयति वा ततोसावनेनैव क्रमेण प्रत्यहं प्रवर्द्धमानमपि वत्समुत्क्षिपन्नभ्यासवशाद्विहायनं त्रिहायणमप्युत्क्षिपत्येवं साधुरप्यभ्यासात् शनैःशनैः परिषहोपसर्गजयं विधत्तइति ॥३७॥ सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिहीर्षुरुक्तशेपमधिकृत्याह । ( संवुडेइत्यादि ) सएवं साधुः संवृताश्रवद्वारतया संवरसंवृत्तोमहती प्रज्ञा यस्यासौ महाप्रज्ञः सम्यग्दर्शनज्ञानवांस्तया धीर्बुद्धिस्तया राजतइति धीरः परीषहोपसर्गाऽक्षोभ्योवा सएवंनूतः सन् परेण दत्ते सत्याहारादिके एषणां चरेत्त्रिविधयाप्येषणया युक्तः सन् संयममनुपालयेत्तथा निवृतः कषायोपशमाच्छीतीनूतकालं मृत्युकालं यावदनिकांक्षेत् । एतन्मया प्राक् प्रतिपादितं तत्केवलिनः सर्वज्ञस्य तीर्थंक

तोमतं । एतच्च जंबूस्वामिनमुद्दिश्य सुधर्मस्वाम्याह । तदेतद्यत्त्वया मार्गस्वरूपं प्रश्नितं त न्मया न स्वमनीषिकया कथितं तर्हि केवलिनोमतमेतदित्येवं नवता ग्राह्यं । इतिः परिसमा प्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३८ ॥ इति मार्गाख्यमेकादशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ हवे समवसरण नामे बारमुं अध्ययन प्रारंनिए बैए अगीयारमां अध्ययनने विषे मो क्ष मार्ग कह्यो ते मोक्षने तो जे कुमार्ग मूकीने सुमार्गने पडिवजे ते अंगीकार करे माटे मार्ग प्रतिपत्ति चारित्रियें कुमार्गने परिहरवो ए अधिकारे बारमो अध्ययन प्रारंनियेंबैए.

चत्तारि समोसरणाणिमाणि, पावाडया जाइं पुढोवयंति ॥ कि
रियं अकिरियं विणियंति तइयं, अन्नाण माहंसु चउत्थमेव ॥१॥
अणाणिया ता कुसलावि संता, असंथुयाणो वितिगिछतिन्ना ॥
अकोविया आहु आकोवियेहिं, अणाणुवीइत्तु मुसं वयंति ॥२॥

अर्थ–( चत्तारिसमोसरणाणिमाणि के० ) ए आगल कहेशे ते चार प्रकारना समोसरण एटले परतीर्थिकनो समुदाय जाणवो ते ( पावाडयाजाइंपुढोवदंति के० ) प्रावाडुक एटले कुवादि ते जुडं जुडं बोलेबे ते केवीरीते तोके एकवादि ( किरियं के० ) क्रियानेज सफल कहेबे. तथा बीजो वादि ( अकिरियं के० ) अक्रियानेज सफल कहे बे अने ( विणियंतितइयं के० ) त्रीजोवादि विनयज प्रधानबे एम बोलेबे ( अन्नाणमा हंसुचउत्थमेव के० ) अन्यवली चोथो अज्ञानवादि ते अज्ञाननेज प्रधान पणे मानेबे ॥ १ ॥ हवे एपूर्वोक्त चारे वादिउमाना सर्व प्रकारे असंबंध प्रलापि अज्ञातिक एवा जे अज्ञानवादि तेनेज पहेला कहेबे. ( असाणियाताकुसलाविसंता के० ) ते अज्ञानवा दि अज्ञानी बता एम कहेबेजे अमेज पंमित बैयें एम मानेबे परंतु ते ( असंथुया के० ) असंबंधनापी जाणवा ते ( णोवितिगिछतिन्ना के० ) चित्तनीजे ब्रांति तेथकी तस्या नथी माटे मृषावादि जाणवा ते अज्ञानवादि ( अकोविया आहुअकोवियेहिं के० ) सम्यक् धर्म प्ररुपवाने अनिपुण एटले साक्षात् सत्यधर्मनुं ज्ञान जाणवाने असमर्थबे माटे ए अकोविद बे तो एना समीपे सांनले एवा जे एमना शिष्य तेपण अकोविद एटले मूर्ख जाणवा जेमाटे ते एवुं असंबंध वचन बोलेबे के अज्ञान एज श्रेयबे तो एवुं ते मनुं बोलवुं जेबे तेने मूर्खज मान्य करेबे ॥ सरिसासरिसेहिंरच्चंति इतिवचनात् एम ते ( अणाणुवीइत्तुमुसंवयंति के० ) अनालोची थका सर्वकाल मृषाज बोलेबे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–सांप्रतं द्वादशमारन्यते । पूर्वं मार्गउक्तः सच कुमार्गपरित्यागात्सम्यग्न वतीति इह कुमार्गत्यागउच्यते । यथा ( चत्तारित्ति ) चत्वारि समवसरणानि परतीर्थि

कान्युपगमसमूहरूपाणि इमानि यानि प्रावादुकाः परतीर्थिकाः पृथक् पृथक् वदंति। क्रियामस्तीत्यादिकां वदंतीति क्रियावादिनः १ अक्रियां नास्तीत्यादिकां वदंतीत्यक्रियावादिनः २ तृतीयावैनयिकाः ३ चतुर्थास्त्वज्ञानिकाः ४ इमानि चत्वारि समवसरणान्युच्यंते ॥ १॥ अथैतेषामज्ञानिकाएव सर्वापलापिनस्तानेवादावाह। (असुणीति) अज्ञानिकास्तावदादौ प्रदर्श्यंते। अज्ञानिकाः किल वयं कुशलाइति वादिनोपि संस्तुताश्च संबुध्वाः अतएव विचिकित्सा चित्तशुद्धिश्चित्तभ्रांतिस्तां न तीर्णानातिक्रांताः। तथाहि। केचित्सर्वज्ञं मन्यंते केचित्तं निषेधंति एके सर्वगतमात्मानं वदंत्यन्ये देहमात्रमपरे अंगुष्ठपर्वमात्रं। केचित् श्यामाकतंडुलमात्रमन्ये मूर्तममूर्तं हृदयमध्यवर्तिनं ललाटस्थितमित्यादि। एषामेकवाक्यता कथं स्यात्। नचातिशयज्ञानी कश्चिदस्ति य द्वाक्यं प्रमाणीक्रियते। तथा ज्ञानवतां प्रमादोबहुदोषः। ततोवरमज्ञानमेवेति वदंतश्चित्तभ्रांतिं नातिक्रांताअकोविदाः सम्यक्परिज्ञानविकलाअकोविदेन्यः स्वशिष्येन्यआहुः। तथा तेऽननुविचिंत्य अविचिंत्य नाषणान्मृषाऽसत्यं वदंति ॥ २ ॥

---

॥ टीका–उक्तमेकादशमध्ययनं। सांप्रतं द्वादशमारभ्यते। अस्य चायमनिसंबंधः। इहानंतराध्ययने मार्गोनिहितः सच कुमार्गव्युदासेन सम्यग्मार्गतां प्रतिपाद्यतेऽतः कुमार्गव्युदासं चिकीर्षुणा तत्स्वरूपमवगंतव्यमित्यतस्तत्स्वरूपनिरूपणार्थमिदमध्ययनमायातमस्य चोपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि। तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोऽयं। तद्यथा। कुमार्गानिधायिनां क्रियाक्रियाज्ञानिवैनयिकानां चत्वारि समवसरणानीह प्रतिपाद्यंते। नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे समवसरणमित्येतन्नामनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह। समवसरणंमिचनक्कं सचित्ताचित्तमीसगं दव्वे ॥ खेत्तंमि जंमि खेत्ते,काले जं जंमि कालंमि ॥ १७ ॥ (समवसरणमित्यादि) समवसरणमिति सृगतावित्येतस्य धातोः समवोपसर्गपूर्वस्य ल्युडंतस्य रूपं। सम्यगेकीनावेनावसरणमेकत्रगमनं मेलापकः समवसरणं तस्मिन्नपि केवलं समाधौ षड्विधोनामादिकोनिक्षेपस्तत्रापि नामस्थापने क्षुसे द्रव्यविषयं पुनः समवसरणं नोआगमतोज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तं सचित्ताचित्तमिश्रनेदात्रिविधं। सचित्तमपि द्विपदचतुष्पदापदनेदात्रिविधमेव। तत्र द्विपदानां साधुप्रभृतीनां तीर्थकृज्जन्मनिष्क्रमणप्रदेशादौ मेलापकः। चतुष्पदादीनां गवादीनां निपानप्रदेशादौ। अपदानां तु वृक्षादीनां स्वतोनास्ति समवसरणं विवक्षया तु काननादौ नवत्यपि। अचित्तानां तु द्व्यणुकायत्रादीनां तथा मिश्राणां सेनादीनां समवसरणसन्नावोऽवगंतव्यइति। क्षेत्रसमवसरणं तु परमार्थतोनास्ति विवक्षया तु यत्र द्विपदादयः समवसरंति व्याख्यायते च समवसरणं त्र तत्क्षेत्रप्राधान्यादिदमुच्यते। एवं कालसमवसरणमपि द्रष्टव्यमिति। इदानीं नाव

समवसरणमधिरुत्याह । " नावसमोसरणं पुण, णायवं छविहंमि नावंमि ॥ अहवा वि किरिय अकिरिया, अन्नाणी नेव वेणइया ॥ १९ ॥ ( नावसमवसरणमित्यादि ) नावा नामौदयिकादीनां समवसरणमेकत्र मेलकोनावसमवसरणं । तत्रौदयिकोनावएकविंशति नेदः । तद्यथा । गतिश्चतुर्धा । कपायाश्चतुर्विधाः । एवं लिंगं त्रिविधं । मिथ्यात्वाज्ञानाऽसंयतत्वाऽसिद्धत्वानि प्रत्येकमेकैकविधानि। लेश्याः कृष्णादिनेदेन पड्विधानवंति । औपशमिकोद्विविधः । सम्यक्त्वचारित्रोपशमनेदात् । क्षायोपशमिकोप्यष्टादशनेदनिन्नः । तद्यथा । ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनःपर्यायनेदाच्चतुर्धा । अज्ञानं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविनंगनेदात्रिविधं । दर्शनं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शननेदात्रिविधमेव । लब्धिर्दानलाननोगोपनोगवीर्यनेदात्पंचधा । सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाः प्रत्येकमेकप्रकाराइति । क्षायिकोनवप्रकारः।तद्यथा। केवलज्ञानं केवलदर्शनं दानादिलब्धयः पंच सम्यक्त्वं चारित्रं चेति। जीवत्वनव्यत्वानव्यत्व नेदात्पारिणामिकस्त्रिविधः।सान्निपातिकस्तु द्वित्रिचतुःपंचकसंयोगैर्नवति । तत्र द्विकसंयोगः संसिद्धस्य क्षायिकपारिणामिकनावद्वयसद्भावादवगंतव्यः । त्रिकसंयोगस्तु मिथ्यादृष्टिसम्यग्दृष्ट्यविरतानामौदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनावसद्भावादवगंतव्यः । तथा नवस्थकेवलिनोप्यौदयिकक्षायिकपारिणामिकसद्भावाद्विज्ञेयइति । चतुष्कसंयोगोपि क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामौदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनावसद्भावात्तथोपशमिकसम्यग्दृष्टीनामौदयिकोपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसद्भावाच्चेति । पंचकसंयोगस्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामुपशमश्रेण्यां समस्तोपशांतचारित्रमोहानां नावपंचकसद्भावाद्विज्ञेयइति । तदेवं नावानां द्विकत्रिकचतुष्कपंचकसंयोगात्संनविनः सान्निपातिकनेदाः पड्नवंत्येतएव त्रिकसंयोगचतुष्कसंयोगगतिनेदात्पंचदशधा प्रदेशांतरेऽनिहिताइति । पड्विधे नावे नावसमवसरणं निर्युक्तिकृदेव दर्शयति । क्रियां जीवादिपदार्थोस्तीत्यादिकां वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनः । एतद्विपर्यस्ताअक्रियावादिनस्तथा ज्ञानिनोज्ञाननिन्हववादिनस्तथा वैनयिकाविनयेन चरंति तत्प्रयोजनावा वैनयिकाः । एषां चतुर्णामपि सप्तनेदानामाक्षेपं कृत्वा यत्र विक्षेपः क्रियते तद्भावसमवसरणमित्येतच्च स्वयमेव निर्युक्तिकारोंऽत्यगाथया कथयिष्यति । सांप्रतमेतेषामेवानिधानान्वर्थतादर्शनद्वारेण स्वरूपमाविष्कुर्वन्नाह । "अत्थित्ति किरियवादी, वयंति णत्थियकिरियवादीया ॥ अन्नाणी अन्नाणं, विणइत्ता वेणइयवादी" ॥ २० ॥ ( अत्थित्तीत्यादि ) जीवादिसद्भावपदार्थोस्त्येवेत्येवं सावधारणक्रियाभ्युपगमोयेषां ते अस्तीति क्रियावादिनस्ते चैवंवादित्वान्मिथ्यादृष्टयः । तथाहि । यदि जीवोस्त्येवेत्येवमभ्युपगम्यते ततः सावधारणत्वान्न कथंचिन्नास्तीत्यतः स्वरूपसत्तावत्पररूपापत्तिरिति स्यादेवंच नानेकं जगत् स्यान्नचैतद्दृष्टमिष्टं वा । तथा नास्त्येव जीवादिकः पदार्थइत्येवं वादिनोऽक्रियावादिनस्ते

प्यसद्भूतार्थप्रतिपादनान्मिथ्यादृष्टयएव । तथा ह्येकांतेन जीवास्तित्वप्रतिषेधे कर्तुरजावा न्नास्तीत्येतस्यापि प्रतिषेधस्याजावस्तदजावाच्च सर्वास्तित्वमनिवारितमिति ॥ तथा न ज्ञा नमज्ञानं तद्विद्यते येषां ते ज्ञानिनस्ते ह्यज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वदंत्येतेपि मिथ्यादृष्टयएव। तथा ह्यज्ञानमेव श्रेयइत्येतदपि न ज्ञानमृतेजणितुं पार्यते तदजिधानाच्चावश्यं ज्ञानम ज्युपगतं तैरिति । तथा वैनयिकाविनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावाप्तिमजिलषंतोमिथ्याद ष्टयोयतोन ज्ञानक्रियाज्यामंतरेण मोक्षावाप्तिरिति । एषां च क्रियावाद्यादीनां स्वरूपं त न्निराकरणं चाचारटीकायां विस्तरेण प्रतिपादितमिति नेह प्रतन्यते । सांप्रतमेतेषां जेद संख्यानिरूपणार्थमाह । " असियसयं किरियाणं, अकिरियाणं च होइ चुलसीति ॥ अजा णियसत्तठी, वेणइयाणं च बत्तीसा." ॥ २१ ॥ ( असियेत्यादि ) क्रियावादिनामशीत्यधि कं शतं जवति तच्चानया प्रक्रियया । तद्यथा । जीवादयोनव पदार्थाः परिपाट्या स्थाप्यं ते । तदधः स्वतः परतइति जेदद्वयं ततोप्यधोनित्यानित्यजेदद्वयं ततोप्यधस्तात्परिपाट्या कालस्वजावनियतीश्वरात्मपदानि पंच व्यवस्थाप्यंते । ततश्चैवं चारणिकाप्रक्रमः । तद्य था । अस्ति जीवः स्वतोनित्यः कालतः । तथाऽस्ति जीवः स्वतोऽनित्यः कालतएव । ए वं परतोपि जंगद्वयं । सर्वेपि च चत्वारः कालेन लब्धाः । स्वजावनियतीश्वरात्मपदान्य पि प्रत्येकं चत्वारएव लजंते । ततश्च पंचापि चतुष्ककाविंशतिर्जवंति । सापि जीवपदा र्थेन लब्धा । एवमजीवादयोप्यष्टौ प्रत्येकं विंशतिं लजंते । ततश्च नवविंशतयोमीलि ताः क्रियावादिनामशीत्युत्तरशतं जवतीति । इदानीमक्रियावादिनां नसंत्येव जीवादयः पदार्थाइत्येवमज्युपगमवतामनेनोपायेन चतुरशीतिरवगंतव्या । तद्यथा । जीवादीन् प दार्थान् सप्तालिख्य तदधः स्वपरजेदद्वयं व्यवस्थाप्यं । ततोप्यधः कालयदृच्छानियति स्वजावेश्वरात्मपदानि षड्व्यवस्थाप्यानि । जंगकानयनोपायस्त्वयं । नास्ति जीवः स्वतः कालतः । तथा नास्ति जीवः परतः कालतः । एवं यदृच्छानियतिस्वजावेश्वरात्मजिः प्र त्येकं द्वौद्वौ जंगकौ लज्येते । सर्वेपि द्वादश । तेऽपि च जीवादिपदार्थसप्तकेन गुणिता श्चतुरशीतिरिति । तथाचोक्तं । कालयदृच्छानियतिस्वजावेश्वरात्मतश्चतुरशीतिः । नास्तिक वादिगणमते न संति जावाः स्वपरसंस्थाः । सांप्रतमज्ञानिकानामज्ञानादेव विवक्षितका र्यसिद्धिमिच्छतां ज्ञानं तु सदपि निष्फलं बहुदोषत्वाच्चेत्येवमज्युपगमवतां सप्तषष्टिरनेनो पायेनावगंतव्या । जीवाजीवादीन् नव पदार्थान् परिपाट्या व्यवस्थाप्य तदधोऽमी सप्त जंगकाः संस्थाप्याः । सत् असत् सदसत् अवक्तव्यं सदवक्तव्यं असदवक्तव्यं सद सदवक्तव्यमिति । अजिलापस्त्वयं । सन् जीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन १ असन् जीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन, २ सदसन् जीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन ३ अव क्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन ४ सदवक्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेत ५ अ

सदवक्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवातेन ज्ञातेन ६ सदसदवक्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवातेन ज्ञातेन ७ एवमजीवादिष्वपि सप्त भंगकाः । सर्वेपि मिलितास्त्रिपष्टिस्तथाऽपरे ऽमी च त्वारोभंगकाः । तद्यथा । सती भावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया १ असती भावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया २ सदसती भावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया ३ अवक्तव्या भावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया ४ सर्वेपि सप्तषष्टिरिस्युत्तरं भंगकत्रयमुत्पन्नभावावयवोपेक्ष्मिह भावोत्पत्तौ न संभवतीति नोपन्यस्तं । उक्तंच । अज्ञानिकवादिमतं नव जीवादीन् सदादिसप्तविधान् ॥ भावोत्पत्तिः सदसद्वेधा वाच्या च कोवेत्ति ॥ १ ॥ इदानीं वैनयिकानां विनयादेव केवलात्परलोकमपीछतां द्वात्रिंशदनेन प्रक्रमेण योज्याः । तद्यथा । सुरनृपतियतिज्ञानिस्थविराधममातृपितृषु मनसा वाचा कायेन दानेन चतुर्विधोविनयोविधेयः । सर्वेप्यष्टौ चतुष्ककामिलिता द्वात्रिंशदिति । उक्तं च वैनयिकमतं विनयश्चेतोवाक्कायदानतः कार्यः । सुरनृपतियतिज्ञानिस्थविराधम मातृपितृषु सदा ॥ १ ॥ सर्वे प्येते क्रियाज्ञानिवैनयिकवादिभेदाएकीकृतास्त्रीणि त्रिप ष्ठ्यधिकानि प्रावादुकमतशतानि भवंति । तदेवंवादिनां मतभेदसंख्यां प्रदर्श्याऽधुना ते षामध्ययनोपयोगित्वं दर्शयितुमाह । “ तेसिं मताणुमएणं पन्नवणावन्निया इहऽसगऐ॥ सप्भावणिन्नयठं, समोसरणमाहु तेणं तु ” ॥ २२ ॥ ( तेसिंमताणुमएणंइत्यादि ) तेषां पूर्वोक्तवादिनां मतमभिप्रायस्तेन यदनुमतं पक्षीकृतं तेन पक्षीकृतेन पक्षीकृताश्रयणेन प्रज्ञापना प्ररूपणा वर्णिता प्रतिपादिता इहास्मिन्नध्ययने गणधरैः । किमर्थमिति दर्शयति । तेषां यः सद्भावः परमार्थस्तस्य निश्चयोनिर्णयस्तदर्थं तेनैव कारणेनेदमध्ययनं समवसरणाख्यमाहुर्गणधराः । तथाहि । वादिनां सम्यगवसरणं मेलापकस्तन्मतनिश्चयार्थ मस्मिन्नध्ययने क्रियतइत्यतः समवसरणाख्यमिदमध्ययनं क्रियते । इदानीं तेषां सम्यग् मिथ्यात्ववादित्वं विभागेन यथा भवति तथा दर्शयितुमाह । “ सम्मदिठी किरिया, वादीमिछाय सेसगा वाई ॥ जहि ऊणमिछवाय, सेवहवायं इमं सवं ॥ २३ ॥ ( सम्मदिठीत्यादि ) सम्यगविपरीता दृष्टिर्दर्शनं पदार्थपरिछित्तिर्यस्यासौ सम्यग्दृष्टिः । कोसावित्याह । क्रियामस्तीत्येवंभूतां वदितुं शीलमस्येति क्रियावादी । अत्रच क्रियावादीत्येतदस्ति तिकिरियवादीत्यनेन प्राक् प्रसाधितं सदभूयसम्यग्दृष्टित्वं विधीयते तस्याऽसिद्धत्वादिति। तथाहि । अस्ति लोकालोकविभागः । अस्त्यात्मा अस्ति पुण्यपापविभागः । अस्ति तत्फलं स्वर्गनरकावाप्तिलक्षणं । अस्ति कालः कारणत्वेनाशेषस्य जगतः प्रभववृद्धिस्थितिविनाशेषु साध्येषु तथा शीतोष्णवर्षावनस्पतिपुष्पफलादिषु चेति । तथाचोक्तं । कालः पचति भूतानीत्यादि । तथास्तिस्वभावोपि करणत्वेनाशेषस्य जगतः स्वोभावः स्वभाव इति कृत्वा तेनहि जीवाजीवभव्यत्वमूर्तत्वानां स्वरूपानुविधानात् । तथा धर्माऽधर्माका

शकालादीनां च गतिस्थित्यवगाहपरत्वापरत्वादिस्वरूपापादनादिति । तथा चोक्तं । कः कंटकानामित्यादि । तथा नियतिरपि कारणत्वेनाश्रीयते । तथातथा पदार्थानां नियते रेव नियतित्वात् । तथाचोक्तं । प्राप्तव्योनियतिबलाश्रयेणेत्यादि । तथा पुरा कृतं यच्च शुनाशुनमिष्टानिष्टफलकारणं । तथा चोक्तं । यथायथा पूर्वकृतस्य कर्मणः फलं निधान स्थमिहोपतिष्ठते ॥ तथातथा पूर्वकृतानुसारिणी प्रदीपहस्तेव मतिः प्रवर्तते ॥ १ ॥ तथा । स्वकर्मणा युक्तएव सर्वोह्युत्पद्यते जनः ॥ सयथाऽकृष्यते तेन न यथा स्वयमि च्छतीत्यादि । तथा पुरुषकारोपि कारणं यस्मान्नपुरुषकारमंतरेण किंचित्सिध्यति । तथा चोक्तं । न दैवमिति संचिंत्य त्यजेडुद्यममात्मनः ॥ अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेन्यः प्राप्तुमर्हति ॥ १ ॥ तथा । उद्यमाच्चारुचित्रांगि नरोनद्राणि पश्यति ॥ उद्यमात्कृमिकीटोपि निनत्ति महतोड्रुमान् ॥ २ ॥ तदेवं सर्वानपि कालादीन् कारणत्वेनाच्युपगच्छन् तथात्मपुण्यपापपरलोकादिकं चेच्छन् क्रियावादी सम्यग्दृष्टि त्वेनान्युपगंतव्यः । शेषकास्तु वादाअक्रियावादाज्ञानवादवैनयिकवादामिथ्यावादाइ त्येवं द्रष्टव्याः । तथाहि । अक्रियावाद्यत्यंतनास्तिकोऽध्यक्षसिद्धं जीवाजीवादिपदा र्थजातमपन्हुवन् मिथ्यादृष्टिरेव नवति । अज्ञानवादी तु सति मत्यादिके हेयोपादे यप्रदर्शके ज्ञानपंचके ऽज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वदन् कथं नोन्मत्तः स्यात्तथा विनयवाद्य पि विनयादेव केवलात् क्रियासाध्यां सिद्धिमिच्छन्नपकर्णयितव्यः । तदेवं विपरीतार्था निधायकाएते मिथ्यादृष्टयो ऽवगंतव्याः । ननुच क्रियावाद्यप्यशीत्युत्तरशतनेदोनवति तत्रतत्र प्रदेशे कालादीनन्युपगच्छन्नैव मिथ्यावादित्वेनोपन्यस्तस्तत्कथमिह सम्यग्दृष्टित्वे नोच्यतइति । उच्यते । सतत्रास्त्येव जीवइत्येवं सावधारणतयाऽन्युपगमं कुर्वन् का लएवैकः सर्वस्यास्य जगतः कारणं तथा स्वनावएव नियतिरेव पूर्वकृतमेव पुरुषकारएवे त्येवमपरनिरपेक्षतयैकांतेन कालादीनां कारणत्वेनाश्रयणान्मिथ्यात्वं । तथाहि । अ स्त्येव जीवइत्येवमस्तिना सह जीवस्य सामानाधिकरण्यात् । यद्यदस्ति तत्तज्जीवइति प्रा प्तमतोनिरवधारणपक्षसमाश्रयणादिह सम्यक्त्वमनिहितं । तथा कालादीनामपि स मुदितानां परस्परसव्यपेक्षाणां कारणत्वेनेहाश्रयणात्सम्यक्त्वमिति । ननुच कथं कालादीनां प्रत्येकं निरपेक्षाणां मिथ्यात्वस्वनावत्वे सति समुदितानां सम्यक्त्वसद्भावः । नहि यत्प्रत्येकं नास्ति तत्समुदायेपि नवितुमर्हति सिकतातैलवत् । नैतदस्ति प्रत्येकं प्रत्येकं पद्मरागादिमणिष्वविद्यमानापि रत्नावली समुदाये नवंती दृष्टा । नच दृष्टे ऽनुपपन्नं नामेति यत्किंचिदेतत् । तथाचोक्तं । कालो सहावणियई, पुव्वकयं पुरिसकारणे गंता ॥ मिच्छत्तं ते चेव उ, समासउ होंति संमत्तं ॥ १ ॥ सवे विय कालाइ इय समुदा येण साहगा नणिया ॥ जुज्जत्तियएमेवय, सम्मं सव्वस्स कज्जस्स ॥ २ ॥ नहि काला

दी हिंतो, केवलएहिं तु जायए किंचि ॥ ६ह मुग्गरंधणादिवि, ता सवे समुदिता हेक ॥ ३ ॥ जह णेगलरकणगुणा, वेरुलियादीमणीविसंजुत्ता ॥ रयणावलीवएसं, ण लहं ति महघमुल्लावि ॥ ४ ॥ तह णिययवादसुविणि, छियावि अणाणपरकनिरवेरका ॥ स म्मदं सणसदं, सवेवि णयाणपाविंति ॥ ५ ॥ जह पुण तेचेव मणी, जहा गुणविसे सनागपडिबद्धा ॥ रयणावलित्तिनणइ, चयंतिपाडिक्कसम्नाउं ॥ ६ ॥ तह सवे णयवा या, जहाणुरूवविणिउत्तवत्तवा ॥ सम्मदं सणसदं, लनंति ण विसेससम्नाउं ॥ ७ ॥ तम्हा मिच्छदिठी, सवे विणया सपरकपडिबद्धा ॥ अणोणनिस्सिया पुण, हवंति सम्म त्तसप्नावा ॥ ८ ॥ यतएवं तस्मात्यक्त्वा मिथ्यात्ववादं कालादिप्रत्येकैकांतकारणरूपं से वध्वमंगीकुरुध्वं सम्यग्वादं परस्परसव्यपेक्षकालादिकारणरूपमिममिति मयोक्तं प्रत्यक्षाव सन्नं सत्यमवितथमिति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः। सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणो पेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं तच्चेदं । (चत्तारीत्यादि) अस्य च प्राक्तनाध्ययनेन सहायं संबं धः । तद्यथा । साधुना प्रतिपन्नजावमार्गेण कुमार्गाश्रिताः परवादिनः सम्यक्परिज्ञाय प रिहर्तव्यास्तत्स्वरूपाविष्करणं चानेनाध्ययनेनोपदिश्यते इत्यनंतरसूत्रस्यानेन सूत्रेण सह संबंधोयं । तद्यथा । संवृतोमहाप्रज्ञोवीरोदत्तैषणां चरन्निनिर्वृतः सन् मृत्युकालमनिकां क्षेदेतत्केवलिनोजापितं। तथा परतीर्थिकपरिहारं च कुर्यात् एतच्च केवलिनो मतं । अ तस्तत्परिहारार्थं तत्स्वरूपनिरूपणमनेन क्रियते। चत्तारीति संख्यापदमपरसंख्यानिवृत्त्य र्थं समवसरणानि परतीर्थिकाच्युपगमसमूहरूपाणि यानि प्रावाडुकाः पृथग्वदंति तानि चामूनि अन्वर्थाभिधायिनिः संज्ञापदैर्निर्दिश्यंते । तद्यथा । क्रियामस्तीत्यादिकां वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनस्तथाऽक्रियां नास्तीत्यादिकां वदितुं शीलं येषां तेऽक्रिया वादिनस्तथा तृतीयावैनयिकाश्चतुर्थास्त्वज्ञानिकाइति ॥ १ ॥ तदेवं क्रियाऽक्रियावैनयि काज्ञानवादिनः सामान्येन प्रदर्श्याधुना तद्दूषणार्थं तन्मतोपन्यासं पश्चानुपूर्व्याप्यस्ती त्यतः पश्चानुपूर्व्याकर्तुमाह। यदि चैतेषामज्ञानिकाएव सर्वापलापितयाऽत्यंतमसंबद्धाश्च तस्तानेवादावाह । (अणाणियाइत्यादि) अज्ञानं विद्यते येषामज्ञानेन वा चरंतीत्य ज्ञानिकाः । अज्ञानिकावा तावत्प्रदर्श्यंते । ते चाज्ञानिकाः किल वयं कुशलाइत्येवं वादि नोपि संतोऽसंस्तुताज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वादितया असंबद्धाः । असंस्तुतत्वादेव विचिकि त्सा चित्तविप्लुतिश्चित्तभ्रांतिः संशीतिस्तां न तीर्णानातिक्रांताः । तथाहि । ते ऋचुर्यएते ज्ञानिनस्ते परस्परविरुद्धवादितया असंबद्धाअसंस्तुतत्वादेव विचिकित्सान यथार्थवा दिनोजवंति । तथा ह्येके सर्वगतमात्मानं वदंति तथान्ये असर्वगतं अपरे अंगुष्ठपर्वमा त्रं केचन श्यामाकतंडुलमात्रमन्ये मूर्तममूर्तं हृदयमध्यवर्तिनं ललाटव्यवस्थितमित्या द्यात्मपदार्थएव सर्वपदार्थपुरःसरे तेषां नैकवाक्यता । नचातिशयज्ञानी कश्चिदस्तीति य

द्वाक्यं प्रमाणीक्रियेत । न चासौ विद्यमानोऽप्युपलक्ष्यते ऽर्वाग्दर्शिना । नासर्वज्ञः सर्वं जानातीति वचनात् । तथाचोक्तं । सर्वज्ञोसाविति ह्येतत्तत्कालेऽपि बुभुत्सुभिः ॥ तज्ज्ञान ज्ञेयविज्ञानशून्यैर्विज्ञायते कथं॥१॥ नच तस्य सम्यक् तदुपायपरिज्ञानाभावात्संभवः संभवा भावश्चेतरेतराश्रयत्वात् ।तथाहि। न विशिष्टपरिज्ञानमृते तदवाप्त्युपायपरिज्ञानमुपायमंतरे ण नचोपेयस्य विशिष्टपरिज्ञानस्यावाप्तिरिति। नच ज्ञानं ज्ञेयस्य स्वरूपं परिच्छेत्तुमलं । त थाहि। यत्किमप्युपलभ्यते तस्यार्वाग्मध्यपरभागैर्भाव्यं । तत्रार्वाग्भावस्यवोपलब्धेर्नेतर योस्तेनैव व्यवहितत्वात् । अर्वाग्भागस्यापि भागत्रयकल्पनात्तत्सर्वारातीय भागपरिकल्प नया परमाणुपर्यवसानता परमाणोश्च स्वाभाविकविप्रकृष्टत्वादर्वाग्दर्शिनिनां नोपलब्धि रिति । तदेवं सर्वज्ञस्याभावादसर्वज्ञस्य च यथावस्थितवस्तुस्वरूपापरिच्छेदात्सर्ववादि नां च परस्परविरोधेन पदार्थस्वरूपाभ्युपगमात् यथोत्तरपरिज्ञानिनां प्रमादवतां बहुतर दोषसंभवादज्ञानमेव श्रेयः । तथाहि । यद्यज्ञानवान् कथंचित्पादेन शिरसि हन्यात् तथापि चित्तशुद्धेर्न तथाविधदोषानुषंगी स्यादित्येवमज्ञानिनएवंवादिनः संतोऽसं बद्धानेवं विधां चित्तविशुद्धिं वितीर्णाइति । तत्रैवं वादिनस्ते अज्ञानिकाश्चकोविदा अनिपुणाः सम्यक् परिज्ञानविकलाइत्यवगंतव्याः । तथाहि । यत्तैरभिहितं ज्ञानवादि नः परस्परविरुद्धार्थवादितया न यथार्थवादिनइति तन्नवत्वसर्वज्ञप्रणीतागमाभ्युपगम वादिनामयथार्थवादित्वं ।नचाभ्युपगमवादाएव बाधायै प्रकल्प्यंते । सर्वज्ञप्रणीतागमाभ्यु पगमवादिनां तु न क्वचित्परस्परतोविरोधः सर्वज्ञत्वान्यथानुपपत्तेरिति । तथाहि । प्रक्षी णाऽशेषावरणतया रागद्वेषमोहानामनृतकारणानामभावान्न तद्वाक्यमयथार्थमित्येवं तत्प्रणीतागमवतां न विरोधवादित्वमिति । ननुच स्यादेतद्यदि सर्वज्ञः कश्चित्स्यान्नचासौ संभवतीत्युक्तं प्राक् ।सत्यमुक्तमयुक्तं तूक्तं ।तथाहि । यत्तावदुक्तं नचासौ विद्यमानोऽप्युपल क्ष्यते ऽर्वाग्दर्शिभिस्तदयुक्तं।यतोयद्यपि परचेतोवृत्तीनां दुरन्वयत्वात्सरागावीतरागाऽव चेष्टं ते वीतरागाः सरागाइवेत्यतः प्रत्यक्षेणानुपलब्धिस्तथापि संभवानुमानस्य सद्भावात्बाध कप्रमाणाभावाच्च तदस्तित्वमनिवार्यं । संभवानुमानं त्विदं व्याकरणादिना शास्त्राभ्यासेन संक्रियमाणायाः प्रज्ञायाज्ञानातिशयोज्ञेयावगमं प्रत्युपलब्धस्तदत्र कश्चित्तथाभूताभ्या सवशात्सर्वज्ञोपि स्यादिति । नच तदभावसाधकं प्रमाणमस्ति । तथाहि । न तावदर्वा ग्दर्शिभिः प्रत्यक्षेण सर्वज्ञाभावः साधयितुं शक्यस्तस्यहि तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञानशून्यत्वादशू न्यत्वाभ्युपगमेच सर्वज्ञत्वापत्तिरिति । नाप्यनुमानेन तदव्यभिचारिलिंगाभावादिति । ना प्यनुमानेन सर्वज्ञाभावः साध्यते। तस्य सादृश्यबलेन प्रवृत्तेः । नच सर्वज्ञाभावे साध्ये तादृग्विधं सादृश्यमस्ति येनार्गा सिध्यतीति । नाप्यर्थनिष्पत्त्या तस्याः प्रत्यक्षादिप्रमा णपूर्वकत्वेन प्रवृत्तेः । प्रत्यक्षादीनां च तत्साधकत्वेनाप्रवर्तमानात्तस्याप्यप्रवृत्तिः । ना

ष्यागमेन तस्य सर्वज्ञसाधकत्वेनापि दर्शनान्नप्रमाणपंचकानावरूपेणानावेन सर्वज्ञानावः सिध्यति । तथाहि । सर्वत्र सर्वदा न संनवति तद्ग्राहकप्रमाणमित्येतदर्वाग्दर्शिनोव कुं न युज्यते तेन हि देशकालविप्रकृष्टानां पुरुषाणां यद्विज्ञानं तस्य ग्रहीतुमशक्यत्वा त्तद्ग्रहणे वा तस्यैव सर्वज्ञत्वापत्तेः । नचावार्ग्दर्शिनां ज्ञानं निवर्तमानं सर्वज्ञानावं नाव यति तस्याऽव्यापकत्वात् । नचाव्यापकव्यावृत्त्या पदार्थव्यावृत्तिर्युक्तेति । नच वस्त्वंतर विज्ञानरूपोनावः सर्वज्ञानावसाधनायालं । वस्त्वंतरसर्वज्ञयोरेकज्ञानसंसर्गप्रतिबंधानावा त् । तदेवं सर्वज्ञबाधकप्रमाणानावात्संनवानुमानस्य च प्रतिपादितत्वादस्ति सर्वज्ञस्त त्प्रणीतागमान्युपगमाच्च मतन्नेददोषोदूरापास्तइति । तथाहि । तत्प्रणीतागमान्युपगम वादिनामेकवाक्यनया शरीरमात्रव्यापी संसार्यात्मास्ति तत्रैव तद्गुणोपलब्धेरिति । इतरे तराश्रयदोषश्चात्र नावतरत्येव । यतो ऽन्यस्यमानायाः प्रज्ञायाज्ञानातिशयः स्वात्मन्यपि दृष्टोनच दृष्टेऽनुपपन्नं नामेति । यदप्यनिहितं । तद्यथा । नच ज्ञानं ज्ञेयस्य स्वरूपं परिच्छे त्तुमलं सर्वत्रावार्ग्नावेनेत्यवधानात्सर्वारातीयनागस्य च परमाणुरूपतयाऽतींद्रियत्वादित्ये तदपि वाङ्मात्रमेव । यतः सर्वज्ञज्ञानस्य देशकालस्वनावव्यवहितानामपि ग्रहणान्ना स्ति व्यवधानसंनवः । अर्वाग्दर्शिज्ञानस्याप्यवयव द्वारेणाऽवयविनि प्रवृत्तेर्नास्ति व्यवधा नं । न ह्यवयवी स्वावयवैर्व्यवधीयतइति युक्तिसंगतं । अपि चाज्ञानमेव श्रेयइत्यत्राऽ ज्ञानमिति किमयं पर्युदासआहोस्वित्प्रसज्यप्रतिषेधस्तत्र यदि ज्ञानादन्यदज्ञानमिति ततः पर्युदासवृत्या ज्ञानांतरमेव समाश्रितं स्यान्नाज्ञानवादइति । अथ ज्ञानं न नवतीत्यज्ञानं तुष्णीनीरूपोज्ञानानावः सच सर्वसामर्थ्यरहितइति कथंश्रेयानिति । अपिच ज्ञानं श्रेय इति प्रसज्यप्रतिषेधेन ज्ञानं श्रेयोनवतीति क्रियाप्रतिषेधएव कृतः स्यादेतच्चाध्यक्षबाधि न । यतः सम्यगज्ञानादर्थं परिच्छिद्य प्रवर्तमानोर्थक्रियार्थी न विसंवाद्यतइति । किंचाऽ ज्ञानप्रमादवद्भिः पादेन शिरःस्पर्शनेपि स्वल्पदोषवतां परिज्ञायैवाज्ञानं श्रेयइत्यन्युपगम्य ते । एवंच सति प्रत्यक्षएव स्यादन्युपगमविरोधोनानुमानं प्रमाणमिति । तथा तदेवं सर्वथा तेऽज्ञानवादिनोऽकोविदाधर्मोपदेशं प्रत्यनिपुणाः संतोऽकोविदेन्यएव स्वशिष्येन्य आहुः कथितवंतः । छांदसत्वाच्चैकवचनं सूत्रेकृतमिति । शाक्याअपि प्रायशोऽज्ञानिका अविज्ञोपचितं कर्मबंधं न यांतीत्येवं यतस्तेऽन्युपगमयंति । तथा येच बालमत्तसुप्तादयो ऽस्पष्टविज्ञानाअबंधकाइत्येवमन्युपगमं कुर्वंति ते सर्वेप्यकोविदाइष्टव्याइति । तथाऽ ज्ञानपक्षसमाश्रयणाच्चाननुविचिंत्य नाषणान्मृषा ते सदा वदंति । अनुविचिंत्य नाषणं यतोज्ञाने सति नवति तत्पूर्वकत्वाच्च सत्यवादस्यातोज्ञानानन्युपगमादननुविचिंत्य नाष णानावस्तदनावाच्च तेषां मृषावादित्वमिति ॥ २ ॥

मेवापादयति ततश्च विवक्षितार्थावन्नासनात्तेषामेवं वादिनामज्ञानावृतत्वमेवावशिष्यते नाभिप्रेतार्थावाप्तिरित्युक्तावैनयिकाः । सांप्रतमक्रियावादिदर्शनं निराचिकीर्षुः पश्चार्धमाह । लवं कर्म तस्मादपशंकितुमपसर्तुं शीलं येषां ते लवापशंकिनोलोकायतिकाः शाक्यादयश्च तेषामात्मैव नास्ति कुतस्तत्क्रिया तज्जनितोवा कर्मबंधइति । उपचारमात्रेण त्वस्तिबंधः । तद्यथा । बद्धामुक्ताश्च कथ्यंते, मुष्टिग्रंथिकपोतकाः ॥ नचान्ये द्रव्यतः संति, मुष्टिग्रंथिकपोतकाः ॥ १ ॥ तथा बौद्धानामयमन्युपगमोयथा क्षणिकाः सर्वसंस्काराश्त्स्थितानां च कुतः क्रियेत्यक्रियावादित्वं योपि स्कंधपंचकान्युपगमस्तेषां सोपि संवृतमात्रेण न परमार्थेन यतस्तेषामयमन्युपगमस्तद्यथा विचार्यमाणाः पदार्थान कथंचिदप्यात्मानं विज्ञानेन समर्पयितुमलं तथा ह्यवयवी तत्वातत्त्वान्यां विचार्यमाणोनघटां प्रांचति । नाप्यवयवाः परमाणुपर्यवसानतयाऽतिसूक्ष्मत्वाज्ज्ञानगोचरतां प्रतिपद्यंते । विज्ञानमपि ज्ञेयान्नावेनामूर्तस्य निराकारतया न स्वरूपं बिनर्त्ति । तथा चोक्तं । यथा यथार्थाश्चिंत्यंते, विविच्यंते तथातथा ॥ यद्येतत्स्वयमर्थेन्यो,रोचते तत्र के वयमिति । प्रच्छन्नलोकायतिकाहि बौद्धास्तत्रानागतैः क्षणैः । चशब्दादतीतैश्च वर्तमानक्षणस्यासंगतेर्नक्रिया नापिच तज्जनितः कर्मबंधइति । तदेवमक्रियावादिनोनास्तिकवादिनः सर्वापलापितयालवावशंकिनः संतोनक्रियामाहुस्तथा अक्रियआत्मा येषां सर्वव्यापितया तेप्यक्रियावादिनः सांख्यास्तदेवं लोकायतिकाबौद्धसांख्याअनुपसंख्यया अपरिज्ञानेनेत्येतत्पूर्वोक्तमुदाहृतवंतस्तथैव तत्त्वाज्ञानेनैवोदाहृतवंतस्तद्यथास्माकमेवमन्युपगमोर्थोऽवन्नासते युज्यमानकोनवतीति ॥ तदेवंश्लोकपूर्वार्द्धं काकाक्षिगोलकन्यायेनाक्रियावादिमतेप्यायोज्यमिति ॥४॥

सम्मिस्सन्नावं व गिरागहीए,से मुम्मुई होइ अणाणुवाई॥ इमं
डुपरकं इममेगपरकं, आहंसु बलायतणं च कम्मं ॥ ५ ॥ ते एव
मरकंति अबुज्झमाणा, विरूवरूवाणि अकिरियवाई ॥ जे मा
यइत्ता बहवे मणूसा, नमंति संसारमणोवदग्गं ॥ ६ ॥

अर्थ–( सेके० ) ते लोकायिक परवादी ( वगिरागहीए के० ) पोतानी वाणीयें करी ग्रह्या अर्थने विषे पण वली पोतानेज वचने निषेध करतां थकां ( सम्मिस्सन्नावंके० ) मिश्रनावनेज अंगीकार करेछे एटले पोते बोलता थकाज जेनी अस्ति कहे तेनीज वली नास्ति कहे तेमज जेनी नास्ति कहे तेनीज अस्ति कहेछे एरीते मिश्रनाव जाणवो केमके जे नास्तिक जीवादिक पदार्थनो अनाव कहेछे तेपण पोते पोताना शास्त्रे करी पोताना शिष्यने पोतानो मार्ग शीखावेछे के सर्व पदार्थ शून्यपणेछे तेवारे पोते तथा

शास्त्र अने शिष्य ए क्यांछे एम नविचारे तेमाटे ए असंबंध वचनना बोलनार माटे ए ने मिश्रभाव सहित जाणवा तथा सांख्यदर्शनी एम कहेछे के आत्मा सर्वव्यापि छे तथा अक्रियछे ए पण असमंजस बोलेछे कारणके ए दर्शनवाला एम कहेछे के प्रकृतिने वियोगें मोक्षछे जो एमछे तो आत्माने बंधमोक्षनो सद्भाव थाप्यो एम सिद्ध थयुं कारणके प्रकृतिनो बंध हतो तेनो वियोग थवाथी मोक्ष थयो एथी स्पष्ट मालम पडेछे के बंध मोक्षनो सद्भाव थयो अने बंध मोक्षना सद्भावने लीधे आत्मा सक्रियछे एवुं एम नाज बोलवा उपरथी जणायछे तो पोतानाज वचनथी जेनुं स्थापन कर्युं तेने पोतानाज वचनथी उठापेछे एरीते मिश्रभाव सर्व दर्शनीउंनो जाणवो ए वर्णिका मात्र लख्युंछे ( सेमुम्मुईहोइअणाणुवाई के० ) ते अक्रियावादी आदेदेइने जे परवादीछे ते जैन मतानुसारीने अनेक हेतु दृष्टांते करी व्याकुल छतो तेनो उत्तर आपवाने असमर्थ थाय मुम्मुई एटले मूक सरखो थाय अर्थात् कांइपण बोली शके नही ते दर्शनी केवो जाणवो तोके अनानुवादी एटले जिनभाषित वचन सांभलीने पछी बोलवा असमर्थ एवो छतो मौन भावनेज अंगीकार करे इत्यर्थः हवे यद्यपि ते दर्शनीउ जैनमतानुसारीने सन्मुख बोली नशके तथापि कदाग्रहे पड्या थका पोताना पक्षनुं स्थापन करे तेनी रीत कहेछे. ( इमंडुपक्खंइममेगपक्खंके० ) एम अमारो एक पक्ष छे ते एम डुपक्ष जाणवो एटले ए पक्षना शुं वखाण करिए ए अमारा पक्षने त्रीजो कोइ उठापी नशके एवो ए पक्ष उत्तमछे अहीं पूर्वापर विरोध वचनछे ते भाव पाछलना मिश्रभाव कहेवाथी कह्युंछे ए डुपक्ख शब्दनो अर्थछे अथवा जे पोतानुं खोटुं होय तेने साचुं करे तेने छलछद्मभापण करवाने लीधे डुपक्ष एटले आभवमां तथा परभवमां विटंबना थाय ए पण डुपक्ख शब्दनो अर्थ छे तथा ते परवादि जेवारे पोची नशके तेवारे ( आहंसुछलायतणंचकम्मं के० ) छलायतन एटले छले करी बोले ते छल त्रण प्रकारनाछे एक वाक्छल, बीजो सामान्यछल अने त्रीजो उपचारछल एवां छले करी बोलीने पोतानो एक पक्ष स्थापन करे तथा कर्म एटले एक पक्षादि स्थापन करवाने अर्थे बोले ॥ ५ ॥ ( तेएवमक्खंति के० ) ते बौद्धादिक परवादीउ सत्यमार्गने अजाणता मिथ्यात्व पमले आवस्था थकां असंबंध वचन बोले एवाते ( अबुज्झमाणा के० ) तत्वने अजाणता ( विरूवरूवाणिअकिरियवाई के० ) विरूपरूप नाना प्रकारना कुशास्त्रनी प्ररूपणा करे एवाते अक्रियावादि नास्तिकादिक मिथ्यात्वी छे ( जेमायईत्ताबहवेमणूसा के० ) जेमनो मत ग्रहण करीने घणा मनुष्य मिथ्यात्वे मोह्या थका ( भमंतिसंसारमणोवदग्गं के० ) अनंत संसार परिभ्रमण करेछे ॥ ६ ॥

---

॥ दीपिका–गिरा स्ववाचा स्वांगीकारेण गृहीते तस्मिन्नर्थे तन्यायेभ्य गिरा प्रतिपेधं

कुर्वाणाः सन्मिश्रीभावमस्तित्वनास्तित्वाभ्युपगमं ते नास्तिकादयः कुर्वंति । वाशब्दात्प्रतिषेधे वाच्येऽस्तित्वमेव कथयंति । तथाहि । नास्तिकास्तावत्स्वशिष्येभ्योजीवाद्यभावप्रतिपादकं शास्त्रं वदंतोनांतरीयकतयाऽत्मानं कर्तारं करणं च शास्त्रं कर्मतापन्नांश्च शिष्यानवश्यमंगीकुर्युः । सर्वशून्यत्वे त्वस्य त्रितयस्याभावान्मिश्रीभावोव्यत्ययोवा स्यादेव । तथा बौद्धादिः कश्चित्स्याद्वादिना सम्यग्घेतुदृष्टांतैर्व्याकुलीकृतः सन् ( मुम्मुईहोइत्ति ) गद्गदभाषित्वेनाव्यक्तभाषी स्यात् । अथवा मूकादपि मूकोमूकमूकः स्यात् । प्राकृतशैल्या छांदसत्वाच्चैवं प्रयोगः । स्याद्वादिनोक्तं साधनमनुवदितुं शीलमस्येत्यनुवादी तन्निषेधादननुवादी व्याकुलितमनाअनुवादमपि कर्तुं न शक्नोतीति । स्वमतमाश्रित्याह । ( इमंदुपक्कमित्यादि ) इदमस्मदंगीकृतं मतमेकः पक्षोस्येत्येकपक्षं निष्प्रतिपक्षमित्यर्थः । इदं च परमतं द्वौ पक्षौ यस्य तद्विपक्षं सप्रतिपक्षमित्यर्थः । तथा स्याद्वादिसाधनोक्तौ छलायतनं छलं नवकंबलोदेवदत्तइत्यादिकमाहुरुक्तवंतः । चशब्दादस्य च दूषणाभासादिकं कर्मच एकपक्षद्विपक्षादिकं । अथवा षट् आयतनानि उपादानकारणानि आश्रवद्वाराणि श्रोत्रादीनींद्रियाणि यस्य कर्मणस्तत् षडायतनं कर्मेत्येवमाहुः ॥ ५ ॥ तेऽक्रियावादिनश्चार्वाकबौद्धाद्याएवमाख्यांति परमार्थमबुध्यमानाअजानंतोविरूपरूपाणि नानाप्रकाराणि शास्त्राणि रूपयंति । तद्यथाहि दानेन महाभोगोदेहिनां सुरगतिश्च शीलेन भावनयाच मुक्तिस्तपसा सर्वाणि सिध्यंति । तथा पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति चत्वारि भूतान्येव संति न कश्चिदात्मा । तथा बौद्धाः सर्वं क्षणिकं निरात्मकमित्यादीनि शास्त्राणि वदंति ते च मूढाअज्ञामनुष्यायदर्शनमादाय गृहीत्वाऽनवदग्रमनंतं संसारं भ्रमंति ॥ ६ ॥

---

॥ टीका—सांप्रतमक्रियावादिनामज्ञानविजृंभितं दर्शयितुमाह । ( सम्मिस्समित्यादि ) स्वकीयया गिरा वाचा स्वाभ्युपगमेनैव गृहीते तस्मिन्नर्थे नांतरीयकतया वा समागते सति तस्याऽयातस्यार्थस्य गिरा प्रतिषेधं कुर्वाणाः सन्मिश्रीभावमस्तित्वं नास्तित्वापगमं ते लोकायतिकादयः कुर्वंति । चशब्दात्प्रतिषेधे प्रतिपाद्येऽस्तित्वमेव प्रतिपादयंति । तथाहि । लोकायतिकास्तावत्स्वशिष्येभ्योजीवाद्यभावप्रतिपादकं शास्त्रं प्रतिपादयंतोनांतरीयकतयात्मानं कर्तारं करणं च शास्त्रं कर्मतापन्नांश्च शिष्यानवश्यमभ्युपगच्छेयुः । सर्वशून्यत्वे त्वस्य त्रितयस्याभावान्मिश्रीभावोव्यत्ययोवा । बौद्धाअपि मिश्रीभावमेवमुपगताः । तद्यथा । गंता च नास्ति कश्चिद्गतयः षड् बौद्धशासने प्रोक्ताः ॥ गम्यतइति च गतिः स्याच्छ्रुतिः कथं शोभना बौद्धी ॥ १ ॥ तथा कर्म च नास्ति फलं चास्तीत्यसति चात्मनि कारके कथं षड्गतयोज्ञानसंतानस्यापि संतानव्यतिरेकेण संवृतिसत्वात् क्षणस्य चास्थितत्वेन क्रियाभावान्न नानागतिसंभवः । सर्वाण्यपि कर्माण्यबंधनानि प्ररूपयंति स्वागमे । तथा पंच

जातकशतानि च बुद्धस्योपदिशंति । तथा । मातापितरौ हत्वा बुद्धशरीरे च रुधिरमुत्पा
द्य ॥ अर्हद्वधं च कृत्वा स्तूपं भित्त्वा च पंचैते ॥ १ ॥ निरंतरमावीचिनरकं यांत्येवमादिक
स्यागमस्य सर्वशून्यत्वे प्रणयनमयुक्तिसंगतं स्यात् । तथा । जातिजरामरणरोगशोकोत्तम
मध्यमाधमत्वानि च नस्युः । एवएव च नानाविधकर्मविपाकोजीवास्तित्वं कर्तृत्वं कर्म
वत्त्वं चावेदयति । तथा । गंधर्वनगरतुल्या, माया स्वप्नोपपातधनसदृशा ॥ मृगतृष्णानीहारां
बुचंद्रिकालातचक्रसमाइति भाषणाच्च स्पष्टमेव मिश्रीभावोपगमनं बौद्धानामिति । यदि
वा नानाविधकर्मविपाकाभ्युपगमात्तेषां व्यत्ययएवेति । तथाचोक्तं । यदि शून्यस्तव पक्षो,
मत्पक्षनिवारकः कथं भवति ॥ अथ मन्यसे न शून्यस्तथापि मत्पक्षएवासावित्यादि । त
देवं बौद्धाः पूर्वोक्तया नीत्या मिश्रीभावमुपगतानास्तित्वं प्रतिपादयंतोऽस्तित्वमेव प्रति
पादयंति । तथा सांख्याअपि सर्वव्यापितया अक्रियमात्मानमभ्युपगम्य प्रकृतिवियोगा
न्मोक्षसद्भावं प्रतिपादयंतस्तेष्वात्मनोबंधं मोक्षं च स्ववाचा प्रतिपादयंति । ततश्च बंध
मोक्षसद्भावे सति स्वकीयया गिरा सक्रियत्वे गृहीते सत्यात्मनः सन्मिश्रीभावं व्रजंति य
तोन क्रियामंतरेण बंधमोक्षौ घटेते । वाशब्दादक्रियत्वे प्रतिपाद्ये व्यत्ययएव सक्रियत्वं
तेषां स्ववाचा प्रतिपाद्यते । तदेवं लोकायतिकाः सर्वे भावाभ्युपगमेन क्रियाभावं प्रतिपा
दयंति । बौद्धाश्च क्षणिकत्वात्सर्वशून्यत्वाच्चाक्रियामेवाभ्युपगमयंतः स्वकीयागमप्रणयनेन
चोदिताः संतः सन्मिश्रीभावं स्ववाचैव प्रतिपाद्यंते । तथा सांख्याश्चाक्रियमात्मानमभ्युप
गच्छंतोबंधमोक्षसद्भावं च स्वाभ्युपगमेनैव सन्मिश्रीभावं व्रजंति । व्यत्ययं चैतत्प्रतिपादि
तं । यदिवा बौद्धादिः कश्चित्स्याद्वादिनासम्यग्घेतुदृष्टांतैर्व्याकुलीक्रियमाणः सन् सम्यगु
त्तरं दातुमसमर्थोयत्किंचन भाषितया (मुम्मुईहोइत्ति) गद्गदभाषित्वेनाऽव्यक्तभाषी भवति।
यदिवा प्राकृतशैल्या छांदसत्वाच्चायमर्थोद्रष्टव्यः । तद्यथा । मूकादपि मूकोमूकमूकोभ
वति । एतदेव दर्शयति । स्याद्वादिनोक्तं साधनमनुवदितुं शीलमस्येत्यनुवादी तत्प्रतिषे
धादननुवादी सद्धेतुभिर्व्याकुलितमनामौनमेव प्रतिपाद्यतइति भावः । अननुभाष्य च प्रति
पक्षसाधनं तथाऽदूषयित्वा च स्वपक्षं प्रतिपादयंति । तद्यथा । इदमस्मदभ्युपगतं दर्शन
मेकः पक्षोस्येति एकपक्षमप्रतिपक्षतयैकांतिकमविरुद्धार्थाभिधायितया निष्प्रतिबाधं पूर्वा
पराविरुद्धमित्यर्थः । इदं चैवंभूतमपि सदित्याह । द्वौपक्षावस्येति द्विपक्षं सप्रतिपक्षमनै
कांतिकं पूर्वापरविरुद्धार्थाभिधायितयाऽविरोधिवचनमित्यर्थः । यथाच विरोधिवचनत्वं
तेषां तथा प्राग्दर्शितमेव। यदि त्वेतदस्मदीयं दर्शनं द्वौपक्षावस्येति द्विपक्षं कर्मबंधनिर्ज
रणं प्रतिपक्षद्वयसमाश्रयणात् । तत्समाश्रयणं चेहामुत्र वेदना चौरपारदारिकादीना
मिव । तेहि करचरणनासिकादिकामिहैव पुष्पकल्पां स्वकर्मणोविडंबनामनुभवंत्यमुत्र
च नरकादौ तत्फलभूतां वेदनां समनुभवंतीति । एवमन्यदपि कर्माभयवेद्यमभ्युपगम्य

ते। तच्चेदं। प्राणी प्राणिज्ञानमित्यादिपूर्ववत्। तथेदमेकः पक्षोस्येत्येकपक्षं इहैव जन्मनि तस्य वेद्यत्वात्। तच्चेदमविज्ञोपचितं परज्ञोपचितमीर्यापथ्यं स्वप्नादिकं चेति। तदेवं स्याद्वादिनाभियुक्ताः स्वदर्शनमेवमनंतरोक्तया नीत्या प्रतिपादयंति। तथा स्याद्वादिसाधनोक्तौ छलायतनं छलं नवकंबलोदेवदत्तइत्यादिकमाहुरुक्तवंतः। च शब्दादन्यच्च दूषणाभासादिकं। तथा कर्मच एकपक्षद्विपक्षादिकं प्रतिपादितवंतइति। यदिवा षडायतनानि उपादानकारणानि आश्रवद्वाराणि श्रोत्रेंद्रियादीनि यस्य कर्मणस्तत्षडायतनं कर्मेत्येवमाहुरिति ॥५॥ सांप्रतमेव तद्दूषणायाह। (तएवमक्कंतीत्यादि) ते चार्वाकबौद्धादयोऽक्रियावादिनएवमाचक्षते। सद्भावमबुध्यमानामिथ्यामलपटलभृतात्मानः परमात्मानं च व्युद्ग्राहयंतोविरूपरूपाणि नानाप्रकाराणि शास्त्राणि प्ररूपयंति। तद्यथा। दानेन महाभोगोदेहिनां सुरगतिश्च शीलेन ॥ भावनया च विमुक्तिस्तपसा सर्वाणि सिध्यंति ॥ १ ॥ तथा पृथिव्यापस्तेजोवायुरित्येतान्येव चत्वारि भूतानि विद्यंते नापरः कश्चित्सुखदुःखभागात्मा विद्यते। यदि चैतान्यप्यविचारितरमणीयानि न परमार्थतः संतीति स्वप्नेंद्रजालमरुमरीचिकाभिचयद्विचंद्रादिप्रतिभासरूपत्वात्सर्वस्येति। तथा सर्वं क्षणिकं निरात्मकं मुक्तिस्तु शून्यता दृष्टेस्तदर्थाः शेषभावनाइत्यादीनि नानाविधानि शास्त्राणि व्युद्ग्राहयंत्यक्रियात्मानोऽक्रियावादिनइति। तेच परमार्थमबुध्यमानायद्दर्शनमादाय गृहीत्वा बहवोमनुष्याः संसारमनवदग्रमपर्यवसानमरहट्टघटीन्यायेन भ्रमंति पर्यटंति। तथाहि। लोकायतिकानां सर्वशून्यत्वे प्रतिपाद्ये न प्रमाणमस्ति। तथाचोक्तं। तत्त्वान्युपप्लुतानीति, युक्त्यभावेन सिध्यति ॥ नास्ति चेत्सैव नस्तत्त्वं, तत्सिद्धौ सर्वमस्तु सत् ॥ १ ॥ नच तत्प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं। अतीतानागतभावतया पितृनिबंधनस्यापि व्यवहारस्यासिद्धेस्ततः सर्वसंव्यवहारोच्छेदः स्यादिति। बौद्धानामप्यत्यंतक्षणिकत्वेन वस्तुत्वाभावः प्रसक्तति। तथाहि। यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सत्। नच क्षणः क्रमेणार्थक्रियां करोति। क्षणिकत्वहानेर्नापि यौगपद्येन तत्कार्याणामेकस्मिन्नेव क्षणे सर्वकार्यापत्तेर्नैचतद्दृष्टमिष्टं वा। नच ज्ञानाधारमात्मानं गुणिनमंतरेण गुणभूतस्य संकलनाप्रत्ययस्य सद्भावइत्येतच्च प्रागुक्तप्रायं। यच्चोक्तं दानेनमहाभोगो,इत्यादि तदार्हतैरपि कथंचिदिष्यतएवेति नचाभ्युपगमाएव बाधायैप्रकल्प्यंतइति ॥ ६ ॥

णाइच्चो उएइ ण अत्थमेति, ण चंदिमा वड्ढति हीयती वा ॥ स
लिला ण संदंति ण वयंति वाया, वंझो णियतो कसिणे हु लोए
॥७॥ जहाहि अंधे सह जोतिणावि, रूवाइ णो पस्सति हीणणे
त्ते॥ संतंपि ते एवमकिरियवाई, किरियं ण पस्संति निरुद्धपन्ना ॥ ८॥

अर्थ–हवे सर्व शून्यवादिनो भेद कहेछे. ते शून्यवादी एम कहेछे के समस्त लोक प्रसिद्ध जगत्प्रदीप समान एवो ( णाइच्चो के० ) सूर्य नथी वली ते सूर्य (णउएइके०) उगतो नथी तथा ( णअच्छमेति के० ) अस्तपणं थातो नथी ए जे देदीप्यमान सूर्य मंमल देखायछे ते मात्र चित्तनो भ्रम जाणवो मृगतृष्णा समान ए सर्व भ्रमछे तथा ( णचंदिमावड्ढति हीयती के० ) चंद्रमानी कला वृद्धि पामती नथी तेम हीन पण थती नथी एटले शुक्ल पक्षादिने विषे जे वृद्धि प्रमुख चंद्रमानी देखायछे ते सर्व भ्रम छे ( वा के० ) अथवा तथा ( सलिला के० ) नदीना पाणी ते ( णसंदंति के० )नथी श्रवता एटले नदीन्हृदादिक पण नथी तथा ( णवयंतिवाया के० ) वायरो पण वातो नथी ( वंझोणियतो कसिणे हुलोए के० ) तो हु इति निश्चे ए लोक संपूर्ण वंध्यसमा न अर्थ शून्य छे अर्थात् ए जगतमां कांइज नथी जे कांइ देखायछे ते सर्व स्वप्नेंद्रजाल समान जाणवुं ॥ ७ ॥ ( जहाहि अंधेसह जोतिणावि के० ) जेम जाति अंध एटले नेत्रहीन पुरुष दीपे करी सहित छतां पण ( हीणणेत्ते के० ) हीननेत्रपणाने लीधे ( रूवाइ के० ) रूपादिक जे घटपटादिक विद्यमान पदार्थोछे तेने ( णोपस्सति के० ) देखी शके नही ( संतंपिते एवमकिरियवाई के० ) तेम ते अक्रियावादिर्डमां छतिक्रिया विद्यमान छता पण ते ( किरियं के० ) क्रियाने ( निरुद्धपन्ना के० ) जेमनी प्रज्ञा एटले बुद्धिनिरोध थइछे अर्थात् बुद्धिहीन एवाते अक्रियावादी लोको पोतामां क्रिया विद्यमान छता पण तेने ( णपस्संतिके०) मिथ्यात्वादिक दोषेकरी नथीदेखता. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–आदित्योनोज्जवति नास्तमेति । कोर्थः । आदित्यएव तावन्न विद्यते कुतस्तस्योज्ञमनमस्तगमनं च । यच्चेदं ज्वलत्तेजोमंडलं दृश्यते तद्भ्रांतमतीनां द्विचंद्रप्रतिभासमृगतृष्णातुल्यमिति । तथा न चंद्रमावर्धते हीयते वा सलिलानि पर्वतनिर्झरेभ्यो न स्यंदंते न स्रवंति वाता न वांति । किंबहुना कृत्स्नः संपूर्णोप्ययं लोकोवंध्योर्थशून्योनियतोनिश्चितोभावरूपइत्यर्थः । सर्वमिदं यदुपलभ्यते तन्मायास्वप्नेंद्रजालप्रायमिति ॥ ७ ॥ यथाह्यंधोजात्यंधः पश्चाद्वा हीननेत्रोगतचक्षुर्घटपटादिरूपाणि ज्योतिषा प्रदीपादिनाऽपि सद्वर्तमानोन पश्यति । एवंतेप्यक्रियावादिनः सदपि घटपटादिकं वस्तु न क्रियां चास्तित्वादिकां परिस्पंदादिकां वा न पश्यंति । यतोनिरुद्धाआच्छादिता प्रज्ञा ज्ञानं येषांते निरुद्धप्रज्ञाः अतएव ते न जानंतीति ॥ ८ ॥

॥ टीका–पुनरपि शून्यमताविर्भावनायाह । ( णाइच्चो उएईत्यादि ) सर्वशून्यवादिनोह्यक्रियावादिनः सर्वाप्यक्षामादित्योज्ञमनादिकामेव क्रियां तावन्निरुंधंतीति दर्शयति । आदित्योहि सर्वजनप्रतीतोजगत्प्रदीपकल्पोदिवसादिकालविभागकालकारी सएव तावन्न

विद्यते कुतस्तस्योज्ञमनमस्तगमनं वा । यच्च जाज्वल्यमानं तेजोमंडलं दृश्यते तद्भ्रांतमतीनां द्विचंद्रादिप्रतिनासं मृगतृष्णिकाकल्पं वर्तते । तथा न चंद्रमावर्धते शुक्लपक्षे नाप्युत्तरपक्षे प्रतिदिनमपह्रीयते नसंधानसलिलानि उदकानि स्यंदंते पर्वतनिर्झरेन्यो न स्रवंति तथा वाताः सततगतयोन वांति । किंबहुनोक्तेन कृत्स्नोप्ययं लोकोवंध्योऽर्थशून्योनियतोनिश्चितोनावरूपइति यावत् । सर्वमिदं यदुपलन्यते तन्मायास्वप्नेंद्रजालमिति ॥ ७ ॥ एतत्परिहर्तुकामआह ( जहाहि अंधेइत्यादि ) यथा ह्यंधोजात्यंधः पश्चाद्वा हीननेत्रोऽपगतचक्षुः रूपानि घटपटादीनि ज्योतिपापि प्रदीपादिनापि सद्वर्तमानोन पश्यति नोपलनते एवं तेप्यक्रियावादिनः सदपि घटपटादिकं वस्तु तत्क्रियां चाऽस्तित्वादिकां परिस्पंदादिकां वा क्रियां न पश्यंति । किमिति यतोनिरुद्धा आच्छादिता ज्ञानावरणादिना कर्मणा प्रज्ञा ज्ञानं येपां ते तथा । तथाहि । आगोपालांगनादिप्रतीतः समस्तांधकारक्षयकारी कमलाकरोद्घाटनपटीयानादित्योज्ञमः प्रत्यहं नवन्नुपलक्ष्यते । तत्क्रियाच देशाद्देशांतरावाप्त्याऽन्यत्र देवदत्तादौ प्रतीताऽनुमीयते। चंद्रमाश्च प्रत्यहं क्षीयमाणः समस्तक्षयं यावत्पुनः कलानिवृद्ध्या प्रवर्धमानः संपूर्णावस्थायां यावदध्यक्षेणैवोपलक्ष्यते । तथा सरितश्च प्रावृषि जलकल्लोलाविलाः स्यंदंत्योदृश्यंते वायवश्च वातास्तृक्ष्नंगकंपादिनिरनुमीयंते । यच्चोक्तं नवता सर्वमिदं मायास्वप्नेंद्रजालकल्पमिति तदसत् । यतः सर्वानावे कस्यचिद् मायारूपस्य सत्यस्यान्नावान्मायायाएवाऽनावः स्यात् । यश्च मायां प्रतिपादयेत् यस्य च प्रतिपाद्यते सर्वशून्यत्वे तयोरेवानावात्कुतस्तद्व्यवस्थितिरिति । तथा स्वप्नोपि जाग्रदवस्थायां सत्यां व्यवस्थाप्यते तस्याश्चनावे तस्याप्यनावः स्यात्ततः स्वप्नमन्युपगछता नवता तन्नांतरीयकतया जाग्रदवस्थावश्यमन्युपगता नवति तदन्युपगमेच सर्वशून्यत्वहानिः । नच स्वप्नोप्यनावरूपएव स्वप्नेप्यनुनूतादेः सद्भावात् । तथा चोक्तं । अणुहूयदिठचिंतिय, सुयपयइविपारदेव पाणूया ॥ सुमिणस्स निमित्ताइं पुसं पावंच णानावो ॥ १ ॥ इंद्रजालव्यवस्थाप्यपरसत्यत्वे सति नवति तदनावेतु केन कस्य चेंद्रजालं व्यवस्थाप्येत । द्विचंद्रप्रतिनासोपि रात्रौ सत्यामेकस्मिंश्च चंद्रमस्युपलंनकसद्भावे च घटते न सर्वशून्यत्वे। नचानावः कस्यचिदप्यत्यंततुछरूपोस्ति। शशविपाणकूर्मरोमगगनारविंदादीनामत्यंतानावप्रसिद्धानां समासप्रतिपाद्यस्यैवार्थस्यानावोन प्रत्येकपदवाच्यार्थस्येति । तथाहि । शशोप्यस्ति विपाणमप्यस्ति किंत्वत्र शशमस्तकसमवायिविपाणं नास्तीत्येतत्प्रतिपाद्यते । तदेवं संबंधमात्रमत्र निषिध्यते नात्यंतिकोवस्त्वनावइति । एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यमिति । तदेवं विद्यमानायामप्यस्तीत्यादिकायां क्रियायां निरुद्धप्रज्ञास्तीर्थिकाअक्रियावादमाश्रिताइति । अनिरुद्धप्रज्ञास्तु यथावस्थितार्थवेदिनोनवंति । तथाहि । अवधिमनःपर्यायकेवलज्ञानिनस्त्रैलोक्योदरविवरव

तिनः पदार्थान् करतलामलकन्यायेन पश्यंति । समस्तश्रुतज्ञानिनोपि आगमबलेना तीतानागतानर्थान् विदंति । येऽप्यन्येऽष्टांगनिमित्तपारगास्तेपि निमित्तबलेन जीवादि पदार्थपरिछेदं विदधति ॥ ८ ॥

संवच्छरं सुविणं लक्कणं च, निमित्तदेहं च उपाइयं च ॥ अठंग मेयं बहवे अहित्ता, लोगंसि जाणंति अणागताइं ॥ ए ॥ केई निमित्ता तहिया नवंति, केसिं च तं विप्पडिएति णाणं ॥ तेविज्ज नावं अणहिज्जमाणा, आहंसु विज्जापरिमोरकमेव ॥ पाठांतरे ॥ ( जाणासु लोगंसि वयंति मंदा ॥ १० ॥

अर्थ–( संवच्छरं के० ) ज्योतिषग्रंथ ( सुविणं के० ) स्वप्न शुनाशुनना शास्त्र ( लरकणंके० ) श्रीवत्सादिक लक्षण सामुद्रिक शास्त्र ते च शब्द थकी अभ्यंतर नेदरूप पण जाणवा तथा ( निमित्त के० ) निमित्त प्रसिद्ध शकुनादिक शास्त्र जाणवा ( देहंके० ) देहना लक्षण मत्स तिलकादिक जाणवा ( उपाइयंच के० ) उत्पात ते नूमिकंपादिकनी सूचनाकरनार शास्त्र एम ( अठंगमेयंबहवेअहित्ता के० ) अष्टांगनिमित्तनुं घणा लोक पठन करीने अर्थात् अष्टांगनिमित्त नणीने ( लोगंसिजाणंतिअणागताइं के० ) आलोकने विषे अतीत अनागतादिक वस्तुने जाणेछे. तेटलुं पण ए शून्यवादी जाणता न थी जेम कोइ संनिपाती यथातथ्य वस्तुने उलखे नही तेना दृष्टांते ए शून्यवादी पण जाणीलेवा ॥ ए ॥ तेमां वली ( केईनिमित्तातहियानवंति के० ) कोइएक निमित्तियायें पोताना मुख थकी निमित्त प्रकाश्यो थको तेनो निमित्त जेम कहे तेमज थायछे एट ले साचो थायछे वली ( केसिंचतंविप्पडिएतिणाणं के० ) कोईकनो निमित्तादि ज्ञान विपर्यासपणाने पामेछे एटले विघटेछे तथा ( तेविज्जनावंअणहिज्जमाणा के० ) ते एवी विद्याना नावनो अभ्यास कर्या विना एटले एवी विद्याने अण नण्या थका कहेछे के ( आहंसुविज्जापरिमोरकमेव के० ) अथवा पाठांतरे ( जाणासुलोगंसिवयंतिमंदाके० ) कोइएक मंद एटले मूर्ख एवा अक्रियावादी प्रमुख एमज कहेछेके अमेज आलोक मांहे अशेष एटले समस्त नावने जाणीयें छैयें ॥ १० ॥

---

॥ दीपिका–सांवत्सरं ज्योतिषं । स्वप्नप्रतिपादकोग्रंथः स्वप्नः । लक्षणं श्रीवत्सादिकं । निमित्तं शकुनादिकं । देहे नवं दैहं मषतिलकादि । उत्पाते नवमौत्पातिकमुल्कापातदिग्दाहादिकमित्यादि । अष्टांगनिमित्तं । यथा नौमं १ उत्पातं २ स्वप्नं ३ आंतरिक्षं ४ आंगं ५ स्वरं ६ लक्षणं ७ व्यंजनमित्येवं नवमपूर्वतृतीयाचारवस्तुनिर्गतं सुखडुःखादिसूचकं नि

मित्तमधीत्य लोकेऽतीतानागतानि वस्तूनि जानंति। नच शून्यादिष्वेतद्घटते तस्मादप्रमाणकमेव तैरुच्यते ॥ ९ ॥ पराभिप्रायमाह। ( केईनिमित्तेत्यादि ) छांदसत्वाल्लिंगव्यत्ययः। कानिचिन्निमित्तानि तथ्यानि सत्यानि भवंति । केषांचित्तु निमित्तानां निमित्तवेदिनां वा तन्निमित्तज्ञानं विपर्यासं व्यत्ययमेति। आर्हतानामपि निमित्तव्यभिचारोदृश्यते किंपुनस्तीर्थिकानां। तदेवं निमित्ते व्यभिचारमुपलभ्यतेऽक्रियावादिनोविद्यासद्भावं विद्यामनधीयानाः ( आहंसुविज्ञापलिमोरकमेव ) विद्यायाः श्रुतस्य व्यभिचारेण तस्य परिमोक्षं परित्यागमाहुः। अथवा क्रियायाअभावाद्विद्यया ज्ञानेनैव मोक्षं कर्मक्षयरूपमाहुरिति। क्वचिच्चरमपादस्यैवं पाठः। ( जाणासुलोगंसिवयंतिमंदत्ति ) विद्यामनधीत्यैव स्वयमेव लोके भावान् वयं जानीमइति मंदाजडावदंति। मंदत्वं कथमिति चेडुच्यते । सम्यग्विलोकितस्य निमित्तस्य नास्ति व्यभिचारः। यत्रापि दृश्यते व्यभिचारः सोप्यज्ञाततादृगन्यनिमित्तसद्भावात्। यथा किल बुद्धः स्वशिष्यानाकार्योक्तवान्। द्वादशवार्षिकमत्र दुर्भिक्षं भावि। यूयं देशांतरं गच्छत। तेच गच्छंतस्तेनैव निषिद्धाः। मागच्छत यूयं इहाद्यैव पुण्यवान् महासत्त्वः संजातस्तत्प्रभावात्सुभिक्षं भविष्यतीति । तदेवमन्यनिमित्तसद्भावान्नकथंचिन्निमित्तव्यभिचारइति ॥ १० ॥

---

॥ टीका—तदाह । ( संवत्सरमित्यादि ) सांवत्सरमिति ज्योतिषं। स्वप्नप्रतिपादको ग्रंथः स्वप्नस्तमधीत्य। लक्षणं श्रीवत्सादिकं। च शब्दादांतरबाह्यभेदभिन्नं निमित्तं वाक्प्रशस्तशकुनादिकं। देहे भवं देहं मषकतिलकादि। उत्पाते भवमौत्पातिकमुल्कापातदिग्दाहनिर्घातभूमिकंपादिकं। तथाष्टांगंच निमित्तमधीत्य। तद्यथा। भौममुत्पातमांतरिक्षमांगं स्वरं लक्षणं व्यंजनमित्येवं रूपं नवमपूर्वतृतीयाचारवस्तुविनिर्गतं सुखदुःखजीवितमरणलाभाऽलाभादिसंसूचकं निमित्तमधीत्य लोकेऽस्मिन्नतीतानि वस्तूनि अनागतानिच जानंति परिछिंदंति। नच शून्यादिवादेष्वेतद् घटते तस्मादप्रमाणकमेव तैरभिधीयतइति। एवंव्याख्याते सति आह परः। ननु व्यभिचार्यपि श्रुतमुपलभ्यते। तथाहि। चतुर्दशपूर्वविदामपि षट्स्थानपतितत्वमागमउद्घुष्यते किंपुनरष्टांगनिमित्तशास्त्रविदां। अत्र चांगवर्जितानां निमित्तशास्त्राणामानुपुर्व्येन छन्दसा त्रयोदशशतानि सूत्रं तावंत्येव सहस्राणि वृत्तिस्तावत्प्रमाणलक्षणा परिभाषेति। अंगस्य त्रयोदशसहस्राणि सूत्रं तत्परिमाणलक्षणा वृत्तिरपरिमितं वार्तिकमिति ॥ ९ ॥ तदेवमष्टांगनिमित्तवेदिनामपि परस्परतः षट्स्थानपतितत्वेन व्यभिचारित्वमतइदमाह। ( केइनिमित्ताइत्यादि ) छांदसत्वात्प्राकृतशैल्या वा लिंगव्यत्ययः। कानिचिन्निमित्तानि तथ्यानि सत्यानि भवंति। केषांचित्तु निमित्तानां निमित्तवेदिनां वा बुद्धिवैकल्यात्तथाविधक्षयोपशमाभावेन तन्निमित्तज्ञानं वि

पर्यासं व्यत्ययमेति । आर्हतानामपि निमित्तव्यभिचारः समुपलभ्यते किंपुनस्तीर्थिकानां । तदेवं निमित्तशास्त्रस्य व्यभिचारमुपलभ्यते ऽक्रियावादिनोविद्यासद्भावमनधीयानाः संतोनिमित्तं तथा चान्यथा च नवतीति मत्वा ते ( आहंसुविज्ञापलिमोरकमेव ) विद्यायाः श्रुतस्य व्यभिचारेण तस्य परिमोक्षं परित्यागमाहुरुक्तवंतः । यदिवा क्रियायाश्च नावाद्विद्यया ज्ञानेनैव मोक्षं सर्वकर्मच्युतिलक्षणमाहुरिति ! कचिच्चरमपादस्यैवं पाठः ( जाणासुलोगंसिवयंतिमंदत्ति ) विद्यामनधीत्यैव स्वयमेव लोकमस्मिन् वा लोके नावान् स्वयं जानीमएवं मंदाजडावदंति । नच निमित्तस्य तथ्यता । तथाहि । कस्यचित्क्वचित्क्षुतेऽपि गच्छतः कार्यसिद्धिदर्शनाच्छकुनसद्भावेपि कार्यविघातदर्शनादतोनिमित्तबलेनादेशविधायिनां मृषावादएव केवलमिति । नैतदस्ति । नहि सम्यगधीतस्य श्रुतस्यार्थे विसंवादोऽस्ति । यदपि षट्स्थानपतितत्वमुद्घोष्यते तदपि पुरुषाश्रितक्षयोपशमवशेन । नच प्रमाणानासव्यभिचारे सम्यक्प्रमाणव्यभिचाराशंकां कर्तुं युज्यते । तथाहि । मरुमरीचिकानिचये जलग्राहि प्रत्यक्षं व्यभिचरतीति कृत्वा किंसत्यजलग्राहिणोपि प्रत्यक्षस्य व्यभिचारोयुक्तिसंगतोनवति । नहि मशकवर्तिरग्निसिद्धावुपदिश्यमाना व्यभिचारिणीति सत्यधूमस्यापि व्यभिचारोनहि सुविवेचितकार्यकारणं व्यभिचरतीति । ततश्च प्रमातुरयमपराधोन प्रमाणस्यैव सुविवेचितं निमित्तं श्रुतमपि न व्यभिचरतीति । यश्च क्षुतेपि कार्यसिद्धिदर्शनेन व्यभिचारः शंक्यते सोऽनुपपन्नः । तथाहि । कार्याक्षुतात् क्षुतेपि गच्छतः कार्यसिद्धिः सापांतरालेंतरशोभननिमित्तबलात्संजातेत्येवमवगंतव्यं । शोभननिमित्तप्रस्थितस्यापीतरनिमित्तबलात्कार्यव्याघातइति । तथाच श्रुतिः । किल बुद्धः सशिष्यानाहूयोक्तवान् यथा द्वादशवार्षिकमत्र डुर्निक्षं नविष्यतीत्यतोदेशांतराणि गच्छत यूयं ते तद्वचनाच्चलंतस्तेनैव प्रतिषिद्धायथा मागच्छत यूयमिहाद्यैव पुण्यवान् महासत्वः संजातस्तत्प्रनावात्सुनिक्षं नविष्यति । तदेवमंतरा परनिमित्तसद्भावात्तद्व्यभिचारशंकेति स्थितं ॥ १० ॥

ते एवमरकंति समिच्च लोगं, तहा तहा समणा माहणा य ॥
सयं कडं णन्नकडं च डुरकं, आहंसुविज्जा चरणं पमोरकं ॥ ११ ॥
ते चरकुलोगंसिह णायगा उ, मग्गाणुसासंति हितं पयाणं ॥ त
हा तहा सासयमाहु लोए, जंसी पया माणव संपगाढा ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे क्रियावादीनो मत दूषवेछे. ( तेएवमरकंतिसमिच्चलोगं के० ) जे.एकली मात्र क्रिया करवा थकीज मोक्षनी वांछना करेछे तेक्रियावादि एवीरीते आख्याति एट

ले कहेछे ते पोताने अभिप्रायें लोकने जाणीने अमे यथावस्थित तत्वना जाणछैए ए वीरीते बोलीने क्रियानुं स्थापन करेछे ( तहातहासमणामाहणाय के० ) तथा तथा ए टले ते ते प्रकारें अर्थात् जेवा जेवा प्रकारनी क्रिया प्रवर्त्ते तेम तेम एटले तेवा तेवा प्रकारनुं स्वर्ग नरकादिक फल पण जाणवुं एरीते ते शाक्यादिकना श्रमण ब्राह्मण क्रियाथकीज सिद्धि कहेछे. ( सयंकडंणन्नकडंचडुक्खं के० ) तथाजे कांइ आ जगत् मांहे डुःख सुखछे ते सर्व पोतानुं करेलुं तथा परनुं करेलुं पण नथाय परंतु सर्व नवितव्यतानुं करेलुं थायछे हवे एमना मतनुं निराकरण करेछे ( आहंसुविज्जाचरणंपमोक्खं के० ) तीर्थंकर गणधरादिक विद्या एटले ज्ञान अने चरण एटले चारित्र एणेकरी मोक्षछे एट ले संसारीजीवोने ज्ञान अने क्रियानेसंयोगे करी प्रकर्षे जैनमार्गे मोक्षछे एम कहेछे. ॥ ॥ ११ ॥ ( तेचक्खुलोगंसिहणायगाउ के० ) ते तीर्थंकर गणधरादिक केवाछे तोके लो कमांहे चक्षुने स्थानकेछे तथा आ लोकने विषे नायक एटले स्वामि छता ( मग्गाणुसा संतिहितंपयाणं के० ) आलोकने विषे पोताना प्रजालोकने आ नवें तथा परनवें हित कारी एवो सम्यक् धर्म मार्ग प्रकाशेछे. (तहातहासासयमाहुलोएके०) तथा तथा एटले जेवा जेवा प्रकारें ए लोक पंचास्तिकायरूप ते द्रव्यास्तिक नयना अभिप्रायें शाश्वतो थाय तेवा तेवा प्रकारे कहे अथवा जेम जेम रागद्वेषनी वृद्धि तेम तेम संसारनी वृद्धि थाय एम कहे (जंसी के० ) जे संसारने विषे ( पयासंपगाढा के० ) प्रजा एटले जीव ते राग द्वेषे व्याप्त छता नाना प्रकारे रह्याछे ( माणवके०) तो हे मानव तुं एम जाण ॥१२॥

---

॥ दीपिका– अथ क्रियावादिमतमाह । ये क्रियातएव मोक्षमिछंति तएवमाख्यां ति । स्वाभिप्रायेण लोकं स्थावरजंगमात्मकं समेत्य ज्ञात्वा किल वयं यथावस्थितवस्तु ज्ञातारइत्यंगीकृत्य सर्वमस्त्येवेति सनिश्चयं कथयंति । तथा तेन प्रकारेण यथायथा क्रिया तथातथा स्वर्गनरकादिफलमिति । ते श्रमणास्तीर्थिकाब्राह्मणावा क्रियातएव सि द्धिमिछंति। तथा यत्किंचित्संसारे डुःखं तथा सुखं च तत्सर्वं स्वयमात्मनाऽन्येन कालेश्व रादिना । नचैतदक्रियावादे घटते । तत्र हि अक्रियत्वादात्मनोऽकृतयोरेव सुखडुःखयोः संभवः स्यादिति । ( तस्मादाहंसु विज्जाचरणं पमोक्खंति ) विद्याज्ञानं । चरणंक्रिया । ते द्वे अपि विद्येते कारणत्वेन यस्येति समासंकृत्वा अर्शआदित्वान्मत्वर्थीयोच्प्रत्ययः । अ सौ विद्याचरणोमोक्षः। ज्ञानक्रियासाध्यइत्यर्थः । एवंविधं मोक्षमाहुस्तीर्थकृदादयः॥११॥ ते तीर्थकरादयइहास्मिन् लोके चक्षुर्लोचनतुल्यइत्यर्थः । ते लोके नायकाः प्रधानाः । तुर्विशेषणे । मार्गं ज्ञानादिकं प्रजानां हितं प्राणिनामनर्थवारकं सद्गतिप्रापकं चानुनार्थं ते कथयंति तथा तथा शाश्वतं लोकं संसारमाहुर्जिनाः । यथायथा मिथ्यात्ववृद्धिः ।

तथाहि। तत्र तीर्थकराहारकवर्ज्याः सर्वएव कर्मबंधाः संभाव्यंते। कर्मबंधाच्च संसारवृ द्धिः। अथवा यथायथा रागद्वेषवृद्धिस्तथा तथा संसारोपि शाश्वतइत्याहुः। यस्मिन्सं सारे प्रजाजंतवः हेमानव संप्रगाढाः स्थिताः ॥ १२ ॥

---

॥ टीका–सांप्रतं क्रियावादिमतं डुदूषयिषुस्तन्मतमाविष्कुर्वन्नाह। (तएवमरकंती त्यादि) ये क्रियातएव ज्ञाननिरपेक्षायादीक्षादिलक्षणायामोक्षमिच्छंति तेएवमाख्यांति तद्यथा। अस्ति माता पिता अस्ति सुचीर्णस्य कर्मणः फलमिति। किंकृत्वा तएवं क थयंति क्रियातएव सर्वं सिध्यतीति स्वाभिप्रायेण लोकं स्थावरजंगमात्मकं समेत्य ज्ञात्वा किल वयं यथावस्थितवस्तुनोज्ञातारइत्येवमभ्युपगम्य सर्वमस्त्येवेत्येवं सावधारणं प्र तिपादयंति न कथंचिन्नास्तीति कथमाख्यांति। तथा तेन प्रकारेण यथायथा क्रिया तथा तथा स्वर्गनरकादिकं फलमिति ते च श्रमणास्तीर्थिकाब्राह्मणावा क्रियातएव सिद्धि मिच्छंति। किंच यत् किमपि संसारे डुःखं तथा सुखं च तत्सर्वं स्वयमेवात्मना कृतं नान्येन कालेश्वरादिना नचैतदक्रियावादे घटते। तत्र ह्यक्रियात्वादात्मनोऽकृतयोरेव सुखडुःखयोः संभवः स्यादेवंच कृतनाशाकृतागमौ स्यातां। अत्रोच्यते। सत्यमस्त्यात्मसुखडुःखादिकं। नन्वस्त्येव। तथाहि। यद्यस्त्येवं सावधारणमुच्येत ततश्च न कथंचिन्नास्तीत्यापन्नमेवंच स ति सर्वं सर्वात्मकमापद्येत। तथाच सर्वलोकस्य व्यवहारोच्छेदकः स्यात्। नच ज्ञानर हितायाः क्रियायाः सिद्धिस्तडुपायपरिज्ञानाभावात्। नचोपायमंतरेणोपेयमवाप्यतइ ति प्रतीतं। सर्वा हि क्रिया ज्ञानवत्येव फलवत्युपलभ्यते। उक्तंच। ज्ञानस्य ज्ञानि नां चैव निंदाप्रद्वेषमत्सरैः॥ उपेक्षितैश्च विघ्नैश्च ज्ञानघ्नं कर्म बध्यते॥ १॥ पढमं नाणं तउ दया, एवं चिट्ठति सव्वसंजए॥ अन्नाणी किं काही, किंवा नाहीछेयपावयं॥ १॥ इत्यतोज्ञानस्यापि प्राधान्यं नापि ज्ञानादेवसिद्धिः क्रियारहितस्य पंगोरिव कार्यसिद्धेरनु पपत्तिरित्यालोच्याह। (आहंसुविज्जाचरणं पमोरकंति) न ज्ञाननिरपेक्षायाः क्रियायाः सिद्धिरंधस्येव नापि क्रियाविकलस्य ज्ञानस्य पंगोरित्येवमवगम्याहुरुक्तवंतस्तीर्थकरगण धरादयः। किमाहुः। मोक्षं। कथं। विद्यां च ज्ञानं चरणंच क्रिया ते द्वे अपि विद्येते का रणत्वेन यस्येति विगृह्याशेआदित्वान्मत्वर्थीयोच्। असौ विद्याचरणोमोक्षः। ज्ञान क्रियासाध्यइत्यर्थः। तमेवं साध्यं मोक्षं प्रतिपादयंति। यदिवान्यथा वा पातनिका कैनै तानि समवसरणानि प्रतिपादितानि। यच्चोक्तं यच्च वक्ष्यते इत्येतदाशंक्याह। (तेए वमरकंतोत्यादि) अनिरुद्धा क्वचिदप्यस्खलिता प्रज्ञायते ऽनयेति प्रज्ञा ज्ञानं येषां तीर्थ कृतां तेऽनिरुद्धप्रज्ञास्तएवमनंतरोक्तया प्रक्रियया सम्यगाख्यांति प्रतिपादयंति। लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं स्थावरजंगमाख्यं वा समेत्य केवलज्ञानेन करतलामलकन्यायेन ज्ञात्वा

तथागतास्तीर्थंकरत्वं केवलज्ञानं च गताः श्रमणाः साधवोब्राह्मणाः संयताऽसंयताः। लौकिकी वाचोयुक्तिः। किंनूतास्तएवमाख्यांतीति संबंधः। तथातथेति वा क्वचित्पाठः। यथायथा समाधिमार्गोव्यवस्थितस्तथातथा कथयंति। एतच्च कथयंति। यथा यत्किंचित्संसारांतर्गतानामसुमतां डुःखमसातोदयस्वनावं तत्प्रतिपक्षनूतं च सातोदयापादितं सुखं तत्स्वयमात्मनाकृतं नान्येन कालेश्वरादिना कृतमिति। तथा चोक्तं। सव्वो पुव्वकयाणं, कम्माणं पावए फलविवागं॥ अवराहे सुगुणेसुय णिमित्तमित्तं परो होइ॥ १॥ एतच्चाहुस्तीर्थंकरगणधरादयः। तद्यथा। विद्या ज्ञानं चरणं चारित्रं क्रिया तत्प्रधानोमोक्षस्तमुक्तवंतोनज्ञानक्रियाभ्यां परस्परनिरपेक्षाभ्यामिति। तथा चोक्तं। क्रियां च संज्ञानवियोगनिष्फलां क्रियाविहीनां च विबोधसंपदं॥ निरस्तताक्लेशसमूहशांतये, त्वया शिवाया लिखितेव पद्धतिः॥ १॥ ११॥ किंच (तेचरकुलोगंसिहेत्यादि) ते तीर्थंकरगणधरादयोऽतिशयज्ञानिनोऽस्मिन् लोके चक्षुरिव चक्षुर्वर्तंते। यथाहि चक्षुर्योग्यदेशावस्थितान् पदार्थान् परिछिनत्ति। एवं तेऽपि लोकस्य यथावस्थितपदार्थाविष्करणं कारयंति। यथाऽस्मिन् लोके ते नायकाः प्रधानाः। तुशब्दो विशेषणे। सडुपदेशदानतोवा नायकाइत्येतदाह। मार्गं ज्ञानादिकं मोक्षमार्गं अनुशासंति कथयंति प्रजायंतइतिप्रजाः प्राणिनस्तेषां। किंनूतं। हितं सजतिप्रापकमनर्थनिवारकं। किंच चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके पंचास्तिकायात्मके वा येन प्रकारेण द्रव्यास्तिकनयानिप्रायेण यद्वस्तु शाश्वतं तत्तथा आहुरुक्तवंतः। यदिवा लोकोयं प्राणिगणः संसारांतर्वर्ती यथायथा शाश्वतोनवति तथातथैवाहुः। तद्यथा। यथायथा मिथ्यादर्शनानिवृद्धिस्तथातथा शाश्वतोलोकः। तथाहि। तत्र तीर्थंकराहारकवर्ज्याः सर्वएव कर्मबंधाः संनाव्यंतइति। तथाच महारंनादिनिश्चतुर्निः स्थानैर्जीवान्नरकायुष्कं यावन्निवर्तयंति तावत्संसारानुछेदइति। अथवा यथायथा रागद्वेषादिवृद्धिस्तथातथा संसारोपि शाश्वतइत्याहुः। यथायथा च कर्मोपचयमात्रा तथातथैव संसारानिवृद्धिरिति। डुष्टमनोवाक्कायानिवृद्धौ वा संसारानिवृद्धिरवगंतव्या। तदेवं संसारस्यानिवृद्धिर्नवति। यथाऽस्मिंश्च संसारे प्रजायंतइति प्रजाजंतवः हे मानव। मनुष्याणामेव प्रायशउपदेशार्हत्वान्मानवग्रहणं। सम्यग्नारकतिर्यङ्नरामरनेदेन प्रगाढाः प्रकर्षेण व्यवस्थिताइति॥ १२॥

जे रस्कसा वा जमलोइया वा, जे वासुरा गंधव्वा य काया॥
आगासगामी य पुढोसिया जे, पुणोपुणो विप्परिया सुवंति॥
॥१३॥ जमाहु उहं सलिलं अपारगं, जाणाहि णं नवगहणं डुमोस्कं॥ जंसी विसन्ना विसयंगणाहिं, डुहउ वि लोयं अणुसंचरंति॥१४

अर्थ–हवे ते नाना प्रकार कहेछे. ( जेरक्कसावाजमलोइयावा के० ) जे राक्षस व्यंतरादिक यमलोकिका जे परमाधार्मिकादिक देवो ( जेवासुरा के० ) जे वैमानिक ज्योतिषादिक देवो ( गंधवाय के० ) गांधर्व एटले विद्याधरादिक तथा ( कायके० ) पृथिविकायादिक ( आगासगामीय के० ) आकाशगामि एवा पक्षीउ तथा वायुप्रमुख तथा ( पुढोसियाजे के० ) पृथिविने विषे आश्रित एवा जे अनेक बेंद्रियादिक जीव ते सर्व ( पुणोपुणोविप्परियासुवंति के० ) पोत पोताना कर्मे करी वलीवली चतुर्गतिक रूप संसारमां परिभ्रमण करेछे ॥ १३ ॥ ( जमाहुउहंसलिलंअपारगं के० ) श्रीतीर्थकर गणधरादिक ते ए जे उघ एटले संसार तेने अपार स्वयंभूरमण समुद्र सरखो कहेछे ( जाणाहि के० ) एम तुं जाण अंहीं णं वाक्यालंकारेछे ( नवगहणं के० ) ते समान संसार गहनछे ( डुमोरकं के० ) दुर्मोक्ष एटले अत्यंत डुस्तरछे ( जंसीविसन्ना विसयंगणाहिं के० ) अस्तिवादीने पणजो एमछे एटले सम्यक् प्रवर्तकने पण आ अपार संसारसमुद्र अत्यंत डुस्तर छे तो नास्तिकवादीने तो अत्यंत डुस्तर होय एमां केवुंज शुं जे आ संसारने विषे सावद्य धर्मना प्रवर्त्तक कुमार्गे पतित पांचेंद्रिय संबंधी विषयना सेवनार तथा अंगना जे स्त्री तेने वश पड्याछता रहेछे ते ( डुहउविलोयंअणुसंचरंति के० ) त्रस स्थावररूप बे प्रकारनुं जे लोक तेमांहे राग द्वेषेकरीपरिभ्रमणकरे.

॥ दीपिका–ये राक्षसाः । राक्षसग्रहणात्सर्वे व्यंतराज्ञेयाः । यमलौकिकात्मानोंऽवर्ष्यादयोभवनपतयः । येच सुरावैमानिकाः । चशब्दाज्ज्योतिष्काः । ये गंधर्वाविद्याधराः । कायाः पृथिवीकायादयः षट् । पुनः प्रकारांतरेण जीवान् आकाशगामिनः संप्राप्तलब्धयश्चतुर्विद्यादेवाविद्याधराः पक्षिणोवायवश्च । ये च पृथिव्याश्रिताः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्विचतुःपंचेंद्रियास्ते सर्वेपि कर्मभिः संसारे विपर्यासं परिभ्रमणमुपयांति गच्छंति ॥ १३ ॥ यं संसारं समुद्रमाहुर्जिनाः । किंभूतं । स्वयंभुरमणसलिलौघवदपारं जानीहि त्वं । णमितिवाक्यालंकारे । भवगहनं संसारारण्यं डुःखेन मुच्यतइति डुर्मोक्षं डुस्तरमस्तिवादिनामपि किंपुनर्नास्तिकानां । यस्मिन् संसारे सावद्याचारे विषयाआसक्ताविषयप्रधानाअंगनाविषयांगनास्तानिर्वशीकृताद्विधापि स्थावरजंगमं लोकमनुचरंति गच्छंति संसारे भ्रमंतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

॥ टीका–लेशतोजंतुभेदप्रदर्शनद्वारेण तत्पर्यटनमाह । ( जेरक्कसाइत्यादि ) ये केचन व्यंतरभेदाराक्षसात्मानः । तद्ग्रहणाच्च सर्वेपि व्यंतरा गृह्यंते । तथा यमलौकिकात्मनोंऽवर्ष्यादयस्तडुपलक्षणात्सर्वेभवनपतयस्तथा येच सुराः सौधर्मादिवैमानिकाः । चशब्दाज्ज्योतिष्काः सूर्यादयस्तथा ये गांधर्वाविद्याधराव्यंतरविशेषावा । तद्ग्रहणं च

प्राधान्यख्यापनार्थं । तथा कायाः पृथिवीकायादयः षडपि गृह्यंतइति । पुनरन्येन प्रकारेण सत्वान्संजिघृक्षुराह । ये केचनाकाशगामिनः संप्राप्ताकाशगमनलब्धयश्चतुर्विधदेवनिकायविद्याधरपक्षिवायवः । तथा येच पृथिव्याश्रिताः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियास्ते सर्वेपि स्वकृतकर्मभिः पुनःपुनर्विविधमनेकप्रकारं पर्यासं परिक्षेपमरहट्टघटीन्यायेन परिभ्रमणमुपसामीप्येन यांति गच्छंतीति ॥ १३ ॥ किंचान्यत् । (जमाहुरित्यादि) । यं संसारसागरमाहुरुक्तवंतस्तीर्थकरगणधरादयः । तद्विदः कथमाहुः स्वयंभुरमणसलिलौघवदपारं । यथा स्वयंभुरमणसलिलौघोन केनचिज्जलचरेण स्थलचरेण वा लंघयितुं शक्यते एवमयमपि संसारसागरः सम्यग्दर्शनिनमंतरेण लंघयितुं न शक्यतइति दर्शयति । जानीहि अवगच्छ । णमिति वाक्यालंकारे । भवगहनमिदं चतुरशीतियोनिलक्षप्रमाणं यथासंभवं संख्येयाऽसंख्येयानंतस्थितिकं दुःखेन मुच्यतइतिदुर्मोक्षं दुरुत्तरमस्तिवादिनामपि किंपुनर्नास्तिकानां । पुनरपि भवगहनोपलक्षितं संसारमेव विशिनष्टि । यत्र यस्मिन् संसारे सावद्यकर्मानुष्ठायिनः कुमार्गपतिताअसत्समवसरणग्राहिणो विषण्णाअवसक्ताविषयप्रधानाअंगनाविषयांगनास्ताभिर्यदि वा विषयाश्चांगनाश्च विषयांगनास्ताभिर्वशीकृताः सर्वत्र सदनुष्ठाने ऽवसीदंति तएवंविषयांगनादिके पंचके विषण्णा द्विधाप्याकाशाश्रितं पृथिव्याश्रितंच लोकं यदि वा स्थावरजंगमलोकमनुसरंति गच्छंति । यदिवा द्विधापि लिंगमात्रप्रव्रज्य याऽविरत्याचरागद्वेषाभ्यां वा लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं स्वकृतकर्मप्रेरिताअनुसंचरंति बंभ्रम्यंतइति ॥ १४ ॥

न कम्मणा कम्म खवेंति बाला, अकम्मणा कम्म खवेंति धीरो ॥ मेधाविणो लोभमया वतीता, पाठांतरे (लोभभयावतीता) संतोसिणो नोपकरेंति पावं ॥ १५ ॥ ते तीयउप्पन्नमणागयाइं,लोगस्स जाणंति तहागयाइं॥णेतारो अन्नेसि अणन्नणेया, बुद्धा हु ते अंतकडा भवंति॥१६॥

अर्थ–( नकम्मणाकम्मखवेंतिबाला के० ) अज्ञानी एवो मिथ्यामतिवालुं जीव कर्मजे सावद्यारंभ तेणे करी पूर्वकृतकर्मने खपावे नही परंतु साहमां नवा कर्मनुं बंध करे ( अकम्मणाकम्मखवेंतिधीरा के० ) आश्रवने सर्व प्रकारें रोधन करवा थकी सैलेसी करणावस्थायें धीर एटले महासत्ववंत एवो पुरुष कर्मने खपावेछे. ( मेधाविणोलोभमयावतीता के० ) जे मेधावि एटले पंमित महानुभाव होय ते लोभमय एटले परिग्रह तेथकी अतीत एटले रहित होय ( संतोसिणोनोपकरेंतिपावं के० ) एम संतोषी थतो पाप नकरे ॥ १५ ॥ जे पुरुष एवा होय ते केवा थाय ते कहेछे. ( तेतीयउप्पन्नमणागयाइं के० ते ) श्रीवीतराग अतीत, अनागत अने वर्तमान ए त्रणे काल आश्री

( लोगस्सजाणंतितहागयाइं के० ) तथागत एटले यथावस्थित जेमछे तेवीरीते लोक मांहे सर्व जीवोना भावी सुखदुःखादिकना जाण एवा थाय परंतु विभंग ज्ञानीनी पेरे आयुंपाछुं नजाणे (णेतारोअन्नेसिअणन्नणेया के०) एवा जीवो अन्य जीवोने संसारनो पार पमाडे परंतु तेने अन्य कोइ तत्वनो देखाडनार नथाय किंतुते ढुइतिनिश्चे पोतेज (बुद्धाके०) तत्वना जाण थका (अंतकडाभवंतिके०) कर्मनो अंतकरनार होयछे ॥१६॥

॥ दीपिका–कर्मणा सावद्यारंभेण कर्म पापं न क्षपयंति बालामूढाः । अकर्मणा आश्रवनिरोधेन तु कर्म क्षपयंति धीरामहासत्त्वाः । मेधाविनः प्रज्ञावंतोलोभमयं परि ग्रहमेवातीतालोभातीतावीतरागाः संतोषिणः संतुष्टास्ते एवंविधाअवीतरागाअपि पा पं कर्म न कुर्वंति । लोभभयादतीताइति क्वचित्पाठः । लोभश्च भयं च लोभाद्भी भयं तस्मादतीताअतएव संतोषिणइति । लोभाईभावं दर्शयताऽपरकषायेभ्योभयस्याधिक त्वमुक्तं ॥ १५ ॥ ते वीतरागाअतीतानि पूर्वजन्मकृतानि प्रत्युत्पन्नानि वर्तमानानि अ नागतान्यागामिभवभावीनि सुखदुःखानि लोकस्य प्राणिगणस्य तथागतानि यथास्थिता नि जानंति ते जिनाः श्रुतकेवलिनोवा ऽन्येषां प्राणिनां मोक्षंप्रति नेतारः प्रापकास्तेच स्वयंबुद्धत्वादन्येन न नीयंते तत्त्वावबोधं कार्यंतइत्यनन्यनेयास्तेबुद्धाज्ञाततत्त्वास्तीर्थंकर गणधरादयोदुनिश्चितमंतकराः संसारपारगाभवंति ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । ( णकम्मणेत्यादि ) ते एवमसत्समयसरणाश्रितामिथ्यात्वादि भिर्दोषैरभिभूताः सावद्येतरविशेषानभिज्ञाः संतः कर्मक्षपणार्थमप्युद्यताभिर्विवेकतया सावद्यमेव कर्म कुर्वते। नच कर्मणा सावद्यारंभेण कर्म पापं क्षपयंत्यपनयंत्यज्ञत्वाद्बाला इव बालास्तइति । यथाच कर्म क्षिप्यते तथा दर्शयति । अकर्मणात्वाश्रवनिरोधेन तु अंततः शैलेश्यवस्थायां कर्म क्षपयंति धीरामहासत्त्वाः सद्वैद्याइव चिकित्सयाऽऽमयानि ति । मेधा प्रज्ञा विद्यते येषांते मेधाविनोहिताहितप्राप्तिपरिहाराभिज्ञालोभमयं परिग्रहमे वातीताः परिग्रहातिक्रमाल्लोभातीतावीतरागाइत्यर्थः । संतोषिणोयेन केनचित्संतुष्टाश्च वीतरागाअपीति । यदिवा यतएवाऽतीतलोभाअतएव संतोषिणइति । तएवंभूताभगवं तः पापमसदनुष्ठानापादितं कर्म न कुर्वंति नाददति । क्वचित्पाठः । लोभभयादतीताः । लोभश्च भयं च समाहारद्वंद्वः । लोभाद्भी भयं तस्मादतीताः संतोषिणइति । न पुनरु क्ता शंका विधेयेत्यतोलोभातीतत्वेन प्रतिषेधांशोदर्शितः । संतोषिणइत्यनेन च विध्यंश इति । यदिवा लोभातीतग्रहणेन समस्तलोभाभावः । संतोषिणइत्यनेनतु सत्यप्यवीतरा गत्वेनोत्कटलोभाइति । लोभाभावं दर्शयन्नपरकषायेभ्योलोभस्य प्राधान्यमाह । येच लो भातीतास्तेऽवश्यं पापं न कुर्वंतइति स्थितं ॥ १५ ॥ येच लोभातीतास्ते किंभूताभवं

तीत्यतआह । ( तेतीयइत्यादि ) ते वीतरागाअल्पकषायावा लोकस्य पंचास्तिकायात्मक स्य प्राणिलोकस्य वाऽतीतान्यन्यजन्माचरितानि उत्पन्नानि वर्तमानावस्थायीन्यनागतानि च नवांतरनावीनि सुखदुःखादीनि तथागतानि यथावस्थितानि तथैवाऽवितथं जानंति न विनंगज्ञानिनइव विपरीतं पश्यंति । तथाहि । आगमः । अणगारेणं नंतेमाई मिछादिही रायगिहेण यरेसंमोहए वाणारसीए नयरीए रूवाइं जाणाइ पासइ जावसे दंसणे विवच्चा से नवतीत्यादि । ते चातीतानागतवर्तमानज्ञानिनः प्रत्यक्षज्ञानिनश्चतुर्दशपूर्वविदोवा ऽप्रत्यक्षज्ञानिनोऽन्येषां संसारोत्तितीर्षूणां नव्यानां मोक्षंप्रति नेतारः सदुपदेशं प्रत्युपदेष्टारोनवंति । नच ते स्वयंबुद्धत्वादन्येन नीयंते तत्वावबोधं कार्यंतइत्यनन्यनेयाहिताहितप्राप्तिपरिहारंप्रति नान्यस्तेषां नेता विद्यतइति नावः । ते च बुद्धाः स्वयंबुद्धास्तीर्थकरगणधरादयः । तुशब्दश्च शब्दार्थे विशेषणेच । तथाच प्रदर्शितएव । तेच नवांतकराः संसारोपादाननूतस्य वा कर्मणोंतकरानवंतीति ॥ १६ ॥

ते णेव कुवंति ण कारवंति, नूताहिसंकाइ दुगुंठमाणा ॥ सयाजता विप्पणवंति धीरा, विसत्ति धीरा पाठांतरे (विसतिवीरा) य हवंति एगे ॥ १७ ॥ मृहरे य पाणे वुड्ढे य पाणे, ते आत्तठ पासइ सवलोए ॥ उवे हती लोगमिणं महंतं, बुद्धेऽपमत्तेसु परिवएज्जा ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे तेमनी क्रिया केवी होय ते कहेले. ( ते के० ) ते वीतराग सम्यक् ज्ञानी ते सावद्यानुष्ठानरूप एवी जे ( नूताहि संकाइ दुगुंठमाणा के० ) नूत एटले प्राणी तेनी हिंसानी शंकायें दुर्गंगित एटले प्राणीनी हिंसाने निंदता थका ( णेवकुवंति के०) पोते हिंसा करे नही तथा ( णकारवंति के० ) अन्य पाशे हिंसा करावे नही. उपलक्षण थकी जे हिंसा करतो होय तेने अनुमोदे नही तेमज मृषा पोते बोले नही बीजा पाशे बोलावे नही तथा बोलताने अनुमोदन आपे नही एरीते सर्व पंचमहाव्रतोने सदाकाल पाले एम ( सयाजता के० ) सर्व काल यत्नवंत एटले पाप थकी निवर्त्ते ( विप्पणवंतिधीरा के० ) संयमने विषे नम्र होय विनयवंत होय एवा धैर्यवंत शुनट तुल्य ठतो संयमरूप नूमिने विषे कर्मरूप शुनटोने जीतवा समर्थ एवो (विसत्तिधीरायहवंतिएगोके०) कोइएक शुद्ध सम्यक् मार्ग जाणी धैर्यवंत शूरवीर थाय ते परीसहादिकने जीते ॥ १७ ॥ हवे शुं जाणीने सावद्यानुष्ठान नकरे ते कहेले. ( मृहरेयपाणे वुड्ढेयपाणे के० ) मृहरा एटले बालक ते अंहीं पृथिविकायादिक तथा बेंड्रीयादिक लघु जातीना जीवो लेवा तेपण जीवले अने वुड्ढेय एटले महोटा हस्ति प्रमुख ते पण जीवले एवुं जाणीने ( तेआत्तठपासइ सवलोए के० ) ते सहुजीवने सर्व चौद रज्वात्मक

लोकने विषे पोतानाआत्म समान देखे ( उव्वेहती लोगमिणं महंतं के० ) ए महांत लोक एटले संसार तेने सारीरीते आलोचीने सर्वस्थानक अशाश्वता जाणीने आ संसारमां कोइ सुख नथी एवो जाणीने ( बुद्ध के० ) जे पंमित तत्वना जाण होय ते ( अप्पमत्तेसुपरिव्वएज्जा के० ) अप्रमत्तपणे संयमने विषे प्रवर्त्ते शुद्धो संयम पाले १ ८

---

॥ दीपिका–ते तीर्थंकरादयः पापं कर्म नैव कुर्वंति स्वयं । नवाऽन्येन कारयंति कुर्वंतमन्यं नानुजानंति नूतानिशंकया प्राणिघातजयेन पापं कर्म जुगुप्समानाः । एवं विधास्ते सदा सर्वकालं यताः संयताविप्रणमंति विविधं संयमानुष्ठानं प्रति प्रव्हीनवंति तत्पराः सुधीराः । तथा एके केचन गुरुकर्माणो (विणत्ति) विज्ञप्तिर्ज्ञानं तन्मात्रेणैव वीरानानुष्ठानेन स्युः । नच ज्ञानमात्रेण सिद्धिः । यतः । अधीत्य शास्त्राणि नवंति मूर्खा, यस्तु क्रियावान् पुरुषः सविद्वान् ॥ संचिंत्यतामोषधमातुरं हि न ज्ञानमात्रेण करोत्यरोगम् ॥ १ ॥ १७ ॥–ये डहराजवः कुंथ्वाद्याः सूक्ष्मावा ते सर्वेपि प्राणाः प्राणिनोये च वृद्धाबादरास्तान् सर्वानात्मवत्पश्यति सर्वलोके । तथा लोकमिमं षड्जीवैराकुलत्वान्महांतमुत्प्रेक्षते । अनाद्यनंतत्वाद्वा महांतं । यतोनव्याअपि केचन सर्वेणापि कालेन नसेत्स्यंतीति । यद्यपि द्रव्यतः षड्द्रव्यात्मकत्वात् क्षेत्रतश्चतुर्दशरज्जुमानत्वात्परिमितोलोकस्तथापि कालतोऽनाद्यनंतत्वान्नावतः पर्यायाणामंतत्वान्महान् लोकस्तमुत्प्रेक्षते । बुद्धोज्ञाततत्त्वोऽप्रमत्तेषु यतिषु तथानूतएव परिव्रजेत्संयमे ॥ १८ ॥

---

॥ टीका–यावदद्यापि नवांतं न कुर्वंति तावत्प्रतिषेध्यमंशं दर्शयितुमाह । ( तेणेव कुव्वंतीत्यादि ) ते प्रत्यक्षज्ञानिनः परोक्षज्ञानिनोवा विदितवेद्याः सावद्यमनुष्ठानं नूतोपमर्दानिशंकया पापं कर्म जुगुप्संतः संतोन स्वतः कुर्वंति नाप्यन्येन कारयंति कुर्वंतमप्यपरं नानुमन्यन्ते । तथा स्वतोन मृषावादं जल्पंति नान्येन जल्पयंति नाप्यपरं जल्पंतमनुजानंत्येवमन्यान्यपि महाव्रतान्यायोज्यानीति । तदेवं सदा सर्वकालं यताः संयताः पापानुष्ठानान्निवृत्ताविविधं संयमानुष्ठानं प्रति प्रणमंति प्रव्हीनवंति । के ते वीरामहापुरुषाइति । तथैकेचन हेयोपादेयं विज्ञायाऽपिशब्दात्सम्यक् परिज्ञाय वा तदेव निःशंकं यज्जिनैः प्रवेदितमित्येवं कृतनिश्चयाः कर्मणि विदारयितव्ये वीरानवंति । यदिवा परीषहोपसर्गानीकविजयाद्वीरा इति । पांगतरंवा ( विणति वीराय नवंति एगे ) एके केचन गुरुकर्माणोल्पसत्त्वाः विज्ञप्तिर्ज्ञानं तन्मात्रेणैव वीरानत्वनुष्ठाने नच ज्ञानादेवाऽनिजपितावाप्तिरुपजायते । तथाहि । अधीत्यशास्त्राणि नवंति मूर्खायस्तुक्रियावान पुरुषः स विद्वान् ॥ संचिंत्यतामौषधमातुरं हि न ज्ञानमात्रेण करोत्यरोगं ॥ १ ॥ १७ ॥ कानि

पुनस्तानि नूतानि यच्चंकयाऽरंनं जुगुप्संति संतइत्येतदाशंक्याह । ( डहरेयइत्यादि ) ये केचन डहरेति लघवः कुंथ्वादयः सूक्ष्मावा ते सर्वेपि प्राणाः प्राणिनोये च वृद्धा बादरशरीरिणस्तान्सर्वानप्यात्मतुल्यान् आत्मवत्पश्यति सर्वस्मिन्नपि लोके यावत्प्रमाणं मम तावदेव कुंथोरपि यथावा मम डुःखमननिमतमेवं सर्वलोकस्यापि सर्वेषामपि प्राणिनां डुःखमुत्पद्यते डुःखाडुद्दिजंति । यथाचागमः । पुढविकाएणं नंते अक्कंते समाणे केरिसयं वेयणं वेएइइत्याद्याः सूत्रालापकाइति मत्वा तेपि नाक्रमितव्यान संघट्टनीया इत्येवं यः पश्यति तथा लोकमिमं महांतमुत्प्रेक्षते पड्जीवसूक्ष्मबादरनेदैराकुलत्वान्महांतं । यदिवाऽनादिनिधनत्वान्महान् लोकः । तथाहि । कालतोनव्याअपि केचन सर्वेणापि कालेन न सेत्स्यंतीति । यद्यपि द्रव्यतः पड्द्रव्यात्मकत्वात् क्षेत्रतश्चतुर्दशरज्जुप्रमाणतया सावधिकोलोकस्तथापि कालतोनावतश्चानाद्यनिधनत्वात्पर्यायाणां चानंतत्वान्महान लोकस्तमुत्प्रेक्षतइति । एवंच लोकमुत्प्रेक्षमाणोबुद्धोऽवगंतव्यः । सर्वाणि प्राणिस्थानान्यशाश्वतानि तथा नात्रापसदे संसारे सुखलेशोप्यस्तीत्येवं मन्यमानोऽप्रमत्तेषु संयमानुष्ठायिषु मध्ये तथानूतएव परिसमंताद्व्रजेद्यदिवा बुद्धः सन् प्रमत्तेषु गृहस्थेषु अप्रमत्तः सन् संयमानुष्ठाने परिव्रजेदिति ॥ १७ ॥

जे आयउ परउ वा वि णच्चा, अलमप्पणो होंति अलं परेसिं ॥
तं जोइनूतं च सया वसेज्जा, जे पाउ कुज्जा अणुवीति धम्मं॥१८॥
अत्ताण जो जाणति जो य लोगं, गइं च जो जाणइ णागइं च॥
जो सासयं जाण असासयं च, जातिं मरणं च जणोववायं॥२०॥

अर्थ—( जेआयउपरउवाविणच्चा के० ) जे कोइ पोताना आत्माने तथा परना आत्माने सम्यक् प्रकारे जाणे एटले जेवीरीते पोताना आत्माने जाणे तेवीरीते परना आत्माने पण जाणे ( अलमप्पणोहोंतिअलंपरेसिं के० ) ते पुरुष पोताने उद्धरवाने समर्थ होय अने बीजाने पण उद्धरवाने समर्थ थाय (तंजोइनूतंचसयावसेज्जा के०) ते ज्योतिनूत प्रकाशवान चंद्रादित्य प्रदीपसमान गुरुने जाणीने सर्व काले सेवे ( जेपाउकुज्जाअणुवीतिधम्मं के० ) जे विचारीने श्रीवीतराग नाषित धर्मना स्वरूपने सम्यक् प्रकारें करी प्रगट करे ॥ १८ ॥ (अत्ताणजोजाणतिजोयलोगं के०) जे पोताना आत्माने सम्यक् प्रकारे जाणे जे लोकालोकनुं स्वरूप जाणे (गइंचजोजाणइणागइंचके०) जे जीवनी गति आगति जाणे अथवा चारे गतिनुं स्वरूप जाणे तथा अनागतनुं स्वरूप जाणे एटले ज्यां गयो थको जीव फरी नआवे एवी जे मोक्षगति तेना स्वरूपने जाणे ( जोसासयंजाणअ

सासयंचके०) तथा जे शाश्वता पदार्थ अने अशाश्वता पदार्थने पण जाणे (जातिंमरणंचउ णोववायं के० ) तथा जे जीवना जन्म अने मरणने पण जाणे तथा जन एटले लोक तेनुं उपपात एटले उत्पत्ति देव नारकादिकने विषे थायछे ते पण जाणेछे ॥ २०॥

---

॥ दीपिका–यआत्मनः स्वयं सर्वज्ञोगणधरादिर्वा परतस्तीर्थकरादेर्जीवादीन् पदार्थान् ज्ञात्वा परेन्यउपदिशति सआत्मनस्त्रातुमलं समर्थः परेषांच तं सर्वज्ञं गणधरादिकं वा ज्योतिर्नूतं पदार्थप्रकाशकत्वाच्चंद्रादित्यतुल्यं सदाऽऽवसेत सेवेत नित्यं गुरुसेवी नवेत् । यतः । नाणस्स होइ नागी, थिरयरउदंसणाचरित्तेय ॥ धन्नां आवकडाए गुरुकुलवासं नमुंचंति ॥ १ ॥ ते के इत्याह । ये धर्मं श्रुतचारित्राख्यं साधुधर्मं श्राद्धधर्मंवाऽनुविचिंत्य विचार्य तमेव धर्मं प्राडुष्कुर्युर्यथोक्तानुष्ठानतः प्रकटयेयुस्ते गुरुसेविनः स्युः॥१०॥ आत्मानं यो जानाति यश्च लोकं चराचरं चशब्दादलोकं च जानाति । यश्च जीवानां गतिमागतिं जानाति अनागतिं कुत्र गतानां नागमनं स्यादिति। यश्च शाश्वतं नित्यं सर्वं वस्तु इव्यास्तिकनयादशाश्वतं वा ऽनित्यं पर्यायनयाश्रयणात् चशब्दान्नित्यानित्यं च सर्वं योजानाति । यदागमः । णेरइआदव्वठया एलासयानावठ्ठाएअसालया । एवं तिर्यगादयोपि । अथवा शाश्वतं मोक्षमशाश्वतं नवं तथा जातिमुत्पत्तिं मरणं च नारकादीनां तथा जनानां सत्त्वानामुपपातं जानाति । उपपातोदेवनारकयोरुत्पत्तिरन्येषां ज्ञेया॥२०॥

---

॥ टीका–किंच । ( जेआयउइत्यादि ) यः स्वयं सर्वज्ञआत्मनस्त्रैलोक्योदरविवरवर्तिपदार्थदर्शी यथावस्थितं लोकं ज्ञात्वा तथा यश्च गणधरादिकः परतस्तीर्थकरादेर्जीवादीन् पदार्थान् विदित्वा परेन्यउपदिशति सएवंनूतोहेयोपादेयवेद्यात्मनस्त्रातुमलमात्मानं संसारावटात्पालयितुं समर्थोनवति । तथा परेषां सडुपदेशदानतस्त्राता जायते तं सर्वज्ञं स्वतएव सर्ववेदिनं तीर्थकरादिकं परतोवेदिनं च गणधरादिकं ज्योतिर्नूतं पदार्थप्रकाशकतया चंद्रादित्यप्रदीपकल्पमात्महितमिछन् संसारडुःखोद्विग्नः कृतार्थमात्मानं नावयन् सततमनवरतमावसेत सेवेत गुर्वंतिकएव यावज्जीवं वसेत् । तथाचोक्तं । नाणस्स होइ नागी, थिरयरउ दंसणे चरित्तेय ॥ धन्ना आवकहाए, गुरुकुलवासं ण मुंचंति । कएवं कुर्युरिति दर्शयति । ये कर्मपरिणतिमनुविचिंत्य माणुस्सखेत्तजाइत्यादि डुर्लनां च सद्धर्मावाप्तिं सद्धर्मंवा श्रुतचारित्राख्यं क्षांत्यादिकं दशविधसाधुधर्मं वाऽनुविचिंत्य पर्यालोच्य ज्ञात्वा वा तमेव धर्मं यथानुष्ठानतः प्राडुष्कुर्युः प्रकटयेयुस्ते गुरुकुलवासं यावज्जीवमासेवंतइति । यदिवा ये ज्योतिर्नूतमाचार्यं सततमासेवंति तथा आगमज्ञाधर्ममनुविचिंत्य लोकं पंचास्तिकायात्मकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं वा प्राडुष्कुर्युरिति

क्रिया ॥ १ए ॥ किंचान्यत् । ( अत्ताणमित्यादि ) यो ह्यात्मानं परलोकयायिनं शरीरा द्व्यतिरिक्तं सुखदुःखाधारं जानाति यश्चात्महितेषु प्रवर्त्तते सआत्मज्ञोनवति । ये न चात्मा यथावस्थितस्वरूपोऽहंप्रत्ययग्राह्योनिज्ञातोनवति तेनैवायं सर्वोपि लोकः प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपोविदितोनवति सएव चात्मज्ञोस्तीत्यादिक्रियावादं नापितुमर्हतीति द्वितीयवृत्तांतस्य क्रिया । यश्च लोकं चराचरं वैशाखस्थानस्थकटिस्थकरयुग्मपुरुषा कारं चशब्दादलोकं चानंताकाशास्तिकायमात्रं जानाति । यश्च जीवानामागतिमागमनं कुतः समागतानारकास्तिर्यंचोमनुष्यादेवाः केर्वा कर्मभिर्नारकादित्वेनोत्पद्यंतइत्येवं यो जानाति । तथाऽनागतं चाऽनागमनं च कुत्र गतानां नागमनं नवति चकाराद्गमनोपायं च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं योजानाति । तत्रानागतिः सिद्धिरशेषकर्मच्युतिरूपा लोकाग्रा काशदेशस्थानरूपा वा ग्राह्या साच सादिरपर्यवसाना । यश्च शाश्वतं नित्यं सर्ववस्तुजातं द्रव्यास्तिकनयाश्रयादशाश्वतं वा नित्यं प्रतिक्षणविनाशरूपं पर्यायनयाश्रयणात् चकारा न्नित्यानित्यं चोनयाकारं सर्वमपि वस्तुजातं योजानाति । तथाहि । आगमः । णेरइया दव्वठ्याएसासयाजावठ्याएअसासया । एवमन्येपि तिर्यगादयोद्रष्टव्याः । अथवा निर्वाणं शाश्वतं संसारीऽशाश्वतस्तंत्रतानां संसारिणां स्वकृतकर्मवशगानामितश्चेतश्च गमनादिति । तथा जातिमुत्पत्तिं नारकतिर्यङ्मनुष्यामरजन्मलक्षणां च मरणं वाऽऽयुष्कक्षयलक्षणं । त था जायंतइति जनाः सत्त्वास्तेषामुपपातं जानाति सच नारकदेवयोर्नवतीति । अत्रच ज न्मचिंतायामसुमतामुत्पत्तिस्थानं योनिर्निरूपणीया साच सचित्ताचित्तमिश्राच तथा शीता, उष्णा मिश्राच तथा संवृता विवृता मिश्राचेत्येवं सप्तविंशतिविधेति । मरणं पुनस्तिर्यङ्म नुष्ययोश्च्यवनं ज्योतिष्कवैमानिकानामुद्वर्तनं नवनपतिव्यंतरनारकाणामिति ॥ २० ॥

अहो वि सत्ताण विउट्टणं च, जो आसवं जाणति संवरं च ॥
दुक्खं च जो जाणति निज्जरं च, सो नासिउ मरिहइ किरियवादं
॥ २१ ॥ सद्देसु रूवेसु असज्जमाणो, गंधेसु रसेसु अदुस्समा
णे ॥ णो जीवितं णो मरणाहिकंखी, आयाणगुत्ते वलया विमु
क्के तिबेमि ॥ २२ ॥ इतिश्री समवसरणमध्ययनं द्वादशमं संमत्तं॥

अर्थ-( अहोविसत्ताण विउट्टणंच के० ) अधोगतियें नरकादिकने विषे अशुन कर्म ने विपाके जीवने शरीर पीडादिक संताप उपजेठे ते सर्व जाणे (जोआसवंजाणतिसंव रंच के० ) जे आश्रव इंडिय कषाय योग अने अव्रत इत्यादिक सर्व जाणे तथा संवर ते समिति गुप्ति अने परिसह इत्यादिक सर्व जाणे ( दुक्खंचजोजाणतिनिज्जरंच के० )

तथा पापोदयथकी दुःख उत्पन्न थाय ते जाणे अने उपलक्षणथकी पुण्यना बेंता लीश भेद पण जाणे वली निर्ज्जराना बारभेदने पण जाणे ( सोभातिउमरिहइकिरय वादं के० ) तथा बंधना चार भेदने पण जाणे ते परमार्थथकी क्रियावाद बोलवा योग्य थाय ॥ २१ ॥ एवा जे सम्यक् वादी तेने फल देखाडेछे. ( सद्देसुरूवेसुअसज्जमाणो के० ) शब्द जे वीणा वंश प्रमुख श्रोत्रेंद्रियने सुखना आपनार तेने विषे तथा रूप ते अनेक काष्टकर्म चित्रकर्म तथा लिप्यकर्मादिकने विषे असज्जमान एटले तेना उपर रागद्वेषने टालतो थको तथा ( गंधेसुरसेसुअदुस्समाणे के० ) गंधने विषे, रसने विषे अदुसमान एटले द्वेषने अण करतो थको ( णोजीवितंणोमरणाहिकंखी के० ) जीवितव्य अने मरणनी वांछा नकरे समता भावे वर्ते ( आयाणगुत्ते के० ) आदान एटले संयम तेने विषे गुप्त एटले तेनो रक्षपाल छतो (वलयाविमुक्के के०) वलय एटले माया तेना थकी विमुक्त छतो संयम पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२२॥ इतिश्री द्वितियसूत्रकृतांगनेविषे समवसरण नामे बारमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

---

॥ दीपिका—सत्त्वानां स्वकर्मभुजामधोनारकादौ विकुट्टनीं पीडां योजानाति । यश्चाश्रवं संवरं च जानाति तथा दुःखं चशब्दात्सुखंच तथा तपसा निर्जरां च जानाति । कोर्थः । बंधहेतून् कर्मक्षयहेतूंश्च तुल्यतया जानाति । यतः ॥ यथाप्रकारायावंतः, संसारावेशहेतवः ॥ तावंतस्तद्विपर्यासा, निर्वाणावेशहेतवः ॥१॥ सएव तत्त्वतोभाषितुं वक्तुमर्हति क्रियावादं जीवाद्यस्तित्वरूपमिति । अत्रान्यमतखंडनं वृत्तितोज्ञेयं ॥ २१ ॥ शब्देषु रूपेषु मनोज्ञेषु असज्जन् संगमकुर्वन् गंधेषु रसेष्वमनोज्ञेषु अद्विष्यन् द्वेषमकुर्वन् । शब्दादिषु इंद्रियविषयेष्विष्टानिष्टेषु रागद्वेषरहितइत्यर्थः । एवंविधोजीवितमसंयमजीवितं नाभिकांक्षेत् परीषहोपसर्गैः पीडितोमरणमपि नाभिकांक्षेत् । आदानं संयमस्तेन गुप्तः स हि वलयं भाववलयं माया तया विमुक्तइति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ समाप्तं समवसरणाख्यं द्वादशमध्ययनं ॥

---

॥ टीका—किंच ( अहोविइत्यादि ) सत्वानां स्वकृतकर्मफलभुजामधस्तान्नारकादौ दुष्कृतकर्मकारिणां विविधां विरूपां वा कुट्टनां जातिजरामरणरोगशोककृतां शरीरपीडां च शब्दात्तदभावोपायं योजानाति । इदमुक्तंभवति । सर्वार्थसिद्धादारतोध सप्तमीं नरकभुवं यावदसुमंतः सकर्माणोविवर्तंते तत्रापि ये गुरुतरकर्माणस्तेऽप्रतिष्ठाननरकयायिनोभवंतीत्येवं योजानीते तथा आश्रवत्यष्टप्रकारकं कर्म येन स आश्रवः सच प्राणातिपातरूपोरागद्वेषरूपोवा मिथ्यादर्शनादिकोवेति तं तथा संवरणमाश्रवनिरोधरूपं यावदशेषयो

गनिरोधस्वनावं चकारात्पुण्यपापे च योजानीते तथा दुःखमसातोदयरूपं तत्कारणं च योजानाति सुखं च तद्विपर्ययनूतं योजानाति तपसा निर्जरांच । इदमुक्तं नवति । यः कर्मबंधहेतून् तद्विपर्यासहेतूंश्च तुल्यतया जानाति । तथाहि । यथाप्रकारायावंतः, संसारावेशहेतवः ॥ तावंतस्तद्विपर्यासा, निर्वाणावेशहेतवः ॥ १ ॥ सएव परमार्थतोनापितुं वक्तुमर्हति । किंतदित्याह । क्रियावादमस्ति जीवोऽस्ति पुण्यमस्ति च पूर्वाचरितस्य कर्मणः फलमित्येवं वादमिति। तथाहि।जीवाजीवाश्रवसंवरबंधपुण्यपापनिर्जरामोक्षरूपानवापि पदार्थाः श्लोकद्वयेनोपात्तास्तत्र यश्चात्मानं जानातीत्यनेन जीवपदार्थोलोकमित्यनेनाजीवपदार्थस्तथा गत्या गतिः शाश्वतेत्यादिनानयोरेव स्वनावोपदर्शनं कृतं । तथाश्रवसंवरौ स्वरूपेणैवोपात्तौ । दुःखमित्यनेन तु बंधपुण्यपापानि गृहीतानि तदविनानावित्वाद्दुःखस्य । निर्जरायास्तु स्वानिधानेनैवोपादानं तत्फलनूतस्य मोक्षस्योपादानं द्रष्टव्यमिति । तदेवमेतावंतएव पदार्थास्तदन्युपगमे नवास्तीत्यादिकः क्रियावादोऽन्युपगतोनवतीति । यश्चैतान् पदार्थान् जानात्यन्युपगच्छसपरमार्थतः क्रियावादं जानाति ।ननुचाऽपरदर्शनोक्तपदार्थपरिज्ञानेन सम्यक्त्वादिकं कस्मान्नान्युपगम्यते तदुक्तपदार्थानामेवाघटमानत्वात् । तथाहि । नैयायिकदर्शनेन तावत्प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टांतसिद्धांतावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितंडाहेत्वानासच्छलजातिनिग्रहस्थानानीत्येते षोडश पदार्थाश्रनिहिताः । तत्र हेयोपादेयप्रवृत्तिरूपतया येन पदार्थपरिच्छित्तिः क्रियते तत्प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणं । तच्च प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दन्नेदाच्चतुर्द्धा । तत्रेंद्रियपदार्थसंनिकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेशमव्यनिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षं ।·तदत्रेंद्रियार्थयोर्यः संबंधस्तस्मायदुत्पन्नं नानिव्यक्तं ज्ञानं न सुखादिकमव्यपदेश्यमिति । व्यपदेशत्वेनाशब्दप्राप्तेरव्यनिचारि तद्विचंद्रज्ञानवद्यनिचरतीति व्यवसायात्मकमिति । निश्चयात्मकं प्रत्यक्षं तत्रास्य प्रत्यक्षता न बुध्यते । तथाहि । यत्रात्मार्थग्रहणंप्रति साक्षाद्व्याप्रियते तदेव प्रत्यक्षं । तच्चावधिमनःपर्यायकेवलात्मकं।एतच्चापरोपाधिद्वारेण प्रवृत्तेरनुमानवत्परोक्षमिति । उपचारप्रत्यक्षं तु स्यान्नचोपचारस्तत्त्वचिंतायां व्याप्रियतइति।अनुमानमपि पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टमिति त्रिधा । तत्र कारणात्कार्यानुमानं पूर्ववत्कार्यात्कारणानुमानं शेषवत्सामान्यतोदृष्टांतनूतमेकं विकसितं दृष्ट्वा पुष्पिताश्चूताजगतीति । यदिवा देवदत्तादौ गतिपूर्वकां स्थानात् स्थानांतरावाप्तिं दृष्ट्वाऽऽदित्ये गत्यनुमानमिति । तत्राप्यन्यथानुपपत्तिरेव गमिका न कारणादिकं तयाविना कारणस्य कार्यंप्रति व्यनिचारात् । यत्रतु सा विद्यते तत्र कार्यकारणादिव्यतिरेकेणापि गम्यगमकनावोदृष्टः । तद्यथा । नविष्यति शकटोदयः कृत्तिकादर्शनादिति । तदुक्तं । अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किं॥ नान्यथाऽनुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ १ ॥ अपिच प्रत्यक्षस्याप्रामाण्ये तत्पूर्वकस्या

प्यनुमानस्याप्रामाण्यमिति । प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानं । यथा गौर्गवयस्तथा ऽत्रच संज्ञासंज्ञिसंबंधप्रतिपत्तिरुपमानार्थोऽत्रापि सिद्धायामन्यथानुपपत्तावनुमानलक्षण त्वेन तत्रैवांतर्नावात्पृथक्प्रमाणत्वमनुपपन्नमेव । अथ नास्त्यनुपपत्तिस्ततोव्यनिचाराद प्रमाणंतोपमानस्य । शाब्दमपि न सर्वं प्रमाणं किंतर्ह्याप्तप्रणीतस्यैवागमस्य प्रामाण्यान्न चार्हद्व्यतिरेकेणापरस्याप्तता युक्तियुक्तेत्येतच्चान्यत्र निर्लोडितमिति । किंच सर्वमप्येत त्प्रमाणमात्मनोज्ञानं । ज्ञानं चात्मनोगुणः पृथक्पदार्थतयान्युपगंतुं न युक्तोरूपरसादी नामपि पृथक्पदार्थतापत्तेः । अथ प्रमेयग्रहणेनेंद्रियार्थतया तेप्याश्रिताः सत्यमाश्रिता नतु युक्तियुक्ताः । तथाहि । इव्यव्यतिरेकेण तेपामनावात्तद्ग्रहणेच तेपामपि ग्रहणं सिद्धमेवेति न युक्तं पृथगुपादानं । प्रमेयं त्वात्मशरीरेंद्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यना वफलडुःखापवर्गाः । तत्रात्मा सर्वस्य इष्टोपनोक्ता चेच्छाद्वेपप्रयत्नसुखडुःखज्ञानानुमेयः। सच जीवपदार्थतया गृहीतएवाऽस्मानिरिति । शरीरं तु तस्य नोगायतनं नोगायतनानीं द्रियाणि नोक्तव्याइंद्रियार्थाः । एतदपि शरीरादिकं जीवाजीवग्रहणेनोक्तमस्मानिरिति । उपयोगोबुद्धिरित्येतच्चज्ञानविशेषः । सच जीवगुणतया जीवोपादानतयोपात्तएव। सर्वं विषयमंतःकरणं युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिलिंगं मनस्तदपि इव्यमनःपौजलिकमजीवग्रहणेन गृहीतं नावमनस्त्वात्मगुणत्वाज्जीवग्रहणेनेति। आत्मनः सुखडुःखसंवेदनानां निवर्तनका रणं प्रवृत्तिः सापि पृथक्पदार्थतया नान्युपगंतुं युक्ता । तथाहि । प्रवृत्तिरित्यात्मेच्छा सा चात्मगुणएवात्माऽनिप्रायतया ज्ञानविशेषत्वादात्मानं दूषयतीति दोषः । तद्यथा । अ स्यात्मनो नवेदं शरीरमपूर्वमनादित्वादस्य नाप्यनुत्तरत्वात्संततेरिति । योयमात्मनोध्यवसा यः सदोषोरागद्वेषमोहादिकोवा दोषः । अयमपि दोषोजीवानिप्रायतया तदंतर्नावीति न पृथग्वाच्यः । प्रेत्यनावः परलोकसद्भावोयमपि ससाधनोजीवाजीवग्रहणेनोपात्तः । फलमपि सुखडुःखोपनोगात्मकं तदपि जीवगुणे एवांतर्नवतीति न पृथगुपदेष्टव्यमिति । डुःखमित्येतदपि विविधबाधनायोगरूपमिति फलादतिरिच्यते । जन्ममरणप्रबंधोच्छेदरूप तया सर्वडुःखप्रहाणलक्षणोमोक्षः सचास्मानिरुपात्तएवेति । किमित्यनवधारणात्मकः प्रत्ययः संशयोऽसावपि निर्णयज्ञानवदात्मगुणएवेति । येन प्रत्युक्तः प्रवर्तते तत्प्रयोजनं तदपीच्छाविशेषणत्वादात्मगुणएव । अविप्रतिपत्तिविषयापन्नोऽर्थोदृष्टांतोऽसावपि जीवा जीवयोरन्यतरः। नचैतावनास्य पृथक्पदार्थता युक्ताऽतिप्रसंगादवयवग्रहणेन च तस्योत्त रत्र ग्रहणादिति । सिद्धांतश्चतुर्विधः । तद्यथा । सर्वतंत्राविरुद्धस्तंत्रेऽधिकृतोर्थः सर्वतंत्र सिद्धांतः । यथा स्पर्शनादीनींद्रियाणि स्पर्शादयइंद्रियार्थाः प्रमाणैः प्रमेयस्य ग्रहणमि ति समानं । तंत्रसिद्धः परतंत्रासिद्धः प्रतितंत्रसिद्धांतोयथा सांख्यानां नाऽसतआत्मला नोनच सतः सर्वथाविनाशइति । तथा चोक्तं । नासतोजायते नावोनानावोजायते सत

इति यत्सिद्धावन्यस्यार्थस्यानुषंगेण सिद्धिः सोधिकरणसिद्धांतः । यथेंद्रियव्यतिरिक्तोज्ञानात्माऽस्ति दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणादिति । तत्रानुषंगिणोर्थाइंद्रियनानात्वं नियतविषयाणींद्रियाणि स्वविषयग्रहणलिंगानि च ज्ञातुर्ज्ञानसाधनानि स्पर्शादिगुणव्यतिरिक्तं द्रव्यं गुणाधिकरणमनियतविषयाश्चेतनाइति । पूर्वार्थसिद्धावेतेऽर्थाः सिध्यंति नैतैर्विना पूर्वार्थः संभवतीति । अपरीक्षितार्थाभ्युपगमात्तद्विशेषपरीक्षणमभ्युपगमसिद्धांतः । तद्यथा । किंशब्दइति विचारे कश्चिदाह । अस्तु द्रव्यं शब्दः सतु किंनित्योऽथानित्यइत्येवं विचारः । सचायं चतुर्विधोपि सिद्धांतोन ज्ञानविशेषादतिरिच्यते । ज्ञानविशेषस्यात्मगुणत्वाद्गुणस्य च गुणिग्रहणेन ग्रहणादपृथग्गुपादानमिति । अथावयवाः प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि । तत्र साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञाय नित्यः शब्दोऽनित्योवेति । हिनोति गमयति प्रतिज्ञातमर्थमिति हेतुः । तथोत्पत्तिधर्मकत्वात्साध्यसाधर्म्यात्तद्धर्मभावे दृष्टांतः । उदाहरणं यथा घटइति । वैधर्म्योदाहरणं यदि नित्यं न भवति तदुत्पत्तिमदपि न भवति यथाकाशमिति । तथा न तथेति वा पक्षधर्मोपसंहारउपनयः । तद्यथा । अनित्यः शब्दः कृतकत्वादघटवत्तथाचायं । अनित्यत्वाभावे कृतकत्वमपि नभवत्याकाशवत् तथाऽयमिति । प्रतिज्ञाहेत्वोः पुनर्वचनं निगमनं तस्मादनित्यइति । तत्रामी पंचाप्यवयवायदि शब्दमात्रं ततः शब्दस्य पौद्गलिकत्वात्पुद्गलानां चाजीवग्रहणेन ग्रहणान्नपृथग्गुपादानं न्याय्यमथतज्ज्ञं ज्ञानं ततोजीवग्रहणेनैवोपादानमिति । ज्ञानविशेषपदार्थताभ्युपगमे च पदार्थबहुत्वं स्यादनेकप्रकारत्वाज्ज्ञानविशेषाणामिति । संशयादूर्ध्वं भवितव्यताप्रत्ययः सदर्थपर्यालोचनात्मकस्तर्कः । यथा भवितव्यमत्र स्थाणुना पुरुषेणवेत्ययमपि ज्ञानविशेषएव । नच ज्ञानविशेषाणां ज्ञातुरभिन्नानां पृथक्पदार्थपरिकल्पनं समनुजानते विद्वांसः । संशयतर्काभ्यामुत्तरकालभावी निश्चयात्मकः प्रत्ययः । निर्णयोयमपि प्राग्वन्न ज्ञानादतिरिच्यते । किंचास्य निश्चयात्मकतया प्रत्यक्षादिप्रमाणांतर्भावान्न पृथक्निर्देशोन्याय्यइति । तिस्रः कथावादोजल्पोवितंडा चेति । तत्र प्रमाणतर्कसाधनोपालंभः सिद्धांताविरुद्धः पंचावयवोपपन्नः प्रतिपक्षपरिग्रहोवादः । सच तत्त्वज्ञानार्थं शिष्याचार्ययोर्भवति । सएव विजिगीषुणा सार्धं छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालंभोजल्पः । सएव प्रतिपक्षस्थापनाहीनोवितंडेति । तत्रासां तिसृणामपि कथानां भेदएव नोपपद्यते यतस्तत्त्वचिंतायां तत्त्वनिर्णयार्थं वादोविधेयोन छलजल्पादिना तत्त्वागमः कर्तुं पार्यते । छलादिकं हि परवंचनार्थमुपन्यस्यते । नच तेन तत्त्वावगतिरिति । सत्यपि भेदे नैषां पदार्थता यतोयदेव परमार्थतोवस्तुवृत्त्या वस्त्वस्ति तदेव परमार्थतयाऽभ्युपगंतुं युक्तं । वादास्तु पुरुषेच्छावशेन भवंतोऽनियतावर्तंते तेन तेषां परमार्थतेति । किंच पुरुषेच्छानुविधायिनोवादाः कुक्कुटलावकादिष्वपि पक्षप्रति

पक्षपरिग्रहेण भवंत्यतस्तेषामपि तत्त्वप्राप्तिः स्यान्नचैतदिष्यतइति । असिद्धानैकांतिक विरुद्धाहेत्वाभासाः । हेतुवदाभासंतइति हेत्वाभासास्तत्र सम्यग्घेतूनामपि न तत्त्वव्यव स्थितिः किंपुनस्तदाभासानां। तथाहि। इह यन्नियतं वस्त्वस्ति तदेव तत्त्वं भवितुमर्हति हे तुवस्तु। क्वचिद्वस्तुनि साध्ये हेतवः क्वचिदहेतवइत्यनियतास्तइति । अथ छलं अर्थविधा तोऽर्थविकल्पोपपत्तेरिति । तत्रार्थविशेषे विवक्षितेऽभिहिते वक्तुरभिप्रायादर्थांतरकल्पना वाक्छलं । यथा नवकंबलोऽयं देवदत्तः । अत्र.च नवः कंबलोऽस्येति वक्तुरभिप्रायः। विग्रहे च विशेषोन समासे । तत्रायं छलवादी नवः कंबलोऽस्येत्येतद्भवताभिहितमिति कल्प यति नचायं तथेत्येवं प्रतिषेधयति । तत्र छलमित्यसदर्थाभिधानं। तद्यदि छलं न तर्हि तत्त्वं तत्त्वं चेन्न तर्हि छलं परमार्थरूपत्वात्तस्येति। तदेवं छलं तत्त्वमित्यतिरिक्ता वाचोयु क्तिः । दूषणाभासास्तु जातयस्तत्र सम्यक्दूषणस्यापि न तत्त्वव्यवस्थितिरनियतत्वात् । अनियतत्वं च यदेवैकस्मिन् सम्यक् दूषणं तदेवान्यत्र दूषणाभासं पुरुषशक्त्यपेक्षत्वाच्च दू षणाभासव्यवस्थितेरनियतत्वमिति । कुतः पुनर्दूषणाभासरूपाणां जातीनामवास्तव त्वात्तत्वमिति। वादकाले वादी प्रतिवादी वा येन निगृह्यते तन्निग्रहस्थानं तच्च वादिनो साधनांगवचनं प्रतिवादिनस्तद्दोषोद्भावनं विहाय यदन्यदभिधीयते नैयायिकैस्तत्प्रलापमा त्रमिति । तच्च प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञांतरं प्रतिज्ञाविरोधइत्यादिकमेतच्च विचार्यमाणं न निग्रहस्थानं भवितुमर्हति भवदपिच पुरुषस्यैवापराधं कर्तुमलं न त्वेतत्तत्त्वं भवितुमर्हति। वक्तृगुणदोषौ हि परार्थे अनुमानेऽधिक्रियेते नतु तत्त्वमिति। तदेवं न नैयायिकोक्तं तत्त्वं तत्त्वेनाश्रयितुं युज्यते तस्योक्तनीत्या सदोषत्वादिति।नापि वैशेषिकोक्तं तत्त्वमिति।तथाहि। द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावास्तत्त्वमिति । तत्र पृथिव्यप्तेजोवायुराकाशं कालोदिगात्मा मनइति नव द्रव्याणि । तदत्र पृथिव्यप्तेजोवायूनां पृथग्द्रव्यत्वमनुपप न्नं । तथाहि । तएव परमाणवः प्रयोगविस्रसाभ्यां पृथिव्यादित्वेन परिणमंतोपि न स्व कीयं द्रव्यत्वं त्यजंति। नचावस्थाभेदेन द्रव्यभेदोयुक्तोऽतिप्रसंगादिति । आकाशकाल योश्चास्माभिरपि द्रव्यत्वमभ्युपगतमेव । दिशस्त्वाकाशावयवभूतायाअनुपपन्नत्वं पृथ ग्द्रव्यत्वमतिप्रसंगदोषादेव । आत्मनश्च स्वशरीरमात्रव्यापिनउपयोगलक्षणस्याभ्युपग तद्रव्यत्वमिति । मनसश्च पुद्गलविशेषतया पुद्गलद्रव्येऽतर्भावइति परमाणुवद्भावान्म नसश्च जीवगुणत्वादात्मन्यंतर्भावइति । यदपि तैरभिधीयते यथा पृथिवीत्वयोगात्पृथिवीति तदपि स्वप्रक्रियामात्रमेव । यतोनहि पृथिव्याः पृथग्भूतं पृथिवीत्वमपि येन तद्योगात्पृ थिवी भवेदपि तु सर्वमपि यदस्ति तत्सामान्यविशेषात्मकं नरसिंहाकारमुभयस्वभावमिति। तथा चोक्तं । नान्वयः सहभेदत्वान्न भेदोन्वयवृत्तितः ॥ मृभेदद्वयसंसर्ग, वृत्तिजात्यंतरं घटः ॥ १ ॥ तथा नरस्य सिंहरूपत्वान्न सिंहोनररूपतः ॥ शब्दविज्ञानकार्याणां भेदा

ज्ञात्यंतरं हि सइत्यादि । अथ रूपरसगंधस्पर्शारूपिद्रव्यवृत्तेर्विशेषगुणास्तथा संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविज्ञागौ परत्वापरत्वे इत्येते सामान्यगुणाः सर्वद्रव्यवृत्तित्वा त् । तथा बुद्धिः सुखडुःखेञ्छा द्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराश्चात्मगुणाः । गुरुत्वं पृथिव्यु दकयोर्द्रव्यस्वजावत्वेन परोपाधिकत्वं पृथिव्युदकाग्निषु स्नेहोंऽजस्येव वेगाख्यः संस्कारो मूर्तद्रव्येष्वेव आकाशगुणः शब्दइति । तत्र संख्यादयः सामान्यगुणारूपादिवद्द्रव्यस्व जावत्वेन परोपाधिकत्वाद्गुणाएव न जवंति । अथापि स्युस्तथापि न गुणानांपृथक्त्व व्यवस्था । तत्पृथक्त्वजावे इव्यस्वरूपहानेर्गुणपर्यायवत् इव्यमिति कृत्वा नांतरीयक तया इव्यग्रहणेनैव ग्रहणं न्याय्यमिति न पृथग्जावः । किंच तस्य जावस्तत्वमित्युच्यते। जावप्रत्ययश्च यस्य गुणस्य हि जावाद् इव्ये शब्दनिवेशस्तदजिधाने त्वतलावित्यनेन जव ति । तत्र घटोरक्तउदकस्याहारकोजलवान् सर्वैरेव घटउच्यते । अत्र च घटस्य जावोघट त्वं रक्तस्य जावोरक्तत्वं आहारकस्यजावआहारकत्वं जलवतोजावोजलवत्वमित्यत्र घटसा मान्यरक्तगुणक्रियाइव्यसंबंधरूपाणां गुणानां सद्भावात् इव्ये पृथुबुध्नाकारउदकाद्याहरण क्षमे कुटकाख्ये शब्दस्य घटादेरजिनिवेशस्तत्र त्वतलाविह च रक्ताख्यकोगुणोयत्सद्भावात्कत रश्चतद् इव्यं यत्र शब्दनिवेशोयेन जावप्रत्ययः स्यादिति । किमिदानीं रक्तस्य जवोरक्तत्व मिति न जवितव्यं जवितव्यमुपचारेण । तथाहि । रक्तइत्येतद्द्रव्यत्वेनोपचर्य तस्य सामा न्यं जावइति रक्तत्वमिति । नचोपचारस्तत्वचिंतायामुपयुज्यते शब्दसिद्धावेव तस्य कृता र्थत्वादिति । शब्दश्चाकाशस्य गुणएव न जवति तस्य पौज्ञलिकत्वादाकाशस्य चामूर्तत्वा दिति । शेषं तु प्रक्रियामात्रं न साधनदूषणयोरंगं । क्रियापि इव्यसमवायिनी गुणवत्पृथ गाश्रयितुं न युक्तेति । अथ सामान्यं तद्द्विधा परमपरंच।तत्र परं महासत्वाख्यं इव्यादि पदार्थव्यापि । तथाचोक्तं । सदिति यतोइव्यगुणकर्मसु सा सत्ता अपरं च इव्यत्वगुण त्वकर्मत्वात्मकं । तत्र न तावन्महासत्तायाः पृथक्पदार्थता युज्यते यतस्तस्यां यः सदि ति प्रत्ययः सकिमपरसत्तानिबंधनउत स्वतएव तत् । यद्यपरसत्तानिबंधनस्तत्राप्ययमेव विकल्पोऽतोऽनवस्था । अथ स्वतएव ततस्तद् इव्यादिष्वपि स्वतएव सत्प्रत्ययोजविष्य तीति किमपरसत्तयाऽजागलस्तनकल्पया विकल्पितया । किंच इव्यादीनां किं सतां सत्तया सत्प्रत्ययउताऽसतां तत् । यदि सतां स्वतएव सत्प्रत्ययोजविष्यति किंतया । असत्यप क्षेतु शशविषाणादिष्वपि सत्तायोगात्सत्प्रत्ययः स्यादिति । तथाचोक्तं । स्वतोर्थाः संतु सत्तावत्सत्तया किं सदात्मनां ॥ असदात्मसु नैषा स्यात्सर्वथाऽतिप्रसंगतइत्यादि । एतदे व दूषणमपरसामान्येऽप्यायोज्यं तुल्ययोगक्षेमत्वात् । किंचास्माजिरपि सामान्यविशेष रूपत्वाद्वस्तुनः कथंचित्तदिष्यतएवेति तस्यच कथंचित्तदव्यतिरेकात्तद्इव्यग्रहणेनैव ग्रह णमिति । अथ विशेषास्ते चात्यंतव्यावृत्तिबुद्धिहेतुत्वेन परैराश्रीयंते । तत्रेदं चिंत्यते ।

या तेषु विशेषबुद्धिः सा नापरविशेषहेतुका ऽऽश्रयितव्याऽनवस्थानयात्। स्वतः समाश्र यणेच तद्दद्द्रव्यादिष्वपि विशेषबुद्धिः स्यान्किंद्रव्यादिव्यतिरिक्तैर्विशेषैरिति । द्रव्यादि व्यतिरिक्तास्तु विशेषाश्चस्मान्निरप्याश्रीयंते सर्वस्यसामान्यविशेषात्मकत्वादिति । एतत्तु प्रक्रियामात्रं । तद्यथा । नित्यद्रव्यवृत्तयोंऽत्याविशेषानित्यद्रव्याणिच चतुर्विधाः परमा णवोमुक्तात्मानोमुक्तमनांसि चेति निर्युक्तिकत्वादपकर्णयितव्यमिति । समवायस्त्वयुत सिद्धानामाधाराधेयभूतानां यइह प्रत्ययहेतुः ससमवायइत्युच्यते । असावपि नित्यश्चैक श्चाश्रीयते। तस्यच नित्यत्वात्समवायिनोपि नित्याच्चापद्येरन् । तदनित्यत्वे च तस्याप्यनि त्यत्वापत्तिस्तदाधाररूपत्वात्तस्य तदेकत्वाच्च सर्वेषां समवायिनामेकत्वापत्तिस्तस्य चानेक त्वमिति । किंचायं समवायः संबंधस्तस्य च द्विष्ठत्वादयुतसिद्धत्वमेव दंडदंडिनोरिव वीर णानांच कटोत्पत्तौ तद्रूपतया विनाशः कटरूपतयोत्पत्तिरन्वयरूपतया व्यवस्थानमिति दुग्धदध्नोरिवेत्येवं वैशेषिकमतेपि न सम्यक्पदार्थाविस्थितिरिति । सांप्रतं सांख्यदर्शने त त्त्वनिरूपणं प्रक्रम्यते । तत्र प्रकृत्यात्मसंयोगात्सृष्टिरुपजायते । प्रकृतिश्च सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था ततोमहान् महतोऽहंकारोऽहंकारादेकादशेंद्रियाणि पंचतन्मात्राणि तन्मा त्रेन्यः पंचभूतानीति चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपं सचाकर्ता निर्गुणोऽनोक्तेति। तत्र परस्परवि रुद्धानां सत्त्वादीनां गुणानां प्रकृत्यात्मनां नियामकं गुणिनमंतरेणैकत्रावस्थानं न युज्य ते कृष्णसितादिगुणानामिव ।नच महदादिविकारे जन्ये प्रकृतिर्वैषम्योत्पादने कश्चिद्धेतुस्त द्व्यतिरिक्तवस्त्वंतरानन्युपगमादात्मनश्चाकर्तृत्वेनाकिंचित्करत्वात्स्वनाववैषम्याभ्युपगमेतु निर्हेतुकत्वापत्तेर्नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वा स्यादिति । उक्तंच। नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वा, हेतोरन्यानपेक्षणात् ॥ अपेक्षातोहि नावानां, कादाचित्कत्वसंनवः ॥ १ ॥ अ पिच । महदहंकारौ संवेदनादनिन्नौ पश्यामः । तथाहि । बुद्धिरध्यवसायोऽहंकार श्चाहं सुख्यहं दुःखीत्येवमात्मनः प्रत्ययस्तयोश्चिद्रूपतयाऽऽत्मगुणत्वं न जडरूपायाः प्रकृते र्विकारावेताविति । अपिच येयं तन्मात्रेन्योभूतोत्पत्तिरिष्यते । तद्यथा। गंधतन्मात्रा त्पृथिवी रसतन्मात्रादापः रूपतन्मात्रात्तेजः स्पर्शतन्मात्राद्वायुः शब्दतन्मात्रादाकाशमिति सापि न युक्तिक्षमा । यतो यदि बाह्यभूताश्रयेणैतदनिधीयते तदयुक्तं । तेषां सर्वदाना वान्नकदाचिदनीदृशं जगदिति कृत्वा । अथ प्रतिशरीराश्रयणादेतदुच्यते । तत्र किल त्वगस्थिकठिनलक्षणा पृथ्वी श्लेष्मासृग्द्रवलक्षणाश्चापः पक्तिलक्षणंतेजः प्राणापानल क्षणोवायुः सुषिरलक्षणमाकाशमिति तदपि न युज्यते । यतोऽत्रापि केषांचिच्छरीराणां शुक्रासृग्द्रवात्पत्तिर्न तत्र तन्मात्राणां गंधोपि समुपलक्ष्यते।अदृष्टस्यापि कारणत्वकल्पने ऽतिप्रसंगः स्यात् । अंडजोद्भिज्जांकुरादीनामप्यन्यतएवोत्पत्तिर्नवंती समुपलक्ष्यते । तदे वं व्यवस्थिते प्रधानमहदहंकारादिकोत्पत्तिर्या सांख्यैः स्वप्रक्रिययाऽभ्युपगम्यते तन्नियु

क्तिकमेव स्वदर्शनानुरागेणाभ्युपगम्यतइति । आत्मनश्चाकर्तृत्वाभ्युपगमे कृतनाशोऽकृताग मश्च स्यात् । बंधमोक्षाभावश्च निर्गुणत्वे च ज्ञानशून्यतापत्तिरित्यतोबालप्रलापमात्रं । प्र कृतेश्चाचेतनायाआत्मार्थे प्रवृत्तिर्युक्तिविकलेति । अथ बौद्धमतं निरूप्यते । तत्रहि पदा र्था द्वादशायतनानि । तद्यथा । चक्षुरादीनि पंच रूपादयश्च विषयाः पंच शब्दायतनं धर्मा यतनंच धर्माः सुखादयो द्वादशायतनपरिच्छेदकत्वे प्रत्यक्षानुमाने द्वेएव प्रधाने प्रमाणे । तत्र चक्षुरादींद्रियाण्यजीवग्रहणेनैवोपात्तानि । भावेंद्रियाणितु जीवग्रहणेनेति । रूपाद यश्च विषयाअजीवापादनेनोपात्तान पृथगुपादातव्याः । शब्दायतनं तु पौद्गलिकत्वाच्छब्द स्याजीवग्रहणेन ग्रहणं । नच प्रतिव्यक्ति पृथक्पदार्थता युक्तिसंगतेति । धर्मात्मकं सुखं दुः खंच यद्यसातोदयरूपं ततोजीवगुणत्वाज्जीवेंतर्भावः । अथ तत्कारणं कर्म ततः पौद् लिकत्वादजीवइति । प्रत्यक्षं च तैर्निर्विकल्पकमिष्यते तच्चानिश्चयात्मकतया प्रवृत्तिनिवृ त्त्योरनंगमित्यप्रमाणमेव । तदप्रामाण्ये तत्पूर्वकत्वादनुमानमपीति । शेषस्त्वाक्षेपपरिहारो न्यत्र सुविचारितइति नेह प्रतन्यतइत्यनया दिशा मीमांसकलोकायतमतान्निहितत्वनिराक रणं सुबुध्या विधेयं । तयोरत्यंतलोकविरुद्धपदार्थानां श्रयणान्न साक्षादुपन्यासः कृतइति । तस्मात्पारिशेष्यसिद्धाअर्हदुक्तानव सप्त पदार्थाः सत्यास्तत्परिज्ञानं च क्रियावादे हेतु र्नापरपदार्थपरिज्ञानमिति ॥ २१ ॥ सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिहीर्षुः सम्यग्वादपरिज्ञान फलमादर्शयन्नाह । ( सद्देसुइत्यादि ) शब्देषु वेणुवीणादिषु श्रुतिसुखदेषु रूपेषु च नय नानंदकारिष्वासंगमकुर्वन् गार्ध्यमकुर्वाणोऽनेन रागोगृहीतस्तथा गंधेषु कुथितकलेवरादि षु रसेषु चांतप्रांताशनादिषु अद्विष्यमाणोमनोज्ञेषु द्वेषमकुर्वन्निदमुक्तं भवति । शब्दादिष्विं द्रियविषयेषु मनोज्ञेतरेषु रागद्वेषाभ्यामनपदिश्यमानोजीविततमसंयमजीवितं नाभिकांक्षे न्नापि परीषहोपसर्गैरभिद्रुतोमरणमभिकांक्षेत् । यदिवा जीवितमरणयोरनभिलाषी संय ममनुपालयेदिति । तथा मोक्षार्थिनादीयते गृह्यतइत्यादानं संयमस्तेन तस्मिन्वा सति गुप्तोयदिवा मिथ्यात्वादिनादीयते इत्यादानमष्टप्रकारं कर्म तस्मिन्नादातव्ये मनोवाक्का यैर्गुप्तः समितश्च तथा भाववलयं माया तया विमुक्तोमायामुक्तः । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्र वीमीति पूर्ववत् । नयाः पूर्ववदेव ॥ २२ ॥ समाप्तं समवसरणाख्यं द्वादशमध्ययनमिति ॥

हवे यथातथ्य नामे तेरमो अध्ययन प्रारंजियें छैयें. बारमां अध्ययनमां जुदा जुदा दर्श नीउना समवसरण कह्या नंतर तेरमां अध्ययनमां यथातथ्य एटले सत्य स्वरूप देखाडे छे.

आहत्तहीयं तु पवेयइस्सं, नाणप्पकारं पुरिसस्स जातं ॥ सउं
अधम्मं असउं असीलं, संतिं असंतिं करिस्सामि पाउं ॥ १ ॥

अहोयराउञ्च समुष्ठिएहिं, तहागएहिं पडिलप्न धम्मं ॥ समा
हिमाघातमजोसयंता, सछारमेवं फरुसं वयंति ॥ २ ॥

अर्थ-( आहत्तहीयंतुपवेयइस्सं के० ) यथातथ्य सम्यक् ज्ञाननो स्वरूप हवे प्रवे दिशुं एटले कहीशुं तथा ( पुरिसस्स के० ) जीवने ( नाणप्पकारं के० ) नानाप्रकारना ज्ञानादिक जे ( जातं के० ) उत्पन्न थाय तेपण हवे कहीशुं तथा ( सउअधम्मं के० ) सत्पुरुषनुं धर्म जे श्रुत चारित्ररूप जे दुर्गति थकी राखनार ते धर्म अने ( असउअ सीलं के० ) असत्पुरुष एटले परतीर्थिक तथा गृहस्थ अने पासछादिक तेनो सील एटले दुष्टाचार ते कहीशुं तथा (संतिं के०) शांति एटले निर्वाणरूप अने (असंतिं के०) संसारभ्रमणरूप ए बन्नेने (करिष्यामि प्राउ के०) प्रगट करी शुं ॥१॥ ( अहोयराउअस मुछिएहिंके०) रात्रना तेम दिवसना पण सम्यक् प्रकारे उठ्या एटले सावधान थया एवा जे निन्हवादिक जमाली प्रमुख स्वदर्शनी तथा बोटिकादिक अन्यदर्शनी ते(तहागएहिंप डिलप्नधम्मं के० ) तथा प्रकारे तीर्थंकरादिक पाशेथी संसारथकी निकलवानुं उपाय एवो जे पंमित धर्म तेने पामीने जमाली प्रमुखनी पेरे कर्मने उदयें ते श्रीतीर्थंकर ना पित एवो ( समाहिमाघात के० ) समाधिवंत एटले सम्यक् दर्शनादिक धर्म तेने ( अ जोसयंता के०) अण सेवता थका कदाग्रहि पणाने लीधे मिथ्यात्वना प्रेखा स्वछंदे यथा तथा एटले जेम तेम बोलता श्रीसर्वज्ञना मार्गने उछापता अने कुमार्गनो उपदेश कर ता एरीते प्रवर्त्तता (सछार मेवंफरुसंवयंति के०) कदापि पोताने आचारना शिखावनार एवा गुरु जे महानुनाव ते प्रत्यें पण कठोर वचन बोले ॥ २ ॥

---

॥ दीपिका-अथ त्रयोदशं याथातथ्याध्ययनमारभ्यते । तस्येदमादिसूत्रं । ( अहत्ते ति ) यथातथानावोयाथातथ्यं तत्त्वज्ञानादिकं पुरुषस्य जंतोर्जातमुत्पन्नं तदहं प्रवेदयि ष्यामि कथयिष्यामि । तुशब्दोविशेषणे । वितथाचारिणस्तद्दोषांश्च कथयिष्यामि । नाना प्रकारं वा चित्रं पुरुषस्य स्वनावं प्रशस्तरूपं प्रवेदयिष्यामि । तथा । सतः सत्पुरुषस्य धर्मं श्रुतचारित्राख्यं शीलमुद्यतविहारित्वं शांतिं निर्वृतिं मोक्षं (करिस्सामिपाउंति) प्राडुष्करि ष्ये प्रकटयिष्यामि । तथाऽसतोऽशोननस्य परतीर्थिकस्य गृहस्थस्य पार्श्वस्यादेर्वा चश ब्दसमुच्चितमधर्मं पापं तथाऽशीलं कुत्सितशीलमशांतिं संसारं प्राडुष्करिष्ये ॥१॥ अहोरा त्रं समुष्ठितानिन्हवाबोटिकाश्च तेन्यः श्रुतधरेन्यस्तथागतेन्योवा तीर्थकृद्भ्योधर्मं श्रुतचा रित्राख्यं प्रतिलन्य प्राप्यापि मंदनाग्यतया जमालिप्रमुखइवात्मोत्कर्षात्तीर्थकरैराख्यातं समाधिं मोक्षमार्गमजोषयंतोऽसेवमानाः सर्वज्ञोक्तं मार्गं विध्वंसयंति ते निन्हवाबोटिका श्च परेणाचार्यादिना चोदिताः संतस्तं शास्तारं चोदकं पुरुषं निष्ठुरं वदंति ॥ २ ॥

॥ टीका–अथानंतरं त्रयोदशमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतराध्ययने परवादिमतानि निरूपितानि तन्निराकरणं चाऽकारि तच्च याथातथ्येन भवति तदिह प्रतिपाद्यते इत्यनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराणि भवंति। तत्राप्युपक्रम द्वारांतर्गतार्थाधिकारोयं । तद्यथा । शिष्यगुणदीपना । अथानंतराध्ययनेषु धर्मसमाधि मार्गसमवसरणाख्येषु यदवितथं याथातथ्येन व्यवस्थितं यच्च विपरीतं वितथं तदपि लेशतोऽत्र प्रतिपादयिष्यतइति । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे याथातथ्यमिति नाम तदधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । " णामतहं ठवणतहं, दव्वतहं चेव होइ भावतहं ॥ दव्वतहं पुण जो जस्स सब्भावोहिंति दव्वस्स " ॥ २४ ॥ ( णामतहमित्यादि ) अस्याध्ययनस्य याथातथ्य मिति नाम । तच्च यथाशब्दस्य भावप्रत्ययांतस्य भवति । तत्र यथाशब्दोल्लंघनेन तथा शब्दस्य निक्षेपं कर्तुं निर्युक्तिकारस्यायमभिप्रायः । इह यथाशब्दोयमनुवादे वर्तते तथा शब्दश्च विधेयार्थे । तद्यथा । यथेदं तथैवेदं भवता विधेयमित्यनुवादविधेययोश्च विधेयांशएव प्रधानभावमनुभवतीति । यदिवा याथातथ्यमिति तथ्यमतस्तदेव निरूप्यतइति । तत्र यथाभावस्तथ्यं यथावस्थितवस्तुता । तन्नामादिश्चतुर्धा । तत्र नामस्थापने सुगमे । द्रव्यतथ्यं गाथापश्चार्धेन प्रतिपादयति । तत्र द्रव्यतथ्यं पुनर्योयस्य सचित्तादेः स्वभावोद्रव्यप्राधान्याद्यस्य स्वरूपं तद्यथोपयोगलक्षणोजीवः कठिनलक्षणा पृथिवी द्रव्यलक्षणा आपइत्यादि । मनुष्यादेर्वा योयस्य मार्दवादिस्वभावोऽचित्तद्रव्याणां च गोशीर्षचंदनकंबलरत्नादीनां द्रव्याणां स्वभावः । तद्यथा । उण्हे करेइ सीयं,सीए उण्हत्तणं पुण भवेइ ॥ कंबलरयणादीणं, एस सहावो मुणेयव्वो ॥ १ ॥ भावतथ्यमधिकृत्याह । " भावतहं पुण नियमा, णायव्वं छव्विहंमि भावंमि ॥ अहवा वि नाणदंसण, चरित्तविणएण अज्झप्पे " ॥ २५ ॥ ( भावतहमित्यादि) भावतथ्यं पुनर्नियमतोऽवश्यंभावतया षड्विधे औदयिके भावे ज्ञातव्यं । तत्र कर्मणामुदयेन निर्वृत्तऔदयिकः कर्मोदयापादितोगत्याद्यनुभावलक्षणस्तथा कर्मोपशमेन निर्वृत्तऔपशमिकः कर्मानुदयलक्षणइत्यर्थः । तथा क्षयाज्जातः क्षायिकोऽप्रतिपातिज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणस्तथा क्षयाद्रुपशमाच्च जातः क्षायोपशमिकोदेशोदयोपशमलक्षणः । परिणामेन निर्वृत्तः पारिणामिकोजीवाजीवभव्यत्वादिलक्षणः पंचानामपि भावानां द्विकादिसंयोगान्निष्पन्नः सान्निपातिकइति । यदिवा अध्यात्मभ्यांतरं चतुर्धा भावतथ्यं द्रष्टव्यं । तद्यथा । ज्ञानदर्शनचारित्रविनयतथ्यमिति । तत्र ज्ञानतथ्यं मत्यादिकेन ज्ञानपंचकेन यथास्वमवितथोविषयोपलंभः । दर्शनतथ्यं शंकाद्यतिचाररहितं जीवादितत्त्वश्रद्धानं । चारित्रतथ्यं तु तपसि द्वादशविधे संयमे सप्तदशविधे सम्यगनुष्ठानं । विनयतथ्यं द्विचत्वारिंशद्भेदभिन्ने विनये ज्ञानदर्शनचारित्रतपउपचारिकरूपे यथायोगमनुष्ठानं ज्ञानादीनां तु वितथाऽसेवनेनाऽतथ्यमिति । अत्र च भावतथ्येना

धिकारः । यदि वा भावतथ्यं प्रशस्ताप्रशस्तभेदाद्विधा । तदिह प्रशस्तेनाधिकारं दर्शयितु माह । " जह सुत्तं तह अत्थो, चरणं चारो तहत्ति णायव्वं ॥ संतंमिय पसंसाए, असं तीपगयं डुगुंछाए " ॥ २६ ॥ ( जहसुत्तमित्यादि ) यथा येनप्रकारेण यथापद्धत्त्या सूत्रं व्यवस्थितं तथा तेनैव प्रकारेणार्थोव्याख्येयोनुष्ठेयश्च । एतद्दर्शयति । चरणमाचरण मनुष्ठातव्यं । यदिवा सिद्धांतसूत्रस्य चारित्रमेवाचरणमतोयथासूत्रं तथा चारित्रमेतदेव चानुष्ठेयमेतच्च याथातथ्यमिति ज्ञातव्यं । पूर्वार्धस्यैव भावार्थं गाथापश्चार्धेन दर्शयितु माह । यद्वस्तुजातं प्रकृतं प्रस्तुतं यथार्थमधिकृत्य सूत्रमकारि तस्मिन्नर्थे सति विद्यमा ने यथावद्व्याख्यायमाने संसारोत्तारणकारणत्वेन प्रशस्यमाने वा याथातथ्यमिति भ वति विवक्षिते त्वर्थे सत्यविद्यमाने संसारकारणत्वेन वा जुगुप्सायां सत्यां सम्यगनुष्ठी यमाने वा याथातथ्यं न भवति । इदमुक्तं भवति । यदि यथासूत्रं येन प्रकारेण व्यव स्थितं तथैवार्थोयदि भवति व्याख्यायते ऽनुष्ठीयते च संसारनिस्तरणसमर्थश्च भवति त तोयाथातथ्यमिति भवति । असति त्वर्थे क्रियमाणे संसारकारणत्वेन जुगुप्सिते वा भ वति याथातथ्यमिति गाथातात्पर्यार्थः । एतदेव दृष्टांतगर्भं दर्शयितुमाह । " आयरियप रंपर्येण आगयं जोउ बेयबुद्धीए ॥ कोवेइ बेयवाई जमालिनासंचणासिहत्तिन्ति ॥ २७ ॥ ( आयरिएइत्यादि ) आचार्याः सुधर्मस्वामिजंबुनामप्रभवार्यरक्षितादास्तेषां प्रणालिका पारंपर्यं तेनागतं यद्व्याख्यानं सूत्राभिप्रायस्तद्यथा व्यवहारतयाभिप्रायेण क्रियमाणमपि कृतं भवति । यस्तु कुतर्कदर्पाध्मातमानसोमिथ्यात्वोपहतदृष्टिकया बेकबुध्या निपुणबुध्या कुशाग्रशेमुषीकोहमिति मत्वा कोपयति दूषयति अन्यथा तमर्थं सर्वज्ञप्रणीतमपि व्या चष्टे कृतं कृतमित्येवं ब्रूयात् । वक्तिच नहि मृत्पिंमक्रियाकालएव घटोनिष्पद्यते कर्मगुण व्यपदेशानामुपलब्धेः । सएव बेकवादी निपुणोहमित्येवं वादी पंडिताभिमानी जमालि ना समोजमालिनिन्हववत् सर्वज्ञमतविकोपकोविनंक्ष्यत्यरहघट्टघटीयंत्रन्यायेन संसारचक्र वाले वंभ्रमिष्यतीति । नचासौ जानाति वराकोयथायं लोकोघटार्थाः क्रियामृत्खननाद्यावट एवोपचरति तासांच क्रियाणां क्रियाकालनिष्ठाकालयोरेककालत्वात् क्रियमाणमेव कृतं भव ति । दृश्यते चायं व्यवहारोलोके । तद्यथा । अद्यैव देवदत्ते निर्गते कान्यकुब्जं देवदत्तोगतइति व्यपदेशस्तथा दारुणि छिद्यमाने प्रस्थकोयं व्यपदेशइत्यादि । सांप्रतमन्यथावादिनोऽपायदर्श नद्वारेणोपदेशं दातुकामआह । ण करेति डुःरकमोरकं, उज्जममाणोवि संजमतवेसु ॥ तम्हाअत्तुक्करिसो वज्जेअव्वो जतिजणेणं ॥ २८ ॥ ( णकरेइत्यादि ) योहि डुर्गृहीतविद्या लवदर्पाध्मातः सर्वज्ञवचनैकदेशमप्यन्यथा व्याचष्टे सएवंभूतः सत्संयमतपस्तद्यमं कु र्वाणोशारीरिकमानसानां डुःखानामसातोदयजनितानां मोक्षं विनाशं न करोत्यात्मग र्वाध्मातमानसोपि यतएवं तस्मादात्मोत्कर्षोऽहमेव सिद्धांतार्थवेदी नापरः कश्चिन्मत्तु

ह्योस्तीत्येवंरूपोनिमानोवर्जनीयस्तस्याज्योयतिजनेन । साधुलोकेनापरोपि ज्ञानिना जात्या दिकोमदोन विधेयः किंपुनर्ज्ञानिमदः । तथा चोक्तं ॥ ज्ञानं मददर्पहरं, माद्यति यस्तेन तस्य कोवैद्यः ॥ अगदोयस्य विषायति, तस्य चिकित्सा कथं क्रियते ॥ १ ॥ गतोनामनिष्पन्नो निक्षेपः सांप्रतं सूत्रालापकनिष्पन्नस्य निक्षेपस्यावसर. सच सूत्रे सति नवति । सूत्रंच सूत्रा नुगमे सचावसरः प्राप्तोऽतः सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (आह त्तहीत्यादि) अस्य चानंतरसूत्रेण सहायं संबंधः । तद्यथा । वलयाविमुक्तेत्यन्निहितं । नावव लयं रागद्वेषौ ताच्यां विनिर्मुक्तस्यैव याथातथ्यं नवतीत्याद्यनेन संबंधेनायातस्यास्य सूत्रस्य व्याख्या प्रतन्यते । यथातथानावोयं याथातथ्यं तत्त्वं परमार्थस्तच्च परमार्थचिंतायां सम्य क्ज्ञानादिकं तदेव दर्शयति । ज्ञानप्रकार प्रकारशब्दआद्यर्थे । आदिग्रहणाच्च सम्यग्दर्शनचा रित्रे गृह्येते । तत्र सम्यग्दर्शनमौपशमिकक्षायोपशमिकं गृह्यते । चारित्रं तु व्रतसमितिकषाया णां धारणरक्षणनिग्रहादिकं गृह्यते । एतत्सम्यग्ज्ञानादिकं पुरुषस्य जंतोर्यज्ञातमुत्पन्नं त दहं प्रवेदयिष्यामि कथयिष्यामि । तुशब्दोविशेषणे । वितथाचारिणस्तद्दोषांश्चाविर्नावयि ष्यामि । नानाप्रकारं वा विचित्रं पुरुषस्य स्वनावमुच्चावचप्रशस्ताप्रशस्तरूपं प्रवेदयिष्या मि । नानाप्रकारं स्वनावफलंच पश्चार्धेन दर्शयति । सतः सत्पुरुषस्य शोजनस्य सदनुष्ठा यिनः सम्यग्दर्शनचारित्रज्ञानवतोधर्मं श्रुतचारित्राख्यं पुनर्गतिगमनधरणलक्षणं वा तथा शीलमुद्युक्तविहारित्वं तथा शांति निर्वृतिमशेषकर्मक्षयलक्षणां (करिस्सामिपाउत्ति) प्रादुष्करिष्ये प्रकटयिष्यामि यथावङ्गावयिष्यामि । तथाऽसतोऽशोजनस्य परतीर्थिक स्य गृहस्थस्य पार्श्वस्थादेर्वा च शब्दः समुच्चितमधर्मं पापं तथा कुशीलं कुत्सितशील मशांतिं चानिर्वाणरूपां संसृतिं प्रादुर्नावयिष्यामीति । अत्र च सतोधर्मं शीलं शांतिंच प्रादुष्करिष्याम्यसतश्चाधर्ममशीलमशांतिंचेत्येवं पदघटना योजनीया अनुपात्तस्यच चशब्दे नाक्षेपोद्रष्टव्यइति ॥१॥ जंतोर्गुणदोषरूपं नानाप्रकारं स्वनावं प्रवेदयिष्यामीत्युक्तं तद्दर्श यितुकामआह । (अहोयमित्यादि) अहोरात्रमहर्निशं सम्यगुत्थितानिह्नवाबोटिका श्च सदनुष्ठानवंतस्तेन्यः श्रुतधरेन्यस्तथा तथागतेन्योवा तीर्थकृद्भ्योधर्मं श्रुतचारित्राख्यं प्रतिलभ्य संसारनिःसरणोपायं धर्ममवाप्यापि कर्मोदयान्मंदनाग्यतया जमालिप्रभृतयश्च वात्मोत्कर्षात्तीर्थकृदाद्याख्यात समाधिं सम्यग्दर्शनादिकं मोक्षपद्धतिमजोषयंतोऽसेवतः सम्यगकुर्वाणानिह्नवाबोटिकाश्च स्वरुचिविरचितव्याख्याप्रकारेण निर्दोषं सर्वज्ञप्रणीत मार्गं विध्वंसयति कुमार्गं प्ररूपयंति ब्रुवते चासौ सर्वज्ञएव न नवति । यः क्रियमाणं कृतमि त्यध्यक्षविरुद्धं प्ररूपयति । तथा यः पात्रादिपरिग्रहान्मोक्षमार्गमाविर्नावयति । एवं स र्वज्ञोक्तमश्रद्दधानाः अश्रद्धानं कुर्वंतोप्यपरे धृतिसंहननदुर्बलतया यथारोपित संयमनारं

बोढुमसमर्थाः कचिद्दिपीदंतोऽपरेणाचार्यादिना वत्सलतया चोदिताः संतस्तं शास्तारम नुशासितारं चोदकं पुरुषं वदंति कर्कशं निष्ठुरं निर्जरं प्रतीपं चोदयंतीति ॥ २ ॥

विसोहियं ते अणुकाहयंते, जे आत्तनावेण वियागरेज्जा॥ अट्ठाणिए होइ वहूगुणाणं, पाठांतरे (वहूणिवेसे) जे णाणसंकाइ मुसं वदेज्जा॥३॥ जे यावि पुट्ठा पलिउं चयंति, आयाणमठं खलु वंचयित्ता ॥ असाहुणो ते इह साहुमाणी, मायन्नि एसंति अणंतघातं ॥ ४ ॥

अर्थ–ते स्वाग्रहि पुरुप ( विसोहियंते के० ) ते विशोधित शुद्धनिर्दोषमार्ग तेने ( अणुकाहयंते के० ) आचार्यनी प्ररूपणा थकी उज्ञापिने कहे एटले ( जेआत्तनावेणवियागरेज्जा के० ) जे पोताना नावे एटले स्वछंदे बोले ( अट्ठाणिएहोइवहूगुणाणं के० ) ते अहाछंद पणा थकी घणा गुणा जे ज्ञानादिक तेनो आस्थान थाय केमके ए स्वानिनिवेश मिथ्यात्वना नाव थकी करीने ( जेणाणसंकाइ के० ) जे ज्ञान शंका एटले श्रीजिनागमनेविषे शंका लावीने ( मुसंवदेज्जा के० ) मृषाबोले स्वकल्पित जेवो रुचे तेवो बोले तेणे करीने घणा गुणानो आस्थान एटले कुनाजन थाय ॥ ३ ॥ ( जेआविपुट्ठापलिउंचयंति के० ) जे कोइ पूछे जे तमे कोनी पासेथी जण्या छो तेवारे पोताना आचार्यनुं नाम गोपवीने बीजानुं नाम कहे ( आयाणमठंखलुवंचयित्ता के० ) ते निश्चे थकी आत्मार्थि जे मोक्षनो अर्थ तेने वंचेछे एतावता ते मुक्तिने नपामे ( असाहुणोतेइहसाहुमाणी के० ) परमार्थथकी ते असाधु थको पण आ जगतने विषे पोतामां साधुपणु करी माने तथा बीजाउने कहीने पोतामां साधु पणो मनावे ( मायन्निएसंतिअणंतघातं के० ) ते मायावी साधु आसंसारनेविषे अनंत घात पामे एटले अनंत काल पर्यंत संसारमां परिच्रमण करे ॥ ४ ॥

---

॥ दीपिका–विशोधितोमोक्षमार्गस्तं ते कदाग्रहिणोगोष्ठामाहिलवदनुपश्चादाचार्यप्ररूपणातः कथयंति अनुकथयंति । ये आत्मोत्कर्षादात्मनावेन स्वानिप्रायेणाचार्यपारंपर्यागतमप्यर्थं व्युदस्यान्यथा व्यागृणीयुर्व्याख्यांति । आचार्यपरंपरामज्ञात्वा स्वानिप्रायेण सूत्रार्थव्याख्यानं महतेऽनर्थाय । इदमेव दर्शयति । सएवंनूतोऽस्थानिकोऽनाधारोवहूनां ज्ञानादिगुणानां स्यात् । कचित्पाठः । ( अट्ठाणिएहोइवहूणिवेसत्ति ) अस्यार्थः । अस्थानमनाजनं सम्यक्ज्ञानादीनां । किंनूतोवहुरनर्थकारकत्वेनाऽसदनिनिवेशोयस्य सवहुनिवेशः । ते पुनः किंनूताइत्याह । ये ज्ञानशंकया मृषा वदेयुः । कोर्थः । जिनोक्तागमे शंकां कुर्वंत्ययं तडुक्तएव नस्यादिति । अथवा ज्ञानशंकया पांमित्यानिमानेन मृषा

वदेयुः ॥ ३ ॥ येऽज्ञाततत्त्वाः परेण पृष्टाः कस्मादाचार्यादधीतं नवद्भिरिति ते स्वमाचार्यं ज्ञानाभिमानेन ( पलिउंचयंतित्ति ) निन्हुवते । अथवा सदपि प्रमादस्खलितमाचार्यादिना पृष्टाः संतोमातृस्थानेनावर्णवादभीतानिन्हुवते । ते एवं कुर्वाणाआदानं मोक्षमर्थं वंचयंति । एवं कुर्वाणास्तेऽसाधवश्हास्मिन् जगति साधुमानिनोमायान्विताएष्यंति या स्यंत्यनंतशोघातं विनाशं संसारं वा । एकं तावत्स्वयमसाधवोद्वितीयं साधुमानिनः । उक्तंच । पावं काऊण सयं, अप्पाणं सुद्धमेव ववहरइ ॥ डुगुणं करेइ पावं, बीअं बालस्स मंदत्तं ॥१॥ तदेवमात्मोत्कर्षदोषाद्बोधिलाभमप्युपहत्यानंतनवनाजः प्राणिनः स्युरिति ॥४॥

॥ टीका–किंच । ( विसोहियमित्यादि ) विविधमनेकप्रकारं शोधितः कुमार्गप्ररूपणापनयनद्वारेण निर्दोषतां नीतोविशोधितः सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राख्योमोक्षमार्गस्तमेवंभूतं मोक्षमार्गं ते स्वाग्रहग्रस्तागोष्ठामाहिलवदनुपश्चादाचार्यप्ररूपणातः कथयंत्यनुकथयंति । ये चैवंभूताआत्मोत्कर्षात्स्वरुचिविरचितव्याख्याप्रकारव्यामोहिताआत्मनभावेन स्वाभिप्रायेणाचार्यपारंपर्येणायातमप्यर्थं व्युदस्यान्यथा व्यागृणीयुर्व्याख्यानयेयुस्तेहि गंभीराभिप्रायं सूत्रार्थं कर्मोदयात्पूर्वापरेण यथावत्परिणामयितुमसमर्थाः पंडितमानिनउत्सूत्रं प्रतिपादयंति । आत्मनावव्याकरणं च महतेऽनर्थायेति दर्शयति । सएवंभूतः स्वकीयाभिनिवेशादस्थानिकोऽनाधारोबहूनां ज्ञानादिगुणानामभाजनं भवतीति । ते चामी गुणाः । सुस्सूसइ पडिपुच्छइ, सुणेइ गेण्हइ य ईहएआवि ॥ तत्तो अपोहएवा, धारेइ करेइ वा सम्मं ॥१॥ यदि वा गुरुशुश्रूषादिना सम्यक्ज्ञानावगमस्ततः सम्यगनुष्ठाने च मतः सकलकर्मक्षयलक्षणोमोक्षइत्येवंभूतानां गुणानामनायतनमसौ । क्वचित्पाठः । ( अट्ठाणिएहोंतिबहूणिवेसत्ति ) अस्यायमर्थः । अस्थानमभाजनमसौ भवति सम्यक्ज्ञानादीनां गुणानां । किंभूतोबहुरनर्थसंपादकत्वेनासदभिनिवेशोयस्य सबहुनिवेशः । यदिवा गुणानामस्थापनिकोऽनाधारोबहूनां दोषाणां च निवेशः स्थानमाश्रयइति । किंभूताः पुनरेवं भवंतीति दर्शयति । ये केचन दुर्गृहीतज्ञानलवाऽवलेपिनोज्ञाने श्रुतज्ञाने शंका ज्ञानशंका तया मृषावादं वदेयुः । एतडुक्तं भवति । सर्वज्ञप्रणीते आगमे शंकां कुर्वंत्ययं तत्प्रणीतएव नभवेदन्यथा वाऽस्यार्थः स्यात् । यदिवा ज्ञानशंकया पांडित्याभिमानेन मृषावादं वदेयुर्यथाहं ब्रवीमीति तथैव युज्यते नान्यथेति ॥ ३ ॥ किंचान्यत् । ( जेयाविपुट्ठ इत्यादि ) ये केचनाविदितपरमार्थाः स्वल्पतया समुत्सेकिनोऽपरेण पृष्टाः कस्मादाचार्यात्सकाशादधीतं श्रुतं भवद्भिरिति । ते तु स्वकीयमाचार्यं ज्ञानावलेपेन निन्हवानोऽपरं प्रसिद्धं प्रतिपादयंति । यदिवा मयैवैतत्स्वतउत्प्रेक्षितमित्येवं ज्ञानावलेपात् ( पलिउंचयंतित्ति ) निन्हुवते । यदिवा सदपि प्रमादस्खलितमाचार्यादिना लोचनादिके अवसरे पृ

थाः संतोमातृस्थानेनाऽवर्णवादनयान्निन्दुवते । तएवं पलिउंचकानिन्हवं कुर्वाणाआदी यतइत्यादानं ज्ञानादिकं मोक्षोवा तमर्थं वंचयंति ज्रंशयंत्यात्मनः । खलुरवधारणे। वंचयं त्येव.। एवमनुष्ठायिनश्चासाधवस्ते परमार्थतस्तत्त्वचिंतायामिहास्मिन् जगति साधुविचा रेवा साधुमानिनआत्मोत्कर्षायाऽसदनुष्ठानमानिनोमायान्वितास्ते एष्यंति यास्यंत्यनंत शोबहुशोघातं विनाशं संसारं वा अनवदग्रसंसारकांतारमनुपरिवर्तेयिष्यंतीति। दोषद्वय डुष्टत्वात्तेषामेकं तावत्स्वयमसाधवोद्दितीयं साधुमानिनः । उक्तंच । पावं काऊण सयं, अप्पाणं शुद्धमेव ववहरइ ॥ डुगुणं करेइ पावं, वीयं बालस्स मंदत्तं ॥ १ ॥ तदेवमा त्मोत्कर्षदोषाद्बोधिलाभमप्युपहत्यानंतसंसारनाजोनवंत्यसुमतइति स्थितं ॥ ४ ॥

जे कोहणे होइ जगछनासी, विउसियं जे उ उदीरएज्जा ॥ अंधे
व से दंमपहं गहाय, अविउसिए घासति पावकम्मी ॥ ५ ॥
जे विग्गहीए अनायनासी, न से समे होइ अऊंऊपत्ते ॥ उव
वायकारी य हरीमणे य, एगंतदिठीय अमाइरूवे ॥ ६ ॥

अर्थ–( जे कोहणेहोइजगछनासी के० ) जे क्रोधी थाय ते जगतार्थनाषी होय जगतार्थनाषी एटले जेमां जेवो दोष होय तेने तेवो कहे अर्थात् काणाने काणो कहे खोडाने खोडो कहे टुंटाने टुंटो कहे पांगलाने पांगलो कहे कोढीने कोढी कहे एवो प्रगट निठुर नाषण करनार होय (विउसियंजेउ के०) जे उपशमावेलो एवो जे कलह तेने वली ( उदीरएज्जा के० ) उदीरे ए पुरुषने जे फल थाय ते कहेडे. (सेके०) ते पुरुष ( अंधेवदंमपहंगहाय के० ) जेम कोइ आंधलो पुरुष लाकडी ग्रहण करीने मार्गने वि षे जातो. थको अनेक कंटक चतुष्पदादिके करी पीडाय तेम ( अविउसिए के० ) अ कोविद एवोजे कलहकारी ( पावकम्मी के०) पापकर्माचारी जीव ते पण (घासतिके०) चतुर्गतिक संसारमांहे डुःख पामे ॥ ५ ॥ ( जेविग्गहीए के० ) जेकोइ विग्रह एटले कलहकारी होय ते यद्यपि क्रिया तो केटलीक करे तथापि ते क्रिया विग्रह एटले युद्ध प्रिय थाय तथा ( अनायनासी के० ) अन्यायनो बोलनार होय ( नसेसमेहोइअऊंऊ पत्ते के० ) ते पुरुष कलहरहित एवा सम्यक् दृष्टी तेना सरखो समनावी नहोय ते माटे साधु कलहकारी नहोय परंतु साधु केवो होय ते कहेडे. ( उववायकारीयहरीम णेय के० ) उपपातकारी एटले आचार्यनी आज्ञापालक तथा लज्जावंत मनवालो होय एटले अनाचार करतो थको आचार्यादिक थकी लज्जा पामे तथा ( एगंतदिठीय के० ) एकांतदृष्टी एटले जीवादिक पदार्थनो ज्ञाता होय एकांत श्रद्धावंत होय तथा ( अमाइरूवे के० ) मायारहित होय एवा पुरुषने साधु कहिए. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—यः स्वनावेन क्रोधनोरोषी नवति यश्च जगदर्थनाषी योयथावस्थितः पदार्थस्तं तथैव नाषते । तद्यथा । ब्राह्मणं डोडमिति वक्ति वणिजं किराटमिति शूद्रमानीरमिति श्वपाकं चांमालमिति काणं काणमेव वक्ति । खंजं खंजमेव चौरं चौरमिति । अंधमंधमित्यादि कठिणं योवक्ति सजगदर्थनाषी निष्ठुरनाषीत्यर्थः । व्यवसितं समाप्तं द्वंद्वं कलहं यः पुनरुदीरयेत् प्रज्वालयेत् सोंऽधइव । यथांधोदंडमेवं गोदंडमार्गं गृहीत्वा व्रजन् घृष्यते कंटकश्वापदादिनिः पीड्यते । एवं सोपि ( अवियोसियंति ) अपशांतकलहः पापकर्मा घृष्यते पीड्यते संसारपीडानिः ॥ ५ ॥ योविग्रहिकः कलहप्रियोऽन्यायनाषी न समोमध्यस्थोनवति अऊंऊा प्राऊंऊा माया कलहोवा मायाप्राप्तः कलहप्राप्तोवा सरागद्वेषवान् मायावांश्च नवतीत्यर्थः । एतद्दोषदर्शी उपपातकारी आचार्यादेशकरः न्हीर्लज्जासंयमस्तत्र मनोयस्य सन्हीमनाः एकांतेन तत्त्वेषु दृष्टिर्यस्य सएकांतदृष्टिः । एगंतसड्डित्तिपाठे एकांतश्रद्धावान् जिनागमे । अमायि निर्मायं रूपं यस्यस तथा छद्मरहितइत्यर्थः ॥ ६ ॥

---

॥ टीका—मानविपाकमुपदर्श्याधुना क्रोधादिकषायदोषमुद्भावयितुमाह । ( जेकोहणे इत्यादि) योह्यविदितकषायविपाकः प्रकृत्यैव क्रोधनोनवति तथा जगदर्थनाषी यश्च नवति । जगत्यर्थाजगदर्थाये यथा व्यवस्थिताः पदार्थास्तानानाषितुं शीलमस्य जगदर्थनाषी तद्यथा ब्राह्मणं डोडमिति ब्रूयात्तथा वणिजं किराटमिति शूद्रमानीरमिति श्वपाकं चांडालमित्यादि तथा काणं काणमिति तथा खंजं कुब्जं वडनमित्यादि तथाकुष्टिनं क्षयिणमित्यादि योयस्य दोषस्तं तेन खरं परुषं ब्रूयात् यः सजगदर्थनाषी । यदिवा जयार्थनाषी यथैवात्मनोजयोनवति तथैवाविद्यमानमप्यर्थं नाषते तच्छीलश्च येन केनचित्प्रकारेणाऽसदर्थनाषणेनाप्यात्मनोजयमिच्छतीत्यर्थः । ( विउसियंति ) विविधमवसितं पर्यवसितमुपशांतं द्वंद्वं कलहं यः पुनरप्युदीरयेत् । एतदुक्तं नवति । कलहकारिनिर्मिथ्यादुष्कृतादिना परस्परं क्षामितेपि तद्ब्रूयायेन पुनरपि तेषां क्रोधादयोनवंति । सांप्रतमेतद्विपाकं दर्शयति । यथाह्यंधश्चक्षुर्विकलोदंडपथं गोदंडमार्गं प्रमुखोज्ज्वलं गृहीत्वाऽऽश्रित्य व्रजन् सम्यगकोविदतया घृष्यते कंटकश्वापदादिनिः पीड्यते एवमसावपि केवलं लिंगधार्यनुपशांतक्रोधः कर्कशनाष्यधिकरणोदीपकस्तथा ( अविउसियत्ति ) अनुपशांतद्वंद्वः पापमनार्यं कर्मानुष्ठानं यस्यासौ पापकर्मा घृष्यते चतुर्गतिके संसारे यातनास्थानगतः पौनःपुन्येन पीड्यतइति ॥५॥ किंचान्यत् । (जेविग्गहिएइयादि ) यः कश्चिदविदितपरमार्थोविग्रहोयुद्धं सविद्यते यस्यासौ विग्रहिकोयद्यपि प्रत्युपेक्षणादिकाः क्रियाविधत्ते तथापि युद्धप्रियः कचिद्भवति तथाऽन्याय्यं नाषितुं शीलमस्य सोऽन्यायनाषी यत्किंचन नाष्यऽस्था

नजाति गुर्वाद्यधिक्षेपकरोवा यश्चैवंनूतोनासौ समोरक्तद्विष्टतया मध्यस्थोनवति । तथा नाप्यझंझां प्राप्तोकलहप्राप्तोवा नभवत्यमायाप्राप्तः । यदिवा अझंझाप्राप्तैरकलहप्राप्तैः सम्यग्दृष्टिभिरसौ समोन नवति यतः, अतोनैवंविधेन नाव्यमपित्वक्रोधनेनाकर्कशनाषिणा चोपशांतयुध्धानुदीरकेण न्यायनाषिणाऽझंझाप्राप्तेन मध्यस्थेन च नाव्यमिति । एवमनंतरोद्दिष्टदोषवर्जीसन्नुपपातकार्याचार्यनिर्देशकारी यथोपदेशं क्रियासु प्रवृत्तः । यदिवोपायकारित्ति) सूत्रोपदेशप्रवर्तकस्तथा ह्रीर्लज्जासंयमोमूलोत्तरगुणनेदभिन्नस्तत्र मनोयस्यासौ ह्रीमनाः । यदिवाऽनाचारं कुर्वन्नाचार्यादिन्योलज्जते सएवमुच्यते । तथैकांतेन तत्त्वेन जीवादिषु पदार्थेषु दृष्टिर्यस्यासावेकांतदृष्टिः । पाठांतरंवा (एगंतसड्ढित्ति ) एकांतेन श्रद्धावान मौनींद्रोक्तमार्गे एकांतेन श्रद्धालुरित्यर्थः । चकारः पूर्वोक्तदोषविपर्यस्तगुणसमुच्चयार्थः । तद्यथा । ज्ञानपलिउंचकोक्रोधीत्यादि । तावदझंझाप्राप्तइति स्वतएवाह । ( अमाइरूवेत्ति ) अमायिनोरूपं यस्यासावमायिरूपोऽशेषछद्मरहितइत्यर्थः । न गुर्वादीन् छद्मनोपचरति नाप्यन्येन केनचित्सार्धं छद्मव्यवहारं विधत्तइति ॥ ६ ॥

स पेसले सुहुमे पुरिसजाए, जच्चन्निए चेव सुउज्जुयारे ॥ बहुंपि
अणुसासिए जे तहच्चा, समे हु से होइ अझंझपत्ते ॥ ७ ॥ जे
आवि अप्पं वसुमंति मत्ता, संखाय वायं अपरिक्ख कुज्जा ॥ त
वेण वाहं सहिउत्ति मत्ता, अणं जणं पस्सति बिंबनूयं ॥ ८ ॥

अर्थ-( सपेसले के० ) तेने आचार्यादिके घणो शिखव्यो छतो पण यथार्थ तेवाज नावें वर्ते पण गुरु वचन विरोधि नथाय तेने पेशल एटले मनोहर विनयादिक गुणवंत जाणवो. तथा (सुहुमे के०) सूक्ष्म नावनो देखनार तथा (पुरुषजात के०) परमार्थथकी पुरुषार्थनो साधक तथा (जच्चन्निए के०) तेवीज जातिसहित सत्कुलोत्पन्न जाणवो (चेव के० ) निश्चय थकी ( सुउज्जुयारे के० ) ते ऋजु आचारी एटले सरल मार्गे प्रवर्ते तेवा पुरुषने ( बहुंपिअणुसासिएजेतहच्चा के० ) आचार्यादिके घणो शिखाव्यो छतो सुखनुं राग फेरवे नही अर्थात् प्रसन्न मन राखे ( समेहुसेहोइअझंझपत्ते के० ) ते पुरुष श्रीवीतराग समान कलह रहित थाय ॥ ७ ॥ ( जेयाविअप्पंवसुमंतिमत्ता के० ) जे कोइ लघुप्रकृति पोताने आत्माने वसुमंत एटले संयमवंत जाणीने ( संखायवायंअपरिक्खकुज्जा के० ) सम्यक् परमार्थ अपरीक्ष्य थको आत्मोत्कर्ष अभिमान करे ( तवेणवाहंसहिउत्तिमत्ता के० ) तथा हुंज तपे करी सहितछुं माहारा समान बीजो कोइ तपस्वी नथी एवीरीते जाणीने अनिमान धारण करी ( अणंजणंपस्सतिबिंबनूयं के० ) अन्य जन ने बिंबनूत गुणशून्य आकार मात्र देखे एटले जलचंद्रमानी पेरे जाणे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—क्वचित्प्रमादसंचलने सति आचार्यादिना बव्हप्यनुशास्यमानस्तथैव स न्मार्गानुसारिणी वा लेश्या चित्तवृत्तिर्यस्य सतथार्थः । एवंभूतोयः सपेशलोमृष्टवाक्यः सूक्ष्मदर्शित्वात् । पुरुषजातः सएव तत्त्वपुरुषार्थकारी सएव जात्यन्वितः सत्कुलोत्पन्नः। सुशीलोहि कुलीनः स्यान्नसुकुलोत्पत्तिमात्रेण सएव सुष्टु अतिशयेन ऋजुः संयमस्तस्य क रणशीलः सएव समोमध्यस्थः झंझा क्रोधोमाया वा तामप्राप्तोभवति ॥ ७ ॥ यश्चापि वसु द्रव्यं संयमस्तद्वंतमात्मानं मत्वा तथा संख्या ज्ञानं तद्वंतमात्मानं मत्वा परमार्थमप रीक्ष्य वादमात्मोत्कर्षवादं कुर्यात् । तथा तपसा सहितोहमिति मत्वाऽन्यं जनं बिंब भूतं जलचंद्रवदर्थशून्यं पश्यति अवगणयतीत्यर्थः ॥ ८ ॥

---

॥ टीका—पुनरपि सद्गुणोत्कीर्तनायाह । ( सपेशलेइत्यादि ) योहि कटुसंसारोद्विग्नः क्वचित्प्रमादस्खलिते सत्याचार्यादिना बह्वप्यनुशास्यमानश्चोद्यमानस्तथैव सन्मार्गानुसारि एयर्चा लेश्या चित्तवृत्तिर्यस्य भवतीति तथार्चः।यश्च शिक्षां ग्राह्यमाणोपि तथार्चोभवति सपेशलोमिष्टवाक्योविनयादिगुणसमन्वितः सूक्ष्मः सूक्ष्मदर्शित्वात्सूक्ष्मभाषित्वा द्वा सूक्ष्मः सएव पुरुषजातः सएव परमार्थतः पुरुषकार्यकारी नापरोयोऽनायुधतपस्विजनपराजिते नापि क्रोधेन जीयते तथाऽसावेव जात्यन्वितः सुकुलोत्पन्नः । सच्छीलान्वितोहि कुलीन इत्युच्यते न सुकुलोत्पत्तिमात्रेण । तथा सएव सुष्ठ्वतिशयेन ऋजुः संयमस्तत्करणशीलोऋ जुकरः । यदिवा (उज्जुचारेत्ति) यथोपदेशं यः प्रवर्तते नतु पुनर्वक्रतयाऽचार्यादिवचनं वि लोमयति प्रतिकूलयति यश्च तथार्चः पेशलः सूक्ष्मभाषी जात्यादिगुणान्वितः क्वचिदवक्रः समोमध्यस्थोनिंदायां पूजायां च न रुष्यति नापि तुष्यति तथा झंझा क्रोधोमाया वा तां प्रा प्तोझंझाप्राप्तः।यदि वा ऽझंझाप्राप्तैर्वीतरागैः समस्तुल्योभवतीति ॥७॥ प्रायस्तपस्विनां ज्ञान तपोऽवलेपोभवतीत्यतस्तमधिकृत्याह । ( आविअप्पंइत्यादि ) यश्चापि कश्चिल्लघुप्रकृतिर ल्पतयाऽत्मानं वसु द्रव्यं तच्च परमार्थचिंतायां संयमस्तद्वंतमात्मानं मत्वाऽहमेवात्र संयमवान् मूलोत्तरगुणानां सम्यग्विधायी नापरः कश्चिन्मत्तुल्योस्तीति । तथा संख्यायंते परिछिद्यंते जीवादयः पदार्थायेन तज्ज्ञानं संख्येत्युच्यते तद्वंतमात्मानं मत्वा तथा स म्यक् परमार्थमपरीक्ष्यात्मोत्कर्षवादं कुर्यात्तपसा द्वादशभेदभिन्नेनाहमेवात्र सहितोयुक्तो न मत्तुल्योविकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोस्तीत्येवं मत्वाऽऽत्मोत्कर्षाभिमानीत्यन्यं जनं साधुलोकं गृहस्थलोकं वा बिंबभूतं जलचंद्रवत्तदर्थशून्यं कूटकार्षापणवद्वा लिंगमात्रधारिणं पुरु षाकृतिमात्रं वा पश्यत्यवमन्यते । तदेवं यद्यन्मदस्थानं जात्यादिकं तत्तदात्मन्येवारो प्यापरमवभूतं पश्यतीति ॥ ८ ॥

एगंत कूम्हेण ज से पलेइ, ण विज्जती मोणपयंसि गोत्ते ॥ जे माण
णछेण विउक्कसेज्जा, वसुमन्नतरेण अबुज्जमाणे ॥ ए ॥ जे माह
णो खत्तियजायए वा, तहुग्गपत्ते तह लेछई वा ॥ जे पवईए
परदत्तजोई, गोत्तेण जे थप्नति माणवद्धे ॥ १० ॥

अर्थ–ते पुरुष (एगंतकूम्हेणउसेपलेइ के०) एकांत कूटपाशे करीने जेम मृग कूटपाशे पडशो थको डुःखनु विनागी थायछे तेनी पेरे ते मंदबुद्धि पण संसारमांहे परिभ्रमण करे ते पुरुष कदापि (मोणपयंसि के०) मौनपद एटले संयमपद तेनेविषे (णविज्जती के०) सर्वथा प्रकारे विद्यमान नथी एम समजवुं तथा ते पुरुष (गोत्ते के०) उंचगोत्रने विषे पण न प्रवर्त्ते किंतु ते अत्यंत हीन गोत्रनेज पामे तथा (जे माणणछेणविउक्कसेज्जा के०) जे मान एटले पूजाने अर्थे व्युत्कर्ष एटले विविध प्रकारे अनिमान करे तेपण संयमने विषे नथी एम जाणवुं तथा जे (वसु के०) संयमने ग्रहण करीने पछी (अन्नतरेण के०) मंदविपाकना उदय थकी अन्य कोइ मद स्थानकने विषे माचे ते (अबुज्जमाणे के०) निश्चे थकी परमार्थने अजाणतो अज्ञानी थको संसारमां परिभ्रमण करे ॥ ए ॥ (जेमाहणोखत्तियजायएवा के०) तथा जे ब्राह्मणजाति अथवा क्षत्रियजाति ते इक्ष्वाकुवंशादिक तेना नेद कहेछे. (तहुग्गपत्ततहलेछईवा के०) तथा जे उग्रपुत्र तथा लेछई एटले राजपुत्र विशेष नवमल्लिक नवलेछिक एटला कुलमां उत्पन्न थयला संसारने असार जाणीने राज्य प्रमुख त्यागीने (जेपवईए के०) जे प्रवर्जित थया एटले चारित्रवान थया ते एवा छता पण (परदत्तजोई के०) पारको दीधो एवो जे आहार तेने नोगवे एटले शुद्धाहार ग्रहण करे (गोत्तेणजेथप्नतिमाणवद्धे के०) परंतु गोत्रने विषे गर्व नकरे एटले शुद्धाहारनुं ग्रहण करनार एवो चारित्रीउ पोताना उंच गोत्रने विषे गर्व करे नही गोत्र केवोछे तोके मानबद्ध एटले ब्राह्मण तथा क्षत्रीय वंशना उपना स्वनावे पोताना वंशना अनिमानी थायछे तेम छतां पण चारित्र आदर्या पछी कोइपण प्रकारना गोत्रनुं आहार ग्रहण करे परंतु शुद्धाहार ग्रहण करे पण पोताना गोत्रनो गर्व करीने तेवाज गोत्रनो अशुद्ध आहार लेवानी इछा चारित्रिउ करे नही ए अनिप्रायछे. ॥ १० ॥

---

॥ दीपिका–यथा कूटेन पाशेन बद्धोमृगादिः परवशोडुःखी स्यात्तथा नावकूटेन स्नेहेन एकांततोऽसौ संसारं पर्यैति बंभ्रमीति । मौनपदे संयमे सन् प्रवर्तते। किंनूते संयमे गोत्रे गां वाचं त्रायतइति गोत्रं सर्वागमाधारनूतं तस्मिन् । यश्च माननं सत्कारस्तस्या

र्थः प्रयोजनं तेन आत्मानं व्युत्कर्पयेत् मदवंतं कुर्यात् तथा च सु संयमस्तमादायान्यतरेण ज्ञानादिना मदस्थानेन माद्यति ससर्वज्ञमतं तत्त्वतोन वेत्तीति नावः ॥ ए ॥ योजात्या ब्राह्मणः क्षत्रियजातीयोवा उग्रपुत्रः क्षत्रियविशेषः ( लेच्छइत्ति ) क्षत्रियविशेषएव । एवं विशिष्टकुलोद्भूतः प्रव्रजितः परदत्तनोजी शुध्दाहारग्राही गोत्रे उच्चैर्गोत्रे उत्पन्नोपि नैव स्तंभं गर्वं यायात् । किंनूते गोत्रे मानबध्दे अनिमानास्पदे ॥ १० ॥

---

॥ टीका—किंचान्यत् । ( एगंतकूडेइत्यादि ) कूटवत्कूटं यथा कूटेन मृगादिर्बध्दः परवशः सन्नेकांतदुःखनाग्नवति । एवं नावकूटेन स्नेहमयेनैकांततोऽसौ संसारचक्रवालं पर्येति तत्र वा प्रकर्षेण लीयते प्रलीयतेऽनेकप्रकारं संसारं बंभ्रमीति । तुशब्दात्कामादिना वा मोहेन मोहितोबहुवेदने संसारे प्रलीयते । यश्चैवंनूतोऽसौ न विद्यते न कदाचन संनवति । मुनीनामिदं मौनं तच्च तत्पदं च मौनपदं संयमस्तत्र मौनींड्वा पदे सर्वज्ञप्रणीतमार्गे नासौ विद्यते । सर्वज्ञमतमेव विशिनष्टि । गां वाचं त्रायतेऽर्थाविसंवादनतः पालयतीति गोत्रं तस्मिन्समस्तागमाधारनूतइत्यर्थः । उच्चैर्गोत्रे वा वर्तमानस्तदनिमानग्रहग्रस्तोमौनींड्पदे न वर्तते । यश्च माननं पूजनं सत्कारस्तेनार्थः प्रयोजनं तेन माननार्थेन विविधमुत्कर्पयेदात्मानं योहि माननार्थेन लान्पूजासत्कारादिना मदं कुर्यान्नासौ सर्वज्ञपदे विद्यतइति पूर्वेण संबंधः । तथा वसु द्रव्यं तच्चेह संयमस्तमादाय तथान्यतरेण ज्ञानादिना मदस्थानेन परमार्थमबुध्यमानोमाद्यति पठन्नपि सर्वशास्त्राणि तदर्थं वा गच्छन्नपि नासौ सर्वज्ञमतं परमार्थतोजानातीति ॥ ए ॥ सर्वेषां मदस्थानानामुत्पत्तेरारन्य जातिमदोबाह्यनिमित्तनिरपेक्षोयतोनवत्यतस्तमधिकृत्याह । ( जेमाहणेइत्यादि ) योहि जात्या ब्राह्मणोनवति क्षत्रियोवा इक्ष्वाकुवंश्यादिकः । तन्नेदमेव दर्शयति । उग्रपुत्रः क्षत्रियविशेषजातीयः । तथा (लेच्छइत्ति) क्षत्रियविशेषएव । तदेवमादिविशिष्टकुलोद्भूतोयथावस्थितसंसारस्वनाववेदितया यः प्रव्रजितस्त्यक्तराज्यादिगृहपाशबंधनः परैर्दत्तं नोक्तुं शीलमस्य परदत्तनोजी सम्यक्संयमानुष्ठायी गोत्रे उच्चैर्गोत्रे हरिवंशस्थानीये समुत्पन्नोपि नैव स्तंनं गर्वमुपयायादिति । किंनूते गोत्रे अनिमानबध्दे अनिमानास्पदे इति । एतदुक्तं नवति । विशिष्टजातीयतया सर्वलोकान्निमान्योपि प्रव्रजितः सन् कृतशिरस्तुंडमुंडनोनिक्षार्थं परगृहाण्यटन् कथं हास्यास्पदं गर्वं कुर्यान्नैवासौ मानं कुर्यादिति तात्पर्यार्थः ॥१०॥

न तस्स जाई व कुलं व ताणं, णएणत्र विज्जा चरणं सुचिन्नं ॥ णिक्खम्म से सेवइ गारिकम्मं, ण से पारए होइ विमोयणाए ॥ ११ ॥

णिक्किंचणे भिक्खु सुलूहजीवी, जे गारवं होइ सलोगगामी ॥
आजीवमेयं तु अवुज्झमाणो,पुणोपुणो विप्परियासुवेंति ॥ १२ ॥

अर्थ-(नतस्सजाईव कुलंवताणं के०) ते अभिमानी पोताना गोत्रसंबंधी मदना करनारने जाति एटले जे मातानुं पक्ष अने कुल एटले पितानुं पक्ष ए बंनेनुं मद त्राणने अर्थे न थाय कारणके संसारमां भ्रमण करतां प्राणीने मातानी जाति अने पितानुं कुल ते कांइ त्राण भणी नथाय हवे जे पदार्थ जीवने त्राण थाय ते कहेछे (ण सुउविज्जाचरणं सुचिन्नं के०) विद्या एटले ज्ञान अने चरण एटले चारित्र सुचीर्ण एटले ए बन्नेने सारीरीते आचर्या थकी मुक्तिनुं कारण थायछे. अर्थात् ज्ञान अने क्रिया ए बे विना बीजो कोई जीवने शरण नथी (णिक्खम्मसेसेवइगारिकम्मं के०) माटे जे पुरुष ग्रहस्थपणा थकी णिक्खम्म एटले निकली चारित्र आदरीने फरी आगारीनो कर्त्तव्य जे जातिमदादिक तेने सेवे अथवा सावद्यारंभादिक सेवे (णसेपारए होइविमोयणाए के०) ते पुरुष संसारनो पारंगामि न थाय केमके ज्ञान. दर्शन अने चारित्र एज मुक्तिना कारणछे परंतु जातिकुलादिकनो मद ते कांई मुक्तिनो कारण नथी एम जाणवुं ॥ ११ ॥ (णिक्किंचणेभिक्खु सुलूहजीवि के०) जे निकिंचन निपरिग्रही सुलुक्षजीवी एटले अंतप्रांत आहारनो लेनार होय तेने भिक्षु एटले साधु जाणवो अने (जेगारवं होइसलोगगामी के०) जे गर्ववंत होय श्लाघा एटले प्रसंसानो कामि एटले वांछा करनार होय (आजीवमेयं तुअवुझमाणो के०) ते जीव आजीविका मात्रनो करनार छता शुद्ध संयमनो अजाण एवो छतो (पुणोपुणोविप्परियासुवेंति के०) ते जीव फरी फरी विपर्यासनने पामे एटले वली वली जन्ममरणादिके करीने घणो संसारने विषे परिभ्रमण करे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका-तस्याभिमानवतोजातिमदः कुलमदोवाऽत्र संसारभ्रमणे शरणं नस्यात्। मातृभवा जातिः पितृभवं कुलमेतदुपलक्षणादन्यदपि पदस्थानं न त्राणाय। यत्त्राणं तदाह। सुचीर्णं विद्या ज्ञानं चरणं चारित्रंच तस्मादन्यत्र त्राणाशा न विद्यते। ज्ञानक्रियाभ्यामेव मोक्षइति वचनात्। एवंसत्यपि कश्चित् निष्क्रम्य प्रव्रज्या गृहीत्वापि अगारिणां गृहस्थानां कर्म सावद्यक्रियां सेवते न च कर्ममोचनाय पारगोभवति ॥ ११ ॥ वाह्यार्थेन निष्किंचनोभिक्षुः सुरूक्षजीवी वल्लचणकादिप्रांताहारएवंभूतोपि कश्चिद्गौरवप्रियोभवति। तथा श्लोककामी आत्मश्लाघाभिलाषी च स्यात्। नचैवंभूतो निष्किंचनत्वादिकमाजीवमात्मवर्तनोपायं कुर्वाणः परमार्थमवुध्यमानः संसारे विपर्यासं जन्ममरणाद्युपद्रवमुपैति ॥ १२ ॥

॥ टीका–न चासौ मानः क्रियमाणोगुणायेति दर्शयितुमाह् । ( नतस्सजाईस्यादि ) नहि तस्य लघुप्रकृतेरभिमानोद्धुरस्य जातिमदः कुलमदोवा क्रियमाणः संसारं पर्यटत स्त्राणं नवति । नह्यभिमानोजात्यादिकऐहिकामुष्मिकगुणयोरुपकारीति । इह्च मातृसमु त्थाजातिः पितृसमुत्थं कुलं एतच्चोपलक्षणमन्यदपि मदस्थानं न संसारत्राणायेति । यत्पुनः संसारोत्तारकत्वेन त्राणसमर्थं तद्दर्शयति । ज्ञानं च चरणं च ज्ञानचरणं तस्मादन्यत्र संसारोत्तारणत्राणाशा न विद्यते । एतच्च सम्यक्त्वोपबृंहितं सत् सुष्टु चीर्णं सुचीर्णं संसा राडुत्तारयति । ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षइति वचनात् । एवंभूते सत्यपि मोक्षमार्गे निष्क्रम्या पि प्रव्रज्यां गृहीत्वापि कश्चिदपुष्टधर्मा संसारोन्मुखः सेवतेऽनुतिष्ठत्यभ्यस्यति पौनःपुन्ये न विधत्ते अगारिणां गृहस्थानामंगं कारणं जात्यादिकं मदस्थानं पापांतरं वा ( अगारि कम्मंति ) अगारिणां कर्मानुष्ठानं सावद्यमारंभं जातिमदादिकं वा सेवते । नचासावगा रिकर्मणां सेवकोऽशेषकर्ममोचनाय पारगोनवति । निःशेषकर्मक्षयकारी न नवतीति ना वः । देशमोचनात्तु प्रायशः सर्वेषामेवासुमतां प्रतिक्षणमुपजायतइति ॥ ११ ॥ पुनरप्य भिमानदोषाविर्भावनायाह । ( णिक्किंचणेइत्यादि ) बाह्येनार्थेन निष्किंचनोपि भिक्षण शीलोभिक्षुः परदत्तनोजी तथा सुष्ठुरूक्षमंतप्रांतं वल्लचणकादि तेन जीवितुं प्राणधारणं कर्तुं शीलमस्य स सुरूक्षजीवी । एवंभूतोपि यः कश्चिद्गारवक्रियोनवति । तथा श्लोक कामी आत्मश्लाघाभिलापी नवति । सचैवंभूतः परमार्थमबुध्यमानएतदेवाकिंचनत्वं सुरूक्षजीवित्वं वात्मश्लाघा तत्परतया आजीवमाजीविकामात्मवर्तनोपायं कुर्वाणः पुनःपुनः संसारकांतारे विपर्यासं जन्मजरामरणरोगशोकोपद्रवमुपैति गच्छति तदुत्तरणा यान्युद्यतोवा तत्रैव निमज्जतीत्ययं विपर्यासइति ॥ १२ ॥

जे नासवं भिक्कु सुसाहुवादी, पडिहाणवं होइ विसारएय ॥
आगाढपसे सुविनावियप्पा, अन्नं जणं पन्नसा परिहवेज्जा॥१३॥
एवं ण से होइ समाहिपत्ते, जे पन्नवं भिक्कु विउक्कसेज्जा ॥ अ
हवा वि जे लाभमयावलित्ते, अन्नं जणं खिंसति बालपन्ने॥ १४ ॥

अर्थ–( जे नासवंभिक्कुसुसाहुवादी के० ) जे साधु नापाना गुण तथा दोषनो जाण तथा सुसाहुवादी एटले प्रिय वचननो बोलनार एटले क्षीराश्रव मध्वाश्रव लब्धीवा लो वली ( पडिहाणवंहोइ के० ) प्रतिभावंत एटले उत्पातिकादिक चार प्रकारनी बुद्धिनो पारंगामि होय तथा ( विसारएय के० ) विशारद एटले पंमित अर्थ ग्रहण करवाने समर्थ ( आगाढपसे के० ) आगाढप्रज्ञ एटले प्रस्ताववेत्ता अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र,

काल अने नावनो जाण तथा ( सुविनावियप्पा के० ) नानाप्रकारनी नावनायें करी ने नाव्योछे आत्मा जेमनो एवो छतो ( अन्नंजणंपन्नसापरिहवेज्जा के० ) अन्य जन प्रत्ये पोतानी प्रज्ञाये करी एटले पोताना जाणपणे करी परानवे अर्थात् एम जाणे जे माहारा समान कोइ जाण पुरुष नथी एरीते बीजाने तृणवत गणे. ॥ १३ ॥ एवा साधुने दोष कहेछे. ( एवंणसेहोइसमाहिपत्ते के० ) एरीते अहंकारनो कर नार जे साधु होय ते समाधिने प्राप्त थयो न कहेवाय (जेपन्नवंनिरकुविउक्कसेज्जा के०) जे साधु प्रज्ञावंत थइने व्युत्कर्ष एटले गर्वने धारण करे ( अहवाविजेलानमयावलित्ते के० ) अथवा जे कोइ साधु अल्पांतराय थको लानवान् एटले बीजाने उपकरण आ पवाने समर्थ छतो लानना मदे करी लिप्त थाय एटले मत्त थाय ( अन्नंजणंखिंसति वालपन्ने के० ) अन्य जनने खिंसे एटले बीजानी निंदा करे अने एम विचारे जे सर्व साधारण सय्या संस्तारक प्रमुख लाववाने हुंज समर्थछुं बीजा वापडा शुं? पेट नरवाने पण समर्थ नथी एवो साधु बाल एटले मूर्ख बुद्धिवालो जाणवो. ॥ १४ ॥

---

॥ दीपिका—नाषावान् नाषागुणदोषज्ञोयोनिक्षुः सुसाधुवादी हितमितवादी प्रतिना नमुत्पत्तिक्यादिबुद्धिस्तद्वान विशारदोऽर्थग्रहणसमर्थः । अगाढा तत्त्वनिष्ठा प्रज्ञा बु द्धिर्यस्य सोगाऽढप्रज्ञः सुविनावितोधर्मवासनावासितआत्मायस्य सतथा । एनिर्गुणैः साधुर्नवति यश्च मदयानन्यं जनं स्वकीयया प्रज्ञया परिनवेत् ॥ १३ ॥ तद्दोषानाह । ए वं परपरिनवकारी समाधिर्धर्मध्यानं तत्र प्राप्तोन नवति । यः प्रज्ञावान् निक्षुरुत्कर्षेत् ग र्वं कुर्यात् । अथवा योलानमदावलिप्तः स्यात् लानमदेन व्याप्तः स्यात्सोन्यं जनं निंदति वालप्रज्ञोमूर्खप्रायस्तन्निंदयाच समाधिं न प्राप्नोतीति ॥ १४ ॥

---

॥ टीका—यस्मादमी दोषाः समाधिमाख्यातमसेवमानानामाचार्यपरिनाषिणां वा त स्मादमीनिः शिष्यगुणैर्नाव्यमित्याह । ( जेनासवमित्यादि ) नाषागुणदोषज्ञतया शो ननाषायुक्तोनाषावान् निक्षुः साधुस्तथा सुष्ठु साधु शोननं हितं मितं प्रियं वदितुं शी लमस्येत्यसौ सुसाधुवादी क्षीरमध्वाश्रववादीत्यर्थः । तथा प्रतिना नामोत्पत्तिक्यादिबुद्धि गुणसमन्वितत्वेनोत्पन्नप्रतिनत्वं तत्प्रतिनानं विद्यते यस्यासौ प्रतिनानवान् अपरेणा क्षिप्तस्तदनंतरमुत्तरदानसमर्थः । यदिवा धर्मकथावसरे कोयं पुरुषः कंच देवताविशेषं प्रणतः कतरद्वा दर्शनमाश्रितइत्येवमासन्नप्रतिनतया यथायोगमाचष्टे तथा विशारदोऽर्थ ग्रहणसमर्थोबहुप्रकारार्थकथनसमर्थोवा चशब्दाच्च श्रोत्रनिप्रायज्ञस्तथा अगाढाऽवगाढा परमार्थपर्यवसिता तत्त्वनिष्ठा प्रज्ञा बुद्धिर्यस्यासावगाढप्रज्ञस्तथा सुष्ठु विविधं नावितोधर्मे

वासनया वासितश्चात्मा यस्यासौ सुविनावितात्मा । तदेवमेनिः सत्यनापादिनिर्गुणैः शोननः साधुर्नवति । यश्चैनिरेव निर्जराहेतुनूतैरपि मदं कुर्यात्तद्यथाऽहमेव नाषाविधिज्ञस्तथा साधुवाग्यहमेवच न मनुष्यः प्रतिनानवानस्ति नापि मत्समानोलौकिकोलोकोत्तरशास्त्रार्थविशारदोऽवगाढप्रज्ञः सुनावितात्मेति चैवमात्मोकर्षवानन्यं जनं स्वकीयया प्रज्ञया परिन्नवेत् एवं मन्यते । तथाहि । किमनेन वाऽकुंरेन डुर्डुरूढेन कुंडिकाकार्पासकतुल्येन खसूचिना कार्यमस्ति क्वचित्सनायां धर्मकथावसरे वेत्त्येवमात्मोत्कर्षवान् नवति । तथाचोक्तं । अन्यैः स्वेच्छारचितानथविशेषान् श्रमेण विज्ञाय ॥ कृत्स्नं वाङ्मयमितइति खादत्यंगानि दर्पेणेत्यादि ॥ १३ ॥ सांप्रतमेतद्दोषानिधित्सयाह । ( एवंणसेइत्यादि ) एवमनंतरोक्तया प्रक्रियया परपरिन्नवपुरःसरमात्मोत्कर्षं कुर्वन्नशेषशास्त्रार्थविशारदोपि तत्त्वार्थगाढप्रज्ञोप्यसौ समाधिं मोक्षमार्गं ज्ञानदर्शनचारित्ररूपं धर्मध्यानाख्यं वा न प्राप्तोनवत्युपर्यैवासौ परमार्थोदन्वतः ल्लवते । कथंनूतोनवतीति दर्शयति । योह्यविदितपरमार्थतयात्मानं सद्बेमुषीकं मन्यमानः स्वप्रज्ञया निक्कुरुत्कर्षंजर्वं कुर्यान्नासौ समाधिं प्राप्तोनवतीति प्राक्तनेन संबंधः । अन्यदपि मदस्थानदोषमुद्घट्टयति । अथवेति पक्षांतरे । योह्यल्पांतरायोलब्धिमानात्मकृते परस्मै चोपकरणादिकमुत्पादयितुमलं सलघुप्रकृतितया लानमदावलिप्तोनवति तदवलिप्तश्च समाधिमप्राप्तोनवति । सचैवंनूतोऽन्यं जनं कर्मोदयादलब्धिमंतं खिंसइत्ति निंदति परिन्नवति वक्ति च नमनुष्यः सर्वसाधारणः शय्यासंस्तारकाद्युपकरणोत्पादकोविद्यते किमन्यैः स्वोदरनरणव्यग्रतया काकप्रायैः कृत्यमस्तीत्येवं बालप्रज्ञोमूर्खप्रायोऽपरजनापवादं विदध्यादिति तदेवं प्रज्ञामदावलेपादन्यस्मिन् जने निंद्यमाने बालसदृशैर्नूयते यतोतः प्रज्ञामदोन विधेयोन केवलमयमेव विधेयोन्यदपि मदस्थानं संसारजिहीर्षुणा नविधेयमिति ॥ १४ ॥

पन्नामयं चेव तवोमयंच, णिन्नामए गोयमयं च निक्खू ॥ आ
जीवगं चेव चउत्थमाहु, से पंमिए उत्तम पोग्गलेसे ॥ १५ ॥ ए
याइं मयाइ विगिंच धीरा, ण ताणि सेवंति सुधीरधम्मा ॥ ते स
व्वगोत्तावगया महेसी, उच्चं अगोत्तं च गतिं उवेंति ॥ १६ ॥

अर्थ—( पन्नामयंचेवतवोमयंच के० ) प्रज्ञानो मद तेम वली तपनो मद एटले हुं बुद्धिवान हुं हुं तपस्यावान हुं एवो जे मद तेने ( णिन्नामए के० ) नमाडे एटले एवो मद नकरे तथा ( गोयमयंचनिक्खू के० ) गोत्रनो मद साधु नकरे एटले माहरो उंच गोत्रछे हुं उत्तम कुलमां जन्म पाम्योछुं एवो अहंकार साधु नकरे ( आजीवगंचेवचउ

हमाहु के० ) आसमंतथी जीते आजीविकाअर्थः एटले चोथो आजीविक एटले अर्थ अर्थात् धन तेनो मद साधु नकरे एम बीजो पण कोइ प्रकारनो मद नकरे (सेपंमि एउत्तमपोग्गलेसे के० ) ते पंमित उत्तम पुजलने विषे पोते निस्पृह एवा आत्मावालो ते साधु जाणवो ॥ १५ ॥ ( एयाइंमयाइविगिंचधीरा के० ) ए पूर्वोक्तजे प्रज्ञादिक मद ना स्थानक कह्या तेने धैर्यवान साहसीक पुरुष संसारना कारण जाणीने पोताना आत्मा थकी जूदा करे ( णताणिसेवंतिसुधीरधम्मा के० ) एटला मदना स्थानकने सुप्र तिष्ठित जेनो धर्मछे एवा पुरुष नसेवे एटले आदरे नही ( तेसव्वगोत्तावगयामहेसी के० ) ते समस्त गोत्रादिक मदरहित एवो महारुपीश्वर जे होय एवाने फल कहेछे. (उच्चंअ गोत्तंचगतिंवयंति के० ) उंच अने अगोत्र एटले जेने विषे नामगोत्रादिक कर्म नथी तेवी गति पामे एटले ते साधु मोक्षने विषे जाय ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–प्रज्ञा बुद्धिस्तया मदस्तं तपोमदं च निर्नामयेन्निश्चयेनापनयेत् गोत्रमदं च निष्कुर्नामयेत् । आजीवोर्थनिचयस्तं गच्छत्याजीवगोऽर्थमदस्तं च चतुर्थं नामयेत् ॥ तु शब्दाक्षेपानपि मदान् वर्जयेत् सपुजलआत्मा पंडितउत्तमश्च स्यात् ॥ १५ ॥ एतानि प्र ज्ञादीनि मदस्थानानि विगिंच पृथक्कुर्यार्द्वर्जयेत् । धीराज्ञाततत्त्वाः । सुधीरः सुप्रतिष्ठि तोधर्मोयेषां ते सुधीरधर्माणएवंभूतास्तानि मदस्थानानि नासेवंते ते सर्वस्माडुच्चैर्गोत्रा देरपगतामहर्षयउच्चां मोक्षाख्यां गतिं व्रजंति । अगोत्रां गोत्रकर्मोपलक्षणादन्यदपि कर्म तत्र न विद्यतइति ॥ १६ ॥

॥ टीका–तद्दर्शयितुमाह । ( पण्णामयंचेवेत्यादि ) प्रज्ञया तीक्ष्णबुध्या मदः प्रज्ञाम दस्तंच तपोमदं निश्चयेन नामयेन्निर्नामयेदपनयेदहमेव यथाविधशास्त्रार्थस्य वेत्ता तथा हमेव विकृष्टतपोविधायी नापि तपसोग्लानिमुपगच्छामीत्येवं रूपं मदं न कुर्यात्तथोच्चै र्गोत्रे इक्ष्वाकुवंशहरिवंशादिके संभूतोहमित्येवमात्मकं गोत्रमदंच नामयेदिति । आसमं ताज्जीवंत्यनेनेत्याजीवोऽर्थनिचयस्तं गच्छत्याश्रयत्यसावाजीवगोऽर्थमदस्तं च चतुर्थं नाम येच्चशब्दाक्षेपानपि मदान्नामयेत्तन्नामनाम्ना सौ पंमितस्तत्त्ववेत्ता भवति । तथाऽसावेव स मस्तमदापनोदकउत्तमपुजलआत्मा भवति । प्रधानवाची वा पुजलशब्दस्ततश्चायमर्थः । उत्तमोत्तमोमहतोपि महीयान् भवतीत्यर्थः ॥१५॥ सांप्रतं मदस्थानानामकरणीयत्वमुप दर्शयोपसंजिहीर्षुराह । (एयाइंइत्यादि) एतानि प्रज्ञादीनि मदस्थानानि संसारकारणत्वेन सम्यक्परिज्ञाय (विगंचत्ति) पृथक्कुर्यादात्मनोऽपनयेदिति यावत् । धीर्बुद्धिस्तया राजंतइति धीराविदितवेद्यानेतानि जात्यादीनि मदस्थानानि सेवंत्यनुतिष्ठंति । के एते । ये सुधीराः

सुप्रतिष्ठितोधर्मः श्रुतचारित्राख्योयेषां ते सुधीरधर्माणस्ते चैवंभूताः परित्यक्तसर्वमदस्थाना महर्षयस्तपोविशेषशोषितकल्मषाः सर्वस्माडुच्चैर्गोत्रादेरपगतागोत्रोपगताः संतउच्चां मोक्षाख्यां सर्वोत्तमां वा गतिं व्रजंति गच्छंति चशब्दात्पंचमहाविमानेषु कल्पेषु कल्पातीतेषु वा व्रजंति। अगोत्रोपलक्षणाच्चान्यदपि नामकर्मायुष्कादिकं तत्र नविद्यतइति द्रष्टव्यं ॥ १६ ॥

भिक्खू मुयच्चे कय दिठधम्मे, पाठांतरे (तहदिठधम्मे) गामं च णगरं च अणुप्पविस्सा ॥ से एसणं जाण मणेसणं च, अन्नस्स पाणस्स अणाणुगिद्धे ॥ १७॥ अरतिं रतिं च अभिभूय भिक्खू, बहूजणे वा तह एगचारी ॥ एगंतमोणेण वियागरेज्जा, एगस्स जंतो गति रागतीय ॥ १८ ॥

अर्थ—(भिक्खू के० ) ते साधु ( मुयच्चे के० ) शरीर संस्काररहित ( कयदिठधम्मे के० ) तथा दृष्ट एटले दीठोछे यथावस्थित धर्म जेणे अथवा दृढधर्मि एटले धर्मने विषे दृढ एवो छतो कोइक अवसरे (गामंचणगरंचअणुप्पविस्सा के०) भिक्षादिकने अर्थे ग्राम नगर द्रोण मडादिकने विषे प्रवेश करे ( सेएसणंजाणमणेसणंच के० ) ते एषणा एटले आहारनी शुद्धि जाणतो तथा अनेषणीय एटले आहारना अशुद्धता पणाने पण जाणतो थको उद्गमादिक दोषने सम्यक् प्रकारे टालतो थको ( अन्नस्स पाणस्सअणाणुगिद्ध के० ) अन्नने विषे तथा पाणीने विषे अगृद्ध थको लोलुपता रहित एवो छतो साधु विचरे ॥ १७ ॥ ( अरतिंरतिंचअभिभूयभिक्खू के० ) कदाचित साधुने अंतप्रांत भोजने तथा अस्नाने करी कर्म योगें संयमने विषे अरति उपजे अने असंयमने विषे रति उपजे तेवारे संसारनुं स्वभाव अस्थिर जाणीने नरकादिकना डुःखने स्मरण करतो थको उत्पन्न थयली रति अरतिनुं निराकरण करे एम रति अरतिने जीतीने सूधो संयम पाले ( बहूजणेवातहएगचारीके० ) तथा घणा जन सहित छतो तथा एकचारी एटले एकलो छतो पूछ्यो अथवा नपूछ्यो थको पण ( एगंतमोणेणवियागरेज्जा के० ) एकांत निरवद्य भाषा बोले कारणके अन्यजनोनो दाक्षिण्यपणो ते जीवने त्राण भणी नथाय तेमाटे धर्मकथाने प्रस्तावें साधु एकांत निरवद्य भाषा बोले अने बीजे प्रस्तावे मौन रहे ( एगस्सजंतोगतिरागतीय के०) जीवने गति आगति ते एकला नेज करवी पडेछे. त्यारे जीवने एकलो परलोक गमनागमन करता एक धर्म विना बीजो कोइ सहायकारी नथी एवीरीते साधु पोताना मनमां जाणे ॥ १८ ॥

---

॥ दीपिका—सभिक्षुर्मृतेव स्नानादिसंस्काराभावादर्चा शरीरं यस्य सम्मृतार्चः। तथा

कृतश्चाचरितोदृष्टोऽव्यवस्थितोऽवगतश्च धर्मोयेन सतथा । एवंभूतोग्रामं नगरं वाऽनुप्र विश्य भिक्षार्थीमेषणां गवेषणग्रहणैषणां तथाऽनेषणामुद्गमदोषादिकां च जानन्नन्नस्य पानस्य वाऽननुगृद्धोऽनासक्तः सम्यग्विहरेत् ॥ १७ ॥ अरतिं रतिं वाऽभिभूय त्यक्त्वा भि क्षुरेकांतमौनेन संयमेन व्यागृणीयात् धर्मसंबंधं ब्रूयात् । किंभूतः साधुः । बहवोजनाः संयमसहायायस्य सबहुजनोगच्छवासी। अथवा एकचारी एकल्लविहारी जिनकल्पादिर्वा । किंब्रूयादित्याह । एकस्य जंतोः कर्मानुगतस्य परलोके गतिरागतिश्च स्यादिति ॥ यतः । ए कः प्रकुरुते कर्म,भुनक्त्येकश्च तत्फलं ॥ जायते म्रियते चैक,एकोयाति भवांतरमिति ॥१८॥

---

॥ टीका–किंच । ( भिरकूमुयच्चेइत्यादि ) सएवं मदस्थानरहितोभिक्षणशीलोभिक्षुः । तं विशिनष्टि । मृतेच स्नानविलेपनादिसंस्काराभावादर्चा तनुः शरीरं यस्य समृतार्चः । यदिवा मोदनं मुत् तद्भूता शोभनाऽर्चा पद्मादिका लेश्या यस्य सभवति मुदर्चः प्रशस्तदर्श लेश्यः । तथा दृष्टोऽवगतोयथावस्थितोधर्मः श्रुतधर्मचारित्राख्योयेन सतथा चैवंभूतः क्वचिदवसरे ग्रामं नगरमन्यद्वा मडादिकमनुप्रविश्य भिक्षार्थमसावुत्तमधृतिसंहननोपप न्नः सन्नेषणां गवेषणग्रहणैषणादिकां जानन् सम्यगवच्छन्ननेषणां चोद्गमदोषादिकां तत्प रिहारं विपाकं च सम्यगवगच्छन्नन्नस्य पानस्य वा नतु गृद्धोऽनध्युपपन्नः सम्यग्विहरेत् । त थाहि । स्थविरकल्पिकाद्विचत्वारिंशद्दोषरहितां भिक्षां गृह्णीयुर्जिनकल्पिकानां तु पंचस्व भिग्रहो द्वयोर्ग्रहस्ताश्चेमाः । संसट्ठमसंसट्ठा,उद्धड तह होंति अप्पलेवाय ॥ उग्गहिया पग्गहिया, उज्झियधम्माय सत्तमीया ॥ १ ॥ अथवा योयस्याभिग्रहः सतस्यैषणा अप रात्वनैषणेत्येवमेषणानेषणाभिज्ञः क्वचित्प्रविष्टः सन्नाहारादावमूर्छितः सम्यक्शुद्धां भि क्षां गृह्णीयादिति ॥ १७ ॥ तदेवं भिक्षोरनुकूलविषयोपलब्धिमतोप्यरक्तद्विष्टतया तथा दृष्टमप्यदृष्टं श्रुतमप्यश्रुतमित्येवं भावयुक्ततया च मृतकल्पदेहस्य सुदृष्टधर्मणएषणानेष णाभिज्ञस्यान्नपानादावमूर्छितस्य सतः क्वचिद्ग्रामनगरादौ प्रविष्टस्याऽसंयमे रतिररतिश्च संयमे कदाचित्प्रादुष्यात्सा चापनेतव्येत्येतदाह । ( अरइंरइंचेत्यादि ) महामुनेरप्यस्ना नतयामलाविलस्यांतप्रांतवल्लचणकादिभोजिनः कदाचित्कर्मोदयाऽरतिः संयमे समुत्पद्ये त तां चोत्पन्नामसौ भिक्षुः संसारस्वभावं परिगणय्य तिर्यङ्नारकादिदुःखं चोत्प्रेक्ष्यमाण श्चलं संसारिणामायुरित्येवं विचिंत्याभिजवेदभिभूय वाऽसावेकांतमौनेन व्यागृणीयादित्यु त्तरेण संबंधः । तथा रतिं वाऽसंयमे सावद्यानुष्ठाने अनादिभवाभ्यासाडुत्पन्नामभिभवेदभि भूय संयमोद्युक्तोभवेदिति । पुनः साधुमेव विशिनष्टि । बहवोजनाः साधवोगच्छवासितया संयमसहायायस्य सबहुजनस्तथैकएव चरति तच्छीलश्चैकचारी सच प्रतिमाप्रतिपन्नएकल्ल विहारी जिनकल्पादिर्वा स्यात्सच बहुजनएकाकीवा केनचित्पृष्टोऽपृष्टोवैकांतमौनेन संय

मेन करणनूतेन व्यागृणीयात् धर्मकथावसरेऽन्य द्वा संयमाबाधया किंचित्धर्मसंबद्धं ब्रूया त्। किंपरिगणय्यैतत्कुर्यादित्याह। यदिवा किमसौ ब्रूयादिति दर्शयति। एकस्याऽसहा यस्य जंतोः शुनाशुनसहायस्य गतिर्गमनं परलोके नवति तथाऽऽगतिरागमनं नवांत राडुपजायते कर्मसहायस्यैवेति। उक्तंच। एकः प्रकुरुते कर्म नुनक्त्येकश्च तत्फलं॥ जा यते म्रियते चैक, एकोयाति नवांतरमित्यादि। तदेवं संसारे परमार्थतोन कश्चित्सहायोध र्ममेकं विहायैतद्विगणय्य मुनीनामयं मौनः संयमस्तेन तत्प्रधानं वा ब्रूयादिति ॥ १० ॥

सयं समेच्चा अडुवा वि सोच्चा, नासेज्ज धम्मं हिययं पयाणं ॥
जे गरहिया सणियाणप्पर्जगा, ण ताणि सेवंति सुधीरधम्मा १ए
केसिंचि तक्काइ अवुज्क नावं,खुद्दंपि गच्छेज्ज असद्दहाणे॥आउस्स
कालाइचरं वघाए, लद्धाणु माणे य परेसु अठे ॥ २० ॥

अर्थ-( सयंसमेच्चा अडुवाविसोच्चा के० ) चतुर्गतिक संसारनुं कारण मिथ्यात्वादिक छे तथा मोक्षस्वरूपनुं कारण सम्यक् ज्ञानादिकछे एवुं परोपदेशविना स्वयं पोतेज जा णीने अथवा गुर्वादिकनी पाशेथी श्रवण करीने (नासेज्जधम्मंहिययंपयाणं के०) समस्त प्रजा एटले त्रस तथा स्थावर जीवोने हितकारक एवो श्रुतचारित्ररूप जे धर्म तेने नापे एटले कहे एवो साधु जाणवो ए उपादेयपणु कह्यो हवे हेयपणु एटले जे पदार्थ बांमवा योग्यछे ते कहेछे ( जेगरहिया के० ) जे मिथ्यात्व अविरति प्रमादादिक एवा पदार्थ जे जगतमांहे गरहा एटले निंदनीक छे तथा ( सणियाण के० ) नीयाणा सहित एवा जे ( प्पर्जगा के० ) प्रयोग होय तेने ( णताणिसेवंति सुधीरधम्मा के० ) जे धर्मने विषे धीर पुरुष होय ते नसवे न आचरे ॥ १ए ॥ ( केसिंचि तक्काइ अवुज्क नावं के० ) कोईएक मिथ्यादर्शनीनो अनिप्राय जाण्याविना साधु तथा श्रावकनो धर्म स्थापन करवानी इच्छाये कदाचित् साधु तेपर तीर्थिक आगल तिरस्कारना वचन बोले ( खुद्दंपिगछेज्जअसद्दहाणे के० ) तेवारे ते मिथ्यादर्शनी श्री वीतरागना वचनउपर अ सद्दहणा करतो थको क्रुद्रपणुं करे एवो छतो विरूप करे जेम पालक प्रोहितनो स्कंद सूरिउपर क्रुद्रनाव थयो तेनी पेरे जाणवुं ( आउस्सकालाइचरंवघाए के०) आयुष्यना कालनुं प्रमाण घणो होय तेने घटाडे अर्थात् आयुष्यनुं विनाश करे ( लद्धाणुमाणे यपरेसुअठे के० ) ते माटे साधु जन आगलानुं अनिप्राय लईने पछी तेना आगल अर्थ प्रकाशे स्वपरोपकारने अर्थे बोले अन्यथा मौनमेव श्रेय ॥ २० ॥

॥ दीपिका-स्वयं नवस्वरूपं समेत्य ज्ञात्वाऽथवाऽन्यस्मात् श्रुत्वाऽन्यस्मै धर्मं नाषेत।

किंनूतं धर्मं प्रजानां जीवानां हितदं। ये च गर्हितानिंद्याः सह निदानेनाऽऽशंसारूपेण वर्तंते ते सनिदानाः प्रयोगाव्यापाराः कर्मबंधहेतवस्तान् सुधीरधर्माणोनिक्षवोन सेवंते ॥ १९ ॥ केषांचिन्मिथ्यादृशां नावमनिप्रायमबुध्वाऽज्ञात्वा तीर्थिकतिरस्कारप्रायं वचोवदेत् कश्चित्साधुः श्रावकोवा सच तद्वचोश्रद्दधानः क्षुद्रत्वमपि गच्छेत् विरूपं कुर्यात् पालकपुरोहितश्च स्कंदकाचार्यस्य सकुपितोवकुर्यदायुस्तस्य व्याघातरूपं क्षयस्वनावं कालातिचारं दीर्घस्थितिकमप्यायुः संवर्तयेत् । कोर्थः । पुरुषविशेषं ज्ञात्वा हि देशना कार्या । अन्यथा श्रोता विरुद्धवचः श्रवणकुपितोमरणाद्युपसर्गमपि वक्तुः कुर्यादिति तस्माल्लब्धमनुमानं पराभिप्रायज्ञानं येन सलब्धानुमानः परेषु प्रतिपाद्येषु यथायोगमर्थान् जीवादिकान् वदेत् ॥ २० ॥

---

॥ टीका-किंचान्यत् । ( सयंसमेच्चेत्यादि ) स्वयमात्मना परोपदेशमंतरेण समेत्य ज्ञात्वा चतुर्गतिकं संसारं तत्कारणानि च मिथ्यात्वाविरत्यतिप्रमादकषाययोगरूपाणि तथाऽशेषकर्मक्षयलक्षणं मोक्षं तत्कारणानि च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राण्येतत्सर्वं स्वत एवावबुध्यान्यस्माद्वाचार्यादेः सकाशाच्छ्रुत्वाऽन्यस्मै मुमुक्षवे धर्मं श्रुतचारित्राख्यं नाषेत। किंनूतं । प्रजायंतइति प्रजाः स्थावरजंगमाजंतवस्तेन्योहितं सदुपदेशदानतः सदोपकारिणं धर्मं ब्रूयादिति । उपादेयं प्रदर्श्य हेयं प्रदर्शयति । 'ये गर्हिताजुगुप्सितामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाः कर्मबंधहेतवः सह निदानेन वर्ततइति सनिदानाः प्रयुज्यंतइतिप्रयोगाव्यापाराधर्मकथाप्रबंधावा ममास्मात्सकाशात्पूजालाभसंस्कारादिकं' नविष्यंतीत्येवंनूतनिदानाऽऽशंसारूपांस्तांश्चारित्रविघ्ननूतान् महर्षयः सुधीरधर्माणोन सेवंते नानुतिष्ठंति । यदि वा ये गर्हिताः सनिदानावाक्प्रयोगास्तद्यथा कुतीर्थिकाः सावद्यानुष्ठानविरतानिःशीलानिर्व्रताः कुटलवेंटलकारिणइत्येवंनूतान्परदोषोद्घट्टनया मर्मवेधिनः सुधीरधर्माणोवाक्कंटकान् नसेवंते नब्रुवनइति ॥ १९ ॥ किंचान्यत् । ( केसिंतक्कायेत्यादि ) केषांचिन्मिथ्यादृष्टीनां कुतीर्थिकनावितानां स्वदर्शनाग्राहिणां तर्कया वितर्केण स्वमतिपर्यालोचनेन नावमनिप्रायं दुःष्टांतःकरणवृत्तित्वमबुध्वा कश्चित्साधुः श्रावकोवा स्वधर्मस्थापनेछया तीर्थिकतिरस्कारप्रायं वचोब्रूयात् सच तीर्थिकस्तद्वचोऽश्रद्दधानोरोचयन्नप्रतिपाद्यमानोऽति कटुकं नावयेत् क्षुद्रत्वमपि गच्छेद्विरूपमपि कुर्यात् । पालकपुरोहितवत् स्कंदकाचार्यस्येति । क्षुद्रत्वगमनमेव दर्शयति । सनिंदावचनकुपितोपि वक्तुर्यदायुस्तस्यायुषोव्याघातरूपं परिक्षयस्वनावं कालातिचारं दीर्घस्थितिकमप्यायुः संवर्तेत् । एतदुक्तं नवति । धर्मदेशनाहि पुरुषविशेषं ज्ञात्वा विधेया । तद्यथा । कोयं पुरुषोराजादिः कंचन देवताविशेषं नतः कतरद्वा दर्शनमाश्रितोऽनिगृहीतोननिगृहीतोवाऽयमित्येवं सम्यक् परिज्ञाय

साधु, धर्मनी प्ररूपणा करे ॥ २२ ॥ ( आहत्तहीयंसमुपेहमाणे के० ) यथातथ्य सत्य मार्ग जे सूत्रगत ठे तेने आलोचतो सम्यक् प्रकारें अनुष्ठानने अन्यासतो थको (सवेहिं पाणेहिंणिहायदंमेके०) सर्व प्राणी मात्र जे त्रस अने स्थावर जीवोठे तेनो दंम एटले विना शनुं त्याग करीने प्राणांते पण धर्मनुं उल्लंघन नकरे ( णोजीवियंणोमरणाहिकंखीके० ) जीवितव्य अने मरणनी वांठारहित समतानावसहित थको ( परिव्वएज्जावलयाविप्पमुक्के के० ) सुधो संयम पाले ते साधु वलय एटले मिथ्यात्व मोह गहनथकी विप्रमुक्त थाय तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२३॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगना प्रथमश्रुतस्कंध नेविषे यथातथ्य नामे तेरमां अध्ययननो अर्थ संपूर्ण थयो. ॥

---

॥ दीपिका–धीरोबुद्धिमान् श्रोतुः कर्मानुष्ठानं गुरुलघुकर्मत्वं वा तथा ठंदमनिप्रायं ( विगिंच ) विवेचयेज्ञानीयात् ज्ञात्वा च धर्मकथां कुर्वन् सर्वथा सर्वप्रकारेण पर्षद आत्मनावं मिथ्यात्वादिकं व्यपनयेत् विषयासक्तिं व्यपनयेत् । यतोरूपैर्नयनमनोहारिनिर्नैयावहैः संसारनयकारिनिस्तुच्छसत्त्वाविलुप्यंते धर्मात् बाध्यंते एवं विद्वान् पंडितो गृहीत्वा परानिप्रायं त्रसस्थावरेन्योहितं धर्मं वदेत् ॥२१ ॥ साधुर्देशनां कुर्वन् पूजनं वस्त्रपात्रादिलानरूपं न वांठेत् नापिश्लोकं श्लाघां कामयेत् तथा श्रोतुः प्रियं राजकथादिकमप्रियं तदाश्रितदेवनिंदादिरूपं न कथयेत् । एवं सर्वान् दोषान् परिवर्जयेदनाकुलः साधुरकषायी नवेत् ॥ २२॥ योयाथातथ्यं सम्यक्चारित्रं प्रेक्षमाणः पर्यालोचयन् सर्वेषु प्राणिषु दंडं हिंसां निधाय त्यक्त्वा जीवितमसंयमजीवितं न कांक्षेन्नापि मरणानिकांक्षी स्यात् । तदेवं वलयेन मायामोहेन विप्रमुक्तः परिव्रजेत्संयमानुष्ठानं चरेत्साधुः । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २३ ॥ याथातथ्याख्यं त्रयोदशमध्ययनं समाप्तं ॥

---

॥ टीका–अपिच । ( कम्मंचठंदंचेत्यादि ) धीरोऽक्षोन्यः सद्बुध्यलंकृतोवा देशनावसरे धर्मकथाश्रोतुः कर्मानुष्ठानं गुरुलघुकर्मनावं वा तथा ठंदमनिप्रायं सम्यग्विवेचयेज्ञानीयात् ज्ञात्वा च पर्षदनुरूपामेव धर्मकथिकोधर्मदेशनां कुर्यात्सर्वथा यथा तस्य श्रोतुर्जीवादिपदार्थावगमोनवति । यथाच मनोन दूष्यतेऽपितु प्रसन्नतां व्रजत्येतदनिसंधिमानाह । विशेषेण नयेदपनयेत्पर्षदः पापनावमशुद्धमंतःकरणं तुशब्दाद्विशिष्टगुणारोपणं च कुर्यात् । आयनावं ति क्वचित्पाठः । तस्यायमर्थः । आत्मनावोऽनादिनवान्यस्तोमिथ्यात्वादिकस्तमपनयेद्यदिवात्मनावोविषयगृध्नुताऽतस्तमपनयेदिति । एतद्दर्शयति । रूपैर्नयनमनोहारिनिः स्त्रीणामंगप्रत्यंगार्द्धकटाक्षनिरीक्षणादिनिरल्पसत्त्वाविलुप्यंते सद्धर्माद्बाध्यंते । किंनूतैरूर्पैर्नयावहैः । नयमावहंति नयावहानि । इहैव तावद्रूपादिविषयासक्तस्य साधुजनजुगुप्सा नानाविधाश्च कर्णनासिकाविकर्तनाविमंबनाः प्राडर्नवंति जन्मांतरे तिर्यङ्नरकादिके

यथार्हं धर्मदेशना विधेया । यश्चैतदबुध्वा किंचिद्धर्मदेशना द्वारेण परविरोधकृद्वचोब्रूयात् सपरस्मादैहिकामुष्मिकयोर्मरणादिकमपकारं प्राप्नुयादिति । यतएवं ततोलब्धमनुमानं येन पराभिप्रायपरिज्ञाने सलब्धानुमानः परेषु प्रतिपाद्येषु यथायोगं यथार्हप्रतिपत्त्याऽर्थान् सद्धर्मप्ररूपणादिकान् जीवादीन् स्वपरोपकाराय ब्रूयादिति ॥ २० ॥

कम्मं च छंदं च विगिंच धीरे, विणइज्जउ सवद् आयभावं ॥ रू
वेहिं लुप्पंति भयावहेहिं, विज्जं गहाय तसथावरेहिं ॥ २१ ॥
न पूयणं चेव सिलोयकामी, पियमप्पियं कस्सइ णो करेज्जा ॥
सवे अणछे परिवज्जयंते, अणाउले या अकसाइ भिरकू ॥२२॥
आहत्तहीयं समुपेहमाणे,सवेहिं पाणेहिं णिहाय दंम ॥ णो जी
वियं णो मरणाहिकंखी, परिवएज्जा वलयाविप्पमुक्केत्तिबेमि ॥
॥ २३ ॥ इति श्रीआहत्तहियंनाम त्रयोदशमध्ययनं सम्मत्तं ॥

अर्थ-( कम्मंचछंदंचविगिंचधीरे के० ) धैर्यवान बुद्धिमान साधु देशनाने अवसरे श्रोतानो कर्म एटले अनुष्ठान तथा छंद एटले चित्तनो भाव एने जुदा जुदा जाणीने एतावता सम्यक्रीते जाणीने यथायोग्य भाव धर्म कहे तथा ( विणइज्जउसवहआय भावंके०) तथा श्रोता पुरुषनुं आयभाव एटले आत्मभाव ते विषयउपर गृद्धपणुं एटले मिथ्या परिणाम तेने सर्वथा प्रकारे विशेषे करी निर्घाटे एटले दूरकरे अने गुणनेविषे तेने स्थापे ( रूवेहिंलुप्पंतिभयावहेहिं के० ) वली रूप जे स्त्रियादिकना अंगोपांगना जोवावाला एवा अल्प बुद्धिवान् तुछ प्राणी ते धर्मथकी लोपाए इह लोके छेदनादिक पीडा पामे परलोके नरकादिकना दुःख पामे माटे ए भयना करनारछे ए धर्मथकी भ्रष्ट करे एम कोई श्रोता कहे श्रोता स्त्रीनो गृद्ध होय तेवारे अपवाद धरे ( विज्जंगहायतसथावरेहिं के० ) तेवारे पंमित आगलानो भाव ग्रहण करीने त्रस तथा स्थावर जीवोने हितनो करनार एवो धर्मोपदेश करे ॥ २१ ॥ ( नपूयणंचेवसिलोयकामी के० ) साधु देशना आपतो थको पूजन तथा वस्त्रादिकना लाभनी वांछा नकरे तथा श्लाघा एटले आत्मानी प्रशंसा तेनी पण वांछा नकरे तथा ( पियमप्पियंकस्सइणोकरेज्जा के० ) राग अने द्वेष कोइनी साथे सर्वथा नकरे अथवा कोइनी निंदा विकथा पण नकरे ( सवेअणछेपरिवज्जयंते के० ) एम सर्वथा प्रकारे अनिष्ट अनर्थकारी एवी पूजा सत्कारादिक वस्तु तेने समस्तपणे वर्जे ( अणाउलेयाअकसाइभिरकू के०) तथा अनाकुल एटले क्रोधादिक रहित आलशरहित तथा कपायरहित एवो छतो

साधु, धर्मनी प्ररूपणा करे ॥ २२ ॥ ( आहत्तहीयंसमुपेहमाणे के० ) यथातथ्य सत्य मार्ग जे सूत्रगत छे तेने आलोचतो सम्यक् प्रकारें अनुष्ठानने अन्यासतो थको (सवेहिं पाणेहिंणिहायदंमेके०) सर्व प्राणी मात्र जे त्रस अने स्थावर जीवोछे तेनो दंम एटले विना शनुं त्याग करीने प्राणांते पण धर्मनुं उलंघन नकरे ( णोजीवियंणोमरणाहिकंखीके०) जीवितव्य अने मरणनी वांछारहित समताजावसहित थको ( परिव्वएज्जावलयावि प्पमुक्के के० ) सुधो संयम पाले ते साधु वलय एटले मिथ्यात्व मोह गहनथकी विप्र मुक्त थाय तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२३॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगना प्रथमश्रुतस्कंध नेविषे यथातथ्य नामे तेरमां अध्ययननो अर्थ संपूर्ण थयो. ॥

---

॥ दीपिका-धीरोबुद्धिमान् श्रोतुः कर्मानुष्ठानं गुरुलघुकर्मत्वं वा तथा छंदमभिप्रायं ( विगिंच ) विवेचयेज्जानीयात् ज्ञात्वा च धर्मकथां कुर्वन् सर्वथा सर्वप्रकारेण पर्षद आत्मनावं मिथ्यात्वादिकं व्यपनयेत् विषयासक्तिं व्यपनयेत् । यतोरूपैर्नयनमनोहा रिभिर्नयावहैः संसारजयकारिभिस्तुच्छसत्त्वा विलुप्यंते धर्मात् बाध्यंते एवं विद्वान् पंडितो गृहीत्वा पराभिप्रायं त्रसस्थावरेन्योहितं धर्मं वदेत् ॥२१ ॥ साधुर्देशनां कुर्वन् पूजनं वस्त्रपात्रादिलाजरूपं न वांछेत् नापिश्लोकं श्लाघां कामयेत् तथा श्रोतुः प्रियं राजक थादिकमप्रियं तदाश्रितदेवनिंदादिरूपं न कथयेत् । एवं सर्वान् दोषान् परिवर्जयेदना कुलः साधुरकषायी जवेत् ॥ २२॥ योयाथातथ्यं सम्यक्चारित्रं प्रेक्षमाणः पर्यालोचय न् सर्वेषु प्राणिषु दंडं हिंसां निधाय त्यक्त्वा जीवितमसंयमजीवितं न कांक्षेन्नापि मरणा भिकांक्षी स्यात् । तदेवं वलयेन मायामोहेन विप्रमुक्तः परिव्रजेत्संयमानुष्ठानं चरेत्साधुः। इति समाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २३ ॥ याथातथ्याख्यं त्रयोदशमध्ययनं समाप्तं ॥

---

॥ टीका-अपिच । ( कम्मंचछंदंचेत्यादि ) धीरोऽक्षोभ्यः सद्बुध्यलंकृतोवा देशनावसरे धर्मकथाश्रोतुः कर्मानुष्ठानं गुरुलघुकर्मजावं वा तथा छंदमभिप्रायं सम्यग्विवेचयेज्जानीया त् ज्ञात्वा च पर्षदनुरूपामेव धर्मकथिकोधर्मदेशनां कुर्यात्सर्वथा यथा तस्य श्रोतुर्जीवादि पदार्थावगमोजवति । यथाच मनोन दूष्यतेऽपितु प्रसन्नतां व्रजत्येतदभिसंधिमानाह । विशे षेण नयेदपनयेत्पर्षदः पापजावमशुद्धमंतःकरणं तुशब्दाद्विशिष्टगुणारोपणं च कुर्यात् । आयजावं ति क्वचित्पाठः । तस्यायमर्थः । आत्मजावोऽनादिजवाभ्यस्तोमिथ्यात्वादिकस्तम पनयेयदिवात्मजावोविषयगृध्नुताऽतस्तमपनयेदिति । एतद्दर्शयति । रूपैर्नयनमनोहारि भिः स्त्रीणामंगप्रत्यंगार्द्धकटाक्षनिरीक्षणादिभिरल्पसत्त्वाविलुप्यंते सद्धर्माद्बाध्यंते । किंभू तैरूपैर्नयावहैः । नयमावहंति नयावहानि । इहैव तावद्रूपादिविषयासक्तस्य साधुजनजुगु प्सा नानाविधाश्च कर्णनासिकाविकर्तनाविडंबनाः प्राडुर्भवंति जन्मांतरे तिर्यङ्नरकादिके

यातनास्थाने प्राणिनोविषयासक्तावेदनामनुनवंतीत्येवं विद्वान् पंमितोधर्मदेशनाभिज्ञो गृहीत्वा परानिप्रायं सम्यगवगम्य पर्षदं त्रसस्थावरेन्योहितं धर्ममाविर्नावयेत् ॥ २१ ॥ पूजासत्कारादिनिरपेक्षेण च सर्वमेव तपश्चरणादिकं विधेयं विशेषतोऽधर्मदेशनेत्येतदनिप्रायवानाह । ( नपूयणंचेत्यादि ) साधुर्देशनां विदधानोन पूजनं वस्त्रपात्रादिलानरूपमनिकांक्षन्नापि श्लोकं श्लाघां कीर्तिमात्मप्रशंसां कामयेदनिलपेत्तया श्रोतुर्यत्प्रियं राजकथाविकथादिकं ललितकथादिकं च तथाऽप्रियं च तत्समाश्रितदेवताविशेषनिंदादिकं न कथयेदरक्तद्विष्टतया श्रोतुरनिप्रायमनिसमीक्ष्य यथावस्थितं कथयेत् । उपसंहारमाह। सर्वानर्थान् पूजासत्कारलानानिप्रायेण स्वकृतान् परदूषणतया च परकृतान् वर्जयन् परिहरन् कथयेदनाकुलः सूत्रार्थादनुत्तरन्नकषायोनिक्षुर्नवेदिति ॥ २२ ॥ सर्वाध्ययनोपसंहारार्थमाह । ( आहत्तहीयमित्यादि ) यथातथानावोयाथातथ्यं धर्ममार्गसमवरणाख्याध्ययनत्रयोक्तार्थं तत्त्वं सूत्रानुगतं सम्यक्त्वं चारित्रं वा तत्प्रेक्ष्यमाणः पर्यालोचयन् सूत्रार्थं सदनुष्ठानतोन्यसन् सर्वेषु स्थावरजंगमेषु सूक्ष्मबादरनेदनिन्नेषु पृथिवीकायादिषु दंडयंते प्राणिनोयेन सदंमः प्राणव्यपरोपणविधिस्तन्निधाय परित्यज्य प्राणात्ययेपि याथातथ्यं धर्मं नोल्लंघयेदिति । एतदेव दर्शयति । जीवितमसंयमजीवितं दीर्घायुष्कं वा स्थावरजंगमजंतुदंडेन नानिकांक्षी स्यात् परीषहपराजितोवेदनासमुद्घातहतोवा तद्वेदनामसहमानोजलानलसंपातापादितजंतूपमर्देन नापि मरणानिकांक्षी स्यात् । तदेवं याथातथ्यमुत्प्रेक्ष्यमाणः सर्वेषु प्राणिषूपरतदंमोपजीवितमरणानपेक्षी संयमानुष्ठानं चरेडुद्युक्तविहारी नवेन्मेधावी मर्यादाव्यवस्थितोविदितवेद्योवा वलयेन मायारूपेण मोहनीयकर्मणा वा विविधं प्रकर्षेण मुक्तोविप्रमुक्तइति । इतिपरिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २३ ॥ समाप्तं च याथातथ्यं त्रयोदशमध्ययनमिति ॥

हवे ग्रंथ परित्याग नामा चौदमो अध्ययन कहेले. तेरमां अध्ययनमां यथा सत्य पणो कह्यो ते यथा सत्य पणो तो बाह्याभ्यंतररूप द्विविध परिग्रहना त्याग विना न थाय माटे आ चौदमां अध्ययनमां ग्रंथ परित्याग पणो कहेले.

गंथं विहाय इह सिक्खमाणो, उठाय सुबंनचेरं वसेज्जा ॥ उवा
यकारी विणयं सुसिक्खे, जे लेय विप्पमायं न कुज्जा ॥ १ ॥ ज
हा दियापोतमपत्तजातं, सावासगा पविउं मन्नमाणं॥ तमंचाइयं
तरुणमपत्तजातं, ढंकाइ अवत्तगमं हरेज्जा ॥ २ ॥

अर्थ-( गंथं के० ) धनधान्य हिरण्यादिक बाह्य ग्रंथ अने क्रोधादिक अभ्यंतर ग्रंथ ए द्विविध ग्रंथने ( विहाय के० ) त्यागीने ( इह के० ) आ प्रवचनने विषे ( सिक्क

माणो के० ) सम्यक् प्रकारे संयममार्गे शुद्धक्रियारूप शील सीखतो थको ( उठायसु के० ) संयमने विषे उद्यम करीने सुशोजन एवा ( बंनचेरंवसेज्जा के० ) ब्रह्मचर्यव्रतनुं नव वाडसहित आश्रय करे ( उवायकारीविणयंसुसिरके के० ) तथा जावजीव सुधी उपायकारी एटले गुरुनी आज्ञा पालतो शोजन प्रकारे करीने विनयज शीखे ( जेठेय विप्पमायंनकुज्जा के० जे माह्या पुरुष ठे ते ए कार्यने विषे प्रमाद नकरे ॥ १ ॥ हवे गुरु उपदेशविना पोताने ठंदे गच्छथकी निकलीने जे एकाकी पणे विचरे तेने घणा दोषनी प्राप्ति थाय ते उपर दृष्टांत कहेठे ( जहादिया के० ) यथा दृष्टांते जेम पक्षी ना ( पोतअपत्तजातं के० ) बालक ने ज्यां सुधी पांख आवी नथी त्यांसुधी ते पांख विनानो एवो ठतो ( सावासगापविउंमन्नमाणं के०) पोताना माला थकी उडवानी वांग करतो थको पांख फडफडावे परंतु ( तमंचाइयं तरुणमपत्तजातं के० ) आकरो उ डीजवाने असमर्थ थाय अने तेने पांखो थकी हीन मांसपेसी समान एवो न्हानो तरुण देखीने ( ढंकाइअवत्तगमंहरेज्जा के० ) मांसाहारी एवा ढंकादिक पक्षीउ तेने अप हरीने तेनो विनाश करे ते बालक केवोठे तो के अव्यक्तगतासिवा असमर्थ एटले त्यां थी नाशी जवाने असमर्थ एवोठे ॥ २ ॥

---

॥ दीपिका—अथ चतुर्दशं ग्रंथाध्ययनमारन्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (गंथमिति ) इह प्रवचने ग्रंथं धनादिकं त्यक्त्वा शिक्षमाणोग्रहणसेवनाशिक्षां सेवमानः सडुत्थानेनोत्थाय सुष्ठु शोजनं ब्रह्मचर्यमाश्रित्य वसेत्तिष्ठेदाचार्यवचनस्यावपातोनिर्देशस्तत्कारी आचार्यक थितकारी विनयं सुष्ठु शिक्षेत् कुर्यात् तथा यश्छेकोनिपुणः स विप्रमादं विविधं प्रमादं न कुर्यात् ॥ १ ॥ यथाद्विजपोतः पक्षिशिशुर्नविद्यते पत्रजातं पक्षोद्भवोयस्य सोऽपत्र जातः पक्षहीनस्तं स्वकीयादावासकात् प्लवितुमुत्पतितुं मन्यमानं तत्र पतंतमुपलन्य तं ( अचाइयंति ) पक्षानावाद्गंतुमसमर्थमपत्रजातमिति कृत्वा ढंकादयोमांसाहाराः सत्वा अव्यक्तगमं गमनाजावे नष्टुमसमर्थं हरेयुर्व्यापादयेयुः ॥ २ ॥

---

॥ टीका—उक्तं त्रयोदशमध्ययनं सांप्रतं चतुर्दशमारन्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने याथातथ्यमिति सम्यक्चारित्रमनिहितं तच्च बाह्याभ्यंतरग्रंथपरित्यागा दवदातं नवति । तत्त्यागश्चानेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययन स्य चत्वार्यनुयोगद्वाराण्युपक्रमादीनि नवंति । तत्रोपक्रमद्वारांतर्गतोऽर्थाधिकारोयं । त द्यथा। सबाह्याभ्यंतरग्रंथपरित्यागोविधेयइति नामनिष्पन्ने तु निक्षेपे आदानपदाद्गुणनिष्प न्नत्वाच्च ग्रंथतइति नाम तं ग्रंथमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । "गंथोपुव्वुद्दिठो, डुविहो सि स्सो य होंति णायव्वो ॥ पव्वावण सिरकावण, पगवं सिरकावणाए उ" ॥ २ए ॥ ( गं

थोपुवुद्दिछोइत्यादि ) ग्रंथोऽव्यनावनेदभिन्नः क्षुल्लकनैर्ग्रंथ्यं नाम उत्तराध्ययनेष्वध्ययनं। तत्र पूर्वमेव सप्रपंचोऽनिहितः। इह तु ग्रंथं इव्यनावनेदनिन्नं यः परित्यजति शिष्यआचारादिकं वा ग्रंथं योधीते सशिष्योद्विविधोद्विप्रकारोज्ञातव्योनवति । तद्यथा । प्रव्रज्यया शिक्षया च। यस्य प्रव्रज्या दीयते शिक्षां वा योग्राह्यते सद्विप्रकारोपि शिष्यइहपुनः शिक्षाशिष्येण प्रकृतमधिकारोयः शिक्षां गृह्णाति शिक्षकस्तच्छिक्षयेह प्रस्तावइत्यर्थः । यथाप्रतिज्ञातमधिकृत्याह । " सो सिरकगो य डुविहो, गहणे आसेवणा य णायवो ॥ गहणंमि होंति तिविहो सुत्ते अत्थे तडुनएय, ॥ ३० ॥ (सोसिरकगोयडुविहोइत्यादि ) यः शिक्षां गृह्णाति सद्विविधोद्विप्रकारकोनवति । तद्यथा । ग्रहणे प्रथममेवाचार्यादेः सकाशाच्छिक्षां इच्छामिच्छातहकारादिरूपां गृह्णाति शिक्षति तथा शिक्षितां वान्यस्यति अहर्निशमनुतिष्ठति सएवंविधोग्रहणासेवनानेदभिन्नः शिष्योज्ञातव्योनवति । तत्रापि ग्रहणपूर्वकमासेवनमिति कृत्वाऽऽदावेव ग्रहणशिक्षामाह। शिक्षया ग्रहणे उपादानेऽधिकृते त्रिविधोनवतीति शिक्षकः। तद्यथा । सूत्रेऽर्थे तडुनयेच सूत्रादीन्यादावेव गृह्णन् सूत्रादिशिक्षकोनवतीति नाव. । सांप्रतं ग्रहणोत्तरनाविनीमासेवनामधिकृत्याह । ( " आसेवणाए डुविहो, मूलगुणे चेव उत्तरगुणेय ॥ मूलगुणे पंचविहो, उत्तरगुणे वारसविहो उ" ॥ ३१ ॥ ( आसेवनेइत्यादि ) यथावस्थितसूत्रानुष्ठानमासेवना तया कारणनूतया द्विविधोनवति शिक्षकः । तद्यथा मूलगुणे मूलगुणविषये आसेवमानः सम्यक् मूलगुणानामनुष्ठानं कुर्वन् तथोत्तरगुणे चोत्तरगुणविषयं सम्यगनुष्ठानं कुर्वाणोद्विरूपोप्यासेवनाशिक्षकोनवति । तत्रापि मूलगुणे पंचप्रकारः । प्राणातिपातादिविरतिमासेवमानः पंचमहाव्रतधारणात्पंचविधोनवति मूलगुणेष्वासेवनाशिक्षकः । तथोत्तरगुणविषये सम्यक्पिंडविशुध्यादिकान् गुणानासेवमानउत्तरगुणानासेवनाशिक्षकोनवति । ते चामी उत्तरगुणाः । पिंडस्स जावि सोही, समिईहो नावणा तवो डुविहा ॥ पडिमा अनिग्गहाविय, उत्तरगुणमो वियाणाहि ॥ १ ॥ यदिवा सत्स्वप्येतेषूत्तरगुणेषु प्रधाननिर्जराहेतुतया तपएव द्वादशगुणमुत्तरगुणत्वेनाधिकृत्याह । उत्तरगुणे उत्तरगुणविषये तपोद्वादशनेदभिन्नं यः सम्यक् विधत्ते सआसेवनाशिक्षकोनवतीति । शिष्योह्याचार्यमंतरेण न नवत्यतआचार्यनिरूपणमाह । " आयरिउ विय डुविहो. पञ्चावंतो य सिरिकवंतो य॥ सिरकावंतो डुविहो गहणे आसेवणे चेव ॥ ३२ ॥ गाहाविंतो तिविहो, सुत्ते अत्थेय तडुनए चेव ॥ मूलगुणउत्तरगुणो, डुविहो आसेवणाए उ" ॥ ३३ ॥ ( आयरिउ वियइत्यादिगाथाद्वयं शिष्यापेक्षया हि आचार्योद्विविधोद्विनेदः । एकोयः प्रव्रज्यां ग्राहयत्यपरस्तु यः शिक्षामिति । शिक्षयन्नपि द्विविधः । एकोयः शिक्षाशास्त्रं ग्राहयति पाठयत्यपरस्तु तदर्थं दशविधचक्रवालसमाचार्यनुष्ठानतः सेवयति सम्यगनुष्ठानं कारयति ।

तत्र सूत्रार्थे तदुभयभेदाद्ग्राह्यग्रन्थ्याचार्यस्त्रिधा भवति । आसेवनाचार्योपि मूलोत्तर भेदाद्द्विविधोभवति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपस्तदनंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । ( गंथंविहेत्यादि ) इह प्रवचने ज्ञातसंसारस्वभावः सन् सम्यगनुष्ठानेनोत्थितोग्रथ्यते आत्मा येन सग्रंथोधनधान्यहिरण्यद्विपदचतुष्पदादिकस्तं विहाय त्यक्त्वा प्रव्रजितः सन् उच्चानेनोच्चाय च ग्रहणरूपामासेवनारूपां च शिक्षां च कुर्वाणः सम्यगासेवमानाः सुष्ठु शोभनं नवविधब्रह्मचर्यगुप्तिनिर्गुप्तमाश्रित्य ब्रह्मचर्यं वसे त्तिष्ठेत् यदिवा ब्रह्मचर्यमिति संयमस्तदावसेत्तं सम्यक् कुर्यात् । आचार्यांतिके याव ज्जीवं वसमानोयावदभ्युद्यतविहारं न प्रतिपद्यते तावदाचार्यवचनस्यावपातोनिर्देशस्त त्कार्यावपातकारी वचननिर्देशकारी सदाज्ञाविधायी विनीयतेऽपनीयते कर्म येन सवि नयस्तं सुष्ठु शिक्षेद्विदध्यात् ग्रहणासेवनाभ्यां विनयं सम्यक्परिपालयेदिति । तथा य श्छेकोनिपुणः संयमानुष्ठाने सदाचार्योपदेशे वा विविधं प्रमादं न कुर्यात् । यथाहि आतुरः सम्यग्वैद्योपदेशं कुर्वन् श्लाघां लभते रोगोपशमंचैवं साधुरपि सावद्यग्रंथपरि हारी पापकर्मभेषजस्थानभूतान्याचार्यवचनानि विदधदपरसाधुभ्यः साधुकारमशेषकर्म क्षयं वा प्राप्नोतीति ॥ १ ॥ यः पुनराचार्योपदेशमंतरेण स्वच्छंदतया गच्छन्निर्गत्य एका किविहारितां प्रतिपद्यते सच बहुदोषभाग् भवतीत्यस्यार्थस्य दृष्टांतमाविर्भावयन्नाह । ( जहादियाइत्यादि ) यथेति दृष्टांतोपप्रदर्शनार्थः । यथा येन प्रकारेण द्विजपोतः प द्विशिशुरव्यक्तस्तमेव विशिनष्टि । पतंति गच्छंति तेनेति पत्रं पक्षपुटं नविद्यते पत्रजातं प क्षोद्भवोयस्यासावपत्रजातस्तत्र स्वकीयादावासकात् स्वनीडात् प्लवितुमुत्पतितुं मन्यमानं तत्रतत्र पतंतमुपलभ्य तं द्विजपोतं ( अचाइयंति ) पक्षाभावाद्गंतुमसमर्थमपत्रजात मिति कृत्वा मांसपेशीकल्पं ढंकादयः क्षुद्रसत्त्वाः पिशिताशिनोऽव्यक्तगमं गमनाभावे नष्टुमसमर्थं हरेयुश्चंच्वादिनोत्क्षिप्य नयेयुर्व्यापादयेयुरिति ॥ २ ॥

एवं तु सेहंपि अपुठधम्मं, निस्सारियं वुसिमं मन्नमाणा ॥ दि<br>
यस्स छावं च अपत्तजायं, हरिसुणं पावधम्मा अणेगे ॥ ३ ॥<br>
उसाणमिच्छे मणुए समाहिं; अणोसिए णंतकरिंति णच्चा ॥ उ<br>
भासमाणे दवियस्स वित्तं, ण णिक्कसे बहिया आसुपन्नो ॥ ४ ॥

अर्थ–( एवंतु के० ) एरीते जेम ते अव्यक्त एवोजे पक्षीनो बालक तेनो बीजा ढं कादिक क्षुद्र पक्षीउ विनाश करे तेम ते ( सेहंपिअपुठधम्मं के० ) अगीतार्थ नवदिक्षी त शिष्य पण ( निस्सारियंवुसिमंमन्नमाणा के० ) गच्छरूप माला थकी नीकल्यो तो

पछी तेने अनेक क्षुद्र पाखंमीरूप जे ढंकपक्षीउ ते पोताने वसगामी जाणता थका तेने विप्रतारीने संयमरूप जीवितव्य थकी चुकावे ( दियंस्सछावंचअपत्तजायं के० ) पांखरहित एवो जे पक्षीनो बालक तेनी पेरे ते अगीतार्थ शिष्यने ( हरिंसुणंपावधम्माअ णेगे के० ) ते पापधर्मि एवा अनेक पाखंमी तेने संयम थकी हरण करे ॥ ३ ॥ ए माटे चारित्रवान साधुए सर्वकाल गुरुपाशे रहेवो ते कहेले. ( उसाणमिछेमणुएसमाहिं के० ) जावजीव सुधी गुरुनी पाशे रहेवानी वांछा करे जे सुसाधु छे ते एवीज सन्मार्गरूप समाधिनी वांछा करे एटले परमार्थथकी मनुष्य तेनेज कहिए के जे गुरुकुलवासे वसतो थको पोताना जापेला अंगीकार करेला सन्मार्गनो निर्वाह करे ( अणोसिएणंतकरिंतिणच्चा के० ) गुरुकुलवासे अणवसतो एटले स्वछंदाचारी छतो संसारनो अंत नकरे उलटो अनंत संसारी थाय संसारनी वृद्धि करे एवुं जाणीने ( उनासमाणेदवियस्सवित्तं के० ) सर्वकाल गुरुकुलवासे वशे गुरुनी सेवा करे एम मुक्तिगमन योग्य साधुना आचारने अत्यंत दीपावतो थको जिनजाषित धर्मने दीपावे एवुं जाणीने ( णणिक्कसेबहिया आसुपन्ने के० ) आसुप्रज्ञ एटले जे पंमित होय ते गछथकी बाहेर नीकले नही अर्थात् स्वछंदी नथाय ॥ ४ ॥

---

॥ दीपिका–दृष्टांतयोजनामाह । एवमुक्तप्रकारेण शिक्षकं नवदीक्षितं सूत्रार्थविकलमगीतार्थमपुष्टधर्माणं पाखंडिकाः प्रतारयंति प्रतार्यच गछान्निःसारयंति निःसारितंच संतमस्माकं वश्यमित्येवं मन्यमानाअजातपक्षं द्विजशावं पक्षिपोतमिव ढंकादयः. पापकर्माणः कुतीर्थिकाः स्वजनाराजादयोवाऽनेके हृतवंतोहरंति हरिष्यंति चेति कालत्रयोपलक्षणार्थं जूतनिर्देशः ॥ ३ ॥ अवसानं गुरोरंतिके स्थानं समाधिसन्मार्गानुष्ठानरूपं यावज्जीवमिछेन्मनुजः साधुर्यावज्जीवं गुरुकुलवासी स्यादित्यर्थः । गुरोरंतिकेऽनुषितोऽव्यवस्थितः कर्मणोऽनंतकरोंऽतकारी नस्यादिति ज्ञात्वा गुरुं सेवेत तद्हितस्य विज्ञानमुपहासोजवेत् । यतः । नहि जवति निर्विगोपकमनुपासितगुरुकुलस्य विज्ञानं ॥ प्रकटितपश्चाद्भागं, पश्यत नृत्यं मयूरस्य ॥ १ ॥ इव्यस्य मुक्तियोग्यस्य साधोर्वृत्तमनुष्ठानमुद्भासयन्ननुतिष्ठन् ननिष्कसेन्ननिर्गछेद्गछाद्बहिराशुप्रज्ञः पंडितः ॥ ४ ॥

---

॥ टीका–एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं प्रदर्शयितुमाह । (एवंतुसेहंपीत्यादि) एवमित्युक्तप्रकारेण । तुशब्दः पूर्वस्माद्विशेषं दर्शयति । पूर्वं ह्यसंजातपक्षत्वादव्यक्तता प्रतिपादिता इहत्वपुष्टधर्मतयेति । अयं विशेषोयथा द्विजपोतमसंजातपक्षं स्वनीडान्निर्गतं क्षुद्रसत्वाविनाशयंति एवं शिष्यकमजिनवप्रव्रजितं सूत्रार्थानिष्पन्नमगीतार्थमपुष्टधर्माणं सम्यगपरिणतधर्मपरमार्थं संतमनेकपापधर्माणः पाखंडिकाः प्रकारयंति प्रतार्यच गछस

मुङान्निःसारयंति निःसारितंच संतं विषयोन्मुखतामापादितमपगतपरलोकनयमस्माकं वश्यमित्येवं मन्यमानाः । यदिवा ( बुसिचि ) चारित्रं तदसदनुष्ठानतोनिःसारं मन्यमा नाऽजातपक्षं द्विजशावकमिव पक्षिपोतमिव ढंकादयः पापधर्माणोमिथ्यात्वाविरति प्रमादकषायकलुषितांतरात्मानः कुतीर्थिकाः स्वजनाराजादयोवाऽनेके बहवोहृतवंतोहरं ति हरिष्यंति चेति कालत्रयोपलक्षणार्थं नूतनिर्देशइति । तथाहि । पाषंडिकाएवमगीता र्थं प्रतारयंति । तद्यथा । युष्मद्दर्शनेनाग्निप्रज्वालनविषापहारशिखाछेदादिकाः प्रत्यया दृश्यंते तथाऽणिमाद्यष्टगुणमैश्वर्यंच नास्ति तथा न राजादिनिर्बहुनिराश्रितं । याप्यहिं सोच्यते नवदागमे सापि जीवाकुलत्वाल्लोकस्य डुःसाध्या नापि नवतां स्नानादिकं शौच मस्तीत्यादिकानिः शवोक्तिनिरिंड्जालकल्पानिर्मुग्धजनं प्रतारयंति स्वजनादयश्चैवं विप्र लंनयंति । तद्यथा । न नवंतमंतरेणास्माकं कश्चिदस्ति पोषकः पोष्योवा त्वमेवास्माकं सर्वस्वं त्वया विना शून्यमानाति तथा शब्दादिविषयोपनोगामंत्रणेन सद्धर्माच्चयावयंति। एवं राजादयोपि ड्रष्टव्यास्तदेवमपुष्टधर्माणमेकाकिनं बहुनिः प्रकारैः प्रतार्यापहरेयुरिति। ॥ ३ ॥ तदेवमेकाकिनः साधोर्यतावहवोदोषाः प्राडुर्नवंत्यतः सदा गुरुपादमूले स्थातव्य मित्येतद्दर्शयितुमाह । ( उसाणमिच्चेइत्यादि ) अवसानं गुरोरंतिके स्थानं तद्यावज्जीवं समाधिं सन्मार्गानुष्ठानरूपमिच्छेदनिलषेन्मनुजोमनुष्यः साधुरित्यर्थः । सएव परमार्थ तोमनुष्योयोयथाप्रतिज्ञातं निर्वाहयति । तच्च सदागुरोरंतिके व्यवस्थितेन सदनुष्ठान रूपं समाधिमनुपालयता निर्वाह्यते नान्यथेत्येतद्दर्शयति । गुरोरंतिकेऽनुषितोव्यवस्थि तः स्वछंदविधायी समाधिः सदनुष्ठानरूपस्य कर्मणोयथाप्रतिज्ञातस्य वा नांतकरोनव तीति ज्ञात्वा सदा गुरुकुलवासोऽनुसर्तव्यस्तद्रहितस्य विज्ञानमुपहास्यप्रायं नवतीति । उक्तंच । नहि नवति निर्विगोपकमनुपासितगुरुकुलस्य विज्ञानं ॥ प्रकटितपश्चाद्भागं प श्यत नृत्यं मयूरस्य ॥ १ ॥ तथा जांगलविलग्नवालुकां पार्ष्णिप्रहारेण प्रगुणां दृष्ट्वाऽपरो ऽनुपासितगुरुरज्ञोराज्ञीं संजातगलगंडां पार्ष्णिप्रहारेण व्यापादितवानित्यादयोऽनुपासि तगुरोर्बहवोदोषाः संसारवर्धनाद्यान्नवंतीत्यवगम्यानया मर्यादया गुरोरंतिके स्थातव्यमि ति दर्शयति । अवनासयन्नुद्भासयन् सम्यगनुतिष्ठन् ड्व्यस्य मुक्तिगमनयोग्यस्य सत्सा धोरागद्वेषरहितस्य सर्वज्ञस्य व्यावृत्तमनुष्ठानं तत्सदनुष्ठानतोऽवनासयेद्धर्मकथिकः कथ नतोवोद्भासयेदिति । तदेवं यतोगुरुकुलवासोबहूनां गुणानामाधारोनवत्यतोन निष्कसे न्निर्गच्छेत गच्छाडुर्वर्तिकाद्धा बहिः स्वेछाचारी ननवेदाशुप्रज्ञऽति क्षिप्रप्रज्ञस्तदंतिके निव सन् विषयकषायान्यामात्मानं ह्रियमाणं ज्ञात्वा क्षिप्रमेवाचार्योपदेशात्स्वतएव वा निव र्तयति सत्समाधौ व्यवस्थापयतीति ॥ ४ ॥

जे ठाणउ य सयणासणे य, परक्कमे यावि सुसाहुजुत्ते॥समितीसु
गुत्तीसु य आयपन्ने, वियागरिंते य पुढो वएज्जा ॥५॥ सद्दाणि
सोच्चा अडु भेरवाणि, अणासवे तेसु परिवएज्जा॥ निद्दं च भि
क्खू न पमाय कुज्जा, कहंकहं वा वितिगिच्छ तिन्ने ॥ ६ ॥

अर्थ–( जेके० ) जे वैराग्य आदरी चारित्रवंत थको ( ठाणउंय के० ) स्थान आश्री कायोत्सर्गादिकने विषे ( सयणासणेय के० ) तथा शयन अने आशनने विषे च कार शब्दथकी गमनने विषे ( परक्कमेयावि के० ) पराक्रम एटले बल फोरवे ते केवो थको फोरवे तोके ( सुसाहुजुत्ते के० ) रुडा आचारसहित एवो छतो ( समितीसुगुत्ती सुयआयपत्ते के० ) पांच समिति अने त्रण गुप्तिने विषे आयपन्न एटले सम्यक् जाण ( वियागरिंतेयपुढोवएज्जो के० ) अथवा अन्यने उपदेश देतो ते उपदेशने गुरु प्रासाद थकी जाणीने तेने जुदो जुदो विचार कहे. ॥५॥ (सद्दाणिसोच्चाअडुभेरवाणि के०) शब्द ते वंशना वीणादिक कर्णने सुखना करनार तथा भैरव एटले कर्णने दुःखना करनार एवा शब्द सांजलीने ( अणासवे के० ) ते शब्दादिकने विषे राग द्वेष रहित एवो छतो (सुप रिवएज्जा के०) सूधो संयम पाले ( निद्दंचनिक्कूनपमायकुज्जा के० ) तथा निद्रारूप जे प्रमाद ते पण निक्षु नकरे ए प्रकारे प्रवर्त्ततो ( कहंकहंवावितिगिच्छतिन्ने के० ) कोई पण प्रकारे वितिगिछ एटले संदेह तेथकी निःक्रांत थाय एटलेसंदेह रहित थाय. ॥६॥

---

॥ दीपिका–प्रव्रज्यां प्रति उद्यतोनित्यं गुरुकुलवासतः स्थानतश्च स्थानमाश्रित्य तथा शयनतआसनतः। चकाराद्गमनमाश्रित्य तथा तपश्चरणादौ पराक्रमतश्च साधोरुद्यतविहारिणोये समाचारास्तैः समायुक्तः स्थानशयनासनादावुपयुक्तइत्यर्थः। समितिषु गुप्तिषु चागताउत्पन्ना प्रज्ञा यस्य सआगतप्रज्ञः संजातकृत्याकृत्यविवेकः स्वतः स्यात्। परस्यापि व्याकुर्वत् कथयत् पृथक् समितिगुप्तीनां पालनं तत्फलंच वदेत् ॥५॥ शब्दान् मनोहरान् श्रुत्वाऽथवा भैरवान् कर्णकटून् श्रुत्वा तेषु शब्देष्वनाश्रवोमध्यस्थोभूत्वा परिव्रजेत्संयमानुष्ठायी स्यात्। तथा निद्रां प्रमादरूपां भिक्षुर्नकुर्यात्। तदेवं गुरूपदेशात् कथं कथमपि विचिकित्सां विप्लुतिरूपां वितीर्णोनिष्क्रांतः स्यात् ॥ ६ ॥

---

॥ टीका–तदेवं प्रव्रज्यामभ्युद्यतोनित्यं गुरुकुलमावसन् सर्वत्र स्थानशयनासनादावुपयुक्तोभवति तदुपयुक्तस्य च गुणमुद्भावयन्नाह। ( जेठाणउ यइत्यादि ) योहि निर्विणसंसारतया प्रव्रज्यायामभ्युद्यतोनित्यं गुरुकुलवासतः स्थानतश्च स्थानमाश्रित्य तथा

शयनतश्चासनतः । एकश्चकारः समुच्चये द्वितीयोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । चकाराद्गमनमाश्रि त्यागमनंच तथा तपश्चरणादौ पराक्रमतश्च साधोरुद्युक्तविहारिणोये समाचारास्तैः समा युक्तः सुसाधुर्हि यत्र स्थानं कायोत्सर्गादिकं विधत्ते तत्र सम्यक्प्रत्युपेक्षणादिकां क्रियां करोति कायोत्सर्गं च मेरुरिव निष्प्रकंपशरीरोनिस्पृहोविधत्ते तथा शयनं च कुर्वन् प्रत्युपे क्ष्य तं संस्तारकं तनुवं कायं वोचितकाले गुरुनिरनुज्ञातः स्वपेत्तत्रापि जाग्रदिव नात्यंतं निःसहइति । एवमासनादिष्वपि तिष्ठता पूर्ववत्संकुचितगात्रेण स्वाध्यायध्यानपरायणे न सुसाधुना नवितव्यमिति । तदेवमादिसुसाधुक्रियायुक्तोगुरुकुलनिवासी सुसाधुर्नव तीति स्थितं । अपिच गुरुकुलवासे निवसन् पंचसु समितिष्वीर्यासमित्यादिषु प्रविचा राऽप्रविचाररूपासु तथा तिसृषु च गुप्तिषु प्रविचाराप्रविचाररूपासु आगतोत्पन्ना प्रज्ञा य स्यासावागतप्रज्ञः संजातकर्तव्याकर्तव्यविवेकः स्वतोनवति परस्यापिच व्याकुर्वन् कथय न् पृथक्पृथग्गुरोः प्रसादात्परिज्ञातस्वरूपः समितिगुप्तीनां यथावस्थितस्वरूपप्रतिपालनं तत्फलंच वदेत्प्रतिपादयेदिति ॥ ५ ॥ ईर्यासमित्याद्युपेतेन यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह । ( सद्दाणीत्यादि ) शब्दान् वेणुवीणादिकान् मधुरान् श्रुतिपेशलान् श्रुत्वा समाकर्ण्याऽथ नैरवान् नयावहान् कर्णकटूनाकर्ण्य शब्दानाश्रवति तान् शोननत्वेनाशोननत्वेनवा गृह्णातीत्याश्रवोनाश्रवोऽनाश्रवस्तेष्वनुकूलेषु प्रतिकूलेषु श्रवणपथमुपगतेषु शब्देष्वना श्रवोमध्यस्थोरागद्वेषरहितोनूत्वा परिसमंताद् व्रजेत्परिव्रजेत् संयमानुष्ठायी नवेत्तथा निद्रांच निद्राप्रमादंच निक्षुः सत्साधुः प्रमादांगत्वान्न कुर्यात् । एतडुक्तंनवति । शब्दा श्रवनिरोधेन विषयविषयप्रमादोनिषिद्धोनिद्रानिरोधेन निद्राप्रमादश्चशब्दादन्यमपि प्रमा दं विकथाकषायादिकं न विदध्यात् । तदेवं गुरुकुलवासात् स्थानशयनासनसमितिगुप्ति ष्वागतप्रज्ञः प्रतिषिद्धसर्वप्रमादः सद्गुरोरुपदेशादेव कथंकथमपि विचिकित्सां चित्तविप्लुति रूपां वितीर्णोऽतिक्रांतोनवति । यदिवा मद्गृहीतोयं पंचमहाव्रतनारोऽतिडुर्वहःकथंकथमप्ये तं गच्छेदित्येवंनूतां विचिकित्सां गुरुप्रसादाद्वितीर्णोनवति ।अथवा यां कांचिच्चित्तविप्लुतिं देश सर्वगतां तां कृत्स्नां गुर्वंतिके वसन् वितीर्णोनवत्यन्येपामपि तदपनयनसमर्थः स्यादितिद्द

डहरेण वुड्ढेण णुसासिए उ, रातिणिएणावि समवएणं ॥ स
म्मं तयं थिरतो णाभिगछे, णिज्जंतए वा वि अपारएसे॥ ७॥
विउठितेणं समयाणुसिठे, डहरेण वुड्ढेणउ चोइएय ॥ अब्नु
ठियाए घडदासिए वा, अगारिणं वा समयाणुसिठ्ठे ॥ ८ ॥

अर्थ–डहरेणवुड्ढेणणुसासिएउराके० ) ते साधु गुरु सन्मुख वसतो कोइ कारणे प्र

मादे खलना पाम्यो हतो तेने न्हाने अथवा वडेराये शीखामण दीधी हतां ( रायंणिए णाविसमवएणं के० ) अथवा रत्नाधिक जे आचार्य अथवा सरखा पर्याय वालाये शीखामण आपीहतां ( सम्मंतयंथिरतोणानिगछे के० ) तेमनी शीखामण सम्यक् प्रकारे नमाने ( णिज्जंतएवाविअपारएसे के० ) ते संसार प्रवाहे वाहाडीजतो संसारनो पारंगामी नथाय एटले मुक्तिगामी नथाय ॥ ७ ॥ ( विउट्ठिते के० ) अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ तेणे साधुने ( समयाणुसिट्ठे के० ) सिद्धांतने अनुसारे शीखव्यो हतो एटले जेवीरीते तमे समाचरोछो तेम तमारा आगमने विषे कह्युं नथी ( महरेणवुड्ढेण उचोइएया के० ) तथा न्हाने अथवा महोटे शीखामण चोयणा आपी हता ( अत्तुट्ठियाएघडदासिएवा के० ) एटले अत्यंत कार्यनी करनारी तथा पाणीनी जरनारी एवी दासी तेणे ( आगारिणंवासमयाणुसिट्ठे के० ) सिद्धांतने अनुसारे चोयणा कस्यो हतो एटले जेम तमे चालोछो तेम गृहस्थ पण नचाले इत्यादिक वचने करी चोयणा कस्यो हतो शुं करे ते कहेछे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–ससाधुर्गुरुसमीपे वसन् डहरेण लघुना वृद्धेन वाऽनुशाशितः प्रमादाचरणनिषिद्धः । अथवा वयोधिकेन पर्यायज्येष्ठेन समवयसा वाऽनुशासितः कुप्यति तदनुशासनं सम्यक्स्थितोऽपुनःकरणतया नानिगछेन्नप्रतिपद्येत । अप्रतिपद्यमानश्च संसार प्रवाहे नीयमानोन संसारपारगः स्यात् ॥ ७ ॥ विरुद्धोत्थानेनोत्थितोव्युत्थितोऽन्यतीर्थिकोगृहस्थोवा मिथ्यादृष्टिस्तेन प्रमादस्खलितोचोदितः स्वसमयेन । तद्यथा । नैवंविधमनुष्ठानं नवतामागमेव्यवस्थितमिति । तथा डहरेण लघुना वृद्धेन वाऽनाचारे प्रवृत्तश्चोदितस्तथाऽतीवाऽकार्यकरणं प्रति उत्थिताऽथवा दासीत्वेनात्यंतमुत्थिता तया । तथा दास्या अपिदासीत्वेन घटदास्या जलवाहिन्यापि चोदितोन क्रोधं कुर्यात् तथाऽगारिणां गृहस्थानां यः समयोनुशासितोगृहस्थानामप्येतन्नयुज्यते कर्तुं किं पुनः साधूनामिति चोदितोपि न कुप्येत् ॥ ८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । ( डहरेणेत्यादि ) सगुर्वंतिके निवसन् क्वचित् प्रमादस्खलितः सन् वयःपर्यायाभ्यां क्षुल्लकेन लघुना चोदितः प्रमादाचरणं प्रतिषिद्धस्तथा वृद्धेन वा वयोधिकेन श्रुताधिकेनवाऽनुशासितोऽनिहितः । तद्यथा । नवद्विधानामीदृक्प्रमादाचरणमासेवितुमयुक्तं । तथा रत्नाधिकेनवा प्रव्रज्यापर्यायाधिकेन श्रुताधिकेनवा समवयसा वाऽनुशासितः प्रमादस्खलिताचरणंप्रति चोदितः कुप्यति । यथाहमप्यनेन रंकप्रायेणोत्तमकुलप्रसूतः सर्वजनसंमतइत्येवं चोदितइत्येवमनुशास्यमानोन मिथ्यादुष्कृतं ददाति न सम्यगुत्थानेनोत्तिष्ठति-नापि तदनुशासनं सम्यक्स्थितोऽपुनःकरणतया नि

गच्छेत् प्रतिपद्यते चोदितश्च प्रतिचोदयेदसम्यक्प्रतिपाद्यमानश्चासौ संसारस्रोतसा नीय मानउह्यमानोऽनुशास्यमानः कुपितोसौ न संसारार्णवस्य पारगोनवति । यदिवाऽऽचा र्यादिना सडुपदेशदानतः प्रमादस्खलितनिवर्तनतोमोक्षं प्रति नीयमानोप्यसौ संसारस मुद्रस्य तदकरणतोऽपारगएव नवतीति ॥ ७ ॥ सांप्रतं स्वपक्षचोदनानंतरतः स्वपरचोद नामधिकृत्याह । ( विउद्धिएणमित्यादि ) विरुद्धोत्थानेनोत्थितोव्युत्थितः परतीर्थिकोगृह स्थोवा मिथ्यादृष्टिस्तेन प्रमादस्खलितोचोदितः स्वसमयेन तद्यथा नैवंविधमनुष्ठानं नव तामागमे व्यवस्थितं येनाभिप्रवृत्तोसि । यदिवा व्युत्थितः संयमाद्भ्रष्टस्तेनापरः साधुः स्खलितःसन् स्वसमयेनार्हत्प्रणीतागमानुसारेणानुशासितोमूलोत्तरगुणाचरणे स्खलितः संचोदितश्चागमं प्रदर्श्याभिहितः । तद्यथा । नैतत्त्वरितगमनादिकं नवतामनुज्ञातमि ति । तथान्येन वा मिथ्यादृष्ट्यादिना क्षुल्लकेन लघुतरेण वयसा वृद्धेन वा कुत्सिताचा रप्रवृत्तश्चोदितस्तुब्दात्समानवयसावा तथातीवाकार्यकरणं प्रति उत्थिता अत्युत्थिता । यदि वा दासीत्वेन अत्यंतमुत्थिता दास्याअपि दासीति । तामेव विशिनष्टि । घटदास्या जल वाहिन्यापि चोदितोन क्रोधं कुर्यात् । एतडुक्तंनवति । उत्थितयापि कुपितयापि चोदि तः स्वहितं मन्यमानः सुसाधुर्नकुप्येत् किंपुनरन्येनेति । तथा अगारिणां गृहस्थानां यः समयोनुष्ठानं तत्समयेनानुशासितोगृहस्थानामपि एतन्नयुज्यते कर्तुं यदारब्धं नवतेत्ये वमात्मावमेनापि चोदितोममैवतच्छ्रेयइत्येवंमन्यमानोमनागपि न मनोदूषयेदिति ॥ ८ ॥

ण तेसु कुज्झे ण य पव्वहेज्जा, ण यावि किंची फरुसं वदेज्जा ॥तहा करिस्संति पडिस्सुणेज्जा, सेयं खु मेयं ण पमाय कुज्जा ॥ए॥ व णंसि मूढस्स जहा अमूढा, मग्गाणुसासंति हितं पयाणं ॥ तेणे व मज्झं इणमेव सेयं, जमे वुहा समणुसासयंति ॥ १० ॥

अर्थ-( णतेसुकुज्झेणयपव्वहेज्जा केο ) ते शीखामण आपनारना उपर ते साधु क्रो ध नकरे तथा तेने व्यथे नही एटले दंडादिके प्रहार करीने तेने पीडा उत्पन्न करे न ही तथा ( णयाविकिंचीफरुसंवदेज्जा केο ) तथा किंचित् मात्र कठोर वचन बोले नही परंतु तेमना वचन सांनलीने आवीरीते कहे के ( तहाकरिस्संतिपडिस्सुणेज्जाकेο ) जेम तमे कहोगो हुं तेमज करीश एम तेना वचन मान्य करे ( सेयंखुमेयंणपमायकु ज्जा केο ) मनमां एम विचारेजे मने एहिज शिक्षारूप श्रेयकारी दान आपेछे एवुं जा णीने प्रमाद नकरे ॥ ए ॥ ( वणंसिमूढस्सजहाअमूढा केο ) जेम वन एटले गहन अटवीने विषे कोइएक मूर्ख दिशिमूढ थइ नूले पड्यो तेने कोइक अमूढ पुरुष मार्गनुं देखाडनार ( मग्गाणुसासंतिहितंपयाणं केο ) प्रजालोकने हितकारी एवो मार्ग देखाडे

ए दृष्टांते शिष्य पण एम जाणे जे ( तेणेवमज्झंइणमेवसेयं के० ) मुजने एहिज शिक्षानो मार्ग श्रेयकारी कहेछे ( जमेवुहासमणुंसासयंति के० ) जे मुजने बुद्ध पंडित गुरु आचार्यादिक सम्यक् रीते पुत्रनीपरे शिखामण शिक्षा आपेछे ते शिखामणने श्रेयकारी मानीने आदरे ॥ १० ॥

॥दीपिका–तेषु स्खलितनोदकेषु न क्रुध्येत्। यतः।आक्रुष्टेनमतिमतातत्वार्थविचारणे मतिः कार्या । यदि सत्यं कः कोपः स्यादनृतं किंनु कोपेन ॥ १ ॥ तथा तं नोदकं न प्रव्यथेत न दंडादिप्रहारेण पीडयेत् । नचापि किंचित्परुषं पीडाकारि वदेत् नोदितश्च तथा करिष्यामीति प्रतिशृणुयादंगीकुर्यात् इदं नोदनं , ममश्रेयोयतएतद्भयात्कचित्प्रमादं न कुर्यात् ॥ ए ॥ वने मूढस्य दिग्भ्रांतस्य कस्यचिद्यथाऽमूढामार्गज्ञामार्गमनुशासंति कथयंति । किंनूतं मार्गं प्रजानां हितं । एवं तेनाप्यसदनुष्ठायिना नोदिते न कुपितव्यं किंतु ममैवं श्रेयइति मंतव्यं । यदेतद्बुधाः सम्यगनुशासयंति सन्मार्गे प्रापयंति ॥ १० ॥

॥ टीका–एतदेवाह । ( णतेसुकुज्झेइत्यादि ) तेषु स्वपरपक्षेषु स्खलितचोदकेष्वात्महितं मन्यमानोन क्रुध्येदन्यस्मिन् वा डर्वचनेऽनिहिते न कुप्येदेवं चिंतयेत् । आक्रुष्टेन मतिमता तत्वार्थविचारणे मतिः कार्या ॥ यदि सत्यं कः कोपः स्यादनृतं किंनु कोपेन ॥ १ ॥ तथा नाप्यपरेण स्वतोऽधमेनापि चोदितोऽर्हन्मार्गानुसारेण लोकाचारगत्या वाऽनिहितः परमार्थं पर्यालोच्य तं चोदकं प्रकर्षेण व्यथेद्दंडादिप्रहारेण पीडयेन्नचापि किंचित्परुषं तत्पीडादिकारि वदेत् ब्रूयात् । ममैवायमसदनुष्ठायिनोदोषोयेनायमपि मामेवं चोदयति चोदितश्चैवंविधं नवता असदाचरणं न विधेयं । एवंविधे च पूर्वोर्षिनिरनुष्ठितमनुष्ठेयमित्येवविधवाक्यं तथा करिष्यामीत्येवं मध्यस्थवृत्त्या प्रतिशृणुयादनुतिष्ठेच्च मिथ्याडुष्कृतादिना निवर्तेत । यदेतच्चोदनं नामैतन्ममैवश्रेयोयतएतद्भयात्कचित्पुनः प्रमादं न कुर्यान्नैवासदाचरणमनुतिष्ठेदिति ॥ ए॥ अस्यार्थस्य दृष्टांतं दर्शयितुमाह । ( वणंसीत्यादि ) वने गहने महाटव्यां दिग्भ्रमेण कस्यचिद्व्याकुलितमतेर्नष्टसत्पथस्य यथा केचिदपरे कृपाकृष्टमानसाअमूढाः सदसन्मार्गज्ञाः कुमार्गपरिहारेण प्रजानां हितमशेषापायरहितमीप्सितस्थानप्रापकं मार्गं पंथानमनुशासंति प्रतिपादयंति।सच तैः सदसद्विवेकिनिः सन्मार्गावतरणमनुशासितआत्मनः श्रेयोमन्यते । एवं तेनाप्यसदनुष्ठायिना चोदितेन नकुपितव्यमपितु ममायमनुग्रहइत्येवं मंतव्यं । यदेतद् बुद्धाः सम्यगनुशासयंति सन्मार्गेऽवतारयंति पुत्रमिव पितरस्तन्ममैवश्रेय इति मंतव्यं ॥ १० ॥

अह तेण मूढेण अमूढगस्स, कायव पूया सविसेसजुत्ता ॥ एतं
वमं तत्त उदाहु वीरे, अणुगम्म अत्थं उवणेति सम्मं ॥ ११ ॥

एता जहा अंधकारंसि राउ, मग्गं ण जाणाति अपस्समाणे॥
से सूरिअस्स अब्भुग्गमेणं, मग्गं वियणाइ पागसियंसि॥१२॥

अर्थ–( अहतेणमूढेण अमूढगस्स के० हवे ते मूर्ख पुरुषे मार्ग पामे ठते मार्गनो देखाडनार जे अमूढ पुरुष तेनो उपकार जाणीने (कायव्वपूयासविसेसजुत्ता के०) तेनी सविशेष विस्तार युक्त पूजा करवी ( एउवमंतत्थउदाहुवीरे के० ) उपमां त्यां कही को णे कही तोके श्रीवीरपरमेश्वरे कही ( अणुगम्मअत्थं उवणेतिसम्मं के० ) ते पुरुष अ र्थ एटले परमार्थ जाणी सम्यक् प्रकारे पोताने तेनो करेलो उपकार जाणी एम वि चारे जे आ पुरुषे मने मिथ्यात्वरूप गहन वनना डुःख थकी रुमो उपदेश आपीने ठोमाव्योछे तेमाटे एनी नक्ति करवी ॥ ११ ॥ ( एताजहाअंधकारंसिराउ के० ) जेम एता एटले मार्गनो जाण पुरुष चक्षु सहित ठतां पण अत्यंत अंधकारमय रात्रीने विषे ( मग्गंणजाणातिअपस्समाणे के० ) मार्गने नजाणे केमके अंधकारमां दृष्टी पडे नही माटे अणदेखतो ठतो मार्गनजाणे ( सेसूरिअस्सअब्भुग्गमेणं के० ) परंतु तेज पु रुष सूर्योदय थयाथी अंधकार विनाश पामे तेवारें ( मग्गंवियाणातिपगासियंसि के०) सर्व जगतमां विशेष प्रकाश थयो ठता वली सम्यक् प्रकारे तेमार्गने जाणे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–यथा तेन मूढेन सन्मार्गे प्रापितेन तस्यामूढस्य सन्मार्गोपदेष्टुः पुलिंदा देरपि पूजा विशेषयुक्ता कर्तव्या । एतामुपमामुदाहृतवान् कथितवान् वीरस्तीर्थकृत् अ नुगम्य ज्ञात्वार्थं परमार्थं सम्यगात्मन्युपनयति परमोपकारं । कोर्थः । अहमनेन मिथ्या त्ववनाज्जन्ममरणाद्यनेकोपद्रवबहुलात्सडुपदेशदानेनोत्तारितस्ततोमयाऽस्य परमोपकारि णोविनयादिनिः पूजा कर्तव्येति । यथा । गेहम्मि अग्गिजाला, उलंमि जहाए मऊक माणंमि ॥ जो बाहेइ सुयंतं, सो तस्स जणो परमबंधूइति ॥११॥ यथा महांधकारा यां रात्रौ नेता नायकोऽटव्यादौ स्वभ्यस्तप्रदेशोपि मार्गं न जानाति स्वहस्तादिकमप्यपश्य न् । सएव नेता सूर्यस्याभ्युद्गमेनोदयेन प्रकाशिते दिक्चक्रे मार्गं विशेषेण जानाति॥१२

॥टीका–पुनरप्यस्यार्थस्य पुष्टयर्थमाह । (अहत्तेणेत्यादि) अथेत्यानंतर्यार्थे वाक्योपन्या सार्थेवा । यथा तेन मूढेन सन्मार्गावतारितेन तदनंतरं तस्यामूढस्य सत्पथोपदेष्टुः पुलिं दादेरपि परमुपकारं मन्यमानेन पूजा विशेषयुक्ता कर्तव्या । एवमेतामुपमामुदाहृतवा नभिहितवान् वीरस्तीर्थकरोन्योवा गणधरादिकोऽनुगम्य बुध्वाऽर्थं परमार्थं चोदनाकृतं पर मोपकारं सम्यगात्मन्युपनयति । तद्यथाऽहमनेन मिथ्यात्ववनाज्जन्मजरामरणाद्यनेको पद्रवबहुलात्सडुपदेशदानेनोत्तारितस्ततोमयाऽस्य परमोपकारिणोऽभ्युत्थानविनयादिनिः

वतरणश्चक्षुषा घटादीन् पश्यति जनस्तथा जिनागमेनापि जीवादयः पदार्थाउपलभ्यंतइत्यर्थः ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च दिक्षु त्रसाश्च ये स्थावराः सूक्ष्मबादरादिभेदाश्च ये प्राणिनस्तेषु सदायत्तः परिव्रजेत् संयमानुष्ठायी भवेत् तथाऽविकंपमानः संयमादविचलन् तेषु प्राणिषु मनसापि प्रद्वेषं न गच्छेत् ॥ १४ ॥

---

॥ टीका–एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमधिकृत्याह । ( एवंतुसेहेत्यादि ) यथा ह्यसावंधकारावृतायां रजन्यामतिगहनायामटव्यां मार्गं न जानाति सूर्योद्गमेनापनीते तमसि पश्चाज्जानात्येवं तु शिष्यकोऽभिनवप्रव्रजितोपि सूत्रार्थानिष्पन्नोऽपुष्टोऽपुष्कलः सम्यगपरिज्ञातोधर्मः श्रुतचारित्राख्योदुर्गतिप्रसृतजंतुधरणस्वभावोयेनासावपुष्टधर्मा सचाऽगीतार्थसूत्रानभिज्ञत्वादबुध्यमानोधर्मं जानातीति नसम्यक् परिछिनत्ति । सएव तु पश्चाद्गुरुकुलवासाज्जिनवचनेन कोविदोऽभ्यस्तसर्वज्ञप्रणीतागमत्वान्निपुण सूर्योदयेऽपगतावरणश्चक्षुषेव यथावस्थितान् जीवादीन् पदार्थान् पश्यति। इदमुक्तंभवति । यथाहि इंद्रियार्थसंपर्कात्साक्षात्कारितया परिस्फुटाघटपटादय पदार्थाः प्रतीयंते एव सर्वज्ञप्रणीतागमेनापि सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टस्वर्गापवर्गदेवतादयः परिस्फुटानिःशंकं प्रतीयतइति । अपिच कदाचिच्चक्षुषान्यथाभूतोप्यर्थोऽन्यथा परिछिद्यते । तद्यथा। मरुमरीचिकानिचयोजलभ्रांत्या किंशुकनिचयोग्न्याकारेणापीति । नच सर्वज्ञप्रणीतागमस्य क्वचिदपि व्यभिचारः । तद्व्यभिचारे हि सर्वज्ञत्वहानिप्रसंगात् तत्संभवस्य चासर्वज्ञत्वेन प्रतिषेद्धुमशक्यत्वादिति ॥१३॥ शिक्षकोहि गुरुकुलवासितया जिनवचनाभिज्ञोभवति तत्कोविदश्च सम्यक् मूलोत्तरगुणान् जानाति । तत्र मूलगुणानधिकृत्याह । ( उड्ढंअहेयमित्यादि ) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् दिक्षु विदिक्षु चेत्यनेन क्षेत्रमंगीकृत्य प्राणातिपातविरतिरभिहिता । द्रव्यतस्तु दर्शयति । त्रस्यंतीति त्रसास्तेजोवायुद्वींद्रियादयश्च तथा ये च स्थावराः स्थावरनामकर्मोदयवर्तिन पृथिव्यब्वनस्पतयस्तथाचैतद्भेदाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकरूपादशविधप्राणधारणात्प्राणिनस्तेषु सदा सर्वकालमनेन तु कालमधिकृत्य विरतिरभिहिता । यत्तः परिव्रजेत्परिसमंता व्रजेत् संयमानुष्ठायी भवेत् । भावप्राणातिपातविरतिं दर्शयति । स्थावरजंगमेषु प्राणिषु तदपकारे उपकारेवा मनागपि मनसा प्रद्वेषं नगच्छेदास्तांतावद्दुर्वचनदंडप्रहारादिकं तेष्वपकारिष्वपि नामंगलं चिंतयेदविकंप्यमानः संयमादचलनं सदाचारमनुपालयेदिति । तदेव योगत्रिकंकरणत्रिकेण द्रव्यक्षेत्रकालभावरूपां प्राणातिपातविरतिं सम्यगरक्तद्विष्टतया ऽनुपालयेदेव शेषाण्यपि महाव्रतान्युत्तरगुणांश्च ग्रहणासेवनाशिक्षासमन्वितः सम्यगनुपालयेदिति ॥ १४ ॥

कालेण पुछे समियं पयासु, आइक्कमाणो दवियस्स वित्तं ॥ तं सोय कारी पुढो पवेसे, संखा इमं केवलियं समाहिं ॥ १५ ॥ अस्सिं सुठि च्चा तिविहेण तायी, एएसु या संति निरोहमाहु ॥ ते एवमक्खंति तिलो गदंसी, ण नुज्जमेयंति पमायसंगं ॥ १६ ॥

अर्थ-( कालेण के० ) ते साधु काल प्रस्तावे एटले अवशर लइने जे आचार्य ( पयासु के० ) प्रजा एटले जीवोने विषे ( समियं के० ) सम परिणामे वर्त्तता होय तेवा आचार्यनी पासे सूत्र अने अर्थ ( पुछे के० ) पूछे ( आइक्कमाणोदवियस्सवि त्तं के० ) अने ते आचार्य पण मुक्तिगमनयोग्य जे पुरुष एवा पुरुषनां शुद्ध व्रत आचा रने जाणतो थको वंदनीक पूजनीक होय पंचाचारनो पालनार होय ( तंसोयकारीपुढोपवे से के० ) तेवा आचार्य गुरुना वचन श्रवण करतो थको जुदा जुदा अर्थ विचार हृद यने विषे धारण करी राखे ( संखाइमंकेवलियंसमाहिं के० ) सन्मार्ग रूप केवली ना षित सम्यक् ज्ञानादि लक्षण धर्म तद्रूप समाधि ने पोताना हृदयने विषे स्थापन करे ॥ १५ ॥ ( अस्सिंसुठिच्चातिविहेणतायी के० ) एरीते गुरुकुल वासे वसतो एवो चारि त्रिउं ते पूर्वोक्त श्रुतरूप धर्म मार्ग सांभलीने मोक्ष मार्ग ग्रहण करीने त्रिविध प्रकारे त्रायी थाय एटले मन वचन अने कायायें करी छकायनो रक्षपाल थाय ( एएसुयासं तिनिरोहमाहु के० ) ए समिति गुप्तिने विषे स्थित रहिने शांति तथा निरोध एटले समस्त कर्मनो क्षय करे एम कहेछे ( तेएवमक्खंतितिलोगदंसी के० ) ते कोण कहेछे तोके त्रैलोक दर्शि एटले सर्वज्ञ पुरुषो एम कहेछे ( णनुज्जमेयंतिपमायसंगं के० ) व ली ते साधु कदापि क्षण मात्र पण प्रमादनो संग करेनही तथा ए प्रमाद करवो ए वो उपदेश पण करे नही ते पंमित साधु जाणवो. ॥ १६ ॥

---

॥ दीपिका–सम्यगितं सदाचारानुष्ठायिनं कंचिदाचार्यादिकं प्रजासु जंतुविषये चतुर्दश भूतग्रामविषयं किंचित् कालेनावसरं ज्ञात्वा पृछेत् । सच तेन पृष्टआचार्यादिराचक्षाणः सेव्यः स्यात् । किमाचक्षाणइत्याह । द्रव्यस्य वीतरागस्य वृत्तमनुष्ठानं संयमं वाऽचक्षा णोमान्यः स्यात् । आचार्यवचनं श्रोत्रे कर्णे कर्तुं शीलमस्य श्रोत्रकारी आज्ञाविधायी सन् पृथग्गुपन्यस्तमादरेण हृदये प्रवेशयेत् । केवलिकं केवलिना कथितं समाधिं सन्मार्ग मिमं वक्ष्यमाणं संख्याय सम्यक् ज्ञात्वा यथोपदेशं प्रवर्तकः सम्यक् चेतसि धारयेदिति ॥ १५ ॥ अस्मिन् गुरुकुलवासे सुष्ठु स्थित्वा त्रिविधेन मनोवाक्कायैः कृतकारितानुमति निर्वा जंतूनां त्रायी रक्षकः । एतासु समितिगुप्तिषु स्थितस्य शांतिः सर्वद्वंद्वविनाशः

स्यात्। तथा च निरोधं कर्मक्षयमाहुस्तद्विदः। एवं त्रिलोकदर्शिनस्तीर्थंकरास्ते आख्यांति कथयंति न पुनर्नूय एतं प्रमादसंगं विषयादिकं विधेयत्वेन कथितवंतः ॥ १६ ॥

॥ टीका–गुरोरंतिके वसतो विनयमाह । (कालेणेत्यादि) सूत्रमर्थं तडुनयं वा विशिष्टे न प्रष्टव्यकालेनाचार्यादेरवसरं ज्ञात्वा प्रजायंतइति प्रजाजंतवस्तासु जंतुषु विषये चतुर्दश नूतग्रामसंबंधं कंचिदाचार्यादिकं सम्यगितं सदाचारानुष्ठायिनं सम्यक् वा समंताद्वा जंतुगतं पृच्छेदिति । सच तेन पृष्टआचार्यादिराचक्षाणः शुश्रूषयितव्योनवति । यदाचक्षाणस्तद्दर्शयति । मुक्तिगमनयोग्योनव्योऽव्यरागद्वेषविरहाद्वा इव्यं तस्य इव्यस्य वीतरागस्य तीर्थंकरस्य वा वृत्तमनुष्ठानं संयमं ज्ञानं वा तत्प्रणीतमागमं वा सम्यगाचक्षाणः सपर्यया ऽपं माननीयोनवति । कथमित्याह । तदाचार्यादिना कथितं श्रोत्रे कर्णे कर्तुं शीलमस्य श्रोत्रकारी यथोपदेशकारी सदाज्ञाविधायी सन् पृथक्पृथगुपन्यस्तमादरेण हृदये प्रवेशयेच्चेतसि व्यवस्थापयेत् । व्यवस्थापनीयं दर्शयति । संख्याय सम्यक् ज्ञात्वा इममिति वक्ष्यमाणं केवलिनइदं कैवलिकं केवलिना कथितं सन्मार्गं सम्यक् ज्ञानादिकं मोक्षमार्गमाचार्यादिना कथितं यथोपदेशं प्रवर्तकः पृथग्विविक्तं हृदये पृथग्व्यवस्थापयेदिति ॥ ॥ १५ ॥ किंचान्यत् । (अस्सिंइत्यादि) अस्मिन् गुरुकुलवासे निवसता यच्छ्रुतं श्रुत्वा च सम्यक् हृदयव्यवस्थापनद्वारेणावधारितं तस्मिन् समाधिनूते मोक्षमार्गे सुष्ठुस्थित्वा त्रिविधेनेति मनोवाक्कायगुप्तिनिः कृतकारितानुमतिनिर्वाऽत्मानं त्रातुं शीलमस्येति त्रायी जंतूनां सडुपदेशदानतस्त्राणकरणशीलोवा तस्य स्वपरत्रायिणएतेषु च समितिगुप्त्यादिषु समाधिमार्गेषु स्थितस्य शांतिर्नवत्यशेषद्वंद्वोपरमोनवति । तथा निरोधमशेषकर्मक्षयरूपमाहुस्तद्विदः प्रतिपादितवंतः । कएवमाहुरित्यादि । त्रिलोकमूर्ध्वाधस्तिर्यग्लक्षणं द्रष्टुं शीलं येषांते त्रिलोकदर्शिनस्तीर्थकृतः सर्वज्ञास्ते एवमनंतरोक्तया नीत्या सर्वनावान् केवलालोकेन दृष्ट्वाचक्षते प्रतिपादयंतीति । एतदेवं समितिगुप्त्यादिकं संसारोत्तारणसमर्थं ते त्रिलोकदर्शिनः कथितवंतोन पुनर्नूयएवं प्रमादसंगं मद्यविषयादिकं संबंधविषयत्वेन प्रतिपादितवंतः ॥ १६ ॥

निसम्म से न्निक्खु समीहियट्ठं, पडिन्नाणवं होई विसारए य ॥
आयाणअठी वोदाणमोणं, उवेच्च सुद्धेण उवेति मोक्खं ॥ १७ ॥
संखाइ धम्मं च वियागरंति, बुद्धा हु ते अंतकरा नवंति ॥
ते पारगा दोण्हवि मोयणाए, संसोधितं पण्ह मुदाहरंति ॥ १८ ॥

अर्थ–( सेनिक्खु के० ) ते गुरुकुलवासी साधु ( निसम्मसमीहियट्ठं के० ) मुक्तिग

मन योग्यनो आचार जे मोक्ष मार्ग एटले समिहित अर्थ एवो सांजलीने तेने सम्यक् प्रकारे हृदयने विषे अवधारीने ( पडिनाणवंहोईविसारएय के० ) प्रतिनावंत एटले बुद्धिवंत थाय तथा विशारद एटले सांजलनारने ते मोक्षमार्गनो अर्थ प्रकाशे एवो ( आयाणअट्ठी के० ) मोक्षार्थी तथा ( वोदाण के० ) बार प्रकारनो तप तथा ( मोणं के० ) संयम तेने ( उवेच्च के० ) प्राप्त करीने ( सुद्धेणउवेतिमोरकं के० ) शूधो निर्दोष एवा आहारे करी अवशाने मोक्षने पामे ॥१७॥ हवे गुरुकुलवासे वसतांजे करे ते देखाडेछे ( संखाइधम्मंचवियागरंति के० ) ते साधु गुरु पाशेथी सांजलीने पछी तेने सम्यक् प्रकारे जाणीने अन्य जनोने धर्म प्रकाशे ( बुद्धाहुतेअंतकराजवंति के० ) एवा बुद्ध एटले तत्वना जाण ते जन्मांतरे संचितजे कर्म तेना अंतना करनार थाय ( तेपारगादोएहविमोयणाए के० ) ते यथावस्थित धर्मना प्रकाशक बन्नेने एटले पोताने तथा परने कर्म थकी मुकाववे करीने संसारना पारंगामी थाय ( संसोधितंपएहमुदाहरंति के० ) जे सम्यक् सोधी पूर्वापर अविरोध द्रव्य क्षेत्र काल नाव जाणी ने प्रश्न कहे एतावता ते गीतार्थ सत्य धर्म प्रकाशता थका पोताना जीवनें अने परना जीवने तारनार थाय पुछनारने समाधिना करनार थाय. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–सद्गुरुकुलवासी निक्षुः साध्वाचारं निशम्य ज्ञात्वा स्वतः समाहितं वार्थं मोक्षं ज्ञात्वा प्रतिनानवानुत्पन्नबुद्धिर्विशारदश्च नवति । आदीयते मोक्षार्थिनिरित्यादानं ज्ञानादि सएवार्थः सविद्यते यस्य स आदानार्थी ज्ञानादिप्रयोजनवान् व्यवदानं तपः । मौनं संयमः । तौ तपःसंयमौ उपेत्य प्राप्य शुद्धेन निर्दोषाहारेणात्मानं यापयन् मोक्षमुपैति । ( नउवेइमारंकचित्पाठः ) मारं संसारं न उपैति न ज्रमतीति ॥ १७ ॥ संख्या सद्बुद्धिस्तया धर्मं ज्ञात्वा परेषां ये व्यागृणंति कथयंति ते बुद्धाज्ञाततत्वाः कर्मणामंतकरानवंति । ते शुद्धधर्मप्ररूपका द्वयोरपि परात्मनोः कर्मपाशमोचनेनपारगाः स्युः । ते च सम्यक् शोधितं पूर्वापरविरुद्धं प्रश्नशब्दमुदाहरंति । कोर्थः परेण कंचिदर्थं पृष्टस्तं प्रश्नं सम्यक् परीक्ष्य कथयेत् ॥ १८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । ( णिसम्मेत्यादि ) सद्गुरुकुलवासी निक्षुः इव्यस्य वृत्तं निशम्यावगम्य स्वतः समीहितं चार्थं मोक्षार्थं बुध्वा हेयोपादेयं सम्यक् परिज्ञाय नित्यं गुरुकुलवासतः प्रतिनानवानुत्पन्नप्रतिनोनवति । तथा सम्यक् स्वसिद्धांतपरिज्ञानाछ्रोतॄणां यथावस्थितार्थानां विशारदोनवति प्रतिपादकोनवति । मोक्षार्थिनाऽऽदीयत इत्यादानं सम्यक् ज्ञानादिकं तेनार्थः सएवार्थः आदानार्थः विद्यते यस्यासावादानार्थी सएवंनूतो

ज्ञानादिप्रयोजनवान् । इव्यादानं द्वादशप्रकारं तपोमौनं संयमश्चाश्रवनिरोधरूपस्तदेवमे तौतपःसंयमावुपेत्य प्राप्य ग्रहणसेवनरूपया द्विविधयापि शिक्षया समन्वितः सर्वत्र प्रमाद रहितः प्रतिज्ञावान् विशारदश्च शुद्धेन निरुपाधिना उज्ञमादिदोषशुद्धेन चाहारेणात्मानं यापयन्नशेषकर्मक्षयलक्षणं मोक्षमुपैति। नउवेऽमारंतिकचित्पाठः। बहुशोम्रियंते स्वकर्मपर वशाः प्राणिनोयस्मिन् समारः संसारस्तं जातिजरामरणरोगशोकाकुलं शुद्धेन मार्गे णात्मानं वर्तयन् उपैति । यदिवा मरणं प्राणत्यागलक्षणं मारस्तं बहुशोनोपैति। तथा हि । अप्रतिपतितसम्यक्त्वउत्कृष्टतः सप्ताष्टौवा नवान् म्रियतेनोर्ध्वमिति ॥१७॥ तदेवं गुरुकुलनिवासितया धर्मे सुस्थिताबहुश्रुताः प्रतिज्ञानवंतोऽर्थविशारदाश्च यत्कुर्वंति त दर्शयितुमाह । ( संखाइइत्यादि ) सम्यक् ख्यायते परिज्ञायते यया सा संख्या सहुद्धिस्त या स्वतोधर्मं परिज्ञायापरेषां यथावस्थितं धर्मं श्रुतचारित्राख्यं व्यागृणंति प्रतिपादयंति। यदिवा स्वपरशक्तिं परिज्ञाय पर्षदं वा प्रतिपाद्य चार्थं सम्यगवबुध्य धर्मं प्रतिपादयंति । ते चैवंविधाबुद्धाः कालत्रयवेदिनोजन्मांतरसंचितानां कर्मणामंतकरानवंति । अन्येषां कर्मापनयनसमर्थानवतीति दर्शयति । ते यथावस्थितधर्मप्ररूपकात् द्वयोरपि परा त्मनोः कर्मपाशविमोचनया स्नेहादिनिगडविमोचनया वा करणनूतया संसारसमुद्रस्य पारगानवंति। ते चैवंनूताः सम्यक्बोधितं पूर्वोत्तराविरुद्धं प्रश्नशब्दमुदाहरंति । तथाहि। पूर्वं बुध्वा पर्यालोच्य कोयं पुरुषः कस्य चार्थस्य ग्रहणसमर्थोऽहंवा किंनूतार्थप्रति पादनशक्तइत्येवं सम्यक् परीक्ष्य व्याकुर्यादित्यथवा परेण किंचिदर्थं पृष्टस्तं प्रश्नं सम्यक् परीक्ष्योदाहरेत्सम्यगुत्तरं दद्यादिति । तथाचोक्तं ।आयरियसयाधारि एणं अन्नेण सरियमुणिएण ॥ तोसंघमक्ष्यारे, ववहरिउंजेसुहंहोंति ॥ १ ॥ गीतार्थायथावस्थितं धर्मं कथयंतः स्वपरतारकानवंतीति. ॥ १८ ॥

णोबायए णो विय लूसएज्जा, माणं ण सेवक्ष पगासणं च ॥ ण
यावि पन्ने परिहास कुज्जा, ण या सियावाय वियागरेज्जा ॥ १९ ॥
नूताभिसंकाइ डुगुंबमाणे, ण णिव्वहे मंतपदेण गोयं ॥ ण किं
चिमिछे मणुए पयासु, असाहुधम्माणि ण संवएज्जा ॥ २० ॥

अर्थ– ते प्रश्न कहेता थकां कदापि अन्यथा पण केवाय ते माटे तेनु निषेध कहे बे. ते धर्मनु प्ररूपक पुरुष पूबता सूत्रना अर्थने ( णोबायए के० ) ढांके नही एटले अन्यथा नवखाणे ( णोवियलूसएज्जा के० ) तथा पारका गुण लूसे नही एटले पोता ने अनिमाने करी अन्यने विटंबना करे नही तथा (माणंणसेवक्षपगासणंच के०) मा

न नसेवे एटले अहंकार नकरे पोतानी मोहोटाइ प्रकाशे नही तथा हुं बहुश्रुतछुं एम पण नकहे ( णयाविपन्नेपरिहासकुज्जा के० ) तथा पोताने प्रज्ञावंत जाणीने परनो परिहास्य एटले उपहास्य नकरे एटले कोइने अज्ञानी जाणीने तेने हास्यना वचन बोले नही ( णयासियावायवियागरेज्जा के० ) तथा कोइने आशीर्वादना वचन नबोले एटले तमे बहु धनवान् बहु पुत्रवान् दीर्घायुष्यवान् हो इत्यादिक वचन नकहे ॥ १९ ॥ तथा ( नूतानिसंकाए के० ) नूत एटले प्राणी तेनी हिंसानी शंकायें सावद्य वचन जाणीने आशीर्वाद न आपे ( डुगुंछमाणे के० ) पापने निंदतो थको ( णणिव्वहेमंतपदेणगोयं के० ) तथा मंत्रपद एटले विद्यामंत्रे करीने गोत्र एटले संयम तेने निःसार नकरे ( ण किंचिमिछेमणुएपयासु के० वली धर्मनो प्ररूपक साधु ते धर्मनो प्रकाश करतो थको सांजलनार पुरुषोनी पाशेथी वस्त्रादिकना लाजनी इछा करे नहि निरीह छतो धर्म प्रकाशे तथा ( असाहुधम्माणि के० ) असाधुनो हिंसारूप वस्तुदान तर्पणादिक एवो जे धर्म तेने सेवे नही एटले ( णसंवएज्जा के०) एवो सावध धर्म नबोले. ॥ २० ॥

---

॥ दीपिका–सप्रश्नस्योदाहर्ता कुतश्चिन्निमित्तात् श्रोतुः कुपितोपि सूत्रार्थं न छादयेत् स्वाचार्यं वा नापलपेत् परगुणान् वा न छादयेत् । शास्त्रार्थं नोलूपयेत् न विडंबयेत् मौनं न सेवेत नाप्यात्मगुणानां प्रकाशनं कुर्यात् न च प्रज्ञावान् परिहासं कुर्यात् न चाशीर्वादं बहुपुत्रोबहुधान्योदीर्घायुस्त्वं नूयाइत्यादि व्यागृणीयात ॥ १९ ॥ नूतेषु प्राणिषु नूताभिशंका उपमर्दशंका तयाऽऽशीर्वादं सावद्यं जुगुप्सां न ब्रूयात् तथा गोत्रं मौनं मंत्रपदेन विद्यासाधनविधिना ननिर्वाहयेत् न निःसारं कुर्यात् । प्रजासु जीवेषु मनुजोव्याख्यां कुर्वन्नकिमपि लाजमिछेत् तथाऽसाधूनां धर्मान्स्नानतर्पणादिकान् न संवदेन्न ब्रूयात्. ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

---

॥ टीका–सच प्रश्नमुदाहरन् कदाचिदन्यथापि ब्रूयादतस्तत्प्रतिषेधार्थमाह । ( णोछायएइत्यादि ) सप्रश्नस्योदाहर्ता सर्वार्थाश्रयत्वाद्रत्नकरंडकल्पः कुत्रापि कुत्रिकापणकल्पोवा चतुर्दशपूर्विणामन्यतरोवा कश्चिदाचार्यादिभिः प्रतिभानवानर्थविशारदस्तदेवंनूतः कुतश्चिन्निमित्तात् श्रोतुः कुपितोपि सूत्रार्थं न छादयेन्नान्यथा व्याख्यां नयेत्स्वाचार्यं वा नापलपेद्धर्मकथां वा कुर्वन्नार्थं छादयेदात्मगुणोत्कर्षाभिप्रायेण वा परगुणान्नछादयेत्तथा परगुणान्नलूपयेन्नविडंबयेच्छास्त्रार्थं वा नापसिद्धांतेन व्याख्यानयेत्तथा समस्तशास्त्रवेत्ताहं सर्वलोकविदितः समस्तसंशयापनेता न मनुष्योहेतुयुक्तिभिरर्थप्रतिपादयितेति एवमात्मकं मानमभिमानं गर्वं नसेवेत नाप्यात्मनोबहुश्रुतत्वेन तपस्वित्वेन वा प्रकाशनं कुर्याच्चशब्दादन्यदपि पूजासत्कारादिकं परिहरेत्तथा नचापि प्रज्ञावान् सश्रुतिकः परि

हासं केवलिप्रायं ब्रूयाद्यदिवा कथंचिदवबुध्यमाने श्रोतरि तडुपहासप्रायं परिहासं न विदध्यान्नापि चाशीर्वादं बहुपुत्रोबहुधनोबहुधर्मोदीर्घायुस्त्वं नूयाइत्यादिव्यागृणीयात् नापासमितियुक्तेन नाव्यमिति ॥ १९ ॥ किंनिमित्तमाशीर्वादोन विधेयइत्याह । ( नूया निसंकाइइत्यादि ) नूतेषु जंतुषूपमर्दशंका तयाशीर्वादं सावद्यं सपापं जुगुप्समानोन ब्रूयात्तथा गास्त्रायतइति गोत्रं मौनं वाक्संयमस्तं मंत्रपदेन विद्यापमार्जनविधिना न निर्वाहयेन्न निःसारं कुर्यात् । यदिवा गोत्रं जंतूनां जीवितं मंत्रपदेन राजादिगुप्तनाषणपदेन राजादीनामुपदेशदानतोननिर्वाहयेन्नापनयेत् । एतडुक्तं नवति । नराजादिना सार्धं जंतुजीवितोपमर्दकं मंत्रं कुर्यात्तथा प्रजायंतइति प्रजाजंतवस्तासु प्रजासु मनुजोमनुष्यो व्याख्यानं कुर्वन् धर्मकथां वा नकिमपि लानपूजासत्कारादिकमिछेदनिलपेत्तथा कुत्सितानामसाधूनां धर्मान् वस्तुदानतर्पणादिकान्नसंवदेन्नब्रूयाद्यदिवा नासाधुर्धर्मान् ब्रुवन् संवादयेदथवा धर्मकथां व्याख्यानंवा कुर्वन् प्रजास्वात्मश्लाघारूपां कीर्तिं नेछेदिति. ॥ २०॥

हासं पि णो संधति पावधम्मे, उए तहीयं फरुसं वियाणे ॥
णो तुडए णो य विकंथइज्जा, अणाइले या अकसाइ निस्कू ॥२१॥
संकेज्ज या संकितनाव निस्कू, विनज्जवायं च वियागरेज्जा ॥ ना
साडयं धम्म समुठितेहिं, वियागरेज्जा समया सुपन्ने ॥ २२ ॥

अर्थ—(हासंपिणोसंधति के० ) तथा जे थकी पोताने अने परने हास्य उपजे ते नकहे तथा ( पावधम्मे के० ) पापधर्म एटले सावद्य धर्म नबोले ( उएतहीयं के० ) तथा राग द्वेष रहित अकिंचन एवो छतो साधु सत्य वचनज बोले अनेजे ( फरुसंवियाणे के० ) परुष एटले कठण निठुर वचन होय तेने ज्ञ परिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे तथा ( णोतुडए के० ) पूजा सत्कारादिकने पामतो थको उन्माद न करे तथा ( णोयविकंथइज्जा के० ) पोतानी यश कीर्ति देखीने श्लाघा नकरे तथा ( अणाइलेया के० ) अणाकुल होय एटले धर्म करतो थको आकुल नथाय तथा ( अकसाइनिस्कू के० ) कषाय रहित एवो साधु जाणवो ॥ २१ ॥ (संकेज्जयासंकित नावनिस्कू के०) साधु सूत्र अर्थने विषे निःशंकित छतो पण शंका राखे एटले सगर्व नथाय ए अर्थ जेरीते हुं जाणुं तेरीते बीजो कोइ जाणतो नथी एम नकहे एकांत वाद टाले तथा (विनज्जवायं चवियागरेज्जा के०) स्याद्वादवचन बोले सिद्धांतनो सर्व प्रथक् प्रथक् अर्थ वेचीने व्याख्या करे तथा ( नासाडयं धम्मसमुठितेहिं के० ) संयमने विषे सम्यक् प्रकारे उठ्या एवा साधु धर्म कथाने अवसरे बे नाषा बोले एकतो सत्या नाषा अने

बीजी असत्यामृषा एटले एकतो सत्य नाषा अने बीजी व्यवहारारिक ए रीते बे नाषा बोले ( वियागरेज्ञा समयासुपन्ने के० ) तथा राजायें अने रांके पुठ्यो थको प्रज्ञावंत महानुनाव एवो साधु बन्नेने समनावे धर्म कहे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–हास्यं न संधयेन्नकुर्यान्नकारयेत् । तथा पापधर्मान् सावद्यरूपान्नकुर्यात्तथा उंजानिष्किंचनः सन् तथ्यमपि परुषं वचः कठिनं वाक्यं ज्ञपरिज्ञया विजानीय प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेत् । तथा पूजासत्कारादिकमवाप्य न तुछोनवेनोन्मादं गछेत् । तथा नविकछयेन्नात्मानं श्लाघयेत् तथा व्याख्यानावसरेऽनाविलोलोनादिनिरपेक्षः स्यात्तथाऽकषायोनिक्षुः स्यात् ॥ २१ ॥ साधुर्व्याख्यानं कुर्वन्नशंकितनावोप्यर्थनिर्णयवेत्तापि शंकेत औध्दत्यं परिहरेत् तथा विनज्यवादं स्याद्वादं व्यागृणीयात् कथयेत् । सत्या असत्या मृषावेति नाषाद्वयं वदेत् समुन्नितैः साधुनिः सह विहरन् सुप्रज्ञः सन्मतिर्नृपतिद्रमकयोः समतया रागद्वेषरहितोधर्मं व्यागृणीयात्. ॥ २२ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । ( हासंपीत्यादि ) यथा परात्मनोर्हास्यमुत्पद्यते तथा शब्दादिकं शरीरावयवमन्यान् वा पापधर्मान् सावद्यान्मनोवाक्कायव्यापारान्नसंधयेन्नविदध्यात् । तद्यथा । इदं छिंधि निंधि तथा कुप्रावचनिकान् हास्यप्रायं नोत्प्रासयेत्तद्यथा शोननीयं नवदीयं व्रतं । तद्यथा । मृद्वी शय्या प्रातरुत्थाय पेया, मध्ये नक्तं पानकं चापराह्णे । द्राक्षाखंडं शर्करां चार्धरात्रे, मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्टइत्यादिकं परदोषोद्भावनप्रायं पापबंधकमिति कृत्वा हास्येनापि नवक्तव्यं । तथा उंजारागद्वेषरहितः सबाह्याभ्यंतरग्रंथत्यागाद्वा निष्किंचनः संस्तथ्यमिति परमार्थतः सत्यमपि परुषं वचोपरचेतोविकारि ज्ञपरिज्ञया विजानीयात्प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेत् । यदिवा रागद्वेषविरहादोजास्तथ्यं परमार्थनूतमकृत्रिममप्रतारकं परुषं कर्म संश्लेषानावान्निर्ममत्वादल्पसत्वैर्डुरनुष्ठेयत्वाद्वा कर्कशमंतप्रांताहारोपनोगाद्वा परुषं संयमं विजानीयात्तदनुष्ठानतः सम्यगवगछेत्तथा स्वतः किंचिदर्थविशेषं परिज्ञाय पूजासत्कारादिकमवाप्य न तुछोनवेन्नोन्मादं गछेत्तथा नविकछयेन्नात्मानं श्लाघयेत् परं वा सम्यगबुध्यमानोनोविकछयेन्नात्यंतं च मदयेत् तथा नाकुलोव्याख्यानावसरे धर्मकथनावसरे वा नाविलोलानादिनिरपेक्षोनवेत् । तथा सर्वदा अकषायः कषायरहितोनवेन्निक्षुः साधुरिति ॥ २१ ॥ सांप्रतं व्याख्यानविधिमधिकृत्याह । ( संकेज्ञेत्यादि ) निक्षुः साधुर्व्याख्यानं कुर्वन्नर्वाग्दर्शित्वादर्थनिर्णयं प्रति अशंकितनावोपि शंकेत औध्दत्यंपरिहरन्नहमेवार्थस्य वेत्ता नापरः कश्चिदित्येवं न गर्वं कुर्वीत किंतु विषममर्थं प्ररूपयन् साशंकमेव कथयेद्यदिवा विनज्यवादः स्याद्वादस्तं सर्वत्रास्खलितं लोकव्यवहाराविसंवादितया सर्वव्यापिनं स्वानुनव

सिद्धं वदेदथवासम्यगर्थान् विजज्य पृथक्कृत्वा तद्वादं वदेत्तद्यथा नित्यं वादं द्रव्यार्थत या पर्यायार्थतया त्वनित्यवादं वदेत्तथा स्वद्रव्यक्षेत्रकालजावैः सर्वेपि पदार्थाः संति पर द्रव्यादिजिस्तु न संति। तथाचोक्तं। सदेव सर्वं कोनेछेत्स्वरूपादिचतुष्टयात्। असदे व विपर्यासान्नचेन्न व्यवतिष्ठतइत्यादिकं विजज्यवादं वदेदिति। विजज्यवादमपि जाषा द्वितयेनैव ब्रूयादित्याह। जाषयोराद्यचरमयोः सत्यासत्यामृषयोर्द्विकं जाषाद्विकं त ज्ञाषाद्वयं क्वचित्पृष्टोऽपृष्टोवा धर्मकथावसरेऽन्यदावा सदा वा व्यागृणीयात् जाषेत। किंजू तः सन् सम्यक् सत्संयमानुष्ठानेनोछिताः समुछिताः सत्साधवछ्युक्तविहारिणोन पुन रुदायिनृपमारकवत्कृत्रिमास्तैः सम्यगुछितैः सह विहरंश्चक्रवर्तिद्रमकयोः समतया रागद्वेष रहितोवा शोजनप्रज्ञोजाषाद्वयोपेतः सम्यग्धर्मं व्यागृणीयादिति ॥ २२ ॥

अणुगछमाणे वि तहंवि जाणे, तहातहा साहु अ कक्कसेणं ॥
ण कुवईजास विहंसइज्जा, निरुद्धगं वावि न दीहइज्जा ॥ २३ ॥
समालवेज्जा पडिपुन्नजासी, निसामिया समिया अछदंसी ॥
आणाइसुद्धं वयणं जिउंजे अजिसंधए पावविवेगजिक्खु ॥ २४ ॥

अर्थ-(अणुगछमाणे वि तहंवि जाणेके०) हवे तेने बे जाषायेंकरी धर्म कहेता थका कोइ एक पंमित होय ते समी रीते समजे अने कोइएक मूर्ख होय ते विपरीत पणे समजे एटले तेने अर्थनी पूरे पूरी समजण न पडे तो ( तहातहा साहुअकक्कसेणं के० ) तेम तेम साधु ते श्रोताने मधुर जाषाये करी सम्यक् समजावे सत्यमार्ग देखाडे परंतु ( णकुवईजासविहंसइज्जा के० ) तेनी जाषाने अवहिले नही तथा तेने ति रस्कार नकरे तथा तेनी जाषाने निंदे नही ( निरुद्धगंवाविनदीहइज्जा के० ) थोडो सूत्रा र्थ थोडा काल सुधी कहे पण व्याकर्ण तर्क करी घणो काल सुधी आलजाल कही विस्तारे नही. यतः सोअछोवत्तवो, जोजणई अरकरेहिं थोवेहिं। जाउण थोवोबहु अरक रेहिं सोहोईनिस्सारो ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ २३ ॥ ( समालवेज्जापडिपुन्नजासीके० ) जे अत्यंत विषम अर्थ होय ते सम्यक् प्रकारे विस्तारीने बोले जेम श्रोता पुरुष सुखे स मजे तेम प्रतिपूर्ण जाषाये करी बोले अरकलियं अविच्चामेलिउं इत्यादिक पूरण जाषे ( निसामियासमिया अछदंसी के० ) तथा गुरुने समीपे सांजलीने सम्यक् प्रकारे अर्थ देखीने जलीरीते ते अर्थने विचारीने ( आणाइसुद्धं वयणं जिउंजे के० ) आज्ञा विशुद्ध वचन प्रयुंजे एम उत्सर्ग अपवाद मार्गने दर्शावनारि एवि शुद्ध वाणी कहेतो थको ( अ जिसंधए पावविवेगजिरकुके० ) साधु पापनु विवेक करे एटले पापनुं परिहार करे. ॥ २४

॥ दीपिका—तस्यैवं भाषाद्वयेन वदतः कश्चिन्मेधावी तथैव तमर्थमाचार्यादिना कथितमनुगच्छन् सम्यगवबुध्यते । अन्यस्तु मंदमतिर्वितथमन्यथैव विजानीयात् । तंच सम्यगनवबुध्यमानं तथातथा तेन प्रकारेण कर्कशवचनेन वदेत् । यथाऽसौ तमर्थं बुध्यते न कुत्रचित्कुद्धमुखोनादरेण कथयेन्मनःपीडामुत्पादयेत् । तथा प्रश्नकर्तुर्नाषां नविहिंस्यान्नतिरस्कुर्यात् निरुद्धं स्तोकमर्थं न दीर्घयेत् अन्योन्यकथनेन दीर्घं कुर्यात् । तथा चोक्तं । सोअच्छो वत्तव्वो, जो नसुइ अरकरेहिं थोवेहिं ॥ जो पुण थोवा बहु अ,रकरेहिं सो होइ निःसारोइति ॥ २३ ॥ यः स्तोकाक्षरैर्नाविबुध्यते तं प्रतिपूर्णन्नाषी पर्यायशब्दैर्नावार्थकथनश्च समालपेत् समंताद्भापेत यथा सअवबुध्यते तथा कुर्यादित्यर्थः । तथाऽचार्यादेः सकाशादर्थं निशम्य श्रुत्वा सम्यगर्थदर्शी सत्पदार्थवेत्ता तीर्थकृताज्ञया निरवद्यं शुद्धं वचनमनियुंजीत वदेत् । एवं वाऽनियुंजन् निक्षुः पापविपाकं लाजसत्कारादिं निरपेक्षतया कांक्षमाणोनिर्दोषं वचनमनिसंधयेत् ॥ २४ ॥

---

॥ टीका—( किंचान्यत् । ( अणुगच्छमाणेइत्यादि ) तस्यैवं जाषाद्वयेन कथयतः कश्चिन्मेधावितया तथैव तमर्थमाचार्यादिना कथितमनुगच्छन् सम्यगवबुध्यते । अपरस्तु मंदमेधावितया वितथमन्यथैवाजिजानीयात्तंच सम्यगनवबुध्यमानं तथातथा तेन हेतूदाहरणसद्युक्तिप्रकटनप्रकारेण मूर्खस्त्वमसि तथा डुड्डुरूढः खसूचिरित्यादिना कर्कशवचनेनाजिनर्त्सयन् यथातथासौ बुध्यते तथा साधुः सुष्ठु बोधयेन्न कुत्रचित्कुद्धमुखहस्तौष्ठनेत्रविकारैरनादरेण कथयन् मनःपीडामुत्पादयेत्तथा प्रश्नयतस्तद्भाषामपशब्दादिदोषडुष्टामपि धिग्मूर्खासंस्कृतमते किंवाऽनेन संस्कृतेन पूर्वोत्तरव्याहतेन वोच्चारितेनेत्येवं नविहिंस्यान्न तिरस्कुर्यादसंबद्धोद्घट्टनस्तं प्रश्नयितारं न विडंबयेदिति । तथा निरुद्धमर्थं स्तोकं दीर्घवाक्यैर्महता शब्ददर्डुरेणार्कविटपिकोटिकान्यायेन नकथयेन्निरुद्धं वा स्तोककालीनं व्याख्यानं व्याकरणतर्कादिप्रवेशनद्वारेण प्रसक्त्यानुप्रसक्त्या नदीर्घयेन्नदीर्घकालिकं कुर्यात् । तथाचोक्तं । सो अच्छो वत्तव्वो, जो नसुइ अरकरेहिं थोवेहिं ॥ जो पुण थोवो बहु अ, रकरेहिं सो होइ निःसारो ॥ तथा ॥ किंचित्सूत्रमल्पाक्षरमल्पार्थं वा इत्यादि चतुर्भंगिका तत्र यदल्पाक्षरं महार्थं तदिह प्रशस्यतइति ॥ २३ ॥ अपिच । ( समालवेज्जाइत्यादि ) यत्पुनरतिविषमत्वादल्पाक्षरैर्न सम्यगवबुध्यते तत्सम्यक् शोजनेन प्रकारेण समंतात्पर्यायशब्दोच्चारणतोजावार्थकथनतश्चालपेद्भापेत समालपेन्नाल्पैरेवाक्षरैरुक्त्वा कृतार्थोनवेदपितु ज्ञेयगहनार्थजापणे सद्धेतुयुक्त्यादिजिः श्रोतारमुपेक्ष्य प्रतिपूर्णजाषी स्यादस्खलिताहीनाक्षरार्थवादी जवेदिति । तथाचार्यादेः सकाशाद्यथावदर्थं श्रुत्वा ऽवगम्य निशम्य च यथावस्थितमर्थं यथागुरुसकाशादवधारितमर्थं प्रतिपाद्यं इष्टं

शीलमस्य सजवति सम्यगर्थदर्शी सएवंभूतः संस्तीर्थकराज्ञया सर्वज्ञप्रणीतागमानुसारे ण शुद्धमवदातं पूर्वापराविरुद्धं निरवद्यं वचनमभियुंजीतोत्सर्गेविषयेसति उत्सर्गमवाद विषये वा ऽपवादं तथा स्वपरसमययोर्यथास्वं वचनमभिवदेत् । एवं चाभियुंजन् भिक्षुः पापविवेकलाभं सत्कारादिं निरपेक्षतया कांक्षमाणोनिर्दोषं वचनमभिसंधयेदिति ॥ २४ ॥

अहाबुइयाइं सुसिरकएज्जा, जइज्जया णातिवेलं वदेज्जा ॥ से दिठिमं दि ठिण लूसएज्जा, से जाणई भासिउं तं समाहिं ॥ २५ ॥ अलूसए णो पछन्नभासी, णो सुत्तमछं च करेज्ज ताई ॥ सछारभत्ती अणुवीइ वायं सुयं च सम्मं पडिवाययंति ॥ २६ ॥ से सुद्धसुत्ते उवहाणवं च, धम्मं च जे विंदति तछतछ ॥ आदेज्जवक्के कुसले वियत्ते, स अरिहइ भासिउं तं समाहित्तिबेमि ॥ २७ ॥ इतिग्रंथनामा चउदसमश्रयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ– ( अहाबुइयाइंसुसिरकएज्जा के० ) श्रीतीर्थंकरादिके जेम वचन कह्यांछे तेम ज भलीरीते शीखे ( जइज्जयाणातिवेलंवदेज्जा के० ) तेमज पाले तेमज मुखथी भाषे एटले प्रकाशे तथा वेलं एटले मर्यादा उल्लंघे नही वली सावद्य वचन बोले नही ( सेदिठिमंदिठिणलूसएज्जा के० ) एवो ते दिठिमं एटले सम्यक् दृष्टीवंत ते पोतानो स म्यक् दर्शन लूसाए नही तेवी रीते प्ररूपणा करे ( सेजाणईभासिउंतंसमाहिं के० ) ते पुरुष श्रीतीर्थंकरभाषित समाधि मार्ग बोली जाणे ॥ २५ ॥ ( अलूसएणोपछन्नभा सी के० ) आगमार्थ कहेतो थको भूले नही एटले अपशब्द बोली सूत्रार्थ डुषवेनही तथा प्रछन्नभाषी नथाय एटले सूत्रार्थ गोपवे नही सूत्रनो भलो अर्थ प्रकाशे ( णोसु त्तमछंच करेज्जताई के० ) तथा त्राई एटले छकायनो रक्षपाल एवो साधु सूत्र अर्थ अन्यथा नकरे ( सछारभत्तीअणुवीइवायंके० ) गुरूनी भक्तिआलोचीने बोले पण गुरूनी अभक्ति थाय तेम नबोले ( सुयंचसम्मंपडिवाययंतिके० ) जेरीते श्रुतने सम्यक् प्रकारे करीने गुरूसमीपेंसांभल्युं होय तेरीतेज अर्थ बोले अन्यथाक्षणोवंदोभवति ॥ २६ ॥ (सेसुद्धसुत्ते के०) ते साधुनुं ए रीते उपदेशादिक अवशरे प्रकाशतो सूत्र शुद्ध कहेवाय ( उवहाणवंचके० ) तथा उपधानवंत एटले जे सूत्रनो जे तप सिद्धांतोमां कह्योछे तेने उपधान कहियें तेनो करनार (धम्मंचजेविंदतितछतछके०) जेजे धर्म सम्यक् जाणे तेते धर्म त्यां त्यां अंगीकार करे जेम जेम श्रीवीतरागनी आज्ञा मले तेम तेम धर्मभाषे पण श्रीवीतरागनी आज्ञा विरूद्ध नबोले ( आदेज्जवक्केकुसलेवियत्तेके० ) एवो जेथाय ते आदेय वचन एटले समस्त लोकने ग्राह्य माननीक वचन बोले तथा कुशल

निपुण तथा व्यक्त स्पष्ट ते अविमास्यो नकरे (सअरिहइनासिउंतंसमाहि त्तिबेमिके० )ते साधु श्रीवीतराग प्रणीत सूधो समाधि धर्म मार्ग नापवाने योग्य थाय त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २७ ॥ एरीते ग्रंथनामा चौदमां अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

---

॥ दीपिका–( यथोक्तानि जिनैस्तानि सुष्टु शिक्षेत शिक्षितश्च देशनायां यतते । देशनोद्यतोपि योयस्य कर्तव्यस्य कालस्तां वेलामतिक्रम्य न वदेत् कर्तव्यमर्यादां नातिलंघयेदित्यर्थः । सदृष्टिमान् यथावस्थितपदार्थान् श्रद्दधानोदृष्टिं सम्यक्दर्शनं नलूपयेन्नदूपयेत् । कोर्थः । देशनां व्याख्यानं वा कुर्वन् तथा कथयेद्यथाश्रोतुः सम्यक्त्वं स्थिरीनवति । यश्चैवंजूतः सजानाति नापितुं तं सर्वज्ञोक्तं समाधिं ज्ञानदर्शनचारित्राख्यं २५ सर्वज्ञोक्तं नलूपयेन्नदूपयेत्प्रच्छन्ननापी नवेत्सिद्धांतार्थं शुद्धं प्रच्छन्नंवा न गोपयेदथ प्रच्छन्नमर्थमपरिणताय न नापेत । तथाचोक्तं । अप्रशांतमतौ शास्त्रसद्भावप्रतिपादनं ॥ दोषायाजिनवोदीर्णं,शमनीयमिव ज्वरे ॥ १ ॥ त्रायी स्वपररक्षकोन सूत्रमतिकल्पनया कुर्वीत । परहितकरः शास्ता तस्मिन् शास्तरि याजकिर्बहुमानस्तयाऽनुविचिंत्य वादं वदेत् । अनेनोक्तेनागमबाधा कापि न स्यादिति । तथा श्रुतं सम्यगाराधयन् प्रतिपादयेत् सुखशीलः स्यादित्यर्थः ॥ २६ ॥ शुद्धं सूत्रं प्रवचनं यस्य सशुद्धसूत्रः उपधानवान् तपश्चरणयुक्तोयोधर्मं सम्यक् वेत्ति तत्रतत्रोत्सर्गापवादादौ आदेयवाक्योग्राह्यवचनः स्यात् तथा कुशलोनिपुणोव्यक्तोनासमीक्ष्यकारी समाधिं ज्ञानादिकं नापितुमर्हति योग्यः स्यादिति। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २७ ॥ इति चतुर्दशं ग्रंथाध्ययनं समाप्तं ॥ ६ ॥

---

॥ टीका–पुनरपि नापाविधिमधिकृत्याह । ( अहोबुद्दियाइंइत्यादि ) यथोक्तानि तीर्थकरगणधरादिनिस्तान्यहर्निशं सुष्टु शिक्षेत ग्रहणशिक्षया सर्वज्ञोक्तागमं सम्यक् गृह्णीयादासेवनाशिक्षया त्वनवरतमुद्युक्तविहारितया सेवेताऽन्येषांच तथैव प्रतिपादयेदिति । प्रसक्तलक्षणनिवृत्तये त्वपदिश्यते सदा ग्रहणासेवनाशिक्षयोर्देशनायां यतेत सदा यतमानोपि योयस्य कर्तव्यस्य कालोऽध्ययनकालोवा तां वेलामतिलंघ्य नातिवेलं वददध्ययनकर्तव्यमर्यादां नातिलंघयेत्सदनुष्ठानं प्रतिव्रजेद्वा यथावसरं परस्पराबाधया सर्वाः क्रियाः कुर्यादित्यर्थः । सएवंगुणजातीयोयथाकालवादी यथाकालचारी च सम्यक् दृष्टिमान् यथावस्थितार्थान् पदार्थान् श्रद्दधानोदेशनां व्याख्यानं वा कुर्वन् दृष्टिं सम्यक्दर्शनं नलूपयेन्नदूषयेत् । इदमुक्तंनवति । पुरुषविशेषं ज्ञात्वा तथातथा कथनीयमपसिद्धांतदेशनापरिहारेण यथायथा श्रोतुः सम्यक्त्वं स्थिरीनवति । नपुनः शंकोत्पादनतोदूष्यते यश्चैवंविधः सजानात्यवबुध्यते नापितुं प्ररूपयितुं समाधिं सम्यक्दर्शनचारित्राख्यं सम्यक्

व्यवस्थानाख्यं वा तं सर्वज्ञोक्तं समाधिं सम्यगवगछतीति ॥ २५ ॥ किंचान्यत् ( अज्जू सएइत्यादि ) सर्वज्ञोक्तमागमं कथयन्नोजूपयेन्नान्यथापसिद्धांतव्याख्यानेन दूषयेत्तया न प्रछन्ननापी नवेत् सिद्धांतार्थमविरुद्धमवदातं सार्वजनीनं तत्प्रछन्ननापणेन न गोपयेत्। यदिवा प्रछन्नं वाऽर्थपरिणताय न नापेत नसिद्धांतरहस्यमपरिणतशिष्यविध्वंसनेन दोषायैव संपद्यते। तथाचोक्तं। अप्रशांतमतौ शास्त्र, सन्नावप्रतिपादनं ॥ दोषायानिनवोदीर्णे, शमनीयमिव ज्वरेइत्यादि। नच सूत्रमन्यत् स्वमतिविकल्पनतः स्वपरत्रायी कुर्वीतान्यथा सूत्रं तदर्थंवा संसारत्रायी त्राणशीलोजंतूनां नविदधीत। किमित्यन्यथा सूत्रं नकर्तव्यमित्याह। परहितैकरतः शास्ता तस्मिन् शास्तरि या व्यवस्थिता नक्तिर्बहुमानस्तया तन्नक्त्या ऽनुविचिंत्यमानेनोक्तेन न कदाचिदागमबाधा स्यादित्येवं पर्यालोच्य वाचं वदेत्तथातया तछ्रुतमाचार्यादिन्यः सकाशात्तत्तथैव सम्यक्त्वाराधनामनुवर्तमानो ऽन्येन्यश्रुणमोहं प्रतिपद्यमानः प्रतिपादयेत् प्ररूपयेन्न सुखशीलतां मन्यमानोयथाकथंचित्तिष्ठेदिति ॥ २६ ॥ अध्ययनोपसंहारार्थमाह। ( सेसुद्धसुत्तेइत्यादि ) ससम्यग्दर्शनस्यालूपकोयथावस्थितागमस्यप्रणेता ऽनुविचिंत्य नापकः शुद्धमवदातं यथावस्थितवस्तुप्ररूपणतो ऽध्ययनतश्च सूत्रं प्रवचनं यस्यासौ शुद्धसूत्रः। तथोपधानं तपश्चरणं यद्यस्य सूत्रस्यानिहितमागमे तद्विद्यते यस्यासावुपधानवान् तथा धर्मं श्रुतचारित्राख्यं यः सम्यक् वेत्ति विंदतेवा सम्यक् लनते तत्र तत्रेति यश्चाज्ञाग्राह्योर्थः सञ्चाज्ञयैव प्रतिपत्तव्योहेतुतस्तु सम्यग्घेतुना। यदिवा स्वसमयसिद्धोर्थः स्वसमये व्यवस्थापनीयः परसिद्धश्च परस्मिन्नथवोत्सर्गापवादयोर्व्यवस्थितोर्थस्ताभ्यामेव यथास्वंप्रतिपादयितव्यएतद्गुणसंपन्नश्चादेयवाक्योग्राह्यवाक्योनवति। तथा कुशलोनिपुणञ्चागमप्रतिपादने सदनुष्ठाने च व्यक्तः परिस्फुटोनासमीक्ष्यकारी। यश्चैतद्गुणसमन्वितः सोर्हति योग्योनवति तं सर्वज्ञोक्तं ज्ञानादिकं वा नावसमाधिं नावितुं प्रतिपादयितुं नापरः कश्चिदिति। इति परिसमाप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत्। गतोनुगमोनयाः प्राग्वद्व्याख्येयाः ॥ २७ ॥ समाप्तं चतुर्दशं ग्रंथाख्यमध्ययनमिति ॥

हवे पंदरमुं आदान नामे अध्ययन प्रारंनिये वैयें आदान एटले ग्रहण करवुं एटले रूडी शिक्षारूप चारित्रानुष्ठानने ग्रहण करवुं तेनुं ड्व्ये करी तथा नावे करी शुद्ध स्वरूप कहेछे.

जमतीतं पडुप्पन्नं, आगमिस्सं च णायन ॥ सव्वमन्नंति तं ताई,
दंसणावरणं तए ॥ १ ॥ अंतए वितिगिछाए, जे जाणंति अ
णेलिसं ॥ अणेलिसस्स अक्काया, ण से होइ तहिं तहिं ॥२॥

अर्थ-( जमतीतंपडुप्पन्नं के० ) जे द्रव्यादिक पदार्थ अतीतकाले थया तथा जे वर्त्तमान कालें वर्त्तेछे ( आगमिस्सं चणायउ के० ) तथा आगमिक कालें जे थशे तेना यथावस्थित स्वरूपनो प्ररुपवो तेथी प्ररूपणाना अधिकारी पणा माटे नायक कहियें ( सव्वमन्नंतितंताई के० ) ते सर्व द्रव्यादिक चतुष्क संपूर्ण जाणे ते जाणतो थको सर्व प्राणीउंनो रक्षपाल ( दंसणावरणंतए के० ) ते दर्शनावरणीय कर्मनो अंतकरनार जाणवो अर्थात् ते दर्शनावरणादिक घातीकर्म चतुष्कने खपावे ॥ १ ॥ ( वितिगिछाए के० ) संदेह एटले मिथ्याज्ञान तेनो ( अंतए के० ) अंतकारक ( जे जाणंतिअणेलिसं के० ) जे घातीकर्मनो खपावनार ते सर्व निरुपम जाणे एटले तेना जेवो ज्ञानवंत बीजो कोइ नहीं ( अणेलिसस्स अक्खाया के० ) एम जे निरुपम ज्ञानेकरी पदार्थनो प्रकाश करनार ( णसेहोइतहिंतहिं के० ) ते तिहां तिहां बौद्धादि दर्शनीने विषे न प्रवर्त्ते एटले ते प्राणी जिनमत टालीने अन्य दर्शनीने विषे तत्व न जाणे ॥ २ ॥

---

॥ दीपिका-अथ पंचदशमादानीयाध्ययनमारभ्यते । तस्येदमादिसूत्रं । ( जमतीत्यादि ) यदतीतं प्रत्युत्पन्नं वर्तमानं यदनागतमेष्यत्कालनाविद्रव्यं तस्य सर्वस्यापि यथावस्थितस्वरूपनिरूपणतोनायकः प्रणेता त्रायी सर्वप्राणिरक्षकः सर्वं मन्यते जानाति यो दर्शनावरणांतकोमध्यग्रहणादघातिकर्मचतुष्कस्यांतकृद्रष्टव्यः सएव सर्वज्ञइति ॥१॥ विचिकित्सायाः संशयस्यांतकः क्षयकृत्‌ः सअनीदृशं जगज्जानाति । यादृशं कर्मक्षयतः सर्वज्ञं सामान्यविशेषात्मकं जगज्जानाति तादृशमन्योबौद्धादिर्न जानातीत्यनीदृशमित्युक्तं । अनीदृशस्य च यआख्याता प्ररूपकोनासौ तत्र तत्र बौद्धादिके दर्शनः स्यात् । किंतु जिनप्रवचनेऽर्हन्नेव त्रिकालवर्तिवस्तूनामाख्यातेति ॥ २ ॥

॥ टीका-अथ चतुर्दशाध्ययनानंतरं पंचदशमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतराध्ययने सबाह्याभ्यंतरस्य ग्रंथस्य परित्यागोविधेयइत्यभिहितं । ग्रंथपरित्यागाच्चायतचारित्रोभवति साधुस्ततोयादृगसौ यथासंपूर्णामायतचारित्रतां प्रतिपाद्यते तदनेनाध्ययेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराण्युपक्रमादीनि भवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं । तद्यथा । आयतचारित्रेण साधुना भाव्यं । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे आदानीयमिति नाम।मोक्षार्थिनाऽशेषकर्मक्षयार्थं यज्ज्ञानादिकमादीयते तदत्र प्रतिपाद्यतइति कृत्वा आदानीयमिति नाम संवृत्तं। पर्यायद्वारेणच प्रतिपादितं सुग्रहं भवतीत्यतआदानशब्दस्य तत्पर्यायस्य च ग्रहणशब्दस्यच निक्षेपं कर्तुकामोनिर्युक्तिकृदाह । "आदाणे गहणंमि य णिक्खेवो होंति दोन्नवि चउक्को । एगठं नाणठं, च होज्ज पगयं तु आदाणे" ॥ ३४ ॥ ( आदाणेइत्यादि ) अथवा (जमतीयंति) अस्याध्ययनस्य नाम

तच्चादानपदेनादावादीयते इत्यादानं तच्च ग्रहणमित्युच्यते। तत्रादानग्रहणयोर्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह। (आदाणेइत्यादि) आदीयते कार्यार्थिना तदित्यादानं। कर्मणिल्युट् प्रत्ययः करणेवा। दीयते गृह्यते स्वीक्रियते विवक्षितमनेनेति कृत्वा आदानं च पर्यायतोग्रहणमित्युच्यते॥ तत आदानग्रहणयोर्निक्षेपोनवति द्वौचतुष्कौ। तद्यथा। नामादानं स्थापनादानं इव्यादानं नावादानंच। तत्र,नामस्थापने कुसे। इव्यादानं चित्तं यस्माल्लौकिकैः परित्यक्तान्यकर्तव्यैर्महता क्लेशेन तदादीयते तेन वाऽपरंद्विपदचतुष्पदादिकमादीयतइति कृत्वा। नावादानंतु द्विधा प्रशस्तमप्रशस्तं क्रोधाद्युदयमिथ्यात्वाविरत्यादिकं वा। प्रशस्तं तूत्तरोत्तरगुणश्रेण्या विशुद्धाध्यवसायकंडकोपाख्यानं सम्यक्ज्ञानादिकं वेत्येतदर्थप्रतिपादनपरमेतदेव चाध्ययनं इष्टव्यमित्येवं ग्रहणेपि नामादिकश्चतुर्धा निक्षेपोइष्टव्यः। नावार्थोप्यादानपदस्येव इष्टव्यस्तत्पर्यायत्वादस्येति। एतच्च ग्रहणं नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रार्थनयानिप्रायेणादानपदेन सहालोच्यमानं शक्रेंड्रादिवदेकार्थमनिन्नार्थं नवेत् शब्दसमनिरूढेवंनूतशब्दनयानिप्रायेण च नानार्थं नवेत्। इहतु प्रकृतं प्रस्तावआदाने आदानविषये आदानपदमाश्रित्यास्यानिधानमाकार्यादानीयं वा ज्ञानादिकमाश्रित्य नाम कृतमिति आदानीयानिधानस्यान्यथा वा प्रवृत्तिनिमित्तमाह। " जं पढमस्संतिमए, बितियस्स उ तह वेऊआदिंमि॥ एतेणादाणिऊं, एसो अनोवि पऊाउ "॥ ३५॥ (जंपढमस्सेत्यादि) यत्पदं प्रथमश्लोकस्य तदर्धस्य चांते पर्यंते तदेव पदं शब्दतोर्थतउनयतश्च द्वितीयश्लोकस्यादौ तदर्धस्य वादौ नवत्येतेन प्रकारेणाद्यंपदसदृशत्वेनादानीयं नवत्येष आदानीयानिधानप्रवृत्तेः पर्यायोऽन्योवा विशिष्टज्ञानाद्यादानीयोपादानादिति। केचित्तु पुनरस्याध्ययनस्यांतादिपदयोः संकलनात्संकलिकेति नाम कुर्वते। तस्याअपि नामादिकश्चतुर्धानिक्षेपोविधेयः। तत्रापि इव्यसंकलिका निगडादौ नावसंकलनात्तूत्तरोत्तरविशिष्टावसायसंकलनमिदमेव वा ऽध्ययनमाद्यंतपदयोः संकलनादिति। येषामादानपदेनानिधानं तन्मतेनादौ यत्पदं तदादानपदमतआदेर्निक्षेपं कर्तुकामआह। " णामादी ठवणादी, दवादी चेव होंति नावादी॥ तं दवादी पुण दवस्स जो सनावो सएठाणे ३६ (णामादी इत्यादि) आदेर्नामादिकश्चतुर्धा निक्षेपः। नामस्थापने सुगमत्वादनादृत्य इव्यादि दर्शयति। इव्यादिः पुनर्इव्यस्य परमाएवादेर्यः स्वनावः परिणतिविशेषः स्वके स्थाने स्वकीये पर्याये प्रथममादौ नवति सइव्यादिर्इव्यस्य दध्यादेर्यआद्यः परिणतिविशेषः क्षीरस्य विनाशकालसमकालीनएवमन्यस्यापि परमाएवादेर्इव्यस्य योयः परिणतिविशेषः प्रथममुत्पद्यते ससर्वोपिइव्यादिर्नवति। ननुच कथं क्षीरविनाशसमयएव दध्युत्पादः। तथाहि। उत्पादविनाशौ नावानावरूपौ वस्तुधर्मौ वर्तेते। न च धर्मोधर्मिणमंतरेण नवितुमर्हत्यतएकस्मिन्नेव क्षणे तद्धर्मिणोर्दधिक्षीरयोः सत्तामाप्नोत्येतच्च दृष्टेष्ट

बाधितमिति नैपदोषः । यस्य हि वादिनः क्षणमात्रं वस्तु तस्यायं दोषोयस्यतु पूर्वोत्त रक्षणानुगतमन्वयि द्रव्यमस्ति अस्यायं दोषएव न भवति । तथाहि । तत्परिणामि द्रव्य मेकस्मिन्नेव क्षणे एकेन स्वभावेनोत्पद्यते परेण विनश्यत्यनंतधर्मत्वाद्वस्तुनइति । य त्किंचिदेतत् । तदेवं द्रव्यस्य विवक्षितपरिणामेन परिणमतोयआद्यः समयः सद्व्यादि रिति स्थितं द्रव्यस्य प्राधान्येन विवक्षितत्वादिति । सांप्रतं भावादिमधिकृत्याह । " आ गमणो आगमर्ड भावादी तं बुहा उवदिसंती ॥ णो आगमर्ड भावो, पंचविहो होइ णायवो ॥ २७ ॥ आगमर्ड पुण आदी, गणिपिंमगं होइ बारसं गंतु । गच्छसि लोगो पदपादअरकराइं चच तच्चादी " ॥ २८ ॥ ( आगमइत्यादि ) भावोंतःकरणस्य परिणति विशेपस्तं बुधास्तीर्थंकरगणधरादयोव्यपदिशंति प्रतिपादयंति । तद्यथा आगमतोनोआगम तश्च । तत्र नोआगमतः प्रधानपुरुषार्थतया चिंत्यमानत्वात्पंचविधः पंचप्रकारोभवति । तद्यथा । प्राणातिपातविरमणादीनामाद्यः प्रतिपत्तिसमयइति । तथा ( आगमर्डइत्यादि ) आगममाश्रित्य पुनरादिरेवं द्रष्टव्यः । तद्यथा । यदेतद्गणिनआचार्यस्य पिटकं सर्व स्वमाधारोवा तद्द्वादशांगं भवति । तुशब्दादन्यदप्युपांगादिकं द्रष्टव्यं । तस्य प्रवचनस्यादि भूतोयोग्रंथस्तस्याप्याद्यः श्लोकस्तत्राप्याद्यं पदं तस्यापि प्रथममक्षरमेवंविधोबहुप्रकारो भावादिर्द्रष्टव्यइति । तत्र सर्वस्यापि प्रवचनत्वसामायिकमादिस्तस्यापि करोमीति पदं तस्यापि ककारो द्वादशानां त्वंगानामाचारांगमादिस्तस्यापि शास्त्रपरिज्ञाध्ययनमस्यापि च जीवोद्देशकस्तस्यापि सुयंतिपदं तस्यापि सुकारइति पदमादिरित्यस्य च प्रकृतांगस्य सम याध्ययनमादिस्तस्यापि उद्देशकश्लोकपादपदवर्णादिर्द्रष्टव्यइति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षे पस्तदनंतरमस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । ( जमतीयमित्यादि ) अ स्य चानंतरसूत्रेण संबंधोवक्तव्यः सचायं । तद्यथा । आदेयवाक्यः कुशलोव्यक्तोर्हति त थोक्तं समाधिं भावितुं यश्च यदतीतं प्रत्युत्पन्नमागामिच सर्वमवगच्छति सएव भावितुमर्ह ति नान्यइति । परंपरसूत्रसंबंधस्तु यएवातीतानागतवर्तमानकालत्रयवेदी सएवाशेपबंधना नां परिज्ञानात्रोटयिता वेत्येतद्बुध्येतेत्यादिकः संबंधोऽपरसूत्रैरपि स्वबुध्या लगनीयइ ति । तदेवं प्रतिपादितसंबंधस्यास्य सूत्रस्य व्याख्या प्रस्तूयते । यत्किमपि द्रव्यजातमती तं यच्च प्रत्युत्पन्नं यच्चानागतमेष्यत्कालभावि तस्यासौ सर्वस्यापि यथावस्थितस्वरूपनि रूपणतोनायकः प्रणेता । यथावस्थितवस्तुस्वरूपप्रणेतृत्वं च परिज्ञानेसति भवत्यत स्तदपदिश्यते सर्वमतीतानागतवर्तमानकालत्रयभावतोद्रव्यादिचतुष्कस्वरूपतोद्रव्यपर्या यनिरूपणतश्च मनुतेऽसौ जानाति सम्यक् परिच्छिनत्ति तत्सर्वमवबुध्यते जानानश्च विशि ष्टोपदेशदानेन संसारोत्तारणतः सर्वप्राणिनां त्रायतेऽसौ त्राणकरणशीलः । यदिवा अयव यपयमयतयणयगतावित्यस्य धातोर्ल्युट् प्रत्ययः । तयनं तायः सविद्यते यस्यासौ तायी ।

सर्वे गत्यर्थाज्ञानार्थाइति कृत्वा सामान्यस्य परिछेदकोमनुते इत्यनेकविशेषस्य तदनेकसर्व ज्ञः सर्वदर्शी चेत्युक्तं नवति । नच कारणमंतरेण कार्यं नवतीत्यतइदमपदिश्यते । दर्श नावरणीयस्य कर्मणोंतकोमध्यग्रहणेतु घातिचतुष्टयस्यांतकृद्द्रष्टव्यइति ॥ १ ॥ यश्च घा तिचतुष्टयांतकृत्सईदृग्नवतीत्याह । (अंतएइत्यादि) विचिकित्सा चित्तविप्लुतिः संशयज्ञा नं तस्यासौ तदावरणक्षयादंतकृत् संशयविपर्ययमिथ्याज्ञानानामविपरीतार्थपरिछेदादंते वर्तते । इदमुक्तंनवति । तत्र दर्शनावरणक्षयप्रतिपादनात् ज्ञानाद् निन्नं दर्शनमित्युक्तं नवति । ततश्च येषामेव सर्वज्ञस्य ज्ञानं वस्तुगतयोः सामान्यविशेषयोरचिंत्यशक्त्युपेतत्वा त्परिछेदकमित्येषोयेषामन्युपगमः सोऽनेन पृथगावरणप्रतिपादनेन निरस्तोनवतीति । यश्च घातिकर्मांतकृदतिक्रांतसंशयादिज्ञानः सोऽनीदृशमनन्यसदृशं जानीते नतुतुल्योवस्तु गतसामान्यविशेषांशपरिछेदकत्वनयरूपेणैव विज्ञानेन विद्यतइतीदमुक्तं नवति । न तज्ज्ञान मितरजनज्ञानतुल्यमतोयडुक्तं मीमांसकैः सर्वज्ञस्य सर्वपदार्थपरिछेदकत्वेऽन्युपगम्यमाने स र्वदा स्पर्शरूपरसगंधवर्णशब्दपरिछेदादनभिमतद्रव्यरसास्वादनमपि प्राप्नोति तदनेन न्युद स्तं द्रष्टव्यं । यदप्युच्यते सामान्येन सर्वज्ञसनावेपि ज्ञेयहेतोरनावादर्हत्येव संप्रत्ययोनोपप द्यते । तथा चोक्तं । अर्हन्न यदि सर्वज्ञो, बुद्धोनेत्यत्र का प्रमा । अथोनावपि सर्वज्ञौ मत नेदस्तयोः कथमित्यादि । एतत्परिहारार्थमाह । अनीदृशस्यानन्यसदृशस्य यःपरिछेदकआ ख्याताच नामासौ तत्र तत्र दर्शने बौद्धादिकोनवति तेषां द्रव्यपर्याययोरनन्युपगमादिति । तथाहि । शाक्यमुनिः सर्वं क्षणिकमिछन् पर्यायानेवेछति न द्रव्यं । द्रव्यमंतरेण च नि र्बीजत्वात् पर्यायाणामप्यनावः प्राप्नोत्यतः पर्यायानिछताऽवश्यमकामेनापि तदाधारनूतं परिणामिद्रव्यमेष्टव्यं तदनन्युपगमाच्च नासौ सर्वज्ञइति । तथा अप्रच्युतानुत्पन्नस्थि रैकस्वनावस्य द्रव्यस्यैवैकस्यान्युपगमादध्यक्षावसीयमानानामर्थक्रियासमर्थानां पर्याया णामनन्युपगमान्निष्पर्यायस्य द्रव्यस्याप्यनावात्कपिलोपि न सर्वज्ञइति तथा क्षीरोदकवद् निन्नयोर्द्रव्यपर्याययोरन्नेदेनान्युपगमाडुलूकस्यापि न सर्वज्ञत्वाच्च तीर्थांतरीयाणां मध्ये न कश्चिदप्यनीदृशस्यानन्यसदृशस्यार्थस्य द्रव्यपर्यायोनयरूपस्याख्याता नवतीत्यर्हन्नेवाती तानागतवर्तमानत्रिकालवर्तिनोर्थस्य स्वाख्यातेति न तत्रंतत्रेति स्थितं ॥ २ ॥

ताहिं ताहिं सुयरकायं, से य सच्चे सुआहिए ॥ सया सच्चेण संपन्ने, मित्ति नूएसु कप्पए ॥ ३ ॥ नूएहिं न विरुझेज्जा, एस धम्मे वुसीमउ ॥ साहू जगं परिन्नाय, अस्सिं जीवितनावणा ॥ ४ ॥

अर्थ-( तहिंतहिंसुयरकायंके० ) जे जे नाव श्रीवीतरागें ज्यां ज्यां नलीपेरे कह्यां वे एटले मिथ्यात्व अविरत प्रमदादिकते संसारनुं कारणवे अने ज्ञान दर्शन चारित्र ते

मोक्ष मार्गेंडे त्यां त्यां ( सेयसव्वेसुआहिए के० ) तेहिज नावने सत्यकरी जाणवा ( स यासच्चेणसंपन्नेके० ) जे सदा एटले सर्वकाल एवा सत्य वचने करी संपन्न होय ते शुं करे तेकहेठे ( मित्तिनूएसुकप्पएके० ) नूत एटले प्राणी मात्रने विषे मैत्रीनाव कल्पे सर्व जीव आत्मा मात्रने समान करी लेखवे एटले जेवो पोतानो आत्मा तेवो परनो आत्मा जाणे ॥३॥ (नूएहिंनविरुझेज्जाके०) त्रस अने स्थावर जेनूत एटले प्राणीसाथे विरोध न करे एटले प्राणी मात्रनेहणे नही (एसधम्मेवुसीमर्उके०) एवो धर्म वुसीमर्उ एटले संयमवंतनो जाणवो (साहूजगंपरिन्नायके०) साधु सर्व लोकमांहे त्रस अने स्थाव र जीवोने रुडीपेरे जाणीने (अस्सिंजीवितनावणाके०) शुद्ध धर्मनेविषे नावना नावे ॥४॥

॥ दीपिका–तत्र तत्र यद्यत्तेनार्हता जीवाजीवादिवस्तु स्वाख्यातं तत्र तत्र न विरोधः। सच सर्वज्ञः सत्यः स्वाख्याता। तथाचोक्तं। वीतरागाहि सर्वज्ञा, न मिथ्या ब्रुवते वचः॥ यस्मात्तस्माद्वचस्तेषां, तथानूतार्थदर्शिनां ॥१॥ सदा सर्वकालं सत्येन संपन्नः ससर्वज्ञो नूतेषु प्राणिषु मैत्रीं कल्पयेत् कुर्यात्। यतः मातृवत्परदाराणि, परद्रव्याणि लोष्टवत्॥ आत्मवत्सर्वनूतानि, यः पश्यति सपश्यतीति ॥२॥ नूतैः प्राणिनिः सह न विरुध्येत। न विरोधं कुर्यात् एष धर्मः (वुसीमर्उत्ति) तीर्थकस्य साधोर्वा तथा वुसीमं साधुस्तीर्थकृद्वा जग दिश्वं परिज्ञाय आगमतः स्वयंच ज्ञात्वा यस्मिन् नावनाः पंचविंशतिर्द्वादशवा ताजी वितनावनाजीवसमाधानकारिणीर्नावयेत् ॥ ४ ॥

॥ टीका–सांप्रतमेतदेव कुतीर्थिकानामसर्वज्ञत्वमर्हतश्च सर्वज्ञत्वं यथानवति तथा सोपपत्तिकं दर्शयितुमाह। (तहिंतहिमित्यादि) तत्रतत्रेति वीप्सापदं। यद्यत्तेनार्हता जी वाजीवादिकं पदार्थजातं तथा मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाबंधहेतवइति कृत्वा संसारकारणत्वेन तथा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गइति मोक्षांगतयेत्येतत्सर्वं पूर्वोत्तराविरोधितया युक्तिनिरुपपन्नतया सुष्ठ्वाख्यातं स्वाख्यातं तीर्थिकवचनं तु नहिं स्यान्नूतानीति नणित्वा तदुपमर्दकारंनाभ्यनुज्ञानात्पूर्वोत्तराविरोधितया तत्रतत्र चिंत्यमानं निर्युक्तिकत्वान्नस्वाख्यातं नवति। सचाविरुद्धार्थस्याख्याता रागद्वेषमोहानामनृतकारणा नामसंनवात्सद्भ्योहितत्वाच्च सत्यः स्वाख्यातस्तत्स्वरूपविद्भिः प्रतिपादितः॥ रागादयो ह्यनृतकारणं ते च तस्य न संत्यतः कारणानावात्कार्यानावइति कृत्वा तद्वचोनूतार्थप्र तिपादकं॥ तथा चोक्तं। वीतरागाहि सर्वज्ञा, मिथ्यान ब्रुवते वचः। यस्मात्तस्माद् चस्तेषां, तथानूतार्थदर्शिनां। ननु च सर्वज्ञत्वमंतरेणापि हेयोपादेयमात्रपरिज्ञानादपि सत्यता नवत्येव। तथा चोक्तं। सर्वं पश्यतु वा मावा, तत्वमिष्टं तु पश्यति। कीट

संख्यापरिज्ञानं, तस्य नकोपयुज्यते इत्याशंक्याह । सदा सर्वकालं सत्येनावितथनाष णेन संपन्नोसौ । अवितथनाषणत्वं च सर्वज्ञे सति नवति नान्यथा । तथाहि । की टसंख्यापरिज्ञानासंनवे सर्वत्रापरिज्ञानमाशंकेत । तथा चोक्तं । सदृशे बाधासंनवे त ल्लक्षणमेव दूषितं स्यादिति सर्वत्रानाश्वासस्तस्मात्सर्वज्ञत्वं तस्य नगवतोऽएव्यमन्यथा त द्वचःसत्यता न स्यात् । सत्योवाऽसंयमः संतः प्राणिनस्तेन्योहितत्वादतस्तेन तपः प्रधानसंयमेन नूतार्थहितकारिणा सदा सर्वकालं संपन्नोयुक्तएतद्गुणसंपन्नश्चासौ नूतेषु जंतुषु मैत्री तद्रक्षणपरतया नूतदयां कल्पयेत् कुर्यात् । इदमुक्तं नवति । परमार्थतः सर्वज्ञस्तत्त्वदर्शितया योनूतेषु मैत्रीं कल्पयेत् । तथा चोक्तं। मातृवत्परदाराणि परद्रव्या णि लोष्टवत्॥ आत्मवत्सर्वनूतानि यः पश्यति सपश्यति॥१॥ यथानूतेषु मैत्री संपूर्णनाव मनुनवति तथा दर्शयितुमाह । (नूएहिंइत्यादि) नूतैः स्थावरजंगमैः सह विरोधं नकुर्यान्न उपघातकारिणमारंनं तद्विरोधकारणं दूरतः परिवर्जयेदित्यर्थः। सएषोऽनंतरोक्तोनूताविरो धकारी धर्मः स्वनावः पुण्याख्योवा (बुसीमउत्ति) तीर्थकृत्तोयं सत्संयमवतोवेति । तथा सत्सं यमवान् साधुस्तीर्थकृज्जगच्चराचरनूतग्रामाख्यं केवलालोकेन सर्वज्ञप्रतीतागमपरिज्ञाने न वा परिज्ञाय सम्यगवबुध्यास्मिन् जगति मौनींद्रेवा धर्मे नावनाः पंचविंशतिरूपा द्वा दशप्रकारावा या अनिमतास्ताजीवितनावनाजीवसमाधानकारिणीः सत्संयमांगतया मोक्षकारिणीर्नावयेदिति ॥ ४ ॥

नावणा जोगसुद्धप्पा, जलेणावाव आहिया ॥ नावाव तीरसंपन्ना, सवडुक्खा तिउट्टइ ॥ ५ ॥ तिउट्टई उ मेधावी, जाणं लोगंसि पावगं ॥ तुट्टंति पावकम्माणि, नवं कम्ममकुव्वए ॥ ६ ॥

अर्थ—जे नावनानावे तेने जे होय ते देखाडेछे. ( नावणाजोगसुद्धप्पा के० ) नाव नाना योगेकरी जेनो विशुद्ध निर्मल आत्माछे ( जलेणावावआहिया के० ) ते पुरुष संसार रूप समुद्रने विषे नौका समान कह्याछे ते उपर दृष्टांत कहेछे ( नावावतीरसं पन्ना के० ) जेम नावा समुद्रने तीरे पोहोचाडे तेम ते पुरुषना उपदेश थकी जीव चारित्ररूप प्रवहणे करीने (सवडुक्खातिउट्टइ के० ) संसारना सर्व डुःख थकी मुकाए अने मोक्षरूप कांठे पोहोचे ॥ ५ ॥ ( मेधावी के० ) पंमित (तिउट्टईउ के०) सर्व डुःख थकी मूकाए ते पंमित केवो होय तोके ( जाणंलोगंसिपावगंके० ) सर्वलोकने विषे जे पाप एटले सावद्यानुष्ठान तेनो जाण होय एवाने ( तुट्टंतिपावकम्माणिके०) पूर्वना सं चित सर्व पाप कर्म त्रूटे ( नवंकम्ममकुव्वएके० ) वली नवा कर्म नकरे एटले नबांधे एटले तेजीव अकर्मि थाय सर्व कर्मोना क्षय युक्त थाय ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–जावनानिर्योगः सध्यानरूपोजावनायोगस्तेन शुद्धआत्मा यस्य सतथा एवंविधः सन् त्यक्तसंसारस्वजावोनौरिव जलोपरि तिष्ठति । एवमाख्याता नौरिवानु कूलवातप्रेरिता तीरं प्राप्ता स्यादेवं चारित्रवान् जीवपोतस्तपोवायुवशात्सर्वडःखात्मकः संसारोत्रुटयत्यपगछति ॥ ५ ॥ मेधावी मर्यादावान् त्रुटयति मुच्यते सर्वबंधनेन्यः । किंकुर्वन् पापकं सावद्यकार्यं लोके ज्ञपरिज्ञया जानन् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ तस्य नवं कर्म अकुर्वतः पूर्वसंचितानि पापकर्माणि त्रुटयंति ॥ ६ ॥

---

॥ टीका–सन्नावनानावितस्य यन्नवति तद्दर्शयितुमाह । ( नावणाइत्यादि ) नावना निर्योगः सम्यक् प्रणिधानलक्षणोनावनायोगस्तेन शुद्धआत्मा अंतरात्मा यस्य सतथा । सच नावनायोगशुद्धात्मा परित्यक्तसंसारस्वनावोनौरिव जलोपर्यवतिष्ठते संसारोदन्व तइति नौरिव यथा जले निमज्जनत्वेन प्रत्याख्याता एवमसावपि संसारोदन्वति न नि मज्जतीति । यथा चासौ नियामकाधिष्ठाताऽनुकूलवातेरिता समस्तद्वंद्वापगमात्तीरमास्कं दत्येवमायतचारित्रवान् जीवपोतः सदागमकर्णधाराधिष्ठितस्तपोमारुतवशात्सर्वडःखा त्मकात्संसारात्रुटयत्यपगछति मोक्षाख्यं तीरं सर्वद्वंद्वोपरमरूपमवाप्नोतीति ॥ ५ ॥ अपिच । ( तिउट्टइत्यादि ) सहि नावनायोगशुद्धात्मा नौरिव जले संसारे परिवर्तमा नस्त्रिन्योमनोवाक्कायेन्योऽशुनेन्यस्त्रुटयति यदिवातीव सर्वबंधनेन्यस्त्रुटयति मुच्यते। अतित्रुटयति संसारादतिवर्तेत मेधावी मर्यादाव्यवस्थितः सदसद्विवेकी वाऽस्मिन् लोके चतुर्दशरज्ज्वात्मके नूतस्य ग्रामलोकेवा यत्किमपि पापकं कर्म सावद्यानुष्ठानरूपं तत्कार्यंवा अष्टप्रकारं कर्म तत् ज्ञपरिज्ञया जानन् प्रत्याख्यानपरिज्ञया च तडुपादानं प रिहरन् ततस्त्रुटयति तस्यैवं लोकं कर्मवा जानतोनवानि कर्माण्यकुर्वतोनिरुद्धाश्रवद्वार स्य विप्रकृष्टतपश्चरणवतः पूर्वसंचितानि कर्माणि त्रुटयंति निवर्ततेवा नवं च कर्माकुर्वतो ऽशेषकर्मक्षयोनवतीति ॥ ६ ॥

अकुव्वउ णवं णत्थि, कम्मं नाम वि जाणइ ॥ विन्नाय से महावीरे, जेण जाइ ण मिज्जइ ॥ ७ ॥ णमिज्जइ महावीरे, जस्स नत्थि पुरे कडं ॥ वा नवं जलमच्चेति, पिया लोगंसि इत्थिउ ॥ ८ ॥

अर्थ–( अकुव्वउणवंणत्थि के० ) कारण के जे समस्त क्रिया रहित होय एवा अण करताने नवा कर्मनो बंध नथी ( कम्मंनामविजाणइ के० ) तेवारे अष्ट प्रकारना जे कर्म तेना विपाकनुं निर्झरवो ते सम्यक् जाणे ( विन्नायसेमहावीरे के० ) ते कर्म रूप शत्रुनो विदारण करवा थकी श्रीमहावीरदेव कर्मना बंधने तथाकर्मनी निर्झराने जाणी

ने ते प्रमाणे करे ( जेणजाइणमिज्जइ के० ) जे करे थके फरी संसारमां नउपजे अने उपजवाने अनावे फरी मरण पण न पामे. ॥ ७ ॥ (णमिज्जइमहावीरे के०) ए महा सुजट तुल्य श्रीमहावीर संसार चक्रमां मरण पामे नही ( जस्सनछिपुरेकडं के० ) जेने पूर्वना करेला कर्म रह्या नथी तो ते नवाकर्म बांधवानी वांग नकरे ए कारण जाणवो जे कारण माटे आ संसारमांहे स्त्रीनो संग प्रधानछे परंतु तेने स्त्री पराजवी नशके. दृ ष्टांत कहेछे ( वाउव्वजालमच्चेति के० ) जेम वायु अग्नीनी ज्वालामां प्रवेश करीने तेने अतिक्रमि जाय परंतु वायु पोते प्रज्वले नही ( पियालोगंसिइछिउं के० ) तेम लोकने विषे स्त्री प्रियछे ते स्त्री अग्नि ज्वाला समानछे परंतु वायु सरखा साधुने जीपी नशके तेमाटे महावीर सुजटने कर्मनो बंध नथी ॥ ८ ॥

---

॥ दीपिका–कामपि क्रियामकुर्वतोयोगप्रत्ययाजावान्नवं कर्म नास्ति न जवति । एत ज्ञुणोपेतश्च नमनं नाम कर्मनिर्जरणं कर्मच जानाति ज्ञात्वाच कर्मबंधं समहावीरः कर्म दारणक्षमस्तत्करोति येन कृतेन न पुनर्जायते जन्माजावाच्च नम्रियते ॥ ७ ॥ महावी रस्त्यक्ताशेषकर्मा न म्रियते जन्ममरणे न प्राप्नोति यस्य नास्ति पुरस्कृतं कर्म वायुर्यथा ग्निज्वालामत्येति अतिक्रामति न तया जीयते एवं लोके प्रियावल्लनास्त्रियोऽतिक्रमणी यास्ताअतिक्रामति न तानिर्जीयते। यडुक्तं। स्मितेन जावेन मदेन लज्जया पराङ्मुखै रर्धकटाक्षवीक्षणैः ॥ वचोनिरीर्ष्याकलहेन लीलया, समस्तपाशं खलु बंधनं स्त्रियः ॥१॥ स्त्रीणां कृते भ्रातृयुगस्य जेदः संबंधिजेदे स्त्रियएव मूलं ॥ अप्राप्तकामाबहवोनरेंडाना रीजिरुत्सादितराजवंशाइत्यादि ॥ ८ ॥

---

॥ टीका–केषांचित्सत्यामपि कर्मक्षयानंतरं मोक्षावासौ तथापि स्वतीर्थनिकारदर्शन तः पुनरपि संसाराजिगमनं जवतीदमाशंक्याह । ( अकुव्वउ इत्यादि ) तस्याऽशेषक्रिया रहितस्य योगप्रत्ययाजावात्किमप्यकुर्वतोपि नवं प्रत्यग्रं कर्म ज्ञानावरणीयादिकं नास्ति नजवति कारणाजावात्कार्याजावइति कृत्वा कर्मजावे च कुतः संसाराजिगमनं कर्म कार्यत्वात्संसारस्य तस्य चोपरताशेषद्वंद्वस्य स्वपरकल्पनाजावाद्रागद्वेषरहिततया स्व दर्शननिकाराजिनिवेशोपि नजवत्येव । सचैतज्ञुणोपेतः कर्माष्टप्रकारमपि कारणतस्तद्वि पाकतश्च जानाति नमनं नाम कर्मनिर्जरणं तच्च सम्यक् जानाति। यदिवा कर्म जानाति तन्नामास्य चोपलक्षणार्थत्वात्तद्भेदांश्च प्रकृतिस्थित्यनुजावप्रदेशरूपान्सम्यगवबुध्यते । सं जावनायां वा नामशब्दः। संजाव्यते चास्य जगवतः कर्मपरिज्ञानं विज्ञायच कर्मबंधनं तत्संचरणनिर्जरणोपायं चासौ महावीरः कर्मदारणसहिष्णुस्तत्करोति येन कृतेनास्मि

न्संसारोदरे नपुनर्जायते नपरिछिद्यते तदभावाच्च नम्रियते । यदिवा जात्या नारकोयं तिर्यग्योनिकायमिति । एवं नमीयते न परिछिद्यते ऽनेनच कारणाभावात्संसाराविर्भाव नेन । यत्कैश्चिदुच्यते । ज्ञानमप्रतिघं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः ॥ ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सह सिद्धं चतुष्टयमित्येतदपि व्युदस्तं भवति । संसारस्वरूपं विज्ञाय तदभावः क्रियते नपुनः सांसिद्धिकः कश्चिदनादिसिद्धोस्ति तत्प्रतिपादकायायुक्तेरसंभवादिति ॥ ७ ॥ किंपुनः कारणमसौन जात्यादिना मीयते इत्याशंक्याह । ( णमिज्जतीत्यादि ) असौ महावीरः परित्यक्ताशेषकर्मा न जात्यादिना मीयते परिछिद्यते न म्रियते वा जातिजरामरणरोगशोकैर्वा संसारचक्रवाले पर्यटन् न म्रियते न पूर्यते किमिति । यतस्तस्यैव जात्यादिकं भवति यस्य पुरस्कृतं जन्मशतोपात्तं कर्म विद्यते यस्य तु भगवतोमहावीरस्य निरुद्धाश्रवद्वारस्य नास्ति न विद्यते पुरस्कृतं पुरस्कृतकर्मोपादानाभावाच्च न तस्य जातिजरामरणैर्मरणं संभाव्यते । तदाश्रवद्वारनिरोधाश्रयाणां च प्रधानः स्त्रीप्रसंगस्तमधिकृत्याह । वायुर्यथा सततगतिरस्खलिततयाऽग्निज्वालां दहनात्मकामप्येत्यतिक्रामति पराभवति न तया पराभूयते । यएवं लोके मनुष्यलोके हावभावप्रधानत्वात्प्रियादयितास्तत्प्रियत्वाच्च डुरतिक्रमणीयाअत्येत्यतिक्रामतिनतानि जीयते तत्स्वरूपावगमात्तज्जयविपाकदर्शनाच्चेति । तथाचोक्तं । स्मितेन भावेन मदेन लज्जया, पराङ्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षितैः ॥ वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया, समस्तभावैः खलु बंधनं स्त्रियः ॥ १ ॥ स्त्रीणां कृते भ्रातृयुगस्य भेदः संबंधिभेदे स्त्रियएव मूलं ॥ अप्राप्तकामाबहवोनरेन्द्रा, नारीभिरुत्सादितराजवंशाः॥२ इत्येवं तत्स्वरूपं परिज्ञाय तज्जयं विधत्ते नैताभिर्जीयतइति स्थितं । अथ किंपुनः कारणं स्त्रीप्रसंगाश्रवद्वारेण शेषाश्रवद्वारोपलक्षणं क्रियते नप्राणातिपातादिनेति । अत्रोच्यते । केषांचिद्दर्शनिनामंगनोपभोगआश्रवद्वारमेव भवति । तथाचोचुः । न मांसभक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषा भूतानां, निवृत्तिस्तु महाफला इत्यादि तन्मतव्युदासार्थमेवमुपन्यस्तमिति । यदिवा मध्यमतीर्थकृतांचतुर्यामएव धर्मइहतु पंचयामोधर्मइत्यस्यार्थस्याविर्भावनायानेनोपलक्षणमकारि । अथवा पराणि व्रतानि सापवादानीदंतु निरपवादमित्यस्यार्थस्याविर्भावनाय प्रकटनायैवमकारि । अथवा सर्वाण्यपि व्रतानि तुल्यानि एकखंडेन सर्वविराधनमिति कृत्वा येन केनचिन्निर्देशोन दोषायेति॥८॥

इत्थिउ जे ण सेवंति, आइमोक्खा हु ते जणा ॥ ते जणा बंधणुम्मुक्का, नावकंखंति जीवियं ॥ ए ॥ जीवितं पिठ्ठकिच्चा, अंतं पावंति कम्मुणं॥ कम्मुणा संमुहीभूता, जे मग्गमणुसासई॥ १० ॥

अर्थ–( इत्थिउजेणसेवंति के० ) जे पुरुषो स्त्रीने नथी सेवता ( आइमोक्खाहुतेजणा

के० ) ते पुरुषोने आदि एटले प्रथम मोक्षगामी जाणवा ( तेजणाबंधणुम्मुका के० ) तेपुरुषो स्त्रीना बंधन थकी मूकाणा थका ( नावकंखंतिजीवियंके० ) जीवित शब्दे बीजो असंयमपणोकांइ पण वांछे नही कारणके परिग्रहादिकनुं मूल कारण सर्व स्त्रीजछे ॥ ए ॥ ( जिवितंपिछ्ठउकिच्चाके० ) ते पुरुष असंयमने निषेधिने ( अंतंपावंतिकम्मुणंके० ) सर्व कर्मनो अंत करे ( कम्मुणासंमुहीनूताके० ) ते रुडा अनुष्ठाने करी मोक्षने सन्मुख थका ( जेमग्गमणुसासईके० ) जे श्रीवीतराग प्रणीत मार्गछे तेमार्गने लोकोना हितने अर्थे प्रकाशे अने पोते पण तेहिज समाचरे ॥ १० ॥

॥ दीपिका–ये नराः स्त्रियोनासेवंते स्त्रीप्रसंगं त्यजंति ते जनाआदिः प्रधानोमोक्षो येषां ते आदिमोक्षाः प्रधानजूतमोक्षपुरुषार्थसाधकाः स्युः । तथा ते जनाः कर्मबंधनोन्मुक्ताजीवितं नावकांक्षंति ॥ ए ॥ जीवितमसंयमजीवितं पृष्ठतः कृत्वा निराकृत्य कर्मणामंतं प्राप्नुवंति मोक्षमप्राप्ताअपि कर्मणा विशिष्टानुष्ठानेन मोक्षस्य सन्मुखीजूताये मार्गमनुशासंति अन्येन्योवदंति स्वयंच कुर्वंति ॥ १० ॥

॥ टीका–अधुना स्त्रीप्रसंगाश्रवनिरोधफलमाविर्जावयन्नाह । ( इहिउइत्यादि ) येमहागलाः कटुविपाकोयं स्त्रीप्रसंगइत्येवमवधारणतया स्त्रियः सुगतिमार्गार्गलाः संसारवीथीजूताः सर्वाविनयराजधान्यः कपटजालशताकुलामहामोहनशक्तयोन सेवंते नतत्प्रसंगमनिलषंति । तएवंजूताजनाइतरजनातीताः साधवआदौ प्रथमं मोक्षोऽशेषद्वंद्वोपरमरूपोयेषांते आदिमोक्षाः । हुरवधारणे । आदिमोक्षाएव तेऽवगंतव्याः । इदमुक्तं जवति । सर्वाऽविनयास्पदजूतः स्त्रीप्रसंगोयैः परित्यक्तस्तएवादिमोक्षाः प्रधानजूतमोक्षाख्यपुरुषार्थोद्यताः । आदिशब्दस्य प्रधानवाचित्वान्न केवलमुद्यतास्तेजनाः स्त्रीपाशबंधनोन्मुक्ततयाऽशेषकर्मबंधनोन्मुक्ताः संतोनावकांक्षंति नाजिलषंति असंयमजीवितमपरमपि परिग्रहादिकं नाजिलषंते । यदिवा परित्यक्तविषयेच्छाः सदनुष्ठानपरायणामोक्षैकतानाजीवितं दीर्घकालजीवितं नाजिकांक्षंतीति ॥ए॥ किंचान्यत् । (जीवियमित्यादि) जीवितमसंयमजीवितं पृष्ठतःकृत्वाऽनादृत्य प्राणधारणलक्षणं वा जीवितमनादृत्य सदनुष्ठानपरायणाः कर्मणां ज्ञानावरणादीनामंतं पर्यवसानं प्राप्नुवंति । अथवा कर्मणा सदनुष्ठानेन जीवितनिरपेक्षाः संसारोदन्वतोंऽतं सर्वद्वंद्वोपरमरूपं मोक्षाख्यमाप्नुवंति । सर्वडुःखविमोक्षलक्षणं मोक्षमप्राप्ताअपि कर्मणा विशिष्टानुष्ठानेन मोक्षस्य संमुखीजूताघातिचतुष्टयक्षियया उत्पन्नदिव्यज्ञानाः शाश्वतपदस्याजिमुखीजूताः। कएवंजूता इत्याह । ये विपच्यमानतीर्थकृन्नामकर्माणः समासादितदिव्यज्ञानामोक्षं मोक्षमार्गं ज्ञानदर्शनचारित्ररूपमनुशासंति सत्वहिताय प्राणिनां प्रतिपादयंति स्वतश्चानुतिष्ठंतीति ॥ १० ॥

अणुसासणं पुढो पाणी, वसुमं पूयणासुते ॥ अणासए जते दंते, दढे आरयमेहुणे ॥ ११ ॥ णीवारे व ण लीएज्जा, छिन्नसोए अणाविले ॥ अणाइले सया दंते, संधिं पत्ते अणेलिसं ॥१२॥

अर्थ–(अणुसासणं पुढोपाणी के० ) जेनो अनुशासन एटले उपदेश दान ते सर्व प्राणिने विषे पृथक् पृथक् जुदो जुदो परणमे कोनी पेरे तोके पृथ्वीने विषे जेम उदक जुदो जुदो परणमे तेनी पेरे जेनो उपदेश परणमेठे तथा ( पूयणासु के० ) पूजानेविषे ( वसुमं के० ) इव्यवंत एनो नावार्थ कहेठे जे देवतादिक समवसरणादिक पूजा करे ठे त्यां त्यां तेने इव्य थकी नोगठे परंतु ते नाव थकी नोग नथी तेकारण माटे संयमवंत ( ते के० ) तेहिज जाणवा ए वचन श्रीतीर्थंकर देव आश्री कह्याठे वली ( अणासएजतेदंते के० ) आश्रव रहित जयणावंत तथा इंइियनो दमन करनार ( दढे आरयमेहुणे क० ) संयमने विषे दृढ अने मैथुन थकी विरत एटले विषय रहित ॥ ११ ॥ ( णीवारेवणलीएज्जा के० ) मैथुनने नीवार समान जाणे जेम सूकरादिकने खावानी वस्तु आपी लोनावीने मारी नाखीये अथवा डुःख आपीये तेम मैथुनने एवो जाणीने स्त्रीनो संग नकरे ते केवो पुरुष जाणवो तोके ( छिन्नसोए अणाविले के० ) स्रोत एटले जे संसार तेमां अवतरवाना द्वारजे विषय कषायादिकठे ते जेणे ठेद्याठे वली राग द्वेष थकी रहित तथा ( अणाइलेसयादंते के० ) अनाकुल एटले अक्षोन सदा दांत गुणवान् एवोठतो ( संधिंपत्ते अणेलिसं के० ) कर्म विवर लक्षणनी सिद्धि पामे एवी बीजी वस्तु कोइ जगतमां नथी तेमाटे ए सिद्धिने कोइ उपमा नथी ॥१२॥

॥ दीपिका–अनुशासनं देशनाकरणं पृथक् पृथक् नव्यानव्यप्राणिषु सर्वज्ञः करोति । नव्येषु देशना न सम्यक् परिणमति तथापि न सर्वज्ञस्य दोषः । तडुक्तं । सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्य सल्लोकबांधव तवापि खिलान्यनूवन् ॥ तन्नाद्नुतं खगकुलेष्विहतामसेषु, सूर्यांशवोमधुकरीचरणावदाताइति । किंनूतः सर्वज्ञोवसुमान् चारित्री । पुनः किंनूतः पूजनं देवादिकृताशोकादिकमास्वादयति उपचुंक्ते पूजनास्वादकः । ननु देवादिकृतस्याधाकर्मणः समवसरणादेरुपनोगात्कथमसौ चारित्रीत्याशंक्याह । ( अणासएत्ति ) न विद्यते आशयः पूजानिप्रायोयस्य स अनाशयः इव्यतः समवसरणादिके विद्यमानेपि नावतोसौ नास्वादकोगार्ध्यानावात् । यस्मादसौ यतोयत्नवान् दांतः संवृतेंइियः दृढः संयमे आरतमपगतं मैथुनं यस्य सतथा गतकामानिलापः ॥ ११ ॥ नीवारः पशूनां वध्यस्थानप्रापणीयनूतोनक्ष्यविशेषस्तत्तुल्यं मैथुनं ततोनीवारे मैथुनं न लीयेत न प्रस

ज्येत । किंनूतः छिन्नानि स्रोतांसि आश्रवद्वाराणि येन सछिन्नस्रोताः । अनाविलोऽकलुषः । एवंनूतोऽनाविलः सन् सदा दांतः स्यात् । एवंविधश्च कर्मविवररूपं नावसंधिमनीदृशमनन्यसदृशं प्राप्तः स्यात् ॥ १२ ॥

---

॥ टीका-अनुशासनप्रकारमधिकृत्याह । (अणुशासणमित्यादि) अनुशास्यंते सन्मार्गेऽवतार्यंते सदसद्विवेकतः प्राणिनोयेन तदनुशासनं धर्मदेशनया सन्मार्गावतारणं तत्पृथक् पृथक् नव्यादिषु प्राणिषु क्ष्मित्युदकवत्स्वाशयवशादनेकधा नवति । यद्यपि च अनव्ये तदनुशासनं न सम्यक् परिणमति तथापि सर्वोपायज्ञस्यापि नसर्वज्ञस्य दोषः । तेषामेव स्वनावपरिणतिरियं यया तद्वाक्यममृतनूतमेकांतपथ्यं समस्तद्वंद्वोपघातकारि न यथावत् परिणमति । तथा चोक्तं । सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्य, यल्लोकबांधवतयाप्यखिलान्यनूवन् । तन्नाद्भुतं खगकुलेष्विह तामसेषु, सूर्यांशवोमधुकरीचरणावदाताः ॥१॥ किंनूतोसावनुशासकइत्याह ।वसु द्रव्यं सच मोक्षंप्रति प्रवृत्तस्य संयमस्तद्विद्यते यस्यासौ वसुमान् पूजनं देवादिकृतमशोकादिकमास्वादयत्युंपभुंक्तइति पूजनास्वादकः । ननु चाधाकर्मणोदेवादिकृतस्य समवसरणादेरुपनोगात्कथमसौ सत्संयमवानित्याशंक्याह । न विद्यते आशयः पूजाभिप्रायोयस्यासावनाशयः । द्रव्यतोविद्यमानेपि समवसरणादिके नावतोनास्वादकोसौ तद्गतगार्ध्यानावात् सत्यप्युपनोगे । यतः सत्संयमवानेवासावेकांते संयमपरायणत्वात्कुतोयतइंद्रियनोइंद्रियाभ्यां दांतः । एतद्गुणोपि कथमित्याह । दृढः संयमे । आरतमुपरतमपगतं मैथुनं यस्यसआरतमैथुनोऽपगतेच्छामदनकामः । इच्छामदनकामानावाच्च संयमे दृढोसौ नवति आयतचारित्रत्वाच्च दांतोसौ नवति । इंद्रियनोइंद्रियदमाच्च प्रयतः प्रयत्नवत्त्वाच्च देवादिपूजनास्वादकस्तदनास्वादनाच्च सत्यपि द्रव्यतः परिनोगे सत्संयमवानेवासाविति ॥११॥ अथकिमित्यसावुपरतमैथुनइत्याशंक्याह । (णीवारे इत्यादि ) नीवारं सूकरादीनां पशूनां वध्यस्थानप्रवेशननूतोनक्ष्यविशेषस्तत्कल्पमेतन्मैथुनं । यथाहि असौ पशुर्नीवारेण प्रलोभ्य वध्यस्थानमतिनीयमानोनानाप्रकारावेदनाः प्राप्यते एवमसावप्यसुमान् नीवारकल्पेनानेन स्त्रीप्रसंगेन वशीकृतोबहुप्रकारायातनाः प्राप्नोत्यतोनीवारप्रायमेतन्मैथुनमवगम्य न तस्मिन् ज्ञाततत्त्वोलीयेत न स्त्रीप्रसंगं कुर्यात् । किंनूतः सन्नित्याह । छिन्नान्यपनीतानि स्रोतांसि संसारावतरणद्वाराणि यथाविषयमिंद्रियवर्तनानि प्राणातिपातादीनि वा आश्रवद्वाराणि येन सछिन्नस्रोताः । यथाऽनाविलोकलुषोरागद्वेषासंपृक्ततया मलरहितोनाकुलोवा विषयाप्रवृत्तेः स्वस्थचेताएवंनूतश्चानाकुलोवा सदा सर्वकालमिंद्रियनोइंद्रियाभ्यां दांतोनवति ईदृग्विधश्च कर्म विवरलक्षणं नावसंधिमनीदृशमनन्यतुल्यं प्राप्तोनवतीति ॥ १२ ॥

अणे लिसस्स खेयन्ने, ण विरुज्झिज्ज केणइ ॥ मणसा वयसा चेव, कायसा चेव चक्खुमं ॥ १३ ॥ से हु चक्खू मणुस्साणं, जे कंखाए य अंतए ॥ अंतेण खुरो वहती, चक्कं अंतेण लोट्टती ॥ १४ ॥

अर्थ– ( अणेलिसस्सखेयन्नेके० ) अणेलिस एटले संयम तेने विषे जे खेदज्ञ एटले निपुण होय ते ( णविरुज्झिज्जकेणइके० ) कोइजीवनी साथे विरोध नकरे सर्वजीवोनी साथे मैत्री भाव आणे ( मणसावयसाचेवके० ) मन वचन पुनः । ( कायसाचेव चक्खुमंके० ) कायाए करी त्रिकरण शुद्धे जे एम करे तेनेज परमार्थ थकी चक्षुवंत निर्मल दृष्टीवालो जाणवो ॥ १३ ॥ ( सेहुचक्खूमणुस्साणंके० ) हुइति निश्चें तेहिज पुरुष संयमी मनुष्योनी चक्षु जेवो जाणवो ( जेकंखाएयअंतएके० ) जे पुरुष कांक्षा एटले विषय तृष्णानो अंतकरे ते संसार अने कर्मनो अंतकारी जाणवो तेनाउपर दृष्टांत कहेछे ( अंतेणखुरोवहतीके० ) छेहेडे जेम छुरी कोइ पदार्थ छेदवाने अर्थे अत्यंत तीक्ष्ण धारायें वहे धारने अंते छेदन क्रियामां समर्थ होय ( चक्कंअंतेण लोट्टतीके० ) जेम गाडानोपइडो पण अंते प्रवर्त्ते तेम मोहादिकने अंते मुक्तिरूप कार्य सिद्ध थाय ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–अनीदृशः संयमस्तस्य खेदज्ञोनिपुणः केनचित्सार्द्धं नविरोधं कुर्वीत मनोवचःकायैः सएव परमार्थतश्चक्षुष्मान् भवति ॥ १३ ॥ सएव संयमी मनुष्याणां चक्षुर्भूतोयः कांक्षायाभोगेछायाअंतकोंतवर्ती । यथा क्षुरोनापितोपकरणमंतेन वहति चक्रं रथांगमंतेनैव मार्गे वर्तते तथा साधुरपि विषयाद्यंतवर्ती मोक्षसाधकः ॥ १४ ॥

॥ टीका–किंच । ( अणेलिसस्सेत्यादि ) अनीदृशोऽनन्यसदृशः संयमोमौनींद्रधर्मो वा तस्य तस्मिन् वा खेदज्ञोनिपुणोऽनीदृशखेदज्ञश्च केनचित्सार्धं न विरोधं कुर्वीत सर्वेषु प्राणिषु मैत्रीं भावयेदित्यर्थः । योगत्रिककरणत्रिकेणेति दर्शयति । मनसांऽतःकरणेन प्रशांतमनास्तथावाचोहितमितभाषी तथा कायेन निरुद्धोदुष्प्रणिहितसर्वकायचेष्टोदृष्टिपूतपादचारी परमार्थतश्चक्षुष्मान् भवतीति ॥ १३ ॥ अपिच । ( सेहचक्खूइत्यादि ) हुरवधारणे । सएव प्राप्तकर्मविवरोऽनीदृशस्य खेदज्ञोभव्यमनुष्याणां सदसत्पदार्थाविर्भावनान्नेत्रभूतोवर्तते । किंभूतोसौ यः कांक्षायाभोगेछायाअंतकोविषयतृष्णायाः पर्यंतवर्ती । किमंतवर्तीति विवक्षितमर्थं साधयत्येवेत्यमुमर्थं दृष्टांतेन साधयन्नाह । अंतेन पर्यंतेन क्षुरोनापितोपकरणं तदंतेन वहति तथा चक्रमपि रथांगमंतेनैव मार्गे प्रवर्तते । इदमुक्तंभवति । यथा क्षुरादीनां पर्यंतएवार्थकार्येवं विषयकषायात्मकोमोहनीयांतएवापसदसंसारक्षयकारीति ॥ १४ ॥

अंताणि धीरा सेवंति, तेण अंतकरा इह ॥ इह माणुसए ठाणे,
धम्ममाराहिउं णरा ॥ १५ ॥ णिठियठा व देवावा, उत्तराए इ
मं सुयं ॥ सुत्तं च मेयमेगेसिं, अमणुस्सेसु णे तहा ॥ १६ ॥

अर्थ–( अंताणिधीरासेवंतिके० ) तेम धीर पुरुष पण अंत सेवे एटले विषयनो अंत करे तथा अंत प्रांत आहार सेवे ( तेणअंतकराइहके० ) ते कारणे आ संसारने विषे अंतना करनार जाणवा (.इहमाणुसएठाणेके० ) आमनुष्य लोक रूप स्थानकने पाम्या थका ( धम्ममाराहिउंणराके० ) एवा मनुष्य धर्मजे सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्ररूप तेने आराधीने मुक्ति गामी थाय ॥ १५ ॥ ( णिठियठावदेवावाके० ) एवा संयमना पालनार पुरुषो निष्ठितार्थ एटले सिद्धिने पामे अथवा प्रचुर कर्मने सद्भावे देवत्व पणाने विषे सौधर्मादिक विमाने उपजे ( उत्तराएइमंसुयंके ) ए वचन उत्तरा एटले लोकोत्तर प्रवचने में सांजल्युंछे एरीते श्रीसुधर्मा स्वामी श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहेछे. ( सुत्तंचमेयमेगेसिंके० ) में श्रीतीर्थंकरादिक समीपे सांजल्युंछे जे ( अमणुस्सेसुणेतहाके० ) ए मोक्षनी प्राप्ति ते मनुष्यनी गति टालीने अन्यत्र नथी ते कारण माटे मनुष्य पणे संयम पालवाने विषे प्रमाद नकरवो ॥ १६ ॥

---

॥ दीपिका–अंतान् अंतप्रांताहारान् सेवंते वीरास्तेन संसारस्यांतकरास्ते इहार्यक्षेत्रे स्युः । यतइह मनुष्यलोके स्थाने नराधर्ममाराध्य निष्ठितार्थाः स्युः ॥ १५ ॥ केचिन्निष्ठितार्थाः कृतकृत्याः स्युः केचिद्देवाः । एतल्लोकोत्तरीये प्रवचने श्रुतं मयेति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । एतच्च मया तीर्थंकरांते श्रुतं । गणधरः स्वशिष्याणामेकेषामिदमाह । अमनुष्येषु मनुष्यवर्जितेषु नतथा नमोक्षावाप्तिः स्यादित्यर्थः ॥ १६ ॥

---

॥ टीका–अमुमेवार्थमाविर्नावयन्नाह । ( अंताणीत्यादि ) अंतान् पर्यंतान् विषयकषायतृष्णायास्तत्परिकर्मणार्थमुद्यानादीनामाहारस्य वांतप्रांतादीनि धीरामहासत्वाविषयसुखनिस्पृहाः सेवंते ऽन्यस्यंति तेन चांतप्रांतान्यसनेनांतकराः संसारस्य तत्कारणस्य वा कर्मणः क्षयकारिणोनवंति । इहेति मनुष्यलोके आर्यक्षेत्रे न केवलं तएव तीर्थकरादयोऽन्येऽपीह मानुष्यलोके स्थाने प्राप्ताः सम्यग्दर्शनजावज्ञानचारित्रात्मकं धर्ममाराध्य नरामनुष्याः कर्मनूमिगर्नेऽयुत्क्रांतिजसंख्येयवर्षायुषः संतः तदनुष्ठानसामग्रीमवाप्य निष्ठितार्थाउपरतसर्वद्वंद्वाजवंति ॥ १५ ॥ इदमेवाह । ( णिठियठाइत्यादि ) निष्ठितार्थाः कृतकृत्याजवंति केचन प्रचुरकर्मतया सत्यामपि सम्यक्त्वादिकायां सामग्र्यां न तन्नवएव मोक्षमास्कंदंति । अपितु सौधर्माद्याः पंचोत्तरविमानावसानादेवाजवंतीति । एतल्लोको

त्तरीये प्रवचने श्रुतमागमे । एवंनूतः सुधर्मस्वामी वा जंबूस्वामिनमुद्दिश्यैवाह । यथा मयैतल्लोकोत्तरीये नगवत्यर्हत्युपलब्धं तद्यथा अवाप्तसम्यक्त्वादिसामग्रीकः सिध्यति वैमानिकोवा नवतीति । मनुष्यगतावेवैतन्नान्यत्रेति दर्शयितुमाह ॥ सुयंमेइत्यादि पश्चार्द्धं । तच्च मया तीर्थंकरांतिके श्रुतमवगतं । गणधरः स्वशिष्याणामेकेषामिदमाह । यथा मनुष्यएवाशेषकर्मक्षयात्सिद्धिगतिनाग्नवति नामनुष्यइति । एतेन यच्छाक्यैरनिहितं । तद्यथादेवएवाशेषकर्मप्रहाणं कृत्वा मोक्षनाग्नवति तदपास्तं नवति । नह्यमनुष्येषु गतित्रयवर्तिषु सच्चारित्रपरिणामानावाद्यथा मनुष्याणां तथामोक्षावाप्तिरिति ॥ १६ ॥

अंतं करंति डुक्खाणं, इहमेगेसि आहियं ॥ अघायं पुण एगेसिं, डुल्लने यं समुस्सए ॥ १७ ॥ इउविद्धंसमाणस्स, पुणो संबोहि डुल्लना ॥ डुल्लहाउ तहच्चाउ, जे धम्मठं वियागरे ॥ १८ ॥

अर्थ–( अंतंकरंतिडुक्खाणं के० ) मनुष्य सर्व डुःखनो अंत करे पण मनुष्यनी जाति विना अन्य जातीने मुक्ति नथी ( इहमेगेसिआहियंके० ) एम कोइएके कह्योछे तथा गणधरादिके एम कह्योछेके ( आघायंपुणएगेसिंके० ) ए मनुष्य संबंधी देह पामवो एक एक बहुल कर्मिजीवोने अत्यंत ( डुल्लनेयंसमुस्सएके० ) डुर्लनछे वली वली मनुष्य जन्म पामवो डुर्लनछे चुलग पासके इत्यादिक दृष्टांते डुर्लनछे ॥ १७ ॥ (इउविद्धंसमाणस्सके०) ए मनुष्य देह थकी विध्वंस एटले भ्रष्ट थयलाने एटले जे मनुष्य जन्म हारया एवाने ( पुणोसंबोहिडुल्लनाके० ) अन्यगतीने विषे बोधी एटले सम्यक्त्व लान पामवो डुर्लनछे (तहच्चाउके०) तथार्चा एटले लेश्या चित्तना परिणाम अथवा अर्चा एटले मनुष्यनुं शरीर ते ( डुल्लहाउके०) डुःप्राप्यछे ( जेधम्मठंवियागरेके० ) वली धर्मनो अर्थजे वियागरे एटले शुधो प्रकाशे एवो शरीर धारी मनुष्य पणुं पण डुर्लनछे ॥१८॥

---

॥ दीपिका–इह एकेषां वादिनामाख्यातं यत् देवाएवांतकरामोक्षगामिनः स्युरिति न तथा इहार्हते प्रवचने । इदमन्यत् पुनरेकेषां गणधरादीनामाख्यातं यदयं मानुष्यः शरीरसमुच्छ्रयोडुर्लनः । यतः । ननु पुनरिदमतिडुर्लन, मगाधसंसारजलधिविभ्रष्टं ॥ मानुष्यं खद्योतक,तडिल्लताविलसितप्रतिममित्यादि ॥ १७ ॥ इतोमनुष्यनवाद्विध्वंसमानस्य जीवस्य पुनः संबोधिधर्मप्राप्तिर्डुर्लना । तथानूता सम्यक्त्वप्राप्तियोग्याऽर्चा लेश्या डुर्लना । जंतूनां ये धर्मरूपमर्थं व्याकुर्वंति ये धर्मप्रतिपत्तियोग्याइत्यर्थः । तेषां तथानूतार्चा डुर्लना स्यात् ॥ १८ ॥

॥ टीका—इदमेव स्वनामग्राहमाह । ( अंतकरेंतीत्यादि ) नह्यमनुष्याअशेषडःखानामं तं कुर्वंति तथाविधसामग्र्यानावाद्यथैकेषां वादिनामाख्यातं । तद्यथा । देवाएवोत्तरोत्त रं स्थानमास्कंदंतोऽशेषक्लेशप्रहाणं कुर्वंति न तथेहार्हते प्रवचने इति । इदमन्यत् पुन रेकेषां गणधरादीनां स्वशिष्याणां वा गणधरादिनिराख्यातं । तद्यथा । युगसमिलादिन्या यावाप्तः कथंचित्कर्मविवरात् योयं शरीरसमुच्छ्रयः सोकृतधर्मोपायैरप्यसुमद्भिर्महासमुद्र प्रनष्टरत्नवत्पुनर्डर्लनोनवति । तथाचोक्तं । नुनु पुनरिदमतिडर्लन,मगाधसंसारजलधिविभ्र ष्टं ॥ मानुष्यं खद्योतक,तडिल्लताविलसितप्रतिममित्यादि ॥१७॥ अपिच ( इउविद्धंसेऽइत्या दि ) इतोऽमुष्मात् मानुष्यनवात्सद्धर्मतोवा विध्वंसनस्याकृतपुण्यस्य पुनरस्मिन् संसारे पर्यटतोबोधिः सम्यक्दर्शनावाप्तिः सुडर्लनोत्कृष्टतः अपार्धपुजलपरावर्तकालेन यतोनवति तथा डर्लना डरापा तथानूता सम्यक्दर्शनप्राप्तियोग्यर्चा लेश्यांतःपरिणतिरकृतधर्माणा मिति । यदि वाऽर्चा मनुष्यशरीरं तदप्यकृतधर्मबीजानामार्यक्षेत्रसुकुलोत्पत्तिसकलेंद्रिय सामग्र्यादिरूपं डर्लनं नवति । जंतूनां धर्मरूपमर्थं व्याकुर्वंति ये धर्मप्रतिपत्तियोग्याऽस्य र्थः । तेषां तथानूतार्चा सुडर्लना नवतीति ॥ १८ ॥

जे धम्मं सुद्धमक्खंति, पडिपुन्नमणेलिसं ॥ अणेलिसस्स जं
ठाणं, तस्स जम्मकहा कर्ज ॥ १ए ॥ कर्ज कयाइ मेधावी, उप्प
ज्जंति तहागया ॥ तहागया अप्पडिन्ना, चक्खू लोगस्सणुत्तरा ॥२०॥

अर्थ—( जेधम्मंसुद्धमक्खंतिके० ) जे श्रीवीतरागादिक महापुरुषो शुद्ध निर्मल ध र्म कहे अने पोते पण तेजरीते समाचरे ( पडिपुन्नके० ) प्रतिपूर्ण ( अणेलिसंके० ) अनीदृश एटले सम्यक् चारित्रिउं ( अणेलिसस्सजंठाणंके० ) जेनो ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूप मोक्ष स्थानकछे परंतु बीजो स्थानक नथी ( तस्सजम्मकहाकर्जके० ) ते ने जन्मकथा क्यांथी होय एटले कर्मने क्षयें जन्म मरणनो अनाव होय ॥ १ए ॥ ( कर्जकयाइमेधावीके० ) कदाचित् मेधावी एटले सम्यक् ज्ञानवंत क्यांथकी आवीने ( उप्पज्जंतिके० ) उपजे खरा परंतु ते केवा होय तोके ( तहागयाके० ) तेमज कर्म खपावीने गया ( तहागयाअप्पडिन्नाके० ) जे कर्मखपावीने गया जेने निदान प्र तिज्ञा नही ते अप्रतिज्ञ निराशंस एवा होय तेने संसार मांहे उत्पत्ति अने मरण नथी जे कारणे तथागत श्रीतीर्थंकरादिक निदान रहित निराशंस ( चक्खूलोगस्सणुत्तराके०) तथा लोकने अनुत्तर सर्वोत्तम प्रधान ज्ञानथकी चक्षुनूत जाणवा ॥ २० ॥

---

॥ दीपिका—ये सर्वज्ञाः शुद्धं धर्ममाख्यांति परिपूर्णमनन्यसदृशं । तदेवमनन्यसदृश

स्याज्ञानक्रियोपेतस्य यत् स्थानं तत्प्राप्तस्य जन्मकथा कुतः । तस्य जन्ममरणे न नव तइत्यर्थः ॥ १९ ॥ मेधाविनोज्ञानिनस्तथा नवच्रमणेन गतास्तथागताः कुतः कदाचि डुत्पद्यंते नवेनोत्पद्यंतएवेत्यर्थः । तथागताअर्हद्गणधरादयोऽप्रतिज्ञाअनिदानाअनुत्तराः सर्वज्ञत्वात्ते लोकस्य चक्षुर्नूताः स्युः ॥ २० ॥

---

॥ टीका–किंचान्यत् ( जेधम्ममित्यादि ) ये महापुरुषावीतरागाः करतलामलकवत्स कलजगद्द्रष्टारस्तएवंनूताः परहितैकरताः शुद्धमवदातं सर्वोपाधिविशुद्धं धर्ममाख्यांति प्र तिपादयंति स्वतः समाचरंति च प्रतिपूर्णमायतचारित्रसद्भावात्संपूर्णं यथाख्यातचारित्र रूपं वाऽनीदृशमनन्यसदृशं धर्ममाख्यांत्युपतिष्ठंति । तदेवमनीदृशस्यानन्यसदृशस्य ज्ञा नचारित्रोपेतस्य यत् स्थानं सर्वद्वंद्वोपरमरूपं तदवाप्तस्य कुतोजन्मकथा जातोमृतोवे त्येवंरूपा कथा स्वप्नांतरेपि तस्य कर्मबीजानावात् कुतोविद्यतइति । तथोक्तं । दग्धे बीजे यथाऽत्यंतं, प्रादुर्नवति नांकुरः ॥ कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति नवांकुरइत्यादि ॥ १९ ॥ किंचान्यत् । ( कउकयाइत्यादि ) कर्मबीजानावात्कुतः कस्मात्कदाचिदपि मेधा विनोज्ञानात्मकास्तथा पुनरावृत्त्याऽगतास्तथागताः पुनरस्मिन् संसारेऽशुचिगर्नाधाने स मुत्पद्यंते न कथंचित्कदाचित्कर्मोपादानानावाडुत्पद्यंतइत्यर्थः । तथा तथागतास्तीर्थकृग णधरादयोन विद्यंते प्रतिज्ञा निदानबंधनरूपा येषां तेऽप्रतिज्ञानिदानानिराशंसाः सत्वहि तकरणोद्यताअनुत्तरज्ञानत्वादनुत्तरालोकस्य जंतुगणस्य सदसदर्थनिरूपणकारणतश्चक्षुर्नू ताहिताहितप्राप्तिपरिहारं कुर्वंतः सकललोकलोचननूतास्तथागताः सर्वज्ञाजवंतीति॥२०॥

अणुत्तरे य ठाणे से, कासवेण पवेदिते। जं किच्चा णिवुमा एगे,
निठं पावंति पंमिया ॥ २१ ॥ पंमिए वीरियं लछुं, निग्घायाय
पवत्तगं॥ धुणे पुवकडं कम्मं, णवं वा वि ण कुवती ॥ २२ ॥

अर्थ–( अणुत्तरेयगणेसेके० ) अनुत्तर एटले प्रधान संयमरूप स्थानक ते ( कास वेणपवेदितेके० ) काश्यप श्रीमहावीर देवे कह्यो ( जंकिच्चाके० ) जे संयम स्थानक पा लीने (णिवुमाएगेके० ) एक महापुरुष उपशांत कषायवंत एवा उता (निठंपावंतिपंमिया के० ) पंमित विवेकना जाण संसारनो अंत पामे ॥ २१ ॥ ( पंमिएवीरियंलछुंके० ) पंमित एटले सदसद्विवेकना जाण ते संयमनो वीर्य बल पामीने निःशेष समस्त कर्मनो ( निग्घायायके० ) निर्घातन करवाने अर्थे ( पवत्तगंके० ) प्रवर्त्तक ए पंमित वी र्य घणा नवे पामवो डुर्लन तेने पामीने ( धुणेपुवकडंकम्मंके० ) पूर्वकृत कर्मने धुणे एटले खपावे ( णवंवाविणकुवतीके० ) कोइ नवा कर्मने नकरे ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—अनुत्तरं स्थानं संयमरूपं काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं कथितं यत्संयम स्थानं कृत्वाऽनुपाल्यैके निर्वृतामोक्षं गतानिष्ठां नवपर्यंतं प्राप्नुवंति पंडिताः ॥ २१ ॥ पंडितः संयमवीर्यं लब्ध्वा पूर्वकृतं कर्म धुनीयादपनयेत् । वीर्यं किंभूतं निर्घाताय निर्जरणाय प्रवर्तकं । नवं च कर्म न कुर्यात् ॥ २२ ॥

---

॥ टीका—किंचान्यत् ( अणुत्तरेयइत्यादि) न विद्यते उत्तरं प्रधानं यस्मादनुत्तरं तच्च तत्संयमाख्यं काश्यपेन काश्यपगोत्रेण श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिना प्रवेदितमाख्यातं । तदस्य चानुत्तरत्वमाविर्भावयन्नाह । यदनुत्तरं संयमस्थानं एके महासत्वाः सदनुष्ठायिनः कृत्वाऽनुपाल्य निर्वृतानिर्वाणमनुप्राप्ताः । निर्वृताश्च संतः संसारचक्रवालस्य निष्ठां पर्यवसानं पंडिताः पापाड्डीनाः प्राप्नुवंति । तदेवं भूतं संयमस्थानं काश्यपेन प्रवेदितं सदनुष्ठायिनः संतः सिद्धिं प्राप्नुवंतीति तात्पर्यार्थः ॥२१॥ अपिच ( पंडिएइत्यादि ) पंडितः सदसद्विवेकज्ञोवीर्यं कर्मोद्दलनसमर्थं सत्संयमवीर्यं तपोवीर्यंवा लब्ध्वाऽवाप्य । तदेव वीर्यं विशिनष्टि । निःशेषकर्मणोनिर्घातायनिर्जरणाय प्रवर्तकं पंडितवीर्यं तच्च बहुभवशतदुर्लभं कथंचित्कर्मविवरादवाप्य धुनीयादपनयेत् । पूर्वभवेष्वनेकेषु यत्कृतमुपात्तं कर्माष्टप्रकारं तत्पंडितवीर्येण धुनीयात् नवं चाभिनवं चाश्रवनिरोधान्नकरोत्यसाविति ॥ २२ ॥

ण कुव्वती महावीरे, अणुपुव्वकडं रयं॥ रयसा संमुहीभूता, कम्मं हेच्चाण जं मयं ॥ २३॥ जं मयं सव्वसाहूणं, तं मयं सल्लगत्तणं॥ साहइत्ताण तं तिन्ना, देवावा अभविंसु ते ॥ २४ ॥ अभविंसु पुरा धीरा, आगमिस्सावि सुव्वता ॥ दुन्निबोहस्स मग्गस्स, अंतं पाउकरातिन्नेतिबेमि ॥२५॥ इतिपनरसमंजमइयंनामझयणं सम्मत्तं॥

अर्थ—( णकुव्वतीमहावीरेके० ) श्रीमहावीर उत्तम साधु ते नकरें शुं नकरे तोके ( अणुपुव्वकडंरयंके० ) आनुपूर्वी मिथ्यात्व अविरति प्रमाद अनुक्रमे कीधुं जे पापरूप रज ते नकरे ( रयसासंमुहीभूताके० ) पापरूप रजेकरी संमुहीभूत एटले एकठा कीधा जे अष्टप्रकारना कर्म ( कम्मंहेच्चाणजंमयंके० ) ते कर्मने हित्वा एटले हणीने सत्य संयम पालीने मोक्षने संमुख थाय ॥ २३ ॥ ( जंमयंसव्वसाहूणंके० ) जे संयम रूप स्थानक ते सर्व साधु चारित्रियानो मनो वांछित स्थानक जाणवो ( तंमयंसल्लगत्तणंके० ) वलीते संयमानुष्ठान केहेवो तोके शल्यकर्तन एटले शल्यनो छेदनार (साहइत्ताणतंतिन्नाके०) एवा संयमने सम्यक् प्रकारे आराधीने घणा प्राणी सर्वथा कर्मने अभावे संसार

समुद्र थकी तस्या ( देवावाअजविंसुतेकें० ) अथवा सर्वथा कर्मना क्षयना अजावे देवत्व पणे वैमानिकमां जइ उपना एकावतारी प्रमुख थया ॥ २४ ॥ ( अजविंसुपुराधीराके० ) पूर्वे अतीतकाले घणा चारित्रिया थया अने वर्त्तमान काले पणछे तथा ( आगमिस्साविसुव्वताके० ) आगमिक काले पण घणा सुव्रत संयमानुष्ठानो थशे ते केवा थशे तोके ( डुन्निबोहस्समग्गस्सके० ) डुर्निबोध एटले डुर्लन एवोजे ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूप मार्ग ते (अंतंपाउकरातिन्नेकें०) परम उत्कृष्टो पामीने तेहिज मार्गना प्रकाशक थता संसार समुड्रने पूर्वे तस्या वर्त्तमाने तरेछे अने आगमिक काले तरशे. तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २५ ॥ एरीते पंदरमां यतिनामा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

---

॥ दीपिका–अन्यजीवैर्यदनुपूर्वं कर्म आश्रित्य संयमात्संमुखीजूतोयन्मतमष्टजेदं तत् कर्म हित्वा मोक्षस्याजिमुखीजूतः ॥ २३ ॥ सर्वसाधूनां यन्मतमजिप्रेतं तत्संयमस्थानं शल्यकर्तनं कर्मछेदकं । तत्संयमस्थानं साधयित्वा बहवः संसारं तीर्णामोक्षं प्राप्ताः । अथवा देवाअजूवन् जवंति जविष्यंतिच ॥ २४ ॥ पुरा पूर्वं बहवोधीराअजूवन् अनागते काले सुव्रताजविष्यंति च वर्तमानकाले तथाजूताः संतिच । ये डुर्निबोधस्य डुष्प्रापस्य मार्गस्य दर्शनचारित्राख्यस्यांतं परमकाष्ठामवाप्य तस्यैव प्राडुष्कराः स्वतः सन्मार्गसेविनोऽन्येषां च प्राडुर्जावकाः संतः संसारं तीर्णास्तरंति तरिष्यंति चेति ॥ २५ ॥ इति आदानीयाख्यं पंचदशमध्ययनं समाप्तं ॥

---

॥ टीका–किंच ( नकुंव्वतीत्यादि ) महावीरः कर्मदारणसहिष्णुः सन्नानुपूर्व्येण मिथ्यात्वविरतिप्रमादकषाययोगैर्यत्कृतं रजोऽपरजंतुनिस्तदसौ न करोति न विधत्ते । यतस्तत्प्राक्तनोपात्तरजसैवोपादीयते सच तत्प्राक्तनं कर्मावष्टन्य सत्संयमात्संमुखीजूतस्तदजिमुखीजूतश्च यन्मतमष्टप्रकारं तत्सर्वं हित्वा त्यक्त्वा मोक्षस्य सत्संयमस्य वा सम्मुखीजूतोऽसाविति ॥ २३ ॥ अन्यच्च ( जम्मयमित्यादि ) सर्वसाधूनां यन्मतमजिप्रेतं तदेतत्संयमस्थानं । तद्विशिनष्टि। शल्यं पापानुष्ठानं तज्जनितं वा कर्म तत्कर्तयति छिनत्ति तच्छल्यकर्तनं तच्च सदनुष्ठानं तद्युक्तविहारिणः साधयित्वा सम्यगाराध्य बहवः संसारकांतारं तीर्णाः । अपरे तु सर्वकर्मक्षयाजावात् देवाअजूवन् ते चाप्तसम्यक्त्वाः सच्चारित्रिणोवैमानिकत्वमवापुः प्राप्नुवंति प्राप्स्यंतिचेति ॥ २४ ॥ सर्वोपसंहारार्थमाह । ( अजविंसुइत्यादि ) पुरा पूर्वस्मिन्ननादिके काले बहवोमहावीराः कर्मविदारणसहिष्णवः अजूवन् जूतास्तथा वर्तमाने च काले कर्मजूमौ तथाजूताजवंति तथागामिनि चानंते काले तथाजूताः सत्संयमानुष्ठायिनोजविष्यंति, । किंकृतवंतः कुर्वंति करिष्यंतिचेत्याह । यस्य डुर्निबोधस्याती

वडुप्रापकस्य ज्ञानदर्शनचारित्राख्यस्यांतं परमकाष्ठामवाप्य तस्यैव मार्गस्य प्राडुःप्राकाश्यं तत्करणशीलाः प्राडुष्कराः स्वतः सन्मार्गानुष्ठायिनोऽन्येषांच प्राडुर्नावकाः संतः संसारार्णवं तीर्णास्तरंति तरिष्यंतिचेति । गतोऽनुगमः । सांप्रतं नयास्तेच प्राग्वत् इष्टव्याः । इतिरध्ययनपरिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १५ ॥ इति आदानीयाख्यं पंचदशाध्ययनं समाप्तं ॥

हवे सोलमुं गाहा नामे अध्ययन प्रारंनिये ठेए पंदरमां अध्ययनमां जे विधिरूप तथा प्रति निषेधरूप नाव कह्या ते यथोक्त विधि आचरतो सुसाधु कहेवाय एवा नावे आ सोलमो अध्ययन कहेठे.

> अहाह नगवं एवं, से दंते दविए, वोसठकाएत्ति वच्चे, माहणेत्ति वा, समणेत्तिवा निक्कूत्तिवा, णिग्गंथेत्तिवा, पडिआह नंते कहं तु दंते दविए वोसठकाएत्ति वच्चे माहणेत्तिवा समणेत्ति वा निक्कूत्तिवा णिग्गंथेत्तिवा तंनो बूहि महामुणी॥ १ ॥

अर्थ-( अहाहनगवं एवं के० ) यथाह नगवान् हवे श्री नगवंत महावीरदेव सनामांहे एम कहेठे. ( सेदंते दविए के० ) ते साधु इंडियोने दमवे करी दांत तेणे करी मुक्तिगमन योग्य तथा ( वोसठ के० ) निःप्रतिकर्म एवो ( काएत्तिवच्चे के० ) शरीरठे जेहनो तेने एम कहेवो ( माहणेत्तिवा के० ) त्रस अने स्थावर जीवोने माहणो एवो जेनो उपदेशठे ते माहण कहिये अथवा नव विध ब्रह्मचर्यनी गुप्ति थकी माहण एटले ब्राह्मण कहिए ( समणेत्तिवा के० ) तथा श्रमण एटले तपस्वी शुद्ध क्रिया अनुष्ठानना करनार ( निक्कूतिवा के० ) आरंननो त्याग करे निर्दोष निक्षायें प्रवर्ते अथवा अष्ट प्रकारना कर्मने नेदे तेमाटे निक्कु कहिए (णिग्गंथेत्तिवा के०) तथा बाह्य अन्यंतर परिग्रह रहित माटे निर्ग्रंथ कहिए ( एम श्री नगवाने कहे थके शिष्य पूठे ठे के केवीरीते ( दंतेदविए के० ) दांत मुक्तिगमन योग्य ( वोसठकाएत्ति के० ) तथा शरीरनी शोना शुश्रूषा रहित तेने ( वच्चे के० ) कहिये शुं कहियें तोके ( माहणेत्तिवा के० ) माहण कहिये तथा ( समणेत्तिवा के० ) श्रमण कहिए तथा ( निक्कूत्तिवा के० ) निक्कु कहिए ( णिग्गंथेत्तिवा के० ) तथा निर्ग्रंथ कहिए ( तंनोबूहिमहामुणी के० ) ते हे महामुनि ए चार शब्दनो अर्थ अमने कहो. ॥ १ ॥

॥ दीपिका-अधुना गाथाषोडशाख्यं षोडशाध्ययनमारन्यते । तस्येदमादिसूत्रं । ( अहेति ) । अथाह नगवान् सर्वज्ञः । एवमसौ साधुर्दांतः संवृतेंडियः । इव्यं मुक्तिगमन

योग्योव्युत्सृष्टकायोनिष्प्रतिकर्मशरीरः समाहनइति श्रमणइति निक्षुरिति निर्ग्रंथइति नगवतोक्ते शिष्यः प्रत्याह । हेनगवन् योऽसौ पूर्वोक्तपंचदशाध्ययनार्थानुष्ठायी साधुर्माह नादिशब्दवाच्यइति तत्कथं स्यादिति नोऽस्माकं ब्रूहि हेमहामुने ॥ १ ॥

---

॥ टीका—उक्तं पंचदशमध्ययनं सांप्रतं षोडशमारन्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । ई हानंतरोक्तेषु पंचदशस्वप्यध्ययनेषु येऽर्थाअनिहिता विधिप्रतिषेधद्वारेण तान् तथैवाच रन् साधुर्नवतीत्येतदनेनाध्ययनेनोपदिश्यते । ते चामी अर्थाः । तद्यथा । प्रथमाध्य यने स्वसमयपरसमयपरिज्ञानेन सम्यक्त्वगुणावस्थितोनवति । द्वितीयाध्ययने ज्ञाना दिनिः कर्मविदारणहेतुनिरष्टप्रकारकं कर्म विदारयन् साधुर्नवति । तथा तृतीयाध्ययने य थानुकूलं प्रतिकूलोपसर्गान् सहमानः साधुर्नवति । चतुर्थे तु स्त्रीपरीषहस्य डुर्जयत्वात्त ज्जयकारीति । पंचमेतु नरकवेदनान्यः समुद्विजमानस्तत्प्रायोग्यकर्मणोविरतः सन्साधुत्व मवाप्नुयात् । षष्ठेतु यथा श्रीवीरवर्धमानस्वामिना कर्मक्षयोद्यतेन चतुर्ज्ञानिनापि संयमं प्र ति प्रयत्नः कृतस्तथान्येनापि ठद्मस्थेन विधेयमिति । सप्तमे तु कुशीलदोषान् ज्ञात्वा त त्परिहारोद्यतेन सुशीलावस्थितेन नाव्यं । अष्टमेतु बालवीर्यपरिहारेण पंडितवीर्योद्यतेन सदा मोक्षाभिलाषिणा नाव्यं । नवमे तु यथोक्तं क्षांत्यादिकं धर्ममनुचरन् संसारान्मुच्य तइति । दशमे तु संपूर्णसमाधियुक्तः सुगतिनाग्नवत्येकादशेतु सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्रा ख्यं सन्मार्गं प्रतिपन्नोऽशेषक्लेशप्रहाणं विधत्ते । द्वादशेतु तीर्थिकदर्शनानि सम्यग्गुणदोषवि चारणतोविजानन्न तेषु श्रद्धानं विधत्ते । त्रयोदशे तु शिष्यगुणदोषविज्ञः सद्गुणेषु वर्तमा नः कल्याणनाग्नवति । चतुर्दशे तु प्रशस्तनावग्रंथितनावितात्मा विस्रोतसिकारहितोन वति । पंचदशेतु यथावदायतचरित्रोनवति निक्षुस्तडपदिश्यतइति । तदेवमनंतरोक्तेषु पं चदशस्वध्ययनेषु येऽर्थाः प्रतिपादितास्तेत्र संक्षेपतः प्रतिपाद्यंतइत्यनेन संबंधेनायातस्या स्याध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोगद्वाराणि नवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारो ऽनंतरमेव संबंधप्रतिपादनेनैवाभिहितः। नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे गाथाषोडशकमिति नाम। तत्र गाथानिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । "णामं ठवणा गाहा, दव्वग्गाहा य नावगाहा य॥ पोत्थगपत्तगलिहिया, सो होइ दव्वगाहाउ ॥ १३ए ॥ ( णामंठवणेत्यादि ) तत्र गाथा यानामादिकश्चतुर्धा निक्षेपस्तत्रापि नामस्थापने क्षुस्त्वादनाहत्य ड्व्यगाथामाह । तत्र ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्ता ड्व्यगाथा पत्रकपुस्तकादिन्यस्ता । तद्यथा । जयतिणवण लिणकुवलयवियसियसयवत्तपत्तलदलछो ॥ वीरोगयंदमयगल सुललियगयविक्कमो नगवं ॥ १ ॥ अथ चेयमेव गाथा षोडशाध्ययनरूपा पत्रकपुस्तकन्यस्ता ड्व्यगाथेति । नावगा थामधिकृत्याह । "होंति पुण नावगाहा, सागारुवउगनावणिप्पन्ना ॥ महुराभिलाणज्ञ

त्ता, तेणं गाहाति एं विंति "॥ ४० ॥ ( होंतिपुंणइत्यादि ) नावगाथा पुनरियं नवति। तद्यथा । योऽसौ साकारोपयोगः क्षायोपशमिकनावनिष्पन्नोगाथां प्रति व्यवस्थितः सा नावगाथेत्युच्यते । समस्तस्यापि च श्रुतस्य क्षायोपशमिकनावे व्यवस्थितत्वात् । तत्र चानाकारोपयोगस्यासंनवादेवमनिधीयते इति । पुनरपि तामेव विशिनष्टि । मधुरं श्रुति पेशलमनिधानमुच्चारणं यस्याः सा मधुरानिधानगाथा युक्ता । गाथा छंदसोपनिबद्धस्य प्राकृतस्य मधुरत्वादित्यनिप्रायोगीयते पठ्यंते मधुराक्षरप्रवृत्त्या गायंति वा तामिति गा था । यतएवमतस्तेन कारणेन गाथामिति तां ब्रुवते । णमिति वाक्यालंकारे । एनां वा गाथामिति । अन्यथावा निरुक्तमधिकृत्याह । " गाहीकयावअन्ना,अहवणसामुद्दएण छं देणं ॥ एएण होंति गाहा, एसो अन्नोवि पञ्जाउ,, ॥ ४१ ॥ ( गाहीकयावइत्यादि ) गा थीकृताः पिंडीकृताविक्षिप्ताः संतएकत्र मीलिताअर्थायस्याः सा गाथेत्यथवा सामुद्रेण छंदसा वा निबद्धा सा गाथेत्युच्यते । तच्चेदं छंदोऽनिबद्धं च यल्लोकेगाथेति तत्पंडितैः प्रो क्तं । एषोऽनंतरोक्तोगाथाशब्दस्य पर्यायोनिरुक्तस्तात्पर्यार्थोद्रष्टव्यः । तद्यथा । गीयतेऽसौ गायंति वा तामिति गाथीकृतावार्थाः सामुद्रेण वा छंदसेति गाथेत्युच्यते।अन्योवास्वयमन्यू ह्य निरुक्तविधिना विधेयइति। पिंडितार्थग्राहित्वमधिकृत्याह।,, पसुरससुअज्झयणे,पिंडित छेसुजो अवितहत्ति ॥ पिंडियवयणेणत्थं गेहेतिम्हा ततो गाहा,, ॥४२॥ ( पसुरससुइत्या दि ) पंचदशस्वप्यध्ययनेषु अनंतरोक्तेषु पिंडितार्थानि तेषु सर्वेष्वपि यएवं व्यवस्थितोऽर्थ स्तमवितथं यथावस्थितपिंडितार्थवचनेन यस्माद्ग्रथ्नात्येतदध्ययनं षोमशं ततः पिंमि तार्थग्रथनाज्ञायेत्युच्यतइति । तत्त्वनेदपर्यायैर्व्याख्येति कृत्वा सूत्रार्थमधिकृत्याह । "सो लसमे अज्झयणे, अणगारगुणाणवणण नणिया ॥ गाहा सोलसणामं, अज्झयणमिणं ववदिसंति ॥ ४३ ॥ (सोलसमेइत्यादि) षोमशाध्ययने ऽनगाराः साधवस्तेषां गुणाः क्षां त्यादयस्तेषामनगारगुणानां पंचदशस्वप्यध्ययनेष्वनिहितानामिहाध्ययने पिंमितार्थवचने न यतोवर्णनानिहिताऽतोगाथाषोमशानिधानमध्ययनमिदं व्यपदिशंति प्रतिपादयंति। उ क्तोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोनिर्युक्त्यानुगमस्तदनंतरं स्पर्शिकनिर्युक्त्याऽनुगमस्यावसरः सच सूत्रे सति नवति सूत्रं च सूत्रानुगमेऽसावप्यवसरप्राप्तएवातोऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रा नुगमे सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । ( अहाहनगवमित्यादि ) अथेत्ययं शब्दोऽवसानमंगला र्थः । आदिमंगलं तु बुध्यतेत्यनेनानिहितं । तेनाद्यंतयोर्मंगलत्वात्सर्वोपि श्रुतस्कंधोमंग लमित्येतदनेनावेदितं नवति । आनंतर्येवा शब्दः । पंचदशाध्ययनानंतरं तदर्थसंग्राहीदं षोमशमध्ययनं प्रारन्यते । अथानंतरमाह नगवानुत्पन्नदिव्यज्ञानः सदेवमनुजायां पर्षदी दं वक्ष्यमाणमाह । तद्यथा । एवमसौ पंचदशाध्ययनोक्तार्थयुक्तः ससाधुर्दांतइंद्रियदमने न द्रव्यनूतोमुक्तिगमनयोग्यत्वात् द्रव्यंच नव्येइति वचनात् रागद्वेषकालिकायद्रव्यरहित

अर्थ-( एछविसमणे के० ) जे माह्णना लक्षण कह्या ते अंहीं सर्व जाणवा वली श्रमणना विशेष कहेछे जे ( अणिस्सिए के० ) अनाश्रित अप्रतिबंध विहारी तथा ( अणियाणे के० ) नियाणा रहित ( आदाणंच के० ) कषाय थकी रहित ( अतिवायं च के० ) अतिपातंच एटले जीवहिंसा तथा ( मुसावायंचके० ) मृषावाद (बहिद्धंचके०) मैथुन परिग्रह ए सर्वने ज्ञ परिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे एटले मूलगुण कह्या हवे उत्तर गुण कहेछे (कोहंचमाणंचमायंचलोहंच के०) क्रोध मान, माया तथा लोन अने (पिज्जंच के०) प्रेम शब्दे राग (दोसंच के०) द्वेष एने पण सम्यक् प्रकारें संसारना कारण जाणीने परिहरे (इच्चेव के०) एरीते ( जउजउ के० ) जे जे ( आदाणाउ के०) कर्मनो बंध ( अप्पणोपद्देसेहेऊ के० ) जे थकी पोताना आत्माने प्रदोष हेतु एटले अ वगुणना कारण देखे ( तउतउआदाणतो के० ) ते ते सावद्यानुष्टान थकी चारित्रिउ ( पुव्वंपडिविरते के० ) पूर्वेज एटले आगल थकीज आत्म हित वांछतो थको विरति करे ( पाणाइवायाए के० ) प्राणातिपात नकरे एवो छतो ( दंते के० ) दांत एटले इंद्रि यनो दमनार ( दविए के० ) द्रविक एटले मुक्तिगमन योग्य ( वोसट्ठकाए के० ) निष्प्र तिकर्म शरीरवालो एटले शरीरनी शुश्रूषायें रहित ( समणेत्तिवच्चे के० ) एवा गुणे स हित विशिष्ट श्रमण कहेवो. ॥ ३ ॥

॥ दिपीका—अत्रापि पूर्वोक्तगुणसमूहे वर्तमानः श्रमणोपि वाच्यः । एतद्गुणयुक्तेनापि नाव्यमित्याह । अनिश्रितोऽप्रतिबद्धशरीरादौ अनिदानोनिराकांक्षः । आदानं कषायः परिग्रहोवा अतिपातोहिंसा मृषावादं बहिद्धं मैथुनं । उक्तामूलगुणाः । उत्तरगुणानाह । क्रोधं मानं मायां लोनं च प्रेम द्वेषं च इत्यादिकं सम्यक् परिज्ञाय परिहरेदिति । एवं यतो यतः कर्मोपादानादपायं पश्यति प्रद्वेषहेतूंश्च ततस्ततोहिंसादिकादानात्पूर्वमेव प्रतिविरतो नवेत् विरतिं कुर्यादित्यर्थः। एवंनूतोदांतः शुद्धोऽव्यनूतोव्युत्सृष्टकायः श्रमणोवाच्यः॥३॥

॥ टीका—सांप्रतं श्रमणशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तमुन्नावयन्नाह । अत्राप्यनंतरोक्ते विरत्या दिके गुणसमूहे वर्तमानः श्रमणोपि वाच्यः । एतद्गुणयुक्तेनापि नाव्यमित्याह । निश्रये नाधिक्येन चाश्रितोनिश्रितः ननिश्रितोऽनिश्रितः क्वचिच्छरीरादावप्यप्रतिबद्धस्तथा न वि द्यते निदानमस्येत्यनिदानोनिराकांक्षोऽशेषकर्मक्षयार्थी संयमानुष्ठाने प्रवर्तेत तथा दीय ते स्वीक्रियते ऽष्टप्रकारं कर्म येन तदादानं कषायः परिग्रहः सावद्यानुष्ठानं वा तथाऽ तिपातनमतिपातः प्राणातिपातइत्यर्थः । तं च प्राणातिपातं ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्या नपरिज्ञया परिहरेदेवमन्यत्रापि क्रिया योजनीया। तथा मृषावादोऽलीकवादस्तं च तथा बहिद्धंति मैथुनपरिग्रहौ तौच सम्यक् परिज्ञाय परिहरेत् । उक्तामूलगुणाः । उत्तरगुणान

धिरुस्याद् । क्रोधमप्रीतिलक्षणं मानं स्तंनात्मकं मायां च परवंचनात्मकां लोनं मूर्छास्व नावं तथा प्रेमानिष्वंगलक्षणं तथा द्वेषं स्वपरात्मनोर्बाधारूपमित्यादिकं संसारावतरणमार्गं मोक्षाध्वनोपध्वंसकं सम्यक् परिज्ञाय परिहरेदिति । एवमन्यस्मादपि यतोयतः कर्मोपादनादिहामुत्र चानर्थहेतोरात्मनोपायं पश्यति प्रद्वेषहेतूंश्च ततस्ततःप्राणातिपातादिकादनर्थदंडदानात् पूर्वमेवानागतमेवात्महितमिछन् प्रतिविरतोनवेत् सर्वस्मादनर्थहेतुनूताड नयलोकविरुद्धा द्वा सावद्यानुष्ठानान्मुमुक्षुर्विरतिं कुर्यात् । यश्चैवंनूतोदांतः शुद्धोऽव्यन्नूतोनिष्प्रतिकर्मतया व्युत्सृष्टकायः सश्रमणोवाच्यः ॥ ३ ॥

एत्थवि निक्कू अणुन्नए, विणीए, नामए दंते दविए, वोसठका
ए, संविधुणीय विरूवरूवे, परीसहोवसग्गे, अप्नप्पजोगसुद्धा
दाणे, उवठिए, ठिअप्पा, संखाए परदत्तनोई निक्कूत्ति वच्चे ॥४॥

अर्थ–हवे निक्कु शब्दनो विशेष कहेछे ( एत्थवि निक्कू के० ) अंहीयां निक्कुने विषे पण जे पूर्वे ब्राह्मण श्रमणना गुण कह्या ते सर्व जाणवा अने वली अनेरा विशेष कहेछे ( अणुन्नए के० ) अनिमान रहित ( विणीए के० ) विनीत एटले विनयवंत ( नामए के० ) संयमने विषे आत्मानो नमाडनार (दंतेदविएवोसठकाए के०) ए त्रण शब्दना अर्थ पूर्ववत् जाणवा ( संविधुणीय के० ) सम्यक् प्रकारे सहन करे शुं सहन करे ते कहेछे ( विरूवरूवे के० ) विरूपरूप एटले अनुकूल प्रतिकूल एवा नाना प्रकारना ( परीसहोवसग्गे के० ) उपसर्ग परीसहने सहन करे तथा ( अप्नप्पजोगसुद्धादाणे के० ) अध्यात्मयोगे करी निर्मल चित्तने परिणामे शुद्ध चारित्रवंत थको ( उवठिए के० ) उपस्थित एटले चारित्रने विषे उठ्यो सावधान थयो ( ठिअप्पाके० ) परीसह उपसर्गे करी अंगजीतछे जेहनो आत्मा ( संखाए के० ) संसारनी असारता बोधिनुं डुर्लन पणु जाणतो ( परदत्तनोई के० ) पारका दीधेला आहारनुं जमनार एटले निर्दोष आहारी ( निक्कूत्तिवच्चे के० ) एवाने निक्कु कहेवो ॥ ४ ॥

---

॥ दीपिका–अत्रापि पूर्वोक्तमाहनशब्दप्रवृत्तिहेतवोत्रापि निक्कुशब्दप्रवृत्तिहेतवस्तएव ज्ञेयाः । अमी चान्ये अनुन्नतोमदरहितोनावनीतोनदीनः दांतोविनयेन नामकोगुर्वादौ नद्धोऽव्यनूतव्युत्सृष्टकायः सम्यक् विधूयापनीय विरूपान् नानाविधान् परीषहोपसर्गान् । परीषहा द्वाविंशतिः उपसर्गादेवादिकृतास्तद्विधूननं सम्यक् सहनं अध्यात्मयोगेन शुनचेतसा शुद्धं आदानं चारित्रं यस्य सतथा सम्यगुछितः संयमोद्यतः स्थितोमोक्ष

त्वाद्वा जात्यसुवर्णवत् शुद्धइव्यनूतस्तथा व्युत्सृष्टोनिष्प्रतिकर्मशरीरतया कायः शरीरं येन सनवति व्युत्सृष्टकायः। तदेवंनूतः सन् पूर्वोक्ताध्ययनार्थेषु वर्तमानः प्राणिनः स्थावरजंगमसूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकनेदनिन्नान् ( माहणत्ति ) प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनोनव ब्रह्मचर्यगुप्तिगुप्तोब्रह्मचर्यधारणाद्वा ब्राह्मणइत्यनंतरोक्तगुणकदंबकयुक्तः साधुमहितोब्राह्मणइति वा वाच्यः। तथा श्राम्यति तपसा खिद्यतइति कृत्वा श्रमणोवाच्योऽथवा समं तुल्यं मित्रादिषु मनोंतःकरणं यस्य ससमनाः सर्वत्रवासी चंदनकल्पइत्यर्थः। तथाचोक्तं। णत्थियसिकोइवेसो, इत्यादि। तदेवं पूर्वोक्तगुणकलितः श्रमणः सममनावा इत्येवं वाच्यः साधुरिति। तथा निक्षणशीलोनिक्षुर्निनत्ति वा ऽष्टप्रकारं कर्मेति निक्षुः ससाधुर्दांतादिगुणोपेतोनिक्षुरिति। तथा सबाह्याभ्यंतरग्रंथानावान्निर्ग्रंथः। तदेवमनंतरोक्तपंचदशाध्ययनोक्तार्थाऽनुष्ठायी दांतोइव्यनूतोव्युत्सृष्टकायश्च सनिर्ग्रंथइति वाच्यइति। एवं नगवतोक्ते सति प्रत्याह तच्छिष्योनगवन् नदंत नयांत नवांत इति वा योऽसौ दांतोइव्यनूतोव्युत्सृष्टकायः सन् ब्राह्मणः श्रमणोनिक्षुर्निर्ग्रंथइति वाच्यः। तदेतत्कथं यन्नगवतोक्तं ब्राह्मणादिशब्दवाच्यत्वं साधोरित्येतन्नोऽस्माकं ब्रूहि आवेदय महामुने यथावस्थितत्रिकालवेदिन्॥ १॥

इतिविरए सवपावकम्मेहिं, पिज्जदोसकलह, अप्नक्खाण, पेसुन्न, परपरिवाय, अरतिरति, मायामोस, मिठादंसणसल्ल, विरए, समिए सहिए, सयाजए, णो कुज्झे, णो माणी, माहणेत्ति, वच्चे॥२॥

अर्थ—एम शिष्यें पूठे थके हवे नगवंत ब्राह्मणादिक चार नामनो यथाक्रमे नेद सहित अर्थ कहेठे. ( इतिविरएसवपावकम्मेहिंके० ) जेणे प्रकारें सर्व पाप कर्मारंनक्रिया थकी निवर्त्यो (पिक्षके०) प्रेम ते राग अने (दोसके०) द्वेष ते अप्रीति (कलहके०) कुवचननुं बोलवुं ( अप्नक्खाणके० ) अन्याख्यान एटले अठता दोषनुं प्रकाशवुं ( पेसुन्नके० ) परना गुणनुं अण सहेवुं अने पारका दोषने प्रकाशवुं ( परपरिवायके० ) पारका दोष बीजा आगल प्रकाशवा ( अरतिके० ) संयमने विषे अरति ( रतिके० ) असंयम विषयादिकने विषे रति ( मायामोसके० ) परवंचना मृषा अलिक नाषानुं बोलवुं ( मिठादंसणसल्लके० ) मिथ्यादर्शन शल्य एटले अतत्वने विषे तत्वनी बुद्धि तेनेज शल्य कहिए ए सर्व थकी (विरएके०) विरत एटले निवर्त्योठे वली (समिएसहिएके०) पांच समितिए समिता थका ज्ञान दर्शन अने चारित्र सहित प्रवर्ते ( सयाजएके० ) सदा संयमने विषे प्रयत्न करे एटले सावधान थको रहे एवो ठतो (णोकुज्झेके०) कोइना उपर क्रोध नकरे तथा (णोमाणीके०) अनिमान रहित होय उपलक्षणथकी माया तथा लोनरहित एवा गुणे सहितजे होय ते ( माहणेत्तिवच्चेके० ) माहण एटले ब्राह्मण जाणवा॥ २॥

॥ दीपिका—इति पृष्टे भगवान् माहनादीनां चतुर्णामभिधानानामर्थमाचष्टे। इत्येवं पूर्वोक्ताध्ययनार्थवृत्तिर्विरतः सर्वपापकर्मेभ्यस्तथा प्रेम रागः द्वेषोऽप्रीतिरूपः कलहोरादिः अभ्याख्यानमसदभियोगः पैशुन्यं परगुणमत्सरेण तद्दोषोद्घट्टनं । परपरिवादः काक्कापरदोषापादनं अरतिः संयमे रतिर्विषयेषु । माया परवंचनं मृषावादोऽसदर्थाभिधानं मिथ्यादर्शनं तत्वेऽतत्त्वमतत्वेच तत्वमिति मतिः । तदेव शल्यं एतेभ्योविरतः । तथा समितः संगतः पंचसमितिभिः सहितोज्ञानादिभिः सदा यत्तः संयमे कस्यापि न कुप्येत नापि मानी । उपलक्षणात् मायालोभाभ्यामपि निवृत्तइत्यादि गुणकलितः साधुर्माहनइति वाच्यः ॥ २ ॥

---

॥ टीका—इत्येवं पृष्टोभगवान् ब्राह्मणादिनां चतुर्णामप्यभिधानानां कथंचिद्भेदाभिन्नानां यथाक्रमं प्रवृत्तिनिमित्तमाह । इत्येवं पूर्वोक्ताध्ययनार्थवृत्तिः सन् विरतोनिवृत्तः सर्वेभ्यः पापकर्मेभ्यः सावद्यानुष्ठानरूपेभ्यः सतथा तथा प्रेम रागाभिष्वंगलक्षणं द्वेषोऽप्रीतिलक्षणः कलहो द्वंद्वाधिकरणमभ्याख्यानमसदभियोगः पैशुन्यं परगुणासहनतया तद्दोषोद्घट्टनमितियावत्। परस्य परवादः काक्कापरदोषापादनं अरतिश्चित्तोद्वेगलक्षणा संयमे तथा रतिर्विषयाभिष्वंगोमाया परवंचनतया कुटिलमतिर्मृषावादोऽसदर्थाभिधानं गामश्वं ब्रुवतोभवति मिथ्यादर्शनमतत्त्वे तत्त्वाभिनिवेशस्तत्त्वेवा तत्त्वमिति । यथा । णत्थिणिब्बो कुणइकयं वेइ णत्थि णिव्वाणं ॥ णत्थिय मोरको वाउं छमिछत्तस्सठाणाइंइत्यादि । एतदेव शल्यं तस्मिंस्ततोवा विरतइति । तथा सम्यगितः समितईर्यासमित्यादिभिः पंचभिः समितिभिः समितइत्यर्थः । तथा सह हितेन परमार्थभूतेन वर्ततइति सहितः । यदिवा सहितोयुक्तोज्ञानादिभिस्तथा सर्वकालं यतः प्रयतः सत्संयमानुष्ठानेन तदनुष्ठानमपि न कषायैर्निःसारी कुर्यादित्याह । कस्यचिदप्यपकारिणोपि न कुप्येत आक्रुष्टः सन्न क्रोधवशगोभूयात् नापि मानी भवेत् डुष्कततपोयुक्तोपि न गर्वं विदध्यात् । तथा चोक्तं । जइ सो वि निज्जरमउ, पडिसिद्धो अठमाणमहाणेहिं ॥ अवसेसमयट्ठाणा परिहरियव्वा पयत्तेणं । अस्य चोपलक्षणार्थत्वाद्रागोपि मायालोभात्मकोन विधेयइत्यादिगुणकलितः साधुर्माहनइति निःशंकं वाच्यइति ॥ २ ॥

एछवि समणे अणिस्सिए, अणियाणे, आदाणंच, अतिवायंच, मुसावायंच वहिद्धंच,कोहंच,माणंच मायंच,लोहंच, पिज्जंच, दोसंच,इच्चेव जउजउ आदाणं अप्पणोपद्दोसहेऊ तउतउ आदाणतो पुव्वं पडिविरते,पाणाइवायाए दंते दविए वोसठ्ठकाए समणेत्ति वच्चे ॥३

मार्गे आत्मा यस्य सस्थितात्मा संख्याय ज्ञात्वा संसारासारतां परदत्तनोजी एवंगुण युतोनिक्षुर्वाच्यः ॥ ४ ॥

---

॥ टीका–सांप्रतं निक्षुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तमधिकृत्याह । अत्रापीति । ये ते पूर्वमुक्ताः पापकर्मविरत्यादयोमाहनशब्दप्रवृत्तिहेतवोऽत्रापि निक्षुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्ते तए वावगंतव्याः । अमी चान्ये । तद्यथा । न उन्नतोऽनुन्नतः शरीरेणोच्छ्रितः नावोन्नतस्तत्वनिमानग्रहग्रस्तस्तत्प्रतिषेधात्तपोनिर्जरांमदमपि न विधत्ते । विनीतात्मतया प्रश्रयवान् यतएतदेवाह । विनयालंकृतोगुर्वादावादेशदानोद्यतोऽन्यदा वात्मानं नामयतीति नामकः सदा गुर्वादौ प्रह्वोनवति । विनयेन चाष्टप्रकारं कर्म नामयति वैयावृत्त्योद्यतोऽशेषमप्यपनयतीत्यर्थः । तथा दांतइंद्रियनोइंद्रियाभ्यां तथा शुद्धात्मा शुद्धद्रव्यचूतोनिष्प्रतिकर्मतया व्युत्सृष्टकायश्च परित्यक्तदेहश्च । यत्करोति तद्दर्शयति । सम्यक् विधूयापनीय विरूपरूपान् नानारूपाननुकूलप्रतिकूलानुच्चावचान् द्वाविंशतिपरीषहान् तथा दिव्यादिकानुपसर्गांश्चेति । तद्विधूननं तु यत्तेषां सम्यक् सहनं तैरपराजितता परीषहोपसर्गांश्च विधूयाध्यात्मयोगेन सुप्रणिहितांतःकरणतया धर्मध्यानेन शुद्धमवदातमादानं चरित्रं यस्य सशुद्धादानोनवति । तथा सम्यग्ज्ञानेन सच्चारित्रोद्यमेनोत्थितस्तथा स्थितोमोक्षाध्वनि व्यवस्थितः परीषहोपसर्गैरप्यधृष्यआत्मा यस्य सस्थितात्मा तथा संख्याय परिज्ञायाऽसारतां संसारांतस्य दुष्प्रापतां कर्मभूमेर्बोधेः सुदुर्लनत्वं चावाप्य च सकलां संसारोत्तरणसामग्रीं सत्संयमकरणोद्यतः परैर्गृहस्थैरात्मार्थं निर्वर्तितमाहारजातं तैर्दत्तं नोक्तुं शीलमस्य परदत्तनोजी सएवं गुणकलितोनिक्षुरिति वाच्यः ॥ ४ ॥

एछवि णिग्गंथे, एगे, एगविऊ बुद्दे, संछिन्नसोए सुसंजते सुसमिते, सुसामाइए, आयवायपत्ते, विऊ डुहउवि सोयपलिछिन्ने, णोपूयणसक्कारलानछी, धम्मछी धम्मविऊ णियोगपडिवन्ने, समियंचरे, दंते दविए, वोसठकाए निग्गंथेत्ति वच्चे, ॥ ५ ॥

अर्थ–( एछविणिग्गंथेके० ) हवे निर्ग्रंथनो विशेष कहेछे. अंहींयां पण पूर्वला गुण सर्व लेवा वलीजे विशेष गुणछे ते कहेछे ( एगेके० ) एकलो राग द्वेष रहित तथा ( एगविऊबुद्धेके० ) पोताने एकलोज जाणे एटले संसारमां महारो कोइ संबंधी नथी एवो बुद्ध एटले तत्वनो जाण ( संछिन्नसोएके० ) सम्यक् प्रकारें जेणे आश्रवने छेद्योछे तथा ( सुसंजतेके० ) सुसंयत एटले काछवानी पेरें गुप्तेंद्रिय ( सुसमितेके० ) रुडी समितिए करी समितो (सुसामाइएके०) सुसामायिकवंत एटले जेने शत्रु मित्र समानछे

(आयवायपत्तेके०) आत्म वादे पहोतो एटले आत्माने वादे उपयोग लक्षण जीव असंख्य प्रदेशी जीव संकोच विकाशनो नजनार ड्व्य पर्यायरूप नित्यानित्य नेद निन्न पोताना करेला कर्मनुं नोगवनार इत्यादिक आत्मवादे पहोतो एटले आत्म तत्वनो जाण (विऊके०) तथा विद्वान् पंमित शुद्धमार्गनो जाण (डुहउविसोयप लिछिन्नेके०) तथा ड्व्य अने नावना नेदे करी बन्ने प्रकारना आश्रव रूपिया स्रोत जेणे परिछेद्याले तथा (णोपूयणसक्कारलानछीके०) पूजा सत्कारना लाननो अर्थी न थाय किंतु निर्ज्जरानो अर्थी थाय (धम्मछीके०) धर्मनो अर्थी (धम्मविऊके०) धर्मनो जाण शुद्धमार्गनो गवेषण हार (णियोगपडिवन्नेके०) नियोगप्रतिपन्न एटले मोक्षमार्गे पहोतो एवो ठतो (समियंचरेके०) समता आचरे एवो थको (दंतेदविएवोसठ्ठकाएके०) दांत डविक वोसठ्ठकाए तेने (निग्गंथेत्तिवच्चेके०) निर्ग्रंथ कहेवो ॥ ५ ॥

॥ दीपिका—अत्रापि गुणगणे वर्तमानोनिर्ग्रंथोवाच्यः । अमी चान्ये गुणाः । एकोरागद्वेषरहितः । एकमेव परलोकगामितयात्मानं वेत्तीत्येकवित् बुद्धस्तत्त्वज्ञः सम्यक् छिन्नानि नावस्रोतांसि आश्रवद्वाराणि येन ससंछिन्नस्रोताः सुसंयतः सुसमितः समितिनिः सुष्टु सामायिकं समनावोयस्य स तथा आत्मवादप्राप्तः सम्यगात्मस्वरूपवेदी विद्वान् ज्ञातसर्वपदार्थः द्विधा ड्व्यतोनावतश्च स्रोतांसि परिछिन्नानि येन सतया ड्व्यस्रोतांसि विषयेंड्यिप्रवृत्तयः । नावस्रोतांसि तु शब्दादिषु शुनाशुनेषु रागद्वेषोत्पत्तिः । तानि येन त्यक्तानि तथा नोपूजासत्कारार्थी तथा धर्मार्थी धर्मवित् नियोगोमोक्षस्तं प्रतिपन्नः समतां चरेत् कुर्यात् दांतोड्व्यनूतोव्युत्सृष्टकायः । एवंनूतः पूर्वोक्तमाहनादिगुणयुतश्च निर्ग्रंथोवाच्यः ॥ ५ ॥

॥ टीका—तथाऽत्रापि गुणगणे वर्तमानोनिर्ग्रंथइति वाच्यः । अमी चान्ये अपदिश्यंते । तद्यथा । एकोरागद्वेषरहिततया ठंज्ञाः । यदिवाऽस्मिन् संसारचक्रवाले पर्यटन्नसुमान् स्वकृतसुखडुःखफलनाक्त्वेनैकस्यैव परलोकगमनतया सदैकएव नवति । तत्रोद्यतविहारी ड्व्यतोप्येककोनावतोपि गह्यांतर्गतस्तु कारणिकोड्व्यतोनाज्योनावतस्त्वेककएव । तथैकमेवात्मानं परलोकगामिनं वेत्तीत्येकवित् न मे कश्चिद्दुःखपरित्राणकारी सहायोस्तीत्येवमेकवित् । यदिवैकांतेन विदितसंसारस्वनावतया मौनींड्मेव शासनं तथ्यं नान्यदित्येवं वेत्तीत्येकांतवित् अथवैकोमोक्षः संयमोवा तं वेत्तीति । तथा च बुद्धोऽवगततत्त्वः सम्यक् छिन्नान्यपनीतानि नावस्रोतांसि संवृतत्वात्कर्माश्रवद्वाराणि येन सतथा सुष्टु संयतः कूर्मवत्संयतगात्रोनिरर्थककायक्रियारहितः सुसंयतस्तथा सुष्टु पंचनिः समितिनिः सम्यगितः प्राप्तोज्ञानादिकं मोक्षमार्गमसौ सुसमितस्तथा सुष्टु समनावतया सामा

यिकं समशत्रुमित्रनावोयस्य ससुसामायिकः । तथात्मन उपयोगलक्षणस्य जीवस्यासंख्ये यप्रदेशात्मकस्य संकोचविकाशनाजः स्वकृतफलनुजः प्रत्येकसाधारणतया व्यवस्थितस्य इव्यपर्यायतया नित्यानित्याद्यनंतधर्मात्मकस्य वा वादश्चात्मवादस्तं प्राप्तश्चात्मवादप्राप्तः सम्यग्यथावस्थितात्मस्वतत्ववेदीत्यर्थः । तथा विद्वानवगतसर्वपदार्थस्वनावोन व्यत्ययेन पदार्थानवगच्छति । यतोयत् कैश्चिदनिधीयते तद्यथेकएवात्मा सर्वस्वनावतया विश्वव्यापी श्यामाकतंडुलमात्रोऽगुष्ठपर्वपरिमाणोवेत्यादिकोसद्भूताभ्युपगमः परिहृतोनवति । तथा विधात्मसद्भावप्रतिपादकस्य प्रमाणस्यानावादित्यनिप्रायः । तथा द्विधापीति इव्यतोनावतश्च । तत्र इव्यस्रोतांसि यथा स्वविषयेष्विंद्रियप्रवृत्तयः । नावस्रोतांसि तु शब्दादिष्वेवानुकूलप्रतिकूलेषु रागद्वेषोद्भवस्ताभ्युनयरूपाण्यपि स्रोतांसि संवृतेंद्रियतया रागद्वेषानावाच्च परिछिन्नानि स्रोतांसि येन परिछिन्नस्रोतास्तथानपूजासत्कारलानार्थी किंतु निर्जरापेक्षी सर्वास्तपश्चरणादिकाः क्रियाविदधति । एतदेव दर्शयति । धर्मः श्रुतचारित्राख्यस्तेनार्थः सएवार्थोधर्मार्थः सविद्यते यस्यासौ धमार्थीति । किमिति । इदमुक्तं नवति । नपूजाद्यर्थं क्रियासु प्रवर्तते अपितु धर्मार्थीति । किमिति । यतो धर्मं यथावत्तत्फलानि च स्वर्गावाप्तिलक्षणानि सम्यक् वेत्ति धर्मं च सम्यक् ज्ञानतः । यत्करोति तद्दर्शयति । नियोगो मोक्षमार्गः सत्संयमोवा तं सर्वात्मना नावतः ( प्रतिपन्ननियोगपडिवन्नोत्ति ) तथाविधश्च यत्कुर्यात् तदाह । ( समियंति ) समतां समनावरूपां वा शीतचंदनकल्पां चरेत् सततमनुतिष्ठेत् । किंनूतः सन्नाह । दांतोइव्यनूतोव्युत्सृष्टकायश्चैतद्गुणसमन्वितः सन् यत्पूर्वोक्तमाहनश्रमणनिकुशब्दानां प्रवृत्तिनिमित्तं तत्समन्वितश्च निर्ग्रंथइति वाच्यः । तेपि माहनादयः शब्दा निर्ग्रंथशब्दप्रवृत्तिनिमित्ताश्चविनानाविनोनवंति । सर्वेप्येते निन्नव्यंजनाश्चपि कथंचिदेकार्थाइति ॥ ५ ॥

से एवमेव जमह जाणहं नयंतारो त्तिबेमि ॥ ६ ॥ इतिखोडसमं गाहानामश्रयणं सम्मतं ॥ पढमो सुअखंधो सम्मत्तो ॥ १ ॥

अर्थ–हवे श्रीसुधर्म स्वामी जंबू प्रनृति साधु प्रत्ये कहेछे के ( सेएवमेवजाणहंजमह के० ) तमे एम जाणोके जे में कह्यो ते निश्चे करी सत्य छे एम जाणो कारणके हुं सर्वज्ञनी आज्ञायें कहुंछुं. ते सर्वज्ञ नगवंत तीर्थंकर देव परोपकारी केवाछे तोके (नयंतारो के०) महानय थकी राखनारछे माटे तेमना कहेला वचन हुं तमने कहुंछुं. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. एरीते श्रीसुधर्म स्वामियें जंबूस्वामि प्रत्यें कह्यो. ए गाहानामे सोलमां अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो. इति श्रीसुयगडांग सूत्रना प्रथम श्रुतस्कंधनो बालावबोध लेश्यार्थ समाप्तः ॥

॥ दीपिका–एते चत्वारोनिन्नाअपि कथंचिदेकार्थाइति। सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह। सेतत् यन्मयोक्तं एवमेव जानीत यूयं यस्मादहं सर्वज्ञाज्ञया वच्मि। नच नतोगवं नयात्रातारोवा सर्वज्ञाअन्यथा वदंति अतोमडुक्तमेवमेवावगञ्चतेति। इति समाप्तौ। ब्रवीमीति पूर्ववत्. ॥ ६ ॥ ॥ इति श्रीतपागञ्चाधिराजश्रीहेमविमलसूरीश्वरशिष्य हर्षकुलपंडितप्रणीतायां सूत्रकृतांगदीपिकायां गाथाषोडशाख्यं षोडशमध्ययनं समाप्तं ॥

---

॥ टीका–सांप्रतमुपसंहारार्थमाह। (सेएवमेवजाणहइत्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिप्रनृतीनुद्दिश्येदमाह। सेइति। तद्यन्मया कथितमेव जानीत यूयं। नान्योमद्वचसि विकल्पोविधेयः। यस्मादहं सर्वज्ञाज्ञया ब्रवीमि। नच सर्वज्ञानगवंतः परहितैकरता नयात्रातारोरागद्वेषमोहान्यतरकारणानावादन्यथा ब्रुवते। अतोयन्मयाऽऽदितः प्रनृति कथितं तदेवमेवावगञ्चेदिति। इति परिसमाप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत्। उक्तोनुगमः सांप्रतं नयास्ते च नैगमादयः सप्त। नैगमस्य सामान्यविशेषात्मतया संग्रहव्यवहारप्रवेशात्संग्रहादयः षट्। समनिरूढेवंनूतयोः शब्दनयप्रवेशान्नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दाः पंच। नैगमनस्याप्यंतर्नावाच्चत्वारोव्यवहारस्यापि। सामान्यरूपविशेषतया सामान्यविशेषात्मनोः संग्रहर्जुसूत्रयोरंतर्नावात्संग्रहर्जुसूत्रशब्दास्त्रयस्तेपि च द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकांतर्नावाद्द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकानिधानौ द्वौ नयौ। यदि वा सर्वेषामेव ज्ञानक्रिययोरंतर्नावात् ज्ञानक्रियानिधानौ द्वौ तत्रापि ज्ञाननयोज्ञानमेव प्रधानमाह क्रियानयश्च क्रियामिति। नयानांच प्रत्येकं मिथ्यादृष्टित्वाज्ज्ञानक्रियाश्च परस्परापेक्षतया मोक्षांगत्वाडुनयमात्रप्रधानं। तच्चोनयं सत्क्रियोपेते साधौ नवतीति। तथाचोक्तं। णायम्मिगिण्हियवे, अगिण्हियवंमि चेव अबंमि॥ जइ यवमेव इति जो उवएसो सो नउ नाम॥१॥ सवेसिंपि णयाणं, बहुविहवत्तवयं णिसामेत्ता॥ तं सवनयविसुद्धं जं चरणगुणहीउ साहुत्ति॥६॥ समाप्तं षोडशाख्यं षोडशमध्ययनं तत्समाप्तौ च समाप्तः प्रथमः श्रुतस्कंधइति॥

॥ इति श्रीद्वितीये सूत्रकृतांगे, गुर्जरनाषासहितः श्रीहर्षकुलकृतदीपिकायुक्तः शीलंगाचार्यकृतटीकासंयुतश्च, प्रथमः श्रुतस्कंधः समाप्तः॥

ॐ नमो श्री वीतरागाय

अथश्री द्वितीय सूत्रकृतांगे द्वितीय श्रुतस्कंधस्य बालावबोध

दीपिकासहितस्य टीकायुतस्य प्रारंभः

मूल गद्य--सुयं मे आउसंतेणं भगवया एव मक्खाय इह खलु पोंमरीए णामज्झयणे तस्सणं अयमट्ठे पन्नत्ते ॥१॥से जहा णामए पुक्करिणी सिया बहुउदगा बहुसेया बहुपुक्खला लद्धहा पुंमरिकिणी पासादिया दरिस णिया अभिरूवा पडिरूवा ॥२॥ तीसेणं पुक्करिणीए तत्थ तत्थ देसे देसे त हिं तहिं बहवे पउमवरपोंमरीया बुइया अणुपुव्वुट्ठिया ऊसिया रुइला वन्न मंता गंधमंता रसमंता फासमंता पासादिया दरिसणिया अभिरूवा पडि रूवा॥३॥तीसेणं पुक्करिणीए बहुमज्झदेसभाए एगेमहं पउमवरपोंमरीए बु इए अणुपुव्वुट्ठिए उस्सिते रुइले वन्नमंते गंधमंते रसमंते फासमंते पासा दीए जावपडिरूवे ॥ ४ ॥ सव्वावंतिचणं तीसेणं पुक्करिणीए तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे पउमवरपोंमरीया बुइया अणुपुव्वुट्ठिया ऊसिया रुइ ला जावपडिरूवा सव्वावंतिचणं तीसेणं पुक्करिणीए बहुमज्झदेसभाए ए गं महं पउमवरपोंमरीए बुइए अणुपुव्वुट्ठिए जावपडिरूवे॥५॥अह पुरिसे पुरिच्छिमाउ दिसाउ आगम्म तं पुक्करिणी तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा पासं ति तं महं एगं पउमवरपोंमरीयं अणुपुव्वुट्ठियं ऊसियं जावपडिरूवं तएणं से पुरिसे एवं वयासि अहमंसी पुरिसे खेयन्ने कुसले पंडिते वियत्ते मेहा वी अबाले मग्गट्ठे मग्गविऊ मग्गस्सगतिपराकमण्णू अहमेयं पउमव रपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से पुरिसे अभिक्कमेति तं पुक्क रिणी जावंजावंचणं अभिक्कमेइ तावंतावंचणं महंते उदए महंते सेए पहीणे तीरं अपत्ते पउमपरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरा पोक्क रिणीए सेयंसि निसण्णे पढमे पुरिसजाए ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे श्री सुधर्म स्वामि जंबू स्वामि प्रत्ये कहेछे (सुयंमेआउसंतेणं के०)

सांनल्युं ठे में आयुष्यवंत एवा ( नगवया के० ) नगवंते ( एवमरकाय के० ) एम कह्युं ठे ( इह के० ) ए वचन थकी सुयगडांगने बीजे श्रुतस्कंधे ( खलु ) ए शब्द वाक्यालंकारने अर्थे ( पोंमरीएणामझयणे के० ) पुंमरीक नामे अध्ययन ते पुंमरीक कमलनी उपमायें थशे ( तस्सणं के० ) ते कारणे एवो नाम कह्यो तेनुं ( अयमठेपन्नुते के० ) एजे आगल कहेशे ते अर्थ जाणवो ॥ १ ॥ ( सेज हाणामए के० ) ते जेमठे तेम कहेवो. नाम इति संनावनाने अर्थेठे. जेम कोइ एक ( पुरकरिणीसिया के० ) पुष्करणी एटले कमल सहित वावडीठे ते केवीठे तोके ( ब हुउदगाके०) घणो अगाध जेमां पाणीठे ( बहुसेयाके०) घणो जेमां कर्दमठे ( बहुपुरक लालछन्ना के०) घणो पुष्करणी पणो संपूर्णठे अर्थात् पुष्करणीनो अर्थ जेणे लाधोठे एटले जेवो नाम तेवा परिणामे एवी ( पुंमरिकिणी के० ) पुंमरिकिणी एटले श्वेत क मल सहित वावडीठे ( पासादिया के० ) निर्मल जले करीने प्रसन्न चित्त कारणीठे ( दरिसणिया के० ) घणा लोकने देखवा योग्यठे ( अनिरूवा के० ) जेने विषे सर्व काल हंस चक्रवाक गजमहिषादि रूपठे ते कारणे अनिरूपठे ( पडिरूवा के० ) स्वछ नाव थकी सर्व रूप प्रत्यें वंचेठे ते माटे प्रतिरूपठे ॥ २ ॥ ( तीसेणंपुरकरिणीए के० ) ते पुष्करणीने विषे ( तठतठदेसेदेसे के० ) त्यां त्यां ते ते प्रदेशे ( तहिंतहिंब हवेपठमरपोंमरीयाबुइया के० ) त्यां त्यां घणा प्रधान पुंमरीक नामे पद्म एटले कमल नगवंत श्रीमहावीर देवे कह्याठे ( अणुपुबुठिया के०) ते कमल आनुपूर्वियें उठ्या ( क सियाके०) पाणी थकी उपर वर्त्तेठे ( रुइलाके०) दीपता ( वन्नमंताके० ) प्रधान वर्ण वाला कमलठे ( गंधमंता के० ) सुगंधवाला ( रसमंता के० ) रसवाला ( फासमं ता के० ) सुकोमल स्पर्श सहित ठे ( पासादिया के० ) प्रासादनीक प्रसन्नचित्तकार णीक ( दरिसणिया के० ) लोकने देखवा योग्य ( अनिरूवा के० ) अनिरूप ( पडि रूवा के० ) प्रतिरूप ॥ ३ ॥ ( तीसेणंपुरकरिणीए के० ) ते पुष्करणीने विषे (बहुमझ देसनाए के०) घणा मध्य प्रदेशना नागने विचाले (एगेमहंपठमवरपोंमरीएबुंइए के०) एक महोटुं प्रधान पोंमरीक नामा कमल बोल्युंठे ( अणुपुबुठिए के० ) ते आनुपूर्वियें चडती चडती पांखडीयें करी उठ्योठे उस्सिते रुइले वन्नमंते गंधमंते रसमंते फासमं ते पासादीए जाव पडिरूवे एम यावत् प्रतिरूप सुधीना अर्थ पूर्ववत् जाणवा ॥ ४ ॥ ( सव्वावंतिचणं के० ) इत्यादिक सर्व समग्र नाव णं एवे वाक्यालंकारे जाणवा ( तीसे णंपुरकरिणीए के० ) ते पुष्करणीने विषे ( तठतठदेसेदेसे के० ) त्यां त्यां प्रदेशे एटले एवा समग्रनागोने विषे (तहिंतहिंबहवेपठमवरपोंमरीयाबुइयाके०) त्यां त्यां पूर्वोक्त गुण सहित एवा घणा पुंमरीक कमल बोल्याठे ते सर्व अणुपुबुठिया ऊसिया रुइला जावपडि

रूवा सवावंतिचणं इत्यादिक उपमायें जाणवा (तीसेणंपुरकरिणीएवहुमझदेसन्नाएके०) ते पुष्करणीना वहु मध्यदेश नागने विषे ( एगंमहं के० ) एक महोटुं ( पउमवरपोंमरिएवुइए के० ) प्रधान पौंमरिक. कमल बोल्योछे अणुपुब्बुछिए जावपडिरूवे सुधी अर्थ पूर्वे लखाइ गयुंछे ॥५॥ ( अहपुरिसेके० ) अथ हवे एक पुरुष ( पुरिछिमाउदिसाउके० ) पूर्वदिशा थकी (आगम्मके०) आवीने ( तंके० ) ते ( पुरकरिणींके० ) पुष्करणी ( तीसे पुरकरिणीएके०) तेपुष्करणीना (तीरेठिच्चाके०) तीरने विषे उनो रहीने (तंमहंएगंपउमवरपोंमरीयंके०) ते महोटुं एक पौंमरीक कमल पूर्वोक्त गुण सहित तेने (पासंतिके०)देखे ते कमलकेवो तोके अणुपुब्बुठियं उस्सियं जावपडिरूवं इत्यादिकना अर्थ पूर्वे लखाइ गयाछे एवी शोना सहित ते पौंमरीक कमलने देखीने ( तत्तेणं के० ) तेवारें ( सेपुरिसे के०) ते पुरुष ( एवंवयासि के० ) एम बोल्यो शुं बोल्यो ते कहेछे ( अहमंसीपुरिसे के० ) हुं पुरुषछुं परंतु केवोछुं तोके ( खेयन्ने के० ) परपीडानो जाण तथा अवसरनो जाण छुं ( कुसलेपंमिते के० ) डाह्यो पंमितछुं ( वियत्ते के० ) विवेक युक्त ( मेहावी के० ) परिणत बुद्धिवालो छुं ( अवाले के० ) वाल पणा रहित ( मग्गछे के० ) मार्गस्थ एटले मार्गने विषे स्थित रह्यो ( मग्गविक के० ) रूडा मार्गनो जाण ( मग्गस्सगति के० ) मार्गनी गतिना ( पराक्कमसू के० ) पराक्रम तेनो जाणछुं (अहमेपंके०) तेन्नणी हुं ए ( पउमवरपोंमरीयंके० ) प्रधान पौंमरीक कमलने ए पुष्करणी थकी ( उन्निक्खिस्सामित्ति के० ) उद्धरीश ( कट्टु के० ) एम करीने ( इतिवच्चा के० ) ए पूर्वोक्त वचन बोलतो जेटले ( सेपुरिसे के० ) ते पुरुष ( अनिक्कमेति के० ) पुष्करणी मांहे प्रवेश करेछे ( तंपुरकरिणीके०) ते पुष्करिणी मांहे (जावंजावंचणंअनिक्कमेइके० ) जेम जेम जायछे अतिक्रमेछे (तावंतावंचणंके०)तेम तेम ते पुरुष पुष्करणी मांहे (महंतेउदए के० ) महोटा अगाध पाणीने विषे ( महंतेसेए के० ) घणा कादवने विषे ( पहीणेतीरं के० ) एक कांठो मूकी वीजे कांठे ( अपत्तेके० ) अण पहोंतों एटले न पहोतो अने (पउमवरपोंमरीयंके०) पौंमरीक कमले पण पहोतो नही तेने उद्धरी पण शक्यो नही ( णोहव्वाए के०) कांठे रह्यो नही (णोपाराएके०) पार पण पाम्यो नही कमलपण लइ नशक्यो ( अंतरापोरकरिणीए के० ) विचाले पुष्करणी मांहेज ( सेयंसि के० ) कादवने विषे ( निसन्ने के० ) खुची रह्यो एटले वेहु तीर थकी ञ्रष्ट थयो अने कमलने पण उद्धरी न शक्यो अने पोते पण कादवमां खुची रह्यो नीकली शक्यो नही ( पढमेपुरिसजाए के० ) एटले प्रथम पुरुष जात जाणवो ॥ ६ ॥

---

॥ दीपिका—श्रीसूत्रकृतांगस्य प्रथमः श्रुतस्कंधउक्तः ॥ अथ द्वितीयः प्रारन्यते । त

स्य सप्ताध्ययनानि । तेषु प्रथमं पुंडरीकाध्ययनं तस्येदमादिसूत्रं । ( सुअंमेइति ) श्रुतं मया आयुष्मता नगवता एवमाख्यातं । इह प्रवचने । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । पौंड रीकाख्यमध्ययनं पुंडरीकेण श्वेतपद्मेन उपमा यत्र तत्पौंडरीकं । तस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः । णं वाक्यालंकारे ॥ १ ॥ तद्यथा । नामशब्दः संनावनायां । संनाव्यते पुष्करिणीदृष्टांतः पुष्कराणि पद्मानि यस्यां सा पुष्करिणी वापी स्यात् । किंनूता । बहूदका बहूदकप्रचुरा । सीयंते यस्मिन्नसौ सेयः कर्दमः सयस्यां बहुसेया बहुपुष्कला बहुसंपूर्णा लब्धोनामानु गतोर्थोयया सा लब्धार्था पुंडरीकिणी श्वेतपद्मप्रचुरा प्रासादिका निर्मला दर्शनीया शो नना । अनितः सर्वतोरूपाणि हंसचक्रादीनि यस्यां सा तथा प्रतिरूपा प्रतिबिंबवती नि र्मलत्वात्तस्यां सर्वत्र प्रतिबिंबानि वीक्ष्यंते ॥ २ ॥ तस्यां पुष्करिण्यां । तत्रतत्रेति पुंडरी केव्याप्तिमाह । देशेदेशे इत्यनेन तु एकैकप्रदेशे प्राचुर्यमाह । तस्मिंस्तस्मिन्नित्यनेन तु नास्त्येवासौ प्रदेशोयत्र तानि न संतीति । अथवा अत्यादरज्ञापनाय एकार्थान्येवैता नि त्रीणि पदानि । तेषु पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु बहूनि पद्मान्येव वराणि पौंडरीकाणि श्वेतशतपत्राण्युक्तानि आनुपूर्व्येण विशिष्टरचनया स्थितानि उच्छ्रितानि पंकजले अति लंघ्य उपरि व्यवस्थितानि रुचिं कांतिं लांतीति रुचिलानि दीप्तिमंति शोननवर्णगंधरस स्पर्शवंति प्रासादीयानि दर्शनीयानि अनिरूपाणि प्रतिरूपाणि ॥ ३ ॥ तस्यां पुष्करि ण्यां । णं वाक्यालंकारे । मध्यदेशे एकं पद्मवरमेव पुंडरीकमुक्तं शेषव्याख्या पूर्ववत् ॥४॥ ( सव्वावंतित्ति ) सर्वस्याअपि तस्याः पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु बहूनि पद्मानि तथा सर्व स्याश्च तस्याबहुमध्यदेशे पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं महदेकं पौंडरीकं वियतइति ॥ ५ ॥ अ थ पूर्वस्यादिशः कश्चिदेकः पुरुषः समागम्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे तटे स्थित्वा त तत्पद्मं प्रासादीयादिविशेषणं सपुरुषएवं वक्ष्यमाणं वदेत् । ( अहमंसित्ति ) अहमस्मि पुरुषः कुशलः पंडितः क्षेत्रज्ञोव्यक्तोबाल्यादतिक्रांतोमेधावी अबालोमध्यमवयामार्ग स्थः सद्भिराचीर्णमार्गस्थोमार्गवित् मार्गस्य या गतिर्गमनं तया पराक्रमं विवक्षितदेश गमनं तज्जानातीति मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः एवंविधोऽहमेतत्पद्मवरपुंडरीकं पुष्करिणी मध्यस्थं उत्क्षेप्स्यामि उत्खनिष्यामीति कृत्वा इहागतइत्युक्त्वा सपुरुषस्तां पुष्करिणीम निक्रामेत् संमुखं गच्छेत् । यावच्च यावच्च तदवतरणेच्छुः संमुखं गच्छेत्तावत्तावच्च । णं वा क्यालंकारे । तस्याः पुष्करिण्यामहदगाधमुदकं महांश्च सेयः कर्दमः । ततः समहाकर्दमोद काभ्यामाकुलः प्रहीणस्तीरं विनक्तिव्यत्ययात्तीराद्भ्रष्टः । अप्राप्तश्च पद्मवरपुंडरीकं । तस्याः सेयः कर्दमस्तस्मिन्निषण्णोनिमग्नस्तीरपद्मयोरंतरंतरालएव तिष्ठति ( नोहव्वाएत्ति ) नार्वाक् तटवर्ती ( नोपाराएत्ति ) नापि पारगमनाय समर्थः । एवमसावुजयभ्रष्टः प्रथमः पुरु षजातः पुरुषजातीयः ॥ ६ ॥

टीका--प्रथमंश्रुतस्कंधानंतरं द्वितीयः समारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतरश्रुतस्कंधे योर्थः समासतोऽभिहितोऽसावेवानेन श्रुतस्कंधेन सोपपत्तिकोव्यासेनाभिधीयते । तएव विधयः सुसंगृहीताभवंति येषां समासव्यासाभ्यामभिधानमिति । यदि वा पूर्वश्रुतस्कंधोक्तएवार्थोऽनेन दृष्टांतद्वारेण सुखावगमार्थं प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्य श्रुतस्कंधस्य संबंधीनि सप्त महाध्ययनानि प्रतिपाद्यंते । महांति च तान्यध्ययनानि च पूर्वश्रुतस्कंधाध्ययनेभ्योमहत्वादेतेषामिति । तत्र महच्छब्दाध्ययनशब्दयोर्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । णामंठवणा दविए खेत्ते काले तहेव भावेय ॥ एसो खलु महं तंमि निक्खेवो ठविहो होंति ॥ १ ॥ ( णामंठवणेत्यादि ) नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावात्मकोमहति षड्विधोनिक्षेपोभवति । तत्र नामस्थापने सुज्ञाते द्रव्यमहदागमतो नोआगमतश्च । आगमतोज्ञाता तत्र चानुपयुक्तः । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं सचित्तमिश्रभेदात्रिधा । तत्रापि सचित्तद्रव्यमहत्औदारिकं शरीरं तत्रौदारिकं योजनसहस्रपरिमाणं मत्स्यशरीरं वैक्रियं तु योजनशतसहस्रपरिमाणं । तैजसकार्मणे तु लोकाकाशप्रमाणे । तदेतदौदारिकवैक्रियतैजसकार्मणरूपं चतुर्विधं द्रव्यं सचित्तमहदचित्तमहत् समस्तलोकव्याप्यचित्तमहास्कंधः । मिश्रं तु तदेव मत्स्यादिशरीरं क्षेत्रमहत् लोकाकाशं कालमहत्सर्वाद्धाभावमहदौदयिकादिभावरूपतया षोढा । तत्रौदयिकोभावः सर्वसंसारिषु विद्यतइति कृत्वा बह्वाश्रयत्वान्महान् भवति । कालतोप्यसौ त्रिविधः । तद्यथा । अनाद्यपर्यवसितोऽभव्यानामनादिसपर्यवसितोभव्यानां सादिसपर्यवसितोनारकादीनामिति । क्षायिकस्तु केवलज्ञानदर्शनात्मकः साद्यपर्यवसितत्वात्कालतोमहान् क्षायोपशमिकोप्याश्रयबहुत्वादनाद्यपर्यवसितत्वाच्च महानिति । औपशमिकोपि दर्शनचारित्रमोहनीयानुदयतया शुभभावत्वेन च महान् भवति । पारिणामिकस्तु समस्तजीवाजीवाश्रयमहत्वान्महानिति । सान्निपातिकोप्याश्रयबहुत्वादेव महानिति उक्तं । महदध्ययनस्यापि नामादिकं षोढानिक्षेपं दर्शयितुं निर्युक्तिकृदाह । " णामंठवणा दविए खेत्ते काले तहेव भावेय ॥ एसो खलु अज्झयणे निक्खेवो ठविहो होंति " ॥ २ ॥ ( नामंठवणेत्यादि ) अध्ययनस्य नामादिकः षोढा निक्षेपः । सचान्यत्र भूयक्षेण प्रतिपादितइति नेह प्रतन्यते । अत्रच श्रुतस्कंधे सप्त महाध्ययनानि तेषामाद्यमध्ययनं पौंडरीकाख्यं तस्य चोपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि प्ररूपणीयानि । तत्रोपक्रमआनुपूर्वी,नाम,प्रमाण,वक्तव्यता,र्थाधिकार, समवतार, भेदात्षोढा । तत्र पूर्वानुपूर्व्यां प्रथममिदं पश्चानुपूर्व्यां सप्तमगच्छगतायाः श्रेण्याअन्योन्याभ्यासोने द्विरूपोने सति पंचाशच्छतान्यष्टत्रिंशदधिकानि भवंति नाम्नितु षट् । तत्रापि क्षायोपशमिके भावे सर्वस्यापि च श्रुतस्य क्षायोपशमिकत्वात्प्रमाणचिंतायां जीवगुणप्रमाणे वक्तव्यतायां सामान्येन सर्वेष्वध्ययनेषु स्वसमयवक्तव्य

ता। अर्थाधिकारः पौंडरीकोपमया स्वसमयगुणव्यवस्थापनं । समवतारेतु यत्र यत्र स मवतरति तत्रतत्र लेशतः समवतारितमेवेति । उपक्रमानंतरं निक्षेपः सच नामनिष्पन्ने निक्षेपे पौंडरीकमित्यस्याध्ययनस्य नाम तन्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह् । "णामंठवणा द विए, खेत्ते कालेय गणणसंगणे ॥ नावेय अठमे खलु, णिक्खेवो पुंडरीयस्स" ॥ ३ ॥ (णामंठवणेत्यादि) पौंडरीकस्य नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालगणनासंस्थापनजावात्मकोऽष्टधा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य द्रव्यपौंमरीकमनिधित्सुराह् । "जो जीवो नविउ खलु, उववज्जि कामो पुंडरीयस्स ॥ सोदव्वपुंडरीउ, जावंमि विजाणउ नणिउ" ॥४॥ (जोजीवोइत्यादि) यः कश्चित्प्राणधारणलक्षणोजीवोनविष्यतीति नव्यस्तदेव दर्शयति । उत्पत्तितुकामः समुत्पित्सुस्तथाविधकर्मोदयात्पौंडरीकेषु श्वेतपद्मेषु वनस्पतिकायविशेषेष्वनंतरनवे नावी सद्रव्यपौंमरीकः । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । नावपौंमरीकं त्वागमतः । पौंडरीकपदार्थज्ञस्तत्रे चोपयुक्तइति । एतदेव द्रव्यपौंडरीकं विशेषतरं दर्शयितुमाह् । "एगनविएयबद्धा, उएय अनिमुह्यि नामगोएय ॥ एते तिन्न देसा, दव्वंमिय पोंमरीयस्स" ॥ ५ ॥ एकेन नवेन गतेनानंतरनवएव पौंडरीकेषूत्पत्स्यते स एकनविकस्तथा तदासन्नतरः पौंडरीकेषु बद्धायुष्कस्ततोप्यासन्नतमोनिमुखनामगोत्रोऽनंतरसमयेषु यः पौंडरीकेषूत्पद्यते । अनंतरोक्ताएते त्रयोदेशविशेषाद्रव्यपौंमरीकेऽवगंतव्याइति । नूतस्य नाविनोवा नावस्य हि कारणं तु यल्लोके । तद्द्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितमिति वचनात् । इहच पुंडरीककंडरीकयोर्भ्रात्रोर्महाराजपुत्रयोः सदसदनुष्ठानपरायणतया शोननत्वमवगम्य तदुपमयाऽन्यदपि यच्छोननं तत्पौंडरीकमितरत्तु कंमकमिति । तत्र च नरकवर्जासु तिसृष्वपि गतिषु ये शोननाः पदार्थास्ते पौंमरीकाः शेषास्तु कांमरीकाइत्येतत्प्रतिपादयन्नाह् । "तेरिछिया मणुस्सा, देवगणा चेव होंति जेय वरा ॥ ते होंति पुंमरीया, सेसा पुण कंमरीयाउ" ॥ ६ ॥ (तेरिछियाइत्यादि) कंठ्या तत्र तिर्यक्षु प्रधानस्य पौंमरीकत्वप्रतिपादनार्थमाह् । "जलयर थलयर खयरा, जे पवराचेव होंति कंताय । जे वसनावमणुमया,ते होंति पुंमरीयाउ" ॥ ७ ॥ जलचरेषु मत्स्यकरिमकरादयः स्थलचरेषु सिंहादयोवलवर्णरूपादिगुणयुक्ताउरःपरिसर्पे मणिफणिनोनुजपरिसर्पेषु नकुलादयः खचरेषु हंसमयूरादयः इत्येवमन्येपि स्वनावेन प्रकृत्या लोकानुमतास्ते च पौंमरीकाइव प्रधानान्नवंति । मनुष्यगतौ प्रधानाविष्करणायाह् । "अरिहंत चक्कवत्ती जारणविज्जाहरा दसाराय ॥ जे अन्ने इतिमंता, तेहोंति पोंमरीयाउ ॥ ८ ॥ सर्वातिशायिनीं पूजामर्हतीत्यर्हतः । ते निरुपमरूपादिगुणोपेतास्तथा चक्रवर्तिनः षट्खंडनरतेश्वरास्तथाचारश्रमणावहुविधैश्वर्यनूतलब्धिकलापोपेतामहातपस्विनस्तथा विद्याधरावैताढ्यपुराधिपतयस्तथा दाशार्हाहरिवंशकुलोद्भवाः । अस्य चोपलक्षणार्थं

त्वादन्येपीक्ष्वाकादयः परिगृह्यंते । एतदेव दर्शयति । ये चान्ये महर्धिमंतोमहेन्यः को टीश्वरास्ते सर्वेपि पौंडरीकाजवंति । तु शब्दस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात् । येचान्ये विद्याक लापोपेतास्ते पौंडरीकाइति । सांप्रतं देवगतौ प्रधानस्य पौंडरीकत्वं प्रतिपादयन्नाह । जव एवइयाणमंतर, जोतिसवेमाणियाणि देवाणं ॥ जे तेसिं पवरा खलु, ते होंति पुंडरीयाउ ॥ ए ॥ जवनपतिव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकानां चतुर्णां देवनिकायानां मध्ये ये प्रवरा प्रधानाइंद्रेंद्रसामानिकादयस्ते प्रधानाइति कृत्वा पौंडरीकाजिधानाजवंति । सांप्रतमचित्त इव्याणां यत्प्रधानं तत्पौंमरीकत्वप्रतिपादनायाह । " कंसाणं दूसाणं, मणिमोत्तियसि लप्पवालमादीणं ॥ जे तेसिं पवरा खलु ते होंति पोंमरीयाउ ॥ १० ॥ कांस्यानां म ध्ये जयघंटादीनि दूष्याणां चीनांशुकादीनि मणीनामिंइनीलवैदूर्यपद्मरागादीनि रत्नानि मौक्तिकानां यान्यनेकवर्णसंस्थानप्रमाणाधिकानि । तथा शिलानां मध्ये पांमुकंबला दयः शिलास्तीर्थकृज्जन्माजिषेकसिंहासनाधारजूतास्तथा प्रवालानां यानि वर्णादिगुणोपे तान्यादिग्रहणाज्जात्यचामीकरं तद्विकाराश्वाजरणविशेषाः परिगृह्यंते । तदेवमनंतरोक्ता नि कांस्यादीनि प्रवराणि तानि चित्तपौंमरीकाख्यजिधीयंतइति । मिश्रइव्यपौंमरीकं तु ती र्थकृच्चक्रवर्त्यादयएव प्रधानकटककेयूराद्यलंकारालंकृताइति । इव्यपौंडरीकानंतरं क्षेत्र पौंमरीकाजिधित्सयाह । " जाइं खेत्ताइं खलु, सुहाणुजावाइं होंति लोगंमि ॥ देवकु रुमादियाइं, ताइं खेत्ताइं पवराइं " ॥ ११ ॥ ( जाइमित्यादि ) यानि कानिचिदिह देव कुर्वादीनि शुजानुजावानि क्षेत्राणि तानि प्रवरणानि पौंडरीकाजिधानानि जवंति । सां प्रतं कालपौंडरीकप्रतिपादनायाह । " जीवा जवहितीए, कायहितीए य होंति जे पवरा॥ ते होंति पौंमरीया, अवसेसा कंडरीयाउ ॥ १२ ॥ ( जीवाइत्यादि ) जीवाः प्राणिनोज वस्थित्या च ये प्रवराः प्रधानास्ते पौंडरीकाजवंति शेषास्त्वप्रधानाः कंमरीकाइति । तत्र जवनस्थित्या देवाअनुत्तरोपपातिकाः प्रधानाजवंति । तेषां यावज्जवं शुजानुजावत्वात्का यस्थित्या तु मनुष्याः शुजकर्मसमाचाराः सप्ताष्टजवप्रमाणानि मनुष्येषु पूर्वकोट्यायुष्के ष्वनुपरिवर्त्यानंतरजवे त्रिपल्योपमायुष्केषूत्पादमनुजूय ततोदेवेषूत्पद्यतइति कृत्वा ततस्ते कायस्थित्या पौंमरीकाजवंत्यवशिष्टास्तु कंडरीकाइति । कालपौंडरीकानंतरं गणनासंस्था नपौंडरीकद्यप्रतिपादनायाह । " गणणाए रज्जू खलु संगणं चेव होंति चउरंसं । ए याइं पोंमरीगाइं होंति सेसाइं इयराइं " ॥ १३ ॥ ( गणणाएइत्यादि ) गणनया संख्य या पौंमरीकं चिंत्यमानं दशप्रकारस्य गणितस्य मध्ये रज्जुगणितं प्रधानत्वात्पौंमरीकं । दशप्रकारं तु गणितमिदं । परिकम्मुरज्जुरासी, ववहारे तह कलासवणे य ॥ पुग्गलजावं तावे, घणे य घणवग्ग वग्गेय । एषां संस्थानानां मध्ये समचतुरस्रं संस्थानं प्रवर त्वात्पौंमरीकमित्येवमेते द्वे अपि पौंमरीके शेषाणि तु परिकर्मादीनि गणितानि न्यग्रो

धपरिमंमलादीनि च संस्थानानि इतराणि कंमरीकान्यप्रवराणि नवंतीति यावत्। सांप्रतं नावपौंमरीकप्रतिपादनाभिधित्सयाह। " उदएयउ वसमिए खलु, खइए य तहा खउ वसमिएय॥ परिणामसन्निवाए, जे पवरा ते वि ते चे व॥ १४॥ (उदयेइत्यादि) औदयिके नावे तथौपशमिके क्षायिकक्षायोपशमिके पारिणामिके सान्निपातिकेच नावे चिंत्यमानेषु तेषु वा मध्ये ये प्रवराः प्रधानास्तेप्यौदयिकादयोन्नावास्तएव पौंडरीकाएवावगंतव्यास्तथौदयिके नावे तीर्थकराअनुत्तरोपपातिकसुरास्तथान्येपि सितशतपत्रादयः पौंमरीका औपशमिके समस्तोपशांतमोहाः क्षायिके केवलज्ञानिनः क्षायोपशमिके विपुलमतिश्चतुर्दशपूर्वविदपरमावधयोन्यस्ताः समस्तावा पारिणामिके नावे न्नव्याः सान्निपातिके नावे द्विकादिसंयोगाः सिद्धादिषु स्वबुध्या पौंडरीकत्वेन योजनीयाः शेषास्तु कंडरीका इति। सांप्रतमन्यथानावपौंडरीकप्रतिपादनायाह। " अहवावि नाणदंसण, चरित्तविणए तहेव अक्षप्पे॥ जे पवरा होंति मुणी, ते पवरा पुंडरीयाउ॥१५॥ (अहवेत्यादि) अथवापि नावपौंडरीकमिदं। तद्यथा। सम्यक्ज्ञाने तथा सम्यग्दर्शने सम्यक्चारित्रज्ञानादिके विनये तथाऽध्यात्मनि च धर्मध्यानादिके प्रवराः श्रेष्ठामुनयोन्नवंति ते पौंमरीकत्वेनावगंतव्यास्ततोऽन्ये कंमरीकाइति। तदेवं संनविनमष्टधा पौंडरीकस्य निक्षेपं प्रदर्श्याधुनेह येनाधिकारस्तमाविर्नावयन्नाह। " एबं पुण अहिगारो, वणस्सतीकायपुंमरीएणं॥ नावंमि य समणेणं, अक्षयणे पुंमरीए य"॥१६॥ (एवंपुणेत्यादि) अत्र पुनर्दृष्टांतप्रस्तावे ऽधिकारोव्यापारः सचित्ततिर्यग्योनिकैकेंद्रियवनस्पतिकायद्रव्यपौंडरीकेन जलरुहेणवा औदयिकनाववर्तिना वनस्पतिकायपौंडरीकेण सितशतपत्रेण तथा नावे श्रमणेन सम्यग्दर्शनचारित्रविनयाध्यात्ममूर्तिना सत्साधुनाऽस्मिन्नध्ययने पौंडरीकाख्ये ऽधिकारइति। गता निक्षेपनिर्युक्तिरधुनासूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तेरवसरः। साच सूत्रे सति नवति। सूत्रंच सूत्रानुगमे सचावसरप्राप्तोऽतोऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं। (सुयंमेआउसंतेणमित्यादि) अस्य चानंतरं सह सूत्रेण संबंधोवाच्यः। सचायं। (सेएवमेवं जाणह जमहं नयंतारोत्ति) तमेव देवं जानीत नयस्य त्रातारं। तद्यथा। श्रुतं मयाऽऽयुष्मता नवतैवमाख्यातमादिसूत्रेण च सह संबंधोयं। तद्यथा। यद्भगवताख्यातं मया च श्रुतं तद्बुध्येतेत्यादि। किंतद्भगवताख्यातमित्याह। इह प्रवचने सूत्रकृत् द्वितीयश्रुतस्कंधे वा। खलुशब्दो वाक्यालंकारे। पौंडरीकानिधानमध्ययनं पौंडरीकेण सितशतपत्रेणात्रोपमा नविष्यतीति कृत्वाऽतोस्याध्ययनस्यपौंडरीकमिति नाम कृतं तस्य चायमर्थः। णमिति वाक्यालंकारे। प्रज्ञप्तः प्ररूपितः॥१॥ (सेजहत्ति) तद्यथार्थः सच वाक्योपन्यासार्थः। नामशब्दः संनावनायां। संनाव्यते पुष्करिणी दृष्टांतः। पुष्कराणि पद्मानि तानि विद्यंते यस्यामसौ पुष्करिणी स्यान्नवेदेवंनूता। तद्यथा वहुप्रचुरमगाधमुदकं यस्यां सा वहूदका वहूदकप्रचुरा

तथा सीयंतेऽवबध्यंते यस्मिन्नसौ सेयः कर्दमः सयस्यां सा बहुसेया प्रचुरकर्दमा च ब हुश्वेतपद्मसद्भावात् स्वछोदकसंनवाच्च बहुश्वेता वा तथा बहुपुष्कला बहुसंपूर्णा प्रचु रोदकनृतेत्यर्थः। तथा लब्धः प्राप्तः पुष्करिणीशब्दान्वर्थतयार्थोयया सा लब्धार्थाऽथवाऽऽ स्थानमास्था प्रतिष्ठा सा लब्धा यया सा लब्धास्था तथा पौंडरीकाणि श्वेतशतपत्राणि विद्यंते यस्यां सा पौंडरीकिणी। प्रचुरार्थेन मत्वर्थीयोत्पत्तेर्बहुपद्मेत्यर्थः। तथा प्रसादः प्र सन्नता निर्मलजलता सा विद्यते यस्याः मा प्रसादिका प्रासादावा देवकुलसन्निवेशा स्ते विद्यंते यस्यां समंततः प्रासादिका दर्शनीया शोजना सत्संनिवेशतोड्रष्टव्या दर्शन योग्या तथाऽनिमुख्ये च सदावस्थितानि रूपाणि राजहंसचक्रवाकसारसादीनि गजमहि पमृगयूथादीनि वा जलांतर्गतानि वा करिमकरादीनि वा यस्यां साऽनिरूपेति तथा प्र तिरूपाणि प्रतिबिंबानि विद्यंते यस्यां सा प्रतिरूपा। एतडुक्तं नवति। स्वछत्वात्तस्याः सर्वे प्रतिबिंबानि समुपलन्यंते तदतिशयरूपतया वा लोकेन तत्प्रतिबिंबानि क्रियते सा प्र तिरूपेति। यदिवा (पासादीयादरिसणीयाअनिरूवापडिरूवत्ति) पर्यायाइत्येते चत्वारो प्यतिशयरमणीयत्वख्यापनार्थमुपात्ताः ॥ २ ॥ तस्याश्च पुष्करिण्याः। णमिति वाक्याल कारे। तत्र तत्रेत्यनेन वीप्सापदेन पौंमरीकैर्व्यापकत्वमाह। देशेदेशे इत्यनेन त्वेकैकप्रदे शे प्राचुर्यमाह। तस्मिंस्तस्मिन्नित्यनेन तु नास्त्येवासौ पुष्करिण्याः प्रदेशोयत्र तानि न संतीति। यदिवा देशेदेशइत्येतत्प्रत्येकमनिसंबध्यते। तत्रतत्रेति। कोर्थोदेशेदेशे तस्मिंस्त स्मिन्निति चार्थोदेशैकदेशइति। यदिवा अत्यादरख्यापनायैकार्थान्येवैतानि त्रीण्यपि पदा नि। तेषु च पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु बहूनि प्रचुराणि पद्मान्येव वराणि श्रेष्ठानि पौंडरी काणि पद्मवरपौंडरीकाणि। पद्मग्रहणं उत्रव्याघ्रव्यवछेदार्थं। पौंडरीकग्रहणं श्वेतशतपत्र प्रतिपत्त्यर्थं। वरग्रहणमप्रधाननिवृत्त्यर्थं। तदेवंनूतानि बहूनि पद्मवरपौंडरीकाणि (वुइय त्ति) उक्तानि प्रतिपादितानि विद्यंतइत्यर्थः। आनुपूर्व्येण विशिष्टरचनया स्थितानि त थोछ्रितानि पंकजले अतिलंघ्योपरि व्यवस्थितानि तथा रुचिर्दीप्तिस्तां लांत्याददति रुचि लानि सद्दीप्तिमंति तथा शोजनवर्णगंधरसस्पर्शवंति तथा प्रसादीयानि अनिरुपाणि प्र तिरूपाणि ॥ ३ ॥ तस्याश्च पुष्करिण्याः सर्वतः पद्मावृतायाः। णमिति वाक्यालंकारे। ब हुदेशमध्यनागे निरुपचरितमध्यदेशे एकं महत्पद्मवरपौंडरीकमुक्तमानुपूर्व्येण व्यवस्थित मुछ्रितं रुचिलवर्णगंधरसस्पर्शवत् तथा प्रासादीयं दर्शनीयं अनिरूपतरं प्रतिरूपतरमि ति ॥ ४ ॥ सांप्रतमेदेवानंतरोक्तं सूत्रद्वयं सव्वावंतिचणंतीत्यनेन विशिष्टमपरं सूत्रद्वयं द्रष्टव्यं। अस्यायमर्थः (सव्वावंतित्ति) सर्वस्याअपि तस्याः पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु यथो क्तविशेषणविशिष्टानि बहूनि पद्मानि तथा सर्वस्याश्च तस्याबहुमध्यदेशनागे यथोक्तवि शेषणविशिष्टं महदेकं पौंडरीकं विद्यतइति। उनयत्रापि चः समुच्चये। णमिति वाक्यालंका

रे ॥ ५ ॥ अथानंतरमेवंभूतपुष्करिण्याः पूर्वस्यादिशः कश्चिदेकः पुरुषः समागत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे तटे स्थित्वा तदेतत्पद्मप्रासादादिप्रतिरूपांतविशेषणकलापोपेतं स पुरुषः पूर्वदिग्भागव्यवस्थितएवमिति वक्ष्यमाणनीत्या वदेत् ब्रूयात् । (अहमंसेत्ति) अहमस्मि पुरुषः । किंभूतः कुशलोहिताहितप्रवृत्तिनिपुणस्तथा पापाह्लीनः पंडितोधर्मज्ञो देशकालज्ञः क्षेत्रज्ञोव्यक्तोबालभावान्निष्क्रांतः परिणतबुद्धिर्मेधावी प्लवनोत्प्लवनयोरुपायज्ञस्तथा बालोमध्यमवयाः षोडशवर्षोपरिवर्ती मार्गस्थः सद्भिराचीर्णमार्गव्यवस्थितस्तथा सन्मार्गज्ञस्तथा मार्गस्य या गतिर्गमनं वर्तते तया यत्पराक्रमणं विवक्षितदेशगमनं तज्जानातीति पराक्रमज्ञः । यदिवा पराक्रमः सामर्थ्यं तज्ज्ञोहमात्मज्ञइत्यर्थः । तदेवंभूतविशेषणकलापोपेतोऽहमेतत्पूर्वोक्तविशेषणकलापोपेतं पद्मवरपौंडरीकं पुष्करिणीमध्यं देशावस्थितमहमुत्क्षेप्स्यामीति कृत्वेहागतइत्येतत्पूर्वोक्तं तत्प्रीत्योक्त्वाऽसौपुरुषस्तां पुपुष्करिणीमभिमुखं क्रामेत् अभिमुखं गच्छेद्यावद्यावच्चासौ तदवतरणाभिप्रायेणाभिमुखं क्रामेत्तावत्तावच्च । णमिति वाक्यालंकारे । तस्याश्च पुष्करिण्यामहदगाधमुदकं तथा महांश्च सेयः कर्दमस्ततोऽसौ महाकर्दमोदकाभ्यामाकुलीभूतः प्रहीणस्तद्विवेकेन रहितस्त्यक्त्वा तीरं सुब्व्यत्ययाद्वा तीरात्प्रहीणः प्रभ्रष्टोऽप्राप्तश्च विवक्षितं पद्मवरपौंडरीकं तस्याः पुष्करिण्यास्तस्यां वा यः सेयः कर्दमस्तस्मिन्निषण्णोनिमग्नआत्मानमुद्धर्तुमसमर्थस्तस्माच्च तीरादपि प्रभ्रष्टस्ततस्तीरपद्मयोरंतरालएवावतिष्ठते । यतएवमतः (नोहव्वाएत्ति) नार्वाक्तटवर्त्यसौ भवति (नोपाराएत्ति) नापि विवक्षितप्रदेशप्राप्त्या पारगमनाय समर्थोभवति । एवमसावुभयभ्रष्टोमुक्तमुक्तोलीवदनर्थायैव प्रभवतीत्ययं प्रथमः पुरुषएव पुरुषजातः पुरुषजातीयइति ॥ ६ ॥

अहावरे दोच्चे पुरिसजाए अह पुरिसे दक्खिणाउ दिसाउ आगम्म तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं महं एगं पउमवरपोंमरीयं अणुपुव्वुठियं पासादीयं जाव पडिरूवं तंच एछ एगं पुरिसजातं पासंति तं पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरा पोक्खरिणीए सेयंसि णिसन्ने तएणं से पुरिसे तं पुरिसं एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसे अखेयन्ने अकुसले अपंभिए अवियत्ते अमेहावी बाले णोमग्गछे णोमग्गविऊ णोमग्गस्सगतिपरक्कमणू जन्नं एस पुरिसे अहंखेयन्ने अहंकुसले जाव पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामि णो खलु एयं पउमवरपोंमरीयं एवं उन्निक्खेयव्वं जहा णं

एस पुरिसे मन्ने॥ ७ ॥ अहमंसि पुरिसे खेयन्ने कुसले पंमिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गन्ने मग्गविऊ मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामित्ति कट्टु इति वच्चा से पुरिसे अभिक्कमे तं पुक्करिणिं जावजावंचणं अभिक्कमेइ तावतावंचणं महंते उदए महंते सेए पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरा पोक्करिणीए सेयंसि णिसन्ने दोच्चे पुरिसजाते अहावरे तच्चे पुरिसजाते अह पुरिसे पच्छिमाउ दिसाउ आगम्म तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं एगं महं पउमवरपोंमरीयं अणुपुव्वुठियं जाव पडिरूवं ते तत्र दोन्नि पुरिसजाते पासंति पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए जाव सेयंसि णिसन्ने तएणंसे पुरिसे एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना अकुसला अपंमिया अवियत्ता अमेहावी बाला णोमग्गन्ना णोमग्गविऊ णोमग्गस्सगतिपरक्कमण्णू जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंमरीयं उणिक्खिस्सामो नोय खलु एयं पउमवरपोंमरीयं एवं उन्निक्खेतव्वं जहाणं एए पुरिसा मन्ने अहमंसि पुरिसे खेयन्ने कुसले पंमिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गन्ने मग्गविऊ मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा सेपुरिसे अभिक्कमे तं पुक्करिणिं जाव जावंचणं अभिक्कमे तावतावंचणं महंते उदए महंते सेए जावअंतरा पोक्करिणीए सेयंसि णिसन्ने तच्चे पुरिसजाए॥ ८ ॥ अहावरे चउत्थे पुरिसजाए अह पुरिसे उत्तराउ दिसाउ आगम्म तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं महं एगं पउमवरपोंमरीयं अणुपुव्वुठियं जावपडिरूवं ते तत्र तिन्नि पुरिसजाते पासंति पहीणे तीरं अपत्ते जाव सेयंसि णिसन्ने तएणं से पुरिसे एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना जावणोमग्गस्सगतिपरिक्कमण्णू जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामि

णो खलु एयं पउमवरपोंमरीयं एवं उन्निक्खेयव्वं जहा णं एते पुरिसा मन्ने अहमं सि पुरिसे खेयन्ने जाव मग्गस्सगतिपरक्कमसू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्नि क्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से पुरिसे तं पुक्करिणिं जावजावंचणं अन्निक्कमे ताव तावंचणं महंते उदए महंते सेए जाव णिसन्ने चउछे पुरिसजाए ॥ ए ॥

अर्थ– ( अहावरे के० ) अथ हवे प्रथम पुरुष अनंततर ( दोच्चेपुरिसजाए के० ) बीजो पुरुष जात कहेछे (अहपुरिसेके०) अथ हवे ए बीजो पुरुष ( दक्खिणाउदिसाउ आगम्म के० ) दक्षिण दिशा थकीआव्यो ( तंपुक्करिणिंके० ) ते पुष्करणीने विषे ( ती सेपुक्करिणीएतीरेठिच्चा के० ) ते पुष्करणीने कांठे उनो रहीने (तंमहंएगंपउमवरपोंमरी यंके०) ते महोटो प्रधान पोंमरीक कमलने ( पासंति के०) दीठो ते कमल केवोछे तो के अणुपुव्वुठियं पासादीयं जावपडिरूवं ) इत्यादिक पूर्ववत् शोनायें करी सहित छे (तंच के० ) त्यां ते पुरुषे ( एउके० ) अहीया (एगंपुरिसजातंपासंतिके० ) एक पुरुष जा त दीठो (तंपहीणेतीरेके०) ते पुरुष वावडीना कांठाथी ब्रष्ट ( पउमवरपोंमरीयंके० ) प्रधान पुंमरीक कमलने ( अपत्तेके० ) अण पाम्यो थको ( णोहव्वाएके० ) वावडीनो, बीजो कांठो अणपाम्यो ( णोपाराएके० ) कमल उद्धरवाने पण असमर्थ ( अंतरापोक्ख रिणीएके०) पुष्करणीने विचालें ( सेयंसिके० ) कादवमांहे ( णिसन्नेके० ) खुतोछे ( तए णंसेपुरिसेके० ) तेवार पछी ते पुरुष (तंपुरिसंके०) ते कादवमां खुचेला पुरुष प्रत्ये ( ए वंवयासीके० ) एम कहेवा लागो के ( अहोणंइमेपुरिसेके० ) अहो हे पुरुष अखेयन्ने अकुसले अपंमिए अवियत्ते अमेहावी बाले णोमग्गछे णोमग्गविक णोमग्गस्स गति परक्कमसू ए नव पदनुं अर्थ सुलनछे ( जन्नंएसपुरिसेके० ) जे कारणे ए पुरुष पोता ना आत्माने ( अहंखेयन्नेके० ) हुं खेदज्ञछुं ( अहंकुसलेके० ) हुंकुसलछुं ( जावपउम वरपोंमरीयंउनिक्खिस्सामिके० ) इत्यादिक जाणतो यावत् प्रधान पुंमरीक कमल हुं उ द्धरीश एवा नावे अहीं आव्यो परंतु (णोखलुएयंपउमवरपोंमरीयं के०) निश्चें थकी पुं मरीक कमल उद्धरी शक्यो नथी अने कादवमांज खूतोछे (एवंउन्निक्खेयव्वं जहाणंएसपुरि सेमन्नेके०) जेम तेपुरुष पोताने महोटो माह्यो मानीने कमल उद्धरवा गयो तेज विधिये ए बीजो पुरुष पण पोताने माने ॥७॥ (अहमंसिपुरिसेके०) हुं पुरुष खेयन्ने कुसले पंमिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गछे मग्गविक मग्गस्सगतिपरिक्कमसू इत्यादिक पोतामां मा ह्या पणो मानतो (अहमेयंके०) हुं ए (पउमवरपोंमरीयंउन्निक्खिस्सामित्तिके०) प्रधान पुं मरीक कमलने उद्धरीश ( कट्टुके० ) एमकरी ( इतिवच्चा के०) एवुं कहीने ( सेपुरिसे

के० ) ते पुरुष ( अनिक्कमेतंपुरकरिणिंके० ) ते पुष्करणीमां चाल्यो ( जावजावंचणंअ निक्कमेइके० ) जेम जेम ते कमल सामो आवीने मांहे प्रवेश कस्यो ( तावतावंचणं के० ) तेमतेम ( महंतेउदएके० ) उंमांपाणी मांहे ( महंतेसेएके० ) महोटा कादवमां हे खूतो ( पहीणेतीरंके० ) वाव्यनातीर थकी पण भ्रष्ट थयो (अपत्तेपउमवरपोंमरीयं के०) अने प्रधान पुंमरीक कमलने पण अण पाम्यो (णोहव्वाएके०) एक कांग थकी भ्रष्ट (णोपाराएके०) अने बीजा कांगने पण नपाम्यो तथा कमल पण उद्धरी नशक्यो (अंतरापोस्करिणीएके०) पुष्करणीने विचाले ज ( सेयंसिके० ) कादव मांहे ( णिसन्ने के० ) खूची रह्यो (दोच्चेपुरिसजातेके०) एटले बीजो पुरुष जात कह्यो. ॥ अथ हवे ए बीजो पुरुष कह्यानंतर त्रीजो पुरुष कहेछे ए त्रीजो पुरुष पश्चिमदिशा थकी आवी पुष्करणीने कांठे उनो रहीने आगला पुरुषनी पेरे समस्त वचन बोली कमल उद्धरवा ने अर्थे पुष्करणीमां प्रवेश कर्युं पण ते कमलने उद्धरी नशक्यो पोते पुष्करणीने अं तराले पाणी अने कादव मांहे खूतो एटले त्रीजो पुरुष जात कह्यो॥ ८ ॥ हवे चोथो पुरुष उत्तर दिशा थकी आवीने पुष्करणीने तीरे उनो रही आगला त्रण पु रुषनी रीतेज वचन बोली तेमनी पेरेज कमल उद्धरवाने पुष्करणी मांहे प्रवेश कस्यो परंतु तेपण कमल उद्धरी नशक्यो अने वाव्यने अंतरालें ते त्रण पुरुषोनीपेरे कादव मांहेज खूची रह्यो एटले चोथो पुरुष जात कह्यो ॥ ए ॥

॥ दीपिका–अथापरोद्वितीयः पुरुषजातः पुरुषइति । अथ कश्चित्पुरुषोदक्षिणदिग्भा गादागत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा पश्यति पद्मं तीरस्थश्च तं पूर्वस्थितं पुरु षमेकं पश्यति । तीराद्भ्रष्टं पद्ममप्राप्तं उनयभ्रष्टं दृष्ट्वा सद्वितीयः पुरुषस्तमेवं वदेत् अहोखेदे । णं वाक्यालंकारे । योयं कर्दमे निमग्नः पुरुषः सोखेदज्ञोऽकुशलोऽपंडितोऽ व्यक्तोमेधावी बालोन मार्गस्थोनोमार्गज्ञोनोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः । यस्मादेषपुरुषः कुश लइत्युक्त्वा पद्ममुत्क्षेप्स्यामीत्येवं प्रतिज्ञां कृतवान् । नचैतत् पद्ममेवमुत्क्षेप्तव्यं यथायं पुरु षोमन्यतइति नावः । शेषं सुगमं ॥ ७ ॥ ततः (अहमंसीत्यादि) अहमेवास्य पुंडरी कस्योत्क्षेपणे कुशलइतिनावः । शेषं सुगमं ( अहावरेतच्चेत्ति ) सुगमं । ॥ ८ ॥ ( अहा वरेचउठेत्ति ) सुगमं ॥ ए ॥

॥-टीका–अथ प्रथमपुरुषादनंतरमपरोद्वितीयः पुरुषजातः पुरुषइति । अथवेति वा क्योपन्यासार्थे । अथ कश्चित्पुरुषोदक्षिणदिग्भागादागत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च पुष्करि ण्यास्तीरे स्थित्वा तत्रस्थश्च पश्यति । महदेकं पद्मवरपौंडरीकमानुपूर्व्येण व्यवस्थितं प्रा सादीयं यावत्प्रतिरूपमत्र चास्मिंश्च प्रतीते तीरे व्यवस्थितस्तंच पूर्वव्यवस्थितमेकं पुरुषं

पश्यति। किंभूतं । तीरात्परिच्नष्टमनवाप्तपद्मवरपौंडरीकमुभयच्रष्टमंतरालएवावसीदंतं च दृष्ट्वा तमेवमवस्थं पुरुषं ततोसौ द्वितीयः पुरुषस्तं प्राक्तनं पुरुषमेवं वदेत् ॥ अहोइति खेदे। सर्वत्र णमिति वाक्यालंकारे। इष्टव्योयोयं कर्दमे निमग्नः पुरुषः सोखेदज्ञोऽकुशलोऽपंडितोव्यक्तोमेधावी बालोनमार्गस्थोनोमार्गज्ञोनोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः । अकुशलत्वादिके कारणमाह । यथस्मादेषपुरुषएतत्कृतवान् । यद्यहं खेदज्ञः कुशलइत्यादि नणित्वा पद्मवरपौंडरीकमुत्क्षेप्स्यामीत्येवं प्रतिज्ञातवान् । नचैतत्पद्मवरपौंडरीकमेवमनेन प्रकारेण यथाऽनेनोत्क्षेप्तुमारब्धं नैवमुत्क्षेप्तव्यं यथायं पुरुषोमन्यतइति ॥७॥ ततोहमेवा स्योत्क्षेपणे कुशलइति दर्शयितुमाह । (अहमंसीत्यादि) जावदोच्चेपुरिसाजाएत्ति। सुगमं ॥ ८ ॥ तृतीयं पुरुषमधिकृत्याह। (अहावरेतच्चेइत्यादि) सुगमं यावच्चतुर्थः पुरुष जातइति ॥ ९ ॥

अह भिक्खू लूहे तीरठी खेयन्ने जाव परक्कमण्णू अन्नतराउ दिसाउ वा अणुदिसाउ वा आगम्म तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं एगं महंतं पउमवरपोंमरीयं जावपडिरूवं ते तच्छ चत्तारि पुरिसजाए पासंति पहीणे तीरं अपत्ते जाव पउमवर पोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरापुक्करिणीए सेयंसि णिसन्ने तएणं से भिक्खू तं एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना जाव णो मग्गस्स गति परक्कमण्णू जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामो णो खलु एयं पउमवपोंमरीयं एयं उन्निखेतवं जहा णं एते पुरिसा मन्ने अहमंसि भिक्खू लूहे तीरठी खेयन्ने जाव मग्गस्स गतिपरक्कमण्णू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उण्णिक्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से भिक्खू णो अभिक्कमे तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा सद्दं कुज्जा उप्पयाहि खलु भो पउमवरपोंमरीया उप्पयाहि अहसे उप्पति ते पउमवरपोंमरीए ॥ १० ॥ किट्टिए नाए समणाउसो अठ्ठे पुण से जाणितवे भवति भंतेति समणं भगवं महावीरं बहवे निग्गंथाय निग्गंथीउय वंदंति नमंसंति वंदेत्ता नमंसित्ता एवं वयासि किट्टिए नाए समणाउसो अठ्ठं पुण से ण जाणामो समणाउसोत्ति समणे भगवं महावीरे तेय बहवे निग्गंथेय निग्गंथीउय आ

मंतेत्ता एवं वयासी हं नोसमणाउसो ते आइस्कामि विन्नावेमि किट्टेमि पवेदेमि सञ्चठं सहेउं सनिमित्तं नुज्जोन्नुज्जो उवदंसेमि सेवेमि ॥ ११ ॥

अर्थ-( अहके० ) हवे चोथा पुरुष नंतर पांचमो पुरुष कहेछे ते केवोछे तोके (नि स्कू के० ) निक्षुए शील पचन पाचनादिक सावद्यानुष्ठान रहित निर्दोष आहार नो जी (ल्हूहे के०) राग द्वेष रहित (तीरठी के०) संसार समुड्ना तीरनो अर्थी (खेयन्ने के० ) खेदज्ञ एटले समस्त जीवोना खेदनो जाए (जावपरक्कमस्सू के० ) यावत् मा र्गेनी गतिना पराक्रमनुं जाए अंहीबीजो आगलनो वर्णन सर्व करवो एवो जाए पुरु षते ( अन्नतराउदिसाउवाअणुदिसाउंवा के० ) अन्य कोइएक दिशा थकी अथवा वि दिशा थकी ( आगम्म के० ) आवीने ( तंपुस्करिणिं के० ) ते पुष्करणी ( तीसेपुस्करि णीएतीरेठिच्चा के० ) ते पुष्करणीने कांठे रहीने ( तंएगंमहंतंपउमवरपोंमरीयंके० ) ते एक महोटुं प्रधान पुंमरीक कमलने ( पासंति के० ) दीठो ( जावपडिरूवं के० ) ते क मल ज्यांलगे प्रतिरूप सुधी पूर्वे वर्णन करेलुंछे तेवो कमल दीठो ( तेतञ्चत्तारिपुरिसजा एपासंति के० ) तेणे त्यां चार पुरुषजात पूर्वोक्त चारदिशाना आवेला दीठा ते चारे पु रुष ( पहीणेतीरं के० ) वाव्यना तीर थकी भ्रष्ट अने ( अपत्तेजावपउमवरपोंमरीयंणो हवाएणोपाराए के०) पुंमरीक कमलने पण यावत् नथी पाम्या (अंतरापुस्करिणीएके०) वाव्यने विचाले (सेयंसि के०) कादव मांहे (णिसन्ने के०) खुताछे तेने देखीने (तएणंसे निस्कू के०) तेवार पछी ते निक्षु साधु (तं के०) ते चार पुरुषोने (एवंवयासि के०) एम बोल्यो (अहोणंइमेपुरिसा के०) अहो ए पुरुष बापडा (अखेयन्ना के०) अखेदज्ञ (जाव णोमग्गस्सगतिपरक्कमस्सू के० ) यावत् मार्गेनी गतिना पराक्रमना अजाए (जन्नंएतेपु रिसाके०) जेम ए पुरुष (एवंमन्नेके०) एम जाणे जे (अम्हेतंपउमवरपोंमरीयंउस्सिक्कि स्सामो के०) अमे ए कमल उद्धरी सुं तेवा विधियें उद्धरवाने अर्थे गया परंतु (णोख लु के०) निश्चे थकी नहीज (एयंपउमवरपोंमरीयंके०) ए पोंमरीक कमलने (एयंउन्निस्केत व्वं के० ) एम उद्धरी शके नही ( जहाणंएतेपुरिसामन्ने के० ) जेम ए चार पुरुष जाणे छे ते विधियें कमल उद्धरी शकाय नही ( अहमंसिनिस्कुल्हूहे के० ) जेमाटे हुं साधु राग द्वेष रहित ( तीरठी के० ) संसारना तीरनो अर्थी ( खेयन्नेके०) खेदज्ञ ( जावमग्ग स्सगतिपरक्कमस्सूके० ) यावत् मार्गेनी गतिना पराक्रमनुं जाए ( अहमेयंपउमवरपों मरीयंउस्सिक्किस्सामित्ति के० ) हुं ए पुंमरीक कमल निश्चे थकी उद्धरीश ( कट्टु के०) एम करीने ( इतिवच्चा के०) एवुं वचन कहीने ( सेनिस्कु के० ) तेसाधु ( णोअनिक्कमे तं पुस्क

रिणिं के० ) ते पुष्करणी मांहे पेठो नहीं ( तीसेपुरकरिणीएतीरेठिच्चा के० ) ते पुष्करणीने कांठे रहीनेज ( सदंकुज्जा के० ) शब्द करेछे ( उप्पयाहिखलुनोपउमवपोंमरीयाउप्पयाहि के० ) अहोपुंमरीक कमल ए पुष्करणी मांहेथी उपडीने बाहेर आव बाहेर आव एम बे वार कह्यो (अहसेउप्प तितेपउमवरपोंमरीएके०) हवे ते पुंमरीक कमल त्यांथी उपड्यो ॥१०॥ ( किट्टिए के०) हवे ए दृष्टांत देखाडीने (नाएसमणाउसोके०) श्रीमहावीर देव शिष्य आगले अंतर नाव मेलवेछे के अहो आयुष्मंत श्रमण महात्माउ तमने ए दृष्टांत कह्यो तेना ( अठे के० ) अर्थने ( पुण के० ) वली ( से के० ) ते ( जाणितवे नवति के० ) जाणोछो एम कहे थके तेवारे ( नंतेति के० ) हे नगवान् एवो शब्द कहीने ( समणंनगवंमहावीरं के० ) तपस्वी नगवंत श्रीमहावीरदेवने ( बहवेनिग्गंथाय के० ) घणानिर्ग्रंथ ( निग्गंथीउंयवंदंति के० ) घणी साधवी ते श्रीमहावीर देवने वांदे ( नमंसंति के० ) नमस्कार करे ( वंदेत्ता के० ) वंदना करीने ( नमंसित्ता के० ) नमस्कार करीने ( एवंवयासि के० ) एम बोल्या ( किट्टिएनाएसमणाउसो के०) के हे नगवंत श्रमणआयुष्मंत तमे जे दृष्टांत कह्यो तेना ( अठं के० ) अर्थने ( पुण के० ) वली ( से के० ) ते ( णजाणामो के० ) अमे नथी जाणता तेवारे श्रीमहावीर देव ( समणाउसोत्ति के० ) हे श्रमणो आयुष्मंत साधुउ एवो शब्द कहीने ( समणेनगवंमहावीरे के० ) श्रमण नगवंत श्रीमहावीर देव ( तेयबहवेनिग्गंथेय के० ) ते घणा निर्ग्रंथ ( निग्गंथीउंय के० ) घणी साधवीने ( आमंत्तेता के० ) आमंत्रण करीने ( एवंवयासी के० ) एम कहेछे ( हंनोसमणाउसोते के०) अहो साधुउ तमे पुछ्यो ते ( आइरकामि के०) हुं तमने कहुंछुं ( विनावेमि के० ) प्रगटार्थ कहुंछुं ( किट्टेमि के० ) तेना पर्याय कहुंछुं (पवेदेमिके०) हेतु दृष्टांते करी तमारे चित्तने सुगम थाय तेम कहुंछुं ( सअठं के०) अर्थ सहित ( सहेउंके०) हेतुये सहित (सनिमित्तंके०) कारण सहित (जुक्नोजुक्नो के०) वली वली (उवदंसेमिके०) देखाडीश (सेवेमिके०) ए हुं कहुंछुंते तमे सांनलो॥११॥

---

॥ दीपिका–अथ पंचमं पुरुषमाश्रित्याह । अथ निक्षुर्निर्दोषाहारनोजी रूक्षोरागद्वेषरहितस्तीरार्थी संसाराब्धितीराजिलाषी । खेदज्ञइत्यादिविशेषणानि पूर्वं व्याख्यातानि । यावन्मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः सचान्यतरस्यादिशोवा आगत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा तन्मह्देकं पद्मवरपौंडरीकं पश्यति तांश्चतुरः पुरुषान्पश्यति पंकनीरमग्नान् । दृष्ट्वा च सनिक्षुरेवं वदेत् अहो इमे चत्वारोपि पुरुषाअक्षेत्रज्ञाअकुशलान मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञाः । यस्मात्ते पुरुषाएवं ज्ञातवंतोयथा वयं पुंडरीकमुन्निक्षेप्स्यामउत्खनिष्यामः । नच तत्पुंडरीकमेवमुत्क्षेप्तव्यं यथैते मन्यंते । किंतु अहमस्मि निक्षुरूक्षोयावन्मार्गस्य ग

तिपराक्रमज्ञोऽहमेवैतत्पुंडरीकमुत्खनिष्यामीत्युक्त्वा सनिक्नुर्नातिक्रामेत्तां पुष्करिणीं न प्रविशेत्तस्यास्तीरे स्थित्वा तटस्थएव शब्दंकुर्यात् । तद्यथा । उत्पत हेपुंडरीक उत्पत इति शब्दश्रवणात्तडत्पतितं पुंडरीकं ॥ १० ॥ दार्ष्टांतिकं योजयन् श्रीवीरः शिष्यानाह । कीर्तिते कथिते ज्ञाते दृष्टांते हेश्रमणाआयुष्मंतोऽर्थः पुनरस्य ज्ञातव्योनवति नवद्भिः । एवमुक्ते नगवता बहवोनिर्ग्रंथानिर्ग्रंथ्यश्च श्रमणं नगवंतं महावीरं वंदंति कायेन नमस्यंति शब्दैः स्तुवंति । वंदित्वा नमस्कृत्वाच एवं वदेयुः । तद्यथा । कीर्तितं ज्ञातमुदाहरणं नगवता । अर्थं पुनरस्य न जानीमइति पृष्टोनगवान् तान् बहून्निर्ग्रंथादीनेवं वदेत् । हंतेति आमंत्रणे । हेश्रमणाआयुष्मंतोयन्नवद्भिरहं पृष्टस्तदाख्यामि आविर्नावयामि प्रकटयामि कीर्तयामि पर्यायैः प्रवेदयामि हेतुदृष्टांतैः । एकार्थिकान्येव वा एतानि कथमाख्यामीत्याह । सार्थः सहेतुरन्वयव्यतिरेकरूपः कारणं कार्यसाधनं तेन युतं नूयोनूयउपदर्शयामि ॥ ११ ॥

---

॥ टीका—सांप्रतमपरं पंचमं तद्विलक्षणं पुरुषजातमधिकृत्याह । ( अहनिक्खूहे इत्यादि ) अथेत्यानंतर्ये । चतुर्थपुरुषादयमनंतरः पुरुषस्तस्यामूनि विशेषणानि । निक्षणशीलोनिक्षुः पचनपाचनसावद्यानुष्ठानरहिततया निर्दोषाहारनोजी तथा रूक्षोरागद्वेषरहितः । तौहि कर्मबंधहेतुतया स्निग्धौ । यथाहि स्नेहानावाद्रजोन लगति तथा रागद्वेषानावात्कर्मरेणुर्नलगत्यतस्तद्रहितोरूक्षइत्युच्यते । तथा संसारसागरस्य तीरार्थी तथा क्षेत्रज्ञः खेदज्ञोवा । पूर्वं व्याख्यातान्येव विशेषणानि । यावन्मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः सचान्यतरस्यादिशोनुदिशोवाऽऽगत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा समंतादवलोकयेत्तां बहुमध्यदेशनागे तन्महदेकं पद्मवरपौंडरीकं पश्यति तांश्चतुरः पुरुषान् पश्यति यत्र च व्यवस्थितानिति । किंनूतांस्त्यक्ततीरानप्राप्तपद्मवरपुंडरीकान् पंकजलावमग्नान् पुनस्तीरमप्यागंतुमसमर्थान् दृष्ट्वाच तांस्तदवस्थान् ततोसौ निक्नुरेवमिति वक्ष्यमाणनीत्या वदेत् । तद्यथा । अहोइति खेदे णमितिवाक्यालंकारे । इमे पुरुषाश्चत्वारोपि अखेदज्ञायावन्नोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञायस्मात्ते पुरुषाएवं ज्ञातवंतोयथा वयं पद्मवरपौंडरीकमेवमनेन प्रकारेण यथैते मन्यंते तथोत्क्षेप्तव्यं । अपि त्वहमस्मिन् निक्नुरूपोयावन्नगतिपराक्रमज्ञएतद्गुणविशिष्टोऽहमेतत्पौंडरीकमुत्क्षेप्स्यामि उत्खनिष्यामि समुद्धरिष्यामीत्येवमुक्त्वाऽसौ नातिक्रामेत् तां पुष्करिणीं न प्रविशेत् । तत्रस्थएव यत्कुर्याच्चदर्शयति । तस्यास्तीरे स्थित्वा तथाविधं शब्दं कुर्यात्तद्यथा ऊर्ध्वमुत्पतोत्पत । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । हे पद्मवरपौंडरीक तस्याः पुष्करिण्यामध्यदेशात्त्वमुत्पतोत्पत । अथ तच्छब्दश्रवणानंतरं तडत्पतितमिति ॥ १० ॥ तदेवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं दर्शयितुकामः श्रीमन्म

हावीरवर्धमानस्वामी स्वशिष्यानाह । कीर्तिते कथिते प्रतिपादिते मयास्मिन् ज्ञाते उदाहरणे श्रमणाआयुष्मंतोऽर्थः पुनरस्य ज्ञातव्योनवति नवद्भिरेतडुक्तं नवति । नास्योदाहरणस्य परमार्थं यूयं जानीथैवमुक्ते नगवता ते बहवोनिर्ग्रंथानिर्ग्रंथ्यश्च तं श्रमणं नगवंतं महावीरं ते निर्ग्रंथादयोवदंति कायेन नमस्यंति तत्प्रव्हैः शब्दैः स्तुवंति वंदित्वा चैवं वक्ष्यमाणं वदेयुः । तद्यथा । कीर्तितं प्रतिपादितं ज्ञातमुदाहरणं नगवता अर्थं पुनरस्य न सम्यक् जानीमइत्येवं पृष्टोनगवान् श्रमणोमहावीरस्तान्निर्ग्रंथादीनेवं वदेत् । हंतेति संप्रेषणे । हेश्रमणाआयुष्मंतोयन्नवद्भिरहं पृष्टस्तत्सोपपत्तिकमाख्यामि नवतां तथा विनावयाम्याविर्नावयामि प्रकटार्थं करोमि तथा कीर्तयिष्यामि पर्यायकथनद्वारेणेति । तथा प्रवेदयामि प्रकर्षेण हेतुदृष्टांतैश्चित्तसंततावारोपयामि । अथ चैकार्थिकानि चैतानि कथं प्रतिपादयामीति दर्शयति । सहार्थेन दार्ष्टांतिकेन सार्थः वर्ततइति पुष्करिणीदृष्टांतस्तं तथा सह हेतुना अन्वयव्यतिरेकरूपेण वर्ततइति सहेतुस्तं तथानूतमार्गं प्रतिपादयिष्यामि यथा ते पुरुषाअप्राप्तप्रार्थितार्थाः पुष्करिणीकर्दमे डुरुत्तारे निमग्नाएवं वक्ष्यमाणास्तीर्थिकाअपारगाः संसारसागरस्य तत्रैव निमज्जंतीत्येवंरूपोर्थः सोपपत्तिकः प्रदर्शयिष्यते । तथा सह निमित्तेन उपादानकारणेन सहकारिकारणेन वा वर्ततइति सनिमित्तं सकारणं दृष्टांतार्थं नूयोऽपरैर्हेतुदृष्टांतैरुपदर्शयामि सोहं सांप्रतमेव ब्रवीमि शृणुत यूयमिति ॥ ११ ॥

लोयंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो पुक्करिणीबुइया कम्मंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो सेउदए वुइए कामन्नोगेयं खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से सेए बुइए जण जाणावयंच खलु मए अपाहट्टु समणाउसो तेवहवे पउमवरपोंमरीए वुइए रायाणंच से खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से एगे महंपउमवरपोंमरीए बुइए अन्नउत्थियाय खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो ते चत्तारिंपुरिसजाया बुइया धम्मंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से निक्कू बुइए धम्मतित्थंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो सेतीरे वुइए धम्मकहंच खलुमए अप्पाहट्टु समणाउसो से सहे बुइए निव्वाणंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से उप्पाए वुइए एवमेयंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से एवमेयं बुइयं ॥ १२ ॥

अर्थ–खलु इति वाक्यालंकारे ( लोयंचमएके० ) एलोक जे मनुष्य खेत्र ते में ( अप्पाहट्टु के० ) पोता थकी जाणीने ( समणाउसो के० ) अहोआयुष्मंत श्रमणो ( पुक्करिणीबुइयाके० ) पुष्करणी कही अने ( कम्मंचखलुमए के० ) अष्ट प्रकारना कर्म ते

में ( अप्पाहट्टुके० ) पोतायकी जाणीने ( समणाउसोके० ) हेसाधुउं ( सेउदएके० ) ते पाणी ( वुइएके० ) कह्यो ( कामजोगेयंके० ) कामजोगने खलुइति वाक्यालंकारे ( म एके० ) में ( अप्पाहट्टुके० ) पोता थकी जाणीने ( समणाउसोके० ) हेसाधुउं ( सेके० ) तेने ( सेएके० ) कर्दम ( वुइएके० ) कह्यो जेकर्दममांहे खुता थका जीव पोते पोताने उद्धरी नशके अने ( जणके० ) सामान्यलोक ते ( जाणवयंचके० ) जनपद एटले आर्य देशना उपना एवा अनेक लोक तेने ( खलु मएके० ) में निश्चेकरी ( अप्पाहट्टुके० ) पोतायकी जाणीने ( समणाउसोके० ) हे आयुष्यमंत श्रमणो ( तेवहवेके० ) तेवा घणा एक ( पउमवरपोंमरीएवुइए के० ) पद्मकमलो कह्या तथा ( रायाणंचसेखलुमएआप्पा हट्टुसमणाउसोके० ) राजा जे सामान्य लोकना अधिपति केवायछे तेने में पोता थकी जाणीने हे श्रमणो ( एगेमहंपउमवरपोंमरीएवुइएके० ) एक महोटुं पुंमरीक कमल क ह्यो अने जे ( अन्नउत्थियायके० ) अन्यतीर्थिक क्रियावादि अक्रियावादि प्रमुख ( तेके० ) तेने ( खलुमएअप्पा हट्टुसमणाउसो के० ) में पोता थकी जाणीने हे श्रमणो ( चत्ता रिपुरिसजायावुइया के० ) चार पुरुष जात कह्या तेउ राजारूपमहोटो कमल तेने उ द्धरवाने असमर्थ कह्या अने ( धम्मंचखलुमएअप्पाहट्टुसमणाउसोसेनिक्खूवुइए के० ) जे श्रुतचारित्ररूप धर्म तेने में पोता थकी जाणीने हेश्रमणो निक्षु एटले अणगार कह्यो जेमां पुंमरीक कमलरूप राजाने उद्धरवानी समर्थाइ कही ( धम्मतित्थंचखलुम एअप्पाहट्टुसमणाउसो सेतीरेवुइए के० ) तथाजे धर्मतीर्थते निश्चें में पोता थकी जा णीने तीर एटले कांठो कह्यो ( धम्मकहंचखलुमएअप्पाहट्टुसमणाउसोसेसद्देवुइएके० ) तथा जेधर्म कथा ते निश्चें में पोता थकी जाणीने हे श्रमणो तेने में शब्द कह्यो ( नि व्वाणंचखलुमएअप्पाहट्टुसमणाउसोसेउप्पाएवुइए के० ) तथा जे मोक्षपद ते निश्चें में पोता थकी जाणीने हे श्रमणो तेने में कमलनो उद्धरवो कह्यो ( एवमेयंच के० ) ए पूर्वोक्त सर्व लोकादिकपदार्थ ते खलु शब्दवाक्यालंकारेंछे ( मएके० ) में ( आप्पाहट्टु के० ) आप थकी जाणीने ( समणाउसो के० ) हेश्रमणो आयुष्यमंतो ( सेएवमेयंवु इयंके० ) तेने पुष्करणी कमल प्रमुख एरीते में कह्या एटले सामान्य प्रकारें दृष्टांत क ह्यो हवे विशेष थकी राजा उद्धरणादिकनाव कहेछे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—लोकं मनुष्यक्षेत्रं । चशब्दः समुच्चये । खलुर्वाक्यालंकारे । मया ( अप्पा हट्टुत्ति) आत्मनि आहृत्य व्यवस्थाप्य अथवा आत्मना स्वयमाहृत्या ज्ञात्वा न परोपदे शतः सा पुष्करिणी उक्ता । कर्म चाष्टप्रकारं खलु मयात्मनि आहृत्य आत्मना वा आ हृत्य हेश्रमण आयुष्मन् तउदकमुक्तं पुंडरीकोत्पत्तिकारणं । कामश्छारूपा नोगामदन

व्यापाराः । सकर्दमः । यथा पंकेमग्नमात्मानमुद्धर्तुं दुःशक्यं । एवंविषयेष्वपीति विषय पंकयोः साम्यं । जनं सामान्यलोकं जानपदा आर्यदेशजातास्तानाश्रित्य तानिबहूनि पुंडरीकाणि उक्तानि राजानं चक्रवर्त्यादिकमाश्रित्य पद्मवरपुंडरीकमुक्तं । अन्यतीर्थिकानाश्रित्य ते चत्वारः पुरुषाउक्ताः । तेषां राजपुंडरीकोद्धरणे सामर्थ्याजावाद्धर्मं चाऽऽत्मन्याश्रित्य सनिक्षुरुक्तः । तस्यैव राजपुंडरीकोद्धरणेसमर्थत्वात् धर्मतीर्थं च खल्वाश्रित्य मया तत्तीरमुक्तं धर्मदेशनां चाश्रित्य मया सनिक्षोः संबधी शब्दउक्तः । निर्वाणं मोक्षंचाश्रित्य पुंडरीकस्योत्पातउक्तः । एवमेतल्लोकादिकं च खल्वात्मन्याश्रित्य मया श्रमणायुष्मन् से एतत्पुष्करिण्यादिकं दृष्टांतत्वेनकिंचित्साधर्म्यादेवमुक्तं ॥ १२ ॥

---

॥ टीका—तदधुना जगवान् पूर्वोक्तस्य दृष्टांतस्य यथास्वं दार्ष्टांतिके दर्शयितुमाह ॥ ( लोगंचेत्यादि ) लोकमिति मनुष्यक्षेत्रं । चशब्दउत्तरापेक्षया समुच्चयार्थः । खलुरिति वाक्यालंकारे । मयेत्यात्मनिर्देशः । योयं लोकोमनुष्याधारस्तमात्मन्याहृत्य व्यवस्थाप्य अपाहृत्य वा आयुष्मन् श्रमण आत्मनावा मयाऽऽहृत्य न परोपदेशतः सा पुष्करिणी प आधारजूतोक्ता । तथा कर्म चाष्टप्रकारं यद्बलेन पुरुषपौंडरीकाणि जवंति । तदेवंजूतं कर्म मयात्मन्याहृत्य आत्मनावा आहृत्यअपाहृत्य वा । एतडुक्तं जवति । हेश्रमण आयुष्मन् सर्वावस्थानां निमित्तजूतं कर्माश्रित्य तडुदकं दृष्टांतत्वेनोपन्यस्तं कर्मचात्र दार्ष्टांतिकं जविष्यति । तत्रेल्लामदनकामाः शब्दादयोविषयास्ते एव जुज्यंतइतिजोगाः । यदि वा कामाइल्लारूपामदनकामास्तु जोगास्तान् मयात्मन्याहृत्य सेयः कर्दमोऽनिहितस्तथा पंके निमग्नोडुःखेनात्मानमुद्धरत्येवं विषयेष्वासक्तोनात्मानमुद्धर्तुमलमित्येतत्कर्दमविषययोःसाम्यमिति । यथा जनं सामान्येन लोकं तथा जनपदे जवाजानपदाविशिष्टार्यदेशोत्पन्नाःगृह्यंते । ते चार्द्धषड्विंशतिजनपदोन्नवाइति तांश्च समाश्रित्य मया दार्ष्टांतिकत्वेनांगीकृत्य तानि तानि बहूनि पद्मवरपौंडरीकाणि दृष्टांतत्वेनाजिहितानि । तथा राजानमात्मन्याहृत्य तदेकं पद्मवरपौंडरीकं दृष्टांतत्वेनाजिहितं तथान्यतीर्थिकान् समाश्रित्य ते चत्वारः पुरुषजाताअजिहितास्तेषां राजपौंडरीकोद्धरणे सामर्थ्यवैकल्यात् । तथा धर्मंच खल्वात्मन्याहृत्य श्रमणायुष्मन् सनिक्षुः रूक्षवृत्तिरजिहितस्तस्यैव चक्रवर्त्यादिराजपद्मवरपौंडरीकोद्धरणसामर्थ्यसद्भावाद्धर्म तीर्थंच खल्वाश्रित्य मया तत्तीरमुक्तं । तथा सद्धर्म देशनां चाश्रित्य मया सनिक्षुसंबंधी शब्दोऽजिहितस्तथा निर्वाणं मोक्षपदझेषं कर्मक्षयरूपमीषत् प्राग्जाराख्यं जूजागोपर्यवस्थितक्षेत्रखंडं चात्मन्याहृत्य सपद्मवरपौंडरीकस्योत्पातोऽजिहितइति । सांप्रतं समस्तोपसंहारार्थमाह । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण एतल्लोकादिकंच खल्वात्मन्याहृत्याश्रित्य मया श्रमणायुष्मन् से एतत्पुष्करिण्यादिकं दृष्टांतत्वेन किंचित्साधर्म्यादेवमेतडुक्तमिति ॥ १२ ॥

इह खलु पाईणंवा पडीणंवा उदीणंवा दाहिणंवा संतेगतिया मणुस्सा न्न वंति अणुपुवेणं लोगं उववन्ना तं जहा आरियावेगे अणारियावेगे उ च्चागोत्तावेगे णीयागोयावेगे कायमंतावेगे रहस्समंतावेगे सुवन्नावेगे डु वन्नावेगे सुरूवावेगे डुरूवावेगे तेसिंचणं मणुयाणं एगे राया न्नवइ महयाहिमवंतमलयमंदरमहिंदसारे अच्चंतविसुद्धरायकुलवंसप्पसूते निरंतररायलरकणविराइयंगमंगे बहुजणबहुमाणपूइए सवगुणस मिद्धे खत्तिए मुदिए मुद्धाभिसित्ते माउपिउसुजाए देयप्पिए सीमंकरे सी मंधरे खेमंकरे खेमंधरे मणुस्सिंदे जणवयपिया जणवयपुरोहिए सेउक रे केउकरे नरपवरे पुरिसपवरे पुरिससीहे पुरिसआसीविसे पुरिसवर पोंमरीए पुरिसवरगंधहत्थी अड्ढे दित्ते वित्ते विछिन्नविउलन्नवणसय णासणजाणवाहणाइन्ने बहुधणबहुजातरूवरतए आउगपउगसंपउ त्ते विछडियपउरन्नत्तपाणे बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूते प डिपुन्नकोसकोठागाराउद्धागारे बलवं डुबलपच्चामिए उहयकंटयं म लियकंटयं उद्धयकंटयं निहयकंटयं अकंटयं उहयसत्तू निहयसत्तू मलि यसत्तू उद्धियसत्तू निज्जियसत्तू पराइयसत्तू ववगयडुभिरकमारिभयवि प्पमुक्कं रायवन्नउ जहाउववाइए जावपसंतडिंबडमररज्जं पसाहेमाणे विहरंति तस्सणं रन्नो परिसा न्नवइ उग्गा उग्गपुत्ता न्नोगा न्नोगपु त्ता इरकागाइ इरकागाइ नायगा नायगा कोरवा कोरवा नट्टा नट्टपुत्ता माहणा माहणपुत्ता लेठइ लेठइपुत्ता पसछारो पसछारोपुत्ता सेणावइ सेणावइपुत्ता ॥ १३ ॥ तेसिंचणं एगतीए सड्ढी न्नवइ कामंतं समणावा माहणावा संपहारिंसु गमणाए तछ अन्नतरेणं धम्मेणं पन्नत्तारोवयं ड म्मेणं धम्मेणं पन्नवइस्सामो सेएवंमायाणह न्नयंतारो जेहामए एस धम्मे सुयरकाए सुपन्नते न्नवइ ॥ १४ ॥

अर्थ–(इहखलुके०) ए मनुष्य लोक मांहे खलुइति वाक्यालंकारे (पाईणंवाके०) पूर्वदिशि (पडीणंवाके०) पश्चिमदिशि (उदीणंवाके०) उत्तरदिशि (दाहिणंवाके०) दक्षणदिशि ए चार दिशि अथवा विदिशिए (संतेगतियामणुस्सान्नवंतिके०) कोइ एक मनुष्य होय ते (अणु

पुवेणं के० ) अनुक्रमे (लोगं के० ) लोकपणे ( उववन्नाके०) उपना छे (तंजहा के०) ते देखाडेछे (आरियावेगे के०) एक आर्य मनुष्यते साढा पचीश देशना उपना (अणा रियावेगे के०) एक अनार्य देशना उपना ते संग यवन सबर बब्बरादिक जाणवा (उच्चागोत्तावेगे के०) एक उंचगोत्रना उपना (णीयागोयावेगे के०) एक नीचगोत्रना उपना (कायमंतावेगे के०) एक लांबा दीर्घ काय वाला ( रहस्समंतावेगे के० ) एक न्हस्व न्हानी काय वाला (सुवन्नावेगे के०) एक रुडा वर्ण वाला (डुवन्नावेगे के०) एक माठा वर्ण वाला ( सुरूवावेगे के० ) एक नला रूपवाला ( डुरूवावेगेके० ) एक माठा रूप वाला ( तेसिंचणंमणुयाणं के० ) ते मनुष्य मांहे वली ( एगेरायाजवइ के० ) एक राजा होय ते राजा केवोहोय तोके ( महयाहिमवंत के० ) महोटो हिमवंत ( मलय के०) मलयाचल ( मंदरके०) मेरुपर्वत (महिंद के०) महेंद्र एनी पेरे जेनु (सारेके०) सामर्थ्यपणुछे ( अच्चंतविसुद्धरायकुलवंसप्पसूतेके० ) अत्यंत निर्मल दोष रहित राजानु कुल उत्तम क्षत्रीयनो कुल तेने विषे जन्म पाम्याछे ( निरंतररायलरकण के० ) आंतरा रहितजे राजाना लक्षण तेणेकरी ( विराइयंगमंगे के० ) विराजमान एटले शोजायमानछे शरीरना अंगोपांग जेना ( बहुजण के० ) घणालोक ( बहुमाण के० ) घणो मान आपीने ( पूइए के० ) पूजेछे ( सव्वगुणसमिद्धे के० ) समस्त राजाना जे गुणछे तेणेकरी समृद्धिवान एटले संपूर्णछे (खत्तिएके० ) क्षत्रिय जातवंत ( मुदिए के० ) सर्वकाल प्रमोद सहित ( मुद्धानिसित्ते के० ) मातापितादिक परिवार मलीने राजानिषेक कीधोछे ( माउपिउसुजाए के० ) माता पिता सुजातवंतछे अथवा माता पितानो सुविनीत सुपुत्रछे (देयप्पिए के० ) वल्लन तथा करुणाना गुणे करी सहित (सीमंकरे के०) मर्यादानोकरनार (सीमंधरे के०) मर्यादानो धरनार ( खेमंकरे के० ) कल्याण नो करनार उपद्रवनो टालनार (खेमंधरे के०) कल्याणनो धरनार ( मणुस्सिंदे के० ) मनुष्यनुं इंद्र ( जणवयपिया के० ) जनपद एटले देशना लोकने पिता समान ( जणवयपुरोहिए के० ) जनपद एटले देशना लोकने शांतिनु करनार उपद्रवनुं निवारक (सेउकरे के० ) मार्गनो देखाडनार ( केउकरे के०) अद्भुत कार्यनो करनार (नरपवरेके०) मनुष्य मांहे प्रधान ( पुरिसपवरे के० ) पुरुषमांहे प्रधान ( पुरिससीहे के० ) पुरुष मांहे सिंह समान ( पुरिसआसीविसे के० ) पुरुष मांहे आशीविष सर्प समान अपराध खमे नही ( पुरिसवरपोंमरीए के० ) पुरुष मांहे प्रधान पुंमरीक कमल समान ( पुरिसवरगंधहत्थी के० ) पुरुष मांहे प्रधान गंध हस्ति समान ( अड्ढे के० ) धन धान्यादिके परिपूर्ण ( दित्ते के० ) दीपता (वित्ते के०) पहोला ( विच्छिन्न के० ) विस्तीर्ण एवा (विउल के०) विपुल एटले घणा (नवण के०) घर ( सयणासण के० ) पल्यंका

दिक श्राशन नड़ासन ( जाण के० ) पालखीप्रमुख ( वाहणाइसे के० ) गाडी घोडादिक तेणेकरीने श्राकीर्ण (बहुधण के०) घणो धन ( बहुजातरूव के० ) घणो सुवर्ण (रतए के०) घणो रजत एटले रुपु ( श्राउगपउगसंपउत्ते के० ) श्रर्थ लान बमणा वमणादिक तेहवो उपाय व्यापारादिक तेणे करी संयुक्तछे (विछडियपउरनत्तपाणे के० ) घणा नात पाणी लोक जमेछे विशेषे देवरावेछे ( बहुदासीदास के० ) घणा दासी तथा दासछे (गोके०) वृषन (महीस के०) नेंस ( गवेलग के० ) गाय गेटी गाडरा बकरी ते ( प्पनूते के० ) प्रनूत एटले घणाछे वली ( पडिपुस्सु के० ) प्रतिपूर्णछे ( कोसके० ) लक्ष्मीना नंमार ( कोठागारा के० ) धानना नंमार ( उद्धागारे के० ) खड्ग त्रिसूल नालादिकना नंमार ( बलवं के० ) पोते बलवंतछे ( डुब्बल के० ) डुर्बलछे ( पद्मामिए के० ) वैरी जेना ( उहतकंटयं के०) विणास्याछे समस्त गोत्री जेणे ( मलियकंटयं के० ) ऋद्धि अपहारीने मान नंग कीधाछे गोत्री जेणे ( उद्दयकंटयं के० ) उद्देश थकी काढयाछे गोत्री जेणे ( निद्दयकंटयं के० ) जेणे गोत्रीने हराव्याछे (श्रकंटयंके०) प्रतिमल्ल वैरीयें रहितछे (उहयसत्तूके०) विणास्याछे शत्रू जेणे (निहियसत्तूके०) जेणे शत्रुने हराव्याछे ( मलियसत्तूके० ) ऋद्धि अपहरीने मान नंग कस्याछे वैरी जेणे (उद्धियसत्तुके०) वद्देश थकी कढाव्याछे वैरी जेणे (निज्जियसत्तुके०) विशेष थकी जीत्याछे वश कस्याछे वैरी जेणे ( पराइयसत्तू के० ) तेना राज्यने लेवे करी पराजय पमाड्याछे शत्रु जेणे वली (ववगय के०) वपगत एटले गयाछे जेना राज्यने विषे शुं गयाछे ते कहेछे (डुन्निरकके०) डुकाल डुर्निक्ष ( मारिके० ) देवादिकना करेला मारी मरकीना नय (नयके०) वैरीना नय थकी (विप्पमुक्कके०) रहितछे (रायवन्नउके०) एरीते राजानुं वर्णन (जहाउववाइए के०) जेम उववाइ सूत्रमां वर्णन कस्योछे तेना सरिखो (जावपसंत के० ) ज्यांलगे उपशमाव्याछे ( मिंबमसरंरज्जं के० ) स्वचक्र परचक्रना नय ज्यां नथी एवो राज्य ( पसाहेमाणे के० ) पालतो थको ( विहरति के० ) विचरेछे ( तस्सणंरन्नो के० ) हवे तेराजानी ( परिसान्नवंति के० ) परपदा केवी होए ते कहेछे. ( उग्गाउग्गपुत्ता के० ) उग्रकुलना उपना ते उग्रकुलना पुत्र ( नोगानोगपुत्ता के० ) नोगकुलना उपना ते नोगकुलना पुत्र (इस्कागाइइस्कागाइ के०) श्रीआदीश्वरनो वंश जे इक्ष्वाग तेना उपना ते इक्ष्वागवंशना पुत्र (नायानानायानाके०) ज्ञातकुलना उपना ते ज्ञातकुलना पुत्र (कोरवाकोरवा के०) कौरवकुलना उपना ते कौरवकुलना पुत्र (नटानटपुत्ताके०) सुनटकुलना उपना ते सुनटना पुत्र ( माहणामाहणपुत्ताके० ) ब्राह्मणकुलना उपना ते ब्राह्मणना पुत्र (लेछइलेछइपुत्ताके०) लक्षाधिपति वणिक् जाति विशेष तेना पुत्र ( पसडारोपसडारोपुत्ता के०) घणो जेने घरे लक्ष्मीनो विस्तार होय तेने घेर उपना ते

तेना पुत्र (सेणावइसेणावइपुत्ताके०) सेनाधिपतिना पुत्र इत्यादिक सनावर्णन थकी जाणवो.॥१३॥(तेसिंचणं के०) तेमांहे (एगतीएके०) कोइ एक पुरुष (सड्ढानवइके०) धर्म करवाने श्रद्धावंत धर्मार्थी होय तेने एवो (कामंतं के०) धर्मार्थी जाणीने (समणावा माहणावाके०) श्रमण ब्राह्मण मली (संके०) सम्यक् प्रकारे पोतानो धर्मप्रतिबोधवानिमित्त (पहारिंसुगमणाए के०) तेना समीपे आलोचवो चिंतवे ते केवो (तत्र अन्नतरेणंधम्मेणंपन्नत्तारोवयं के०) त्यां अमे अमारा धर्मना प्ररूपणहार आपणो धर्म प्ररूपशुं एवो आलोची राजाने संमुख आवी बोल्या (इम्मेणंधम्मेणंपन्नवइस्सामो के०) ए आगल कहे छे ते धर्म परूपशुं तेज कहेछे (सेएवंमायाणह के०) अमे धर्म कहीशुं ते एम जाणो (नयंतारो के०) अहो नय थकी राखनार (जेहामए के०) जेम ए प्रकारे अमारो (एसधम्मेसुयक्खाएसुपन्नत्तेनवइ के०) ए धर्म स्वाख्यात स्वप्रज्ञप्तछे. ॥१४॥

॥ दीपिका–एवंसामान्येन दृष्टांतयोजनामुक्त्वा विशेषेण तामाह । (इहेति) इहास्मिन् लोके~। खलुर्वाक्यालंकारे । प्राच्यां प्रतीच्यां दक्षिणायामुदीच्यामन्यतरस्यां वा दिशि संति विद्यंते एके केचन मनुष्या नवंति । आनुपूर्व्येणेमं लोकमाश्रित्योत्पन्नाः । तद्यथा । आर्याआर्यदेशोत्पन्नास्तदन्येऽनार्याएके उच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्राएके कायो महाकायः प्रांशुत्वं तद्विद्यते येषां ते कायवंतोन्हस्ववंतोवामनकुब्जादयः सुवर्णाः शोननकांतयोऽर्वर्णाः कृष्णरूक्षादिवर्णाएके सुरूपाएके डुष्टरूपास्तेषांमध्ये महान् कश्चिदेकोराजा नवति । किंनूतः । महाहिमवन्मलयमंदरमहेंद्राणामिव सारं सामर्थ्यं धनं वा यस्य सतथा । इत्येवं ·राजवर्णकोयावडुपशांतडिंबडमरं राज्यं प्रसाधयन् तिष्ठति । तत्र डिंबं परानीकनयं डमरं स्वराष्ट्रक्षोनः । तस्य च राज्ञः पर्षत् सना नवति । तद्यथा । उग्रातत्कुमाराश्च उग्रपुत्राः । एवं नोगपुत्रादयोपि ज्ञेयाः । (लेच्छइत्ति) लिप्सुकोवणिगित्यर्थः । प्रशास्तारोबुध्धुपजीविनोमंत्र्यादयः सेनापतयश्च एके ॥ १३ ॥ तेषां मध्ये कश्चिदेवैकः श्रद्धावान् धर्मलिप्सुर्नवति । कामं निश्चितं तं श्रद्धावंतं श्रमणावा तदंतिकगमनाय प्रधारितवंतस्तत्प्रतिबोधाय तत्समीपे गमनं चिंतितवंतः । तत्रान्यतरेण धर्मेण स्वसमयप्रसिद्धेन प्रज्ञापयितारोवयमिति विचिंत्य तं राजानं स्वकीयेन धर्मेण प्रज्ञापयिष्यामएवं संप्रधार्य राजांतिकं गत्वा एवमूचुः । यथाहं वदामि एवं नवंतोयूयं जानीत यथा येन प्रकारेण मयैषधर्मः स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोनवतीत्येवं तीर्थिकः स्वमतानुरागी राजादेः स्वानिप्रायेणोपदेशं ददाति । तत्राद्यः पुरुषस्तज्जीवतच्छरीरवादी राजानमुद्दिश्यैवं धर्मदेशनां चक्रे ॥ १४ ॥

॥ टीका–तदेवं सामान्येन दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोर्योजनां कृत्वाऽधुना विशेषणप्रधाननूत

राजदार्थांतिकं तडुद्धरणार्थत्वात्सर्वप्रयासस्येति दर्शयितुमाह । (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन्मनुष्यलोके । खलु वाक्यालंकारे । इहास्मिन् लोके प्राच्यां प्रतीच्यां दक्षिणायामुदीच्यामन्यतरस्यां वा दिशि संति विद्यंते एके केचन तथाविधामनुष्या आनुपूर्व्येणेमं लोकमाश्रित्योत्पन्नाभवंति तानेवानुपूर्व्येण दर्शयति । तद्यथेत्युपन्यासार्थः । आराद्याताः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्यास्तत्र क्षेत्रार्याअर्धषड्विंशतिजनपदोत्पन्नास्तद्व्यतिरिक्तास्त्वनार्याएके केचन भवंति । ते चानार्याः क्षेत्रोत्पन्नाअमी डष्टव्याः ॥ सगजगणसवरबब्बर,कायमुरुडोडगोडपक्किणिया ॥ आवगाहो णरोमय,पारसखसखासिया चेव ॥ १ ॥डोंबिलयतउसबोकस,भिल्लंधपुलिंदकोंचभमररुया ॥ कोंचाय चीण चंचुय,मालवदमिलाकुलंघाय ॥ २ ॥ केकयकिरीयहयमुह,खरउह तह तुरगमेंढयमुहाय ॥ हयकसागयकसा, असे य अणारिया वहवो ॥ ३ ॥ पावाय्चंडदंडा,अणारिया णिग्घिणा णिरणुकंपा ॥ धम्मोत्ति अरकराइं, जे सुण णऊंतिसुमिणेविइत्यादि । तथोच्चैर्गोत्रमिक्ष्वाकुवंशादिकं येषां ते तथाविधाएके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिनः । वाशब्दउत्तरापेक्षया विकल्पार्थः। तथा नीचैर्गोत्रं सर्वजनावगीतं येषांते तथा एके केचन नीचैर्गोत्रोदयवर्तिनोन सर्वे । वाशब्दः पूर्ववदेव । ते चोच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्रा वा । कायोमहाकायः प्रांशुत्वं तद्विद्यते येषां ते कायवंतस्तथा न्हस्ववंतोवामनककुब्जवडभादयएके केचन तथाविधनामकर्मोदयवर्तिनस्तथाशोभनवर्णाः सुवर्णाः प्रतप्तचामीकरचारुदेहास्तथा डुर्वर्णाः कृसरूक्षादिवर्णाएके केचन तथा सुरूपाः सुविभक्तावयवचारुदेहास्तथा डुष्टरूपाडुरूपावीभत्सदेहास्तेषां चोच्चैर्गोत्रादिविशेषणविशिष्टानां महान् कश्चिदेवैकस्तथाविधकर्मोदयाद्राजा भवति सविशेष्यते महाहिमवन्मलयमंदरमहेंद्राणामिव सारः सामर्थ्यं विभवोवा यस्य सतथा इत्येव राजवर्णकोयावडुपशांतडिंबडमरं राज्यं प्रसाधयंस्तिष्ठतीति । तत्र डिंबः परानीकम्भगालिकोडमरः स्वराष्ट्रक्षोभः। पर्यायावेतावत्यादरख्यापनार्थमुपात्तौइति । तस्य चैवंविधगुणसंपडुपेतराज्ञएवंविधा पर्षद्भवतीति । तद्यथा । उग्रास्तत्कुमाराश्चोग्रपुत्राः । एवं भोगपुत्रादयोपि डष्टव्याः ॥ शेषंसुगमं । यावत्सेनापतिपुत्रइति । णवरंलेछइत्ति । लिप्सुकः सवणिगादिस्तथा प्रशास्तारोवुध्युपजीविनोमंत्रिप्रभृतयः ॥ १३ ॥ तेषां च मध्ये कश्चिदेवैकः श्रद्धावान् धर्मलिप्सुः काममित्येवध्रुतार्थेऽवधृतमेतद्यथायं धर्मश्रद्धालुरवधार्य च तं धर्मलिप्सुतया श्रमणाब्राह्मणावा संप्रधारितवंतः समालोचितवंतोधर्मप्रतिबोधनिमित्तं तदंतिकगमनाय तत्र चान्यतरेण धर्मेण स्वसमयप्रसिद्धेन प्रज्ञापयितारोवयमित्येवं नाम संप्रधार्य तं राजानं स्वकीयेन धर्मेण प्रज्ञापयिष्यामएवं संप्रधार्य राज्ञोंतिकं गत्वैव भूचुः। तद्यथा। एतद्यथाहं कथयिष्यामि एवमितिच वक्ष्यमाणनीत्या भवंतोपूर्वं जानीत भयाभ्रातारोवा यथा येन प्रकारेण मर्यपधर्मः स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोभवतीत्येवं तीर्थिकः

स्वदर्शनानुरंजितोन्यस्यापि राजादेः स्वाभिप्रायेणोपदेशं ददाति । तत्राद्यः पुरुषजातस्त ज्जीवतच्छरीरवादी राजानमुद्दिश्यैवं धर्मदेशनां चक्रे ॥ १४ ॥

तं जहा उड्ढंपादतला अहे केसग्गमत्थया तिरियंतेयपरियंते जीवे एस आयापज्जवे कसिणे एसजीवे जीवति एसमय णोजीवइ सरीरे धरमाणे धरइ विणठंमिय णोधरइ एयं तं जीवियं भवति अदहणाए परेहिं निज्जइ अगणिज्झामिए सरीरे कवोतवन्नाणि अठीणि भवंति आसंदीपं चमापुरिसा गामं पच्चागछंति एवं असंते असंविज्जमाणे जेसिंतं असं ते असंविज्जमाणे तेसिंतं सुयरकायं भवति अन्नोभवति जीवो अन्नं सरीरं तम्हा तेएवं नोविपडिवेदेंति अयमाउसो आयादीहेतिवा हस्सेतिवा परिमंमलेतिवा वट्टेतिवा तंसेतिवा चउरंसेतिवा आयतेतिवा छलंसिए तिवा अठंसेतिवा किण्हेतिवा णीलेतिवा लोहियहालिद्दे सुक्किलेतिवा सुब्भिगंधेतिवा डुब्भिगंधेतिवा तित्तेतिवा कडुएतिवा कसाएतिवा अंबि लेतिवा महुरेतिवा कक्खडेतिवा मउएतिवा गुरुएतिवा लहुएतिवा सि एतिवा उसिणेतिवा निद्धेतिवा लुक्केतिवा एवं असंते असंविज्जमाणे जे सिंतं सुयरकायं भवति अन्नोजीवो अन्नंसरीरं तम्हा तेणो एवं उवलब्भंति १५

अर्थ—हवे त्यां आदि पुरुषजात ते तज्जीव तच्छरीरवादी जीव छे ते राजाने उद्देशी पोताना धर्मनी देशना आपेछे ( तंजहा के० ) ते जेमछे तेम कहेछे ( उड्ढंपादतला के० ) पगना तलीआ थकी उपरें अने (अहेकेसग्गमत्थया के०) मस्तकना केशाग्र थकी नीचे त था (तिरियंतेयपरियंते जीवेके०) तिर्छो त्वचा जे चामडी ते पर्यंत जीव जाणवो एटला सी म शरीर थकी निकलतो जीव जुदो देखातो नथी तेथीज जणायछे के तेज शरीर अने तेज जीव एटले ए शरीर तेहज जीवछे परंतु ए शरीर थकी आत्मा जुदोछे एम न जाणवुं (एसआयापज्जवेकसिणे के० ) ए जे शरीरछे तेहिज आत्मानुं संपूर्ण पर्याय अवस्था विशेष जाणवो ( एसजीवेजीवति के० ) जेटलो काल ए काया जीवे तेटलो काल ए जीव पण जीवे ( एसमयणोजीवइ के० ) ए शरीर मरण पामे तेवारे जीव पण म रण पामे पण णोजीवइ एटले जीवे नहीं ( सरीरेधरमाणेधरइ के० ) ए शरीर ज्यां सुधी पांचभूतने धरे त्यां सुधी आत्माने पण धरे ( विणिठंमिय णोधरइके०) ए शरीर विणठे

ठते जीवनो पण विनाश थाय एोधरइ एटले पछी जीवने धरी न शके ( एयंतंजीवियंनवति के० ) ए जीवनो जीवितव्य ठे तेथी शरीर विणशे थके आत्मा पण विणशे एवो करीने ( अद ह णाएपरेहिंनिज्जइके० ) अन्यलोक बालवाने अर्थे स्मशानादिकने विषे लेइजाय (अगणि ज्ञामिएसरीरे के०)तेवारे अग्नीयें करी शरीर प्रज्वाले ठते त्यां निःकेवल(कवोतवन्नाणिके०) कपोत वर्ण ( अठीणिजवंति के०) अस्थि एटले हाम देखायठे परंतु तेथकी अन्य आ त्मादिक पदार्थ कोइ देखाय नहीं के जे थकी आत्मानुं अस्तिपणु अमे जाणीयें (आ संदीपंचमापुरीसागामंपच्चागच्छंति के० ) तथा पांचमो जेनो मांचोठे एवा चार पुरुष ते मुवेलाने प्रज्वालीने पोताने गामे आवे माटे जो आत्मा शरीर थकी जुदो होय तो श रीर थकी निकलतो देखाय अने ते जेवारे नथी देखातो तो जाणियें ठैए जे तेहिज शरीर अने तेहीज जीवठे (एवंके०) एरीते (असंतेके०) जीव अठतोठे (असंविज्जमाणे के० ) अविद्यमान जातो थको जाणवामां नथी आवतो ( जेसिंतंअसंते के० ) जेनो ए पक्षठे के जीव अठतोठे ( असंविज्जमाणे के० ) अविद्यमानठे जेनो एवो पक्षठे ( तेसिंतं के० ) तेनो ए पूर्वोक्त वचन ( सुयरकायंनवति के० ) स्वाख्यातठे एम जाण वो अने जेनो ( अन्नोनवतिजीवो के० ) जीव अन्यठे अने ( अन्नंसरीरं के० ) शरीर पण अन्यठे एवुं जे कहेठे ते गाफरी प्रवाहे पड्या थका ( तम्हा के० ) तस्मात् ( ते एवं के० ) ते एवो ( नोविपडिवेदेंति के० ) जे आगल कहेशे ते नथी जाणता. तेज कहेठे ( अयमाउसो के० ) अहो आयुष्मंत ए जीव शरीर थकी जुदो गणीए तो एनो शो प्रमाणठे ( आयादीहेतिवा के० ) आत्मा शुं दीर्घ एटले लांबोठे ( ह्रस्से तिवा के० ) किंवा न्ह्स्व एटले अंगुल अथवा तंडुल प्रमाण न्हानोठे ( परिमंमलेति वा के० ) किंवा चुडी अथवा चंद्र मंमलने आकारेंठे ( वट्टेतिवा के० ) किंवा वाटला लाडुने आकारेंठे ( तंसेतिवा के० ) किंवा त्रिखूणा सीघोडाने आकारेंठे ( चउरंसेति वा के० ) चोखूणोठे (आयतेतिवा के० ) थांना सरीखो लांबोठे (ठलंसिएतिवाके०) ठखूणा ठहांशनोठे ( अठंसेतिवा के० ) आठहांसनो आठ खूणोठे ( किएहेतिवाके०) काले वर्णठे (णीलेतिवा के० ) नीले वर्णठे ( लोहियहालिद्दसुक्किलेतिवा के० ) लाल वर्णठे किंवा हलदर जेवा पीले वर्णठे किंवा उज्वले वर्णठे ( सुब्भिगंधेतिवा के० ) सु रभिगंध कपूर समानठे ( डुब्भिगंधेतिवा के० ) डुर्गंध गुमडादि समानठे अथवा रस आश्री ( तित्तेतिवा के० ) तीखो रस मिरची समानठे ( कडूएतिवा के० ) कडवुंरस नीमडा समानठे ( कसाएतिवा के०) कसायलो काचाफल समान रसवालोठे (अंबिलेति वा के० ) खाटा रस समानठे ( महुरेतिवा के० ) मिसरी समान मधुर रसेंठे तथा स्पर्शआश्री ( कक्कडेतिवा के० ) कर्कश खरखरो फरशठे ( मउएतिवा के० )

आकतुल समान सुंहालो फरशछे ( गुरुएतिवा के० ) लोहवत् नारी फरशछे ( लहुएति वा के० ) अर्कतुलवत् हलवो फरशछे ( सिएतिवा के० ) शीतल फरशछे ( उसिणेति वा के० ) उन्न फरशछे ( निद्धेतिवा के० ) चीकणो फरशछे ( लुक्खेतिवा के० ) लुखो फरशछे एटला फरश मांथी आत्मानो कयो फरशछे ( एवंअसंतेअसंविज्जमाणेजेसिं के० ) ए कारण माटे जे आत्माने अछतो अविद्यमान कहे ( तंसुयक्खायंनवति के० ) तेनो पक्ष नलो स्वाख्यात जाणवो वली जे ( अन्नोजीवो के० ) अन्य जीव ( अन्नंस रीरं के० ) अने शरीर पण अन्यछे एम कहेछे ( तम्हाके० ) तस्मात् ( तेणो एवंउवलभं ति के० ) ते एवातना अजाण पणाने लीधे नथी जाणता माटे ते नास्तिकछे.॥ १५ ॥

॥ दीपिका-तद्यथा ।ऊर्ध्वं पादतलादधश्च केशाग्रमस्तकात्तिर्यक्च त्वक्पर्यंतो जीवः। कोर्थः । यदेव शरीरं सएव जीवः । न शरीरादन्यः कश्चिदात्मास्ति । अयं कायएवात्मनः पर्यंतोऽवस्थाविशेषः कृत्स्नः संपूर्णः शरीरोपलंभे जीवएवोपलब्धइत्य र्थः। एषकायोयावज्जीवति तावज्जीवोपि जीवतीत्युच्यते ।एषकायोयदा मृतस्तदा जीवोपिमृतइति व्यपदिश्यते । यावच्छरीरमव्यंगं धरति तिष्ठति तावज्जीवोपि विनष्टे शरी रे जीवोपि न धरति विनष्टइत्यर्थः । तदेवं यावदेतच्छरीरमच्युतं तावदेव जीवस्य तज्जीवि तं नवति विनष्टे शरीरे तद्रूपोजीवोपि विनष्टइति कृत्वाऽऽदहनायासमंताद्दहनार्थं श्म शानादौ नीयतेऽसौतस्मिंश्च शरीरेऽग्निना ध्मापिते कपोतवर्णान्यस्थीनि केवलमुपलभ्यंते न कश्चित्तदपरोजीवः । ते च तद्बांधवाजघन्यतोपिच चत्वारः । आसंदी मंचकः सपंचमो येषांते आसंदीपंचमाः पुरुषास्तं कायमग्निना ध्मापयित्वा स्वं ग्रामं प्रत्यागच्छंति। यदि पुन रात्मा कायाद्भिन्नः स्यात्तदा निर्गच्छन् दृश्येत नच दृश्यते तस्मात्तज्जीवस्तदेव शरीरमिति स्थितं । एवमुक्तनीत्याऽसौ जीवोऽसन्नविद्यमानोयेषामयं पक्षोयत्काये तिष्ठन् गच्छंश्च संवे द्यमानोऽननुनूयमानोजीवइति तेषां तत्स्वाख्यातं नवति । येषां पुनरन्योजीवोऽन्यच्छरीर मेवंनूतोऽप्रमाणकएवांगीकारस्तस्मात्ते मूढतया प्रवर्तमानाएवं वक्ष्यमाणंन विप्रतिवेदयंति जानंति । यथा हे आयुष्मन् अयमात्मा शरीराद्भिन्नः स्वीक्रियमाणः किंपरिमाणः स्या दिति वाच्यं । किंदीर्घः किंह्रस्वइत्यादि संस्थानेषु किंपरिमंडलइत्यादि वर्णेषु किंकृष्णइ त्यादि गंधयोः किं सुरनिर्गंधइत्यादि । रसेषु किं तिक्तइत्यादि स्पर्शेषु किंकर्कशइत्यादि। तदेवं संस्थानवर्णगंधरसस्पर्शानामनावादसन्नविद्यमानोऽसंवेद्यमानोपि येषां तत्स्वा ख्यातं नवति यथान्योजीवोन्यच्छरीरमिति पक्षस्तस्मात्पृथगविद्यमानत्वात् ते जीववादि. नोनैवात्मानमुपलनंते ॥ १५ ॥

॥टीका-तद्यथोर्ध्वमुपरि पादतलादधश्च केशाग्रमस्तकात्तिर्यक् च त्वक्पर्यंतोजीवः। एत

डुक्तं नवति । यदेवैतछरीरं सएव जीवोनैतस्माछरीरा द्व्यतिरिक्तोस्त्यात्मेत्यतस्तत्प्रमाणएव नवत्यसावित्येवंच कृत्वैपआत्मायोयं कायोऽयमेव च तस्यात्मनः पर्यवः कृत्स्नः संपूर्णः पर्यायोऽवस्थाविशेषः तस्मिंश्च कायात्मन्यवाप्ते तदव्यतिरेकाज्जीवोप्यवाप्तएव नवति । ए पच कायोयावंतं कालं जीवेदविकृतश्चास्ते तावंतमेव कालं जीवोपि जीवतीत्युच्यते । तदव्यतिरेकात्तथैव कायोयदा मृतोविकारनाग्नवति तदा जीवोपि न जीवति जीवशरीर योरेकात्मकत्वात् । यावदिदं शरीरं पंचनूतात्मकमव्यंगं चरति तावदेव जीवोपीति । त स्मिंश्च विनष्टे सत्येकस्यापि नूतस्यान्यथानावे विकारे सति जीवस्यापि तदात्मनोविनाश स्तदेवं यावदेतछरीरं वातपित्तश्लेष्माधारं पूर्वस्वनावादप्रच्युतं तावदेव तज्जीवस्य जीवितं न वति । तस्मिंश्च विनष्टे तदात्मा जीवोपि विनष्टइतिकृत्वा आदहनायासमंतादहनार्थं श्मशानादौ नीयते यतोऽसौ तस्मिंश्च शरीरेऽग्निध्मापिते कपोतवर्णान्यस्थीनि केवलमुप लन्यंते न तदतिरिक्तोऽपरः कश्चिद्विकारः समुपलन्यते यतआत्मास्तित्वशंकास्यात् । ते च तद्बांधवाजघन्यतोपि चत्वारः । आसंदी मंचकः सपंचमोयेषांते आसंदीपंचमाः पुरु षास्तं कायमग्निनाध्मापयित्वा पुनः स्वग्रामं गछंति । यदि पुनस्तत्रात्मा निजशरीराद्भिन्नः स्यात्ततः शरीरान्निर्गछन्दृश्येत नचोपलन्यते तस्माज्जीवस्तदेव शरीरमिति स्थितं । तदेव मुक्तनीत्याऽसौ जीवोऽसन्नविद्यमानस्तत्र तिष्ठन् गछंश्चासंवेद्यमानोयेषामयं पक्षस्तेषां त त्स्वाख्यातं नवति । येषां पुनरन्योजीवोन्यछरीरमेवंनूतोऽप्रमाणकएवान्युपगमस्तस्मात्ते स्वयमूह्याप्रवर्तमानाएवमिति वक्ष्यमाणं तेनैव विप्रतिवेदयंति जानंति । तद्यथा । आ युष्मन् शरीराद्बहिरन्युपगम्यमानः किंप्रमाणकः स्यादितिवाच्यं । तत्र किं दीर्घः शरीरा त्प्रांशुतरः उत ह्रस्वोगुष्ठश्यामाकतंडुलादिपरिमाणोवा । तथा संस्थानानां परिमंडलादी नां मध्ये किंसंस्थानस्तथा कृष्णादीनां वर्णानां मध्ये कतमवर्णवर्ती तथा किंगंधः पश्चां र सानां मध्ये कतमरसवर्ती तथा ऽष्टानां स्पर्शानां मध्ये कतमोयस्पर्शोवर्तते । तदेवं संस्था नवर्णगंधरसस्पर्शान्यरूपतया कथमप्यसावगृह्यमाणोऽसन्नसौ तथापि केनापि प्रकारेण संवेद्यमानोपि येषां तत्स्वाख्यातं नवति यथान्योजीवोन्यछरीरकमित्ययं पक्षस्तस्मात्पृथ गविद्यमानत्वात्ते शरीरात्पृथगात्मवादिनोनैव वक्ष्यमाणनीत्यात्मानमुपलनंते ॥ १५ ॥

से जहा णाम एकेइ पुरिसे कोसीउ असिं अनिनिवटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो असी अयं कोसी एवमेव णत्थि केइपुरिसे अनिनिवटित्ता णं उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इयं सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे मुंजाउ इसियं अनिनिवटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो मुंजे इयं इ सियं एव मेव नत्थि केइपुरिसे उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इयं

सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे मंसाउअहिं अभिनिवटित्ताणं उवदं सेज्जा अयमाउसो मंसे अयं अठी एवमेव नत्थि केइ पुरिसे उवदंसे त्तारो अयमाउसो आया इयं सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे करय लाउ आमलकं अभिनिवटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो करतले अयं आमलए एवमेव णत्थि केइपुरिसे उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इयं सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे दहिउ नवनीयं अभिनिव टित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो नवनीयं अयंतु दही एवमेव णत्थि केइपुरिसे जाव सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे तिलेहिंतो तिल्लं अभि निवटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो तेल्लं अयं पिन्नाए एवमेव जाव स रीरं से जहा णाम एकेइपुरिसे इक्कूतोखोतरसं अभिनिवटित्ताणं उवदं सेज्जा अयमाउसो खोतरसे अयं गेए एवमेव जाव सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे अरणीतोअग्गिं अभिनिवटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो अरणी अयं अग्गी एवमेव जाव सरीरं एवं असंते असंविज्जमाणे जेसिं तं सुयक्खायं भवति तं अन्नोजीवो अन्नं सरीरं तम्हा ते मिछा ॥ १६ ॥

अर्थ–( सेजहाणामए के० ) ते जेम यथा दृष्टांते ठे तेम कही देखाडे ठे. नाम इति संभावनायेठे ( केइपुरिसे के० ) कोइ एक पुरुष ( कोसीउ के० ) पडीयार थकी ( असिंके० ) खड्ग काढीने (अभिनिवटित्ताणंके०) देखाडे अने (उवदंसेज्जा के०) कहे (अयमाउसो के०) हे आयुष्मंतो आ ( असी के० ) तलवार (अयंकोसी के०) ए पडियार एम जुदा जुदा देखाडी आपे ( एवमेवणत्थिकेइपुरिसेअभिनिवटित्ताणंउवदंसे त्तारोअयमाउसोआयाइयंसरीरं के० ) जेम ए पडिहार अने ए खड्ग एम बन्ने जुदा जु दा करी देखाडे तेम एवो कोइ पुरुष शरीर अने जीवने जुदो जुदो करी देखाडनार जगत मांहे नथी ( सेजहाणामए के० ) ए वचन यथा दृष्टांते करी देखाडेठे नाम इति संभाव नायेंठे ( केइपुरिसेमुंजाउइसियं के० ) जेम कोइ एक पुरुष मुंज एटले तृण थकी तेनो गर्भ भूत जे शली तेने ( अभिनिवटित्ताणं के० ) जुदा जुदा काढीने ( उवदंसेज्जा के० ) देखाडे जे ए तृण अने ए शली एम देखाडे के (अयमाउसोके०) अहो आयुष्मंत ( मुं जेइयंइसियं के० ) ए तृण अने ए शली ( एवामेवनत्थिकेइपुरिसेउवदंसेत्तारोअयमाउ सोआयाइयंसरीरं के० ) एम आत्मा अने शरीरने जुदो जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष

नथी ( सेजहाणामए के० ) ते वली यथा दृष्टांते करी देखाडेळे ( केइपुरिसेमंसाउअट्ठी अनिनिव्वट्टित्ताणंउवदंसेज्जा के० ) कोइक पुरुष मांस थकी हाम जुदा काढीने देखाडेके (अयमाउसो के० ) अहो आयुष्यमंतो ( मंसेअयंअट्ठीके०) आ मांस अने ए हाड ( एवामेवणत्थिकेइपुरिसेउवदंसेत्तारोअयमाउसोआयाइयंसरीरं के० ) एम आ आत्मा अने ए शरीर एने जुदो जुदो देखाडनार कोइ पुरुष नथी ( सेजहाणामएकेइपुरिसेकरयलाउ आमलकंअनिनिव्वट्टित्ताणंउवदंसेज्जा के० ) यथा दृष्टांते कोइ एक पुरुष करतल एटले हथेली थकी आमलो जुदो करी देखाडे ( अयमाउसोकरतलेअयंआमलए,के० ) हे आयुष्यमंतो आ हथेली अने आ आमलो ( एवमेवनत्थिकेइपुरिसेउवदंसेत्तारोअयमा उसोआयाइयंसरीरंके०) एम आ आत्मा अने आ शरीर एरीते जुदा जुदा करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी (सेजहाणामएकेइपुरिसेदहीउंनवनीयंअनिनिव्वट्टित्ताणंउवदंसेज्जाअयमा उसोनवनीयं अयं तुदहीएवामेवनत्थिकेइपुरिसेजावसरीरंके०) यथा दृष्टांते केइ एक पुरुष दही थकी माखण जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमंतो आ माखण अने आ दही एम आ आत्मा अने आ शरीर एरीते जुदा जुदा करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी. एमज यथा दृष्टांते कोइ एक पुरुष तिल थकी तेलने जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमंतो आ तेल अने आ खल एम आत्मा अने शरीरने कोइ पुरुष जुदो करी देखाडनार नथी एमज यथा दृष्टांते कोइ एक परुष सेलडी थकी सेलडीनो रश जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमंतो आ इक्षुरस अने आ छोतरा एम आत्मा अने शरीरने जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी यथादृष्टांते कोइ एक पुरुष अरणी थकी अग्नी जुदो काढीने देखाडे के हे आयुष्यमंतो आ अग्नि अने आ अरणी एम शरीर अने अत्माने जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी. ॥ ( एवंअसंतेके० ) एम अछतो अने ( असंविज्जमाणे के० ) अविद्यमान जे आत्माछे तेने पूर्वोक्त पदार्थोने जेम जुदा जुदा करी देखाडे तेम ए आत्मा अने शरीरने जुदो जुदो करी देखाडनार जगतमां कोइ पुरुष नथी (जेसिंतंसुयखायंनवतितंके०) ते कारण माटे तेहिज जीव अने तेहिज शरीर ए पक्ष सत्य स्वाख्यात जाणवो ( तम्हाके०) तस्मात् (अन्नोजीवोके०) अन्य जीव अने (अन्नंसरीरंके०) शरीर पण अन्यछे ए वचन ( तंमिछाके०) तेमिथ्याछे ॥१६॥

---

॥ दीपिका-आत्मनास्तित्वं दृष्टांतैराह । ( सेजहा इत्यादि ) तद्यथा नाम कश्चित्पुरुषः कोशतः प्रत्याकारादसिं खड्गमनिनिवृत्य समाकृष्यान्येषामुपदर्शयेत् । तद्यथा । अयमायुष्मन् असिः खड्गः । अयं च कोशप्रत्याकारः । एवमेव जीवशरीरयोर्नास्त्युपदर्शयिता तथायं जीवइदंच शरीरमिति नास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदतोन

कायाद्भिन्नोजीवइति । अत्रार्थे बहून् दृष्टांतानाह । तद्यथा । कश्चित्पुरुषोमुंजात्तृणविशेषात् ( इसिअंति ) तद्भनूतां शलाकां पृथक्कृत्य दर्शयेत् तथा मांसादस्थि करतलादामलकं दध्नोनवनीतं तिलेभ्यस्तैलं इक्षोरसमरणितोऽग्निमनिनिवृत्य पृथक् कृत्य दर्शयेदेवं शरीरादपि जीवं नास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदतोसन्नात्मा शरीरात्पृथगसंवेद्यमानश्चेति । येषां च समतानुरागादेतत्स्वाख्यातं नवति । यदन्योजीवोन्यच्च शरीरमिति । एवमात्मा च पृथक् नोपलज्यते तस्मात्तन्मिथ्या ॥ १६ ॥

॥टीका–तद्यथा नाम कश्चित्पुरुषः कोशतः परिवारादसिं खड्गमनिनिर्वर्त्य समाकृष्यान्येषामुपदर्शयेत्तद्यथाऽयमायुष्मानसिः खड्गोयं च कोशः परिवारएवमेव जीवशरीरयोरपिनास्त्युपदर्शयिता। तद्यथाऽयं जीवइदंच शरीरमिति।नचास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदतः कायान्निन्नोजीवइति । अस्मिंश्चार्थे बहवोदृष्टांताः संतीत्यतोदर्शयितुमाह । तद्यथा वा कश्चित्पुरुषोमुंजात् तृणविशेषात् ( इसियंति ) तद्भनूतां शलाकां पृथक्कृत्य दर्शयेत् । तथा मांसादस्थि तथा करतलादामलकं तथा दध्नोनवनीतं तिलेभ्यस्तैलमिति । तथेक्षोरसं तथाऽरणितोऽग्निमनिनिर्वर्त्य दर्शयेदेवमेव शरीरादपि जीवमिति । नचास्त्येवमुपदर्शयिता तोऽसन्नात्माशरीरात्पृथगसंवेद्यमानश्चेति । प्रयोगश्चात्र सुखदुःखनाक् परलोकायायीनास्त्यात्मा तिलशश्छिद्यमानोपि शरीरकेपृथगनुपलब्धेर्घटात्मवत् व्यतिरेकेणच कोशखड्गवत्तदेवंयुक्तिभिः प्रतिपादितोप्यात्मानवेत् । येषां पृथगात्मदिनां स्वदर्शनानुरागादेतत्स्वाख्यातं नवति । तद्यथा । अन्योजीवः परलोकानुयायी अमूर्तोऽन्यच्च तद्भवनवृत्तिमूर्तिमच्छरीरमेतच्च पृथङ्नोपलज्यते तस्मात्तन्मिथ्या यैः कैश्चिदुच्यते यथास्त्यात्मा परलोकानुयायीति ॥ १६ ॥

सेहंता तंहणह खणह छणह मदह पयह आलुंपह विलुंपह सहसाक्कारेह विपरामुसह एतावतावजीवे णत्थि परलोएवा ते णो एवं विप्पडिवेदेंति तंकिरियाइवा अकिरियाइवा सुक्कडेइवा डुक्कडेइवा कल्लाणेइवा पावएइवा साहुइवा असाहुइवा सिद्धाइवा असिद्धाइवा निरएइवा अनिरएइवा एवंतेविरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं कामजोगाइं समारंभंति जोयणाए ॥ १७ ॥ एवं एगेपागब्भिया णिक्खम्म मामगं धम्मं पन्नवेंति तंसद्दहमाणा तंपत्तियमाणा तंरोयमाणा साहु सुयक्खाए समणेतिवा माहणेतिवा कामं खलु आउसो तुमं पूययामि तं जहा असणेणवा पाणेणवा खाइमेणवा साइमेणवा

वत्थेणवा पडिग्गहेणवा कंबलेणवा पायपुंछणेणवा तत्थेगे पूयणाए समाउद्विंसु तत्थेगेपूयणाए निकाइंसु॥ १७॥

अर्थ–हवे ए पक्ष ग्रहण करनार नास्तिकछे ते देखाडेछे एवा अध्यवसायें प्रवर्त्ततो एवो नास्तिकवादि (सेहंताके०) ते पोते पण प्राणीओने हणे केमके ते प्राणातिपातने विषे दोष ने अण जाणतो थकों छे माटे बीजानें पण जीवघात करवानो उपदेश आपे ते उपदेश क हेछे. (तंहणहके०) ते खड्गादिके करी प्राणीउंने हणो एमां दोष नथी (खणहके०) पृथिव्यादिकने खणो (छणहके०) छेदो (डहहके०) बालो दहन करो (पयहके०) पचावो रसोइ करो (आलुंपहके०) लूंटो (विलुंपहके०) विशेषे लूंटो (सहसाक्कारे हके०) वस्त्र पात्रादिक सर्व अण विमास्या करो (विपरामुसहके०) इत्यादिक विपरी त मतिनुं उपदेश आपे (एतांवतावजीवेणत्थिके०) एटले जीव नथी जेटले शरीर ते टलेज जीवछे (परलोएवाके०) परलोक पण नथी तो परलोकने अभावे पोतानी इछा प्रमाणे खाउं पीउं लाड करो (तेणोएवंविप्पडिवेदेंतिके०) अंहीं श्री सुधर्म स्वामि श्रीजंबू स्वामिने कहेछे केपरलोकने अभावे पुण्य पाप पण नथी जेनो एवो पक्षछे ते बापडा नास्ति क मतिना धणी एवाछे ते आगल वक्ष्यमाण एटले जे आगल हुं कहीश तेने नथी जा णता (तंकिरियाइवाके०) ते क्रिया एटले रुडा अनुष्टानने नथी जाणता (अकिरिया इवाके०) माठा अनुष्टानने नथी जाणता (सुक्कडेइवाडुक्कडेइवाके०) रुडुंकखुं नथी जाणता तथा माठुंकखुं नथी जाणता (कल्लाणेइवापावएइवा के०) पुण्यने नजा णे पाप नजाणे (साहुइवाअसाहुइवा के०) साधु तथा असाधुने नथी जाणता (सिद्धाइवाअसिद्धाइवा के०) सिद्धने नजाणे असिद्ध एटले संसारने नजाणे (निरए इवाअनिरएइवाके०) नारकी अने अनारकी जे तिर्यंच मनुष्य अने देवता तेने पण नजा णे (एवंतेविरूवरूवेहिं के०) एरीते ते नास्तिकवादि विरूपरूप आत्मानो अभाव पडिवजीने (कम्मसमारंभेहिंके०) नाना प्रकारना कर्मने समारंभे ते नाना प्रकारना कर्म ने करवे करीने (विरूवरूवाइंकामभोगाइंसमारंभंतिभोयणाएके०) नाना प्रकारनां काम भोगने समारंभे भोजननेअर्थेंभोगवे॥१७॥ (एवंएगेपागब्भियाके०) एरीते एक नास्तिक वादि अत्यंत धृष्ट थका एम कहे छे के (णिरकम्मके०) ए आत्मा शरीर थकी जुदो नथी एटले तेहिज शरीर अने तेहिज जीव एवा धृष्ट पणे प्रवर्त्ते तथा पोताना दर्शन ने अनुसारे प्रवर्ज्या ग्रहण करीने (मामगंधम्मंपन्नवेंतिके०) महारो धर्म सत्यछे एवी प्ररूपणा करे (तंसद्दहमाणाके०) तेनास्तिकवादिनो भाषेलो जे धर्म तेने सर्दहता (तं पत्तियमाणा के०) तथा तेने सत्य करीमानता (तंरोयमाणा के०) तेने विषे रुचि करता

थका तथा (साहुसुयरकाएके०) ए अमारो धर्म नलो रुडो स्वाख्यातछे अने अनेरा दर्शनी बापडा मुगध लोकने परलोकनो नय देखाडी आ लोकना सुख थकी वंचेछे ते कारणे (समणेतिवाके०) अहो श्रमणो (माहणेतिवाके०) अहो ब्राह्मणो तेहिज जीव अने तेहिज शरीर ए धर्मने घणोज सारो कहीने (कामंखलुके०) निश्चे थकी ए धर्मने इछो (आउसोके०) अहो आयुष्मंतो अमे तमने उद्धर्या नहीकां क्यां एक कपटी दर्शनीयें तमने वंच्यो हतो तेकारणे अमे तमारा उपकारी छैए माटे अमने (तुमंपूययामि के०) तुमे पूजो प्रत्युपकार करो (तंजहाके०) तेहिज कहेछे (असणेणवा पाणेणवा खाइमेणवा साइमेणवाके०) अशने करी पाने करी खादिमे करी स्वादिमे करी ए चतुर्विध आहारे करी पूजो (वछेणवाके०) वस्त्रे करी (पडिग्गहेणवाके०) पात्रादिके करी (कंबलेणवाके) कंबले करी (पायपुंछणेणवाके०) पायपुंछणे करी पूजो प्रतिलानो (तछेगेपूयणाएके०) त्यां कोइ एक एवी पूजाने विषे (समाउहिंसुके०) गृद्ध थया अथवा (तछेगेपूयणाएनिकाइंसु के०) त्यां कोइ एक पूजाने विषे प्रवर्त्तमान थका एवा राजादिक लोकने ते नास्तिको पोताना धर्मने विषे निश्चल करे अने तेने कहेके ए अमारो उपदेश्यो धर्म टालीने अनेरो धर्म आदरशो नही॥ १८ ॥

---

॥ दीपिका–एतदध्यवसायी सनास्तिकः स्वतः प्राणिनां हंता व्यापादकः स्यात् अन्येषामपिवक्ति । हणहइत्यादि । घातयत क्षणत क्षणनं हिंसा दहत पचत आलुंपत विलुंपत सहसा कारयत विपरामृशत एतावान् शरीरमात्रएव तावज्जीवोजीवानावाच्च नास्ति परलोकः । ततस्तेन न तज्जीवतछरीरवादिनोनास्तिकाए तन्न विप्रतिवेदयंते नांगीकुर्वंति । तद्यथा । क्रियां सदनुष्ठानात्मिकामक्रियां वाऽसदनुष्ठानरूपां सुकृतं वा डुष्कृतं वा कल्याणंवा पापकंवा साधुकृतमसाधुकृतंवा इत्यादिका चिंतैव नास्ति । कोर्थः । सुकृतानि साधुत्वात्कल्याणफलानि डुष्कृतान्यसाधुत्वाद्विरूपफलानीति । आत्मानं विनाऽसौ चिंता न युज्यतइत्यर्थः । तथा सुकृतेन सिद्धिर्डुष्कृते नासिद्धिस्तथा डुष्कृतेनैव नरकः अनरकस्तिर्यङ्नरामरगतिरूपः स्यादित्यादिका चिंता न युक्ता । जीवस्यैवानावात् (एवंतेत्ति) एवमुक्तप्रकारेण ते नास्तिकाविरूपरूपैः कर्मसमारंनैः सावद्यानुष्ठानैर्विरूपान् कामनोगान् समारनंते समाददति तडुपनोगार्थं ॥ १७ ॥ एवमुक्तप्रकारेणैके नास्तिकाः प्रागल्निकाःप्रागल्न्येन चरंति धृष्टतां प्राप्ताआत्मा नास्तीति वदंति । तथा निष्क्रम्य स्वतानुगतां प्रव्रज्यां गृहीत्वा मामकं धर्मं मदीयोऽयं धर्मइत्यंगीकृत्य परेन्यः प्रज्ञापयंति । यद्यपि नास्तिकानां नास्ति दीक्षा तथापि बौद्धादिमते प्रव्र

ज्य पश्चान्नास्तिकीभूते संभवति प्रव्रज्या । अथवा नीलपटाद्यंगीकृतः कश्चिदस्त्येव प्रव्रज्या विशेषइति । तं नास्तिकधर्मं श्रद्दधानारोचयंतः स्वमतौ प्रतियंतोऽवितथभावेन गृण्हंतः साधुशोभनमेतद्यथा स्वाख्यातोभवता धर्मः । हेश्रमण ब्राह्मण शोभनं कृतं यदयं तज्जीव तच्छरीरधर्मोऽस्माकमुक्तः काममिष्टमेतदस्माकं । खलुर्वाक्यालंकारे । हे आयुष्मन् उप कारिणं त्वां पूजयाम्यहमिति तच्छिष्यावदंति । पूजामेवाह । ( असणेणेत्यादि ) सुगमं । यावत् पादपुंछनकमिति । तत्रैके पूजायां ( समाउट्टिंसु ) समावृत्ताः प्रव्हीभूताराजाद यः । एके तत्र स्वमतस्थित्या निकाचितवंतस्तं नृपादिकं स्वधर्मे नियमितवंतइत्यर्थः १८

---

॥टीका–एतदध्यवसायीच सलोकायतिकः स्वतः प्राणिनामेकेंद्रियादीनां हंता व्यापादको भवति प्राणातिपाते दोषाभावमभ्युपगम्यान्येषामपि प्राण्युपघातकारिणामुपदेशं ददाति । तद्यथा । प्राणिनः खड्गादिना घातयत पृथिव्यादिकं खनतेत्यादिसुगमं । यावदेतावानेव शरीरमात्रएव जीवस्ततः परलोकिनोऽभावान्नास्ति परलोकोऽतस्तदभावाच्च यथेष्टमासत । तथाचोक्तं । पिब खादच साधु शोभने यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ॥ नहि भीरुगतं निवर्त ते समुदयमात्रमिदंकलेवरं । तदेवं परलोकयायिनोजीवस्याभावान्नपुण्यपापे स्तोनापि पर लोकइत्येवं येषां पक्षस्ते लोकायतिकास्तज्जीवतच्छरीरवादिनोनैवैत वक्ष्यमाणं प्रतिवेदयंति अभ्युपगछंति । तद्यथा । क्रियांवा सदनुष्ठानात्मिकामक्रियांवा असदनुष्ठानरूपां एवं नैव ते विप्रतिवेदयंति । यदिहि आत्मा तत्क्रियावान्नकर्मणोभोक्ता स्यात्ततोपापभयात्सदनुष्ठान चिंता स्यात्तदभावाच्च सत्क्रियादिचिंतापि दूरोत्सादितैव । तथा सुकृतं दुष्कृतं वा कल्या णमिति पापमिति वा साधुकृतमसाधुकृतमित्यादिका चिंतैव नास्ति । तथाहि । सुकृता नां कल्याणविपाकिनां साधुतया ऽवस्थानं दुष्कृतानां च पापविपाकिनामसाधुत्वेनावस्था नमेतद्द्वयमपि सत्यात्मनि तत्फलभुजि संभवति तदभावाच्च कुतोनर्थकौ हिताहितप्रा प्तिपरिहारौ स्यातां । तथा सुकृतेन कल्याणेन साध्वनुष्ठानेनाशेषकर्मक्षयरूपासिद्धिस्तथा दुष्कृतेन पापानुबंधिना असाध्वनुष्ठानेन नरकोनरकेवा तिर्यङ्नरामरगतिलक्षणं स्यादित्ये वमात्मिका चिंतैव न भवेत्तदाधारस्यात्मसद्भावस्यानभ्युपगमादिति भावः । पुनरपि लोकाय तिकानुष्ठानदर्शनायाह । (एवंतेइत्यादि) एवमनंतरोक्तेन प्रकारेण ते नास्तिकाआत्माभावं प्रतिपाद्य विरूपं नानाप्रकारं रूपं स्वरूपं येषांते तथा कर्मसमारंभाः सावद्यानुष्ठानरूपाः पशुघातमांसभक्षणसुरापाननिर्लांछनादिकास्तैरेवंभूतैर्नानाविधैः कर्मसमारंभैः कृषीवलानु ष्ठानाविनिर्विरूपकान् कामभोगान् समारभंतेसमाददति तदुपभोगार्थमिति ॥ १९ ॥ सांप्रतं तज्जीवतच्छरीरवादिमतमुपसंजिघृक्षुः प्रस्तावमारचयन्नाह । ( एवंचेगइत्यादि )

मूर्तिमतः शरीरादन्यदमूर्तं ज्ञानमात्मन्यनुभूयते तस्य चामूर्तेनैव गुणिना जाव्यमतः शरीरात्पृथग्भूतआत्माऽमूर्तोज्ञानवत्तदाधारभूतोस्तीति । नचात्माभ्युपगममंतरेण तज्जीव तच्छरीरवादिनः किंचिद्विचार्यमाणं मरणमुपपद्यते । दृश्यंते च तथाभूतएवशरीरे म्रियमाणामृताश्च । कुतः समागतोहं कुत्र चेदं शरीरं परित्यज्य यास्यामि तथेदं मे शरीरं पुराणं कर्मेत्यधमादिकाः शरीरात्पृथग्भावेनात्मनि संप्रत्ययाश्चनुभूयंते । तदेवमपि स्वानुजवसिद्धेप्यात्मनि एके केचन नास्तिकाः पृथक्जीवास्तित्वमश्रद्दधानाः प्रागल्भिकाः प्रागल्भ्येन चरंति धृष्टतामापन्नाश्चनिदधति । तद्यथा । अयमात्मा शरीरात्पृथग्भूतः स्यात्ततः संस्थानवर्णगंधरसस्पर्शान्यतमगुणोपेतः स्यात् । नच ते वराकाः स्वदर्शनानुरागांधतमसावृतदृष्टयएतद्विदंति । तथा मूर्तस्यायं धर्मोनामूर्तस्य । नहि ज्ञानस्य संस्थानादयोगुणाः संजाव्यंते । नच तत्तद्भावेपि नास्तीत्येवमात्मापि संस्थानादिगुणरहितोपि विद्यतइति । एवं युक्तियुक्तमप्यात्मानं धाष्टर्यान्नाभ्युपगछंति तथा निष्क्रम्यच स्वदर्शनविहितां प्रव्रज्यां गृहीत्वा नान्योजीवः शरीराद्विद्यतइत्येवं योधर्मोमदीयोयमित्येवमभ्युपगम्य स्वतोऽपरेषां च तं तथाभूतं धर्मं प्रतिपादयंति । यद्यपि लोकायतिकानां नास्ति दीक्षादिकं तथाप्यपरेण शाक्यादिना प्रव्रज्याविधानेन प्रव्रज्य पश्चाल्लोकायतिकमधीयानस्य तथाविधपरिणतेस्तदेवाभिरुचितमतोमामकोयं धर्मः स्वयमभ्युपगछंत्यन्येषां च प्रज्ञापयंति । यदिवा नीजपटाद्यभ्युपगंतुः कश्चिदस्त्येव प्रव्रज्याविशेषइत्यदोषइति । सांप्रतं तत्प्रतिज्ञापितशिष्यव्यापारमधिकृत्याह । ( तंसदहमाणेत्यादि ) तं नास्तिकवाद्युपन्यस्तं धर्मं विषयिणामनुकूलं श्रद्दधानाः स्वमतावतिशयेन रोचयंतस्तथा प्रतिपादयंतो वितथभावेन गृण्हंतस्तथा तत्र रुचिं कुर्वंतस्तथा साधुशोभनमेतद्यथास्वाख्यातोयथावस्थितोभवतोधर्मोन्यथा सति हिंसादिष्ववर्तमानः परलोकभयात्सुखसाधनेषु मांसमद्यादिष्वप्रवृत्तिं कुर्वंतोमनुष्यजन्मफलवर्जिताभवेयुः । ततः शोभनमकारि भवता हेश्रमण ब्राह्मण इतिवा यदयं तज्जीवतच्छरीरधर्मोऽस्माकमावेदितः काममिष्टं तदस्माकं धर्मकथनं । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । हेआयुष्मंस्त्वया वयमभ्युद्धृताः कार्पटिकैस्तीर्थिकैर्वंचिताः स्युरिति । तस्मादुपकारिणं त्वां भवंतं पूजयामोहमपि कंचिदायुष्मतोभगवतः प्रत्युपकारं करोमि । तदेव दर्शयति । तद्यथा । ( असणेत्यादि ) सुगमं यावत्पादपुंछनकमिति । तत्रैके पूर्वोक्तया पूजया पूजायां वा ( समाउद्दिंसुत्ति ) समावृताः प्रव्हीभूतास्ते राजानः पूजां प्रति प्रवृत्तास्तदुपदेष्टारोवा पूजामभ्युपपन्नाः संतस्तं राजादिकं स्वदर्शनप्रतिपन्नमेके केचन स्वदर्शनस्थित्या हिताहितप्राप्तिपरिहारेषु निकाचितवंतोनियमितवंतः । तथाहि । भवतेदं तच्छरीरमित्यभ्युपगंतव्यमन्योजीवोन्यच्च शरीरमित्येतत् परित्याज्यमनुष्ठानमपि एतदनुरूपमेतद्विधेयमित्येवं निकाचितवंतइति ॥ १० ॥

पुव्वमेव तेसिं णायं भवति समणा भविस्सामो अणगारा अकिंचणा अपुत्ता अपसू परदत्तभोइणो भिक्कुणोपावं कम्मं णोकरिस्सामि समुठीए ते अप्पणो अप्पडिविरया भवंति सयमाइयंति अन्नेवि आदियावेंति अन्नंपि आयतं तं समणुजाणंति एवमेव ते इछिकामभोगेहिं मुछिया गिद्धा गढिया अझोववन्ना लुद्धा रागदोसवसट्टा ते णोअप्पाणं समुछेदेंति ते णोपरं समुछेदेंति णोअसाइं पाणाइं भूताइं जीवाइं सत्ताइं समुछेदेंति पहीणा पुव्वसंजोगं आयरियं मग्गं असंपत्ता इति ते णोहव्वाए णोपाराए अंतराकामभोगेसु विसन्ना इति पढमे पुरिसजाए तज्जीव तच्छरीरएति आहिए ॥ १९ ॥

अर्थ-( पुव्वमेवके० ) एरीते पहेलोज ( तेसिंके० ) तेनास्तिक मतिओने ( णायंभवति के० ) एवो विपरीत ज्ञान होय के ( समणाभविस्सामोके० ) अमे श्रमण संयति थइशुं ( अणगाराके० ) घर रहित थइशुं ( अकिंचणाके० ) परिग्रह रहित थइशुं ( अपुत्ता के० ) पुत्र मित्र कलत्रादिथी रहित थइशुं ( अपसूके० ) गोमहिषादिकथी रहित थइशुं ( परदत्तभोइणोके० ) अन्यनो दीधेलो आहार भोगवीशुं पोते पचन पाचनादिक क्रियाथी रहित थइशुं ( भिक्कुके० ) भिक्षाचर थता ( णोपावकम्मंणोकरिस्सामिके० ) पाप कर्म सावद्यानुष्ठान करीशुं नहीं ( समुठीएके० ) एवो भाव पडिवजीने सम्यक्प्रकारे ऊठी सावधान थइने पछी नास्तिक भाव प्राप्त करे लोकायतिक मार्गे आव्या थका ( तेअप्पणोअप्पडिविरया भवंतिके० ( ते आप पोते पापकर्म थकी अविरत थाय पोतानीज प्रतिज्ञा थकी भ्रष्ट थाय एवा थका जे करे ते कहेछे ( सयमाइयंतिके० ) सावद्यानुष्ठान हिंसा मृषावादादिक स्वयं पोते आदरे ( अन्नेविआदियावेंतिके० ) अन्यने आदरावे ( अन्नंपिआयतं के० ) अन्यकोइ आदरतो होय ( तंसमणुजाणंतिके० ) तेने अनुमोदे ( एवमेवतेके० ) एरीते ते ( इछिकामभोगेहिंमुछियाके० ) स्त्री संबंधी काम भोगने विषे मूर्छित ( गिद्धा के० ) गृद्ध एटले तेना अभिलाषी ( गढियाके० ) अधिक काम भोगने विषे बंधाणा ( अझोववन्ना के० ) कामभोगने विषे एकाग्र चित्ते थया ( लुद्धा के० ) लुब्ध थया ( रागदोसवसट्टा के० ) राग द्वेषने विषे पडोता ( तेणोअप्पाणंसमुछेदेंति के० ) ते पोताना आत्माने कर्म पास थकी न छोडावे ( तेणोपरंसमुछेदेंति के० ) ते अन्यने पण कर्म बंध थकी नछोडावे ( णोअसाइं पाणाइं भूताइं जीवाइं सत्ताइं समुछेदेंतिके० ) ते अन्य प्राणी भूत जीव सत्व तेने पण कर्म पास थकी छोडावी नशके एवा नास्तिक

वादि ( पहीणापुव्वसंजोगं के० ) पूर्व संयोगजे पुत्र कलत्रादिक ते थकी पण भ्रष्ट थया अने ( आयरियंमग्गं के० ) आर्य मार्गेनेपण (असंपत्ता के०) अणपाम्या एटले नपाम्या ( इतिके० ) एम उभय भ्रष्ट थया थका ( तेणोहव्वाएके० ). ते एवा प्रकारे पुष्करणीने तीरे पण रह्या नहीं अने (णोपाराएके०) पार पण पहोता नहीं ( अंतराकामभोगेसुविसन्ना के०) विचाले कामभोगरूप कादवने विषेज खूता थका रह्या ते पुंमरीक कमल सरखा राजा ने उद्धरी नशके ( इतिपढमपुरुषजाएतज्जीवतच्छरीरएतिआहिएके० ) इति तज्जीव तच्छरी रवादिनामा एम प्रथम पुरुष जात कह्यो ॥ १९ ॥

---

॥ दीपिका—ये भागवतादिलिंगमंगीकृत्य पश्चान्नास्तिकाः संवृत्तास्तेषां पूर्वमादौ प्र व्रज्याग्रहणावसरएतत् परिज्ञातं भवति । यत् श्रमणायतयोभविष्यामोऽनगाराः किंच न द्रव्यं तद्रहितानिष्किंचनाअपुत्राअपशवः परदत्तभोजिनोभिक्षवः किंचित्पापं कर्म सा वद्यं नकरिष्यामइति समुछाय पश्चान्नास्तिकतां प्राप्तास्ते आत्मना स्वयं सावद्यादप्रतिवि रताअनिवृत्ताभवंति । स्वयं सावद्यमाददते स्वीकुर्वंति अन्यानप्यादापयंति ग्राहयंत्यादानं समनुजानंति । एवमेव स्त्रीप्रधानाः कामभोगाः स्त्रीकामभोगास्तेषु मूर्छितागृद्धाअध्युपप न्नाअाधिक्येन भोगेषु लुब्धारागद्वेषार्ताः संतोनात्मानं संसारात्समुछेदयंति । नापि परं समुछेदयंति नाप्यन्यान् प्राणिनोभूतानि जीवान् सत्वान् समुछेदयंत्यसदभिप्रायप्रवृत्त त्वात् । ते चैवंविधालोकायतिकाः पूर्वसंयोगात्पुत्रादिकात्प्रहीणाभ्रष्टाआर्यमार्गं सदनु ष्ठानरूपमसंप्राप्ताइति लोकद्वयसदनुष्ठानभ्रष्टाअंतरालएव भोगेषु विषण्णास्तिष्ठंति न पुंडरीकोत्क्षेपादिकार्यं साधयंतीत्ययं तज्जीवतच्छरीरवादीप्रथमः पुरुषः समाप्तः ॥ १९ ॥

---

॥ टीका—तत्र ये भागवतादिकं लिंगमभ्युपगताः पश्चाल्लोकायतग्रंथश्रवणेन लोकाय ताः संवृत्तास्तेषामादौ प्रव्रज्याग्रहणकालएवैतत्परिज्ञातं भवति । तद्यथा । परित्यक्तपुत्रक लत्राः श्रमणायतयोभविष्यामोऽनगारागृहरहितास्तथा निष्किंचनाः किंचनद्रव्यं तद्रहिता स्तथाऽपशवोगोमहिष्यादिरहिताः परदत्तभोजिनः स्वतः पचनपाचनादिक्रियारहितत्वात् भिक्षणशीलाभिक्षवः कियद्वक्ष्यतेऽन्यदपि यत्किंचित्पापं सावद्यं कर्मानुष्ठानं तत्सर्वं नक रिष्यामीत्येवं सम्यगुत्थानेनोत्थाय पूर्वं पश्चाल्लोकायतिकमुपगताआत्मनः स्वतः कर्मभ्योऽप्र तिविरताभवंति । विरत्यभावेपि यत्कुर्वंति तद्दर्शयति । पूर्वं सावद्यारंभान्निवृत्तिं विधाय नीलपटादिकं च लिंगमास्थाय च स्वयमात्मना सावद्यमनुष्ठानमाददते स्वीकुर्वंति अन्या न्यप्यादापयंति ग्राहयंत्यन्यमप्यादानं परिग्रहं स्वीकुर्वंतं समनुजानंति । एवमेव पूर्वोक्तप्र कारेण स्त्रीप्रधानाः स्त्रियोपलक्षितावा काम्यंतइति कामाभुज्यंतइति भोगास्तेषु सातबहु

नतया ऽजितेंद्रियाः संतस्तेषु कामनोगेषु मूर्छिताएकीनावतामापन्नागृद्धाः कांक्षावंतो ग्रथिताअवबद्धाअध्युपपन्नाआधिक्येन नोगेषु लुब्धारागद्वेषार्तारागद्वेषवशगाः कामनोगांधावा तएवं कामनोगेषु आश्रवबद्धाः संतोनात्मानं संसारात्कर्मपाशाद्वा समुच्छेदयंति मोचयंति नापि परं सडपदेशदानतः कर्मपाशावपाशितं समुच्छेदयंति कर्मबंधात्रोटयंति नाप्यन्यान् दशविधप्राणवर्तिनः प्राणान् प्राणिनस्तथा वानूवन् नवंति नविष्यंतिच नूतानि तथा वा आयुष्कधारणाज्जीवास्तांस्तथा सत्वास्तथाविधवीर्यांतरायक्षयोपशमापादितवीर्यगुणोपेतास्तान्नसमुच्छेदयंति । असदनिप्रायप्रवृत्तत्वात् । ते चैवंविधास्त, ज्जीवतच्छरीरवादिनोलोकायतिकाअजितेंद्रियतया कामनोगावसक्ताः पूर्वसंयोगात्पुत्रदारादिकात्प्रहीणाः प्रभ्रष्टाआराद्याताः सर्वहेयधर्मेन्यश्त्यार्योमार्गः सदनुष्ठानरूपस्तमसंप्राप्ताइत्येवं पूर्वोक्तया नीत्या ऐहिकामुष्मिकलोकद्वयसदनुष्ठानभ्रष्टाअंतरालएव नोगेषु विषसास्तिष्ठंति । न विवक्षितं पौंमरीकोत्क्षेपणादिकं कार्यं प्रसाधयंतीति । अयं च प्रथमःपुरुषस्तज्जीवतच्छरीरवादी परिसमाप्तइति ॥ १ए ॥

अहावरे दोच्चे पुरिसजाए पंचमहन्नूतिएति आहिज्जइ इह खलु पाइणंवा संतेगतियामणुस्सा नवंति अणुपुवेणं लोयं उववन्ना तं जहा आरियावेगे अणारियावेगे एवं जाव डुरूवावेगे तेसिंचणं महंएगे राया नवइ महाएवंचेव णिरविसेसं जाव सेणावइपुत्ता तेसिंचणं एगेतिए सड्ढा नवंति कामंतं समणाय माहणाय पहारिंसु गमणाए तब अन्नयरेणं धम्मेणं पन्नत्तारो वयं इमेणं धम्मेणं पन्नवइस्सामो सेएवं मायाणहनयंतारो जहाए एसधम्मे सुअरकाए सुपन्नत्ते नवंति ॥ २० ॥

अर्थ–( अहावरेदोच्चेपुरिसजाए के० ) अथ हवे अपर एटले बीजो पुरुषजात कोणछे ते हुं कहुंछुं माटे हे श्रमणो तमे सांनलो ( पंचमहन्नूतिएति के० ) जे पुरुष पृथ्व्यादिक पांच महानूत तत्वे करी माने ते पांच महानूतिक पुरुष सांख्यमति (आहिज्जइ के० ) कहिए ते प्रथम पुरुषनी परे ज्यांलगे राजसनामां आवी राजा प्रत्ये पोतानो धर्म रुडो करी प्रकाशे तेनी पेरे कहेछे ( इहखलुपाइणंवाके०) निश्चे आ संसारमां पूर्वादिक दिशिने विषे (संतेगतियामणुस्सानवंतिके०) कोइएक मनुष्य पंचमहानूतिक सांख्यमतिछे ( अणुपुवेणंलोयंउववन्ना के० ) ते अनुक्रमे लोकमांहे उपना (तंजहाके०) ते कहेछे ( आरियावेगेके० ) एक आर्य मनुष्यते साडा पचीश आर्य देशना उपना ( अणारियावेगे के० ) एक अनार्य मनुष्यते अनार्य देशना उपना ( एवंजावडुरूवावेगे के० )

एम यावत् कोइएक मनुष्य कुरूपवंत छे इत्यादिक अर्थ आगल लखाइ गयाछे ( ते सिंचणं के० ) ते मनुष्य मांहे ( मह्रंएगेरायाजवइ के० ) एक महोटो राजा होय तेके वो तोके ( महाएवंचेव के० ) महोटो हिमवंत पर्वतादिक समान होय ( णिरविसेसं के० ) एमज पूर्ववत निरविशेष ( जावसेणावइपुत्ता के० ) यावत् सेनापतिना पुत्र केवा ( तेसिंचणं के० ) तेमांहे ( एगेतिएसड्ढाजवंति के० ) कोइ एकने धर्म करवानी श्रद्धा होय एटले धर्मार्थी होय ( कामंतं के० ) तेने धर्मार्थी जाणीने ( समणा य माहणाय के० ) श्रमण अने ब्राह्मण मलीने तेना समीपे धर्म प्रतिबोधवा निमित्ते ( पहारिंसुगमणाए के० ) आलोचवो चिंतवीने आवे ( तत्र के० ) त्यां ( अन्नयरेणंध म्मेणंपन्नत्तारोवयं के० ) अनरो पोतानो धर्म प्ररूपण हार एटले धर्मोपदेशक थइने (इमेणं के०) ए आगल कहेशे तेरीते (धम्मेणंपन्नवइस्सामो के०) राजानी आगल धर्म कहीशुं एम आलोचीने ( सेएवं के० ) तेएम (मायाणहुजयंतारो के०) माहरो धर्म क हुंछुं अहो जयथकी राखनार ते ( जहाए के० ) जेम ( एसधम्मे के० ) महारो एधर्म ( सुअरकाए के० ) स्वाख्यात ( सुपन्नत्तेजवंति के० ) रुडो प्ररूपवो होय ॥२०॥ हवे ते राजा आगल जेवी रीते धर्म प्ररूपे तेवी रीते आगल कहेछे.

॥ दीपिका—अथापरोद्वितीयः पुरुषजातः पंचभिर्भूतैः पृथिव्यप्तेजोवायुव्योमाख्यैश्चर ति पांचभौतिकः। सांख्याजीवस्य तृणमोटनेप्यसामर्थ्यं । भूतरूपायाः प्रकृतेरेव सर्वकर्तृ त्वमिति तन्मतं । नास्तिकविशेषोवा पंचभूतव्यतिरिक्तनास्तित्वांगीकारात् । ( आहिज्जइ ) आख्यायते । अत्र च प्रथमपुरुषगमेन इह खलु पाईणंवा इत्यादिकोग्रंथः सुपन्नत्ते भ वतीत्येतदंतोज्ञेयः ॥ २० ॥

॥टीका—प्रथमपुरुषानंतरं द्वितीयं पुरुषजातमधिकृत्याह । ( अहावरेदोच्चे इ त्यादि ) अथशब्दआनंतर्यार्थे । प्रथमपुरुषानंतरमपरोद्वितीयः पुरुषएव पुरुषजातः पंचभिः पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यैश्चरति पांचभौतिकः । पंचवा भूतानि अभ्युपगमद्वारे ण विद्यंते यस्यसपंचभूतिको मत्वर्थीयठन् । सच सांख्यमतावलंब्यात्मनस्तृणकुब्जीकर णेप्यसामर्थ्याभ्युपगमात् इष्टव्योलोकायतमतावलंबी नास्तिकोभूतव्यतिरिक्तत्वाभ्युपगमा दाख्यायते प्रथमपुरुषानंतरमयं पंचभूतात्मवाद्यभिधीयते चेति । अत्र च प्रथमपुरुषगम ने ( इहखलुपाईणं ) चेत्यादिकोग्रंथः सुपसत्तेजवतीत्येतत्पर्यवसानोवगंतव्यइति ॥ २० ॥

इहखलु पंचमहभूता जेहिं नोकज्जइ किरियातिवा अकिरियातिवा सु कडेतिवा डुकडेतिवा कल्लाणेतिवा पावएतिवा साहुतिवा सिद्धितिवा असिद्धितिवा णिरएतिवा अणिरएतिवा इति अंतसो तणमायमवि॥२१॥

अर्थ-( इहखलु के० ) निश्चे आसंसारने विषे ( पंचमहभूता के० ) पांच महोटा भूत सर्व जगतमां व्यापी रह्याछे ( जेहिंनोकज्जइकिरियातिवाअकिरियातिवा के० ) ते हिज पांच भूते अमे क्रिया अक्रिया सर्व करियें परंतु जेहिं एटले जे वळी आत्मा ए वे नामे पदार्थछे ते क्रिया अक्रिया नोकज्जइ एटले नथी करतो तथा सुक्कडेतिवा डुक्कडेतिवा कल्लाणेतिवा पावएतिवा साहुतिवा सिद्धितिवा असिद्धितिवा णिरएतिवा अणिरएतिवा एटले सुकृत करणी दुष्कृत करणी कल्याण कारी क्रिया पापकारी क्रिया साधु एटले नली क्रिया असाधु एटले माठी क्रिया सिद्धि एटले मोक्ष जवा योग्य क्रिया असिद्धि एटले मोक्ष न जवा योग्यक्रिया नरक जवा योग्य क्रिया नरके नजवा योग्य क्रिया ए सर्व आत्मा नथी करतो ( अंतसोतणमायमवि के० ) ए कारणे सांख्यने मते जे कांइ सूक्ष्म तृणनु नमाववो-तेनो पण उपदेश पांच भूतज करेछे पण आत्मा सर्वथा कांइ पण नथी करतो ॥ २१ ॥

---

॥ दीपिका-सांख्यनास्तिकयोर्मतमाह । इह मते पंच महाभूतानि यैर्नोऽस्माकं क्रिया व्यापारता वा नक्रियते सुकृतं डुष्कृतंवा कल्याणं पापकमिति या साध्वितिवा सिद्धिर्मुक्तिरसिद्धिः संसारोनरकोऽनरकस्तिर्यङ्नरामरगतिः । एतत्सर्वं सत्वरजस्तमोरूपा प्रकृतिरेव भूतरूपा करोति । आत्मा केवलमुपभुंक्ते नतु करोति किंचित् । नास्तिकाभिप्रायेणापि इहैव सुखडुःखे स्वर्गनरकौ इत्युच्यतइति । एवमंतशस्तृणमात्रमपि यत्कार्यं तद्भूतैरेव प्रकृतिरूपापन्नैः क्रियते । एवं सांख्यमते आत्मा किंचित्करः । नास्तिकमतेतु आत्मनः सर्वथाप्यभावस्ततो द्वयोरपि भूतान्येव सर्वकार्यकर्तृणीति ॥ २१ ॥

---

॥ टीका-सांप्रतं सांख्यस्य लोकायतिकस्य चाभ्युपगमं दर्शयितुमाह । ( इहखलुपंचमहभूताइत्यादि ) इहास्मिन् संसारे द्वितीयपुरुषवक्तव्यताधिकारे वा । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । पृथिव्यादीनि पंचमह्राभूतानि विद्यंते महांति च तानिच महाभूतानि सर्वव्यापितयाभ्युपगमात् महत्त्वं । तानिच पंचैव । परस्य षष्ठस्य क्रियाकर्तृत्वेनानभ्युपगमाद्यैर्हि पंचभिर्भूतैरभ्युपगम्यमानैर्नोऽस्माकं क्रिया परिस्पंदात्मिका चेष्टारूपा क्रियते क्रिया वा निर्व्यापारतया स्थितिरूपा क्रियते । तथाहि । तेषां दर्शनं सत्वरजस्तमोरूपा प्रकृतिर्भूतात्मभूताः सर्वाअर्थक्रियाः करोति पुरुषः केवलमुपभुंक्तेऽध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतयतीति वचनात् । बुद्धिश्च प्रकृतिरेव तद्विकारत्वात् । तस्याश्च प्रकृतेर्भूतात्मिकायाः सत्वरजस्तमसां चयापचयाभ्यां क्रियाक्रिये स्यातामिति कृत्वा भूतेभ्यएव क्रियादीनि प्रवर्तंते तद्व्यतिरेकेणापरस्याभावादिति भावः । तथा सुष्टु कृतं सुकृतमेतच्च सत्वगुणाधिक्येन भवति ।

तथा दुष्टं कृतं दुष्कृतमेतदपि रजस्तमसोरुत्कटतया प्रवर्तते । एवं कल्याणमिति वा पापकमितिवा साध्वितिवा असाध्वितिवा इत्येतत्सत्वादीनां गुणानामुत्कर्षानुत्कर्षतया यथासंनवमायोजनीयं । तथेप्सितार्थनिष्पानं सिद्धिविपर्ययः स्वसिद्धिर्निर्वाणं वा सिद्धिः संसारः संसारिणां तथा नरकः पापकर्मिणां यातनास्थानमनरकस्तिर्यङ्मनुष्यामराणामेतत्सर्वं सत्वादिगुणाधिष्ठिता नूतात्मिका प्रकृतिर्विधत्ते । लोकायतानिप्रायेणापीहैव तथाविधसुखडुःखावस्थाने स्वर्गनरकावितीत्येवमंतशस्तृणमात्रमपि यत्कार्यं तन्नूतैरेव प्रधानरूपापन्नैः क्रियते । तथा चोक्तं । सत्वं लघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टंनकं चलंच रजः ॥ गुरुचरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतोवृत्तिरित्यादि । तदेवं सांख्यानिप्रायेणात्मनस्तृणकुब्जीकरणेप्यसामर्थ्याल्लोकायतिकानिप्रायेण त्वात्मनएवानावान्नूतान्येव सर्वकार्यत्वात्कर्तॄणीत्येवमन्युपगमस्तानिच समुदायरूपापन्नानि नानास्वनावं कार्यं कुर्वंतिं ॥ २१ ॥

तं च पिहुद्देसेणं पुढोन्नूतसमवातं जाणेज्जा तं जहा पुढवी एगे महन्नूते आउडुच्चे महन्नूते तेऊतच्चेमहन्नूते वाऊचउछेमहन्नूते आगासे पंचमे महन्नूते इच्चेते पंचमहन्नूया अणिम्मिया अणिम्माविता अकडा णोकित्तिमा णोकडगा अणाइया अणिहणा अवंजा अपुरोहिता सतंता सासता आयछठा पुण एगे एवमाहु सतो णत्थि विणासो असतो णत्थि संनवो ॥ २२ ॥

अर्थ-( तंचपिहूद्देसेणंपुढोन्नूतसमवातंजाणेज्जाके० ) ते पांचनूतनो समवाय पृथक् एटले जुदो जुदो जाणवो (तंजहाके० ) ते कहेछे. (पुढवीएगेमहन्नूते के०) पृथवी पर्वतादिक ए एक महान्नूत जाणवो ( आऊडुच्चेमहन्नूते के० ) पाणी नदी सरोवर समुड्रादिकनो ए बीजो महान्नूत जाणवो ( तेऊतच्चेमहन्नूते के० ) अग्नि ते उष्ण अजवालानो कारण ए त्रीजो महान्नूत जाणवो ( वाऊचउछेमहन्नूते के० ) वायु वृक्ष कंपननो लक्षण ए चोथो महान्नूत जाणवो ( आगासेपंचमेमहन्नूते के० ) आकाश अवकाश लक्षण ए पांचमो महान्नूत जाणवो ( इच्चेतेपंचमहन्नूया के० ) ए पांच महान्नूत ते ( अणिम्मिया के० ) ईश्वरादिके नीपजाव्या नथी ( अणिमाविता के० ) हवे नीपजाववा पण नथी ( अकडा के० ) कोइना करेला नथी ( णोकित्तिमा के० ) घटादिकपदार्थनी पेरे कृत्रिम नथी ( णोकडगा के० ) तेनी निष्पत्तिने विषे अन्य कोइनी अपेक्षा नथी ( अणाइया के० ) तेनी आदि नथी ( अणिहणा के० ) तेनो अंत नथी ( अवंजा के० ) अवंध्यते समस्त कार्यना करनार जाणवा ( अपुरोहिता के० ) तेओने कार्यने विषे प्रवर्त्तावनार कोइ नथी ( सतंता के० ) स्वाधीनछे ( सा

सता के० ) शाश्वता छे ( आयछ्हा के० ) आत्माछे जेने छ्हो एवा ए पांचमहाभूत जाणवा ( पुणएगेएवमाहु के० ) एक वली एम कहेछे ( सतोणछिविणासोके० ) छतो विद्यमान पदार्थ तेनो विनाश नथी(असतोणछिसंभवो के०) अविद्यमान शशशृं गादिकनो उत्पत्तिनो संभव नथी ए कारणे सांख्य दर्शनवालो आत्माने कर्त्ता नथी मान तो जो आत्मा कर्त्ता होय तो अछति वस्तु उपजावे ते कारणे आत्मा कर्त्ता नथी. ॥१२॥

---

॥ दीपिका—तं च भूतानां समवायं पृथग्भूतपदोद्देशेन जानीयात् । तद्यथा । पृथिव्यै का महाभूतमित्यादि । एषां कायाकारतया यः समवायः सएकत्वे लक्ष्यते । इत्येतानि पंच महाभूतान्यनिर्मितानि कालेश्वरादिना केनचिदकृतानि परेणाऽनिर्मापयितव्यानि अ कृतानि विश्रसापरिणामेन निष्पन्नत्वात् । तथा न घटवत्कृत्रिमाणि अनादीनि अनि धनानि आद्यंतरहितानि अवंध्यान्यवश्यकार्यकर्तृणि नविद्यते पुरोहितः कार्यं प्रतिवर्त यिता येषां तान्यपुरोहितानि स्वतंत्राणि शाश्वतानि नित्यानि आत्मषष्ठानि पंच महाभूता नीत्येकआहुः । सांख्यानामात्मा किंचित्करः । नास्तिकानांतु कायाकारपरिणतानि भूता न्येवाभिव्यक्तचैतन्यान्यात्मव्यपदेशं लभंते । तदेवं सांख्यमते सतोविद्यमानस्य प्रधा नादेर्नास्तिविनाशोऽसतः शशविषाणादेर्नास्ति संभवः । यदुक्तं । नासतोजायतेभावो नाभावोजायतेसतइति ॥ १२ ॥

---

॥ टीका—तंच तेषां समवायं पृथग्भूतपदोद्देशेन जानीयात् । तद्यथा । पृथिव्येका काठिन्यलक्षणा महाभूतं । तथापोद्रवलक्षणामहाभूतं तथा तेजउष्णोद्योतलक्षणं तथा वायुर्धृतिकंपलक्षणस्तथावगाहदानलक्षणं सर्वद्रव्याधारभूतमाकाशमित्येवं पृथग्भूतपदो द्देशेनकायाकारतया यस्तेषां समवायः सएकत्वेपि लक्ष्यते इत्येतानि पूर्वोक्तानि पृ थिव्यादीनि संख्याह्युपादीयमाना संख्यांतरं निवर्तयतीति कृत्वा नन्यूनानि नाप्यधिका नि विश्वव्यापितया महांति त्रिकालभवनाद्भूतानि । तदेवमेतान्येव पंच महाभूतानि प्रकृ तेर्महान् महतोहंकारस्ततस्माच्च गणः षोडशकस्तस्मादपि षोडशकात्पंचभ्यः पंचभूतानी त्येवं क्रमेण व्यवस्थितान्यपरेण लोकेश्वरादिना केनचिदनिर्मितान्यनिष्पादितानि । तथा परेणानिर्मापयितव्यानि तथा कृतानि न केनचित्तानि क्रियंते । अत्रेंद्रधनुरादिवद्विस्रसा परिणामेन निष्पन्नत्वात्तथा नघटवत्कृत्रिमाणि कर्तृकरणव्यापारसाध्यानि नभवंतीत्य र्थः । तथा पराभावतया नोनैव कृतकानि । अपेक्षितपरव्यापारस्वभावनिष्पत्तौ भावः कृतकइतिव्यपदिश्यते । तानि च विस्रसापरिणामेन निष्पन्नत्वात्कृतकव्यपदेशभांजि न भवंति तथा नाद्यनिधनानि अवंध्यान्यवश्यकार्यकर्तृणि तथा न विद्यते पुरोहितः कार्ये

प्रति प्रवर्तयिता येषां तान्यपुरोहितानि स्वतंत्राणि स्वकार्यकर्तृत्वं प्रत्यपरनिरपेक्षाणि शाश्वतानि नित्यानि वा नकदाचिदनीदृशं जगदिति वचनात्तदेवंभूतानि पंच महाभूतान्यात्मषष्ठानि। पुनरेके एवमाहुरात्मावा किंचित्कारः सांख्यानां लोकायतिकानां पुनः कायाकारपरिणतान्येव भूतान्यभिव्यक्तचेतनानि आत्मव्यपदेशं भजंतइति । तदेवं सांख्याभिप्रायेण सतोविद्यमानस्य प्रधानादेर्नास्ति विनाशोऽत्यंताभावरूपोनाप्यसतः शशविषाणादेः संभवः समुत्पत्तिरस्ति कार्यस्य विद्यमानस्यैवोत्पत्तिरिष्टा नासतः सर्वस्मात्सर्वस्योत्पत्तिप्रसंगात् । तथाचोक्तं । नासतोजायते भावोऽनाभावोजायते सतइत्यादि तथा असतः खरविषाणादेरकरणादुपादानकारणस्यच मृत्पिंडादेर्घटार्थिनोपादानादिभ्यश्च हेतुभ्यः कारणे सत्कार्यवादः ॥ २२ ॥

एतावतावजीवकाए एतावतावअत्थिकाए एतावतावसव्वलोए एतं मुहं लोगस्स करणयाए अवियंतसो तणमायमवि ॥ २३ ॥

अर्थ–(एतावतावजीवकाए के० ) ते सांख्य एम कहेछे के जीवकाय जे छे एटलोज पांच भूत जाणवो कार्यनो करनार पण एटलोज जाणवो ( एतावतावअत्थिकाए के० ) वली एटलोज अस्तिकाय टाली बीजो पदार्थ पण कोइ नथी ( एतावतावसव्वलोए के० ) एटलोज सर्वलोक पांचभूत आत्मिक जाणवो ( एतंमुहंलोगस्सकरणयाए के० ) लोकने करवे एहिज मुख्य प्रधान कारण जाणवो ( अवियंतसोतणमायमवि के० ) तृण मात्र कार्यनुं करनार पण ए पांचभूत टाली बीजो कोइ नथी ॥ २३ ॥

॥ दीपिका–एतावानेव भूतमात्रएव जीवकायः। एतावानेवास्तिकायोनापरः कश्चित्पदार्थः एतावानेव सर्वलोकः । तथा एतदेव पंचभूतास्तित्वं मुख्यं कारणं लोकस्य सांख्यस्य हि प्रधानात्मभ्यांसृष्टेरुत्पत्तिर्नास्तिकस्यतु भूतान्येवांतशस्तृणमात्रमपि कार्यं कुर्वंति ॥ २३ ॥

॥ टीका–तदेवमेतावानेव तावदिति सांख्योलोकायतिकोवा माध्यस्थ्यमवलंब्यमानएवमेवाह । तद्यथा । निर्युक्तिनिर्विचार्यमाणस्तावदेतावानेव जीवकायोयदुत पंचमहाभूतानि यतस्तान्येव सांख्याभिप्रायेण प्रधानरूपतापन्नानि सत्वादिगुणोपचयापचयाभ्यां सर्वकार्यकर्तृण्यात्मा वा किंचित्करत्वादसत्कल्पएव लोकायतस्यतु सभास्त्येवेत्यतएतावानेव भूतमात्रएव जीवकायस्तथा एतावानेव भूतास्तित्वमात्रएवास्तिकायोनापरः कश्चित्तीर्थिकाभिप्रेतः पदार्थोस्तीति । तथा एतावानेव सर्वलोकोयदुत पंचमहाभूतानि प्रधानरूपापन्नान्यात्मा चाकर्ता निर्गुणः सांख्यस्य लोकायतिकस्यतु पंचभूतात्मकाएव लोकास्तदतिरिक्तस्यापरस्य पदार्थस्याभावादिति । तथा एतदेव पंचभूतास्तित्वं मुख्यं कारणं लोक

स्यैतदेव चरणकरणतया सर्वकार्येषु व्याप्रियते । तथाहि । सांख्यस्य प्रधानात्मर्व्या सृष्टिरुपजायते । लोकायतिकस्यतु भूतान्येवांतस्तृणमात्रमपि कार्यं कुर्वंति तदतिरिक्तस्यापरस्याभावादिति भावः ॥ १३ ॥

से किणंकिणावेमाणे हणंघायमाणे पयंपयावेमाणे अविअंतसो पुरिसमविक्किणित्ता घायइत्ता एडंपि जाणाहि णत्थिदोसो ते णोएवं विप्पडिवेदेंति तंजहा किरियाइवा जाव णिरएइवा एवंते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं कामभोगाइं समारभंति भोयणाए एवमेव ते अणारिया विप्पडिवन्ना तं सद्दहमाणा तं पत्तियमाणा जावइति ते णो हव्वाए णोपाराए अंतरा कामभोगेसु विसण्णा दोच्चे पुरिसजाए पंचमहभूतिएत्ति आहिए ॥ १४ ॥

अर्थ–हवे एक वादी एम कहेछे के आत्मा सर्वथापि नथी वली एक वादी एम कहेछे के आत्माछे परंतु क्रिया कांइ करतो नथी तो तेने मते आत्माने शुभाशुभ कर्मनो बंध नथी एवो देखाडेछे ( सेकिंणंकिणावेमाणे के० ) ते क्रियानो अर्थी पुरुष कोइएक जातनो क्रियाणो लेतो अथवा अन्य पाशे लेवरावतो ( हणंघायमाणे के० ) तथा प्राणीउने हणतो अथवा अनेरा पाशे हणावतो (पयंपयावेमाणे के०) पचन पाचनादि क्रिया पोते करतो अथवा अनेरा पाशे करावतो थको (अविअंतके०) पण निश्चेकरी जाणे (सोपुरिसमविक्किणित्ताके०) अथवा ते पुरुष पंचेंद्रीने मोले वेचातु लेइने (घायइत्ताके०) हणतो थको (एडंपिजाणाहिंके०) अहींयां पण ते एवुं जाणे के (णत्थिदोसो के०) ते हिंसाना दोषनो विभागी न थाय एवो जाणी यथाछंदे हिंसादिक सावद्य व्यापारमां प्रवर्त्ते (तेणोएवंविप्पडिवेदेंतिके०) ते बापडा मूर्ख एटलो न जाणे शुं नजाणे (तंजहाके०) ते कहेछे (किरियाइवाके०) क्रिया एटले रूडो अनुष्ठान ते नजाणे (जावणिरएइवाके०) ज्यां शुधी नरक नजाणे एम सर्व पूर्ववत् जाणवो (एवंतेविरूवरूवेहिं के०) एम ते नाना प्रकारना (कम्मसमारंभेहिंके०) कर्मनो समारंभ करता ( विरूवरूवाइंकामभोगाइंसमारभंति के० ) न्हाना प्रकारना कामभोगने समारंभे ( भोयणाए के० ) आहारने अर्थे भोगवता ( एवमेवतेअणारियाविप्पडिवन्ना के० ) एरीते ते अनार्य पोतानो धर्म रुडो करी प्ररूपता कामभोगने विषेमूर्छाणा थका ( तंसद्दहमाणा के० ) ते पाखंमी धर्म ने सद्दहता थका ( तंपत्तियमाणा के० ) तेनी प्रतीत करता थका ( जावइतिते के० ) ज्यां शुधी ए प्रकारे ते ( णोहव्वाए के० ) तीरे पण रह्या नही

अने ( णोपाराए के० ) पार पण पाम्या नही इहलोक परलोकथी भ्रष्ट थया थका (अंतराकामभोगेसुविसएणा के० ) विचाले कामभोगने विषे संसार मांहेज खूता रहे पण पुंमरक कमल सरखा राजाने उद्धरी शके नही. ( दोच्चेपुरिसजाए के० ) ए बीजो पुरुष जात ( पंचमहभूत्तिएतिआहिए के० ) ए पंचमहाभूतिक नामे कह्यो. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–आत्मनोऽकिंचित्करत्वात्सांख्यमतेऽसत्वान्नास्तिकमते न कर्मनिर्बंधइत्याह। संक्रयार्थी पुरुषः क्रीणन् किंचिद्वस्तु मूल्येन गृह्णन् परं क्रीणयन् मूल्येन ग्राहयन् तथा प्राणिनोघ्नन् हिंसन् परैर्घातयन् तथा पचन् पाचयन् एतानि कुर्वतोन्यानप्यनुजानन्नप्यंतशः पुरुषमपि पंचेंद्रियं विक्रीय हत्वा घातयित्वाऽत्रापि पंचेंद्रियवधे नास्ति दोषः। अत्रैवं जानीहि किंपुनरेकेंद्रियवधइत्यपिशब्दार्थः। ततस्ते नैवैतद्विप्रतिवेदयंति जानंति। तद्यथा। क्रिया चलनात्मिका सावद्यानुष्ठानरूपा अक्रिया स्थानरूपा यावदेवमेव विरूपविरूपैर्नानारूपैः कर्मसमारंभैः सावद्यानुष्ठानैर्विरूपरूपान्नानाप्रकारान् कामोपभोगान् समारभंते स्वयं अन्यांश्च कारयंति नास्त्यत्र दोषइति प्रतार्य एवमेव तेऽनार्याविप्रतिपन्नाविरुद्धं मार्गं प्रतिपन्नास्तमात्मीयं धर्मं श्रद्दधानाआत्मीयांगीकारं रोचयंतस्तद्धर्मस्याख्यातारं प्रशंसयंतः। तद्यथा। स्वाख्यातोभवता धर्मइत्यादितावन्नेयं। यावदंतरा कामभोगेषु विषण्णाइह परलोकभ्रष्टानात्मत्राणाय नापि परेषामिति द्वितीयः पुरुषजातः पंचमहाभौतिकोव्याख्यातः ॥२४॥

॥ टीका– सचैवंवाद्येकत्रात्मनोऽकिंचित्करत्वादन्यत्र वात्मनोसत्वादसदनुष्ठानैरप्यात्मा पापैः कर्मभिर्न बध्यतइति दर्शयितुमाह ( सेकिणमित्यादि ) सेतियः कश्चित्पुरुषः क्रयार्थी क्रीणन् किंचित् क्रयेण गृह्णंस्तथापरं क्रापयंस्तथाहि प्राणिनोघ्नन् हिंसन् तथा परैर्घातयन् व्यापादयन् तथा पचन् पाचनादिकां क्रियां कुर्वंस्तथाऽपरैश्च पाचयन्। अस्य चोपलक्षणार्थत्वात् क्रीणतः क्रयतोघ्नतोघातयतः पचतः पाचयतश्चापरांस्तथाप्यंतशः पुरुषमपि पंचेंद्रियं विक्रीय घातयित्वापि पंचेंद्रियघाते नास्ति दोषोत्रैवंजानीहि अवगच्छ किंपुनरेकेंद्रियवनस्पतिघातइत्यपिशब्दार्थः। ततश्चैवंवादिनः सांख्यावार्हस्पत्यावा नोनैवैतद्वक्ष्यमाणं विप्रतिवेदयंति जानंति। तद्यथा। क्रिया परिस्पंदात्मिका सावद्यानुष्ठानरूपाएवमक्रिया स्थानादिलक्षणा यावद्देवमेव विरूपरूपैरुच्चावचैर्नानाप्रकारैर्जलस्नानावगाहनादिकैस्तथा प्राण्युपमर्दकारिभिः कर्मसमारंभैर्विरूपरूपान्नानाप्रकारान् सुरापानमांसभक्षणागम्यागमनादिकान् कामोपभोगान् समारभंते स्वतः परांश्चोदयंति नास्त्यत्र दोषइत्येवं प्रतार्यसत्कारणाय प्रेरयंत्येवं च तेऽनार्याअनार्यकर्मकारित्वादार्यान्मार्गाद्विरुद्धं मार्गं प्रतिपन्नाः। तथाहि। सांख्यानामचेतनत्वात्प्रकृतेः कार्यकर्तृत्वं नोपपद्यते। अचेतनत्वं तु त

स्याश्चैतन्यं पुरुपस्य स्वरूपमिति वचनात् आत्मैव प्रतिबिंबोदयन्यायेन करिष्यतीति चेत्त दपि न युक्तिसंगतं । यतोऽकर्तृत्वादात्मनोनित्यत्वाच्च प्रतिबिंबोदये न युज्यते । किंचानि त्यत्वात्प्रकृतेर्महदादिविकारतया नोत्पत्तिः स्यात् । अपिच । नासतोजायते नावोनाना वोजायते सतइत्याद्यन्युपगमात्प्रधानात्मनोरेव विद्यमानत्वान्महदहंकारादेरनुत्पत्तिरेवैक त्वाच्च प्रकृतेरेकात्मवियोगेसति सर्वात्मनां वियोगः स्यादेकसंबंधेवा सर्वात्मनां प्रकृतिसंयो गोन पुनः कस्य चित्तत्त्वपरिज्ञानात् प्रकृतिवियोगे मोक्षोऽपरस्य तु विपर्ययात्संसारइत्येवं जगद्वैचित्र्यं नस्यादात्मनश्चाकर्तृत्वे तत्कृतौ बंधमोक्षौ नस्यातामेतच्च दृष्टेष्टबाधितं नापि कारणे सत्कार्यवादोयुक्तिनिरनुपपाद्यमानत्वात् । तथाहि । मृत्पिंडावस्थायां घटोत्पत्तेः प्राग्घटसंबंधानां कर्मगुणव्यपदेशानामनावाद्घटार्थिनां च क्रियासु प्रवृत्तेर्न कारणे कार्यमि ति लोकायतिकस्यापि नूतानामचेतनत्वात्कर्तृत्वानुपपत्तिः । कायाकारपरिणतानां चै तन्याभिव्यक्त्यन्युपगमेच मरणानावप्रसंगः स्यात्तस्मान्न पंचनूतात्मकं जगदिति स्थितं। अपि चेदं ज्ञानं स्वसंवित्तिसिद्धमनात्मधर्मिणमुपस्थापयति । नच नूतान्येवं धर्मित्वेन परिकल्पयितुं युज्यंते तेपामचेतनत्वादथ कायाकारपरिणतानां चैतन्यधर्मोनविष्यती त्येतदप्ययुक्तं । यतः कायाकारपरिणामएव तेपामात्मानमधिष्ठातारमंतरेण न नवितुम र्हति निर्हेतुकत्वप्रसंगान्निर्हेतुकत्वेच नित्यं सत्वमसत्वंवा स्यादिति । तदेवंनूतव्यतिक्त आत्मा तस्मिंश्च सति सदनुष्ठानतः पुण्यपापे ततश्च जगद्वैचित्र्यसिद्धिरिति । एवं व्यवस्थि ते तेऽनार्याः सांख्यालोकायतिकावा पंचमहानूतप्रधानान्युपगमेन विप्रतिपन्नायत्कुर्यु स्तदर्शयितुमाह । (तंसहहमाणाइत्यादि) तमात्मीयमन्युपगमं ये चोकया नीत्या निर्युक्ति कत्वमपि श्रद्दधानाः पंचमहानूतात्मप्रधानस्य सर्वकार्याणि उपगच्छंति । तदेवच सत्य मित्येवं प्रतिपादयंतः प्रतिपद्यमानास्तदेव चात्मीयमन्युपगमं रोचयंतस्तद्धर्मस्याख्यातारं प्रशंसयंतः । तद्यथा । स्वाख्यातोनवता धर्मोऽस्माकमयमत्यंतमनिप्रेतइत्येवं ते तदध्यव सायाः सावद्यानुष्ठानेनाप्यधर्मोन नवतीत्यध्यवसायिनः स्त्रीकामेपु मूर्छिताइत्येवं पूर्ववज्ज्ञे यं। यावत्तदंतरे कामनोगेपु विपणाऐहिकामुष्मिकोनयकार्यंत्रष्टानात्मत्राणाय नापि परेपा मिति । नवत्येवं द्वितीयः पुरुपजातः पंचमहानूतान्युपगमिकोव्याख्यातइति ॥ २४ ॥

अहावरे तच्चे पुरिसजाए ईसरकारणिए इति आहिज्जइ इह खलु पासा दीणंवा संतेगतिया मणुस्सा नवंति अणुपुव्वेणं लोयं उववन्ना तं आरि यावेगे जाव तेसिंचणं महंते एगे राया नवइ जाव सेणावइपुत्ता तेसिं चणं एगतीए सड्डा नवइ कामं तं समणाय माहणाय पहारिंसुगमणाए जाव जहा मए एसधम्मे सुअक्खाए सुपन्नत्ते नवइ॥ २५ ॥

अर्थ–हवे अपर त्रीजो पुरुप जात कहेबे जे ईश्वर लोकनो. करनार बे एवुं मानेबे ते मते एने ईश्वर कारणिक कहेबे खलु इति निश्चें आ मनुष्य लोकने विपे पूर्वोक्तरीते पूर्वादिक चार दिशिये कोइएक मनुष्य होय ते अनुक्रमे लोक मांहे उपना तेमां कोइ एक आर्य देशना उपना ते ज्यां सुधी महोटो राजा होय तेने परपदा होय ते वली ज्यां सुधी सेनापतिना पुत्र इत्यादिक परखदा सुधी कहेवुं तेमांहे कोइ एक धर्मनी श्रद्धावान होय धर्मार्थी होय तेने धर्मार्थी जाणीने श्रमण ब्राह्मण मली धर्म प्रतिबोधवा निमित्ते आलोचीने ते पूर्वोक्त राजादिकने संमुख जइने अंहीं यावत् पूर्वोक्त रीते सन्नादिकनु प्रस्ताव सर्व कहेवो पछीते राजादिकने तेईश्वरकारणिक पुरुष आवी पोतानो स्वाख्यात सुप्रज्ञ धर्म वर्णवेबे. ॥ १५ ॥

---

॥ दीपिका–अथापरस्तृतीयः पुरुपजातईश्वरोजगतः कारणं यस्य सईश्वरकारणिक आत्माऽद्वैतवादी व्याख्यायते । ( इहखलुइत्यादि ) प्राच्यादिपु दिक्षु एकस्यां दिशि स्थितः कश्चिदेवं ब्रूयात् । यथा राजानमुद्दिश्य तावद्यावत्स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोधर्मोनवति॥१५॥

---

॥ टीका–सांप्रतमीश्वरकारणिकमधिकृत्याह । ( अहावरेइत्यादि ) अथ द्वितीयपुरुपानंतरं तृतीयईश्वरकारणिकआख्यायते । समस्तस्यापि चेतनाचेतनरूपस्य जगतईश्वरः कारणं। प्रमाणं चात्र तनुलुवनकरणादिकं धर्मित्वेनोपादीयते ईश्वरकर्तृकमिति साध्योधर्मः संस्थानविशेपत्वात्कूपदेवकुलादिवत्तथा स्थित्वा प्रवृत्तेर्वास्यादिवत्। उक्तंच। अज्ञोजंतुरनीशः स्या,दात्मनः सुखडुःखयोः॥ ईश्वरप्रेरितोगच्छे,त्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा इत्यादि। तथा पुरुप एवेदं यद्भूतं यच्च नव्यमित्यादि । तथा चोक्तं। एकएव हि नूतात्मा नूते नूते प्रतिष्ठितः॥ एकधा बहुधाचैव दृश्यते जलचंद्रवदित्यादि । तदेवमीश्वरकारणिकआत्मा द्वैतवादी वा तृतीयः पुरुपजातआख्यायते । ( इहखलुइत्यादि ) इहैव पुरुपजातप्रस्तावे । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । प्राच्यादिपु दिक्ष्वन्यतमस्यां व्यवस्थितः कश्चिदेवं ब्रूयात् । तद्यथा। राजानमुद्दिश्य तावद्यावत्स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोधर्मोनवति ॥ १५ ॥

इह खलु धम्मा पुरिसादिया पुरिसोत्तराया पुरिसप्पणीया पुरिससंभूया पुरिसपज्जोतिता पुरिसअभिसमण्णागया पुरिसमेव अभिनूय चिठंति सेजहा णामए गंभेसिया सरीरे जाए सरीरे संवुड्ढे सरीरे अभिसमण्णागए सरीरमेव अभिनूय चिठंति एवमेव धम्मा पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिनूय चिठंति सेजहा णाम ए अरईसिया सरीरे जाया सरीरे संवुड्ढा सरीरे अ

भिसमएागया सरीरमेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा एामए वम्मिएसिया पुढविजाए पुढविसंवुड्ढे पुढविअभिस्समएागए पुढविमेव अभिभूय चिठइ एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा एामए रुक्खे सिया पुढविजाए पुढविसंवुड्ढे पुढविअभिसमएागए पुढविमेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा एामए पुक्खरिएी सिया पुढविजाया जाव पुढविमेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्माविपुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति से जहा एामए उदगपुक्खलेसिया उदगजाए जाव उदगमेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा एामए उदगवुब्बुएसिया उदगजाए जाव उदगमेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति ॥ २६ ॥

अर्थ—( इहखलुधम्मापुरिसादियाके० ) आ संसारने विषे. खलु एवे वाक्यालंकारे धर्म जे सचेतना अचेतनारूप स्वभाव ते पुरुषादिक जाएवा एटले एम कहुंजे एनी आदिनुं करनार पुरुष शब्दे ईश्वरछे तेकारएो पुरुषादिक एम पाठ कह्यो तथा ( पुरिसोत्तरायाके० ) पुरुषज जेने उत्तर एटले प्रधानछे तथा ( पुरिसप्पएीया के० ) पुरुष प्रएीत एटले एनो अधिष्ठाता पए पुरुष ईश्वरजछे तथा ( पुरिससंभूयाके० ) पुरुष थकीज उपना ( पुरिसपज्जोतिता के० ) पुरुषजे ईश्वर तेएोज प्रगट कस्या जेम प्रदीप मएी अने सूर्यादिके घटपटादिक पदार्थ प्रगट कस्या तेनी पेरे जाएी लेवुं ( पुरिसअभिसमएागया के० ) जीवने जन्म जरा मरए रोग शोक वर्ण गंध रस स्पर्श मूर्त्तिपएो ए अनागतादिक धर्म ते सर्व पदार्थ ईश्वरना अनुगामीछे ( पुरिसमेवअभिभूयचिठंति के० ) किंबहुना ए सर्व पुरुषनेज व्यापीने रहेछे ( सेजहाएामए के० ) ए अर्थ उपर दृष्टांत देखाडेछे जेम एाम एवे संभावनाये ( गंडेसिया सरीरेजाएके० ) पुरुषने शरीरे गंड एटले गुंबडो रोग विशेष थाय ते तेज शरीरने विषे उपनो ( सरीरेसंवुड्ढे के० ) तेज शरीरने विषे वृद्धि पाम्यो ( सरीरे अभिसमएागए के० ) शरीरने पठवाडेज अनुगत गामिछे ( सरीरमेवअभिभूयचिठंति के० ) शरीरने विषेज व्यापि रहेछे पए तेनो अवयव शरीर थकी बाहेर नथी ( एवमेव के० ) एमज ( धम्मावि के० ) ए पदार्थ मात्रजेछे ते पए ( पुरिसादिया

के० ) पुरुष जे ईश्वर ते थकी उत्पन्न थया ते ( जावअनिनूयचिठंति के० ) यावत् ईश्वरनेज व्यापि रहेछे परंतु ईश्वर थकी कांइ जुदा नथी.

वली बीजो दृष्टांत कहेछे. जेम (अरइसियाके०) अरति एटले चित्तनो उद्वेग पणो ते शरीर थकीज उपजे अने शरीर थकीज वृद्धि पामे अने शरीर मांहेज व्यापि रहेछे तेम ए धर्म जे पदार्थ ते पण पुरुष थकीज उपजे पुरुष थकीज वृद्धि पामे अने पुरुष मांहेज व्यापिरहेछे वली त्रीजो दृष्टांत कहेछे. ( वम्मिएसियाके०) जेम वम्मिजे पृथवी तेनो विकार होय ते पृथवीने विषेज उपजे पृथवी थकीज वृद्धि पामे अने पृथवीने विषेज व्यापिने रहे तेम ए धर्म अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा वली चोथो दृष्टांत कहेछे. जेम कोइएक वृक्ष होय ते पृथवी थकी उपजे पृथवीने विषेज वृद्धि पामे अने पृथवीनेज व्यापि रहे तेम ए धर्म अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा. वली पांचमो दृष्टांत कहेछे. जेम पुष्करिणी होय ते पृथवी थकी उपजे पृथवी थकी वृद्धि पामे अने पृथवीने विषेज व्यापि रहे तेम ए पदार्थ अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा. वली छठो दृष्टांत कहेछे. जेम घणा पाणी मांहे कमल होय ते कमल जल थकी नीपजे जल थकीज वृद्धि पामे अने जल मांहेज व्यापि रहे तेमज ए पदार्थ पण ईश्वर थकीज नीपजे ईश्वर थकीज वृद्धि पामे अने ईश्वरनेज व्यापि रहे वली सातमो दृष्टांत कहेछे. जेम पाणीनुं बुदबुदो होय ते जल थकीज नीपजे जल थकीज वृद्धि पामे अने जल मांहेज व्यापि रहे तेम ए पदार्थो सर्व ईश्वर थकीज उपजेछे इत्यादिक सर्व जाणी लेवुं ॥ २६ ॥

---

॥ दीपिका–इह खलु धर्माः स्वनावाश्चेतनाचेतनरूपाः पुरुषईश्वरआत्मा वा कारणमादिर्येषां ते पुरुषादिकाईश्वरकारणिकाआत्मकारणिकावा तथा पुरुषएव उत्तरं कार्यं येषांते पुरुषोत्तरास्तथा पुरुषेण प्रणीताः पुरुषेण द्योतिताः प्रकाशीकृतायथा सूर्येण घटादयः । ते च धर्माजीवानां जन्ममरणरोगशोकादयः । अजीवधर्मास्तु मूर्तद्रव्याणां वर्णगंधरसस्पर्शाः । अमूर्तद्रव्याणां धर्माधर्माकाशानां गत्यादिकाधर्माः सर्वेपीश्वरकृताः । आत्माद्वैतवादे चात्मविवर्ताः । सर्वेऽप्येते पुरुषमेवाभिनूय व्याप्य तिष्ठंति । अत्रार्थे दृष्टांतान् बहूनाह । ( सेजहानामएइत्यादि ) सेजहा तद्यथा । नामेति संनावनायां । गंडं स्यात् । संनाव्यते हि प्राणिनां कर्मवशगानां गंडादिरोगइति । गंडं च शरीरे जातं शरीरावयवनूतं तथा शरीरे वृद्धिमुपगतं शरीरवृध्या तस्य वृद्धिरिति । शरीरेऽनिसमन्वागतं न तदवयवोपि शरीरात्पृथक्नूतइति । शरीरमेवानिनूय पीडयित्वा तिष्ठति । एवमेव येऽमी धर्माश्चेतनाचेतनरूपास्ते सर्वेपीश्वरकर्तृकाः । न ते ईश्वरात्पृथक्कर्तुं न शक्यंते यथा गंडं शरीरविकारनूतं तद्विनाशेच शरीरमेव तिष्ठति एवं धर्माः पुरुषादिकाः पुरुषवि

काररूपान पुरुषात् पृथग्नवंति तद्विकारापगमे चात्मानमेवाश्रित्य तिष्ठंति । एवमन्यदृष्टांताअपि नाव्याः । ( सेजहेत्यादि ) अरतिश्चित्तोद्वेगरूपा साच शरीरजातेत्यादि । यथावा वल्मीकं पृथिवीविकाररूपं पृथिव्यां जातमित्यादि । एवं सर्वमीश्वरकारणिकमात्मविवर्तरूपं वा । यथा वा वृक्षोऽशोकादिः पृथिवीजातः । यथा वा पुष्करिणी तडागरूपा पृथिव्यामेव जातेत्यादि प्राग्वत् । तथा उदकपुष्कलमुदकप्राचुर्य मुदकजातमित्यादि यथावा उदकबुद्बुदइत्यादि सुगमं ॥ २६ ॥

---

॥ टीका–सचायं । इह खलु धर्माः स्वनावाश्चेतनाचेतनरूपाः पुरुषईश्वरआत्मावा कारणमादिर्येषांते पुरुषादिकाईश्वरकारणिकाआत्मकारणिकावा तथा पुरुषएवोत्तरं कार्यं येषांते पुरुषोत्तरास्तथा पुरुषेण प्रणीताः सर्वस्य तदधिष्ठितत्वात् तदात्मकत्वाद्वा तथा पुरुषेण द्योतिताः प्रकाशीकृताः प्रदीपमणिसूर्यादिनेव घटपटादयइति । तेच धर्मा जीवानां जन्मजरामरणव्याधिरोगशोकसुखडुःखजीवनादिकाः । अजीवधर्मास्तु मूर्तिमतां द्रव्याणां वर्णगंधरसस्पर्शाद्यमूर्तिमतां द्रव्याणां धर्माधर्माकाशानां गत्यादिकाधर्माः । सर्वेपीश्वरकृताआत्माद्वैतवादेवाऽत्मविवर्ताः सर्वेप्येते पुरुषमेवाभिनूय व्याप्य तिष्ठंति । अस्मिन्नर्थे दृष्टांतानाविर्नावयन्नाह । ( सेजहाणामएइत्यादि ) सेशब्दस्तच्छब्दार्थे । नामशब्दः संनावनायां । तद्यथा । नाम गंडं स्यान्नवेत्संनाव्यते च शरीरिणां संसारांतर्गतानां कर्मवशगानां गंडादिसमुद्भवस्तच्च शरीरे जातं शरीरावयवसंनूतं तथा शरीरे वृद्धिमुपगतं शरीरानिवृद्धौ च तस्यानिवृद्धिस्तथा शरीरेऽनिसंबंधागतं शरीरमानिमुख्येन व्याप्य व्यवस्थितं न तदवयवोपि शरीरात्पृथग्नूतइति नावः । तथा शरीरमेवानिनूयानिमुख्येन पीडयित्वा तिष्ठति । यदिवा तडुपशमे शरीरमेवाश्रित्य तद्गंडं तिष्ठति न शरीराद्वहिर्नवति । एतडुक्तं नवति । यथा तत्पिटकं शरीरैकदेशनूतं नयुक्तिशतेनापि शरीरात्पृथग्दर्शयितुं शक्यते एवमेवामी धर्माश्चेतनाचेतनरूपास्ते सर्वेपीश्वरकर्तृकान ते शरीरात्पृथक्कर्तुं पार्यंते । यदिवा सर्वव्यापिनआत्मनस्त्रैलोक्योदरविवरवर्तिपदार्थात्मनोये केचन धर्माः प्राडुःषंति ते पृथक्कर्तुं नशक्यंते तथा तद्गंडं शरीरविकारनूतं तदपृथग्नूतं तद्विनाशेच शरीरमेवावतिष्ठते । एवमेव सर्वेपि धर्माः पुरुषादिकाः पुरुषकारणिकाः पुरुषविकाररूपा नपुरुषात्पृथग्नवितुमर्हंति तद्विकारापगमेवाऽत्मानमेवाश्रित्यावतिष्ठंति न तस्माद्वहिर्नवंतीति शास्त्रेच दृष्टांतप्राचुर्यमविरुद्धं । यदिवाऽस्मिन्नर्थे बहवोदृष्टांताः । संनवंतीश्वरकर्तृत्ववादस्याद्वैतवादस्यच सुप्रसिद्धत्वाद्दृष्टांतबहुत्वमित्याह । ( सेजहाइत्यादि ) तद्यथा नामारतिश्चित्तोद्वेगलक्षणः स्यान्नवेत् । साच शरीरजाताइत्यादि गंडवन्नेया । दार्ष्टांतिकेप्येवमेव सर्वे धर्माः पुरुषादिकाः पुरुषप्रनवाइत्यादिपूर्ववन्नेयं । तथा यथा नाम वल्मीकं पृथ्वीविकार

रूपं स्यात्तच्च पृथिव्यां जातं पृथिवीसंबद्धं पृथिव्यभिसंबंधागतं पृथिवीमेवाभिसंभूय ति ष्ठत्येवं दार्ष्टांतिकेप्यायोज्यं । एवमेव यदेतच्चेतनरूपं तत्सर्वमीश्वरकारणिकमात्मविवर्त रूपं वा नात्मनः पृथग्भवितुमर्हति पृथिव्यां वल्मीकवत्तथा तद्यथा नाम वृक्षोऽशोका दिकः स्यात्सच पृथिवीजातइति दृष्टांतदार्ष्टांतिके पूर्ववदायोज्ये । तद्यथा । नामपुष्क रिणी स्यात्तडागरूपा भवेत्साच पृथिव्यामेव जातेत्यादि प्राग्वच्चर्च्यस्तथा तद्यथा नामपु ष्कलं प्रचुरमुदकं पुष्कलमुदकप्राचुर्यं तच्च तद्धर्मत्वादुदकमेव यावदुदकमेवाभिभूय तिष्ठ त्येवं दार्ष्टांतिकेप्यायोज्यं । तथा तद्यथा नामोदकबुद्बुदः स्यादत्रापि दृष्टांतदर्ष्टांतिके न तस्मादवयविनः पृथग्भूतइति सुगमं ॥ २६ ॥

जंपिय इमं समणाणं णिग्गंथाणं उद्दिठं पणियं वियं जियं डुवालसंगं गणिपिमयं तंजहा आयारो सूयगडो जाव दिछिवातो सबमेवं मिछा ण एयं तहियं णएयं आहातहियं इमं सच्चं इमं तहियं इमं आहात हियं एवं सन्नं कुवंति ते एवं सन्नं संठवेंति तेएवं सन्नं सोवठवयंति तमेवं ते तज्जाइयं डुक्खं णातिउट्टंति सउणी पंजरं जहा ॥२७॥ ते णो एवं विप्पडि वेदेंति तंजहा किरियाइवा जाव अणिरएइवा एवमेव ते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं कामभोगाइं समारभंति भोयणाए एव मेव ते अणारिया विप्पडिवन्ना एवं सद्दहमाणा जावइति ते णोहच्चाए णोपाराए अंतरा कामभोगेसु विसण्णेति तच्चे पुरिसजाए ईसरकारणि एत्ति आहिए ॥ २८ ॥

अर्थ–हवे जे ईश्वरे कर्यो ते सर्व सत्यछे अने बीजो सर्व मिथ्या छे एवो भाव कहेछे (जंपियइमंके०) जे ए प्रत्यक्ष लक्षण (समणाणंणिग्गंथाणंके०) श्रमण निर्ग्रंथनो (उ दिठंके०) उद्देस्यो एटले ते निर्ग्रंथने अर्थे भाख्यो (पणियंवियंजियं के०) तेने अर्थे प्रग ट कर्यो (डुवालसंगगणिपिमयं के०) द्वादशांगी गणि पिटक एटले आचार्यनो भंमा र (तंजहा के०) तेना नाम कहेछे. (आयारो के०) आचारांग (सूयगडो के०) सू त्रकृतांग इत्यादिक (जावदिछिवातो के०) ज्यांसुधी दृष्टिवाद लोक बिंडुसार नामा पूर्व पर्यंत (सबमेवंमिछा के०) ए सर्व मिथ्याछे कारण के ए कांइ ईश्वरकृत नथी एतो सर्व पोतानी इछायें कल्पितछे माटे मिथ्याछे जेम कोइ छताने अछतो कहे अछताने छतो कहे जेम कोइ साधुने चोर कहे अने चोरने साधु कहे तथा गायने घोडो कहे अने घोडाने गाय कहे तेमज आत्मा कर्त्ता नथी तेने जे कर्त्ता कहेछे अने जे ईश्वर कर्त्ताछे

तेने अकर्त्ता कहेछे तेमाटे (णएयंतहियंके०) ए तथ्य नथी (णएयंआहातहियंके०) ए यथातथ्य नथी हवे ए दर्शनी जेने सत्य करी माने ते कहेछे. (इमंके०) ए ईश्वर कारणिक छे एमजे मानीये तेहिज (सच्चंके०) सत्यछे (इमंतहियंके०) तेहिज तथ्य जाणवो (इमंआहातहियंके०) एज यथा तथ्यविशेषे जाणवो एरीते ते ईश्वर कारणिक पोताना दर्शनने अनुरागे (एवंतन्नंकुवति के०) एवी संज्ञा करे (तेएवंसन्नंसंठवेंति के०) ते बीजा आगल पण एवीज संज्ञा स्थापन करे यद्यपि एवात युक्ति शून्यछे तथापि (तेएवं सन्नं सोवठ्ठवयंतिके०) ते एवी संज्ञाने अनेक हेतु युक्ति दृष्टांते करी स्थापेछे (तमेवंते तज्ञाइयंडुक्ख के०) ते कारणे ते उत्सूत्रने स्थापवे करी उत्पन्न थाय जे डुःख ते डुःखने (णातिउट्टंति के०) त्रोडी नशके तेना उपर दृष्टांत कहेछे (सउणीपंजरंजहा के०) जेम शकुनी एटले पक्षी ते पांजराने त्रोडी नशके भ्रमण करी करीने वली तेहिज पांजरा मांहे रहे तेम ते पूर्वोक्त अन्य दर्शनीउं पण संसार रूप पांजरा मांहेज रहे परंतु मोक्षे जइ शके नही अने बीजाने पण मोक्षे पोचाडी नशके ॥ १७ ॥ (तेणोएवं विप्पडिवेदेंति के०) ते अन्य दर्शनी पाखंमी बापडा आटली वात नथी जाणता शुं नथी जाणता (तंजहा के०) ते कहेछे. (किरियाइवा के०) रुडो अनुष्ठान नथी जाणता (जावअणिरएतिवा के०) यावत् अनरक पर्यंत नथी जाणता (एवमेव के०) एम अणजाणता थका (तेविरूवरूवेहिंकम्मसमारंभेहिं के०) ते नाना प्रकारना सावद्यकर्मने करवे करी (विरूवरूवाइंकामभोगाइंसमारभंति के०) अनेक प्रकारना कामभोग समारंभे भोगवे (भोयणाए के०) भोजनने अर्थे एरीते ते अनार्य पोताना धर्मने रुडो देखाडी प्ररूपता छता कामभोगने विषे मूर्छाणा थका एमते पाखंमी धर्मे राजादिकने सद्दावता थका ज्यांलगे ते तीरे पण रह्या नही अने पारपण पाम्या नही एम आलोक थकी चूका अने परलोके पण पोता नही विचाले संसार मांहे काम भोग रूप कादवने विषेज खुता थका रहे ते राजारूप पुंमरीक कमलने उद्धरी शके नही ए त्रीजो पुरुष जात ईश्वर कारणिक कह्यो. ॥ १८ ॥

---

॥ दीपिका–ईश्वरकृतं सत्यमन्यन्मिथ्येत्याह । यदपि चेदं श्रमणानां यतीनां निर्ग्रंथानां निष्किंचनानामुद्दिष्टं प्रणीतं व्यक्तीकृतं द्वादशांगं गणिपिटकं । तद्यथा । अचारः सूत्रकृतांगमित्यादि यावद्दृष्टिवादः । सर्वमेतन्मिथ्याऽनीश्वरप्रणीतत्वात् नैतत्तथ्यं नैतद्याथातथ्यं न यथास्थितार्थकथकं। इदं पुनरीश्वरकर्तृत्वं आत्माद्वैतंच सत्यं इदमेव तथ्यं इदमेव याथातथ्यं । तदेवं ते पूर्वोक्तनीत्या संज्ञां कुर्वंति ज्ञानं दधते अन्येन्यश्च संज्ञां संस्थापयंति । ते एवं संज्ञामुपस्थापयंति सुष्टु उपसामीप्येन युक्तिभिः स्थापयंति । ते चै

वं वादिनस्तदंगीकारजातीयं दुःखं दुःखहेतुत्वान्नातिवर्तंते न त्रोटयंति । यथा शकुनिः पक्षी पंजरं न त्रोटयति एवं तेपि तदुपदेशात्कर्मबंधनं नातिवर्तंते ॥ २७ ॥ ते कदाग्रहग्रस्ताएतद्वक्ष्यमाणं नविप्रतिवेदयंति न जानंति । तद्यथा । इयंक्रियाइत्यादि यावदन रकइत्येवं निर्विवेकत्वान्न जानंति । एवमेव यथाकथंचित्ते विरूपरूपैः कर्मसमारंभैर्वि रूपरूपान् कामभोगान् समारभंते भोजनाय उपभोगाय । एवं ते अनार्याविप्रतिपन्नाः स्वपक्षं प्रतियंति श्रद्दधतीति पूर्ववत् । यावत्ते कामभोगेषु विषएणाः । इत्ययमीश्वरकार णिकआत्माद्वैतवादी तृतीयः पुरुषजातः संपूर्णः ॥ २८ ॥

॥ टीका—तदेवं यदीश्वरकृतत्वेनाभ्युपगम्यते तत्सर्वं तथ्यमपरं मिथ्या इत्येतदाविर्भावय न्नाह । (जंपियेत्यादि) यदपि चेदं सव्यवहारतः प्रत्यक्षासन्नभूतं श्रमणानां यतीनां निर्ग्रं थानां निष्किंचनानामुद्दिष्टं तदर्थं प्रणीतं व्यंजितं तेषामभिव्यक्तीकृतं द्वादशांगं गणिपिटकं तद्यथाचारइत्यादि यावद्दृष्टिवादः सर्वमेतन्मिथ्या अनीश्वरप्रणीतत्वात्स्वरुचिविरचितरथ्या पुरुषवाक्यवत्तथ्यं नैतत्तथ्यंमिथ्येत्यनेनोद्भूतोद्भावनमाविष्कृतमचौरत्ववत् । नैतत्तथ्यमित्य नेन तु सद्भूतार्थनिन्हवोयथानास्त्यात्मेति तथा नैतद्याथातथ्यमवस्थितोर्थः । तथावस्थि तमिति भावोनेन सद्भूतार्थनिन्हवेनासद्भूतार्थारोपणमाविष्कृतं । तद्यथा । गामश्वं ब्रुवतो श्वं वा गामित्येकार्थिकानि चैतानि शक्रेंद्रादिवद्द्रष्टव्यानि । तदेवं यदि तद्द्वादशांगं गणि पिटकं तदनीश्वरप्रणीतत्वान्मिथ्येति स्थितमिदं तु पुनरीश्वरकर्तृकत्वं नामात्माद्वैतं वा सत्यं यथावस्थितार्थप्रतिपादनात् । तथेदमेव तथ्यं सद्भूतार्थोद्भासनात्तदेवं ते ईश्वरकार णिकाआत्माद्वैतवादिनोवा । एव मनंतरोक्तया नीत्या सर्वं तनुभुवनकारणादिकमीश्वर कारणिकं तथा सर्वं चेतनमचेतनं वाऽऽत्मनि निर्वर्तितस्वभावमात्मनएव सर्वाकारतयोत्प त्तेरित्येवं संज्ञानं संज्ञा तामेवं कुर्वंत्यन्येषांच ते स्वदर्शनानुरक्तमनसः संज्ञां स्थापयंति तथा एवंभूतां संज्ञां वक्ष्यमाणेन न्यायेन निर्युक्तिकामपि सुष्ठूपसामीप्येन तदाग्राहितया तदाभिमुख्यायुक्तीर्निर्णीयवः स्थापयंति प्रतिष्ठापयंति । ते चैवं वादिनस्तमीश्वरकर्तृत्ववाद मात्माद्वैतवादंवा नातिवर्तंते तदभ्युपगमजातीयं च दुःखं दुःखहेतुत्वाद्दुःखं नातिवर्तंते न त्रोटयंति । अस्मिन्नर्थे दृष्टांतमाह । यथा शकुनिः पक्षिविशेषोभावकादिकः पंजरं ना तिवर्तते पौनःपुन्येन भ्रांत्वा तत्रैव वर्तते एवं तेप्येवंभूताभ्युपगमवादिनस्तदापादितक र्मबंधं नातिवर्तंते नवा त्रोटयंति ॥२७॥ तेच स्वाभिमानग्रहग्रस्तानैत द्वक्ष्यमाणं विप्रतिवे दयंति न सम्यक् जानंति । तद्यथेयं क्रियासदनुष्ठानरूपेयं चाक्रिया तद्विपरीतेत्येवं स्वाग्रहि णोनान्यत् शोभनमशोभनं वा यावदयमनरकइत्येवं सद्विवेकरहितत्वान्नावधारयंत्येवमेव य थाकथंचित्ते विरूपरूपैः कर्मसमारंभैर्नानाप्रकारैः सावद्यानुष्ठानैर्द्रव्योपार्जनोपायभूतैर्द्रव्य मुपादाय विरूपरूपान्कामभोगानुच्चावचान्समाचरंति भोजनायोपभोगायेत्येवमनार्यास्ते

विरुद्धं मार्गं विप्रतिपन्नान सम्यग्वादिनोनवंति । तथाहि । सर्वमीश्वरकर्तृकमित्यत्राच्यु पगमे किमसावीश्वरः स्वतएवापरान क्रियासु प्रवर्तयेडुतापरेण प्रेरितस्तत्र यद्याद्यः पक्षस्त द्वदन्येपामपि स्वतएव क्रियासु प्रवृत्तिर्नविष्यति किंयंतर्गडुनेश्वरकल्पनेन । अथासावप्यपर प्रेरितः सोप्यपरेणेत्येवमनवस्थालता ननोमंडलमालिनी प्रसर्पति । किंचासावीश्वरोमहा पुरुषतया वीतरागोपेतः सन्ननेकान्नरकयोग्यासु क्रियासु प्रवर्तयत्यपरांस्तु स्वर्गापवर्गयोग्या स्वित्यथ ते पूर्वशुनाशुनचरितोदयादेव तथाविधासु तासु क्रियासु प्रवर्तंते सतु निमित्त मात्रमेतदपि नयुक्तिसंगतं । यतः प्राक्तनाशुनाशुनप्रवर्तनमपि तदायत्तमेव । तथा चो क्तं । अज्ञोजंतुरित्यादि । अथ तदपि प्राक्तनमन्येन प्राक्तनतरेण कारितमित्येवमनादिहे तुपरंपरेत्येवं च सति ततएव शुनाशुने स्थाने नविष्यतः किमीश्वरपरिकल्पनेन । तथा चो क्तं । शास्त्रौपधादिसंबंधाच्चैत्रस्य व्रणरोहणे ॥ असंबद्धस्य कः स्थाणोः कारणत्वं नक ल्पतइत्यादि । यच्चोक्तं । सर्वं तनुनुवनकरणादिकं बुद्धिमत्कारणपूर्वकं संस्थानविशेषत्वा त् देवकुलवदित्येतदपि नयुक्तिसंगतं । यतएतदपि साधनं नजवदनिप्रेतमीश्वरं साधयति तेन सार्धं व्याप्त्यसिद्धेः । देवकुलादिके दृष्टांतेऽनीश्वरस्यैव कर्तृत्वेनाच्युपगमात् । नच सं स्थानशब्दप्रवृत्तिमात्रेण सर्वस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वं सिध्यति । अन्यथानुपपत्तिलक्षण स्य साध्यसाधनयोः प्रतिबंधस्यानावात् । अथाविनानावमंतरेणैव संस्थानमात्रदर्शना त्साध्यसिद्धिः स्यादेवंच सत्यतिप्रसंगः स्यात् । उक्तंच । अन्यथा कुंनकारेण मृद्विकारस्य कस्यचित् ॥ घटादेः कारणात्सिद्धेर्वल्मीकस्यापि तत्कृतिरित्यादि । नचेश्वरकर्तृत्वे जगद्वै चित्र्यं सिध्यति तस्यैकरूपत्वादित्युक्तप्रायमिति । आत्माद्वैतपक्षस्त्वत्यंतमयुक्तिसंगतत्वा न्नाश्रयणीयः । तथाहि । तत्र न प्रमाणं न प्रमेयं नप्रतिपाद्यं न प्रतिपादकोन हेतुर्न दृष्टांतोन तदानासोनेदेनावगम्यते । सर्वस्यैव जगतएकत्वं स्यादात्मनोनिन्नत्वात् तदना वेच कः केन प्रतिपाद्यते इत्यप्रणयनमेव शास्त्रस्यात्मनश्चैकत्वात्तत्कार्यमप्येकाकारमेव स्यादित्यतोनिर्हेतुकं जगद्वैचित्र्यं । तथाच सति । नित्यं सत्वमसत्वं वा, हेतोरन्यानपेक्ष णात् ॥ अपेक्षातोहिनावानां, कादाचित्कत्वसंनवइत्यादि । तदेवमीश्वरकर्तृत्वमात्माद्वैतप क्षश्च युक्तिविचार्यमाणोन कथंचिद्घटां प्रांचति । तथा ते स्वदर्शनमोहमहितास्तज्जातीया दुःखात् शकुनिः पंजरादिव नातिमुच्यंते विप्रतिपन्नाश्च तत्प्रातिपादिकानिर्युक्तिनिस्तदेव स्वपक्षं प्रतियंति श्रद्दधतीति पूर्ववन्नेयं । ( यावत् णोहव्वाएणोपाराएअंतराकामनोगेसु विसएणत्ति ) इत्ययं तृतीयः पुरुपजातईश्वरकारणिकइति । सह्येवमाह । यस्य बुद्धि र्न लिप्येत हत्वा सर्वमिदं जगत् ॥ आकाशमिव पंकेन नासौ पापेन लिप्यतइत्याद्यसमंज सनापितया त्यक्त्वा पूर्वसंयोगमप्राप्तोविवक्षितं स्थानमंतरालएव कामनोगेषु मूर्छितोवि षण्णइत्यवगंतव्यमिति ॥ २७ ॥

अहावरे चउत्थे पुरिसजाए णियतिवाइएत्ति आहिज्जइ इह खलु पाई णंवा तहेव जावसेणावइपुत्तावा तेसिंचणं एगताए सट्ठा नवइ कामं तं समणाय माहणाय संपहारिं सुगमणाए जाव मए एस धम्मे सुअक्खाए सुपन्नते नवइ ॥ २ए ॥

अर्थ–अथ हवे अनेरो चोथो पुरुषजात नियतवादि कहिये वैयें जे कार्य सिद्धिने विषे नवितव्यता टालीने बीजो कारण कांइ पण न माने ते नियतवादि कहिए. खलु एवे वाक्यालंकारे ए मनुष्य लोकने विषे पूर्वादिक चारदिशि मांहेलो कोइएक पुरुष होय ते ज्यां सुधी सेनापतिना पुत्र इत्यादिक परषदा कहेवी तेमांहे कोइएकने धर्मनी श्रद्धा होय धर्मार्थी होय एवो धर्मार्थी जाणीने ब्राह्मण श्रमण मली तेने धर्म प्रति बोधवा निमित्ते आलोची राजादिकने संमुख जइने पोतानो धर्म प्ररूपे ते नियतवादि राजादिकनी पासें पोताना धर्मनी स्थापना जे रीते करे तेरीते कहेछे. ॥ २ए ॥

---

॥ दीपिका–अथापरश्चतुर्थः पुरुषजातोनियतिवादी आख्यायते । इह खलुपाईणं इत्यादिप्राग्वत् । यावदेषधर्मः स्वाख्यातोनवतीति ॥ २ए ॥

---

॥ टीका–सांप्रतं चतुर्थपुरुषजातमधिकृत्याह । ( अहावरेइत्यादि ) अथ तृतीयपुरुषानंतरमपरश्चतुर्थः पुरुषएव पुरुषजातोनियतिवादिकआख्यायते प्रतिपाद्यते सचैवमाह। नात्र कश्चित्कालेश्वरादिकः कारणं नापि पुरुषकारः समानक्रियाणामपि कस्यचिदेव नियतिवादबलादर्थसिद्धेरतोनियतिरेव कारणं । उक्तंच । प्राप्तव्योनियतिबलाश्रयेण योर्थः सोवश्यं नवति नृणां शुनोऽशुनोवा ॥ नूतानां महति कृतेपि हि प्रयत्ने नानाव्यं नवति न नाविनोस्ति नाशइत्यादि ॥ २ए ॥

इह खलु डवे पुरिसा नवंति एगे पुरिसे किरियामाइक्खइ एगे पुरिसे णोकिरियामाइक्खइ जेयपुरिसे किरियामाइक्खइ जेपुरिसे णोकिरियामाइक्खइ दोवि ते पुरिसा तुल्ला एगठा कारणमावन्ना ॥ ३० ॥

अर्थ–( इहखलुडवेपुरिसानवंति के० ) आ संसार मांहे खलु एवे वाक्यालंकारे बे पुरुष होय तेमांहे ( एगेपुरिसेकिरियामाइक्खइ के० ) एक पुरुष क्रिया बोले ( एगेपुरिसेणोकिरियामाइक्खइ के० ) अने एक पुरुष अक्रिया बोले त्यां एक देश थकी बीजे देशे जइयें ते क्रिया जाणवी अनेजे देशांतरने विषे नजावुं एम उपक्रम विना कार्य प्रा

प्ति थाय तेने अक्रिया कहिए ( जेयपुरिसेकिरियामाइरकइ के० ) जे पुरुष क्रिया कहेछे अने ( जेपुरिसेणोकिरियामाइरकइ के० ) जेपुरुष अक्रिया कहेछे ( दोवितेपुरिसातुल्ला के० ) ए क्रियावादि अने अक्रियावादि बंने पुरुष तुल्य एटले सरखा जाणवा ( एगठा कारणमावन्ना के० ) ए बेनुं एकज अर्थछे कारणके ते नियतने वशें वर्त्ते जो ते पोता ने वशें होय तो सरखा नकहेवाय ॥ ३० ॥

॥ दीपिका–नियतिवादी स्वमतमाह । इह द्वौ पुरुषौ नवतः । एकः क्रियामाख्याति। देशाद्देशांतरप्राप्तिः क्रिया सा नियतेरेवस्यात् एवमक्रियापि । द्वावेतौ नरौ तुल्यौ नियतिव शवर्तित्वात् एकार्थौ एककारणापन्नत्वात् क्रियाक्रिये नियत्येककारणाधीनेइत्यर्थः ॥ ३० ॥

॥ टीका–इह खलु ( डुवेपुरिसानवंतीत्यादि ) इहास्मिन् जगति । खलुशब्दोवाक्या लंकारे । द्वौ पुरुषौ नवतस्तत्रैकः क्रियामाख्याति । क्रिया हि देशाद्देशांतरावाप्तिलक्षणा पुरुषस्य नवतीति न कालेश्वरादिना चोदितस्य नवत्यपितु नियतिप्रेरितस्यैवमक्रियापि । यदि तावतंत्रौ नवतः । ततः क्रियावादमक्रियावादंच समाश्रितौ द्वावपि नियत्य धीनत्वात्तुल्यौ । यदि पुनस्तौ स्वतंत्रौ नवतस्ततः क्रियाक्रियानेदान्नतुल्यौ स्यातामित्यत एकार्थावेककारणापन्नत्वादिति नियतिवशेनैव तौ नियतिवादमनियतिवादं चाश्रितावि ति नावः । उपलक्षणार्थत्वाच्चान्योपि यःकश्चित्कालेश्वरादिपक्षांतरमाश्रयति । सोपि नियति चोदितएव डुष्टव्यइति ॥ ३० ॥

बाले पुण एवं विप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने अहमंसि डुरकामिवा सोयामि वा जूरामिवा तिप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामिवा अहमेयमकासिपरोवा जं डुरकइवा सोयाइवा जूराइवा तिप्पाइवा पीडाइवा परितप्पाइवा परोए वमकासि एवं सेबाले सकारणंवा एवं विप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने॥ ३१॥

अर्थ–हवे ए नियतवादी परमतने विनावेछे (बालेपुणएवं विप्पडिवेदेंतिके०) ते पर मतवादी बाल एटले अज्ञाने करी वली णुजाणे ते कहेछे. ( कारणमावन्ने के० ) सुख डःखादिकने उपजवे ईश्वरादिकनुं कारण माने ते कहेछे (अहमंसि डुरकामिवाके०) हुं आ जगत मांहे शारीरिक तथा मानसिक डःख अनुनवुंछुं (सोयामिवाके०) इष्ट वियो ग अने अनिष्ट संयोगनो करेलो शोक अनुनवुंछुं ( जूरामिवा के० ) अनर्थनी प्राप्तियें स्मरणायें झुरुछुं अथवा अर्थ प्राप्तियें विचरुछु ( तिप्पामिवा के० ) शरीरनो बल उंछुं थायछे ( पीडामिवाके०) बाह्यान्तंतर पीडा अनुनवुंछुं (परितप्पामिवाके०) परितापना

अनुनवुं ( अहमेय मकासिके० ) ए सुख डुःखादिक अनुनवुं ते माहाराज करेलाछे (परोवा के०) अथवा पर एटले बीजो पण ( जं के० ) जे डुःख अनुनवेछे शोक अनु नवेछे जूरेछे तेना शरीरनो बल उंछुं थायछे पीडा अनुनवेछे परितापना अनुनवेछे ते (परोएवमकासिके०) तेणेज अनरे एम कीधोछे अथवा माहारे विषे बीजो कोइ सुख डुःखादिक उपजावे तेपण माहाराज करेलाछे ( एवंके० ) एम (सेबालेके०) ते बाल अ ज्ञानी (सकारणंवा के०) स्वकारण अथवा (परकारणंवाके०) पर कारण सर्व डुःखादिक जे छे ते पुरुषकार कारणकरी मानेछे ( एवं के० ) एम ( विप्पडिवेदेंति के० ) जाणेछे ( कारणमावन्ने के० ) ए जे पुरुषकार कारणने मानेछे ते बाल जाणवा ॥ ३१ ॥

---

॥ दीपिका–बालोज्ञः पुनरेवं विप्रतिवेदयति जानीते कारणमापन्नः कारणमुद्दिश्य । तद्यथा । योहमस्मि ( डुःखामित्ति ) डुःखमनुनवामि ( सोयामित्ति ) शोकमनुनवामि (जूरामित्ति ) डुष्कृतप्रवृत्तमात्मानं गर्हामि अनर्थावाप्तौ विस्तरयामीत्यर्थः । तिप्पामि शरीरबलात्क्षरामि पीडामि पीडामनुनवामि परितापमनुनवामि । एवं यत्सुखडुःखादि कमनुनवामि तदहमेवाकार्षं परोवा यःडुखादिकमनुनवति मयिवाऽऽपादयति तत्स्वयमेव कृतमिति । एवं सपुरुषकारणमापन्नः स्वकृतं परकृतं वा डुःखादि सर्वं पुरुषकारकृतमिति जानीते बालइत्यर्थः ॥ ३१ ॥

---

॥ टीका–नियतिवादी परमतोद्भिावयिषयाह । ( बालेपुणइत्यादि ) बालोज्ञः पुरुषः कालेश्वरवादीत्यादिकः । पुनरिति विशेषणार्थस्तदेव दर्शयति । एवमिति । वक्ष्यमाणनी त्या विप्रतिवेदयति जानीते कारणमापन्नः सुखडुःखयोः स्वकृतएव पुरुषः कालेश्वरादि र्वा कारणमित्येवमन्युपपन्नोनान्यन्नियत्यादिकं कारणमस्तीति । तदेवाह । तद्यथा । यो हमस्मिन् डुःखमिति शारीरं मानसं डुःखमनुनवामि तथा शोचामीष्टानिष्टवियोगसंप्रयो गकृतं शोकमनुनवामि तथा ( तिप्पामित्ति ) शारीरबलं क्षरामि तथा ( पीडामित्ति ) सबा ह्यान्यंतरया पीडया पीडामनुनवामि तथा ( परितप्पामित्ति ) परितापमनुनवामि तथा ( जूरामित्ति ) अनार्यकर्मणि प्रवृत्तमात्मानं गर्हामि अनर्थावाप्तौ विस्तरयामीत्यर्थः । तदेवं यदहं डुःखमनुनवामि तदहमेवाकार्षं परपीडया कृतवानस्मीत्यर्थः । तथा परोपि यद्दुःख शोकादिकमनुनवति मयि चापादयति तत्स्वयमेव कृतमिति । तदेव दर्शयति । परोवेत्या दि । तथा परोपि यन्मां डुःखयति शोचयतीत्यादि प्राग्वन्नेयं । तत्सर्वमहमकार्षमित्येवं बान्यामाकलितोऽज्ञोज्ञोवा बालएवं विप्रतिवेदयते जानीते स्वकारणंवा परकारणंवा सर्वं डुःखादिपुरुषकारणमिति जानीते एवं पुरुषकारकारणमापन्नइति ॥ ३१ ॥

मेहावि पुण एवं विप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने अहमंसि डुक्खामिवा सो यामिवा जूरामिवा तिप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामिवा णोअहं एव मकासि परोवा जं डुक्खाइवा जाव परितप्पाइवा णोपरो एवमकासि एवं से मेहावि सकारणंवा परकारणंवा एवंविप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने से बे मि पाईणंवा जे तसथावरा पाणा तेएवं संघायमागछंति ते एवं विपरिया समावज्जंति तेएवं विवेगमागछंति तेएवं विहाणमागछंति तेएवं संगतियं ति उवेहाए णोएवं विप्पडिवेदेंति तंजहा किरियातिवा जावणिरएतिवा अणिरएतिवा एवंते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं काम भोगाइं समारभंति भोयणाए ॥ ३९ ॥

अर्थ–हवे ए नियतवादी लोक ते पूर्वोक्त पुरुषकार कारणने बालत्व पणो मानीने पोताना मतनी स्थापना करेछे. ( मेहाविपुणएवंविप्पडिवेदेंति के० ) वली पंमित एवा नियत पक्ष ग्राही एम जाणेछे शुं जाणेछे ते कहेछे. ( कारणमावन्ने के० ) सुख डुःख जे उपजेछे तेने नियतटाली बीजो कारण कांइ जाणवो नही ते उपर कहेछे डुक्खामिवा सोयामिवा इत्यादि पाठनो अर्थ पूर्व प्रमाणे लखेछे हुं सुख डुःख अनुनवुंछुं हुं शोक अनुनवुंछुं जुरुछुं शरीरनो बल ओछुं थायछे पीडा अनुनवुंछुं परितापना अनुनवुंछुं ( णो अहंएवमकासि के० ) ते में नथी कह्युं किंतु नियतने नवितव्यताना बलथकी माहारे विषे आव्योछे परंतु पुरुषकारादिक प्रमाण कांइ नथी जे कारण माटे कोइपुरुष पोता ना आत्माने अनिष्ट नथाय एम वांछेछे तो शावास्ते ते शुं करवाने एवो करें के जे थ की ते डुःखी थाय परंतु अहींया नियतज प्रमाणछे (परोवा के०) अथवा पर एटले बी जो ( जंडुक्खाइवा के० ) जे कांइ डुःख अनुनवेछे ( जावपरितप्पाइवा के० ) यावत् परितापना अनुनवेछे ते पण ( णोपरोएवमकासि के० ) तेणे कीधो नथी परंतु नियति अने नवितव्यताने योगेंज सर्व उपजेछे )एवंसेमेहाविके०) एम ते मेधावि एटले पंमित पुरुष ( सकारणंवापरकारणंवा के० ) पोताने डुःखनो कारण अथवा परने डुःखनुं का रण नवितव्यता छे परंतु नवितव्यता टाली बीजो कोइ पण कारण नथी ( एवंविप्प डिवेदेंति के० ) एम ते नियतवादि जाणेछे के जगत मांहे कोइ एक पापना कर नारने पण डुःख उपजतुं नथी अने कोइएक सुकृतना करनारने डुःख उपजेछे माटे अं हींया पुरुषजे ईश्वर तेनुं कारण कांइपण नथी देखातुं किंतु ( कारणमावन्न के० ) निय तज कारण देखायछे एमाटे नवितव्यता बलीष्ठछे हवे बीजो पण जे कांइ जगत मांहे

ठे ते सर्व नियतनेज वशेंठे एवो देखाडेठे ( सेबेमि के० ) ते नियतवादी युक्तियें निश्चें करी बोलेठे ( पाईणंवा के० ) पूर्वादिक चार दिशिने विषे ( जे तसथावरापाणाके०) जे कांइ त्रस अने स्थावर प्राणीठे ( ते एवंसंघायमागछंति के०) ते एम जे कांइ शरीरादिक संबंध पामेठे ते नियतिनेज वशें पामेठे परंतु बीजो कर्मादिक कारण तेने कांइ नथी ( ते एवंविपरियासमावज्जंति के० ) ते एम बाल कुमार यौवन अने वृद्ध अवस्थादिक नानाप्रकारना पर्याय पामेठे ते सर्व नियति थकीज अनुनवेठे ( ते एवंविवेगमागछंतिके०) तथा ते एम नियति थकीज विवेक एटले शरीर ते थकी पृथक् नाव पामेठे ( ते एवंविहाणमागछंति के०) तथा ते एम नियति थकीज विधान एटले अवस्था विशेष अर्थात् कुब्ज काणो खंज वामन जरा मरण रोग शोकादिक पामेठे ( ते एवंसंगतियंतिउवेहाए के० ) एरीते ते त्रस अने स्थावर प्राणी नियतने वले एटला नावने अनुनवेठे हवे श्रीसुधर्म स्वामि श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहे ठे के एवा नियतवादि पुरुषो मात्र एक नियतनोज पक्ष अनुसरीने परलोकनी बीक नराखता सावद्यानुष्ठान करेठे परंतु (णोएवंविप्पडिवेदेंतिके०) ते एवो नथी जाणता शुं नथी जाणता (तंजहा के० ) ते कहेठे ( किरियातिवा जाव अणिरएतिवा के०) क्रिया अक्रिया सिद्धि असिद्धि इत्यादिक यावत् नरक अनरक पर्यंतने नथी जाणता ( एवंते के० ) एम ते सर्व दोष एक नियत उपरे स्थापन करीने ( विरूवरूवे हिंकम्मसमारंनेहिं विरूवरूवाईकामनोगाईसमारनंति नोयणाए के० ) नानाप्रकारना कर्म समारंने नोजनने अर्थे अने नोगने अर्थें नाना प्रकारना कामनोगने समारंने ॥ ३२ ॥

---

॥ दीपिका–मेधावी नियतिवादी कारणमापन्नः स्वकारणं परकारणं वा उद्दिश्य प्रवृत्तिर्न पुरुषकारकृता यतोनहि कस्यचिदात्माऽनिष्टोयेनानिष्टाडुःखोत्पादिकाः क्रियाः समारनंते किंतुनियत्यैवायमनिछन्नपि तत्कार्यते येन डुःखनाग्नवति । एवमसौ कारणमापन्नोवेत्तीति कारणं वात्र एकस्याऽसदनुष्ठानपरस्यापि न डुःखमुत्पद्यते ततोनियतिरेव कर्त्रीति। एतदेवाह । ( सेबेमित्ति ) सोहं नियतिवादी ब्रवीमि ये केचित्त्रसाः स्थावराश्च प्राणिनस्ते नियतितएव औदारिकादिशरीरसंबधमागछंति बालकुमारादिकं विविधं पर्यायं नियतितएवानुनवंति नियतितएव विवेकं शरीरात्पृथग्नावं प्राप्नुवंति । विधानमवस्थाविशेषं कुब्जकाणांधत्वजरामरणादिकमागछंति तदेवं ते प्राणिनोनियत्यैव संगतिं यांति नानाविधसुखडुःखनाजः स्युः । एवं नियतिवादोत्प्रेक्षया एतदक्ष्यमाणं न विप्रतिवेदयंति न जानंति । तद्यथा । क्रियाअक्रियाइत्यादि यावद्विरूपरूपान् कामान् नोगान् नोजनायोपनोगार्थं समारनंते ॥ ३२ ॥

॥ टीका–तदेवं नियतिवादी पुरुपकारकारणवादिनोबालत्वमापाद्य स्वमतमाह । (मेहावीत्यादि ) मेधा मर्यादा प्रज्ञा वा तद्वान् मेधावी नियतिवादपक्षाश्रय्येवं विप्रतिवेदयति जानीते कारणमापन्नइति नियतिरेव कारणं सुखाद्यनुनवस्य । तद्यथा योहमस्मिन् डुःखयामि शोचयामि तथा ( तिप्पामित्ति ) क्रामि ( पीडामित्ति ) पीडामनुनवामि ( परितप्पामित्ति ) परितापमनुनवामि नाहमेवाकार्षं डुःखमपि तु नियतितएवैतन्मय्यागतं न पुरुपकारादिकृतं । यतोनहि कस्यचिदात्मानिष्टोयेनानिष्टाडुःखोत्पादिताः क्रियाः समारनंते नियत्यैवासावनिछन्नपि तत्कार्यते येन डुःखपरंपरानाग्नवति कारणमापन्नइति परेप्येवमेव योजनीयं । एवं सति नियतिवादी मेधावीति सोल्लुंठमेतत्सकिल नियतिवादी दृष्टं पुरुपकारं परित्यज्याद्दृष्टनियतिवादाश्रयेण महाविवेकीत्येवमुल्लंघ्यते स्वकारणं परकारणं च डुःखादिकमनुनवन्नियतिकृतमेतदेवं विप्रतिवेदयति जानाति कारणमापन्नं नियतिकारणं चात्रैकस्यासदनुष्ठानरतस्यापि नडुःखमुत्पद्यते परस्य तु सदनुष्ठायिनोपि तद्भवति यतोनियतिरेव कर्त्रीति । तदेवं नियतिवादे स्थिते परमपि यत्किंचित्तत्सर्वं नियत्यधीनमिति दर्शयितुमाह (सेबेमीत्यादि) सोहं नियतिवादी युक्तितोनिश्चित्य ब्रवीमीति प्रतिपादयामि । ये केचन प्राच्यादिषु दिक्षु त्रस्यंतीति त्रसाद्वीन्द्रियादयः स्थावराश्च पृथिव्यादयः प्राणिनस्ते सर्वेप्येवं नियतितएवौदरिकादिशरीरबंधमागछंति नान्येन केनचित्कर्मादिना शरीरं ग्राह्यंते तथा बालकौमारयौवनस्थविरवृद्धावस्थादिकं विविधपर्यायं नियतितएवानुनवंति तथा विवेकं शरीरात्पृथग्नावमनुनवंति । तथा नियतितएव विविधं विधानमवस्थाविशेषं कुब्जकाणखंजवामनकजरामरणरोगशोकादिकं बीनत्समागछंति । तदेवं ते प्राणिनस्त्रसाः स्थावराएवं पूर्वोक्तनीत्या संगतिं यांति नियतिमापन्नानानाविधविधाननाजोनवंति । तएव वा नियतिवादिनः संगइयंति नियतिमाश्रित्य तडुत्प्रेक्षया नियतिवादोत्प्रेक्षया यत्किंचन कारितया परलोकनीरवोनो नैव तद्वक्ष्यमाणं विप्रतिवेदयंति । तद्यथा । क्रिया सदनुष्ठानरूपा अक्रियाऽसदनुष्ठानरूपाइत्यादि यावदेवं ते नियतिवादिनस्तडुपरि सर्वं दोपजातं प्रक्षिप्य विरूपरूपैः कर्मसमारंनैर्विरूपरूपान् कामनोगान्नोजनायोपनोगार्थं समारनंतइति ॥ ३१ ॥

एवमेव ते अणारिया विप्पडिवन्नाइं तंसद्दहमाणा जावइति ते
णोहव्वाए णोपाराए अंतरा कामनोगेसु विसएणा चउठे पुरिस
जाए णियइवाइ एत्ति आहिए ॥ ३२ ॥

अर्थ–एरी ते ते अनार्य पुरुप कामनोगने विपे गृद्ध हता पोतानो धर्म रुडो करी प्ररूपता ते पाखंमी धर्म राजादिकने सद्दावता थका ज्यां सुधी एम ते कांठे पण रह्या

नही अने पार पण पोता नही विचाले कामनोगने विषे खूता रहे ते पोताने पण उ द्धरी शके नही अने राजारूप पुंमरीक कमलने पण उद्धरी शके नही ते आ लोक थ की पण ञ्रष्ट थया अने मुक्तियें पण पोचे नही परंतु विचाले संसार मांहेज खुची रहे ए चोथो पुरुषजात नियत वादी कह्यो ॥ ३३ ॥

॥ दीपिका—तदेवं ते नियतिवादिनोऽनार्याविप्रतिपन्नास्तं निर्युक्तिकं नियतिवादं श्रद्दधा नाइत्यादि तावन्नेयं यावदंतरा कामनोगेषु विषस्रा इति चतुर्थः पुरुषजातः संपूर्णः ॥३३॥

॥ टीका—तदेवमेव पूर्वोक्तया नीत्या तेऽनार्याविरूपं नियतिमार्गं प्रतिपन्नाविप्रतिपन्नाः। अनार्यत्वं पुनस्तेषां निर्युक्तिकस्यैव नियतिवादस्य समाश्रयणात् । तथा ह्यसौ नियतिः किं स्वतएव नियतिस्वनावा उतान्यया नियत्या नियम्यते किंवाऽतस्तत्र यद्यसौ स्वयमेव तथा स्वनावः सर्वपदार्थानामेव तथा स्वनावत्वं किं न कल्प्यते किं बहुदोषया नियत्या समाश्रितया । अथान्यया नियत्या तथा नियम्यते साप्यन्ययेत्येवमनवस्था । तथा नियतेः स्वनावत्वान्नियतिस्वनावया तया नवितव्यं न नानास्वनावयेति । एकत्वाच्च नियतेस्तत्का र्येणाप्येकाकारेणैव नवितव्यं । तथाच सति जगद्वैचित्र्यानावः । नचैतद्दृष्टमिष्टंवा । त देवं युक्तिनिर्विचार्यमाणा नियतिर्नकथंचिद्घटते । यदप्युक्तं । द्वावपि तौ पुरुषौ क्रियाक्रि यावादिनौ तुल्यौ एतदपि प्रतीतिबाधितं । यतस्तयोरेकः क्रियावाद्यपरस्त्वक्रियावादीति कथमनयोस्तुल्यत्वमथैकया नियत्या तथा नियतित्वात्तुल्यता अनयोरेतच्च निरंतराः सुव्हृ दः प्रत्येष्यंति । नियतेरप्रमाणत्वात् । अप्रमाणत्वं च प्राग्लेशतः प्रदर्शितमेव । यदप्युक्तं । यद्दुःखादिकमहमनुनवामि तन्नाहमकार्षमित्यादि तदपि बालवचनप्रायं । यतोजन्मांतरकृ तं शुनमशुनंवा तदिहोपनुज्यते स्वकृतकर्मफलेश्वरत्वादसुमतां । तथा चोक्तं । यदिह क्रिय ते कर्म, तत्परत्रोपनुज्यते । मूलसिक्तेषु वृक्षेषु, फलं शाखासु जायते । तथा यदुपात्तमन्य जन्मनि शुनाशुनं वा स्वकर्मपरिणत्या तच्छक्यमन्यथा नोकर्तुं देवासुरैरपि हि । तदेवं ते निय तिवादिनोनार्याविप्रतिपन्नास्तमेव निर्युक्तिकं नियतिवादं श्रद्दधानास्तमेव च प्रतीयंते इत्यादि तावन्नेयं यावदंतरा कामनोगेषु विषस्राइति । चतुर्थः पुरुषजातः समाप्तः ॥ ३३ ॥

इच्चेते चत्तारि पुरिसजाया णाणापन्ना णाणाछंदा णाणासीला णाणादिट्ठी णाणारुई णाणारंना णाणाअश्वसाणा संजुत्ता प हीणपुव्वसंजोगा आरियं मग्गं असंपत्ता इति ते णोहव्वाए णो पाराए अंतरा कामनोगेसु विसणा ॥ ३४ ॥

अर्थ–( इच्चेतेचत्तारिपुरिसज्जाया के० ) एरीते ते पूर्वोक्त चार पुरुष जात तेमां एक जीव तच्छरीरवादी बीजो पंचमहानूतिक त्रीजो ईश्वरकारणी अने चोथो नियतवादी ए चार पुरुषते ( णाणापन्ना के० ) नानाप्रकारनी प्रज्ञा एटले बुद्धिवाला तथा नाना प्रकारना अनिप्राय वाला नाना प्रकारना शील एटले आचार वाला नाना प्रकारनी दृष्टी वाला नाना प्रकारनी रुची वाला नाना प्रकारना आरंनना करनार नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी (संजुत्ता के०) संयुक्त हता पोताना धर्मनेविषे सावधान थया (पहीणपुव्वसंजोगा के०) पूर्व संयोगजे माता पिता पुत्र कलत्रादिकनो संबंध तेनेत्यागीने ( आरियंमग्गंअसंपत्ता के०) आर्य मार्गने अण पाम्या एमते कांठे पण न रह्या पार पण नपाम्या विचाले कामनोगने विषे खूता एटले परतीर्थिक चार पुरुष कह्या॥ ३४ ॥

---

॥ दीपिका–इत्येते चत्वारः पुरुषानानाप्रज्ञानानामतयोनानाछंदानानानिप्रायानानाशीलाअनेकाचारानानादृष्टयोऽनेकदर्शनानानारुचयोनानाप्रकारआरंनोधर्मानुष्ठानं येषां ते तथा नानाप्रकारेणाध्यवसायेन संयुक्ताधर्मार्थमुद्यताः प्रहीणपूर्वसंयोगामातापितृकलत्रादिसंबंधरहिताआर्यं निर्दोषं मार्गमसंप्राप्ताः ( णोहव्वाएत्ति ) ऐहिकसुखनाजः (णोपराएत्ति ) नापि नवपारगाः स्युः किंतु अंतराल एव कामनोगेषु विषण्णाः ॥ ३४ ॥

---

॥ टीका–सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । ( इच्चेतेइत्यादि ) इत्येते पूर्वोक्तास्तज्जीवतच्छरीरपंचमहानूतेश्वरकर्तृनियतिवादपक्षाश्रयिणश्चत्वारः पुरुषानानाप्रकारा प्रज्ञा मतिर्येषां ते तथा नानानिन्नश्छंदोऽनिप्रायोयेषां ते तथा नाना प्रकारं शीलमनुष्ठानं येषां तथा नानारूपा दृष्टिर्दर्शनं येषां ते तथा नानारूपा रुचिश्चेतोनिप्रायोयेषां ते तथा नानाप्रकारआरंनो धर्मानुष्ठानं येषां ते तथा नानाप्रकारेण परस्परनिन्नेनाध्यवसायेन संयुक्ताधर्मार्थमुद्यताः प्रहीणः परित्यक्तः पूर्वसंयोगोमातृपितृकलत्रपुत्रसंबंधोयैस्ते तथा । आराद्याताः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्योमार्गोनिर्दोषः पापलेश्यासंपृक्तस्तमार्यं मार्गमसंप्राप्ताइति पूर्वोक्तया नीत्या ते चत्वारोपि नास्तिकादयो ( णोहव्वाएइत्ति ) परित्यक्तत्वान्मातृपित्रादिसंबंधस्य धनधान्यहिरण्यादिसंचयस्य च नैहिकसुखनाजोनवंति । तथा ( णोपाराएत्ति ) असंप्राप्तत्वादार्यस्य मार्गस्य सर्वोपाधिविशुद्धस्य प्रगुणमोक्षपद्धतिरूपस्य न संसारपारगामिनोनवंति न परलोकसुखनाजोनवंतीति किंत्वंतरालएव गृहवासार्यमार्गयोर्मध्यवर्तिनएव कामनोगेषु विषण्णाअध्युपपन्नाडुष्पारपंकमग्नाइव करिणोविषीदंतीति स्थितं ॥ ३४ ॥

सेबेमि पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा नवंति तंजहा आयरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमंतावेगे हस्समंतावेगे सुव

न्नावेगे डुवन्नावेगे सुरूवावेगे डुरूवावेगे तेसिंचणं खेत्तवत्नूणि परिग्गहिया णि नवंति तं अप्पयरोवा नुज्जयरोवा तेसिंचणं जणजाणवयाइं परिग्ग हियाइं नवंति तं अप्पयरोवा नुज्जयरोवा तहप्पगारेहिं कुलेहिं आगम्म अनिनूय एगे निरकायरियाए समुठिता सतोवावि एगे णाय उय उवग रणंच विप्पजहाय निरकायरियाए समुठिता असतोवा वि एगे णाय उय उवगरणंच विप्पजहाय निरकायरियाए समुठिता जेते सतोवा असतोवा णाय उय अणाय उय उवगरणंच विप्पजहाय निरकायरियाए समुठिता॥३८

अर्थ—हवे पांचमो पुरुष स्वतीर्थिक कहियेंछैयें ( सेबेमि के० ) जे पुरुष कामनोगने विषे अनासक्तउतो अंतराले नखुचे पुंमरीक कमलने उद्धारवा समर्थ ते हुं कहुंछुं ( पाईणंवासंतेगतियामणुस्सा के० ) पूर्वादिक दिशियें कोइ एक मनुष्य होय ते कहे वो होय ( तंजहा के० ) ते कहेछे. एक आर्य एक अनार्य एक उंचगोत्रना उपना एक नीचगोत्रना उपना एक महोटी कायाना धणी एक न्हानी कायाना धणी एक सारावर्ण वाला एक मागवर्ण वाला एक स्वरूपवान् एक कुरूपवान् ( तेसिंचणं के० ) ते पूर्वोक्त आर्यादिक पुरुषने (खेत्तवत्नूणिपरिग्गहियाणिनवंति के०) क्षेत्रते उघाडी नूमिका शाली क्षेत्रादिक तथा वस्तु ते घर हाट प्रमुख ढाकेली नूमिका ए परिग्रह होय (तंअप्पयरोवानुज्जयरोवा के०) तेअल्पतर एटले थोडा होय अथवा प्रनूततर एटले घणा होय वली (तेसिंचणंजणजाणवयाइंपरिग्गहियाइंनवंति के०) तेंने जन एटले लोक जानपद एटले देश ए परिग्रह होय (तंअप्पयरोवानुज्जयरोवा के०) तेपण अल्पतर एटले थोडा होय अथवा प्रनूततर एटले घणा होय (तहप्पगारेहिंकुलेहिं आगम्मअनिनूय के०) तथा ते आर्यादिक तथा प्रकारना कुलने विषे आगम्म एटले जन्म पामीने कोइ एक महासत्ववंत पुरुष विषय कषायने जीपीने ( एगेनिरकायरियाए के० ) कोइएक निक्षाचर्याने विषे ( समुठिता के० ) सम्यक् प्रकारे उठ्या सावधान थया ( सतोवाविएगेणायउयउवगरणंच के० ) कोइएक महा सत्ववंत पुरुष विद्यमान एवा णायउय एटले ज्ञाति स्वजनादिक तथा उपकरण ते धन धान्य सुवर्ण रूपादिक अनेक प्रकारनाछे तेने (विप्पजहाय के० ) त्यागीने ( निरकायरियाए के० ) निक्षाचर्याने विषे ( समुठिता के० ) सम्यक् प्रकारे उठ्या एटले चारित्रिया थया ( असतोवाविएगेणायउवगरणंचविप्पजहायनिरकायरियाएसमुठिता के०) कोइ एक महा सत्ववंत पुरुष ते अछता ज्ञाति स्वजन उपकरणादिक अनेक प्रकारनाछे तेने त्यागीने निक्षाचर्याने विषे सम्यक् प्रकारे सावधान

थया ( जेते के० ) हवे जे ते (सतोवा असतोवा के०) ठतो अथवा अठतो एवो ( णायउय के० ) ज्ञाति स्वजनादिक नोपरिग्रह ( अणायउय के० ) ज्ञाति स्वजनादिकथी रहित पणानोपरिग्रह (उवगरणंच के०) तथा धन धान्य सुवर्णादिक नोपरिग्रह तेने (विप्पजहाय के० ) त्यागीने ( निरकायरियाए के० ) निक्षाचर्याने विषे एटले चारित्रने विषे ( समुठिता के० ) सम्यक् प्रकारे उग्या सावधान थया ॥ ३५ ॥

---

॥ दीपिका—अथलोकोत्तरं पंचमं निक्षुं पुरुषमाह । तदहं ब्रवीमि । यत्प्राच्यादिदिशमुद्दिश्य एके केचन मनुजाः संति नवंति । तद्यथा आर्याआर्यदेशोत्पन्नास्तद्विपरीताअनार्याउच्चैर्गोत्रोद्भवानीचैर्गोत्रोद्भवाः कायवंतउच्चशरीराह्स्वावामनादयः सुवर्णाडुर्वर्णाः सुरूपाडुरूपास्तेषां वाऽऽर्यादीनां क्षेत्राणि शालिक्षेत्रादीनि वस्तूनि गृहाणि परिगृहीतानि स्वीकृतानि नवंति । किंनूतानि अल्पतराणि प्रनूततराणि वा । तथा तेषां जनपदाः स्वीकृता नवंति तेष्वल्पतराः प्रनूततरावा । तेष्वार्यादिषु तथा प्रकारेषु कुलेषु आगम्य जन्म लब्ध्वा ऽनिनूय विषयादीन् प्रव्रज्यां गृहीत्वा एके केचन सत्ववंतोनिक्षाचर्यायां समुत्थितानुद्यताः । तथा सतोविद्यमानान् ज्ञातीन् स्वजनानुपकरणं च धनधान्यादिकं विप्रहाय त्यक्त्वा असतोवा ज्ञातीनुपकरणंच त्यक्त्वा समुत्थिताः प्रव्रज्योद्यताः ॥ ३५ ॥

---

॥ टीका—उक्ताः परतीर्थिकाः सांप्रतं लोकोत्तरं निक्षावृत्तिं निक्षुं पंचमं पुरुषजातमधिकृत्याह । ( सेवेमीत्यादि ) याहकामनोगेष्वसक्तः सन्नंतरा नोवसीदति पद्मवरपौंडरीकोद्धरणाय च समर्थोनवति तदेतदहं ब्रवीमीति । अस्य चार्थस्योपदर्शनाय प्रस्तावमारचयन्नाह । प्राच्यादिकामन्यतरां दिशमुद्दिश्यैके केचन मनुष्याः संति नवंति । तद्यथा । आर्यदेशोत्पन्नामगधादिजनपदोद्भवास्तथाऽनार्याः शकयवनादिदेशोद्भवास्तथा चोच्चैर्गोत्रोद्भवाइक्ष्वाकुहरिवंशादिकुलोद्भवास्तथा नीचैर्गोत्रोद्भवावर्णापसदसंनूतास्तथा कायवंतः प्रांशवस्तथा ह्स्वावामनकादयस्तथा सुवर्णाडुर्वर्णाः सुरूपाः कुरूपावा एके एव केचन परवशान्नवंति तेषां चार्यादीनां । णमितिवाक्यालंकारे । क्षेत्राणि शालिक्षेत्रादीनि वस्तूनि खातोच्छ्रितादीनि तानि परिगृहीतानि स्वीकृतानि नवंति । तान्येव विशिनष्टि । अल्पतराणि स्तोकतराणि वा प्रनूततराणिवा नवंति । तथा तेषामेव च जानपदाः परिगृहीतान्नवंति तेऽल्पतराः प्रनूततरावा नवेयुस्तेषु चार्यादिविशिष्टेषु तथाप्रकारेषु कुलेष्वागम्यैवंनूतानि गृहाणि गत्वा तथा प्रकारेषु वा कुलेष्वागम्य जन्म लब्ध्वाऽनिनूयच विषयकषायादीन् परीषहोपसर्गान् वा सम्यगुत्थानेनोत्थाय प्रव्रज्यां गृहीत्वैके केचन तथाविधसत्ववंतोनिक्षाचर्यायां सम्यगुत्थितास्तथा सतोविद्यमानानपिवा एके केचन महासत्वोपेताज्ञातीन् स्वज

त कारी ( अप्पियाउ के० ) अप्रियकारी ( असुनाउ के० ) असुनकारी ( अमणुन्नाउ के० ) अमनोज्ञ ( अमणामउके० ) अरुचता विशेषे अमनोज्ञ पीडाकारी एवा ( डुरकाउ के० ) डुःख ( णोसुहाउ के० ) नथी जेमांहे लेश मात्र शुख एवा जे डुःख ते थकी हे काम नोगादिको तमे मने मूकावो ( एवमेव के० ) एवीरीते जे कामनोगादिकने प्रार्थना करेछे तोपण ( णोलद्धेपुव्वंनवइ के० ) ते कामनोगापूर्वेलब्धोननवति एटले ते काम नोगादिक जेछे तेणे कोइ मनुष्यने पूर्वोक्त डुःख थकी मूकाव्यो छे एवो पूर्वे क्यां जाणवामां आव्युं नथी. ॥ ३७ ॥

---

॥ दीपिका–ये निक्षाचर्योद्यतास्तैः पूर्वमेव प्रव्रज्याग्रहणकालएतज्ज्ञातं स्यात् । तद्यथा । अन्य दस्तूद्दिश्य पुरुषः प्रव्रजितः प्रव्रज्यां ग्रहीतुकामोवा एवं विप्रतिवेदयति जानाति । तद्यथा । क्षेत्रं वास्तुगृहं हिरण्यं सुवर्णं कनकं धनंगोमहिष्यादि धान्यं शाल्यादि कांस्यं कांस्यपात्रादि दूष्यं वस्त्रादि । तथा विपुलानि धनकनकादीनि शंखादक्षिणावर्ताः मुक्तशैलादिकाः शिलाः प्रवालंविद्रुमं रक्तरत्नं पद्मरागादि सत्सारं शोननसारं शूलमण्यादि स्वापतेयं डव्यं सर्वमेतन्ममोपनोगाय नविष्यति । तथा शब्दरूपगंधरसस्पर्शामे कामनोगाअहमप्येतेषां नोगानां संबंधी ॥ ३६ ॥ अयमपि नोगसंबंधीति विचार्य समेधावी पूर्वमेवात्मना एवं समनिजानीयात् । तद्यथा । इह जन्मनि ममान्यत् डुःखं शिरोवेदनादिकं आतंकोवा आशु जीवितापहारी शूलादिकः । सकिंनूतः । अनिष्टोऽकांतोऽशुनोऽमनोज्ञः । अवनामयतीत्यवनामः पीडाविशेषकारी डुःखरूपः । नशुनोऽशुनकर्मकृतत्वात् । पुनर्डुखोत्पादनमत्यंतडुःखज्ञापनार्थं । तदेवंनूतं डुःखं रोगातंकं वा हंतइति खेदे हेनगवंतः कामनोगायूयं मया पालितास्ततोयूयमपीदं डुःखं रोगातंकं वा ( परियाइयह ) विनज्य गृण्हीत । अत्यंतडुःखपीडितः पुनस्तान्येव विशेषणान्याह । अनिष्टादिविशेषणानि पूर्वं प्रथमांतानि पुनर्द्वितीयांतानि सांप्रतं पंचम्यंतानि । सचायमर्थः पूर्वं लब्धोन नवति । कोर्थः । नहि ते नोगादयोनरं डुःखान्मोचयंतीतिपूर्वं नज्ञातं॥३७॥

---

॥ टीकाः–ते पूर्वोक्तविशिष्टानिक्षाचर्यायामन्युद्यताः पूर्वमेव प्रव्रज्याग्रहणकालएव तैरेतज्ज्ञातं नवति । तद्यथा ( इहेत्यादि ) इह जगति । खलुवाक्यालंकारे । अन्यदन्य दस्तूद्दिश्य ममैतन्नोगाय नविष्यतीत्येवमसौ प्रव्रज्यां प्रतिपन्नः प्रवव्रजिषुर्वा प्रवेदयति जानात्येवं परिछिनत्ति । तद्यथा । क्षेत्रं शालिक्षेत्रादिकं वास्तु खातोच्छ्रितादिकं हिरण्यं धर्मजातादिकं सुवर्णकनकं धनंगोमहिष्यादिकं धान्यंगोधूमादिकं कांस्यंकांस्यपात्रादिकं तथा विपुलानि प्रनूततराणि धनकनकरत्नमणिमौक्तिकानि ( शंखशिलंति ) मुक्तशैला

दिकाः शिलाः प्रवालं विद्रुमं । यदिवा ( शिलप्पवालंति ) श्रियाशुक्तं प्रवालं श्रीप्रवालं वर्णादिगुणोपेतं तथा ( रत्तरयणंति ) रक्तरत्नं पद्मरागादिकं तथा सत्सारं शोजन सारमित्यर्थः । शूलमणादिकं तथा स्वापतेयं शुद्धं इव्यजातं सर्वमेतत्पूर्वोक्तं मे ममोपन्नोगाय नविष्यति । तथा शब्दावेणवादयोरूपाण्यंगनादीनि, गंधाः कोष्ठपुटाद योरसामधुरादयोमांसरसादयोवा, स्पर्शामृडादयएते सर्वेपि खलु मे कामन्नोगायाहमप्ये षां योगक्षेमार्थं प्रनविष्यामीत्येवं संप्रधार्य; ॥ ३६ ॥ समेधावी पूर्वमेवात्मानं विजानीया देवं पर्यालोचयेत् । तद्यथा । इह संसारे । खलुशब्दोऽवधारणे । इहैवास्मिन्नेव जन्मनि म नुष्यन्नवे ममान्यतरडुःखं शिरोवेदनादिकं आतंकोवाऽऽशु जीविताप हारी शूलादिकः समु त्पाद्यते । तमेव विशिनष्टि । अनिष्टोऽकांतोऽप्रियोऽशुन्नोऽमनोज्ञोऽवनामयतीत्यवनामः पीडाविशेषकारी डुःखरूपोयदि वा नमनागमनाक् मे मम नितरामित्यर्थः । डुःखयतीति डुःखं पुनरपि डुःखोत्पादनं अत्यंतडुःखप्रतिपादनार्थं सुखलेशस्यापि परिहारार्थं च नोनै व शुनकर्मविपाकोदितत्वादिति । अत्रच यडुक्तं पुनरुच्यते तदत्यादरख्यापनार्थं तद्विशे षप्रतिपादनार्थं वेति । तदेवंन्नूतं डुःखं रोगातंकं वा हंतइतिखेदे नयात्रातारोयूयं क्षेत्रवस्तु हिरण्यसुवर्णधनधान्यादिकाः परिग्रहविशेषाः शब्दादयोवा विषयास्तथा हे नगवंतः! कामन्नोगायूयं मया पालिताः परिगृहीताश्च ततोयूयमपीदं डुःखं रोगातंकं वा ( परि याइयहत्ति ) विनागशः परिगृणहीत यूयं । अत्यंतपीडयोद्विग्नः पुनस्तदेव डुःखं रोगातंकं वा विशेषण द्वारेणोच्चारयति । अनिष्टमप्रियमकांतमशुनममनोज्ञममनाग्नूतमवनामकं वा डुःखमेवैतन्नोशुनमित्येवंन्नूतं ममोत्पन्नं यूयं विनजताहमनेनातीव डुःखामीति डुःखि तइत्यादि पूर्ववन्नेयमित्यतोऽमुष्मान्ममान्यतरस्माड्डुःखाड्रोगांतकाद्वा प्रतिमोचयत यूयं । अनिष्टादिविशेषणानि तु पूर्वव द्व्याख्येयानि । प्रथमं प्रथमांतानि पुनर्द्वितीयांतानि सां प्रतं पंचम्यंतानीति । नचायमर्थस्तेन डुःखितेनैवमेवेति यथाप्रार्थितस्तथैव लब्धपूर्वोन्न वति । इदमुक्तंनवति । नहि ते क्षेत्रादयः परिग्रहविशेषानापि शब्दादयः कामन्नोगास्त डुःखितं डुःखाद्विमोचयंतीति ॥ ३७ ॥

इह खलु कामन्नोगा णोताणाएवा णोसरणाएवा पुरिसेवा एगता पुविं कामन्नोगे विप्पजहंति कामन्नोगावा एगता पुविं पुरिसं विप्पजहंति अन्ने खलु कामन्नोगा अन्नो अहमंसि से किमंगपुण वयं अन्नमन्नेहिं काम न्नोगेहिं मुह्यामो इति संखाएणं वयंच कामन्नोगेहिं विप्पजहिस्सामो से मेहावि जाणेज्जा बाहिरंगमेत्तं ॥ ३८ ॥

नांस्तथोपकरणं च कामन्नोगांगं धनधान्यहिरण्यादिकं विविधं प्रकर्षेण हित्वा त्यक्त्वा भिक्षाचर्यायां सम्यगुत्थिताश्रसतोवा ज्ञातीनुपकरणंच विप्रहाय भिक्षाचर्यायामेके केच नापगतस्वजनविन्नवाः समुत्थिताः ॥ ३५ ॥

पुव्वमेव तेहिं णायं नवइ तं जहा इह खलु पुरिसे अन्नमन्नं ममठाए एवं विप्पडिवेदेंति तं जहा खेत्तंमे वत्थूमे हिरसंमे सुवन्नंमे धणंमे धणंमे कंसंमे दूसंमे विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरय णसंतसारसावतेयंमे सद्दामे रूवामे गंधामे रसामे फासामे एते खलु मम कामन्नोगा अहमवि एतेसिं ॥ ३६ ॥ सेमेहावि पुव्वमेव अप्पणो ए वं समभिजाणेज्जा तं जहा इह खलु मम अन्नयरे दुक्खे रोयातंके समुप्प ज्जेज्जा अणिठे अकंते अप्पिए असुन्ने अमणुन्ने अमणामे दुक्खे णोसु हे सेहंता नयंतारो कामन्नोगाइं मम अन्नयरं दुक्खं रोयातंकं परियाइय ह अणिठं अकंते अप्पियं असुन्नं अमणुन्नं अमणामं दुक्खं णोसुहं त हिं दुक्खामिवा सोयामिवा जूरामिवा तप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामि वा इमाउ ममे अस्रयराउ दुक्खाउ रोगातंकाउ पडिमोयउ अणिठाउ अ कंताउ अप्पियाउ असुन्नाउ अमणुन्नाउ अमणामउ दुक्खाउ णोसुहाउ एवमेव णोलद्धपुव्वं नवइ ॥ ३७ ॥

अर्थ-( तेहिं के० ) ते पुरुषने (पुव्वमेव के०) प्रथम चारित्र लेवाना वखतेज एवो ( णायंनवइ के० ) जाणवुंठे ( तंजहा के० ) ते कहेठे. ( इह के० ) आ जगत मांहे खलु इति वाक्यालंकारे ( पुरिसे के० ) ते पुरुषे ( अन्नमन्नं के० ) अनेरी अनेरी वस्तु एटले अमुक अमुक जुदी जुदी वस्तु ( ममठाए के० ) महारा उपन्नोगने अर्थे थशे ( एवं के० ) एम ( विप्पडिवेदेंति के० ) वेद प्रवितियति एटले जाणवुंठे ( तंजहा के० ) ते वस्तुना नाम कहेठे. ( खेत्तंमे के० ) आ क्षेत्र महारुंठे ( वत्थूमे के० ) ए घर हाट महाराठे ( हिरसुंमे के० ) आ रूपुं महारुंठे ( सुवसुंमे के० ) आ सोनुं महारुं ठे ( धणंमे के० ) आ धन महारुंठे (धन्नंमे के०) आ धान्य महारुंठे (कंसंमे के०) आ कांसाना नाजन महाराठे ( दूसंमे के० ) आ डुप्य एटले वस्त्र महाराठे ( विपुल, ध ण, कणग, रयण, मणि, मोत्तिय, संख, सिल, प्पवाल, रत्त, रयण, संत सार साव तेयंमे के०) एम विस्तीर्ण धन कनक सोलजातिना रत्न सात जातना मणी मोक्तिको संख

ते दक्षिणावर्त्त प्रमुख शीजते कशवटी प्रवाला रक्तरत्न तथा संत एटले छतो सार एटले प्रधान एवो सावतेयं एटले धन ए सर्व म्हारा उपनोगने अर्थे थशे (सद्दामे के०) शब्द वंशादिकना (रूवामे के०) रूप स्त्रियादिकना (गंधामे के०) गंध ते कस्तूरी कर्पूरादिक वस्तुना (रसामे के०) रसमधुरादिक वस्तुना (फासामे के०) स्पर्श मृडु कवणादिक वस्तुना (एते के०) ए समस्त वस्तु ते खलु इति निश्चे (ममकामनोगा के०) ए कामनोग ते माहाराछे अने (अहमवि के०) हुंपण (एतेसिं के०) एनोछु ॥३८॥ हवे (से मेहावि के०) ते पंमित (पुव्वमेव के०) पूर्वे (अप्पणो के०) पोताना हृदय साथे (एवं के०) एवुं (समनिजाणेज्जा के०) सम्यक् प्रकारे जाणे आलोचे एटले प्रथम थीज पोताना हृदयसाथें विचारे के ए म्हाराछे किंवा नथी एवो विचारे ते शुं विचारे (तंजहा के०) ते कहेछे. (इहखलु के०) आ संसारनेविषे निश्चे (ममअन्नयरे के०) म्हारा शरीरने विषे अन्य कोइ एक (डुक्के के०) डुःख मस्तक पीडादिक (रोयातंके के०) रोगातंक एटले असाध्य रोग शूलादिक (समुप्पज्जेज्जा के०) उपजे ते रोग केवोहोय ते कहेछे. (अणिठे के०) अनिष्टकारी (अकांते के०) आक्रांतकारी (अप्पिए के०) अप्रिय कारी (असुने के०) अशुनकारी (अमणुन्ने के०) अमनोज्ञ एटले मनने गमे नही (अमणामे के०) विशेष प्रकारें पीडानो करनार (डुक्के के०) डुःख रूप (णोसुहेसेहंता के०) नथी ज्यां लवलेशमात्र सुख, एवो डुःख उपने थके ते पूर्वोक्त कामनोगादि योग्य जे वस्तुछे ते प्रत्ये एवुं कहे के (नयंतारो के०) अहो नय थकी राखनाराउ (कामनोगाइं के०) धन धान्यादिक तथा शब्दादिक कामनोगो तुमे (मम के०) म्हारे शरीरे (अन्नयरंडुःखं के०) अनेरा डुःख जे (रोयातंकं के०) रोगातंक शूलादिक उपनाछे (परियाइयह के०) तेने तमे वेहेंची ल्यो म्हारे अर्थे (अणिठं के०) अनिष्ट कारी (अकंतं के०) अक्रांत कारी (अप्पियं के०) अप्रियकारी (असुनं के०) असुनकारी (अमणुन्नं के०) अमनोज्ञ (अमणामं के०) विशेषे अमनोज्ञ पीडाकारी (डुक्कं के०) डुःखरूप (णोसुहं के०) नथी ज्यां लव लेश मात्र सुख (तहिं के०) तेणेकरी (डुक्कामिवा के०) आकरो डुःखी हुं (सोयामिवा के०) शोक अनुनवुंछुं (जूरामिवा के०) जुरुंछुं (तप्पामिवा के०) म्हारो हृदय तपेछे छीजायछे (पीडामिवा के०) पीडा अनुनवुंछुं (परितप्पामिवा के०) विशेषे पीडा अनुनवुंछुं इत्यादिक (इमाउ के०) ए (ममे के०) मने (अणुयराउ के०) अनेरा (डुक्काउ के०) डुःख जे पूर्वोक्त मस्तक पीडादिक असाध्य (रोगातंकाउपडीमोह्य के०) रोग आंतक शूलादिक जे थकी तत्काल प्राणनो नाश थाय ते थकी तमे मने मूकावो एवा (अणिठाउ के०) अनिष्टकारी (अकंताउ के०) आक्रां

॥ अर्थ-( इहखलु के० ) आ जगत् मांहे निश्चे थकी ( कामभोगा के० ) ते काम भोगादिकजेछे ते, पूर्वोक्त दुःखिया जीवने (णोताणाएवाके०) त्राणभणी नथाय. (णोसर णाएवा के०) अथवा शरण भणी नथाय. (पुरिसेवा के०) ते पूर्वोक्त दुःखी पुरुषने पूर्वोक्त रोगादिक उपने थके त्राण शरण भणी नथाय. हवे रुडा कामभोगनी लीलानो अंत देखाडे छे (एगता के०) एकदा ( पुव्विं के० ) प्रथम व्याधि उत्पन्न कालें, अथवा जरा जीर्ण का लें, अथवा राजादिकना उपद्रवने कालें पुरुष, (कामभोगेविप्पजहंति के०) ए कामभोगने मू के छे. (कामभोगावाएगतापुव्वंपुरिसंविप्पजहंतिके०) अथवा ए काम भोग पोतेंज एकदा द्रव्यादिकने अभावें विषयाभिलाषी पणुं छतांज ते पुरुषने त्यागी मूकेछे; ते कारण माटे जे पंमित पुरुष होय ते एवीरीते अवधारण करे के, ( अन्नेखलुकामभोगा के० ) निश्चे करी ए कामभोगादिक जेछे ते, महारा थकी अन्यछे जुदाछे. (अन्नोअहमंसि के० ) हुं पण ए कामभोगथकी अन्यछुं जुदोछुं. जो एमछे तो, ( सेकिमंगपुणवयं के० ) ते शा अर्थे वली अमे ( अन्नमन्नेहिंकामभोगेहिं मुछामो के० ) अनित्य अशाश्वत एवा जे ए कामभोग, तेने विषे मूर्छा एटले ममत्व करिये, केमके एवुं ए ममत्व करवुं तेतो व्यर्थछे. (इतिसंखाएणंके०) एरीते कोइ महा सत्ववंत पुरुष ते कामभोगादिकने पूर्वोक्त रीते व्यर्थ जाणीने, ( वयंचकामभोगेहिंविप्पजहिस्सामो के० ) अमे ए कामभोगादिकनो त्याग क रशुं. एवो अध्यवसाय करे ते महापुरुष जाणवो. वली अन्य बीजुं वैराग्यनुं कारण क हेछे. ( सेमेहाविजाणेज्जा के० ) ते पंमित एम जाणे जे,( बाहिरंगमेतं के० ) ए नव विध परिग्रह तथा शब्दादिक विषय जे छे ते दुःखथकी राखनार नथी; एतो सर्व बाहिरं ग संयोगि छे एटले बाह्यरूपछे, एवुं पंमित जाणेछे. ॥ ३७ ॥

॥ दीपिका-एतदेवाह । इह नवे खलु कामभोगान त्राणाय वा स्युः । पुरुषः प्राणी एकदा पूर्वं कामभोगान् त्यजति कामभोगावा एकदा कदाचित्पुरुषं त्यजंति । सचैवं जा नाति अन्ये भिन्नाः खलु मत्तः कामभोगाएतेभ्यश्च भिन्नोऽहं एवं सति वयमेतेषु अन्यभू तेषु कामभोगेषु मूर्छां कुर्मइत्येवं केचिन्महापुरुषाः परिसंख्याय सम्यक् ज्ञात्वा, कामभो गान् वयं विप्रजहिष्यामस्त्यक्ष्यामइत्यध्यवसायिनः स्युः । पुनर्वैराग्यकारणमाह । समे धावी एतत्क्षेत्रादिकं बाह्यांगं वर्ततइति जानीयात् ॥ ३७ ॥

॥ टीका-एतदेव लेशतोदर्शयति (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन् । खलुवाक्यालंकारे । ते का मभोगाअत्यंतमभ्यस्तान तस्य दुःखितस्य त्राणाय शरणाय वा भवति । तुलालितानामपि कामभोगानां पर्यवसानं दर्शयितुमाह । (पुरिसेवाइत्यादि) पुरिशयनात्पुरुषः एकदा व्याध्यु त्पत्तिकाले वाऽन्यस्मिन्वा राजाद्युपद्रवे तान्कामभोगान् परित्यजति । सवा पुरुषोद्रव्याद्यभावे

तैः कामजोगैर्विपयोन्मुखोपि त्यज्यते । सचैवमवधारयति अन्ये मत्तोभिन्नाः खल्वमी का मजोगास्तेन्यश्चान्योहमस्मि । तदेवं व्यवस्थिते "किमिति वयं पुनरेतेष्वनित्येष्ठ परजूतेष्व न्येष्ठ कामजोगेष्ठ मूर्छां कुर्म" इत्येवं केचन महापुरुपाः परिसंख्याय सम्यक् ज्ञात्वा, कामजो गान्वयं विप्रजहिष्यामस्त्यक्ष्यामइत्येवमध्यवसायिनोजवंति । पुनरपरं वैराग्योत्पत्तिका रणमाह । ( सेमेहावी ) समेधावी श्रुतिकः एतज्जानीयात् । यदेतत्क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुव र्णशब्दादिविपयादिकं डुःखपरित्राणाय न जवतीत्युपन्यस्तं तदेतद्बाह्यांतरं वर्तते ॥ ३७ ॥

इणमेव उवणीयतरागं तं जहा मायामे पितामे जायामे जगिणीमे जज्जामे पुत्तामे धूतामे पेसामे नत्तामे सुण्हामे सुहामे पियामे सहामे सयणसंगथसं थुयामे एते खलु मम णायर अहमवि एतेसिं एवं से मेहावि पुवमेव अ प्पणाएवं समजिजाणेज्जा इह खलु मम अन्नयरे डुक्के रोयातंके समुप्पज्जे ज्जा अणिठे जाव डुक्के णोसुहे सेहंता जयंतारो णायर इम मम अन्नयरं डुक्कं रोयातंकं परियाइयह अणिठं जाव णोसुहं तहिं डुक्कामिवा सो यामिवा जाव परितप्पामिवा इमाउमे अन्नयराती डुक्कातो रोयातंको प रिमोएह अणिठाउ जाव णोसुहाउ एवमेव णोलह्पुवं जवइ ॥३ए॥ ते सिंवावि जयंताराणं मम णाययाणं अन्नयरे डुक्के रोयातंके समुपज्जेज्जा अणिठे जाव णोसुहं सेहंता अहमेतेसिं जयंताराणं णाययाणं इमं अन्नयरं डुक्कं रोयातंकं परियाइयामि अणिठं जाव णोसुहं मामे डुक्कं तुवा जाव मामे परितप्पंतुवा इमाउणं अन्नयराउ डुक्कातो रोयातंकाउ परिमोएमि अणिठाउ जाव णोसुहाउ एवमेव णोलह्पुवं जवइ अन्न स्स डुक्कं अन्नोन परियाइयंति अन्नेन कडं अन्नो नोपडिसंवेदेंति॥४०॥ पत्तेयं जायतियं पत्तेयं मरइ पत्तेयं चयइ पत्तेयं उववज्जइ पत्तेयं झंझा पत्ते यं सन्ना पत्तेयंमन्ना एवं विन्नू वेदणाइति खलुणातिसंजोगा णोताणाएवा णोसरणाएवा पुरिसेवा एगता पुविं णातिसंजोए विप्पजहंति णातिसं जोगावा एगता पुविं पुरिसं विप्पजहंति अन्ने खलु णातिसंजोगा अन्नो अहमंसि सेकिमंग पुणवयं अन्नमन्नेहिं णातिसंजोगेहिं मुझामो इति सं खाएणं वयं णातिसंजोगं विप्पजहिस्सामो ॥ ४१ ॥

अर्थ-(इणमेवउवणीयतरागं के०) आ जे आगल कहेशे ते घणाज आसन्न ढुकडा व र्तेछे. (तंजहा के०) ते कहेछे. (मायामे के०) माता महारी, पिता महारो, जाइ म हारो, बहेन महारी,जार्या एटले स्त्री महारी,पुत्र महारा धूता एटले बेटी महारी, पेसा एटले दास महारा, (नत्तामे के०) मित्र महारा सखाइ महारा, अथवा पोत्रा तथा न्यातमहारी (सुन्हामेके०) सुषा एटले पुत्रनी वहु महारी, (पियामेके०) प्रिय (सहामे के०) सखा (सुहामेके०) सुहृत् एटले सज्जन महारा, (सयणसंगथसंथुयामेके०) स्वजन संस्तुत श्वशुरकुलादिक पितरियादिक ए सर्व महारा,तथा जेनी साथे घणो आलाप संला प परिचय थाय ते सर्व महारा, (एतेखलुममणायउके०) ए सर्व निश्चे थकी महारा ज्ञाति ना घणाज ढूकडा संबंधीछे. अने (अहमवि के०) हुंपण (एतेसिं के०) एहोनो हुं ए मने उपकार करशे, हुं एने उपकार करीश. (एवं के०) एरीते (सेमेहावि के०) ते पंमित (पुव्वमेव के०) पूर्वे (अप्पणा के०) पोताना आत्माने विषे (एवंसमजि जाणेज्जा के०) एम समस्त प्रकारें जाणे मनमांहे विचारे जे, (इहखलुमम के०) आ जवने विषे निश्चे मुजने (अन्नयरे के०) अनेरो कोइ (डुक्केरोयांतकेसमुपज्जेज्जाअ णिठेजावडुक्केणोसुहे के०) दुःख शूलादिक असाध्य रोग अनिष्ट यावत् दुःख कारी, अने नथी जेमां लेशमात्र सुख एवा रोगादिक उपने थके तेवारे ते पुरुष ते दुःखे दुःखित छतो, (सेहंताके०) माता पितादिक ज्ञाति गोत्री स्वजनादिकने प्रार्थना करे के, (जयंतारोके०) अहो जय थकी राखनारा एवा (णायउ के०) ज्ञाति गोत्रीउं! (इम के०) एम (म म के०) मने (अन्नयरं के०) अनेरो दुःख रोगातंक शूलादिक उपनुंछे ते तमो वहें ची ल्यो. केमके ए अनिष्टकारी ज्यांसुधि लवलेश मात्र सुख नही (तहिंडुक्कामिवा के०) तेवा दुःखे करी अत्यंत दुखीछुं सोचुछुं, यावत् पीडा अनुजवुंछुं. (इमाउणंअन्न यरातोडुक्कातो के०) एमज अनेरे दुःखे अत्यंत दुःखीछुं, शोक परिताप पीडा अनुनवुं छुं, ते कारणे ए दुःख तथा रोग आंतक थकी मुजने (परिमोएह के०) मूकावो. प रंतु अनिष्टकारी ज्यांसुधि जेमांहे लेश मात्र सुख नथी एवा दुःख थकी मूकाववाने (एवमेवणो लद्धपुव्वंजवइके०) एरीते ते अर्थ मागतो लीये नही एटले ते दुःखने वहेंचीलीये नही; अर्थात् ते ज्ञाती, गोत्री, तेने दुःख थकी मूकववाने समर्थ नथाय. ॥३ए॥ (तेसिंवावि जयंताराणं के०) अथवा ते जयथकी राखनारा एवा जे (ममणाययाणं के०) महा रा ज्ञाति, गोत्री, तेने पण अनेरो कोइएक दुःख रोगांतक उपजे ते केवो उपजे तोके अनिष्टकारी यावत् नथी जेमां लेशमात्र सुख एवो रोग उपने थके हुंपण ते जयथकी राखनार थइश ज्ञाती गोत्रीयोनो दुःख रोगातंक वहेंची लइश, कारणके तेवा अनिष्टकारी. जेमांहे लेशमात्र सुख नथी एवा दुःख थकी महारा ज्ञाती गोत्री दुःखी थाय यावत्

महारा ज्ञाति विशेषे पीडा अनुजवे माटे एने पण अनेरा कोइ डुःख थकी, रोगातंक थकी, मुकावशुं. एवुं यद्यपि ते पोताना मन मांहे जाणे परंतु ते अनिष्टकारी जेमां लेश मात्र सुख नथी एवा डुःख ते ज्ञाती गोत्रीने उपने थके ते मांहेथी वहेंची नशके, एट ले तेमनु डुःख पोते लइ शके नही कारणके, ( अन्नस्सडुक्खंअन्नोनपरियाइयंति के० ) अनेरानुं डुःख अनेरो वहेंची लइ शके नही, एटले एकनुं डुःख बीजो वहेंची लइ शके नही. ( अन्नेनकडं के० ) अनेरानुं करेलुं कर्म ( अन्नोनोपडिसेवेदेंति के० ) अनेरो जो गवे नही. जेणे जे कीधुं होय ते तेहिज जोगवे॥४०॥ (पत्तेयंजायतियंके०) जीव प्रत्येक प्रत्येक उपजेछे. ( पत्तेयंमरइ के० ) प्रत्येक प्रत्येक मरण पामेछे. ( पत्तेयंचयइ के० ) प्रत्येक प्रत्येक धन धान्यादिक ने छांमेछे. ( पत्तेयंउववज्जइ के० ) प्रत्येक प्रत्येक उपार्ज न करेछे संग्रहेछे. ( पत्तेयंझंजा के० ) प्रत्येक प्रत्येक झंझायक कलह लहेछे. ( पत्तेयंसन्ना के०) प्रत्येक प्रत्येकने संज्ञा एटले पदार्थनुं परिज्ञानछे, ते कोइएकने अल्पछे, कोइएकने घणुंछे. एम तरतम योग ज्ञान उपजेछे. ( पत्तेयंमन्ना के० ) प्रत्येक प्रत्येक चित्तनो चिं तवनछे. ( एवंविन्नूवेदणाइतिके० ) एरीते विन्नू एटले जाणवुं. प्रत्येक प्रत्येक सुख डुः खरूप वेदनानो अनुजव थायछे, एतावता एकनुं करेलुं बीजो न जोगवे. ( एवं के०) ए कारणे खलु इति निश्चे ( णातिसंजोगा के० ) ज्ञातिनो जे संयोगछे ते जीवने ( णोता णाएवा के० ) त्राण जणी नथाय. (णोसरणाएवा के०) जीवने शरण जणी न थाय. ( पुरिसेवाएगतापुव्विंणातिसंजोएविप्पजहंति के० ) एकदा प्रस्तावे ज्ञाति संयोगने ते पु रुष प्रथम छांमे. ( णातिसंजोगावाएगतापुव्विंपुरिसंविप्पजहंति के० ) अथवा एकदा प्र स्तावे ज्ञाति संयोग ते पुरुषने प्रथमथीज छांमे ते कारणे, (अन्नेखलुणातिसंजोगाके०) निश्चे ए ज्ञातिना संयोग जे छे, ते मुज थकी अन्यछे. ( अन्नोअहमंसि के० ) अने हुं एना थकी अन्युं एटले जुदोलुं जो एमछे तोपण (सेकिमंगपुणवयंके०) किशोर कोमल वचने करी वली अम्हे ते (अनमन्नेहिं के० ) माहो मांहे (णातिसंयोगेहिं के०) ज्ञाति ना संयोग साथे ( मुज्ञामो के०) मूर्छा कीधीछे. ते मूर्छा करवी योग्य नथी (इतिसंखा एणं के० ) एवुं जाणीने ( वयंणातिसंजोगंविप्पजहिस्सामो के० ) अमे ज्ञाति संयोग छांमशुं. एवो अध्यवसाय जेनो होय तेने पंमित जाणवो. ॥४१॥

---

॥ दीपिका—इदमेव च वक्ष्यमाणमुपनीततरमासन्नतरं वर्तते । तद्यथा । माता, पिता, भ्राता, भगिनी, भार्या, पुत्रः, सुता, स्नुषा, प्रियः, सखा सुहृत्, इत्यादि ज्ञातयः पूर्वापरसंस्तुताएते खलु ज्ञातयोममोपकाराय भविष्यंति अहमप्येतेषां ज्ञातीनामुपकरि ष्यामीत्येवं समेधावी पूर्वमेवात्मना एवं समभिजानीयाद्विचारयेत् । इह भवे ममानिष्टा

अर्थ-(इणमेवउवणीयतरागं के०) आ जे आगल कहेशे ते घणाज आसन्न ढुकडा वर्त्ते. ( तंजहा के० ) ते कहेछे. ( मायामे के०) माता महारी, पिता महारो, जाइ महारो, बहेन महारी,जार्या एटले स्त्री महारी,पुत्र महारा धूता एटले बेटी महारी, पेसा एटले दास महारा, ( नत्रामे के० ) मित्र महारा सखाइ महारा, अथवा पोत्रा तथा न्यातमहारी (सुन्हामेके०) स्नुषा एटले पुत्रनी वहु महारी, (पियामेके०) प्रिय ( सहामे के०) सखा (सुहामेके०) सुहृत् एटले सज्जन महारा, (सयणसंगयसंथुयामेके०) स्वजन संस्तुत श्वशुरकुलादिक पितरियादिक ए सर्व महारा,तथा जेनी साथे घणो आलाप संलाप परिचय थाय ते सर्व महारा, (एतेखलुममणायउके०) ए सर्व निश्चे थकी महारा ज्ञाति ना घणाज ढूकडा संबंधीछे. अने ( अहमवि के० ) हुंपण ( एतेसिं के० ) एहोनो हुं ए मने उपकार करशे, हुं एने उपकार करीश. ( एवं के० ) एरीते ( सेमेहावि के० ) ते पंमित ( पुवमेव के० ) पूर्वे ( अप्पणा के० ) पोताना आत्माने विषे ( एवंसमनिजाणेज्जा के० ) एम समस्त प्रकारें जाणे मनमांहे विचारे जे, ( इहखलुमम के० ) आ जवने विषे निश्चे मुजने ( अन्नयरे के० ) अनेरो कोइ ( ङकेरोयांतकेसमुपज्जेज्जाअ पिछेजावङकेणोसुहे के० ) दुःख शूलादिक असाध्य रोग अनिष्ट यावत् दुःख कारी, अने नथी जेमां लेशमात्र सुख एवा रोगादिक उपने थके तेवारे ते पुरुष ते दुःखे दुःखित थतो, (सेहंताके०) माता पितादिक ज्ञाति गोत्री स्वजनादिकने प्रार्थना करे के, (जयंतारोके०) अहो जय थकी राखनारा एवा ( णायउ के० ) ज्ञाति गोत्रीउ! ( इम के० ) एम ( मम के० ) मने ( अन्नयरं के० ) अनेरो दुःख रोगातंक शूलादिक उपनुंछे ते तमो वहेंची ल्यो. केमके ए अनिष्टकारी ज्यांसुधि लवलेश मात्र सुख नही ( तहिंङकामिवा के० ) तेवा दुःखे करी अत्यंत दुखीछुं सोचुछुं, यावत् पीडा अनुजवुंछुं. (इमाउणंअन्नयरातोङक्कातो के०) एमज अनेरे दुःखे अत्यंत दुःखीछुं, शोक परिताप पीडा अनुजवुं छुं, ते कारणे ए दुःख तथा रोग आंतक थकी मुजने ( परिमोएह के० ) मूकावो. परंतु अनिष्टकारी ज्यांसुधि जेमांहे लेश मात्र सुख नथी एवा दुःख थकी मूकाववाने (एवमेवणो लद्धपुवंजवइके०) एरीते ते अर्थ मागतो लीये नही एटले ते दुःखने वहेंचीलीये नही; अर्थात् ते ज्ञाती, गोत्री, तेने दुःख थकी मूकववाने समर्थ नथाय.॥३७॥ (तेसिंवाविजयंताराणं के० ) अथवा ते जयथकी राखनारा एवा जे ( ममणाययाणं के० ) महारा ज्ञाति, गोत्री, तेने पण अनेरो कोइएक दुःख रोगांतक उपजे ते केवो उपजे तोके अनिष्टकारी यावत् नथी जेमां लेशमात्र सुख एवो रोग उपने थके हुंपण ते जयथकी राखनार थइश ज्ञाती गोत्रीयोनो दुःख रोगातंक वहेंची लइश, कारणके तेवा अनिष्टकारी. जेमांहे लेशमात्र सुख नथी एवा दुःख थकी महारा ज्ञाती गोत्री दुःखी थाय यावत्

महारा ज्ञाति विशेषे पीडा अनुनवे माटे एने पण अनेरा कोइ डुःख थकी, रोगातंक थकी, मुकावडुं. एवुं यद्यपि ते पोताना मन मांहे जाणे परंतु ते अनिष्टकारी जेमां लेश मात्र सुख नथी एवा डुःख ते ज्ञाती गोत्रीने उपने थके ते मांहेथी वहेंची नशके, एट ले तेमनु डुःख पोते लइ शके नही कारणके, ( अन्नस्सडुकंअन्नोनपरियाइयंति के० ) अनेरानुं डुःख अनेरो वहेंची लइ शके नही, एटले एकनुं डुःख बीजो वहेंची लइ शके नही. ( अन्नेनकडं के० ) अनेरानुं करेलुं कर्म ( अन्नोनोपडिसेवेदेंति के० ) अनेरो नो गवे नही. जेणे जे कीधुं होय ते तेहिज नोगवे ॥४०॥ (पत्तेयंजायतियंके०) जीव प्रत्येक प्रत्येक उपजेछे. ( पत्तेयंमरइ के० ) प्रत्येक प्रत्येक मरण पामेछे. ( पत्तेयंचयइ के० ) प्रत्येक प्रत्येक धन धान्यादिक ने ढांमेछे. ( पत्तेयंउववज्जइ के० ) प्रत्येक प्रत्येक उपार्ज न करेछे संग्रहेछे. ( पत्तेयंऊंजा के० ) प्रत्येक प्रत्येक ऊंजायक कलह लहेछे. ( पत्तेयंसन्ना के० ) प्रत्येक प्रत्येकने संज्ञा एटले पदार्थनुं परिज्ञानछे, ते कोइएकने अल्पछे, कोइएकने घणुंछे. एम तरतम योग ज्ञान उपजेछे. ( पत्तेयंमन्ना के० ) प्रत्येक प्रत्येक चित्तनो चिं तवनछे. ( एवंविन्नूवेदणाइतिके० ) एरीते विन्नू एटले जाणवुं. प्रत्येक प्रत्येक सुख डुः खरूप वेदनानो अनुनव थायछे, एतावता एकनुं करेलुं बीजो न नोगवे. ( एवं के० ) ए कारणे खलु इति निश्चे ( णातिसंजोगा के० ) ज्ञातिनो जे संयोगछे ते जीवने ( णोता णाएवा के० ) त्राण नणी नथाय. (णोसरणाएवा के०) जीवने शरण नणी न थाय. ( पुरिसेवाएगतापुव्विंणातिसंजोएविप्पजहंति के० ) एकदा प्रस्तावे ज्ञाति संयोगने ते पु रुष प्रथम ढांमे. ( णातिसंजोगावाएगतापुव्विंपुरिसंविप्पजहंति के० ) अथवा एकदा प्र स्तावे ज्ञाति संयोग ते पुरुषने प्रथमथीज ढांमे ते कारणे, (अन्नेखलुणातिसंजोगाके०) निश्चे ए ज्ञातिना संयोग जे छे, ते मुज थकी अन्यछे. ( अन्नोअहमंसि के० ) अने हुं एना थकी अन्यछुं एटले जुदोछुं जो एमछे तोपण (सेकिमंगपुणवयंके०) किशोर कोमल वचने करी वली अम्हे ते ( अनमन्नेहिं के० ) माहो मांहे (णातिसंयोगेहिं के०) ज्ञाति ना संयोग साथे ( मुछामो के० ) मूर्छा कीधीछे. ते मूर्छा करवी योग्य नथी (इतिसंखा एणं के० ) एवुं जाणीने ( वयंणातिसंजोगंविप्पजहिस्सामो के० ) अमे ज्ञाति संयोग ढांमशुं. एवो अध्यवसाय जेनो होय तेने पंमित जाणवो. ॥४१॥

---

॥ दीपिका—इदमेव च वक्ष्यमाणमुपनीततरमासन्नतरं वर्त्तते । तद्यथा । माता, पिता, भ्राता, नगिनी, नार्या, पुत्रः, सुता, स्नुषा, प्रियः, सखा सुहृत्, इत्यादि ज्ञातयः पूर्वापरसंस्तुताएते खलु ज्ञातयोममोपकाराय नविष्यंति अहमप्येतेषां ज्ञातीनामुपकरि ष्यामीत्येवं समेधावी पूर्वमेवात्मना एवं समनिजानीयाद्विचारयेत् । इह नवे ममानिष्टा

दिविशेषणोडुःखातंकः समुत्पद्यते, ततोऽसौ तडुःखडुखितोज्ञातीन् एवमन्यर्थयेत् । यथा ममान्यतरं डुःखमुत्पन्नं परिगृह्णीत यूयं अहमनेनोत्पन्नेन डुःखातंकेन पीडयिष्यामीति ततोऽस्माद्दुःखान्मां परिमोचयत यूयमिति॥३ए॥इदं सर्वं प्राग्वत् योज्यं। यावदेवं नोपलब्ध पूर्वं नवति। यतः अन्यस्य डुःखमन्योन पर्यादद्दाति न गृह्णाति अन्येन कृतं कर्म अन्यो न प्रतिसंवेदयति नानुनवति ॥ ४० ॥ यतःयस्मात्प्रत्येकं जीवोजायते, प्रत्येकं म्रियते, प्रत्येकं त्यजति परिग्रहं प्रत्येकमुत्पद्यते । यडुक्तं । एकस्य जन्ममरणे, गतयश्च शुनाशु नानवावर्ते ॥ तस्मादाकालिकहितमेकेनैवात्मनः कार्यं ॥ १ ॥ तथा प्रत्येकं फंजा कल हः । तद्ग्रहणात्कपायाग्रह्यंते प्रत्येकमेव जीवानां कपायोदयः स्यादित्यर्थः । संज्ञापदा र्थपरिछित्तिः सापि प्रत्येकं ( मन्नत्ति ) मननं चिंतनं पर्यालोचनमिति यावत् । प्रत्येकमे व विद्वान् प्रत्येकं वेदनाः (इतिखलुत्ति) इति पूर्वोक्तप्रकारेण खलु अमी ज्ञातिसंयोगा न त्राणाय न शरणाय। उत्पन्नपीडार्तिनिवारणं त्राणं, अनागतार्तिसंरक्षणं शरणं । यतः पुरुषएकदा ज्ञातिसंयोगान् विप्रजहाति, ज्ञातिसंयोगावा पुरुषं परित्यजंति तस्मादन्ये ज्ञा तिसंयोगाअहमन्योस्मीति नावनीयं । एवं सति किमिति पुनर्वयमन्यैरन्यैर्ज्ञातिसंयोगै मूर्बा कुर्मः । मूर्बाकरणं न युक्तमित्यर्थः । इति संख्याय ज्ञात्वा, वयं "ज्ञातिसंयोगान् त्य क्ष्यामः परिहरिष्याम" इति कृताध्यवसायाज्ञानतत्त्वाः स्युः ॥ ४१ ॥

---

॥ टीका–इदमेव चान्य द्वक्ष्यमाणमुपनीततरमापन्नतरं वर्तते । तद्यथा । माता, पिता, ज्रा ता, नगिनीत्यादयोज्ञातयः पूर्वापरसंस्तुताएते खलु ममोपकाराय ज्ञातयोनविष्यंति, अह म"प्येतेषांस्नाननोजनादिनोपकरिष्यामी" त्येवंसमेधावीपूर्वमेवात्म नैवंसमनिजानीयादि त्यादि। एवं पर्यालोचयेत्कल्पितवानिति वा। एतदध्यवसायी चासौ स्यादिति दर्शयितुमाह। ( इहखलुइत्यादि ) इहास्मिन्नवे मम वर्तमानस्यानिष्टादिविशेषणविशिष्टोडुःखातंकः स मुत्पद्येत ततोऽसौ तडुःखडुःखितोजानीते । तमेवमन्यर्थयेत् । तद्यथा । ममान्यतरं डुःखातंकमुत्पन्नं परिगृह्णीत यूयमहमनेनोत्पन्नेन डुःखातंकेन पीडयिष्यामीत्यतोमुष्मान्मां परिमोचयत यूयमिति। नचैतत्तेन डुःखितेन लब्धपूर्वं नवति नहि ताज्ञातयस्तं डुःखान्मोच यितुमलमितिनावः॥३ए॥ नासौ तेषां डुःखमोचनायालमिति दर्शयितुमाह. (तेसिंवावीत्या दि ) सर्वं प्राग्वद्योजनीयं यावदेवमेव नो लब्धपूर्वं नवतीति । किमित्येवं नोपलब्धपूर्वं नवतीत्याह । (अमुस्सडुःखमित्यादि) सर्वस्यैव संसारोदरविवरवर्तिनोऽसुमतः स्वकृतक र्मोदयाद्दुःखमुत्पद्यते तदन्यस्य संबंधि डुःखमन्योमातापित्रादिकोनप्रत्यापिधत्ते न तस्मा त्पुत्रादेर्डुःखेनासह्येनात्यंतपीडिताःस्वजनाः नापि डुःखमात्मनि कर्तुमलं । किमित्येवमा शंक्याह । ( अमुएकडमित्यादि ) अन्येन जंतुना कपायवशगेन इंद्रियानुकूलतयाऽनिला

पिणा ज्ञानावृतेन मोहोदयवर्तिना यत्कृतं कर्म तडुदयमन्यः प्राणी नोप्रतिसंवेदय ति, नानुनवति तदनुनवने ह्यकृतागमकृतनाशौ स्यातां । नचेमौ युक्तिसंगतावतोयद्येन कृतं तत्सर्वं सएवानुनवति । तथाचोक्तं । परकृतकर्मणि यस्मान्नाक्रामति संक्रमोविना गोवा ॥ तस्मात्सत्वानां कर्म यस्य यत्तेन तद्वेद्यं ॥१॥४०॥ यस्मात्स्वकृतकर्मफलेश्वराजंतव स्तस्मात्तदेतद्भवतीत्याह । ( पत्तेयमित्यादि ) एकमेकं प्रत्येकं सर्वोप्यसुमान् जायते, त था क्षीणे चायुषि प्रत्येकमेव म्रियते । उक्तंच । एकस्य जन्ममरणे, गतयश्च शुनाशुना नवावर्ते ॥ । तस्मादाकालिकहितमेकेनैवात्मनः कार्यमिति ॥१॥ तथा प्रत्येकं क्षेत्रवस्तु हिरण्यसुवर्णादिकं परिग्रहं शब्दादींश्च विषयान्मातापितृकलत्रादिकं च त्यजति, यथा प्रत्ये कमुपपद्यते युज्यते, परिग्रहस्वीकरणतया तथा प्रत्येकं ऊंफाकलहस्तद्ग्रहणात्कषायाः प रिगृह्यंते । ततः प्रत्येकमेवासुमतां मंदतीव्रतया कषायोद्भवोनवति । तथा संज्ञानं संज्ञा पदार्थपरिच्छित्तिः। सापि मंदमंदतरपटुपटुतरनेदात्प्रत्येकमेवोपजायते। सर्वज्ञादारतस्तरत मयोगेन मतेर्व्यवस्थितत्वात् । तथा प्रत्येकमेव । ( मन्नत्ति ) मननं चिंतनं पर्यालोचन मिति यावत् । तथा प्रत्येकमेव ( विन्नुत्ति ) विद्वांस्तथा प्रत्येकमेव सातासातरूपवेद ना सुखडुःखानुनवः । उपसंजिघृक्षुराह । ( इतिखलुइत्यादि ) इत्येवं पूर्वोक्तेन प्रकारे ण यतोनान्येन कृतमन्यः प्रतिसंवेदयते प्रत्येकं जातिजरामरणादिकं। ततः खल्वमी ज्ञा तिसंयोगाः स्वजनसंबंधाः संसारचक्रवाले पर्यटतोत्यंतपीडितस्य तडुद्धरणेन त्राणाय न त्राणं कुर्वंति, नाप्यनागतसंरक्षणतः शरणाय नवंति । किमिति । यतः पुरुषएकदा क्रो धोदयादिकाले ज्ञातिसंयोगान् विप्रजहाति परित्यजति, स्वजनाश्च न बांधवाइति व्यवहा रदर्शनात् ज्ञातिसंयोगादेकदा तदसदाचारदर्शनतः पूर्वमेव तं पुरुषं परित्यजंति स्वसंबं धाडुत्तारयंति । तदेवं व्यवस्थिते एतद्भावयेत्तद्यथान्ये खल्वमी ज्ञातिसंयोगामत्तोनिन्ना एन्यश्चान्योहमस्मि । तदेवं व्यवस्थिते किमिति पुनर्वयमन्यैरन्यैर्ज्ञातिसंयोगैर्मूर्गं कु र्मोन तेषु मूर्गं क्रियमाणा न्याय्यैवं संख्याय ज्ञात्वा, प्रत्याकलय्य वयमुत्पन्नवैराग्याज्ञाति संयोगांस्त्यक्ष्यामइत्येवं कृताध्यवसायिनोविदितवेद्यानवंतीति ॥ ४१ ॥

से मेहावि जाणेज्जा बाहिरंगमेयं इणमेव उवणियतरागं तं जहा हन्नामे पा यामे बाहामे ऊरूमे उदरंमे सीसंमे सीलम्मे आउमे वलंमे वणोमे तयामे छायामे सोयंमे चक्खूमे घाणंमे जिप्नामे फासामे ममाइज्जंसि वयाउपडि जूरइ तंजहा आउउ बलाउ वणाउ तयाउ गयाउ सोयाउ जाव फा साउ सुसंधिता संधीविसंधी नवइ वलितरंगेगाए नवइ किण्हा केसा प लिया नवंति तंजहा जंपियं इमं सरीरगं उरालं आहारोवइयं एयंपिय

अणुपुवेणं विप्पजहियवं नविस्सति एयं संखाए सेनिक्कू निक्कायरियाए स मुहिए इहतं लोगं जाणेज्जा तं जीवाचेव अजीवाचेव तसाचेव थावराचेव॥४१॥

अर्थ–हवे वली बीजुं विशेष वैराग्यनुं कारण कहेछे. ( सेमेहाविजाणेज्जाबाहिरंग मेयं के० ) ते पंमित एवुं जाणेजे ए आगल कहेशे ते सर्व बाह्यछे. ए स्वजनादिक सर्व बाह्यछे. एवुं पूर्वे कह्युं; वली ( इणमेव के० ) ए थकी ( उवणीयतरागंके० ) आसन ढुकडां एटले घणा नजीक जे छे ( तंजहा के० ) ते देखाडेछे. ( हत्नामे के०) हाथ महारा अशोक पल्लव सरखा अनेक शत्रुउंना विनाश करनार, तथा स्वजन जनोना मनोरथ पूरणहार, एवा हस्त बीजाना नथी एम चिंतवना करे. ( पायामे के० ) पग महारा काछवा सरखा उंचा, तथा पद्म जेवा सुंवालाछे. एवा बीजाना नथी ( बाहामे के० ) तथा बाहू महारा नोगल समान अनेक शत्रुना विनाश करनाराछे. एवा बीजाना नथी ( ऊरूमे के० ) साथल महारा केलना गर्न समानछे ( उदरंमे के० ) पेट महारुं अत्यंत सुवालुं माछला समानछे. ( सीसंमे के० ) मस्तक महारुं अत्यंत सुंदरछे. ( सीलम्मे के०) आचार महारो बहुज रूडोछे. (आउमेके०) आयुष्य महारुं सबलछे एटले घणुंछे. ( बलंमे के० ) शरीरनुं बल महारुं घणुंछे. ( वन्नोमेके० ) वर्ण महारो गौर छे. ( तयामे के० ) त्वचा महारी शीघ्रछे. (छायामे के०) कांती महारी सुंदर छे. ( सोयंमे के० ) श्रोत्र एटले कान महारा नलाछे. ( चरकूमे के० ) चक्षु महारी निर्मलछे. ( घाणंमे के० ) नासिका महारी नली तीक्ष्ण छे ( जिप्नामे के० ) जिव्हा महारी रुडीछे. (फासामेके०) स्पर्शेंड्रिय महारी सुंदरछे. (ममातिक्कंतिके०) एटला ए वाना महारा घणाज सारांछे एवी शरीरनी ममता करे के, जेवा महारा शरीरना अवयव छे तेवा बीजाना नथी एम जाणे. ( वयाउपडिजूरत्ति के०) परंतु ते हस्तादिक शरीरना अवयव जे छे ते केवाछे तोके, वयना परिणाम थकीज जीर्ण थायछे. ते जीर्ण थवाथी ते प्राणी पूर्वोक्त सुंदर अवयवो थकी भ्रष्ट थाय ( तंजहा के० ) जे थकी भ्रष्ट थाय तेना नाम कहेछे. आयुष्य थकी, बल थकी, वर्ण थकी, त्वचा थकी, कांति थकी, श्रोत्र एटले कान थकी, यावत् स्पर्शेंड्रियादिक पांचेइंड्रिय थकी, उंछुं थाय. (सुसंधितासंधीविसंधीनवइके०) जेरुडी रीते जानुं कूर्प्परादिकनी संधि मलीछे ते विसंधि एटले विपरित संधि थाय. (वलितरंगेगाएनवंतिके०) शरीर सर्व वलियां रूप तरंग तेणे करी आकुल थाय, शरीर एवुं थाय जे, पोतानेज उद्वेग करे तो पछी बीजाने उद्वेग करे तेमां केवुंजद्युं? (किएहाकेसापलियानवंति के० ) काला केशछे ते सपेत थाय. ( तंजहाके० ) ते कहेछे किंबहुना ( जंपियंइमंसरीरगं के० ) जे ए शरीर सारुं मनोहर ( उरालंआहारोवइयं के० ) उदा

र रुडा आहारें करी वृद्धिने पमाडयुं. ( एयंपियं के० ) एने पण ( अणुपुव्वेणं के० ) अनुक्रमे वयने परिणामे ( विप्पजहियव्वंजविस्सति के० ) गंमवुं थशे. ( एयंसंरकाए के० ) एवुं जाणीने ( सेनिरकू के० ) ते साधु पंमित समस्त धन धान्यादिक बाह्य परिग्रह गंमीने तथा राग द्वेपादिक अंतरंग परिग्रह गंमीने ( निरकायरियाएसमुठिए के० ) निक्षाचर्याने विषे सावधान थाय. ( डुहउंलोगंजाणेज्जा के० ) ते साधु बे प्रकारे लोकने जाणे ( तंके० ) ते बे प्रकार कहेछे. (जीवाचेवके०) एक जीवते जीवास्तिकाय प्राणिमात्र जाणवा. बीजो ( अजीवाचेव के० ) धर्मास्तिकायादिक पांचद्रव्य अजीव जाणवा. हवे ए निक्षु चारित्रियाने दया जाणवाने अर्थे जीवना नेद कहेछे. ( तसाचेवथावराचेव के० ) एक त्रस ते बेइंद्रियादिक जाणवा. बीजा स्थावरते पृथ्वी कायादिक जाणवा ते वली सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ताना नेदेंकरी घणा प्रकारें जाणवा. ॥ ४२ ॥

---

॥ दीपिका—वैराग्योत्पत्तिकारणमेवाह । समेधावी जानीयात् । तद्यथा । बाह्यतरमेतत् यज्ज्ञातिसंबंधनं इदमन्यडुपनीततरमासन्नतरं ज्ञातिन्यः शरीरावयवानामासन्नतरत्वात् । तद्यथा । हस्तौमे मनोहरौ एवं पादौ बाहू ऊरू शीर्षमुदरमायुर्बलं वर्णस्त्वक् गया श्रोत्रं चक्षुर्घ्राणं जिह्वास्पर्शइति सर्वं ममाति ममीकरोति. यादृङ् मे, न तादृगन्यस्येति नावः । एतच्च हस्तपादादिकं वयसः परिणामात्. (परिजूरइत्ति) परिजीर्णतां यांति । तद्यथा । आयुषः सकाशाद्धीयते बलात् वर्णात् त्वचश्गयातः श्रोत्रात् यावत्स्पर्शाद्धीयते । अत्रच सनत्कुमारचक्रिदृष्टांतोवाच्यः । शरीरे हीयमाने श्रोत्रादीनींद्रियाण्यपि हीयंते । यडुक्तं । बाल्यं वृद्धिर्वयोमेधा,त्वक्चक्षुःशुक्रविक्रमाः ॥ दशकेषु निवर्तंते मनः सर्वेंद्रियाणि च । तथा सुसंधितः सुबद्धः संधिर्जानुकूर्परादिकोविसंधिर्नवति । गात्रं शरीरं वलितरंगाकुलं शिराजालवेष्टितं नवति । यतः । वलिसंततमस्थिशेषितं,शिथिलस्नायुवृतं कलेवरं ॥ स्वयमेव पुमान् जुगुप्सते किमुकांताः कमनीयविग्रहाइति । तथा कृष्णाः केशाः पलिताः श्वेताः स्युः । यदपीदं शरीरमुदारं शोननं विशिष्टाहारोपचितं एतदपि मयाऽवश्यं विप्रहातव्यं त्यक्तव्यं नविष्यति इत्यवगम्य संसारासारतां संख्याय ज्ञात्वा सन्निक्षुर्निक्षाचर्यायां समुत्थितः सन् द्विधा लोकं जानीयात् । तद्यथा । जीवाअजीवाश्च । जीवाद्विविधाः त्रसाः स्थावराश्च । एतेषामुपरि बहुधा व्यापारः प्रवर्तते ॥ ४२ ॥

---

॥ टीका—सांप्रतमन्येन प्रकारेण वैराग्योत्पत्तिकारणमाह । ( समेहावीत्यादि ) सश्रुतिकएतद्वक्ष्यमाणं जानीयात् । तद्यथा । बाह्यतरमेतद्यज्ज्ञातिसंबंधनमिदमेवान्यडुपनीततरमासन्नतरं शरीरावयवानां निन्नज्ञातिन्यआसन्नतरत्वात् । यथा हस्तौ ममाशोकप

लवसदृशौ तथा नुजौ करिकराऽकारौ परपुरंजयौ प्रणयिजनमनोरथपूरकौ शत्रुशतजीवितांतकरौ यथा मम न तथान्यस्य कस्यापीत्येवं पादावपि पद्मगर्नसुकुमाराविल्यादि सुगमं । यावत्स्पर्शाः स्पर्शनेंद्रियं ममाति ममीकरोति । यादृङ् मे, न तादृगन्यस्येति नावः । एतच्च हस्तपादादिकं स्पर्शनेंद्रियपर्यवसानं शरीरावयवसंबंधित्वेन विवक्षितं यत्किमपि वयसः परिणामात्कालकृतावस्थाविशेषात् ( परिजूरइत्ति ) जीर्णतां यांति प्रतिक्षणं विशरारुतां याति तस्मिंश्च प्रतिशरीरं विशीर्यति शरीरे प्रतिसमयमसौ प्राणी एतस्माद्भ्रश्यते । तद्यथा । आयुषः पूर्वनिबद्धात्समयादिहान्याऽपचीयते आवीचीमरणान्युपगमात् । तथा बलादपचीयते तथा वयसोयौवनावस्थायाश्चवमाने शरीरे प्रतिक्षणं शिथिलीनवत्सु संधिबंधनेषु बलादवश्यं भ्रश्यते । तथा वर्णात्त्वचश्छायातोऽपचीयते तत्र च सनत्कुमारदृष्टांतोवाच्यः तथा जीर्यति शरीरे श्रोत्रादीनींद्रियाणि सम्यक् स्वविषयं परिछेत्तुमलं । तथाचोक्तं । बाल्यं वृद्धिर्वयोमेधा, त्वक्चक्षुःशुक्रविक्रमाः ॥ दशकेषु निवर्तंते मनः सर्वेंद्रियाणि च ॥ १ ॥ विशिष्टवयोहान्या सुसंधितः सुबद्धः संधिर्जानुकूर्परादिकोविसंधिर्नवति विगलितबंधनोनवतील्यर्थः । तथा वलितरंगाकुलं सर्वतः शिराजालवेष्टितमात्मनोपि शरीरमिदमुद्वेगकृन्नवति किंपुनरन्येषां । तथाचोक्तं । वलिसंततमस्थिशेषितं शिथिलस्नायुवृतं कलेवरं ॥ स्वयमेव पुमान् जुगुप्सते, किमु कांताः कमनीयविग्रहाः ॥ १ ॥ तथा कृष्णाः केशावयःपरिणामे जलप्रक्षालिताधवलतां प्रतिपद्यंते । तदेवं वयःपरिणामापादितसन्मतिरेतन्नावयेत् । तद्यथा । यदपीदं शरीरमुदारं शोननावयवरूपोपेतं विशिष्टाहारोपचितमेतदपि मयावश्यं प्रतिक्षणं विशीर्यमाणमायुषः क्षये विप्रहातव्यं नविष्यतीत्येतदवगम्य शरीरानित्यतया संसारासारतां संख्यायावगम्य परित्यक्तसमस्तगृहप्रपंचो निष्किंचनतामुपगम्य सन्निकुर्देहदीर्घसंयमयात्रार्थं निक्षाचर्यायां समुत्थितः सन् द्विधा लोकं जानीयादिति । तदेव लोकद्वैविध्यं दर्शयितुकामआह । तद्यथा । जीवाश्च प्राणधारणात्तद्विपरिताश्चाजीवाधर्माधर्माकाशादयः। तत्र तस्य निक्षोरहिंसाप्रसिद्धये जीवान् विनागेन दर्शयितुमाह । जीवाअप्युपयोगलक्षणा द्विधा । तद्यथा । त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रियादयः तथा तिष्ठंतीति स्थावराः पृथिवीकायादयः। तेपि सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकादिनेदेन बहुधाऽष्टव्याः । एतेषु चोपरि बहुधा व्यापारः प्रवर्तते ॥ ४२ ॥

इह खलु गारत्था सारंना सपरिग्गहिया संतेगतिया समणा माहणावि सारंना सपरिग्गहावि जेइमे तसा थावरा पाणा ते सयं समारनंति अन्नेणावि समारंनावेंति अण्णंपि समारनं तं समणुजाणंति ॥ ४३ ॥ इह खलु गारत्था सारंना सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सा

रंभा सपरिग्गहा जेइमे कामभोगा सचित्तावा अचित्तावा ते सयं परि गिण्हंति अन्नेणवि परिगिण्हावेंति अन्नंपि परिगिण्हंतं समणुजाणंति ॥ ४४ ॥ इह खलु गारछा सारंभा सपरिग्गहा संते गतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहा अहं खलु अणारंभे अपरिग्गहे जे खलु गारछा सारंभा सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा स परिग्गहा एते चेव निस्साए बंभचेरंवा संवसिस्सामो कस्सणं तं हेउं जहा पुव्वं तहा अवरं जहा अवरं तहा पुव्वं अंजू एते अणुवरया अणुवठिया पुणरवि तारिसगा चेव ॥ ४५ ॥

अर्थ–हवे ए जीवोना उपमर्दक देखाडेछे. ( इहखलु के० ) आ संसारने विषे निश्चें थकी ( गारछासारंभा के० ) ग्रहस्थ जेछे ते सारंभी, तथा ( सपरिग्गहिया के० ) सपरिग्रहिया जाणवा. ( संतेगतियासमणामाहणावि के० ) तथा कोइ एक श्रमण अने ब्राह्मणछे तेपण ( सारंभासपरिग्गहावि के० ) सारंभी अने सपरिग्रहीछे. ते सारंभी सपरिग्रही केवाछे ते कहेछे. ( जेइमेतसाथावरापाणा के० ) जे कोइ ए त्रस अने स्थावर प्राणीछे ( तेसयंसमारभंति के० ) तेनो स्वयं पोते समारंभ करेछे ( अन्नेणाविसमारंभावेंति के० ) अन्य बीजापासें आरंभ करावेछे ( अन्नंपिसमारभंतंसमणुजाणंति के० ) बीजो कोइ आरंभ करतो होय तेने अनुमोदन आपेछे. ॥४३॥ हवे ए सारंभी सपरिग्रहिने प्राणातिपात देखाडीने भोगांगभूत परिग्रह देखाडेछे. अंही इहखलु इत्यादिकनो अर्थ लखेछे. आ जगत् मांहे निश्चे थकी ग्रहस्थ सारंभी सपरिग्रही होयछे अने कोइएक श्रमण ब्राह्मण पण सारंभी सपरिग्रहीछे. (जेइमेकामभोगासचित्तावाअचित्तावाके०) जे ते स्त्रिया दिकना भोगने अर्थे पुष्प, चंदन, गीत, वाजित्रादिक करावे ते सचित्त अने अचित्त परिग्रह जाणवो. (तेसयंपरिगिण्हंतिके०) ते स्वयं पोते कामभोगना अर्थी थका सचित्ताचित्तरूप परिग्रह अंगीकार करे. (अन्नेणविपरिग्गिण्हावेंतिके०) बीजा पासें परिग्रहावे. ( अन्नंपिपरिग्गिण्हंतंसमणुजाणंतिके०) बीजोजे परिग्रहे तेने अनुमोदन आपे. ॥ ४४ ॥ एम आ जगत् मां ग्रहस्थ सारंभी सपरिग्रहीछे अने केटलाएक श्रमण ब्राह्मण पण सारंभी सपरिग्रही छे एवुं जाणीने भिक्षु चारित्रिउ एवुं चिंतवे जे ( अहं के० ) हुं खलु इति निश्चें निरारंभी निःपरिग्रहीछुं. तो जे ए ग्रहस्थ तथा श्रमण ब्राह्मण सारंभी सपरिग्रहीछे एनी निश्रायें अमे ब्रह्मचर्य आदरशुं एतावता निरारंभ निःपरिग्रही थका धर्माधारभूत देहने प्रतिपालवा निमित्ते आहारादिकने अर्थे सारंभी सपरिग्रही एवा ग्रहस्थनी निश्रायें

प्रवर्ज्या पालशुं इत्यर्थः । ( कस्सणंतंहेउं के० ) वली तेनी निश्रायें विचरवुं ते नुं कारण शुं? एवा संदेहें शिष्यें पूछे थके तदनंतर आचार्य ते शिष्यनो अनि प्राय जाणीने तेने उत्तर आपेछे. ( जहापुव्वंतहाअवरं के० ) जेम ग्रहस्थने सारं नि सपरिग्रही पणु प्रथम होय तेम पछी पण होय. ( जहाअवरंतहापुव्वं के०) अने कोइ एकश्रमण ब्राह्मण पण ग्रहस्थने नावें होय तेवारे सारंनि सपरिग्रही होय तेमज पछी प्रवर्ज्याना अवसरे पण तेवाज सारंनी सपरिग्रही थका वर्त्ते तो ते पण ग्रहस्थ सरखाज जाणवा केमके जेम पछी प्रवर्ज्याने अवसरेछे तेम प्रथम ग्रहस्थने नावे पण तेवाज ह ता. ए कारणे निरारंनि थका चारित्रियायें सारंनिनो आश्रय ग्रहण करवो जेम ए गृह स्थ सारंनि सपरिग्रही प्रत्यक्ष देखायछे तेम देखाडेछे. ( अंजूएतेअणुवरयाअणुवछिया के० ) ए वात प्रगट पणेछे के ए गृहस्थादिक सावद्यानुष्ठान थकी अनुपरत एटले नि वर्त्या नथी जे कारण माटे ते सारंनी, सपरिग्रही प्रत्यक्ष पणेछे. अने जे कोइ चारित्र ल हिने पछी सावद्यानुष्ठानने विषे प्रवर्त्ते. आधाकर्मादिक आहार लिये तेपण ( पुणरवि के० ) वली पण ( तारिसगाचेवके० ) तादृश तेवाज जाणवा. जेम पछी प्रवर्ज्याने अव सरे वर्त्तेछे तेम प्रथम गृहस्थने नावे पण वर्त्तता हता ॥ ४५ ॥

---

॥ दीपिका—तमेवाह । इह संसारे खलु गृहस्थाः सारंनाः सपरिग्रहाः संति विद्यंते । एके केचन श्रमणाः शाक्यादयोब्राह्मणाश्च सारंनाः सपरिग्रहाः । यतोयइमे त्रसाः स्था वराः प्राणिनएतान् स्वयं समारनंते अन्यांश्च समारंनयंति समारंनं कुर्वतश्चान्यान् सम नुजानंति ॥४३॥ एवं प्राणातिपातं प्रदर्श्य परिग्रहमाह । इह खलु गृहस्थाः सारंनाः सप रिग्रहाः संति श्रमणाब्राह्मणाअपि तादृशाः । यइमे कामनोगाः कामाः स्त्रीसंगादयो नोगाः स्रक्चंदनगीतादयः । एते सचित्ताअचित्तावा तान् स्वयं परिगृह्णंति अन्यान् प रिग्राहयंति परंच परिगृह्णंतं समनुजानंति ॥४४॥ उपसंहारमाह । इह खलु गृहस्थाः श्रम णाब्राह्मणाश्च सारंनाः सपरिग्रहाइति ज्ञात्वा सनिक्षुरेवं चिंतयेत्. अहमेव खलु अनारं नोऽपरिग्रहश्च । ये चामी गृहस्थादयः सारंनाः सपरिग्रहास्तदेतन्निश्रयाब्रह्मचर्यं श्राम ण्यं वत्स्यामआचरिष्यामोऽनारंनाअपरिग्रहाः संतोधर्माधारदेहधारणार्थमाहारादिकृते सारंनसपरिग्रहगृहस्थनिश्रयां प्रव्रज्यां करिष्यामइत्यर्थः । शिष्यः प्राह । कस्य हेतोर्गृह स्थस्य श्रमणादिनिश्राकरणं? आचार्यआह । यथा पूर्वमादौ सारंनपरिग्रहत्वं तेषां तथा पश्चादपि सर्वकालमपि गृहस्थाः सारंनादिदोषदुष्टाः श्रमणाश्च पूर्वं गृहस्थत्वे सारंनास्त था परस्मिन्नपि प्रव्रज्याकाले तथाविधाएव ते यथा परमपरस्मिन् प्रव्रज्याकाले तथा पूर्वं गृहस्थत्वेपीति । ततः साधुनिरनारंनैः सारंनाश्रयणं कार्यं । गृहस्थासारंनत्वमाह (अंजू

इतिं ) व्यक्तमिदं ये गृहस्थाः सावद्यादनुपस्थिताअनुद्यताः । येपि शाक्यादयः प्रव्रजिता स्तेप्युद्दिष्टनोजित्वात्सावद्यानुष्ठानपरत्वात्पुनरपि तादृशाएव गृहस्थतुल्याएव ॥ ४५ ॥

---

॥ टीका–सांप्रतं तडुपमर्दकव्यापारकर्तॄन् दर्शयन्नाह । ( इहखलुइत्यादि ) इहास्मि न्संसारे । खलुवाक्यालंकारे । गृहमागारं तत्र तिष्ठंतीति गृहस्थास्तेच सहारंनेण जीवो पमर्दकारिणा वर्तंते सारंनास्तथा सहपरिग्रहेण द्विपचतुष्पदधनधान्यादिना वर्ततइति स परिग्रहाः । न केवलं तएवान्येपि संति विद्यंते एके केचन श्रमणाः शाक्यादयस्तेच पच नपाचनाद्यनुमतेः सारंनादास्यादिपरिग्रहाच्च सपरिग्रहास्तथा ब्राह्मणाश्चैवंविधाएव । ए तेषां च सारंनकत्वं स्पष्टतरं सूत्रेणैव दर्शयति । यइमे प्राग्वर्णितास्त्रसाः स्थावराश्च प्रा णिनस्तावत्स्वयमेवापरप्रेरिताएव समारनंते तडुपमर्दकं व्यापारं स्वतएव कुर्वंतीत्यर्थः । त थान्यांश्च समारंनं कुर्वतश्चान्यान् समनुजानंते ॥४३॥ तदेवंप्राणातिपातं प्रदर्श्य नोगांगनूतं परिग्रहं दर्शयितुमाह । यइमे प्रत्यक्षाः कामप्रधानानोगाः कामनोगाः काम्यंतइति कामाः स्त्रीगात्रपरिष्वंगादयोनुज्यंतइति नोगाः स्रक्चंदनवादित्रादयस्तएते सचित्ताः सचेतनाश्च चेतनावा नवेयुस्तडुपादाननूतार्थास्तांश्च सचित्तानचित्तान्वाऽर्थास्ते कामनोगार्थिनोगृहस्था दयस्ततएव परिगृण्हंति अन्येनच परिग्राहयंति अपरंच परिगृण्हंतं समनुजानंतइति ॥४४॥ सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । इहास्मिन् जगति विद्यंते गृहस्थास्तथाविधश्रमणाब्राह्मणाश्च सा रंनाः सपरिग्रहाइत्येवं ज्ञात्वा सनिक्षुरेवमवधारयेदहमेवात्र खल्वनारंनोऽपरिग्रहश्च । ये चामी गृहस्थादयः सारंनादिगुणयुक्तास्तदेतन्निश्रयास्तदाश्रयेणच ब्रह्मचर्यं श्रामण्यमाचरि ष्यामोऽनारंनाअपरिग्रहाः संतोधर्माधारदेहप्रतिपालनार्थमाहारादिकृते सारंनपरिग्रहस्य निश्रयां प्रव्रज्यां करिष्यामइत्यर्थः । ननु च यदि तन्निश्रयापुनरपि विहर्तव्यं किमर्थं ? ते त्यज्यंतइति जाताशंकः पृच्छति। कस्य हेतोः केन कारणेन तदेतद्गृहस्थश्रमणब्राह्मणत्यज नमनिहितमित्याचार्योपि विदितानिप्रायउत्तरं ददाति । यथा पूर्वमादौ सारंनपरिग्रहत्वं तेषां तथा पश्चादपि सर्वकालमपि गृहस्थाः सारंनादिदोषडुष्टाः श्रमणाश्च केचन यथा पू र्वं गृहस्थानावे सारंनाः सपरिगृहास्तथा परस्मिन्नपि प्रव्रज्याकाले तथाविधाएव तइति । अधुनोनयपदाव्यनिचारित्वप्रतिपादनार्थमाह । यथा परमपरस्मिन् प्रव्रज्याप्रतिपत्तिका ले तथा पूर्वमपि गृहस्थनावादावपीति । यदि वा कस्य हेतोस्तद्गृहस्थाद्याश्रयणं क्रियते पतिनेत्याह । यथा पूर्वं प्रव्रज्यारंनकाले सर्वमेव निक्षादिकं गृहस्थायत्तं तथा पश्चादप्य तः कथंनु नामानवद्यावृत्तिर्नेविष्यतीत्यतः साधुनिरनारंनैः सारंनाश्रयणं विधेयं । तथा चैते गृहस्थादयः सारंनाः सपरिग्रहाश्च । तथा प्रत्यक्षेणैवोपलन्यंतइति दर्शयितुमाह। (अं नूइति ) व्यक्तमेतदेते गृहस्थादयोयदि वांजुइति प्रगुणेन न्यायेन सरसप्रव्रज्यातावद्यानु

ष्ठानेन्योऽनुपरताः परिग्रहारंनाच्च सत्संयमानुष्ठानेन चानुपस्थिताः सम्यगुज्ञानमकृतवंतो पि कथंचिद्धर्मकरणायोद्यितास्तेप्युद्दिष्टनोजित्वात्सावद्याऽनुष्ठानपरत्वाच्च गृहस्थानावेऽनुष्ठानमनतिवर्तमानाः पुनरपि तादृशाएव गृहस्थकल्पाएवेति ॥ ४५ ॥

जे खलु गारत्था सारंना सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सारंना सपरिग्गहा इहतो पावाइं कुव्वंति. इति संखाए दोहिंवि अंतेहिं अदिस्समाणो इति निरकू रीएज्जा ॥ ४६ ॥ सेबेमि पाईणंवा जाव एवं से परिण्णायकम्मे एवं से ववेयकम्मे एवं सेविअंतकारए नवतीति मरकायं॥४७॥

अर्थ–( जेखलुगारत्थासारंनासपरिग्गहा के० ) जे निश्चे थकी ग्रहस्थ सारंनी सपरिग्रहीछे ( संतेगतियासमणामाहणाविसारंनासपरिग्गहा के० ) अने कोइ एक श्रमण ब्राह्मण पण सारंनी अने सपरिग्रहीछे ( इहतोपावाइंकुव्वंति के० ) ए कारणे ए बन्ने पापना करनारा जाणवा ( इतिसंखाए के० ) एवुं जाणीने (दोहिंविअंतेहिं के०) आरंन अने परिग्रह ए वेउ थकी अंत एटले दूर रहे ( अदिस्समाणो के० ) आरंन अने परिग्रह थकी अदृश्य मान उतो ( इतिनिरकूरीएज्जा के० ) एम चारित्रवान् साधु निरवद्य आहारनुं नोजन करनार थको संयमानुष्ठानने विषे प्रवर्ते ॥४६॥ (सेबेमिके०) वली तेज अर्थ विशेषें करी कहुंबुं ( पाईणंवा के० ) पूर्व पश्चिम उत्तर अने दक्षण दिशि थकी आव्यो एवो साधु निरारंनी निःपरिग्रही संयमने विषे प्रवर्त्तमान थको (जावएवंसेपरिण्णायकंमे के०) ज्यां सुधी एम ते साधु ज्ञपरिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें पच्चरकीने ( एवंसेववेयकम्मे के० ) एम ते कर्मना अंतनो करनार थाय ( एवंसेविअंतकारएनवतीतिमरकायं के० ) ए प्रकारे ते योगनिरोधे करी विशेष अंतकारी थाय एम श्री तीर्थंकर गणधरें कह्युंछे ॥ ४७ ॥

---

॥ दीपिका–उपसंहारमाह । ( जेखलुत्ति ) येइमे गृहस्थादयस्ते द्विधापि रागद्वेषान्यामुनान्यां पापानि कुर्वंति इति संख्याय ज्ञात्वा द्वयोरप्यंतयोरागद्वेषयोरनुपलन्यमानः सन् इत्येवंनूतोनिक्षुः संयमे रीयेत प्रवर्तेत । कोर्थः । यइमे ज्ञातिसंयोगायश्चार्थधनादिपरिग्रहः यच्चेदं हस्ताद्यवयवयुक्तं शरीरं यच्चायुर्बलवर्णादिकं तत्सर्वमसारमनित्यं। गृहस्थश्रमणब्राह्मणाश्च सारंनपरिग्रहाः एतत्सर्वं ज्ञात्वा निक्षुः संयमे रीयेत तिष्ठेदितिस्थितं ॥४६॥(सेबेमि) सोहं ब्रवीमि प्राच्यादिशोन्यतरस्याः समागतः सनिक्षुर्द्वयोरपि रागद्वेषयोरदृश्यमानः संयमे रीयमाणः सन् एवं पूर्वोक्तप्रकारेण परिज्ञातकर्मा स्यात् ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याख्यातकर्मा स्यादित्यर्थः । एवं सयोगनिरोधेन व्यंतकारकः विशेषेणकर्मणामंतकारकः स्यादिति तीर्थकृज्ञणधरादिनिराख्यातं ॥ ४७ ॥

॥टीका–सांप्रतमुपसंहरति। (जेखलुइत्यादि) यइमे गृहस्थादयस्ते द्विधापि सारंनसपरिग्रहत्वान्न्यामुनान्यामपि पापान्युपाददते। यदिवा रागद्वेषान्यामुनान्यामपि पापान्युपाददते यदिवा गृहस्थप्रव्रज्यापर्यायान्यामुनान्यां पापानि कुर्वंतइत्येवं संख्याय परिज्ञाय द्वयोरप्येतयोरारंनपरिग्रहयोरागद्वेषयोर्वा दृश्यमानोनुपलन्यमानोयदिवा रागद्वेषयोर्यावत्तावन्नावौ तयोरादिश्यमाने रागद्वेषानावत्तित्वेनापदिश्यमानः सन्नित्येवंनूतोनिकुणशीलोऽनवद्याहारनोजी सत्संयमानुष्ठाने रीयेत प्रवर्तेत। एतडुक्तं नवति। ये इमे जातिसंयोगायश्चायं धनधान्यादिकः परिग्रहोयच्चेदं हस्तपादाद्यवयवयुक्तं शरीरं यच्च सदायुर्वलवर्णादिकं तत्सर्वमशाश्वतमनित्यं स्वप्नेंद्रजालसदृशमसारं। गृहस्थश्रमणब्राह्मणाश्च सारंनाः सपरिग्रहाश्चैतत्सर्वं परिज्ञाय सत्संयमानुष्ठाने निकुरीयेतेति स्थितं॥ ४६॥ सपुनरप्यहमधिकृतमेवार्थं विशेषिततरं सोपपत्तिकं ब्रवीमीति। तत्र प्रज्ञापकापेक्षया प्राच्यादिकायादिशोन्यतरस्याः समायातः सन्निकुर्द्वयोरप्यंतयोरदृश्यमानतया सत्संयमे रीयमाणः सन् एवमनंतरोक्तेन प्रकारेण ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिज्ञातकर्मा नवति। पुनरप्येवमिति परिज्ञातकर्मत्वा द्व्यपेतकर्मा नवति अपूर्वस्याबंधकोनवतीत्यर्थः। पुनरेवमित्यबंधकयोगनिरोधोपायतः पूर्वोपचितस्य कर्मणोविशेषेणांतकारकोनवतीत्येतच्च तीर्थंकरगणधरादिनिर्ज्ञातज्ञेयैर्व्याख्यातमिति॥ ४७॥

तत्र खलु नगवंता उज्जीवनिकायहेउं पणत्ता तंजहा पुढवीकाए जाव तसकाए से जहा णामए मम असायं दंमेणवा अघीणवा मुघीणवा लेलूणवा कवालेणवा आउट्टिज्जमाणस्सवा हम्ममाणस्सवा तज्जिज्जमाणस्सवा ताडिज्जमाणस्सवा परियाविज्जमाणस्सवा किलाविज्जमाणस्सवा उद्दविज्जमाणस्सवा जावलोमुक्कणणमायमवि हिंसाकारगं डुक्कं नयंपडिसंवेदेमि इच्चेवं जाण सव्वे जीवा सव्वेनूता सव्वेपाणा सव्वेसत्ता दंमेणवा जाव कवालेणवा आउट्टिज्जमाणावा हम्ममाणावा तज्जिज्जमाणावा ताडिज्जमाणावा परियाविज्जमाणावा किलाविज्जमाणावा उद्दविज्जमाणावा जाव लोमुक्कणणमायमवि हिंसाकारगं डुक्कं नयं पडिसंवेदेंति एवं नच्चा सव्वेपाणा जाव सत्ता णहंतव्वा णअज्जावेयव्वा णपरिघेतव्वा णपरितावेयव्वा णउद्दवेयव्वा॥ ४८॥ सेवेमि जेयअतिता जेयपडुप्पन्ना जेयआगमिस्सामि अरिहंता नगवंता सव्वे ते एवमाइक्कंति एवंनासंति एवंपणवेंति एवं

परूवेंति सवेपाणा जावसत्ता णहंतवा णअज्जावेयवा णपरिघेतवा ण परितावेयवा णउद्दवेयवा एसधम्मे धुवे णीतिए सासए समिच्चं लोगं खे यन्नेहिं पवेदेंति एवंसे भिक्कू विरते पाणातिवायतो जाव विरते परिग्गहा तो णोदंतपरकालणेणं दंतपरकालेज्जा णोअंजणं णोवमणं णोधूवणे णोतं परिआविएज्जा ॥ ४ए ॥

अर्थ–( तत्र के० ) त्यां कर्मबंधने प्रस्तावे खलु इति वाक्यालंकारे ( जगवंता के० ) जगवंत श्रीतीर्थंकरदेवे ( ठ जीवनिकायहेउं के० ) ठजीवनिकाय कर्मबंधना कारण ( पन्नत्ता के० ) कह्याठे (तंजहा के०) ते ठ कायना नाम कहेठे ( पुढवीकाएजा वतसकाए के० ) पृथ्वी कायथी मांमीने यावत् त्रसकाय पर्यंत ठ जीव निकाय जाणवा तेने पीडतां पीडावता जेम डुःख उपजे तेम दृष्टांते करी देखाडेठे ( सेजहाणामए के० ) ते जेम नाम एवी संजावनायें ( मम के० ) मुजने ( असातं के० ) असाता उपजे शा थकी असाता उपजे ते कहेठे ( दंमेणवा के० ) दंमादिकेंकरी हणता थका ( अठीणवा के० ) अस्थिखंमे करी हाडकायें करी (मुठीणवा के०) मुष्टीयें करी ( लेजूणवा के० ) पाषाणे करी ( कवालेणवा के० ) ठीकरीयें करी ( आउट्टिज्जमाणस्सवा के० ) आक्रोश करताथका तथा सन्मुख नाखता थका (हम्ममाणस्सवा के०) अथवा हणता थका ( तज्जिज्जमाणस्सवा के० ) तर्जना करता थका ( ताडिज्जमाणस्सवा के० ) ताडना करता थका ( परियाविज्जमाणस्सवा के० ) परितापना करता थका ( किलाविज्जमाणस्सवा के० ) किलामणाकरतायका ( उद्दविज्जमाणस्सवा के० ) उद्वेग करता थका तथा जीवने काया थकी रहित करतायका ( जावलोमुक्खणणमायमवि के० ) यावत् शरीर मांहेथी एक रोम उखेडवा मात्र एवुं पण ( हिंसाकारगं के० ) हिंसानु कारण तेथी पण ( डुक्कंजयंपडिसंवेदेमि के० ) डुःख अने जय हुं वेडुं अनुजवुं ( इच्चेवंजाण के० ) ए प्रकारे तेजाणे के ( सवेजीवा के० ) सर्व जीवते सर्व पंचेंड्रियजीव जाणवा ( सवेजूता के० ) सर्व जूतते सर्व वनस्पति प्रमुखना जीव जाणवा ( सवेपाणा के० ) सर्व प्राणी ते सर्व बे इंड्रियादिक विकलेंडि जीव जाणवा ( सवेसत्ता के० ) सर्वसत्व ते पृथिव्यादिक सर्वजीव जाणवा ते जीवोने ( दंमेकरी हणता थका ( जावकवालेणवा के० ) यावत् ठीकरीयें करी हणता थका ( आउट्टिज्जमाणावा के० ) आक्रोश करता थका ( हम्ममाणावा के० ) हणता थका ( तज्जिज्जमाणावा के० ) तर्जना करता थका ( ताडिज्जमाणावा के० ) ताडना करता थका ( परियाविज्जमाणावा के० ) परितापना करता थका ( किलाविज्जमाणावा

के० ) किलामणा करता थका, (उद्दविज्जमाणावा के०) उद्वेग करता थका, तथा जीव ने काया थकी रहित करता थका, ( जावलोमुक्कणएमायमवि के० ) यावत् एक रोम उखेडवा मात्र एवुं पण ( हिंसाकारगं के० ) हिंसानु कारण ते थकी पण, ( डुरकं नयंपडिसंवेदेंति के० ) ते जीवो डुःख अने नय एवुंज वेदे अनुनवे एटले जेवुं डुःख मने वेदवुं पडे, तेवुं डुःख सर्व जीवने वेदवुं पडे. एम सर्व जीवोने पोता सरखुं डुःख देखाडीने अन्य जीवोने शिक्षानो उपदेश आपेडे. ( एवंनच्चा के० ) एवुं जाणीने ( सव्वेपाणाजावसत्ता के० ) सर्व प्राणी, सर्वनूत, सर्वजीव अने सर्व सत्वने ( णहंतव्वा के०) हणवा नही, (णअज्जावेयव्वा के०) दंमादिकें करी ताडवा नही, (णपरिघेतव्वा के०) बलात्कारें करी दासनी पेठें परिग्रहवा नही, एटले बलात्कारे करी चाकरनी पेठें कोइ कार्यने विषे प्रेरवा नही. ( णपरितावेयव्वा के० ) शारीरिक मानसी पीडाने उपजावीने परितापवा नही. ( किलविद्यमाणवा णउद्दवेयव्वा के०) किलामणा करी करी उपद्रववा नही, तथा काया थकी रहित करवा नहीं ॥ ४ ८ ॥ हवे सुधर्म स्वामी कहेडे. (सेबेमि के०) ए वचन जे हुं कहुं बुं, ते पोतानी मतियें नथी कहेतो पण एम सर्व तीर्थंकरनी आज्ञाडे, ते देखाडेडे; (जेयअतीता के० ) जे अतीत कालें तीर्थंकर थया, ( जेयपडुप्पन्ना के०) जे वर्त्तमान कालें तीर्थंकर वर्त्तेडे, ( जेयआगमिस्सामि के० ) जे आगमिक कालें थशे ते ( अरिहंत के० ) पूजा सत्कार योग्य (नगवंता के०) ज्ञानवंतआश्चर्यादिक गुणे करी संयुक्त एवा ( सव्वेते के० ) समस्त श्री अरिहंत नगवंत ते ( एवमाइरकंति के० ) एम सामान्य थकी कहेडे (एवंनासंति के०) एम अर्द्धमागधीनाषायें नांखेडे (एवंपस्सवेंति के०) एम शिष्यने देशना आपेडे ( एवंपरूवेंति के०) एम सम्यक् प्रकारें प्ररूपे डे के, (सव्वेपाणा जावसत्ता के० ) सर्वे प्राणीथी मांमीने यावत् सर्व सत्व ने ( णहंतव्वा के० ) हणवा नही, दंमादिकें करी ताडवा नही, वली बलात्कारें दासनी पेठें परिग्रहवा नही, शारीरिक मानसी पीडा उत्पन्न करीने, परितापवा नही उपद्रववा नही, जीव काया थकी रहित करवा नही, ( एसधम्मेधुवे के० ) ए धर्म प्राणीनी दया लक्षण डुर्गतियें जाता जीवने राखनार ते धर्म केवोडे तोके, ध्रुव एटले निश्चल ( णीतिए के० ) नित्य सदा सर्वकालडे, कोइ काले जेनो क्षय नथी (सासए के०) शाश्वतडे, तेने ( समिच्चं के० ) केवल ज्ञाने करी आलोचीने शुं आलोचीने? तो के, ( लोगं के० ) चौद रज्वात्मक लोक एटले षट् जीव निकायरूप लोक तेने डुःखरूप समुइमांहे पड्यो देखीने ( खेयन्नेहिं के० ) खेदज्ञ एटले बीजा जीवोनां डुःखोना जाणनार, एवा श्रीतीर्थंकर नगवंते (पवेदेंति के०) पूर्वोक्त जीवदयालक्षण धर्म नांख्यो. (एवं के०) ए प्रकारें जाणीने (सेनिरकूविरते के० ) ते साधु निवर्त्यो ( पाणातिवायतो के० ) प्राणातिपात एटले हिंसा थकी, तेमज मृषा

वाद थकी, तथा अदत्तादान थकी, तथा मैथुन एटले कुशील थकी, (जावविरतेपरिग्गहातो के०) यावत् परिग्रह थकी, विरति करतो थको जेवा आचारें प्रवर्त्ते, ते आचार कहेले. (णोदंतपरकालणेणं दंतपरकालेक्का के०) दंत पखालने करी दंत धोवे नही, एतावता जावजीव सुधी दातण न करे. (णोअंजणं के०) जावजीव सुधी सौनाग्यने अर्थे आंखमां अंजन नाखे नही. (णोवमणं के०) वमन विरेचनादिक क्रिया न करे, (णोधूवणे के०) शरीर वस्त्रादिकनुं धूपन न करे (णोतंपरिआविएक्का के०) कासादि रोगने मटाडवा माटे धूम पान पण न करे, ते भिक्षु एटला वाना पोते आचरे नही.॥४ए॥

॥ दीपिका–प्राणातिपातेन कर्मबंधप्रस्तावे खलु नगवता षड्जीवनिकायाहेतुत्वेनोक्ताः। तद्यथा। पृथिवीकायोयावत्त्रसकायः। एतेषां दुःखं दृष्टांतेनाह । तद्यथा नाम ममासातं दुःखं दंडेन अस्थ्ना मुष्टिना लेलुना लोष्टेन कर्परेण आकोटयमानस्य संकोच्यमानस्य हन्यमानस्य कशादिनिस्ताड्यमानस्य कुड्यादावनिघातादिना परिताप्यमानस्याग्न्यादावन्येन प्रकारेण परिक्रम्यमाणस्यापद्राव्यमानस्य मार्यमाणस्य यावल्लोमोत्खननमात्रमपि हिंसाकरं दुःखं नयं च यन्मयि क्रियते तत्सर्वमहं संवेदयामि इत्येवं जानीहि। तथा सर्वे प्राणाजीवाजूतानि सत्वाइत्येकार्थिकाः कथंचिद्भेदेन वा व्याख्येयाः। तथाहि। प्राणाद्वित्रिचतुःखाःस्तु,नूतानि तरवः स्मृताः॥ जीवाः पंचेंद्रियाः प्रोक्ताः शेषाः सत्वाइतीरिताइति। एषां दंडादिना कोट्यमानानां यावल्लोमोत्खननमात्रमपि दुःखं प्रतिसंवेदयतां। एतच्च हिंसाकरं दुःखं नयं चोत्पन्नं ते सर्वेपि प्राणिनः साक्षादनुनवंत्यतः सर्वेपि प्राणिनोन हंतव्यान आज्ञापयितव्याबलान्न कार्ये प्रयोक्तव्यान परिग्राह्यान परितापयितव्यानापद्रावयितव्याः॥४८॥ सोहं साधुर्ब्रवीमि न स्वमत्या किंतु तीर्थकृदाज्ञयेत्याह। येअतीताये च प्रत्युत्पन्नावर्तमानाः सीमंधरादयोये चागमिष्याअनागताः पद्मनानादयोऽर्हंतोनगवंतः सर्वेप्येवमाख्यांति एवं नाषंते स्वत एवं प्रज्ञापयंति हेतुनिरेवं प्ररूपयंति नामादिनिर्यथा सर्वेप्राणा न हंतव्याइत्यादि। एपधर्मो ध्रुवोनित्यः शाश्वतः समेत्य ज्ञात्वा, लोकं खेदज्ञैस्तीर्थंकरैः प्रवेदितः। एवं ज्ञात्वा सनिक्षुर्विरतः प्राणातिपाताद्यावत्परिग्रहान्महाव्रतपालनार्थमुत्तरगुणाः कथ्यंते। (नोदंतइत्यादिना) निष्किंचनः सन् साधुर्नो दंतप्रक्षालनेन काष्ठेन दंतान् प्रक्षालयेत् नोअंजनं नेत्रयोर्विनूषार्थं कुर्यात्, वमनं विरेचनादि न कुर्यात्, वस्त्राणां धूपनं न कुर्यात् कासाद्यपनोदनार्थं धूमं न पिवेत्॥४ए॥

॥ टीका–कथं पुनः प्राणातिपातविरतिव्रतादिव्यवस्थितस्य कर्मापगमोनवतीत्युक्तं यतस्तत्प्रवृत्तस्यात्मौपम्येनप्राणिनां पीडोत्पद्यते तया च कर्मबंधइत्येवं सर्वे नवस्याधा

याह् । ( तत्रखलुइत्यादि ) तत्रेति कर्मबंधप्रस्तावे । खलुवाक्यालंकारे । भगवतोत्पन्न ज्ञानेन तीर्थकृता षड्जीवनिकायाहेतुत्वेनोपन्यस्ताः । तद्यथा । पृथिवीकायोयावत्त्रसका योपीति । तेषांच पीड्यमानानां यथा दुःखमुत्पद्यते तथा स्वसंवित्तिसिद्धेन दृष्टांतेन द र्शयितुमाह् । तद्यथाच मे ममासातं दुःखं वक्ष्यमाणैः प्रकारैरुत्पद्यते तथान्येषामपीति तद्यथा । दंडेनास्थ्ना मुष्टिना लेलुनालोष्टेन कपालेन कर्परेण आकोटयमानस्य संकोच्यमा नस्य हन्यमानस्य कशादिभिस्तर्जमानस्यांगुल्यादिभिस्ताडयमानस्य कुड्यदावभिघातादिना परितप्यमानस्याश्यादावन्येन प्रकारेण वा परिक्लाम्यमानस्य तथापद्राव्यमाणस्य मार्यमा णस्य यावल्लोमोत्खननमात्रमपि हिंसाकरं दुःखं भयं च यन्मयि क्रियते तत्सर्वमहं संवेद यामीत्येवं जानीहि । यथा सर्वे प्राणाजीवाभूतानि सत्वाइत्येते एकार्थिकाः कथंचिद्भेद माश्रित्य व्याख्येयास्तत्रैतेषां दंडादिना कुट्यमानानां यावल्लोमोत्खननमात्रमपि दुःखं प्रतिसंवेदयतामेतच्च हिंसाकरं दुःखं भयं चोत्पन्नं ते सर्वे प्राणिनः प्रतिसंवेदयंति सा क्षादनुभवंतीत्येवमात्मोपमया पीड्यमानानां जंतूनां यतोदुःखमुत्पद्यतेऽतः सर्वे प्राणि नोन हंतव्यान व्यापादयितव्यावलात्कारेण व्यापारे न प्रयोक्तव्यास्तथा न परिग्राह्यान परितापयितव्यानापद्रावयितव्याः ॥ ४७ ॥ सोहं ब्रवीम्येतन्न स्वमनीषिकतया किंतु सर्वे तीर्थकराज्ञयेति दर्शयति ( येअतीएइत्यादि ) ये केचन तीर्थकृतऋषभादयोऽतीतायेच विदेहेषु वर्तमानाः सीमंधरादयोये चागामिन्यामुत्सर्पिण्यां भविष्यंति ब्रह्मनाभादयोऽर्हं तोऽमरासुरनरेश्वराणां पूजार्हाभगवंतऐश्वर्यादिगुणकलापोपेताः सर्वेप्येवं ते व्यक्तवाचा आख्यांति प्रतिपादयंति । एवं सदेवमनुजायां पर्षदि भाषंते स्वतएव न यथा बौद्धानां बोधिसत्वप्रभावात् कुड्यादिदेशनतइत्येवं प्रकर्षेण ज्ञापयंति हेतूदाहरणादिभिः । एवं प्ररूपयंति नामादिभिर्यथा सर्वे प्राणान हंतव्याइत्यादि । एषधर्मः प्राणिरक्षणलक्षण प्राग्व्यावर्णितस्वरूपोध्रुवोऽवश्यंभावी नित्यः क्षांत्यादिरूपेण शाश्वतइत्येवं चाभिसमेत्य केवलज्ञानेनावलोक्य, लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं खेदज्ञैस्तीर्थकृद्भिः प्रवेदितः कथितइत्ये वं सर्वं ज्ञात्वा, सभिक्षुर्विदितवेद्योविरतः प्राणातिपाताद्यावत्परिग्रहादिति । एतदेव दर्शयितुमाह् । ( णोदंतइत्यादि ) इह पूर्वोक्तमहाव्रतपालनार्थमनेनोत्तरगुणाः प्रतिपा द्यंते । तत्रापरिग्रहोनिष्किंचनः ससाधुर्नो दंतप्रक्षालनेन कदंवादिकाष्ठेन दंतान् प्रक्षाल येत्तथा नो अंजनं सौवीरादिकं विभूषार्थमक्ष्णोर्दद्यात्तथा नो वमनविरेचनादिकाः क्रि याः कुर्यात्तथा नो शरीरस्य स्वीयवस्त्राणां वा धूपनं कुर्यान्नापि कासाद्यपनयनार्थं तं धू मं योगवर्तिनिष्पादितमापिवेदिति ॥ ४८ ॥

सेभिक्खू अकिरिए अलूसए अकोहे अमाणे अमाए अलोहे उवसं
ते परिनिवुडे णोआसंसं पुरतोकुज्जा इमेणमे दिठेणवा सुएणवा मुएण

वा णाएणवा विन्नाएणवा इमेणवा सुचरिय तवनियमबंनचेरवासेण इमेणवा जायामायावुत्तिएणं धम्मेणं इवए पेच्चा देवेसिया कामनोगा वसवत्ति सिद्धेवा अडुक्कमसुन्ने एञ्जविसिया एञ्जविणोसिया ॥ ५० ॥

अर्थ–( सेनिरकू के० ) ते चारित्रियो (अकिरिए के०) सावद्य क्रिया रहित, ( अलूसए के० ) जीवनो अहिंसक, ( अकोहे के० ) क्रोधरहित ( अमाणे के० ) मानरहित ( अमाए के० ) मायारहित ( अलोहे के० ) लोनरहित ( उवसंतेपरिनिवुडे के० ) एकारणे उपशांत परिनिवृत समाधिवंत एवो ठतो, ( णोआसंसंपुरतोकुज्जा के० ) आशंसा न करे एटले जन्मांतरें कामनोगनी प्रार्थना न करेः ( इमेणमेदिट्ठेणवा के० ) वली आ जन्मने विषे आमोसही इत्यादिक लब्धि पाम्या तेथी तपश्चर्यानुं फल प्रत्यक्ष दीठुं. तथा वली ( सुएणवा के० ) सिद्धांत नणवा थकी ( मुएणवा के० ) मनन करवाना ( णाएणवा के० ) ज्ञानेकरी ( विन्नाएणवा के० ) विज्ञानेकरी, ( इमेणवा के० ) एवा धर्मेकरी ( सुचरिय के० ) सुकृतरूप आचरण ( तव के० ) तप अनशनादिक ( नियम के० ) नियम अनिग्रहादिक ( बंनचेर के० ) ब्रह्मचर्यने विषे ( वासेण के० ) वसवा थकी ( इमेणवा के० ) ए धर्मेकरी ( जायामायावुत्तिएणं के० ) संयमयात्रामात्रा वृत्तिरूप एटले मानोपेत आहार लेवे करी ( धम्मेणंइवएपेच्चादेवेसिया के० ) एवा धर्मेकरी अंहींयां थकी चवीने परनवांतरें देवत्व पण पामुं एवी आशंसा पण न करे (कामनोगावसवत्ति के०) अथवा नाना प्रकारना कामनोग महारे वशवर्ति थाउं एवी प्रार्थना पण नकरे ( सिद्धि के० ) अष्ट प्रकारनी अणिमा महिमादिकजे सिद्धि उंने ते सिद्धियें करी सिद्धियें सहित थाउं, एवी आशंसा नकरे ( अडुक्कमसुन्ने के० ) डुःख रहित थाउं, शुनाशुन कर्मरहित थाउं, तथा मध्यस्थ थाउं, एवी आशंसा पण न करे. एवी आशंसाने न करवानुं कारण कहेठे. ( एञ्जविसियाएञ्जविणोसिया के० ) तपश्चरण करतां मनःप्रार्थितसिद्धि होय अथवा न होय ए कारणे वांठा न करे ॥ ५० ॥

---

॥ दीपिका–मूलोत्तरगुणसंग्रहमाह । सनिक्षुः नविद्यते सावद्या क्रिया यस्य सोऽक्रियः सांपरायिककर्मावंधकइत्यर्थः । यतः प्राणिनामलूषकोऽहिंसकस्तथाऽक्रोधोऽमायोऽलोनउपशांतः परिनिर्वृतः शीतीनूतआशंसां जन्मांतरे कामनोगवाञ्छां न पुरस्कुर्यात् । ( इमेणत्ति) अमुना तपश्चरणफलेन दृष्टेनामर्षौषध्यादिना श्रुतेन पारलौकिकेनार्डकधम्मिलब्रह्मदत्तादीनां तपश्चरणफलेन ( मएणत्ति ) मननं च जातिस्मरणादिज्ञानेन आचार्यादेः सकाशाद्विज्ञातेनावगतेन ममापि विशिष्टं फलं नविष्यतीत्येवं नाशंसां विदध्यात् । त

थाऽमुना सुचरितेन तपोनियमब्रह्मचर्यवासेन तथाऽमुना यात्रामात्रावृत्तिना धर्मेण इतोऽस्माद्भवात् च्युतस्य प्रेत्य, जन्मांतरे देवः स्यामहं तत्रस्थस्यच कामनोगावशवर्तिनःस्युः । सिद्धोवाऽडुःखःअशुनः शुनाशुनकर्मापेक्षया एवंनूतोहं स्यामिति एवमाशंसां न विदध्यात् । अत्रापि तपश्चरणे सत्यपि डुर्ध्यानसन्नावात्कदाचित्सिद्धिर्मुक्तिरणिमादिसिद्धिर्वा स्यात्कदाचिन्न न स्यात् एवं सति साधोराशंसां कर्तुं न युक्तेति इहलोकार्थं परलोकार्थं कीर्तिवर्णश्लोकाद्यर्थं च तपोन विधेयमिति स्थितं ॥ ५० ॥

॥ टीका—सांप्रतं मूलगुणोत्तरगुणप्रस्तावमुपसंजिघृक्षुराह । ( सेनिस्कू इत्यादि ) समूलोत्तरगुणव्यवस्थितोनिक्कुर्नास्य क्रिया सावद्या विद्यतेइत्यक्रियः संवृतात्मकतया सांपरायिककर्माबंधकइत्यर्थः । कुतएवंनूतोयतः प्राणिनामलूपकोऽहिंसकोऽनुपमर्दकइत्यर्थः । तथा न विद्यतेक्रोधोयस्येत्यक्रोधएवममानोऽमाय्यलोनः कषायोपशमाच्चोपशांतः शीतीनूतस्तडुपशमाच्च परिनिर्वृतइव परिनिर्वृतः । एवं तावदैहिकेन्यः कामनोगेन्योविरतः पारलौकिकेन्योपि विरतइति दर्शयति ।( नोआसंसंइत्यादि ) नो नैवाशंसां पुरस्कृत्य ममानेन विशिष्टतपसा जन्मांतरे कामनोगावाप्तिर्नविष्यतीति । एवंनूतामाशंसां न पुरस्कुर्यादित्येतदेव दर्शयितुमाह । ( इमेणमेइत्यादि ) अस्मिन्नेव जन्मन्यमुना विशिष्टतपश्चरणफलेन दृष्टेनामर्पोपध्यादिना पारलौकिकेन च श्रुतेनाड्कधम्मिल्लब्रह्मदत्तादीनां तथा ( मुणणवत्ति ) मननंज्ञानं जातिस्मरणादिना ज्ञानेन तथाऽचार्यादेः सकाशाद्विज्ञानेनावगतेन ममापि विशिष्टं नविष्यतीत्येवं नाशंसां विदध्यात् । तथाऽमुना सुचरित्रतपोनियमब्रह्मचर्यवासेन तथाऽमुना वा यात्रावृत्तिना धर्मेणानुष्ठितेनातोस्माद्भवाच्च्युतस्य प्रेत्य जन्मांतरे स्यामहं देवस्तत्रस्थस्यच मे वशवर्तिनः कामनोगान्नवेयुरशेषकर्माऽवियुतोवा सिद्धोऽडुःखोशुनाशुनकर्मप्रकृत्यपेक्षयेत्येवं नूतोहं स्यामागामिकालइत्येवमाशंसां न विदध्यादिति । यदिवा विशिष्टतपश्चरणादिनाऽऽगामिनि काले ममाणिमा लघिमेत्यादिकाऽष्टप्रकारा सिद्धिर्नविष्यतीत्यनया च सिद्ध्या सिद्धोहमडुःखोऽशुनोवाम ध्यस्यइत्येवंरूपामाशंसां न कुर्यात् । तदकरणे च कारणमाह । ( एत्थविइत्यादि ) अत्रापि विशिष्टतपश्चरणे सत्यपि कुतश्चिन्निमित्ताडुष्प्रणिधानसद्भावे सति कदाचित्सिद्धिः स्यात्कदाचिन्न नवाशेषकर्मक्षयलक्षणा सिद्धिः स्यात् । तथाचोक्तं । जे जत्तियाउहेक नविस्स ते चे व तत्तिया मोक्खेइत्यादि । यदिवाऽत्राप्यणिमाद्यष्टगुणकारणे तपश्चरणादौ सिद्धिः स्यात्कदाचिन्न न स्यात् तद्विपर्ययोपि वा स्यादित्येवं व्यवस्थिते प्रेक्षापूर्वकारिणां कथमाशंसा कर्तुं युज्यते इति । सिद्धिश्चाष्टप्रकारेयं । अणिमा १ गरिमा २ लघिमा ३ महिमा ४ प्राप्तिः ५ प्राकाम्यं ६ ईशित्वं ७ वशित्वं ८ यत्र कामावसायित्वमिति । तदेवमैहिकार्यमामुष्मिकार्यं च कीर्तिवर्णश्लोकाद्यर्थं च तपोन विधेयमिति स्थितं ॥ ५० ॥

सेभिक्खू सद्देहिं अमुच्छिए रूवेहिं अमुच्छिए रसेहिं अमुच्छिए गंधेहिं अमुच्छिए फासेहिंअमुच्छिए विरए कोहाउ माणाउ मायाउ लोभाउ पेज्जाउ दोसाउ कलहाउ अप्नक्खाणाउ पेसुन्नाउ परपरिवायाउ अरइरइउ मायामोसाउ मिन्नादंसणसल्लाउ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते सेभिक्खू ॥ ५१ ॥ जेइमे तसथावरा पाणा भवंति ते णो सयं समारंभइ णोवऽन्नेहिं समारंभावेंति अन्नं समारभंतं नसमणुजाणंति इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते सेभिक्खू ॥ ५२ ॥ जेइमे कामभोगा सचित्तावा अचित्तावा ते णो सयं परिगिण्हंति णोअन्नेणं परिगिण्हावेंति अन्नं परिगिण्हंतंपि णसमणुजाणइ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरतो सेभिक्खू ॥ ५३ ॥

अर्थ-( सेभिक्खू के० ) ते साधु ( सद्देहिंअमुच्छिए के० ) शब्दने विषे अमूर्छित ( रूवेहिंअमुच्छिएके० ) रूपने विषे अमूर्छित (रसेहिंअमुच्छिए के०) रस मधुरादिकने विषे अमूर्छित (गंधेहिंअमुच्छिए के०) सुरभिगंधादिकने विषे अमूर्छित ( फासेहिंअमुच्छिएके० ) स्पर्शने विषे अमूर्छित (विरएके०) निवर्त्यो, शा थकी निवर्त्यो ? ते कहेछे क्रोध थकी, मान थकी, माया थकी, लोभ थकी, राग थकी, द्वेष थकी, कलह थकी, अभ्याख्यान एटले जुठुं आल देवा थकी, चाडी करवा थकी, परना अवर्णवाद बोलवा थकी, अरति थकी, रति थकी, माया सहित मृषावाद बोलवा थकी, अने मिथ्यात्वदर्शन शल्य ए थकी निवर्त्यो (इतिसेमहतोआयाणाउके०) एवो ते चारित्रिउ महोटा कर्मबंधना कारण थकी, (उवसंतेके०) उपशम्यो (उवठिएके०) उपस्थित एटले सावधान थयो (पडिविरतेके० ) विशेषें निवर्त्यो ( सेभिक्खू के० ) ते चारित्रिउ ॥५१॥ ( जेइमेतसथावरापाणाभवंति के० ) जे ए त्रस अने स्थावर प्राणीउंछे ( तेणोसयंसमारभंति के० ) तेनो पोते समारंभ करे नही ( णोवऽन्नेहिंसमारंभावेंति के० ) बीजा पासे समारंभ करावे नही ( अन्नंसमारंभंतंनसमणुजाणंति के० ) बीजा समारंभ करता होय तेने अनुमोदे नही ( इतिसे के० ). एवो ते चारित्रिउ ( महतो के० ) महोटा ( आयाणाउ के० ) कर्मबंधना कारण थकी ( उवसंतेके० ) उपशम्यो ( उवठिएके० ) उपस्थित एटले सावधान थयो ( पडिविरते के०) विशेषे निवर्त्यो ( सेभिक्खूके० ) ते चारित्रिउ ॥५२॥ ( जेइमेकामभोगा के० ) जे आ जगत् मांहे काम भोगछे ते कहेछे ( सचित्तावा के० ) सचित्त ( अचित्तावा के० )

अचित्त ( तेणोसयंपरिगिएहंति के० ) ते कामजोगने पोते परिग्रहे नही अंगीकार करे नही ( णोअन्नेणंपरिगिएहावेंति के० ) बीजा पासें परिग्रहावे नही ( अन्नंपरिगिएहंतं पि णसमणुजाणइ के० ) बीजो परिग्रहतो होय तेने अनुमोदे नही (इतिसेमहंतो के०). एवोते चारित्रिउ महोटा ( आयाणाउ के० ) कर्मबंधना कारण थकी ( उवसंते के० ) उपशम्यो ( उवठिए के० ) सावधान थयो ( पडिविरए के० ) विशेषे निवर्त्यो ( सेनिरकू के० ) ते चारित्रिउ ॥ ५३ ॥

॥ दीपिका—अथ रागद्वेषाजावमाह । ( सेनिरकूइत्यादि ) सनिक्षुः शब्देषु शुजाशुजेष्व मूर्छितोऽद्विष्टश्च । एवं रूपगंधरसस्पर्शेष्वपि वाच्यं । तथा विरतः क्रोधमानमायालोजेन्य स्तथा प्रेमतोदोषात् कलहादन्याख्यानात् पैशुन्यात् परपरिवादात् अरतितोरतितोमाया मृषातोमिथ्यादर्शनशल्याद्विरतः सनिक्षुर्योमहतः कर्मोपादानाडपशांतसंयमे उपस्थितः सावद्येन्यः प्रतिविरतः सनिक्षुः स्यात् ॥५१॥ येऽमे त्रसाः स्थावराः प्राणिनोजवंति तान् स्वयं न समारजते नैवान्यैः समारंजयंते अन्यं समारजमाणं न समनुजानाति इत्येवं म हतः कर्मोपादानाडपशांतः प्रतिविरतः सनिक्षुःस्यात् ॥५२॥ येमी कामजोगाः सचित्ताश्च चित्तावा तान् स्वयं न परिगृएहाति नान्येन परिग्राहयति अन्यं परिगृएहंतं न समनुजा नाति इत्येवं कर्मोपादानाद्विरतः सनिक्षुः स्यात् ॥ ५३ ॥

॥ टीका—सांप्रतमनुकूलप्रतिकूलेषु शब्दादिषु विषयेषु रागद्वेषाजावं दर्शयितुमाह । ( सेनिरकूइत्यादि ) सनिक्षुः सर्वांसारहितोवेणुवीणादिषु शब्देष्वमूर्छितोऽगृध्नोऽनध्युप पन्नस्तथा रासनादिशब्देषु कर्कशेषु द्विष्टः एवं रूपरसगंधस्पर्शेष्वपि वाच्यमिति । पुनरपि सामान्येन क्रोधाद्युपशमं दर्शयितुमाह ( विरएकोहाउइत्यादि ) क्रोधमानमायालोजेन्यो विरतइत्यादिसुगमं । यावदिति । ( सेमहयाआयाणाउउवसंतेउवठिएपडिविरएसेनिरकू त्ति ) सनिक्षुर्नवति योमहतः कर्मोपादानाडपशांतः सन्स्वयमेवोपस्थितः सर्वपापेन्यश्च विर तइति ॥५१॥ एतदेवमहतः कर्मोपादनाद्विरमणं साक्षाद्दर्शयितुमाह । (जेइमेइत्यादि) ये केचन त्रसाः स्थावराश्च प्राणिनोजवंति तान् सर्वानपि नोनैव स्वयं सत्साधवः समारजं ते प्राण्युपमर्दकमारजंतइतियावत् । तथा नान्यैः समारंजयंते नचान्यान् समारंजमाणान् समनुजानतइत्येवं महतः कर्मोपादानाडपशांतः प्रतिविरतोनिक्षुर्नवतीति ॥५२॥ सांप्रतं सामान्यतः सांपरायिककर्मोपादानकामजोगनिवृत्तिमधिकृत्याह । (जेइमेइत्यादि) ये केच नामी काम्यंतइति कामाजुज्यंत इतिजोगास्तेच सचित्ताश्चित्तावा जवेयुस्तांश्च नस्वतो गृएहीयान्नाप्यन्येन ग्राहयेत् नाप्यपरं गृएहंतं समनुजानीयादित्येवं कर्मोपादानाद्विरतो निक्षुर्नवतीति ॥ ५३ ॥

जंपियं इमं संपराइयं कम्मं कज्जइ णो तं सयं करेति णोअण्णाणं कारवेंति अन्नंपिकरेंतं णसमणुजाणइ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते ॥५४॥ से भिक्खूजाणेज्जा असणंवा अस्सिं पडियाए एगं साहम्मियं समुदिस्स पाणाइं भूताइं जीवाइं सत्ताइं समारंभ समुद्दिस्स कीतं पामिच्चं अछिज्जं अणिसठं अभिहडं आहट्टुदेसियं तंचेतियंसियातं णो सयं भुंजइ णोअण्णेणं भुंजावेंति अन्नंपि भुंजंतं णसमणुजाणइ इति से महतो अयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते ॥ ५५ ॥

अर्थ-(सेभिक्खू के० ) ते चारित्रिउ ( जंपियं के० ) जे ( इमं के० ) ए ( संपराइयं कम्मंकज्जइ के० ) सांपरायिक एटले जे कर्मे करी संसार मांहे परिभ्रमण करियें ते सांपरायिक कर्म कहिए जे कारणे करी बंधाय ते कारण प्रद्वेष निन्हव मात्सर्य अंतराय आशातना उपघातादिक ए कर्मबंधना कारणछे-( णोतंसयंकरेति के० ) ते स्वयं पोते नकरे ( णोअण्णाणंकारवेंति के० ) बीजा पासें करावे नही ( अन्नंपिकरेंतं णसमणुजाणइके० ) बीजो करतो होय तेने अनुमोदे नही (इतिसेमहतोआयाणाउ के०) एवो ते मोहोटा कर्मबंधना कारण थकी ( उवसंते के० ) उपशम्यो ( उवठिए के० ) सावधान थयो (पडिविरतेके०) विशेषें निवर्त्यो ते भिक्षु कहिएं ॥५४॥ हवेचारित्रियानी आहार विशुद्धि कहेछे. ( सेभिक्खूजाणेज्जा के० ) ते चारित्रिउ एम जाणे ते कहेछे. जे ( असणंवाके० एवंभूत आहार अशन पान खादिम स्वादिम जाणे ( अस्सिंपडियाए के० ) साधुने निमित्ते कोइएक प्रकृति भद्रक श्रावक गृहस्थ ते ( एगंसाहम्मियं समुद्दिस्स के० ) एक साधर्मिक साधुने समुद्देशीने ( पाणाइं भूताइं जीवाइं सत्ताइं समारंभ के० ) प्राणी भूत जीव सत्वनो आरंभ करे मर्दन करे ( समुद्दिस्स के० ) तथा साधुने निमित्ते उद्देशीने ( कीतं के० ) वेचातुं लीये ( पामिच्चं के० ) उछीतुं लावे ( अछिज्जं के० ) बीजानुं पाडीलीए ( अणिसठं के० ) बीजानी वस्तु होय ते तेना धणीने कह्या विना साधुने आपे ( अभिहडंआहट्टुदेसियं के० ) ग्रामादिक थकी साधुने सन्मुख लावे एवो आहार आधाकर्मादिक दोषें करी दुष्ट ( तंचेतियंसिया के० ) ते आहार साधुनें दीधो अने साधुए पण अजाणता लीधो परंतु एवो दोष दुष्ट आहार जाणीने ( तेणोसयंभुंजइ के० ) ते आहार साधु पोते जमे नही ( णेवअण्णेणंभुंजावेंति के० ) तथा बीजाने तेवो आहार जमाडे नही अने (अन्नंपिभुंजंतंणसमणुजाणइ के० ) बीजो कोइ एवो आहार जमतो होए तेने अनुमोदे नही ( इतिसेमहतोआ

याणाउंउवसंतेउवठिए पडिविरतेके०) एरीते ते महोटा कर्मबंधना कारण एवा जे श्रा हारना दोष ते थकी उपशम्यो सावधान थयो विशेषें निवर्त्यो तेने साधु कहिए ॥५५॥

---

॥ दीपिका–यदपीदं सांपरायिकं कर्म तच्च प्रद्वेषनिन्ह्वमात्सर्यांतरायासातनोपघातै र्बध्यते तत्कर्म कारणंवा न कृतकारितानुमतिभिः करोति सभिक्षुः कथ्यते ॥५४॥ सभि क्षुर्यत्पुनरेवंभूतमाहारं जानीयात् (अस्सिंपडियाए) एतत्प्रतिज्ञया एकं साधुं साधर्मिकं समुद्दिश्य कश्चित्प्रकृतिभद्रकः श्रावकः साध्वाहारदानार्थं प्राणिनः समारभ्य प्राणिघात कमारंभं कृत्वा समुद्दिश्य तत्पीडां सम्यगुद्दिश्य क्रीतं (पामिच्चं) उच्छिन्नकमाछेद्यमन्य स्मादाछिद्य गृहीतमनिसृष्टं परेणाननुमतमभ्याहृतं साधुसंमुखमानीतमाहृत्य उपेत्य ज्ञा त्वा साध्वर्थं कृतमुद्देशिकमेवंभूतमाहारं साधवे दत्तं स्यात्साधुनावाऽकामेन गृहीतं स्या त्तद्दोषदुष्टं ज्ञात्वा स्वयं न भुंजीत अन्येन न भोजयेत् नच भुंजानमन्यं समनुजानीयात् एवं डुष्टाहारान्निवृत्तोभिक्षुः स्यात् ॥ ५५ ॥

---

॥ टीका–सांप्रतं सामान्यतः सांपरायिककर्मोपादाननिषेधमधिकृत्याह । (जंपियइय इत्यादि) यदपीदं सपर्यति तासुतासु गतिष्वनेककर्मणेति सांपरायिकं तच्च तत्प्रद्वेषनि न्ह्वमात्सर्यांतरायासातनोपघातैर्बध्यते तत्कर्म तत्कारणं वा न कृतकारितानुमतिभिः क रोति सभिक्षुरभिधीयतइति ॥५४॥सांप्रतं भिक्षाविशुद्धिमधिकृत्याह । (सेभिरकूइत्यादि) स भिक्षुर्यत्पुनरेवंभूतमाहारजातं जानीयात् (अस्सिंपडियाएत्ति) एतत्प्रतिज्ञयाऽऽहारदानप्र तिज्ञया यदि वास्मिन्पर्याये साधुपर्याये व्यवस्थितमेकं साधुं साधर्मिकं समुद्दिश्य कश्चिच्छ्रा वकः प्रकृतिभद्रकोवा साध्वाहारदानार्थं प्राणिनः प्रव्यक्तेंद्रियान् भूतानि त्रिकालभाविनि जीवानायुष्कधरणलक्षणान्सत्वान्सदा सत्वोपेतान्समारभ्य तदुपमर्दकमारंभं विधाय स मुद्दिश्य तत्पीडां सम्यगुद्दिश्य, क्रीतं क्रयेण द्रव्यविनिमयेन (पामिच्चंति) उद्यतकमाछे द्यमित्यन्यस्मादाछिद्य निसृष्टमिति परेणाननुसंकलितमभ्याहृतमिति साध्वभिमुखं ग्रामा देरानीतमाहृत्योपेत्य साध्वर्थं कृतमुद्देशिकमित्येवंभूतमाहारजातं साधवे दत्तं स्यात्तच्चा कामेन तेन परिगृहीतं स्यात्। तदेवं दोषडुष्टं च ज्ञात्वा स्वयं न भुंजीत नाप्यपरेण भोजये न्नच भुंजानमपरं समनुजानीयादित्येवं डुष्टाहारदोषान्निवृत्तोभिक्षुर्भवतीत्यर्थः ॥ ५५ ॥

सेभिरकू अह पुणेवं जाणेज्जा तं विज्जति तेसिं परक्कमे जस्सहा तेवइयं सियातं जहा अप्पणो से पुत्ताणं धूयाणं सुण्हाणं धातीणं णातीणं राईणं दासाणं दासीणं कम्मकराणं कम्मकरीणं आदेसाणं पुढोपहेणाए सा मासाए पातरासाए सन्निहीसंनिचएकज्जंति इहमेगेसिं माणवाणं भोयणा

ए तत्थ भिक्खू परकडं परणिट्ठितं उग्गमुप्पायणेसणासुद्धं सत्थाइयं सत्थ परिणामियं अविहिंसियं एसियं वेसियं सामुदाणियं पन्नमसणं कारण ट्ठा पमाणजुत्तं अक्खोवंजणवणलेवणभूयं संजमजायामायावत्तियं बिलमिव पन्नगभूतेणं अप्पाणेणं आहारं आहारेज्जा अन्नं अन्नकाले पाणं पाणकाले वत्थं वत्थकाले लेणं लेणकाले सयणं सयणकाले ॥ ५६ ॥

अर्थ—( सेभिक्खू के० ) ते चारित्रिउ ( अह के० ) हवे ( पुणेवंजाणेज्जा के० ) व ली एवुं जाणे ते कहेछे. ( तंविज्जतितेसिंपरक्कमे के० ) ते गृहस्थने एवो पराक्रम आ हार करवानोछे के जे पराक्रमे करी ( जस्सट्ठातेचेइयंसिया के० ) जेने अर्थे ते आहार नीपजाव्यो होए ( तंजहा के० ) ते कहेछे. ( अप्पणोसेपुत्ताणं के० ) पोताने अर्थे त था पुत्रने अर्थे ( धूयाणं के० ) दीकरीने अर्थे ( सुण्हाणं के० ) ठोकरानी वहुने अ र्थे ( धातीणं के० ) धाव्यने अर्थे ( णातीणं के० ) ज्ञातीने अर्थे ( राईणं के० ) राजा ने निमित्तें ( दासाणं के० ) दासने अर्थे ( दासीणं के० ) दासीने अर्थे ( कम्मकराणं के० ) कर्म करने अर्थे ( कम्मकरीणं के० ) परोणाने अर्थे ( आदेसाणंपुढोपेहेणाए सामासाए के० ) अन्यत्र स्थानके बीजाने मोकलवाने अर्थे नीपजाव्यांछे रात्रे जमवाने निमित्तें तथा लोकोक्तिए व्यालुने अर्थे ( पातरासाए के० ) कलेवा निमित्तें ( स न्निहिसंचयकज्जंति के० ) एप्रकारे आहारनो संनिधि संचय करे एटले दही उद नादिक विनाशी ड्व्य, अने हरडे शर्करादिक अविनाशी ड्व्यनो संचय करे. ( इहमेगेसिं माणवाणंभोयणाए के० ) आ मनुष्य लोक मांहे कोइएक मनुष्यने एवो आहार भोज नने अर्थे थाय ( तत्थभिक्खू के० ) त्यां चारित्रिउ ( परकडं के० ) परनो करेलो ( पर णिट्ठितं के० ) परनिष्ठित एटले अन्यने अर्थे नीपजाव्यो ( उग्गमुप्पायणेसणासुद्धं के० ) उद्गमना सोल दोषने दातार अजाणतो लगावे, अने उत्पादनना सोल दोष ते साधु लगा वे, वली एषणाविशुद्धना दश दोष रहित एटले सर्वमली बेंतालीश दोष रहित ( सत्थाइयं के० ) शस्त्रातीत एटले अग्न्यादिकें करी अचित कीधो ( सत्थपरिणामियं के० ) शस्त्रें क री वर्ण गंध रसादिके करी परिणामाव्यो ( अविहिंसियं ) निर्जीव एटले जीव रहित तेपण ( एसियं के० ) गवेष्युं भिक्षाचर्या करतां पाम्यो तेपण वली ( वेसियं के० ) निः केवलसाधुने वेषे प्राप्त थयो तेपण वली ( सामुदाणियं के० ) माधुकरी वृत्तिए घणा घ र फरतां प्राप्त थयो तथा ( पन्नमसणं के० ) गीतार्थनो आणेलो, एवो आहार अशना दिक तेवली ( कारणट्ठा के० ) वैयावच्चादिक कारणने अर्थे तेवली ( पमाणजुत्तं के० ) प्रमाणयुक्त एटले प्रमाणोपेत आहार जाणवो. तेवली वर्णवलादिकने अर्थे नही किंतु

जेटले आहारें करी शरीर क्रियाने विषे प्रवर्ते तेटलोज आहार लेवो. ते उपर दृष्टांत कहेछे. ( अस्कोवंजण के० ) जेटलो गाडानी धरीने जोइए तेटलो किल आपि ए चोपडीए तेटलुंज गाडुं पण चाले तथा ( वण के० ) व्रण एटले गुंवडा उपर ( ले वणनूयंके०) जेटलो लेप लागे तेटलोज लगाडीए. ए उपमायें चारित्रिउं पण आहार लीए. (संजमजायामायावत्तियंके०) जेटले आहारें संयम जात्रायें प्रवृत्ताय तेटली मात्रायें तेटलो आहारलीए, ते वली तेटली मात्रा टालीने अधिक आहार न लेवो. (बिलमि वपन्नग नूतेणंके०) ते आहार वली बिलप्रवेश सर्पनी पेरें (अप्पाणेणं के०) पोतें ( आहारंआहारेज्जाके०) आहार आहारे,एटले जेम सर्प बिल मांहे प्रवेश करे तेवारे वताव लो प्रवेश करे तेम साधु पण, आहार करतो सुस्वाद निरास्वाद अण जोतो आहार ली ए ( अन्नंअन्नकाले के० ) ते अन्न अन्नने काले लीए, उत्सर्ग मार्गें सूत्र अर्थ पौरसीनुं अनंतर अहार काल जाणवो. ( पाणंपाणकालेके० ) एवीज रीते पाणी, पाणीने कालें पीए एटले तृपा लागे थके जमवुं नही, अने क्षुधातुर थके पाणी पीवुं नही इत्यर्थः ( वत्थंवत्थकाले के०) तथा वस्त्र वस्त्रने कालें लेवुं उढवुं ( लेणंलेणकाले के० ) उपाश्रय उपाश्रयने काले लीये, एटले वर्षादिकाल समयें अवश्य उपाश्रयने विषे रहे बीजाका लने विषे नियम नथी (सयणंसयणकालेके०) शयन कालें शयन करे त्यां अगीतार्थने बे पहोर निद्रा जाणवी. अने निद्रा थकी विमुक्त गीतार्थने एक पहोर निद्रा जाणवी॥५६॥

---

॥ दीपिका–सभिक्षुरथ पुनरेवं जानीयात् । तद्यथा । तेषां गृहस्थानां वक्ष्यमाणः पराक्रमः सामर्थ्य आहारकरणारंनइति यावत् । यस्य चार्थाय यत्कृते तत्रेति तं दत्तं निष्पादितं स्यात् । तद्यथा । आत्मनः कृतं से तदाहारजातं कृतंस्यात्तथा पुत्राणां सुतानां स्नुषाणां वधूनां धात्रीणां राज्ञां दासीनां कर्मकरीणामादेशकः प्राघूर्णकस्तस्यार्थं तथा पृथक् प्रग्रहणार्थं ( सामासाएत्ति ) श्यामारात्रिस्तत्राशनं श्यामाशोरात्रिनोजनार्थं प्रातरशनं प्रातराशस्तदर्थं सन्निचयोविशिष्टाहारनिष्पादनं क्रियते । अनेन चैतत्सूच्यते यद्यालहष्वजानादिनिमित्तं प्रनातादिसमयेप्वपि निष्काटनं क्रियते तस्यायमुक्तः संनवः ससन्निधिसंनवइहेकेषां मानवानां नोजनाय स्यात् । तत्र निक्षुः परकृतपरनिष्ठितमुद्गमोत्पादनेषणाशुद्धमाहारमाहरेत् । अत्र परकृतपरनिष्ठिते चत्वारोनंगाः। तद्यथा । तस्यकृतं तस्यनिष्ठितं १ तस्य कृतमन्यस्यनिष्ठितं २ अन्यस्य कृतं तस्य निष्ठितं ३ अन्यस्य कृतमन्यस्यनिष्ठितं ४ । तत्र चतुर्थनंगः सूत्रोपात्तः शुद्धः । द्वितीयोपिशुद्धः । उद्गमदोषाः १६ उत्पादनादोषा अपि १६ एषणादोषाः १० इतिद्विचत्वारिंशता दोषैः शुद्धं शस्त्रातीतं प्रासुकीकृतं शस्त्रपरिणामितं स्वकायपरकायादिशस्त्रेण निर्जीवीकृतं वर्णगंधरसादिनिश्र

परिणामितमविहिंसितं सम्यक् निर्जीवमित्यर्थः। एषितं निक्षाचर्याविधिप्राप्तं वैषिकं केवलसाधुवेषप्राप्तं नपुनर्निमित्तादिनोत्पादितं सामुदानिकं मधुकरवृत्त्यास्तोकं स्तोकं गृहीतं प्रज्ञस्येदं प्राज्ञं गीतार्थोपात्तमशनं तदपि वेदनावैयावृत्त्यादिकारणे सति। यडुक्तं। वेयण १ वेयावच्चे, २ इरियघ्ठाएय ३ संजमघ्ठाए ४ । तह पाणवत्तियाए ५ ठठं पुण धम्मचिंताए ।६। एषु कारणेष्वाहारं गृह्णीयात्। तदपि प्रमाणयुक्तं नातिमात्रं। यडुक्तं। अद्धमसणस्स सवजणस्स कुक्षादवस्सदोनाए॥ वायपवियारणठा, ठप्नागं ऊणगं कुक्षाइति॥१॥ अक्षस्य शकटस्य उपांजनमन्यंगः व्रणस्यच लेपनं तङुपमयाऽहारमाहरेत्। यतः। अप्रंगेणवलगमं णतरइविणाउजो साहू॥ सो रागदोसरहिउं, मत्ताइविहीइ तंसेवे ॥१॥ एतदेवाह। संयमयात्रायां मात्रा संयमयात्रामात्रा यावत्याहारमात्रया संयमयात्रा प्रवर्ततेतया संयमयात्रामात्रया वृत्तिर्यस्य तत्तया। तदपि बिलप्रवेशपन्नगनूतेनात्मनाऽऽहारमाहरेत्। कोर्थः। यथा बिलं प्रविशन् सर्पस्तूर्णं प्रविशति एवं साधुनापि स्वादमगृह्णताऽहारः शीघ्रं प्रवेशयितव्यः। अथवा सर्पेणेवाहारोऽलब्धास्वादं नक्षणीयइति। तद्यथा। अन्नमन्नकाले सूत्रार्थपौरुषीकरणोत्तरकालं पानकं पानकाले न तृषितोनुंजीत न बुनुक्षितः पानकं पिबेत्। वस्त्रं वस्त्रकाले ग्राह्यं लयनं गुहादिकमाश्रयस्तस्य वर्षास्वत्यवश्यमुपादानमन्यदात्वनियमः। शयनं संस्तारकः शयनकाले तत्रागीतार्थानां प्रहरद्वयं निशाविमोक्षोगीतार्थानां तु प्रहरमेकमिति॥ ५६॥

---

॥ टीका–पुनरेवं जानीयादित्यादि। तद्यथा। गृहं विद्यते येषां तेषां गृहस्थानामेवंनूतोवक्ष्यमाणः पराक्रमः सामर्थ्यमाहारनिवर्तनं प्रत्यारंनस्तेनच यदाहारजातं निर्वार्तत यस्य चार्थाय यत्कृते तच्चेति तमिति दत्तं निष्पादितं स्यान्नवेत्। यत्कृते च निष्पादितं तत्स्वनामग्राहमाह। तद्यथा। आत्मनः स्वनिमित्तमेवाहारादिपाकनिर्वर्तनं कृतमिति तथा पुत्रार्थं यावदादेशायादिश्यते यस्मिन्नागते संत्रमेण परिजनस्तदातदाशनदानादिव्यापारः सआदेशकः प्राघूर्णकस्तदर्थंवा पृथक् प्रग्रहणार्थं विशिष्टाहारनिर्वर्तनं क्रियतेतथा श्यामा रात्रिस्तस्यामशनमाशः श्यामाशस्तदर्थं प्रातरशनं प्रातराशः प्रत्यूषस्येव नोजनं तदर्थं सन्निधिः संनिचयोविशिष्टाहारसंग्रहस्य संचयः क्रियते। अनेन चैतत्प्रतिपादितं नवति। बालवृद्धग्लानादिनिमित्तं प्रत्यूषादिसमयेष्वपि निक्षाटनं क्रियते तस्य चायमनिहितः संनवः। सच (संनिहित्ति) संचयइहैकेषां मानवानां नोजनार्थं नवति तत्र निकुरुद्यतविहारी परकृतपरनिष्ठितमुज्ञमोत्पादनैषणाशुद्धमाहारमाहरेत्। अत्र च परकृतपरनिष्ठिते चत्वारोनंगाः। तद्यथा। तस्य कृतं तस्यैव च निष्ठितं तस्य कृतमन्यस्यनिष्ठितमन्यस्य कृतं तस्यैव निष्ठितमन्यस्य कृतमन्यस्य निष्ठितमित्ययं चतुर्थोनंगः सूत्रे

णोपात्तोऽयं च शुद्धोद्वितीयश्चान्यस्य निष्ठितत्वात्तत्राधाकर्मौद्देशिकादयउद्गमदोषाः षोड
श तथोत्पादनादोषाधात्रीदूत्यादिकाः षोडशैव तथैषणादोषाः शंकितादयोदश । एवमेनि
र्द्विचत्वारिंशद्दोषैरहितत्वाच्छुद्धं । यथाशस्त्रमग्न्यादिकं तेनानीतं प्रासुकीकृतं शस्त्रपरिणा
मितमिति शस्त्रेण स्वकायपरकायादिना निर्जीवीकृतं वर्णगंधरसादिभिश्च परिणमितं हिं,
साप्राप्तं हिंसितं विरूपं हिंसितं विहिंसितं नसम्यक् निर्जीवीकृतमित्यर्थः । तत्प्रतिषेधाद
विहिंसितं निर्जीवमित्यर्थः । तदप्येषितमन्वेषितं भिक्षाचर्याविधिना प्राप्तं वैषिकमिति केवल
साधुवेषावाप्तं नपुनर्जात्याद्याजीवनतोनिमित्तादिना चोत्पादितं तदपि सामुदानिकं समुदा
नं भिक्षासमूहस्तत्र भवं सामुदानिकं । एतडुक्तं भवति । मधुकरवृत्त्यावाप्तं सर्वत्र स्तोकंस्तोकं
गृहीतमित्यर्थः । तथा प्राज्ञस्येदं प्राज्ञं गीतार्थेनोपात्तमशनमाहारजातं तदपि वेदनावैय्या
वृत्त्यादिके कारणेसति तत्रापि प्रमाणयुक्तं नातिमात्रं । प्रमाणं चेदं । अद्धमसणस्स स
व्वं जणस्स कुज्जादवस्स दोभाए । वाउपवियारणछठभागं कणयं कुज्जत्ति । एतदपि न व
र्णबलाद्यर्थं किंतु यावन्मात्रेणाहारेण देहः क्रियासु प्रवर्त्तते । तत्र दृष्टांतद्वयमाह । त
द्यथा । अक्षस्योपांजनमभ्यंगोव्रणस्य च लेपनं प्रलेपस्तडुपमया आहारमाहरेत् । तथाचो
क्तं । अक्खंगेण वसगमं णतरइ विगई विणाइ जो साहू । सो रागदोसरहिउ मत्तादविही
इतं सेवे । एतदेव दर्शयति । संयमयात्रायामात्रा संयमयात्रामात्रा यावत्याहारमात्रया
संयमयात्रा प्रवर्त्तते सा तथा तया संयमयात्रामात्रया वृत्तिर्यस्य तत्तया तदपि बिलप्रवे
शपन्नगभूतेनात्मनाऽऽहारमाहरेत् । एतडुक्तं भवति । यथाहिर्बिलं प्रविशन् तूर्णं प्रविश
त्येवंसाधुनाप्याहारस्तत्स्वादमनास्वादमभ्यवहार्यतइति । तदेवाहारजातं दर्शयितुमाह ।
अन्नं भक्तमन्नकाले सूत्रार्थपौरुष्युत्तरकालं भिक्षाकाले प्राप्ते पुरः पश्चात्कर्मपरिस्टतं भव
ति । यथोक्तभिक्षाटनेन ग्रहणकालावाप्तं भैक्षं परिभोगकाले भुंजीत । तथा पानकं पान
काले नातितृषितोभुंजीत नाप्यतिबुभुक्षितः पानकं पिबेदिति । तथा वस्त्रं वस्त्रकाले गृ
एहीयाडुपभोगंवा कुर्यात्तथा लयनं गुहादिकमाश्रयस्तस्य वर्षास्ववश्यमुपादानमन्यदात्व
नियमस्तथा शय्यतेऽस्मिन्निति शयनं संस्तारकः सच शयनकाले । तत्राप्यगीतार्थानां प्र
हरद्वयं निद्राविमोक्षोगीतार्थानां प्रहरमेकमिति । ॥ ५६ ॥

सेभिक्खू मायन्ने अन्नयरं दिसं अणुदिसंवा पडिवन्ने धम्मं आ
इक्खे विभए किट्टे उवठिएसुवा अणुवठिएसुवा सुस्सूसमाणेसु प
वेदए संतिविरतिं उवसमं निवाणं सोयवियं अज्जवियं मद्दवि
यं लाघवियं अणतिवातियं सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूताणं जा
व सत्ताणं अणुवाइं किट्टिए धम्मं ॥ ५७ ॥

अर्थ-( सेनिरकूके० ) ते चारित्रिउं आहार, उपधी, शयन, स्वाध्याय, अने ध्यानादि कना ( मायन्नेके० ) मात्रा एटले विधिनो जाण हतो ( अन्नयरंदिसंअणुदिसंवाके० ) अन्य दिशि अथवा विदिशि प्रत्यें ( पडिवन्ने के० ) आश्रित होतो एटले अंगीकार करतो हतो ( धम्मंआइरके के० ) धर्म कहे. जे धर्म जेने करवा योग्य होय तेने तेवो उपदेश आपे ( विनए के० ) धर्म अने अधर्मना फल जुदा जुदा करी देखाडे ( किट्टे के०) धर्मनी कीर्त्ति करे, प्रशंसा करे वली परना हितने अर्थे साधु चारित्रिउ ( उवठिएसुवा के० ) उपस्थित एटले उद्यमवंत एवा शिष्यने विषे तथा (अणुवठिएसुवा के०) अनुपस्थित एटले कौतुकार्थी शिष्यने विषे ( सुस्सूसमाणेसु के० ) सांजलवा वांछताने विषे पोताना आत्माना तथा परना हित नणी ( पवेदए के०) धर्म कहे. जे धर्म कहे ते देखाडेछे. ( संति के० ) उपशम ते कषायनुं जीपवुं तथा ( विरतिं के० ) विरति ते प्राणातिपातादिक थकी निवर्त्तवुं एवो धर्म प्ररूपे ( उवसमंके०) इंद्रिय तथा नोइंद्रियनुं उपशमाववुं एटले राग द्वेषनो अनाव करवो ( निव्वाणं के० ) तथा निरवाणते सर्व जीवोने समाधिरूप एटले मोक्ष कहे तथा ( सोयवियं के० ) शौचते व्रतनुं निर्मल पणु एटले जेम व्रतने मल नलागे तेवीरीते धर्म कहे ( अज्जवियं के० ) आर्जव एटले सरलता मायानो अनाव ( मद्दवियं के० ) कोमल मृडुनावयुक्त तेवा विधिये धर्म कहे ( लाघवियं के० ) तथा कर्म हलवां थाय तेवा विधियें धर्म कहे. हवे सर्व शुनानुष्ठाननु मूल कारण कहेछे ( अणतिवातियं के० ) अहिंसा आदरवानो उपदेश आपे ते कोनी अहिंसा? ते कहेछे ( सव्वेसिंपाणाणंके०) सर्व प्राणीनी ( सव्वेसिंनूताणं के० ) सर्वनूत सर्वजीव ( जावसत्ताणं के० ) यावत् सर्व सत्वनी अहिंसाने ( अणुवाईकिट्टिएधम्मं के० ) विचारीने धर्मोपदेश आपे एटले समस्त जीवमात्रनी जे प्रकारे हिंसा नथाय ते प्रकारें धर्म कहे ॥ ५७ ॥

---

॥ दीपिका-आहारादिमात्रज्ञः सनिक्षुः अन्यतरां दिशमनुदिशंवा प्रतिपन्नोधर्ममाख्यापयेत् कथयेत् यथेन साधुना गृहस्थेन वा विधेयं तद्यथायोगं विनजेत् धर्मफलानि कीर्तयेत् उपस्थितेषूद्यतेषु अनुपस्थितेषु कौतुकादिप्रवृत्तेषु शुश्रूषमाणेषु श्रोतुं प्रवृत्तेषु प्रवेदयेत् । यत्कथयेत्तदाह । शांतिः क्षमा तत्प्रधाना विरतिस्तां कथयेत् । उपशममिंड्रियदमं निर्वाणं मोक्षं ( सोयवियं ) शौचं नावशौचमित्यर्थः । आर्जवं निर्मायत्वं मार्दवं मृडुनावोविनीतत्वमितिनावः । लाघवं कर्मलघुत्वक्रिया । अतिपातोहिंसा सविद्यते यस्यसोतिपातिकस्तन्निषेधादनतिपातिकस्तं सर्वेषां प्राणिनां यावत्सत्वानां धर्ममनुविविच्य विचिंत्य, कीर्तयेत् । कोर्थः । सर्वप्राणिरक्षानूतं धर्मं कथयेदित्यर्थः ॥ ५७ ॥

॥ टीका–सभिक्षुराहारोपधिशयनस्वाध्यायादीनां मात्रां जानातीति तद्विधिज्ञः सन् अन्यतरां दिशमनुदिशंवा प्रतिपन्नः समाश्रितोधर्ममाख्यापयेत् यद्येन विधेयस्तद्यथा भो गं विभजेद्धर्मफलानि च कीर्तयेदाविर्भावयेत्तच्चैकार्थप्रवृत्तेन साधुना सम्यगुपस्थितेषु वा कौतुकादिप्रवृत्तेषु शुश्रूषमाणेषु श्रोतुं प्रवृत्तेषु स्वपराभिप्रायं वेदयेदावेदयेत्प्रकथयेदितिया वत्। श्रोतुमुपस्थितेषु यत्कथयेत्तद्दर्शयितुमाह। (संतिविरइइत्यादि) शांतिरुपशमः क्रोधजयस्तत्प्रधाना प्राणातिपातिभ्योविरतिः शांतिविरतिः। यदिवा शांतिरशेषक्लेशापग मरूपा तस्यै तदर्थं विरतिस्तां कथयेत्तथोपशममिंद्रियोपशमरूपं रागद्वेषाभावजनितं तथा निर्वृतिं निर्वाणमशेपद्वंद्वोपरमरूपं तथा (सोयवियंति) शौचं तदपि भावशौचं सर्वोपाधिशुद्धता व्रतामालिन्यं। (अज्जवियंति) आर्जवममायित्वं तथा मार्दवं मृदुभावं सर्वत्र प्रश्रयवत्वं विनयनम्रतेति यावत्। तथा (लाघवियंति) कर्मणां लाघवापादनं कर्मगुरोर्वात्मनः कर्मापनयनतोलघ्ववस्थासंजननं। सांप्रतमुपसंहारद्वारेण सर्वशुभानुष्ठा नानां मूलकारणमाह। अतिपतनमतिपातः प्राणुपमर्दनं तद्विद्यते यस्यासावतिपातिक स्तत्प्रतिषेधादनतिपातिकस्तं सर्वेषां प्राणिनां भूतानां यावत्सत्वानां धर्ममनुविधिमनुवि चिंत्य, वा कीर्तयेत्कथयेत्। इदमुक्तं भवति सर्वप्राणिनां रक्षाभूतं धर्मं कथयेदिति ॥ ५७ ॥

सेभिक्खू धम्मं किट्टमाणे णो अन्नस्स हेउं धम्म माइक्खेज्जा णोपाणस्स हेउं धम्ममाइक्खेज्जा णोवत्थस्सहेउं धम्ममाइक्खेज्जा णोलेणस्स हेउं ध म्ममाइक्खेज्जा णोसयणस्सहेउं धम्ममाइक्खेज्जा णोअन्नेसिं विरूवरूवा णं कामभोगाणं हेउं धम्ममाइक्खेज्जा अगिलाए धम्ममाइक्खेज्जा नन्नत्थ कम्मनिज्जरठाए धम्ममाइक्खेज्जा ॥५८॥ इहखलु तस्स भिक्खुस्स अंति ए धम्मं सोच्चा णिसम्म उठाणेणं उठाय वीरा अस्सिं धम्मे समुठिया जे तस्सभिक्खू अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म सम्मं उठाणेणं उठायवीरा अ स्सिंसधम्मे समुठिया तेएवं सव्वोवगता तेएवं सव्वोवरता तेएवं सव्वोवसं ता तेएवं सव्वताए परिनिव्वुमेत्तिबेमि ॥ ५९ ॥

अर्थ–( सेभिक्खू के० ) ते साधु ( धम्मंकिट्टमाणे के० ) धर्म कहेतो थको ( णो अन्नस्सहेउं धम्ममाइक्खेज्जा के० ) अन्न एटले आहारने हेतुयें धर्म न कहे ते आवी रीते के आ अमुक मनुष्य धनवंतछे माटे महारी पासेंथी धर्म सांभळीने म ने मनो वांछित आहार आपशे, एवो विचार करे नही तथा वळी ( णोपाणस्सहेउंध

म्ममाइक्खेज्जा के० ) पाणीने हेतुयें पण धर्म नकहे एवो संयति होए ( णोवत्थस्सहे उंधम्ममाइक्खेज्जा के० ) तथा वस्त्रने हेतुयें धर्म न कहे ( णोलेणस्सहेउंधम्ममाइक्खेज्जा के० ) उपाश्रय वस्ति पामवाने हेतुयें धर्म न कहे ( णोसयणस्सहेउंधम्ममाइक्खेज्जा के० ) तथा पाट पाटलादिक सयनने हेतुयें धर्म नकहे ( णोअन्नेसिंविरूवरूवाणंकाम भोगाणंहेउंधम्ममाइक्खेज्जा के० ) नाना प्रकारना कामभोगने हेतुयें धर्म नकहे ( अ गिलाएधम्ममाइक्खेज्जा के० ) अग्लान पणे धर्मकहे एटले पूछ्यो थको धर्म कहेवानो प्रमाद नकरे ( नन्नत्थकम्मनिज्जरट्ठाएधम्ममाइक्खेज्जा के० ) एक कर्मनिर्ज्जरानुं कारण टाली, अनेरे अर्थे धर्म नकहे. ॥५०॥ हवे एवी रीते धर्म कहेवा थकी जे फल थाय ते देखा डेछे. ( इहखलुतस्सभिरकुस्स के० ) आ जगत् मांहे खलु इति वाक्यालंकारे ते गुणवं त साधुने ( अंतिए के० ) समीपे ( धम्मंसोच्चा के० ) धर्म सांभलीने ( णिसम्मउ ट्ठाएणं के० ) सम्यक् हृदयने विषे धारण करीने, संयमने विषे सावधान थइने, ( उ ट्ठायवीरा के० ) धर्ममार्गे प्रवर्त्तता वीर एटले कर्म विदारवाने समर्थ ( अस्सिंधम्मे समुट्ठियाके०) एवो धर्मजे सम्यक् ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूप तेने विषे पहोता ( जेत स्सभिरकू के० ) जे ते साधुने समीपें धर्म सांभलीने. ते साधु केवाछे तोके सम्यक् हृ दय धरीने सयंमने विषे सावधान थइ धर्म मार्गे प्रवर्त्तता कर्मविदारवाने समर्थ ए स म्यक् ज्ञानादिक ने विषे सावधान थया ( तेएवंसव्वोवगता के० ) ते एम सर्व कर्म खपावीने मोक्षे पहोता ( तेएवंसव्वोविरता के० ) ते एम सर्व अढारे पापस्थानक थकी निवर्त्त्या. ( तेएवंसव्वोवसंता के० ) ते एम सर्व प्रकारे उपशांत एटले कषा य जीपीने ( तेएवंसव्वताएपरिनिव्वुमे के० ) ते एम सर्व प्रकारें समर्थ पणे करीने शी तलीभूत थइ मोक्षे पहोता ( त्तिबेमि के० ) श्रीसुधर्मस्वामि श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहे छे के साधुने समीपे धर्म सांभल्यानुं फल में कह्युं ते जेवीरीते श्रीभगवंत श्रीमहावीर देव पासेंथी में सांभल्युंछे तेवीरीते तमने कह्युं ॥ ५१ ॥

---

॥ दीपिका—सभिक्षुर्धर्मं कीर्तयन्नान्नस्य हेतोर्धर्ममाचक्षीत । तथा पानवस्त्रलयनशय ननिमित्तं न धर्ममाख्याति । विरूपरूपाणां शुभाशुभानां कामभोगानां हेतोर्न धर्ममाख्या ति । अग्लानतया धर्ममाख्याति । निर्जरां विनाऽन्यकार्यार्थे न धर्मं वदेत् ॥५०॥ अथोप संहारमाह । इह जगति खलु तस्य भिक्षोरंतिके समीपे धर्मं श्रुत्वा निशम्यावगम्य सम्य ग्ज्ञानेनोत्थाय वीराः समर्थाये ते चैवंभूताः सर्वस्मिन् मोक्षकारणे उपगताः प्राप्ताः स र्वोपगतास्तेचैवं सर्वेभ्यः पापस्थानेभ्यउपरतानिवृत्ताः सर्वोपरतास्तेचैवं सर्वोपशांता

स्तेचैवं सर्वात्मतया सर्वसामर्थ्येन सदनुष्ठाने उद्यताःपरिनिर्वृतानिर्वाणं प्राप्ताइति ब्रवीमीति ॥ ५ए ॥

---

॥ टीका–सांप्रतं धर्मकीर्त्तनं यथा निरुपधि नवति तथा दर्शयितुमाह। (सेनिरकूइत्यादि) सनिकुः परकृतपरनिष्ठिताहारनोजी यथाक्रियाकजानुष्ठायी शुश्रूषन् सुधर्मं कीर्तयन्नान्नस्य हेतोर्ममायमीश्वरोधर्मकथाप्रश्रवणे विशिष्टमाहारजातं दास्यतीति। एतन्निमित्तं न धर्ममाचक्षीत तथा पानवस्त्रलयनशयननिमित्तं न धर्ममाचक्षीत । नान्येषां विरूपरूपाणामुच्चावचानां कार्याणां कामनोगानां वा निमित्तं तथा धर्ममाचक्षीत ग्लानिमनुपगच्छन् न धर्ममाचक्षीत कर्मनिर्जरायाश्चान्यत्र न धर्मं कथयेदपरप्रयोजननिरपेक्षएव धर्मकथयेदिति ॥५८॥ धर्मकथाश्रवणफलदर्शन द्वारेणोपसंजिघृक्षुराह।(इहखलुतस्सेत्यादि) इहास्मिन् जगति । खलु वाक्यालंकारे । तस्य निक्षोर्गुणवतांतिके समीपेपूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं धर्मं श्रुत्वा निशम्यावगम्य सम्यगुत्थानेनोत्थाय धीराः कर्मविदारणसहिष्णवोये चैवंनूतास्ते एवं पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टानुष्ठानतया सर्वस्मिन्नपि मोक्षकारणसम्यग्दर्शनादिके उपसामीप्येन गताः सर्वोपगतास्तथैवं सर्वेन्य उपरताः सर्वोपरतास्तथा तएवं सर्वोपशांताजितकषायतया शीतलीनूतास्तथा एवं सर्वात्मतया सर्वसामर्थ्येन सदनुष्ठानेनोद्यमं कृतवंतोये चैवंनूतास्तेऽशेषकर्मक्षयं कृत्वा परि समंतान्निर्वृताअशेषकर्मक्षयं कृतवंतइति ब्रवीमीति पूर्ववत् ५८

एवं सेनिरकू धम्मठी धम्मविऊ णियागपडिवणे से जहेयं बुत्तियं अडुवा पत्ते पउमवरपोंमरीयं अडुवा अपत्ते पउमवरपोंमरीयं एवं सेनिरकू परिणायकम्मे परिणायसंगे परिणायगेहवासे उवसंते समिए सहिए सयाजए सेवं वयणिज्जं तंजहा समणेतिवा माहणेतिवा खंतेतिवा दंतेतिवा गुत्तेतिवा मुत्तेतिवा इसीतिवा मुणीतिवा कतीतिवा विऊतिवा निरकूतिवा लूहेतिवा तीरधीतिवा चरणकरणपारविउत्तिबेमि ॥ ॥ इति वितियं सुयकं धंस्स पोंमरीयं नाम पढमज्झयणं सम्मत्तं ॥ ६० ॥

अर्थ–हवे अध्ययन परिसमाप्ति नणी कहेजे. (एवंसेनिरकूधम्मठीके०) एम पूर्वोक्त गुण युक्त ते साधु धर्मनो अर्थी ( धम्मविऊ के० ) धर्मनो जाण, ( णियागपडिवणे के० ) मोक्ष अथवा संयमने विषे प्रतिपन्न एवो पांचमो पुरुष, ( सेजहेयंबुत्तियं के० ) ते आश्रीने जेम पूर्वे कह्युं (अडुवापत्तेपउमवरपोंमरीयं के०) ते अथवा प्रधान पोंमरीक कमले पहोतो ( अडुवाअपत्तेपउमवरपोंमरीयं के० ) अथवा प्रधान पोंमरीक कम

लें न पहोतो. परमार्थथकी प्रधान पौंमरीक कमल समान चक्रवर्त्यादिक पुरुष जाणवा तेनी प्राप्ति केवलज्ञानीने होय, अथवा न होय किंतु केवलज्ञान विना पण चारित्रिर्ज कहे वाय तेकारणे पत्ते अपत्ते एवुं स्याद्वाद पद कह्युं ( एवंसेनिरक्परिसायकम्मेपरिसायसंगे के० ) एरीतें ते साधुयें परिज्ञायें करी जाण्यु अने प्रत्याख्यान परिज्ञायें करी पच्चख्युं ठे एवा कर्मबंधना कारणने तथा बाह्याभ्यंतर संगने जेणे वली (परिसायगेहवासेके०) परिज्ञात गृहवास जेणे असार करी जाण्यो तथा (उवसंते के०) इंद्रिय अने नोइंद्रिय जेणे उप शमाव्यां (समिएके०) पांच समितिए समित (सहिएके०) ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी सहित (सयाजएके०) सर्वकाल संयत यत्नवंत (सेवंवयणिज्जेके०) एवो ते चारित्रिर्ज सर्व गुणेयुक्त होय ते केवो होय ? (तंजहा के०) ते कहेठे. (समणेतिवा के०) श्रमण तप स्वी सममन एटले शत्रु मित्र उपर समजाव होय ते श्रमण जाणवो. (माहणेतिवाके०) कोइपण प्राणीमात्रने महणो एवो जेनो उपदेश होय तेने माहण ब्राह्मण कहिए ( खंते तिवा के० ) क्षमावंत ( दंतेतिवाके० ) दांत एटले इंद्रियोनो दमनार (गुत्तेतिवा के०) त्रणगुप्ते गुप्तो ( मुत्तेतिवा के० ) मुक्ति एटले निर्लोजी ( इसीतिवा के० ) रूपी विशिष्ट तपश्चर्या सहित जीवनो रक्षा करनार (मुणीतिवा के०) जगतुनी त्रिकालावस्थाना स रूपनो ज्ञाता ( कत्तीतिवा के० ) परमार्थ थकी पंमित जेनुं सर्व कोइ कीर्तन करे तेजा णवो ( विऊतिवा के० ) रूडी विद्यासहित विद्वान् सद्विद्योपेत तथा ( निरकूतिवा के० ) निरवद्याहारनो लेनार ( लूहेतिवा के० ) लूक्ष अंतप्रांत आहारी ( तीरहीति वा के० ) तथा संसारनो तीररूपजे मोक्ष तेनो अर्थी ( चरणकरणपारविउ के० ) च रण एटले मूलगुण, अने करण एटले उत्तरगुण, तेनो पारपर्यंत गमन जाणे एटले च रण करनो पारंगामि जाणवो तेमाटे चरणकरण पारविउ एम कह्युं. ( इतिबेमि के० ) श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहेठे के ए वचन हुं श्रीतीर्थंकरना वचनने अनुसा रे कहुंछुं. एरीतें श्री सूयगडांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कंधने विषे प्रथम पौंमरीकनामा अध्य यननो बालावबोध समाप्त थयो ॥ ६० ॥

---

॥ दीपिका–एवं पूर्वोक्तगुणः सन्निक्षुर्धर्मार्थी धर्मवित् नियागः संयमोमोक्षोवा तं प्रतिपन्नः सचैवंनूतः पंचमपुरुषस्तं वाऽश्रित्य तथ्यथेदं प्राग्दर्शितं तत्सर्वमुक्तं । सच प्राप्तो वा स्यात्पद्मवरपुंडरीकं राजादिपुरुषं । तत्प्राप्तिश्च तत्त्वतः केवलज्ञानावाप्तौसत्यां स्यात् अप्राप्तोवा स्यात् मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानैर्व्यस्तैः समस्तैर्वा युतः सचैवंनूतोनिक्षुः परिज्ञातकर्मविपाकः परिज्ञातसंगस्त्यक्तसंबंधः परिज्ञातोनिःसारतया गृहवासोयेन सतथा उपशांतोदांतेंद्रियः समितः समितिनिः सह हितेन वर्ततेयः ससहितः सदायतः संयतः

सएवंनूतगुणएत द्वचनीयएतैर्नामनिर्वाच्यः स्यात् । तद्यथा । श्रमणोवा माहनोवा ब्र ह्मचारित्वाद्ब्राम्हणोवा, क्षांतोवा, दांतोवा, गुप्तिनिर्गुप्तोवा, निर्लोभत्वान्मुक्तोवा, ऋषिर्वा, कृत मस्यास्तीति कृती पुण्यवान् वित् विद्योपेतोभिक्षुर्वा, अंतप्रांताहारत्वेन रूक्षोवा, संसाराब्धेस्ती रार्थीवा, चरणं मूलगुणाः, करणमुत्तरगुणास्तेषां पारं पर्यंतगमनं वेत्तीति चरणकरणपा रवित् । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह ॥ ॥ इतिद्वि तीयश्रुतस्कंधस्य पुंडरीकाध्ययनं प्रथमं समाप्तम् ॥ ६० ॥

---

॥ टीका–सांप्रतमध्ययनोपसंहारार्थमाह । ( एवंसेनिरकूइत्यादि ) एवमिति पूर्वो क्तविशेषणकलापविशिष्टः सभिक्षुः पुनरपि सामान्यतोविशिष्यते । धर्मः श्रुतचारित्राख्य स्तेनार्थी यथावस्थितं परमार्थतोधर्मं सर्वोपाधिविशुद्धं जानातीति धर्मवित्तथा नियागः संयमोमोक्षोवा कारणे कार्योपचारं कृत्वा तं प्रतिपन्नोनियागप्रतिपन्नः सचैवंनूतः पंचम पुरुषजातस्तं चाश्रित्य यथेदं प्राक् प्रदर्शितं तत्सर्वमुक्तं । सच प्राप्तोवा स्यात्पद्मवरपौंड रीकमनुग्राह्यं पुरुषविशेषं चक्रवर्त्यादिकं । तत्प्राप्तिश्च परमार्थतः केवलज्ञानावाप्तौ सत्यां नवति । साक्षाद्यथावस्थितवस्तुस्वरूपपरिच्छित्तेरप्राप्तोवास्यान्मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानै र्व्यस्तैः समस्तैर्वा समन्वितः सचैवंनूतः प्राग्व्यावर्णितगुणकलापोपेतोभिक्षुः परि समं तात् ज्ञातं कर्म स्वरूपतोविपाकतस्तदुपादानतश्च येन सज्ञातकर्मा तथा परिज्ञातः संगः सं बंधः सबाह्याभ्यंतरोयेन सतथा परिज्ञातोनिःसारतया गृहवासोयेन सतथोपशांतइंद्रियनो इंद्रियोपशमात्तथा समितः पंचभिः समितिभिस्तथा सह हितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादि भिर्वा सहितः समन्वितः सदा सर्वकालं यतः संयतः एत द्वचनीयस्तद्यथा श्राम्यतीति श्रम णः समनावा तथा मा प्राणिनोजहि व्यापादयेत्येवं प्रवृत्तिरुपदेशोयस्य समाहनः सब्रह्मचा रीवा ब्राम्हणः क्षांतः, सक्षमोपेतोदांतइंद्रियनोइंद्रियदमनेन तथा तिसृभिर्गुप्तिभिर्गुप्तः तथा मुक्तइवमुक्तस्तथाविशिष्टचरणोपेतोमहर्षिस्तथा । मनुते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिस्त था कृतमस्यास्तीति कृती पुण्यवान् परमार्थपंडितोवा तथा विद्वान् सद्विद्योपेतस्तथा भिक्षु र्निरवद्याहारतया भिक्षणशीलस्तथांऽतप्रांताहारत्वेन रूक्षस्तथा संसारतीरनूतोमोक्षस्तदर्थी तथा चर्यतइति चरणं मूलगुणाः क्रियतइति करणमुत्तरगुणास्तेषां पारं तीरं पर्यंतगमनं तद्वे त्तीति करणचरणविदिति । इतिशब्दः परिसमाप्तौ । ब्रवीमीतितीर्थकरवचनादार्यः सुधर्मस्वा मी जंबूस्वामिनमुद्दिश्य एवं नणति तथाहं न स्वमनीषिकया ब्रवीमीति ॥ सांप्रतं समस्ताध्य यनोपात्तदृष्टांतदार्ष्टांतिकयोस्तात्पर्यार्थं गाथाभिर्निर्युक्तिकृद्दर्शयितुमाह । उवमयपुंडरीए, तस्सेवयउववएणनिस्कुत्ती । अधिगारो पुण नणिर्ज, जिणोवदेसेण सिद्धित्ति ॥ १ ॥ सु रमणुयतिरियनिरर्ज, वंगेसुमणुया पहूचरित्तम्मि ॥ अवियमहाजणनेयत्तिचक्कवट्टंमि

अधिगारो ॥ २ ॥ अवियट्ठुनारियकम्मा, नियमा उक्कस्स निरयठितिगामी । ते विहुंजि णोवदेसेण तेणेव नवेण सिज्झंति ॥ ३ ॥ जलमालकद्दमालं, बहुविहवल्लिगहणं च पु क्खरणी । जंघाहिव बाहाहिव नावाहिवतं डुरवगाहा ॥ ४ ॥ पउमं उल्लंघेत्तुं, उपरमाए स्सहोनवावत्ती । किंनहिसेउवाउ, जेणुल्लंघेज्ज अविवन्नो ॥ ५ ॥ विज्जावदेव कम्मं, अ हवा आगासियाविउव्वणया । पउमं उल्लंघेत्तुं नएसइणमोजिणुक्काउ ॥ ६ ॥ सुद्धप्पउग विज्जासिद्धाउ जिणस्स जाणणेविज्जा । नवियजणपोंडरीयाउ जाए सिद्धिगतिमुवेंति ॥ ॥ ७ ॥ (उवमाइत्यादि) इहोपमा दृष्टांतः पौंडरीकेण श्वेतशतपत्रेण कृतस्तस्येहान्य हितत्वात् तस्यैव चोपचयेन सर्वावयवनिष्पत्तियोविद्धिशिष्टोपायेनोद्धरणं । दार्ष्टांतिकाधिका रस्तु पुनरत्र नणितोनिहितश्चक्रवर्त्यादिनिर्नव्यस्य जिनोपदेशेन सिद्धिरिति तस्यैव पूज्य मानत्वादिति । पूज्यमेव दर्शयितुमाह । (सुरमणुएइत्यादि) सुरादिषु चतुर्गतिकेषु जंतु षु मध्ये मनुजाश्चरित्रस्य सर्वसंवररूपस्य प्रनवः शक्तावर्त्तते न शेषाः सुरादयः । ते ष्वपि मनुजेषु महाजननेतारश्चक्रवर्त्यादयोवर्त्तते तेषु प्रबोधितेषु प्रधानानुगामि त्वात् इतरजनः सुप्रतिबोधएव नवतीत्यतोत्र चक्रवर्त्यादिना पौंडरीककल्पेनाधिकारइ ति । पुनरप्यन्यथामनुजप्राधान्यं दर्शयितुमाह । (अविपट्ठुइत्यादि) गुरुकर्माणोपि म नुजाश्चासंकलितनरकायुषोपि नरकगमनयोग्याअपि तेष्वेवंनूतजिनोपदेशात्तेनैव नवेन समस्तकर्मक्षयात् सिद्धिगामिनोनवंतीति । तदेवं दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोस्तात्पर्यार्थं प्रदर्श्य दृ ष्टांतनूतपौंडरीकाऽधारायाः पुष्करिण्याडुरवगाहित्वं सूत्रालापकोपात्तनिर्युक्तिकृद्दर्शयितुमा ह । (जलमालेत्यादि) जलमालामित्यर्थंप्रचुरजलां तथा कर्दममालामप्रतिष्ठिततलत या प्रनूततरपंकां तथा बहुविधवल्लिगहनां च पुष्करिणीं जंघाभ्यां वा बाहुभ्यां नावा वा डुस्तरां पुष्करिणीं दृष्ट्वेति क्रियाध्याहारः-किंचान्यत् । (पउमइत्यादि) तन्मध्ये पद्मवरपौंडरीकं गृहीत्वा समुत्तरतोऽवश्यं व्यापत्तिः प्राणानां नवेत् किं तत्र कश्चिडुपा यः सनास्ति येनोपायेन गृहीतकमलः सन् तां पुष्करिणीमुल्लंघयेन्नविपन्नइति । तडुल्लंघ नोपायं दर्शयितुमाह । (विद्यावेत्यादि) विद्या वा काचित्प्रज्ञप्त्यादिका देवता कर्मवा ऽथवाऽकाशगमनलब्धिर्वा कस्यचिन्नवेत्तेनासावविपन्नोगृहीतपौंडरीकः सन्नुल्लंघयेत्तां पुष्करिणीमेषच जिनैरुपायः समाख्यातः । सर्वोपसंहारार्थं माह । (सुद्धप्पेत्यादि) शुद्धप्रयोगविद्यासिद्धा जिनस्यैव विज्ञानरूपा नान्यस्य कस्यचिद्यया विद्यया तीर्थंकरद र्शितया नव्यजनपौंडरीकाः सिद्धिमुपगच्छंतीति । गतोनुगमः सांप्रतं नयास्तेच पूर्ववद्द्र ष्टव्याइति ॥ समाप्तं पौंडरीकाख्यं द्वितीयश्रुतस्कंधप्रथमाध्ययनमिति ॥ ६० ॥ ॥

## ॥ अथ द्वितीयक्रियास्थानाख्याध्ययनस्य प्रारंभः ॥

हवे बीजुं अध्ययन प्रारंभियें बैयें. पहेला अध्ययनमां पौंमरीक कमलने दृष्टांते अन्यतीर्थिकने कर्मना बंधक कह्या, तथा साधुने कर्मथी मूकावनारा कह्या. हवे ते कर्म बार क्रिया स्थानकें करी बांधीयें अने तेरमे क्रिया स्थानके मूकीयें तेकारणे बीजा अध्ययनमां क्रियास्थानक कहेछे.

सुयंमे आउसंतेणं भगवया एवमरकायं इह खलु किरियाठाणे णामज्झयणे पण्णत्ते तस्सणं अयमठे इह खलु संजूहेणं डुवे ठाणे एवमाहिज्जंति तंजहा धम्मेचेव अधम्मेचेव उवसंतेचेव अणुवसंतेचेव ॥१॥ तत्र णं जेसे पढमस्स ठाणस्स अहम्मपरकस्स विभंगे तस्स णं अयमठे पण्णते इह खलु पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति तं जहा आरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमंतावेगे हस्समंतावेगे सुवन्नावेगे डुवन्नावेगे सुरूवावेगे डुरूवावेगे॥२॥ तेसिंचणं इमं एतारूवं दंमसमादाणं संपेहाए तं जहा णेरइएसुवा तिरिरकजोणिएसुवा मणुस्सेसुवा देवेसुवा जेयावन्ने तहप्पगारा पाणाविन्नू वेयणं वेयंति॥३॥तेसिं पियणं इमाइं तेरसकिरियाठाणाइं भवंतीति मरकायं तंजहा अठादंमे अणठादंमे हिंसादंमे अकम्मादंमे दिठीविपरियासियादंमे मोसवत्तिए अदिन्नादाणवत्तिए अप्नत्तवत्तिए माणवत्तिए मित्तदोसवत्तिए मायावत्तिए लोभवत्तिए इरियावहिए ॥ ४ ॥

अर्थ-( सुयंमे के० ) श्रीसुधर्मस्वामी जंबूस्वामि प्रत्ये कहेछे. के, में सांभल्युंछे ( आउसंतेणंभगवयाएवमरकायं के० ) आयुष्यवंत भगवंते मने एम कह्युं छे ते में जेम सांभल्युंछे. तेम हुं तुज प्रत्ये कहुंछुं. ( इहखलु के० ) निश्चेकरी आ जिनशासनने विषे ( किरियाठाणेणामज्झयणेपण्णत्ते के० ) क्रियास्थान नामे अध्ययन प्ररूप्युं. ( तस्सणंअयमठे के० ) तेनो ए अर्थछे. ( इहखलु के० ) अहिंयां खलु एवी संभावनायें ( संजूहेणं के० ) संक्षेपें करी ( डुवेठाणेएवमाहिज्जंति के० ) एकशुभ, बीजोअशुभ एम बे स्थानक, कहियें. ( तंजहा के० ) तेना नाम कहेछे. ( धम्मेचेवअधम्मेचेव के० ) एक धर्मस्थानक अने बीजो अधर्मस्थानक, (उवसंतेचेवअणुवसंतेचेव के० ) एक उपशां

स्थानक, अने बीजो अनुपशांत स्थानक ॥१॥ (तत्थणं के०) त्यां (जेसे के०) जे कहेशे ते (पढमस्स ठाणस्स अहम्मपक्खस्स विभंगेके०) प्रथम स्थानक अधर्म पक्षनो विभंग एटले विचार. (तस्सणंअयमट्ठेपन्नत्तेके०) तेनो ए अर्थ कहेछे. (इहखलुपाईणंवाके०) ए संसार मांहे पूर्वादिक दिशिमांहे अनेरी दिशायें (संतेगतियामणुस्साभवंति के०) केटलाएक मनुष्यछे. ते केवाछे (तंजहाके०) ते कहेछे. एक आर्य, एक अनार्य, एक उंचगोत्रना उपना, एक नीचगोत्रना उपना, एक महोटी कायावाला, एक न्हानी काया वाला, एक शुभवर्णना शरीरवाला, एक माठावर्णवाला, एक सुरूपवान् अने एक कुरूपवान् ॥२॥ (तेसिंचणंइमंएतारूवंके०) ते आर्यादिक मनुष्यने एवो एतादृशरूपजे आगल कहेशे (दंमसमादाणं के०) दंम समादान एटले पापरूप संकल्पनुं ग्रहणते, (संपेहाए के०) आलोचवुं ते चतुर्गतिक, जीवने होय (तंजहा के०) ते चारगतिना नाम कहेछे. (णेरइएसुवा के०) एक नारकीमां हे (तिरिक्खजोणिएसुवाके०) तिर्यंचनी योनी मांहे (मणुस्सेसुवाके०) मनुष्य मांहे (देवेसुवाके०) देवतामांहे ए चतुर्गतिक जीव जाणवा. तेमांहे (जेयावन्नेके०) जे अनेरा (तहप्पगारा के०) तथा प्रकारना (पाणाविन्नू के०) प्राणि जाणवा (वेयणंवेयंति के०) ते प्राणी एवा छता वेदना जे साता असातारूप तेने वेदे एटले अनुभवे. अत्र चतुर्भंगी कहेछे. एक संज्ञिया जीवजेछे ते वेदनाने अनुभवे तथा जाणे पण, अने बीजा सिद्धना जीव जेछे ते वेदनाने मात्र जाणे, पण अनुभवे नहीं. तथा त्रीजा असंज्ञिया जीव जेछे ते वेदनाने अनुभवे, पण जाणे नही. चोथा अजीव जेछे ते वेदनाने अनुभवे पण नहीं, अने जाणे पण नहीं, तेमांहे अहीं पहेला अने त्रीजा भंगनो अधिकारछे ॥३॥ (तेसिंपियणं इमाइं के०) ते नारकियादिकने एजे आगल कहेशे ते. (तेरसकिरियाठाणाइं भवंतीतिमक्खायं के०) तेर क्रियाना स्थानक होय, ते श्रीतीर्थंकर गणधरे एम कह्या (तंजहा के०) तेना नाम कहेछे. एक (अट्ठादंमे के०) अर्थ दंम, बीजो (अणट्ठादंमे के०) अनर्थदंम, त्रीजो (हिंसादंमेके०) हिंसादंम, चोथो (अकम्मादंमे के०) अकस्मात् दंम, पांचमो (दिठ्ठीविपरियासियादंमे के०) दृष्टि विपर्यास दंम, छठो (मोसवत्तीए के०) मृषावाद प्रत्ययिक दंम, सातमो (अदिन्नादाणवत्तिए के०) अदत्तादान प्रत्ययिक दंम, आठमो (अज्झत्थ वत्तिएके०) अध्यात्मिक ते मननुं दुर्ध्यान प्रत्ययिक तेरूप दंम, नवमो (माणवत्तिएके०) मान प्रत्ययिक दंम, दशमो (मित्तदोसवत्तिए के०) मित्र उपर द्वेष करवो ते मित्रदोष प्रत्ययिक दंम, अगीयारमो (मायावत्तिए के०) परने वंचवुं ते मायाप्रत्ययिक दंम, बारमो (लोभवत्तिए के०) लोभ प्रत्ययिक दंम, तेरमो (इरियावहिए के०) इरियापथिक प्रत्ययिक दंम. हवे अनुक्रमे ए तेर क्रिया स्थानकोनो विचार कहेछे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयं क्रियास्थानाध्ययनमारभ्यते तस्येदमादिसूत्रं (सुयंमेइत्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । श्रुतं मया आयुष्मता नगवतैवमाख्यातं । इह खलु क्रियास्थानं नामाध्ययनं नवति । अस्य चायमर्थः । ( संजूहेणं ) सामान्येन संक्षेपेण द्वे स्थाने नवतः । ये केचन क्रियावंतस्तेऽनयोरेवं स्थानयोराख्यायंते । तद्यथा । धर्मे चैव अधर्मेचैव । उपशांतं धर्मस्थानमनुपशांतमधर्मस्थानं ॥१॥ तत्र णमितिवाक्यालंकारे । योऽसौ प्रथमानुष्ठेयतया प्रथमस्याधर्मपक्षस्य विनंगोविचारः । तस्यायमर्थः । इह जगति प्राच्यादिषु दिक्षु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते एके केचन मनुष्याः । तद्यथा । आर्याअनार्याः उच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्राः कायवंतउन्नतान्हस्ववंतोनीचशरीराः सुवर्णाः सुकांतयोडुर्वर्णानिस्तेजसः सुरूपाडुरूपाश्च ॥२॥ तेषामार्यादीनामिदं वक्ष्यमाणमेतद्रूपं दंडसमादानं पापोपादानं ( संपेहाएत्ति ) संप्रेक्ष्य तद्यथा नारकेषु तिर्यग्योनिषु मनुष्येषु ये चान्ये तथा प्रकाराः सुवर्णडुर्वर्णाः प्राणिनोविद्वांसोवेदनां सातासातरूपां विदंति अनुनवंति । अत्र चत्वारोनंगाः । तयाहि । संज्ञिनोवेदनामनुनवंति जानंतिच १ सिद्धास्तु वेदनाजानंति नानुनवंति २ असंज्ञिनोऽनुनवंति न पुनर्जानंति ३ अजीवास्तु न जानंति नाप्यनुनवंति ४ इह प्रथमतृतीयाच्यामधिकारोद्वितीयचतुर्थाववस्तुनूताविति ॥३॥ तेषां नारकादीनामिमानि वक्ष्यमाणानि त्रयोदश क्रियास्थानानि नवंतीत्याख्यातं तीर्थकृदादिनिः । तद्यथा । स्वार्थायदंडः पापोपादानमर्थदंडः १ निष्प्रयोजनं सावद्यक्रियानर्थदंडः २ हिंसा प्राणिघातस्तयादंडोहिंसादंडः ३ अकस्माद्नुपयुक्तस्य दंडोऽकस्मादंडः। अन्यस्य क्रिययाऽन्यस्य घातइत्यर्थः ४ दृष्टेर्विपर्यासोरज्जुविषये यथा सर्पबुद्धिस्तया दंडो दृष्टिविपर्यासदंडः यथा शरादिक्षेपेण लेष्टुकादिबुध्या चटकादिहननं ५ मृषावादप्रत्ययिकः ६ अदत्तादानप्रत्ययिकः ७ अध्यात्मिकोदंडोयथा निर्निमित्तमेव डुर्मनाश्चिंतातुरस्तिष्ठति ८ मानप्रत्ययिकोदंडोयथाऽष्टमदस्थानोपगतः परं हीनं मन्यते ए मित्राणामुपतापेन दोषोमित्रदोषस्तत्प्रत्ययिकोदंडः १० माया परवंचनबुद्धिस्तयादंडः ११ लोनप्रत्ययिकः १२ ईर्याप्रत्ययिकोदंडः समितिगुप्तियुतस्य दोषयुक्तस्य सामान्येन कर्मबंधः स्यात्॥ ४ ॥

---

॥ टीका—व्याख्यातं प्रथमाध्ययनं सांप्रतं द्वितीयमारभ्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने पुष्करिणीपौंडरीकदृष्टांतेन तीर्थिकाः सम्यङ्मोक्षोपायाज्ञानावात्कर्मणां बंधकाः प्रतिपादिताः सत्साधवश्च सम्यग्दर्शनादिमोक्षमार्गप्रवृत्तत्वान्मोचकाः सडुपदेशदानतोपरेषामपीति । तदिहापि यथा कर्म द्वादशनिः क्रियास्थानैर्बध्यते यथाच त्रयोदशेन मुच्यते तदेतत्पूर्वोक्तमेव बंधमोक्षयोः प्रतिपादनं क्रियते । अनंतरसूत्रेण चायं संबंधः । तद्यथा । निक्षुणा चरणकरणविदा कर्मक्षपणायोद्यतेन द्वादश क्रियास्थानानि कर्मबं

धकारणानि सम्यक्परिहर्तव्यानि तद्विपरीतानि च मोक्षसाधनानि आसेवितव्यानि इत्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि भवंति । तत्राप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोयं । तद्यथा कर्मणां संबधोऽनेन प्रतिपाद्यते तद्विमोक्षश्चेति । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे क्रियास्थानमिति द्विपदं नाम । तत्रापि क्रियापदनिक्षेपार्थं प्रस्तावमारचयन्निर्युक्तिकृदाह । "किरिआउभणियाउ, किरियाठाणंति तेण अक्षयणं ॥ अहिगारो पुण भणिउ, बंधे तह मोरकमग्गेय" ॥ १५७ ॥ ( किरियाउ इत्यादि ) तत्र क्रियंतइति क्रियास्ताश्च कर्मबंधकारणत्वेनावश्यकांतर्वर्तिनि प्रतिक्रमणाध्ययने ( पडिक्कमामितेरसहिंकिरियाठाणेहिंति ) अस्मिन्सूत्रेऽभिहिताः । यदि वैहिकक्रियाभणिताअभिहितास्तेनेदमध्ययनं क्रियास्थानमित्युच्यते । तच्च क्रियास्थानं क्रियावत्स्वेव भवति नाक्रियावत्सु । क्रियावंतश्च केचिद्बध्यंते केचिन्मुच्यंतेऽतोध्ययनार्थाधिकारः पुनरभिहितोबंधे तथा मोक्षमार्गेचेति । तत्र नामस्थापने सुगमत्वादनादृत्य द्रव्यादिकां क्रियां प्रतिपादयितुमाह । " दवे किरिए अवणाय, पयोगुवायकरणिज्ज समुदाणे ॥ इरियावहसंमत्तो, सम्मत्तेचैव मिन्नत्ते" ॥ १५७ ॥ दवेइत्यादि ) तत्र द्रव्यविषये या क्रिया एजनता । एजृकंपने । जीवस्याजीवस्य वा कंपनरूपा चलनस्वभावा सा द्रव्यक्रिया । सापि प्रयोगाद्विस्रसया वा भवेत् । तत्राप्युपयोगपूर्विका वाऽनुपयोगपूर्विका वाऽक्षिनिमेषमात्रादिका वा सा सर्वा द्रव्यक्रियेति । भावक्रियात्वियं । तद्यथा प्रयोगक्रिया उपायक्रिया करणीयक्रिया समुदानक्रिया ईर्यापथक्रिया सम्यक्त्वक्रिया मिथ्यात्वक्रिया चेति । तत्र प्रयोगक्रिया मनोवाक्कायलक्षणा त्रिधा । तत्र स्फुरद्भिर्मनोद्रव्यैरात्मनउपयोगोभवत्येवं वाक्काययोरपि वक्तव्यं । तत्र शब्दे निष्पाद्ये वाक्काययोर्द्वयोरप्युपयोगः । तथा चोक्तं । गिण्हइ य काइएणं, णिसिरइ तहवा इएण जोगेण ॥ गमनादिका तु कायक्रियैव । उपायक्रियातु घटादिकं द्रव्यं येनोपायेन क्रियते । तद्यथा । मृत्खननमर्दनचक्रारोपणदंडचक्रसलिलकुंभकारव्यापारयाविभिरुपायैः क्रियते सा सर्वोपायक्रिया । करणीयक्रियातु यद्येन प्रकारेण करणीयं तत्तेनैव क्रियते नान्यथा । तथाहि । घटोमृत्पिंडादिकयैव क्रियते न पाषाणसिकतादिकयेति ३ समुदानक्रियातु यत्कर्म प्रयोगगृहीतं समुदायावस्थं सत्प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशरूपतया यया व्यवस्थाप्यते सा समुदानक्रिया । साच मिथ्यादृष्टेरारभ्य सूक्ष्मसंपरायं यावत् भवति । ४ ईर्यापथक्रिया तूपशांतमोहादारभ्य सयोगिकेवलिनं यावदिति ५ सम्यक्त्वक्रिया तु सम्यग्दर्शनयोग्याः कर्मप्रकृतीः सप्तसप्ततिसंख्या यया बध्नाति साऽभिधीयते । मिथ्यात्वक्रिया तु सर्वाः प्रकृतीर्विंशत्युत्तरसंख्यास्तीर्थकराहारकशरीरतदंगोपांगत्रिकरहिता यया बध्नाति सामिथ्यात्वक्रियेत्यभिधीयते । सांप्रतं स्थाननिक्षेपार्थमाह । " नामं ठवणा दविए, खेत्ते द्धाउह्र उवरवीवसहि । संजम प

ऊगहजोहे, अचल गणए संवणा नावे, ॥ १६० ॥ ( नामंठवणेत्यादि ) इयंच गाथा ऽऽचारप्रथमश्रुतस्कंधे द्वितीयाऽध्ययने लोकविजयाख्ये ( जेगुणे से मूलगणे ) इत्यत्र स्थानशब्दस्य सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यां प्रबंधेन व्याख्यातेति नेह प्रतन्यते । इह पुनर्यया क्रियया येन च स्थानेनाधिकारस्तद्दर्शयितुमाह । " समुदाणियाणिह तउ, समं पउत्तेय नावगणंमि ॥ किरियाहिं पुरिस यावा, इएव सव्वेपरिस्केवो,, ॥ १६१ ॥ ( समुदाणीत्यादि ) क्रियाणां मध्ये समुदानिकाक्रिया व्याख्याता; तस्याश्च कषायानुगतत्वात् बहवो नेदा यतस्ततस्तासां सामुदानिकानां क्रियाणामिह प्रकारे ( ऐणउत्ति ) अधिकारो व्यापारः सम्यक्प्रयुक्तेच नावस्थाने । तत्रेह विरतिरूपं संयमस्थानं प्रशस्तनावसंधान रूपंच गृह्यते । सम्यक्प्रयुक्तनावस्थानग्रहणसामर्थ्यादीर्यापथिका क्रियापि गृह्यते । सामुदानिका क्रियाग्रहणाच्चाप्रशस्तनावस्थानान्यपि गृहीतान्यानिश्च पूर्वोक्तानिः क्रियानिः पूर्वोक्तान् पुरुषान् तद्द्वारायातान्प्रावाडुकांश्च परीक्षते सर्वानपीति । यथा चैवं तथा स्वतएव सूत्रकारस्तं (जहासे एगइयामणुस्सानवंतीत्यादि ) तथा प्रावाडुकपरिक्षायामपि (णायउ उगरणंचविप्पजहा निरकायरियाए समुठिया) इत्यादिना वक्ष्यतीति गतोनिर्युक्त्यनुगमः । सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (सुयंमे आउसंतेणमित्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । श्रुतं मयाऽऽयुष्मता नगवतैव माख्यातमिह खलु क्रियास्थानं नामाध्ययनं तस्यचायमर्थः । ( इह खलु संजूहेणंति ) सामान्येन संक्षेपेण समासतो द्वे स्थाने नवतः । ये क्रियावंतस्ते सर्वेप्यनयोः स्थानयोरेवमाख्यायंते । तद्यथा धर्मेचेवाधर्मेचैव । इदमुक्तं नवति धर्मस्थानमधर्मस्थानंच । यदिवा धर्मादनपेतं धर्मं विपरीतमधर्मं । कारणशुद्ध्या च कार्यशुद्धिर्नवतीत्याह । उपशांतं यत्तद्धर्मस्थानमनुपशांतं वाऽधर्मस्थानं तत्रोपशांते उपशमप्रधाने धर्मस्थाने ऽधर्मस्थानेवा केच न महासत्वाः समासन्नोत्तरगुनादयोवर्तंते । परेच तद्विपर्यस्ते विपर्यस्तमतयः संसारा निष्वगिणोऽधोऽधोगतयोवर्तंते । इहच यद्यप्यनादिनवाभ्यासादिंद्रियानुकूलतया प्रायशः पूर्वमधर्मप्रवृत्तोनवति पश्चात्सदुपदेशयोग्याचार्यसंसर्गाद्धर्मस्थाने प्रवर्तते । तथाप्यर्प्याद्दतत्वात्पूर्वं धर्मस्थानमुपशमस्थानंच प्रदर्शितं पश्चात्तद्विपर्यस्तमिति ॥ १ ॥ सांप्रतं तु यत्र प्राणिनामनुपदेशः स्वपरप्रवृत्त्यादावेव स्थानं नवति तदर्पितुमाह । ( तउणंइत्यादि ) तत्रेति वाक्योपन्यासार्थे । णमिति वाक्यालंकारे । योऽसौ प्रथमानुपूर्व्यतया प्रथमस्याधर्मपक्षस्य स्थानस्य विनिधोनंगोविनंगोविचारस्तस्यायमर्थइति । इहास्मिन् जगति प्राच्यादिषु दिक्षु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते एके केचन मनुष्याः पुरुषास्तेचैवं नूतानवंतीत्याह । तद्यथा । आरादयाताः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्यास्तद्विपरीताश्चाऽनार्याएके केचन नवंति यावद्रूपाः सुरूपाश्चेति । तेषां चाऽऽर्यादीनामिदं वक्ष्यमाणमेतद्रूपं । दंडय

तीति दंडः पापोपादानसंकल्पस्तस्य समादानं ग्रहणं ( संपेहाएत्ति ) संप्रेक्ष्य । तच्चतुर्गतिकानामन्यतमस्य भवतीति दर्शयति । ( तंजहेत्यादि ) तद्यथा नारकादिषु ये चान्ये तथाप्रकारास्तद्वेदवर्तिनः सुवर्णदुर्वर्णादयः प्राणाः प्राणिनोविद्वांसोवेदनाज्ञानं तद्वेदयंत्यनुभवंति । यदिवा सातासातरूपां वेदनामनुभवंतीत्यत्र चत्वारोभंगाः । तद्यथा । संज्ञिनोवेदनामनुभवंति विदंतिच १ सिद्धास्तु विदंति नानुभवंति २ असंज्ञिनोऽनुभवंति न पुनर्विदंति ३ अजीवास्तु न विंदंति नाप्यनुभवंतीति ४ इह पुनः प्रथमतृतीयाभ्यामधिकारोद्वितीयचतुर्थावस्तुभूताविति । तेषांच नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवानां तथाविधज्ञानवतामिमानि वक्ष्यमाणलक्षणानि त्रयोदशस्थानानि भवंतीत्येवमाख्यातं तीर्थकरगणधरादिभिरिति । कानि पुनस्तानीति दर्शयितुमाह । ( तंजहेत्यादि ) तद्यथेत्ययमुदाहरणवाक्योपन्यासार्थः । आत्मार्थाय स्वप्रयोजनकृते दंडोऽर्थदंडः पापोपादानं १ तथाऽनर्थदंडइति निष्प्रयोजनमेव सावद्यक्रियानुष्ठानमनर्थदंडः । तथा हिंसनं हिंसा प्राण्युपमर्दरूपा तया सैव वा दंडोहिंसादंडः तथा ऽकस्मादनुपयुक्तस्य दंडो ऽकस्माद्दंडोऽन्यस्य क्रिययान्यस्य व्यापादनमिति ४ तथा दृष्टेर्विपर्यासोरज्जुमिव सर्पबुद्धिस्तया दंडोदृष्टिविपर्यासोऽबुद्धिदंडस्तद्यथा लेष्टुकादिबुध्या शरादिनिपातेन चटकादिव्यापादनं । तथा मृषावादप्रत्ययिकः सच सद्भूतनिन्हवासद्भूतारोपणः ६ तथा अदत्तस्य परकीयस्यादानं स्वीकरणमदत्तादानं स्तेयं तत्प्रत्ययिकोदंडइति ७ तथाऽत्मन्यध्यध्यात्म तत्र भव अत्थ्यात्मिकोदंडस्तद्यथा निर्निमित्तमेव दुर्मनाउपहतमनःसंकल्पोहृदयेन व्हियमाणश्चिंतासागरावगाढः संतिष्ठते ८ तथा जात्याद्यष्टमदस्थानोपहतमनाः परावमदर्शी तस्य मानप्रत्ययिकोदंडोभवति ए तथा मित्राणामुपतापेन दोषोमित्रदोषस्तत्प्रत्ययिकोदंडोभवति १० तथा माया परवंचनबुद्धिस्तया दंडोमायाप्रत्ययिकः ११ तथा लोभप्रत्ययिकोलोभनिमित्तोदंडइति १२ तथा एवं पंचभिः समितिभिः समितस्य तिसृभिर्गुप्तिभिर्गुप्तस्य सर्वोपयुक्तस्येर्याप्रत्ययिकः सामान्येन कर्मबंधोभवति । एतच्च त्रयोदशं १३ क्रियास्थानमिति ॥ ४ ॥

पढमे दंमे समादाणे अठादंमे वत्तिएत्ति आहिज्जइ सेजहा णामए केइ पुरिसे आयहेउंवा णाइहेउंवा आगारहेउंवा परिवारहेउंवा मित्तहेउंवा णागहेउंवा भूतहेउंवा जक्खहेउंवा तं दंमं तसथावरेहिं पाणेहिं सयमेव णिसिरिंति अणेणविणिसिरावेंति,अणंपि णिसिरिंतं समणुजाणइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ पढमे दंमसमादाणे अठादंमवत्तिएत्ति आहिए ॥ ५ ॥

अर्थ-( पढमे दंमसमादाणे के० ) त्यां पहेलोजे क्रिया स्थानक ते ( अट्ठादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ के० ) अर्थ दंम प्रत्ययिक एवे नामे कहियेंछैयें ( सेजहाणामए के० ) ते यथा दृष्टांते कहेछे. णाम एवी संनावनायें छे. ( केइपुरिसे के० ) कोइएक पुरुष, ( आयहेउंवा के० ) पोताने अर्थें, अथवा ( णाइहेउंवा के० ) ज्ञाति स्वजनादिकने अर्थें, ( आगारहेउंवा के० ) घरने अर्थें, ( परिवारहेउंवा के० ) दास दासी, कुमारादिक परिवारने अर्थें, ( मित्तहेउंवा के० )-मित्रने अर्थें, ( णागहेउंवा के० ) नागकुमार देवताने अर्थें, (नूतहेउंवा के०) नूत देवताने अर्थें, (जरकहेउंवा के०) यक्ष देवताने अर्थें, ( तंदंमंतसथावरेहिंपाणेहिं के० ) ते दंम, त्रस अने स्थावर प्राणीउंने विषे ( सयमेवणिसिरिंति के० ) स्वयमेव एटले पोतेंज उपघात करे. ( अणुणविणिसिरावेंति के० ) अनेरा बीजा पासें उपघात करावे. (अणंपिणिसिरिंतंसमणुजाणइ के०) अनेरो बीजो कोइ उपघात करतो होय तेने अनुमोदे. ( एवंखलु के० ) एरीतें निश्चें थकी ( तस्सतप्पत्तियंसावज्जंति के० ) करण करावण अने अनुमतियें करी करे, तेहने तत्प्रत्ययिक सावद्य पाप कर्म ( आहिज्जइ के० ) बंधाय ( पढमेदंमसमादाणेअट्ठादंमवत्तिएत्तिआहिए के० ) एटले प्रथम क्रिया स्थानक अर्थदंम प्रत्ययिक एवे नामे कह्युं. ॥ ५ ॥

---

॥ दीपिका-प्रथमं दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययइत्याख्यायते । तद्यथा नाम कश्चित्पुरुषः आत्महेतुमात्मार्थं ज्ञातिहेतुं स्वजनाद्यर्थं आगारहेतुं गृहार्थं परिवारार्थं मित्रनागनूतयक्षाद्यर्थं तं दंडं त्रसस्थावरेषु प्राणिषु स्वयं निसृजति निक्षिपति अन्येनापि कारयति अन्यं निसृजंतं समनुजानीते एवं तस्य तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्म आधीयते संबध्यते एतत्प्रथमं दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययिकमित्याख्यातं ॥ ५ ॥

---

॥ टीका-यथोद्देशस्तथा निर्देशइतिकृत्वा प्रथमाक्रियास्थानादारन्य व्याचिख्यासुराह । ( पढमे त्यादि ) यत्प्रथममुपात्तं दंडसमादानमर्थायदंडमित्येवमाख्यायते । तस्यायमर्थः । तद्यथा नामकश्चित्पुरुषः । पुरुषग्रहणमनुक्तमुपलक्षणं । सर्वोपि चातुर्गतिकः प्राण्यात्मनिमित्तमात्मार्थं तथाज्ञिज्ञातिनिमित्तं स्वजनाद्यर्थं तथाऽगारं गृहं तन्निमित्तं तथा परिवारोदासीकर्मकरादिकः परिकरोवा गृहादेर्वृत्त्यादिकस्तन्निमित्तं तथा मित्रनागनूतयक्षाद्यर्थं तथानूतं स्वपरोपघातरूपं. दंडं त्रसस्थावरेषु स्वयमेव निसृजति निक्षिपति दंडमिव दंडमुपरि पातयति प्राण्युपमर्दकारिणीं क्रियां करोतीत्यर्थः । तथाऽन्येनापि कारयत्यपरं दंडं निसृजंतं समनुजानीते । एवं कृतकारितानुमतिभिरेव तस्याऽनात्मज्ञस्य तत्प्रत्ययिकं सावद्यक्रियोपात्तं कर्माधीयते संबध्यतेइति । एतत्प्रथमं दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययिकमित्याख्यातमिति ॥ ५ ॥

अहावरे दोच्चे दंमसमादाणे अणद्वादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे जे इमे तसा पाणा नवंति ते णो अच्चाए णोअजिणाए णो मंसाए णोसोणियाए एवं हिययाए पित्ताए वसाए पिछाए पुछाए वालाए सिंगाए विसाणाए दंताए दाढाए णहाए एहारुणिए अट्ठीए अट्ठिमंजाए णोहिंसंसुमेत्ति णोहिंसिंतिमेत्ति णोहिंसिस्संतिमेत्ति णोपुत्तपोसणाए णोपसुपोसणयाए णोआगारपरिवूहणताए णोसमणमाहणवत्तणाहेउं णोतस्स सरीरगस्स किंचिविप्परियादित्ता नवंति सेहंता छेत्ता नेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता उज्झिउं वाले वेरस्स आनागी नवंति अणठ्ठादंमे ॥ ६ ॥ से जहा णामए केइ पुरिसे जे इमे थावरा पाणा नवंति तंजहा इक्कडाइवा कडिणाइवा जंतुगाइवा परगाइवा मोक्खाइवा तणाइवा कुसाइवा कुच्छगाइवा पप्पगाइवा पलालाइवा ते णोपुत्तपोसणाए णोपसुपोसणाए णोआगारपडिवूहणयाए णोसमणमाहणपोसणयाए णोतस्स सरीरगस्स किंचिविपरियाइ नवंति सेहंता छेत्ता नेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दविइत्ता उज्झिउं वाले वेरस्स आनागी अणठ्ठादंमे ॥ ७ ॥ सेजहा णामए केइ पुरिसे कछंसिवा दहंसिवा उदगंसिवा दवियंसिवा वलयंसिवा णूमंसिवा गहणंसिवा गहणविडुग्गंसिवा वणंसिवा वणविडुग्गंसिवा पव्वयंसिवा पव्वयविडुग्गंसिवा तणाइं ऊसविय सयमेव अगणिकायं णिसिरिंति असेणवि अगणिकायं णिसिरावेंति असंपि अगणिकायं णिसिरिंतं समणुजाणइ अणठ्ठादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तियंसावज्जेंति आहिज्जइ दोच्चे दंमसमादाणे अणठ्ठादंमवत्तिएत्ति आहिए ॥ ८ ॥

अर्थ-(अहावरेदोच्चेदंमसमादाणेअणठ्ठादंमवत्तिएत्तिआहिज्जइ के०) हवे अपर बीजो क्रिया स्थानक अनर्थदंम, प्रत्ययिक कहियें छैयें (सेजहाणामए के०) ते यथादृष्टांते नाम एवी संनावनायें जेम (केइपुरिसे के०) कोइएक पुरुष, निःकारणे, निर्विवेक पणे, जीवहिंसा करे; ते कहेछे. (जेइमेतसापाणानवंति के०) जे ए संसार मांहे प्रत्यक्ष लक्षण त्रस प्राणी, छागादिक छे ते प्राणीने निरर्थक हणे, ते केवीरीते हणे तोके (तेणोअच्चाए के०) तेजीवोने शरीरने अर्थे न हणे, (णोअजिणाए के०) चर्मने अर्थे न ह

णे, ( णोमंसाए के० ) मांसने अर्थें न हणे, ( णोसोणियाए के० ) शोणितने अर्थें न हणे, (एवंहिययाए के०) एमज हियो एटले हृदयना मांस ने अर्थें न हणे, ( पित्ता ए के० ) पित्तने अर्थें न हणे, ( वसाए के० ) वसाने अर्थें न हणे, ( पिछाए के० ) पिछने अर्थें न हणे, (पुछाए के०) पुछने अर्थें न हणे, (वालाए के०) वाल रोमने अर्थें न हणे, (सिंगाए के०) सिंगडाने अर्थें न हणे, (विसाणाए के०) वृषण प्रताल पोइसने अर्थें न हणे, (दंताए के०) दांतने अर्थें न हणे, (दाढाए के०) दाढने अर्थें नहणे (णहा ए के०) नखने अर्थें न हणे, (ण्हारुणिए के०) नसा नाडीने अर्थें न हणे, (अठिए के०) अस्थिने अर्थें न हणे, (अठिमंजाए के०) हाडकानी मिंजाने अर्थें न हणे, एटला ए कार णने अर्थें कोइ जीवने हणे नहीं, परंतु कारण विना जीवने हणे, ( णोहिंसंसुमित्ति के० ) अतीतकाले पण एटला कारण नणी जीव हण्या नथी, तथा ( णोहिंसिंतिमे त्ति के० ) वर्त्तमान काले पण हणे नहीं. ( णोहिंसिस्संतिमेत्ति के० ) आगमिक काले पण हणशे नहीं, ( णोपुत्तपोसणाए के० ) एवुं पण न जाणे जे ए जीवनो विनाश क रीने महारा पुत्रनुं पोषण करीश. ( णोपसुपोसणयाए के० ) पशुनुं पोषण कर शुं, एम पण न जाणे, ( णोआगारपरिवूहणताए के० ) ग्रह घरनी वृद्धि शांतिक पुष्टि कादिक निमित्तें पण हणे नहीं. (णोसमणमाहणवत्तणाहेउं के०) श्रमण ब्राह्मणनुं पोष ण करवा निमित्तें पण न हणे. (णोतस्ससरीरगस्सकिंचिविप्परियादित्ताजवंति के०) तथा पोताना शरीरना परित्राणने अर्थें एटले पोषणनेअर्थें पण न हणे. किंतु? क्रीडा निमित्तें, अ थवा व्यसने करी निरर्थक पणे (सेहंता के०) ते जीवनो हणनार थाय दंडादिक ना प्रहारे करी जीवने हणे, (छेत्ता के०) जीवोना कर्ण नासिकादिक छेदे, ( नेत्ता के० ) नेदे, शूलिकारोपण करे ( लुंपइत्ता के० ) अंगना अवयव कापी नाखे ( विलुंपइत्ता के० ) चामडी उपाडी उखेडी नाखे, ( उद्दवइत्ता के०) नाना प्रकारना पीडाकारी उप इव उपजावे, ( उज्झिउंवालेवेरस्सआजागीजवंति के० ) एतावता तेबाल विवेक रहीने निःकेवल वैरनो विजागी थाय. (अणहादंमे के०) एटले त्रस जीव आश्रित अनर्थ दंम कह्यो. ॥६॥ ( हवे स्थावर जीव आश्रित अनर्थ दंम कहेछे. ( सेजहाणामए के० ) ते यथा दृष्टांते जेम. ( केइपुरिसे के० ) कोइएक पुरुष मार्गे जतो थको निरर्थक निर्विवेक पणे वृक्षना पल्लवने दंमादिके करी काटकी नाखे, परंतु लेवानी वांछा कांइ न होय, वली (जेइमेथावरापाणाजवंति के०) जे ए स्थावर प्राणी होय (तंजहा के०) ते देखाडेछे. (इक्कडा इवा के०) तृण विशेष प्रसिद्धछे (कडिणाइवाजंतुगाइवापरगाइवा के०) वांसथकी उपनुं जे तृण विशेष, जेणे करी फुल गुंथाय ते जाणवुं (मोरकाइवा के०) नदीमां थायछे ते, (त णाइवा के०) तृण प्रसिद्ध (कुसाइवा के०) माल, (कुछगाइवा के०) वनस्पति विशेष, (प

प्पगाइवा के० ) प्रसिद्ध तृण विशेष, एटला मांहे सर्वकाष्ट जाणवा ( पलालएइवा के० ) पलाल इत्यादि अनेक जगत् मांहेछे ते, पुत्र पोषवाने निमित्ते नहीं, तथा पशु पोषण करवाने अर्थे पण नहीं, आगार समारवाने अर्थे पण नहीं, श्रमण ब्राह्मणना पोषण करवाने अर्थे पण नहीं, पोताना शरीरना पोषण करवाने अर्थे पण नही, एटले आत्माना त्राणने अर्थे पण नहीं किंतु? क्रीडा निमित्ते अथवा व्यसने करी निरर्थक ते जीवनो हणनार थाय. ते दंमादिके प्रहार करी छेदे, नेदे, अनेरा अंगनो अवयव कापे, बाल उतारे; नाना प्रकारना पीडा कारी उपद्रव करे, एरीते ते बाल अविवेकी निःकेवल वैरनो विनागी थाय. एम वनस्पतिकाय आश्रि अनर्थ दंम कह्यो. ॥७॥ (हवे अग्निकाय आश्रि अनर्थ दंम कहेछे. ते यथा दृष्टांते नाम एवी संनावनायें जेम कोइएक पुरुष विवेक विकल थको ( कछंसिवा के० ) कछादिकने विषे, ( उदगंसिवा के० ) पाणीने विषे, ( दहंसिवा के० ) द्रहने विषे, ( दविथंसिवा के० ) समुद्र तथा नदीने विषे, ( वलयंसिवा के० ) नदियें वेष्टित नूमिकाने विषे, णूमंसिवा के० ) गर्त्तादिक तथा नीचीनूमिकाने विषे, ( गहणंसिवा के० ) जल रहित स्थानक तथा अटवी माहेला क्षेत्रने विषे, ( गहणविडुग्गंसिवा के० ) गहन अटवीमां वली विषम स्थानकने विषे ( वणंसिवा के० ) वनने विषे, ( वणविडुग्गंसिवा के० ) वनमांहे विषम स्थानकने विषें, ( पव्वयंसिवा के० ) पर्वतने विषे, ( पव्वयविडुग्गंसिवा के० ) पर्वतमांहे विषम स्थानकने विषे, इत्यादिक देशस्थानकनेविषे, वर्त्ततो (तणाइंऊसविय के०) तृण दर्नादिक एकठा करी करीने ( सयमेवअगणिकायंणिसिरंति के० ) वलीवली पोते अग्नि करवाने अर्थे अग्निकायने तेमां प्रक्षेपे (अन्नेणविअगणिकायंणिसिरावेंति के०) अन्य पासेंअग्नि प्रक्षेपावे एटले बीजा पासें जलावे, (अन्नंपिअगणिकायंणिसिरिंतंसमणुजाणइ के०) बीजो कोइ अग्निकायने तेमांहे प्रक्षेपतो होय तेने अनुमोदे,(अणठादंमेएवंखलु के०) अनर्थ दंम एम निश्चें तेने (तस्सतप्पत्तियं के०) तत्प्रत्ययिक एटले ते आश्रित (सावज्जंति के०) सावद्य कर्म ( आहिज्जइ के० ) बंधाय. एटले ( दोच्चेदंमसमादाणेअणठादंमवत्तिएतिआहिए के० ) ए बीजो क्रियास्थानक अनर्थ दंम समादान प्रत्ययिक कह्यो. ॥ ८ ॥

---

॥ दीपिका–अथापरं द्वितीयं दंडसमादानमनर्थदंडप्रत्ययिकमित्यनिधीयते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोनिर्निमित्तमेव प्राणिनोहंति । तदेवाह । ये इमे त्रसाः प्राणिनस्तान् अर्चाशरीरं तदर्थं नहंति । अजिनं चर्म नापि तदर्थं । एवं मांसशोणितहृदयपित्तवसापिछपुछवालशृंगविषाणदंतदंष्ट्रानखस्नाय्वस्थिमज्जाइत्यादिनिमित्तमुद्दिश्य नैवाऽहिंसि पुर्नापि हिंसंति नापि हिंसयिष्यंति मा मदीयं चेति तथा नो पुत्रपोषणाय नापि पशु

पोषणाय अगारं गृहं तस्य परिवृंहणं वृद्धिस्तदर्थं नोहिनस्ति तथा श्रमणब्राह्मणवर्तनहे तुं यत्पाल्यते तस्य शरीरस्य किमपि परित्राणाय तत्प्राणिहिंसनं न स्यात् इत्यादिहेतून् विनाऽसौ क्रीडया हंता भवति दंडादिभिश्छेत्ता कर्णादीनां भेत्ता शूलादिना लुंपयिता अंगावयवकर्तनतोविलुंपयिता नेत्रोत्पाटनचर्मकर्तनादितोजीविताद्पद्रावयिता सच सद्विवेकमुत्सिज्य बालोऽज्ञोवैरस्य भागी भवति। पंचेंद्रियजीवपीडातोऽनर्थदंडउक्तः॥६॥ अथ स्थावरानाश्रित्याह्। यथा कश्चित्पुरुषः पथि गच्छन् निर्निमित्तमेव वृक्षादेः पल्लवादिकं दंडादिना प्रध्वंसयति। एतदेवाह। येऽमी स्थावरावनस्पतिकायाः प्राणिनः स्युः। तद्यथा। इक्कडादयोवनस्पतिविशेषास्तान् पत्रपुष्पफलादि निरपेक्षः क्रीडया छिनत्ति न पुत्रपोषणायेत्यादि पूर्ववत्। यावज्जन्मांतरानुबंधिनोवैरस्य भागी भवति। अयमनर्थदंडो वनस्पत्याश्रयउक्तः॥७॥ सांप्रतमग्न्याश्रितमाह। तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः कच्छे नदीजलवेष्टिते वृक्षादिमति प्रदेशे न्हदेप्रतीते उदकेजलाशयमात्रे (दवियंसि) तृणादिद्रव्यसमुदाये वलये वृत्ताकारनद्यादिजलकुटिलगतियुक्तप्रदेशे तमे अवतमसे गहने वृक्षवल्लीसमुदाये गहनविदुर्गे पर्वतैकदेशावस्थितवृक्षवल्लीसमुदाये वनविदुर्गे नानाविधवृक्षसमूहे एतेषु कच्छादिषु दशस्थानेषु तृणानि उत्सर्प्य ऊर्ध्वीकृत्य, स्वयमेवाऽग्निकायं निसृजति निक्षिपति अन्येन वाऽग्निकायं निसर्जयति निक्षेपयति अन्यमप्यग्निकायं निसृजंतं समनुजानीते अयमनर्थदंडः। तदेवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं दवदाननिमित्तं सावद्यं कर्मव्याख्यातं। एतच्च द्वितीयमनर्थदंडसमादानमाख्यातमिति ॥ ८ ॥

---

॥ टीका–अथापरं द्वितीयं दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययिकमित्यभिधीयते तदधुना व्याख्यायते। तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोनिर्निमित्तमेव निर्विवेकतया प्राणिनोहिनस्ति। तदेव दर्शयितुमाह। (जेइमेइत्यादि) ये केचनामी संसारांतर्वर्तिनः प्रत्यक्षावप्रादयः प्राणिनस्तांश्चासौ हिंसन्नर्चाशरीरं नो नैवार्चायै हिनस्ति तथाऽजिनं चर्म नापि तदर्थमेवं मांसशोणितहृदयपित्तवसापिच्छपुच्छवालशृंगविषाणनखस्नाय्वस्थिमज्जा इत्येवमादिकं कारणमुद्दिश्य नैवाहिंसिषुर्नापि हिंसयिष्यंति मां मदीयं चेति तथा नो पुत्रपोषणायेति पुत्रादिकं पोषयिष्यामीत्येतदपि कारणमुद्दिश्य न व्यापादयति तथा नापि पशूनां पोषणाय तथाऽगारं गृहं तस्य परिवृंहणमुपचयस्तदर्थंवा न हिनस्ति तथा न श्रमणब्राह्मणवर्तनाहेतुं तथा यत्नेन पालयितुमारब्धं नोत स्य शरीरस्य किमपि परित्राणाय तत्प्राणव्यपरोपणं भवति इत्येवमादिकं कारणमनपेक्ष्यैवासौ क्रीडया तच्छीलतया व्यसनेन वा प्राणिनां हंता भवति दंडादिभिः। तथा छेत्ता भवति कर्णनासिकाविकर्तनतस्तथा भेत्ता शूलादिना तथा लुंपयितान्यतरांगावयवविकर्तनतस्तथा विलुंपयिताऽक्ष्युत्पाटनचर्मविकर्त्तनक

रपादादिच्छेदनतः परमाऽधार्मिकवत्प्राणिनां निर्निमित्तमेव नानाविधोपायैः पीडोत्पादको भवति तथा जीविताद्प्यपद्रावयिता भवति सच सद्विवेकमुज्झित्वात्मानं वा परित्यज्य बालवद्बालोऽज्ञोऽसमीक्षितकारितया जन्मांतरानुबंधिनोवैरस्य भागी भवति ॥ ६ ॥ तदेवं निर्निमित्तमेवं पंचेंद्रियप्राणिपीडनतोयथानर्थदंडोभवति तथा प्रतिपादितं । अधुना स्थावरानधिकृत्योच्यते । ( सेजहेत्यादि ) यथाकश्चित्पुरुषोनिर्विवेकः पथि गच्छन् वृक्षादेः पल्लवादिकं दंडादिना प्रध्वंसयन् फलनिरपेक्षस्तच्छीलतया व्रजति । एतदेव दर्शयति (जे इमेइत्यादि ) ये केचनामी प्रत्यक्षाः स्थावरावनस्पतिकायाः प्राणिनोभवंति तद्यथेक्कडादयोवनस्पतिविशेषास्तानाशंस्तदिक्कडा ममानया प्रयोजनमित्येवमभिसंधाय न छिनत्ति केवलं तत्पत्रपुष्पादिनिरपेक्षस्तच्छीलतया छिनत्तीत्येतत्सर्वत्र योजनीयमिति । तथा न पुत्रपोषणाय नो पशुपोषणाय नागारप्रतिबृंहणाय नश्रमणब्राह्मणप्रवृत्तये नापि शरीरस्य किंचित्त्राणं भविष्यतीति केवलमेवासौ वनस्पतिर्हंताछेत्त्यादियावज्जन्मांतरानुबंधिनोवैरस्य भागी भवति । अयं वनस्पत्याश्रयोऽनर्थदंडोऽभिहितः ॥७॥ सांप्रतमग्न्याश्रितमाह । ( सेजहेत्यादि ) तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः सदसद्विवेकविकलतया कच्छादिकेषु दशसु स्थानेषु वनदुर्गपर्वतेषु तृणानि कुशइषीकादीनि पौनःपुन्येनोर्ध्वाधस्थानि कृत्वाऽग्निकायं हुतभुजं निसृजति प्रक्षेपयत्यन्येन वाग्निकायं बहुसत्वापकारी दवार्थं निसर्जयति प्रक्षेपयत्यन्यंच निसृजंतं समनुजानीते । तदेवं योगत्रिकेण कृतकारितानुमतिभिस्तस्य यत्किंचनकारिणस्तत्प्रत्ययिकं दवदाननिमित्तं सावद्यं कर्म महापातकमाख्यातं द्वितीयमनर्थदंडसमादानमाख्यातमिति ॥ ८ ॥

आहावरे तच्चे दंमसमादाणे हिंसादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे ममंवा ममिंवा अन्नंवा अन्निंवा हिंसंसुवा हिंसइवा हिंसिस्संइवा तंदंमं तसथावरोहिं पाणेहिं सयमेव णिसिरिंति अणेणवि णिसिरावेंति अन्नंपि णिसिरिंतं समणुजाणइ हिंसादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ तच्चे दंमसमादाणे हिंसादंमवत्तिएत्ति आहिए॥ ए॥

अर्थ—हवे अपर त्रीजो क्रियास्थानक हिंसादंम प्रत्ययिक कहेछे. ते जेम नाम एवी संभावनायें कोइएक पुरुष ( ममंवा के० ) मुजने ( ममिंवा के० ) महारा पिताने हणेछे, हण्योछे, हणशे, एम पुरुषाकार वहेतो पोताना मरण थकी मरतो वीकराखतोके, ए महारो विनाश करशे एवुं जाणीने सर्प सिंहादिक जीवोने हणे, जेम कंसें देवकीना पुत्रने हण्या तेनी पेठे जाणी लेवुं. (अन्नंवाके०) अथवा अन्य महारा गोत्री

सजनादिकने हणशे. (अन्निवा के०) अथवा तेना कोइएक बीजाने (हिंसंसुवा के०) अतीतकालें हएयोहे. (हिंसइवा के०) वर्तमान कालें हणेहे. (हिंसिस्सइवा के०) आगमिक कालें हणशे. (तंदमंतसथावरेहिंपाणेहिंसयमेवणिसिरिंतिके०) एम जाणीने दंमेक रीत्रसस्थावर प्राणीनो पोते घात करे, बीजानी पासें घात करावे, अथवा अन्य कोइ घात करतो होए तेने अनुमोदन आपे. ए हिंसादंम, एम निश्चें एने प्रत्ययें एटले ते आश्रित सावद्यकर्म बंधाय; एटले त्रीजो क्रिया स्थानक हिंसादंम. प्रत्ययिक एवे नामे कह्यो.॥ए॥

---

॥ दीपिका—अथ तृतीयमाह । अथापरं तृतीयं दंडसमादानं हिंसादंडप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोमामयं घातयिष्यतीति मत्वा, सर्पादिकं हंति यथा कंसोदेवकीसुतान् परशुरामोवा यथा कार्तवीर्यं जघान । मदीयं पितरमन्यदीयस्य वा कस्यचित्सुवर्णपशुप्रभृतेरयमुपद्रवकारीति मत्वा, तत्र दंमं निसृजति तदेवं मां मदीयं अन्यमन्यदीयं वा हिंसितवान् हिनस्ति हिंसिष्यतीत्येवं संभाविते त्रसे स्थावरे वा तं दंमं स्वयं निसृजति अन्येन निसर्जयति अन्यं निसृजंतं समनुजानीते । एतत्तृतीयं दंड समादानं हिंसादंडप्रत्ययिकमाख्यातम् ॥ ए ॥

---

॥ टीका—तृतीयमधुना व्याचिख्यासुराह । (अहावरे इत्यादि) अथापरं तृतीयं दंडसमादानं हिंसादंडप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः पुरुषकारं वहन् स्ततोमरणभीरुतया वा मामयं वातायिष्यतीत्येवं मत्वा, कंसवद्देवकीसुतान् भावतो जघान मदीयं वा पितरमन्यं वा मामकं ममीकारोपेतं परशुरामवत्कार्तवीर्यं जघाना न्यं वा कंचनायं सर्पसिंहादिकं व्यापादयिष्यतीति मत्वा सर्पादिकं व्यापादयति अन्यदीयस्य वा कस्यचिद्धिरण्यपश्वादेरयमुपद्रवकारीति कृत्वा तत्र दंडं निसृजति । तदेवमयं मां मदीयमन्यदीयं वा हिंसितवान् हिनस्ति हिंसिष्यतीतिवेत्येवं संभाविते त्रसे स्थावरे वा तं दंडं प्राणव्यपरोपणलक्षणं स्वयमेव निसृजति अन्येन निसर्जयति निसृजंतं वाऽन्यं समनुजानीते । इत्येतत्तृतीयं दंडसमादानं हिंसाप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ ए ॥

अहावरे चउत्थे दंमसमादाणे अकम्मादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे कहंसिवा जाव वणविडुग्गंसिवा मियवत्तिए मियसंकप्पे मियपणिहाणे मियवहाए गंता एए मियत्तिकाउं अन्नयरस्स मियस्स वहाए उसुआयामेत्ताणं णिसिरेजा स मियं वहिस्सामित्ति कट्टु तित्तिरंवा वट्टगंवा चडगंवा लावगंवा कवोयगंवा कविंवा कविंजलंवा विंधित्ता भ

वइ इहखलु से अन्नस्स अघाए अण्णं फुसंति अकम्मादंमे॥१०॥से जहा णा मए केइ पुरिसे सालीणिवा वीहीणिवा कोद्दवाणिवा कंगूणिवा परगाणिवा रालाणिवा णिलिज्ञमाणे अन्नयरस्स तणस्स वहाए सत्थं णिसिरेज्जा से सामगं तणगं कुमुडगं वीहीऊसियं कलेसुयं तणं छिंदिस्सामित्ति कट्टु सालिंवा वीहिंवा कोद्दवंवा कंगुंवा परगंवा रालयंवा छिंदित्ता नवइ इति खलु से अन्नस्स अघाए अन्नं फुसंति अकम्मादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जं आहिज्जइ चउत्थे दंमसमादाणे अकम्मादंमवत्तिए आहिए॥११॥

अर्थ--हवे चोथो क्रिया स्थानक अकस्मात् प्रत्ययिक दंम कहियेंछेयें. जेम कोइएक लुब्धकादिक पुरुष कछने विषे, अथवा यावत् वन गहन पर्वतादिकने विषे, ( मियवत्तिए के० ) मृगें करी जेनी आजीविका वर्त्तेछे ते मृगवर्त्तिक (मियसंकप्पे के०) तथा मृगने विषे, जेनो संकल्पछे. (मियपणिहाणे के०) मृगनेविषे जेनो प्रणिधान एटले अंतःकरणछे एवो छतो (मियवहाएगंता के०) मृगना वधने अर्थें वन पर्वतादिकनें विषे जइने, ( एएमियत्तिकाउं के० ) आ अमुक मृग नजीक देखायछे एमकरीने ( अन्नयरस्समियस्सवहाए के०) ते अन्य मृगना वधने अर्थें (उसुआयामेत्ताणंणिसिरेज्जा के०) धनुष्य बाण ताकीने मूके चलावे. (सेमियंवहिस्सामित्तिकट्टु के० ) ते मृगनो वध करीश, एम करीने एटले ते मृगने वेधशुं एवा नावें बाण मूके थके वचालें अन्य जीव हणाए. ते कहेछे (तित्तिरंवा के०) तित्तर, (वट्टगंवा के०) वर्त्तक, (चडगंवा के० ) चकलो, (लावगंवा के०) लावक, (कवोयगंवा के०) कपोत, (कविंवा के०) होलो, (कविंजलंवा के०) कपिंजल, ए माहेला जीवोने ( विधिंत्तानवइ के० ) विंधनारो होयछे. ( इहखलुसेअन्नस्सअघाए के०) अहीं निश्चें ते अन्यने अर्थें प्राणघात चिंतव्यो, अने वचमां (अण्णंफुसंति के० ) अन्यनो घात करे एटले एकने हणवानो प्रयोग कस्यो तेनी वचमां बीजा प्राणीनो घात करे, ते कारणे एने (अकम्मादंमे के०) अकस्मात् दंम कहियें.॥१०॥

हवे वनस्पति आश्रित अकस्मात् दंम कहेछे. जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक करसणी पुरुष ( सालीणिवा के० ) सालधान ( वीहीणिवा के० ) व्रीहीधान्य ( कोद्दवाणिवा के० ) कोद्राधान्य, ( कंगूणिवा के० ) कांगणीधान्य, ( परगाणिवा के० ) बंटीधान्य, ( रालाणिवा के०) रालो धान्य, इत्यादिक सर्व चोवीश जातना धान्यछे, ते धान्यनुं ( णिलिज्ञमाणे के०) निदान करतां थकां ( अन्नयरस्सतणस्सवहाए के० ) ते धान्य मांहेलुं शाल्यादिक तृण कापवाने अर्थें (सत्थंणिसिरेज्जा के०) दात्रादिक शस्त्र, वाहे एट

ले चलावे. (सेसामगंतणगंकुमुडुगं के०) ते मनमांहे एवुं जाणे ठेजे हुं ए श्यामादिक ककुमुद तृणविशेपने ठेदिश. पठी (वीहीऊसियंकलेसुयं के०) व्रीहीकलेसुकादिक धान्य,ठंचु करीने ए धान्यमांहेलुं (तणंछिंदिस्सामित्तिकट्टु के०) तृण ठेदीश. एप्रकारें करीने,पठी ते तृणो ठेदतो थको शाली, व्रीही, कोड्वा, कंगुणी, वंटी, रालो, इत्यादिक धान्यनो (ठिंदित्ताजवंति के० ) ठेदनारो थाय (इतिखलुसे के०) एप्रकारे निश्चें ते (अन्नस्सअठाए के०) अन्यना घातनो अर्थी चिंतवतो थको (अन्नंफुसंति के०) अन्यनो घात उपजावे एटले तृणोने ठेदतो थको धान्यने ठेदे, ते कारणे (अकम्मादंमे के०) एने अकस्मात् दंमकहिए, एम निश्चें तेने ते निमित्तें एटले तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय. एप्रकारें ए चोथो क्रिया स्थानक अकस्मात् दंम प्रत्ययिक एवे नामे कह्यो. ॥ ११ ॥

---

॥ दीपिका—अथापरं चतुर्थं दंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्ययिकमाख्यायते । अकस्मादित्ययंशब्दोमगधदेशे लोके संस्कृतएवोच्चार्यते ततइहापि तथैवोक्तः । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोलुब्धकादिः कच्छादिषु गत्वा मृगैर्वृत्तिर्जीविका यस्य समृगवृत्तिकोमृगेषु संकल्पो यस्यसतथा मृगेषु प्रणिधानं चित्तवृत्तिर्यस्यसतथा मृगवधार्थं कच्छादिषु गंता भवति तत्रच गतः सएते मृगाइति कृत्वा ऽन्यतरस्य मृगस्य वधार्थमिषुं शरमायामेन समाकृष्य, निसृजति सच मृगं हनिष्यामीति कृत्वा इषुं क्षिप्तवान् सच तेनेषुणा तित्तिरं, वर्तकंवा लावकंवा,कपोतकंवा, कपिंवा, कपिंजलंवा, पक्षिविशेषं व्यापादयिता भवति । इह खल्वसावन्यस्यार्थाय निक्षिप्तोदंडोयदाऽन्यं स्पृशति घातयति सोऽकस्माद्दंडइत्युच्यते॥१०॥ अथ वनस्पतिमुद्दिश्येममेव दंडमाह । तद्यथानामकश्चित्पुरुषः कृषीवलादिः शालिव्रीहिकोद्रवकंगुरालादिधान्यस्य श्यामतृणककुमुदकलेसुकतृणानि तृणविशेपास्तानि ( णिलिक्कमाणे ) अपनयन् धान्यशुद्धिं कुर्वाणोऽन्यतरस्य तृणस्य छेदाय शस्त्रं दात्रादिकं निसृजेत् । सच श्यामादिकं तृणं छेत्स्यामीति कृत्वाऽकस्माच्छालिं वा यावद्रालादिकं वा छिंद्यात् । रकृषीवस्यैवाऽकस्माद्सौ छेत्ता स्यादित्यन्यस्य कृतेऽन्यं स्पृशति छिनत्ति । एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकमकस्माद्दंडनिमित्तं सावद्यं पापमाधीयते संबध्यते । एतच्चतुर्थं दंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ ११ ॥

---

॥ टीका—अथापरं चतुर्थं दंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्ययिकमाख्यायते । इह चाकस्मादित्ययंशब्दोमगधदेशे सर्वेणाप्यागोपालांगनादिना संस्कृतएवोच्चार्यतइति तदिहापि तथाभूतएवोच्चारितइति । तद्यथा नामकश्चित्पुरुषोलुब्धकादिकः कच्छे वा यावद्वनदुर्गंवा गत्वा मृगैर्हरिणैराटव्यपशुभिर्वृत्तिर्वर्त्तनं यस्यस मृगवृत्तिकः सचैवंभूतोमृगेषु संक

ल्पोयस्यासौ मृगसंकल्पः । एतदेव दर्शयति । मृगेषु प्रणिधानमंतःकरणवृत्तिर्यस्यासौ मृगप्रणिधानः क्व मृगान्द्रक्ष्यामीत्येतदध्यवसायी सन् मृगवधार्थं कच्छादिषु गंता नवति तत्रच गतः सदृष्ट्वा मृगानेते मृगाइत्येवं कृत्वा तेषां मध्येऽन्यतरस्य मृगस्य वधार्थमिषुं शरं ( आयामेतत्ति ) आयामेन समाकृष्य मृगमुद्दिश्य निसृजति सचैवंसंकल्पोनवति । तथाऽहं मृगं हनिष्यामीति इषुं क्षिप्तवान् सच तेनेषुणा तित्तिरादिकं पक्षिविशेषं व्यापादयिता नवति । तदेवं खल्वसावन्यस्यार्थाय निक्षिप्तो दंडो यदाऽन्यं स्पृशति घातयति तदाऽकस्मादंडइत्युच्यते ॥१०॥ अधुना वनस्पतिमुद्दिश्याकस्माद्दंडनच्यते (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः कृषीवलादिः शाल्यादेर्धान्यजातस्य श्यामादिकं तृणजातमपनयन् धान्यशुद्धिंकुर्वाणः सन्नन्यतरस्य तृणजातस्यापनयनार्थं शस्त्रं दात्रादिकं निसृजेत्सच श्यामादिकं तृणं छेत्स्यामीति कृत्वाऽकस्माच्छालिंवा रालकंवा छिंद्याइक्षणीयस्यैवासावकस्माछेत्ता नवति. इत्येवमन्यस्यार्थायान्यकृते ऽन्यंवा स्पृशति छिनत्ति । यदिवा स्पृशतीत्यनेनापि परितापं करोतीति दर्शयति । तदेवं खलु तस्य तत्कर्तुस्तत्प्रत्ययिकमकस्माद्दंडनिमित्तं सावद्यमिति पापमाधीयते संबध्यते । तदेतच्चतुर्थदंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ ११ ॥

अहावरे पंचमे दंमसमादाणे दिठिविपरियासियादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे माइहिंवा पिइहिंवा नाइहिंवा नगिणीहिंवा नज्जाहिंवा पुत्तेहिंवा धूताहिंवा सुण्हाहिंवा सर्द्धि संवसमाणे मित्तं अमित्तमेव मन्नमाणे मित्तेहयपुवे नवइ दिठि विपरियासियादंमे ॥१२॥ से जहा णामए केइपुरिसे गामघायंसिवा णगरघायंसिवा खेडकवडमंमवघायंसिवा दोणमुहघायंसिवा पट्टणघायंसिवा आसमघायंसिवा सन्निवेसघायंसिवा निग्गमघायंसिवा रायहाणिघायंसिवा अतेणं तेणमित्ति मन्नमाणे अतेणं हयपुवे नवइ दिठिविपरियासियादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ पंचमे दंमसमादाणे दिठिविपरियासिया दंमवत्तिएत्ति आहिए ॥१३॥

अर्थ–हवे अपर पांचमो दृष्टिविपर्यास नामे क्रिया स्थानक कहियें बैए. ते जेम नाम एवी संनावनायें. कोइएक पुरुष माता, पिता, नाइ, बेन, नार्या, पुत्र, दीकरी, पुत्रनी वहु, प्रमुख परिवार ( सर्द्धिसंवसमाणे के० ) सहित वसतो थको ज्ञाति पालवाने अर्थे ( मित्तंअमित्तमेवमन्नमाणे के० ) पोताना मित्रने दृष्टिना विपर्यास थकी " ए महारो

शत्रुछे " एम जाणतो थको ( मित्तेहयपुव्वेनवइ के० ) मित्रने हणे. एटले ए पुरुष श त्रुनो विनाश करवा वांछतो मित्रनेज हणे तेने मित्रज हत पूर्व थाय. ( दिठ्ठिविपरिया सियादंमे के० ) एने दृष्टि विपर्यास दंम कहियें. ॥ १२ ॥

वली बीजी रीतें देखाडेछे, ते जेम कोइएक पुरुष (गामघायंसिवा के०) गामनी घा तें प्रवर्त्ततो थको, ( णगरघायंसिवा के० ) नगरनी घातें प्रवर्त्ततो थको, ( खेडकब्बडमं मबघायंसिवा के०) खेड कब्बड मंमपनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (दोणमुहघायंसिवा के०) द्रो णमुखनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (पट्टणघायंसिवा के०) पट्टणनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (आ समघायंसिवा के० ) आश्रमनी घातें प्रवर्त्ततो थको, ( सन्निवेसघायंसिवा के० ) सन्नि वेशनी घातें प्रवर्त्ततो थको, ( निग्गमघायंसिवा के०) निगमनी घाते प्रवर्त्ततो थको, रा यहाणिघायंसिवा के०) राजधानीनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (अतेणंतेणमितिमन्नमाणेके०) अचोरने चोर करी जाणतो थको, (अतेणंहयपुव्वेनवंति के०) अचोर एटले साधुनेज हणे तेथी साधुज हत पूर्वथाय, तेथी ए दृष्टि विपर्यास दंम कहिए. एम निश्चें तेने तत्प्रत्ययिक सा वद्य कर्म बंधाय। ए पांचमो क्रियास्थानक दृष्टिविपर्यास नामे दंम समादान कह्यो. ॥१३॥

---

॥ दीपिका–अथापरं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकमित्याख्यायते । त द्यथानाम कश्चित्पुरुषश्चारनट्टादिर्मातृपितृनगिनीनार्यापुत्रडुहितृस्नुषादिभिः सार्धं वस न् ज्ञातिपालनाय मित्रमेव दृष्टिविपर्यासादमित्रोयमिति मन्यमानोहन्यात्तेनच दृष्टिवि पर्यासान्मित्रमेव हतपूर्वं स्यादतोदृष्टिविपर्यासदंडोऽयं ॥ १२ ॥ पुनरन्यथा तमेवाह । य थावा कश्चित्पुरुषोग्रामघातादिके विभ्रांतचेतादृष्टिविपर्यासादचौरमेव चौरोयमिति म न्यमानोहन्यात् । एवं तेन भ्रांतेनाचौरएव हतपूर्वः स्यात् । ग्रामादिलक्षणं चेदं । ग्रामो वृत्यावृतः स्यान्नगरमुरुचतुर्गोपुरोद्भासिशोभं । खेटं नद्यद्रिवेष्टं परिवृतमभितः खर्वटं प र्वतेन ॥ ग्रामैर्युक्तं मटं वंदलितदशशतैः पत्तनं रत्नयोनि द्रोणाख्यं सिंधुवेलावलयितम थ संवाधनंवाऽद्रिशृंगेऽइति । आश्रमस्तापसस्थानं । सन्निवेशः सार्थकटकादिवासः । निग मोबहुवणिग्वासः । राजधानी राजकुलस्थानं । सोयं दृष्टिविपर्यासदंडः । तदेवं खलु तस्य दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते । इदं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्या सप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १३ ॥

---

॥ टीका–अथापरं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासदंडप्रत्ययिकमित्याख्यायते । त द्यथानाम कश्चित्पुरुषश्चारनट्टादिकोमातृपितृभ्रातृनगिनीनार्यापुत्रडुहितृस्नुषादिभिः सार्धं वसंस्तिष्ठन् ज्ञातिपालनकृते मित्रमेव दृष्टिविपर्यासादमित्रोयमित्येवं मन्यमानोहन्या

तु व्यापादयेत्तेन च दृष्टिविपर्यासवता मित्रमेव हतपूर्वं नवतीति अतोदृष्टिविपर्यासदंडोयं ॥१२॥ पुनरप्यन्यथा तमेवाह । ( सेजहेत्यादि ) तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः पुरुषकारम्रुद्वहन् ग्रामघातादिके विभ्रमे भ्रांतचेतादृष्टिविपर्यासादचौरमेव चौरोयमित्येवं मन्यमानोव्यापादयेत् । तदेवं तेन भ्रांतमनसा विभ्रमाकुलेनाचौरएव हतपूर्वोनवति सोऽयं दृष्टिविपर्यासदंडः । तदेवं खलु तस्य दृष्टिविपर्यासवत् तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते । तदेवं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १३ ॥

अहावरे बट्ठे किरियाठाणे मोसावत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे आयहेउंवा णाइहेउंवा अगारहेउंवा परिवारहेउंवा सयमेव मुसंवयंति अणेणंवि मुसंवयावेंति मुसंवयंतंपि अण्णं समणुजाणइ एवं खलुतस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ बट्ठे किरियाठाणे मोसावत्तिएत्ति आहिए॥१४॥

अर्थ—हवे बठो क्रिया स्थानक मृषावादप्रत्ययिक कहेछे. पूर्वोक्त पांचने दंमसमादान पणे कह्या. कारण के, तेमांहे प्राय: परनो उपघात थायछे, अने अंहींथी हवे क्रिया जछे माटे एने क्रियास्थान एवी संज्ञा करवी अने हवे एथकी आगळजे क्रिया स्थानक कहेशे, ते थकी प्राय: परजीवनो विनाश नथी, तेमाटे तेने क्रियास्थान संज्ञा कहेवाय अने पूर्वना पांच स्थानने दंमसमादान एवी संज्ञाछे. एटलुं विशेष जाणवुं.

हवे छठो क्रिया स्थानक विचारियें छैयें. ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक पुरुष ( आयहेउंवा के० ) पोताने अर्थें ( णाइहेउंवा के० ) ज्ञाति गोत्रीने अर्थें ( अगारहेउंवा के० ) घरने अर्थें ( परिवारहेउंवा के० ) परिवार जे दास दासी तेने अर्थें ( सयमेवमुसंवयंति के० ) स्वयमेव मृषावाद बोले एटले जेम हुं कोइ प्रकारे चोर नथी अथवा महारो परिवार कोइ चोर नथी एवो मृषावाद बोले. (अणेणंविमुसंवयावेंति के०) अन्य पासें मृषावाद बोलावे, (मुसंवयंतंपिअण्णंसमणुजाणइत्ति के०) अन्य कोइ मृषावाद बोले तेने अनुमोदे, एरीते त्रिण्हें करण करावण अनुमोदन थकी मृषावाद बोले तेने तत्प्रत्ययिक सावद्यकर्म बंधाय. ए छठो क्रियास्थानक मृषावाद प्रत्ययिक कह्यो.॥१४॥

---

॥ दीपिका—अथापरं षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषआत्मनिमित्तं ज्ञातिपरिवारनिमित्तंवा स्वयमेव मृषावादं वदति नायं मदीयइत्यादि तथाऽचौरं चौरं वदति तथाऽन्येन मृषावादं वादयति अन्यं मृषावादं वदंतं समनुजानीते। एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते बध्यते। एतत्षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यातं । पूर्वोक्तानां पंचानां क्रियास्थानानां सत्यपि क्रियास्थानत्वे प्राय

परोपघातित्वादंडसमादानसंज्ञा कृता । पश्चादिपु च प्रायोन परघातः स्यादतः क्रियास्था नसंज्ञोच्यंते ॥ १४ ॥

॥ टीका-अपरं षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यायते । तत्रच पूर्वोक्तानां क्रियास्थानत्वे प्रायशः परोपघातोनवतीति कृत्वा दंडसमादानकृता पश्चादिपुच बाहुल्येन न परव्यापादानं नवतीत्यतः क्रियास्थानमित्येषा संज्ञोच्यते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः सपक्षावेशादाग्रहादात्मनि कृते निमित्तं यावत्परिवारनिमित्तं वा सद्भूतार्थनिन्हवरूप मसद्भूतोद्भावनस्वनावं स्वयमेव मृषावादं ववति । तद्यथा नाहं मदीयोवा कश्चिच्चौरः सच चौरमपि सद्भूतमप्यर्थमपलपति तथा परमचौरं चौरमिति वदति तथान्येन मृषावादं नाणयति तथान्यांश्च मृषावादं वदतः समनुजानीते । तदेवं खलु तस्य योगत्रिककारणत्रिकेण मृषावादं वदतस्तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते संबध्यते । तदेतत्षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १४ ॥

अहावरे सत्तमे किरियाठाणे अदिन्नादाणवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे आयहेउंवा जाव परिवारहेउंवा सयमेव अदिन्नं आदियइ अन्नेणंवि अदिन्नं आदियावेंति अदिन्नं आदियंतं अन्नं समणुजाणइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ सत्तमे किरियाठाणे अदिन्नादाणवत्तिएत्ति आहिए ॥ १५ ॥

अर्थ-हवे अपर सातमो क्रिया स्थानक अदत्तादान प्रत्ययिक कहेछे. ते जेम नाम एवी संनावनार्ये. कोइ एक पुरुष पोताना आत्माने अर्थे ज्ञातिगोत्रीने अर्थे यावत् परिवारने अर्थे पोते अदत्तादान ग्रहण करे, बीजाने अदत्तादान लेवरावे, अदत्तादान बीजो कोइ लेतो होय तेने अनुमोदन आपे, एरीते निश्चे थकी तेने अदत्तादान तत्प्रत्ययिक कर्म बंधाय; एटले सातमो क्रियास्थानक अदत्तादान प्रत्ययिक कह्यो. ॥ १५ ॥

॥ दीपिका-अथाऽपरं सप्तमं क्रियास्थानं अदत्तादानप्रत्ययिकमाख्यायते । इदं प्राग्वत् ॥ १५ ॥

॥ टीका-अथापरं सप्तमं क्रियास्थानं अदत्तादानप्रत्ययिकमाख्यायते । एतदपि प्राग्वज्ज्ञेयं । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषश्चात्मनिमित्तं यावत्परिवारनिमित्तं परद्रव्यमदत्तमेव गृण्हीयादपरंच ग्राहयेद्गृण्हंतमप्यपरं समनुजानीयादित्येवं तस्यादत्तादानप्रत्ययिकं कर्म संबध्यते । इति सप्तमं क्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ १५ ॥

अहावरे अठमे किरियाठाणे अज्झत्तवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णाम ए केइ पुरिसे णत्थिणं केइकिंविसंवादेंति सयमेव हीणे दीणे दुठे दुम्मणे उहयमणसंकप्पे चिंतासोगसागरसंपविठे करतलपल्लत्थमुहे अट्टज्झा णोवगए नूमिगयदिठिएझियाइं तस्सणं अज्झत्तया आसंसइया चत्तारि ठाणा एवमाहिज्जइ तं कोहे माणे माया लोहे अज्झत्तमेव कोहमाणमा यालोहे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ अठमे किरिया ठाणे अज्झत्तवत्तिएत्ति आहिए ॥ १६ ॥

अर्थ—हवे अपर आठमो क्रिया स्थानक अध्यात्मिकप्रत्ययिक नामे कहेछे. अध्या त्मिक केहेतां जे कर्म बंधनुं कारण एवो नाव चित्त थकी उपजे, तेमाटे अध्यात्मिक क हिये. ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक पुरुषछे तेने ( णत्थिणं केइकिंविसंवादेंति के०) कोइ विखवादनुं कारण नथी. विखवाद एटले परानव तेने कोइ करे नही, तथापि ते पुरुष, ( सयमेवके०) पोतेज ( हीणेदीणेदुठेदुम्मणेके०) हीन, दीन, दुष्ट. अने दुर्मन एटले नुंमा मन वालो थाय. ( उहयमणसंकप्पे के०) अनवस्थित चित्त संकल्प एवो थको, ( चिंतासोगसागरसंपविठे के० ) चिंता शोक रूप समुद्रमांहे पेगे एवो थको, जे अव स्था करे, ते देखाडेछे. ( करतलपल्लत्थमुहे के० ) हाथना तलाने विषे स्थाप्युंछे मुख जेणे एटले गालने विषे हाथ देइने ( अट्टज्झाणोवगए के० ) आर्त्तध्यान सहित ( नू मिगयदिठिएझियाइं के० ) नूमिनी सन्मुख एकाग्रचित्ते जोतो निर्विवेक पणे आर्त्त, रौ द्र, ध्यान ध्यावे ( तस्सणंअज्झत्तया के० ) तेनें अध्यात्मनी ( आसंसइया के० ) आ शंसा मिश्रित ( चत्तारिठाणाएवमाहिज्जइतं के० ) चार स्थानक कहिए. ते कहेछे पेहे लो क्रोध, बीजुं मान, त्रीजी माया, अने चोथो लोन ( अज्झत्तमेव के० ) ते पोताना मनथीज उत्पन्नथाय ए क्रोध, मान, माया, अने लोन, ए चारे करी जीवनो मन दोष दुष्ट थायः एरीते निश्चें तेने तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय. तेमाटे ए आठमो क्रिया स्थानक आध्यत्मिक प्रत्ययिक एवे नामे कह्यो. ॥ १६ ॥

---

॥ दीपिका—अथापरमष्टमं क्रियास्थानमाध्यात्मिकमंतःकरणोद्भवमाख्यायते । य था कश्चिन्नरस्तस्य नास्ति कश्चिद्विसंवादयिता परानवकरस्तथाप्यसौ स्वयमेव हीनोदीनो दुष्टोदुर्मनाश्चपहतमनःसंकल्पः चिंताप्रधानः शोकश्चिंताशोकस्तत्र प्रविष्टः करतले पर्यस्तं स्थितं मुखं यस्य सतथा आर्तध्यानोपगतोनूमिगतदृष्टिर्ध्यायति तस्यैवमाध्यात्मिकानि चित्तोद्भवानि असंशयितानि निःसंशयानि चत्वारि स्थानानिस्युः । तानि चैवमा

ख्यायंते । तद्यथा । क्रोधमानमायालोनस्थानानि । तेच क्रोधमानमायालोनाद्यात्मोद्भ वाः । एनिरेव मनोडुष्टं स्यात् । एवं तस्य तत्प्रत्ययिकमध्यात्मनिमित्तं सावद्यं कर्माधी यते । तदेवमष्टममाध्यात्मिकाख्यं क्रियास्थानमाख्यातं ॥ १६ ॥

---

॥ टीका—अथापरमष्टमं क्रियास्थानमाध्यात्मिकमित्यंतःकरणोद्भवमाख्यायते । तद्य था नामकंश्चित्पुरुषश्चित्तोपेक्षाप्रधानस्तस्य च नास्ति कश्चिद्विसंवादयिता । न तस्य कश्चि द्विसंवादेन परिनावेनवा सद्भूतोद्भावनेनवा चित्तडुःखमुत्पादयति तथाप्यसौ स्वयमेव वर्णापसदवद्दीनोडुर्गतवद्दीनोडुश्चित्ततया डुष्टोडुर्मनास्तथोपहतोऽस्वस्थतया मनःसंकल्पो यस्य सतथा चिंतैव शोकइति सागरश्चिताप्रधानोवा शोकश्चिताशोकसागरप्रविष्टः । तथानू तश्च यदवस्थोनवति तद्दर्शयति । करतले पर्यस्तं मुखं यस्य सतथाऽहर्निशं नवति तथा र्तध्यानोपगतोऽपगतसद्विवेकतया धर्मध्यानदूरवर्ती निर्निमित्तमेव ढं क्षोपहतवद्ध्यायति । तस्यैवं चिंताशोकसागरावगाढस्य सतआध्यात्मिकान्यंतःकरणोद्भवानि मनःसंश्रितान्यसं शयितानि वा निःसंशयितानि चत्वारि वद्दयमाणानि स्थानानि नवंति । तानि चैव समा ख्यायंते । तद्यथा क्रोधस्थानं, मानस्थानं, मायास्थानं, लोनस्थानमिति । ते चावश्यं क्रो धमानमायालोनाद्यात्मनोऽधिनवंत्याध्यात्मिकाएनिरेव सुद्भिर्डुष्टं मनोनवति । तदेव तस्य डुर्मनसः क्रोधमानमायालोनवतएवमेवोपहतमनःसंकल्पस्य तत्प्रत्ययिकमध्यात्मनिमि त्तं सावद्यं कर्माधीयते संवध्यते । तदेवमेतक्रियास्थानमाध्यात्मिकाख्यमाख्यातमिति॥१६॥

अहावरे णवमे किरियाठाणे माणवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए के इ पुरिसे जातिमएणवा कुलमएणवा वलमएणवा रूवमएणवा तवमएण वा सुयमएणवा लान्नमएणवा ईस्सरियमएणवा पन्नामएणवा अन्नतरे णवा मयठाणेणं मत्ते समाणे परं हिलेंति निंदंति खिंसति गरहति परिन्न वइ अवमणेति इत्तरिए अय अहमंसि पुण विसिठे जाइकुलवलाइगुणो ववेए एवं अप्पाणं समुक्कसे देहाचुए कम्मविित्तिए अवसेपयाइं तंजहा गप्नाउगप्नं जम्माउजम्मं माराउमारं णरगाउणरगं चंमे थद्धे चवले माणियावि नवइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ णवमे किरियाठाणे माणवत्तिएत्ति आहिए ॥ १७ ॥

अर्थ—अथ हवे अपर नवमो क्रियास्थानक मान प्रत्ययिक नामे कहिए ठेएं. ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक पुरुष ( जातिमएणवा के० ) जाति एटले माता

नो पक्ष, तेना मदें करीने, (कुलमएणवा के०) कुल एटले पितानो पक्ष, तेना मदें करीने, ( बलमएणवा के० ) शरीरनुं बल, तेना मदें करीने, ( रूवमएणवा के० ) रूपने मदें करीने, ( तवमएणवा के० ) तपने मदें करीने, ( सुयमएणवा के० ) श्रुतज्ञानने मदें करीने, (लाजमएणवा के०) लाजने मदें करीने, ( ईस्सरियमएणवा के०) ऐश्वर्य एटले ठकुराइनें मदें करीने, ( पन्नामएणवा के० ) प्रज्ञाना मदें करीनें, एटलाना मद ( अन्नतरेणवा के० ) अथवा अन्य एटले बीजा कोइ ( मयठाणेणं के० ) मदना स्थानकें करीने ( मत्तेसमाणे के० ) मातो थतो ( परंहिलेंति के० ) बीजानी हेलना करे, ( निंदेंति के० ) निंदा करे, ( खिंसति के० ) खष्ट करे, ( गरहति के० ) गर्हा करे, ( परिजवइ के० ) पराजव करे, ( अवमस्रेति के० ) अपमान करे, ( इत्तरिएअ य के०) ए बापडो जघन्य एटले जातिकुलादिकें हीनछे. ( अहमंसिपुणविसिछेजाइकुलबलाइगुणोववेए के० ) हुं वली विशेष जाति, कुल, बलादिकगुणेकरी सहितछुं ( एवंअप्पाणंसमुक्कस्से के० ) एम पोताना आत्माने उत्कर्षे एटले अहंकार करे. हवे एवा मद करनारने विपाक देखाडेछे. ( देहाचुए के० ) ते पुरुष आ लोक मांहे पण निंदा अने गर्हानुं स्थानक थाय, अने परलोके पण निंदा अने गर्हानुं स्थानक थाय. देहाचुए एटले आ शरीरथकी चवीने परजवे ( कम्मबितिए के० ) कर्मद्वितीय ( अवसेपयाइ के० ) एतावता कर्मने वश वर्त्ततो चतुर्गतिक संसार मांहे परिभ्रमण करे ( तंजहा के० ) ते कहेछे ( गप्नाउगप्नं के० ) एक गर्ज थकी मरण पामिने, वली बीजा गर्ज मांहे उपजे. ( जम्माउजम्मं के० ) एक जन्म थकी बीजुं जन्म पामे, ( माराउमारं के० ) मरण थकी मरण पामे, ( णरगाउणरगं के० ) नरक थकी निकलीने वली नरकांतरे नरकमां जइने तीव्र डुःख जोगवे, एटले ते नरकमांहे थी निकलीने, सिंह मत्स्यादिक मांहे उत्पन्न थाय, फरी त्यांथी मरण पामीने तीव्रतर नरकांतरें जाय. एतावता ते ( चंमे के० ) रौड अहंकारी ( थद्धे के० ) स्तब्ध अनम्र शील ( चवले के० ) चपल एवा लक्षणेयुक्त ( माणियाविजवइ के० ) ते अभिमानी पुरुष होय एम निश्चें तेने तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय, ए नवमो क्रिया स्थानक मान प्रत्ययिक नामे कह्यो ॥ १७ ॥

---

॥ दीपिका–अथापरं नवमं क्रियास्थानं मानप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथा कश्चित्पुरुषो जात्यादिगुणोपेतः सन् जातिकुलबलरूपतपःश्रुतलाजैश्वर्यप्रज्ञामदाख्यैरष्टभिर्मदस्थानैरन्यतरेण वा मत्तः परं हीनबुद्ध्या हीलयति, निंदति, जुगुप्सते, गर्हति, परिजवति । यथायमितरोजघन्योहीनोमत्तः कुलादिजिः । अहं पुनर्विशिष्टकुलादिगुणोपेतएवमात्मानमुत्क

र्पयेत् । एवं जात्यादिमदमत्तः सन् इहैव निंद्यः स्यात् । अत्रच जात्यादिमद द्वयादिसंयोगैर्नंगाज्ञेयाः। तथाहि। जातिमदः कस्यचिन्न कुलमदः, १ कस्यचित्कुलमदएव, न जातिमदः २ कस्यचिद्द्वयं ३ कस्यचिडुनयमपि न. ४ एवं पद द्वयेन चत्वारोनंगाः। पदत्रयेणाष्टौ, पदचतुष्टयेन षोडश, पंचनिः पदै द्वात्रिंशत् पड्निश्चतुःषष्टिः सप्तनिः १ २ ७ अष्टनिः २५६ सर्वत्र मदानावरूपश्चरमनंगः शुद्धइति । समानी देहाच्च्युतोमृतः सन् कर्मद्वितीयः कर्मसहायोऽवशः परवशः प्रयाति नवांतरं । तद्यथा गर्नाजर्नं जन्मनएकस्मात्परं जन्म, मारान्मरणान्मारं मरणांतरं व्रजति नरकतुल्याचंडालादिवासान्नरकं . रत्नप्रनादिकं याति । अथवा नरकाडुद्धृत्य सिंहमत्स्यादावुत्पद्य पुनरतितीव्रं नरकांतरं याति । तदेवं मानी परपरिनवे सति चंडोरौड्ोऽन्यं हंति तदनावे आत्मानमेव हंति स्तब्धश्चपलो यत्किंचनकारी स्यात् मानी सन् एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं माननिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते बध्यते । नवममेतक्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ १७ ॥

---

॥ टीका–अथापरं नवमं क्रियास्थानं मानप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोजात्यादिगुणोपेतः सन् जातिकुलबलरूपतपःश्रुतलानैश्वर्यप्रज्ञामदाख्यैरष्टनिर्मदस्थानैरन्यतरेणवा मत्तः परमवबुध्या हीलयति तथा निंदति, जुगुप्सते, गर्हति, परिनवति, एतानि चैकार्थिकानि कथंचिद्भेदं चोत्प्रेक्ष्य व्याख्येयानीति । यथा परिनवति तथा दर्शयति । इतरोयं जघन्योहीनजातिकः कुलबलरूपादि निर्दूरमपभ्रष्टः सर्वजनावगीतोयमिति । अहं पुनर्विशिष्टजातिकुलबलादिगुणोपेतएवमात्मानं समुत्कर्षयेदिति । सांप्रतं मानोत्कर्षविपाकमाह । ( देहाच्चुएइत्यादि ) तदेवं जात्यादिमदोन्मतः सन्निहैव लोके गर्हितोनवति । अत्र जात्यादिपद द्वयादिसंयोगाइष्टव्यास्ते चैवं नवंति । जातिमदः, कस्य चिन्न कुलमदोऽपरस्य कुलमदो,न जातिमदः परस्योनयमपरस्यानुनयमित्येवं पदत्रयेणाष्टौ चतुर्निः षोडशेत्यादि यावदष्टनिः पदैः षट्पंचाशदधिकं शत द्वयमिति । सर्वत्र मदानावरूपचरमनंगः शुद्धइति । परलोकेऽपिच मानी डुःखनाग्नवतीत्यनेन प्रदर्श्यते । सायुर क्षये देहाच्च्युतोनवांतरं गच्छेच्छुनाशुनकर्मा द्वितीयः कर्मपरायत्तत्वादवशः परतंत्रः प्रयाति । तद्यथा गर्नाजर्नं पंचेंडियापेक्षं तथा गर्नाजर्नं विकलेंड्रियेषूत्पद्यमानः पुनर गर्नाजर्नमेवं गर्नादगर्नमेतच्च नरककल्पगर्नडुःखापेक्षायामनिहितंमुत्पद्यमानडुःखापेक्षया त्विदमनिधीयते । जन्मनएकस्मादपरं जन्मांतरं व्रजति। तथा मरणं मारस्तस्मान्मारांतरं व्रजति तथा नरकदेश्याच्छ्वपाकादिवासाइत्नप्रनादिकं नरकांतरं व्रजति । यदिवा नरकात्सीमंतकादिकाडुद्धृत्य सिंहमत्स्यादावुत्पद्य पुनरपि तीव्रतरं नरकांतरं व्रजति । तदेवं नटवद्बहुंगनूर्मा संसारचक्रवाले स्त्रीपुंनपुंसकादीनि बहून्यवस्थांतराण्यनुनवंति । तदेवं मा

नी परपरिन्नवेसति चंडरौद्रोन्नवति परस्यापकरोति, तदन्नावे ह्यात्मानं व्यापादयति । तथा स्तब्धश्चपलोयत्किंचनकारी मानी सन्सर्वोप्येतदवस्थोन्नवतीति । तदेवं तत्प्रत्ययिकं माननिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते संबध्यते । नवममेतत्क्रियास्थानमाख्यातमिति॥१७॥

अहावरे दसमे किरियाठाणे मित्तदोसवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे माईहिंवा पिताहिंवा न्नाईहिंवा नइणीहिंवा नज्जाहिंवा धूयाहिंवा पुत्तेहिंवा सुण्हाहिंवा सद्धिं संवसमाणे तेसिं अन्नयरेसि अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंम निवत्तेति तं जहा सीउदगवियडंसि वा कायं उबोलित्तान्नवति उसिणोदगवियडेणवा कायं उसिंचित्ता न्नवति अगणिकाएणं कायं उवडहित्तान्नवति जोतेणवा वेतेणवा णेतेणवा तयाइवा कसेणवा छियाएवा लयाएवा पासाइं उद्दालित्तान्नवति दंमेणवा अठीएवा मुठीणवा लेलूणवा कवालेणवा कायंआउडित्ता न्नवति तहप्पगारे पुरिसजाए संवसमाणे डुम्मणा न्नवति पवसमाणे सुमणा न्नवति तहप्पगारे पुरिसजाए दंमपासी दंमगुरुए दंमपुरक्कडे अहिए इमंसि लोगंसि संजलणे कोहणे पिठिमंसियावि न्नवति एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जंति दसमे किरियाठाणे मित्तदोसवत्तिएत्ति आहिए॥१८॥

॥ अर्थ–अथ हवे अपर दशमो क्रिया स्थानक मित्र दोष प्रत्ययिक कहियेंछैयें. ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक पुरुष माता, पिता, नाइ, बेन, स्त्री, बेटी, पुत्र, पुत्रनीस्त्री, तेवहु जाणवी. ( सिद्धिंसंवसमाणे के० ) एटला साथें वसतो थको ( तेसिंअन्नयरेसि के० ) ते मातापितादिकथी कोइ अनेरो अजाण पणे अनान्नोग थकी ( अहालहुगंसि के० ) यथा कथंचित् न्हानो डुर्वचन प्रमुखनो अथवा काय थकी हस्त पादादिकनो संघट्ट प्रमुख एवो ( अवराहंसि के० ) अपराध थये ठते ( सयमेव के० ) पोतेंज क्रोधें करी धमतो थको तेने ( गुरुयंदंमंनिवत्तेति के० ) महोटो दंम करे. ( तंजहा के० ) ते कहेठे ( सीउदगवियडंसिवा के० ) सीतल पाणीयें करी सीतकालने विषे ( कायंउबोलित्तान्नवति के० ) ते अपराधीनु शरीर ठंमापाणी मांहे बोले. एवा अकार्यनो करनार थाय तथा ( उसिणोदगवियडेणवाकायंउसिंचित्तान्नवति के० ) उन्नकालें अत्यंत उस्न पाणीयें करीने उम्न तेलें करीने तेना शरीरनेसिंचे शरीरनुं शोषण करनार थाय, ( अगणिकाएणंकायंउवडहित्तानवंति के० ) अग्निकायें करीने तेना शरीरनुं दहन करनार

थाय, ( जोतेणवा के० ) जोत्रे करी, ( वेतेणवा के० ) वेत्रें करी, अथवा ( णेतेणवा के० ) नेतरे करी, ( तयाइवाके० ) त्वचायें करी, अथवा ( कसेणवाके० ) ताजणे वा वधुकें करी, ( बियाएवा के० ) नाडायें करी, ( लयाएवा के० ) लता एटले वेलुयें करी, दोरडीयेंकरी ( पासाइंउद्दालित्ताजवति के० ) तेना पार्श्वनागना चामडाने उखेडनार थाय, ( दंमेणवा के० ) दंमे करी लाकडीयें करी, ( अठीणवा के० ) हाडकायें करी, ( मुठीणवा के० ) मुष्टियें करी, ( लेलूणवा के० ) पाषाणने कटके करी, ( कवालेणवा के० ) ठींकरीयें करी, कपालादिकेंकरी, ( कायंआउडित्ताजवति के० ) तेना शरीरने ताडनार थाय, किंबहुना ( तहप्पगारे के० ) तथा प्रकारना दंमना करनार एवा ( पुरिसजाए के० ) पुरुष जाति जे तथा प्रकारना कुकर्मना करनार होए तेनी साथे ( संवसमाणे के० ) एकठां रहेतां ठता सज्जन पुरुष जे माता पितादिक ते पण ( डुम्मणानवंति के० ) डुर्मन थइने देशांतर जता रहे पठी ( पवसमाणे के० ) ते थकी अलगा रहेवाथी ( सुमणानवंति के० ) सुमन थाय, एटले तेने ठोडयाथी हर्षित थाय. एवा ( तहप्पगारे के० ) तथा प्रकारना ( पुरिसजाए के० ) पुरुष जाति जे थोडा अपराधीने पण दंमना देनार, (दंमपासीके०) अल्पापराधने विषे अति कोपकरनार, ते दंडपार्श्वी (दंमगुरुएके०) दंमेंकरी आकरों दंम करे, (दंमपुरेक्कडेके०) तेने सर्व काल दंमज अग्रेसर ठे. ते पुरुष (अहिएइमंसिलोगंसिकें०) आलोकने विषे पण पोताना जीवने अहित कारी अने ( अहिएपरंसिलोगंसि के०) परलोकने विषे पण पोताना जीवने अहित कारीत्रे तेनुं कारण शुं? तोके तेजीव, ( संजलणे के० ) क्षणे क्षणे ज्वले, ( कोहणे के० ) क्षणेक्षणे क्रोध करे, ( पिठिमंसियाविनवति के० ) पृष्ठ मांस नक्षण करनार होय, पुंठे पाठल अवर्णवादनो बोलनार होय, एम निश्चे तेहने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्तें सावद्य कर्म बंधाय. ए दशमो क्रिया स्थानक मित्र दोष प्रत्ययिक नामे कह्यो. ॥ १० ॥

---

॥ दीपिका—अथापरं दशमं क्रियास्थानं मित्रदोषप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः प्रजुकल्पोमातापितृसुहृत्स्वजनादिनिः सार्धं संवसन् तेषां मातापित्रादीनामन्यतमेनाऽनानोगतोयथाकथंचिल्लघुतमेप्यपराधे स्वयमेवात्मनाक्रोधतोगुरुतरं दंडं वर्तयति करोति । तद्यथा शीतोदकविकटे शिशिरादावतिशीतोदके कायं शरीरमपराधिनोऽववोलयिता नवति तथा उष्णोदकविकटेन कायमपसिंचयिता नवति । विकटग्रहणाद्भृतेलकांजिकादिना अग्निकायेन उल्मुकेन तप्तलोहेनवा कायमुपदाहयिता नवति । ( जोएणत्ति ) जोत्रेण वेत्रेणवा नेत्रोवृक्षविशेषस्तेन कशादिनावा लतयावा शरीरपार्श्वाणि उद्दालयितुं चर्माणि लुंपयितुं नवति । दंडेन अस्थ्ना मुष्टिना लेष्टुना कपालेन नांडखंडेन कायमु

पताडयिता नवति । तथाविधे पुरुषे स्वल्पापराधेपि महादंडकारिणि एकत्र वासं कुर्वंति मातापित्रादयोडुर्मनसः स्युः । तस्मिन् प्रवसति दूरं गच्छति सति सहवासिनः सुमनसः सुखिनः स्युः । तथाप्रकारस्तादृशः पुरुषोदंडस्य पार्श्वे दंडपार्श्वे तद्विद्यते यस्यासौ, दंडप्रद्योदंडः पुरस्कृतोयेन सदंडपुरस्कृतोऽस्मिन् लोके स्वस्य परेषां चाऽहितः परलोकेप्यहितः संज्वलनः क्रोधकारी क्रोधनोवधबंधादिषु अविमृश्य प्रवृत्तिकृत् पृष्ठिमांसखादकः परममोद्घट्टनतः । एवं तस्य स्वल्पापराधेपि महादंडकर्तुस्तद्दंडप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते बध्यते । तदेतद्दशमं क्रियास्थानमाख्यातमिति । अन्ये पुनरष्टमं क्रियास्थानमात्मदोषप्रत्ययिकमाचक्षते । नवमंतु परदोषप्रत्ययिकं । दशमं पुनः प्राणवृत्तिकमिति ॥ १८ ॥

॥ टीका—अथापरं दशमं क्रियास्थानं मित्रदोषप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः प्रज्ञकल्पोमातापितृसुहृत्स्वजनादिनिः सार्धं परिवसंस्तेषांच मातापित्रादीनामन्यतमे नानानोगतया यथाकथंचिल्लघुतमेप्यपराधे वाचिके डुर्वचनादिके तथा कायिके हस्तपादादिके संघट्टरूपे कृते सति स्वयमेवात्मना क्रोधध्मातोगुरुतरं दंडं डुःखोत्पादकं निवर्तयति करोति । तद्यथा शीतोदके विकटे प्रनूते शीतेवा शिशिरादौ तस्यापराधकर्तुः कायमधोबोलयिता नवति तथोष्णोदकविकटेन कायं शरीरमपसिंचयिता । तत्र विकटग्रहणाडुष्णतैलेन कांजिकादिनावा कायमुपतापयिता नवति तथाऽग्निकायेनाल्मुकेन तप्तायसावा कायमुपदाहयिता नवति तथा जोत्रेणवा वेत्रेणवा नेत्रेणवा त्वचा वासनादिकपाललतया वाऽन्यतरेण वा दवरकेण ताडनतस्तस्यापराधकर्तुः शरीरपार्श्वाणि उद्दालयितुं चर्माणि लुंपयितुं नवति तथा दंडादिना कायमुपताडयिता नवति । तदेवमल्पापराधिन्यपि महाक्रोधदंडवति तथा प्रकारे पुरुषजाते एकत्र वसति सति तत्सहवासिनोमातापित्रादयोडुर्मनसस्तदनिष्टाशंकया नवंति तस्मिंश्च प्रवसति देशांतरे गच्छति गतेवा तत्सहवासिनः सुमनसोनवंति । तथाप्रकारश्च पुरुषजातोऽल्पेप्यपराधे महांतं दंडं कल्पयतीत्येतदेव दर्शयितुमाह । दंडस्य पार्श्वे दंडपार्श्वे तद्विद्यते यस्यासौ दंडपार्श्वी स्वल्पतया स्तोकापराधे कुप्यति दंडं च पातयति । तमप्यतिगुरुमिति दर्शयितुमाह । दंडेन गुरुकोदंडगुरुः । यस्यच महान् दंडोनवति असौ दंडेन गुरुर्नवति । तथा दंडः पुरस्कृतः सदा पुरस्कृतदंडइत्यर्थः । सचैवंनूतः स्वस्य परेषां चास्मिन् लोकेऽस्मिन्नेव जन्मनि अहितः प्राणिनामहितदंडपातनात् तथा परस्मिन्नपि जन्मन्यसावहितस्तच्छीलतया चासौ यस्य कस्यचिदेव येन केनचिदेव निमित्तेन क्षणेक्षणे संज्वलयतीति संज्वलनः सचात्यंतक्रोधनोवधबंधनविछेदादिषु शीघ्रमेव क्रियासु प्रवर्तते तदनावेप्युत्कटद्वेषतया मर्मोद्घट्टनतः पृष्ठिमांसमपिखादेत्तत्तदसौ ब्रूयात् । येनासावपि परः संज्वलयेत् ज्वलितश्चान्येषामपकुर्यात् त

देवं खलु तस्य महादंडं प्रवर्तयितुस्तद्दंडप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माऽधीयते। तदेतद्दशमं क्रिया स्थानं मित्रद्रोहप्रत्ययिकमाख्यातमिति। अपरे पुनरष्टमं क्रियास्थानमात्मदोषप्रत्ययि कमाचक्षते. नवमंतु परदोषप्रत्ययिकंच. दशमं पुनः प्राणवृत्तिकं क्रियास्थानमिति ॥१८॥

अहावरे एक्कारसमे किरियाठाणे मायावत्तिएत्ति आहिज्जइ जे इमे नवंति गूढायारा तमोकसिया उलुगपत्तलहुया पव्वयगुरुया ते आयरियावि संता अणारियाउ नासाउवि पउज्जंति अन्नहासंतं अप्पाणं अन्नहामन्नंति अन्नंपुठा अन्नंवागरंति अन्नं आइक्कियव्वं अन्नंआइक्कंते॥१९॥से जहा णामए केइ पुरिसे अंतोसल्ले तं सल्लं णोसयं णिहरति णोअन्नेण णिहरावेंति णोपडिविद्धंसेइ एवमेव निण्हवेइ अविउट्टमाणे अंतोअंतोरियाइ एवमेव माई मायं कट्टु णोआलोएइ णोपडिक्कमेइ णोणिंदइ णोगरहइ णोविउट्टइ णोविसोहेइ णोअकरणाए अप्पुट्ठेइ णोअहारिहं तवोकम्मं पायछित्तं पडिवज्जइ माइ अस्सिंलोए पच्चायाइ माइ परंसिलोए पच्चायाइ निंदइ गरहइ पसंसइ णिच्चरइ णनियट्टइ णिसिरियं दंडंछाएति माइ असमाहडसुहलेस्सेयावि नवइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ एक्कारसमे किरियाठाणे मायावत्तिएत्ति आहिए॥२०॥

अर्थ—हवे अपर अगिआरमो क्रिया स्थानक मायाप्रत्ययिक कहियें ठेयें (जेइमे नवति के०) जे आ जगत्मांहे पुरुषठे ते कया पुरुष तोके, (गूढायारा के०) गूढा चारी एटले धूतारा, ठगारा, गंठीठेडा प्रमुखठे ते नाना प्रकारना उपाये करीने लोक नें विश्वास उपजावीने वचे. (तमोकसिया के०) अंधाराने विषे विचरनारा, अर्थात् लोक थकी ठाना क्रियाना करनारा, (उलुगपत्तलहुयाके०) ते पोतें जाते घूवडनी पांख थकी पण हलकाठे परंतु (पव्वयगुरुया के०) पोताने पर्वत थकी पण महोटा माने, (तेआयरियाविसंता के०) ते आर्य देशमां उत्पन्न थया होय तेम ठतां पण परने वंचवाने अर्थे शठ पणे, पोताने गोपववा नणी (अणारियाउनासाउविपउज्जंति के०) अनार्य देशनी नाषा बोले, अथवा पोतानी कल्पित नाषा जे बीजाथी अजाणी होय तेवी नाषा बोले, (अन्नहासंतं के०) लिपी पण तेवी अजाणी अन्य लखे (अप्पाणंअन्नहामन्नंति के०) पोतें वली बीजी रीते माने, (अन्नंपुठा के०) अन्य कांइ पुठे थके (अन्नंवागरति के०) अन्य कहे, (अन्नआइक्कियव्वं के०) अन्य कांहिं

एक प्ररूपवुंछे तेने ठेकाणे (अन्नंआइक्खंते के०) अन्य बीजुं कांइक जुदूंज प्ररूपे ॥ १ए॥ (सेजहाणामए के०) ते यथादृष्टांते नाम एवी संनावनायें जेम. (केइपुरिसे के०) कोइ एक पुरुष संग्राम थकी निकल्यो, (अंतोसल्ले के०) तीर नालादिकना शल्यें करी सशल्य ठतो (तंसल्लं के०) ते शल्यने (णोसयंणिहरति के०) वेदना थकी बीहितो थको पोतें पोताने हाथे काढे नही, (णोअन्नेणणिहरावेंतिके०) बीजाने हाथे पण कढावे नही, (णोपडिविद्धंसेइ के०) तथा वैद्यने उपदेशें औषधादिक प्रयोगें करीने पण ते शल्यनो विध्वंस थशे नही (एवमेव के०) एम जाणीने, (निएहवेइ के०) ते शल्यने गोपवी राखे. (अविउट्टमाणे के०) पुठ्यो थको कहे नही, (अंतोअंतोरियाइके०) ते डुःखें पीड्यो थको माहोमांहे डुःखी थाय, (एवमेव के०) एम ते (माइमायंकट्टु के०) मायावी पुरुष, माया शल्ये करीने तेणे जे कोइ अकार्य कस्था होय ते (णोआलोएइ के०) गुरु समक्ष आलोवे नही (णोपडिक्कमेइके०) पडिकमे नहीं (णोणिंदइ के०) आत्मानी साखें निंदे नहीं, (णोगरहइ के०) परसाक्षीक गर्हे नहीं (णोविउट्टइ के०) तेवा अकार्य करवा थकी निवृत्तिपामे नहीं (णोविसोहेइ के०) शुजनाव रूप पाणीयें करी ते अतिचारनुं कलंक पखाले नहीं, (णोअकरणाएअप्नुट्ठेइ के०) तेवा अकार्यने अणकरवाने उठे नहीं एटले अण करवानो उद्यम न करे, (णोअहारिहंतवोकम्मंपायच्छित्तपडिवज्जइ के०) यथायोग्य तप कर्म रूप प्रायश्चित पडिवजे नहीं. एरीतें (माइ के०) ते मायावी पुरुष (अस्सिंलोएपच्चायाइके०) आ लोकमांहे पण अविश्वासनी प्रसिद्धि पामे (माइपरंसिलोएपच्चायाइ के०) मायावी पुरुष परलोके नरकादिक पीडाना स्थानकने विषे वली वली अरहट्ट घटिकाने न्यायें गतिआगति करे, तथा मायावी पुरुष परनी (निंदइ के०) निंदा करे, (गरहइ के०) गर्हा करे (पसंसइ के०) अने पोतानी पोते प्रशंसा करे, (णिचरइ के०) अकार्यने विषे रती करे, (णनियट्टइ के०) अकार्य थकी निवर्त्ते नहीं (णिसिरियंदंमंछाएति के०) अकार्य करीने पोतानो अपराध ढांकी राखे एरीते (माइअसमाहड के०) मायावी पुरुष अपहारे एटले त्यागकरे; शेनो त्यागकरे? ते कहेठे. (सुहलेस्सेयाविनवइ के०) शुन लेश्यानो त्याग करे अने सर्व कालें अशुन लेश्यायें करी प्रवर्त्तमान थको होए एरीते निश्चे तेने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्तें सावद्य कर्मबंधाय. एटले अगीआरमो क्रिया स्थानक मायाप्रत्ययिक नामे कह्यो. ॥ २० ॥

---

॥ दीपिका—अथापरमेकादशं क्रियास्थानमाख्यायते । तद्यथा । ये केचनामी नवंति पुरुषाः । किंनूताः । गूढाचारागलकर्तकग्रंथिछेदकादयस्ते बहूपायैर्विश्वासमुत्पाद्य, विरू

पं कुर्वंति चंडप्रद्योतादेरभयकुमारादिवत् तमसि कपितुं शीलं येषांते तमःकपिणस्तएव तमःकाषिकाः पराविज्ञाताः क्रियाः कुर्वंतीत्यर्थः । तेच उलूकपिच्छवल्लघवोपि पर्वतवगुरुमात्मानं मन्यंते आर्याअपि संतस्ते परव्यामोहार्थमनार्यभाषा ( विउवंति ) प्रयुंजंते अन्यथा स्थितमात्मानमन्यथा साध्वाचारेण मन्यंते व्यवस्थापयंति अन्यत् पृष्टामायया ऽन्यदेव वदंति आम्रान् पृष्टा निंबान् वदंति । व्याकरणं पृष्टस्तदज्ञस्तर्कमवतारयति । यथा वा शरदि वाजपेयेन यजेतइत्यस्य वाक्यस्यार्थं पृष्टस्तदर्थानभिज्ञः कालविलंबार्थं शरत्कालमेव वर्णयति (अन्नमाइक्खियवंति) अन्यस्मिन्नर्थे कथयितव्येऽन्यमेवाख्यांति ॥ १९॥ ( सेजहेति ) तद्यथानाम कश्चित्पुरुष. संग्रामान्निर्गतेंऽतर्मध्ये शल्यं यस्य सोंतःशल्यः सवेदनाभीतः स्वयं शल्यं ननिर्हरति नरूपति नाप्यन्येन कर्षयति । नापि वैद्योपदेशादोषधप्रयोगैः प्रतिध्वंसयति विनाशयति अन्येन दृष्टस्तच्छल्यं निन्हुतेऽपलपति तेन शल्येन (अविउट्टमाणेत्ति ) पीड्यमानः ( अंतोअत्ति) मध्ये पीड्यमानोपि रीयते व्रजति वेदनां सहमानोपि क्रियासु प्रवर्त्ततइत्यर्थः । दृष्टांतं योजयति ( एवमेव मायीति ) यथा सशल्यो दुःखभाग्भवति एवमेव मायी, कृतं कार्यं निगूहयन् मायां कृत्वाऽन्यस्मै नालोचयति नकथयति न तस्मात्स्थानात्प्रतिक्रमति न निवर्त्तते न आत्मसाक्षिकं निंदति नापिपरसाक्षिकं गर्हति आलोचनार्हसमीपे गतोनापि च जुगुप्सते ( नविउट्टइत्ति ) न वित्रोटयत्यपनयति मायाशल्यं नविशोधयति नापि पुनस्तदाकरणतयाऽभ्युत्तिष्ठते नापि यथार्हं तपःकर्मरूपं प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यते । तदेवं मायावी अस्मिन् लोकेऽविश्वासतया प्रत्याख्यातिं याति । यदुक्तं । मायाशीलः पुरुषोयद्यपि, नकरोति किंचिदपराधं ॥ सर्पइवाऽविश्वास्यो भवति तथाप्यात्मदोषहतःइति ॥ तथा मायावी परस्मिन् लोके नरकतिर्यगादिषु प्रत्यायाति भूयोभूयोयाति ( निंदंगार्हयति ) परं निंदयित्वा आत्मप्रशंसया तुष्यति । एवंचासौ लब्धप्रसरोऽधिकं निश्चरति तथाविधानुष्ठायी भवति । तत्रच गृध्दस्तस्मान्मातृस्थानान्ननिवर्त्तते दंडं निसृज्य हिंसां कृत्वा प्रछादयत्यपलपति अन्यस्यवा मस्तके क्षिपति समायावी असमाहृतशुभलेश्योऽनंगीकृतशुभध्यानश्चापि भवति । एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं मायाशल्यप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते । एतदेकादशक्रियास्थानं मायाप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ २० ॥

---

॥ टीका—अथापरमेकादशं क्रियास्थानमाख्यायते । तद्यथा ये केचनामी भवंति पुरुषा. । किंविशिष्टाः । गूढाआचारायेषां ते गूढाचारागलकर्तकग्रंथिछेदादयस्तेच नानाविधैरुपायैर्विश्रंभमुत्पाद्य पश्चादपकुर्वंति प्रद्योतादेरभयकुमारादिवत् । तथा मायाशीलत्वेनाप्रकाशकचारिणस्तमसि कपितुं शीलं येषांते तमसिकापिणस्तएवच तमः

कापिकाः पराऽविज्ञाताः क्रियाः कुर्वंतीत्यर्थः । तेच स्वचेष्टयैवोलूकपत्रवल्लघवः कौशिक पिच्छवल्लघीयांसोपि पर्वतवद्गुरुमात्मानं मन्यंते । यदिवा कार्यप्रवृत्तेः पर्वतवन्नो स्तंभयितुं शक्यंते ते चाऽऽर्यदेशोत्पन्नाअपि संतः शाठ्यादात्मप्रच्छादनार्थमपरजयोत्पादनार्थं चाऽनार्यभाषाः प्रयुंजंते परव्यामोहार्थं स्वमतिपरिकल्पितभाषाभिरपराऽविदितामिर्भाषंते तथाऽन्यथाऽव्यवस्थितमात्मानमन्यथासाध्वाकारेण मन्यंते व्यवस्थापयंति तथाऽन्यत्पृष्टामातृस्थानतोऽन्यदाचक्षते । यथाम्रान् पृष्टाः कोविदारकानाचक्षते । वादकालेवा कश्चिन्न्यायवादितया व्याकरणे प्रवीणस्तर्कमार्गमवतारयति । यथावा शरदि वाजपेयेन यजेतेत्यस्य वाक्यस्यार्थं पृष्टस्तदर्थानभिज्ञः कालातिपातार्थं शरद्कालं व्यावर्णयति । तथाऽन्यस्मिंश्चार्थे कथयितव्येऽन्यमेवार्थमाचक्षते । तेषां सर्वार्थविसंवादिनां कपटप्रपंचचतुराणां विपाकोद्भवनाय दृष्टांतं दर्शयितुमाह ॥ २१ ॥ ( सेजहेत्यादि ) यथानाम कश्चित्पुरुषः संग्रामादपक्रांतोऽतर्मध्ये शल्यं तोमरादिकं यस्य सोंऽतःशल्यः सच शल्यघट्टनवेदनाभीरुतया तच्छल्यं न स्वतोनिर्हरत्यपनयति उद्धरति तथाप्यन्येन नोद्धारयति नापि तच्छल्यं वैद्योपदेशेनौषधोपयोगादिभिरुपायैः प्रतिध्वंसयति विनाशयति अन्येन केनचित्पृष्टोवाऽपृष्टो वातच्छल्यं निष्प्रयोजनमेव निन्हुतेऽपलपति तेन च शल्येनासावंतर्वर्तिना ( अविउट्टमाणेत्ति ) पीड्यमानः ( अंतोत्ति) मध्येमध्ये पीड्यमानोपि रीयते व्रजति तत्कृतां वेदनाम सहमानः क्रियासु प्रवर्ततइत्यर्थः । सांप्रतं दार्ष्टांतिकमाह । (एवमेवेत्यादि) यथाऽसौ सशल्योदुःखभाग्भवत्येवमेवासौ मायी मायाशल्यवानन्यत्कृतमकार्यं तन्मायया गूहयन् मायां कृत्वा न तां मायामन्यस्मै आलोचयति कथयति नापि तस्याः स्थानात्प्रतिक्रामति न ततोनिवर्तते नाप्यात्मसाक्षिकं तन्मायाशल्यं निंदति । तद्यथा धिङ्मां यदहमेवंभूतमकार्यं कर्मोदयात्कृतवांस्तथा नापि परसाक्षिकं गर्हति आलोचनार्हसमीपे गतोनापि च जुगुप्सते तथा ( नोविउट्टत्ति ) नापि तन्मायाख्यं शल्यमकार्यकरणात्मकं विविधमनेकप्रकारं त्रोटयत्यपनयति । यद्यस्यापराधस्य प्रायश्चित्तं तत्तेन पुनस्तदकरणतया निवर्त्तयतीत्यर्थः।नापि तन्मद्यादिकमकार्यं सेवित्वा लोचनार्हायात्मानं निवेद्य,तदकार्यकरणतयाऽभ्युत्तिष्ठते प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यापि नोद्युक्तविहारी भवतीत्यर्थः। तथा नापि गुर्वादिभिरभिधीयमानोपि यथार्हमकार्यनिर्वहणयोग्यं प्रायश्चित्तं शोधयतीति । प्रायश्चित्तं तपः कर्मविशिष्टं चांद्रायणाद्यात्मकं प्रतिपद्यते ऽभ्युपगच्छति । तदेवं मायया सत्कार्यप्रच्छादकोऽस्मिन्नेव लोके मायावीत्येवं सर्वकार्येष्वेवाविश्रंभणत्वेन प्रत्यायाति प्रख्यातिं याति तथाभूतश्च सर्वस्यापि विश्वास्योभवति । तथाचोक्तं । मायाशीलः पुरुषइत्यादि । तथातिमायावित्वादसौ परस्मिन् लोके जन्मांतराऽवाप्तौ सर्वाऽधमेषु यातनास्थानेषु नरकतिर्यगादिषु पौनःपुन्येन प्रत्यायाति भूयोभूयस्तेष्वेवारघट्टघटीयंत्रन्यायेन प्रत्यागच्छतीति

तथा नानाविधैः प्रपंचैर्वंचयित्वा. परं निंदति जुगुप्सते । तद्यथाऽयमज्ञः पशुकल्पोनानेन किमपि प्रयोजनमित्येवं परं निंदयित्वाऽत्मानं प्रशंसयति । तद्यथा ह्यसावपि मया वंचितइत्येवमात्मप्रशंसया तुष्यति । तथा चोक्तं । येनापत्रपते साधुरसाधुस्तेन तुष्यतीति । एवं चासौ लब्धप्रसरोऽधिकं निश्चयेन वा चरतीति तथाविधानुष्ठायी भवतीति निश्चरति । तत्रच गृद्धःसंस्तस्मान्मातृस्थानान्न निवर्तते तथासौ मायावलेपेन दंडं प्राप्युपमर्दकारणं निसृज्य पातयित्वा पश्चाच्छादयत्यपलपति अन्यस्य चोपरि प्रक्षिपतिसच मायावी सर्वदा वंचनपरायणः संस्तन्मनाः सर्वानुष्ठानेष्वेवंभूतोभवति । असमाहृताऽनंगीकृता शोभना लेश्या येन सतथार्त्तध्यानोपहततयाऽसावशोभनलेश्यइत्यर्थः । तदेवमपगतधर्मध्यानोसमाहितोशुद्धलेश्यश्चापि भवति । तदेवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं मायाशल्यप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माऽधीयते । तदेकादशं क्रियास्थानं मायाप्रत्ययिकं व्याख्यातं ॥ २० ॥

अहावरे वारस्समे किरियाठाणे लोभवत्तिएत्ति आहिज्जइ जे इमे भवंति तंजहा आरन्निया आवसहिया गामंतिया कण्हुईरहस्सिया णो बहुसंजया णोबहुपडिविरया सवपाणभूतजीवसत्तेहिं ते अप्पणो सच्चामोसाइं एवं विउंजंति अहं ण हंतवो अन्ने हंतवा अहं ण अज्जावेयवो अन्ने अज्जावेयवा अहं ण परिघेतवो अन्ने परिघेतवा अहं ण परितावेयवो अन्ने परितावेयवा अहं ण उद्दवेयवो अन्ने उद्दवेयवा एवमेव ते इत्थिकामेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया गरहिया अज्झोववन्ना जाव वासाइं चउपंचमाइं छद्दसमाइं अप्पयरोवा भुज्जयरोवा भुंजित्तुभोगभोगाइं कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु आसुरिएसु किब्बिसिएसु ठाणेसु उववत्तारो भवंति ततोविप्पमुच्चमाणे भुज्जोभुज्जो एलमूयत्ताए तमूयत्ताए जाइमूयत्ताए पच्चायंति एव खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ दुवालसमे किरियाठाणे लोभवत्तिएत्ति आहिए ॥ २१ ॥

अर्थ—हवे अपर बारमो क्रियास्थानक लोभप्रत्ययिक कहिए छैयें. ( जेइमेभवंति के० ) जे आगल कहेशे ते पुरुष कोण ? (तंजहा के०) ते कहेछे. ( आरन्निया के० ) अरण्यमां वसनारो, कंदमूलफलाहारी, वृक्षने मूले वसनारो, वली ( आवसहिया के० ) कोइएक पानडानी पर्णकूटी करीने तेमां रहे, ( गामंतिया के० ) तथा कोइएक आजीविका निमित्तें ग्रामने समीपे निवास करी रहे, ( कण्हुईरहस्सिया के० ) कोइएक का

येने विषे रहस्यना करनार, ए सर्व प्रायः त्रसजीवोनी विराधना नकरे परंतु एकेंद्रियनी विराधनायें उपजीवन करे, ( णोबहुसंजया के० ) ते घणा संयत नहीं, ( णोबहुपडि विरया के० ) घणी हिंसा थकी निवर्त्त्या नथी, एटले सर्व प्राणातिपात विरमणव्रतादि कने विषे न प्रवर्त्ते; किंतु? द्रव्य थकी केटलाएक व्रत पाले, अने सर्व विरतिनुं कारण जे सम्यक् दर्शनछे, ते गुण तेमांहे नथी ते कारणे, ( सव्वपाणभूतजीवसत्तेहिं के० ) सर्व प्राणी, भूत, जीव, अने सत्वथकी अविरत, हिंसा थकी अविरत (तेअप्पणो के०) ते पाखंमी पोते, ( सच्चामोसाइं के० ) घणां सत्यामृषावचन ( एवंविउंजंति के० ) एम आगल केशे. जेरीतें बोले तेज कहेछे. ( अहंणहंतव्वो के० ) हुं ब्राह्मण पणा थकी मने दंमादिकें हणवो नही, ( अन्नेहंतव्वा के० ) अन्य शुद्रादिकने हणवा. ( अ हंणअज्ञावेयव्वो के० ) तथा हुं वर्णोत्तम छुं, माटे मने आज्ञा करवी नहीं एटले मने कांइ आदेश आपवो नही. तथा (अन्नेअज्ञावेयव्वा के०) शुद्रादिक आज्ञापयितव्यछे एट ले तेमने आदेश आपवो. ( अहंणपरिघेतव्वो के० ) हुं वर्णोत्तमछुं, माटे मने बला त्कारें ग्रहण करवो नही, ( अन्नेपरिघेतव्वा के० ) अन्य शुद्रादिकने बलात्कारें ग्रह ण करवा. ( अहंणपरितावेयव्वो के० ) तथा मने परितापवो नही, ( अन्नेपरितावेय व्वा के० ) अन्य शुद्रादिकने परितापवा. ( अहंणउद्दवेयव्वो के० ) तथा मने उपद्रव करवो नही, तथा जीव, काया थकी रहित करवो नही, ( अन्नेउद्दवेयव्वा के० ) अन्य शुद्रादिकने उपद्रवो करवा. एम ते परपीडाना उपदेशना करनार मूढ, असंबंध प्रला पी (एवमेवतेइत्थिकामेहिंमुछिया के०) एरीते पूर्वोक्त प्रकारे ते मूढ परमार्थना अजाण थका स्त्रियादिकना कामभोगने विषे मूर्छित थका (गिद्धाके०) गृद्ध एटले ते कामभोगना अभि लाषी छता, ( गढिया के० ) कामभोगने विषे आसक्त छता (गरहिया के०) निंदवा योग्य, अत्यंत आसक्त छता ( अज्ञोववन्ना के० ) अध्युपपन्न एटले कामभोगने विषे एकाग्र चित्त थया छता ( जाववासाइंचउपंचमाइं के० ) यावत् चार पांच वर्ष सुधी अथवा ( छद्दसमाइं के० ) छ अथवा दश वर्ष एटलो काल तेमांहे ते तीर्थिक ( अप्पयरोवा के०) अल्पतर एटले अल्प काल सुधी ( भुज्जयरोवाके०) अथवा घणा काल सुधी घर वास छांमीने ( भुंजित्तुभोगभोगाइं के० ) वली काम भोग जे शब्दादिक विषयछे तेने धर्मने पाखमे भोगवीने, ( कालमासे कालंकिच्चा के० ) मरण प्रस्तावे काल करीने कांइ एक बालतपना प्रभावथी ( अन्नयरेसु आसुरिएसु किब्बिसिएसु ठाणेसु उववत्तारो भवं तिके०) तेने अनेरा आसुरिक किल्बिषीने स्थानकें उपजवुं थाय, ( ततोविप्पमुच्चमाणे के० ) ते स्थानकथी आयुष्यने क्षये चवीने ( भुज्जोभुज्जोएलमूयत्ताए के० ) वलीवली मनुष्य भव पामे, तोपण एल एटले बोडा, काणा, अथवा मूयत्ता एटले मुंगा तथा

(तमूयत्ताएजाइमूयत्ताएपच्चायंति के० ) ते जात्यंध एटले जन्म थकी अंध, तथा जन्म थकी बहेरा, एवा थाय. एम प्रत्यागच्छंति एटले फरीने आ लोकमां आवेछे. एरीते निश्चें थकी तेने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्ते सावद्य कर्म बंधाय. ए बारमो लोनप्रत्ययिक नामे क्रिया स्थानक कह्यो. ॥ २१ ॥

---

॥ दीपिका–एतान्येकादश क्रियास्थानानि सामान्येनाऽसंयतानां नवंति । इदंतु द्वादशं क्रियास्थानं पाखंडिकानुद्दिश्य कथ्यते ॥ अथापरं द्वादशं क्रियास्थानं लोनप्रत्ययिक माख्यायते । तद्यथा । यइमे नवंत्यारण्यकाअरण्यवासिनआवसथिकाउटजवासिनोग्रा मांतिकाग्रामादिकमुपजीवंतोग्रामस्यांते समीपे वसंतीति ( कएहुई ) क्वचित्कार्ये मंडल प्रवेशांदिके रहस्यं येपां ते क्वचिद्राहसिकास्तेच न बहुसंयतान सर्वसावद्यनिवृत्ताश्च प्राय इत्यर्थः । एतएव नं बहुविरतान सर्वव्रतपालकाः किंतु ? इव्यतः कतिपयव्रतानावतः स म्यक्त्वानावात् । एतदेवाह । (सव्वपाणेत्ति) ते आरण्यकादयः सर्वप्राणिनूतजीवसत्वेन्य आत्मना स्वतोविरताः सत्यामृषानूतानि वाक्यान्येवं वक्ष्यमाणनीत्या वियुंजंति विशेषे ण प्रयुंजंति कथयंतीत्यर्थः । तद्यथाहं ब्राह्मणत्वाद्दंडादिनिर्न हंतव्योऽन्येशूद्रत्वाद्धंतव्याः । तथा च तद्वाक्यं शूद्रं व्यापाद्य प्राणायामं जपेत् । तथा क्षुद्रसत्वानामनस्थिकानां शकटना रमपि व्यापाद्य ब्राह्मणं नोजयेदित्यादि । तथाहं न आज्ञापयितव्योऽन्येतु मत्तोऽधमाः स मापयितव्याः । नाहं परितापयितव्योऽन्ये परितापयितव्याः । अहं मूल्येन कर्मकरणा य न ग्राह्योऽन्ये ग्राह्याः । नाहमपद्रावयितव्योजीवितादपरोपयितव्योऽन्येत्वपद्रावयित व्याः । तदेवं तेषां परपीडोपदेशान्न प्राणातिपातविरतिव्रतमस्ति । उपलक्षणान्मृषावा दादत्तादानविरतिव्रतानावोपि ज्ञेयः । तुर्यव्रतमाश्रित्याह । (एवमेवत्ति) एवं पूर्वोक्त प्रकारेण स्त्रीषु कामेषु च मूर्छिताग्रृद्धाग्रथिताअध्युपपन्नाः । कियंतं कालमासक्ताइत्याह । ( जाववासाइत्ति ) यावद्वर्षाणि चतुःपंचषट्दशकानि । अयं च मध्यमः कालः । एताव त्कालग्रहणं च सानिप्रायं । प्रायस्तीर्थिकाअतिक्रांतवयसएव व्रजंति तेपां च एतावानेव कालः संनाव्यते । यदिवा मध्यग्रहणात्ततऊर्ध्वमधश्च गृह्यतइत्याह । तस्माच्च उपात्ता त्कालादल्पतरः प्रनूततरोवापि कालः स्यात् । तत्रच ते त्यक्त्वापि गृहवासं नुक्त्वापि नो गान् स्त्रीनोगान् स्त्रीनोगे सत्यवश्यं शब्दादयोनोगनोगास्तान् नुक्त्वा ते हि वयं प्रव्रजिता इति नच नोगेन्योनिवृत्ताअज्ञानित्वात्ते एवंनूतपरिणामाः कालमासे स्वायुःक्षये कालं कृत्वा विरुष्टतपसोपि आसुरिकेषु किल्बिषिकेषु स्थानेषूत्पादयितारोनवंति । तस्मादपि स्थानाद्विप्रमुच्यमानाश्च्युताएडमूकत्वेनोत्पद्यंते । यथा एडकोव्यक्तवाक् तथायमपि । (त मूयत्ताएत्ति ) तमस्त्वेन जात्यधतयाऽत्यंताज्ञानावृततया वा जातिमूकत्वेनापगतवा

चइह प्रत्यायांति । तदेवं तेषां तीर्थिकानां तत्प्रत्ययिकं सावद्यानुष्ठाननिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते । तदेतल्लोजप्रत्ययिकं द्वादशं क्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ २१ ॥

॥ टीका—एतानि चानर्थदंडादीनि एकादश क्रियास्थानानि सामान्येनाऽसंयतानां नवंति। इदंतु द्वादशं क्रियास्थानं पाखंडिकानुद्दिश्याऽनिधीयते (अहावरेइत्यादि) एकादशात् क्रियास्थानादनंतरमथापरं द्वादशं क्रियास्थानं लोजप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथा । य इमे वक्ष्यमाणाअरण्ये वसंत्यरण्यकास्ते च कंदमूलफलाहाराः संतः केचन वृक्षमूले वसंति, केचनावसथेपूटजाकारेषु गृहेषु, तथापरे ग्रामादिकमुपजीवंतोग्रामस्यांते समीपे वसंतीति ग्रामांतिकास्तथा क्वचित्कार्ये मंडलप्रवेशादिके रहस्यं येषांते क्वचिद्राहसिकास्तेच न बहुसंयतान सर्वसावद्यानुष्ठानेन्योनिवृत्ताः । एतडुक्तं नवति । नबाहुल्येन त्रसेषु दंडसमारंनं विदधति एकेंद्रियोपजीविनस्त्वविगानेन तापसादयोनवंतीति तथा न बहुविरता न सर्वेष्वपि प्राणातिपातविरमणादिषु व्रतेषु प्रवर्तंते किंतु? इव्यतः कतिपयव्रतव्रतिनोन नावतोमनागपि तत्करणस्य सम्यग्दर्शनस्यानावादित्यनिप्रायः । इत्येतदाविर्नावयितुमाह । (सव्वपाणेत्यादि) ते ह्यारण्यादयः सर्वप्राणिनूतजीवसत्वेन्यआत्मना स्वतोविरतास्तडुपमर्दकारंनादविरताइत्यर्थः। तथा पाषंडिकाआत्मना स्वतोबहूनि सत्यामृषानूतानि वाक्यान्येवं वक्ष्यमाणनीत्या विशेषेण युंजंति प्रयुंजंति ब्रुवतइत्यर्थः। यदि वासत्यान्यपि तानि प्राण्युपमर्दकत्वेन मृषानूतानि सत्यामृषाण्येवं ते प्रयुंजंतीति दर्शयति । तद्यथाऽहं ब्राह्मणत्वादंडादिनिर्न हंतव्योऽन्येतु शूद्रत्वाद्धंतव्याः । तथाहि । त द्वाक्यं । शूद्रं व्यापाद्य प्राणायामं जपेत् किंचि द्वा दद्यात् तथा कुद्रसत्वानामनस्थिकानां शकटनारमपि व्यापाद्य ब्राह्मणं नोजयेदित्यादि। अपरं चाहं वर्णोत्तमत्वात् नाज्ञापयितव्योन्येतु मत्तोऽधमाः समाज्ञापयितव्यास्तथा नाहं परितापयितव्योऽन्येतु परितापयितव्यास्तथाहं वेतनादिना कर्मकरणाय न ग्राह्योऽन्येतु शूद्राग्राह्याइति । किंबहुनोक्तेन नाहमुपद्रावयितव्योजीवितादपरोपयितव्योऽन्येतु अपरोपयितव्याइति । तदेव तेषां परपीडोपदेशनतोऽतिमूढतयाऽसंबद्धप्रलापिनामज्ञानावृतानामात्मंनरीणां विषमदृष्टीनां न प्राणातिपातविरतिरूपव्रतमस्त्यस्य चोपलक्षणार्थत्वात् मृषावादादत्तादानविरमणानावोप्यायोज्यः । अधुना त्वनादिनावान्यासाडुस्त्यजत्वेन प्राधान्यात् सूत्रेणैवाब्रह्माधिकृत्याह । (एवमेवेत्यादि) एवमेव पूर्वोक्तेनैव कारणत्वेनातिमूढत्वादिना परमार्थमजानास्ते तीर्थिकाः स्त्रीप्रधानाः कामाः स्त्रीकामाः । यदिवा स्त्रीषु कामेषु च शब्दादिषु मूर्छितागृद्धाग्रथिताअध्युपपन्नाः । अत्र चात्यादरख्यापनार्थं प्रनूतपर्यायग्रहणं । एतच्च स्त्रीषु शब्दादिषुच प्रवर्तनं प्रायः प्राणिनां प्रधानं संसारकारणं । तथा चोक्तं । मूलमेयमहम्मस्स महादोससमु

स्सयमित्यादि। स्त्रीसंगासक्तस्यावश्यंभाविनी शब्दादिविषयासक्तिरित्यतः स्त्रीकामग्रहणं। तत्र चासक्तायावंतं कालमासते तत्सूत्रेणैव दर्शयति । याव द्वर्षाणि चतुःपंचषड्दशकानि। अयंच मध्यमकालोगृहीतः । एतावत्कालोपादानं च सानिप्रायं प्रायस्तीर्थिकाअतिक्रांतवयसएव प्रव्रजंति तेषां चैतावानेव कालः संभाव्यते। यदिवा मध्यग्रहणात्ततऊर्ध्वं मधश्च गृह्यते इति दर्शयति । तस्माद्भोपाचादल्पतरः प्रभूततरोवापि कालोभवति । त त्रच ते त्यक्त्वापि गृहवासं भुक्त्वा भोगभोगान् इति स्त्रीभोगे सति अवश्यं शब्दादयोभोगाः भोगभोगास्तान्भुक्त्वा तेच किल वयं प्रव्रजिताइति नच भोगेभ्योविनिवृत्ताः । यतोमिथ्यादृष्टितया ज्ञानांधत्वात्सम्यग्विरतिपरिणामरहितास्तेचैवंभूतपरिणामाः स्वायुषः कालमासे कालं कृत्वा निकृष्टतपसोपि संतोऽन्यतरेष्वासुरिकेषु किल्बिषिकेषु स्थानेषूत्पादयितारोभवंति । ते ह्यज्ञानतपसा मृताअपि किल्बिषिकेषु स्थानेषूत्पत्स्यंते तस्मादपि स्थानादायुषः क्षयाद्विप्रमुच्यमानाश्च्युताः किल्बिषिकबहुलास्तत्कर्मशेषेणैलवन्मूकाएलमूकास्तन्नावेनोत्पद्यंते। किल्बिषिकस्थानाच्च्युतः सन्ननंतरभवे वा मानुषत्वमवाप्य यथैलमूकोऽव्यक्तवाक् समुत्पद्यतइति । तथा ( तममूयत्ताये त्ति) तमस्त्वेन जात्यंधतया अत्यंताऽज्ञानावृततया वा तथा जातिमूकत्वेनापगतवाचइह प्रत्यागच्छंतीति । तदेवंभूतं खलु तेषां तीर्थिकानां परमार्थतः सावद्यानुष्ठानादनिवृत्तानामाधाकर्मादिप्रवृत्तेस्तत्प्रायोग्यभोगभाजां तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते । तदेतल्लोभप्रत्ययिकं द्वादशं क्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ २१ ॥

इच्चियाइं डुवालस किरियाठाणाइं दविएणं समणेणवा माहणेणवा सम्मं सुपरिजाणिअव्वाइं नवंति ॥ २२ ॥

अर्थ—एरीते ए बारे क्रिया स्थानक तेने (दविएणं के०) मुक्ति गमन योग्य एवा जे श्रमण तथा ब्राह्मणो होय तेणे ( सम्मंसुपरिजाणिअव्वाइंनवंति के० ) सम्यक् प्रकारे संसारना कारण जाणीने. प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरवा ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—उपसंहारमाह । ( इच्चेइत्यादि) इत्येतान्यनर्थदंडादीनि द्वादश क्रियास्थानानि कर्मग्रंथिद्रावणाद्रवः संयमः संविद्यते यस्यासौ द्रविकस्तेन श्रमणेन साधुना मावधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य समाहनस्तेन सम्यक् सुपरिज्ञातव्यानि संसारकारणानीति ज्ञात्वा, परिहर्तव्यानि भवंति ॥ २२ ॥

॥ टीका—सांप्रतमेतेषां द्वादशानामप्युपसंहारार्थमाह । (इच्चेयाइत्यादि ) इतिरुपप्रद

र्शने । एतान्यनर्थदंडादीनि लोनप्रत्ययिकक्रियास्थानपर्यवसानानि द्वादश क्रियास्था नानि । कर्मग्रंथिद्रावणाद्भवः संयमः सविद्यते यस्यासौ द्रविकोमुक्तिगमनयोग्यतया वा द्रव्यनूतः श्रमणः साधुः । तमेव विशिनष्टि । माचधीरित्येवं प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनस्तेनैवंत गुणविशिष्टेनैतानि सम्यग्यथावस्थितवस्तुस्वरूपनिरुपणतोमिथ्यादर्शनाश्रितानि संसारका रणानीति कृत्वा ज्ञपरिज्ञया ज्ञातव्यानि प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहर्तव्यानि नवंतीति ॥१२॥

अहावरे तेरसमे किरियाठाणे इरियावहिएत्ति आहिज्जइ इह खलु अ त्तत्ताए संवुमस्स अणगारस्स इरियासमियस्स नासासमियस्स एस णासमियस्स आयाणनंममत्तणिरकेवणासमियस्स उच्चारपासवणखे लसिंघाण जल्लपारिठावणियासमियस्स मणसमियस्स वयसमिय स्स कायसमियस्स मणगुत्तस्स वयगुत्तस्स कायगुत्तस्स गुत्तिंदियस्स गुत्तबंनयारिस्स आउत्तंगच्छमाणस्स आउत्तंचिठमाणस्स आनुत्तंणि सियमाणस्स आउत्तंतुयट्टमाणस्स आउत्तंनुंजमाणस्स आउत्तंनास माणस्स आउत्तंवत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं गिण्हमाणस्सवा णि क्खिवमाणस्सवा जाव चक्खुपम्हणिवायमवि अत्थिविमाया सुहुमा किरि या इरियावहिया नाम कज्जइ सापढमसमए बद्धा पुठा बितीयसमए वेइया तइयसमए णिज्जिन्ना सावद्धा पुठा उदीरिया वेइया णिज्जिन्ना से यं काले अकम्मयावि नवंति एवं खलु तस्स तप्पतियं सावज्जंति आहि ज्जइ तेरसमे किरियाठाणे इरियावहिएति आहिज्जइ ॥ से बेमि जेयअ अतीता जेयपडुपन्ना जेयआगमिस्सा अरिहंता नगवंता सवेते एया इं चेव तेरसकिरियाठाणाइं नासिंसुवा नासेंतिवा नासिस्संतिवा पन्न विंसुवा पन्नवितिवा पन्नविस्सिंवा एवंचेव तेरसमं किरियाठाणं सेविंसु वा सेवंतिवा सेविस्संतिवा ॥ १३ ॥

अर्थ–हवे अपर तेरमो क्रिया स्थानक इरिया पथिक नामे कहिए बैए (इहखलुअ त्तत्ताए के० ) निश्चे आ जगत्मांहे आत्म नाव पामवाने अर्थे ( संवुमस्स के० ) मन, वचन, अने कायायें करी संवृत एटले संवर सहित एवा ( अणगारस्स के० ) साधुने इरियावहि क्रिया कहियें. ते साधुना गुण कहेले. ईर्यासमितिए समितो, नाषासमिति ए समितो, एषणासमितिए समितो, आदान नांम मात्रा निक्षेपण समितिए समि

तो, ( उच्चार एटले वडीनीत, अने पासवण एटले लघुनीत, खेलसिंघाणजल्ल एटले थूंक, बडखो, नाकनो मेल, श्लेष्म, शरीरनो मेल, तेने पारिठ्ठापन एटले परठववा रूप समितिए समितो, ( मणसमियस्स के० ) मनसमितवंत, ( वयसमियस्स के० ) वचनसमितवंत, ( कायसमियस्स के० ) कायसमितवंत, ( मणगुत्तस्स के० ) मनगुप्तें गुप्तो, ( वयगुत्तस्स के० ) वचनगुप्तें गुप्तो, ( कायगुत्तस्स के० ) कायगुप्तें गुप्तो, ( गुत्तिंदियस्स के० ) गुप्तेंद्रिय एटले इंद्रियोनो गोपवनार, ( गुत्तबंभयारिस्स के० ) गुप्त ब्रह्मचारी, एटले नववाडे विशुद्ध, ब्रह्मचर्यनो पालनार, ( आउत्तंगच्छमाणस्स के० ) उपयोग सहित सावधान पणे चालनार, ( आउत्तंचिठ्ठमाणस्सके० ) सावधान पणे उनो रहेनार, (आउत्तंणिसियमाणस्स के०) सावधान पणे बेसनार, (आउत्तंतुयट्टमाणस्स के० ) सावधान पणे शयन करनार, (आउत्तंभुञ्जमाणस्स के०) सावधान पणे नोजन करनार, ( आउत्तंनासमाणस्स के० ) सावधान पणे बोलनार, ( आउत्तंवत्थंपडिग्गहंकंबलंपायपुंछणंगिण्हमाणस्सवा के० ) सावधान पणे वस्त्र. पात्र, कांबल, पायपुंछणने लेतो, तथा ( णिक्खिवमाणस्सवा के० ) निक्षेप एटले तेने सावधान पणे मूकतो, तथा ( जावचक्खूपम्हणिवायमवि के० ) किंबहुना यावत् चक्षुनी पांपण एटले मिषोन्मिष मात्र, तें पण उपयुक्त पणे करतो, एवो जे साधु तेने एछे. ( सुहुमाकिरियाइरियावहियानामकज्जइ के० ) सूक्ष्मकिरिया इरियावहि नामे छे, परंतु ते क्रिया केवी छे, तोके (अहिविमायाके०) विविध प्रकारें जेनी मात्राछे एवी क्रियाछे ते लागे, ए क्रिया केवलीने पण लागे, कारणके केवली पण सयोगीछे ते सयोगी जीव तो एक क्षणवार पण अग्निना ताप मांहे पाणीनी पेरें निश्चल रही शके नही, ते कारणे इरियावहि क्रिया लागे. ( साके० ) ते क्रिया कषाय विना ( पढमसमए के० ) पहेला समयने विषे ( बद्धा के० ) बंधाय. ( पुठ्ठा के० ) फरशे, तथा ( बितीयसमएवेइया के० ) बीजा समयने विषे वेदाय एटले एनुं वेदवुं थाय, अने ( तइयंसमएणिज्जिन्ना के० ) त्रीजा समयने विषे निर्जराय एटले एनुं निर्जरवुं थाय, ते कहे छे. ( साबद्धा पुठ्ठाउदीरियावेइयाणिज्जिन्ना के०) ते क्रिया बंधाए, फरशाए, उदिराए, वेदाय, अने निर्जराए, जे कारण माटे कर्मबंधनी स्थिति कषायितछे ते इरियावहिना धणी होय तेने तें नथी. केमके, कषाय वालाने सांपरायिक कर्म बंधायछे. परंतु ते कषाय, इरियावहिवालाने नथी ए कारणे ते इरियावहि क्रिया ( सेयंकाले के० ) ते आगमिककालें त्रीजा समयने विषे (अकम्मयाविनवंति के०) अकर्मता पणे होय, एटले कर्म रहितपणे होय. तेथी वीतरागनेज इरियावहि क्रिया लागे. एरीतें निश्चें तेहने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्तें सावद्य कर्म बंधाय. ए तेरमो क्रिया स्थानक इरियावहि एवे नामे कह्यो. ॥ २३ ॥

ए तेर जे क्रियाना स्थानक छे ते मात्र एक श्रीवर्द्धमान स्वामियेंज नथी कह्या, किंतु? अन्य बीजा पण सर्व तीर्थंकरें कह्याछे. एवो नाव देखाडेछे. ( सेबेमि के० ) श्री सुधर्मस्वामि जंबूस्वामि प्रत्ये कहेछे के, में श्री महावीर पासेंथी सांनल्याछे जे पूर्वोक्त अर्थ, ते तुजने कह्या. ते अर्थ ( जेयअतीता के० ) अतीतकालें जे तीर्थंकर थया (जेयपडुपन्ना के०) तथा जे तीर्थंकर हमणा वर्त्तमान कालेंछे, वली (जेआगमिस्सा के०) जे आगमिककालें तीर्थंकर थशे, ( अरिहंता के० ) ते श्री अरिहंत पूजा सत्कार करवा योग्य, ( नगवंता के० ) ऐश्वर्यादिकगुण युक्त, ( सवेतेएयाइंचेव के० ) ते सर्व तीर्थ करें निश्चे थकी, ए ( तेरसकिरियाठाणाइं के० ) तेर क्रियाना स्थानक जेछे ते अतीतकालें नांख्या, वर्त्तमान काले नांखेछे,अने आगमिक काले नांखशे. विशेषे प्ररूप्या. विशेषें प्ररूपेछे, अने विशेषें प्ररूपशे. एम निश्चें ए तेरमो क्रिया स्थानक अतीतकालें सेव्यो, वर्त्तमान कालें सेवेछे, अने आगमिक कालें सेवशे. जेम जंबूद्वीपने विषे बे सूर्य सरखो प्रकाश करेछे, तथा जेम प्रदीप सरखुं अजवालुं करेछे, तेम तीर्थंकर पण त्रणेकालें वर्त्तमान छता, सरखो उपदेश आपेछे. ॥ २४ ॥

---

॥ दीपिका–अथापरं त्रयोदशं क्रियास्थानमीर्यापथिकं नाम आख्यायते । ईरणं ईर्या तस्यास्तया वा पंथाईर्यापथः सविद्यते यस्य तदीर्यापथिकं । एतच्च शब्दव्युत्पत्तिनिमित्तं । प्रवृत्तिनिमित्तंतु इदं । सर्वत्रोपयुक्तस्य निकषायस्य समीक्षितमनोवाक्कायक्रियस्य या क्रिया तया यत्कर्म तदीर्यापथिकं सैव वा क्रिया ईर्यापथिका । तस्याः स्वरूपमाह । (इहखलु इत्यादि,) आत्मनावार्थं संवृतस्याऽनगारस्य ईर्यादिकाभिः पंचभिः समितिभिर्मनोवाक्कायैः समितस्य तिसृभिर्गुप्तिभिर्गुप्तस्य, गुप्तेंद्रियस्य नवब्रह्मचर्यगुप्तिसहितब्रह्मचारिणश्च उपयुक्तं गच्छतस्तिष्ठतोनिषीदतस्त्वग्वर्तनां कुर्वाणस्य तथा उपयुक्तमेव वस्त्रं पतद्ग्रहं कंबलं पादपुंछनंवा गृह्णतोनिक्षिपतोवा यावच्चक्षुःपक्ष्मनिपातमपि उपयुक्तं कुर्वतः सतोप्यस्ति विद्यते विमात्रा विविधा मात्रा सूक्ष्मा क्रिया ईर्यापथिकानाम केवलिनापि क्रियते । यतः सयोगी जीवः क्षणमप्येकं निश्चलः स्थातुं नशक्तोऽतिवह्नितापयमानजलवत्कार्मणशरीरानुगतः सदा परिवर्तमानएवास्ते । ततः केवलिनोपि सूक्ष्मगात्रसंचाराः स्युस्तैश्च कर्म बध्यते तदीर्यापथिकं तस्य याऽवस्था सा क्रिया । (सापढमेति) निकषायिणा यत्कर्म बध्यते तत्प्रथमसमये बद्धं स्पृष्टं चेति तत्क्रियैव बद्धस्पृष्टेत्युक्ता । द्वितीयसमये वेदिताऽनुभूता तृतीयसमये निर्जीर्णा । केवलयोगनिमित्तं यत्कर्म बध्यते तस्य न सांपरायिकस्येव स्थितिः किंतु प्रकृतितः सातावेदनीयं तत् १, स्थितितोद्विसमया स्थितिकं २ अनुभावतः शुभानुभावमनुत्तरसुरसुखातिशायि ३ प्रदेशतो बहुप्रदेशमस्थि

बंधं बहुव्ययंच ४ । तदेवं सारक्रिया प्रथमसमये बद्धस्पृष्टा द्वितीयसमये उदिता निर्जी र्णा स्यात् । ( सेयंकालेत्ति ) एष्यत्काले आगामिनि तृतीयसमये तत्कर्मापेक्षया कर्मतापि नवति । एवं खलु तस्य वीतरागस्य तत्प्रत्ययिकमीर्याप्रत्ययिकं कर्माधीयते बध्यते । एतत्त्रयोदशं क्रियास्थानमाख्यातं । ये पुनस्तस्मादन्ये प्राणिनस्तेषां मिथ्यात्वाविरतिप्र मादकषाययोगनिमित्तः सांपरायिकोबंधः स्यात् । केवलयोगनिमित्तस्तु वीतरागस्यैव । सच द्विसमयस्थितिकइति ॥२३॥ सोहं ब्रवीमि येऽतीतायेच प्रत्युत्पन्नाये चागामिनोर्हतो नगवंतः सर्वे ते एतान्येव त्रयोदश क्रियास्थानानि अनाषिषुर्नाषंते नाषिष्यंतेच विपाक तः प्रज्ञापितवंतः प्रज्ञापयंति प्रज्ञापयिष्यंतिच । तथैतदेव त्रयोदशं क्रियास्थानं सेवित वंतः सेवंति सेविष्यंते च ॥ २४ ॥

---

॥ टीका—अथापरं त्रयोदशं क्रियास्थानमीर्यापथिकं नामाख्यायते । ईरणमीर्या त स्यास्तया वा पंथाईर्यापथस्तत्र नवमीर्यापथिकमेतच्च शब्दव्युत्पत्तिनिमित्तं । प्रवृत्तिनिमि त्तं त्विदं सर्वत्रोपयुक्तस्य निकषायस्य समीक्षितमनोवाक्कायक्रियस्य या क्रिया तया यत्कर्म तदीर्यापथिकं सैव वा क्रिया ईर्यापथिकेत्युच्यते । सा कस्य नवति किंनूता वा कीदृक्कर्मफ लावा इत्येतद्दर्शयितुमाह । ( इहखलुइत्यादि ) इह जगति प्रवचने संयमेवा वर्तमान स्य । खलुशब्दोऽवधारणेऽलंकारेवा । आत्मनोनावआत्मत्वं तदर्थमात्मत्वार्थं संवृतस्य मनोवाक्कायैः परमार्थतएवंनूतस्यैवात्मनावोऽपरस्य त्वसंवृतस्यात्मतत्त्वमेव नास्ति सद्भूतात्मकार्यकारणात् । तदेवमात्मार्थं संवृतस्यानगारस्येर्यापथिकादिनिः पंचनिः समितिनिर्मनोवाक्कायैः समितस्य तथा तिसृनिर्गुप्तस्य । पुनर्गुप्तिग्रहणमेतानिरेव गुप्तिनिर्गुप्तोनवतीत्यस्यार्थस्याविर्नावनायात्यादरख्यापनार्थं वेति । तथा गुप्तेंद्रियस्य नवब्रह्मचर्यगुप्त्युपेतब्रह्मचारिणश्च सततस्योपयुक्तं गछतस्तिष्ठतोनिषीदतोमुनेस्त्वक्वर्त नां कुर्वाणस्य तथोपयुक्तमेव वस्त्रं पतद्ग्रहं कंबलंवा पादपुंछनकं वा गृह्णतोनि क्षिपतोवा यावच्चक्षुः पक्ष्मनिपातमप्युपयुक्तं कुर्वतः सतोऽत्यंतमुपयुक्तस्याप्यस्ति विद्य ते विविधा मात्रा विमात्रा तदेवंविधा सूक्ष्माक्षिपक्ष्मसंचलनरूपादिकेर्यापथिकानाम क्रिया केवलिनापि क्रियते । तथाहि । सयोगी जीवोन शक्नोति क्षणमप्येकं निश्चलः स्यातुमग्निना ताप्यमानोदकवत्कार्मणशरीरानुगतः सदा परिवर्तयन्नेवास्ते । तथा चोक्तं । केवलीणं नंते अस्सिसमयं सिजेसु आगासयएसेसु इत्यादि । तदेवं केवलिनोपि सूक्ष्मगात्रसंचारान्नवंतीहच कारणे कार्योपचारात्तया क्रियया यद्बध्यते कर्म तस्य कर्मणो याअवस्थास्ताः क्रियाः । ताएव दर्शयितुमाह । ( सापढमसमयेइत्यादि ) यासाव काषिणः क्रिया तया यद्बध्यते कर्म तत्प्रथमसमयएव बद्धं स्पृष्टंचेति कृत्वा तत्क्रियैव बद्ध

स्पृष्टेत्युक्ता तथा द्वितीयसमये वेदितेत्यनुभूततृतीयसमयेऽतिजीर्णा । एतडुक्तं नवति। कर्मयोगनिमित्तं बध्यते तत्स्थितिश्च कषायायत्ता तदनावाच्च न तस्य सांपरायिकस्येव स्थितिः किंतु योगसद्भावाद्बध्यमानमेव स्पृष्टतां संश्लेषं याति । द्वितीयसमये त्वनुनूय ते तच्च प्रकृतितः सातावेदनीयं स्थितितोद्विसमयस्थितिकमनुनावतः शुनानुनावं अनुत्तरोपपातिकदेवसुखातिशायि देशतोबहुप्रदेशमस्थिरबंधं बहुव्ययंच । तदेवं सेर्या पथिका क्रिया प्रथमसमये बद्धस्पृष्टा द्वितीयसमये उदिता वेदिताऽतिजीर्णा नवति ( सेयंकालेत्ति ) आगामिनि तृतीयसमये तत्कर्मापेक्ष्या कर्मतापि च नवति । एवं ताव दीतरागस्येर्याप्रत्ययिकं कर्माधीयते संबध्यते । तदेतत्त्रयोदशं क्रियास्थानं व्याख्या तं। ये पुनस्तेन्योऽन्ये प्राणिनस्तेषां सांपरायिकोबंधस्तेतु यानि प्रागुक्तानीर्यापथवर्ज्यानि द्वादश क्रियास्थानानि तेषु वर्तंते तेषां तद्वर्तिनामसुमतां मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषा ययोगनिमित्तः सांपरायिकोबंधोनवति । तत्रच प्रमादस्तत्र कषायायोगाश्च नियमाद्भवं ति । कषायिणश्च योगायोगिनस्त्वेते नाज्याः । तत्र प्रमादकषायप्रत्ययिकोबंधोऽनेक प्रकारा स्थितिः । तद्रहितस्तु केवलयोगप्रत्ययिकोद्विसमयस्थितिरेवेर्याप्रत्ययिकइति स्थितं॥ २३ ॥ एतानि त्रयोदश क्रियास्थानानि नगवद्वर्धमानस्वामिनैवोक्तान्यपि त्वन्यै रपीत्येतद्दर्शयितुमाह । ( सेबेमीत्यादि ) सोहं ब्रवीमीति यत्प्रागुक्तं तद्वा ब्रवीमीति। तद्यथा । ये तेऽतिक्रांताऋषनादयस्तीर्थकृतोयेच वर्तमानाः क्षेत्रांतरे सीमंधरस्वामि प्रनृतयोये चागामिनः पद्मनानादयोऽर्हंतोनगवंतः सर्वेपि ते पूर्वोक्तान्येतानि त्रयोदश क्रियास्थानान्यनाषंतनाषंते नाषिष्यंतेच । तथा तत्स्वरूपतस्तद्विपाकतश्च प्ररूपितवंतः प्ररूपयंति प्ररूपयिष्यंतिच। तथैतदेव त्रयोदशं क्रियास्थानं सेवितवंतः सेवंते सेविष्यं तेच। तथाहि जंबूद्वीपे सूर्यद्वयं तुल्यप्रकाशं नवति । यथा वा सदृशोपकरणाः प्रदीपास्तु ल्यप्रकाशानवंत्येवं तीर्थकृतोपि निरावरणत्वात् कालत्रयवर्तिनोपि तुल्योपदेशानवंति॥२४

अडुत्तरंचणं पुरिसविजयं विनंगमाइक्खिस्सामि इह खलु णाणापण्णा णं णाणाछंदाणं णाणासीलाणं णाणादिठीणं णाणारूईणं णाणारंना णं णाणाश्रवसाणं संजुत्ताणं णाणाविहपावसुयाज्झयणं एवं नवइ॥२५॥ तंजहा नोमं उप्पायं सुविणं अंतलिक्खं अंगं सरं लक्खणं वंज णं इत्थिलक्खणं पुरिसलक्खणं हयलक्खणं गयलक्खणं गोणलक्खणं मिंढलक्खणं कुक्कडलक्खणं तित्तिरलक्खणं वट्टगलक्खणं लावयलक्ख णं चक्कलक्खणं उत्तलक्खणं चम्मलक्खणं दंमलक्खणं असिलक्खणं म

णिलरकणं कागिणिलरकणं ॥ २६ ॥ सुनगाकरं डुन्नगाकरं गप्राकरं मोहणकरं आहव्वाणिं पागसासणिं दवहोमं खत्तियविज्जं चंदचरियं सूरचरियं सुक्कचरियं वहस्सइचरियं उक्कापायं दिसादाहं मियचक्कं वायसपरिमंमलं पंसुवुट्ठिं केसवुट्ठिं मंसवुट्ठिं रूहिरवुट्ठिं वेतालिं अध्वेतालिं उसोवणिं तालुघाडणिं सोवागिं सोवरिं दामिलिं कालिंगिं गोरिं गंधारि उवतिणिं उप्पयणिं जंनणिं थंनणिं लेसणिं आमयकरणिं विसल्लकरणिं पक्कमणिं अंतध्धाणिं आयमिणिं एवमाइआउ विज्जाउ अन्नस्स हेउं पउंजंति पाणस्स हेउं पउंजंति वछस्स हेउं पउंजंति लेणस्स हेउं पउंजंति सयणस्स हेउं पउंजंति अन्नेसिंवा विरूवरूवाणं कामन्नोगाण हेउं पउंजंति तिरिछं तेविज्जं सेवेंति ते अणारिया विप्पडिवन्ना कालमासे कालं किच्चा अन्नयराइं आसुरियाइं किव्बिसियाइं ठाणाइं उववत्तारो नवंति ततोवि विप्पमुच्चमाणा नुज्जोएलमूयताए तमअंधयाए पच्चायंति ॥ २७ ॥

अर्थ—हवे जे कांइ ए तेरमां क्रियास्थानकने विषे पाप न कह्युं, ते कहेछे. (अडुत्तरंचणं के०) जे कांइ तेरमां क्रियास्थानकने विषे नकेवाणुं ते आगले ग्रंथे कहिए छैए (पुरिसविजयंविन्नंगेमाइरिकस्सामिके०) हवे पुरुषविचय अथवा पुरुषविजय एटले केटला एक अल्पसत्ववंत पुरुषनो विन्नंग एटले ज्ञानक्रियाविशेष कहीशुं ( इहखलु के० ) आ मनुष्य क्षेत्रने विषे निश्चें थकी (णाणापन्नाणं के०) नाना प्रकारनी जेनी प्रज्ञाछे तथा (णाणाछंदाणं के०) नाना प्रकारें जेनो अनिप्रायछे ( णाणासीलाणं के० ) नाना प्रकारें जेनो आचारछे (णाणादिट्ठीणं के०) नाना प्रकारें जेनी दृष्टीछे एतावता त्रणशेंने त्रेसठ जेनुं प्रमाणछे. तेकारणे नाना दृष्टिना जाणवा (णाणारूईणं के०) आहार, विहार, शयन, आचरण, यान, वाहन, गीत, अनें वाजित्रादिकनेविषे जुदी जुदी जेनी रुचिछे. (णाणारंनाणं के० ) तथा नाना प्रकारना जेना आरंन एटले कर्षण, पशुपालन, शिल्पकर्म, इत्यादिक जेने आरंनछे. ( णाणाश्चवसाणं के० ) नाना प्रकारना शुनाशुन अध्यवसाय तेणेकरी (संजुत्ताणं के० ) सहित जे वर्त्तेछे. ( णाणाविहपावसुयाश्चयणं के० ) तेना ए आगलजे केहेशे ते प्रमाणे, नाना प्रकारें पापश्रुताध्ययन ( एवंनवइ के० ) एम होय. ॥२५॥ (तंजहा के०) ते कहेछे. (नोमं के०) नूमिनिर्घात एटले नूमिकंपादिक जे ग्रंथ

कह्याछे, तथा ( उप्पायं के० ) उत्पातिक, कपिहसितादिक, तथा आकाश थकी रुधिरवृष्ट्यादिक ( सुविणं के० ) स्वप्नते रात्रीने विषे गजवृषनादिक दर्शन, ( अंतलिरकं के०) उल्कापात मेघ वृष्ट्यादिक तथा ( अंग के० ) अंग नेत्र बाहु स्फुरणादिक, ( सरं के० ) काकशिवादिक स्वर विचारणा, ( लरकणं के० ) पद्म, यव, शंख, चक्रादिक लक्षण, ( वंजणं के० ) मस तिलकादिक, ( इछिलरकणंपुरिसलरकणं के० ) स्त्रीलक्षण, तथा पुरुषना लक्षण, ते सामुद्रिकादिक प्रसिद्धछे. ( हयलरकणं के०) घोडाना लक्षण, (गयलरकणंके०) हाथीना लक्षण, (गोणलरकणं के०) गौ वृषनना लक्षण, ( मिंढलरकणं के० ) मिंढाना लक्षण, (कुकडलरकणंके०) कुकडाना लक्षण, (तित्तिरलरकणं के० ) तित्तिरपक्षीना लक्षण, ( वट्टगलरकणं के० ) वर्तकना लक्षण, ( लावयलरकणं के० ) लावकना लक्षण, ( चक्कलरकणं के० ) चक्रना लक्षण, (छत्तलरकणंके०) छत्रना लक्षण, ( चम्मलरकणं के० ) चर्मना लक्षण, ( दंमलरकणं के० ) दंमना लक्षण ( असिलरकणं के० ) खड्गना लक्षण, ( मणिलरकणं के० ) मणि चंद्र सूर्यकांतादिकना लक्षण, ( कागिणिलरकणं के० ) कागिणिना लक्षण, एवीरीते एना प्ररूपक शास्त्र जाणवां. ॥ २६ ॥ हवे मंत्रविद्या कहेछे. ( सुनगाकरं के० ) जे थकी दुर्भाग्य वंत प्राणी सौनाग्य वंत थाय. ( दुप्नगाकरं के०) जेथकी सौनाग्य वंत प्राणी दौर्नाग्यवंत थाय. ( गप्नाकरं के० ) जे विद्याने बले गर्नाधान ऊपजे तेवी विद्या, ( मोहणकरं के० ) लोकने व्यामोह ऊपजे तथा वेदनो उदय दीपे, ( आहव्वणिं के० ) आथर्वणीविद्या एटले तत्काल अनर्थनी करनारी विद्या, ( पागसासणिं के० ) इंद्रजाल विद्या, ( दव्वहोमं के० ) मधु घृतादिक द्रव्य, उच्चाटनादिक कार्य निमित्तें होमीए ते द्रव्यहोम जाणवो ( खत्तियविज्जं के० ) क्षत्रीनी धनुर्विद्यादिक विद्या, ( चंदचरियं के० ) चंद्रमानु चरित्र चंद्रमानोवार जाणे (सूरचरियंके०) सूर्यनुं चरित्र सूर्यनो वार जाणे, (सुक्कचरियं के०) शुक्रनुं चरित्र शुक्रनो वार जाणे, (वहस्सइचरियंके०) बृहस्पतिनुं चरित्र बृहस्पतिनो वार जाणे, एवं नवग्रह चरित्र ते ज्योतिष शास्त्र प्रसिद्ध जाणवुं. तथा ( उक्कापायं के०) उल्कापात, ( दिसादाहं के० ) दिग्दाह ( मियचक्कं के०) आरण्यक जीव तेनो ग्राम नगरने विषे प्रवेश करतां दर्शनथाय, अथवा शब्द शुनाशुन चिंतवियें ते मृगचक्र कहिए. ( वायसपरिमंमलं के०) काकादिक पक्षीना शब्दादिकनो विचार कहे एवीविद्या ( पंसुवुट्ठिं के०) पंशु धूल वृष्टि, ( केसवुट्ठिं के० ) केश वृष्टि, ( मंसवुट्ठिंके०) मांस वृष्टि, (रुहिरवुट्ठिं के०) रुधिरवृष्टि, तेनुं शुनाशुन फल, जे शास्त्रने विषे चिंतवियें. ते शास्त्रो ( वेतालिं के० ) वेतालि नामे विद्या केटला एक अक्षर प्रमाणछे ते केटला एक दिवस जपतां अचेतन काष्ठ माहें चेतन उगाडे ( अद्धवेतालिं के०) ते दंमने उपशमावे,

(उसोवणिंके०) उपस्वापिनी विद्या, (तालुग्घाडणिंके०) ताला उघाडवानी विद्या; ताळो दूघट्टनी (सोवागिं के० ) चांम्दालिणीश्वापकी विद्या, (सोवरिंके० ) शांबरी विद्या. (दामिलिंके०) डाविडीविद्या (कालिंगिंके०) कालिंगी विद्या, (गोरिंके०) गोरी विद्या (गंधारिंके० ) गांधारी विद्या, ( उवतिणिं के० ) अवपतनी नीचे पाडवानी विद्या, (उप्पयणिं के०) उत्पतनी एटले उंचे जवानी विद्या. (जंनणिंके०) जृंनणी विद्या, ( थंनणिंके०) स्तंननी विद्या ( लेसणिं के० ) श्लेषनी विद्या ( आमयकरणिं के० ) आमय करणी विद्या ( विसल्लकरणिं के० ) विशल्य करणी विद्या ( पक्कमणिं के०) प्रक्रामणी फेर चडावानी विद्या (अंतद्धाणिं के० ) अदृश्य करणि विद्या (आयमणिं के० ) आत्मणी विद्या, ( एवमाइआउविज्जाउ के० ) इत्यादिक विद्याउ आदि शब्दथकी प्रज्ञप्त्यादिक विद्याउ लेवी ते विद्याउने जे शास्त्रो थकी जाणीयें. तेवां शास्त्रो नणीने पाखंमी, परदर्शनी अथवा गृहस्थ, अथवा स्वपक्षीक इव्यलिंगी साधु ते ए पूर्वोक्त विद्याउने ("अन्नस्सहेउं के० ) अन्नने अर्थे ( पउंजंति के० ) प्रयुंजे ( पाणस्सहेउंपउंजंति के०) पाणीने अर्थे प्रयुंजे ( वत्थस्सहेउंपउंजंति के० ) वस्त्रने अर्थे प्रयुंजे ( लेणस्सहेउंपउंजंति के० ) उपाश्रयने अर्थे प्रयुंजे ( सयणस्सहेउंपउंजंति के० ) शयनने अर्थे प्रयुंजे ( अन्नेसिंवाविरूवरूवाणंकामनोगाणहेउंपउंजंति के० ) अथवा बीजा नाना प्रकारना कामनोगने अर्थे प्रयुंजे ते पुरुष ( तिरिच्छं तेविज्जंसेवेंति के० ) तिरच्छि एटले रुडा अनुष्ठाननी हणनारी एवी ते विद्याने सेवे ( तेअणारियाविप्पडिवन्ना के० ) ते अनार्य जाणवा. यद्यपि क्षेत्रें करी अने नाषायें करी तो आर्यछे तथापि, मिथ्यात्वना आसेवन थकी, अनार्य कर्मना करनार, अनार्य, अनाचारी, केवाय ते ( कालमासे कालंकिच्चा के० ) आयुष्यने क्षये कालने अवसरे काल करीने अज्ञान तपने प्रमाणे यद्यपि देवलोकें जाय तथापि ते,(अन्नयराइं आसुरियाइं किव्विसियाइं ठाणाइं च ववत्तारो नवंति के०) तेउनुं अनेरा आसुरी किल्विषिकादिक स्थानकोने विषे उपजवुं थाय. (ततोविविप्पमुच्चमाणाके०) त्यां थकी चवीने (जुज्जोके०)वली मनुष्यमां उपजतो केवा थाय तोके (एल के० ) बेरा थाय. ( मूयताए के० ) मुंगा थाय, ( तम अंधयाए के० ) आंधला एवा ते जीव थाय. त्यार पछी ( पच्चायंति के० ) नरक तिर्यचादिक गतिने विषे परिभ्रमण करे; अधर्मपक्ष आश्री एटले व्रतधारीने पापनो विपाक कह्यो. हवे गृहस्थ उद्देशिने अधर्म पक्ष कहेछे. ॥ २७ ॥

॥ दीपिका–सांप्रतं त्रयोदशसु क्रियास्थानेषु यन्नोक्तं पापस्थानं तदाह । इदमुत्तरं अस्मात्क्रियास्थानप्रतिपादनादुत्तरं यदत्र नोक्तं तदुत्तरग्रंथेनोच्यते । चसमुच्चये । एं

वाक्यालंकारे । पुरुषाविचीयंते मृग्यंते येन सपुरुषविचयः पुरुषविजयोवा अल्पसत्वानां केषांचित्पुरुषाणां ज्ञानलवेनार्थानुबंधिना विजयस्तस्य विभंगं ज्ञानविशेषं चाख्यास्यामि । याहृशानां चासौ विभंगः स्यात्तानाह । ( इहखलुइत्यादि ) इह जगति नानाप्रज्ञाविचित्रमतयः पुरुषानानाछंदाविचित्राभिप्रायानानाशीलानानारूपादृष्टिरंतः करणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा तेषांच त्रीणि शतानि त्रिषष्ट्यधिकानीति प्रमाणं ज्ञेयं । तथा नानारुचीनां नानारंभाणां नानाध्यवसायसंयुतानां इह लोकप्रतिबद्धानां परलोकपराङ्मुखानां तेषां नानाविधं पापश्रुताध्ययनं भवति ॥ २५ ॥ तद्यथा । भूमौ भवं भौमं निर्घातभूकंपादिकं उत्पातं कपिहसितादि स्वप्नं गजादि, आंतरिक्षं मेघादि, आंगं बाहुनेत्रस्फुरणादि, स्वरलक्षणं काकस्वरादिलक्षणं, मत्स्ययवश्रीवत्सादि व्यंजनं तिलमाषादि स्त्रीलक्षणं रक्तपाणिपादादिकं । एवं पुरुषहयगजगोमिंढकुक्कुटतित्तिरवर्तकलावकचक्रछत्रचर्मदंडासिमणिकाकिणीरत्नलक्षणानि ॥ २६ ॥ सुभगमाकरोति सुभगाकाराविद्या, दुर्भगमाकरोति दुर्भगाकारा, गर्भकरा मोहनकरा आथर्वणी अथर्वणाख्या, सद्योऽनर्थकारिणी विद्या पाकशासनी इंद्रजालविद्या कणवीरपुष्पादिभिर्द्रव्यैरुच्चाटनादिकार्यैर्होमोयस्यां सा द्रव्यहोमा, क्षत्रविद्या धनुर्वेदादिका, तामधीत्य प्रयुंजते । ज्योतिषविद्यामाह । (चंदचरियमित्यादि) चंद्रचरित्रं, नक्षत्रयोगराहुग्रहणादिकं सूर्यचरित्रं, तथैव शुक्रबृहस्पतिचरितं उदयास्तवर्षकालादि । उल्कापातदिग्दाहमंडलविचारेण शुभाशुभकारिणोमृगाहरिणशृगालादयआरण्यास्तेषां दर्शनं ग्रामप्रवेशादौ शुभाशुभं यत्र चिंत्यते सग्रंथोपि मृगचक्रं वायसादीनां पक्षिणां स्थानस्वरादिकं शुभाशुभं चिंत्यते तद्वायसपरिमंडलं पांसुकेशमांसरुधिरवृष्टयोऽनिष्टफलायत्र शास्त्रे चिंत्यंते तत्तन्नाम. तथा वैतालीविद्या सा च किल कतिभिर्जपैर्दंडमुत्थापयति । अर्धवैताली तं दंडमुपशमयति । उपस्वापिनी, तालोद्घाटनी, श्वपाकी, शांबरी, द्राविडी, कालिंगी, गौरी, गांधारी, अवपतनी, उत्पतनी, जृंभणी, स्तंभनी, श्लेषणी, आमयकरणी, विशल्यकरणी, प्रक्रामणी, अंतर्धानकरणी इत्यादिका विद्या अधीयते । आदिशब्दात्प्रज्ञप्त्यादयोग्राह्याः । एताश्च विद्याः पाखंडिकागृहस्थावा सयूथ्याद्रव्यलिंगधारिणोवा अन्नपानवस्त्रलयनशयनार्थं प्रयुंजंति अन्येषां वा विरूपरूपाणां विचित्राणां कामभोगानां कृते प्रयुंजंति । सामान्येन विद्यासेवनमनिष्टमित्याह । ( तिरिमिति ) तिरश्चानामननुकूलां सदनुष्ठानप्रतिघातकारिणीं तेऽनार्याविप्रतिपन्ना विद्यां सेवंते तेच यद्यपि क्षेत्रार्याभाषार्यास्तथाप्यनार्यकर्मकारित्वादनार्याएव ज्ञेयाः । तेच कालमासे मरणावसरे कालं कृत्वा यदि कथंचिद्देवलोकगामिनोभवंति ततोन्यतरेषु आसुरीयकेषु किल्बिषिकादिस्थानेषु उत्पत्स्यंते ततोपि विप्रमुक्ताश्च्युतायदि मनुष्येषूत्पद्यंते तदा एडमूकत्वेनाऽव्यक्तभाषित्वेन तमस्त्वेनांधतया मूकतयावा प्रत्यायांति ततोनरकतिर्यगादिषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥

॥ टीका—सांप्रतं त्रयोदशसु क्रियास्थानेषु यन्नाभिहितं पापस्थानं तद्भिन्नणिषुराह । (अडुत्तरमित्यादि) अस्मात्त्रयोदशक्रियास्थानप्रतिपादनाडुत्तरं यत्र न प्रतिपादितं त दुधुनोत्तरनूतेनानेन सूत्रसंदर्भेण प्रतिपाद्यते । यथाऽऽचारे प्रथमश्रुतस्कंधे यन्नाभिहितं तडुत्तरनूतानिश्चूलिकाभिः प्रतिपाद्यते । तथा चिकित्साशास्त्रे मूलसंहितायां श्लोक स्थाननिदानशारीरचिकित्सितकल्पसंज्ञकायां कार्यं यन्नाभिहितं तडुत्तरेऽनिधीयते एवमन्य त्रापि छंदःस्वित्यादावुत्तरसन्नावोऽवगंतव्यः । तदिहापि पूर्वेण यन्नाभिहितं तदनेनोत्तरग्रं थेन प्रतिपाद्यतइति । च समुच्चये । णमितिवाक्यालंकारे । पुरुषाविचीयंते मृग्यंते वि ज्ञानद्वारेणान्वेष्यंते येन सपुरुषविचयः पुरुषविजयोवा केषांचिदल्पसत्वानां तेन ज्ञानब लेनावधिप्रयुक्तेनानर्थानुबंधेनाविजयादिति । सच विभंगवदवधिविपर्ययवद्भिंगोज्ञानवि शेषः पुरुषविचयश्चासौ विभंगश्च पुरुषविचयविभंगस्तमेवंनूतं ज्ञानविशेषमाख्यास्यामि प्र तिपादयिष्यामि । यादृशानां चासौ नवति तांल्लेशतः प्रतिपादयितुमाह । (इह खलुइ त्यादि) इह जगति मनुष्यक्षेत्रे प्रवचने वा नानाप्रकाराविचित्रक्षयोपशमात् प्रज्ञायतेऽन येति प्रज्ञा सा विचित्रा येषां ते नानाप्रज्ञास्तया वाऽल्पाल्पतराल्पतमया चिंत्यमानाः पुरुषाः षट्स्थानपतितानवंति । यथा छंदोऽनिप्रायः सनानायेषां ते तथा तेषां नानाशी लानां तथा नानारूपा दृष्टिरंतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा तेषामिति । तेषांच त्रीणि श तानि षष्ठ्यधिकानि प्रमाणमवगंतव्यं । तथा नाना रुचिर्येषां ते नानारुचयः । तथा हि । आहारविहारशयनासनाछादनानरणयानवाहनगीतवादित्रादिषु मध्ये ऽन्यस्यान्यारु चिर्नवति तेषां नानारुचीनामिति । तथा नानारंनाणां कृषिपाशुपाल्यविपणिशिल्पिक मैसेवादिष्वन्यतरमारंनेणेति । तथा नानाध्यवसायसंयुतानां शुनाध्यवसायनाजां इह लोकमात्रप्रतिबद्धानां परलोकनिष्पिपासानां विषयतृषितानामिदं नानाविधं पापश्रुताध्य यनं नवति ॥२५॥ तद्यथा नूमौ नवं निर्घातनूकंपादिकं, तथोत्पातं कपिहसितादिकं, त था स्वप्नं गजवृषनसिंहादिकं, तथांऽतरिक्षं मेघादिकं, तथांगे नवमांगं अक्षिबाहुस्फुर णादिकं, तथा स्वरलक्षणं काकस्वरगंनीरस्वरादिकं तथा लक्षणं यवमत्स्यपद्मशंखच क्रश्रीवत्सादिकं व्यंजनं तिलकमाषादिकं, तथा स्त्रीलक्षणं रक्तकरचरणादिकं, एवंपुरुषा दीनां काकिणीरत्नपर्यंतानां लक्षणप्रतिपादकशास्त्रपरिज्ञानमवगंतव्यं ॥२६॥ तथा मंत्रवि शेषरूपाविद्याः तद्यथा। डुर्नगमपि सुनगमाकरोमि सुनगकारां, तथा सुनगमपि डुर्नगमा करोमि डुर्नगकारां, तथा गर्नकरां गर्नाधानविधायिनीं तथा मोहोवेदादयोवा तत्करण शीलामाथर्वणानिधानां सद्योऽनर्थकारिणीं विद्यामनीधीयते तथा पाकशासनीमिंद्रजाल संज्ञिकां तथा नानाविधैर्द्रव्यैः कणवीरपुष्पादिनिर्मधुघृतादिनिर्वा नटनादिकैः कार्यहो मोहवनं यस्यां साड्व्यहवना तां तथा क्षत्रियाणां धनुर्वेदादिकापरा या या स्वगोत्रक्रमे

णायाता तामधीत्य प्रयुंजते । तथा नानाप्रकारं ज्योतिषमधीत्य व्यापारयतीति दर्शयति ( चंदचरियमित्यादि ) चंद्रस्य ग्रहपतेश्चरितं चंद्रचरितमिति । तच्च वर्णसंस्थानप्रमाण प्रनानक्षत्रयोगराहुग्रहादिकं । सूर्यचरितंत्विदं । सूर्यस्यमंडलपरिमाणराशिपरिन्नोगोद्यो तावकाशराहूपरागादिकं । तथा शुक्रचारोविथीत्रयचारादिकस्तथा बृहस्पतिः शुनाशुन्न फलप्रदः संवत्सरराशिपरिन्नागादिकश्च तथोल्कापातादिग्दाहाश्च वायव्यादिषु मंडलेषु नवंतः शस्त्राग्निक्षुत्पीडाविधायिनोन्नवंति । तथा मृगाहरिणसृगालादयश्चारण्यास्तेषां द र्शनरुतं ग्रामनगरप्रवेशादौ सति शुनाशुन्नं यत्र चिंत्यते तन्मृगचक्रं । तथा वायसादीनां प क्षिणां यत्र स्थानादिकं स्वराश्रयेणाऽशुन्नफलं चिंत्यते तद्वायसपरिमंडलं । तथा पांसु केशमांसरुधिरादिवृष्टयोऽनिष्टफलदायत्र शास्त्रे चिंत्यंते तत्तदनिधानमेव नवति । त था विद्यानानाप्रकाराः क्षुद्रकर्मकारिण्यस्ताश्चेमाः । वैतालीनामविद्या । नियताक्षरप्रतिब द्धा । साच किल कतिनिर्जपैर्दंडमुत्थापयति तथार्धवैताली तमेवोपशमयति । तथोपस्वा पिनी तालोद्घाटनी श्वापाकी शांबरी तथा परिद्राविडी कालिंगी गौरी गांधार्यवपतन्युत्पत नीजृंनणी स्तंननी श्लेषणी आमयकरणी विशल्यकरणी प्रक्रामण्यंतर्धानकरणीत्येवमादि काविद्याअधीयंते । आसां चार्थः संज्ञातोऽवसेयइति न वरं । स्वापिनीद्राविडीकालिंग्य स्तद्देशोन्नवास्तन्नाषानिबद्धावा चित्रफलाः । अवपतनी तुजपत्स्वतएवपतत्यन्यं वापात यत्येवमुत्पतन्यपि इष्टव्या । तदेवमेवमादिकाविद्या । आदिग्रहणात्प्रज्ञप्त्यादयो गृह्यंते। एताश्च विद्याः पाषंडिकाअविदितपरमार्थागृहस्थावास्वयूथ्यावाद्रव्यलिंगधारिणोन्नपा नाद्यर्थं प्रयुंजंति अन्येषां वा विरूपाणामुच्चावचानां शब्दादीनां कामन्नोगानां कृते प्रयुं जंति । सामान्येन विद्यासेवनमनिष्टकारीति दर्शयितुमाह । ( तिरिच्छमित्यादि ) तिरश्ची नामननुकूलां सदनुष्ठानप्रतिपादिकां घातिकां ते अनार्यविप्रतिपन्ना विद्यां सेवंते । तेच य द्यपि क्षेत्रार्यन्नाषार्या स्तथापि मिथ्यात्वहतबुद्धयोऽनार्यकर्मकारित्वादनार्याएव इष्टव्या स्तेच स्वायुषःक्षये कालमासे कालंकृत्वा यदि कथंचिद्देवलोकगामिनोन्नवंति ततोऽन्यतरे षु आसुरीयकेषु किल्बिषिकादिषु स्थानेषूत्पत्स्यंते ततोपि विप्रमुक्ताश्च्युतायदिवा मनुष्ये षूत्पत्स्यंते तत्रच तत्कर्मशेषतयैडमूकेनाव्यक्तनाषिणस्तमस्त्वेनांधतया मूकतया वा प्र त्यागर्च्छति ततोपि नानाप्रकारेषु यातनास्थानेषु नरकतिर्यगादिषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥

से एगईउ आयहेउंवा णायहेउंवा सयणहेउंवा आगारहेउंवा परि वारहेउंवा नायगंवा सहवासियंवा णिस्साए अडुवा अणुगामिए अडुवा उवचरए अडुवा पडिपहिए अडुवा संधिछेदए अडुवा गंठिछे दए अडुवा उरब्भिए अडुवा सोवरिए अडुवा वागुरिए अडुवा सोन

णिए अहुवा मछिए अहुवा गोघायए अहुवा गोवालए अहुवा सोव
णिए अहुवा सोवणियंतिए ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे गृहस्थ उद्देशीने अधर्म पक्ष कहेछे. ( सेएगईउ के० ) ते गृहस्थ कोइ एक महा निर्दय परलोक थकी न बिहितो थको, संसारना सुख वांछतो छतो जे कर्कश कर्म करे ते कहेछे. ( आयहेउंवा के० ) पोताने निमित्तें अथवा ( णायहेउंवा के० ) ज्ञातिने निमित्तें ( सयणहेउंवा के० ) स्वजनने निमित्तें ( आगारहेउंवा के० ) घरने निमित्तें ( परिवारहेउंवा के० ) परिवारने निमित्तें ( नायगंवा के० ) परिचित एटले जाणेला पुरुषने निमित्तें ( सहवासियंवाणिस्साए के० ) सहवासि एटले पाडोशीनी निश्राये, एटलां अकार्य करे, ते कहेछे. ( अहुवा के० ) अथवा ( अणुगामिए के० ) अकार्य करवाने अर्थें वीजो जतो होय तेनी पछवाडे जाय, ( अहुवाउवचरए के० ) अथवा अकार्य करवाने अर्थे तेने अनेक उपचार करे विश्वासे, ( अहुवापडिपहिएके० ) अथवा प्रतिपथिक एटले मार्गे जता माणसनी सन्मुख आवे ( अहुवासंधिछेदएके० ) संधिछेदक, एटले चोरी करे, ( अहुवागंठिछेदए के० ) अथवा ग्रंथिछेद करे, एटले गंठी छोडो थाय, ( अहुवाउरब्भिए के० ) अथवा ढाली एटले गाडरां चरावे ( अहुवासोवरिए के० ) अथवा सूवर डुक्कर चरावे ( अहुवावागुरिए के० ) अथवा वाघरी थाय, एटले मृग मारवानां कर्म करे ( अहुवासोउणिए के० ) अथवा शकुनी एटले पक्षीउने पाश नाखे, ( अहुवामछिए के० ) अथवा माछी थाय, ( अहुवागोघायए के० ) अथवा गोघातक कसाइ थाय, गायने मारे, अथवा गोधाने नाथे ( अहुवागोवालए के० ) गोवालिया पणु करे, इत्यादिक नीचकर्म करे, ( अहुवासोवणिए के० ) कुतरानो राखनार थाय, ( अहुवा सोवणियंतिए के० ) कुतराये करी शिकार खेले. इत्यादिक वधा मलीने चउद प्रकारें करी अनेक जीवोनो विनाशकरे. ॥ २८ ॥

---

॥ दीपिका—अथ गृहस्थानुद्दिश्याधर्मसेवामाह । ( सेएगईउआयहेउंवा ) सएकः कदाचिन्निस्त्रिंशआत्मनिमित्तं ज्ञातिहेतुंवा अगारहेतुं गृहसंस्करणाय परिवारहेतुंवा ज्ञातकः परिचितस्तं समुद्दिश्य सहवासिकं प्रातिवेश्मिकं निश्रीकृत्य एतानि कुर्यात् । तान्येवाह । ( अहुवेत्ति ) अथवेति पक्षांतरापेक्षया । गच्छंतमनुगच्छतीत्यनुगामुकः सचाकार्यकरणमनास्तं गच्छंतमनुगच्छति । अथवाऽन्यस्य विरूपकरणावसरापेक्षी उपचारकः स्यात् । अथवा उरभ्रेण चरत्यौरभ्रिकः । अथवा सौकरिकः । अथवा शकुनिभिश्चरति शाकुनिकः अथवा वागुरिकः अथवा मात्स्यिकःअथवा गोघातकः अथवा गोपालत्वं श्रयति

अथवा श्वभिश्चरति शौवनिकः शुनां पालकइत्यर्थः । अथवा (सोवणियंतएत्ति) श्वभिः पापर्द्धिकुर्वन्मृगादीनामंतं करोतीत्यर्थः ॥ २७ ॥

॥ टीका–सांप्रतं गृहस्थानुद्दिश्याधर्मपक्षसेवनमुच्यते । ( सेएगइउइत्यादि ) सएकः कदाचिन्निस्त्रिंशः सांप्रत्यापेक्ष्यपगतपरलोकाध्यवसायः कर्मपरतया भोगलिप्सुः संसारस्वभावानुवर्त्यात्मनिमित्तं चेत्येतान्यनुगामुकान्यकर्तव्यहेतुभूतानि चतुर्दशासदनुष्ठानानि विधत्ते तद्यथा ज्ञातयः स्वजनास्तन्निमित्तं तथाऽगारनिमित्तं गृहसंस्कारणार्थं सामान्येनवा कुटुंबार्थं परिवारनिमित्तंवा दासीदासकर्मकरादिपरिकरकृते तथा ज्ञातएवज्ञातकः परिचितस्तं समुद्दिश्य तथा सहवासिकंवा प्रातिवेश्मिकंवा निश्रीकृत्यैतानि वक्ष्यमाणानि कुर्यादिति संबंधः । तानिच दर्शयितुमाह । (अडुवेत्यादि) अथवेत्येवं वक्ष्यमाणावेक्ष्या पक्षांतरोपलक्षणार्थः । गच्छंतमनुगच्छतीत्यनुगामुकः सचाऽकायाध्यवसायेन विवक्षितस्थलाद्यपेक्षया विरूपकर्तव्यचिकीर्षुस्तं गच्छंतमनुगच्छति । अथवा तस्यापकर्तव्यस्यापकारावसरापेक्ष्युपचारकोभवत्यथवा तस्य प्रातिपथिकोभवति प्रतिमुखं संमुखीनमागच्छत्यथवाऽऽत्मस्वजनार्थं संधिच्छेदकोभवति चौर्यं प्रतिपद्यते अथवौरभ्रैर्मेषैश्चरत्यौरभ्रिकोथवा सौकरिकोभवत्यथवा शकुनिभिः पक्षिभिश्चरतीति शकुनिकोऽथवा वागुरया मृगादिबंधनोज्ज्वा चरति वागुरिकोथवा मत्स्यैश्चरति मात्स्यकोथवा गोपालभावं प्रतिपद्यतेऽथवा गरघातकः स्यादथवा श्वभिश्चरति शौवनिकः शुनां परिपाकोभवतीत्यर्थोऽथवा ( सोवणियंति ) श्वभिः पापर्द्धि कुर्वन्मृगादीनामंतं करोतीत्यर्थः ॥ २७ ॥

से एगईउ आणुगामियभावं पडिसंधाय तमेव आणुगामियाणु गामियं हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आहारं आहारेंति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवरकाइत्ता भवइ ॥२९॥ से एगईउ उवचरयं भावं पडिसंधाय तमेव उवचरियं हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आहारं आहारेंति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवरकाइत्ता भवइ ॥३०

अर्थ–हवे ए चौद स्थानकने प्रत्येके प्रथम थकी विवर्णकरीने कहेछे. (सेएगईउ आणुगामियभावंपडिसंधाय के० ) ते कोइ एक पुरुष आत्माने अर्थे कोइ एक ग्रामांतरे जनारा पुरुषनी पासें द्रव्यछे एवुं जाणीने (तमेवआणुगामियाणुगामियं के०) तेमज तेनी पछवाडे जाय, पछी तेने विश्वास उपजावीने (हंता के०) तेने हणे, छेदे, भेदे, लुंटे, विशेषे लुंटे, ( उद्दवइत्ता के० ) उपद्रव करे, जीवितव्य थकी विनाश करे, पछी

तेनुं धनलइने ते धनेकरी अनेक प्रकारें (आहारंआहारेंति के०) अहार आहारे. (इतिसेमहयापावेहिंकम्मेहिंअत्ताणंउवरकाइत्तानवइ के०) एवी रीतें ते पुरुष महोटा क्रूर पाप कर्मानुष्ठाने, पोताना आत्माने डुर्गतिमांहे पाडे. नरक तिर्यंचगतिने नामे विख्यात थाय ॥ २९ ॥ ते कोइएक पुरुष धनवंतनी वंचना निमित्तें (उवचरयंनावंपडिसंधाय के०) उपचारक नाव आदरीने तेमज नाना प्रकारना उपाय करी विश्वास उपजावी तेनें हणी, छेदी, नेदी, लुंटी, विशेषे लुंटी, उपद्रव करी, जीवितव्यथकी विनाशकरीने तेनु धनलेइने, तेधने करी अनेक प्रकारना आहार आहारे. एरीते ते पुरुष महोटा क्रूर पापानुष्ठाने करीने पोताना आत्माने डुर्गतिमांहे पाडे चतुर्गतिक संसारमांहे परिज्रमणकरे नरकादि गतिने विषे विख्यात थाय ॥ ३० ॥

---

॥ दीपिका–एवमेतेषां चतुर्दशकर्तव्यानामुद्देशं कृत्वा तानि प्रत्येकं विवृणोति । तत्रैकः कश्चिदात्मार्थी ग्रामांतरं गच्छन् पुरुषस्य समीपे किंचिद्रव्यं ज्ञात्वा तज्जिघृक्षुस्तस्यानुगामुकनावं प्रतिसंधाय सहगमनेनानुकूल्यं प्रतिपद्य वंचनावसरं समीहमानोगच्छंतमनुगच्छति । अवसरं लब्ध्वा तस्य हंता, दंडादिनिश्छेत्ता, खड्गादिना नेत्ता, वज्रमुष्ट्यादिना लुंपयिता, केशाकर्षणादिनिर्विलुंपयिता, कशाप्रहारादिनिः अपड्रावयिता, जीवितविनाशकः स्यात् इत्यादि कृत्वाऽहारमाहारयति इत्येवमसौ महद्भिः पापैः कर्मनिरात्मानमुपख्यापयिता जवति । अयं महापापकारीत्येवं लोके ख्यापयति ॥२९॥ तदेवमेकः कश्चिद्धनवतः कस्यचिडुपचरकनावमाश्रित्य नं विश्वासे पातयित्वा धनादिकृते तस्य हंता छेत्ता इत्यादि । एवमसौ महद्भिः पापैरुपख्यापयिता जवति ॥ ३० ॥

---

॥ टीका–तदेवमेतानि चतुर्दशाप्युद्दिश्य प्रत्येकमादितःप्रभृति विवृणोति । (सेएगइउइत्यादि) तत्रैकः कश्चिदात्मार्थ अपरस्य गंतुर्ग्रामांतरं किंचिद्रव्यजातमवगम्य तदादित्सुस्तस्यैवानुगामुकनावं प्रतिसंधाय सहगंतृनावेनानुकूल्यं प्रतिपद्य विवक्षितवंचनावसरकालाद्यपेक्षी तमेव गच्छंतमनुव्रजति तमेव चान्युत्थानविनयादिनिरत्यंतोपचारैरुपचर्यानुव्रज्य च विवक्षितमवसरं लब्ध्वा, तस्यासौ हंता दंडादिनिस्तथा छेत्ता खड्गादिना हस्तपादादेस्तथा नेत्ता वज्रमुष्ट्यादिना तथा लुंपयिता केशाकर्षणादिकदर्थनतस्तथा विलुंपयिता कशाप्रहारादिनिरत्यंतडुःखोत्पादनेन तथा ड्रावयिता जीविता च्यपरोपणतोनवतीत्येवमादिकं कृत्वाऽहारमाहारयत्यसौ । एतडुक्तं जवति । गलकर्तकः कश्चिदन्यस्य धनवतोऽनुगामुकनावं प्रतिपद्य तं बहुविधैरुपायैर्विश्रंजे पातयित्वा नोगार्थी मोहांधः सांप्रतेक्षितया तस्य । रिक्थवतोपकृत्याहारादिकां नोगक्रियां विधत्ते । इत्येवमसौ महद्भिः क्रूरैः क

र्मभिरनुष्ठानैर्महापातकभूतैर्वा तीव्रानुभावैर्दीर्घस्थितिकैरात्मानमुपाख्यापयिता भवति त थाह्ययमसौ महापापकारीत्येवमात्मानं लोके ख्यापयत्यष्टप्रकारैः कर्मभिरात्मानं तथा बंधयति यथा लोके तद्विपाकापादितेनावस्थाविशेषेण सता नारकतिर्यङ्नरामररूपत या ख्यापयतीति ॥ २९॥ तदेवमेकः कश्चिदकर्तव्याभिसंधिना परस्य स्वापतेयवतस्तद्वंचना र्थमुपचरकभावं प्रतिज्ञाय पश्चात्तं नानाविधैर्विनयोपायैरुपचरति उपचर्य च विश्रंभे पा तयित्वा तद्रव्यार्थी तस्य हंता छेत्ता यावदपद्रावयिता भवतीत्येवमसावात्मानं पापैः क र्मभिः ख्यापयतीति ॥ ३० ॥

से एगईओ पाडिपहियभावं पडिसंधाय तमेव पाडिपहेठिच्चा हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आहारं आहारेति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ३१ ॥ से एगईओ संधिछे दगभावं पडिसंधाय तमेव संधिं छेत्ता भेत्ता जाव इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ३२ ॥

अर्थ—ते कोइएक पुरुष ( पाडिपहियभावंपडिसंधाय के० ) धनवंत पुरुष जाणी, मार्गे मां सन्मुख आवे, पछी ( तमेवपडिपहेठिच्चा के० ) तेने तेमज विश्वास उपजावी सन्मुख स्थित रहीने, हणी, छेदी, भेदी, लुंटीने, विशेषें लुंटीने, उपद्रव करे, जीवितव्य थकी विनाश करीने तेनुं धनलेइने अनेक प्रकारना आहार आहारे ते पुरुष महोटा क्रूर पापक र्मना अनुष्ठाने करी पोताना आत्माने दुर्गतिमां पाडे नरकादिक गतिने विषे विख्यात था य ॥३१॥ कोइएक पुरुष धनवंत पुरुष जाणीने संधिछेदक एटले खातर पाडवानोभाव आदरीने, आजीविकाने अर्थे पारकुं धनलीए, छेदे, भेदे इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं॥३२॥

---

॥ दीपिका—अथैकः कश्चित्प्रतिपथेनाभिमुखेन चरतीति प्रातिपथिकस्तद्भावं प्रतिप द्य तस्यार्थवतोविश्रंभतोहंतेत्यादि पूर्ववत् ॥ ३१ ॥ एकः कश्चित्संधिछेदकभावं खात्र खननत्वं प्रतिपद्य ततोसौ संधिं छिंदन् खात्रं खनन् प्राणिनां छेत्तास्यादित्यादि ॥ ३२ ॥

---

॥ टीका—अथैकः कश्चित्प्रतिपथेनाभिमुखेन चरति प्रातिपथिकस्तद्भावं प्रतिपद्यापरस्या र्थवतस्तदेव प्रतिपथिकत्वं कुर्वन् प्रतिपथे स्थित्वा तस्यार्थवतोविश्रंभतश्छेत्ता यावदप द्रावयिता भवतीत्येवमसावात्मानं पापैः कर्मभिः ख्यापयतीति ॥ ३१ ॥ अथैकः कश्चिद्विरू पकर्मणा जीवितार्थी संधिछेदकभावं खात्रखननत्वं प्रतिपद्यानेनोपायेनात्मानमहं कर्त यिष्यामीत्येवं प्रतिज्ञां कृत्वा तमेव प्रतिपद्यते ततोसौ संधिं छिंदन् खात्रं खनन् प्राणिनां

छेत्ता भेत्ता विलुंपयिता भवतीत्येतच्च कत्वाऽहारमाहरयतीत्येतच्चोपलक्षणमन्यांश्च काम भोगान् स्वतो भुंकेऽन्यदपि ज्ञातिगृहादिकं पालयतीत्येवमसौ महद्भिः पापैः कर्मभिरा त्मानमुपख्यापयति ॥ ३२ ॥

से एगइउ गंठिछेदभावं पडिसंधाय तमेवगंठिं छेत्ता भेत्ता जाव इति से मह या पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ३३ ॥ से एगइउ उर भियभावं पडिसंधाय उरभंवा अणतरं तसं पाणहंता जाव उवक्खाइत्ता भवइ एसो अभिलावो सवछ ॥ ३४ ॥

अर्थ–कोइएक पुरुष गंठी छोडानो भाव आदरीने, घुर्घुरादिक अनेक उपायकरी लोकने हणे, छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥३३॥ कोइएक पुरुष औरभ्रिकभाव उरभ्र एटले उरणा बकरां तेना मांसादिकें करी आजीविका करे; ते उरभ्रिक उरणा तथा अ न्यत्रस प्राणीने हणे, छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३४ ॥

॥ दीपिका–अथैकः कश्चिद्ग्रंथिच्छेदकभावं प्रतिपद्य घुर्घुरादिना ग्रंथिच्छेत्तास्यादित्यादि ॥३३॥ अथैकः कश्चिदधर्मवृत्तिः उरभ्राउरणकास्तैश्चरति औरभ्रिकः। सच तद्भूर्णया तन्मां सादिना वात्मानं वर्तयति सतद्भावं प्रतिपद्य उरभ्रंवाऽन्यंवा त्रसं प्राणिनं स्वपुष्टये हं ति तस्य वा हंता छेत्ता इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३४ ॥

॥ टीका–अथैकः कश्चिदसदनुष्ठायी घुर्घुरादिना ग्रंथिच्छेदकभावं प्रतिपद्य तमेवानुया ति। शेषं पूर्ववत् ॥ ३३ ॥ अथैकः कश्चिदधर्मैककर्मवृत्तिरुरभ्राउरणकास्तैश्चरति यः स औरभ्रिकः सच तद्भूर्णया तन्मांसादिना वात्मानं वर्तयति तदेवमसौ तद्भावं प्रतिपद्योरभ्रं वाऽन्यंवा त्रसं प्राणिनं स्वमांसपुष्ट्यर्थं व्यापादयति तस्य सवा हंता छेत्ता भेत्ता भवतीति शेषंपूर्ववत् ॥ ३४ ॥

से एगईउ सोवरिय भावं पडिसंधाय महिसंवा अणतरंवा तसं पाणं जाव उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ३५ ॥ से एगईउ वागुरियभावं पडिसंधाय मियंवा अणतरंवा तसं पाणं हंता जाव उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ३६ ॥

अर्थ–कोइएक पुरुष सौकरिक एटले खाटकीनो भाव अंगीकार करीने खाटकी थइने अनेक महिषादिक तथा बीजा त्रस जीवोने हणे, छेदे, भेदे, यावत् संसार परिभ्रमण करे इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥३५॥ ते कोइएक पुरुष, पापात्मा वागरी पणु आदरीने मृ गादिक तथा बीजा त्रस जीवोने हणे छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥ ३६ ॥

॥ दीपिका–अथैकः कश्चित्सौकरिकः श्वपचश्चांडालः खाटिकइत्यर्थः। तद्भावमाश्रित्य महिषं वान्यं त्रसं प्राणिनं हंतीति तस्य हंता छेताइत्यादि ॥३५॥ अथैकः कश्चिद्वागुरिकत्वमाश्रित्य मृगं वाऽन्यं प्राणिनं हंति तस्यच हंता नवति शेषं पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

॥ टीका–अत्रांतरे सौकरिकपदं तच्च स्वबुध्या व्याख्येयं। सौकरिकाः श्वपचाश्चांडालाः खट्टिकाइत्यर्थः ॥३५॥ अथैकः कश्चित्क्रुरसत्वोवागुरिकनावं लुब्धकत्वं प्रतिसंधाय प्रतिपद्य वागुरया मृगं हरिणमन्यंवा त्रसं प्राणिनं शशादिकमात्मवृत्यर्थं स्वजनाद्यर्थंवा व्यापादयति तस्यच हंता छेत्ता नवति। शेषं पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

से एगईउ सउणियं नावं पडिसंधाय सउणिंवा अण्णतरंवा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥३७॥ से एगइउ मिच्छियनावं पडिसंधाय मछंवा अण्णतरं वा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥ ३८ ॥

अर्थ–कोइएक पुरुष, शाकुनी एटले पक्षीउनो विनाश करीने, आजीविका करे; एवो थको अनेक पक्षीउने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥ ३७ ॥ कोइएक पुरुष अधमाधम माछी थइने अनेक माछलादिक जलचर जीवोने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु. ॥ ३८ ॥

॥ दीपिका–अथैकः कश्चिच्छकुनालावकादयस्तै श्चरति शाकुनिकस्तद्भावमाश्रित्य शकुनमन्यं वा त्रसं हंति तस्य च हननादिकां क्रियां करोतीति ॥ ३७ ॥ अथैकः कश्चिन्मात्स्यिकनावमाश्रित्य मत्स्यं वाऽन्यं त्रसं वा जलचरं प्राणिनं हन्यात्। शेषं सुगमं ॥३८॥

॥ टीका–अथैकः कश्चिदधमोपापजीवी शकुनालावकादयस्तैश्चरति शाकुनिकस्तद्भावं प्रतिसंधाय तन्मांसाद्यर्थी शकुनमन्यं वा त्रसं व्यापादयति तस्यच हननादिकां क्रियां करोतीति। शेषं पूर्ववत् ॥३७॥ अथैकः कश्चिदधमाधमोमात्स्यिकनावं प्रतिपद्य, मत्स्यं वाऽन्यं जलचरं प्राणिनं व्यापदयेद्धननादिकाः क्रियाः कुर्यात्। शेषं सुगमं ॥ ३८ ॥

से एगईउ गोघायनावं पडिसंधाय तमेव गोणंवा अण्णयरंवा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥३९॥ से एगईउ गोवालनावं पडिसंधाय तमेव गोवालंवा परिजविय परिजवियहंता जाव उवरकाइत्ता नवइ॥ ४० ॥

अर्थ–कोइएक अधर्मी पुरुष, क्रूरकर्मनो करनार, गौघातकनो नाव आदरी, गाय, अथवा बीजा त्रस जीवोने छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३९ ॥ कोइएक पुरुष, क्रूर

कर्मनो करनार गोपालभाव आदरीने, क्रोधें चड्यो थको गायने गोकुल मांहेथी टाली तेने हणे, छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ४० ॥

---

॥ दीपिका–अथैकः कश्चित्क्रूरकर्मा गोघातकभावमाश्रित्य गामन्यं वा त्रसं हंति तस्य हंता स्यात् ॥ ३ए ॥ अथैकः कश्चिद्गोपालभावं प्रतिपद्य तां गां परिविच्य पृथक् कृत्वा तस्याहंता भवति । शेषं पूर्ववत् ॥ ४० ॥

---

॥ टीका–अथैकः कश्चिद्गोपालभावं प्रतिपद्य कस्याश्चिद्गोः कुपितः सन् तां गां परिविच्य पृथक् कृत्वा तस्याहंता छेत्ता भेत्ता भूयोभूयोभवति । शेषं पूर्ववत् ॥ ३ए ॥ अथैकः कश्चित्क्रूरकर्मकारी गोघातकभावं प्रतिपद्य, गामन्यतरं वा त्रसं प्राणिनं व्यापादयेत्तस्य च हननादिकाः क्रियाः कुर्यादिति ॥ ४० ॥

से एगइउ सोवणियभावं पडिसंधाय तमेव सुणगंवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव उवखाइत्ता भवइ ॥४१॥ से एगइउ सोवणियंतियं भावं पडिसंधाय तमेव मणुस्संवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव आहारं आहारेति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवखाइत्ता भवइ ॥४२॥

अर्थ–कोइएक पुरुष शौवनिकभाव एटले श्वानें करी आहार करुं एवो भाव आदरीने अनेक जीवने हणे, छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ४१ ॥ कोइएक पुरुष श्वानने पाले, श्वाननो परिग्रह करे, तेणे करी कोइएक आवता जता पथिकने, अथवा बीजा जीवने हणे, छेदे, भेदे, आहार आहारे इत्यादिक एरीते ते क्रूरकर्मे करी चतुर्गतिक संसार मांहे पडे ॥ ४२ ॥ एटले आजीविका निमित्त पापनुं कारण कह्युं.

---

॥ दीपिका–अथैकः कश्चित् श्वपापर्धिभावं प्रतिज्ञाय तमेव श्वानं परंवा त्रसं मृगसूकरादिकं हन्यात्तस्यच हंतेत्यादिपूर्ववत् ॥ ४१ ॥ अथैकः कश्चिदनार्यः ( सोवणियंतियंति) श्वभिश्चरति शौवनिकः अंतोस्यास्तीत्यंतिकः अंते वा चरति अंतिकः पर्यंतवासी शौवनिकश्चासौ अंतिकश्च शौवनिकांतिकः क्रूरसारमेयपरिग्रहः प्रत्यंतनिवासी च तदसौ तद्भावमाश्रित्य मनुष्यं कंचन पथिकमन्यंवा मृगसूकरादिकं त्रसं प्राणिनं हंता भवति । हंता इत्यत्र ताच्छीलिकस्तृन् । श्वस्तनीता वा तृच् स्यात्तदाध्याहारेण पूर्ववन्नेयं । तथा पुरुषं हंति तस्य स हंता छेत्तेत्यादि । तृन्श्वस्तन्यौ प्रागपि योज्यौ । तच्चैवं महद्भिः पापकर्मभिरात्मानमुपख्यापयिता स्यादिति ॥ ४२ ॥

॥ टीका—अथैकः कश्चिज्जघन्यकर्मकारी शौवनिकनावं प्रतिपद्य सारमेयपापर्द्धिनावं प्रतिज्ञाय तमेव श्वानं तेन वा परं मृगसूकरादिकं त्रसं प्राणिनं व्यापादयेत्तस्य च हननादिकाः क्रियाः कुर्यादिति ॥ ४१ ॥ अथैकः कश्चिदनार्योनिर्विवेकः ( सोवणियंतियं नावंति) श्वनिश्चरति शौवनिकः श्रंतोस्यास्तीत्यंतिकोऽतेवा चरत्यंतिकः पर्यंतवासीत्यर्थः । शौवनिकश्चासावंतिकश्च शौवनिकांतिकः क्रूरसारमेयपरिग्रहः प्रत्यंतनिवासीच प्रत्यंतनिवासिनिर्वा श्वनिश्चरतीति तदसौतन्नावं प्रतिसंधाय डुष्टसारमेयपरिग्रहं प्रतिपद्य, मनुष्यं वा कंचनपथिकमन्यागतमन्यं वा मृगसूकरादिकं त्रसं प्राणिनं हंता नवति । अयं च ताच्छीलिकतृन् लुट् प्रत्ययोवा डृष्टव्यः । तृचि तु साध्याहारं प्राग्वद्व्याख्येयं । तद्यथा । पुरुषं व्यापादयेत्तस्य च हंता बेत्ता इत्यादि । तृन्लुट्प्रत्ययौ प्रागपि योजनीयाविति । तदेवमसौ महाक्रूरकर्मकारी महद्भिः कर्मनिरात्मानमुपख्यापयिता नवतीति ॥ ४२ ॥

से एगइऊ परिसामज्जाउ उठित्ता अहमेयं हणामित्ति कट्टु तित्तिरंवा वट्टगंवा लावगंवा कवोयगंवा कविंजलंवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥ ४३ ॥ से एगइऊ केणइ आयाणेणं विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अडुवा सुराथालएणं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणंवा सयमेव अगणिकाएणं सस्साइं जामेइ अन्नेणवि अगणिकाएणं सस्साइं जामावेइ अगणिकाएणं सस्साइं जामंतंपि अन्नं समणुजाणइ इति से महया पावकम्मेहिं अत्ताणं उवरकाइत्ता नवइ ॥ ४४ ॥

अर्थ—हवे कांहिं एक पापनुं विशेष कारण कहेछे. जे प्रथम कह्युं, अने हवे कहेशे, तेमां विशेष एटलुंजछे के, प्रथमजे जीवहिंसा कही ते हिंसा लोक थकी प्रछन्न पणे करे, अने हवे जे कहेशे ते हिंसा लोकमां प्रगट पणे करे, एटलुं विशेष जाणवुं. ते एवी रीतें के, जेम कोइएक पुरुष मांस नक्षण करवानी इछायें, अथवा व्यसनने लीधे अथवा क्रीडाने निमित्तें ( परिसामज्जाउवठित्ता के० ) परिषदामांहेथी उठीने ( अहमेयं के० ) हुं आ अमुक जीवने ( हणामित्तिकट्टु के० ) हणीश. एवी प्रतिज्ञा करीने, पछी ( तित्तिरंवा के० ) तित्तर, अथवा ( वट्टगंवा के० ) वर्त्तक, अथवा ( लावगंवा के० ) लावक, अथवा ( कवोयगंवा के० ) कपोत पक्षी, अथवा ( कविंजलंवा के० ) कपिंजल एटले पारेवां, तथा सारस पक्षिविशेष जाणवां, अथवा ( अन्नयरंवा के० ) अन्य ( तसंपाणं के० ) त्रस जीवने हणे, बेदे, नेदे, इत्यादिक यावत् पोताना आत्माने कर्मबंधन विषे पाडे ॥ ४३ ॥ हवे कोइएक पुरुष, प्रकृतियें क्रोधी थतो, ( केणइ के० )

कोइएक ( आयाणेणंके० ) शब्दादिक कारणे करी रीसाणो छतो, ( विरुद्धेसमाणे के० ) आगलानो विरोध करे. ते कारण कहेछे. ( अडुवाखलदाणेणं के० ) सडेलां अन्न तेने दाने करीनें, अथवा धान्यने खले अल्प दाने करीने, ( अडुवासुराथालएणंके० ) अथवा थाल कोशादिक, कोइएक अधिकारादिक, तेने विषे वांछित लाजने अन्नावे रीसाणो थको ( गाहवतीणवाके० ) गृहपतिना, अथवा ( गाहावइपुत्ताणंवा के० ) गृहपतिना पुत्रना धान्य खलादिकने ( सयमेवके० ) पोतें ( अगणिकाएणंके० ) अग्नि कायें करी, ( सस्सा इंके० ) ते धान्यादिकने ( झामेइ के० ) बाले. ( अन्नेणविअगणिकाएणंसस्साइंझामावे इ के० ) अथवा रीसाणो थको बीजा पासें अग्निकायें करी ते धान्यादिकने बलावे. (अगणिकाएणंसस्साइंझामंतंपिअन्नंसमणुजाणइ के० ) बीजो कोइ अग्नि कायें करी ते धान्यने बालतो होय, तेने अनुमोदे. एरीतें ते महोटा पापकर्मे करी पोताना आत्माने बांधे. यावत् चतुर्गतिक संसार मांहे परिभ्रमण करे ॥ ४४ ॥

॥ दीपिका—उक्ता सदा जीवनोपायभूता वृत्तिः । अथ कचित्कुतश्चिन्निमित्तात्सावद्यांगीकारं दर्शयति । पूर्वं वृत्तिरुक्ता प्रछन्नं वा प्राणिघातं कुर्यादिह तु कुतश्चिन्निमित्तात्साक्षाज्जन मध्ये प्राणिघातप्रतिज्ञया प्रवर्तते इत्याह । अथैकः कश्चिद्व्यसनेन क्रीडया कुपितोवा पर्षदोमध्ये गतउत्थाय एवं प्रतिज्ञां कुर्यात् । अहमेनं प्राणिनं हनिष्यामीति प्रतिज्ञां कृत्वा तित्तिरादिकं हंता इत्यादि यावदात्मानं पापकर्मणा उपख्यापयिता भवति । पूर्वमपराधं विना क्रुद्धाउक्ताः ॥४३॥ अथाऽपराधक्रुद्धान्दर्शयति । अथैकः कश्चित्प्रकृत्या क्रोधनः केनचिदादीयतइत्यादानं शब्दादिकं कारणं तेन विरुद्धः परस्य घातं कुर्यात् केनचिच्छब्देन कुष्टोनिंदितोवा विरुध्येत रूपेण बीभत्सं कंचित् दृष्ट्वाऽपशकुनोयमिति ध्यात्वा कुप्येत । गंधरसादिकं सूत्रेणैवाह । (अडुवाखत्ति) खलस्य कुपितस्य दानं खलके वाल्पधान्यादेर्दानं खलदानं तेन कुपितः । अथवा सुरायाः स्थालकं कोशकादि तेन वांछितलाभाभावात् कुपितोगृहपतेर्गृहपतिपुत्राणां वा स्वयं अग्निकायेन खलकवर्त्तीनि सस्यानि ध्मापयेद्दहेत् अन्येन वा दहतोऽन्यान्वा समनुजानीयात् । एवमसौ महापापैरात्मानमुपख्यापयिता स्यात्४४

॥ टीका—उक्ता सदा जीवनोपायवृत्तिरिदानीं कचित्कुतश्चिन्निमित्तादभ्युपगमं दर्शयति । ( सेएगइउइत्यादि) अयं चात्र पूर्वस्माद्विशेषः । पूर्वत्र वृत्तिः प्रतिपादिता प्रछन्नं वा प्राणव्यपरोपणं कुर्यात् । इतरस्तु कश्चिन्निमित्तात्साक्षाज्जनमध्ये प्राणिव्यापादनप्रतिज्ञां विधायोद्यतइति दर्शयति । अथैकः कश्चिन्मांसादनेछया व्यसनेन क्रीडया कुपितोवा पर्षदोमध्यादभ्युत्थायैवंभूतां प्रतिज्ञां विदध्यात् । यथाहमेनं वक्ष्यमाणं प्राणिनं हनिष्यामी

ति प्रतिज्ञां कृत्वा पश्चात्तित्तिरादिकं हंता छेत्तेति भेत्तेत्ति ताच्छीलिकस्तृन् लुट्प्रत्ययोवा। तस्य वा हंतेत्यादि यावदात्मानं पापेन कर्मणा ख्यापयिता भवतीति ॥४३॥ इह चाधर्मे पाक्षिकेष्वभिधीयमानेषु सर्वेपि प्राणद्रोहकारिणः कथंचिदभिधातव्यास्तत्र पूर्वमनपराधकृद्धाअभिहिताः सांप्रतमपराधकृद्धान् दर्शयितुमाह ॥ ( सेएगइउइत्यादि ) अथैकः कश्चित्प्रकृत्या क्रोधनोऽसहिष्णुतया केनचिदादीयतइत्यादानं शब्दादिकं कारणं तेन विरुद्धः समानः परस्यापकुर्यात् । शब्दादानेन तावत्केनचिदाक्रुष्टोनिंदितोवाचा विरुध्येत । रूपादानेनतु बीभत्सं कंचन दृष्ट्वाऽपशकुनाध्यवसायेन कुप्येत । गंधरसादिकं त्वादानं सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । अथवा खलस्य कुथितादिविशिष्टस्य दानं खलस्य वाल्पधान्यादेर्दानं खलदानं तेन कुपितोऽथवा सुरायाः स्थालकं कोशकादि तेन विवक्षितलाभाऽभावात् कुपितः । गृहपत्यादेरेतत् कुर्यादित्याह । स्वयमेवाग्निकायेनाग्निना तत्सस्यानि खलकवर्तीनि शालिव्रीह्यादीनि ध्मापयेद्दहेदन्येन वा दाहयेद्दहतोवाऽन्यान्समनुजानीयादित्येवमसौमहापापकर्मभिरात्मानमुपख्यापयिता भवतीति ॥ ४४ ॥

से एगइउ केणइ आयाणेणंवा विरुद्धे समाणे अडवा खलदाणेणं अडवा सुराघालएणं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा उट्टाणवा गोणाणवा घोडगाणवा गद्दभाणवा सयमेव घूराउ कप्पेंति अन्नेणवि कप्पावेंति कप्पंतंपि अन्नं समणुजाणइ इति से महया जाव भवइ ॥४५॥

अर्थ–अथ हवे कोइएक पुरुष कोइएक आदान एटले कारणे करी रीसाणो थको, अन्नने दाने अथवा धान्यना खलाने विषे अल्प दाने, अथवा कोइएक अधिकारादिकने विषे वांछित लाभने अभावे, गृहपतिनां अथवा गृहपतिनां पुत्रनां (उट्टाणवाके०) उंट, अथवा( गोणाणवा के० ) वृषभ, ( घोडगाणवा के० ) घोडो, (गद्दभाणवा के० ) गर्दभ, तेनो ( सयमेवघूराउकप्पेंति के० ) जंघादिक अवयव कल्पे छेदे, भेदे, बंधन, नाथ, वाग प्रभृति आदि लेइने पोतेज कापे, बीजा पासें कपावे, बीजो कापतो होय तेने अनुमोदन आपे, एरीतें ते पुरुष महोटुंपोपार्जन करे ॥ ४५ ॥

॥ दीपिका–अथैकः कश्चित्केनचित्खलदानादिनाऽदानेन गृहपत्यादेः कुपितस्तत्संबंधिनउष्ट्रादेः स्वयमेव परशुप्रभृतिशस्त्रेण ( घूराउत्ति ) जंघाद्यवयवान् कल्पयति छिनत्ति अन्येन छेदयति छिंदंतं समनुजानीते । एवं पापकर्मणात्मानं प्रसिद्धिं नयति ॥ ४५ ॥

॥ टीका–सांप्रतमन्येन प्रकारेण पापोपादानमाह । ( सेएगइउइत्यादि ) अथैकः कश्चित्केनचित्तु खलदानादिनाऽनेन गृहपत्यादेः कुपितस्तत्संबंधिनउष्ट्रादेः स्वयमेवात्मना प

रथादिना ( घूरात्ति ) जंघाः खलकावा कल्पयति छिनत्त्यन्येन वा छेदयति अन्यंवा छिंदंतं समनुजानीते इत्येवमसावात्मानं पापेन कर्मणोपाख्यापयिता नवति ॥ ४५ ॥

से एगइउ केणइ आयाणेणं वा विरुद्दे समाणे अडवा खलदाणेणं अड वा सुराघालएणं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा उट्टसालाउवा गोणसालाउवा घोडगसालाउवा गद्दजसालाउवा कंटकबोंदियाए पडिपेहित्ता सयमेव अगणिकाएणं झामेइ अन्नेणवि झामावेइ झामंतं पि अन्नं समणुजाणइ इति से महया जाव नवइ ॥ ४६ ॥

अर्थ–वली बीजी रीतें देखाडेछे. कोइएक पुरुष, कोइएक कारणथी रीसाणो थको, अथ वा वली अन्नने दाने, तथा धान्यने, थोमे दाने अथवा कोइएक अधिकारादिकने विषे वांछित लानने अनावे, गृहपति अथवा गृहपतिना पुत्रनां उंटशाला, वृषनशाला, अश्वशाला, गर्दनशालाने, कांटा ढांकीने पोतें अग्निकायें करी बाले. बीजा पासें बलावे, बीजो बालतो होय तेने अनुमोदे, एवी क्रिया करतो जीव, घणा पापकर्म उपार्जन करी, संसार मांहे परिभ्रमण करे ॥ ४६ ॥

---

॥ दीपिका–अथैकः कश्चित्केनचिन्निमित्तेन गृहपत्यादेः कुपितस्तत्संबंधिनामुष्ट्रादीनां शालाः गृहाणि ( कंटक बोंदियाएति ) कंटकशाखानिः प्रतिविधाय पिहित्वा स्वयमग्निना दहेत् । शेषं पूर्ववत् ॥ ४६ ॥

---

॥ टीका–किंच ( सेएगइउइत्यादि ) अथैकः कश्चित्केन चिन्निमित्तेन गृहपत्यादेः कुपितस्तत्संबंधिनामुष्ट्रादीनांशालागृहाणि ( कंटकबोंदियाएति ) कंटकशाखानिः प्रतिविधाय पिहित्वा स्थगित्वा, स्वयमेवाग्निना दहेत् । शेषं पूर्ववत् ॥ ४६ ॥

से एगइउ केणइ आयाणेणं विरुद्दे समाणे अडवा खलदाणेणं अडवा सुराघालएणं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा कुंमलंवा मणिंवा मोत्तियंवा सयमेव अवहरइ अन्नेणवि अवहरवइ अवहरंतं पि अन्नं समणुजाणइ इति से महया जाव नवइ ॥ ४७ ॥

अर्थ–कोइएक पुरुष, कोइएक कारणे रीसाणो थको, अन्न अथवा धान्यना खलाने विषे, अल्प धान्यना दाने अथवा कांहिएक अधिकारादिकनेविषे वांछित लानने अनावे, गृहपति अथवा गृहपतिना पुत्रना कानना कुंमल, अथवा मणी, रत्न, मोती, अथवा बीजा

आनरणादिक इव्य, पोतें अपहरे, बीजाने हाथे अपहरावे,बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदे, एम करतो जीव घणां पाप कर्मोपार्जन करे ॥ ४७ ॥

॥ दीपिका–अथैकः केनचिदादानेन कुपितोगृहपत्यादेः कुंडलादि इव्यमपहरेत् । शेषं पूर्ववत् ॥ ४७ ॥

॥ टीका–अपिच ( सेएगर्ठइत्यादि ) अथैकः कश्चित्केनचिदादानेन कुपितोगृहपत्यादेः संबंधि कुंडलादिकं इव्यजातं स्वयमेवापहरेदवशिष्टं पूर्ववत् ॥ ४७ ॥

से एगइर्ठ केणइवि आदाणेणं विरुद्धे समाणे अडवा खलदाणेणं अड वा सुराथालएणं समणेणवा माहणेणवा बत्तगंवा दंमगंवा नंमगंवा म त्तगंवा लहिंवा निसिगंवा चेलगंवा चिलिमिलिगंवा चम्मगंवा बेयण गंवा चम्मकोसियंवा सयमेवं अवहरंति जाव समणुजाणइ इति से म हया जाव उवक्काइत्ता नवइ ॥ ४८ ॥

अर्थ–हवे पाखंमी दर्शन उपर कोप्यो थको, जे करे; ते देखाडेछे. कोइएक कारणे रीसाणो छतो वादीयें जींत्यो अथवा पोताना दर्शनने दृष्टिरागें अथवा अन्न अने धा न्यने थोडे दाने, अथवा कोइएक अधिकारादिकने विषे वांछितलाजने अनावे, कोप्यो थको श्रमण अथवा ब्राह्मण तेनां दंम, छत्र, माटीना नांम, मात्रो,लाकडी, बेसवानो पाट, वस्त्र, मटको, ढांकवानो वस्त्र, चर्म, चर्मछेदनी तरवार, चर्मनी कोथली इत्यादिक अनेक उपकरण पोतें अपहरे, बीजा ने हाथे अपहरावे, बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदन आपे, एरीते घणा कर्म उपार्जन करे. एटला कारणे क्रोधें करी पापनुं विशेषपणुं कह्युं ॥ ४८ ॥

॥ दीपिका–अथ पाखंडिकोपरिकोपमाह । अथैकः कश्चित्स्वमतानुरागेण वादपराजितो वा अन्येन वा केनचिन्निमित्तेन कुपितः श्रमणानां ब्राह्मणानां छत्रकं वा नांडं किंचिद्दस्तु दं डकं वा नांडकं किंचि द्दस्तुमात्रकं पात्रं (लहिगं) यष्टिं ( निसिगं ) वृसीमासनमिति या वत् । चेलकं वस्त्रं ( चिलिमिलिगं ) प्रछादपटीं चर्मकं पाडुकादि चर्मछेदनकं शस्त्रादि च र्मकोशं शस्त्रछेपकोछलकं स्वयमपहरेत् । शेषंपूर्ववत् ॥ ॥ ४८ ॥

॥ टीका–सांप्रतं पाखंडिकोपरि कोपेन यत्कुर्यात्तद्दर्शयितुमाह । ( सेएगइर्ठइत्यादि ) अथैकः कश्चित्स्वदर्शनानुरागेण वा वादपराजितोवान्येनवा केनवा केनचिन्निमित्तेन कु

पितः सन्नेतत्कुर्यादित्याह । तद्यथा । श्राम्यंतीति श्रमणास्तेषामन्येषामपि तथानू तानां केनचिदादानेन कुपितः सन् दंडकादिकमुपकरणजातमपहरेत् अन्येन वा हारये दन्यंवा हरंतं समनुजानीयात् इत्यादिपूर्ववत् ॥ ४७ ॥

से एगइउ णोवितिगिंठइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा सयमेव अगणिकाएणं उसहीउ झामेइ जाव अन्नंपि झामंतं समणुजाणइ इति से महया जाव उवरकाइत्ता नवति ॥ ४ए ॥

अर्थ—हवे निःकारण पापनुं विशेष कहेठे. अथ कोइएक पुरुष, अत्यंत मूर्खठतो (णोवितिगिंठइके०) एवो विचार करे नहीं के, अकार्य करवा थकी मने आ नवमां अथ वा परनवमां अनिष्टफलनी प्राप्ति थशे, अथवा महारो अनुष्ठान अत्यंत माठोठे, एवुं आलोचे नहीं, एवो ठतो आलोक तथा परलोक विरुद्ध क्रिया करे ते देखाडेठे गृहप तिना अथवा गृहपतिना पुत्रना धान्यने नि.कारणे पोतें अग्निकायें करी प्रज्वाले, बी जाने हाथे प्रज्वालावे, बीजो कोइ प्रज्वालतो होय तेने अनुमोदे ॥ ४ए ॥

॥ दीपिका—पूर्वं विरोधिनोऽनिहिताः अथ इतरे कथ्यंते । अथैकः कश्चिन्मूढतया (णोवितिगिंठइत्ति) न विमर्षति नविचारयति यन्ममानेन कृतेन परलोकेऽनिष्टं नावि । अथवा मदीयमिदमनुष्ठानं पापानुबंधीति न वेत्ति एवंनूतश्च गृहपत्यादेर्निमित्तमेव त त्कोपं विनैव स्वयमग्निना सस्यानि शालिव्रीह्यादीनि दहेदित्यादि ज्ञेयं ॥ ४ए ॥

॥ टीका—एवं तावद्विरोधिनोऽनिहिताः सांप्रतमितरेऽनिधीयंते । (सेएगइउइत्यादि) अथै कः कश्चित् दृढमूढतया (नोवितिगिंठिइत्ति) न विमर्षति नमीमांसते । यथाऽनेन कृतेन ममा ऽमुत्राऽनिष्टफलं स्यात् तथा मदीयमिदमनुष्ठानं पापानुबंधीत्येवं न पर्यालोचयति तन्नावाप नाश्च यत्किंचनकारितया ऽहलोकपरलोकविरोधिनीः क्रियाःकुर्यात् । एतदेवोद्देशतोदर्शयति तद्यथा गृहपत्यादेर्निमित्तमेव तत्तत्कोपमंतरेणैव स्वयमेवात्मनाग्निकायेनौषधीः शालिव्री ह्यादिकाः ध्मापयेद्दहेत्तयाऽन्येन दाहयेदहंतं च समनुजानीयादित्यादि ॥ ४ए ॥

से एगइउ णोवितिगिंठइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा उट्टाणवा गोणाणवा घोडगाणवा गद्दनाणवा सयमेव घूराउकप्पइ अन्नेणवि क प्पावेति अन्नंपि कप्पंति तं समणुजाणइ ॥५०॥ से एगइउ णोवितिगिंठ इ तं गाहावतीणवा गहावइपुत्ताणवा उट्टसालाउवा जाव गद्दनसाला

उवा कंटकबोंदियाहिं पडिपेहित्ता सयमेव अगणिकाएणं झामेइ जाव समणु जाणइ ॥ ५१ ॥ से एगइउ णोवितिगिंछइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणंवा जाव मोत्तियंवा सयमेव अवहरइ जाव समणु जाणइ॥ ५२ ॥ से एगइउ णोवितिगिंछइ तंसमणंवा माहणाणंवा छत्तगंवा दंमगंवा जाव चम्मछेदणगंवा सयमेव अवहरइ जाव समणुजाणइ इति सेमहया जाव उवखाइत्ता नवइ ॥ ५३ ॥

अर्थ–एरीतेंज वली कोइएक पुरुष, गृहपति अथवा गृहपतिना पुत्रना उंट, गाय, बलद, घोडा, गर्दनना बंधन, तथा वाग, नाथ, प्रमुख पोतें कापे, बीजाने हाथे कपावे बीजो कापतो होय तेने अनुमोदे ॥ ५० ॥ तथा तेमज ते गृहपतिना तथा गृहपतिना पुत्रना उंटनीशाला, यावत् गर्दननी शालाने कांटा थकी ढांकीने. पोते बाले, बीजाने हाथे बलावे, बीजो बालतो होए तेने अनुमोदे ॥ ५१ ॥ तथा तेमज ते गृहस्थना अथवा गृहस्थना पुत्रना कुंमलादिक आनरण, तथा मौक्तिकादिक इव्य, पोतें अपहरे, बीजाने कहिने तेने हाथे अपहरावे, बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदे ॥ ५२ ॥ तथा कोइएक पुरुष, श्रमण ब्राह्मणना दंम छत्रादिक यावत् चर्मछेदक ए उपकरणोने पोतें अपहरे बीजाने हाथे अपहरावे अपहरतो होय तेने अनुमोदे ए प्रथम लखेला पांच आलावा, तथा पाछलना आलावा चार ते सरखाजछे परंतु ते सकारण, अने निष्कारण, एटलुं विशेषछे. ॥ ५३ ॥

॥ दीपिका–अथैकोनिस्त्रिंशतया गृहपत्यादिसंबंधिनामुष्ट्रादीनां जंघाद्यवयवान् छिंद्यात्यादि ॥ ५० ॥ कश्चिदुष्ट्रादिबंधनं गृहाणि दहेत् ॥ ५१ ॥ सुगमं ॥ ५२ ॥ निर्निमित्तमेवै तत्कुर्यात् व्याख्या पूर्ववत् ॥ ५३ ॥

॥ टीका–तथेहामुत्रच दोषापर्यालोचकोनिस्त्रिंशतया गृहपत्यादिसंबंधिनां क्रमेलकादीनां जंघादीनवयवांश्छिद्यात् ॥ ५० ॥ तथा शालां दहेत् ॥ ५१ ॥ तथा गृहपत्यादेः संबधि कुंडलमणिमौक्तिकादिकमपहरेत् ॥ ५२ ॥ तथा श्रमणब्राह्मणादीनां दंडादिकमुपकरणजातमपहरेदित्येवं प्राक्तनाएवालापकाआदानकुपितस्य येऽनिहितास्ततएव तदनावे नानिधातव्याइति ॥ ५३ ॥

से एगइउ समणंवा माहणंवा दिस्सा णाणाविहेहिं पावकम्मेहिं अत्ताणं उवखाइत्ता नवइ अडुवाणं अछराए आफालित्ता नवइ अडुवाणं

फरुसंवदित्ता भवइ कालेणवि से अणुपविठ्ठस्स असणंवा पाणंवा जाव णोदेवावेत्ता भवइ जे इमे भवइ वोनमंता भारक्कंता अलसगा वेसलगा किवणगा निठ्ठमा वणगा समणगा पव्वयंति ॥ ५४ ॥

अर्थ—हवे मिथ्यादृष्टिना पापनो अधिकार विशेष कहेछे. कोइएक मिथ्यादृष्टि पुरुष, श्रमण तपस्वी साधुनो निंदक होय, ते श्रमण अथवा ब्राह्मणने निसरतां पेसतां ( दिसा के० ) देखीने नानाप्रकारना पापोपार्जन करीने पोताना आत्माने डुर्गतिने विषे पाडे, तेज कारण कहेछे. (अडुवाणंअन्नराएके०) क्यांहिं एक साधुने देखीने पोतानी मिथ्यादृष्टीयें करी एवुं जाणेजे, ए मने अपशकुन थयुं. एम जाणतो थको पोतानी दृष्टिआगलथी ते साधुने अलगो करावे, अथवा ( आफालित्ताभवइ के० ) चपटीयें करी साधुने आस्फाले एटले तेने तिरस्कार करे, ( अडुवाणंफरुसंवदित्ताभवइ ) अथवा कठोर वचन बोले, अरे मूर्ख! निरर्थक कायक्लेशना करनार! हे डुर्बुद्धि! माहारा आगलथी दूरथइजा. एवा कठोर वचन बोले, तथा ( कालेणविसेअणुपविठ्ठस्स के०) भिक्षावेलायें ते चारित्रियाने अन्न पाणीने अर्थे आव्यो देखीने तेने ( असणंवापाणंवा के०) अशन पानादिक देतां अत्यंत डुष्टपणे पोतें निंदे अने (जावणोदेवावेत्ताभवइ के०) बीजो कोइ अशनपानादिक आपतो होय तेने निषेधे, तथा एवां डुर्वचन बोले के, (जेइमेभवइ के०) जे ए पाखंमीने आपवा थकी कांही फल नथी एम कहे ( वोनमंता के० ) ए तृण काष्ठना भारानो आणनारछे ( भारक्कंता के० ) ए कुटुंबना भारनो निर्वाह करी शक्यो नथी, ते कारणे मुंमित थयोछे. ( अलसगा के० ) आलसु क्रमागत कुटुंब धर्म पालवाने असमर्थ, माटे पाखंमी थयोछे ( वेसलगा के०) वृषल कोइएक क्षुड जातिकछे तथा ( किवणगानिठ्ठमा के० ) कृपण, निरुद्यमी, कोइपण कार्यनो उद्यम करी नशके ते कारणे ( वणगासमणगापव्वयंति के० ) प्रवर्ज्या लिए. ॥ ५४ ॥

---

॥ दीपिका—अथैकः कश्चिदनिगृहीतमिथ्यादृष्टिः साधुप्रत्यनीकः श्रमणं ब्राह्मणं साधुं दृष्ट्वा, अपशकुनोयमिति मन्यमानः पापकर्मभिरात्मानमुपख्यापयिता भवति (अडुवाणंति ) अथवा साधुं दृष्ट्वाऽवज्ञयाऽप्सरायाश्च पुटिकाया आस्फालयिता भवति परुषं कठिनं वचोब्रूयात् भिक्षाकालेपि ( से ) तस्य भिक्षोर्भिक्षार्थमनुप्रविष्टस्यान्नादेर्दापयिता न भवति प्रत्यनीकः सन्निदं ब्रूते ।(जेइमेत्ति) पाखंडिकाः स्युस्ते चोन्नमंतस्तृणकाष्ठहारादिकं कर्म तद्वियते येषां तेचोन्नमंतः भाराक्रांताः कुटुंबं पालयितुमसमर्थास्ते पाखंडव्रतमाश्रयंति । तथा वृषलाद्यधमाः कृपणाः क्लीबाद्यकिंचित्कराः श्रमणाः स्युः प्रव्रज्यां गृण्हंतीति॥५४॥

उंवा कंटकबोंदियाहिं पडिपेहित्ता सयमेव अगणिकाएणं झामेइ जाव समणु जाणइ ॥ ५१ ॥ से एगइ्‌ उ णोवितिगिंछइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणंवा जाव मोत्तियंवा सयमेव अवहरइ जाव समणु जाणइ॥ ५२ ॥ से एगइउ णोवितिगिंछइ तंसमणंवा माहणाणंवा छत्तगंवा दंमगंवा जाव चम्मछेदणगंवा सयमेव अवहरइ जाव समणुजाणइ इति सेमहया जाव उवक्खाइत्ता नवइ ॥ ५३ ॥

अर्थ–एरीतेंज वली कोइएक पुरुष, गृहपति अथवा गृहपतिना पुत्रना उंट, गाय, बलद, घोडा, गर्दननना बंधन, तथा वाग, नाथ, प्रमुख पोतें कापे, बीजाने हाथे कपावे बीजो कापतो होय तेने अनुमोदे ॥ ५० ॥ तथा तेमज ते गृहपतिना तथा गृहपतिना पुत्रना उंटनीशाला, यावत् गर्दननी शालाने कांटा थकी ढांकीने पोते बाले, बीजाने हाथे बलावे, बीजो बालतो होए तेने अनुमोदे ॥ ५१ ॥ तथा तेमज ते गृहस्थना अथवा गृहस्थना पुत्रना कुंमलादिक आनरण, तथा मौक्तिकादिक द्रव्य, पोतें अपहरे, बीजाने कहिने तेने हाथे अपहरावे, बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदे ॥ ५२ ॥ तथा कोइएक पुरुष, श्रमण ब्राह्मणना दंम छत्रादिक यावत् चर्मछेदक ए उपकरणोने पोतें अपहरे बीजाने हाथे अपहरावे अपहरतो होय तेने अनुमोदे ए प्रथम लखेला पांच आलावा, तथा पाछलना आलावा चार ते सरखाजछे परंतु ते सकारण, अने निष्कारण, एटलुं विशेषछे. ॥ ५३ ॥

॥ दीपिका–अथैकोनिस्त्रिंशतया गृहपत्यादिसंबंधिनामुष्ट्रादीनां जंघाद्यवयवान् छिंद्यात्यादि ॥ ५० ॥ कश्चिदुष्ट्रादिबंधनं गृहाणि दहेत् ॥ ५१ ॥ सुगमं ॥ ५२ ॥ निर्निमित्तमेवैतत्कुर्यात् व्याख्या पूर्ववत् ॥ ५३ ॥

॥ टीका–तथेहामुत्रच दोषापर्यालोचकोनिस्त्रिंशतया गृहपत्यादिसंबंधिनां क्रमेलकादीनां जंघादीनवयवांश्छिद्यात् ॥ ५० ॥ तथा शालां दहेत् ॥ ५१ ॥ तथा गृहपत्यादेः संबधि कुंडलमणिमौक्तिकादिकमपहरेत् ॥ ५२ ॥ तथा श्रमणब्राह्मणादीनां दंडादिकमुपकरणजातमपहरेदित्येवं प्राक्तनाएवालापकाआदानकुपितस्य येऽनिहितास्ततएव तदनावे नानिधातव्याइति ॥ ५३ ॥

से एगइउ समणंवा माहणंवा दिस्सा णाणाविहेहिं पावकम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता नवइ अडुवाणं अछराए आफालित्ता नवइ अडुवाणं

फरुसंवदित्ता नवइ कालेणवि से अणुपविठस्स असणंवा पाणंवा जा
व णोदेवावेत्ता नवइ जे इमे नवइ वोनमंता नारक्कंता अलसगा वे
सलगा किवणगा निउक्रमा वणंगा समणगा पवयंति॥ ५४ ॥

अर्थ—हवे मिथ्यादृष्टिना पापनो अधिकार विशेष कहेठे. कोइएक मिथ्यादृष्टि पुरुष, श्रमण तपस्वी साधुनो निंदक होय, ते श्रमण अथवा ब्राह्मणने निसरतां पेसतां ( दिस्सा के० ) देखीने नानाप्रकारना पापोपार्जन करीने पोताना आत्माने डुर्गतिने विषे पाडे, तेज कारण कहेठे. (अडुवाणंअब्जराएके०) क्यांहिं एक साधुने देखीने पोतानी मिथ्यादृष्टीयें करी एवुं जाणेजे, ए मने अपशकुन थयुं. एम जाणतो थको पोतानी दृष्टिआगलथी ते साधुने अलगो करावे, अथवा ( आफालित्तानवइ के० ) चपटीयें करी साधुने आस्फाले एटले तेने तिरस्कार करे, ( अडुवाणंफरुसंवदित्तानवइ ) अथवा कठोर वचन बोले, अरे मूर्ख! निरर्थक कायक्लेशना करनार! हे डुर्बुद्धि! माहारा आगलथी दूरथइजा. एवा कठोर वचन बोले, तथा ( कालेणविसेअणुपविठस्स के० ) निक्षावेलायें ते चारित्रियाने अन्न पाणीने अर्थे आव्यो देखीने तेने ( असणंवापाणंवा के० ) अशन पानादिक देतां अत्यंत डुष्टपणे पोतें निंदे अने (जावणोदेवावेत्तानवइ के०) बीजो कोइ अशनपानादिक आपतो होय तेने निषेधे, तथा एवां डुर्वचन बोले के, (जेइमेनवइ के०) जे ए पाखंमीने आपवा थकी कांही फल नथी एम कहे ( वोनमंता के० ) ए तृण काष्ठना नारानो आणनारठे ( नारक्कंता के० ) ए कुंटुबना नारनो निर्वाह करी शक्यो नथी, ते कारणे मुंमित थयोठे. ( अलसगा के० ) आलसु क्रमागत कुटुंब धर्म पालवाने असमर्थ, माटे पाखंमी थयोठे ( वेसलगा के०) वृषल कोइएक क्षुद्र जातिकठे तथा ( किवणगानिउक्रमा के० ) कृपण, निरुद्यमी, कोइपण कार्यनो उद्यम करी नशके ते कारणे ( वणगासमणगापव्वयंति के० ) प्रवर्ज्या लिए. ॥ ५४ ॥

---

॥ दीपिका—अथैकः कश्चिदनिगृहीतमिथ्यादृष्टिः साधुप्रत्यनीकः श्रमणं ब्राह्मणं साधुं दृष्ट्वा, अपशकुनोयमिति मन्यमानः पापकर्मभिरात्मानमुपख्यापयिता नवति (अडुवाणंति ) अथवा साधुं दृष्ट्वाऽवज्ञयाऽप्सरायाश्च पुटिकाया आस्फालयिता नवति परुषं कठिनं वचोब्रूयात् निक्षाकालेपि ( से ) तस्य निक्षोर्निक्षार्थमनुप्रविष्टस्यान्नादेर्दापयिता न नवति प्रत्यनीकः सन्निदं ब्रूते।(जेइमेत्ति) पाखंडिकाः स्युस्ते चोन्नमंतस्तृणकाष्ठहारादिकं कर्म तत्क्रियते येषां तेचोन्नमंतः नाराक्रांताः कुटुंबं पालयितुमसमर्थास्ते पाखंडव्रतमाश्रयंति । तथा वृषलाअधमाः कृपणाः क्लीबाअकिंचित्कराः श्रमणाः स्युः प्रव्रज्यां गृह्णंतीति॥५४॥

॥ टीका–सांप्रतं विपर्यस्तदृष्टयोऽगाढमिथ्यादृष्टयोऽनिधीयंते (सेएगइउइत्यादि) अथैकः कश्चिदनिगृहीतमिथ्यादृष्टिरनइकः साधुप्रत्यनीकतया श्रमणादीनां निर्गच्छतां प्रविशतां वा स्वतश्च निर्गछन् प्रविशन् वा नानाविधैः पापोपादानजूतैः कर्मनिरात्मानमुपख्यायिता नवतीत्येतदेव दर्शयति । अथवेत्ययमुत्तरापेक्षया पक्षांतरोपग्रहार्थः । कचित्साधुदर्शने सति मिथ्यात्वोपहतदृष्टितयाऽपशकुनोयमित्येवं मन्यमानः सन् दृष्टिपथादपसारयन् साधुमुद्दिश्यावज्ञयाप्सरायाश्च पुटिकायाः स्फालयिता नवत्यथवा तत्तिरस्कारमापादयन् परुषं वचोब्रूयात् । तद्यथौदनमुंमनिरर्थककायक्लेशपरायणदुर्मुंढेऽपसरायतस्तदसौ ज्ञुकुटिं विदध्यादसत्यंवा ब्रूयात् तथा निक्षाकालेनापि ( से ) तस्य निक्षोरन्येन्योनिक्षाचरेन्योऽनु पश्चात्प्रविष्टस्य सतोऽत्यंतदुष्टतयाऽन्नादेर्नेदापयिता नवत्यपरंच दानोद्यतं निषेधयति तत्प्रत्यनीकतयैतच्च ब्रूते । इमे पाखंडिकानवंति तएवंजूतानवंतीत्याह । ( चोसुंत्ति ) तृणकाष्ठहारादिकमधमकर्म विद्यते येषां ते तद्वंतस्तथा नारेण कुटुंबनारेण पोट्टलिकादिनारेण वाऽऽक्रांताः परान्नग्राः सुखलिप्सवोऽलसाः क्रमागतं कुटुंबं पालयितुमसमर्थास्तथा पाखंमव्रतमाश्रयंति । तथाचोक्तं । गृहाश्रमपर इत्यादि । तथा ( वेसलगत्ति ) वृषलाश्चधमाः शूद्रजातयस्त्रिवर्गप्रतिचारकास्तथा कृपणाः क्लीबा अकिंचित्कराः श्रमणा नवंति प्रव्रज्यां गृह्हंतीति ॥ ५४ ॥

ते इणमेव जीवितं धिक्जीवितं संपडिवुहेंति नाइ ते पारलोगस्स अठाए किंचिवि सिलीसंति ते डुक्कंति तेसोयंति तेजूरंति तेतिप्पंति तेपिट्टंति तेपरितप्पंति तेडुक्कण जूरण सोयण तिप्पण पिट्टण परितिप्पण वहबंधणपरिकिलेसाउ अप्पडिविरया नवंति ते महया आरंन्नेणं ते महया समारंन्नेणं तेमहया आरंन्नसमारंन्नेणं विरूवरूवेहिं पावकम्मे किच्चेहिं उरालाइं मणुस्सगाइं नोगन्नोगाइं नुंजित्तारो नवंति ॥ तं जहा अन्नं अन्नकाले पाणं पाणकाले वत्थं वत्थकाले लेणंलेणकाले सयणंसयणकाले पुव्वावरंचणं एहाए कयवलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सिरस्सा एहाए कंठेमालाकडे आवद्धमणिसुवन्ने कप्पियमालामउली पडिवद्धसरीरवग्धारियसोणिसुत्तगमल्लदामकलावे अहतवत्थपरिहिए चंदणोक्खितगायसरीरे महति महालियाए कूडागारसालाए महति महालयंसि-सीहासणंसि इत्थीगुम्मसंपरि वुडे स

वराइएणं जोइणाञ्झियायमाणाणं महया हयनट्टगीयवाइयं तंतीतल तालतुम्नियघणमुइंगपडुपावाइयं रवेणं उरालाइं माणुस्सगाइं जोग जोगाइं भुंजमाणे विहरइ ॥ ५५ ॥

अर्थ–( तेइणमेवजीवितंधिञ्जीवि के० ) ते साधुना अवर्णवादि एम कहे जे आ साधुनुं जीवितव्य धिक् छे. ( तंसंपडिवुहेंति के० ) अने पोताने प्रशंसे जे अमे जला छैए, एरीते ते इह लोक प्रतिबंध साधुना निंदक मोहांध पुरुष ते साधुनो अपवाद बोले, ( नाइतेपारलोगस्सअघाएकिंचिविसिलीसंति के० ) ए पुरुष, परलोकना अर्थनो साधनार एवो स्वल्प मात्र कांहींपण अनुष्ठान करे किंतु? परने डुर्वचनादिकें करी पीडा उपजावे ( तेडुक्खंति के० ) ते अज्ञानना अंधकारे डुःखी थाय. (तेसोयंति के०) ते अधिक शोचे, अन्यने शोक करावे ( तेजूरंति के० ) ते जूरे तथा परने निंदे. ( तेतिप्पंति के० ) ते पोताने तथा परने सुख थकी चूकावे ( तेपिट्टंति के० ) ते पोतें पीडाय, अने बीजाने पीडावे.- ( तेपरितप्पंति के० ) ते पोते माहोमांहे दाजे, बीजाने दजावे, (तेडुक्खणजूरणसोयण के०) ते पुरुष, एरीते डुःख, जूरण, शोक, इत्यादिक करतो करावतो थको ( तिप्पण के० ) सुखनो टालनार ( पिट्टण के० ) पीडानो करनार, ( परितिप्पण के० ) पश्चात्ताप करनार, ( वहबंधण के० ) वध बंधननो करनार ( परिकिलेसाउ के०) महोटा क्लेश, तेथकी (अप्पडिविरयाजवंति के०) नथी निवर्त्या ते पुरुष, एवा छता ते महोटा आरंज प्राण वध रूप तथा महोटा समारंज परजीवने किलामणा उपजावी ते महोटा आरंज समारंजे करीने नाना प्रकारना पापनुष्ठाने करीने प्रधान मनुष्य जाव संबधिया मधु मांसादिक अनेक काम जोगने जोगवतो थको विचरनारो थाय. ( तंजहा के० ) तेज कहेछे ( अन्नंअन्नकाले के० ) अन्नने काले अन्न, ( पाणंपाणकाले के० ) पाणीने कालें पाणी, ( वत्थंवत्थकाले के० ) वस्त्रने कालें वस्त्र, ( लेणंलेणकाले के० ) घरने कालें घर ( सयणंसयणकाले के० ) शयनने कालें शयन, ( पुव्वावरंचणंण्हाए के० ) पहेले पहोरे, अने वली पाछले पहोरे स्नान करे, ( कयवलिकम्मे के० ) देवतादिक निमित्त बलि कर्म करे. ( कयकोउय के० ) अनेक कौतुक उत्तारणादिक करे, ( मंगलपायच्छित्ते के०) दधि, दूर्वादिक मंगल करे, डुस्वप्नादिकना निवारणने अर्थे ए क्रिया करे,( सिरसाण्हाएकंठेमालाकडे के० ) शिरें स्नान करीने कंठे माला पेरे, ( आवद्धमणिसुवन्नेकप्पियमालामउली के०) आवद्ध एटले शुंपहेरे? तोके, मणि अने सुवर्ण, यथा योग्य स्थानके पहेरे, अनेक हार, अर्धहार, कटीसूत्र, इत्यादिक आजरणे करीने, ( पडिबद्धसरीरवग्घारीय के०) प्रतिबंध नाम दृढ शरीर देहछे जेनो एवो,

प्रलंबित (सोणिसुत्तगमदल्लदामकलावे के०) कडने विषे कंदोरोछे जेने एवो, अने फुलनीमालाना समूह पेरतो एवो, (अहतवछपरिहिए के०) अत्यंत बहु धोलां निर्दोष वस्त्र पेहेरे, ( चंदणोक्खितगायसरीरे के० ) चंदने करी गात्रने विलेपन करे एवो थको, ( महतिमहालियाए के० ) अत्यंत महोटी ( कूडागारसालाए के० ) कूटने आकारें शिला तेने विषे ( महतिमहालयंसिसीहासणंसि के० ) महोटा सिंहासने बेगो थको ( इत्थिगुम्मसंपरिवुडे के० ) स्त्रीना वृंदे पर वयो (सवराइएणं के०) सर्व रात्री संबंधि ( जोइणा के० ) प्रदीपनी ज्योति ( झियायमाणाणं के० ) तेना अजवाला थकि (महयाहयनट्टगीयवाइयं के०) महोटा नट्ट, गीत, वाद्यादिक वाजीत्रादिकने शब्दें, (तंतीतलतालतुडियतघणमुइगपडुपवाइयंरवेणं के०) वीणा, हाथना ताल, कांशियाना ताल, तुरी एटले वाजीत्र, हाथ विशेष, घन ध्वनि सरखो जेनो घोषछे, मृदंग, पटह, माह्या पुरुषे बजाव्याछे, तेने शब्दें करी, ( उरालाइंमाणुस्सगाइं के० ) उदार प्रधान मनुष्य संबंधीया ( भोगभोगाइं के० ) कामभोगने ( भुंजमाणे के० ) भोगवतो थको ( विहरइ ) विचरे ॥ ५५ ॥

---

॥ दीपिका—अथ गृहस्थानामत्यंतविपरीतमतीनामसदाचारत्वं प्रकटयन्नाह । ते साधुधर्मप्रत्यनीकाइदमेव जीवितं परापवादप्रकटनजीवितं धिक्जीवितं कुत्सितं जीवितं संप्रतिबृंहंति प्रशंसंति ते परलोकस्यार्थाय किंचित्सदनुष्ठानं न श्लिष्यंते नाश्रयंते तेऽपवादैः परान् दुःखयंति आत्मानंच अज्ञानांधास्तत्कुर्वंति येन शोचंते परानपि शोचयंति ते परान् ( जूरयंति ) गर्हंति ते स्वकर्मभिः पीड्यंते ( तेतिप्पंति ) सुखाच्च्यावयंत्यात्मानं परांश्च ते पापेन परितप्यंतेऽतर्दह्यंते परांश्च परितापयंति । एवं ते दुःखनशोचनादिक्लेशादिप्रतिविरताः स्युस्ते महतारंभेण प्राणिघातरूपेण महता समारंभेण प्राणिपरितापरूपेण विरूपरूपैश्च नानाविधैः पापकर्मकृत्यैरुदारानुत्कृष्टान्मद्यमांसादियुतान् मानुष्यकान् मनुष्यभवयोग्यान् भोगेभ्योऽप्युत्कटाभोगाभोगभोगास्तान् भोक्तारःस्युः ॥ तद्यथा अन्नमन्नकाले यथेप्सितं तस्य पापानुष्ठानात्संपद्यते । एवं पानवस्त्रशयनासनादिकं सपूर्वापरं सहपूर्वकृत्येन स्नानादिना परकृत्येन विलेपनभोजनादिना वर्ततइति सपूर्वापरं । कोऽर्थः । यद्यदा प्रार्थ्यते तत्तदा संपद्यतइति । तद्यथा । स्नातः कृतं देवतानिमित्तं बलिकर्म येन सःकृतबलिकर्मा कृतानि कौतुकान्यवतारणकादीनि मंगलसुवर्णचंदनाक्षतदूर्वासिद्धार्थादीनि प्रायश्चित्तानि दुःखप्रतिघातकानि येन सःकृतकौतुकमंगलप्रायश्चित्तः । शिरसि स्नातः कल्पितशोभामालाप्रधानोमुकुटः सविद्यते यस्य सःकल्पितमालामुकुटी प्रतिबद्धशरीरोद्दढांगः । ( वग्घारितं ) प्रलंबितं श्रोणी श्रोत्रं कटिसूत्रं मल्लदामकलापश्च येन सतथा कंठे कृतमालः । आविद्धानि परिहितानि मणिसुव

णीनि येन सतथा अहतमखंडितं वस्त्रं परिहितं येन सतथा चंदनेन उक्तितं सिक्तं गात्रं शरीरावयवायस्य सतथा नानाविधविलेपनावलिप्तइत्यर्थः। महत्यामुत्रायां (महालियाइति) विस्तीर्णायां कूटागारशालीयां महति महालये विस्तीर्णे सिंहासने नडास ने स्थितः। स्त्रीगुल्मेन स्त्रियोयुवतयः गुल्मोऽन्यः परिवारस्तेन परिवृतः, निशि सर्वरात्रिसंबंधिना ज्योतिषा प्रदीपादिनवेन क्रियमाणेन दीप्यमानेन महता बृहत्तरेण प्रहत नाट्यगीतवादित्रतंत्रीतलतालत्रुटिकघनमृदंगपटुप्रवादितरवेण उदारान् मानुष्यकान् नोगन्नोगान् त्नुंजानोविहरति ॥ ५५॥

---

॥ टीका–सांप्रतमेषामगारिकाणामत्यंतविपर्यस्तमतीनामसद्वृत्तमाविर्नावयन्नाह। (तेइणमेवइत्यादि) तेहि साधुवर्गापवादिनः सद्धर्मप्रत्यनीकाइदमेव जीवितं परापवादोद्घाटनजीवितं धिक्जीवितं कुत्सितं जीवितं साधुजुगुप्सापरायणं संप्रतिबृंहंत्येतदेवासद्वृत्तजीवितं प्रशंसंतीति नावः। ते चेह लोकप्रतिबद्धाः साधुजुगुप्साजीविनोमोहांधाः साधूनपवदंति नापिच ते पारलौकिकस्यार्थस्य साधनमनुष्ठानं किंचिदपि स्वल्पमपि श्लिष्यंते समाश्रयंति। केवलं ते परान् साधून् वाचादिन्निरनुष्ठानैर्डुःखयंति पीडामुत्पादयंति आत्मनः परेषांच। तथा ते ज्ञानांधास्तथा तत्कुर्वंति येनाधिकं शोचंते परानपि शोचयंति डुर्नापितादिन्निः शोकं चोत्पादयंति तथा ते परान् (जूरयंति) गर्हंति तथा तिप्पंति सुखाच्यावयंत्यात्मानं परांश्च तथा ते वराकाअपुष्टधर्माणोऽसदनुष्ठानाः स्वतः पीडयंते परांश्च पीडयंति तथाते पापेन कर्मणा परितप्यंतेऽन्तर्दह्यंते परांश्च परितापयंति। तदेवं तेऽसहृत्तयः संतोडुःखीनः शोचनादिक्लेशादप्रतिविरताः सदा नवंति। एवं नूताश्च संतस्ते महताऽऽरंन्नेण प्राणिव्यापादनरूपेण तयोनान्यामप्यारंनसमारंनान्यां विरूपरूपैश्च नानाप्रकारैः सावद्यानुष्ठानैः पापकर्मकृत्यैरुदारानत्यंतोत्कटान्समग्रसामग्रीकान् मधुमद्यमांसाद्युपेतान् मानुष्यकान् मनुष्यन्नवयोग्यान् नोगेन्योप्युत्कटान् नोगान् ते सावद्यानुष्ठायिनोन्नोक्तारोनवति॥ एतदेवदर्शयितुमाह। (तंजहेत्यादि) तद्यथेत्युपदर्शने। अन्नमन्नकाले यथेप्सितं तत्पापानुष्ठानात्संपद्यते। एवं पानवस्त्रशयनासनादिकमपि। सर्वमेतद्यथाकालं सपूर्वापरं संपद्यते सहपूर्वेण पूर्वाएहकर्तव्येनापरेण चापराएहकर्तव्येन। यदिवा पूर्वं यत्क्रियते स्नानादिकं तथा परंच यत्क्रियते विलेपनन्नोजनादिकं तेन सह वर्ततइति सपूर्वापरं। इदमुक्तंन्नवति। यद्यदा प्रार्थ्यते तत्तदा संपद्यतइति। अनिलपितार्थप्राप्तमेव लेशतोदर्शयितुमाह। तद्यथा। विनूत्या स्नातस्तथा कृत देवतादिनिमित्तं वलिकर्म येन स तथा तथाकृतानि कौतुकान्यवतारणकादीनि मंगलानिच सुवर्णचंदनदध्यक्षतदूर्वासिद्धार्थकादर्शस्पर्शनादीनि तथा डुःस्वप्नादिप्रतिघातकानि प्रायश्चित्तानि येन सकृतकौतुकमं

गलप्रायश्चित्तः । तथा कल्पितश्चासौ मालाप्रधानोमुकुटश्च सतथा विद्यते यस्य सनवति कल्पितमालामुकुटी । तथा प्रतिबद्धशरीरोदृढावयवकायोयुवेत्यर्थः । तथा (वग्घारियंति) प्रलंवितं श्रोणीसूत्रं कटिसूत्रं मल्लदामकलापश्च येन सतथा तदेवमसौ शिरसि स्नातः नानाविधविलेपनावलिप्तश्च कंठे कृतमालस्तथाऽपरयथोक्तनूषणनूपितः सन्महत्या मुद्धायां (महालियाएत्ति) विस्तीर्णायां कूटागारशालायां तथा महति महालये विस्तीर्णे सिंहासने नद्रासने समुपविष्टः स्त्रीवृंदेन युवतिजनेन सार्द्धमपरपरिवारेण संपरिवृतो वेष्टितोयस्तथा महता बृहत्तरेण प्रहतगीतवादित्रतंत्र्यादिरवेणोदारान्मानुष्यकान् नोगानोगान्मुंजानोविहरति प्रविचरति विजृंनतीत्यर्थः ॥ ५५ ॥

तस्सणं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंचजणा आवुत्ता चेव अब्नुठंति नणह देवाणुप्पिया किंकरेमो किंआहारेमो किंनवणेमो किं आचिहामो किंनेहियं इछियं किंनेआसगस्स सयइ तमेवपासित्ता अणारिया एवं वयंति देवे खलु अयंपुरिसे देवसिणाए खलु अयं पुरिसे देवजीवणिज्जे खलु अयंपुरिसे अन्नेणं विचणं उवजीवंति तमेव पासित्ता आरिया वयंति अनिक्कंतकूरकम्मे खलु अयंपुरिसे अति धुत्ते अइयायरक्खे दाहिणगामिए नेरइए कण्हपक्खिए आगमिस्साणं डुल्लहवोहियाएयावि नविस्सइ ॥ ५६ ॥

अर्थ–(तस्सणंएगमविआणवेमाणस्सके०) ते पुरुषने कोइ एक कार्य उपने एक माणसने आज्ञा देतां (जावचत्तारिपंचजणाके०) यावत् चार, पांच, पुरुष (आवुत्ताचेव के०) अणबो लाव्या (अब्नुठंतिके०) उठी सावधान थइने एम कहेके, (नणहदेवाणुप्पियाके०) हेस्वामि! आज्ञा आपो ? हे देवाणुप्रिय सरल स्वनावि! (किंकरेमोके०) शुं कार्य अमे करियें ? जेवो आपनो हुकम होय ते करवाने तैयारछैए. (किंआहारेमो के०) केवो आहार करशो? किवा केवो आहार निपजावीये ? (किंउवणेमोके०) शुं वस्तु लावी आपुं? (किं आचिहामो के०) शुं स्थापना करू? तथा केवां आनरण पेरशो ? (किंनेहियंइछियं के०) शुं तमारा हृदयने वल्लनछे. एटले शुं इछोछो ? (किंनेआसगस्सईके०) शुं तमारा मुखने सयई रुचेछे? जेकांइ तमारा मुख मांहेथी वचन निकले ते अमे करियें, (तमेवपासित्ताके०) ते राजादिकने देखीने (अणारियाएवंवयंतिके०) अनार्य एवुं कहे के, (देवेखलु अयंपुरिसे के०) खलुइति निश्चे ए पुरुष देव, (देवसिणाए खलु अयं पुरिसे के०) ए पुरुष देव स्नातक, (देवेजीवणिज्जे खलुअयं पुरिसे के०) ए पुरुषनो देवताना

जेवो जीवछे, निश्चें ए पुरुष घणा लोकने आजीविकानो करनारछे, एने (अन्नेणविचणं उव जिवंति के०) बीजा घणा पुरुषो सेवेछे, एरीतें ते राजादिकने देखीने अनार्य लोको कहे अने तेना वखाण करे. हवे (तमेव पासित्ता के०) वली ते राजादिकने देखीने (आ रियावयंति के०) आर्य पुरुष जे होयते एवुं कहेके (अनिक्कंतकूरकम्मेखलुअयं पुरिसे के०) निश्चें ए पुरुष अत्यंत क्रूर कर्मी हिंसादिक क्रियाने विषे प्रवर्त्तेछे, (अतिधूत्तेके०) तथा ए पुरुष अत्यंत धूर्त्तछे घणां कर्मे करी सहितछे, तथा (अइयायरक्केके०) घणा कर्मेकरी आपणा आत्माने संसार मांहे राखनारछे, (दाहिणगामिए नेरइए के०) त था ए दक्षणगामि नारकीमां उपजनार, प्रायः जे क्रूरकर्मना करनार, साधुना निंदक, सा धुने दान आपवानो निषेध करनार होय, ते दक्षिणगामि नारकीमांहे उपजे. तेमाटे ए पुरुष दक्षिण गामि जाणवो. (कण्हपक्खिएके०) कृष्ण पाक्षिक नारकी थशे; कृष्ण पक्षि क नारकी मांहे शुं विशेषछे? ते कहेछे. (आगमिस्साणं दुल्लहबोहियाएयाविजविस्सइ के०) आगमिक कालें दुर्लभ बोधी थशे एटले शुं कह्युं? जे, दिशि मांहे दक्षिणदिशि, अने अप्रशस्त गतिमांहे नरकगति, तथा पक्ष मांहे कृष्ण पक्ष, एटला वाना अप्रशस्तछे तेम विषयांध पुरुष जे छेते परलोकना निस्पृहि, एवा साधुने देखीने तेने दानांतरायना कर नार थायतो एवा अप्रशस्त पुरुषने बोधबीज पामवुं दुर्लभछे. तथा जे ए थकी विपरी त विषयने विषे निस्पृहि, परलोकना भीरु, तथा साधुनी प्रशंसाना करनार, एवा पुरुष उत्तरदिशि तथां देवतानी गति अने शुक्लपक्ष, एटला वानां पामे तेने मनुष्य भवमां बो धबीज पामवुं सुलभछे. ॥ ५६ ॥

---

॥ दीपिका—तस्यैवंभूतस्य पुरुषस्य क्वचित्कार्ये सति एकपुरुषमाज्ञापयतोयाव चत्वारः पंचवा पुरुषाअनुक्ताएव समुपतिष्ठंते एवं वदंति च भण स्वामिन्! किंकु मोवयं किमाहराम आनयामः? किमुपनयामोढौकयामः? (किंआचिंधामोत्ति) किंभू षणादि परिधापयामः? किं युष्माकं हृदयेप्सितं? किंयुष्माकमास्यकस्य मुखस्य (सयइ त्ति) स्वदते स्वादु प्रतिभाति? अथवा यदेव तवास्यस्य स्रवति तव मुखान्निर्गछति तदे व वयं कुर्मइति। (तमेवपासित्तत्ति) यं राजानं तथाक्रीडमानं दृष्ट्वा अनार्याएवं वदंति देवः खलु अयं पुरुषोदेवस्नातकोदेवश्रेष्ठोबहूनामुपजीव्योऽन्योप्येनमुपजीवति तथा तं तादृशमसदाचारं दृष्ट्वाऽर्याविवेकिनोवदंति अनिक्रांतक्रूरकर्मा अयं पुरुषोहिंसादि क्रियाप्रवृत्तः अतिधूर्तोबहुलकर्मा अतीवात्मानं पापैरक्षतीत्यस्यात्मरक्षः दक्षिणदिग्गामी नैरयिकः कृष्णपाक्षिकः। कोर्थः। यः क्रूरकर्मा साधुप्रत्यनीकस्तद्दाननिषेधकः सदक्षिण दिशि नरकतिर्यगादिरुत्पद्यते। दिक्षु मध्ये दक्षिणा दिक् अप्रशस्ता गतिषु नरकगतिः प

क्षयोः कृष्णपक्षः । ततोऽस्य दिगादिकमप्रशस्तमुक्तं । अन्यदपि अबोधिलानादिकं योज्यं । ( आगमिस्ससि ) सचाऽऽगामिकाले डुर्लनबोधिकः स्यादिति ॥ ५६ ॥

॥ टीका—तस्यच क्वचित्प्रयोजने समुत्पन्ने सति एकमपि पुरुषमाज्ञापयत्तोयावच्चत्वारः पंचवा पुरुषाअनुक्ताएव समुपतिष्ठंते । तेच किंकुर्वाणाएत द्वक्ष्यमाणमूचुः । तद्यथा। नणाज्ञापय स्वामिन्! धन्यावयं येन नवताप्येवमादिश्यंते किंकुर्मइत्यादिसुगमं । याव न्हृदयेप्सितमिति । तथा किंच ते युष्माकमास्यकस्य मुखस्य स्वदते स्वाडु प्रतिनाति? यदिवा यदेवास्य नवदीयास्यस्य स्रवति निर्गच्छति तदेव वयं कुर्मइति । तथा तमेवेत्यादि । तमेव राजानं तथा क्रीडमानं दृष्ट्वा अन्येऽनार्याएवं वदंति । तद्यथा । देवः खल्वयंपुरुषस्तथा देवस्नातकोदेवश्रेष्ठोबहूनामुपजीव्यस्तथा तमेवंसां प्रतेक्षितया सदनुष्ठायिनं दृष्ट्वा आर्याविवेकिनः सदाचारवंतएवं ब्रुवते तद्यथाऽनिक्रांतक्रूरकर्मा खल्वयं पुरुषोहिंसादिक्रियाप्रवृत्तइत्यर्थः । तथा धूयते रेणुव द्वायुनासंसारचक्रवाले भ्राम्यते येन तद्धूतं कर्म । औणादिकोनक्प्रत्ययः । अतीव प्रनूतंधूतमष्टप्रकारं कर्म यस्य सोतिधूतस्तथाऽतीवात्मनः परैः पापकर्मनिः रक्षा यस्य सोत्यात्मरक्षस्तथा दक्षिणस्यां दिशि गमनशीलोदक्षिणगामुकः । इदमुक्तं नवति । योहि क्रूर कर्मकारी साधुनिंदापरायणस्तद्दाननिषेधकः सन् दक्षिणगामुकइत्युक्तं । इदमेवाह । ( नेरइएइत्यादि) नरकेषु नवोनारकः कृष्णपक्षोस्यास्तीति कृष्णपाक्षिकस्तथा आगामिनि काले नरकाडुद्वृत्तोडुर्लनबोधिकश्चायं बाहुल्येन नविष्यतीति । इदमुक्तं नवति- दिक्षुमध्ये दक्षिणा दिग् शस्ता गतिषु नरकगतिः, पक्षयोः कृष्णपक्षः तदस्य विषयोस्येंद्रियानुकूलवर्तिनः परलोकनिस्पृहमतेः साधुप्रद्वेषिणोदानांतरायविधायिनोदिगादिकमशस्तं दर्शितमन्यदपि यदशस्तं तिर्यग्गत्यादिकमबोधिलानादिकं च तद्योजनीयमस्येति । एतद्विपरीतस्य तु विषयनिःस्पृहस्य इंद्रियानुकूलस्य परलोकनीरोः साधुप्रशंसावतः सदनुष्ठानरतस्य दक्षिणगामुकत्वं सुदेवत्वं शुक्लपाक्षिकत्वं तथा सुमानुषतया तस्य सुलनबोधित्वमित्येवमादिकं सद्धर्मानुष्ठायिनः सर्वं नवतीति ॥ ५६ ॥

इच्चेयस्स ठाणस्स उठियावेगे अनिगिज्झंति अणुठियावेगे अनिगिज्झंति अनिझंजाउरा अनिगिज्झंति एसठाणे अणारिए अकेवले अप्पडिपुन्ने अणेयाउए असंसुद्धे असल्लगत्तणे असिद्धिमग्गे अमुत्तिमग्गे अनिव्वाणमग्गे अणिज्जाणमग्गे असव्वडुरकपहीणमग्गे एगंतमिछे अ साहु एसखलु पढमस्स ठाणस्स अधम्मपरकस्स विनंगे एवमाहिए ॥५७॥

अर्थ-( इच्चेयस्सठाणस्सउठियावेगेके० ) ए पूर्वोक्त स्थानक ऐश्वर्य लक्षण शृंगार मूल तेने कोइएक पाखंमीने मार्गे प्रवर्त्तता, परमार्थना अजाण, एवा पुरुष (अनिगिझंतिके०) वांछे, नियाणादिक चिंतवे, तथा वली (अणुठियावेगेके०) कोइएक अनुत्थित गृहस्थ तेपण ( अनिगिझंति के० ) वांछे, ( अनिझंफाउरा के० ) तृष्णावंत लोभिया तदातुर थका ते राजानी पदवीने ( अनिगिझंति के० ) वांछे, ( एसठाणेअणारिए के० ) ए स्थानक अनार्य छे, महा पुरुषने अनाचीर्ण, (अकेवलेके०) एने विषे केवल ज्ञान नथी ए कारण माटे अशुद्ध तथा ( अप्पडिपुन्ने के०) अप्रतिपूर्ण सद्गुण रहित तथा पूर्णता रहित तथा ( अणेयाउए के० ) अन्याय प्रवर्तक एटले न्यायमार्ग जेमां नथी, ( असंसुद्धे के० ) मलयुक्त ( असल्लगत्तणे के० ) तथा शल्यनुं कापनार नथी, ( असिद्धिमग्गेके० ) ए स्थानक थकी सिद्धिनो मार्ग नथी, एटले ए स्थानक सर्वडुःखना क्षयनो करनार नथी, ( अमुत्तिमग्गे के० ) कर्मबंधनुं स्थानक छे. ( अनिवाणमग्गे के० ) असमाधिनुं स्थानक छे. ( अणिज्जाणमग्गेके० ) मोक्षने नजाणवानो मार्ग छे, ( असव्वडुक्खपहीणमग्गे के० ) सर्वथा सर्वडुःखना क्षयनो मार्ग नथी, एवुं ए स्थानकछे. ( एगंतमिछे के० ) ए एकांत मिथ्यात्वनुं स्थानकछे, एकारणे ए ( असाहु के० ) असाधुनो मार्गछे एसखलुके०) निश्चें थकी ए (पढमस्सठाणस्स के०) प्रथम स्थानकनुं (अधम्मपक्खस्स (वभंगे के० ) अधर्म पक्षना विभंग एटले विचार ( एवमाहिए के० ) एम कह्यो. ॥ ५७ ॥

---

॥ दीपिका-अस्योपसंहारमाह । इत्येतस्य स्थानस्य सावद्यरूपस्य एके उत्थिताः पाखंडाश्रिता ( अनिगिझंति ) लुभ्यंते लोभवशगाः स्युः । अनुत्थितागृहस्थाअपि संतोलुभ्यंते ( झंझाउरा ) तृष्णातुरालुभ्यंते अतइदं स्थानमनार्यं अकेवलमशुद्धं अप्रतिपूर्णं गुणशून्यत्वात्तुछं अनैयायिकमन्यायवृत्तिकं असंशुद्धं समलं शल्यं मायानुष्ठानमकार्यं न शल्यकर्तनमशल्यकर्तनं । नविद्यते सिद्धेर्मार्गोयस्मिन् तदसिद्धिमार्गं नविद्यते मुक्तेर्मार्गोज्ञानादिकोयस्मिन् तदमुक्तिमार्गं नविद्यते निर्वाणस्य चित्तस्वास्थ्यस्य मार्गोयस्मिन् तत्तथा अनिर्वाणमार्गं न संसारनिर्याणमार्गरूपमित्यर्थः । न सर्वडुःखप्रक्षेपमार्गरूपं यस्मादेकांतेन मिथ्यादृशां असाधु असदाचारत्वात् । एषखलु प्रथमस्थानस्याधर्मपक्षस्य विभंगोविशेषः स्वरूपमिति यावत् आख्यातः कथितः ॥ ५७ ॥

---

॥ टीका-सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । ( इच्चेइयस्सेत्यादि ) इत्येतस्य पूर्वोक्तस्य स्थानस्य ऐश्वर्यलक्षणस्य शृंगारमूलस्य संसारिकस्य परित्यागबुध्या एके केचन विपर्यस्तमतयः पापंडिकोछानेनोछिताः परमार्थमजानातः ( अनिगिझंतित्ति ) आभिमुख्येन लुभ्यंते लोभ

वशगाजवंतीत्यर्थः । तथा एके केचन सांप्रतेक्षिणस्तस्मात्स्थानादनुपस्थितागृहस्थाए व संतः ( अनिगिझंतित्ति ) फंजा तृष्णा तदातुराः संतोऽर्थेष्वत्यर्थं लुभ्यंते यतएवमतो दःस्थानमनार्यानुष्ठानपरत्वादनार्यं महापुरुषानुचीर्णं नवति तथा नविद्यते केवलमस्मि न्नित्यकेवलमशुद्धमित्यर्थः । तथेतरपुरुषाचीर्णत्वादपरिपूर्णं सद्गुणविरहात्तुच्छमित्यर्थः । तथा न्यायेन चरति नैयायिकं न नैयायिकमनैयायिकमसन्न्यायवृत्तिकमित्यर्थः । तथा र गेलगेसंवरणे । शोजनं लगनं संवरणं इंद्रियसंयमरूपं सल्लगस्तद्भावःसल्लगत्वंवा विद्यते सल्लगत्वमस्मिन्नित्यसल्लगत्वमिंद्रियासंवरणरूपमित्यर्थः । यदिवा शल्यवच्छल्यं मायानुष्ठा नकार्यं तगायति कथयति तच्छल्यगं यत्परिज्ञानं तन्नात्रेत्यशल्यगत्वमिति । तथा विद्यते सिद्धेर्मोक्षस्य विशिष्टस्थानोपलक्षितस्य मार्गोयस्मिंस्तदसिद्धिमार्गं तथा नविद्यते मुक्ते रशेषकर्मप्रच्युतिलक्षणायामार्गः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकोयस्मिंस्तदमुक्तिमार्गं तथा न विद्यतेः परिनिर्वृतेः परिनिर्वाणस्यात्मस्वास्थ्योत्पत्तिरूपस्य मार्गः पंथा यस्मिन् स्थाने तदपरिनिर्वाणमर्गं तथा नविद्यते सर्वे दुःखानां शारीरमानसानां प्रक्षयमार्गः सदुपदेशा त्मकोयस्मिंस्तदसर्वदुःखप्रक्षीणमार्गं । कुतएवंनूतं तत्स्थानमित्याशंक्याह । ( एगंतेत्या दि ) एकांतेनैव तत्स्थानं यतोमिथ्यानूतं मिथ्यात्वोपहतबुद्धीनां यतस्तद्भवत्यतएवासा ध्वसदृत्तत्वान्न्ह्यर्यं सत्पुरुषसेवितः पंथा येन विषयांधाः प्रवर्तंतइति । तदयं प्रथमस्य स्था नस्याधर्मपाक्षिकस्य पापोपादाननूतस्य विनंगोविनागोविशेषः स्वरूपमिति यावत् ॥५७॥

अहावरे दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपरकस्स विनंग एव माहिज्जइ इह ख लु पाईणंवा पडीणंवा उदीणंवा दाहिणंवा संतेगइया मणुस्सा नवंति तं जहा आयरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमं तावेगे हस्समंतावेगे सुवन्नावेगे दुवन्नावेगे सुरूवावावेगे दुरूवावेगे तेसिं चणं खेत्तवत्थूणि परिग्गहियाइं नवंति एसो आलावगो जहा पोंमरीए तहा णेतवो तेणेव आलावेण जाव सवोवसंता सवताए परिनिवुमंत्तिवेमि॥५८॥ एसठाणे आरिए केवले जाव सवदुक्खपहीणमग्गे एगंतसम्मे साहु दोच्च स्स ठाणस्स धम्मपरकस्स विनंगे एव माहिए ॥५ए॥

अर्थ—हवे अपर बीजुं स्थानक धर्म पक्षनो विनंग एटले विचार कहियेंबेए. निश्चें आ जगत् मांहे पूर्वदिशियें, पश्चिमदिशियें, उत्तरदिशियें, अने दक्षिण दिशियें. अथवा विदि शियें, एवा कोइएक मनुष्यछे; ते कहेछे. एक आर्य, एक अनार्य. एक उंचगोत्रना उपना, एक नीचगोत्रना उपना, एक महोटी कायाना धणी, एक न्हानी कायाना धणी, एक

सारावर्ण वाला, एक माठा वर्ण वाला, एक सुंदर स्वरूपवान्, एक कुरूपवान्, तेने क्षेत्र एटले उघाडी भूमिका, अने वस्तु एटले घर हाट, प्रमुख एवो परिग्रह होय, इत्यादि ( एसोआलावगोजहापोंमरीएतहाणेतव्वो के० ) ए समस्त आलावो जेम पूर्वना पौंमरीकाध्ययनमां कह्योछे, तेमज जाणवुं, एटले "तेएवअलावेणजावसव्वोवसंता सव्वत्ताएपरिनिव्वुमंतिवेमि" एटला सुधीनो पाठ पौंमरीक अध्ययनमांछे. ते प्रमाणे अहीं पण जाणी लेवुं. अर्थात् तेज आलावे ज्यां सुधी सर्व प्रकारे उपशांत एटले कषायने जीपीने तथा सर्व प्रकारे सर्व पापस्थानकथकी, उपशम्या. ए कारणे सर्वात्मा; सर्व जीव उपर समभावे वर्त्तमान, शीतलीभूत थया. ए प्रमाणे श्रीसुधर्मस्वामि जंबूप्रत्यें कहेछे के ते आलावो सर्व आहीं जाणवो. ॥ ५८ ॥ ए स्थानकने आर्य रूडुं जाणवुं. एने विषे केवल ज्ञान होय यावत् ए सर्व डुःख क्षय करवानो मार्ग छे, एकांत सम्यक्मार्ग, एकांत सम्यक्दृष्टीनो मार्ग ते कारणे ए साधुनुं स्थानक जाणवुं एटले बीजुं स्थानक धर्मपक्ष, तेनो विभंग एटले विचार एरीतें कह्यो. ॥ ५९ ॥

---

दीपिका-( अहावरेत्ति ) अथापरोद्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विभंगोविशेषएवमाख्यायते । तद्यथा ( पाईणंति) प्राचीनं प्रतीचीनमुदीचीनं दक्षिणंवा दिग्भागमाश्रित्य संत्येके केचन कल्याणभाजः पुरुषाः । तद्यथा आर्या एके अनार्याइत्यादि यथा पुंडरीकाध्ययने तथेहापि सर्वं वाच्यं यावत्ते एवं सर्वपापस्थानेभ्यउपशांताअतएव सर्वात्मतया परिनिर्वृता इत्यहं ब्रवीमि ॥५८॥ एतत्स्थानमार्यं महापुरुषाचरितं केवलमित्यादिप्राग्वद्विपरीतं ज्ञेयं। यावद्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विभंगोविशेषआख्यातः ॥ ५९ ॥

---

टीका-सांप्रतं द्वितीयं धर्मोपादानभूतं पक्षमाश्रित्याह । ( अहावरेइत्यादि ) अथेत्य धर्मपाक्षिकस्थानादनंतरमयमपरोद्वितीयस्य स्थानस्य धर्मपाक्षिकस्य पुण्योपादानभूतस्य विभंगोविभागः स्वरूपं समाधीयते सम्यगाख्यायते । तद्यथा प्राचीनं प्रतीचीनमुदीच्यं दक्षिणंवा दिग्विभागमाश्रित्य संतिवि द्यंते एके केचन कल्याणपरंपराभाजः पुरुषामनुष्यास्तेच वक्ष्यमाणस्वभावाभवंति । तद्यथेत्ययमुपप्रदर्शनार्थः । आर्याएके केचनार्यदेशोत्पन्नास्तथाऽनार्याः शकयवनशबरबर्बरादयइत्याद्यवं । यथा पौंडरीकाध्ययने तथेहापि सर्वं निरवयवं भणितव्यं एवं पूर्वोक्तेन प्रकारेण सर्वेभ्यः पापस्थानेभ्यउपशांतास्तथा अतएव सर्वात्मतयापरिनिर्वृताइत्यहमेवं ब्रवीमि ॥५८॥ तदेवमेतत्स्थानं कैवलिकं प्रतिपूर्णं नैयायिकमित्यादि प्राग्वद्विपर्ययेण नेयं । यावद्वितीयस्य स्थानस्य धार्मिकस्यैव विभंगो विभागः स्वरूपमाख्यातमिति ॥ ५९ ॥

अहावरे तच्चस्स ठाणस्स मिस्सगस्स विनंग एव माहिज्जइ जे इमे न वंति आरणिया आवसहिया गामणियंतिया कण्हुईरहस्सित्ता जाव ते तउविप्पमुच्चमाणा नुज्जो एलमूयत्ताए पच्चायंति एस ठाणे अणारिए अ केवले जाव असवडुक्खपहीणमग्गे एगंतमिछे असाहु एसखलु तच्च स्स ठाणस्स मिस्सगस्स विनंगे एव माहिए ॥ ६० ॥

अर्थ—अथ हवे अपर त्रीजुं स्थानक मिश्र पक्षनो विचार एम कहेछे. (जेइमेनवंति के०) जे ए मिश्रस्थानकछे ते एने मिश्रस्थानक शा कारणे कहियें? तेमाटें विशेष कहेछे. अधर्म पक्षें मिश्रित जे धर्म पक्ष, ते कारणे एने मिश्र पक्ष कहियें. परंतु, अध र्मना बाहुल्य पणा थकी, ए अधर्म पक्षज जाणवो. यद्यपि मिथ्यादृष्टि पण केटली एक विरति करेछे, तथापि ते चित्तने अशुद्ध पणे, अने परमार्थने अजाण पणे, तथा अनिनव पित्तनाजावने उदयें, साकर मिश्रित दूधपाननी पेठें, तथा उखर क्षेत्रमां मेघ वृष्टि नी पेठें ते धर्म पण तेनो फलदायक नथाय. ते कारणे मिश्र पक्ष, विशेष अधर्म पक्षने म लतोज छे. (आरणिया के०) जे आरण्यक एटले कंदमूल फलाहारी वृक्षने मूलें वसता (आवसहियाके०) कोइएक पानडानी झुंपडी करीने रहे, (गामणियंतिया के०) आ जीविका चलाववा निमित्तें ग्रामने समीपे रहे, (कण्हुईरहस्सित्ता के०) कोइएक कार्यने विषे रहस्यना करनार, एवा तापसादिक पूर्वोक्त जेहोय ते मिश्रपक्षवाला जाणवा. (जावतेतउवि प्पमुच्चमाणाके०) यावत् यद्यपि ए कांहींएक काय क्लेश करे तथापि ते आसुरी किल्बिषिया उने स्थानके जइ उपजे. ते स्थानक थकी आयुष्यने क्षयें चवीने, (नुज्जो के०) वली मनुष्य नव पामे. तो, (एलमूयत्ताएके०) बेहेरा, मुंगा, आंधला, जन्मांध, (पच्चायंति के०) एवा थाय. एरीतें चतुर्गतिक संसार मांहे परिच्रमण करे. ए कारणे ए स्थानक अनार्य एटले महापुरुषने अनाचरणीय छे, एने विषे केवलज्ञान नथी, यावत् सर्व दुःख ना क्षयनुं कारक ए स्थानक नथी ए मार्ग एकांत मिथ्यात्वनुं स्थानक, माटे ए असा धुनो पंथ जाणवो. ए निश्चें त्रीजुं स्थानक जे मिश्रपक्ष, तेनो विचार एरीतें कह्यो. ॥६०॥

---

॥ दीपिका—अथापरस्तृतीयस्थानस्य मिश्रकाख्यस्य विनंगोविनागः कथ्यते । अत्र चाधर्मपक्षयुक्तोधर्मपक्षइति मिश्रउच्यते । तत्राधर्मस्येह बहुत्वादयमधर्मपक्षवज्ज्ञेयः । यतोमिथ्यादृशः कांचिज्जीवहिंसादिनिवृत्तिं कुर्वंति तथापि चित्तशुद्धेरनावान्नवीने पित्तो दये शर्करामिश्रक्षीरपानवत् उपरप्रदेशे वृष्टिवद्वा कार्यासाधकत्वान्निरर्थकतां याति सा । तथा मिथ्यात्वानुनवान्मिश्रपक्षोप्यधर्मपक्षएवेति दर्शयति । (जेइमेआरणिया) ये इमे

अरण्ये चरंतीत्यारण्यिकाः कंदमूलफलाशिनस्तापसाः आवसथोगृहं तेन चरंतीत्यावस थिकागृहिणः । यद्यप्येते कायक्लेशेन देवाः स्युस्तथापि आसुरीयेषु किल्बिषिकेषु उत्प द्यंते इत्यादि सर्वं पूर्वोक्तं वाच्यं । यावत्ततश्च्युतानरजवे एलमूकत्वेन प्रत्यायांति तदेतत्स्था नमनार्यमित्यादि पूर्ववत् । एषस्तृतीयस्थानस्य मिश्रकस्य विभंगोविचारोज्ञेयः ॥ ६० ॥

---

॥ टीका–सांप्रतं धर्माधर्मयुक्तं तृतीयस्थानमाश्रित्याह । (अहावरेत्यादि) अथापरस्तृतीय स्य स्थानस्य मिश्रकाख्यस्य विभंगोविभागः स्वरूपमाख्यायते । अत्र चाधर्मपक्षेण युक्तोऽधर्म पक्षोमिश्रइत्युच्यते । तत्राधर्मस्येह भूयिष्ठत्वादधर्मपक्षएवायं द्रष्टव्यः । एतडुक्तं भवति । यद्यपि मिथ्यादृष्टयः कांचित्तथाप्रकारां प्राणातिपातादिनिर्वृत्तिं विदधति तथाप्याशया शुद्धत्वादभिनवे पित्तोदये सति शर्करामिश्रक्षीरपानवदूपरप्रदेशवृष्टिवदिवक्षितार्थसाध कत्वान्निरर्थकतामापद्यते । ततोमिथ्यात्वानुभावात् मिश्रपक्षोप्यधर्मएवावगंतव्य इति । एतदेव दर्शयितुमाह ॥ (जेइमेभवंतीत्यादि) ये इमेऽनंतरमुच्यमानाअरण्ये चरंतीत्यार ण्यिकाः कंदमूलफलाशिनस्तापसादयोये चावसथिकाआवसथोगृहं तेन चरंतीत्यावस थिकागृहिणस्तेच कुतश्चित् पापस्थानान्निवृत्ताअपि प्रबलमिथ्यात्वोपहतबुद्धयस्ते यद्य प्युपवासादिना महता कायक्लेशेन देवगतयः केचन भवंति तथापि ते आसुरीयेषु स्था नेषु किल्बिषिकेषूत्पद्यंतइत्यादि सर्वं पूर्वोक्तं भणनीयं यावत्ततश्च्युतामनुष्यभवं प्रत्याया ता एलमूकत्वेन तमोंधतया जायंते । तदेवमेतत्स्थानमनार्यमकेवलमसंपूर्णमनैयायि कमित्यादि यावदेकांतमिथ्याभूतं सर्वथैतदसाध्विति । तृतीयस्थानस्य मिश्रस्यायं विभं गोविभागः स्वरूपमाख्यातमिति ॥ ६० ॥

अहावरे पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिज्जइ इह खलु पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति गिहत्था महिछा महारंभा महापरि ग्गहा अधम्मिया अधम्माणुया अधम्मिठा अधम्मक्खाई अधम्मपावजी वि अधम्मपलोई अधम्मवलज्जणा अधम्मसील समुदायारा अधम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति ॥ ६१ ॥

अर्थ–हवे वली ए पूर्वे त्रण प्रकार जे कह्या, तेज प्रकार विशेषें करी कहेछे. तेमां प्रथम स्थानक कहेछे. अथ हवे अपर प्रथम स्थानक अधर्म पक्षनो स्वरूप विचार आवीरीते कहेछे. आजगत्मांहे निश्चें पूर्वादिक चारदिशिने विषे कोइएक मनुष्य भे ते केवा छे तोके. ( महिछा के० ) महोटी जेनी इछाछे, चित्तनी अविरतिछे, तथा ( महारं

ना के० ) कृष्यादिक महाआरंजना करनार, तथा ( महापरिग्गहा के० ) क्षेत्र, धन, धान्य, द्विपद, चतुःपदादिक, अनेक परिग्रहवंत अधर्मिक अधर्मानुय एटले अधर्मनीज अनुमोदना करनारा, (अधम्मिठा के०) अधर्मज जेने इष्टछे वल्लनछे, (अधम्मरकाईके०) अधर्मना बोलनार, अथवा अधर्मथीजे ख्याति जेनी, अधर्मे करी आजीविकाना करनार, एटले अधर्मेज जीवे, प्राण धारण करे. तथा अधर्मज देखे तथा अधर्मनेज अंगीकार करवा प्रलोके एटले देखे, ते अधर्मे प्रलोइ केवाय. (अधम्मवलक्कणाके०) अधर्मने विषे राचे, अधर्मशील एटले अधर्मज जेनो स्वनावछे, ( समुदायारा के० ) तथा चारनो समुदाय छे जेनो ( अधम्मेणंचेववित्तिंकप्पेमाणाविहरंति के० ) तथा जे अधर्मे करीनेज वृत्ति कल्पीने विचरे. कालक्षेप करे ॥६१॥

---

॥ दीपिका—उक्तानि अधर्मधर्ममिश्रस्थानानि । अथ तेषां स्थानिनोऽनिर्धीयंते । अथवा पूर्वोक्तमेव प्रकारांतरेण विशिष्टतरमाह । अथापरः प्रथमस्थानस्य धर्मपक्षस्य विनंगोविनागएवमाख्या यते । ( इहखलुइत्यादि ) एते च प्रायोगृहस्थाएव स्युरित्याह । ( गिहत्था ) गृहस्थाः ( महेछा ) महारंनाः महापरिग्रहाअधर्मेण चरंत्याधार्मिकाअधर्मानुज्ञाः अधर्मिष्ठानिस्त्रिंशाः अधर्माख्यायिनोऽधर्मवादिनः अधर्मजीविनोऽधर्मप्रलोकिन अधर्मे प्रकर्षेण रज्यंतइत्यधर्मप्ररक्तकाः अधर्मशीलः समुदाचारोयत्किंचनकारित्वं येषां ते तथा अधर्मेण वृत्तिं जीविकां कल्पयंतः कुर्वंतोविहरंति तिष्ठंति । पापानुष्ठानमाह ॥६१॥

---

॥ टीका—उक्तान्यधर्मधर्ममिश्रस्थानानि । सांप्रतं तदाश्रिताः स्थानिनोऽनिधीयंते । यदिवा प्राक्तनमेवान्येन प्रकारेण विशेषिततरमुच्यते । तत्राद्यमधर्मस्थानकमाश्रित्याह ( अहावरेइत्यादि ) अथापरोन्यः प्रथमस्य स्थानस्याधर्मपाक्षिकस्य विनंगोविनाग आख्यायते ( इहखलु इत्यादि ) सुगमं । यावन्मनुष्याएवंस्वनावानवंतीति । एते च प्रायोगृहस्थाएवं नवंतीत्याह । ( महेछाइत्यादि ) महती राज्यविनवपरिवारादिका सर्वातिशायिनी स्वछांतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते महेछास्तथा महानारंनोवहनोष्ट्रमंडलिकागंत्रीप्रवाहकृषिपंडपोषणादिकोयेषां ते महारंनाः । ये चैवं नूतास्ते महापरिग्रहाधनधान्यद्विपदचतुष्पदवास्तुक्षेत्रादिपरिग्रहवंतः क्वचिदप्यनिवृत्ताअतएवाधर्मेण चरंतीत्यधर्मिकास्तथा धर्मिष्ठानिस्त्रिंशकर्मकारित्वादधर्मबहुलास्ततश्चाधर्मे कर्तव्ये अनुज्ञाअनुमोदनं येषां ते नवंत्यधर्मानुज्ञा एवमधर्ममाख्यातुं शीलं येषां ते तथा एवमधर्मप्रायजीविनस्तथा अधर्ममेव प्रविलोकयितुं शीलं येषां ते नवंत्यधर्मप्रविलोकिनस्तथा धर्मप्रायेषु कर्मसु प्रकर्षेण रज्यंतइति अधर्मरक्ताः । रलयोरैक्यमिति रस्य स्थाने लकारोऽत्र कृतइति ।

तथाऽधर्मशीलाअधर्मस्वभावास्तथाऽधर्मात्मिकः समुदाचारोयत्किंचनानुष्ठानं येषांते नवं त्यधर्मशीलसमुदाचारास्तथाऽधर्मेण पापेन सावद्यानुष्ठानेनैव दहनांकननिर्लांछनादिके कर्मणा वृत्तिर्वर्तनं कल्पयंतः कुर्वाणाविहरंतीति कालमतिवाहयंति ॥ ६१ ॥

हण छिंद भिंद विगत्तगा लोहियपाणी चंमा रुद्दा खुद्दा साहस्सिया उ कंचण वंचण मायाणियडि कूडकवडसाइ संपउगबहुला डुस्सीला डुव्व या डुप्पडियाणंदा असाहु सवाउ पाणाइवायाउ अप्पडिविरया जाव जीवाए जाव सवाउ परिग्गहाउ अप्पडिविरया जाव जीवाए सवउ कोहाउ जाव मिछादंसणसल्लाउ अप्पडिविरया सवाउ एहाणुम्मण म दण वन्नगंधविलेवणसद्द फरिसरसरूव गंधमल्लालंकाराउ अप्पडिवि रया जावजीवाए सवाउ सगड रहजाण जुगगिल्लिथिल्लिसिया संदमा णिया सयणासणजाण वाहणभोगभोयणपविछरविहीउ अप्पडिविरया जावजीवाएसवाउ कयविक्कयमासद्धमासरूवगसंववहाराउ अप्पडिवि रया जावजीवाए सवाउहिरन्न सुवन्नधणधन्न मणिमोत्तियसंखसिलप्प वालउ अप्पडिविरया जावजीवाए सवाउ कूडतुलकुडमाणाउ अप्पडिवि रया जावजीवाए सवाउ आरंभ समारंभाउ अप्पडिविरया जावजीवाए उ सवाउ करणकाराणाउ अप्पडिविरया जावजीवाए सवाउ पयण पायाणाउ अप्पडिविरया जावजीवाए सवाउ कुट्टणपिट्टणतज्जणताड णवहबंधपरिकिलेसाउ अप्पडिविरया जावजीवाए जेआवन्ने तहप्प गारे सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा जे अणारि एहिं कज्जंति ततो अप्पडिविरया जावजीवाए ॥ ६२ ॥

अर्थ—हवे एनो अधर्माचार कहेछे. ते पोते अधर्मी छता बीजाने पण एवा आदेश आपे ते कहेछे. के, ( हण के० ) अरे एने हणो, ( छिंद भिंद के० ) कर्णादिक, छेदी शूलादिकें करी भेदी, ( विगत्तगाके० ) एनां चर्म उखेडो, इत्यादिक कहीने प्राणीउने डुःखना उ पजावनार थाय, ए कारणे ( लोहियपाणी के० ) सर्वकाल लोहीयें करी हाथ राताछे परंतु तेउ जीवोने हणीने कोइ वारें हाथ पण धोवे नहीं, (चंमा के०) तीव्रक्रोध, ( रुद्दा के० ) रौद्र ध्यान, शोचरहितकर्मना करनार, ( खुद्दाके० ) क्षुद्र डुष्ट, नूंमा, ( साहस्सि

या के० ) अणविमास्या कार्यना करनार, ( उक्कंचण के० ) तथा शूलिकारोपणने विषे ऊर्ध्वमहोटुं करवुं (वंचण के०) वंचणा. एटले परने ठगवानी बुधिराखे, जेम अंनयकुमारने चंडप्रद्योतनी गणिकायें वंच्यो, तेनी पेरें वंचक, ( मायाणियडि के० ) वंचवानीबुद्धियें वाणीयानी पेरें मायानियड नियड एटले बगनी वृत्तियें वंचवानें अर्थे साधुने स्वरूपे रहे जेम उदायिराजाने चलेईकियें वंच्यो, मास्यो, तेनी पेरें जाणी लेवुं (कूडके०) मृषा बोलवुं. ( कवडसाइ के० ) कपट एटले रूप पालटवुं तथा नापादिक परावर्ति एटले प्रकारें ( संपउग के० ) तथा ते तोलानु न्यूनाधिक करवुं तथा नेलसेलनुं करवुं इत्यादिक व्यापार जाणवो ( बहुला के० ) घणाछे बहुलकर्म, ते उपर योगी सन्यासीनी कथा जाणवी. ( डुस्सीला के० ) डुःशील ( डुवया के० ) डुष्टव्रत वाला ( डुप्पडियाणंदा के० ) डुःखें आनंद पमाडियें जेने डुःखें हर्ष पमाडियें डुराराध्य इत्यर्थः एवा ( असाहु के० ) असाधु ( सव्वाउ के० ) सर्वथा प्रकारें ( पाणाइवायाउ के० ) प्राणातिपात थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या, (जावजीवाए के०) जावजीवसुधी ( जावसव्वाउपरिग्गहाउ के० ) यावत् सर्वथा परिग्रह थकी, ( अप्पडिविरया के० ) अनिवृत्या ( जावजीवाए के० ) जावजीव सुधी ( सव्वतोकोहाउ के० ) सर्वथा प्रकारें क्रोध थकी ( जावमिछादंसणसल्लाउ के० ) यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य थकी, ( अप्पडिविरया के० ) अनिवृत्या. (सव्वाउके०) सर्वथा ( एहाणुचणके०) स्नान, ( मद्दणके०) मर्दन. करावबुं (वस्नुके०) वर्ण ते अंबीर, गुलाल, (गंधके०) सुवास, (विलेवणके०) विलेपन करवा थकी, (सद्दके०) शब्द, गीत, वाद्यादिकना ( फरिसके० ) आठ जातना स्पर्श, ( रूवके० ) रूप, सुंदराकारादिक, ( गंध के० ) कर्पूरादिकनी सुगंध ( मल्लालंकाराउ के० ) माला, अलंकार ते थकी, ( अप्पडिविरया के० ) अनिवृत्या ( जावजीवाए के० ) जावजीव सुधी ( सव्वाउ के० ) सर्वथा ( सगड के० ) शकट एटले गाडां ( रह के० ) रथ ( जाणके०) वहेल ( जुग के० ) पुरुषे उपाड्यो आकाश यान तथा ( गिल्लि के० ) मोली, अथवा उंटना पलाण ( थिल्लिके० ) हस्तिना पलाण, ( सिया के० ) शिबिका. ते देशविशेष प्रसिद्ध यान शिबिका ( संदमाणियाके० ) शिबिका देशविशेषें अन्यजातिछे. (सयणासणजाणवाहण के० ) पर्यंकादिक आसयान वाहनादिकना ( नोग के० ) नोग थकी तथा ( नोयण के० ) नोजन ( पविछर के० ) घर वखारो ( विछीउ के० ) तेना विस्तारथी ( अप्पडिविरया के० ) अनिवृत्या (जावजीवाए के०) जावजीवसुधी (सव्वाउ के०) सर्व ( कयविक्कय के० ) क्रय वक्रय एटले लेवो वेचवो (मासद्धमासरूवग के०) माप अर्ध माप रूपादिक ( संववहाराउ के० ) इत्यादिक लेवा देवा रूप व्यापार थकी ( अप्पडिविरया के० ) अनिवृत्या. ( जावजीवाए के० ) जावजीवसुधी सर्वथा हिरण्य एटले रु

पुं, तथा सुवर्ण, धन, धान्य, चिंतामणी प्रमुख मणी, तथा मौक्तिक दक्षणावर्त्त शंख, राजपट, प्रवालादिक परिग्रह, तेथकी अनिवृत्त्या; तथा जावजीवसुधी सर्व कूडां तोलां, कूडां मापथकी, नथी निवृत्त्या; तथा जावजीव सुधी सर्व आरंभ जे कर्पणादिक, तथा समारंभ विशेष, तेथकी नथी निवृत्त्या, तथा जावजीवसुधी सर्वथा करण करावण थकी नथी निवृत्त्या, तथा जावजीव सुधी पचन ते पोतें पचाववानुं करे, तथा पचावण ते बीजा पासें पचाववानुं करावे, ए क्रिया थकी नथी निवृत्त्या, तथा सर्व कुटण पिट्टन तर्जन अंगुलीयेंकरी तर्जना करे चपटीयादिकें करी ताडन करे, वध, बंधन करे, इत्यादिक जीवने क्लेशना कारण थकी नथी निवृत्त्या, तथा जावजीव सुधी जे बीजां, तथाप्रकारें पाछल कह्यां एवा सपापकारी परपीडानां करनार, सावद्य कर्म, ( अबोहिया के० ) बोधबीजना नसाडनार एवां ( कम्मता के० ) कर्म, परजीवने परितापना करनार जे अनार्य पुरुषोने करवा योग्य, तेथकी पण जावजीव सुधी निवृत्त्या नथी. ॥ ६१ ॥

॥दीपिका–(हणछिंदत्ति) जहि दंडादिना, छिंधि कर्णादिकं, भिंधि शूलादिना, एवं परोपदेशं ददते । किंभूताः विकर्तकाः प्राणिनां चर्मापनेतारस्तेनैव लोहितपाणयश्चंडारोद्राः निस्त्रिंशाः क्षुद्राः साहसिकाअविचारितकारिणः उत्कुंचनवंचनमायानिकृतिकूटकपटादिभिः सहातिसंप्रयोगोगाढ्यं तेन बहुलाः । तत्र शूलाद्यारोपणार्थमूर्ध्वं कुंचनमुत्कुंचनं वंचनं प्रतारणं । यथाऽभयकुमारः प्रद्योतगणिकाभिर्धर्मवंचनया वंचितः । माया, वंचनबुद्धिः प्रायोवणिजामिव निकृतिस्तु बकवृत्त्या देशभाषावेषादिविपर्ययकरणं कूटं तुलामानादेर्न्यूनाधिककरणं, कपटं यथाषाढभूतिना वेषपरावृत्त्याचार्योपाध्यायसंघाटकार्थं चत्वारोमोदकालब्धाः एवं मायायुतानराः । पुनः किंभूताः । दुःशीलाश्चिरं परिचिताअपि शीघ्रं विसंवदंतोदुष्प्रव्रतादुःखेन प्रत्यानंद्यंते दर्पंतइति दुष्प्रत्यानंद्याअसाधवः पापाः सर्वतः प्राणातिपातादप्रतिविरतालोकनिंद्यादपि ब्राह्मणघातादेरनिवृत्ताइति सर्वग्रहणं । एवं यावज्जीवं सर्वतोमृषावादाऽदत्तादानमैथुनपरिग्रहादप्रतिविरताः । एवं सर्वेभ्यः क्रोधमानमायालोभेभ्यस्तथा प्रेमद्वेषकलहाभ्याख्यानपैशुन्यपरिवादाऽरतिरतिमायामृषावादमिथ्यादर्शनशल्यादिभ्योऽविरताः स्नानोद्वर्तनवर्णकविलेपनशब्दस्पर्शरूपरसगंधमाल्यालंकारादप्रतिविरताः सर्वतः शकटरथादेर्यानादिकात्प्रविस्तरविधेः परिकरादप्रतिविरताः । अत्र शकटरथादिकमेव यानं शकटरथयानं युग्यंतरोत्क्षिप्तं चाकाशयानं ( गिल्लित्ति ) दोलिका ( थिल्लित्ति ) तुरगद्वयनिर्मितं यानं ( संदमाणियत्ति ) शिबिकाविशेषः । तथा सर्वतः क्रयविक्रयाभ्यां योमापकार्धमापकरूपकनाणकादिभिः संव्यवहारस्तस्मादविरताः सर्वस्माद्धिरण्यसुवर्णधान्यमणिमौक्तिकशंखशिलाप्रवालादिपरिग्रहात् कूटतुलाकूटमानात्

कृष्यादेः स्वयंकरणमारंभः परेण कारयणं समारंभस्तस्मात्, पचनपाचनतः कुट्टनकुट्टन पिट्टनतर्जनताडनवधबंधादिभिर्यः परिक्लेशस्तस्मादनिवृत्ताये चान्ये तथाप्रकाराः सावद्याः कर्मसमारंभाअबोधिकाबोधिनाशकाः परप्राणपरितापनकरायेऽनार्यैः क्रियंते ततोनिवृत्तायावज्जीवयेति ॥ ६१ ॥

---

॥ टीका—पापानुष्ठानमेव लेशतोदर्शयितुमाह् । (हणछिंदभिंदेत्यादि) स्वतएव हननादिकाः क्रियाः कुर्वाणाअपरेषामप्येवमात्मकमुपदेशं ददति । तत्र हननं दंडादिभिस्तत्कारयंति तथा छिंधि कर्णादिकं, भिंधि शूलादिना, विकर्तकाः प्राणिनामजिनापनेतारोऽतएव लोहितपाणयस्तथा चंडारौद्रानिस्त्रिंशाः क्षुद्राः क्षुद्रकर्मकारित्वात्तथा साह्सिकाअसमीक्षितकारिणस्तथा उत्कुंचनवंचनमायानिकृतिकूटकपायादिभिः सद्मातिसंप्रयोगोगार्ध्यं तेन बहुलास्तत्प्रचुरास्ते तथा तत्रोर्ध्वं कुंचनं शूलाद्यारोपणार्थमुत्कुंचनं । वंचनं प्रतारणं । तद्यथाऽजयकुमारः प्रद्योतगणिकाभिर्धार्मिकवंचनया वंचितः । माया, वंचनबुद्धिः प्रायोवणिजामिव । निकृतिस्तु बकवृत्त्या कुर्कुटादिकरणेन दंभप्रधानवणिक् श्रोत्रियसाध्वाकारेण परवंचनार्थं गलकर्तकानामिवावस्थानं । देशनापानेपथ्यादिविपर्ययकरणं कपटं । यथा आषाढभूतिना नटेन वा परापरवेषपरावृत्त्याचार्योपाध्यायसंघाटकात्मार्थं चत्वारोमोदकाअवाप्ताः । कूटंतु कार्षापणतुलाप्रस्थादेः परवंचनार्थं नानाविधकरणं । एतैरुत्कुंचनादिभिः सद्मातिशयेन प्रयोगोयदिवातिशयेन द्रव्येण कस्तूरिकादिना परस्य द्रव्यस्य संप्रयोगः सोतिसंप्रयोगस्तद्बहुलास्तत्प्रधानाइत्यर्थः । उक्तंच सोह्मोइ सातिजोगो,दवं जं छादियस्रदव्वेसु । दोसगुणावयणेसुय, अच्छविसंवाइणं कुणइ ॥ १ ॥ एते चोत्कुंचनादयोमायापर्यायाईइशक्रादिवत् कथंचित्क्रियाभेदेपि द्रष्टव्याः । तथा दुष्टं शीलं येषांते दुःशीलाश्चिरमुपचरिताअपि क्षिप्रं विसंवदंति । दुःखानुमेयादारुणस्वजावाइत्यर्थः । तथा दुष्टानि व्रतानि येषांते तथा । यथा मांसजक्षणव्रतकालसमाप्तौ प्रभूततरसत्वोपघातेन मांसप्रदानमन्यदपि नक्तभोजनादिकं दुष्टव्रतमिति तथान्यस्मिन् जन्मांतरे मधुमद्यमांसादिकमन्यद्वह्रिष्यामीत्येव मज्ञानांधाजन्मांतरविधिद्वारेण सनिदानमेव व्रतं गृह्णंति, तथा दुःखेन प्रत्यानंद्यंते दुष्प्रत्यनंद्याः । इदमुक्तं जवति । तैरानंदितेनापरेण केनचित्प्रत्युपकारेप्सुना गर्वाध्मातादुःखेन प्रत्यानंद्यंते । यदिवा सत्यप्युपकारे प्रत्युपकारजीरवोनैवानंद्यंते प्रत्युत शततयोपकारे दोषमेवोत्पादयंति । तथा चोक्तं । प्रतिकर्तुमशक्तिष्ठानराः पूर्वोपकारिणां ॥ दोषमुत्पाद्य गछंति मद्गूनामिव वायसाः ॥ १ ॥ यतएवमतोऽसाधवस्ते पापकर्मकारित्वात् तथा यावज्जीवं यावत्प्राणधारणेन सर्वस्मात्प्राणातिपातादप्रतिविरतालोकनिंदनीदादपि ब्राह्मणघातादेरविरताइति । सर्वग्रहणं सर्वस्मादपि कूटसाद्ययादेरप्रतिविरताइति । तथा सर्वस्माद

पि कूटसाक्ष्यादेरप्रतिविरताइति । तथा सर्वस्मात्स्त्रीबालादेः परद्र्व्यापहरणादविरतास्तथा सर्वस्मात्परस्त्रीगमनादेर्मैथुनादविरताएवं सर्वस्मात्परिग्रहाद्योनिर्पोपकादप्यविरताएवं स र्वेन्यः क्रोधमानमायालोनेन्योऽविरतास्तथा प्रेमद्वेषकलहान्याख्यानपैशुन्यपरपरिवादाऽर तिरतिमायामृषावादमिथ्यादर्शनशल्यादिन्योऽसदनुष्ठानेन्योयावज्जीवं ये प्रतिविरतानवं ति । तथा सर्वस्मात्स्नानोन्मर्दनवर्णकविलेपनशब्दस्पर्शरूपरसगंधमाल्यालंकारात्कामांगा न्मोहजनितादप्रतिविरतायावज्जीवयेति । इहच वर्णकग्रहणेन वर्णविशेषापादकं लोध्रा दिकं गृह्यते । तथा सर्वतः शकटरथादेर्यानविशेषादिकात्प्रतिविस्तरविधेः परिकररूपात्प रिग्रहादप्रतिविरताः । इहच शकटरथादिकमेव यानं शकटरथयानं युग्यं पुरुषोत्क्षिप्तमा काशयानं ( गिल्लित्ति ) पुरुषद्वयोत्क्षिप्ता फोल्लिका । ( थिल्लित्ति ) वेसरादिद्वयविनिर्मि तोयानविशेषः तथा ( संदमाणियत्ति ) शिबिकाविशेषएव । एतदेवमन्यस्मादपि वस्त्रा देः परिग्रहाडुपकरणनूतादविरतास्तथा सर्वतः सर्वस्मात्क्रयविक्रयान्यां करणनूतान्यां यो मापकार्धमापकरूपकार्पणादिन्निः पण्यविनिमयात्मकः संव्यवहारस्तस्मादविरतायाव ज्जीवयेति । तथा सर्वस्माद्धिरण्यसुवर्णादेः प्रधानपरिग्रहादविरतास्तथा कूटतुलाकूटमा नादेरविरतास्तथा सर्वतः कृषिपाशुपाल्यादेर्यत्स्वतः करणमन्येन च यत्किंचित्कारयति त स्मादविरतास्तथा पचनपाचनतस्तथा कंडनकुट्टनपिट्टनतर्जनताडनबंधादिना यः परिक्लेशः प्राणिनां तस्मादविरताः । सांप्रतमुपसंहरति । ये चान्ये परपीडाकारिणः सावद्याः कर्मस मारंनाअबोधिकाबोधकारिणस्तथा परप्राणपरितापनकरागोग्रहबंदीग्रहग्रामघातात्मकाये ऽना यैः क्रूरकर्मन्निः क्रियंते ततोऽप्रतिविरतायावज्जीवयेति ॥ ६१ ॥

से जहा णामए केइ पुरिसे कलमसूरतिलमुग्गमासनिप्फावकुलत्थ आलिसंदग पलिमंथगमादिएहिं अयंते कूरे मिछादंमं पउंजंति एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए तित्तिरवट्टगलावगकवोतकविंजलमियमहिसव राहगाहगोहकुम्मसिरिसिवमादिएहिं अयंते कूरेमिछादंमं पउंजंति जा वियसे बाहिरिया परिसा नवइ तंजहा दासेइवा पेसेइवा नयएइवा ना इल्लेइवा कम्मकरएइवा नोगपुरिसेइवा तेसिंपियणं अन्नयरंसिवा अ हालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंमं निवत्तेइ तंजहा इमंदंमेह इ मंमुंमेह इमंतज्जेह इमंतालेह इमंअडुयबंधणं करेह इमंनियलबंधणं करे ह इमंहडिबंधणं करेह इमंचारगबंधणं करेह इमंनियलजुयलसंकोडिय मोडियं करेह इमंहत्थछिन्नयं करेह इमंपायछिन्नयं करेह इमं कन्नछिणयं

करेह इमंनक्कउठसीसमुहछिन्नयं करेह वेयगछहियं अंगछहियं इमंपुक्खा प्फोडियं करेह इमंणयणुप्पाडियं करेह इमंदंसणुप्पाडियं वसणुप्पाडियं जि प्तुप्पाडियं उलंवियं करेह घसियं करेह घोलियं करेह सूलाइयं करेह सूला भिन्नयं करेह खारवत्तियं करेह वज्झवत्तियं करेह सीहपुछियंगं करेह वसभपुछियंगं करेह दवग्गिदछयंगं कागणिमंसखावियंगं भत्तपा णनिरुध्धगं इमं जावजीवं वहबंधणं करेह इमं अन्नयरेणं असुभेणं कु मारेणं मारेह ॥ ६३ ॥

अर्थ–हवे वली बीजा प्रकारें अधार्मिक पुरुषनो विशेष कहेछे. यथादृष्टांतें नामएवी संभावनायें कोइएक पुरुष. कलम एटले वटाणा, चणा, मसूरनी दाल, तल, मग, मास एटले अडद, निप्फाव एटले वाल, (कुलब्ध के०) तुवर, (आलिसंदग पलिमंथग मादिएहिं के०) चउथ, कालाचणा, आदेलेइने जे धान्य विशेषछे तेने पच न पाचनादिक क्रियायें करी पोताने तथा परने अर्थे (अयंते के०) अयत्नछता निर्दय भावें (कूरेके०) क्रूरपणे दुष्ट थको (मिछादंमंपउंजंति के०) मिथ्या दंम प्रयूजे (ए वमेव के०) एरीते (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारें पूर्वोक्त जे (पुरिसजाए के०) पुरुषजा ति छे ते निर्दय पणे त्तितर, वर्त्तक, लावक, कपोतपक्षी, कपिंजलपक्षी, मृग, पाभो, सूवर, मयूर, गौ नकुलादिक, जलचर घो, काचवो, अने भूजपुरी सर्प इत्यादिक प्राणीने विषे अर्थी अथवा अनर्थी थको यत्नविना निर्दय भावे क्रूर दुष्ट थकोमिथ्यादंम प्रयूजे; एवा पुरुष ने परिवार पण एवोज सांपडे "यथा राजा तथा प्रजा" इतिवचनात् ते देखाडेछे. (जावियसेबाहिरियापरिसाभवइ के०) जेपण तेनी बाहेरनी परिषदा होय (तंजहा के०) ते कहेछे (दासेइवा के०) ए दास आपणी दासीनो पुत्रछे (पेसेइवा के०) ए प्रेक्षक काम काज उपने ज्यां त्यां मोकलवुं (भयएइवा के०) भृत ते मजूरीनो करना र, तथा (भाइल्लेइवा के०) भागीक, षष्ठादिक भागें कर्षणादिकने विषे प्रवर्त्ते, (कम्मक रएइवा के०) कामनो करनार प्रसिद्ध ते कर्मकर कहियें (भोगपुरिसेइवा के०) स्वतंत्र भोगने मार्टे राखेलो दास तेपण बाहेरनी परिषदा मांहे कोइ रूडो पुरुष होय. (तेसिं पियणं के०) तेनो पण (अन्नयरंसिवा के०) अन्य कोइ एकनो (अहालहुगंसिके०) यथा शब्दादिक सांभलेछते पछी तेनो एवो न्हानो (अवराहंसिके०) अपराध उपने छते ते नायकना दासादिकपण (सयमेवगुरुयंदंमंनिवत्तेइके०) पोतें तेने महोटो दंम करे. (तंजहा के०) ते केवा दंम करे. ते कहेछे (इमंदंमेह के०) एने दंमो, एवुं सर्व

स्व अपहरी ल्यो, ( इमंमुंमेह के० ) एने सर्वमुंमन करावो ( इमंतज्जेह के० ) एने अंगु लीयें करी तर्जना करो, ( इमंतालेह के० ) एने चिपटे करी ताडन करो, ( इमंअडुयं बंधणंकरेहके०) एने पठवाडे बाहु करीने बंधने बंधन करो, (इमंनियलबंधणंकरेहके०) एना हाथमां बेडी नाखीने बंधन करो, (इमंहडिबंधणंकरेह) एने हडनुं बंधन करो, (इ मंचारगबंधणंकरेह के० ) एने नाकसी बंधन करो, ( इमंनियलजुयलसंकोडियमोडियंक रेहके०) एने वेडीना युगलें करी संकोच करो, मोडिय एटले अंगोपांग नंग करी मरडो, अथवा एना हाथ पग संकोचीने बांधो, (इमंहलछिन्नयंकरेह के०) एना हाथ छेदन करो, ( इमं पायछिन्नयं करेह के० ) एना पग छेदन करो ( इमंकन्नछिन्नयंकरेह के० ) एमज एना कान छेदन करो, (इमंनक्कउठसीसमुहछिन्नयंकरेहके०) एनुं नाक छेदन करो, एना होठ, एनुं मस्तक, एनुं मुख, छेदन करो, (वेयगछहियंअंगछहियं के०) एनुं वेदछेद करो, एना जीवतांज हैयाने छेदो, कापो, एम करो. (इमंपुरकाप्फोडियंकरेहके०) एना शरीरनी खालने उपाडो एम करो, ( इमंणयणुप्पाडियंकरेह के० ) एनी आंख उखेडो एटले चक्षुकाढो, एम करो. ( इमंदंसणुप्पाडियंवसणुप्पाडियंजिब्नुप्पाडियंउलंबियंकरेह के० ) एना दांत काढो, वृषण काढो, एनी जीन काढो. एने उंचो बांधोएने कूप, पर्वत नदीने नाखो एम करो, ( घसियंकरेह के० ) एने पग बांधीने घसो, (घोलियं करेहके० ) एने विषे आंबांनी पेंठें घोलो, (सूलाइयंकरेहके०) एने शूली उपर आरोपण करो, (सूलाभि न्नयंकरेहके०) एने त्रिशूलें नेद करो, ( खारवत्तियं करेहके० ) एने शस्त्रें करी छेदीने लू णनुं पाणी सींचो ( वज्झवत्तियं करेह के० ) एनुं शरीर माचें करी, काशें छेदो. (सीहपु छियंगं करेह के० ) एने सिंहने पुंछडे बांधो, ( वसनपुछियंगं करेह के०) एने बलदने पुंछडे बांधो ( दवग्गिंदड्ढयंगं के० ) एने दावानल मांहे बालो, (कागणिमंसखावियंगंके०) एने काक पक्षीनु मांस काढीने खवरावो, तथा एनुं पोतानुं मांस काढीने एनेज खव रावो, (नत्तपाणनिरुद्धगंके०) एने नात पाणीनो निरोध करो, (इमंजावजीवंवहबंधणंकरेह के०)एने जावजीव सुधी बांधी मूको, वध, बंधन करो, (इमंअन्नयरेणंअसुनेणंकुमारेणंमारे हके०)एम एने बीजा केटलाएक अशुन मारें करीने मारो, इत्यादिक एवा दंम तेने आपे. ६२

॥ दीपिका—अधार्मिकपदमेव सविस्तरमाह । ( सेजहेत्ति ) तद्यथा । नामसंनावने । संनाव्यंते अत्र नवे केचिदेवंनूतानराः ये कलममसूरादिषु पचनादिक्रिययाऽयताअयत्न वंतोनिष्क्रियाः क्रूराः मिथ्या अपराधं विना दोषमारोप्य दंडोमिथ्यादंडस्तं प्रयुंजंति । त था एवमेव प्रयोजनं विनैव तथाप्रकारानिर्दयाः पुरुषास्तित्तिरिवर्तकादिप्राणिष्वयताः क्रू रकर्माणोमिथ्यादंडं प्रयुंजंति तेषां परिकरोपि तादृशः स्यादित्याह ( जावियसेत्ति ) यापिच

तेषां बाह्या पर्षद्भवति । तद्यथा दासः स्वदासीसुतः प्रेष्यः प्रेषणयोग्यः नृतकोमूल्यगृहीतः नागिकः कृष्यादौ तन्नागग्राही कर्मकरः प्रतीतः नोगपरोनायकाश्रितः कश्चित् ते दासादयोऽन्यतरस्मिन्स्वल्पेऽप्यपराधे स्वयं गुरुतरं दंडं प्रयुंजंति । सच नायकस्तेषां दासादीनां यथा लघौ स्वल्पेऽपराधेपि गुरुदंडं वक्ष्यमाणं प्रयुंक्ते । तद्यथा इमं दासं दंडयत यूयमित्यादि सुगमं । यावदिममन्यतरेणाऽशुनेन कुत्सितमारेण मारयतइति॥ ६३ ॥

॥ टीका–पुनरन्यथा बहुप्रकारमधार्मिकपदं प्रतिपिपादयिपुराह । ( सेजहाणामएइत्यादि ) तद्यथेत्युपदर्शनार्थोनामशब्दः संनावनायां संनाव्यते । अस्मिन्विचित्रे संसारे केचनैवंनूताः पुरुषाः केवलमसूरतिलमुद्गादिषु पचनपाचनादिकया क्रियया स्वपरार्थमयताश्रप्रयत्नवंतोनिष्कृपाः क्रूरामिथ्यादंडं प्रयुंजंति । मिथ्यैवाऽनपराधिष्वेव दोषमारोप्य दंडोमिथ्यादंडस्तं विदधति । तथैवेमे प्रयोजनं विनैव तथाप्रकाराः पुरुषानिष्करुणा जीवोपघातनिरतास्तित्तिरवर्तकलावकादिषु जीवनप्रियेषु प्राणिष्वयताः क्रूरकर्माणोदंडं प्रयुंजंति। तेषां च क्रूरधियां "यथा राजा तथा प्रजा" इति प्रवादात् परिवारोपि तथानूतएव नवतीति । तथा दर्शयितुमाह । ( जावियसेइत्यादि ) यापिच तेषां बाह्या पर्षद्भवति । तद्यथा । दासः स्वदासीसुतः प्रेष्यः प्रेषणयोग्योनृत्योनृत्यदेश्योनृतकोवेतवेनोदकाद्यानयनविधायी तथा नागिकोयः षष्ठयंशादिलानेन कृष्यादौ व्याप्रियते कर्मकरः प्रतीतस्तथा नायिकाश्रितः कश्चिद्नोगस्तदेवं ते दासादयोऽन्यस्य लघावप्यपराधे गुरुतरं दंडं प्रयुंजंति प्रयोजयंतिच । सच नायकस्तेषां दासादीनां बाह्यपर्षद्भूतानामन्यतरस्मिंस्तथा लघावपराधे शब्दश्रवणादिके गुरुतरं दंडं वक्ष्यमाणं प्रयुंक्ते । तद्यथा । इमं दासं प्रेष्यादिकंवा सर्वस्वापहारेण दंडयत यूयमित्यादि सूत्रसिद्ध यावदिममन्यतरेणाशुनेन कुत्सितमारेण व्यापादयत यूयं ॥ ६३ ॥

जावियसे अप्निंतरिया परिसा नवइ तंजहा मायाइवा पियाइवा नायाइवा नगिणीइवा नज्जाइवा पुत्ताइवा धूताइवा सुण्हाइवा तेसिंपियणं अन्नयरंसि अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंमं णिवत्तेइ सीउदगवियडंसि उगोलित्ता नवइ जहा मित्तदोसवत्तिए जाव अहिए परंसि लोगंसि तेडक्कंति सोयंति जूरंति तिप्पंति पिट्टंति परितप्पंति ते डुक्कणसोयणजूरणपिट्टणपरितप्पणवहवंधणपरिकिलेसाउ अपडिविरया नवंति ॥ ६४ ॥

अर्थ–(जावियंसेअप्निंतरियापरिसानवइके०) जे पण तेनी अभ्यंतरनी परिषदा होय

जहा के० ) ते कहेछे. माता, अथवा पिता, अथवा भाइ, भगनी, स्त्री, पुत्र, वेटी, पुत्रनीस्त्री, इत्यादिक माहेली परिषदावालामांथी कोइकनो पण अजाण पणे यथा न्हानो सरखो अपराध उपने थके पोतेंज तेने महोटो दंम करे, मारे, शीतकालें तेना शरीरने टाढापाणीमां बोले, एवा अकार्य करे, ए जेम पूर्वे मित्रदोष प्रत्ययिक क्रियास्थानक कह्युंछे, तेमज अहींयां पण जाणीलेवुं. एवा दंमनो करनार पुरुष, ते यावत् आ लोकने विषे अहित कारी अने परलोकने विषे आत्माने अहितकारी थाय ते अनेक जीवने दुःख उपजावे, शोक उपजावें, जूरावे, तपावे, पीटे, परिताप आपे, ते घणा जीवोने दुःखदायक शोकनो करनार गर्हा, निंदा करावनार, पीटीने पीडानो उपजावनार, परिताप करावनार, वध करावनार, बंधन करावनार, एवा महोटा क्लेश उपजाववाना कर्म थकी, जावजीव नथी निवृत्या एवो थका होय ॥ ६४ ॥

---

॥ दीपिका–यापि च तेषामभ्यंतरा पर्षद्भवति मातापित्रादिका मित्रदोषःप्रत्ययिकाख्यदशमक्रियास्थानवज्ज्ञेयं यावदहितोऽस्मिन् लोके। ते क्रूरकर्माणः स्वल्पापराधिनामपि गुरुतरदंडकरणाद्दुःखयंति शोकयंति याव द्वधबंधपरिक्लेशादप्रतिविरताभवंति ॥ ६४ ॥

---

टीका–यापिच क्रूरकर्मवतामभ्यंतरा पर्षद्भवति । तद्यथा । माता पित्रादिका मित्रदोषप्रत्ययिकक्रियास्थानवद्ज्ञेयं यावदहितोयमस्मिन् लोके इति । तथाहि । आत्मनोऽपथ्यकारि परस्मिन्नपि लोके । तदेवं ते मातृपित्रादीनां स्वल्पापराधिनामपि गुरुतरदंडापादनतोदुःखमुत्पादयंति तथा नानाविधैरुपायैस्तेषां शोकमुत्पादयंति शोकयंतीत्येवं ते प्राणिनां बहुप्रकारपीडोत्पादकाः याव द्वधबंधपरिक्लेशादप्रतिविरताभवंति ॥ ६४ ॥

एवमेव ते इत्थिकामेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया अज्झोववन्ना जाव वासाइं चउपंचमाइं छद्दसमाइवा अप्पतरोवा भुज्जतरोवा कालं भुंजित्तु भोग भोगाइं पविसुइत्ता वेरायतणाइं संचिणित्ता बहूइं पावाइं कम्माइं उस्सन्नाइं संभारकडेण कम्मणा से जहा णामए अयगोलइवा सेलगोलइवा उदगंसि पक्खित्ते समाणे उदगतलमइवइत्ताइ अहे धरणितल पइठाणे भवइ एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाते वज्जबहुले धूतबहुले पंकबहुले वेरबहुले आप्पत्तियबहुले दंभबहुले णियडिबहुले साइबहुले अयसबहुले उस्सन्नतसपाणघाती कालमासे कालंकिच्चा धरणितल मइवइत्ताइ अहे णरगतलपइठाणे भवइ ॥ ६५ ॥

अर्थ–एरीतें ते पूर्वोक्त स्वनाव वालो पुरुष निर्दय थको बाह्याभ्यंतर एवी पोतानी जे परिषदा तेने पण पीडानो करनार एवो, ठतो स्त्रियादिकना काम नोगने विषे मूर्छित गृद्ध एटले लोनी, नोगने विषे पोतें गुंथाणो थको परम आसक्त ठतो, यावत् चार, तथा पांच, तथा सात, तथा दश वर्ष एम अल्प काल अथवा घणोकाल सुधी नोगववा योग्य नोग नोगवीने, घणा जीवोनी साथे अनेक जातना वैर उपजावी वैरनावना स्थानकनो संचय करीने, ज्यां घणापापरूप हिंसादिक क्रूर कर्म संनारीकरी करेला कर्मने प्रेरेतो एवा ठतो, नरक रूप स्थानकने पामे. (सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते जेम (अयगोलइवा के०) लोहनो गोलो, (सेलगोलइवा के०) पाषाणनो गोलो, तेने (उदगंसिपक्खित्तेसमाणे के०) पाणीना इहमां हे अथवा नदी तलाव मांहे नाख्यो थको, (उदगतलमइवइत्ताइ के०) उपलुं तलुं अतिक्रमीने पाणीना तलामां जइ पेसे, (अहेधरणितलपइट्ठाणेनवइ के०) नीचे धरतिना तलाने विषे जइ बेसेठे. (एवमेव के०) एरीतें (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारें, ए पूर्वोक्त प्रकारना दुष्ट निर्दय नास्तिक वादि प्रमुख एवा जे (पुरिसजाते के०) पुरुष जातिठे ते (वज्जबहुलेके०) घणा पापरूप कर्म, (धूतबहुलेके०) घणी कर्मरूपरज (पंकबहुलेके०) घणो कर्मरूप कादव, (वेरबहुले के०) घणो जीवोनी साथे वैरनाव, (अप्पत्तियबहुले के०) अविश्वासलायक एवुं मननुं डुर्ध्यान (अयसबहुले के०) घणो अपयश (दंनबहुले के०) घणुं कपट परने वंचवा पणु ठे जेमां, (णियडिबहुले के०) घणो वेष तथा नाषानु पलटाववुंठे जेमां (साइबहुले के०) सातिशय इव्य सायें गुणहीन पुरुषोना इव्यनुं मेलाववुं (उस्सन्नंतसपाणघाती के०) प्रायः त्रस प्राणी जीवनो घात करनार, ते (कालमासेकालंकिच्चा के०) कालने अवसरें काल करीने (धरणितलमइवइत्ताइ के०) पृथ्वीना तलाने सहस्र योजन प्रमाण अतिक्रमि जाये; जइने, (अहेणरगतलपइट्ठाणेनवइ के०) नीचें नरकना तलियाना स्थानकने विषे तेनुं पडवुं थायठे. ॥६५॥

---

॥दीपिका–(एवमेवत्ति) एवमेव ते निर्दयाः स्त्रीप्रधानेषु कामेषु मूर्छिता गृद्धाग्रथिता अध्युपपन्नायावद्वर्षाणि चतुःपंचषट्सप्त वा दशवाल्पतरंप्रभूततरं वा कालं नोगान् नुक्त्वा वैरायतनानि वैरानुबंधान् प्रविसूय उत्पद्य बहूनि पापकर्माणि संचित्य वर्धयित्वा उत्पन्नं प्रायः संनारकृतेन कर्मणा प्रेर्यमाणानरकतलप्रतिष्ठानाः स्युः । यथाऽयोगोलः शिलागोलकोवा उदकक्षिप्तउदकतलमतिवर्त्य उल्लंघ्याधोधरणितलप्रतिष्ठानोनवति एवमेव सनरोवज्जं बध्यमानं कर्म तद्बहुलः धूनं प्राग्बद्धं कर्म तत्प्रचुरः पंकबहुलः पंकपाप वैरबहुलः (अप्पत्तियत्ति) मनसोडुर्ध्यानं दंनोमायया परवंचनं निकृतिर्नाषावेषादिपरावर्त्तेन परद्रोहबुद्धिः सातिशयेन इव्येणहीनइव्यस्य मेलनं सातिः तद्बहुलः अयशोबहु

तः प्रायस्त्रसघाती कालमासे स्वायुःक्षये कालं कृत्वा धरणितलं रत्नप्रभादिकायाः पृथिव्यास्तलमतिलंघ्याऽधोनरकतलप्रतिष्ठानः स्यात् ॥ ६५ ॥

॥ टीका—तेच विषयासक्ततया एतत्कुर्वंतीत्येतद्दर्शयितुमाह। (एवमेवइत्यादि) एवमेव पूर्वोक्तस्वभावाएवं ते निष्कृपानिरनुक्रोशाबाह्याभ्यंतरपर्षदोरपि कर्णनासाविकर्तनादिना दंडपातनस्वभावाः स्त्रीप्रधानाः कामाः स्त्रीकामाः यदिवा स्त्रीषु मदनकामविषयभूतासु कामेषुच शब्दादिषु इच्छाकामेषु मूर्छितागृद्धाग्रथिताअध्युपपन्नाः। एते च शक्रपुरंदरादिवत्पर्यायाः कथंचिद्भेदं वाश्रित्य व्याख्येयाः। तेच भोगासक्ताव्यपगतपरलोकाध्यवसायायावद्वर्षाणि चतुःपंचषट् सप्तवा दशवाल्पतरं वा कालं भुक्त्वा भोगासक्ततयाच परपीडोत्पादनतो वैरायतनानि वैरानुबंधानप्रसूयोत्पाद्य विधाय तथा संचयित्वा संचिंत्योपचित्य बहूनि प्रभूततरकालस्थितिकानि क्रूराणि क्रूरविपाकानि नरकादिषु यातनास्थानेषु क्रकचपाटन शाल्मल्यवरोहणतप्तत्रपुपानात्मकानि कर्माण्यष्टप्रकाराणि बद्धस्पृष्टनिधत्तनिकाचनावस्थानि विधाय तेनच संभारकृतेन कर्मणा प्रेर्यमाणास्तत्कर्मगुरवोवा नरकतलप्रतिष्ठानाभवंतीत्युत्तरक्रिययापादितबहुवचनरूपयेति संबंधः। अस्मिन्नेवार्थे सर्वलोकप्रतीतं दृष्टांतमाह। (सेजहाणामएइत्यादि) तद्यथानामायोगोलकोऽयस्पिंडः शिलागोलकोवृत्तात्मशकलं वोदके प्रक्षिप्तः समानसलिलतलमतिवर्त्यातिलंघ्याधोधरणीतले प्रतिष्ठानोभवति। अधुना दार्ष्टांतिकमाह। (एवमेवेत्यादि) यथासावयोगोलकोवृत्तत्वाच्छीघ्रमेवाधोयात्येवमेव तथाप्रकारः पुरुषजातः। तमेव लेशतोदर्शयति। वज्रवद्वज्रं गुरुत्वात्कर्म तद्बहुलस्तत्करणप्रचुरस्तथा वध्यमानकर्मगुरुरित्यर्थः। तथा धूयतइति धूतं प्राग्बद्धं कर्म तत्प्रचुरः। पुनः सामान्येनाह। पंकयतीति पंकं पापं तद्बहुलस्तथा। तदेव कारणतोदर्शयितुमाह। वैरबहुलो वैरानुबंधप्रचुरस्तथा (पत्तियंति) मनसोदुष्प्रणिधानं तत्प्रधानस्तथा दंभोमायया परवंचनं तदुत्कटस्तथा निकृतिर्मायावेषभाषापरावृत्तिच्छद्मना परद्रोहबुद्धिस्तन्मयस्तथा सातिबहुलऽतिसातिशयेन द्रव्येणापरस्य हीनगुणस्य द्रव्यस्य संयोगः सातिस्तद्बहुलस्तत्करणप्रचुरस्तथाऽयशोश्लाघासद्वृत्ततया निंदा यानि यानि परापकारभूतानि कर्मानुष्ठानानि विधत्त तेषु तेषु कर्मसु करचरणच्छेदनादिषु अयशोभाग्भवतीति। सएवंभूतः पुरुषः कालमासे स्वायुषः क्षये कालं कृत्वा पृथिव्यारत्नप्रभादिकायास्तलमतिवर्त्य योजनसहस्रपरिमाणमतिलंघ्य नरकतलप्रतिष्ठानोऽसौ भवति ॥ ६५ ॥

तेणं णरगा अंतोवट्टा वाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिया णिच्चंधकारतमसा ववगयगहचंदसूरनक्खत्तजोइसप्पहा मेदवसामंसरुहिरपूयपडलचिक्खललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा कण्हा

अगणिवन्नाभा कक्खडफासा दुरुहियासा असुभा णरगा असुभा णरए सु वेयणाउ ॥ ६६ ॥

अर्थ—(तेणंणरगाके०) ते नरकनु स्वरूप कहेले. (अंतोवट्टा के०) सीमंतादिक नरकावासा माहेली कोरें वाटलाआकारेले, (बाहिंचउरंसा के०) बाहेर चारखुणाले. (अहेखुरप्पसंठाणसंठिया के०) नीचें सजायानी धारने आकारें संस्थितले एटले रह्याले (णिच्चंधकारतमसा के०) नित्य सर्वकाल मेघ ढायानी पेठें, कृष्णपक्षनी रात्रीनी पठें, महाअंधकारे युक्तले.बहुल अंधकारले. (ववगयचंदसूरगहनक्खत्तजोइसप्पहा के०) बुधादिक ग्रह, चंद्रमा, सूर्य, नक्षत्र, ज्योतिष्य प्रकाश, ते थकी व्यपगत एटले रहितले. (मेदवसामंसरुहिरपूयपमलचिक्खल्ललित्ताणुलेवणतला के०) मेद, वसा, मांस, रुधिर, परसेवो, तेना पमल एटले समूह तेना कादवें करी अनु लिप्तले जेना भूमितल एवाले, एटले जे एकवार लिपीयें तेने लिप्त कहिये अने जे वारंवार लिपीयें तेने अनुलिप्त कहियें, (असुईवीसापरमदुब्भिगंधाकण्हा के०) अशुचि बीभत्सविष्टायें खरड्या कुत्सित एटले मांससमान दुर्गंध, खराब कृष्णवर्ण वाला (अगणिवन्नाभाके०) मशाणनो अग्नि, तथा धम्या लोहना अग्निनी ज्वालाउना जेवा वर्ण थाय ते समान आकारले जेनो, जे अत्यंत कठोर, सहन करता अत्यंत दुःसहले (कक्खडफासादुरुहियासा असुभके०) दुःखे सहन थाय एवा खरखरा कर्कश फरशले जेने विषे, एवा अशुभ (णरगा के०) नरकने विषे (असुभ णरए सुवेयणाउ के०) महा अशुभ वेदना प्रवर्त्तेले. ॥ ६६ ॥

---

॥ दीपिका—नरक स्वरूपमाह । ते नरकाअंतर्वृत्ताबहिश्चतुरस्राः अधश्च क्षुरप्रसंस्थानस्थिताः । एतच्च संस्थानं पुष्पावकीर्णानां तेषामेव प्रचुरत्वात् । आवलिकां गतास्तु वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रसंस्थानाएव तथा नित्यांधकारतमसा भृशं तमोबहुलाः व्यपगतग्रहचंद्रसूर्यनक्षत्रज्योतिष्पथाः । मेदवसामांसरुधिरपूयपटलैर्लिप्तानि अनुलेपनप्रधानानि तलानियेषां ते तथा । तथा अशुचयोविस्राः कुथितमांसादिलिप्तत्वात् परमदुरभिगंधाः कृष्णाग्निवर्णाभाः कर्कशस्पर्शादुःखेनाधिसह्यंते यतोऽशुभास्तत्र नरकेषु अशुभादुःसहावेदनाः ॥ ६६ ॥

---

॥ टीका—नरकस्वरूपनिरूपणमाह । (तेणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । ते नरकाः सीमंतकादिकाबाहुल्यमंगीकृत्यांतर्मध्ये वृत्ताबहिरपि चतुरस्राअधश्च क्षुरप्रसंस्थानसंस्थिताः । एतच्च संस्थानं पुष्पावकीर्णानाश्रित्योक्तं तेषामेव प्रचुरत्वात् । आवलिकाप्रविष्टास्तु वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रसंस्थानाएव भवंति । तथा नित्यमेवांधतमसं येषु ते नित्यांधतमसाः । क्वचित्पाठोनित्यांधकारतमसाइति । मेघावच्छिन्नांबरतलकृष्णपक्षरजनीवत् तमो

बहुलास्तथा व्यपगतोग्रहसूर्यचंड्रज्योतिःपर्यायेषां ते तथा । पुनरप्यनिष्टापादनार्थं तेषामेव विशेषणान्याह । ( मेदवसेत्यादि ) डुष्कृतकर्मकारिणां ते नारकास्तद्दुःखोत्पादनार्थैवं नूताभवंति । तद्यथा । मेदवसामांसरुधिरपूयादीनां पटलानि संघास्तैर्लिप्तानि पिच्छिलीकृतान्यनुलेपनतलान्यनुलेपनप्रधानानि तलानि येषां ते तथा अशुचयोविष्टासृक्क्लेदप्रधानत्वादतएव विश्राः कुथितमांसादिकल्पकर्दमावलिप्तत्वात् । एवं परमडुर्गंधाः कुथितगोमायुकलेवरादपि अत्यसह्यगंधास्तथा कृष्णाग्निवर्णानारूपतः । स्पर्शतस्तु कर्कशः कठिनोवज्रकंटकादप्यधिकतरः स्पर्शोयेषां ते तथा किंबहुनाऽतीव डुःखेनाधिसह्यंते । किमिति । यतस्ते नरकाः पंचानामपींड्रियार्थानामशोजनत्वादशुनास्तत्रच सत्वानामशुनकर्मकारिणामुदयदंडपातिनांच वज्रप्रचुराणां तीव्राअतिडुःसह्वेदनाः शारीराः प्राडुर्नवंति ॥ ६६ ॥

णोचेव णरएसु नेरइया णिद्दायं तिवा पलायंतिवा सूइंवा रतिंवा धीतिंवा मतिंवा उवलन्नंते तेणं तत्र उज्जलं विउलं पगाढं कडुयं कक्कसं चंमं डुक्कं डुग्गं तिवं डुरुहियासं णेरइया वेयणं पच्चणुप्नवमाणा विहरंति ॥६७॥

अर्थ–(णोचेवणरएसुरनरइया के०) पणते नरकने विषे जे नारकी जीवोछे ते एटलावानां पामता नथी शुं नथी पामता ? तोके (णिद्दायंतिवा के०) निड्रा नथी पामता, ( पलायंतिवाके०) घणी निड्रा जे प्रचला ते पण नथी पामता, ( सूइंवाके० ) श्रुति एटले विशेष ज्ञाननी स्मृति तेपण नथी पामता, ( रतिंवा के०) चित्तने विषे रति पामता नथी, ( धतिंवा के० ) विशेष धैर्य धृतिने पण नथी पामता, तथा ( मतिंवा के० ) बुद्धिने पण ( उवलन्नंते के० ) पामे नहीं (तेणंतत्रउज्जलं के०) ते नारकी ते नरकने विषे प्रवर्त्तमान थका उज्वली केतां तीव्र उत्कृष्ट ( विउलं के०) विस्तीर्ण ( पगाढं के० ) आकरी, ( कडुयं के०) कडवी, ( कक्कसं के० ) कर्कश, ( चंम के० ) रौड्र, ( डुःक्कं के० ) डुःखनुं कारण, ( डुग्गंतिवं के० ) तीव्र डुर्ग, तीक्ष्ण, ( डुरुहियासं के० ) डुःखे सहन करवा योग्य (णेरइयावेयणं के०) नरकने विषे नारकीने वेदनाने (पच्चणुप्नवमाणाविहरंतिके०) नोगवता थका विचरेछे. काल अतिक्रमण करेछे ते उपर दृष्टांत कहेछे. ॥ ६७ ॥

---

॥ दीपिका–( णोचेवत्ति ) तेषु नरकेषु वेदनाभिनूता न निड्रायंते न प्रचलायंते ईषन्निड्रामपि नगच्छंतीत्यर्थः । श्रुतिंवा रतिंवा धृतिंवा मतिंवा नोपलन्नंते ते नारकास्तत्र उज्वलामुत्कटां विपुलां प्रगाढां कटुकां कर्कशां चंडां डुःखरूपां तीव्रां डुरधिसह्यां नरकवेदनां प्रत्यनुनवमानास्तिष्ठंति ॥ ६७ ॥

॥ टीका–तयाच वेदनयाभिभूतास्तेषु नरकेषु नारकानैवाक्षिनिमेषमपि कालं निद्रायं ते नाप्युपविष्टाद्यवस्थाअक्षिसंकोचनरूपामीषन्निद्रामवाप्नुवंति । नह्येवंभूतवेदनाभिभूतस्य निद्रालाभोभवतीति दर्शयति । तामुज्वलां तीव्रानुभावेनोत्कटामित्यादि विशेषणविशिष्टां यावद्वेदयंत्यनुभवंतीति ॥ ६७ ॥

से जहाणामए रुक्खसिया पव्वयग्गे जाए मूले छिन्ने अग्गे गरुए ज ओणित्तं जओ विसमं जओडुग्गं तओपवडंति एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए गप्नातोगप्नं जम्मातोजम्मं माराओमारं णरगाओ णरगं डुकाओ डुक्कं दाहि णगामिए णेरइए कण्हपक्खिए आगमिस्साणं डुल्लभबोहिएयावि भवइ एसठाणे अणारिए अकेवले जाव असव्वडुक्खपहीणमग्गे एगंतमिछे असाहू पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिए ॥६८॥

अर्थ–( सेजहाणामए के० ) ते यथा दृष्टांते नाम एवी संभावनाये जेम कोइएक (रुक्खसिया के० ) वृक्ष होय, ( पव्वयग्गेजाए के० ) पर्वतने अग्रे उपनो ( मूलेछिन्ने के०) मूल मांहेथी छेद्यो ( अग्गेगरुएके० ) अग्रे भारी एवो छतो ते वृक्ष (जओणित्तं जओविसमं के० ) ज्यां ज्यां नीचा खामानु स्थानक होय, ज्यां त्यां विषम, समान नही, (जओडुग्गंके०) ज्यां ज्यां डुर्गम कष्टस्थान होय, (तओपवडंतिके०)त्यां ते वृक्ष उतावलो पडे. ( एवमेवतहप्पगारे के० ) एदृष्टांते तथा प्रकारना डुष्ट असाधु कर्मकारी पुरुष जाति ते कर्मरूपी वायरे प्रेर्यो छतो उतावलो नीचो नरकगतिमां जइ पडे; फरी त्यां थकी उद्वर्त्यो थको फरी गर्भ थकी गर्भ, जन्म थकीजन्म, मरण थकी मरण पामे, नरकथकी नरक पामे, डुःख थकी वली डुःख पामे, एरीते दक्षणदिशिनो जनारो, नारकी, कृष्णपक्षी ते दीर्घसंसार पणाने लीधे आगमिक काले डुर्लभ बोधि थाय ए स्थानक अनार्य अकेवल यावत् जेमां सर्वडुःख थकी छुटवानो मार्ग नथी एकांत मिथ्यात्व असाधुनो मार्ग जा णवो ए प्रथम स्थानक अधर्म पक्षनो विचार एम कह्यो. ॥ ६८ ॥

---

॥ दीपिका–( सेजहत्ति ) तद्यथा नामकश्चिद्वृक्षः पर्वताग्रे जातोमूले छिन्नः शीघ्रं य था निम्नं नीचं स्थानं ततः पतति एवमसावसाधुरपि नरके पतति ततोप्युद्धृतो गर्भाद्ग र्भे याति एवं न तस्य किंचित्त्राणं भवति यावदागामिन्यपि कालेऽसौडुर्लभ बोधिः स्यात् (ए सठाणत्ति ) तदेतत् स्थानमनार्यं यावदेकांतमिथ्यारूपमसाधु । तदेवं प्रथमस्याधर्मपाक्षि कस्य स्थानस्य विभंगोविभागः समाख्यातः ॥ ६८ ॥

॥ टीका—एवं तावदयोगोलपाषाणदृष्टांतः शीघ्रमधोनिमज्जनार्थप्रतिपादकः प्रदर्शितो ऽधुना शीघ्रपातार्थप्रतिपादकमेवापरं दृष्टांतमधिकृत्याह। (सेजहाणामएइत्यादि) तद्यथा नाम कश्चिद्वृक्षः पर्वताग्रे जातोमूले छिन्नः शीघ्रं यथा निम्नं पतति एवमसावप्यसाधुकर्मकारी तत्कर्मवातेरितः शीघ्रमेव नरके पतति ततोप्युद्वृत्तोगर्नाजर्नमवश्यं याति न तस्य किंचित्राणं भवति यावदागामिन्यपि काले डुर्लभधर्मप्रतिपत्तिर्भवतीति । सांप्रतमुपसंहरति (एसठाणेइत्यादि) तदेतत्स्थानमनार्यं पापानुष्ठानपरत्वाद्यावदेकांतमिथ्यारूपमसाधु । तदेवं प्रथमस्याधर्मपाक्षिकस्य स्थानस्य विभंगोविभागः स्वरूपमेव व्याख्यातः ॥ ६७ ॥

अहावरे दोच्चस्स ठाणस्स धम्म पक्खस्स विभंगे एव माहिज्जइ इह ख लु पाइणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति तंजहा अणारंभा अपरिग्ग हा धम्मिया धम्माणुया धम्मिठा जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा वि हरंति सुस्सीला सुव्वया सुप्पडियाणंदा सुसाहु सव्वतो पाणातिवायाउ प डिविरया जावजीवाए जावजेयावन्ने तहप्पगारा सावज्जा अवोहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा कज्जंति ततोविपडिविरता जाव जीवाए॥६९

अर्थ—अथ हवे बीजो स्थानक धर्म पक्षनो विचार कहियें बैयें. आजगत् मांहे निश्चें पूर्वादिक दिशिने विषे कोइएक मनुष्य एवाबे ते कहेबे. निरारंभी, निःपरिग्रही धार्मिक धर्मानुगामि, धर्मज जेने इष्टबे. यावत् धर्मेकरी वृत्ति आजीविका करता थका विचरे बे. सुशील, सुव्रत, रूडा आनंद पामनारा, सुसाधु, तथा सुखसाध्य पदवीरूप गुणे करी विराजमान, ते पुरुष सर्वथा प्राणातिपात थकी निवृत्या, जावजीव सुधी यावत्. जे बीजा, तथा प्रकारनां पापकारी, सावद्यकर्म अबोधिना करनार बीजा प्राणीने परितापना करनार कार्य करियें, तेवा कार्य थकी पण निवृत्या बे. ॥ ६९ ॥

---

दीपिका—अथापरस्य द्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विभंगः स्वरूपमेवमाख्यायते । यथा प्राच्यादिदिक्षु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते केचिन्मनुष्याभवंति । तद्यथा अनारंभाअपरिग्रहाधार्मिकाधर्मानुगाधार्मिष्ठाधर्मेणैव वृत्तिं कल्पयंतोविहरंति तथा सुशीलाः सुव्रताः सुप्रत्यानंदाः सुसाधवः सर्वस्मात्प्राणातिपाताद्विरतायावत्परिग्रहाद्विरताः । ये चान्ये तथाप्रकाराः सावद्याअबोधिकारिणः कर्मकाः कर्महेतवः परप्राणपरितापनकरा आरंभाक्रियंते ततोविरताः ॥ ६९ ॥

---

॥ टीका—अथापरस्य द्वितीयस्य विभंगोविभागः स्वरूपमेवं वक्ष्यमाणनीत्या व्याख्या

यते । तद्यथा ( इहखलुइत्यादि ) प्राच्यादिषु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते ते चै वंनूतानवंतीति । तद्यथा । न विद्यते सावद्यआरंनोयेषांते तथा अपरिग्रहानिष्किंचनाः धर्मेण चरंतीति धार्मिकायावद्धर्मेणैवात्मनोवृत्तिं परिकल्पयंति तथा सुशीलाः सुव्रताः सु प्रत्यानंदाः सुसाधवः सर्वस्मात्प्राणातिपाताद्विरताएवं यावत्परिग्रहाद्विरताइति। तथा ये चान्ये तथाप्रकाराः सावद्याआरंनायावदबोधिकारिणस्तेन्यः सर्वेन्योपि विरताइति ॥६ए

से जहा णामए अणगारा नगवंतो इरियासमिया नासासमिया एस णासमिया आयाणनंममत्तणिक्खेवणासमिया उच्चारपासवणखेलसिं घाणजल्लपारिठावणियासमिया मणसमिया वयसमिया कायसमिया मणगुत्ता वयगुत्ता कायगुत्ता गुत्ता,गुत्तिंदिया गुत्तवंनचारी अकोहा अ माणा अमाया अलोना संता पसंता उवसंता परिणिवुमा अणासवा अग्गंथा छिन्नसोया निरुवलेवा कंसपाइ वमुक्कतोया संखइव णिरंज णा जीवइव अपडिहयगती गगणतलंपिव निरालंवणा वाउरिव अपडि बंधा सारदसलिलंइव सुद्धहियया पुक्करपत्तंइव निरुवलेवा कुम्मोइव गुत्तिंदिया विहगइव विप्पमुक्का खग्गविसाणंव एगजाया नारंमपक्खीव अप्पमत्ता कुंजरोइव सोंमीरा वसनोइव जातछिमा सीहोइवडुद्धरिसा मं दरोइवअप्पकंप्पा सागरोइवगंनीरा,चंदोइवसोमलेसा सूरोइव दित्ततेया जच्च कंचणगंचइव जातरूवा वसुंधराइव सव्वफासविसहा सुहुयहुयासणो विव तेयसा जलंता णछिणं॥७०॥तेसिंनगवंताण कछविपडिवंधेनवइ से पडिवंधे चउविहे पणते तं जहा अंमएइवा पोयएइवा उग्गहेइवा पग्गहेइवा ,जन्नंजन्नंदिसं इच्छंति तन्नं तन्नं दिसं अपडिवद्धा सुइनूया अप्पलहुनूया अप्पग्गंथा संजमेणं तवसा अप्पाणं नावेमाणे विहरंति॥७१॥तेसिणं नगवंताणं इमा एतारूवा जाया माया वित्ती होत्था तंजहा चउत्थेनत्ते छठ्ठेनत्ते अठमेनत्ते दसमेनत्ते डुवालसमे नत्ते चउदसमे नत्ते अद्धमासिएनत्ते मासिएनत्ते दोमासिए तिमासिए चाउम्मासिए पं चमासिए उम्मासिए अडुत्तरंचणं उक्खित्तचरया णिक्खित्तचरया उक्खि त्तणिक्खित्तचरगा अंतचरगा पंतचरगा लूहचरगा समुदाणचरगा सं

सछचरगा असंसछचरगा तज्जातसंछचरगा दिछलाभिया अदिछला भिया पुछलाभिया अपुछलाभिया भिक्खुलाभिया अभिक्खुलाभिया अन्नायचरगा अन्नायलोगचरगा उवनिहिया संखादत्तिया परिमित पिंमवाइया सुद्धेसणिया अंताहारा पंताहारा अरसाहारा विरसाहारा लूहाहारा तुछाहारा अंतजीवी पंतजीवी आयंबिलिया पुरिमढिया विग इया अमऊमंसा ससिणो णोणियामरसभोइ ठाणाइया पडिमाठाणा इया उक्कडुआसणिया णेसज्जिया वीरासणिया दंमायतिया लगंमसाइ णो अप्पाउडा अगत्तया अकंमुया अणिछुहा धुतकेसमंसरोमनहा सबगा यपडिक्कम विप्पमुक्का चिठंति॥१२॥तेणं एतेणं विहारेणं विहरमाणा बहुइ वासाइं सामन्नपरियागं पाउणंति बहुबहु आबाहंसि उप्पन्नंसिवा अणु प्पन्नंसिवा बहुइंभत्ताइं पच्चखाइ पच्चखाइत्ता बहुइं वासाइं अणसणाइ छेदिंति अणसणाइं छेदित्ता जस्सठाएकीरति नग्गभावे मुंमभावे अ ण्हाणभावे अदत्तंवणगे अछत्तए अणोवाहणए भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कछसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे परघरपवेसे लद्धाअलद्ध माणाअमा णणाउ हीलणाउ निंदणाउ खिंसणाउ गरहणाउ तज्जणाउ तालणाउ उ च्चावयागामकंटगा बावीसंपरीसहो वसग्गअहियासिज्जंति तमठंआरा हंति तमठ आराहित्ता चरमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं अणंत अणुत्तरं निवाघातं निरावरणं कसिणं पडिपुन्नं केवलवरणाणदंसणसमुप्पाडेंति समुप्पाडेंतित्ता ततोपछा सिज्झंतिबुज्झंति मुच्चंति परिणिवायंति सबायं ति सबडुक्खाणं अंतकरेंति ॥ १३ ॥

अर्थ—वली बीजे प्रकारें साधुना गुण देखाडे छे. ते यथा नाम एवी संभावनायें जे म कोइएक उत्तम संघयणवंत, महाबलें करी सहित अणगार भगवंत होय, ते केवा होय? तोके इर्या समितियें समिता, भाषासमितियें समिता, एटले सत्यनिरवद्य भा षाना बोलनार, एषणासमितियें समिता, एटले बेंतालीश दोषरहित, आहारनी गवेष णाना करनार, (आयाणभंममत्तणिक्खेवणासमितियेंसमिता) एटले माटीनुं भाजन, तथा मात्रा, अने वस्त्रादिक ने जयणायें पुंजी प्रमार्जीने मूकनारा, (उच्चारपासवणखेलसिंघाण

जल्लपारिठावणिया समितियें समिता ) एटले वडीनीत, लघुनीत, थूंक नासीकानो सीं घाण, शरीरनो मल, तेने जयणा सहित परठवे. एमपांच समितियें समिता, मन समि तियें सहित, वचन समितियें सहित, काय समितियें सहित, मन ने असंयम थकी गो पवीने प्रवर्तावे, माटे मनगुप्तियें गुप्त, वचनने असंयमथी गोपवीने प्रवर्त्तावे, माटे वच न गुप्तियें गुप्त, कायाने असंयमथी गोपवीने प्रवर्त्तावे, माटे कायगुप्तियें गुप्त, एरीतें त्र ण गुप्तियें गुप्त, तथा गुप्तेंद्रिय एटले असंयम थकी इंद्रियोने गोपवी राखनार, नववा डविशुद्ध ब्रह्मचर्यना पालनार, क्रोध रहित, मान रहित, माया रहित, लोज रहित, संता एटले मध्यवर्त्तियें, अने पसंता, एटले बाह्य वृत्तियें उवसंता, एटले उपशांतते उजय थापि शांतवृत्तिवाला, परिनिवृत्ता एटले समस्त संताप वर्जीत, अनाश्रय एटले पाप क र्म बंध थकी रहित, अग्रंथा एटले हिरण्यादिक परिग्रह थकी रहित, छिन्नश्रोत एटले छेद्योछे संसारनो प्रवाह जेणे, तथा निरुवलेवा एटले निर्लेप कर्म मल थकी रहित, कं सपातीवमुक्कतोया एटले कांसाना पात्रनी पेठें पापरूप पाणी जेने लागतुं नथी ; जेम कांसा ना पात्रने पाणी न लागे तेम, ते साधुने पापरूप पाणी लागे नही, तथा शंखनी पेठें निरंजन एटले रागादिक रंग रहित, जीवनी पेठें अप्रतिहत गतिवाला जाणवा, एटले जेम जीवनी गति अप्रतिहतछे स्खलाय नही, तेम साधुने पण देश नगरादिकने विषे वि हार करवाने विषे अप्रतिहत अस्खलित गतिछे. आकाशनी पेठें निरालंब एटले आका श जेम स्तनादिकना आलंबने रहितछे तेम, साधु पण गाम, नगर, कुलना आलंबनथी रहितछे. वायुनी पेठें अप्रतिबंध थका ग्रामने विषे एक रात्र, अने नगरने विषे पाच रा त्र, विचरे. गामेएगराइयं णगरेपंचराइया इति वचनात् शारद एटले शीतकाल तेनुं स लील एटले पाणी तेनी पेठें अथवा आश्विन, अने कार्तिक मासना पाणीजेम निर्मलहो य, तेनी पेठें निर्मल हृदय वाला. ( पुस्करपत्तंइवनिरूवलेवा ) एटले जेम कमलना पत्रने पाणी तथा कादव न लागे, तेम, साधुने कर्म रूप लेप न लागे. काचबानी पेठें गुप्तेंद्रि य, जेम काचबो, चार पग अने पांचमी ग्रीवा गोपवीने प्रवर्त्ते तेम, साधु इंद्रियो गोप वीने प्रवर्त्ते. पक्षीनी पेठें विप्रमुक्त, अनियतवासी, एटले पक्षी जेम सर्व परिवार स्थान कनी ममता रहित होय, तेम साधुपण परिवारादिकनी ममताथी रहित होय. (खग्गवि साणंवएगजाया ) एटले गेंडानुं शीगडुं जेम एक होय, तेम साधु, राग द्वेष रहित थको क होय भारंडपक्षीनी पेठें अप्रमत्त होय, जेम भारंड पक्षी अप्रमादी होयछे, तेम सा धु प्रमाद रहित थको धर्म कार्यने विषे प्रवर्त्ते. कुंजरनी पेठें शूरवीर एटले जेम हस्ती शूरवीर होय, तेम साधु कषायादिक निवारवाने शूरवीर होय, परंतु कायर पणु जणा वे नहीं. वृषजनी पेठें बलवंत जेम बेल जार उपाडे अंगीकार करे निर्वाह करे तेम सा

धु पण, व्रतनार निर्वाह करवाने सामर्थ्यवान् धर्मधुरंधर जाणवो, सिंहनी पेठें डुर्द्धर्ष एटले सिंह जेम बीजा मृगादिक जानवरोने डुर्द्धर्ष एटले तेनाथी पराजवाये नही, तेम साधु पण परीसह उपसर्गादिकें करी पराजवाये नहीं. मंदर एटले मेरुपर्वतनी पेठें अप्रकंप, जेम मेरुपर्वत कंपायमान न थाय, तेम साधु पण परीसह अने उपसर्गादिकें कंपायमान न थाय. समुड्नी पेठें गंनीर, एटले समुड् जेम गंनीर होयठे, तेम साधु हर्ष शोकादिक कारण रहित थका गंनीर होय. चंड्मानी पेठें सोम लेश्यावंत एटले चंड्मा जेम शीतल प्रकृतिवंत होय, तेम साधु सर्वकाल मननो उक्षार करनारो, महा शीतल प्रकृति सहित होय, सूर्यनी पेठें दीप्ततेज एटले सूर्य जेम तेजवंत होयठे, तेम साधुपण तपश्चर्यायें करी तेजवंत प्रतापवंत देखायठे. साचा सुवर्णनी पेठें जातिरूप सतेज, एटले सुवर्णने जेम मेल न लागे, तेम साधुने पण कर्म मेल नलागे. वसुंधरानी पेठें सर्व स्पर्श सहे एटले पृथ्वी जेम कांटा, कांकरी, अग्न्यादिकना सर्व स्पर्श सहन करे, तेम साधु पण क्षमागुणें सहित थको, टाढ तापादिकना स्पर्शने सहन करे. सुहुयहुतासणोविव तेयसाजलंता एटले रुडे ड्व्यें घृतादिक सींचतां जेम हुताशन जे अग्नि ते सदा ते यसा एटले तेजवंत देखायठे जाज्वल्यमान देखायठे तेम, साधु पण ज्ञान तेजें करी सर्वकाल तेजवंत देखायठे. ॥ ७० ॥ (णत्थिणंतेसिंनगवंताणंके०) ते नगवंत महिमावंत साधुने नथी कठविपडिबंधेनवइ एटले क्यांहि पण प्रतिबंध नथी. सेपडिबंधे चउविहेपसुत्ते एटले ते प्रतिबंध चार प्रकारनो कह्योठे, ते कहेठे. (अंमएइवा के०) जे अंम थकी उपजे एवा पक्षी कीडा मयूरादिक ते आश्री प्रतिबंध नथी, (पोयएइवा के०) पोत ते हस्त्यादिकना बालक ते आश्रित प्रतिबंध नथी, उग्गहेइवा के० ) उग्रह एटले वस्ति पीठ फलगादिक तेनो पण प्रतिबंध नथी, ( पग्गहेइवा के० ) उंधीक उपग्रहिक उपकरण तेनिमित्त प्रतिबंध नथी, ( जन्नंजन्नंदिसंइछंति के० ) जे जे दिशायें विहार करवा वांछे, (तन्नंतन्नंदिसं अप्पडिबद्धा के० ) ते ते दिशायें अप्रतिबंध पणे विचरे. (सुइनूया के० ) शुचिनूत निर्मलांतर आत्मावंत ( अप्पलहुनूया के० ) अल्प लघुनूत एटले अल्प परिग्रही थका, ( अप्पग्गंथाके० ) अल्प ग्रंथवंत बहुश्रुत, (संजमेणंतवसा के०) संयम अने तपें करी (अप्पाणंनावेमाणे के०) पोताना आत्माने नावता थका, (विहरंति के०) विचरे ॥ ७१ ॥ ( तेसिंणं नगवंताणं के० ) ते नगवंत एटले साधुने, (इमाएतारूवा के० ) एवा ए तद्रूप ( जायामायावित्तिहोछा के० ) संयमयात्रा एटले संयमनो निर्वाह, तेने अर्थे, मात्रावृत्ति प्रमाणोपेत नातपाणी लेवुं, ते तपें करी निर्मल थाय. ( तंजहा के० ) ते कहेठे. एक उपवास, बे उपवास, त्रण उपवास, चार उपवास, पांच उपवास, ठ उपवास, सात उपवास, अर्द्धमासना उपवास, एक मास क्षमण, बे मास

क्षमण, त्रण मास क्षमण, चतुर्मासिक, पंच मासिक, छ मासिक, एवां तपना करनारा, ( अडुत्तरंचणं के० ) अथवा एक साधु एवा अनिग्रहना करनाराछे, ते कहेछे. (उक्खि त्तचरया के० ) उत्क्षिप्तचर्या एटले पोताने अर्थे हांमली मांहे थकी काढयुं एवुं जे कुसार अन्न तेना लेनारा, ( णिक्खित्तचरया के० ) निक्षिप्तचर्या एटले पिरसवाने अर्थे हांमली मांहेथी काढी वली हांमली मांहे प्रक्षेप्यो, एवो जे आहार तेनी गवेषणा करनारा, ( उक्खित्तणिक्खित्तचरगा के० ) पूर्वोक्त बन्ने जातना आहारनी गवेषणा करनारा, ( अंतचरगा के० ) जे गाममांहे ससता मूल्यनो आहार मले, तेना लेनारा, ( पंतचरगा के० ) नीरस आहार जमता थका, तेमांथी जे वध्यो होय तेना लेनारा, ( लूहचरगा के०) जावजीव सुधी लूखा आहारना लेनारा,(समुदाणचरगा के०) हर्ष सहित जे आहार आपे तेना लेनारा, ( संसट्ठचरगा के० ) खरडे हाथे आहार आपे तेना लेनारा, ( असंसट्ठचरगा के० ) अण खरडे हाथे आहार आपे तेना लेनारा, ( तज्जात संसट्ठचरगा के० ) ते जे द्रव्यें हाथ अथवा कडछी खरडी होय तेवा हाथे करी, अथवा तेवी कडछीये करी, तेज आहार आपे, तेवा आहारना लेनारा, ( दिट्ठलाभिया के० ) दीठा आहारनाज लेनारा, तथा (अदिट्ठलाभिया के०) अणदीठो आहार, तथा अणदीठो दातार, तेनी गवेषणा करनारा, (पुट्ठलाभिया के०) तथा पुछीनेज आहारना लेनारा, ( अपुट्ठलाभिया के० ) अणपुछ्या आहारना लेनारा, ( भिक्खलाभिया के०) थोडुं अन्न आपे अने हेलणा करे एवा तुच्छ आहारना लेनारा, ( अभिक्खलाभिया के० ) अतुच्छ आहारना लेनारा, ( अन्नायचरगा के० ) ज्यां कोइ पण ओलखे नहीं त्यां अज्ञात आहारना लेनारा, (अन्नायलोगचरगाके०) अज्ञात लोकना कुत्सित अन्नना लेनारा, ( उवनिहिया के० ) जे आहार पोता थकी नजीक जाणे, तेना लेनारा, ( संखादत्तिया के० ) दात्तिनी संख्याना करनारा, ( परिमित्तपिंडवाइयाके० ) प्रमाणोपेत पिंडना लेनारा, ( सुद्धेसणिया के० ) शुद्धएषणिक दोष रहित एवा आहारना गवेषण हार, ( अंताहारा के० ) अंताहारी एटले वाल, चणकादिकना आहारना गवेषनारा, ( पंताहारा के० ) तेज टाढुं उगखुं, एवा अन्नना लेनारा, ( अरसाहारा के० ) हिंग जीरादिकना वघारें रहित एवा अरस आहारना लेनारा ( विरसाहारा के०) जूना धान्य खांभेलाना आहारना लेनारा, (लूहाहारा के०) लूक्ष आहारना लेनारा, (तुच्छाहाराके०) तुछआहारना लेनारा,(अंतजीविके०) अंताहारें जीवे, (पंतजीवी के०) प्रांतआहारें जीवे, (आयंबिलिया के०) कूर, अडदना, बाकला लेइ, आयंबिल सदाय करे. ( पुरंमड्डिया के० ) सर्व काल बे पहोर दिवस वित्या पछी आहार जमे, ( णिवगइया के० ) सर्वकाल निवी करे, विगय रहित अन्न जमे, (अमज्जमंसासणीणो के०)

मद्य मांसना परित्यागी होय, ( णोणियामरसन्नोइ के० ) सर्व काल अत्यंत सरस आ हार लीये नहीं, ( ठाणाइया के० ) सर्वकाल कायोत्सर्गना करनारा, ( पडिमठाइया के० ) प्रतिमाना वहणनारा, ( उक्कडुआसणिया के० ) एक स्थानकें केटलो एक काल निवृत्तियें रहे,(णिसज्जियाके०) निषेधआसनना वेसनारा एटले निषेध पदार्थयुक्तपृथ्वीपर वेसे, ( वीरासणिया के० ) वीरासने करी रहे, वाजोठ उपर वेशी, पग नीचामूके, पठी वाजोठ दूर करीने तेज आसने वेसे. ( दंमायतिया के० ) दंमनी पेरें लांबो थयो थको रहे. (लगंमसाइणो के०) वांका काष्ठनी पेरें शयन करे, मस्तक, पानी अने वासो, तेने नूमीलागे, परंतु वीजे नलागे (अप्पाउडाअगत्तया के० ) वस्त्र रहित, वस्त्ररूप प्रावरण न राखे, ( अकंडुयाके०) शरीरें खाजी नखणे, ( अणिठुहाके०) मुखनुं थूंक परठवे नहीं, (धुतकेसमंसरोमनहाके०) माथाना केश, गुह्यस्थानकना केश, दाढीमुठना केश, काखली ना केश, शरीरनां रोम, तथा नख, समारे नही, (सव्वगायपडिक्कमविप्पमुक्का के०) सर्व गात्र एटले शरीरनी शुश्रूषा करवा थकी विप्रमुक्त, एटले मूकाणा थका, (चिठंतिके०) रहे. ॥७१॥ ( तेणंएतेणंविहारेणंविहरमाणा के०) तेसाधु एवा उग्र विहारे करी विचरता थ का ( वहुईवासाई के० ) घणाएक वर्ष ( सामन्नपरियागंपाउणंति के० ) चारित्र पर्याय पाले. एवो चारित्र पाली (बहुबहुआवाहंसि के०) रोगादिकनी आवाधा ( उपन्नंसिवा के० ) उपनी, तथा ( अणुपन्नंसिवा के० ) अणउपने ठते ( बहुईनत्ताईपच्चाक्खाइके० ) घणानात पाणी पच्चक्खे. ( पच्चक्खाइत्ता के० ) ते पच्चक्खीने ( बहुईवासाईअणसणाईछे दिंति के०) घणा काल सुधी अनशन पाले,(अणसणाईछेदित्ता के०) ते अनशन पाली ने किंवहुना शुंजाजुंकहेवाथी? (जस्सठाएकीरतिके०) जे साधुधर्मने अर्थे आधर्म एवोके, लोहगोलकनी पेरें निरास्वाद खड्गधारानी पेरें डुःसाध्य,एवो चारित्र पाले. (नग्गनावेके०) नग्नपणानो नाव एटले प्रमाणोपेत वस्त्रपहेरें, ( मुंमनावे के० ) पांचइंडियो तथा चार कषायनो संवर करे, ( अण्हाणनावे के० ) अंघोल स्नान नो त्यागनाव करें, ( अदंतंव णगे के० ) दातण करवानो परिहार करे, ( अठत्तएके० ) मस्तकें ठत्र धरावे नही, ( अणोवाहणए के० ) पगरखानो त्याग करे, ( नूमिसेज्जा के० ) नूमिकाने विषे शय न करे, ( फलगसेज्जा के० ) पाट, पाटीया उपर शयन करे, (कठसेज्जा के० ) काष्ठ, पाषाण उपर शयन करे ( केसलोए के० ) मस्तकें केशनो लोच करे, ( वंनचेरवासे के० ) ब्रह्मचर्यने विषे वास करे, अर्थात् ब्रह्मचर्यने पाले, ( परघरपवेसे के० ) निक्षा ने अर्थे पारका घरने विषे न्रमण करे, ( लद्धाअलद्ध के० ) त्यां परघर न्रमण करतां कदाचित् निक्षानो प्राप्तिथाय, अथवा नथाय, तोपण समता नाव धरे, ( माणाअ माणणाउ के० ) मान, अथवा अपमान, देता थका पण समता नाव धरे. (हीलणा

उ के०) जन्मनां कर्मरूपकरणीने उघाडी, हेलना करतां पण समता नाव धरे. ( निंदणाउ के० ) कोइ निंदा करे, ( खिंसणाउ के० ) कोइ बीजा लोकोनी साखें हेलना करे, ( गरहणाउ के० ) कोइ तेना मुख अगलज हेलना करे, (तज्ञणाउ के०) कोइ तर्जना करे, ( तालणाउ के० ) कोइ ताडना करे, ( उच्चावयागामकंटगा के० ) उंचा नीचा ग्रामकंटक एटले ग्रामीण लोकना वचन, पांच इंड्रियने कंटक समान, तेने सहन करे, ( बावीसंपरीसहोवसग्ग के० ) बावीश परिसह अने देवादिकना करेला उपसर्गादिक ए सर्वने ( अहियासिज्ञंति के० ) मन वचन अने कायायें करी, अहियासे एटले सहन करे, (तमठ्ठंआराहंति के०) साधु ते अर्थ जे सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप तेने आराधे, ( तमठ्ठंआराहित्ता के० ) ते ज्ञान दर्शन चारित्ररूप अर्थ आराधिने, ( चरमेहिंउस्सासनिस्सासेहिं के० ) बेला उश्वास, निःश्वासें ज्ञान उपजे ते केवो ज्ञान उपजे, ते कहेठे. ( अणतं के० ) अंतरहित, ( अणुत्तरं के० ) प्रधान, ( निव्वाघायं के०) निर्व्याघात, ( निरावरणं के० ) आवर्ण रहित, ( कसिणं के०) कृत्स्नं संपूर्ण, ( पडिपुसुं के० ) परिपूर्ण एवो, ( केवलवरणाणदंसणसमुप्पाडेंति के० ) प्रधान केवलज्ञान अने केवलदर्शन, पामे (समुप्पाडेतित्ताके०) ते केवल ज्ञान अने केवल दर्शन उपजावीने एटले पामिने, ( ततोपच्छा के० ) तेवार पठी (सिज्झंतिके०) सीजे एटले तेने सर्व अर्थनी सिद्धि थाय, ( बुज्झंति के० ) चउदराज लोकनुं स्वरूप बुजे, ( मुच्चंति के० )सर्व डुःख थकी मूकाय, ( परिनिव्वायंति के० ) कर्मरूप दावनलने उपशमाववे करी शीतलीनूत थाय ( सव्वडुरकाणं अंतकरेंति के० ) सर्व डुःखनो अंत करे, ॥ ७२ ॥

---

॥दीपिका–प्रकारांतरेण पुनः साधुगुणानाह । (सेजहत्ति) तद्यथानाम केचन नगवंतोऽनगाराजवंति । ईर्यासमिताइत्यादि सुगमं । यावत्सुहुतहुताशनइव दीप्तवन्हिरिव तेजसाज्वलंतो दीप्यमानाः॥७०॥(णत्थिणंति)नास्ति तेषां कुत्रश्चित्प्रतिबंधः। प्रतिबंधश्चतुर्विधः। तद्यथा। अंमजोहंसादिः । अंडकंवा मयूरांडकादि क्रीडामयूरादिहेतुः स्यात्तेन तत्र निबंधः स्यात् । पोतजे हस्त्यादौ पोतके वा शिशुत्वात्प्रतिबंधः स्यात् । अथवा (अंमजोइवाबोंडजोइवाइतिपाठांतरं) अंडजं शणिकादिवस्त्रं बोंडजं कार्पासं वस्त्रं तत्र प्रतिबंधः स्यात् (उग्गहेइवा) अवगृहीतं परिवेषणार्थमुत्पाटितं नक्तपानं प्रगृहीतं नोजनार्थमुत्पाटितं तदेव । अथवा अवग्रहिकं वसतिपीठफलकादि औपग्रहिकं वा दंडकाद्युपधिजातं प्रगृहीतंतु रजोहरणाद्योघिकोपधिरूपं तत्र प्रतिबंधः स्यात् ।(जसुंति) यां यां दिशमिच्छंति विहर्तुं तां तां दिशं विहरंति। किंनूताः। अप्रतिबद्धाः शुचिनूताजावशुद्धिमंतः श्रुतिनूतावा प्राप्तसिद्धांताः लघुता अल्पोपधयोऽगौरवाश्च अनल्पग्रंथावद्धागमाः न वियते आत्मनः संबधी ग्रंथोहिरण्यादिर्ये

पां तेऽनात्मग्रंथाइति वा॥७१॥तेषां साधूनां भगवतां (इमाए) तद्रूपायात्रामात्रा वृत्तिःसंयम यात्राप्रमाणाजीविकाऽभवत्। तद्यथा। चतुर्थभक्तमेकोपवासः पष्ठभक्तं यावत्षण्मासिकं। अथच (उक्खित्तचरयत्ति) उत्क्षिप्तं स्वकार्याय पाकभाजनाडुद्धृतं तदर्थमभिग्रहतश्चरंति तद्गवेषणाय गच्छंतीति उत्क्षिप्तचरकाः। (निक्खित्तचरयत्ति) निक्षिप्तभाजनादनुद्धृतं तदर्थमभिग्रहतश्चरंति तद्गवेषणाय गच्छंतीति निक्षिप्तचरकाः। (उक्खित्तनिक्खित्तचरयत्ति) पाकभाजनाडुत्क्षिप्तं तत्रैवाऽन्यत्र वा स्थाने यदन्नं तदर्थमभिग्रहवंतश्चरंति। अंतेन प्रांतेन रूक्षेण भक्तादिना चरंति ये ते तथा समुदानेन भिक्षया चरंतीति (संसठ्ठेन) खरंटितेन हस्तादिना दीयमानं संसृष्टमुच्यते उक्तविपरीतमसंसृष्टं तेन चरंति (तज्जायत्ति) तज्जातेन देयद्रव्याविरोधिना यत्संसृष्टं हस्तादि तेन चरंति ते तथा। (दिठ्ठलाभियत्ति) दृष्टस्यैव भक्तादेर्लाभः अदृष्टस्यापकवरकादिमध्यान्निर्गतस्य श्रोत्रादिभिः कृतोपयोगस्य भक्तादेर्लाभस्तेन चरंति ये ते तथा। (पुठ्ठलाभियत्ति) पृष्टस्यैव हे साधो! किंते दीयते इत्यादिप्रश्नेन योलाभः सयेषामस्ति ते तथा। एवमपृष्टलाभिकाविपरीताः। भिक्षेव भिक्षा तु च्छमवज्ञातं वा तल्लाभोयेषामस्ति ते तथा अभिक्षालाभिका विपरीताः। अज्ञातचरकाअज्ञातगृहेषु चरंतीत्यभिग्रहवंतः अन्नं भोजनं वा ग्लायंति अन्नग्लायिकास्तेच अभिग्रहविशेषात्प्रातरेवान्नं गृण्हंति(उवणिहिया) उपनिहितं यथाकथंचिदासन्नीभूतं तेन चरंति ये ते उपनिहितकाःसंख्याप्रधानादत्तयोयेषां ते तथा। प्रातरेवग्रण्हंभक्तादि(परिमियत्ति) परिमितः पिंडपातः अर्धपोषादिलाभोयेषामस्ति ते तथा।(सुद्धेसणिया) शुद्धेषणाः शुद्धस्य वा निर्व्यंजनस्य कूरादेरेषणा येषामस्ति ते अंतप्रांतवल्लवणकादिः सआहारोयेषां ते तथा। विरसं नीरसं शीतलीभूतं रूक्षाहाराः (अंबिलिया) आचाम्लं उदनकुल्मापादि तेन चरंतीति। निर्विकृतिकाः घृतादिविकृतित्यागिनः अमद्यमांसाशिनः मद्यमांसं नाश्नंतीति। (नोनियामगत्ति) ननित्यं रसभोजिनः (नेसज्जीया) निपद्यायुतायां भूमौ उपविशनं तया चरंतीति नैपद्यकाः। वीरासनं सिंहासननिविष्टस्य भून्यस्तपादस्य सिंहासनापनोदे सति यादृशमवस्थानं तद्यस्यास्ति सवीरासनिकः (दंडायतिया) दंडस्येवायतमायामोयेषां ते दंडायतिकाः। लगंर्मं वक्रकाष्ठं तद्वत् शेरते ये ते लगंमशायिनः पार्श्विका शिरश्च पृष्ठमेव वा भूमौ लगति तथा शयनं कुर्वंति आतापकाआतापनाग्राहिणः (अप्पाउडा) अप्रावृताः प्रावरणवर्जकाः (अगंडुया) अकंडूयकाः (अनिठ्ठहा) अनिष्ठीवनाः (धुतमंससत्ति) धूतानि नीतिकर्मतया त्यक्तानि केशश्मश्रुरोमाणि शिरोजकूर्चकक्षादिलोमानि यैस्ते तथा सर्वशरीरपरिकर्मणा रहिताइत्यर्थः॥७२॥(तेणंति) ते साधवएवं विहृत्य बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायमनुपाल्य (आबाहंसत्ति) रोगातंके उत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा भक्तप्रत्याख्यानं कुर्वंति। किं बहुना यत्कृते क्रियते नग्नभावोमुंडभावश्च (अण्हाणगे) स्नानाभावः अदंतधावनं अछत्रकं। शरसि आतपे प

तत्यपि कंबलवस्त्रादिधारणाजावः अनुपानत्कता पाडुकाद्यजावः जूमिशयनं फलकशयनं काष्ठशयनं केशलोचः ब्रह्मचर्यधारणं। निक्षार्थं परगृहप्रवेशः लब्धमानापमानानि हेलन हिंसागर्हातर्जनताडनानि उच्चावचग्रामकंटकाः शुनाशुनाइंडियविषयारागद्वेषरहिततया सोढव्याइत्यर्थः। द्वाविंशतिः परीषहाः। देवादिकृताउपसर्गाअध्यास्यंते यदर्थमेताड्रकाः क्रियाः क्रियंते तमर्थं सम्यक् ज्ञानदर्शनचारित्राख्यमाराध्य चरमरुच्छासनिःश्वासैः प्रांतसमयं यावदित्यर्थः। ततोऽनंतमनुत्तरं निव्र्याघातं प्रतिपूर्णं केवलवरज्ञानदर्शनमाप्नुवंति ततः सिध्यंति मोक्षमाप्नुवंतीति ॥ ७३ ॥

---

॥ टीका–पुनरन्येन प्रकारेण साधुगुणान् दर्शयितुमाह। (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम केचनोत्तमसंहननधृतिबलोपेताअनगाराजगवंतोजवंतीति। ते पंचजिः समितिजिः समिताः। एवमित्युपदर्शने। औपपातिकमाचारांगसंबंधि प्रथममुपांगं। तत्र साधुगुणाः प्रबंधेन व्यावर्ण्यंते तदिहापि तेनैव क्रमेण इष्टव्यमित्यतिदेशः। यावद्भूतमपनीतं केशश्मश्रुलोमनखादिकं यैस्ते तथा सर्वगात्रपरिकर्मविप्रमुक्तानिष्प्रतिकर्मशरीरास्तिष्ठंतीति॥७०॥७१॥७२ तेचोग्रविहारिणः प्रव्रज्यामनुपाल्य, बाधारूपे रोगातंके समुत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा जक्तप्रत्याख्यानं विदधति। किंबहुनोक्तेन यत्कृतेऽयमयोगोलकवन्निरास्वादः करवालधारामार्गवदुरध्यवसायः श्रमणजावोऽनुपाल्यते तमर्थं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राख्यमाराध्य व्याहतमनंतं मोक्षकारणं केवलज्ञानमाप्नुवंति केवलज्ञानावाप्तेरूर्ध्वं सर्वदुःखविमोक्षलक्षणं मोक्षमवाप्नुवंतीति ॥ ७२ ॥

एगच्चाए पुणएगे जयंतारो जवंति अवरेगंपुण पुव्वकम्मावसेसेणं कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवताए उववत्तारो जवंति तंजहा महड्डिएसु महजुत्तिएसु महापरिक्कमेसु महाजसेसु महाबलेसु महाणुजावेसु महासुखेसु तेणं तछ देवा जवंति महड्डिया महजुत्तिया जाव महासुखा हारविराइयवछा कडगतुडियथंजियजुया अंगय कुंमल मछगंमयल कन्नपीढधारी विचित्तहछाजरणा विचित्तमालामउलिमउडा कल्लाणगंधपवरवछपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा जासुरबोंदीपलंबवणमालधरा दिव्वेणं रूवेणं दिव्वेणं वन्नेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघाएणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्डिए दिव्वाए जुत्तीए दिव्वाए पजाए दिव्वाए गयाए दिव्वाए अच्चाए दिव्वेणं तेयणं दिव्वाए लेसाए दसदिसाउ उज्जो

वेमाणो पत्नासेमाणा गइकल्लाणा विइकल्लाणा आगमेसित्नद्दयावि जवंति एसठाणे आयरिए जाव सवडुक्खपहीणमग्गे एगंतसम्मे सुसाहू दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपरकस्स विनंगे एवमाहिए ॥ ७४ ॥

अर्थ—(एगच्चाए के० ) एम कोइ एक पुरुष ( पुणे के० ) वली ( एगे के० ) एक ज शरीरें एटले तेज एक जवमां ( जयंतारोजवंति के० ) सिद्धिगति गामि होय. ( अवरेपुण के० ) अपर एटले बीजा वली ( पुवकम्मवसेसेणं के० ) जेने पूर्वकृत कर्म अवशेष रह्यां होय तो तेवा पुरुष ( कालमासेकालंकिच्चा के० ) कालने अवसरें काल करीने ( अन्नयरेसु के० ) अन्यत्र ( देवलोएसु के० ) देवलोकने विषे ( देवत्ताएउववत्तारो जवंति के० ) देव पणे उपजनार थाय ( तंजहा के० ) ते देवलोक केवा होय तेकहेबे ( महड्डिएसु के० ) महर्द्धिक महोटी ऋद्धिना धणी, ( महज्जुत्तिएसु के० ) महाद्युतिवान, ( महापरिक्कमेसु के० ) महोटा पराक्रम वाला, ( महाजसेसु के० ) महोटा यशना धणी, ( महाबलेसु के० ) महोटा बलवान, ( महाणुनावेसु के० ) महोटा अतिशयवान एवा महानुजाव वैक्रियादिक शक्तियें करी सहित होय. (महासुखेसु के०) महोटा सुखना धणी, एटला वाना जेस्थानकने विषेबे (तेणंतब्रदेवाजवंति के०) ते त्यां देवता पणे होय, ते देवता केवा होय. ते कहेबे. महोटी ऋद्धियादिक गुणें सहित यावत् महोटां सुख सहित ( हारविराइयवबा के० ) हारें करी विराजित शोजायमानबे, हृदय कमल जेनां वली ( कडगतुडियथंनियनूया अंगयं के० ) कटक, केयूर, अंगदादिकें करी स्तंनितबे नुजा जेनी, वली देदीप्यमान ( कुंमलमठगंमयल के० ) कुंमलें करी घसायेला एवा गालना तट जेणे शोजित कस्याबे (कन्नपीढधारी के०) कुंमलना आधार माटें कानबे माटे कर्णपीठ धारी कह्या अथवा कर्णपीठते काननुं आजरण विशेष जाणवुं. ते आजरणें कुंमलबे, तेना धरनारा. ( विचित्तहब्राजरणा के० ) विचित्रप्रकारना मुड्रादिक आजरण जेना हाथमां रहेलांबे तेणेकरीसहित ( विचित्तमालामउलिमउडाके०) विचित्र प्रकारनी माला सहित मुकुटना धरनार, ( कल्लाणगंधपवरवडपरिहिया के०) कल्याणकारी सुगंधित वस्त्रना पेरनार, तथा ( कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा के० ) कल्याणकारी प्रवर माल्य विलेपनना धरनार, ( जासुरबोंदीपलंबवणमालधरा के० ) देदीप्यमान शरीर प्रलंब एवी लटकतिजे वनमाला रूप आजरणे विशेष, तेना धरनारा, ( दिवेणंरूवेणं के० ) प्रधान रूपें करी सहित, ( दिवेणंवन्नेणं के० ) दिव्य वर्णेकरी सहित, ( दिवेणंगंधेणं के० ) दिव्य गंधें करी सहित, (दिवेणंफासेणंके०) दिव्य स्पर्शें करी सहित, (दिवेणंसंघाएणं के० ) दिव्य शरीरनो संघात, समुदाय तेणे करी सहित, (दिवेणं

संठाणेणं के० ) दिव्य संस्थान समचतुरस्र रूप तेणे करी सहित, (दिव्वाएइड्डीए के०) दिव्य वैमानादिकनी ऋद्धि, तेणे करी सहित, ( दिव्वाएजुत्तीए के० ) दिव्यद्युति एटले प्रधान अन्योन्य नक्तियें करी सहित, ( दिव्वाएप्पनाए के० ) दिव्य प्रना एटले कांती तथाविध द्रव्य जोडवाने प्रनावे महात्में करी सहित, ( दिव्वाएछायाए के० ) दिव्य प्रतिबिंब एवा रूपें करी सहित, (दिव्वाएअच्चाए के०) दिव्य अर्चा, (दिव्वेणंतेयणं के०) प्रधान एवी शरीर थकी निकलति जे तेजनी ज्वाला तेणे करी सहित, एटले दिव्यतेजें करी सहित, (दिव्वाएलेसाएके०) अन्यंतरना परिणामरूप शुक्लादिक लेश्यायें करी सहित थका, ( दसदिसाउंउज्जोवेमाणा के० ) प्रधान शरीर माहेली कांतियें करी दशेदिशा उंने उज्वल करता, ( पनासेमाणा के०) दशेदिशाउंने अलंकारता प्रकासता, ( गइकल्लाणा के० ) देवता संबंधिनी गतियें करी प्रधान, ( ठिइकल्लाणा के० ) देवता संबंधिनी स्थितियें करी कल्याण एटले प्रधान, ( आगमेसिनद्दयाविनवंति के० ) आगमिक कालें नइक प्रधान मनुष्य नव रूप संपदा पामवा आश्री तथा रूडा धर्म प्रतिपत्ति सहित प्रत्यें पामवा आश्री आगमिक कालें नइक कह्याछे. ए स्थानक आर्य थावत सर्व ङ:ख थकी रहित थवानो मार्ग एकांत सम्यक्, सत्य, सुसाधुनुं स्थानक छे, एटले बीजुं स्थानक धर्मपक्षनो विचार एम कह्यो. ॥ ७४ ॥

---

॥ दीपिका-( एगच्चाएत्ति ) एके पुनरेकयार्चया एकेन शरीरेण एकनवाद्धा मोक्षगंतारः स्युः । एके पुनः पूर्वकर्मावशेषे सति कालं कृत्वाऽन्यतरेषु देवलोकेषु देवतयोत्पद्यंते । तद्यथा । महर्द्धिमहाद्युतिमहायक्षमहाबलमहानुनावमहासुखेषु देवलोकेषु । देवास्तेप्येवंनूताइत्याह । महर्द्धिकादयस्तथा हारविराजितवक्षसः कटकत्रुटितस्तंनितनुजाः अंगदकुंडलघृष्टगंडतलकर्णपीठधराविचित्रहस्तानरणाः विचित्रमालामुकुलितमुकुटाः परिहितकल्याणप्रवरवस्त्राः कल्याणप्रवरमाल्यानुलेपनधराः ( नासुरबोंदी ) नास्वरशरीराः प्रलंबवनमालाधराः ( दिव्वेणंति ) दिविनवं दिव्यं तेन रूपेण यावद्दिव्यया द्रव्यलेश्यया युतादशदिशोविद्योतयंतः प्रनासयंतोगत्या देवलोकरूपया कल्याणाः शोननाः स्थित्या उत्कृष्टमध्यमया कल्याणाः ( आगमेसित्ति ) आगामिनि कालें नद्रकाः शोननमनुष्यनवं प्राप्ताः सद्धर्मप्रतिपत्तारः स्युः । तदेतत्स्थानमार्यं साधु श्रेष्ठं । एतद्वितीयस्य स्थानस्य धर्मपाक्षिकस्य विनंगोविचारः समाख्यातः ॥ ७४ ॥

---

॥ टीका-एके पुनरेकयार्चयैकेन शरीरेणैकस्माद्धा नवात्सिद्धिगतिं गंतारोनवंति अथ ते पुनस्तथाविधपूर्वकर्मशेषे सति तत्कर्मवशगाः कालं कृत्वा वैमानिकेषु देवेषूत्पद्यंते तत्रे

इसामानिकत्रयस्त्रिंशल्लोकपालपार्षदात्मरक्षप्रकीर्णेषु नानाविधसमृद्धिषु भवंतीति भत्वा नियोगिककिल्बिषिकादिष्विति । तदेवाह । (तंजहेत्यादि) तद्यथा महर्ध्यादिषु देवलोके षूत्पद्यंते । देवास्त्वेवंभूताभवंतीति दर्शयति । ( तेणंतत्थदेवा इत्यादि) ते देवानानाविध तपश्चरणोपात्तशुभकर्माणोमहर्ध्यादिगुणोपेताभवंतीत्यादिकः सामान्यगुणवर्णकः । ततो हारविराजितवक्षसइत्यादिकआभरणवस्त्रपुष्पवर्णकः । पुनरतिशयापादनार्थं दिव्यरूपादिप्रतिपादनं चिकीर्षुराह । (दिव्वेणंरूवेणमित्यादि) दिविभवं दिव्यं तेन रूपेणोपात्तायावद्दिव्यया द्रव्यलेश्ययोपेतादशापि दिशः समुद्योतयंतस्तथा प्रभासयंतोऽलंकुर्वंतोगत्या देवलोकरूपया कल्याणाः शोभनागत्या वा शीघ्ररूपया प्रशस्तविहायोगतिरूपया वा कल्याणास्तथा स्थित्या उत्कृष्टमध्यमया कल्याणास्ते भवंति तथाऽऽगामिनि काले भद्रकाः शोभनमनुष्यभवरूपसंपदुपेतास्तथा सद्धर्मप्रतिपत्तारश्च भवंतीति । तदेतत्स्थानमार्यमेकांतेनैव सम्यग्भूतं सुसाध्विति । एतद्द्वितीयस्य स्थानस्य धर्मपाक्षिकस्य विभंगएवमाख्यातः॥७४॥

अहावरे तच्चस्स ठाणस्स मीसगस्स विभंगे एव माहिज्जइ इह खलु पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति तंजहा अप्पिच्छा अप्पारंभा अप्पपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया जाव धम्मेणं चेव वित्तिकप्पेमाणा विहरंति सुसीला सुवया सुपडियाणंदा साहू एगच्चाउ पाणाइवायाउ पडिविरता जावजीवाए एगच्चाउ अप्पडिविरया जाव जेयावण्णे तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरितावणकरा कज्जंति ततोवि एगच्चाउ अप्पडिविरया ॥ ७५ ॥

अर्थ–अथ हवे अपर त्रीजुं स्थानक मिश्रपक्ष तेनो विचार कहियें छैयें; यद्यपि ए स्थानक धर्म अधर्म करीने मिश्रितछे, तथापि एमां धर्मनुं बाहुल्य पणुछे, तेमाटें ए धर्मपक्षज जाणवो. आ जगत् मांहे निश्चें पूर्वादिक दिशिने विषे कोइ एक मनुष्य एवा छे, ते कहेछे. अल्प इछावाला, अल्पारंभी एटले थोडेज आरंभे व्यापारादिक साधे संबंधछे जेने, अल्प परिग्रही एटले थोडोज परिग्रह संग्रह करवानी मूर्छा संबंधि बुद्धि छे जेनी, धर्मानुगामि एटले धर्मजे श्रुत चारित्ररूप तेनीकेडे चालनार, यावत् देश थकी चारित्रने अखंम पालवे करी श्रुतने आराधवे करी आजीविका करता थका विचरेछे. भलो छे आचार जेनो,भलां व्रतछे जेने, सुप्रत्यानंद, साधु एटले सुखसाध्यसाधु, तथा साधुने विषेज आनंद हर्ष सहित वर्त्तेछे, तथा ( एगच्चाउपाणाइवायाउ के० ) एकेक प्राणी जे बे इंद्रियादिक त्रस जीवोछे, तेने हणवा थकी निवर्त्या एवा, तथा एकेक स्थूल

न प्रकृतिरूपजे पाप, तेना स्वरूपने उपलब्ध एटले पाम्याछे, तथा (आसव के०) आश्रव ते शुनाशुनकर्मनुं आववुं, अने (संवर के०) संवर ते आवता कर्मनुं रोकवुं संवरवुं, तथा (वेयणा के०) वेदना ते साता असातारूप वे प्रकारनी, (णिज्जराके०) निर्ज्जराते कर्मनुं खपाववुं, (किरियाहिगरण के०) क्रियाअधिकरण एटले घर, हाट, खड्ग, कटारी, उखल, मुसल थकी कर्म बंधाय ते, (बंधके०) बंध चार प्रकारना तथा (मोस्कके०) कर्म थकी मूकाववुं ते जाणवाने विषे (कुसला के०) माह्याछे, (असहेज्ज के०) कोइ कष्ट पड्या थकी देवादिकनी सहायतानी वांछा न करे सहायरहित धर्मना करनार होय. (देवासुरनागसुवन्नजस्करस्कसकिंन्नरकिंपुरिसगरुलगंधवमहोरगाइएहिंके०) तथा देव एटले वैमानिक देवो, असुर एटले असुर कुमार नवनवासी देवो, नाग कुमार, सुवर्ण कुमार, यक्ष, राक्षस, किंन्नर, किंपुरिस, अश्वमुख गरुड, गंधर्व, महोरगादिक, (देवगणेहिं के०) इत्यादिक देवताना समूह ते, (निग्गंथाउपावयणाउ के०) निर्ग्रंथना एटले नगवंतना प्रवचन थकी तेने (अणइक्कमणिज्जा के०) चलावी नशके, मोलवी नशके. (इणमेनिग्गंथेपावयणेणिस्संकिया के०) तथा ए निर्ग्रंथना प्रवचनने विषे निःशंकित एटले संदेहरहित होय, एटले जे श्रीवीतराग बोल्या तेज सत्य छे एम जाणे. (णिक्कंखियाके०) सूत्र छोडी बीजुं शास्त्र वांछे नही, (निव्वितिगिछा के०) धर्मना फलने विषे संदेहरहित होय, तथा सूत्रोक्त साधुना मार्गने विषे डगछारहित होय, (लद्धठा के०) सूत्रसांनलवा थकी लाधाछे सूत्रना अर्थ जेने, (गहीयठा के०) धारणायें करी ग्रह्याछे अर्थ जेणे, (पुछियठा के०) संशय उत्पन्न थया थकी पूछीने खरा कर्याछे अर्थ जेणे, (विणिछियठा के०) वारंवार विशेषें पूछीने निश्चित कर्याछे अर्थ जेणे, (अनिगयठा के०) प्राप्त थयेला अर्थने पूछ्या पछी, निर्णय करी धार्याछे अर्थ जेणे, एटले प्रकारें तत्वार्थना जाण, (अठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता के०) अस्थि अने हाड मांहेली मिंजा जे धातु विशेष ते नगवंतना सिद्धांतरूप कसुंबादिकने विषे प्रेमरूप रागें करी रंगाणाछे एटले रागरक्तछे, तथा पांच मांहे मल्या थका एवी धर्मनी कथा कहे के, (अयमाउसो के०) अहो आयुष्मंतो! (निग्गंथेपावयणेके०) निर्ग्रंथ एटले साधु संबंधि जे प्रवचनसिद्धांत छे (अयंपरमठेके०) एज आत्माने अर्थे उत्कृष्ट मोक्ष साधन रूप मार्गछे. (सेसेअणठे के०) अने शेष बीजा कपिलादिकना ग्रंथ, तथा धनधान्यादिक पुत्रकलत्रादिक ए सहु अनर्थ कारीछे, ए सर्व असार एवोजे आ संसार तेनी वृद्धिनां कारण रूपछे. एवी कथा करे, एरीतें निर्ग्रंथना प्रवचनने विषे रागीछे, (उसियफलिहा के०) निर्मल स्फाटिकना जेवुं चित्तछे जेनुं, (अवगुयडवारा के०) जेना घरना वारणा नोगल रहित एटले सर्व काल उघाडां छे,

(अचियत्तंतेउरपरघरपवेसा के०) राजाना अंतःपुरनी पेठें लोकना घरने विषे प्रवेश करवानो जेणे त्याग कस्योछे, अथवा अप्रीतिकारि छे परदर्शनादिकना घरने विषे प्रवेश जेनो, एतावता परतीर्थिकने पर घर जाणीने, घणा मजबूत कारणो विना, तेमने घरे न जांय, तथा ( चाउद्दसट्ठमुद्दिठ्ठ के० ) चतुर्दशी, अष्टमी, अने उद्दिष्टा एटले महाकल्याणिक तिथि ( पुन्निमासिणीसु के० ) पूर्णिमा चतुर्मासिक तिथि, एटला दिवसोने विषे ( पडिपुन्नंपोसहंसम्मंअणुपालेमाणा के० ) प्रतिपूर्ण पोसहने सम्यक् प्रकारें पालता थका विचरेछे. वली ते श्रावक कहेवाछे तोके, ( समणेनिग्गंथे के० ) श्रमण तपस्वी निर्ग्रंथने ( फासुएसणिज्जेणं के०) प्राशुक एटले निर्जीव एषणीक, एटले बहेंतालीश दोरहित एवो (असणपाणखाइमसाइमेणं के०) अशन, पान, खादिम. स्वादिम, (वच्छपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं के०) तथा वस्त्र, पात्र, कंबल, पायपुंछण, (उंसहभेसज्जेणंके०) औषध, भैषज्य, ( पीढफलगसेज्जासंथारएणंपडिलाभेमाणा के० ) पीठ, फलक, शय्या, संथारो तेणेकरी प्रतिलाभता थका, (बहुहिंसीलवयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासेहिं के०) घणां एक शीलव्रत तथा शीलते शुभाचार, तथा स्थूल प्राणातिपात, वेरमणादिक गुण व्रत ते देशव्रतादिक योग्य पणे लीधेला, तथा नवकारसी पोरसी प्रमुख पच्चखाणना करनार, तथा, पौषध सहित उपवासना करनार, (अहापरिग्गहिएहिं के०) तथा यथा परिग्रहित एटले पोतानी इछा माफक आदस्याछे जेणे; ते शुं आदस्याछे? तोके (तवोकम्मेहिं के०) तप कर्म, तेणे करी, (अप्पाणंभावेमाणाविहरंति के०) पोताना आत्मानें भावता थका विचरेछे. ॥७६॥ (तेणंएयारूवेणंविहारेणंविहरमाणा के०) ते एतद्रूप पणे एटले एवा पूर्वोक्त श्रावकने आचारें प्रवर्त्तता थका, ( बहुइंवासाइं के०) घणा वर्ष सुधी ( समणोवासगपरियागं के० ) श्रमणोपासकना पर्यायने ( पाउणंति के० ) पाले, ( पाउणंतित्ताके० ) पालीने ( आबाहंसिउप्पन्नंसिवा के० ) रोगादिक आबाधा उपनी, ( अणुप्पन्नंसिवा के० ) अथवा अनुत्पन्न एटले नउपनी छते ( बहुइंभत्ताइं के० ) घणा भात पाणीनो ( अणसणाएपच्चक्खाए के० ) अनशनपच्चक्खे ( पच्चक्खाएता के० ) एम घणा भक्त पाननो अनशन पच्चखिने ( बहुइंभत्ताइंअणसणाछेदइ के० ) ते अनशनने विषे घणा भक्त पानने छेदे, एटले परिहरे. ( छेदेइत्ता के० ) छेदी एटले परिहरीने, घणादिवस अनशन पालीने ( आलोइयपडिक्कंता के० ) आलोचे पडिकमे एटले जे पाप लागां होय, ते अरिहंतादिक आगल प्रकाशीने तेनां मिथ्या दुष्कृतादिक आपीने (समाहिपत्ता के०) ज्ञानादिकनी निर्व्याघात पणे समाधि पामिने एटले पडिकमीने समाधि प्राप्त थइने, मरणना अवसरें काल करीने एटले समाधि मरण करीने अनेरा देवलोकने विषे देवता पणे उपजनार थाय. ते कहेछे, महोटी रुद्धिछे वैमानिकादिकनी तेने विषे, महो

प्राणातिपात थकी, अत्यंत पणे विरम्याछे विरक्त थयाछे, जाव जीव सुधी एकैक प्राणी जे पृथिव्यादिक छार तेने हणवा थकीअत्यंत विरम्या नथी उंसस्था नथी, एटले एक सूक्ष्म प्राणातिपात थकी अविरता इत्यादिक सर्वपद, जेवां अविरतने आलावे कह्यांछे, तेवां आहीं पण जाणी लेवां, परंतु एटलुं विशेषछे जे; एक पक्षें विरति, अने एक पक्षें अविरति, (जावजेयावन्ने के०) यावत् जेकांइ अनेरा तथाप्रकारना पूर्वोक्त सावद्य अबोधिनां कारण एवा कर्म रूप व्यापार, बीजा जीवोने परितापना करनार नीपजावीयें, ते थकी पण एक पक्षें विरति, अने एक अपक्षें अविरति, ते विरताविरत कहियें. ॥७५॥

---

॥ दीपिका–अथापरस्य तृतीयस्थानकस्य मिश्रकाख्यस्य विनंगः स्वरूपमाख्यायते । (इहखलु इत्यादि) एतच्च यद्यपि मिश्रत्वाद्धर्माधर्माभ्यां युतं नवति तथापि धर्मनूयिष्ठत्वाद्धार्मिकपक्षएवावतरति । यथा बहुषु गुणेषु मध्यपतितोऽल्पदोषोन स्वरूपं लनते कलंकइव चंद्रिकायां बहूदकमध्यपतितोमृत्खंडावयवोन जलं कलुषयितुमलं एवमधर्मोपि धर्मे, ततोयं मिश्रपक्षोधर्मपक्षएवेति स्थितं । इह जगति प्राच्यादिदिक्षु एके शुनकर्माणो मनुष्याः स्युः । तद्यथा अल्पेछाः अल्पारंनाधार्मिकवृत्तयः शीलाः सुव्रताः सुप्रत्यानंदाः साधवः स्युः । तेच एकस्मात् स्थूलात् संकल्पकृतात्प्राणातिपातान्निवृत्ताः । एकस्माच्च सूक्ष्मादारंनजादप्रतिविरताः । एवं शेषाण्यपि व्रतानि वाच्यानि । (जावजेयावन्नेत्ति) ये चान्ये सावद्याः कर्मारंनास्तेन्यएकस्माद्यंत्रपीडानिर्लांछनकृपीवलादेर्निवृत्ताः । एकस्माच्च क्रयविक्रयादेरनिवृत्ताः ॥ ७५ ॥

---

॥ टीका–अथापरस्य तृतीयस्य स्थानस्य मिश्रकाख्यस्य विनंगः समाख्यायते । (इहखलुइत्यादि) एतच्च यद्यपि मिश्रत्वाद्धर्माधर्माभ्यामुपेतं तथापि धर्मनूयिष्ठत्वाद्धार्मिकपक्षएवावतरति । तद्यथा । बहुषु गुणेषु मध्यपतितोदोषोनात्मानं लनते कलंकइव चंद्रिकायास्तथा बहूदकमध्यपतितोमृत्कणावयवोनोदकं कलुषयितुमलं एवमधर्मोपि धर्ममिति स्थितं । धार्मिकपक्षएवायं । इहास्मिन् जगति प्राच्यादिषु दिक्षु एके केचन शुनकर्माणोमनुष्यानवंतीति । अल्पाः स्तोकाः परिग्रहारंनेष्विछांतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा एवंनूताधार्मिकवृत्तयः प्रायः सुशीलाः सुव्रताः सुप्रत्यानंदाः साधवोनवंतीति । तथैकस्मात् स्थूलात्संकल्पकृतात् प्रतिनिवृत्ताएकस्माच्च सूक्ष्मादारंनजादप्रतिनिवृत्ताएवं शेषाण्यपि व्रतानि संयोज्यानि । एतस्मादपि सामान्येन निवृत्ताइत्यतिदिशन्नाह । (जेयावन्नेइत्यादि) । ये चान्ये सावद्यानरकादिगमनहेतवः कर्मसमारंनास्तेन्यएकस्माद्यंत्रपीडननिर्लांछनकृपीवलादेर्निवृत्ताएकस्माच्च क्रयविक्रयादेरनिवृत्ताइति ॥ ७५ ॥

से जहा णामएसमणोवासगा भवंति अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्णपा वा आसवसंवरवेयणाणिज्जरा किरियाहिगरणबंधमोस्ककुसला असहे ज्ज देवासुरनागसुवन्नजस्करस्कसकिंन्नरकिपुरिसगरुलगंधवमहोरगा इए हिं देवगणेहिं निग्गंथाउ पावयणाउ अणइक्कमणिज्जा इणमे निग्गंथे पा वयणे णिस्संकिया णिक्कंखिया निवितिगिछा लद्धठा गहीयठा पुछियठा विणिछियठा अभिगयठा अठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता अयमाउसो नि ग्गंथे पावयणे अयं परमठे सेसे अणठे उसियफलिहा अवगुयडुवा रा अचियत्तं तेउरपरघरपवेसा चाउद्दसठमुद्दिठपुण्णिमासिणीसुपडिपुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा समणे निग्गंथे फासुए सणिज्जेणं असण पाणखाइमसामइमेणं वछपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं उसहभेसज्जेणं पी ठफलगसेज्जासंथारएणं पडिलाभेमाणा बहूहि सीलवयगुणवेरमणपञ्च स्काणपोसहोववासेहिं अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमा णा विहरंति ॥७६॥ तेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा बहुइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणंति पाउणंतित्ता आबाहंसि उप्पन्नंसिवा अ णुप्पन्नंसिवा बहुइं भत्ताइं अणसणाए पञ्चस्काए बहुइं भत्ताइं अणसणाए पञ्चस्काएत्ता बहुइं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ बहुइं भत्ताइं अणासणाए छेदेइत्ता आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अन्न यरेसु देवलोएसु देवताए उववत्तारोभवंति तंजहा महड्डिएसु महज्जु इएसु जाव महासुखेसु सेसं तहेव जाव एसठाणे आयरिए जाव एगं तसम्मे साहू तञ्चस्स ठाणस्स मिस्सगस्स विभंगेएवं आहिए ॥ ७७ ॥

अर्थ—वली विशेष कहियेछेयें. ते यथा दृष्टांते नाम एवी संभावनायें जेम कोइ एक उत्तम पुरुष, विशिष्ट उपदेश सांभलावाने अर्थे (समणोवासगाभवंति के०) श्रमणो पासकनो धर्म सेवन करे, ते श्रमणोपासक विशेषतः धर्मना करनार जाणवा, ते श्रम णोपासकना लक्षण कहेछे. (अभिगय के०) अभिगत एटले उलख्याछे जाण्याछे (जी वाजीवा के० जीव जे चेतन लक्षण रूप, अने अजीव जे चेतनरहित, एटले जीवा जीवना उलखनार, तथा (उवलद्धपुण्णपावा के०) शुभ प्रकृतिरूपजे पुण्य, अने अशु

न प्रकृतिरूपजे पाप, तेना स्वरूपने उपलब्ध एटले पाम्याछे, तथा ( आसव के० ) आश्रव ते शुनाशुनकर्मनुं आववुं, अने ( संवर के० ) संवर ते आवता कर्मनुं रोकवुं संवरवुं, तथा ( वेयणा के० ) वेदना ते साता असातारूप बे प्रकारनी, (णिज्जराके०) निर्ज्जराते कर्मनुं खपाववुं, ( किरियाहिगरण के० ) क्रियाअधिकरण एटले घर, हाट, खड़, कटारी, उखल, मुसल थकी कर्म बंधाय ते, ( बंधके० ) बंध चार प्रकारना तथा ( मोरकके० ) कर्म थकी मूकाववुं ते जाणवाने विषे ( कुसला के० ) माह्याछे, ( अस हेज्ज के० ) कोइ कष्ट पड्या थकी देवादिकनी सहायतानी वांछा न करे सहायरहित धर्मना करनार होय. ( देवासुरनागसुवन्नजरकररकसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगाइए हिंके० ) तथा देव एटले वैमानिक देवो, असुर एटले असुर कुमार नवनवासी देवो, नाग कुमार, सुवर्ण कुमार, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरिस, अश्वमुख गरुड, गंधर्व, म होरगादिक, ( देवगणेहिं के० ) इत्यादिक देवताना समूह ते, ( निग्गंथाउंपावयणाउं के० ) निर्ग्रंथना एटले नगवंतना प्रवचन थकी तेने ( अणइक्कमणिज्जा के० ) च लावी नशके, झोलवी नशके. ( इणमेनिग्गंथेपावयणेणिस्संकिया के० ) तथा ए निर्ग्रंथना प्रवचनने विषे निःशंकित एटले संदेहरहित होय, एटले जे श्रीवीतराग बोल्या तेज सत्य छे एम जाणे. ( णिक्कंखियाके० ) सूत्र छोडी बीजुं शास्त्र वांछे नही, ( निव्वितिगिच्छा के० ) धर्मना फलने विषे संदेहरहित होय, तथा सूत्रोक्त साधुना मार्गने विषे डुगंछारहित होय, ( लध्दा के० ) सूत्रसांनलवा थकी लाधाछे सूत्रना अर्थ जेने, ( गहीयट्ठा के० ) धारणायें करी ग्रह्याछे अर्थ जेणे, ( पुच्छियट्ठा के० ) संशय उत्पन्न थया थकी पूछीने खरा कर्याछे अर्थ जेणे, (विणिच्छियट्ठा के० ) वारंवार विशेषें पूछीने निश्चित कर्याछे अर्थ जेणे, (अनिगयट्ठा के०) प्राप्त थयेला अर्थने पूछ्या पछी, निर्णय करी धार्याछे अर्थ जेणे, एटले प्रकारें तत्वार्थना जाण, (अट्ठिमिंजपेम्मा णुरागरत्ता के० ) अस्थि अने हाड मांहेली मिंजा जे धातु विशेष ते नगवंतना सिद्धां तरूप कसुंबादिकने विषे प्रेमरूप रागें करी रंगाणाछे एटले रागरक्तछे, तथा पांच मांहे मल्या थका एवी धर्मनी कथा कहे के, (अयमाउसो के०) अहो आयुष्मंतो! ( निग्गं थेपावयणेके० ) निर्ग्रंथ एटले साधु संबंधि जे प्रवचनसिद्धांत छे ( अयंपरमट्ठेके० ) एज आत्माने अर्थे उत्कृष्ट मोक्ष साधन रूप मार्गछे. ( सेसेअणट्ठे के० ) अने शेष बीजा कपिलादिकना ग्रंथ, तथा धनधान्यादिक पुत्रकलत्रादिक ए सहु अनर्थ कारीछे, ए सर्व असार एवोजे आ संसार तेनी वृद्धिनां कारण रूपछे. एवी कथा करे, एरीतें निर्ग्रंथना प्रवचनने विषे रागीछे, (उसियफलिहा के०) निर्मल स्फाटिकना जेवुं चित्तछे जेनुं, ( अवगुयदुवारा के० ) जेना घरना वारणा नोगल रहित एटले सर्व काल उघाडां छे,

( अचियत्तंतेउरपरघरपवेसा के० ) राजाना अंतःपुरनी पेठें लोकना घरने विषे प्रवेश करवानो जेणे त्याग कर्योछे, अथवा अप्रीतिकारि छे परदर्शनादिकना घरने विषे प्रवेश जेनो, एतावता परतीर्थिकने पर घर जाणीने, घणा मजबूत कारणो विना, तेमने घरे न जाय, तथा ( चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ के० ) चतुर्दशी, अष्टमी, अने उद्दिष्टा एटले महाकल्याणिक तिथि ( पुस्मिमासिणीसु के० ) पूर्णिमा चतुर्मासिक तिथि, एटला दिवसोने विषे ( पडिपुन्नंपोसहंसम्मंअणुपालेमाणा के० ) प्रतिपूर्ण पोसहने सम्यक् प्रकारें पालता थका विचरेछे. वली ते श्रावक कहेवाछे तोके, ( समणेनिग्गंथे के० ) श्रमण तपस्वी निग्रंथने ( फासुएसणिज्जेणं के० ) प्रासुक एटले निर्जीव एषणीक, एटले बहेंतालीश दोरहित एवो (असणपाणखाइमसाइमेणं के०) अशन, पान, खादिम, स्वादिम, (वत्थपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं के०) तथा वस्त्र, पात्र, कंबल, पायपुंछण, (उसहनेसज्जेणंके०) औषध, नैषज्य, ( पीढफलगसेज्जासंथारएणंपडिलानेमाणा के० ) पीठ, फलक, शय्या, संथारो तेणेकरी प्रतिलाजता थका, (बहुहिंसीलवयगुणवेरमणपच्चरकाणपोसहोववासेहिं के०) घणां एक शीलव्रत तथा शीलते शुनाचार, तथा स्थूल प्राणातिपात, वेरमणादिक गुण व्रत ते देशव्रतादिक योग्य पणे लीधेला, तथा नवकारसी पोरसी प्रमुख पच्चरकाणना करनार, तथा, पौषध सहित उपवासना करनार, (अहापरिग्गहिएहिं के०) तथा यथा परिग्रहित एटले पोतानी इछा माफक आदर्याछे जेणे; ते शुं आदर्याछे? तोके (तवोकम्मेहिं के०) तप कर्म, तेणे करी, (अप्पाणंनावेमाणाविहरंति के०) पोताना आत्मानें नावता थका विचरेछे. ॥७६॥ (तेणंएयारूवेणंविहारेणंविहरमाणा के०) ते एतद्रूप पणे एटले एवा पूर्वोक्त श्रावकने आचारें प्रवर्त्तता थका, ( बहुइंवासाइं के०) घणा वर्ष सुधी ( समणोवासगपरियागं के० ) श्रमणोपासकना पर्यायने ( पाउणंति के० ) पाले, ( पाउणंतित्ताके० ) पालीने ( आबाहंसिउप्पन्नंसिवा के० ) रोगादिक आबाधा उपनी, ( अणुप्पन्नंसिवा के० ) अथवा अनुत्पन्न एटले नउपनी छते ( बहुइंनत्ताइं के० ) घणा नात पाणीनो ( अणसणाएपच्चरकाए के० ) अनशनपच्चरके ( पच्चरकाएता के० ) एम घणा नक्त पाननो अनशन पच्चरकिने ( बहुइंनत्ताइंअणसणाछेदइ के० ) ते अनशनने विषे घणा नक्त पानने छेदे, एटले परिहरे. ( छेदेइत्ता के० ) छेदी एटले परिहरीने, घणादिवस अनशन पालीने ( आलोइयपडिक्कंता के० ) आलोचे पडिकमे एटले जे पाप लागां होय, ते अरिहंतादिक आगल प्रकाशीने तेनां मिथ्या डुष्कृतादिक आपीने (समाहिपत्ता के०) ज्ञानादिकनी निर्व्याघात पणे समाधि पामिने एटले पडिकमीने समाधि प्राप्त थइने, मरणना अवसरें काल करीने एटले समाधि मरण करीने अनेरा देवलोकने विषे देवता पणे उपजनार थाय. ते कहेछे, महोटी रुद्धिछे वैमानिकादिकनी तेने विषे, महो

टा द्युतिने विषे, यावत् घणा सुख तेने विषे, इत्यादिक शेष बोल पूर्ववत् एटले तेमज जाणवा. ज्यांसुधी एवुं स्थानक आर्य एटले धर्मपक्ष साधुनुं कह्युं. यावत् एकांत सम्यक्त्व मार्गे साधु त्यांसुधीनो आलावो बधो केवो. ए त्रीजुं स्थानक जे मिश्रपक्ष तेनुं विचार स्वरूप कह्युं. एटले धर्म पक्ष, अधर्मपक्ष, अने मिश्रपक्ष, ए त्रणे पक्ष कह्या.॥ ७७ ॥

---

॥ दीपिका–तान् विशेषतआह । ( सेजहत्ति ) तद्यथा श्रमणोपासकाअधिगतजीवा जीवाउपलब्धपुण्यपापाः । इह प्रायः सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यंते । टीकानुगतं सूत्रं तु प्रायोन दृश्यते । परं इममेवादर्शमंगीकृत्य मया विवरणं क्रियते इति सूत्रांतरविसंवाददर्शनान्न व्यामोहोविधेयइति । तेच श्रावकाआश्रवसंवरवेदनानिर्जराक्रियाधिकरणबंधमोक्षकुशलाः (असहेज्जत्ति) असहायाअपि देवासुरादिनिर्नैर्ग्रंथात्प्रवचनमतादनतिक्रमणीयाअकंपनीयाः ( इणमेत्ति ) अस्मिन्नेव नैर्ग्रंथे प्रवचने निःशंकितानिःकांक्षानिर्विचिकित्सालब्धार्थागृहीतार्थाविनिश्चितार्थाअधिगतार्था ( अस्थिमिंजा ) अस्थिमध्यं यावत्प्रेमानुरागरक्ताः दर्शनेत्यंतं नाविततमतयइत्यर्थः । अत्रार्थे कथानकं । राजगृहे कश्चित्परिव्राजकोविद्यासिद्धोयांयां स्त्रियं रम्यां पश्यति तांतामपहरति ततोलोकैर्नृपाय विज्ञप्तं राज्ञोक्तं गच्छत स्वस्थानं यूयं सुखं तिष्ठत अहं तं दुरात्मानं यदि पंचपैर्दिनैर्नलने तदा वन्हौ प्रविशामि । गतानागरिकाः स्थानं राज्ञा आरक्षकास्तदन्वेषणाय नियुक्ताः स्वयं च खड्गपाणिर्भ्रमति नृपः । नचोपलभ्यते चौरस्ततः पंचमदिने तांबूलपुष्पादि गृण्हन् रात्रौ नृपेण दृष्टः परिव्राट् तत्पृष्ठगामिना राज्ञा नगरोद्यानवृक्षकोटरप्रवेशेन गुहाभ्यंतरे प्रविश्य हतः सः । ततः समर्पितं यद्धनं यस्य सत्कं स्त्रियोपि । तत्रैका कामिनी अत्यंतमोपधैर्भावितानेच्छति स्वपतिमपि ततः प्राज्ञैरुक्तं अस्याश्चौरास्थीनि दुग्धेन सह संघृष्य यदि दीयंते तदासौ तदाग्रहं मुंचति ततः स्वजनैरेवं कृतं । यथायथा चासौ तदस्थीनि न क्ष्यति तथा स्नेहोयाति सर्वास्थिपाने च गतः सर्वोपि चौरस्नेहः अनुरक्तानून्निजे भर्तरि । तदेवं यथा सात्यंतं भाविता नेच्छत्यपरं तथा श्रावकाअपि नितरां भाविताः शासने नशक्यंतेऽन्यथाकर्तुं अत्यंतं सम्यक्त्वौपधभावितत्वादिति । श्रावकाः किंभूताः । ( अयमाउसोत्ति ) इदमायुष्मन् जैनं शासनं अर्थस्तत्त्वभूतं अयमेव परमार्थः शेषोऽनर्थइति चिंतयंतः । तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु प्रतिपूर्णं पोषधं सम्यक्त्वमनुपालयंतः (उसियफलिहत्ति) उच्छ्रितानि स्फाटिकानि चित्तानि येषांते तथा वर्धमानपरिणामाइत्यर्थः । ( अवगुयदुवारत्ति ) अप्रावृतानि द्वाराणि येषांते तथा सन्मार्गलाभान्नकुतोपि भयं कुर्वंतीत्युद्घाटितद्वाराः ( अचियत्तत्ति ) अचियत्तोऽनभिमतोंऽतःपुरप्रवेशवत्परगृहप्रवेशोयेषांते तथा श्रमणान्निर्ग्रंथान् प्रासुकेनैषणीयेन अशनादिना वस्त्रप्रतिग्रहकंबलपादपुंछनेन औषधभेषजे

न पीठफलकशय्यासंस्तारकेण प्रतिलाभयंतोबहूनि । शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपौष धोपवासैर्यथा परिगृहीतैस्तपःकर्मैर्निरात्मानं भावयंतस्तिष्ठंति ॥७६॥ (तेणंति) ते श्रमणोपा सकाएतद्रूपेण विहारेण विहरमाणाबहूनि वर्षाणि श्रमणोपासकं पर्यायं प्रपाल्य रोगातं के समुत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा भक्तं प्रत्याख्याय स्वायुःक्षये देवेषूत्पद्यंते ततोपि च्युताः सुमानुष भवं प्राप्य तेनैव भवेनोत्कृष्टतः सप्तसु अष्टसु वा भवेषु सिध्यंति । तदेवं स्थानमार्यं तृ तीयस्य स्थानस्यायं विभंगोविचारश्चाख्यातः ॥ ७७ ॥

---

॥ टीका–तांश्च विशेषतोदर्शयितुमाह (सेजहेत्यादि) विशिष्टोपदेशार्थं श्रमणानुपास ते सेवंतइति श्रमणोपासकास्तेच श्रमणोपासनतोऽभिगतजीवाजीवस्वभावास्तथोपलब्धपु ण्यपापाः । इह च प्रायः सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यंते न टीकासंवादैकोप्यस्मा भिरादर्शः समुपलब्धोतएकमादर्शमंगीकृत्यास्माभिर्विवरणं क्रियते इत्येतदवगम्य सूत्रवि संवाददर्शनाच्चित्तव्यामोहोविधेयइति । ते श्रावकाः परिज्ञातबंधमोक्षस्वरूपाः संतोन धर्मा च्चाल्यंते मेरुरिव निष्प्रकंपादृढमार्हते दर्शनेऽनुरक्ताः । अत्र चार्थे सुखप्रतिपत्त्यर्थं दृष्टांत भूतं कथानकं । तच्चेदं । तद्यथा राजगृहे नगरे कश्चिदेकः परिव्राट् विद्यामंत्रौषधिलब्ध सामर्थ्यः परिवसति सच विद्यादिबलेन पत्तने पर्यटन् यां यामभिरूपतरामंगनां पश्यति तां तामपहरति ततः सर्वैर्नागरैराज्ञे निवेदितं । यथा देव! प्रत्यहं पत्तनं मुष्यते केनापि नीयते सर्वसारमंगनाजनोपि यस्तस्यानिमितः सोऽत्र केवलमास्ते । तदेवं क्रियतां प्रसादस्तदन्वे षणेनेति । राज्ञाभिहितं गच्छत यूयं विश्रब्धाभवतावश्यमहं तं डुरात्मानं लप्स्ये । किंचय दि पंचभिरह्नोभिर्न लभे चौरं विमर्षयुक्तोपि च स्वहस्ताभ्यात्मानमहं ज्वालामालाकुले वन्हौ तदेवं कृतप्रतिज्ञं राजानं प्रणम्य निर्गतानागरिकाः । राज्ञा च सविशेषं नियुक्ताआरक्षकाः । आत्मनाप्येकाकी खड्गखेटकसमेतोन्वेष्टुमारब्धोन चोपलभ्यते चौरस्ततोराज्ञा निपुणतरम न्वेषता पंचमेऽहनि भोजनतांबूलगंधमाल्यादिकं गृह्णन् रात्रौ सतोनिर्गतेनोपलब्धः सपरिव्राट् तत्पृष्ठगामिना नगरोद्यानवृक्षकोटरप्रवेशेन गुहाभ्यंतरं प्रविश्य व्यापादितस्त दनंतरं समार्पितं यद्यस्य सत्कमंगनाजनोपीति । तत्र चैका सीमंतिनी अत्यंतमौषधिभा विता नेच्छत्यात्मीयमपि भर्तारं ततस्तद्भिश्चिरभिहितं यथाऽस्याः परिव्राट्सत्कान्यस्थीनि डुग्धेन सह संघृष्य यदि दीयते तदेयं तदाग्रहं मुंचति ततस्तत्स्वजनैरेवमेव कृतं यथा यथा चासौ तदस्थ्यभ्यवहारं विधत्ते तथातथा तत्स्नेहानुबंधोऽपैति सर्वास्थिपाने चापगतः प्रेमानुबंधस्तदनुरक्ता निजे भर्तरि । तदेवं यासावत्यंतं तेन परिव्राजा नेच्छत्यपरमेवं श्रावक जनोपीति नितरां भावितात्मा मौनींद्रशासने न शक्यते अन्यथाकर्तुमत्यंतं सम्यक्त्वौषधे न वासितत्वादिति । पुनरपि श्रावकान् विशिनष्टि (जाबउतियफलिहाइत्यादि) उन्निता

नि स्फाटिकानीव स्फाटिकानि अंतःकरणानि येषांते तथा । एतडुक्तं नवति । मौनींद्रद र्शनावाप्तौ सत्यां परितुष्टमानसाइति । तथा अप्रावृतानि द्वाराणि यैस्ते तथा उद्घाटित गृहद्वारास्तिष्ठंति सद्दर्शनलाजेन न कस्यचिद्विन्यति शोजनमार्गपरिग्रहे नोद्घाटितशिरसो विश्रब्धं तिष्ठंतीति अचिंतयन्तोऽननिमतोंऽतःपुरप्रवेशवत्परगृहद्वारप्रवेशोऽन्यतीर्थिकप्र वेंशोयेषां ते तथा अनवरतं श्रमणानुद्युक्तविहारिणोनिर्ग्रंथान् प्रासुकेनैषणीयेनाशनादिना तथा पीठफलकशय्यासंस्तारकादिनाच प्रतिलानयंतस्तथा बहूनि वर्षाणि शीलव्रतगुणव्रत प्रत्याख्यानपोषधोपवासैरात्मानं नावयंतस्तिष्ठंति ॥७६॥ तदेवं ते परमश्रावकाः प्रनूतकाल मणुव्रतशिक्षाव्रतानुष्ठायिनः साधूनामौषधवस्त्रपात्रादिनोपकारिणः संतोयथोक्तं यथाशक्ति सदनुष्ठानं विधायोत्पन्ने वा कारणेऽनुत्पन्नेवा नक्तं प्रत्याख्यायालोचितप्रतिक्रांताः समाधि प्राप्ताः संतः कालमासे कालं कृत्वाऽन्यतरेषु देवेषूत्पद्यंतइति । एतानि चानिगतजीवाजी वादिकानि पदानि हेतुहेतुमद्भावेन नेतव्यानि । तद्यथा यस्मादनिगतजीवास्तस्माडपल ब्धपुण्यपापाः । यस्माडपलब्धपुण्यपापास्तस्माडुव्रितमनसः । एवमुत्तरत्रापि एकैकं पदंत्य जन्निरेकैकं चोत्तरं गृह्णद्भिर्वाच्यं । तेच परेण पृष्टाअपृष्टावाएतदूचुः । तद्यथाऽयमेव मौ नींद्रोक्तोमार्गः सदर्थः । शेषस्त्वनर्थोयस्मादेवं प्रतिपद्यंते तस्मात्ते समुव्रितमनसः संतः साधुधर्मं श्रावकधर्मं च प्रकाशयंतोविशेषेणैकादशोपासकप्रतिमाः स्पृशंतोविहरंतोऽष्टमी च तुर्दश्यादिषु पोषधोपवासादौ साधून् प्रासुकेन प्रतिलानयंति पाश्चात्ये च कालेसंलिखि तकायाः संस्तारकश्रमणनावं प्रतिपद्य नक्तं प्रत्याख्यायायुषः क्षये देवेषूत्पद्यंते । ततोपि च्युताः सुमानुषनावं प्रतिपद्य तेनैव नवेनोत्कृष्टतः सप्तस्वष्टसु नवेषु सिध्यंतीति । तदे तत्स्थानं कल्याणपरंपरया सुखविपाकमिति कृत्वाऽर्थमिति । अयं विनंगस्तृतीयस्य स्थानस्य मिश्रकाख्यस्याख्यातइति. ॥ ७७ ॥

अविरइं पडुच्च बाले आहिज्जइ विरइं पडुच्च पंमिए आहिज्जइ विरया विरइं पडुच्च बालं पंमिए आहिज्जइ तत्तणं जासा सवतो अविरइ एसठा णे आरंनठाणे अणारिए जाव असवडःखप्पहीणमग्गे एगंतमिछे अ साहू तत्तणं जासा सवताविरइ एसठाणे अणारंनठाणे आरिए जा व सवडुक्खप्पहीणमग्गे एगंतसम्मे साहू तत्तणं जासा सवत्त विरया वि रई एसठाणे आरंनणोरंनठाणे एसठाणे आरिए जाव सवडुक्खप्पही णमग्गे एगंतसम्मे साहू ॥ ७८ ॥

अर्थ—हवे ए त्रणे स्थानकनें संक्षेपें करी सविशेष कहेले. ( अविरइंपडुच्च के० )

अविरति एटले असंयम ते आहीं सम्यक्त्वने अनावें जोपण मिथ्यादृष्टिनी विरतिछे, तोप ण तेने अविरतिज कहेवाय; ते अविरति आश्री तेने (बालेआहिज्जइ के०) बाल कहि यें, (विरईपडुच्चपंमिएआहिज्जइ के०) अने विरति एटले सावद्य परित्यागरूप ते आश्री तेने पंमित परमार्थनो जाण कहियें, (विरयाविरईपडुच्चबालपंमिएआहिज्जइ के०) त था विरताविरत एटले कांइक संयम कांइक असंयम ते आश्री तेने बाल पंमित कहियें, (तत्रणंजासासव्वतोअविरइ के०) त्यां पूर्वोक्त त्रण स्थानकने विषे जे सर्व थकी अविरति स्थानकछे एटले जेमां सर्वथा विरति परिणामनो अनावछे. (एसठाणे के०) ए स्थानक ते (आरंनठाणे के०) आरंनतुं स्थानक, (अणारिए के०) अनार्य, (जावअसव्वडुरकप्प हीणमग्गे के०) यावत् सर्व डुःख थकी मूकाववानो मार्ग नथी. (एगंतमिछेअसाहु के०) एकांत मिथ्यात्व मार्ग असाधु एटले ए सारो मार्ग नहीं. हवे बीजुं धर्मपक्षनुं स्थानक कहेछे. (तत्रणंजासासव्वताविरइ के०) त्यां जे सर्व थकी विरति सम्यक् पूर्वक आरंन परित्यागरूप (एसठाणे के०) ए स्थानक (अणारंनठाणे के०) अनारंनतुं स्थानक (आरिए के०) आर्य, (जावसव्वडुरकप्पहीणमग्गे के०) यावत् सर्व डुःख थकी मुका ववानो मार्ग, (एगंतसम्मेसाहु के०) एकांत सम्यक्त्व साधु मार्ग जाणवो. हवे त्रीजुं मिश्रपक्षनुं स्थानक कहेछे. (तत्रणंजासासव्वविरयाविरइएसठाणेआरंनणोरंनठाणे के०) त्यां जे सर्व थकी विरताविरत एटले संयमासंयमरूप स्थानक ते आरंन अने अनारंन रूप स्थानक जाणवुं. (एसठाणे के०) ए स्थानक (आरिए के०) आर्य यावत् सर्व डुःख थकी मूकाववानो मार्ग एकांत सम्यक् नलो मार्ग जाणवो. ॥ ७७ ॥

---

॥ दीपिका—अथेदं पक्षत्रयमुपसंहरन् संक्षेपतोवक्ति। अविरतिं प्रतीत्याश्रित्य बालआ धीयते स्थाप्यते विरतिमाश्रित्य बालपंडितइत्युच्यते । तत्र वा अविरतिः। एतत् स्थानं यावन्नायं सर्वडुःखक्षयमार्गः किंतु? एकांतमिथ्यात्वमार्गोऽसाधुः । तत्र या सर्वविरतिः एतत्स्थानमनारंनस्थानं आर्यं यावदयं सर्वडुःखक्षयमार्गः साधुः शोननः । या सर्वतो विरताविरतिः । इदं स्थानमारंनानारंनस्थानं । इदमपि स्थानमार्यं परंपरया सर्वडुःख क्षयमार्गः एकांतः सम्यक् साधुः ॥७७॥

---

॥ टीका—उक्ता धार्मिकाअधार्मिकास्तडुनयरूपाश्चाभिहिताः।सांप्रतमेतदेव स्थानत्रिकमु पसंहारद्वारेण संक्षेपतोविनणिषुराह । (अविरइइत्यादि) येयमविरतिरसंयमरूपा स म्यक्त्वानावान्मिथ्यादृष्टेर्द्व्यतोविरतिरप्यविरतिरेव तां प्रतीत्याश्रित्य बालवद्बालोऽज्ञः सद सद्विवेकविकलत्वात् इत्येवमाधीयते व्यवस्थाप्यते आख्यायते वा तथा विरति चाश्रित्य

प्रतीत्य पापाद्धीनः पंडितः परमार्थज्ञोवेत्त्येवमाधीयते व्याख्यायते तथा विरताविरतिं चा श्रित्य बालपंमितइत्येतत्प्राग्वदायोज्यमिति । किमित्यविरतिविरत्याश्रयेण बालपांमित्या पत्तिरित्याशंक्याह् । तत्थणंमित्यादि । तत्र पूर्वोक्तेषु येयं सर्वात्मना सर्वस्मात् अविरति र्विरतिपरिणामानावः। एतत्स्थानं सावद्यारंजस्थानमाश्रयस्तदाश्रित्य सर्वाण्यपि कार्याणि क्रियंते । यतएवमतएतदनार्यस्थानं निःशूकतया यत्किंचनकारित्वाद्यावदसर्वडुःखप्रक्षीण मार्गोयं तथैकांतमिथ्यारूपोसाधुरिति । तत्र चेयं विरतिः सम्यक्त्वापूर्विका सावद्यारंजा न्निवृत्तिः सावद्यानुष्ठानरहितत्वात्संयमस्थानं तत्र चैतत्स्थानमार्यस्थानं । आराद्यातं स र्वहेयधर्मेन्यइत्यार्यं तथा सर्वडुःखप्रक्षीणमार्गोऽशेषकर्मक्षयपथस्तथैकांतः सम्यग्नूतः । एतदेवाह् । साधुरिति । साधुनूतानुष्ठानात्साधुरिति । तत्रच येयं विरताविरतिरनिधीयते सैव मिश्रस्थाननूता तदेव तदारंजरूपस्थानमेतदपि कथंचिदार्यमेवं पारंपर्येण सर्वडुःख प्रक्षीणमार्गस्तथैकांतसम्यग्नूतः साधुश्चेति तदेवमनेकविधोयमधर्मपक्षोधर्मपक्षस्तथा मि श्रपक्षश्चेति संक्षेपेणानिहितपक्षत्रयसमाश्रयणेन ॥७८॥

एवमेव समणुगम्ममाणा इमेहिं चेव दोहिं ठाणेहिं समोअवतरंति तंज हा धम्मेचेव अधम्मेचेव उवसंतेचेव अणुवसंतेचेव तठणं जे से पढमद्वा णस्स अधम्मपरकस्स विन्नंगे एवमाहिए तस्सणं इमाइं तिन्नि तेवठाइं पावाडयसयाइं नवंतीति मरकाइं तंजहा किरियावाईणं अकिरियावाई णं अन्नाणियवाईणं वेणइयवाईणं तेवि निवाणमाहंसु तेवि परिमोरक माहंसु तेवि लवंति सावगा तेवि लवंति सावइत्तारो ॥ ७९ ॥

अर्थ–( एवमेव के० ) एप्रकारें ( समणुगम्ममाणा के० ) अन्य बीजा जे मार्ग, अ नेक उन्मार्गछे ते सर्व, ( इमेहिंचेवदोहिंठाणेहिंसमोअवतरंति के० ) ते निश्चे थकी ए बे स्थानकने विषे अवतरेछे समायछे. ( तंजहा के० ) ते बे स्थानकनां नाम कहेछे. (धम्मेचेवअधम्मेचेव के०) एक धर्म स्थानक, बीजुं अधर्म स्थानक, ( उवसंतेचेवअणु वसंतेचेवके०) एक ज्यां कषायादिक उपशम्याछे ते उपशांत स्थानक जाणवुं, अने बीजुं ज्यां कषायादिक उपशम्या नथी ते अनुपशांत स्थानक जाणवुं. (तन्नणंजेसेपढमद्वाणस्स अधम्मपरकस्सविन्नंगेएवमाहिए के० ) त्यां ए बेहु स्थानक मांहे प्रथम स्थानक, ते अधर्म पक्षछे, तेनुं स्वरूप विचार एम कहियें. ( तस्सणं के० ) ते अधर्मपक्ष स्थानक मांहे ( इमाइं के० ) ए ( तिन्नितेवठाइंपावाडयसयाइंनवंतीतिमरकाइं के० ) त्रणशेंने त्रेशठ प्रावाडुक एटले पाखंमीना नेद अवतरेछे, एम नगवंतें कह्युंछे. ( तंजहा के० )

ते कहेछे. ( किरियावाईणं के० ) एक क्रियावादी, तेना एकसोने एंशी नेदछे. ( अकिरियावाईणं के० ) बीजा अक्रियावादी तेना चोराशी नेदछे. ( अन्नाणियवाईणं के० ) त्रीजा अज्ञानवादी, तेना सडसठ नेदछे ( वेणइयवाईणं के० ) चोथो विनयवादी, तेना बत्रीश नेदछे. एम सर्वे मली त्रणशेंने त्रेसठ नेदोछे. ( तेवि निव्वाणमाहंसु के० ) ते पण सर्व पोत पोताना मतने अनुरागें निर्वाण एटले मोक्षनो मार्ग कहेछे. ( तेवि परिमोरकमाहंसु के० ) तेपण कर्म थकी मूकाववानो उपाय कहेछे. ( तेविलवंतिसावगा के० ) तेपण कहेछेके अहो श्रावको ! अमे जे धर्म प्ररूपीयें छैयें ते धर्म तमे आदरो ( तेविलवंतिसावइत्तारो के० ) तेपण कहेछे के, अमे धर्मना संनलावनारा छैयें.॥७७॥

॥ दीपिका–मिश्रपक्षोपि धर्माधर्मयोरेवांतर्नवतीत्याह । एवमेव संक्षेपेण समनुगम्यमानाव्याख्यायमानाः सम्यगनुगृह्यमाणाअनयोरेव धर्माधर्मपक्षयोरनुपतंति । उपशांतस्थानं धर्मपक्षः अनुपशांतस्थानमधर्मस्थानं ( तञ्जणंति ) तत्रच यत्प्रथमस्थानस्याधर्मपक्षस्य स्थानं तत्रामूनि त्रीणि त्रिषष्ट्यधिकानि प्रावाडुकशतान्यंतर्नवंतीत्येवमाख्यातं पूर्वाचार्यैः । तद्यथा । क्रियावादिनः अक्रियावादिनः अज्ञानिकवादिनवैनयिकवादिनः । अत्र षष्ठीबहुवचनेनेदमाह । क्रियावादिनामशीत्युत्तरंशतं १८० अक्रियावादिनां चतुरशीतिः ८४ अज्ञानिकानां सप्तषष्टिः ६७ वैनयिकानां द्वात्रिंशत् ३२ सर्वे मिलिताः ३६३ मौलनेदाः । नेदानयने प्रकारश्चायं । जीवाजीवाश्रवसंवरनिर्जरापुण्यपापबंधमोक्षरूपान् नव पदार्थान् विन्यस्य जीवपदार्थस्याधः स्वपरनेदौ स्थाप्यौ । तयोरधोनित्यानित्यनेदौ तयोरप्यधः काल १ श्वरा २ त्म ३ नियति ४ स्वनाव ५ नेदाः पंच स्थाप्याः । ततएवं नेदाः कार्याः । अस्ति जीवः स्वतोनित्यः कालतः १ अस्तिजीवः स्वतोनित्यईश्वरतः २ एवमात्मनियतिस्वनावैरपि । एवं पंच नेदानित्यपदेन लब्धाः । अनित्यपदेनापि पंच । एते दश विकल्पाः स्वतःपदेन लब्धाः । एवं दश विकल्पाः परतः पदेनापि । जाता विंशतिर्जीवपदेन । एवमजीवाद्यष्टपदैरपि विंशतिर्विंशतिः स्युः । नवनिर्विंशतिनिश्चाशीत्यधिकं शतं । एते क्रियावादिनेदाः । न कस्यचित्पदार्थस्य क्रिया संनवति । उत्पत्त्यनंतरमेव विनाशात् । क्षणिकाः सर्वसंस्काराः अस्थिराणां कुतः क्रिया इत्यादि ये वदंति तेऽक्रियावादिनः । तेषां नेदाः ८४ । यथा । पुण्यपापवर्जितजीवाजीवादिपदार्थसप्तकस्य न्यासः । तस्याधः प्रत्येकं स्वपरनेदौ असत्वादात्मनोनित्यानित्यविकल्पौ नस्तः । कालादीनां पंचानामधस्तात्षष्ठी यदृच्छा स्थाप्या । इह यदृच्छावादिनः सर्वेप्यक्रियावादिनएव । ततः प्राक् यदृच्छा नोक्ता । ततएवं नेदाः कार्याः । नास्ति जीवः स्वतः कालतः १ नास्तिजीवः स्वतईश्वरतः २ एवमात्मादिनिरपि । एवं षड्नेदाः स्वतःप

देन । परतः पदेनापि षट् जाताः १२ एवमजीवादिपदार्थेषु प्रत्येकं १२ ततो द्वादश सप्तनिर्गुणिताजाताः, ८४ एते क्रियावादिनेदाः । अज्ञानिकनेदाः ६७ । यथा । जीवाजीवाद्यानव पदार्थाः स्थाप्यंते । उत्पत्तिश्च दशमी नवपदार्थानामधः प्रत्येकं सप्त सत्वादयः स्थाप्याः । तद्यथा । सत्वं असत्वं सदसत्वं अवाच्यत्वं सदवाच्यत्वं असदवाच्यत्वं सदसदवाच्यत्वं चेति । नवसप्तनिर्गुणिताजाताः ६३ । उत्पत्तेश्चत्वारएवाद्याविकल्पाः । तद्यथा । सत्वं सदसत्वं अवाच्यत्वं चेति । शेषविकल्पत्रयं तु उत्पत्तेरनंतरं पदार्थावयवापेक्षं अतउत्पत्तौ न संनवतीति चत्वारएव नेदास्त्रिषष्टिमध्ये क्षिप्ताजाताः ६७ । एषामर्थज्ञेोयथा । कोजानाति जीवः सन्नित्येकोनेदः १ कश्चिदपि नजानाति तद्ग्राहकप्रमाणानावादित्यर्थः । ज्ञातेन वा किं तेन प्रयोजनं । ज्ञातस्य कदाग्रहतया परलोकप्रतिपंथित्वात् । एवमसदादयोपि नंगानाव्याः । उत्पत्तिरपि किंसतोऽसतः सदसतोवाच्यस्य वेति कोजानाति । ज्ञातेनवा नकिंचिदपि प्रयोजनं । इत्यज्ञानिकनेदाः । वैनयिकाः ३२ । यथा । सुरनृपतियतिज्ञातिस्थविराधममातृपितृरूपेषु अष्टसु स्थानेषु कायेन मनसा वाचा दानेनच देशकालोपपन्नेन विनयः कार्यइति चत्वारः कायादयः स्थाप्याः । चत्वारश्चाष्टनिर्गुणिताजाताः ३२ । एवं सर्वेपि मीलिताजाताः ३६३ परवादिनेदाः । एषां विशेषव्याख्या प्रथमांगतोज्ञेया । ते सर्वे प्रावाडुकाजैनाइव निर्वाणं मोक्षमाहुः । तेपि लपंति वदंति धर्मदेशनां यथा हेश्रावकाः ! शृण्वंतीति श्रावकाः । एवं गृह्हीत यूयं यथाहं देशयामीति । तथा तेपि धर्मश्रावयितारः संतएवं लपंति तदनेनोपायेन स्वर्गमोक्षप्राप्तिरिति ॥ ७९ ॥

॥ टीका–सांप्रतमसावपि मिश्रपक्षोधर्माधर्मसमाश्रयणेनानयोरंतर्वर्ती नवतीति दर्शयति । ( एवमेवेत्यादि ) एवमेव संक्षेपेण सम्यगनुगम्यमानाव्याख्यायमानाः सम्यगनुगृह्यमाणाअनयोरेव धर्माधर्मस्थानयोरनुपतंति । किमिति । यतोयडुपशांतस्थानं तद्धर्मपक्षस्थानमनुपशांतस्थानमधर्मपक्षस्थानमिति । तत्रच यदधर्मपाक्षिकं प्रथमं स्थानं तत्रामूनि त्रीणि षष्ट्यधिकानि प्रावाडुकशतान्यंतर्नवंतीति । एवमाख्यातं पूर्वाचार्यैरिति । एतानि वा सामान्येन दर्शयितुमाह । ( तंजहेत्यादि ) तद्यथेत्युपदर्शनार्थः । क्रियां ज्ञानादिरहितामेकामेव स्वर्गापवर्गसाधनत्वेन वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनस्ते च दीक्षातएव मोक्षं वदंतीत्येवमादयोऽष्टव्याइति । तेषांच बहुधानेदास्तथा क्रियां परलोकसाधनत्वेन वदितुं शीलं येषां ते तथा तेषामिति अज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वदितुं शीलं येषां ते नवंत्यज्ञानवादिनस्तेषां तथा विनयएव परलोकसाधने प्रधानं कारणं येषांते तथा तथा तेषामिति । अत्रच सर्वत्र षष्ठीबहुवचनेनेदमाह । तद्यथा क्रियावादिनामशीत्युत्तरशतं अक्रियावादिनां चतुरशीतिरज्ञानिकानां सप्तषष्टिर्वैनयिकानां द्वात्रिंशदिति । तत्र सर्व

प्येते मौलास्तच्छिष्याश्च प्रवदनशीलत्वात्प्रावाडुकास्तेषां च भेदसंख्या परिज्ञानोपायश्चा चारएवाभिहितइति नेह प्रतन्यते । तें सर्वेप्यार्हताइव परिनिर्वाणमशेषद्वंद्वोपरमरूपव र्णगंधरसस्पर्शस्वभावमनुपचरितपरमार्थस्थानं ब्रह्मपदाख्यमबाधात्मकं परमानंदसुखस्व रूपमाहुरुक्तवंतस्तथा तेपि प्रावाडुकाः संसारबंधनान्मोचनात्मकं मोक्षमाहुः । पूर्वेण नि रुपाधिकं कार्यमेव निर्वाणाख्यमुक्तमनेन तु तदेव कारणोपाधिकमित्ययं विशेषः । तत्र येषामप्यात्मा नास्ति ज्ञानसंततिवादिनां तेषामपि कर्मसंततेः संसारनिबंधनभूतायाविछे दान्मोक्षभावाविरोधः । तेषां चोपादानक्षयादनागतानुत्पत्तेः संततिछेदएव मोक्षः प्रदी पस्येव तैलवर्त्यभावे निर्वाणमिति । तथाचाहुः । न तस्य किंचिद्भवति न भवत्येव केव लमिति । एतच्च तेषां महामोहविजृंभितं । यतः । कर्म चास्ति फलं चास्ति कर्ता नैवास्ति कर्मणां ॥ संसारमोक्षवादित्वमहोह्यांध्यविजृंभितमिति ॥ येषां चात्मास्ति सांख्यादीनां तेषां प्रकृतिविकारवियोगोमोक्षः क्षेत्रज्ञस्य पंचविंशतितत्त्वपरिज्ञानादेव विद्यमानैःप्रधानवि कारैर्विमोचनं मोक्षइति । तेषामप्येकांतनित्यवादितया मोक्षाभावः । एवमन्येपि नैया यिकवैशेषिकादयः संसाराभावमिछंतोपि न मुच्यंते सम्यग्दर्शनादिकस्योपायस्याभावादि त्यभ्यूह्याह । यदि न तेषां मोक्षः कथं ते लोकस्योपास्याभवंतीत्याशंक्याह । तेपि तीर्थि काललपंति ब्रुवते मोक्षं प्रति धर्मदेशनां विदधति । शृण्वंतीति श्रावकाः हेश्रावका! एवं गृह्णी त यूयं यथाहं देशयामि तथा तेऽपि धर्मश्रावयितारः संतएवं लपंति नापंते यथाऽनेनोपा येन स्वर्गमोक्षावाप्तिरिति तद्वचनं मिथ्यात्वोपहतबुद्धयोवितथमेव गृह्णंति कूटपण्यदायि नां विपर्यस्तमतयएवेति । तदेवमादितीर्थिकास्तच्छिष्याश्च पारंपर्येण मिथ्यादर्शनानुभावा त्परान्प्रतारयंति तेपिच तेषां प्रतारयंति आहुः कथमेते प्रवाडुकामिथ्यावादिनोभवंति। अ त्रोच्यते । यतस्तेप्यहिंसां प्रतिपादयंति नच तां प्रधानमोक्षांगभूतां सम्यगनुतिष्ठंति । कथं सांख्यानां तावज्ज्ञानादेव धर्मोन तेषामहिंसाप्राधान्येन व्यवस्थितः किंतु पंचयमाइत्यादि कोविशेषइति । तथा शाक्यानामपि दश कुशलाधर्मपथाअहिंसापि तत्रोक्ता नतु सैव ग रीयसी धर्मसाधनत्वेन तैराश्रिता । वैशेषिकाणामपि अभिसेवनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुल वासप्रस्थादानयज्ञादिनक्षत्रमंत्रकालनियमादृष्टास्तेषु चाभिषेचनादिषु पर्यालोच्यमानेषु हिंसैव संपद्यते वैदिकानां हिंसैव गरीयसी धर्मसाधनं यज्ञोपदेशात् तस्य च तयाविनाभा वादित्यभिप्रायः । उक्तंच । ध्रुवः प्राणिवधोयज्ञे ॥ ७९ ॥

ते सवे पावाउया आदिकरा धम्माणं णाणापन्ना णाणाछंदा णाणासीला णाणादिठी णाणारुई णाणारंभा णाणाज्झवसाणसंजुत्ता एगंमहं मंम लिबंधं किच्चा सवे एगयाउ चिठंति ॥ ८० ॥

अर्थ—(तेसव्वेपावाउयाआदिकराधम्माणं के० ) ते सर्वे प्रावाडुक एटले पाखंमी पोताने ठंदे धर्मना आदिना करनार कहियें, परंतु ते ( णाणापन्ना के० ) नाना प्रकारनी बुद्धि वाला, ( णाणाछंदा के० ) नाना प्रकारना अभिप्राय वाला, ( णाणासीला के० ) नानाप्रकारना आचारवाला, ( णाणादिठी के० ) नाना प्रकारनी दृष्टि वाला, ( णाणारुई के०) नाना प्रकारनी रुची वाला, (णाणारंभा के०) नाना प्रकारना आरंभना करनारा, (णाणाअवसाणसंजुत्ता के०) नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करीने सहित एवा थका, पोतपोतानुं (एगंमहंमंमलिबंधंकिच्चा के०) एक महोटुं मंमल बांधि करीने, एटले पंक्ति करीने, (सव्वेएगयाउचिठंति के० ) ते सर्वे एकज प्रदेशें तिष्ठंति एटले बेठा. ॥ ८० ॥

॥ दीपिका—ते सर्वे प्रावाडुकाआदिकराः स्वधर्माणां। नानाप्रज्ञानानाछंदानानाभिप्रायाना नाविधादृष्टिर्दर्शनं येषां ते तथा नानाविधा रुचिर्येषां ते तथा नानाविधारंभानानाविधा ध्यवसायसंयुक्ताएकं महांतमंडलिबंधं कृत्वा तिष्ठंति ॥८०॥

॥ टीका—तदेवं सर्वेप्रावाडुकामोक्षांगभूतामहिंसां न प्राधान्ये न प्रतिपद्यंतइति दर्शयितुमाह । ( तेसव्वेइत्यादि) प्रवदनशीलाः प्रावाडुकाः सर्वेपि त्रिषष्ठ्युत्तरत्रिशतपरिमाणाअपि आदिकरायथा स्वं धर्माणां। येपिच तच्छिष्यास्तेपि सर्वे नानाभिन्ना प्रज्ञा ज्ञानं येषांते नानाप्रज्ञाः । आदिकराइत्यनेनेदमाह । स्वरुचिविरचितास्ते नलनादिप्रवाहायाताः । ननु चार्हतानामपि आदित्वविशेषणमस्त्येव सत्यमस्ति किंतु अनादिर्हेतुपरंपरेत्यनादित्वमेव तेषांच सर्वज्ञप्रणीतागमानाश्रयणान्निबंधनाभावस्तदभावाच्च भिन्नपरिज्ञानमतएव नानाछंदाः। छंदोऽभिप्रायः । भिन्नाभिप्रायाइत्यर्थः।तथाहि । उत्पादव्ययध्रौव्यात्मके वस्तुनि सांख्यैरेकांतेनाविर्भावतिरोभावाश्रयणादन्वयिनमेव पदार्थं सत्यत्वेनाश्रित्य नित्यपक्षं समाश्रितास्तथा शाक्याअत्यंतक्षणिकेषु पूर्वोत्तरभिन्नेषु पदार्थेषु सत्सु सएवायमिति प्रत्यभिज्ञा प्रत्ययः सदृशापरापरोत्पत्तिर्वितथानां भवतीत्येतत्पक्षसमाश्रयणादनित्यपक्षं समाश्रिताइति । तथा नैयायिकवैशेषिकाः केषांचिदाकाशपरमाण्वादीनामेकांतेन नित्यत्वमेवकार्यद्रव्याणांच घटपटादीनामेकांतेनानित्यत्वमेवाश्रिताः । एवमनया दिशाऽन्येपि मीमांसकतापसादयोऽभ्यूह्याइति । तथा ते तीर्थिकानानाशीलं येषां ते तथा शीलं व्रतविशेषः सच भिन्नस्तेषामनुभवसिद्धएव । तथा नाना दृष्टिर्दर्शनं येषांते तथा नानारुचिर्येषां ते नानारुचयस्तथा नानारूपमध्यवसानमंतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा इदमुक्तं भवति । अहिंसा परमं धर्मांगं । साच तेषां नानाभिप्रायत्वादविकलत्वेन व्यवस्थिता । तस्याएव सूत्रकारः प्राधान्यं दर्शयितुमाह । ते सर्वेपि प्रावाडुकायथास्वपक्षमाश्रिताएकत्र प्रदेशे संयुतामंमलिबंधमाधाय तिष्ठंति ॥८०॥

पुरिसेयं सागणियाणं इंगालाणं पाइं बहुपम्फिपुन्नं गहाय अवमएणं संम्हासएणं गहाय ते सवे पावाउए आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाझवसाणसंजुत्ते एवं वयासीहंनो पावाउया आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाअज्झवसाणसंजुत्ता इमं ताव तुम्ह सागणिया णं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्नं गहाय मुहुत्तयं पाणिणा धरेह णोबहु संम्हासगं संसारियं कुज्जा णो बहुअग्गिथंन्नणियं कुज्जा णोबहु साह म्मियवेयावडियं कुज्जा णोबहुपरधम्मियवेयावडियं कुज्जा उज्जयाणिया गपडिवन्ना अमायं कुवमाणा पाणिं पसारेह इति वुच्चा से पुरिसे तेसिं पावाडुयाणं तं सागणियाणं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्नं अवमएणं संम्हासएणं गहाय पाणिंसु णिसिरिंति तएणं तेपावाडुया आइगरा ध म्माणं णाणापन्ना जाव णाणाझवसाणसंजुत्ता पाणिंपडिसाहरंति तए णं से पुरिसे ते सवे पावाउए आदिगरे धम्माणं जाव णाणाझवसाणसं जुत्ता एवं वयासी हंनो पावाडुया आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाझवसाणसंजुत्ता कम्हाणं तुम्ने पाणिं पडिसाहरह पाणिं नोम्हि ज्जा दड्डे किं नविस्सइ डुक्खंति मन्नमाणा पडिसाहरह एसतुला एस प्पमाणे एस समोसरणे पत्तेयंतुला पत्तेयं पमाणे पत्तेयं समोसरणे तत्थणं जेते समणा माहणा एवमातिक्खंति जाव परुवेंति सवे पाणाजाव सत्ता हंतवा अज्जावेयवा परिघेतवा परितावेयवा किलामेतवा उद्दवेतवा तेआगंतुछेयाए तेआगंतुन्नेयाए जाव ते आगंतु जाइजरामरणजोणि जम्मणसंसारपुणन्नवगप्नवासन्नवपवंच कलंकलीन्नागिणो नविस्संति ॥

अर्थ—तेवारें कोई एक ( पुरिसेयं के० ) पुरुष जैन मार्गनो जाण ते तेमने अहिंसा दिकने विषे पाडवाने अर्थें ( सागणियाणंइंगालाणं के० ) अग्नियें बलता अंगारा तेणे करी एक लोढानुं ( पाइंके० ) पात्र एटले नाजन नरीने ( बहुपडिपुन्नं के० ) घणो प्र तिपूर्ण नरीने ( अवमएणं के० ) लोहना ( संम्हासएणंगहाय के० ) संम्हासी सहित ग्र हण करीने ( तेसवेपावाउए के० ) ते सर्व प्रावाडुक एटले परदर्शनी ( आइगराधम्माणं के० ) पोतपोताना धर्मनी आदिना करनार, (णाणापन्नाजावणाणाझवसाणंसंजुत्तेके०)

नहाना प्रकारनी प्रज्ञावाला, यावत् नाना प्रकारना जे अध्यवसाय तेणे करी संयुक्त एवा परदर्शनी ते आगल आवीने, (एवंवयासी के०) एवुं कहेछे के (हंनोपावाउया के०) अहो प्रावाडुको! (आइगराधम्माणं के०) तमे धर्मनी आदिना करनारछो; (णाणापन्नाजावणाणाज्ञवसाणसंजुत्ता के०) तमे न्हाना प्रकारनी बुद्धिवाला, तथा न्हाना प्रकारना जे अध्यवसाय तेणें करी संयुक्तछो ते माटे, (इमंतावतुम्हेसागणियाणंइंगालाणंके०) ए तुमे अग्नियें बलता अंगारा तेणे करी सहित एवोआ एक लोहनुं (पाइंके०) नाजन (बहुपडिपुन्नं के०) घणुं प्रतिपूर्ण तेने (गहायमुहुत्तयं के०) ग्रहण करीने. एक मुहूर्त मात्र (पाणिणाधरेह के०) हाथ मांहे धरी राखो, (णोबहुसंमासगंसंसारियंकुज्जा के०) घणी संमासानो सहाय मकरो. (णोबहुअग्गिथंनणियंकुज्जाके०) घणो अग्निने स्तंजनी एटले स्थंनि राखे तेवी विद्यानुं सहाय मकरो (णोबहुसाहम्मियवेयावडियंकुज्जाके०) घणो मांहो मांहे साधर्मिकनुं वैयावच्च नो करवो, एटले अग्नि दीधानो उपशमाववुं मकरो. (णोबहुपरधम्मियंवेयावडियंकुज्जा के०) घणो परधर्मिकनो माहो मांहे वैयावच्चनो करवो एटले अग्नि दीधानो उपशमाववुं मकरो. मात्र (उज्जुयाके०) सरल थका (णियागपडिवन्नाके०) मोक्ष मार्गे प्रतिपन्न थका, (अमायंकुव्वमाणापाणिपसारेह के०) माया रहित पणु करता थका हाथ पसारो. (इतिवच्चाके०) एम कहीने, (सेपुरिसेके०) ते पुरुष (तंसागणियाणंइंगालाणंपाइंबहुपडिपुन्नं के०) ते अग्नि बलता अंगरानुं नाजन घणु प्रतिपूर्ण जरीने (अजमएणंसंमासएणंगहाय के०) लोहना संमासा सहित ग्रहीने (तेसिंपावाउयाणंके०) ते प्रावाडुकना (पाणिंसु के०) हाथनी उपरें (णिसिरिंति के०) मूके. (तएणंके०) तेवारें (तेपावाडयाआइगराधम्माणं के०) ते प्रावाडुक धर्मनी आदिना करनार (णाणापन्नाजावणाणाज्ञवसाणसंजुत्ता के०) नाना प्रकारनी प्रज्ञा वाला यावत् नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी सहित एवा छता ते प्रावाडुकने हाथमां अग्नि आपे छते (पाणिंपडिसाहरंति के०) पोताना हाथ पाछा खेंचे एम पाछा हाथ करता देखीने (तएणं के०) तेवारें (सेपुरिसे के०) ते पुरुष ते सर्व प्रावाडुक धर्मना आदिना करनार नाना प्रकारनी प्रज्ञावाला यावत् नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी सहित ते प्रत्यें (एवंवयासी के०) एम कहेके (हंनोपावाडया के०) हे प्रावाडुको! पोताना छंदे धर्मनी आदिना करनाराउ! नाना प्रकारनी प्रज्ञा वाला यावत् नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी सहित (कम्हाणंतुम्नेपाणिंपडिसाहरह के०) शाकारणे तमे हाथ पाछा खेचोछो. तेवारे ते बोल्या (पाणिंनोमहिज्जाके०) अमारा हाथ नथी बलताछुं? अमारा हाथ बलेछे दाजेछे ते कारण माटे हाथ पाछा खेची लीधाछे तेवारे ते पुरुष फरी बोल्यो के (दड्डेकिंनविस्सइ के०) तमारो हाथ दाऊवाथी शुं थवानुंछे एवुं सांजली फरी ते

प्रावाडुक पासेंनी दर्शनीउं बोल्या के, श्रमने दुःख उपजेछे, तेवारें फरी ते पुरुष बोल्यो के, (दुक्खंतिमन्नमाणा के०) जो तमे दुःख जाणता अग्निनी दाज थकी बीहिता थका हाथ ने (पडिसाहरहके०) पाछा करोछो ? तो जेम तमे दुःख थकी बीक राखोछो, तेम सर्व जीवने (एसतुल्लाके०) ए तुल्य एटले बराबर छे; (एसप्पमाणेके०) एप्रमाणे जाणवुं. (एससमो सरणे के० ) ए समोसरण ) पत्तेयंतुल्ला के० ) प्रत्येक प्रत्येकने सरखुं, अने ( पत्तेयंप्प माणे के०) प्रत्येक प्रत्येकने प्रमाण, एवुं (पत्तेयंसमोसरणेके०) प्रत्येक प्रत्येकने समोस रण जाणवुं. (तत्थणंजेतेसमणामाहणाएवमातिक्खंति के०) त्यां जे श्रमण ब्राह्मण एम कहेछे (जावपरूवेंतिके०) यावत् एम प्ररूपे छे के, ( सवेपाणाजावसत्ताहंतवा के०) सर्व प्राणी, यावत् सर्व सत्वने हणवा, ( अज्जावेयव्वाके०) दंम काशादिकें करी ताडवा; ( प रिघेतवा के० ) बलात्कारें करी दासनी पेठें परिग्रहवा. ( परितावेयव्वा के० ) शारीरिक मानसीक पीडा उपजाववी, ( किलामेतव्वा के० ) किलामण उपजाववी. ( उद्दवेतव्वा के० ) उपद्रववा, तथा जीव, काया थकी रहित करवा. एवां वचनना बोलनारा, ( ते आगंतुछेयाए के० ) ते आगमिक कालें वारंवार पोताना शरीरनुं छेदन पामशे. ( तेआ गंतुभेयाए के० ) ते आगमिक कालें भालादिकें करी पोताना शरीरनुं भेदन पामशे, ( जावतेआगंतुं के० ) यावत् ते जीव आगमिक कालें ( जाइजरामरण जोणिजम्मणं के० ) जाति, जरा, मरण, तथा नवी नवी योनी मांहे उपजवुं, तथा जन्मना दुःख ( संसारके० ) एरीतें संसार मांहे परिभ्रमण करतां ( पुणभव के० ) वली वली नव नवा भवनुं करवुं, ( गप्भवास के० ) वली वली गर्भवास मांहे वसवुं, एरीतें ( भवपवं च के०) संसारनो प्रपंच एटले संसारनो विस्तार, ( कलंकलि के० ) कलकलाट एटले दुःखें करी व्याकुल पणुं, तेना ( भागिणोभविस्संति के० ) विभागी थशे. ॥ ८१ ॥

---

॥ दीपिका–( पुरिसेयत्ति ) एकः कश्चित्पुरुषः साग्निकानां ज्वलतामंगाराणां प्रतिपू र्णां ( पाई ) पात्रीं अयोमयेन लोहमयेन संदंशकेन गृहीत्वा तेषां ढौकितवान् उवाच। भोः प्रावाडुकाः ! इदमंगारभृतं भाजनं एकैकं मुहूर्तं प्रत्येकं बिभृत यूयं ? । नचेदं संदंशकं सांसारिकं नापि चाग्निस्तंभनं विदध्युः । नापिच साधर्मिकानामग्निदाहोपशमादिना उ पकारं कुर्युरिति । ऋजवोमायामकुर्वाणा. पाणिं प्रसारयत तेपि तथैव कुर्युः ततोसौ नर स्तद्भाजनं तत्पाणौ समर्पयति । तेपि च दाहभयाद्धस्तं संकोचयंति । ततोसौ पुरुषस्तान् प्राह किमिति पाणिं संहरत यूयं ? । ते प्राहुर्दाहभयात् । नरः प्राह । दग्धेन हस्तेन किंभावि ? । दुःखमिति चेदेवं यूयं दाहोत्पन्नदुःखभीरवः सुखलिप्सवः । एव सति सर्वे पि जंतवः संसारवर्तिनएवंविधाएवेति आत्मतुलया आत्मतुल्यत्वेन यथा मम दुःखं

न संमतं तथा सर्वजीवानामित्येतत्प्रमाणं । एषा युक्तिः तदेतत्समवसरणं एषधर्मे विचारः । आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति सपश्यतीति प्रत्येकं तुलासाम्यमित्यादि ( तजणंति ) तत्र एवं सति ये श्रमणब्राह्मणादयएवमाख्यांति । सर्वे प्राणाहंतव्या दंडादिभिः परितापयितव्याधर्मार्थेमरघट्टादिवहनादिभिः परिग्राह्याः श्राद्धादौ मत्स्याइव अपद्रावयितव्यायागादौ मेषाइव । एवं ये भाषंते ते आगामिनि काले स्वशरीरस्य छेदाय भेदायच भाषंते । तथाऽगामिनि काले जातिजरामरणानि बहूनि प्राप्नुवंति योन्यां जन्म योनिजन्म तद्बहुशोगर्भजावस्थायां लभंते संसारप्रपंचांतर्गतास्तेजोवायुषु उच्चैर्गोत्रोद्द लनेन कलंकलीभावभाजोदुःखव्याकुलाः स्युः ॥ ८१ ॥

॥ टीका–तेषां चैवं व्यवस्थितानामेकः कश्चित्पुरुषस्तेषां संविदर्थी ज्वलतामंगाराणां प्रतिपूर्णां पात्रीमयोमयं भाजनमयोमयेनैव संदंशकेन गृहीत्वा तेषां ढौकितवानुवाच तान् । यथा भो प्रावादुकाः! सर्वोक्तविशेषणविशिष्टाइदमंगारभृतं भाजनमेकैकं मुहूर्तं प्रत्येकं सांसारिकाणामिवाऽग्निस्तंभनं विधत्ते नापिच साधर्मिकाऽन्यधार्मिकाणामग्निदाहोपशमादिनोपकारं कुरुतइति ऋजवोमायामकुर्वाणाः पाणिं प्रसारयत? तेपिच तथैव कुर्युस्ततोऽसौ पुरुषः तद्भाजनं पाणौ समर्पयति तेपिच दाहशंकया हस्तं संकोचयेयुरिति । ततोसौ तानुवाच । किमिति पाणिं प्रतिसंहरत? यूयं एवमभिहितास्ते कथुर्दाहभयादिति । एतदुक्तं भवति । अवश्यमग्निदाहभयान्न कश्चिदग्न्यभिमुखं पाणिं ददातीत्येतत्परोयं दृष्टांतः । पाणिना दग्धेनापि किंभवतां भविष्यतीति दुःखमिति चेदयद्येवं भवंतोदाहापादित दुःखभीरवः सुखलिप्सवस्तदेवंसति सर्वेपि जंतवः संसारोदरविवरवर्तिनएवंभूताएवेत्येव मात्मतुलयाऽत्मौपम्येन यथा मम नाभिमतं दुःखमित्येवं सर्वजंतूनामित्यवगम्याहिंसैव प्राधान्येनाश्रयणीया तदेतत्प्रमाणं एषा युक्तिः । आत्मवत्सर्वभूतानि यःपश्यति सपश्यति । तदेव समवसरणं सएषधर्मविचारोयत्राहिंसा संपूर्णा ॥ तत्रैव परमार्थतोधर्मइत्येवं व्यवस्थिते तत्र ये केचनाविदितपरमार्थाः श्रमणब्राह्मणादयएवं वक्ष्यमाणमाचक्षते परेषामात्मदार्ढ्योत्पादनायैवं भाषंते तथैवमेवं धर्मं प्रज्ञापयंति व्यवस्थापयंति तथान्येन प्राण्युपतापकारिणा प्रकारेण परेषां धर्मं प्ररूपयंति व्याचक्षते । तद्यथा । सर्वे प्राणाइत्यादि यावद्धंतव्यादंडादिभिः परितापयितव्याधर्मार्थेमरघट्टादिवहनादिभिः परिग्राह्याविशिष्टकाले श्राद्धादौ रोहितमत्स्याइव तथाऽपद्रावयितव्यादेवतायागादिनिमित्तं वस्तादयइवेत्येवं ये श्रमणादयः प्राणिनामुपतापकारिणीं भाषां भाषंते आगामिनि कालेऽनेकशोबहुशः स्वशरीरच्छेदायच भावंते तथा ते सावद्यभाषिणोभविष्यंति काले जातिजरामरणानि बहूनि प्राप्नुवंति । योन्यां जन्म योनिंजन्म तदनेकशोबहुशोगर्भत्व

क्रांतजावस्थायां प्राप्नुवंति तथा संसारप्रपंचांतर्गतास्तेजोवायुपूच्चैर्गोत्रो द्वननेन कर्त्तं कलीनावनाजोनवंति बहुशोनविष्यंति च ॥ ८१ ॥

ते बहुणं दंमणाणं बहूणं मुंमणाणं तज्जणाणं तालणाणं अडुबंधणाणं जाव घोलणाणं माइमरणाणं पितामरणाणं नाइमरणाणं नगिणीमरणाणं नज्जापुत्तधूत्तसुण्हामरणाणं दारिद्दाणं दोहग्गाणं अप्पियसंवासाणं पियविप्पउगाणं बहुणं डुक्कदोमणस्साणं आनागिणो नविस्संति अणादियंचणं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं नुज्जोनुज्जो अणुपरियट्टिस्संति ते णोसिज्झिस्संति णोबुज्झिस्संति जाव णोसव्वडुक्खाणं अंतं करिस्संति एस तुल्ला एस पमाणे एस समोसरणे पत्तेयं तुल्ला पत्तेयं पमाणे पत्तेयं समोसरणे ॥ ८२ ॥

अर्थ-( तेबहूणंदंमणाणं के० ) ते जीव घणा दंमाशे, ( बहूणंमुंमणाणं के० ) ते जीव घणा शरीरादिकें मुंमाशे, ( तज्जणाणं के० ) अंगुलीयादिकनी तर्जना पामशे, ( तालणाणं के० ) दंमादिकें ताडना पामशे, ( अडुबंधणाणं के० ) बंधीखानानां बंधन पामशे, ( जावघोलणाणं के० ) यावत् आंबानी पेठें घोलाशे, ( माइमरणाणं के० ) ते जीव मातानां मरणनां दुःखने पामशे, ( पितामरणाणं के० ) पितानां मरण, ( नाइमरणाणंके० ) नाइनां मरण, ( नगिणीमरणाणंके० ) बेहेननां मरण, ( नज्जापुत्तधूत्तसुण्हामरणाणंके० ) नार्यानां मरण, पुत्रनां मरण, दीकरीनां मरण, पुत्रनीवहुनां मरण थशे, तेने देखीने दुःख पामशे, दुःखी थशे, ते पुरुष, ( दारिद्दाणंके० ) दरिद्री थशे, ( दोहग्गाणं के० ) दौर्नागी थशे, ( अप्पियसंवासाणंके० ) अप्रियकारीयो सार्थे तेनो संवास थशे, ( पियविप्पउगाणं के० ) ते प्राणी प्रियकारी वस्तुनो विप्रयोग एटले वियोग पामशे, ( बहूणंडुक्कदोमणस्साणं के० ) घणां दुःख अने दौर्मनस्य पणानो ( आनागिणोनविस्संति के० ) विनागी थशे, तेपुरुष, ( अणादियंचणं के० ) आदि रहित, ( अणवयग्गं के० ) अंत रहित, ( दीहमद्धं के० ) दीर्घकालपर्यंत एटले घणाकालसुधी ( चाउरंतसंसारकंतारं के० ) चारगतिरूप अंत अवयवछे जेने विषे तेने चाउरंत कहियें एवी संसार रूप अटवी तेने विषे, ( नुज्जोनुज्जो के० ) वली वली ( अणुपरियट्टिस्संति के० ) परिभ्रमण परावर्त्तन करशे, ( तेणोसिज्झिस्संति के० ) ते पांखमी जीव सीजशे नही, एटले पोताना कार्यनी सिद्धि करशे नही, ( णोबुज्झिस्संति के० ) लोकालोकना स्वरूपने बुजशे नही, ( जावणोसव्वडुक्खाणंअंतंकरिस्संति के० ) यावत् ते प्राणी सर्वदुःखनो अंत क

रशे नहीं. एवी रीतें स्वदर्शनी पण, जे पूर्वोक्त नाषा बोलशे ते सीजसे नही एम निश्चे जाणवुं. हवे जे उत्तम पुरुषने एवी तुल्यता राखवी जे सर्व जीव प्रत्येक तुल्य, प्रत्येक प्रमाण, एप्रमाणे प्रत्येक समोसरण पण छे ॥ ७२ ॥

---

॥ दीपिका–ते नराबहूनां दंडनादीनां शरीरडुःखानां नाजनं नवंति तथा मातृमरणादीनां मानसडुःखानां तथाऽन्येषामप्रियसंयोगार्थनाशादिन्निर्डुःखनागिनोनविष्यंति । किं बहुना । ( अणादियंति ) अनादिकं नविद्यतेऽवदग्रोंऽतोयस्य सोऽनवदग्रोऽनंतः तं दीर्घाध्वानं चतुर्गतिमार्गं चातुरंतं संसारकांतारमनुपरिवर्तिष्यंते अरहट्टघटीवद्भ्रमिष्यंति न बोधं प्राप्स्यंति न सेत्स्यंति सर्वडुःखानामंतं न करिष्यंति एषतुला एतत्साम्यं यत्सावद्याचारान सिध्यंति कुमतिनः स्वमतेपि औद्देशिकादिनोजिनस्तथैव एतत्प्रमाणं प्रत्यक्षादिकं प्रत्यक्षेण चौराद्याबाध्यमानाद्दृश्यंते । एवमन्येपि एतत्समवसरणं आगमविचारः प्रत्येकं प्रतिजीवमिदं साम्यं डष्टव्यं ॥ ७२ ॥

---

॥ टीका–तथा ते बहूनां दंडादीनां शारीराणां डुःखानामात्मानं नाजनं कुर्वंति तथा ते निर्विवेकामातृवधादीनां मानुषाणां डुःखानां तथान्येषामप्रियसंयोगार्थनाशादिनिर्डुःखदौर्मनस्यानामानागिनोनविष्यंतीति । किंबहुनोक्तेनोपसंहारव्याजेन । गुरुतरमर्थसंबंधं दर्शयितुमाह । (अणादियं इत्यादि) नास्यादिरस्तीत्यनादिः संसारः । तदनेनेदमुक्तंनवति । यत्कैश्चिदनिहितं यथायमंरुकादिक्रमेणेत्यादितइत्येतदपास्तं । नविद्यतेऽवदग्रं पर्यंतो यस्य सोयमनवदग्रोऽपर्यंतइत्यर्थः । तदनेनेदमुक्त नवति । यडुक्तं कैश्चिद्यथा प्रलयकालेऽशेषसागरजलप्लावनं द्वादशादित्योद्गमेन चात्यंतदाहइत्यादिकं सर्वं मिथ्येति दीर्घमित्यनंतपुजलपरावर्तरूपं कालावस्थानं तथा चत्वारोंतागतयोयस्य सतथा चातुर्गतिकइत्यर्थः । तत्संसारएव कांतारः संसारकांतारोनिर्जलः सनयस्त्राणरहितोऽरण्यप्रदेशः कांतार इति । तदेवंनूतं नूयोनूयः पौनःपुन्येनानुपरिवर्तिष्यंते अरहट्टघटीन्यायेन तत्रैव भ्रमंतः स्थास्यंतीत्यतएवाह । यतस्ते प्राणिनां हंतारः कुतएतदिति चेत्सावद्योपदेशादेतदपि कथमिति चेदतऔद्देशिकादिपरिनोगानुज्ञयेत्येवमवगंतव्यमित्यतस्ते कुप्रावचनिकानैव सेत्स्यंति नैव ते लोकाग्रस्थानमाक्रमिष्यंति तथा न ते सर्वपदार्थान् केवलज्ञानावाप्त्या नोत्स्यंते । अनेन ज्ञानातिशयनावमाह । तथा न तेऽष्टप्रकारेण कर्मणा मोक्ष्यंते । अनेनाप्यसिद्धेरकैवल्यावाप्तेश्च कारणमाह । तथा परिनिर्वृतिः परिनिर्वाणमानंदसुखावाप्तिस्तां ते नैव प्राप्स्यंते तेनापि सुखातिशयानावः प्रदर्शितोनवतीति । तथा नैते शारीरमानसानां डुःखानामात्यंतिकमंतं करिष्यंतीत्यनेनाप्यपायातिशयानावः प्रदर्शितोनवति । एषातु

ला तदेतदुपमानं यथा सावद्यानुष्ठानपरायणाः सावद्यभाषिणश्च कुप्रावचनिकान सिध्यंत्ये वं स्वयूथ्या अप्यौद्देशिकादिपरिभोगिनोन सिध्यंतीति। तदेतत्प्रमाणं प्रत्यक्षानुमानादिकं। तथाहि। प्रत्यक्षेणैव जीवपीडाकारि चौर्यादिर्बंधनान्न मुच्यते। एवमन्येपीत्यनुमानादि कमप्यायोज्यं। तथा तदेतत्समवसरणमागमविचाररूपमिति प्रत्येकंच प्रतिप्राणि प्रतिप्रा वादुकमेततुलादिकं दृष्टव्यमिति ॥ ८२ ॥

तत्रणं जे ते समणा माहणा एवमाइक्खंति जाव परूवेंति सवे पाणा स वेभूया सवेजीवा सवेसत्ता णहंतवा णअज्ञावेयवा णपरिघेतवा णउद्दवेय वा तेणो आगंतुछेयाए तेणोआगंतुभेयाए जाव जाइजरामरणजोणि जम्मण संसारपुणप्रवगप्रवासभवएवं कलंकलीभागिणो भविस्संति तेणोबहूणं दंमणाणं जाव णोबहूणं मुंमणाणं जाव बहूणं दुक्खदोमण स्साणं णोभागिणो भविस्संति अणादियंचणं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंत संसारकंतारे भुज्जोभुज्जो णोअणुपरियट्टिस्संति तेसिं स्सिज्झंति जाव सवदुक्खाणं अंतं करिस्संति ॥ ८३ ॥

अर्थ–त्यांजे श्रमण ब्राह्मण, सर्व जीवने पोताना आत्मा समान लेखवीने एवो धर्म कहेशे, यावत् प्ररूपशे, के सर्व प्राणी, सर्वभूत, सर्व जीव, सर्व सत्वने हणवा नही, एकांतदया पालवी, यावत् सर्व सत्वने उपद्रववा नही, ते पुरुषो, आगमिक कालें पोताना शरीरनुं छेदन नहीं पामशे, ते आगमिक कालें भेदन नहीं पामशे, ते पुरुष यावत् जाति, जरा, मरण, वली वली योनीमांहे उपजवुं, जन्मनुं दुःख, संसारमांहे परिभ्रमण करवुं, वली वली गर्भवास मांहें वसवुं, संसारनो विस्तार प्रपंच, तथा कलकलाट तेनो विभागी नहीं थशे. ते पुरुष, घणो दंमाशे नहीं, यावत् दुःख दौर्मनस्य पणानो विभागी नहीं थशे, आदिरहित अंतरहित दीर्घ पंथछे, एटले दीर्घ काल पर्यंत चारगति रूप संसार, तद्रूप अटवीने विषे वली वली परिभ्रमण परावर्त्त नही करशे. ए रीतें दया धर्मना प्ररूपनार पुरुषो सीजशे कार्यसिद्धि करशे, यावत् सर्व दुःखनो अंत करशे. ॥ ८३ ॥

॥ दीपिका–अथैतद्विपरीतानाह। (तत्रणंति) तत्र ये ज्ञातव्याः श्रमणमाहनास्ते ए वमाख्यांतीत्यादि सर्वं पूर्वसूत्रविपरीतं वाच्यं ॥ ८३ ॥

॥ टीका–ये पुनर्विदिततत्वाआत्मौपम्येनात्मतुलया सर्वजीवेष्वहिंसां कुर्वाणाएवमा चक्षते। तद्यथा सर्वेपि जीवादुःखद्विषः सुखलिप्सवस्ते न हंतव्याइत्यादि। तदेवं पूर्वोक्तं दंडनादिकं सप्रतिषेधं भणनीयं यावत्संसारकांतारमचिरेणैव ते व्यतिक्रमिष्यंतीति॥८३

इच्चेतेहिं बारसहिं किरियाठाणेहिं वट्टमाणा जीवा णोसिज्झिसु णोबुज्झिसु णोमुच्चिंसु णोपरिणिव्वाइंसु जाव णोसव्व डुक्खाणं अंतंकरेसुवा णो करेंतिवा णोकरिस्संतिवा ॥ ८४ ॥

अर्थ–ए पूर्वोक्त बार क्रियाना स्थानकने विषे वर्त्तता एवाजे जीव, ते कोइ अतीत कालें सिधा नथी, बुज्या नथी, कर्म थकी मूकाणा नथी, निवृत्या नथी, यावत् सर्वडुःखनो अंत पण कोइयें अतीत कालें कस्यो नथी, वर्त्तमान कालें करता नथी, आगमिक कालें पण करशे नही. कारणके, ए बार क्रियाना स्थानक जे छे, ते अधर्मपक्षने मजताज छे. ॥ ८४ ॥

॥ दीपिका–अथोपसंहरति । (इच्चेतेहिंति) इत्येतेषु द्वादशसु क्रियास्थानेषु अधर्मे पक्षोऽवतार्यते । ततएतेषुवर्तमानाजीवान सिद्धान सिध्यंति न सेत्स्यंति न मुक्तान मुच्यंते मोक्ष्यंते न बुद्धान बुध्यंते न जोत्स्यंते न सर्वडुःखानामंतं चक्रुर्न कुर्वंति न करिष्यंति ॥८४॥

॥ टीका–जणितानि क्रियास्थानानि सांप्रतमुपसंजिघृक्षुरेतदेव पूर्वोक्तं समासेन विजणिषुराह ( इच्चेतेहिंइत्यादि ) इत्येतेषु द्वादशसु क्रियास्थानेष्वधर्मपक्षोऽनुपशमरूपः समवतार्यते न एतेषु वर्तमानाजीवाअतीते काले सिद्धान वर्तमाने सिध्यंति न जविष्यंति सेत्स्यंति तथा न बुबुधिरे न बुध्यंते नच जोत्स्यंते तथा न मुमुचुर्न मुंचंति नच मोक्ष्यंते तथा न निवृत्ता न निर्वर्त्यंते नचनिर्वास्यंति तथा न डुःखानामंतं ययुर्न पुनर्यांति नच यास्यंतीति॥८४

एयंसि चेव तेरसमे किरियाठाणे वट्टमाणा जीवा सिज्झिसु बुज्झिसु मुच्चिंसु परिणिव्वाइंसु जाव सव्वडुक्खाणं अंतं करेसुवा करंति करिस्संतिवा एवं से जिक्खु आयठी आयहिते आयगुत्ते आयजोगे आयपरक्कमे आयरक्खिए आयाणुकंपए आयनिप्फेडए आयाणमेवपडिसा हरेज्जासि त्तबेमि ॥८५॥ इति बीयसुयखंधस्सकिरियाठाणंनामबीयमज्झयणंसम्मत्तं॥

अर्थ–ए पूर्वें कह्युंजें निश्चें तेरसुं क्रिया स्थानक तेने विषे वर्त्तता एवा जे जीव, ते जीव अतीत कालें सिधा तत्वमार्गने बुज्या, आठ कर्म थकी मूकाणा. परिनिवृत्त शीतलीजूत थया, यावत् सर्व डुःखनो अतीत कालें अंत कीधो, वर्त्तमान कालें अंत करे छे, अने आगमिक कालें अंत करशे, एम ते साधु चारित्रिउ बार क्रिया स्थानकनो वर्जनार मोक्षार्थी, आत्मार्थी, आत्मानुं हित चिंतवनार, आत्मानो गोपवनार, मनादिक

योगने स्ववश करनार, ते आत्मयोगी कहेवाय. आत्माना सुखनें अर्थे पराक्रमनो करनार, आत्मानो रक्षक, आत्माने अनुकंपानो करनार, आत्मानो संसार थकी निस्तार करनार, आत्माने ए बार क्रियाना स्थानक थकी निवृत्तावे, तेने महा पुरुष जाणियें. त्रिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ए श्री सूयगडांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कंधने विषे क्रिया स्थानक नामे बीजा अध्ययननो संक्षेपार्थे बालावबोध समाप्त थयो. ॥ ७५ ॥

---

॥ दीपिका–तथा एतस्मिन् त्रयोदशे क्रियास्थाने धर्मपक्षावतारः । ततोत्र वर्तमाना जीवाः सिद्धाः सिध्यंति सेत्स्यंतीत्यादि । तदेवं सनिक्षुर्द्वादशक्रियास्थानवर्जकोऽधर्मपक्षत्यागी धर्मपक्षस्थस्त्रयोदशक्रियास्थानवर्ती आत्मनोर्थः आत्मार्थः सविद्यते यस्य स आत्मार्थी आत्महितः आत्मा गुप्तोयस्य संतथा आत्मयोगः कुशलमनःप्रवृत्तिरूपः सयस्यास्ति सआत्मयोगी आत्मपराक्रमः स्वयं संयमानुष्ठानप्रवृत्तः । आत्मा रक्षितोडुर्गतिपाताद्येन सआत्मरक्षितः आत्मानमनर्थपरिहारेणानुकंपते इत्यात्मानुकंपकः (आयनिप्फेडएत्ति ) आत्मानं संयमेन संसारचारकान्निष्कासयतीति आत्मानं द्वादशक्रियास्थानेन्यः प्रतिसंहरेत्समहापुरुषः । इतिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ७५ ॥ इति तपागच्छाधिपतिश्रीहेमविमलसूरीश्वरशिष्यहर्षकुलपंडितप्रणीतायां श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीय श्रुतस्कंधस्य क्रियास्थानाख्यं द्वितीयमध्ययनं समाप्तं ॥ ॥ ॥

---

॥ टीका–सांप्रतं त्रयोदशं क्रियास्थानं दर्शयितुमाह । ( एवमित्यादि ) एतस्मिंस्त्रयोदशे क्रियास्थाने वर्तमानाजीवाः सिद्धाः सिध्यंति सेत्स्यंतीति यावत्सर्वडुःखानामंतं करिष्यंतीति स्थितं । तदेवं सनिक्षुर्यः पौंडरीकाध्ययनेऽनिहितो द्वादशक्रियास्थानवर्जकः अधर्मपक्षानुपशमपरित्यागी धर्मपक्षे स्थितउपशांतआत्मनोवार्थः आत्मार्थः सविद्यते यस्य सतथा योह्यन्यमपायेन्योरक्षति स आत्मार्थ्यात्मवानित्युच्यते । हिताचाराश्चौरादयोनात्मवंतोऽयंत्वात्महितऐहिकामुष्मिकापायन्नीरुत्वात्तथात्मागुप्तोयस्य तथा । एतडुक्तं नवति । स्वयमेवासौ संयमानुष्ठाने पराक्रमते तथात्मयोगी आत्मनोयोगः कुशलमनःप्रवृत्तिरूपआत्मयोगः सयस्यास्ति । सदाधर्मध्यानावस्थितइत्यर्थः । तथात्मा पापेन्योडुर्गतिगमनादिन्योरक्षितोयेन सतथा डुर्गतिगमनहेतुनिबंधनस्य सावद्यानुष्ठानस्य निवृत्तत्वादितिनावः । तथात्मानमेवानर्थपरिहारद्वारेणानुकंपते शुनानुष्ठानेन सजतिगामिनं विधत्तइति । तथात्मानं सम्यग्दर्शनादिकेनानुष्ठानेन संसारचारकान्निःसारयतीति । तथात्मानमनर्थनूतेन्योद्वादशेन्यः क्रियास्थानेन्यः प्रतिसंहरेत् । यदि वोपदेशआत्मानं सर्वपापेन्यः प्रतिसंह्रियात् सर्वानर्थेन्योनिवर्तयेदित्येतस्मिन्महापुरुषे संनाव्यतइति । इतिः परि

समाहर्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् । नयाः पूर्ववद्व्याख्येयाः ॥ समाप्तं क्रियास्थानाख्यं द्वितीयमध्ययनमिति ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

## ॥ अथ द्वितीयश्रुतस्कंधे तृतीयाध्ययनप्रारंभः ॥

हवे बार क्रिया स्थानकने वर्जनार एवा चारित्रवान पुरुषें शुद्धाहार लेवो, ते कारण माटे हवें आहार परिज्ञा नामे त्रीजुं अध्ययन प्रारंभियें बैयें.

सुयंमे आउसं तेणं भगवया एव मरकायं इह खलु आहारपरिणाणाम ज्ञयणे तस्सणं अयमठे इह खलु पाईणंवा सवतो सवावंतिचणं लो गंसि चत्तारि बीयकाया एव माहिज्जंति तंजहा अग्गबीया मूलबीया पोरबीया खंधबीया तेसिंचणं अहा बीएणं अहावगासेणं इहेगतिया सत्ता पुढवीजोणिया पुढविसंभवा पुढवीवुक्कमये तज्जोणिया तस्सं भवा तडवक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तत्थवुक्कमा णाणाविह जोणियासु पुढवीसु रुक्खत्ताए विउट्टंति तेजीवा तेसिं णाणाविहजो णियाणं पुढवीणं सिणेह माहारेंति ॥ १ ॥ ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउसरीरं तेउसरीरं वाउसरीरं वणस्सइसरीरं णाणाविहाणतसथा वराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुवंति परिविद्धत्थं तं सरीरं पुवाहारियं तयाहारियं विपरिणयं सारूवियकडं संतं अवरेवियणं तेसिं पुढविजो णियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावण्णा णाणागंधा णाणारसा णाणाफा सा णाणासंठाणसंठिया णाणाविहसरीरपुग्गलविउवित्ता तेजीवा क म्मोववन्नगा भवंति तिमरकायं ॥ २ ॥

अर्थ–(सुयंमेआउसंतेणं के०) श्रीसुधर्मस्वामी जंबू प्रत्यें कहेछे के, में एवुं सांभळ्युं छे जे, आयुष्यमंत (भगवयाएवमरकायं के०) भगवंत श्रीमहावीर देवें एम कह्युंछे (इहखलु के०) निश्चें आ जिनशासनने विषे (आहारपरिणाणामज्झयणे के०) आ हारपरिज्ञा एवे नामे अध्ययन कह्युं. (तस्सणंअयमठे के०) तेनो ए अर्थ आगळ क हेछे. (इहखलु के०) निश्चें आ जगत् मांहे (पाईणंवा के०) पूर्वादिक चारदिशिने विषे तथा विदिशिने विषे (सवतोसवावंतिचणंलोगंसि के०) सर्व थकी सर्व, एतावता सर्व लोकने विषे (चत्तारिबीयकाया के०) चार, बीज कायना प्रकार एटले उत्पत्तिना

भेद होय. ( एवमाहिज्जंइ के० ) ते आ प्रकारें तीर्थंकरें कह्या. (तंजहा के०) ते कहेछे. ( अग्गबीया के० ) जेने अग्रें बीज उपजे ते अग्र बीज कहेवाय ते तिल, ताल, सह कारादिक अथवा शाल्यादिक जाणवा, तथा जे अग्र तेने विषे उत्पत्तिना कारणने पामे तेपण, अग्र बीज कहेवाय, ते कोरंटकादिक जाणवा; एटले ए प्रथम भेद जाणवो. तथा ( मूलबीयाके० ) आर्द्रकादिक ए बीजो भेद जाणवो; ( पोरबीयाके० ) पर्व बीज ते सेलडी प्रमुख, ए त्रीजो भेद जाणवो. ( खंधबीयाके० ) स्कंधबीज ते सालरा नाग र्जुन प्रमुख, ए चोथो भेद जाणवो. (तेसिंचणंके०) ते चार प्रकारना वनस्पतिकाय (अ हाबीएणंके०) यथा जे जेनुं बीज उत्पत्ति कारण, ते यथा बीज एटले ते तेनुं बीज जाणवुं. जेम शालीना अंकुरनुं शाली बीज उत्पत्ति कारणछे, एम अन्यत्र स्थानकें पण जाणी लेवुं. ( अहावगासेणं के० ) तथा जे जेनो अवकाश एटले उत्पत्ति स्थानक पृथवी, पाणी, काल, आकाश, बीज, संयोग, एने यथावकाश कहियें. एम यथा बीजें तथा यथावकाशें करीने, ( इहेगतियासत्ता के० ) आ जगत्मांहे कोइ एक सत्व, तथाविध कर्मना उदय थकी, वनस्पतिने विषे उपजनार छतो उपजे, ते वनस्पतिने विषे उपजतां (पुढवीजोणि याके०) पृथवीयोनिक थाय. यद्यपि तेनुं वनस्पतिज बीज कारणछे परंतु, आधार विना उत्पत्तिनो अभावछे, ते कारण माटें पृथवीयोनिक कह्या. जेम शेवालादिक कर्दमना आ धारेंछे, पण पृथ्वी विना थाय नही, एम आहीं पण जाणी लेवुं. (पुढविसंभवाके०) पृथ वीने विषे वनस्पतिकायनो संभवछे (पुढवीवुक्कमाके०) तथा पृथवीने विषे विविध एटले नाना प्रकारें प्रबल पणे संक्रमणछे जेनुं ते पृथवीवुक्कमाकहियें एटले एम कह्युंजे पृथवीने विषे ते वनस्पतिकायनी उपर उपर वृद्धिछे ( तज्जोणिया के० ) ते पृथवीयोनिक होय. (तस्संभवाके०) ते पृथवीने विषे वनस्पतिकायनो संभवछे,(तडवक्कमाके०)ते पृथवीने विषे नाना प्रकारें प्रबल पणे संक्रमणछे,(कम्मोवगाके०)ते जीव तथाविध वनस्पतिकाय संभवि कर्में प्रेर्यमान छता त्यां वनस्पतिने विषे उपशमीप पृथवीने विषे जाय; ते कारणे एने कम्मो वगा.कहियें, एटले ते जीव कर्मना वशंगत वनस्पतिकाय थकी आवीने वली तेज वनस्प तिकायने विषे उपजे,पण अन्यत्रथी आव्या अन्यत्र नउपजे. जेम कुसम पुरियें वाव्यां एवां बीजोना मधुरायें अंकुरो नमले, ज्यां जेहनुं बीज, त्यांज तेना अंकुरोनी उत्पत्ति जाणवी. (कम्मणियाणेणंके०) तथा ते जीव कर्मने कारणे आकर्षित (तत्तवुक्कमाके०) त्यां पृथ विने विषे तथा वनस्पतिने विषे, वुक्कमा एटले आव्या छता ( णाणाविहजोणितासुपुढ वीसु के० ) नाना प्रकारयोनी पृथवीने विषे ( रुरुकत्ताए के० ) रूंख पणे (विउट्टंतिके०) उपजे, ( तेजीवातेसिंणाणाविहजोणियाणंपुढवीणं के०) ते जीव ते नाना प्रकार योनी पृथवीनो ( सिणेहमाहारेंति के० ) स्नेह आहारे तेहीज तेनो आहार. ते पृथवीना

शरीरने आहारतां पृथवीने पीडा उपजावे नहीं. ॥ १ ॥ पछी ( तेजीवा के० ) ते जीव, ( आहारेंतिपुढवीसरीरं के० ) पृथवीनु शरीर आहारे, एमज ( आउसरीरं के० ) अपकायनुं शरीर, ( तेउसरीरं के० ) तेज कायनुं शरीर, ( वाउसरीरं के० ) वायुकायनुं शरीर, ( वणस्सइसरीरं के० ) वनस्पतिकायनुं शरीर, ( णाणाविहाणतसथावराणं पाणाणंसरीरं के० ) तथा नाना प्रकारनां त्रस अने स्थावर प्राणीउनां शरीर आहारे, परंतु तेमने पीडा नउपजावे. तेनुं कारण कहेछे, जेम अंमजादिक जीव गर्नस्थ छतां माताना उदरनो आहार करे, परंतु माताने पीडा उपजावे नहीं, तेम अंहीं पण जाणी लेवुं. तथा उपन्या पछी वृद्धि प्राप्त अनेक वर्ण रसादिक गुण सहित थाय, तेवारें पण कांइ पीडा उपजावे एरीतें ते जीव पृथवीकाय प्रमुख जीवोनुं ( सरीरंअचित्तंकुव्वंति के० ) शरीर अचित्त करे. ( परिविद्धत्थं के० ) परिविध्वंस करे. ( तंके० ) ते वनस्पतिना जीव तेणे ( सरीरंपुव्वाहारियं के० ) पृथवी कायादिकनुं जे शरीर पूर्वें आहार्युं, ते अधुना हमणा वनस्पतिना जीव उत्पद्यमान उपजता, अथवा उपना ( तयाहारियं के० ) त्वचाने स्पर्शे करी आहारीने, ( विपरिणयं के० ) परिणमावीने ( सारूवियकडंसंतं के० ) पोतानी काया सरखां रूप करे, ( अवरेवियणं के० ) अपर एटले अन्य बीजां शरीर मूल, शाखा, प्रतिशाखा, पत्र, पुष्प, फलादिक, एवां रूप करे. तथा ( तेसिं पुढवीजोणियाणं के० ) ते पृथवीयोनिक ( रुस्काणं के० ) वृक्ष, तेनां ( सरीरा के० ) शरीर, ते ( णाणावस्राणं के० ) नाना प्रकारना वर्ण, ( णाणागंधा के० ) नाना प्रकारना गंध, ( णाणारसा के० ) नाना प्रकारना रस, ( णाणाफासा के० ) नाना प्रकारना स्पर्श, ( णाणासंठाणसंठिता के० ) नाना प्रकारना संस्थानें करी संस्थित, ( णाणाविहसरीरपुग्गलविउविता के० ) तथा नाना प्रकारना शरीरना पुद्गलें करी विकूर्व्यां थका होय, एरीतें ( तेजीवा के० ) तेजीव ( कम्मोववन्नगानवंति तिमस्कायं के० ) वनस्पतिने विषे तथाविध कर्मने उदये उपना होय. परंतु आंहीं काल, ईश्वरादिक कारण कोइ समजवो नही. एम नगवंत श्रीतीर्थंकर देवें कह्युं छे. एटले पृथवीयोनिक वृक्ष कह्या ॥ २ ॥

---

॥ दीपिका—अथाहारपरिज्ञाख्यं तृतीयमध्ययनमारन्यते । तस्येदमादिसूत्रं । ( सुयं मे इत्यादि ) श्रुतं मयाऽयुष्मन्नगवतेदमाख्यातं आहारपरिज्ञानाख्यमध्ययनं । तस्य चायमर्थः । प्राच्यादिदिक्षु सर्वतः ( सव्वावंतित्ति ) सर्वस्मिन् लोके चत्वारोबीजकायाबीजप्रकाराजवंति । तद्यथा । अग्रे बीजं येषामुत्पद्यते तेऽग्रबीजास्तालसहकारादयः । अथवाऽग्राण्येवोत्पत्तौ कारणं येषां तेऽग्रबीजाः कोरंटादयः । मूलबीजाआर्द्रकादयः पर्वबीजा

इक्षुप्रमुखाः स्कंधबीजाः सल्लक्यादयः । नागार्जुनीयास्तु पठंति । वणस्सइकायाइयाणं पंचविहा बीजवक्कंति ॥ एवमाहिज्जइ तं अग्गमूलपोर खंधबीयरुहा ॥ छट्ठाविएगंतियासं मुच्छिमाबीयाजायंते । यथा दवदग्धभूमौ हरितानि विविधानि उत्पद्यंते (तेसिंचणंति) तेषां चतुर्विधानामपि वनस्पतिकायानां यद्यस्य बीजं तद्यथा बीजं तेन यथाबीजेन । कोर्थः? । शाल्यंकुरस्य शालिबीजमुत्पत्तिकारण एवमन्यदपि ज्ञेयं । योयस्यावकाशोयद्यस्यो त्पत्तिस्थानं तद्यथावकाशं तेन इह जगति एके केचन जीवावनस्पतौ उत्पद्यमानाअपि पृथिवीयोनिकाः पृथिवीसंभवाः । कोर्थः? । बीजाडुत्पद्यमानोवनस्पतिकायः पृथिव्याधारे समुत्पद्यते । यथा शैवलकर्दमादयोजलाधारे जायंते तथा वनस्पतयोभूमौ जायंते इत्य र्थः । तथा पृथिव्यां व्युत्क्रमोवृद्धिर्येषां ते तथा एवं ते तद्योनिकास्तत्संभवास्तद्व्युत्क्रमाः कर्मोपगाः कर्मप्रेर्यमाणाः कर्मनिदानेन तत्र पृथिव्यां वनस्पतौ वा व्युत्क्रांताआगताः सं तोनानाविधयोनिकासु पृथिवीषु पसुां कायानां उत्पत्तिस्थानभूतासु सचित्ताचित्तमिश्रा सु वृक्षतया विवर्तंते जायंते । तेच तत्रोत्पन्नास्तासां पृथिवीनां स्नेहं स्निग्धभावमाहारंति गृह्णंति ॥१॥ तेच तत्रोत्पन्नाआहारंति पृथिवीशरीरं । एवमप्कायतेजोवायुवनस्पतिशरीर मपि । नानाविधानां त्रसस्थावराणां प्राणिनां यच्छरीरं तत्स्वकायेनाश्रित्याचित्तं कुर्वंति । यदिवा परिविध्वस्तं पृथिव्यादिशरीरं पूर्वाहारितमिति पूर्वमुत्पत्तिसंमये पृथिव्यादिभिरेव आहारितमासीत् । तदधुना वनस्पतिजीवस्तत्रोत्पद्यमानउत्पन्नोवा त्वचा स्पर्शेनाहारय ति आहार्यंच स्वकायत्वेन विपरिणामितं स्वकायेन सह (सारूविकि) स्वरूपतः नीतं तन्मयं स्यात् (अवरेवियत्ति) अपराण्यपि पृथिवीकानां वृक्षाणां शरीराणि नानाव र्णादीनि यथा स्कंधस्यान्योवर्णादिर्मूलस्यान्यएव एवं यावन्नानाविधशरीरपुद्गलविकुर्विताः स्युः । तथाहि । नानारसवीर्यविपाकानानापुद्गलोपचयात्सुरूपसंस्थानादृढाल्पसंहनना श्च स्युरिति । ते जीवावनस्पतिकायाः कर्मोत्पन्नाएव न पुनः कालेश्वरादिना तत्रोत्पद्यंत इत्याख्यातमर्हदादिभिः ॥ २ ॥

---

॥ टीका–द्वितीयाध्ययनानंतरं तृतीयमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । कर्मक्षपणा र्थमुद्यतेन भिक्षुणा द्वादशक्रियास्थानरहितेनांत्यक्रियास्थानसेविना सदाहारगुप्तेन भवि तव्यं । धर्माधारभूतस्य शरीरस्याधारोभवत्याहारः । सच मुमुक्षुणोदेशकादिरहितोग्राह्यः । तेनच प्रायः प्रतिदिनं कार्यमित्यनेन संबंधेनाहारपरिज्ञाध्ययनमायातं । अस्य चत्वार्यनु योगद्वाराण्युपक्रमादीनि भवंति । तत्रेदमध्ययनं पूर्वानुपूर्व्या तृतीयं पश्चानुपूर्व्या पंचम मानुपूर्व्यात्वनियतमित्यर्थाधिकारः । पुनरत्राहारः शुध्धाशुद्धभेदेन निरूप्यते । निक्षेपस्त्रि विधस्तद्यादिस्तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं । नामनिष्पन्ने तु आहारपरिज्ञेति द्विपदंनाम ।

तत्राहारपदनिक्षेपार्थमाह निर्युक्तिकारः ॥ "नामंठवणादविए, खेत्ते नावेय होंति बोधव्वो॥ एसो खलु आहारे, निरकेवो होइ पंचविहो" ॥ १ ॥ (नामंठवणेत्यादि) नामस्थाप नाद्रव्यक्षेत्रनावरूपः पंचप्रकारोनवति निक्षेपआहारपदाश्रयइति । तत्र नामस्थापनेऽ नादृत्य द्रव्याहारं प्रतिपादयितुमाह । "दव्वेसचित्तादी, खेत्ते नगरस्स जणवउ होइ ॥ ना वाहारो तिविहो, उए लोमेयपरकेवे" ॥ २ ॥ (दव्वेइत्यादि) द्रव्याहारे चिंत्यमाने सचि त्तादिराहारस्त्रिविधोनवति । तद्यथा । सचित्तोऽचित्तोमिश्रश्च । तत्रापि सचित्तः षड्वि धः पृथिवीकायादिकः । तत्र सचित्तस्य पृथिवीकायस्य लवणादिरूपापन्नस्याहारोद्रष्ट व्यः । तथाप्कायादेरपीति । एवंमिश्रोऽचित्तश्चायोज्यः नवरमग्निकायमचित्तं प्रायशोमनु ष्याआहारयंति उदनादेस्तद्रूपत्वादिति । क्षेत्राहारस्तु यस्मिन्क्षेत्रे आहारः क्रियते उत्प द्यते व्याख्यायते । यदिवा नगरस्य योदेशोधान्यधनादिनोपनोग्यः सक्षेत्राहारः । तद्यथा। मथुरायाः समासन्नोदेशः परिनोग्योमथुराहारो माठरकाहारः खेडाहारइत्यादि । नावाहार स्त्वयं । क्षुधोदयान्नक्ष्यपर्यायोपपन्नं वस्तु यदाहारयति सनावाहारइति । तत्रापि प्रायशआ हारस्य जिव्हेंद्रियविषयत्वात्तिक्तकटुककषायाम्ललवणमधुररसागृह्यंते । तथाचोक्तं । राईन त्ते नावउ तित्तेवालावमधुरेत्यादि । अन्यदपि प्रसंगेन गृह्यते । तद्यथा खरविशदमन्यव हार्यं नक्ष्यं । तत्रापि पुष्पाढ्यउदनः प्रशस्यते न शीतः । उदकंतु शीतमेव । तथाचोक्तं शैत्यमपां प्रधानोगुणः । एवं तावदन्यवहार्यं द्रव्यमाश्रित्य नावाहारः प्रतिपादितः । सांप्र तमाहारकमाश्रित्य नावाहारं निर्युक्तिकृदाह । नावाहारस्त्रिविधस्त्रिप्रकारोनवति । आ हारकस्य जंतोस्त्रिनिः प्रकारैराहारोपादानादिति । प्रकारानाह । (उहेत्ति) तैजसेन श रीरेण तत्सहचरितेनच कर्मणा कार्मणेनान्यां द्वान्यामप्याहारयति यावदपरमौदारिकं शरीरं न निष्पद्यते । तथाचोक्तं । तेएण कम्मएणं आहारेइ अणंतरं जीवो ॥ तेण परं मिस्से णं, जाव शरीरस्स निप्पत्ती ॥ १ ॥ तथा । उआहाराजीवा, सव्वे आहारगाअपक्कत्ता ॥ लोमा हारस्तु शरीरपर्याप्त्युत्तरकालं बाह्यया त्वचा लोमनिराहारोलोमाहारस्तथा प्रक्षेपेण कव लादेराहारः प्रक्षेपाहारः सच वेदनीयोदयेन चतुर्निः स्थानैराहारसञ्ज्ञावान्नवति ।तथाचोक्तं। चउहिं गणेहिं आहारसन्नासमुप्पज्जइ तंजहा उमोछयाए छुहावेयणिज्जस्स कम्मस्स उदए णं मई एतयघोवउगेणंति । सांप्रतमेतेषां त्रयाणामप्येकयैव गाथया व्याख्यानं कर्तुमाह।"स रीरेणोयाहारो,तयाय फासेण लोमआहारो ॥ परकेवाहारो पुण,कावलितो होइनायव्वो"॥२ (सरीरेणेत्यादि) तैजसेन कार्मणेनच शरीरेणौदरिकादिशरीरानिष्पत्तेर्मिश्रेणच यआहारः ससर्वोप्योजाहारइति केचिद्व्याचक्षते ।औदरिकादिशरीरपर्याप्त्या पर्याप्तकोपींद्रियानापा ननाषामनःपर्याप्तिनिरपर्याप्तकः शरीरेणाहारयन् उजाहारइति गृह्यते । तडुत्तरकालं त्व चा स्पर्शेंद्रियेण आहारः सलोमाहारइति । प्रक्षेपाहारस्तु कावलिकः कवलप्रक्षेपनिष्पा

दितइति ज्ञातव्योनवति। पुनरप्येपामेव स्वामिविशेषेणविशेषमाविर्नावयन्नाह। "उंयाहारा जीवा, सवेध्मपजत्तगासुणेयवा ॥ पज्जत्तगायलोमे,परकेवेहोइनायवा " ॥४॥ (उंयाहारइत्यादि) यः प्रागुक्तः शारीरेणौजसाहारस्तेनाहारेणाहारकाजीवाः सर्वेप्यपर्याप्तकाज्ञातव्याः। सर्वाभिः पर्याप्तिभिरपर्याप्तास्ते वेदितव्याः। तत्र प्रथमोत्पत्तौ जीवः पूर्वशरीरपरित्यागे विग्रहेणाविग्रहेण चोत्पत्तिदेशे तैजसेन कार्मणेन शरीरेण तप्तस्नेहपतितसंपानकवत्तत्प्रदेशस्थानात्पुफ्लानादत्ते तड्डत्तरकालमपि यावदपर्याप्तकावस्था तावदोजआहारइति। पर्याप्तकास्त्विंडियादिभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्ताः केपांचिन्मतेन शरीरपर्याप्तकावा गृह्यंते। तदेवं ते लोमाहाराभवंति। तत्र स्पर्शेंडियेणोष्मादिना तप्तश्छायया शीतवायुनोदकेन प्रीयते प्राणी गर्भस्थोपि पर्याप्त्युत्तरकालं लोमाहारएवेति। प्रक्षेपाहारे तु भजनीया यदेव प्रक्षेपं कुर्वंति तदेव प्रक्षेपाहारानान्यदा लोमाहारता तु वाय्वादिस्पर्शात्सर्वदैवेति। सच लोमाहारश्चक्षुष्मतामर्वाग्दृष्टिमतां न दृष्टिपथमवतरत्यतोऽसौ प्रतिसमयवर्ती प्रायशः। प्रक्षेपाहारस्तूपलभ्यते प्रायः सच नियतकालीयः। तद्यथा। देवकुरूत्तरकुरुप्रभवाअष्टमभक्ताहाराः संख्येयवर्षायुषामनियतकालीयः प्रक्षेपाहारइति। सांप्रतं प्रक्षेपाहारं स्वामिविभागेन दर्शयितुमाह। "एगिंदियदेवाणं, नेरइयाणंच नत्थि परकेवो ॥ सेसाणं परकेवो, संसारत्थाणजीवाणं" ॥ ५ ॥ (एगिंदियइत्यादि) एकमेव स्पर्शेंडियं येपां भवंत्येकेंडियाः पृथिवीकायादयस्तेपां देवनारकाणांच नास्ति प्रक्षेपस्तेहि पर्याप्त्युत्तरकालं स्पर्शेंडियेणैवाहारयंतीति कृत्वा लोमाहाराः। तत्र देवानां मनसा परिकल्पिताः शुभाःपुफ्लाः सर्वेणैव कायेन परिणमंति नारकाणां त्वशुभाइति। शेषास्त्वौदारिकशरीराद्वींडियादयस्तिर्यङ्मनुष्यास्तेपां प्रक्षेपाहारइति। तेपां संसारस्थितानां कायस्थितेरेवाभावात्प्रक्षेपमंतरेण कावलिकआहारोजिव्हेंडियसद्भावादिति। अन्येत्वाचार्याअन्यथा व्याचक्षते। तत्र यो जिव्हेंडियेण स्थूलः शरीरे प्रक्षिप्यते सप्रक्षेपाहारः। यस्तु घ्राणदर्शनश्रवणैरुपलभ्यते धातुभावेन परिणमति सउजाहारः। यःपुनः स्पर्शेंडियेणैवोपलभ्यते धातुभावेन प्रयाति स लोमाहारइति। सांप्रतं कालविशेषमधिकृत्याऽनाहाकानभिधित्सुराह। "एकंच दोव समए, तिन्निव समए मुहुत्तमर्द्धवा ॥ सादीयमनिहणंपुण, कालमणाहारगाजीवा ॥ ६ ॥ (एकंचेत्यादि) तत्र। विग्गहगइमावन्ना, केवलिणो समुहया अयोगीया ॥ सिद्धाय अणा हारा, सेसा आहारगाजीवा। अस्यालेशतोयमर्थः। उत्पत्तिकाले विग्रहगतौ वक्रगतिमापन्नाः केवलिनोलोकपूरणकाले समुद्घातावस्थिताअयोगिनः शैलेश्यवस्थाः सिद्धाश्चानाहारकाः शेपास्तु जीवाहारकाइत्यवगंतव्यं। तत्र भवाद्भवांतरं यदा समश्रेण्या याति। तदा नाहारकोन लभ्यते। यदापि विश्रेण्यामेकेन वक्रेणोत्पद्यते तदापि प्रथमसमये पूर्वशरीरस्थेनाहारितं द्वितीयेत्ववक्रसमये समाश्रितशरीरस्थेनेति।

वक्रद्वयेतु त्रिसमयोत्पत्तौ मध्यसमयेनाहारकइति इतरयोस्त्वाहारकइति । वक्रत्रये तु चतुःसमयोत्पत्तिके मध्यवर्तिनोः समययोरनाहारकश्चतुःसमयोत्पत्तिश्चैवं नवति । त्रस नाड्या बहिरुपरिष्टादधोधस्ताद्वा पर्युत्पद्यमानो दिशोविदिशि विदिशोवादिशि यदोत्पद्यतेत दा लन्यते । तत्रैकेन समयेन त्रसनाडीप्रवेशो द्वितीयेनोपर्यधोवा गमनं तृतीयेनच बहिर्निः सरणं चतुर्थेन तु विदिक्कूत्पत्तिदेशप्राप्तिरिति । पंचसमयास्तु त्रसनाड्याबहिरेव विदिशो विदिगुत्पत्तौ लन्यते । तत्रच मध्यवर्तिषु अनाहारकइत्यवगंतव्यं । आद्यंतसमययोस्त्वा हारकइति । केवलिसमुद्घातेपि कार्मणशरीरवर्तित्वात् तृतीयचतुःपंचसमयेष्वनाहार कोद्रष्टव्यः । शेषेषु तुत्वौदारिकत मिश्रवर्तित्वा तृतीयचतुः पंचम समयेष्वना हारको द्र ष्टव्यः शेषेषुतु त्वौदारिकतन्मिश्रवर्तित्वादाहारकइति । ( मुहुत्तमद्धंचत्ति ) अंतर्मुहू र्तं गृह्यते । तच्च केवली स्वायुषःक्षये सर्वयोगनिरोधे सति ह्स्वपंचाक्षरोच्चारणमात्रकालं यावदनाहारकइत्येवमवगंतव्यं । सिद्धजीवास्तु शैलेश्यवस्थायाआदिसमयादारन्यानंत मपि कालमनाहारकाइति । सांप्रतमेतदेव स्वामिविशेषविशेषिततरमाह । “ एक्कंच दोव समए, केवलिपरिवज्जिया अणाहारा ॥ पंचमि दोण्णि लोए, यपूरिए तिन्नि समयाउ ॥७॥ ( एकंचेत्यादि ) केवलपरिवर्जिताः संसारस्थाजीवाएकं द्वौवा अनाहारकानवंति । तेच द्विविग्रहत्रिविग्रहोत्पत्तौ त्रिचतुःसामयिकायां द्रष्टव्याः । चतुर्विग्रहपंचसमयो त्पत्तिस्तु स्वल्पसत्वाश्रितेति न साक्षादुपात्ता । तथा चान्यत्राप्यनिहितं । एकं द्वौवा नाहारकः । वाशब्दात् त्रीन् वा आनुपूर्व्या अन्युदग्रवत्कृष्टतोविग्रहगतौ चतुरः समया नागमेऽनिहिताः । तेच पंचसमयोत्पत्तौ लन्यंते नान्यत्रेति । नवस्थकेवलिनस्तु समुद् घाते मंथे तत्करणोपसंहारावसरे तृतीयपंचसमयौ द्वौ लोकपूरणाच्चतुर्थसमयेन सहि तास्त्रयः समयानवंतीति । पुनरपि निर्युक्तिकारः सादिकमपर्यवसानं कालमनाहारकत्वं दर्शयितुमाह । “ अंतोमुहुत्तमद्धं, सेलेसीए नवे अणाहारा ॥ सादीयमनिहणंपुण, सिद्धायणाहारगाहोंति ” ॥ ८ ॥ ( अंतोमुहुत्तमित्यादि ) शैलेश्यवस्थायाआरन्य सर्वथानाहारकः सिद्धावस्थाप्राप्तावनंतमपि कालं यावदिति । पूर्वंतु कावलिकाख्यव्य तिरेकेण प्रतिसमयमनाहारकः कावलिकेनतु कादाचित्कइति । ननु केवलिनोघाति कर्मक्षयेनंतवीर्यत्वान्न नवत्येवकावलिकआहारकः । तथाहि । आहारादाने यानि वेद नीयादीनि षट्कारणान्यनिहितानि तेषां मध्ये एकमपि नवियते केवलिनि तत्कथमसा वाहारं बहुदोषदुष्टं गृण्हीयात् ? । तत्र न तावत्तस्यवेदनोत्पद्यते तद्वेदनीयस्य दग्धरज्जु स्थानिकत्वात्सत्यामपि न तस्य तत्कृता पीडा अनंतवीर्यत्वात् । वैयावृत्यकरणंतु नगव ति सुरासुरनराधिपतिसंघेन संनाव्यतएवेति । ईर्यापथः पुनः केवलज्ञानावरणपरिक्षया त्सम्यगवलोकयत्येवासौ । संयमस्तु तस्य यथाख्यातचारित्रिणोनिष्ठितार्थत्वादनंतवीर्य

त्वान्नाहारग्रहणाय कारणीनवति । प्राणवृत्तिस्तु तस्यानुपवर्तित्वात् आयुषोऽनंतवीर्यत्वा च्चान्यथा सिद्धेव धर्मचिंतावसरस्त्वपगतोनिष्ठितार्थत्वात् । तदेवं केवलिनः कावलिका काहारोबंधपायत्वान्न कथंचिद्घटतइति स्थितं। अत्रोच्यते। तत्र तावद्यडुक्तं घातिकर्मक्षये केवलज्ञानोत्पत्तावनंतवीर्यत्वान्न केवलिनोजुक्तिरिति । तदागमानभिज्ञस्य तत्वविचाररहित स्य युक्तिहृदयमजानतोवचनं । तथाहि यदाहारनिमित्तं वेदनीयं कर्म तत्तस्य तथैवास्ते । किमिति? । सा शारीरी स्थितिः प्राक्तनी ननवति प्रमाणंच अस्ति केवलिनोजुक्तिः समग्र सामग्रीकत्वात्पूर्वजुक्तिवत् । सामग्रीचेयं प्रक्षेपाहारस्य तद्यथापर्याप्तत्वं वेदनीयोदयः आहारपक्तिनिमित्तं तैजसशरीरं दीर्घायुष्कत्वंचेति । तानिच समस्तान्यपि केवलिनि सं ति । यदपि दग्धरज्जुसंस्थानिकत्वमुच्यते वेदनीयस्य। तदप्यनागमिकमयुक्तिसंगतंच आग मेह्यत्यंतोदया सा तस्य केवलिन्यनिधीयते जुक्तिरपि । यदि घातिकर्मक्षयाज्ज्ञानादयस्त स्याजूवन् वेदनीयोद्भवायाः क्षुधः किमायातं येनासौ न नवति । नतयोश्गयातपयोरिव सहानवस्थानलक्षणानामपि नावानावयोरिव परस्परपरिहारलक्षणः कश्चिद्विरोधोस्ती ति। सातासातयोश्चांतर्मुहूर्तपरिवर्तमानतया यथा सातोदयएवमसातोदयोऽपीत्यनंतवीर्य त्वे सत्यपि शरीरबलापचयः क्षुद्वेदनीयोद्भवा च पीडा नवत्येव । नचाहारग्रहणे तस्य किं चित्क्षीयते केवलमाहोपुरुषिकामात्रमेवेति । यदप्युच्यते वेदनीयस्योदीरणायाअनावा त्प्रजूततरपुजलोदयानावाच्चात्यंतं वेदनीयपीडानावइति वाङ्मात्रं । तथाह्यविरतसम्यग्द ष्टयादिष्वेकादशसु स्थानेषु वेदनीयगुणश्रेणीसद्भावात्प्रजूतपुजलोदयसद्भावः किंतेषु प्राक्त नेन्योऽधिकपीडासद्भावइति । अपिच योजिने सातोदयस्तीव्रः किमसौ प्रचुरपुजलोदयें नेति अतोयत्किंचिदेतदिति। तदेवं सातोदयवदसातोदयोपि केवलिन्यवतारितइति तयोरं तर्मुहूर्तकालेन परिवर्तमानत्वात्।यद्यपि क्वचित्कैश्चिदनिधीयते विपच्यमानतीर्थंकरनाम्नो देवस्य च्यवनकाले षएमासकालं यावदत्यंतं सातोदयएवेत्यसावपि यदिस्यान्न ततोबाधायै केवलिनां जुक्तेरनिवारितत्वात्। यदप्युच्यते आहारविषयाकांक्षारूपा क्षुन्नवति अनिकां क्षावाऽहारपरिग्रहबुद्धिः साच मोहनीयविकारस्तस्य चापगतत्वात्केवलिनोन जुक्तिरिति। एतदप्यसमीचीनं । यतोमोहनीयविकारात्क्षुन्न नवति तद्विपाकस्य प्रतिपक्षनावनया प्र तिसंख्यानेन निवर्त्यमानत्वात् । तथाहि । कषायाः प्रतिकूलनावनया निवर्त्यंते । तथा चोक्तं । उपसमेण हणे कोहं माणं मद्दवयाजिणे॥मायं वज्जवनावेन लोनं संतुछिए जिणे। मिथ्यात्वसम्यक्त्वयोश्च परस्परनिवृत्तिर्नावना कृता प्रतीतैव । वेदोदयोपि विपरीतनावन या निवर्तते । तडुक्तं । काम जाना मिते मूलं, संकल्पात्किल जायसे ॥ ततस्तं नकरिष्या मि, ततोमे न नविष्यसि ॥ १ ॥ हास्यादिषट्कमपि चेतोविकारूपतया प्रतिसंख्यानेन निवर्तते क्षुद्वेदनीयंतु रोगशीतोष्णादिवज्जीवपुजलविपाकितया न प्रतीपवासनामात्रेण नि

वर्ततेऽतोन मोहविपाकस्वभावा क्षुदिति । तदेवं व्यवस्थिते यत्कैश्चिदाग्रहग्रहीतैरभि धीयते यथा प्रवर्त्यते कृतार्थे नायुज्ञानादयोन हीयंते जगडपकृतावनंतं वीर्यं किं गततृपो भुक्तिस्तदेतत् प्लवते यतश्छद्मस्थावस्थायामप्येतदस्तीति तत्रापि किमिति भुंक्ते तत्र सम स्तवीर्यांतरायक्षयाभावान्मुक्तिसद्भावइतिचेत्तदयुक्तं । यतः किं तत्रायुषोपवर्तनं स्यात् किंवा चतुर्णां ज्ञानानां काचिद्धानिःस्याद्येन न भुक्तिरिति । तस्माद्यथा दीर्घकालस्थितेरायुष्कं कारणमेवमाहारोपि । यथा सिद्धिगतेऽव्युपरतक्रियस्य ध्यानस्य चरमक्षणः कारणमेवं सम्य क्त्वादिकमपीति । अनंतवीर्यतापि तस्याहारग्रहणे सति न विरुध्यते । यथा तस्य देवछंदा दीनि विश्रामकारणानि गमनविषीदनानिच भवंत्येवमाहारक्रियापि विरोधाभावान्नह्यत्र बलवत्तरवीर्यवतोऽल्पीयसी क्षुदिति । एवंच स्थिते यत्किंचिदेतत् । अपि चैकादशपरीषहावे दनीयकृता जिने प्राडुःष्यंति । अपरेतु एकादशज्ञानावरणीयादिकृतास्तत्क्षयेऽपगता इती यमप्युपपतिः केवलिनि भुक्तिं साधयति । तथाहि । क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाश्यादिरि ति स्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाश्चालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञानदर्शना नीत्येते द्वाविंशतिर्मुमुक्षुणा परिसोढव्याः परिषहास्तेपांच मध्ये ज्ञानावरणीयोद्भौ प्रज्ञा ज्ञानाख्यौ दर्शनीयमोहनीयसंभवोदर्शनीयपरिषहोंतरायोद्भोलाभपरिषहोस्ति । चारित्र हनीयसंभूतास्त्वमी नामोयारतिस्त्रीनिषद्यायाश्चासत्कारपुरस्काराः । एते चैकादशापि जिने केवलिनि न संभवंति तत्कारणानामपगतत्वात् । नहिकारणाभावे क्वचित्कार्योपपत्तिः । शेषास्त्वेकादश जिने संभवंति तत्कारणस्य वेदनीयस्य विद्यमानत्वात् । तेचामी क्षुत्पि पासाशीतोष्णदंशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलाख्याः । एतेच वेदनीयप्रभवास्तत्र केव लिनि विद्यंते । नच निदानानुच्छेदे निदानिनउच्छेदः संभाव्यते अतःकेवलिनि क्षुद्वेदनी यादिपीडा संभाव्यते । केवलमसावनंतवीर्यत्वान्न विव्हलीभवति । नचासौ निष्ठितार्थो निःप्रयोजनमेव पीडामधिसहते । नच शक्यते वक्तुमेवंभूतमेव तस्य भगवतः शारीरं यडत क्षुत्पीडा न बाधते आहारमंतरेण वर्तते यथास्वभावेनैव प्रस्वेदादिरहितमेव प्रक्षेपाहार रहितं इत्येतच्चाप्रमाणकत्वादपकर्णनीयं । अपिच केवलोत्पत्तेः प्राग्भुक्तेरभ्युपगमात्केव लोत्पत्तावपि तदेवौदारिकं शरीरमाहाराद्युपसंस्कार्यमथान्यथाभावः कैश्चिडुच्यते असाव पि युक्तिरहितत्वादभ्युपगममात्रकएवेति । तदेवं देशोन पूर्वकोटिकालस्य केवलस्थितेः सं भवादौ दारिकशरीरस्थितेश्च यथायुष्कं कारणमेवं प्रक्षेपाहारोपि । तथाहि । तैजसशरीरेण मृडकृतस्याभ्यवहृतस्य द्रव्यस्य स्पर्याश्रया परिणामितस्योत्तरोत्तरपरिणामक्रमेणौदारिक शरीरिणामनेन प्रकारेण क्षुद्भवो भवति वेदनीयोदये सतीयं च सामग्री सर्वापि भगवति केवलिनि संभवति तत्किमर्थमसौ न भुंक्ते नच घातिचतुष्टयस्य सहकारिकारणभावोस्ति येन तदभावात्तदभावइत्युच्यते । तदेवं संसारस्थाजीवाविग्रहगतौ जघन्येनैकं समयं उत्कृ

एतः समयत्रयं भवस्थकेवली च समुद्घातावस्थः समयत्रयमनाहारकः शैलेश्यवस्थायां त्वंतर्मुहूर्तं। सिद्धास्तु सादिकमपर्यंतं कालमनाहारकाइति स्थितं। सांप्रतं प्रथमाहारग्रहणं येन शरीरेण करोति तदर्शयति । जोएण कम्मएणं, आहारेइ अणंतरं जीवा॥ तेण परं मी सेणं, जीवसरीरस्स पज्जत्ती ,, ॥ ए ॥ ( जोएणेत्यादि ) ज्योतिस्तेजस्तदेव तत्र वा भवं तैजसं कार्मणेन चाहारयति। तैजसकार्मणे हि शरीरे आसंसारभाविनी ताभ्यामेवोत्पत्तिदे शं गताजीवाः प्रथममाहारं कुर्वंति ततः परमौदारिकमिश्रेण वैक्रियमिश्रणेन वा यावछरी रं निष्पद्यते तावदाहारयंति । शरीरनिष्पत्तौ त्वौदारिकेण वैक्रियेण वाऽहारयंतीति स्थितं। सांप्रतं परिज्ञानिक्षेपार्थमाह । ” णामं ठवणपरिन्ना, दव्वभावेय होइ नायव्वा॥ दव्वपरिन्ना तिविहा, भावपरिन्ना भवे डुविहा,, ॥१०॥ ( णाममित्यादि ) तत्र नामस्थापना ड्व्यभा वभेदात्परिज्ञा चतुर्धा । तत्रापि नामस्थापने क्षुसुत्वादनादृत्य ड्व्यपरिज्ञां प्रतिपादयन् गाथापरार्द्धमाह। ड्व्यपरिज्ञेति । ड्व्यस्य ड्व्येण वा परिज्ञा सा च परिछेद्यड्व्यप्रधान्यात्त स्यच सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रैविध्यात्रिविधेति । भावपरिज्ञापि ज्ञपरिज्ञाप्रत्याख्यानभे देन द्विविधेति । शेषास्त्वागमनोआगमज्ञशरीरव्यतिरिक्तादिकोविचारः शस्त्रपरिज्ञावद्रष्ट व्यः। गतानिक्षेपनिर्युक्तिरधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चे दं । (सुयंमे आउसंतेणमित्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । श्रुतं मयाऽऽयुष्मता तु भगवतेदमाख्यातं । तद्यथा। आहारपरिज्ञेदमध्ययनं तस्य चायमर्थः। प्राच्यादिषु दिक्षु सर्वतइत्यूर्ध्वाधोविदिक्षु च ( सव्वावंतित्ति ) सर्वस्मिन्नपि लोके क्षेत्रे प्रज्ञा पकभावदिगाधारभूतेऽस्मिन् चत्वारोबीजकायाबीजमेव कायोयेषां ते तथा । बीजं वक्ष्य माणं । चत्वारोबीजप्रकाराः समुत्पत्तिभेदाभवंति । तद्यथा । अग्रे बीजं येषामुत्पद्यते ते तलतालीसहकारादयः शाल्यादयोवा । यदिवाऽग्राण्येवोत्पत्तौ कारणतां प्रतिपद्यंते येषां कोरंटादीनां ते अग्रबीजास्तथा मूलबीजाआर्द्रकादयः पर्वबीजास्त्विक्ष्वादयः स्कंध बीजाः सल्लक्यादयः। नागार्जुनीयास्तु पठंति । वणस्सइकाइयाण पंचविहा बीजवक्कंती॥ एवमाहिज्जइ तंजहा अग्गमूलपोरुखंधबीयरुहाछहाविएगेंदियासमुच्छिमाबीया जायंते। यथा दग्धवनस्थलीषु नानाविधानि हारितान्युद्भवंति पद्मिन्योवाऽभिनवतडागादाविति । तेषां च चतुर्विधानामपि वनस्पतिकायानां यद्यस्य बीजमुत्पत्तिकारणं तद्यथाबीजं तेन य था बीजेनेति । इदमुक्तं भवति । शाल्यंकुरस्य शालिबीजमुत्पत्तिकारणं । एवमन्यदपि ड्रष्ट व्यं । यथावकाशेति । योयस्यावकाशः यद्यस्योत्पत्तिस्थानमथवा भूम्यंबुकालाकाशबीज संयोगायथावकाशो गृह्यंते तेनेति । तदेवं यथाबीजं यथावकाशेन चेहास्मिन् जगत्येके केचन सत्वामे तथाविधकर्मोदया द्वनस्पतिपूत्पित्सवस्ते हि वनस्पतावुत्पद्यमानाअपि पृथि वीयोनिका भवंति यथा तेषां वनस्पतिबीजं कारणमेवमाधारमंतरेणोत्पत्तेरभावात्पृथिव्यपि

शेवालजंबालादेरुदकवदिति। तथा पृथिव्यां संनवः सदा नवनं येषां वनस्पतीनां तथा। इ दमुक्तं नवति न केवलं ते सयोनिकायस्थितिकाश्चेति। तथा पृथिव्यामेव विविधमुत्प्राबल्येन क्रमः क्रमणं येषां ते पृथिव्युक्रमाः। इदमुक्तं नवति। पृथिव्यामेव तेषामूर्ध्वं क्रमणलक्षणावृ द्धिर्नवति। एवंच ते तद्योनिकास्तत्संनवास्त द्व्युक्रमाइत्येतदनूद्याप्यपरं विधातुकामआह। (कम्मोवगाइत्यादि) तेहि तथाविधेन वनस्पतिकायसंनवेन कर्मणा प्रेर्यमाणास्तेष्वेव वन स्पतिरूपसामीप्येन तस्यामेव च पृथिव्यां गच्छंतीति कर्मोपगानएयंते। तेहि कर्मवशगावन स्पतिकायादागत्य तेष्वेव पुनरपि वनस्पतिरूत्पद्यंते न चान्यत्रोत्तराश्चन्यत्र नविष्यंतीति। उक्तंच। कुसुमपुरोप्ते वीजे, मथुरायां नांकुरः समुद्भवति॥ यत्रैव तस्य वीजं तत्रैवोत्प द्यते प्रसवः। तथा ते जीवाः कर्मनिदानेन कारणेन समाकृष्यमाणास्तत्र वनस्पतिका ये वा व्युक्रमाः समागताः संतोनानाविधयोनिकासु पृथिवीष्वित्यन्येषामपि षष्णां का यानामुत्पत्तिस्थानभूतासु सचित्ताऽचित्तमिश्रासु वा श्वेतकृष्णादिवर्णतिक्तादिरससुरभ्यादि गंधमृडुकर्कशादिस्पर्शादिकैर्विकल्पैर्बहुप्रकारासु नूमिषु वृक्षतया विविधं वर्तंते तेच तत्रो त्पन्नास्तासां पृथिवीनां स्नेहं स्निग्धनावमाददते सएवच तेषामाहारइति। नच ते पृथि वीशरीरमाहारयंतः पृथिव्याः पीडामुत्पादयंति॥१॥ एवमप्कायतेजोवायुवनस्पतीनामा योज्यं। अत्रच पीडानुत्पादनेऽयं दृष्टांतः। तद्यथा। अंडोद्भवाद्याजीवामातुरूष्मणा वि वर्धमानागर्नस्थाएवोदरगतमाहारयंतोनातीव पीडामुत्पादयंत्येवमसावपि वनस्पतिका यिकः पृथिवीस्नेहमाहारयन्नातीव तस्याः पीडामुत्पादयति उत्पद्यमानः समुत्पन्नश्च वृद्धि मुपगतोऽसदृशवर्णरसाद्युपेतत्वात् वाधां विदध्यादपीति। एवमप्कायस्य नौमस्यांतरि क्षस्य वा शरीरमाहारयंति तथा तेजसोनस्मादिकं शरीरमाददति। एवं वाय्वादेरपीति द्रष्टव्यं। किंबहुनोक्तेन नानाविधानां त्रसस्थावराणां प्राणिनां यच्छरीरं तत्ते समुत्पद्यमा नाअचित्तमपि स्वकायेनावष्टभ्य प्रासुकीकुर्वंति। यदिवा परिविध्वस्तं पृथिवीकायादिश रीरं किंचित्परितापितं कुर्वंति ते वनस्पतिजीवाएतेषां पृथिवीकायादीनां तच्छरीरं पूर्वमा हारितमिति तैरेव पृथिवीकायादिनिरुत्पत्तिसमये आहारितमासीत् स्वकायत्वेन परिणा मितमासीत्। तदधुना वनस्पतिजीवस्तत्रोत्पद्यमानउत्पन्नोवा त्वचा स्पर्शेनाहारयत्याहा र्य च स्वकायत्वेन विपरिणामयति विपरिणामितं च तच्छरीरं स्वकायेन सह सरूपतां नी तं सत्तन्मयतां प्रतिपद्यंते। अपराण्यपि मूलशाखाप्रतिशाखापत्रपुष्पफलादीनि तेषां पृ थिवीकायिकानां वृक्षाणां नानावर्णानि। तथाहि। स्कंधस्यान्यथाभूतोवर्णोमूलस्य चान्या दृशइति। एवं यावन्नानाविधशरीरेषु पुजलविकुर्वितास्ते नवंतीति। तथाहि। नानारस वीर्यविपाकानानाविधपुजलोपचयात्सुरूपकुरूपसंस्थानास्ते नवंतीति। तथा दृढाल्पसंहन नाः कृशस्थूलस्कंधाश्च नवंत्येवमादिकानानाविधस्वरूपाणि विकुर्वंतीति स्थितं। कंपा

निद्राक्यादीनां वनस्पत्याद्याः स्थावरजीवाएव न नवंतीति अतस्तंत्प्रतिषेधार्थमाह् ।(ते जीवाइत्यादि ) ते वनस्पतिपूत्पन्नाजीवाउपयोगलक्षणत्वाज्जीवानां । तेषामप्याश्रयोत्स र्पणादिकया क्रिययोपयोगोलक्ष्यते । तथा विशिष्टाहारोपचयाऽपचयाभ्यां शरीरोपचयाप चयसद्भावादनेकजीवाः स्थावरास्तथा छिन्नप्ररोहणात्स्वापात्सर्वत्वगपहरणे मरणादित्येव मादयोहेतवोऽत्र इष्टव्याः। यदत्र केश्चित्स्पष्टेपि वनस्पतीनां चैतन्ये सिद्धानैकांतिकत्वादिक मुक्तं स्वदर्शनानुरागात्तदपकर्णनीयं। नहि सम्यगार्हतमताभिज्ञोसिद्धविरुद्धानैकांतिकोपन्या सेन व्यामोह्यते सर्वस्य कथंचिदभ्युपगतत्वात्प्रतिषिद्धत्वाच्चेति ते जीवास्तत्र वनस्पतिष्ठुतथा विधेन कर्मणा उपपन्नगाः। तच्चेदं एकेंद्रियजातिस्थावरनामवनस्पतियोग्यायुष्कादिकमिति तत्कर्मोदयेन तत्रोत्पन्नाउच्यंते न पुनः कालेश्वरादिना तत्रोत्पाद्यंते इत्येवमाख्यातं तीर्थ करादिभिरिति । एवंतावत्पृथिवीयोनिकावृक्षाअभिहिताः ॥ २ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवु क्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तडुवक्कमा कम्मोवगा कम्मनियाणेणं तडु वुक्कमा पुढवीजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं पुढवी जोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आ उतेउवाउवणस्सइसरीरं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरं अचि त्तं कुव्वंति परिविद्धत्थं तं सरीरं पुव्वाहारियं तयाहारियं विप्परिणामियं सा रुविकडं संतं अवरेवि यणं तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणाव न्ना णाणागंधा णाणारसा णाणाफासा णाणासंठाणसंठिया णाणाविह सरीरपुग्गलविउव्विया ते जीवा कम्मोववन्नगा नवंतीतिमक्खायं ॥ ३ ॥

अर्थ-हवे तद्योनिक वनस्पतिने विषे अन्य बीजा जीव उपजे, ए देखाडेचे, श्री सु धर्मस्वामी श्री जंबूस्वामि प्रत्यें कहेचे के, वली वनस्पतिनो ( अहावरंपुरक्खायं के० ) अ पर एटले बीजो प्रकार, पूर्वें श्री तीर्थंकर देवें कह्योचे, ते हवे कहेचे. ( इहेगतिया के० ) कोइ एक ( सत्ता के० ) जीव प्राणी. ( रुक्खजोणिया के० ) वृक्ष जेनी योनि एटले उत्पत्तिस्थानकचे, ते पृथ्वीयोनिक वृक्षने विषे वृक्ष पणेज उपजे. ( रुक्खसंभवा के०) ते पृथ्वीयोनिक वृक्षने विषे वनस्पतिकायनो संभवचे. ( रुक्खवुक्कमा के० ) तथा वृ क्षने विषे नाना प्रकारें प्रबल पणे संक्रमण छे जेनो, एटले वृद्धिचे. ( तज्जोणिया के० ) तद्योनिकचे, ( तस्संभवा के० ) तत्संभवचे, ( तडुवक्कमा के०) तेना सरखोचे उ

पक्रमजेनो ( कम्मोवगाके० ) कर्मना वशं गत वनस्पतिकायथी आवी वली तेहीज वनस्पतिकायने विषे ( कम्मनियाणेणं के० ) कर्मना कारण थकी आकर्षिता ( तडवुक्कमाके० ) त्यां आव्या उता ( पुढवीजोणिएहिंरुक्खेहिं के० ) पृथ्वीयोनिक वृक्षनी पेरें ( रुक्खत्ताएविउट्टंतिके० ) वृक्ष पणे उपजे. ते जीव तेहीज पृथ्वीयोनिक वृक्षनो स्नेह आहार आहारे, तेणे करी उपचय पामे. हवे ते जीवो शुं आहारे ? तोके पृथ्वी, अप, तेज, वायु अने वनस्पतिना शरीर, तथा नाना प्रकारना, त्रस स्थावर जीवोनां शरीर, अचित्त करे ; परंतु तेने पीडा न उपजावे, परिविध्वंस करे. ते शरीरने पूर्वें आहारयुं ते, अथवा हमणा उपजतां आहारेछे, अथवा उपना पछी आहारेछे, त्वचाने स्पर्शे करी आहारीने परिणमावीने, पोतानी काया सरखां रूप करे. इत्यादिक बीजुं सर्व पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३ ॥

॥ दीपिका–पूर्वं पृथिव्यां ये वृक्षाउत्पद्यंते ते उक्ताः । अत्र तु वृक्षेष्वेव ये वृक्षाजायंते तान् वक्ति (अहावरंति) अथापरमेतदाख्यातं पुरार्हता । इहैके सत्वावृक्षएव योनिरुत्पत्तिस्थानमाश्रयोयेषां ते वृक्षयोनिकावृक्षाः । इहच पूर्वं पृथिवीयोनिकेषु वृक्षेषु कथितं यत्तदेवात्र व्याख्येयं पूर्ववत् ॥ ३ ॥

॥ टीका–सांप्रतं तद्योनिकेष्वेव वनस्पतिषु अपरे समुत्पद्यंतइत्येतद्दर्शयितुमाह । ( अहावरमित्यादि ) सुधर्मस्वामी शिष्योद्देशेनेदमाह । अथापरमेतदाख्यातं पुरा तीर्थकरेण । यदिवा तस्यैव वनस्पतेः पुनरपरं वक्ष्यमाणमाख्यातं । तद्यथेहास्मिन् जगत्येके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिनः सत्वाः प्राणिनोवृक्षाएव योनिरुत्पत्तिस्थानमाश्रयोयेषां ते वृक्षयोनिकाः । इहच यत्पृथिवीयोनिकेषु वृक्षेष्वनिहितं तदेतेष्वपि वृक्षयोनिकेषु वनस्पतिषु तडपचयकर्तृ सर्वमायोज्यं यावदाख्यातमिति ॥ ३ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तडवक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तड वुक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउतेउवाउवणस्सइसरीरं तसथावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति परिविद्धत्थं तं सरीरं पुव्वाहारियं तयाहारियं विपरिणामियं सारूविकडं संतं अवरेवि यणं तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावन्ना जाव ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंतीति मक्खायं ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे वनस्पतिना अवयवोनो अधिकार कहेछे. (अहावरंपुरक्खायं के० ) अथ हवे अपर स्थानक तीर्थंकरें कह्युंछे, ते कहेछे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव, वृक्ष ज जेनी योनि एटले उत्पत्तिस्थानकछे, वृक्षने विषेज जेनो संभवछे, एटले वृक्षिछे वृक्षने विषेज जेनुं नाना प्रकारें संक्रमणछे, ते योनिक ते संभवछे कर्मना वशंगत वनस्पतिकाय थकी आवी वली तेज वनस्पतिने विषे कर्मने कारणें आकर्षिता त्यां आव्या छता, वृक्षयोनिक वृक्षने विषे वृक्ष पणे उपजे. ते जीव तेहज वृक्षयोनिक वृक्षनो स्नेह आहारे ते जीव आहारे पृथ्वी, अप, तेज, वायु, अने वनस्पति कायनां शरीर, त्रस अने स्थावर प्राणीनां शरीर अचित्त करे परिविध्वंस करे ते वनस्पतिना जीव पृथ्वीकायादिकनुं जे शरीर पूर्वे आहार्युं, तथा हमणां उपजतां अथवा उपनां पछी जे आहारेछे, ते त्वचाने स्पर्शे करी आहारीने परणमावीने पोतानी काया सरखां रूप करे, ते अवयवरूप रूप करे, ते कहेछे. एक मूल, बीजुं कंद, त्रीजी त्वचा, चोथी शाखा, पांचमां प्रवाल एटले नवांकुर, छठा पुष्प, सातमां पत्र, आठमां फल, नवमां बीज, दशमो स्कंधभूत, ते वृक्षनां ए दश स्थानकने विषे जीव उपजे छे. ते वृक्ष योनिक, ते वृक्षना शरीर नाना प्रकारना वर्ण वाला यावत् ते वनस्पतिना जीव कर्मना उदयें उपना होय. एरीतें भगवंत श्री तीर्थंकर देवें कह्या, परंतु काल ईश्वरादिक कारण कोइ नथी. ॥४॥

---

॥ दीपिका—अथापरमेतदाख्यातं । इदं वनस्पत्यवयवसूत्रं । यथा इहैके जीवावृक्षयोनिकाः स्युस्तदवयवाश्रिताश्चान्ये वनस्पतिरूपाएव जीवाः स्युः । तथाहि । योहि एकोवनस्पतिजीवः सर्ववृक्षावयवव्यापी स्यात् तस्य चापरे तदवयवेषु मूल १ कंद २ त्वक् ३ शाखा ४ प्रवाल ५ पुष्प ६ पत्र ७ फल ८ बीज ९ स्कंध, १० भूतेषु दशस्थानेषु जीवाः समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पद्यमानावृक्षयोनिकावृक्षोद्भवावृक्षव्युत्क्रमाश्चोत्पद्यंते इति शेषं पूर्ववत् । इह चत्वारि सूत्राणि यथापूर्वमुक्तानि । यथा वनस्पतयः पृथिव्याश्रिता भवंतीत्येकं १ तच्छरीरमप्कायादिशरीरं चाहारयंति २ वृक्षास्तदाहारितं शरीरमचित्तं विध्वस्तंच कृत्वात्मसात्कुर्वंति ३ अन्यान्यपि तेषां पृथिवीयोनिकानां वनस्पतीनां शरीराणि मूलकंदादीनि नानावर्णानि भवंति ४ एवमत्रापि चत्वारि सूत्राणि ज्ञेयानि ॥ ४ ॥

---

॥ टीका—सांप्रतं वनस्पत्यवयवानधिकृत्याऽऽह । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातं तदर्शयति । इहास्मिन् जगत्येके न सर्वे तथाविधकर्मोदयवर्तिनोवृक्षयोनिकाः सत्त्वाभवंति तदवयवाश्रिताश्च परे वनस्पतिरूपाएव प्राणिनोभवंति । तथा योह्येकोवनस्पतिजीवः सर्ववृक्षावयवव्यापी भवति तस्य चापरे तदवयवेषु मूलकंदस्कंधत्वक्शाखाप्रवा

लपत्रपुष्पफलबीजभूतेषु दशसु स्थानेषु जीवाः समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पद्यमानावृक्षयो निकावृक्षव्युत्क्रमाश्चोच्यंते इति । शेषंपूर्ववत् । इहच प्राक्चतुर्विधार्थप्रतिपादकानि सूत्राण्यभिहितानि । तद्यथा । वनस्पतयः पृथिव्याश्रिताभवंतीत्येकं तच्छरीरं १ अप्कायादिशरीरं वाऽऽहारयंतीति द्वितीयं २ तथा विवृक्षास्तदाहारितं शरीरमचित्तं विध्वस्तंच कृत्वात्मसात्कुर्वंतीति तृतीयं ३ अन्यान्यपि तेषां पृथिवीयोनिकानां वनस्पतीनां शरीराणि मूलस्कंधकंदादीनि नानावर्णानि भवंतीति चतुर्थं ४ एवमत्रापि वनस्पतियोनिकानां वनस्पतीनामेवंविधार्थप्रतिपादकानि चतुःप्रकाराणि सूत्राणि द्रष्टव्यानीति यावत्ते जीवावनस्पत्यवयवमूलस्कंधादिरूपाः कर्मोपपन्नगाभवंत्येवमाख्यातं ॥ ४ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तड्वक्कमा कम्मोवगा कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खेसु मूलत्ताए कंदत्ताए खंधत्ताए तयत्ताए सालत्ताए पवालत्ताए पत्तत्ताए पुप्फत्ताए फलत्ताए बीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउतेउवाउवणस्सइ णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुवंति परिविद्धत्थं तं सरीरगं जाव सारूविकडं संतं अवरेवियणं तेसिं रुक्खजोणियाणं मूलाणं कंदाणं खंधाणं तयाणं सालाणं पवालाणं जाव बीयाणं सरीरा णाणावण्णा णाणागंधा जाव णाणाविहसरीरं पुग्गल विउविता ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंतीति मक्खायं॥५

अर्थ–अथ हवे अन्य स्थानक पूर्वे तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहे कोइ एक वृक्ष योनिक तथा अन्य तेना अवयवरूप प्राणी उपजे तथा जे एक वनस्पतिनो जीव सर्व वृक्षना अवयव व्यापारें, अन्य जीव वली तेना अवयव व्यापारें, ते वृक्षने विषे मूल पणे, कंद पणे, स्कंध पणे, त्वचा पणे, शाखा पणे, पत्र पणे. फूल पणे, फल पणे अने बीज पणे, प्रवाल एटले अंकुरपणे, एटला स्थानकें उपजे. ते जीव त्यां उपजता वृक्ष योनिक वृक्षनो स्नेह आहारे. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. यावत् ते जीव मूल कंदादिक वनस्पतिना अवयवरूप कर्म तेने वशें त्यां उपजे. एम श्रीतीर्थंकरें कह्युंछे. ॥ ५ ॥

---

॥ दीपिका–अथवृक्षोपर्युत्पन्नान् वृक्षानाश्रित्याह । ( अहावरमिति ) अथापरमेतदाख्यातं । इहैके सत्वावृक्षयोनिकाः स्युः । तस्यैकस्य वनस्पतेर्मूलारंभस्य उपचयकारिण

स्ते वृक्षयोनिकाउच्यंते । यदिवा मूलस्कंधादिकाः पूर्वोक्तदशस्थानवर्तिनस्ते एवमुच्यंते। अत्रापि सूत्रचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ ५ ॥

॥ टीका–सांप्रतं वृक्षोपर्युत्पन्नान् वृक्षानाश्रित्याह । (अथावरमिति) अथापरमेतत्पुराऽऽख्यातं यद्वक्ष्यमाणमिहैके सत्वावृक्षयोनिकाभवंति । तत्र ये ते पृथिवीयोनिकावृक्षास्तेष्वेव प्रतिप्रदेशतया येपरे समुत्पद्यंते तस्यैकस्य वनस्पतेर्मूलारंभकस्योपचयकारिणस्ते वृक्षयोनिकाइत्यभिधीयंते । यदिवा ये ते मूलकंदस्कंधशाखादिकाः पूर्वोक्तदशस्थानवर्तिनस्तएवमभिधीयंते तेषुच वृक्षयोनिकेषु वृक्षेषु कर्मोपादननिष्पादितेषु उपर्युपरि अध्यारोहंतीत्यध्यारुहावृक्षोपरिजातावृक्षाभिधानाः कामवृक्षाभिधानावा द्रष्टव्यास्तदभावेऽवापरे वनस्पतिकायाः समुत्पद्यंते वृक्षयोनिकेषु वनस्पतिष्विति । इहापि प्राग्वच्चत्वारि सूत्राणि द्रष्टव्यानि ॥ ५ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तडवक्कमा कम्मोववन्नगा कम्मनियाणेणं तव वुक्कमा रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं अक्षारोहत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं जाव सारूविकडं संतं अवरेवि यण तेसिं रुक्खजोणियाणं अक्षारुहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे वृक्ष उपरना वृक्ष आश्री कहेछे. अथ हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थकरें कह्युंछे. आजगत्मांहे कोइ एक वृक्षयोनिक सत्व एटले जीव होयछे त्यां जे पृथ्वीयोनिक वृक्ष, ते वृक्षने विषेज बीजा मूलादिक वृद्धिना करनार, ते वृक्षयोनिक वृक्षने विषे अवयवरूपे उपजे, तेनी उपर उपर जे आरूढे ते वल्ली वृक्षादिक अथवा पींपलादिक वड वृक्षनी उपर उपजे, ते कामवृक्षादिक जाणवा. ते कारणे एने अध्यारोह वृक्ष कहियें, ते अध्यारोह, वृक्षनोज स्नेह आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् जाणी लेवुं ते यावत् पोताना कर्मने वशे उपजे. एटले अध्यारोहनुं प्रथम सूत्र कह्युं ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–वृक्षयोनिकेषु एके अध्यारोहाजायंते वृक्षोपरिजातावृक्षाअध्यारोहाइत्युच्यंते । तेच वल्लीवृक्षाभिधानाः । शेषं प्राग्वत् । इदं प्रथमसूत्रं ॥ ६ ॥

॥ टीका–तद्यथा योनिकेषु वृक्षेष्वपरेऽध्यारुहाः समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पन्नाः सयोनिभू

तं वनस्पतिशरीरमाहारयंति तथा पृथिव्यप्तेजोवाय्वादीनां शरीरकमाहारयंति तथा तछरीरमाहारितं सदचित्तं विध्वस्तं परिणामितमात्मसात्कृतं स्वकायावयवतया व्यवस्थापयंत्य पराणिच तेषामध्यारुहाणां नानाविधरूपरसगंधस्पर्शोपेतानि नानासंस्थानानि शरीराणि नवंति ते जीवास्तत्र स्वकृतकर्मोपपन्ना नवंतीत्येतदाख्यातमिति प्रथमं सूत्रं ॥ ६ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता अज्झारोहजोणिया अज्झारोहसं नवा जाव कम्मनियाणेणं तब वुक्कमा रुक्खजोणिएसु अज्झारोहेसु अ ज्झारोहत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति ते जीवा पुढवीसरीरं जाव सारूवि कडं संतं अवरेवि यणं तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमक्खायं ॥ ७ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युंछे, ते कहेछे. जे प्रथम वृक्षयोनिक वृक्ष ने विषे अध्यारोह कह्या,तेनेज विषे वली बीजा प्रदेश वृद्धिना करनार एवा अध्यारोह वनस्पति पणे उपजे; ते जीव अध्यारोह प्रदेशने विषे उपना ते वृक्षयोनिक अध्यारोहनो स्नेह आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् जाणवुं. एटले अध्यारोहनुं बीजुं सूत्र कह्युं. ॥७॥

॥ दीपिका—प्राग्वृक्षयोनिकेषु वृक्षेष्वध्यारोहाउक्ताः । अत्र तेष्वेवान्ये प्रतिप्रदेशोपचयकर्तारोऽध्यारोहवनस्पतित्वेन जायंते । तेच जीवाअध्यारोहप्रदेशेषूत्पन्नाअध्यारोहजीवास्तेषां स्वयोनिनूतानि शरीराणि आहारयंति तत्र पराण्यपि पृथिव्यादिनि शरीराण्याहारयंति अपराणि वाऽध्यारोहसंनवानामध्यारुहजीवानां नानावर्णकादिकानि शरीराणि नवंत्येवमाख्यातमिति द्वितीयं सूत्रं ॥ ७ ॥

॥ टीका—द्वितीयं त्विदमपापरं पुराख्यातं । ये ते प्राग्वृक्षयोनिषु वृक्षेषु अध्यारुहाः प्रतिपादितास्तेष्वेवोपरि प्रतिप्रदेशोपचयकर्तारोऽध्यारुहवनस्पतित्वेनोपपद्यंते । तेच जीवाअध्यारुहप्रदेशेषूत्पन्नाअध्यारुहजीवास्तेषां स्वयोनिनूतानि शरीराण्याहारयंति । तथाऽपराण्यपि पृथिव्यादीनि शरीराणि आहारयंति अपराणि चाध्यारुहसंनवानामध्यारुहजीवानां नानाविधवर्णकादिकानि शरीराणि नयंतीत्येवमाख्यात. ॥ ७ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता अज्झारोहजोणिया अज्झारोहसंन वा जाव कम्मनियाणेणं तब वुक्कमा अज्झारोहजोणिएसु अज्झारोह

त्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारंति पुढविसरीरा आउसरीरा जाव सारूविक डं संतं अवरेवि यणं तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ८ ॥

अर्थ-अथ हवे अन्य स्थानक तीर्थंकरें कह्युंछे. आजगत् मांहे कोइ एक जीव, अध्यारोहयोनियाछे, ते अध्यारोह योनिया तेने विषे वली अध्यारोह पणे उपजे, ते अध्यारोहयोनिक अध्यारोहनां शरीर आहारे. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. आहीं पूर्वे बीजा सूत्रमां वृक्षयोनिक अध्यारोहनां शरीर बीजा अध्यारोह जीव अहारे, अने आ त्रीजा सूत्रमां अध्यारोहयोनिक अध्यारोह जीवनां शरीर अहारे, एटलुं विशेषछे. ए अध्यारोहनुं त्रीजुं सूत्र कह्युं. ॥ ८ ॥

---

॥ दीपिका-एके सत्वाअध्यारोहसंभवेषु अध्यारोहेषु अध्यारोहत्वेन जायंते। येच एवं जायंते तेऽध्यारोहयोनिकानाध्यारोहाणां यानि शरीराणि तान्याहारयंति। द्वितीयसूत्रे वृक्षयोनिकानामध्यारोहाणां यानि शरीराणि तान्यपरेऽध्यारोहाजीवाआहारयंति। अत्रतु अध्यारोहयोनिकानां अध्यारोहजीवानां शरीराणीति विशेषः। इदं तृतीयसूत्रं ॥ ८ ॥

---

॥टीका-तृतीयं त्विदं (अहावरमित्यादि) अथापरं पुराख्यातं। तद्यथा। इहैके सत्वा अध्यारुहसंभवेष्वध्यारुहत्वेनोपपद्यंते। ये चैवमुत्पद्यंते तेऽध्यारुहजीवाआहारयंति। तृतीये त्वध्यारुहयोनिकानामध्यारुहजीवानां शरीराणि द्रष्टव्यानीति विशेषः॥ ८ ॥

अहावरं पुरकायं इहेगतिया सत्ता अज्झारोहजोणिया अज्झारोह संभवा जाव कम्मनियाणेणं तछ वुक्कमा अज्झारोहजोणिएसु अज्झारोहेसु मूलत्ताए जाव वीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सिणेहमाहारेंति जाव अवरेवि यणं तेसिं अज्झारोहजोणियाणं मूलाणं जाव वीयाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ए ॥

अर्थ-हवे अध्यारोहनुं चोथुं सूत्र श्री तीर्थंकरें कह्युंछे, ते कहेछे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव, अध्यारोहयोनिक ते अध्यारोहने विषे मूल कंदादिक अवयव पणे उपजे, ते त्यां उपना थका तेनां शरीर आहारे, इत्यादिक अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ए॥

---

॥ दीपिका-अथापरमिदमाख्यातं इहैके सत्वाअध्यारुहयोनिकेष्वध्यारोहेषु मूलकंद

स्कंधत्वक्शाखाप्रवालपत्रपुष्पफलबीजत्वेन जायंते ते तथा कर्मोपगाभवंतीत्याख्यात मिति, चतुर्थं सूत्रं ॥ ए ॥

॥ टीका—इदंतु चतुर्थकं । तद्यथा (अहावरमित्यादि) अथापरमिदमाख्यातं । तद्यथा इहैके सत्वाअध्यारुहयोनिकेष्वध्यारुहेषु मूलकंदस्कंधत्वक्शाखाप्रवालपत्रपुष्पफलबीज भावेनोत्पद्यंते तेच तथाविधकर्मोपगाभवंतीत्येतदाख्यातमिति शेषं तदेवेति ॥ ए ॥

अहावरं पुरकायं इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंनवा जाव णाणाविहजोणियासु पुढवीसु तणत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणावि हजोणियाणं पुढवीणं सिणेहमाहारेंति जाव ते जीवा कम्मोववन्ना भवंती तिमरकायं॥१०॥एवं पुढविजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति जावमरका यं ॥ ११ ॥ एवं तणजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति तणजोणियं त णसरीरं च अहारेंति जावमरकायं ॥१२॥ एवं तणजोणिएसु तणेसु मूल त्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति तेजीवा जावएव मरकायं ॥१३॥ एवं नस हीणवि चत्तारि आलावगा ॥१४॥ एवं हरियाणवि चत्तारि आलावगा॥१५॥

अर्थ—हवे वली वृक्ष वर्जीने बीजा वनस्पतिकायना विशेष आश्री कहेछे. हवे बीजुं स्थानक पूर्वे तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहे कोइ एक पृथ्वीकाय योनिक पृथ्वीनेविषे वनस्पतिकायनो संनवछे, पृथ्वीव्युत्क्रमछे, यावत् नाना प्रकारें योनिक, पृथ्वीने विषे तृण पणे उपजे, ते पृथ्वीनो आहार आहारे. इत्यादिक जेम वृक्षनो पहेलो आलावो क ह्यो हतो, तेमज जाणवो. एमज चार आलावा जेम वृक्षना कह्याछे, तेम तृणना पण जाणवा ॥ १० ॥ बीजे आलावे पृथ्वीयोनिक तृणनेविषे उपजे. आगलनुं सर्व पूर्ववत् जाणवुं, ॥ ११ ॥ त्रीजे आलावे तृणयोनिक तृणनेविषे तृणपणे उपजे. शेषं पूर्ववत् जाणवुं ॥ १२ ॥ चोथे आलावे तृणयोनिक तृणने विषे मूलकंदादिकने भावें उपजे. शेषं पूर्ववत् जाणवुं, ॥ १३ ॥ ( एवंउसहीणविचत्तारिआलावगा के० ) एज रीतें उषधि एटले धान्यनी जाति तेना पण चार आलावा जाणवा ॥ १४ ॥ (एवंहरियाणविचत्ता रिआलावगा के० ) एवं हरितकाय आश्री पण चार आलावा जाणवा. ए सर्व मली ने वीश आलावा थया. ॥ १५ ॥

॥ दीपिका—अथ वृक्षवर्जितं शेषवनस्पतिमाश्रित्याह । अथापरमिदमाख्यातं । इहै

के सत्वाः पृथिवीयोनिकाः पृथिवीसंभवाइत्यादयोयथावृक्षेषु चत्वारि सूत्राणि एवं तृणा न्यप्याश्रित्य ज्ञेयाः । ते चामी नानाविधासु पृथिवीयोनिषु तृणत्वेनोत्पद्यंते पृथिवीशरीरं चाहारयंतीत्येकं, ॥१०॥ पृथिवीयोनिकेषु तृणेपूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंतीति द्वितीयं ॥११॥ तृणयोनिकेषु तृणेपूत्पद्यंते तृणयोनिकतृणशरीरं चाहारयंतीति तृतीयं ॥ १२ ॥ तृणयोनिकेषु तृणावयवेषु मूलादिषु दशस्थानेपूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंतीति चतुर्थं सूत्रं ॥ १३ ॥ ( एवंतत्तहीणं ) इत्यादि सुगमं ॥ १४ ॥ १५ ॥

---

॥ टीका-सांप्रतवृक्षव्यतिरिक्तं शेषवनस्पतिकायमाश्रित्याह । (अथावरमित्यादि) अ थापरमिदमाख्यातं यडत्तरत्र वक्ष्यते । तद्यथा । इहैके सत्वाः पृथिवीयोनिकाः पृथिवी संभवाः पृथिवीव्युत्क्रमाइत्यादयोयथावृक्षेषु चत्वारआलापकाएवं तृणान्यप्याश्रित्य इष्ट व्याः । ते चामी नानाविधासु पृथिवीयोनिषु तृणत्वेनोपपद्यंते पृथिवीशरीरं चाहारयंति ॥१०॥ द्वितीयंतु पृथवीयोनिकेषु तृणेपूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंतीति ॥ ११ ॥ तृतीयं तु तृणयोनिकेषु तृणेपूत्पद्यंते तृणयोनिकशरीरं चाहारयंतीति ॥१२॥ चतुर्थं तृणयोनिकेषु तृणावयवेषु मूलादिषु दशप्रकारेपूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंत्येवं यावदाख्यातमिति ॥१३॥ एवमौषध्याश्रयाश्चत्वारआलापकाजणनीयाः ॥१४॥ नवरमोषधिग्रहणं कर्तव्यमेवं हरिताश्रयाश्चत्वारआलापकाजणनीयाः । कुहणेषु त्वेकएवालापकोऽपृथ्व्यस्तद्योनिकानाम परेषामनावादिति नावः ॥ १५ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंभवा जाव कम्म नियाणेणं तह वुक्कमा णाणाविहजोणियासु पुढवीसु आयत्ताए वायत्ताए कायत्ताए कूहणत्ताए कंडुकत्ताए उवेहणियत्ताए निवेहणियत्ताए सवत्ताए उत्तगत्ताए वासाणियत्ताए कूरत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहजो णियाणं पुढवीणं सिणेहमाहारेंति तेवि जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जा व संतं अवरेवियणं तेसिं पुढविजोणियाणं आयत्ताणं जाव कूराणं सरी रा णाणावण्णा जावमक्खायं एगोचेव आलावगो सेसा तिण्णि णत्थि ॥ १६ ॥

अर्थ-अथ हवे अन्य स्थानक पूर्वे तीर्थंकर देवें कह्युंछे. आ जगत् मांहे कोइ एक सत्व, पृथ्वीयोनिक पृथ्वीने विषे संभवछे. यावत् कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां उप ना थता नाना प्रकारनी योनीने विषे, पृथ्वीने विषे, आर्यनामा वनस्पति पणे, वाय नामा वनस्पति पणे, कायनामा वनस्पति पणे कुहणत्ताए एटले तोईकोडी नामा

वनस्पतिपणे, कंडुकनामा वनस्पतिपणे, उवद्दिणिकानामा वनस्पतिपणे, निर्वेह्णीय नामा वनस्पतिपणे, सछत्रपणे, छत्तगत्ताए पणे, वासाणितापणे, कुरुनामा वनस्पति पणे, उपजे. ते जीव तेहीज नानाविध योनिक पृथ्वीनो स्नेह आहारे ते जीव पृथिव्या दिकनां शरीर आहारीने, यावत् पोतानी काया सरखां रूप करे. बीजा पण तेवा पृथ्वीयोनिक आयनामा वनस्पतिः यावत् कुरनामा वनस्पतिनां शरीर जेवां रूप करे ते शरीर नाना प्रकारना वर्णवालां होय. इत्यादिक यावत् पूर्ववत् भगवंते कह्युं ए कुहण नामा वनस्पतिनो विशेष ते आश्री एकज आलावो जाणवो. कारण के, ते योनिक बीजा नथी, तेथी एना शेष त्रण आलावा नथी. एनुं विशेष श्रीपन्नवणा थकी जाणवुं. एवं सर्व मली एकवीश आलावा पृथ्वीयोनिक वनस्पतिना कह्या. ॥ १६ ॥

---

॥ दीपिका—आर्यादयोवनस्पतिविशेषालोकतोज्ञेयाः । कुहणेषु तु एकएवालापकोवाच्यः । शेषास्त्रयोन संति तद्योनिकानामन्येषामभावादिति ॥ १६ ॥

---

॥ टीका—इह चामी वनस्पतिविशेषालोकव्यवहारतोऽनुगंतव्याः प्रज्ञापनातोवावसेया इति । अत्रार्थे सर्वेषामेव पृथिवीयोनिकत्वात्पृथिवीसमाश्रयत्वेनाभिहिताः । इह च स्थावराणां वनस्पतेरेव प्रस्पष्टचैतन्यलक्षणत्वात्तस्यैव प्राक्प्रदर्शितं चैतन्यं ॥ १६ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया उदगसंभवा जाव कम्मनियाणेणं तत्र वुक्कमा णाणाविहजोणिएसु उदएसु रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं उदगजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं जहा पुढविजोणियाणं चत्तारि गमा अज्झारुहाणवि तहेव तणाण उसहीणं हरियाणं चत्तारि आलावगा भणियवाएक्केक्के तहा उदगजोणियाणं रुक्खाणं इक्कक्के ॥ १७ ॥

अर्थ—हवे अप्काययोनिक वनस्पतिनुं विशेष देखाडेछे. ते अनेरुं स्थानक पूर्वे श्री तीर्थंकर देवें कह्युंछे, ते कहेछे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव उदकयोनिक उदक संभव शैवलादिक वनस्पति ते जीव, यावत् कर्मने उदयें नानाविध योनिक पाणीने विषे वृक्षपणे उपजे. त्यां उपना छता नानाविध योनिक उदकनो स्नेह आहारे. पृथ्वीकायादिकनुं शरीर आहारे. इत्यादिक यावत् बीजुं सर्व पूर्वनी पेठें जाणवुं. ए जेम पूर्वे पृथ्वीयोनिकवृक्षना चार आलावा कह्या, तेम आहीं पण अप्काययोनिक वृक्षना चार आला

वा जाणवा. ए सर्व मली पच्चीश आलावा थया ॥ २५ ॥ तेमज अध्यारोहना पण उदक योनि आश्री चार आलावा कहेवा तेमज तृणना पण चार आलावा उदकयोनी आश्री कहेवा. ॥ ३२ ॥ तथा उपधिना पण चार आलावा कहेवा ॥ ३७ ॥ एम हरितकायना पण चार आलावा आदिं उदकयोनिकने विषें जाणवा. एम एकेकना चार चार आलावा करतां बधा मलीने वीश आलावा उदक योनिक वनस्पतिना थया; तथा एकवीश आलावा पूर्वें पृथ्वीयोनिक वनस्पतिना कह्याछे, ए बधा मलीने एकतालीश आलावा वनस्पतिना थया ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—अथाप्काययोनिकस्य वनस्पतेः स्वरूपमाह । अथापरमाख्यातं । इहैके सत्वाउदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा तेच कर्मवशगानानाविधयोनिकेषु जलेषु वृक्षत्वेन पनकशैवलादित्वेन जायंते तेच जलशरीरमाहारयंति न केवलं तदेवान्यदपि पृथिव्यादिशरीरमाहारयंति। यथा पृथ्वीयोनिकानां वृक्षाणां चत्वारआलापकास्तथा जलयोनिकानां वृक्षाणां न स्युः। तत्रोत्पन्नानामन्यविकल्पाभावात् किंतर्हि? एकएवाऽऽलापकः स्यात्॥ १७॥

॥ टीका—सांप्रतमप्काययोनिकस्य वनस्पतेः स्वरूपं दर्शयितुमाह । ( अथावरमित्यादि ) अथानंतरमेतद्वक्ष्यमाणमाख्यातं । तद्यथा । इहैके सत्वास्तथाविधकर्मोपचया उदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा तथोदके संभवोयेषां ते तथा यावत्कर्मनिदानेन संदानितास्तडुपक्रमाभवंतीति । तेच तत्कर्मवशगानानाविधयोनिपूदकेषु वृक्षत्वेन व्युत्क्रामंत्युत्पद्यंते । येच जीवाउदकयोनिकावृक्षत्वेनोत्पन्नास्ते तच्छरीरमुदकं शरीरमाहारयंति न केवलं तदेवान्यदपि पृथिवीकायादिशरीरमाहारयंतीति । शेषं पूर्ववत् । यथा पृथिवीयोनिकानां वृक्षाणां चत्वारआलापकाएवमुदकयोनिकानामपि वृक्षाणां भवंतीत्येवं द्रष्टव्यं । अपरस्य प्रागुक्तस्य विकल्पाभावादिति किंतर्हि? एकएवालापकोभवति ॥ १७ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया उदगसंभवा जाव कम्मणियाणेणं तछ वुक्कमा णाणाविहजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए अवगत्ताए पणगत्ताए सेवालत्ताए कलंवुगत्ताए हडत्ताए कसेरुगत्ताए कछभाणियत्ताए उप्पलत्ताए पउमत्ताए कुमुयत्ताए नलिणत्ताए सुभगत्ताए सोगंधियत्ताए पोंमरियमहापोंमरियत्ताए सयपत्ताए सहस्सपत्ताए एवं कहलारकोकणयत्ताए अरविंदत्ताए तामरसत्ताए भिसभिसमुणालपुक्खलत्ताए पुक्खलछिभगत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविह

जोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं उदगजोणियाणं उदगाणं जाव पुक्खल च्छिभगाणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं एगोचेव आलावगो ॥१८॥

अर्थ—हवे अनेरुं स्थानक पूर्वे तीर्थंकरे कह्युंछे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव उदकयोनिक उदकने विषे वनस्पतिकायनो संभव, यावत् कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां आव्या हता नानाविध योनिक उदकने विषे उदक पणे, अवनक पणे, पणग एटले पन्य पणे, सेवाल पणे, कलंबुक पणे, आहडपणे, कसेरुग पणे, कच्छनाण पणे, उत्पलनामा कमलनी जाति पणे, लाल वर्णे सूर्यविकाशी-कमलनी जाति पणे, चंद्रविकासी कमलनी जाति पणे, नलिन कमलनी जाति पणे, सुभग कमल पणे, सुगंध कमलनी जाति पणे, पुंमरीक एटले धवलश्वेत कमलनी जाति पणे, महापुंमरीक एटले अत्यंत धवलश्वेत कमलनी जाति पणे,सो पांखडीछे जेनी एवा कमलनी जाति पणे पुष्कर जे थकी पान निकले ते पणे उपजे; हजार पांखडी छे जेनी एवा कमलनी जाति पणे, एम कह्लारनी जाति पणे, कोकणा पणे, अरविंद कमल पणे, तामरस कमल पणे, बीस मृणाल पणे, पुष्कर पणे, उपजे; एटले एवा एवा नावें उपजे, ते जीव नाना विध योनिक उदकनो स्नेह आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् कहेवुं. एनो एकज आलावोछे, पण बीजा आलावा नथी. ए उदक योनिक वनस्पतिनाएकवीश आलावा, एम बधामली वनस्पतिकायना वेहेंतालीश आलावा थया ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—एतेषामुदकाकृतीनामवकपनकादीनामन्यस्य प्रागुक्तविकल्पस्याभावादेक एवालापकः स्यात् । एते जलाश्रिताः कलंबकाहडादिवनस्पतयोलोकतोज्ञेयाः ॥ १८ ॥

॥ टीका—एतेषां हि उदकाकृतीनां वनस्पतिकायानां तथावयवपनकशैवलादीनामपरस्य प्रागुक्तस्य विकल्पस्याभावादिति । एते च उदकाश्रयावनस्पतिविशेषाः कलंबुकाहडादयोलोकव्यवहारतोवसेयाइति ॥ १८ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता तेसिं चेव पुढवीजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं रुक्खजोणिएहिं अज्झारोहेहिं अज्झारोहजोणिएहिं अज्झारुहेहिं अज्झारोहजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं पुढविजोणिएहिं तणेहिं तणजोणिएहिं तणेहिं तणजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं एवं उसहीहिं वि तिन्नि आलावगा एवं हरिएहिं वि तिन्नि आ

लावगा पुढविजोणिएहिंवि आएहिं काएहिं जाव कूरेहिं उदगजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणियेहिं मूलेहिं जाव बीएहिं एवं अज्झारुहेहिंवि तिन्नि तणेहिंवि तिन्नि आलावगा उसहीहिंवि तिन्निहरि एहिंवि तिन्नि उदगजोणिएहिं उदएहिं अवएहिं जाव पुक्खलत्थिभ एहिं तसपाणत्ताएविउट्टंति ॥ १९ ॥ तेजीवा तेसिं पुढवीजोणियाणं उदगजो णियाणं रुक्खजोणियाणं अज्झारोहजोणियाणं तणजोणियाणं उसहीजो णियाणं हरियजोणियाणं रुक्खाणं अज्झारुहाणं तणाणं उसहीणं हरि याणं मूलाणं जाव बीयाणं आयाणं कायाणं जाव करवाणं उदगाणं अ वगाणं जाव पुक्खलत्थिभगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पु ढवीसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं रुक्खजोणियाणं अज्झारोहजोणि याणं तणजोणियाणं उसहिजोणियाणं हरियजोणियाणं मूलजोणिया णं कंदजोणियाणं जाव बीयजोणियाणं आयजोणियाणं कायजोणिया णं जाव कूरजोणियाणं उदगजोणियाणं अवगजोणियाणं जाव पुक्खल त्थिभगजोणियाणं तसपाणाणं सरीरा णाणावन्ना जाव मक्खायं ॥ २० ॥

अर्थ—हवे अन्यत्र प्रकारें वनस्पतिनुं स्वरूप कहेछे. हवे अनेरुं स्थानक पूर्वे श्री तीर्थंक रदेवें कह्युं. आजगत् मांहें कोइ एक जीव ते पृथ्वीयोनिक वृक्षें करी, तथा वृक्षयोनि क वृक्षें करी, तथा वृक्ष योनिक मूलें करी, यावत् बीजें करी, तथा वृक्षयोनिक अ ध्यारोहें करी, तथा अध्यारोहयोनिक अध्यारोहें करी, तथा अध्यारोहयोनिक मूलें करी, यावत् बीजें करी, पृथ्वीयोनिक तृणें करी, तृणयोनिक तृणें करी, तृणयोनिक मू लेंकरी, यावत् बीजें करी, ए प्रकारें ए त्रणना त्रण त्रण आलावा जाणवा. ए रीतेंज व ली उंषधियें करीपण, त्रण, त्रण, आलावा जाणवा. एमज हरितकायना पण त्रण आलावा जाणवा.पृथ्वीयोनिक, आयनामा वनस्पति, कायनामा वनस्पति, यावत् कुंरवा वनामा वनस्पति, उदकयोनिकना वृक्षें करी, वृक्षयोनिकना वृक्षें करी, वृक्षयोनिकना मूलें करी, यावत् बीजें करी, एमज अध्यारोहना पण त्रण आलावा जाणवा. तृणना पण त्रण आलावा जाणवा.उंषधियें करी पण,त्रण आलावा जाणवा, हरितें करी पण त्रण आलावा जाणवा, उदकयोनिक उदक अवकपनक यावत् पुक्खलथि जे थकी पान निकले तेने विषे, त्रस प्राणि पणे उपजे.ए सर्व, बत्रीश आलावा थया. अने आगलना

बेंतालीश बधामली चमोतेर आलावा थया.॥१९॥ ते जीव ते वनस्पतिने विषे उपना थका पृथ्वीयोनिक,उदकयोनिक. वृक्षयोनिक अध्यारोहयोनिक,तृणयोनिक,उषधियोनिक, हरितयोनिक, वृक्षनो, अध्यारोहनो, तृणनो,उषधिनो, हरितनो,मूलनो, यावत् बीजनो, आयनो, कायनो,यावत् कुरवंदनो,उदकनो, अवगाहिनो,यावत् पुरकलवि एटले जे थकी पान निकले तेनो, स्नेह आहारे ते जीव पृथ्व्यादिकनां शरीर आहारीनें यावत् आप णां सरखां रूप करे. इत्यादिक अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ते जीव वृक्षयोनिक, अध्यारोह योनिक तृणयोनिक, यावत् पुरकलवि योनिक, त्रसप्राणिनां, शरीरना, नाना प्रकारना वर्ण, गंध, रस, स्पर्शवाला होय. ते पोताना कर्मने वश जाणवा. यावत् एम श्री तीर्थकर गणधरादिकें कह्युं, त्यां सुधीनो आलावो जाणवो. एटले वनस्पतिकायनुं स्वरूप कह्युं. अने पृथ्वीकायादिक चार जातिनां एकेंद्रियनां स्वरूप आगल कहेशे ॥ २० ॥

॥ दीपिका–अथ प्रकारांतरेण वनस्पत्यालापकत्रयमाह । पृथिवीयोनिकैर्वृक्षैर्वृक्षयोनिकै मूलादिभिरिति । एवं वृक्षयोनिकैरध्यारुहैः अध्यारुहयोनिकैरध्यारुहैः अध्यारुहयोनिकै मूलादिभिरिति । एवमन्येष्वपि तृणादयोज्ञेयाः । एवमुदकयोनिष्वपि वृक्षेषु योज्यं।१९।ते व नस्पतिपूत्पन्नाजीवाः पृथिवीयोनिकानां तथा उदकानां वृक्षाध्यारोहतृणौषधिहरितयोनि कानां वृक्षाणां,यावत् स्नेहमाहारयंतीत्येतदाख्यातं। तत्र त्रसानां शरीरमाहारयंतीत्यंते ज्ञे यं । इति वनस्पतीनां स्वरूपमुक्तं । शेषाः पृथिवीकायादयश्चत्वारएकेंद्रियाअग्रे वक्ष्यंते॥२०॥

॥ टीका–सांप्रतमन्येन प्रकारेण वनस्पत्याश्रयमालापकत्रयं दर्शयितुमाह । तद्य था। पृथिवीयोनिकैर्वृक्षैर्वृक्षयोनिकैर्वृक्षैस्तथा वृक्षयोनिकैर्मूलादिभिरिति । एवं वृक्षयोनिकै रध्यारुहैस्तथाध्यारुहयोनिकैर्मूलादिभिरिति । एवमन्येपि तृणादयोऽप्यवाः । एवमुद कयोनिकेष्वपि वृक्षेषु योजनीयं ॥१९॥ तदेवं पृथिवीयोनिकवनस्पतेरुदकयोनिकवनस्प तेश्च भेदानुपदर्श्याऽधुना तदनुवादेनोपसंजिघृक्षुराह । ( तेजीवाइत्यादि ) ते वनस्पति पूत्पन्नाजीवाः पृथिवीयोनिकानां तथोदकवृक्षाध्यारुहतृणौषधिहरितयोनिकानां वृक्षाणां यावत्स्नेहमाहारयंतीत्येतदाख्यातमिति। तथा त्रसानां प्राणिनां शरीरमाहारयंत्येतदवसा ने द्रष्टव्यमिति । तदेवं वनस्पतिकायिकानां सुप्रतिपाद्यचैतन्यानां स्वरूपमभिहितं । शे षा पृथ्वीकायादयश्चत्वारएकेंद्रियाउत्तरत्र प्रतिपादयिष्यंते ॥ २० ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं मणुस्साणं, तंजहा कम्मभूमगाणं अकम्म भूमगाणं अंतरदीवगाणं आरियाणं मिलुक्खयाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावकासेणं इत्थीए पुरिस्ससयं कम्मकडाए जोणिए एत्थणं मेहुणवत्ति

याएव णामं संजोगे समुप्पज्जइ ते डुहउवि सिणेहं संचिणंति तत्थणं जीवा इत्थित्ताए पुरिसत्ताए णपुंसगत्ताए विउट्टंति ते जीवा माउउयं पिउसुक्कं तं तडुनयं संसर्ह कलुसं किब्बिसं तं पढमत्ताए आहारमाहारेंति ततो पग जं से माया णाणाविहाउ रसविईउ आहारमाहारेंति ततो एगदेसेणं उय माहारेंति आणुपुवेण वुड्ढा पलिपागमणुविन्ना ततोकायातो अनिनिवट्ट माणा इत्थिं वेगया जणयंति पुरिसं वेगया जणयंति णपुंसगं वेगया जणयं ति ते जीवा म्हरा समाणा माउक्खीरं सप्पिं आहारेंति आणुपुवेणं वुड्ढा उ यणं कुम्मासं तसथावरेय पाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव सा रूवि कडं संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं मणुस्सगाणं कम्मनूम गाणं अकम्मनूमगाणं अंतरद्दीवगाणं आरियाणं मिलक्खूणं स रीरा णाणावण्णा नवंतीतिमक्खायं ॥ ११ ॥

अर्थ—हवे त्रसकायनो अवसर छे. ते त्रसकाय तो एक नारकी, बीजा तिर्यंच, त्रीजा मनुष्य, अने चोथा देवता, ए चार प्रकारे छे. तेमांहें नारकी अप्रत्यक्ष पणे अनुमान ग्राह्य जाणवा. अथवा डुष्कृत कर्मनां जे फल तेना नोगवनार छे, तेने आहार पण, एकांते अशुन पुज्ञल थकी नीपनो उज थकीछे, पण प्रक्षेप थकी नथी, अने देवता पण हमणां प्राय. अनुमानगम्यछे, तेनो आहार एकांत शुनछे, तेनो पण उजाहारछे. परंतु प्रक्षेपकृत नथी. देवतानो आहार बे प्रकारेछे. एक आनोगिक बीजो अनानोगि क, तेमां जे अनानोगिक ते समय समयपर छे अने आनोगिक ते, जघन्यथीतो चतुर्थ नक्तें आहार, अने उत्कृष्ट तेत्रीश हजार वर्षे आहारछे. हवे तिर्यंच अने मनुष्य मांहें प्रथम मनुष्यनुं स्वरूप कहेछे. अथ हवे बीजुं अन्य स्थानक श्री तीर्थंकर देवें प रापूर्वें कह्युछे. आ जगत् माहें नाना प्रकारनां मनुष्यछे, एक आर्य, एक अनार्य, एक पन्नर कर्म नूमीनां उपना, एक त्रीश अकर्म नूमीनां उपना, एक अंतर द्दीपनां उप नां, एक आर्य, एक म्लेछ छे. ( तेसिंचणंअहावीएणं के० ) तेनें यथा बीजें करी एटले स्त्री पुरुष नपुंसकने नेदें करी, जे जेनुं बीज ते यथा बीज, तेणें करी, तथा यथावकाशें एटले मातानी कुक्ष्यादिक जेम वाम कुक्षे स्त्री उपजें, दक्षिण कुक्षें पुरुष उपजे, अने वाम दक्षिणाश्रित नपुंसक उपजे, इत्यादिक यथावकाशें करी, (इच्छीएपुरिसस्सयके०) स्त्री पुरुषना वेदनो उदय छते (कम्मकडाएजोणिएणं के०) पूर्वकर्म निर्मित योनिने विषे (एच्छणमेहुण वत्तियाएवणामंके०) आहीं मैथुन प्रत्ययिक नाम अरणी अने काष्ठनी पेठें(संजोगेसमुपज्जइ

के०) संयोग उपजे. ते संयोग उपने हते त्यां जीव. तैजस कार्मण शरीरें करी उपजे. (तेउह उविसिणेहंसंचिणंतिके०) ते जीव उपजतां हतां प्रथम समयें वेहुनो स्नेह संचिणे एट ले आहारे, ते आहारीने, ( तछणंजीवा के० ) त्यां ते जीव (इत्थित्ताएपुरिसत्ताएणपुंसग त्ताएविउट्टंति के० ) स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक पणे उपजे. (तेजीवामाउउयंपिउसुक्कंतं के० ) तेजीव माता संबंधि रक्त, अने पिता संबंधि शुक्र, ते ( तदुभयंसंसटं,के० ) वेहु मिश्रित एकठुं नलेलुं डुगञ्छनिक (कलुसंकिविसंके०) कलुष मलीन बीनत्स (तंपढमत्ताए के० ) तेनो, प्रथम समयने विषे ( आहारमाहारेंति के० ) आहार आहारे. ( ततोप ह्वा के० ) त्यार पछी, (जंसेमाया के० ) जे तेनी माता ( णाणाविहाउरसविईउ आहारमाहारेंति के० ) नाना प्रकारना रसवाला आहार आहारे, ( ततोएगदेसेणंउय माहारेंतिके०) तेवार पछी तेनो एक देशे उज आहार आहारे. (आणुपुवेणवुड्ढापलिपा गमणुविन्नाके०) ते स्नेहें करी ते जीवनी अनुक्रमें निष्पति उपजे. एवा अनुक्रमें वृद्धियें पहोंते हते (ततोकायातोअनिनिवट्टमाणाके०) तेवार पछी तेनी काया थकी एटले तेनी योनि थकी निकले ( इत्थिवेगयाजणयंतिके० ) ते एक स्त्री थइ निकले, ( पुरिसंवेगयाज णयंति के० ) एक पुरुष थइ निकले, ( णपुंसगंवेगयाजणयंति के० ) एक नपुंसक थइ निकले, (तेजीवाडहरासमाणाके०) ते जीव बालक थका (माउरकीरंसप्पिआहारेंतिके०) माताना स्तननुं डुग्ध आहारे तथा मोटो थाय त्यारे घृत आहारे. तेवार पछी (आणुपुवे णंवुड्ढाके०) अनुक्रमें वधता थका (उयणंकुम्मासंतसथावरेयपाणेतेजीवाआहारेंति के०) उदन चावलादिक अडदादिक तथा त्रस अने स्थावर प्राणी पण आहारे. (पुढविसरीरं के०)पृथ्वीनुं शरीर जे लवणादिक ते आहारे.ते आहार्यो हतो (जावसारूविकडंसंतंके०) पोताना शरीर सरखो करे, एटले पोतानी काया रूप करे, एटले ते आहार धातु पणे परिणमावे. ( अवरेवियणंतेसिं के० ) तथा बीजां पण तेने (णाणाविहाणं के०) नाना प्रकारना ( मणुस्सगाणं के० ) कर्मनूमीने विषे उपना एवा मनुष्यनां, अकर्मनूमी ना मनुष्यनां, अंतरद्दीपना मनुष्यनां, आर्य मनुष्यना, म्लेछ मनुष्यनां, शरीर, नाना प्रकारना वर्ण गंध रस स्पर्शे करी सहित थकां, एवां पोताना कर्मने वशें उपजे. इत्या दिक पूर्ववत् यावत् श्री तीर्थंकर गणधरें कह्युं ॥ २१ ॥

---

॥ दीपिका–अथ त्रसकायेषु पूर्वं मनुष्यानाह । अथापरमाख्यातं । नानाविधानां म नुष्याणां स्वरूपमुक्तमित्यर्थः । तद्यथा । कर्मनूमिजाइत्यादिमनुष्याणां ( यथाबीजेनेति ) यद्यस्य बीजं तत्र शुक्राधिकं नरस्य शोणिताधिकं स्त्रियाः उनयसमता नपुंसकस्य कारणमि ति । यथावकाशेनेति । योयस्यावकाशोमातुरुदरकुक्षिप्रमुखस्तत्र वामा कुक्षिः स्त्रियाः, द

क्षिणा नरस्य, उन्नयाश्रिता पंढस्येति। तत्र चाविध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजं१ विध्वस्ता यो निर्विध्वस्तं बीजं२ विध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजं ३ अविध्वस्ता योनिर्विध्वस्तं बीजं। चतुर्षु न्नंगेषु आद्यन्नंगएव उत्पत्तेरवकाशोन शेषेषु त्रिषु। अत्रच स्त्रीपुंसयोर्वेदोदये सति पूर्वकर्मकृतायां योनौ मैथुनप्रत्ययिकोरतानिलापोदयजनितोऽग्निकारणयोररणिकाष्ठयोरिव संयोगोजायते तत्संयोगेच तच्छुक्रशोणिते तैजसकार्मणाभ्यां गृहीत्वा तत्रोत्पद्यंते जीवाः। (तेडहडत्ति) ते जीवाः प्रथममुन्नयोरपि स्नेहमाचिन्वंति अविध्वस्तयोनौ। विध्वस्यते तु योनिः। पंचपंचाशिका नारी सप्तसप्ततिकः पुमानिति। द्वादशमुहूर्तान् यावद्बीजमविध्वस्तं स्यात् ततऊर्ध्वं ध्वंसयंति तत्र जीवाः कर्मवशतः स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन (विउट्टंति) जायंते ते जीवामातुः रुतुं शोणितं पितुः शुक्रं तत्तडुन्नयसंसृष्टं कलुषं किल्विषं बीजरसं तत्प्रथमतयाऽऽहारमाहारयंति ततः पश्चात्सेतस्य माता यन्नानाविधरसवंतमाहारमाहारयति तत्स्नेहेन तेषां जंतूनां वृद्धिः स्यात् ततस्तदेकदेशेन त्वगेकदेशेनवा मातुराहार मोजसा मिश्रेण वा लोमनिर्वाऽऽहारयति आनुपूर्व्येण यथाक्रमं पुष्टावृद्धिं प्राप्ताजीवाग न्नेपरिपाकं गर्न्नेनिष्पतिमनुप्रपन्नास्ततोमातुः कायादनिनिवर्तमानाः पृथग्नवंतोनिर्गच्छंति। कर्मवशादात्मनः स्त्रीन्नावमेके जनयंति एके पुंन्नावं नपुंसकन्नावं वा तेच डहरावालाः संतोमातुः क्षीरं स्तन्यमाहारयंति वृद्धाःसंतः सर्प्पिर्घृतं धान्यमोदनं कुल्मापान् नुंजते नानाविधान् त्रसस्थावरान् प्राणिनोजीवान् आहारयंति। नानायोनिकजंतुशरीराण्याहारयंतीत्यर्थः। नानामनुष्याणां शरीराणि केचित्तयोनिकत्वादाहारयंति इत्याख्यातं ॥२१॥

---

॥ टीका—सांप्रतं त्रसकायस्यावसरः सच नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवन्नेदन्निन्नः। तत्र नारकाअप्रत्यक्षत्वेनानुमानग्राह्याडुष्कृतकर्मफलनुजः केचन संतीत्येवं ते ग्राह्याः। तदाहारोप्येकांतेनाशुन्नपुजलनिर्वर्तितउजसा प्रक्षेपेणेति। देवाअप्यधुना बाहुल्येनानुमानगम्याएव तेषामप्याहारः शुन्नएकांतेनोजोनिवर्तितोन प्रक्षेपकृतइति। सचाऽन्नोगनिर्वर्तितोनान्नोगकृतश्च। तत्र नान्नोगकृतः प्रतिसमयन्नावी आन्नोगकृतश्च जघन्येन चतुर्नक्तकृतउत्कृष्टतस्तु त्रयस्त्रिंशद्वर्षसहस्रनिष्पादितइति। शेषास्तु तिर्यङ्मनुष्यास्तेषांच मध्ये मनुष्याणामन्यर्हितत्वात्तानेव प्राग्दर्शयितुमाह। (अथावरं पुरक्कायमित्यादि) अथानंतरमेव तु पुरा पूर्वमाख्यातं। तद्यथा। आर्याणामनार्याणां च कर्मन्नूमिजाऽकर्मन्नूमिजादीनां मनुष्याणां नानाविधयोनिकानां स्वरूपं वक्ष्यमाणनीत्या समाख्यातं। तेषांच स्त्रीनपुंसकन्नेदनिन्नानां यथा बीजेनेति। यद्यस्य बीजं तत्र स्त्रियाः संबंधि शोणितं पुरुषस्य शुक्रं एतडुन्नयमप्यविध्वस्तं शुक्राधिकं सन्मनुष्यस्य, शोणिताधिकं स्त्रियास्तत्समता नपुंसकस्य कारणतां प्रतिपद्यते तथा यथावकाशेनेति। योयस्यावकाशोमातुरुदरकुक्ष्यादिकस्तत्रापि

किल वामा स्त्रियोदक्षिणा कुक्षिः पुरुषस्योभयाश्रितः पंढइति । अत्र चाविध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजमिति चत्वारोभंगाः । तत्राप्याद्यएव भंगकउत्पत्तेरवकाशोन शेषेषु त्रिष्विति । अत्रच स्त्रीपुंसयोर्वेदोदये सति पूर्वकर्मनिर्वर्तितायां योनौ मैथुनप्रत्यायिकोरताभिलाषोदय जनितोऽग्निकारणयोररणिकाद्ययोरिव संयोगः समुत्पद्यते तत्संयोगेच तच्छुक्रशोणिते समुपादाय तत्रोत्पित्सवोजंतवस्तैजसकार्मणाभ्यां शरीराभ्यां कर्मरज्जुसंदानितास्तत्रोत्पद्यंते । तेच प्रथममुभयोरपि स्नेहमाचिन्वंत्यविध्वस्तायां योनौ सत्यामिति । विध्वस्यते तु योनिः पंचपंचाशिका नारी सप्तसप्ततिः पुरुषइति । तथा द्वादशमुहूर्तानि यावच्छुक्रशोणिते अविध्वस्तयोनिके भवतस्ततऊर्ध्वं ध्वंसमुपगच्छतइति । तत्र जीवाउभयोरपि स्नेहमाहार्य स्वकर्मविपाकेन यथास्वं स्त्रीपुन्नपुंसकभावेन (विउट्टंतित्ति) वर्तते समुत्पद्यंतइति यावत् । तदुत्तरकालं च स्त्रीकुक्षौ प्रक्षिप्ताः संतः स्त्रियाऽऽहारितस्याहारस्य निर्यासं स्नेहमाददति तत्स्नेहेनच तेषां जंतूनां क्रमोपचयादानेन क्रमेण निष्पत्तिरुपजायते । सत्ताहं कललं होइ सत्ताहं होइ बुब्बुयं इत्यादि । तदेवमनेन क्रमेण तदेकदेशेनवा मातुराहारमोजसा मिश्रेणवा लोमभिर्वाऽऽनुपूर्व्येणाहारयंति यथाक्रममानुपूर्व्येण वृद्धिमुपागताः संतोगर्भपरिपाकं गर्भनिष्पत्तिमनुप्रपन्नास्ततोमातुः कायादभिनिवर्तमानाः पृथग्भवंतः संतस्तद्योनेर्निर्गच्छंति । तेच तथाविधकर्मोदयादात्मनः स्त्रीभावमप्येकदा जनयंत्युत्पादयंत्यपरे केचन पुंभावं नपुंसकभावंच । इदमुक्तं भवति । स्त्रीपुंनपुंसकभावः प्राणिनां स्वकृतकर्मनिर्वर्तितो भवति न पुनर्योयादृगिहभवे सोमुष्मिन्नेव तादृगेवेति । तेच तदहर्जातबालकाः संतः पूर्वभवाभ्यासादाहाराभिलाषिणोभवंति मातुः स्तन्यमाहारयंति तदाहारेण चानुपूर्व्येण च वृद्धास्तदुत्तरकालं नवनीतदध्योदनादिकं यावत्कुल्माषान् भुंजंते तथाहारत्वेनोपगतास्त्रसास्थावरांश्च प्राणिनस्ते जीवाआहारयंति तथा नानाविधपृथिवीशरीरं लवणादिकं सचेतनं वाऽऽहारयंति तच्चाहारितमात्मसात्कृतं सारूप्यमापादितं सत् रसासृङ्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्राणि धातवइति सप्तधा व्यवस्थापयंत्यपराण्यपि तेषां नानाविधमनुष्याणां शरीराणि नानावर्णान्याविर्भवंति । तेच तद्योनिकत्वात्तदाधारभूतानि नानावर्णानि शरीराण्याहारयंतीत्येवमाख्यातमिति ॥ २१ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं जलचराणं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा मच्छाणं जाव सुसमाराणं तेसिंचणं अहाबीएणं आहावगासेणं इत्थीए पुरिसस्सयकम्मकडा तहेव जाव ततो एगदेसेणं उयमाहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा पलिपागमणुविन्ना ततोकायाउ अभिनिवट्टमाणा अंडं वेगया जणयंति पोयं वेगया जणयंति से अंडे उब्भिज्जमाणे इत्थिं वेगया

जणयंति पुरिसं वेगया जणयंति नपुंसगं वेगया जणयंति ते जीवा म्हरा समाणा आउसिणेहमाहारेंति आणुपुवेणं वुड्ढा वणस्सतिकायं तसथा वरेयपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं ते सिं णाणाविहाणं जलचरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मच्छाणं सुसुमा राणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥ २२ ॥

अर्थ–हवे अनेरुं स्थानक परापूर्वें तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें नाना प्रकारना जलचारी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिक जीवछे, ते कहेछे. माछलां,कछप, मगरमछ, नक्र, चक्र, पाठीन, पीठ, ग्राहक, सुसुमारादिक, तेने यथाबीजें करी स्त्रियादिकना भेदें करी, यथावकाश एटले मातानी कुक्षादिक जेम वाम कुक्षें स्त्री उपजे, इत्यादिक यथावकाशें करी स्त्री पुरुषादिक वेदने उदयें कर्म निर्वर्त्तित पूर्वयोनिने विषे, अहीं मैथुन प्रकृतिय नाम अरणीय काष्ठनी पेरें संयोगें उपजे. ( तहेव के० ) तेमज यावत् ते जीव माता नी कुक्षियें उपना पछी एक देशें उंज आहारे, अनुक्रमें वृद्धिये पोहोतो छतो तेवार पछी ते काया थकी एटले योनिथकी कालें करी निकले, निकलता थका त्यां एक जण अंम रूप, एक पोत रूप, त्यां अंमथकी वछियमान ते स्त्री पुरुष नपुंसक पणे उपजे; ते जीव बालक छतां अप्कायनो स्नेह आहारे. पछी अनुक्रमें वर्द्धमान थका एटले वृद्धि पाम्या थका वनस्पतिकायनुं शरीर तथा त्रस अने स्थावर प्राणीने आहारे. ते जीव पृथ्वीनुं शरीर आहारे यावत् पोतानी काया सरखां रूप करे. अन्य पण ते नाना प्रकारें जलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिक यावत् सुसुमारना सरखा रूप करे ते कर्मने वशें उपजे, ते नाना प्रकारना वर्ण गंध रस स्पर्शवान् थाय. एम श्री तीर्थंकरें कह्युं ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–गर्भजमनुष्याउक्ताः संमूर्छनजाश्चाग्रे वक्ष्यंते सांप्रतं तिर्यग्योनिकास्तत्रापि पूर्वं जलचरानाह । अथापरं तिर्यग्योनिकानां जलजरपंचेंद्रियाणां स्वरूपमाख्यातं प्रथमं मत्स्यकछपमकरग्राहसुसुमारादीनां यस्य यद्बीजं यस्योदराद्यवकाशोयस्तेन स्त्रियाः पुरुषस्य च कर्मकृतायां योनौ जायंते । तेच तत्र मातुराहारेण वृद्धाः स्त्रीपुंनपुंसकानामन्यतमत्वेन जायंते गर्भनिर्गताबालाः संतो ऽपांस्नेहमप्कायमेवाहारयंति । वृद्धास्तु वनस्पतिकायं अन्यान् त्रसस्थावरांश्च यावत्पंचेंद्रियानपि आहारयंति । यडुक्तं । अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम अस्तिमत्स्यस्तिमिंगिलः । तिमिंगिलगिलोप्यस्ति तग्निलोप्यस्ति राघव ! । तथा ते जीवाः पृथ्वीशरीरं कर्दमस्वरूपमाहारयंति तञ्चाऽऽहारितं स्वस्मानरूपीकृतं आत्मसात्परिणामियंति । शेषं सुगमं ॥ २२ ॥

॥ टीका—एवं तावज्जर्नेऽयुत्क्रांतजमनुष्याः प्रतिपादितास्तदनंतरं संमूर्छनजानामवस रस्तांश्चोत्तरत्र प्रतिपादयिष्यामि सांप्रतं तिर्यग्योनिकास्तत्रापि जलचरानुद्दिश्याह । (अहा वरमित्यादि) अथानंतरमेतद्वक्ष्यमाणं पूर्वमाख्यातं । तद्यथा । नानाविधजलचरपंचेंद्रिय तिर्यग्योनिकानां संबंधिनः कांश्चित्स्वनामग्राहमाह । तद्यथा । (मच्छाणंजावसुसुमाराणमि त्यादि) तेषां मत्स्यकच्छपमकरग्राहसुसुमारादीनां यस्य यथा यद्वीजं तेन तथा यथावकाशेन योयस्योदरादाववकाशस्तेन स्त्रियाः पुरुषस्यच स्वकर्मनिर्वर्तितायां योनावुत्पद्यंते । तेच तत्रानिव्यक्तामातुराहारेण वृद्धिमुपगताः स्त्रीपुंनपुंसकानामन्यतमेनोत्पद्यंते तेच जीवा जलचरागर्भाद्व्युत्क्रांताः संतस्तदनंतरं यावद्बहरंतिलघवस्तावदप्स्नेहमप्कायमेवाहा रयंति । आनुपूर्व्येणच वृद्धाः संतोवनस्पतिकायं तथापरांश्च त्रसांस्थावरांश्चाहारयंति या वत्पंचेंद्रियानप्याहारयंति । तथा चोक्तं । अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तरः॥तिमिं गिलगिलोप्यस्ति, तद्गिलोप्यस्ति राघव!॥१॥ तथा ते जीवाः पृथिवीशरीरं कर्दमस्वरूपं क्रमे ण वृद्धिमुपगताः संतश्चाहारयंति तच्चाऽऽहारितं सत्समानरूपीकृतमात्मसात्परिणामयंति शेषं सुगमं । यावत्कर्मोपगतात्नवंतीत्येवमाख्यातं ॥ २२ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणि याणं एगखुराणं डुखुराणं गंमीपदाणं सणप्पयाणं तेसिंचणं अहावी एणं अहावगासेणं इच्छिपुरिसस्सयकम्मजाव मेहुणवत्तिए णामं सं जोगे समुपज्जइ ते डुहउ सिणेहं संचिणंति तत्थणं जीवा इच्छित्ताए पुरि सत्ताए जाव विउट्टंति ते जीवा माउउयं पिउसुक्कं एवं जहा मणुस्साणं इ छिंवि वेगया जणयंति पुरिसंपि नपुसगंपि तेजीवा मुहरा समाणा माउ क्खीरं सप्पिं आहारेंति आणुपुवेणं वुड्डा वणस्सइकायं तसथावरेयपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहा णं चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं एगखुराणं जाव सणप्प याणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥२३॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक तीर्थकरें कहुंछे. आ जगत् मांहे नाना प्रकारना चतुष्पद स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिया जीवछे, ते कहेछे. एक खुर ते अश्वादिक, द्विखुर ते गो महिष वृषभादिक, गंमीपद ते हस्त्यादिक, तथा षट्पद ते सिंह व्याघ्रादिक, ते यथा बीजें यथावकाशें इत्यादिक पूर्वनी पेठें ते जीवोनी उत्पत्ति जाणवी. ते जीव उप

जतां मातानुं रक्त अने पितानुं शुक्र इत्यादिक आहारे. एम मनुष्यनी पेठें एक स्त्री, एक पुरुष, एक नपुंसक थाय. ते जीव बालक बतां मातानुं डुग्धादिक आहारे, पढी अनुक्रमे वधता वनस्पतिकाय अने त्रस स्थावर प्राणिनो आहार करे. इत्यादिक ते स्थलचारि चतुष्पदनां शरीर नाना प्रकारना वर्ण गंध रस स्पर्शवान् कर्मने वशें थाय इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥ २३ ॥

---

॥ दीपिका–अथस्थलचरानाह । अथापरमाख्यातं नानाविधानां चतुष्पदानां स्वरूपं । तद्यथा । एकखुराणामश्वखरादीनां द्विखुराणां गोमहिष्यादीनां गंमीपदानां हस्तिगंडकादीनां सनखपदानां सिंहव्याघ्रादीनां यथाबीजेन यथावकाशेन सर्वपर्याप्तिमवाप्य उत्पद्यंते उत्पन्नाश्च मातुः स्तन्यमाहारयंति वृद्धिं प्राप्ताः परेषां शरीरमप्याहारयंति । शेषं सुगमं ॥ २३ ॥

---

॥ टीका–सांप्रतं स्थलचरानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातं नानाविधानां चतुष्पदानां तद्यथा एकखुराणामित्यश्वखरादीनां तथा द्विखुराणां गोमहिष्यादीनां तथा गंमीपदानां हस्तिगंमकादीनां तथा सनखानां सिंहव्याघ्रादीनां यथाबीजेन यथावकाशेन सकलपर्याप्तिमवाप्योत्पद्यंते तथोत्पन्नाः संतस्तदनंतरं मातुः स्तन्यमाहारयंतीति । क्रमेणच वृद्धिमुपगताः संतोपरेषामपि शरीरमाहारयंति शेषं सुगमं । यावत्कर्मोपगताजवंतीति ॥ २३ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं उरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा अहीणं अयगराणं असालियाणं महोरगाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थीए पुरिस जावएडणं मेहुणे एवं तं चेव नाणत्तं अंमं वेगइया जणयंति पोयं वेगइया जणयंति से अंमे उब्भिज्जमाणे इत्थिं वेगइया जणयंति पुरिसंपि णपुंसगंपि ते जीवा महरा समाणा वाउकायमाहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तसथावरपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं उरपरिसप्पथलयरतिरिक्खपंचिंदियअहीणं जाव महोरगाणं सरीरा णाणावण्णा णाणागंधा जावमक्खायं ॥ ७४ ॥

अर्थ–हवे अनेरुं स्थानक परापूर्वें तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत्मांहे नाना प्रकारे उरपरिसर्प स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनियाछे. ते कहेछे. अही सर्प, अजगर सर्प, अ

सालिया सर्प्प, महोरग तथा हजार योजन प्रमाण शरीर वाला, इत्यादिक जीव छे. तेने यथा बीजें यथावकाशें इत्यादिक पूर्ववत् ते जीवनी उत्पत्ति जाणवी. एक अंमरूप निपजे, एक पोतरूप नीपजे, ते ते अंमथकी उद्भियमान पुरुष, स्त्री, अने नपुंसक थाय. ते जीव बालक थका वायुकाय आहारे. पछी अनुक्रमें वधता थका वनस्पतिकाय तथा त्रस स्थावर प्राणी आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् जाणवुं ॥ २४ ॥

---

॥ दीपिका—अथ उरःपरिसर्प्पानाह । उरःपरिसर्प्पाअहिप्रमुखाअंमजत्वेन पोतजत्वेनवा गर्भान्निर्गछंति तेच निर्गतामातुरूष्माणं वायुं चाहारयंति तेषां च जातिविशेषात्तेनैवाहारेण वृद्धिर्जायते । शेषं सुगमं ॥ २४ ॥

---

॥ टीका—सांप्रतमुरःपरिसर्पानुद्दिश्याह । ( अहावरमित्यादि ) नानाविधानां बहुप्रकाराणामुरसा ये प्रसर्प्पंति तेषां । तद्यथा अहीनामजगराणामाशालिकानां महोरगाणां यथावकाशेन यथाबीजत्वेन चोत्पत्त्यांमजत्वेन पोतजत्वेनवा गर्भान्निर्गछंतीति । तेच निर्गता मातुरूष्माणं वायुं चाहारयंति तेषां जातिप्रत्ययेन तेनैवाहारेण क्षीरादिनैव वृद्धिरुपजायते । शेषं सुगमं यावदाख्यातमिति ॥ २४ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा गोहाणं नउलाणं सिहाणं सरडाणं सल्लाणं सरघाणं खाराणं घरकोइलियाणं विस्संभराणं मुसगाणं मंगुसाणं पयलाइयाणं बिरालियाणं जोहाणं चउप्पाइयाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थिए पुरिसस्सय जहा उरपरिसप्पाणं तहाभाणियव्वं जाव सारूवि कडं संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं भुयपरिसप्पपंचिंदियथलयरतिरिक्खाणं तं गाहाणं जावमक्खायं ॥ २५ ॥

अर्थ—हवे अनेरुं स्थानक परापूर्वें श्रीतीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें नाना प्रकारे भुजपरि सर्प्प स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिक छे ते कहेछे. गोहजाति, नोलिउ, सिहल, सरड किरकाटीया प्रमुख, सलगा, सरवा, खारा, जीवविशेष घरकोइला, एटले गिलोइ, विसंभरा एटले छपका, मुसक एटले उंदर, ससकला पयालि, विरालि एवीरीतें चतुष्पद भुजपरिसर्प्प जीवविशेष छे ते जीवोनी उत्पत्ति यथा बीजें करी यथावकाशें करी

इत्यादिक जेम पूर्वे उरःपरिसर्पनो विचार कह्यो तेम जाणवो. ते जीव अनुक्रमे वधता थका पृथ्व्यादिकनो आहार करे. इत्यादिक सर्व अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ २५ ॥

---

॥ दीपिका–भुजपरिसर्पानाह। भुजपरिसर्पाणां गोधानकुलादीनां यथाबीजेन यथाव काशेनोत्पत्तिः स्यात् । तेच अंडजत्वेन पोतजत्वेन वा उत्पन्नामातुरूष्मणा वायुना चाऽऽहारितेन वृद्धिं यांति । शेषं सुगमं ॥ २५ ॥

---

॥ टीका–सांप्रतं भुजपरिसर्पानुद्दिश्याह ( अहावरमित्यादि ) नानाविधाभ्यां भुजा भ्यां ये परिसर्पंति तेषां । तद्यथा । गोधानकुलादीनां स्वकर्मोपात्तेन यथाबीजेन यथाव काशेन चोत्पत्तिर्भवति। ते चांडजत्वेन पोतजत्वेन चोत्पन्नास्तदनंतरं मातुरूष्मणा वायुना वा हारितेन वृद्धिमुपयांति । शेषं सुगमं यावदाख्यातमिति ॥ २५ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं खहचरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा चम्मपक्खीणं लोमपक्खीणं समुग्गपक्खीणं विततपक्खीणं ते सिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थीए जहा उरपरिसप्पाणं नाणत्तं ते जीवा डहरा समाणा माउगात्त सिणेह माहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा व णस्सतिकायं तसथावरेय पाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं खहचरपंचिंदियतिरिक्खजोणि याणं चम्मपक्खीणं जावमक्खायं ॥ २६ ॥

अर्थ–हवे अनेरुं स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युं छे. आ जगत् मांहे नाना प्रकारें खेचर पंचेंद्रिय तिर्यंचछे, ते कहेछे. चर्मपक्षी ते वल्गुली प्रमुख, लोमपक्षी ते सारस राजहंसा दिक. तथा समुद्गपक्षी अने विततपक्षी ए बे जाति, मनुष्य क्षेत्र थकी बाहेर जाणवी. ते खेचर जातिने यथाबीजें यथावकाशें जेम उरःपरिसर्पनी पूर्वे उत्पत्ति कही, तेमज ए जीवनी पण उत्पत्ति जाणवी. ते जीव बालक छता मातानो स्नेह आहारे.इत्यादिक आलावो सर्व पूर्ववत् जाणवो. ॥ २६ ॥

---

॥ दीपिका–अथ खेचरानाह । खेचराणामुत्पत्तिरेवं ज्ञेया । तद्यथा । चर्मपक्षिणां चर्मकीटवल्गुलीचर्मचटकादीनां लोमपक्षिणां सारसराजहंसकाकबकादीनां समुद्गप क्षिणोविततपक्षिणश्च बहिर्द्वीपवर्तिनस्तेषां यथाबीजेन यथावकाशेन चोत्पन्नानामे षमाहारः स्यात् । सा पक्षिणी तदंडकं स्वपक्षाभ्यामावृत्य तावत्तिष्ठति यावत्तदंडकं तदू

ष्मणाऽऽहारितेन वृद्धिं प्राप्तं सत् कललावस्थां त्यक्त्वा चंचूप्रमुखान् अवयवान्निष्पाद्य भेदं याति (माउगात्तसिणंति) मातृगात्रोष्माणमित्यर्थः । ततः पश्चादपि जननीसमानी तेनाहारेण वृद्धिं प्राप्नोति । शेषं प्राग्वत् ॥ २६ ॥

---

॥ टीका—सांप्रतं खेचरानुद्दिश्याह । अहावरमित्यादि ) नानाविधानां खेचराणामुत्पत्तिरेवं द्रष्टव्या । यथा चर्मपक्षिणां चर्मकीटवल्गुलीप्रभृतीनां तथा लोमपक्षिणां सारसराजहंसकाकबकादीनां समुद्गपक्षिविततपक्षिणां बहिर्द्वीपवर्तिनामेतेषां यथाबीजेन यथावकाशेन चोत्पन्नानामाहारक्रियैवमुपजायते । तद्यथा । सा पक्षिणी तदंडकं पक्षाभ्यामावृत्य तावत्तिष्ठति यावत्तदंडकं तदूष्मणाहारितेन वृद्धिमुपगतं सत् कललावस्थां परित्यज्य चंच्वादिकानवयवान् परिसमापय्य भेदमुपयाति तदुत्तरकालमपि मात्रोपनीतेनाहारेण वृद्धिमुपयाति । शेषं प्राग्वत् ॥ २६ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया णाणाविहसंभवा णाणाविहवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तदुवक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तत्थ वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पोग्गलाणं सरीरेसुवा सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा अणुसूयत्ताए विउद्दंति ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं अणुसूयगाणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥ २७ ॥

अर्थ—हवे पूर्वे कह्यो जे मनुष्य तथा तिर्यंचनो अधिकार तेथकी अपर एटले बीजुं स्थानक तीर्थंकरें कह्युं छे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव कर्मने उदयें वर्त्तता नानाविध योनिया पोताना करेलां कर्मने विशेषे नानाविध संभवछे. नानाविधना आव्या छता ते जोणिया ते संभव तदुपक्रम कर्मना वशंगत कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां आव्या छता, नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर जीवोना पुद्गलने विषे,शरीरने विषे, सचित्तने विषे,अचित्तने विषे,अपर शरीरनी निश्रायें उपजे.ते विकलेंद्रिय जीव जाणवा अहीं सचित्त ते मनुष्यादिकना शरीरने विषे जू लीख,इत्यादिक भावें उपजे.तथा अचित्त ते मनुष्यने परिभुज्यमाण एवा मंचादिकने विषे मांकडादिकने भावें उपजे.ते जीव उपना थका ते नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर प्राणीना स्नेह आहारे. ते जीव पृथ्वीनुं शरीर आहारीने, यावत् पोतानी काया सरखां रूप करे. अनेरा पण ते त्रस अने स्थावर योनिक अपर शरीरनी

निश्रायें विकलेंड्यिने भावें उपजे. तेनां शरीर नाना प्राकारना वर्ण गंध रस अने स्पर्श वालां जाणवां. एम यावत् तीर्थंकरें कह्युं ॥ २७ ॥

॥ दीपिका–उक्ताः पंचेंड्यिामनुष्यास्तिर्यंचश्च । अथ विकलेंड्यिानाह । अथापरमाख्यातं । इहैके सत्वाः कर्मणा तत्रोत्पत्तिस्थाने उपक्रम्य आगत्य नानाविधत्रसस्थावराणां शरीरेषु सचित्तेषु अचित्तेषुवा (अणुसूयत्ताएत्ति) अन्यशरीराश्रिततया परनिश्रयाविवर्तंते उत्पद्यंतइत्यर्थः। तेच विकलेंड्यिाः सचित्तेषु मनुष्यादिशरीरेषु यूकालिक्षादिकत्वेन जायंते तत्उज्यमानेषु मंचकादिषु अचित्तेषु मत्कुणत्वेनोत्पद्यंते तथा नरशरीरेषु विकलेंड्यिशरीरेषु वा सचित्ताचित्तेषु ते जीवा (अणुसूयत्ताएत्ति) अनुस्यूतत्वेन परिनिश्रयाकृम्यादित्वेन जायंते। केचित्सचित्तेऽग्नौ मूषिकादितया यत्र चाग्निस्तत्र वायुरिति ते वायूद्भवाअपि ज्ञेयाः। पृथिवीमाश्रित्य कुंथुपिपीलिकादयोवर्षादौ ऊष्मणा संस्वेदजाजायंते उदके पूतरकाडोल्लणकाभ्रमरिकादयः । वनस्पतिकाये पनकभ्रमरादयः एवं ते जीवास्तानि स्वयोनिशरीराणि आहारयंतीत्याख्यातं ॥ २७ ॥

॥ टीका–व्याख्याताः पंचेंड्यिामनुष्यास्तिर्यंचश्च तेषां चाहारो द्वेधा । आभोगनिर्वर्तिताऽनाभोगनिर्वर्तितश्च । तत्रानाभोगनिर्वर्तितः प्रतिक्षणभाव्यभोगनिर्वर्तितस्तु यथास्वं क्षुद्वेदनीयोदयभावीति । सांप्रतं विकलेंड्यिानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथानंतरमेतदाख्यातमिहास्मिन् संसारे एके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिनः सत्वाः प्राणिनोनानाविधयोनिकाः कर्मनिदानेन स्वकृतकर्मणोपादानभूतेन तत्रोत्पत्तिस्थाने उपक्रम्यागत्य नानाविधत्रसस्थावराणां शरीरेषु अचित्तेषु सचित्तेषुवा ( अणुसुयत्ताएत्ति ) अपरशरीराश्रिततया परनिश्रयाविवर्तंते समुत्पद्यंते इति यावत् ( तेच जीवाविकलेंड्यिाः सचित्तेषु मनुष्यादिशरीरेषु यूकालिक्षादिकत्वेनोत्पद्यंते तथा तत्परिभुज्यमानेषु मंचकादिष्वचित्तेषु मत्कुणत्वेनाविर्भवंति तथाऽचित्तीभूतेषु मनुष्यादिशरीरकेषु विकलेंड्यिशरीरेषुवा ते जीवाअनुस्यूतत्वेन परनिश्रयाकृम्यादित्वेनोत्पद्यंते । अपरेतु सचित्ते तेजःकायादौ मूषिकादित्वेनोत्पद्यंते । यत्र चाग्निस्तत्र वायुरित्यतस्तडद्भवाअपि द्रष्टव्याः । तथा पृथिवीमनुश्रित्य कुंथुपिपीलिकादयोवर्षादावूष्मणा संस्वेदजाजायंते तथोदके पूतरकाडोल्लणकभ्रमरिकाछेदनकादयः समुत्पद्यंते तथा वनस्पतिकाये पनकभ्रमरादयोजायंते । तदेवं ते जीवास्तानि स्वयोनिशरीराण्याहारयंति इत्येवमाख्यातमिति ॥ २७ ॥

एवं डुरूवसंभवत्ताए ॥ २८ ॥

अर्थ–हवे पंचेंड्यिनां मल मूत्र मांहें उपजता एवा, जीव आश्री कहेछे. (एवंके०)

ए जेम सचित्ताचित्त शरीरनी निश्रायें विकलेंद्रिय जीव उपजेछे तेम, तेना मल, मूत्र, वमनादिकने विषे ( डुरूव के० ) विरूपरूप एटले कृम्यादिकने नावें उपजे, ते जीव तेणे विष्टादिकने विषे उपना बता तेहिज आहार लीये. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ २८ ॥

---

॥ दीपिका–अथ पंचेंद्रियमूत्रपुरीषोद्भवान् जीवानाह । ( एवमित्यादि ) एवं पूर्वोक्तप्रकारेण सचित्ताचित्तशरीरनिश्रयायथा विकलेंद्रियाजायंते । तथा तत्संभवेषु मूत्रपुरीषवांतादिषु परे जंतवोडुष्टं विरूपं रूपं येषां ते डुरूपास्तत्संभवत्वेन तद्भावेन जायंते। तेच विष्टादौ शरीरान्निर्गते अनिर्गतेवा उत्पन्नास्तदेव विष्टादिकमाहारयंतीति। शेषं प्राग्वत्॥२८॥

---

॥ टीका–सांप्रतं पंचेंद्रियमूत्रपुरीषोद्भवानसुमतः प्रतिपादयितुमाह । ( एवमित्यादि ) एवमिति पूर्वोक्तपरामर्शः । यथा सचित्ताचित्तशरीरनिश्रयाविकलेंद्रियाः समुत्पद्यंते तथा तत्संभवेषु मूत्रपुरीषवांतादिषु अपरे जंतवोडुष्टं विरूपं रूपं येषां कृम्यादीनां ते डुरूपास्तत्संभवत्वेन तद्भावेनोत्पद्यंते । तेच तत्र विष्टादौ देहान्निर्गतेऽनिर्गतेवा समुत्पद्यमाना उत्पन्नाश्च तदेव विष्टादिकं स्वयोनिभूतमाहारयंति । शेषं प्राग्वत् ॥ २८ ॥

## एवं खुरडुगत्ताए ॥ २९ ॥

अर्थ–हवे सचित्त शरीरनी निश्रायें जे जीव उपजें ते आश्री कहेछे. ( एवं के० ) जेम मलमूत्रादिकने विषे जीवनी उत्पत्ति थायछे. तेम तिर्यंचना शरीरने विषे खुर एटले चर्मने विषे कीटकने नावें उपजे एटले गाय, भेंश प्रमुखना चर्म मांहें प्राणियो संमूर्छे, ते तेनुं चर्म मांस नक्षण करे, चर्में विवर करे, ते थकी जे अशुद्ध पुज़ल निकले तेज आहारे ; तथा अचित्त गवादिक शरीरने विषे पण जीव उपजे तथा सचित्ताचित्त वनस्पति शरीरने विषे पण घूण कीटकादिक संमूर्छे. ते उपजतां तेनुंज शरीर आहारे. इत्यादिक जाणवुं ॥ २९ ॥

---

॥ दीपिका–अथ सचित्तदेहाश्रयान् जंतूनाह । (एवंखुरुडुगत्ताएत्ति) यथा मूत्रविष्टादावुत्पादस्तथा तिर्यग्देहेषु (खुरडुगुत्तेत्ति) चर्मकीटत्वेन जायंते । तथाहि ।जीवतामेव गोमहिष्यादीनां चर्मणोंऽतःप्राणिनः संमूर्छंते । तेच तन्मांसचर्मणी नक्षयंति नक्षयंतश्च तच्चर्मणोविवराणि कुर्वंति । गलच्छोणितेषु विवरेषुच तेषु तिष्ठंतस्तदेव शोणितं नक्षयंति तथाऽचित्तगवादिदेहेपि तथा सचित्ताचित्तवनस्पतिशरीरेपि घुणकीटकाः संमूर्छंते तदेहमेव नक्षयंतीति ॥ २९ ॥

॥ टीका–सांप्रतं सचित्तशरीराश्रयान् जंतून् प्रतिपादयितुमाह । ( एवंखुरडुगुत्ताएइत्यादि ) एवमिति यथा मूत्रपुरीषादावुत्पादस्तथा तिर्यक्शरीरेषु ( खुरडुगुत्ताएत्ति ) चर्मकीटतया समुत्पद्यंते । इदमुक्तं नवति जीवतामेव गोमहिष्यादीनां चर्मणोंतः प्राणिनः संमूर्छंते तेच तन्मांसचर्मणी नक्षयंति नक्षयंतश्चर्मणोविवराणि विदधति गलच्छोणितेषु विवरेषु तिष्ठंतस्तदेव शोणितमाहारयंति तथा अचित्तगवादिशरीरेपि तथा सचित्ताचित्तवनस्पतिशरीरेपि घुणकीटकाः संमूर्छंते तेच तत्र संमूर्छतस्तच्छरीरमाहारयंतीति ॥२९॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मणिया णेणं तत्थवुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसु वा अचित्तेसुवा तं सरीरगं वायसं सिद्धंवा वायसंगहियंवा वायं परिगहियं उट्टवाएसु उट्टनागी नवति अहेवाएसु अहेनागी नवति तिरियंवाएसु तिरियंनागी नवति तंजहा उसा हिमए महिया करए हरतणुए सुद्धोदए तेजीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा अहारेंति पुढविसरीरं जावसंतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं उसाणं जावसुद्धोदगाणं सरीरा णाणावणा जावमक्खायं ॥ ३० ॥

अर्थ–हवे अप्कायनुं प्रतिपादन करे छे. हवे वीजुं स्थानक छे. श्री तीर्थंकरें कह्युंछे आ जगत् मांहे कोइ एक जीव तथाविध कर्मने उदयें नानाविध योनिक छता यावत् कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां आव्या छता नाना प्रकारें त्रस ते दर्डुरादिक अने स्थावर ते हरिकाय लवणादिक प्राणीनां सचित्त अचित्त शरीरने विषे ते अप्कायनुं शरीर वायुयें करी निपजाव्युं तथा ( वायसंगहियंवा के० ) वायरे करी सम्यक् प्रकारें ग्रह्युं तथा ( वायंपरिहियं के० ) वायरे करी अन्योन्य परिगत एटले माहोमांहे मेलव्युं तथा ( उट्टवाएसुउट्टनागीनवति के० ) ऊर्ध्वगत वायराने विषे ऊर्ध्वगत नागी थाय एटले ऊर्ध्व वायु थके पाणी पण उपहरो रहे. ( अहेवाएसुअहेनागीनवतिके० ) तथा निचे निचे वायरे निचो होय, ( तिरियंवाएसुतिरियंनागीनवति के० ) तिर्छे वायरे तिर्छो थाय, जे जे परिणामे वायु वर्त्ते. तेम तेम पाणी पण परिणमे ( तंजहा के० ) हवे तेना नाम कहेछे. ( उसा के० ) उसपडे ते ( हिमएके० ) हिम ( महिया के० ) धूयरी ( करए के० ) करगडा ( हरतणुए के० ) तृणने अग्रें स्थित एवा पाणीना चिंडुआ (सुद्धोदए के०) शुद्धोदक ते लघ पाणी इत्यादिक पाणी जाति मांहे जीव उपजे.

ते जीव त्यां उपना थता ते नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर प्राणियोनो स्नेह आहा रे. इत्यादिक शेषं सुगमं ॥ एटले वात योनिक अप्काय देखाड्यो. ॥ ३० ॥

॥ दीपिका—अथाप्कायं वक्तुकामस्तत्कायकारणभूतवायुकथनपूर्वमाह । ( अहावर मित्यादि ) अथैतदाख्यातं । इहैके सत्वाः कर्मोदयात्तत्र वायुयोनिकेऽप्काये व्युत्क्रम्यागम्य नानाविधानां त्रसानां दर्दुरादीनां प्राणिनां स्थावराणां च हरितलवणादीनां सचित्ताचित्त देहेषु तदप्कायशरीरं वायुयोनिकत्वादप्कायस्य वायुना उपादानहेतुभूतेन निष्पादितं तथा वातेन संगृहीतं अभ्रपटलांतर्निर्वृत्तं तथा वातपरिगतं वायुनाऽन्योन्यानुगतं ऊर्ध्वगते वाते उर्ध्वभाग्भवति । गगनगतवायुवशाज्जलं व्योम्नि संमूर्छते । अधोगते वाते जलमप्यधः स्यात् तिर्यग्गतेच तिर्यक् वातयोनिकत्वाज्जलस्य यत्र यत्र वायुः परिणमति तत्र तत्र तत्कार्यभूतं जलमपि संमूर्छते । जलभेदान् वक्ति । ( उसत्ति ) अ वश्यायः हिमं महिकाधूमरीकरकाः ( हरतणुत्ति ) तृणाग्रप्राप्ताजलबिंदवः शुद्धोदकं प्रतीतं । इहैके जीवाः शुद्धजले जातानानाविधत्रसस्थावराणां उत्पत्त्याऽऽधारभूतानां स्नेहं भक्षयंति । शेषं सुगमं ॥ ३० ॥

॥ टीका—सांप्रतमप्कायं प्रतिपादयिषुस्तत्कारणभूतवातप्रतिपादनपूर्वकं प्रतिपाद यतीत्याह । ( अहावरमित्यादि ) अथानंतरमेतद्वक्ष्यमाणं पुरा पूर्वमाख्यातं । इहास्मि न् जगत्येके सत्वास्तथाविधकर्मोदयानानाविधयोनिकाः संतोयावत्कर्मनिदानेन तत्र तस्मिन्वातयोनिकेऽप्काये व्युत्क्रम्यागत्य नानाविधानां बहुप्रकाराणां त्रसानां दर्दुरप्रभृ तीनां स्थावराणांच हरितलवणादीनां प्राणिनां सचित्ताचित्तभेदभिन्नेषु शरीरेषु तदप्का यशरीरं वातयोनिकत्वादप्कायस्य वायुनोपादानकारणभूतेन सम्यक् संसिद्धं निष्पा दितं । तथा वातेनैव सम्यग्गृहीतमभ्रपटलांतर्निर्वृत्तं तथा वातेनान्योन्यानुगतत्वा त्परिगतं तथोर्ध्वगतेषु वातेपूर्ध्वभागी भवत्यप्कायोगगनगतवातवशाद्दिवि संमूर्छते जलं तथाऽधस्ताजतेषु तद्वशाद्भवत्यधोभागीत्यप्कायएवं तिर्यग्गतेषु तिर्यग्भागी भवत्यप्कायः। इदमुक्तं भवति । वातयोनिकत्वादप्कायस्य यत्र यत्रासौ तथाविधपरिणामपरिणतोभव ति तत्र तत्र तत्कार्यभूतं जलमपि संमूर्छते । तस्य चाभिधानपूर्वकं भेदं दर्शयितुमा ह । तद्यथा । ( उसत्ति ) अवश्यायः ( हिमयेत्ति ) शिशिरादौवातेरिताहिमकणामिहि काः धूमिकाः करकाः प्रतीताः ( हरतणुयत्ति ) तृणाग्रव्यवस्थिताजलबिंदवः शुद्धोदकं प्रतीतमिति । इहास्मिन्नुदकप्रस्तावे एके सत्वास्तत्रोत्पद्यंते स्वकर्मवशगास्तत्रोत्पन्नास्ते जीवास्तेषां नानाविधानां त्रसस्थावराणां स्वोत्पत्त्याधारभूतानां स्नेहमाहारयंति ते जीवा स्तच्छरीरमाहारयंति अनाहारकान भवंतीत्यर्थः।शेषं सुगमं यावदेतदाख्यातमिति ॥३०॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतियासत्ता उदगजोणिया उदगसंभवा जाव कम्मणियाणेणं तत्थ वुक्कमा तसथावरजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए विउट्टंति तेजीवा तेसिं तसथावरजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं उदगाणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥ ३१ ॥

अर्थ—हवे अप्काय योनिक अप्काय देखाडेछे. अथ हवे अपर स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें कोइ एक जीव उदकयोनिक उदकने विषे संभवछे, यावत् कर्मने कारणे करी एटले तथाविध कर्मने उदयें वातवशें उपना एवा त्रस अने स्थावर जीव, तेना शरीरने अधार भूत एवुं उदक जे पाणी ते उदकें उपना त्रस स्थावर योनिक उदक तेने विषे उदक पणे उपजे, ते जीव त्यां उपना थका ते उदकनो स्नेह आहारे. इत्यादिकं शेषं सुगमम् ॥ ३१ ॥

---

॥ दीपिका—वातयोनिकं जलमुक्त्वा जलसंभवं जलमाह । (अहावरमित्यादि) इहैके सत्वावातवशोत्पन्नत्रसस्थावरदेहाधारभूतमुदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा उदकसंभवास्त्रसस्थावरयोनिकेषु उदकेषु अपरोदकतया उत्पद्यंते । तेच जलसत्वास्तेषां त्रसस्थावरयोनिकानां जलानां स्नेहं पराण्यपि पृथिव्यादिशरीराणि चाहारयंति । तत्र पृथिव्यादिशरीरं भक्षितं सत्सारूप्यमानीयात्मसात्कुर्वंति । अन्यान्यपि तत्र त्रसस्थावरशरीराणि वर्तंते तेषां च नीरयोनिकानां नीराणां नानाविधानि शरीराणि वर्तंते एतदाख्यातं ॥ ३१ ॥

---

॥ टीका—तदेवं वातयोनिकमप्कायं प्रदर्श्याधुनाप्कायसंभवमेवाप्कायं दर्शयितुमाह । (अहावरमित्यादि) अथापरमाख्यातमिहास्मिन् जगति उदकाधिकारे वा एके सत्वास्तथाविधकर्मोदया द्वातवशोत्पन्नत्रसस्थावरशरीराधारमुदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा तथोदकसंभवा यावत्कर्मनिदानेन तत्रोत्पित्सवस्त्रसस्थावरयोनिकेषूदकेष्वपरोदकतया विवर्तंते समुत्पद्यंते ते चोदकजीवास्तेषां त्रसस्थावरयोनिकानामुदकानां स्नेहमाहारयंत्यन्यान्यपि पृथिव्यादिशरीराण्याहारयंति । तत्र पृथिव्यादिशरीरमाहारितं सत् सारूप्यमानीयात्मसात्प्रकुर्वंत्यपराण्यपि तत्र त्रसस्थावरशरीराणि विवर्तंते तेषां चोदकयोनिकानामुदकानां नानाविधानि शरीराणि विवर्तंते इत्येतदाख्यातं ॥ ३१. ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणियाणं जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा उदगजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं

उदगजोणियाणं जीवाण उदगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जावसंतं अवरेवियणं जीवाणं उदगजोणियाणं उदगाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ३२ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युं ले. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव तथाविध कर्मना उदय थकी उदक योनिक उदकने विषे उपजे. त्यां उपना थका उदक जीवनो स्नेह आहारे, शेषं सुगमं ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका—तदेवं त्रसस्थावरदेहसंनवं जलयोनित्वेन प्रदर्श्याऽधुना निर्विशेषणज लसंनवमेव जलं दर्शयति । (अहावरमिति) इह एके सत्वाउदकयोनिकेषु उदकेषूत्पद्यंते तेच तेषां जलसंनवानां आत्माधारनूतानां शरीरं नक्षयंति । शेषं प्राग्वत् ॥ ३२ ॥

॥ टीका—तदेवं त्रसस्थावरसंनवमुदकयोनित्वेन प्रदर्श्याऽधुना निर्विशेषणमप्काय संनवमेवाप्कायं दर्शयितुमाह । (अहावरमित्यादि) अथापरमाख्यातमिहास्मिन् जगत्यु दकाधिकारे वा एके सत्वाः स्वकृतकर्मोदयाडुदकयोनिषूदकेषूत्पद्यंते तेच तेषामुदक संन वानामुदकजीवानामात्माधारनूतानां शरीरमाहारयंति । शेषं सुगमं। यावदाख्यातमिति३२

अहावरं पुरकायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणियाणं जावकम्मनियाणे णं तह वुक्कमा उदगजोणिएसु उदएसु तसपाणत्ताए विउट्टंति तेजीवा तोसिं उदगजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जावसंतं अवरेवियणं तोसिं उदगजोणियाणं तसपाणाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ३३ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकर देवें कह्युं. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव कर्मे प्रेर्या थका उदक योनिक उदकने विषे पूयरादिक त्रस प्राण पणे उपजे. ते उपना थता तेनुं शरीर आहारे. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३३ ॥

॥ दीपिका—अथ जलाधारनूतान् त्रसानाह । इहैके सत्वाउदकयोनिकेषूदकेषु त्रसप्राणितया पूतरकादित्वेन उत्पद्यंते । तेच उत्पद्यमानाउत्पन्नाश्च तेषां,जलयोनिकानां जलानां स्नेहमाहारयंति । शेषं प्राग्वत् ॥ ३३ ॥

॥ टीका—सांप्रतमुदकाधारानपरान् पूतरकादिकांस्त्रसान्दर्शयितुमाह । ( अहावरमि

त्यादि ) अथापरमेतदाख्यातमिहैके सत्वाउदकयोनिषु चोदकेषु त्रसप्राणितया पूतरक दित्वेन विवर्तंते समुत्पद्यंते ते चोत्पद्यमानाः समुत्पन्नाश्च तेषामुदकयोनिनामुदकानां स्नेहमाहारयंति । शेषं सुगमं यावदाख्यातमिति ॥ ३३ ॥

अहावरं पुरस्कायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मनिया णेणं तत्र वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा अगणिकायत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं अगणीणं सरीरा णाणावण्णा जाव मरकायं सेसा तिन्नि आलावगा उदगाणं ॥३४॥ अहावरं पुरस्कायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणियाणं जाव कम्मनियाणेणं तत्र वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा वाउक्कायत्ताए विउट्टंति जहा अगणीणं तहा भाणियवा चत्तारि गमा ॥ ३५ ॥

अर्थ—हवे अग्निकाय जीव आश्री कहेछे. अथ हवे अनेरुं स्थानक श्री तीर्थंकर देवें कह्युं. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव नाना प्रकारना योनि वाला, ते एवा प्रकारनुं कर्मोपार्जन करीने, नानाविध त्रस अने स्थावर प्राणिना शरीरने विषे सचित्तने विषे, अचित्तने विषे, अग्निकाय पणे उपजे. त्यां उपजता थका, ते त्रस अने स्थावर प्राणीनो स्नेह आहारे. इत्यादिकं शेषं सुगमं ॥ अहीं अग्निकायने विषे शेष त्रण आलावा उदकना आलावानी पेरें जाणी लेवा. ॥३४॥ हवे वायुकाय जीव आश्री कहेछे. हवे अनेरुं स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युं. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव नानाविध योनिक कर्मने वशवर्त्ति थका नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर जीवोनां शरीर सचित्त अने अचित्तने विषे वायुकाय पणे उपजे. इत्यादिक जेम अग्निकायना चार आलावा कह्या. तेम ए वायुकायना पण चार आलावा केहेवा. ॥ ३५ ॥

---

॥ दीपिका—अथ तेजःकायमाह । एके सत्वाः कर्मोदयान्नानाविधानां त्रसस्थावराणां देहेषु सचित्तेष्वचित्तेषु चाऽग्नित्वेन विवर्तंते प्रादुर्भवंति । तथाहि । पंचेंद्रियतिरश्चां दंतिमहिषादीनां परस्परं युद्धावसरे दंतशृंगयोगेऽग्निरुत्पद्यते । एवमचित्तेष्वपि तदस्थिघर्षणादग्निरुत्पत्तिः । विकलेंद्रियशरीरेष्वपि यथासंभवं योज्यं । स्थावरेषु वनस्पति

पाषाणादिषु सचित्ताचित्तेषु अग्निजीवाः समुत्पद्यंते । तेच तत्रोत्पन्नास्तेषां त्रसस्थावराणां स्नेहमाहारयंति । शेषं सुगमं। अन्ये त्रयोप्यालापकाउदकवद्द्रष्टव्याः ॥३४ ॥ अथ वायुकायमाह । इदमग्निकायवद्व्याख्येयं ॥ ३५ ॥

॥ टीका–सांप्रतं तेजःकायमुद्दिश्याह । ( अहावरमित्यादि ) अथैतदपरमाख्यातं । इहास्मिन् संसारे एके केचन सत्वाः प्राणिनस्तथाविधकर्मोदयवर्त्तिनोनानाविधयोनयः प्राक् संतः पूर्वजन्मनि तथाविधं कर्मोपादाय तत्कर्मनिदानेन नानाविधानां त्रसस्थावराणां प्राणिनां सचित्तेष्वचितेषु शरीरेषु चाग्नित्वेन विवर्तते प्रादुर्भवंति । तथाहि । पंचेंद्रियतिरश्चां दंतिमहिषादीनां परस्परं युद्धावसरे विषाणसंघर्षे सति अग्निरुत्तिष्ठते एवमचित्तेष्वपि तदस्थिसंघर्षादग्नेरुद्भवं तथा द्वींद्रियादिशरीरेष्वपि यथासंभवमायोजनीयं । तथा स्थावरेष्वपि वनस्पत्युपलादिषु सचित्ताचित्तेष्वग्निजीवाः समुत्पद्यंते ते चाग्निजीवास्तत्रोत्पन्नास्तेषां नानाविधानां त्रसस्थावराणां स्नेहमाहारयंति । शेषं सुगमं यावद्भवंतीत्येवमाख्यातं ।अपरे त्रयोप्यालापकाः प्राग्वद्द्रष्टव्याइति ॥ ३४ ॥ सांप्रतं वायुकायमुद्दिश्याह। ( अहावरमित्यादि ) अथापरमेतदाख्यातमित्याद्यग्निकायागमेन व्याख्येयं ॥ ३५ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणियाणं जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कम्मा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा पुढवित्ताए सक्करत्ताए वालुयत्ताए इमाउ गाहाउ अणुगंतवाउ " पुढवीय सक्करा वा,लुयाय उवले सिलाय लोणूसे ॥ अयत उय तंव सीसग, रुप्प सुवएोय वइरेय ॥ १ ॥ हरियाले हिंगुलए, मणोसिला सासगंजणपवाले ॥ अप्भपमलप्भवालुय, वायरकाए मणिविहाणा ॥२॥ गोमेज्जएय रूयए, अंकेफलिहिय लोहियक्खेय ॥ मरगयमसारगल्ले, भूयमोयग इंदणीलेय ॥ ३ ॥ चंदण गेरुय हंसगप्भे, पुलए सोगंधिएय बोद्धव्वे ॥ चंदप्पभ वेरुलिए, जलकंते सूरकंतेय ॥४॥ एयाउ एएसु भाणियवाएउ गाहाउ जाव सूरकंताएवि वुट्टंति तेजीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं पुढवीणं जाव सूरकंताणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं सेसं तिन्नि आलावगा जहा उदगाणं ॥ ३६ ॥

अर्थ—हवे पृथ्वीकाय जीव आश्री कहेछे. हवे अन्य स्थानक पूर्वें श्री तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें कोइ एक जीव, नाना प्रकार योनिक, यावत् कर्माधीन थका त्यां उपजे. नाना प्रकारना त्रस स्थावर प्राणीनां शरीरने विषे, सचित्तने विषे, अचित्तने विषे, शर्करा एटले कांकरा पणे, वेलु एटले रेति पणे, इत्यादिक ( इमाउगाहाउ के० ) ए आगलनी चार गाथायें करी पृथ्वीकायना नेद कहेशे ते प्रमाणे. ( अणुगंतवाउ के० ) सर्व जाणी ले वा. ( पुढवीय के० ) पृथ्वी पणे ( सक्करा के० ) कांकरा पणे, ( वालुयाय के० ) वेलू ते रेती पणे, ( उवले के० ) उपल एटले पाषाणना कटका पणे, ( सिलाय के० ) मा टी अने पाशाणनी शिलापणे, ( लोणूसेके० ) समुड्रादिकना लूण ते पणे, उसे एटले उस पणे, ते खारी धूल पणे, ( अयत्त के० ) लोह पणे, ( उय के० ) जसत तरुआ पणे, ( तंब के० ) त्रांबा पणे, ( सिसगं के० ) शींसा पणे, ( रुप्प के० ) रूपा पणे, ( सुवस्रेय के० ) सुवर्ण पणे, ( वइरेय के० ) वज्र, ते हीरा पणे, ( हरियाले के० ) हरिताल पणे, (हिंगुलएके०) हिंगलो पणे, (मणोसिलाके०) मणसील पणे, (सासगंज णेके०) सासग एटले रत्ननीजाति, अंजन एटले सुरमो ते पणे, (पवालेके०) परवालां, ( अप्रपमलप्रवालुय के० ) अभ्रपडल अने अभ्रवालुक एटले आकाशना जलउस तथा अकाशना जलउस सहित धूल,ए (वायरकाय के०) वादरकाय, पृथ्वीना नेद कह्या. हवे (मणिविहाणा के०) मणिना नेद कहेछे. (गोमेक्कएय के०) गोमेद्य रत्न, (रूयए के०) रजत रत्न, ( अंके के० ) अंक रत्न, ( फलिहिय के० ) स्फाटिक रत्न, ( लोहियस्केय के० ) लोहिताक्ष रत्न, ( मरगय के० ) मरकत रत्न, ( मसारगल्ले के० ) मसारगल्ल रत्न, ( नूयमोयग के० ) नूजमोचक रत्न, ( इंदणीलेय के० ) इंड्रनील रत्न, ( चंदण के० ) चंदन रत्न, ( गेरुय के० ) गेरुक रत्न, ( हंसगप्ने के० ) हंसगर्न रत्न, ( पुलए के० ) पुलाक रत्न, ( सोगंधिएय के० ) सुगंधिक रत्न, ( वोधव्वे के० ) जाणवां. ( चं दप्पन के० ) चंड्रप्रन रत्न, ( वेरुलिए के० ) वैडूर्य रत्न, ( जलकंते के० ) जलकंत रत्न, (सूरकंतेय के०) सूर्यकांति रत्न, सुवर्णकांत रत्न पण एनुं नाम छे. ए चार गाथा ने विषे, पृथ्वीकायना नाम कह्यांछे. यावत् सूर्यकांत पणे एटले एटला दूर लगे पृथ्वी कायने नावें जीव उपजे. ते जीव त्यां उपजता छता ते नाना प्रकारना त्रस अने स्था वर प्राणीना स्नेह आहारे ; इत्यादिक शेष सुगमछे. ए पृथिवीकायना शेष त्रण आ लावा जेम उदकना कह्या तेनी पेंठे जाणी लेवा. ॥ ३६ ॥

---

॥ दीपिका—अथ पृथिवीकायमाह । इहैके सत्वाः कर्मवशगानानाविधत्रसस्थावरा णां देहेषु सचित्तेषु अचित्तेषुवा पृथिवीत्वेनोत्पद्यंते । तद्यथा । सर्प्पशिरस्सु मणयः करिदं

तेषु मौक्तिकानि स्थावरेष्वपि वंशादिषु तान्येव। एवमचित्तेपूषरादिषु लवणत्वेन जायंते तदेवं पृथ्वीकायिकानानाविधासु पृथ्वीषु शर्करावालुकोपलशिलालवणादिनावेन तथा गोमेदकादिरत्ननावेन बादरमणिविधानतया समुत्पद्यंते ॥ (एयाउंगाहाउत्ति) एतागाथा अनुगंतव्याः। एतज्ञाथानुगमेन पदानि वाच्यानि। (पुढवीयसक्करावालुयायइत्यादि) अत्र पदोच्चारोयथा पुढवित्ताए। सक्करत्ताए वालुयत्ताए इत्यादि। एवं गाथानुसारेण पदानि वाच्यानि। यावत्सूरकंतत्ताएत्ति। शेषं सुगमं। एवं चत्वारोप्यालापकाउदकागमेन ज्ञेयाः॥३६॥

॥ टीका-सांप्रतमशेषजीवाधारं पृथिवीकायमधिकृत्याह। (अहावरमित्यादि) अथापरमेतत्पूर्वमाख्यातं। इहैके सत्वाः पूर्वं नानाविधयोनिकाः स्वकृतकर्मवशानानाविध त्रसस्थावराणां शरीरेषु पृथिवीत्वेनोत्पद्यंते। तद्यथा। सर्प्पशिरःसु मणयः करिदंतेषु मौक्तिकानि स्थावरेष्वपि वेण्वादिषु तान्येवेति। एवमचित्तपूपलादिषु लवणनावेनोत्पद्यंते। तदेवं पृथिवीकायिकानानाविधासु पृथिवीषु शर्करावालुकोपलसितालवणादिनावेन तथा गोमेदकादिरत्ननावेनच बादरमणिविधानतया समुत्पद्यंते। शेषं सुगमं। यावच्चत्वारोप्यालापकाउदकागमेन नेतव्याइति ॥ ३६ ॥

अहावरं पुरक्खायं सवेपाणा सवेनूता सवेजीवा सवेसत्ता णाणाविहजोणिया णाणाविहसंनवा णाणाविहवुक्कमा सरीरजोणिया सरीरसंनवा सरीरवुक्कमा सरीराहारा कम्मोवगा कम्मनियाणा कम्मगतीया कम्मठिइया कम्मणाचेव विप्परियासमुवेंति ॥ ३७ ॥

अर्थ-हवे समस्त जीव आश्री कहेछे. हवे अनेरुं स्थानक पूर्वें श्री तीर्थंकरें कह्युं. आ जगत् मांहे सर्वप्राण, सर्वनूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, नाना प्रकार योनिक नाना प्रकारनी योनिने विषे संनव एटले उत्पत्तिछे जेनी, नाना प्रकारें आव्या उता, शरीरयोनिक शरीरने विषे उपजे. शरीरने विषे आव्या उता त्यां उपजे एटले नरकादिक चार गतिने विषे शरीर पणे उपजे. त्यां त्यां यथायोग्य शरीरनो आहार करे. कर्मने वशें उपजे कर्मने कारणे करीने कर्मे करी कर्मने अनुसारें गति पामे. कर्मे करी जघन्य मध्यम अने उत्कृष्ट स्थिति पामे. एटले जे जीव आ नवमां जेवोछे तेवोज आगले नवें न थाय. ए कारणे जीव, कर्मने वशें सुख वांछतो पण विपर्यास डुःख पामे. ॥३७॥

॥ दीपिका-अथ सर्वजीवानाश्रित्याह। अथापरमिदमाख्यातं। सर्वे जीवानानाविधयोनिकानानाविधयोनिपूत्पद्यंते यत्रच उत्पद्यंते तत्र तद्देहाऽऽहारिणः स्युः। तेनाहारेण चायुताः कर्मवशगाश्चतुर्गतिषु नमंति॥ ॥ ३७ ॥

॥ टीका–सांप्रतं सर्वोपसंहारद्वारेण सर्वजीवान् सामान्यतोविनणिपुराह् । ( अहा वरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातं । तद्यथा। सर्वे प्राणाः प्राणिनोऽत्रच प्राणिनूतजीवन त्वशब्दाः पर्यायत्वेन इष्टव्याः कथंचिन्नेदं चाश्रित्य व्याख्येयाः। तेच नानाविधयोनिकातो नाविधासु योनिपूत्पद्यंते नारकतिर्यङ्नरामराणां परस्परगमनसंनवात्तेच यत्र यत्रोत्पद्यंत्ते ते तत्तन्नरीराण्याहारयंति तदाहारवंतश्च तत्रागुप्ताश्रवद्वारतया कर्मवशगानारकतिर्यङ्नरा मरगतिषु जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थितयोनवंति।अनेनेदमुक्तं नवति। योयादृगिह नवे स ता दृगेवामुत्रापि नवतीत्येतन्निरस्तं नवत्यपितु कर्मोपगाः कर्मनिदानाः कर्मायत्तगतयोनवंति तथा तेनैव कर्मणा सुखलिप्सवोपि तद्विपर्यासं डुःखमुपगच्छंतीति ॥ ३७ ॥

से एवमायाणह से एवमायाणित्ता आहारगुत्ते सहिए समिए सयाजए त्तिवेमि॥ वियसुयखंधस्स आहारपरिणा णाम तईयमज्जयणं सम्मत्तं ॥३८॥

अर्थ–हवे गुरु, शिष्य प्रत्यें कहेठे के, ( सेएव के० ) ते एम ( मायाणह के० ) त मे जाणो जे, में आदि थकी सर्वजीव आश्री आहारनुं विशेष संसार परिच्रमण क हुंठे. ( सेएवमायाणित्ता के० ) एवुं जाणीने जे विवेकी जन होय ते, ( आहारगुत्ते के०) आहारने विषे गुप्त थाय. एतावता शुद्ध निर्दोष एषणीक आहारनुं खप करे,अ ने (सहिए के०) ज्ञान दर्शन अने चारित्रें करी सहित थको (समिए के०) पांच समि तियें समितो, ( सयाजए के० ) सदा सर्वकाल एटले जावजीव सुधी संयमने विषे यत्न करे. त्तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ए श्री सूयगडांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कंधने विषे, आहारपरिज्ञा नाम त्रीजा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो. ॥ ३८ ॥

---

॥दीपिका–(सेएवमायाणहत्ति) तदेवं जानीत यूयं! यत्पूर्वोक्तं सर्वं।एवं ज्ञात्वा चाहारगुप्त एव समितियुतः समितः सहितोवा ज्ञानादिनिः सदा यतेत संयमे प्रयत्नवान् नवेदिति। ब्रवीमीति पूर्ववत्॥३८॥ इतिद्वितीयश्रुतस्कंधे आहारपरिज्ञाख्यं तृतीयमध्ययनं समाप्तम्॥

---

॥ टीका–सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह् । ( सेएवमायाणहेत्यादि ) यदेतन्मया ऽऽदितः प्रनृत्युक्तं।तद्यथा। योयत्रोत्पद्यते स तच्छरीराहारकोनवत्याहारगुप्तश्च कर्मादत्ते क र्मणाच नानाविधासु योनिषु अरहट्टघटीन्यायेन पौनःपुन्येन पर्यटतीत्येवमाजानीत यूयं! एतद्विपर्यासं डुःखमुपगच्छंतीति । एतत्परिज्ञायच सदसद्विवेक्याहारगुप्तः पंचनिः समिति निः समितोयदिवा सम्यक् ज्ञानादिके मार्गे इतोगतः समितस्तया सह हितेन वर्तते सहितः सन्सदा सर्वकालं यावडुच्छ्वासं तावद्यतेत तत्संयमानुष्ठाने प्रयत्नवान्नवेदिति । इति परि समाप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत्। गतोऽनुगमः। सांप्रतं नयास्ते च प्राग्वद्रष्टव्याः ॥३८॥ समा प्तमाहारपरिज्ञाख्यं तृतीयमध्ययनम् ॥ ३ ॥ ॥ ॥

## अथ द्वितीयश्रुतस्कंधे चतुर्थाध्ययनप्रारंभः

हवे चोथुं प्रत्याख्यान क्रियानामा अध्ययन प्रारंनियें बैयें. त्रीजा अध्ययनमां आहार आश्री कर्मबंध थाय. एम कह्यो ते कर्मबंध पच्चरकाण करवाथी टली जायछे, ते कारण माटे चोथुं अध्ययन प्रत्याख्यान क्रिया नामें कहियें बैयें.

सुयंमे आउसंतेणं नगवया एवमरकायं इह खलु पच्चरकाणकिरियाणामज्ञयणे तस्सणं अयमठे पणत्ते आया अपच्चरकाणीयावि नवति ॥ आया अकिरिया कुसलेयावि नवति आया मिछा संठियावि नवति आया एगंतदंमेयावि नवति आया एगंतबालेयावि नवति आया एगंतसुत्तेयावि नवति आया अवियारमणवयणकायवक्केयावि नवति आया अप्पडिहयअपच्चरकायपावकम्मेयावि नवति एस खलु नगवता अरकाए असंजते अविरते अप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मे सकिरिए असंवुमे एगंतदंमे एगंतबाले एगंतसुत्ते सेबाले अवियारमणवयणकायवक्के सुविणमवि ण पस्सति पावेयसे कम्मे कज्जइ ॥ १ ॥

अर्थ—सुधर्म स्वामी जंबूस्वामि प्रत्यें कहेछे के, ( सुयंमे के० ) में एम सांनलुंछे. ( आउसंतेणं के० ) आयुष्मन् ( नगवयाएवमरकायं के० ) नगवंत श्री महावीरदेव तीर्थंकर तेणें एम कह्युंछे. ( इहखलुपच्चरकाणकिरियाणामज्ञयणे के० ) ए प्रवचनने विषे खलु ए वाक्यालंकारे प्रत्याख्यानक्रिया नामें अध्ययन, ( तस्सणंअयमठेपण्णत्ते के० ) तेनो ए अर्थ जे आगल कहेशे, ते कहेछे, ( आयाअपच्चरकाणियाविनवति के० ) ए आत्मा जीव मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अने योग सहित स्वनावें रह्यो थको, अप्रत्याख्यानी होय. अपि शब्द थकी तेहीज आत्मा, कोइ एक रूडां कारण थकी पच्चरकाणी पण होय. ( आयाअकिरियाकुसलेयाविनवति के० ) ए आत्मा रूडा अनुष्ठानें रहित पण होय. अपि शब्द थकी रूडा अनुष्ठानें सहित पण होय, तथा ( आयामिछासंठियाविनवति के० ) ए आत्मा मिथ्यात्वें संस्थित पण होय, अने अपि शब्द थकी मिथ्यात्व थकी रहित पण होय, ( आयाएगंतदंमेयाविनवति के० ) ए आत्मा एकांते प्राणीउंने दंमनो करनार पण होय, तथा ( आयाएगंतबालेयाविनवति के० ) ए आत्मा एकांत बाल पण होय, ( आयाएगंतसुत्तेयाविनवति के० ) तथा

ए आत्मा एकांत सुतो एटले शयन करनार पण होय, ( आयाएगंतअवियारमणवयण कायवक्केयाविनवति के० ) तथा ए आत्मा एकांत अविचार्यु कोइ कार्य करे, एवा मन वचन अने कायायें करी सहित पण होय, ( आयाअपडिहयअपच्चक्खायपावकम्मेया विंनवति के० ) तथा ए आत्मा, अप्रतिहत एटले विरतें करी नथी हण्यां तथा नथी पच्चख्या पाप कर्म जेणे एवो पण होय, ( एसखलुनगवताअरकाए के० ) एवो जीव श्री नगवंते कह्योछे वली केवो कह्यो तो के? ( असंजते के० ) असंयत (अविरते के०) अविरति ( अपडिहयपच्चायपावकम्मे के० ) अप्रतिहत एटलें नथी हण्यां पच्चरकाणें करीने पाप कर्म जेणे, ( सकिरिए के० ) क्रिया सहित, ( असंवुमे के० ) संवर रहित ( एगंतदंमे के० ) एकांतें दंम, ( एगंतबाले के० ) एकांते बाल, ( एगंत सुत्ते के० ) एकांतें सुतो एटले शयन करनार, एवो कह्यो. ( सेबालेअवियारमणवयणकायवक्केके० ) ते बाल, अविचारवान् एवो मन वचन अने कायायें करी रहित ठतो, जे पाप कर्मने ( सुविणमविणपस्संति के० ) स्वप्नांतरें पण देखे नही. ( पावेयसेकम्मेकज्जइ के० ) तो पण तेने तेवां पापकर्मनो वंध थायछे. ॥ १ ॥

---

॥ दीपिका–अथ प्रत्याख्यानक्रियाख्यं चतुर्थमध्ययनमारन्यते । तस्येदमादिसूत्रं । ( सुयंमेइत्यादि ) श्रुतं मयाऽऽयुष्मता नगवतेदमाख्यातं । इहांगे प्रत्याख्यानक्रियानामाध्ययनं तस्यायमर्थः । आत्मा स्वनावतएवाऽप्रत्याख्यानी नवति । अपिशब्दात्सकदाचित्प्रत्याख्यान्यपि नवति । आत्मा क्रियाकुशलः सदाचारः स्यादक्रियाकुशलोपि । आत्मा मिथ्यात्वसंस्थितः आत्मा एकांतदंडोहिंसकः स्यात् आत्मा वालः सुप्तोनावसुप्तश्च । अविचाराणि अशोननानि मनोवचःकायवाक्यानि यस्य स तथा । वाग्ग्रहणेनैव वाक्यस्य गतार्थत्वात्पुनर्वाक्यग्रहणं वाग्व्यापारस्य प्राचुर्यज्ञापनार्थं । तथाऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा अप्रतिहतं अनिवारितं प्रत्याख्यातेन विरत्या पापकर्म येन स तथा एवमेपआत्मा असंयतोऽविरतोऽ प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा सक्रियोऽसंवृतः एकांतदंडः एकांतबालः एकांतसुप्तः स बालोऽविचारमनोवचःकायवाक्यः स एवंनूतः पटुविज्ञानरचितः स्वप्नमपि न पश्यति तेनाप्येवंनूतेनाव्यक्तज्ञानेनापि पापं कर्म वध्यते ॥ १ ॥

---

॥ टीका–तृतीयाध्ययनानंतरं चतुर्थमारन्यते। अस्य चायमनिसंवंधः । इहानंतराध्ययने आहारगुप्तस्य कर्मवंधोऽ निहितोऽत्र तत्प्रत्याख्यानं प्रतिपाद्यते । यदि वोत्तरगुणसंपादनार्थं गुप्तेतराहारपरिज्ञोक्ता। सा चोत्तरगुणरूपा प्रत्याख्यानक्रियासमन्वितस्य नवतीत्यतआहारपरिज्ञानंतरं प्रत्याख्यानक्रियाध्ययनमारन्यते इत्यनेन संबंधेनायातस्याऽध्यय

नस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि नवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयम् । तद्यथे ह कर्मोपादानभूतस्याशुभस्य प्रत्याख्यानं प्रतिपाद्यतइति। सांप्रतं निक्षेपस्तत्राप्योघनिष्पन्नेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने प्रत्याख्यानक्रियेति द्विपदं नाम । तत्र प्रत्याख्यानपदनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह ।" णामं ठवणादविए, अइच्छ पडिसेह एय भावेय॥ एसोपच्चरकाणे,स्स छव्विहो होइनिरकेवो „ ॥ १ ॥ ( णामंठवणेत्यादि) नामस्थापना द्रव्यादित्साप्रतिषेधभावरूपः। प्रत्याख्यानस्यायं षोढा निक्षेपः । तत्रापि नामस्थापने सुगमे । द्रव्यप्रत्याख्यानं द्रव्यस्य द्रव्येण द्रव्याद्द्रव्ये द्रव्यभूतस्य वा प्रत्याख्यानं । तत्र सचित्ताचित्तभेदमिश्रस्य प्रत्याख्यानं द्रव्यनिमित्तं वा प्रत्याख्यानं यथा धम्मिल्लस्य । एवमपराण्यपि कारकाणि स्वधिया योजनीयानि। तत्र दातुमिच्छा दित्सा न दित्सा अदित्सा तया प्रत्याख्यानमदित्साप्रत्याख्यानं। सत्यपि देये सतिच संप्रदानकारके केवलं दातुर्दातुमिच्छा नास्तीत्यतोऽदित्साप्रत्याख्यानं तथा प्रतिषेधप्रत्याख्यानमिदं । तद्यथा । विवक्षितद्रव्याभावाद्विशिष्टसंप्रदानकारकाभावाद्वा सत्यामपि दित्सायां यः प्रतिषेधस्तत्प्रत्याख्यानं। भावप्रत्याख्यानं तु द्विधाऽतःकरणशुद्धस्य साधोः श्रावकस्य वा मूलगुणप्रत्याख्यानमुत्तरगुणप्रत्याख्यानं चेति । चशब्दाद्विविधमपि नोआगमतोभावप्रत्याख्यानं द्रष्टव्यं नान्यदिति । सांप्रतं क्रियापदं निक्षेप्तव्यं । तच्च क्रियास्थानाध्ययने निक्षिप्तमिति । न पुनर्निक्षिप्यते । इह पुनर्भावप्रत्याख्याने नाधिकारइति दर्शयितुमाह । " मूलगुणे सुयपगयं, पच्चरकाणे इहं अधीगारो ॥ होज्ज हुतप्पच्चइया, अपच्चरकाणकिरियाउ „ ॥ २ ॥ (मूलगुणेसुयइत्यादि) मूलगुणाः प्राणातिपातविरमणास्तेषु प्रकृतमधिकारः प्राणातिपातादेः प्रत्याख्यानं कर्तव्यमिति यावत् । इह प्रत्याख्यानक्रियाध्ययने नार्थाधिकारोयदि मूलगुणप्रत्याख्यानं न क्रियते तत्रोपायं दर्शयितुमाह । प्रत्याख्यानाभावेऽनियतत्वाद्यत्किंचनकारितया तत्प्रत्ययिका तन्निमित्ताभावाडुत्पद्यते प्रत्याख्यानक्रिया सावद्यानुष्ठानक्रिया तत्प्रत्ययिकश्च कर्मबंधस्तन्निमित्तश्च संसारइत्यतः प्रत्याख्यानक्रिया मुमुक्षुणा विधेयेति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं ( सुयंमेआउसंतेणमित्यादि ) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रैः सह संबंधोवक्तव्यः । सचायमिहानंतराध्ययनपरिसमाप्ताविदं सूत्रमाहारगुप्तः समितः सहितः सदा यतेतेत्येतन्मया श्रुतमायुष्मता भगवतेदमाख्यातमेवमनया दिशा परंपरसूत्रैरपि संबंधोऽभ्यूह्यः । इहास्मिन् प्रवचने सूत्रकृतांगेवा । खल्विति वाक्यालंकारे । प्रत्याख्यानक्रियानामाध्ययनं तस्यायमर्थोवक्ष्यमाणलक्षणः । अततीत्यात्मा जीवः प्राणी सचानादिमिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोगानुगततया स्वभावतएव प्रत्याख्यान्यपि भवत्यपिशब्दात्सएव कुतश्चिन्निमित्तात्प्रत्याख्यान्यपि । तत्रात्मग्रहणमपरदर्शनव्युदासार्थं । तथाहि । सांख्यानामप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावआत्मा । सच तृणकु

न्जीकरणेप्यसमर्थतया किंचित्करत्वान्न प्रत्याख्यानक्रियायां नवितुमर्हति। बौद्धानामप्या त्मनोनावात् ज्ञानस्य च क्षणिकतया स्थितेरनावात् कुतः प्रत्याख्यानक्रियेति एवमन्य त्रापि प्रत्याख्यानक्रियायाश्चनावोवाच्यः । तथा सदनुष्ठानं क्रिया तस्यां कुशलः क्रि याकुशलस्तत्प्रतिषेधादक्रियाकुशलोप्यात्मा नवति । तथात्मा मिथ्यात्वोदयसंस्थितो नवति तथैकांतेन नापरान् प्राणिनोदंमयतीति दंमस्तदेवंनूतश्चात्मा नवति तथाऽसा रतापादनाड्रागद्वेषाकुलितत्वाद्बालवद्बालश्चात्मा नवति तथा सुप्तवत्सुप्तः । यथाहि इव्यसुप्तः शब्दादीन् विषयान् न जानाति हिताहितप्राप्तिपरिहारविकलश्च तथा नाव सुप्तोप्यात्मैवंनूतएव नवतीत्येवमविचारणीयान्यशोननतया निरूपणीयान्यपर्यालोच नीयानि मनोवाक्कायवाक्यानि यस्य स तथा। तत्र मनोंतःकरणं वाग्वाणी कायोदेहो ऽर्थप्रतिपादकं पदसमूहात्मकं वाक्यमेकं तिङंतं सुबंतंवा। तत्र वाग्ग्रहणेनैव वाक्यार्थ स्य गतार्थत्वाद्यत्पुनर्वाक्यग्रहणं करोति तदेवं ज्ञापयतीह वाग्व्यापारस्य प्रचुरतया प्रा धान्यं प्रायशस्तत्प्रवृत्त्यैव प्रतिषेधविधानेन तयोरन्येषां प्रवर्त्तनं नवति । तदेवम प्रत्याख्यानक्रियः सन् आत्माऽविचारितमनोवाक्कायवाक्यश्चापि नवतीति। तथा प्रतिहतं प्रतिस्खलितं प्रत्याख्यातं विरतिप्रतिपत्त्या पापकर्माऽसदनुष्ठानं येन सःप्रतिहतप्रत्याख्या तपापकर्मा तत्प्रतिषेधादसनुष्ठानपरश्चात्मा नवति । तदेवमेषपूर्वोक्ताऽसंयतोऽविरतो ऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा सक्रियः सावद्यानुष्ठानस्तथानूतश्चासंवृतोमनोवाक्कायैरगुप्तो गुप्तत्वाच्चात्मनः परेषां च दंडहेतुत्वादंडस्तदेवंनूतश्च सन् एकांतेन बालवद्बालः सुप्तवदेकां तेन सुप्तस्तदेवंनूतश्च बालसुप्ततयाऽविचाराएवविचारितरमणीयानि परमार्थविचारगुणया युक्त्या वा विघटमानानि मनोक्कायवाक्यानि यस्य स तथा। यदिवा परसंबंध्यविचारितम नोवाक्कायवाक्यः सक्रियासु प्रवर्त्तते तदेवंनूतोनिर्विवेकतया पटुविज्ञानरहितः स्वप्नम पि न पश्यति तस्य चाव्यक्तविज्ञानस्य स्वप्नमप्यपश्यतः पापं कर्म वध्यते तेनैवंनूतेनाव्य क्तविज्ञानेनापि पापं कर्म क्रियतइति नावः ॥ १ ॥

तठ चोयए पन्नवगं एवं वयासि असंतएणं मणेणं पावयणं असंतिया ए वतीयाए पावियाए असंतएणं काएणं पावएणं अहणंतस्स अमण स्कस्स अ वियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि अप्पस्सतं पावक म्मे णो कज्जइ कस्सणं तंहेउं चोयए एवं ववीति अन्नयरेणं मणेणं पाव एणं मणवत्तिए पावे कम्मे कज्जइ अन्नयरीए वत्तिए पावियाए वत्तिवत्तिए पावे कम्म कज्जइ अन्नयरेणं काएणं पावएणं कायवत्तिए पावे कम्मे कज्ज

इ हणंतस्स समणक्कस्स सवियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि पासउ एवं गुणजातीयस्स पावे कम्मे कज्जइ पुणरवि चोयए एवं ववीति तत्थणं जेते एवमाहंसु असंतएणं मणेणं पावएणं असंतीयाए वत्तिए पावियाए असंतएणं काएणं पावएणं अहणं तस्सअमणक्कस्स अवियारमणवयणकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सउ पावे कम्मे कज्जइ तत्थणं जेते एवमाहंसु मिछा ते एवमाहंसु ॥ २ ॥

अर्थ—ए प्रकारें कहे थके, ( तत्थचोयएपन्नवगंएवंवयासि के० ) त्यां शिष्य प्रज्ञापक एटले गुरु प्रत्यें एवुं बोल्यो के, हे जगवन्! ( असंतएणं के० ) अछते अप्रवर्ते ( मणेणं के० ) मने ( पावयणं के० ) पापकर्मने विषे, तथा ( असंतियाएवत्तिएपावियाए के० ) अछते अप्रवर्त्ते वचनें पापकर्मनें विषे, ( असंतएणंकाएणंपावएणं के०) अछते अप्रवर्ते कायायें पापकर्मने विषे, ( अहणंतस्स के० ) अणहणताने विषे, ( अमणक्कस्स के० ) पापकर्म उपर मनना परिणाम रहित, (अवियारमणवयकायवक्कस्स के० ) अविचारवंत मन वचन काया एवा रहे, एटले पापकर्मना विचार विनाना रहे, ( सुविणमविअप्पसउपावकम्मेणोकज्जइ के० ) स्वप्नांतरें पण पापकर्मने अण देखता, एटले जे पापकर्म स्वप्नांतरें पण देखे नहीं, तो तेने पापकर्म सर्वथाऽपि लागे नहीं, ( कस्सणंतंहेचं के० ) तो शा कारणे ते पाप कर्म तेने लागे,? अंहीं अव्यक्तपणा थकी पापकर्म लागे, तेने कांइ बंधनुं कारण जाणवुं नहीं. ( चोयएएवंववीति के० ) तेहिज वली नोदक शिष्य, पोताना अभिप्रायें करी पापकर्मना बंधनुं कारण आवी रीतें कहेछे. ( अन्नयरेणंमणेणंपावएणं के० ) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापकर्मने विषे मनें करी प्रवर्त्ते, ( मणवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के० ) ते मन निमित्तें पापकर्म करे बांधे, ( अन्नयरीएवत्तिएपावियाए के० ) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापकर्मने विषे वचनें करी प्रवर्त्ते, ( वत्तिवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के० ) ते वचन निमित्तें पापकर्मने करे बांधे, (अन्नयरेणंकाएणंपावएणं के०) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापने विषे कायाने प्रवर्त्तावे. ( कायवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के० ) ते कायनिमित्तें पाप कर्म करे, बांधे. ( हणंतस्ससमणक्कस्ससवियारमणवयकायवक्कस्स के० ) हणताने विषे पापकर्म उपर मन परिणाम सहितने विषे सविचार मनें करी, वचनें करी, अने कायायें करी सहित, ( सुविणमविपासउ के० ) स्वप्नांतरने विषे पण पापकर्म देखे छे ( एवंगुणजातीयस्सपावेकम्मेकज्जइ के० ) एम गुण

जातिने यथायोग्यें पापकर्म लागे, बंधाय. ( पुणरविचोयएएवंववीति के० ) वली पण नोदक शिष्य, आचार्य प्रत्यें एम कहेछे. ( तञ्चणंजेतेएवमाहंसु के० ) त्यां जे, ते एम कहेछे के, ( असंतएणंमणेणंपावएणं के० ) पापकर्मने विषे अछते मनें, ( अ संतीयाएवत्तिएपावियाए के० ) पापकर्मनें विषे अछते वचने, ( असंतएणंकाएणंपाव एणं के० ) पापकर्मने विषे अछते कायायें करी, एटलें पापकर्मने विषे मन, वचन, अने कायाने अणप्रवर्त्तावतो. तथा ( अहणंतस्सअमणस्कस्सअवियारमणवयणकायवक्क स्सके० ) अण हणतानें पाप उपर मन परिणाम रहित अणविचार्या मन वचन अने कायानें विषे, तेणें करी सहित. ( सुविणमविअपस्सउपावेकम्मेकज्जइ के० ) स्वप्नांत रें पण पापकर्म करवाने विषे, बांधवाने विषे, अणदेखतो एवो जे होय ते पण पापक र्म बांधे, ( तञ्चणंजेते के० ) त्यां जे ते ( एवमाहंसु के० ) एम कहेछे. ( मिछातेएव माहंसु के० ) ते मिथ्या एटले जुठूं कहेछे. ॥ २ ॥

---

॥ दीपिका—एवं स्थिते शिष्यः प्रज्ञापकमाचार्यमेवमवादीत् अथवा आचार्याभिप्रायं शिष्योऽनूद्य निषेधति । ( असंतएणमित्यादि ) असता अविद्यमानेन मनसाऽप्रवृत्तेनाऽ शोभनेन तथा वाचा कायेनच पापेनाऽसता तथा सत्वान् घ्नतः अमनस्कस्याविचारमनो वाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमप्यपश्यतः स्वप्नांतिकं च कर्म नोपचयं यातीत्येवं अव्यक्तविज्ञा नस्यापि पापं कर्म न बध्यते । कस्य हेतोः केन कारणेन तत्पापं कर्म बध्यते? । नात्र कश्चिदव्यक्तविज्ञानत्वात्पापं कर्म बंधहेतुरित्यर्थः । तदेवं शिष्यएव स्वाभिप्रायेण पापक र्मबंधहेतुमाह । ( अन्नयरेणंति ) कर्माश्रवद्वारभूतेन मनोवाक्कायानामन्यतरेण क्लिष्टेन तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्यते तथा घ्नतः सत्वान् समनस्कस्य सविचारमनोवाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमपि पश्यतः स्पष्टविज्ञानस्य एवं गुणजातीयस्य पापं कर्म बध्यते न पुनरेकेंद्रियवि कलेंद्रियादेः पापकर्मसंभवइति । तेषां घातकस्य मनोवाक्कायव्यापारस्याभावात् । तस्मा न्नैव स्वप्नांतिकमविज्ञोपचितं कर्म विद्यतइति । एवं सति ये ते एवमुक्तवंतस्तथथा । विद्य मानैरेवाशुभैर्योगैः पापं कर्म क्रियते मिथ्या ते एवमुक्तवंतइति ॥ २ ॥

---

॥ टीका—तत्र चैवं व्यवस्थिते चोदकः प्रज्ञापकमेवमवादीत् । अत्र चाचार्याभिप्रायं चोदकोऽनूद्य निषेधयति । ( असंतएण मित्यादि ) अविद्यमानेनाऽसताऽमनसाऽसत्प्रवृत्तेनाऽ शोभनेन तथा वाचा कायेनच पापेनाऽसता तथा सत्वान् घ्नतस्तथा मनस्कस्याविचारमनो वाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमप्यपश्यतः स्वप्नांतिकंचकर्म नोपचयं यातीत्येवमव्यक्तविज्ञानस्यापि पापं कर्म न बध्यते एवंभूतविज्ञानेन पापं न क्रियतइति यावत् । कस्य हेतोः केन हेतुना केन

कारणेन तत्पापं कर्म बध्यते।?नात्र कश्चिद व्यक्तविज्ञानत्वात्पापं कर्म बंधहेतुरिति नावः। त देवं चोदकएव स्वानिप्रायेण पापकर्मबंधहेतुमाह।(अन्नयरेणमित्यादि) कर्माश्रवद्वारनूतैर्म नोवाक्कायकर्मनिः कर्म बध्यत इति दर्शयति। अन्यतरेण क्लिष्टेन प्राणातिपातादिप्रवृत्त्या म नसा वाचा कायेनच तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्यतइति।इदमेव स्पष्टतरमाह।नतस्सत्वान्समन स्कस्य समनोवाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमपि पश्यतः प्रस्पष्टविज्ञानस्यैतद्गुणजातीयस्य पापं क र्म बध्यते न पुनरेकेंद्रियविकलेंद्रियादेः पापकर्मसंनवइति तेषां घातकस्य मनोवाक्काय व्यापारस्यानावात्। अथैतद्व्यापारमंतरेणापि कर्मबंधइष्यते एवंच सति मुक्तानामपिकर्म बंधः स्यात्।न चैतदिष्यते। तस्मान्नैव स्वप्नांतिकमविज्ञोपचितं कर्म बध्यतइति। तत्र य धेवंनूतैरेव मनोवाक्कायव्यापारैः कर्मबंधोऽन्युपगम्यते तदेवं व्यवस्थिते सति ये ते एवमुक्त वंतस्तद्यथा विद्यमानैरेवाशुनैर्योगैः पापं कर्म क्रियते मिथ्या तएवमुक्तवंतइति स्थितं॥२॥

तत्र पन्नवए चोयगं एवं वयासी.तं सम्मं जं मए पुवेवुत्तं असंतएणं मणेणं पावएणं असंतियाए वत्तिए पावियाए असंतएणं काएणं पावएणं अहणं तस्स अमणस्कस्स अवियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सउ पावे कम्मे कज्जति तं सम्मं कस्सणं तं हेउं आचार्या आह तत्र खलुनग वया ठजीवणिकायहेऊपण्णत्ता तं जहा पुढविकाइया जाव तसकाइया इच्चे एहिं ठहिं जीवणिकाएहिं आया अपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे निच्चं पसढविउवातचित्तदंमे तं जहा पाणातिवाए जाव परिग्गहे कोहे जाव मिछादंसणसल्ले ॥ ३ ॥

अर्थ–एवुं शिष्ये अचार्यना पक्षने दूषण आप्युं, ( तत्र के० ) तेवारें ( पन्नवएचोय गं के० ) आचार्य पोताना शिष्यप्रत्यें ( एवंवयासी के० ) एवुं बोल्या के,अहो शिष्य! ( तंसम्मं जंमएपुवेवुत्तंके० ) जे में पूर्वे वचन कह्युंके जे मन,वचन, अने कायानी प्रवर्त्ति विना पण पाप कर्म लागे ते सत्यछे. इत्यादि पाठनो अर्थ सुजन छे माटें नथी लख्यो.(तं सम्मं के०) ते सत्य जाणजे,युक्तिसहित जाणजे. एवुं आचार्यनुं वचन सांनली, फरी शिष्य बोल्यो के, (कस्सणंतंहेउं के०) शे कारणे तमारुं वचन सत्य छे ते कहो.? हवे (आचा र्याआह के०) आचार्य कहेछे. (तत्रखलुनगवया के०) त्यां खलु ए वाक्यालंकारे नगवा न् श्रीवर्द्धमान स्वामी तेणें (ठजीवणिकायंहेऊपण्णत्ता के० ) ठ जीव निकाय कर्मबंधनां कारण कह्यांछे, ( तंजहा के० ) ते कहेछे. ( पुढविकाईया के० ) पृथिवीकाय थकी मांमी ने ( जावतसकाइया के० ) यावत् त्रसकाय पर्यंत, ( इच्चेएहिंठहिंजीवणिकाएहिं के० )

ए ठ जीव निकायने विषे, ( आयाअपडिहयपच्चरकायपावकम्मे के० ) आत्मा सर्व काल-अप्रतिहत एटले हण्यां नथी पच्चरकाणें करी पापकर्म जेणे एवो, तथा ( निच्चंपसढविउवातचित्तदंमे के० ) नित्य शठ एटले जड जेवो, एनो परमार्थ जाणे नहीं, प्राणघातने विषे चित्तछे जेनुं ते कारणे प्राणीउने दंमनो करनार जाणवो. ( तंजहा के० ) ते कहेछे ( पाणातिवाए के०) प्राणातिपात आदें देइने, ( जावपरिग्गहे के० ) मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, यावत् परिग्रह, अने ( कोहे के० ) क्रोध थी मांमीने, ( जावमिच्छादंसणसल्ले के० ) यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य ए अढार पापस्थानकने विषे अनिवृत्ति छे एटले अढार पापस्थानक थकी निवृत्या नथी, ते कारण मांटें एकेंद्रियादिक जीवोने पण अपच्चरकाणी क्रियानो बंध लागे छे. ॥ ३ ॥

---

॥ दीपिका–एवमाचार्यपक्षं दूषयित्वा नोदकेन स्वपक्षे स्थापिते आचार्य आह । तत्र पन्नवएति ) आचार्यः स्वमतमनूद्य युक्त्या साधयति ( तंसम्मंति ) तत्सम्यक् यन्मयोक्तं अव्यक्तयोगानामपि कर्म बध्यतइति तद्युक्तं । एवमुक्ते शिष्यआह । कस्य हेतोः केन कारणेन तत्सम्यक् गिति चेदाह। (तत्थखलु इत्यादि) तत्र भगवता षड्जीवनिकायाः कर्मबंध हेतुत्वेन स्थापिताः । तद्यथा । पृथिवीकायिकाइत्यादि । इत्येतैः षड्जीवनिकायैरात्मा प्रतिहतं विघ्नितं प्रत्याख्यातं नियमितं पापं कर्म येन स तथा जीवेषु विरतः एवंभूतोन स अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा नित्यं प्रकर्षेण शठः प्रशठः व्यतिपाते हिंसायां चित्तं यस्य स व्यतिपातचित्तः स्वपरदंमहेतुत्वादंमः प्रशठश्चासौ व्यतिपातचित्तदंमश्चेति । तद्यथा प्राणातिपाते विधेये प्रशठव्यतिपातचित्तदंमः । एवं मृषावादादिष्वपि वाच्यं यावन्मिथ्यादर्शनशल्यं । तदेवमेकेंद्रियविकलेंद्रियाअपि हिंसादिदोषवत्तया मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाश्रितत्वेन अस्वप्नाद्यवस्थायामपि कर्मबंधइति तन्निरस्तं ज्ञेयम् ॥ ३ ॥

---

॥ टीका–तदेवं चोदकेनाचार्यपक्षं दूषयित्वा स्वपक्षव्यवस्थापिते सत्याचार्य आह ( तत्थपन्नव इत्यादि ) तत्राचार्यः स्वमतमनूद्य तस्योपपत्तिकं साधयितुमाह । ( तंसम्मइत्यादि ) यदेतन्मयोक्तं प्राग् यथा स्पष्टाव्यक्तयोगानामपि कर्म बध्यते तत्सम्यक् शोभनं युक्तिसंगतमित्येवमुक्ते परआह। कस्य हेतोः केन कारणेन तत्सम्यगिति चेदाह (तत्थखलु इत्यादि ) तत्रेति वाक्योपन्यासार्थे । खलुशब्दोवाक्यालंकारे। भगवता वीरवर्द्धमानस्वामिना षड्जीवनिकायाः कर्मबंधहेतुत्वेनोपन्यस्ताः । तद्यथा पृथिवीकायिकाइत्यादि यावत्त्रसकायिकाइति । कथमेते षड्जीवनिकायाः कर्मबंधस्य कारणमित्याह ( इच्चेएहिंइत्यादि ) इत्येतेषु पृथिव्यादिषु षड्जीवनिकायेषु प्रतिहतं विघ्नितं प्रत्याख्यातं नियमितं

पापं कर्म येन सतथा पुनर्नञ्समासेनाऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा यश्चात्मा जंतुस्तथा तद्भवत्वादेव नित्यं सर्वकालं प्रकर्षेण शठस्तथा व्यतिपाते प्राणव्यपरोपणे चित्तं यस्य स व्यतिपातचित्तः स्वपरदंमहेतुत्वाद्दंमः प्रशठश्चासौ व्यतिपातचित्तदंमश्चेति कर्मधारयः । इत्येतदेव प्रत्येकं दर्शयितुमाह ( तंजहेत्यादि ) तद्यथा प्राणातिपाते विधेये प्रशठचित्तदंमएवं मृषावाददत्तादानमैथुनपरिग्रहेष्वपि वाच्यं यावन्मिथ्यादर्शनशल्यमिति । तेषामिहैकेंद्रियविकलेंद्रियादीनामनिवृत्तत्वान्मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगानुगतत्वं द्रष्टव्यं । तद्भावाच्च ते कथं प्राणातिपातादिदोषवत्तया व्यक्तविज्ञानाअपि स्वप्नाद्यवस्थायामिति ते कर्मबंधकाएव । तदेवं व्यवस्थिते यत्प्रागुक्तं परेण यथा नाव्यक्तविज्ञानानामघ्नताममनस्कानां कर्मबंधइत्येतत् ह्रुवते ॥ ३ ॥

आचार्यआह तच्च खलु नगवया वहए दिठंते पन्नत्ते से जहा णामए वहए सिया गाहावइस्सवा गाहावइपुत्तस्सवा रन्नोवा रायपुरिसस्सवा खणं निद्दाए पविसिस्सामि खणंलद्धूणं वहिस्सामि पहारेमाणे से किंतु हुनाम से वहए तस्स गाहावइस्सवा गाहावइपुतस्सवा रन्नोवा रायपुरिसस्सवा खणं निद्दाए पविसिस्सामि खणं लद्धूणं वहिस्सामि पहारेमाणे दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभुत्ते मिच्छासंठित्ते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे नवति एवं वियागरेमाणे समियाए वियागरे चोयए हंता नवति ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे आचार्य एनी उपर दृष्टांत कहेवे. ( तच्चखलुनगवया के० ) त्यां निश्चें नगवंत श्री महावीर देवें (वहएदिठंते के०) वधकनो दृष्टांत ( पन्नत्ते के० ) कह्यो ठे. ( सेजहाणामए के०) ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइ एक पुरुष, (वहएसिया के०) वधक होय ते कोइ एक कारणें कोप्यो थको, ( गाहावइस्सवा के० ) गृहपति उपर, तथा ( गाहावइपुत्तस्सवा के० ) गृहपतिना पुत्र उपर. अथवा ( रन्नोवा के० ) राजा उपर, ( रायपुरिसस्सवा के० ) अथवा राजानो पुरुष, तेओनो विनाश करवा वांठतो, एवी चिंतवना करे के, ( खणंनिद्दाए के० ) अवसर पामिने, एना घरमां ( पविसिस्सामि के० ) प्रवेश करीश ( खणंलद्धूणंवहिस्सामि के०) छिद्रादिक पामिनें अथवा देखीने एने हणीश. ( पहारेमाणे के० ) ते पुरुष एम चिंतवतो, ( सेकिंतुहुनामसेवहए के० ) ते केवो जाणवो? तु अवधारणे ठे नाम संनावनायें ठे. तो के, ते वधक कहियें. हवे ते वधक गृहपतिनो, अथवा गृहपतिना पुत्रनो, अथवा राजानो, अथवा राजपुरुषनो, वध

चिंतवतो अवसर पामिने, तेना घर मांहें प्रवेश करीश, अवसर देखीने तेने हणीश, एम चिंतवतो, दिवसें अथवा रात्रीयें सुतो, अथवा जागतो, अमित्रनूत मिथ्यामित्र पणामां संस्थित एटले माग कार्यने विषे रह्यो, ( निच्चंपसढ के० ) नित्यज प्रशठ एटले एनो परमार्थ जाणे नहीं. (विऊवायचित्त के० ) प्राणिघात तेने विषे जेनुं चित्तछे ते कारणे, ( दंमेनवति के० ) प्राणीउने दंमनो करना होय, ते पुरुष जीवनो विनाश न करतो थको पण वधक कहेवाय, किंवा न कहेवाय? ( एवंवियागरेमाणे के० ) एरीतें आचार्यें कहे उते, ( समियाएवियागरेचोयएहंतानवति के०.) शिष्य बोल्यो के, हे नगवन्! ए तमें सत्य बोल्या. ते वधक कहेवाय ॥ ४ ॥

---

॥ दीपिका—अथाचार्यः स्वमतसिध्ये दृष्टांतमाह । ( तत्रखलुइत्यादि ) तत्र खलु नगवता वधकदृष्टांतः प्रज्ञप्तः । तद्यथानाम कश्चिद्वधकः स्यात् गृहपतेर्गृहपतिपुत्रस्य वा राज्ञोराजपुरुषस्य वा उपरि कुतश्चिन्निमित्तात्कुपितः सन् क्षणमवसरं निदाय प्राप्य गृहे पुरे वा घाताय प्रवेक्ष्यामि क्षणमवसरं छिद्रादिकं लब्ध्वा वध्यं हनिष्यामीति संप्रधारयन् दिवा रात्रौ वा सुप्तोवा जाग्रद्वा मित्रनूतोमिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोहिंसाध्यवसायी नवति । अयमर्थः । कोऽपि कस्यापि गृहपत्यादेरुपरि कुपितस्तं हंतुकामोपि यावदवसरं छिद्रं न लनते तावत्कार्यांतरे प्रवृत्तोपि हिंसामकुर्वन्नपि वध्यस्य हिंसावसरापेक्षी नित्यं रागद्वेषाकुलः स्यात् । एवमेकेंद्रियविकलेंद्रियाअपि विरतेरनावात्तदयोग्यतया हिंसामकुर्वंतोपि तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा वध्यंतएवेत्यर्थः ॥ ४ ॥

---

॥ टीका—सांप्रतमाचार्यः स्वपक्षसिध्ये दृष्टांतमाह । ( तत्रखलुनगवयाइत्यादि ) तत्रेति वाक्योपन्यासार्थः । खलु शब्दोवाक्यालंकारे । नगवतैश्वर्यादिगुणोपेतेन चतुस्त्रिंशदतिसमयसमन्वितेन तीर्थकृता वधकदृष्टांतः प्रज्ञप्तः प्ररूपितस्तद्यथा नाम वधकः कश्चित्स्यादिति कुतश्चिन्निमित्तात्कुपितः सन् कस्यचिद्वधपरिणतः कश्चित्पुरुषोनवति । यस्यासौ वधकस्तं विशेषेण दर्शयितुमाह । ( गाहावइस्सवेत्यादि ) गृहस्य पतिर्गृहपतिस्तत्पुत्रोवाऽनेन सामान्यतः प्राकृतपुरुषोऽनिहितस्तस्योपरि कुतश्चिन्निमित्ताद्वधकः कश्चित्संवृत्तः सच वधपरिणामपरिणतोपि कस्मिंश्चित्क्षणे पापकारिणमेनं घातयिष्यामीति । तथा राज्ञस्तत्पुत्रस्योपरि कुपितएतत्कुर्यादित्याह । ( खणंनिद्दायइत्यादि ) क्षणमवसरं ( णिद्दायत्ति ) प्राप्य तथाविधस्य पुरे गृहे वा प्रवेक्ष्यामीत्येतदध्यवसायी नवति तथा क्षणमवसरं छिद्रादिकं वध्यस्य लब्ध्वा तदुत्तरकालं तं वध्यं हनिष्यामीत्येवं संप्रधारयति। एतदुक्तं नवति । गृहपतेः सामान्यपुरुषस्य राज्ञोवा विशिष्टतमस्य कस्यचिद्वधपरिणतो

प्यात्मनो ऽवसरं लब्ध्वाऽपरकार्यव्यक्षणे सति तथा वध्यस्यच छिद्रमपेक्षमाणस्तदवसरा पेक्षी किंचित्कालमुदास्ते सच तत्रौदासीन्यं कुर्वाणोऽपरकार्यं प्रति व्यग्रचेताः संस्तस्मि न्नवसरे वधं प्रत्यस्पष्टविज्ञानोनवति । सचैवंनूतोपि तथा तं वध्यं प्रति नित्यमेव प्रशठ व्यतिपातचित्तदंमोनवत्येवमविद्यमानैरपि प्रव्यक्तैरशुनैर्योगैरेकेंद्रियविकलेंद्रियादयोऽस्पष्ट विज्ञानाअपि मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगानुगतत्वात्प्राणातिपातादिदोषवंतोनवंति । नच तेऽवसरमपेक्षमाणाउदासीनाअप्यवैरिणोन नवंतीति । अत्रच वध्यवधकयोः क्ष णापेक्षया चत्वारोनंगाः । तद्यथा । वध्यस्याऽनवसरोवधकस्य च उनयोर्वाऽनवसरो द्व योरप्यवसरइति । नागार्जुनीयास्तु पठंति । अप्पणो अरकाणया एतस्सवा पुरिसस्स छिद्दं अलनमाणे णोवहे इर्त जयामेखणो नविस्सइ तस्स पुरिसस्स छिद्दं लनिस्सामि तया मेस पुरिसे अवस्सं वहयव्वे नविस्सइ एवं मणोपहारे माणेत्ति सूत्रं निगदसिद्धं ॥ ४ ॥

आचार्य आह जहासे वहए तस्स गाहावइस्सवा तस्स गाहावइपुत्त स्सवा रस्रोवा रायपुरिसस्स खणं निद्दाए पविसिस्सामि खणं लद्धूणं वहिस्सामित्ति पहारेमाणे दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमि त्तनूए मिन्नासंठित्ते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे एवमेव बालेवि सव्वेसिं पाणाणं जाव सव्वेसिं सत्ताणं दियावा राउवा सुत्तेवा जागरे माणेवा अमित्तनूए मिन्नासठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे तं पाणाति वाए जाव मिन्नादंसणसल्ले एवंखलु नगवया अरकाए असंजए अवि रए अप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मे सकिरिए असंवुमे एगंतदंमे एगंतबाले एगंतसुत्तेयावि नवइ से बाल अवियारमणवयणकायवक्के सुविणम विणपस्सइ पावेय से कम्मे कज्जइ ॥ ५ ॥

अर्थ—तेवारें अचार्य बोल्या के, अहो शिष्य! जेम ते वधक पुरुष, ते गृहपति, तथा गृहपतिना पुत्र, अथवा राजा, तथा राज पुरुष उपर विनाशनो नाव चिंतवतो प ठो, तेमना विनाशनी क्रिया कस्या विना पण ते वधक कहेवाय; बीजा पदोनो अर्थ सु गम छे माटें आहीं लख्यो नथी. ( एवमेव के० ) एम ते, ( बालेवि के० ) बाल जीव पण, सर्व प्राणीने विषे यावत् सर्व सत्व, तेनो दिवसें अथवा रात्रियें सुतां अथवा जागतां, अमित्रनूत एटले शत्रुनूत मिथ्यात्वसंस्थित निरंतर शठ,प्राणिघातने विषे चित्त छे जेनुं, प्राणीओने दंम कारक, ( तं के० ) ते कहेछे. प्राणातिपात मृषावादथी मांमी

ने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य, एवा अढारे पापस्थानकने विषे अनिवृत्त हतो होय. एम निश्चे भगवंतें कह्युंछे, तेम असंयति अविरति अप्रतिहत एटले पच्चरकाणें करीने पाप कर्म जेणें हण्यां नथी, क्रिया सहित संवर रहित एकांत दंमनो आपनार, एकांत बाल, एकांत शयन करनार होय. ते बाल, अविचारवालां, एवां मन वचन अने काया तेणें करी सहित हतो जे पाप स्वप्नांतरमां पण देखे नहीं. एवां पापकर्मनुं बंधन करे. एम अविरतिपणायें करी तेने पापकर्म लागे ॥ ५ ॥

---

॥ दीपिका–अथाचार्यएव स्वाभिमतार्थं परप्रश्नपूर्वमाह । ( सेकिंतुइत्यादि ) आचार्यः स्वयं निर्णीतार्थोपि ईर्ष्यया परं पृछति किमसौ वधकपुरुषोहननावसरापेक्षी नित्यं हिंसानुगतचित्तः स्यात्किंवा न? इति पृष्टं परः समतया मध्यस्थः सन् यथास्थितमेव व्यागृणीयात् कथयेत् । तद्यथा हंताचार्यभवत्यसौ अमित्रभूतइति ॥ अथ दार्ष्टांतिकं दर्शयति । ( जहासन्ति ) यथासौ वधकइत्यादिना दृष्टांतमनूद्य दार्ष्टांतिकं दर्शयति । ( एवमेवेत्यादि ) यथासौ वधकोऽवसरापेक्षी वध्यस्य हिंसामकुर्वाणोपि अमित्रभूतोभवति एवमसावपि बालो ऽस्पष्टविज्ञानोनिवृत्तेरभावाद्योग्यतया सर्वेषां प्राणिनां हंता स्यात् यावन्मिथ्यादर्शनशल्योपेतः स्यात् । कोर्थः । यद्यपि विनयादिकं कुतश्चित्कारणादसौ विधत्ते तथापि उदायिनृपमारकवदंतर्दुष्टएव नित्यं हिंसानुगतचित्तश्च । यथा परशुरामः कृतवीर्यं हत्वापि ततः सप्तवारं निःक्षत्रां पृथिवीं चकार । यदुक्तं । " अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तुष्टिमुपैति शक्तिमान् ॥ अधिकां कुरुतेऽरियातनां द्विषतां मूलमशेषमुध्दरेत् " ॥ १ ॥ एवमसावपि अमित्रभूतः स्यादिति । अथ पूर्वोक्तार्थमनुवदन्नुपसंहरति । ( एवंखलुभगवयाइत्यादि ) यथा वधकोऽनिवृत्तत्वाद्दुष्टएवमेकेंद्रियादिकोऽस्पष्टविज्ञानोपि अविरतत्वाद्दुष्टएवेति । शेषं सुगमं । यावत्पापं कर्म क्रियतइति ॥ ५ ॥

---

॥ टीका–सांप्रतमाचार्यएव स्वाभिप्रेतमर्थं परप्रयत्नपूर्वकमाविर्भावयन्नाह । ( सेकिंतु इत्यादि ) आचार्यः स्वतोहि निर्णीतार्थोऽसूयया परं पृछति । किमिति परप्रश्ने । तुरिति वितर्के । डुशब्दोवाक्यालंकारे । किमसौ वधकपुरुषावसरापेक्षी छिद्रमवसरं प्रधारयन् पर्यालोचयन्नहर्निशं सुप्तोजाग्रदवस्थोवा तस्य गृहपतेराज्ञोवा वध्यस्यामित्रभूतोमिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोभवत्याहोस्विन्नेत्येवं पृष्टः परः समतया माध्यस्थ्यमवलंब्यमानोयथावस्थितमेव व्यागृणीयात् । तद्यथा हंताचार्य भवत्यसावमित्रभूतइतीत्यादि ॥ तदेवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं दर्शयितुमाह( जहासेवहएइत्यादि) यथासौ वधकइत्यादिना दृष्टांतमनूद्य दार्ष्टांतिकमर्थं दर्शयितुमाह ।

( एवमेवेत्यादि- ) एवमेवेति यथासौ वधकोऽवसरापेक्षितया वध्यस्य व्यापत्तिमकुर्वाणो ऽप्यमित्रभूतोभवत्येवमेवासावपि बालवद्बालोस्पष्टविज्ञानोभवत्येव निवृत्तेरभावाद्योग्य तया सर्वेषां प्राणिनां व्यापादकोभवति यावन्मिथ्यादर्शनशल्योपेतोभवति । इदमुक्तं भ वति । यद्यप्युज्ञानादिकं विनयं कुतश्चिन्निमित्तादसौ विधत्ते तथाप्युदायिनृपव्यापादक वदंतर्दुष्टएवेति नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंडश्च यथा परशुरामः कृतवीर्यं व्यापाद्यापि तदुत्तरकालं सप्तवारं निःक्षत्रां पृथिवीं चकार (आहत्ति) " अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तु ष्टिमुपैति शक्तिमान् ॥ अधिकां कुरुतेऽरियातनां, द्विपतां मूलमशेषमुद्धरेत् ॥ १ ॥ इत्ये वमसावमित्रभूतोमिथ्याविनीतश्च भवतीति । सांप्रतमुपसंहरन् प्राक् प्रतिपादितमर्थमनु वदन्नाह । ( एवंखलुभगवयाइत्यादि ) यथासौ वधकः स्वपरावसरापेक्षी सन्न तावद्घात यत्यथवा निवृत्तत्वाद्दोषदुष्टएव एवमसावप्येकेंद्रियादिकोस्पष्टविज्ञानोपि तथाभूतएवावि रताप्रतिहतप्रत्याख्यातसत्क्रियादिदोषदुष्टइति । शेषं सुगमं । यावत्पापं कर्म क्रियतइति॥५॥

जहा से वहए तस्सवा गाहावइस्स जाव तस्सवा रायपुरिसस्स पत्तेयं प त्तेयं चित्तसमादाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूते मिछासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे भवइ एवमेव बाले सव्वे सिं पाणाणं जाव सव्वेसिं सत्ताणं पत्तेयं पत्तेयं चित्तसमादाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूते मिछासंठिते निच्चं पसढ विउवायचित्तदंमे भवइ ॥ ६ ॥

अर्थ-( जहासेवहए के० ) जेम ते वधक पुरुष, ते गृहपत्यादिक उपर प्रत्येक प्रत्ये क चित्तें करी विनाश चिंतवतो, दिवसें रात्रियें सुतो, जागतो थको अमित्रभूत एटले शत्रु समान मिथ्यात्व संस्थित निरंतर शठ प्राणघातने विषे चित्तछे जेनूं माटें, प्राणीयोने दंमनो करनार होय. तेने पापकर्म बंधाय. ( एवमेव के० ) एमज ए बाल जे एकेंद्रिया दिक जीवो छे ते पण सर्व प्राणी, सर्वभूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, तेने विषे अविरति प णाने भावें ते सर्वने विषे प्रत्येक प्रत्येक चित्तें करी विनाश चिंतवतो, दिवसने विषे, रात्रिने विषे, सुतो, जागतो, अमित्र भूत मिथ्यात्व संस्थित, निरंतर शठ, प्राणिघातने विषे चि त्तछे जेनूं, प्राणीयोने दंमनो करनार होय, एम बोलाय. ते कारणें तेने पापकर्म बंधाय॥६॥

॥ दीपिका-तदेवं पूर्वोक्तार्थनिगमनं कृत्वाऽधुना स सर्वप्राणिनां दुष्टात्मा स्यादिति दर्शयति । यथासौ वधकोगृहपत्यादेः प्रत्येकं सर्वेषु वध्येषु घातकचित्तं समादाय प्राप्ताव सरोऽहमेनं हनिष्यामीति कृत्वा दिवा रात्रौवा सुप्तोजाग्रद्वा सर्वावस्थासु सर्वप्राणि

नां प्रत्येकममित्रनूतोघ्नन्नपि मिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवति । एवं वालकएकेंद्रियादिरपि सर्वप्राणिनां विरतेरनावात्प्रत्येकं घातकचित्तं समादाय नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमः स्यात्तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यतइति ॥ ६ ॥

---

॥ टीका–तदेवं दृष्टांतदार्ष्टांतिकप्रदर्शनेन पूर्वप्रतिपादितार्थस्य निगमनं कृत्वाऽधुना सर्वेषामेव प्रत्येकं प्राणिनां डुष्टात्मा नवति इत्येतत्प्रतिपादिनुकामञ्चाह । ( जहासेवहएइत्यादि ) यथाऽसौ वधकः परात्मनोरवसरापेक्षी तथास्य गृहपतेस्तत्पुत्रस्य वाऽन्यहितस्य वा राजादेस्तत्पुत्रस्य चैकमेकं पृथक् पृथक् सर्वेष्वपि वध्येषु घातकचित्तं समादाय प्राप्तावसरोऽहमेनं वैरिणं मदाधिविधायिनं घातयिष्यामीत्येवं प्रतिज्ञाय दिवा रात्रौ वा सुप्तोवा जाग्रद्वा सर्वास्ववस्थासु सर्वेषामेव वध्यानां प्रत्येकममित्रनूतोऽवसरापेक्षितया घ्नन्नपि . मिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवति इति रागद्वेषाकुलितोबालवद्बालोज्ञानावृतएकेंद्रियादिरिति । सर्वेषामेव प्राणिनां विरतेरनावात्तद्योग्यतया प्रत्येकं वध्येषु घातकचित्तं समादाय नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवतीति । इदमुक्तं नवति । यथासौ तस्माद्गृहपतीराजाद्युघाताडुपशांतवैरः कालावसरापेक्षितया वधमकुर्वाणोप्यविरतिसद्भावाद्वैरान्न निवर्त्तते तत्प्रत्ययिकेनच कर्मणा बध्यते । एवं मृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहेष्वपि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनार्थविधानेन पंचावयवत्वं वाच्यमिति । इहैव पंचावयवस्य सूत्राणां विनागोद्रष्टव्यः । तद्यथा । आया अपच्चरकाणीयावि नवतीत्यतआरन्य यावत्पावेयसे कम्मे कज्जइत्ति इतीयं प्रतिज्ञा । तत्र परः प्रतिज्ञामात्रेणोक्तमनुक्तसममिति कृत्वा चोदयति । तद्यथा । तद्य चोयए पन्नवगं एवं वयासीत्यतआरन्य यावज्जंते एवमाहिंसुमिछंते एवमाहिंसुत्ति । तत्र प्रज्ञापकश्चोदकं प्रत्येवं वदेत् । तद्यथा । यन्मया पूर्वं प्रतिज्ञातं तत्सम्यक् कस्य हेतोः केन हेतुनेतिचेत् तत्र हेतुमाह । तद्य खलु नगवया ठजीवनिकाया हेकपणताइत्यतआरन्य यावमिछादंसणसल्लेइत्ययं हेतुः । तदस्य हेतोरनैकांतिकत्वव्युदासार्थं सपक्षे सिद्धिं दर्शयितुं दृष्टांतमाह । तद्यथा । खलु नगवया वहए दिठंते पणत्ते इत्येतदारन्य यावत्तस्याखणं लद्धूणं वहिस्सामीति पहारमाणेत्ति । तदेवं दृष्टांतं प्रदर्श्य तत्र च हेतोः सत्तां स्वानिप्रेतां परेण नणयितुमाह । से किंतुहुणाम से वहए इत्यादेरारन्य यावद्भंता नवति । तदेवं हेतोर्दृष्टांते सत्त्वं प्रसाध्य हेतोः पक्षधर्मत्वं दर्शयितुमुपनयार्थं दृष्टांतधर्मिणि हेतोः सत्तां परेणान्युपगतामनुवदति । जहासे वहए इत्यतआरन्य यावणिच्चं पसढविउवायचित्तदंमेत्ति । सांप्रतं हेतोः पक्षधर्मत्वमाह । एवमेव बालेयवीत्यादीत्यतआरन्य यावत्पावेयसे कम्मे किज्जइत्ति । तदेवं प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपन

यनप्रतिपादकानि यथाविधिसूत्राणि विज्ञागतः प्रदर्श्याधुना प्रतिज्ञाहेत्वोः पुनर्वचनं निगमनमित्येतत्प्रतिपादयितुमाह् । जहा से वहए तस्सवागाहावइस्स इत्यादि यावन्निच्चं पसढविउवायचित्तदंमेत्ति ) एतानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमान्यर्थतः सूत्रैः प्रदर्शितानि । प्रयोगस्त्वेवं इष्टव्यः । तत्राप्रतिहतप्रत्याख्यातक्रियआत्मा पापानुबंधीति प्रतिज्ञा सदा षड्जीवनिकायेषु प्रशठव्यतिपातचित्तदंमत्वादिति हेतुः स्वपरावसरापेक्षि तया कदाचिदव्यापादयन्नपि राजादिवधकवदिति दृष्टांतः । यथासौ वधपरिणामादनिवृत्तत्वाद्वध्यस्यामित्रजूतस्तथाऽत्माऽपि विरतेरजावात्सर्वेष्वपि सत्वेषु नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमइत्युपनयः । यतएवं तस्मात्पापानुबंधीति निगमनम् । एवं मृषावादादिष्वपि पंचावयवत्वं योजनीयमिति । केवलं मृषावादादिशब्दोच्चारणं विधेयं तच्चानेन विधिना नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमत्वात्तथा नित्यं प्रशठादत्तादानचित्तदंमत्वादिति ॥ ६ ॥

णो इणठे समठे चोदक इह खलु बहवे पाणा जे इमेणं सरीरसमणुस्सएणं णो दिठावा सुयावा नाजिमयावा विन्नायावा जेसिं णो पत्तेयं पत्तेयं चित्तसमायाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तजूते मिछासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे तं पाणातिवाए जाव मिछादंसणसल्ले ॥ ७ ॥

अर्थ—एम गुरुयें कहे थके, हवे ( चोदक के० ) शिष्य बोल्योके, हे जगवन् ! तमे जे अर्थ कह्यो, ते योग्य नथी ( णोइणठेसमठे के० ) ते अर्थ समर्थ नथी, तेनूं कारण कहेछे. ( इहखलु के० ) आ चउदरज्ज्वात्मक लोकमांहें ( बहवेपाणा के० ) अनंता प्राणीछे (जेइमेणंसरीरसमणुस्सएणं के०) जे आ शरीरें करी, समुस्सए एटले पुजलें करी, जीवें दृष्टियें करी कदाचित् कोइ वारें पण ( णोदिठावा के० ) दीठा नथी, ( सुयावा के० ) कानें सांजल्या नथी, ( नाजिमयावा के० ) उजल्या पण नथी, अथवा ( विन्नायावा के० ) विशेषें करी, जाण्या पण नथी, ( जेसिंणोपत्तेयंपत्तेयंचित्तसमायाए के०) जेणे ए कारणे प्रत्येक प्रत्येक चित्तें करीने ए जीवोनो विनाश चिंतव्यो नथी तो दिवसने विषे, रात्रीने विषे, सुतां, जागतां, अमित्रजूत मिथ्यासंस्थित निरंतर शठ प्राणिना घातनेविषे चित्तछे जेनूं प्राणीने दंमकारक ते केम केहेवाय ? अने प्राणातिपात थकी मांमीने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य सुधी अढारे पापस्थानकने अण करवाथी तेने कर्मनुं बंधन केम लागे ? एतावता तेनें नज लागे. ॥ ७ ॥

॥ दीपिका—एवं षड्जीवनिकायेषु प्रत्येकं अमित्रजूततया पापानुबंधित्वे दर्शिते

परोव्यनिचारं दर्शयति । ( णोइणठेइति ) नायमर्थः समर्थोयत्सर्वेऽपि प्राणिनः सर्वे षां जीवानाममित्रनूताइति । तत्र परः स्वपक्षसिद्ध्ये युक्तिमाह । इह बह्वोऽनंताः प्राणिनः संति येऽमुना शरीरसमुच्छ्रयेणानेन शरीरेण न कदाचिद्दृष्टाश्चक्षुषा न श्रुताः कर्णान्यां नानिमतानेष्टाः । नच विज्ञाताज्ञानेनेति कथं तद्विषयस्तेषु अमित्रनावः स्यात्! । तेषां जीवानां कदाचिदपि विषयमप्राप्तानां कथं वधं प्रति चित्तसमादानं स्यात्!। न चासौ तान् प्रति प्रशठव्यतिपातचित्तदंमः स्यात्। शेषं सुगमम् ॥ ७ ॥

---

॥ टीका—तदेवं सर्वात्मना षट्स्वपि जीवनिकायेषु प्रत्येकममित्रनूततया पापानुबंधित्वे प्रतिपादिते व्यनिचारं दर्शयन्नाह । ( णोइणठेसमठेइत्यादि ) नायमर्थः समर्थ इति प्रतिपत्तुं योग्यः । तद्यथा । सर्वे प्राणिनः सर्वेषामेव सत्वानां प्रत्येकममित्रनूता इति । तत्रापरः स्वपक्षसिद्ध्ये सर्वेषां प्रत्येकं मित्रानावं दर्शयितुं कारणमाह । इहास्मिंश्चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके बह्वोऽनंताःप्राणिनः सूक्ष्मबादरनेदनिन्नाः संति । यद्येवं ततः किमित्याह । तेच देशकालस्वनावविप्रकृष्टास्तथानूताबह्वः संति । ये प्राणिनः सूक्ष्मादिविप्रकृष्टाद्यवस्था अमुना शरीरसमुत्रयेणेत्यनेनेदमाह । प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादिद मनेनावाग्दर्शिज्ञानसमन्वितसमुत्रयेण न कदाचिद्दृष्टाश्चक्षुषा न श्रुताः श्रवणेंद्रियेण विशेषतोनानिमताइष्टानच विज्ञाता प्रतिनेदज्ञानेन स्वयमेवेत्यतः कथंचित्तद्विपर्ययस्तस्य मित्रनावः स्यात् अतस्तेषां कदाचिदविज्ञातानां कथं प्रत्येकं वधं प्रतिचित्तसमादानं न नवति । न चासौ तान् प्रति नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवतीति शेषं सुगमम् ॥ ७ ॥

आचार्यआह तठ खलु नगवया डुवेदिठंता पएात्ता तं सन्निदिठंतेय असन्निदिठंतेय से किंतं सन्निदिठंते जे इमे सन्निपंचिंदिया पज्जत्तगा एतेसिएां ठजीवनिकाए पडुच्चं तं पुढवीकायं जाव तसकायं से एगइउ पुढवीकाएएां किच्चं करेइवि कारावेइवि तस्सएां एवं नवइ एवं खलु अहं पुढवीकाएएां किच्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवएां से एवं नवइ इमेएावा इमेएावा से एतेएां पुढवीकाएएां किच्चं करेइवि कारावेइवि सेएां तातो पुढवीकायाउ असंजय अविरय अप्पडिहयपच्चरकाएापावकम्मेयावि नवइ एवं जाव तसकाएत्ति नाणियव्वं से एगइउ ठजीवनिकाएहिं किच्चं करेइवि कारावेइवि तस्सएां एवं नवइ एवं खलु अहं ठजीवनिकाएहिं किच्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवएां से एवं नवइ इमेहिंवा से यतेहिं ठ

जीवनिकाएहिं जाव कारवेइवि से यतेहिं ढहिं जीवनिकाएहिं असंज यं अविरयं अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मेहिं तं पाणातिवाए ते जावमि च्छादंसणसल्ले एस खलु भगवया अक्खाए असंजए अविरए अपडि हयपच्चक्खायपावकम्मे सुविणमवि अपस्सा पावेयसे कम्मे कज्ज इ से तं सन्निदिठंतेणं ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे एम शिष्यें कह्यानंतर आचार्य कहेछे. ( तत्थखलुभगवयाछवेदिठंतापस त्ता के० ) त्यां निश्चें भगवंतें ए अर्थ उपर बे दृष्टांत कह्याछे. ते जेमछे, तेम कहेछे. ( तंसन्निदिठंतेय के० ) एक संज्ञिदृष्टांत, अने ( असन्निदिठंतेय के० ) बीजो असंज्ञिदृ ष्टांत ( सेकितंसंन्निदिठंते के० ) त्यां संज्ञिदृष्टांत, कयो ? ते कहेछे (जेइमेसन्निपंचिंदि यापज्जत्तगा के० ) जे ए प्रत्यक्ष लक्षण संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्ता जीवछे (एतेसिणं के०) तेमांहे कोइ एक ( छजीवनिकाएपडुच्च के० ) छ जीवनिकाय आश्री एवी प्रतिज्ञा करे, ( तं के० ) ते छकायनां नाम कहेछे. ( पुढवीकायंजावतसकायं के० ) पृथिवी काय यावत् त्रसकाय पर्यंत ( सेएगइर्ड के० ) ते कोइ एक पुरुष एवी प्रतिज्ञा करे के, ( पुढवीकाएणंकिच्चंकरेइवि के० ) पृथिवीकायें करीनेज कार्य करीश (करावेइविके०) अने पृथिवीकायें करीज कार्य करावीश, एवो जेने नियमछे ( तस्सणंएवंभवइ के० ) तेने एम होय ते कहेछे ( एवंखलुअहंपुढवीकाएणं के० ) एम निश्चें हुं पृथिवीकायें करी ( किच्चंकरेमिविकारवेमिवि के० ) कार्य करीश, अने बीजानी पासे पण करा वीश परंतु ( णोचेवणंसेएवंभवइ के० ) तेनें निश्चें एवो अभिप्राय नथी के ( इमे णवाइमेणवा के० ) अमुक अमुक दिशिना, तथा हुं, अमुक अमुक कोइक कालें, अथ वा धोले, नीले, पीले, राते, पृथिवीकायें कार्य करीश अथवा अनेक भेद पृथिवीकायना छे तेमांहेथी अमुक कोइ एक भेदेंज कार्य करीश, ज्यां सुधी एवो अभिप्राय नथी त्यां सुधी तेने सर्व पृथिवीकायनूं कर्म लागेछे ( सेएतेणंपुढवीकाएणंकिच्चंकरेइवि कारावेइवि के० ) ते पुरुष ते पृथिवीकायें करी पोतें कार्य करे, बीजा पासें कार्य करावे, ( सेणंतातोपुढवीकायाउ के० ). ते पुरुष ते पृथिवीकायथकी, ( असंजय के० ) असंयति अनिवृत्त ( अविरय के० ) अविरति, ( अपडिहयपच्चक्खाणपाव कम्मेयाविभवइ के० ) तथा नथी हण्यां पच्चक्खाणें करीने पापकर्म जेणे एवो छे, ( एवंजावतस्सकाएत्तिभाणियवे के० ) एम यावत् त्रस काय सुधी एटले छए काय आश्री जाणी लेवुं जेने जे कायनी अविरति होय तेने ते कायनुं कर्म लागे. ए रीतें को

६ एक पुरुष ठजीव निकायें करीने कार्य पोतें करें, बीजा पासें करावे, ते पुरुष ठजीव निकायने विषे अविरति असंयति केहेवाय. ए आलावानो बीजो अर्थ पूर्वना आलावा मां लखाइ गयोछे, माटें आंहीं लख्यो नथी. ए रीतें जे प्राणी प्राणातिपातथी मांमीने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य पर्यंत.अढारे पापस्थानकने विषे असंयति अविरति तथा पच्चरकाणें करीने जेणे पापकर्म हण्यां नथी एम अविरतिने नावें होय, तेने स्वप्नां तरें अणदीठुं पण पापकर्म बंधाय, लागे. एम निश्चें श्री नगवंतें कह्युंछे, एटले सङ्गीयानो दृष्टांत कह्यो ॥ ८ ॥

---

॥ दीपिका—एवं सति न सर्वविषयं प्रत्याख्यानं युज्यते । ये जीवाहिंसादिविषयप्राप्ताः स्युस्तेषामेव प्रत्याख्यानं क्रियते इति परेणोक्ते आचार्यआह । ( तत्रखलुइत्यादि ) यद्य पि सर्वजीवेषु हिंसापरिणामोनोत्पद्यते तथाप्यविरतिसद्भावात्तद्विषयः कर्मबंधोनव त्येव । अत्र दृष्टांत द्वयमाह । संज्ञिदृष्टांतोऽसंज्ञिदृष्टांतश्च । कोयं संज्ञिदृष्टांतः ?। ये इमे सं ज्ञिपंचेंद्रियास्तेषां मध्ये कश्चिदेकः षड्जीवनिकायान् प्रतीत्याश्रित्य एवं प्रतिज्ञां कुर्यात् । अहं पृथिवीकायेनैव एकेन कृत्यं करोमि कारयामि । सच एवं कृतप्रतिज्ञस्तेन तस्मात् त स्मिन् तंच करोति कारयतिच शेषकायेन्योनिवृत्तस्तस्य चैवंनूतोऽनिप्रायः । तद्यथा । अहं पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामि एवं प्रतिज्ञायां कृतायां विशेषानिप्रायोन स्यात् यत् श्वेतेन कृष्णेनवा पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामिच स तस्मात्पृथिवीकायादनिवृ त्तोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा नवति । एवमप्तेजोवायुवनस्पतिष्वपि वाच्यं । य था कश्चिदप्कायादनिवृत्तः कश्चित्तेजस्कायादिति । शेषकायैस्तु व्यापारं करोति कश्चित् ष ट्स्वपि जीवनिकायेषु अनिवृत्तोऽसंयतत्वात्तैः कार्यं करोति कारयति न पुनस्तद्विशेषप्रति ज्ञा एवं मृषावादेऽपि वाच्यं । यथा इदं मया वक्तव्यमनृतं इदं न वक्तव्यं सच तस्मान्मृषावा दादनिवृत्तत्वादसंयतः स्यात् तथा इदमदत्तं मया ग्राह्यं इदंतु न ग्राह्यं । एवं मैथुनपरिग्र हेष्वपि वाच्यं । तथा क्रोधमानमायालोनेष्वपि स्वयं विचार्य वाच्यं । तदेवमसौ हिंसादी न्यकुर्वन्नपि अविरतत्वात्तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्नाति । ततोदेशकालस्वनावविप्रकृष्टेष्वपि जीवेषु अमित्रनूतोऽसौ स्यात् । यथा कश्चिद्ग्रामघातादौ प्रवृत्तः । यद्यपि तेन केचि न्नरान दृष्टास्तथापि तद्घातनिवृत्तेरनावायोग्यतया तद्घातकइत्युच्यते । एवं अविरतेः कर्मबंधोज्ञेयः ॥ ८ ॥

---

॥ टीका—एवं व्यवस्थिते न सर्व विषयं प्रत्याख्यानं युज्यते इत्येवं प्रतिपादिते परेण सत्याचार्यआह । ( तत्थखलुनगवयाइत्यादि ) यद्यपि सर्वेष्वपि देशकालस्वनावविप्र

रूपेषु वधकचित्तं नोत्पद्यते तथाप्यसावविरतिप्रत्ययत्वात्तेष्वमुक्तवैरएव भवत्यस्य चार्थ स्य सुखप्रतिपत्तये भगवता तीर्थकृता द्वौ दृष्टांतौ प्रज्ञप्तौ प्ररूपितौ । तद्यथा । संज्ञिदृष्टां तोऽसंज्ञिदृष्टांतश्च । अथ कोयं संज्ञिदृष्टांतो ये केचन इमे प्रत्यक्षासन्नाः षड्भिरपि पर्याप्ति भिः पर्याप्ताऊहापोहविमर्शरूपाः संज्ञा विद्यंते येषां ते संज्ञिनः पंचेंद्रियाणि येषां ते पंचेंद्रि याः करणपर्याप्त्या पर्याप्तकाएषां च मध्ये कश्चिदेकः षड्जीवनिकायान् प्रतीत्यैवंभूतां प्र तिज्ञां नियमं कुर्यात् । तद्यथा । षट्सु जीवनिकायेषु मध्ये पृथिवीकायेनैवैकेन वालुका शिलोपललवणादिस्वरूपेण कृत्यं कार्यं कुर्यां । सचैवं कृतप्रतिज्ञस्तेन तस्मिन् तस्मात्तं वा करोति कारयतिच शेषकायेभ्योऽहं विनिवृत्तस्तस्यच कृतनियमस्यैवंभूतोभवत्यध्यव सायः। तद्यथैवं खल्वहं पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामिच तस्यच सामान्यकृत प्रतिज्ञस्य विशेषाभिसंधिनैव भवति । तद्यथा । अमुना कृष्णेनामुना श्वेतेन पृथिवी कायेन कार्यं करोति कारयतिच सतस्मात्पृथिवीकायादनिवृत्तोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपा पकर्मा भवति । तत्र खननस्थाननिषीदनत्वग्वर्तनोच्चारप्रश्रवणादिकरणक्रियासद्भावा देवमप्तेजोवायुवनस्पतिष्वपि वाच्यं । तत्राप्कायेन स्नानपानावगाहनभांडोपकरण धावनादिषु प्रयोगस्तेजःकायेनापि पचनपाचनप्रकाशनादिषु वायुनापि व्यंजनतालवृंते त्यादिव्यापारादिषु प्रयोजनं वनस्पतिनापि कंदमूलपुष्पफलपत्रत्वक्शाखाद्युपयोगएवं विक लेंद्रियपंचेंद्रियेष्वप्यायोज्यमिति । तथैकः कश्चित् षट्स्वपि जीवनिकायेषु अविरतोसं यतत्वाच्च तैरसौ कार्यं सावद्यानुष्ठानं स्वयं करोति कारयतिच परैस्तस्यच क्वचिदपि निवृत्ते रभावादेवंभूतोध्यवसायोभवति । तद्यथैवं खल्वहं षड्भिरपि जीवनिकायैः सामान्येन कृ त्यं करोमि न पुनस्तद्विशेषप्रतिज्ञेति । सच तेषु षड्स्वपि जीवनिकायेष्वसंयतोऽप्रतिहतप्र त्याख्यातपापकर्मा भवत्येवं मृषावादेपि वाच्यं । तद्यथेदं मया वक्तव्यमीदृग्भूतं तु न वक्तव्यं सच तस्मान्मृषावादादनिवृत्तत्वादसंयतोभवति । तथा दत्तादानमप्याश्रित्य वक्तव्यं । त द्यथेदं मया दत्तादानं ग्राह्यमिदंतु न ग्राह्यमित्येवं मैथुनपरिग्रहेष्वपीति । तथा क्रोधमान मायालोभेष्वपि स्वयमभ्यूह्य वाच्यं । तदेवमसौ हिंसादीन्यकुर्वन्नप्यविरतत्वात्तत्प्रत्ययिकं कर्म चिनोतीत्येवं देशकालस्वभावविप्रकृष्टेष्वपि जंतुष्वमित्रभूतोसौ भवति तत्प्रत्ययिकं च कर्म चिनोतीति सोयं संज्ञिदृष्टांतोऽभिहितः । सच कदाचिदेकमेव पृथिवीकायं व्यापाद यति शेषेषु निवृत्तः कदाचिद्द्वावेवं त्रिकादिकाः संयोगाभणनीयायावत्सर्वानपि व्यापा दयतीति । सचैवं सर्वेषां व्यापादकत्वे न व्यवस्थाप्यते सर्वविषयारंभप्रवृत्तेस्तत्प्रवृत्तिरपि तदनिवृत्तेः । यथा कश्चिद्ग्रामघातादौ प्रवृत्तोयद्यपिच न तेन विवक्षितकाले केचन पुरुषा दृष्टास्तथाप्यसौ तत्प्रवृत्तिनिवृत्तेरभावात्तद्योग्यतया तद्घातकइत्युच्यते इत्येवं दार्ष्टांति केप्यायोज्यम् ॥ ८ ॥

से किंतं असन्निदिठंते जेइमे असन्निणो पाणा तं पुढवीकाइया जाव वणस्स इकाइया ठठावेगइया तसा पाणा जेसिं णो तक्काइवा सन्नातिवा पन्नातिवा मणातिवा वईवा सयंवा करणाए अन्नेहिंवा कारावंतए करंतंवा समणुजा णित्तए तेविणं बाले सवेसिं पाणाणं जाव सवेसिं सत्ताणं दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तनूतमिछासंठिया निच्चं पसढविउवातचित्तदंमा तं पाणाइवा ते जाव मिछादंसणसल्ले इच्चेव जाव णो चेवमणो णो चेववई पाणाणं जाव सत्ताणं डुक्कणत्ताए सोयणत्ताए जूरणत्ताए तिप्पणत्ताए पिट्टणत्ताए परितप्पणत्ताए ते डुक्कणसोयणजावपरितप्पणवहबंधणपरिकिलेसाउ अप्पडिविरया नवंति ॥ ए ॥

अर्थ–( सेकिंतंअसन्निदिठंते के० ) हवे असंज्ञियानो दृष्टांत कयो ? ते कहेछे. ( जेइमेअसन्निणोपाणा के० ) जे ए असंज्ञी प्राणीउछे ( तं के० ) ते कहेछे. ( पुढवीकाइया के० ) पृथिवीकायिक, ( जाववणस्सइकाइया के० ) यावत् वनस्पतिकाय पर्यंत, ए पांच स्थावर जाणवा. ( ठठावेगइयातसापाणा के० ) तथा ठठा, कोइ एक त्रस प्राणीउ पण असंज्ञी छे ( जेसिंणोतक्काइवा के० ) जेने तर्क नथी तर्क एटले ए स्तंनछे के, पुरुषछे ए आगल शुंछे ! एवो नाव जेने न उपजे, एटले सारुं करवुं देखीने कहेके, आ रुडूं करेछे एवो नाव जेने नथी, ( सन्नातिवा के० ) तथा संज्ञा ते जे पूर्वदृष्टनुं उलखवुं ते जेनें नथी ( पन्नातिवा के० ) तथा जेनें प्रज्ञा एटले बुद्धि नथी, ( मणातिवा के० ) तथा जेनें मन नथी, ( वईवा के० ) तथा जेनें वचन नथी, ( सयंवाकरणाए के० ) तथा जेने पोतें कार्य करवुं नथी, अथवा ( अन्नेहिंवाकारावंतए के० ) बीजा पासें कार्य करावबुं नथी, ( करंतंवासमणुजाणित्तए के० ) तथा बीजो कोइ कार्य करतो होय तेने देखीने कहेके, ए रुडूं करेछे. एम कहीने तेने अनुमोदन आपवुं एवो नाव जेनें नथी, ( तेविणंबाले के० ) ते असंज्ञी बाल अज्ञानी जीव, ( सवेसिंपाणाणं के० ) सर्व प्राणीनो ( जावसवेसिंसत्ताणंके० ) यावत् सर्वसत्वनो ( दियावाराउवासुत्तेवाजागरमाणेवा के० ) दिवसें रात्रे, सुता, जागता, ( अमित्तनूत के० ) जीवोनो अमित्रनूत शत्रुसमान वोलियें. कारणके, तेनें तेनुं विरति पणुं नथी. ( मिछासंठिया के० ) ते मिथ्यात्व संस्थित ( निच्चंपसढविउवातचित्तदंमा के० ) निरंतर शठ एटले परमार्थ नथी जाणता, तथा प्राणघातने विषे जेनुं चित्तछे, तथा प्राणीउने दंमना करनार, ( तं के० ) ते कहेछे. ( पाणाइवातेजावमिछादंसणसल्ले के० ) प्राणातिपात मृषावादादिकथी यावत् मिथ्यादर्शन शल्य पर्यंत ए अढार पा

पस्थानकने नथी करता, तो पण तेने विषे अविरतिपणा थकी ते असंज्ञी जीवोने कर्म लागेछे (इच्चेवजावणोचेवमणो के०)तथा यद्यपि ते असंज्ञीया जीव मनना व्यापार रहित छे, (णोचेववई के०) तथा वचनना व्यापार रहितछे, तथापि (पाणाणंजावसत्ताणं के०) सर्वप्राणीने यावत् सर्व सत्वने ( इरकणत्ताए के० ) दुःखने उपजाववे करी, ( सोयण त्ताए के० ) शोकने उपजाववे करी, (जूरणत्ताए के०) वयनी हानीने करवे करी, ( ति प्पणत्ताए के० ) मन वचन अने काया ए त्रणेथी पीडवे करी, (पिट्टणत्ताए के० ) यष्टि मुष्टिने प्रहारें करी, ( परितप्पणत्ताए के० ) बाहेर तथा अन्यंतरने पीडवे करी, एवा ए वा प्रकारें यद्यपि ते असंज्ञीया जीव समस्त जीवोने दुःख नथी उपजावता, तथापि ते विरतिपणाने अनावें सर्व जीवोने दुःखनुं उपजाववुं, शोक,जूरण, तिप्पण, पिट्टण, यावत् बाह्य तथा अन्यंतरनुं पीडवुं वध बंधननुं करवुं इत्यादिक क्लेशथकी विशेषें करी अनिवृत्त्याछे अविरति कहेवायछे ते विरतिपणाने अनावें ते जीवो तत्प्रत्ययिक कर्मेंकरी बधायछे॥ए॥

॥ दीपिका–अथाऽसंज्ञिदृष्टांतमाह । (सेकिंतमिति) ये इमेऽसंज्ञिनस्तद्यथा पृथिवीका यायावद्वनस्पतिकायास्तथा षष्ठाअप्येके त्रसाः यावत्संमूर्छिमपंचेंद्रियास्ते सर्वेप्यसंज्ञिनो येषां न तर्को विचारः न संज्ञा दीर्घकालसंबंधिनी न प्रज्ञा स्वबुद्धिकृता न मनोवग्रहादिमतिः न वाक् स्पष्टवर्णा तथा स्वयं करोमि अन्यैः कारयामि कुर्वंतमनुजानामि इत्यनिप्रायोनास्ती ति । तेऽसंज्ञिनोबालाः सर्वेषां जीवानां घातनिवृत्तेरनावाद्योग्यतया घातकाएव अस त्यनाषकाअपि अविरतत्वात् अदत्तग्राहिणोपि दध्यादिनक्षणात् तीव्रनपुंसकवेदोदया न्मैथुननिवृत्तेरनावाच्च मैथुनप्रवृत्ताःपरिग्रहवंतोपि अशनादेः स्थापनात् । एवं क्रोधमान मायालोनायावन्मिथ्यादर्शनसशल्यसद्भावश्च तेषां ज्ञेयः । ततश्च ते कर्मबंधकाः स्युः । त था यद्यपि ते विशिष्टमनोवाग्व्यापाररहितास्तथापि सर्वजंतूनां ( दुःखणत्ताएत्ति ) दुःखो त्पादनतया शोचनतया शोकोत्पादनत्वेन जूरणं वयोहानिस्तत्कारणतया त्रिन्योमनोवा क्कायेन्यः पातनं त्रिपातनं तद्भावस्तया ( पिट्टणयाए ) मुष्टिलोष्टादिनिः कुट्टनेन परिताप नया बहिरंतश्च पीडया तेऽसंज्ञिनोयद्यपि दूरस्थानां विषयगतानां जीवानां दुःखं नोत्पा दयंति तथाप्यविरतत्वाद्दुःखशोचनादेरविरताः स्युस्ततश्च कर्मणा बध्यंते ॥ ए ॥

॥ टीका–संज्ञिदृष्टांतानंतरमसंज्ञिदृष्टांतः प्रागुपन्यस्तः सोऽधुना प्रतिपाद्यते । (सेकिंत असन्निदिठंतेइत्यादि ) संज्ञानं संज्ञा सा विद्यते येषां ते संज्ञिनस्तत्प्रतिषेधादसंज्ञिनोमन सोद्व्यतया अनावात्तीव्राऽतीव्राध्यवसायविशेषरहिताः प्रसुप्तमत्तमूर्छितादिवदिति । ये इ मे संज्ञिनस्तद्यथा पृथिवीकायिकायावद्वनस्पतिकायिकास्तथा षष्ठाअप्येके त्रसाः प्राणिनो विकलेंद्रियायावत्संमूर्छिनः पंचेंद्रियास्ते सर्वेप्यसंज्ञिनोयेषां न तत्कार्यविचारोमीमांसावि

शिष्टविमर्शोविद्यते यथा कस्यचित्संज्ञिनोमंदमंदप्रकाशे स्थाणुपुरुषोचिते देशे किमयं स्थाणुरुत पुरुषइत्येवमात्मककहस्तर्कः संनवति नैवं तेषामसंज्ञिनां तर्काः संनवंतीति । तथा संज्ञानं संज्ञा पूर्वोपलब्धार्थतडत्तरकालपर्यालोचना तथा प्रज्ञानं प्रज्ञा स्वबुध्योत्प्रेक्षणं,सएवायमित्येवंनूतं प्रज्ञानंच तथा मननं मनोमतिरित्यर्थः। सा चावग्रहादिरूपा तथा प्रस्पष्टवर्णा वाक्।साच न विद्यते तेषामिति।यद्यपिच हींडियादीनां जिन्हेंडियगतवि वरादिकमस्ति तथापि न तेषां प्रस्पष्टवर्णत्वं ।तथा न चैषां पापं हिंसादिकं करोमि कारया मीत्येवंनूताध्यवसायपूर्विकामतिस्तथा स्वयं करोम्यन्यैर्वा कारयामीत्येवंनूतोध्यवसायो न विद्यते तेषां। तदेवं तेप्यसंज्ञिनोबालवद्बालाः सर्वेषां प्राणिनां घातनिवृत्तेरनावात्तद्यो ग्यतया घातकाव्यापादकाः। तथाहि । हींडियादयः परोपघाते प्रवर्तंते एव तन्नक्षणादि ना अनृतनाषणमपि विद्यते तेषामविरतत्वात् केवलं कर्मपरतंत्राणां वागनावस्तथाऽद त्तादानमपि तेषामस्त्येव दध्यादिनक्षणात्तथेदमस्मदीयमिदंच पारक्यमित्येवंनूतविचारा नावाच्चेति । तथा तीव्रनपुंसकवेदोदयान्मैथुनाविरतेश्च मैथुनसन्नावोपि तथाशनादेः स्थाप नात्परिग्रहसन्नावोपीत्येवं क्रोधमानमायालोनायावन्मिथ्यादर्शनशल्यसन्नावश्च तेषामव गंतव्यस्तन्नावाच्च ते दिवा रात्रौवा सुप्ताजाग्रदवस्थावा नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमानवं ति। तदेव दर्शयितुमाह । (तंजहाइत्यादि) तेह्यसंज्ञिनः क्वचिदपि निवृत्तेरनावा त्तत्प्रत्ययिककर्मबंधोपेतानवंति । तद्यथा । प्राणातिपातयावन्मिथ्यादर्शनशल्यवंतो नवंति। तद्भत्तयाच यद्यपि वैशिष्ट्यमनोवाग्व्यापाररहितास्तथापि सर्वेषां प्राणिनां डुःखोत्पादनतया तथा शोचनतया शोकोत्पादनत्वेन तथा जूरणतया जूरणं वयोहानि रूपं तत्करणशीलतया तथा त्रिन्योमनोवाक्कायेन्यः पातनं त्रिपातनं तन्नावस्तथा यदिवा (तिप्पणयाएत्ति) परिवेदनतया तथा (पिट्टणया) मुष्टिलोष्टप्रहारेण परिता पनतया बहिरंतश्च पीडया ते चासंज्ञिनोपि यद्यपि देशकाले स्वनावविप्रकृष्टानां न सर्वेषां डुःखं समुत्पादयंति तथापि विरतेरनावात्तद्योग्यतया डुःखपरितापक्लेशादेरप्रतिविरता नवंति तत्सन्नावाच्च तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यंते ॥ ए ॥

इति खलु से असन्निणोवि सत्ता अहोनिसिं पाणातिवाए उवरकाइज्जंति जाव अहोनिसिं परिग्गह उवरकाइज्जंति जाव मिछादंसणसल्ले उवरकाइज्जं ति एवंनूतवादी सबजोणियावि खलु सत्ता सन्निणो हुच्चा असन्निणो होंति असन्निणो हुच्चा सन्निणो होंति होच्चा सन्नी अडवा असन्नी तब से अविवि चित्ता अविधूणित्ता असंमुच्छित्ता अणणुतावित्ता असन्निकायाउवा सन्नि

कायं संकमंति सन्निकायाउवा असन्निकायं संकमंति सन्निकायाउवा स न्निकायं संकमंति असन्निकायाउवा असन्निकायं संकमंति जे एए सन्नि वा असन्निवा सवे ते मिच्छायारा निच्चं पसढविउवायचित्तदंमा तं पाणा तिवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले एवं खलु भगवया अस्काए असंजए अ विरए अपडिहयपच्चस्कायपावकम्मे सकिरिए असंवुमे एगंतदंमे ए गंतबाले एगंतसुत्ते से बाले अवियारमणवयकायवक्के सुविणमवि ण प सइ पावेयसे कम्मे कज्जइ ॥ १० ॥

अर्थ–( इतिखलुसेअसन्निणोविसत्ता के० ) एणी परें निश्चें ते पृथिवीकायादिक असंज्ञी जीव छता पण (अहोनिसिंपाणातिवाए के०) रात्री दिवस प्राणातिपातने विषे, (उवस्का इज्जंति के० ) कहियें, एटले तेने प्राणातिपातनुं कर्म लागे, एम बोलियें. (जावअहोनि सिंपरिग्गहउवस्काइज्जंति के० ) यावत् रात्री दिवस परिग्रहने विषे प्रवर्त्तता बोलियें, क हियें (जावमिच्छादंसणसल्लेउवस्काइज्जंति के०) यावत् मिथ्यादर्शन शल्यने विषे प्रवर्त्तता कहियें, माटें असंज्ञियाने पण पापकर्मनो उपारख्यान विरतिने अनावें कहियें. हवे शिष्य पूछे छे के, एवंभूतएटले वेदांतवादी एम कहे छे के,जे पुरुषछे ते पुरुष पणुंज पामे, अने जे पशु होय ते पशु पणुंज पामे,तेम आंहीं जैनशासनने विषे पण जे संज्ञिया ते संज्ञी पणुंज पामे अने जे असंज्ञीया ते असंज्ञी पणुंज पामे छे. किंवा बीजी कोइ रीतें छे? ते कहो. एम पूछे छते शिष्य प्रत्यें आचार्य कहेछे. ( सवजोणियाविखलुसत्तासन्निणोहुच्चा के० ) निश्चें सर्वयोनिक सत्व एटले जीव संज्ञिया पणे होइने ( असन्निणोहोंति के० ) असंज्ञिया पण होय, (असन्निणोहुच्चासन्निणो होंति के०)असंज्ञिया होइने संज्ञिया होय (होच्चासन्नीअडवाअसन्नी के०) एम संज्ञी अथवा असंज्ञी होय एटले वेदांतवादिनो पक्ष निराधार थयो, तथा कोइ एक संज्ञी पण तेज नवमां मूर्छादिकनी अवस्थायें असंज्ञी थाय एम एकज नवमांहे संज्ञीया मांहेथी असंज्ञीउ थाय, मूर्छाने अनावें ते वली संज्ञीउ पण थाय, जो एकज नवमां एमछे तो जन्मांतरनुं केवुंज शुं! जेम कोइ एक जागतो मनुष्य निद्राना उदय थकी सुतो थको वली निद्राने अनावें जागतोज कहेवाय. ए दृष्टांत संज्ञी असंज्ञी उपर जाणवो. (तबसेअविविचित्ता के०) त्यां ते जीवें पूर्वनुं कर्म जे बांध्युंछे. अथवा उदय आव्युंछे तेने पृथक् अणकीधे, तथा (अविधूणित्ता के०) अण खपावे, तथा (असंमुच्छित्ताके० ) अणछेदे, ( अणणुताविता के० ) अण तपावे, थके (असन्निकाया उवासंन्निकायंसंकमंति के० ) पहेलो नंग, असंज्ञिकाय थकी संज्ञिकायें संक्रमे. (स

न्निकायाउवाअसन्निकायंसंकमंतिके०) बीजो भंग, संज्ञिकाय थकी असंज्ञिकायें संक्रमे, (सन्निकायाउवासन्निकायंसंकमंति के०) त्रीजो भंग, संज्ञिकाय थकी संज्ञिकायें संक्रमे. (असन्निकायाउवाअसन्निकायंसंकमंति के० ) चोथो भंग, असंज्ञिकाय थकी असंज्ञिकायें संक्रमे, एवं चतुर्भंग जाणवा. (जेएएसन्निवाअसन्निवा के० ) जे ए संज्ञिया अथवा असंज्ञीया बे ( सवेतेमिड्डायारा के०) ए सर्व अपच्चरकाणीने नावें मिथ्याचार वाला जाणवा. ते सर्व जीवने विषे नित्य अत्यंत शठ एटले मूर्ख पणु बता प्राणीघातने विषे जेनु चित्तडे तथा प्राणिउने दंमना करनार केवाय. यावत् मिथ्यादर्शन शल्य पर्यंत अढारे पापस्थानकना करनार ते केवाय. ए रीतें नगवंत श्री महावीरदेवें कह्युंके जे असंयति अविरति अप्रतिहत प्रत्याख्यान पापकर्म वाला, तथा सक्रिय असंवर एकांत दंमना करनारा, एकांत बाल, एकांत सुता कह्या. ते बाल अविचारित मन वचन अने कायाना परिणाम वाला बतां जे पापकर्म स्वप्नांतरें पण न देखे, तेनुं पण कर्म तेने लागे ॥१०॥

---

॥ दीपिका–इति अमुना प्रकारेण । खलु वाक्यालंकारे । ते पृथ्वीकायादयोऽसंज्ञिनः संतोऽहर्निशं प्राणातिपाते कर्त्तव्ये तद्योग्यतया तदसंप्राप्तावपि ग्रामघातकवडुपाख्यायंते यावन्मिथ्यादर्शनशल्ये उपाख्यायंते।तेच कर्मवशात्सर्वयोनिकाअपि जीवाः पर्याप्त्यपेक्षया यावन्मनःपर्याप्तिर्न निष्पद्यते तावत्करणतोऽसंज्ञिनः संतः पश्चात्संज्ञिनोनवंत्येकस्मिन्नेव जन्मनि । अन्यजन्मनितु एकेंद्रियादयोपि मनुष्यादयः स्युः।परं नव्यानव्यत्ववन्न नियमः । नव्यानव्यत्वेहि न कर्मायत्ते अतोन ताभ्यां व्यनिचारः । ये पुनः कर्मवशगास्ते पुनः संज्ञिनोनूत्वाऽन्यत्रासंज्ञिनः स्युः असंज्ञिनश्च नूत्वा संज्ञिनइति । तत्र यत्कर्म बद्धमस्ति तस्मिन् सत्येव तदविविच्याप्टथक् कृत्याऽविधूयाऽसमुच्छिद्याऽननुताप्यएते चत्वारोपि शब्दाएकार्थिकाः। तदेवमत्यक्तकर्माणोऽसंज्ञिकायात्संज्ञिकायं संक्रामंति संज्ञिकायादसंज्ञिकायंच संज्ञिकायात्संज्ञिकायं असंज्ञिकायादसंज्ञिकायंच । एवं चत्वारोनंगाः । उपसंहरन्नाह । (जेएतेजीवत्ति ) ये एते पर्याप्ताअपर्याप्ताः संज्ञिनोऽसंज्ञिनोवा सर्वे ते मिथ्याचाराअविरतत्वात् तथा सर्वधर्मेषु नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमाः स्युरेवंनूताश्च प्राणातिपातादिषु सर्वेष्वप्याश्रवद्वारेषु वर्ततइति ( एवंखलुत्ति) एवमुक्तनीत्या खलु निश्चितं नगवता आख्यातमित्यादिना पूर्वोक्तमनुवदति । यावत्पापं कर्म क्रियतइति ॥ १० ॥

---

॥ टीका–तदेवं विप्रकृष्टविषयमपि कर्मबंधं प्रदर्श्योपसंजिहीर्षुराह । (इतिखलुतेइत्यादि ) इति रूपप्रदर्शने।खलुशब्दोवाक्यालंकारे विशेषणे वा। किं विशिनष्टि । ये इमे पृथिवीकायादयोऽसंज्ञिनः प्राणिनस्तेषां नतर्को,नसंज्ञा, नमनो, नवाक्, नस्वपं कर्तुं नान्येन

कारयितुं न कुर्वंतमनुमंतुं वा प्रवृत्तिरस्ति। ते चाऽहर्निशममित्रभूतामिथ्यासंस्थितानित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमाड्ःखोत्पादनतया यावत्परितापनपरिक्लेशादेरप्रतिविरताअसंज्ञिनोपि संतोऽहर्निशं सर्वकालमेव प्राणातिपाते कर्तव्ये तद्योग्यतया तदसंप्राप्तावपि ग्रामघातकवड्पाख्यायंते यावन्मिथ्यादर्शनशल्यउपाख्यायंतइति । उपाख्यानं वा संज्ञिनोपि । योग्यतया पापकर्मानिवृत्तेरित्यभिप्रायः । तदेवं दर्शिते दृष्टांतद्वये तत्प्रतिबद्धमेवार्थशेषं प्रतिपादयितुं चोद्यं क्रियते ।तद्यथा। किमेते सत्वाः संज्ञिनश्च भव्याभव्यत्ववन्नियतरूपा एवाहोस्वित्संज्ञिनोभूत्वाऽसंज्ञित्वं प्रतिपद्यंते ।असंज्ञिनोपि संज्ञित्वमित्येवं चोदिते सत्याहाचार्यः (सवजोणियाविखलुइत्यादि) यदिवा संत्येवंभूतावेदांतवादिनोयएवं प्रतिपादयंति पुरुषः पुरुषत्वमश्नुते पशुरपि पशुत्वमिति। तदत्रापि संज्ञिनः संज्ञिनएव भविष्यंत्यसंज्ञिनोप्यसंज्ञिनइति । तन्मतव्यवच्छेदार्थमाह ।(सवजोणियावीत्यादि) यदिवा किं संज्ञिनोऽसंज्ञिकर्मबंधं प्राक्तने सत्येव कर्मणि कुर्वंति किंवा नेत्येवमसंज्ञिनोपि संज्ञिकर्मबंधं प्राक्तने सत्येव कुर्वंत्याहोस्विन्नेत्येतदाशंक्याह । (सवजोणियावीत्यादि) सर्वायोनयोयेषां ते सर्वयोनयः संवृतविवृतोभयशीतोष्णभयसचित्ताऽचित्तोभयरूपायोनयइत्यर्थः । तेच नारकतिर्यङ्नरामराअपिशब्दाद्विशिष्टैकयोनयोपि । खल्विति विशेषणे । एतद्विशिनष्टि । तज्जन्मापेक्षया सर्वयोनयोपि सत्वाः पर्याप्त्यपेक्षया यावन्मनःपर्याप्तिर्न निष्पद्यते तावदसंज्ञिनः करणतः संतः पश्चात्संज्ञिनोभवंत्येकस्मिन्नेव जन्मन्यन्यजन्मापेक्षयात्वेकेंद्रियादयोपि संतः पश्चान्मनुष्यादयोभवंतीति । तथाभूतकर्मपरिणामात् पुनर्भव्याभव्यत्ववन्न व्यवस्थानियमोभव्याभव्यत्वे हि न कर्मायत्ते अतोनानयोर्व्यभिचारः।ये पुनः कर्मवशगास्ते संज्ञिनोभूत्वाऽसंज्ञिनोभवंत्यसंज्ञिनश्च भूत्वा संज्ञिनइति वेदांतवादिमतस्य प्रत्यक्षेणैव व्यभिचारः समुपलभ्यते । तद्यथा । संज्ञ्यपि कश्चिन्मूर्छाद्यवस्थायामसंज्ञित्वं प्रतिपद्यते तदपगमेतु पुनः संज्ञित्वमिति जन्मांतरे तु सुतरां व्यभिचारइति । तदेवं संज्ञ्यसंज्ञिनोः कर्मपरतंत्रत्वादन्योन्यानुगतिरविरुद्धा । यथा प्रतिबुद्धोनिद्रोदयात्स्वपिति सुप्तश्च प्रतिबुध्यते इत्येवं स्वापप्रतिबोधयोरन्योन्यानुगमनमेवमिहापीति । तत्र प्राक्तनं कर्म यदुदीर्णं यच्च बद्धमास्ते तस्मिन् सत्येव तदविविच्याप्टथक्कृत्य तथाऽविधूयाऽसमुच्छिद्याऽननुताप्यैते चाविविच्यादयश्चत्वारोप्येकार्थिकाअवस्थाविशेषं चाश्रित्य भेदेन व्याख्यातव्याः । तदेवमपरित्यक्तप्राक्तनकर्मणोऽसंज्ञिकायात्संज्ञिकायं संक्रामंति तथा संज्ञिकायादसंज्ञिकायमिति । तथा नारकाः सावशेषकर्माणएव नरकादुद्धृत्य प्रतनुवेदनेषु तिर्यक्षूत्पद्यंते एवं देवाअपि प्रायशस्तत्कर्मशेषतया शुभस्थानेपूत्पद्यंते इत्यवगंतव्यं ।अत्र चतुर्भंगकसंभवं सूत्रेणैव दर्शयति । सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुः प्राक् प्रतिपन्नमर्थं निगमयन्नाह । (जेए तेसेत्यादि ) ये एते सर्वाभिरपि पर्याप्तिभिः पर्याप्ताः लब्ध्या करणेन च द्विकभाअपर्या

मकाः अन्योन्यसंक्रमनाजः संज्ञिनोऽसंज्ञिनोवा सर्वेप्येते मिथ्याचाराअप्रत्याख्यानित्वादि त्यभिप्रायः । तथा सर्वजीवेष्वपि नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंभानवंतीत्येवंभूताश्च प्राणा तिपातायेषु सर्वेष्वप्याश्रव द्वारेषु वर्त्तंतइति ॥ तदेवं व्यवस्थिते यत्तडुक्तं चोदकेन तद्य थेहाविद्यमानाऽशुभयोगसंभवे कथं पापं कर्म बध्यतइत्येतन्निराकृत्य विरतेरभावात्तद्योग्य-तया पापकर्मसद्भावं दर्शयति । ( एवं खलुइत्यादि ) एवमुक्तनीत्या । खल्ववधारणे ऽलं कारे वा । भगवता तीर्थकृतेत्यादिना यत्प्राक् प्रतिज्ञातं तदनुवदति । यावत्पापं च कर्म क्रियतइति ॥ १० ॥

चोदक से किंकुवं किंकारवं कहं संजयविरयपडिहयपच्चखायपावकम्मे भवइ आचार्यआह तत्र खलु भगवया छजीवणिकायहेउं पण्णत्ता तं जहा पुढवीकाइया जाव तसकाइया से जहा णामए मम अस्सातं दंमेणवा अट्ठीणवा मुट्ठीणवा लेलूणवा कवालेणवा आतोभिज्जमाण स्सवा जाव उद्दविज्जमाणस्सवा जाव लोमुक्खणणमायमविहिंसाकारं दुक्खं भयं पडिसंवेदेमि इच्चेवं जाणं सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता दंमेणवा जाव कवालेणवा आतोभिज्जमाणेवा हम्ममाणेवा तज्जिज्जमाणेवा ता लिज्जमाणेवा जाव उद्दविज्जमाणेवा जाव लोमुक्खणणमायमविहिंसा-कारं दुक्खं भयं पडिसंवेदेति एवं णच्चा सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता न हंतव्वा जाव ण उद्दवेयव्वा एस धम्मे धुवे णिइए सासए समिच्चलोगं खेयन्नेहिं पवेदिए एवं से भिक्खू विरते पाणाइवायातो जाव मिच्छादंसणसल्लाउ से भिक्खू णो दंतपक्खालेणं दंतेपक्खालेज्जा णो अंजणं णो वमणं णो धूव णं तंपि न आदते से भिक्खू अकिरिए अलूसए अकोहे जाव अलोभे उवसंते परिनिव्वुडे एस खलु भगवया अक्खाए संजयविरयपडिहय पच्चखायपावकम्मे अकिरिए संवुडे एगंतपंडिएयावि भवइ त्तिबेमि॥ इति बीयसुयखंधस्स पच्चखाण किरियाणाम चउत्थं मज्झयणं सम्मत्तं॥१२॥

अर्थ-(चोदक के०) हवे वली शिष्य पूछेछे के हे भगवन् ! (सेकिंकुवंकिंकारवंकहंसंजय के०)ते जीव केवां अनुष्ठान करतो,केवां अनुष्ठान करावतो,केवा प्रकारें संयत (विरय के०) विरति ( पडिहयपच्चखायपावकम्मेभवइ के० ) प्रतिहत प्रत्याख्यान पापकर्मा होय, ते कहो? एवुं सांभलीने ( आचार्याह के० ) आचार्य बोल्या. ( तत्थखलुभगवयाछजी

वणिकायहेउंपण्णत्ता के० ) त्यां संयत पणाने नावें नगवत् श्री वीतराग देवें ब जीवनिकाय कारण कह्याछे (तंजहा के०) ते कहेछे. (पुढवीकाइयाजावतसकाइया के०) पृथिवीकायथी मांम्डीने यावत् त्रसकाय पर्यंत छे (सेजहाणामए के०) तेने जेम नाम एवो संनाव नायें ( ममअस्सातं के० ) मुजने अशाता उपजे छे ते प्रमाणें दंमें करी हणतां थकां अस्थियें करी, मुष्टियें करी, पाषाणें करी, कपाल एटले ठीकरीयें करी ताडता थका. यावत् उद्वेग करता थका, एटले जीव काया थकी रहित करता थका, एक रोम उखेड वा मात्रें करीपण हिंसाकारक डुःख तथा नय हुं वेडुं. ए रीते जाणवुं के, सर्व प्राणी यावत् सर्व सत्वने महारी पेठें दंमना प्रहारे करी, कपाल एटले ठीकरीयें करी आक्रोश करावता ताडता थका, अथवा हणता थका, तर्जनाकरता थका, यावत् उद्वेग करता थका, एक रोम मात्र उखेडवुं एवुं पण हिंसाकारी, कारणत्ते थकी ते जीवो पण डुःख अने नय एवुंज वेदे (एवंणच्चा के०)एम जाणीने सर्वप्राणी यावत् सर्व सत्वने हणवा नहीं, यावत् उपद्रववा नहीं, ए प्राणीनो दया लक्षण धर्म, ते ध्रौव, नित्य, शाश्वतो, एवो चनद रज्ज्वात्मक लोक जाणीने आलोचीने षट्जीवनिकायरूप डुःख समुद्रमां पड्यो ते पर जीवना डुःखना जाण, एवा खेदज्ञ श्रीनगवंत तीर्थंकर देव तेणे नांख्यो छे. (एवंसेनिक्खू के०) एवुं जाणीने ते साधु प्राणातिपात मृषावादादिक यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य ए अढार पापस्थानक थकी निवृत्त्यो, तथा ते निक्षु दंत धावनें करी दंत प्रक्षाले नहीं एमज अंजन वमन विरेचनादिकक्रिया न करे, धूपन एटले वस्त्रादिकनुं धूपन न करे (तपिनआदत्ते के०) एटलांवानां पोतें आदरे नहिं ते निक्षु चारित्रिउक्रिया रहित बजीवनिकायनो अहिंसक तथा क्रोध रहित यावत् मान, माया, लोन रहित उपशांत एटले समाधिवंत परिनिवृत्त एवो छतो होय तेनें निश्चें संयत विरति प्रतिहत पापकर्मा एटले पच्चरकाणें करी पापकर्मने हणनार, क्रिया रहित संवृत्त, एकांत पंमित एम नगवंतें कह्योछे त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ११ ॥ ए श्री सुयगडांग सूत्रना बीजा श्रुतस्कंधनें विषे प्रत्याख्यान क्रियानामा चोथा अध्ययननो संक्षेपार्थ, बालावबोध समाप्त थयो ॥ ११ ॥

---

॥ दीपिका–अथ संजातवैराग्यः शिष्यः प्रश्नं करोति ( सेकिंकुव्वमित्यादि ) अथ किं कुर्वन् किंवा कारयन् कथं वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यानपापकर्मा जंतुः स्यात् ?। आचार्यआह । ( तत्रखलुत्ति । तत्र संयतत्वसद्भावे । नगवता षड्जीवनिकायाहेतवः प्रज्ञप्ताः । तद्यथा । पृथिवीकायाः यावत्त्रसकायाः । यथाऽविरतस्य षड्जीवनिकाया नरकादिगतिहेतुत्वेनोक्तास्तथा विरतस्य तएव मोक्षहेतवोनवंति । यडुक्तं । "जेजत्ति

यायहेऊ, नवस्सते चेव वत्तिया मोरके ॥ गणणाईया लोया, दोएहवि पुएणा नवे तुल्लाइति (सेजहत्ति) तद्यथा नाम ममासातं डुःखं दंमादिना नोद्यमानस्य पीड्यमानस्य नवति रोमोत्खननमात्रमपि डुःखमहं प्रतिसंवेदयामि अनुनवामि ततइत्येवं जानीहि त्वं सर्वे पि जीवादंमादिना ताड्यमानाडुःखिनः स्युः रोमोत्खननमात्रमपि डुःखमनुनवंति । एवं ज्ञात्वा सर्वे प्राणान हंतव्याः (एतधम्मेत्ति) एषधर्मोध्रुवोनित्यः परिणामानित्यतायाम पि सत्यां स्वरूपाच्यवनात्तथा सूर्योज्ञतिरिव शश्वन्नवनात् शाश्वतः समेत्यावगम्य लोकं चतुर्दशरज्जुमितं खेदज्ञैः सर्वज्ञैः प्रवेदितः । तदेवं स निक्कुर्निवृत्तः सर्वाश्रवेन्योदंतप्रक्षा लनं न कुर्यात् न नेत्रांजनं न वमनविरेचनादि वस्त्रधूपनंच न आदत्ते स निक्कुः क्रोधा दिरहितोऽलूशकोऽहिंसकोयावदेकांतेन पंमितोनवतीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ११ ॥ इति सूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीयश्रुतस्कंधस्य चतुर्थाध्ययनं समाप्तम् ॥ ४ ॥

---

॥ टीका–तदेवमप्रत्याख्यानिनः कर्मसंनवात्तत्संनवाच्च नारकतिर्यङ्नरामरगतिलक्षणं संसारमदगम्य संजातवैराग्यश्चोदकआचार्यं प्रति प्रवणचेताः प्रश्नयितुमाह । (सेकिंकुव्व मित्यादि) अथ किमनुष्ठानं स्वतः कुर्वन् किंवा परं कारयन् कथंवा केन प्रकारेण संयत विरतप्रतिहतपापकर्मा जंतुर्नवति । संयतस्य हि विरतिसन्नावात्सावद्यक्रियानिवृत्तिस्तन्निवृ त्तेश्च कृतकर्मसंचयानावस्तदनावान्नरकादिगत्यनावइत्येवं पृष्टे सत्याचार्यआह । (तछख लु इत्यादि) तत्र संयमसन्नावे षड्जीवनिकायानगवता हेतुत्वेनोपन्यस्ताः । यथा प्रत्याख्या नरहितस्य षड्जीवनिकायाः संसारगतिनिबंधनत्वेनोपन्यस्ताएवं तएव प्रत्याख्यानिनोमो क्षाय नवंतीति । तथा चोक्तं । "जेजेत्तियायहेऊ, नवस्सते चेव वत्तिया मोरके॥ गणणाईया लोगा, दोएहवि पुएहा नवे तुल्लाइत्यादि" । इदमुक्तं नवति । यथात्मनोदंमाद्युपघाते डुः खमुत्पद्यते एवं सर्वेषामपि प्राणिनामित्यात्मोपमया तडुपघातान्निवर्तते एषधर्मः सर्वापा यत्राणलक्षणोध्रुवोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरस्वनावोनित्यइति परिणामानित्यतायामपि सत्यां रूपाद्यच्यवनात् तथा आदित्योज्ञतिरिव शश्वन्नवनाच्छाश्वतः परैः कचिदप्यस्खलितोयुक्ति संगतत्वादित्यनिप्रायोयमेवंनूतश्च धर्मः समेत्यावगम्य लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं खेदज्ञैः सर्वज्ञैः प्रवेदितस्तदेवं स निक्कुर्निवृत्तश्च सर्वाश्रवद्वारेन्योदंतप्रक्षालनादिकाः क्रियाः कुर्वन् सावद्यक्रियायाअनावादक्रियोऽक्रियत्वाच्च प्राणिनामलूपकोऽव्यापादकोयावदेकांतेनैवासो पंमितोनवति । इतिः परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् नयाः प्राग्वद्व्याख्येयाः ॥११॥ समाप्तं प्रत्याख्यानाख्यं चतुर्थमध्ययनमिति ॥ ४ ॥

---

## अथ पंचमाध्ययनप्रारंभः

हवे चोथा अध्ययननें विषे प्रत्याख्यान क्रिया कही, तेवा आचार वालानें सम्यक् कहेवाय, ते कारणमाटें अनाचारनो त्याग करवो अने आचार अंगीकार करवो; माटें आचार श्रुत, अथवा अनाचार श्रुत, एवे नामें पांचमुं अध्ययन कहियें ठेयें. ॥

**आदाय बंभचेरं च, आसुपन्ने इमं वइं ॥ अस्सि धम्मे अणायारं, नाय रेज्ज कयाइवि ॥ १ ॥**

अर्थ-(आदायबंभचेरंच के०) ब्रह्मचर्य ग्रहण करीनें, (आसुपन्नेइमंवइं के०) आशुप्रज्ञ एटले विवेकी पुरुष, ए जे आगल कहेशें तेवी वाणी एटले वचन एम न कहे के, आ जगत् शाश्वत ठे. इत्यादिक नकहे (अस्सिधम्मेअणायारं के०) ए धर्मने विषे प्रवर्त्ततो, अनाचार जे सावद्यानुष्ठानरूप, (नायरेज्जकयाइवि के०) तेनें क्यारे पण आचरे नहीं॥१॥

---

॥ दीपिका-अथ पंचमाध्ययनमारभ्यते तस्यानाचारवर्जनकथनादनाचारश्रुतमिति नाम । अथवा आचारप्रतिपादकत्वादाचरंश्रुतमिति नाम । तस्येदं सूत्रं आदाय बंभचेरमिति ब्रह्म सत्यानुष्ठानं चर्यते सेव्यते यस्मिन् तद्ब्रह्मचर्यं जैनेंद्रशासनं आदाय गृहीत्वा आशुप्रज्ञः पंमितः इमां वक्ष्यमाणां वाचं इदं जगत् शाश्वतमेवेत्यादिकां नाचरेन्न वदेत् तथास्मिन् धर्मे स्थितोऽनाचारं नाचरेत्कदाचिदपि ॥ १ ॥

---

॥ टीका-सांप्रतं पंचममारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतराध्ययने प्रत्याख्यानक्रियोक्ता । सा चाचारसंव्यवस्थितस्य सतोभवतीत्यतस्तदनंतरमाचारश्रुताध्ययनमभिधीयते । यदिवा नाचारपरिवर्जनेन सम्यक् प्रत्याख्यानमस्खलितं भवतीत्यतोनाचारश्रुताध्यनमभिधीयते । यदिवा प्रत्याख्यानयुक्तः सन्नाचारवान् भवतीत्यतः प्रत्याख्यानक्रियानंतरमाचारश्रुताध्ययनं तत्प्रतिपक्षभूतमनाचारश्रुताध्ययनंवा प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनाऽऽयातस्यास्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि भवंति। तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं । तद्यथा । अनाचारं प्रतिषिध्य साधूनामाचारः प्रतिपाद्यते । नाम निष्पन्नेतु निक्षेपे आचारश्रुतमिति द्विपदं नाम । तदनयोर्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । " णामं ठवणादविए दवे भावेय होंति नायवा ॥ एमेवय सुत्तस्सा, निरकेवो चउविहो होंति,॥१॥ (णामंठवणेत्यादि)तत्राचारोनाम स्थापना द्रव्यभावभेदभिन्नश्चतुर्धा द्रष्टव्यः । एवं श्रुतमपीति। तत्राचारश्रुतयोरन्यत्राभिहितयोर्लाघवार्थमतिदेशं कुर्वन्नाह । "आयारसुयं भणियं,

वज्जियव्वा सया अणायारा ॥ अवहुसुयस्स होज्जा, विरहेणाइञ जइयव्वे,,॥१॥(आचारसुयमित्यादि) आचारश्च श्रुतं च आचारश्रुतं। दं दैकवद्भावस्तद्धनयमपि जणितमुक्तं। तत्राचारः क्षुल्लिकाचारकथायामनिहितः श्रुतं तु विनयश्रुते। जावार्थस्तु वर्जयितव्याः परिहार्याः सदा सर्वकालं यावज्जीवं साधुरनाचारास्तांश्चाबहुश्रुतोऽगीतार्थोन सम्यक् जानातीत्यतस्तस्य विराधना जवेत्। बहुशब्दोऽवधारणे। बहुश्रुतस्यैव विराधना न गीतार्थस्येत्यतोत्र सदाचारे तत्परिज्ञानेच यतितव्यं।तथाहि। मार्गज्ञः पथिकः कुमार्गवर्जनेन नापथगामी जवति न चोन्मार्गदोषैर्युज्यते एवमनाचारं वर्जयन्नाचारवान्जवति न चानाचारंदोषैर्युज्यतइत्यतस्तत्प्रतिषेधार्थमाह। एयस्स पडिसेहो, इह्मज्जयणं मिहेति नायव्वा॥ तोअणगारसुयं इयि, होई नामंतु एयस्स ॥ ३ ॥ (एयस्सइत्यादि) एतस्यानाचारस्य सर्वदोषास्पदस्य डुर्गतिगमनैकहेतोः प्रतिषेधोनिराकरणं सदाचारप्रतिपत्त्यर्थमिहाध्ययने ज्ञातव्यः। सच परमार्थतोऽनगारकारणमिति। ततः। केषांचिन्मतेनैतस्याध्ययनस्याऽनगारश्रुतमित्येतन्नाम जवतीति। गतोनामनिष्पन्नो निक्षेपस्तदनंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं। (आदायबंजचेरमित्यादिश्लोकः) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रैः संबंधोवाच्यस्तत्रानंतरसूत्रेण सहायमेकांतपक्षितोजवति। कथमादाय ब्रह्मचर्यमिति। परंपरसूत्रसंबंधस्त्वयं बुध्येत। तथा त्रोटयेद्बंधनं। किंकृत्वेत्याह। आदाय ब्रह्मचर्यमित्येवमन्यैरपि सूत्रैः संबधोवाच्योर्थस्त्वयं। आदाय गृहीत्वा किं तद्ब्रह्मचर्यं सत्यतपोजूतदयेंद्रियनिरोधलक्षणं तच्चर्यतेऽनुष्ठीयते यस्मिन् तन्मौनींद्रप्रवचनं ब्रह्मचर्यमित्युच्यते। तदादायाऽऽशुप्रज्ञः पटुप्रज्ञः सदसद्विवेकज्ञश्च। क्त्वाप्रत्ययस्योत्तरक्रियासव्यपेक्षित्वात्तामाह। इमां समस्ताध्ययनेनापि धीयमानां प्रत्यक्षासन्नजूतां वाचं इदं शाश्वतमेवेत्यादिकां कदाचिदपि नाचरेन्नाभिदध्यात् तथाऽस्मिन्धर्मे सर्वज्ञप्रणीते व्यवस्थितः सन्नानाचारं सावद्यानुष्ठानरूपं न समाचरेन्न विदध्यादिति संबंधः। यदिवाऽऽशुप्रज्ञः सर्वज्ञः प्रतिसमयं केवलज्ञानदर्शनोपयोगित्वात्तत्संबंधिनि धर्मे व्यवस्थितइमां वक्ष्यमाणां वाचमनाचारं च कदाचिदपि नाचरेदितिश्लोकार्थः॥१॥

अणादीयं परिन्नाय, अणवदग्गेति वा पुणो ॥ सासयमसासए वा, इति दिहिं न धारए ॥ २ ॥

अर्थ—हवे आचार अने अनाचार देखाडवानी इच्छायें यथावस्थित लोकसरूप प्रकटन पूर्वक कहेछे. (अणादीयंपरिन्नाय के०) ए चौद रज्ज्वात्मक लोक ते अनादि एटले नथी जेनी आदि एटले आदि रहितछे, एवुं जाणीनें (अणवदग्गेतिवापुणो के०) वली जेनो अंत नथी, एवुं जाणीनें, (सासयमसासएवा के०) एकांत शाश्वत, अथ

वा एकांत अशाश्वत, ( इतिदिठ्ठिनधारए के० ) एवी दृष्टि धरे नहीं, एटले पंमित जन एवो पक्ष आदरे नहीं ॥ २ ॥

---

॥ दीपिका-( अणादीयमिति ) अनादिकं जगत्प्रमाणैः सांख्याभिप्रायेण परिज्ञाय अनवदग्रमनंतं च तन्मतएव ज्ञात्वा सर्वमिदं शाश्वतं बौद्धाभिप्रायेणवाऽशाश्वतं इति दृष्टिं न धारयेत् एनं पक्षं नाश्रयेत् ॥ २ ॥

---

॥ टीका-तत्रानाचरं नाचरेदित्युक्तं । अनाचारश्च मौनींद्रप्रवचनादपरोभिधीयते मौनींद्रप्रवचनं तु मोक्षमार्गहेतुतया सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं। सम्यग्दर्शनंतु तत्त्वार्थ श्रद्धानरूपं । तत्त्वं तु जीवाजीवपुण्यपापाश्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षात्मकं तथा धर्मा धर्माकाशपुजलजीवकालात्मकं द्रव्यं नित्यानित्यस्वभावं सामान्यविशेषात्मकोऽनाद्यप र्यवसानश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकोलोकस्तत्त्वमिति । ज्ञानंतु मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेव लस्वरूपं पंचधा । चरित्रं, सामायिकं, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धिय, सूक्ष्मसंपराय, यथाख्यातरूपं पंचधैव मूलोत्तरगुणभेदतोवा नैकधेत्येवं व्यवस्थिते मौनींद्रप्रवचनेन कदाचिदनीदृशं जगदिति कृत्वाऽनाद्यपर्यवसाने लोके सति दर्शनाचारप्रतिपक्षभूतमना चारं दर्शयितुकामश्चाचार्योयथावस्थितलोकस्वरूपोद्घट्टनपूर्वकमाह (अणादीयमित्यादि) नास्य चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्य धर्माधर्मादिकस्यवा द्रव्यस्यादिः प्रथमोत्पत्तिर्विद्य तइत्यनादिकस्तमेवंभूतं परिज्ञाय प्रमाणतः परिछिद्य तथानवदग्रमपर्यवसानंच परिज्ञा यात्नयात्मकव्युदासेनैकनयदृष्ट्यावधारणात्मकं प्रत्ययमनाचारं दर्शयति शश्वद्भवतीति शाश्वतं नित्यं सांख्याभिप्रायेणाप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं स्वदर्शनेचानुयायिनं सामा न्यांशमवलंब्य धर्माधर्माकाशादिष्वनादित्वमपर्यवसानत्वं चोपलभ्य सर्वमिदं शाश्वत मित्येवंभूतां दृष्टिं नावधारयेदिति एवं पक्षं न समाश्रयेत् । तथा विशेषपक्षमाश्रित्य वर्त्तमाननारकान् समुत्सेत्स्यंतीत्येतच्च सूत्रमंगीकृत्य यत्सत्तत्सर्वमनित्यमित्येवंभूतबौद्ध दर्शनाभिप्रायेण च सर्वत्र शाश्वतमनित्यमित्येवंभूतांच दृष्टिं न धारयेदिति ॥ २ ॥

एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणा यारं तु जाणए ॥ ३ ॥

अर्थ-हवे एनुं कारण कहेछे. सर्वलोक नित्यज छे अथवा अनित्यज छे, ( एएहिंदो हिंठाणेहिं के० ) ए बे स्थानकें करीनें ( ववहाराणविज्जई के० ) लोकनो व्यवहार न प्रवर्त्ते एटले आ लोक, तथा परलोक संबंधि कार्य जे प्रवृत्ति निवृत्ति लक्षण, एवो व्यव

हार प्रवर्त्ते नहीं. ( एएहिंदोहिंगणेहिंअणायारंतुजाणए के०) तथा ए वेडु स्थानकें अ नाचार जाणवो, ए कारणें एकांत पक्ष आदरवो नहीं ॥ ३ ॥

॥ दीपिका-( एएहिंति) एताभ्यां एकांतं नित्यं, एकांतमनित्यंचेति द्वाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारोन विद्यते । एकांतनित्ये एकांतानित्येच वस्तुनि व्यवहारोव्यवस्था न घटतइ त्यर्थः । तस्मादेताभ्यां स्थानाभ्यां स्वीकृताभ्यामनाचारं जानीयात् ॥ ३ ॥

॥ टीका-किमित्येकांतेन शाश्वतमशाश्वतं वाऽस्तित्येवंभूतां दृष्टिं न धारयेदित्याह । ( एएहिंदोहिमित्यादि ) सर्वं नित्यमेवानित्यमेव चैताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यामभ्युपगम्य मानाभ्यामनयोर्वा पक्षयोर्व्यवहरणं व्यवहारोलोकस्यैहिकामुष्मिकयोः कार्ययोः प्रवृत्ति निवृत्तिलक्षणोन विद्यते । तथाह्यप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वनावं सर्वं नित्यमित्येवं न व्य वह्रीयते प्रत्यक्षेणैव नवपुराणादिनावेन प्रध्वंसानावेन वा दर्शनात्तथैवच लोकस्य प्रवृत्तेरा मुष्मिकेपि नित्यत्वान्मनोबंधमोक्षाद्यनावेन दीक्षायमनियमादिकमनर्थकमिति न व्यवह्री यते । तथैकांतानित्यत्वेनापि न लोकोधनधान्यघटपटादिकमनागतनोगार्थं संगृह्णीयात् तथामुष्मिकेपि क्षणिकत्वादात्मनः प्रवृत्तिर्न स्यात् । तथाच दीक्षाविहारादिकमनर्थकं त स्मान्नित्यानित्यात्मकस्याद्वादे सर्वव्यवहारप्रवृत्तिरतएव तयोर्नित्यानित्ययोः स्थानयोरेकां तत्वेन समाश्रीयमाणयोरैहिकामुष्मिककार्यविध्वंसरूपमनाचारं मौनींद्रागमबाह्यरूपं विजानीयात् । तुशब्दोविशेषणार्थः । कथंचिन्नित्यानित्ये वस्तुनि व्यवहारोयुज्यतइत्येत द्विशिनष्टि । तथाहि सामान्यसमन्वयिनमंशमाश्रित्य स्यान्नित्यमिति नवति तथा विशेषांशं प्रतिक्षणमन्यथाच नवपुराणादिदर्शनतः स्यादनित्यइति नवति । तथोत्पादव्ययध्रौव्याणि चार्हद्दर्शनाश्रितानि व्यवहारानि नवंति । तथा चोक्तं "घटमौलिसुवर्णार्थी,नाशोत्पादस्थि तिः स्वयं ॥ शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं, जनोयाति सहेतुक" मित्यादि । सदेवं नित्यानित्य पक्षयोर्व्यवहारोन विद्यते तथानयोरेवानाचारं विजानीयादिति स्थितं ॥ ३ ॥

समुच्छिहिंति सछारो, सवे पाणा अणेलिसा ॥ गंठिगावा न विस्संति, सासयंतिव णोवए ॥४॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, वव हारो ण विज्जइ ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥५॥

अर्थ-वली पण अनाचार, निषेधवानें इछतो ठतो कहेडे. ( समुछिहिंति के० ) सर्वेयापि उछेद पामशे एटले क्षय थइ जाशे,अथवा सर्व सिद्धिने विषे जशे ते कोण जशे तोके ( सछारो के० ) तीर्थंकर सर्वज्ञ, तथा जे तेना शासनमां प्रवर्त्तेडे ते सर्व

सिद्धिनें योग्य एवा सर्वभव्यजीव सिद्धिनें विषे जशे एम करतां सर्वे भव्यजीवनो विछेद थशे. एवुं वचन विवेकी पुरुष न बोले, तथा (सवेपाणाअणेलिसा के०) सर्व प्राणी एटले सर्व जीव ते अणेलिसा एटले सरखा नथी तथा सरखाछे तथा विलक्षणछे एवुं वचन पण विवेकी जन एकांतें न बोले, तथा (गंठिगाएभविस्संति के०) तथा सर्व प्राणी कर्म ग्रंथि सहित थशे, एटले कर्मनी गांठ सहितज रहेशे, एवुं पण एकांतें वचन न बोले, (सासयंतिवणोवए के०) तथा सर्वज्ञ शाश्वताज सर्वकालें होशे, पण कदापि कालें विछेद नहींज पामे. एवुं वचन पण एकांतें बोले नहीं ॥४॥ (एएहिंदोहिंगणेहिं के०) ए बे स्थानक जे तीर्थंकर विछेद पामशे, अथवा शाश्वताज रहेशे, अथवा सर्वे भव्य जीव सिद्धिने पामशे, अथवा सर्वे भव्य जीव कर्म सहितज रहेशे, ए बे स्थानक बे प्रकारना थयां एम कहेवुं, ते. (ववहारोणविज्जती के०) व्यवहार नथी एवुं जाणे. (एएहिंदोहिं गणेहिं के० ) ए बेहु स्थानकें करी, (अणायारंतुजाणई के० ) अनाचार जाणे, एटले दर्शनाचार आश्री अनाचार कह्यो. ॥ ५ ॥

---

॥ दीपिका—( समुछिहिंति ) समुच्छेत्स्यंति उच्छेदं यास्यंति शास्तारोभव्याः सर्वभव्यानां मुक्तिगमनेन भव्यशून्योलोकः स्यादित्येवं नो वदेत् । तथा सर्वे प्राणाअनीदृशाविसदृशाविलक्षणाएव न कथंचित्तेषां सादृश्यमस्तीत्यपि नो वदेत् । ग्रंथिकाः कर्मग्रंथोपेता एवं भविष्यंति सर्वे जीवाइत्यपि नो वदेत् । कोर्थः ?। सर्वे प्राणिनः सेत्स्यंत्येव कर्मावृत्तावा भविष्यंतीत्येकमपि पक्षमेकांतेन न वदेत्तथा शाश्वतास्तीर्थकृतइत्यपि न वदेत्॥४॥ ( एएहिंति ) शास्तारः क्षयं यास्यंति शाश्वतावा भविष्यंतीति । यदिवा सर्वे प्राणाविलक्षणाः सदृशावा तथा ग्रंथिकसत्वाएव तद्रहितं वा जगदिति वा एवमनयोः स्थानयोर्व्यवहारोन विद्यते । इदं पक्षद्वयमपि न घटतइत्यर्थः । यतोऽनागतकालस्येव भव्यानामनंतत्वान्निरंतरं मुक्तिगमनेपि न भव्यशून्यं जगदिति । केचिद्भव्याअपि सामग्र्यभावान्न सेत्स्यंति यथा प्रतिमायोग्यमपि दलिकं सामग्रीं विना प्रतिमारूपं न स्यादिति सर्वे जीवाअपि विचित्रकर्मसद्भावाद्विसदृशाः कथंचित् उपयोगामूर्तत्वासंख्यप्रदेशत्वादिधर्मैः सदृशाअपि । तथा सर्वेऽर्हतः प्रवाहापेक्षया शाश्वताः एकैकापेक्षया अशाश्वताअपीति एताभ्यां द्वाभ्यामेकांतस्थानाभ्यामनाचारं जानीयात् ॥ ५ ॥

---

॥ टीका—तथान्यमप्यनाचारं प्रतिषेधुकामआह । ( समुछिहिंतीत्यादि ) सम्यक् निर्विशेषतयोत्सेत्स्यंत्युछेदं यास्यंति क्षयं प्राप्स्यंति सामस्त्येनोत्प्राबल्येन सेत्स्यंति वा सिद्धिं यास्यंति । के? ते शास्तारस्तीर्थकृतः सर्वज्ञास्तच्छासनप्रतिपन्नावा सर्वे निरवशेषाः

सिद्धिगमनयोग्यानव्यास्ततश्चोच्छिन्नभव्यं जगत्स्यादिति शुष्कतर्कानिमानग्रहगृहीतां युक्तिं चाभिदधति जीवसद्भावे सत्यप्यपूर्वोत्पादाभावादभव्यस्य च सिद्धिगमनासंभवात्कालस्य वाऽनंत्यादनारतसिद्धिगमनसंभवेन तद्यथोपपत्तेरपूर्वायाभावाद्भव्योच्छेदइत्येवं नो वदेत्त था सर्वेपि प्राणिनोजंतवोऽनीदृशाविसदृशाः सदा परस्परंलक्षणाएव न कथंचित्तेषां सादृश्यमस्तीत्येवमप्येकांतेन नो वदेत् । यदिवा सर्वेषां भव्यानां सिद्धिसद्भावे विशिष्टाः सं सारेऽनीदृशाश्चभव्याएव भवेयुरित्येवं च नो वदेत् । युक्तिं चोत्तरत्र वक्ष्यति । तथा कर्मा त्मकोग्रंथोयेषां विद्यते ते ग्रंथिकाः सर्वेपि प्राणिनः कर्मग्रंथोपेताएव भविष्यंतीत्येवम पि नो वदेत् । इदमुक्तं भवति । सर्वेपि प्राणिनः सेत्स्यंत्येव कर्मावृतावा सर्वे भविष्यंती त्येवमेकमपि पक्षमेकांतिकं नो वदेत् । यदिवा ग्रंथिकाइति ग्रंथिकसत्वाभविष्यंतीति ग्रं थिभेदं कर्त्तुमसमर्थाभविष्यंतीत्येवं च नो वदेत्तथा शाश्वताइति शास्तारः सदा सर्वकालं स्थायिनस्तीर्थंकरान भविष्यंति न समुत्सेत्स्यंति नोच्छेदं यास्यंतीत्येवं नो वदेदिति ॥ ४ ॥ तदेवं दर्शनाचारनिषेधं वाङ्मात्रेण प्रदर्श्याऽधुना युक्तिं दर्शयितुकामआह । (एएहिं इत्या दि ) एतयोरनंतरोक्तयोर्द्वयोः स्थानयोः । तद्यथा । शास्तारः क्षयं यास्यंतीति शाश्वतावा भविष्यंतीति । यदिवा सर्वे शास्तारस्तद्दर्शनप्रतिपन्नावा सेत्स्यंति शाश्वतावा भविष्यं ति । यदिवा सर्वे प्राणिनोह्यनीदृशाः विसदृशासदृशावा तथा ग्रंथिकसत्वास्तद्रहितावा भ विष्यंतीत्येवमनयोः स्थानयोर्व्यवहरणं व्यवहारस्तदास्तित्वे युक्तेरभावान्न विद्यते । तथा हि । यत्तावडुक्तं सर्वेशास्तारः क्षयं यास्यंतीत्येतदयुक्तं । क्षयनिबंधनस्य कर्मणोभावात्सि द्धानां क्षयाभावोन भवस्थकेवल्यपेक्षयेदमभिधीयते तदप्यनुपपन्नं यतोनाद्यनंतानां केवलि ना सद्भावात्प्रवाहापेक्षया तदभावाभावः । यदप्युक्तमपूर्वायाभावे सिद्धिगमनसद्भावेन च व्ययसद्भावाद्भव्यशून्यं जगत् स्यादित्येतदपि सिद्धांतपरमार्थाविदिनो वचनं । यतोभव्यरा शेरागमे भविष्यत्कालस्यवानंत्यमुक्तं तच्चैवमुपपद्यते । यदि क्षयोन भवति सतिच तस्मि न्नात्यंतं न स्यान्नापि चावश्यं सर्वस्यापि भव्यस्य सिद्धिगमनेन भाव्यमित्यानंत्याद्भव्यान तत् सामग्र्यभावायोग्यदलिकप्रतिमावत्तदनुपपत्तिरिति । तथा नापि शाश्वताएव भवस्थ केवलिनां शास्तृणां सिद्धिगमनसद्भावात्प्रवाहापेक्षया शाश्वतत्वमेवातः कथंचिच्छाश्वताः कथंचिदशाश्वताइति।तथा सर्वेपि प्राणिनोविचित्रकर्मसद्भावान्नानागतिजातिशरीरांगोपांगा दिसमन्वितत्वादनीदृशाविसदृशास्तथोपयोगासंख्येयप्रदेशत्वामूर्तत्वादिनिर्धर्मैः कथंचित्स दृशास्तथोल्लसितसद्वीर्यतया केचिद्भिन्नग्रंथयोपरेच तथाविधपरिणामाभावाद्ग्रंथिकसत्वा एव भवंतीत्येवं व्यवस्थितेनैकांते नैकांतपक्षोभवतीति प्रतिपित्सस्तदेवमेतयोरेव द्वयोः स्थानयोरुक्तनीत्या नानाचारं विजानीयादिति स्थितं । अपिचागमेऽनंतानंतास्वप्युत्सर्पि ण्यवसर्पिणीषु भव्यानामनंतभागएव सिद्ध्यतीत्ययमर्थः प्रतिपाद्यते ।यदा चैवंभूतं तदानं

त्यं तत्कथं तेषां द्वयः युक्तिरप्यत्र संबधिशब्दावेतो । मुक्तिः संसारं विना न नवति संसारोपि न मुक्तिमंतरेण । ततश्च नव्योछेदे संसारस्याप्यनावः स्यादतोऽनिर्धीयते नाऽनयोर्व्यवहारोयुज्यतइति ॥ ५ ॥

जे केइ खुद्दगा पाणा, अडुवा संति महालया ॥ सरिसंतेहिंति वेरं ति असरिसंतीय णो वदे ॥६॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारंतु जाणए ॥ ७ ॥

अर्थ—हवे चारित्राचार आश्री कहेछे. ( जेकेइखुद्दगापाणा के० ) जे कोइ आ जगत् मां लघुप्राणी एटले सूक्ष्मजीवछे. एटले पृथ्विकायथी मांमीने पंचेंद्रियपर्यंत सूक्ष्म जीवछे, ( अडुवासंतिमहालया के० ) अथवा जे जीव महाकाय एटले महोटी कायावा लाछे, अंहीं न्हानाजीव ते कुंथुआदिक, अने महोटा जीव ते हस्त्यादिक जाणवा. (सरिसंतेहिंतिवेरं के०) ए बेहुनो विनाश करवा थकी सरखुंज वैर होय, एवुं एकांते वचन न बोले ( असरिसंतीयणोवदे के० ) अथवा असरीखुं होय एटले सरखुं वैर न होय. एवुं वचन पण एकांतें न बोले कारणके, कर्मबंधनें विषे न्हाना मोटानुं कांइ विशेष नथी किंतु ? अध्यवसाय विशेष कर्म बंधछे एवुं जाणे, अने बोले ॥६॥ ए बेहु स्थानक बोलतां व्यवरहार प्रवर्त्ते नहीं, एवुं जाणे, तथा एवुं एकांतें बोलतां अनाचारछे एम जाणे.॥७॥

---

॥ दीपिका—(जेकेइत्यादि) ये केचित् क्षुद्राः प्राणिनएकेंद्रियद्वींद्रियादयोऽल्पकायावा पंचेंद्रियाः । अथवा महालयामहाकायाः संति तेषां क्षुद्राणां कुंथ्वादीनां महतां हस्त्यादीनां च हनने सदृशं वैरं कर्मबंधस्तुल्यइत्येकांतेन नो वदेत् असदृशं वातद्घाते वैरं कर्मबंधइंद्रियज्ञानकायानां विचित्रत्वादित्यपि नो वदेत् । नहि वध्यवशात्कर्मबंधः किंतु? अध्यवसायवशात् तीव्राध्यवसायादल्पमपि सत्वं घ्नतोमहान् कर्मबंधः अकामस्यतु महाकायप्राणिहननेपि स्वल्पबंधइत्यर्थः ॥६॥ (एएहिंइति) एताभ्यां तुल्यातुल्यविरूपाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारोन विद्यते अध्यवसायस्यैव बंधाबंधहेतुत्वात् । एताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यां प्रवृत्तस्यानाचारं जानीयात् । तथाहि । नहि जीववधे हिंसा स्यात्तस्य नित्यत्वात् । यडुक्तं "पंचेंद्रियाणि त्रिविधं बलंच, उच्छ्वासनिश्वासमथान्यदायुः ॥ प्राणादशैते नगवद्भिरुक्तास्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा" इति । किंच नावापेक्षएव कर्मबंधोयथा वैद्यस्य सम्यक् क्रियां कुर्वतोयद्यपि रोगी म्रियते तथापि न वैद्यस्य कर्मबंधोडुष्टाध्यवसायानावात् अन्यस्यतु सर्पबुध्या रज्जुमपि घ्नतोनावदोषात्कर्मबंधः । यदागमः । उच्चालियं मियाए, इरियासमि

यस्स संकमणाए ॥ वावज्जिज्जकुलिंगी, । मरिज्जतज्जोगमासज्ज ॥ १ ॥ नयतस्स तन्निमित्तो,बंधेसुहुमोविदेसिउं समए ॥ अणवज्जाउपउंगेण,सव्वनावेणसोजह्मा ॥२॥ इत्यादि॥७॥

---

॥टीका—अधुना चारित्राचारमंगीकृत्याह॥(जेकेइइत्यादि)ये केचन क्षुद्रकाः सत्वाः प्राणिन एकेंद्रिय द्वींद्रियादयोऽल्पकायावा पंचेंद्रियाअथवा महालयामहाकायाः संति विद्यंते तेषां क्षुद्रकाणामल्पकायानां कुंथ्वादीनां महानालयः शरीरं येषां ते महालयाहस्त्यादयस्तेषां च व्यापादने सदृशं वैरमिति वज्रकर्म विरोधलक्षणं वा वैरं सदृशं समानं तुल्यप्रदेशत्वात्सर्व जंतूनामित्येवमेकांतेन नो वदेत्तथा विसदृशमसदृशं तद्व्यापत्तौ वैरं कर्मबंधोवा इंद्रियविज्ञानकायानां विसदृशत्वात् सत्यपि प्रदेशतुल्यत्वे न सदृशं वैरमित्येवमपि नो वदेत् । यदि हि वध्यापेक्षएवकर्मबंधः स्यात्तत्तद्वशात्कर्मणोपि सादृश्यमसादृश्यंवा वक्तुं युज्यते । नच तद्वशादेव बधोपि त्वध्यवसायवशादपि ततश्च तीव्राध्यवसायिनोऽल्पकायसत्वव्यापादनेपि महद्वैरमकामस्यतु महाकायसत्वव्यापादनेपि स्वल्पमिति ॥ ६ ॥ एतदेवसूत्रेणैव दर्शयितुमाह ॥ (एएहिमित्यादि) आभ्यामनंतरोक्ताभ्यां स्थानाभ्यामनयोर्वा स्थानयोरल्पकायसत्वमहाकायव्यापादनापादितकर्मबंधसदृशत्वासदृशत्वयोर्व्यवहरणं व्यवहारोनिर्युक्तिकत्वान्न युज्यते ।तथाहि। न वध्यस्य सदृशत्वमसदृशत्वं चैकमेव कर्मबंधस्य कारणमपितु वधकस्य तीव्रनावोमंदनावोज्ञाननावोऽज्ञाननावोमहावीर्यत्वमल्पवीर्यत्वं चेत्येतदपि । तदेवं वध्यवधकयोर्विशेषात्कर्मबंधविशेषइत्येवं व्यवस्थिते वध्यमेवाश्रित्य सदृशत्वासदृशत्वव्यवहारोन विद्यतइति तथा तयोरेव स्थानयोः प्रवृत्तस्यानाचारं विजानीयादिति । तथाहि। यज्जीवसाम्यात्कर्मबंधसदृशत्वमुच्यते तदयुक्तं । यतोनहि जीवव्यापत्त्या हिंसोच्यते ।तस्य शाश्वतत्वेन व्यापादयितुमशक्यत्वादपि त्विंद्रियादिव्यापत्त्या ।तथाचोक्तं।"पंचेंद्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः॥ प्राणादशैते नगवद्भिरुक्तास्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा" ॥१॥ इत्यादि । अपिच नावसव्यपेक्षस्यैव कर्मबंधोन्युपेतुं युक्तः । तथाहि । वैद्यस्यागमसव्यपेक्षस्य क्रियां कुर्वतोयद्यप्यातुरविपत्तिर्नवति तथापि न वैरानुषंगोनवेद्दोषानावादपरस्यतु सर्पबुद्ध्या रज्जुमपि घ्नतोनावदोषात्कर्मबंधस्तद्रहितस्यतु न बंधइत्युक्तं चागमे । उच्चालियंमियाएइत्यादि । तंमुलमत्स्याख्यानकं तु सुप्रसिद्धमेव । तदेवंविधवध्यवधकनावापेक्षया स्यात् सदृशत्वं स्यादसदृशत्वमित्यन्यथाऽनाचारइति ॥ ७ ॥

अहाकम्माणि नुंजंति, अणमणे सकम्मुणा॥ उवलित्तेति जाणिज्जा, अणुवलित्तेति वा पुणो ॥८॥ एएहिं दोहिं गणेहिं, ववहारो ण विज्जई, एएहिं दोहिं गणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥ ए॥

अर्थ–हवे आहार आश्री आचार अनाचार कहेछे.(अहाकम्माणिभुंजंति के०) जे साधु आश्री थए कायनुं मर्दन करी,वस्तु जे भोजन उपाश्रयादिक कीधां होय, एटलानो जे उपभोग करे ते, (अमसमसेसकम्मुणा के०) परस्पर मांहोमांहे पोतानें कर्मे, (उवलित्तेति जाणिज्जा के०) उपलिप्त जाणवा. एवुं पण वचन एकांतें न बोले, (अणुवलित्तेतिवापुणो के०)अथवा पोतानां कर्मे करी अनुपलिप्त,एटले उपलिप्त न जाणवा,एवुं पण वचन कांतेतें न बोले,कारणके, जे आधाकर्मिक-आहार होय, तेनें पण श्रुतना उपदेशनें अर्थे शुद्ध एवो करीनें जमे तो ते कर्मे करी लेपाय नहीं. अथवा सुजतो आहार होय,परंतु ते आहारनें आहारगृद्धपणे जमे तो, ते कर्मे करी बंधायछे. एवुं जाणीनें, अनेकांत वचन बोले, पण एकांत वचन न बोले ॥८॥ ए बेहुस्थानकें करी व्यवहार न जाणे, अनें ए बेहु स्थानकें करी अनाचार जाणे ॥ ए ॥

---

॥ दीपिका–( अहाकम्माणित्ति ) आधाकर्माणि ये भुंजतेऽन्योन्यं परस्परं तान्स्वकीयेन कर्मणा उपलिप्तान्वा नो वदेत् अनुपलिप्तान्वा न वदेत् । आधाकर्मापि श्रुतोपदेशेन शुद्धमिति कृत्वा भुंजानस्य न बंधः श्रुतोपदेशं विनाऽहारगृध्याऽधाकर्म भुंजानस्यापितु बंधस्तस्मादाधाकर्मभोगे कर्मबंधः स्यान्न स्याद्वा इति वदेत् ॥ ८ ॥ (एएहिंदोहिमिति) आधाकर्मभोगे कर्मबंधःस्यादेव न स्यादेवेति द्वाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारो न विद्यते द्वाभ्यां स्थानाभ्यां स्वीकृताभ्यामनाचारं जानीयात् ॥ ए ॥

---

॥ टीका–पुनश्चारित्रमधिकृत्याहारविषयानाचाराचारौ प्रतिपादयितुकामआह । (अहाकम्माणीत्यादि) साधु प्रधानकारणमादायाश्रित्य कर्माण्याधाकर्माणि । तानितु वस्त्रभोजनवसत्यादीन्युच्यंते । एतान्याधाकर्माणि ये भुजंते एतैरुपभोगं ये कुर्वंत्यन्योन्यं परस्परं तान्स्वकीयेन कर्मणोपलिप्तान् विजानीयादित्येवं नो वदेत्तथाऽनुपलिप्तानितिवा नो वदेत् । एतदुक्तं भवति । आधाकर्मापि श्रुतोपदेशेन शुद्धमिति कृत्वा भुंजानः कर्मणा नोपलिप्यते तदाधाकर्मोपभोगेनावश्यतया कर्मबंधोभवतीत्येवं नो वदेत्तथा श्रुतोपदेशमंतरेणाहारगृध्याऽधाकर्म भुंजानस्य तन्निमित्तकर्मबंधसद्भावासद्भावयोर्व्यवहरणं व्यवहारोनिर्युक्तिकत्वान्न युज्यते । तथाहि । न वध्यस्य सदृशासदृशत्वयोर्व्यवहरणं व्यवहारो निर्युक्तिकत्वान्न युक्तसद्भावमतोभुजितानपि नो वदेद्यथावस्थितमौनीन्द्रागमज्ञस्य त्वेवं युज्यते वक्तुमाधाकर्मोपभोगे न स्यात्कर्मबंधः स्यान्नेति । यतउक्तं । "किंचिच्छुद्धं कल्पमकल्पंवा स्यादकल्पमपि कल्प्यं ॥ पिंडः शय्या वस्त्रं पात्रं वा भेपजाद्यं वा" ॥१॥ तथान्यैरप्यभिहितं । उत्पद्येतहि सावस्था देशकालामयान्प्रति॥ यस्यामकार्यं कार्यं स्यात्कर्म कार्यंच

वर्क्केयेदित्यादि ॥८॥ किमित्येवं स्याद्वादः प्रतिपाद्यत इत्याह।(एएहिंदोहिमित्यादि) आभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यामाश्रिताभ्यामनयोर्व्यवस्थानयोराधाकर्मोपभोगेन कर्मबंधाभावाभावभूत योर्व्यवहारेण विद्यते।तथाहि। यद्यवश्यमाधाकर्मोपभोगेनैकांतेन कर्मबंधोऽभ्युपगम्येत। एवं चाहाराभावेनापि क्वचित्सुतरामनर्थोदयः स्यात्। तथाहि। क्षुत्प्रपीडितोन सम्यगी र्यापथं शोधयेत्ततश्च व्रजन् प्राण्युपमर्दमपि कुर्यात् मूर्छादिसद्भावतया देहपाते सत्यव श्यंभावी त्रसादिव्याघातोऽकालमरणे चाविरतिरंगीकृता भवत्यार्तध्यानापत्तौच तिर्यग्गति रित्यागमश्च। सव्वत्थ संजमं संजमाउ अप्पाणमेव रक्खेज्जाइत्यादिनापि तदुपभोगे कर्मबं धाभावइति। तथाहि। आधाकर्मण्यपि निष्पाद्यमाने षड्जीवनिकायवधस्तद्वधेच प्रतीतः कर्मबंधइत्यतोऽनयोःस्थानयोरेकांतेनाश्रीयमाणयोर्व्यवहरणं व्यवहारेण युज्यते तथाभ्या मेव स्थानाभ्यां समाश्रिताभ्यां सर्वमनाचारं विजानीयादिति स्थितं ॥ ९ ॥

जमिदं उरालमाहारं, कम्मगं च तहेवय ॥ सव्वत्थ वीरियं अत्थि,
णत्थि सव्वत्थ वीरियं ॥ १० ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण
विज्जई ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥ ११ ॥

अर्थ—हवे बीजी रीतें परदर्शनी आश्री बोलवानो अनाचार कहेछे. (जमिदंउरालमाहारं कम्मगंचतहेवय के०) जे ए शरीर सर्वलोक प्रसिद्ध औदारिक, ते तिर्यंच अने मनुष्यनुं शरीर जाणवुं, तथा जे चौदपूर्वधर मुनिराज होय, ते कोइ एक संशय उपने उते शरी र करीनें केवली पासें पूछवाने अर्थे मोकले,ते आहारक शरीर जाणवुं. एना ग्रहणथी वैक्रिय शरीर पण ग्रहण करवुं, तथा कार्मण शरीर कर्मपुद्गलनिबद्ध जाणवुं. तेमज एनुं सहचारी ते तैजस शरीर जाणवुं, ए पांच शरीर जाणवां.हवे कोइ एकनें ए पांच श रीरछे तेमांहेथी औदारिक वैक्रियादिकने विषे एकज शरीरनी आशंका उपजे एटले ते एम कहे के, जे औदारिक शरीर, तेहिज तैजस, कार्मण शरीरछे, अनें तैजस कार्मण शरीर तेहिज औदारिक, वैक्रिय, अनें आहारक शरीरछे. परंतु एवी संज्ञा न करवी, तथा ए पांचे शरीर अत्यंत मांहो मांहे जुदां जुदांछे एवी पण संज्ञा न करवी. त्यारें केवी संज्ञा करवी? तोके,ए जीव आश्री पांचे शरीर अभिन्नछे अने नामनें भेदें,पर्यायनें भेदें,भिन्न पणछे.एम कहेवुं. हवे सर्वद्रव्यनो भेदाभेद देखाडवामाटें कहेछे. ( सव्वत्थवीरियंअत्थि के० ) स घलुं द्रव्य, सर्वद्रव्यनें विषेछे एवो सांख्यमतनो अभिप्राय जाणवो. ते सांख्य मत एम कहेछे के, सत्व, रज, तमरूपें जे प्रधाननामा तत्व ते सर्वद्रव्यनुं कारणछे, ए कारणें सर्वद्रव्य सर्वात्मक एवी व्यवस्था एटले सर्वत्र घट पटादिकद्रव्यनें विषे अन्यद्रव्यनुं

वीर्यछे, एवी संज्ञा पण करवी नहीं. ( नत्थिसव्वत्थवीरियं के० ) वली सर्वपदार्थनें विषे सर्वद्रव्यनुं वीर्य नथी, एवी संज्ञा पण करवी नहीं. अहीं एकांतनो निषेध करीनें स्याद्वाद बोलवो. इत्यर्थः ॥ १० ॥ अगीआरमी गाथानो अर्थ, पूर्ववत् जाणवो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका–(जमिदमिति) यदिदमौदारिकं शरीरं आहारकंवा एतद्ग्रहणा द्वैक्रियमपि ग्राह्यं कार्मणं तथा तैजसमपि। एतेषां शरीराणामैक्यमेव तैजसकार्मणयोरभिन्नत्वात्। ततस्त्रयाणामेकत्वमेवेति नो वदेत् इत्यग्रेतनश्लोके संबंधः। तथा शरीराणां सर्वेषां सर्वथा भेदएवेत्यपि नो वदेत् कथंचिदेकत्वस्याप्यंगीक्रियमाणत्वात् तथा। (सव्वत्थअत्थि त्ति) सर्वं सर्वत्रास्तीति सांख्याभिप्रायेण सत्वरजस्तमोरूपायाः प्रकृतेरेकत्वात्तस्याएव हि सर्वस्य कारणत्वात्सर्वं सर्वात्मकमेवं सति सर्वत्र घटपटादौ अन्यस्य व्यक्तस्य वीर्यं शक्तिरस्ति सर्वस्य व्यक्तस्य प्रकृतिकार्यत्वात्कार्यकारणयोश्चैकत्वात्सर्वं सर्वत्र सर्वस्य वीर्यमस्तीति संज्ञां न कुर्यात्। तथा सर्वे भावाः स्वस्वशक्तियुक्ताइति न सर्वस्य सर्वत्र शक्तिरित्यपि संज्ञां न कुर्यात् भेदाभेदस्वरूपत्वात्सर्वभावानामिति ॥१०॥ (एएहिंदोहिंठाणेहिंति) द्वाभ्यामेताभ्यां सर्वत्र शक्तिरस्ति नास्तिवेति अथवा शरीराणां सर्वेषां भेदोऽभेदोवेति द्वाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारोन विद्यते युक्तयोन संगच्छंतीत्यर्थः। एतयोः स्थानयोः प्रवृत्तस्याऽनाचारं जानीयात् ॥११॥

॥ टीका–पुनरप्यन्यथादर्शनं प्रति चागमानाचारं दर्शयितुमाह। ( जमिदंउरालमित्यादि) यदि वा योयमनंतरमाहारः प्रदर्शितः स सति शरीरे भवति। शरीरं च पंचधा। तस्य चौदारिकादेः शरीरस्य भेदाभेदं प्रतिपादयितुकामः पूर्वपक्षद्वारेणाह। ( जमिदमित्यादि ) यदिदं सर्वजनप्रत्यक्षमुदारैः पुद्गलैर्निवृत्तमौदारिकमेतदेवोरालं निस्सारत्वादेतच्च तिर्यङ्मनुष्याणां भवति। तथा चतुर्दशपूर्वविदा कचित्संशयादावाह्रियतइत्याहारकमेतद्ग्रहणाच्च वैक्रियोपादानमपि द्रष्टव्यं। तथा कर्मणा निवृत्तं कार्मणमेतत् सहचरितं तैजसमपि ग्राह्यं। औदारिकवैक्रियाहारकाणां प्रत्येकं तैजसकार्मणाभ्यां सह युगपदुपलब्धेः कस्यचिदेकत्वाऽशंका स्यादतस्तदपनोदार्थं तदभिप्रायमाह। तदेव तथदेवौदारिकं शरीरं तएव तैजसकार्मणे शरीरे। एवं वैक्रियाहारकयोरपि वाच्यं। तदेवंभूतां संज्ञां नो निवेशयेदित्युत्तरश्लोके क्रिया। तथैतेषामात्यंतिकोभेदइत्येवंभूतामपि संज्ञां नो निवेशयेत्। युक्तिश्चात्र यद्येकांतेनाभेदएव। ततइदमौदारिकमुदारपुद्गलनिष्पन्नं तथैतत्कर्मणा निर्वर्त्तितं कार्मणं सर्वस्यैतस्य संसारचक्रवालस्य भ्रमणस्य कारणभूतं तेजोद्रव्यैर्निष्पन्नं तेजएव तैजसं आहारपक्तिनिमित्तं तैजसलब्धिनिमित्तं चेत्येवं भेदेन संज्ञानिरुक्तं कार्यंच न स्यात्। अथात्यंतिकोभेदएव ततोघटवद्भिन्नयोर्देशकालयोरप्युपलब्धिः स्यात्।

न नियता युगपडुपलब्धिरित्येवं च व्यवस्थिते कथंचिदेवोपलब्धेर्भेदः कथंचिच्च संज्ञा भेदाभ्नेदइति स्थितं । तदेवमौदारिकादीनां शरीराणां भेदाभेदौ प्रदर्श्याधुना सर्वस्यैव ड्व्यस्य भेदाभेदौ प्रदर्शयितुकामः पूर्वपक्षं श्लोकपश्चार्द्धेन दर्शयितुमाह । ( सव्वबवीरिय मित्यादि ) सर्वं सर्वत्र विद्यतइतिकृत्वा सांख्याभिप्रायेण सत्वरजस्तमोरूपस्य प्रधानस्यै कत्वात्तस्यच सर्वस्यैव कारणत्वात् अतः सर्वं सर्वात्मकमित्येवं व्यवस्थिते घटपटाद्यवय वस्य व्यक्तस्य वीर्यं शक्तिर्विद्यते सर्वस्यैव हि व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्कार्यकारणयोश्चैकत्वा दतःसर्वस्य सर्वत्र वीर्यमस्तीत्येवं संज्ञा नो निवेशयेत्तथा सर्वे भावाःस्वभावेन स्वस्वभावव्यव स्थिताइति प्रतिनियतशक्तित्वान्न सर्वत्र सर्वस्य वीर्यं शक्तिरित्येवमपि संज्ञां नो निवेशयेत्।यु क्तिश्चात्र यत्तावडुच्यते सांख्याभिप्रायेण सर्वं सर्वात्मकं देशकालाकारप्रतिबंधात्तु न समान कालोपलब्धिरिति तदयुक्तं। यतोभेदेन सुखडुःखजीवितमरणादूरासन्नसूक्ष्मबादरसुरूपकुरू पादिकं संसारवैचित्र्यमध्यक्षेणाऽनुभूयते ।नच दृष्टेऽनुपपन्नं नाम।नच सर्वं मिथ्येत्यभ्युपप न्नं युज्यते । यतोऽदृष्टहानिरदृष्टकल्पनाच पापीयसी। किंच सर्वथैक्येऽभ्युपगम्यमाने संसार मोक्षाभावतया कृतनाशोकृताभ्यागमश्च बलादापतति। यच्चैतत्सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रधानमित्येतत्सर्वस्य जगतः कारणं तन्निरंतराः सुहृदः प्रत्येष्यंति निर्युक्तिकत्वाद पिच सर्वथा सर्वस्य वस्तुनएकत्वेऽभ्युपगम्यमाने सत्वरजस्तमसामप्येकत्वं स्यात् तन्नेदे च सर्वस्य भेदइति। तथा यदप्युच्यते सत्वस्य व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्सत्कार्यवादत्वाच्च मयू रांमकरणे चंचुपिच्छादीनां सतामेवोत्पादाभ्युपगमादसडुत्पादे चाम्रफलादीनामप्युत्पत्तिप्र संगादित्येतद्वाङ्मात्रं । तथाहि। यदि सर्वथा कारणे कार्यमस्ति न तर्ह्युत्पादोनिष्पन्नघ टस्येवापिच मृत्पिंमावस्थायामेव घटगताः कर्मगुणव्यपदेशाभवेयुर्नच भवंति ततोनास्ति कारणे कार्यमथाऽनभिव्यक्तमस्तीति चेन्न । तर्हि सर्वात्मना विद्यते नाप्येकांतेनासत्कार्य वाद एव। तद्भावेहि व्योमारविंदानामप्येकांतेनासतोमृत्पिंमादेर्घटादेरिवोत्पत्तिः स्यान्न चै तद्दृष्टमिष्टं वा।अपिचैवं सर्वस्य सर्वस्माडुत्पत्तेः कार्यकारणभावान्नियमः स्यादेवंच न शाल्यं कुरार्थीशालीबीजमेवाददीत अपितु यत्किंचिदेवेति नियमेनच प्रेक्षापूर्वकारिणामुपादानकारणा दौ प्रवृत्तिरतोनासत्कार्यवादइति।तदेवं सर्वपदार्थानां सर्वज्ञेयत्वप्रमेयत्वादिभिर्धर्मैः कथंचि देकत्वं तथा प्रतिनियतार्थकार्यतया यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सदितिकृत्वा कथं चिन्नेदइति सामान्यविशेषात्मकं वस्त्विति स्थितं।अनेनच स्यादस्ति स्यान्नास्तीति भंगकद्वये न शेषभंगकाअपि इष्टव्याः। ततश्च सर्ववस्तु सप्तभंगीस्वभावं। ते चामी स्वड्व्यक्षेत्रकालभा वापेक्षया स्यादस्ति परड्व्यापेक्षया स्यान्नास्ति अनयोरेव धर्मयोर्यौगपद्येनाभिधातुमशक्य त्वात्स्यादवक्तव्यं तथा कस्यचिदंशस्य स्वड्व्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्कस्यचिच्चांशस्य पर ड्व्याद्यपेक्षया स्याद्वा नास्तिवा वक्तव्यं चेति।तथैकस्यांशस्य स्वड्व्याद्यपेक्षया परस्य तु

सामस्त्येन स्वद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्स्यादस्तिचावक्तव्यं चेति।तथैकांशस्य परद्रव्याद्यपेक्षया स्यान्नास्ति चावक्तव्यं चेति तथैकस्यांशस्य स्वद्रव्याद्यपेक्षया परस्य तु परद्रव्याद्यपेक्षयाऽन्यस्य तु योगपद्येन स्वपरद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्स्यादस्तिच नास्तिचाऽवक्तव्यं इयं च सप्तभंगी यथायोगमुत्तरत्रापि योजनीयेति ॥ १० ॥ ११ ॥

णत्थि लोए अलोएवा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि लोए अलोएवा, एवं सन्नं निवेसए॥ १२॥ णत्थि जीवा अजीवावा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि जीवा अजीवावा, एवं सन्नं निवेसए॥ १३॥ णत्थि धम्मे अधम्मेवा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि धम्मे अधम्मेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १४॥

अर्थ-हवे सर्वशून्यवादीना मतनुं निराकरण करवानें अर्थें,लोक अनें अलोकनुं अस्तिपणुं देखाडेछे, (णत्थिलोएअलोएवा के०) चतुर्दशरज्ज्वात्मक एवो जे लोक,अथवा पंचास्तिकायरूप एवो जे लोक, ते नथी,एवी संज्ञा न करवी,तथा आकाशास्तिकाय रूप एवो जे अलोक,ते पण नथी,ते एवी संज्ञा पण न करवी. केमके,ए नास्तिकवादीनो मतछे. हवे केवी संज्ञा करवी? ते कहेछे.पंचास्तिकायरूप लोक ते पण छे,तथा आकाशास्तिकाय रूप अलोक ते पणछे, एवी संज्ञा करवी. ए केवलीनो मतछे॥१२॥हवे लोकालोकनुं अस्तिपणुं देखाडीनें तेना विशेषभूत जीव अनें अजीव तेनो अस्तिभाव देखाडेछे. जीव ते, उपयोग लक्षण संसारीक, अथवा मुक्तिगत.ए पण नथी. तथा अजीव ते धर्म, अधर्म, आकाश,पुद्गल,अनें कालात्मक ए पण नथी.एवी संज्ञा पण न करवी केमके,ए नास्तिकवादीनो मतछे त्यारें केवी संज्ञा करवी? तोके, जीव पणछे,अनें अजीव पणछे,एवी संज्ञा करवी.ए केवली भगवंतनो मतछे ॥१३॥ हवे एवा जीवनो अस्तिभाव देखाडीनें तेनें सदसत्क्रिया अनुष्ठाननें विषे धर्म, अनें अधर्म कारणछे,ते माटें हवे तेनो अस्तिभाव कहेछे. श्रुतचारित्ररूप जे धर्म, ते कर्मक्षयनो कारणरूपछे. ते पण नथी, तथा मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अने योगरूप जे अधर्मछे, ते कर्मबंधनो कारणरूपछे, ते पण नथी, एवी संज्ञा पण न करवी. परंतु धर्म पणछे, अनें अधर्म पणछे, एवी संज्ञा करवी ॥ १४ ॥

---

॥ दीपिका-( णत्थिलोएइत्यादि ) शून्यवादिमताभिप्रायेण नास्ति लोकः अलोकोपि नास्तीति संज्ञां नो निवेशयेन्न स्थापयेत् अस्ति लोकः पंचास्तिकायात्मकः अस्ति वाऽलो

कश्चाकाशास्तिकायमात्रइति संज्ञां निवेशयेत् ॥ १२ ॥ ( णत्थिजीवाइति ) न संति जीवाश्च जीवावा इति संज्ञां नो निवेशयेत् संति जीवाश्चजीवाश्चेति संज्ञां कुर्यात् ॥ १३ ॥ ( णत्थि धम्मइति ) नास्ति धर्मः श्रुतचारित्रात्मकः नास्ति वाऽधर्मोमिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोग रूपः एवं संज्ञां न कर्यात् अस्ति धर्मोऽधर्मोवा एवं संज्ञां कुर्यात् ॥ १४ ॥

---

॥ टीका—तदेवं सामान्येन सर्वस्यैव वस्तुनोभेदाभेदौ प्रतिपाद्याधुना सर्वशून्यवादिम तनिरासेन लोकालोकयोः प्रविभागेनास्तित्वं प्रतिपादयितुकामआह । ( णत्थिलोए अलोएवाइत्यादि) यदि वा सर्वत्र वीर्यमस्ति नास्ति सर्वत्र वीर्यमित्यनेन सामान्येन वस्त्व स्तित्वमुक्तं । तथाहि । सर्वत्र वस्तुनोवीर्यं शक्तिरर्थक्रियासामर्थ्यं मनसः स्वविषयज्ञानोत्पा दनं तच्चैकांतेनात्यंताभावाच्छशविषाणादेरप्यस्तीत्येवं संज्ञां न निवेशयेत्सर्वत्र वीर्यं ना स्तीति नो एवं संज्ञां निवेशयेदिति । अनेनावशिष्टं वस्त्वस्तित्वं प्रसाधितमिदानीं तस्यैव वस्तुनईषद्विशेषितत्वेन लोकालोकरूपतयास्तित्वं प्रसाधयन्नाह । (णत्थिलोएअलोएइत्या दि ) लोकश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकोधर्माधर्माकाशादिपंचास्तिकायात्मकोवा स नास्तीत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत् । तथाऽऽकाशास्तिकायात्मकस्त्वेकः सच न विद्यते एवेत्येवं सज्ञां नो निवेश येत् । तदभावप्रतिपत्तिनिबंधनं त्विदं । तद्यथा प्रतिभासमानं वस्त्ववयवद्वारेणवा प्रति भासेतावयविद्वारेणवा तत्र न तावदवयवद्वारेण प्रतिभासनमुत्पद्यते निरंशपरमाणूनां प्र तिभासमानासंभवात्सर्वारातीयभागस्य परमाण्वात्मकत्वाच्चैपांच छद्मस्थविज्ञानेन द्रष्टुमश क्यत्वात् । तथाचोक्तं "यावद्दृश्यं परस्तावद्भागः सच न दृश्यते ॥ निरंशस्यच भागस्य नास्तिछ अस्थ दर्शन" मित्यादि।नाप्यवयविद्वारेण विकल्प्यमानस्यावयविनएवाभावात्।तथा ह्यसौ स्वावयवेषु प्रत्येकं सामस्त्येनवा वर्त्तेतांऽशांशिभावेनवा सामस्त्येनावयविबहुत्वप्रसंगान्नाप्यं शेन पूर्वविकल्पानतिक्रमेणानवस्थाप्रसंगात्तस्माद्विचार्यमाणं न कथंचिद्वस्त्वात्मकं भावं भजते ततस्तत्सर्वमेवैतन्मायास्वप्नेंद्रजालमरुमरीचिकाविज्ञानसदृशं। तथाचोक्तं। "यथा य थार्थाश्चिंत्यंते विविच्यंते तथा तथा॥ यद्येते स्वयमर्थेभ्योरोचंते तत्र के वय" मित्यादि। तदेव वस्त्वभावे तद्विशेषलोकालोकाभावः सिद्धएवेत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । किंत्वस्ति लोककर्ध्वाधस्तिर्यग्रूपोवैशाखस्थानस्थितकटिन्यस्तकरयुग्मपुरुषसदृशः पंचास्तिकायात्म कोवा तद्व्यतिरिक्तश्चालोकोप्यस्ति ।संबधिशब्दत्वाल्लोकव्यवस्थाऽनुपपत्तेरिति भावः । युक्ति भात्र यदि सर्वं नास्ति ततः सर्वांतःपातित्वात्प्रतिषेधकोपि नास्तीत्यतस्तदभावात्प्रतिषे धाभावोपि च सति परमार्थभूते वस्तुनि माया स्वप्नेंद्रजालादिव्यवस्थान्यथा किमाश्रित्य कोवा मायादिकं व्यवस्थापयेदिति । अपिच "सर्वाभावोयथाभीष्टोयुक्त्यभावेन सिध्यति। सास्ति चेत्सैव नस्तत्वं तत्सिद्धौ सर्ववस्तुस" दित्यादि । यदप्यवयवावयविविभागकल्पनया

दूषणमभिधीयते तदप्यार्हतमतानभिज्ञेन । तन्मतं चैवंभूतं ।तद्यथा नैकांतोनावयवाएव नाप्यवयव्येव चेत्यतः स्याद्वादाश्रयणात्पूर्वोक्तविकल्पदोषानुपपत्तिरित्यतः कथंचिल्लोको स्त्येवमलोकोपीति स्थितं ॥१२॥ तदेवं लोकालोकास्तित्वं प्रतिपाद्याधुना तद्विशेषभूत योर्जीवाजीवयोरस्तित्वप्रतिपादनायाह । (णत्थिजीवाअजीवेत्यादि) जीवाउपयोग लक्षणाः संसारिणोमुक्तावा ते न विद्यंते तथा अजीवाश्च धर्माधर्माकाशपुद्गलकाला त्मकागतिस्थित्यवगाहदानछायातपोद्योतादिवर्त्तनालक्षणान विद्यंतइत्येवं संज्ञां परि ज्ञानं नो निवेशयेन्नास्तित्वनिबंधनं त्विदं प्रत्यक्षेणानुपलभ्यमानत्वाज्जीवान विद्यंते कायाकारपरिणतानि भूतान्येव धावनवल्गनादिकां क्रियां कुर्वंतीति । तथात्मा द्वैत वादमताभिप्रायेण पुरुषएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यमित्यागमात्तथा अजीवान विद्यंते सर्वस्यैव चेतनाचेतनस्यात्ममात्रनिवर्त्तित्वान्नो एवं संज्ञां निवेशयेत् किंत्वस्ति जीवः सर्वस्यास्य सुखदुःखादेर्निबंधनभूतः स्वसंवित्तिसिद्धोऽहं प्रत्ययग्राह्यस्तथा तद्व्यतिरि क्ताधर्माधर्माकाशपुद्गलादयश्च विद्यंते । सकलप्रमाणज्येष्ठेन प्रत्यक्षेणानुभूयमानत्वा त्तद्गुणानां भूतचैतन्यवादीव वाच्यः । किं तानि भवदभिप्रेतानि भूतानि नित्यान्युताऽनि त्यानि।यदि नित्यानि ततोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावत्वान्न कायाकारपरिणतेरभ्युपगमः नापि प्रागविद्यमानस्य चैतन्यमुत्पद्यते आहोस्विद्विद्यमानं तावदविद्यमानमतिप्रसंगाद भ्युपेतागमलोपाद्वा ऽथविद्यमानमेव सिद्धं तर्हि जीवत्वं तथाऽत्मा द्वैतवाद्यपि वाच्यः। यदि पुरुषमात्रमेवेदं सर्वं कथं घटपटादिषु चैतन्यं नोपलभ्यते तथा तदैक्यभेदनिबंधनानां पक्ष हेतुदृष्टांतानामभावात्साध्यसाधनाभावस्तस्मान्नैकांतेन जीवाजीवयोरभावोपितु सर्वपदा र्थानां स्याद्वादाश्रयणाज्जीवः स्यादजीवः अजीवोपिच स्यादजीवः स्याज्जीवइत्येतच्च स्या द्वादाश्रयणं जीवपुद्गलयोरन्योन्यानुगतयोः शरीरस्य प्रत्यक्षतयाऽध्यक्षेणैवोपलंभाद्द्रष्ट व्यमिति ॥१३॥ जीवास्तित्वेच सिद्धे तन्निबंधनयोः सदसत्क्रिया द्वारायातयोर्धर्माधर्मयोर स्तित्वप्रतिपादनायाह । (णत्थिधम्मेअधम्मेवेत्यादि) धर्मः श्रुतचरित्राख्यात्मकोजीवस्या त्मपरिणामः कर्मक्षयकारणमात्मपरिणामएवमधर्मोपि मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययो गरूपः कर्मबंधकारणमात्मपरिणामएव।तावेवंभूतो धर्माऽधर्मौ कालस्वभावनियतीश्वरादि मतेन न विद्येते इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्। कालादयएवास्य सर्वस्य जगद्वैचित्र्यस्य धर्मा धर्माव्यतिरेकेणैकांततः कारणमित्येवमभिप्रायं कुर्यायतः तएवैककान कारणमपितु समु दिताएवेति।तथाचोक्तं । " नहि कालादी हिंतो, केवले हिंतो जायए किंचि ॥ इहमुग्गरं धणा इवि, तासव्वे समुदिया हेऊ " इत्यादि । यतोधर्माधर्ममंतरेण संसारवैचित्र्यं न घटामियर्त्यतोऽस्ति धर्मः सम्यग्दर्शनादिकोऽधर्मश्च मिथ्यात्वादिकइत्येवं संज्ञां नो निवे शयेदिति ॥ १४॥

णत्थि बंधेव मोरकेवा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि बंधेव मोरकेवा, एवं सन्नं निवेसए॥ १५॥ णत्थि पुण्णेव पावेवा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि पुण्णेव पावेवा, एवं सन्नं निवेसए॥ १६॥

अर्थ—हवे धर्माधर्मनें अस्तिजावें, बंध अनें मोक्षनो सन्नाव देखाडेछे. प्रकृति, स्थिति, अनुजाग, अनें प्रदेशरूप, एवो जे चार प्रकारनो बंध, ते पण नथी, तथा मोक्ष पण नथी, एवी संज्ञा पण न करवी, परंतु ए बंध पणछे अनें मोक्ष पणछे एवी संज्ञा करवी॥१५॥ हवे बंधना सन्नावें अवश्य पुण्य अनें पापनो पण सन्नावछे. ते कहेछे. पुण्य जे शुज प्रकृतिलक्षण ते पण नथी, तथा पाप जे अशुजप्रकृतिलक्षण ते पण नथी, एवी संज्ञा न करवी, परंतु पुण्य पणछे अनें पाप पणछे. एवी संज्ञा करवी॥ १६॥

---

॥ दीपिका—( णत्थिबंधेइत्ति ) नास्ति बंधोमोक्षोवेति संज्ञां न कुर्यात् बंधमोक्षसन्नाव मंगीकुर्यात्॥ १५॥ (णत्थिपुण्णमिति) नास्ति पुण्यं सत्कर्म, नास्ति पापमसत्कर्म इति नांगीकार्यं तयोरस्तित्वं मंतव्यं॥ १६॥

---

॥ टीका—सतोथ धर्माधर्मयोर्बंधमोक्षसन्नावइत्येतद्दर्शयितुमाह। ( णत्थिबंधेवमोरकेवाइत्यादि) बंधः प्रकृतिस्थित्यनुजावप्रदेशात्मकतया कर्मपुजलानां जीवेन स्वव्यापारतः स्वीकरणं। तच्चामूर्तस्यात्मनोगगनस्येव न विद्यतइत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत्। तथा तदनावाच्च मोक्षस्याप्यनावइत्येवमपि संज्ञां नो निवेशयेत्। कथंतर्हि संज्ञां निवेशयेदित्युत्तरार्द्धेन दर्शयति।अस्ति बंधः कर्मपुजलैर्जीवस्येत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति।यत्तूच्यते मूर्तस्यामूर्तिमता संबंधोन युज्यतइति तदयुक्तं। आकाशस्य सर्वव्यापितया पुजलैः संबंधोडुर्निवार्यः। तदनावे तद्व्यापित्वमेव न स्यादन्यच्चास्य विज्ञानस्य हृत्पूरमदिरादिना विकारः समुपलन्यते।नचासौ संबंधमृतेऽतोयत्किंचिदेतत्। अपिच संसारिणामसुमतां सदा तैजसकार्मणशरीरसन्नावादात्यंतिकममूर्तत्वं न नवतीति। तथा तत्प्रतिपक्षनूतोमोक्षोप्यस्ति तन्नावे बंधस्याप्यनावः स्यादित्यतोऽशेषबंधनापगमस्वनावोमोक्षोस्तीत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति॥१५॥ बंधसन्नावे चावश्यं नावी पुण्यपापसन्नावइत्यतस्तन्नावं निषेध द्वारेणाह। (णत्थिपुण्ण इत्यादि) नास्ति न विद्यते पुण्यं शुनकर्मप्रकृतिलक्षणं तथा पापं तद्विपर्ययलक्षणं नास्ति न विद्यते इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत्। तदनावप्रतिपत्तिनिबंधनं त्विदं। तत्र केषांचिन्नास्ति पुण्यपापमेव ह्युत्कर्षवित्यं सत्सुखडुःखनिबंधनं तथा परेषां पापं नास्ति पुण्यमेव ह्यपचीयमानं पापं कार्यं कुर्यादित्यन्येषां तूजयमपि नास्ति। संसारवैचित्र्यं तु नियतिसनावादिकृतं तदेतदयुक्तं। यतः पुण्यपापशब्दौ संबंधिशब्दौ। संबंधिशब्दानामेकस्य

सत्तापरसत्तानांतरीयकत्तोनेतरस्य सत्तेति नाप्युजयाजावः शक्यते वक्तुं निबंधनस्य जगद्वैचित्र्यस्याजावात् । नहि कारणमंतरेण क्वचित्कार्यस्योत्पत्तिर्दृष्टा । नियतिस्वजावादिवादस्तु नष्टोत्तराणां पादप्रसारिकाणां पादप्रसारिका प्रायोपि च तद्वादेऽन्युपगम्यमाने सकलक्रियावैयर्थ्यं ततएव सकलकार्योत्पत्तिरित्यतोस्ति पुण्यं पापं चेत्येवं संज्ञां निवेशयेत् । पुण्यपापे चैवं रूपे । तद्यथा ॥ "पुजलकर्म शुजं य,त्तत्पुण्यमिति जिनशासने दृष्टम् ॥ यदशुजमथ तत्पाप,मिति जवति सर्वज्ञनिर्दिष्ट"मिति ॥ १६ ॥

णत्थि आसवे संवरेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि आसवे संवरेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १७ ॥ णत्थि वेयणा णिज्जरावा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि वेयणा णिज्जरावा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे कारण विना कार्यनी उत्पत्ति नथी,माटें पुण्य अनें पाप ए बेनुं कारण आश्रव अनें संवरछे, तेथी हवे आश्रव अनें संवर देखाडेछे. प्राणातिपातादि रूप जे कर्म ग्रहण करवानां कारणछे ते आश्रव जाणवां. अनें जेणें करी आवता कर्मनें रोकी राखीयें तेनें संवर कहियें, माटें ए आश्रव अनें संवर बन्ने नथी, एवी संज्ञा करवी नहीं, परंतु आश्रव पणछे, अने संवर पणछे, एम कहेवुं ॥ १७ ॥ हवे आश्रव अनें संवरनें सद्भावें वेदना अनें निर्ज्जरानो सद्भाव देखाडेछे. वेदना एटले कर्मनुं अनुजववुं, अनें निर्ज्जरा एटले कर्म पुजलनुं साडवुं, ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करवी; परंतु वेदना पणछे अनें निर्ज्जरा पणछे. एवी संज्ञा गीतार्थ साधु करे ॥ १८ ॥

---

॥ दीपिका—( णत्थिआसवेति ) आश्रवसंवरसद्भावोंगीकार्यइति ॥ १७ ॥ ( णत्थिवेयणेति ) वेदना कर्मानुजवरूपा निर्जरा कर्मपुजलशाटरूपा एते द्वे अपि न स्तः । यतः पल्योपमसागरोपममसातवेद्यं कर्म अंतर्मुहूर्तेनैव क्षयं याति । यडुक्तं । "जं अन्नाणी कम्मं, खवेइ बहुयाहि वासकोडीहिं ॥ तन्नाणी तिहि गुत्तो, खवेइ ऊसास मित्तेणमित्यादि । तथा क्षपकश्रेण्यां शीघ्रमेव कर्मणः क्षयात् यथाक्रमबद्धस्यानुजवाजावे वेदनायाअजावस्तदजावेच निर्जरायाअप्यजावइत्येवं नांगीकुर्यात् । यतः कस्यचिदेव कर्मणएवमुक्तनीत्या क्षयः अन्यस्य तु प्रदेशानुजवेन जोगसद्भावादस्तिवेदना । यडुक्तं । "पुव्विंडच्चिन्नाणं डुप्पडिकंताणकम्माणं॥वेइत्ता मोरको नत्थि अवेइत्ताइत्यादि । वेदनासद्भावेच निर्जराप्यस्तीति स्वीकुर्यात्॥१८॥

---

॥ टीका—न कारणमंतरेण कार्यस्योत्पत्तिरतः पुण्यपापयोः प्रागुक्तयोः कारणजूतांवा

श्रवसंवरौ तत्प्रतिपेधद्वारेण दर्शयितुकामश्राह। ( णडिश्रासवेसंवरेवेत्यादि ) श्राश्रवति प्रविशति कर्म येन सप्राणातिपातादिरूपश्राश्रवः कर्मोपादानकारणं तथा तन्निरोधः संवरः एतौ द्वावपि न स्तइत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्तदनावप्रतिपत्त्या शंकाकारणंत्विदं कायवाङ्मनःकर्मयोगः स श्राश्रवइति यथेदमुक्तं तथेदमप्युक्तमेव । (उच्चालियंमिपाएइत्यादि) ततश्च कायादिव्यापारेण कर्मबंधो न नवतीति युक्तिरपि । किमयमाश्रवश्रात्मनोभिन्नउताऽनिन्नः । यदि निन्नोनामासावाश्रवोघटादिवदनेदेपि नाश्रवत्वं सिद्धात्मनामपि श्राश्रवप्रसंगात्तदनावेच तन्निरोधलक्षणस्य संवरस्याप्यनावः सिद्धएवेत्येवमात्मकमध्यवसायं न कुर्यात् । यतोयत्तदनैकांतिकत्वं कायव्यापारस्योच्चालयंमि पाए इत्यादिनोक्तं तदस्माकमपि संमतमेव । यत्तोयमस्मानिरप्युपयुक्तकर्मबंधोन्युपगम्यते निरुपयुक्तस्य कर्मबंधस्तथा नेदानेदोनयपक्षसमाश्रयणात्तदेकपक्षाश्रितदोपानावइत्यस्त्याश्रवसन्नावस्तन्निरोधश्च संवरइति । उक्तंच। "योगः शुद्धः पुण्या,श्रवस्तु पापस्य तद्विपर्यासः ॥ वाक्कायमनोगुप्ति,निराश्रवः संवरस्तूक्त" इत्यतोस्त्याश्रवस्तथा संवरश्चेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १७ ॥ श्राश्रवसंवरसन्नावे चावश्यं नावी वेदनानिर्जरासन्नावइत्यतस्तं प्रतिपेधनिपेधद्वारेणाह । ( णडिवेयणेत्यादि ) वेदना कर्मानुनवलक्षणा तथा निर्जरा कर्मपुजलशाटनलक्षणा । एते द्वे अपि न विद्येते इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । तदनावं प्रत्याशंकाकारणमिदं । तद्यथा । पल्योपमसागरोपमशतानुनवनीयं कर्मांतर्मुहूर्तेनैव क्षयमुपयातीत्यन्युपगमात् । तडुक्तं । "जं श्रणाणीकम्मं, खवेइ बहुयाइं वासकोडीहिं ॥ तणाणी तिहि गुत्तोखवेइ ऊसासमित्तेणं"इत्यादि । तथा क्षपकश्रेण्यां च झटित्येव कर्मणोनस्मीकरणाद्यथाक्रमबद्धस्य चानुनवनानावे वेदनायाश्रनावस्तदनावाच्च निर्जरायाश्रपीत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । किमिति । यतः कस्यचिदेव कर्मणएवमनंतरोक्तया नीत्या क्षपणात्तपसा प्रदेशानुनवेन चापरस्य तूदयोदीरणान्यामनुनवनमित्यतोस्ति वेदना । यतश्रागमोप्येवंनूतएव । तद्यथा । "पुव्विंडुच्चिणाणं, डुप्पडिकंताणकम्माणं ॥ वेइत्ता मोक्खो णडि श्रवेइत्ताइत्यादिवेदनासिद्धा च निर्जरापि सिद्धेवेत्यतोस्ति वेदना निर्जरावेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १८ ॥

णडि किरिया अकिरियावा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अडि किरिया अकिरियावा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १९ ॥ णडि कोहेव माणेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अडि कोहेव माणेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २० ॥

अर्थ–हवे वेदना, अनें निर्जरा.ए बन्ने क्रिया अनें अक्रियाना आयतने. माटें तेनो सनाव देखाडेळे क्रिया एटले करवुं,अनें जे ते थकी विपरीत ते अक्रिया,ए बन्ने नथी.एवी

संज्ञा न करवी, परंतु क्रिया पणछे, अनें अक्रिया पणछे. एवी संज्ञा करवी ॥१९॥ हवे क्रियानें सद्भावें क्रोधादिकनो सद्भाव देखाडेछे. जे पोतानें अनें परनें अप्रीतिनुं कारण ते क्रोध जाणवो, तथा जे गर्वलक्षण ते मान जाणवुं, ए बेहु नथी, एवी संज्ञा पण न करवी, परंतु क्रोध अनें मान ए बेहुछे एवी संज्ञा करवी ॥ २० ॥

---

॥ दीपिका-( णत्थिकिरियेत्यादि ) सांख्यादीनां सर्वव्यापकत्वादात्मनोव्योम्नइव परिस्पंदात्मिका क्रिया न विद्यते बौद्धानांतु क्षणिकत्वात्सर्वभावानां प्रतिक्षणमुत्पत्तिरेव नान्या काचित्क्रिया तथा सर्वपदार्थानां प्रतिक्षणमवस्थांतरगमनात्सक्रियत्वमेव अतोऽक्रिया न विद्यते एवं संज्ञां न कुर्यात् किंतु ? अस्ति क्रियाऽक्रियाचेति संज्ञां कुर्यात् । यतः क्रियाभावे व्योम्नइव बंधे मोक्षाभावः प्रसज्येत । बौद्धानामपि प्रतिक्षणोत्पत्तिक्रियैव ततोऽस्ति क्रिया तद्भावेच तद्विपक्षभूताऽक्रियाप्यस्तीति ॥१९॥ ( णत्थिकोहेवेति) नास्ति क्रोधः सद्मिमानांशएव क्षपकश्रेण्यांच भेदेन क्षपणानंगीकारात् । तथा क्रोधःकिं ? आत्मनोधर्मः किंवा कर्मणउतान्यस्य । तत्रात्मधर्मत्वे सिद्धानामपि क्रोधोदयप्रसंगः । अथ कर्मणस्तत स्तदन्यकषायोदयेपि तदुदयसंगात् अन्यधर्मत्वेऽकिंचित्करत्वमतोनास्ति क्रोधः । एवं मानाभावोऽपि वाच्यइत्येवं नांगीकुर्यात् । यतः क्रोधाध्मातः पुरुषः प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यते नायं मानांशोनिमित्तभेदात् । तथा जीवकर्मणोर्द्वयोरप्ययं धर्मस्ततः पूर्वोक्तः प्रत्येकदोषासंभवस्ततः क्रोधोमानश्चास्तीति संज्ञां निवेशयेत् ॥ २० ॥.

---

॥ टीका-वेदनानिर्जरेच क्रियाक्रियत्वे ततस्तद्भावप्रतिषेधनिषेधपूर्वकं दर्शयितुमाह । (णत्थिकिरियाअकिरियावाइत्यादि) क्रिया परिस्पंदलक्षणा तद्विपर्यस्तात्वक्रिया । ते द्वे अपि न स्तोन विद्येते । तथाहि । सांख्यानां सर्वव्यापित्वादात्मनआकाशस्येव परिनिस्पंदिका क्रिया न विद्यते । शाक्यानांतु क्षणिकत्वात्सर्वपदार्थानां प्रतिसमयमन्यथा वान्यथोत्पत्तेः । पदार्थसत्तैव न तद्व्यतिरिक्ता काचित्क्रियास्ति ॥ तथा चोक्तं । भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकस्यैव चोच्यतइत्यादि । तथा सर्वपदार्थानां प्रतिक्षणमवस्थांतरगमनात्सक्रियात्वमतोन क्रिया विद्यते इत्येवं सज्ञां नो निवेशयेत् किंतर्ह्यस्ति क्रिया अक्रिया वेत्येवं सज्ञां निवेशयेत् । तथाहि ।शरीरात्मनोर्देशादेशांतरावाप्तिनिमित्ता परिस्पंदात्मिका क्रिया प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यते ।सर्वथा निष्क्रियत्वे चात्मनोऽभ्युपगम्यमाने गगनस्येव बंधमोक्षाद्यभावः सच दृष्टेष्टबाधितः । तथा शाक्यानामपि प्रत्यक्षेणोत्पत्तिरेव क्रियेत्यतः कथं क्रियायाअभावोपि चैकांतेन क्रियाभावे संसारमोक्षाभावः स्यादित्यतोऽस्ति क्रिया तद्विपक्षभूताचाक्रियेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १९ ॥ तदेवं सक्रियात्मनि सति क्रोधादिसद्भावइ

त्येतद्दर्शयितुमाह । ( णत्थिकोहेवमाणेवेत्यादि ) स्वपरात्मनोरप्रीतिलक्षणः क्रोधः ॥ सचानंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदेन चतुर्धाऽऽगमे पठ्यते।तथैतावद्भेदएव मानोगर्वः । एतौ द्वावपि न स्तोन विद्येते । तथाहि। क्रोधः केषांचिन्मतेन मानांशएवाभिमानग्रहगृहीतस्य तत्कृतावत्यंतक्रोधोदयदर्शनात् क्षपकश्रेण्यां च भेदेन क्षपणानभ्युपगमात्। तथा किमयमात्मधर्मश्चाहोस्वित्कर्मणस्तान्यस्येति । तत्रात्मधर्मत्वे सिद्धानामपि क्रोधोदयप्रसंगोऽथ कर्मणस्ततस्तदन्यकषायोदयेपि तडुदयप्रसंगान्मूर्तत्वाच्च कर्मणोहि घटस्येव तदाकारोपलब्धिः स्यादन्यधर्मत्वे त्वकिंचित्करत्वमतोनास्ति क्रोधइत्येवं मानाभावोपि वाच्य इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्। यतः। कषायः कर्मोदयवर्ती दृष्टेष्ट कृतभ्रुकुटीभंगोरक्तवदनोगलत्स्वेदबिंडुसमाकुलः क्रोधाध्मातः समुपलभ्यते न चासौ मानांशस्तत्कार्याकरणात्तथा परनिमित्तोद्धापिततत्वाच्चेति तथा जीवधर्मकर्मणोरुभयोरप्ययं धर्मस्तत्धर्मत्वेनच प्रत्येकविकल्पदोषानुपपत्तिरनभ्युपगमात्संसार्यात्मनां कर्मणा सार्द्धं पृथग्भवनाभावात्तडुभयस्यच न नरसिंहवद्द्वस्त्वंतरत्वादित्यतोऽस्ति क्रोधोमानश्चेत्येवं संज्ञां निवेशयेत् ॥ २० ॥

णत्थि माया व लोभेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि माया व लोभेवा, एवं सन्नं निवेसए॥ २१ ॥ णत्थि पेज्जेव दोसेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि पेज्जेव दोसेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २२ ॥

अर्थ—हवे माया अनें लोभनो सद्भाव देखाडेछे, जे परवंचनरूप ते माया, अनें जे सन्निधि संचयरूप ते लोभ, ए बेहु नथी, एवी संज्ञा न करवी, परंतु माया पणछे, अनें लोभ पणछे एवी संज्ञा करवी ॥ २१ ॥ हवे क्रोधादिक जेछे, तेनो संक्षेप थकी सद्भाव कहेछे. प्रेम एटले प्रीतिलक्षण पुत्र, कलत्र. धन, धान्यादिक, विषेरागता ते राग, तथा अप्रीतिलक्षण ते द्वेष, ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करवी, परंतु राग पणछे, अनें द्वेष पणछे, एवी संज्ञा करवी ॥ २२ ॥

---

॥ दीपिका (णत्थिमायेवेति) मायालोभौ न स्तः ऽति सज्ञां न निवेशयेत् मायालोभयोर्निबंधः पूर्ववत् । प्रत्यक्षदृश्यत्वान्मायालोभौ स्तऽति संज्ञां निवेशयेत् ॥ २१ ॥ ( णत्थिपेज्जेवेति ) प्रीतिः प्रेम पुत्रकलत्रधनादिषु रागस्तद्विपरीतोद्वेषस्तौ न स्तः । यतोमाया लोभावेव रागः क्रोधमानावेव द्वेषस्ताभ्यां रागद्वेषौ न स्तः अस्ति प्रेमद्वेषोप्यस्तीति संज्ञां कुर्यात यस्माद्रागोवयवी मायालोभौ अवयवो तथा . द्वेषोऽवयवी क्रोधमानौ अवयवौ अवयवीच अवयवेभ्यः कथंचिद्भिन्नोऽभिन्नश्च तस्मान्मायालोभश्च प्रेमद्वेषश्च कथंचिदस्ति

ति स्वीकार्यं ॥ २२ ॥ ( णत्थिरागदोसाविति ) रागद्वेषौ न स्तइति न स्वीकार्यं तौ विद्येते इति मतिः कार्या युक्तिः । पूर्वोक्ता ॥ २३ ॥

॥ टीका सांप्रतं मायालोभयोरस्तित्वं दर्शयितुमाह ( णत्थिमायावलोभेत्यादि ) अत्रापि प्राग्वन्मायालोभयोरभाववादीनां निराकृत्यास्तित्वं प्रतिपादनीयमिति ॥ २१॥ सांप्रतं तेषांच क्रोधादीनां समासेनास्तित्वं प्रतिपादयन्नाह । ( णत्थिपेज्जेवेत्यादि ) प्रीतिलक्षणं प्रेम पुत्रकलत्रधनधान्याद्यात्मीयेषु रागस्तद्विपरीतस्त्वात्मीयोपघातकारिणि द्वेषस्तावेतौ द्वावपि न विद्येते । तथाहि । केषांचिदभिप्रायोयदुत मायालोभावेवावयवौ विद्येते न तत्समुदायरूपोऽवयव्यस्ति । तथा क्रोधमानावेव स्तः न तत्समुदायरूपोऽवयवी द्वेष इति । तथा ह्यवयवेभ्योयद्यभिन्नोवयवी तर्हि तंदभेदात्तएव । नासावथ भिन्नः पृथगुपलंभः स्याद्घटपटवदितित्येवमसिद्धिकल्पमूढतया नो संज्ञां निवेशयेत् । यतोऽवयवावयविनोः कथंचिद्भेदइत्येवं भेदाभेदाख्यतृतीयपक्षसमाश्रयणात्प्रत्येकपक्षाश्रितदोषानुपपत्तिरित्येवं चास्ति प्रीतिलक्षणं प्रेमाप्रीतिलक्षणश्च द्वेषइत्येवं संज्ञां निवेशयेत् ॥२२॥

णत्थि चाउरंते संसारे, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि चाउरंते संसारे, एवं सन्नं निवेसए ॥ २३ ॥ णत्थि देवोव देवीवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि देवोव देवीवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २४ ॥

अर्थ—हवे पूर्वे कह्या जे क्रोधादिक चार कषाय ते कषायनें सद्भावें, संसारनो सद्भाव देखाडेछे. नरक, तिर्यंच, मनुष्य अनें देवता, ए चतुर्गतिलक्षण संसार नथी. एवी संज्ञा न करे, परंतु ए चतुर्गतिलक्षण संसारछे एवी संज्ञा करे ॥ २३ ॥ हवे वली पण एज संसारनो सद्भाव देखाडेछे. भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी, अनें वैमानिक, ए चार जातना देव, तथा एनी स्त्रियो ते देविर्ड ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करे, परंतु ए देव पणछे अनें देवीउ पणछे; एवी संज्ञा करे. एवी संभावनायें मनुष्य, नारकी, अनें तिर्यंचनो पण सद्भाव जाणवो ॥ २४ ॥

॥ दीपिका (णत्थिचाउरंतइति) नास्ति चातुरंतः चत्वारोऽतागतिभेदायत्र ससंसारश्चतुरंतश्चतुर्विधः संसारोनास्ति देवनारकयोरनुपलभ्यमानत्वात् इति संज्ञां न निवेशयेत् अस्ति चतुर्विधः संसारः यतः संति सुरनारकाःप्रकृष्टपुण्यपापफलभोगस्यान्यथानुपपत्तेः एवं संज्ञां निवेशयेत् ॥ २४ ॥ ( णत्थिदेवेति ) नास्ति देवोदेवी वा इति मतिं न कुर्यात् अस्ति देवोवा देवी इति संज्ञां कुर्यात् अत्र प्रकृष्टपुण्यफलभोगएव हेतुः ॥ २५ ॥

॥ टीका सांप्रतं कषायसद्भावे सिद्धे सति तत्कार्यभूतोऽवश्यं भावी संसारसद्भाव इत्येतत्प्रतिषेधनिषेध द्वारेण प्रतिपादयितुमाह। (णत्थिचाउरंते इत्यादि) चत्वारोंऽतागति भेदानरकतिर्यङ्नरामरलक्षणायस्य संसारस्यासौ चतुरंतः संसारएव कांतारोनर्यैकहेतु त्वात्। सच चतुर्विधोपि न विद्यते अपितु सर्वेषां संसृतिरूपत्वात्कर्मबंधात्मकतया च दुःखैकहेतुत्वादथवा नारकदेवयोरनुपलभ्यमानत्वात्तिर्यङ्मनुष्ययोरेव सुखदुःखोत्कर्षतया तद्व्यवस्थानाद्विविधः संसारः पर्यायनयाश्रयणात्त्वनेकविधोऽतश्चातुर्विध्यं न कथंचिद्घटतइत्येवं संज्ञां नो निवेशयेदपितु अस्ति चतुरंतः संसारइत्येवं संज्ञां निवेशयेत्। यत्तूक्तमेकविधः संसारस्तन्नोपपद्यते यतोऽध्यक्षेण तिर्यङ्मनुष्ययोर्भेदः समुपलभ्यते न चासावेकविधत्वे संसारस्य घटते। तथा संभवानुमानेन नारकदेवानामप्यस्तित्वाभ्युपगमाद्वैविध्यमपि न विद्यते। संभवानुमानंतु पुण्यपापयोः प्रकृष्टफलभुजस्तन्मध्यफलभुजां तिर्यङ्मनुष्याणां दर्शनादतः संभाव्यते प्रकृष्टफलभुजोज्यतिषां च प्रत्यक्षेणैव दर्शनादथ तद्विमानानामुपलंभएवमपि तदधिष्ठातृभिः कैश्चिद्भवितव्यमित्यनुमानेन गम्यते। ग्रहगृहीतवरप्रदानादिना च तदस्तित्वानुमानमिति तदस्तित्वेतु प्रकृष्टपुण्यफलभुजइव प्रकृष्टपापफलभुग्भिरपि भाव्यमित्यतोऽस्ति चातुर्विध्यं। संसारस्य पर्यायनयाश्रयणेतु यदनेकविधत्वमुच्यते तदयुक्तं। यतः सप्तपृथिव्याश्रिताअपि नारकाः समानजातीयाश्रयणादेकप्रकाराएव तथा तिर्यंचोपि पृथिव्यादयः स्थावरास्तथा द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाश्च द्विपष्टिभेदोनिलरूप्रमाणाः सर्वेप्येकविधाएव। तथा मनुष्याअपि कर्मभूमिजाऽकर्मभूमिजांतरद्वीपकसंमूर्छनजात्मकभेदमनादृत्यैकविधत्वेनैवाश्रितास्तथा देवाअपि भवनपतिव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकभेदेन भिन्नाएकविधत्वेनैव गृहीतास्तदेवं सामान्यविशेषाश्रयणाच्चातुर्विध्यं संसारस्य व्यवस्थितं नैकविधत्वं संसारवैचित्र्यदर्शनान्नाप्यनेकविधत्वं सर्वेषां नारकादीनां स्वजात्यनतिक्रमादिति॥ २३॥ २४॥

णत्थि सिद्धी असिद्धीवा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि सिद्धी असिद्धीवा, एवं सन्नं निवेसए॥ २५॥ णत्थि सिद्धी नियं ठाणं, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि सिद्धी नियं ठाणं, एवं सन्नं निवेसए॥ २६॥

अर्थ—हवे संसारनें सद्भावें सिद्धिनो सद्भाव देखाडेछे. समस्तकर्मक्षयरूं स्थानक सिद्धि जाणवी. अने तेथकी विपरीत ते असिद्धि जाणवी. ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करे, परंतु सिद्धि पणछे, अने असिद्धि पणछे, एवी संज्ञा पोताना चित्तनें विषे स्थापन करे॥२५॥हवे सिद्धिना स्थानकनो सद्भाव कहेछे. समस्तकर्मक्षयलक्षण जे सिद्धि तेनुं, ( नियं

वाणं के० ) पोतानुं स्थानक "इसीवप्नार" एवे नामेंछे ते नथी, एवी संज्ञा न करे परंतु सिद्धि एवुं निज पोतानुं स्थानकछे, एवी संज्ञा चित्तने विषे स्थापन करे ॥ २६ ॥

---

॥ दीपिका-( णत्थिसिद्धीइति) नास्ति सिद्धिः कर्मक्षयरूपा असिद्धिः संसाररूपा सापि नास्तीति संज्ञां न निवेशयेत् । संसारचातुर्विध्यं पूर्वमेवोक्तं । कियतः कर्मक्षयस्यच पीडोपशमादिना प्रत्यक्षेण दर्शनात्कस्यचिदात्यंतिककर्मक्षयोपि स्यात् तस्मादस्ति सिद्धिरसिद्धिरप्यस्तीति संज्ञां कुर्यात् ॥ २६ ॥ (णत्थिसेहाइति) सिद्धेः सर्वकर्मक्षयरूपायानिजं स्थानं सिद्धिशिलोपरियोजनचतुर्थक्रोशोपरितनषड्नागः स नास्तीति संज्ञां न कुर्यात् अस्ति सिद्धिर्निजं स्थानमिति संज्ञां च कुर्यात् आगमप्रमाणसिद्धत्वात् ॥ २७ ॥

---

॥ टीका-सर्वेनावानां सप्रतिपक्षत्वात्संसारसद्भावे सति अवश्यं तद्विमुक्तिलक्षणया सिद्ध्यापि नवितव्यमित्यतोऽधुना सप्रतिपक्षां सिद्धिं दर्शयितुमाह । (णत्थिसिद्धीत्यादि) सिद्धिरशेषकर्मच्युतिलक्षणा तद्विपर्यस्ताचासिद्धिर्नास्तीत्येवं नो संज्ञां निवेशयेदपि त्वसिद्धेः संसारविलक्षणायाश्चातुर्विध्येनानंतरमेव प्रसाधितायाश्चविगाने नास्तित्वं प्रसिद्धं तद्विपर्ययेण सिद्धेरप्यस्तित्वमनिवारितमित्यतोस्ति सिद्धिरसिद्धिर्वेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति स्थितं । इदमुक्तं नवति । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्य मोक्षमार्गस्य सदाचांकर्मक्षयस्य च पीडोपशमादिनाऽध्यक्षेण दर्शनादतः कस्यचिदात्यंतिककर्महानिसिद्धेरस्ति सिद्धिरिति । तथा चोक्तं । "दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायिनी ॥ कचिद्यथा स्वहेतुन्योबहिरंतर्मलक्षय" इत्यादि। सर्वज्ञसद्भावोपि संनवानुमानाद्दृष्टव्यस्तथात्यन्यस्यमानायाः प्रज्ञायाव्याकरणादिना शास्त्रसंस्कारेणोत्तरोत्तरवृद्ध्या प्रज्ञातिशयोद्दष्टव्यः तत्र कस्यचिदत्यंतातिशयप्राप्तेः सर्वज्ञत्वं स्यादिति संनवानुमानेन चैतदाशंकनीयं । तद्यथा । ताप्यमानमुदकमत्यंतोष्णतामियान्नाग्निसाद्भवेत् तथा दशहस्तांतरं व्योम्नि योनामोत्प्लुत्य गच्छति। न योजनमसौ गंतुं शक्तोन्यासशतैरपीति दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात् । तथाहि । ताप्यमानं जलं प्रतिक्षणं क्षयं गच्छत्प्रज्ञा तु विवर्द्धते। यदिवा झोपोपलब्धेरव्याहतमग्नित्वं तथा प्लवनविषयेपि पूर्वमर्यादायाअनतिक्रमाद्योजनोत्प्लवनानावस्तत्परित्यागे चोत्तरोत्तरं वृद्ध्या प्रज्ञाप्रकर्षगमनवद्योजनशतमपि गच्छेदित्यतोदृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात्तदेवं नाशंकनीयमिति स्थितं । प्रज्ञावृद्धेश्च बाधकप्रमाणानावादस्ति सर्वज्ञत्वप्राप्तिरिति । यदिवांजनभृतसमुद्गकदृष्टांतेन जीवाकुलत्वाल्लोकगतोहिंसायाउनिवारत्वात्सिद्ध्यनावः । तथा चोक्तं । "जले जीवाः स्थले जीवाआकाशे जीवमालिनि ॥ जीवमालाकुले लोके कथं निक्षुरहिंसक" इत्यादि। तदेवं सर्वस्यैव हिंसकत्वात्सिद्ध्यनावइति । तदेतदयुक्तं । तथाहि । सदोपयुक्तस्य पिहि

ताश्रव द्वारस्य पंचसमितिसमितस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य सर्वथा निरवद्यानुष्ठायिनोद्विचत्वारिंश द्दोषरहित निक्षाचुजईर्यासमितस्य कदाचिद्द्रव्यतः प्राणिव्यपरोपणेपि तत्कृतवंधानावः सर्वथा तस्यानवद्यत्वात् । तथाचोक्तं । उच्चालियंमिपाए, इत्यपि प्रतीतं तदेवं कर्मवंधानावात्सिद्धेः सद्भावोव्याहतः सामर्थ्यनावादसिद्धिसद्भावोपीति ॥ २५॥ सांप्रतं सिद्धानां स्थाननिरूपणायाह । (एत्थिसिद्धीत्यादि) सिद्धिरशेषकर्मच्युतिलक्षणायानिजं स्थानमीषत्प्राग्नाराख्यं व्यवहारतोनिश्चयतस्तु तडुपरि योजनक्रोशषड्नागस्तत्प्रतिपादकप्रमाणानावात्स नास्तीत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत् । यतोबाधकप्रमाणानावात्साधकस्य चागमस्य सन्नावात्तत्सत्ता डुर्निवारेति । अपिचापगताशेषकल्मषाणां सिद्धानां केनचिद्विशिष्टेन स्थानेन नाव्यं तच्चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्याग्रनूतं इष्टव्यं । नच शक्यते वक्तुमाकाशवत्सर्वव्यापिनः सिद्धाइति यतोलोकालोकव्याप्याकाशं । न चालोके परद्रव्यस्याकाशमात्ररूपत्वात् लोकमात्रव्यापित्वमपि नास्ति विकल्पानुपपत्तेः । तथाहि । सिद्धावस्थायां तेषां व्यापित्वमन्युपगतमुतप्रागपि न तावत्सिद्धावस्थायां तद्व्यापित्वनवने निमित्तानावान्नापि प्रागवस्थायां तन्नावे सर्वसंसारिणां प्रतिनियतसुखडुःखानुनवोन स्यान्नच शरीराद्बहिरवस्थितमवस्थानमस्ति । तत्सत्तानिबंधनप्रमाणस्यानावादतः सर्वव्यापित्वं विचार्यमाणं न कथंचिद्घटते तदनावे च लोकाग्रमेव सिद्धानां स्थानं तज्ञतिश्च कर्मविमुक्तस्योर्ध्वं गतिरिति। तथाचोक्तं । "लाउ एरंडफले,अग्गीधूमे उसूधणुविमुक्के ॥ गइ पुव्वपउगेणं,एवं सिद्धाणविगईउ" इत्यादि । तदेवमस्ति सिद्धिस्तस्याश्च निजं स्थानमित्येवं संज्ञां निवेशयेदिति॥ २६॥

णत्थि साहू असाहूवा,णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि साहू असाहू वा; एवं सन्नं निवेसए ॥ २७ ॥ णत्थि कल्लाण पावेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि कल्लाण पावेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २८ ॥

अर्थ–हवे सिद्धिना साधनारा साधुओडे. तेनो सन्नाव कहेडे. ज्ञान, दर्शन, अने चारित्ररूप रत्नत्रयने साधे,ते साधु जाणवा, ते पण नथी, तथा ए थकी विपरीत ते असाधु जाणवा, ते पण नथी. एवी संज्ञा न करवी, परंतु साधु पणडे, अने असाधु पणडे, एवी संज्ञा करवी ॥ २७ ॥ हवे सामान्य प्रकारें कल्याण अने पापनो सन्नाव देखाडेडे. मनोवांछित अर्थनी प्राप्तिनुं करनारुं एवुं कल्याण, ते पण नथी. तथा ते थकी विपरीत जे पाप, ते पण नथी. एवी संज्ञा न करे, किंतु? कल्याण पणडे, अने पाप पणडे. एवी संज्ञा करे ॥२८॥

॥ दीपिका–( णत्थिसाहू इति) नास्ति साधुर्मुनिः संपूर्णचारित्रगुणानावात् तदनावे त

द्विपरीतोऽसाधुरपि नास्ति एकस्याप्यनावे द्वितीयस्याप्यनावः द्वयोः परस्परापेक्षत्वात्। एवं संज्ञां न निवेशयेत्। किंतु? अस्ति साधुः संपूर्णगुणसद्भावात्। तथाहि। सम्यग्दृष्टेरर क्तद्विष्टस्य सत्संयमवतः श्रुतानुसारेणाऽऽहारादिकं शुद्धबुद्ध्या गृह्णतः कचिदज्ञानादशुद्ध ग्रहणसंनवेप्युपयुक्तस्य संपूर्णमेव रत्नत्रयानुष्ठानमिति। तदेवं मुक्तिकृते प्रवर्त्तमानस्य साधुत्वं इतरस्यासाधुत्वं मंतव्यं ॥ २८ ॥ ( णत्थिकल्लाणमिति ) वांछितार्थप्राप्तिः कल्याणं। कल्याणवांश्च कश्चिन्नास्ति सर्वपदार्थानामसारत्वाद्विनश्वरत्वाच्च। पापं पापवान् वा कश्चिन्नास्ति अद्वैतवादिमतेनाऽऽत्मानं विना सर्वस्यानावात् एवं संज्ञां न कुर्यात् एकांतेन सर्वनावानामसारत्वविनश्वरत्वानावादस्ति कल्याणं तद्वांश्च अद्वैतमतस्य मिथ्यात्वात् पापं पापवांश्च विद्यते। अद्वैते हि सुखी दुःखी सुरूपः कुरूपोधनी दरिद्रइत्यादि विश्ववैचित्र्यं न स्यादिति ॥ २९ ॥

---

॥ टीका—सांप्रतं सिद्धेः साधकानां साधूनां तत्प्रतिपक्षनूतानामसाधूनां चास्तित्वं प्रतिपिपादयिषुः पूर्वपक्षमाह। ( णत्थिसाहूअसाहूवाइत्यादि ) नास्ति न विद्यते ज्ञानदर्शनचारित्रक्रियोपेतोमोक्षमार्गव्यवस्थितः साधुः संपूर्णस्य रत्नत्रयानुष्ठानस्यानावात्तदनावाच्च तत्प्रतिपक्षनूतस्यासाधोरप्यनावः परस्परापेक्षित्वादेतद्व्यवस्थानस्यैकतरानावे द्वितीयस्याप्यनावइत्येवं संज्ञां नो निवेशयेदपित्वस्ति साधुः सिद्धेः प्राक्साधितत्वात्। सिद्धिसत्ता च नसाधुमंतरेण अतः साधुसिद्धिस्तत्प्रतिपक्षनूतस्य वाऽसाधोरिति। यश्च संपूर्णरत्नत्रयानुष्ठानानावः प्रागाशंकितः स सिद्धांतानिप्रायमबुध्वैव। तथाहि। सम्यग्दृष्टेरुपयुक्तस्यारक्तद्विष्टस्य सत्संयमवतः श्रुतानुसारेणाऽऽहारादिकं शुद्धबुध्या गृह्णतः कचिदज्ञानादनेषणीयग्रहणसंनवेपि सततोपयुक्ततया संपूर्णमेव रत्नत्रयानुष्ठानमिति। यश्च नक्ष्यमिदं चानक्ष्यं गम्यमिदं वाऽगम्यं प्रासुकमेषणीयमिदमिदंच विपरीतमित्येवं रागद्वेषसंनवेन समनावरूपस्य सामायिकस्यानावः कैश्चिच्चोद्यते तत्तेषां चोदनमज्ञानविजृंनणात्। तथाहि। न तेषां सामायिकवतां साधूनां रागद्वेषतया नक्ष्यानक्ष्यादिविवेकोऽपितु प्रधानमोक्षांगस्य सच्चारित्रस्य साधनार्थमपि चोपकारापकारयोः समनावतया सामायिकं न पुनर्नक्ष्यानक्ष्ययोः समनाववृत्त्येति ॥ २८ ॥ तदेवं मुक्तिमार्गप्रवृत्तस्य साधुत्वमितरस्य चासाधुत्वं प्रदर्श्याधुना च सामान्येन कल्याणपापवतोः सद्भावं प्रतिषेधनिषेध द्वारेणाह। ( णत्थिकल्लाणपावेवाइत्यादि ) यथेष्टार्थफलसंप्राप्तिः कल्याणं तन्न विद्यते सर्वाऽशुचितया निरात्मकत्वात् सर्वपदार्थानां बौद्धानिप्रायेण तथा तदनावे कल्याणवांश्च न कश्चिद्विद्यते तथात्मा नूतवाद्यनिप्रायेण पुरुषएवेदं सर्वमितिकृत्वा पापं पापवान्वा न कश्चिद्विद्यते तदेवमुनयोरप्यनावः। तथा चोक्तं। "विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि

हस्तिनि ॥ शुनि चैव श्वपाके च पंमिताः समदर्शिन"इत्येवमेव कल्याणपापकाभावरूपां संज्ञां नो निवेशयेदपि त्वस्ति कल्याणं कल्याणवांश्च विद्यते तद्विपर्यस्तं पापं तद्वांश्च विद्यते इत्येवं संज्ञां निवेशयेत्। तथाहि। नैकांतेन कल्याणाभावोयोबौद्धैरभिहितः सर्वपदार्थानामशुचित्वासंभवात्सर्वोऽशुचित्वेच बुद्धस्याप्यशुचित्वप्राप्तेर्नापि निरात्मनः स्वद्रव्य क्षेत्र कालभावापेक्षया सर्वपदार्थानां विद्यमानत्वात्परद्रव्यादिभिस्तु न विद्यंते सदसदात्मकत्वाद्वस्तुनः तडुक्तं स्वपरसत्ताव्युदासोपादानोत्पाद्यं हि वस्तुनोवस्तुत्वमिति । तथात्मा चेतनावानावात्पापाभावोपि नास्त्यचेतनावेहि सुखी डुःखी सरोगोनीरोगोसुरूपः कुरूपोडुर्भगः सुभगोऽर्थवान् दरिद्रस्तथायमंतिकोऽयं तु दवीयान् इत्येवमादिकोजगद्वैचित्र्यभावोऽध्यक्षसिद्धोपि न स्यात्।यच्च समदर्शित्वमुच्यते ब्राह्मणचांमालादिषु तदपि समानपीडोत्पादनतो द्रष्टव्यं। न पुनः कर्मोपादितवैचित्र्यभावोपि तेषां ब्राह्मणचांमालादीनामस्तीति। तदेवं कथंचित्कल्याणमस्ति तद्विपर्यस्तं तु पापकमिति। नचैकांतेन कल्याणमेव यतः केवलिनां प्रक्षीणघनघातिकर्मचतुष्टयानां सातासातोदयसद्भावात्तथा नारकाणामपि पंचेंद्रियत्वविशिष्टज्ञानादिसद्भावान्नैकांतेन तेऽपि पापवंतइति तस्मात्कथंचित्कल्याणं कथंचित्पापमिति स्थितं ॥ २८ ॥

कल्लाणे पावए वावि,ववहारो ण विज्जइ॥जं वेरं तं न जाणंति, समणा वालपंमिया ॥२९॥ असेसं अरकयं वावि, सवडुरकेति वा पुणो ॥ वज्झा पाणा न वज्झंति, इति वायं न नीसरे ॥ ३० ॥ दीसंति समियाचारा, भिरकुणा साहुजीविणो ॥ एए मिछोवजीवंति, इति दिठिं न धारए ॥ ३१ ॥

अर्थ—हवे अनेकांत मार्ग देखाडीनें, एकांत मार्गनें, दूषवेछे. ए पुरुष एकांतें कल्याणवंतज छे, अथवा ए पुरुष एकांतें पापवंतज छे, एवो व्यवहार नथी, कारणके, आ जगत् मांहें एकांत कांहीज नथी. ते माटें जे पुरुष पुण्यवंत देखातो होय,परंतु ते अंत्यावस्थामां परिणामविशेषें डुर्गतियें जाय. अथवा जे पापी पुरुष देखातो होय, ते परिणामविशेषें सद्गतिगामी थाय. ए कारण माटें एकांत न बोले (जेवेरंतंनजाणंति के०) तथा जे वैर, ते कर्मनुं कारणने एम न जाणे,ते कोण न जाणे ? तोके श्रमण, बाल, एटले मूर्ख,अनें पंमित एटले पंमितपणाना अभिमानी होय ते न जाणे. ते शायकी न जाणे ? तोके जे कारणमाटें ते बाल, मूर्ख, परमार्थभूत, अहिंसालक्षण जे धर्म, तेनो तेनें आश्रय नथी ते कारणें ते निरतो वैरनुं कारण जाणे नहीं. इत्यर्थः ॥ २९ ॥ हवे

अन्य वचन आश्रि संयम कहेछे. (असेसंअरकपंवावि के०) आ जगत् मांहें समस्त वस्तु जे घटपटादिकछे ते एकांतें नित्य,शाश्वतछे. एवुं वचन न बोले, (सव्वडुक्वेतिवापुणो के०) तथा वली सर्व जगत् दुःखात्मकज छे, एवुं वचन पण न बोले,जे कारण माटें आ जगत् मांहें एकेक जीवनें तो महा सुखछे, एम बोलायछे यतः “ तणसंथारनिसस्रो, विमुणि वरो नहरागमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टिवि” ॥ १ ॥ इति वचनात् । माटें सर्व जगत् दुःखीजछे, एवुं वचन पण न बोले, ( वज्झापाणाअवज्झंति के० ) तथा ए चोर छे, ए परदारानो सेवनारछे, माटें ए वध करवा योग्य छे एवुं वचन न बोले, अथवा ए अमुक पुरुष अवध्य एटले वध करवा योग्य नथी ( इतिवायंननीसरे के० ) एवुं वचन पण न बोले, कारणके, एम बोलतां तेना कर्मनी अनुमोदना लागे. ए रीतें सिंह, व्याघ्र, मार्जारादिक हिंसक जीव देखीनें, चारित्रिउं मध्य स्थ पणुं अवलंबन करे. इत्यर्थः ॥ ३० ॥ हवे वली बीजो, वचननो प्रकार, मनसुधी आश्रि देखाडियें छैयें. ( दीसंतिसमयाचारा के० ) आ जगत् मांहें कोइ एक चारि त्रिया एवा देखायछे. के, समयाचारा एटले सिद्धांतोक्त आचारनें विषे प्रवर्त्तमा न, तथा ( निकुणासाहुजीविणो के० ) निकुणा एटले दोषरहित एवा आहा रना गवेषण हार, तथा साधुजीवि एटले पोताना आचार पालवा सारु जीवे छे, तथा क्षांत, जितेंद्रिय, जितक्रोध, दृढव्रतवान्, धुसर प्रमाण दृष्टियें मार्गना शोधनार, प्रा सुक उदकना पान करनार, मौनी,छजीवनिकायना रक्षण करनार, किं बहुना. सराग छे, तो पण वीतरागनी पेठे रहेछे, एवा साधु देखीनें (एएमिछोवजीवंति के०) ए मिथ्यात्वो पजीवि बाह्य वृत्तियें करी लोकोनें वंचेछे (इतिदिहिंनधारए के०) एवी दृष्टि धरे नहीं, एतावता एवो नाव मनमांहें चिंतवे नहीं, वचनथकी कहे नहीं, किं बहुना. स्वतीर्थि क परतीर्थिकनें एवुं वचन कहे नहीं ॥ ३१ ॥

---

॥ दीपिका-( कल्लाणेपावेति ) सर्वथाऽयंकल्याणवानयं सर्वथा पापवान् एवमेकांते व्यवहारो न विद्यते । एकांतपक्षाश्रयणेन यद्वैरं कर्मबंधस्तत् श्रमणाः शाक्यादयोबालाः पंमितमानिनः शुष्कतर्कदर्पोन्मत्तान जानंति ॥ ३० ॥ ( असेसमिति ) अशेषं सर्वं व स्तु सांख्यानिप्रायेणाक्षतं नित्यं इति न ब्रूयात् । अपिशब्दादनित्यमपि न वदेत् । तथा सर्वं जगदुःखात्मकमित्यपि न वदेत् चारित्रादिपरिणतेः सुखस्यापि दर्शनात् । यडुक्तं । “ तणसंथारनिसस्रो, विमुणिवरोनहरागमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टी वि” ॥ १ ॥ चोरपारदारिकादयोवध्याअवध्यावा इति न वदेत्। तथा चोक्तं । “ मार्जार व्याघ्रसिंहादीन् सत्वव्यापादनोद्यतान्॥ दृष्ट्वा स्वार्थपरः साधुर्माध्यस्थ्यमवलंबत”इति॥१॥

एवमन्योपि वाक्संयमोज्ञेयः । यथाऽसौ कुतीर्थिकोबालः किमपि न वेत्ति इत्यादिकां पर स्याप्रीतिकारिणीं भाषां न विसृजेत् ॥ यडुक्तं। "अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्जवाप रो ॥ सव्वसो तं ण भासिज्जा, भासं अहियगामिणीं" इति ॥३१॥ (दीसंतित्ति) दृश्यंते स मिताचाराः शास्त्रोक्ताचारपराभिक्षवोभिक्षामात्रवृत्तयः साधुना विधिना जीवंतीति साधु जीविनः। तथाहि । क्षांतादांताजितेंद्रियाजितकषायास्तायिनस्तानेवंभूतान् मत्वापि एते मिथ्योपजीविनइति दृष्टिं न धारयेत् नैवमभिप्रायं कुर्यात् नाप्येवं वदेत् यथा मिथ्योप चारप्रवृत्तमायाविनएते इति । छद्मस्थेन हि एवंभूतनिश्चयस्य कर्तुमशक्यत्वादिति भावः। तेच स्वयूथ्यावा भवेयुस्तीर्थांतरीयावा उभावपि न वक्तव्यौ साधुना । यडुक्तं ।"यावत्प रगुणपरदो,षकीर्तने व्याप्टतं मनोभवति । तावद्वरं विशुद्धे,ध्याने व्यग्रं मनः कर्तुं॥१॥३२॥

---

॥ टीका–तदेवं कल्याणपापयोरनेकांतरूपत्वं प्रसाध्यैकांतं दूषयितुमाह ( कल्लाणेपा वएइत्यादि) कल्यं सुखमारोग्यं शोभनत्वं वा तदणतीति कल्याणं तदस्यास्तीति कल्याणो मत्वर्थी याच्प्रत्ययांतोऽर्शआदिभ्योजित्यनेन । कल्याणवानिति यावत् । पापकशब्दोपि मत्व र्थी याच्प्रत्ययांतोद्रष्टव्यः । तदेवं सर्वथा कल्याणवानेवायं तथा पापवानेवायमित्येवंभूतो व्यवहारोन विद्यते तदेकांतभूतस्यार्थस्यैवाभावात्तदभावस्यच सर्ववस्तूनामनेकांताश्रयणेन प्राक्प्रसाधितत्वादिति । एतच्च व्यवहाराभावाश्रयणं सर्वत्र प्रागपि योजनीयं । तद्यथा । सर्वत्र वीर्यमस्ति नास्तिवा सर्वत्र वीर्यमित्येवंभूतएकांतिकोव्यवहारोन विद्यते। तथा नास्ति लोकोऽलोकोवा तथा संति जीवाअजीवाइति वेत्येवंभूतोव्यवहारोन विद्यतइति सर्वत्र संबंधनीयं । तथा वैरं वज्रं तद्वत्कर्म वैरं विरोधोवा वैरं तद्येन परोपतापादिनैकांतपक्षस माश्रयणेन वा भवति।तत्ते श्रमणास्तीर्थिकाबालाइव बालारागद्वेषकलिताः पंमिताः पंमि तानिमानिनः शुष्कतर्कदर्पाध्मातान जानंति परमार्थभूतस्याहिंसालक्षणस्य धर्मस्याने कांतपक्षस्यवा नाश्रयणादिति । यदिवा यद्वैरं तत्ते श्रमणाबालाः पंमितावान जानंतीत्ये वं वाचं न निसृजेदित्युत्तरेण संबंधः । किमिति न निसृजेयतस्ते किंचिज्ज्ञानंत्येवापिच ते षां तन्निमित्तकोपोत्पत्तेः । यच्चैवंभूतं वचस्तन्न वाच्यं । यतउक्तं। "अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्जवा परो ॥ सव्वसो तंण भासेज्जा भासं अहियगामिणि"मित्यादि ॥ २९ ॥ अपरमपि वाक्संयममधिकृत्याह । ( असेसमित्यादि ) अशेषं कृत्स्नं तत्सांख्याभिप्राये ण कृतं नित्यमित्येवं न ब्रूयात् । प्रत्यर्थं प्रतिसमयं चान्यथान्यथा भावदर्शनात्तएवा यमित्येवंभूतस्यैकत्वसाधकस्य प्रत्यभिज्ञानस्य लूनं पुनर्जातेषु केशनखादिष्वपि प्रदर्श नात्तयापि शब्दादेकांतेन क्षणिकमित्येवमपि वाचं न निसृजेत्सर्वथा क्षणिकत्वे पूर्वस्य सर्वथा विनष्टत्वाडुत्तरस्य निर्हेतुकउत्पादः स्यात्तथाच सति नित्यं सत्वमसत्वंवा दे

तोरन्यानपेक्षणादिति । तथा सर्वं जगद्दुःखात्मकमित्येवमपि न ब्रूयात्सुखात्मकस्यापि सम्यग्दर्शनादिभावेन दर्शनात् ।तथा चोक्तं । "तणसंथारनिसस्रो, विमुणिवरो नट्टरा गमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टीवि" ॥१॥ तथा वध्याश्चौरपारदारिका दयोऽवध्यावा तत्कर्मानुमतिप्रसंगादित्येवंभूतां वाचं स्वानुष्ठानपरायणः साधुः परव्यापा रनिरपेक्षेन विसृजेत् । तथाहि । सिंहव्याघ्रमार्जारादीन्परसत्वव्यापादनपरायणान् दृष्ट्वा माध्यस्थ्यमवलंबयेत् । तथा चोक्तं । मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यादीनि सत्वगुणाधिक क्लिश्यमानविनयेष्विति । एवमन्योपि वाक्संयमोऽष्टव्यः । तद्यथा । अमी गवादयोवाह्या न वाह्यास्तथामी वृक्षादयश्छेद्यान छेद्यावेत्यादिकं वचोन वाच्यं साधुनेति ॥३०॥ अयम परोवाक्संयमप्रकारोंऽतःकरणशुद्धिसमाश्रितः प्रदर्श्यते । (दीसंतीत्यादि) दृश्यंते समुप लभ्यंते स्वशास्त्रोक्तेन विधिना निभृतः संयतश्चात्मा येषां ते निभृतात्मानः । क्वचित्पाठः (समियाचारंत्ति) सम्यक् स्वशास्त्रविहितानुष्ठानादविपरीतश्चाचारोऽनुष्ठानं येषां ते स म्यगाचाराः सम्यग्वा इतोव्यवस्थितश्चाचारोयेषां ते समिताचाराः । के ते ? । भिक्षण शीलाभिक्षवोभिक्षामात्रवृत्तयः । तथा साधुना विधिना जीवितुं शीलं येषां ते साधु जीविनः । तथाहि । ते न कस्यचिडपरोधविधानेन जीवंति तथा क्षांतादांताजितक्रोधाः सत्यसंधाहृढव्रतायुगांतरमात्रदृष्टयः परिपूतोदकपायिनोमौनिनस्सदा तायिनोविविक्ते कांतध्यानाध्यासिनोकौकुच्यास्तानेवंभूतानवधार्यापि सरागाअपि वीतरागाइव चेष्टंते इति मत्वैते मिथ्यात्वोपजीविनइत्येवं दृष्टिं न धारयेन्नैवंभूतमध्यवसायं कुर्यान्नाप्येवं भूतां वा चं निसृजेद्यथैते मिथ्योपचारप्रवृत्तामायाविनइति । छद्मस्थेन ह्यर्वाग्दर्शिनैवंभूतस्य निश्चय स्य कर्तुमशक्यत्वादित्यभिप्रायः । तेच स्वयूथ्यावा भवेयुस्तीर्थांतरीयावा तावुभावपि न वक्तव्यौ साधुना । यतउक्तं । "यावत्परगुणपरदोषकीर्तने व्यापृतं मनोभवति ॥ ताव द्वरं विशुद्धे, ध्याने व्यग्रं मनः कर्तु"मित्यादि ॥ ३१ ॥

दक्खिणाए पडिलंभो, अत्थिवा णत्थिवा पुणो ॥ ण वियागरेज्ज मेहावी,संतिमग्गं च व्वुहए ॥३२॥ इच्चेएहिं ठाणेहिं, जिणदिठेहिं संजए ॥ धारयंतेउ अप्पाणं,आमोक्खाए परिवएज्जा सित्तिवेमि॥३३॥ इति वीयसुयखंधस्स अणायारणाम पंचमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ—वली आचार देखाडेछे. (दक्खिणा के०) दान तेनो प्रतिलंभ एटले गृहस्थें दान देवुं, लेनारें दान लेवुं. एवो व्यापार प्रवर्त्तमान देखी, अस्ति, अथवा नास्ति, एटले गुण, अथवा दूषण' कांइ पण कहे नहीं. (पुणो के०) असंयमनी अनुमोदन अनें दूषण केतां

थकां वृत्तिछेद थाय. ए कारण माटें, (मेहावी के०) जे पंमित होय, ते अस्ति, नास्ति, न कहे, तेवारें साधु केम बोले ? ते कहेछे. (संतिमग्गंचवूहए के०) शांतिमार्ग एटले मोक्षमार्ग ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूपनी वृध्धि थाय; एवुं वचन बोले. एटले जे वचन बोलवा थकी असंयम सावद्य न थाय, तेवुं वचन बोले. इत्यर्थः॥३१॥ हवे अध्ययन परिसमाप्तिनें अर्थं कहेछे. (इच्चेएहिंगणेहिं के०) एम ए पूर्वोक्तस्थानकें (जिणदिठेहिंसंजए के०) जिन एटले वीतरागभाषित वचनें युक्त, एवा संयत एटले जे चारित्रिया (धारयंतेउ अप्पाणं के०) ते पोताना आत्मानें धारे, क्यां लगें धारे? तोके ( आमोरकाएपरियएज्जासि के०) ज्यां सुधी मोक्ष प्राप्ति थाय,त्यां सुधी धारे. हवे एवो उपदेश शिष्यनी प्रत्यें गुरु कहे. के,अहो शिष्य ! तुं आवा आचारें प्रवर्त्तजे.त्तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ ३२ ॥ ए बीजा श्रुतस्कंधनें विषे अनाचार नामें पांचमाअध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्तथयो.

---

॥ दीपिका-(दक्खिणाएत्ति) दानं दक्षिणा तस्याः प्रतिलंभः प्राप्तिर्दानलाभः सोस्माद्गृहस्थादेः सकाशादस्तिवा नास्तिवा इति न व्यागृणीयान्न वदेन्मेधावी किंतु ? शांतिमार्गं मोक्षमार्गं वृंहयेद्वृध्धिं प्रापयेत् यथा मोक्षमार्गवृद्धिर्भवति तथा वदेदित्यर्थः ॥ ३३ ॥ इत्येतैरनेकांतविधायिभिः स्थानैर्जिनोद्दिष्टैः संयतआत्मानं धारयन् आत्मानं प्रवर्तयन् आमोक्षाय कर्मक्षयार्थं परिव्रजेत्संयमे प्रवर्त्तेत ॥इति परिसमाप्तौ। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥३४ इति सूत्रकृतांगदीपिकायांद्वितीयश्रुतस्कंधेऽनाचारश्रुताख्यं पंचमाध्ययनं समाप्तम् ॥

---

॥ टीका-किंचान्यत् । ( दक्खिणाएइत्यादि ) दानं दक्षिणा तस्याः प्रतिलंभः प्राप्तिः स दानलाभोऽस्माद्गृहस्थादेः सकाशादस्ति नास्ति वेत्येवं न व्यागृणीयान्मेधावी मर्यादाव्यवस्थितः।यदिवा स्वयूथस्य तीर्थांतरीयस्य वा दानं ग्रहणंवा प्रतिलाभः सएकांते नास्ति संभवति नास्ति वेत्येवं न ब्रूयादेकांतेन तद्दानग्रहणनिषेधे दोषोत्पत्तिसंभवात् । तथाहि। तद्दाननिषेधेंऽतरायसंभवस्तद्वैचित्र्यंच तद्दानानुमतावप्यधिकरणोद्भवइत्यतोऽस्ति दानं न वेत्येवमेकांतेन न ब्रूयात् । कथं तर्हि ब्रूयादिति ? दर्शयति ।शांतिर्मोक्षस्तस्य मार्गः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्तमुपवृंहयेद्वर्धयेत्। यथा मोक्षमार्गाभिवृद्धिर्भवति तथा ब्रूयादित्यर्थः । एतदुक्तं भवति । पृष्टः केनचिद्विधिप्रतिषेधमंतरेण देयप्रतिग्राहकविषयं निरवद्यमेवं ब्रूयादित्येवमादिकमन्यदपि ॥ ३२ ॥ सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह ( इच्चेएहिमित्यादि ) इत्येतैरेकांतनिषेधद्वारेणानेकांतविधायिभिः स्थानैर्वाक्संयमप्रधानैः समस्ताध्ययनोक्तैरागद्वेषरहितैर्जिनैर्दृष्टैरुपलब्धैर्न स्वमतिविकल्पोत्थापितैः संयतः सन् संयमवानात्मानं धारयन्निर्विविधधर्मदेशनावसरे वाच्यं । तथा चोक्तं । "सावज्जणवज्जा

णं वयणाणं जो नयाणइविसेसमित्यादिस्यानैरात्मानं वर्तयान्नामोक्षायाशेपकर्मक्षया र्थं मोक्षं यावत्परिसमंतात्संयमानुष्ठाने व्रजेञ्छेस्त्वमिति विधेयस्योपदेशः। इति परिस माप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत्। नयाअनिहिताअनिधास्यमानलक्षणाश्चेति ॥ ३३ ॥ समाप्तमनाचारश्रुताख्यं पंचममध्ययनमिति ॥

॥ हवे छठुं अध्ययन प्रारंनियें छैयें ॥

पांचमा अध्ययननें विषे आचारनी आचरणा करवी, अनें अनाचारनी परिहरणा एटले अनाचारनो त्याग करवो. एम कह्युं. हवे ते प्रमाणें जे महानाग्यवान् पुरुषथी करायछे, ते आर्डकुमारना दृष्टांतनी पेठें देखाडेछे. जेम आर्डकुमारनो गोशालक साथें वाद थयो, ते रीतेंज आ छहा अध्ययनमां कहेछे. प्रत्येक बुद्ध आर्डकुमार, एकदा प्रस्तावें श्री महावीरदेवनी पासें आवतां अंतरालें गोशालकें बोलाव्यो. ते कथा कहेछे.–

पुराकडं अद्द इमं सुणेह, मेगंतयारी समणे पुरासी॥ से निक्कु
णो उवणेत्ता अणेगे, आइस्कतिएिंह पुढोविछिरेणं॥ १ ॥ साजी
वियापठविता थिरेणं, सन्नागउ गणउ निक्कुमस्रे ॥ आइस्क
माणो बहुजन्नमछं, नसंधयाती अवरेण पुव्वं ॥ २॥

अर्थ–हवे आर्डकुमारनें गोशालक बोलावीने कहेछे के, ( अद्दइमंसुणेह के० ) नो आर्डकुमार ! जे हुं कहुंछुं ते तुं सांनल. ( पुराकडं के० ) परापूर्वे जे जे आ ताहारे तीर्थकरें कह्युंछे, ते हुं कहुंछुं ते सांनल. ते शुं कह्युंछे? तोके, (मेगंतयारीसमणेपुरासी के०) ए श्रमण नगवंत महावीर पूर्वें प्रथम एकांतचारी विहार करता हता. एटले एकांतें लोक रहित एवा प्रदेशें विचरता हता, अनें अनेक प्रकारनां उग्रतप करता हता, ते हमणां उग्रतप आचरवा थकी नंग थया थका मुजनें छोडीनें एटले महारो परित्याग करीनें, ( सेनिक्कुणोउवणेत्ताअणेगे के० ) ते साधु शिष्यो एकठा करीनें अनेक देव, देवी, मनुष्य, अनें स्त्रीना वृंद मांहें बेठा थका धर्म कहेछे. ( आइस्कतिएिंहपुढोविछिरेणं के० ) तथा घणा शिष्य एकठा करी, तमारा जेवा मुग्ध जननें विप्रतारवा माटें पृथक् पृथक् जुदा जुदा विस्तारें करी धर्म कहेछे ॥ १ ॥ वली गोशालक कहेछे के, (साजीवियापठवित्ताथिरेणं के० ) अहो आर्डकुमार! ताहारे गुरुयें घणा लोक मांहें बेशी धर्म देशनानें मिशें आजीविका मांमीछे, केमके, एकाकी विचरतां लोक परानव करेछे, एवं

जाणीनें, पंक्ति निमित्तें, घणो महोटो परिवार कस्योछे, वली ए तमारो गुरु केवोछे, तो के, अस्थिर एटले प्रथम माहारी साथें एकलो अंत प्रांत आहारी शून्य एवा देवकुला दिक स्थानकोनें विषे रहेतो हतो, अनें तेवो उग्रआचार वेलूना कवलनी पेरें निःस्वाद जाव जीवसुधी करवानें अशक्तछे, ते कारणे महारो समागम मुकीनें घणा शिष्योनें वि प्रतारी एवें घटाटोपें विचरेछे, ते कारणे अस्थिरछे. ते अस्थिर पणुं देखाडेछे. (सनाग उं के०) सना जे देव अनें मनुष्यनी परपदा मांहे बेगो (गणउनिरकुमझे के०) अने क निक्षुना समुदाय मांहे रहेतो थको (आइरकमाणोवहुजन्नमछं के०) घणालोकनें हितनो कारक, एवो अर्थ कहेतो देखायछे. ते कारणे (नसंधयातीअवरिणपुवं के०) मांहोमांहे आचार तेनो संधि मलतो नथी, एटले प्रथमना आचारमां अनें हमणाना आचारमां मांहोमांहे विरोध देखायछे, ते ए प्रकारे के, सिंहासन,अशोक वृक्ष,नामंमल, छत्र, चामरादिक मंमाण जो मोक्षनुं अंग होय तो, प्रथम जे उग्रक्रिया एणे कीधी तेतो निःकेवल क्लेश नणीज कीधी, अथवा जो ते क्रिया कर्म निर्क्करवानुं कारण हती, तो हमणानी क्रिया पण बीजानें विप्रतारवानें अर्थे,पाखंमरूप जाणीयें छैयें. वली प्रथमतो मौनपणुं रुडुं जाणीनें अंगीकार कर्युं हतुं, त्यारें हमणा धर्मदेशना आपवानुं शुं कामछे? जो धर्मदेशना देवी, ए रुडुंछे तो पहेलां मौनपणुं आदर्युं हतुं ते अत्यंत अयोग्यछे॥१॥

---

दीपिका--अथ षष्ठाध्ययनमारन्यते । तच्चार्द्रककुमारकथासंवद्धत्वादार्द्रकीयानिधानं । तत्कथाचेयं । मगधदेशे वसंतपुरे सामायिकोनाम कुटुंबी वसति । स वैराग्यतः श्रीधर्मघो षाचार्यपार्श्वे पत्नीयुतः प्रव्रज्यां गृहीत्वा साधुनिः सह विहरति । सोऽन्यदा स्वपत्नीं साध्वीं निक्षामटंतीं दृष्ट्वा रागी जातः । स्वानिप्रायः परस्य साधोस्तेन निवेदितः । तेनापि तत्प्रवर्ति न्यास्तयापि तस्याः साध्व्याः । ततः स्वपतिमनुरक्तं ज्ञात्वा साध्व्या नक्तप्रत्याख्यानपूर्वमा त्मोद्बंधनमकारि । मृत्वा स्वर्गमगात् । तदाकर्ण्य तत्पतिः साधुरपि गुरुमनापृछ्य नक्तं प्र त्याख्याय दिवं गतः । ततश्च्युत्वा आर्द्रकपुरे नगरे आर्द्रकसुतआर्द्रकानिधोजातः । साऽपि तत्पत्नी स्वर्गच्युता वसंतपुरे श्रेष्ठिपुत्री जाता । आर्द्रकोपि युवा परमसुनगः संपन्नः। अन्यदार्द्रकपित्रा जनहस्ते राजगृहे श्रेणिकराज्ञः प्रानृत प्रेषितं । आर्द्रककुमारेण श्रेणि कसुतायाऽजयकुमाराय स्नेहकरणार्थं प्रानृतं तस्यैव हस्तेन प्रेषितं । जनोराजगृहे गत्वा श्रेणिकराज्ञः प्रानृतानि निवेदितवान् संमानितश्च राज्ञा । आर्द्रकप्रहितानि प्रानृतानि चाऽ नयकुमाराय दत्तवान् । कथितानि स्नेहोत्पादकानि वचनानि । अनयेनाचिंति । नूनम सौ नव्यः स्यादासन्नसिद्धिकोयोमया सार्द्धं प्रीतिमिछतीति । ततोऽनयेन प्रथमजिनप्रतिमा बहुप्रानृतयुतार्द्रकुमाराय प्रहिता । इदं प्रानृतमेकांते निरूपणीयमित्युक्तं जनस्य । सोऽप्या र्द्रकपुरं गत्वा यथोक्तं कथयित्वा प्रानृतमार्पयत् । प्रतिमां निरूपयतः कुमारस्य जातिस्म

रणमुत्पन्नं धर्मे प्रतिबुद्धं मनः अनयं स्मरन् वैराग्यात्कामभोगेष्वनासक्तस्तिष्ठति । पित्रा ज्ञातं मा क्वचिदसौ यायादिति पंचशतसुनटैर्नित्यं रक्ष्यते । आर्द्रककुमारोप्यश्ववाहनिकायां निर्गतः प्रधानाश्वेन दूरं गत्वा पलायितः । ततः प्रव्रज्यां गृह्णन् देवतया निषिद्धोपि प्रव्रज्यान्यतरप्रतिमाप्रतिपन्नोवसंतपुरे कायोत्सर्गस्थोदेवलोकच्युतया तया श्रेष्ठिपुत्र्याऽन्यबालिकाभिः सह क्रीडंत्याऽयं मम भर्त्तेत्युक्ते सन्निहितदेवतया सार्द्धत्रयोदशकोटिमिता सुवर्णवृष्टिः कृता । राजा तत्सुवर्णं गृह्णन् देवतया वारितः । इदं स्वर्णमस्याबालिकायाएवेत्युक्तं च ततस्तत्पित्रा गृहीतं स्वर्णं । अनुकूलोपसर्गं मत्वार्द्रमुनिरन्यत्र गतः। पुत्रीवरणार्थं वराः समायांति पुत्र्या कथितं पितुः एते वराः स्वस्थानं यांतु अहं तस्मै दत्ता त्वया यत्संबंधि हिरण्यं भवता जगृहे। पित्रोक्तं त्वं तं जानीषे कथं ? तयोक्तं । तच्चरणगताभिज्ञानदर्शनाज्जानामि ।ततः सा दानशालायां स्थिता भिक्षार्थिनामाहारं दत्ते। ततो द्वादशवर्षैर्गतैः कदाचिच्चासौ भवितव्यवशात्तत्रैव विहरन् समागतः पादचिन्हदर्शनाडुपलक्षितश्च तया।ततः सा बाला सपरिवारा तत्पृष्ठतोगता। आर्द्रककुमारोपि देवतावचनं स्मरन् कर्मोदयात्प्रतिभग्नस्तया सार्द्धं भुनक्ति भोगान् पुत्रोजातः। आर्द्रकेणोक्तं सांप्रतं ते पुत्रोद्वितीयोभूनिर्वाहकः । अहं स्वकार्यमाचरामि तया सुतज्ञापनार्थं कार्पासकर्त्तनमारब्धं । पृष्टं च पुत्रेण किंमातरिदमारब्धं भवत्या? सा प्राह।वत्स ! तव पिता प्रव्रज्यां ग्रहीतुकामः त्वं तु शिशुरद्यापि द्रव्यार्जनेऽसमर्थस्ततोहमनघा निंद्यवृत्त्याऽनया जीवनमिच्छामीति । तेन बालेन तत्कालोत्पन्नबुद्ध्या तत्कर्त्तितसूत्रेण क्वायं मया बद्धोयास्यतीति मन्मनभाषिणोपविष्टएव पिता वेष्टितः । पित्रा चिंतितं यावंतोमी वेष्टनसूत्रतंतवस्तावंति वर्षाणि मया स्थातव्यं। तंतवश्च द्वादश। ततोसौ द्वादशवर्षाणि गृहे तस्थौ । ततः प्रव्रजितः सूत्रार्थनिपुणएकाकी विहरन् राजगृहं प्रतिप्रस्थितस्तदंतराले तद्रक्षणार्थं यानि प्राक् पित्रा पंच राजपुत्रशतानि मुक्तानि तानि कुमारे नष्टे राजभयात्तत्राटव्यां चौर्येण जीवंति। तैश्चार्द्रकमुनिर्दृष्टउपलक्षितश्च। तेन पृष्टास्ते किमिदमनार्यं कर्मारब्धं भवद्भिः? तैश्च राजभयादि कथितं। मुनिवचनात्संबुद्धास्ते प्रव्रजिताः । तथा राजगृहनगरप्रवेशे गोशालकोहस्तितापसाब्राह्मणाश्च वादे पराजिताः । तथार्द्रकुमारदर्शनादेव हस्ती बंधनाद्विमुक्तः। तेच हस्तितापसादयश्चार्द्रमुनिधर्मकथाक्षिप्ताः श्री वीरपार्श्वे निष्क्रांताः ।राज्ञा ज्ञातस्वरूपेण पृष्टं ।भगवन्! कथं त्वद्दर्शनतः करी बंधनान्मुक्तइत्युक्ते मुनिराह। "न दुक्करं वारणपासमोयणं गयस्स मत्तस्स वणंमि रायं॥ एयंतु मज्ज पडिहाइ दुक्करं बद्धस्स तक्कावलिएण तंतुणा" ॥१॥ दुष्करमेतन्नरपाशैर्बद्धस्य गजस्य मत्तस्य विमोचनं वने राजन्! एतत्तु मे प्रतिभाति दुष्करं यत्तर्कुकावलितेन तंतुना बद्धस्य मम प्रतिमोचनमिति।स्नेहतंतवोहि जंतूनां दुर्भेदाभवंतीति भावः ॥ आर्द्रकमुनिकथा समाप्ता ॥

सांप्रतं सूत्रं व्याख्यायते तच्चेदं।(पुराकडमिति)यथा गोशालकेन सार्द्धं वादोनूदार्द्रककुमारस्य तथास्मिन्नध्ययने कथ्यते तं चार्द्रमुनिं प्रत्येकबुद्धं श्रीवीरांतिकमागच्छंतं गोशालोब्रवीद्यथा. नोआर्द्रक! यदहं वदामि तच्छृणु। पुरा पूर्वं नवत्तीर्थंकृता यत्कृतं तद्दर्शयति।एकांते जनरहितस्थाने चरतीत्येकांतचारी श्रमणः पुरासीत्तपश्चरणोद्यतः।सांप्रतं तु तपश्चारित्रनिर्जर्त्सितो मां विहाय देवादिमध्यगतोधर्ममाख्याति। तथा बहून् शिष्यान् उपनीय बहुशिष्यपरिवारं कृत्वा, नवाहशमुग्धानां इदानीं पृथग्विस्तारेण धर्ममाख्याति॥१॥यां नवद्भुरुणा देशना क्रियते सा जीविका प्रकर्षेण स्थापिता एकाकी विहरन् लोकैः परिनूयतइति। यदुक्तं। "छत्रं छात्रं पात्रं,वस्त्रं यष्टिं च चर्चयति निकुः॥वेषेण परिकरेण च,कियतापि विना न निक्षापि"॥१॥इतिकृत्वा तेन परिवारः कृतः। तदनेन दंनप्रधानेन जीविकार्थमिदमारब्धं। किंनूतेन अस्थिरेण पूर्वं मया सार्द्धमेकाकी अंतप्रांताहारेण शून्यवनादौ वृत्तिं कृतवान्। नच तादृशं डुष्करमनुष्ठानं यावज्जीवं कर्तुमलं। ततो मां त्यक्त्वा बहून् शिष्यान् विधायाम्बरेण चरति ततोऽस्थिरश्चपलः पूर्वाचारत्यागात् तथा सन्नागतोऽयं गणशोऽनेकशोनिक्षुमध्यस्थितश्चाचक्षाणोबहुजनेन्योहितं बहुजन्यमर्थं कथयन् विहरति एतच्चास्यानुष्ठानं पूर्वापरेण न संधत्ते। तथाहि। यदि सांप्रतीयं वृत्तं प्राकारत्रयसिंहासनाशोकवृक्षनामंमलचामरादिकं मोक्षांगमनविष्वत्तोया प्राक्तन्येकचर्या क्लेशबहुलानेन कृतेनाक्लेशाय केवलमस्येत्यथ सा कर्मनिर्जरणहेतुकं परमार्थनूता ततः सांप्रतावस्था परप्रतारकत्वादंनकल्पेत्यतः पूर्वोत्तरयोरनुष्ठानयोर्मौनव्रतिकधर्मदेशनारूपयोः परस्परतोविरोधइति। अतएवास्य चरित्रं पूर्वापरेण न संदधाति पूर्वापरविरोधीत्यर्थः॥ २॥

---

॥टीका—उक्तं पंचममध्ययनं।सांप्रतं षष्ठमारन्यते। अस्य चायमनिसंबंधः। इहानंतराध्ययने आचारः प्रतिपादितोऽनाचारपरिहारश्च सच येनाचीर्णः परिहृतश्चासावधुना प्रतिपाद्यते। यदियाऽनंतराध्ययने सरूपमाचारानाचारयोः प्रतिपादितं तच्चाशंक्यानुष्ठानं न नवत्यतस्तदा सेवकोदृष्टांतनूतश्चार्द्रकः प्रतिपाद्यतइत्यथवाऽनाचारफलं ज्ञात्वा सदाचारे प्रयत्नः कार्योयथार्द्रककुमारेण कृतइत्येतद्दर्शनार्थमिदमध्ययनं।अस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराण्युपक्रमादीनि वाच्यानि। तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं।तद्यथा आर्द्रककुमारवक्तव्यता यथा सावद्यकुमारप्रतिमाव्यतिकरात्प्रतिबुद्धस्तयात्र सर्वं प्रतिपाद्यतइति।निक्षेपस्त्रिधा। तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं नाम निष्पन्ने निक्षेपेत्वार्द्रकीयं।तत्रार्द्रपदनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह। "नामं ठवणा अद्दं.दवद्दं चेव होइ नावद्दं॥ एसो खलु अद्दस्सउ निक्खेवो चउविहो होइ" ॥१॥ (नामंठवणाअद्दमित्यादि) नामस्थापनाद्रव्यनावनेदाच्चतुर्धार्द्रकस्य निक्षेपोद्रष्टव्यः। तत्र नामस्थापनेऽनादृत्य द्रव्यार्द्रप्रतिपादनार्थमाह।"उदगद्दं सारद्दं.उविवद्दं खलु तहासि

णेहई ॥ एयं दवई खलु,नावेणं होइ रागइं ” ॥२॥ (उदगदमित्यादि) तत्र द्रव्यार्द्र द्विधा आगमतोनो आगमतश्च।आगमतोज्ञाता तत्र चानुपयुक्तोऽनुपयोगो द्रव्यमितिकृत्वा नो आगमस्तु ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तं यडुदकेन मृत्तिकादिकं द्रव्यमार्द्रीकृतं तडुदकार्द्रं। सारार्द्रंतु यद्बहिः शुष्कार्द्रमप्यंतर्मध्ये सार्द्रमास्ते यथा श्रीपर्णीसौवर्चलादिकं।उविअहंतु यत् स्निग्धत्वगृद्रव्यं मुक्ताफलरक्ताशोकादिकं तदनिधीयते वसयोपलिप्तं वासार्द्रं तथा श्लेष्मार्द्रं चक्रलेपाद्युपलिप्तं स्तंनकुम्न्यादिकं यद्द्रव्यं तत्स्निग्धाकारतया श्लेष्मार्द्रमिनिधीयते। एतत्सर्वमप्युदकार्द्रादिकं द्रव्यार्द्रमेवानिधीयते। खलुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्। नावार्द्रं तु पुनः रागः स्नेहानिष्वंगस्तेनार्द्रं यज्जीवद्रव्यं तद्भावार्द्रमित्यनिधीयते।सांप्रतमार्द्रककुमारमधिकृत्यान्यथा द्रव्यार्द्रं प्रतिपादयितुमाह।“एगनवियबद्धाउ,या अनिमुहउ नामगोएय॥ एते तिन्ना देसा,दवेमि अद्दगेहोंति”॥३॥ (एगनवियइत्यादि) एकेन नवेन योजीवः स्वर्गादेरागत्यार्द्रककुमारत्वेनोत्पत्स्यते तथा ततोप्यासन्नतरोबद्धायुष्कस्तथा ततोप्यासन्नतमोनिमुखनामगोत्रोयोनंतरसमयमेवार्द्रकत्वेन समुत्पत्स्यते।एते त्रयोपि प्रकाराद्रव्यार्द्रके द्रष्टव्याइति। सांप्रतं नावार्द्रकमधिकृत्याह।“अद्दपुरा अद्दसुतो,नामेण अद्द गोय अणगारो॥ तत्तो समुट्ठियमिणं,अज्झयणं अद्दइज्जंति”॥४॥(अद्दपुराइत्यादि) आर्द्रकायुष्कनामगोत्राण्यनुनवन्नावार्द्रो नवति। यद्यपि शृंगवेरादीनामप्यार्द्रकसंज्ञाव्यवहारोस्ति तथापि नेदमध्ययनं तेन्यःसमुत्थितमतोन तैरिहाधिकारः किंत्वार्द्रककुमारानिधानगारात्समुत्थितमतस्तेनैवेहाधिकारइतिकृत्वा तद्वक्तव्यताऽनिधीयते। एतदेव निर्युक्तिकृदाह। (अद्दपुराइत्यादि) अस्याः समासेनायमर्थः। आर्द्रकपुरे नगरे आर्द्रकोनाम राजा तत्सुतोप्यार्द्रकानिधानः कुमारस्तद्वंशजाः किल सर्वेप्यार्द्रकानिधानाएव नवंतीतिकृत्वा सचानगारः संवृत्तस्तस्य च श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिसमवसरणे गोशालकेन सार्द्धं हस्तितापसैश्च वादोनूत्तेनच ते एतदध्ययनार्थोपन्यासेन पराजिताअतइदमनिधीयते। ततस्तस्मादार्द्रकात्समुत्थितमिदमध्ययनमार्द्रकीयमिति गाथासमासार्थः। व्यासार्थं तु स्वतएव निर्युक्तिकृदार्द्रकपूर्वनवोपन्यासेनोत्तरत्र कथयिष्यतीति। ननुच शाश्वतमिदं द्वादशांगमपि गणिपिटकमार्द्रककथानकं तु श्रीवर्द्धमानतीर्थावसरे तत्कथमस्य शाश्वतत्वमित्याशंक्याह।“ कामं डुवालसंगं,जिणवयणं सासयं महानागं। सव्वज्झयणाई तहा,सव्वक्करसन्निवाउय ” ॥५॥ (काममित्यादि) काममित्येतदन्युपगमे इष्टमेवेतदस्माकं।तद्यथा। द्वादशांगमपि जिनवचनं नित्यं शाश्वतं महानागं महानुनावमामर्पौषध्यादिऋद्धिसमन्वितत्वान्न केवलमिदं सर्वाण्यप्यध्ययनान्येवंनूतानि तथा सर्वाक्षरसन्निपाताश्च मेलापकाद्रव्यार्थादेशानित्याएवेति। ननुच मतानुज्ञानामनिग्रहस्थानं नवतऽस्याशंक्याह।“तहवियकोईअहो,अप्पक्कतितम्मि समयंमि॥ पुव्व नणिउ अणुमतो इति इसिनासिए य जहा ” ॥६॥ (तहवियइत्यादि) यद्यपि सर्वमपीदं द्रव्यार्थतः शाश्वतं तथा

पि कोप्यर्थस्तस्मिन्समये तथा क्षेत्रेच कुतश्चिदाईकादेः सकाशादाविर्नावमास्कंदति सते न व्यपदिश्यते । तथा पूर्वमप्ययमावर्थोऽन्यमुद्दिश्योक्तोऽनुमतश्च नवति ऋषिनाषितेपूत्तराध्ययनादिषु यथेति । सांप्रतं विशिष्टतरमध्ययनोत्थानमाह । "अड्डदएणगोसा,लनिरकुवंननवतीति दंडीणं ॥ जह हस्तितावसाणं,कहियं इणमो तहावुछं" ॥७॥ (अड्डदएणेत्यादि) आर्याईकेण समवसरणानिमुखमुच्चलितेन गोशालकनिक्षोस्तथा ब्रह्मव्रतिनां त्रिदंडिनां यथा हस्तितापसानां च कथितमिदमध्ययनार्थं जातं तथा वक्ष्ये सूत्रेणेति । सांप्रतं स पूर्वनवमाईककथानकं गाथानिरेव निर्युक्तिकृदाह । "गामे वसंतपुरये,सामह्तिोधरणिसहितोनिरकंतो ॥ निरकायरियादित्ता,उहासिय नत्तवेहासं" ॥८॥ संवेगसमावन्नो,माईनत्तं च इत्तुदिय लोए ॥ चवकणं अद्दपुरे, अदसुउ अदउ जाउ ॥ए॥ पीतीपदोएहदूउ पुञ्चणमनयस्स पञ्चवे सोउ ॥ तेणावि सम्मद्दिछित्ति होक्त, पडिमारहंमि गया ॥ १० ॥ दठुं संबुद्धो रक्खिउ य, आसाणवाहणपलातो ॥ पवावंतो धरितो, रक्कं न करेति कोअन्नो ॥ ११ ॥ अगणिंतो निरकंतो, विहरइ पडिमाइदारिगाचरिईउ ॥ सुवरणवसुहाराउ, रन्नो कहणं च देवीए ॥ १२ ॥ तं नइ पिता तीसे, पुछणकहणं च वरणदोवारे ॥ जाणाइ पायबिंबं,आगमणं कहणनिग्गमणं ॥ १३ ॥ पडिमागतीसमीवे,सपरीवारानिरकपडिवयणं ॥ नोगमुतापुछणसु,त्तवंधपुन्नेयनिग्गमणं ॥१४॥ रायगिहागमचोरा,रायनया कहणतेसि दिरकाया ॥ गोसालनिरकुवंनी,तिदंमियातावसेहिं सहवादो॥१५॥वादे पराइयत्तो,सबे विय सरणमन्नुवगतातो ॥ अद्दगसहिया सबे, जिणवीरसासिनिरकंता ॥१६॥ (गामेइत्यादिगाथाष्टकं) आसां चार्थः कथानकादवसेयस्तच्चेदं । मगधजनपदे वसंतपुरे ग्रामे तत्र सामायिकोनाम कुटुंबी प्रतिवसति । सच संसारनयोद्विग्नोधर्मघोषाचार्यांतिके धर्मं श्रुत्वा सपत्नीकः प्रव्रजितः सच सदाचारतः संविग्नैः साधुनिः सार्द्धं विहरत्तीतरानिः साध्वीनिः ।सहेति ।कदाचिच्चासावेकस्मिन्नगरे निक्षार्थमटंतीं दृष्ट्वा तामसौ तथाविधकर्मोदयात्पूर्वरतानुस्मरणेन तस्यामध्युपपन्नस्तेन चात्मीयोऽनिप्रायोद्वितीयस्य साधोर्निवेदितस्तेनापि चैतत्प्रवर्तिन्यास्तयापि चानिहितं न मम देशांतरे एकाकिन्या गमनं युज्यते न चासौ तत्राप्यनुबंधं त्यक्ष्यतीत्यतो ममास्मिन्नवसरे नक्तप्रत्याख्यानमेव श्रेयोन पुनर्व्रतविलोपनमित्यतस्तया नक्तप्रत्याख्यानपूर्वकमात्मोद्बंधनमकारि मृता सागाच्च देवलोकं । श्रुत्वा चैनं व्यतिकरमसौ संवेगमुपगतश्चिंतितं च तेन । तथा व्रतनंगनयादिदमनुष्ठितं ममत्वसौ संजातएवेत्यतोहमपि नक्तप्रत्याख्यानं करोमीत्याचार्यस्यानिवेद्यैवासौ मायाप्यच च परमसंवेगापन्नोऽसावपि नक्तं प्रत्याख्याय दिवंगतस्ततोपि च प्रत्यागत्याईपुरे नगरे आईकसुतआईकानिधानोजातः । सापिच देवलोकाच्च्युता वसंतपुरे नगरे श्रेष्ठिकुले दारिका जाता इतरोपिच परमरूपसंपन्नोयौवनस्थः संवृत्तोन्यदासावाईकपित्ता राजगृहन

गरे श्रेणिकस्य राज्ञः स्नेहाविष्करणार्थं परमप्राभृतोपेतं महत्तमं प्रेषयत्याईककुमारेणासौ पृष्टोयथा कस्यैतानि महार्हाण्यत्युग्राणि प्राभृतानि मत्पित्रा प्रेषितानि यास्यंतीत्यसावक थयद्यथार्यदेशे तव पितुः परममित्रश्रेणिकोमहाराजा तस्यैतानीत्याईककुमारेणाप्य नाणि किं तस्यास्ति कश्चियोग्यः पुत्रोस्तीत्याह। यद्येवं मत्प्रहितानि प्राभृतानि नवता त स्य समर्पणीयानीति नणित्वा महार्हाणि प्राभृतानि समर्प्याभिहितं वक्तव्योसौ मद्वच नाद्यथार्द्रककुमारस्त्वयि स्निह्यतीति सच महत्तमोगृहीतोनयप्राभृतोराजगृहमगात्वा च राजद्वारपालनिवेदितोराजकुलं प्रविष्टो दृष्टश्च श्रेणिकः प्रणामपूर्वं निवेदितानि प्राभृतानि कथितं च यथासंदिष्टं। तेनाप्यासनाशनतांबूलादिना यथार्हप्रतिपत्त्या सन्मानितोद्वितीये चान्ह्याईककुमारसत्कानि प्राभृतान्यनयकुमारस्य समर्पितानि कथिता निच तत्प्रीत्युत्पादकानि तत्संदिष्टवचनान्यनयकुमारेणापि पारिणामिक्यबुद्ध्या परिणामि तं नूनमसौ नव्यः समासन्नमुक्तिगमनश्च तेन मया सार्द्धं प्रीतिमिच्छतीति। तदिदमत्र प्रा प्तकालं यदादितीर्थकरप्रतिकरप्रतिमासं दर्शनेन तस्यानुग्रहः क्रियतइतिमत्वा तथैव कृ तं महार्हाणिच प्रेषितानि प्राभृतानीति। उक्तश्च। महत्तमोयथा मत्प्रहितप्राभृतमेतदेकां ते निरूपणीयं तेनापि तथैव प्रतिपन्नं गतश्चासावाईकपुरं समर्पितं च प्राभृतं राज्ञोद्वि तीये चान्ह्याईककुमारस्येति कथितंच यथासंदिष्टं तेनाप्येकांते स्थित्वा निरूपिता प्रतिमा तांच निरूपयतऊहापोहविमर्शनेन समुत्पन्नं जातिस्मरणं चिंतितंच तेन यथा ममान यकुमारेण महानुपकारोऽकारि सद्धर्मप्रतिबोधतइति। ततोसावाईकः संजातजातिस्मरणो चिंतयत्यस्य मम देवलोकनोगैर्यथेप्सितं संपद्यमानैस्तृप्तिर्नानूतस्यामीनिस्तुच्छैर्मानुषैः स्व ल्पकालीनैः कामनोगैस्तृप्तिर्नविष्यतीति कुतस्त्यमित्येतत्परिगणय्य निर्विण्णकामनोगो यथोचितनोगमकुर्वन् राज्ञा संजातनयेन मां कश्चिद्यायारयतः पंचनिः शतैराजपुत्राणां र क्षयितुमारेने। आईककुमारोऽप्यश्ववाहनिकया विनिर्गतः प्रधानाश्वेन प्रपलायितः तत श्च प्रव्रज्यां गृएहन् देवतया सोपसर्गं नवतोद्यापि नणित्वा निवारितोप्यसावाईकोराज्यं तावन्न करोति कोन्योमां विहाय प्रव्रज्यां ग्रहीष्यतीत्यनिसंधाय तां देवतामवगणय्य प्रव्रजितोविहरन्नन्यदान्यतरप्रतिमाप्रतिपन्नः कायोत्सर्गेव्यवस्थितोवसंतपुरे तया देवलो काच्च्युतया श्रेष्ठिडहित्रा परदारिकामध्यगतया रमत्येषमम नर्तेत्येवमुक्ते सत्यनंतरमे व तत्सन्निहितदेवतयार्द्धत्रयोदशकोटिपरिमाणा शोननं वृतमनयेति नणित्वा हिरण्य वृष्टिर्मुक्ता तांच हिरण्यवृष्टिं राजा गृएहन् देवतया सर्पाद्युत्थानतोविधृतोऽनिहितं च तया यथैतद्धिरण्यं जातमस्यादारिकायाः नान्यस्य कस्यचिदित्यतस्तत्पित्रा सर्वं संगो पितमाईककुमारोप्यनुकूलोपसर्गइतिमत्वाऽश्वेनान्यत्र गतोगच्छतिच। काले दारिकाया वरकाः समागच्छंति पृष्टोच पितरां तया किमेषामागमनप्रयोजनं? कथितंच ताभ्यां यथैते

तव वरकाऽइति । ततस्तयोक्तं तात ! सकलकन्याः प्रदीयंते नानेकशोदत्ता चाहं तस्मै यत्सं बंधं हिरण्यजातं नवद्भिर्गृहीतं ततः सा पित्राऽनाणि । किं त्वं तं जानीषे ? तयोक्तं तत्पादग तानिज्ञानदर्शनतोजानामीति । तदेवमसौ तत्परिज्ञानार्थं सर्वस्य निक्षार्थिनोनिक्षां दापयितुं निरूपिता ततोद्वादशनिर्वर्षैर्गतैः कदाचिच्चासौ नवितव्यतानियोगेन तत्रैव वि हरन्समायातः प्रत्यनिज्ञातश्च तया तत्पादचिन्हदर्शनतस्ततोसौ दारिका सपरिवारा तत्पृ ष्ठतोजगामार्द्रककुमारोपि देवतावचनं स्मरंस्तथाविधकर्मोदयादवश्यं नवितव्यतानियो गेन च प्रतिनग्नस्तया सार्द्धं त्नुनक्ति नोगान् पुत्रश्चोत्पन्नः पुनरार्द्रककुमारेणासावनिहिता सांप्रतं ते पुत्रोद्वितीयोहं स्वकार्यमनुतिष्ठामि तया सुतव्युत्पादनार्थं कार्पासकर्त्तनमारब्धं दृष्टा चासौ बालकेन किमंबैतनवत्या प्रारब्धमितरजनाचरितं ततोसाऽववोचद्यथा तव पि ता प्रव्रजितुंकामस्त्वं चाद्यापि शिशुरसमर्थोर्थार्जनेततोहमनाथा स्त्रीजनोचितेनानिंदे न विधिनाऽऽत्मानं नवंतं च किल पालयिष्यामीत्येतदालोच्येदमारब्धमिति । तेनापि बा लकेनोत्पन्नप्रनूतया तत्कर्त्तितसूत्रेणैव कार्यं मद्बद्धोयास्यतीति मन्मनोनाषिणोपविष्टए वासौ पिता परिवेष्टितस्तेनापि चिंतितं यावंतोमी बालककृतवेष्टनतंतवस्तावंत्येव वर्षाणि मया गृहेस्थातव्यमिति निरूपिताश्च तंतवोयावद्द्वादश तावंत्येव वर्षाण्यसौ गृहवासे व्य वस्थितः पूर्णेषु द्वादशसु संवत्सरेषु गृहान्निर्गतः प्रव्रजितश्चेति । ततोसौ सूत्रार्थनिष्पन्न एकाकिविहारेण विहरन् राजगृहानिमुखं प्रस्थितस्तदंतराले च तद्रक्षणार्थं या नि प्राक् पित्रा निरूपितानि पंचराजपुत्रशतानि तस्मिन्नश्वे नष्टे राजनयाद्वेलद्याच्च न रा जांतिकं जग्मुस्तत्राटवीडुर्गेण चौर्येण वृत्तिं कल्पितवंतस्तैश्चासौ दृष्टः प्रत्यनिज्ञातश्च ते च तेन दृष्टाः किमिति नवन्निरेवंनूतं कर्माश्रितं ? तैश्च सर्वं राजनयादिकं कथितमार्द्रकक़ु मारवचनाच्च संबुद्धाः प्रव्रजिताश्च । तथा राजगृहनगरप्रवेशे गोशालकोहस्तितापसाः व्रा ह्मणाश्च वादे पराजिताः । तथार्द्रककुमारदर्शनादेव हस्ती बंधनाद्विमुक्तस्तेच हस्तिताप सादयश्चार्द्रककुमारधर्मकथाक्षिप्ताजिनवीरसमवसरणे निष्क्रांताः। राज्ञा च विदितवृत्तांत त्वेन महाकुतूहलापूरितहृदयेन दृष्टोनगवान् कथं त्वद्दर्शनतोहस्ती निरर्गलः संवृत्तइति महान् नगवतः प्रनावइत्येवमनिहितः सन्नार्द्रककुमारोब्रवीन्नवमगाथयोत्तरं ॥" ण डुक्करं वारणपासमोयणं,गयस्स मत्तस्स वणंमिरायं ॥ जहा ववत्ता वल्लिएण तंतुणा, सुडुकरंमे प डिहाइमोयणं ॥१७॥ (णडुक्करमित्यादि) न डुष्करमेतन्नरपाशर्वेबद्धमत्तवारणस्य विमोचनं वनेराजन्नेतत्तु मे प्रतिनाति डुष्करं यच्च तत्रावलितेन तंतुना बद्धस्य मम प्रतिमोचनमिति । स्नेहतंतवोहि जंतूनां डुरुच्छेदानवंतीति नावः । गतमार्द्रककथानकं ॥

नामनिष्पन्ननिक्षेपश्च । तदनंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चे दं (पुराकडमित्यादि) यथा च गोशालकेन सार्द्धं वादोनूदार्द्रककुमारस्य तथानेनाध्ययनेनोप

दिश्यते तंच राजपुत्रकमार्द्रककुमारं प्रत्येकबुद्धं नगवत्समीपमागच्छंतं गोशालकोब्रवीद्यथा हे आर्द्रक! यदहं ब्रवीमि तच्छृणु। पुरा पूर्वं यदनेन नगवत्तीर्थकता कृतं तच्चेदमिति दर्शयति। एकांते जनरहिते प्रदेशे चरितुं शीलमस्येत्येकांतचारी तथा श्राम्यतीति श्रमणः पुरासीत्तप श्चरणोद्युक्तः सांप्रतं तूग्रैस्तपश्चरणविशेषैर्निर्नर्त्सितोमां विहाय देवादिमध्यगतोसौ धर्मं किल कथयति तथा निक्षून् बहूनुपनीय प्रनूतशिष्यपरिकरं कृत्वा नवद्विधानां मुग्धजनानामिदानीं पृथक् पृथग्विस्तरेणाचष्टे धर्ममिति शेषः ॥१॥ पुनरपि गोशालकएव (साजीविए) इत्याद्याह येयं बहुजनमध्यगतेन धर्मदेशना युष्मद्गुरुणारब्धा सा जीविका प्रकर्षेण स्थापिता प्रस्थापिता एकाकी विहरंल्लौकिकैः परिनूयतइतिमत्वा लोकपंक्तिनिमित्तं महान् परिकरःकृतः। तथाचोच्यते। "ठत्रं, ठात्रं, पात्रं, वस्त्रं यष्टिं च चर्चयति निक्षुः॥ वेषेण परिकरेणच, कियतापि विना न निक्षापि" ॥ तदनेन दंनप्रदानेन जीविकार्थमिदमारब्धं। किंनूतेनास्थिरेण पूर्वं ह्ययं मया सार्द्धमेकात्यंतप्रांताशनेन शून्यारामदेवकुलादौ वृत्तिं कल्पितवान्न च तथानूतमनुष्ठानं सिकताकवलवन्निरास्वादं यावज्जीवं कर्तुमलमतोमां विहायायं बहून् शिष्यान् प्रतार्यैवंनूतेन स्फुटाटोपेन विहरतीत्यतः कर्तव्ये स्थिरश्चपलः पूर्वचर्यापरित्यागेनापरकल्पसमाश्रयात्। एतदेव दर्शयति। सनायां गतः सदेवमनुजपर्षदि व्यवस्थितो (गणउत्ति) गणशोबहुशोऽनेकशइति यावत् निक्षूणां मध्ये गतोव्यवस्थितआचक्षाणोबहुजनेन्योहितोबहुजन्योर्थस्तमर्थं बहुजनहितं कथयन् विहरति एतच्चास्यानुष्ठानं पूर्वापरेण न संधत्ते। तथाहि। यदि सांप्रतीयं वृत्तं प्राकारत्रयं सिंहासनाशोकवृक्षनामंमलचामरादिकं मोक्षांगमनविष्यत्ततोया प्राक्तन्येकचर्या क्लेशबहुला तेन कृता सा क्लेशाय केवलमस्येत्यथ कर्मनिर्जरणहेतुका परमार्थनूता ततः सांप्रतावस्था परप्रतारकत्वार्दनकल्पेत्यतः पूर्वोत्तरयोरनुष्ठानयोर्मौनव्रतिकधर्मदेशनारूपयोः परस्परतोविरोधइति ॥ २ ॥

एगंतमेवं अडुवा विइण्हिं, दोवग्गमन्नं न समेति जम्हा ॥ पु
व्विं च इण्हिं च अणागतं वा, एगंतमेवं पडिसंधयाति ॥ ३ ॥ स
मिच्च लोगं तसथावराणं, खेमंकरे समणे माहणे वा ॥ आइ
क्खमाणोवि सहस्समज्झे, एगंतयं सारयति तहच्चे ॥ ४ ॥

अर्थ—वली गोशालक कहेले. के, अहो आर्द्रकुमार! (एगंतमेवं के०) जो एकांत विचरवुंज रूडुंठे, एवुं जाणीनें ताहरे गुरुयें आदर्युं हतुं, तो सदैव तेनोज अंगीकार करवो हतो, (अडुवाविइण्हिं के०) अथवा हमणां अनेक साधुना परिवारें परव

थो थको जो साधुपदनुं मानते तो, प्रथम थकीज ए आचार केम न आदथो ? माटें (दोवग्गमन्नंनसमेतिजम्हा के०) ए बेहु आचार, गयानी अनें तडकानी पेठें मांहो मां हे मलता नथी, तथा जो मौनपणानें विपे धर्मछे तो ए, धर्मदेशना शा माटें आपे ठे ? अथवा जो धर्मदेशनानें विपेज धर्मछे, तो मौनव्रत आदरवानुं शुं कारण हतुं? ते कारण माटें ताहरो गुरु अत्यंत विरुद्धाचारी देखायछे.एवां वचन गोशालकनां सांजली नें हवे गाथाना उत्तरार्द्धवडे आर्द्रकुमार, ते गोशालकनें उत्तर आपेछे. ( पुर्विंचइण्हिंच अणागतंवा के०) पूर्वे कालें जे मौनपणुं अनें एकचर्या, श्री महावीरदेवें आदरी हती ते छद्मस्थ पणाथकी घातियां चार कर्मनो क्षय करवानें अर्थे जाणवी; अनें हमणां जे अनेक लोक आगल धर्मनुं प्रकाशवुं करेछे, ते वली अघातियां चार कर्मनी शुन्न प्र कृति खपाववानें अर्थे जाणवुं. ए कारणें प्रथम तथा हमणां तथा अनागत एटले आ गमिककालें राग द्वेपनें अनावें, एकत्वपणुंज संनावियें ठेयें. ( एगंतमेवंपडिसंधयाति के० ) तेथी एना प्रथमना अनें पाछलना आचारनो कांइ नेद नथी, माटें जे ताहरा मनथी पूर्वापर आचारनो विरोध जणायछे ते खोटो जाणवो, तुं जोतो खरो ! के, एना धर्मोपदेशें करी केटला एक प्राणीउनें उपकार थायछे के,नथी थतो? ॥३॥ तेहिज क हेछे (समिच्चलोगंतसथावराणं के०) लोक जे पट् द्रव्यात्मक, तेनें समिच्च एटले केवल ज्ञानें करी जाणीनें, त्रस अनें स्थावर जे प्राणीउछे, एतावता चोराशी लक्ष जीवा योनि छे तेनें, ( खेमंकरे के० ) क्षेमना करनार, तथा ( समणे के० ) श्रमण एटले बार नेदें तपना करनार, तथा (माहणेवा के०)कोइ जीवनें म हणो एवो जेनो उद्देशछे ते माहण अथवा ब्राह्मण एवा जे श्री महावीर देव, ते प्राणीउना हितनें अर्थे (आइक्खमाणोवि सहस्समज्जे के०) रागद्वेपरहित धर्म, मनुष्यना सहस्त्रमध्यें प्रकाशता छता (एगंतयंसा रयतितहच्चे के०) तेमज पूर्वनी पेठें एकांत पणुंज साधेछे. एनी पूर्वनी अवस्थामां अनें हमणांनी अवस्थामां कांइ पण अंतर नथी,तथा अर्चा एटले शुक्ल ध्यानरूप जे लेश्या, ते छे.जेनें एवा, तथा अशोकादि अष्ट महाप्रातिहार्य तेणें युक्तछे तो पण, अहंकार नथी,तथा शरीर संस्कारजणी यत्न पण करता नथी. ए कारण माटें ते नगवंत अनेक लोकें परवस्या थका पण, राग द्वेपना अनावथकी एकाकीज जाणवा इत्यर्थः ॥ ४ ॥

---

॥ दीपिका–( एगंतमेवमित्यादि ) यद्येकांतचारित्रमेव शोननं पूर्वमाश्रितत्वात्ततः सर्वदा निरपेक्षैस्तदेव कर्तव्यं अथ चेदं सांप्रतं परिकरवद्रुत्वं श्रेयस्तदा पूर्वं तदेव कार्यं हे अप्येते छायातपवदत्यंतं विरोधिनी वृत्ते नैकत्र समवायं गछतस्तथा यदि मौनेन धर्मस्त तः किमियं महता प्रबंधेन धर्मदेशनाऽथानर्थव धर्मस्ततः किमिति पूर्वं मौनव्रतमने

नालजाप यस्मादेवं तस्मात्पूर्वापरविरोधः। एवं गोशालकेनोक्ते आर्द्रककुमारः श्लोकपश्चा र्द्धेनोत्तरदानायाह। पूर्वं यदेकत्वं मौनव्रतिकत्वं च जगवतः तच्छद्मस्थत्वाद् घातिकर्मच तुष्टयक्षयार्थं सांप्रतं बहुपरिवारस्य यद्धर्मदेशकत्वं तच्चेपकर्मक्षयाय तीर्थकृन्नाम कर्म वेदनार्थंच ततः पूर्वमिदानीमनागतेच काले रागद्वेषरहितत्वादेकत्वजावनया एकत्व मेव धर्मं कथयन् प्रतिसंदधाति न तस्य पूर्वापरविरोधोस्ति आशंसारहितत्वात् ॥ ३ ॥ लाजार्थं देशनां करोतीत्याह। समेत्य लोकं यथावस्थितं ज्ञात्वा त्रसस्थावराणां क्षेमंक रोरक्षकः श्रमणो द्वादशधा तपःप्रवृत्तः माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्य स माहनोब्राह्मणोवा समतया धर्ममाचक्षाणोपि मौनी च वाक्संयतएव तथा सहस्राणां मध्ये स्थितोपि एकांतमेव सा रयति साधयति तस्मात्तथार्चः तथैव प्राग्वदर्चा लेश्या यस्य स तथार्चः। यदिवार्चा शरीरं तच्च प्राग्वद्यस्य स तथार्चस्तथाह्यशोकाद्यष्टप्रातिहार्योपेतोपि नोत्सेकं याति नापि शरीरसंस्काराय यत्नं विदधाति सहि जगवानात्यंतिकप्रहाणादेकाकी जनपरिवृ तोप्येकाकी न तस्य तयोरवस्थयोः कश्चिद्विशेषोस्ति रागद्वेषमुक्तत्वात्पूर्वं पश्चाच्च तुल्याश यइत्यर्थः। यडुक्तं। "रागद्वेषौ विनिर्जित्य, किमरण्ये करिष्यसि ॥ अथ नो निर्जितावे तौ, किमरण्ये करिष्यसी"ति ॥ ४ ॥

---

॥ टीका–अपिच ( एगंतमित्यादि ) यद्येकांतचारित्रमेव शोजनं पूर्वमाश्रितत्वात्त तः सर्वदान्यनिरपेक्षैस्तदेव कर्तव्यमथचेदं सांप्रतं महापरिवारवृतं साधुं मन्यसे ततस्तदे वादावप्याचरणीयमासीदपिच द्वे अप्येते व्यायातपवदत्यंतविरोधिनी वृत्ते नैकत्र समवा यं गच्छतस्तथा यदि मौनेन धर्मस्ततः किमियं महता प्रबंधेन धर्मदेशनाऽथानयैव धर्म स्ततः किमिति पूर्वं मौनव्रतमालजाप यस्मादेवं तस्मात्पूर्वोत्तरव्याहतिः। तदेवं गोशालकेन पर्यनुयुक्तआर्द्रककुमारः श्लोकपश्चार्द्धेनोत्तरदानायाह। पूर्वं पूर्वस्मिन्काले यन्मौनव्रतिकत्वं या चैकचर्या तच्छद्मस्थत्वाद् घातिकर्मचतुष्टयक्षयार्थं। सांप्रतं यन्महा जनपरिवृतस्य धर्मदेशनाविधानं तत्प्राग्बद्धजवोपग्राहिकर्मचतुष्टयक्षपणोद्यतस्य विशे षतस्तीर्थकरनाम्नोवेदनार्थमपरासां चोच्चैर्गोत्रशुजायुर्नामादीनां शुजप्रकृतीनामिति। यदिवा पूर्वं सांप्रतमनागते च काले रागद्वेषरहितत्वादेकत्वजावनानतिक्रमणाच्चैकत्वमेवा नुपचरितं जगवानशेषजनहितं धर्मं कथयन् प्रतिसंदधाति न तस्य पूर्वोत्तरयोरवस्थयोरा शंसारहितत्वाद्भेदोऽस्त्यतोयडुच्यते जवता पूर्वोत्तरयोरवस्थयोरसांगत्यं तत् प्लवतइति ॥ ३॥ एतद्धर्मदेशनया प्राणिनां कश्चिडुपकारोजवत्युत नेति? जवतीत्याह। ( समिच्चलोयमित्या दि ) सम्यग्यथावस्थितं लोकं पड्द्रव्यात्मकं मत्वावगम्य केवलालोकेन, परिच्छिद्य त्रस्यंती ति त्रसास्त्रसनामकर्मोदयाद्वींद्रियादयस्तथा तिष्ठंतीति स्थावराः स्थावरनामकर्मोदया त्स्थावराः पृथिव्यादयस्तेषामुजयेषामपि जंतूनां क्षेमं शांतिः रक्षा तत्करणशीलः क्षेमंक

रः श्राम्यतीति श्रमणो द्वादशप्रकारतपोनिष्टप्तदेहस्तथा माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनो ब्राह्मणोवा स एवंभूतोनिर्ममोरागद्वेषरहितः प्राणिहितार्थं न लाभपूजाख्यात्यर्थं धर्ममा चक्षाणोपि प्राग्वत् छद्मस्थावस्थायां मौनव्रतिकइव वाक्संयतः। उत्पन्नदिव्यज्ञानत्वाद्भाषा गुणदोषविवेकज्ञतया भाषणेनैव गुणावाप्तेरनुत्पन्नदिव्यज्ञानस्य तु मौनव्रतिकत्वेनेति तथा *देवासुरनरतिर्यक्सहस्रमध्येऽपि व्यवस्थितः पंकाधारपंकजवत्तद्दोषव्यासंगाभावान्ममत्व* विरहादाशंसादोषविकलत्वादेकांतमेवासौ सारयति प्रख्यातिं नयति साधयतीति याव त्। नन्ु चैकाकिपरिकरोपेतावस्थयोरस्ति विशेषः प्रत्येक्षेणैवोपलभ्यमानत्वात्तस्य मस्ति विशेषोबाह्यतोन त्वांतरतोपि दर्शयति । तथा प्राग्वदर्चा लेश्या शुक्लध्याना ख्या यस्य स तथार्चः । यदिवार्चा शरीरं तच्च प्राग्वद्यस्य सतथार्चस्तथाह्यसावशोका द्यष्टप्रातिहार्योपेतोपि नोत्सेकं याति नापि शरीरं संस्कारायत्तं विदधाति सहि भगवाना त्यंतिकरागद्वेषप्रहाणादेकाक्यपि जनपरिवृतोप्येकाकी न तस्य तयोरवस्थयोः कश्चि द्विशेषोस्ति । तथाचोक्तं। "रागद्वेषौ विनिर्जित्य,किमरण्ये करिष्यसि । अथ नो निर्जितावे तौ, किमरण्ये करिष्यसि" ॥ इत्यतोबाह्यतनं गमनांतरमेव कपायजयादिकं प्रधानं कार णमिति स्थितं ॥ ४ ॥

धम्मं कहं तस्सउ णत्थि दोसो, खंतस्स दंतस्स जितिंदिय
स्स ॥ भासायदोसेय विवज्जगस्स, गुणेयभासाय णिसेवगस्स
॥ ५ ॥ महव्वए पंच अणुव्वएय, तहेव पंचासव संवरेय ॥ विरतिं
इह सामणियंमि पन्ने, लवावसक्की समणे त्तिबेमि ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे राग द्वेष विना धर्म कहेतां थकां कोइ प्रकारनो दोप नथी, एवो भाव दे खाडेछे. ( धम्मंकहंतस्सउणत्थिदोसो के० ) ते भगवंत, समस्त लोकनो उद्धार करवाने प्रवर्त्तमान छता, धर्मदेशना करेछे, तेथी तेने दोप नथी, ते भगवंत केवाछे तो के, (खं तस्सदंतस्सजितिंदियस्स के० ) क्षमावंत, दमितेंद्रिय, एटले इंद्रियना दमनहार,वली जि तेंद्रिय, ( भासायदोसेयविवज्जगस्स के० ) तथा भापाना दोप टालनार, अने (गुणेयभा सायणिसेवगस्स के० ) भापाना गुणना सेवनार, एवा भगवंते बोलतां थकां, पण तेउनुं मौनव्रत पणुंज जाणवुं ॥ ५ ॥ हवे श्री महावीर भगवंत, केवो धर्म कहे, ते कहेछे. ( महव्वएपंचअणुव्वएय के० ) पांच महाव्रत जे प्राणातिपातविरमणादिक साधुनो धर्म छे. ते कहे. तथा श्रावक उद्देशीने स्थूलप्राणातिपात विरमणादिक, पांच अणुव्रत कहे. ( तहेव के० ) तेमज ( पंचासव के० ) पांच आश्रव ते कर्मने आववानां स्थानकछे,ते

कहे, तथा (संवरेय के०) पांच संवर ते सत्तरभेद युक्त संवर ते कहे, (विरतिंइह के०) वली विरतिनो उपदेश ते संवरना धरनारनें कहे, वली इह एटले आ प्रवचननें विषे (सामणियं मिपन्ने के०) संपूर्ण संयमनें विषे मूलगुण,ते पांच महाव्रतरूप तथा उत्तरगुण,ते संवर विरतिरूप, ते प्रज्ञावंत एवा, स्वामी कहे. वली ते केवाछे, तोके, ( लवावसक्की के० ) कर्मना टालनार, तथा ( समणेत्तिवेमि के० ) श्रमण एटले तपस्वी, एवा श्री महावीर देव ते लोकना हितनें अर्थे धर्म कहेता थका आचारवंतज जाणवा. हुं एम कहुंहुं.॥६॥

---

॥ दीपिका–क्षांतस्याक्रोधस्य दांतस्य मानरहितस्य जितेंद्रियस्य निर्लोभस्य लोभत्यागान्निर्मायस्येत्यपि इष्टव्यं । भाषादोषाअसत्यसत्यामृषाकर्कशाऽसभ्यशब्दोच्चारणादयः तद्वर्जकस्य भाषागुणाहितमितदेशकालासंदिग्धभाषणादयः तन्निषेधकस्य सतोधर्मं कथयतोपि नास्ति दोषः । छद्मस्य हि प्रायोमौनमेव श्रेयः । केवलिनस्तु भाषणमपि गुणायेति ॥५॥ कीदृशं धर्मं वक्तीत्याह । पंचमहाव्रतानि साधूनां पंचगुणव्रतानि श्राद्धानां प्रज्ञापितवान् तथैव पंचाश्रवान् प्राणातिपातादिरूपान् तत्संवरं च सप्तदशप्रकारं संयमं विरतिं च कथितवान् इह शासने श्रामण्यं संपूर्णसंयमस्तस्मिन्कर्तव्ये पूर्णकृत्स्ने मूलोत्तरगुणान् पूर्वोक्तान् कथितवान् ।किंभूतोऽसौ लवं कर्म तस्मा(दवसक्कइति)अवसर्पणशीलोऽवसर्पी श्रमणइति । अथ गोशालकोवक्ति (बेमित्ति) यदहं ब्रवीमि हे आर्द्रक ! तत्त्वं शृणु॥६॥

---

॥ टीका–अपगतरागद्वेषस्य प्रभाषमाणस्यापि दोषाभावं दर्शयितुमाह । (धम्मंकहंतस्से त्यादि ) तस्य भगवतोपगतघनघातिकलंकस्योत्पन्नसकलपदार्थाविर्भावविज्ञानस्य जगदनुद्धरणप्रवृत्तस्यैकांतपरहितप्रवृत्तस्य स्वकार्यनिरपेक्षस्य धर्मं कथयतोपि तुशब्दस्यापिशब्दार्थत्वान्नास्ति कश्चिद्दोषः। किंभूतस्येत्याह। क्षांतिसंपन्नस्यानेन क्रोधनिरासमाह । तथा दांतस्योपशांतस्यानेन मानव्युदासं।तथा जितानि स्वविषयप्रवृत्तिनिषेधेनेंद्रियाणि येन स जितेंद्रियोऽनेन तु लोभनिरासमाचष्टे मायायास्तु लोभनिरासादेव निरासोद्रष्टव्यस्तन्मूलत्वात्तस्य भाषादोषाअसत्यसत्यामृषकर्कशासभ्यशब्दोच्चारणादयस्तद्विवर्जकस्य तत्परिहर्तुस्तथा भाषायाये गुणाहितमितदेशकालासंदिग्धभाषणादयस्तन्निषेधकस्य सतोब्रुवतोपि नास्ति दोषः छद्मस्थस्य हि बाहुल्येन मौनव्रतमेव श्रेयः समुत्पन्नकेवलस्य तु भाषणमपि गुणायेति ॥ ५ ॥ किंभूतं धर्ममसौ कथयतीत्याह । ( महव्वएपंचेत्यादि) महांति च तानि व्रतानि प्राणातिपातविरमणादीनि तानि च साधूनां प्रज्ञापितवान् पंचापि तदपेक्षायाणूनि लघूनि व्रतानि पंचैव तानि श्रावकानुद्दिश्य प्रज्ञापितवांस्तथैव पंचाश्रवान् प्राणातिपातादिरूपान् कर्मणः प्रवेशद्वारभूतांस्तत्संवरं च सप्तदशप्रकारं संयमं प्रतिपादितवान् संवरवतो

द्दि विरतिर्नैवतीत्यतोविरतिं च प्रतिपादितवांश्चशब्दात्तत्फलनूतौ निर्जरामोक्षौ च इहास्मि न्प्रवचने लोके वा श्रमणनावः श्रामण्यं संपूर्णःसंयमस्तस्मिन् वा विधेये मूलगुणान् म हाव्रताणुव्रतरूपांस्तथोत्तरगुणान् महाव्रताणुव्रतरूपान् कृत्स्ने संयमे विधातव्ये प्राज्ञइति क्वचित्पाठः। प्रज्ञाने तत्प्रतिपादितवानिति । किंनूतोऽसौ लवं कमे तस्मा(दवसक्कइति) श्र वसर्प्पणशीलोऽवसर्प्पी श्रम्यतीति श्रमणः तपश्चरणयुक्तइत्येतदहं ब्रवीमि स्वयमेव च नग वान्पंचमहाव्रतोपपन्नइंद्रियनोइंद्रियगुप्तोविरतश्चासौ लवावसर्प्पीसन् स्वतोन्येषामपि तथा नूतमुपदेशं दत्तवानित्येतद् ब्रवीमीति। यदि वाईककुमारवचनमाकर्ण्याऽसौ गोशालकस्तत्प्र तिपक्षनूतं वक्तुकामइदमाह । इत्येतद्वक्ष्यमाणं यदहं ब्रवीमि तच्छृणु! त्वमिति ॥ ६ ॥

सीउदगं सेवउ बीयकायं, आहायकम्मं तह इत्थियाउ ॥ एगंत
चारिस्सिह अम्हधम्मे, तवस्सिणो णाभिसमेति पावं ॥ ७ ॥
सीतोदगं वा तह बीयकायं, आहायकम्मं तह इत्थियाउ॥एयाइं
जाणं पडिसेवमाणा, अगारिणो अस्समणा नवंति ॥ ८ ॥

अर्थ–हवे एवुं आर्द्रकुमारनुं पूर्वोक्त वचन सांजलीनें,फरी गोशालक कहेठे के,अहो आर्द्रकुमार! तें एम कह्युं जे ए परहित नणी प्रवर्त्तिनें धर्म कहेवायकी दोष नथी, तथा लोक परिवारनो पण दोष नथी,तो हुं कहुं तुं ते पण सांजल. के,जे अमारा सि द्धांतमां कह्युंठे तेनो पण दोष नथी. ते शुं कह्युंठे ! ते कहेठे. ( सीउदगंसेवउबीयका यं के०) सचितपाणी तेनें सेवो, एटले पान करो,तथा बीजकायनो उपनोग करो,(आहा यकम्मं के० ) तथा आधाकर्मी आहार ल्यो, (तह के०) तेमज(इत्थियाउ के०) स्त्रीनो प्रसंग पण करो,एटले पोताना अनें परना उपकारनु कारण,अनें धर्मनुं आधार एवुं जे शरीर तेनें अर्थे जे कांइ करियें,तेमां दोष नथी केमके,(एगंतचारिस्सिहअम्हधम्मे के०) अमारा धर्मनें विषे प्रवर्त्तमान तथा आराम उद्यानादिकनें विषे एकाकी विचरतो एवो, (तवस्सिणोणाभिसमेतिपावं के०) कोइ एक तपस्वी तेनें पाप लागे नहीं. जे कारण माटें यद्यपि शीतोदकादिक कांइक कर्मबंधनुं कारणठे तथापि तेनो, उपनोग, धर्माधारनूत एवुं जे शरीर तेनें कारणें करतां थकां कांइ पण दोष नथी. इति नावः॥ ७ ॥ हवे वली आर्द्रकुमार कहेठे के, अहो गोशालक! शीतोदक अनें बीजकायनो उपनोग करवो, तथा आधाकर्मी आहार लेवो, अनें स्त्रीयादिकनो प्रसंग करवो, इत्यादिक बोल जे तें पूर्वें कह्या, तेना पडिसेवनारा तो आगारी एटले गृहस्थज कहेवाय, परंतु एवा श्रमण एटले साधु न होय. ॥ ८॥

॥दीपिका—त्वयेदमुक्तं यत्परार्थं प्रवृत्तस्याशोकादिप्रातिहार्यपरिग्रहः शिष्यादिपरिकरो धर्मदेशना च न दोषायेति यथा तथास्माकमप्येतन्न दोषाय यच्छीतोदकं सचित्तोदकं तत्सेवनं करोतु । बीजकायोपभोगमाधाकर्माश्रयणं स्त्रीप्रसंगं च करोतु। अनेन स्वपरोपकारः स्यादित्याह ( एगंतत्ति ) अस्मद्धर्मे प्रवृत्तस्यैकांतचारिणः एकाकिविहारोद्यतस्य तपस्विनोनाभिसमेति न संबध्यते पापं । यद्यपि शीतोदकादीनि ईषत्कर्मबंधाय तथापि धर्माधारस्य शरीरस्य रक्षणाय क्रियमाणानि एकांतचारितपस्विनः कर्मबंधाय न भवंतीत्यर्थः ॥ ७ ॥ अस्योत्तरमाह मुनिः । शीतोदकादीनि प्रतिसेवमानाअगारिणोगृहस्थास्ते भवंत्यश्रमणाश्चेति त्वं जानीहि । एतद्भोगे यदि श्रमणत्वं स्यात्तदा गृहस्थत्वं केन स्यादित्यर्थः ॥ ८ ॥

---

॥टीका—यथाप्रतिज्ञातमेवाह गोशालकः । (सीउदगमित्यादि) भगवतेद मुद्ग्राहितं परार्थं प्रवृत्तस्याशोकादिप्रातिहार्यपरिग्रहस्तथा शिक्षादिपरिकरोधर्मदेशनाच न दोषायेति । यथा तथास्माकमपि सिद्धांते यदेतं वक्ष्यमाणं तन्न दोषायेति । शीतं च तदुदकं च शीतोदकमप्राशुकोदकं तत्सेवनं परिभोगं करोतु। तथा बीजकायोपभोगमाधाकर्माश्रयणं स्त्रीप्रसंगं च निदधात्वनेन च स्वपरोपकारः कृतोभवतीत्यस्मदीये धर्मे प्रवृत्तस्य एकांतचारिणआरामोद्यानादिष्वेकाकिविहारोद्यतस्य तपस्विनोनाभिसमेति न संबंधमुपयाति पापमशुभकर्मेति। इदमुक्तं भवत्येतानि शीतोदकादीनि यद्यपीषत्कर्मबंधाय तथापि धर्माधारं शरीरं प्रतिपालयतएकांतचारिणस्तपस्विनोबंधाय न भवंतीति ॥ ७ ॥ एतत्परिहर्तुकामआह । ( सीतोदगमित्यादि ) एतानि प्रागुपन्यस्तानि अप्राशुकोदकपरिभोगादीनि प्रतिसेवंतोऽगारिणोगृहस्थास्ते भवंत्यश्रमणाश्चाप्रव्रजिताश्चैवं जानीहि ॥ यतः अहिंसासत्यमस्तेयं, ब्रह्मचर्यमलुब्धता ॥ इत्येतच्छ्रमणलक्षणं चैषां शीतोदकबीजाधाकर्मस्त्रीपरिभोगवतां नास्तीत्यतस्ते नामाकाराभ्यां श्रमणान परमार्थानुष्ठानतइति ॥ ८ ॥

सियाय बीउदग इत्थियाउ, पडिसेवमाणा समणा भवंतु ॥
अगारिणोवि समणा भवंतु, सेवंतिउ तेवि तहप्पगारं ॥ए॥ जे
यावि बीउदगभोत्ति भिरकू, भिरकं विहंजायति जीवियही ॥
ते णातिसंजोगमविप्पहाय, कायोवगाणंतकरा भवंति ॥ १० ॥

अर्थ—वली आर्द्रकुमार कहेले के, अहो गोशालक! ताहारो मत एवोले जे एकांतचारी, क्षुधा तृषादिकना सहन करनार,तपस्वी न होय ते केम न होय? तेहनो प्रत्युत्तर सांभल. (सियायबीउदगइत्थियाउ के०) ते जो कदाचित् सचित बीज, सचित पाणी, अनें स्त्री

यादिकनो प्रसंग तेना, (पडिसेवमाणासमणानवंतु के०) परिभोगना करनार श्रमण होय तो, (अगारिणोविसमणानवंतु के०) आगारी जे गृहस्थछे ते पण श्रमण थाय. केमके, (सेवंतिउतेवितहप्पगारं के०) आगारी पण सचित बीज उदकादिना सेवनारछे, वली धन नें अर्थे देशांतरनें विषे विचरे छे, वली एकला पण परदेशनें विषे घणा काल पर्यंतर हेछे, तथा धनार्थी थका, क्षुधातृषादिकनां कष्ट पण सहन करेछे, माटें ए रीतें ते पण तथा प्रकारनां एटले श्रमण जेवां कष्ट सहन करेछे, ए कारणें ते गृहस्थनें पण तपस्वीज गणवा ॥ ९ ॥ वली पण आर्द्रकुमार कहेछे के, ( जेयाविबीउदगभोत्तिभिरकू के० ) जे भिक्षुक छतां, बीज उदकना भोगवनार, द्रव्यब्राह्मचारी एवा, ( भिरकंविहंजायतिजीवियठी के० ) आजीविका चलाववानें अर्थे भिक्षा मागे, ( तेणातिसंजोगमविप्पहाय के० ) ते ज्ञातिसंयोग छांमीनें ( कायोवगाणंतकराभवंति के० ) छ कायनामर्दन करनार एवा, पोतानी कायाना राखनार एवा, अनें कर्मना करनार ते, आगमिककालें अनंत संसारी थशे ॥ १० ॥

---

॥ दीपिका–आर्द्रकएव पुनराह । यदि बीजादिभोजिनः श्रमणाः स्युस्तदागारिणोपि श्रमणाः स्युः तेपि गृहस्थाअपि सेवंते तथाप्रकारमेकलविहारादिकं । गृहस्थानामपि पथिकत्वावस्थायामाशंसावतामपि निष्किंचनतयैकाकिविहारित्वं क्षुत्पिपासादिपीडनं भवत्येवेति ॥९॥ ये चापिभिक्षवोबीजोदकभोजिनः संतोभिक्षां च यावंतोजीवितार्थिनस्ते ज्ञातिसंयोगं स्वजनसंबंधं प्रविहाय त्यक्त्वा कायात्कायेषु च उपगछंतीति कायोप भोगात्तदुपमर्दारंभप्रवृत्ताः संसारस्यानंतकराः स्युः संसारस्य अंतकरान भवंतीत्यर्थः ॥१०॥

---

॥ टीका–पुनरप्यार्द्रकएवैतद्दूषणायाह । ( सियायेत्यादि ) स्यादेतद्भवदीयं मतं यथा ते एकांतचारिणः क्षुत्पिपासादिप्रधानतपश्चरणपीडिताश्च तत्कथं ते न तपस्विनइत्येतदाशंक्यार्द्रक आह । यदि बीजाद्युपभोगिनोपि श्रमणाइत्येवं भवताभ्युपगम्यते एव तर्ह्यगारिणोपि गृहस्थाः श्रमणाभवंतु तेषामपि देशिकावस्थायामाशंसावतामपि निष्किंचनतयैकाकिविहारित्वं क्षुत्पिपासादिपीडनंच संभाव्यते। अतआह (सेवंतिउ) तुरवधारणे सेवंत्येव तेऽपिगृहस्थास्तथाप्रकारमेकाकिविहारादिकमिति ॥ ९ ॥ पुनरप्यार्द्रकोबीजोदकादिभोजिनो दोषाभिधित्सयाह । ( जेयावीत्यादि ) ये चापि भिक्षवः प्रव्रजिताबीजोदकभोजिनः संतोद्रव्यतोब्रह्मचारिणोपि भिक्षां वाऽटंति जीवितार्थिनस्ते तथाभूताज्ञातिसंयोगं स्वजनसंबंधं विप्रहाय त्यक्त्वा कायात्कायेषु चोपगछंतीति कायोपभोगात्तदुपमर्दकारंभात्प्रवृत्तत्वात्संसारस्यानंतकराभवंतीति। इदमुक्तं। भवति केवलं स्त्रीपरिभोगएव तैः परित्यक्तो

ऽसावपि द्रव्यतः शेषेण तु बीजोदकाद्युपभोगेन गृहस्थकल्पाएव ते। यत्तु निक्षाटनादिक मुपन्यस्तं तेषां तद्गृहस्थानामपि केषांचित्संभाव्यते नैतावता श्रमणभावइति ॥ १० ॥

इमं वयंतं तुमपाउ कुवं, पावाइणो गरिहसि सवएव ॥ पावाइ
णो पुढो किट्टयंता, सयंसयं दिठिकरेंति पाउ ॥११॥ ते अन्नम
न्नस्स विगरहमाणा, अरकंतिउ समणामाहणाय ॥ सतोय अ
डी असतोय एडी, गरहामोदिठिं ए गरहामोकिंचि ॥ १२॥

अर्थ–हवे आर्द्रकुमारनां ए पूर्वोक्त वचन सांभलीनें गोशालक बीजो उत्तर आपवानें असमर्थ थतो, अन्य तीर्थिकोनें पोतानां सहायकारी करीनें सोल्लंठ एटले असार वचन बोलेछे के, अहो आर्द्रकुमार ! (इमंवयंतंतुमपाउकुवं के०) तुं एवां पूर्वोक्त वचन कहेतो थतो (पावाइणोगरिहसिसवएव के०) सर्व प्रावाडुक एटले अन्यदर्शनीउनें निंदेछेज, कारणके आ जगत् मांहे सर्व दर्शनीउ बीज उदकादिकनुं सेवन करता थका, संसार उछेदवानें अर्थे प्रवर्त्तेछे,तो तेनें मानियें नहीं.एवुं वचन सांभलीनें आर्द्रकुमार ते गोशालकनें उत्तर आपवानें अर्थें बोल्यो, ते गाथाना उत्तरार्द्ध वडे कहेछे. के, अहो गोशालक ! ( पावाइणोपुढोकिट्टयंतासयंसयंदिठिकरेंतिपाउ के० ) सर्व प्रावाडुक एटले सर्व दर्शनी पोत पोतानी जुदी जुदी दृष्टीयें जुदी जुदी मतियें पोतपोतानुं दर्शन प्रगट करेछे. जेम ते पोतपोताना दर्शननी स्थापना करेछे, तेम हुं पण अमारा दर्शननी प्रभावना करुंछुं के, सचितपाणी,बीजादिकना परिभोगथकी निःकेवल कर्मनुं बंधनछे,पण एथकी संसारनो उछेद कांइ पण नथी. एवो अमारा दर्शननो मतछे, तो अंही निंदा पण शानी? अनें उत्कर्षपण शानो?॥११॥वली आर्द्रकुमार कहेछे. (तेअन्नमन्नस्सविगरहमाणा के०) ए समस्त परवादी परस्पर मांहोमांहे पारका दर्शननें निंदेछे, अनें पोताना दर्शनना गुण बोलेछे, ( अरकंतिउसमणामाहणाय के० ) ते श्रमण ब्राह्मण सर्व पोतपोताना पक्षनें समर्थेछे अनें परना पक्षनें दूषण आपेछे.तेज गाथाना उत्तरार्द्ध वडे देखाडेछे. (सतोयअडीअसतोयएडी के०) अमारा पक्षनें अंगीकार करवा थकी पुण्यछे, अनें स्वर्गापवर्गादिकनां सुख प्राप्त थायछे, अनें परना पक्षनें अंगीकार करवा थकी पुण्य नथी अनें पुण्यनें अनावें स्वर्गापवर्गादिकनी प्राप्ति पण नथी. ए रीतें सर्व तीर्थिक मांहोमांहें व्याघातें प्रवर्त्तेछे. तेम अमे पण यथावस्थित तत्त्वनुं कथन करनारा छैयें तेणें करी, (गरहामोदिठिंणगरहामोकिंचि के० ) एकांतवादीनें अमें कांइ गर्हता नथी, निंदता नथी, केमके, सत्य कहेतां थकां कांइ प्रवाद नथी. इत्यर्थः ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—अथ गोशालोन्यतीर्थिकान्सहायान्कृत्वा सोल्लुंठमसारं प्राह । इमां पूर्वोक्तां वाचं त्वं प्राडुष्कुर्वन्सर्वान् प्रावाडुकान् गर्हसि ? । यतः सर्वेपि तीर्थिकाः बीजोदकादिनोजिनोपि नवोछेदाय प्रवर्त्तंते ते तुऽप्रावाडुकाः पृथक् पृथक् स्वीयां दृष्टिं प्रत्येकं स्वदर्शनं प्राडुष्कुर्वंति प्रकाशयंति । अथवा श्लोकपश्चार्द्ध आर्द्रमुनिराह । सर्वेपि प्रावाडुकाः स्वमतं प्रकाशयंति तथा वयमपि स्वदर्शनं प्राडुष्कुर्मोयद्बीजोदकादिनोगिनः कर्मबंधोन नवोछेदइति स्थिते कात्र परनिंदा कोवा आत्मोत्कर्षइति ॥ ११ ॥ ते प्रावाडुकाअन्योन्यस्य परदर्शनं गर्हमाणाः स्वदर्शनगुणानाख्यांति यथा स्वतइति स्वकीये पक्षे स्वमतेस्ति पुण्यं अस्वतः परमते नास्ति पुण्यमित्येवं तीर्थिकाः परस्परव्याघातेन प्रवृत्ताः वयं तु तत्वप्ररूपणादेकांतदृष्टिं गर्हाम नहि एकांतपक्षोयुक्तिसंगतइति वदंतो वयं न किंचिज्जर्हामः । काणांधादिवस्तुस्वरूपकथनेन परापवादः । तथाचोक्तं । "नेत्रैर्निरीक्ष्य बिलकंटककीटसर्प्पान्, सम्यग्यथा व्रजत तान्परिहृत्य सर्वान् ॥ कुज्ञानकुश्रुतिकुमार्गकुदृष्टिदोषान्, सम्यग्विचारयत कोत्र परापवाद"इति ॥ १२ ॥

---

॥ टीका—अधुनैतदाकर्ण्य गोशालकोपरमुत्तरं दातुमसमर्थोऽन्यतीर्थिकान्सहायान् विधाय सोल्लुंठमसारं वक्तुकामआह ( इमंवयंतित्यादि ) इमां पूर्वोक्तां वाचं । तुशब्दोविशेषणार्थः । त्वं प्राडुष्कुर्वन्प्रकाशयन्सर्वानपि प्रावाडुकान् गर्हसि जुगुप्ससे यस्मात्सर्वेऽपि तीर्थिकाबीजोदकादिनोजिनोपि संसारोछित्तये प्रवर्त्तंते तेतु नवता नाभ्युपगम्यंते तेतु प्रावाडुकाः पृथक् पृथक् स्वीयां स्वीयां दृष्टिं प्रत्येकं स्वदर्शनं कीर्तयंतः प्राडुष्कुर्वंति प्रकाशयंति । यदिवा श्लोकपश्चार्द्धमार्द्रककुमारआह । सर्वे प्रावाडुकायथावस्थितं स्वदर्शनं प्राडुष्कुर्वंति तत्प्रामाण्याच्च वयमपि स्वदर्शनाविर्भावनं कुर्मस्तद्यथा ह्यप्राशुकेन बीजोदकादिपरिभोगिनः कर्मबंधएव केवलं न संसारोछेदइतीदमस्मदीयं दर्शनमेवं व्यवस्थिते कात्र परनिंदा कोवात्मोत्कर्षइति ॥ ११ ॥ किंच । ( तेअन्नमन्नस्सेत्यादि ) तेप्रावाडुकाअन्योन्यस्य परस्परेणतु स्वदर्शनप्रतिष्ठाशया परदर्शनं गर्हमाणाः स्वदर्शनगुणानाचक्षते तुशब्दात्परस्परतोव्याहतमनुष्ठानं चानुतिष्ठंति ते च श्रमणानिर्ग्रंथादयो ब्राह्मणाद्विजातयः सर्वेप्येते स्वकं पक्षं समर्थयंति परकीयं च दूषयंति। तदेव पश्चार्द्धेन दर्शयति। स्वतइति। स्वकीये पक्षे स्वाभ्युपगमेस्ति पुण्यं तत्कार्यंच स्वर्गापवर्गादिकमस्त्यतः स्वपराभ्युपगमाच्च नास्ति पुण्यादिकमित्येवं सर्वेपि तीर्थिकाः परस्परव्याघातेन प्रवृत्ताश्च तोवयमपि यथावस्थिततत्वप्ररूपणतोयुक्तिविकलत्वादेकांतदृष्टिं गर्हामोजुगुप्सामोन ह्यसावेकांतोयथावस्थिततत्वाविर्भावकोनवतीत्येवं व्यवस्थिते तत्वस्वरूपं वयमाचक्षाणा न किंचिज्जर्हाम· काणकुंठोद्घट्टनादिप्रकारेण केवलं स्वपरस्वरूपाविर्भावनं कुर्मोन च व

स्तु स्वरूपाविर्भावने परापवादः। तथाचोक्तं। "नेत्रैर्निरीक्ष्य बिलकंटककीटसर्पान्, सम्यक् यथा व्रजत तान्परिहृत्य सर्वान् ॥ कुज्ञानकुश्रुतिकुमार्गकुदृष्टिदोषा,न्सम्यग्विचारयति कोत्र परापवाद"इत्यादि। यदिचैकांतवादिनामेवास्त्येव नास्त्येवाभ्युपगमवतामयं परस्परगर्हाख्योदोषोनास्माकमनेकवादिनां सर्वस्यापि सदादेः कथंचिदभ्युपगमात्। एतदेव श्लोकपश्चार्द्धेन दर्शयति ( स्वतइति ) स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरस्ति तथा (परतइति) परद्रव्यादिभिर्नास्तीत्येवं पराभ्युपगमं दूषयंतोगर्हामोऽन्यानेकांतवादिनस्तत्स्वरूपनिरूपणतस्तु रागद्वेषविरहान्न किंचिद्गर्हामइति स्थितं ॥ १२ ॥

ण किंचि रूवेण भिधारयामो, सद्दिठिमग्गं तु करेमि पाउं ॥ म
ग्गे इमे किट्टिए आरिएहिं, अणुत्तरे सप्पुरिसेहिं अंजू
॥१३॥ उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु,तसाय जे थावरजेयपाणा॥
भूयाहि संकाभि डुगुंबमा णा, णो गरहती वुसिमं किंचि लोए ॥१४॥

अर्थ–वली आर्द्रकुमार कहेछे के, अहो गोशालक ! अमें ( णकिंचिरूवेणभिधारयामो के० ) कोइ पण श्रमण ब्राह्मणनें रूवेण एटले डुगंढनिक एवा अंगोपांगनें उघाडवे, अथवा जातिना दोषनें अभिधारयामो एटले प्रगट करीनें निंदता नथी, किंतु? ( सद्दिठिमग्गंतुकरेमिपाउं के० ) स्वदृष्टिमार्ग एटले पोतानुं शासन प्रगट करियें ढैयें, अथवा तेउना मार्गनुं स्वरूप कहियें ढैयें. वली जे विधियें ते पोताना मार्गनी स्थिति कहेछे के, " ब्रह्मा लूनशिराः " इत्यादिक ते अमें पण सांजलियें ढैयें, परंतु अमें कोइनो अपवाद बोलता नथी. हवे आर्द्रकुमार, गाथाना उत्तरार्द्धवडे पोताना दर्शननुं स्वरूप कहेछे. (मग्गेइमेकिट्टिएआरिएहिं के०) ए मार्ग जे सम्यक् दर्शनादिकछे, ते आर्य एवा जे श्रीसर्वज्ञदेव तेणें कह्यो.ते मार्ग केवोछे तोके,(अणुत्तरेसप्पुरिसेहिंअंजू के०) ए मार्ग अनुत्तर एटले एना सरखो बीजो कोइ पण मार्ग जगत् मांहे नथी, वली ते सर्वज्ञ केवाछे तोके सत्पुरुष चोत्रीश अतिशयें करी बिराजमान, एवाप्रधान पुरुष जगत् मांहे बीजा कोइ नथी, ते कारणें सत्पुरुष केवायछे, वली ए मार्ग केवोछे तोके, अंजू एटले सरल अकुटिल छे ॥१३॥ वली पण धर्मनुंज स्वरूप कहेछे.(उड्ढंअहेयंतिरियंदिसासु के०) ऊर्ध्व अधो अनें.तिर्यक् ए समस्त दिशाउनें विषे एतावता चौदरज्ज्वात्मक लोक मांहे, ( तसायजेथावरजेयपाणा के० ) जे त्रस अनें स्थावर प्राणीउछे तेना पालनार, तथा ( भूयाहिसंकाभिडुगुंबमाणा के० ) प्राणघातनी शंकायें सावद्यानुष्ठाननेंडुगं ढता, ( णो गरहतीवुसिमंकिंचिलोए के० ) एवा संयमवंत पुरुषो लोक मांहे जे छे, ते कोइनें गर्हे

एटले निंदे नहीं. माटें रागद्वेषरहित पणे यथातथ्य वस्तुनुं स्वरूप केहेतां थकां कांइ निंदा नथी. जो कदापि यथातथ्य वस्तुनुं स्वरूप केहेतां थकां निंदा होय तो, अग्नि उष्णछे, अनें उदक शीतलछे, विष खाधा थकी मरण नीपजे,इत्यादिक खरुं बोलवुं ते पण युक्त नथी ! परंतु ए रीतें सत्य कहेवामां कांइ दोष नथी ॥ १४ ॥

---

॥ दीपिका—न किंचन श्रमणं ब्राह्मणं वा स्वरूपेणाभिधारयामोगर्हणबुध्ध्याउद्घट्ट यामः । केवलं स्वदृष्टिमार्गं तदंगीकृतं दर्शनं प्राडुष्कुर्मः । तद्यथा । “ब्रह्मा लूनशिराद्दरिर्दृशि सरुग्व्यालुप्तशिश्नोहरः, सूर्योप्युल्लिखितोऽनलोप्यखिलभुक्सोमः कलंकांकितः ॥ स्वर्नाथोपि विसंस्थुलः खलु वपुःसंस्थैरुपस्थैः कृतः, सन्मार्गस्खलनाद्भवंति विपदः प्रायः प्रभूणामपि” । एतच्च तैरेव स्वागमे पठ्यते वयंतु श्रोतारः केवलमिति । मग्गेइमेत्ति । अयं मार्गः सम्यग्दर्शनादिकः कीर्त्तितआ यैः सर्वज्ञैः । किंभूतोमार्गोऽनुत्तरः प्रधानः । आ यैः किंभूतैः सत्पुरुषैः । मार्गः किंभूतोंजू प्रकटं ऋजुर्वा ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च ये त्रसा येच स्थावराश्च प्राणिनस्तेषु भूताभिशंकया प्राणिविनाशशंकया सावद्यक्रियां जुगुप्स मानोगर्हन् नैवान्यं लोकं कंचन गर्हते निंदति (बुसिमं) संयमवान् । तदेवं रागद्वेषमुक्तस्य वस्तुस्वरूपकथने न काचिन्निंदा यथा उष्णोऽग्निः शीतलं जलं विषं मारणात्मकं भयंकरः सर्पः व्ययकः कंटकइत्यादि ॥ १४ ॥

---

॥टीका—एतदेव स्पष्टतरमाह । ( नकिंचिरूवेणेत्यादि ) न कंचन श्रमणं ब्राह्मणं वा स्वरूपेण जुगुप्सितांगावयवोद्घट्टनेन जात्या तल्लिंगग्रहणोद्घट्टनेन वाऽभिधारयामोगर्ह णाबुध्ध्योद्घट्टयामः केवलं स्वदृष्टिमार्गं तदभ्युपगतं दर्शनं प्राडुष्कुर्मः प्रकाशयामः । तद्यथा । “ब्रह्मा लूनशिराद्दरिर्दृशिसरुग्व्यालुप्तशिश्नोहरः, सूर्योप्युल्लिखितोऽनलोप्यखिलभु क्सोमः कलंकांकितः ॥ स्वर्नाथोपि विसंस्थुलः खलु वपुःसंस्थैरुपस्थैः कृतः, सन्मा र्गस्खलनाद्भवंति विपदः प्रायः प्रभूणामपी”त्यादि । एतच्च तैरेव स्वागमे पठ्यते । वयंतु श्रोतारः केवलमिति । आर्द्रककुमारएव परपक्षं दूषयित्वा स्वपक्षसाधनार्थं श्लोकपश्चा र्द्धेनाह । अयं मार्गः पंथाः सम्यग्दर्शनादिकः कीर्त्तितोव्यावर्णितः । कैरार्यैः सर्वज्ञैरस्त्या ज्यधर्मदूरवर्तिभिः । किंभूतोधर्मोनास्माडुत्तरः प्रधानोविद्यतइत्यनुत्तरः पूर्वापराव्याहततया यथावस्थितजीवादिपदार्थस्वरूपनिरूपणाच्च । किंभूतैरार्यैः संतश्च ते पुरुषाश्च सत्पुरुषास्तै भतुस्त्रिंशदतिशयोपेतैराविर्भूतः समस्तपदार्थाविर्भावकदिव्यज्ञानैः । किंभूतोमार्गोंऽजु व्यक्तः निर्दोषत्वात्प्रकटः ऋजुर्वा वक्रैकांतपरित्यागादकुटिलइति ॥ १३ ॥ पुनरपि स्वसद्धर्म स्वरूपनिरूपणायाह । (उहुंअहेयमित्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्चैवं सर्वास्वपि दिक्षु प्रकारापे

क्षया न्नावदिगपेक्षया वा तासु ये त्रसाये च स्थावराःप्राणिनः। चशब्दो स्वगतानेकन्नेदसंसूच कौ। नूतं सन्नूतं तथ्यं तत्राभिशंकया तथ्यनिर्णयेन प्राणातिपातादिकं पातकं जुगुप्समा नोगर्हमाणोयदिवा नूताभिशंकया सर्वसावद्यमनुष्ठानं जुगुप्समानोनैवापरलोकं कंचन गर्हति निंदति ( वुसिमंति ) संयमवानिति। तदेवं रागद्वेषवियुक्तस्य वस्तुस्वरूपाविर्नाव ने न काचिद्गर्हेत्यथ तत्रापि गर्हा न्नवति नह्युष्णोग्निः शीतमुदकं विषं मारणात्मकमित्येव मादि किंचिद्वस्तुस्वरूपमाविर्नावनीयमिति ॥ १४ ॥

आगंतगारे आरामगारे,समणेउ नीते ण उवेति वासं ॥ दरका
ढुसंते वहवे मणुस्सा, ऊणातिरित्ताय लवालवाय ॥ १५ ॥
मेहाविणो सिक्खिय बुद्धिमंता, सुत्तेहिं अत्थेहिय णिच्छयन्ना ॥ पु
छिसुमाणे अणगार अन्ने, इति संकमाणो ण उवेति तत्थ ॥१६॥

अर्थ—हवे गोशालकमतानुसारी त्रैराशिक बीजा प्रकारें करी फरी आर्द्रकुमार प्र त्यें कहेछे. के, अहो आर्द्रकुमार! तादृश तीर्थंकर राग, द्वेष, अनें नय, तेणें करी सहित छे, ए कारण माटें ते बीहितो थको ( आगंतगारे के० ) शून्यघर धर्मशालादिक तथा ( आरामगारे के० ) उद्यानादिकनें विषे ( समणेउनीते के० ) श्रमण अनें माहण थ की बीहितो थको ( णउवेतिवासं के० ) वास करतो नथी, वली शा थकी बीहितो थको वास करतो नथी? ते कहेछे. (दरकाढुसंते के० ) दक्ष एटले माहा, घणां शास्त्र ना जाणनार, पंमित, ( बहुवेमणुस्सा के०) एवा घणा पुरुषो ते पूर्वोक्त शून्य घरादिक स्थानकनें विषे आवे, मार्टे तेवा पुरुषोथकी बीहितो थको, तेवां स्थानकनें विषे ताह रो त्यां गुरु आवतो नथी पण, ते पुरुषो केवाछे तोके, ( ऊणातिरित्ताय के० ) तमारा तीर्थंकरथकी कोइ एक जात्यादिक गुणें करी ऊणाछे न्यूनछे,तथा कोइ एक अधिकछे, तो तेवानी साथें बोलतां कदाचित् हारी जाय तो मानम्लान थाय, ते कारणमाटें एवां स्थानक छांमीनें त्यागीनें देवादिकनी परषदामांहे एकांतें बेसेछे. वली ते पुरुषो केवाछे तोके, ( लवालवाय के० ) एकतो लव एटले अनेक विचित्र तर्कना बोलनार, तथा ए क अलव एटले मौनव्रती, अथवा मंत्रवादी छे के, जेनी आगल बोलतां वादीना मुख मांहेथी वचन पण निकले नही, ते कारण माटें तेनी बीकथकी तादृश तीर्थंकरें आरा म उद्यानादिक मांहे निवास करवानो त्याग कर्योछे ॥ १५॥ वली गोशालक कहेछे के, (मेहाविणोसिक्खियबुद्धिमंता के०) मेधावी जे पंमितछे ते ग्रहण करवा, धारण करवानें सामर्थ्यवान् तथा आचार्यादिकनी पासेंथी शिखेला एवा उत्पातादिक चार प्रकारनी

बुद्धियें करी सहित, (सुत्तेहिंअत्थेहिंयणिच्छयन्ना के०) वली सूत्र अनें अर्थना निश्चयना करनार, (अणगारअन्ने के०) एवा कोइ एक अन्य अणगार होय ते (पुच्छिंसुमा णे के०) मुजनें कांइ सूत्रार्थ पूछे तेनो उत्तर महाराथकी थपाशे नही, तेथी महारुं मान भंग थशे, (इतिसंकमाणोणउवेतितत्थ के०) एवी वातोथी शंका पामतो थको ताहारो गुरु तेवा पूर्वोक्त स्थानकोनें विषे वास करतो नथी, ते कारण माटें तमारो मार्ग रुजु नथी ॥ १६ ॥

---

॥ दीपिका–एवं गोशालकमतानुसारी त्रैराशिकोनिराकृतोपि पुनराह। योभवतस्तीर्थंकरः सरागद्वेषभययुक्तः। तथाहि। आगंतुकानां कार्पटिकादीनां अगारं आगंतागारं आरामेऽगारं आरामागारं तत्रासौ श्रमणोभीतः सर्वं न वासमुपैति। किं तत्र भयमित्याह। दक्षाः पंडिताद्युर्यस्माद्बहवः संति मनुष्याः। तद्भीतोसौ तत्र न याति। ऊनाः स्वतोहीनाअतिरिक्तावा जात्यादिना संति केचित् तैः पराजितस्य महान् कलाभ्रंशः स्यात्। ते नराः किंभूताः लपावाचालायोषितितर्कदंभकाः तथाऽलपामौनव्रतिकागुटिकादिविद्यायुक्ताः यद्वशाद्वागेव न निस्सरति मुखात् यद्भयात्तेषु गृहेष्वसौ न यातीति ॥ १५ ॥ मेधाविनोग्रहणधारणसमर्थाबुद्धिमंतः शिक्षिताः सूत्रेर्थेच निश्चयज्ञास्ते ईदृशाः सूत्रार्थविषयं प्रश्नमाकार्षुरनगाराएके इत्यसौ शंकमानोबिभ्यच्च तत्र तेषां मध्ये उपैति याति तथानार्यदेशे न धर्मं कथितवान् आर्येतु देशनां करोति तत्रापि न सर्वत्र किंतु? कुत्रचिदेवेति ततोसौ रागद्वेषाकुलोवीरः ॥ १६ ॥

---

॥ टीका–सएवं गोशालकमतानुसारी त्रैराशिकोनिराकृतोपि पुनरन्येन प्रकारेणाह। (आगंतागारेइत्यादि) सविप्रतिपन्नः सन्नार्द्रकमेवाह। योसौ भवत्संबंधी तीर्थंकरः सरागद्वेषभययुक्तस्तथाह्यसावागंतुकानां कार्पटिकादीनामगारमागंतागारं तथाऽरामेऽगारमारामागारं तत्रासौ श्रमणोभवत्तीर्थंकरः। तुशब्दएवकारार्थे। भीतएवासौ तपध्वंसनभयात्तत्रागंतागारादौ न वासमुपैति न तत्रासनस्थानशयनादिकाः क्रियाः कुरुते। किं तत्र भयकारणमितिचेत्तदाह। दक्षाः निपुणाः प्रभूतशास्त्रविशारदाः। हुशब्दोयस्मादर्थे। यस्माद्बहवः संति मनुष्यास्तस्मादसौ तद्भीतोन वासं तत्र समुपैति न तत्र समातिष्ठते। किंभूताः न्यूनाः स्वतोऽवमाहीनाजात्याद्यतिरिक्तावा ताभ्यां पराजितस्य महांश्छायाभ्रंशइति। तानेव विशिनष्टि। लपंतीति लपावाचालाः घोरितानेकतर्कविचित्रदंडकास्तथा न लपामौनव्रतिकानिष्ठितयोगाः गुटिकादियुक्तावा यद्वशाद्विधेयविषयावागेव न प्रवर्तते ततस्तद्भयेनासौ युष्मत्तीर्थंकृदागंतागारादौ नैव व्रजतीति ॥१५॥ पुनरपि गोशालकएवाह। (मेहावि

णोइत्यादि ) मेधा विद्यते येषां ते मेधाविनोग्रहणधारणसमर्थास्तथाऽऽचार्यादेः समीपे शिक्षां ग्राहिताः शिक्षितास्तथोत्पत्तिक्याादिचतुर्विधबुद्ध्युपेताबुद्धिमंतस्तथासूत्रेपि सूत्रविषये विनिश्चयज्ञायथावस्थितसूत्रार्थवेदिनइत्यर्थः । ते चैवंभूताः सूत्रार्थविषयं मा प्रश्नमकार्षुरन्येऽनगाराएके केचनेत्येवमसौ शंकमानास्तेषां बिभ्यन्न तत्र तन्मध्ये उपैत्युपगच्छतीति ततश्च न ऋजुमार्गेइति नययुक्तत्वात्तस्य तथा म्लेच्छविषयं गत्वा न कदाचिद्धर्मदेशनां च करोत्यार्यदेशेपि न सर्वत्रापितु कुत्रचिदेवेत्यतोविषमदृष्टित्वाद्रागद्वेषवर्त्यसाविति ॥ १६ ॥

णो कामकिच्चा णय बालकिच्चा, रायाभिउगेण कुउ भएणं ॥ वियागरेज्ञा पसिणं नवावि, सकाम किच्चं णिहआरियाणं ॥ १७ ॥ गंता च तछा अदुवा अगंता, वियागरेज्ञा समिया सुपन्ने ॥ अणारिया दंसणाउ परित्ता, इति संकमाणा ण उवेति तछ ॥ १८ ॥

अर्थ—एम गोशालकें कहे थके, हवे आर्द्रकुमार गोशालक प्रत्यें कहेछे. के, (णोकामकिच्चा के०) अहो गोशालक! ते भगवंत कामकृत्य नथी. एनो अर्थ कहेछे. के, जे अविमाश्यानो करनार होय ते पोतानें तथा परनें, निरर्थक कार्य करे. परंतु श्री भगवंत तो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी; परना हितना करनार, ते पोतानें तथा परनें निरुपकारी केम थाय? ते कारण माटें स्वामी निरर्थक कामना करनार नथी, (णयबालकिच्चा के०) तथा स्वामी बालकृत्य नथी, एटले बालकनी पेरें अणविचार्युं कार्य न करे, (रायाभिउगेण के०) तथा राजाभियोगें करी धर्मदेशनादिकनें विषे प्रवर्त्ते नहीं, (कुउभएणंवियागरेज्ञा के०) तथा कोइना भयथकी प्रश्न वागरे एटले कहे नहीं, (पसिणंनवावि के०) उपकार न होय तो कहे नहीं, एटले प्रश्न वागरे नहीं. किं बहुना उपकार विना कोइनें कांइ न कहे. अनुत्तरविमानवासी देवतानें पण, मन थकीज पूछेला प्रश्ननो निर्णय करे. हवे जे ए श्री वीतरागनो धार्मिक थाय ते केवां कार्यो करे? एवी आशंका लावी तेनो प्रत्युत्तर चोथे पदें कहेछे (सकामकिच्चंणिहआरियाणं के०) पोताना कामनें अर्थें एतावता तीर्थंकरनामकर्म खपाववा भणी आर्य क्षेत्रमां आर्य लोकनें प्रतिबोधवा वास्ते धर्म देशना करे, परंतु बीजुं कोइ आत्मप्रशंसादिक कार्य न करे. ॥ १७ ॥ वली आर्द्रकुमार कहेछे के, (गंताचतछा अदुवाअगंता के०) ते भगवंत परहितनें अर्थें त्यां जइनें, अथवा त्यां न जइनें, किंतु जेम जेम भव्य जीवोनो उपकार थाय, तेम तेम (वियागरेज्ञा के०) धर्मदेशना आपे. जो उपकार थशे, एम जाणे तो त्यां जइनें पण धर्म देशना आपे अथवा ते उ

पकार न देखे तो पासें आवेलानें पण धर्म न कहे ए कारणमाटें तेनें रागद्वेपनी संभावना नथी, तथा ( आसुपन्न के० ) सर्वज्ञ ( समिया के० ) समदृष्टि पणें एटले कोइ चक्रवर्त्ति आवी पूछे अथवा कोइ रांक आवी पूछे, अथवा अणपूछे थके पण, धर्म कहे. तथा स्वामी जे अनार्य देशनें विषे जता नथी तेनुं कारण हुं तुनें कहुं छु ते तुं सांजल. ( अणारियादंसणाउपरित्ता के० ) अनार्य लोक अनाचारी छता दर्शनथकी पण भ्रष्टछे ( इतिसंकमाणाणउवेतितछ के० ) ए माटें शंकामान थका त्यां जता नथी, ते जीव श्री वीतरागनें देखी अवहेलनादिक कर्मोपार्जनकरी पोतानें अनंत संसारनीवृद्धि करशें, एवुं जाणीनें स्वामी त्यां पधारता नथी, परंतु तेमनी सार्थे परमेश्वरने द्वेषनाव कांइ पण नथी तेमाटें राग, द्वेष, अनें नय, तेमनें कांइ नथी. तथा अहो गोशालक! जे तुं एम कहेछे के, अनेक शास्त्रज्ञ पुरुषना प्रश्नथकी वीहितो थको तेनी सनामांहे रहेतो नथी. ए पण ताहारुं वचन बाल प्रलाप प्राय जाणीयें छैयें, केमके, जे कारण माटें ए म्हारा गुरु सर्वज्ञ नगवंत केवलीछे तो तेनुं समस्त परवादिउ मुख, पण जोई न शके, तो पछी वादनुं केवुंज शुं ? माटें म्हारा स्वामीनें परवादीनो परानव कांइ नथी ए नगवंत केवलज्ञानें करी पोतानो परनो उपकार देखे त्यां जइनें धर्मोपदेश करे. इत्यर्थः ॥ १७ ॥

---

दीपिका–इति गोशालकेनोक्ते आर्द्रककुमारआह । सनगवानकामकृत्योन स्यात् अनिछाकारी न नवतीत्यर्थः । यः प्रेक्षापूर्वकारी न स्यात्सोनिष्टमपि स्वपरयोर्निरर्थकमपि कृत्यं कुर्वीत । नगवांस्तु सर्वज्ञः प्रेक्षापूर्वकारी कथं स्वपरयोर्निरुपकारकमेव कुर्यात् बालस्येव कृत्यं यस्य सबालकृत्योनासौ बालवदनालोचितकारी न राजानियोगेनासौ देशनां करोति ततः कुतस्तस्य नयेन प्रवृत्तिः स्यादेवं सति केनचित्कृतं प्रश्नं व्यागृणीयाद्वदेद्यदि तस्योपकारः स्यादुपकारं विना नवा नैव वदेत् । अथवानुत्तरसुराणां मनःपर्यायज्ञानिनां च इव्यमनसैव तन्निर्णयादतोन वदेत् स्वकामकृत्येन स्वेछाकारितया तीर्थकृन्नामकर्मणः क्षपणाय न यथाकथंचिदतोसौ इहार्यक्षेत्रे आर्याणामुपकारसंनवे धर्मं वदेत् ॥ १७॥ गंता चत्ति ) सनगवान् गत्वापि शिष्यसमीपं अथवा तत्राऽगत्वा यथा सत्वोपकारः स्यात्तथा व्यागृणीयात् देशनां कुर्यात् उपकारे सति गत्वापि कथयति असतितु स्थितोपि न वदति ततोन तेषां रागद्वेषसंनवः केवलमाशुप्रज्ञः सर्वज्ञः समतया वदेत् । "जहा पुसस्स कछइ तहा तुछस्स कछइ" इतिवचनाच्चक्रवर्तिद्रमकादिषु पृष्टोपृष्टोवा तुल्यं व्यागृणीयादित्यर्थः । कथमनार्येषु सन यातीत्याह । ( अणारियात्ति ) अनार्यादर्शनतः सम्यक्त्वात्परीतान्नष्टाइति । शंकमानोविचारयन् नगवान्न तत्रोपैति । तेहि वर्त्तमानसुखमेव

मन्यते न परलोकसुखमिति लाभादर्शनात्तत्र न याति भगवान्नतु द्वेषबुद्ध्या। यदप्युक्तं। पंमितनरगुटिकादिविद्यासिद्धभयान्न तेषां स्थाने यातीत्येतत्प्रलापप्रायं।यतः। सर्वैरपि तीर्थिकैः सर्वज्ञस्य भगवतोमुखमप्यवलोकयितुं न शक्यते वादस्तु दूरापास्तएवेति॥१८॥

---

॥ टीका–एतद्गोशालकमतं परिहर्तुकामआर्द्रकआह। (णोकामकिच्चाइत्यादि) सहि भगवान्प्रेक्षापूर्वकारितया नाकामकृत्योभवति कमनं कामइच्छा न कामोऽकामस्तेन कृत्यं कर्तव्यं यस्यासावकामकृत्यः सएवंभूतोन भवत्यनिच्छाकारी न भवतीत्यर्थः। योह्यप्रेक्षा पूर्वकारितया वर्तते सोऽनिष्टमपि स्वपरात्मनोनिरर्थकमपि कृत्यं कुर्वीत भगवांस्तु सर्वज्ञः सर्वदर्शी परहितैकरतः कथं स्वपरात्मनोर्निरुपकारकमेवं कुर्यात्तथाच बालस्येव कृत्यं यस्य सबालकृत्योन चासौ बालवदनालोचितकारी न परानुरोधान्नापि गौरवाद्धर्मदेशादिकं विधत्तेऽपितु यदि कस्यचिद्भव्यसत्वस्योपकाराय तद्भावितं भवति ततः प्रवृत्तिर्भवति नान्यथा तथा न राजाभियोगेनासौ धर्मदेशनादौ कथंचित्प्रवर्नते ततः कुतस्तस्य भयेन प्रवृत्तिः स्यादित्येवं व्यवस्थिते केनचित्क्वचित्संशयकृतं प्रश्नं व्यागृणीयाद्यदि तस्योपकारोभवत्युपकारमंतरेण नच नैव व्यागृणीयाद्यदिवाऽनुत्तरसुराणां मनःपर्यायज्ञानिनांच द्रव्यमनसैव तन्निर्णयसंभवादतोन व्यागृणीयादित्युच्यते। यदप्युच्यते भवता यदि वीतरागोऽसौ किमिति धर्मकथां करोतीति चेदित्याशंक्याह। स्वकामकृत्येन स्वेच्छाचारिकारितयाऽसावपि तीर्थकृन्नामकर्मणः क्षपणाय न यथाकथंचिदतोऽसावग्लानइहास्मिन्संसारे आर्यक्षेत्रे चोपकारयोग्यआर्याणां हि सर्वहेयधर्मदूरवर्तिनां तदुपकाराधर्मदेशनां व्यागृणीयादसाविति ॥ १७ ॥ किंचान्यत्। (गंतेत्यादि) सहि भगवान्परहितैकरतोगत्वाऽपि विनेयान्तिकमथवाप्यगत्वा यथाभव्यसत्वोपकारोभवति तथातथा भगवंतोर्हतोधर्मदेशनां विदधत्युपकारे सति गत्वापि कथयंत्यसतितु स्थिताअपि न कथयंतीत्यतोन तेषां रागद्वेषसंभवइति केवलमाशुप्रज्ञः सर्वज्ञः समतया समदृष्टितया चक्रवर्तिद्रमकादिषु पृष्टोवा धर्मं व्यागृणीयात्। जहा पुणस्स कच्छइ तहा तुच्छस्स कच्छइ इति वचनादित्यतोन रागद्वेषसद्भावस्तस्येति।यत्पुनरनार्यदेशमसौ न व्रजति तत्रेदमाह। अनार्याः क्षेत्रभाषाकर्मभिर्बहिष्कृतादर्शनतोपि परिसमंतादितागताः प्रभ्रष्टाइति यावत्। तदेवमसौ भगवानित्येतत्तेषु सम्यग्दर्शनमात्रमपि कथंचिन्न भवतीत्याशंकमानस्तत्र न व्रजतीति। यदिवा विपरीतदर्शनिनोन भवंत्यनार्याः शकयवनादयस्तेहि वर्तमानसुखमेवैकमंगीकृत्य प्रवर्तंते न पारलौकिकमंगीकुर्वंत्यतः सद्धर्मपराङ्मुखेषु तेषु भगवान्न याति न पुनर्स्तद्वेषादिबुद्ध्येति। यदप्युच्यते त्वया यथानेकशास्त्रविशारदगुटिकासिद्धविद्यासिद्धादितीर्थिकपराभवभयेन न तत्समाजे गच्छतीत्येतदपि बालप्रलपितप्रायं। यतः सर्वज्ञस्य भगव

तः समस्तैरपि प्रावाडुकैर्मुखमप्यवलोकयितुं न शक्यते वादस्तु दूरोत्सादितएवेत्यतः कुतस्तस्य परानवः। नगवांस्तु केवलालोकेन यत्रैव स्वपरोपकारं पश्यति तत्रैव गत्वा पि धर्मदेशनां विधत्तइति ॥ १ ७ ॥

पन्नं जहा वणिए उदयठी, आयस्स हेउं पगरेति संगं॥ तऊवमे समणे नायपुत्ते, इच्चेव मे होति मती वियक्को ॥१ए॥ नवं न कुज्जा विहुणे पुराणं, विच्चा मई ताइयमाह एवं॥ पन्नावया बंनवतित्ति वुत्ता तस्सोदयठी समणे त्तिबेमि ॥ ३० ॥

अर्थ–वली बीजा प्रकारें गोशालक केहेठे के,अहो आर्द्रकुमार! ( पन्नंजहावणिए उदयठी के० ) जेम कोइ वाणियो उदयार्थी एटले लानार्थी ठतो व्यवहार योग्यकरियाणुं एटले कर्पूर, अगर, कस्तूरी, अनें वस्त्रादिक, ते देशांतरथकी लेइ आवे ( आयस्सहेउंपगरेतिसंगं के०) पोताना लाननें अर्थें महाजननो संग करे,( तऊवमेसमणेनायपुत्ते के०) तेम तमारो तीर्थंकर श्रमण, ज्ञातपुत्र पण ते वाणियासमान जाणवो. केमके, कोइ एक लाननें अर्थें अनेक महाजनना वृंद मांहे बेसेठे, ( इच्चेवमेहोतिमतीवियक्को के०) माटें ए प्रकारें महारी मतिठे, अनें एवो माहारो वितर्कठे, एटले विचारणा ठे, इत्यर्थः ॥१ए॥ हवे गोशालक प्रत्यें आर्द्रकुमार कहेठे के, अहो गोशालक! जे, तें ए वाणियानो दृष्टांत देखाड्यो, ते सर्वथकी सरखो, किंवा देशथकी सरखो ? माटें जो ते दृष्टांत देशथकी सरखोठे, ए रीतें तें जो वाणियानो दृष्टांत देखाड्यो होय तो, ए वातें अमनें अलान कांइ नथी. कारण के, वाणियो ज्यां ज्यां लान देखे, त्यां त्यां क्रय विक्रयादिक व्यापार करे. ए प्रकारें ए तहारो दृष्टांत देश पणाथी सरखोठे. अथवा जो सर्वथकी सरखोठे ? एम तुं कहीश तो, ए वात, घटेज नहीं,कारणके,नगवंत श्री महावीर देव,सावद्यानुष्ठान रहित,(नवंनकुज्जाविहुणेपुराणं के०) तथा ते नवुं कर्म कोइ पण करे नहीं,अनें पुरातन कर्मनें खपावे एवाठे.तथा (विच्चामई के०) विच्चा एटले विशेषें त्याग करीने अमइ एटले डुर्मतिनें जेणे, (ताइयमाहएवं के०) त्रायी एटले ठ जीवनिकायनो रक्ष पाल, एवं एटले एवा जे श्री महावीर स्वामी ते ( पन्नावयाबंनवतित्तिवुत्ता के० ) एम कहे के, जेम डुर्गतिनें परित्यागी जीव मुक्तिगामी थाय, एवुं बोलें, स्वामीनुं वचन ते ब्रह्मव्रत ठे एटले ब्रह्म शब्दें मोक्ष व्रत कह्युं. एवुं ब्रह्मव्रत रूप जे स्वामिनुं वचन तेनें मान्य करी, अनेक लोक मुक्तियें जाय. एटले डुर्मतिनें परित्यागें जीव मुक्तिगामी थाय. (तस्सोदयठीसमणेत्तिबेमि के०) तेना लानना अर्थी श्रमण श्री महावीरदेवज जाणवा,

हुं एम कहुं बुं,ए कारणें सर्व प्रकारथकी वाणियानी ते स्वामीनें उपमा न संनवे,परंतु देशथकी ज्यां ज्यां स्वामी लान देखे, त्यां त्यां विचरे. ए उपमा सत्यछे. इत्यर्थः॥२०॥

॥ दीपिका–अथ गोशालः प्राह । यथा वणिक् उदयार्थी लानार्थी पण्यक्रयाणकं देशांतरे गत्वा विक्रीणाति आयस्य लानस्य हेतोर्महाजनसंगं प्रकरोति तडुपमया श्रमणोज्ञातपुत्रइत्येवं मे मम मतिः स्यात् वितर्कोविचारणा च ॥ १९ ॥ आर्द्रकमुनिराह । नगवान् सावद्यानुष्ठानरहितोनवं कर्म न कुर्यात् पुरातनं च विधूनाति अपनयति त्यक्त्वा अमतिं विमतिं त्रायी सनगवान् परेन्योप्येवमाह । यथा विमतित्यागेन मोक्षगामी स्यादिति । एतावता ग्रंथेन ब्रह्मणोमोक्षस्य व्रतमित्युक्तं तस्य मोक्षानुष्ठानस्य उदयार्थी लानार्थी श्रमणोनगवान् । ततोवणिग्दृष्टांतः सर्वसाधर्म्येण न प्रवर्त्तते नगवतः सावद्यानुष्ठानरहितत्वात् देशसाधर्म्येतु युक्तमेव यथा वणिग्यत्र लानं पश्यति तत्र क्रियां व्यापारयति तथा नगवानपीति एतदहं ब्रवीमीत्यार्द्रकमुनिराह ॥ २० ॥

॥टीका–पुनरन्येन प्रकारेण गोशालकआह ॥ (पन्नंजहेत्यादि) यथा वणिक् कश्चिडदयार्थी पण्यं व्यवहारयोग्यं नांमं कर्पूरागरुकस्तूरिकांबरादिकं देशांतरं गत्वा विक्रीणाति तथा आयस्य लानस्य हेतोः कारणान्महाजनसंगं विधत्ते तडुपमोयमपि नवत्तीर्थकरः श्रमणोज्ञातपुत्रइत्येवं मे मम मतिर्नवति वितर्कोमीमांसावेति ॥ १९ ॥ एवमुक्तोगोशालकेनार्द्रकआह ।(नवंनकुज्जाइत्यादि) योयं नवता दृष्टांतः प्रदर्शितः सकिं सर्वसाधर्म्येणोत देशतः?। यदि देशतस्ततोन नः क्षतिमावहति । यतोवणिग्वत् यत्रैवोपचयं पश्यति तत्रैव क्रियां व्यापारयति न यथाकथंचिदित्येतावता साधर्म्यमस्त्येव । अथ सर्वसाधर्म्येणेति तन्न युज्यते । यतोनगवान् विदितवेद्यतया सावद्यानुष्ठानरहितोनवं प्रत्यग्रं कर्म न कुर्यात् तथा विधूनयत्यपनयति पुरातनं यच्चोपग्राहि कर्मबंधं तथा त्यक्त्वा अमतिं विमतिं त्रायी नगवान् सर्वस्य परित्राणशीलोविमतिपरित्यागेन चैवंनूतएव नवतीति नावः । त्रायी वा मोक्षं प्रति। अयवयमयपयचयतयणयगतावित्यस्य रूपं। सएव नगवानेवाह । यथा विमतिपरित्यागेन चैवंनूतएव नवतीत्येतावता च संदर्नेण ब्रह्मणोमोक्षस्य व्रतं ब्रह्मव्रतमित्येतडुक्तं । तस्मिन् चोक्ते तदर्थं वाऽनुष्ठाने क्रियमाणे तस्योदयार्थी श्रमणइति ब्रवीम्यहमिति ॥ २० ॥

समारनंते वणिया नूयगामं,परिग्गहं चेव ममायमाणा॥ ते णातिसंजोगमविप्पहाय, आयस्स हेउं पगरंति संगं ॥२१ ॥ वित्ते

सिणो मेहुणसंपगाढा, ते नोयणठा वणिया वयंति ॥ वयंतु कामेसु अज्ञोववन्ना, अणारिया पेमरसेसु गिद्धे ॥ २२ ॥

अर्थ–वली आर्द्रकुमार कहेछे के, (समारनंतेवणियाजूयगामं के०) ते वाणियो चतुर्दश प्रकार पणे, नूतग्राम एटले जीवनो समूह समारंने, एतावता छकायनी हणनार एवी क्रियानें विषे प्रवर्त्ते, एटले क्रयविक्रयनें अर्थे शकट, उंट, घोडा, तथा बलदनें पीडा उपजावे, (परिग्गहंचेवममायमाणा के०) तथा परिग्रह, चतुष्पदादिक तेनें विषे ममत्व करे. वली ( तेणातिसंजोगमविप्पहायआयस्सहेउंपगरंतिसंगं के०) ते वाणिया ज्ञाति स्वजनादिकनो संयोग छांमयाविना, लाजनें कारणे अन्य बीजा सार्थे संबंध करे, अनें श्री वीतराग तो केवा छे ? तो के, छजीवनिकायना रक्षपाल, निःपरिग्रही, ज्ञातिस्वजननो संग त्यागीनें, सर्वत्र अप्रतिबंध निःकेवल धर्मनोज लान गवेषता धर्म देशना आपेछे. ए कारणमाटें नगवंत अनें वाणियानें सर्वथकी सरखा पणुं नथी ॥२१॥ वली आर्द्रकुमारज कहेछे के, हे गोशालक ! (वित्तेसिणो के०) वली वाणिया वित्त एटले धनना गवेषण हार होय, तथा (मेहुणसंपगाढा के०) मैथुननें विषे आसक्त होय, ( तेनोयणठावणियावयंति के०) तथा नोजननें अर्थे ज्यां त्यां परिज्रमण करे,माटें अमें ते वाणियानें एवा कहियें छैयें. (वयंतुकामेसुअज्ञोववना के०) वलीजो. ते वाणीया कामनोगनें विषे गृद्ध, तथा ( अणारियापेमरसेसुगिद्धे के० ) अनार्य कर्मना करनार, तथा प्रेमरसनें विषे गृद्ध एटले मूर्छित छे, अनें नगवंत श्री अरिहंत देव एवा नथी. तो ते वाणियानी सार्थे सरखा पणुं नगवंतनें केम कहियें ? ॥ २२॥

---

॥ दीपिका–वणिजोनूतग्रामं समारनंते हिंसंति परिग्रहं स्वीकुर्वंति ममायमाणाममेदमिति व्यवस्थापयंतः ते वणिजोज्ञातिसंयोगमविप्रहायात्यक्त्वा यस्य लानस्य हेतोरपरेण सह संगं संबंधं कुर्वंति ॥ २१ ॥ वणिजोवित्तैषिणोधनार्थिनः मैथुने संप्रगाढाः प्रसक्ताः तथा ते नोजनार्थमहारार्थमितश्चेतश्च व्रजंति । वयंतु एवं ब्रूमोयथा ते वणिजः कामेष्वध्युपपन्नागृद्धाअनार्याः प्रेमरसेषु गृद्धाः अतोनगवतः सर्वसाधर्म्यं नास्ति ॥ २२॥

---

॥ टीका–नचैवंनूतावणिजइत्येतदार्द्रककुमारोदर्शयितुमाह । ( समारनंतइत्यादि ) ते हि वणिजश्चतुर्दशप्रकारमपि नूतग्रामं जंतुसमूहं समारनंते तडुपमर्दिकाः क्रियाः प्रवर्तयंति क्रयविक्रयार्थं शकटयानवाहनोष्ट्रमंमलिकादिनिरनुष्ठानैरिति तथा परिग्रहं द्विपदचतुष्पदधनधान्यादिकं ममीकुर्वंति ममेदमित्येवं व्यवस्थापयंति ते हि वणिजोज्ञातिनिः स्वजनैः सह यः संयोगस्तमविप्रहायापरित्याज्य यस्य लानस्य हेतोर्निमित्तादपरेण सार्द्ध

संगं संबंधं कुर्वंति । नगवांस्तु पड्जीवरक्षापरोपरिग्रहस्त्यक्तस्वजनपक्षः सर्वत्राप्रतिबद्धो धर्मार्थमन्वेषयन् गत्वापि धर्मदेशनां विधत्ते अतोनगवतोवणिग्निः सार्द्धं न सर्वसाधर्म्य मस्तीति ॥ २१ ॥ पुनरपि वणिजां दोषमुद्भावयन्नाह । (वित्तेसिणोइत्यादि) वित्तं इव्यं तदन्वेष्टुं शीलं येषां ते वित्तैषिणस्तथा मैथुने स्त्रीसंपर्के संप्रगाढाअध्यूपपन्नास्तथा ते नो जनार्थमाहारार्थं .वणिजइतश्चेतश्च व्रजंति वदंति वा तांस्तु वणिजोवयमेवं ब्रूमोयथैते का मेष्वध्युपपन्नागृद्धाअनार्यकर्मकारित्वादनार्यारसेषुच सातागौरवादिषु गृद्धामूर्छितानन्वे वंनूतान्नगवंतोर्हतः कथं तेषां तैः सह साधर्म्यमिति? । दूरतएव निरस्तैषा कथेति ॥ २२ ॥

आरंनगं चेव परिग्गहं च, अविउस्सिया णिस्सिय आयदंमा ॥
तेसिं च से उदए जं वयासी, चउरंतणंताय डुहायणेह ॥२३॥ णेगं
त णच्चंतिय उदएवं, वयंति ते दोवि गुणोदयंमि ॥ से उदए साति
मणंतपत्ते, तमुदयं साहयइ ताइ णाइ ॥ २४ ॥

अर्थ—वली आर्द्रकुमारज कहेछे. ( आरंनगंचेवपरिग्गहंच के० ) आरंन जे सावद्या नुष्ठान रूप, तथा परिग्रह ते धनधन्यादिक, नव प्रकारें तेनी ममत्वनें (अविउस्सियाणि स्सिय के०) न गंमीनें, तेहिज आरंन परिग्रहनें विषे निश्चें थकी बंधाणा एवा वाणिया होय. वली केवा होय? तोके, ( आयदंमा के० ) पोताना आत्मानें दंमनार, ( तेसिंच सेउदएजंवयासी के०) वली हे गोशालक ! तुं कहेछे के, ते वाणिया लानना अर्थीछे. मार्टे ते लान तो एवो वाणियानो जाणवो के, (चउरंतणंतायडुहायणेह के०) ते वाणि यानें जें लानछे ते लान चतुर्गतिक संसारनें,तथा तेना डुःखनें अर्थें थाय, अनें ते वा णियानो लान एकांतिक एटले एकांत पण न होय ॥२३॥ वली तेहिज देखाडेछे. ( णे गंतणच्चंतियउदएवं के० ) वली अंहो गोशालक ! ते वाणियानो लान पण एकांतिक नथी, कोई वारें लान वांढतां अलान पण थाय. तथा आत्यंतिक एटले सर्वकालनावी लान पण नथी, कोइ वारें होय, अनें कोइ वारें न पण होय. ( वयंतितेदोविगुणोदयं मि के० )ते व्यापारना जाण एम कहेछे के, नफो पण थाय, अथवा टोटो पण थाय, ए बे नाव होय,मार्टे ते बे नाव विगतगुणोदय जाणवा. तो ते लानथकी शुं, जे एकां तिक अनें आत्यंतिक नहीं, अनें वली ते लान अनर्थ नणी प्रवर्त्ते? (सेउदएसातिमणंत पत्ते के० ) अनें ते जे श्री नगवंतनो केवलज्ञान प्राप्ति लक्षण, तथा निर्ज्जरानुं कारण, एवो जे लान, ते सादि अनंत जाणवो. ( तमुदयंसाहयइताइणाइ के० ) एवा लान सहित पोतें नगवंत छे, अनें बीजानें पण एवो लान आपेछे. ते नगवंत कहेवाछे ! तो

के, त्रायी एटले आसन्न भव्यनें डुःखथकी राखनार छे, तथा ज्ञानी एटले जाणेली व स्तुछे विद्यमान जेनें एवा भगवंतनें वाणियानी उपमा केम देवाय ? ॥ २४ ॥

---

॥ दीपिका–सारंभपरिग्रहं वाऽव्युत्सृज्याऽत्यक्त्वा तत्रैव निःसृतावद्धाआत्मैव दंभोहिं सकोयेषां ते तथा तेषां च वणिजामुदयोलाभोयदर्थं ते प्रवृत्ताः यं च त्वं लाभं वदसि स तेषां चतुरंतश्चतुर्गतिकोयः संसारोऽनंतस्तस्मै तदर्थं भवति तथा डुःखाय भवति नच स लाभोऽपि तस्यैकांतिकः ॥ २३ ॥ एतदेवाह । एकांतिकः आत्यंतिकश्च तेषां वणिजामुद योलाभोन विद्यते । लाभार्थं प्रवृत्तस्य हानेरपि दर्शनात् । एवं वदंति तद्विदः तौ च द्वावपि भावौ विगतगुणोदयौ ।कोर्थः।योनैकांतिकः१ अनात्यंतिकश्च २ किं तेन लाभे नेति यः सेतस्य भगवतउदयोलाभोधर्मदेशनादिः सच सादिरनंतश्च एवंभूतमुदयं प्राप्तो ऽन्येषामपि तादृशं साधयति कथयति । त्रायी ज्ञातीच ज्ञातं वस्तु विद्यते यस्य सज्ञा ती ज्ञातसर्वज्ञेयः एवंभूतेन भगवता तेषां पूर्वोक्तानां वणिजां कथं सर्वसाम्यमिति ॥२४॥

---

॥ टीका–किंचान्यत् । (आरंभगंचेवइत्यादि) आरंभं सावद्यानुष्ठानं च तथा परिग्रहं वाऽ व्युत्सृज्यापरित्यज्य तस्मिन्नेवारंभे क्रयविक्रयपचनपाचनादिके तथा परिग्रहेच धनधान्यहिर ण्यसुवर्णद्विपदचतुष्पदादिके निश्चयेन श्रितावद्धा निःश्रितावणिजोभवंति तथात्मैव दंभोदंभ यतीति दंभोयेषां ते भवंत्यात्मदंभाअसदाचारप्रवृत्तेरिति। भावोपि चैषां वणिजां परिग्रहारंभ वतां सउदयोलाभोयदर्थं ते प्रवृत्तायं च त्वं लाभं वदसि सतेषां चतुरंतश्चतुर्गतिकोयः संसा रोऽनंतस्तस्मै तदर्थं भवतीति न चेद्दासावेकांतेन तत्प्रवृत्तस्यापि भवतीति ॥२३॥ एतदेव दर्शयितुमाह । ( णेगंतिणच्चंतिइत्यादि ) एकांतेन भवतीत्येकांतिकस्तथा तद्वाभार्थं प्रवृ त्तस्य विपर्ययस्यापि दर्शनात्तथा नाप्यात्यंतिकः सर्वकालभावी तत्क्षयदर्शनात्ततेषां उदयोलाभोनैकांतिकोनात्यंतिकश्चेत्येवं तद्विदोवदंति । तौच द्वावपि भावौ विगतगुणो दयौ भवतः । एतडुक्तं भवति । किं तेनोदयेन लाभरूपेण योनैकांतिकोनात्यंतिकश्च प श्चादर्थायेति । यश्च भगवतः सेतस्य दिव्यज्ञानप्राप्तिलक्षणउदयोलाभोयोवा धर्मदेशनावाप्त निर्जरालक्षणः सच सादिरनंतश्च तमेवंभूतमुदयं प्राप्तोभगवानन्येषामपि तथाभूतमेवोदयं साधयति कथयति श्लाघते वा । किंभूतोभगवांस्त्रायी।अयवयमयपयचयतयणयगतावित्य स्य दंभकधातोर्णिनिप्रत्यये रूपं । मोक्षं प्रति गमनशीलइत्यर्थः । त्रायी वासन्नभव्यानां त्राण करणात्तथा ज्ञाती ज्ञाता क्षत्रियाज्ञातं वा वस्तुजातं विद्यते यस्य सज्ञाती विदितसमस्तवेद्य इत्यर्थः । तदेवंभूतेन भगवता तेषां वणिजां निर्विवेकिनां कथं सर्वसाधर्म्यमिति ॥ २४ ॥

अहिंसयं सवपयाणुकंपी, धम्मे वियं कम्मविवेगहेउं॥ तमाय
दंमेहिं समायरंता, अवोहीए ते पडिरूवमेयं ॥२५॥ पिन्नागपिंमी
मवि विद्धु सूले, केई पएज्जा पुरिसे इमेत्ति॥ अलाउयं वावि कुमा
रएत्ति, स लिप्पती पाणिवहेण अम्हं ॥ २६ ॥

अर्थ–हवे वली कहेछे के, देवोनां करेलां समवसरण, सोनानुं कमल, देवछंदो, सिंहासन. इत्यादिक पदार्थोनो परिजोग करतो थको ते,कर्मो थकी शी रीतें न लेपाय? एवुं गोशालकनुं वचन आशंकीनें,आर्द्रकुमार कहेछे के,(अहिंसयं के०) ए जगवंत श्री महावीर देव सर्वजीवनें अहिंसता एटले अणहणता थका,समवसरणादिकनो उपजोग करेछे,परंतु ते समवसरणादिक उपर, श्री वीतरागदेवनो लगारमात्र पण प्रतिबंध नथी, ए कारण माटें एमनें कर्म न लागे. वली स्वामी कहेवाछे? तो के,(सवपयाणुकंपी के०) सर्व प्रजा एटले सर्वजीव तेनी अनुकंपाना करनार,(धम्मेठियंकम्मविवेगहेउं के०) एवा श्री जगवंत धर्मनें विषे प्रवर्त्तता कर्म विवेकना कारण जूत,एवा तेउनें (तमायदंमेहिंसमायरंता के०) आत्मदंम एटले अनेक असमंजस वचनें करी तारा सरखा, आत्मदंमनें आचारता थका वणिक्नो दृष्टांत देछे, माटें (अबोहीएतेपडिरूवमेयं के०) ते अबोधी एटले अज्ञानी प्रतिरूप जाणवा, एयं एटले ए एक तेनुं अज्ञान पणुंज जाणवुं, केमके एक तो पोतें अज्ञान पणे प्रवर्त्तें,ए पेहेलुं अज्ञान पणुं. वली त्रिजगत् पूज्य, सर्व अतिशयना निधान, एवा अरिहंतनें वैश्यादिकनी उपमा आपे, ते बीजुं अज्ञान पणुं.माटें ते जीव एम करता थका पोताना बोध बीजनो नाश करेछे. इत्यर्थः ॥ २५ ॥ हवे इत्यादिक पूर्वोक्त गोशालकनां वचनोनुं निराकरण करीनें आर्द्रकुमार मुनि आगल चाल्या, तेवारें वच्चें शाक्यपुत्रियदर्शनी एटले बौद्ध मल्या. तेणें एम कह्युं के,हे आर्द्रकुमार! तें गोशालक प्रत्यें वाणियानो दृष्टांत दूषव्यो ते सुकृत कर्युं, कारण के, बाह्य अनुष्ठान, प्रायः शून्यछे, अंतरंग अनुष्ठाननेंज मोक्षांग प्रधान जाणवुं, ए कारण माटें अमारा सिद्धांतमांहे ते अंतरंगानुष्ठाननुं साधवुं कह्युंछे. ते अमें कहियें छैयें माटें तुं सावधान थको सांजल.? (पिन्नागपिंमीमविविद्धुसूले के०) पिन्नाग पिंमी एटले खलपिंमी ते अचेतनछे अनें ते कोइ एक स्थानकें छे तेनीपर कोइ एक पुरुषें वस्त्र नाख्युं, पछी ते खलपिंमनें शूलीयें प्रोइनें, (केइपएज्जा पुरिसेइमेत्ति के०) कोइ एक म्लेछें पुरुषनी बुद्धियें लइनें अग्नि उपर पचाव्यो, तथा वली ( अलाउयंवाविकुमारएत्ति के० )तुंबडुं देखीनें ए कुमारछे एवी बुद्धियें एक पुरुषें तेनें अग्नि उपर पचाव्यो,(सलिप्पतीपाणिवहेणअम्हं के०) तो हवे ए बेहुजण,पुरुष अने कुमारहत्यानें पापें लेपाय. अमारा सिद्धांतमांहे ए जावछे. शुजाशुज बंधनुं मूल. मन परि

णामज जाणवुं, चित्तमांहे जो जीवघातनो परिणामछे तो अणकर्युं थकुं पण, प्राणघातनुं पाप लागेछे ॥ २६ ॥

---

॥ दीपिका–असौ नगवान्समवसरणाद्युपनोगं कुर्वन्नप्यहिंसन् । कोर्थः । नहि तत्रार्हतः कोप्याशंसाप्रतिबंधोवास्ति साम्यरसलीनत्वात् । सर्वेषां प्रजाजंतवस्तेषामनुकंपी एवंविधं धर्मे स्थितं तं नवादृशाय्यात्मदंभैः समाचरंतोवणिगादितुल्यं कुर्वंति एतच्चाबोधेरज्ञातस्य प्रतिरूपं अज्ञानविलसितमित्यर्थः । एवं गोशाले निराकृते बौद्धाः प्राडुस्त्वया वणिग्दृष्टांतदूषणेन बाह्यानुष्ठानदूषितं तद्वरं कृतं यतोऽस्मत्सिद्धांतेप्यांतरमेवानुष्ठानं नवमोक्षयोः प्रधानांगमिति । तत्त्वं शृणु ॥२५॥ पिण्याकः खलस्तस्य पिंमी शकलमचेतनमपि कदाचिन्म्लेछादिविषये संभ्रमे केनचिन्नश्यता खलोपरि वस्त्रं क्षिप्तं तच्च म्लेछेन पुरुषोयमिति बुद्ध्या गृहीतं ततोसौ म्लेछोवस्त्रवेष्टितां खलपिंमीं पुरुषबुद्ध्या शूले प्रोतां पावके पचेत् तथाऽलाबुकं तुंबकं कुमारोयमिति मत्वाऽग्नौ पचेत् अस्माकं मते सप्राणिवधेन लिप्यते चित्तस्य डुष्टत्वात् ॥ २६ ॥

---

॥ टीका–सांप्रतं कृतदेवसमवसरणपद्मावलीदेवछंदकसिंहासनाद्युपनोगं कुर्वन्नप्याधाकर्मकृतवसतिनिषेधकसाधुवत्कथं तदनुमतिकृतेन कर्मणाऽसौ न लिप्यतइत्येतजोशालकमतमाशंक्याह । (अहिंसयमित्यादि) असौ नगवान् समवसरणाद्युपनोगं कुर्वन्नप्यहिंसकः सन्नुपनोगं करोति । एतडुक्तं नवति नहि तत्र नगवतोमनागप्याशंसाप्रतिबंधोवा विद्यते संमतृणमणिमुक्तालोष्टकांचनतया तडुपनोगं प्रति प्रवृत्तेर्देवानामपि प्रवचनोद्भिनायिषूणां कथंनु नाम नव्यानां धर्मानिमुखं प्रवृत्तिर्यथा स्यादित्येवमर्थमात्मलानार्थं च प्रवर्त्तनादतोनगवानहिंसकस्तथा सर्वेषां प्रजायंतइति प्रजाजंतवस्तदनुकंपी च तान्संसारे पर्यटतोनुकंपयते तच्छीलश्च तमेवंरूपं धर्मपरमार्थरूपे व्यवस्थितं कर्मविवेकहेतुनूतं नवद्विधाय्यात्मदंभैः समाचरंतश्रात्मकल्पं कुर्वंति। वणिगादिनिरुदाहरणैरेतच्चाबोधेरज्ञानस्य प्रतिरूपं वर्तते एकं तावदिदमज्ञानं यत्स्वतः कुमार्गप्रवर्तनं । द्वितीयं चैतत्प्रतिरूपमज्ञानं यद्भगवतामपि जगद्वंद्यानां सर्वातिशयनिधानभूतानामितरैः समत्वापादनमिति ॥ २५॥ सांप्रतमार्द्रककुमारमपहस्तितगोशालकं ततोनगवदनिमुखं गछंतं दृष्ट्वायांतराले शाक्यपुत्रीयानिक्षवइदमूचुर्येत वणिग्दृष्टांतदूषणेन बाह्यमनुष्ठानं दूषितं तच्चोनन कृतं नवता यतोऽतिफल्गुप्रायं बाह्यमनुष्ठानं अांतरमेव त्वनुष्ठानं संसारमोक्षयोः प्रधानांगमस्मत्सिद्धांते चैतदेव व्यावर्ण्यते । इत्येतदार्द्रककुमार नो राजपुत्र ! त्वमवहितः शृणु श्रुत्वाचावधारयेति नणित्वा ते निक्षुका अांतरानुष्ठानसमर्थकमात्मीयसिद्धांताविर्नावनायेदमाहुः । ( पिन्नागेत्यादि ) पिण्याकः

खलस्तस्य पिंमिर्निंत्तकं तदचेतनमपि सत् कस्मिंश्चित्संभ्रमे म्लेच्छादिविषये केनचिन्नश्यता प्रावरणं खलोपरि क्षिप्तं तच्च म्लेच्छेनान्वेष्टुं प्रवृत्तेन पुरुषोयमिति मत्वा खलपिंम्या सह गृहीतं ततोसौ म्लेच्छोवस्त्रवेष्टितां तां खलपिंमीं पुरुषबुद्ध्या शूले प्रोतां पावके पचेत् तथाऽलाबुकं तुंबकं कुमारोयमिति मत्वाऽग्नावेव पपाच सचैवंचित्तस्य दुष्टत्वात्प्राणिवध जनितेन पातकेन युज्यते। अस्मत्सिद्धांते चित्तमूलत्वाच्छुनाशुनबंधस्येत्येवं तावदकुशल चित्तप्रामाण्यादकुर्वन्नपि प्राणातिपातप्रतिघातफलेन युज्यते ॥ २६ ॥

अहवावि विद्धूण मिलक्खु सूले, पिन्नागबुद्धीइ नरं पएज्जा ॥
कुमारगं वावि अलाबुयंति, न लिप्पइ पाणिवहेण अम्हं ॥२७॥
पुरिसं च विद्धूण कुमारगं वा,सूलंमि केई पएज्जायतेए ॥ पिन्नाय
पिंमि सति मारुहेत्ता, बुद्धाण तं कप्पति पारणाए॥ २८ ॥

अर्थ–वली एहिज दृष्टांत विपरीत पणें करीनें कहेछे. ( अहवावि के० ) अथवा कोइ एक सत्यपुरुषने ( पिन्नागबुद्धिइ के० ) खलपिंमीनी बुद्धियें करी कोइ एक (मिलक्खु के० ) म्लेछ, ( सूले के० ) शूलियें करी ( विद्धूण के०) विंधीनें प्रोइनें ( नरं के०) मनुष्यनें, (पएज्जा के०) अग्नियें करी पचावे, अनें (कुमारगंवाविअलाबुयंति के०) तथा कुमार बालकनें देखीनें तेनें तुंबडानी बुद्धि लावीनें, अग्निमां पचावे, ए बेहुजणनें मनपरिणाम विशेष एवुं ( नलिप्पइपाणिवहेणअम्हं के० ) प्राणवधनुं पाप लागे नहीं, ए अमारा शास्त्रनुं रहस्य जाणवुं ॥२७॥ वली पण तेहिज दृष्टांत कहेछे ( पुरिसंचविद्धूण कुमारगंवा के०) पुरुष अथवा कुमारनें (सूलंमि के०) शूलीयें ( विद्धूण के० ) वींधीनें प्रोइनें (केइपएज्जायतेएके० ) कोइएक पुरुष अग्निनें विषे पचावे (पिन्नायपींमिसतिमारुहेत्ता के०) अनें मनमांहें एवो जाव आणे के ए खलपिंमीछे (बुद्धाणतंकप्पतिपारणाए के० ) तेनी बुद्धदर्शीजननें पण पारणा जणी कल्पेतो, अन्य बीजानुं शुं कहेवुं? एताव ता मनसायें असंकल्पितछे माटें कर्म न लागे एवो. अमारो मतछे ॥ २८ ॥

---

॥दीपिका–अथवा सत्यं पुरुषं खलबुद्ध्या कश्चिन्म्लेच्छः शूले प्रोतमग्नौ पचेत् कुमारकं बालं वाऽलाबुबुद्ध्या पचेन्नासौ प्राणिवधेन लिप्यतेस्माकमिति प्राणिवधाभिप्रायाभावात् ॥ २७ ॥ पुरुषं कुमारकंवा शूले विध्वा कश्चिज्जाततेजसि वन्हौ आरुह्य पचेत् खलपिंमीयमिति मत्वा सतीं शोजनां तदेतद्बुद्धानां शाक्यानां कल्पते पारणाय जोजनाय। एवमसंकल्पितं कर्मचयं न यात्यस्मन्मते ॥ २८ ॥

॥ टीका–अमुमेव दृष्टांतं वैपरीत्येनाह । ( अहवावीत्यादि ) अथवापि सत्पुरुषं खलबुद्ध्या कश्चिन्म्लेछः शूलप्रोतमग्नौ पचेत्तथा कुमारकं बालं तुंबकबुद्ध्याग्नावेव पचेन्न चमेवासौ प्राणिवधजनितेन पातकेन लिप्यतेऽस्माकमिति ॥ २७ ॥ किंचान्यत् । (पुरिस मित्यादि) पुरुषं वा कुमारं वा विध्वा शूले कश्चित्पचेज्जाततेजस्यग्नावारुह्य खलपिंमीयमि ति मत्वा सती शोजनां तदेतद्बुद्धानामपि पारणाय जोजनाय कल्पते योग्यं जवति कि मुतापरेषामेवं सर्वास्ववस्थास्वचिंतितं मनसा संकल्पित कर्मचयं नागच्छत्यस्मत्सिद्धांते । त डुक्तं अविज्ञानोपचितं परिज्ञानोपचितमीर्यापथिकं स्वप्नांतिकं चेति कर्मोपचयं न याति ॥ २८

*सिणायगाणं तु डुवे सहस्से, जे जोयए णितिए निक्कुयाणं॥ ते पुन्नखंधं सुमहं जिणित्ता, जवंति आरोप्प महंतसत्ता॥ २ए॥ अ जोगरूवं इह संजयाणं, पावं तु पाणा णयसंस्काउं॥ अबोहि ए दोएहवि तं असाहु, वयंति जेया विपडिस्सुणंति ॥ ३० ॥*

अर्थ–हवे वली शाक्यदर्शनीउ दानफलनो अधिकार कहेठे. ( सिणायगाणंतुडुवेसह स्से के० ) स्नातक एटले बौद्धमत प्रधान दर्शनी, तेना जे बे सहस्र तेनें ( जेनोयएणि तिएनिक्कुयाणं के० ) जे कोइ पोताना शाक्यपुत्रीय धर्म प्रवर्त्ततो एवो उपासक, प चनादिक क्रिया करीनें निक्कुने निरंतर जमाडे, ( तेपुन्नखंधंसुमहंजिणित्ता के० ) ते पुरुष महान् पुण्यस्कंध उपार्जीनें, ( जवतिआरोप्पमहंतसत्ता के० ) महोटा सत्ववालो एटले श्रद्धावंत थको आरोप्य एवे नामें सर्वोत्तम देवता थाय. इत्यर्थः॥ २ए ॥ ए रीतें बौद्धदर्शी नी पोताना धर्मनुं रहस्य, आईकुमार प्रत्यें देखाडीनें तेनें कहेवा लागा के, अहो आईकुमार.! तु अमारो धर्म मान्य कर! . एवुं कहे थके, हवे आईकुमार तेमनें क हेठे के, अहो शाक्यदर्शनीउ! ( अजोगरूवंइहसंजयाणं के० ) अंही तमारा दर्श ननें विषे जे पूर्वें जोजन आश्री वचन कह्युं ते, संयतपणानें अयोग्य ठे कारणके, अहिं सानें अर्थें प्रवर्त्तमान, समिति अनें गुप्तियें करी सहित, एवा साधु होय, तेनें जावशु द्धि फलदायिनी थाय ए वात खरीठे, परंतु तमारी वक्तव्यतायें, खल अनें पुरुषनी व्यक्ति पण जे न जाणे; तेनेंज जावशुद्धि कही. ए कारणेज बौद्धमतिउ खल पिंमीनी बुद्धियें पुरुषनो विनाश करीनें, तेना गुरुनें मांस जक्षण करावे. ते अत्यं त अयुक्तठे, तेज कहेठे. (पावंतुपाणाणयसंस्काउं के० ) प्राणी एटले जीव, तेना विनाशरूप पाप करीनें, प्रकर्षें रसगृद्ध थका वली तेनेंज पुण्य बोले माटें,(अबोहिए दोएहवितंअसाहु के०) ए पाप, अबोधीनुं कारणठे तेथी ते बेहुनें असाधु जाणवा, ते बे

हु कोण ? ते कहेछे. (वयंतिजेयाविपडिस्सुणंति कें०) एक तो जे खलपिंमीनी बुद्धियें पुरुषनें पचावे, अने तेमांहे पाप नथी एम कहे, अने बीजो जे तेमनुं एवुं वचन अंगीकार करे, ए बेहुने नलूं नथी. एवी नावशुद्धियें मोक्ष नथी, माटें हुं एवो मार्गे केम आदरुं? ॥ ३० ॥

---

॥ दीपिका–स्नातकाबौद्धशिष्यास्तेषां निक्षुकाणां सहस्रद्वयं निजे बौद्धधर्मे कश्चिडुपासकः पचनाद्यारंनं कृत्वापि नोजयेत् ते बहवोपि श्रद्धालव· पुण्यस्कंधं महांतं समावर्ज्यारोप्याख्यादेवान्नवंति महासत्वाः ॥ २ए ॥ बौद्धैरित्युक्ते आर्द्रक. प्राह । यत्तव मते कथितं तत्संयतानामयोग्यरूपमघटमानमिदं यत्प्राणानामिंद्रियादीनां घातेन पापं कृत्वा तदनाव वदंति खलबुद्ध्या पुरुषं घ्नतोपि न पापमिति पुरुषबुद्ध्या खलघाती पापवानिति वचनं तेषां अबोध्ये अबोधिलानार्थं तयोर्द्वयोरपि स्यात् । कौ द्वौ? ये एव पूर्वोक्तं वदंति येच तेन्यः शृण्वंति तयोर्द्वयोरपि असाध्वेतत् अज्ञानावृतमूढजननावशुद्ध्या शुद्धिर्न स्यादित्यर्थः ॥ ३० ॥

---

॥ टीका–पुनरपि शाक्यएव, दानफलमधिकृत्याह । ( सिणायगाणमित्यादि ) स्नातकाबोधिसत्वाः। तुशब्दात्पंचशिक्षापदिकादिपरिग्रह ।तेपां निक्षुकाणां सहस्रद्वयं निजे शाक्यपुत्रिये धर्मे व्यवस्थितः कश्चिडुपासकः पचनपाचनाद्यपि कृत्वा नोजयेत्समांसगुडदाडिमेनेष्टेन नोजनेन ते पुरुषामहासत्वाः श्रद्धालव पुण्यस्कंधं महांत समावर्ज्य तेनच पुण्यस्कंधेनारोप्याख्यादेवान्नवत्याकाशोपगा. सर्वोत्तमा देवगतिं गच्छंतीत्यर्थः ॥ २ए ॥ तदेवं बुद्धेन दानमूल· शीलमूलश्च धर्मः प्रवेदितस्तदेह्यागच्छ बौद्धसिद्धांत प्रतिपद्यस्वेत्येवं निक्षुकैरनिहितः सन्नार्द्रकोऽनाकुलया दृष्ट्या तान्वीक्ष्योवाचेदं वक्ष्यमाणमित्याह । ( अजोगरूवमित्यादि ) इहास्मिन्नवदीये शाक्यमते संयताना निक्षूणां यडुक्तं प्राक दत्यंतेनायोग्यरूपमघटमानकं तथा,ह्यहिंसार्थमुत्थितस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य पंचसमितिसमितस्य सतः प्रव्रजितस्य सम्यक् ज्ञानपूर्विकां क्रियां कुर्वतोनावशुद्धिः फलवती नवति तद्विपर्यस्तमतेस्त्वज्ञानावृतस्य महामोहाकुलीकृतांतरात्मतया खलपुरुषयोर्विवेकमजानतः कुतस्त्यानावशुद्धिरत्यंतमसांप्रतमेतद्बुद्धमतानुसारिणां यत्खलबुद्ध्या पुरुषस्य शूले प्रोतनपचनादिकं तथा बुद्धस्येवान्नबुद्ध्यापिशितनक्षणानुमत्यादिकमिति । एतदेव दर्शयति । प्राणानामिंद्रियाणामपगमेन तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्पापमेव कृत्वा रससातागौरवादिगृद्धास्तदनाव व्यावर्णयंत्येतच्च तेपां पापानावव्यावर्णनमबोध्यै अबोधिलानार्थं तयो र्द्वयोरपि संपद्यतेऽत्तोसाध्वेतत्।कयो र्द्वयोरित्याह । ये वदंति पिण्याकबुद्ध्या पुरुषपाकेपि पातकानाव येच

तेन्यः शृण्वंत्येतयोर्द्वयोरपि वर्गयोरसाध्वेतदिति । अपिच नाज्ञानावृतमूढजननावशुद्ध्य शुद्धिर्नवति । यदिच स्यात्संसारमोचकादीनामपि तर्हि कर्मविमोक्षः स्यात्तया नावशुद्धिमेव केवलामन्युपगच्छतां नवतां शिरस्तुंमसुंमनपिंमपातादिकं चैत्यकर्मादिकं चानुष्ठानमनर्थक मापद्यते तस्मान्नैवंविधया नावशुद्ध्या शुद्धिरुपजायतइति स्थितं ॥३०॥

उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, विन्नाय लिंगं तसथावराणं ॥ नूया निसंकाइ डुगंबमाणा, वदे करेज्ञाव कुउ विहत्थि ॥३१॥ पुरिसे त्ति विन्नत्ति न एवमत्थि, अणारिए से पुरिसे तहा हु ॥ कोसंनवो पिन्नगपिंमियाए, वायावि एसा बुइया असच्चा ॥ ३२ ॥

अर्थ—हवे आर्द्रकुमार, जैनमार्गना गुण कहेछे. (उड्ढंअहेयंतिरियंदिसासु के०) उंची, नीची, अने तिर्छि जे दिशिछे,ते दिशिछने विषे (तसथावराणं के०) त्रस अने स्थावर जीवोनी ( लिंगं के० ) अहिनाण, चलन, स्पंदन, अंकुरोन्नवादिक, उत्पत्तिनें ( विन्नाय के० ) जाणीनें, (नूयानिसंकाइडुगंबमाणा के०) नूत जे जीव तेनी अनिशंकायें के, रखे कोइ जीवनो घात उपजे! एवा नावें पापना नयथकी, सर्व सावद्यानुष्ठाननें डुगंबता जीवनां मर्दननें परिहरता थका, ( वदे के० ) वदे एटले धर्मोपदेश आपे. ( करेज्ञाव के०) तथा यावत् क्रिया अनुष्ठान पण करे,(कुउविहत्थि के०) तो हवे एवी रीतें अनुष्ठान करतां, तथा बोलतां अमारा पक्षनें विषे तमारो उपजावेलो दोष कोइ नथी॥३१॥ हवे खलपिंमीनें विषे पुरुषनी बुद्धिनो असंनव देखाडेछे. (पुरिसेत्तिविन्नत्तिनएवमत्थि के० ) खलपिंमीनें विषे ए पुरुषजछे,एवी बुद्धि तो जे अत्यंत मूर्ख होय तेनें पण न उपजे? ते कारणें ( अणारिएसेपुरिसेतहाहु के०) जे एवी बुद्धि करे, अनें एम कहे के एनें हणवामां दोष नथी, ते निश्चें थकी अनाचारी पुरुष जाणवो,(कोसंनवोपिन्नगापिंमियाए के०) खलपिंमिकानें विषे जे पुरुषनी बुद्धि करवी, ते वातज केम संनवें! माटें (वायाविएसाबुइयाअसच्चा के०) एवी वाणी बोलवी,ते पण असत्य कहीछे, माटें एवी नाषानो बोलनार निर्विवेकी, कर्म बंधनें करी बंधाय. अनें अनंतो संसार वधारे. इत्यर्थः ॥३२॥

---

॥ दीपिका—ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च सर्वदिक्षु त्रसस्थावराणां लिंगं जीवलचिन्हं विज्ञाय नूताभिशंकया जीवघातोत्र नावीति बुद्ध्या सर्वमनुष्ठानं जुगुप्समानस्तद्घातं परिहरन्वदेत्कुर्यादपीति कुतोस्तीह त्वडुक्तोदोषः । न कश्चित्तत्रास्मन्मते दोषोस्तीत्यर्थः ॥ ३१ ॥ तस्यां पिण्याकपिंमयां पुरुषोयमिति विज्ञप्तिर्मतिर्नास्ति जडस्यापि तस्माद्यएवं वक्ति सपुरुषो

ऽनार्यएव। कः संनवः पिण्याकपिंम्यां पुरुषबुद्धेः? अतोवागप्येषाऽसत्या कथिता तस्मात्पि ण्याककाष्ठादावपि प्रवर्त्तमानेन जीवोपमर्दनीरुणा साशंकेनैव प्रवर्त्तितव्यं ॥ ३२ ॥

॥ टीका–परपक्षं दूषयित्वाईकः स्वपक्षाविर्नावनायाह । (उड्डमहेयमित्यादि) ऊर्ध्व मधस्तिर्यक्षु यादिशः प्रज्ञापनादिकास्तासु सर्वास्वपि दिक्षु त्रसानां स्थावराणां च जंतूनां यत्त्रसस्थावरत्वेन जीवलिंगं चलनस्पंदनांकुरोद्भवछेदम्लानादिकं तद्विज्ञायते नूतानिशं कया जीवोपमर्दोत्र नविष्यतीत्येवंबुद्ध्या सर्वमनुष्ठानं जुगुप्समानस्तडपमर्दं परिहरन् व देत् कुतोप्यतः कुतोस्तीहास्मिन्नेवंनूतेऽनुष्ठाने क्रियमाणे प्रोच्यमाने वास्मत्पक्षे युष्मदा पादितोदोषइति ॥ ३१ ॥ अधुना पिण्याके पुरुषबुद्ध्याऽसंनवमेव दर्शयितुमाह । (पु रिसेत्यादि) तस्यां पिण्याकबुद्ध्यां पुरुषोयमित्येवमत्यंतजडस्यापि विज्ञप्तिरेव नास्ति त स्माद्यएवं वक्ति सोऽत्यंतोपुरुषस्तथान्युपगमेन तुशब्दस्यैवकारार्थत्वेऽनार्यएवासौ यः पुरु षमेव खलोयमिति मत्वा हतेपि नास्ति दोषइत्येवं वदेत् । तथाहि । कः संनवः पिंम्यां पुरुषबुद्धेरित्यतोवागपीयमीदृगसत्येति सत्वोपघातकत्वाच्चतश्च निःशंकप्रहार्यनालोचको निर्विवेकतया बध्यते तस्मात्पिण्याककाष्ठादावपि प्रवर्त्तमानेन जीवोपमर्दनीरुणा सा शंकेन प्रवर्त्तितव्यमिति ॥ ३२

वायाभियोगेण जमावहेज्जा, णो तारिसं वायमुदाहरिज्जा ॥ अ
ठाणमेयं वयणं गुणाणं, णो दिक्खिए बूयसुरालमेयं ॥३३॥ लद्धे
अठे अहो एव तुम्हे, जिवाणुनागे सुविचिंतिएव ॥ पुव्वं समुद्दं अ
वरं च पुठे, उलोइए पाणितले ठिएवा ॥ ३४ ॥

अर्थ–वली पण आर्द्रकुमार कहेठे के, (वायाभियोगेण के०) वचननें अभियोग पणें एटले (जमावहज्जा के०) वचन मात्र बोलता थकां पण जे पाप लागे, (णोता रिसंवायमुदाहरिज्जा के०) तादृश तेवुं वचन विवेकी पुरुष न बोले. (अठाणमेयंवय णंगुणाणंणोदिक्खिएबूयसुरालमेयं के०) गुणनुं अस्थानरूप एवुं असार वचन, तेने जे दीक्षित माह्यो पुरुष होय ते न बोले, के जे खलपिंमनें पुरुष, अनें पुरुषनें खलपिंम, तथा तुंबडानें बालक, अनें बालकनें तुंबडुं, इत्यादिक वचन उत्तम पुरुष न बोले. इत्य र्थः ॥३३॥ वली पण आर्द्रकुमारज कहेठे के, (लद्धेअठेअहोएवतुम्हे के०) अहो शाक्य दर्शनीउं! तमने एवे ज्ञाता पणे करीनें जाणियें ठैयें, जे तमोनें विज्ञान ते यथावस्थित तत्व, लाध्युं. एटले तमे तत्व पाम्या. (जिवाणुनागेसुविचिंतिएव के०) तथा तमें जीवनो अनु नाग जे कर्मविपाक, ते रुडीरीतें चिंतव्यो, (पुव्वंसमुद्दंअवरंचपुठे के०) तथा एवा वि

ज्ञानें करी तमारो यश पूर्व अनें पश्चिम समुद्र सुधी पहोतो, विस्तार पाम्यो, ( नलोइए पाणितलेहिएवा के० ) तथा तमोयें एवे विज्ञानें करी, अवलोकन करवे करी, ए लोकनें पाणितलस्थितनी पेरें अवलोक्यो, तो अहो ! अमें तमारा विज्ञानना अतिशयनुं वर्णन शुं करियें ? एवुं तमारा सरखुं ज्ञातापणुं क्यांही पण देखातुं नथी,जे खलपिंम अनें पुरुष, तथा तुंबडुं, अनें बालकनो अंतर कांइ पण जणाय नहीं, तो वली हवे जाणपणामां बाकी पण शुं रह्युं? ॥ ३४ ॥

---

॥ दीपिका–वाचानियोगोवागनियोगस्तेन यदावहेत्कुर्यात् पापं कर्म तादृशीं वाचं नोदाहरेन्न वदेत् एतद्वचनं गुणानामस्थानं दीक्षितोन ब्रूयात् उदारं सुष्ठु निःसारमिति यत्खलेपि पुरुषः पुरुषोपि खलः अलाबुकं बालकः बालकोवाऽलाबुकमिति निःसारत्वमित्यर्थः॥ ३३ ॥ अहो ! एवमंगीकृते सति युष्माभिरथानंतरमर्थस्तत्वं लब्धं जीवानामनुकर्मविपाकः भागः सुविचिंतितः एवंभूतेन ज्ञानेन भवतां यशः पूर्वं समुद्रमपरं च पृष्ठं गतमित्यर्थः । भवद्भिरवलोकितएवायं लोकः पाणितलस्थितइवेति ॥ ३४ ॥

---

॥ टीका–किंचान्यत् । ( वायाभियोगेणमित्यादि ) वाचाभियोगोवागभियोगस्तेनापि यद्यस्मादावहेत्पापं कर्म ततोविवेकी भाषागुणदोषज्ञोन तादृशीं भाषामुदाहरेन्नाभिदध्यादतएवं ततोऽस्थानमेतद्वचनं गुणानां नहि प्रव्रजितोयथावस्थितोर्थाभिधाय्येत उदारं सुष्ठु परिस्थूरं निःसारं निरुपपत्तिकं वचनं न ब्रूयात् तद्यथा पिण्याकोपि पुरुषः पुरुषोपि पिण्याकस्तथाऽलाबुकमेव बालकोबालकएवाऽलाबुकमिति ॥३३ ॥ सांप्रतमार्द्रककुमारएव तं भिक्षुकं युक्तिपराजितं संतं सोल्लुंठं विभणिषुराह । ( लद्धेत्यादि ) अहो युष्माभिरथानंतर्ये एवंभूताभ्युपगमे सति लब्धार्थोविज्ञानं यथावस्थितं तत्वमिति तथावगतः सुचिंतितोभवद्भिर्जीवानामनुभागः कर्मविपाकस्तत्पीडेति तथैवंभूतेन विज्ञानेन भवतां यशः पूर्वसमुद्रमपरंच पृष्ठं गतमित्यर्थः । तथा भवद्भिरेवंविधविज्ञानावलोकनेनावलोकितः पाणितलस्थइवायं लोकइति अहो ! भवतां विज्ञानातिशयोयद्युत भवंतः पिण्याक पुरुषयोर्बालालाबुकयोर्वा विशेषानभिज्ञया पापस्य कर्मणोयथैतद्भावाभावं प्राकल्पितवंतइति ॥ ३४ ॥

जीवाणुभागं सुविचिंतयंता, आहारिया अन्नविहायसोहिं ॥ न
वियागरे छन्नपन्नपजीवि, एसोणुधम्मोइह संजयाणं ॥ ३५ ॥
सिणायगाणं तु ञ्वे सहस्से, जे भोयए निइए भिक्खुयाणं ॥ अ
संजए लोहियपाणि सेऊ, णियछत गरिहंमिहेव लोए ॥ ३६॥

अर्थ–हवे आर्द्रकुमार जैनमतनी स्थापना करेछे. ( जीवाणुनागंसुविचिंतयंता के०) जिनशासननें विषे प्रतिपन्न जे पुरुष ते, जीवनो अणुनाग अवस्थाविशेष, तेनुं मर्दन जे पीडानी उत्पत्तिरूप दुःख तेनें रुडी रीतें चिंतवता थका, (आहारियाअन्नविहायसोहिं के०) आहारिया एटले अन्नपाणीनें विषे विशुद्धता आदरेछे. एटले बहेंतालीश दोष रहित एवो विशुद्ध आहार लियेछे, परंतु तमारी पेरें मांसादिक पण, पात्रें पड्यो दोष नणी न थाय, तेम तेनें नथी? अनें तमे तो केवाछो, तो के (नवियागरेछन्नपउपजीवि के०) छिन्नपदोपजीवि एटले हिंसानें स्थानकें करी उपजीवन करोछो, पण इत्यादिक वचन प्रसिन्नपणे न बोलो. तेवा जैनमतना धारक पुरुष न होय? (एसोणुधम्मोइहसंजयाणं के०) ए पूर्वोक्त निर्दोष आहारनें लेवे करी, छ कायनें पालवे करी, तीर्थंकरनें अनुयायि, होय. ते संयत एटले साधुनो धर्म जाणवो॥३५॥ वली आर्द्रकुमार कहेछे, शुं कहेछे? तो के, (सिणायगाणंतुडुवेसहस्से के०)स्नातक जे बौद्धमति दर्शन धारक तेना बे हजार निक्षुक एटले शाक्यपुत्रीयधर्मे प्रवर्त्तता निक्षुक तेनें (जेनोयएनिइएनिरकुयाणं के०) जे पचन पाचनादिक क्रिया करीनें नित्य जमाडे, तेनें लान थायछे, पुण्य थायछे, एवुं तमे कहोछो परंतु, ( असंजए लोहियपाणिसेक के० ) ते असंयत लोहितपाणि एटले जेना हाथ सदा काल लोहियें करी खरड्याछे तेवो ते अनार्य पुरुष, ( णियछतीगरिहमिहेवलोए के०) प्रथमतो आ लोकमांहेज गर्हा पामे, अनें परलोकें परनवे दुर्गतिमां जाय. केमके एवा सावद्यानुष्ठानना करनार, अनक्ष्य अनें अपेयनुं जे दान, तेना अनुमोदनार एवा कुपात्रनें जे दान देवुं. ते कर्म बंधनुं कारणछे ॥ ३६ ॥

---

॥ दीपिका–सोपहासमुक्त्वार्द्रकमुनिः स्वपक्षमाह जिनमतप्रतिपन्नाः जीवानुनागं सुष्ठु विचिंतयंतोऽन्नविधौ शुद्धिमाहृतवंतः स्वीकृतवंतः । नवतां तु मांसाद्यपि पात्रपतितं न दोषाय तथा छन्नपदं मातृस्थानं तेनोपजीवी सन्न व्यागृणीयात् मायया न वदेदित्यर्थः। एषपश्चाद्धर्मोऽनुधर्मइह जैनमते संयतानां साधूनां अर्हदनुष्ठानानंतरं स्यादित्यनुधर्मः ॥३५॥ स्नातकानां बौद्धानां निक्षूणां नित्यं यः सहस्रद्वयं नोजयेदित्युक्तं प्राक् तद्दूषयति । असंयतः सन् रुधिरक्लिन्नपाणिरिहैव लोके सगर्हां नियछति निश्चयेन गछति॥३६॥

---

॥ टीका–तदेवं परपक्षं दूषयित्वा स्वपक्षस्थापनायाह । ( जीवाणुनागमित्यादि ) मौनींद्रशासनप्रतिपन्नाः सर्वज्ञोक्तमार्गानुसारिणोजीवानामनुनागमवस्थाविशेषं तडुपमर्दनं पीडां वा सुष्ठु विचिंतयंतः पर्यालोचयंतोन्नविधौ शुद्धिमाहृतवंतः स्वीकृतवंतोद्विचत्वारिंशद्दोषरहितेनाशुद्धेनाहारेणाहारं कृतवंतोनतु यथा नवतां पिशिताद्यपि पात्रपतितं न दो

पायेति । तथा ठन्नपदोपजीवी मातृस्थानोपजीवी सन् न व्यागृणीयादेपोनंतरोक्तोऽनु पश्चाद्धर्मोनुधर्मस्तीर्थकरानुष्ठानादनंतरं नवतीत्यमुना विशिष्यते। इहास्मिन् जगति प्रवचने वा सम्यग्यतानां सत्साधूनां नतु पुनरेवंविधोनिक्षूणामिति।यच्च नवद्भिरोदनादेरपि प्राण्यंगसमानतया हेतुनूततया मांसादिसादृश्यं चोत्पद्यते तदविज्ञाय लोकतीर्थांतरीयमतं । तथाहि। प्राण्यंगत्वे तुल्येपि किंचिन्मांसं किंचिन्नामांसमित्येवं व्यवह्रियते।तद्यथा गोक्षीररुधिरादेर्नक्ष्यानक्ष्यव्यवस्थितिस्तथा समानेपि स्त्रीत्वे नार्याश्वश्र्वादौ गम्यागम्यव्यवस्थितिरिति। तथा शुष्कतर्कदृष्ट्या योयं प्राण्यंगत्वादिति हेतुर्नवतोपन्यस्यते। तद्यथा "नक्षणीयं नवेन्मांसं, प्राण्यंगत्वेन हेतुना ॥ ओदनादिवदित्येवं. कश्चिदाहेति तार्किकः" ॥१॥ सोसिद्धानैकांतिकविरुद्धदोषडुष्टत्वादपकर्णनीयः । तथाहि । निरंशत्वाद्वस्तुनस्तदेव मांसं तदेव च प्राण्यंगमिति प्रतिज्ञार्थैकदेशादसिद्धः । तद्यथा नित्यः शब्दोनित्यत्वादथ निन्नं प्राण्यंगं ततः सुतरामसिद्धोव्यधिकरणत्वाद्यथा देवदत्तस्य गृहं काकस्य कार्ष्ण्यात्तथानैकांतिकोपि श्वादिमांसस्यानक्ष्यत्वादथ तदपि क्वचित्कथंचित्केपांचिन्नक्ष्यमिति चेदेवं च सत्यश्वादेर्नक्ष्यत्वादनैकांतिकत्वं । तथा विरुद्धाव्यनिचार्यपि यथार्यहेतुर्मांसस्य नक्ष्यत्वं साधयत्येवं बुद्धांस्त्वामपूज्यत्वमपि। तथा लोकविरोधिनी चेयं प्रतिज्ञा। मांसोदनयोरसाम्याद्दृष्टांतविरोधश्चेत्येवं व्यवस्थिते यदुक्तं प्राग्यथाबुद्धानामपि पारणाय कल्पतएतदिति तदसाध्विति इति स्थितं ॥ ३५ ॥ अन्यदपि निक्षुकोक्तमार्द्रकुमारोऽनूद्य दूषयितुमाह । ( सिणायगाणंतुइत्यादि) स्नातकानां बोधिसत्वकल्पानां निक्षूणां नित्यं यः सहस्रद्वयं नोजयेदित्युक्तं प्राक् तद्दूषयत्यसंयतः सन् रुधिरक्लिन्नपाणिरनार्यश्च गर्हां निंदां जुगुप्साप दवीं साधुजनानामिह लोकएव निश्चयेन गछति परलोके वाऽनार्यगम्यां गतिं यातीति॥३६॥

थूलं उरब्भं इह मारियाणं, उद्दिठ्ठनत्तं च पगप्पएत्ता ॥ तं लोणतेल्लेण उवरकडेत्ता, सपिप्पलीयं पगरंति मंसं ॥ ३७ ॥ तं नुंजमाणा पिसितं पनूतं, ण उवलिप्पामो वयं रएणं ॥ इच्चेव माहंसु अणऋधम्मं, अणारिया बाल रसेसु गिद्धा ॥ ३८ ॥

अर्थ—वली पण आर्द्रकुमार ते कुमतिना मतनी वात कहेले. के,( थूलं के० ) महोटी कायायें उपचित मांस शोणित युक्त एवो, ( उरब्भं के० ) उरणो तेनें ( इह के० ) आ शाक्यना शासननें विषे संघनी नक्तिनें अर्थे ( मारियाणं के० ) विनाशीनें मारीनें ( उद्दिठ्ठनत्तंचपगप्पएत्ता के० ) उद्दिष्ट नोजन कल्पीनें ( तंलोणतेल्लेणउवरकडेत्ता के० ) ते मांसनें लूण, अनें तेल सायें पचावीनें, ( सपिप्पलीयंपगरंतिमंसं के० ) पिप्पली स

हित मांस करे ॥ ३७ ॥ एवुं मांस करीनें पछी शुं करे, ? ते कहेछे के, ( तंभुंजमाणा पिसितंपभूतं के० ) ते मांस, प्रभूत एटले घणुं जमतां थकां भोगवतां थका एम कहेछे के, ( णउवलिप्पामोवयंरएणं के० ) अमें एनी पापरूप रजें करी लेपाता नथी. ( इच्चेवमाहंसुअणज्जधम्मं के० ) एवुं वचन कहे, ते अनार्यधर्मी जाणवा, कारण के, ते धृष्ट पणुं आदरेछे. ( अणारियाबालरसेसुगिद्धा के० ) ते अनाचारी बाल, एटले अज्ञानी रसगृद्धी थका एवां वचन कहेछे ॥ ३८ ॥

॥ दीपिका–आर्द्रकएव तन्मतमाह । स्थूलमुरभ्रं इह बौद्धमते हत्वा उद्दिष्टभक्तंच प्रकल्प्य, तन्मांसं लवणतैलाभ्यां संस्कृत्य सपिप्पलीकं कुर्वंति ॥ ३७ ॥ तत्पिशितं मांसं प्रभूतं भुंजानाअपि वयं रजसा नोपलिप्यामहे । एवमनार्यधर्मा दुष्टस्वभावाअनार्या इवाऽनार्याबाला रसेषु मांसादिषु गृद्धाः ॥ ३८ ॥

॥ टीका–एवं तावत्सावद्यानुष्ठानानुमंतृणामपात्रभूतानां यद्दानं तत्कर्मबंधायेत्युक्तं । किंचान्यत् । ( थूलंउरब्भमित्यादि ) आर्द्रकुमारएव तन्मतमाविष्कुर्वन्निदमाह स्थूलं बृहत्कायमुपचितं मांसशोणितमुरभ्रमूरणकमिह शाक्यशासने भिक्षुकसंघोद्देशेन व्यापाद्य घातयित्वा तथोद्दिष्टभक्तंच प्रकल्पयित्वा तमुरभ्रं तन्मांसंच लवणतैलाभ्यामुपसंस्कृत्य पाचयित्वा सपिप्पलीकमपरद्रव्यसमन्वितं प्रकर्षेण भक्षणयोग्यं मांसं कुर्वंतीति ॥ ३७ ॥ संस्कृत्यच यत्कुर्वंति तद्दर्शयितुमाह ( तंभुंजमाणाइत्यादि ) तत्पिशितं शुक्रशोणितसंभूतमनार्याइव भुंजानाअपि प्रभूतं तद्रजसा पापेन कर्मणा न वयमुपलिप्यामहइत्येवं धार्ष्ट्योपेताः प्रोचुरनार्याणामिव धर्मः स्वभावोयेषां ते तथानार्यकर्मकारित्वादनार्याबाला इव बालाविवेकरहितत्वाद्रसेषुच मांसादिकेषु गृद्धाअध्युपपन्नाः ॥ ३८ ॥

जे यावि भुंजंति तहप्पगारं, सेवंति ते पावमजाणमाणा ॥ मणं
न एयं कुसला करेंती,वायावि एसा बुइयाउ मिछा ॥३ए॥ सव्वेसिं
जीवाणदयठ्याए, सावज्जदोसं परिवज्जयंता ॥ तस्संकिणो इ
सिणो नायपुत्ता, उद्दिछभत्तं परिवज्जयंति ॥ ४० ॥

अर्थ–हवे ते मांसाशीनें एनो विपाक कहेछे. (जेयाविभुंजंतितहप्पगारं के०)जे रसगृद्ध थता तथा प्रकारें मांसनें जमे, (सेवंतितेपावमजाणमाणा के०) ते अज्ञानी पुरुषो निःकेवल पापनुं सेवन करेछे.(मणंनएयंकुसलाकरेंति के०)जे कुशल एटले पंमित होय ते मांसभक्षण करीयें, एवुं मन पण न करे. तथा (वायाविएसाबुइयाउमिछा के०) मांसभक्षणथी दोष

नथी एवी असत्य वाणी पण बोले नहिं. किंबहुनाः वधारे शुं कहियें ॥ ३९॥ हवे मांसादिक तो अनक्ष्य कहेवाय, त्यारें बीजो आहार साधुनें अनक्ष्य होय के नहीं ? त्यां कहेछे के, बीजो पण सदोष आहार, साधुनें परिहरवो (सवेसिंजीवाणदयछयाए के०) सर्व जीव एकेंड्रियादिक तेनी दयानें अर्थें, दयानें निमत्तें (सावज्जदोसंपरिवज्जयंता के०) सावद्य जे आरंनादिक, तेनें महा दोपरूप जाणी, परिहरतां थकां (तस्संकिणोइसिणोनायपुत्ता के०) ते सावद्यना दोष थकी शंकाता एटले बीहिता एवा महाक्रुषीश्वर ज्ञात पुत्र श्रीमहावीर देव तेमना शिष्यो होय. ते (उद्दिहनत्तंपरिवज्जयंति के०) उद्दिष्टनक्त एटले जे साधुनें देवानें अर्थेंज कल्पेलो एवो आहार होय, तेनें परिहरे वर्जे. ए साधुनो आचार जाणवो ॥ ४० ॥

---

॥ दीपिका–ये बौद्धाअपि तथाप्रकारं मांसं ञुंजते ते पापमजानंतोनिर्विवेकिनः संतः सेवंते । यडुक्तं । "हिंसामूलममेध्यमास्पदमलं ध्यानस्य रौड्स्य य,द्वीनत्सं रुधिराविलं कृमिगृहं डुर्गंधिपूयादिकं ॥ शुक्रासृक्प्रनवं नितांतमलिनं सद्भिः सदा निंदितं, कोञ्जुंक्ते नरकाय राक्षससमोमांसं तदात्मडुहः ॥ १ ॥ तथा । मां स नक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहं ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः ॥ २ ॥ योऽत्ति यस्य च तन्मांसमुनयोः पश्यतांतरं ॥ एकस्य क्षणिका तृप्तिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते" ॥३॥ तदेवं दोषं मत्वा कुशला मांसानिलापे मनोन कुर्वंति वागप्येषा न मांसनक्षणे दोषइत्यादिका उक्ता सती मिथ्या निवृत्तिस्तु महागुणाय । यडुक्तं । "श्रुत्वा डुःखपरंपरामतिघृणां मांसाशिनां डुर्गतिं, ये कुर्वंति शुनोदयेन विरतिं मांसादनस्यादरात् ॥ तद्दीर्घायुरदूषितं तदरुजासंनाव्य यास्यंति ते, मर्त्येषूद्भटनोगधर्ममतिषु स्वर्गापवर्गेषु वा" इति ॥ ३९ ॥ सर्वेषां जीवानां दयार्थाय सावद्यदोषं परिवर्जयंतः तच्छंकिनोदोषशंकिनः ऋषयोज्ञातपुत्रीयाः श्री वीरशिष्याउद्दिष्टनक्तं परिवर्जयंति ॥ ४० ॥

---

॥ टीका–इत्येतच्च तेषां महतेऽनर्थायेति दर्शयति (जेयावीत्यादि) येचापि रसगौरवगृद्धाः शाक्योपदेशवर्त्तिनस्तथाप्रकारं स्थूलोरच्रंसंस्कृतं घृतलवणमरिचादिसंस्कृतं पिशितं ञुंजतेऽश्नंति तेऽनार्याः पापं कल्मषमजानानिर्विवेकिनः सेवंते आददते । तथा चोक्तं । "हिंसामूलममेध्यमास्पदमलं ध्यानस्य रौड्स्य य,द्वीनत्सं रुधिराविलं कृमिगृहं डुर्गंधिपूयादिकं ॥ शुक्रासृक्प्रनवं नितांतमलिनं सद्भिः सदा निंदितं, कोञ्जुंक्ते नरकाय राक्षससमोमांसं तदात्मद्रुहः ॥ १ ॥ अपिच । मां स नक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहं । एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः ॥ २ ॥ तथा । योऽत्ति यस्य च तन्मांसमुनयोः

पश्यतांतरं । एकस्य क्षणिका तृप्तिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते" ॥ ३ ॥ तदेवं महादोषं मांसादन मिति मत्वा यद्विधेयं तद्दर्शयति। एतदेवंभूतं मांसादनाभिलाषरूपं मनोंतःकरणं कुश लानिपुणामांसाशित्वविपाकवेदिनस्तन्निवृत्तिगुणाभिज्ञाश्च न कुर्वंति तदभिलापादात्म नोनिवर्त्तयंतीत्यर्थः। आस्तां तावद्भक्षणं वागप्येषा यथा मांसभक्षणेऽदोषइत्यादिका शास्त्र निहितोक्ता मिथ्या। तुशब्दान्मनोपि तदनुमत्यादौ न विधेयमिति तन्निवृत्तौ चेहैवानुपमा श्लाघाऽमुत्र च स्वर्गापवर्गगमनमिति । तथाचोक्तं । "श्रुत्वा दुःखपरंपरामतिघृणां मां साशिनां दुर्गतिं, ये कुर्वंति शुभोदयेन विरतिं मांसादनस्यादरात् । तद्दीर्घायुरदूषितं गदरुजा संभाव्य यास्यंति ते, मर्त्येषूद्भटभोगधर्ममतिषु स्वर्गापवर्गेषु चेत्यादि" ॥ ३९ ॥ न केवलं मां सादनमेव परिहार्यमन्यदपि मुमुक्षूणां परिहर्तव्यमिति दर्शयितुमाह । ( सव्वेसिमित्यादि ) सर्वेषां जीवानां प्राणार्थिनां न केवलं पंचेंद्रियाणामेवेति सर्वग्रहणं दयार्थतया दयानिमि त्तं सावद्यमारंभं महानयं दोषइत्येवं मत्वा तत्परिवर्जयंतः साधवस्तच्छंकिनोदोषशंकिन ऋषयोमहामुनयोज्ञातपुत्रीयाः श्रीमन्महावीरवर्द्धमानशिष्याः उद्दिष्टं दानाय परिकल्पि तं यद्भक्तपानादिकं तत्परिवर्जयंति ॥ ४० ॥

भूयाभिसंकाए दुगंछमाणा, सव्वेसिपाणाण निहाय दंमं ॥ तम्हा
ण भुंजंति तहप्पगारं, एसोणुधम्मो इह संजयाणं ॥ ४१ ॥ निग्गं
थधम्मंमि इमं समाहिं, अस्सिंस सुठिच्चा अणिहे चरेज्जा ॥ बुद्धे
मुणी सीलगुणोववेए, अवत्तते पाउणती सिलोगं ॥ ४२ ॥

अर्थ—वली पण साधुनो आचार कहेछे. ( भूयाभिसंकाएदुगंछमाणा के० ) भूत जे प्राणी तेना मर्दननी शंकायें सावद्यानुष्ठाननें दुगंछता निंदता, तथा ( सव्वेसिपाणाण निहायदंमं के० ) सर्व प्राणीनो दंम एटले विनाश, तेनें निहाय एटले छांमीनें त्याग करी नें सम्यक् आचारें प्रवर्त्तता एवा साधु ( तम्हाणभुजंतितहप्पगारं के० ) ते कारणें त था प्रकारना एटले आधाकर्मादिक दोषें दूषित एवा ते आहारनें ण भुजंति एटले न ज मे, न भोगवे. ( एसोणुधम्मोइहसंजयाणं के० ) आ जगतमांहे यतिनो धर्म, ते अ णुधर्म, एटले श्री तीर्थंकरनी पठवाडे जाणवो. जेम श्री तीर्थंकरें निर्दोष आहार ग्रह णादिक धर्म आचर्यो, तेम तेनें अनुसारें साधु पण, एहिज धर्म आचरे. इत्यर्थः ॥ ४१ ॥ व ली पण साधुनो आचार कहेछे. ( निग्गंथधम्मंमिइमंसमाहिं के० ) नथी जेनें विषे बा ह्य अनें अभ्यंतर ग्रंथि एवो जे धर्म, तेने विषे ए पुर्वोक्त जे समाधि एटले सुजता अहारनुं ले वुं, (अस्सिंससुठिच्चाअणिहेचरेज्जा के०) इत्यादिकनें पामीनें सम्यक् अनुष्ठानरूप समाधिनें

विषे स्थित एटले प्रवर्त्तमान एवो साधु अणिहे एटले मायारहित थको अथवा, स्नेहरहित थको, संयमानुष्ठाननें आचरे, एटले पाले. ( बुद्धेमुणीसीलगुणोववेए के० ) बुद्ध एटले तत्त्वनो जाण, मुणी एटले त्रिकालवेदी, त्रण कालनो जाण, सील एटले आचार ते उपशमादिक तथा गुण, एटले मूलोत्तर गुणरूप तेणें करी उपपेत एटले सहित, एवो साधु, ( अव्वइतेपाउणतीसिलोगं के० ) अत्यर्थ एटले सर्वगुणसंपन्न ते, लोक एटलें आ लोकनें विषे, अनें लोकोत्तरनें विषे, संतोपकारक श्लाघानें पाउणत्ती एटले पामे॥ ४२॥

॥ दीपिका—नूतानां प्राणिनां हिंसानिशंकया सावद्यव्यापारं जुगुप्समानः परिहरन् सर्वेषां प्राणिनां दंमं निहाय त्यक्त्वा साधवस्तथाप्रकारमशुद्धाहारं न नुंजते तस्मादेषो नुधर्मः संयतानामिह जैनमते तीर्थकराचरणादनुपश्चाच्चर्यतइत्यनुधर्मइति ॥ ४१ ॥ निर्ग्रंथधर्मे साधुमार्गे स्थितइमंपूर्वोक्तं समाधिं प्राप्तोऽस्मिन्समाधौ सुष्टु स्थित्वाऽनिहोनि मायः सन् चरेत्संयमे बुद्धोज्ञाततत्त्वोमुनिः शीलेन क्रोधोपमेन गुणैश्च मूलोत्तरनूतैरुपेतो युक्तोत्यर्थं तां सर्वातिशायिनीं श्लाघां प्राप्नोति । यडुक्तं । " राजानं तृणतुल्यमेव मनुते श क्रेपि नैवादरो, वित्तोपार्जनरक्षणव्ययकृताः प्राप्नोति नो वेदनाः ॥ संसारांतरवर्त्यपीह ल नते शं मुक्तवन्निर्नयः, संतोषात्पुरुषोमृतत्वमचिराद्यायात्सुरेंद्रार्चित " इति ॥ ४२ ॥

॥ टीका—किंच । ( नूयानिसंकाएइत्यादि ) नूतानां जीवानां उपमर्दशंकया सावद्यम नुष्ठानं जुगुप्समानापरिहरंतस्तथा सर्वेषां प्राणिनां दंमयतीति दंमः समुपतापस्तं निहाय परित्यज्य सम्यगुहिताः सत्साधवोयतस्ततोन नुंजते तथाप्रकारमाहारमशुद्धजातीयमे षोनुधर्मइहास्मिन् प्रवचने संयतानां यतीनां तीर्थकराचरणादनुपश्चाच्चर्यतइत्यनुना वि शेष्यते । यदि चाणुरिति स्तोकेनाप्यतिचारेण चा वाध्यते शिरीषपुष्पमिव सुकुमारइत्यतो ऽणुता विशेष्यतइति ॥ ४१ ॥ किंचान्यत् ॥ ( णिग्गंथधम्ममित्यादि ) नास्मिन्मौनींइ धर्मे बाह्याभ्यंतररूपोग्रंथोस्यास्तीति निर्ग्रंथः सचासौ धर्मश्च निर्ग्रंथधर्मः सच श्रुतचारित्रा ख्यः क्षांत्यादिकोवा सर्वज्ञोक्तस्तस्मिन्नेवंनूते धर्मे व्यवस्थितइमं पूर्वोक्तसमाधिमनुप्राप्तो ऽस्मिंश्चाशुद्धाहारपरिहाररूपे समाधौ सुष्टु अतिशयेन स्थित्वाऽनिहोऽमायोऽथवा निहन्यत इति निहोन निहोऽनिहः परीषहैरपीडितो यदिवा स्निहबंधने स्निहइति स्नेहरूपबंधनर हितः संयममनुष्ठानं चरेत् तथा बुद्धोऽवगततत्त्वोमुनिः कालत्रयवेदी शीलेन क्रोधाद्युपशम रूपेण गुणैश्च मूलोत्तरगुणनूतैरुपेतोयुक्तइत्येवं गुणकलितोऽत्यर्थंतां सर्वगुणातिशायिनीं सर्व द्वंद्वोपरमरूपां संतोषात्मिकां श्लाघां प्रशंसां लोके लोकोत्तरेवाऽऽप्नोति। तथा चोक्तं। "राजा नं तृणतुल्यमेव मनुते शक्रेपि नैवादरो, वित्तोपार्जनरक्षणव्ययकृताः प्राप्नोति नो वेदनाः॥

संसारांतरवर्त्यपीह लभते शं मुक्तवन्निर्भयः, संतोषात्पुरुषोमृतत्वमचिराद्यायात्सुरेंद्रार्चित" इत्यादि ॥ ४२ ॥

सिणायगाणं तु डुवे सहस्से, जे भोयए णितिए माहणाणं ॥ ते पुन्नखंधे सुमहऊणित्ता, भवंति देवा इति वेयवाउ ॥४३॥ सिणायगाणं तु डुवे सहस्से, जे भोयए णितिए कुलालयाणं॥ से गछति लोलुवसंपगाढे, तिव्वाभितावी णरगाभिसेवी ॥ ४४ ॥

अर्थ—ए रीतें आर्द्रकुमार गोशालक तथा बैाधमतिउनें परास्त करीनें आगल चाल्यो तेवारें, वच्चें ब्राह्मण मल्या, ते ब्राह्मण बोल्या के,अहो आर्द्रकुमार! तें रूडूं कर्युं के, जे ए पूर्वोक्त बेहु मत वेदबाह्य हता, तेनुं तें निराकरण कर्युं, तो हवे ए जैनमत पण वेद बाह्यछे. एवुं जाणीनें, तमारा सरखानें आश्रय करवा योग्य नथी केमके,तुं क्षत्री छो अनें क्षत्रीनें सर्व वर्णोत्तम एवा ब्रह्मणनेंज सेववा योग्यछे, परंतु शूद्र सेववा नहीं. ए कारण माटें वेदोक्त विधियें यज्ञादिकमार्गनी तमारे सेवा करवी. इत्यादिक ते ब्राह्मणो पोतानो मार्ग देखाडेछे.(सिणायगाणंतुडुवेसहस्से के०)स्नातक एटले षट्कर्मने विषे निरत, अनें वेदना जाणनार, पोताना आचारनें विषे तत्पर,नित्य स्नातक, ब्रह्मचारी, एवा बेसहस्र(माहणाणं के०) ब्राह्मणनें(जेभोयएणितिए के० )जे पुरुष नित्य जमाडे, एटले तेनें मनोवांछित आहार आपे, ( तेपुन्नखंधेसुमहऊणित्ता के० ) ते पुरुष घणो महोटो पुण्यनो स्कंध उपार्जन करीनें, ( भवंतिदेवाइतिवेयवाउ के०) देवता थाय. एवुं अमारा वेदनुं वाक्यछे, एम जाणीनें ए वेदोक्त मार्ग आदरवो ॥४३॥ हवे आर्द्रकुमार उत्तर कहेछे के, अहो ब्राह्मणो! ( सिणायगाणंतुडुवेसहस्से के०) स्नातकनां बे सहस्रनें ( जेभोयएणितिएकुलालयाणं के०) जे दातार नित्य जमाडे. ते स्नातक केवाछे तोके, कुलालग एटले मार्जार ते सरखा ब्राह्मण पण जाणवा,कारण के, ए पण सावद्याहार वांछता, सर्वकाल घर घरनें विषे भ्रमण करे एवा, एक निंद्य आजीविकाना करनार, ते कुपात्रनें दान देवाथी,( सेगछति लोलुवसंपगाढे के० )ते लोलपी ब्राह्मण सहित एवो दातापण गछति एटले डुर्गतियें जाय, डुर्गतिमां कया स्थानकें जाय ? तोके, ( तिव्वाभितावीणरगाभिसेवी के०) तीव्रवेदना सहन करनार, एतावता तेत्रीश सागरोपम पर्यंत पूर्ण आयुष्यें ते बेहु जण नरकना स्थानकनें विषे नारकी थाय ॥ ४४ ॥

---

॥ दीपिका—एवं गोशालकमते बौद्धमते च निरस्ते द्विजातयः प्राहुः भो आर्द्रकुमार! शोभनं कृतं यदेते वेदबाह्ये द्वे अपि मते क्षिप्ते अथ जैनमतमपि वेदबाह्यं ततोनादरणयोग्यं

तस्माद्ब्राह्मणसेवैव युक्तेत्याह। स्नातकानां षट्कर्मरतानां विप्राणां सहस्र द्वयं ये नोजयं ति नित्यं ते पुण्यसंबंधं सुमहांतमुज्यें देवाः स्युरिति वेदवादः ॥ ४३ ॥ आर्द्रकमुनिरेत द्दूषयन्नाह। ( सिणायेति )। स्नातकानां सहस्र द्वयं ये नोजयंति । किंनूतानां कुलानि गृहाणि मांसार्थिनोयेऽटंति ते कुलाटामार्जाराः कुलाटाइव कुलाटास्तेषां सताहग्ब्राह्मण नोजनकोबहुवेदनासु गतिषु याति । किंनूतः लोलुपैरामिषगृद्धैः संप्रगाढोव्याप्तः तीव्रोऽस ह्योनितापोयस्य एवंनूतः सन्नरकानिसेवी स्यात् ॥ ४४ ॥

---

॥ टीका–तदेवमार्द्रककुमारं निराकृतगोशालकाजीवकबौद्धमतमनिसमीक्ष्य सांप्रतं द्विजातयः प्रोचुः । तद्यथा नो आर्द्रककुमार! शोननमकारि नवता यदेते वेदबाह्ये द्वे अ पि मते निरस्ते तत्सांप्रतमप्यार्हतं वेदबाह्यमेवातस्तदपि नाश्रयणार्हं नवद्विधानां तथा हि नवान् क्षत्रियवरः क्षत्रियाणां च सर्ववर्णोत्तमाब्राह्मणाएवोपास्यान शूद्राश्रतोयागादि विधिना ब्राह्मणसेवैव युक्तिमतीत्येतत्प्रतिपादनायाह । ( सिणायगाणंतुइत्यादि ) तुशब्दो विशेषणार्थः । षट्कर्मानिरतावेदाध्यापकाः शौचाचारपरतया नित्यं स्नायिनोब्रह्मचारि णः स्नातकास्तेषां सहस्र द्वयं नित्यं ये नोजयेयुः कामिकाहारेण ते समुपार्जितपुण्य स्कंधाः संतोदेवाः स्वर्गनिवासिनोनवंतीत्येवंनूतोवेदवादइति ॥ ४३ ॥ अधुनार्द्रककुमा रएतद्दूषयितुमाह । ( सिणायगाणंतुइत्यादि ) स्नातकानां सहस्र द्वयमपि नित्यं येनोज यंति । किंनूतानां कुलानि गृहाण्यामिषान्वेषणार्थिनोनित्यं येऽटंति तेकुलाटामार्जाराः कु लाटाइव कुलाटाब्राह्मणाः । यदिवा कुलानि क्षत्रियादिगृहाणि तानि नित्यं पिंमपातान्वेषि णां परतर्कुकाणामालयोयेषां ते कुलालयास्ते निंद्यजीविकोपगतानामेवंनूतानां योसहस्र द्वयं नोजयेत्सः सत्पात्रनिक्षिप्तदानोगछति बहुवेदनासु गतिषु । किंनूतः सन् लोलुपैरामि षपरैः गृद्धैरससातागौरवाद्युपपन्नैः जिव्हेंद्रियवशगैः संप्रगाढोव्याप्तोयदिवा किंनूते नरके याति लोलुपैरामिषगृध्रनिरसुमद्भिर्व्याप्तोयोनरकस्तस्मिन्निति । किंनूतश्चासौ दाता नरका निसेवी नवति तद्दर्शयति । तीव्रोऽसह्योयोऽनितापः क्रकचपाटनकुंनीपाकतप्तत्रपुपानशा ल्मल्यालिंगनादिरूपः सविद्यते यस्यासौ तीव्रानितापीत्येवंनूतवेदनानितप्तस्त्रयस्त्रिंशत्सा गरोपमानि यावदप्रतिष्ठाननरकाधिवासी नवतीति ॥ ४४ ॥

दयावरं धम्मडुगंछमाणा, वहावहं धम्मपसंसमाणा ॥ एगं
पि जे नोययती असीलं, णियोणिसं जाति कुउ सुरेहिं ॥ ४५ ॥
डुहउवि धम्मं मिसमुठियामो, अस्सिं सुठिचा तह एसकालं ॥
आयारसीले वुइए हनाणी, ए संपरायंमि विसेसमत्थि ॥ ४६ ॥

अर्थ–वली आर्द्रकुमार कहेछे के, ( दयावरंधम्मडुगंछमाणा के० ) जेमां दया प्रधा नछे एवा धर्मनें निंदता, ( वहावहंधम्मपसंसमाणा के०) तथा हिंसारूप धर्मनी प्रशं सा करता, ( असीलं के० ) आचार रहित एवा, ( एगंपि के० ) एकनें पण ( जेनो ययती के० ) जे कोइ नृप राजा अथवा बीजो कोइ मूढमति धार्मिक पुरुष, पात्रनी बुद्धियें करी जमाडे, तो ( णीयोणिसंजातिकुंउसुरेहिं के०) ते नृप राजा, अथवा बीजो कोइ मूढमति पुरुष होय, ते निशा एटले सदैव कृष्णांधकार रात्रीसमान काल वर्त्तेछे जेमां एवी नरकभूमिनेंविषे नरकमांहे जाय. ए वचन सत्य करी जाणवुं. अनें तमें कह्युं जे देवता थाय, ते वात मृषाछे तेवा पुरुषनें असुरनें विषे पण गति न जा णवी, तो वैमानिक देवता क्यांथी थाय !॥ ४५ ॥ हवे आर्द्रकुमार ब्राह्मणोनो मत परास्त करीनें आगल चाल्यो, एटले एक दंभिया सांख्य मति मल्या, ते एम कहेछे के, अ हो आर्द्रकुमार ! तें रूडुं कीधुं के, जे ए ब्राह्मणो सर्व आरंभनें विषे प्रवर्त्तता गृहस्थ छ ता, पोतामां गुरुपणुं मानता, एवा ए राक्षस सरखा ब्राह्मणनुं निराकारण कर्युं? सांप्रत अमारा सिद्धांतसाथें तमारासिद्धांतनो कांइ भेद नथी, अमारो सिद्धांत पंचविंशति तत्व रूपछे. हवे ते पण कहुंछुं सांभल, हैयानेविषे धारण कर. ( डुहउंविधम्मंमिसमुठियामो के०)जे अमारो धर्म, अने तमारो धर्म, ए बेहु सरखाज जाणियें छैयें. कारण के, तमारे पण जीवनें अस्तिभावें पुण्य, पाप, बंध, अनें मोक्षनो सद्भावछे,अनें अमारे पण एमज छे. तमारे पण पांच महा व्रतछे, अनें अमारे पण अहिंसादिक पांच यमछे,तथा इंद्रिय अनें नोइंद्रियना नियमो तो आपण बेहुनें सरखाजछे तेमाटें बेहुधर्मनें विषे अमनें अने तमने प्रवर्त्ततां सम्यक् प्रकारज जाणवो. अनें(असिंसुठिच्चा के० )एहिज धर्मनें विषे रहिनें, ( तहएसकालें के० ) तथा अतीतकालें, वर्त्तमानकालें, अनें आगमिक कालें, जे पूर्वो क्त अंगीकार करेला धर्मना प्रतिपालनहार आपणे छैयें. तेवा बीजा कोइ नथी.(आया रसीलेवुइएहनाणी के० ) तथा आपणो आचार जे यम नियमलक्षण, ते प्रधान शील कह्योछे, परंतु आजीविकानुं कारण आपणनें कोइ पण नथी? तथा वली आपण बेहुनें ज्ञान, मोक्षनुं अंग कह्युंछे. ( णसंपरायंमिविसेसमच्छि के०)तथा कर्मे करीनें भ्रमण करेछे प्राणी जेमां ते संपराय कहियें, एवो संपराय जे, संसार, ते जेम तमारे नित्यछे, तेम अमारे पण नित्यजछे. तेमाटें ए सिद्धांतमां अमारे तमारे विशेष कांइ नथी॥ ४६ ॥

---

॥ दीपिका–दयया वरं प्रधानं धर्मं जुगुप्समानोनिंदन् वधावहं हिंसाकरं धर्मं प्रशं सन्नेकमपि अशीलं निर्व्रतं षड्जीवोपमर्देन योभोजयेत्किं पुनर्बहून् नृपोराजाऽन्योवा यः क श्चिन्मूढः सवराको निशेव नित्यांधकारत्वान्निशा नरकभूमिस्तां याति कुतस्तस्यासुरेष्वधम

देवेष्वपि प्राप्तिरिति । अथार्द्रकं मुनिमेकदंडिनः सांख्याः प्राहुः नो आर्द्रक! वरं कृतं यदेते सर्वारंभप्रवृत्तामांसाशिनोधिग्जातयोनिरस्ताः । इदानीमस्मत्सिद्धांतं शृणु ॥ ४५ ॥ योयमस्मद्धर्मः यश्च त्वदीयोजैनः सउभयरूपोपि कथंचित्तुल्यः । पंचयमाअस्माकं भवतांतएव महाव्रतानि पुण्यपापबंधमोक्षसद्भावोस्माकं भवतां च तदेवमुभयस्मिन्नपि धर्मे समुत्थितायूयं वयंच पूर्वस्मिन्काले वर्त्तमाने एष्येच गृहीतप्रतिज्ञानिर्वाहकाः आचारप्रधानंशीलमुदितं कथितं अथ ज्ञानं मोक्षांगमुक्तं द्वाभ्यां आवयोः संपराये संसारे च न विशेषोस्ति ॥ ४६ ॥

---

॥ टीका–( दयावरमित्यादि ) दया प्राणिषु कृपा तया वरः प्रधानोयोधर्मस्तमेवं धर्मं जुगुप्समानोनिंदंस्तथा वधं प्राण्युपमर्दमावहतीति वधावहस्तं तथाभूतं धर्मं प्रशंसन्स्तुवन् एकमप्यशीलं निर्व्रतं षड्जीवकायोपमर्देन योभोजयेत् किं पुनः प्रभूतान् नृपोराजन्योवा यः कश्चिन्मूढमतिर्धार्मिकं आत्मानं मन्यमानः सवराकोनिशेव नित्यांधकारत्वान्निशारकभूमिस्तां याति कुतस्तस्यासुरेष्वप्यधमदेवेष्वपि प्राप्तिरिति । तथा कर्मवशादसुमतांविचित्रजातिगमनाज्जातेरशाश्वतत्वमतोन जातिमदोविधेयइति । यदपि कैश्चिदुच्यते यथा ब्राह्मणाब्रह्मणोमुखाद्विनिर्गताबाहुभ्यां क्षत्रियाऊरुभ्यां वैश्याः पद्भ्यांशूद्राइत्येतदप्यप्रमाणत्वादति फल्गुप्रायं तदभ्युपगमे च न विशेषोवर्णानां स्यादेकस्मात्प्रसूतेर्बृहच्छाखाप्रतिशाखाप्रभूतपनसोडुंबरादिफलवद्ब्रह्मणोवा मुखादेरवयवानां चातुर्वर्ण्यावाप्तिः स्यान्नचैतदिष्यते भवन्निस्तथा यदि ब्राह्मणादीनां ब्रह्मणोमुखादेरुद्भवः सांप्रतं किं न जायते ? अथ युगादावेतदित्येवं सति दृष्टहानिरदृष्टकल्पना स्यादिति । तथा यदि कैश्चिदभ्यधायि सर्वज्ञनिक्षेपावसरे तद्यथा सर्वज्ञरहितोतीतः कालः कालत्वा द्वर्तमानकालवदेवंच सत्येतदपि शक्यते वक्तुं यथा नातीतः कालोब्रह्ममुखादिविनिर्गतचातुर्वर्ण्यसमन्वितः कालत्वाद्वर्त्तमानकालवद्भवति च विशेषे पक्षीकृते सामान्यहेतुरित्यतः प्रतिज्ञार्थैकदेशा सिद्धता नाशंकनीयेति। जातेश्चानित्यत्वं युष्मत्सिद्धांतएवाभिहितं । तद्यथा शृगालोवा एषजायते यः सपुरीषोदह्यतइत्यादिना । तथा सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥ त्र्यहेन शूद्रीभवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयीत्यादि लोके चावश्यंभावी जातिपातः । यतउक्तं । "कायिकैः कर्मणां दोषैर्याति स्थावरतां नरः ॥ वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरंत्यजातितां" ॥१॥ इत्यादिगुणैरप्येवंविधैर्न ब्राह्मणत्वं युज्यते।तद्यथा । "षट्शतानि नियुज्यंते पशूनां मध्यमेहनि । अश्वमेधस्य वचनान्यूनानि पशुभिस्त्रिभिरित्यादि वेदोक्तत्वान्नायं दोषइति चेन्नन्विदमभिहितमेव न हिंस्यात्सर्वभूतानीत्यतः पूर्वोत्तरविरोधस्तथा ।" आततायिनमायांतमपि वेदांतगं रणे । जिघांसंतं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥ तथा शूद्रं हत्वा प्राणायामं जपेत्

अपहसितं वा कुर्यात् यत्किंचिद्वा वदयात् तथा नास्थिजंतूनां शकटनरं मारयित्वा ब्राह्मणं नोजयेदित्येवमादिका देशना विद्वज्ञनमनांसि न रंजयतीत्यतोऽत्यर्थमसमंजसमिव लक्ष्यते युष्मद्दर्शनमिति । तदेवमार्द्रककुमारं निराकृतब्राह्मणविवादं नगवदंतिकं गच्छंतं दृष्ट्वा एकदंमिनांतराले एवोचुस्तद्यथा नो आर्द्रककुमार! शोननं कृतं नवता यदेते सर्वारंनप्रवृत्ताग्रहस्थाः शब्दादिविषयपरायणाः पिशिताशनेन राक्षसकल्पाद्विजातयोनिराकृतास्तत्सांप्रतमस्मत्सिद्धांतं शृणु श्रुत्वाचावधारय । तद्यथा सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृतिः प्रकृतेर्महांस्ततोहंकारस्तस्माजणश्च पोडशकस्तस्मादपि पोडशकात्पंच तन्मात्राणि तेन्यः पंच नूतानि तथा चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमित्येतत्त्वार्हतैरप्याश्रितमतः पंचविंशतितत्वपरिज्ञानादेव मोक्षावाप्तिरित्यतोऽस्मत्सिद्धांतएव श्रेयान्नापरइति ॥ ४५ ॥ तथा न युष्मत्सिद्धांतोतिदूरेण निद्यतइत्येतद्दर्शयितुमाह । ( इहुउवीत्यादि ) योयस्माद्धर्मोनवदीयश्चार्हतः सत्त्वनयरूपोपि कथंचित्समानस्तथाहि युष्माकमपि जीवास्तित्वे सति पुण्यपापबंधमोक्षसद्भावोन लोकायतिकानामिव तदनावे प्रवृत्तिर्नापि बौद्धानामिव.सर्वथा रनूतस्यांतरात्मनएवान्नावस्तथास्माकमपि पंच यमाअहिंसादयोनवतां च तएव पंचमहाव्रतरूपास्तथेंद्रियनोइंद्रियनियमोप्यावयोस्तुल्यएव तदेवमुनयस्मिन्नपि धर्मे बहुसमाने सम्यगुबानोब्वितायूयं वयंच तस्माद्धर्मे सुष्टु स्थिताः पूर्वस्मिन् काले वर्तमाने एप्येच यथा गृहीतप्रतिज्ञानिर्वोढारोन पुनरन्ये यथाव्रतेश्वरयागविधानेन प्रव्रज्यां मुक्तवंतो मुंचंति मोक्षंति चेति तथाचारप्रधानं शीलमुक्तं यमनियमलक्षणं न फल्गुवल्ककुहकाजीवनरूपमथानंतरं ज्ञानंच मोक्षांगतयानिहितं तच्च श्रुतज्ञानं केवलाख्यंच यथा स्वमावयोदर्शने प्रसिद्धं तथा संपर्य्यते स्वकर्मनिर्भ्राम्यंते प्राणिनोयस्मिन्ससंपरायः संसारस्तस्मिंश्चावयोर्न विशेषोस्ति । तथाहि । यथा नवतां कारणे कार्यं नैकांतेनासदुत्पद्यते अस्माकमपि तथैव इव्यात्मतया नित्यत्वं नवद्भिरप्याश्रितमेव तथोत्पादविनाशावपि युष्मदनिप्रेतावाविर्नावतिरोनावाश्रयादस्माकमपीति ॥ ४६ ॥

अवत्तरूवं पुरिसं महंतं, सणातणं अरकयमवयं च ॥ सवे
सु नूतेसु विसवतोसे, चंदोवताराहिं समत्तरूवे ॥ ४७ ॥ एवं
ण मिज्झंति ण संसरंती, ण माहणाखत्तिय वेसयस्सा ॥ कीडाय
परकीय सरीसिवाय नराय सवे तह देवलोए ॥ ४८ ॥

अर्थ—वली एक दंमिज कहेछे. ( पुरिसं के० ) पुरुष शब्दें जीव तेनें जे रीतें तमें जाणोछो, ते रीतें अमें पण जाणियें छैयें. ( अवत्तरूवं के० ) आत्मा अव्यक्तरूपछे, कर चरणादिक जे अवयव तेणें करी लख्योनजाय ते कारण माटें अव्यक्तरूपछे

तथा ( महंतं के० ) महांत एटले समस्तलोकमां व्यापी रह्योछे, तथा ( सणातणं के० ) सनातन एटले शाश्वतो छे, यद्यपि नाना प्रकारनी गति करेछे तथापि, चैतन्य लक्षण जे आत्मस्वरूपछे ते क्यांहिं पण जतुं नथी, तथा ( अरकय के० ) अक्षय एटले कोइ पण प्रदेशनो खंम करी न शकीयें तथा (मव्वयंच के०) अव्यय एटले अनंतकालें कोइ एक प्रदेशनो पण व्यय न थाय एटले विछेद न थाय. किंबहुना. (सवेसुनूतेसुविसव्वतोसे के० ) सर्वनूतनें विषे, शरीर शरीरप्रत्यें ए आत्मा एकज व्यापी रह्योछे,ते उपर दृष्टांत देखाडेछे. ( चंदोवताराहिंसमत्तरूवे के० ) जेम चंद्रमा अश्विन्यादिक नक्षत्रें करी, समस्तरूप थको संबंध पामे, तेम ए आत्मा, शरीर शरीर प्रत्यें संपूर्ण संबंध पामे. यडुक्तं “ एकएव हि नूतात्मा नूते नूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचंद्रवत् ” इत्यादि ॥ ४७ ॥ हवे तेप्रत्यें आर्द्रकुमार कहेछे. (एवंणमिक्कंतिणसंसरंती के०) ए रीतें जेम तमारे दर्शनें एकांतवादें आत्मा एक, नित्य, अविकारी, एम जे कहियें, ते संनवे नहीं, एम कहियें तो सर्व पदार्थ नित्य ठरेछे, तेम ठतां तो बंध मोक्षनो पण सन्नाव क्यांथी थाय? अनें बंधनें अनावें चतुर्गतिक संसारनो पण अनाव, अनें मोक्षनो पण अनाव थाय. अनें मोक्षनें अनावें तमे जे यम नियमादिक व्रततुं ग्रहण कह्यो छो ते पण निरर्थक थशे, ए कारण माटें आत्मा सर्व व्यापी एकजछे. ए जे तमारुं बोलवुंछे ते अयुक्तछे, एम कहेतां तो नरक, तिर्यंच, मनुष्य, अनें देवता, तथा बाल, कुमार, सुनग, डुर्नग, धनाढ्य,दरिद्री, इत्यादिक नेदें जूदा जूदा पदार्थो न जाणियें ? तथा पोताना करेला कर्म करी प्रेर्या जीव, नाना प्रकारनी गतिनें विषे परिच्रमण पण न करे? ( नमाहणाखत्तियवेसयस्साकीडायपरकीयसरीसिवायनरायसव्वेतहदेवलोए के०)तथा आत्मानें सर्वव्यापक पणुंज कहेवा थकी एकत्व नावेंज आत्मा थयो, तेवारें ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य, अनें शूद्र, तथा कीटक, पक्षी, तथा सरीसिव एटले सर्प, तथा नर एटले मनुष्य, तथा सर्व देवलोक इत्यादिक, नाना प्रकारनी गतिना गामी जीव न होय? ए कारण माटें आत्मा सर्व व्यापक नथी, तथा आत्मा एक पण नथी, ते माटें तमारो आगम, सर्वज्ञनाषित नथी, अनें सर्वज्ञनाषित विना याथातथ्य न होय ॥ ४८ ॥

---

॥दीपिका—नवंतः पुरुषजीवं स्वीकृतवंतस्तथा वयमपि । किंनूतं? अव्यक्तरूपं महांतं व्यापकं सनातनं नित्यं अक्षतं प्रदेशानां खंमशः कर्तुमशक्यत्वात् अव्ययं अनंतकालेनापि एकप्रदेशस्यापि व्ययानावात् । तथा सर्वेषु नूतेषु शरीरवत्सु प्रतिशरीरं सर्वतः सामस्त्यादसावात्मा नवति । यथा चंद्रस्तारानिः संपूर्णः समस्तरूपः संबध्यते एवं जीवोपि शरीरैः संपूर्णः संबध्यते अयमेव श्लोकोऽद्वैतवादिवेदांतिमते व्याख्येयः । न वरं सर्वनूतेषु सर्वतः सर्वा

त्मतयाऽसौ स्थितः यथा तारास्वेकएव चंद्रः तथात्मापि सर्वत्र संबध्यतइति ॥४७॥ अथाईकमुनिराह । आत्मनोऽविकारित्वे आत्माऽद्वैते वा स्वीकृते दुर्भगसुभगादिभेदेन जीवा न मीयेरन्न ज्ञायंते स्वकर्मप्रेरितानरकादिगतिषु न संसरंति सर्वव्यापित्वादेकत्वाद्वा तथा न ब्राह्मणान क्षत्रियान वैश्यान प्रेष्यान शूद्रानापि कीटपक्षिसरीसृपाश्च जवंति नराश्च सर्वेपि देवलोकाश्चेत्येवं गतिभेदोन स्यात् ? ॥ ४८ ॥

---

॥ टीका–पुनरपि तथैवैकदंमिनः संसारिकजीवपदार्थसाम्यापादनायाहुः । ( अवत्तरूवमित्यादि ) पुरि शयनात्पुरुषोजीवस्तं यथा जवंतोन्युपगतवंतस्तथा वयमपि तमेव विशिनष्टि। अमूर्त्तत्वादव्यक्तं रूपमस्यासावव्यक्तरूपस्तथा करचरणशिरोग्रीवाद्यवयवतया स्वतोवस्थानात्तथा महांतं लोकव्यापिनं तथा सनातनं शाश्वतं इव्यार्थतया नित्यं नानाविधगतिसंजवेपि चैतन्यलक्षणात्मस्वरूपस्याप्रच्युतेस्तथा क्षयं केनचित्प्रदेशानां खंमशः कर्तुमशक्यत्वात्तथाऽव्ययमनंतेनापि कालेनैकस्यापि तत्प्रदेशस्य व्ययाजावात्तथा सर्वेष्वपि नूतेषु कायाकारपरिणतेषु प्रतिशरीरं सर्वतः सामस्त्यान्निरंशत्वादसावात्मा जवति कश्व ? चंड्इव शशीव तारानिरश्विन्यादिनिर्नक्षत्रैर्यथा समस्तरूपः संपूर्णः संबंधमुपयात्येवमसावपि आत्मा प्रत्येकं शरीरैः सह संपूर्णः संबंधमुपयाति तदेवमेकदंमिनिर्दर्शनसाम्यापादनेन सामवादपूर्वकं स्वदर्शनारोपणार्थमार्द्रककुमारोनिहितोयत्रैतानि संपूर्णानि निरुपचरितानि पूर्वोक्तानि विशेषणानि धर्मसंसारयोर्विद्यंते सएव पक्षः सश्रुतिकेन समाश्रयितव्योजवति । एतानि चास्मदीयएव दर्शने यथोक्तानि संति नार्हतेऽतोजवताप्यस्मद्दर्शनमेवान्युपगंतव्यमिति ॥ ४७ ॥ तदेवमनिहितः सन्नार्द्रकुमारस्तदुत्तरदानायाह । ( एवमित्यादि ) यदिवा प्राक्तनश्लोकः ( अवत्तरूवमित्यादि ) कोवेदांतवाद्यात्माद्वैतमतेन व्याख्यातव्यस्तथाहि ते एकमेवाव्यक्तं पुरुषमात्मानं महांतमाकाशमिव सर्वव्यापिनं सनातनमनंतमक्षयमव्ययं सर्वेष्वपि नूतेषु चेतनाचेतनेषु सर्वतः सर्वात्मतया सोऽवस्थितइत्येवन्युपगतवंतोयथा सर्वास्वपि तारास्वेकएव चंद्रः संबंधमुपयात्येव चासावपीत्यस्य चोत्तरदानायाह । ( एवमित्यादि ) एवमिति तथा जवतां दर्शने एकांतेनैव नित्योविकार्यात्मान्युपगम्यते इत्येवं पदार्थाः सर्वेपि नित्यास्तथाचसति कुतोबंधमोक्षसद्भावोबंधाजावाच्च न नारकतिर्यङ्नरामरलक्षणश्चतुर्गतिकः संसारोमोक्षाजावाच्च निरर्थकं व्रतग्रहणं जवतां पंचरात्रोपदिष्टयमनियमप्रतिपत्तिश्चेत्येवं च यदुच्यते जवता यथाऽऽवयोस्तुल्योधर्मइति तदयुक्तमुक्तं । तथा संसारांतर्गतानांच पदार्थानां न साम्यं तथाहि जवतां इव्यैकत्ववादिनां सर्वस्य प्रधानादनिन्नत्वात्कारणमेवास्ति कार्यंच कारणानिन्नत्वात्सर्वात्मना न विद्यते अस्माकंच इव्यपर्यायोजयवादिनां कारणे कार्यं इव्या

त्मतया विद्यते न पर्यायात्मकतया अपिचास्माकमुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तमेव सदित्युच्यते भवतांतु ध्रौव्यं युक्तमेव सदिति । यावप्याविर्भावतिरोभावौ भवतोच्येते तावपि नोत्पाद विनाशावंतरेण भवितुमुत्सहेते तदेवमैहिकामुष्मिकचिंतायामावयोर्न कथंचित्साम्यं किं च? सर्वव्यापित्वे सर्वात्मनामविकारित्वे चात्मा द्वैते चाप्युपगम्यमाने नारकतिर्यङ्नरा मरभेदेन बालकुमारकसुभगदुर्भगाढ्यदरिद्रादिभेदेनवा न मीयेरन्न परिछेद्येरन् नापि स्व कर्मचोदितानानागतिषु संसरंति सर्वव्यापित्वादेकत्वाद्वा तथा न ब्राह्मणान क्षत्रियान वै श्यान प्रेष्यान शूद्रा नापि कीटपक्षिसरीसृपाश्च भवेयुस्तथा नराश्च सर्वेपि देवलोकाश्चेत्ये वं नानागतिभेदेनोभिद्येरन्नतोन सर्वव्यापी आत्मा नाप्यात्मा द्वैतवादोप्यायात्यतः प्रत्ये कं सुखडुःखानुभवः समुपलभ्यते तथा शरीरत्वक्पर्यंतमात्रएवात्मा तत्रैव तद्गुणविज्ञा नोपलब्धेरिति स्थितं ॥ ४८ ॥

> लोयं अयाणित्ति ह केवलेणं, कहंति जे धम्ममजाणमाणा॥णा
> संति अप्पाणपरं च णठा, संसारघोरं मिअणोरपारे ॥ ४९ ॥
> लोयं विजाणंति ह केवलेणं, पुन्नेण नाणेण समाहिजुत्ता॥धम्मं
> समत्तं च कहंति जेउ, तारंति अप्पाणपरं च तिन्ना ॥ ५० ॥

अर्थ– वली आर्द्रकुमार कहेछे के, (लोयं के०) ए लोक जे चौदरज्ज्वावात्मक, तेनें ( अयाणित्तिहकेवलेणं के० ) केवलज्ञानें करीनें न जाणे, एवा आ जगत् मांहें (कहं तीजेधम्ममजाणमाणा के० ) जे दर्शनीउ अजाणता थका धर्म कहेछे. ( णासंति अप्पाणपरंचणठा के० ) ते पोताना आत्मानें भ्रष्ट करता थका बीजानें पण भ्रष्ट क रेछे. किंबहुना. ( संसारघोरंमिअणोरपारे के० ) ते घोर एटले रौद्र, अपारावार, एवो जे संसार ते मांहे पोतें पण पडे, अनें बीजानें पण पाडे ॥ ४९ ॥ हवे आर्द्रकुमार, सम्यक्ज्ञानवंत धर्मना कहेनार, एवा पुरुषोना गुण कहेछे. (लोयंविजाणंतिहकेवलेणं के० ) चौद रज्ज्वात्मक लोक, तेनें केवलज्ञानें करी केवली, नानाप्रकारें जाणे. ( पुन्ने णनाणेणसमाहिजुत्ता के० ) तथा संपूर्ण ज्ञानें करी, समाधिसहित थका, ( धम्मंसम त्तंचकहंतिजेउ के० ) संपूर्ण श्रुतचारित्ररूप धर्म, परना हितनें अर्थें जे कहे. ( तारं तिअप्पाणपरंचतिन्ना के० ) ते पोतें पण संसार समुद्र थकी तरे, अनें बीजानें पण तारे. एवो जे जिनेंद्र मार्ग, केवलीभाषित, ते सत्य जाणवो ॥ ५० ॥

---

॥ दीपिका–लोकं चराचरमज्ञात्वा केवलेन दिव्यज्ञानेन इह जगति ये कथयंति । ध र्ममजानानाः ते स्वयं नष्टाः आत्मना परं च नाशयंति क? घोरे संसारे अणोरपारे अवा

ग्नागपरनागरहितेऽनाद्यनंतइत्यर्थः ॥४ए॥ पूर्वोन ज्ञानेन केवलेन समाधियुक्तालोकं चतुर्दशरज्जुमितं ज्ञात्वा इह शासने समस्तं धर्मं श्रुतचारित्ररूपं कथयंति ते आत्मना तीर्णाः संसारसागरं तारयंति च परं सडुपदेशादिति ॥ ५० ॥

---

॥ टीका-तदेवं व्यवस्थिते युष्मदागमोयथार्थाभिधायी न नवत्यसर्वज्ञप्रणीतत्वादसर्वज्ञप्रणीतत्वं चैकांतपक्षसमाश्रयणादित्येवमसर्वज्ञस्य मार्गोद्भावनं दोषमाविर्जावयन्नाह । (लोयमित्यादि ) लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं चराचरं वा लोकमज्ञात्वा केवलेन दिव्यज्ञानावनासेनेहास्मिन् जगति ये तीर्थिकाश्चजानानाश्चविद्वांसोधर्मं दुर्गतिगमनमार्गस्यार्गलानूतं कथयंति प्रतिपादयंति ते स्वतोनष्टा अपरानपि नो त्रायंति क ? घोरे नयानके संसारसागरे ( अणोपारेत्ति ) अर्वाग्नागपरनागवर्जितेनाद्यनंतइत्येवंनूते संसारार्णवे आत्मानं प्रक्षिपंतीति यावत् ॥ ४ए ॥ सांप्रतं सम्यक्ज्ञानवतामुपदेष्टॄणां गुणानाविर्नावयन्नाह । (लोयमित्यादि) लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं केवलालोकं न केवलिनोविविधमनेकप्रकारं जानंति विदंतीहास्मिन् जगति प्रकर्षेण जानाति प्रज्ञः पुण्यहेतुत्वात् पुण्यं तेन तथानूतेन ज्ञानेन समाधिना च युक्ताः समस्तं धर्मं श्रुतचारित्ररूपं येतु परहितैषिणः कथयंति प्रतिपादयंति ते महापुरुषास्ततः संसारसागरं तीर्णाः परंच तारयंति सडुपदेशदानत इति केवलिनोलोकं जानंतीत्युक्ते यत्पुनर्ज्ञानेनेत्युक्तं तद्बौद्धमतोच्छेदेन ज्ञानाधारआत्मा अस्तीति प्रतिपादनार्थमिति । एतडुक्तं नवति यथाऽऽदेशिकः सम्यक्मार्गज्ञआत्मानं परं च तडुपदेशवर्तिनं महाकांताराद्विवक्षितदेशप्रापणेन निस्तारयत्येवं केवलिनोप्यात्मानं परं च संसारकांताराभिस्तारयंतीति ॥५०॥

जे गरहियं ठाणमिहावसंति, जेयावि लोए चरणोववेया ॥ उदा
हडं तं तु समं मईए, अहाउसो विप्परियासमेव ॥ ५१ ॥ सं
वच्छरेणावि य एगमेगं,बाणेण मारेउ महागयं तु ॥ सेसाणजीवा
णदयघ्याए, वासं वयं वित्ति पकप्पयामो ॥ ५२ ॥

अर्थ- हवे वली मिथ्यावादीनी केवी प्ररूपणा होय ! ते आर्द्रकुमार कहेले. ( जे के० ) जे कोइ संसारमांहे वर्तता अशुन कर्मना करनार, ( गरहियं के० ) गर्हित एटले निंदित, निर्विवेकीयें आचरण करेलुं ( ठाणमिहावसंति के० ) एवुं क्रिया अनुष्ठानरूप जे स्थानक, तेनुं इह एटले आ जगत् मांहे सेवन करे, आजीविकानें कारणे तेनो आश्रय करे, ( जेयाविलोएचरणोववेया के० ) तथा जे वली रूडा उपदेशना देनारा, लोक मांहे विरति परिणामरूप चारित्रें करी सहितछे. (उदाहडंतंतुसमंमईए के०)

ए बेहुनो अनुष्ठान तमारी मतियें सरखो कहेवो. (अहाजसोविप्परियासमेव के०)अहो आयुष्मन् एक दंमियाउ! तेथी तेवुं कहेनाराने विपर्यास एटले विपरीत मतिवाला जाण वा.अनें ए प्रमाणे कहेनारनुं वचन उन्मत्त प्रलाप समान जाणियें बैयें. साचुं, अनें जूठुं ए बे धर्म,सरखाज केम होय? ॥५१॥ ए रीतें एकदंमियाना मतनुं निराकरण करीनें जेटले स्वामीना समवसरण नणी आईकुमार चाल्या,एटले अंतरालें हस्तितापस आवीनें बोल्या के, अहो आईकुमार! सश्रुतिक पुरुषनें अल्पबहुत्व आलोचवो जोइयें. शामाटें ? तेनुं कारण कहुं ते तुं सांनल. के जे बीजा तापस, कंद, मूल, फलना नक्षण करनार,ते घणा एक स्थावर जीवोनो विनाश करे, तथा ते स्थावरनें आश्रित जे जंगम जीव होय, तेनो पण विनाश करे,तथा जे निक्षा मागीनें पोतानी आजीविका करेले ते पण,आशंसादोषें करी दूषितले,कारण के जिहां तिहां परिन्रमण करतां कीडी,मंकोडी प्रमुख अनेक जीवनें डुहवेले अनें अमेंतो,(संवहरेणावियएगमेगं के०) वर्ष वर्ष दिवसें,तथा अपिशब्दें करी ब मासें एकज, ( बाणेणमारेजमहागयंतु के० ) महाकाय एटले महोटी कायावालो एवो जे हस्ती तेनें बाणनें प्रहारें विनाशीनें, ( सेसाणजीवाणदयठयाए के० ) शेष बीजा जीवोनी दयानें अर्थें, मात्र ते एकज हस्तीना मांसें करीनें, ( वासंवयंवित्तिपकप्पयामो के० ) वर्ष दिवस सुधी अमें अमारी आजीविका चलावियें बैयें. ए रीतें थोडा जीव नो उपघात करी, घणा जीवोनी अमें रक्षा करियें बैयें. ए माटें विशेषें करी, अमारो मार्ग बीजा सर्वमार्गथकी श्रेष्ठज जाणवो ॥ ५२ ॥

---

॥दीपिका–ये गर्हितं निंद्यनिर्विवेकिजनाचरितं स्थानं इह जगत्याश्रयंति ये चापि लो के चरणोपेतं संयमरूपं स्थानं सेवंते तद्द्वयमपि यैरसर्वज्ञैः समं तुल्यमेवोदाहृतं कथितं स्वमत्या स्वानिप्रायेण। अथायुष्मन् हे सांख्य! विपर्यासइति तन्मत्तोन्मत्तप्रलापवदिति एव मेकदंमिनोनिरस्याईमुनिर्नगवत्समीपे याति । तावता हस्तितापसास्तमेवं प्रोचुः ॥५१ ॥ नो आर्द्रक! ये तापसाः कंदमूलफलाशिनस्ते बहूनां स्थावराणां तदाश्रितत्रसानांच घा तकाः ये च निक्षां सेवंते तेप्याशंसादोषदूषिताः च्रमंतश्च पिपीलिकादिजंतुघातकाः वयं तु संवत्सरेणाप्येकं महागजं बाणेन व्यापाद्य शेषाणां जीवानां दयार्थं आत्मनोवृत्तिं जी विकां तन्मांसेन वर्षं यावत्कल्पयामः कुर्मः ततोवयं बहुजीवरक्षकाः ॥ ५२ ॥

---

॥ टीका–पुनरप्याईककुमारएवाह । ( जेगरहियमित्यादि ) असर्वज्ञप्ररूपणमेवंनूतं नवति । तद्यथा ये केचित्संसारांतर्वर्तिनोऽशुनकर्मणोपेताः समन्वितास्तद्विपाकसहायाग र्हितं निंदितं जुगुप्सितं निर्विवेकिजनाचरितं स्थानं पदं कर्मानुष्ठानरूपमिहास्मिन् जग

त्यासेवंति जीविकाहेतुमाश्रयंति तथाच ये सडुपदेशवर्तिनोलोकेस्मिन् चरणेन विरतिप रिणामरूपेणोपेताः समन्वितास्तेषामुजयेषामपि यदनुष्ठानं शोजनाशोजनस्वरूपमपि स त् तदसर्वज्ञैरवग्दर्शिनिः समं सदृशं तुल्यमुदाहृतं उपन्यस्तं स्वमत्या स्वाभिप्रायेण न पुन र्यथावस्थितपदार्थनिरूपणेनाथवाऽऽयुष्मन् हे एकदंमिन्! विपर्यासमेव विपर्ययमेवो दाहरेदसर्वज्ञोयदशोजनं तच्छोजनत्वेनेतरत्त्वितरथेति यदिवा विपर्यासइति मत्तोन्मत्तप्र लापवदित्युक्तं जवतीति ॥ ५१ ॥ तदेवमेकदंमिनोनिराकृत्याईककुमारोयावद्भगवदंतिकं व्रजति तावद्धस्तितापसाः परिवृत्य तस्थुरिदं च प्रोचुरित्याह । (संवच्छरेणइत्यादि) ह स्तिनं व्यापाद्यात्मनोवृत्तिं कल्पयंतीति हस्तितापसास्तेषां मध्ये कश्चिद्वृद्धतमएतडुवाच तद्यथा जो आईककुमार! सश्रुतिकेन सदाल्पबहुत्वमालोचनीयं तत्र ये अमी तापसाः कंदमूलफलाशिनस्ते बहूनां सत्त्वानां स्थावराणां तदाश्रितानां वोडुंबरादिषु जंगमानामु पघाते वर्त्तते येपि च नैक्ष्येणात्मानं वर्तयंति तेप्याशंसादोषदूषिताइतश्चेतश्चाटयमानाः पि पीलिकादिजंतूनां उपघाते वर्तंते वयंतु संवत्सरेणावि अपिशब्दात् षण्मासेन चैकैकं हस्ति नं महाकायं बाणप्रहारेण व्यापाद्य शेषसत्वानां दयार्थमात्मनोवृत्तिं वर्त्तनं तदामिषेण वर्षमेकं यावत्कल्पयामस्तदेवं वयमल्पसत्वोपघातेन प्रभूततरसत्वानां रक्षां कुर्मइति॥५२॥

संवच्छरेणाविय एगमेगं, पाणं हणंता अणियत्तदोसा॥ सेसा
णजीवाणवहेलणाय, सियाय थोवं गिहिणोवि तम्हा ॥ ५३ ॥
संवच्छरेणाविय एगमेगं, पाणं हणंता समणे वएसु ॥ आया
हिए तं पुरिसे अणज्जे, ण तारिसे केवलिणो जवंति ॥५४॥ बुद्ध
स्स आणाए इमं समाहिं, अस्सिं सुठिच्चा तिविहेण ताई ॥तरिउं
समुद्दं च महाजवोघं, आयाणवंतं समुदाहरेज्जा त्तिबेमि ॥५५॥
इति अद्दइज्जणाम ठठमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ—हवे आर्डकुमार कहेछे के, अहो हस्तितापसो! तमें (संवच्छरेणावियएगमेगंपा णंहणंताअणियत्तदोसा के०) वर्ष वर्ष प्रत्यें, तथा ठ मासप्रत्यें तमे एकेक महोटो जीव हणता थका दोषथकी, निवर्त्या एम कहेवाठज नहीं. (सेसाणजीवाणवहेलणाय के०) कारणके, घणा जीवनें न हणता अनें वर्षमां,तथा ठमासमां एकजीवनें हणता एवा तमो नें पंचेंद्रियमहाकाय जीवना वधनो आशंसा दोष पण लागेठे,अनें साधु तो, सूर्य किरणे प्रकाशित मार्गनेंविषे जूसर मात्र दृष्टि शोधता, इर्यासमितें.समितावंत ठता, बेंतालीश दोष रहित आहारनी गवेषणा करता,आहारना लानें, अथवा अलानें,समवृत्ति वाला

होय; तेनें कयो आशंसा दोष? अनें पिपीलिकानो घात पण केम थाय? अनें तमो एवा म होटा जीवनो उपघात करीनें पण पोतानें निर्दोष मानोगे,ते जो एवी रीतें निर्दोष पणुं थतुं होय तो, आपणी आजीविकानें निमित्तें आरंजनें विषे प्रवर्त्तता (सियायथोवंगिहि णोवितम्हा के०) कदाचित् पोतानुं क्षेत्र टाली अन्य जीवोनो उपघात अण करतां गृहस्थ पण तमारी पेरें थोडा जीव हणतां,घणा जीव पालता थकां तमारा सरखा निर्दोषज जाणवा. एम ठखुं ॥५३॥ वली आर्द्रकुमार कहेबेके,(संवछरेणावियएगमेगंपाणंहणंता समणेवएसु के०) अहो हस्तितापसो! जे तमारा दर्शनी, श्रमणना व्रतनें विषे प्रवर्त्तता ठता संवत्सर संवत्सर प्रत्यें तथा ठमास प्रत्यें एकेक जीव हणे,अनें वली एहिज धर्मनो उपदेश आपे, (आयाहिएतंपुरिसेअणके के०) ते अनार्य अनाचारी पोतानें तथा परनें अहितना करनार जाणवा केम के,(णतारिसेकेवलिणोनवंति के०)ते पुरुष सादृशकेवली न होय? ते अशुद्धमार्गना प्रवर्त्तक अनें सत्यमार्गना द्वेषी जाणवा जे कारणे ते वर्षवर्ष प्रत्यें एकेक जीवनो विनाश करें, तेनुं मांस वर्ष वर्ष दिवस सुधी राखे तेमांहे अनेक असंख्यात बीजा त्रस जीव उपजे, तेथी तेनें पचावतां ते जीवोनो विनाश थाय. ए कारण मार्टे घणा जीवोनो विनाश करतां पण एम कहे के, अमें थोडा जीवोनो विना श करियें ठैयें, ते मार्टे तेमिथ्यावादी जाणवा. तेनुं वचन अमें प्रमाण नथी करता. इ त्यादिक वचन कही अन्य दर्शनीनें प्रतिबोधि, श्री महावीर देवनें समवसरणें जइ, ती र्थंकरने वांदीनें, आर्द्रकुमार, आज्ञानो आराधक थयो ॥ ५४ ॥ हवे अध्ययन परिस माप्ति नणी कहेबे. ( बुद्धस्तआणाएइमंसमाहिं के० ) बुद्ध एटले तत्वना जाण, एवा श्री महावीर देव, तेनी आज्ञायें आ समाधि, धर्मप्राप्ति लक्षण लहीने, ( अस्सिंसुठि च्चातिविहेणताई के० ) ए समाधिने विषे प्रवर्त्ततो त्रिविध त्रिविध प्रकारें ठ कायनो र क्षपाल एवो साधु, (तरिउंसमुद्दंचमहानवोघं के०) नयंकर संसार समुद्र तरीनें ( आ याणवंतंसमुदाहरेज्जा के० ) आदानवंत एटले सम्यक् ज्ञान, दर्शन, अनें चारित्र सहि त थको, एम आर्द्रकुमारनी पेरें यथावस्थित प्ररूपणायें करी परदर्शनीनो निराकरण करीनें मोक्षनो मार्ग प्रगट करे, ते साधु जाणवो. त्तिबेमिनी व्याख्या, पूर्ववत् जाणवी ॥ ५५ ॥ ए अद्दइज्जनामें बठा अध्ययनतो संक्षेपार्थे बालावबोध समाप्त थयो ॥ ६ ॥

---

॥ दीपिका—अथार्द्रकुमारः प्राह ॥ संवत्सरेणाप्येकैकं प्राणिनं घ्नंत प्राणातिपातादनिवृ त्तत्वान्निवृत्तदोषास्ते स्युः साधूनां तु सूर्यप्रकाशिते मार्गे युगमात्रदृष्टया इर्यासमित्या गवतां निर्दोषाहारान्वेषिणां समचित्तानां क आशंसादोषः? क कीटिकादिघातोवेत्यर्थः। स्तोकजी वघाते च दोषाजावस्तदा गृहस्थाअपि स्वारंनदेशस्थान् जीवान् घ्नंति शेषाणां च जीवानां

वधे न लग्नाः तस्मात्स्यादेवं स्तोकं स्वल्पं यस्माद्घ्नंति ततस्तेपि निर्दोषाः॥५३॥ श्रमणव्रतेषु स्थिताअपि संवत्सरेणाप्येकैकं जंतुं येघ्नंति येच उपदिशंति तेऽनार्या आत्महिताः पुरुषाः न तादृशाः केवलिनोभवंति ॥५४॥ एवं हस्तितापसान्निरस्याईककुमारं भगवदंतिकं व्रजंतं दृष्ट्वाऽभिनवगृहीतो वनहस्ती चिंतयतिस्म। यद्यहं बंधनमुक्तः स्यां तदाईककुमारं प्रतिबुद्धं तस्करपंचशतोपेतं तथा प्रतिबोधितानेकवादिगणसमन्वितं गत्वा वंदेयो वदेवं हस्तिना चिंतितं तावता तस्य बंधनानि त्रुटितानि आर्द्रमुनिसंमुखं त्वरया चलितः करी ततोलोकैः पूत्कृतं हा हतोयं मुनिरिति हस्ती च ससंभ्रमं मुनिपार्श्वमागत्य त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य दंताग्रस्पृष्टभूमिः साधुं नत्वा वनं ययौ ततः श्रेणिकनृपः सपौरलोकस्तं मुनिं सप्रभावं नत्वा प्रोवाच।भगवन्नाश्चर्यमिदं यदयं करी बंधनान्मुक्तः ततोमुनिराह । हे नृप! नैतदाश्चर्यं यत्करी मुक्तोबंधनात्। यंतु स्नेहपाशमोचनं तद्दुष्करं तच्च प्रागुक्तं निर्युक्तिकृता। यथा । "न दुक्करं वारणपासमोयणं,गयस्स मत्तस्स वणंमि रायं ॥ जहाउच तावलिएण तंतुणा, तं दुक्करं मेपडिहाइ मोयणं ॥१॥ अस्यार्थः प्रागध्ययनप्रारंभे प्रोक्तः । एवमाईकुमारोनृपं प्रतिबोध्य श्रीवीरांतिकं गत्वा भगवंतं भक्तिभूतआसीनः । भगवानपि तानि पंचापि शतानि प्रव्राज्य तव शिष्यत्वेन ददौ ॥ अथाध्ययनोपसंहारमाह । ( बुद्धस्सइत्यादि ) बुद्धस्य तत्वज्ञस्य श्रीवीरस्याज्ञया इमां समाधिं धर्मावाप्तिं प्राप्यास्मिन्समाधौ सुष्ठुस्थित्वा मनोवाक्कायैस्त्रायी रक्षकस्तीर्त्वाऽतिक्रम्य समुद्रमिव महाभवौघं । आदानं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपं विद्यते यस्य सआदानवान् धर्मं परहितैषी उदाहरेत्कथयेत् । इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ५५ ॥ इत्यार्द्रकीयाध्ययनमिदं षष्ठं समाप्तम् ॥

---

॥ टीका–सांप्रतमेतदेवाईककुमारोहस्तितापसमतं दूषयितुमाह । (संवच्छरेणइत्यादि) संवत्सरेणैकैकं प्राणिनं घ्नतोपि प्राणातिपातादनिवृत्तदोषास्ते भवंत्याशंसादोषश्च भवतां पंचेंद्रियमहाकायसत्ववधपरायणानामतिदुष्टोभवति साधूनां तु सूर्यरश्मिप्रकाशितवीथिषु युगमात्रदृष्ट्या गच्छतामीर्यासमितिसमितानां द्विचत्वारिंशद्दोषरहितमाहारमन्वेषयतां लाभालाभसमवृत्तीनां कुतस्त्यआशंसादोषः पिपीलिकादिसत्वोपघातोवेत्यर्थः स्तोकसत्वोपघातेनैवंभूतेन दोषाभावोभवताभ्युपगम्यते तथाच सति गृहस्थाअपि स्वारंभदेशवर्तिनएव प्राणिनोघ्नंतीति शेषाणांच जंतूनां क्षेत्रकालव्यवहितानां भवदभिप्रायेण वधेन प्रवृत्तायतएवं तस्मात्कारणात्स्यादेवं स्तोकमिति स्वल्पं यस्मात् घ्नंति ततस्तेपि दोषरहिताइति ॥ ५३ ॥ सांप्रतमाईककुमारोहस्तितापसान्दूषयित्वा तदुपदेष्टारं दूषयितुमाह । ( संवच्छरेणेत्यादि ) श्रमणानां यतीनां व्रतानि श्रमणव्रतानि तेष्वपि व्यवस्थिताः संतएकैकं संवत्सरेणापि ये घ्नंति ये चोपदिशंति तेऽनार्या असत्कर्मानुष्ठायित्वात्तथा आ

त्मानं परेषां चाहितास्ते पुरुषाः। बहुवचनमार्षत्वान्न। तादृशाः केवलिनोनवंति तथा ह्येक स्य प्राणिनः संवत्सरेणापि घाते येन्ये पिशिताश्रितास्तत्संस्कारेच क्रियमाणे स्थावरजं गमाविनाशमुपयांति ते तैः प्राणिवधोपदेष्टृभिर्न दृष्टाः। नच तैर्निरवद्योपायोमाधुकर्या वृ त्या योजवति सदष्टोतस्तेन केवलमकेवलिनोविशिष्टविवेकरहिताश्चेति। तदेवं हस्तिताप सान्निराकृत्य नगवदंतिकं गच्छंतमार्द्रककुमारं महता कलकलेन लोकेनाभिष्टूयमानं तं समुप लज्य अभिनवं गृहीतः संपूर्णलक्षणसंपूर्णोहस्ती समुत्पन्नस्तथाविधविवेकोचितं यत् य थार्द्रकुमारोयमपकृताशेषतीर्थिकोनिष्प्रत्यूहं सर्वज्ञपादपद्मांतिकं वंदनाय व्रजति तथाहम पियद्यप्यपगताशेषबंधनः स्यां ततएनं महापुरुषमार्द्रककुमारं प्रतिबुद्धतस्करपंचशतोपेतं त था प्रतिबोधितानेकवादिगणसमन्वितं परमया नक्त्यैतदंतिकं गत्वा वंदामीत्येवं यावद सौ हस्ती कृत्यसंकल्पस्तावत्तटत्तटदिति त्रुटितसमस्तबंधनः सन्नार्द्रककुमाराभिमुखं प्रदत्त कर्णतालस्तथोर्ध्वप्रसारितदीर्घकरः प्रधावितस्तदनंतरं लोकेन कृतहाहारवगर्भकलकलेन पूत्कृतं यथा धिक् कष्टं हतोयमार्द्रककुमारोमहर्षिर्महापुरुषस्तदेवं प्रलपंतोलोकाइतश्चेत श्च प्रपलायमानाः। असावपि वनहस्ती समागत्यार्द्रककुमारसमीपं नक्तिसंभ्रमावनताग्रना गोत्तमांगोनिर्वृतकर्णतालस्त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य निहितधरणीतलदंताग्रनागः स्पृष्टकराग्रतच्च रणयुगलः सुप्रणिहितमनाः प्रणिपत्य महर्षिवनाभिमुखं ययाविति। तदेवमार्द्रककुमार तपोनुनावाद्बंधनोन्मुखं महागजमुपलज्य सपौरजनपदः श्रेणिकराजस्तमार्द्रककुमारं म हर्षिं तत्तपःप्रनावं चाभिनंद्याभिवंद्य च प्रोवाच नगवन्नाश्चर्यमिदं यदसौ वनहस्ती ताह ग्विधाच्छृंखलाबंधनाद्युष्मत्तपःप्रनावान्मुक्तइत्येतदतिडुष्करमित्येवमभिहिते आ र्द्रकुमारः प्रत्याह। नो श्रेणिक महाराज! नैतडुष्करं यदसौ वनहस्ती बंधनान्मुक्तोपि त्वेत डुष्करं यत्स्नेहपाशमोचनं एतच्च प्राक्निर्युक्तिगाथया प्रदर्शितं। साचेयं। "ण डुक्करं वारणपा समोयणं, गयस्स मत्तस्स वणंमि रायं॥जहा उवत्तावलिएण तंतुणा,सुडुक्करंमे पडिहाइ मो यणं॥ १ ॥ एवमार्द्रककुमारेण राजानं प्रतिबोध्य तीर्थकरांतिकं गत्वाऽभिवंद्य च नगवंतं नक्तिनरनिर्नरश्चासांचक्रे नगवानपि तानि पंचापि शतानि प्रव्राज्य तच्छिष्यत्वेनोपनिन्य इति॥ ५४ ॥ सांप्रतं समस्ताध्ययनार्थोपसंहारार्थाह। ( बुद्धस्सेत्यादि ) बुद्धोऽवगत तत्वः सर्वज्ञोवीरवर्द्धनस्वामी तस्याज्ञया तदागमेन इमं समाधिं सद्धर्मावाप्तिलक्षणं अ वाप्यास्मिंश्च समाधौ सुष्ठु स्थित्वा मनोवाक्कायैश्च प्रणिहितेंद्रियोन मिथ्यादृष्टिमनुमन्यते केवलं तदावरणजुगुप्सां त्रिविधेनापि करणेन न विधत्ते सएवंनूतश्चात्मन. परेषांच त्राण शीलस्तायी वा गमनशीलोमोक्षं प्रति सएवंनूतस्तरीतुमतिलंघ्य समुद्रमिव डुस्तरं महाजवौ घं मोक्षार्थमादीयतइत्यादानं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपं तद्विद्यते यस्यासावादानवान् साधुः सच सम्यग्दर्शनेन सता परतीर्थिकतपःसमृद्ध्यादिदर्शनेन मौनींद्रदर्शनान्न प्रच्यव

ते सम्यक्ज्ञानेनतु यथावस्थितवस्तुप्ररूपणतः समस्तप्रावादुकवादिनिराकरणेनापरेषां यथावस्थितमोक्षमार्गमाविर्भावयतीति सम्यक्चारित्रेणतु समस्तभूतग्रामहितैषया निरुद्धा श्रव द्वारः सन् तपोविशेषाच्चानेकभवोपार्जितं कर्म निर्जरयति स्वतोन्येषां चैवं प्रकारमेवं धर्ममुपाहरे द्व्याग्रणीयादित्यर्थः । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति नयाश्च प्राग्वदेव वाच्या वक्ष्यंते चोत्तरत्र ॥ ५५ ॥ समाप्तं चेदमार्द्रकीयाख्यं षष्ठमध्ययनमिति ॥ ६ ॥

---

## ॥ अथ सप्तमाध्ययन प्रारंभः ॥

---

छठा अध्ययनमां स्वसमय, परसमय, प्ररूपणायें करी, प्रायः समस्त सुयगडांग सूत्रनें विषे साधुना आचारनी प्ररूपणा करी, हवे आ सातमा अध्ययनमां श्रावकनो आचार कहे छे,अथवा छठा अध्ययनमां परतीर्थिकना वादनुं निराकरण कर्युं, अने हवे आ सातमा अध्ययनमां स्वतीर्थिक साथें वाद कहेशे, ए संबंधें आव्युं जे सातमुं अध्ययन तेने कहेछे.

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था रिद्धि
त्थीत समिद्धे वण्णउ जाव पडिरूवे तस्सणं रायगिहस्स नयर
स्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थणं नालंदानामं बाहि
रिया होत्था अणेगभवणसयसन्निविठ्ठा जाव पडिरूवा ॥ १ ॥

अर्थ-( तेणंकालेणं के० ) ते कालनें विषे ( तेणंसमएणं के० ) ते समयनें विषे, ( रायगिहेनामंनयरेहोत्था के० ) राजगृह नामा नगर हतुं, ते राजगृहनामा नगर केहेवुं हतुं ? तोके, ( रिद्धि के० ) भवनादिकें करी सहित, ( त्थीत के० ) स्थित निश्चल भय रहित, ( समिद्धे के० ) धन धान्यादिकें करी समृद्धिमान् एटले सहित, ( वण्णउजावपडिरूवे के० ) यावत् प्रतिरूप एटले स्वर्गनुं प्रतिरूप एवुं वर्णन उववाइ उपांगनी पेठें जाणवुं. यद्यपि ते राजगृह नगर, हमणां पण वर्त्तेछे, तथा आगमिक कालें पण हशे, परंतु सूत्रमांहे अतीत कालेंज वखाण्युं तेनुं कारण शुं ? तोके, जेवुं विशिष्ट लक्षणोपेत अतीतकालें हतुं, तेवुं वर्त्तमान कालें अनें आगमिक कालें नथी. ए कारण जाणवुं. ( तस्सणंरायगिहस्सनयरस्सबहिया के० ) त्यां ते राजगृह नगरना बाहिरना प्रदेशें, ( उत्तरपुरत्थिमेदिसीभाए के० ) ईशानकोणनें विषे ( एत्थणं के० ) अंहीयां ( नालंदानामंबाहिरियाहोत्था के० ) नालंदा एवे नामें बाहिरिया एटले पाडोविशेष हतो. ते

पाडो केवोछे ? तोके, ( अणेगजवणस्सयसन्निविठ्ठा के० ) अनेक घरना शेंकडायें करी स हितछे. इत्यादिक ( जावपडिरूवा के० ) यावत् प्रतिरूप ए वर्णन जाणवुं ॥ १ ॥

---

॥ दीपिका—अथ सप्तमाध्ययनमारन्यते । अस्य च नालंदीयमिति नाम । तस्यायम. र्थः । नालंदा राजगृहनगरे बाहिरिका तस्यां जवं नालंदीयमिति । पूर्वं सकलेन सूत्र कृतांगेन साध्वाचारः प्ररूपितः । अत्र तु श्रावकविधिरुच्यते । तस्येदं सूत्रं । तस्मिन् का ले तस्मिन् समयेऽवसरे राजगृहं नाम नगरमजवत् । ऋद्धिस्फीतं समृद्धं वर्णकोवाच्यः यावत्प्रतिरूपमनन्यसदृशं तस्य नगरस्य बहिरुत्तरपूर्वस्यां दिशि नालंदानाम बाहिरिका सीत्साचानेकजवनशतसन्निविष्टाऽनेकगृहसंकीर्णेत्यर्थः ॥ १ ॥

---

॥ टीका—व्याख्यातं षष्ठमध्ययनमधुना सप्तममारन्यते । अस्यायमजिसंबंधः। इह प्रा ग्व्याख्यातेनाखिलेनापि सूत्रकृतांगेन स्वसमयपरसमयप्ररूपणाद्वारेण प्रायः साधूनामाचा रोऽजिहितोऽनेन तु श्रावकगतोविधिरुच्यते । यदिवानंतराध्ययने परवादनिराकरणं कृत्वा साध्वाचारस्य यउपदेष्टा सउदाहरणद्वारेण प्रदर्शितः । इहतु श्रावकधर्मस्य यउपदेष्टा सउदाहरणद्वारेणैव प्रदर्श्यते ।यदिवाऽनंतराध्ययने परतीर्थिकैः सह वादइह तु स्वयूथ्यै रित्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराण्युपवर्णितव्यानि उपक्रमादीनि तत्रापि नामनिष्पन्ने निक्षेपे नालंदीयाजिधानमिदमध्ययनमिदं चैवं व्युत्पाद्यते । प्रतिषेध वाचिनोनकारस्य तदर्थस्यैवालंशब्दस्य डुदाञ् दाने इत्येतस्य धातोर्मीलनेन नालं ददातीति नालंदा । इदमुक्तं जवति। प्रतिषेधप्रतिषेधेन धात्वर्थस्यैव प्राकृतस्य गमनात्सदार्थिन्योयथा ऽजिलषितं ददातीति नालंदा राजगृहनगरबाहिरिका तस्यां जवं नालंदीयमिदमध्ययनंअने न चाजिधानेन समस्तोप्युपोद्घातउपक्रमरूपआवेदितोजवति तत्स्वरूपंच पर्यंते स्वतएव निर्युक्तिकारः पासाविञ्चे इत्यादिगाथया निवेदयिष्यतीति । सांप्रतं संजविनमलंशब्दस्य निक्षेपं नादौ परित्यज्य कर्तुमाह। "णाम अलं ठवणअलं, दव्वअलं चेव होइ जावअलं॥ एसो अलदमि, निक्खेवो चउव्विहो होइ ,, ॥१॥ (णामअलमिति) तत्रामानोनाः प्रतिषेध वाचकाः । तद्यथा । अगौरघटइत्याद्याकारः प्रायोऽव्यस्यैव प्रतिषेधवाचीत्यलंदानेन सहा स्यप्रयोगाजावमकारस्त्वनागतक्रियायानिषेधं विधत्ते । तद्यथा नो घटोघटैकदेशनिषेधेन त था हास्यादयोनो कषायाः कषायमोहनीयैकदेशजूताःनकारस्तु समस्तद्रव्यक्रियाप्रतिषेधा जिधायी। तद्यथा न द्रव्यं न कर्म न गुणोजावस्तथा नाकार्षं न करोमि न करिष्यामीत्यादि। तथाऽन्यैरप्युक्तं। न याति नच तत्रासीदस्ति पश्चान्नचांशकान्जहाति पूर्वं नाधारमहो व्यसन संततिः। किंचान्यत् ।"गतं न गम्यते तावदगतं नैव गम्यते । गतागतविनिर्मुक्तं गम्यमानंतु ग म्यत"इत्यादि । तदेवमत्र नकारः प्रतिषेधविधायकोप्युपात्तः।अलंशब्दोपि यद्यप्यलं पर्याप्ति

वारणनूषणेष्वपीति त्रिष्वर्थेषु पव्यते तथापीह प्रतिषेधवाचकेन नञा साहचर्यात्प्रतिषे धार्थएव गृह्यते तत्र चालंशब्दः। नामस्थापना द्रव्यनावनेदाच्चतुर्विधोनिक्षेपोनवति। तत्र नामालं यस्य चेतनस्य वालमिति नाम क्रियते। स्थापनालंतु यत्र क्वचिच्चित्रपुस्तकादौ पाप निषेधं कुर्वन्साधुः स्थाप्यते द्रव्यनिषेधस्तु नो आगमतोज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तोद्रव्यस्य चौराद्यात्हतस्यैहिकपापनीरुणा योनिषेधः क्रियते सद्रव्यनिषेधः। एवं द्रव्येण द्रव्याद्रव्ये वा निषेधः। नावनिषेधंतु स्वतएव निर्युक्तिकारोलंशब्दस्य संनविनमर्थं दर्शयन्विनणिपुराह। "पज्जत्ती नावे खलु, पढमो बीउ नवेअलंकारे॥ ततितो उप्पडिसेहे, अलसद्दो होई नायव्वो,,॥ २॥ (पज्जतीनावइत्यादि) पर्याप्तनावः सामर्थ्यं तत्रालंशब्दोवर्तते। अलं मल्लोमल्लाय समर्थइत्यर्थः। लोकोत्तरोपि विनालं तेताणाएवासरणाएवा। अन्यैरप्युक्तं। "द्रव्यास्तिकरथारूढः पर्यायोद्यतकार्मुकः॥ युक्तिसन्नाहवान्वादी कुवादिन्योनवत्यलं"॥१॥ अयं प्रथमोलंशब्दार्थोनवति। खलुशब्दोवाक्यालंकारे द्वितीयस्त्वर्थालंकारविषये नवेत्सं नावनायां लिङ्। तद्यथालंकृतदेवदत्तेन स्वकुलं जगच्च नाभिस्तुनेत्यादि। तृतीयस्त्वलंशब्दार्थः प्रतिषेधे ज्ञातव्योनवति। तद्यथालं मे गृहवासेन तथालं पापेन कर्मणा। उक्तंच। "अलं कुतीर्थैरिह पर्युपासितै,रलं वितर्काकुलकादलैर्मतैः॥अलंच मे कामगुणैर्निषेवितै, र्नयंकरायेहि परत्र चेहच" ॥१॥ तदिह प्रतिषेधवाचिनालंशब्देनाधिकारइत्येतद्दर्शयितुमाह। "पडिसेहणणगारस्स इच्छिसद्देण चेव अलसद्दो॥रायगिहे नयरंमि नालंदा होइ बाहिरिया" ॥३॥ (पडिसेहणेत्यादि) सत्यप्यलंशब्दस्यार्थत्रये नकारस्य सान्निध्यात्प्रतिषेधविधानाद प्येवेह गृह्यते ततश्च निरुक्तविधानादयमर्थः। नालं ददातीति नालंदा वाहिरिकायाः स्त्रियोदेशकत्वेनच नालशब्दस्य स्त्रीलिंगता साच सदैहिकामुष्मिकसुखहेतुत्वेन सुखप्रदा राजगृह नगरबाहिरिका धनकनकसमृद्धत्वेन सत्साध्वाश्रयत्वेनच सर्वकामप्रदेति। सांप्रतं प्रत्ययार्थं दर्शयितुकामआह "नालंदाए समिवे,मणोरहे नासि इंदनूइणा॥ अज्झयणं उदगस्सउ, एयं नालंदइज्जं तु" ॥४॥(नालिंदाएइत्यादि) नालंदायाः समीपे मनोरथाख्ये उद्याने इंद्रनूमिना गणधरेणोदकाख्यनिर्ग्रंथपृष्टेन तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्तस्यैव नाषितमिदमध्ययनं। नालंदायां नवं नालंदीयं नालंदासमीपोद्यानकथनेन वा निवृत्तं नालंदीयं। यथाचेदमध्ययनं नालंदायां संवृत्तं तथा "पासावच्चिज्जोपुच्छियाइउ अज्जगोयमं उदगो॥ सावगपुच्छाधम्मं सोउं कहियंमि उवसंता,, ॥५॥ अनायापासावच्चिज्जेत्यादिकया सूत्रस्पर्शिकगाथयाविष्करिष्यते। सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं। (तेणंकालेणमित्यादि) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रैः सह संबंधोवाच्यस्तत्रानंतराध्ययनपर्यंते सूत्रमिदमादानवान् धर्ममुदाहरेत्।धर्मश्च साधुश्रावकनेदेन द्विधा।तत्र पूर्वोक्तेनांगद्वयेन प्रायः साधुगतोविधिरनिहितोनेनतु श्रावकगतोविधिरुच्यते। परंपरसूत्रसंबंधस्त्वयं बुध्येतेत्येतदादिसूत्रं। किं तत्र

बुध्येत यदेत दृश्यतइति। सूत्रार्थस्त्वयं। सप्तम्यर्थे तृतीया। यस्मिन्काले यस्मिंश्चावसरे राजगृहं नगरं यथोक्तविशेषणविशिष्टमासीत्तस्मिन् काले तस्मिंश्च समये इदमभिधीयते। राजगृहमेवविशिनष्टि। प्रासादाः संजातायस्मिंस्तत्प्रासादितमाह्लादकं वा अतएव दर्शनीयं दर्शनयोग्यं दृष्टिसुखहेतुत्वात्तथाभिमुख्येन रूपं यस्य तदभिरूपं तथा प्रतिरूपमनन्यसदृशं प्रतिरूपं वा प्रतिबिंबं वा स्वर्गनिवेशस्य तदेवंभूतं राजगृहंनाम नगरं (होत्थाचि) आसीत्। यद्यपि तत्कालत्रयेपि सत्तां बिभर्ति तथाप्यतीताख्यानसमाश्रयणादासीदित्युक्तं। तस्य च राजगृहस्य बहिरुत्तरपूर्वस्यां दिशि नालंदानाम बाहिरिका आसीत् साचानेकभवनशतसन्निविष्टा अनेकभवनशतसंकीर्णेत्यर्थः ॥ १ ॥

तत्थणं नालंदाए बाहिरियाए लेवे नामं गाहावई होत्था अड्ढे दित्ते वित्ते वित्थणविपुलभवणसयणासणजाणवाहणाइसे बहुधणबहुजायरूवरजते आओगपओगसंपउत्ते विच्छड्डियपउरभत्तपाणे बहु दासी, दास, गोमहिस, गवेलगप्पभूए बहुजणस्स अपरिभूएयावि होत्था ॥ २ ॥

अर्थ-( तत्थणंनालंदाएबाहिरियाए के० ) ते नालंदा नामें बाहिरिया एटले पाडाने विषे ( लेवेनामंगाहावईहोत्था के० ) लेप एवे नामें गृहपति कुटुंबी हतो. ते केवो हतो? तोके, ( अड्ढे के० ) धनवंत, ( दित्ते के० ) दीप्त तेजस्वी, ( वित्ते के०) सर्वजनमां विख्यात, ( वित्थण के०) विस्तीर्ण, ( विपुल के०) घणा एवां ( भवण के०) भुवन, ( सयणासण के०) शय्यासनादिक, तथा ( जाणवाहणाइसे के० ) यान एटले रथ वेहेलादिक, वाहन एटले अश्वादिक, तेणें करी इसे एटले आकीर्ण व्याप्त, ( बहुधण के० ) घणुं धन, ( बहुजायरूवरजते के० ) घणुं जात एटले सुवर्ण,तथा रूपुं, तेणे करी सहित, ( आओग के० ) धननो उपाय एटले यानपात्रादिकनो संग्रह. तथा ( पओग के० ) प्रयोग एटले व्यापारादिक प्रयोजन तेणे करी ( संपउत्ते के० ) संप्रयुक्त एटले सहित ( वि के० ) विशेषें करी ( छड्डिय के० ) ज्यां त्यां नाख्योछे ( पउर के० ) घणो एवो ( भत्तपाणे के०) भातनें पाणी जेणे, एटले जेनें घरे निरंतर लोक जमेछे. विशेषें करी देवरावेछे. ( बहुदासीदास के० ) घणां दासी, तथा दास, ( गोमहिस के० ) गाय, अनें भेंष, ( गवेलग के० ) गाडर छाली, तेणें करी ( प्पभूए के०) परिवृत्त तेमाटें ( बहुजणस्सअपरिभूएआविहोत्था के० ) घणा लोकोयें पण पराभव करी न शकाय एवो हतो. एटला वर्णनें करी एनी इव्यसंपदा कहीछे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका-(तब्बणं) तस्यां नालंदायां लेपोनाम गृहपतिः कुटुंबिकआसीत् सच आढ्योदीप्तस्तेजस्वी वित्तोविख्यातोविस्तीर्णविपुलनवनशयनासनयानवाहनाकीर्णोबहुधनो बहुजातरूपरजतः आयोगाअर्थोपायाः प्रयोगः प्रयोजनानि तैः संप्रयुक्तः संयुतः इतश्चेतश्च विच्छिन्नप्रचुरभक्तपानोबहुदास्यादिपरिवृतोबहुजनस्यापरिभूतआसीत् ॥ २ ॥

---

॥ टीका-तस्यांचलेपोनाम गृहपतिः कुटुंबिकआसीत्सचाढ्योदीप्तस्तेजस्वी वित्तः सर्वजनविख्यातोविस्तीर्णविपुलनवनशयनासनयानवाहनाकीर्णोबहुधनबहुजातरूपरजतः आयोगः अर्थोपाया यानपात्रोष्ट्रमंमलिकादयस्तथा प्रयोजनमयोगः प्रायोगिकत्वं तैरायोगप्रयोगैः संप्रयुक्तः समन्वितस्तथेतश्चेतश्च विच्छिन्नप्रचुरभक्तपानोबहुदास्यादिपरिवृतोबहुजनस्यापरिभूतश्चासीत्तदियता विशेषणकदंबकेनैहिकगुणाविष्करणेन इव्यसंपदभिहिता॥२॥

सेणं लेवे नामं गाहावई समणोवासएयावि होत्था अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ निग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखिए निवितिगिछे लट्ठे गहियट्ठे पुछियट्ठे विणिछियट्ठे अभिगहियट्ठे अट्ठिमिंजा पेमाणुरागरत्ते अयमाउसो निग्गंथे पावयणे अयं अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे उसियफलिहे अप्पावयडुवारे वियत्तंतेउरप्पवेसे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे समणे निग्गंथे तहाविहेणं एसणिज्जेणं असणपाणं खाइमसाइमेणं पडिलाभेमाणे बहुहिं सीलवयगुणविरमणपच्चक्खाणपोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणे एवंचणं विहरइ ॥ ३ ॥

अर्थ-हवे एनी भाव संपदा कहियें बैयें. ( सेणं के० ) ते ( लेवेनामंगाहावईसमणोवासएयाविहोत्था के० ) लेपनामा गृहपति श्रमणोपासक हतो, श्रमण एटले साधु, तेनी जे निरंतर सेवा करे, तेनें श्रमणोपासक कहियें. ( अभिगयजीवाजीवेजावविहरइ के० ) अभिगत एटले जाण्याछे जीव अनें अजीवना भाव जेणें एवो हतो, यावत् विचरेछे. हवे तेनुं रूडा प्रकारें सम्यक् ज्ञानपणुं कहियें बैयें. ( निग्गंथेपावयणेनिस्संकिए के०) जिनशासन प्रवचननें विषे शंकारहित एवो, तथा ( निक्कंखिए के० ) अन्य दर्शननें विषे निराकांक्ष एटले आकांक्षारहित एवो, तथा ( निवितिगिछे के० ) विद्वान जे ज्ञानी पुरुषो तेनी निंदा एटले जुगुप्सा तेणे करी रहीत ते कारण माटेज (लद्धट्ठे

के० ) प्राप्त थयाछे सिद्धांतना अर्थ जेने ( गहियट्ठे के० ) ग्रहण कर्याछे मोक्षमार्गरूप अर्थ जेणे, तथा ( पुच्छियट्ठे के० ) विशेषें करी पुछ्युंछे मोक्षस्वरूप जेणे, तथा ( विणिच्छियट्ठे के० ) निश्चय कर्योछे सिद्धांतनो अर्थ जेणे, तथा ( अभिगहियट्ठे के० ) प्रतीत थयोछे अर्थ जेनें, तथा ( अट्ठिमिंजापेमाणुरागरत्ते के० ) प्रेमें करीनें रंगित छे अस्थिमिंजा जेनां, एटले अत्यंतछे हृदयनें विषे प्रेम जेनें, तथा ( अयमाउसो के० ) कोइ एकें सधर्म पुछे थके, तेनें ए प्रकारें उत्तर आपे कें, हे आयुष्मन्! ( निग्गंथेपावयणे के० ) आ जिनप्रवचन निस्संशयछे, तथा सत्यछे. वली ( अयमट्ठेअयं परमट्ठे के० ) आ जैन शासनरूप अर्थ ए परमार्थरूप छे, तथा ( सेसेअणट्ठे के० ) अन्य लौकिक सर्व दर्शन ते पुरुषोनां कल्पना करेलांछे. वली तेना गुणो कहेछे. ( उसियफलिहे के० ) स्फाटिक सरखुं उज्ज्वलछे यश जेनुं, एटले प्रख्यातछे यश जेनुं, एवो, तथा ( अप्पावयडुवारे के० ) अप्रावृत एटले निरंतर उघाडुं रहेछे द्वार जेनुं , अनें ( वियत्तंतेउरप्पवेसे के० ) कोइ एक परतीर्थिक पोताना घरमां आवीने जो सधर्म कहे! तो तेनो प्रतिबंध अनुचरो पण करी न शकें, तथा ( चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुस्समासिणीसु के०) चउदश, आठम, पुन्यम एटले चोमासानी त्रण पुन्यम वगेरे पुण्यतिथीयोनें विषे, ( पडिपुन्नंपोसहंसम्मंअणुपालेमाणे के० ) परिपूर्ण रुडा प्रकारें पोषधनें पालतो एवो, (समणेनिग्गंथेतहाविहेणंएसणिज्जेणंअसणपाणंखाइमसाइमेणंपडिलाभेमाणे के०) ते प्रकारना धर्मनें पालता एवा जे श्रमण ब्राह्मण,तेनें शुद्ध आहार जलें करी संतोष पमाडतो एवो,तथा ( बहुहिंसीलव्वयगुणविरमणपच्चखाणपोसहोववासेहिं के० ) शील, व्रत, गुण, विरमण, पच्चखाण, पोषहादिक उपवास, तेणें करीने ( अप्पाणंभावेमाणे के० ) पोताना आत्मानें भावना करतो एवो छतो ( एवंचणंविहरइ के० ) ए प्रकारें धर्म आचरण करतो थको विचरेछे. ॥ ३ ॥

---

॥ दीपिका–सलेपोनाम गृहपतिः श्रमणोपासकोभिगतजीवाजीवइत्यादि । ( निग्गंथेत्ति ) आर्हते प्रवचने निःशंकितोनिःकांक्षितोऽन्यतमोनिराकांक्षः विचिकित्साचित्तविप्लुतिर्विद्वज्जुगुप्सा वा तद्रहितोनिर्विचिकित्सः लब्धार्थोज्ञाततत्वः गृहीतार्थः स्वीकृतमोक्षमार्गः पृष्टार्थत्वादविनिश्चितार्थः अभिगतः प्रतीतोर्थोयेन सतथा अस्थिमिंजास्थिमध्यं यावद्धर्मे प्रेमानुरागेण रक्तोऽत्यंतं सम्यक्त्ववासितचित्तइत्यर्थः । केनचिद्धर्मं पृष्टः प्राह । अयमायुष्मन्! जैनधर्मोर्थः सत्यः परमार्थरूपशेषः सर्वोप्यनर्थः । ( उसियफलिहत्ति ) उच्छ्रितं प्रख्यातं स्फटिकवन्निर्मलं यशोयस्य अप्रावृतं अस्थगितं द्वारं गृहस्य येन सोऽप्रावृतद्वारः परतीर्थिकोपि गृहं प्रविश्य धर्मं यदि वदेत् तदनु न तस्य परिजनोपि सम्य

क्त्वाद्यालयितुं शक्यते तन्नीत्या न द्वारप्रदानमित्यर्थः । प्रातिहारी राजांतःपुरेपि प्रवेशोय स्य सतथा कोर्थः? पुरेहि कोपि न प्रवेश्यः तत्राप्यसौ प्रतीतगुणत्वे प्रवेशयोग्यइत्यर्थः । तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषु उपदिष्टासु महाकल्याणकसंबंधितया पुण्यतिथित्वेन प्रसिद्धासु तथा पौर्णमासीसु च तिसृष्वपि चतुर्मासकतिथिषु एवंभूतेषु धर्मदिवसेषु सुष्ठु अतिशयेन प्रतिपूर्णं संपूर्णमाहारशरीरसत्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पौषधमनुपालयन् तथाविधान् सद्गुणान् श्रमणान् एषणीयेन शुद्धेनाशनादिना प्रतिलाभयन् ( बहुहिं ) बहुभिः शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपोषधोपवासैरात्मानं भावयन् एवं पूर्वोक्तप्रकारेण । च समुच्चये णं वाक्यालंकारे । विहरति आस्ते ॥ ३ ॥

---

॥ टीका—अधुनाऽमुष्मिकगुणाविर्भावेन भावसंपदभिधीयते । ( सेणंलेवेइत्यादि ) णमिति वाक्यालंकारे। सलेपाख्योगृहपतिः श्रमणान् साधूनुपास्ते प्रत्यहं सेवतइति श्रमणोपासकस्तदनेन विशेषणेन तस्य जीवादिपदार्थाविर्भावकश्रुतज्ञानसंपदा वेदिता भवत्येतदेव दर्शयत्यभिगतजीवाजीवेत्यादिना ग्रंथेन।यावदसहायोपि देवासुरादिभिर्देवगणैरनतिक्रमणीयोऽनतिलंघनीयोधर्मादप्रच्यावनीयइति यावत् ।,तदियता विशेषणकलापेन तस्य सम्यक्ज्ञानित्वमावेदितं भवति । सांप्रतं तत्तस्य विशिष्टसम्यग्दर्शनित्वमापादयितुमाह । (निग्गंथेत्यादि) निर्ग्रंथे आर्हते प्रवचने निर्गता शंका देशसर्वरूपा यस्य सः निःशंकः तदेव सत्यं निःशंकं यज्जिनैः प्रवेदितमित्येवं कृताध्यवसायस्तथा निर्गता कांक्षान्यान्यदर्शनग्रहणरूपा यस्यासौ निराकांक्षस्तथा निर्गता विचिकित्सा चित्तविप्लुतिर्विद्वज्जुगुप्सा यस्यासौ निर्विचिकित्सोयतएवमतोलब्धउपलब्धोर्थः परमार्थरूपोयेन सः, लब्धार्थो ज्ञाततत्वइत्यर्थः।तथा ,गृहीतः स्वीकृतोर्थोमोक्षमार्गरूपोयेन सगृहीतार्थस्तथा विशेषतः पृष्टोर्थोयेन सः पृष्टार्थोयतएवमतोविनिश्चितार्थस्ततोभिगतः पृष्टनिर्वचनतः प्रतीतोर्थो येन सोभिगतार्थस्तथाऽस्थिमिंजाऽस्थिमध्ये यावत्सधर्मे प्रेमानुरागेण रक्तोत्यंतसम्यक्त्ववासितांतश्चेताइति यावत् । एतदेवाविर्भावयन्नाह । ( अयमाउसोइत्यादि ) केनचित्पृष्टः सन्नेतदाचष्टे । तद्यथा भो आयुष्मन्निदं निर्ग्रंथमौनींद्रप्रवचनमर्थः सद्भूतार्थस्तथा प्ररूपणतया तथेदमेवाह । अयमेव परमार्थः कपतापछेदैरस्यैव शुद्धत्वेन निर्घटितत्वात् ।शेषस्तु सर्वोपि लौकिकतीर्थिकपरिकल्पितोऽनर्थस्तदनेन विशेषणकदंबकेन सम्यक्त्वगुणाविष्करणं,कृतं भवति । सांप्रतं तस्यैव सम्यग्दर्शनज्ञानाभ्यां कृतोयोगुणस्तदाविष्करणायाह । (उसियइत्यादि) उच्छ्रितं प्रख्यात स्फटिकवन्निर्मलं यशोयस्यासावुच्छ्रितस्फटिकः प्रख्यातनिर्मलयशाइत्यर्थः । तथाऽप्रावृतमस्थगितं द्वारं गृहमुखं यस्य सोप्रावृतद्वारः । इदमुक्तं भवति । गृहं प्रविश्य परतीर्थिकोपि यद्यत्कथयति तदसौ कथयतु

न तस्य परिजनोप्यन्यथा भावयितुं सम्यक्त्वाच्च्यावयितुं शक्यतइति यावत्। तथा राज्ञां बह्व भांतःपुर द्वारेषु प्रवेशं शीलं यस्य सतथा। इदमुक्तं भवति प्रतिषिद्धान्यजनप्रवेशान्यपि यानि स्थानानि भांडागारांतःपुरादीनि तेष्वप्यसौ प्रख्यातः श्रावकाख्यगुणत्वेनास्खलित प्रवेशस्तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषूपदिष्टासु तथा पौर्णमासीसुच तिसृष्वपि चतुर्मासकतिथिष्वित्यर्थः। एवंभूतेषु धर्मदिवसेषु सुष्ठुतिशयेन प्रतिपूर्णोयः पौषधोव्रताभिग्रहविशेषस्तं प्रतिपूर्णमाहारशरीरसंस्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पौषधमनुपालयन् संपूर्णं श्रावकधर्ममनुचरति तदनेन विशेषणकलापेन विशिष्टं देशचारित्रमावेदितं भवति। सांप्रतं तस्यैवोत्तरगुणाख्यापनेन दानधर्ममधिकृत्याह। (समणेणंनिग्गंथइत्यादि) सुगमं (यावत्पडिलाभेमाणेत्ति) सांप्रतं तस्यैव शीलतपोभावनात्मकं धर्ममावेदयन्नाह (बहूहिमित्यादि) बहुभिः शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपौषधोपवासैस्तथा यथा परिगृहीतैश्च तपःकर्मभिरात्मानं भावयन्नेवं चानंतरोक्तया रीत्या विहरति धर्ममाचरंस्तिष्ठति। च समुच्चये। णमिति वाक्यालंकारे ॥ ३ ॥

तस्सणं लेवस्स गाहावइस्स नालंदाए बाहिरियाए उत्तरपुरछिमे दिसिभाए एबणं सेसदविया-नामं उदगसाला-होत्था अणेगखंभसयसन्निविठा पासादीया जावपडिरूवा तिस्सेणं सेसदवियाए उदगसालाए उत्तरपुरछिमे दिसिभाए एबणं हत्थिजामे नामं वणसंमे होत्था किएहे वणउ वणसंमस्स॥ ४ ॥

अर्थ-(तस्सणं के०) ते लेप नामा गृहपतिनें नालिंदा नामा पाडा थकी, उत्तर अनें पूर्वदिशानें वचें, एटले ईशान कोणे (एबणंसेसदवियानामंउदगसालाहोत्था के०) जिहां तिहां घर करावतां जे कांइ पाट पीठिकादिक उपकरण उगर्यां होय,वधेलां होय एवां उपकरणें करीने निपजावेली एटले करावेली एवी सेसदविया नामें उदकशाला हती वली ते उदकशाला केवी हती? तोके, (अणेगखंभसयसन्निविठा के०) अनेक स्तंभना सैंकडा तेना उपर रहेली, तथा तेणें करी सहित, (पासादीयाजावपडिरूवा के०) प्रासादवंत, दर्शनीय यावत् प्रतिरूप,( तिस्सेणंसेसदवियाएउदगसालाएउत्तरपुरछिमेदिसिभाए के० ) ते सेसदविया नामा उदकशाला थकी ईशान कोणनी दिशायें (एबणंहत्थिजामेनामंवणसंमेहोत्था के० ) हस्तियाम नामें वनखंम हतो, ( किएहेवणउवणसंमस्स के०) ते वनखंम, काले वर्णे हतो, एनुं विशेष वर्णन जेम, श्री उववाई उपांगमां कह्युंछे तेम जाणवुं.

॥ दीपिका-तस्य लेपस्य गृहपतेः संबंधिनी नालंदायाः पूर्वोत्तरस्यां दिशि शेषद्र

व्यानाम गृहोपयुक्तशेषद्रव्येण कृता उदकशालासीदनेकस्तंनशतसन्निविष्टा प्रासादीया यावत्प्रतिरूपा तस्याश्चोत्तरपूर्वे दिग्नागे हस्तियामाख्योवनखंमश्चासीत्कृष्णइत्यादिवर्णकोवन खंमस्य वाच्यः ॥ ४ ॥

---

॥ टीका—तस्य चैवंनूतस्य लेपोपासकस्य गृहपतेः संबंधिनी नालंदायाः पूर्वोत्तरस्य दिशि शेषद्र्व्यानिधाना गृहोपयुक्तशेषद्रव्येण कृता शेषद्रव्ये तदेवानिधानमस्याउदकश जायाः सैवंनूतासीदनेकस्तंनशतसन्निविष्टा प्रासादीया दर्शनीयानिरूपाप्रतिरूपेति तस्य श्चोत्तरपूर्वेदिग्विनागे हस्तियामाख्योवनखंमश्चासीत्कृष्णावनासइत्यादिवर्णकः ॥ ४ ॥

तस्सिंचणं गिहपदेसंमि नगवं गोयमे विहरइ नगवंचणं अहे आरामंसि अहेणं उदए पेढालपुत्ते नगवं पासावविज्जे नियंठे मेयज्जे गोत्तेणं जेणेव नगवं गोयमे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता नगवं गोयमं एवं वयासी आउसंतो गोयमा अत्थि खलु से केइ पदे से पुच्छियव्वे तंचमे आउसो अहासुयं अहादरिसियंमे वियागरेहि सवायं नगवं गोयमे उदय पेढालपुत्तं एवं वयासी अवियाइ आउसो सोच्चा निसम्म जाणिस्सामो सवायं उदए पेढालपुत्ते नगवं गोयमं एवं वयासी ॥ ५ ॥

अर्थ—हवे ( तस्सिंचणंगिहपदेसंमिनगवंगोयमेविहरइ के० ) ते वनखंम गृहप्रदेशनें विषे नगवंत श्री गौतमस्वामी विचरेछे. ( नगवंचणंअहेआरामंसि के० ) नगवंत श्रीगौतमस्वामी साधुना परिवार सहित आराम हेठल रह्या. ( अहेणं के० ) अथ हवे ए ए वे वाक्यालंकारें. ( उदएपेढालपुत्ते के० ) उदकनामें निर्ग्रंथ, पेढालनो पुत्र, अनें ( नगवंपासावविज्जेनियंठे के० ) श्री पार्श्वनाथना शिष्यनो शिष्य, ( मेयज्जेगोत्तेणं के० ) गोत्रें करी मेदार्यछे. ते उदकनिर्ग्रंथ, ( जेणेवनगवंगोयमेतेणेवउवागच्छइ के० ) ज्यां नगवंत श्रीगौतमस्वामी छे, त्यां आव्यो. ( उवागच्छइत्ता के० ) त्यां आवीनें ( नगवंगोयमं एवंयासी के० ) नगवंत श्रीगौतमस्वामी प्रत्यें एवुं बोल्या के, ( आउसंतोगोयमा के० ) अहो आयुष्यमन् गौतम ! मुजनें तमारा समीपें ( अत्थिखलुसेकेइपदेसेपुच्छियव्वे के० ) निश्चें ते कोइ एक प्रदेश एटले प्रश्न पुछवोछे. ( तंचमेआउसो के० ) ते प्रश्न मुजनें, अहो आयुष्यमन्! ( अहासुयं के० ) यथाश्रुतं एटले जेम तमे श्रीमहावीर स्वामी पासेंथी सांनल्युं, ( अहादरिसियंमेवियागरेहि के० ) जेम तमें अवधार्युं होय, तेम मु

जनें कह्यो. ( सवायंजगवंगोयमेउदयपेढालपुत्तंएवंवयासी के० ) हवे नगवंत श्री गौतमस्वामी वादसहित उदकपेढालपुत्र प्रत्यें एवुं बोल्या के, ( अवियाइआउसोसोचानिसम्मजाणिस्सामो के० ) अपि संनावनायें अहो आयुष्यमन् उदक ? तमारो प्रश्न सांजलीनें गुणदोषनी विचारणायें हैयामां सम्यक् रीतें धारण करीनें हुं जाणीश, तेवी रीतनो प्रश्न यथायोग्य पूछो. ( सवायंउदएपेढालपुत्तेनगवंगोयमंएवंवयासी के० ) ते वारें ते उदकपेढालपुत्र, वादसहित आ प्रकारें नगवंत श्रीगौतमस्वामी प्रत्यें बोल्या. ॥५॥

---

॥ दीपिका–तस्मिन् वनखंमगृहप्रदेशे नगवान् गौतमोविहरति तस्मिन्नारामे स्थितः। अथ उदकाख्योनिर्ग्रंथः पेढालपुत्रः पार्श्वापत्यस्य पार्श्वशिष्यस्यापत्यं शिष्यः सच मेदार्यगोत्रेण ( जेणेवत्ति ) यस्यां दिशि गौतमस्तत्रागत्येदं प्राह । आयुष्मन् नो गौतम! अस्ति मम कश्चित्प्रदेशः प्रष्टव्यः तं प्रदेशं मम यथाश्रुतं त्वया यथा दर्शितं श्रीवीरेण तथा व्यागृणीहि कथय सचायं नगवान् यदिवा सह वादेन सवादं पृष्टस्तमुदकं पेढालपुत्रमेवमवादीत् । अपिचायुष्मन्नुदक ! श्रुत्वा त्वदीयं प्रश्नं निशम्य चावधार्य गुणदोषविचारेण सम्यक् ज्ञास्येहं तडुच्यतां विश्रब्धं त्वया स्वाजिप्रायः सचायं ससद्वाचंवा उदकः पेढालपुत्रोगौतममेवमवादीत् ॥ ५ ॥

---

॥ टीका–तस्मिंश्च वनखंमप्रदेशे नगवान् गौतमस्वामी श्रीवर्धमानस्वामिगणधरोविहरति। अथानंतरं नगवान् गौतमस्वामी तस्मिन्नारामे सह साधुनिर्व्यवस्थितोऽथानंतरं णमिति वाक्यालंकारे उदकाख्योनिर्ग्रंथः पेढालपुत्रः पार्श्वापत्यस्य पार्श्वस्वामिशिष्यस्यापत्यं शिष्यः पार्श्वापत्यीयः सच मेदार्यगोत्रेण । येनैवेति सप्तम्यर्थे तृतीया । यस्यां दिशि यस्मिन्वा प्रदेशे नगवान् श्रीगौतमस्वामी तस्यां दिशि तस्मिन्वा प्रदेशे समागत्येदं वक्ष्यमाणंमोवाचेति । अत्र निर्युक्तिकारोऽध्ययनोत्थानं तात्पर्यंच गाथया दर्शयितुमाह । " पासावगिज्जो पुञ्चियाइउ अज्जगोयमं उदगो ॥ सावगपुञ्चा धम्मं सोउ कहियंमि उवसंता " ॥ १ ॥ ( पासावचिज्जेत्यादि ) पार्श्वनाथशिष्यउदकाजिधानआर्यर्गौतमं पृष्टवान् किं तच्छ्रावकगतं श्रावकविषयं प्रश्नं तद्यथा नो इंद्रनूते साधो ! श्रावकाणुव्रतदाने सति स्थूलप्राणातिपातादिविषये तदन्येषां सूक्ष्मबादराणां प्राणिनामुपघाते सत्यारंनजनिते तदनुमतिप्रत्ययजनितः कर्मबंधः कस्मान्न नवति ? तथा स्थूलप्राणातिपातादिविषये व्रतिनस्तमेव पर्यायांतरगतं व्यापादयतोनागरिकवधनिवृत्तस्य तमेवं बहिस्थं व्यापादयतइव तद्व्रतनंगजनितः कर्मबंधः कस्मान्न नवतीत्येतत्प्रश्नस्योत्तरं गृहपतिचौरग्रहणविमोक्षणोपमया दत्तवान् तच्च श्रावकप्रश्नस्यौपम्यं गौतमस्वामिना कथितं श्रुत्वोदकाख्योनिर्ग्रंथउपशांतोपगतसं

देहः संवृत्तइति। सांप्रतं सूत्रमनुश्रियते सउदकोगौतमस्वामिसमीपं समागत्य नगवंतमिद मवादीत्तद्यथा आयुष्मन्गौतम! अस्ति मम विद्यते कश्चित्प्रदेशः प्रष्टव्यस्तत्र संदेहात्तंच प्रदेशं यथाश्रुतं नगवता यथाच नगवता संदर्शितं तथैव मम व्यागृणीहि प्रतिपादय। एवं पृष्टः सचायं नगवान् यदिवा सद् वादेन सवादं पृष्टः सद्वादं वा शोजननारतीं वा प्रश्नं पृष्टस्तमुदकं पेढालपुत्रमेवमवादीत्तद्यथाऽपिचायुष्मन्नुदक! श्रुत्वा नवदीयं प्रश्नं निशम्य चावधार्यच गुणदोषविचारणतः सम्यगहं ज्ञास्ये तडच्यतां विश्रब्धं नवता स्वानिप्रायं स ह्वा चं चोदकः पेढालपुत्रोनगवंतं गौतममेवमवादीत् ॥ ५ ॥

आउसो गोयमा अत्थि खलु कुमारपुत्तिया नाम समणा निग्गंथा तुम्हाणं पवयणं पवयमाणा गाहावइं समणोवासगं उवसंपन्नं एवं पच्चरकावेंति णमुन अभिउंएणं गाहावइचोरग्गहणविमोरकणयाए तसेहिं पाणेहिं णिहाय दंमं एवंएहं पच्चरकंताणं डुप्पच्चरकायं नवइ एवंएहं पच्चरकावेमाणाणं डुपच्चरकावियवं नवइ एवं ते परं पच्चरकावेमाणा अतियरंति सयं पत्तिएं कस्सणं तं हेउं संसारिया खलु पाणा थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा तसकायंसि उववज्जंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं थावरकायंसि उववन्नाणं गणमेयं घत्तं ॥ ६ ॥

अर्थ–(आउसोगोयमा के०) अहो आयुष्मन् गौतम! (अत्थिखलुकुमारपुत्तियानामंसमणानिग्गंथा के०) निश्चें कुमारपुत्र एवे नामें, श्रमण निर्ग्रंथछे. (तुम्हाणंपवयणंपवयमाणा के०) ते तमारुं प्रवचन बोलतां प्ररूपतां, (गाहावइंसमणोवासगंउवसंपन्नंएवंपच्चरकावेंति के०) गृहपति श्रमणोपासकनियमोद्युक्तनें आवी रीतें पच्चरकाण करावेछे ते कहेछे के, जेमां त्रसप्राणीयोनो दंम, एटले विनाश, तेनो त्याग करे, एं रीतें प्राणातिपातनी विरति करावेछे. (णमुउअभिउंएणं के०) तथा राजादिकनें अनियोगें जे प्राणीउंनो उपघात थाय, ते टालीनें अन्यनी विरति करावेछे. तो ए रीतें स्थूलप्राणातिपातनी विरति कहेतां थकां, अन्य जीवनें उपघातनी अनुमतिनो दोष लागेछे? ए रीतें शंका जाणीने कहेछे. (गाहावइचोरग्गहणविमोरकणयाए के०) गृहपति ग्रहण मोक्षने अर्थें, एटले मूकाववानें अर्थें, एनो विशेष अर्थ आगल कहेशे. एतावता श्री वीरना शासननें विषे श्रावकनें अधिकारें (तसेहिंपाणेहिंणिहायदंमं के०) त्रसप्राणी

ना दंमनो निषेध कह्यो तेने उदक पोताना अनिप्रायें करी दूषवेछे. (एवंएहंपच्च क्खंताणंडपच्चक्खायंनवइ के० ) अहो गौतम ! ण एवे वाक्यालंकारे ए रीतें त्रसप्रा णीना दंमनो निषेध करीनें पच्चखाण करतां डुष्ट प्रत्याख्यान थाय ( एवंएहंप च्चक्खावेमाणाणंडपच्चक्खावियवंनवइ के० ) एम पच्चखाण करावनारनें पण, डुष्ट प्रत्याख्यान कराव्युं, एम थाय. ते कहेछे. ( एवंतेपरंपच्चक्खावेमाणा के० ) ए रीतें ते पच्चखाण करनार श्रावक, अनें पच्चखाण करावनार साधु वेहु, ( सयंपत्तिणं के० ) पोतानी प्रतिज्ञानें ( अतियरंति के० ) उल्लंघन करेछे, एतावता व्रतनंग करेछे. ( कस्सणंतंहेउं के०) ते केवा हेतु थकी प्रतिज्ञा नंग थाय? ते प्रतिज्ञा नंगनुं कारण कहेछे ( संसारियाखलुपाणा के०) निश्चें संसारी जीव, ( थावराविपाणा के०) जे पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु, अनें वनस्पति रूप स्थावर जीव ते पण ( तसत्ताएपच्चायंति के०) तेवा कर्मना उदयथकी त्रस पणे उपजे, ( तसाविपाणाथावरत्ताएपच्चायंति के०) तथा त्रस जे बेइंद्रियादिक जीवोछे ते पण स्थावर पणे उपजे, (थावरकायाउविप्पमुच्चमाणातसकायंसिउववज्जंति के०) स्थावरनी कायथकी मूकाणा त्रसकायनें विषे उपजे. (तसकायाउविप्पमुच्चमाणाथावरकायंसिउववज्जंति के०) त्रसकाय थकी मूकाणा थका स्थावरकायने विषे उपजे ए कारणमाटें ( तेसिंचणंथावरकायंसिउववन्नाणं के०) त्रसजीव स्थावरकाय मांहे जे वारे उपना, तेवारें ( ठाणमेयंघत्तं के० ) ते स्थानक त्रसकायनुं हणाणुं ए कारण माटें प्रतिज्ञानंग थाय. जेम कोइ एके एवी प्रतिज्ञा करी जे मह्वारे नागरीक पुरुष हणवो नहीं. अने पछी तेज नागरीक पुरुष कोइ आरामादिकने विषे बेठो होय, त्यां तेने हणे तो तेथी शुं तेनी प्रतिज्ञानंग न थाय? अपितु थायज. तेम अंहीं पण त्रसजीवना घातनी निवृत्ति करी, अनें स्थावर जीवना घातनी निवृत्ति नथी करी तो, जे वारें त्रसजीव स्थावर मांहे आवी उपजे तेवारे तेणे ते त्रसजीवज विणाश्या, एम करतां प्रतिज्ञानो नंग थयो ॥ ६ ॥

---

॥ दीपिका—नो गौतम! अस्ति संति कुमारपुत्रानाम निर्ग्रंथा युष्मदीयं प्रवचनं प्रवदंतः। तथाहि गृहपतिं श्रमणोपासकं उपसंपन्नं नियमग्रहणोद्यतं प्रत्याख्यापयंति प्रत्याख्यानं कारयंति तद्यथा। त्रसेषु दंमं हिंसां निहाय त्यक्त्वा प्राणातिपातनिवृत्तिं कुर्वंति ( णण्णत्थे ति ) नान्यत्र समतेरन्यत्र राजाद्यनियोगेन यः प्राणिघातोन तत्र निवृत्तिरिति तत्र स्थूलप्राणिविशेषणात्तदन्येषां जीवानां हिंसातु मतिदोषः स्यादित्याशंकावान् प्राह। ( गाहावइचोरत्ति ) अस्यार्थोऽग्रे नावयिष्यते ( एवंएहति ) उदकएवाह। एहमिति वाक्यालंकारे। एवं प्रत्याख्यानं कुर्वतां श्राद्धानां डुःखप्रत्याख्यातं नवति अप्रत्याख्याननंगसन्नावा

तथा एवं प्रत्याख्यापयतां प्रत्याख्यानं कारयतां साधूनां डुष्टं प्रत्याख्यानदानं नवति एवं प्रत्याख्यानं कुर्वतः कारयंतश्च स्वां प्रतिज्ञामतिचरंत्यतिलंघयंति ( कस्सणंतंहेउं ) कस्मा द्धेतोरित्यर्थः । प्रतिज्ञानंगकारणमाह । (संसारियाइत्यादि) सांसारिकाः खलु प्राणिनः स्था वराअपि प्राणिनस्त्रसतया प्रत्यायांति त्रसाश्च स्थावरत्वेनेति । एवंसति प्रतिज्ञालोपः स्यात् यथा नागरिकोन हंतव्यइति प्रतिज्ञा येन कृता सयदि उद्यानस्थं नागरिकं हन्यात्तदा त स्य किं प्रतिज्ञालोपोन स्यात् ? एवमत्रापि येन त्रसवधनिवृत्तिः कृता स यदि तमेव त्रसं स्था वरकायस्थितं हंति तदा तस्य किं न नवेत्प्रतिज्ञालोपः? नवत्येवेत्यर्थः। त्रसकायान्मुच्यमा नाः स्थावरकाये उत्पद्यंते स्थावरकायान्मुच्यमानाश्च त्रसकाये नच किंचिल्लिंगमस्ति येन ज्ञायतेऽयं त्रसोऽनूत्पूर्वं स्थावरोवेति ( तेसिंचणं ) तेषां त्रसानां स्थावरकाये उत्पन्नानां श्राद्धस्यारंनवतः स्थानमिदं स्थावराख्यं घात्यं स्यात् ॥ ६ ॥

---

॥ टीका–तद्यथा नो गौतम ! अस्तीत्ययं विनक्तिप्रतिरूपकोनिपातइति बव्हर्थवृत्तिर्गृह्य तस्ततश्चायमर्थः । संति विद्यंते कुमारपुत्रानाम निर्ग्रंथायुष्मदीयं प्रवचनं वदंतस्तद्यथा गृह पतिं श्रमणोपासकमुपसंपन्नं नियमायोपस्थितमेव प्रत्याख्यापयंति प्रत्याख्यानं कारयंति । त द्यथा स्थूलेषु प्राणिषु दंमयतीतिदंमः प्राण्युपमर्दस्तं निहाय परित्यज्य प्राणातिपातनिवृ त्तिं कुर्वंति।तामेवापवदति।नान्यत्रेति।स्वमनीषिकायाअन्यत्र राजाद्यनियोगेन यः प्राण्युप घातोन तत्र निवृत्तिरिति । तत्र किल स्थूलप्राणिविशेषणात्तदन्येषामनुमतिप्रत्ययदोषः स्यादित्याशंकावानाह ।(गाहावइइत्यादि) अस्य चार्थमुत्तरत्राविर्नावयिष्यामः। येनाभिप्रा येणोदकश्चोदितवांस्तमाविष्कुर्वन्नाह (एवंएहमित्यादि ) एहमिति वाक्यालंकारे अवधार णेवा। एवमेव त्रसप्राणिविशेषत्वेनापरसूत्रसंनूतविशेषणरहितत्वेन प्रत्याख्यानं गृह्णतां श्रावकाणां डुष्प्रत्याख्यानं नवति प्रत्याख्यानजंगसद्भावात्तथैवमेव प्रत्याख्यापयतामपि साधूनां डुष्टं प्रत्याख्यानदानं नवति । किमित्यतआह । एवं ते श्रावकाः प्रत्याख्यानं गृ ह्णंतः साधवश्च परं प्रत्याख्यापयंतः स्वां प्रतिज्ञामतिचरंत्यतिलंघयंति ( कस्सणंहेउंति ) प्राकृतशैल्या कस्माद्धेतोरित्यर्थः। तत्र प्रतिज्ञानंगकारणमाह । (सांसारियाइत्यादि) संसा रोविद्यते येषां ते सांसारिकाः। खलुरलंकारे।प्राणिनोजंतवः स्थावराः प्राणिनः पृथिव्यप्ते जोवायुवनस्पतयः संतोपि तथाविधकर्मोदयात्त्रसतया त्रसत्वेन द्वींड्रियादिनावे प्रत्यायां त्युत्पद्यंते तथा त्रसाअपि स्थावरतयेत्येवं च परस्परगमने व्यवस्थितेत्यवश्यं नावी प्रतिज्ञाविलोपः।तथाहि । नागरिकोमया न हंतव्यइत्येवंनूता येन प्रतिज्ञा गृहीता सयदा बहिरारामादौ व्यवस्थितं नागरिकं व्यापादयेत्किमेतावता तस्य न नवेत्प्रतिज्ञाविलोपः ? एवमत्रापि येन त्रसवधनिवृत्तिः कृता सयदातमेव त्रसं प्राणिनं स्थावरकायस्थितं व्या.

पादयेत्किं तस्य न भवेत्प्रतिज्ञाविलोपः? भवेदेवेत्यर्थः । एवमपि त्रसस्थावरकाये समुत्प न्नानां त्रसानां यदि तथाभूतं किंचिदसाधारणंलिंगं स्यात्ततस्ते त्रसाः स्थावरत्वेनाप्युत्प न्नाः शक्यंते परिहर्तुं नच तदस्तीत्येतद्दर्शयितुमाह । ( थावरकायाउइत्यादि ) स्थावरका यात्सकाशाद्विविधमनेकैः प्रकारैः प्रकर्षेण मुच्यमानाः स्थावरकायायुषा तद्योग्यैश्चापरैः कर्मभिः सर्वात्मना त्रसकाये समुत्पद्यंते तथा त्रसकायादपि सर्वात्मना विमुच्यमानास्त त्कर्मभिः स्थावरकाये समुत्पद्यंते तत्र चोत्पन्नानां तथाभूतत्रसलिंगाभावात्प्रतिज्ञालोप इत्येतत्सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । ( तेसिंचणमित्यादि ) तेषां त्रसानां स्थावरकाये समुत्प न्नानां गृहीतत्रसप्राणातिपातविरतेः श्रावकस्याप्यारंभप्रवृत्तत्वेनैतत्स्थावराख्यं घात्यं स्थानं भवति तस्मादनिवृत्तत्वात्तस्येति ॥ ६ ॥

एवंण्ह पच्चरकंताणं सुपच्चरकायं भवइ एवंण्ह पच्चरकावेमाणा णं सुपच्चखावियं भवइ एवं ते परं पच्चरकावेमाणा णातियरं ति सयं पइसं णम्मउ अभिजुगेणं गाहावइचोरग्गहणवि मोरकणया तसभूएहिं पाणेहिं णिहाय दंमं एवमेव सइ भा साए परक्कमे विज्जमाणे जे ते कोहावा लोहावा परं पच्चरकावेंति अयंपि णो उवएसे णो णेआउए भवइ अवियाइं आउसो गोयमा तुप्नंपि एवं रोयइ ॥ ७ ॥

अर्थ–हवे उदक पोताना अभिप्रायें जेम प्रतिज्ञा भंग न होय, तेम कहेछे. ( एवं एहंपच्चरकंताणं के० ) के जेम हुं कहुंछुं तेम पच्चखाण करतां ( सुपच्चरकायंभवइ के० ) रुडुं पच्चखाण थाय ( एवंएहंपच्चरकावेमाणाणं के० ) एम पच्चखाण करावतां थकां (सुपच्चरकावियंभवइ के०) रूडुं पच्चखाण कराव्युं एम थाय (एवंतेपरंपच्चरकावेमाणा के०) ए रीतें ते श्रावक पच्चखाण करता थकां अनें साधुए पच्चखाण करावतां थकां ( णा तियरंतिसयंपइसुं के० ) पोतानी प्रतिज्ञानुं उल्लंघन न करे केवी रीतें उल्लंघन न क रे? ते कहेछे. ( णम्मुउअभिउगेणंगाहावइचोरग्गहणविमोरकणया के० ) जे गृह पति एवी रीतें पच्चखाण करे के राजादिकना अभियोग थकी अन्य चोरग्रहण चो रीकरी ग्रह्यो ते मोक्षणनें न्यायें ए पण मुक्त परंतु,( तसभूएहिंपाणेहिंणिहायदंमं के०) त्रस भूत प्राणीनो विनाश नहीं करुं, एटले एनो शुं अर्थ? तो के, भूत शब्दनुं विशे षण अधिक कहियें तो पच्चखाण न भांगे ज्यां सुधी ते त्रसजीव त्रसनें रूपेछे, त्यां सु धी न हणवो, जेम कोइ एकनें डुधनी विगयनो पच्चखाणछे तेनें दधिनें जमवे करी दो

प नथी, तेम त्रसनूत सत्व, हणवा नही एवी प्रतिज्ञाना करनारनें स्थावरनें हणवा थकी, पञ्चरकाणनो नंग न थाय. ( एवमेवसइनासाएपरक्कम्मे के० ) तो जूञो ? के; एनें एवुं नाषानुं पराक्रम ( विज्ञमाणे के० ) विद्यमान बते त्रसनें स्थानकें त्रसनूत एवी नाषानें बोलतां ( जेते के० ) जे कोइ साधु ( कोहावालोहावापरंपञ्चरकावेंति के० ) क्रोध थकी, अथवा लोन थकी, परनें एटले बीजानें नूत शब्द टाली त्रस जीवनो पञ्चरकाण करावे, तो तेनें मृषावाद लागे, ने एवा पञ्चरकाणना लेनारनें अवश्य निश्चे व्रतनंग थाय ( अयंपिणोउवएसेकिंणोऐआउएनवइ के० ) ए रीतें जोतां, ए उपदेश नलो नथी, ए न्याय मार्ग नथी, हुं एम जाणुबुं. माटें (अवियाइंआउसोगोयमा के०) अपिसंनावनायें अहो आयुष्यमन् गौतम ! ( तुप्नंपिएवंरोयइ के० ) तमनें पण हुं कहुं बुं ए वात रूचे एवीबे. ए वात वखाणवा योग्यबे ॥ ७ ॥

॥ दीपिका—एवं नागरिकदृष्टांतेन त्रसमेव घ्नतः प्रतिज्ञालोपः स्यात् । उदकः पुनः स्वानिप्रायमाह । एवं प्रत्याख्यानं कुर्वतां सुप्रत्याख्यातं नवति एवं प्रत्याख्यापयतांच तदेव । एवं प्रत्याख्यानं कुर्वतां कारयतांच न स्वप्रतिज्ञालोपः । यथा ( एसुबेत्यादि ) एवं गृहस्थः प्रत्याख्याति त्रसनूतेषु वर्तमानकाले त्रसत्वेनोत्पन्नेषु प्राणिषु दंमं वधं निहाय त्यक्त्वा प्रत्याख्यानं करोति । तदिह नूतत्वविशेषणात् स्थावरपर्यायप्राप्तस्य वधेपि न प्रतिज्ञालोपः नान्यत्रानियोगेन राजाद्यनियोगादन्यत्र प्रत्याख्यानं गृहपतिचौरविमोक्षणतयेति सम्यगुक्तं । तस्मान्नूतत्वाविशेषणांगीकारे यथा क्षीरविकृतिप्रत्याख्यायिनोदधिनक्षणेपि न प्रतिज्ञानंगः तथा त्रसनूतान हंतव्याइति प्रतिज्ञावतः स्थावरहिंसायामपि न प्रत्याख्यानातिचारः । एवं विद्यमाने सति नाषायाः प्रत्याख्यानवाचः पराक्रमे नूताविशेषणाद्दोषपरिहारसामर्थ्ये । एवं दोषपरिहारोपाये सति केचन क्रोधाद्वा लोनाद्वा श्रावकं निर्विशेषणमेव प्रत्याख्यापयंति तेषां मृषावादः स्यात् गृह्णतांच व्रतलोपः । तदेवमयमपि नोस्मदीयोऽगीकारः किं नवतां नो नैयायिकोन्यायोपपन्नोनवति अपिवायुष्मन्गौतम ! एषपक्षस्तुन्यमपि रोचते ॥ ७ ॥

॥ टीका—तदेवं व्यवस्थिते नागरिकदृष्टांतेन त्रसमेव स्थावरत्वेनायातं व्यापादयंतोऽवश्यंनावी प्रतिज्ञाविलोपोयतस्ततएवं मडुक्तया वक्ष्यमाणनीत्या प्रत्याख्यानं कुर्वतां सुप्रत्याख्यातं नवत्येवंच ते प्रत्याख्यापयंतोनातिचरंति स्वीयां प्रतिज्ञामित्येतद्दर्शयितुमाह । ( एवण्हेत्यादि ) तत्र गृहपतिः प्रत्याख्यानमेवं गृह्णाति तद्यथा त्रसनूतेषु वर्तमानकाले त्रसत्वेनोत्पन्नेषु प्राणिषु दंमयतीतिदंमः प्राण्युपमर्दस्तं विहाय परित्यज्य प्रत्याख्यानं.

करोति तदिह नूतत्वविशेषणात्स्थावरपर्यायापन्नवधेपि न प्रतिज्ञाविलोपः । तथा त्रसनूताः सत्वान हंतव्याइत्येवं प्रतिज्ञावंतः स्थावरहिंसायामपि तत्प्रत्याख्यानातिचारः । तदेवं विद्यमाने सति नापायाः प्रत्याख्यानवाचः पराक्रमे नूतविशेषणाद्दोषपरिहारसामर्थ्य एवं पूर्वोक्तया नीत्या सति दोषपरिहरणोपाये ते केचन क्रोधाद्वा लोनाद्वा परं श्रावकादिकं निर्विशेषणमेव प्रत्याख्यापयंति तेषां प्रत्याख्यानं ददतां मृषावादोनवति गृह्णतां चावश्यंनावी व्रतविलोपश्ति । तदेवमयमपि नोऽस्मदीयोपदेशोन्युपगमोनूतत्वविशेषणविशिष्टः पक्षः किं नवतां नो नैव नैयायिकोन्यायोपपन्नोनवतीदमुक्तं नवति नूतत्वविशेषणेन हि त्रसान् स्थावरोत्पन्नान् हिंसतोपि न प्रतिज्ञातिचारइत्यपि चैतदायुष्मन् गौतम ! । तुन्यमपि रोचते ॥ ७ ॥

सवायं नगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी आउसंतो उदगा नो खलु अम्हे एवं रोयइ जे ते समणावा माहणावा एवमाइरकंति जाव परूवेंति णो खलु ते समणा वा णिग्गंथावा नासं नासंति अणुताविय खलु ते नासं नासंति अप्नाइरकंति खलु ते समणे समणोवासएवा जेहिंवि अन्नेहिं जीवेहिं पाणेहिं नूएहिं सत्तेहिं संजमयंति ताणवि ते अप्नाइरकंति करसणं तं हेउं सांसारिया खलु पाणा तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि उववज्जंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा तसकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं तसकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं अघत्तं ॥ ८ ॥

अर्थ—ए प्रकारें कहे उते, ( सवायंनगवंगोयमेउदयंपेढालपुत्तंएवंवयासी के० ) वादें सहित नगवान् श्री गौतम, आ प्रकारें उदक पेढालपुत्र प्रत्यें बोल्या के, (आउसंतोउदगानोखलुअम्हेएवंरोयइ के० ) अहो आयुष्यमन् उदक ! ए जे तें वचन कह्यांडे ते निश्चेथी अमनें रुचतां नथी, ( जेतेसमणावामाहणावाएवमाइरकंति के० ) जे ते श्रमण, ब्राह्मण, नूत शब्द पालीनें त्रसजीवनो पच्चरकाण करियें एम कहे, ( जावपरूवेंति के० ) यावत् प्ररूपे, ( णोखलुतेसमणावाणिग्गंथावा के० ) निश्चे ते श्रमण निर्ग्रंथ न होय कारण के, ( नासंनासंति के० ) ते एवी निरति नाषा बोलेडे ( अणुतावियंखलुतेनासंनासंति के० ) जे अन्यनुं अन्य प्ररूपतां एटले एकनुं बीजुं प्ररूपतां सांजलनारनें केवल अ

नुताप उपजे, ते कारणे निश्चें ते अनुतापित नापा बोलेछे. ( अप्नाइस्कंतिख लुतेसमणेसमणोवासएवा के० ) निश्चें ते श्रमण ब्राह्मण, साधुनें, तथा श्रमणोपा कनें, अन्याख्यान आपे, एटले जूठो कलंक आपे, ( जेहिंविअन्नेहिं के० ) तथा जे बी जा पण, ( जीवेहिंपाणेहिंनूएहिंसत्तेहिंसंजमयंति के० ) जीव, प्राण, नूत, अनें सत्वनें विपे जे संयम पाले, ( ताणवि के०) ते पण ( तेअप्नाइस्कंति के०) तेने अन्याख्यान जा णवुं ( कस्सणंतंहेउं के० ) तेनो हेतु शुं ? ते कहेछे. ( सांसारियाखलुपाणा के० ) जे कारण माटें निश्चें संसारी जीव जेछे ते परस्पर जाति माहो मांहे संक्रमे, त्रस जीव विणशीने स्थावर पणे उपजे, अनें स्थावर प्राणी विणशीनें, त्रसपणे उपजे, तथा त्रसकाय सर्वथा त्रसनुं आयुष्य त्यागीनें स्थावरकाय मांहे उपजे, अनें स्थावरजीव सर्वथापि स्थावरनुं आयुष्कर्म त्यागीनें त्रसकायने विपे उपजे, ते त्रसकायनें विपे उप ना त्रसकायनुं स्थानक ए अघात्य एटले घातवानुं कर्म लागे नहीं. जे कारण माटें ते श्रावकें त्रसजीव उद्देशीनें स्थूलप्राणातिपातनो विरमण कस्योछे अनें स्थावरकायने वि पे अविरतिछे ए कारण माटें व्रतनंग न कहेवाय परंतु जे, तमारे अनिप्रायें जुदा जु दा जीव उद्देशीनें प्राणातिपातनी निवृत्ति कीधी, ते कीधे छते अन्य पर्यायें पहोता एवा जीवनी विराधना करतां व्रतनंग थाय, तो कोइनें पण सम्यक् व्रतनुं पालवुं देखातुं न थी. ए कारणें तमे अन्याख्यान नापा बोलोछो, तथा अहीं नूतशब्दनुं ग्रहण करोछो, ते पण निःकेवल व्यामोहनें अर्थेंजछे. जे कारण माटें नूतशब्द उपमायें प्रवर्त्तेछे, जेम देवलोकनूत नगर, परं नतु देवलोकः तेम अहींयां तमे पण वक्तव्यतायें त्रसनूत केतां त्रस सरखा जीव जाणवा परंनतु त्रस, अथवा जे नूतशब्द तदर्थवाची वर्त्तेछे जेम शी तनूत उदक केतां शीतलजलज जाणवुं. तेम त्रसनूत केतां त्रसज केवाय. अहींयां नू तशब्द केतां पुनरोक्ति दोषछे. एम श्री गौतमस्वामियें नूतशब्दनुं निराकरण कस्युं ॥ ८ ॥

---

॥ दीपिका–सवादं नगवान् गौतमस्तं उदकं पेढालपुत्रमेवमवादीत् । आयुष्मन्नुदक ! नो खलु अस्मन्यमेतद्रोचते यदिदं त्रसकायविरतौ नूतत्वविशेषणं तदस्मन्यं न रोचतइत्य र्थः। एवंसति ये श्रमणावा ब्राह्मणावा एवमाख्यांति ते यथार्थां नापां न नापंते किंतु? अनुतापिनीनापां नापंते अन्यथा नापणेहि परस्यानुतापोनवति तेऽन्याख्यांति श्रमणो पासकान सनूतदोपप्रकटनेनान्याख्यानं ददते ( जेहिंति ) येष्वपि अन्येषु जीवेषु ये सं यमयंति संयमं कुर्वंति तथा ब्राह्मणामया न हंतव्याइत्युक्ते सयदा वर्णांतरे तिर्यक्षु वा स्थितस्तद्वधे ब्राह्मणवधआपद्यते नूतशब्दविशेषणानावात् । एवं सूकरादिर्न हंतव्यइ त्यादिविशेषव्रतानि तेऽन्याख्यांति दूपयंति कस्माद्धेतोः? यस्मात्सांसारिकाः प्राणास्त्रसाः

स्थावरत्वेन स्थावरास्त्रसत्वेन प्रत्यायांति त्रसकायात्तदायुष्केन मुच्यमानाः स्थावरकाये स्थावरकायाच्च तद्योग्यकर्मणा मुच्यमानास्त्रसकाये उत्पद्यंते तेषां त्रसकाये समुत्पन्नानां स्थानमेतत्त्रसकायाख्यमघात्यं अघाताई नवति स्थूलप्राणिघातान्निवृत्तः श्राद्धः तन्निवृ त्याच त्रसस्थानमघात्यं स्यात् तस्य तीव्राध्यवसायोत्पादकत्वाल्लोकगर्हितत्वाच्च स्थावर कायाच्चानिवृत्तइति तत्स्थानमस्य घात्यमित्युदकआह ॥ ८ ॥

---

॥ टीका–एवमेतद्यथा मया व्याख्यातमनिहितोगौतमः सवाचं सवादं वा तमुदकं पे ढालपुत्रमेवं वक्ष्यमाणमवादीत् तद्यथा । नो खल्वायुष्मन्नुदकास्मभ्यमेतदेवं तद्यथा त्वयो च्यते तद्रोचतइति । इदमुक्तं नवति यदिदं त्रसकायविरतौ नूतत्वविशेषणं क्रियते तन्नि रर्थकतयास्मभ्यं न रोचतइति। तदेवं व्यवस्थिते नो उदक ! एते श्रमणाब्राह्मणावा एवं नू तशब्दविशेषणत्वेन प्रत्याख्यानमाचक्षते। तद्यथा। परैः पृष्टास्तथैवं नाषंते प्रत्याख्यानं स्व तः कुर्वंतः कारयंतश्चैवमिति सविशेषणं प्रत्याख्यानं नाषंते तथैवमेव सविशेषणप्रत्या ख्यानरूपणावसरे सामान्येन प्ररूपयंतं एवंच प्ररूपतोन खलु ते श्रमणावा निर्ग्रंथावा व्य र्थां नाषां नाषंतेऽपित्वनुतापयतीत्यनुतापिका तां तथानूतां च खलु ते नाषां नाषंते अन्यथा नाषणे ह्यपरेण जानता वोधितस्य सतोनुतापोनवतीत्यतोनुतापिकेत्युच्यतइति । पुनरपि तेषां सविशेषणप्रत्याख्यानवतामुल्बणदोषोद्भिनावयिषयाह । ( अप्राइस्कंतीत्यादि ) ते हि सविशेषणप्रत्याख्यानवादिनोयथावस्थितं प्रत्याख्यानं ददतः साधून् गृएहतश्च श्रम णोपासकानन्याख्यांत्यनूतदोषोन्नावनतोऽन्याख्यानं ददति। किंचान्यत्। ( जेहिंवीत्यादि) येष्वप्यन्येषु प्राणिनूतेषु जीवेषु सत्वेषु विषयनूतेषु विशिष्य ये संयमं कुर्वंति संयमयंति। तद्यथा ब्राह्मणोन मया हंतव्यइत्युक्ते सयदा वर्णांतरे तिर्यक्षुवा व्यवस्थितोनवति त द्वधे ब्राह्मणवधआपद्यते नूतशब्दविशेषणात्तदेवं तान्यपि विशेषव्रतानि सुकरोमया न हं तव्यइत्येवमादीनि विशेषणवादिनोऽन्याख्यांति दूषयंति । किमित्यतआह। (कस्सणमित्या दि) कस्माद्धेतोस्तदसद्भूतं दूषणं नवतीति यस्मात्सांतारिकाः खलु प्राणाः परस्परजातिसंक्र मणनाजोयतस्ततस्त्रसाः प्राणिनः स्थावरत्वेन प्रत्यायांति स्थावराश्च त्रसत्वेनेति। त्रसका याच्च सर्वात्मना त्रसायुष्कं परित्यज्य स्थावरकाये तद्योग्यकर्मोपादानाडुत्पद्यते तथा स्थाव रकायाच्च तदायुष्कादिना कर्मणा विमुच्यमानास्त्रसकाये समुत्पद्यंते तेषांच त्रसकाये स मुत्पन्नानां स्थानमेतत्त्रसकायाख्यमघात्यमघाताई नवति । तस्मात्तेन श्रावकेण त्रसानुद्दि श्य स्थूलप्राणातिपातविरमणं कृतं तस्य तीव्राध्यवसायोत्पादकत्वाल्लोकगर्हितत्वान्निति । तत्रासौ स्थूलप्राणातिपातान्निवृत्तस्तन्निवृत्त्याच त्रसस्थानमघात्यं वर्तते स्थावरकायाच्चा निवृत्तइति तद्योग्यतया तत्स्थानं घात्यमिति । तदेवं सनवदनिप्रायेण विशिष्टसत्वोद्दे

नापि प्राणातिपातनिवृत्तौ कृतायामपरपर्यायापन्नं प्राणिनं व्यापादयतोव्रतभंगोभवति त तश्च न कस्यचिदपि सम्यग्व्रतपालनं स्यादित्येवमाख्यातमभूतदोषोद्भावनं भवंतोददति। यदपि भवद्भिर्वर्तमानकालं विशेषणत्वेन किलायं भूतशब्दउपादीयतेऽसावपि व्यामोहाय केवलमुपतिष्ठते। तथाहि। भूतशब्दोयमुपमाने वर्तते। तद्यथा देवलोकभूतं नगरमिदं न देवलोकएव तथापि त्रसभूतानां त्रससदृशानामेव प्राणातिपातनिवृत्तिः कृता स्यान्न तु त्रसानामित्यथ तादर्थ्ये भूतशब्दोयं यथा शीतीभूतमुदकं शीतमित्यर्थः। एवं त्रसभूतास्त्रसत्वं प्राप्तास्तथा च सति त्रसशब्देनैव गतार्थत्वात्पौनरुक्त्यं स्यादथैवमपि स्थिते भूत शब्दोपादानं क्रियते तथा च सत्यतिप्रसंगः स्यात्। तथाहि। क्षीरभूतविकृतेः प्रत्याख्यानं करोम्येवं घृतभूतं मे ददस्वैवं घटभूतः पटभूतइत्येवमादावप्यायोज्यमिति ॥ ८ ॥

सवायं उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी कयरे खलु ते आउसंतो गोयमा तुम्हे वयह तसपाणा तसा आउ अन्नहा सवा यं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी आउसंतो उदगा जे तुम्हे वयह तसभूता पाणा तसा ते वयं वयामो तसा पाणा जे वयं वयामो तसा पाणा ते तुम्हे वयह तसभूया पाणा एए संति डवेठाणा तुल्ला एगठा किमाउसो इमे भे सुप्पणीयतराए भव इ तसभूया पाणा तसा इमे भे डुप्पणीयतराए भवइ तसा पाणा तसा ततोएगमाउसो पडिकोसह एक्कं अभिणंदह अयंपि भेदो से णो णेआउए भवइ ॥ ए ॥

अर्थ—हवे वाद सहित उदकपेढाल पुत्र, भगवंत श्री गौतमस्वामि प्रत्यें बोल्यो के, अहो आयुष्यमन् गौतम! (तुम्हे के०) तमे (कयरे के०) प्राणीनें केवा (वयह के०) कहोगो? ए टले (तसपाणातसा के०) त्रसप्राणीज जे होय तेनेंज त्रस कहोगो. (आउ के०) अथ वा (अन्नहा के०) कोइ बीजे प्रकारें कहोगो? एम पुठ्या थका भगवंत श्री गौतमस्वामी वादसहित उदयपेढाल पुत्र प्रत्यें बोल्या के, अहो आयुष्यमन् उदक! जे तमें कहो गो के, त्रसभूत प्राणी त्रस एटले अतीत अनें अनागतनो निषेध करी, तमें वर्त्तमान कालज लीधो, ए कारणमाटें जेनें तमें त्रसभूतप्राणी त्रस कहोगो, तेनें अमे त्रसप्राणी त्रस कहियें गैयें, (एएसंतिडवेठाणातुल्ला के०) ए बे स्थानक अमारी तमारी वक्तव्य तायें परमार्थतो, (एगठा के०) एकार्थ एटले सरखांजगे, एमां अर्थ भेद कांही नथी (किमाउसोइमेभेसुप्पणीयतराएभवइ के०) तो केवी रीतें अहो आयुष्यमन्! ए तमारो

पक्ष सुप्रणीत एटले रूडोछे एम अमे केम जाणियें ? त्रसनूतप्राणी त्रस, ए तमारो पक्ष छे, अनें त्रसप्राणी त्रस ए अमारो पक्षछे, तो ते अमारो पक्ष केवी रीतें डुःप्रणीत एटले मागो थाय ? त्रसप्राणी त्रस, एम एकार्थ वर्त्तमान ए शब्दनो तमनें केवो व्यामोह उपनो ? जे, ( ततोएगमाउसोपडिकोसह के० ) तेमां तमे एक पक्षनी प्रशंसा करोछो. एटले स्थापन करोछो ( एकंअनिणंदह के० ) एक पक्षनी निंदा करोछो ( अयंपिनेदो के० ) ए तमारो नेद पणछे, ( सेणोणेआउएनवइ के० ) ते न्यायोपपन्न न होय, ए न्यायमार्ग नथी. ॥ ए ॥

---

॥ दीपिका—उदकआह । उदकोगौतममवादीत् हे आयुष्मन् गौतम ! कतरान्प्राणिनो यूयं वदथ त्रसप्राणिनइति । अथ स द्वाचं गौतमउदकमवादीत् आयुष्मन्नुदक ! यान्प्राणिनोयूयं वदथ त्रसनूतास्त्रसत्वेन वर्तमानानप्येप्यास्तानेव वयं वदामस्त्रसाइति । ये यान् वयं वदामस्त्रसांस्तान्यूयं वदथ त्रसनूतान् एते द्वे स्थाने तुल्ये एकार्थे एव नात्र कश्चिदर्थनेदः। एवं सत्यर्थं युष्मदीयः पक्षः किं सूपनीततरोयुक्तियुक्तः त्रसनूताः प्राणाइत्ययंतु पक्षोडुःप्रणीततरोऽयुक्तः प्रतिनासते कोयं व्यामोहोनवतां येन शब्दनेदादिकं पक्षमाक्रोशथ द्वितीयं त्वनिनंदथ । इत्ययमेवांगीकारोनवतां नो नैयायिकोन न्यायोपपन्नः उनयोरपि पक्षयोस्तुल्यत्वात् ॥ ए ॥

---

॥ टीका—तदेवं निरस्ते नूतशब्दे सत्युदकआह । ( सवायंउदएइत्यादि ) स द्वाचं सवादं चोदकः पेढालपुत्रोनगवंतं गौतममेवमवादीत् । तद्यथा । हे आयुष्मन् गौतम ! कतरान्प्राणिनोयूयं वदथ त्रसनूतास्त्रसत्वेनाविर्नूताः प्राणिनस्तएव त्रसाः प्राणाइत्युतान्यथेत्येवं पृष्टोनगवान् गौतमस्तमुदकं स द्वाचं पेढालपुत्रमेवमवादीत् । तद्यथा । आयुष्मन्नुदक ! यान्प्राणिनोयूयं वदथ त्रसनूतास्त्रसत्वेनाविर्नूताः प्राणिनोनातीतानाप्येप्याः किंतु ? वर्तमानकालएव त्रसाः प्राणाइति तानेव वयं वदामस्त्रसास्त्रसत्वं प्राप्तास्तत्कालवर्तिनएव त्रसाः प्राणाइति । एतदेव व्यत्ययेन विनणिषुराह । ( जेवयमित्यादि ) यान्वयं वदामस्त्रसाएवप्राणास्त्रसाः प्राणास्तानेव यूयमेवं वदथ त्रसनूताएवप्राणास्त्रसाः प्राणाः एवंच व्यवस्थिते एते अनंतरोक्ते द्वे अपि स्थाने एकार्थे तुल्ये नवतोनह्यत्रार्थनेदः कश्चिदस्त्यन्यशब्दनेदादित्येवं व्यवस्थिते किमायुष्मन्! युष्माकमयं पक्षः सुष्टु प्रणीततरोयुक्तियुक्तः प्रतिनासते । तद्यथा । त्रसनूताएव प्राणास्त्रसनूताः प्राणाइत्ययं पक्षोडुःप्रणीततरोनवति प्रतिनासते नवतां । तद्यथा । त्रसाएव प्राणास्त्रसाः प्राणाः संति चैकार्थत्वेन नवतां कोयं व्यामोहोयेन शब्दनेदमाश्रित्यातएकं पक्षमाक्रोशथ द्वितीयं त्वनिनंदथ इति । तद

यमपि तुल्येप्यर्थे सत्येकपक्षस्याक्रोशनमपरस्य विशेषणपक्षस्याभिनंदनमित्येपदोपान्युपगमोभवतां नो नैयायिकोन न्यायोपपन्नोभवत्युभयोरपि पक्षयोः समानत्वात्केवलं सविशेषणपक्षे भूतशब्दोपादानं मोहमावहतीति ॥ ए ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइआ मणुस्सा भवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुव्वं भवइ णो खलु वयं संवाएमो मुंमा भवित्ता आगाराउ अणगारियं पव्वइत्तए पावय एहं अणुपुव्वेणं गुत्तस्स लिसिस्सामो ते एवं संखेवेंति ते एवं संखं ठवयंति ते एवं संखं ठवयंति नन्नत्र अभिउएणं गाहावइचोरग्गहणविमोक्खणयाए तसेहिं पाणेहिं निहाय दंम तंपि तेसिं कुसलमेव भवइ ॥ १० ॥

अर्थ—हवे एज अर्थनें दीपाववा माटें ( भगवंचणंउदाहु के० ) भगवंत श्री गौतम स्वामी कहेठे. ( संतेगइयामणुस्साभवंति के०) कोइ एक हलवां कर्म वाला मनुष्य होय, अनें ते प्रवर्ज्या पालवानें असमर्थ होय, ( तेसिंचणंएवंवुत्तंपुव्वंभवइ के० ) तेणें पूर्वें एम कह्युं होय, शुं कह्युं होय? ते कहेठे. (णोखलुवयंसंवाएमोमुंमाभवित्ता के०) निश्चें अमे मुंमित होवानें समर्थ नथी,(आगाराउअणगारियंपव्वइत्तए के०)गृहस्थावास त्यागिनें अणगारपणुं अंगीकार करी शकता नथी. ( पावयएहंअणुपुव्वेणं के० ) अमें घर थकी निकलीनें प्रवर्ज्या लेइने अनुक्रमें, ( गुत्तस्सलिसिस्सामो के० ) साधुपणुं पालशुं, एटले शुं कह्युं ? तोके, प्रथमतो देशविरतिरूप, श्रावकनो धर्म पालशुं, अनें अनुक्रमें पठी श्रमणनो धर्म पालशुं. ( तेएवंसंखेवेंति के० ) ते एवी व्यवस्था संभलावे ( तेएवंसंखंठवयंति के० ) ते पुरुष, एवी व्यवस्था स्थापन करे एटले एवी रीतें पच्चखाण करे, ( तेएवंसंखंठवयंति के० ) नें पठी तेज प्रमाणे मनमां रुडा प्रकारे स्थापन करे. ते कहेठे के, ( नन्नत्रअभिउएणं के० ) राजादिकना अभियोगें करी त्रसप्राणीनी घातथी अमारो व्रतभंग नथी. इत्यादिक पच्चखाण, साधुनो उपदेश सांभली करे. तेनी उपर ( गाहावइचोरग्गहणविमोक्खणयाए के० ) गृहपति जे चोर तेनुं गृहण तथा विमोक्षणठे जेमां, एवो गृहपति तथा राजानो दृष्टांत कहेठे.

रत्नपुरनामा नगरनें विषे रत्नशेखर राजा हतो. तेणे एकदा एवो विचार कर्यो के, आपणे कौमुदीमहोत्सव करवो. पठी रत्नमाला प्रमुख पोतानी स्त्रीयोनें आ वातनी विज्ञापना करावी जे, स्वतंत्रक्रीडा, चंइनी चांदनीमां आपणे करवी. वली पोताना नगरमां पण उद्घोषणा देवरावी जे, कोइ मनुष्यें आज रात्रें नगरमां न रहेवुं, अनें

बाहेर उद्यानमां सायंकालें जवुं. अने कोइ नगरमां रहेशे तेना शरीरनो निग्रह राजा करशे ते प्रमाणें राजानी उद्घोषणाथी सर्व मनुष्य सायंकालें नगर बाहेर गयां; तथा राजा पण सपत्नीक गयो. हवे ते पछी, कोइ एक वैश्यना छ पुत्र हता. ते क्रयविक्रय व्यापारना व्यग्रपणाथी नगरमांज रहि गया, एटलामां सूर्यास्त थयो तेवारें नगर बाहेर निकलवा लाग्या परंतु गोपुर जे नगरना दरवाजा, ते बंध थइ गया दीठा तेवारें नं यन्नांत छता नगरमांहेंज कोइ स्थले पोतें गुप्त रह्या पछी कौमुदी महोत्सव संपूर्ण थया नंतर राजायें आरक्षकनें तेडावी कह्युं के, अहो आरक्षको! तमें रूडी रीतें कोइ पुरुष, नगरमां रहेलो होयतो तेनें जुवो? तेवार पछी नगरमां जोतां श्रेष्ठीना छ पुत्रो दीठा. तेनें देखीनें, आरक्षकोयें राजाने विनव्यो के, स्वामी! कोइ एक श्रेष्ठीना छ पुत्र नगरमां रह्याछे. तेवारें राजायें ते छए पुत्रनो विनाश करवानें आदेश आप्यो. एवुं सांभली श्रेष्ठी, पुत्रशोकें व्याकुल छतो राजापासें आवीनें एम कहेवा लाग्यो के, हे स्वामी! अमारा कुलनो क्षय म करो. अनें जे कांइ अमारा घरमां कुलक्रमागत धन छे ते सर्व लेइनें अमारा छए पुत्रनें जीवता मूको? ए प्रमाणें श्रेष्ठियें कहे थके, राजा अत्यंत क्रोधें व्याप्त थयो थको, श्रेष्ठि प्रत्यें कहेवा लाग्यो के, अरे पापिष्ठ! राजानी आज्ञा ते राजाना प्राणसमान! जेणें राजानी आज्ञा न मानी, तेणें राजानां प्राण हर्यां माटें तहारा पुत्रनें जीवता मूकुं नहिं. एवो राजानो घणो आग्रह जाणीनें फरी श्रेष्ठीयें पांच पुत्रनें जीवता मूकवानी विनति राजानें करी, तोपण राजायें मान्युं नहीं. तेवारें चार पुत्र मुकावनी विनती करी ते पण मानी नहीं, तेवारें त्रण पुत्र मुकाववानें अर्थें विनति करी तेपण राजायें मानी नहीं, तेवारें बे पुत्र मुकाववानी विनति करी, ते पण राजायें न मानी. एवो राजानो आग्रह जाणी श्रेष्ठीयें नगरमांहेला महोटा महोटा लोकोनें एकठा करी, ते वधानें राजापासें लइ जइने राजाने विनव्यो के, हेस्वामी! तमें प्रजाना पिता छो तो सर्वथा प्रकारें अमारा कुलनो क्षय करवा शुं मागोछो? अहिंयां आवेला अमोनें तमेंज शरण छो एटले अमारे तमारोज आश्रय छे. तमने भावे तो मारो? अने भावेतो जीवाडो? एम कहि श्रेष्ठी राजानें पगे लागो ते वारें राजायें अनुकंपा करीनें छ पुत्रमांहेथी एक महोटा पुत्रनें जीवतो मूक्यो. ए द्रव्य थकी दृष्टांत कह्यो, हवे दृष्टांतनी योजना करेछे के, जेम श्रेष्ठी तेम आहिं श्रावक जाणवो, जेम त्यां छ पुत्र तेम आहिं छकाय जाणवा. जेम श्रेष्ठीयें विलाप करवाथकी राजायें छ पुत्र मांहेंथी एक पुत्र जीवतो मूक्यो, तेवारें श्रेष्ठी पोतानें कृतार्थ मानतो, एटले बीजा पांच पुत्रनी उपर श्रेष्ठीनें विनाश करवानो भाव नथी, परंतु शुं करे! जे राजा कोइ रीतें मूके नहिं? तेम अहीं पण साधुउ श्रावकनें संरक्षण

करवानें उपदेश आपेछे. परंतु श्रावक पोतें अशक्तपणानें लीधे एक त्रसकाय राखी शके छे. ते वारें साधु पण जे कांइ श्रावक राखे ते श्रावकनें कृतार्थ पोतें जाणे; परंतु बीजा पांच काय श्रावक विराधे छे. तेनी अनुमति साधुनें नथी, ए कारणें तेनुं कर्म कांइ लागे नही. ए न्याय उपर "गाहावइचोरग्गहणविमोरकणयाए" ए पदनो अर्थ समाप्त थयो. हवे सूत्रथकी आगलनो संबंध देखाडेछे. ( तसेहिंपाणेहिंनिहायदंमं के० ) त्रस बे इंद्रियादिक प्राण, तेहनो वध छांमिनें श्रावक जे विरति करे. ( तंपि के० ) ते विरति पण ( तेसिंकुसलमेवनवइ के० ) ते श्रावकनें पुण्यरूप होय. एम जाणवुं॥१०॥

॥ दीपिका—कुमतनिषेधमाह्। जगवंचणं उदाहु रिति। जगवान् गौतमः पुनराह। संति एके केचन मनुष्याः येषां साधोर्धर्मकथकस्य पुरइदमुक्तं नवति यथा न खलु वयं मुंमान्न वितुं प्रव्रज्यां ग्रहीतुं शक्नुमः अगारादनगारितां प्रव्रजितुं वयमानुपूर्व्येण क्रमेण गोत्रं साधुत्वमनुश्लेषयिष्यामः। कोऽर्थः? वयं देशविरतिं पालयामः ततः क्रमेण चारित्रं ततएवं ते संख्यां व्यवस्थां श्रावयंति प्रत्याख्यानं कुर्वंतः प्रकाशयंति ते एवं व्यवस्थां स्थापयंति सू पस्थापयंतिच नान्यत्रानियोगेन। अनियोगोराजानियोगादिः। तेन त्रसं घ्नतोपि न व्रतनं गः तथा गृहपतिचोरविमोक्षणतयेति । अस्यार्थः कथागम्यः । सा चेयं । रत्नपुरे रत्नशेखरराज्ञा स्वांतःपुरादिस्त्रीणां स्वैरक्रीडारूपः कौमुदीमहोत्सवोऽनुज्ञातः पुरुषेण केनापि नगरमध्ये न स्थेयमित्याघोषणा कारिता नृपादयः पुरुषाः सर्वेपि उद्याने सायं जग्मुः । एकस्य वणिजः षट् पुत्राः क्रयविक्रयादिव्यग्राः पुरमध्यएव तस्थुः । स्थगितानि गोपुराणि ततस्ते निष्क्रांते महे राज्ञा रक्षकाणामुक्तं पश्यत नगरे कोपि नरोस्ति नवेति? तैर्विलोकयद्भिः षट् पुत्रास्ते दृष्टाः राज्ञोनिवेदिताः राज्ञा कुपितेन षण्णामपि वधः समादिष्टः । ततस्तत्पिता शोकाकुलोराजानं विज्ञापयतिस्म। देव! मा कृथाः कुलक्षयमस्माकं। सर्वधनं गृह्यतां मुच्यंतां पुत्राः। एवमुक्तेपि राजा कथमपि न मुंचति पुत्रान् ततः पिता सर्वपुत्रघातप्रवृत्तं राजानं ज्ञात्वा पंचानां मोचनं याचितवान् राजा पंचानपि न मुंचति ततश्चत्वारोयाचिताः तथापि न मन्यते नृपः । ततस्त्रयोयाचितास्तेपि न मुक्ताः । ततो द्वौ मार्गितौ तावपि अमुंच नृपएकं पुत्रं याचितः समग्रपौरजनविज्ञप्तोनृपः पुत्रमेकं ज्येष्ठं मुक्तवान् । अत्रेयं दृष्टांतयोजना । सम्यक्त्ववान् श्राद्धः सर्वप्राणातिपातविरतिं कर्तुमशक्तोनृपस्थानीयः षट्कायपितृतुल्येन साधुना प्रेरितोपि सर्वविरतिं नांगीकुरुते षमपि जीवकायान्मोचयति साधुः ।श्राद्धस्तु षण्णां मोचने ऽशक्तोज्येष्ठमेकं त्रसकायं मुंचति पालयतीत्यर्थः । साधुरेकमोचनेनापि कृतार्थमात्मानं मन्यते । यथाच तस्य वणिजोन शेषपंचपुत्रवधानुज्ञा एवं साधोरपि न शेषप्राणिवधानुमतिः किंतु? यदेव व्रतं गृहीत्वा यानेव स्थू

जसत्वात् संकल्पवधनिवृत्तोरक्षति श्राद्धः। तन्निमित्तं कुशलानुबंधएवेत्याह। (तसेहिं) त्रसेन्योदंम हिंसां त्यक्त्वा यावद्विरमति तावत्तस्य कुशलं पुण्यमेवेति ॥ १० ॥

---

॥ टीका–यच्च नवतास्माकं प्राग्दोषोद्भावनमकारि तद्यथा त्रसानां वधनिवृत्तौ तदन्येषां वधानुमतिः स्यात् साधोस्तथानूतशब्दानुपादानेनांतरमेव त्रसं. स्थावरपर्यायापन्नं व्यापादयतोव्रतनंगइत्येतत्कुचोद्यजातं परिहर्तुकामआह। (नगवंचणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे। नगवान्गौतमस्वामी चशब्दः पुनः शब्दार्थे। पुनराह! तद्यथा। संति विद्यंते एके केचन लघुकर्माणोमनुष्याः प्रव्रज्यां कर्तुमसमर्थास्त द्व्यतिरेकेणैव धर्मं चिकीर्षवस्तेषां चैवमंध्यवसायिनां साधोर्धर्मोपदेशप्रवणस्याग्रतइदमुक्तपूर्वं नवति। तद्यथा। नो साधो! न खलु वयं शक्नुमोर्मुंमानवितुं प्रव्रज्यां ग्रहीतुमगाराकृहादनागारतां साधुनावं प्रतिपत्तुं वयं त्वानुपूर्व्येण क्रमशोगोत्रस्येति गां त्रायइति गोत्रं साधुत्वं तस्य साधुनावस्य पर्यायेण परिपाल्यात्मानमनुश्लेषयिष्यामः।इदमुक्तं नवति। पूर्वं देशविरतिरूपतया श्रावकधर्मं गृहस्थयोग्यमनिंद्यमनुपालयामस्ततोनुक्रमेण पश्चाच्छ्रमणधर्ममिति। ततएवं ते संख्यां व्यवस्थां श्रावयंति प्रत्याख्यानं कुर्वंतः प्रकाशयंति। तद्यथा। नान्यत्रानियोगेन। सचानियोगोगणानियोगोवलानियोगोदेवतानियोगोगुरुनिग्रहश्चेत्येवमादिनानियोगेन व्यापादयतोपि त्रसं न व्रतनंगः। तथा गृहपतिचोरविमोक्षणतयेत्यस्यायमर्थः। कस्यचिगृहपतेः षट् पुत्रास्तैश्च सत्यपि पितृपितामहक्रमायाते महति वित्ते तथाविधकर्मोदयाद्राजकुलनांमागारे चौर्यमकारि राजपुरुषैश्च नवितव्यतानियोगेन गृहीतास्ते इत्येके। परे त्वन्यथा व्याचक्षते। तद्यथा। रत्नपुरे नगरे रत्नशेखरोनाम राजा तेन च परितुष्टेन रत्नमालाग्रमहिषीप्रमुखांतःपुरस्य कौमुदीप्रचारोऽनुज्ञातस्तदवगम्य नागरलोकेनापि राजानुमत्या स्वकीयस्य स्त्रीजनस्य तथैव क्रीडनमनुमतं राज्ञाच नगरे सर्वडिंडिमशब्दमाघोषितं। तद्यथास्तमनोपरि कौमुदीमहोत्सवे प्रवृत्ते यः कश्चित्पुरुषः समुपलन्यते नगरमध्ये तस्याविज्ञप्तिकः शरीरनिग्रहः क्रियतइत्येवं च व्यवस्थिते सत्येकस्य वणिजः षट् पुत्रास्ते च कौमुदीदिने क्रयविक्रयसंव्यवहारव्यग्रतया तावत्स्थितायावत्सवितास्तमुपगतः। तदंतरमेव स्थगितानि च नगरद्वाराणि तेषांच तत्कालात्ययान्न निर्गमनमनूत्तस्ते नयसंभ्रांतानगरमध्यएवात्मानं गोपयित्वा स्थितास्ततोनिष्क्रांते कौमुदीप्रचारे राज्ञा रक्षिकाः समादूयादिष्टायथा सम्यक् निरूपयत यूयं नात्र नगरे कौमुदीचारे कश्चित्पुरुषोव्यवस्थित? इति। तैरप्यारक्षिकैः सम्यक् निरूपयन्निरुपलन्य. षड्वणिक्पुत्रवृत्तांतोयथावस्थितएव राज्ञे निवेदितः। राज्ञाप्याज्ञानंगकुपितेन तेषां षसामपि वधः समादिष्टस्ततस्तत्पिता पुत्रवधसमाकर्णनगुरुशोकविह्वलोऽकांमापतितकुलक्षयोभ्रांतलोचनः किं कर्तव्यतामूढतया गणि

तविधेयाविधेयविशेषोराजानमुपस्थितोऽवादीच्च गजदया गिरा यथा मा कथादेवास्माकं कुलक्षयं गृह्यतामिदमस्मदीयं कुलक्रमायातं स्वभुजोपार्जितं प्रभूतं द्रविणजातं मुच्यतां मुच्यताममी षट् पुत्राः क्रियतामयमस्माकमनुग्रहइति । एवमभिहितोराजा तद्वचनमाकर्ण्य पुनरपि सविशेषमादिदेश असावपि वणिक्सर्वथाशंकी सर्वमोचनानभिप्रायं राजानमवेत्य पंचानां मोचनं याचितवान् तानप्यसौ राजा नमोकुमनाइत्येवमभिगम्य चतुर्मोचनकृते सादरं विज्ञप्तवांस्तं तथापि राजा तमनादृत्य कुपितवदनएव स्थितस्ततस्त्रयाणां विमोचने कृतादरस्तत्पिताऽभूत् तानप्यमुंचंतं राजानं ज्ञात्वा गणितस्वापराधो द्वयोर्मोचनं प्रार्थितवांस्तथाप्यवज्ञाप्रधानं नृपतिमवगम्य ततः पौरमहत्तमसमेतोराजानमेवं विज्ञप्तवांस्तद्यथा देवाऽकांमएवास्माकं कुलक्षयः समुपस्थितः तस्माच्च भवंतएव त्राणायाजमतः क्रियतामेकमत्पुत्रविमोचनेन प्रसादइति भणित्वा पादयोः सपौरमहत्तमः पतितोराज्ञापि संजातानुकंपेन मुक्तस्तदेकोज्येष्ठपुत्रइति । तदेवमस्य दृष्टांतस्य दार्ष्टांतिकयोजनेयं । तद्यथा साधुनाभ्युपगतसम्यग्दर्शनमवगम्य श्रावकमखिलप्राणातिपातविरतिग्रहणं प्रति चोदितोप्यशक्तितया यदा न सर्वप्राणातिपातविरतिं प्रतिपद्यते यथाऽसौ राजा वणिजोत्थं विज्ञपितोपि न षडपि पुत्रान् मुमुक्षति नापि पंचचतुस्त्रिद्विःसंख्यान् पुत्रानिति । ततएकविमोक्षणेनात्मानं कृतार्थमिव मन्यमानः स्थितोसावेवं साधोरपि श्रावकस्य यथाशक्तिव्रतं गृह्णतस्तदनुरूपमेवाणुव्रतदानमविरुद्धमिति यथाच तस्य वणिजोभ शेषपुत्रवधानुमितिलेशयोप्यस्त्येवं साधोरपि न शेषप्राणिवधानुमिति प्रत्ययजनितःकर्मबंधोभवति किं तर्हि? यदेव व्रतं गृहीत्वा यानेव सत्वान् बादरान् संकल्पजप्राणिवधनिवृत्त्या रक्षति तन्निमित्तः कुशलानुबंधएवेत्येतत्सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । (तसेहिमित्यादि) त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रियादयस्तेभ्यः सकाशान्निधाय निहाय वा परित्यज्येति यावत् दंडयतीति दंडस्तं परित्यज्य त्रसेषु प्राणातिपातविरतिं गृहीत्वेत्यर्थस्तदपि च त्रसप्राणातिपातविरमणव्रतं तेषां देशविरतानां कुशलहेतुत्वात्कुशलमेव भवति ॥ १० ॥

तसावि वुच्चंति तसा तससंभारकडेणं कम्मुणा णामंचणं अब्भुवगयं भवइ तसाउयंचणं पलिक्खीणं भवइ तसकायट्ठिइया ते तउ आउयं विप्पजहंति ते तउ आउयं विप्पजहित्ता थावरत्ताए पच्चायंति थावरावि वुच्चंति थावरा थावरसंभारकडेणं कम्मुणा णामंचणं अब्भुवगयं भवइ थावरा आउयंचणं पलिक्खीणं भवइ थावरकायट्ठिइया तउ आउयं विप्पजहंति तउ आ

उयं विप्पजहित्ता भुक्को परलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चं
ति ते तसावि वुच्चंति ते महाकायाए ते चिरहिइया ॥ ११ ॥

अर्थ—हवे जे उदयपेढालपुत्रनो अभिप्राय पूर्वें कह्यो ते एहे जे,त्रस जीव,स्थावर मांहे उपनो तेनो, आराम केतां अरण्यमांहे बेहे विनाश करतां, नागरिक पुरुषनी पेरें अवश्य व्रत नंग थाय. ए बोल टालवा माटें कहेहे. (तसाविवुच्चंति के०) त्रस एटले बे इंड्रियादिक एम पण कहियें, (तसातससंनारकडेणंकम्मुणाणामंचणंअप्नुवगयंनवइ के०) ते त्रस, पूर्वबंध त्रसनाम कर्मनें उदयें त्रसनुं नाम पामे, पही (तसाउयंचणंपलिरकीणंनवइ के०) णं एवे वाक्यालंकारें जेवारें ते त्रसकायनुं आयुष्य परिक्षीण थाय. ते त्रसकायनी स्थिति क्यां सुधी होय ? ते कहेहे (तसकायहिइयाते के०) ते त्रसकायस्थिति, जघन्ययकी अंतरमुहूर्त्त अनें उत्कृष्टसाधिक बे हजार सागरोपम प्रमाणे होय. (ततोआउयंविप्पजहंति के०) ते वार पही ते त्रसपणुं ठांमे. (विप्पजहित्ता के०) ते त्रसपणुं ठांमीने (थावरत्ताएपच्चायंति के०) स्थावर पणे उपजे, (थावराविवुच्चंति के०) तेवारें तेने स्थावर पण कहियें. (थाव राथावरसंनारकडेणंकम्मुणाणामंचणंअप्नुवगयंनवइ के० ) ते स्थावर, पूर्वें बंध कर्युं जे स्थावरनाम कर्म, तेना उदयथी स्थावर एवुं नाम पामे, एटले स्थावर होय, ( थावरा आउयंचणंपलिरकीणंनवइ के०) वली ते जेटले ते स्थावरनुं आयुःकर्म परिक्षीण थाय. ( थावरकायहिइया के० ) हवे स्थावरकायनी स्थिति केवी होय? तो के, जघन्य अंतर मुहूर्त्त अने उत्कृष्ट थकी अनंतो काल असंख्यात पुजलपरावर्त्त पर्यंत, एवी स्थिति होय. पही एटली स्थिति खपावीने, ( तउआउयंविप्पजहंति के० ) तेवार पही स्थावर पणुं ठांमे, (तउआउयंविप्पजहित्ता के०) ते स्थावर स्थिति ठांमीनें (भुक्कोपरलोइयत्ताए पच्चायंति के०) वली परलोक पणे उपजे. एतावता त्रसपणुं पामे. (तेपाणाविवुच्चंतितेत साविवुच्चंति के०) ते प्राण पण कहियें,ते त्रसनामकर्मनें उदयें,त्रसनाम पणे उपनाहे,मा टें त्रसप्राण एवे नामे कहियें, तथा त्रस पण कहिये. ( तेमहाकायाए के० ) ते महो टी काया एटले लक्ष योजन प्रमाण वैक्रिय शरीर वाला एवा महाकाय कहियें. तथा (तेचिरहिइयाए के०) ते चिरस्थितिक, नवस्थितिनी अपेक्षायें तेत्रीश सागरोपम प्रमाण स्थिति जाणवी. तो अहींयां श्रावकें त्रसनुंज पच्चरकाण कीधुंहे परंतु स्थावरकायपणें उपना ते जीवोनुं पच्चरकाण नथी कर्युं. ते कारणें कयो व्रत नंग थयो ? तथा तमे जे नागरीकनो दृष्टांत देखाडयो ते दृष्टांत पण अहीं संनवे नहीं. ते दृष्टांत देवाथी अमे एम जाणीयें हैयें जे, तमे गुरुना मुख थकी सूत्रार्थ लीधो नथी केमके, नगरनें धर्म सहित ते नागरिक कहियें ते नागरिक पुरुष महारे हणवो नहीं, एवी प्रतिज्ञा ग्रहण करीनें प

ठी ते नागरिक बाहिर आरामनें विषे वेठेलाने विणाशतां व्रतभंग थाय? ए दृष्टांत अहीं त्रस, अनें स्थावरनें भेदें मलतो नथी केमके, ते नागरिक पुरुष जो बाहेर आरामादि कने विषे स्थित होय तो पण, तेनुं नागरिक पणु शुं जतुं रहुं ? त्यां पण ते नागरिक तेज आकारेंछे. तेहिज वर्णछे, तेहिज परिणामेछे, ए दृष्टांत पर्यायें त्रसनें मले नही, एवुं जाणी, तमे अयुक्त बोलोछो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका—त्रसाअपि द्वींद्रियादयोपि त्रसाउच्यंते त्रसास्त्रससंभारकृतेन कर्मणा स्युः । संभारोनाम कर्मणोऽवश्यं विपाकानुभवेन वेदनं । तच्च त्रसनाम प्रत्येकनाम इत्या दिकं त्रसत्वेन संबद्धं यदायुष्कं उदयप्राप्तं स्यात्तदा त्रसनामादिकर्मणा त्रसाउच्यंते । त्र सायुर्यदा क्षीणं स्यात्त्रसकायस्थितिश्च क्षीणा स्यात् साच जघन्येनांतर्मुहूर्तं उत्कृष्टतः सातिरेकसहस्रद्वयसागरमानास्ततस्ते त्रसायुस्त्यजंति अन्यान्यपि तत्सहचरकर्माणि त्यक्त्वा स्थावरत्वेन प्रत्यायांति । स्थावराअपि तथैव कर्मणा स्थावरत्वेनोत्पद्यंते एवंस ति स्थावरकायं घ्नतः श्राद्धस्य कथं स्थूलप्राणातिपातनिवृत्तिव्रतभंगइति । किंच ( याव राअवंति) यदा स्थावरायुष्कमपि क्षीणं स्यात्तथा स्थावरकायस्थितिश्च सा जघन्येनांतर्मु हूर्तं उत्कृष्टतोनंतकालमसंख्येयाः पुज्जलपरावर्ताः । ततस्ते स्वायुः परित्यज्य भूयः पुनर पि परलोकतया स्थावरकायस्थितेरभावात्सामर्थ्याच्चसत्वेन प्रत्यायांति ते त्रसाः प्राणाअप्यु च्यंते त्रसाअप्युच्यंते । महाकायास्ते योजनलक्षप्रमाणशरीरविकुर्वणात् चिरस्थितिका स्ते भवस्थित्यपेक्षया त्रयस्त्रिंशत्सागरायुष्कभावात् । ततस्त्रसनिवृत्तिरेव श्राद्धेन कृता न तु स्थावराणां । नागरिकदृष्टांतोप्ययुक्तः । नागरिकोन हंतव्यइति प्रतिज्ञां कृत्वा बहिःस्थितं तमेव पर्यायापन्नं घ्नतोव्रतभंगइति त्वत्पक्षः । सचायुक्तोयोहि नगरधर्मैरुपेतः स बहिःस्थो पि नागरिकएवातः पर्यायापन्नइति विशेषणमयुक्तं । सर्वथा नगरधर्मत्यागेतु तमेवेति नो पद्यते । सचान्यएवेति तथा त्रसत्वत्यागाद्यदा स्थावरत्वं प्राप्तस्तदान्यएवायमिति तं घ्न तोन व्रतभंगः ॥ ११ ॥

॥ टीका—यच्च प्रागभिहितं तद्यथा तमेव त्रसं स्थावरपर्यायापन्नं नागरिकमिव बहिः स्थं व्यापादयतोऽवश्यंभावी व्रतभंगइत्येतत् परिहर्तुकामआह । ( तसावीत्यादि ) त्रसा अपि द्वींद्रियादयोपि स्वसंभारकृतेन कर्मणा भवंति । संभारोनामावश्यतया कर्मणोविपा कानुभवने वेदनं । तच्चेह त्रसनाम प्रत्येकनामेत्यादिकं नामकर्माभ्युपगतं भवति त्रसत्वेन य त्परिबद्धमायुष्कं तद्यदोदयप्राप्तं भवति तदा त्रससंभारकृतेन कर्मणा त्रसाइति व्यपदि श्यंते न तदा कथंचित्स्थावरत्वव्यपदेशोयदाच तदायुः परिक्षीणं भवति । एमिति वाक्य

लंकारे। त्रसकायस्थितिकं च कर्म यदा परिक्षीणं भवति तच्च जघन्यतोंतर्मुहूर्तमुत्कृष्टतः सातिरेकसहस्रद्वयसागरोपमपरिमाणं तदा ततस्त्रसकायस्थितेरभावात्तदायुष्कं ते परित्यजंत्यपराण्यपि तत्सहचरितानि कर्माणि परित्यज्य स्थावरत्वेनोदयं यांति। इत्येवंच व्यवस्थिते कथं स्थावरकायं व्यापादयतोगृहीतत्रसकायप्राणातिपातनिवृत्तः श्रावकस्य व्रतभंगइति?। किंचान्यत् (थावराआउयंचणमित्यादि) यदा तदपि स्थावरायुष्कं परिक्षीणं भवति तथा स्थावरकायस्थितिश्च सा जघन्यतोंतर्मुहूर्तमुत्कृष्टतोऽनंतकालमसंख्येयाः पुद्गलपरावर्ताइति ततस्तत्कायस्थितेरभावात्तदायुष्कं परित्यज्य भूयः पुनरपि पारलौकिकत्वेन स्थावरकायस्थितेरभावात् त्रसत्वेन सामर्थ्यात्प्रत्यायांति। तेषांच त्रसानामन्वर्थितान्यभिधानान्यभिधातुमाह। (तेपाणावीत्यादि) ते त्रससंभारकृतेन कर्मणा समुत्पन्नाः संतः सामान्यसंज्ञया प्राणाअप्युच्यंते। तथा विशेषतस्त्रसभयचलनयोरिति धात्वर्थानुगमाद्भयचलनाभ्यामुपेतास्त्रसाअप्युच्यंते तथा महान् कायोयेषां ते महाकायाः योजनलक्षप्रमाणशरीरविकुर्वणात्तथा चिरस्थितिकाअप्युच्यंते। भवस्थित्यपेक्षया त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुष्कसद्भावात्ततस्त्रसपर्यायव्यवस्थितानामेव प्रत्याख्यानं तेन गृहीतं नतु स्थावरकायत्वेन व्यवस्थितानामपीति। यस्तु नागरिकदृष्टांतोभवतोपन्यस्तोऽसावपि दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात्केवलं भवतोनुपासितगुरुकुलवासित्वमाविष्करोति। तथाहि। नगरधर्मैरुपयुक्तो नागरिकः सच मया न हंतव्यइति प्रतिज्ञां गृहीत्वा यदा तमेव व्यापादयति बहिःस्थितं पर्यायापन्नं तदा तस्य किल व्रतभंगइति भवतः पक्षइति। सच न घटते। यतोयोहि नगरधर्मैरुपेतः सबहिस्थोपि नागरिकएवातः पर्यायापन्नइत्येतद्विशेषणं नोपपद्यते अथ सामस्त्येन परित्यज्य नगरधर्मं नासौ वर्तते अतस्तमेवेत्येतद्विशेषणं नोपपद्यते तदेवमत्र त्रसः सर्वात्मना त्रसत्वं परित्यज्य यदा स्थावरः समुत्पद्यते तदा पूर्वपर्यायपरित्यागादपरपर्यायापन्नत्वाच्च सएवासौ न भवति तद्यथा नागरिकः पल्ल्यां प्रविष्टस्तद्धर्मापितत्वात्पूर्वधर्मपरित्यागाच्च नागरिकएवासौ न भवतीति ॥ ११ ॥

सवायं उदए पेढालपुत्ते भयवं गोयमं एवं वयासी आउसंतो गोयमा णत्थिणं से केइ परियाए जण्णं समणोवासगस्स एगपाणातिवायविरएवि दंडे निक्खित्ते कस्सणं तं हेउं संसारिया खलु पाणा थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा सव्वे तसकायंसि उववज्जंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा सव्वे थावरकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं थावरकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं घत्तं ॥ १२ ॥

॥अर्थ–हवे वादसहित उदयपेढालपुत्र, नगवंत श्रीगौतम प्रत्यें बोल्या के, अहो आयुष्मन् गौतम! ते कोइ पर्याय नथी के, जेणें करी श्रमणोपासक श्रावकनें एक प्राणातिपातविरति विषयिक दंमनो त्याग कस्यो जाय. ते केवा हेतुथी? ए कारण देखाडे ले. संसारी प्राणी परस्पर मांहो मांहे गतिना करनारले. स्थावरप्राणी त्रस पण उपजे, अने त्रसप्राणी पण स्थावर पणे उपजे. हवे वली विशेषें कहेले. स्थावर काय थकी मूकाता थका एतावता स्थावरकायनुं आयुष्य त्यागी सर्वे त्रसकाय पणे उपजे, पालल कोइ स्थावर रहे नहीं. तथा वली त्रसकाय थकी मूकाता एतावता त्रसकायनुं आयुष्य त्यागीनें सर्वे, स्थावरकाय मांहे उपजे, पालल कोइ त्रस रहे नहीं, तेवारें ते श्रावकनें स्थावर मांहे उत्पन्न त्रसनुं स्थानक हणाणुं, ए व्रतनंग थयो ॥१२॥

---

॥ दीपिका–पुनरुदकः प्राह । सवादमुदकोगौतममवादीत् । हे गौतम ! नास्ति सकश्चित्पर्यायः यस्मिन्नेकप्राणातिपातविरमणेपि श्रमणोपासकस्य दंमोवधोनिक्षिप्तः परित्यक्तः स्यात् । कोर्थः । श्राद्धेन त्रसमुद्दिश्य प्रत्याख्यानं कृतं । संसारिणा वान्योन्यगमनसंनवात्त्रसाः सर्वेपि स्थावरत्वं प्राप्तास्तदा त्रसानामनावान्निर्विषयं प्रत्याख्यानमित्यर्थः। (कस्सणंति ) केन हेतुना इदमुच्यते सांसारिकाः खलु प्राणाः स्थावरास्त्रसतया त्रसाअपि स्थावरतया प्रत्यायांति स्थावरकायाद्विप्रमुच्यमानाः स्वायुषा सर्वे निरवशेषकास्त्रसकाये समुत्पद्यंते त्रसकायादपि तदायुषा मुच्यमानाः सर्वे स्थावरकाये समुत्पद्यंते तेषां त्रसानां स्थावरकायोत्पन्नानां स्थानमेतद्घात्यं । यथा केनचित्प्रतिज्ञातं मया नगरनिवासी न हंतव्यः तच्च उद्वसितं नगरं ततोनिर्विषयं प्रत्याख्यानं । एवमत्रापि त्रसानामनावान्निर्विषयत्वमिति ॥ १२ ॥

---

॥ टीका–पुनरप्यन्यथोदकः पूर्वपक्षमारचयितुमाह । ( सवायंउदएइत्यादि) सद्वाचं सवादं वोदकः पेढालपुत्रोनगवंतं गौतममेवमवादीत् । तद्यथाऽऽयुष्मन् गौतम! नास्त्यसौ कश्चित्पर्यायोयस्मिन्नेकप्राणातिपातविरमणेपि श्रमणोपासकस्य विशिष्टविषयामेव प्राणातिपातनिवृत्तिं कुर्वतोदंमः प्राण्युपमर्दनरूपोनिक्षिप्तपूर्वः परित्यक्तपूर्वोनवति । इदमुक्तं नवति । श्रावकेण त्रसपर्यायमेकमुद्दिश्य प्राणातिपातविरतिव्रतं गृहीतं संसारिणां च परस्परगमनसंनवात्तेच त्रसाः सर्वेपि किल स्थावरत्वमुपगतास्ततश्च त्रसानावान्निर्विषयं यत्प्रत्याख्यानमिति।एतदेव प्रश्नपूर्वकं संदर्शयितुमाह।(कस्सणंतंहेउमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे।कस्य हेतोरिदमनिधीयते केन हेतुनेत्यर्थः। सांसारिकाः प्राणाः परस्परसंसरणशीलायतस्ततः स्थावराः सामान्येन त्रसतया प्रत्यायांति त्रसाअपि स्थावरतया प्रत्या

यांति। तदेवं संसारिणां परस्परगमनं प्रदर्श्याधुना यत्परेण विवक्षितं तदाविष्कुर्वन्नाह। (थावरकायाउइत्यादि) स्थावरकायाद्विप्रमुच्यमानाः स्वायुषा तत्सहचरितैश्च कर्मभिः सर्वे निरवशेषास्त्रसकाये समुत्पद्यंते ते त्रसकायादपि तदायुषा विप्रमुच्यमानाः सर्वे स्थावरकाये समुत्पद्यंते तेषांच त्रसानां सर्वेषां स्थावरकायसमुत्पन्नानां स्थानमेतद्घात्यं वर्तते तेन श्रावकेण स्थावरकायवधनिवृत्तेरकारणादतः सर्वस्य त्रसकायस्य स्थावरकायत्वेनोत्पत्तेर्निर्विषयं तस्य त्रसवधनिवृत्तिरूपं प्रत्याख्यानं प्राप्नोति। तद्यथा केनचिद्वृतमेवंभूतं गृहीतं यथा मया नगरनिवासी न हंतव्यस्तच्चोद्वसितं नगरमतोनिर्विषयं तत्तस्य प्रत्याख्यानमेवमत्रापि सर्वेषां त्रसानामभावान्निर्विषयत्वमिति॥ १२॥

सवायं नगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी णो खलु आउसो अस्साकं वत्तवएणं तुप्नंचेव अणुप्पवादेणं अत्थिणं से परियाए जेणं समणोवासगस्स सवपाणेहिं सवनूएहिं सवजीवेहिं सवसत्तेहिं दंमे निक्खित्ते नवइ कस्सणं तं हेउं सांसारिया खलु पाणा तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे थावरकायंसि उववज्जंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे तसकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं तसकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं अघत्तं ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरट्ठिइया ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं नवति ते अप्पयरागा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं नवइ से महया तसकायाउ उवसंतस्स उवठियस्स पडिविरयस्स जन्नं तुप्नेवा अन्नोवा एवं वदह णत्थिणं से समणो केइ परियाए जं से समणोवासगस्स एगपाणा पविरएवि दंमे णिक्खित्ते अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ॥ १३॥

अर्थ—हवे एम कहे उते वादसहित नगवंत श्रीगौतम स्वामी, उदयपेढाल पुत्र प्रत्यें एम बोल्या के, निश्चें अहो आयुष्मन् उदक! (अस्साकंवत्तवएणं के०) अमारी वक्तव्यतायें जे तुं वचन कहेछे, तेम थयुं पण नथी, अनें थशे पण नहीं, ते केमके, समस्त स्थावरजीव, त्रस पणें उपजे एम तमे कहोछो तो, जगत् मांहे त्रस जीवतो असंख्याताछे, अनें स्थावर अनंताछे तो, अनंता असंख्याता मांहे शी रीतें समाय? तथा वली

समस्त त्रस जीव पण स्थावर पणुं न पामे. केम के कोइ वारें पण त्रसशून्य संसार न थाय, तेमज स्थावरशून्य पण संसार न थाय, ए अमारो मतछे. हवे तमारो पक्ष तमारेज अभिप्रायें करी निराकरण करियें छैयें. ते सांजलो. (तुब्भंचेवअणुप्पवादेणं के०) तमाराज केवा प्रमाणे (अब्भिणंसेपरियाए के०) ते पर्यायछे के जे पर्यायें करी श्रमणोपासकनें सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, तेनो घात छंमायछे एटले त्याग थायछे केमके, तमारी वक्तव्यतायें जे वारें सर्व स्थावरजीव त्रसपणे उपना तेवारें सर्व प्राण विषे पच्चरकाण श्रावकनो थयो, ते कारण माटें श्रावक, त्रसनो घात न करे. ए विशेष सूत्रें करी देखाडेछे (कस्सणंतंहेउं के०) तेनो हेतु कयो? ते देखाडेछे निश्चें सांसारिक प्राणी, त्रस प्राणी पण स्थावर पणे उपजे, अनें स्थावर प्राणी त्रस पणे उपजे, त्रसकाय थकी मूकाता सर्व स्थावर पणें उपजे, अनें स्थावर कायथकी मूकाता सर्व त्रस पणे उपजे तेवारें (तेसिंचणंतसकायंसिठववन्नाणंठाणमेयंअघत्तं के०) जो स्थावरकाय पणुं त्यागीनें त्रस पणे उपजे, तेवारे श्रावकनें त्रसना स्थानक भणी अघत्तं एटले विराधनानुं कांहिं कारण नथी, जे कारणें (तेपाणाविवुच्चंति के०) ते त्रसप्राण पण कहियें, अने तेने त्रस पण कहियें, ते महाकाय, ते चिरस्थितिक, ए अर्थ पूर्ववत् जाणवो. (तेबहुयरगापाणा के०) ते घणा त्रसप्राणीयो जेणें करी श्रमणोपासकनें रूडो पच्चरकाण थाय (तेअप्पयरागापाणा के०) ते प्राण, आहीं अल्प शब्द सर्वथा अभावने अर्थेंछे जे कारणे सर्व स्थावर फीटी त्रस थाय, तेवारें स्थावर जीवनो अभाव थयो. एम तमारी वक्तव्यतायेंज श्रावकने घणुं रूडुं पच्चरकाण थाय. अने जे तमे कहोछो के श्रावकने अपच्चरकाण थाय, ते तो उलटुं रूडुं पच्चरकाण थाय ते श्रावक महोटी त्रसकायना आरंभथी उपशम्या सावधान थया विशेषेंथी निवर्त्या, तेने रूडुं पच्चरकाण थाय (जन्नं के०) जे कारण माटें तमे अथवा बीजा (एवंवदह के०) एम कहे के जे एवुं कोइ पर्याय नथी, के जे पर्यायें श्रावकने प्राणातिपातनो पच्चरकाण थाय. ए तमारुं केहेवुं ते न्यायमार्गेनुं नथी ॥ १३ ॥

---

॥ दीपिका–अथ गौतमः प्राह सव्वाचं गौतम उदकमवादीत् । अस्माकमिति मगध देशे सर्वजनप्रसिद्धं संस्कृतमेवोच्चार्यते तथैवात्र पठितं । तदेवमस्माकं संबंधिना वक्तव्येन नैतदशोभनं किं तर्हि? युष्माकमेवानुप्रवादेन एतदशोभनमिति । अस्म द्वक्तव्येनास्य चोद्यस्यानुत्थानमेव । तथाहि । नैतद्भूतं न भवति नापिच भविष्यति यत्सर्वेपि स्थावरास्त्रसत्वं प्रतिपद्यंते स्थावराणामानंत्यात्त्रसानां वाऽसंख्येयत्वेन तदाधारत्वं न युक्तं । त्रसाअपि स्थावरत्वं न प्रतिपन्नानच प्रतिपद्यंते नापि प्रतिपश्यंते । नच कदाचित्त्रसशून्यः संसारः स्यादिति भवदाक्षेपोतृथैव । अस्त्ययं पर्यायोयछ्रमणोपासकस्य सर्वप्राणिनिस्त्रंसत्वेन

नूतैरुत्पन्नैर्दंमोनिक्षिप्तोवधस्त्यक्तः । केन हेतुनेत्याह । सांसारियाइत्यादि पूर्ववत् । याव त्रसकाये उत्पन्नानां स्थानमेतदघात्यं स्यात् । तेच त्रसाप्राणाउच्यंते त्रसाअप्युच्यंते । ते महाकायाश्चिरस्थितिकाः । ते त्रसाबहवोयैः श्राद्धस्य तु प्रत्याख्यातं नवति । नवदनिप्रा येण सर्वस्थावराणां त्रसत्वेनोत्पत्तेः । तेऽल्पतरकाः यैः श्राद्धस्याप्रत्याख्यानं नवति । अ ल्पशब्दोनाववाचकः । न संत्येव त्वदनिप्रायेण ते जीवाः येषु अप्रत्याख्यानमिति । एवं सेत स्य श्राद्धस्य महतस्त्रसकायाडुपशांतस्य विरतस्य सुप्रत्याख्यानं स्यादिति । एवंसति य यूयं वदथान्योवा वदति यन्नास्त्यसौ पर्यायइत्यादि सुगमं यावस्रोणेयाउएनवइत्ति ॥ १३ ॥

---

॥ टीका—एवमुदकेनानिहिते सति तदन्युपगमेनैव गौतमस्वामी दूषयितुमाह । ( स वायमित्यादि ) स ह्यचं वादं वा तमुदकं पेढालपुत्रं गौतमस्वाम्येवमवादीत् । तद्यथा नो खल्वायुष्मन्नुदकास्माकमिर्येतन्मगधदेशे आगोपालांगनादि प्रसिद्धं संस्कृतमेवोच्चार्यते त दिहापि तथैवोच्चारितमिति । तदेवमस्माकं संबंधिना वक्तव्येन नैतदशोननं किं तर्हि युष्मा कमेवानुप्रवादेनैतदशोननं । इदमुक्तं नवत्यस्म हक्तव्येनास्य चोद्यस्यानुत्थानमेव । तथाहि । नैतद्भूतं न च नवति नापि कदाचिद्भविष्यति यडुत सर्वेपि स्थावरानिर्लेपतया त्रसत्वं प्रतिपद्यंते स्थावराणामानंत्यात्त्रसानां चासंख्येयत्वेन तदाधारत्वानुपपत्तेरित्यनिप्रायः । तथा त्रसाअपि सर्वे न स्थावरत्वं प्रतिपन्नान प्रतिपत्स्यंते । इदमुक्तं नवति । यद्यपि विवक्षितकालवर्तिनस्त्रसाः कालपर्यायेण स्थावरकायत्वेन यास्यंति तथा च परंपरापर त्रसोत्पत्त्या त्रसजात्यनुछेदान्न कदाचिदपि त्रसकायशून्यः संसारोनवतीति । तदेव मस्मन्मतेन चोद्यानुत्थानमेवान्युपगम्यच नवदीयं पक्षं युष्मदन्युपगमेनैव परिह्रियते तदेव परानिप्रायेण परिहरतस्तस्यासौ पर्यायः । सचायं नवदनिप्रायेण यदा सर्वेपि स्थावरास्त्रसत्वं प्रतिपद्यंते यस्मिन्पर्यायेऽवस्थाविशेषे श्रमणोपासकस्य कृतप्राणा तिपातनिवृत्तेः सतः त्रसत्वेन च नवदन्युपगमेन सर्वप्राणिनामुत्पत्तेः तैश्च सर्वप्राणिनिस्त्र सत्वेन नूतैरुत्पन्नैः करणनूतैस्तेषु वा विषयनूतेषु दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तः । इदमुक्तं नव ति । यदा सर्वेपि स्थावराः नवदनिप्रायेण त्रसत्वेनोत्पद्यंते तदा सर्वप्राणिविषयं प्रत्या ख्यानं श्रमणोपासकस्य नवतीति । एतदेव प्रश्नपूर्वकं दर्शयितुमाह । (कस्सणंहेउमित्या दि ) सुगमं । यावत्त्रसकाये समुत्पन्नानां स्थानमेतदघात्यमघातार्हं तत्र विरतिसद्भावादि त्यनिप्रायः । तेच त्रसानारकतिर्यङ्नरामरनाजः सामान्यसंज्ञया प्राणिनोप्यनिधीयंते त था विशेषसंज्ञया नयचलनोपेतत्वात्त्रसाअप्युच्यंते । तथा महान् कायः शरीरं येषां ते महाकायाः वैक्रियशरीरस्य योजनलक्षप्रमाणत्वादिति । तथा चिरस्थितिकायाः त्रयस्त्रिंश त्सागरोपमपरिमाणत्वाद्भवस्थितेस्तथा ते प्राणिनस्त्रसाबहुतमानुयैर्याविषयैः श्रमणोपास

कस्य सुप्रत्याख्यानं नवति। त्रसानुद्दिश्य तेन प्रत्याख्यानस्य ग्रहणत्वादन्युपगमेनच सर्वै स्थावराणां त्रसत्वेनोत्पत्तेरतस्तेऽल्पतरकाः प्राणिनोयैः कारणनूतैः श्रावकस्याप्रत्याख्यानं नवति। इदमुक्तं नवति। अल्पशब्दस्यानाववाचित्वान्न संत्येव ते येष्वप्रत्याख्यानमित्येवं पूर्वोक्तया नीत्या सेतस्य श्रमणोपासकस्य महतस्त्रसकायाडुपशांतस्योपरतस्य प्रतिविरतस्य सतः सुप्रत्याख्यानं नवतीति संबंधस्तदेवं व्यवस्थिते। णमिति वाक्यालंकारे। यद्यूयं वदथान्योवा कश्चित्तद्यथा नास्त्यसावित्यादि सुगमं यावस्रोणेयाउएनवइत्ति॥ १३॥

नगवंचणं उदाढु नियंठा खलु पुच्छियव्वा आउसंतो नियंठा इह खलु संतेगइया मणुस्सा नवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुव्वं नवइ जे इमे मुंमे नवित्ता आगाराउ आणगारियं पव्वइत्ता एएसिंचणं आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते जे इमे आगारमावसंति एएसिणं आमरणंताए दंमे णो णिक्खित्ते केइ तंचणं समणा जाव वासाइं चउपंचमाइं बद्दसमाइं अप्पयरोवा नुज्जयरोवा देसं दूइज्जित्ता आगारमावसेज्जा हंता वसेज्जा तस्सणं तं गारवं वहमाणस्स से पच्चरकाणे नंगे नवइ णेतिणठे समठे एवमेव समणोवासगस्सवि तसेहिं पाणेहिं दंमे णिक्खित्ते थावरेहिं पाणेहिं दंमे णो णिक्खित्ते तस्सणं तं थावरकायं वहमाणस्स से पच्चरकाणे णो नंगे नवइ से एवं मायाणह णियंठाए से एवं मायाणियव्वं॥ १४॥

अर्थ—हवे श्रीगौतमस्वामिज स्थावर पर्यायें पहोता एवा त्रस जीवोनें विनाशवा थकी, व्रतनंग न थाय! एवा अर्थनी प्रसिद्धिनें अर्थें त्रण दृष्टांत देखाडेले. (नगवंचणं उदाढु के०) नगवंत श्रीगौतमस्वामी पोतानुं उद्धत पणुं टालवा माटें बीजा स्थविरनें साक्षी करी बोलेले, एटले पोतानी पासें कोइ एक स्थविर बेगले तेनें उद्देशी कहेले के, अहो उदक! जे अर्थ हुं कहुं हुं तेना साक्षी (नियंठाखलुपुच्छियव्वा के०) निश्चें आ निर्ग्रंथोने पूछवुं. एम कही निर्ग्रंथ प्रत्यें कहेले के, (आउसंतोनियंठा के०) अहो आयुष्मंत निर्ग्रंथो! जे हुं आगल कहीश, ते वचन तमारे मनमां मान्य थाय ले किंवा नथी थतुं? ते वचन हुं कहुंहुं, तमे सांनलो. (इहखलु के०) आ जगत् मांहे निश्चें (संतेगइयामणुस्सानवंति के०) कोइ एक मनुष्य शांतिप्रधान एवा होय, (तेसिंचणंएवंवुत्तंपुव्वंनवइ

के० ) तेणें पोतानुं एवुं व्रतविशेष पूर्वें कह्युंछे, ते केवुं कह्युंछे? ते कहेछे. ( जेइमेमुंमे भवित्ता के० ) जे तें हुं मुंम थइश. ( आगाराउअणगारियंपव्वइत्ता के० ) गृहस्थावास बांमीने अणगार पणुं प्रव्रजीश ( एएसिंचणंआमरणंताएदंमेणिक्खित्ते के० ) एने विषे मरणांतिक एटले मरणांतसुधी में दंम बांमयो,एतावता ए प्रव्रजीतने एटले यतिपणाने पा मेलोने विणाशवो नही. ( जेइमेआगारमावसंति के०) जे गृहस्थावास विषें वसतो पुरु ष, (एएसिणंआमरणंताएदंमेणोणिक्खित्ते के०) तेनुं मरणना अंतसुधी, दंम एटले हणवुं निषेध्युं नथी. एवुं तेनुं व्रत विशेषछे, ( केइतंचणंसमणाजाववासाइंचउपंचमाइंछहस माइं के०) तेवारें कोइ एक श्रमण, प्रवर्ज्या पर्याय पाली यावत् चार, पांच, छ, तथा दश वर्ष, इत्यादिक ( अप्पयरोवाभुज्जियरोवा के० ) अल्पकाल, अथवा घणा काल सुधी. (दे संदूइज्जित्ता के० ) चारित्रनें विषे विचरी, तथाविध कर्मनें उदयें वली, (आगारमावसे ज्जा के०) गृहस्थावास सेवन करे,ए भाव संभवे किंवा न संभवे? तेवारें आगल बेठेला निर्ग्रंथी बोल्या के, ( हंतावसेज्जा के० ) हा, चारित्रिया थकी गृहस्थ थाय. जे कारण माटें कर्मनी गति विचित्रछे. हवे वली गौतम स्वामी कहेछे. (तस्सणंतंगारछंवहमाणस्स के०) हवे ते पुरुष के, जेनें चारित्रियापणे विनाशवानो नियमछे अनें गृहस्थपणे विनाश वानो नियम नथी,तेवारें ते चारित्रियो फीटी गृहस्थ थयो छे तेवानें विनाशता तेनुं, (सेपच्च क्खाणेभंगेभवइ के० ) ते पच्चक्खाण भांजे, किंवा न भांजे ? ते कहो. तेवारें ते बोल्या. ( णोतिणठेसमठे के० ) ए अर्थ समर्थ न थाय, अर्थात् तेनुं व्रत न भांजे. ( एवमे वसमणोवासगस्सवि के०) एणी परें श्रमणोपासकने पण ( तसेहिंपाणेहिंदंमेणिक्खित्ते के० ) त्रस प्राणिनें विषे घात करवानो नियमछे परंतु ( थावरेहिंपाणेहिंदंमेणोणिक्खित्ते के० ) अनें स्थावर प्राणिनें घात करवानो नियम नथी, ते कारण माटें जे त्रस फीटी नें स्थावर थयो, ( तस्सणं के० ) तेनो, (तंथावरकायं के०) ते स्थावरकायनी, (वहमा णस्स के० ) विराधना करनार श्रावकनुं ( सेपच्चक्खाणे के० ) ते पच्चक्खाण ( णोभंगे भवइ के० ) भंग न थाय. ( सेएवंमायाणह के० ) तें एम जाणो ( णियंगाए के० ) अहो निर्ग्रंथो ! ( सेएवंमायाणियवं के० ) ते बीजुं पण एमज जाणवुं ॥ १४ ॥

---

॥ दीपिका–अथ त्रसानां स्थावरत्वं प्राप्तानां वधेपि न व्रतभंगः स्यादित्यत्र दृष्टांतत्रयमा ह। भगवान् । गौतमउवाह उक्तवान् निर्ग्रंथाः प्रष्टव्याः । निर्ग्रंथानां सर्वेषामप्येतत्संम तमिति ज्ञापनाय निर्ग्रंथप्रश्नः। किमुक्तवानित्याह । शांतिप्रधानाइह केचिन्मनुष्याः स्युस्ते षामेतडक्तपूर्वं भवति । अयं व्रतग्रहणविशेषः स्यात् यइमे मुंमाभूत्वाऽगारान्निर्गत्यानगा रितां प्रतिपन्नाएषामुपरि मया मरणांतोदंमोनिक्षिप्तोवधस्त्यक्तः । कोर्थः ? केनापि यती

नाश्रित्य व्रतं गृहीतं । यथा यावज्जीवं मया यतयोन हंतव्याइति । येच इमेऽगारं गृहमा वसंति तेषां दंमोन त्यक्तः । गृहस्थानां हिंसा न प्रत्याख्याताइत्यर्थः । तत्र केचिच्छ्रमणाः कियंतमपि कालं प्रव्रज्यां प्रतिपाल्य । कालमानमाह । वासाइत्ति । वर्षाणि पंच च प ऋदशवा । अस्योपलक्षणादन्योपि कालविशेषोज्ञेयस्तमेवाह । अल्पतरं प्रभूततरं च कालं । तथा देसंदूइज्ज विहृत्य कर्मोदयादगृहमावसेयुर्गृहस्थान्नवेयुः एवंभूतः पर्यायः किं संनाव्यते उत नेति ? पृष्टानिर्ग्रंथाः प्रत्यूचुः हंत गृहवासं व्रजेयुः । तस्य च यतिवधगृहीतव्रतस्य तं गृहस्थं घ्नतः किं व्रतभंगोनवेत् ? उतनेति ते आहुर्नेति । एवं श्राद्धस्य त्रसवधनिवृत्तस्य स्थावरस्य प्राप्तं त्रसं घ्नतोन स्याद्व्रतभंगः ॥ १४ ॥

---

॥ टीका—सांप्रतं त्रसानां स्थावरपर्यायापन्नानां व्यापादनेनापि न व्रतभंगोनवतीत्यर्थस्य प्रसिद्धये दृष्टांतमाह ।(नगवंचणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । चशब्दः पुनःशब्दार्थे ।पुनरपि नगवान् गौतमस्वाम्येवाह । स्वौद्धत्यपरिहरणार्थमपरानपि स्थविरान् साक्षिणः कर्तुमिदमाह । ते निर्ग्रंथायुष्मत्स्थविराः खलु प्रष्टव्यास्तद्यथा आयुष्मंतोनिर्ग्रंथायुष्माकमप्येतद्वक्ष्यमाणमनिमतमाहोस्विन्नेत्यवष्टंनेन चेदमाह । युष्माकमप्येतदनिप्रेतं यदहं वच्मि । तद्यथा । शांतिरुपशमस्तत्प्रधानाएके केचन मनुष्यानवंति न नारकतिर्यग्देवाः किं तर्हि मनुष्यास्तेपि नाकर्मभूमिजानापि म्लेछाअनार्यावा तेषां चार्यदेशोत्पन्नानामुपशमप्रधानानामेतदुक्तपूर्वं नवति अयं व्रतग्रहणविशेषोनवति । तद्यथा । यइमे मुंमा भूत्वाऽगाराद्गृहान्निर्गत्यानगारतां प्रतिपन्नाः प्रव्रजिताइत्यर्थः । एतेषां चोपचर्यामरणांतं मया दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोनवति । इदमुक्तं नवति कश्चित्तथाविधोमनुष्योयतीनुद्दिश्य व्रतं गृण्हाति तद्यथा न मया यावज्जीवं यतयोहंतव्यास्तथा ये चेमेऽगारं गृहवासमावसंति तेषां दंमोनिक्षिप्तइत्येवं केषांचिद्व्रतग्रहणविशेषे सति व्यवस्थिते इदमपदिश्यते तत्र केचन श्रमणाः प्रव्रजिताः कियंतमपि कालं प्रव्रज्यापर्यायं प्रतिपाल्य तमेव कालविशेषं दर्शयति । यावद्वर्षाणि चत्वारि पंच वा षड् दश वास्य चोपलक्षणत्वादन्योपि कालविशेषोद्रष्टव्यः । तमेवाह । अल्पतरं प्रभूततरं वा कालं तथा देशंच दूइज्जइत्ति । विहृत्य कुतश्चित्कर्मोदयात्तथाविधपरिणतेरगारं गृहवासं वसेयुर्गृहस्थानवेयुरित्येवंभूतः पर्यायः किं संनाव्यते?उत नेत्येवं पृष्टानिर्ग्रंथाः प्रत्यूचुः हंत गृहवासं व्रजेयुस्तस्य च यतिवधगृहीतस्य तं गृहस्थं व्यापादयतः किं व्रतभंगोनवेदुत नेति ? आहुर्नेति । एवमेव श्रमणोपासकस्यापि त्रसेषु दंमोनिक्षिप्तोन स्थावरेष्विति अतस्त्रसं स्थावरपर्यायापन्नं व्यापादयतस्तत्प्रत्याख्यानभंगोन नवतीति ॥ १४ ॥

भगवंचणं उदाहु नियंठा खलु पुछियवा आउसंतो नियंठा इह खलु गाहावइ गहावइपुत्तोवा तहप्पगारेहिं कुलेहिं आगम्मा धम्मं सवणवत्तियं उवसंकमेज्जा हंता नुवसंकमेज्जा तेसिंचणं तहप्पगाराणं धम्मं आइक्खियवे हंता आइक्खियवे किं ते तहप्पगारं धम्मं सोच्चा णिसम्म एवं वएज्जा इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं संसुद्धं णेयाउयं सल्लकत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निवाणमग्गं अवितहमसंदिद्धं सव डुक्खपहीणमग्गं एत्थंठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिवायंति सवडुक्खाणमंतं करेंति तं माणाए तहा गछामो तहा चिठामो तहा णिसियामो तहा सुयट्टामो तहा भुंजामो तहा नासामो तहा अब्भुठामो तहा उठाए उठेमोत्ति पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं संजमेणं संजमामोत्ति वएज्जा हंता वएज्जा किं ते तहप्पगारा कप्पंति पवावित्तए हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति मुंमावित्तए हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति सिक्खावित्तए हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति उवठावित्तए हंता कप्पंति तेसिंचणं तहप्पगाराणं सवपाणेहिं जाव सवसत्तेहिं दंमे णिक्खित्ते हंता णिक्खित्ते सेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा जाव वासाइं चउपंचमाइं छहसमाइंवा अप्पयरोवा भुज्जयरोवा देसं दूइज्जेत्ता आगारं वएज्जा हंता वएज्जा तस्सणं सवपाणेहिं जाव सवसत्तेहिं दंमे णो णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स परेणं सवपाणेहिं जाव सवसत्तेहिं दंमेणो णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स आरेणं सवपाणेहिं जाव सत्तेहिं दंमे णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स इयाणिं सवपाणेहिं जाव सत्तेहिं दंमे णो णिक्खित्ते भवइ परेणं असंजए आरेणं संजए इयाणिं असंजए असंजयस्स णं सवपाणेहिं जावसत्तेहिं दंमे णो णिक्खित्ते भवइ सएव मायाणह णियंठा से एव मायाणियवं ॥ २५ ॥

अर्थ—नगवंत श्रीगौतम स्वामी,वली बीजो दृष्टांत देखाडता उता बोल्या के,आ दृष्टांतमां निर्ग्रंथोनें निश्चें पूउवुं. अहो आयुष्यमंत निर्ग्रंथो ! आ जगत्मांहे गृहपति,अथवा गृहपतिना पुत्र, ते तथाप्रकारनां रूडा कुलनें विषे ( आगम्मा के० ) आवीनें ( धम्मंस्स वणवत्तियं के० ) धर्म सांनलवानें ( उवसंकमेज्जा के० ) उद्यम करे ? एवुं पुछ्युं ते वारें निर्ग्रंथ बोल्या, (हंताउवसंकमेज्जा के०) हा रूडा कुलना उपना होय, ते धर्मने विषे उद्यम करे. तेवारें फरी श्रीगौतमस्वामी बोल्या .( तेसिंचणंतहप्पगाराणंधम्मंआइक्खियवे के० ) तेवा गृहस्थने तथा प्रकारनो धर्म कहेवो ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या ( हंताआइक्खियवे के०) हा ते गृहस्थने धर्म कहेवो. फरी श्री गौतमस्वामी बोल्या के, (किंतेतहप्पगारंधम्मंसोच्चा के० ) केम के ते गृहस्थ, तेवा तथा प्रकारनो धर्म सांनलीनें ( णिसम्म के० ) हृदयनें विषे अवधारीनें ( एवंवएज्जा के० ) एवुं वचन बोले. शुं बोले ? तोके ( इणमेव निग्गंथंपावयणंसच्चं के० ) ए तीर्थंकरनाषित निर्ग्रंथनुं प्रवचन, ते सत्यछे. समस्त जीवनें हितकारीछे, अनुत्तर अन्यशास्त्रमां प्रधान, केवलिनाषित, उत्तम मनोहर एवो बीजो कोइ मार्ग नथी. ( पडिपुण्णंसंसुद्धंणेयाउयं के० ) मोक्षमार्गना गुणे करी प्रतिपूर्ण, संशुद्ध एटले अत्यंत शुद्ध मोक्षार्थीजीवनें न्यायसंपन्न ( सल्लकत्तणं के० ) सम्यक्प्रकारें मायादिक शल्यनो कापनार सिद्धिनो मार्ग, मुक्तिनो मार्ग, एटले निर्लोनपणानो मार्ग, निव्वाण एटले सिद्धनो मार्ग, अर्थात् समस्तकर्मक्षय करवानो मार्ग, ते निर्वाणमार्ग ( अवितहं के० ) अवितथ्य सत्य, ( असंदिद्धं के० ) असंदिग्ध एटले संदेह रहित मार्ग, सर्वडुःख प्रहीण करवानो मार्ग, ( एछंठियाजीवा के० ) ए मार्गनें विषे स्थित एटले रहेला जीव, सीझंति एटले कार्य सिद्धि करे, लोकालोकनुं स्वरूप बूजे, सर्वडुःखथकी मूकाय, ( परिणिव्वायंति के० ) कर्म रूपदावानलनें उपशमावये करी, शीतलीनूत थाय, एटले सर्व समाधि पामें, सर्व डुःखनो अंत करे, ए मार्गनें अमे पण आदरीनें ( तमाणाए के० ) तमारी आज्ञायें ( तहागच्छामो के० ) तेम चालियें ( तहाचिट्ठामो के० ) तेम उनारहियें ( तहाणिसियामो के० ) तेम बेशियें ( तहातुयट्टामो के० ) तेम सुयें, एटले निद्रा करियें, ( तहाभुंजामो के० ) तेम जमियें ( तहानासामो के० ) तेम बोलियें ( तहाअप्भुट्ठामो के० ) तेम सावधान पणे प्रवर्त्तियें ( तहाउट्ठाए के० ) तेम उठवे करी उठियें ( उट्ठेमोत्ति के० ) उठीनें जेम सर्व प्राण, नूत, जीव, सत्व, तेनी विराधना न थाय ( संजमेणं के० ) एवा आचारें करी, ( संजमामोत्तिवएज्जा के०) संयम पालि ते गृहपति एम कहे. ए प्रकारें गौतम प्रजुयें कह्युं, तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या. (हंतावएज्जा के०) हा ते गृहस्थ,जेम तमे बोल्या, तेमज कहे. वली गौतम स्वामी कहेछे. ( किंतेतहप्पगाराकप्पंतिपव्वावित्तए के० ) केम ते गृहीने तथा प्रकारनुं

प्रव्रज्या व्रत कल्पे, एटले दीक्षा आपवी कल्पे ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या (हंताकप्पंति के०) हा कल्पे. तेवारें श्री गौतम बोल्या. केम तेवा गृहीनें मुंम करवा कल्पे ? निर्ग्रंथ बोल्याके, हा कल्पे. गौतम बोल्या तेवा गृहीनें शीखाववुं कल्पे ? निर्ग्रंथ बोल्या हा कल्पे. तेवा गृहीनें धर्मने विषे उगाववो कल्पे ? निर्ग्रंथ बोल्या के, हा कल्पे. तेवा गृहीनें चारित्र लीधा अनंतर सर्वप्राण, नूत, जीव, सत्व, तेनें विषे घात करवानो त्याग एटले गंमवा पणुं कल्पे ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या के,हा कल्पे. (सेणं के०) ते, ण ए वे वाक्यालंकारें एतडूपेण एटले एवे विहारें विचरता यावत् चार, तथा पांच, ठ, तथा दश वर्ष, अथवा अल्पकाल, अथवा घणा काल पर्यंत देशमांहे, अथवा संयममांहे विचरी तथाविध चारित्रावरणीय कर्मने उदयें वली गृहवास सेवे ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या हा सेवे. जे कारण मार्टे कर्मनी गति वैचित्र्यछे तेथी जेणें चारित्र मूकीने गृहवास आदर्योछे तेनें सर्वप्राण, नूत, जीव, अनें सत्वनें विषे घात मूकाणो ? अर्थात् नहीं मूकाणो, तो हवे पुछे के (सेजेसेजीवे के०) ते जीव, जे प्रथम गृहस्थ हतो. तेवार पछी ते जीव चारित्रियो थयो. तेवारें पण तेज जीव हतो,तेवार पछी वली गृहस्थ थयो तेवारें पण तेहिज जीव छे.(जस्सपरेणं के०) जेने प्रथम, सर्व प्राण,नूत,जीव,सत्वना वधनो दंम नथी छंमाणो तेज जीव,अनें जेनें आरेण एटले वचें छंमाणो अने जेने इयाणिं एटले हमणा वर्त्तमानें वली नथी छंमाणो,ए रीतें तेनी त्रण अवस्था थइ.प्रथम असंयत हतो,वचें संयत थयो, तेवार पछी वली असंयत थयो तेवारे तेने सर्व प्राण, यावत् सर्व सत्वना वधनो दंम, छंमाणो न होय, ए जीव कांइ सर्वकाल असंयत न कहेवाय! परंतु जेवारें जेवो होय. तेवारें तेवो कहेवाय. तो अहो निर्ग्रंथो त्रस! अने स्थावरने विषे पण एम जाणवुं मार्टे जेवारें त्रस तेवारें त्रस, अनें जेवारें स्थावर. तेवारे स्थावर. ए बीजो दृष्टांत कह्यो ते एम जाणे अने बिजु पण एप्रमाणे मानवुं ॥ १५ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयदृष्टांतं प्रत्याख्यातृविषयगतं दर्शयन्नाह । जगवान् गौतमः प्राह । निर्ग्रंथाः प्रष्टव्याः इह खलु गृहपतिर्वा गृहपतिपुत्रोवा तथाप्रकारेषु श्रेष्ठकुलेषु उत्पद्य धर्मश्रवणार्थमागच्छेयुः तेषां धर्मआख्यातव्यइति पृष्टे श्रमणाआहुः । हंत आख्यातव्यः किं ते तथाप्रकारं छुद्ं धर्मं श्रुत्वा एवं वदेयुः । इदमेव निर्ग्रंथसंबंधि प्रवचनं सत्यं यावत् सर्वदुःखप्रहीणमार्गं इछंति । अत्र स्थितजीवाः सिद्ध्यंति । यावत्सर्वदुःखानामंतं कुर्वंति तदाज्ञया तथा गछामः तथा वेष्टामहे यावत् तया उत्थया प्रयत्नेन प्राणिनां संयमेन हिंसानिवृत्त्या संयमामोसंयमं कुर्मोयथा जिनाज्ञा एवं ते वदेयुः इति पृष्टे श्रमणाआहुः हंत वदेयुः । पुनः श्रमणान् पृछति । किं ते तादृशायोग्याः कल्पंते प्रव्राजयितुं । श्रमणाआहुर्हंत कल्पंते इत्यादि । तेसिंचणं तैस्तथाविधैः सर्वजीवेभ्योदंमस्त्य

क्तः एवंविधास्ते विहरंतोवर्षाणि चत्वारि पंच वा षट् दश वा अल्पतरं बहुतरं वा कालं देशग्रामादावुद्यतविहारेण विहृत्य पश्चात्पतितपरिणामाः संतोगारं व्रजेयुर्गृहस्थानवेयुरित्यर्थः । निर्ग्रंथाः पृष्टोत्तरमाहुः । हंत व्रजेयुः तेषां सर्वप्राणिभ्योदंमोनो निक्षिप्तः । तेषामवस्थात्रयमाह । पूर्वं गृहस्थत्वे सर्वजंतुवधोन त्यक्तः अथ यः ससाधुत्वे सर्वजंतुवधस्तेन त्यक्तः । पुनः साधुत्वं मुक्त्वेदानीं गृहस्थे जाते सर्वजंतुवधोन त्यक्तः । पूर्वमसंयतः१ आरतः संयतः२ इदानीमसंयतः३ असंयतस्य सर्वजंतुवधोन त्यक्तः । तदेवं जानीत निर्ग्रंथास्तदेवमाज्ञातव्यं । एवं यथावस्थात्रयेप्यन्यथात्वं स्यादेवं त्रसस्थावरयोरपि ज्ञेयं ॥ १५॥

---

॥ टीका—सांप्रतं पुनरपि पर्यायापन्नस्यान्यथात्वं दर्शयितुं द्वितीयं दृष्टांतं प्रत्याख्यातृविषयगतं दर्शयितुमाह ( जगवंचणमित्यादि ) जगवानेव गौतमस्वाम्याह । तद्यथा गृहस्थाः यतीनामंतिके समागत्य धर्मं श्रुत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपद्य तदुत्तरकालं संजातवैराग्याः प्रव्रज्यां गृहीत्वा पुनस्तथाविधकर्मोदयात्तामेव त्यजंति तेच पूर्वं गृहस्थाः सर्वारंजप्रवृत्तास्तदा रताः प्रव्रजिताः संतोजीवोपमर्दपरित्यक्तदंमाः पुनः प्रव्रज्यापरित्यागे सति नो परित्यक्तदंमाः । तदेवं तेषां प्रत्याख्यातॄणां यथावस्थात्रयेप्यन्यथात्वं जवत्येवं त्रसस्थावरयोरपि द्रष्टव्यमेतच्च जगवंचणमुदाहुरित्यादेर्ग्रंथस्य सेएवमायाणियव्वं इत्येतत्पर्यवसानस्य तात्पर्यं । अक्षरघटना तु सुगमेति स्वबुध्या कार्या ॥ १५ ॥

जगवंचणं उदाहु णियंठा खलु पुच्छियव्वा आउसंतो णियंठा इह खलु परिवाइयवा परिवाइआउवा अन्नयरेहिंतो तित्थाययणेहिंतो आगम्मधम्मं सवणवत्तियं उवसंकमेज्जा हंताउवसंकमेज्जा किं तेसिं तहप्पगारेणं धम्मे आइक्खियव्वे हंता आइक्खियव्वे तंचेव उवठावित्तिए जाव कप्पंति हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति संजुंजित्तए हंता कप्पंति तत्तेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा तंचेव जाव आगारं वएज्जा हंता वएज्जा तेणं तहप्पगारा कप्पंति संजुंजित्तए णो इणठे समठे से जे से जीवे जे परेणं तो कप्पंति संजुंजित्तए से जे से जीवे आरेणं कप्पंति संजुंजित्तए सें जे से जीवे जे इयाणीं णो कप्पंति संजुंजित्तए परेणं अस्समणे आरेणं समणे इयाणिं अस्समणे अस्समणेणं सिद्धिं णो कप्पंति समणेणं निग्गंथाणं संजुंजित्तए से एव मायाणह णियंठा सेएव मायाणियव्वं ॥ १६ ॥

अर्थ–हवे भगवंत श्री गौतमस्वामी त्रीजो दृष्टांत कहेछे के, आ दृष्टांतनें विषे पण, निश्चें निर्ग्रंथोनें पूछवुं. ए कारण माटें निर्ग्रंथ उद्देशीनें पूछे छे के, अहो आयुष्यमंत निर्ग्रंथो! निश्चें आ जगत् मांहे परिव्राजक संन्यासी, परिव्राजिका संन्यासिणी, तथा (अन्नयरेहिंतोतिछायथणेहिंतो के०) अन्य तीर्थायतनथकी आवीनें (आगम्मधम्मंसव णवत्तियं के०) आगम धर्म सांभलवानें साधु पासें आवी ते(उवसंकमेज्जा के०) उद्यम करे ? (हंताउवसंकमेज्जा के०) हा आवीने उद्यम करे, तो केम तथाप्रकारना परिव्राजक, तथा परिव्राजिकाने धर्म कहेवो ? हा धर्म कहेवो. (तंचेवउवठावित्तिए के०) तेम कहेवो के, ज्यांसुधि तेनें उठाववुं कल्पे.? हा, कल्पे. ते वली परिव्राजक थका चारित्रिया थयाछे, तेनें मंमलें वेसाडवा कल्पे? हा, वेसाडवा कल्पे. तथा आहार पाणी लेवो कल्पे ? हा, कल्पे. एवा विहारें विचरता ते वली ज्यां सुधी तथाविधकर्मनें उदयें करी गृहस्थावास सेवे ? हा, सेवे. तेवारें तेनें तथाप्रकारें आहारपाणी करवा, मंमलीमां वेसाडवा कल्पे? तेवारें निर्ग्रंथबोल्या, के, (णोइणट्ठेसमट्ठे के०) ए अर्थ समर्थ नथी. एतावता तेनें मंमलीमां वेसाडवुं न कल्पे. तो हवे जुउ ! के. तेनो तेज जीव, तेनी सार्थे प्रथम आहार पाणी करवो न कल्पे, वच्चें वली आहारपाणी करवो कल्पे, अनें वली तेज जीव सार्थे हमणां आहार पाणी करवो न कल्पे. एम तेनी त्रण अवस्था थइ. प्रथम अश्रमण, पछी वच्चें श्रमण, नें हमणां वली अश्रमण. ते अश्रमणपणायें सहित एवा ते श्रमण निर्ग्रंथनें मंमलीमां पोतानी सार्थे वेसारी जमाडवो न कल्पे. अहो निर्ग्रंथो ! ए दृष्टांतनी पेरें त्रस स्थावरनें विषे पण जाणवुं. जेवारें त्रस तेवारें त्रसज, अनें जेवारें स्थावर, तेवारें स्थावरज, जाणवा. ए रीतें मानो, अनें एवी रीतें जाणवुं. एप्रमाणे निर्ग्रंथनी साक्षियें देशविरति प्रमाण करी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–अथ तृतीयं दृष्टांतं परतीर्थिकानुद्दिश्याह । सुगमार्थमिदं सूत्रं । तात्पर्यार्थस्त्वयं पूर्वं परिव्राजकादयः संतोऽसंभोग्याः साधूनां गृहीतश्रामण्याश्च साधूनां संभोग्याः पुनः श्रामण्यत्यागेऽसंभोग्याः एवं पर्यायान्यथात्वं त्रसस्थावराणामपि योज्यं ॥ १६ ॥

॥ टीका–तदेवं द्वितीयं दृष्टांतं प्रदर्श्याधुना तृतीयं दृष्टांतं परतीर्थिकोद्देशेन दर्शयितुमाह । (भगवंचणमुदाहुरित्यादि जावसेएवमायाणियव्वंति) उत्तानार्थं । तात्पर्यार्थस्त्वयं पूर्वं परिव्राजकादयः संतोऽसंभोग्याः साधूनां गृहीतश्रामण्याश्च साधूनां संभोग्याः संवृत्ताः पुनस्तदभावे त्वसंभोग्याइत्येव पर्यायाऽन्यथात्वं त्रसस्थावराणामप्यायोजनीयमिति॥१६॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया समणोवासगा भवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुव्वं भवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंमा भवित्ता आ

गाराउ अणगारियं पवइत्ताए वयं णं चाउद्दसठमुदिठपुणि मासिणीसु पडिपुणं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा विहरिस्सामो थूलगं पाणाइवायं पच्चक्काइस्सामो एवं थूलगं मुसावायं थूलगं अदिन्नादाणं थूलगं मेहुणं थूलगं परिग्गहं पच्चक्काइस्सामो इछापरिमाणं करिस्सामो डुविहं तिविहेणं मा खलु मम हाए किंचि करेहवा करावेहवा तच विपच्चक्काइस्सामो ते णं अन्नोच्चा अपिच्चा असिणाइत्ता आसंदीपेढियाउ पच्चारुहित्ता ते तहा कालगया किं वत्तवंसिया सम्मं कालगताvि वत्तवंसिया ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरठिइया ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्कायं भवइ ते अप्पयरागा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्कायं भवइ इति से महयाउ जणं तुझे वयह तं चेव जाव अयंपि भेदे से णो णेयाउए भवइ ॥ १७ ॥

अर्थ–वली उदक प्रत्यें भगवंत श्री गौतमस्वामी बोल्या के, निश्चें आ जगत् मां हे कोइ एक श्रमणोपासक होय, तेणे एवुं व्रत विशेषपूर्वें उच्चार कर्युं होय के, निश्चें अमे मुंम्ड थई गृहस्थावास थकी, अणगार पणुं आदरी शकवाने समर्थ नथी तेथी, अमें चतुर्दशी, अष्टमी, चोमासानी त्रण पूर्णिमा, तथा उद्दिष्टतिथि ते महा कल्याणिक तिथि, एटले दिवसें प्रतिपूर्ण सम्यक् प्रकारें पौषध पालता विचरीशुं, तथा वली स्थूल प्राणातिपात पच्चरकीशुं. एणी पेरें स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तान, स्थूल मैथुन, स्थूल परिग्रह, पच्चरकीशुं. इछा प्रमाणे करीशुं, "डुविहंतिविहेणं" इत्यादिक भांगायें करी पच्चखीशुं. (माखलुममहाए के०) निश्चें महारे अर्थें पौषध मांहे कांहिं पचन पाचनादिक म करवुं. बीजा पासें म करावबुं, त्यां पण एवुं पूर्वोक्त अमें पच्चरकाण करीशुं (तेणं के०) ते एवा व्रतना उच्चार करनार श्रावक, (अनोच्चा के०) अणजम्या, (अपिच्चा के०) पाणी पीधा विनाना, (असिणाइत्ता के०) अने स्नान कर्या विना, पोसहव्रत करे. पोसहव्रतमां एटला वानां न करे. (आसंदी के०) मंचक, (पेढियाउ के०) पीढी, मांची इत्यादिक, ते थकी (पच्चारुहित्ता के०) उत्तरीनें सम्यक् प्रकारें पौषध लीये. (तेतहाकालगयाकिंवत्तवंसिया

के० ) तेणें तथा प्रकारे काल कीधो, तो तेनें केवा कहियें, ते रूडी पेरें मरण पा म्या कहियें किंवा नहीं ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या के, ( सम्मंकालगयाविवत्तव्वंसिया के०) ते सम्यक् प्रकारें रूडी रीतें कालगत थया एम कहियें,तेवारें श्रीगौतम बोल्या के, ए रीतें जेणें काल कीधो, तेनें अवश्य देवलोकनें विषे उत्पत्ति जाणीयें ठेयें केमके, रूडे परिणामें जे मरण पामे ते देव थाय. (तेपाणाविवुच्चंति के०) त्यां थका तेने प्राण पण कहियें, ( तेतसाविवुच्चंति के० ) तेने त्रस पण कहियें, ते महाकाय कहीयें, तेनें चिरस्थितिक कहियें,तो ए कारणे (तेवहुतरगापाणा के०) ते घणा जीव के,(जेहिंसमणोवासगस्ससुप च्चखायंनवइ के०) जेने विषे श्रावकने रूडूं पच्चरकाण होय. अने ते थोडा जीव, के जेने विषे श्रावकनें पच्चरकाण नथी. एम ते श्रावकनें महोटी त्रसकाय थकी उपशमछे ते पच्चखाण राखवानो उद्यमछे तेने विराधवानी विरतिछे. एवा श्रावकनें तमे कहोगो के, एवो कोइ पर्याय नथी के,जेणें करी श्रावकनें एक पण प्राणातिपातनुं पच्चरकाण थाय! ते तमारुं वचन न्यायमार्गेनुं नथी ॥ १७ ॥

---

॥ दीपिका—एवं दृष्टांतत्रयेण निर्दोषां देशविरतिं प्रसाध्य पुनरपि तन्मतमेव विचारमा ह । नगवान् गौतमउदकं प्रत्याह ।शांतिप्रधानाएके श्रमणोपासकाजवंति तेषां च इ दमुक्तपूर्वं नवति ।यथा न खलु वयं शक्नुमः प्रव्रज्यां ग्रहीतुं किंतु? वयं चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषु संपूर्णं पौषधं सम्यगनुपालयंतोविहरिष्यामः तथा स्थूलप्राणातिपातमृषावादा दत्तादानमैथुनपरिग्रहं प्रत्याख्यास्यामः। द्विविधं कृतकारितन्नेदात् श्राद्धस्यानुमतेरनिषिद्ध त्वात्त्रिविधं मनोवचनकायैः मा निषेधे पौषधस्थस्य मम कृते किंचित्पचनपाचनादिकं मा कार्षं परेण मा कारयत्ते सर्वथाऽसंन्नविनोवस्तुनोऽनुमतेरपि निषेधः तत्रापि प्रत्याख्यास्यामः ते श्रावकाअनुक्त्वाऽपीत्वाऽस्नात्वा च पौषधयुतत्वादासंदीपीठिकातः प्रत्यारुह्याऽवतीर्य सम्यक् पौषधं कृत्वा कालं कृतवंतः ते किं सम्यक्कृतकालाउतासम्यक्? एवं पृष्टैर्निर्ग्रंथैरव श्यमेवं वक्तव्यं ते सम्यक्कालगता । एवं कालगतानामवश्यंनावी देवलोकोत्पादः तत्रोत्प न्नाश्च ते त्रसाएव ततश्च कथं निर्विषयता प्रत्याख्यानस्येति ॥ १७ ॥

---

॥ टीका—तदेवं दृष्टांते प्रत्याख्यातृविषयगतोगृहस्थयतिपुनर्गृहस्थनेदेन पर्यायनेदः प्रदर्शितः। तृतीयेतु दृष्टांते परतीर्थिकसाधुनावोनिष्क्रमणनेदेन संनोग द्वारेण पर्यायनेद व्यवस्थापितइति । तदेवं दृष्टांतप्राचुर्येण निर्दोषां देशविरतिं प्रसाध्य पुनरपि तन्मतमेव विचारं कर्तुकामआह । ( नगवंचणमुदाहुरित्यादि ) पुनरपि गौतमस्वाम्युदकं प्रतीदमा ह । तद्यथा बहुनिः प्रकारैस्त्रसनावः संनाव्यते ततश्चाशून्यस्तैः संसारस्तदशून्यत्वे

तन्निर्विषयं श्रावकस्य त्रसवधनिवृत्तिरूपप्रत्याख्यानं । तदधुना बहुप्रकारत्रससंनूत्याऽशून्य तां संसारस्य दर्शयति । नगवानाह । संति विद्यंते शांतिप्रधानावा एके केचन श्रमणो पासकान्नवंति तेषां चेदमुक्तपूर्वं नवति संनाव्यते च श्रावकाणामेवंनूतस्य वचसः संनव इति । तद्यथा । न खलु वयं शक्नुमः प्रव्रज्यां ग्रहीतुं किंतु ? वयं । णमिति वाक्यालंकारे । चतुर्दश्यष्टमीपौर्णमासीषु संपूर्णं पौषधमाहारशरीरसत्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पौषधं सम्यगनुपालयंतोविहरिष्यामः तथा स्थूलप्राणातिपातमृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्र हं प्रत्याख्यास्यामोद्विविधमिति कृतकारितप्रकारद्वयेनानुमतेः श्रावकस्याप्रतिषिद्धत्वात्तथा त्रिविधेनेति मनसा वाचा कायेन च तथा मा इति निषेधे खलु इति वाक्यालंकारे मदर्थं पचनपाचनादिकं पौषधस्य मम कृते मा कार्ष्ट तथा परेण मा कारयत तत्राप्यनुमतावपि सर्वथा यदसंनवति तत्प्रत्याख्यास्यामः ते एवंनूतकृतप्रतिज्ञाः संतः श्रावकाः अनुक्त्वाऽ पीत्वाऽस्नात्वा च पौषधोपेतत्वादासंदीपीठिकातः प्रत्यारुह्यावतीर्य सम्यक् पौषधं गृही त्वा कालं कृतवंतस्ते तथाप्रकारेण कृतकालाः संतः किं सम्यक्कृतकालाउतासम्यगिति ? कथं वक्तव्यं स्यादित्येवं पृष्टैर्निर्ग्रंथैरवश्यमेवं वक्तव्यं स्यात् सम्यक्कालगताइत्येवं कालग तानामवश्यंनावी तेषां देवलोकेषूत्पादस्तडुत्पन्नश्च त्रसएव ततश्च कथं निर्विषयता प्रत्याख्यानस्योपासकस्येति ॥ १७ ॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया समणोवासगा नवंति तेसिंचणं ए वं वुत्तं पुव्वं नवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंमा नवित्ता आगा राउ जाव पव्वइत्तए णो खलु वयं संचाएमो चाउद्दसट्ठमुदिट्ठपुण्ण मासिणीसु जाव अणुपालेमाणा विहरित्तए वयं णं अपच्छिम मारणंतियं संलेहणा जूसणा जूसिए नत्तपाणं पडियाइक्खिया जाव कालं अणवकंखमाणा विहरिस्सामो सव्वं पाणाइवायं पच्च क्खाइस्सामो जाव सव्वं परिग्गहं पच्चक्खाइस्सामो तिविहं तिविहे णं मा खलु ममट्ठाए किंचिवि जाव आसंदीपेढियाउ पच्चारुहित्ता एते तहा कालगयाइ किं वत्तव्वंसिया सम्मं कालगयाइ वत्तव्वं सिया ते पाणावि वुच्चंति जाव अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ ॥ १८ ॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी कहेठे. कोइ एक श्रमणोपासक एवा होय, तेणे एवुं पूर्वे व्रत उच्चारवानुं वचन कह्युं होय के, निश्चे अमे मुंम थइने गृहस्थावास थका यावत् थ

णगार पणुं आदरी शकवाने समर्थ नथी. चतुर्दशी, अष्टमी, त्रण चोमासानी पूर्णिमा, तथा महाकल्याणिक तिथिने विषे पौषध लइ न शकियें अमारे बेले कालें मरणने अंते शरीर पातलुं पाडवा संलेषणाने विषे जूसणा एटले आत्मा स्थापवो, स्थापीने भात, एटले अन्न पाणी निषेधिने यावत् मरणकाल अण वांबता मरणा निलापा अण करता विचरीशुं यावत् सर्व प्राणातिपात, सर्व मृषावाद, सर्व अदत्तादान, सर्व मैथुन, सर्व परिग्रह, त्रिविध त्रिविध प्रकारें पच्चरकीशुं, तथा अमारे अर्थें कांइ पण पचन पाचनादिक म करो,म करावो,एवुं पण पच्चरकाण करीशुं. ते श्रावको ए रीतें अण जमते,पाणी अणपीते, स्नानादिक अण करते, मंचक, मांची इत्यादिक थकी उतरीने ते प्रकारें काल करे. तो तेने केवा कहियें, रूडा मरणना करनार कहियें के, माठा मरणना करनार कहियें? ते वारें *निर्ग्रंथ बोल्या, ते रुडी पेरें कालगत थया कहेवाय, तेपाणाविवुच्चंति इत्यादिक* शब्दोनो अर्थ, पूर्ववत् जाणवो. यावत् तमारुं एवुं बोलवुं, ते न्याय मार्गेनुं नथी. त्यां सुधी जाणवुं. ॥ १७ ॥

---

॥ दीपिका–पुनः श्राद्धोद्देशेन प्रत्याख्यानविषयं दर्शयति । गौतमः प्राह । संति विद्यंते एके केचन श्रमणोपासकास्तेषामेतडुक्तपूर्वं भवति । यथा न शक्नुमोवयं प्रव्रज्यां ग्रहीतुं नापि चतुर्दश्यादिषु सम्यक् पौषधं पालयितुं वयं चापश्चिमया संलेखनक्षपणया क्षपितकायाः । यदिवा संलेखनाजोषणया सेवनया जोषिताः सेविताउत्तमार्थगुणैरेवं भूताः संतोभक्तपानं प्रत्याख्याय कालं दीर्घकालमनवकांक्षमाणाविहरिष्यामः । कोर्थः ? न खलु वयं दीर्घकालं व्रतं पालयितुं समर्थाः किंतु वयं सर्वमपि प्राणातिपातादिकं प्रत्याख्याय संलेखनया संलिखितकायाश्चतुर्विधाहारत्यागेन जीवितं त्यक्तुं समर्थाः । इति सूत्रेणैवाह । ( सवंपाणाइवायमित्यादि ) यावत्ते तथा कालगताः किं वक्तव्यमेतत्स्यात् सम्यक् ते कालगताइति पृष्टानिर्ग्रंथाआहुर्यथा ते सन्मनसः शोभनचित्ताः कालगता इति । ते कालं कृत्वा सुरलोकेपूत्पद्यंते तत्र चोत्पन्नायद्यपि हंतुं न शक्यंते तथापि त्रसत्वात्ते श्राद्धस्य त्रसवधनिवृत्तिप्रत्याख्यानस्य विषयाः स्युः ॥ १७ ॥

---

॥ टीका–पुनरन्यथा श्रावकोद्देशेनैव प्रत्याख्यानस्य विषयं प्रदर्शयितुमाह । ( भगवं चणमित्यादि) गौतमस्वाम्येवाह । तद्यथा संति विद्यंते एके केचन श्रमणोपासकास्तेषां चैतडुक्तपूर्वं भवति । तद्यथा । खलु न शक्नुमोवयं प्रव्रज्यां ग्रहीतुं नापि चतुर्दश्यादिषु सम्यक् पौषधं पालयितुं वयं चापश्चिमया संलेखनक्षपणया क्षपितकाययदिवा संलेखनाजोषणया सेवनया जोषिताः सेविताउत्तमार्थगुणैरित्येवंभूताः संतोभक्तपानं प्रत्याख्या

य कालं दीर्घमनवकांक्षमाणाविहरिष्यामः । इदमुक्तं नवति । न वयं दीर्घकालं पौपधादिकं व्रतं पालयितुं समर्थाः किंतु? वयं सर्वमपि प्राणातिपातादिकं प्रत्याख्याय संलेखनया संलिखितकायाश्चतुर्विधाहारपरित्यागेन जीवितं परित्यक्तुमलमिति । एतत्सूत्रेणैव दर्शयति ( सव्वंपाणाइवायमित्यादि ) सुगमं । यावत्ते तथा कालगताः किं वक्तव्यमेतत्स्यात्सम्यक् ते कालगताइत्येवं पृष्टानिर्ग्रंथाएतदूचुर्यथा ते सन्मनसः शोननमनसस्ते कालगताइति तेच सम्यक् संलेखनया यदा कालं कुर्वंति तदाऽवश्यमन्यतमेषु देवलोकेषूत्पद्यंते तत्र चोत्पन्नायद्यपि ते व्यापादयितुं न शक्यंते तथापि त्रसत्वात्ते श्रावकस्य त्रसवधनिवृत्तस्य विपयतां प्रतिपद्यंते ॥ १८ ॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा नवंति तंजहा महइछा महारंना महापरिग्गहा अहम्मिया जाव डुप्पडियाणंदा जाव सव्वाउ परिग्गहाउ अप्पडिविरया जाव जीवाए जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते ते ततो आउगं विप्पजहंति ततो नुज्जो सगमादाए डुग्गइगामिणो नवंति ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरठिइया ते बहुयरगा आयाणसोइति से महयाउ णं जन्नं तुब्ने वदह तंचेव अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ ॥ १९ ॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी कहेछे. आ जगत् मांहे कोइ एक एवा होय, ते कहेछे. (महइछा के०) महोटी इछावाला एटले महालोनी, महाआरंनी, महापरिग्रही, अधार्मिक यावत् डुष्प्रत्यानंदी, एटले कोइनुं नंडूं थाय तो पोतें आनंद पामे, यावत् सर्व परिग्रह थकी अविरति एटले निवर्त्या नथी. जाव जीव लगें जेने विषे श्रमणोपासकने (आयाणसो के०) प्रथम व्रत ग्रहण प्रारंनीने मरणांत सुधी त्रस पणाने लीधे तेनो घात ठंमाणोछे. हवे ते सर्वथा अविरति मनुष्यनो ते नवसंबंधी आयुष्यनो क्षय थये थके ते आयुष्य त्यागीनें ( नुज्जोसगमादाए के० ) वली पोताना उपार्जन करेलां कर्मो लेइनें (डुग्गइगामिणोनवंति के०) दौर्गतिगामि थाय, एटले शुं कह्युं? तोके, जे महारंनी, महापरिग्रही होय, ते नरकादिक डुर्गतियें जाय. त्यां छतां तेने प्राण पण बोलियें, अने त्रस पण बोलियें, ते महाकायवाला कहियें, तेने घणी स्थिति होय, एम पण कहियें, ते घणा जीवनी त्रस जाति पणानें पामे. माटें तेनो विनाश करवाने विषे श्रावकने रूडूं पच्चरकाण होय. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ए कारणे तमारुं बोलवुं न्याय मार्गनुं नथी ॥ १९ ॥

॥ दीपिका—पुनः प्रत्याख्यानविषयमाह । न प्रथमव्रतग्रहणं ततआरम्य मरणांतं या वद्दंमोनिक्षिप्तस्त्यक्तः । तेच तस्माद्भवात्स्वायुषं जहंति त्यक्त्वा त्रसजीवितं स्वकं पाप मादाय गृहीत्वा दुर्गतिगामिनः स्युः । महारंनपरिग्रहत्वात्ते मृतानरके नारकत्रसत्वेनोत्प न्नाः सामान्येन प्राणिनउच्यंते विशेषतस्तु त्रसामहाकायाइत्यादि पूर्ववत् ॥ १९ ॥

---

॥ टीका—पुनरन्यथा प्रत्याख्यानस्य विषयमुपदर्शयितुमाह । (नगवंचणंउदाहुरित्यादि) नगवानाह । एके केचन मनुष्याएवंनूतानवंति । तद्यथा महेच्छामहारंनामहापरिग्रहा इत्यादि सुगमं । यावद्येषु वा श्रमणोपासकस्यादीयतइत्यादानं प्रथमव्रतग्रहणं ततआ रम्याऽऽमरणांताद्दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोनवति। तेच तादृग्विधास्तस्माद्भवात्कालात्स्वा युषं विजहंति त्यक्त्वा त्रसजीवितं ते नूयः पुनः स्वकर्म स्वकृतकिल्बिषमादाय गृही त्वा दुर्गतिगामिनोनवंति एतदुक्तं नवति । महारंनपरिग्रहत्वात्ते मृताः पुनरन्यतरपृथिव्यां नारकत्रसत्वेनोत्पद्यंते तेच सामान्यसंज्ञया प्राणिनोविशेषसंज्ञया त्रसामहाकायाः चिर स्थितिकाइत्यादिपूर्ववद्यावत् (णोणेयाउएत्ति) ॥ १९ ॥

नगवंचणं नुदाहु संतेगइया मणुस्सा नवंति तंजहा अणारंना अ परिग्गहा धम्मिया धम्माणुया जाव सवाउ परिग्गहाउ पडिवि रया जाव जीवाए जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आम रणंताए दंमे णिक्खित्ते ते तउ आउगं विप्पजहंति ते तउ नुज्जो सग मादाए सग्गइगामिणो नवंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउ ए नवइ ॥ २० ॥

अर्थ—वली एहिज अर्थ दीपाववा नणी, गौतम स्वामी कहेचे के, आ जगत् मांहे को इ एक मनुष्य, एवा होय के, निरारंनी, निःपरिग्रही, धार्मिक धर्मनीज अनुमोदना क रनार, इत्यादिक त्यां सुधी कहेवुं, ज्यां सुधी सर्वपरिग्रह थकी विरति एटले निवृत्याचे सर्व विरतिना पालनार, जावजीव सुधी, जेने विषे श्रमणोपासकनें प्रथम व्रतग्रहण का ल प्रारंनी मरणांतसुधी घातनो निषेध कर्योचे. ते तेवा सर्वविरति वाला मनुष्य, नव सं बधीनुं आयुष्य ढांमीनें पोतानां पूर्वोपार्जित शुन कर्म लेइनें सजतिगामि थाय. ते त्यां बता प्राण पण कहेवाय. इत्यादिक-वीजो पाठ, सर्व पूर्ववत् जाणवो. ए कारणें ए तमारुं वचन रूडुं न्याय मार्गनुं नथी. ॥ २० ॥

---

॥ दीपिका—पुनः प्रत्याख्यानविषयं दर्शयति । पूर्वोक्तेन्योमहारंनादिन्योविपरीताः

सुशीलाः साधवः एते च सामान्यश्रावकास्तेपि त्रसेष्वेव देवेषूत्पद्यंते ततोपि न निर्विषयं प्रत्याख्यानं ॥ २० ॥

---

॥ टीका–पुनरन्येन प्रकारेण प्रत्याख्यानस्य विषयं दर्शयितुमाह । ( भगवंचणंउदाहुरित्यादि ) पूर्वोक्तेभ्योमहारंभपरिग्रहवदादिभ्योविपर्यस्ताः सुशीलाः सुप्रत्यानंदाः साधवइत्यादि सुगमं । यावत् ( सोणेयाउएभवइत्ति ) । एते च सामान्यश्रावकास्तेपि त्रसेष्वेवान्यतरेषु देवेषूत्पद्यंते ततोपि न निर्विषयं प्रत्याख्यानमिति ॥ २० ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा भवंति तं जहा अप्पेछा अप्पारंभा अप्पपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया जाव एगच्चाउ परिग्गहाउ अप्पडिविरया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते ते तउ आउगं विप्पजहंति ततो भुज्जो सगमादाए सग्गइगामिणो भवंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउए भवइ ॥ २१ ॥

अर्थ–वली गौतम स्वामी कहेछे. निश्चें आ जगत् मांहे कोइ एक मनुष्य, एवा होय, ते कहेछे. अल्पइछा एटले अल्पलोभी, अल्पारंभी, अल्पपरिग्रही, धार्मिक धर्मानुग, प्राणातिपातादिक थकी एकपक्षें विरति, अनें एकपक्षें अविरति, ए कारण माटें ते विरताविरत कहेवाय. जेनें विषे श्रमणोपासकनें व्रतग्रहणकाल प्रारंभी मरणांतसुधी जीवघातरूप दंमनो निषेधछे. ते विरताविरत पुरुष, ते भव संबंधी आयुष्य गांमीनें, पछी पोतानां पूर्वोपार्जित शुभ कर्म लेइने, सद्गतियें जाय. ते त्यां छतां प्राण पण कहेवाय, त्रस पण कहेवाय, इत्यादिक पाठ सर्व, पूर्ववत् जाणवो. ज्यां सुधी तमारुं बोलवुं न्यायमार्गेनुं नथी. ॥ २१ ॥

---

॥ दीपिका–किंच । सुगममिदं सूत्रं एते चाल्पेछादिविशेषणाश्चवश्यं प्रकृतिभद्रतया सद्गतिगामित्वेन त्रसेषूत्पद्यंते ॥ २१ ॥

---

॥ टीका–किंचान्यत् । ( भगवंचणंउदाहुरित्यादि ) सुगमं यावत्सोणेयाउएत्ति । एते चाल्पेछादिविशेषणविशिष्टाश्चवश्यं प्रकृतिभद्रतया सद्गतिगामित्वेन त्रसकायेषूत्पद्यंतइति इष्टव्यं ॥ २१ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा भवंति तं जहा आरणिया, आवसहिया गामणियंतिया कण्हुई रहस्सिया जेहिं समणोवा सगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते भवइ णो बहु संजया णो बहुपडिविरया पाण भूय जीव सत्तेहिं ते सतो अप्पणा सच्चा मोसाइं एवं विप्पडिवेदेंति अहं ण हंतवो अन्ने हंतवा जाव कालमासे कालं किच्चा अन्नयराइं आसुरियाइं किबिसियाइं जाव उववत्तारो भवति तउ विप्पमुच्चमाणा भुज्जो एलमुयत्ताए तमोरुयत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउए भवइ ॥२१॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी कहेछेके,आ जगत्मांहे कोइएक मनुष्य एवा होय के,आरणिक एवुं तीर्थविशेष तेनें विषे रहेनार ते आरण्यवासी,तथा कंदमूलफलाहारी,वृक्षनें मूलें वसनार एवा पुरुष,तापस विशेष जाणवा. (आवसहिया के०) वली कोइएक पानडानी पर्णकूटी करी रहेनारा, ग्राम निमंत्रिक एटले आजीविका निमित्तें ग्राम समीपें वसनारा,(कण्हुईरहस्सिया के०) कोइएक कार्यनें विषे रहस्यना करनार,इत्यादि तापस विशेष,जेनें विषे श्रमणोपासकनें व्रतग्रहण प्रारंभीने मरणांत सुधी हिंसानो निषेधछे. हवे ते तीर्थिक केवाछे ? तोके [illegible] सयत नथी,कारणके तेमांहे सम्यक्ज्ञान नथी; ते माटें ते पूर्ण संयमनें [illegible]ता नथी,तथा प्राण,भूत,जीव,अने सत्वनें विषे जेने घणुं व्रतिपणु नथी. ते पोतें पोता थकी एवी सत्यामृषा भाषा प्रयुंजीनें लोक आगल आवी रीते बोले.ते कहेछे.मनें ब्राह्मण पणाने लीधे दंमादिकें करी हणवो नहीं. बीजा,क्षुद्रादिकोने हणवा. इत्यादिक पूर्व अध्ययननें विषे कह्युंछे,ते सर्व अंहीं जाणी लेवुं. एवा मनुष्य,कालमासें काल करीनें बालतपश्चर्यानें योगें अनेरा आसुरिय किल्विषीयादिकनी गतिने विषे जाय. जे कारण माटें ते जीवघातना उपदेशना देनार,भोगाभिलाषी, तापसो, नित्यांधकार सहित एवी नरकादिक गतिमांहे जाय. वली बालतपनें योगें तेनें प्रथमतो पूर्वोक्त नीचगति प्राप्त थाय,ते वार पछी वली ते आसुरीयादिक गतिथकी आयुष्यने क्षयें चवीनें वली वली बेहेरा, मूगा, एवा तमोरूप अंध मनुष्य थाय. एवा छता तेनें त्रस कहियें, तेने प्राण कहियें, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. इत्यादिक यावत् ए तमारुं वचन न्यायमार्गेनुं नथी ॥ २१ ॥

॥ दीपिका—किंचान्यत् एके मनुष्याएवंभूताः स्युः आरण्यिकाआरण्यवासिनः आवसथिकाग्रामनिमंत्रिकाः ( कण्हुईरहस्सिया ).क्वचित्कार्ये रहस्यकाः एते सर्वेपि तीर्थिकविशेषाः

तेच नो बहुसंयताः क्रियासु नो बहुप्रतिविरताः सर्वजंतुवधान्न निवृत्ताः सत्यामृषाणि वाक्यानि परेषु एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण प्रयुंजंति ( एवंविप्पडिवेदेंति ) क्वचित्पाठः एवं विविधप्रकारेण प्रतिवेदयंति ज्ञापयंति । यथा । अहं न हंतव्योऽन्ये हंतव्याः ।अहं नाज्ञापयितव्योन्येऽज्ञापयितव्याइत्यादीन्युपदेशवाक्यानि ददति ।एवंनूतास्ते कामासक्ताः किंचिदज्ञानतपःपराः कालं कृत्वाऽन्यतरेष्वासुरीयेषु स्थानेषु किल्बिषिकेषु असुरदेवाधमेषूत्पद्यंते अथवा प्राणुपघातकोपदेशदातारोन्नोगमूर्बिताअसूर्येषु नित्यांधकारेषु किल्बिषप्रधानेषु नरकस्थानेषु समुत्पद्यंते ते च देवानारकास्त्रसत्वं न व्यनिचरंति तेषुच यद्यपि इव्यप्राणातिपातो न संनवति तथापि नावप्राणातिपातस्य विरतेर्विषयतां प्रतिपद्यंते ततोदेवलोकाच्युतानरकाडकृतावा क्लिष्टपंचेंड्रियतिर्यक्षु हीनमनुष्येषुवा एडमूकतया तमोरूपतया अंधबधिरतया प्रत्यायांति ते चावस्थाद्वयेपि त्रसत्वं न व्यनिचरंति ततोन निर्विषयं प्रत्याख्यानं एषु च इव्यप्राणातिपातोपि संनवति ॥ २२ ॥

---

॥ टीका–किंचान्यत् । ( नगवंचणंउदाहुरित्यादि ) गौतमस्वाम्येव प्रत्याख्यानस्य विषयं दर्शयितुमाह । एके केचन मनुष्याएवंनूतानवंति तद्यथा अरण्ये नवाआरण्यकास्तीर्थिकविशेषास्तथा आवसथिकास्तीर्थिकविशेषाएव तथा ग्रामनिमंत्रिकास्तथा ( कण्हुईरहस्सियाति ) क्वचित्कार्ये रहस्यकाः क्वचिड्हस्यकाएते सर्वेपि तीर्थिकविशेषास्तेच नो बहुसंयताहस्तपादादिक्रियासु तथा ज्ञानावरणीयावृतत्वान्न बहुविरताः सर्वप्राणनूतजीवसत्वेन्यस्तत्स्वरूपापरिज्ञानाच्च वधादविरताइत्यर्थः । ते तीर्थिकविशेषाबव्हसंयताः स्वतो विरताआत्मना सत्यामृषाणि वाक्यान्येवमिति वक्ष्यमाणरीत्या वियुंजंति । ( एवं विप्पडिवेदेंति ) क्वचित्पाठोस्यायमर्थः। एवं विविधप्रकारेण परेषां प्रतिवेदयंति तानि पुनरेवंनूतानि वाक्यानि दर्शयति । तद्यथा । अहं न हंतव्योऽन्ये पुनर्हंतव्याः तथाहं नाज्ञापयितव्योऽन्ये पुनराज्ञापयितव्या इत्युदीरितान्युपदेशवाक्यानि ददति । ते चैवमेवोपदेशदायिनः स्त्रीकामेषु मूर्बिताग्रुद्धाअध्युपपन्नायावद्वर्षाणि चतुःपंचानिवा षड्दशमानि वा तेऽप्यल्पतरं वा प्रनूततरंवा कालं क्षुत्कोत्कटानोगनोगास्तांस्ते तथानूताः किंचिदज्ञानतपःकारिणः कालमासे कालं कृत्वाऽन्यतरेष्वासुरीयेषु स्थानेषु किल्बिषिष्वसुरदेवाधमेषु स्थानेषूपपत्तारोनवंति यदि प्राणुपमर्दोपदेशदायिनोनोगानिलापुकाअसूर्येषु नित्यांधकारेषु किल्बिषप्रधानेषु नरकस्थानेषु ते समुत्पद्यंते तेच देवानारकावा त्रसत्वं न व्यनिचरंति तेषु च यद्यपि इव्यप्राणातिपातोन संनवति तथापि ते नावतोयः प्राणातिपातस्त द्विरतेर्विषयतां प्रतिपद्यंते ततोपि देवलोकाच्युतानरकोकृताः क्लिष्टपंचेंड्रियतिर्यक्षु तथाविधमनुष्येषु चैडमूकतया समुत्पद्यंते तथा तमोरूपत्वापत्तिमंधबधिरतया प्रत्यायांति

ते चोनयोरप्यवस्थायास्त्रसत्वं न व्यभिचरंति । इत्यतो न निर्विषयं प्रत्याख्यानमेतेषु च इय्यतोपि प्राणातिपातः संभवतीति ॥ २२ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया पाणा दीहाउया जेहिं समणोवा सगस्स आयाणसो आमरणंताए जाव दंमे णिक्खित्ते भवइ ते पुवामेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरट्ठिइ या ते दीहाउया ते बहुयरगा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खा यं भवइ जाव णो णेयाउए भवइ ॥ २३ ॥

अर्थ—वली भगवंत श्रीगौतम स्वामी बोल्या के,आ जगतमांहे एकेक प्राणी एवाछेके, जे श्रावक पच्चखाण करेछे, ते थकी ते प्राणी दीर्घायुवालाछे,ते देवता,नारकी, तिर्यंच, अने मनुष्यपणे परलोकमांहे उपजे,तेने प्राण पण कहियें, तेने त्रस पण कहिये, तेने मोहोटी काया ना धणी पण कहिये,तेने घणी स्थिति कहियें. तेने घणा प्रकारना जीव कहियें, जेने विषे श्रमणोपासकने व्रतग्रहण प्रारंभीने मरणांतसुधि विनाशवानो निषेधछे, अने ते श्रावक तो, तेनी पूर्वेज काल करे. ते कारण माटें ते श्रमणोपासकने, तेने वि नाशवानो निषेधछे, परंतु ते दीर्घायुत्रसने विषे प्राणातिपात विरमणव्रत शामाटें पले नही? तमे जे कहोछे के, एवो पर्याय कोइ नथी के, जेणे करी श्रावक पच्चखाण करे. ते तमारुं वचन न्यायमार्गेनुं नथी. ॥ २३ ॥

॥ दीपिका—अथ प्रकटमेव विरतिविषयमाह । भगवानाह । योहि प्रत्याख्यानं गृ ह्णाति तस्माद्दीर्घायुष्काः प्राणिनस्ते च नारकमनुष्यदेवाद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यंचश्च सं भवंति ततः कथं निर्विषयं प्रत्याख्यानमिति ? शेषं सुगमम् ॥ २३

॥ टीका—सांप्रतं प्रत्यक्षसिद्धएव विरतेर्निर्विषयं दर्शयितुमाह । ( भगवंचणंउदाहुरि त्यादि ) भगवानाह योहि प्रत्याख्यानं गृह्णाति तस्माद्दीर्घायुष्काः प्राणाः प्राणिनस्ते च नारकमनुष्यदेवाद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यंचश्च संभवंति ततः कथं निर्विषयं प्रत्याख्यान मिति ? शेषं सुगमं यावस्रो णेयाउए भवइ ॥ २३ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया पाणा समाउया जेहिं समणोवास गस्स आयाणसो आमरणंताए जाव दंमे णिक्खित्ते भवइ ते सममेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणा

वि वुच्चंति तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते समाउया ते बहुयरगा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चरकायं नवइ जाव णो ऐयाउए नवइ ॥ २४ ॥

अर्थ—वली श्रीगौतमस्वामी कहेछे के, जे श्रावक पच्चरकाण करेछे, तेथकी आ जगत् मांहे कोइ एक प्राणी ( समाउया के० ) समायुष्य एटले सरखा आयुष्य वाला छे, जेनें विषे श्रमणोपासकनें प्रथम व्रत ग्रहण प्रारंनी मरणांत सुधी हिंसानो नियमछे, ते वार पछी ते समकालें काल करे, सरखा काल करीनें परलोकें उपजे तेनें प्राण पण कहियें, तेने त्रस पण कहियें, तेनें महोटी कायाना धणी कहियें, तेने घणा प्रकारें जीव कहियें, जेनें विषे श्रमणोपासकनें निषेधवानो नियमछे. एकारणें श्रावकनें पच्चरकाण केम न होय ? ते माटें ए तमारुं बोलवुं नलुं नथी ॥ २४ ॥

---

॥ दीपिका—इदं समायुष्कसूत्रं पूर्ववत् ॥ २४ ॥

---

॥ टीका—एवमुत्तरसूत्रमपि तुल्यायुष्कविषयं समानयोगक्षेमत्वाद्व्याख्येयं ॥ २४ ॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया पाणा अप्पाउया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए जाव दंमे णिक्खित्ते नवइ ते पुव्वामेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइत्ताए पच्चायंति ते पाणा वि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते अप्पाउया ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चरकायं नवइ जाव णो ऐयाउए नवइ ॥ २५ ॥

अर्थ—वली नगवंत श्री गौतम स्वामी बोल्या के, आ जगत् मांहे एकेक प्राणी एवा छे के, ते श्रावक थकी अल्प एटले थोडा आयुष्य वालाछे, जेनें आश्री श्रमणोपासकनें रूडुं पच्चरकाणछे एतावता घणा प्राणने विषे पच्चरकाणछे अने थोडा प्राणने विषे अपच्चरकाणछे. एतावता जाव जीव सुधी जे जीव ते नियम करनार श्रावक थकी अल्पायुष्यवालाछे ते ज्यां सुधी मरण न पामे, त्यां सुधी त्रस आश्री ते श्रावकनें पच्चरकाणछे, ते कदापि मरण पामीनें फरी तेहिज त्रसकायमां उपजे तेवारें ते पच्चरकाण आगल पण पले. ए कारणें निर्विषय पच्चरकाण केम कहियें ? माटें तमारुं वचन अयुक्तछे. अहीं बीजा रही गयेलां पदोनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २५ ॥

॥ दीपिका–इदमल्पायुष्कसूत्रमपि स्पष्टं नवरं यावत्ते न म्रियंते तावत्प्रत्याख्यानस्य विषयः त्रसेषु वा समुत्पन्नाः संतोविषयतां प्रतिपद्यंते ॥ २५ ॥

॥ टीका–तथाऽल्पायुष्कसूत्रसिद्धमेव । इयांस्तु विशेषोयावत्ते न म्रियंते तावत्प्रत्याख्यानस्य विषयस्त्रसेषु वा समुत्पन्नाः संतोविषयतां प्रतिपद्यंतइति ॥ २५ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया समणोवासगा भवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुव्वं भवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंडे भवित्ता जाव पव्वइत्तए णो खलु वयं संचाएमो चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं अणुपालित्तए णो खलु वयं संचाएमो अपच्छिमं जाव विहरित्तए वयंचणं सामाइयं देसावगासियं पुरठा पाईणं पडिणंवा दाहिणं उदीणं एतावता जाव सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं दंडेहिं णिक्खित्ते सव्वपाणभूयजीवसत्तेहिं खेमं करेहि अहमंसि तत्थ आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहित्ता तत्थ आरेणं चेव जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो जाव ते सुपच्चायंति जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से ॥ २६ ॥

अर्थ–वली गौतम स्वामी बोल्या के,आ जगत् मांहे एकेक श्रमणोपासक एवा होयछे के जेनें पूर्वे एवा व्रतनो उच्चार होयछे के,निश्चें अमें मुंड थइ आगारवास छांडीनें चारित्र लइ शकता नथी.निश्चें अमे चतुर्दशी,अष्टमी,उद्दिष्ट एटले कल्याणिक तिथि,अने पूर्णमासी एटले चोमासानी त्रण पुन्यम ते दिवसें प्रतिपूर्ण पौषध पाली शका नथी ( णोखलु ,वयंसंचाएमो के० ) निश्चें करी अमे समर्थ नथी,शुं करवाने समर्थ नथी ? ( अपच्छिमंजावविहरित्तए के० ) तोके अपश्चिम संलेषणा करी अणसण पण उच्चरी शकवाने समर्थ नथी ( वयंचणंसामाइयंदेसावगासियंपुरहा के० ) किंतु अमे सामायक तथा देशावकाशिक ए व्रत पालशुं, एटले जावजीव सुधी दिनप्रत्यें दिशाउनुं परिमाण करीशुं. तथा पुरहा एटले प्रभातें पच्चक्खाणने अवसरें (पाईणं के०) पूर्वदिशायें,पश्चिम दिशायें,दक्षिण दिशायें,उत्तर दिशायें,ए चारे दिशायें,अमुक अमुक भूमि सुधी जावुं, उपरांत भूमियें जवानु पच्चक्खाण करीशुं,एवुं व्रत पालीशुं, एतावता जेटलुं दिशिनुं परिमाण कीधुंछे ते दिशि थकी उपरांत

नी भूमिमांहे जेटला प्राणीउछे यावत् सर्व सत्वछे तेनें घात करवानो त्याग करीशुं. एटले ते उपरांत सर्व प्राण, भूत, जीव, अनें सत्वछे, अर्थात् जे कांइ त्रस, अनें स्थावर प्राणीयोछे तेनें (खेमंकरे के०) तेनी दया पालीशुं. (अहमंसितह्यारेणंजेतसापाणा के०) ते भूमिमांहे पण वली जे त्रस प्राणीयोछे तेनें आश्री ते श्रमणोपासकें मरणांत सुधी तेनो दंम निषेध्योछे ते त्रस जीव त्यांथी पोतानुं आयुष्य त्यागीने वली तेहिज भूमिने विषे त्रसप्राणमांहे आवी उपजे एटले जेनें विषे श्रमणोपासकनें पच्चरकाण होय. जे कारण माटें त्यां जेटला त्रस जीवछे तेनें विषे ते श्रावकनें मरणांत सुधी दंमनो निषेध छे ते कारणें ते श्रावकने रूडुं पच्चरकाण कहियें. ते माटें एतमारुं वचन रूडुं नथी. ए प्रथमभंग थयो. ए रीतें वली, बीजा आठ भंग आगल कहेछे. ॥ २६ ॥

---

॥दीपिका—पुनः श्रावकाणां दिग्व्रताश्रयेण प्रत्याख्यानविषयं दर्शयति । सुगमं नवरं ( देसावगासियंत्ति ) पूर्वगृहीतस्य दिग्व्रतस्य योजनशतादिकस्य यत्प्रतिदिनं संक्षिप्तयोजनगतादियानं करोति तद्देशावकाशिकमुच्यते । तथाहि । पुरछापायीणमिति । ( पुरछात्ति ) प्रातरेव प्रत्याख्यानावसरे दिगाश्रितमेवंभूतं प्रत्याख्यानं करोति यथा प्राचीनं पूर्वाभिमुखं पूर्वदिशि एतावन्मयाऽद्य गंतव्यं प्रतीचीनं पश्चिमायां दिशि दक्षिणस्यामुदीच्यामुत्तरस्यां एतावद्गंतव्यं एवं प्रत्यहं प्रत्याख्यानं करोति तेन च व्रतेन गृहीतपरिमाणे देशे ये आरेण त्रसाः येषु श्रावकस्यादानतः प्रथमव्रतादारभ्यामरणांतं दंमं त्यक्तं ते त्रसाः स्वायुष्कं परित्यज्य तत्रैव गृहीतमानदेशएव त्रसत्वेन प्रत्यायांति गृहीतपरिमाणदेशे त्रसायुष्कं परित्यज्य त्रसेष्वेवोत्पद्यंते तेषु श्राद्धस्य सुप्रत्याख्यानं स्यादन्यथापि त्रसत्वसद्भावादिति । शेषं सुगमम् ॥ २६ ॥

---

॥ टीका—पुनरपि श्रावकाणामेव दिग्व्रतसमाश्रयणतः प्रत्याख्यानस्य विषयं दर्शयितुमाह. । ( भगवंचणमित्यादि ) सुगमं यावत् वयंणंसामाइयं देशावकासियंति । देशोवकाशोदेशावकाशः तत्र भवं देशावकाशिकं । इदमुक्तं भवति । पूर्वगृहीतस्य दिग्व्रतस्य योजनशतादिकस्य यत्प्रतिदिनं संक्षिप्ततरं योजनगव्यूतिपत्तनगृहमर्यादादिकं परिमाणं विधत्ते तद्देशावकाशिकमित्युच्यते । तदेव दर्शयति । ( पुरछापायीणमित्यादि ) पुरछित्ति प्रातरेव प्रत्याख्यानावसरे दिगाश्रितमेवं भूतं प्रत्याख्यानं करोति तद्यथा प्राचीनं पूर्वाभिमुखं प्राच्यां दिश्येतावन्मयाऽद्य गंतव्यं तथा प्रतीचीनं प्रतीच्यामपरस्यां दिशि तथा दक्षिणाभिमुखं दक्षिणस्यामेवोदीच्यां दिश्येतावन्मयाऽद्य पंचयोजनमात्रं तदधिकमूनतरं वा गंतव्यमित्येवंभूतं सप्रतिदिनं प्रत्याख्यानं विधत्ते तेनच गृहीतदेशावकाशिकेनोपास-.

केन सर्वप्राणिन्योगृहीतपरिमाणात्परेण दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोनवति ततश्चासौ श्रावकः सर्वप्राणनूतजीवसत्वेषु क्षेमंकरोहमस्मिन्नित्येवमध्यवसायी नवति तत्र गृहीत परिमाणे देशे ये आरेण त्रसाः प्राणायेषु श्रमणोपासकस्य दानतइत्यादेरारन्यामरणांतो दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोनवति तेच त्रसाः प्राणाः स्वायुष्कं परित्यज्य तत्रैव गृहीतपरिमाणदेशएव योजनादिदेशान्यंतरएव त्रसाः प्राणास्तेषु प्रत्यायांति । इदमुक्तं नवति । गृहीतपरिमाणदेशात्रसायुष्कं परित्यज्य त्रसेष्वेवोत्पद्यंते ततश्च तेषु श्रमणोपासकस्य सुप्रत्याख्यानं नवत्युनयथापि त्रसत्वसद्भावात्। शेषं सुगमं यावत् णो णेयाउए नवतित्ति॥२६॥

तत्थ आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्थ आरेणं चेव जाव थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अठाए दंमे अणिक्खित्ते अणठाए दंमे णिक्खत्ते तेसु पच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स अठाए दंमे अणिक्खित्ते अणठाए दंमे णिक्खित्ते ते पाणावि वुच्चंति ते तसा ते चिरठिइया जाव अयंपि नेदे से ॥ ७७ ॥ तत्थ जे आरेणं तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्थ परेणं जे तसा थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए तेसु पच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं नवइ ते पाणावि जाव अयंपि नेदे से ॥ ७८ ॥ तत्थ जे आरेणं थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अठाए दंमे अणिक्खित्ते अणठाए णिक्खित्ते ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्थ आरेणं चेव जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते सुपच्चायंति तेसु समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं नवइ ते पाणावि जाव अयंपि नेदे से णो ॥७९॥ तत्थ जे ते आरेणं जे थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अठाए दंमे अणिक्खित्ते अणठाए णिक्खित्ते ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता ते तत्थ आरेणं चेव जे थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अठाए दंमे अणिक्खित्ते अणठा

ए णिक्खित्ते ते सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स अठाए अण ठाए ते पाणावि जाव अयंपि नेदे से णो ॥३०॥ तत्थ जे ते आरे णं थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अठाए दंमे अणिक्खि त्ते अणठाए णिक्खित्ते तन आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्थ परेणं जे तसथावरापाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चरकायं नवइ ते पाणावि जाव अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ ॥३१॥ तत्थ जे ते परेणं तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आया णसो आमरणंताए ते तन आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्थ आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आ मरणंताए ते सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चरकायं नव इ ते पाणावि जाव अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ॥ ३२ ॥ तत्थ जे ते परेणं तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आया णसो आमरणंताए ते तन आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्थ आरेणं जे थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अठाए दंमे अ णिक्खित्ते अणठाए णिक्खित्ते ते सुपच्चायंति जेहिं समणोवास गस्स अठाए अणिक्खित्ते अणठाए णिक्खित्ते जाव ते पाणावि जाव अयंपि नेदे से णो ॥३३॥ तत्थ जे ते परेणं तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते तत्थ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता ते तत्थ परेणं चेव जे तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते सुपच्चायंति ते समणोवासगस्स सुपच्चरकायं नवइ ते पाणावि जाव अयंपि नेदे से णो ॥ ३४॥

अर्थ—ते आठ नंग मांहे प्रथम नंग कहेले. जेटली नूमिकानी अविरति ले ते मांहे जे त्रस जीवोले ते त्रस, तेहिज नूमिका मांहे जे स्थावर जीवोले, ते मांहे आवी उप जे. ए प्रथम नंगले. ते सूत्रना अर्थथी कहेले. (तत्थआरेणं के०) त्यां जेटली नूमिनी·

अविरतिछे ते थकी उरे एटले आगल, (जेतसापाणा के०) जे त्रस प्राणीछे (जेहिंसम णोवासगस्स के०) जेनें विषे श्रमणोपासकें (आयाणसो के०) व्रत ग्रहण प्रारंभीनें (आ मरणंताए के० ) मरणांत सुधी ( दंमेणिखित्ते के० ) घात करवानो निषेध्योछे, (तउ आउंविप्पजहंति के०) पछी ते जीव त्यां थकी आयुष्य पूर्ण करे. ( विप्पजहंतित्ता के०) त्यांथी आयुष्य पूर्ण करीने (तछआरेणंचेव के०) फरी त्यां मर्यादा वाली भूमियेंज निश्चे (जावथावरापाणा के०)यावत् जे स्थावर प्राणीछे (जेहिंसमणोवासगस्स के०) जे स्थाव रप्राणीने विषे श्रमणोपासकने (अछाएदंमेअणिखित्ते के०) अर्थदंम एटले अर्थे हणवा नो निषेध नथी, अने (अणछाएदंमेणिखिते के०) अनर्थदंम एटले, अनर्थे विनाश करवा नो निषेधछे (तेसुपच्चायंति के०) तेवा स्थावर जीवोनें विषे ते पूर्वोक्त त्रस जीव आवी उप जे. (तेहिंसमणोवासगस्स के०) तेनेविषे श्रमणोपासकने (अछाएदंमेअणिखित्ते के०)अ र्थदंम छांमयो नथी(अणछाएदंमेणिखित्ते के०)अने अनर्थ दंम छांमयोछे (तेपाणाविवुच्चंति के०) तेनें प्राण पण कहियें, तेने त्रस पण कहियें,तेनें चिरस्थितिक पण कहियें,(जावअयं पिभेदे के०) यावत् ए भेदवालुं पण (से के०) ते तमारुं वचन, न्याय मार्गेनुं नथी. ए प्र थम भंग कह्यो ॥२७॥ हवे बीजो भंग कहेछे. जेटली भूमिकानी अविरतिछे ते भूमिका मांहे लाज त्रस जीव होय ते मरण पामिने फरी नियम करेली भूमिका मांहे जे त्रस अने स्थावर जीवोछे तेमांहे आवी उपजे. ए बीजो भंग ॥२८॥ हवे त्रीजो भंग कहेछे. जेटली भूमिकानी अविरतिछे ते मांहेला स्थावर जीव,ते मरण पामीनें फरी तेहिज प्रत्याख्यान करेली भूमि का मांहे जे त्रस जीवोछे तेमांहे आवी उपजे ॥२९॥ हवे चोथो भंग कहेछे. जेटली भू मिकानी अविरतिछे ते मांहेला स्थावर जीव, मरण पामीने फरी तेहिज भूमि मांहेला स्थावर मांहे आवी उपजे ॥३०॥ हवे पांचमो भंग कहेछे. जेटली भूमिकानी अविरति छे जे नियम करेली भूमिकाछे ते मांहेला स्थावर जीवछे ते मरण पामीने ते मांहे आ वीने स्थावर पणे उपजे ॥३१॥ हवे छठो भंग कहेछे. नियम करेली भूमिका मांहेला त्रस अनें स्थावर जीव,ते त्यांथी मरण पामीनें जेटली भूमिकानी अविरतिछे ते भूमि मांहेला त्रस जीवोने विषे आवी उपजे ॥ ३२ ॥ हवे सातमो भंग कहेछे- नियम करे ली भूमिका मांहेला त्रस, अनें स्थावर जीव, ते त्यांथी मरण पामीनें जेटली भूमिका नी अविरतिछे ते मांहेला स्थावर जीवोने विषे आवी उपजे ॥३३॥ हवे आठमो भंग कहेछे. नियम करेली भूमिका मांहेला त्रस अनें स्थावर जीव,ते त्यांथी मरण पामीनें फरी तेहिज नियम करेली भूमिका मांहे त्रस, अनें स्थावरने विषे आवी उपजे, एटले ए आठ भंग थया. अनें नवमो भंग प्रथम कह्यो, एम सघला मली नव भंग थया. हवे ए नवे प्रकारें करी श्रावकने पच्चरकाण देखाडेछे. ते केवी रीतें? तोके, ए भांगा मांहे ज्यां

त्रस जीव कह्याछे तेनो सर्वथा प्रकारें श्रावकने आमरणांतसुधी पच्चरकाणछे अनें ज्यां ज्यां स्थावर बोल्याछे त्यां त्यां श्रावकें अनर्थें पच्चरकाण कर्युंछे. तेथी तेमांहे ते जीव, उपना नणी, ए पण पच्चरकाण थाय. एटले नवे नंग मांहे श्रावकनें पच्चरकाण होय. ए रीतें जाणवुं. एवी रीतें घणा दृष्टांतें करी श्रावकना पच्चरकाणनो विषय देखाडयो.॥३४॥

---

॥ दीपिका–अत्र आरादेशवर्तिनस्त्रसाआरादेशवर्तिषु स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥ अत्र आरादेशवर्तिनस्त्रसागृहीतपरिमाणोद्देशाद्बहिर्ये त्रसाः स्थावराश्च तेषूत्पद्यंते ॥ २८ ॥ आरादेशवर्तिनोये स्थावरास्ते आरादेशवर्तिनोये त्रसास्तेषूत्पद्यंते ॥ २९ ॥ आरादेशवर्तिनोये स्थावरास्तेषु तद्देशवर्तिष्वेव स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ ३० ॥ आरादेशवर्तिनोये स्थावरास्ते परदेशवर्तिषु त्रसस्थावरेषूत्पद्यंते ॥३१॥ परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आरादेशवर्तिषु त्रसेषूत्पद्यंते ॥ ३२ ॥ परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आरादेशवर्तिषु स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ ३३ ॥ परदेशवर्तिनोये त्रसास्थावरास्ते परदेशवर्तिष्वेव त्रसस्थावरेषूत्पद्यंते । एवं नवापि सूत्राणि नणितानि तत्र, यत्र यत्र त्रसास्तत्रादानशः प्रथमव्रतग्रहणादारभ्य श्रावकेणामरणांतोदंमः परित्यक्तइति योज्यं । यत्र तु स्थावरास्तत्रार्थाय दंमोन निक्षिप्तोन त्यक्तः अनर्थाय च दंमः परित्यक्तइति । शेषं सुगमम् ॥ ३४ ॥

---

॥ टीका–एवमन्यान्यप्यष्ट सूत्राणि द्रष्टव्यानि सर्वाण्यपि नवरं तत्र प्रथमे सूत्रे तदेवं यद्व्याख्यातं तच्चैवं सूत्रं तद्यथा गृहीतपरिमाणे देशे ये त्रसास्ते गृहीतपरिमाणदेशास्तेष्वेव । तथा द्वितीयं सूत्रं त्वारादेशवर्तिनस्त्रसाः आरादेशवर्तिषु स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥ तृतीये त्वारादेशवर्तिनस्त्रसागृहीतपरिमाणादेशाद्बहिर्ये त्रसाः स्थावरास्तेषूत्पद्यंते॥२८॥ तथा चतुर्थसूत्रे त्वारादेशवर्तिनोये स्थावरास्ते तद्देशवर्तिष्वेव त्रसेषूत्पद्यंते ॥ २९ ॥ पंचमं सूत्रं तु आरादेशवर्तिनोये स्थावरास्तेषु तद्देशवर्तिष्वेव स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ ३० ॥ षष्ठं सूत्रं तु दूरदेशवर्तिनो ये स्थावरास्ते गृहीतपरिमाणास्तेषुत्रसस्थावरेषूत्पद्यंते ॥३१॥ सप्तमसूत्रंत्वियदं परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आरादेशवर्तिषु त्रसेषूत्पद्यंते ॥३२ ॥ अष्टमसूत्रं तु परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आरादेशवर्तिषु स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ ३३ ॥ नवमसूत्रं तु परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते परदेशवर्तिष्वेव त्रसस्थावरेषूत्पद्यंते । एवमनया प्रक्रियया नवापि सूत्राणि नणनीयानि । तत्र यत्र यत्र त्रसास्तत्रादानशआरभ्य श्रमणोपासकेनामरणांतोदंमस्त्यक्तइत्येवं योजनीयं । तत्र तु स्थावरास्तत्रार्थाय दंमो न निक्षिप्तोन परित्यक्तोऽनर्थायच दंमः परित्यक्तइति । शेषाक्षरघटना तु स्वबुद्ध्या विधेयेति ॥ ३४ ॥

भगवंचणं उदाहु ण एतं भूयं ण एतं भव्वं ण एतं भविस्संति जण्णं तसा पाणा वोच्छिज्जिहिंति थावरा पाणा भविस्संति थावरा पाणावि वोच्छिज्जिहिंति तसा पाणा भविस्संति अवोच्छिन्नेहिं तसथावरेहिं पाणेहिं जण्णं तुप्नेवा अन्नोवा एवं वदह णत्थिणं से केइ परियाए जाव णो णेयाउए भवइ ॥ ३५ ॥

अर्थ–हवे वली उदक पेढालपुत्र प्रत्यें, भगवंत श्री गौतमस्वामी कहेछे के,अहो उदक! ( णएतंभूयं के० ) भूतकालने विषे ए वात थइ नथी, ( णएतंभव्वं के० ) वर्त्तमानकालें ए वात थाय नही, ( णएतंभविस्संति के० ) आगमिक कालें ए वात थशे नहीं ( जण्णंतसापाणावोच्छिज्जिहिंति के० ) जे त्रसप्राणी सर्वथापि विछेद थशे ( थावरापाणाभविस्संति के० ) अने जगत् मांहे स्थावर प्राणीज हशे, अथवा स्थावरप्राणी सर्वथा विछेद पामशे, अनें जगत् मांहे त्रस प्राणीज रहेशे. यद्यपि तेनें परस्पर मांहोमांहे गतिछे जे स्थावर फीटी त्रस थाय, अनें त्रस फीटी, स्थावर थाय, परंतु समस्तपणे एकनो बीजा मांहे सद्भाव न थाय. तथा एवीपण संभावना नथी जे, एक पच्चरकाणना करनार टाली अन्य नारकी, बेइंद्रियादिक, तिर्यंच, मनुष्य, देवता,ए समस्तनो अभाव होय? जो एमज होय तो त्रसनुं पच्चरकाण निर्विषय थाय.परंतु ए वात संभवे नहीं! (अवोच्छिन्नेहिंतसथावरेहिंपाणेहिं के०) एम त्रस अनें स्थावर प्राणीनो अविछेद होय. (जण्णंतुप्नेवाअन्नोवाएवंवदह के०) माटें जे तमे अथवा बीजो कोइ, एम कहेके (णत्थिणंसेकेइपरियाए के० ) ते कोइ पर्याय नथी के जे पर्यायें करी श्रावकनें प्राणातिपातनुं पच्चरकाण थाय. ते वचन, (जावणोणेयाउएभवइ के०) यावत् न्यायोक्त नथी ॥ ३५ ॥

---

॥ दीपिका–तदेवं बहुदृष्टांतैः श्रावकप्रत्याख्यानस्य सविषयतां प्रसाध्याधुना परप्रश्नस्यात्यंतासंबद्धतां दर्शयन्नाह। गौतमस्वामी उदकं प्राह।नैतद्भूतं नैतद्भव्यं नैतद्भविष्यं यत्त्रसाः सर्वथा उच्छेत्स्यंति स्थावराएव भविष्यंति तथा स्थावराउछेत्स्यंति त्रसाएव भविष्यंति एतद्वयं न संभवति नहि कदाप्येवं संभवोस्ति यत्प्रत्याख्यानिनमेकं विहायान्येषां नारकाणां द्वींद्रियादितिरश्चां मनुष्याणां देवानां च सर्वथाप्यभावः । एवंहि च प्रत्याख्यानं निर्विषयं स्याद्यदि प्रत्याख्यानिनोजीवतएव नारकाद्यास्त्रसाः समुछिद्यंते नचायं प्रकारः संभवी स्थावराणां वानंतत्वाऽसंख्येयेषु त्रसेषूत्पादसंभवः एवं सति य द्वदत यूयमन्योवा वदति तद्यथा नास्त्यसौ पर्यायोयच्छ्रावकस्यैकत्र सविषयोदंमत्यागइति तदेवं त्वदीय प्रेर्यं सर्वमशोभनमिति ॥ ३५ ॥

॥ टीका–तदेवं बहुनिर्दृष्टांतैः स्वस्वविषयतां श्रावकप्रत्याख्यानस्य प्रसाध्याधुनात्यंताबंधतां चोद्यस्य सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । ( नगवंचणंउदाहुरित्यादि ) नगवान् गौतमस्वाम्युदकं प्रत्येतदाह । तद्यथा नैतद्भूतमनादिके काले प्रागतिक्रांते नाप्येतदप्यऽनंते काले नाव्यं नाप्येतद्वर्तमानकाले नवति । ये त्रसाः प्राणाः सर्वथा निर्लेपतयां संजात्सुछेदतोछेत्स्यंति स्थावरानविष्यंतीति तथा स्थावराश्च प्राणिनः कालत्रयेपि नैव समुछेत्स्यंति त्रसानविष्यंति यद्यपिच तेषां परस्परसंक्रमेण गमनमस्ति तथापि न सामस्त्येनान्यतरेषामितरत्र सद्भावस्तथाहि न ह्येवंनूतः संनवोस्ति यदुत प्रत्याख्यानिनमेकं विहाय परेषां नारकाणां द्वींद्रियादीनां तिरश्चां मनुष्यदेवानां च सर्वदाप्यन्नावः एवंच त्रसविषयं प्रत्याख्यानं निर्विषयं नवति यदि तस्य प्रत्याख्यानिनोजीवतएव सर्वेपि नारकादयस्त्रसा समुछिद्यंते न चास्य प्रकारस्य संनवोस्त्युक्तन्यायेनेति स्थावराणां चानंतानामनंतत्वादेव नासंख्येयेषु त्रसेपूत्पादइति सुप्रतीतमिदं तदेव नव्यवछिन्नैस्त्रसैः स्थावरैश्च प्राणिनिर्यद्वदत यूयमन्योवा कश्चिद्वदति तद्यथा नास्त्यसौ पर्यायोयत्र श्रमणोपासकस्यैकत्रसविषयोपि दंमपरित्यागइति तदेतदुक्तनीत्या सर्वमशोननमिति ॥ ३५ ॥

नगवंचणं उदाहु आउसंतो उदगा जे खलु समणं वा माहणं वा परिनासेइ मिति मन्नंति आगमित्ताणाणं आगमित्तादंसणं आगमित्ताचरित्तं पावाणं कम्माणं अकरणयाए से खलु परलोगपलिमंथत्ताए चिठइ जे खलु समणं वा माहणं वा णो परिनासइ मिति मन्नंति आगमित्ताणाणं आगमित्तादंसणं आगमित्ताचरित्तं पावाणं कम्माणं अकरणयाए से खलु परलोगविसुद्धीए चिठइ तएणं से उदय पेढालपुत्ते नगवं गोयमं अणाढायमाणा जामेव दिसिं पाउनूते तामेव दिसिं पहारेत्थगमणाए ॥ ३६ ॥

अर्थ–वली गौतम स्वामी कहेछे, के, अहो आयुष्यमन् उदक ! खलु इति निश्चे जे पुरुष यथोक्त क्रियानुष्ठाननो करनार एवो श्रमण होय, अथवा माहण एटले ब्रह्मचर्यनो पालनार एवो ब्राह्मण होय तेनें (परिनासेइ के०) निंदे, (मितिमन्नंति के०) तेने विषे मैत्री नाव मानतो उतो ( आगमित्ताणाणं के० ) तथा सम्यक् ज्ञान, पोतानें विषे आणीनें, ( आगमित्तादंसणं के० ) सम्यक् दर्शन पोताने विषे आणीने, ( आगमित्ताचरित्तं के० ) सम्यक् चारित्र पोताने विषे आणीने, एतावता सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, अने सम्यक् चारित्रनो पालनार पण होय. ( पावाणंकम्माणंअकरणाए के० ) पाप

कर्मनें अण करवा नणी उठ्यो. एटले सावधान थयो. ( सेखलुपरलोगंपलिमंथत्ताए चिठ्इ के० ) ते पण निश्चें परलोकना विघात नणी तिष्टे, एटले रहे, एटले शुं कह्युं? तोके, चारित्रिउ पुरुष घणोज गुणवान् होय परंतु यथोक्त श्रमण ब्राह्मणनी निंदा करे, ते परलोकनो, तथा संयमनो विराधक कहेवाय. हवे जे गुणवंतना गुण ग्रहण करे, ते नां फल देखाडेछे. जे महासत्ववंत पुरुष रत्नाकरनी पेरें गंनीर, श्रमण ब्राह्मणने निंदे नही, ते सहित थको तेनी सायें मैत्री नाव पोषण करे, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, अने सम्यक् चारित्रनें यथोक्त पालतो उतो, पापकर्मने अण करवा नणी उठ्यो एटले सावधान थयो. ते निश्चें थकी परलोकनो तथा संयमनो आराधक थाय. ए कारण माटें श्रमण ब्रह्मणनी निंदा न करे! ते पुरुष रूडो जाणवो. एवुं जाणीने ए निंदा परिहरवी. अने सूधो संयम पालवो. ( तएणंसे के० ) तेवार पठी ते उदक पेढाल पुत्र, नगवन् *श्री गौतम समीपें एवा अर्थो सांनलीनें, श्री गौतम स्वामीनें आदर दीधा विना पूछ्या* विना जे दिशा थकी आव्यो हतो, तेहिज दिशा तरफ फरी गमन चिंतवन करतो हवो॥३६॥

---

॥ दीपिका—अथोपसंहारमाह । गौतमस्वाम्याह । आयुष्मन्नुदक! यः खलु श्रमणं यथोक्तक्रियाकारिणं माहनं वा सद्ब्रह्मचर्योपेतं परिनापते मैत्री मन्यमानोपि निंदति सम्यक् ज्ञानदर्शनं चारित्रं च आगम्य प्राप्य पापकर्मणामकरणायोद्यितः खलु तुबप्रकृतिः पंमितंमन्यः परलोकस्य सजतेः पलिमंथाय विघाताय तिष्ठति यः पुनर्महासत्वः सागरवद्गंनीरः श्रमणादीन्न परिनापते न निंदति तेषुच परमां मैत्रीं मन्यते सम्यक् ज्ञानादीन्यनुगम्य पापकर्मणामकरणायोद्यितः सखलु परलोकविशुद्ध्या तिष्ठति अनेन वाक्येन परनिंदावर्जनायथावस्थितार्थकथनेन श्रीगौतमः स्वौद्धत्यं परिहरतिस्म एवं श्रीगौतमेन यथास्थितार्थज्ञापितोप्युदकोयदा गौतममनाद्रियमाणोयस्याएव दिशः प्राडर्नूतस्तामेव दिशं गमनाय प्रधारितवान् चिंतितवान् ॥ ३६ ॥

---

॥ टीका—सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । (नगवंचणंउदाहुरित्यादि) गौतमस्वाम्याह । आयुष्मन्नुदक! यः खलु श्रमणं वा यथोक्तकारिणं माहनं वा सद्ब्रह्मचर्योपेतं परिनापते निंदति मैत्रीं मन्यमानोपि तथा सम्यक्ज्ञानमागम्य तथा दर्शनं चारित्रं च पापानां कर्मणामकरणाय समुद्यितः स खलु लघुप्रकृतिः पंमितंमन्यः परलोकस्य सुगतिलक्षणस्य तत्कारणस्य वा सत्संयमस्य पलिमंथाय तद्विलोडनाय तद्विघाताय तिष्ठति यस्तु पुनर्महासत्वोरत्नाकरवद्गंनीरोन श्रमणादीन् परिनापते तेषु च परमां मैत्रीं मन्यते सम्यग्दर्शनचारित्राण्यनुगम्य तथा पापानां कर्मणामकरणायोद्यितःस खलु परलोकविशुद्ध्यावतिष्ठति अनेन च परपरिनापावर्जनेन यथावस्थितार्थस्वरूपदर्शनतोगौतमस्वामिना स्वौद्धत्यं

परिहृतं नवति तदेवं यथावस्थितमर्थं गौतमस्वामिनावगतोप्युदकः पेढालपुत्रोयदा नगवं तं गौतममनाद्रियमाणोयस्याएव दिशः प्राडुर्नूतस्तामेव दिशं गमनाय संप्रधारितवान्॥३६

नगवंचणं उदाहु आउसंतो उदगा जे खलु तहानूतस्स समणस्सवा माहणस्सवा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म अप्पणो चेव सुहुम्माए पडिलेहीए अणुत्तरं जोगखेमपयं लंनिएसमाणे सोवित्तावतं आढाइ परिजाणेंति वंदंति नमंसंति सक्कारेइ समाणेइ जाव कल्याणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासंति ॥ ३७ ॥

अर्थ–नगवंत श्रीगौतम स्वामी बोल्या के, अहो आयुष्मन् उदक ! खलु इति निश्चे जे कोइ तथानूत श्रमण ब्राह्मणने समीपें एक पण आर्य धर्म संबंधिक रूडुं वचन सांनलीने सम्यक् प्रकारें संयमने विषे धारीनें (अप्पणोचेवसुहुम्माए के०) पोता थकी सूक्ष्म कुशाग्र वत् बुद्धियें करी (पडिलेहीए के० ) आलोचीनें विचारीनें जाणे के, आ रूडा वचनें करी हुं ( अणुत्तरं के० ) प्रधान, (जोगखेमपयंलंनिएसमाणे के०) योगक्षेमपद एटले रूडुं मुक्ति साधवा योग्य पद, तेने विषे पहोंचो एतावता ए थकी में रूडुं एक पद लाध्युं. ( सोवित्तावतं के० ) ते पुरुष, ते उपदेशना देनार पुरुषनें ( आढाइ के० ) आदर करे, तथा ( परिजाणेंति के० ) ए पुज्यछे एवुं करी जाणे, तथा तेने वांदे, ते आगल अंजली करे ( नमंसंति के० ) मस्तक नमावे, ( सक्कारेइ के० ) सत्कार करे, वस्त्रादिकें करी प्रतिलान्ने. ( समाणेइ के० ) अन्युत्थानादिक करे, तथा यावत् कल्याणमंगल देवता चैत्य एनी उपमा मानि स्तुति करे, तथा, ( पज्जुवासंति के० ) पर्युपासना करे, यद्यपि ते उपदेशनो दातार कांइ वंदनादिक वांछे नही,तथापि ते सांनलनारें ते परमार्थ उपकारी नणी यथाशक्तियें विनयादिक समाचरवो.॥३७॥

---

॥ दीपिका–तदा । नगवान् गौतमश्चाह । हे आयुष्मन्नुदक ! यः खलु तथानूतस्य श्रमणस्य ब्राह्मणस्य वांतिके समीपे एकमप्यर्थं धार्मिकं सुवचनं श्रुत्वानिशम्यावधार्यात्मनएव तदनुत्तरं योगक्षेमपदमित्यवगम्य सूक्ष्मया बुध्या प्रत्युपेक्ष्य विचार्यहमनेन योगक्षेमपदमनुत्तरं लंनितः प्रापितः सन् सोपि तावल्लौकिकोपि तमुपदेशदातारमाद्रियते पूज्योयमिति जानाति कल्याणं मंगलं देवतां चैत्यमिव पर्युपास्ते प्राकृतजनोपि चेद्धितोपदेशदातारं पूजयति तदा किं पुनर्वाच्यमनुत्तरधर्मोपदेशकपूजायां

॥ टीका—तं चैवमनिप्रायमुदकं दृष्ट्वा नगवान्गौतमस्वाम्याह । तद्यथा । आयुष्मन्नुदक! यः खलु तथानूतस्य श्रमणस्य ब्राह्मणस्य वांतिके समीपे एकमपि योगक्षेमाय पद्यते गम्यते येनार्थस्तत्पदं योगक्षेमपदं किंनूतमार्यमार्यानुष्ठानहेतुत्वादार्यं तथा धार्मिकं शोन नवचनं सुवचनं सज्ञतिहेतुत्वात्तदेवंनूतं पदं श्रुत्वा निशम्यावगम्याचात्मनएव तदनुत्तरं योग क्षेमपदमित्येवमवगम्य सूक्ष्मया कुशाग्रीयया बुद्ध्या प्रत्यपेक्ष्यपर्यालोच्य तद्यथाहमनेनैवं नूतमर्थपदं लंनितः प्रापितः सन्नसावपि तावल्लौकिकस्तमुपदेशदातारमाद्रियते पूज्योयमित्येवं जानाति तथा कल्याणं मंगलं देवतामिव स्तौति पर्युपास्ते च यदप्यसौ पूजनीयः किमपि नेछति तथापि तेन तस्य परमार्थोपकारिणोयथाशक्ति विधेयम् ॥ ३७ ॥

तएणं से उदए पेढालपुत्ते नगवं गोयमं एवं वयासी एतेसिणं नंते पदाणं पुविं अन्नाणयाए असवणयाए अबोहिए अणन्निगमेणं अदिघाणं असुयाणं अमुयाणं अविन्नायाणं अबोगडाणं अणिगूढाणं अविछिन्नाणं अणिसिघाणं अणिवूढाणं अणुवहारियाणं एयमठं णो सद्दहियं णो पत्तियं णो रोइयं एतेसिणं नंते पदाणं एण्हिं जाणयाए सवणत्ताए बोहए जाव उवहारणयाए एयमठं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि एवमेव से जहेयं तुप्ने वदह ॥ ३८ ॥

अर्थ—तेवार पठी ते उदकपेढालपुत्र, नगवंत श्रीगौतम स्वामी प्रत्यें एम बोल्या के, ( एतेसिणंनंतेपदाणं के० ) हेनगवन् ! तमे एटलां पद कह्यां, ते में (पुविंअन्नाणयाए के० ) पूर्वें न जाण्यां ( असवणयाए के० ) पूर्वें न सांनल्यां, ( अबोहिए के० ) जिनधर्मनी अप्राप्तिने लीधे एनी बोधि उपनी नहीं. ( अणन्निगमेणं के० ) विस्तारें बोधिना रहितपणा थकी एनो अनिगम न थयो, ( अदिघाणं के० ) पूर्वें साक्षात् पोताथी दीठां नहीं एटले पाम्यां नहीं. ते नणी अदृष्टः (असुयाणं के० ) कोइनी पासेंथी सांनल्यां नहीं, ( अमुयाणं के० ) स्मरण कस्यां नहीं, ( अविन्नायाणं के० ) अविज्ञात एटले विशिष्ट बोधरहित ( अबोगडाणं के० ) विशेषथी गुरुयें कह्यां नहीं. ( अणिगूढाणं के० ) अप्रगट एटले प्रगट न थयां (अविछिन्नाणं के० ) विपक्षादिक संदेह ठेद्या नहीं. ( अणिसिघाणं के० ) अनिश्चित कोइयें संनलाव्यां नहीं. ( अणिवूढाणं के० ) अण सांनल्यां माटें निर्वाह्यां नहीं ( अणुवहारियाणं के० ) अणविरल पणे हृदयने विषे अवधास्यां नहीं ( एयमठं के० ( ए प्रकारें पदोनो अर्थ, ( णोसद्दहियं के० ) सद्दह्यो नही, एटले श्रद्धाकरी नहीं, (णोपत्तियं के०) प्रतित करी नहीं, (णो

रोयियं के०) प्रत्याख्यानमां रुचिपण न करी ते अर्थ रुच्यो नहीं (एतेसिणंनंतेपदाणं के०) एटलां पद, हे नगवन्! (एण्हिं के०) हमणा (जाणयाए के०) जाण्यां, सांजल्यां, बोध थयो, यावत् हृदयने विषे अवधार्यां. ते कारण मार्टे ए पदनो अर्थ, सद्दहुं, प्रतितमां आणुं, तथा रुचेछे. किं बहुना (सेजहेयंतुप्नेवदह के०) ते जेम तमे कहोगो (एवमेव के०) एमजछे ॥ ३७ ॥

---

॥ दीपिका–उदकोगौतमस्वामिनमाह । यथा एतेषां पदानां पूर्वमज्ञाततयाऽश्रवणतयाऽनाकर्णनेन अबोध्याश्रवणेप्यनवबोधात् अनभिगमेन बोधेपि सम्यगप्रतिपत्याऽद्दष्टानामविज्ञातानामश्रुतानामविसृष्टानां गुरुणाऽदत्तानामनिर्गूढानां स्थिरतया स्थापितानामनुपधारितानामनवधारितानां चानिर्णीतानां न श्रद्धानं कृतवान् न प्रत्याख्यानरुचिं च कृतवान् । इदानीं तु युष्मदंतिके श्रुत्वा ज्ञात्वावद्दष्टादिविशिष्टानां पदानामेनमर्थं श्रद्दधेहं प्रत्ययरुचिं च करोमि एवमेतद्यथा यूयं वदथ ॥ ३७ ॥

---

॥ टीका–तदेवं गौतमस्वामिनाभिहितउदकइदमाह । एतद्यथैतेषां पदानां पूर्वमज्ञातया श्रवणतया बोध्याचेत्यादिना विशेषणकदंबकेन श्रद्धानं कृतवान् सांप्रतं तु युष्मदंतिके विज्ञायैनमर्थं श्रद्दधेहं ॥ ३७ ॥

तएणं नगवं गोयम उदयं पेढालपुत्ते एवं वयासी सद्दाहिणं अज्जो पत्तियाहिणं अज्जो रोहिणं अज्जो एवमेयं जहाणं अम्हे वयामो तएणं से उदए पेढालपुत्ते नगवं गोयमं एवं वयासी इच्छामि णं नंते तुप्नं अंतिए चाउज्जामो उ धम्माउ पंचमहव्वयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ॥३९॥

॥ अर्थ–तेवारें नगवंत श्रीगौतमस्वामी उदयपेढाल पुत्र प्रत्यें एम बोल्या के, अहो आर्य उदक! ए अर्थनी सद्दहणा कर. केम के,श्री वीतरागनो नांखेलो अर्थ अन्यथा नथी, अहो आर्य! तथा (पत्तियाहिणं के०)ए वचननी प्रतीत आण. तथा ए वचननी रुचि कर. ए अर्थ एमज जेम हुं कहुं बुं ते नगवंतनो नांखेलोछे मार्टे ते तहत्ति करी जाणजे. तेवार पठी ते उदक पेढालपुत्र, नगवंत श्री गौतम स्वामी प्रत्यें बोल्या के (इच्छामिणंनंते के०) इछुं बुं हे नगवन्! हुं तमारा (अंतिए के०) पासेंथी चातुर्याम धर्म थकी पंच महाव्रत रूप धर्म, तथा पडिक्कमणा सहित धर्मने. (उवसंपज्जित्ताणं के०) अंगीकार करीने (विहरित्तए के०) विचरवाने वांछुं बुं. ॥ ३९ ॥

॥ दीपिका–ततः श्रीगौतम उदकमेवमवादीद्यथा । अस्मिन्नर्थे श्रद्धानं कुरु हे आर्य ! प्रत्ययं रुचिं च कुरु । एवमेतद्यथा वयं वदामः तथा त्वं प्रत्येहि । ततः सउदकः श्रीगौतममेवमवादीत् । इच्छाम्यहं भदंते युष्मत्समीपे चातुर्मासिकाच्चतुर्व्रतरूपाद्धर्मात्पंचयामिकं पंच महाव्रतरूपं सप्रतिक्रमणं धर्ममुपसंपद्य स्वीकृत्य विहर्तुमिति ॥ ३९ ॥

---

॥ टीका–एवमवगम्य गौतमस्वाम्युदकमेवाह । यथास्मिन्नर्थे श्रद्धानं कुरु नान्यथा सर्वज्ञोक्तं भवतीति मत्वा पुनरप्युदकएवमाह । इष्टमेवैतन्मे किलमुष्माच्चातुर्यामिकाद्धर्मात्पंचयामिकं धर्मं संप्रति सप्रतिक्रमणमुपसंपद्य विहर्तुमिच्छामि ॥ ३९ ॥

तएणं से भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं गहाय जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता तएणं से उदए पेढालपुत्ते समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करित्ता वंदइ नमंसति नमंसतित्ता एवं वयासी इच्छामि णं भंते तुझं अंतिये चाउज्जामाउ धम्माउ पंच महव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए तएणं समणे भगवं महावीरे उदयं एवं वयासी अहासुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंधं करेहि तएणं से उदए पेढालपुत्ते समणस्स भगवउ महावीरस्स अंतिए चाउज्जामाउ धम्माउ पंच महव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ त्तिबेमि॥इति नालंदइज्जं सत्तमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥ इति सूयगडांगबीयसुयखंधोसम्मत्तो ॥४०॥ ग्रंथाग्रं ॥ ९१०० ॥

अर्थ–ते वार पछी एवुं वचन सांभळीनें भगवंत श्री गौतमस्वामी, ते उदक पेढाल पुत्र नें संघातें लइने ज्यां श्रमण भगवंत श्रीमहावीर देवछे, त्यां आव्या. तेवार पछी ते उदकपेढाल पुत्र, श्रमण भगवंत श्रीमहावीर देवने (तिक्खुत्तो के०) त्रणवार प्रदक्षिणा पूर्वक वांदी नमस्कार करे, त्रण वार प्रदक्षिणा पूर्वक नमस्कार करीनें एवी रीतें बोल्या के, (इच्छामिणंभंते के०) हे भगवन् ! तमारा समीपें हुं इछुं छुं. शुं इछुं छुं? तोके चातुर्यामिक धर्म थकी रहित थइनें पंच महाव्रत,तथा सप्पडिक्कमण धर्म,अंगीकार करी विचरवाने वांछुं छुं. तेवारें श्रमण भगवान् श्रीमहावीर देव बोल्या के, (अहासुहंदेवाणुप्पिया के०) हे देवानु प्रिय! जेम तमारे सुख उपजे,तेम करो! (मापडिबंधंकरेह के०) धर्मने विषे विलंब म करो. तेवार पछी ते उदक पेढालपुत्र एवुं सांभळीने, श्रमण भगवंत श्रीमहावीर देवनें

समीपें चातुर्यामिक धर्मथकी पंचमहाव्रत सप्पडिक्कमण धर्म आदरीने विचरेछे, सर्वज्ञ प्रणितधर्म पालेछे. ( त्तिबेमि के०) श्री सुधर्मस्वामी पोताना शिष्यो प्रत्यें कहेछे. के, में जेवुं नगवंत श्री महावीरदेव पासेंथी सांनल्युंछे, तेवुं तमने कहुं छुं. इत्यादिक अर्थ, पूर्ववत् जाणवो॥४०॥एरीतें "णालंदइज्जं" नामा सातमा अध्ययननो अल्पार्थबालावबोध समाप्त थयो॥ ए बीजा श्री सूयगडांगना बीजा श्रुतस्कंधनो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो.॥ सम्मत्तं सूयगडांगं आदितः ॥ सर्वाणि अध्ययनानि त्रयोविंशतिकानि संपूर्णानि ॥ श्री साधुरत्नप्येण पाशचंद्रेण वृत्तितः कृतबालावबोधार्थे द्वितीयांगस्य वार्तिकं समाप्तम् ॥७॥

॥ दीपिका—ततोजगवान् गौतमस्तं प्राक् प्रतिपन्नश्रीपार्श्वशासनव्रतमुदकं गृहीत्वा यत्र श्रीवीरोजगवांस्तत्रैवोपागच्छति । ततः सउदकः श्रमणं नगवंतं त्रिःकृत्वः आदक्षिणं प्रदक्षिणं करोति तिस्रः प्रदक्षिणाः करोतीति कृत्वा च वंदते नमस्यति वंदित्वा नमस्यित्वा च एवमवादीत् इच्छामि नवदंते युष्मदंतिके चातुर्यामात्पंच महाव्रतिकं धर्ममुपसंपद्य विहर्तुमिति । ततः श्रीवीरस्तमुदकमेवमवादीद्यथा सुखं देवानुप्रिय! मा प्रतिबंधं धर्मांतरायं कार्षीरिति । ततः सउदकः श्रीवीरांतिके पंच महाव्रतिकग्रहणायोद्यतः नगवतापि तस्य सप्रतिक्रमणः पंचमहाव्रतिकोधर्मोनुज्ञातः सच तं धर्ममुपसंपद्य स्वीकृत्य विहरतीति । इतिः परिसमाप्त्यर्थे ।ब्रवीमीति पूर्ववत्। सुधर्मस्वामी स्वशिष्यानिदमाह । तद्यथा सोहं ब्रवीमि येन मया नगवदंतिके श्रुतमिति ॥४०॥ नालंदीयाख्यमिदं सप्तममध्ययनं समाप्तं । तत्समाप्तौ च समाप्तोयं द्वितीयः श्रुतस्कंधस्तत्संपूर्तौ च पूर्णेयं श्रीसूत्रकृतांग दीपिका ॥ ग्रंथसंख्या ॥ सुमारें ॥ ( ७००० )

## ॥ अथ प्रशस्तिः ॥ आर्या वृत्तम् ॥

निस्तंद्रचंद्रचारुणि,चंद्रकुले चरणचातुरीनाजः।विख्याततपेत्याख्या,जगति जगच्चंद्रसूरयोऽनूवन् ॥ १ ॥ तेषां दोषांशमुषां, संताने सुकृतसंचयविताने ॥ श्रीसोमसुंदरगुरू,त्तमाक्षमासंगमाञ्जवन् ॥२॥ तत्पट्टस्फुटकमला,नाले कालेयतिलकसंकाशः॥श्रीमुनिसुंदरगुरवः,कामितसंपत्तिसुरतरवः ॥३॥ बाल्येपि नारतीनि,रुदपादि वादिवर्गे यैः ॥ श्रीजयचंद्रमुनींद्रा,स्ते परगजेषु सिंहसदृशाः॥४॥ तत्पदविशदस्थाने,स्थाने शृंगारसारतां नेजुः॥श्रीरत्नशेखराइति, जगति यतः ख्यातिमापुस्ते॥५॥तेषामनंकपट्टे,गुणसंघट्टे प्रनावकपपट्टे॥प्राप्ताधिकनिष्ठा श्री, श्रीलक्ष्मीसागराःशिष्टाः॥६॥ नक्तिंतकलिकालुप्या,शिष्याजापाययाथेनामानः ॥ श्रीसुमतिसाधुगुरवो, लक्ष्मीसुरन्नीकारसायशोगुरवः ॥७॥ तत्पट्टे प्रवादेप्सित, पूरणचिंतामणीयमानानाम् ॥ लब्धाधिकमानानां, सुहेमविमलानिधानानाम् ॥८॥ सुरीपगच्छनायक, देवीप्राप्तप्रनाप्रतिष्ठानाम्.॥ शिष्याणुर्गुणशासन,जननीतिथिसंमिते (१५८३) वर्षे ॥९॥ विबुधना

मकशिष्यः स्वस्य स्मृतये,परोपकृतये च ॥सूत्रकृतांगस्यैतां हर्षकुलोदीपिकामलिखत् ॥१०॥ काश्चित्प्रमाणयुक्ती,रप्रथयन्नात्र सुगमनाहेतोः ॥ ततएव नैव विहितो,लक्षणसंधिस्तथा क्वापि ॥११॥ सूत्रासंगतमत्रा,वादि कथंचिन्मया यदज्ञतया॥तद्बोधयंतु सुधियः,कृपया मात्सर्यमुत्सार्य॥१२॥ग्रंथमितिरनुमिताऽत्र च,सप्तसहस्राणि किंचिदूनानि॥ विबुधजनवाच्यमानो, ग्रंथोयं जगति जयतु चिरम् ॥१३॥ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायाः प्रशस्तिः संपूर्णा ॥

---

॥ टीका–ततोसौ गौतमस्वामी तं गृहीत्वा तीर्थकरांतिकं जगाम । तदकश्च भगवंतं वंदित्वा पंचयामिकधर्मग्रहणायोद्यतोभगवतापि तस्य सप्रतिक्रमणः पंचयामोधर्मोनुज्ञातः सच तं तथाभूतं धर्ममुपसंपद्य विहरतीति । इति परिसमाप्त्यर्थे ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी स्वशिष्यमिदमाह । तद्यथा सोहं ब्रवीमि येन मया भगवदंतिके श्रुतमिति गतोनुगमः । सांप्रतं नयास्ते चामी । नैगम,२संग्रह,३व्यवहार,४ ऋजुसूत्र, ५ शब्द, समभिरूढै, ६ वंभूता, ७रव्याः सप्तैव । तेषां च मध्ये नैगमाद्याश्चत्वारोप्यर्थनयाः । अर्थमेव प्राधान्येन शब्दोपसर्जनमिच्छति शब्दाद्यास्तु त्रयः शब्दनयाः शब्दप्राधान्येनार्थमिच्छंति । तत्र नैगमस्येदं स्वरूपं तद्यथा सामान्यविशेषात्मकस्य वस्तुनोनैकेन प्रकारेणावगमः परिच्छेदोनिगमस्तत्र भवोनैगमोमहासामान्यावांतरालसामान्यविशेषाणां परिच्छेदकस्तत्र महासामान्यं सर्वपदार्थानुयायिनी सत्तावांतरालसामान्यं द्रव्यत्वजीवत्वाजीवत्वादिकं विशेषाः परमाण्वादयस्तद्गतावा शुक्लादयोगुणास्तदेवं तच्चितयमप्यसाविच्छतीति निलयनप्रस्थकादिदृष्टांतैरनुयोगद्वारप्रसिद्धैस्तत्स्वरूपमवसेयमयं च नैगमः सामान्यविशेषात्मवस्तुसमाश्रयणेपि न सम्यग्दृष्टिर्निर्देनैव सामान्यविशेषयोराश्रयणात्तन्मताश्रितनैयायिकवैशेषिकवत् । तथा संग्रहोप्येवं स्वरूपस्तद्यथा सम्यक् पदार्थानां सामान्याकारतया ग्रहणं संग्रहस्तथा ह्यप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावमेव सत्तारूपं वस्त्वसावभ्युपगच्छति सत्तातोव्यतिरिक्तस्यावस्तुत्वं खरविषाणस्येव सच संग्रहः सामान्यविशेषात्मकस्य वस्तुनः सामान्यांशस्यैवाश्रयणान्मिथ्यादृष्टिस्तन्मताश्रितसांख्यवत् । व्यवहारनयस्य तु स्वरूपमिदं तद्यथा यथा लोकग्राह्यमेव वस्तु यथा च शुष्कतार्किकैः स्वाभिप्रायकृतलक्षणानुगतं तथाभूतं वस्तु न भवत्येव नहि प्रतिलक्षणमर्थानामात्मभेदोभवति किं तर्हि यथा यथा लोके न विशिष्टभूयिष्ठतयार्थक्रियाकारि वस्तु व्यवह्रियते तथैव त द्विस्त्वित्याबालगोपालांगनादिप्रसिद्धत्वा द्वस्तुस्वरूपस्येत्ययमप्युत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तस्य वस्तुनोनाभ्युपगमात् मिथ्यादृष्टिस्तथाविधरथ्यापुरुषवदिति । ऋजुसूत्रमतं त्विदं ऋजुप्रगुणं तत्वविनष्टानुत्पन्नतयातीतानागतचक्रपरित्यागेन वर्तमानकाललक्षणभावि य द्वस्तु तत्सूत्रयति प्रतिपादयत्याश्रयतीति ऋजुसूत्रस्तस्यैवार्थक्रियाकारितया वस्तुत्वलक्षणयोगादित्ययमपि सामान्यविशेषोभयात्मकस्य वस्तुनः सामा

न्यांशपरित्यागेन विशेषांशस्यैव समाश्रयणाद्वौद्धोदनिवन्न सम्यग्दृष्टिः कारणनूतः
नन्युपगमेन तदाश्रितविशेषस्यैव नावादिति । शब्दनयस्वरूपंत्विदं तद्यथा शब्दद्वारे
स्यार्थप्रतीत्यान्युपगमाल्लिंगवचनसाधनोपग्रहकालनेदाभिहितं वस्तु निन्नमेवेच्छति तत्र
गनेदाभिहितं वस्त्वन्यदेव नवति तद्यथा पुष्यस्तारकानक्षत्रमेवं संख्याभिन्नं जलमयो
क्तुः साधननेदस्त्वयं एहिमन्ये रथेन यास्यसि यातस्ते पिता अस्यायमर्थः । एवं त
न्यसे यथाहं रथेन यास्यामीत्यत्र मध्यमपुरुषयोर्व्यत्ययः उपग्रहस्तु परस्मैपदात्मनं
योर्व्यत्ययस्तद्यथा तिष्ठति प्रतिष्ठते रमते उपरमतीत्यादि कालनेदस्त्वग्निष्टोमयाजी
स्य नविता अस्यायमर्थोऽग्निष्टोमयाजी अग्निष्टोमेनेष्टवान् नूते णिनिर्नवितेति नवि
नद्यतने लुट् तत्रायमर्थः णिनिप्रत्ययोनवितेत्यस्य संबधान्नूतकालतां परित्यज्य नवि
ष्यत्कालतां प्रतिपद्यते तेनेदमुक्तं नवत्येवंनूतोऽस्य पुत्रोनविष्यति योऽग्निष्टोमेन यक्ष्यति
वंनूतं व्यवहारनयशब्दनयोनेच्छति लिंगाद्यभिन्नास्तु पर्यायाः अनेकविषयत्वेनेच्छति तद्य
घटः कुंनः इंद्रः शक्रः पुरंदरइत्यादि । अयमर्थोव्यंजनपर्यायोनयरूपस्य वस्तुनोव्यंजन
यस्यैव समाश्रयणान्मिथ्यादृष्टिरिति । तथा पर्यायाणां नानार्थतया समभिरोहणात
निरूढोन ह्ययं घटादिपर्यायाणामेकार्थतामिच्छति तथाहि घटनाद्घटः कुट्टनात्कुट्टः कौ
तीति कुंनोनहि घटनं कुट्टनं नवति तथेंदनादिंद्रः पुर्दारणात्पुरंदरइत्यादेरपि शब्दप्र
निमित्तस्य न परस्परानुगतिरिति तदयमपि मिथ्यादृष्टिः पर्यायाभिहितधर्मैव वस्तुनोन
यणाद्गृहीतप्रत्येकावयवांधहस्तिज्ञानवदिति । एवंनूताभिप्रायस्त्वयं यदैव शब्दप्रवृ
मित्तं चेष्टादिकं तस्मिन्घटादिके वस्तुनि तदेवासौ युवतिमस्तकारूढउदकाद्याहरणक्रि
वृत्तोघटोनवति न निर्व्यापारएव एवंनूतः तस्यार्थस्य समाश्रयणादेवंनूतोभिधानोनयो
ति । तदयमप्यनंतधर्माध्यासितस्य वस्तुनोनाश्रयणान्मिथ्यादृष्टिः । रत्नावल्यवयवे
अरागादौ कृतरत्नावलीव्यपदेशपुरुषवदिति । तदेवं सर्वे नयाः प्रत्येकं मिथ्यादृष्टयो
न्यतव्यपेक्षास्तु सम्यक्त्वं नजंति अत्र च ज्ञानक्रियान्यां मोक्षइतिकृत्वा ज्ञानक्रियानय
सर्वेप्येते स्वधिया समवतारणीयाः तत्रापि ज्ञाननयऐहिकामुष्मिकयोर्ज्ञानमेव फल
धकत्वेनेच्छति न क्रियां । क्रियानयस्तु क्रियामेव न ज्ञानं परमार्थस्तूनयमपि समुदितम
न्यसव्यपेक्षं पंग्वंधवदभिप्रेतफलसिध्येऽलमिति एतच्चनयद्युक्तएव साधुरभिप्रेतमर्थं सा
त्युक्तं च । सवेसिं पिणयाणं, बहुविहवत्तवयं णिसामेत्ता ॥ तं सवणय विसुद्धं, जं च
गुणाट्ठिउ साहू ॥ १ ॥ ४० ॥ समाप्तमिदं नालंदाख्यं सप्तममध्ययनम् ॥ इति समा
सूत्रकृतद्वितीयांगस्य टीका । कृता चेयं शीलाचार्येण वाहरिगणिसहायेन ॥ श्लोक
यदवाप्त मत्र पुण्यं, टीकाकरणे मया समाधिनृता ॥ तेनापेततमस्को,नव्यः कल्य
नाग् नवतात् ॥ १ ॥ ग्रंथाग्रं ( १२८५०) ॥